॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

77

महर्षिवाल्मीकिप्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

सचित्र, हिंदी-अनुवाद श्लोकाङ्कसहित

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

महर्षिवाल्मीकिप्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(सचित्र, केवल भाषा)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

वेद जिस परमतत्त्वका वर्णन करते हैं, वही श्रीमन्नारायणतत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है। वेदवेद्य परमपुरुषोत्तमके दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण होनेपर साक्षात् वेद ही श्रीवाल्मीकिके मुखसे श्रीरामायणरूपमें प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकोंकी चिरकालसे मान्यता है। इसलिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। यों भी महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं, अतः विश्वके समस्त कवियोंके गुरु हैं। उनका 'आदिकाव्य' श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भूतलका प्रथम काव्य है। वह सभीके लिये पूज्य वस्तु है। भारतके लिये तो वह परम गौरवकी वस्तु है और देशकी सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। इस नाते भी वह सबके लिये संग्रह, पठन, मनन एवं श्रवण करनेकी वस्तु है। इसका एक-एक अक्षर महापातकका नाश करनेवाला है—

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।

यह समस्त काव्योंका बीज है—

'काव्यबीजं सनातनम्।'

(बृहद्धर्म० १। ३०। ४७)

श्रीव्यासदेवादि सभी कवियोंने इसीका अध्ययन कर पुराण, महाभारतादिका निर्माण किया।[1] 'बृहद्धर्मपुराण' में यह बात विस्तारसे प्रतिपादित है। श्रीव्यासजीने अनेक पुराणोंमें रामायणका माहात्म्य गाया है। स्कन्दपुराणका रामायणमाहात्म्य तो इस ग्रन्थके आरम्भमें दिया ही है, कई छिट-पुट माहात्म्य अलग भी हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि व्यासजीने युधिष्ठिरके अनुरोधसे एक व्याख्या वाल्मीकिरामायणपर लिखी थी और उसकी एक हस्तलिखित प्रति अब भी प्राप्य है।[2] इसका नाम 'रामायणतात्पर्यदीपिका' है। इसका उल्लेख दीवानबहादुर रामशास्त्रीने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन रामायण' के द्वितीय खण्डमें किया है। यह पुस्तक १९४४ ई०में बड़ौदासे प्रकाशित है। द्रोणपर्वके १४३। ६६-६७ श्लोकोंमें महर्षि वाल्मीकिके युद्धकाण्डके ८१। २८ को नामोल्लेखपूर्वक श्लोकका हवाला दिया गया है।[3] 'अग्निपुराण' के ५ से १३ तकके अध्यायोंमें 'वाल्मीकि' के नामोल्लेखपूर्वक रामायणसारका वर्णन है। गरुडपुराण, पूर्वखण्डके १४३ वें अध्यायमें भी ठीक इन्हीं श्लोकोंमें रामायणसार कथन है। इसी प्रकार हरिवंश (विष्णुपर्व ९३। ६—३३) में भी यदुवंशियोंद्वारा वाल्मीकिरामायणके नाटक खेलनेका उल्लेख है—

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम्।

श्रीव्यासदेवजीने वाल्मीकिकी जीवनी भी बड़ी श्रद्धासे 'स्कन्दपुराण' वैष्णवखण्ड, वैशाखमाहात्म्य १७ से २० अध्यायोंतक ('कल्याण' सं० स्कन्दपुराणाङ्क पृ० ३७४ से ३८१ तक), आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्यके २४ वें अध्यायमें ('कल्याण' संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क पृ० ७०८-९), प्रभासखण्डके २७८ वें अध्यायमें (सं० स्कन्दपुराणाङ्क पृ० १०२५—२७) तथा अध्यात्मरामायणके अयोध्याकाण्डमें (६।६४—९२) वर्णन किया है। मत्स्यपुराण १२।६१ में वे इन्हें 'भार्गवसत्तम' से स्मरण करते हैं[4] और भागवत ६।१८।५ में 'महायोगी' से।

इसी प्रकार कविकुलतिलक कालिदासने रघुवंशमें आदिकविको दो बार स्मरण किया है। एक तो—'**कविः कुशेध्माहरणाय यातः। निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोक-**

---

१. (क) पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम्। यत्र रामचरित्रं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्॥
(बृहद्धर्मपुराण, प्रथमखण्ड ३०।४७, ५१)
(ख) रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया। करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च॥
(बृहद्धर्मपुराण १।३०।५५)

2. A curious Ms. is that of 'Rāmāyaṇatātparyadīpikā which is said to have been an exposition of the meaning of the Rāmāyaṇa' by Vyāsa at the request of Yudhiṣṭhira.
('Studies in Rāmāyaṇa', 'Riddles of Rāmāyaṇa' By K. S. Rāmaśāstrī, Book II, P.I.)

३. यह श्लोक इस प्रकार है—
अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि। न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम। ....
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत्॥ (महा० उद्योग० १४३।६७-६८)
भट्टिकाव्यका १७। २२ श्लोक भी इसीपर आधारित है।

४. वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः।

त्वमापद्यत यस्य शोकः[१] **॥**' (१४। ७०) इस श्लोकमें, दूसरे २। ४ के '**पूर्वसूरिभिः**' में। भवभूतिको करुणरसका आचार्य माना गया है, किंतु हम देखते हैं कि उन्हें इसकी शिक्षा आदिकविसे ही मिली है। वे भी उत्तररामचरितके दूसरे अङ्कमें '**वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि**' '**मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं…… उपासते**' आदिसे उन्हींका स्मरण करते हैं। 'सुभाषितपद्धति' के निर्माता शार्ङ्गधर उनके इस ऋणको स्पष्ट व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

कवीन्द्रं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीकथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः॥

इसी तरह महाकवि भास, आचार्य शङ्कर, रामानुजादि सभी सम्प्रदायाचार्य, राजा भोज आदि परवर्ती विद्वानोंसे लेकर हिंदीसाहित्यके प्राण गोस्वामी तुलसीदासजीतकने *'बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ' 'जान आदिकबि नाम प्रतापू', 'बालमीकि भे ब्रह्म समाना'* (रामचरितमानस), *'जहाँ बालमीकि भए ब्याधतें मुनिंदु साधु' 'मरा मरा' 'जपें सिख सुनि रिषि सातकी'* (कवितावली, उत्तरकाण्ड १३८ से १४०), *'कहत मुनीस महेस महातम उलटे सीधे नामको' 'महिमा उलटे नामकी मुनि कियो किरातो।'* (विनयपत्रिका १५६, १५१), *'उलटा जपत कोलते भए ऋषिराव'* (बरवै रामा० ५४), *'राम बिहाइ मरा जपते बिगरी सुधरी कबि कोकिलहू की'* (कवि० ७। ८८) इत्यादि पदोंसे इनका बार-बार श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है; कृतज्ञता ज्ञापन की है।

संक्षिप्त जीवनी

महर्षि वाल्मीकिजीको कुछ लोग निम्न जातिका बतलाते हैं। पर वाल्मीकिरामायण ७। ९६। १९, ७। ९३। १७ तथा अध्यात्मरामायण ७। ७। ३१ में इन्होंने स्वयं अपनेको प्रचेताका पुत्र कहा है।[२] मनुस्मृति १। ३५ में '**प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च**' प्रचेताको वसिष्ठ, नारद, पुलस्त्य, कवि आदिका भाई लिखा है। स्कन्दपुराणके वैशाखमाहात्म्यमें इन्हें जन्मान्तरका व्याध बतलाया है। इससे सिद्ध है कि जन्मान्तरमें ये व्याध थे। व्याध-जन्मके पहले भी स्तम्भ नामके श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध-जन्ममें शङ्खु ऋषिके सत्सङ्गसे, रामनामके जपसे ये दूसरे जन्ममें 'अग्निशर्मा' (मतान्तरसे रत्नाकर) हुए। वहाँ भी व्याधोंके सङ्गसे कुछ दिन प्राक्तन संस्कारवश व्याध-कर्ममें लगे। फिर, सप्तर्षियोंके सत्संगसे मरा-मरा जपकर—बाँबी पड़नेसे वाल्मीकि नामसे ख्यात हुए और वाल्मीकि-रामायणकी रचना की। ('कल्याण' सं० स्कन्दपुराणाङ्क पृ० ३८१; ७०९; १०२४) बंगलाके कृत्तिवासरामायण, मानस, अध्यात्मरामा० २। ६। ६४ से ९२, आनन्दरामायण राज्यकाण्ड १४। २१—४९, भविष्यपुराण प्रतिसर्ग० ४। १० में भी यह कथा थोड़े हेर-फेरसे स्पष्ट है। गोस्वामी तुलसीदासजीने वस्तुतः यह कथा निराधार नहीं लिखी। अतएव इन्हें नीच जातिका मानना सर्वथा भ्रममूलक है।

प्राचीन संस्कृत टीकाएँ

वाल्मीकिरामायणपर अगणित प्राचीन टीकाएँ हैं, यथा—१ कतक टीका (इसका नागोजीभट्ट तथा गोविन्द-राजादिने बहुत उल्लेख किया है), २—नागोजीभट्टकी तिलक या रामाभिरामी व्याख्या, ३—गोविन्दराजकी भूषण टीका, ४—शिवसहायकी रामायण-शिरोमणि व्याख्या, (ये पूर्वोक्त तीनों टीकाएँ गुजराती प्रिंटिङ्ग प्रेस बम्बईसे एकमें ही छपी हैं।) ५—माहेश्वरतीर्थकी तीर्थव्याख्या या तत्त्वदीप, ६—कन्दाल रामानुजकी रामानुजीयव्याख्या; (ये टीकाएँ वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईसे छपी हैं।) ७—वरदराजकृत विवेकतिलक, ८—त्र्यम्बकराज मखानीकी धर्माकूत-व्याख्या (यह खण्डशः मद्रास एवं श्रीरङ्गम्से छपी है) और ९—रामानन्दतीर्थकी रामायणकूट-व्याख्या। इसके अतिरिक्त चतुरर्थदीपिका, रामायणविरोधपरिहार, रामायणसेतु, तात्पर्यतरणि, शृङ्गारसुधाकर रामायणसप्तबिम्ब, मनोरमा आदि अनेक टीकाएँ हैं। 'रीडिंग्स इन रामायण' के अनुसार इतनी टीकाएँ और हैं—१ अहोबलकी 'वाल्मीकि-हृदय' (तनिश्लोकी) व्याख्या, उनके शिष्यकी विरोधभञ्जिनी टीका, माधवाचार्यकी रामायणतात्पर्यनिर्णय-व्याख्या, श्रीअप्पय दीक्षितेन्द्रकी भी इसी नामकी एक अन्य व्याख्या (जिसमें उन्होंने रामायणको शिवपरक सिद्ध किया है), प्रबालमुकुन्दसूरिकी रामायणभूषण-व्याख्या एवं श्रीरामभद्राश्रमकी सुबोधिनी टीका। डाक्टर एम० कृष्णमाचारीने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' में कई ऐसी टीकाओंका उल्लेख किया है, जिनके

---

१. आदिकवि वाल्मीकि उस समय कुश, समिधा आदि लेने निकले थे। व्याधके द्वारा मारे गये क्रौञ्चको देखकर उन्हें बड़ा शोक हुआ और वही श्लोकरूपमें परिणत हो गया। 'ध्वन्यालोक' कार श्रीआनन्दवर्धनने भी इसीसे मिलते-जुलते शब्दोंमें कहा है—

'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।' (ध्वन्यालोक १।५)

वस्तुतः इन दोनों ही पद्योंका मूल स्वयं आदिकवि (वाल्मी० १।२।४०) का ही श्लोक है, जो इस प्रकार है—

'सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः।'

२. 'प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।'

लेखकोंका पता नहीं है। उदाहरणार्थ—अमृतकतक, रामायणसारदीपिका, गुरुबाला चित्तरञ्जिनी, विद्वन्मनोरञ्जिनी आदि। उन्होंने वरदराजाचार्यके रामायणसारसंग्रह, देवरामभट्टकी विषयपदार्थव्याख्या, नृसिंह शास्त्रीकी कल्पवल्लिका, वेंकटाचार्यकी रामायणार्थप्रकाशिका, वेंकटाचार्यके रामायण-कथाविमर्श आदि व्याख्याग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कई टीकाएँ 'मध्वविलास' वाली प्रतिमें संग्रहीत हैं। ज्ञात ये सब तो संस्कृत व्याख्याएँ हैं। अज्ञात संस्कृत व्याख्याओं, हिन्दीके अनेकानेक द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैतादि मतावलम्बियों, आर्यसमाजकी व्याख्याओं, बंगला, मराठी, गुजराती आदि विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं तथा फ्रेंच, अंग्रेजी आदि अन्य विदेशी भाषाओंमें किये गये अनुवाद, टीका-टिप्पणियोंकी तो यहाँ कोई बात ही नहीं छेड़नी है; क्योंकि उनका अन्त ही नहीं होना है।

रामायणके काव्यगुण, अन्य विशेषताएँ

कुछ लोगोंने तो यहाँतक कहा है कि रामायणके लक्षणोंके आधारपर ही दण्डी आदिने काव्योंकी परिभाषा बतलायी। त्र्यम्बकराज मखानीने सुन्दरकाण्डकी व्याख्यामें प्रायः सभी श्लोकोंको अलंकार, रसादियुक्त मानकर काण्डनामकी सार्थकता दिखलायी है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। सुन्दरका० ५वाँ सर्ग तो नितान्त सुन्दर है ही। श्रीमखानीने सभीके उदाहरण भी दिये हैं। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आदिकविने किसी प्राचीन काव्यको बिना ही देखे, किसी ग्रन्थसे बिना ही सहारा लिये सर्वोत्तम काव्यका निर्माण किया। इनका प्राकृतिक चित्रण तो सुन्दर है ही, संवाद सर्वाधिक सुन्दर है। हनुमान्‌जीकी वार्तालापकुशलता सर्वत्र देखते बनती है। श्रीरामकी प्रतिपादनशैली, दशरथजीकी संभाषणपद्धति, (अयोध्याकाण्ड २रा सर्ग) किमधिकं कहीं-कहीं रावणका भी कथन (लंकाकाण्ड १६वाँ सर्ग) बहुत सुन्दर है। इन्होंने ज्योतिषशास्त्रको भी परम प्रमाण माना है। त्रिजटाके स्वप्न, श्रीरामका यात्राकालिक मुहूर्तविचार, विभीषणद्वारा लंकाके अपशकुनोंका प्रतिपादन (लंकाकाण्ड १०वाँ सर्ग) आदि ज्योतिर्विज्ञानके ज्ञापक तथा समर्थक हैं। श्रीराम जब अयोध्यासे चलते हैं तो नौ ग्रह एकत्र हो जाते हैं[१]—इससे लंकायुद्ध होता है। दशरथजी श्रीरामसे ज्योतिषियोंद्वारा अपने अनिष्ट फलादेशकी बात बतलाते हैं। (अयोध्या० ४। १८)[२]। युद्धकाण्ड १०२। ३२—३४ के श्लोकोंमें रावणमरणके समयकी ग्रहस्थिति भी ध्येय है। युद्धकाण्ड ९१वें सर्गमें आयुर्वेदविज्ञानकी बातें हैं। युद्ध १८ वें सर्ग तथा ६३। २ से २५ श्लोकतक राजनीतिकी अत्यन्त सारभूत अद्भुत बातें हैं। युद्धकाण्ड ७३। २४—२८ में तन्त्रशास्त्रकी भी प्रक्रियाएँ हैं। इसमें रावण तथा मेघनादको भारी तान्त्रिक दिखलाया गया है। मेघनादकी सब विजय तन्त्रमूलक है। जब वह जीवित कृष्णछागकी बलि देता है, तब तप्तकाञ्चनके तुल्य अग्निकी दक्षिणावर्त शिखाएँ उसे विजय सूचित करती हैं—**'प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनसन्निभः।'** (६। ७३। २३)। रावण भी भारी तान्त्रिक है। उसकी ध्वजापर (तान्त्रिकका चिह्न) नरशिरकपाल—मनुष्यकी खोपड़ीका चिह्न था। (६। १००। १४)। किंतु उसके पराभव आदिद्वारा ऋषि वाममार्गके इन बलि-मांस-सुरादि क्रियाओंकी असमीचीनता प्रदर्शित करते हैं (गोस्वामी तुलसीदासजीने भी *'तजि श्रुति पंथ बाम मग चलहीं,'* (अयोध्या० १६८। ७-८), *'कौल कामबस कृपन बिमूढा'* (लंका० ३१। २) आदिसे इसी बातका समर्थन किया है)। इस तरह हमें महर्षिकी दृष्टिमें ज्यौतिष, तन्त्र, आयुर्वेद, शकुन आदि शास्त्रोंकी प्राचीनता एवं समीचीनता ज्ञात होती है। वस्तुतः यही परम आस्तिककी दृष्टि होती है। धर्मशास्त्रके लिये तो यह ग्रन्थ परम प्रमाण है ही, अन्य ऐतिहासिक कथाएँ भी बहुत हैं, अर्थशास्त्रकी भी पर्याप्त सामग्री है। व्यवहार तथा आचारकी भी बातें हैं, कुशलमार्गका भी प्रदर्शन है।

पवित्र दार्शनिकता

महर्षि वाल्मीकिकी अद्‌भुत कविता एवं अन्यान्य महत्तामें उनकी तपस्या ही हेतु है। इसमें वाल्मीकिरामायण ही साक्षी है। **'तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्'** से इस काव्यका 'तप' शब्दसे ही आरम्भ होता है और प्रथम अर्धालीमें ही दो बार 'तप' शब्द आया और 'तपस्वी' शब्दद्वारा महर्षिने एक प्रकारसे अपनी जीवनी भी लिख दी। तपद्वारा ही ब्रह्माजीका उन्होंने साक्षात् किया, रामायणकी दिव्यकाव्यताका आशीर्वाद लिया और रामचरित्रका दर्शन किया। बादमें विश्वामित्रके विचित्र तपका वर्णन, गङ्गाजीके आगमनमें भगीरथकी अद्‌भुत तपस्या, चूली ऋषिकी तपस्या, भृगुकी तपस्या आदिका भी वर्णन है। इनके मतसे स्वर्गादि सभी सुखभोगोंका हेतु तप है। किमधिकं; रावणादिके राज्य, सुख, शक्ति, आयु आदिका मूल भी तप है। श्रीराम तो शुद्ध तपस्वी हैं। वे तपस्वियोंके आश्रममें प्रवेश करते हैं। वहाँ वे वैखानस, बालखिल्य, सम्प्रक्षाल, मरीचिप (केवल चन्द्रकिरण पान करनेवाले), पत्राहारी, उन्मज्जक (सदा कण्ठतक पानीमें डूबकर तपस्या करनेवाले), पञ्चाग्निसेवी, वायुभक्षी, जलभक्षी, स्थण्डिलशायी,

१. देखिये—'दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।' (अयोध्या० ४१। ११) पर तिलक तथा शिरोमणि-व्याख्या।
२. 'अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः। आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः॥'

आकाशनिलयी एवं ऊर्ध्ववासी (पर्वत-शिखर, वृक्ष, मचान आदिपर रहनेवाले) तपस्वियोंको देखते हैं। ये सभी जपमें लीन थे। (अरण्यकाण्ड ६ठा सर्ग) इनका जप सम्भवतः 'श्रीराम' मन्त्र रहा हो, क्योंकि इनमेंसे अधिकांश श्रीरामको देखते ही योगाग्निमें शरीर छोड़ देते हैं। वस्तुतः काव्यविधिसे कान्तासम्मित मधुर वाणीमें वाल्मीकिका यही दार्शनिक उपदेश है। उनका मूल तत्त्व इस प्रकार पवित्रतापूर्वक रहकर तपोऽनुष्ठान करते हुए ईश्वरकी आराधना करना एवं अधर्मसे सदा दूर रहना ही है।

श्रीरामकी परब्रह्मता

कुछ लोग रामायणमें नरचरित्र मानते हैं और श्रीरामके ईश्वरताप्रतिपादक (देखिये, बालकाण्ड १५ से १८ सर्ग, पुनः ७६। १७, १९, अयोध्या० १। ७, अरण्य० ३। ३७, सुन्दर० २५। २७, ३१; ५१। ३८, युद्ध० ५९। ११०; ९५। २५; पूरा १११ तथा ११७ वाँ सर्ग ११९। १८, ११९। ३२ में सुस्पष्ट 'ब्रह्म' शब्द उत्तरका० ८। २६, ५१। १२—२२; १०४। ४ आदि। बङ्ग तथा पश्चिमी शाखामें भी ये सब श्लोक हैं, बल्कि कहीं-कहीं तो इससे भी अधिक हैं।) हजारों वचनोंको प्रक्षिप्त मानते हैं। किंतु ध्यानसे पढ़नेपर श्रीरामकी ईश्वरता सर्वत्र दीखती है। गम्भीर चिन्तनके बाद तो प्रत्येक श्लोक ही श्रीरामकी अचिन्त्य शक्तिमत्ता, लोकोत्तर धर्मप्रियता, आश्रितवत्सलता एवं ईश्वरताका प्रतिपादक दीखता है। विभीषणशरणागतिके समय यद्यपि कोई भी ऐश्वर्य प्रदर्शक वचन नहीं आया, पर श्रीरामके अप्रतिम मार्दव, कपोतके आतिथ्यसत्कारके उदाहरण देने, परमर्षि कण्डुकी गाथा पढ़ने एवं अपने शरणमें आये समस्त प्राणियोंको* समस्त प्राणियोंसे अभयदान देनेके स्वाभाविक नियमको घोषित करनेके बाद प्रतिवादी सुग्रीवको विवश होकर कहना ही पड़ा कि 'धर्मज्ञ! लोकनाथोंके शिरोमणि! आपके इस कथनमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि आप महान् शक्तिशाली एवं सत्पथपर आरूढ़ हैं—

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे।
यत् त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः॥

(६। १८। ३६)

इसी प्रकार हनुमान्‌जीने सीताजीके सामने और रावणके सामने जो श्रीरामके गुण कहे हैं, उनमें उन्हें ईश्वर तो नहीं बतलाया, किंतु 'श्रीराममें यह सामर्थ्य है कि वे एक ही क्षणमें समस्त स्थावर-जंगमात्मक विश्वको संहृत कर दूसरे ही क्षण पुनः इस संसारका ज्यों-का-त्यों निर्माण कर सकते हैं' इस कथनमें क्या ईश्वरताका भाव स्पष्ट नहीं हो जाता? कितनी स्पष्टता है—

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः॥
सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

(वाल्मी० सुन्दरकाण्ड ५१। ३८-३९)

सच्ची बात तो यह है कि तपस्वी वाल्मीकि 'राम' के ही जापक थे। (उनके 'मरा-मरा' जपनेकी कथाको भी बहुतोंने निर्मूल माना है, किंतु यह कथा अध्यात्मरामायण अयोध्याकाण्ड, आनन्दरामायण राज्यकाण्ड १४ तथा स्कन्दपुराणमें भी कई बार आती है, तुलसीदासजी आदिने भी लिखा है) इसीसे उन्हें तथा अन्योंको सारी सिद्धियाँ मिली थीं, अतः इसमें 'श्रीमन्नारायण' को ही काव्यरूपमें गाया है। अन्यथा तत्कालीन कन्द-मूल-फलाशी वनवासी सर्वथा निरपेक्ष तपस्वीको किसी राजाके चरित्र-वर्णनसे कोई लाभ न था। 'योगवासिष्ठ' में भी, जो उनकी दूसरी विशाल रचना है, उन्होंने गुप्तरूपसे श्रीरामका विस्तृत चरित्र गाया है। किंतु प्रथम अध्यायमें तथा अन्यत्र भी यत्र-तत्र उनके नारायणत्वका स्पष्ट प्रतिपादन कर ही दिया है। वस्तुतः प्रेमकी मधुरता उसकी गूढ़तामें ही है। देवताओंके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्धि भी है कि वे 'परोक्षप्रिय' होते हैं—'**परोक्षप्रिया इव हि देवाः, प्रत्यक्षद्विषः**' (ऐतरेय० १। ३। १४; बृहदा० ४। २। २) अतः महर्षिकी यह वर्णनप्रणाली गूढ़ प्रेमकी ही है, किंतु साधकके लिये वह सर्वत्र स्पष्ट ही है, तिरोहित नहीं है। इसपर प्रायः सैकड़ों संस्कृत व्याख्याएँ भी इसीके साक्षी हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि

वाल्मीकिका वर्णन आधुनिक ऐतिहासिक शैलीसे नहीं है, इसलिये लोग उसे इतिहासरूपमें स्वीकार नहीं करते। किंतु वाल्मीकिका संसार हजार, दो हजार वर्षोंका न था। फिर भला अरबों वर्षोंका इतिहास क्या आजके विकासके चश्मेसे पढ़ा जा सकता है? ऐसी दशामें केवल उपयोगी व्यक्तियोंका इतिहास ही लाभदायक है। इसीलिये अपने यहाँ इतिहासकी परिभाषा ही दूसरी की गयी है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

(विष्णुधर्म० ३। १५। १)

* यहाँ 'सर्वभूतेभ्यः' में प्रायः सभी प्राचीन टीकाकारोंने चतुर्थी और पञ्चमी दोनों मानकर इस पदका दो बार अर्थ किया है।

और विस्तृत एवं दीर्घकालिक विश्वका इतिहास तो रामायण-महाभारतकी भाँति ही हो सकता है और धर्म, अर्थ, लोक-व्यवहार, परलोक-सुखकी दृष्टिसे वही लाभकर भी सिद्ध हो सकता है।

भौगोलिक विवरण

रामायणके भूगोलपर भी बहुत अनुसंधान हुआ है। 'कल्याण'का रामायणाङ्क, कनिङ्गमकी 'ऐन्शेन्ट डिक्शनरी', श्रीदेके 'जागरफिकल डिक्शनरी'में इसपर बहुत अनुसंधान है। कई लोगोंने स्वतन्त्र लेख भी लिखे हैं। लंदनके 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' में एक महत्त्वपूर्ण लेख छपा था। 'वेद धरातल' (पं० गिरीशचन्द्र) में भी कुछ अच्छी सामग्री है। केवल 'लंका' पर ही कई प्रबन्ध हैं। 'सर्वेश्वर' के एक लेखमें 'मालदीप' को लंका सिद्ध किया है। कुछ लोग इसे ध्वस्त, मज्जित या दुर्ज्ञेय भी मानते हैं। वाल्मी० १। २२ की कौशाम्बी प्रयागसे १४ मील दक्षिण-पश्चिम कोसम गाँव है। धर्मारण्य आजकी गया है। 'महोदय' नगर कुशनाभकी कन्याओंके कुब्ज होनेसे आगे चलकर कान्यकुब्ज,[१] पुनः कन्नौज हुआ, गिरिव्रज 'राजगिर' (बिहार) है। १। २४ के मलद-करूष आरा जिलेके उत्तरी भाग हैं। केकयदेश कुछ लोग 'गजनी' को और कुछ झेलम एवं कीकनाको कहते हैं। बालकाण्ड २। ३-४ में आयी तमसा नदीपर वाल्मीकिजीका आश्रम था। यह उस तमसासे सर्वथा भिन्न है, जिसका उल्लेख गङ्गाके उत्तर तथा अयोध्याके दक्षिणमें मिलता है। वाल्मीकि-आश्रमका उल्लेख २। ५६। १६ में भी आया है। पश्चिमोत्तरशाखीय रामायणके २। ११४ में भी इस आश्रमका उल्लेख है। बी० एच० वडेरने 'कल्याण' रामायणाङ्कके ४९६ पृष्ठपर इसे प्रयागसे २० मील दक्षिण लिखा है। सम्मेलनपत्रिका ४३। २ के १३३ पृष्ठपर वाल्मीकि-आश्रम प्रयाग-झाँसीरोड और राजापुर-मानिकपुर रोडके सङ्गमपर स्थित बतलाया गया है। गोस्वामी तुलसीदासजीके मतसे इनका आश्रम 'वारिपुर दिगपुर बीच (विलसतिभूमि)' था। मूल गोसाईंचरितकार 'दिगवारिपुरा बीच सीतामढ़ी' को वाल्मीकि-आश्रम मानते हैं। कुछ लोग कानपुरके बिठूरको भी वाल्मीकाश्रम मानते हैं।[२] २। ५६। १६ की टीकामें कतक, तीर्थ, गोविन्दराज, शिरोमणिकार आदि इनका समाधान करते हुए लिखते हैं कि ऋषि प्रायः घूमते रहते थे। श्रीरामके वनवासके समय वे चित्रकूटके समीप तथा राज्यारोहणकालमें गङ्गातटपर (बिठूर) रहते थे। वाल्मी० ७। ६६। १ तथा ७। ७१। १४ से भी वाल्मीकाश्रम बिठूरमें ही सिद्ध होता है। अन्य विवरण प्रायः प्रस्तुत ग्रन्थकी टिप्पणियोंमें ही दिये गये हैं।

रामायणमें राजनीति, मनोविज्ञान

वाल्मीकिकी राजनीति बहुत उच्च कोटिकी है। उसके सामने सभी राजनीतिक विचार तुच्छ प्रतीत होते हैं। हनुमान्‌जी तो नीतिकी मूर्ति ही प्रतीत होते हैं। विभीषणके आनेपर श्रीराम सबसे सम्मति माँगते हैं। सुग्रीव कहते हैं कि यह शत्रुका ही भाई है, पता नहीं क्यों अब अकस्मात् हमारी सेनामें प्रवेश पाना चाहता है। सम्भव है, अवसर पाकर उल्लू जैसे कौओंका वध कर देता है, वैसे यह हमें भी मार डाले। प्रकृतिसे राक्षस है, इसका क्या विश्वास? साथ ही नीति यह है कि मित्रकी भेजी हुई, मोल ली हुई तथा जंगली जातियोंकी भी सहायता ग्राह्य है, पर शत्रुकी सहायता तो सदा शंकनीय है। अङ्गदने भी प्रायः ऐसी ही बात कही। जाम्बवन्तने कहा कि हमें भी इसको अदेशकालमें आया देख बड़ी शंका हो रही है। शरभने कहा कि इसपर गुप्तचर छोड़ा जाय। अश्विपुत्र मैन्दने कहा कि इससे प्रश्न-प्रतिप्रश्न किये जायँ, जिसके उत्तरसे भाव जान लिये जायँगे।

पर हनुमान्‌जीने इनका ऐसा खण्डन किया, जो आज भी अभूतपूर्व है। वे बोले—'प्रभो! आपके समक्ष बृहस्पतिका भाषण भी तुच्छ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं विवाद, तर्क, स्पर्धा आदिके कारण नहीं, कार्यकी गुरुताके कारण कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

'आपके मन्त्रियोंमेंसे कुछने विभीषणके पीछे गुप्तचर लगानेकी राय दी है, पर गुप्तचर तो दूर रहनेवाले तथा 'अदृष्ट अज्ञातवृत्त' व्यक्तिके पीछे लगाया जाता है, यह तो प्रत्यक्ष ही सामने है, अपना नाम-काम भी स्वयं ही कह रहा है, यहाँ गुप्तचरका क्या उपयोग? कुछ लोगोंने कहा है कि 'यह अदेशकालमें आया है', किंतु मुझे तो लगता है कि यही इसके आनेका देशकाल है। आपके द्वारा वालीको मारा गया और सुग्रीवको अभिषिक्त सुनकर आपके परम शत्रु तथा वालीके मित्र रावणके संहारके लिये ही आया है। इससे प्रश्न करनेकी बात भी दोषयुक्त दीखती है, क्योंकि उससे इसके मैत्रीभावमें बाधा पहुँचेगी और यह मित्रदूषित करनेका कार्य हो जायगा। यों तो आप कुछ भी बात करते समय इसके स्वरभेद, आकार, मुखविक्रिया आदिसे इसकी मन:स्थिति भाँप ही लेंगे। सुतरां मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार यह कुछ निवेदन किया, प्रमाण तो स्वयं आप ही हैं।' इसी तरह उनका लंकाप्रवेशके बाद १३वें सर्गका विमर्श, सीतासे बात करनेके पहले, 'किस भाषामें किस प्रकार बात

१. इसकी उत्पत्तिकी एक दूसरी रोचक कथा 'कल्याण' वर्ष ३४ अंक १२ के पृष्ठ १३८९ पर देखें।

२. स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड १। २४ में इनका आश्रम विदिशा (आजका मेलसा मध्यभारत) तथा भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व ४। १०। ५४ में उत्पलारण्य-उत्पलावर्त (बिठूर, कानपुर) में माना है।

करूँ' इत्यादि परामर्श, पुन: सीतासे बातें कर वापस चलनेके समय दूतादिके कर्तव्य एवं लङ्काके बलाबलकी जानकारीके लिये किया गया ऊहापोह, सुग्रीवको भोगलिप्त देखकर दिया गया परामर्श तथा रावणको जो उपदेश किया है, उसमें इनकी अपूर्व नीतिमत्ता, रामभक्ति, विचारप्रवणता, साधुता तथा अप्रतिम बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। इन्हीं सब कारणोंसे उन्हें—'**बुद्धिमतां वरिष्ठम्**' कहा गया है। स्वयं श्रीराम भी बार-बार इनके भाषणचातुर्य, बुद्धिकौशलपर चकित होते हैं (किष्किन्धा० ४। २५—३५; युद्धकाण्ड १)। श्रीरामकी नीतिमत्ता, साधुता, सद्गुणसम्पन्नता तो सर्वोपरि है ही। श्रीलक्ष्मण भी कम नहीं हैं। वे मारीचको पहले ही राक्षस बतलाकर सावधान करते हैं। सीतासे बार-बार कहते हैं कि 'श्रीरामपर कोई संकट नहीं है, आपपर ही संकट आया दीखता है। यह सब राक्षसोंकी माया है' इत्यादि। इसी प्रकार विभीषण आदिकी बातें भी स्थान-स्थानपर देखते बनती हैं।

उपसंहार

इन सभी गुणोंके आकर होनेसे ही यह काव्य सर्वाधिक लोकप्रिय, अजर, अमर, दिव्य तथा कल्याणकर[१] है। संतोंके शब्दोंमें यह 'रामायण श्रीरामतनु' है। इसका पठन, मनन, अनुष्ठान साक्षात् प्रभु श्रीरामका संनिधान प्राप्त करना है।[२] हनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये इस श्रीरामचरितके गानसे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। (इसमें हनुमच्चरित्र भी निरुपम, उज्ज्वल तथा दिव्य है।) इसलिये अनादिकालसे इसके श्रवण-पठन-अनुष्ठानादिकी परम्परा है। रामलीलाका भी पहले यही आधार रहा। हम पहले यदुवंशियोंद्वारा हरिवंशमें वर्णित रामायणनाटक खेलनेका उल्लेख कर चुके हैं। वहाँ इसका बड़ा रोचक वर्णन है। जब सुपुरमें इन्हें सफलता मिली तो वज्रनाभके वज्रपुरमें भी बुलाया गया। वहाँ इन्होंने लोमपादद्वारा श्रृङ्ग ऋषिका आनयन, पुन: दशरथ-यज्ञ, गङ्गावतरण, रम्भाभिसार आदि नाटक खेले।

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम्।
लोमपादो दशरथ ऋष्यश्रृङ्गं महामुनिम्॥
शान्तामप्यानयामास गणिकाभि: सहानघ।
(२। ९३। ८)

लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम्।
(२। ९३। २५)

यहाँ प्रद्युम्न, गद एवं साम्ब नान्दी बाजा बजा रहे थे। (नगाड़ोंकी ध्वनिको ही यहाँ नान्दी कहा गया है।) शूर नामके यादव ही 'रावण' का नाटक खेल रहे थे। (श्लोक २८) प्रद्युम्न नलकूबर बने और साम्ब विदूषक। इससे सिद्ध है कि भगवान् श्रीकृष्णके समयसे ही सफल रामलीला-कार्य आरम्भ था। यों तो *'खेलौं तहाँ बालकन मीला। करौं सदा रघुनायक लीला॥'* से रामकथाकी तरह रामलीला आदिकी भी अनादिता सिद्ध है, तथापि इतिहासके विद्वानोंकी उत्सुकताके लिये इस घटनाका उल्लेख कर दिया गया। इसके बाद तो हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघवनाटक, अनर्घराघवनाटक, महानाटक, बालरामायणनाटक आदि अगणित रामलीलानाटक ग्रन्थ ही लिख डाले गये। इन सभी नाटकग्रन्थोंका एकमात्र आधार यह वाल्मीकिरामायण ही रहा। इतना ही नहीं—इस वाल्मीकीय रामायण एवं रामकथाका प्रचार-विस्तार जावा, बाली आदि द्वीपोंतक हुआ। भारतमें इसके चार पाठ प्रचलित हैं। पश्चिमोत्तर शाखा (लाहौरका १९३१ का संस्करण), बंगशाखीय (Gorresio's edition—गोरेशियोंका संस्करण), दाक्षिणात्य संस्करण, (गुजराती प्रिंटिङ्ग प्रेस बम्बईका तीन टीकावाला संस्करण तथा मध्वविलास बुकडिपो, कुम्भकोणम्‌का संस्करण) एवं उत्तर भारतका संस्करण (काश्मीरी संस्करण)। इनमें दाक्षिणात्य तथा औदीच्य संस्करण तो सर्वथा एक ही है। इनमें कहीं नाममात्रका भी अन्तर नहीं है। पश्चिम-पूर्ववालोंमें अध्यायोंका अन्तर है। पर उनपर कोई संस्कृत टीका नहीं मिलती। बंगशाखीयपर केवल एक लोकनाथरचित मनोरमा टीका मिलती है। इसलिये दाक्षिणात्य संस्करण (औदीच्य भी वही है ही) का ही सर्वत्र प्रचार तथा प्रामाण्य है। गीताप्रेससे भी जनताकी बहुत दिनोंसे इसकी माँग थी। अत: इसी दाक्षिणात्य पाठका टिप्पणियों तथा चित्रोंसहित शुद्ध, सटीक एवं सस्ता संस्करण जनताकी सेवाके लिये प्रकाशित किया गया है। इसीके साथ एक सस्ता केवल मूलपाठका संस्करण भी प्रकाशित किया गया है। केवल हिंदी जाननेवालोंके लिये अलगसे केवल हिंदीका ही एक सस्ता संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, सज्जनगण इनसे यथायोग्य लाभ उठायेंगे।

—जानकीनाथ शर्मा

---

१. श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति। यावत् स्थास्यन्ति गिरय: सरितश्च महीतले॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति। (बाल० २। ३५-३६-३७)

२. वाल्मीकीय रामायणके पठन-श्रवण एवं अनुष्ठानसे क्या लाभ है, इसे आगेके रामायणमाहात्म्य, युद्धकाण्डके १२८ वें सर्गके १०४ से १२२ श्लोकोंतक तथा बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्डके २५ से ३० अध्यायोंतक देखना चाहिये।

श्रीहरिः

विषय-सूची

(अयोध्याकाण्ड)

(सुन्दरकाण्ड)

(युद्धकाण्ड)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी पाठविधि

वाल्मीकीय रामायणकी अनेक प्रकारकी पारायण-विधियाँ हैं। श्रीरामसेवाग्रन्थ, अनुष्ठानप्रकाश, स्कान्दोक्त रामायण-माहात्म्य, बृहद्धर्मपुराण तथा शाङ्कर, रामानुज, मध्व, रामानन्द आदि विभिन्न सम्प्रदायोंकी अलग-अलग विधियाँ हैं, यद्यपि उनका अन्तर साधारण है। इसी प्रकार इसके सकाम और निष्काम अनुष्ठानोंके भी भेद हैं। सबपर विस्तृत विचार यहाँ सम्भव नहीं। वाल्मीकीयके परम प्रसिद्ध नवाह्न-पारायणकी ही विधि यहाँ लिखी जा रही है।

चैत्र, माघ तथा कार्तिक शुक्ल पञ्चमीसे त्रयोदशीतक इसके नवाह्न-पारायणकी विधि है[१]। किसी पुण्यक्षेत्र, पवित्र तीर्थ, मन्दिरमें या अपने घरपर ही भगवान् विष्णु तथा तुलसीके संनिधानमें वाल्मीकिरामायणका पाठ करना चाहिये। एतदर्थ यथासम्भव कथा-स्थानकी भूमिको संशोधन, मार्जन, लेपनादि संस्कारोंसे संस्कृतकर कदली-स्तम्भ तथा ध्वजा-पताका-वितानादिसे मण्डित कर देना चाहिये। मण्डपका मान १६ हाथ लंबा-चौड़ा हो और उसके बीचमें सर्वतोभद्रसे युक्त एक वेदी हो। अन्य वेदियाँ, कुण्ड तथा स्थण्डिल आदि भी हों। मण्डपके दक्षिण-पश्चिम भागमें वक्ता (व्यास) एवं श्रोताका आसन हो। व्यासासनके आगे पुस्तकका आसन होना चाहिये। श्रोताओंका आसन विस्तृत हो। व्यासका आसन श्रोतासे तथा पुस्तकका आसन वक्तासे भी ऊँचा होना चाहिये[२]। फिर प्रायश्चित्त तथा नित्यकृत्य करके भगवान् श्रीरामकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। अथवा पुस्तकपर ही सपरिकर-सपरिच्छद श्रीसीतारामजीका अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्र, भगवती सीताजी, लक्ष्मणजी, भरतजी, शत्रुघ्नजी, श्रीहनुमान्जी आदिका आवाहन करना चाहिये। तत्पश्चात् समस्त उपकरणोंसे अलंकृत, पञ्चपल्लवादिसे युक्त कलश स्थापितकर स्वस्त्ययनपूर्वक गणपतिपूजन, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, मातृका, नवग्रह, तुलसी, लोकपाल, दिक्पाल आदिका पूजन तथा नान्दीश्राद्ध करके सपरिकर-सपरिच्छद भगवान् रामकी पूजा करे।

तदनन्तर काल-तिथि-गोत्र-नाम आदि बोलकर—

ॐ भूर्भुवः स्वरोम्। ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीसीता-रामप्रीत्यर्थं श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतश्रीरामचन्द्र-प्रसादसिद्ध्यर्थं च श्रीरामचन्द्रप्रसादेन सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं श्रीराम-चन्द्रपूजनमहं करिष्ये। श्रीवाल्मीकीयरामायणस्य पारायणं च करिष्ये, तदङ्गभूतं कलशस्थापनं स्वस्त्ययनपाठं गणपतिपूजनं वटुकक्षेत्रपालयोगिनीमातृकानवग्रहतुलसीलोकपालदिक्पालादि-पूजनं चाहं करिष्ये।

—इस प्रकार संकल्प करनेके बाद पूजन करे।

ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ॐ दामोदराय नमः, ॐ मुकुन्दाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ केशवाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ श्रीधराय नमः, ॐ श्रीसीतारामाभ्यां नमः।

इस प्रकार नमस्कार करके निम्न प्रकारसे पूजा करे—

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतं श्रीरामचन्द्रं ध्यायामि—भगवान् रामका ध्यान करे।

,, **आवाहयामि**—आवाहन करे।

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेताय श्रीरामचन्द्राय नमः—रत्नसिंहासनं समर्पयामि—सिंहासन अर्पण करे।

,, **पाद्यं समर्पयामि**—पाद्य दे।

,, **अर्घ्यं समर्पयामि**—अर्घ्य दे।

,, **स्नानीयं समर्पयामि**—स्नान करावे।

,, **आचमनीयं समर्पयामि**—आचमन करावे।

,, **वस्त्रं समर्पयामि**—वस्त्र अर्पण करे।

,, **यज्ञोपवीताभरणं समर्पयामि**—यज्ञोपवीत-आभूषण दे।

,, **गन्धान् समर्पयामि**—चन्दन-कुङ्कुम लगावे।

,, **अक्षतान् समर्पयामि**—चावल चढ़ावे।

,, **पुष्पाणि समर्पयामि**—पुष्पमाला दे।

,, **धूपमाघ्रापयामि**—धूप दे।

,, **दीपं दर्शयामि**—दीपक दिखावे।

,, **नैवेद्यं फलानि च समर्पयामि**—नैवेद्य और फल अर्पण करे।

,, **ताम्बूलं समर्पयामि**—पान दे।

,, **कर्पूरनीराजनं समर्पयामि**—आरती करे।

,, **छत्रचामरादि समर्पयामि**—छत्र-चँवरादि अर्पण करे।

,, **पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि**—पुष्पाञ्जलि अर्पण करे।

,, **प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि**—प्रदक्षिणा और नमस्कार करे।

तत्पश्चात् निम्न प्रकारसे पञ्चोपचारसे श्रीरामायण-ग्रन्थकी पूजा करे—

ॐ सदा श्रवणमात्रेण पापिनां सद्गतिप्रदे।

---

१. चैत्रे माघे कार्तिके च सिते पक्षे च वाचयेत्। नवाहं सुमहापुण्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः॥
पञ्चम्या दिनमारभ्य रामायणकथामृतम्। नवाहश्रवणेनैव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (रामसेवाग्रन्थ)

२. श्रोतृभ्यश्च तथा वक्तुर्व्यासाद् ग्रन्थस्य चोच्चता। (रामसेवाग्रन्थ)

शुभे रामकथे तुभ्यं गन्धमद्य समर्पये॥

—इति गन्धं समर्पयामि।

ॐ बालादिसप्तकाण्डेन सर्वलोकसुखप्रद।
रामायण महोदार पुष्पं तेऽद्य समर्पये॥

—इति पुष्पाणि पुष्पमालां च समर्पयामि।

ॐ यस्यैकश्लोकपाठस्य फलं सर्वफलाधिकम्।
तस्मै रामायणायाद्य दशाङ्गं धूपमर्पये॥

—इति धूपमाघ्रापयामि।

ॐ यस्य लोके प्रणेतारो वाल्मीक्यादिमहर्षयः।
तस्मै रामचरित्राय घृतदीपं समर्पये॥

—इति दीपं दर्शयामि।

ॐ श्रूयते ब्रह्मणो लोके शतकोटिप्रविस्तरम्।
रूपं रामायणस्यास्य तस्मै नैवेद्यमर्पये॥

—इति नैवेद्यं समर्पयामि।

पूजा करनेके बाद कर्पूरकी आरती करके चार बार प्रदक्षिणा कर पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम कर इस प्रकार नमस्कार करे—

वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामसागरगामिनी।
पुनाति भुवनं पुण्या रामायणमहानदी॥
श्लोकसारसमाकीर्णं सर्गकल्लोलसंकुलम्।
काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम्॥

फिर देवता, ब्राह्मणादिकी पूजा कर पाठका संकल्प करके ऋष्यादिन्यास करे। अनुष्ठानप्रकाशके अनुसार कामनाभेदसे यदि पूरी रामायणका पाठ न हो सके तो अलग-अलग काण्डोंके अनुष्ठानकी भी विधि है। जैसे पुत्रकी कामनावाला बालकाण्ड पढ़े, लक्ष्मीकी इच्छावाला अयोध्याकाण्ड पढ़े। इसी प्रकार नष्टराज्यकी प्राप्तिकी इच्छावालोंको किष्किन्धाकाण्डका, सभी कामनाओंकी इच्छावालोंको सुन्दरकाण्डका और शत्रुनाशकी कामनावालोंको लङ्काकाण्डका पाठ करना चाहिये। 'बृहद्धर्मपुराण' के अनुसार इनका अन्य भी सकाम उपयोग है। वह तथा उसके न्यासादिका प्रकार आगे लिखा जायगा।

ॐ अस्य श्रीवाल्मीकिरामायणमहामन्त्रस्य भगवान् वाल्मीकिर्ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामः परमात्मा देवता। अभयं सर्वभूतेभ्य इति बीजम्। अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिति शक्तिः। एतदस्त्रबलं दिव्यमिति कीलकम्। भगवान्नारायणो देव इति तत्त्वम्। धर्मात्मा सत्यसंधश्चेत्यस्त्रम्। पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

ॐ श्रीं रां आपदामपहर्तारमित्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं रीं दातारमिति तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रों रूं सर्वसम्पदामिति मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ श्रीं रैं लोकाभिराममित्यनामिकाभ्यां नमः। ॐ श्रीं रौं श्रीराममिति कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ रौं रः भूयो भूयो नमाम्यहमिति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रोंसे इसी प्रकार हृदयादि[1] न्यास करे। फिर—

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह॥

—इति दिग्बन्धः।

यों कहकर चारों ओर हाथ घुमाकर अन्तमें फिर इस प्रकार ध्यान करे—

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्॥
'आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥'

यह सम्पुटका मन्त्र है। इससे सम्पुटित पाठ करनेसे समस्त मनःकामनाओंकी सिद्धि होती है।

फिर[2] निम्न प्रकारसे मङ्गलाचरण करके पाठ आरम्भ करना चाहिये—

---

१. हृदयादिन्यासकी विधि यह है कि 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' के स्थानपर 'हृदयाय नमः' कहकर पाँचों अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श किया जाय। 'तर्जनीभ्यां नमः' के स्थानपर 'शिरसे स्वाहा' कहकर सिरका अग्रभाग छुआ जाय। 'मध्यमाभ्यां नमः' के स्थानपर 'शिखायै वौषट्' कहकर शिखाका स्पर्श किया जाय। 'अनामिकाभ्यां नमः' के बदले 'कवचाय हुम्' कहकर दाहिने हाथसे बायें कंधे तथा बायें हाथसे दाहिने कंधेका स्पर्श करे। 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' के बदले 'नेत्रत्रयाय वौषट्' कहकर नेत्रोंका स्पर्श करे तथा 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' के बदले 'अस्त्राय फट्' कहकर तीन बार ताली बजाये।

२. 'बृहद्धर्मपुराणके अनुसार रामायणके पारायणके पहले रामायणकवचका भी पाठ कर लेना चाहिये। वह मङ्गलाचरणके पहले होना चाहिये। कम-से-कम प्रथम दिन इसका पाठ तो कर ही लेना चाहिये। कवच इस प्रकार है—

ॐ नमोऽष्टादशतत्त्वरूपाय रामायणाय महामन्त्रस्वरूपाय। मा निषादेति मूलं शिरोऽवतु। अनुक्रमणिकाबीजं मुखमवतु। ऋष्यशृङ्गोपाख्यानमृषिर्जिह्वामवतु। जानकीलाभोऽनुष्टुप्छन्दोऽवतु गलम्। केकय्यज्ञा देवता हृदयमवतु। सीतालक्ष्मणानुगमनश्रीरामहर्षाः प्रमाणं जठरमवतु। भगवद्भक्तिः शक्तिरवतु मे मध्यमम्। शक्तिमान् धर्मो मुनीनां पालनं ममोरू रक्षतु। मारीचवचनं प्रतिपालनमवतु पादौ। सुग्रीवमैत्रमर्थोऽवतु स्तनौ। निर्णयो हनुमच्चेष्टावतु बाहू। कर्ता सम्पातिपक्षोद्गमोऽवतु स्कन्धौ। प्रयोजनं विभीषणराज्यं ग्रीवां ममावतु। रावणवधः स्वरूपमवतु कर्णौ। सीतोद्धारो लक्षणमवतु नासिके। अमोघस्तव संस्तवोऽवतु जीवात्मानम्। नयः काललक्ष्मणसंवादोऽवतु नाभिम्। आचरणीयं श्रीरामादिधर्मं सर्वाङ्गं ममावतु। इति रामायणकवचम्। (बृहद्धर्मपुराणम्, पूर्वखण्डम् २५ वाँ अध्याय)

गणपतिका ध्यान

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥
वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम्॥

गुरुकी वन्दना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

सरस्वतीका स्मरण

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण।
भासा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमानासमाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना॥

वाल्मीकिजीकी वन्दना

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥
यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥

हनुमान्‌जीको नमस्कार

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥
अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्॥
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥
आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम्।
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम्॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥

श्रीरामके ध्यानका क्रम

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्॥
वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्॥

श्रीरामपरिकरको नमस्कार

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

रामायणको नमस्कार

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥
वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता।
श्रीमद्रामायणी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥

पाठ आरम्भ करनेके बाद अध्यायके बीचमें रुकना नहीं चाहिये। रुक जानेपर फिर उसी अध्यायको आरम्भसे पढ़ना चाहिये। मध्यम स्वरसे, स्पष्ट उच्चारण करते हुए श्रद्धा तथा प्रेमसे पाठ करना चाहिये। गीत गाकर, सिर हिलाकर, जल्दबाजीसे तथा बिना अर्थ समझे पाठ करना ठीक नहीं है। संध्या-समय निम्नलिखित स्थलोंपर प्रतिदिन विश्राम करते जाना चाहिये।

प्रथम दिन अयोध्याकाण्डके ६ ठे सर्गकी समाप्तिपर प्रथम विश्राम
द्वितीय ,, ,, ८०वें ,, ,, द्वितीय ,,
तृतीय ,, अरण्यकाण्डके २०वें ,, ,, तृतीय ,,
चतुर्थ ,, किष्किन्धाकाण्डके ४६ वें सर्गकी समाप्तिपर चतुर्थ विश्राम
पञ्चम ,, सुन्दरकाण्डके ४७ वें ,, ,, पञ्चम ,,
षष्ठ ,, युद्धकाण्डके ५०वें ,, ,, षष्ठ ,,
सप्तम ,, ,, ९९ वें ,, ,, सप्तम ,,
अष्टम ,, उत्तरकाण्ड ३६ वें ,, ,, अष्टम ,,
नवम ,, ,, अन्तिम सर्गके बाद पुनः युद्ध-

काण्डका अन्तिम सर्ग पढ़कर विश्राम करना चाहिये।[१]

इसके अन्य भी विश्रामस्थल हैं। एक पारायण-क्रम ऐसा भी है, जिसमें उत्तरकाण्डका पाठ नहीं किया जाता। उसके विश्रामस्थल क्रमशः इस प्रकार हैं—

प्रथम	**दिवस**	**बालकाण्डके**	**७७ वें**	**सर्गकी समाप्तिपर**
द्वितीय	,,	**अयोध्याकाण्डके**	**६० वें**	,,
तृतीय	,,	,,	**११९ वें**	,,
चतुर्थ	,,	**अरण्यकाण्डके**	**६८ वें**	,,
पञ्चम	,,	**किष्किन्धाकाण्डके**	**४९ वें**	,,
षष्ठ	,,	**सुन्दरकाण्डके**	**५६ वें**	,,
सप्तम	,,	**युद्धकाण्डके**	**५० वें**	,,
अष्टम	,,	,,	**१११ वें**	,,
नवम	,,	,,	**१३१ वें**	,,

प्रतिदिन कथा-समाप्तिके समय निम्नाङ्कित श्लोकोंके द्वारा मङ्गलाशासन करके पारायण पूरा करे।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम्॥
शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते।
वृत्रनाशे समभवत् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम्॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥
अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत्।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
त्रीन् विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः।
यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतिस्वभावात्।
करोमि यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पये तत्॥

अलग-अलग काण्डोंके सकाम[२] पाठका ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है—

बालकाण्डका विनियोग

ॐ अस्य श्रीबालकाण्डमहामन्त्रस्य ऋष्यशृङ्ग ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। दाशरथिः परमात्मा देवता। रां बीजम्। नमः

---

१. प्रथमे तु अयोध्यायाः षट्सर्गान्ते शुभा स्थितिः। तस्यैवाशीतिसर्गान्ते द्वितीये दिवसे स्थितिः॥
तथा विंशतिसर्गान्ते चारण्यस्य तृतीयके। दिने चतुर्थे षट्चत्वारिंशत्सर्गे कथास्थितिः॥
किष्किन्धाख्यस्य काण्डस्य पाठविद्भिरुदाहृता। सुसप्तचत्वारिंशत्के सर्गान्ते सुन्दरेस्थितिम्॥
पञ्चमे दिवसे कुर्यादथ षष्ठे तथोच्यते। युद्धकाण्डस्य पञ्चाशत्सर्गान्ते विमला स्थितिः॥
एकोनशतसंख्याके सर्गान्ते सप्तमे दिने। युद्धस्यैव तु काण्डस्य विश्रामः सम्प्रकीर्तितः॥
तथा चोत्तरकाण्डस्य षट्त्रिंशत्सर्गपूरणे। अष्टमे दिवसे कृत्वा स्थितिं च नवमे दिने॥
शेषं समाप्य युद्धस्य चान्त्यं सर्गं पुनः पठेत्। रामराज्यकथा यस्मिन् सर्ववाञ्छितदायिनी॥
एवं पाठक्रमः पूर्वैराचार्यैश्च विनिर्मितः। (अनुष्ठानप्रकाश)

२. बृहद्धर्मपुराणमें अलग-अलग काण्डोंके पाठके प्रयोजन इस प्रकार बतलाये गये हैं—
अनावृष्टिर्महापीडाग्रहपीडाप्रपीडिताः। आदिकाण्डं पठेयुर्ये ते मुच्यन्ते ततो भयात्॥
पुत्रजन्मविवाहादौ गुरुदर्शन एव च। पठेच्च शृणुयाच्चैव द्वितीयं काण्डमुत्तमम्॥
वने राजकुले वह्निजलपीडायुतो नरः। पठेदारण्यकं काण्डं शृणुयाद् वा स मङ्गली॥
मित्रलाभे तथा नष्टद्रव्यस्य च गवेषणे। श्रुत्वा पठित्वा कैष्किन्ध्यं काण्डं तत्तत् फलं लभेत्॥
श्राद्धेषु देवकार्येषु पठेत् सुन्दरकाण्डकम्। शत्रोर्जये समुत्साहे जनवादे विगर्हिते॥
लङ्काकाण्डं पठेत् किं वा शृणुयात् स सुखी भवेत्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि काण्डमभ्युदयोत्तरम्। आनन्दकार्ये यात्रायां स जयी परतोऽत्र च॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं भक्त्यर्थी भक्तिमेव च। ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं ब्रह्मतत्त्वोपलम्भकम्॥
(बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय २६। ९—१५)

शक्तिः। रामायेति कीलकम्। श्रीरामप्रीत्यर्थे बालकाण्डपारायणे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ ऋष्यशृङ्गऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिपरमात्मदेवतायै नमः हृदि। ॐ रां बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ रामाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सुप्रसन्नाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शान्तमनसे तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सत्यसन्धाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ जितेन्द्रियाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ धर्मज्ञाय नयसारज्ञाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ राज्ञे दाशरथये जयिने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रोंसे पूर्वोक्त प्रकारसे हृदयादि न्यास कर निम्न प्रकारसे ध्यान करे—

श्रीराममाश्रितजनामरभूरुहेश-
मानन्दशुद्धमखिलामरवन्दिताङ्घ्रिम्।
सीताङ्गनासुमिलितं सततं सुमित्रा-
पुत्रान्वितं धृतधनुःशरमादिदेवम्॥
ॐ सुप्रसन्नः शान्तमनाः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
धर्मज्ञो नयसारज्ञो राजा दाशरथिर्जयी॥

इस मन्त्रसे श्रीरामकी पूजा करे और इसीसे अथवा श्रीराममन्त्रसे सम्पुटित कर बालकाण्डका पाठ करे। इससे ग्रहशान्ति, ईति-भीति-शान्ति तथा पुत्रप्राप्ति सम्भव है।

अयोध्याकाण्डका विनियोग तथा ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीअयोध्याकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् वसिष्ठ ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। भरतो दाशरथिः परमात्मा देवता। भं बीजम्। नमः शक्तिः। भरतायेति कीलकम्। मम भरतप्रसादसिद्ध्यर्थमयोध्याकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ वसिष्ठऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिभरतपरमात्मदेवतायै नमः हृदि। ॐ भं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ भरताय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ भरताय नमस्तस्मै—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ सारज्ञाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ महात्मने मध्यमाभ्यां नमः। ॐ तापसाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ अतिशान्ताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शत्रुघ्नसहिताय च करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इसी प्रकार हृदयादिका भी न्यास करके निम्नलिखित श्लोकानुसार ध्यान करना चाहिये—

श्रीरामपादद्वयपादुकान्तसंसक्तचित्तं कमलायताक्षम्।
श्यामं प्रसन्नवदनं कमलावदातशत्रुघ्नयुक्तमनिशं भरतं नमामि॥
भरताय नमस्तस्मै सारज्ञाय महात्मने।
तापसायातिशान्ताय शत्रुघ्नसहिताय च॥

इस मन्त्रसे पञ्चोपचारद्वारा भरतजीकी पूजा करे। चाहे तो इसी मन्त्रसे लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छासे अयोध्याकाण्डका सम्पुटित पाठ करे।

अरण्यकाण्डका विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीमदरण्यकाण्डमहामन्त्रस्य भगवानृषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामो दाशरथिः परमात्मा महेन्द्रो देवता। ईं बीजम्। नमः शक्तिः। इन्द्रायेति कीलकम्। इन्द्रप्रसादसिद्ध्यर्थे अरण्यकाण्डपारायणे जपे विनियोगः। ॐ भगवदृषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिश्रीराम-परमात्ममहेन्द्रदेवतायै नमः हृदि। ॐ ईं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ इन्द्राय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सहस्रनयनाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ देवाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सर्वदेवनमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ दिव्यवज्रधराय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ महेन्द्राय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शचीपतये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करके इस श्लोकसे ध्यान करना चाहिये।

शचीपतिं सर्वसुरेशवन्द्यं सर्वार्तिहर्तारमचिन्त्यशक्तिम्।
श्रीरामसेवानिरतं महान्तं वन्दे महेन्द्रं धृतवज्रमीड्यम्॥

फिर—

सहस्रनयनं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्।
दिव्यवज्रधरं वन्दे महेन्द्रं च शचीपतिम्॥

इस मन्त्रसे इन्द्रकी पूजा करे और नष्ट द्रव्य-प्राप्ति आदिकी कामनासे इसीसे सम्पुटित कर पाठ करे।

किष्किन्धाकाण्डका ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीकिष्किन्धाकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। सुग्रीवो देवता। सुं बीजम्। नमः शक्तिः। सुग्रीवेति कीलकम्। मम सुग्रीवप्रसादसिद्ध्यर्थे किष्किन्धाकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ भगवदृषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ सुग्रीवदेवतायै नमः हृदये। ॐ सुं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ सुग्रीवाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सुग्रीवाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ सूर्यतनयाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सर्ववानरपुङ्गवाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ बलवते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ राघवसखाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ वशी राज्यं प्रयच्छतु इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

सुग्रीवमर्कतनयं कपिवर्यवन्द्य-
मारोपिताच्युतपदाम्बुजमादरेण ।
पाणिप्रहारकुशलं बलपौरुषाढ्य-
माशास्यदास्यनिपुणं हृदि भावयामि॥

फिर '**सुं सुग्रीवाय नमः**' तथा—

सुग्रीवः सूर्यतनयः सर्ववानरपुङ्गवः।
बलवान् राघवसखा वशी राज्यं प्रयच्छतु॥

इस मन्त्रसे सुग्रीवकी पूजाकर—चाहे तो इसी श्लोकसे किष्किन्धाकाण्डका सम्पुटित पाठ करे।

सुन्दरकाण्डका विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीमत्सुन्दरकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् हनुमान् ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीजगन्माता सीता देवता। श्रीं बीजम्। स्वाहा शक्तिः। सीतायै कीलकम्। सीताप्रसादसिद्ध्यर्थं सुन्दरकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ भगवद्धनुमदृषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। श्रीजगन्मातृसीतादेवतायै नमः हृदि। श्रीं बीजाय नमः गुह्ये। स्वाहा शक्तये नमः पादयोः। सीतायै कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सीतायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ विदेहराजसुतायै तर्जनीभ्यां नमः। रामसुन्दर्यै मध्यमाभ्यां नमः। हनुमता समाश्रितायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भूमिसुतायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शरणं भजे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

सीतामुदारचरितां विधिसाम्बविष्णु-
वन्द्यां त्रिलोकजननीं शतकल्पवल्लीम्।
हेमैरनेकमणिरञ्जितकोटिभागै-
र्भूषाचयैरनुदिनं सहितां नमामि॥

सुन्दरकाण्डके पाठकी विशेष विधि है कि प्रतिदिन एकोत्तरवृत्तिसे क्रमशः एक-एक सर्ग पाठ बढ़ाते हुए ग्यारहवें दिन पाठ समाप्त कर दे। १२ वें दिन अवशिष्ट दो सर्गके साथ आरम्भके १० सर्ग पढ़े जायँ, १३ वें दिन ११ से २३ तक इस तरह तीन आवृत्तिके पाठसे समस्त कार्यकी सिद्धि होती है। दूसरा क्रम है—प्रतिदिन ५ अध्याय पाठका। इसमें भी पूर्वकी भाँति १४ वें दिन अन्तके ३ तथा प्रारम्भके दो सर्गका पाठ करे। सम्पुट पाठका मन्त्र है—"**श्रीसीतायै नमः।**'*

लङ्काकाण्डका विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीयुद्धकाण्डमहामन्त्रस्य विभीषण ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। विधाता देवता। बं बीजम्। नमः शक्तिः। विधातेति कीलकम्। श्रीधातृप्रसादसिद्ध्यर्थे युद्धकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ विभीषणऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ विधातृदेवतायै नमः हृदि। ॐ बं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ विधातेति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ विधात्रे नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ महादेवाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ भक्तानामभयप्रदाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ सर्वदेवप्रीतिकराय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भगवत्प्रियाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ईश्वराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

देवं विधातारमनन्तवीर्यं भक्ताभयं श्रीपरमादिदेवम्।
सर्वामरप्रीतिकरं प्रशान्तं वन्दे सदा भूतपतिं सुभूतिम्॥

फिर—

विधातारं महादेवं भक्तानामभयप्रदम्।
सर्वदेवप्रीतिकरं भगवत्प्रियमीश्वरम्॥

इस मन्त्रसे पञ्चोपचारद्वारा पूजाकर चाहे तो इसी मन्त्रसे सम्पुटित पाठ करे। इससे शत्रुपर विजय प्राप्त होती है एवं अप्रतिष्ठा नष्ट होती है।

पुनर्वसुसे प्रारम्भ कर आर्द्रातक २७ दिनोंमें भी पूर्ण रामायण-पाठकी विधि है। ४० दिनोंका भी एक पारायण होता है। नवरात्रमें भी इसके नवाह्नपाठका नियम है।

---

* रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥
इस मन्त्रके सम्पुटसे सुन्दरकाण्डका पाठ भी किया जा सकता है।

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमाहात्म्य

पहला अध्याय

कलियुगकी स्थिति, कलिकालके मनुष्योंके उद्धारका उपाय, रामायणपाठ, उसकी महिमा, उसके श्रवणके लिये उत्तम काल आदिका वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं। श्रीरामके बिना दूसरी कौन-सी गति है। श्रीराम कलियुगके समस्त दोषोंको नष्ट कर देते हैं; अतः श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करना चाहिये। श्रीरामसे कालरूपी भयंकर सर्प भी डरता है। जगत्का सब कुछ भगवान् श्रीरामके वशमें है। श्रीराममें मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे राम! आप ही मेरे आधार हैं॥ १॥

चित्रकूटमें निवास करनेवाले, भगवती लक्ष्मी (सीता) के आनन्दनिकेतन और भक्तोंको अभय देनेवाले परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

सम्पूर्ण जगत्के अभीष्ट मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले (अथवा सृष्टि, पालन एवं संहारके द्वारा जगत्की व्यावहारिक सत्ताको सिद्ध करनेवाले), ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवता जिनके अभिन्न अंशमात्र हैं, उन परम विशुद्ध सच्चिदानन्दमय परमात्मदेव श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ तथा उन्हींके भजन-चिन्तनमें मन लगाता हूँ॥ ३॥

ऋषियोंने कहा— भगवन्! आप विद्वान् हैं, ज्ञानी हैं। हमने जो कुछ पूछा था, वह सब आपने हमें भलीभाँति बताया है। संसार-बन्धनमें बँधे हुए जीवोंके दुःख बहुत हैं॥ ४॥

इस संसारबन्धनका उच्छेद करनेवाला कौन है? आपने कहा है कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जायँगे॥ ५॥

अधर्मपरायण पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली यातनाओंका भी आपने वर्णन किया है। घोर कलियुग आनेपर जब वेदोक्त मार्ग लुप्त हो जायँगे, उस समय पाखण्ड फैल जायगा—यह बात प्रसिद्ध है। प्रायः सभी लोगोंने ऐसी बात कही है॥ ६½॥

कलियुगके सभी लोग कामवेदनासे पीड़ित, नाटे शरीरके और लोभी होंगे तथा धर्म और ईश्वरका आश्रय छोड़कर आपसमें एक-दूसरेपर ही निर्भर रहनेवाले होंगे। प्रायः सब लोग थोड़ी आयु और अधिक संतानवाले होंगे*॥ ७½॥

उस युगकी स्त्रियाँ अपने ही शरीरके पोषणमें तत्पर और वेश्याओंके समान आचरणमें प्रवृत्त होंगी। वे अपने पतिकी आज्ञाका अनादर करके सदा दूसरोंके घर जाया-आया करेंगी। दुराचारी पुरुषोंसे मिलनेकी सदैव अभिलाषा करेंगी॥ ८-९॥

उत्तम कुलकी स्त्रियाँ भी परपुरुषोंके निकट ओछी बातें करनेवाली होंगी, कठोर और असत्य बोलेंगी तथा शरीरको शुद्ध और सुसंस्कृत बनाये रखनेके सद्गुणोंसे वञ्चित होंगी॥ १०॥

कलियुगमें अधिकांश स्त्रियाँ वाचाल (व्यर्थ बकवास करनेवाली) होंगी। भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवाले संन्यासी भी मित्र आदिके स्नेह-सम्बन्धमें बँधे रहनेवाले होंगे॥ ११॥

वे भोजनके लिये चिन्तित होनेके कारण लोभवश शिष्योंका संग्रह करेंगे। स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई गृहपतिकी आज्ञाका जान-बूझकर उल्लङ्घन करेंगी॥ १२½॥

जब ब्राह्मण पाखण्डी लोगोंके साथ रहकर पाखण्डपूर्ण बातें करने लगें, तब जानना चाहिये कि कलियुग खूब बढ़ गया॥ १३½॥

ब्रह्मन्! इस प्रकार घोर कलियुग आनेपर सदा

* किसी-किसी प्रतिमें 'स्वल्पायुर्बहुपुत्रकाः' के स्थानमें 'स्वल्परायोर्बहुप्रजाः' पाठ है। इसके अनुसार कलियुगमें प्रायः सब लोग थोड़े धन और अधिक संतानवाले होंगे; ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

पापपरायण रहनेके कारण जिनका अन्त:करण शुद्ध नहीं हो सकेगा, उन लोगोंकी मुक्ति कैसे होगी?॥ १४½ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ सूतजी! देवाधिदेव देवेश्वर जगद्गुरु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार संतुष्ट हों, वह उपाय हमें बताइये॥ १५½ ॥

मुनिश्रेष्ठ सूतजी! इन सारी बातोंपर आप पूर्णरूपसे प्रकाश डालिये। आपके वचनामृतका पान करनेसे किसको संतोष नहीं होता है॥ १६-१७॥

सूतजीने कहा—मुनिवरो! आप सब लोग सुनिये। आपको जो सुनना अभीष्ट है, वह मैं बताता हूँ। महात्मा नारदजीने सनत्कुमारको जिस रामायण नामक महाकाव्यका गान सुनाया था, वह समस्त पापोंका नाश और दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है। वह सम्पूर्ण वेदार्थोंकी सम्मतिके अनुकूल है॥ १८-१९॥

उससे समस्त दु:स्वप्नोंका नाश हो जाता है। वह धन्यवादके योग्य तथा भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। उसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी लीला-कथाका वर्णन है। वह काव्य अपने पाठक और श्रोताओंके लिये समस्त कल्याणमयी सिद्धियोंको देनेवाला है॥ २०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक है, महान् फल देनेवाला है। यह अपूर्व काव्य पुण्यमय फल प्रदान करनेकी शक्ति रखता है। आपलोग एकाग्रचित्त होकर इसे श्रवण करें॥ २१॥

महान् पातकों अथवा सम्पूर्ण उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी उस ऋषिप्रणीत दिव्य काव्यका श्रवण करनेसे शुद्धि (अथवा सिद्धि) प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण जगत्के हित-साधनमें लगे रहनेवाले जो मनुष्य सदा रामायणके अनुसार बर्ताव करते हैं, वे ही सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मको समझनेवाले और कृतार्थ हैं॥ २२-२३॥

विप्रवरो! रामायण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन तथा परम अमृतरूप है; अत: सदा भक्तिभावसे उसका श्रवण करना चाहिये॥ २४॥

जिस मनुष्यके पूर्वजन्मोपार्जित सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसीका रामायणके प्रति अधिक प्रेम होता है। यह निश्चित बात है॥ २५॥

जो पापके बन्धनमें जकड़ा हुआ है, वह रामायणकी कथा आरम्भ होनेपर उसकी अवहेलना करके दूसरी-दूसरी निम्नकोटिकी बातोंमें फँस जाता है। उन असद्गाथाओंमें अपनी बुद्धिके आसक्त होनेके कारण वह तदनुरूप ही बर्ताव करने लगता है॥ २६॥

इसलिये द्विजेन्द्रगण! आपलोग रामायण नामक परम पुण्यदायक उत्तम काव्यका श्रवण करें; जिसके सुननेसे जन्म, जरा और मृत्युके भयका नाश हो जाता है तथा श्रवण करनेवाला मनुष्य पाप-दोषसे रहित हो अच्युतस्वरूप हो जाता है॥ २७॥

रामायण काव्य अत्यन्त उत्तम, वरणीय और मनोवाञ्छित वर देनेवाला है। वह उसका पाठ और श्रवण करनेवाले समस्त जगत्को शीघ्र ही संसार-सागरसे पार कर देता है। उस आदिकाव्यको सुनकर मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके परमपदको प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

जो ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु नामक भिन्न-भिन्न रूप धारण करके विश्वकी सृष्टि, संहार और पालन करते हैं, उन आदिदेव परमोत्कृष्ट परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदय-मन्दिरमें स्थापित करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है॥ २९॥

जो नाम तथा जाति आदि विकल्पोंसे रहित, कार्य-कारणसे परे, सर्वोत्कृष्ट, वेदान्त शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य एवं अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला परमात्मा है, उसका समस्त वेदों और पुराणोंके द्वारा साक्षात्कार होता है (इस रामायणके अनुशीलनसे भी उसीकी प्राप्ति होती है।)॥ ३०॥

विप्रवरो! कार्तिक, माघ और चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें नौ दिनोंमें रामायणकी अमृतमयी कथाका श्रवण करना चाहिये॥

जो इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके मंगलमय चरित्रका श्रवण करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी अपनी समस्त उत्तम कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥

वह सब पापोंसे मुक्त हो अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके उस परमधाममें चला जाता है, जहाँ जाकर मनुष्यको कभी शोक नहीं करना पड़ता है॥

चैत्र, माघ और कार्तिकके शुक्लपक्षमें परम पुण्यमय रामायण-कथाका नवाह-पारायण करना चाहिये तथा नौ दिनोंतक इसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये॥ ३४॥

रामायण आदिकाव्य है। यह स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है, अत: सम्पूर्ण धर्मोंसे रहित घोर कलियुग

आनेपर नौ दिनोंमें रामायणकी अमृतमयी कथाको श्रवण करना चाहिये॥ ३५½॥

ब्राह्मणो! जो लोग भयंकर कलिकालमें श्रीराम-नामका आश्रय लेते हैं, वे ही कृतार्थ होते हैं। कलियुग उन्हें बाधा नहीं पहुँचाता॥ ३६½॥

जिस घरमें प्रतिदिन रामायणकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है। वहाँ जानेसे दुष्टोंके पापोंका नाश होता है॥ ३७½॥

तपोधनो! इस शरीरमें तभीतक पाप रहते हैं, जबतक मनुष्य श्रीरामायणकथाका भलीभाँति श्रवण नहीं करता॥

संसारमें श्रीरामायणकी कथा परम दुर्लभ ही है। जब करोड़ों जन्मोंके पुण्योंका उदय होता है, तभी उसकी प्राप्ति होती है॥ ३९½॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कार्तिक, माघ और चैत्रके शुक्ल पक्षमें रामायणके श्रवणमात्रसे (राक्षसभावापन्न) सौदास भी शापमुक्त हो गये थे॥ ४०½॥

सौदासने महर्षि गौतमके शापसे राक्षस-शरीर प्राप्त किया था। वे रामायणके प्रभावसे ही पुनः उस शापसे छुटकारा पा सके थे॥ ४१½॥

जो पुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिका आश्रय ले प्रेमपूर्वक इस कथाका श्रवण करता है, वह बड़े-बड़े पापों तथा पातक आदिसे मुक्त हो जाता है॥ ४२-४३॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें नारद-सनत्कुमार-संवादके अन्तर्गत रामायणमाहात्म्यविषयक कल्पका अनुकीर्तन नामक प्रथम अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

नारद-सनत्कुमार-संवाद, सुदास या सोमदत्त नामक ब्राह्मणको राक्षसत्वकी प्राप्ति तथा रामायण-कथा-श्रवणद्वारा उससे उद्धार

ऋषियोंने पूछा—महामुने! देवर्षि नारदमुनिने सनत्कुमारजीसे रामायणसम्बन्धी सम्पूर्ण धर्मोंका किस प्रकार वर्णन किया था? उन दोनों ब्रह्मवादी महात्माओंका किस क्षेत्रमें मिलन हुआ था? तात! वे दोनों कहाँ ठहरे थे? नारदजीने उनसे जो कुछ कहा था, वह सब आप हमलोगोंको बताइये॥ १-२॥

सूतजीने कहा—मुनिवरो! सनकादि महात्मा भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र माने गये हैं। उनमें ममता और अहंकारका तो नाम भी नहीं है। वे सब-के-सब ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) हैं॥ ३॥

मैं आपलोगोंसे उनके नाम बताता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—ये चारों सनकादि माने गये हैं॥ ४॥

वे भगवान् विष्णुके भक्त और महात्मा हैं। सदा ब्रह्मके चिन्तनमें लगे रहते हैं। बड़े सत्यवादी हैं। सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी एवं मोक्षके अभिलाषी हैं॥ ५॥

एक दिन वे महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र सनकादि ब्रह्माजीकी सभा देखनेके लिये मेरु पर्वतके शिखरपर गये॥ ६॥

वहाँ भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई परम पुण्यमयी गंगानदी, जिन्हें सीता भी कहते हैं, बह रही थीं। उनका दर्शन करके वे तेजस्वी महात्मा उनके जलमें स्नान करनेको उद्यत हुए॥ ७॥

ब्राह्मणो! इतनेमें ही देवर्षि नारदमुनि भगवान्के नारायण आदि नामोंका उच्चारण करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

वे 'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! राम! विष्णो! आपको नमस्कार है।' इस प्रकार भगवन्नामका उच्चारण करके सम्पूर्ण जगत्को पवित्र बनाते और एकमात्र लोकपावनी गंगाकी स्तुति करते हुए वहाँ आये॥ ९-१०॥

उन्हें आते देख महातेजस्वी सनकादि मुनियोंने उनकी यथोचित पूजा की तथा नारदजीने भी उन मुनियोंको मस्तक झुकाया॥ ११॥

तदनन्तर वहाँ मुनियोंकी सभामें सनत्कुमारजीने भगवान् नारायणके परम भक्त मुनिवर नारदसे इस प्रकार कहा॥ १२॥

सनत्कुमार बोले—महाप्राज्ञ नारदजी! आप समस्त मुनीश्वरोंमें सर्वज्ञ हैं। सदा श्रीहरिकी भक्तिमें तत्पर रहते

हैं, अतः आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है॥ १३॥

इसलिये मैं पूछता हूँ, जिनसे समस्त चराचर जगत्‌की उत्पत्ति हुई है तथा ये गंगाजी जिनके चरणोंसे प्रकट हुई हैं, उन श्रीहरिके स्वरूपका ज्ञान कैसे होता है? यदि आपकी हमलोगोंपर कृपा हो तो हमारे इस प्रश्नका यथार्थरूपसे विवेचन कीजिये॥ १४½॥

नारदजीने कहा—जो परसे भी परतर हैं, उन परमदेव श्रीरामको नमस्कार है। जिनका निवास-स्थान (परमधाम) उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट है तथा जो सगुण और निर्गुणरूप हैं, उन श्रीरामको मेरा नमस्कार है॥

ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म तथा विद्या और अविद्या—ये सब जिनके अपने ही स्वरूप हैं तथा जो सबके आत्मरूप हैं, उन आप परमेश्वरको नमस्कार है॥ १६½॥

जो दैत्योंका विनाश और नरकका अन्त करनेवाले हैं, जो अपने हाथके संकेतमात्रसे अथवा अपनी भुजाओंके बलसे धर्मकी रक्षा करते हैं, पृथ्वीके भारका विनाश जिनका मनोरञ्जनमात्र है और जो उस मनोरञ्जनकी सदा अभिलाषा रखते हैं, उन रघुकुलदीप श्रीरामदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १७½॥

जो एक होकर भी चार स्वरूपोंमें अवतीर्ण होते हैं, जिन्होंने वानरोंको साथ लेकर राक्षससेनाका संहार किया है, उन दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ॥ १८½॥

भगवान् श्रीरामके ऐसे-ऐसे अनेक चरित्र हैं, जिनके नाम करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं गिनाये जा सकते हैं॥ १९½॥

जिनके नामकी महिमाका मनु और मुनीश्वर भी पार नहीं पा सकते, वहाँ मेरे-जैसे क्षुद्र जीवकी पहुँच कैसे हो सकती है॥ २०½॥

जिनके नामके स्मरणमात्रसे बड़े-बड़े पातकी भी पावन बन जाते हैं, उन परमात्माका स्तवन मेरे-जैसा तुच्छ बुद्धिवाला प्राणी कैसे कर सकता है॥ २१½॥

जो द्विज घोर कलियुगमें रामायण-कथाका आश्रय लेते हैं, वे ही कृतकृत्य हैं। उनके लिये तुम्हें सदा नमस्कार करना चाहिये॥ २२½॥

सनत्कुमारजी! भगवान्‌की महिमाको जाननेके लिये कार्तिक, माघ और चैत्रके शुक्ल पक्षमें रामायणकी अमृतमयी कथाका नवाह श्रवण करना चाहिये॥ २३½॥

ब्राह्मण सुदास गौतमके शापसे राक्षस-शरीरको प्राप्त हो गये थे; परंतु रामायणके प्रभावसे ही उन्हें उस शापसे छुटकारा मिला था॥ २४½॥

सनत्कुमारने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण धर्मोंका फल देनेवाली रामायणकथाका किसने वर्णन किया है? सौदासको गौतमद्वारा कैसे शाप प्राप्त हुआ? फिर वे रामायणके प्रभावसे किस प्रकार शापमुक्त हुए थे॥

मुने! यदि आपका हमलोगोंपर अनुग्रह हो तो सब कुछ ठीक-ठीक बताइये। इन सारी बातोंसे हमें अवगत कराइये; क्योंकि भगवान्‌की कथा वक्ता और श्रोता दोनोंके पापोंका नाश करनेवाली है॥ २७½॥

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! रामायणका प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकिके मुखसे हुआ है। तुम उसीको श्रवण करो। रामायणकी अमृतमयी कथाका श्रवण नौ दिनोंमें करना चाहिये॥ २८½॥

सत्ययुगमें एक ब्राह्मण थे, जिन्हें धर्म-कर्मका विशेष ज्ञान था। उनका नाम था सोमदत्त। वे सदा धर्मके पालनमें ही तत्पर रहते थे॥ २९½॥

(वे ब्राह्मण सौदास नामसे भी विख्यात थे।) ब्राह्मणने ब्रह्मवादी गौतम मुनिसे गंगाजीके मनोरम तटपर सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश सुना था। गौतमने पुराणों और शास्त्रोंकी कथाओंद्वारा उन्हें तत्त्वका ज्ञान कराया था। सौदासने गौतमसे उनके बताये हुए सम्पूर्ण धर्मोंका श्रवण किया था॥ ३०-३१½॥

एक दिनकी बात है, सौदास परमेश्वर शिवकी आराधनामें लगे हुए थे। उसी समय वहाँ उनके गुरु गौतमजी आ पहुँचे; परंतु सौदासने अपने निकट आये हुए गुरुको भी उठकर प्रणाम नहीं किया॥ ३२½॥

परम बुद्धिमान् गौतम तेजकी निधि थे, वे शिष्यके बर्तावसे रुष्ट न होकर शान्त ही बने रहे। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरा शिष्य सौदास शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करता है॥ ३३½॥

किंतु सौदासने जिनकी आराधना की थी, वे सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु महादेव शिव गुरुकी अवहेलनासे होनेवाले पापको न सह सके। उन्होंने सौदासको राक्षसकी योनिमें जानेका शाप दे दिया। तब विनयकलाकोविद

ब्राह्मणने हाथ जोड़कर गौतमसे कहा॥ ३४-३५॥

ब्राह्मण बोले—सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता! सर्वदर्शी! सुरेश्वर! भगवन्! मैंने जो अपराध किया है, वह सब आप क्षमा कीजिये॥ ३६॥

गौतमने कहा—वत्स! कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें तुम रामायणकी अमृतमयी कथाको भक्तिभावसे आदरपूर्वक श्रवण करो। इस कथाको नौ दिनोंमें सुनना चाहिये। ऐसा करनेसे यह शाप अधिक दिनोंतक नहीं रहेगा। केवल बारह वर्षोंतक ही रह सकेगा॥ ३७½॥

ब्राह्मणने पूछा—रामायणकी कथा किसने कही है? तथा उसमें किसके चरित्रोंका वर्णन किया गया है? महामते! यह सब संक्षेपसे बतानेकी कृपा करें। यों कहकर मन-ही-मन प्रसन्न हो सौदासने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ३८-३९॥

गौतमने कहा—ब्रह्मन्! सुनो। रामायण-काव्यका निर्माण वाल्मीकि मुनिने किया है। जिन भगवान् श्रीरामने अवतार ग्रहण करके रावण आदि राक्षसोंका संहार किया और देवताओंका कार्य सँवारा था, उन्हींके चरित्रका रामायण-काव्यमें वर्णन है। तुम उसीका श्रवण करो। कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें नवें दिन अर्थात् प्रतिपदासे नवमीतक रामायणकी कथा सुननी चाहिये। वह समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ ४०-४१½॥

ऐसा कहकर पूर्णकाम गौतम ऋषि अपने आश्रमको चले गये। इधर सोमदत्त या सुदास नामक ब्राह्मणने दुःखमग्न होकर राक्षस-शरीरका आश्रय लिया॥ ४२½॥

वे सदा भूख-प्याससे पीड़ित तथा क्रोधके वशीभूत रहते थे। उनके शरीरका रंग कृष्ण पक्षकी रातके समान काला था। वे भयानक राक्षस होकर निर्जन वनमें भ्रमण करने लगे॥ ४३½॥

वहाँ वे नाना प्रकारके पशुओं, मनुष्यों, साँप-बिच्छू आदि जन्तुओं, पक्षियों और वानरोंको बलपूर्वक पकड़कर खा जाते थे॥ ४४½॥

ब्रह्मर्षियो! उस राक्षसके द्वारा यह पृथ्वी बहुत-सी हड्डियों तथा लाल-पीले शरीरवाले रक्तपायी प्रेतोंसे परिपूर्ण हो अत्यन्त भयंकर दिखायी देने लगी॥ ४५½॥

छः महीनेमें ही सौ योजन विस्तृत भूभागको अत्यन्त दुःखित करके वह राक्षस पुनः दूसरे किसी वनमें चला गया॥ ४६½॥

वहाँ भी वह प्रतिदिन नरमांसका भोजन करता रहा। सम्पूर्ण लोकोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाला वह राक्षस घूमता-घामता नर्मदाजीके तटपर जा पहुँचा॥ ४७½॥

इसी समय कोई अत्यन्त धर्मात्मा ब्राह्मण उधर आ निकला। उसका जन्म कलिंगदेशमें हुआ था। लोगोंमें वह गर्ग नामसे विख्यात था॥ ४८½॥

कंधेपर गंगाजल लिये भगवान् विश्वनाथकी स्तुति तथा श्रीरामके नामोंका गान करता हुआ वह ब्राह्मण बड़े हर्ष और उत्साहमें भरकर उस पुण्य प्रदेशमें आया था॥ ४९½॥

गर्ग मुनिको आते देख राक्षस सुदास बोल उठा, 'हमें भोजन प्राप्त हो गया।' ऐसा कहकर अपनी दोनों भुजाओंको ऊपर उठाये हुए वह मुनिकी ओर चला; परंतु उनके द्वारा उच्चारित होनेवाले भगवन्नामोंको सुनकर वह दूर ही खड़ा रहा। उन ब्रह्मर्षिको मारनेमें असमर्थ होकर राक्षस उनसे इस प्रकार बोला॥ ५०-५१½॥

राक्षसने कहा—यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! भद्र! महाभाग! आप महात्माको नमस्कार है। आप जो भगवन्नामोंका स्मरण कर रहे हैं, इतनेसे ही राक्षस भी दूर भाग जाते हैं। मैंने पहले कोटि सहस्र ब्राह्मणोंका भक्षण किया है॥ ५२-५३॥

ब्रह्मन्! आपके पास जो नामरूपी कवच है, वही राक्षसोंके महान् भयसे आपकी रक्षा करता है। आपके द्वारा किये गये नामस्मरणमात्रसे हम राक्षसोंको भी परम शान्ति प्राप्त हो गयी। यह भगवान् अच्युतकी कैसी महिमा है॥ ५४½॥

महाभाग ब्राह्मण! आप श्रीरामकथाके प्रभावसे सर्वथा राग आदि दोषोंसे रहित हो गये हैं। अतः आप मुझे इस अधम पातकसे बचाइये॥ ५५½॥

मुनिश्रेष्ठ! मैंने पूर्वकालमें अपने गुरुकी अवहेलना की थी। फिर गुरुजीने मुझपर अनुग्रह किया और यह बात कही॥ ५६½॥

'पूर्वकालमें वाल्मीकि मुनिने जो रामायणकी कथा कही है, उसका कार्तिकमासके शुक्ल पक्षमें प्रयत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये'॥ ५७½॥

इतना कहकर गुरुदेवने पुनः यह सुन्दर एवं

शुभदायक वचन कहा—'रामायणकी अमृतमयी कथा नौ दिनमें सुननी चाहिये'॥ ५८½ ॥

अत: सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले महाभाग ब्राह्मण! आप मुझे रामायणकथा सुनाकर इस पापकर्मसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ५९½ ॥

नारदजी कहते हैं—उस समय वहाँ राक्षसके मुखसे रामायणका परिचय तथा श्रीरामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन सुनकर द्विजश्रेष्ठ गर्ग आश्चर्यचकित हो उठे। श्रीरामका नाम ही उनके जीवनका अवलम्ब था। वे ब्राह्मणदेवता उस राक्षसके प्रति दयासे द्रवित हो गये और सुदाससे इस प्रकार बोले॥ ६०-६१½ ॥

ब्राह्मणने कहा—महाभाग! राक्षसराज! तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो गयी है। इस समय कार्तिकमासका शुक्ल पक्ष चल रहा है। इसमें रामायणकी कथा सुनो। रामभक्तिपरायण राक्षस! तुम श्रीरामचन्द्रजीके माहात्म्यको श्रवण करो॥ ६२-६३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंको बाधा पहुँचानेमें कौन समर्थ हो सकता है। जहाँ श्रीरामका भक्त है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव विराजमान हैं। वहीं देवता, सिद्ध तथा रामायणका आश्रय लेनेवाले मनुष्य हैं॥ ६४½ ॥

अत: इस कार्तिकमासके शुक्ल पक्षमें तुम रामायणकी कथा सुनो। नौ दिनोंतक इस कथाको सुननेका विधान है। अत: तुम सदा सावधान रहो॥ ६५½ ॥

ऐसा कहकर गर्ग मुनिने उसे रामायणकी कथा सुनायी। कथा सुनते ही उसका राक्षसत्व दूर हो गया। राक्षस-भावका परित्याग करके वह देवताओंके समान सुन्दर, करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी और भगवान् नारायणके समान कान्तिमान् हो गया। अपनी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लिये वह श्रीहरिके वैकुण्ठधाममें चला गया। ब्राह्मण गर्ग मुनिकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ वह भगवान्‌के उत्तम धाममें जा पहुँचा॥ ६६—६९ ॥

नारदजी कहते हैं—विप्रवरो! अत: आपलोग भी रामायणकी अमृतमयी कथा सुनिये। इसके श्रवणकी सदा ही महिमा है, किंतु कार्तिकमासमें विशेष बतायी गयी है॥ ७० ॥

रामायणके नामका स्मरण करनेसे ही मनुष्य करोड़ों महापातकों तथा समस्त पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है॥ ७१ ॥

मनुष्य 'रामायण' इस नामका जब एक बार भी उच्चारण करता है, तभी वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है॥ ७२ ॥

जो मनुष्य सदा भक्तिभावसे रामायण-कथाको पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें गंगास्नानकी अपेक्षा सौगुना पुण्यफल प्राप्त होता है॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें नारद-सनत्कुमारसंवादके अन्तर्गत वाल्मीकीय रामायणमाहात्म्यके प्रसंगमें राक्षसका उद्धार नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

माघमासमें रामायण-श्रवणका फल—राजा सुमति और सत्यवतीके पूर्व-जन्मका इतिहास

सनत्कुमारने कहा—ब्रह्मर्षि नारदजी! आपने यह अद्भुत इतिहास सुनाया है। अब रामायणके माहात्म्यका पुन: विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १ ॥

(आपने कार्तिक मासमें रामायणके श्रवणकी महिमा बतायी।) अब कृपापूर्वक दूसरे मासका माहात्म्य बताइये। मुने! आपके वचनामृतसे किसको संतोष नहीं होगा!॥

नारदजीने कहा—महात्माओ! आप सब लोग निश्चय ही बड़े भाग्यशाली और कृतकृत्य हैं, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप भक्तिभावसे भगवान् श्रीरामकी महिमा सुननेके लिये उद्यत हुए हैं॥ ३ ॥

ब्रह्मवादी मुनियोंने भगवान् श्रीरामके माहात्म्यका श्रवण पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये परम दुर्लभ बताया है॥

महर्षियो! अब आपलोग एक विचित्र पुरातन इतिहास सुनिये, जो समस्त पापोंका निवारण और सम्पूर्ण रोगोंका विनाश करनेवाला है॥ ५ ॥

पूर्वकालकी बात है, द्वापरमें सुमति नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था। वे श्रीसम्पन्न और सातों द्वीपोंके एकमात्र सम्राट् थे॥

उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था। वे सत्यवादी तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सुशोभित थे। सदा श्रीरामकथाके सेवन और श्रीरामकी ही समाराधनामें संलग्न रहते थे॥ ७॥

श्रीरामकी पूजा-अर्चामें लगे रहनेवाले भक्तोंकी वे सदा सेवा करते थे। उनमें अहंकारका नाम भी नहीं था। वे पूज्य पुरुषोंके पूजनमें तत्पर रहनेवाले, समदर्शी तथा सद्गुणसम्पन्न थे॥ ८॥

राजा सुमति समस्त प्राणियोंके हितैषी, शान्त, कृतज्ञ और यशस्वी थे। उनकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नी भी समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी॥ ९॥

उसका नाम सत्यवती था। वह पतिव्रता थी। पतिमें ही उसके प्राण बसते थे। वे दोनों पति-पत्नी सदा रामायणके ही पढ़ने और सुननेमें संलग्न रहते थे॥ १०॥

सदा अन्नका दान करते और प्रतिदिन जलदानमें प्रवृत्त रहते थे। उन्होंने असंख्य पोखरों, बगीचों और बावड़ियोंका निर्माण कराया था॥ ११॥

महाभाग राजा सुमति भी सदा रामायणके ही अनुशीलनमें लगे रहते थे। वे भक्तिभावसे भावित हो रामायणको ही बाँचते अथवा सुनते थे॥ १२॥

इस प्रकार वे धर्मज्ञ नरेश सदा श्रीरामकी आराधनामें ही तत्पर रहते थे। उनकी प्यारी पत्नी सत्यवती भी ऐसी ही थी। देवता भी उन दोनों दम्पतिकी सदा भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे॥ १३॥

एक दिन उन त्रिभुवनविख्यात धर्मात्मा राजा-रानीको देखनेके लिये विभाण्डक मुनि अपने बहुत-से शिष्योंके साथ वहाँ आये॥ १४॥

मुनिवर विभाण्डकको आया देख राजा सुमतिको बड़ा सुख मिला। वे पूजाकी विस्तृत सामग्री साथ ले पत्नीसहित उनकी अगवानीके लिये गये॥ १५॥

जब मुनिका अतिथि-सत्कार सम्पन्न हो गया और वे शान्तभावसे आसनपर विराजमान हो गये, उस समय अपने आसनपर बैठे हुए भूपालने मुनिसे हाथ जोड़कर कहा॥ १६॥

राजा बोले—भगवन्! आज आपके शुभागमनसे मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष संतोंके आगमनको सुखदायक बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं॥ १७॥

जहाँ महापुरुषोंका प्रेम होता है, वहाँ सारी सम्पत्तियाँ अपने-आप उपस्थित हो जाती हैं। वहाँ तेज, कीर्ति, धन और पुत्र—सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं—ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है॥ १८॥

मुने! प्रभो! जहाँ संत-महात्मा बड़ी भारी कृपा करते हैं, वहाँ प्रतिदिन कल्याणमय साधनोंकी वृद्धि होती है॥ १९॥

ब्रह्मन्! जो अपने मस्तकपर ब्राह्मणोंका चरणोदक धारण करता है, उस पुण्यात्मा पुरुषने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया—इसमें संशय नहीं है॥ २०॥

शान्तस्वरूप महर्षे! मेरे पुत्र, पत्नी तथा सारी सम्पत्ति आपके चरणोंमें समर्पित है। आज्ञा दीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें?॥ २१॥

ऐसी बातें कहते हुए राजा सुमतिकी ओर देखकर मुनीश्वर विभाण्डक बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने हाथसे राजाका स्पर्श करते हुए कहा॥ २२॥

ऋषि बोले—राजन्! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब तुम्हारे कुलके अनुरूप है। जो इस प्रकार विनयसे झुक जाते हैं, वे सब लोग परम कल्याणके भागी होते हैं॥ २३॥

भूपाल! तुम सन्मार्गपर चलनेवाले हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे जो कुछ पूछता हूँ, उसे बताओ॥ २४॥

यद्यपि भगवान् श्रीहरिको संतुष्ट करनेवाले बहुत-से पुराण भी थे, जिनका तुम पाठ कर सकते थे, तथापि इस माघमासमें सब प्रकारसे प्रयत्नशील होकर तुम जो रामायणके ही पारायणमें लगे हुए हो तथा तुम्हारी यह साध्वी पत्नी भी सदा जो श्रीरामकी ही आराधनामें रत रहती है, इसका क्या कारण है? यह वृत्तान्त यथावत्-रूपसे मुझे बताओ॥ २५-२६॥

राजाने कहा—भगवन्! सुनिये, आप जो कुछ पूछते हैं, वह सब मैं बता रहा हूँ। मुने! हम दोनोंका चरित्र सम्पूर्ण जगत्के लिये आश्चर्यजनक है॥ २७॥

साधुशिरोमणे! पूर्वजन्ममें मैं मालति नामक शूद्र था। सदा कुमार्गपर ही चलता और सब लोगोंके अहित-साधनमें ही संलग्न रहता था॥ २८॥

दूसरोंकी चुगली खानेवाला, धर्मद्रोही, देवतासम्बन्धी

द्रव्यका अपहरण करनेवाला तथा महापातकियोंके संसर्गमें रहनेवाला था। मैं देव-सम्पत्तिसे ही जीविका चलाता था॥

गोहत्या, ब्राह्मणहत्या और चोरी करना—यही अपना धंधा था। मैं सदा दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता था। प्रतिदिन दूसरोंसे कठोर बातें बोलता, पाप करता और वेश्याओंमें आसक्त रहता था॥ ३०॥

इस प्रकार कुछ कालतक घरमें रहा, फिर बड़े लोगोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेके कारण मेरे सभी भाई-बन्धुओंने मुझे त्याग दिया और मैं दु:खी होकर वनमें चला आया॥ ३१॥

वहाँ प्रतिदिन मृगोंका मांस खाकर रहता था और काँटे आदि बिछाकर लोगोंके आने-जानेका मार्ग अवरुद्ध कर देता था। इस तरह अकेला बहुत दु:ख भोगता हुआ मैं उस निर्जन वनमें रहने लगा॥ ३२॥

एक दिनकी बात है, मैं भूखा-प्यासा, थका-माँदा, निद्रासे झूमता हुआ एक निर्जन वनमें आया। वहाँ दैवयोगसे वसिष्ठजीके आश्रमपर मेरी दृष्टि पड़ी॥ ३३॥

उस आश्रमके निकट एक विशाल सरोवर था, जिसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी छा रहे थे। मुनीश्वर! वह सरोवर चारों ओरसे वन्य पुष्प-समूहोंद्वारा आच्छादित था॥ ३४॥

वहाँ जाकर मैंने पानी पिया और उसके तटपर बैठकर अपनी थकावट दूर की। फिर कुछ वृक्षोंकी जड़ें उखाड़कर उनके द्वारा अपनी भूख बुझायी॥ ३५॥

वसिष्ठके उस आश्रमके पास ही मैं निवास करने लगा। टूटी-फूटी स्फटिक-शिलाओंको जोड़कर मैंने वहाँ दीवार खड़ी की॥ ३६॥

फिर पत्तों, तिनकों और काष्ठोंद्वारा एक सुन्दर घर बना लिया। उसी घरमें रहकर मैं व्याधोंकी वृत्तिका आश्रय ले नाना प्रकारके मृगोंको मारकर उन्हींके द्वारा बीस वर्षोंतक अपनी जीविका चलाता रहा॥ ३७½॥

तदनन्तर मेरी ये साध्वी पत्नी वहाँ मेरे पास आयीं। पूर्वजन्ममें इनका नाम काली था। काली निषादकुलकी कन्या थी और विन्ध्यप्रदेशमें उत्पन्न हुई थी। उसके भाई-बन्धुओंने उसे त्याग दिया था। वह दु:खसे पीड़ित थी। उसका शरीर वृद्ध हो चला था॥ ३८-३९॥

ब्रह्मन्! वह भूख-प्याससे शिथिल हो गयी थी और इस सोचमें पड़ी थी कि भोजनका कार्य कैसे चलेगा? दैवयोगसे घूमती-घामती वह उसी निर्जन वनमें आ पहुँची, जिसमें मैं रहता था॥ ४०॥

गर्मीका महीना था। बाहर इसे धूप सता रही थी और भीतर मानसिक संताप अत्यन्त पीड़ा दे रहा था। इस दु:खिनी नारीको देखकर मेरे मनमें बड़ी दया आयी॥ ४१॥

मैंने इसे पीनेके लिये जल तथा खानेके लिये मांस और जंगली फल दिये। ब्रह्मन्! काली जब विश्राम कर चुकी, तब मैंने उससे उसका यथावत् वृत्तान्त पूछा॥ ४२॥

महामुने! मेरे पूछनेपर उसने जो अपने जन्म-कर्म निवेदन किये थे, उन्हें बताता हूँ। सुनिये—उसका नाम काली था और वह निषादकुलकी कन्या थी॥ ४३॥

विद्वन्! उसके पिताका नाम दाम्भिक (या दाविक) था। वह उसीकी पुत्री थी और विन्ध्यपर्वतपर निवास करती थी। सदा दूसरोंका धन चुराना और चुगली खाना ही उसका काम था॥ ४४॥

एक दिन उसने अपने पतिकी हत्या कर डाली, इसीलिये भाई-बन्धुओंने उसे घरसे निकाल दिया। ब्रह्मन्! इस तरह परित्यक्ता काली उस दुर्गम एवं निर्जन वनमें मेरे पास आयी थी॥ ४५॥

उसने अपनी सारी करतूतें मुझे इसी रूपमें बतायी थीं। मुने! तब वसिष्ठजीके उस पवित्र आश्रमके निकट मैं और काली—दोनों पति-पत्नीका सम्बन्ध स्वीकार करके रहने और मांसाहारसे ही जीवन-निर्वाह करने लगे॥ ४६½॥

एक दिन हम दोनों जीविकाके निमित्त कुछ उद्यम करनेके लिये वहाँ वसिष्ठजीके आश्रमपर गये। महात्मन्! वहाँ देवर्षियोंका समाज जुटा हुआ था। वही देखकर हमलोग उधर गये थे। वहाँ माघमासमें प्रतिदिन ब्राह्मणलोग रामायणका पाठ करते दिखायी देते थे॥ ४७-४८॥

उस समय हमलोग निराहार थे और पुरुषार्थ करनेमें समर्थ होकर भी भूख-प्याससे कष्ट पा रहे थे। अत: बिना इच्छाके ही वसिष्ठजीके आश्रमपर चले गये थे। फिर लगातार नौ दिनोंतक भक्तिपूर्वक रामायणकी कथा सुननेके लिये हम दोनों वहाँ जाते रहे। मुने! उसी समय हम दोनोंकी मृत्यु हो गयी॥ ४९-५०॥

हमारे उस कर्मसे भगवान् मधुसूदनका मन प्रसन्न

हो गया था, अतः उन्होंने हमें ले आनेके लिये दूत भेजे॥ ५१॥

वे दूत हम दोनोंको विमानमें बिठाकर भगवान्‌के परम पद (उत्तम धाम) में ले गये। हम दोनों देवाधिदेव चक्रपाणिके निकट जा पहुँचे*॥ ५२॥

वहाँ हमने जितने समयतक बड़े-बड़े भोग भोगे थे, वह बता रहे हैं। सुनिये—कोटि सहस्र और कोटि शत युगोंतक श्रीरामधाममें निवास करके हमलोग ब्रह्मलोकमें आये। वहाँ भी उतने ही समयतक रहकर हम इन्द्रलोकमें आ गये॥ ५३-५४॥

मुनिश्रेष्ठ! इन्द्रलोकमें भी उतने ही कालतक परम उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् हम क्रमशः इस पृथ्वीपर आये हैं॥ ५५॥

यहाँ भी रामायणके प्रसादसे हमें अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई है। मुने! अनिच्छासे रामायणका श्रवण करनेपर भी हमें ऐसा फल प्राप्त हुआ है॥ ५६॥

धर्मात्मन्! यदि नौ दिनोंतक भक्ति-भावसे रामायणकी अमृतमयी कथा सुनी जाय तो वह जन्म, जरा और मृत्युका नाश करनेवाली होती है॥ ५७॥

विप्रवर! सुनिये, विवश होकर भी जो कर्म किया जाता है, वह रामायणके प्रसादसे परम महान् फल प्रदान करता है॥ ५८॥

नारदजी कहते हैं—यह सब सुनकर मुनीश्वर विभाण्डक राजा सुमतिका अभिनन्दन करके अपने तपोवनको चले गये॥ ५९॥

विप्रवरो! अतः आपलोग देवाधिदेव चक्रपाणि भगवान् श्रीहरिकी कथा सुनिये। रामायणकथा कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली बतायी गयी है॥ ६०॥

माघमासके शुक्ल पक्षमें प्रयत्नपूर्वक रामायणकी नवाह्नकथा सुननी चाहिये। वह सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्रदान करनेवाली है॥ ६१॥

यह पवित्र आख्यान समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो इसे बाँचता अथवा सुनता है, वह भगवान् श्रीरामका भक्त होता है॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें नारदसनत्कुमारसंवादके अन्तर्गत रामायणमाहात्म्यके प्रसंगमें माघमासमें रामायणकथाश्रवणके फलका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

चैत्रमासमें रामायणके पठन और श्रवणका माहात्म्य, कलिक नामक व्याध और उत्तङ्क मुनिकी कथा

नारदजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं रामायणके पाठ और श्रवणके लिये उपयोगी दूसरे मासका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। रामायणका माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यजनक तथा सम्पूर्ण दुःखोंका निवारण करनेवाला है। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री—इन सबको समस्त मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है। उससे सब प्रकारके व्रतोंका फल भी प्राप्त होता है। वह दुःस्वप्नका नाशक, धनकी प्राप्ति करानेवाला तथा भोग और मोक्षरूप फल देनेवाला है। अतः उसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये॥ १—३॥

इसी विषयमें विज्ञ पुरुष एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं। वह इतिहास अपने पाठकों और श्रोताओंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ ४॥

प्राचीन कलियुगमें एक कलिक नामवाला व्याध रहता था। वह सदा परायी स्त्री और पराये धनके अपहरणमें ही लगा रहता था॥ ५॥

दूसरोंकी निन्दा करना उसका नित्यका काम था। वह सदा सभी जन्तुओंको पीड़ा दिया करता था। उसने कितने ही ब्राह्मणों तथा सैकड़ों, हजारों गौओंकी हत्या कर डाली थी॥ ६॥

पराये धनका तो वह नित्य अपहरण करता ही था, देवताके धनको भी हड़प लेता था। उसने अपने जीवनमें

* यहाँ जिस परम पदसे लौटनेका वर्णन है, वह ब्रह्मलोकसे भिन्न कोई उत्तम लोक था, जहाँ भगवान् मधुसूदनके सांनिध्य तथा श्रीरामके दर्शन-सुखका अनुभव होता था, इसे साक्षात् वैकुण्ठ या साकेत नहीं मानना चाहिये; क्योंकि वहाँसे पुनरावृत्ति नहीं होती। अनिच्छासे कथा-श्रवण करनेके कारण उन्हें अपुनरावर्ती लोक नहीं मिला था।

अनेक बड़े-बड़े पाप किये थे॥ ७॥

उसके पापोंकी गणना करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती थी। एक समय वह महापापी व्याध, जो जीव-जन्तुओंके लिये यमराजके समान भयंकर था, सौवीरनगरमें गया। वह नगर सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित युवतियोंद्वारा सुशोभित, स्वच्छ जलवाले सरोवरोंसे अलंकृत तथा भाँति-भाँतिकी दूकानोंसे सुसज्जित था। देवनगरके समान उसकी शोभा हो रही थी। व्याध उस नगरमें गया॥ ८-९ $\frac{1}{2}$ ॥

सौवीरनगरके उपवनमें भगवान् केशवका बड़ा सुन्दर मन्दिर था, जो सोनेके अनेकानेक कलशोंसे ढका हुआ था। उसे देखकर व्याधको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने यह निश्चय कर लिया कि मैं यहाँसे बहुत-सा सुवर्ण चुराकर ले चलूँगा॥ १०-११॥

ऐसा निश्चय करके वह चोरीपर लट्टू रहनेवाला व्याध श्रीरामके मन्दिरमें गया। वहाँ उसने शान्त, तत्त्वार्थवेत्ता और भगवान्की आराधनामें तत्पर उत्तङ्क मुनिका दर्शन किया, जो तपस्याकी निधि थे। वे अकेले ही रहते थे। उनके हृदयमें सबके प्रति दया भरी थी। वे सब ओरसे निःस्पृह थे। उनके मनमें केवल भगवान्के ध्यानका ही लोभ बना रहता था॥ १२-१३॥

उन्हें वहाँ उपस्थित देख व्याधने उनको चोरीमें विघ्न डालनेवाला समझा। तदनन्तर जब आधी रात हुई, तब वह देवतासम्बन्धी द्रव्यसमूह लेकर चला॥ १४॥

उस मदोन्मत्त व्याधने उत्तङ्क मुनिकी छातीको अपने एक पैरसे दबाकर हाथसे उनका गला पकड़ लिया और तलवार उठाकर उन्हें मार डालनेका उपक्रम किया॥ १५॥

उत्तङ्कने देखा व्याध मुझे मार डालना चाहता है तो वे उससे इस प्रकार बोले॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

उत्तङ्कने कहा—ओ भले मानुष! तुम व्यर्थ ही मुझे मारना चाहते हो। मैं तो सर्वथा निरपराध हूँ॥ १६॥

लुब्धक! बताओ तो सही, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? संसारमें लोग अपराधीकी ही प्रयत्नपूर्वक हिंसा करते हैं। सौम्य! सज्जन निरपराधकी व्यर्थ हिंसा नहीं करते हैं॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

शान्तचित्त साधु पुरुष अपने विरोधी तथा मूर्ख मनुष्योंमें भी सद्गुणोंकी स्थिति देखकर उनके साथ विरोध नहीं रखते हैं॥ १८ $\frac{1}{2}$ ॥

जो मनुष्य बारम्बार दूसरोंकी गाली सुनकर भी क्षमाशील बना रहता है, वह उत्तम कहलाता है। उसे भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रियजन बताया गया है॥

दूसरोंके हित-साधनमें लगे रहनेवाले साधुजन किसीके द्वारा अपने विनाशका समय उपस्थित होनेपर भी उसके साथ वैर नहीं करते। चन्दनका वृक्ष अपनेको काटनेपर भी कुठारकी धारको सुवासित ही करता है॥

अहो! विधाता बड़ा बलवान् है। वह लोगोंको नाना प्रकारसे कष्ट देता रहता है। जो सब प्रकारके संगसे रहित है, उसे भी दुरात्मा मनुष्य सताया करते हैं॥

अहो! दुष्टजन इस संसारमें बहुत-से जीवोंको बिना किसी अपराधके ही पीड़ा देते हैं। मल्लाह मछलियोंके, चुगलखोर सज्जनोंके और व्याध मृगोंके इस जगत्में अकारण वैरी होते हैं॥ २३॥

अहो! माया बड़ी प्रबल है। यह सम्पूर्ण जगत्को मोहमें डाल देती है तथा स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके द्वारा सबको सब प्रकारके दुःखोंसे संयुक्त कर देती है॥

मनुष्य पराये धनका अपहरण करके जो अपनी स्त्री आदिका पोषण करता है, वह किस कामका; क्योंकि अन्तमें उन सबको छोड़कर वह अकेला ही परलोकको राह लेता है॥ २५॥

'मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र तथा मेरा यह घरबार'—इस प्रकार ममता व्यर्थ ही प्राणियोंको कष्ट देती रहती है॥ २६॥

मनुष्य जबतक कमाकर धन देता है, तभीतक लोग उसके भाई-बन्धु बने रहते हैं और उसके कमाये हुए धनको सारे बन्धु-बान्धव सदा भोगते रहते हैं; किंतु मूर्ख मनुष्य अपने किये हुए पापके फलरूप दुःखको अकेला ही भोगता है॥ २७ $\frac{1}{2}$ ॥

उत्तङ्क मुनि जब इस प्रकार कह रहे थे, तब उनकी बातोंपर विचार करके कलिक नामक व्याध भयसे व्याकुल हो उठा और हाथ जोड़कर बारम्बार कहने लगा—'प्रभो! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये'॥

उन महात्माके संगके प्रभावसे तथा भगवान्का सांनिध्य मिल जानेसे उस लुब्धकके सारे पाप नष्ट हो गये तथा

उसके मनमें निश्चय ही बड़ा पश्चात्ताप होने लगा॥

वह बोला—'विप्रवर! मैंने जीवनमें बहुत-से बड़े-बड़े पाप किये हैं; किंतु वे सब आपके दर्शनमात्रसे नष्ट हो गये॥ ३०$\frac{1}{2}$ ॥

'प्रभो! मेरी बुद्धि सदा पापमें ही डूबी रहती थी। मैंने निरन्तर बड़े-बड़े पापोंका ही आचरण किया है। उनसे मेरा उद्धार किस प्रकार होगा? मैं किसकी शरणमें जाऊँ॥ ३१$\frac{1}{2}$ ॥

'पूर्वजन्मके किये हुए पापोंके फलसे मुझे व्याध होना पड़ा है, यहाँ भी मैंने पापोंके ही जाल बटोरे हैं। ये पाप करके मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा?'॥ ३२$\frac{1}{2}$ ॥

महामना कलिककी यह बात सुनकर ब्रह्मर्षि उत्तङ्क इस प्रकार बोले॥ ३३$\frac{1}{2}$ ॥

उत्तङ्कने कहा—महामते व्याध! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उज्ज्वल है; क्योंकि तुम संसारसम्बन्धी दु:खोंके नाशका उपाय जानना चाहते हो॥ ३४$\frac{1}{2}$ ॥

चैत्रमासके शुक्लपक्षमें तुम्हें भक्तिभावसे आदरपूर्वक रामायणकी नवाह कथा सुननी चाहिये। उसके श्रवणमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ३५-३६॥

उस समय कलिक व्याधके सारे पाप नष्ट हो गये। वह रामायणकी कथा सुनकर तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया॥ ३७॥

व्याधको धरतीपर पड़ा हुआ देख दयालु उत्तङ्क मुनि बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने भगवान् कमलापतिका स्तवन किया॥ ३८॥

रामायणकी कथा सुनकर निष्पाप हुआ व्याध दिव्य विमानपर आरूढ़ हो उत्तङ्क मुनिसे इस प्रकार बोला॥ ३९॥

'विद्वन्! आपके प्रसादसे मैं महापातकोंके संकटसे मुक्त हो गया। अत: मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। मैंने जो किया है, मेरे उस अपराधको आप क्षमा कीजिये'॥ ४०॥

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर कलिकने मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कपर देवकुसुमोंकी वर्षा की और तीन बार उनकी परिक्रमा करके उन्हें बारम्बार नमस्कार किया॥ ४१॥

तत्पश्चात् अप्सराओंसे भरे हुए सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न विमानपर आरूढ़ हो वह श्रीहरिके परम धाममें जा पहुँचा॥ ४२॥

अत: विप्रवरो! आप सब लोग रामायणकी कथा सुनें। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें प्रयत्नपूर्वक रामायणकी अमृतमयी कथाका नवाह-पारायण अवश्य सुनना चाहिये॥ ४४$\frac{1}{2}$ ॥

इसलिये रामायण सभी ऋतुओंमें हितकारक है। इसके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला पुरुष मनसे जो-जो चाहता है, उसे नि:संदेह प्राप्त कर लेता है॥ ४४$\frac{1}{2}$ ॥

सनत्कुमार! तुमने जो रामायणका माहात्म्य पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४५-४५॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें नारद-सनत्कुमारसंवादके अन्तर्गत रामायणमाहात्म्यके प्रसंगमें चैत्रमासमें रामायण सुननेके फलका वर्णन नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

रामायणके नवाह श्रवणकी विधि, महिमा तथा फलका वर्णन

सूतजी कहते हैं—रामायणका यह माहात्म्य सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे पुन: जिज्ञासा की॥ १॥

सनत्कुमार बोले—मुनीश्वर! आपने रामायणका माहात्म्य कहा। अब मैं उसकी विधि सुनना चाहता हूँ॥

महाभाग मुने! आप तत्त्वार्थ-ज्ञानमें कुशल हैं; अत: अत्यन्त कृपापूर्वक इस विषयको यथार्थरूपसे बतायें॥

नारदजीने कहा—महर्षियो! तुमलोग एकाग्रचित्त होकर रामायणकी वह विधि सुनो, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात है। वह स्वर्ग तथा मोक्ष-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाली है॥ ४॥

मैं रामायणकथा-श्रवणका विधान बता रहा हूँ;

तुम सब लोग उसे सुनो। रामायणकथाका अनुष्ठान करनेवाले वक्ता एवं श्रोताको भक्तिभावसे भावित होकर उस विधानका पालन करना चाहिये॥ ५॥

उस विधिका पालन करनेसे करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। चैत्र, माघ तथा कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको कथा आरम्भ करनी चाहिये॥ ६॥

पहले स्वस्तिवाचन करके फिर यह संकल्प करे कि 'हम नौ दिनोंतक रामायणकी अमृतमयी कथा सुनेंगे'॥

फिर भगवान्से प्रार्थना करे—'श्रीराम! आजसे प्रतिदिन मैं आपकी अमृतमयी कथा सुनूँगा। यह आपके कृपाप्रसादसे परिपूर्ण हो'॥ ८॥

नित्यप्रति अपामार्गकी शाखासे दन्तशुद्धि करके रामभक्तिमें तत्पर हो विधिपूर्वक स्नान करे॥ ९॥

अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं कथा सुने। पहले अपने कुलाचारके अनुसार दन्तधावनपूर्वक स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे और शुद्ध हो घर आकर मौनभावसे दोनों पैर धोनेके पश्चात् आचमन करके भगवान् नारायणका स्मरण करे॥ १०-११॥

फिर प्रतिदिन देवपूजन करके संकल्पपूर्वक भक्तिभावसे रामायणग्रन्थकी पूजा करे॥ १२॥

व्रती पुरुष आवाहन, आसन, गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रसे भक्तिपरायण होकर पूजन करे॥ १३॥

सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो या तीन बार प्रयत्नपूर्वक होम करे॥

इस प्रकार जो मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर रामायणकी विधिका अनुष्ठान करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है; जहाँसे लौटकर वह फिर इस संसारमें नहीं आता॥ १५॥

जो रामायणसम्बन्धी व्रतको धारण करनेवाला तथा धर्मात्मा है, वह श्रेष्ठ पुरुष चाण्डाल अथवा पतित मनुष्यका वस्त्र और अन्नसे भी सत्कार न करे॥ १६॥

जो नास्तिक, धर्ममर्यादाको तोड़नेवाले, परनिन्दक और चुगलखोर हैं, उनका रामायणव्रतधारी पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे॥ १७॥

जो पतिके जीवित रहते ही परपुरुषके समागमसे माताद्वारा उत्पन्न किया जाता है, उस जारज पुत्रको 'कुण्ड' कहते हैं। ऐसे कुण्डके यहाँ जो भोजन करता है, जो गीत गाकर जीविका चलाता है, देवतापर चढ़ी हुई वस्तुका उपभोग करनेवाले मनुष्यका अन्न खाता है, वैद्य है, लोगोंकी मिथ्या प्रशंसामें कविता लिखता है, देवताओं तथा ब्राह्मणोंका विरोध करता है, पराये अन्नका लोभी है और पर-स्त्रीमें आसक्त रहता है, ऐसे मनुष्यका भी रामायणव्रती पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे॥ १८-१९॥

इस प्रकार दोषोंसे दूर एवं शुद्ध होकर जितेन्द्रिय एवं सबके हितमें तत्पर रहते हुए जो रामायणका आश्रय लेता है, वह परमसिद्धिको प्राप्त होता है॥ २०॥

गंगाके समान तीर्थ, माताके तुल्य गुरु, भगवान् विष्णुके सदृश देवता तथा रामायणसे बढ़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं है॥ २१॥

वेदके समान शास्त्र, शान्तिके समान सुख, शान्तिसे बढ़कर ज्योति तथा रामायणसे उत्कृष्ट कोई काव्य नहीं है॥ २२॥

क्षमाके सदृश बल, कीर्तिके समान धन, ज्ञानके सदृश लाभ तथा रामायणसे बढ़कर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है॥ २३॥

रामायणकथाके अन्तमें वेदज्ञ वाचकको दक्षिणासहित गौका दान करे। उन्हें रामायणकी पुस्तक तथा वस्त्र और आभूषण आदि दे॥ २४॥

जो वाचकको रामायणकी पुस्तक देता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है; जहाँ जाकर उसे कभी शोक नहीं करना पड़ता॥ २५॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमार! रामायणकी नवाह कथा सुननेसे यजमानको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। पञ्चमी तिथिको रामायणकी अमृतमयी कथाको आरम्भ करके उसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

यदि दो बार यह कथा श्रवण की गयी तो श्रोताको पुण्डरीकयज्ञका फल मिलता है। जो जितेन्द्रिय पुरुष व्रतधारणपूर्वक रामायण-कथाको श्रवण करता है, वह दो अश्वमेधयज्ञोंका फल पाता है। मुनिवरो! जिसने चार बार इस कथाका श्रवण किया है, वह आठ अग्निष्टोमके

परम पुण्यफलका भागी होता है॥ २७—२९॥

जिस महामनस्वी पुरुषने पाँच बार रामायणकथा-श्रवणका व्रत पूरा कर लिया है, वह अत्यग्निष्टोमयज्ञके द्विगुण पुण्य-फलका भागी होता है॥ ३०॥

जो एकाग्रचित्त होकर इस प्रकार छः बार रामायणकथाके व्रतका अनुष्ठान पूरा कर लेता है, वह अग्निष्टोमयज्ञके आठगुने फलका भागी होता है॥ ३१॥

मुनीश्वरो! स्त्री हो या पुरुष, जो आठ बार रामायणकथाको सुन लेता है, वह नरमेधयज्ञका पाँचगुना फल पाता है॥ ३२॥

जो स्त्री या पुरुष नौ बार इस व्रतका आचरण करता है, उसे तीन गोमेध-यज्ञका पुण्यफल प्राप्त होता है॥

जो पुरुष शान्तचित्त और जितेन्द्रिय होकर रामायणयज्ञका अनुष्ठान करता है, वह उस परमानन्दमय धाममें जाता है, जहाँ जाकर उसे कभी शोक नहीं करना पड़ता॥ ३४॥

जो प्रतिदिन रामायणका पाठ अथवा श्रवण करता है, गंगा नहाता है और धर्ममार्गका उपदेश देता है; ऐसे लोग संसारसागरसे मुक्त ही हैं, इसमें संशय नहीं है॥

महात्माओ! यतियों, ब्रह्मचारियों तथा प्रवीरोंको भी रामायणकी नवाह कथा सुननी चाहिये॥ ३६॥

रामकथाको अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य महान् तेजसे उद्दीप्त हो उठता है और ब्रह्मलोकमें जाकर वहीं आनन्दका अनुभव करता है॥ ३७॥

इसलिये विप्रेन्द्रगण! आपलोग रामायणकी अमृतमयी कथा सुनिये। श्रोताओंके लिये यह सर्वोत्तम श्रवणीय वस्तु है और पवित्रोंमें भी परम उत्तम है॥ ३८॥

दुःस्वप्नको नष्ट करनेवाली यह कथा धन्य है। इसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त होकर इसका एक श्लोक या आधा श्लोक भी पढ़ता है, वह तत्काल ही करोड़ों उपपातकोंसे छुटकारा पा जाता है। यह गुह्यसे भी गुह्यतम वस्तु है, इसे सत्पुरुषोंको ही सुनाना चाहिये॥ ३९-४०॥

भगवान् श्रीरामके मन्दिरमें अथवा किसी पुण्यक्षेत्रमें, सत्पुरुषोंकी सभामें रामायणकथाका प्रवचन करना चाहिये। जो ब्रह्मद्रोही, पाखण्डपूर्ण आचारमें तत्पर तथा लोगोंको ठगनेवाली वृत्तिसे युक्त हैं, उन्हें यह परम उत्तम कथा नहीं सुनानी चाहिये॥ ४१ १/२॥

जो काम आदि दोषोंका त्याग कर चुके हैं, जिनका मन रामभक्तिमें अनुरक्त रहता है तथा जो गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर हैं, उन्हींके समक्ष यह मोक्षकी साधनभूत कथा बाँचनी चाहिये॥ ४२ १/२॥

श्रीराम सर्वदेवमय माने गये हैं। वे आर्त प्राणियोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं तथा श्रेष्ठ भक्तोंपर सदा ही स्नेह रखते हैं। वे भगवान् भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं, दूसरे किसी उपायसे नहीं॥ ४३ १/२॥

मनुष्य विवश होकर भी उनके नामका कीर्तन अथवा स्मरण कर लेनेपर समस्त पातकोंसे मुक्त हो परमपदका भागी होता है॥ ४४ १/२॥

महात्माओ! भगवान् मधुसूदन संसाररूपी भयंकर एवं दुर्गम वनको भस्म करनेके लिये दावानलके समान हैं। वे अपना स्मरण करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंका शीघ्र ही नाश कर देते हैं॥ ४५ १/२॥

इस पवित्र काव्यके प्रतिपाद्य विषय वे ही हैं, अतः यह परम उत्तम काव्य सदा ही श्रवण करनेयोग्य है। इसका श्रवण अथवा पाठ करनेसे यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ ४६ १/२॥

जिसकी श्रीराम-रसमें प्रीति एवं भक्ति है, वही सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें निपुण और कृतकृत्य है॥

ब्राह्मणो! उसकी उपार्जित की हुई तपस्या पवित्र, सत्य और सफल है; क्योंकि राम-रसमें प्रीति हुए बिना रामायणके अर्थ-श्रवणमें प्रेम नहीं होता है॥ ४८ १/२॥

जो द्विज इस भयंकर कलिकालमें रामायण तथा श्रीरामनामका सहारा लेते हैं, वे ही कृतकृत्य हैं॥ ४९ १/२॥

रामायणकी इस अमृतमयी कथाका नवाह श्रवण करना चाहिये। जो महात्मा ऐसा करते हैं, वे कृतज्ञ हैं। उन्हें प्रतिदिन मेरा बारम्बार नमस्कार है॥ ५० १/२॥

श्रीरामका नाम—केवल श्रीराम-नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें और किसी उपायसे जीवोंकी सद्गति नहीं होती, नहीं होती, नहीं होती॥ ५१ १/२॥

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदजीके द्वारा इस प्रकार ज्ञानोपदेश पाकर सनत्कुमारजीको तत्काल ही परमानन्दकी प्राप्ति हो गयी॥ ५२ १/२॥

अतः विप्रवरो! तुम सब लोग रामायणकी

अमृतमयी कथा सुनो। रामायणको नौ दिनोंमें ही सुनना चाहिये। ऐसा करनेवाला समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५३½ ॥

द्विजोत्तमो! इस महान् काव्यको सुनकर जो वाचककी पूजा करता है, उसपर लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं॥ ५४½ ॥

विप्रेन्द्रगण! वाचकके प्रसन्न होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी प्रसन्न हो जाते हैं। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ५५½ ॥

रामायणके वाचकको अपने वैभवके अनुसार गौ, वस्त्र, सुवर्ण तथा रामायणकी पुस्तक आदि वस्तुएँ देनी चाहिये॥ ५६½ ॥

उस दानका पुण्यफल बता रहा हूँ, आपलोग एकाग्रचित्त होकर सुनें। उस दाताको ग्रह तथा भूत-वेताल आदि कभी बाधा नहीं पहुँचाते। श्रीरामचरित्रका श्रवण करनेपर श्रोताके सम्पूर्ण श्रेयकी वृद्धि होती है॥

उसे न तो अग्निकी बाधा प्राप्त होती है और न चोर आदिका भय ही। वह इस जन्ममें उपार्जित किये हुए समस्त पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। वह इस शरीरका अन्त होनेपर अपनी सात पीढ़ियोंके साथ मोक्षका भागी होता है॥ ५९½ ॥

पूर्वकालमें सनत्कुमार मुनिके भक्तिपूर्वक पूछनेपर नारदजीने उनसे जो कुछ कहा था, वह सब मैंने आपलोगोंको बता दिया॥ ६०½ ॥

रामायण आदिकाव्य है। यह सम्पूर्ण वेदार्थोंकी सम्मतिके अनुकूल है। इसके द्वारा समस्त पापोंका निवारण हो जाता है। यह पुण्यमय काव्य सम्पूर्ण दुःखोंका विनाशक तथा समस्त पुण्यों और यज्ञोंका फल देनेवाला है॥ ६१-६२ ॥

जो विद्वान् इसके एक या आधे श्लोकका भी पाठ करते हैं, उन्हें कभी पापोंका बन्धन नहीं प्राप्त होता॥ ६३ ॥

श्रीरामको समर्पित किया हुआ यह पुण्यकाव्य सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। जो लोग भक्तिपूर्वक इसे सुनते और समझते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो॥ ६४ ॥

वे लोग सौ जन्मोंमें उपार्जित किये हुए पापोंसे तत्काल मुक्त हो अपनी हजारों पीढ़ियोंके साथ परमपदको प्राप्त होते हैं॥ ६५ ॥

जो प्रतिदिन श्रीरामका कीर्तन सुनते हैं, उनके लिये तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या तथा यज्ञोंकी क्या आवश्यकता है॥ ६६ ॥

चैत्र, माघ तथा कार्तिकमें रामायणकी अमृतमयी कथाका नवाह-पारायण सुनना चाहिये॥ ६७ ॥

रामायण श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नता प्राप्त करानेवाला, श्रीरामभक्तिको बढ़ानेवाला, समस्त पापोंका विनाशक तथा सभी सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाला है॥ ६८ ॥

जो एकाग्रचित्त होकर रामायणको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें श्रीनारद-सनत्कुमार-संवादके अन्तर्गत रामायणमाहात्म्यके प्रसंगमें फलका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५ ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड

पहला सर्ग

नारदजीका वाल्मीकि मुनिको संक्षेपसे श्रीरामचरित्र सुनाना

तपस्वी वाल्मीकिजीने तपस्या और स्वाध्यायमें लगे हुए विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनिवर नारदजीसे पूछा— ॥ १ ॥

'[मुने!] इस समय इस संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? ॥ २ ॥

'सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंका हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन (सुन्दर) पुरुष कौन है? ॥ ३ ॥

'मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसीकी भी निन्दा नहीं करनेवाला कौन है? तथा संग्राममें कुपित होनेपर किससे देवता भी डरते हैं? ॥ ४ ॥

'महर्षे! मैं यह सुनना चाहता हूँ, इसके लिये मुझे बड़ी उत्सुकता है और आप ऐसे पुरुषको जाननेमें समर्थ हैं' ॥ ५ ॥

महर्षि वाल्मीकिके इस वचनको सुनकर तीनों लोकोंका ज्ञान रखनेवाले नारदजीने उन्हें सम्बोधित करके कहा, अच्छा सुनिये और फिर प्रसन्नतापूर्वक बोले— ॥ ६ ॥

'मुने! आपने जिन बहुत-से दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त पुरुषको मैं विचार करके कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥

'इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगोंमें राम-नामसे विख्यात हैं, वे ही मनको वशमें रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं ॥ ८ ॥

'वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रुसंहारक हैं। उनके कंधे मोटे और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। ग्रीवा शङ्खके समान और ठोढ़ी मांसल (पुष्ट) है ॥

'उनकी छाती चौड़ी तथा धनुष बड़ा है, गलेके नीचेकी हड्डी (हँसली) मांससे छिपी हुई है। वे शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं। भुजाएँ घुटनेतक लम्बी हैं, मस्तक सुन्दर है, ललाट भव्य और चाल मनोहर है ॥ १० ॥

'उनका शरीर [अधिक ऊँचा या नाटा न होकर] मध्यम और सुडौल है, देहका रंग चिकना है। वे बड़े प्रतापी हैं। उनका वक्षःस्थल भरा हुआ है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वे शोभायमान और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ११ ॥

'धर्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाके हित-साधनमें लगे रहनेवाले हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और मनको एकाग्र रखनेवाले हैं ॥ १२ ॥

'प्रजापतिके समान पालक, श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्मके रक्षक हैं ॥ १३ ॥

'स्वधर्म और स्वजनोंके पालक, वेद-वेदांगोंके तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेदमें प्रवीण हैं ॥ १४ ॥

'वे अखिल शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, स्मरणशक्तिसे युक्त और प्रतिभासम्पन्न हैं। अच्छे विचार और उदार हृदयवाले वे श्रीरामचन्द्रजी बातचीत करनेमें चतुर तथा समस्त लोकोंके प्रिय हैं ॥ १५ ॥

'जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार सदा रामसे साधु पुरुष मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय मालूम होता है ॥ १६ ॥

'सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वे श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्याके आनन्द बढ़ानेवाले हैं, गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं ॥ १७ ॥

'वे विष्णुभगवान्के समान बलवान् हैं। उनका दर्शन चन्द्रमाके समान मनोहर प्रतीत होता है। वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथिवीके सदृश हैं, त्यागमें कुबेर और सत्यमें द्वितीय धर्मराजके समान हैं ॥ १८$\frac{१}{२}$ ॥

'इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त और सत्यपराक्रमवाले सद्गुणशाली अपने प्रियतम ज्येष्ठ पुत्रको, जो प्रजाके हितमें संलग्न रहनेवाले थे, प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे राजा दशरथने प्रेमवश युवराजपदपर अभिषिक्त करना चाहा ॥ १९-२०$\frac{१}{२}$ ॥

'तदनन्तर रामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ देखकर रानी कैकेयीने, जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था,

राजासे यह वर माँगा कि रामका निर्वासन (वनवास) और भरतका राज्याभिषेक हो॥ २१-२२॥

'राजा दशरथने सत्य वचनके कारण धर्म-बन्धनमें बँधकर प्यारे पुत्र रामको वनवास दे दिया॥ २३॥

'कैकेयीका प्रिय करनेके लिये पिताकी आज्ञाके अनुसार उनकी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए वीर रामचन्द्र वनको चले॥ २४॥

'तब सुमित्राके आनन्द बढ़ानेवाले विनयशील लक्ष्मणजीने भी, जो अपने बड़े भाई रामको बहुत ही प्रिय थे, अपने सुबन्धुत्वका परिचय देते हुए स्नेहवश वनको जानेवाले बन्धुवर रामका अनुसरण किया॥ २५½॥

'और जनकके कुलमें उत्पन्न सीता भी, जो अवतीर्ण हुई देवमायाकी भाँति सुन्दरी, समस्त शुभलक्षणोंसे विभूषित, स्त्रियोंमें उत्तम, रामके प्राणोंके समान प्रियतमा पत्नी तथा सदा ही पतिका हित चाहनेवाली थी, रामचन्द्रजीके पीछे चली; जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है। उस समय पिता दशरथ [ने अपना सारथि भेजकर] और पुरवासी मनुष्योंने [स्वयं साथ जाकर] दूरतक उनका अनुसरण किया॥ २६—२८॥

'फिर शृंगवेरपुरमें गंगा-तटपर अपने प्रिय निषादराज गुहके पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने सारथिको [अयोध्याके लिये] विदा कर दिया॥ २९॥

'निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ राम—ये चारों एक वनसे दूसरे वनमें गये। मार्गमें बहुत जलोंवाली अनेकों नदियोंको पार करके [भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे और गुहको वहीं छोड़] भरद्वाज मुनिकी आज्ञासे चित्रकूटपर्वतपर गये। वहाँ वे तीनों देवता और गन्धर्वोंके समान वनमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए एक रमणीय पर्णकुटी बनाकर उसमें सानन्द रहने लगे॥ ३०-३१½॥

'रामके चित्रकूट चले जानेपर पुत्रशोकसे पीडित राजा दशरथ उस समय पुत्रके लिये [उसका नाम ले-लेकर] विलाप करते हुए स्वर्गगामी हुए॥ ३२½॥

'उनके स्वर्गगमनके पश्चात् वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंद्वारा राज्यसंचालनके लिये नियुक्त किये जानेपर भी महाबलशाली वीर भरतने राज्यकी कामना न करके पूज्य रामको प्रसन्न करनेके लिये वनको ही प्रस्थान किया॥ ३३-३४॥

'वहाँ पहुँचकर सद्भावनायुक्त भरतजीने अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी महात्मा रामसे याचना की और यों कहा—धर्मज्ञ! आप ही राजा हों'॥ ३५½॥

'परंतु महान् यशस्वी परम उदार प्रसन्नमुख महाबली रामने भी पिताके आदेशका पालन करते हुए राज्यकी अभिलाषा न की और उन भरताग्रजने राज्यके लिये न्यास (चिह्न) रूपमें अपनी खड़ाऊँ भरतको देकर उन्हें बार-बार आग्रह करके लौटा दिया॥ ३६-३७½॥

'अपनी अपूर्ण इच्छाको लेकर ही भरतने रामके चरणोंका स्पर्श किया और रामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए वे नन्दिग्राममें राज्य करने लगे॥ ३८½॥

'भरतके लौट जानेपर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय श्रीमान् रामने वहाँपर पुनः नागरिक जनोंका आना-जाना देखकर [उनसे बचनेके लिये] एकाग्रभावसे दण्डकारण्यमें प्रवेश किया॥ ३९-४०॥

'उस महान् वनमें पहुँचनेपर कमललोचन रामने विराध नामक राक्षसको मारकर शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य मुनि तथा अगस्त्यके भ्राताका दर्शन किया॥ ४१½॥

'फिर अगस्त्य मुनिके कहनेसे उन्होंने ऐन्द्र धनुष, एक खंग और दो तूणीर, जिनमें बाण कभी नहीं घटते थे, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किये॥ ४२½॥

'एक दिन वनमें वनचरोंके साथ रहनेवाले श्रीरामके पास असुर तथा राक्षसोंके वधके लिये निवेदन करनेको वहाँके सभी ऋषि आये॥ ४३½॥

'उस समय वनमें श्रीरामने दण्डकारण्यवासी अग्निके समान तेजस्वी उन ऋषियोंको राक्षसोंके मारनेका वचन दिया और संग्राममें उनके वधकी प्रतिज्ञा की॥

'वहाँ ही रहते हुए श्रीरामने इच्छानुसार रूप बनानेवाली जनस्थाननिवासिनी शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [लक्ष्मणके द्वारा उसकी नाक कटाकर] कुरूप कर दिया॥ ४६॥

'तब शूर्पणखाके कहनेसे चढ़ाई करनेवाले सभी राक्षसोंको और खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनके पृष्ठपोषक असुरोंको रामने युद्धमें मार डाला॥ ४७½॥

'उस वनमें निवास करते हुए उन्होंने जनस्थानवासी चौदह हजार राक्षसोंका वध किया॥ ४८½॥

'तदनन्तर अपने कुटुम्बका वध सुनकर रावण नामका राक्षस क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और उसने मारीच राक्षससे सहायता माँगी॥ ४९½॥

'यद्यपि मारीचने यह कहकर कि 'रावण! उस बलवान् रामके साथ तुम्हारा विरोध ठीक नहीं है' रावणको अनेकों बार मना किया; परंतु कालकी प्रेरणासे रावणने मारीचके वाक्योंको टाल दिया और उसके साथ ही रामके आश्रमपर गया॥ ५०-५१½॥

'मायावी मारीचके द्वारा उसने दोनों राजकुमारोंको आश्रमसे दूर हटा दिया और स्वयं रामकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया, [जाते समय मार्गमें विघ्न डालनेके कारण] उसने जटायु नामक गृध्रका वध किया॥ ५२½ ॥

'तत्पश्चात् जटायुको आहत देखकर और (उसीके मुखसे) सीताका हरण सुनकर रामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर विलाप करने लगे, उस समय उनकी सभी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं॥ ५३½ ॥

'फिर उसी शोकमें पड़े हुए उन्होंने जटायु गृध्रका अग्निसंस्कार किया और वनमें सीताको ढूँढ़ते हुए कबन्ध नामक राक्षसको देखा, जो शरीरसे विकृत तथा भयंकर दीखनेवाला था। महाबाहु रामने उसे मारकर उसका भी दाह किया, अतः वह स्वर्गको चला गया॥

'जाते समय उसने रामसे धर्मचारिणी शबरीका पता बतलाया और कहा—'रघुनन्दन! आप धर्मपरायणा संन्यासिनी शबरीके आश्रमपर जाइये'॥ ५६½ ॥

'शत्रुहन्ता महान् तेजस्वी दशरथकुमार राम शबरीके यहाँ गये, उसने इनका भलीभाँति पूजन किया॥ ५७½ ॥

'फिर वे पम्पासरके तटपर हनुमान् नामक वानरसे मिले और उन्हींके कहनेसे सुग्रीवसे भी मेल किया॥

'तदनन्तर महाबलवान् रामने आदिसे ही लेकर जो कुछ हुआ था वह और विशेषतः सीताका वृत्तान्त सुग्रीवसे कह सुनाया॥ ५९½ ॥

'वानर सुग्रीवने रामकी सारी बातें सुनकर उनके साथ प्रेमपूर्वक अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की॥

'उसके बाद वानरराज सुग्रीवने स्नेहवश वालीके साथ वैर होनेकी सारी बातें रामसे दुःखी होकर बतलायीं॥

'उस समय रामने वालीको मारनेकी प्रतिज्ञा की, तब वानर सुग्रीवने वहाँ वालीके बलका वर्णन किया; क्योंकि सुग्रीवको रामके बलके विषयमें बराबर शंका बनी रहती थी॥ ६२-६३ ॥

'रामकी प्रतीतिके लिये उन्होंने दुन्दुभि दैत्यका महान् पर्वतके समान विशाल शरीर दिखलाया॥ ६४॥

'महाबली महाबाहु श्रीरामने तनिक मुसकराकर उस अस्थिसमूहको देखा और पैरके अँगूठेसे उसे दस योजन दूर फेंक दिया॥ ६५ ॥

'फिर एक ही महान् बाणसे उन्होंने अपना विश्वास दिलाते हुए सात तालवृक्षोंको और पर्वत तथा रसातलको बींध डाला॥ ६६ ॥

'तदनन्तर रामके इस कार्यसे महाकपि सुग्रीव मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्हें रामपर विश्वास हो गया। फिर वे उनके साथ किष्किन्धा गुहामें गये॥ ६७॥

'वहाँपर सुवर्णके समान पिंगलवर्णवाले वीरवर सुग्रीवने गर्जना की, उस महानादको सुनकर वानरराज वाली अपनी पत्नी ताराको आश्वासन देकर तत्काल घरसे बाहर निकला और सुग्रीवसे भिड़ गया। वहाँ रामने वालीको एक ही बाणसे मार गिराया॥ ६८-६९ ॥

'सुग्रीवके कथनानुसार उस संग्राममें वालीको मारकर उसके राज्यपर रामने सुग्रीवको ही बिठा दिया॥

'तब उन वानरराजने भी सभी वानरोंको बुलाकर जानकीका पता लगानेके लिये उन्हें चारों दिशाओंमें भेजा॥

'तत्पश्चात् सम्पाति नामक गृध्रके कहनेसे बलवान् हनुमान्जी सौ योजन विस्तारवाले क्षार समुद्रको कूदकर लाँघ गये॥ ७२ ॥

'वहाँ रावणपालित लङ्कापुरीमें पहुँचकर उन्होंने अशोकवाटिकामें सीताको चिन्तामग्न देखा॥ ७३ ॥

'तब उन विदेहनन्दिनीको अपनी पहचान देकर रामका संदेश सुनाया और उन्हें सान्त्वना देकर उन्होंने वाटिकाका द्वार तोड़ डाला॥ ७४॥

'फिर पाँच सेनापतियों और सात मन्त्रिकुमारोंकी हत्या कर वीर अक्षकुमारका भी कचूमर निकाला, इसके बाद वे [जान-बूझकर] पकड़े गये॥ ७५ ॥

'ब्रह्माजीके वरदानसे अपनेको ब्रह्मपाशसे छूटा हुआ जानकर भी वीर हनुमान्जीने अपनेको बाँधनेवाले उन राक्षसोंका अपराध स्वेच्छानुसार सह लिया॥ ७६ ॥

'तत्पश्चात् मिथिलेशकुमारी सीताके [स्थानके] अतिरिक्त समस्त लङ्काको जलाकर वे महाकपि हनुमान्जी रामको प्रिय संदेश सुनानेके लिये लंकासे लौट आये॥ ७७ ॥

'अपरिमित बुद्धिशाली हनुमान्जीने वहाँ जा महात्मा रामकी प्रदक्षिणा करके यों सत्य निवेदन किया—'मैंने सीताजीका दर्शन किया है'॥ ७८॥

'इसके अनन्तर सुग्रीवके साथ भगवान् रामने महासागरके तटपर जाकर सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुब्ध किया॥ ७९ ॥

'तब नदीपति समुद्रने अपनेको प्रकट कर दिया, फिर समुद्रके ही कहनेसे रामने नलसे पुल निर्माण कराया॥

'उसी पुलसे लङ्कापुरीमें जाकर रावणको मारा, फिर सीताके मिलनेपर रामको बड़ी लज्जा हुई॥ ८१ ॥

'तब भरी सभामें सीताके प्रति वे मर्मभेदी वचन कहने लगे। उनकी इस बातको न सह सकनेके कारण साध्वी सीता अग्निमें प्रवेश कर गयीं॥ ८२ ॥

'इसके बाद अग्निके कहनेसे उन्होंने सीताको

निष्कलङ्क माना। महात्मा रामचन्द्रजीके इस महान् कर्मसे देवता और ऋषियोंसहित चराचर त्रिभुवन संतुष्ट हो गया॥ ८३ १/२ ॥

'फिर सभी देवताओंसे पूजित होकर राम बहुत ही प्रसन्न हुए और राक्षसराज विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त करके कृतार्थ हो गये। उस समय निश्चिन्त होनेके कारण उनके आनन्दका ठिकाना न रहा॥ ८४-८५ ॥

'यह सब हो जानेपर राम देवताओंसे वर पाकर और मरे हुए वानरोंको जीवन दिलाकर अपने सभी साथियोंके साथ पुष्पकविमानपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए॥ ८६ ॥

'भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सबको आराम देनेवाले सत्यपराक्रमी रामने भरतके पास हनुमान्‌को भेजा॥ ८७ ॥

'फिर सुग्रीवके साथ कथा-वार्ता कहते हुए पुष्पकारूढ़ हो वे नन्दिग्रामको गये॥ ८८ ॥

'निष्पाप रामचन्द्रजीने नन्दिग्राममें अपनी जटा कटाकर भाइयोंके साथ, सीताको पानेके अनन्तर, पुनः अपना राज्य प्राप्त किया है॥ ८९ ॥

'अब रामके राज्यमें लोग प्रसन्न, सुखी, संतुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग-व्याधिसे मुक्त रहेंगे, उन्हें दुर्भिक्षका भय न होगा॥ ९० ॥

'कोई कहीं भी अपने पुत्रकी मृत्यु नहीं देखेंगे, स्त्रियाँ विधवा न होंगी, सदा ही पतिव्रता होंगी॥ ९१ ॥

'आग लगनेका किंचित् भी भय न होगा, कोई प्राणी जलमें नहीं डूबेंगे, वात और ज्वरका भय थोड़ा भी नहीं रहेगा॥ ९२ ॥

'क्षुधा तथा चोरीका डर भी जाता रहेगा, सभी नगर और राष्ट्र धन-धान्यसम्पन्न होंगे। सत्ययुगकी भाँति सभी लोग सदा प्रसन्न रहेंगे॥ ९३ १/२ ॥

'महायशस्वी राम बहुत-से सुवर्णोंकी दक्षिणावाले सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे, उनमें विधिपूर्वक विद्वानोंको दस हजार करोड़ (एक खरब) गौ और ब्राह्मणोंको अपरिमित धन देंगे तथा सौगुने राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। संसारमें चारों वर्णोंको वे अपने-अपने धर्ममें नियुक्त रखेंगे॥

'फिर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने परमधामको पधारेंगे॥ ९७ ॥

'वेदोंके समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय इस रामचरितको जो पढ़ेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा॥

'आयु बढ़ानेवाली इस रामायण-कथाको पढ़नेवाला मनुष्य मृत्युके अनन्तर पुत्र, पौत्र तथा अन्य परिजनवर्गके साथ ही स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा॥ ९९ ॥

'इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़ता हो तो पृथ्वीका राज्य प्राप्त करे, वैश्यको व्यापारमें लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे'॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १ ॥

दूसरा सर्ग

रामायणकाव्यका उपक्रम—तमसाके तटपर क्रौञ्चवधसे संतप्त हुए महर्षि वाल्मीकिके शोकका श्लोकरूपमें प्रकट होना तथा ब्रह्माजीका उन्हें रामचरित्रमय काव्यके निर्माणका आदेश देना

देवर्षि नारदजीके उपर्युक्त वचन सुनकर वाणीविशारद धर्मात्मा ऋषि वाल्मीकिजीने अपने शिष्योंसहित उन महामुनिका पूजन किया॥ १ ॥

वाल्मीकिजीसे यथावत् सम्मानित हो देवर्षि नारदजीने जानेके लिये उनसे आज्ञा माँगी और उनसे अनुमति मिल जानेपर वे आकाशमार्गसे चले गये॥ २ ॥

उनके देवलोक पधारनेके दो ही घड़ी बाद वाल्मीकिजी तमसा नदीके तटपर गये, जो गंगाजीसे अधिक दूर नहीं था॥ ३ ॥

तमसाके तटपर पहुँचकर वहाँके घाटको कीचड़से रहित देख मुनिने अपने पास खड़े हुए शिष्यसे कहा—॥ ४ ॥

'भरद्वाज! देखो, यहाँका घाट बड़ा सुन्दर है। इसमें कीचड़का नाम नहीं है। यहाँका जल वैसा ही स्वच्छ है, जैसा सत्पुरुषका मन होता है॥ ५ ॥

'तात! यहीं कलश रख दो और मुझे मेरा वल्कल दो। मैं तमसाके इसी उत्तम तीर्थमें स्नान करूँगा'॥ ६ ॥

महात्मा वाल्मीकिके ऐसा कहनेपर नियम-परायण शिष्य भरद्वाजने अपने गुरु मुनिवर वाल्मीकिको वल्कलवस्त्र दिया॥ ७ ॥

शिष्यके हाथसे वल्कल लेकर वे जितेन्द्रिय मुनि वहाँके विशाल वनकी शोभा देखते हुए सब ओर

विचरने लगे॥ ८॥

उनके पास ही क्रौञ्च पक्षियोंका एक जोड़ा, जो कभी एक-दूसरेसे अलग नहीं होता था, विचर रहा था। वे दोनों पक्षी बड़ी मधुर बोली बोलते थे। भगवान् वाल्मीकिने पक्षियोंके उस जोड़ेको वहाँ देखा॥ ९॥

उसी समय पापपूर्ण विचार रखनेवाले एक निषादने, जो समस्त जन्तुओंका अकारण वैरी था, वहाँ आकर पक्षियोंके उस जोड़ेमेंसे एक—नर पक्षीको मुनिके देखते-देखते बाणसे मार डाला॥ १०॥

वह पक्षी खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और पंख फड़फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पतिकी हत्या हुई देख उसकी भार्या क्रौञ्ची करुणाजनक स्वरमें चीत्कार कर उठी॥ ११॥

उत्तम पंखोंसे युक्त वह पक्षी सदा अपनी भार्याके साथ-साथ विचरता था। उसके मस्तकका रंग ताँबेके समान लाल था और वह कामसे मतवाला हो गया था। ऐसे पतिसे वियुक्त होकर क्रौञ्ची बड़े दुःखसे रो रही थी॥ १२॥

निषादने जिसे मार गिराया था, उस नर पक्षीकी वह दुर्दशा देख उन धर्मात्मा ऋषिको बड़ी दया आयी॥ १३॥

स्वभावतः करुणाका अनुभव करनेवाले ब्रह्मर्षिने 'यह अधर्म हुआ है' ऐसा निश्चय करके रोती हुई क्रौञ्चीकी ओर देखते हुए निषादसे इस प्रकार कहा—॥ १४॥

'निषाद! तुझे नित्य-निरन्तर—कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराधके ही हत्या कर डाली'॥ १५॥

ऐसा कहकर जब उन्होंने इसपर विचार किया, तब उनके मनमें यह चिन्ता हुई कि 'अहो! इस पक्षीके शोकसे पीड़ित होकर मैंने यह क्या कह डाला'॥ १६॥

यही सोचते हुए महाज्ञानी और परम बुद्धिमान् मुनिवर वाल्मीकि एक निश्चयपर पहुँच गये और अपने शिष्यसे इस प्रकार बोले—॥ १७॥

'तात! शोकसे पीड़ित हुए मेरे मुखसे जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणोंमें आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरणमें बराबर-बराबर (यानी आठ-आठ) अक्षर हैं तथा इसे वीणाके लयपर गाया भी जा सकता है; अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप (अर्थात् श्लोक नामक छन्दमें आबद्ध काव्यरूप या यशःस्वरूप) होना चाहिये, अन्यथा नहीं'॥ १८॥

मुनिकी यह उत्तम बात सुनकर उनके शिष्य भरद्वाजको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनका समर्थन करते हुए कहा—'हाँ, आपका यह वाक्य श्लोकरूप ही होना चाहिये।' शिष्यके इस कथनसे मुनिको विशेष संतोष हुआ॥ १९॥

तत्पश्चात् उन्होंने उत्तम तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान किया और उसी विषयका विचार करते हुए वे आश्रमकी ओर लौट पड़े॥ २०॥

फिर उनका विनीत एवं शास्त्रज्ञ शिष्य भरद्वाज भी वह जलसे भरा हुआ कलश लेकर गुरुजीके पीछे-पीछे चला॥ २१॥

शिष्यके साथ आश्रममें पहुँचकर धर्मज्ञ ऋषि वाल्मीकिजी आसनपर बैठे और दूसरी-दूसरी बातें करने लगे; परंतु उनका ध्यान उस श्लोककी ओर ही लगा था॥ २२॥

इतनेहीमें अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले, सर्वसमर्थ, महातेजस्वी चतुर्मुख ब्रह्माजी मुनिवर वाल्मीकिसे मिलनेके लिये स्वयं उनके आश्रमपर आये॥ २३॥

उन्हें देखते ही महर्षि वाल्मीकि सहसा उठकर खड़े हो गये। वे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर अत्यन्त विस्मित हो हाथ जोड़े चुपचाप कुछ कालतक खड़े ही रह गये, कुछ बोल न सके॥ २४॥

तत्पश्चात् उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुति आदिके द्वारा भगवान् ब्रह्माजीका पूजन किया और उनके चरणोंमें विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुशल-समाचार पूछा॥ २५॥

भगवान् ब्रह्माने एक परम उत्तम आसनपर विराजमान होकर वाल्मीकि मुनिको भी आसन-ग्रहण करनेकी आज्ञा दी॥ २६॥

ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर वे भी आसनपर बैठे। उस समय साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मा सामने बैठे हुए थे तो भी वाल्मीकिका मन उस क्रौञ्च पक्षीवाली घटनाकी ओर ही लगा रहा। वे उसीके विषयमें सोचने लगे—'ओह! जिसकी बुद्धि वैरभावको ग्रहण करनेमें ही लगी रहती है, उस पापात्मा व्याधने बिना किसी अपराधके ही वैसे मनोहर कलरव करनेवाले क्रौञ्च पक्षीके प्राण ले लिये'॥ २७-२८ $\frac{1}{2}$ ॥

यही सोचते-सोचते उन्होंने क्रौञ्चीके आर्तनादको सुनकर निषादको लक्ष्य करके जो श्लोक कहा था, उसीको फिर ब्रह्माजीके सामने दुहराया। उसे दुहराते ही फिर उनके मनमें अपने दिये हुए शापके अनौचित्यका ध्यान आया। तब वे शोक और चिन्तामें

डूब गये॥ २९½ ॥

ब्रह्माजी उनकी मन:स्थितिको समझकर हँसने लगे और मुनिवर वाल्मीकिसे इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! तुम्हारे मुँहसे निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा। इस विषयमें तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे संकल्प अथवा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुँहसे ऐसी वाणी निकली है॥ ३०-३१ ॥

'मुनिश्रेष्ठ! तुम श्रीरामके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करो। परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम संसारमें सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। तुमने नारदजीके मुँहसे जैसा सुना है, उसीके अनुसार उनके चरित्रका चित्रण करो॥ ३२½ ॥

'बुद्धिमान् श्रीरामका जो गुप्त या प्रकट वृत्तान्त है तथा लक्ष्मण, सीता और राक्षसोंके जो सम्पूर्ण गुप्त या प्रकट चरित्र हैं, वे सब अज्ञात होनेपर भी तुम्हें ज्ञात हो जायँगे॥ ३३-३४½ ॥

'इस काव्यमें अंकित तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी; इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी परम पवित्र एवं मनोरम कथाको श्लोकबद्ध करके लिखो॥ ३५½ ॥

'इस पृथ्वीपर जबतक नदियों और पर्वतोंकी सत्ता रहेगी, तबतक संसारमें रामायणकथाका प्रचार होता रहेगा॥ ३६½ ॥

'जबतक तुम्हारी बनायी हुई श्रीरामकथाका लोकमें प्रचार रहेगा, तबतक तुम इच्छानुसार ऊपर-नीचे तथा मेरे लोकोंमें निवास करोगे'॥ ३७½ ॥

ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके वहीं अन्तर्धान होनेसे शिष्योंसहित भगवान् वाल्मीकि मुनिको बड़ा विस्मय हुआ॥ ३८ ॥

तदनन्तर उनके सभी शिष्य अत्यन्त प्रसन्न होकर बार-बार इस श्लोकका गान करने लगे तथा परम विस्मित हो परस्पर इस प्रकार कहने लगे—॥ ३९ ॥

'हमारे गुरुदेव महर्षिने क्रौञ्च पक्षीके दु:खसे दु:खी होकर जिस समान अक्षरोंवाले चार चरणोंसे युक्त वाक्यका गान किया था, वह था तो उनके हृदयका शोक; किंतु उनकी वाणीद्वारा उच्चारित होकर श्लोकरूप* हो गया'॥ ४० ॥

इधर शुद्ध अन्त:करणवाले महर्षि वाल्मीकिके मनमें यह विचार हुआ कि मैं ऐसे ही श्लोकोंमें सम्पूर्ण रामायणकाव्यकी रचना करूँ॥ ४१ ॥

यह सोचकर उदार दृष्टिवाले उन यशस्वी महर्षिने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको लेकर हजारों श्लोकोंसे युक्त महाकाव्यकी रचना की, जो उनके यशको बढ़ानेवाला है। इसमें श्रीरामके उदार चरित्रोंका प्रतिपादन करनेवाले मनोहर पदोंका प्रयोग किया गया है॥ ४२ ॥

महर्षि वाल्मीकिके बनाये हुए इस काव्यमें तत्पुरुष आदि समासों, दीर्घ-गुण आदि संधियों और प्रकृति-प्रत्ययके सम्बन्धका यथायोग्य निर्वाह हुआ है। इसकी रचनामें समता (पतत्-प्रकर्ष आदि दोषोंका अभाव) है, पदोंमें माधुर्य है और अर्थमें प्रसाद-गुणकी अधिकता है। भावुकजनो! इस प्रकार शास्त्रीय पद्धतिके अनुकूल बने हुए इस रघुवर-चरित्र और रावण-वधके प्रसंगको ध्यान देकर सुनो॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

वाल्मीकि मुनिद्वारा रामायणकाव्यमें निबद्ध विषयोंका संक्षेपसे उल्लेख

नारदजीके मुखसे धर्म, अर्थ एवं कामरूपी फलसे युक्त, हितकर (मोक्षदायक) तथा प्रकट और गुप्त—सम्पूर्ण रामचरित्रको, जो रामायण महाकाव्यकी प्रधान कथावस्तु था, सुनकर महर्षि वाल्मीकिजी बुद्धिमान् श्रीरामके उस जीवनवृत्तका पुन: भलीभाँति साक्षात्कार करनेके लिये प्रयत्न करने लगे॥ १ ॥

वे पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर बैठ गये और विधिवत् आचमन करके हाथ जोड़े हुए स्थिर भावसे स्थित हो योगधर्म (समाधि) के द्वारा श्रीराम आदिके चरित्रोंका अनुसंधान करने लगे॥ २ ॥

श्रीराम-लक्ष्मण-सीता तथा राज्य और रानियोंसहित राजा दशरथसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें थीं—हँसना, बोलना, चलना और राज्यपालन आदि जितनी चेष्टाएँ हुईं—उन सबका महर्षिने अपने योगधर्मके बलसे भलीभाँति साक्षात्कार किया॥ ३-४ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके

* काव्य या यशरूप ।

साथ वनमें विचरते समय जो-जो लीलाएँ की थीं, वे सब उनकी दृष्टिमें आ गयीं॥ ५॥

योगका आश्रय लेकर उन धर्मात्मा महर्षिने पूर्वकालमें जो-जो घटनाएँ घटित हुई थीं, उन सबको वहाँ हाथपर रखे हुए आँवलेकी तरह प्रत्यक्ष देखा॥ ६॥

सबके मनको प्रिय लगनेवाले भगवान् श्रीरामके सम्पूर्ण चरित्रोंका योगधर्म (समाधि) के द्वारा यथार्थरूपसे निरीक्षण करके महाबुद्धिमान् महर्षि वाल्मीकिने उन सबको महाकाव्यका रूप देनेकी चेष्टा की॥ ७॥

महात्मा नारदजीने पहले जैसा वर्णन किया था, उसीके क्रमसे भगवान् वाल्मीकि मुनिने रघुवंशविभूषण श्रीरामके चरित्रविषयक रामायण काव्यका निर्माण किया। जैसे समुद्र सब रत्नोंकी निधि है, उसी प्रकार यह महाकाव्य गुण, अलङ्कार एवं ध्वनि आदि रत्नोंका भण्डार है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण श्रुतियोंके सारभूत अर्थका प्रतिपादक होनेके कारण सबके कानोंको प्रिय लगनेवाला तथा सभीके चित्तको आकृष्ट करनेवाला है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी गुणों (फलों) से युक्त तथा इनका विस्तारपूर्वक प्रतिपादन एवं दान करनेवाला है॥ ८-९॥

श्रीरामके जन्म, उनके महान् पराक्रम, उनकी सर्वानुकूलता, लोकप्रियता, क्षमा, सौम्यभाव तथा सत्यशीलताका इस महाकाव्यमें महर्षिने वर्णन किया॥

विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मणके जानेपर जो उनके द्वारा नाना प्रकारकी विचित्र लीलाएँ तथा अद्भुत बातें घटित हुईं, उन सबका इसमें महर्षिने वर्णन किया। श्रीरामद्वारा मिथिलामें धनुषके तोड़े जाने तथा जनकनन्दिनी सीता और उर्मिला आदिके विवाहका भी इसमें चित्रण किया॥ ११॥

श्रीराम-परशुराम-संवाद, दशरथनन्दन श्रीरामके गुण, उनके अभिषेक, कैकेयीकी दुष्टता, श्रीरामके राज्याभिषेकमें विघ्न, उनके वनवास, राजा दशरथके शोक-विलाप और परलोक-गमन, प्रजाओंके विषाद, साथ जानेवाली प्रजाओंको मार्गमें छोड़ने, निषादराज गुहके साथ बात करने तथा सूत सुमन्तको अयोध्या लौटाने आदिका भी इसमें उल्लेख किया॥ १२—१४॥

श्रीराम आदिका गंगाके पार जाना, भरद्वाज मुनिका दर्शन करना, भरद्वाज मुनिकी आज्ञा लेकर चित्रकूट जाना और वहाँकी नैसर्गिक शोभाका अवलोकन करना, चित्रकूटमें कुटिया बनाना, उसमें निवास करना, वहाँ भरतका श्रीरामसे मिलनेके लिये आना, उन्हें अयोध्या लौट चलनेके लिये प्रसन्न करना (मनाना), श्रीरामद्वारा पिताको जलाञ्जलि दान, भरतद्वारा अयोध्याके राजसिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठ पादुकाओंका अभिषेक एवं स्थापन, नन्दिग्राममें भरतका निवास, श्रीरामका दण्डकारण्यमें गमन, उनके द्वारा विराधका वध, शरभंगमुनिका दर्शन, सुतीक्ष्णके साथ समागम, अनसूयाके साथ सीतादेवीकी कुछ कालतक स्थिति, उनके द्वारा सीताको अंगराग-समर्पण, श्रीराम आदिके द्वारा अगस्त्यका दर्शन, उनके दिये हुए वैष्णव धनुषका ग्रहण, शूर्पणखाका संवाद, श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणद्वारा उसका विरूपकरण (उसकी नाक और कानका छेदन), श्रीरामद्वारा खर-दूषण और त्रिशिराका वध, शूर्पणखाके उत्तेजित करनेसे रावणका श्रीरामसे बदला लेनेके लिये उठना, श्रीरामद्वारा मारीचका वध, रावणद्वारा विदेहनन्दिनी सीताका हरण, सीताके लिये श्रीरघुनाथजीका विलाप, रावणद्वारा गृध्रराज जटायुका वध, श्रीराम और लक्ष्मणकी कबन्धसे भेंट, उनके द्वारा पम्पासरोवरका अवलोकन, श्रीरामका शबरीसे मिलना और उसके दिये हुए फल-मूलको ग्रहण करना, श्रीरामका सीताके लिये प्रलाप, पम्पासरोवरके निकट हनुमान्‌जीसे भेंट, श्रीराम और लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके साथ ऋष्यमूक पर्वतपर जाना, वहाँ सुग्रीवके साथ भेंट करना, उन्हें अपने बलका विश्वास दिलाना और उनसे मित्रता स्थापित करना, वाली और सुग्रीवका युद्ध, श्रीरामद्वारा वालीका विनाश, सुग्रीवको राज्य-समर्पण, अपने पति वालीके लिये ताराका विलाप, शरत्कालमें सीताकी खोज करानेके लिये सुग्रीवकी प्रतिज्ञा, श्रीरामका बरसातके दिनोंमें माल्यवान् पर्वतके प्रस्रवण नामक शिखरपर निवास, रघुकुलसिंह श्रीरामका सुग्रीवके प्रति क्रोध-प्रदर्शन, सुग्रीवद्वारा सीताकी खोजके लिये वानरसेनाका संग्रह, सुग्रीवका सम्पूर्ण दिशाओंमें वानरोंको भेजना और उन्हें पृथ्वीके द्वीप-समुद्र आदि विभागोंका परिचय देना, श्रीरामका सीताके विश्वासके लिये हनुमान्‌जीको अपनी अँगूठी देना, वानरोंको ऋक्ष-बिल (स्वयंप्रभा-गुफा) का दर्शन, उनका प्रायोपवेशन (प्राणत्यागके लिये अनशन), सम्पातीसे उनकी भेंट और बातचीत, समुद्रलङ्घनके लिये हनुमान्‌जीका महेन्द्र पर्वतपर चढ़ना, समुद्रको लाँघना, समुद्रके कहनेसे ऊपर उठे हुए मैनाकका दर्शन करना, इनको राक्षसीका डाँटना, हनुमान्‌द्वारा छायाग्राहिणी सिंहिकाका दर्शन एवं निधन, लङ्काके आधारभूत पर्वत (त्रिकूट) का दर्शन, रात्रिके समय लङ्कामें प्रवेश, अकेला होनेके कारण अपने कर्तव्यका विचार करना, रावणके मद्यपान-स्थानमें जाना, उसके

अन्त:पुरकी स्त्रियोंको देखना, हनुमान्‌जीका रावणको देखना, पुष्पकविमानका निरीक्षण करना, अशोकवाटिकामें जाना और सीताजीके दर्शन करना, पहचानके लिये सीताजीको अँगूठी देना और उनसे बातचीत करना, राक्षसियोंद्वारा सीताको डाँट-फटकार, त्रिजटाको श्रीरामके लिये शुभसूचक स्वप्नका दर्शन, सीताका हनुमान्‌जीको चूड़ामणि प्रदान करना, हनुमान्‌जीका अशोकवाटिकाके वृक्षोंको तोड़ना, राक्षसियोंका भागना, रावणके सेवकोंका हनुमान्‌जीके द्वारा संहार, वायुनन्दन हनुमान्‌का बन्दी होकर रावणकी सभामें जाना, उनके द्वारा गर्जन और लङ्काका दाह, फिर लौटती बार समुद्रको लाँघना, वानरोंका मधुवनमें आकर मधुपान करना, हनुमान्‌जीका श्रीरामचन्द्रजीको आश्वासन देना और सीताजीकी दी हुई चूड़ामणि समर्पित करना, सेनासहित सुग्रीवके साथ श्रीरामकी लङ्कायात्राके समय समुद्रसे भेंट, नलका समुद्रपर सेतु बाँधना, उसी सेतुके द्वारा वानरसेनाका समुद्रके पार जाना, रातको वानरोंका लङ्कापर चारों ओरसे घेरा डालना, विभीषणके साथ श्रीरामका मैत्री-सम्बन्ध होना, विभीषणका श्रीरामको रावणके वधका उपाय बताना, कुम्भकर्णका निधन, मेघनादका वध, रावणका विनाश, सीताकी प्राप्ति, शत्रुनगरी लङ्कामें विभीषणका अभिषेक, श्रीरामद्वारा पुष्पकविमानका अवलोकन, उसके द्वारा दल-बलसहित उनका अयोध्याके लिये प्रस्थान, श्रीरामका भरद्वाजमुनिसे मिलना, वायुपुत्र हनुमान्‌को दूत बनाकर भरतके पास भेजना तथा अयोध्यामें आकर भरतसे मिलना, श्रीरामके राज्याभिषेकका उत्सव, फिर श्रीरामका सारी वानरसेनाको विदा करना, अपने राष्ट्रकी प्रजाको प्रसन्न रखना तथा उनकी प्रसन्नताके लिये ही विदेहनन्दिनी सीताको वनमें त्याग देना इत्यादि वृत्तान्तोंको एवं इस पृथ्वीपर श्रीरामका जो कुछ भविष्य चरित्र था, उसको भी भगवान् वाल्मीकि मुनिने अपने उत्कृष्ट महाकाव्यमें अंकित किया॥ १५—३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा सर्ग

महर्षि वाल्मीकिका चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त रामायणकाव्यका निर्माण करके उसे लव-कुशको पढ़ाना, मुनिमण्डलीमें रामायणगान करके लव और कुशका प्रशंसित होना तथा अयोध्यामें श्रीरामद्वारा सम्मानित हो उन दोनोंका रामदरबारमें रामायणगान सुनाना

श्रीरामचन्द्रजीने जब वनसे लौटकर राज्यका शासन अपने हाथमें ले लिया, उसके बाद भगवान् वाल्मीकि मुनिने उनके सम्पूर्ण चरित्रके आधारपर विचित्र पद और अर्थसे युक्त रामायणकाव्यका निर्माण किया॥ १॥

इसमें महर्षिने चौबीस हजार श्लोक, पाँच सौ सर्ग तथा उत्तरसहित सात काण्डोंका प्रतिपादन किया है॥ २॥

भविष्य तथा उत्तरकाण्डसहित समस्त रामायण पूर्ण कर लेनेके पश्चात् सामर्थ्यशाली, महाज्ञानी महर्षिने सोचा कि कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष होगा, जो इस महाकाव्यको पढ़कर जनसमुदायमें सुना सके॥ ३॥

शुद्ध अन्त:करणवाले उन महर्षिके इस प्रकार विचार करते ही मुनिवेषमें रहनेवाले राजकुमार कुश और लवने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ४॥

राजकुमार कुश और लव दोनों भाई धर्मके ज्ञाता और यशस्वी थे। उनका स्वर बड़ा ही मधुर था और वे मुनिके आश्रमपर ही रहते थे। उनकी धारणाशक्ति अद्भुत थी और वे दोनों ही वेदोंमें पारंगत हो चुके थे। भगवान् वाल्मीकिने उनकी ओर देखा और उन्हें सुयोग्य समझकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महर्षिने वेदार्थका विस्तारके साथ ज्ञान करानेके लिये उन्हें सीताके चरित्रसे युक्त सम्पूर्ण रामायण नामक महाकाव्यका, जिसका दूसरा नाम पौलस्त्यवध अथवा दशाननवध था, अध्ययन कराया॥ ५—७॥

वह महाकाव्य पढ़ने और गानेमें भी मधुर, द्रुत, मध्य और विलम्बित—इन तीनों गतियोंसे अन्वित, षड्ज आदि सातों स्वरोंसे युक्त, वीणा बजाकर स्वर और तालके साथ गाने योग्य तथा शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीर आदि सभी रसोंसे अनुप्राणित है। दोनों भाई कुश और लव उस महाकाव्यको पढ़कर उसका गान करने लगे॥ ८-९॥

वे दोनों भाई गान्धर्व विद्या (संगीत-शास्त्र) के तत्त्वज्ञ, स्थान[१] और मूर्च्छनाके[२] जानकार, मधुर स्वरसे सम्पन्न तथा गन्धर्वोंके समान मनोहर रूपवाले थे॥ १०॥

सुन्दर रूप और शुभ लक्षण उनकी सहज सम्पत्ति थे। वे दोनों भाई बड़े मधुर स्वरसे वार्तालाप करते थे। जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब प्रकट होते हैं, उसी प्रकार श्रीरामके शरीरसे उत्पन्न हुए वे दोनों राजकुमार दूसरे युगल श्रीराम ही प्रतीत होते थे॥ ११॥

वे दोनों राजपुत्र सब लोगोंकी प्रशंसाके पात्र थे, उन्होंने उस धर्मानुकूल उत्तम उपाख्यानमय सम्पूर्ण काव्यको जिह्वाग्र कर लिया था और जब कभी ऋषियों, ब्राह्मणों तथा साधुओंका समागम होता था, उस समय उनके बीचमें बैठकर वे दोनों तत्त्वज्ञ बालक एकाग्रचित्त हो रामायणका गान किया करते थे॥ १२-१३॥

एक दिनकी बात है, बहुत-से शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंकी मण्डली एकत्र हुई थी। उसमें महान् सौभाग्यशाली तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित महामनस्वी कुश और लव भी उपस्थित थे। उन्होंने बीच सभामें उन महात्माओंके समीप बैठकर उस रामायणकाव्यका गान किया। उसे सुनकर सभी मुनियोंके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे अत्यन्त विस्मय-विमुग्ध होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। मुनि धर्मवत्सल तो होते ही हैं; वह धार्मिक उपाख्यान सुनकर उन सबके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई॥

वे रामायण-कथाके गायक कुमार कुश और लवकी, जो प्रशंसाके ही योग्य थे, इस प्रकार प्रशंसा करने लगे—'अहो! इन बालकोंके गीतमें कितना माधुर्य है। श्लोकोंकी मधुरता तो और भी अद्भुत है॥ १७॥

'यद्यपि इस काव्यमें वर्णित घटना बहुत दिनों पहले हो चुकी है तो भी इन दोनों बालकोंने इस सभामें प्रवेश करके एक साथ ऐसे सुन्दर भावसे स्वरसम्पन्न, रागयुक्त मधुरगान किया है कि वे पहलेकी घटनाएँ भी प्रत्यक्ष-सी दिखायी देने लगी हैं—मानो अभी-अभी आँखोंके सामने घटित हो रही हों'॥ १८½॥

इस प्रकार उत्तम तपस्यासे युक्त महर्षिगण उन दोनों कुमारोंकी प्रशंसा करते और वे उनसे प्रशंसित होकर अत्यन्त मधुर रागसे रामायणका गान करते थे॥

उनके गानसे संतुष्ट हुए किसी मुनिने उठकर उन्हें पुरस्कारके रूपमें एक कलश प्रदान किया। किसी दूसरे महायशस्वी महर्षिने प्रसन्न होकर उन दोनोंको वल्कल वस्त्र दिया। किसीने काला मृगचर्म भेंट किया तो किसीने यज्ञोपवीत॥ २०-२१॥

एकने कमण्डलु दिया तो दूसरे महामुनिने मुञ्जकी मेखला भेंट की। तीसरेने आसन और चौथेने कौपीन प्रदान किया। किसी अन्य मुनिने हर्षमें भरकर उन दोनों बालकोंके लिये कुठार अर्पित किया। किसीने गेरुआ वस्त्र दिया तो किसी मुनिने चीर भेंट किया॥ २२—२३॥

किसी दूसरेने आनन्दमग्न होकर जटा बाँधनेके लिये रस्सी दी तो किसीने समिधा बाँधकर लानेके लिये डोरी प्रदान की। एक ऋषिने यज्ञपात्र दिया तो दूसरेने काष्ठभार समर्पित किया। किसीने गूलरकी लकड़ीका बना हुआ पीढ़ा अर्पित किया। कुछ लोग उस समय आशीर्वाद देने लगे—'बच्चो! तुम दोनोंका कल्याण हो।' दूसरे महर्षि प्रसन्नतापूर्वक बोल उठे—'तुम्हारी आयु बढ़े।' इस प्रकार सभी सत्यवादी मुनियोंने उन दोनोंको नाना प्रकारके वर दिये॥ २४-२५½॥

महर्षि वाल्मीकिद्वारा वर्णित यह आश्चर्यमय काव्य परवर्ती कवियोंके लिये श्रेष्ठ आधारशिला है। श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण चरित्रोंका क्रमशः वर्णन करते हुए इसकी समाप्ति की गयी है॥ २६½॥

सम्पूर्ण गीतोंके विशेषज्ञ राजकुमारो! यह काव्य आयु एवं पुष्टि प्रदान करनेवाला तथा सबके कान और मनको मोहनेवाला मधुर संगीत है। तुम दोनोंने बड़े सुन्दर ढंगसे इसका गान किया है॥ २७½॥

एक समय सर्वत्र प्रशंसित होनेवाले राजकुमार कुश और लव अयोध्याकी गलियों और सड़कोंपर रामायणके श्लोकोंका गान करते हुए विचर रहे थे। इसी समय उनके ऊपर भरतके बड़े भाई श्रीरामकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने उन समादरयोग्य बन्धुओंको अपने घर बुलाकर उनका

---

१. स्थान शब्दसे यहाँ मन्द्र, मध्यम औरताररूप त्रिविध स्वरोंकी उत्पत्तिका स्थान बताया गया है। हृदयकी ग्रन्थिसे ऊपर और कपोलफलकसे नीचे जो प्राणोंके संचारका स्थान है, उसीको स्थान कहते हैं; उनके तीन भेद हैं—हृदय, कण्ठ और सिर। उसके पुनः तीन-तीन भेद होते हैं—मन्द्र, मध्य और तार; जैसा कि शाण्डिल्यका वचन है—

यदूर्ध्वं हृदयग्रन्थेः कपोलफलकादधः। प्राणसंचारणस्थानं स्थानमित्यभिधीयते॥
उरः कण्ठः शिरश्चेति तत्पुनस्त्रिविधं भवेत्। मन्द्रं मध्यं च तारं च ... ...॥

२. जहाँ स्वर पूर्ण होते हैं, उस स्थानको मूर्छना कहते हैं। जैसा कि कहा गया है—

यत्रैव स्युः स्वराः पूर्णा मूर्छना सेत्युदाहृता।

वैजयन्तीकोशके अनुसार वीणा आदिके वादनको मूर्छना कहते हैं—'वादने मूर्छना प्रोक्ता।'

यथोचित सम्मान किया। तदनन्तर शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीराम सुवर्णमय दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके मन्त्री और भाई भी उनके पास ही बैठे थे। उन सबके साथ सुन्दर रूपवाले उन दोनों विनयशील भाइयोंकी ओर देखकर श्रीरामचन्द्रजीने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे कहा—'ये देवताके समान तेजस्वी दोनों कुमार विचित्र अर्थ और पदोंसे युक्त मधुर काव्य बड़े सुन्दर ढंगसे गाकर सुनाते हैं। तुम सब लोग इसे सुनो।' यों कहकर उन्होंने उन दोनों भाइयोंको गानेकी आज्ञा दी॥

आज्ञा पाकर वे दोनों भाई वीणाके लयके साथ अपने मनके अनुकूल तार (उच्च) एवं मधुर स्वरमें राग अलापते हुए रामायणकाव्यका गान करने लगे। उनका उच्चारण इतना स्पष्ट था कि सुनते ही अर्थका बोध हो जाता था। उनका गान सुनकर श्रोताओंके समस्त अंगोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया तथा उन सबके मन और आत्मामें आनन्दकी तरंगें उठने लगीं। उस जनसभामें होनेवाला वह गान सबकी श्रवणेन्द्रियोंको अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था॥ ३३-३४॥

उस समय श्रीरामने अपने भाइयोंका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा—'ये दोनों कुमार मुनि होकर भी राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। संगीतमें कुशल होनेके साथ ही महान् तपस्वी हैं। ये जिस चरित्रका—प्रबन्धकाव्यका गान करते हैं, वह शब्दार्थालङ्कार, उत्तम गुण एवं सुन्दर रीति आदिसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त प्रभावशाली है। मेरे लिये भी अभ्युदयकारक है; ऐसा वृद्ध पुरुषोंका कथन है। अतः तुम सब लोग ध्यान देकर इसे सुनो'॥ ३५॥

तदनन्तर श्रीरामकी आज्ञासे प्रेरित हो वे दोनों भाई मार्गविधानकी* रीतिसे रामायणका गान करने लगे। सभामें बैठे हुए भगवान् श्रीराम भी धीरे-धीरे उनका गान सुननेमें तन्मय हो गये॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

राजा दशरथद्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरीका वर्णन

यह सारी पृथ्वी पूर्वकालमें प्रजापति मनुसे लेकर अबतक जिस वंशके विजयशाली नरेशोंके अधिकारमें रही है, जिन्होंने समुद्रको खुदवाया था और जिन्हें यात्राकालमें साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राजा सगर जिनके कुलमें उत्पन्न हुए, इन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओंकी कुलपरम्परामें रामायणनामसे प्रसिद्ध इस महान् ऐतिहासिक काव्यकी अवतारणा हुई है॥ १—३॥

हम दोनों आदिसे अन्ततक इस सारे काव्यका पूर्णरूपसे गान करेंगे। इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है; अतः आपलोग दोषदृष्टिका परित्याग करके इसका श्रवण करें॥ ४॥

कोशल नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है, जो सरयू नदीके किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न, सुखी और समृद्धिशाली है॥ ५॥

उसी जनपदमें अयोध्या नामकी एक नगरी है, जो समस्त लोकोंमें विख्यात है। उस पुरीको स्वयं महाराज मनुने बनवाया और बसाया था॥ ६॥

वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। वहाँ बाहरके जनपदोंमें जानेका जो विशाल राजमार्ग था, वह उभयपार्श्वमें विविध वृक्षावलियोंसे विभूषित होनेके कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गोंसे विभक्त जान पड़ता था॥ ७॥

सुन्दर विभागपूर्वक बना हुआ महान् राजमार्ग उस पुरीकी शोभा बढ़ा रहा था। उसपर खिले हुए फूल बिखेरे जाते थे तथा प्रतिदिन उसपर जलका छिड़काव होता था॥ ८॥

जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्रने अमरावतीपुरी बसायी थी, उसी प्रकार धर्म और न्यायके बलसे अपने महान् राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले राजा दशरथने अयोध्यापुरीको पहलेकी अपेक्षा विशेषरूपसे बसाया था॥ ९॥

वह पुरी बड़े-बड़े फाटकों और किवाड़ोंसे सुशोभित थी। उसके भीतर पृथक्-पृथक् बाजारें थीं। वहाँ सब प्रकारके यन्त्र और अस्त्र-शस्त्र संचित थे। उस पुरीमें सभी कलाओंके शिल्पी निवास करते थे॥ १०॥

स्तुति-पाठ करनेवाले सूत और वंशावलीका बखान करनेवाले मागध वहाँ भरे हुए थे। वह पुरी सुन्दर शोभासे सम्पन्न थी। उसकी सुषमाकी कहीं तुलना नहीं थी। वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं, जिनके ऊपर

* गान दो प्रकारके होते हैं—मार्ग और देशी। भिन्न-भिन्न देशोंकी प्राकृत भाषामें गाये जानेवाले गानको देशी कहते हैं और समूचे राष्ट्रमें प्रसिद्ध संस्कृत आदि भाषाका आश्रय लेकर गाया हुआ गान मार्गके नामसे प्रसिद्ध है। कुमार कुश और लव संस्कृत भाषाका आश्रय लेकर इसीकी रीतिसे गा रहे थे।

ध्वज फहराते थे। सैकड़ों शतघ्नियों (तोपों) से वह पुरी व्याप्त थी॥ ११॥

उस पुरीमें ऐसी बहुत-सी नाटक-मण्डलियाँ थीं, जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य एवं अभिनय करती थीं। उस नगरीमें चारों ओर उद्यान तथा आमोंके बगीचे थे। लम्बाई और चौड़ाईकी दृष्टिसे वह पुरी बहुत विशाल थी तथा साखूके वन उसे सब ओरसे घेरे हुए थे॥ १२॥

उसके चारों ओर गहरी खाई खुदी थी, जिसमें प्रवेश करना या जिसे लाँघना अत्यन्त कठिन था। वह नगरी दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्गम एवं दुर्जय थी। घोड़े, हाथी, गाय-बैल, ऊँट तथा गदहे आदि उपयोगी पशुओंसे वह पुरी भरी-पूरी थी॥ १३॥

कर देनेवाले सामन्त नरेशोंके समुदाय उसे सदा घेरे रहते थे। विभिन्न देशोंके निवासी वैश्य उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे॥ १४॥

वहाँके महलोंका निर्माण नाना प्रकारके रत्नोंसे हुआ था। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनसे उस पुरीकी बड़ी शोभा हो रही थी। बहुसंख्यक कूटागारों (गुप्तगृहों अथवा स्त्रियोंके क्रीड़ाभवनों) से परिपूर्ण वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीके समान जान पड़ती थी॥ १५॥

उसकी शोभा विचित्र थी। उसके महलोंपर सोनेका पानी चढ़ाया गया था (अथवा वह पुरी द्यूतफलकके[१] आकारमें बसायी गयी थी)। श्रेष्ठ एवं सुन्दरी नारियोंके समूह उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी तथा सतमहले प्रासादोंसे सुशोभित थी॥

पुरवासियोंके घरोंसे उसकी आबादी इतनी घनी हो गयी थी कि कहीं थोड़ा-सा भी अवकाश नहीं दिखायी देता था। उसे समतल भूमिपर बसाया गया था। वह नगरी जड़हन धानके चावलोंसे भरपूर थी। वहाँका जल इतना मीठा या स्वादिष्ट था, मानो ईखका रस हो॥

भूमण्डलकी वह सर्वोत्तम नगरी दुन्दुभि, मृदंग, वीणा, पणव आदि वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे अत्यन्त गूँजती रहती थी॥ १८॥

देवलोकमें तपस्यासे प्राप्त हुए सिद्धोंके विमानकी भाँति उस पुरीका भूमण्डलमें सर्वोत्तम स्थान था। वहाँके सुन्दर महल बहुत अच्छे ढंगसे बनाये और बसाये गये थे। उनके भीतरी भाग बहुत ही सुन्दर थे। बहुत-से श्रेष्ठ पुरुष उस पुरीमें निवास करते थे॥ १९॥

जो अपने समूहसे बिछुड़कर असहाय हो गया हो, जिसके आगे-पीछे कोई न हो (अर्थात् जो पिता और पुत्र दोनोंसे हीन हो) तथा जो शब्दवेधी बाणद्वारा बेधने योग्य हों अथवा युद्धसे हारकर भागे जा रहे हों, ऐसे पुरुषोंपर जो लोग बाणोंका प्रहार नहीं करते, जिनके सधे-सधाये हाथ शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यवेध करनेमें समर्थ हैं, अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगमें कुशलता प्राप्त कर चुके हैं तथा जो वनमें गर्जते हुए मतवाले सिंहों, व्याघ्रों और सूअरोंको तीखे शस्त्रोंसे एवं भुजाओंके बलसे भी बलपूर्वक मार डालनेमें समर्थ हैं, ऐसे सहस्रों महारथी वीरोंसे अयोध्यापुरी भरी-पूरी थी। उसे महाराज दशरथने बसाया और पाला था॥ २०—२२॥

अग्निहोत्री, शम-दम आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न तथा छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके पारंगत विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरीको सदा घेरे रहते थे। वे सहस्रोंका दान करनेवाले और सत्यमें तत्पर रहनेवाले थे। ऐसे महर्षिकल्प महात्माओं तथा ऋषियोंसे अयोध्यापुरी सुशोभित थी तथा राजा दशरथ उसकी रक्षा करते थे॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठा सर्ग

राजा दशरथके शासनकालमें अयोध्या और वहाँके नागरिकोंकी उत्तम स्थितिका वर्णन

उस अयोध्यापुरीमें रहकर राजा दशरथ प्रजावर्गका पालन करते थे। वे वेदोंके विद्वान् तथा सभी उपयोगी वस्तुओंका संग्रह करनेवाले थे। दूरदर्शी और महान् तेजस्वी थे। नगर और जनपदकी प्रजा उनसे बहुत प्रेम रखती थी। वे इक्ष्वाकुकुलके अतिरथी[२] वीर थे। यज्ञ करनेवाले, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय थे। महर्षियोंके समान दिव्य गुणसम्पन्न राजर्षि थे। उनकी तीनों लोकोंमें ख्याति थी। वे बलवान्, शत्रुहीन, मित्रोंसे युक्त एवं इन्द्रियविजयी

१. गोविन्दराजकी टीकामें अष्टापदका अर्थ शारिफल या द्यूतफलक किया गया है। वह चौकी जिसपर पासा बिछाया या खेला जाय, द्यूतफलक कहलाती है। पुरीके बीचमें राजमहल था। उसके चारों ओर राजबीथियाँ थीं और बीचमें खाली जगहें थीं। यही 'अष्टापदाकारा' का भाव है।

२. जो दस हजार महारथियोंके साथ अकेला ही युद्ध करनेमें समर्थ हो, वह 'अतिरथी' कहलाता है।

थे। धन और अन्य वस्तुओंके संचयकी दृष्टिसे इन्द्र और कुबेरके समान जान पड़ते थे। जैसे महातेजस्वी प्रजापति मनु सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते थे, उसी प्रकार महाराज दशरथ भी करते थे॥ १—४॥

धर्म, अर्थ और कामका सम्पादन करनेवाले कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए वे सत्यप्रतिज्ञ नरेश उस श्रेष्ठ अयोध्यापुरीका उसी तरह पालन करते थे, जैसे इन्द्र अमरावतीपुरीका॥ ५॥

उस उत्तम नगरमें निवास करनेवाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यवादी तथा अपने-अपने धनसे संतुष्ट रहनेवाले थे॥ ६॥

उस श्रेष्ठ पुरीमें कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था, जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओंका संग्रह अधिक मात्रामें न हो, जिसके धर्म, अर्थ और काममय पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय-बैल, घोड़े, धन-धान्य आदिका अभाव हो॥ ७॥

अयोध्यामें कहीं भी कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक मनुष्य देखनेको भी नहीं मिलता था॥ ८॥

वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचारकी दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति निर्मल थे॥ ९॥

वहाँ कोई भी कुण्डल, मुकुट और पुष्पहारसे शून्य नहीं था। किसीके पास भोग-सामग्रीकी कमी नहीं थी। कोई भी ऐसा नहीं था, जो नहा-धोकर साफ-सुथरा न हो, जिसके अंगोंमें चन्दनका लेप न हुआ हो तथा जो सुगन्धसे वञ्चित हो॥ १०॥

अपवित्र अन्न भोजन करनेवाला, दान न देनेवाला तथा मनको काबूमें न रखनेवाला मनुष्य तो वहाँ कोई दिखायी ही नहीं देता था। कोई भी ऐसा पुरुष देखनेमें नहीं आता था, जो बाजूबन्द, निष्क (स्वर्णपदक या मोहर) तथा हाथका आभूषण (कड़ा आदि) धारण न किये हो॥ ११॥

अयोध्यामें कोई भी ऐसा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो; जो क्षुद्र, चोर, सदाचारशून्य अथवा वर्णसंकर हो॥ १२॥

वहाँ निवास करनेवाले ब्राह्मण सदा अपने कर्मोंमें लगे रहते, इन्द्रियोंको वशमें रखते, दान और स्वाध्याय करते तथा प्रतिग्रहसे बचे रहते थे॥ १३॥

वहाँ कहीं एक भी ऐसा द्विज नहीं था, जो नास्तिक, असत्यवादी, अनेक शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित, दूसरोंके दोष ढूँढ़नेवाला, साधनमें असमर्थ और विद्याहीन हो॥

उस पुरीमें वेदके छहों अंगोंको न जाननेवाला, व्रतहीन, सहस्रोंसे कम दान देनेवाला, दीन, विक्षिप्त-चित्त अथवा दु:खी भी कोई नहीं था॥ १५॥

अयोध्यामें कोई भी स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं देखा जा सकता था, जो श्रीहीन, रूपरहित तथा राजभक्तिसे शून्य हो॥ १६॥

ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके लोग देवता और अतिथियोंके पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूरवीर और पराक्रमी थे॥ १७॥

उस श्रेष्ठ नगरमें निवास करनेवाले सब मनुष्य दीर्घायु तथा धर्म और सत्यका आश्रय लेनेवाले थे। वे सदा स्त्री-पुत्र और पौत्र आदि परिवारके साथ सुखसे रहते थे॥ १८॥

क्षत्रिय ब्राह्मणोंका मुँह जोहते थे, वैश्य क्षत्रियोंकी आज्ञाका पालन करते थे और शूद्र अपने कर्तव्यका पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णोंकी सेवामें संलग्न रहते थे॥ १९॥

इक्ष्वाकुकुलके स्वामी राजा दशरथ अयोध्यापुरीकी रक्षा उसी प्रकार करते थे, जैसे बुद्धिमान् महाराज मनुने पूर्वकालमें उसकी रक्षा की थी॥ २०॥

शौर्यकी अधिकताके कारण अग्निके समान दुर्धर्ष, कुटिलतासे रहित, अपमानको सहन करनेमें असमर्थ तथा अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता योद्धाओंके समुदायसे वह पुरी उसी तरह भरी-पूरी रहती थी, जैसे पर्वतोंकी गुफा सिंहोंके समूहसे परिपूर्ण होती है॥ २१॥

काम्बोज और बाह्लीक देशमें उत्पन्न हुए उत्तम घोड़ोंसे, वनायु देशके अश्वोंसे तथा सिन्धुनदके निकट पैदा होनेवाले दरियाई घोड़ोंसे, जो इन्द्रके अश्व उच्चै:श्रवाके समान श्रेष्ठ थे, अयोध्यापुरी भरी रहती थी॥ २२॥

विन्ध्य और हिमालय पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त बलशाली पर्वताकार मदमत्त गजराजोंसे भी वह नगरी परिपूर्ण रहती थी॥ २३॥

ऐरावतकुलमें उत्पन्न, महापद्मके वंशमें पैदा हुए तथा अञ्जन और वामन नामक दिग्गजोंसे भी प्रकट हुए हाथी उस पुरीकी पूर्णतामें सहायक हो रहे थे॥ २४॥

हिमालय पर्वतपर उत्पन्न भद्रजातिके, विन्ध्यपर्वतपर उत्पन्न हुए मन्द्रजातिके तथा सह्यपर्वतपर पैदा हुए मृग जातिके हाथी भी वहाँ मौजूद थे। भद्र, मन्द्र और मृग— इन तीनोंके मेलसे उत्पन्न हुए संकरजातिके, भद्र और मन्द्र—इन दो जातियोंके मेलसे पैदा हुए संकर जातिके,

भद्र और मृग जातिके संयोगसे उत्पन्न संकरजातिके तथा मृग और मन्द्र—इन दो जातियोंके सम्मिश्रणसे पैदा हुए पर्वताकार गजराज भी, जो सदा मदोन्मत्त रहते थे, उस पुरीमें भरे हुए थे। (तीन योजनके विस्तारवाली अयोध्यामें) दो योजनकी भूमि तो ऐसी थी, जहाँ पहुँचकर किसीके लिये भी युद्ध करना असम्भव था, इसलिये वह पुरी 'अयोध्या' इस सत्य एवं सार्थक नामसे प्रकाशित होती थी; जिसमें रहते हुए राजा दशरथ इस जगत्‌का (अपने राज्यका) पालन करते थे॥ २५-२६॥

जैसे चन्द्रमा नक्षत्रलोकका शासन करते हैं, उसी प्रकार महातेजस्वी महाराज दशरथ अयोध्यापुरीका शासन करते थे। उन्होंने अपने समस्त शत्रुओंको नष्ट कर दिया था॥ २७॥

जिसका अयोध्या नाम सत्य एवं सार्थक था, जिसके दरवाजे और अर्गला सुदृढ़ थे, जो विचित्र गृहोंसे सदा सुशोभित होती थी, सहस्त्रों मनुष्योंसे भरी हुई उस कल्याणमयी पुरीका इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा दशरथ न्यायपूर्वक शासन करते थे॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

राजमन्त्रियोंके गुण और नीतिका वर्णन

इक्ष्वाकुवंशी वीर महामना महाराज दशरथके मन्त्रिजनोचित गुणोंसे सम्पन्न आठ मन्त्री थे, जो मन्त्रके तत्त्वको जाननेवाले और बाहरी चेष्टा देखकर ही मनके भावको समझ लेनेवाले थे। वे सदा ही राजाके प्रिय एवं हितमें लगे रहते थे। इसीलिये उनका यश बहुत फैला हुआ था। वे सभी शुद्ध आचार-विचारसे युक्त थे और राजकीय कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे॥ १-२॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र, जो अर्थशास्त्रके ज्ञाता थे॥ ३॥

ऋषियोंमें श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव—ये दो महर्षि राजाके माननीय ऋत्विज् (पुरोहित) थे। इनके सिवा सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी महाराजके मन्त्री थे॥ ४-५॥

इन ब्रह्मर्षियोंके साथ राजाके पूर्वपरम्परागत ऋत्विज् भी सदा मन्त्रीका कार्य करते थे। वे सब-के-सब विद्वान् होनेके कारण विनयशील, सलज्ज, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, महात्मा, शस्त्रविद्याके ज्ञाता, सुदृढ़ पराक्रमी, यशस्वी, समस्त राजकार्योंमें सावधान, राजाकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान् तथा मुसकराकर बात करनेवाले थे। वे कभी काम, क्रोध या स्वार्थके वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलते थे॥ ६—८॥

अपने या शत्रुपक्षके राजाओंकी कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या करते हैं, क्या कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं—ये सभी बातें गुप्तचरोंद्वारा उन्हें मालूम रहती थीं॥ ९॥

वे सभी व्यवहारकुशल थे। उनके सौहार्दकी अनेक अवसरोंपर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रको भी उचित दण्ड देनेमें भी नहीं हिचकते थे॥ १०॥

कोषके संचय तथा चतुरंगिणी सेनाके संग्रहमें सदा लगे रहते थे। शत्रुने भी यदि अपराध न किया हो तो वे उसकी हिंसा नहीं करते थे॥ ११॥

उन सबमें सदा शौर्य एवं उत्साह भरा रहता था। वे राजनीतिके अनुसार कार्य करते तथा अपने राज्यके भीतर रहनेवाले सत्पुरुषोंकी सदा रक्षा करते थे॥ १२॥

ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धनसे राजाका खजाना भरते थे। वे अपराधी पुरुषके बलाबलको देखकर उसके प्रति तीक्ष्ण अथवा मृदु दण्डका प्रयोग करते थे॥ १३॥

उन सबके भाव शुद्ध और विचार एक थे। उनकी जानकारीमें अयोध्यापुरी अथवा कोसलराज्यके भीतर कहीं एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो मिथ्यावादी, दुष्ट और परस्त्रीलम्पट हो। सम्पूर्ण राष्ट्र और नगरमें पूर्ण शान्ति छायी रहती थी॥ १४-१५॥

उन मन्त्रियोंके वस्त्र और वेष स्वच्छ एवं सुन्दर होते थे। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा राजाके हितैषी थे। नीतिरूपी नेत्रोंसे देखते हुए सदा सजग रहते थे॥ १६॥

अपने गुणोंके कारण वे सभी मन्त्री गुरुतुल्य समादरणीय राजाके अनुग्रहपात्र थे। अपने पराक्रमोंके कारण उनकी सर्वत्र ख्याति थी। विदेशोंमें भी सब लोग उन्हें जानते थे। वे सभी बातोंमें बुद्धिद्वारा भलीभाँति

विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचते थे॥ १७॥

समस्त देशों और कालोंमें वे गुणवान् ही सिद्ध होते थे, गुणहीन नहीं। संधि और विग्रहके उपयोग और अवसरका उन्हें अच्छी तरह ज्ञान था। वे स्वभावसे ही सम्पत्तिशाली (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) थे॥ १८॥

उनमें राजकीय मन्त्रणाको गुप्त रखनेकी पूर्ण शक्ति थी। वे सूक्ष्मविषयका विचार करनेमें कुशल थे। नीतिशास्त्रमें उनकी विशेष जानकारी थी तथा वे सदा ही प्रिय लगनेवाली बात बोलते थे॥ १९॥

ऐसे गुणवान् मन्त्रियोंके साथ रहकर निष्पाप राजा दशरथ उस भूमण्डलका शासन करते थे॥ २०॥

वे गुप्तचरोंके द्वारा अपने और शत्रु-राज्यके वृत्तान्तोंपर दृष्टि रखते थे, प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते थे तथा प्रजापालन करते हुए अधर्मसे दूर ही रहते थे॥ २१॥

उनकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि थी। वे उदार और सत्यप्रतिज्ञ थे। पुरुषसिंह राजा दशरथ अयोध्यामें ही रहकर इस पृथ्वीका शासन करते थे॥ २२॥

उन्हें कभी अपनेसे बड़ा अथवा अपने समान भी कोई शत्रु नहीं मिला। उनके मित्रोंकी संख्या बहुत थी। सभी सामन्त उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उनके प्रतापसे राज्यके सारे कण्टक (शत्रु एवं चोर आदि) नष्ट हो गये थे। जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गमें रहकर तीनों लोकोंका पालन करते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ अयोध्यामें रहकर सम्पूर्ण जगत्का शासन करते थे॥ २३॥

उनके मन्त्री मन्त्रणाको गुप्त रखने तथा राज्यके हित-साधनमें संलग्न रहते थे। वे राजाके प्रति अनुरक्त, कार्यकुशल और शक्तिशाली थे। जैसे सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंके साथ उदित होकर प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ उन तेजस्वी मन्त्रियोंसे घिरे रहकर बड़ी शोभा पाते थे॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

राजाका पुत्रके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेका प्रस्ताव और मन्त्रियों तथा ब्राह्मणोंद्वारा उनका अनुमोदन

सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाले महात्मा राजा दशरथ ऐसे प्रभावशाली होते हुए भी पुत्रके लिये सदा चिन्तित रहते थे। उनके वंशको चलानेवाला कोई पुत्र नहीं था॥ १॥

उसके लिये चिन्ता करते-करते एक दिन उन महामनस्वी नरेशके मनमें यह विचार हुआ कि मैं पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान क्यों न करूँ?॥

अपने समस्त शुद्ध बुद्धिवाले मन्त्रियोंके साथ परामर्शपूर्वक यज्ञ करनेका ही निश्चित विचार करके उन महातेजस्वी, बुद्धिमान् एवं धर्मात्मा राजाने सुमन्त्रसे कहा—'मन्त्रिवर! तुम मेरे समस्त गुरुजनों एवं पुरोहितोंको यहाँ शीघ्र बुला ले आओ'॥ ३-४॥

तब शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले सुमन्त्र तुरंत जाकर उन समस्त वेदविद्याके पारंगत मुनियोंको वहाँ बुला लाये॥ ५॥

सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कुलपुरोहित वसिष्ठ तथा और भी जो श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उन सबकी पूजा करके धर्मात्मा राजा दशरथने धर्म और अर्थसे युक्त यह मधुर वचन कहा—॥ ६-७॥

'महर्षियो! मैं सदा पुत्रके लिये विलाप करता रहता हूँ। उसके बिना इस राज्य आदिसे मुझे सुख नहीं मिलता; अतः मैंने यह निश्चय किया है कि मैं पुत्र-प्राप्तिके लिये अश्वमेधद्वारा भगवान्का यजन करूँ॥ ८॥

'मेरी इच्छा है कि शास्त्रोक्त विधिसे इस यज्ञका अनुष्ठान करूँ; अतः किस प्रकार मुझे मेरी मनोवाञ्छित वस्तु प्राप्त होगी? इसका विचार आपलोग यहाँ करें'॥ ९॥

राजाके ऐसा कहनेपर वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंने 'बहुत अच्छा' कहकर उनके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त वचनकी प्रशंसा की॥ १०॥

फिर वे सभी अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा दशरथसे बोले—'महाराज! यज्ञ-सामग्रीका संग्रह किया जाय। भूमण्डलमें भ्रमणके लिये यज्ञसम्बन्धी अश्व छोड़ा जाय तथा सरयूके उत्तर तटपर यज्ञभूमिका निर्माण किया जाय। तुम यज्ञद्वारा सर्वथा अपनी इच्छाके अनुरूप पुत्र प्राप्त कर लोगे; क्योंकि पुत्रके लिये तुम्हारे हृदयमें ऐसी धार्मिक बुद्धिका उदय हुआ है'॥ ११-१२ $\frac{1}{2}$ ॥

ब्राह्मणोंका यह कथन सुनकर राजा बहुत संतुष्ट हुए। हर्षसे उनके नेत्र चञ्चल हो उठे। वे अपने मन्त्रियोंसे बोले—'गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार यज्ञकी सामग्री यहाँ एकत्र की जाय। शक्तिशाली वीरोंके संरक्षणमें उपाध्यायसहित अश्वको छोड़ा जाय। सरयूके

उत्तर तटपर यज्ञभूमिका निर्माण हो। शास्त्रोक्त विधिके अनुसार क्रमशः शान्तिकर्मका विस्तार किया जाय (जिससे विघ्नोंका निवारण हो)। यदि इस श्रेष्ठ यज्ञमें कष्टप्रद अपराध बन जानेका भय न हो तो सभी राजा इसका सम्पादन कर सकते हैं; परंतु ऐसा होना कठिन है; क्योंकि विद्वान् ब्रह्मराक्षस यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये छिद्र ढूँढ़ा करते हैं॥ १३—१७॥

'विधिहीन यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला यजमान तत्काल नष्ट हो जाता है; अतः मेरा यह यज्ञ जिस तरह विधिपूर्वक सम्पन्न हो सके, वैसा उपाय किया जाय। तुम सब लोग ऐसे साधन प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो'॥

राजाके द्वारा सम्मानित हुए समस्त मन्त्री पूर्ववत् उनके वचनोंको सुनकर बोले—'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'॥ १९½ ॥

इसी प्रकार वे सभी धर्मज्ञ ब्राह्मण भी नृपश्रेष्ठ दशरथको बधाई देते हुए उनकी आज्ञा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही फिर लौट गये॥ २०½ ॥

उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजाने मन्त्रियोंसे कहा—'पुरोहितोंके उपदेशके अनुसार इस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करना चाहिये'॥ २१½ ॥

वहाँ उपस्थित हुए मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ दशरथ उन्हें विदा करके अपने महलमें चले गये॥ २२½ ॥

वहाँ जाकर नरेशने अपनी प्यारी पत्नियोंसे कहा—'देवियो! दीक्षा ग्रहण करो। मैं पुत्रके लिये यज्ञ करूँगा'॥ २३½ ॥

उस मनोहर वचनसे उन सुन्दर कान्तिवाली रानियोंके मुखकमल वसन्तऋतुमें विकसित होनेवाले पङ्कजोंके समान खिल उठे और अत्यन्त शोभा पाने लगे॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

सुमन्त्रका राजाको ऋष्यशृंग मुनिको बुलानेकी सलाह देते हुए उनके अंगदेशमें जाने और शान्तासे विवाह करनेका प्रसंग सुनाना

पुत्रके लिये अश्वमेध यज्ञ करनेकी बात सुनकर सुमन्त्रने राजासे एकान्तमें कहा—'महाराज! एक पुराना इतिहास सुनिये। मैंने पुराणमें भी इसका वर्णन सुना है॥ १॥

'ऋत्विजोंने पुत्र-प्राप्तिके लिये इस अश्वमेधरूप उपायका उपदेश किया है; परंतु मैंने इतिहासके रूपमें कुछ विशेष बात सुनी है। राजन्! पूर्वकालमें भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके निकट एक कथा सुनायी थी। वह आपकी पुत्रप्राप्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली है॥ २½ ॥

'उन्होंने कहा था, मुनिवरो! महर्षि काश्यपके विभाण्डक नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र हैं। उनके भी एक पुत्र होगा, जिसकी लोगोंमें ऋष्यशृंग नामसे प्रसिद्धि होगी। वे ऋष्यशृंग मुनि सदा वनमें ही रहेंगे और वनमें ही सदा लालन-पालन पाकर वे बड़े होंगे॥ ३-४॥

'सदा पिताके ही साथ रहनेके कारण विप्रवर ऋष्यशृंग दूसरे किसीको नहीं जानेंगे। राजन्! लोकमें ब्रह्मचर्यके दो रूप विख्यात हैं और ब्राह्मणोंने सदा उन दोनों स्वरूपोंका वर्णन किया है। एक तो है दण्ड, मेखला आदि धारणरूप मुख्य ब्रह्मचर्य और दूसरा है ऋतुकालमें पत्नी-समागमरूप गौण ब्रह्मचर्य। उन महात्माके द्वारा उक्त दोनों प्रकारके ब्रह्मचर्योंका पालन होगा॥ ५½ ॥

''इस प्रकार रहते हुए मुनिका समय अग्नि तथा यशस्वी पिताकी सेवामें ही व्यतीत होगा॥ ६½ ॥

''उसी समय अंगदेशमें रोमपाद नामक एक बड़े प्रतापी और बलवान् राजा होंगे; उनके द्वारा धर्मका उल्लङ्घन हो जानेके कारण उस देशमें घोर अनावृष्टि हो जायगी, जो सब लोगोंको अत्यन्त भयभीत कर देगी॥

''वर्षा बंद हो जानेसे राजा रोमपादको भी बहुत दुःख होगा। वे शास्त्रज्ञानमें बढ़े-चढ़े ब्राह्मणोंको बुलाकर कहेंगे—'विप्रवरो! आपलोग वेद-शास्त्रके अनुसार कर्म करनेवाले तथा लोगोंके आचार-विचारको जाननेवाले हैं; अतः कृपा करके मुझे ऐसा कोई नियम बताइये, जिससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जाय'॥ ९-१०½ ॥

''राजाके ऐसा कहनेपर वे वेदोंके पारंगत विद्वान्—सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण उन्हें इस प्रकार सलाह देंगे—॥

'राजन्! विभाण्डकके पुत्र ऋष्यशृंग वेदोंके पारगामी विद्वान् हैं। भूपाल! आप सभी उपायोंसे उन्हें यहाँ ले आइये। बुलाकर उनका भलीभाँति सत्कार कीजिये। फिर एकाग्रचित्त हो वैदिक विधिके अनुसार उनके साथ अपनी कन्या शान्ताका विवाह कर दीजिये'॥ १२-१३॥

उनकी बात सुनकर राजा इस चिन्तामें पड़ जायँगे कि किस उपायसे उन शक्तिशाली महर्षिको यहाँ लाया

जा सकता है॥ १४॥

"फिर वे मनस्वी नरेश मन्त्रियोंके साथ निश्चय करके अपने पुरोहित और मन्त्रियोंको सत्कारपूर्वक वहाँ भेजेंगे॥ १५॥

"राजाकी बात सुनकर वे मन्त्री और पुरोहित मुँह लटकाकर दु:खी हो यों कहने लगेंगे कि 'हम महर्षिसे डरते हैं, इसलिये वहाँ नहीं जायँगे।' यों कहकर वे राजासे बड़ी अनुनय-विनय करेंगे॥ १६॥

'इसके बाद सोच-विचारकर वे राजाको योग्य उपाय बतायेंगे और कहेंगे कि 'हम उन ब्राह्मणकुमारको किसी उपायसे यहाँ ले आयेंगे। ऐसा करनेसे कोई दोष नहीं घटित होगा'॥ १७॥

"इस प्रकार वेश्याओंकी सहायतासे अंगराज मुनिकुमार ऋष्यशृंगको अपने यहाँ बुलायेंगे। उनके आते ही इन्द्रदेव उस राज्यमें वर्षा करेंगे। फिर राजा उन्हें अपनी पुत्री शान्ता समर्पित कर देंगे॥ १८॥

"इस तरह ऋष्यशृंग आपके जामाता हुए। वे ही आपके लिये पुत्रोंको सुलभ करानेवाले यज्ञकर्मका सम्पादन करेंगे। यह सनत्कुमारजीकी कही हुई बात मैंने आपसे निवेदन की है"॥ १९॥

यह सुनकर राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुमन्त्रसे कहा—'मुनिकुमार ऋष्यशृंगको वहाँ जिस प्रकार और जिस उपायसे बुलाया गया, वह स्पष्टरूपसे बताओ'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

अंगदेशमें ऋष्यशृंगके आने तथा शान्ताके साथ विवाह होनेके प्रसंगका कुछ विस्तारके साथ वर्णन

राजाकी आज्ञा पाकर उस समय सुमन्त्रने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"राजन्! रोमपादके मन्त्रियोंने ऋष्यशृंगको वहाँ जिस प्रकार और जिस उपायसे बुलाया था, वह सब मैं बता रहा हूँ। आप मन्त्रियोंसहित मेरी बात सुनिये॥ १॥

"उस समय अमात्योंसहित पुरोहितने राजा रोमपादसे कहा—'महाराज! हमलोगोंने एक उपाय सोचा है, जिसे काममें लानेसे किसी भी विघ्न-बाधाके आनेकी सम्भावना नहीं है॥ २॥

"ऋष्यशृंग मुनि सदा वनमें ही रहकर तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते हैं। वे स्त्रियोंको पहचानतेतक नहीं हैं और विषयोंके सुखसे भी सर्वथा अनभिज्ञ हैं॥

"हम मनुष्योंके चित्तको मथ डालनेवाले मनोवाञ्छित विषयोंका प्रलोभन देकर उन्हें अपने नगरमें ले आयेंगे; अत: इसके लिये शीघ्र प्रयत्न किया जाय॥ ४॥

"यदि सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित मनोहर रूपवाली वेश्याएँ वहाँ जायँ तो वे भाँति-भाँतिके उपायोंसे उन्हें लुभाकर इस नगरमें ले आयेंगी; अत: इन्हें सत्कारपूर्वक भेजना चाहिये'॥ ५॥

"यह सुनकर राजाने पुरोहितको उत्तर दिया, 'बहुत अच्छा, आपलोग ऐसा ही करें।' आज्ञा पाकर पुरोहित और मन्त्रियोंने उस समय वैसी ही व्यवस्था की॥ ६॥

"तब नगरकी मुख्य-मुख्य वेश्याएँ राजाका आदेश सुनकर उस महान् वनमें गयीं और मुनिके आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर ठहरकर उनके दर्शनका उद्योग करने लगीं॥ ७॥

"मुनिकुमार ऋष्यशृंग बड़े ही धीर स्वभावके थे। सदा आश्रममें ही रहा करते थे। उन्हें सर्वदा अपने पिताके पास रहनेमें ही अधिक सुख मिलता था। अत: वे कभी आश्रमके बाहर नहीं निकलते थे॥ ८॥

"उन तपस्वी ऋषिकुमारने जन्मसे लेकर उस समयतक पहले कभी न तो कोई स्त्री देखी थी और न पिताके सिवा दूसरे किसी पुरुषका ही दर्शन किया था। नगर या राष्ट्रके गाँवोंमें उत्पन्न हुए दूसरे-दूसरे प्राणियोंको भी वे नहीं देख पाये थे॥ ९॥

"तदनन्तर एक दिन विभाण्डककुमार ऋष्यशृंग अकस्मात् घूमते-फिरते उस स्थानपर चले आये, जहाँ वे वेश्याएँ ठहरी हुई थीं। वहाँ उन्होंने उन सुन्दरी वनिताओंको देखा॥ १०॥

"उन प्रमदाओंका वेष बड़ा ही सुन्दर और अद्भुत था। वे मीठे स्वरमें गा रही थीं। ऋषिकुमारको आया देख सभी उनके पास चली आयीं और इस प्रकार पूछने लगीं—॥ ११॥

"ब्रह्मन्! आप कौन हैं? क्या करते हैं? तथा इस निर्जन वनमें आश्रमसे इतनी दूर आकर अकेले क्यों

विचर रहे हैं? यह हमें बताइये। हमलोग इस बातको जानना चाहती हैं'॥ १२॥

''ऋष्यशृंगने वनमें कभी स्त्रियोंका रूप नहीं देखा था और वे स्त्रियाँ तो अत्यन्त कमनीय रूपसे सुशोभित थीं; अतः उन्हें देखकर उनके मनमें स्नेह उत्पन्न हो गया। इसलिये उन्होंने उनसे अपने पिताका परिचय देनेका विचार किया॥ १३॥

''वे बोले—'मेरे पिताका नाम विभाण्डक मुनि है। मैं उनका औरस पुत्र हूँ। मेरा ऋष्यशृंग नाम और तपस्या आदि कर्म इस भूमण्डलमें प्रसिद्ध है॥ १४॥

''यहाँ पास ही मेरा आश्रम है। आपलोग देखनेमें परम सुन्दर हैं। (अथवा आपका दर्शन मेरे लिये शुभकारक है।) आप मेरे आश्रमपर चलें। वहाँ मैं आप सब लोगोंकी विधिपूर्वक पूजा करूँगा'॥ १५॥

''ऋषिकुमारकी यह बात सुनकर सब उनसे सहमत हो गयीं। फिर वे सब सुन्दरी स्त्रियाँ उनका आश्रम देखनेके लिये वहाँ गयीं॥ १६॥

''वहाँ जानेपर ऋषिकुमारने 'यह अर्घ्य है, यह पाद्य है तथा यह भोजनके लिये फल-मूल प्रस्तुत है' ऐसा कहते हुए उन सबका विधिवत् पूजन किया॥ १७॥

''ऋषिकी पूजा स्वीकार करके वे सभी वहाँसे चली जानेको उत्सुक हुईं। उन्हें विभाण्डक मुनिका भय लग रहा था, इसलिये उन्होंने शीघ्र ही वहाँसे चली जानेका विचार किया॥ १८॥

''वे बोलीं—'ब्रह्मन्! हमारे पास भी ये उत्तम-उत्तम फल हैं। विप्रवर! इन्हें ग्रहण कीजिये। आपका कल्याण हो। इन फलोंको शीघ्र ही खा लीजिये, विलम्ब न कीजिये'॥ १९॥

''ऐसा कहकर उन सबने हर्षमें भरकर ऋषिका आलिंगन किया और उन्हें खानेयोग्य भाँति-भाँतिके उत्तम पदार्थ तथा बहुत-सी मिठाइयाँ दीं॥ २०॥

''उनका रसास्वादन करके उन तेजस्वी ऋषिने समझा कि ये भी फल हैं; क्योंकि उस दिनके पहले उन्होंने कभी वैसे पदार्थ नहीं खाये थे। भला, सदा वनमें रहनेवालोंके लिये वैसी वस्तुओंके स्वाद लेनेका अवसर ही कहाँ है॥ २१॥

''तत्पश्चात् उनके पिता विभाण्डक मुनिके डरसे डरी हुई वे स्त्रियाँ व्रत और अनुष्ठानकी बात बता उन ब्राह्मणकुमारसे पूछकर उसी बहाने वहाँसे चली गयी॥ २२॥

''उन सबके चले जानेपर काश्यपकुमार ब्राह्मण ऋष्यशृंग मन-ही-मन व्याकुल हो उठे और बड़े दुःखसे इधर-उधर टहलने लगे॥ २३॥

''तदनन्तर दूसरे दिन फिर मनसे उन्हींका बारम्बार चिन्तन करते हुए शक्तिशाली विभाण्डककुमार श्रीमान् ऋष्यशृंग उसी स्थानपर गये, जहाँ पहले दिन उन्होंने वस्त्र और आभूषणोंसे सजी हुई उन मनोहर रूपवाली वेश्याओंको देखा था॥ २४½॥

''ब्राह्मण ऋष्यशृंगको आते देख तुरंत ही उन वेश्याओंका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सब-की-सब उनके पास जाकर उनसे इस प्रकार कहने लगीं—'सौम्य! आओ, आज हमारे आश्रमपर चलो॥ २५-२६॥

यद्यपि यहाँ नाना प्रकारके फल-मूल बहुत मिलते हैं तथापि वहाँ भी निश्चय ही इन सबका विशेषरूपसे प्रबन्ध हो सकता है'॥ २७॥

''उन सबके मनोहर वचन सुनकर ऋष्यशृंग उनके साथ जानेको तैयार हो गये और वे स्त्रियाँ उन्हें अंगदेशमें ले गयीं॥ २८॥

''उन महात्मा ब्राह्मणके अंगदेशमें आते ही इन्द्रने सम्पूर्ण जगत्‌को प्रसन्न करते हुए सहसा पानी बरसाना आरम्भ कर दिया॥ २९॥

''वर्षासे ही राजाको अनुमान हो गया कि वे तपस्वी ब्राह्मणकुमार आ गये। फिर बड़ी विनयके साथ राजाने उनकी अगवानी की और पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ ३०॥

''फिर एकाग्रचित्त होकर उन्होंने ऋषिको अर्घ्य निवेदन किया तथा उन विप्रशिरोमणिसे वरदान माँगा, 'भगवन्! आप और आपके पिताजीका कृपाप्रसाद मुझे प्राप्त हो।' ऐसा उन्होंने इसलिये किया कि कहीं कपटपूर्वक यहाँतक लाये जानेका रहस्य जान लेनेपर विप्रवर ऋष्यशृंग अथवा विभाण्डक मुनिके मनमें मेरे प्रति क्रोध न हो॥ ३१॥

''तत्पश्चात् ऋष्यशृंगको अन्तःपुरमें ले जाकर उन्होंने शान्तचित्तसे अपनी कन्या शान्ताका उनके साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। ऐसा करके राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३२॥

''इस प्रकार महातेजस्वी ऋष्यशृंग राजासे पूजित हो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोग प्राप्त कर अपनी धर्मपत्नी शान्ताके साथ वहाँ रहने लगे'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

सुमन्त्रके कहनेसे राजा दशरथका सपरिवार अंगराजके यहाँ जाकर वहाँसे शान्ता और ऋष्यशृंगको अपने घर ले आना

तदनन्तर सुमन्त्रने फिर कहा—''राजेन्द्र! आप पुनः मुझसे अपने हितकी वह बात सुनिये, जिसे देवताओंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् सनत्कुमारजीने ऋषियोंको सुनाया था॥

''उन्होंने कहा था—इक्ष्वाकुवंशमें दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक परम धार्मिक सत्यप्रतिज्ञ राजा होंगे॥ २॥

''उनकी अंगराजके साथ मित्रता होगी। दशरथके एक परम सौभाग्यशालिनी कन्या होगी, जिसका नाम होगा 'शान्ता'। अंगदेशके राजकुमारका नाम होगा 'रोमपाद'। महायशस्वी राजा दशरथ उनके पास जायँगे और कहेंगे—'धर्मात्मन्! मैं संतानहीन हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो शान्ताके पति ऋष्यशृंग मुनि चलकर मेरा यज्ञ करा दें। इससे मुझे पुत्रकी प्राप्ति होगी और मेरे वंशकी रक्षा हो जायगी'॥ ३—५॥

''राजाकी यह बात सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके मनस्वी राजा रोमपाद शान्ताके पुत्रवान् पतिको उनके साथ भेज देंगे॥ ६॥

''ब्राह्मण ऋष्यशृंगको पाकर राजा दशरथकी सारी चिन्ता दूर हो जायगी और वे प्रसन्नचित्त होकर उस यज्ञका अनुष्ठान करेंगे॥ ७॥

''यशकी इच्छा रखनेवाले धर्मज्ञ राजा दशरथ हाथ जोड़कर द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृंगका यज्ञ, पुत्र और स्वर्गके लिये वरण करेंगे तथा वे प्रजापालक नरेश उन श्रेष्ठ ब्रह्मर्षिसे अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेंगे॥ ८-९॥

''राजाके चार पुत्र होंगे, जो अप्रमेय पराक्रमी, वंशकी मर्यादा बढ़ानेवाले और सर्वत्र विख्यात होंगे॥

''महाराज! पहले सत्ययुगमें शक्तिशाली देवप्रवर भगवान् सनत्कुमारजीने ऋषियोंके समक्ष ऐसी कथा कही थी॥ ११॥

''पुरुषसिंह महाराज! इसलिये आप स्वयं ही सेना और सवारियोंके साथ अंगदेशमें जाकर मुनिकुमार ऋष्यशृंगको सत्कारपूर्वक यहाँ ले आइये''॥ १२॥

सुमन्त्रका वचन सुनकर राजा दशरथको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुनिवर वसिष्ठजीको भी सुमन्त्रकी बातें सुनायीं और उनकी आज्ञा लेकर रनिवासकी रानियों तथा मन्त्रियोंके साथ अंगदेशके लिये प्रस्थान किया, जहाँ विप्रवर ऋष्यशृंग निवास करते थे॥ १३½॥

मार्गमें अनेकानेक वनों और नदियोंको पार करके वे धीरे-धीरे उस देशमें जा पहुँचे, जहाँ मुनिवर ऋष्यशृंग विराजमान थे॥ १४½॥

वहाँ पहुँचनेपर उन्हें द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृंग रोमपादके पास ही बैठे दिखायी दिये। वे ऋषिकुमार प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे॥ १५½॥

तदनन्तर राजा रोमपादने मित्रताके नाते अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे महाराज दशरथका शास्त्रोक्त विधिके अनुसार विशेषरूपसे पूजन किया और बुद्धिमान् ऋषिकुमार ऋष्यशृंगको राजा दशरथके साथ अपनी मित्रताकी बात बतायी। उसपर उन्होंने भी राजाका सम्मान किया॥

इस प्रकार भलीभाँति आदर-सत्कार पाकर नरश्रेष्ठ राजा दशरथ रोमपादके साथ वहाँ सात-आठ दिनोंतक रहे। इसके बाद वे अंगराजसे बोले—'प्रजापालक नरेश! तुम्हारी पुत्री शान्ता अपने पतिके साथ मेरे नगरमें पदार्पण करे; क्योंकि वहाँ एक महान् आवश्यक कार्य उपस्थित हुआ है'॥ १८-१९½॥

राजा रोमपादने 'बहुत अच्छा' कहकर उन बुद्धिमान् महर्षिका जाना स्वीकार कर लिया और ऋष्यशृंगसे कहा—'विप्रवर! आप शान्ताके साथ महाराज दशरथके यहाँ जाइये।' राजाकी आज्ञा पाकर उन ऋषिपुत्रने 'तथास्तु' कहकर राजा दशरथको अपने चलनेकी स्वीकृति दे दी॥ २०-२१॥

राजा रोमपादकी अनुमति ले ऋष्यशृंगने पत्नीके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। उस समय शक्तिशाली राजा रोमपाद और दशरथने एक-दूसरेको हाथ जोड़कर स्नेहपूर्वक छातीसे लगाया तथा अभिनन्दन किया। फिर मित्रसे विदा ले रघुकुलनन्दन दशरथ वहाँसे प्रस्थित हुए॥ २२-२३॥

उन्होंने पुरवासियोंके पास अपने शीघ्रगामी दूत भेजे और कहलाया कि 'समस्त नगरको शीघ्र ही सुसज्जित किया जाय। सर्वत्र धूपकी सुगन्ध फैले। नगरकी सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर पानीका छिड़काव कर दिया जाय तथा सारा नगर ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हो'॥ २४½॥

राजाका आगमन सुनकर पुरवासी बड़े प्रसन्न हुए। महाराजने उनके लिये जो संदेश भेजा था, उसका उन्होंने उस समय पूर्णरूपसे पालन किया॥ २५½॥

तदनन्तर राजा दशरथने शङ्ख और दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ विप्रवर ऋष्यशृंगको आगे करके अपने सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

उन द्विजकुमारका दर्शन करके सभी नगरनिवासी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्द्रके समान पराक्रमी नरेन्द्र दशरथके साथ पुरीमें प्रवेश करते हुए ऋष्यशृंगका उसी प्रकार सत्कार किया, जैसे देवताओंने स्वर्गमें सहस्राक्ष इन्द्रके साथ प्रवेश करते हुए कश्यपनन्दन वामनजीका समादर किया था॥ २७-२८॥

ऋषिको अन्तःपुरमें ले जाकर राजाने शास्त्रविधिके अनुसार उनका पूजन किया और उनके निकट आ जानेसे अपनेको कृतकृत्य माना॥ २९॥

विशाललोचना शान्ताको इस प्रकार अपने पतिके साथ उपस्थित देख अन्तःपुरकी सभी रानियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे आनन्दमग्न हो गयीं॥ ३०॥

शान्ता भी उन रानियोंसे तथा विशेषतः महाराज दशरथके द्वारा आदर-सत्कार पाकर वहाँ कुछ कालतक अपने पति विप्रवर ऋष्यशृंगके साथ बड़े सुखसे रही॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ सर्ग

राजाका ऋषियोंसे यज्ञ करानेके लिये प्रस्ताव, ऋषियोंका राजाको और राजाका मन्त्रियोंको यज्ञकी आवश्यक तैयारी करनेके लिये आदेश देना

तदनन्तर बहुत समय बीत जानेके पश्चात् कोई परम मनोहर—दोषरहित समय प्राप्त हुआ। उस समय वसन्त ऋतुका आरम्भ हुआ था। राजा दशरथने उसी शुभ समयमें यज्ञ आरम्भ करनेका विचार किया॥ १॥

तत्पश्चात् उन्होंने देवोपम कान्तिवाले विप्रवर ऋष्यशृंगको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पुत्र-प्राप्तिके निमित्त यज्ञ करानेके उद्देश्यसे उनका वरण किया॥ २॥

ऋष्यशृंगने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उन पृथ्वीपति नरेशसे कहा—'राजन्! यज्ञकी सामग्री एकत्र कराइये। भूमण्डलमें भ्रमणके लिये आपका यज्ञसम्बन्धी अश्व छोड़ा जाय और सरयूके उत्तर तटपर यज्ञभूमिका निर्माण किया जाय'॥ ३ $\frac{1}{2}$ ॥

तब राजाने कहा—'सुमन्त्र! तुम शीघ्र ही वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मणों तथा ब्रह्मवादी ऋत्विजोंको बुला ले आओ। सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, पुरोहित वसिष्ठ तथा अन्य जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उन सबको बुलाओ'॥

तब शीघ्रगामी सुमन्त्र तुरंत जाकर वेदविद्याके पारगामी उन समस्त ब्राह्मणोंको बुला लाये॥ ६ $\frac{1}{2}$ ॥

धर्मात्मा राजा दशरथने उन सबका पूजन किया और उनसे धर्म तथा अर्थसे युक्त मधुर वचन कहा॥ ७ $\frac{1}{2}$ ॥

'महर्षियो! मैं पुत्रके लिये निरन्तर संतप्त रहता हूँ। उसके बिना इस राज्य आदिसे भी मुझे सुख नहीं मिलता है। अतः मैंने यह विचार किया है कि पुत्रके लिये अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करूँ॥ ८ $\frac{1}{2}$ ॥

'इसी संकल्पके अनुसार मैं अश्वमेध यज्ञका आरम्भ करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि ऋषिपुत्र ऋष्यशृंगके प्रभावसे मैं अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लूँगा'॥ ९ $\frac{1}{2}$ ॥

राजा दशरथके मुखसे निकले हुए इस वचनकी वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंने 'साधु-साधु' कहकर बड़ी सराहना की॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

इसके बाद ऋष्यशृंग आदि सब महर्षियोंने उस समय राजा दशरथसे पुनः यह बात कही—'महाराज! यज्ञसामग्रीका संग्रह किया जाय, यज्ञसम्बन्धी अश्व छोड़ा जाय तथा सरयूके उत्तर तटपर यज्ञभूमिका निर्माण किया जाय॥ ११-१२॥

'तुम यज्ञद्वारा सर्वथा चार अमित पराक्रमी पुत्र प्राप्त करोगे; क्योंकि पुत्रके लिये तुम्हारे मनमें ऐसे धार्मिक विचारका उदय हुआ है'॥ १३॥

ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े हर्षके साथ अपने मन्त्रियोंसे यह शुभ अक्षरोंवाली बात कही॥ १४॥

'गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार तुमलोग शीघ्र ही मेरे लिये यज्ञकी सामग्री जुटा दो। शक्तिशाली वीरोंके संरक्षणमें यज्ञिय अश्व छोड़ा जाय और उसके साथ प्रधान ऋत्विज् भी रहें॥ १५॥

'सरयूके उत्तर तटपर यज्ञभूमिका निर्माण हो, शास्त्रोक्त विधिके अनुसार क्रमशः शान्तिकर्म—पुण्याहवाचन आदिका विस्तारपूर्वक अनुष्ठान किया जाय, जिससे

विघ्नोंका निवारण हो॥ १६॥

'यदि इस श्रेष्ठ यज्ञमें कष्टप्रद अपराध बन जानेका भय न हो तो सभी राजा इसका सम्पादन कर सकते हैं॥ १७॥

'परंतु ऐसा होना कठिन है; क्योंकि ये विद्वान् ब्रह्मराक्षस यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये छिद्र ढूँढ़ा करते हैं। विधिहीन यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला यजमान तत्काल नष्ट हो जाता है॥ १८॥

'अत: मेरा यह यज्ञ जिस तरह विधिपूर्वक सम्पूर्ण हो सके वैसा उपाय किया जाय। तुम सब लोग ऐसे साधन प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो'॥ १९॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर सभी मन्त्रियोंने राजराजेश्वर दशरथके उस कथनका आदर किया और उनकी आज्ञाके अनुसार सारी व्यवस्था की॥ २०॥

तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंने भी धर्मज्ञ नृपश्रेष्ठ दशरथकी प्रशंसा की और उनकी आज्ञा पाकर सब जैसे आये थे, वैसे ही फिर चले गये॥ २१॥

उन ब्राह्मणोंके चले जानेपर मन्त्रियोंको भी विदा करके वे महाबुद्धिमान् नरेश अपने महलमें गये॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

राजाका वसिष्ठजीसे यज्ञकी तैयारीके लिये अनुरोध, वसिष्ठजीद्वारा इसके लिये सेवकोंकी नियुक्ति और सुमन्त्रको राजाओंको बुलानेके लिये आदेश, समागत राजाओंका सत्कार तथा पत्नियोंसहित राजा दशरथका यज्ञकी दीक्षा लेना

वर्तमान वसन्त ऋतुके बीतनेपर जब पुन: दूसरा वसन्त आया, तबतक एक वर्षका समय पूरा हो गया। उस समय शक्तिशाली राजा दशरथ संतानके लिये अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा लेनेके निमित्त वसिष्ठजीके समीप गये॥

वसिष्ठजीको प्रणाम करके राजाने न्यायत: उनका पूजन किया और पुत्र-प्राप्तिका उद्देश्य लेकर उन द्विजश्रेष्ठ मुनिसे यह विनययुक्त बात कही॥ २॥

'ब्रह्मन्! मुनिप्रवर! आप शास्त्रविधिके अनुसार मेरा यज्ञ करावें और यज्ञके अंगभूत अश्व-संचारण आदिमें ब्रह्मराक्षस आदि जिस तरह विघ्न न डाल सकें, वैसा उपाय कीजिये॥ ३॥

'आपका मुझपर विशेष स्नेह है, आप मेरे सुहृद्—अकारण हितैषी, गुरु और परम महान् हैं। यह जो यज्ञका भार उपस्थित हुआ है, इसको आप ही वहन कर सकते हैं'॥ ४॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर विप्रवर वसिष्ठ मुनि राजासे इस प्रकार बोले—'नरेश्वर! तुमने जिसके लिये प्रार्थना की है, वह सब मैं करूँगा'॥ ५॥

तदनन्तर वसिष्ठजीने यज्ञसम्बन्धी कर्मोंमें निपुण तथा यज्ञविषयक शिल्पकर्ममें कुशल, परम धर्मात्मा, बूढ़े ब्राह्मणों, यज्ञकर्म समाप्त होनेतक उसमें सेवा करनेवाले सेवकों, शिल्पकारों, बढ़इयों, भूमि खोदनेवालों, ज्योतिषियों, कारीगरों, नटों, नर्तकों, विशुद्ध शास्त्रवेत्ताओं तथा बहुश्रुत पुरुषोंको बुलाकर उनसे कहा—'तुमलोग महाराजकी आज्ञासे यज्ञकर्मके लिये आवश्यक प्रबन्ध करो॥

'शीघ्र ही कई हजार ईंटें लायी जायँ। राजाओंके ठहरनेके लिये उनके योग्य अन्न-पान आदि अनेक उपकरणोंसे युक्त बहुत-से महल बनाये जायँ॥ ९॥

'ब्राह्मणोंके रहनेके लिये भी सैकड़ों सुन्दर घर बनाये जाने चाहिये। वे सभी गृह बहुत-से भोजनीय अन्न-पान आदि उपकरणोंसे युक्त तथा आँधी-पानी आदिके निवारणमें समर्थ हों॥ १०॥

'इसी तरह पुरवासियोंके लिये भी विस्तृत मकान बनने चाहिये। दूरसे आये हुए भूपालोंके लिये पृथक्-पृथक् महल बनाये जायँ॥ ११॥

'घोड़े और हाथियोंके लिये भी शालाएँ बनायी जायँ। साधारण लोगोंके सोनेके लिये भी घरोंकी व्यवस्था हो। विदेशी सैनिकोंके लिये भी बड़ी-बड़ी छावनियाँ बननी चाहिये॥ १२॥

'जो घर बनाये जायँ, उनमें खाने-पीनेकी प्रचुर सामग्री संचित रहे। उनमें सभी मनोवांछित पदार्थ सुलभ हों तथा नगरवासियोंको भी बहुत सुन्दर अन्न भोजनके लिये देना चाहिये। वह भी विधिवत् सत्कारपूर्वक दिया जाय, अवहेलना करके नहीं॥ १३½॥

'ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे सभी वर्णके लोग भलीभाँति सत्कृत हो सम्मान प्राप्त करें। काम और क्रोधके वशीभूत होकर भी किसीका अनादर नहीं करना चाहिये॥

'जो शिल्पी मनुष्य यज्ञकर्मकी आवश्यक तैयारीमें लगे हों, उनका तो बड़े-छोटेका खयाल रखकर विशेषरूपसे समादर करना चाहिये॥ १५½॥

'जो सेवक या कारीगर धन और भोजन आदिके द्वारा सम्मानित किये जाते हैं, वे सब परिश्रमपूर्वक कार्य करते हैं। उनका किया हुआ सारा कार्य सुन्दर ढंगसे सम्पन्न होता है। उनका कोई काम बिगड़ने नहीं पाता; अतः तुम सब लोग प्रसन्नचित्त होकर ऐसा ही करो'॥

तब वे सब लोग वसिष्ठजीसे मिलकर बोले—'आपको जैसा अभीष्ट है, उसके अनुसार ही करनेके लिये अच्छी व्यवस्था की जायगी। कोई भी काम बिगड़ने नहीं पायेगा। आपने जैसा कहा है, हमलोग वैसा ही करेंगे। उसमें कोई त्रुटि नहीं आने देंगे'॥ १८$\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर वसिष्ठजीने सुमन्त्रको बुलाकर कहा—'इस पृथ्वीपर जो-जो धार्मिक राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सहस्त्रों शूद्र हैं, उन सबको इस यज्ञमें आनेके लिये निमन्त्रित करो॥ २०॥

'सब देशोंके अच्छे लोगोंको सत्कारपूर्वक यहाँ ले आओ। मिथिलाके स्वामी शूरवीर महाभाग जनक सत्यवादी नरेश हैं। उनको अपना पुराना सम्बन्धी जानकर तुम स्वयं ही जाकर उन्हें बड़े आदर-सत्कारके साथ यहाँ ले आओ; इसीलिये पहले तुम्हें यह बात बता देता हूँ॥ २१-२२॥

'इसी प्रकार काशीके राजा अपने स्नेही मित्र हैं और सदा प्रिय वचन बोलनेवाले हैं। वे सदाचारी तथा देवताओंके तुल्य तेजस्वी हैं; अतः उन्हें भी स्वयं ही जाकर ले आओ॥ २३॥

'केकयदेशके बूढ़े राजा बड़े धर्मात्मा हैं, वे राजसिंह महाराज दशरथके श्वशुर हैं; अतः उन्हें भी पुत्रसहित यहाँ ले आओ॥ २४॥

'अंगदेशके स्वामी महाधनुर्धर राजा रोमपाद हमारे महाराजके मित्र हैं, अतः उन्हें पुत्रसहित यहाँ सत्कारपूर्वक ले आओ॥ २५॥

'कोशलराज भानुमान्‌को भी सत्कारपूर्वक ले आओ। मगधदेशके राजा प्राप्तिज्ञको, जो शूरवीर, सर्वशास्त्रविशारद, परम उदार तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, स्वयं जाकर सत्कारपूर्वक बुला ले आओ॥ २६$\frac{१}{२}$ ॥

'महाराजकी आज्ञा लेकर तुम पूर्वदेशके श्रेष्ठ नरेशोंको तथा सिन्धु-सौवीर एवं सुराष्ट्र देशके भूपालोंको यहाँ आनेके लिये निमन्त्रण दो॥ २७॥

'दक्षिण भारतके समस्त नरेशोंको भी आमन्त्रित करो। इस भूतलपर और भी जो-जो नरेश महाराजके प्रति स्नेह रखते हैं, उन सबको सेवकों और सगे-सम्बन्धियों-सहित यथासम्भव शीघ्र बुला लो। महाराजकी आज्ञासे बड़भागी दूतोंद्वारा इन सबके पास बुलावा भेज दो'॥ २८-२९॥

वसिष्ठका यह वचन सुनकर सुमन्त्रने तुरंत ही अच्छे पुरुषोंको राजाओंकी बुलाहटके लिये जानेका आदेश दे दिया॥ ३०॥

परम बुद्धिमान् धर्मात्मा सुमन्त्र वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे खास-खास राजाओंको बुलानेके लिये स्वयं ही गये॥ ३१॥

यज्ञकर्मकी व्यवस्थाके लिये जो सेवक नियुक्त किये गये थे, उन सबने आकर उस समयतक यज्ञसम्बन्धी जो-जो कार्य सम्पन्न हो गया था, उस सबकी सूचना महर्षि वसिष्ठको दी॥ ३२॥

यह सुनकर वे द्विजश्रेष्ठ मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन सबसे बोले—'भद्र पुरुषो! किसीको जो कुछ देना हो; उसे अवहेलना या अनादरपूर्वक नहीं देना चाहिये; क्योंकि अनादरपूर्वक दिया हुआ दान दाताको नष्ट कर देता है—इसमें संशय नहीं है'॥ ३३$\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद राजा लोग महाराज दशरथके लिये बहुत-से रत्नोंकी भेंट लेकर अयोध्यामें आये॥ ३४$\frac{१}{२}$ ॥

इससे वसिष्ठजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने राजासे कहा—'पुरुषसिंह! तुम्हारी आज्ञासे राजालोग यहाँ आ गये। नृपश्रेष्ठ! मैंने भी यथायोग्य उन सबका सत्कार किया है॥ ३५-३६॥

'हमारे कार्यकर्ताओंने पूर्णतः सावधान रहकर यज्ञके लिये सारी तैयारी की है। अब तुम भी यज्ञ करनेके लिये यज्ञमण्डपके समीप चलो॥ ३७॥

'राजेन्द्र! यज्ञमण्डपमें सब ओर सभी वाञ्छनीय वस्तुएँ एकत्र कर दी गयी हैं। आप स्वयं चलकर देखें। यह मण्डप इतना शीघ्र तैयार किया गया है, मानो मनके संकल्पसे ही बन गया हो'॥ ३८॥

मुनिवर वसिष्ठ तथा ऋष्यशृंग दोनोंके आदेशसे शुभ नक्षत्रवाले दिनको राजा दशरथ यज्ञके लिये राजभवनसे निकले॥ ३९॥

तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि सभी श्रेष्ठ द्विजोंने यज्ञमण्डपमें जाकर ऋष्यशृंगको आगे करके शास्त्रोक्त विधिके अनुसार यज्ञकर्मका आरम्भ किया। पत्नियोंसहित श्रीमान् अवधनरेशने यज्ञकी दीक्षा ली॥ ४०-४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

महाराज दशरथके द्वारा अश्वमेध यज्ञका सांगोपांग अनुष्ठान

इधर वर्ष पूरा होनेपर यज्ञसम्बन्धी अश्व भूमण्डलमं भ्रमण करके लौट अया। फिर सरयू नदीके उत्तर तटपर राजाका यज्ञ आरम्भ हुआ॥ १॥

महामनस्वी राजा दशरथके उस अश्वमेध नामक महायज्ञमें ऋष्यशृंगको आगे करके श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञसम्बन्धी कर्म करने लगे॥ २॥

यज्ञ करानेवाले सभी ब्राह्मण वेदोंके पारंगत विद्वान् थे; अतः वे न्याय तथा विधिके अनुसार सब कर्मोंका उचित रीतिसे सम्पादन करते थे और शास्त्रके अनुसार किस क्रमसे किस समय कौन-सी क्रिया करनी चाहिये, इसको स्मरण रखते हुए प्रत्येक कर्ममें प्रवृत्त होते थे॥ ३॥

ब्राह्मणोंने प्रवर्ग्य (अश्वमेधके अंगभूत कर्मविशेष) का शास्त्र (विधि, मीमांसा और कल्पसूत्र) के अनुसार सम्पादन करके उपसद नामक इष्टिविशेषका भी शास्त्रके अनुसार ही अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् शास्त्रीय उपदेशसे अधिक जो अतिदेशतः प्राप्त कर्म है, उस सबका भी विधिवत् सम्पादन किया॥ ४॥

तदनन्तर तत्तत् कर्मोंके अंगभूत देवताओंका पूजन करके हर्षमें भरे हुए उन सभी मुनिवरोंने विधिपूर्वक प्रातःसवन आदि (अर्थात् प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन तथा तृतीय सवन) कर्म किये॥ ५॥

इन्द्रदेवताको विधिपूर्वक हविष्यका भाग अर्पित किया गया। पापनिवर्तक राजा सोम (सोमलता)* का रस निकाला गया। फिर क्रमशः माध्यन्दिनसवनका कार्य प्रारम्भ हुआ॥ ६॥

तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने शास्त्रसे देख-भालकर मनस्वी राजा दशरथके तृतीय सवनकर्मका भी विधिवत् सम्पादन किया॥ ७॥

ऋष्यशृंग आदि महर्षियोंने वहाँ अभ्यासकालमें सीखे गये अक्षरोंसे युक्त—स्वर और वर्णसे सम्पन्न मन्त्रोंद्वारा इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंका आवाहन किया॥ ८॥

मधुर एवं मनोरम सामगानके लयमें गाये हुए आह्वान-मन्त्रोंद्वारा देवताओंका आवाहन करके होताओंने उन्हें उनके योग्य हविष्यके भाग समर्पित किये॥ ९॥

उस यज्ञमें कोई अयोग्य अथवा विपरीत आहुति नहीं पड़ी। कहीं कोई भूल नहीं हुई—अनजानमें भी कोई कर्म छूटने नहीं पाया; क्योंकि वहाँ सारा कर्म मन्त्रोच्चारण-पूर्वक सम्पन्न होता दिखायी देता था। महर्षियोंने सब कर्म क्षेमयुक्त एवं निर्विघ्न परिपूर्ण किये॥ १०॥

यज्ञके दिनोंमें कोई भी ऋत्विज् थका-माँदा या भूखा-प्यासा नहीं दिखायी देता था। उसमें कोई भी ब्राह्मण ऐसा नहीं था, जो विद्वान् न हो अथवा जिसके सौसे कम शिष्य या सेवक रहे हों॥ ११॥

उस यज्ञमें प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन करते थे (क्षत्रिय और वैश्य भी भोजन पाते थे) तथा शूद्रोंको भी भोजन उपलब्ध होता था। तापस और श्रमण भी भोजन करते थे॥ १२॥

बूढ़े, रोगी, स्त्रियाँ तथा बच्चे भी यथेष्ट भोजन पाते थे। भोजन इतना स्वादिष्ट होता था कि निरन्तर खाते रहनेपर भी किसीका मन नहीं भरता था॥ १३॥

'अन्न दो, नाना प्रकारके वस्त्र दो' अधिकारियोंकी ऐसी आज्ञा पाकर कार्यकर्ता लोग बारम्बार वैसा ही करते थे॥ १४॥

वहाँ प्रतिदिन विधिवत् पके हुए अन्नके बहुत-से पर्वतों-जैसे ढेर दिखायी देते थे॥ १५॥

महामनस्वी राजा दशरथके उस यज्ञमें नाना देशोंसे आये हुए स्त्री-पुरुष अन्न-पानद्वारा भलीभाँति तृप्त किये गये थे॥ १६॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण 'भोजन विधिवत् बनाया गया है। बहुत स्वादिष्ट है'—ऐसा कहकर अन्नकी प्रशंसा करते थे। भोजन करके उठे हुए लोगोंके मुखसे राजा सदा यही सुनते थे कि 'हमलोग खूब तृप्त हुए। आपका कल्याण हो'॥ १७॥

वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत हुए पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन परोसते थे और उन लोगोंकी जो दूसरे लोग सहायता करते थे, उन्होंने भी विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण कर रखे थे॥ १८॥

एक सवन समाप्त करके दूसरे सवनके आरम्भ होनेसे पूर्व जो अवकाश मिलता था, उसमें उत्तम वक्ता धीर ब्राह्मण एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे बहुतेरे युक्तिवाद उपस्थित करते हुए शास्त्रार्थ करते थे॥ १९॥

* इस विषयमें सूत्रकारका वचन है—सोमं राजानं दृषदि निधाय······दृषद्भिरभिहन्यात् अर्थात् 'राजा सोम (सोमलता) को पत्थरपर रखकर·······पत्थरसे कूँचे।

उस यज्ञमें नियुक्त हुए कर्मकुशल ब्राह्मण प्रतिदिन शास्त्रके अनुसार सब कार्योंका सम्पादन करते थे॥ २०॥

राजाके उस यज्ञमें कोई भी सदस्य ऐसा नहीं था, जो व्याकरण आदि छहों अंगोंका ज्ञाता न हो, जिसने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन न किया हो तथा जो बहुश्रुत न हो। वहाँ कोई ऐसा द्विज नहीं था, जो वाद-विवादमें कुशल न हो॥ २१॥

जब यूप खड़ा करनेका समय आया, तब बेलकी लकड़ीके छः यूप गाड़े गये। उतने ही खैरके यूप खड़े किये गये तथा पलाशके भी उतने ही यूप थे, जो बिल्वनिर्मित यूपोंके साथ खड़े किये गये थे॥ २२॥

बहेड़ेके वृक्षका एक यूप अश्वमेध यज्ञके लिये विहित है। देवदारुके बने हुए यूपका भी विधान है; परंतु उसकी संख्या न एक है न छः। देवदारुके दो ही यूप विहित हैं। दोनों बाँहें फैला देनेपर जितनी दूरी होती है, उतनी ही दूरपर वे दोनों स्थापित किये गये थे॥ २३॥

यज्ञकुशल शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंने ही इन सब यूपोंका निर्माण कराया था। उस यज्ञकी शोभा बढ़ानेके लिये उन सबमें सोना जड़ा गया था॥ २४॥

पूर्वोक्त इक्कीस यूप इक्कीस-इक्कीस अरत्नि[1] (पाँच सौ चार अङ्गुल) ऊँचे बनाये गये थे। उन सबको पृथक्-पृथक् इक्कीस कपड़ोंसे अलंकृत किया गया था॥ २५॥

कारीगरोंद्वारा अच्छी तरह बनाये गये वे सभी सुदृढ़ यूप विधिपूर्वक स्थापित किये गये थे। वे सब-के-सब आठ कोणोंसे सुशोभित थे। उनकी आकृति सुन्दर एवं चिकनी थी॥ २६॥

उन्हें वस्त्रोंसे ढक दिया गया था और पुष्प-चन्दनसे उनकी पूजा की गयी थी। जैसे आकाशमें तेजस्वी सप्तर्षियोंकी शोभा होती है, उसी प्रकार यज्ञमण्डपमें वे दीप्तिमान् यूप सुशोभित होते थे॥ २७॥

सूत्रग्रन्थोंमें बताये अनुसार ठीक मापसे ईंटें तैयार करायी गयी थीं। उन ईंटोंके द्वारा यज्ञसम्बन्धी शिल्पिकर्ममें कुशल ब्राह्मणोंने अग्निका चयन किया था॥ २८॥

राजसिंह महाराज दशरथके यज्ञमें चयनद्वारा सम्पादित अग्निकी कर्मकाण्डकुशल ब्राह्मणोंद्वारा शास्त्रविधिके अनुसार स्थापना की गयी। उस अग्निकी आकृति दोनों पंख और पुच्छ फैलाकर नीचे देखते हुए पूर्वाभिमुख खड़े हुए गरुड़की-सी प्रतीत होती थी। सोनेकी ईंटोंसे पंखका निर्माण होनेसे उस गरुड़के पंख सुवर्णमय दिखायी देते थे। प्रकृत-अवस्थामें चित्य-अग्निके छः प्रस्तार होते हैं; किंतु अश्वमेध यज्ञमें उसका प्रस्तार तीनगुना हो जाता है। इसलिये वह गरुड़ाकृति अग्नि अठारह प्रस्तारोंसे युक्त थी॥ २९॥

वहाँ पूर्वोक्त यूपोंमें शास्त्रविहित पशु, सर्प और पक्षी विभिन्न देवताओंके उद्देश्यसे बाँधे गये थे॥ ३०॥

शामित्र कर्ममें यज्ञिय अश्व तथा कूर्म आदि जलचर जन्तु जो वहाँ लाये गये थे, ऋषियोंने उन सबको शास्त्रविधिके अनुसार पूर्वोक्त यूपोंमें बाँध दिया॥ ३१॥

उस समय उन यूपोंमें तीन सौ पशु बँधे हुए थे तथा राजा दशरथका वह उत्तम अश्वरत्न भी वहीं बाँधा गया था॥ ३२॥

रानी कौसल्याने वहाँ प्रोक्षण आदिके द्वारा सब ओरसे उस अश्वका संस्कार करके बड़ी प्रसन्नताके साथ तीन तलवारोंसे उसका स्पर्श किया॥ ३३॥

तदनन्तर कौसल्या देवीने सुस्थिर चित्तसे धर्मपालनकी इच्छा रखकर उस अश्वके निकट एक रात निवास किया॥ ३४॥

तत्पश्चात् होता, अध्वर्यु और उद्‌गाताने राजाकी (क्षत्रियजातीय) महिषी 'कौसल्या', (वैश्यजातीय स्त्री) 'वावाता' तथा (शूद्रजातीय स्त्री) 'परिवृत्ति'—इन सबके हाथसे उस अश्वका स्पर्श कराया[2]॥ ३५॥

इसके बाद परम चतुर जितेन्द्रिय ऋत्विक्‌ने विधिपूर्वक अश्वकन्दके गूदेको निकालकर शास्त्रोक्त रीतिसे पकाया॥ ३६॥

तत्पश्चात् उस गूदेकी आहुति दी गयी। राजा दशरथने अपने पापको दूर करनेके लिये ठीक समयपर आकर विधिपूर्वक उसके धूएँकी गन्धको सूँघा॥ ३७॥

उस अश्वमेध यज्ञके अंगभूत जो-जो हवनीय पदार्थ थे, उन सबको लेकर समस्त सोलह ऋत्विज् ब्राह्मण अग्निमें विधिवत् आहुति देने लगे॥ ३८॥

अश्वमेधके अतिरिक्त अन्य यज्ञोंमें जो हवि दी जाती है, वह पाकरकी शाखाओंमें रखकर दी जाती है; परंतु अश्वमेध यज्ञका हविष्य बेंतकी चटाईमें रखकर देनेका नियम है॥ ३९॥

कल्पसूत्र और ब्राह्मणग्रन्थोंके द्वारा अश्वमेधके तीन सवनीय दिन बताये गये हैं। उनमेंसे प्रथम दिन जो सवन

---

१. तथा च सूत्रम्—'**चतुर्विंशत्यङ्गुलयोऽरत्निः**' अर्थात् एक अरत्नि चौबीस अङ्गुलके बराबर होता है।

२. जातिके अनुसार नाम अलग-अलग होते हैं। दशरथके तो कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीनों क्षत्रिय जातिकी ही थीं।

होता है, उसे चतुष्टोम ('अग्निष्टोम') कहा गया है। द्वितीय दिवस साध्य सवनको 'उक्थ्य' नाम दिया गया है तथा तीसरे दिन जिस सवनका अनुष्ठान होता है, उसे 'अतिरात्र' कहते हैं। उसमें शास्त्रीय दृष्टिसे विहित बहुत-से दूसरे-दूसरे क्रतु भी सम्पन्न किये गये॥ ४०-४१ ॥

ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम यज्ञ, दो बार अतिरात्र यज्ञ, पाँचवाँ अभिजित्, छठा विश्वजित् तथा सातवें-आठवें आप्तोर्याम—ये सब-के-सब महाक्रतु माने गये हैं, जो अश्वमेधके उत्तर कालमें सम्पादित हुए॥ ४२ ॥

अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले राजा दशरथने यज्ञ पूर्ण होनेपर होताको दक्षिणारूपमें अयोध्यासे पूर्व दिशाका सारा राज्य सौंप दिया, अध्वर्युको पश्चिम दिशा तथा ब्रह्माको दक्षिण दिशाका राज्य दे दिया॥ ४३ ॥

इसी तरह उद्गाताको उत्तर दिशाकी सारी भूमि दे दी। पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीने जिसका अनुष्ठान किया था, उस अश्वमेध नामक महायज्ञमें ऐसी ही दक्षिणाका विधान किया गया है*॥ ४४॥

इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करके अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले पुरुषशिरोमणि राजा दशरथने ऋत्विजोंको सारी पृथ्वी दान कर दी॥ ४५॥

यों दान देकर इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीमान् महाराज दशरथके हर्षकी सीमा न रही, परंतु समस्त ऋत्विज् उन निष्पाप नरेशसे इस प्रकार बोले— ॥ ४६ ॥

'महाराज! अकेले आप ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। हममें इसके पालनकी शक्ति नहीं है; अतः भूमिसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है॥ ४७॥

'भूमिपाल! हम तो सदा वेदोंके स्वाध्यायमें ही लगे रहते हैं (इस भूमिका पालन हमसे नहीं हो सकता); अतः आप हमें यहाँ इस भूमिका कुछ निष्क्रय (मूल्य) ही दे दें॥ ४८॥

'नृपश्रेष्ठ! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ अथवा जो भी वस्तु यहाँ उपस्थित हो, वही हमें दक्षिणारूपसे दे दीजिये। इस धरतीसे हमें कोई प्रयोजन नहीं है'॥ ४९॥

वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर राजाने उन्हें दस लाख गौएँ प्रदान कीं। दस करोड़ स्वर्णमुद्रा तथा उससे चौगुनी रजतमुद्रा अर्पित की॥

तब उस समस्त ऋत्विजोंने एक साथ होकर वह सारा धन मुनिवर ऋष्यशृंग तथा बुद्धिमान् वसिष्ठको सौंप दिया॥ ५१ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर उन दोनों महर्षियोंके सहयोगसे उस धनका न्यायपूर्वक बँटवारा करके वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और बोले—महाराज! इस दक्षिणासे हमलोग बहुत संतुष्ट हैं'॥ ५२ $\frac{1}{2}$ ॥

इसके बाद एकाग्रचित्त होकर राजा दशरथने अभ्यागत ब्राह्मणोंको एक करोड़ जाम्बूनद सुवर्णकी मुद्राएँ बाँटीं॥

[सारा धन दे देनेके बाद जब कुछ नहीं बच रहा, तब] एक दरिद्र ब्राह्मणने आकर राजासे धनकी याचना की। उस समय उन रघुकुलनन्दन नरेशने उसे अपने हाथका उत्तम आभूषण उतारकर दे दिया॥ ५४ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् जब सभी ब्राह्मण विधिवत् संतुष्ट हो गये, उस समय उनपर स्नेह रखनेवाले नरेशने उन सबको प्रणाम किया। प्रणाम करते समय उनकी सारी इन्द्रियाँ हर्षसे विह्वल हो रही थीं॥ ५५ $\frac{1}{2}$ ॥

पृथ्वीपर पड़े हुए उन उदार नरवीरको ब्राह्मणोंने नाना प्रकारके आशीर्वाद दिये॥ ५६ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर उस परम उत्तम यज्ञका पुण्यफल पाकर राजा दशरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वह यज्ञ उनके सब पापोंका नाश करनेवाला तथा उन्हें स्वर्गलोकमें पहुँचानेवाला था। साधारण राजाओंके लिये उस यज्ञको आदिसे अन्ततक पूर्ण कर लेना बहुत ही कठिन था॥

यज्ञ समाप्त होनेपर राजा दशरथने ऋष्यशृंगसे कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! अब जो कर्म मेरी कुलपरम्पराको बढ़ानेवाला हो, उसका सम्पादन आपको करना चाहिये'॥ ५८ $\frac{1}{2}$ ॥

तब द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृंग 'तथास्तु' कहकर राजासे बोले—'राजन्! आपके चार पुत्र होंगे, जो इस कुलके भारको वहन करनेमें समर्थ होंगे'॥ ५९ ॥

उनका यह मधुर वचन सुनकर मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले महामना महाराज दशरथ उन्हें प्रणाम करके बड़े हर्षको प्राप्त हुए तथा उन्होंने ऋष्यशृंगको पुनः पुत्रप्राप्ति करानेवाले कर्मका अनुष्ठान करनेके लिये प्रेरित किया॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

---

* '**प्रजापतिरश्वमेधमसृजत** (प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया।)' इस श्रुतिके द्वारा यह सूचित होता है कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इस महायज्ञका अनुष्ठान किया था। इसमें दक्षिणारूपसे प्रत्येक दिशाके दानका विधान कल्पसूत्रद्वारा किया गया है। यथा—'**प्रतिदिशं दक्षिणां ददाति प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्यध्वर्योरुदीच्युद्गातुः**'॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

ऋष्यशृंगद्वारा राजा दशरथके पुत्रेष्टि यज्ञका आरम्भ, देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्माजीका रावणके वधका उपाय ढूँढ़ निकालना तथा भगवान् विष्णुका देवताओंको आश्वासन देना

महात्मा ऋष्यशृंग बड़े मेधावी और वेदोंके ज्ञाता थे। उन्होंने थोड़ी देरतक ध्यान लगाकर अपने भावी कर्तव्यका निश्चय किया। फिर ध्यानसे विरत हो वे राजासे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

'महाराज! मैं आपको पुत्रकी प्राप्ति करानेके लिये अथर्ववेदके मन्त्रोंसे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा। वेदोक्त विधिके अनुसार अनुष्ठान करनेपर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा'॥ २ ॥

यह कहकर उन तेजस्वी ऋषिने पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ प्रारम्भ किया और श्रौतविधिके अनुसार अग्निमें आहुति डाली॥ ३ ॥

तब देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षिगण विधिके अनुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उस यज्ञमें एकत्र हुए॥ ४ ॥

उस यज्ञ-सभामें क्रमशः एकत्र होकर (दूसरोंकी दृष्टिसे अदृश्य रहते हुए) सब देवता लोककर्ता ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

'भगवन्! रावण नामक राक्षस आपका कृपाप्रसाद पाकर अपने बलसे हम सब लोगोंको बड़ा कष्ट दे रहा है। हममें इतनी शक्ति नहीं है कि अपने पराक्रमसे उसको दबा सकें॥ ६ ॥

'प्रभो! आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है। तबसे हमलोग उस वरका सदा समादर करते हुए उसके सारे अपराधोंको सहते चले आ रहे हैं॥ ७ ॥

'उसने तीनों लोकोंके प्राणियोंका नाकोंदम कर रखा है। वह दुष्टात्मा जिनको कुछ ऊँची स्थितिमें देखता है, उन्हींके साथ द्वेष करने लगता है। देवराज इन्द्रको परास्त करनेकी अभिलाषा रखता है॥ ८ ॥

'आपके वरदानसे मोहित होकर वह इतना उद्दण्ड हो गया है कि ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणोंको पीड़ा देता और उनका अपमान करता फिरता है॥ ९ ॥

'सूर्य उसको ताप नहीं पहुँचा सकते। वायु उसके पास जोरसे नहीं चलती तथा जिसकी उत्ताल तरंगें सदा ऊपर-नीचे होती रहती हैं, वह समुद्र भी रावणको देखकर भयके मारे स्तब्ध-सा हो जाता है—उसमें कम्पन नहीं होता॥ १० ॥

'वह राक्षस देखनेमें भी बड़ा भयंकर है। उससे हमें महान् भय प्राप्त हो रहा है; अतः भगवन्! उसके वधके लिये आपको कोई-न-कोई उपाय अवश्य करना चाहिये'॥ ११ ॥

समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी कुछ सोचकर बोले—'देवताओ! लो, उस दुरात्माके वधका उपाय मेरी समझमें आ गया। उसने वर माँगते समय यह बात कही थी कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देवता तथा राक्षसोंके हाथसे न मारा जाऊँ। मैंने भी 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली॥ १२-१३ ॥

'मनुष्योंको तो वह तुच्छ समझता था, इसलिये उनके प्रति अवहेलना होनेके कारण उनसे अवध्य होनेका वरदान नहीं माँगा। इसलिये अब मनुष्यके हाथसे ही उसका वध होगा। मनुष्यके सिवा दूसरा कोई उसकी मृत्युका कारण नहीं है'॥ १४ ॥

ब्रह्माजीकी कही हुई यह प्रिय बात सुनकर उस समय समस्त देवता और महर्षि बड़े प्रसन्न हुए॥ १५ ॥

इसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु भी मेघके ऊपर स्थित हुए सूर्यकी भाँति गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा आदि आयुध शोभा पा रहे थे। उनकी दोनों भुजाओंमें तपाये हुए सुवर्णके बने केयूर प्रकाशित हो रहे थे। उस समय सम्पूर्ण देवताओंने उनकी वन्दना की और वे ब्रह्माजीसे मिलकर सावधानीके साथ सभामें विराजमान हो गये॥ १६-१७ $\frac{१}{२}$ ॥

तब समस्त देवताओंने विनीत भावसे उनकी स्तुति करके कहा—'सर्वव्यापी परमेश्वर! हम तीनों लोकोंके हितकी कामनासे आपके ऊपर एक महान् कार्यका भार दे रहे हैं॥ १८ $\frac{१}{२}$ ॥

'प्रभो! अयोध्याके राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार तथा महर्षियोंके समान तेजस्वी हैं। उनके तीन रानियाँ हैं जो ह्री, श्री और कीर्ति—इन तीन देवियोंके समान हैं। विष्णुदेव! आप अपने चार स्वरूप बनाकर राजाकी उन तीनों रानियोंके गर्भसे पुत्ररूपमें अवतार ग्रहण कीजिये। इस प्रकार मनुष्यरूपमें प्रकट होकर आप संसारके लिये प्रबल कण्टकरूप रावणको, जो देवताओंके लिये अवध्य है, समरभूमिमें मार डालिये॥ १९—२१ $\frac{१}{२}$ ॥

'वह मूर्ख राक्षस रावण अपने बढ़े हुए पराक्रमसे

देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा श्रेष्ठ महर्षियोंको बहुत कष्ट दे रहा है॥ २२½ ॥

'उस रौद्र निशाचरने ऋषियोंको तथा नन्दनवनमें क्रीड़ा करनेवाले गन्धर्वों और अप्सराओंको भी स्वर्गसे भूमिपर गिरा दिया है॥ २३½ ॥

'इसलिये मुनियोंसहित हम सब सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष तथा देवता उसके वधके लिये आपकी शरणमें आये हैं॥ २४½ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले देव! आप ही हम सब लोगोंकी परमगति हैं, अतः इन देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये आप मनुष्यलोकमें अवतार लेनेका निश्चय कीजिये'॥ २५½ ॥

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वलोक-वन्दित देवप्रवर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने वहाँ एकत्र हुए उन समस्त ब्रह्मा आदि धर्मपरायण देवताओंसे कहा— ॥ २६-२७ ॥

'देवगण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भयको त्याग दो। मैं तुम्हारा हित करनेके लिये रावणको पुत्र, पौत्र, अमात्य, मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंसहित युद्धमें मार डालूँगा। देवताओं तथा ऋषियोंको भय देनेवाले उस क्रूर एवं दुर्धर्ष राक्षसका नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन करता हुआ मनुष्यलोकमें निवास करूँगा'॥ २८-२९½ ॥

देवताओंको ऐसा वर देकर मनस्वी भगवान् विष्णुने मनुष्यलोकमें पहले अपनी जन्मभूमिके सम्बन्धमें विचार किया॥ ३०½ ॥

इसके बाद कमलनयन श्रीहरिने अपनेको चार स्वरूपोंमें प्रकट करके राजा दशरथको पिता बनानेका निश्चय किया॥ ३१½ ॥

तब देवता, ऋषि, गन्धर्व, रुद्र तथा अप्सराओंने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनका स्तवन किया॥ ३२ ॥

वे कहने लगे—'प्रभो! रावण बड़ा उद्दण्ड है। उसका तेज अत्यन्त उग्र और घमण्ड बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह देवराज इन्द्रसे सदा द्वेष रखता है। तीनों लोकोंको रुलाता है, साधुओं और तपस्वी जनोंके लिये तो वह बहुत बड़ा कण्टक है; अतः तापसोंको भय देनेवाले उस भयानक राक्षसकी आप जड़ उखाड़ डालिये॥ ३३ ॥

'उपेन्द्र! सारे जगत्को रुलानेवाले उस उग्र पराक्रमी रावणको सेना और बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट करके अपनी स्वाभाविक निश्चिन्तताके साथ अपने ही द्वारा सुरक्षित उस चिरन्तन वैकुण्ठधाममें आ जाइये; जिसे राग-द्वेष आदि दोषोंका कलुष कभी छू नहीं पाता है'॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

देवताओंका श्रीहरिसे रावणवधके लिये मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होनेको कहना, राजाके पुत्रेष्टि यज्ञमें अग्निकुण्डसे प्राजापत्य पुरुषका प्रकट होकर खीर अर्पण करना और उसे खाकर रानियोंका गर्भवती होना

तदनन्तर उन श्रेष्ठ देवताओंद्वारा इस प्रकार रावणवधके लिये नियुक्त होनेपर सर्वव्यापी नारायणने रावणवधके उपायको जानते हुए भी देवताओंसे यह मधुर वचन कहा— ॥ १ ॥

'देवगण! राक्षसराज रावणके वधके लिये कौन-सा उपाय है, जिसका आश्रय लेकर मैं महर्षियोंके लिये कण्टकरूप उस निशाचरका वध करूँ?'॥ २ ॥

उनके इस तरह पूछनेपर सब देवता उन अविनाशी भगवान् विष्णुसे बोले—'प्रभो! आप मनुष्यका रूप धारण करके युद्धमें रावणको मार डालिये॥ ३ ॥

'उस शत्रुदमन निशाचरने दीर्घकालतक तीव्र तपस्या की थी, जिससे सब लोगोंके पूर्वज लोकस्रष्टा ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये॥ ४॥

'उसपर संतुष्ट हुए भगवान् ब्रह्माने उस राक्षसको यह वर दिया कि तुम्हें नाना प्रकारके प्राणियोंमेंसे मनुष्यके सिवा और किसीसे भय नहीं है॥ ५ ॥

'पूर्वकालमें वरदान लेते समय उस राक्षसने मनुष्योंको दुर्बल समझकर उनकी अवहेलना कर दी थी। इस प्रकार पितामहसे मिले हुए वरदानके कारण उसका घमण्ड बढ़ गया है॥ ६ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले देव! वह तीनों लोकोंको पीड़ा देता और स्त्रियोंका भी अपहरण कर लेता है; अतः

उसका वध मनुष्यके हाथसे ही निश्चित हुआ है'॥ ७॥

समस्त जीवात्माओंको वशमें रखनेवाले भगवान् विष्णुने देवताओंकी यह बात सुनकर अवतारकालमें राजा दशरथको ही पिता बनानेकी इच्छा की॥ ८॥

उसी समय वे शत्रुसूदन महातेजस्वी नरेश पुत्रहीन होनेके कारण पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे पुत्रेष्टियज्ञ कर रहे थे॥ ९॥

उन्हें पिता बनानेका निश्चय करके भगवान् विष्णु पितामहकी अनुमति ले देवताओं और महर्षियोंसे पूजित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ १०॥

तत्पश्चात् पुत्रेष्टि यज्ञ करते हुए राजा दशरथके यज्ञमें अग्निकुण्डसे एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। उसके शरीरमें इतना प्रकाश था, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी। उसका बल-पराक्रम महान् था॥ ११॥

उसकी अंगकान्ति काले रंगकी थी। उसने अपने शरीरपर लाल वस्त्र धारण कर रखा था। उसका मुख भी लाल ही था। उसकी वाणीसे दुन्दुभिके समान गम्भीर ध्वनि प्रकट होती थी। उसके रोम, दाढ़ी-मूँछ और बड़े-बड़े केश चिकने और सिंहके समान थे॥ १२॥

वह शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित, शैलशिखरके समान ऊँचा तथा गर्वीले सिंहके समान चलनेवाला था॥ १३॥

उसकी आकृति सूर्यके समान तेजोमयी थी। वह प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान देदीप्यमान हो रहा था। उसके हाथमें तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णकी बनी हुई परात थी, जो चाँदीके ढक्कनसे ढँकी हुई थी। वह (परात) थाली बहुत बड़ी थी और दिव्य खीरसे भरी हुई थी। उसे उस पुरुषने स्वयं अपनी दोनों भुजाओंपर इस तरह उठा रखा था, मानो कोई रसिक अपनी प्रियतमा पत्नीको अङ्कमें लिये हुए हो। वह अद्भुत परात मायामयी-सी जान पड़ती थी॥ १४-१५॥

उसने राजा दशरथकी ओर देखकर कहा— 'नरेश्वर! मुझे प्रजापतिलोकका पुरुष जानो। मैं प्रजापतिकी ही आज्ञासे यहाँ आया हूँ'॥ १६॥

तब राजा दशरथने हाथ जोड़कर उससे कहा— 'भगवन्! आपका स्वागत है। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?॥ १७॥

फिर उस प्राजापत्य पुरुषने पुनः यह बात कही— 'राजन्! तुम देवताओंकी आराधना करते हो; इसीलिये तुम्हें आज यह वस्तु प्राप्त हुई है॥ १८॥

'नृपश्रेष्ठ! यह देवताओंकी बनायी हुई खीर है, जो संतानकी प्राप्ति करानेवाली है। तुम इसे ग्रहण करो। यह धन और आरोग्यकी भी वृद्धि करनेवाली है॥ १९॥

'राजन्! यह खीर अपनी योग्य पत्नियोंको दो और कहो—'तुमलोग इसे खाओ।' ऐसा करनेपर उनके गर्भसे आपको अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होगी, जिनके लिये तुम यह यज्ञ कर रहे हो'॥ २०॥

राजाने प्रसन्नतापूर्वक 'बहुत अच्छा' कहकर उस दिव्य पुरुषकी दी हुई देवान्नसे परिपूर्ण सोनेकी थालीको लेकर उसे अपने मस्तकपर धारण किया। फिर उस अद्भुत एवं प्रियदर्शन पुरुषको प्रणाम करके बड़े आनन्दके साथ उसकी परिक्रमा की॥ २१-२२॥

इस प्रकार देवताओंकी बनायी हुई उस खीरको पाकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए, मानो निर्धनको धन मिल गया हो। इसके बाद वह परम तेजस्वी अद्भुत पुरुष अपना वह काम पूरा करके वहीं अन्तर्धान हो गया॥ २३-२४॥

उस समय राजाके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ हर्षोल्लाससे बढ़ी हुई कान्तिमयी किरणोंसे प्रकाशित हो ठीक उसी तरह शोभा पाने लगीं, जैसे शरत्कालके नयनाभिराम चन्द्रमाकी रम्य रश्मियोंसे उद्भासित होनेवाला आकाश सुशोभित होता है॥ २५॥

राजा दशरथ वह खीर लेकर अन्तःपुरमें गये और कौसल्यासे बोले—'देवि! यह अपने लिये पुत्रकी प्राप्ति करानेवाली खीर ग्रहण करो'॥ २६॥

ऐसा कहकर नरेशने उस समय उस खीरका आधा भाग महारानी कौसल्याको दे दिया। फिर बचे हुए आधेका आधा भाग रानी सुमित्राको अर्पण किया॥ २७॥

उन दोनोंको देनेके बाद जितनी खीर बच रही, उसका आधा भाग तो उन्होंने पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे कैकेयीको दे दिया। तत्पश्चात् उस खीरका जो अवशिष्ट आधा भाग था, उस अमृतोपम भागको महाबुद्धिमान् नरेशने कुछ सोच-विचारकर पुनः सुमित्राको ही अर्पित कर दिया। इस प्रकार राजाने अपनी सभी रानियोंको अलग-अलग खीर बाँट दी॥ २८-२९॥

महाराजकी उन सभी साध्वी रानियोंने उनके हाथसे वह खीर पाकर अपना सम्मान समझा। उनके चित्तमें अत्यन्त हर्षोल्लास छा गया॥ ३०॥

उस उत्तम खीरको खाकर महाराजकी उन तीनों साध्वी महारानियोंने शीघ्र ही पृथक्-पृथक् गर्भ धारण किया। उनके वे गर्भ अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी थे॥ ३१॥

तदनन्तर अपनी उन रानियोंको गर्भवती देख राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने समझा, मेरा मनोरथ सफल हो गया। जैसे स्वर्गमें इन्द्र, सिद्ध तथा ऋषियोंसे पूजित हो श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार भूतलमें देवेन्द्र, सिद्ध तथा महर्षियोंसे सम्मानित हो राजा दशरथ संतुष्ट हुए थे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

ब्रह्माजीकी प्रेरणासे देवता आदिके द्वारा विभिन्न वानरयूथपतियोंकी उत्पत्ति

जब भगवान् विष्णु महामनस्वी राजा दशरथके पुत्रभावको प्राप्त हो गये, तब भगवान् ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'देवगण! भगवान् विष्णु सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हम सब लोगोंके हितैषी हैं। तुमलोग उनके सहायकरूपसे ऐसे पुत्रोंकी सृष्टि करो, जो बलवान्, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, माया जाननेवाले, शूरवीर, वायुके समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, विष्णुतुल्य पराक्रमी, किसीसे परास्त न होनेवाले, तरह-तरहके उपायोंके जानकार, दिव्य शरीरधारी तथा अमृतभोजी देवताओंके समान सब प्रकारकी अस्त्रविद्याके गुणोंसे सम्पन्न हों॥

'प्रधान-प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वोंकी स्त्रियों, यक्ष और नागोंकी कन्याओं, रीछोंकी स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों तथा वानरियोंके गर्भसे वानररूपमें अपने ही तुल्य पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो॥ ५-६॥

'मैंने पहलेसे ही ऋक्षराज जाम्बवान्‌की सृष्टि कर रखी है। एक बार मैं जँभाई ले रहा था, उसी समय वह सहसा मेरे मुँहसे प्रकट हो गया'॥ ७॥

भगवान् ब्रह्माके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनकी आज्ञा स्वीकार की और वानररूपमें अनेकानेक पुत्र उत्पन्न किये॥ ८॥

महात्मा, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, नाग और चारणोंने भी वनमें विचरनेवाले वानर-भालुओंके रूपमें वीर पुत्रोंको जन्म दिया॥ ९॥

देवराज इन्द्रने वानरराज वालीको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया, जो महेन्द्र पर्वतके समान विशालकाय और बलिष्ठ था। तपनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्यने सुग्रीवको जन्म दिया॥ १०॥

बृहस्पतिने तार नामक महाकाय वानरको उत्पन्न किया, जो समस्त वानर सरदारोंमें परम बुद्धिमान् और श्रेष्ठ था॥ ११॥

तेजस्वी वानर गन्धमादन कुबेरका पुत्र था। विश्वकर्माने नल नामक महान् वानरको जन्म दिया॥ १२॥

अग्निके समान तेजस्वी श्रीमान् नील साक्षात् अग्निदेवका ही पुत्र था। वह पराक्रमी वानर तेज, यश और बल-वीर्यमें सबसे बढ़कर था॥ १३॥

रूप-वैभवसे सम्पन्न, सुन्दर रूपवाले दोनों अश्विनीकुमारोंने स्वयं ही मैन्द और द्विविदको जन्म दिया था॥ १४॥

वरुणने सुषेण नामक वानरको उत्पन्न किया और महाबली पर्जन्यने शरभको जन्म दिया॥ १५॥

हनुमान् नामवाले ऐश्वर्यशाली वानर वायुदेवताके औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था। वे तेज चलनेमें गरुड़के समान थे॥ १६॥

सभी श्रेष्ठ वानरोंमें वे सबसे अधिक बुद्धिमान् और बलवान् थे। इस प्रकार कई हजार वानरोंकी उत्पत्ति हुई। वे सभी रावणका वध करनेके लिये उद्यत रहते थे॥ १७॥

उनके बलकी कोई सीमा नहीं थी। वे वीर, पराक्रमी और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। गजराजों और पर्वतोंके समान महाकाय तथा महाबली थे॥ १८॥

रीछ, वानर तथा गोलांगूल (लंगूर) जातिके वीर शीघ्र ही उत्पन्न हो गये। जिस देवताका जैसा रूप, वेष और पराक्रम था, उससे उसीके समान पृथक्-पृथक् पुत्र उत्पन्न हुआ। लंगूरोंमें जो देवता उत्पन्न हुए, वे देवावस्थाकी अपेक्षा भी कुछ अधिक पराक्रमी थे॥ १९-२०॥

कुछ वानर रीछ जातिकी माताओंसे तथा कुछ किन्नरियोंसे उत्पन्न हुए। देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, यशस्वी यक्ष, नाग, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर तथा सर्प जातिके बहुसंख्यक व्यक्तियोंने अत्यन्त हर्षमें भरकर सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये॥ २१-२२॥

देवताओंका गुण गानेवाले वनवासी चारणोंने बहुत-से वीर, विशालकाय वानरपुत्र उत्पन्न किये। वे सब जंगली फल-मूल खानेवाले थे॥ २३॥

मुख्य-मुख्य अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं तथा गन्धर्व-पत्नियोंके गर्भसे भी इच्छानुसार रूप और बलसे युक्त तथा स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करनेमें समर्थ वानरपुत्र उत्पन्न हुए॥ २४॥

वे दर्प और बलमें सिंह और व्याघ्रोंके समान थे। पत्थरकी चट्टानोंसे प्रहार करते और पर्वत उठाकर लड़ते थे॥ २५॥

वे सभी नख और दाँतोंसे भी शस्त्रोंका काम लेते थे। उन सबको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान था। वे पर्वतोंको भी हिला सकते थे और स्थिरभावसे खड़े हुए वृक्षोंको भी तोड़ डालनेकी शक्ति रखते थे॥ २६॥

अपने वेगसे सरिताओंके स्वामी समुद्रको भी क्षुब्ध कर सकते थे। उनमें पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेकी शक्ति थी। वे महासागरोंको भी लाँघ सकते थे॥ २७॥

वे चाहें तो आकाशमें घुस जायँ, बादलोंको हाथोंसे पकड़ लें तथा वनमें वेगसे चलते हुए मतवाले गजराजोंको भी बन्दी बना लें॥ २८॥

घोर शब्द करते हुए आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंको भी वे अपने सिंहनादसे गिरा सकते थे। ऐसे बलशाली और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाकाय वानर यूथपति करोड़ोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए थे। वे वानरोंके प्रधान यूथोंके भी यूथपति थे॥ २९-३०॥

उन यूथपतियोंने भी ऐसे वीर वानरोंको उत्पन्न किया था, जो यूथपोंसे भी श्रेष्ठ थे। वे और ही प्रकारके वानर थे—इन प्राकृत वानरोंसे विलक्षण थे। उनमेंसे सहस्रों वानर-यूथपति ऋक्षवान् पर्वतके शिखरोंपर निवास करने लगे॥ ३१॥

दूसरोंने नाना प्रकारके पर्वतों और जंगलोंका आश्रय लिया। इन्द्रकुमार वाली और सूर्यनन्दन सुग्रीव ये दोनों भाई थे। समस्त वानरयूथपति उन दोनों भाइयोंकी सेवामें उपस्थित रहते थे। इसी प्रकार वे नल-नील, हनुमान् तथा अन्य वानर सरदारोंका आश्रय लेते थे। वे सभी गरुड़के समान बलशाली तथा युद्धकी कलामें निपुण थे। वे वनमें विचरते समय सिंह, व्याघ्र और बड़े-बड़े नाग आदि समस्त वनजन्तुओंको रौंद डालते थे॥

महाबाहु वाली महान् बलसे सम्पन्न तथा विशेष पराक्रमी थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे रीछों, लंगूरों तथा अन्य वानरोंकी रक्षा की थी॥ ३५॥

उन सबके शरीर और पार्थक्यसूचक लक्षण नाना प्रकारके थे। वे शूरवीर वानर पर्वत, वन और समुद्रोंसहित समस्त भूमण्डलमें फैल गये॥ ३६॥

वे वानरयूथपति मेघसमूह तथा पर्वतशिखरके समान विशालकाय थे। उनका बल महान् था। उनके शरीर और रूप भयंकर थे। भगवान् श्रीरामकी सहायताके लिये प्रकट हुए उन वानर वीरोंसे यह सारी पृथ्वी भर गयी थी॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

राजाओं तथा ऋष्यशृंगको विदा करके राजा दशरथका रानियोंसहित पुरीमें आगमन, श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नके जन्म, संस्कार, शील-स्वभाव एवं सद्‌गुण, राजाके दरबारमें विश्वामित्रका आगमन और उनका सत्कार

महामना राजा दशरथका यज्ञ समाप्त होनेपर देवतालोग अपना-अपना भाग ले जैसे आये थे, वैसे लौट गये॥ १॥

दीक्षाका नियम समाप्त होनेपर राजा अपनी पत्नियोंको साथ ले सेवक, सैनिक और सवारियोंसहित पुरीमें प्रविष्ट हुए॥ २॥

भिन्न-भिन्न देशोंके राजा भी (जो उनके यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आये थे) महाराज दशरथद्वारा यथावत् सम्मानित हो मुनिवर वसिष्ठ तथा ऋष्यशृंगको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने देशको चले गये॥ ३॥

अयोध्यापुरीसे अपने घरको जाते हुए उन श्रीमान् नरेशोंके शुभ्र सैनिक अत्यन्त हर्षमग्न होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ४॥

उन राजाओंके विदा हो जानेपर श्रीमान् महाराज दशरथने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे करके अपनी पुरीमें प्रवेश किया॥ ५॥

राजाद्वारा अत्यन्त सम्मानित हो ऋष्यशृंग मुनि भी

शान्ताके साथ अपने स्थानको चले गये। उस समय सेवकोंसहित बुद्धिमान् महाराज दशरथ कुछ दूरतक उनके पीछे-पीछे उन्हें पहुँचाने गये थे॥ ६॥

इस प्रकार उन सब अतिथियोंको विदा करके सफलमनोरथ हुए राजा दशरथ पुत्रोत्पत्तिकी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ बड़े सुखसे रहने लगे॥ ७॥

यज्ञ-समाप्तिके पश्चात् जब छः ऋतुएँ बीत गयीं, तब बारहवें मासमें चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्नमें कौसल्यादेवीने दिव्य लक्षणोंसे युक्त, सर्वलोकवन्दित जगदीश्वर श्रीरामको जन्म दिया। उस समय (सूर्य, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र—ये) पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें विद्यमान थे तथा लग्नमें चन्द्रमाके साथ बृहस्पति विराजमान थे॥

वे विष्णुस्वरूप हविष्य या खीरके आधे भागसे प्रकट हुए थे। कौसल्याके महाभाग पुत्र श्रीराम इक्ष्वाकुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले थे। उनके नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा थी। उनके ओठ लाल, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और स्वर दुन्दुभिके शब्दके समान गम्भीर था॥ ११॥

उस अमिततेजस्वी पुत्रसे महारानी कौसल्याकी बड़ी शोभा हुई, ठीक उसी तरह, जैसे सुरश्रेष्ठ वज्रपाणि इन्द्रसे देवमाता अदिति सुशोभित हुई थीं॥ १२॥

तदनन्तर कैकेयीसे सत्यपराक्रमी भरतका जन्म हुआ, जो साक्षात् भगवान् विष्णुके (स्वरूपभूत पायस—खीरके) चतुर्थांशसे भी न्यून भागसे प्रकट हुए थे। ये समस्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न थे॥ १३॥

इसके बाद रानी सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। ये दोनों वीर साक्षात् भगवान् विष्णुके अर्धभागसे सम्पन्न और सब प्रकारके अस्त्रोंकी विद्यामें कुशल थे॥ १४॥

भरत सदा प्रसन्नचित्त रहते थे। उनका जन्म पुष्य नक्षत्र तथा मीन लग्नमें हुआ था। सुमित्राके दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र और कर्कलग्नमें उत्पन्न हुए थे। उस समय सूर्य अपने उच्च स्थानमें विराजमान थे॥ १५॥

राजा दशरथके ये चारों महामनस्वी पुत्र पृथक्-पृथक् गुणोंसे सम्पन्न और सुन्दर थे। ये भाद्रपदा नामक चार तारोंके समान कान्तिमान् थे[1]॥ १६॥

इनके जन्मके समय गन्धर्वोंने मधुर गीत गाये। अप्सराओंने नृत्य किया। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ १७॥

अयोध्यामें बहुत बड़ा उत्सव हुआ। मनुष्योंकी भारी भीड़ एकत्र हुई। गलियाँ और सड़कें लोगोंसे खचाखच भरी थीं। बहुत-से नट और नर्तक वहाँ अपनी कलाएँ दिखा रहे थे॥ १८॥

वहाँ सब ओर गाने-बजानेवाले तथा दूसरे लोगोंके शब्द गूँज रहे थे। दीन-दुःखियोंके लिये लुटाये गये सब प्रकारके रत्न वहाँ बिखरे पड़े थे॥ १९॥

राजा दशरथने सूत, मागध और वन्दीजनोंको देनेयोग्य पुरस्कार दिये तथा ब्राह्मणोंको धन एवं सहस्रों गोधन प्रदान किये॥ २०॥

ग्यारह दिन बीतनेपर महाराजने बालकोंका नामकरण-संस्कार किया[2]। उस समय महर्षि वसिष्ठने प्रसन्नताके साथ सबके नाम रखे। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्रका नाम 'राम' रखा। श्रीराम महात्मा (परमात्मा) थे। कैकेयीकुमारका नाम भरत तथा सुमित्राके एक पुत्रका नाम लक्ष्मण और दूसरेका शत्रुघ्न निश्चित किया॥ २१-२२॥

राजाने ब्राह्मणों, पुरवासियों तथा जनपदवासियोंको भी भोजन कराया। ब्राह्मणोंको बहुत-से उज्ज्वल रत्नसमूह दान किये॥ २३॥

महर्षि वसिष्ठने समय-समयपर राजासे उन बालकोंके जातकर्म आदि सभी संस्कार करवाये थे। उन सबमें श्रीरामचन्द्रजी ज्येष्ठ होनेके साथ ही अपने कुलकी कीर्ति-ध्वजाको फहरानेवाली पताकाके समान थे। वे अपने पिताकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले थे॥ २४॥

सभी भूतोंके लिये वे स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान विशेष प्रिय थे। राजाके सभी पुत्र वेदोंके विद्वान् और शूरवीर थे। सब-के-सब लोकहितकारी कार्योंमें संलग्न रहते थे॥ २५॥

---

१. प्रोष्ठपदा कहते हैं—भाद्रपदा नक्षत्रको। उसके दो भेद हैं—पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा। इन दोनोंमें दो-दो तारे हैं। यह बात ज्यौतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध है। (रा० ति०)

२. रामायणतिलकके निर्माताने मूलके एकादशाह शब्दको सूतकके अन्तिम दिनका उपलक्षण माना है। उनका कहना है कि यदि ऐसा न माना जाय तो **'क्षत्रियस्य द्वादशाहं सूतकम्'** (क्षत्रियको बारह दिनोंका सूतक लगता है) इस स्मृतिवाक्यसे विरोध होगा; अतः रामजन्मके बारह दिन बीत जानेके बाद तेरहवें दिन राजाने नामकरण-संस्कार किया—ऐसा मानना चाहिये।

सभी ज्ञानवान् और समस्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें भी सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी सबसे अधिक तेजस्वी और सब लोगोंके विशेष प्रिय थे। वे निष्कलङ्क चन्द्रमाके समान शोभा पाते थे। उन्होंने हाथीके कंधे और घोड़ेकी पीठपर बैठने तथा रथ हाँकनेकी कलामें भी सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। वे सदा धनुर्वेदका अभ्यास करते और पिताजीकी सेवामें लगे रहते थे॥

लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मण बाल्यावस्थासे ही श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे। वे अपने बड़े भाई लोकाभिराम श्रीरामका सदा ही प्रिय करते थे और शरीरसे भी उनकी सेवामें ही जुटे रहते थे॥

शोभासम्पन्न लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके लिये बाहर विचरनेवाले दूसरे प्राणके समान थे। पुरुषोत्तम श्रीरामको उनके बिना नींद भी नहीं आती थी। यदि उनके पास उत्तम भोजन लाया जाता तो श्रीरामचन्द्रजी उसमेंसे लक्ष्मणको दिये बिना नहीं खाते थे॥ ३०½ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजी घोड़ेपर चढ़कर शिकार खेलनेके लिये जाते, उस समय लक्ष्मण धनुष लेकर उनके शरीरकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे जाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न भरतजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे और वे भी भरतजीको सदा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते थे॥ ३१-३२½ ॥

इन चार महान् भाग्यशाली प्रिय पुत्रोंसे राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती थी, ठीक वैसे ही जैसे चार देवताओं (दिक्पालों) से ब्रह्माजीको प्रसन्नता होती है॥ ३३½ ॥

वे सब बालक जब समझदार हुए, तब समस्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न हो गये। वे सभी लज्जाशील, यशस्वी, सर्वज्ञ और दूरदर्शी थे। ऐसे प्रभावशाली और अत्यन्त तेजस्वी उन सभी पुत्रोंकी प्राप्तिसे राजा दशरथ लोकेश्वर ब्रह्माकी भाँति बहुत प्रसन्न थे॥ ३४-३५½ ॥

वे पुरुषसिंह राजकुमार प्रतिदिन वेदोंके स्वाध्याय, पिताकी सेवा तथा धनुर्वेदके अभ्यासमें दत्त-चित्त रहते थे॥ ३६½ ॥

एक दिन धर्मात्मा राजा दशरथ पुरोहित तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ बैठकर पुत्रोंके विवाहके विषयमें विचार कर रहे थे। मन्त्रियोंके बीचमें विचार करते हुए उन महामना नरेशके यहाँ महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र पधारे॥ ३७-३८½ ॥

वे राजासे मिलना चाहते थे। उन्होंने द्वारपालोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र जाकर महाराजको यह सूचना दो कि कुशिकवंशी गाधिपुत्र विश्वामित्र आये हैं'॥ ३९½ ॥

उनकी यह बात सुनकर वे द्वारपाल दौड़े हुए राजाके दरबारमें गये। वे सब विश्वामित्रके उस वाक्यसे प्रेरित होकर मन-ही-मन घबराये हुए थे॥ ४०½ ॥

राजाके दरबारमें पहुँचकर उन्होंने इक्ष्वाकुकुल-नन्दन अवधनरेशसे कहा—'महाराज! महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं'॥ ४१½ ॥

उनकी वह बात सुनकर राजा सावधान हो गये। उन्होंने पुरोहितको साथ लेकर बड़े हर्षके साथ उनकी अगवानी की, मानो देवराज इन्द्र ब्रह्माजीका स्वागत कर रहे हों॥ ४२½ ॥

विश्वामित्रजी कठोर व्रतका पालन करनेवाले तपस्वी थे। वे अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उनका दर्शन करके राजाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उन्होंने महर्षिको अर्घ्य निवेदन किया॥ ४३½ ॥

राजाका वह अर्घ्य शास्त्रीय विधिके अनुसार स्वीकार करके महर्षिने उनसे कुशल-मंगल पूछा॥ ४४½ ॥

धर्मात्मा विश्वामित्रने क्रमशः राजाके नगर, खजाना, राज्य, बन्धु-बान्धव तथा मित्रवर्ग आदिके विषयमें कुशलप्रश्न किया—॥ ४५½ ॥

'राजन्! आपके राज्यकी सीमाके निकट रहनेवाले शत्रु राजा आपके समक्ष नतमस्तक तो हैं? आपने उनपर विजय तो प्राप्त की है न? आपके यज्ञयाग आदि देवकर्म और अतिथि-सत्कार आदि मनुष्यकर्म तो अच्छी तरह सम्पन्न होते हैं न?'॥ ४६½ ॥

इसके बाद महाभाग मुनिवर विश्वामित्रने वसिष्ठजी तथा अन्यान्य ऋषियोंसे मिलकर उन सबका यथावत् कुशल-समाचार पूछा॥ ४७½ ॥

फिर वे सब लोग प्रसन्नचित्त होकर राजाके दरबारमें गये और उनके द्वारा पूजित हो यथायोग्य आसनोंपर बैठे॥ ४८½ ॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त परम उदार राजा दशरथने पुलकित होकर महामुनि विश्वामित्रकी प्रशंसा करते हुए कहा—॥ ४९½ ॥

'महामुने! जैसे किसी मरणधर्मा मनुष्यको अमृतकी प्राप्ति हो जाय, निर्जल प्रदेशमें पानी बरस जाय, किसी संतानहीनको अपने अनुरूप पत्नीके गर्भसे पुत्र प्राप्त हो जाय, खोयी हुई निधि मिल जाय तथा किसी महान् उत्सवसे हर्षका उदय हो, उसी प्रकार आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। ऐसा मैं मानता हूँ। आपका स्वागत है। आपके मनमें कौन-सी उत्तम कामना है, जिसको

मैं हर्षके साथ पूर्ण करूँ? ५०—५२॥

'ब्रह्मन्! आप मुझसे सब प्रकारकी सेवा लेने योग्य उत्तम पात्र हैं। मानद! मेरा अहोभाग्य है, जो आपने यहाँतक पधारनेका कष्ट उठाया। आज मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया॥ ५३॥

'मेरी बीती हुई रात सुन्दर प्रभात दे गयी, जिससे मैंने आज आप ब्राह्मणशिरोमणिका दर्शन किया। पूर्वकालमें आप राजर्षि शब्दसे उपलक्षित होते थे, फिर तपस्यासे अपनी अद्भुत प्रभाको प्रकाशित करके आपने ब्रह्मर्षिका पद पाया; अतः आप राजर्षि और ब्रह्मर्षि दोनों ही रूपोंमें मेरे पूजनीय हैं। आपका जो यहाँ मेरे समक्ष शुभागमन हुआ है, यह परम पवित्र और अद्भुत है॥

''प्रभो! आपके दर्शनसे आज मेरा घर तीर्थ हो गया। मैं अपने-आपको पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा करके आया हुआ मानता हूँ। बताइये, आप क्या चाहते हैं? आपके शुभागमनका शुभ उद्देश्य क्या है?॥ ५६॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! मैं चाहता हूँ कि आपकी कृपासे अनुगृहीत होकर आपके अभीष्ट मनोरथको जान लूँ और अपने अभ्युदयके लिये उसकी पूर्ति करूँ। 'कार्य सिद्ध होगा या नहीं' ऐसे संशयको अपने मनमें स्थान न दीजिये॥ ५७॥

'आप जो भी आज्ञा देंगे, मैं उसका पूर्णरूपसे पालन करूँगा; क्योंकि सम्माननीय अतिथि होनेके नाते आप मुझ गृहस्थके लिये देवता हैं। ब्रह्मन्! आज आपके आगमनसे मुझे सम्पूर्ण धर्मोंका उत्तम फल प्राप्त हो गया। यह मेरे महान् अभ्युदयका अवसर आया है'॥ ५८॥

मनस्वी नरेशके कहे हुए ये विनययुक्त वचन, जो हृदय और कानोंको सुख देनेवाले थे, सुनकर विख्यात गुण और यशवाले, शम-दम आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न महर्षि विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए॥ ५९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रके मुखसे श्रीरामको साथ ले जानेकी माँग सुनकर राजा दशरथका दुःखित एवं मूर्च्छित होना

नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथका यह अद्भुत विस्तारसे युक्त वचन सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्र पुलकित हो उठे और इस प्रकार बोले॥ १॥

राजसिंह! ये बातें आपके ही योग्य हैं। इस पृथ्वीपर दूसरेके मुखसे ऐसे उदार वचन निकलनेकी सम्भावना नहीं है। क्यों न हो, आप महान् कुलमें उत्पन्न हैं और वसिष्ठ-जैसे ब्रह्मर्षि आपके उपदेशक हैं॥ २॥

'अच्छा, अब जो बात मेरे हृदयमें है, उसे सुनिये। नृपश्रेष्ठ! सुनकर उस कार्यको अवश्य पूर्ण करनेका निश्चय कीजिये। आपने मेरा कार्य सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की है। इस प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखाइये॥ ३॥

'पुरुषप्रवर! मैं सिद्धिके लिये एक नियमका अनुष्ठान करता हूँ। उसमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दो राक्षस विघ्न डाल रहे हैं॥ ४॥

'मेरे इस नियमका अधिकांश कार्य पूर्ण हो चुका है। अब उसकी समाप्तिके समय वे दो राक्षस आ धमके हैं। उनके नाम हैं मारीच और सुबाहु। वे दोनों बलवान् और सुशिक्षित हैं॥ ५॥

'उन्होंने मेरी यज्ञवेदीपर रक्त और मांसकी वर्षा कर दी है। इस प्रकार उस समाप्तप्राय नियममें विघ्न पड़ जानेके कारण मेरा परिश्रम व्यर्थ गया और मैं उत्साहहीन होकर उस स्थानसे चला आया॥ ६$\frac{1}{2}$॥

'पृथ्वीनाथ! उनके ऊपर अपने क्रोधका प्रयोग करूँ—उन्हें शाप दे दूँ, ऐसा विचार मेरे मनमें नहीं आता है॥

'क्योंकि वह नियम ही ऐसा है, जिसको आरम्भ कर देनेपर किसीको शाप नहीं दिया जाता; अतः नृपश्रेष्ठ! आप अपने काकपच्छधारी, सत्यपराक्रमी, शूरवीर ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको मुझे दे दें॥ ८$\frac{1}{2}$॥

'ये मुझसे सुरक्षित रहकर अपने दिव्य तेजसे उन विघ्नकारी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। मैं इन्हें अनेक प्रकारका श्रेय प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥

'उस श्रेयको पाकर ये तीनों लोकोंमें विख्यात होंगे। श्रीरामके सामने आकर वे दोनों राक्षस किसी तरह ठहर नहीं सकते॥ ११॥

'इन रघुनन्दनके सिवा दूसरा कोई पुरुष उन राक्षसोंको मारनेका साहस नहीं कर सकता। नृपश्रेष्ठ! अपने बलका घमण्ड रखनेवाले वे दोनों पापी निशाचर कालपाशके अधीन हो गये हैं; अतः महात्मा श्रीरामके

सामने नहीं टिक सकते॥ १२½ ॥

'भूपाल! आप पुत्रविषयक स्नेहको सामने न लाइये। मैं आपसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि उन दोनों राक्षसोंको इनके हाथसे मरा हुआ ही समझिये॥ १३½ ॥

'सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीराम क्या हैं—यह मैं जानता हूँ। महातेजस्वी वसिष्ठजी तथा ये अन्य तपस्वी भी जानते हैं॥ १४½ ॥

'राजेन्द्र! यदि आप इस भूमण्डलमें धर्म-लाभ और उत्तम यशको स्थिर रखना चाहते हों तो श्रीरामको मुझे दे दीजिये॥ १५½ ॥

'ककुत्स्थनन्दन! यदि वसिष्ठ आदि आपके सभी मन्त्री आपको अनुमति दें तो आप श्रीरामको मेरे साथ विदा कर दीजिये॥ १६½ ॥

'मुझे रामको ले जाना अभीष्ट है। ये भी बड़े होनेके कारण अब आसक्तिरहित हो गये हैं; अतः आप यज्ञके अवशिष्ट दस दिनोंके लिये अपने पुत्र कमलनयन श्रीरामको मुझे दे दीजिये॥ १७½ ॥

'रघुनन्दन! आप ऐसा कीजिये जिससे मेरे यज्ञका समय व्यतीत न हो जाय। आपका कल्याण हो। आप अपने मनको शोक और चिन्तामें न डालिये'॥ १८½ ॥

यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहकर धर्मात्मा, महातेजस्वी, परमबुद्धिमान् विश्वामित्रजी चुप हो गये।

विश्वामित्रका यह शुभ वचन सुनकर महाराज दशरथको पुत्र-वियोगकी आशङ्कासे महान् दुःख हुआ। वे उससे पीड़ित हो सहसा काँप उठे और बेहोश हो गये॥ २०½ ॥

थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश हुआ, तब वे भयभीत हो विषाद करने लगे। विश्वामित्र मुनिका वचन राजाके हृदय और मनको विदीर्ण करनेवाला था। उसे सुनकर उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई। वे महामनस्वी महाराज अपने आसनसे विचलित हो मूर्च्छित हो गये॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

राजा दशरथका विश्वामित्रको अपना पुत्र देनेसे इनकार करना और विश्वामित्रका कुपित होना

विश्वामित्रजीका वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ दशरथ दो घड़ीके लिये संज्ञाशून्य-से हो गये। फिर सचेत होकर इस प्रकार बोले—॥ १॥

'महर्षे! मेरा कमलनयन राम अभी पूरे सोलह वर्षका भी नहीं हुआ है। मैं इसमें राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी योग्यता नहीं देखता॥ २॥

'यह मेरी अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं पालक और स्वामी भी हूँ। इस सेनाके साथ मैं स्वयं ही चलकर उन निशाचरोंके साथ युद्ध करूँगा॥ ३॥

'ये मेरे शूरवीर सैनिक, जो अस्त्रविद्यामें कुशल और पराक्रमी हैं, राक्षसोंके साथ जूझनेकी योग्यता रखते हैं; अतः इन्हें ही ले जाइये; रामको ले जाना उचित नहीं होगा॥ ४॥

'मैं स्वयं ही हाथमें धनुष ले युद्धके मुहानेपर रहकर आपके यज्ञकी रक्षा करूँगा और जबतक इस शरीरमें प्राण रहेंगे तबतक निशाचरोंके साथ लड़ता रहूँगा॥ ५॥

'मेरे द्वारा सुरक्षित होकर आपका नियमानुष्ठान बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण होगा; अतः मैं ही वहाँ आपके साथ चलूँगा। आप रामको न ले जाइये॥ ६॥

'मेरा राम अभी बालक है। इसने अभीतक युद्धकी विद्या ही नहीं सीखी है। यह दूसरेके बलाबलको नहीं जानता है। न तो यह अस्त्र-बलसे सम्पन्न है और न युद्धकी कलामें निपुण ही॥ ७॥

'अतः यह राक्षसोंसे युद्ध करने योग्य नहीं है; क्योंकि राक्षस मायासे—छल-कपटसे युद्ध करते हैं। इसके सिवा रामसे वियोग हो जानेपर मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता; मुनिश्रेष्ठ! इसलिये आप मेरे रामको न ले जाइये। अथवा ब्रह्मन्! यदि आपकी इच्छा रामको ही ले जानेकी हो तो चतुरङ्गिणी सेनाके साथ मैं भी चलता हूँ। मेरे साथ इसे ले चलिये॥ ८-९½ ॥

'कुशिकनन्दन! मेरी अवस्था साठ हजार वर्षकी हो गयी। इस बुढ़ापेमें बड़ी कठिनाईसे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हुई है, अतः आप रामको न ले जाइये॥ १०½ ॥

'धर्मप्रधान राम मेरे चारों पुत्रोंमें ज्येष्ठ है; इसलिये उसपर मेरा प्रेम सबसे अधिक है; अतः आप रामको न ले जाइये॥ ११½ ॥

'वे राक्षस कैसे पराक्रमी हैं, किसके पुत्र हैं और कौन हैं? उनका डीलडौल कैसा है? मुनीश्वर! उनकी

रक्षा कौन करते हैं? राम उन राक्षसोंका सामना कैसे कर सकता है? ॥ १२-१३ ॥

'ब्रह्मन्! मेरे सैनिकोंको या स्वयं मुझे ही उन मायायोधी राक्षसोंका प्रतीकार कैसे करना चाहिये? भगवन्! ये सारी बातें आप मुझे बताइये। उन दुष्टोंके साथ युद्धमें मुझे कैसे खड़ा होना चाहिये? क्योंकि राक्षस बड़े बलाभिमानी होते हैं'॥ १४½ ॥

राजा दशरथकी इस बातको सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'महाराज! रावण नामसे प्रसिद्ध एक राक्षस है, जो महर्षि पुलस्त्यके कुलमें उत्पन्न हुआ है। उसे ब्रह्माजीसे मुँहमाँगा वरदान प्राप्त हुआ है; जिससे महान् बलशाली और महापराक्रमी होकर बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ वह निशाचर तीनों लोकोंके निवासियोंको अत्यन्त कष्ट दे रहा है। सुना जाता है कि राक्षसराज रावण विश्रवा मुनिका औरस पुत्र तथा साक्षात् कुबेरका भाई है॥

'वह महाबली निशाचर इच्छा रहते हुए भी स्वयं आकर यज्ञमें विघ्न नहीं डालता (अपने लिये इसे तुच्छ कार्य समझता है); इसलिये उसीकी प्रेरणासे दो महान् बलवान् राक्षस मारीच और सुबाहु यज्ञोंमें विघ्न डाला करते हैं'॥ १८-१९ ॥

विश्वामित्र मुनिके ऐसा कहनेपर राजा दशरथ उनसे इस प्रकार बोले—'मुनिवर! मैं उस दुरात्मा रावणके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकता॥ २० ॥

'धर्मज्ञ महर्षे! आप मेरे पुत्रपर तथा मुझ मन्दभागी दशरथपर भी कृपा कीजिये; क्योंकि आप मेरे देवता तथा गुरु हैं॥ २१ ॥

'युद्धमें रावणका वेग तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, गरुड़ और नाग भी नहीं सह सकते; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है॥ २२ ॥

'मुनिश्रेष्ठ! रावण समरांगणमें बलवानोंके बलका अपहरण कर लेता है, अत: मैं अपनी सेना और पुत्रोंके साथ रहकर भी उससे तथा उसके सैनिकोंसे युद्ध करनेमें असमर्थ हूँ॥ २३½ ॥

'ब्रह्मन्! यह मेरा देवोपम पुत्र युद्धकी कलासे सर्वथा अनभिज्ञ है। इसकी अवस्था भी अभी बहुत थोड़ी है; इसलिये मैं इसे किसी तरह नहीं दूँगा॥ २४½ ॥

'मारीच और सुबाहु सुप्रसिद्ध दैत्य सुन्द और उपसुन्दके पुत्र हैं। वे दोनों युद्धमें यमराजके समान हैं। यदि वे ही आपके यज्ञमें विघ्न डालनेवाले हैं तो मैं उनका सामना करनेके लिये अपने पुत्रको नहीं दूँगा; क्योंकि वे दोनों प्रबल पराक्रमी और युद्धविषयक उत्तम शिक्षासे सम्पन्न हैं॥ २५-२६ ॥

'मैं उन दोनोंमेंसे किसी एकके साथ युद्ध करनेके लिये अपने सुहृदोंके साथ चलूँगा; अन्यथा—यदि आप मुझे न ले जाना चाहें तो मैं भाई-बन्धुओंसहित आपसे अनुनय-विनय करूँगा कि आप रामको छोड़ दें'॥ २७ ॥

राजा दशरथके ऐसे वचन सुनकर विप्रवर कुशिकनन्दन विश्वामित्रके मनमें महान् क्रोधका आवेश हो आया, जैसे यज्ञशालामें अग्निको भलीभाँति आहुति देकर घीकी धारासे अभिषिक्त कर दिया जाय और वह प्रज्वलित हो उठे, उसी तरह अग्नितुल्य तेजस्वी महर्षि विश्वामित्र भी क्रोधसे जल उठे॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रके रोषपूर्ण वचन तथा वसिष्ठका राजा दशरथको समझाना

राजा दशरथकी बातके एक-एक अक्षरमें पुत्रके प्रति स्नेह भरा हुआ था, उसे सुनकर महर्षि विश्वामित्र कुपित हो उनसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

'राजन्! पहले मेरी माँगी हुई वस्तुके देनेकी प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे तोड़ना चाहते हो। प्रतिज्ञाका यह त्याग रघुवंशियोंके योग्य तो नहीं है। यह बर्ताव तो इस कुलके विनाशका सूचक है॥ २ ॥

'नरेश्वर! यदि तुम्हें ऐसा ही उचित प्रतीत होता है तो मैं जैसे आया था, वैसे ही लौट जाऊँगा। ककुत्स्थकुलके रत्न! अब तुम अपनी प्रतिज्ञा झूठी करके हितैषी सुहृदोंसे घिरे रहकर सुखी रहो'॥ ३ ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रके कुपित होते ही सारी पृथ्वी काँप उठी और देवताओंके मनमें महान् भय समा गया॥ ४ ॥

उनके रोषसे सारे संसारको त्रस्त हुआ जान उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धीरचित्त महर्षि वसिष्ठने राजासे इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

'महाराज! आप इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके कुलमें साक्षात् दूसरे धर्मके समान उत्पन्न हुए हैं। धैर्यवान्, उत्तम व्रतके पालक तथा श्रीसम्पन्न हैं। आपको अपने

धर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये॥ ६॥

''रघुकुलभूषण दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं' यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। अतः आप अपने धर्मका ही पालन कीजिये; अधर्मका भार सिरपर न उठाइये॥ ७॥

'मैं अमुक कार्य करूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा करके भी जो उस वचनका पालन नहीं करता, उसके यज्ञ-यागादि इष्ट तथा बावली-तालाब बनवाने आदि पूर्त कर्मोंके पुण्यका नाश हो जाता है, अतः आप श्रीरामको विश्वामित्रजीके साथ भेज दीजिये॥ ८॥

'ये अस्त्रविद्या जानते हों या न जानते हों, राक्षस इनका सामना नहीं कर सकते। जैसे प्रज्वलित अग्निद्वारा सुरक्षित अमृतपर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार कुशिकनन्दन विश्वामित्रसे सुरक्षित हुए श्रीरामका वे राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते॥ ९॥

'ये श्रीराम तथा महर्षि विश्वामित्र साक्षात् धर्मकी मूर्ति हैं। ये बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं। विद्याके द्वारा ही ये संसारमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं। तपस्याके तो ये विशाल भण्डार ही हैं॥ १०॥

'चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें जो नाना प्रकारके अस्त्र हैं, उन सबको ये जानते हैं। इन्हें मेरे सिवा दूसरा कोई पुरुष न तो अच्छी तरह जानता है और न कोई जानेंगे ही॥ ११॥

'देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा बड़े-बड़े नाग भी इनके प्रभावको नहीं जानते हैं॥ १२॥

'प्रायः सभी अस्त्र प्रजापति कृशाश्वके परम धर्मात्मा पुत्र हैं। उन्हें प्रजापतिने पूर्वकालमें कुशिकनन्दन विश्वामित्रको जब कि वे राज्यशासन करते थे, समर्पित कर दिया था॥ १३॥

'कृशाश्वके वे पुत्र प्रजापति दक्षकी दो पुत्रियोंकी संतानें हैं। उनके अनेक रूप हैं। वे सब-के-सब महान् शक्तिशाली, प्रकाशमान और विजय दिलानेवाले हैं॥ १४॥

'प्रजापति दक्षकी दो सुन्दरी कन्याएँ हैं, उनके नाम हैं जया और सुप्रभा। उन दोनोंने एक सौ परम प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्रोंको उत्पन्न किया है॥ १५॥

'उनमेंसे जयाने वर पाकर पचास श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया है, जो अपरिमित शक्तिशाली और रूपरहित हैं। वे सब-के-सब असुरोंकी सेनाओंका वध करनेके लिये प्रकट हुए हैं॥ १६॥

'फिर सुप्रभाने भी संहार नामक पचास पुत्रोंको जन्म दिया, जो अत्यन्त दुर्जय हैं। उनपर आक्रमण करना किसीके लिये भी सर्वथा कठिन है तथा वे सब-के-सब अत्यन्त बलिष्ठ हैं॥ १७॥

'ये धर्मज्ञ कुशिकनन्दन उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको अच्छी तरह जानते हैं। जो अस्त्र अबतक उपलब्ध नहीं हुए हैं, उनको भी उत्पन्न करनेकी इनमें पूर्ण शक्ति है॥ १८॥

'रघुनन्दन! इसलिये इन मुनिश्रेष्ठ धर्मज्ञ महात्मा विश्वामित्रजीसे भूत या भविष्यकी कोई बात छिपी नहीं है॥ १९॥

'राजन्! ये महातेजस्वी, महायशस्वी विश्वामित्र ऐसे प्रभावशाली हैं। अतः इनके साथ रामको भेजनेमें आप किसी प्रकारका संदेह न करें॥ २०॥

'महर्षि कौशिक स्वयं भी उन राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हैं; किंतु ये आपके पुत्रका कल्याण करना चाहते हैं, इसीलिये यहाँ आकर आपसे याचना कर रहे हैं'॥ २१॥

महर्षि वसिष्ठके इस वचनसे विख्यात यशवाले रघुकुलशिरोमणि नृपश्रेष्ठ दशरथका मन प्रसन्न हो गया। वे आनन्दमग्न हो गये और बुद्धिसे विचार करनेपर विश्वामित्रजीकी प्रसन्नताके लिये उनके साथ श्रीरामका जाना उन्हें रुचिके अनुकूल प्रतीत होने लगा॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

राजा दशरथका स्वस्तिवाचनपूर्वक राम-लक्ष्मणको मुनिके साथ भेजना, मार्गमें उन्हें विश्वामित्रसे बला और अतिबला नामक विद्याकी प्राप्ति

वसिष्ठके ऐसा कहनेपर राजा दशरथका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने स्वयं ही लक्ष्मणसहित श्रीरामको अपने पास बुलाया। फिर माता कौसल्या, पिता दशरथ और पुरोहित वसिष्ठने स्वस्तिवाचन करनेके पश्चात् उनका यात्रासम्बन्धी मंगलकार्य सम्पन्न किया—श्रीरामको मंगलसूचक मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया गया॥ १-२॥

तदनन्तर राजा दशरथने पुत्रका मस्तक सूँघकर अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उसको विश्वामित्रको सौंप दिया॥ ३॥

उस समय धूलरहित सुखदायिनी वायु चलने

लगी। कमलनयन श्रीरामको विश्वामित्रजीके साथ जाते देख देवताओंने आकाशसे वहाँ फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा की। देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं। महात्मा श्रीरामकी यात्राके समय शङ्खों और नगाड़ोंकी ध्वनि होने लगी॥

आगे-आगे विश्वामित्र, उनके पीछे काकपक्षधारी महायशस्वी श्रीराम तथा उनके पीछे सुमित्राकुमार लक्ष्मण जा रहे थे॥ ६॥

उन दोनों भाइयोंने पीठपर तरकस बाँध रखे थे। उनके हाथोंमें धनुष शोभा पा रहे थे तथा वे दोनों दसों दिशाओंको सुशोभित करते हुए महात्मा विश्वामित्रके पीछे तीन-तीन फनवाले दो सर्पोंके समान चल रहे थे। एक ओर कंधेपर धनुष, दूसरी ओर पीठपर तूणीर और बीचमें मस्तक—इन्हीं तीनोंकी तीन फनसे उपमा दी गयी है॥ ७॥

उनका स्वभाव उच्च एवं उदार था। अपनी अनुपम कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले वे दोनों अनिन्द्य सुन्दर राजकुमार सब ओर शोभाका प्रसार करते हुए विश्वामित्रजीके पीछे उसी तरह जा रहे थे, जैसे ब्रह्माजीके पीछे दोनों अश्विनीकुमार चलते हैं॥ ८॥

वे दोनों भाई कुमार श्रीराम और लक्ष्मण वस्त्र और आभूषणोंसे अच्छी तरह अलंकृत थे। उनके हाथोंमें धनुष थे। उन्होंने अपने हाथोंकी अंगुलियोंमें गोहटीके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहन रखे थे। उनके कटिप्रदेशमें तलवारें लटक रही थीं। उनके श्रीअंग बड़े मनोहर थे। वे महातेजस्वी श्रेष्ठ वीर अद्भुत कान्तिसे उद्भासित हो सब ओर अपनी शोभा फैलाते हुए कुशिकपुत्र विश्वामित्रका अनुसरण कर रहे थे। उस समय वे दोनों वीर अचिन्त्य शक्तिशाली स्थाणुदेव (महादेव) के पीछे चलनेवाले दो अग्निकुमार स्कन्द और विशाखकी भाँति शोभा पाते थे॥

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर जाकर सरयूके दक्षिण तटपर विश्वामित्रने मधुर वाणीमें रामको सम्बोधित किया और कहा—'वत्स राम! अब सरयूके जलसे आचमन करो। इस आवश्यक कार्यमें विलम्ब न हो॥

'बला और अतिबला नामसे प्रसिद्ध इस मन्त्र-समुदायको ग्रहण करो। इसके प्रभावसे तुम्हें कभी श्रम (थकावट) का अनुभव नहीं होगा। ज्वर (रोग या चिन्ताजनित कष्ट) नहीं होगा। तुम्हारे रूपमें किसी प्रकारका विकार या उलट-फेर नहीं होने पायेगा॥ १३॥

'सोते समय अथवा असावधानीकी अवस्थामें भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतलपर बाहुबलमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा॥ १४॥

'तात! रघुकुलनन्दन राम! बला और अतिबलाका अभ्यास करनेसे तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायगा॥ १५॥

'अनघ! सौभाग्य, चातुर्य, ज्ञान और बुद्धिसम्बन्धी निश्चयमें तथा किसीके प्रश्नका उत्तर देनेमें भी कोई तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा॥ १६॥

'इन दोनों विद्याओंके प्राप्त हो जानेपर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा; क्योंकि ये बला और अतिबला नामक विद्याएँ सब प्रकारके ज्ञानकी जननी हैं॥ १७॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम! तात रघुनन्दन! बला और अतिबलाका अभ्यास कर लेनेपर तुम्हें भूख-प्यासका भी कष्ट नहीं होगा; अतः रघुकुलको आनन्दित करनेवाले राम! तुम सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षाके लिये इन दोनों विद्याओंको ग्रहण करो॥ १८ $\frac{१}{२}$॥

'इन दोनों विद्याओंका अध्ययन कर लेनेपर इस भूतलपर तुम्हारे यशका विस्तार होगा। ये दोनों विद्याएँ ब्रह्माजीकी तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं॥ १९॥

'ककुत्स्थनन्दन! मैंने इन दोनोंको तुम्हें देनेका विचार किया है। राजकुमार! तुम्हीं इनके योग्य पात्र हो। यद्यपि तुममें इस विद्याको प्राप्त करने योग्य बहुत-से गुण हैं अथवा सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है तथापि मैंने तपोबलसे इनका अर्जन किया है। अतः मेरी तपस्यासे परिपूर्ण होकर ये तुम्हारे लिये बहुरूपिणी होंगी—अनेक प्रकारके फल प्रदान करेंगी'॥ २० $\frac{१}{२}$॥

तब श्रीराम आचमन करके पवित्र हो गये। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने उन शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षिसे वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कीं॥ २१ $\frac{१}{२}$॥

विद्यासे सम्पन्न होकर भयङ्कर पराक्रमी श्रीराम सहस्रों किरणोंसे युक्त शरत्कालीन भगवान् सूर्यके समान शोभा पाने लगे॥ २२ $\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् श्रीरामने विश्वामित्रजीकी सारी गुरुजनोचित सेवाएँ करके हर्षका अनुभव किया। फिर वे तीनों वहाँ सरयूके तटपर रातमें सुखपूर्वक रहे॥ २३॥

राजा दशरथके वे दोनों श्रेष्ठ राजकुमार उस समय वहाँ तृणकी शय्यापर, जो उनके योग्य नहीं थी, सोये थे। महर्षि विश्वामित्र अपनी वाणीद्वारा उन दोनोंके प्रति लाड़-प्यार प्रकट कर रहे थे। इससे उन्हें वह रात बड़ी सुखमयी-सी प्रतीत हुई॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ सर्ग

विश्वामित्रसहित श्रीराम और लक्ष्मणका सरयू-गंगासंगमके समीप पुण्य आश्रममें रातको ठहरना

जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब महामुनि विश्वामित्रने तिनकों और पत्तोंके बिछौनेपर सोये हुए उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजकुमारोंसे कहा— ॥ १ ॥

'नरश्रेष्ठ राम! तुम्हारे-जैसे पुत्रको पाकर महारानी कौसल्या सुपुत्रजननी कही जाती हैं। यह देखो, प्रात:कालकी संध्याका समय हो रहा है; उठो और प्रतिदिन किये जानेवाले देवसम्बन्धी कार्योंको पूर्ण करो'॥ २ ॥

महर्षिका यह परम उदार वचन सुनकर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने स्नान करके देवताओंका तर्पण किया और फिर वे परम उत्तम जपनीय मन्त्र गायत्रीका जप करने लगे॥ ३ ॥

नित्यकर्म समाप्त करके महापराक्रमी श्रीराम और लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हो तपोधन विश्वामित्रको प्रणाम करके वहाँसे आगे जानेको उद्यत हो गये॥ ४ ॥

जाते-जाते उन महाबली राजकुमारोंने गंगा और सरयूके शुभ संगमपर पहुँचकर वहाँ दिव्य त्रिपथगा नदी गंगाजीका दर्शन किया॥ ५ ॥

संगमके पास ही शुद्ध अन्त:करणवाले महर्षियोंका एक पवित्र आश्रम था, जहाँ वे कई हजार वर्षोंसे तीव्र तपस्या करते थे॥ ६ ॥

उस पवित्र आश्रमको देखकर रघुकुलरत्न श्रीराम और लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महात्मा विश्वामित्रसे यह बात कही— ॥ ७ ॥

'भगवन्! यह किसका पवित्र आश्रम है? और इसमें कौन पुरुष निवास करता है? यह हम दोनों सुनना चाहते हैं। इसके लिये हमारे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है'॥ ८ ॥

उन दोनोंका यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र हँसते हुए बोले—'राम! यह आश्रम पहले जिसके अधिकारमें रहा है, उसका परिचय देता हूँ, सुनो॥ ९ ॥

'विद्वान् पुरुष जिसे काम कहते हैं, वह कन्दर्प पूर्वकालमें मूर्तिमान् था—शरीर धारण करके विचरता था। उन दिनों भगवान् स्थाणु (शिव) इसी आश्रममें चित्तको एकाग्र करके नियमपूर्वक तपस्या करते थे॥ १० ॥

'एक दिन समाधिसे उठकर देवेश्वर शिव मरुद्गणोंके साथ कहीं जा रहे थे। उसी समय दुर्बुद्धि कामने उनपर आक्रमण किया। यह देख महात्मा शिवने हुङ्कार करके उसे रोका॥ ११ ॥

'रघुनन्दन! भगवान् रुद्रने रोषभरी दृष्टिसे अवहेलनापूर्वक उसकी ओर देखा; फिर तो उस दुर्बुद्धिके सारे अंग उसके शरीरसे जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गये॥ १२ ॥

'वहाँ दग्ध हुए महामना कन्दर्पका शरीर नष्ट हो गया। देवेश्वर रुद्रने अपने क्रोधसे कामको अंगहीन कर दिया॥ १३ ॥

'राम! तभीसे वह 'अनंग' नामसे विख्यात हुआ। शोभाशाली कन्दर्पने जहाँ अपना अंग छोड़ा था, वह प्रदेश अंगदेशके नामसे विख्यात हुआ॥ १४ ॥

'यह उन्हीं महादेवजीका पुण्य आश्रम है। वीर! ये मुनिलोग पूर्वकालमें उन्हीं स्थाणुके धर्मपरायण शिष्य थे। इनका सारा पाप नष्ट हो गया है॥ १५ ॥

'शुभदर्शन राम! आजकी रातमें हमलोग यहीं इन पुण्यसलिला सरिताओंके बीचमें निवास करें। कल सबेरे इन्हें पार करेंगे॥ १६ ॥

'हम सब लोग पवित्र होकर इस पुण्य आश्रममें चलें। यहाँ रहना हमारे लिये बहुत उत्तम होगा। नरश्रेष्ठ! यहाँ स्नान करके जप और हवन करनेके बाद हम रातमें बड़े सुखसे रहेंगे'॥ १७½ ॥

वे लोग वहाँ इस प्रकार आपसमें बातचीत कर ही रहे थे कि उस आश्रममें निवास करनेवाले मुनि तपस्याद्वारा प्राप्त हुई दूर दृष्टिसे उनका आगमन जानकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें हर्षजनित उल्लास छा गया॥ १८½ ॥

उन्होंने विश्वामित्रजीको अर्घ्य, पाद्य और अतिथि-सत्कारकी सामग्री अर्पित करनेके बाद श्रीराम और लक्ष्मणका भी आतिथ्य किया॥ १९½ ॥

यथोचित सत्कार करके उन मुनियोंने इन अतिथियोंका भाँति-भाँतिकी कथा-वार्ताओंद्वारा मनोरञ्जन किया। फिर उन महर्षियोंने एकाग्रचित्त होकर यथावत् संध्यावन्दन एवं जप किया॥ २०½ ॥

तदनन्तर वहाँ रहनेवाले मुनियोंने अन्य उत्तम

व्रतधारी मुनियोंके साथ विश्वामित्र आदिको शयनके लिये उपयुक्त स्थानमें पहुँचा दिया। सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले उस पुण्य आश्रममें उन विश्वामित्र आदिने बड़े सुखसे निवास किया॥ २१½ ॥

धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उन मनोहर राजकुमारोंका सुन्दर कथाओंद्वारा मनोरञ्जन किया॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणका गंगापार होते समय विश्वामित्रजीसे जलमें उठती हुई तुमुलध्वनिके विषयमें प्रश्न करना, विश्वामित्रजीका उन्हें इसका कारण बताना तथा मलद, करूष एवं ताटका वनका परिचय देते हुए इन्हें ताटकावधके लिये आज्ञा प्रदान करना

तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें नित्यकर्मसे निवृत्त हुए विश्वामित्रजीको आगे करके शत्रुदमन वीर श्रीराम और लक्ष्मण गंगानदीके तटपर आये॥ १॥

उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन पुण्याश्रमनिवासी महात्मा मुनियोंने एक सुन्दर नाव मँगवाकर विश्वामित्रजीसे कहा—॥ २॥

'महर्षे! आप इन राजकुमारोंको आगे करके इस नावपर बैठ जाइये और मार्गको निर्विघ्नतापूर्वक तै कीजिये, जिससे विलम्ब न हो'॥ ३॥

विश्वामित्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर उन महर्षियोंकी सराहना की और वे श्रीराम तथा लक्ष्मणके साथ समुद्र-गामिनी गंगानदीको पार करने लगे॥ ४॥

गंगाकी बीच धारामें आनेपर छोटे भाईसहित महातेजस्वी श्रीरामको दो जलोंके टकरानेकी बड़ी भारी आवाज सुनायी देने लगी। 'यह कैसी आवाज है? क्यों तथा कहाँसे आ रही है?' इस बातको निश्चितरूपसे जाननेकी इच्छा उनके भीतर जाग उठी॥ ५½ ॥

तब श्रीरामने नदीके मध्यभागमें मुनिवर विश्वामित्रसे पूछा—'जलके परस्पर मिलनेसे यहाँ ऐसी तुमुलध्वनि क्यों हो रही है?'॥ ६½ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचनमें इस रहस्यको जाननेकी उत्कण्ठा भरी हुई थी। उसे सुनकर धर्मात्मा विश्वामित्रने उस महान् शब्द (तुमुलध्वनि) का सुनिश्चित कारण बताते हुए कहा—॥ ७½ ॥

'नरश्रेष्ठ राम! कैलासपर्वतपर एक सुन्दर सरोवर है। उसे ब्रह्माजीने अपने मानसिक संकल्पसे प्रकट किया था। मनके द्वारा प्रकट होनेसे ही वह उत्तम सरोवर 'मानस' कहलाता है॥ ८½ ॥

'उस सरोवरसे एक नदी निकली है, जो अयोध्यापुरीसे सटकर बहती है। ब्रह्मसरसे निकलनेके कारण वह पवित्र नदी सरयूके नामसे विख्यात है॥ ९½ ॥

'उसीका जल गंगाजीमें मिल रहा है। दो नदियोंके जलोंके संघर्षसे ही यह भारी आवाज हो रही है; जिसकी कहीं तुलना नहीं है। राम! तुम अपने मनको संयममें रखकर इस संगमके जलको प्रणाम करो'॥ १०½ ॥

यह सुनकर उन दोनों अत्यन्त धर्मात्मा भाइयोंने उन दोनों नदियोंको प्रणाम किया और गंगाके दक्षिण किनारेपर उतरकर वे दोनों बन्धु जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए चलने लगे॥ ११½ ॥

उस समय इक्ष्वाकुनन्दन राजकुमार श्रीरामने अपने सामने एक भयङ्कर वन देखा, जिसमें मनुष्योंके आने-जानेका कोई चिह्न नहीं था। उसे देखकर उन्होंने मुनिवर विश्वामित्रसे पूछा—॥ १२½ ॥

'गुरुदेव! यह वन तो बड़ा ही अद्भुत एवं दुर्गम है। यहाँ चारों ओर झिल्लियोंकी झनकार सुनायी देती है। भयानक हिंसक जन्तु भरे हुए हैं। भयङ्कर बोली बोलनेवाले पक्षी सब ओर फैले हुए हैं। नाना प्रकारके विहंगम भीषण स्वरमें चहचहा रहे हैं॥ १३-१४॥

'सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी भी इस जंगलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। धव (धौरा), अश्वकर्ण (एक प्रकारके शालवृक्ष), ककुभ (अर्जुन), बेल, तिन्दुक (तेन्दू), पाटल (पाड़र) तथा बेरके वृक्षोंसे भरा हुआ यह भयङ्कर वन क्या है?—इसका क्या नाम है?'॥ १५½ ॥

तब महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रने उनसे कहा—'वत्स! ककुत्स्थनन्दन! यह भयङ्कर वन जिसके अधिकारमें रहा है, उसका परिचय सुनो॥ १६½ ॥

'नरश्रेष्ठ! पूर्वकालमें यहाँ दो समृद्धिशाली जनपद थे—मलद और करूष। ये दोनों देश देवताओंके

प्रयत्नसे निर्मित हुए थे॥ १७ $\frac{१}{२}$ ॥

'राम! पहलेकी बात है, वृत्रासुरका वध करनेके पश्चात् देवराज इन्द्र मलसे लिप्त हो गये। क्षुधाने भी उन्हें धर दबाया और उनके भीतर ब्रह्महत्या प्रविष्ट हो गयी॥

'तब देवताओं तथा तपोधन ऋषियोंने मलिन इन्द्रको यहाँ गंगाजलसे भरे हुए कलशोंद्वारा नहलाया तथा उनके मल (और कारूष—क्षुधा) को छुड़ा दिया॥

इस भूभागमें देवराज इन्द्रके शरीरसे उत्पन्न हुए मल और कारूषको देकर देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए॥

'इन्द्र पूर्ववत् निर्मल, निष्करूष (क्षुधाहीन) एवं शुद्ध हो गये। तब उन्होंने प्रसन्न होकर इस देशको यह उत्तम वर प्रदान किया—'ये दो जनपद लोकमें मलद और करूष नामसे विख्यात होंगे। मेरे अंगजनित मलको धारण करनेवाले ये दोनों देश बड़े समृद्धिशाली होंगे'॥

'बुद्धिमान् इन्द्रके द्वारा की गयी उस देशकी वह पूजा देखकर देवताओंने पाकशासनको बारम्बार साधुवाद दिया॥ २३ $\frac{१}{२}$ ॥

'शत्रुदमन! मलद और करूष—ये दोनों जनपद दीर्घकालतक समृद्धिशाली, धन-धान्यसे सम्पन्न तथा सुखी रहे हैं॥ २४ $\frac{१}{२}$ ॥

'कुछ कालके अनन्तर यहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी आयी, जो अपने शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल धारण करती है॥ २५ $\frac{१}{२}$ ॥

'उसका नाम ताटका है। वह बुद्धिमान् सुन्द नामक दैत्यकी पत्नी है। तुम्हारा कल्याण हो। मारीच नामक राक्षस, जो इन्द्रके समान पराक्रमी है, उस ताटकाका ही पुत्र है। उसकी भुजाएँ गोल, मस्तक बहुत बड़ा, मुँह फैला हुआ और शरीर विशाल है॥ २६-२७॥

'वह भयानक आकारवाला राक्षस यहाँकी प्रजाको सदा ही त्रास पहुँचाता रहता है। रघुनन्दन! वह दुराचारिणी ताटका भी सदा मलद और करूष—इन दोनों जनपदोंका विनाश करती रहती है॥ २८ $\frac{१}{२}$ ॥

'वह यक्षिणी डेढ़ योजन (छः कोस) तकके मार्गको घेरकर इस वनमें रहती है; अतः हमलोगोंको जिस ओर ताटकावन है, उधर ही चलना चाहिये। तुम अपने बाहुबलका सहारा लेकर इस दुराचारिणीको मार डालो॥ २९-३०॥

'मेरी आज्ञासे इस देशको पुनः निष्कण्टक बना दो। यह देश ऐसा रमणीय है तो भी इस समय कोई यहाँ आ नहीं सकता है॥ ३१॥

'राम! उस असह्य एवं भयानक यक्षिणीने इस देशको उजाड़ कर डाला है। यह वन ऐसा भयङ्कर क्यों है, यह सारा रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया। उस यक्षिणीने ही इस सारे देशको उजाड़ दिया है और वह आज भी अपने उस क्रूर कर्मसे निवृत्त नहीं हुई है'॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

श्रीरामके पूछनेपर विश्वामित्रजीका उनसे ताटकाकी उत्पत्ति, विवाह एवं शाप आदिका प्रसंग सुनाकर उन्हें ताटका-वधके लिये प्रेरित करना

अपरिमित प्रभावशाली विश्वामित्र मुनिका यह उत्तम वचन सुनकर पुरुषसिंह श्रीरामने यह शुभ बात कही—॥ १॥

'मुनिश्रेष्ठ! जब वह यक्षिणी एक अबला सुनी जाती है, तब तो उसकी शक्ति थोड़ी ही होनी चाहिये; फिर वह एक हजार हाथियोंका बल कैसे धारण करती है?'॥ २॥

अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथके कहे हुए इस वचनको सुनकर विश्वामित्रजी अपनी मधुर वाणीद्वारा लक्ष्मणसहित शत्रुदमन श्रीरामको हर्ष प्रदान करते हुए बोले—'रघुनन्दन! जिस कारणसे ताटका अधिक बलशालिनी हो गयी है, वह बताता हूँ, सुनो। उसमें वरदानजनित बलका उदय हुआ है; अतः वह अबला होकर भी बल धारण करती है (सबला हो गयी है)॥ ३-४॥

'पूर्वकालकी बात है, सुकेतु नामसे प्रसिद्ध एक महान् यक्ष थे। वे बड़े पराक्रमी और सदाचारी थे; परंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी; इसलिये उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की॥ ५॥

'श्रीराम! यक्षराज सुकेतुकी उस तपस्यासे ब्रह्माजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुकेतुको एक कन्यारत्न प्रदान किया, जिसका नाम ताटका था॥ ६॥

ब्रह्माजीने ही उस कन्याको एक हजार हाथियोंके समान बल दे दिया; परंतु उन महायशस्वी पितामहने उस यक्षको पुत्र नहीं ही दिया (उसके संकल्पके अनुसार पुत्र प्राप्त हो जानेपर उसके द्वारा जनताका

अत्यधिक उत्पीड़न होता, यही सोचकर ब्रह्माजीने पुत्र नहीं दिया)॥ ७॥

'धीरे-धीरे वह यक्ष-बालिका बढ़ने लगी और बढ़कर रूप-यौवनसे सुशोभित होने लगी। उस अवस्थामें सुकेतुने अपनी उस यशस्विनी कन्याको जम्भपुत्र सुन्दके हाथमें उसकी पत्नीके रूपमें दे दिया॥ ८॥

'कुछ कालके बाद उस यक्षी ताटकाने मारीच नामसे प्रसिद्ध एक दुर्जय पुत्रको जन्म दिया, जो अगस्त्य मुनिके शापसे राक्षस हो गया॥ ९॥

'श्रीराम! अगस्त्यने ही शाप देकर ताटकापति सुन्दको भी मार डाला। उसके मारे जानेपर ताटका पुत्रसहित जाकर मुनिवर अगस्त्यको भी मौतके घाट उतार देनेकी इच्छा करने लगी॥ १०॥

'वह कुपित हो मुनिको खा जानेके लिये गर्जना करती हुई दौड़ी। उसे आती देख भगवान् अगस्त्य मुनिने मारीचसे कहा—'तू देवयोनि-रूपका परित्याग करके राक्षसभावको प्राप्त हो जा'॥ ११$\frac{१}{२}$॥

'फिर अत्यन्त अमर्षमें भरे हुए ऋषिने ताटकाको भी शाप दे दिया—'तू विकराल मुखवाली नरभक्षिणी राक्षसी हो जा। तू है तो महायक्षी; परंतु अब शीघ्र ही इस रूपको त्यागकर तेरा भयङ्कर रूप हो जाय'॥ १२-१३॥

'इस प्रकार शाप मिलनेके कारण ताटकाका अमर्ष और भी बढ़ गया। वह क्रोधसे मूर्च्छित हो उठी और उन दिनों अगस्त्यजी जहाँ रहते थे, उस सुन्दर देशको उजाड़ने लगी॥ १४॥

'रघुनन्दन! तुम गौओं और ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये दुष्ट पराक्रमवाली इस परम भयङ्कर दुराचारिणी यक्षीका वध कर डालो॥ १५॥

'रघुकुलको आनन्दित करनेवाले वीर! इस शापग्रस्त ताटकाको मारनेके लिये तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पुरुष समर्थ नहीं है॥ १६॥

'नरश्रेष्ठ! तुम स्त्री-हत्याका विचार करके इसके प्रति दया न दिखाना। एक राजपुत्रको चारों वर्णोंके हितके लिये स्त्रीहत्या भी करनी पड़े तो उससे मुँह नहीं मोड़ना चाहिये॥ १७॥

'प्रजापालक नरेशको प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये क्रूरतापूर्ण या क्रूरतारहित, पातकयुक्त अथवा सदोष कर्म भी करना पड़े तो कर लेना चाहिये। यह बात उसे सदा ही ध्यानमें रखनी चाहिये॥ १८॥

'जिनके ऊपर राज्यके पालनका भार है, उनका तो यह सनातन धर्म है। ककुत्स्थकुलनन्दन! ताटका महापापिनी है। उसमें धर्मका लेशमात्र भी नहीं है; अत: उसे मार डालो॥ १९॥

'नरेश्वर! सुना जाता है कि पूर्वकालमें विरोचनकी पुत्री मन्थरा सारी पृथ्वीका नाश कर डालना चाहती थी। उसके इस विचारको जानकर इन्द्रने उसका वध कर डाला॥ २०॥

'श्रीराम! प्राचीन कालमें शुक्राचार्यकी माता तथा भृगुकी पतिव्रता पत्नी त्रिभुवनको इन्द्रसे शून्य कर देना चाहती थीं। यह जानकर भगवान् विष्णुने उनको मार डाला॥

'इन्होंने तथा अन्य बहुत-से महामनस्वी पुरुषप्रवर राजकुमारोंने पापचारिणी स्त्रियोंका वध किया है। नरेश्वर! अत: तुम भी मेरी आज्ञासे दया अथवा घृणाको त्यागकर इस राक्षसीको मार डालो'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीरामद्वारा ताटकाका वध

मुनिके ये उत्साहभरे वचन सुनकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजकुमार श्रीरामने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—॥ १॥

'भगवन्! अयोध्यामें मेरे पिता महामना महाराज दशरथने अन्य गुरुजनोंके बीच मुझे यह उपदेश दिया था कि 'बेटा! तुम पिताके कहनेसे पिताके वचनोंका गौरव रखनेके लिये कुशिकनन्दन विश्वामित्रकी आज्ञाका नि:शङ्क होकर पालन करना। कभी भी उनकी बातकी अवहेलना न करना'॥ २-३॥

'अत: मैं पिताजीके उस उपदेशको सुनकर आप ब्रह्मवादी महात्माकी आज्ञासे ताटकावधसम्बन्धी कार्यको उत्तम मानकर करूँगा—इसमें संदेह नहीं है॥ ४॥

'गौ, ब्राह्मण तथा समूचे देशका हित करनेके लिये मैं आप-जैसे अनुपम प्रभावशाली महात्माके आदेशका पालन करनेको सब प्रकारसे तैयार हूँ'॥ ५॥

ऐसा कहकर शत्रुदमन श्रीरामने धनुषके मध्यभागमें मुट्ठी बाँधकर उसे जोरसे पकड़ा और उसकी प्रत्यञ्चापर तीव्र टङ्कार दी। उसकी आवाजसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं॥ ६॥

उस शब्दसे ताटकावनमें रहनेवाले समस्त प्राणी थर्रा उठे। ताटका भी उस टङ्कार-घोषसे पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठी; परंतु फिर कुछ सोचकर अत्यन्त क्रोधमें भर गयी॥ ७॥

उस शब्दको सुनकर वह राक्षसी क्रोधसे अचेत-सी हो गयी थी। उसे सुनते ही वह जहाँसे आवाज आयी थी, उसी दिशाकी ओर रोषपूर्वक दौड़ी॥ ८॥

उसके शरीरकी ऊँचाई बहुत अधिक थी। उसकी मुखाकृति विकृत दिखायी देती थी। क्रोधमें भरी हुई उस विकराल राक्षसीकी ओर दृष्टिपात करके श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ९॥

'लक्ष्मण! देखो तो सही, इस यक्षिणीका शरीर कैसा दारुण एवं भयङ्कर है! इसके दर्शनमात्रसे भीरु पुरुषोंके हृदय विदीर्ण हो सकते हैं॥ १०॥

'मायाबलसे सम्पन्न होनेके कारण यह अत्यन्त दुर्जय हो रही है। देखो, मैं अभी इसके कान और नाक काटकर इसे पीछे लौटनेको विवश किये देता हूँ॥ ११॥

'यह अपने स्त्रीस्वभावके कारण रक्षित है; अतः मुझे इसे मारनेमें उत्साह नहीं है। मेरा विचार यह है कि मैं इसके बल-पराक्रम तथा गमनशक्तिको नष्ट कर दूँ (अर्थात् इसके हाथ-पैर काट डालूँ)'॥ १२॥

श्रीराम इस प्रकार कह ही रहे थे कि क्रोधसे अचेत हुई ताटका वहाँ आ पहुँची और एक बाँह उठाकर गर्जना करती हुई उन्हींकी ओर झपटी॥ १३॥

यह देख ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने अपने हुंकारके द्वारा उसे डाँटकर कहा—'रघुकुलके इन दोनों राजकुमारोंका कल्याण हो। इनकी विजय हो'॥ १४॥

तब ताटकाने उन दोनों रघुवंशी वीरोंपर भयङ्कर धूल उड़ाना आरम्भ किया। वहाँ धूलका विशाल बादल-सा छा गया। उसके द्वारा उसने श्रीराम और लक्ष्मणको दो घड़ीतक मोहमें डाल दिया॥ १५॥

तत्पश्चात् मायाका आश्रय लेकर वह उन दोनों भाइयोंपर पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा करने लगी। यह देख रघुनाथजी उसपर कुपित हो उठे॥ १६॥

रघुवीरने अपनी बाणवर्षाके द्वारा उसकी बड़ी भारी शिलावृष्टिको रोककर अपनी ओर आती हुई उस निशाचरीके दोनों हाथ तीखे सायकोंसे काट डाले॥ १७॥

दोनों भुजाएँ कट जानेसे थकी हुई ताटका उनके निकट खड़ी होकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगी। यह देख सुमित्राकुमार लक्ष्मणने क्रोधमें भरकर उसके नाक-कान काट लिये॥ १८॥

परंतु वह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली यक्षिणी थी; अतः अनेक प्रकारके रूप बनाकर अपनी मायासे श्रीराम और लक्ष्मणको मोहमें डालती हुई अदृश्य हो गयी॥ १९॥

अब वह पत्थरोंकी भयङ्कर वर्षा करती हुई आकाशमें विचरने लगी। श्रीराम और लक्ष्मणपर चारों ओरसे प्रस्तरोंकी वृष्टि होती देख तेजस्वी गाधिनन्दन विश्वामित्रने इस प्रकार कहा—'श्रीराम! इसके ऊपर तुम्हारा दया करना व्यर्थ है। यह बड़ी पापिनी और दुराचारिणी है। सदा यज्ञोंमें विघ्न डाला करती है। यह अपनी मायासे पुनः प्रबल हो उठे, इसके पहले ही इसे मार डालो। अभी संध्याकाल आना चाहता है, इसके पहले ही यह कार्य हो जाना चाहिये; क्योंकि संध्याके समय राक्षस दुर्जय हो जाते हैं'॥ २०—२२½॥

विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर श्रीरामने शब्दवेधी बाण चलानेकी शक्तिका परिचय देते हुए बाण मारकर प्रस्तरोंकी वर्षा करनेवाली उस यक्षिणीको सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया॥ २३½॥

उनके बाण-समूहसे घिर जानेपर मायाबलसे युक्त वह यक्षिणी जोर-जोरसे गर्जना करती हुई श्रीराम और लक्ष्मणके ऊपर टूट पड़ी। उसे चलाये हुए इन्द्रके वज्रकी भाँति वेगसे आती देख श्रीरामने एक बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली। तब ताटका पृथ्वीपर गिरी और मर गयी॥ २४-२५½॥

उस भयङ्कर राक्षसीको मारी गयी देख देवराज इन्द्र तथा देवताओंने श्रीरामको साधुवाद देते हुए उनकी सराहना की॥ २६½॥

उस समय सहस्रलोचन इन्द्र तथा समस्त देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न एवं हर्षोत्फुल्ल होकर विश्वामित्रजीसे कहा—॥ २७½॥

'मुने! कुशिकनन्दन! आपका कल्याण हो। आपने इस कार्यसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको संतुष्ट किया है। अब रघुकुलतिलक श्रीरामपर आप अपना स्नेह प्रकट कीजिये॥ २८½॥

'ब्रह्मन्! प्रजापति कृशाश्वके अस्त्र-रूपधारी

पुत्रोंको, जो सत्यपराक्रमी तथा तपोबलसे सम्पन्न हैं, श्रीरामको समर्पित कीजिये॥ २९ १/२ ॥

'विप्रवर! ये आपके अस्त्रदानके सुयोग्य पात्र हैं तथा आपके अनुसरण (सेवा-शुश्रूषा) में तत्पर रहते हैं। राजकुमार श्रीरामके द्वारा देवताओंका महान् कार्य सम्पन्न होनेवाला है'॥ ३० १/२ ॥

ऐसा कहकर सभी देवता विश्वामित्रजीकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाशमार्गसे चले गये। तत्पश्चात् संध्या हो गयी॥ ३१ १/२ ॥

तदनन्तर ताटकावधसे संतुष्ट हुए मुनिवर विश्वामित्रने श्रीरामचन्द्रजीका मस्तक सूँघकर उनसे यह बात कही—॥ ३२ १/२ ॥

'शुभदर्शन राम! आजकी रातमें हमलोग यहीं निवास करें। कल सबेरे अपने आश्रमपर चलेंगे'॥ ३३ १/२ ॥

विश्वामित्रजीकी यह बात सुनकर दशरथकुमार श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ताटकावनमें रहकर वह रात्रि बड़े सुखसे व्यतीत की॥ ३४ १/२ ॥

उसी दिन वह वन शापमुक्त होकर रमणीय शोभासे सम्पन्न हो गया और चैत्ररथवनकी भाँति अपनी मनोहर छटा दिखाने लगा॥ ३५॥

यक्षकन्या ताटकाका वध करके श्रीरामचन्द्रजी देवताओं तथा सिद्धसमूहोंकी प्रशंसाके पात्र बन गये। उन्होंने प्रातःकालकी प्रतीक्षा करते हुए विश्वामित्रजीके साथ ताटकावनमें निवास किया॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

विश्वामित्रद्वारा श्रीरामको दिव्यास्त्र-दान

ताटकावनमें वह रात बिताकर महायशस्वी विश्वामित्र हँसते हुए मीठे स्वरमें श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ १॥

'महायशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। ताटकावधके कारण मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ; अतः बड़ी प्रसन्नताके साथ तुम्हें सब प्रकारके अस्त्र दे रहा हूँ॥

'इनके प्रभावसे तुम अपने शत्रुओंको—चाहे वे देवता, असुर, गन्धर्व अथवा नाग ही क्यों न हों, रणभूमिमें बलपूर्वक अपने अधीन करके उनपर विजय पा जाओगे॥ ३॥

'रघुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। आज मैं तुम्हें वे सभी दिव्यास्त्र दे रहा हूँ। वीर! मैं तुमको दिव्य एवं महान् दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा अत्यन्त भयंकर ऐन्द्रचक्र दूँगा॥ ४-५॥

'नरश्रेष्ठ राघव! इन्द्रका वज्रास्त्र, शिवका श्रेष्ठ त्रिशूल तथा ब्रह्माजीका ब्रह्मशिर नामक अस्त्र भी दूँगा। महाबाहो! साथ ही तुम्हें ऐषीकास्त्र तथा परम उत्तम ब्रह्मास्त्र भी प्रदान करता हूँ॥ ६ १/२ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! इनके सिवा दो अत्यन्त उज्ज्वल और सुन्दर गदाएँ, जिनके नाम मोदकी और शिखरी हैं, मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। पुरुषसिंह राजकुमार राम! धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश भी बड़े उत्तम अस्त्र हैं। इन्हें भी आज तुम्हें अर्पित करता हूँ॥ ७-८॥

'रघुनन्दन! सूखी और गीली दो प्रकारकी अशनि तथा पिनाक एवं नारायणास्त्र भी तुम्हें दे रहा हूँ॥ ९ १/२ ॥

'अग्निका प्रिय आग्नेय-अस्त्र, जो शिखरास्त्रके नामसे भी प्रसिद्ध है, तुम्हें अर्पण करता हूँ। अनघ! अस्त्रोंमें प्रधान जो वायव्यास्त्र है, वह भी तुम्हें दे रहा हूँ॥ १० १/२ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण राघव! हयशिरा नामक अस्त्र, क्रौञ्च-अस्त्र तथा दो शक्तियोंको भी तुम्हें देता हूँ॥

'कङ्काल, घोर मूसल, कपाल तथा किङ्किणी आदि सब अस्त्र, जो राक्षसोंके वधमें उपयोगी होते हैं, तुम्हें दे रहा हूँ॥ १२ १/२ ॥

'महाबाहु राजकुमार! नन्दन नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंका महान् अस्त्र तथा उत्तम खड्ग भी तुम्हें अर्पित करता हूँ॥ १३ १/२ ॥

'रघुनन्दन! गन्धर्वोंका प्रिय सम्मोहन नामक अस्त्र, प्रस्वापन, प्रशमन तथा सौम्य-अस्त्र भी देता हूँ॥ १४ १/२ ॥

'महायशस्वी पुरुषसिंह राजकुमार! वर्षण, शोषण, संतापन, विलापन तथा कामदेवका प्रिय दुर्जय अस्त्र मादन, गन्धर्वोंका प्रिय मानवास्त्र तथा पिशाचोंका प्रिय मोहनास्त्र भी मुझसे ग्रहण करो॥ १५—१७॥

'नरश्रेष्ठ राजपुत्र महाबाहु राम! तामस, महाबली सौमन, संवर्त, दुर्जय, मौसल, सत्य और मायामय उत्तम अस्त्र भी तुम्हें अर्पण करता हूँ। सूर्यदेवताका तेजःप्रभ नामक अस्त्र, जो शत्रुके तेजका नाश करनेवाला है, तुम्हें

अर्पित करता हूँ॥ १८-१९॥

'सोम देवताका शिशिर नामक अस्त्र, त्वष्टा (विश्वकर्मा) का अत्यन्त दारुण अस्त्र, भगदेवताका भी भयंकर अस्त्र तथा मनुका शीतेषु नामक अस्त्र भी तुम्हें देता हूँ॥ २०॥

'महाबाहु राजकुमार श्रीराम! ये सभी अस्त्र इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, महान् बलसे सम्पन्न तथा परम उदार हैं। तुम शीघ्र ही इन्हें ग्रहण करो'॥ २१॥

ऐसा कहकर मुनिवर विश्वामित्रजी उस समय स्नान आदिसे शुद्ध हो पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये और अत्यन्त प्रसन्नताके साथ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको उन सभी उत्तम अस्त्रोंका उपदेश दिया॥ २२॥

जिन अस्त्रोंका पूर्णरूपसे संग्रह करना देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, उन सबको विप्रवर विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित कर दिया॥ २३॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने ज्यों ही जप आरम्भ किया त्यों ही वे सभी परम पूज्य दिव्यास्त्र स्वत: आकर श्रीरघुनाथजीके पास उपस्थित हो गये और अत्यन्त हर्षमें भरकर उस समय श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर कहने लगे—'परम उदार रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। हम सब आपके किङ्कर हैं। आप हमसे जो-जो सेवा लेना चाहेंगे, वह सब हम करनेको तैयार रहेंगे'॥ २४-२५ १/२॥

उन महान् प्रभावशाली अस्त्रोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें ग्रहण करनेके पश्चात् हाथसे उनका स्पर्श करके बोले—'आप सब मेरे मनमें निवास करें'॥ २६-२७॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने प्रसन्नचित्त होकर महामुनि विश्वामित्रको प्रणाम किया और आगेकी यात्रा आरम्भ की॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

विश्वामित्रका श्रीरामको अस्त्रोंकी संहारविधि बताना तथा उन्हें अन्यान्य अस्त्रोंका उपदेश करना, श्रीरामका एक आश्रम एवं यज्ञस्थानके विषयमें मुनिसे प्रश्न

उन अस्त्रोंको ग्रहण करके परम पवित्र श्रीरामका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे चलते-चलते ही विश्वामित्रसे बोले—॥ १॥

'भगवन्! आपकी कृपासे इन अस्त्रोंको ग्रहण करके मैं देवताओंके लिये भी दुर्जय हो गया हूँ। मुनिश्रेष्ठ! अब मैं अस्त्रोंकी संहारविधि जानना चाहता हूँ'॥ २॥

ककुत्स्थकुलतिलक श्रीरामके ऐसा कहनेपर महातपस्वी, धैर्यवान्, उत्तम व्रतधारी और पवित्र विश्वामित्र मुनिने उन्हें अस्त्रोंकी संहारविधिका उपदेश दिया॥ ३॥

तदनन्तर वे बोले—'रघुकुलनन्दन राम! तुम्हारा कल्याण हो! तुम अस्त्रविद्याके सुयोग्य पात्र हो; अत: निम्नाङ्कित अस्त्रोंको भी ग्रहण करो—सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, प्राङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैरास्य, विमल, दैत्यनाशक यौगंधर और विनिद्र, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुच, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान और वरुण—ये सभी प्रजापति कृशाश्वके पुत्र हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तथा परम तेजस्वी हैं। तुम इन्हें ग्रहण करो'॥ ४—१०॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न मनसे उन अस्त्रोंको ग्रहण किया। उन मूर्तिमान् अस्त्रोंके शरीर दिव्य तेजसे उद्भासित हो रहे थे। वे अस्त्र जगत्को सुख देनेवाले थे॥ ११॥

उनमेंसे कितने ही अंगारोंके समान तेजस्वी थे। कितने ही धूमके समान काले प्रतीत होते थे तथा कुछ अस्त्र सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान थे। वे सब-के-सब हाथ जोड़कर श्रीरामके समक्ष खड़े हुए॥ १२॥

उन्होंने अञ्जलि बाँधे मधुर वाणीमें श्रीरामसे इस प्रकार कहा—'पुरुषसिंह! हमलोग आपके दास हैं। आज्ञा कीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें?'॥ १३॥

तब रघुकुलनन्दन रामने उनसे कहा—'इस समय तो आपलोग अपने अभीष्ट स्थानको जायँ; परंतु

आवश्यकताके समय मेरे मनमें स्थित होकर सदा मेरी सहायता करते रहें'॥ १४॥

तत्पश्चात् वे श्रीरामकी परिक्रमा करके उनसे विदा ले उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके जैसे आये थे, वैसे चले गये॥ १५॥

इस प्रकार उन अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके श्रीरघुनाथजीने चलते-चलते ही महामुनि विश्वामित्रसे मधुर वाणीमें पूछा—'भगवन्! सामनेवाले पर्वतके पास ही जो यह मेघोंकी घटाके समान सघन वृक्षोंसे भरा स्थान दिखायी देता है, क्या है? उसके विषयमें जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥ १६-१७॥

'यह दर्शनीय स्थान मृगोंके झुंडसे भरा हुआ होनेके कारण अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है। नाना प्रकारके पक्षी अपनी मधुर शब्दावलीसे इस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं॥ १८॥

'मुनिश्रेष्ठ! इस प्रदेशकी इस सुखमयी स्थितिसे यह जान पड़ता है कि अब हमलोग उस रोमाञ्चकारी दुर्गम ताटकावनसे बाहर निकल आये हैं॥ १९॥

'भगवन्! मुझे सब कुछ बताइये। यह किसका आश्रम है? भगवन्! महामुने! जहाँ आपकी यज्ञक्रिया हो रही है, जहाँ वे पापी, दुराचारी, ब्रह्महत्यारे, दुरात्मा राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आया करते हैं और जहाँ मुझे यज्ञकी रक्षा तथा राक्षसोंके वधका कार्य करना है, उस आपके आश्रमका कौन-सा देश है? ब्रह्मन्! मुनिश्रेष्ठ प्रभो! यह सब मैं सुनना चाहता हूँ'॥ २०—२२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रजीका श्रीरामसे सिद्धाश्रमका पूर्ववृत्तान्त बताना और उन दोनों भाइयोंके साथ अपने आश्रमपर पहुँचकर पूजित होना

अपरिमित प्रभावशाली भगवान् श्रीरामका वचन सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्रने उनके प्रश्नका उत्तर देना आरम्भ किया—॥ १॥

'महाबाहु श्रीराम! पूर्वकालमें यहाँ देववन्दित भगवान् विष्णुने बहुत वर्षों एवं सौ युगोंतक तपस्याके लिये निवास किया था। उन्होंने यहाँ बहुत बड़ी तपस्या की थी। यह स्थान महात्मा वामनका—वामन अवतार धारण करनेको उद्यत हुए श्रीविष्णुका अवतार ग्रहणसे पूर्व आश्रम था॥

'इसकी सिद्धाश्रमके नामसे प्रसिद्धि थी; क्योंकि यहाँ महातपस्वी विष्णुको सिद्धि प्राप्त हुई थी। जब वे तपस्या करते थे, उसी समय विरोचनकुमार राजा बलिने इन्द्र और मरुद्गणोंसहित समस्त देवताओंको पराजित करके उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था। वे तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये थे॥ ४-५॥

'उन महाबली महान् असुरराजने एक यज्ञका आयोजन किया। उधर बलि यज्ञमें लगे हुए थे, इधर अग्नि आदि देवता स्वयं इस आश्रममें पधारकर भगवान् विष्णुसे बोले—॥

''सर्वव्यापी परमेश्वर! विरोचनकुमार बलि एक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका वह यज्ञ-सम्बन्धी नियम पूर्ण होनेसे पहले ही हमें अपना कार्य सिद्ध कर लेना चाहिये॥ ७॥

''इस समय जो भी याचक इधर-उधरसे आकर उनके यहाँ याचनाके लिये उपस्थित होते हैं, वे गो, भूमि और सुवर्ण आदि सम्पत्तियोंमेंसे जिस वस्तुको भी लेना चाहते हैं, उनको वे सारी वस्तुएँ राजा बलि यथावत्-रूपसे अर्पित करते हैं॥ ८॥

''अत: विष्णो! आप देवताओंके हितके लिये अपनी योगमायाका आश्रय ले वामनरूप धारण करके उस यज्ञमें जाइये और हमारा उत्तम कल्याण-साधन कीजिये'॥ ९॥

'श्रीराम! इसी समय अग्निके समान तेजस्वी महर्षि कश्यप धर्मपत्नी अदितिके साथ अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए वहाँ आये। वे एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक चालू रहनेवाले महान् व्रतको अदितिदेवीके साथ ही समाप्त करके आये थे। उन्होंने वरदायक भगवान् मधुसूदनकी इस प्रकार स्तुति की—॥ १०-११॥

''भगवन्! आप तपोमय हैं। तपस्याकी राशि हैं। तप आपका स्वरूप है। आप ज्ञानस्वरूप हैं। मैं भलीभाँति तपस्या करके उसके प्रभावसे आप पुरुषोत्तमका दर्शन कर रहा हूँ॥ १२॥

''प्रभो! मैं इस सारे जगत्‌को आपके शरीरमें स्थित

देखता हूँ। आप अनादि हैं। देश, काल और वस्तुकी सीमासे परे होनेके कारण आपका इदमित्थंरूपसे निर्देश नहीं किया जा सकता। मैं आपकी शरणमें आया हूँ'॥ १३॥

'कश्यपजीके सारे पाप धुल गये थे। भगवान् श्रीहरिने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा—'महर्षे! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपनी इच्छाके अनुसार कोई वर माँगो; क्योंकि तुम मेरे विचारसे वर पानेके योग्य हो'॥ १४॥

'भगवान्का यह वचन सुनकर मरीचिनन्दन कश्यपने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वरदायक परमेश्वर! सम्पूर्ण देवताओंकी, अदितिकी तथा मेरी भी आपसे एक ही बातके लिये बारम्बार याचना है। आप अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझे वह एक ही वर प्रदान करें। भगवन्! निष्पाप नारायणदेव! आप मेरे और अदितिके पुत्र हो जायँ॥ १५-१६॥

''असुरसूदन! आप इन्द्रके छोटे भाई हों और शोकसे पीड़ित हुए इन देवताओंकी सहायता करें॥ १७॥

''देवेश्वर! भगवन्! आपकी कृपासे यह स्थान सिद्धाश्रमके नामसे विख्यात होगा। अब आपका तपरूप कार्य सिद्ध हो गया है; अतः यहाँसे उठिये'॥ १८॥

'तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् विष्णु अदितिदेवीके गर्भसे प्रकट हुए और वामनरूप धारण करके विरोचनकुमार बलिके पास गये॥ १९॥

'सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् विष्णु बलिके अधिकारसे त्रिलोकीका राज्य ले लेना चाहते थे; अतः उन्होंने तीन पग भूमिके लिये याचना करके उनसे भूमिदान ग्रहण किया और तीनों लोकोंको आक्रान्त करके उन्हें पुनः देवराज इन्द्रको लौटा दिया। महातेजस्वी श्रीहरिने अपनी शक्तिसे बलिका निग्रह करके त्रिलोकीको पुनः इन्द्रके अधीन कर दिया॥ २०-२१॥

'उन्हीं भगवान्ने पूर्वकालमें यहाँ निवास किया था; इसलिये यह आश्रम सब प्रकारके श्रम (दुःख-शोक) का नाश करनेवाला है। उन्हीं भगवान् वामनमें भक्ति होनेके कारण मैं भी इस स्थानको अपने उपयोगमें लाता हूँ॥ २२॥

'इसी आश्रमपर मेरे यज्ञमें विघ्न डालनेवाले राक्षस आते हैं। पुरुषसिंह! यहीं तुम्हें उन दुराचारियोंका वध करना है॥ २३॥

'श्रीराम! अब हमलोग उस परम उत्तम सिद्धाश्रममें पहुँच रहे हैं। तात! वह आश्रम जैसे मेरा है, वैसे ही तुम्हारा भी है'॥ २४॥

ऐसा कहकर महामुनिने बड़े प्रेमसे श्रीराम और लक्ष्मणके हाथ पकड़ लिये और उन दोनोंके साथ आश्रममें प्रवेश किया। उस समय पुनर्वसु नामक दो नक्षत्रोंके बीचमें स्थित तुषाररहित चन्द्रमाकी भाँति उनकी शोभा हुई॥ २५॥

विश्वामित्रजीको आया देख सिद्धाश्रममें रहनेवाले सभी तपस्वी उछलते-कूदते हुए सहसा उनके पास आये और सबने मिलकर उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीकी यथोचित पूजा की। इसी प्रकार उन्होंने उन दोनों राजकुमारोंका भी अतिथि-सत्कार किया॥ २६-२७॥

दो घड़ीतक विश्राम करनेके बाद रघुकुलको आनन्द देनेवाले शत्रुदमन राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण हाथ जोड़कर मुनिवर विश्वामित्रसे बोले—॥ २८॥

'मुनिश्रेष्ठ! आप आज ही यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करें। आपका कल्याण हो। यह सिद्धाश्रम वास्तवमें यथानाम तथागुण सिद्ध हो और राक्षसोंके वधके विषयमें आपकी कही हुई बात सच्ची हो'॥ २९॥

उनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र जितेन्द्रियभावसे नियमपूर्वक यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए। वे दोनों राजकुमार भी सावधानीके साथ रात व्यतीत करके सबेरे उठे और स्नान आदिसे शुद्ध हो प्रातःकालकी संध्योपासना तथा नियमपूर्वक सर्वश्रेष्ठ गायत्रीमन्त्रका जप करने लगे। जप पूरा होनेपर उन्होंने अग्निहोत्र करके बैठे हुए विश्वामित्रजीके चरणोंमें वन्दना की॥ ३०—३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

श्रीरामद्वारा विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा तथा राक्षसोंका संहार

तदनन्तर देश और कालको जाननेवाले शत्रुदमन राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण जो देश और कालके अनुसार बोलने योग्य वचनके मर्मज्ञ थे, कौशिक मुनिसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'भगवन्! अब हम दोनों यह सुनना चाहते हैं कि किस समय उन दोनों निशाचरोंका आक्रमण होता है? जब कि हमें उन दोनोंको यज्ञभूमिमें आनेसे रोकना है। कहीं ऐसा न हो, असावधानीमें ही वह समय हाथसे निकल जाय; अत: उसे बता दीजिये'॥ २॥

ऐसी बात कहकर युद्धकी इच्छासे उतावले हुए उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजकुमारोंकी ओर देखकर वे सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन दोनों बन्धुओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ३॥

वे बोले—'ये मुनिवर विश्वामित्रजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके हैं; अत: अब मौन रहेंगे। आप दोनों रघुवंशी वीर सावधान होकर आजसे छ: रातोंतक इनके यज्ञकी रक्षा करते रहें'॥ ४॥

मुनियोंका यह वचन सुनकर वे दोनों यशस्वी राजकुमार लगातार छ: दिन और छ: राततक उस तपोवनकी रक्षा करते रहे; इस बीचमें उन्होंने नींद भी नहीं ली॥ ५॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे परम धनुर्धर वीर सतत सावधान रहकर मुनिवर विश्वामित्रके पास खड़े हो उनकी (और उनके यज्ञकी) रक्षामें लगे रहे॥ ६॥

इस प्रकार कुछ काल बीत जानेपर जब छठा दिन आया, तब श्रीरामने सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम अपने चित्तको एकाग्र करके सावधान हो जाओ'॥ ७॥

युद्धकी इच्छासे शीघ्रता करते हुए श्रीराम इस प्रकार कह ही रहे थे कि उपाध्याय (ब्रह्मा), पुरोहित (उपद्रष्टा) तथा अन्यान्य ऋत्विजोंसे घिरी हुई यज्ञकी वेदी सहसा प्रज्वलित हो उठी (वेदीका यह जलना राक्षसोंके आगमनका सूचक उत्पात था)॥ ८॥

इसके बाद कुश, चमस, स्रुक्, समिधा और फूलोंके ढेरसे सुशोभित होनेवाली विश्वामित्र तथा ऋत्विजोंसहित जो यज्ञकी वेदी थी, उसपर आहवनीय अग्नि प्रज्वलित हुई (अग्निका यह प्रज्वलन यज्ञके उद्देश्यसे हुआ था)॥ ९॥

फिर तो शास्त्रीय विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक उस यज्ञका कार्य आरम्भ हुआ। इसी समय आकाशमें बड़े जोरका शब्द हुआ, जो बड़ा ही भयानक था॥ १०॥

जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी घटा सारे आकाशको घेरकर छायी हुई दिखायी देती है, उसी प्रकार मारीच और सुबाहु नामक राक्षस सब ओर अपनी माया फैलाते हुए यज्ञमण्डपकी ओर दौड़े आ रहे थे। उनके अनुचर भी साथ थे। उन भयंकर राक्षसोंने वहाँ आकर रक्तकी धाराएँ बरसाना आरम्भ कर दिया॥ ११-१२॥

रक्तके उस प्रवाहसे यज्ञ-वेदीके आस-पासकी भूमिको भीगी हुई देख श्रीरामचन्द्रजी सहसा दौड़े और इधर-उधर दृष्टि डालनेपर उन्होंने उन राक्षसोंको आकाशमें स्थित देखा। मारीच और सुबाहुको सहसा आते देख कमलनयन श्रीरामने लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—॥ १३-१४॥

'लक्ष्मण! वह देखो, मांसभक्षण करनेवाले दुराचारी राक्षस आ पहुँचे। मैं मानवास्त्रसे इन सबको उसी प्रकार मार भगाऊँगा, जैसे वायुके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मेरे इस कथनमें तनिक भी संदेह नहीं है। ऐसे कायरोंको मैं मारना नहीं चाहता'॥ १५ $\frac{१}{२}$॥

ऐसा कहकर वेगशाली श्रीरामने अपने धनुषपर परम उदार मानवास्त्रका संधान किया। वह अस्त्र अत्यन्त तेजस्वी था। श्रीरामने बड़े रोषमें भरकर मारीचकी छातीमें उस बाणका प्रहार किया॥ १६-१७॥

उस उत्तम मानवास्त्रका गहरा आघात लगनेसे मारीच पूरे सौ योजनकी दूरीपर समुद्रके जलमें जा गिरा॥ १८॥

शीतेषु नामक मानवास्त्रसे पीड़ित हो मारीच अचेत-सा होकर चक्कर काटता हुआ दूर चला जा रहा है। यह देख श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ १९॥

'लक्ष्मण! देखो, मनुके द्वारा प्रयुक्त शीतेषु नामक मानवास्त्र इस राक्षसको मूर्छित करके दूर लिये जा रहा है, किंतु उसके प्राण नहीं ले रहा है॥ २०॥

'अब यज्ञमें विघ्न डालनेवाले इन दूसरे निर्दय, दुराचारी, पापकर्मी एवं रक्तभोजी राक्षसोंको भी मार गिराता हूँ'॥ २१॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर रघुनन्दन श्रीरामने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए-से शीघ्र ही महान् आग्नेयास्त्रका संधान करके उसे सुबाहुकी छातीपर चलाया। उसकी चोट लगते ही वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर महायशस्वी परम उदार रघुवीरने वायव्यास्त्र लेकर शेष निशाचरोंका भी संहार कर डाला और मुनियोंको परम आनन्द प्रदान किया॥ २२-२३॥

इस प्रकार रघुकुलनन्दन श्रीराम यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंका वध करके वहाँ ऋषियोंद्वारा उसी प्रकार सम्मानित हुए जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्र असुरोंपर विजय पाकर महर्षियोंद्वारा पूजित हुए थे॥ २४॥

यज्ञ समाप्त होनेपर महामुनि विश्वामित्रने सम्पूर्ण दिशाओंको विघ्न-बाधाओंसे रहित देख श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—॥ २५ ॥

'महाबाहो! मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया। तुमने गुरुकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया। महायशस्वी वीर! तुमने इस सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया।' इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करके मुनिने उन दोनों भाइयोंके साथ संध्योपासना की॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण तथा ऋषियोंसहित विश्वामित्रका मिथिलाको प्रस्थान तथा मार्गमें संध्याके समय शोणभद्रतटपर विश्राम

तदनन्तर (विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करके) कृतकृत्य हुए श्रीराम और लक्ष्मणने उस यज्ञशालामें ही वह रात बितायी। उस समय वे दोनों वीर बड़े प्रसन्न थे। उनका हृदय हर्षोल्लाससे परिपूर्ण था॥ १ ॥

रात बीतनेपर जब प्रातःकाल आया, तब वे दोनों भाई पूर्वाह्णकालके नित्य-नियमसे निवृत्त हो विश्वामित्र मुनि तथा अन्य ऋषियोंके पास साथ-साथ गये॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ! विश्वामित्रको प्रणाम किया और मधुर भाषामें यह परम उदार वचन कहा—॥ ३ ॥

'मुनिप्रवर! हम दोनों किङ्कर आपकी सेवामें उपस्थित हैं। मुनिश्रेष्ठ! आज्ञा दीजिये, हम क्या सेवा करें?'॥ ४ ॥

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर वे सभी महर्षि विश्वामित्रको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ! मिथिलाके राजा जनकका परम धर्ममय यज्ञ प्रारम्भ होनेवाला है। उसमें हम सब लोग जायँगे॥ ६ ॥

'पुरुषसिंह! तुम्हें भी हमारे साथ वहाँ चलना है। वहाँ एक बड़ा ही अद्भुत धनुषरत्न है। तुम्हें उसे देखना चाहिये॥ ७ ॥

'पुरुषप्रवर! पहले कभी यज्ञमें पधारे हुए देवताओंने जनकके किसी पूर्वपुरुषको वह धनुष दिया था। वह कितना प्रबल और भारी है, इसका कोई माप-तोल नहीं है। वह बहुत ही प्रकाशमान एवं भयंकर है॥ ८ ॥

'मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। देवता, गन्धर्व, असुर तथा राक्षस भी किसी तरह उसकी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा पाते॥ ९ ॥

'उस धनुषकी शक्तिका पता लगानेके लिये कितने ही महाबली राजा और राजकुमार आये; किंतु कोई भी उसे चढ़ा न सके॥ १० ॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन पुरुषसिंह राम! वहाँ चलनेसे तुम महामना मिथिलानरेशके उस धनुषको तथा उनके परम अद्भुत यज्ञको भी देख सकोगे॥ ११ ॥

'नरश्रेष्ठ! मिथिलानरेशने अपने यज्ञके फलरूपमें उस उत्तम धनुषको माँगा था; अतः सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् शङ्करने उन्हें वह धनुष प्रदान किया था। उस धनुषका मध्यभाग जिसे मुट्ठीसे पकड़ा जाता है, बहुत ही सुन्दर है॥ १२ ॥

'रघुनन्दन! राजा जनकके महलमें वह धनुष पूजनीय देवताकी भाँति प्रतिष्ठित है और नाना प्रकारके गन्ध, धूप तथा अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उसकी पूजा होती है'॥ १३ ॥

ऐसा कहकर मुनिवर विश्वामित्रजीने वनदेवताओंसे आज्ञा ली और ऋषिमण्डली तथा राम-लक्ष्मणके साथ वहाँसे प्रस्थान किया॥ १४ ॥

चलते समय उन्होंने वनदेवताओंसे कहा—'मैं अपना यज्ञकार्य सिद्ध करके इस सिद्धाश्रमसे जा रहा हूँ। गंगाके उत्तर तटपर होता हुआ हिमालयपर्वतकी उपत्यकामें जाऊँगा। आपलोगोंका कल्याण हो'॥ १५ ॥

ऐसा कहकर तपस्याके धनी मुनिश्रेष्ठ कौशिकने उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान आरम्भ किया॥ १६ ॥

उस समय—प्रस्थानके समय यात्रा करते हुए मुनिवर विश्वामित्रके पीछे उनके साथ जानेवाले ब्रह्मवादी महर्षियोंकी सौ गाड़ियाँ चलीं॥ १७ ॥

सिद्धाश्रममें निवास करनेवाले मृग और पक्षी भी तपोधन विश्वामित्रके पीछे-पीछे जाने लगे॥ १८ ॥

कुछ दूर जानेपर ऋषिमण्डलीसहित विश्वामित्रने उन पशु-पक्षियोंको लौटा दिया। फिर दूरतकका मार्ग तै कर लेनेके बाद जब सूर्य अस्ताचलको जाने लगे, तब उन ऋषियोंने पूर्ण सावधान रहकर शोणभद्रके तटपर पड़ाव डाला। जब सूर्यदेव अस्त हो गये, तब स्नान करके उन सबने अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण किया॥

इसके बाद वे सभी अमिततेजस्वी ऋषि मुनिवर

विश्वामित्रको आगे करके बैठे; फिर लक्ष्मणसहित श्रीराम भी उन ऋषियोंका आदर करते हुए बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके सामने बैठ गये॥ २१ १/२ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी श्रीरामने तपस्याके धनी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कौतूहलपूर्वक पूछा—॥ २२ १/२ ॥

भगवन्! यह हरे-भरे समृद्धिशाली वनसे सुशोभित देश कौन-सा है? मैं इसका परिचय सुनना चाहता हूँ। आपका कल्याण हो। आप मुझे ठीक-ठीक इसका रहस्य बताइये'॥ २३ १/२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रश्नसे प्रेरित होकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महातपस्वी विश्वामित्रने ऋषिमण्डलीके बीच उस देशका पूर्णरूपसे परिचय देना प्रारम्भ किया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

ब्रह्मपुत्र कुशके चार पुत्रोंका वर्णन, शोणभद्र-तटवर्ती प्रदेशको वसुकी भूमि बताना, कुशनाभकी सौ कन्याओंका वायुके कोपसे 'कुब्जा' होना

(विश्वामित्रजी कहते हैं—) श्रीराम! पूर्वकालमें कुश नामसे प्रसिद्ध एक महातपस्वी राजा हो गये हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनका प्रत्येक व्रत एवं संकल्प बिना किसी क्लेश या कठिनाईके ही पूर्ण होता था। वे धर्मके ज्ञाता, सत्पुरुषोंका आदर करनेवाले और महान् थे॥ १॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न विदर्भदेशकी राजकुमारी उनकी पत्नी थी। उसके गर्भसे उन महात्मा नरेशने चार पुत्र उत्पन्न किये, जो उन्हींके समान थे॥ २॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरजस[1] तथा वसु। ये सब-के-सब तेजस्वी तथा महान् उत्साही थे। राजा कुशने 'प्रजारक्षणरूप' क्षत्रिय-धर्मके पालनकी इच्छासे अपने उन धर्मिष्ठ तथा सत्यवादी पुत्रोंसे कहा—'पुत्रो! प्रजाका पालन करो, इससे तुम्हें धर्मका पूरा-पूरा फल प्राप्त होगा'॥ ३-४॥

अपने पिता महाराज कुशकी यह बात सुनकर उन चारों लोकशिरोमणि नरश्रेष्ठ राजकुमारोंने उस समय अपने-अपने लिये पृथक्-पृथक् नगर निर्माण कराया॥ ५॥

महातेजस्वी कुशाम्बने 'कौशाम्बी' पुरी बसायी (जिसे आजकल 'कोसम' कहते हैं)। धर्मात्मा कुशनाभने 'महोदय' नामक नगरका निर्माण कराया॥ ६॥

परम बुद्धिमान् असूर्तरजसने 'धर्मारण्य' नामक एक श्रेष्ठ नगर बसाया तथा राजा वसुने 'गिरिव्रज' नगरकी स्थापना की॥ ७॥

महात्मा वसुकी यह 'गिरिव्रज' नामक राजधानी वसुमतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। इसके चारों ओर ये पाँच श्रेष्ठ पर्वत सुशोभित होते हैं[2]॥ ८॥

यह रमणीय (सोन) नदी दक्षिण-पश्चिमकी ओरसे बहती हुई मगध देशमें आयी है, इसलिये यहाँ 'सुमागधी' नामसे विख्यात हुई है। यह इन पाँच श्रेष्ठ पर्वतोंके बीचमें मालाकी भाँति सुशोभित हो रही है॥ ९॥

श्रीराम! इस प्रकार 'मागधी' नामसे प्रसिद्ध हुई यह सोन नदी पूर्वोक्त महात्मा वसुसे सम्बन्ध रखती है। रघुनन्दन! यह दक्षिण-पश्चिमसे आकर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रवाहित हुई है। इसके दोनों तटोंपर सुन्दर क्षेत्र (उपजाऊ खेत) हैं, अतः यह सदा सस्य-मालाओंसे अलंकृत (हरी-भरी खेतीसे सुशोभित) रहती है॥ १०॥

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभने घृताची अप्सराके गर्भसे परम उत्तम सौ कन्याओंको जन्म दिया॥ ११॥

---

१. रामायणशिरोमणि नामक व्याख्याके निर्माताने '**अमूर्तिरजसम्**' पाठ माना है। महाभारतके अनुसार इनका नाम '**अमूर्तरयस्**' या '**अमूर्तरया**' था (वन० ९५। १७)। यहाँ इनके द्वारा धर्मारण्य नामक नगर बसानेका उल्लेख है। यह नगर धर्मारण्य नामक तीर्थभूत वनमें था। यह वन गयाके आस-पासका ही प्रदेश है। अमूर्तरयाके पुत्र गयने ही गया नामक नगर बसाया था। अतः धर्मारण्य और गयाकी एकता सिद्ध होती है। महाभारत वनपर्व (८४। ८५) में गयाके ब्रह्मसरोवरको धर्मारण्यसे सुशोभित बताया गया है। (वन० ८२। ४७) धर्मारण्यमें पितृ-पूजनकी महत्ता बतायी गयी है।

२. महाभारत सभापर्व (२१। १—१०) में इन पाँचों पर्वतोंके नाम इस प्रकार वर्णित हैं—(१) विपुल, (२) वराह, (३) वृषभ (ऋषभ), (४) ऋषिगिरि (मातङ्ग) तथा (५) चैत्यक।

वे सब-की-सब सुन्दर रूप-लावण्यसे सुशोभित थीं। धीरे-धीरे युवावस्थाने आकर उनके सौन्दर्यको और भी बढ़ा दिया। रघुवीर! एक दिन वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो वे सभी राजकन्याएँ उद्यान-भूमिमें आकर वर्षाऋतुमें प्रकाशित होनेवाली विद्युन्मालाओंकी भाँति शोभा पाने लगीं। सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत हुई वे अंगनाएँ गाती, बजाती और नृत्य करती हुई वहाँ परम आमोद-प्रमोदमें मग्न हो गयीं॥ १२-१३॥

उनके सभी अंग बड़े मनोहर थे। इस भूतलपर उनके रूप-सौन्दर्यकी कहीं भी तुलना नहीं थी। उस उद्यानमें आकर वे बादलोंके ओटमें कुछ-कुछ छिपी हुई तारिकाओंके समान शोभा पा रही थीं॥ १४॥

उस समय उत्तम गुणोंसे सम्पन्न तथा रूप और यौवनसे सुशोभित उन सब राजकन्याओंको देखकर सर्वस्वरूप वायु देवताने उनसे इस प्रकार कहा—॥

'सुन्दरियो! मैं तुम सबको अपनी प्रेयसीके रूपमें प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम सब मेरी भार्याएँ बनोगी। अब मनुष्यभावका त्याग करो और मुझे अंगीकार करके देवांगनाओंकी भाँति दीर्घ आयु प्राप्त कर लो॥

'विशेषतः मानव-शरीरमें जवानी कभी स्थिर नहीं रहती—प्रतिक्षण क्षीण होती जाती है। मेरे साथ सम्बन्ध हो जानेपर तुमलोग अक्षय यौवन प्राप्त करके अमर हो जाओगी'॥ १७॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले वायुदेवका यह कथन सुनकर वे सौ कन्याएँ अवहेलनापूर्वक हँसकर बोलीं—॥ १८॥

'सुरश्रेष्ठ! आप प्राणवायुके रूपमें समस्त प्राणियोंके भीतर विचरते हैं (अतः सबके मनकी बातें जानते हैं; आपको यह मालूम होगा कि हमारे मनमें आपके प्रति कोई आकर्षण नहीं है)। हम सब बहिनें आपके अनुपम प्रभावको भी जानती हैं (तो भी हमारा आपके प्रति अनुराग नहीं है); ऐसी दशामें यह अनुचित प्रस्ताव करके आप हमारा अपमान किसलिये कर रहे हैं?॥ १९॥

'देव! देवशिरोमणे! हम सब-की-सब राजर्षि कुशनाभकी कन्याएँ हैं। देवता होनेपर भी आपको शाप देकर वायुपदसे भ्रष्ट कर सकती हैं, किंतु ऐसा करना नहीं चाहतीं; क्योंकि हम अपने तपको सुरक्षित रखती हैं॥ २०॥

'दुर्मते! वह समय कभी न आवे, जब कि हम अपने सत्यवादी पिताकी अवहेलना करके कामवश या अत्यन्त अधर्मपूर्वक स्वयं ही वर ढूँढ़ने लगें॥ २१॥

'हमलोगोंपर हमारे पिताजीका प्रभुत्व है, वे हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। पिताजी हमें जिसके हाथमें दे देंगे, वही हमारा पति होगा'॥ २२॥

उनकी यह बात सुनकर वायुदेव अत्यन्त कुपित हो उठे। उन ऐश्वर्यशाली प्रभुने उनके भीतर प्रविष्ट हो सब अंगोंको मोड़कर टेढ़ा कर दिया। शरीर मुड़ जानेके कारण वे कुबड़ी हो गयीं। उनकी आकृति मुट्ठी बँधे हुए एक हाथके बराबर हो गयी। वे भयसे व्याकुल हो उठीं॥ २३ $\frac{1}{2}$ ॥

वायुदेवके द्वारा कुबड़ी की हुई उन कन्याओंने राजभवनमें प्रवेश किया। प्रवेश करके वे लज्जित और उद्विग्न हो गयीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं॥ २४॥

अपनी परम सुन्दरी प्यारी पुत्रियोंको कुब्जताके कारण अत्यन्त दयनीय दशामें पड़ी देख राजा कुशनाभ घबरा गये और इस प्रकार बोले—॥ २५॥

'पुत्रियो! यह क्या हुआ? बताओ। कौन प्राणी धर्मकी अवहेलना करता है? किसने तुम्हें कुबड़ी बना दिया, जिससे तुम तड़प रही हो, किंतु कुछ बताती नहीं हो।' यों कहकर राजाने लंबी साँस खींची और उनका उत्तर सुननेके लिये वे सावधान होकर बैठ गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

राजा कुशनाभद्वारा कन्याओंके धैर्य एवं क्षमाशीलताकी प्रशंसा, ब्रह्मदत्तकी उत्पत्ति तथा उनके साथ कुशनाभकी कन्याओंका विवाह

बुद्धिमान् महाराज कुशनाभका वह वचन सुनकर उन सौ कन्याओंने पिताके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १॥

राजन्! सर्वत्र संचार करनेवाले वायुदेव अशुभ मार्गका अवलम्बन करके हमपर बलात्कार करना चाहते थे। धर्मपर उनकी दृष्टि नहीं थी॥ २॥

हमने उनसे कहा—'देव! आपका कल्याण हो, हमारे पिता विद्यमान हैं; हम स्वच्छन्द नहीं हैं। आप पिताजीके पास जाकर हमारा वरण कीजिये। यदि वे हमें आपको सौंप देंगे तो हम आपकी हो जायँगी'॥ ३॥

परंतु उनका मन तो पापसे बँधा हुआ था। उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। हम सब बहिनें ये ही धर्मसंगत बातें कह रही थीं, तो भी उन्होंने हमें गहरी चोट पहुँचायी—बिना अपराधके ही हमें पीड़ा दी॥ ४॥

उनकी बात सुनकर परम धर्मात्मा महातेजस्वी राजाने उन अपनी परम उत्तम सौ कन्याओंको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ५॥

'पुत्रियो! क्षमाशील महापुरुष ही जिसे कर सकते हैं, वही क्षमा तुमने भी की है। यह तुमलोगोंके द्वारा महान् कार्य सम्पन्न हुआ है। तुम सबने एकमत होकर जो मेरे कुलकी मर्यादापर ही दृष्टि रखी है—कामभावको अपने मनमें स्थान नहीं दिया है—यह भी तुमने बहुत बड़ा काम किया है॥ ६॥

'स्त्री हो या पुरुष, उसके लिये क्षमा ही आभूषण है। पुत्रियो! तुम सब लोगोंमें समानरूपसे जैसी क्षमा या सहिष्णुता है, वह विशेषतः देवताओंके लिये भी दुष्कर ही है॥ ७½॥

'पुत्रियो! क्षमा दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है, क्षमापर भी यह सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है'॥ ८½॥

ककुत्स्थकुलनन्दन श्रीराम! देवतुल्य पराक्रमी राजा कुशनाभने कन्याओंसे ऐसा कहकर उन्हें अन्तःपुरमें जानेकी आज्ञा दे दी और मन्त्रणाके तत्त्वको जाननेवाले उन नरेशने स्वयं मन्त्रियोंके साथ बैठकर कन्याओंके विवाहके विषयमें विचार आरम्भ किया। विचारणीय विषय यह था कि 'किस देशमें किस समय और किस सुयोग्य वरके साथ उनका विवाह किया जाय?'॥ ९-१०॥

उन्हीं दिनों चूली नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी, सदाचारी एवं ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) मुनि वेदोक्त तपका अनुष्ठान कर रहे थे (अथवा ब्रह्मचिन्तनरूप तपस्यामें संलग्न थे)॥ ११॥

श्रीराम! तुम्हारा भला हो, उस समय एक गन्धर्वकुमारी वहाँ रहकर उन तपस्वी मुनिकी उपासना (अनुग्रहकी इच्छासे सेवा) करती थी। उसका नाम था सोमदा। वह ऊर्मिलाकी पुत्री थी॥ १२॥

वह प्रतिदिन मुनिको प्रणाम करके उनकी सेवामें लगी रहती थी तथा धर्ममें स्थित रहकर समय-समयपर सेवाके लिये उपस्थित होती थी; इससे उसके ऊपर वे गौरवशाली मुनि बहुत संतुष्ट हुए॥ १३॥

रघुनन्दन! शुभ समय आनेपर चूलीने उस गन्धर्वकन्यासे कहा—'शुभे! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ'॥ १४॥

मुनिको संतुष्ट जानकर गन्धर्व-कन्या बहुत प्रसन्न हुई। वह बोलनेकी कला जानती थी; उसने वाणीके मर्मज्ञ मुनिसे मधुर स्वरमें इस प्रकार कहा—॥ १५॥

'महर्षे! आप ब्राह्मी सम्पत्ति (ब्रह्मतेज) से सम्पन्न होकर ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं, अतएव आप महान् तपस्वी हैं। मैं आपसे ब्राह्म तप (ब्रह्म-ज्ञान एवं वेदोक्त तप) से युक्त धर्मात्मा पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ॥ १६॥

'मुने! आपका भला हो। मेरे कोई पति नहीं है। मैं न तो किसीकी पत्नी हुई हूँ और न आगे होऊँगी। आपकी सेवामें आयी हूँ; आप अपने ब्राह्म बल (तपःशक्ति) से मुझे पुत्र प्रदान करें'॥ १७॥

उस गन्धर्वकन्याकी सेवासे संतुष्ट हुए ब्रह्मर्षि चूलीने उसे परम उत्तम ब्राह्म तपसे सम्पन्न पुत्र प्रदान किया। वह उनके मानसिक संकल्पसे प्रकट हुआ मानस पुत्र था। उसका नाम 'ब्रह्मदत्त' हुआ॥ १८॥

(कुशनाभके यहाँ जब कन्याओंके विवाहका विचार चल रहा था) उस समय राजा ब्रह्मदत्त उत्तम लक्ष्मीसे सम्पन्न हो 'काम्पिल्या' नामक नगरीमें उसी तरह निवास करते थे, जैसे स्वर्गकी अमरावतीपुरीमें देवराज इन्द्र॥ १९॥

ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! तब परम धर्मात्मा राजा कुशनाभने ब्रह्मदत्तके साथ अपनी सौ कन्याओंको ब्याह देनेका निश्चय किया॥ २०॥

महातेजस्वी भूपाल राजा कुशनाभने ब्रह्मदत्तको बुलाकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उन्हें अपनी सौ कन्याएँ सौंप दीं॥ २१॥

रघुनन्दन! उस समय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पृथ्वीपति ब्रह्मदत्तने क्रमशः उन सभी कन्याओंका पाणिग्रहण किया॥ २२॥

विवाहकालमें उन कन्याओंके हाथोंका ब्रह्मदत्तके हाथसे स्पर्श होते ही वे सब-की-सब कन्याएँ कुब्जत्वदोषसे रहित, नीरोग तथा उत्तम शोभासे सम्पन्न प्रतीत होने लगीं॥ २३॥

वातरोगके रूपमें आये हुए वायुदेवने उन कन्याओंको

छोड़ दिया—यह देख पृथ्वीपति राजा कुशनाभ बड़े प्रसन्न हुए और बारम्बार हर्षका अनुभव करने लगे॥ २४॥

भूपाल राजा ब्रह्मदत्तका विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेपर महाराज कुशनाभने उन्हें पत्नियों तथा पुरोहितोंसहित आदरपूर्वक विदा किया॥ २५॥

गन्धर्वी सोमदाने अपने पुत्रको तथा उसके योग्य विवाह-सम्बन्धको देखकर अपनी उन पुत्रवधुओंका यथोचितरूपसे अभिनन्दन किया। उसने एक-एक करके उन सभी राजकन्याओंको हृदयसे लगाया और महाराज कुशनाभकी सराहना करके वहाँसे प्रस्थान किया॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

गाधिकी उत्पत्ति, कौशिकीकी प्रशंसा, विश्वामित्रजीका कथा बंद करके आधी रातका वर्णन करते हुए सबको सोनेकी आज्ञा देकर शयन करना

रघुनन्दन! विवाह करके जब राजा ब्रह्मदत्त चले गये, तब पुत्रहीन महाराज कुशनाभने श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान किया॥ १॥

उस यज्ञके होते समय परम उदार ब्रह्मकुमार महाराज कुशने भूपाल कुशनाभसे कहा—॥ २॥

'बेटा! तुम्हें अपने समान ही परम धर्मात्मा पुत्र प्राप्त होगा। तुम 'गाधि' नामक पुत्र प्राप्त करोगे और उसके द्वारा तुम्हें संसारमें अक्षय कीर्ति उपलब्ध होगी'॥ ३॥

श्रीराम! पृथ्वीपति कुशनाभसे ऐसा कहकर राजर्षि कुश आकाशमें प्रविष्ट हो सनातन ब्रह्मलोकको चले गये॥ ४॥

कुछ कालके पश्चात् बुद्धिमान् राजा कुशनाभके यहाँ परम धर्मात्मा 'गाधि' नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ ५॥

ककुत्स्थकुलभूषण रघुनन्दन! वे परम धर्मात्मा राजा गाधि मेरे पिता थे। मैं कुशके कुलमें उत्पन्न होनेके कारण 'कौशिक' कहलाता हूँ॥ ६॥

राघव! मेरे एक ज्येष्ठ बहिन भी थी, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। उसका नाम सत्यवती था। वह ऋचीक मुनिको ब्याही गयी थी॥ ७॥

अपने पतिका अनुसरण करनेवाली सत्यवती शरीरसहित स्वर्गलोकको चली गयी थी। वही परम उदार महानदी कौशिकीके रूपमें भी प्रकट होकर इस भूतलपर प्रवाहित होती है॥ ८॥

मेरी वह बहिन जगत्के हितके लिये हिमालयका आश्रय लेकर नदीरूपमें प्रवाहित हुई। वह पुण्यसलिला दिव्य नदी बड़ी रमणीय है॥ ९॥

रघुनन्दन! मेरा अपनी बहिन कौशिकीके प्रति बहुत स्नेह है; अतः मैं हिमालयके निकट उसीके तटपर नियमपूर्वक बड़े सुखसे निवास करता हूँ॥ १०॥

पुण्यमयी सत्यवती सत्य धर्ममें प्रतिष्ठित है। वह परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता देवी यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ कौशिकीके रूपमें विद्यमान है॥ ११॥

श्रीराम! मैं यज्ञसम्बन्धी नियमकी सिद्धिके लिये ही अपनी बहिनका सांनिध्य छोड़कर सिद्धाश्रम (बक्सर) में आया था। अब तुम्हारे तेजसे मुझे वह सिद्धि प्राप्त हो गयी है॥ १२॥

महाबाहु श्रीराम! तुमने मुझसे जो पूछा था, उसके उत्तरमें मैंने तुम्हें शोणभद्रतटवर्ती देशका परिचय देते हुए यह अपनी तथा अपने कुलकी उत्पत्ति बतायी है॥ १३॥

काकुत्स्थ! मेरे कथा कहते-कहते आधी रात बीत गयी। अब थोड़ी देर नींद ले लो। तुम्हारा कल्याण हो। मैं चाहता हूँ कि अधिक जागरणके कारण हमारी यात्रामें विघ्न न पड़े॥ १४॥

सारे वृक्ष निष्कम्प जान पड़ते हैं—इनका एक पत्ता भी नहीं हिलता है। पशु-पक्षी अपने-अपने वासस्थानमें छिपकर बसेरे लेते हैं। रघुनन्दन! रात्रिके अन्धकारसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं॥ १५॥

धीरे-धीरे संध्या दूर चली गयी। नक्षत्रों तथा ताराओंसे भरा हुआ आकाश (सहस्राक्ष इन्द्रकी भाँति) सहस्रों ज्योतिर्मय नेत्रोंसे व्याप्त-सा होकर प्रकाशित हो रहा है॥ १६॥

सम्पूर्ण लोकका अन्धकार दूर करनेवाले शीतरश्मि चन्द्रमा अपनी प्रभासे जगत्के प्राणियोंके मनको आह्लाद प्रदान करते हुए उदित हो रहे हैं*॥ १७॥

* इस वर्णनसे जान पड़ता है कि उस रात्रिको कृष्णपक्षकी नवमी तिथि थी।

रातमें विचरनेवाले समस्त प्राणी—यक्ष-राक्षसोंके समुदाय तथा भयंकर पिशाच इधर-उधर विचर रहे हैं॥ १८॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये। उस समय सभी मुनियोंने साधुवाद देकर विश्वामित्रजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की—॥ १९॥

'कुशपुत्रोंका यह वंश सदा ही महान् धर्मपरायण रहा है। कुशवंशी महात्मा श्रेष्ठ मानव ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हुए हैं॥ २०॥

'महायशस्वी विश्वामित्रजी! अपने वंशमें सबसे बड़े महात्मा आप ही हैं तथा सरिताओंमें श्रेष्ठ कौशिकी भी आपके कुलकी कीर्तिको प्रकाशित करनेवाली है'॥ २१॥

इस प्रकार आनन्दमग्न हुए उन मुनिवरोंद्वारा प्रशंसित श्रीमान् कौशिक मुनि अस्त हुए सूर्यकी भाँति नींद लेने लगे॥ २२॥

वह कथा सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको भी कुछ विस्मय हो आया। वे भी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रकी सराहना करके नींद लेने लगे॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

शोणभद्र पार करके विश्वामित्र आदिका गंगाजीके तटपर पहुँचकर वहाँ रात्रिवास करना तथा श्रीरामके पूछनेपर विश्वामित्रजीका उन्हें गंगाजीकी उत्पत्तिकी कथा सुनाना

महर्षियोंसहित विश्वामित्रने रात्रिके शेषभागमें शोणभद्रके तटपर शयन किया। जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब वे श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'श्रीराम! रात बीत गयी। सबेरा हो गया। तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो और चलनेकी तैयारी करो'॥ २॥

मुनिकी बात सुनकर पूर्वाह्णकालका नित्यनियम पूर्ण करके श्रीराम चलनेको तैयार हो गये और इस प्रकार बोले—॥ ३॥

'ब्रह्मन्! शुभ जलसे परिपूर्ण तथा अपने तटोंसे सुशोभित होनेवाला यह शोणभद्र तो अथाह जान पड़ता है। हमलोग किस मार्गसे चलकर इसे पार करेंगे?'॥ ४॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विश्वामित्र बोले—'जिस मार्गसे महर्षिगण शोणभद्रको पार करते हैं, उसका मैंने पहलेसे ही निश्चय कर रखा है, वह मार्ग यह है'॥ ५॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर वे महर्षि नाना प्रकारके वनोंकी शोभा देखते हुए वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ६॥

बहुत दूरका मार्ग तै कर लेनेपर दोपहर होते-होते उन सब लोगोंने मुनिजनसेवित, सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगाजीके तटपर पहुँचकर उनका दर्शन किया॥ ७॥

हंसों तथा सारसोंसे सेवित पुण्यसलिला भागीरथीका दर्शन करके श्रीरामचन्द्रजीके साथ समस्त मुनि बहुत प्रसन्न हुए॥ ८॥

उस समय सबने गंगाजीके तटपर डेरा डाला। फिर विधिवत् स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। उसके बाद अग्निहोत्र करके अमृतके समान मीठे हविष्यका भोजन किया। तदनन्तर वे सभी कल्याणकारी महर्षि प्रसन्नचित्त हो महात्मा विश्वामित्रको चारों ओरसे घेरकर गंगाजीके तटपर बैठ गये॥ ९-१०$\frac{1}{2}$॥

जब वे सब मुनि स्थिरभावसे विराजमान हो गये और श्रीराम तथा लक्ष्मण भी यथायोग्य स्थानपर बैठ गये, तब श्रीरामने प्रसन्नचित्त होकर विश्वामित्रजीसे पूछा—॥ ११॥

'भगवन्! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि तीन मार्गोंसे प्रवाहित होनेवाली नदी ये गंगाजी किस प्रकार तीनों लोकोंमें घूमकर नदों और नदियोंके स्वामी समुद्रमें जा मिली हैं?'॥ १२॥

श्रीरामके इस प्रश्नद्वारा प्रेरित हो महामुनि विश्वामित्रने गंगाजीकी उत्पत्ति और वृद्धिकी कथा कहना आरम्भ किया—॥ १३॥

'श्रीराम! हिमवान् नामक एक पर्वत है, जो समस्त पर्वतोंका राजा तथा सब प्रकारके धातुओंका बहुत बड़ा खजाना है। हिमवान्‌की दो कन्याएँ हैं, जिनके सुन्दर रूपकी इस भूतलपर कहीं तुलना नहीं है॥ १४॥

'मेरु पर्वतकी मनोहारिणी पुत्री मेना हिमवान्‌की प्यारी पत्नी है। सुन्दर कटिप्रदेशवाली मेना ही उन दोनों कन्याओंकी जननी हैं॥ १५॥

'रघुनन्दन! मेनाके गर्भसे जो पहली कन्या उत्पन्न हुई, वही ये गंगाजी हैं। ये हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री हैं।

हिमवान्‌की ही दूसरी कन्या, जो मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुईं, उमा नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १६॥

कुछ कालके पश्चात् सब देवताओंने देवकार्यकी सिद्धिके लिये ज्येष्ठ कन्या गंगाजीको, जो आगे चलकर स्वर्गसे त्रिपथगा नदीके रूपमें अवतीर्ण हुईं, गिरिराज हिमालयसे माँगा॥ १७॥

'हिमवान्‌ने त्रिभुवनका हित करनेकी इच्छासे स्वच्छन्द पथपर विचरनेवाली अपनी लोकपावनी पुत्री गंगाको धर्मपूर्वक उन्हें दे दिया॥ १८॥

'तीनों लोकोंके हितकी इच्छावाले देवता त्रिभुवनकी भलाईके लिये ही गंगाजीको लेकर मन-ही-मन कृतार्थताका अनुभव करते हुए चले गये॥ १९॥

'रघुनन्दन! गिरिराजकी जो दूसरी कन्या उमा थीं, वे उत्तम एवं कठोर व्रतका पालन करती हुई घोर तपस्यामें लग गयीं। उन्होंने तपोमय धनका संचय किया॥ २०॥

'गिरिराजने उग्र तपस्यामें संलग्न हुई अपनी वह विश्ववन्दिता पुत्री उमा अनुपम प्रभावशाली भगवान् रुद्रको ब्याह दी॥ २१॥

'रघुनन्दन! इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगा तथा भगवती उमा—ये दोनों गिरिराज हिमालयकी कन्याएँ हैं। सारा संसार इनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है॥ २२॥

'गतिशीलोंमें श्रेष्ठ तात श्रीराम! गंगाजीकी उत्पत्तिके विषयमें ये सारी बातें मैंने तुम्हें बता दीं। ये त्रिपथगामिनी कैसे हुईं? यह भी सुन लो। पहले तो ये आकाशमार्गमें गयी थीं। तत्पश्चात् ये गिरिराजकुमारी गंगा रमणीया देवनदीके रूपमें देवलोकमें आरूढ़ हुई थीं। फिर जलरूपमें प्रवाहित हो लोगोंके पाप दूर करती हुई रसातलमें पहुँची थीं'॥ २३-२४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

देवताओंका शिव-पार्वतीको सुरतक्रीडासे निवृत्त करना तथा उमादेवीका देवताओं और पृथ्वीको शाप देना

विश्वामित्रजीकी बात समाप्त होनेपर श्रीराम और लक्ष्मण दोनों वीरोंने उनकी कही हुई कथाका अभिनन्दन करके मुनिवर विश्वामित्रसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'ब्रह्मन्! आपने यह बड़ी उत्तम धर्मयुक्त कथा सुनायी। अब आप गिरिराज हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री गंगाके दिव्यलोक तथा मनुष्यलोकसे सम्बन्ध होनेका वृत्तान्त विस्तारके साथ सुनाइये; क्योंकि आप विस्तृत वृत्तान्तके ज्ञाता हैं॥ २॥

'लोकको पवित्र करनेवाली गंगा किस कारणसे तीन मार्गोंमें प्रवाहित होती हैं? सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगाकी 'त्रिपथगा' नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई?॥ ३॥

'धर्मज्ञ महर्षे! तीनों लोकोंमें वे अपनी तीन धाराओंके द्वारा कौन-कौन-से कार्य करती हैं?' श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर तपोधन विश्वामित्रने मुनिमण्डलीके बीच गंगाजीसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें पूर्णरूपसे कह सुनायीं—॥ ४ $\frac{1}{2}$ ॥

'श्रीराम! पूर्वकालमें महातपस्वी भगवान् नीलकण्ठने उमादेवीके साथ विवाह करके उनको नववधूके रूपमें अपने निकट आयी देख उनके साथ रति-क्रीडा आरम्भ की॥ ५ $\frac{1}{2}$ ॥

'परम बुद्धिमान् महान् देवता भगवान् नीलकण्ठके उमादेवीके साथ क्रीडा-विहार करते सौ दिव्य वर्ष बीत गये॥ ६॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम! इतने वर्षोंतक विहारके बाद भी महादेवजीके उमादेवीके गर्भसे कोई पुत्र नहीं हुआ। यह देख ब्रह्मा आदि सभी देवता उन्हें रोकनेका उद्योग करने लगे॥ ७॥

'उन्होंने सोचा—इतने दीर्घकालके पश्चात् यदि रुद्रके तेजसे उमादेवीके गर्भसे कोई महान् प्राणी प्रकट हो भी जाय तो कौन उसके तेजको सहन करेगा? यह विचारकर सब देवता भगवान् शिवके पास जा उन्हें प्रणाम करके यों बोले—॥ ८॥

'इस लोकके हितमें तत्पर रहनेवाले देवदेव महादेव! देवता आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। इससे प्रसन्न होकर आप इन देवताओंपर कृपा करें॥ ९॥

'सुरश्रेष्ठ! ये लोक आपके तेजको नहीं धारण

कर सकेंगे; अतः आप क्रीडासे निवृत्त हो वेदबोधित तपस्यासे युक्त होकर उमादेवीके साथ तप कीजिये॥ १०॥

'तीनों लोकोंके हितकी कामनासे अपने तेज (वीर्य) को तेजःस्वरूप अपने-आपमें ही धारण कीजिये। इन सब लोकोंकी रक्षा कीजिये। लोकोंका विनाश न कर डालिये'॥ ११॥

'देवताओंकी यह बात सुनकर सर्वलोकमहेश्वर शिवने 'बहुत अच्छा' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया; फिर उनसे इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'देवताओ! उमासहित मैं अर्थात् हम दोनों अपने तेजसे ही तेजको धारण कर लेंगे। पृथ्वी आदि सभी लोकोंके निवासी शान्ति लाभ करें॥ १३॥

'किंतु सुरश्रेष्ठगण! यदि मेरा यह सर्वोत्तम तेज (वीर्य) क्षुब्ध होकर अपने स्थानसे स्खलित हो जाय तो उसे कौन धारण करेगा?—यह मुझे बताओ'॥ १४॥

उनके ऐसा कहनेपर देवताओंने वृषभध्वज भगवान् शिवसे कहा—'भगवन्! आज आपका जो तेज क्षुब्ध होकर गिरेगा, उसे यह पृथ्वीदेवी धारण करेगी'॥ १५॥

'देवताओंका यह कथन सुनकर महाबली देवेश्वर शिवने अपना तेज छोड़ा, जिससे पर्वत और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी॥ १६॥

'तब देवताओंने अग्निदेवसे कहा—'अग्ने! तुम वायुके सहयोगसे भगवान् शिवके इस महान् तेजको अपने भीतर रख लो'॥ १७॥

'अग्निसे व्याप्त होनेपर वह तेज श्वेत पर्वतके रूपमें परिणत हो गया। साथ ही वहाँ दिव्य सरकंडोंका वन भी प्रकट हुआ, जो अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी प्रतीत होता था॥ १८॥

'उसी वनमें अग्निजनित महातेजस्वी कार्तिकेयका प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर ऋषियोंसहित देवताओंने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर देवी उमा और भगवान् शिवका बड़े भक्तिभावसे पूजन किया॥ १९ $\frac{1}{2}$ ॥

'श्रीराम! इसके बाद गिरिराजनन्दिनी उमाके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने समस्त देवताओंको रोषपूर्वक शाप दे दिया। वे बोलीं—॥ २० $\frac{1}{2}$ ॥

'देवताओ! मैंने पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे पतिके साथ समागम किया था, परंतु तुमने मुझे रोक दिया। अतः अब तुमलोग भी अपनी पत्नियोंसे संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह जाओगे। आजसे तुम्हारी पत्नियाँ संतानोत्पादन नहीं कर सकेंगी—संतानहीन हो जायँगी'॥ २१-२२॥

'सब देवताओंसे ऐसा कहकर उमादेवीने पृथिवीको भी शाप दिया—'भूमे! तेरा एक रूप नहीं रह जायगा। तू बहुतोंकी भार्या होगी॥ २३॥

'खोटी बुद्धिवाली पृथ्वी! तू चाहती थी कि मेरे पुत्र न हो। अतः मेरे क्रोधसे कलुषित होकर तू भी पुत्रजनित सुख या प्रसन्नताका अनुभव न कर सकेगी'॥ २४॥

'उन सब देवताओंको उमादेवीके शापसे पीडित देख देवेश्वर भगवान् शिवने उस समय पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान कर दिया॥ २५॥

'वहाँसे जाकर हिमालय पर्वतके उत्तर भागमें उसीके एक शिखरपर उमादेवीके साथ भगवान् महेश्वर तप करने लगे॥ २६॥

'लक्ष्मणसहित श्रीराम! यह मैंने तुम्हें गिरिराज हिमवान्की छोटी पुत्री उमादेवीका विस्तृत वृत्तान्त बताया है। अब मुझसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा सुनो'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

गंगासे कार्तिकेयकी उत्पत्तिका प्रसंग

जब महादेवजी तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता अपने लिये सेनापतिकी इच्छा लेकर ब्रह्माजीके पास आये॥ १॥

देवताओंको आराम देनेवाले श्रीराम! इन्द्र और अग्निसहित समस्त देवताओंने भगवान् ब्रह्माको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ २॥

'प्रभो! पूर्वकालमें जिन भगवान् महेश्वरने हमें (बीजरूपसे) सेनापति प्रदान किया था, वे उमादेवीके साथ उत्तम तपका आश्रय लेकर तपस्या करते हैं॥ ३॥

'विधि-विधानके ज्ञाता पितामह! अब लोकहितके लिये जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसको पूर्ण कीजिये; क्योंकि आप ही हमारे परम आश्रय हैं'॥ ४॥

देवताओंकी यह बात सुनकर सम्पूर्ण लोकोंके

पितामह ब्रह्माजीने मधुर वचनोंद्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा— ॥ ५ ॥

'देवताओ! गिरिराजकुमारी पार्वतीने जो शाप दिया है, उसके अनुसार तुम्हें अपनी पत्नियोंके गर्भसे अब कोई संतान नहीं होगी। उमादेवीकी वाणी अमोघ है; अतः वह सत्य होकर ही रहेगी; इसमें संशय नहीं है॥

'ये हैं उमाकी बड़ी बहिन आकाशगंगा, जिनके गर्भमें शङ्करजीके उस तेजको स्थापित करके अग्निदेव एक ऐसे पुत्रको जन्म देंगे, जो देवताओंके शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ सेनापति होगा॥ ७॥

'ये गंगा गिरिराजकी ज्येष्ठ पुत्री हैं, अतः अपनी छोटी बहिनके उस पुत्रको अपने ही पुत्रके समान मानेंगी। उमाको भी यह बहुत प्रिय लगेगा। इसमें संशय नहीं है'॥ ८ ॥

रघुनन्दन! ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर सब देवता कृतकृत्य हो गये। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके उनका पूजन किया॥ ९॥

श्रीराम! विविध धातुओंसे अलंकृत उत्तम कैलास पर्वतपर जाकर उन सम्पूर्ण देवताओंने अग्निदेवको पुत्र उत्पन्न करनेके कार्यमें नियुक्त किया॥ १०॥

वे बोले—'देव! हुताशन! यह देवताओंका कार्य है, इसे सिद्ध कीजिये। भगवान् रुद्रके उस महान् तेजको अब आप गंगाजीमें स्थापित कर दीजिये'॥ ११॥

तब देवताओंसे 'बहुत अच्छा' कहकर अग्निदेव गंगाजीके निकट आये और बोले—'देवि! आप इस गर्भको धारण करें। यह देवताओंका प्रिय कार्य है'॥ १२॥

अग्निदेवकी यह बात सुनकर गंगादेवीने दिव्यरूप धारण कर लिया। उनकी यह महिमा—यह रूप-वैभव देखकर अग्निदेवने उस रुद्र-तेजको उनके सब ओर बिखेर दिया॥ १३॥

रघुनन्दन! अग्निदेवने जब गंगादेवीको सब ओरसे उस रुद्र-तेजद्वारा अभिषिक्त कर दिया, तब गंगाजीके सारे स्रोत उससे परिपूर्ण हो गये॥ १४॥

तब गंगाने समस्त देवताओंके अग्रगामी अग्निदेवसे इस प्रकार कहा—'देव! आपके द्वारा स्थापित किये गये इस बढ़े हुए तेजको धारण करनेमें मैं असमर्थ हूँ। इसकी आँचसे जल रही हूँ और मेरी चेतना व्यथित हो गयी है'॥ १५$\frac{1}{2}$ ॥

तब सम्पूर्ण देवताओंके हविष्यको भोग लगानेवाले अग्निदेवने गंगादेवीसे कहा—'देवि! हिमालय पर्वतके पार्श्वभागमें इस गर्भको स्थापित कर दीजिये'॥ १६$\frac{1}{2}$ ॥

निष्पाप रघुनन्दन! अग्निकी यह बात सुनकर महातेजस्विनी गंगाने उस अत्यन्त प्रकाशमान गर्भको अपने स्रोतोंसे निकालकर यथोचित स्थानमें रख दिया॥

गंगाके गर्भसे जो तेज निकला, वह तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान कान्तिमान् दिखायी देने लगा (गंगा सुवर्णमय मेरुगिरिसे प्रकट हुई हैं; अतः उनका बालक भी वैसे ही रूप-रंगका हुआ)। पृथ्वीपर जहाँ वह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ, वहाँकी भूमि तथा प्रत्येक वस्तु सुवर्णमयी हो गयी। उसके आस-पासका स्थान अनुपम प्रभासे प्रकाशित होनेवाला रजत हो गया। उस तेजकी तीक्ष्णतासे ही दूरवर्ती भूभागकी वस्तुएँ ताँबे और लोहेके रूपमें परिणत हो गयीं॥ १८-१९॥

उस तेजस्वी गर्भका जो मल था, वही वहाँ राँगा और सीसा हुआ। इस प्रकार पृथ्वीपर पड़कर वह तेज नाना प्रकारके धातुओंके रूपमें वृद्धिको प्राप्त हुआ॥ २०॥

पृथ्वीपर उस गर्भके रखे जाते ही उसके तेजसे व्याप्त होकर पूर्वोक्त श्वेतपर्वत और उससे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वन सुवर्णमय होकर जगमगाने लगा॥ २१॥

पुरुषसिंह रघुनन्दन! तभीसे अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्णका नाम जातरूप हो गया; क्योंकि उसी समय सुवर्णका तेजस्वी रूप प्रकट हुआ था। उस गर्भके सम्पर्कसे वहाँका तृण, वृक्ष, लता और गुल्म—सब कुछ सोनेका हो गया॥ २२॥

तदनन्तर इन्द्र और मरुद्गणोंसहित सम्पूर्ण देवताओंने वहाँ उत्पन्न हुए कुमारको दूध पिलानेके लिये छहों कृत्तिकाओंको नियुक्त किया॥ २३॥

तब उन कृत्तिकाओंने 'यह हम सबका पुत्र हो' ऐसी उत्तम शर्त रखकर और इस बातका निश्चित विश्वास लेकर उस नवजात बालकको अपना दूध प्रदान किया॥ २४॥

उस समय सब देवता बोले—'यह बालक कार्तिकेय कहलायेगा और तुमलोगोंका त्रिभुवनविख्यात पुत्र होगा—इसमें संशय नहीं है'॥ २५॥

देवताओंका यह अनुकूल वचन सुनकर शिव और पार्वतीसे स्कन्दित (स्खलित) तथा गंगाद्वारा गर्भस्राव होनेपर प्रकट हुए अग्निके समान उत्तम प्रभासे प्रकाशित होनेवाले उस बालकको कृत्तिकाओंने नहलाया॥ २६॥

ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! अग्नितुल्य तेजस्वी

महाबाहु कार्तिकेय गर्भस्रावकालमें स्कन्दित हुए थे; इसलिये देवताओंने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा॥ २७॥

तदनन्तर कृत्तिकाओंके स्तनोंमें परम उत्तम दूध प्रकट हुआ। उस समय स्कन्दने अपने छः मुख प्रकट करके उन छहोंका एक साथ ही स्तनपान किया॥ २८॥

एक ही दिन दूध पीकर उस सुकुमार शरीरवाले शक्तिशाली कुमारने अपने पराक्रमसे दैत्योंकी सारी सेनाओंपर विजय प्राप्त की॥ २९॥

तत्पश्चात् अग्नि आदि सब देवताओंने मिलकर उन महातेजस्वी स्कन्दका देवसेनापतिके पदपर अभिषेक किया॥ ३०॥

श्रीराम! यह मैंने तुम्हें गंगाजीके चरित्रको विस्तारपूर्वक बताया है; साथ ही कुमार कार्तिकेयके जन्मका भी प्रसंग सुनाया है, जो श्रोताको धन्य एवं पुण्यात्मा बनानेवाला है॥ ३१॥

काकुत्स्थ! इस पृथ्वीपर जो मनुष्य कार्तिकेयमें भक्तिभाव रखता है, वह इस लोकमें दीर्घायु तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न हो मृत्युके पश्चात् स्कन्दके लोकमें जाता है॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

राजा सगरके पुत्रोंकी उत्पत्ति तथा यज्ञकी तैयारी

विश्वामित्रजीने मधुर अक्षरोंसे युक्त वह कथा श्रीरामको सुनाकर फिर उनसे दूसरा प्रसंग इस प्रकार कहा—॥ १॥

'वीर! पहलेकी बात है, अयोध्यामें सगर नामसे प्रसिद्ध एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उन्हें कोई पुत्र नहीं था; अतः वे पुत्र-प्राप्तिके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे॥ २॥

'श्रीराम! विदर्भराजकुमारी केशिनी राजा सगरकी ज्येष्ठ पत्नी थी। वह बड़ी धर्मात्मा और सत्यवादिनी थी॥ ३॥

'सगरकी दूसरी पत्नीका नाम सुमति था। वह अरिष्टनेमि कश्यपकी पुत्री तथा गरुडकी बहिन थी॥ ४॥

'महाराज सगर अपनी उन दोनों पत्नियोंके साथ हिमालय पर्वतपर जाकर भृगुप्रस्रवण नामक शिखरपर तपस्या करने लगे॥ ५॥

'सौ वर्ष पूर्ण होनेपर उनकी तपस्याद्वारा प्रसन्न हुए सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ महर्षि भृगुने राजा सगरको वर दिया॥ ६॥

'निष्पाप नरेश! तुम्हें बहुत-से पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। पुरुषप्रवर! तुम इस संसारमें अनुपम कीर्ति प्राप्त करोगे॥ ७॥

'तात! तुम्हारी एक पत्नी तो एक ही पुत्रको जन्म देगी, जो अपनी वंशपरम्पराका विस्तार करनेवाला होगा तथा दूसरी पत्नी साठ हजार पुत्रोंकी जननी होगी॥ ८॥

'महात्मा भृगु जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय उन दोनों राजकुमारियों (रानियों)-ने उन्हें प्रसन्न करके स्वयं भी अत्यन्त आनन्दित हो दोनों हाथ जोड़कर पूछा—॥ ९॥

'ब्रह्मन्! किस रानीके एक पुत्र होगा और कौन बहुत-से पुत्रोंकी जननी होगी? हम दोनों यह सुनना चाहती हैं। आपकी वाणी सत्य हो'॥ १०॥

'उन दोनोंकी यह बात सुनकर परम धर्मात्मा भृगुने उत्तम वाणीमें कहा—'देवियो! तुमलोग यहाँ अपनी इच्छा प्रकट करो। तुम्हें वंश चलानेवाला एक ही पुत्र प्राप्त हो अथवा महान् बलवान्, यशस्वी एवं अत्यन्त उत्साही बहुत-से पुत्र? इन दो वरोंमेंसे किस वरको कौन-सी रानी ग्रहण करना चाहती है?'॥ ११-१२॥

'रघुकुलनन्दन श्रीराम! मुनिका यह वचन सुनकर केशिनीने राजा सगरके समीप वंश चलानेवाले एक ही पुत्रका वर ग्रहण किया॥ १३॥

'तब गरुड़की बहिन सुमतिने महान् उत्साही और यशस्वी साठ हजार पुत्रोंको जन्म देनेका वर प्राप्त किया॥ १४॥

'रघुनन्दन! तदनन्तर रानियोंसहित राजा सगरने महर्षिकी परिक्रमा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और अपने नगरको प्रस्थान किया॥ १५॥

'कुछ काल व्यतीत होनेपर बड़ी रानी केशिनीने सगरके औरस पुत्र 'असमञ्ज' को जन्म दिया॥ १६॥

'पुरुषसिंह! (छोटी रानी) सुमतिने तूँबीके आकारका एक गर्भपिण्ड उत्पन्न किया। उसको फोड़नेसे साठ हजार बालक निकले॥ १७॥

'उन्हें घीसे भरे हुए घड़ोंमें रखकर धाइयाँ उनका पालन-पोषण करने लगीं। धीरे-धीरे जब बहुत दिन बीत गये, तब वे सभी बालक युवावस्थाको प्राप्त हुए॥

'इस तरह दीर्घकालके पश्चात् राजा सगरके रूप और युवावस्थासे सुशोभित होनेवाले साठ हजार पुत्र तैयार हो गये॥ १९॥

'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! सगरका ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज नगरके बालकोंको पकड़कर सरयूके जलमें फेंक देता और जब वे डूबने लगते, तब उनकी ओर देखकर हँसा करता॥ २०½॥

'इस प्रकार पापाचारमें प्रवृत्त होकर जब वह सत्पुरुषोंको पीड़ा देने और नगर-निवासियोंका अहित करने लगा, तब पिताने उसे नगरसे बाहर निकाल दिया॥ २१½॥

'असमञ्जके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह बड़ा ही पराक्रमी, सबसे मधुर वचन बोलनेवाला तथा सब लोगोंको प्रिय था॥ २२½॥

'नरश्रेष्ठ! कुछ कालके अनन्तर महाराज सगरके मनमें यह निश्चित विचार हुआ कि 'मैं यज्ञ करूँ'॥ २३½॥

'यह दृढ़ निश्चय करके वे वेदवेत्ता नरेश अपने उपाध्यायोंके साथ यज्ञ करनेकी तैयारीमें लग गये'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

इन्द्रके द्वारा राजा सगरके यज्ञसम्बन्धी अश्वका अपहरण, सगरपुत्रोंद्वारा सारी पृथ्वीका भेदन तथा देवताओंका ब्रह्माजीको यह सब समाचार बताना

विश्वामित्रजीकी कही हुई कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कथाके अन्तमें अग्नितुल्य तेजस्वी विश्वामित्र मुनिसे कहा—॥ १॥

'ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। मैं इस कथाको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। मेरे पूर्वज महाराज सगरने किस प्रकार यज्ञ किया था?'॥ २॥

उनकी वह बात सुनकर विश्वामित्रजीको बड़ा कौतूहल हुआ। वे यह सोचकर कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसीके लिये ये प्रश्न कर रहे हैं, जोर-जोरसे हँस पड़े। हँसते हुए-से ही उन्होंने श्रीरामसे कहा—॥

'राम! तुम महात्मा सगरके यज्ञका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो। पुरुषोत्तम! शङ्करजीके श्वशुर हिमवान् नामसे विख्यात पर्वत विन्ध्याचलतक पहुँचकर तथा विन्ध्यपर्वत हिमवान्‌तक पहुँचकर दोनों एक-दूसरेको देखते हैं (इन दोनोंके बीचमें दूसरा कोई ऐसा ऊँचा पर्वत नहीं है, जो दोनोंके पारस्परिक दर्शनमें बाधा उपस्थित कर सके)। इन्हीं दोनों पर्वतोंके बीच आर्यावर्तकी पुण्यभूमिमें उस यज्ञका अनुष्ठान हुआ था॥ ४-५॥

'पुरुषसिंह! वही देश यज्ञ करनेके लिये उत्तम माना गया है। तात ककुत्स्थनन्दन! राजा सगरकी आज्ञासे यज्ञिय अश्वकी रक्षाका भार सुदृढ़ धनुर्धर महारथी अंशुमान्‌ने स्वीकार किया था॥ ६½॥

'परंतु पर्वके दिन यज्ञमें लगे हुए राजा सगरके यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको इन्द्रने राक्षसका रूप धारण करके चुरा लिया॥ ७½॥

'काकुत्स्थ! महामना सगरके उस अश्वका अपहरण होते समय समस्त ऋत्विजोंने यजमान सगरसे कहा—'ककुत्स्थनन्दन! आज पर्वके दिन कोई इस यज्ञसम्बन्धी अश्वको चुराकर बड़े वेगसे लिये जा रहा है। आप चोरको मारिये और घोड़ा वापस लाइये, नहीं तो यज्ञमें विघ्न पड़ जायगा और वह हम सब लोगोंके लिये अमंगलका कारण होगा। राजन्! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह यज्ञ बिना किसी विघ्न-बाधाके परिपूर्ण हो'॥

'उस यज्ञ-सभामें बैठे हुए राजा सगरने उपाध्यायोंकी बात सुनकर अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा—'पुरुषप्रवर पुत्रो! यह महान् यज्ञ वेदमन्त्रोंसे पवित्र अन्तःकरणवाले महाभाग महात्माओंद्वारा सम्पादित हो रहा है; अतः यहाँ राक्षसोंकी पहुँच हो, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता (अतः यह अश्व चुरानेवाला कोई देवकोटिका पुरुष होगा)॥

'अतः पुत्रो! तुमलोग जाओ, घोड़ेकी खोज करो। तुम्हारा कल्याण हो। समुद्रसे घिरी हुई इस सारी पृथ्वीको छान डालो। एक-एक योजन विस्तृत भूमिको बाँटकर उसका चप्पा-चप्पा देख डालो। जबतक घोड़ेका पता न लग जाय, तबतक मेरी आज्ञासे इस पृथ्वीको खोदते रहो। इस खोदनेका एक ही लक्ष्य है—उस अश्वके चोरको ढूँढ़ निकालना॥ १३—१५॥

'मैं यज्ञकी दीक्षा ले चुका हूँ, अतः स्वयं उसे ढूँढ़नेके लिये नहीं जा सकता; इसलिये जबतक उस अश्वका दर्शन न हो, तबतक मैं उपाध्यायों और पौत्र अंशुमान्‌के साथ यहीं रहूँगा'॥ १६॥

'श्रीराम! पिताके आदेशरूपी बन्धनसे बँधकर वे सभी महाबली राजकुमार मन-ही-मन हर्षका अनुभव करते हुए भूतलपर विचरने लगे॥ १७॥

'सारी पृथ्वीका चक्कर लगानेके बाद भी उस अश्वको न देखकर उन महाबली पुरुषसिंह राजपुत्रोंने प्रत्येकके हिस्सेमें एक-एक योजन भूमिका बँटवारा करके अपनी भुजाओंद्वारा उसे खोदना आरम्भ किया। उनकी उन भुजाओंका स्पर्श वज्रके स्पर्शकी भाँति दुस्सह था॥ १८॥

'रघुनन्दन! उस समय वज्रतुल्य शूलों और अत्यन्त दारुण हलोंद्वारा सब ओरसे विदीर्ण की जाती हुई वसुधा आर्तनाद करने लगी॥ १९॥

'रघुवीर! उन राजकुमारोंद्वारा मारे जाते हुए नागों, असुरों, राक्षसों तथा दूसरे-दूसरे प्राणियोंका भयंकर आर्तनाद गूँजने लगा॥ २०॥

'रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! उन्होंने साठ हजार योजनकी भूमि खोद डाली। मानो वे सर्वोत्तम रसातलका अनुसंधान कर रहे हों॥ २१॥

'नृपश्रेष्ठ राम! इस प्रकार पर्वतोंसे युक्त जम्बूद्वीपकी भूमि खोदते हुए वे राजकुमार सब ओर चक्कर लगाने लगे॥ २२॥

'इसी समय गन्धर्वों, असुरों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवता मन-ही-मन घबरा उठे और ब्रह्माजीके पास गये॥ २३॥

'उनके मुखपर विषाद छा रहा था। वे भयसे अत्यन्त संत्रस्त हो गये थे। उन्होंने महात्मा ब्रह्माजीको प्रसन्न करके इस प्रकार कहा—॥ २४॥

'भगवन्! सगरके पुत्र इस सारी पृथ्वीको खोदे डालते हैं और बहुत-से महात्माओं तथा जलचारी जीवोंका वध कर रहे हैं॥ २५॥

'यह हमारे यज्ञमें विघ्न डालनेवाला है। यह हमारा अश्व चुराकर ले जाता है' ऐसा कहकर वे सगरके पुत्र समस्त प्राणियोंकी हिंसा कर रहे हैं'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

सगरपुत्रोंके भावी विनाशकी सूचना देकर ब्रह्माजीका देवताओंको शान्त करना, सगरके पुत्रोंका पृथ्वीको खोदते हुए कपिलजीके पास पहुँचना और उनके रोषसे जलकर भस्म होना

देवताओंकी बात सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कितने ही प्राणियोंका अन्त करनेवाले सगरपुत्रोंके बलसे मोहित एवं भयभीत हुए उन देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'देवगण! यह सारी पृथ्वी जिन भगवान् वासुदेवकी वस्तु है तथा जिन भगवान् लक्ष्मीपतिकी यह रानी है, वे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि कपिल मुनिका रूप धारण करके निरन्तर इस पृथ्वीको धारण करते हैं। उनकी कोपाग्निसे ये सारे राजकुमार जलकर भस्म हो जायँगे॥ २-३॥

'पृथ्वीका यह भेदन सनातन है—प्रत्येक कल्पमें अवश्यम्भावी है। (श्रुतियों और स्मृतियोंमें आये हुए सागर आदि शब्दोंसे यह बात सुस्पष्ट ज्ञात होती है।) इसी प्रकार दूरदर्शी पुरुषोंने सगरके पुत्रोंका भावी विनाश भी देखा ही है; अतः इस विषयमें शोक करना अनुचित है'॥

ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले तैंतीस देवता बड़े हर्षमें भरकर जैसे आये थे, उसी तरह पुनः लौट गये॥ ५॥

सगरपुत्रोंके हाथसे जब पृथ्वी खोदी जा रही थी, उस समय उससे वज्रपातके समान बड़ा भयंकर शब्द होता था॥ ६॥

इस तरह सारी पृथ्वी खोदकर तथा उसकी परिक्रमा करके वे सभी सगरपुत्र पिताके पास खाली हाथ लौट आये और बोले—॥ ७॥

'पिताजी! हमने सारी पृथ्वी छान डाली। देवता, दानव, राक्षस, पिशाच और नाग आदि बड़े-बड़े बलवान् प्राणियोंको मार डाला। फिर भी हमें न तो कहीं घोड़ा दिखायी दिया और न घोड़ेका चुरानेवाला ही। आपका भला हो। अब हम क्या करें? इस विषयमें आप ही कोई उपाय सोचिये'॥ ८-९॥

'रघुनन्दन! पुत्रोंका यह वचन सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ सगरने उनसे कुपित होकर कहा—॥ १०॥

'जाओ, फिरसे सारी पृथ्वी खोदो और इसे विदीर्ण करके घोड़ेके चोरका पता लगाओ। चोरतक

पहुँचकर काम पूरा होनेपर ही लौटना'॥ ११॥

अपने महात्मा पिता सगरकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके वे साठ हजार राजकुमार रसातलकी ओर बढ़े (और रोषमें भरकर पृथ्वी खोदने लगे)॥ १२॥

उस खुदाईके समय ही उन्हें एक पर्वताकार दिग्गज दिखायी दिया, जिसका नाम विरूपाक्ष है। वह इस भूतलको धारण किये हुए था॥ १३॥

रघुनन्दन! महान् गजराज विरूपाक्षने पर्वत और वनोंसहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण कर रखा था॥ १४॥

काकुत्स्थ! वह महान् दिग्गज जिस समय थककर विश्रामके लिये अपने मस्तकको इधर-उधर हटाता था, उस समय भूकम्प होने लगता था॥ १५॥

श्रीराम! पूर्व दिशाकी रक्षा करनेवाले विशाल गजराज विरूपाक्षकी परिक्रमा करके उसका सम्मान करते हुए वे सगरपुत्र रसातलका भेदन करके आगे बढ़ गये॥ १६॥

पूर्व दिशाका भेदन करनेके पश्चात् वे पुनः दक्षिण दिशाकी भूमिको खोदने लगे। दक्षिण दिशामें भी उन्हें एक महान् दिग्गज दिखायी दिया॥ १७॥

उसका नाम था महापद्म। महान् पर्वतके समान ऊँचा वह विशालकाय गजराज अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण करता था। उसे देखकर उन राजकुमारोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ १८॥

महात्मा सगरके वे साठ हजार पुत्र उस दिग्गजकी परिक्रमा करके पश्चिम दिशाकी भूमिका भेदन करने लगे॥ १९॥

पश्चिम दिशामें भी उन महाबली सगरपुत्रोंने महान् पर्वताकार दिग्गज सौमनसका दर्शन किया॥ २०॥

उसकी भी परिक्रमा करके उसका कुशल-समाचार पूछकर वे सभी राजकुमार भूमि खोदते हुए उत्तर दिशामें जा पहुँचे॥ २१॥

रघुश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें उन्हें हिमके समान श्वेतभद्र नामक दिग्गज दिखायी दिया, जो अपने कल्याणमय शरीरसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए था॥ २२॥

उसका कुशल-समाचार पूछकर राजा सगरके वे सभी साठ हजार पुत्र उसकी परिक्रमा करनेके पश्चात् भूमि खोदनेके काममें जुट गये॥ २३॥

तदनन्तर सुविख्यात पूर्वोत्तर दिशामें जाकर उन सगरकुमारोंने एक साथ होकर रोषपूर्वक पृथ्वीको खोदना आरम्भ किया॥ २४॥

इस बार उन सभी महामना, महाबली एवं भयानक वेगशाली राजकुमारोंने वहाँ सनातन वासुदेवस्वरूप भगवान् कपिलको देखा॥ २५॥

राजा सगरके यज्ञका वह घोड़ा भी भगवान् कपिलके पास ही चर रहा था। रघुनन्दन! उसे देखकर उन सबको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ॥ २६॥

भगवान् कपिलको अपने यज्ञमें विघ्न डालनेवाला जानकर उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उन्होंने अपने हाथोंमें खंती, हल और नाना प्रकारके वृक्ष एवं पत्थरोंके टुकड़े ले रखे थे॥ २७॥

वे अत्यन्त रोषमें भरकर उनकी ओर दौड़े और बोले— 'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह। तू ही हमारे यज्ञके घोड़ेको यहाँ चुरा लाया है। दुर्बुद्धे! अब हम आ गये। तू समझ ले, हम महाराज सगरके पुत्र हैं'॥ २८ $\frac{१}{२}$॥

रघुनन्दन! उनकी बात सुनकर भगवान् कपिलको बड़ा रोष हुआ और उस रोषके आवेशमें ही उनके मुँहसे एक हुंकार निकल पड़ा॥ २९ $\frac{१}{२}$॥

श्रीराम! उस हुंकारके साथ ही उन अनन्त प्रभावशाली महात्मा कपिलने उन सभी सगरपुत्रोंको जलाकर राखका ढेर कर दिया॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

सगरकी आज्ञासे अंशुमान्‌का रसातलमें जाकर घोड़ेको ले आना और अपने चाचाओंके निधनका समाचार सुनाना

रघुनन्दन! 'पुत्रोंको गये बहुत दिन हो गये'—ऐसा जानकर राजा सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌से, जो अपने तेजसे देदीप्यमान हो रहा था, इस प्रकार कहा—॥ १॥

'वत्स! तुम शूरवीर, विद्वान् तथा अपने पूर्वजोंके तुल्य तेजस्वी हो। तुम भी अपने चाचाओंके पथका अनुसरण करो और उस चोरका पता लगाओ, जिसने मेरे यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका अपहरण कर लिया है॥ २॥

'देखो, पृथ्वीके भीतर बड़े-बड़े बलवान् जीव

रहते हैं; अतः उनसे टक्कर लेनेके लिये तुम तलवार और धनुष भी लेते जाओ॥ ३॥

'जो वन्दनीय पुरुष हों, उन्हें प्रणाम करना और जो तुम्हारे मार्गमें विघ्न डालनेवाले हों, उनको मार डालना। ऐसा करते हुए सफलमनोरथ होकर लौटो और मेरे इस यज्ञको पूर्ण कराओ'॥ ४॥

महात्मा सगरके ऐसा कहनेपर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम कर दिखानेवाला वीरवर अंशुमान् धनुष और तलवार लेकर चल दिया॥ ५॥

नरश्रेष्ठ! उसके महामनस्वी चाचाओंने पृथ्वीके भीतर जो मार्ग बना दिया था, उसीपर वह राजा सगरसे प्रेरित होकर गया॥ ६॥

वहाँ उस महातेजस्वी वीरने एक दिग्गजको देखा, जिसकी देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी और नाग—सभी पूजा कर रहे थे॥ ७॥

उसकी परिक्रमा करके कुशल-मंगल पूछकर अंशुमान्ने उस दिग्गजसे अपने चाचाओंका समाचार तथा अश्व चुरानेवालेका पता पूछा॥ ८॥

उसका प्रश्न सुनकर परम बुद्धिमान् दिग्गजने इस प्रकार उत्तर दिया—'असमंजकुमार! तुम अपना कार्य सिद्ध करके घोड़ेसहित शीघ्र लौट आओगे'॥ ९॥

उसकी यह बात सुनकर अंशुमान्ने क्रमशः सभी दिग्गजोंसे न्यायानुसार उक्त प्रश्न पूछना आरम्भ किया॥ १०॥

वाक्यके मर्मको समझने तथा बोलनेमें कुशल उन समस्त दिग्गजोंने अंशुमान्का सत्कार किया और यह शुभ कामना प्रकट की कि तुम घोड़ेसहित लौट आओगे॥

उनका यह आशीर्वाद सुनकर अंशुमान् शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ उसके चाचा सगरपुत्र राखके ढेर हुए पड़े थे॥ १२॥

उनके वधसे असमंजपुत्र अंशुमान्को बड़ा दुःख हुआ। वह शोकके वशीभूत हो अत्यन्त आर्तभावसे फूट-फूटकर रोने लगा॥ १३॥

दुःख-शोकमें डूबे हुए पुरुषसिंह अंशुमान्ने अपने यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको भी वहाँ पास ही चरते देखा॥ १४॥

महातेजस्वी अंशुमान्ने उन राजकुमारोंको जलाञ्जलि देनेके लिये जलकी इच्छा की; किंतु वहाँ कहीं भी कोई जलाशय नहीं दिखायी दिया॥ १५॥

श्रीराम! तब उसने दूरतककी वस्तुओंको देखनेमें समर्थ अपनी दृष्टिको फैलाकर देखा। उस समय उसे वायुके समान वेगशाली पक्षिराज गरुड़ दिखायी दिये, जो उसके चाचाओं (सगरपुत्रों) के मामा थे॥ १६॥

महाबली विनतानन्दन गरुड़ने अंशुमान्से कहा—'पुरुषसिंह! शोक न करो। इन राजकुमारोंका वध सम्पूर्ण जगत्के मंगलके लिये हुआ है॥ १७॥

'विद्वन्! अनन्त प्रभावशाली महात्मा कपिलने इन महाबली राजकुमारोंको दग्ध किया है। इनके लिये तुम्हें लौकिक जलकी अञ्जलि देना उचित नहीं है॥ १८॥

'नरश्रेष्ठ! महाबाहो! हिमवान्की जो ज्येष्ठ पुत्री गंगाजी हैं, उन्हींके जलसे अपने इन चाचाओंका तर्पण करो॥ १९॥

'जिस समय लोकपावनी गंगा राखके ढेर होकर गिरे हुए उन साठ हजार राजकुमारोंको अपने जलसे आप्लावित करेंगी, उसी समय उन सबको स्वर्गलोकमें पहुँचा देंगी। लोककमनीया गंगाके जलसे भीगी हुई यह भस्मराशि इन सबको स्वर्गलोकमें भेज देगी॥ २०॥

'महाभाग! पुरुषप्रवर! वीर! अब तुम घोड़ा लेकर जाओ और अपने पितामहका यज्ञ पूर्ण करो'॥ २१॥

गरुड़की यह बात सुनकर अत्यन्त पराक्रमी महातपस्वी अंशुमान् घोड़ा लेकर तुरंत लौट आया॥

रघुनन्दन! यज्ञमें दीक्षित हुए राजाके पास आकर उसने सारा समाचार निवेदन किया और गरुड़की बतायी हुई बात भी कह सुनायी॥ २३॥

अंशुमान्के मुखसे यह भयंकर समाचार सुनकर राजा सगरने कल्पोक्त नियमके अनुसार अपना यज्ञ विधिवत् पूर्ण किया॥ २४॥

यज्ञ समाप्त करके पृथ्वीपति महाराज सगर अपनी राजधानीको लौट आये। वहाँ आनेपर उन्होंने गंगाजीको ले आनेके विषयमें बहुत विचार किया; किंतु वे किसी निश्चयपर न पहुँच सके॥ २५॥

दीर्घकालतक विचार करनेपर भी उन्हें कोई निश्चित उपाय नहीं सूझा और तीस हजार वर्षोंतक राज्य करके वे स्वर्गलोकको चले गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

अंशुमान् और भगीरथकी तपस्या, ब्रह्माजीका भगीरथको अभीष्ट वर देकर गंगाजीको धारण करनेके लिये भगवान् शङ्करको राजी करनेके निमित्त प्रयत्न करनेकी सलाह देना

श्रीराम! सगरकी मृत्यु हो जानेपर प्रजाजनोंने परम धर्मात्मा अंशुमान्‌को राजा बनानेकी रुचि प्रकट की॥ १॥

रघुनन्दन! अंशुमान् बड़े प्रतापी राजा हुए। उनके पुत्रका नाम दिलीप था। वह भी एक महान् पुरुष था॥ २॥

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले वीर! अंशुमान् दिलीपको राज्य देकर हिमालयके रमणीय शिखरपर चले गये और वहाँ अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे॥ ३॥

महान् यशस्वी राजा अंशुमान्‌ने उस तपोवनमें जाकर बत्तीस हजार वर्षोंतक तप किया। तपस्याके धनसे सम्पन्न हुए उस नरेशने वहीं शरीर त्यागकर स्वर्गलोक प्राप्त किया॥ ४॥

अपने पितामहोंके वधका वृत्तान्त सुनकर महातेजस्वी दिलीप भी बहुत दुःखी रहते थे। अपनी बुद्धिसे बहुत सोचने-विचारनेके बाद भी वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके॥ ५॥

वे सदा इसी चिन्तामें डूबे रहते थे कि किस प्रकार पृथ्वीपर गंगाजीका उतरना सम्भव होगा? कैसे गंगाजलद्वारा उन्हें जलाञ्जलि दी जायेगी और किस प्रकार मैं अपने उन पितरोंका उद्धार कर सकूँगा॥ ६॥

प्रतिदिन इन्हीं सब चिन्ताओंमें पड़े हुए राजा दिलीपको, जो अपने धर्माचरणसे बहुत विख्यात थे, भगीरथ नामक एक परम धर्मात्मा पुत्र प्राप्त हुआ॥ ७॥

महातेजस्वी दिलीपने बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान तथा तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया॥ ८॥

पुरुषसिंह! उन पितरोंके उद्धारके विषयमें किसी निश्चयको न पहुँचकर राजा दिलीप रोगसे पीड़ित हो मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ९॥

पुत्र भगीरथको राज्यपर अभिषिक्त करके नरश्रेष्ठ राजा दिलीप अपने किये हुए पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोकमें गये॥ १०॥

रघुनन्दन! धर्मात्मा राजर्षि महाराज भगीरथके कोई संतान नहीं थी। वे संतान-प्राप्तिकी इच्छा रखते थे तो भी प्रजा और राज्यकी रक्षाका भार मन्त्रियोंपर रखकर गंगाजीको पृथ्वीपर उतारनेके प्रयत्नमें लग गये और गोकर्णतीर्थमें बड़ी भारी तपस्या करने लगे॥ ११-१२॥

महाबाहो! वे अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर पञ्चाग्निका सेवन करते और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर एक-एक महीनेपर आहार ग्रहण करते थे। इस प्रकार घोर तपस्यामें लगे हुए महात्मा राजा भगीरथके एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

इससे प्रजाओंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए। पितामह ब्रह्माने देवताओंके साथ वहाँ आकर तपस्यामें लगे हुए महात्मा भगीरथसे इस प्रकार कहा—॥ १४-१५॥

'महाराज भगीरथ! तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले नरेश्वर! तुम कोई वर माँगो'॥ १६॥

तब महातेजस्वी महाबाहु भगीरथ हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये और उन सर्वलोकपितामह ब्रह्मासे इस प्रकार बोले—॥ १७॥

'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि इस तपस्याका कोई उत्तम फल है तो सगरके सभी पुत्रोंको मेरे हाथसे गंगाजीका जल प्राप्त हो॥ १८॥

'इन महात्माओंकी भस्मराशिके गंगाजीके जलसे भीग जानेपर मेरे उन सभी प्रपितामहोंको अक्षय स्वर्गलोक मिले॥ १९॥

'देव! मैं संततिके लिये भी आपसे प्रार्थना करता हूँ। हमारे कुलकी परम्परा कभी नष्ट न हो। भगवन्! मेरे द्वारा माँगा हुआ उत्तम वर सम्पूर्ण इक्ष्वाकुवंशके लिये लागू होना चाहिये'॥ २०॥

राजा भगीरथके ऐसा कहनेपर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीने मधुर अक्षरोंवाली परम कल्याणमयी मीठी वाणीमें कहा—॥ २१॥

'इक्ष्वाकुवंशकी वृद्धि करनेवाले महारथी भगीरथ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा यह महान् मनोरथ इसी रूपमें पूर्ण हो॥ २२॥

'राजन्! ये हैं हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री हैमवती गंगाजी। इनको धारण करनेके लिये भगवान् शङ्करको तैयार करो॥ २३॥

'महाराज! गंगाजीके गिरनेका वेग यह पृथ्वी नहीं सह सकेगी। मैं त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करके सिवा और किसीको ऐसा नहीं देखता, जो इन्हें धारण कर सके'॥ २४॥

राजासे ऐसा कहकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजीने भगवती गंगासे भी भगीरथपर अनुग्रह करनेके लिये कहा। इसके बाद वे सम्पूर्ण देवताओं तथा मरुद्गणोंके साथ स्वर्गलोकको चले गये॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

भगीरथकी तपस्यासे संतुष्ट हुए भगवान् शङ्करका गंगाको अपने सिरपर धारण करके बिन्दुसरोवरमें छोड़ना और उनका सात धाराओंमें विभक्त हो भगीरथके साथ जाकर उनके पितरोंका उद्धार करना

श्रीराम! देवाधिदेव ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा भगीरथ पृथ्वीपर केवल अँगूठेके अग्रभागको टिकाये हुए खड़े हो एक वर्षतक भगवान् शङ्करकी उपासनामें लगे रहे॥ १॥

वर्ष पूरा होनेपर सर्वलोकवन्दित उमावल्लभ भगवान् पशुपतिने प्रकट होकर राजासे इस प्रकार कहा—॥ २॥

'नरश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। मैं गिरिराजकुमारी गंगादेवीको अपने मस्तकपर धारण करूँगा'॥ ३॥

श्रीराम! शङ्करजीकी स्वीकृति मिल जानेपर हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गंगाजी, जिनके चरणोंमें सारा संसार मस्तक झुकाता है, बहुत बड़ा रूप धारण करके अपने वेगको दुस्सह बनाकर आकाशसे भगवान् शङ्करके शोभायमान मस्तकपर गिरीं॥ ४$\frac{1}{2}$॥

उस समय परम दुर्धर गंगादेवीने यह सोचा था कि मैं अपने प्रखर प्रवाहके साथ शङ्करजीको लिये-दिये पातालमें घुस जाऊँगी॥ ५$\frac{1}{2}$॥

उनके इस अहंकारको जानकर त्रिनेत्रधारी भगवान् हर कुपित हो उठे और उन्होंने उस समय गंगाको अदृश्य कर देनेका विचार किया॥ ६$\frac{1}{2}$॥

पुण्यस्वरूपा गंगा भगवान् रुद्रके पवित्र मस्तकपर गिरीं। उनका वह मस्तक जटामण्डलरूपी गुफासे सुशोभित हिमालयके समान जान पड़ता था। उसपर गिरकर विशेष प्रयत्न करनेपर भी किसी तरह वे पृथ्वीपर न जा सकीं॥ ७-८॥

भगवान् शिवके जटा-जालमें उलझकर किनारे आकर भी गंगादेवी वहाँसे निकलनेका मार्ग न पा सकीं और बहुत वर्षोंतक उस जटाजूटमें ही भटकती रहीं॥ ९॥

रघुनन्दन! भगीरथने देखा, गंगाजी भगवान् शङ्करके जटामण्डलमें अदृश्य हो गयी हैं; तब वे पुनः वहाँ भारी तपस्यामें लग गये। उस तपस्याद्वारा उन्होंने भगवान् शिवको बहुत संतुष्ट कर लिया॥ १०॥

तब महादेवजीने गंगाजीको बिन्दुसरोवरमें ले जाकर छोड़ दिया। वहाँ छूटते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं॥ ११॥

ह्लादिनी, पावनी और नलिनी—ये कल्याणमय जलसे सुशोभित गंगाकी तीन मंगलमयी धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर चली गयीं॥ १२॥

सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु—ये तीन शुभ धाराएँ पश्चिम दिशाकी ओर प्रवाहित हुईं॥ १३॥

उनकी अपेक्षा जो सातवीं धारा थी, वह महाराज भगीरथके रथके पीछे-पीछे चलने लगी। महातेजस्वी राजर्षि भगीरथ भी दिव्य रथपर आरूढ़ हो आगे-आगे चले और गंगा उन्हींके पथका अनुसरण करने लगीं। इस प्रकार वे आकाशसे भगवान् शङ्करके मस्तकपर और वहाँसे इस पृथ्वीपर आयी थीं॥ १४-१५॥

गंगाजीकी वह जलराशि महान् कलकल नादके साथ तीव्र गतिसे प्रवाहित हुई। मत्स्य, कच्छप और शिंशुमार (सूँस) झुंड-के-झुंड उसमें गिरने लगे। उन गिरे हुए जलजन्तुओंसे वसुन्धराकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १६$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धगण नगरके समान आकारवाले विमानों, घोड़ों तथा गजराजोंपर बैठकर आकाशसे पृथ्वीपर गयी हुई गंगाजीकी शोभा निहारने लगे॥ १७-१८॥

देवतालोग आश्चर्यचकित होकर वहाँ खड़े थे। जगत्में गंगावतरणके इस अद्भुत एवं उत्तम दृश्यको देखनेकी इच्छासे अमित तेजस्वी देवताओंका समूह वहाँ जुटा हुआ था॥ १९$\frac{1}{2}$॥

तीव्र गतिसे आते हुए देवताओं तथा उनके दिव्य आभूषणोंके प्रकाशसे वहाँका मेघरहित निर्मल आकाश इस तरह प्रकाशित हो रहा था, मानो उसमें सैकड़ों सूर्य

उदित हो गये हों॥ २०$\frac{1}{2}$ ॥

शिंशुमार, सर्प तथा चञ्चल मत्स्यसमूहोंके उछलनेसे गंगाजीके जलसे ऊपरका आकाश ऐसा जान पड़ता था, मानो वहाँ चञ्चल चपलाओंका प्रकाश सब ओर व्याप्त हो रहा हो॥ २१$\frac{1}{2}$ ॥

वायु आदिसे सहस्रों टुकड़ोंमें बँटे हुए फेन आकाशमें सब ओर फैल रहे थे। मानो शरद्-ऋतुके श्वेत बादल अथवा हंस उड़ रहे हों॥ २२$\frac{1}{2}$ ॥

गंगाजीकी वह धारा कहीं तेज, कहीं टेढ़ी और कहीं चौड़ी होकर बहती थी। कहीं बिलकुल नीचेकी ओर गिरती और कहीं ऊँचेकी ओर उठी हुई थी। कहीं समतल भूमिपर वह धीरे-धीरे बहती थी और कहीं-कहीं अपने ही जलसे उसके जलमें बारम्बार टक्करें लगती रहती थीं॥ २३-२४॥

गंगाका वह जल बार-बार ऊँचे मार्गपर उठता और पुनः नीची भूमिपर गिरता था। आकाशसे भगवान् शङ्करके मस्तकपर तथा वहाँसे फिर पृथ्वीपर गिरा हुआ वह निर्मल एवं पवित्र गंगाजल उस समय बड़ी शोभा पा रहा था॥

उस समय भूतलनिवासी ऋषि और गन्धर्व यह सोचकर कि भगवान् शङ्करके मस्तकसे गिरा हुआ यह जल बहुत पवित्र है, उसमें आचमन करने लगे॥ २६$\frac{1}{2}$ ॥

जो शापभ्रष्ट होकर आकाशसे पृथ्वीपर आ गये थे, वे गंगाके जलमें स्नान करके निष्पाप हो गये तथा उस जलसे पाप धुल जानेके कारण पुनः शुभ पुण्यसे संयुक्त हो आकाशमें पहुँचकर अपने लोकोंको पा गये॥

उस प्रकाशमान जलके सम्पर्कसे आनन्दित हुए सम्पूर्ण जगत्‌को सदाके लिये बड़ी प्रसन्नता हुई। सब लोग गंगामें स्नान करके पापहीन हो गये॥ २९$\frac{1}{2}$ ॥

(हम पहले बता आये हैं कि) राजर्षि महाराज भगीरथ दिव्य रथपर आरूढ़ हो आगे-आगे चल रहे थे और गंगाजी उनके पीछे-पीछे जा रही थीं॥ ३०$\frac{1}{2}$ ॥

श्रीराम! उस समय समस्त देवता, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, यक्षप्रवर, किन्नर, बड़े-बड़े नाग, सर्प तथा अप्सरा—ये सब लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ राजा भगीरथके रथके पीछे गंगाजीके साथ-साथ चल रहे थे। सब प्रकारके जलजन्तु भी गंगाजीकी उस जलराशिके साथ सानन्द जा रहे थे॥ ३१-३२$\frac{1}{2}$ ॥

जिस ओर राजा भगीरथ जाते, उसी ओर समस्त पापोंका नाश करनेवाली सरिताओंमें श्रेष्ठ यशस्विनी गंगा भी जाती थीं॥ ३३$\frac{1}{2}$ ॥

उस समय मार्गमें अद्‌भुत पराक्रमी महामना राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगाजी अपने जल-प्रवाहसे उनके यज्ञमण्डपको बहा ले गयीं॥ ३४$\frac{1}{2}$ ॥

रघुनन्दन! राजा जह्नु इसे गंगाजीका गर्व समझकर कुपित हो उठे; फिर तो उन्होंने गंगाजीके उस समस्त जलको पी लिया। यह संसारके लिये बड़ी अद्भुत बात हुई॥ ३५$\frac{1}{2}$ ॥

तब देवता, गन्धर्व तथा ऋषि अत्यन्त विस्मित होकर पुरुषप्रवर महात्मा जह्नुकी स्तुति करने लगे॥ ३६$\frac{1}{2}$ ॥

उन्होंने गंगाजीको उन महात्मा नरेशकी कन्या बना दिया। (अर्थात् उन्हें यह विश्वास दिलाया कि गंगाजीको प्रकट करके आप इनके पिता कहलायेंगे।) इससे सामर्थ्यशाली महातेजस्वी जह्नु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने कानोंके छिद्रोंद्वारा गंगाजीको पुनः प्रकट कर दिया, इसलिये गंगा जह्नुकी पुत्री एवं जाह्नवी कहलाती हैं॥ ३७-३८॥

वहाँसे गंगा फिर भगीरथके रथका अनुसरण करती हुई चलीं। उस समय सरिताओंमें श्रेष्ठ जाह्नवी समुद्रतक जा पहुँचीं और राजा भगीरथके पितरोंके उद्धाररूपी कार्यकी सिद्धिके लिये रसातलमें गयीं॥ ३९$\frac{1}{2}$ ॥

राजर्षि भगीरथ भी यत्नपूर्वक गंगाजीको साथ ले वहाँ गये। उन्होंने शापसे भस्म हुए अपने पितामहोंको अचेत-सा होकर देखा॥ ४०$\frac{1}{2}$ ॥

रघुकुलके श्रेष्ठ वीर! तदनन्तर गंगाके उस उत्तम जलने सगर-पुत्रोंकी उस भस्मराशिको आप्लावित कर दिया और वे सभी राजकुमार निष्पाप होकर स्वर्गमें पहुँच गये॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजीका भगीरथकी प्रशंसा करते हुए उन्हें गंगाजलसे पितरोंके तर्पणकी आज्ञा देना और राजाका वह सब करके अपने नगरको जाना, गंगावतरणके उपाख्यानकी महिमा

श्रीराम! इस प्रकार गंगाजीको साथ लिये राजा भगीरथने समुद्रतक जाकर रसातलमें, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, प्रवेश किया। वह भस्मराशि जब गंगाजीके जलसे आप्लावित हो गयी, तब सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माने वहाँ पधारकर राजासे इस प्रकार कहा—॥ १-२ ॥

'नरश्रेष्ठ! महात्मा राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंका तुमने उद्धार कर दिया। अब वे देवताओंकी भाँति स्वर्गलोकमें जा पहुँचे॥ ३ ॥

'भूपाल! इस संसारमें जबतक सागरका जल मौजूद रहेगा; तबतक सगरके सभी पुत्र देवताओंकी भाँति स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहेंगे॥ ४ ॥

'ये गंगा तुम्हारी भी ज्येष्ठ पुत्री होकर रहेंगी और तुम्हारे नामपर रखे हुए भागीरथी नामसे इस जगत्में विख्यात होंगी॥ ५ ॥

'त्रिपथगा, दिव्या और भागीरथी—इन तीनों नामोंसे गंगाकी प्रसिद्धि होगी। ये आकाश, पृथ्वी और पाताल तीनों पथोंको पवित्र करती हुई गमन करती हैं, इसलिये त्रिपथगा मानी गयी हैं॥ ६ ॥

'नरेश्वर! महाराज! अब तुम गंगाजीके जलसे यहाँ अपने सभी पितामहोंका तर्पण करो और इस प्रकार अपनी तथा अपने पूर्वजोंद्वारा की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण कर लो॥ ७ ॥

'राजन्! तुम्हारे पूर्वज धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी राजा सगर भी गंगाको यहाँ लाना चाहते थे; किंतु उनका यह मनोरथ नहीं पूर्ण हुआ॥ ८ ॥

'वत्स! इसी प्रकार लोकमें अप्रतिम प्रभावशाली, उत्तम गुणविशिष्ट, महर्षितुल्य तेजस्वी, मेरे समान तपस्वी तथा क्षत्रिय-धर्मपरायण राजर्षि अंशुमान्ने भी गंगाको यहाँ लानेकी इच्छा की; परंतु वे इस पृथ्वीपर उन्हें लानेकी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके॥ ९-१० ॥

'निष्पाप महाभाग! तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी पिता दिलीप भी गंगाको यहाँ लानेकी इच्छा करके भी इस कार्यमें सफल न हो सके॥ ११ ॥

'पुरुषप्रवर! तुमने गंगाको भूतलपर लानेकी वह प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली। इससे संसारमें तुम्हें परम उत्तम एवं महान् यशकी प्राप्ति हुई है॥ १२ ॥

शत्रुदमन! तुमने जो गंगाजीको पृथ्वीपर उतारनेका कार्य पूरा किया है, इससे उस महान् ब्रह्मलोकपर अधिकार प्राप्त कर लिया है, जो धर्मका आश्रय है॥

'नरश्रेष्ठ! पुरुषप्रवर! गंगाजीका जल सदा ही स्नानके योग्य है। तुम स्वयं भी इसमें स्नान करो और पवित्र होकर पुण्यका फल प्राप्त करो॥ १४ ॥

'नरेश्वर! तुम अपने सभी पितामहोंका तर्पण करो। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं अपने लोकको जाऊँगा। तुम भी अपनी राजधानीको लौट जाओ'॥ १५ ॥

ऐसा कहकर सर्वलोकपितामह महायशस्वी देवेश्वर ब्रह्माजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको लौट गये॥ १६ ॥

नरश्रेष्ठ! महायशस्वी राजर्षि राजा भगीरथ भी गंगाजीके उत्तम जलसे क्रमशः सभी सगर-पुत्रोंका विधिवत् तर्पण करके पवित्र हो अपने नगरको चले गये। इस प्रकार सफलमनोरथ होकर वे अपने राज्यका शासन करने लगे॥ १७-१८ ॥

रघुनन्दन! अपने राजाको पुनः सामने पाकर प्रजावर्गको बड़ी प्रसन्नता हुई। सबका शोक जाता रहा। सबके मनोरथ पूर्ण हुए और चिन्ता दूर हो गयी॥ १९ ॥

श्रीराम! यह गंगाजीकी कथा मैंने तुम्हें विस्तारके साथ कह सुनायी। तुम्हारा कल्याण हो। अब जाओ, मंगलमय संध्यावन्दन आदिका सम्पादन करो। देखो, संध्याकाल बीता जा रहा है॥ २० ॥

यह गंगावतरणका मंगलमय उपाख्यान आयु बढ़ानेवाला है। धन, यश, आयु, पुत्र और स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा दूसरे वर्णके लोगोंको भी यह कथा सुनाता है, उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न होते हैं॥ २१-२२ ॥

ककुत्स्थकुलभूषण! जो इसका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और आयुकी वृद्धि एवं कीर्तिका विस्तार होता है॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

देवताओं और दैत्योंद्वारा क्षीर-समुद्र-मन्थन, भगवान् रुद्रद्वारा हालाहल विषका पान, भगवान् विष्णुके सहयोगसे मन्दराचलका पातालसे उद्धार और उसके द्वारा मन्थन, धन्वन्तरि, अप्सरा, वारुणी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ तथा अमृतकी उत्पत्ति और देवासुर-संग्राममें दैत्योंका संहार

विश्वामित्रजीकी बातें सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे मुनिसे इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

'ब्रह्मन्! आपने गंगाजीके स्वर्गसे उतरने और समुद्रके भरनेकी यह बड़ी उत्तम और अत्यन्त अद्भुत कथा सुनायी॥ २ ॥

'काम-क्रोधादि शत्रुओंको संताप देनेवाले महर्षे! आपकी कही हुई इस सम्पूर्ण कथापर पूर्णरूपसे विचार करते हुए हम दोनों भाइयोंकी यह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी है॥ ३ ॥

'विश्वामित्रजी! लक्ष्मणके साथ इस शुभ कथापर विचार करते हुए ही मेरी यह सारी रात बीती है'॥ ४ ॥

तत्पश्चात् निर्मल प्रभातकाल उपस्थित होनेपर तपोधन विश्वामित्रजी जब नित्यकर्मसे निवृत्त हो चुके, तब शत्रुदमन श्रीरामचन्द्रजीने उनके पास जाकर कहा— ॥ ५ ॥

'मुने! यह पूजनीया रात्रि चली गयी। सुनने योग्य सर्वोत्तम कथा मैंने सुन ली। अब हमलोग सरिताओंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला त्रिपथगामिनी नदी गंगाजीके उस पार चलें॥ ६ ॥

'सदा पुण्यकर्ममें तत्पर रहनेवाले ऋषियोंकी यह नाव उपस्थित है। इसपर सुखद आसन बिछा है। आप परमपूज्य महर्षिको यहाँ उपस्थित जानकर ऋषियोंकी भेजी हुई यह नाव बड़ी तीव्र गतिसे यहाँ आयी है'॥ ७ ॥

महात्मा रघुनन्दनका यह वचन सुनकर विश्वामित्रजीने पहले ऋषियोंसहित श्रीराम-लक्ष्मणको पार कराया॥ ८ ॥

तत्पश्चात् स्वयं भी उत्तर तटपर पहुँचकर उन्होंने वहाँ रहनेवाले ऋषियोंका सत्कार किया। फिर सब लोग गंगाजीके किनारे ठहरकर विशाला नामक पुरीकी शोभा देखने लगे॥ ९ ॥

तदनन्तर श्रीराम-लक्ष्मणको साथ ले मुनिवर विश्वामित्र तुरंत उस दिव्य एवं रमणीय नगरी विशालाकी ओर चल दिये, जो अपनी सुन्दर शोभासे स्वर्गके समान जान पड़ती थी॥ १० ॥

उस समय परम बुद्धिमान् श्रीरामने हाथ जोड़कर उस उत्तम विशाला पुरीके विषयमें महामुनि विश्वामित्रसे पूछा— ॥ ११ ॥

'महामुने! आपका कल्याण हो। मैं यह सुनना चाहता हूँ कि विशालामें कौन-सा राजवंश राज्य कर रहा है? इसके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा है'॥ १२ ॥

श्रीरामका यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने विशाला पुरीके प्राचीन इतिहासका वर्णन आरम्भ किया— ॥ १३ ॥

'रघुकुलनन्दन श्रीराम! मैंने इन्द्रके मुखसे विशाला-पुरीके वैभवका प्रतिपादन करनेवाली जो कथा सुनी है, उसे बता रहा हूँ, सुनो। इस देशमें जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे यथार्थरूपसे श्रवण करो॥ १४ ॥

'श्रीराम! पहले सत्ययुगमें दितिके पुत्र दैत्य बड़े बलवान् थे और अदितिके परम धर्मात्मा पुत्र महाभाग देवता भी बड़े शक्तिशाली थे॥ १५ ॥

'पुरुषसिंह! उन महामना दैत्यों और देवताओंके मनमें यह विचार हुआ कि हम कैसे अजर-अमर और नीरोग हों?॥ १६ ॥

'इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन विचारशील देवताओं और दैत्योंकी बुद्धिमें यह बात आयी कि हमलोग यदि क्षीरसागरका मन्थन करें तो उसमें निश्चय ही अमृतमय रस प्राप्त कर लेंगे॥ १७ ॥

'समुद्रमन्थनका निश्चय करके उन अमिततेजस्वी देवताओं और दैत्योंने वासुकि नागको रस्सी और मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीर-सागरको मथना आरम्भ किया॥ १८ ॥

'तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतनेपर रस्सी बने हुए सर्पके बहुसंख्यक मुख अत्यन्त विष उगलते हुए वहाँ मन्दराचलकी शिलाओंको अपने दाँतोंसे डँसने लगे॥ १९ ॥

'अतः उस समय वहाँ अग्निके समान दाहक हालाहल नामक महाभयंकर विष ऊपरको उठा। उसने देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत्‌को दग्ध करना आरम्भ किया॥ २० ॥

'यह देख देवतालोग शरणार्थी होकर सबका

कल्याण करनेवाले महान् देवता पशुपति रुद्रकी शरणमें गये और त्राहि-त्राहिकी पुकार लगाकर उनकी स्तुति करने लगे॥ २१॥

'देवताओंके इस प्रकार पुकारनेपर देवदेवेश्वर भगवान् शिव वहाँ प्रकट हुए। फिर वहीं शङ्ख-चक्रधारी भगवान् श्रीहरि भी उपस्थित हो गये॥ २२॥

'श्रीहरिने त्रिशूलधारी भगवान् रुद्रसे मुसकराकर कहा—'सुरश्रेष्ठ! देवताओंके समुद्रमन्थन करनेपर जो वस्तु सबसे पहले प्राप्त हुई है, वह आपका भाग है; क्योंकि आप सब देवताओंमें अग्रगण्य हैं। प्रभो! अग्रपूजाके रूपमें प्राप्त हुए इस विषको आप यहीं खड़े होकर ग्रहण करें'॥ २३-२४॥

'ऐसा कहकर देवशिरोमणि विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओंका भय देखकर और भगवान् विष्णुकी पूर्वोक्त बात सुनकर देवेश्वर भगवान् रुद्रने उस घोर हालाहल विषको अमृतके समान मानकर अपने कण्ठमें धारण कर लिया तथा देवताओंको विदा करके वे अपने स्थानको चले गये॥ २५-२६॥

'रघुनन्दन! तत्पश्चात् देवता और असुर सब मिलकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे। उस समय मथानी बना हुआ उत्तम पर्वत मन्दर पातालमें घुस गया॥ २७

'तब देवता और गन्धर्व भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे—'महाबाहो! आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति हैं। विशेषतः देवताओंके अवलम्बन तो आप ही हैं। आप हमारी रक्षा करें और इस पर्वतको उठावें'॥ २८½॥

'यह सुनकर भगवान् हृषीकेशने कच्छपका रूप धारण कर लिया और उस पर्वतको अपनी पीठपर रखकर वे श्रीहरि वहीं समुद्रके भीतर सो गये॥ २९½॥

'फिर विश्वात्मा पुरुषोत्तम भगवान् केशव उस पर्वतशिखरको हाथसे पकड़कर देवताओंके बीचमें खड़े हो स्वयं भी समुद्रका मन्थन करने लगे॥ ३०½॥

'तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतनेपर उस क्षीरसागरसे एक आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष प्रकट हुए, जिनके एक हाथमें दण्ड और दूसरेमें कमण्डलु था। उनका नाम धन्वन्तरि था। उनके प्राकट्यके बाद सागरसे सुन्दर कान्तिवाली बहुत-सी अप्सराएँ प्रकट हुईं॥ ३१-३२॥

'नरश्रेष्ठ! मन्थन करनेसे ही अप् (जल) में उसके रससे वे सुन्दरी स्त्रियाँ उत्पन्न हुई थीं, इसलिये अप्सरा कहलायीं॥ ३३॥

'काकुत्स्थ! उन सुन्दर कान्तिवाली अप्सराओंकी संख्या साठ करोड़ थी और जो उनकी परिचारिकाएँ थीं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। वे सब असंख्य थीं॥ ३४॥

'उन अप्सराओंको समस्त देवता और दानव कोई भी अपनी 'पत्नी' रूपसे ग्रहण न कर सके, इसलिये वे साधारणा (सामान्या) मानी गयीं॥ ३५॥

'रघुनन्दन! तदनन्तर वरुणकी कन्या वारुणी, जो सुराकी अभिमानिनी देवी थी, प्रकट हुई और अपनेको स्वीकार करनेवाले पुरुषकी खोज करने लगी॥ ३६॥

'वीर श्रीराम! दैत्योंने उस वरुणकन्या सुराको नहीं ग्रहण किया, परंतु अदितिके पुत्रोंने इस अनिन्द्य सुन्दरीको ग्रहण कर लिया॥ ३७॥

'सुरासे रहित होनेके कारण ही दैत्य 'असुर' कहलाये और सुरा-सेवनके कारण ही अदितिके पुत्रोंकी 'सुर' संज्ञा हुई। वारुणीको ग्रहण करनेसे देवतालोग हर्षसे उत्फुल्ल एवं आनन्दमग्न हो गये॥ ३८॥

'नरश्रेष्ठ! तदनन्तर घोड़ोंमें उत्तम उच्चैःश्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ तथा परम उत्तम अमृतका प्राकट्य हुआ॥ ३९॥

'श्रीराम! उस अमृतके लिये देवताओं और असुरोंके कुलका महान् संहार हुआ। अदितिके पुत्र दितिके पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ४०॥

समस्त असुर राक्षसोंके साथ मिलकर एक हो गये। वीर! देवताओंके साथ उनका महाघोर संग्राम होने लगा, जो तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला था॥ ४१॥

'जब देवताओं और असुरोंका वह सारा समूह क्षीण हो चला, तब महाबली भगवान् विष्णुने मोहिनी मायाका आश्रय लेकर तुरंत ही अमृतका अपहरण कर लिया॥ ४२॥

'जो दैत्य बलपूर्वक अमृत छीन लानेके लिये अविनाशी पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुके सामने गये, उन्हें प्रभावशाली भगवान् विष्णुने उस समय युद्धमें पीस डाला॥ ४३॥

'देवताओं और दैत्योंके उस घोर महायुद्धमें अदितिके वीर पुत्रोंने दितिके पुत्रोंका विशेष संहार किया॥ ४४॥

'दैत्योंका वध करनेके पश्चात् त्रिलोकीका राज्य पाकर देवराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और ऋषियों तथा चारणोंसहित समस्त लोकोंका शासन करने लगे'॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

पुत्रवधसे दुःखी दितिका कश्यपजीसे इन्द्रहन्ता पुत्रकी प्राप्तिके उद्देश्यसे तपके लिये आज्ञा लेकर कुशप्लवमें तप करना, इन्द्रद्वारा उनकी परिचर्या तथा उन्हें अपवित्र अवस्थामें पाकर इन्द्रका उनके गर्भके सात टुकड़े कर डालना

अपने उन पुत्रोंके मारे जानेपर दितिको बड़ा दुःख हुआ। वे अपने पति मरीचिनन्दन कश्यपके पास जाकर बोलीं— ॥ १ ॥

'भगवन्! आपके महाबली पुत्र देवताओंने मेरे पुत्रोंको मार डाला; अतः मैं दीर्घकालकी तपस्यासे उपार्जित एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ हो ॥ २ ॥

'मैं तपस्या करूँगी, आप इसके लिये मुझे आज्ञा दें और मेरे गर्भमें ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो सब कुछ करनेमें समर्थ तथा इन्द्रका वध करनेवाला हो' ॥ ३ ॥

उसकी यह बात सुनकर महातेजस्वी मरीचिनन्दन कश्यपने उस परम दुःखिनी दितिको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ४ ॥

'तपोधने! ऐसा ही हो। तुम शौचाचारका पालन करो। तुम्हारा भला हो। तुम ऐसे पुत्रको जन्म दोगी, जो युद्धमें इन्द्रको मार सके ॥ ५ ॥

'यदि पूरे एक सहस्र वर्षतक पवित्रतापूर्वक रह सकोगी तो तुम मुझसे त्रिलोकीनाथ इन्द्रका वध करनेमें समर्थ पुत्र प्राप्त कर लोगी' ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी कश्यपने दितिके शरीरपर हाथ फेरा। फिर उनका स्पर्श करके कहा—'तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसा कहकर वे तपस्याके लिये चले गये ॥ ७ ॥

नरश्रेष्ठ! उनके चले जानेपर दिति अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरकर कुशप्लव नामक तपोवनमें आयीं और अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगीं ॥ ८ ॥

पुरुषप्रवर श्रीराम! दितिके तपस्या करते समय सहस्रलोचन इन्द्र विनय आदि उत्तम गुणसम्पत्तिसे युक्त हो उनकी सेवा-टहल करने लगे ॥ ९ ॥

सहस्राक्ष इन्द्र अपनी मौसी दितिके लिये अग्नि, कुशा, काष्ठ, जल, फल, मूल तथा अन्यान्य अभिलषित वस्तुओंको ला-लाकर देते थे ॥ १० ॥

इन्द्र मौसीकी शारीरिक सेवाएँ करते, उनके पैर दबाकर उनकी थकावट मिटाते तथा ऐसी ही अन्य आवश्यक सेवाओंद्वारा वे हर समय दितिकी परिचर्या करते थे ॥ ११ ॥

रघुनन्दन! जब सहस्र वर्ष पूर्ण होनेमें कुल दस वर्ष बाकी रह गये, तब एक दिन दितिने अत्यन्त हर्षमें भरकर सहस्रलोचन इन्द्रसे कहा— ॥ १२ ॥

'बलवानोंमें श्रेष्ठ वीर! अब मेरी तपस्याके केवल दस वर्ष और शेष रह गये हैं। तुम्हारा भला हो। दस वर्ष बाद तुम अपने होनेवाले भाईको देख सकोगे ॥ १३ ॥

'बेटा! मैंने तुम्हारे विनाशके लिये जिस पुत्रकी याचना की थी, वह जब तुम्हें जीतनेके लिये उत्सुक होगा, उस समय मैं उसे शान्त कर दूँगी—तुम्हारे प्रति उसे वैर-भावसे रहित तथा भ्रातृ-स्नेहसे युक्त बना दूँगी। फिर तुम उसके साथ रहकर उसीके द्वारा की हुई त्रिभुवन-विजयका सुख निश्चिन्त होकर भोगना ॥ १४ ॥

'सुरश्रेष्ठ! मेरे प्रार्थना करनेपर तुम्हारे महात्मा पिताने एक हजार वर्षके बाद पुत्र होनेका मुझे वर दिया है' ॥ १५ ॥

ऐसा कहकर दिति नींदसे अचेत हो गयीं। उस समय सूर्यदेव आकाशके मध्य भागमें आ गये थे—दोपहरका समय हो गया था। देवी दिति आसनपर बैठी-बैठी झपकी लेने लगीं। सिर झुक गया और केश पैरोंसे जा लगे। इस प्रकार निद्रावस्थामें उन्होंने पैरोंको सिरसे लगा लिया ॥ १६ ॥

उन्होंने अपने केशोंको पैरोंपर डाल रखा था। सिरको टिकानेके लिये दोनों पैरोंको ही आधार बना लिया था। यह देख दितिको अपवित्र हुई जान इन्द्र हँसे और बड़े प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥

श्रीराम! फिर तो सतत सावधान रहनेवाले इन्द्र माता दितिके उदरमें प्रविष्ट हो गये और उसमें स्थित हुए गर्भके उन्होंने सात टुकड़े कर डाले ॥ १८ ॥

श्रीराम! उनके द्वारा सौ पर्वोंवाले वज्रसे विदीर्ण किये जाते समय वह गर्भस्थ बालक जोर-जोरसे रोने लगा। इससे दितिकी निद्रा टूट गयी—वे जागकर उठ बैठीं ॥ १९ ॥

तब इन्द्रने उस रोते हुए गर्भसे कहा—'भाई! मत रो, मत रो' परंतु महातेजस्वी इन्द्रने रोते रहनेपर भी उस गर्भके टुकड़े कर ही डाले ॥ २० ॥

उस समय दितिने कहा—'इन्द्र! बच्चेको न मारो, न मारो।' माताके वचनका गौरव मानकर इन्द्र सहसा उदरसे निकल आये॥ २१॥

फिर वज्रसहित इन्द्रने हाथ जोड़कर दितिसे कहा—'देवि! तुम्हारे सिरके बाल पैरोंसे लगे थे। इस प्रकार तुम अपवित्र अवस्थामें सोयी थीं। यही छिद्र पाकर मैंने इस 'इन्द्रहन्ता' बालकके सात टुकड़े कर डाले हैं। इसलिये माँ! तुम मेरे इस अपराधको क्षमा करो'॥ २२-२३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

दितिका अपने पुत्रोंको मरुद्गण बनाकर देवलोकमें रखनेके लिये इन्द्रसे अनुरोध, इन्द्रद्वारा उसकी स्वीकृति, दितिके तपोवनमें ही इक्ष्वाकु-पुत्र विशालद्वारा विशाला नगरीका निर्माण तथा वहाँके तत्कालीन राजा सुमतिद्वारा विश्वामित्र मुनिका सत्कार

इन्द्रद्वारा अपने गर्भके सात टुकड़े कर दिये जानेपर देवी दितिको बड़ा दु:ख हुआ। वे दुर्द्धर्ष वीर सहस्राक्ष इन्द्रसे अनुनयपूर्वक बोलीं—॥ १॥

'देवेश! बलसूदन! मेरे ही अपराधसे इस गर्भके सात टुकड़े हुए हैं। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है॥ २॥

'इस गर्भको नष्ट करनेके निमित्त तुमने जो क्रूरतापूर्ण कर्म किया है, वह तुम्हारे और मेरे लिये भी जिस तरह प्रिय हो जाय—जैसे भी उसका परिणाम तुम्हारे और मेरे लिये सुखद हो जाय, वैसा उपाय मैं करना चाहती हूँ। मेरे गर्भके वे सातों खण्ड सात व्यक्ति होकर सातों मरुद्गणोंके स्थानोंका पालन करनेवाले हो जायँ॥ ३॥

'बेटा! ये मेरे दिव्य रूपधारी पुत्र 'मारुत' नामसे प्रसिद्ध होकर आकाशमें जो सुविख्यात सात वातस्कन्ध* हैं, उनमें विचरें॥ ४॥

'(ऊपर जो सात मरुत् बताये गये हैं, वे सात-सातके गण हैं। इस प्रकार उनचास मरुत् समझने चाहिये। इनमेंसे) जो प्रथम गण है, वह ब्रह्मलोकमें विचरे, दूसरा इन्द्रलोकमें विचरण करे तथा तीसरा महायशस्वी मरुद्गण दिव्य वायुके नामसे विख्यात हो अन्तरिक्षमें बहा करे॥ ५॥

'सुरश्रेष्ठ! तुम्हारा कल्याण हो। मेरे शेष चार पुत्रोंके गण तुम्हारी आज्ञासे समयानुसार सम्पूर्ण दिशाओंमें संचार करेंगे। तुम्हारे ही रखे हुए नामसे (तुमने जो '**मा रुद:**' कहकर उन्हें रोनेसे मना किया था, उसी '**मा रुद:**'—इस वाक्यसे) वे सब-के-सब मारुत कहलायेंगे। मारुत नामसे ही उनकी प्रसिद्धि होगी'॥ ६½॥

दितिका वह वचन सुनकर बल दैत्यको मारनेवाले सहस्राक्ष इन्द्रने हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ७½॥

'मा! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने जैसा कहा है, वह सब वैसा ही होगा; इसमें संशय नहीं है। तुम्हारे ये पुत्र देवरूप होकर विचरेंगे'॥ ८½॥

श्रीराम! उस तपोवनमें ऐसा निश्चय करके वे दोनों माता-पुत्र—दिति और इन्द्र कृतकृत्य हो स्वर्गलोकको चले गये—ऐसा हमने सुन रखा है॥ ९½॥

काकुत्स्थ! यही वह देश है, जहाँ पूर्वकालमें रहकर देवराज इन्द्रने तप:सिद्ध दितिकी परिचर्या की थी॥ १०½॥

पुरुषसिंह! पूर्वकालमें महाराज इक्ष्वाकुके एक परम धर्मात्मा पुत्र थे, जो विशाल नामसे प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म अलम्बुषाके गर्भसे हुआ था। उन्होंने इस स्थानपर विशाला नामकी पुरी बसायी थी॥ ११-१२॥

श्रीराम! विशालके पुत्रका नाम था हेमचन्द्र, जो बड़े बलवान् थे। हेमचन्द्रके पुत्र सुचन्द्र नामसे विख्यात हुए॥ १३॥

श्रीरामचन्द्र! सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व और धूम्राश्वके पुत्र सृंजय हुए॥ १४॥

सृंजयके प्रतापी पुत्र श्रीमान् सहदेव हुए। सहदेवके परम धर्मात्मा पुत्रका नाम कुशाश्व था॥ १५॥

कुशाश्वके महातेजस्वी पुत्र प्रतापी सोमदत्त हुए और सोमदत्तके पुत्र काकुत्स्थ नामसे विख्यात हुए॥ १६॥

काकुत्स्थके महातेजस्वी पुत्र सुमति नामसे प्रसिद्ध हैं; जो परम कान्तिमान् एवं दुर्जय वीर हैं। वे ही इस समय इस पुरीमें निवास करते हैं॥ १७॥

* आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह और परावह—ये सात मरुत् हैं। इन्हींको सात वातस्कन्ध कहते हैं।

महाराज इक्ष्वाकुके प्रसादसे विशालाके सभी नरेश दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी और परम धार्मिक होते आये हैं॥ १८॥

नरश्रेष्ठ! आज एक रात हमलोग यहीं सुखपूर्वक शयन करेंगे; फिर कल प्रातःकाल यहाँसे चलकर तुम मिथिलामें राजा जनकका दर्शन करोगे॥ १९॥

नरेशोंमें श्रेष्ठ, महातेजस्वी, महायशस्वी राजा सुमति विश्वामित्रजीको पुरीके समीप आया हुआ सुनकर उनकी अगवानीके लिये स्वयं आये॥ २०॥

अपने पुरोहित और बन्धु-बान्धवोंके साथ राजाने विश्वामित्रजीकी उत्तम पूजा करके हाथ जोड़ उनका कुशल-समाचार पूछा और उनसे इस प्रकार कहा—॥

'मुने! मैं धन्य हूँ। आपका मुझपर बड़ा अनुग्रह है; क्योंकि आपने स्वयं मेरे राज्यमें पधारकर मुझे दर्शन दिया। इस समय मुझसे बढ़कर धन्य पुरुष दूसरा कोई नहीं है'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

राजा सुमतिसे सत्कृत हो एक रात विशालामें रहकर मुनियोंसहित श्रीरामका मिथिलापुरीमें पहुँचना और वहाँ सूने आश्रमके विषयमें पूछनेपर विश्वामित्रजीका उनसे अहल्याको शाप प्राप्त होनेकी कथा सुनाना

वहाँ परस्पर समागमके समय एक-दूसरेका कुशल-मंगल पूछकर बातचीतके अन्तमें राजा सुमतिने महामुनि विश्वामित्रसे कहा—॥ १॥

'ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। ये दोनों कुमार देवताओंके तुल्य पराक्रमी जान पड़ते हैं। इनकी चाल-ढाल हाथी और सिंहकी गतिके समान है। ये दोनों वीर सिंह और साँड़के समान प्रतीत होते हैं॥ २॥

इनके बड़े-बड़े नेत्र विकसित कमलदलके समान शोभा पाते हैं। ये दोनों तलवार, तरकस और धनुष धारण किये हुए हैं। अपने सुन्दर रूपके द्वारा दोनों अश्विनीकुमारोंको लज्जित करते हैं तथा युवावस्थाके निकट आ पहुँचे हैं॥

'इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो दो देवकुमार दैवेच्छावश देवलोकसे पृथ्वीपर आ गये हों। मुने! ये दोनों किसके पुत्र हैं और कैसे, किसलिये यहाँ पैदल ही आये हैं?॥ ४॥

'जैसे चन्द्रमा और सूर्य आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार ये दोनों कुमार इस देशको सुशोभित कर रहे हैं। शरीरकी ऊँचाई, मनोभावसूचक संकेत तथा चेष्टा (बोलचाल) में ये दोनों एक-दूसरेके समान हैं॥ ५॥

'श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले ये दोनों नरश्रेष्ठ वीर इस दुर्गम मार्गमें किसलिये आये हैं? यह मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ'॥ ६॥

सुमतिका यह वचन सुनकर विश्वामित्रजीने उन्हें सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे निवेदन किया। सिद्धाश्रममें निवास और राक्षसोंके वधका प्रसंग भी यथावत् रूपसे कह सुनाया। विश्वामित्रजीकी बात सुनकर राजा सुमतिको बड़ा विस्मय हुआ॥ ७॥

उन्होंने परम आदरणीय अतिथिके रूपमें आये हुए उन दोनों महाबली दशरथ-पुत्रोंका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया॥ ८॥

सुमतिसे उत्तम आदर-सत्कार पाकर वे दोनों रघुवंशी कुमार वहाँ एक रात रहे और सबेरे उठकर मिथिलाकी ओर चल दिये॥ ९॥

मिथिलामें पहुँचकर जनकपुरीकी सुन्दर शोभा देख सभी महर्षि साधु-साधु कहकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ १०॥

मिथिलाके उपवनमें एक पुराना आश्रम था, जो अत्यन्त रमणीय होकर भी सूनसान दिखायी देता था। उसे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मुनिवर विश्वामित्रजीसे पूछा—॥ ११॥

'भगवन्! यह कैसा स्थान है, जो देखनेमें तो आश्रम-जैसा है; किंतु एक भी मुनि यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। मैं यह सुनना चाहता हूँ कि पहले यह आश्रम किसका था?'॥ १२॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रश्न सुनकर प्रवचनकुशल महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १३॥

'रघुनन्दन! पूर्वकालमें यह जिस महात्माका आश्रम था और जिन्होंने क्रोधपूर्वक इसे शाप दे दिया था,

उनका तथा उनके इस आश्रमका सब वृत्तान्त तुमसे कहता हूँ। तुम यथार्थरूपसे इसको सुनो॥ १४॥

'नरश्रेष्ठ! पूर्वकालमें यह स्थान महात्मा गौतमका आश्रम था। उस समय यह आश्रम बड़ा ही दिव्य जान पड़ता था। देवता भी इसकी पूजा एवं प्रशंसा किया करते थे॥ १५॥

'महायशस्वी राजपुत्र! पूर्वकालमें महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहल्याके साथ रहकर यहाँ तपस्या करते थे। उन्होंने बहुत वर्षोंतक यहाँ तप किया था॥ १६॥

'एक दिन जब महर्षि गौतम आश्रमपर नहीं थे, उपयुक्त अवसर समझकर शचीपति इन्द्र गौतम मुनिका वेष धारण किये वहाँ आये और अहल्यासे इस प्रकार बोले— ॥ १७॥

''सदा सावधान रहनेवाली सुन्दरी! रतिकी इच्छा रखनेवाले प्रार्थी पुरुष ऋतुकालकी प्रतीक्षा नहीं करते हैं। सुन्दर कटिप्रदेशवाली सुन्दरी! मैं (इन्द्र) तुम्हारे साथ समागम करना चाहता हूँ'॥ १८॥

'रघुनन्दन! महर्षि गौतमका वेष धारण करके आये हुए इन्द्रको पहचानकर भी उस दुर्बुद्धि नारीने 'अहो! देवराज इन्द्र मुझे चाहते हैं' इस कौतूहलवश उनके साथ समागमका निश्चय करके वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया॥

'रतिके पश्चात् उसने देवराज इन्द्रसे संतुष्टचित्त होकर कहा—'सुरश्रेष्ठ! मैं आपके समागमसे कृतार्थ हो गयी। प्रभो! अब आप शीघ्र यहाँसे चले जाइये। देवेश्वर! महर्षि गौतमके कोपसे आप अपनी और मेरी भी सब प्रकारसे रक्षा कीजिये'॥ २०½॥

'तब इन्द्रने अहल्यासे हँसते हुए कहा—'सुन्दरी! मैं भी संतुष्ट हो गया। अब जैसे आया था, उसी तरह चला जाऊँगा'॥ २१½॥

'श्रीराम! इस प्रकार अहल्यासे समागम करके इन्द्र जब उस कुटीसे बाहर निकले, तब गौतमके आ जानेकी आशङ्कासे बड़ी उतावलीके साथ वेगपूर्वक भागनेका प्रयत्न करने लगे॥ २२½॥

'इतनेहीमें उन्होंने देखा, देवताओं और दानवोंके लिये भी दुर्धर्ष, तपोबलसम्पन्न महामुनि गौतम हाथमें समिधा लिये आश्रममें प्रवेश कर रहे हैं। उनका शरीर तीर्थके जलसे भीगा हुआ है और वे प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे हैं॥ २३-२४½॥

'उनपर दृष्टि पड़ते ही देवराज इन्द्र भयसे थर्रा उठे। उनके मुखपर विषाद छा गया। दुराचारी इन्द्रको मुनिका वेष धारण किये देख सदाचारसम्पन्न मुनिवर गौतमजीने रोषमें भरकर कहा— ॥ २५-२६॥

''दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण करके यह न करनेयोग्य पापकर्म किया है, इसलिये तू विफल (अण्डकोषोंसे रहित) हो जायगा'॥ २७॥

'रोषमें भरे हुए महात्मा गौतमके ऐसा कहते ही सहस्राक्ष इन्द्रके दोनों अण्डकोष उसी क्षण पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २८॥

इन्द्रको इस प्रकार शाप देकर गौतमने अपनी पत्नीको भी शाप दिया—'दुराचारिणी! तू भी यहाँ कई हजार वर्षोंतक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राखमें पड़ी रहेगी। समस्त प्राणियोंसे अदृश्य रहकर इस आश्रममें निवास करेगी। जब दुर्धर्ष दशरथ-कुमार राम इस घोर वनमें पदार्पण करेंगे, उस समय तू पवित्र होगी। उनका आतिथ्य-सत्कार करनेसे तेरे लोभ-मोह आदि दोष दूर हो जायँगे और तू प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास पहुँचकर अपना पूर्व शरीर धारण कर लेगी'॥ २९—३२॥

'अपनी दुराचारिणी पत्नीसे ऐसा कहकर महातेजस्वी, महातपस्वी गौतम इस आश्रमको छोड़कर चले गये और सिद्धों तथा चारणोंसे सेवित हिमालयके रमणीय शिखरपर रहकर तपस्या करने लगे'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

पितृदेवताओंद्वारा इन्द्रको भेड़ेके अण्डकोषसे युक्त करना तथा भगवान् श्रीरामके द्वारा अहल्याका उद्धार एवं उन दोनों दम्पतिके द्वारा इनका सत्कार

तदनन्तर इन्द्र अण्डकोषसे रहित होकर बहुत डर गये। उनके नेत्रोंमें त्रास छा गया। वे अग्नि आदि देवताओं, सिद्धों, गन्धर्वों और चारणोंसे इस प्रकार बोले— ॥ १॥

'देवताओ! महात्मा गौतमकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये मैंने उन्हें क्रोध दिलाया है। ऐसा करके मैंने यह देवताओंका कार्य ही सिद्ध किया है॥ २॥

'मुनिने क्रोधपूर्वक भारी शाप देकर मुझे अण्डकोषसे रहित कर दिया और अपनी पत्नीका भी परित्याग कर दिया। इससे मेरे द्वारा उनकी तपस्याका अपहरण हुआ है॥ ३॥

'(यदि मैं उनकी तपस्यामें विघ्न नहीं डालता तो वे देवताओंका राज्य ही छीन लेते। अतः ऐसा करके) मैंने देवताओंका ही कार्य सिद्ध किया है। इसलिये श्रेष्ठ देवताओ! तुम सब लोग, ऋषिसमुदाय और चारणगण मिलकर मुझे अण्डकोषसे युक्त करनेका प्रयत्न करो'॥ ४॥

इन्द्रका यह वचन सुनकर मरुद्गणोंसहित अग्नि आदि समस्त देवता कव्यवाहन आदि पितृदेवताओंके पास जाकर बोले—॥ ५॥

'पितृगण! यह आपका भेड़ा अण्डकोषसे युक्त है और इन्द्र अण्डकोषरहित कर दिये गये हैं। अतः इस भेड़ेके दोनों अण्डकोषोंको लेकर आप शीघ्र ही इन्द्रको अर्पित कर दें॥ ६॥

'अण्डकोषसे रहित किया हुआ यह भेड़ा इसी स्थानमें आपलोगोंको परम संतोष प्रदान करेगा। अतः जो मनुष्य आपलोगोंकी प्रसन्नताके लिये अण्डकोषरहित भेड़ा दान करेंगे, उन्हें आपलोग उस दानका उत्तम एवं पूर्ण फल प्रदान करेंगे'॥ ७॥

अग्निकी यह बात सुनकर पितृदेवताओंने एकत्र हो भेड़ेके अण्डकोषोंको उखाड़कर इन्द्रके शरीरमें उचित स्थानपर जोड़ दिया॥ ८॥

ककुत्स्थनन्दन श्रीराम! तभीसे वहाँ आये हुए समस्त पितृ-देवता अण्डकोषरहित भेड़ोंको ही उपयोगमें लाते हैं और दाताओंको उनके दानजनित फलोंके भागी बनाते हैं॥ ९॥

रघुनन्दन! उसी समयसे महात्मा गौतमके तपस्याजनित प्रभावसे इन्द्रको भेड़ोंके अण्डकोष धारण करने पड़े॥ १०॥

महातेजस्वी श्रीराम! अब तुम पुण्यकर्मा महर्षि गौतमके इस आश्रमपर चलो और इन देवरूपिणी महाभागा अहल्याका उद्धार करो॥ ११॥

विश्वामित्रजीका यह वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने उन महर्षिको आगे करके उस आश्रममें प्रवेश किया॥ १२॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा—महासौभाग्यशालिनी अहल्या अपनी तपस्यासे देदीप्यमान हो रही हैं। इस लोकके मनुष्य तथा सम्पूर्ण देवता और असुर भी वहाँ आकर उन्हें देख नहीं सकते थे॥ १३॥

उनका स्वरूप दिव्य था। विधाताने बड़े प्रयत्नसे उनके अंगोंका निर्माण किया था। वे मायामयी-सी प्रतीत होती थीं। धूमसे घिरी हुई प्रज्वलित अग्निशिखा-सी जान पड़ती थीं। ओले और बादलोंसे ढकी हुई पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभा-सी दिखायी देती थीं तथा जलके भीतर उद्भासित होनेवाली सूर्यकी दुर्धर्ष प्रभाके समान दृष्टिगोचर होती थीं॥ १४-१५॥

गौतमके शापवश श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन होनेसे पहले तीनों लोकोंके किसी भी प्राणीके लिये उनका दर्शन होना कठिन था। श्रीरामका दर्शन मिल जानेसे जब उनके शापका अन्त हो गया, तब वे उन सबको दिखायी देने लगीं॥

उस समय श्रीराम और लक्ष्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ अहल्याके दोनों चरणोंका स्पर्श किया। महर्षि गौतमके वचनोंका स्मरण करके अहल्याने बड़ी सावधानीके साथ उन दोनों भाइयोंको आदरणीय अतिथिके रूपमें अपनाया और पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पित करके उनका आतिथ्य-सत्कार किया। श्रीरामचन्द्रजीने शास्त्रीय विधिके अनुसार अहल्याका वह आतिथ्य ग्रहण किया॥ १७-१८॥

उस समय देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी। साथ ही आकाशसे फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी। गन्धर्वों और अप्सराओंद्वारा महान् उत्सव मनाया जाने लगा॥ १९॥

महर्षि गौतमके अधीन रहनेवाली अहल्या अपनी तपःशक्तिसे विशुद्ध स्वरूपको प्राप्त हुईं—यह देख सम्पूर्ण देवता उन्हें साधुवाद देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ २०॥

महातेजस्वी, महातपस्वी गौतम भी अहल्याको अपने साथ पाकर सुखी हो गये। उन्होंने श्रीरामकी विधिवत् पूजा करके तपस्या आरम्भ की॥ २१॥

महामुनि गौतमकी ओरसे विधिपूर्वक उत्तम पूजा—आदर-सत्कार पाकर श्रीराम भी मुनिवर विश्वामित्रजीके साथ मिथिलापुरीको चले गये॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका मिथिला-गमन, राजा जनकद्वारा विश्वामित्रका सत्कार तथा उनका श्रीराम और लक्ष्मणके विषयमें जिज्ञासा करना एवं परिचय पाना

तदनन्तर लक्ष्मणसहित श्रीराम विश्वामित्रजीको आगे करके महर्षि गौतमके आश्रमसे ईशानकोणकी ओर चले और मिथिलानरेशके यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे॥ १॥

वहाँ लक्ष्मणसहित श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कहा—'महाभाग! महात्मा जनकके यज्ञका समारोह तो बड़ा सुन्दर दिखायी दे रहा है। यहाँ नाना देशोंके निवासी सहस्रों ब्राह्मण जुटे हुए हैं, जो वेदोंके स्वाध्यायसे शोभा पा रहे हैं॥ २-३॥

'ऋषियोंके बाड़े सैकड़ों छकड़ोंसे भरे दिखायी दे रहे हैं। ब्रह्मन्! अब ऐसा कोई स्थान निश्चित कीजिये, जहाँ हमलोग भी ठहरें'॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर महामुनि विश्वामित्रने एकान्त स्थानमें डेरा डाला, जहाँ पानीका सुभीता था॥ ५॥

अनिन्द्य (उत्तम) आचार-विचारवाले नृपश्रेष्ठ महाराज जनकने जब सुना कि विश्वामित्रजी पधारे हैं, तब वे तुरंत अपने पुरोहित शतानन्दको आगे करके [अर्घ्य लिये विनीतभावसे उनका स्वागत करनेको चल दिये]॥ ६॥

उनके साथ अर्घ्य लिये महात्मा ऋत्विज् भी शीघ्रतापूर्वक चले। राजाने विनीतभावसे सहसा आगे बढ़कर महर्षिकी अगवानी की तथा धर्मशास्त्रके अनुसार विश्वामित्रको धर्मयुक्त अर्घ्य समर्पित किया॥ ७½॥

महात्मा राजा जनककी वह पूजा ग्रहण करके मुनिने उनका कुशल-समाचार पूछा तथा उनके यज्ञकी निर्बाध स्थितिके विषयमें जिज्ञासा की॥ ८½॥

राजाके साथ जो मुनि, उपाध्याय और पुरोहित आये थे, उनसे भी कुशल-मंगल पूछकर विश्वामित्रजी बड़े हर्षके साथ उन सभी महर्षियोंसे यथायोग्य मिले॥ ९½॥

इसके बाद राजा जनकने मुनिवर विश्वामित्रसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! आप इन मुनीश्वरोंके साथ आसनपर विराजमान होइये'॥ १०½॥

यह बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र आसनपर बैठ गये। फिर पुरोहित, ऋत्विज् तथा मन्त्रियोंसहित राजा भी सब ओर यथायोग्य आसनोंपर विराजमान हो गये॥

तत्पश्चात् राजा जनकने विश्वामित्रजीकी ओर देखकर कहा—'भगवन्! आज देवताओंने मेरे यज्ञकी आयोजना सफल कर दी॥ १३॥

'आज पूज्य चरणोंके दर्शनसे मैंने यज्ञका फल पा लिया। ब्रह्मन्! आप मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने इतने महर्षियोंके साथ मेरे यज्ञमण्डपमें पदार्पण किया, इससे मैं धन्य हो गया। यह मेरे ऊपर आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है॥ १४½॥

'ब्रह्मर्षे! मनीषी ऋत्विजोंका कहना है कि 'मेरी यज्ञदीक्षाके बारह दिन ही शेष रह गये हैं। अत: कुशिकनन्दन! बारह दिनोंके बाद यहाँ भाग ग्रहण करनेके लिये आये हुए देवताओंका दर्शन कीजियेगा'॥

मुनिवर विश्वामित्रसे ऐसा कहकर उस समय प्रसन्नमुख हुए जितेन्द्रिय राजा जनकने पुन: उनसे हाथ जोड़कर पूछा—॥ १६½॥

'महामुने! आपका कल्याण हो। देवताके समान पराक्रमी और सुन्दर आयुध धारण करनेवाले ये दोनों वीर राजकुमार जो हाथीके समान मन्दगतिसे चलते हैं, सिंह और साँड़के समान जान पड़ते हैं, प्रफुल्ल कमलदलके समान सुशोभित हैं, तलवार, तरकस और धनुष धारण किये हुए हैं, अपने मनोहर रूपसे अश्विनीकुमारोंको भी लज्जित कर रहे हैं, जिन्होंने अभी-अभी यौवनावस्थामें प्रवेश किया है तथा जो स्वेच्छानुसार देवलोकसे उतरकर पृथ्वीपर आये हुए दो देवताओंके समान जान पड़ते हैं, किसके पुत्र हैं? और यहाँ कैसे, किसलिये अथवा किस उद्देश्यसे पैदल ही पधारे हैं? जैसे चन्द्रमा और सूर्य आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार ये अपनी उपस्थितिसे इस देशको विभूषित कर रहे हैं। ये दोनों एक-दूसरेसे बहुत मिलते-जुलते हैं। इनके शरीरकी ऊँचाई, संकेत और चेष्टाएँ प्राय: एक-सी हैं। मैं इन दोनों काकपक्षधारी वीरोंका परिचय एवं वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ'॥ १७—२१॥

महात्मा जनकका यह प्रश्न सुनकर अमित आत्मबलसे सम्पन्न विश्वामित्रजीने कहा—'राजन्! ये दोनों महाराज दशरथके पुत्र हैं'॥ २२॥

इसके बाद उन्होंने उन दोनोंके सिद्धाश्रममें

निवास, राक्षसोंके वध, बिना किसी घबराहटके मिथिलातक आगमन, विशालापुरीके दर्शन, अहल्याके साक्षात्कार तथा महर्षि गौतमके साथ समागम आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। फिर अन्तमें यह भी बताया कि 'ये आपके यहाँ रखे हुए महान् धनुषके सम्बन्धमें कुछ जाननेकी इच्छासे यहाँतक आये हैं'॥ २३-२४॥

महात्मा राजा जनकसे ये सब बातें निवेदन करके महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

शतानन्दके पूछनेपर विश्वामित्रका उन्हें श्रीरामके द्वारा अहल्याके उद्धारका समाचार बताना तथा शतानन्दद्वारा श्रीरामका अभिनन्दन करते हुए विश्वामित्रजीके पूर्वचरित्रका वर्णन

परम बुद्धिमान् विश्वामित्रजीकी वह बात सुनकर महातेजस्वी महातपस्वी शतानन्दजीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया॥ १॥

वे गौतमके ज्येष्ठ पुत्र थे। तपस्यासे उनकी कान्ति प्रकाशित हो रही थी। वे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनमात्रसे ही बड़े विस्मित हुए॥ २॥

उन दोनों राजकुमारोंको सुखपूर्वक बैठे देख शतानन्दने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे पूछा—॥ ३॥

'मुनिप्रवर! मेरी यशस्विनी माता अहल्या बहुत दिनोंसे तपस्या कर रही थीं। क्या आपने राजकुमार श्रीरामको उनका दर्शन कराया?॥ ४॥

'क्या मेरी महातेजस्विनी एवं यशस्विनी माता अहल्याने वनमें होनेवाले फल-फूल आदिसे समस्त देहधारियोंके लिये पूजनीय श्रीरामचन्द्रजीका पूजन (आदर-सत्कार) किया था?॥ ५॥

'महातेजस्वी मुने! क्या आपने श्रीरामसे वह प्राचीन वृत्तान्त कहा था, जो मेरी माताके प्रति देवराज इन्द्रद्वारा किये गये छल-कपट एवं दुराचारद्वारा घटित हुआ था?॥

'मुनिश्रेष्ठ कौशिक! आपका कल्याण हो। क्या श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन आदिके प्रभावसे मेरी माता शापमुक्त हो पिताजीसे जा मिलीं?॥ ७॥

'कुशिकनन्दन! क्या मेरे पिताने श्रीरामका पूजन किया था? क्या उन महात्माकी पूजा ग्रहण करके ये महातेजस्वी श्रीराम यहाँ पधारे हैं?॥ ८॥

'विश्वामित्रजी! क्या यहाँ आकर मेरे माता-पिताद्वारा सम्मानित हुए श्रीरामने मेरे पूज्य पिताका शान्त चित्तसे अभिवादन किया था?'॥ ९॥

शतानन्दका यह प्रश्न सुनकर बोलनेकी कला जाननेवाले महामुनि विश्वामित्रने बातचीत करनेमें कुशल शतानन्दको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १०॥

'मुनिश्रेष्ठ! मैंने कुछ उठा नहीं रखा है। मेरा जो कर्तव्य था, उसे मैंने पूरा किया। महर्षि गौतमसे उनकी पत्नी अहल्या उसी प्रकार जा मिली हैं, जैसे भृगुवंशी जमदग्निसे रेणुका मिली है'॥ ११॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रकी यह बात सुनकर महातेजस्वी शतानन्दने श्रीरामचन्द्रजीसे यह बात कही—॥ १२॥

'नरश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। रघुनन्दन! मेरा अहोभाग्य जो आपने किसीसे पराजित न होनेवाले महर्षि विश्वामित्रको आगे करके यहाँतक पधारनेका कष्ट उठाया॥ १३॥

'महर्षि विश्वामित्रके कर्म अचिन्त्य हैं। ये तपस्यासे ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुए हैं। इनकी कान्ति असीम है और ये महातेजस्वी हैं। मैं इनको जानता हूँ। ये जगत्‌के परम आश्रय (हितैषी) हैं॥ १४॥

'श्रीराम! इस पृथ्वीपर आपसे बढ़कर धन्यातिधन्य पुरुष दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि कुशिकनन्दन विश्वामित्र आपके रक्षक हैं, जिन्होंने बड़ी भारी तपस्या की है॥ १५॥

'मैं महात्मा कौशिकके बल और स्वरूपका यथार्थ वर्णन करता हूँ। आप ध्यान देकर मुझसे यह सब सुनिये॥ १६॥

'ये विश्वामित्र पहले एक धर्मात्मा राजा थे। इन्होंने शत्रुओंके दमनपूर्वक दीर्घकालतक राज्य किया था। ये धर्मज्ञ और विद्वान् होनेके साथ ही प्रजावर्गके हितसाधनमें तत्पर रहते थे॥ १७॥

'प्राचीनकालमें कुश नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे प्रजापतिके पुत्र थे। कुशके बलवान् पुत्रका नाम कुशनाभ हुआ। वह बड़ा ही धर्मात्मा था॥ १८॥

'कुशनाभके पुत्र गाधि नामसे विख्यात थे। उन्हीं गाधिके महातेजस्वी पुत्र ये महामुनि विश्वामित्र हैं॥ १९॥

'महातेजस्वी राजा विश्वामित्रने कई हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन तथा राज्यका शासन किया॥ २०॥

'एक समयकी बात है महातेजस्वी राजा विश्वामित्र सेना एकत्र करके एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पृथ्वीपर विचरने लगे॥ २१॥

'वे अनेकानेक नगरों, राष्ट्रों, नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों और आश्रमोंमें क्रमश: विचरते हुए महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर आ पहुँचे, जो नाना प्रकारके फूलों, लताओं और वृक्षोंसे शोभा पा रहा था। नाना प्रकारके मृग (वन्यपशु) वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा सिद्ध और चारण उस आश्रममें निवास करते थे॥ २२-२३॥

'देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उसकी शोभा बढ़ाते थे। शान्त मृग वहाँ भरे रहते थे। बहुत-से ब्राह्मणों, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियोंके समुदाय उसका सेवन करते थे॥ २४$\frac{1}{2}$॥

'तपस्यासे सिद्ध हुए अग्निके समान तेजस्वी महात्मा तथा ब्रह्माके समान महामहिम महात्मा सदा उस आश्रममें भरे रहते थे। उनमेंसे कोई जल पीकर रहता था तो कोई हवा पीकर। कितने ही महात्मा फल-मूल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहते थे। राग आदि दोषोंको जीतकर मन और इन्द्रियोंपर काबू रखनेवाले बहुत-से ऋषि जप-होममें लगे रहते थे। वालखिल्य मुनिगण तथा अन्यान्य वैखानस महात्मा सब ओरसे उस आश्रमकी शोभा बढ़ाते थे। इन सब विशेषताओंके कारण महर्षि वसिष्ठका वह आश्रम दूसरे ब्रह्मलोकके समान जान पड़ता था। विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाबली विश्वामित्रने उसका दर्शन किया'॥ २५—२८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

महर्षि वसिष्ठद्वारा विश्वामित्रका सत्कार और कामधेनुको अभीष्ट वस्तुओंकी सृष्टि करनेका आदेश

'जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठका दर्शन करके महाबली वीर विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए और विनयपूर्वक उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ १॥

'तब महात्मा वसिष्ठने कहा—'राजन्! तुम्हारा स्वागत है।' ऐसा कहकर भगवान् वसिष्ठने उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया॥ २॥

'जब बुद्धिमान् विश्वामित्र आसनपर विराजमान हुए, तब मुनिवर वसिष्ठने उन्हें विधिपूर्वक फल-मूलका उपहार अर्पित किया॥ ३॥

'वसिष्ठजीसे वह आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करके राजशिरोमणि महातेजस्वी विश्वामित्रने उनके तप, अग्निहोत्र, शिष्यवर्ग और लता-वृक्ष आदिका कुशल-समाचार पूछा। फिर वसिष्ठजीने उन नृपश्रेष्ठसे सबके सकुशल होनेकी बात बतायी॥ ४-५॥

'फिर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मकुमार महातपस्वी वसिष्ठने वहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए राजा विश्वामित्रसे इस प्रकार पूछा—॥ ६॥

'राजन्! तुम सकुशल तो हो न? धर्मात्मा नरेश! क्या तुम धर्मपूर्वक प्रजाको प्रसन्न रखते हुए राजोचित रीति-नीतिसे प्रजावर्गका पालन करते हो?॥ ७॥

'शत्रुसूदन! क्या तुमने अपने भृत्योंका अच्छी तरह भरण-पोषण किया है? क्या वे तुम्हारी आज्ञाके अधीन रहते हैं? क्या तुमने समस्त शत्रुओंपर विजय पा ली है?॥ ८॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले पुरुषसिंह निष्पाप नरेश! क्या तुम्हारी सेना, कोश, मित्रवर्ग तथा पुत्र-पौत्र आदि सब सकुशल हैं?'॥ ९॥

'तब महातेजस्वी राजा विश्वामित्रने विनयशील महर्षि वसिष्ठको उत्तर दिया—'हाँ भगवन्! मेरे यहाँ सर्वत्र कुशल है?'॥ १०॥

'तत्पश्चात् वे दोनों धर्मात्मा पुरुष बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत देरतक परस्पर वार्तालाप करते रहे। उस समय एकका दूसरेके साथ बड़ा प्रेम हो गया॥ ११॥

'रघुनन्दन! बातचीत करनेके पश्चात् भगवान् वसिष्ठने विश्वामित्रसे हँसते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'महाबली नरेश! तुम्हारा प्रभाव असीम है। मैं तुम्हारा और तुम्हारी इस सेनाका यथायोग्य आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ। तुम मेरे इस अनुरोधको स्वीकार करो॥ १३॥

'राजन्! तुम अतिथियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये

यत्नपूर्वक तुम्हारा सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। अत: मेरे द्वारा किये गये इस सत्कारको तुम ग्रहण करो'॥ १४॥

'वसिष्ठके ऐसा कहनेपर महाबुद्धिमान् राजा विश्वामित्रने कहा—'मुने! आपके सत्कारपूर्ण वचनोंसे ही मेरा पूर्ण सत्कार हो गया॥ १५॥

'भगवन्! आपके आश्रमपर जो विद्यमान हैं, उन फल-मूल, पाद्य और आचमनीय आदि वस्तुओंसे मेरा भलीभाँति आदर-सत्कार हुआ है। सबसे बढ़कर जो आपका दर्शन हुआ, इसीसे मेरी पूजा हो गयी॥ १६॥

'महाज्ञानी महर्षे! आप सर्वथा मेरे पूजनीय हैं तो भी आपने मेरा भलीभाँति पूजन किया। आपको नमस्कार है। अब मैं यहाँसे जाऊँगा। आप मैत्रीपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखिये'॥ १७॥

ऐसा कहते हुए राजा विश्वामित्रसे उदारचेता धर्मात्मा वसिष्ठने निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये बारम्बार आग्रह किया॥ १८॥

तब गाधिनन्दन विश्वामित्रने उन्हें उत्तर देते हुए कहा—'बहुत अच्छा। मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। मुनिप्रवर! आप मेरे पूज्य हैं। आपकी जैसी रुचि हो—आपको जो प्रिय लगे, वही हो'॥ १९॥

'राजाके ऐसा कहनेपर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ मुनिवर वसिष्ठ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी उस चितकबरी होम-धेनुको बुलाया, जिसके पाप (अथवा मैल) धुल गये थे(वह कामधेनु थी)॥ २०॥

'(उसे बुलाकर ऋषिने कहा—) शबले! शीघ्र आओ, आओ और मेरी यह बात सुनो—मैंने सेनासहित इन राजर्षिका महाराजाओंके योग्य उत्तम भोजन आदिके द्वारा आतिथ्य-सत्कार करनेका निश्चय किया है। तुम मेरे इस मनोरथको सफल करो॥ २१॥

'षड्रस भोजनोंमेंसे जिसको जो-जो पसंद हो, उसके लिये वह सब प्रस्तुत कर दो। दिव्य कामधेनो! आज मेरे कहनेसे इन अतिथियोंके लिये अभीष्ट वस्तुओंकी वर्षा करो॥ २२॥

'शबले! सरस पदार्थ, अन्न, पान, लेह्य (चटनी आदि) और चोष्य (चूसनेकी वस्तु) से युक्त भाँति-भाँतिके अन्नोंकी ढेरी लगा दो। सभी आवश्यक वस्तुओंकी सृष्टि कर दो। शीघ्रता करो—विलम्ब न होने पावे'॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

कामधेनुकी सहायतासे उत्तम अन्न-पानद्वारा सेनासहित तृप्त हुए विश्वामित्रका वसिष्ठसे उनकी कामधेनुको माँगना और उनका देनेसे अस्वीकार करना

'शत्रुसूदन! महर्षि वसिष्ठके ऐसा कहनेपर चितकबरे रंगकी उस कामधेनुने जिसकी जैसी इच्छा थी, उसके लिये वैसी ही सामग्री जुटा दी॥ १॥

'ईख, मधु, लावा, मैरेय, श्रेष्ठ आसव, पानक रस आदि नाना प्रकारके बहुमूल्य भक्ष्य-पदार्थ प्रस्तुत कर दिये॥ २॥

'गरम-गरम भातके पर्वतके सदृश ढेर लग गये। मिष्टान्न (खीर) और दाल भी तैयार हो गयी। दूध, दही और घीकी तो नहरें बह चलीं॥ ३॥

'भाँति-भाँतिके सुस्वादु रस, खाण्डव तथा नाना प्रकारके भोजनोंसे भरी हुई चाँदीकी सहस्रों थालियाँ सज गयीं॥ ४॥

'श्रीराम! महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रजीकी सारी सेनाके लोगोंको भलीभाँति तृप्त किया। उस सेनामें बहुत-से हृष्ट-पुष्ट सैनिक थे। उन सबको वह दिव्य भोजन पाकर बड़ा संतोष हुआ॥ ५॥

'राजर्षि विश्वामित्र भी उस समय अन्त:पुरकी रानियों, ब्राह्मणों और पुरोहितोंके साथ बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हो गये॥ ६॥

'अमात्य, मन्त्री और भृत्योंसहित पूजित हो वे बहुत प्रसन्न हुए और वसिष्ठजीसे इस प्रकार बोले—

'ब्रह्मन्! आप स्वयं मेरे पूजनीय हैं तो भी आपने मेरा पूजन किया, भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। बातचीत करनेमें कुशल महर्षे! अब मैं एक बात कहता हूँ, उसे सुनिये॥ ८॥

'भगवन्! आप मुझसे एक लाख गौएँ लेकर यह चितकबरी गाय मुझे दे दीजिये; क्योंकि यह गौ रत्नरूप है और रत्न लेनेका अधिकारी राजा होता है। ब्रह्मन्! मेरे

इस कथनपर ध्यान देकर मुझे यह शबला गौ दे दीजिये; क्योंकि यह धर्मतः मेरी ही वस्तु है'॥ ९½ ॥

'विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा मुनिवर भगवान् वसिष्ठ राजाको उत्तर देते हुए बोले—॥ १०½ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश्वर! मैं एक लाख या सौ करोड़ अथवा चाँदीके ढेर लेकर भी बदलेमें इस शबला गौको नहीं दूँगा। यह मेरे पाससे अलग होने योग्य नहीं है॥ १२ ॥

'जैसे मनस्वी पुरुषकी अक्षय कीर्ति कभी उससे अलग नहीं रह सकती, उसी प्रकार यह सदा मेरे साथ सम्बन्ध रखनेवाली शबला गौ मुझसे पृथक् नहीं रह सकती। मेरा हव्य-कव्य और जीवन-निर्वाह इसीपर निर्भर है॥ १३ ॥

'मेरे अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहा, वषट्कार और भाँति-भाँतिकी विद्याएँ इस कामधेनुके ही अधीन हैं॥ १४॥

'राजर्षे! मेरा यह सब कुछ इस गौके ही अधीन है, इसमें संशय नहीं है। मैं सच कहता हूँ—यह गौ ही मेरा सर्वस्व है और यही मुझे सब प्रकारसे संतुष्ट करनेवाली है। राजन्! बहुत-से ऐसे कारण हैं, जिनसे बाध्य होकर मैं यह शबला गौ आपको नहीं दे सकता'॥ १५½ ॥

'वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर बोलनेमें कुशल विश्वामित्र अत्यन्त क्रोधपूर्वक इस प्रकार बोले—॥ १६½ ॥

'मुने! मैं आपको चौदह हजार ऐसे हाथी दे रहा हूँ, जिनके कसनेवाले रस्से, गलेके आभूषण और अंकुश भी सोनेके बने होंगे और उन सबसे वे हाथी विभूषित होंगे॥ १७½ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! इनके सिवा मैं आठ सौ सुवर्णमय रथ प्रदान करूँगा; जिनमें शोभाके लिये सोनेके घुँघुरू लगे होंगे और हर एक रथमें चार-चार सफेद रंगके घोड़े जुते हुए होंगे तथा अच्छी जाति और उत्तम देशमें उत्पन्न महातेजस्वी ग्यारह हजार घोड़े भी आपकी सेवामें अर्पित करूँगा। इतना ही नहीं, नाना प्रकारके रंगवाली नयी अवस्थाकी एक करोड़ गौएँ भी दूँगा, परंतु यह शबला गौ मुझे दे दीजिये॥ १८—२०॥

'द्विजश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त भी आप जितने रत्न या सुवर्ण लेना चाहें, वह सब आपको देनेके लिये मैं तैयार हूँ; किंतु यह चितकबरी गाय मुझे दे दीजिये'॥ २१॥

'बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर भगवान् वसिष्ठ बोले—'राजन्! मैं यह चितकबरी गाय तुम्हें किसी तरह भी नहीं दूँगा॥ २२॥

'यही मेरा रत्न है, यही मेरा धन है, यही मेरा सर्वस्व है और यही मेरा जीवन है॥ २३॥

'राजन्! मेरे दर्श, पौर्णमास, प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ तथा भाँति-भाँतिके पुण्यकर्म—यह गौ ही है। इसीपर ही मेरा सब कुछ निर्भर है॥ २४॥

'नरेश्वर! मेरे सारे शुभ कर्मोंका मूल यही है, इसमें संशय नहीं है। बहुत व्यर्थ बात करनेसे क्या लाभ। मैं इस कामधेनुको कदापि नहीं दूँगा'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

विश्वामित्रका वसिष्ठजीकी गौको बलपूर्वक ले जाना, गौका दुःखी होकर वसिष्ठजीसे इसका कारण पूछना और उनकी आज्ञासे शक, यवन, पह्लव आदि वीरोंकी सृष्टि करके उनके द्वारा विश्वामित्रजीकी सेनाका संहार करना

'श्रीराम! जब वसिष्ठ मुनि किसी तरह भी उस कामधेनु गौको देनेके लिये तैयार न हुए, तब राजा विश्वामित्र उस चितकबरे रंगकी धेनुको बलपूर्वक घसीट ले चले॥ १॥

'रघुनन्दन! महामनस्वी राजा विश्वामित्रके द्वारा इस प्रकार ले जायी जाती हुई वह गौ शोकाकुल हो मन-ही-मन रो पड़ी और अत्यन्त दुःखित हो विचार करने लगी—॥ २॥

'अहो! क्या महात्मा वसिष्ठने मुझे त्याग दिया है, जो ये राजाके सिपाही मुझ दीन और अत्यन्त दुःखिया गौको इस तरह बलपूर्वक लिये जा रहे हैं?॥ ३॥

'पवित्र अन्तःकरणवाले उन महर्षिका मैंने क्या अपराध किया है कि वे धर्मात्मा मुनि मुझे निरपराध और अपना भक्त जानकर भी त्याग रहे हैं?'॥ ४॥

'शत्रुसूदन! यह सोचकर वह गौ बारम्बार लंबी साँस लेने लगी और राजाके उन सैकड़ों सेवकोंको

झटककर उस समय महातेजस्वी वसिष्ठ मुनिके पास बड़े वेगसे जा पहुँची॥ ५ १/२ ॥

'वह शबला गौ वायुके समान वेगसे उन महात्माके चरणोंके समीप गयी और उनके सामने खड़ी हो मेघके समान गम्भीर स्वरसे रोती-चीत्कार करती हुई उनसे इस प्रकार बोली— ॥ ६-७ ॥

'भगवन्! ब्रह्मकुमार! क्या आपने मुझे त्याग दिया, जो ये राजाके सैनिक मुझे आपके पाससे दूर लिये जा रहे हैं?'॥ ८ ॥

'उसके ऐसा कहनेपर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ शोकसे संतप्त हृदयवाली दुःखिया बहिनके समान उस गौसे इस प्रकार बोले— ॥ ९ ॥

'शबले! मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता। तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया है। ये महाबली राजा अपने बलसे मतवाले होकर तुमको मुझसे छीनकर ले जा रहे हैं॥ १० ॥

'मेरा बल इनके समान नहीं है। विशेषतः आजकल ये राजाके पदपर प्रतिष्ठित हैं। राजा, क्षत्रिय तथा इस पृथ्वीके पालक होनेके कारण ये बलवान् हैं॥ ११ ॥

'इनके पास हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई यह अक्षौहिणी सेना है, जिसमें हाथियोंके हौदोंपर लगे हुए ध्वज सब ओर फहरा रहे हैं। इस सेनाके कारण भी ये मुझसे प्रबल हैं'॥ १२ ॥

'वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर बातचीतके मर्मको समझनेवाली उस कामधेनुने उन अनुपम तेजस्वी ब्रह्मर्षिसे यह विनययुक्त बात कही— ॥ १३ ॥

''ब्रह्मन्! क्षत्रियका बल कोई बल नहीं है। ब्राह्मण ही क्षत्रिय आदिसे अधिक बलवान् होते हैं। ब्राह्मणका बल दिव्य है। वह क्षत्रिय-बलसे अधिक प्रबल होता है॥

''आपका बल अप्रमेय है। महापराक्रमी विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान् नहीं हैं। आपका तेज दुर्धर्ष है॥ १५ ॥

''महातेजस्वी महर्षे! मैं आपके ब्रह्मबलसे परिपुष्ट हुई हूँ। अतः आप केवल मुझे आज्ञा दे दीजिये। मैं इस दुरात्मा राजाके बल, प्रयत्न और अभिमानको अभी चूर्ण किये देती हूँ'॥ १६ ॥

'श्रीराम! कामधेनुके ऐसा कहनेपर महायशस्वी वसिष्ठने कहा—'इस शत्रु-सेनाको नष्ट करनेवाले सैनिकोंकी सृष्टि करो'॥ १७ ॥

'राजकुमार! उनका वह आदेश सुनकर उस गौने उस समय वैसा ही किया। उसके हुंकार करते ही सैकड़ों पह्लव जातिके वीर पैदा हो गये॥ १८ ॥

'वे सब विश्वामित्रके देखते-देखते उनकी सारी सेनाका नाश करने लगे। इससे राजा विश्वामित्रको बड़ा क्रोध हुआ। वे रोषसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे॥ १९ ॥

'उन्होंने छोटे-बड़े कई तरहके अस्त्रोंका प्रयोग करके उन पह्लवोंका संहार कर डाला। विश्वामित्रद्वारा उन सैकड़ों पह्लवोंको पीड़ित एवं नष्ट हुआ देख उस समय उस शबला गौने पुनः यवनमिश्रित शक जातिके भयंकर वीरोंको उत्पन्न किया। उन यवनमिश्रित शकोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी भर गयी॥ २०-२१ ॥

'वे वीर महापराक्रमी और तेजस्वी थे। उनके शरीरकी कान्ति सुवर्ण तथा केसरके समान थी। वे सुनहरे वस्त्रोंसे अपने शरीरको ढँके हुए थे। उन्होंने हाथोंमें तीखे खड्ग और पट्टिश ले रखे थे। प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित होनेवाले उन वीरोंने विश्वामित्रकी सारी सेनाको भस्म करना आरम्भ किया। तब महातेजस्वी विश्वामित्रने उनपर बहुत-से अस्त्र छोड़े। उन अस्त्रोंकी चोट खाकर वे यवन, काम्बोज और बर्बर जातिके योद्धा व्याकुल हो उठे'॥ २२-२३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

अपने सौ पुत्रों और सारी सेनाके नष्ट हो जानेपर विश्वामित्रका तपस्या करके महादेवजीसे दिव्यास्त्र पाना तथा उनका वसिष्ठके आश्रमपर प्रयोग करना एवं वसिष्ठजीका ब्रह्मदण्ड लेकर उनके सामने खड़ा होना

'विश्वामित्रके अस्त्रोंसे घायल होकर उन्हें व्याकुल हुआ देख वसिष्ठजीने फिर आज्ञा दी—'कामधेनो! अब योगबलसे दूसरे सैनिकोंकी सृष्टि करो'॥ १ ॥

'तब उस गौने फिर हुंकार किया। उसके हुंकारसे सूर्यके समान तेजस्वी काम्बोज उत्पन्न हुए। थनसे शस्त्रधारी बर्बर प्रकट हुए॥ २ ॥

'योनिदेशसे यवन और शकृद्देश (गोबरके स्थान) से शक उत्पन्न हुए। रोमकूपोंसे म्लेच्छ, हारीत और किरात प्रकट हुए॥ ३॥

'रघुनन्दन! उन सब वीरोंने पैदल, हाथी, घोड़े और रथसहित विश्वामित्रकी सारी सेनाका तत्काल संहार कर डाला॥ ४॥

'महात्मा वसिष्ठद्वारा अपनी सेनाका संहार हुआ देख विश्वामित्रके सौ पुत्र अत्यन्त क्रोधमें भर गये और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठमुनिपर टूट पड़े। तब उन महर्षिने हुंकारमात्रसे उन सबको जलाकर भस्म कर डाला॥ ५-६॥

'महात्मा वसिष्ठद्वारा विश्वामित्रके वे सभी पुत्र दो ही घड़ीमें घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसहित जलाकर भस्म कर डाले गये॥ ७॥

'अपने समस्त पुत्रों तथा सारी सेनाका विनाश हुआ देख महायशस्वी विश्वामित्र लज्जित हो बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ ८॥

'समुद्रके समान उनका सारा वेग शान्त हो गया। जिसके दाँत तोड़ लिये गये हों उस सर्पके समान तथा राहुग्रस्त सूर्यकी भाँति वे तत्काल ही निस्तेज हो गये॥

'पुत्र और सेना दोनोंके मारे जानेसे वे पंख कटे हुए पक्षीके समान दीन हो गये। उनका सारा बल और उत्साह नष्ट हो गया। वे मन-ही-मन बहुत खिन्न हो उठे॥ १०॥

'उनके एक ही पुत्र बचा था, उसको उन्होंने राजाके पदपर अभिषिक्त करके राज्यकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया और क्षत्रिय-धर्मके अनुसार पृथ्वीके पालनकी आज्ञा देकर वे वनमें चले गये॥ ११॥

'हिमालयके पार्श्वभागमें, जो किन्नरों और नागोंसे सेवित प्रदेश है, वहाँ जाकर महादेवजीकी प्रसन्नताके लिये महान् तपस्याका आश्रय ले वे तपमें ही संलग्न हो गये॥ १२॥

'कुछ कालके पश्चात् वरदायक देवेश्वर भगवान् वृषभध्वज (शिव) ने महामुनि विश्वामित्रको दर्शन दिया और कहा—॥ १३॥

''राजन्! किसलिये तप करते हो? बताओ क्या कहना चाहते हो? मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुम्हें जो वर पाना अभीष्ट हो, उसे कहो'॥ १४॥

'महादेवजीके ऐसा कहनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ १५॥

''निष्पाप महादेव! यदि आप संतुष्ट हों तो अंग, उपांग, उपनिषद् और रहस्योंसहित धनुर्वेद मुझे प्रदान कीजिये॥

''अनघ! देवताओं, दानवों, महर्षियों, गन्धर्वों, यक्षों तथा राक्षसोंके पास जो-जो अस्त्र हों, वे सब आपकी कृपासे मेरे हृदयमें स्फुरित हो जायँ। देवदेव! यही मेरा मनोरथ है, जो मुझे प्राप्त होना चाहिये'॥ १७ $\frac{१}{२}$ ॥

'तब 'एवमस्तु' कहकर देवेश्वर भगवान् शङ्कर वहाँसे चले गये। देवेश्वर महादेवसे वे अस्त्र पाकर महाबली विश्वामित्रको बड़ा घमंड हो गया। वे अभिमानमें भर गये॥ १८-१९॥

'जैसे पूर्णिमाको समुद्र बढ़ने लगता है, उसी प्रकार वे पराक्रमद्वारा अपनेको बहुत बढ़ा-चढ़ा मानने लगे। श्रीराम! उन्होंने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको उस समय मरा हुआ ही समझा॥ २०॥

फिर तो वे पृथ्वीपति विश्वामित्र वसिष्ठके आश्रमपर जाकर भाँति-भाँतिके अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे। जिनके तेजसे वह सारा तपोवन दग्ध होने लगा॥ २१॥

'बुद्धिमान् विश्वामित्रके उस बढ़ते हुए अस्त्र-तेजको देखकर वहाँ रहनेवाले सैकड़ों मुनि भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चले॥ २२॥

'वसिष्ठजीके जो शिष्य थे, जो वहाँके पशु और पक्षी थे, वे सहस्रों प्राणी भयभीत हो नाना दिशाओंकी ओर भाग गये॥ २३॥

'महात्मा वसिष्ठका वह आश्रम सूना हो गया। दो ही घड़ीमें ऊसर भूमिके समान उस स्थानपर सन्नाटा छा गया॥ २४॥

'वसिष्ठजी बार-बार कहने लगे—'डरो मत, मैं अभी इस गाधिपुत्रको नष्ट किये देता हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य कुहासेको मिटा देता है'॥ २५॥

'जपनेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठ ऐसा कहकर उस समय विश्वामित्रजीसे रोषपूर्वक बोले—

''अरे! तूने चिरकालसे पाले-पोसे तथा हरे-भरे किये हुए इस आश्रमको नष्ट कर दिया—उजाड़ डाला, इसलिये तू दुराचारी और विवेकशून्य है और इस पापके कारण तू कुशलसे नहीं रह सकता'॥ २७॥

'ऐसा कहकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो धूमरहित कालाग्निके समान उद्दीप्त हो उठे और दूसरे यमदण्डके समान भयंकर डंडा हाथमें उठाकर तुरंत उनका सामना करनेके लिये तैयार हो गये'॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

विश्वामित्रद्वारा वसिष्ठजीपर नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग और वसिष्ठद्वारा ब्रह्मदण्डसे ही उनका शमन एवं विश्वामित्रका ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके लिये तप करनेका निश्चय

वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर महाबली विश्वामित्र आग्नेयास्त्र लेकर बोले—'अरे खड़ा रह, खड़ा रह'॥ १॥

उस समय द्वितीय कालदण्डके समान ब्रह्मदण्डको उठाकर भगवान् वसिष्ठने क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ २॥

'क्षत्रियाधम! ले, यह मैं खड़ा हूँ। तेरे पास जो बल हो, उसे दिखा। गाधिपुत्र! आज तेरे अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानका घमंड मैं अभी धूलमें मिला दूँगा॥ ३॥

'क्षत्रियकुलकलङ्क! कहाँ तेरा क्षात्रबल और कहाँ महान् ब्रह्मबल। मेरे दिव्य ब्रह्मबलको देख ले'॥ ४॥

गाधिपुत्र विश्वामित्रका वह उत्तम एवं भयंकर आग्नेयास्त्र वसिष्ठजीके ब्रह्मदण्डसे उसी प्रकार शान्त हो गया, जैसे पानी पड़नेसे जलती हुई आगका वेग॥ ५॥

तब गाधिपुत्र विश्वामित्रने कुपित होकर वारुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत और ऐषीक नामक अस्त्रोंका प्रयोग किया॥

रघुनन्दन! उसके पश्चात् क्रमशः मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, मादन, संतापन, विलापन, शोषण, विदारण, सुदुर्जय वज्रास्त्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, परमप्रिय पिनाकास्त्र, सूखी-गीली दो प्रकारकी अशनि, दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र, क्रौञ्चास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मन्थनास्त्र, हयशिरा, दो प्रकारकी शक्ति, कङ्काल, मूसल, महान् वैद्याधरास्त्र, दारुण कालास्त्र, भयंकर त्रिशूलास्त्र, कापालास्त्र और कङ्कणास्त्र—ये सभी अस्त्र उन्होंने वसिष्ठजीके ऊपर चलाये॥ ७—१२॥

जपनेवालोंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठपर इतने अस्त्रोंका प्रहार वह एक अद्भुत-सी घटना थी, परंतु ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठजीने उन सभी अस्त्रोंको केवल अपने डंडेसे ही नष्ट कर दिया॥ १३॥

उन सब अस्त्रोंके शान्त हो जानेपर गाधिनन्दन विश्वामित्रने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। ब्रह्मास्त्रको उद्यत देख अग्नि आदि देवता, देवर्षि, गन्धर्व और बड़े-बड़े नाग भी दहल गये। ब्रह्मास्त्रके ऊपर उठते ही तीनों लोकोंके प्राणी थर्रा उठे॥ १४-१५॥

राघव! वसिष्ठजीने अपने ब्रह्मतेजके प्रभावसे उस महाभयंकर ब्रह्मास्त्रको भी ब्रह्मदण्डके द्वारा ही शान्त कर दिया॥ १६॥

उस ब्रह्मास्त्रको शान्त करते समय महात्मा वसिष्ठका वह रौद्ररूप तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला और अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था॥ १७॥

महात्मा वसिष्ठके समस्त रोमकूपोंमेंसे किरणोंकी भाँति धूमयुक्त आगकी लपटें निकलने लगीं॥ १८॥

वसिष्ठजीके हाथमें उठा हुआ द्वितीय यमदण्डके समान वह ब्रह्मदण्ड धूमरहित कालाग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था॥ १९॥

उस समय समस्त मुनिगण मन्त्र जपनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिकी स्तुति करते हुए बोले—'ब्रह्मन्! आपका बल अमोघ है। आप अपने तेजको अपनी ही शक्तिसे समेट लीजिये॥ २०॥

'महाबली विश्वामित्र आपसे पराजित हो गये। मुनिश्रेष्ठ! आपका बल अमोघ है। अब आप शान्त हो जाइये, जिससे लोगोंकी व्यथा दूर हो'॥ २१॥

महर्षियोंके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महाबली वसिष्ठजी शान्त हो गये और पराजित विश्वामित्र लम्बी साँस खींचकर यों बोले— ॥ २२॥

'क्षत्रियके बलको धिक्कार है। ब्रह्मतेजसे प्राप्त होनेवाला बल ही वास्तवमें बल है; क्योंकि आज एक ब्रह्मदण्डने मेरे सभी अस्त्र नष्ट कर दिये॥ २३॥

'इस घटनाको प्रत्यक्ष देखकर अब मैं अपने मन और इन्द्रियोंको निर्मल करके उस महान् तपका अनुष्ठान करूँगा, जो मेरे लिये ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिका कारण होगा'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

विश्वामित्रकी तपस्या, राजा त्रिशंकुका अपना यज्ञ करानेके लिये पहले वसिष्ठजीसे प्रार्थना करना और उनके इन्कार कर देनेपर उन्हींके पुत्रोंकी शरणमें जाना

श्रीराम! तदनन्तर विश्वामित्र अपनी पराजयको याद करके मन-ही-मन संतप्त होने लगे। महात्मा वसिष्ठके साथ वैर बाँधकर महातपस्वी विश्वामित्र बारम्बार लम्बी साँस खींचते हुए अपनी रानीके साथ दक्षिण दिशामें जाकर अत्यन्त उत्कृष्ट एवं भयंकर तपस्या करने लगे॥ १-२ ॥

वहाँ मन और इन्द्रियोंको वशमें करके वे फल-मूलका आहार करते तथा उत्तम तपस्यामें लगे रहते थे। वहीं उनके हविष्पन्द, मधुष्पन्द, दृढनेत्र और महारथ नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे॥ ३½ ॥

एक हजार वर्ष पूरे हो जानेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने तपस्याके धनी विश्वामित्रको दर्शन देकर मधुर वाणीमें कहा—'कुशिकनन्दन! तुमने तपस्याके द्वारा राजर्षियोंके लोकोंपर विजय पायी है। इस तपस्याके प्रभावसे हम तुम्हें सच्चा राजर्षि समझते हैं'॥ ४-५½ ॥

यह कहकर सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओंके साथ स्वर्गलोक होते हुए ब्रह्मलोकको चले गये॥ ६½ ॥

उनकी बात सुनकर विश्वामित्रका मुख लज्जासे कुछ झुक गया। वे बड़े दुःखसे व्यथित हो दीनतापूर्वक मन-ही-मन यों कहने लगे—'अहो! मैंने इतना बड़ा तप किया तो भी ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता मुझे राजर्षि ही समझते हैं। मालूम होता है, इस तपस्याका कोई फल नहीं हुआ'॥ ७-८½ ॥

श्रीराम! मनमें ऐसा सोचकर अपने मनको वशमें रखनेवाले महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र पुनः भारी तपस्यामें लग गये॥ ९½ ॥

इसी समय इक्ष्वाकुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले एक सत्यवादी और जितेन्द्रिय राजा राज्य करते थे। उनका नाम था त्रिशंकु॥ १०½ ॥

रघुनन्दन! उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं ऐसा कोई यज्ञ करूँ, जिससे अपने इस शरीरके साथ ही देवताओंकी परम गति—स्वर्गलोकको जा पहुँचूँ'॥

तब उन्होंने वसिष्ठजीको बुलाकर अपना यह विचार उन्हें कह सुनाया। महात्मा वसिष्ठने उन्हें बताया कि 'ऐसा होना असम्भव है'॥ १२½ ॥

जब वसिष्ठने उन्हें कोरा उत्तर दे दिया, तब वे राजा उस कर्मकी सिद्धिके लिये दक्षिण दिशामें उन्हींके पुत्रोंके पास चले गये॥ १३½ ॥

वसिष्ठजीके वे पुत्र जहाँ दीर्घकालसे तपस्यामें प्रवृत्त होकर तप करते थे, उस स्थानपर पहुँचकर महातेजस्वी त्रिशंकुने देखा कि मनको वशमें रखनेवाले वे सौ परमतेजस्वी वसिष्ठकुमार तपस्यामें संलग्न हैं॥

उन सभी महात्मा गुरुपुत्रोंके पास जाकर उन्होंने क्रमशः उन्हें प्रणाम किया और लज्जासे अपने मुखको कुछ नीचा किये हाथ जोड़कर उन सब महात्माओंसे कहा— ॥ १६½ ॥

'गुरुपुत्रो! आप शरणागतवत्सल हैं। मैं आपलोगोंकी शरणमें आया हूँ, आपका कल्याण हो। महात्मा वसिष्ठने मेरा यज्ञ कराना अस्वीकार कर दिया है। मैं एक महान् यज्ञ करना चाहता हूँ। आपलोग उसके लिये आज्ञा दें॥ १७-१८ ॥

'मैं समस्त गुरुपुत्रोंको नमस्कार करके प्रसन्न करना चाहता हूँ। आपलोग तपस्यामें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण हैं। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह याचना करता हूँ कि आपलोग एकाग्रचित्त हो मुझसे मेरी अभीष्टसिद्धिके लिये ऐसा कोई यज्ञ करावें, जिससे मैं इस शरीरके साथ ही देवलोकमें जा सकूँ॥ १९-२० ॥

'तपोधनो! महात्मा वसिष्ठके अस्वीकार कर देनेपर अब मैं अपने लिये समस्त गुरुपुत्रोंकी शरणमें जानेके सिवा दूसरी कोई गति नहीं देखता॥ २१ ॥

'समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके लिये पुरोहित वसिष्ठजी ही परमगति हैं। उनके बाद आप सब लोग ही मेरे परम देवता हैं'॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

वसिष्ठ ऋषिके पुत्रोंका त्रिशंकुको डाँट बताकर घर लौटनेके लिये आज्ञा देना तथा उन्हें दूसरा पुरोहित बनानेके लिये उद्यत देख शाप-प्रदान और उनके शापसे चाण्डाल हुए त्रिशंकुका विश्वामित्रजीकी शरणमें जाना

रघुनन्दन! राजा त्रिशंकुका यह वचन सुनकर वसिष्ठ मुनिके वे सौ पुत्र कुपित हो उनसे इस प्रकार बोले— 'दुर्बुद्धे! तुम्हारे सत्यवादी गुरुने जब तुम्हें मना कर दिया है, तब तुमने उनका उल्लङ्घन करके दूसरी शाखाका आश्रय कैसे लिया?॥ १-२ ॥

'समस्त इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियोंके लिये पुरोहित वसिष्ठजी ही परमगति हैं। उन सत्यवादी महात्माकी बातको कोई अन्यथा नहीं कर सकता॥ ३ ॥

'जिस यज्ञकर्मको उन भगवान् वसिष्ठमुनिने असम्भव बताया है, उसे हमलोग कैसे कर सकते हैं॥ ४ ॥

'नरश्रेष्ठ! तुम अभी नादान हो, अपने नगरको लौट जाओ। पृथ्वीनाथ! भगवान् वसिष्ठ तीनों लोकोंका यज्ञ करानेमें समर्थ हैं, हमलोग उनका अपमान कैसे कर सकेंगे'॥ ५½ ॥

गुरुपुत्रोंका वह क्रोधयुक्त वचन सुनकर राजा त्रिशंकुने पुनः उनसे इस प्रकार कहा—'तपोधनो! भगवान् वसिष्ठने तो मुझे ठुकरा ही दिया था, आप गुरुपुत्रगण भी मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार कर रहे हैं; अतः आपका कल्याण हो, अब मैं दूसरे किसीकी शरणमें जाऊँगा'॥

त्रिशंकुका यह घोर अभिसंधिपूर्ण वचन सुनकर महर्षिके पुत्रोंने अत्यन्त कुपित हो उन्हें शाप दे दिया— 'अरे! जा तू चाण्डाल हो जायगा।' ऐसा कहकर वे महात्मा अपने-अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये॥ ८-९ ॥

तदनन्तर रात व्यतीत होते ही राजा त्रिशंकु चाण्डाल हो गये। उनके शरीरका रंग नीला हो गया। कपड़े भी नीले हो गये। प्रत्येक अंगमें रुक्षता आ गयी। सिरके बाल छोटे-छोटे हो गये। सारे शरीरमें चिताकी राख-सी लिपट गयी। विभिन्न अंगोंमें यथास्थान लोहेके गहने पड़ गये॥ १०½ ॥

श्रीराम! अपने राजाको चाण्डालके रूपमें देखकर सब मन्त्री और पुरवासी जो उनके साथ आये थे, उन्हें छोड़कर भाग गये। ककुत्स्थनन्दन! वे धीरस्वभाव नरेश दिन-रात चिन्ताकी आगमें जलने लगे और अकेले ही तपोधन विश्वामित्रकी शरणमें गये॥ ११-१२½ ॥

श्रीराम! विश्वामित्रने देखा राजाका जीवन निष्फल हो गया है। उन्हें चाण्डालके रूपमें देखकर उन महातेजस्वी परम धर्मात्मा मुनिके हृदयमें करुणा भर आयी। वे दयासे द्रवित होकर भयंकर दिखायी देनेवाले राजा त्रिशंकुसे इस प्रकार बोले— 'महाबली राजकुमार! तुम्हारा भला हो, यहाँ किस कामसे तुम्हारा आना हुआ है। वीर अयोध्यानरेश! जान पड़ता है तुम शापसे चाण्डालभावको प्राप्त हुए हो'॥ १३—१५½ ॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर चाण्डालभावको प्राप्त हुए और वाणीके तात्पर्यको समझनेवाले राजा त्रिशंकुने हाथ जोड़कर वाक्यार्थकोविद विश्वामित्र मुनिसे इस प्रकार कहा— ॥ १६½ ॥

'महर्षे! मुझे गुरु तथा गुरुपुत्रोंने ठुकरा दिया। मैं जिस मनोऽभीष्ट वस्तुको पाना चाहता था, उसे न पाकर इच्छाके विपरीत अनर्थका भागी हो गया॥ १७½ ॥

'सौम्यदर्शन मुनीश्वर! मैं चाहता था कि इसी शरीरसे स्वर्गको जाऊँ, परंतु यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। मैंने सैकड़ों यज्ञ किये हैं; किंतु उनका भी कोई फल नहीं मिल रहा है॥ १८½ ॥

'सौम्य! मैं क्षत्रियधर्मकी शपथ खाकर आपसे कहता हूँ कि बड़े-से-बड़े सङ्कटमें पड़नेपर भी न तो पहले कभी मैंने मिथ्या भाषण किया है और न भविष्यमें ही कभी करूँगा॥ १९½ ॥

'मैंने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया, प्रजाजनोंकी धर्मपूर्वक रक्षा की और शील एवं सदाचारके द्वारा महात्माओं तथा गुरुजनोंको संतुष्ट रखनेका प्रयास किया। इस समय भी मैं यज्ञ करना चाहता था; अतः मेरा यह प्रयत्न धर्मके लिये ही था। मुनिप्रवर! तो भी मेरे गुरुजन मुझपर संतुष्ट न हो सके। यह देखकर मैं दैवको ही बड़ा मानता हूँ। पुरुषार्थ तो निरर्थक जान पड़ता है॥ २०—२२ ॥

'दैव सबपर आक्रमण करता है। दैव ही सबकी परमगति है। मुने! मैं अत्यन्त आर्त होकर आपकी कृपा

चाहता हूँ। दैवने मेरे पुरुषार्थको दबा दिया है। आपका भला हो। आप मुझपर अवश्य कृपा करें॥ २३॥

'अब मैं आपके सिवा दूसरे किसीकी शरणमें नहीं जाऊँगा। दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला है भी नहीं। आप ही अपने पुरुषार्थसे मेरे दुर्दैवको पलट सकते हैं'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रका त्रिशंकुको आश्वासन देकर उनका यज्ञ करानेके लिये ऋषि-मुनियोंको आमन्त्रित करना और उनकी बात न माननेवाले महोदय तथा ऋषिपुत्रोंको शाप देकर नष्ट करना

[**शतानन्दजी कहते हैं**—श्रीराम!] साक्षात् चाण्डालके स्वरूपको प्राप्त हुए राजा त्रिशंकुके पूर्वोक्त वचनको सुनकर कुशिकनन्दन विश्वामित्रजीने दयासे द्रवित होकर उनसे मधुर वाणीमें कहा—॥ १॥

'वत्स! इक्ष्वाकुकुलनन्दन! तुम्हारा स्वागत है। मैं जानता हूँ, तुम बड़े धर्मात्मा हो। नृपप्रवर! डरो मत, मैं तुम्हें शरण दूँगा॥ २॥

'राजन्! तुम्हारे यज्ञमें सहायता करनेवाले समस्त पुण्यकर्मा महर्षियोंको मैं आमन्त्रित करता हूँ। फिर तुम आनन्दपूर्वक यज्ञ करना॥ ३॥

'गुरुके शापसे तुम्हें जो यह नवीन रूप प्राप्त हुआ है इसके साथ ही तुम सदेह स्वर्गलोकको जाओगे। नरेश्वर! तुम जो शरणागतवत्सल विश्वामित्रकी शरणमें आ गये, इससे मैं यह समझता हूँ कि स्वर्गलोक तुम्हारे हाथमें आ गया है'॥ ४-५॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी विश्वामित्रने अपने परम धर्मपरायण महाज्ञानी पुत्रोंको यज्ञकी सामग्री जुटानेकी आज्ञा दी॥ ६॥

तत्पश्चात् समस्त शिष्योंको बुलाकर उनसे यह बात कही—'तुमलोग मेरी आज्ञासे अनेक विषयोंके ज्ञाता समस्त ऋषि-मुनियोंको, जिनमें वसिष्ठके पुत्र भी सम्मिलित हैं, उनके शिष्यों, सुहृदों तथा ऋत्विजोंसहित बुला लाओ॥ ७½॥

'जिसे मेरा संदेश देकर बुलाया गया हो वह अथवा दूसरा कोई यदि इस यज्ञके विषयमें कोई अवहेलनापूर्ण बात कहे तो तुमलोग वह सब पूरा-पूरा मुझसे आकर कहना'॥ ८½॥

उनकी आज्ञा मानकर सभी शिष्य चारों दिशाओंमें चले गये। फिर तो सब देशोंसे ब्रह्मवादी मुनि आने लगे। विश्वामित्रके वे शिष्य उन प्रज्वलित तेजवाले महर्षिके पास सबसे पहले लौट आये और समस्त ब्रह्मवादियोंने जो बातें कही थीं, उन्हें सबने विश्वामित्रजीसे कह सुनाया॥ ९-१०½॥

वे बोले—'गुरुदेव! आपका आदेश या संदेश सुनकर प्रायः सम्पूर्ण देशोंमें रहनेवाले सभी ब्राह्मण आ रहे हैं। केवल महोदय नामक ऋषि तथा वसिष्ठ-पुत्रोंको छोड़कर सभी महर्षि यहाँ आनेके लिये प्रस्थान कर चुके हैं॥ ११½॥

'मुनिश्रेष्ठ! वसिष्ठके जो सौ पुत्र हैं, उन सबने क्रोधभरी वाणीमें जो कुछ कहा है, वह सब आप सुनिये॥ १२½॥

'वे कहते हैं—जो विशेषतः चण्डाल है और जिसका यज्ञ करानेवाला आचार्य क्षत्रिय है, उसके यज्ञमें देवर्षि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्यका भोजन कैसे कर सकते हैं? अथवा चण्डालका अन्न खाकर विश्वामित्रसे पालित हुए ब्राह्मण स्वर्गमें कैसे जा सकेंगे?'॥ १३-१४½॥

'मुनिप्रवर! महोदयके साथ वसिष्ठके सभी पुत्रोंने क्रोधसे लाल आँखें करके ये उपर्युक्त निष्ठुरतापूर्ण बातें कही थीं'॥ १५½॥

उन सबकी वह बात सुनकर मुनिवर विश्वामित्रके दोनों नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे रोषपूर्वक इस प्रकार बोले—॥ १६½॥

'मैं उग्र तपस्यामें लगा हूँ और दोष या दुर्भावनासे रहित हूँ तो भी जो मुझपर दोषारोपण करते हैं, वे दुरात्मा भस्मीभूत हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है॥ १७½॥

'आज कालपाशसे बँधकर वे यमलोकमें पहुँचा दिये गये। अब ये सात सौ जन्मोंतक मुर्दोंकी रखवाली करनेवाली, निश्चितरूपसे कुत्तेका मांस खानेवाली मुष्टिक

नामक प्रसिद्ध निर्दय चण्डाल-जातिमें जन्म ग्रहण करें॥ १८-१९॥

'वे लोग विकृत एवं विरूप होकर इन लोकोंमें विचरें। साथ ही दुर्बुद्धि महोदय भी, जिसने मुझ दोषहीनको भी दूषित किया है, मेरे क्रोधसे दीर्घ कालतक सब लोगोंमें निन्दित, दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें तत्पर और दयाशून्य निषादयोनिको प्राप्त करके दुर्गति भोगेगा'॥ २०-२१ $\frac{1}{2}$ ॥

ऋषियोंके बीचमें ऐसा कहकर महातपस्वी, महातेजस्वी एवं महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

विश्वामित्रका ऋषियोंसे त्रिशंकुका यज्ञ करानेके लिये अनुरोध, ऋषियोंद्वारा यज्ञका आरम्भ, त्रिशंकुका सशरीर स्वर्गगमन, इन्द्रद्वारा स्वर्गसे उनके गिराये जानेपर क्षुब्ध हुए विश्वामित्रका नूतन देवसर्गके लिये उद्योग, फिर देवताओंके अनुरोधसे उनका इस कार्यसे विरत होना

[**शतानन्दजी कहते हैं—**श्रीराम!] महोदयसहित वसिष्ठके पुत्रोंको अपने तपोबलसे नष्ट हुआ जान महातेजस्वी विश्वामित्रने ऋषियोंके बीचमें इस प्रकार कहा—॥ १॥

'मुनिवरो! ये इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजा त्रिशंकु हैं। ये विख्यात नरेश बड़े ही धर्मात्मा और दानी रहे हैं तथा इस समय मेरी शरणमें आये हैं॥ २॥

'इनकी इच्छा है कि मैं अपने इसी शरीरसे देवलोकपर अधिकार प्राप्त करूँ। अतः आपलोग मेरे साथ रहकर ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करें, जिससे इन्हें इस शरीरसे ही देवलोककी प्राप्ति हो सके'॥ ३ $\frac{1}{2}$ ॥

विश्वामित्रजीकी यह बात सुनकर धर्मको जाननेवाले सभी महर्षियोंने सहसा एकत्र होकर आपसमें धर्मयुक्त परामर्श किया—'ब्राह्मणो! कुशिकके पुत्र विश्वामित्र मुनि बड़े क्रोधी हैं। ये जो बात कह रहे हैं, उसका ठीक तरहसे पालन करना चाहिये। इसमें संशय नहीं है॥ ४-५ $\frac{1}{2}$ ॥

'ये भगवान् विश्वामित्र अग्निके समान तेजस्वी हैं। यदि इनकी बात नहीं मानी गयी तो ये रोषपूर्वक शाप दे देंगे। इसलिये ऐसे यज्ञका आरम्भ करना चाहिये, जिससे विश्वामित्रके तेजसे ये इक्ष्वाकुनन्दन त्रिशंकु सशरीर स्वर्गलोकमें जा सकें'॥ ६-७॥

इस तरह विचार करके उन्होंने सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया कि 'यज्ञ आरम्भ किया जाय।' ऐसा निश्चय करके महर्षियोंने उस समय अपना-अपना कार्य आरम्भ किया॥ ८॥

महातेजस्वी विश्वामित्र स्वयं ही उस यज्ञमें याजक (अध्वर्यु) हुए। फिर क्रमशः अनेक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण ऋत्विज् हुए; जिन्होंने कल्पशास्त्रके अनुसार विधि एवं मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारे कार्य सम्पन्न किये॥ ९ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर बहुत समयतक यत्नपूर्वक मन्त्रपाठ करके महातपस्वी विश्वामित्रने अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये सम्पूर्ण देवताओंका आवाहन किया; परंतु उस समय वहाँ भाग लेनेके लिये वे सब देवता नहीं आये॥ १०-११॥

इससे महामुनि विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने स्रुवा उठाकर रोषके साथ राजा त्रिशंकुसे इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'नरेश्वर! अब तुम मेरे द्वारा उपार्जित तपस्याका बल देखो। मैं अभी तुम्हें अपनी शक्तिसे सशरीर स्वर्गलोकमें पहुँचाता हूँ॥ १३॥

'राजन्! आज तुम अपने इस शरीरके साथ ही दुर्लभ स्वर्गलोकको जाओ। नरेश्वर! यदि मैंने तपस्याका कुछ भी फल प्राप्त किया है तो उसके प्रभावसे तुम सशरीर स्वर्गलोकको जाओ'॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीराम! विश्वामित्र मुनिके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु सब मुनियोंके देखते-देखते उस समय अपने शरीरके साथ ही स्वर्गलोकको चले गये॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

त्रिशंकुको स्वर्गलोकमें पहुँचा हुआ देख समस्त देवताओंके साथ पाकशासन इन्द्रने उनसे इस प्रकार कहा—॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

'मूर्ख त्रिशंकु! तू फिर यहाँसे लौट जा, तेरे लिये स्वर्गमें स्थान नहीं है। तू गुरुके शापसे नष्ट हो चुका है, अतः नीचे मुँह किये पुनः पृथ्वीपर गिर जा'॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

इन्द्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु तपोधन विश्वामित्रको पुकारकर 'त्राहि-त्राहि' की रट लगाते हुए पुनः स्वर्गसे नीचे गिरे॥ १८½ ॥

चीखते-चिल्लाते हुए त्रिशंकुकी वह करुण पुकार सुनकर कौशिक मुनिको बड़ा क्रोध हुआ। वे त्रिशंकुसे बोले— 'राजन्! वहीं ठहर जा, वहीं ठहर जा' (उनके ऐसा कहनेपर त्रिशंकु बीचमें ही लटके रह गये)॥ १९½ ॥

तत्पश्चात् तेजस्वी विश्वामित्रने ऋषिमण्डलीके बीच दूसरे प्रजापतिके समान दक्षिणमार्गके लिये नये सप्तर्षियोंकी सृष्टि की तथा क्रोधसे भरकर उन्होंने नवीन नक्षत्रोंका भी निर्माण कर डाला॥ २०-२१ ॥

वे महायशस्वी मुनि क्रोधसे कलुषित हो दक्षिण दिशामें ऋषिमण्डलीके बीच नूतन नक्षत्रमालाओंकी सृष्टि करके यह विचार करने लगे कि 'मैं दूसरे इन्द्रकी सृष्टि करूँगा अथवा मेरे द्वारा रचित स्वर्गलोक बिना इन्द्रके ही रहेगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने क्रोधपूर्वक नूतन देवताओंकी सृष्टि प्रारम्भ की॥ २२-२३ ॥

इससे समस्त देवता, असुर और ऋषि-समुदाय बहुत घबराये और सभी वहाँ आकर महात्मा विश्वामित्रसे विनयपूर्वक बोले—॥ २४ ॥

'महाभाग! ये राजा त्रिशंकु गुरुके शापसे अपना पुण्य नष्ट करके चाण्डाल हो गये हैं; अतः तपोधन! ये सशरीर स्वर्गमें जानेके कदापि अधिकारी नहीं हैं'॥

उन देवताओंकी यह बात सुनकर मुनिवर कौशिकने सम्पूर्ण देवताओंसे परमोत्कृष्ट वचन कहा—॥ २६ ॥

'देवगण! आपका कल्याण हो। मैंने राजा त्रिशंकुको सदेह स्वर्ग भेजनेकी प्रतिज्ञा कर ली है; अतः उसे मैं झूठी नहीं कर सकता॥ २७ ॥

'इन महाराज त्रिशंकुको सदा स्वर्गलोकका सुख प्राप्त होता रहे। मैंने जिन नक्षत्रोंका निर्माण किया है, वे सब सदा मौजूद रहें। जबतक संसार रहे, तबतक ये सभी वस्तुएँ, जिनकी मेरे द्वारा सृष्टि हुई है, सदा बनी रहें। देवताओ! आप सब लोग इन बातोंका अनुमोदन करें'॥

उनके ऐसा कहनेपर सब देवता मुनिवर विश्वामित्रसे बोले—'महर्षे! ऐसा ही हो। ये सभी वस्तुएँ बनी रहें और आपका कल्याण हो। मुनिश्रेष्ठ! आपके रचे हुए अनेक नक्षत्र आकाशमें वैश्वानरपथसे बाहर प्रकाशित होंगे और उन्हीं ज्योतिर्मय नक्षत्रोंके बीचमें सिर नीचा किये त्रिशंकु भी प्रकाशमान रहेंगे। वहाँ इनकी स्थिति देवताओंके समान होगी और ये सभी नक्षत्र इन कृतार्थ एवं यशस्वी नृपश्रेष्ठका स्वर्गीय पुरुषकी भाँति अनुसरण करते रहेंगे'॥

इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंने ऋषियोंके बीचमें ही महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र मुनिकी स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंका अनुरोध स्वीकार कर लिया॥ ३३½ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीराम! तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर सब देवता और तपोधन महर्षि जैसे आये थे, उसी प्रकार अपने-अपने स्थानको लौट गये॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

एकसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रकी पुष्कर तीर्थमें तपस्या तथा राजर्षि अम्बरीषका ऋचीकके मध्यम पुत्र शुनःशेपको यज्ञ-पशु बनानेके लिये खरीदकर लाना

[**शतानन्दजी कहते हैं—**] पुरुषसिंह श्रीराम! यज्ञमें आये हुए उन सब वनवासी ऋषियोंको वहाँसे जाते देख महातेजस्वी विश्वामित्रने उनसे कहा—॥ १ ॥

'महर्षियो! इस दक्षिण दिशामें रहनेसे हमारी तपस्यामें महान् विघ्न आ पड़ा है; अतः अब हम दूसरी दिशामें चले जायँगे और वहीं रहकर तपस्या करेंगे॥ २ ॥

'विशाल पश्चिम दिशामें जो महात्मा ब्रह्माजीके तीन पुष्कर हैं, उन्हींके पास रहकर हम सुखपूर्वक तपस्या करेंगे; क्योंकि वह तपोवन बहुत ही सुखद है'॥ ३ ॥

ऐसा कहकर वे महातेजस्वी महामुनि पुष्करमें चले गये और वहाँ फल-मूलका भोजन करके उग्र एवं दुर्जय तपस्या करने लगे॥ ४ ॥

इन्हीं दिनों अयोध्याके महाराज अम्बरीष एक यज्ञकी तैयारी करने लगे॥ ५ ॥

जब वे यज्ञमें लगे हुए थे, उस समय इन्द्रने उनके यज्ञपशुको चुरा लिया। पशुके खो जानेपर पुरोहितजीने राजासे कहा—॥ ६ ॥

'राजन्! जो पशु यहाँ लाया गया था, वह आपकी

दुर्नीतिके कारण खो गया। नरेश्वर! जो राजा यज्ञ-पशुकी रक्षा नहीं करता, उसे अनेक प्रकारके दोष नष्ट कर डालते हैं॥ ७॥

'पुरुषप्रवर! जबतक कर्मका आरम्भ होता है, उसके पहले ही खोये हुए पशुकी खोज कराकर उसे शीघ्र यहाँ ले आओ। अथवा उसके प्रतिनिधिरूपसे किसी पुरुष पशुको खरीद लाओ। यही इस पापका महान् प्रायश्चित्त है'॥

पुरोहितकी यह बात सुनकर महाबुद्धिमान् पुरुषश्रेष्ठ राजा अम्बरीषने हजारों गौओंके मूल्यपर खरीदनेके लिये एक पुरुषका अन्वेषण किया॥ ९॥

तात रघुनन्दन! विभिन्न देशों, जनपदों, नगरों, वनों तथा पवित्र आश्रमोंमें खोज करते हुए राजा अम्बरीष भृगुतुंग पर्वतपर पहुँचे और वहाँ उन्होंने पत्नी तथा पुत्रोंके साथ बैठे हुए ऋचीक मुनिका दर्शन किया॥ १०-११॥

अमित कान्तिमान् एवं महातेजस्वी राजर्षि अम्बरीषने तपस्यासे उद्दीप्त होनेवाले महर्षि ऋचीकको प्रणाम किया और उन्हें प्रसन्न करके कहा॥ १२॥

पहले तो उन्होंने ऋचीक मुनिसे उनकी सभी वस्तुओंके विषयमें कुशल-समाचार पूछा, उसके बाद इस प्रकार कहा—'महाभाग भृगुनन्दन! यदि आप एक लाख गौएँ लेकर अपने एक पुत्रको पशु बनानेके लिये बेचें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा॥ १३½॥

'मैं सारे देशोंमें घूम आया; परंतु कहीं भी यज्ञोपयोगी पशु नहीं पा सका। अतः आप उचित मूल्य लेकर यहाँ मुझे अपने एक पुत्रको दे दीजिये'॥ १४½॥

उनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी ऋचीक बोले—'नरश्रेष्ठ! मैं अपने ज्येष्ठ पुत्रको तो किसी तरह नहीं बेचूँगा'॥ १५½॥

ऋचीक मुनिकी बात सुनकर उन महात्मा पुत्रोंकी माताने पुरुषसिंह अम्बरीषसे इस प्रकार कहा—॥ १६½॥

'प्रभो! भगवान् भार्गव कहते हैं कि ज्येष्ठ पुत्र कदापि बेचनेयोग्य नहीं है; परंतु आपको मालूम होना चाहिये जो सबसे छोटा पुत्र शुनक है, वह मुझे भी बहुत ही प्रिय है। अतः पृथ्वीनाथ! मैं अपना छोटा पुत्र आपको कदापि नहीं दूँगी॥ १७-१८॥

'नरश्रेष्ठ! प्रायः जेठे पुत्र पिताओंको प्रिय होते हैं और छोटे पुत्र माताओंको। अतः मैं अपने कनिष्ठ पुत्रकी अवश्य रक्षा करूँगी'॥ १९॥

श्रीराम! मुनि और उनकी पत्नीके ऐसा कहनेपर मझले पुत्र शुनःशेपने स्वयं कहा—॥ २०॥

'राजपुत्र! पिताने ज्येष्ठको और माताने कनिष्ठ पुत्रको बेचनेके लिये अयोग्य बतलाया है। अतः मैं समझता हूँ इन दोनोंकी दृष्टिमें मझला पुत्र ही बेचनेके योग्य है। इसलिये तुम मुझे ही ले चलो'॥ २१॥

महाबाहु रघुनन्दन! ब्रह्मवादी मझले पुत्रके ऐसा कहनेपर राजा अम्बरीष बड़े प्रसन्न हुए और एक करोड़ स्वर्णमुद्रा, रत्नोंके ढेर तथा एक लाख गौओंके बदले शुनःशेपको लेकर वे घरकी ओर चले॥ २२-२३॥

महातेजस्वी महायशस्वी राजर्षि अम्बरीष शुनःशेपको रथपर बिठाकर बड़ी उतावलीके साथ तीव्र गतिसे चले॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें एकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

विश्वामित्रद्वारा शुनःशेपकी रक्षाका सफल प्रयत्न और तपस्या

[**शतानन्दजी बोले—**] नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! महायशस्वी राजा अम्बरीष शुनःशेपको साथ लेकर दोपहरके समय पुष्कर तीर्थमें आये और वहाँ विश्राम करने लगे॥ १॥

श्रीराम! जब वे विश्राम करने लगे, उस समय महायशस्वी शुनःशेप ज्येष्ठ पुष्करमें आकर ऋषियोंके साथ तपस्या करते हुए अपने मामा विश्वामित्रसे मिला। वह अत्यन्त आतुर एवं दीन हो रहा था। उसके मुखपर विषाद छा गया था। वह भूख-प्यास और परिश्रमसे दीन हो मुनिकी गोदमें गिर पड़ा और इस प्रकार बोला—॥ २-३½॥

'सौम्य! मुनिपुंगव! न मेरे माता हैं, न पिता, फिर भाई-बन्धु कहाँसे हो सकते हैं। (मैं असहाय हूँ अतः) आप ही धर्मके द्वारा मेरी रक्षा कीजिये॥ ४½॥

'नरश्रेष्ठ! आप सबके रक्षक तथा अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले हैं। ये राजा अम्बरीष कृतार्थ हो जायँ और मैं भी विकाररहित दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या करके स्वर्गलोक प्राप्त कर लूँ—ऐसी कृपा कीजिये॥ ५-६॥

'धर्मात्मन्! आप अपने निर्मलचित्तसे मुझ अनाथके नाथ (असहायके संरक्षक) हो जायँ। जैसे पिता अपने पुत्रकी रक्षा करता है, उसी प्रकार आप मुझे इस पापमूलक विपत्तिसे बचाइये'॥ ७॥

शुनःशेपकी वह बात सुनकर महातपस्वी विश्वामित्र उसे नाना प्रकारसे सान्त्वना दे अपने पुत्रोंसे इस प्रकार बोले—॥ ८॥

'बच्चो! शुभकी अभिलाषा रखनेवाले पिता जिस पारलौकिक हितके उद्देश्यसे पुत्रोंको जन्म देते हैं, उसकी पूर्तिका यह समय आ गया है॥ ९॥

'पुत्रो! यह बालक मुनिकुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है, तुमलोग अपना जीवनमात्र देकर इसका प्रिय करो॥ १०॥

'तुम सब-के-सब पुण्यात्मा और धर्मपरायण हो। अतः राजाके यज्ञमें पशु बनकर अग्निदेवको तृप्ति प्रदान करो॥ ११॥

'इससे शुनःशेप सनाथ होगा, राजाका यज्ञ भी बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो जायगा, देवता भी तृप्त होंगे और तुम्हारे द्वारा मेरी आज्ञाका पालन भी हो जायगा'॥ १२॥

'नरश्रेष्ठ! विश्वामित्र मुनिका वह वचन सुनकर उनके मधुच्छन्द आदि पुत्र अभिमान और अवहेलनापूर्वक इस प्रकार बोले—॥ १३॥

'प्रभो! आप अपने बहुत-से पुत्रोंको त्यागकर दूसरेके एक पुत्रकी रक्षा कैसे करते हैं? जैसे पवित्र भोजनमें कुत्तेका मांस पड़ जाय तो वह अग्राह्य हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ अपने पुत्रोंकी रक्षा आवश्यक हो, वहाँ दूसरेके पुत्रकी रक्षाके कार्यको हम अकर्त्तव्यकी कोटिमें ही देखते हैं'॥ १४॥

उन पुत्रोंका वह कथन सुनकर मुनिवर विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे इस प्रकार कहने लगे—॥ १५॥

'अरे! तुमलोगोंने निर्भय होकर ऐसी बात कही है, जो धर्मसे रहित एवं निन्दित है। मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जो यह दारुण एवं रोमाञ्चकारी बात तुमने मुँहसे निकाली है, इस अपराधके कारण तुम सब लोग भी वसिष्ठके पुत्रोंकी भाँति कुत्तेका मांस खानेवाली मुष्टिक आदि जातियोंमें जन्म लेकर पूरे एक हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर रहोगे'॥ १६-१७॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंको शाप देकर मुनिवर विश्वामित्रने उस समय शोकार्त शुनःशेपकी निर्विघ्न रक्षा करके उससे इस प्रकार कहा—॥ १८॥

'मुनिकुमार! अम्बरीषके इस यज्ञमें जब तुम्हें कुश आदिके पवित्र पाशोंसे बाँधकर लाल फूलोंकी माला और लाल चन्दन धारण करा दिया जाय, उस समय तुम विष्णुदेवता-सम्बन्धी यूपके पास जाकर वाणीद्वारा अग्निकी (इन्द्र और विष्णुकी) स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओंका गान करना। इससे तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लोगे'॥ १९-२०॥

शुनःशेपने एकाग्रचित्त होकर उन दोनों गाथाओंको ग्रहण किया और राजसिंह अम्बरीषके पास जाकर उनसे शीघ्रतापूर्वक कहा—॥ २१॥

'राजेन्द्र! परम बुद्धिमान् राजसिंह! अब हम दोनों शीघ्र चलें। आप यज्ञकी दीक्षा लें और यज्ञकार्य सम्पन्न करें'॥ २२॥

ऋषिकुमारका वह वचन सुनकर राजा अम्बरीष आलस्य छोड़ हर्षसे उत्फुल्ल हो शीघ्रतापूर्वक यज्ञशालामें गये॥ २३॥

वहाँ सदस्यकी अनुमति ले राजा अम्बरीषने शुनःशेपको कुशके पवित्र पाशसे बाँधकर उसे पशुके लक्षणसे सम्पन्न कर दिया और यज्ञ-पशुको लाल वस्त्र पहिनाकर यूपमें बाँध दिया॥ २४॥

बँधे हुए मुनिपुत्र शुनःशेपने उत्तम वाणीद्वारा इन्द्र और उपेन्द्र इन दोनों देवताओंकी यथावत् स्तुति की॥ २५॥

उस रहस्यभूत स्तुतिसे संतुष्ट होकर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। उस समय उन्होंने शुनःशेपको दीर्घायु प्रदान की॥ २६॥

नरश्रेष्ठ श्रीराम! राजा अम्बरीषने भी देवराज इन्द्रकी कृपासे उस यज्ञका बहुगुणसम्पन्न उत्तम फल प्राप्त किया॥ २७॥

पुरुषप्रवर! इसके बाद महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रने भी पुष्कर तीर्थमें पुनः एक हजार वर्षोंतक तीव्र तपस्या की॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रको ऋषि एवं महर्षिपदकी प्राप्ति, मेनकाद्वारा उनका तपोभंग तथा ब्रह्मर्षिपदकी प्राप्तिके लिये उनकी घोर तपस्या

[**शतानन्दजी कहते हैं—** श्रीराम!] जब एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तब उन्होंने व्रतकी समाप्तिका स्नान किया। स्नान कर लेनेपर महामुनि विश्वामित्रके पास सम्पूर्ण देवता उन्हें तपस्याका फल देनेकी इच्छासे आये॥

उस समय महातेजस्वी ब्रह्माजीने मधुर वाणीमें कहा— 'मुने! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने द्वारा उपार्जित शुभकर्मोंके प्रभावसे ऋषि हो गये'॥ २॥

उनसे ऐसा कहकर देवेश्वर ब्रह्माजी पुनः स्वर्गको चले गये। इधर महातेजस्वी विश्वामित्र पुनः बड़ी भारी तपस्यामें लग गये॥ ३॥

नरश्रेष्ठ! तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर परम सुन्दरी अप्सरा मेनका पुष्करमें आयी और वहाँ स्नानकी तैयारी करने लगी॥ ४॥

महातेजस्वी कुशिकनन्दन विश्वामित्रने वहाँ उस मेनकाको देखा। उसके रूप और लावण्यकी कहीं तुलना नहीं थी। जैसे बादलमें बिजली चमकती हो, उसी प्रकार वह पुष्करके जलमें शोभा पा रही थी॥ ५॥

उसे देखकर विश्वामित्र मुनि कामके अधीन हो गये और उससे इस प्रकार बोले—'अप्सरा! तेरा स्वागत है, तू मेरे इस आश्रममें निवास कर॥ ६॥

'तेरा भला हो। मैं कामसे मोहित हो रहा हूँ। मुझपर कृपा कर।' उनके ऐसा कहनेपर सुन्दर कटिप्रदेशवाली मेनका वहाँ निवास करने लगी॥ ७॥

इस प्रकार तपस्याका बहुत बड़ा विघ्न विश्वामित्रजीके पास स्वयं उपस्थित हो गया। रघुनन्दन! मेनकाको विश्वामित्रजीके उस सौम्य आश्रमपर रहते हुए दस वर्ष बड़े सुखसे बीते॥ ८ १/२ ॥

इतना समय बीत जानेपर महामुनि विश्वामित्र लज्जित-से हो गये। चिन्ता और शोकमें डूब गये॥ ९ १/२ ॥

रघुनन्दन! मुनिके मनमें रोषपूर्वक यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'यह सब देवताओंकी करतूत है। उन्होंने हमारी तपस्याका अपहरण करनेके लिये यह महान् प्रयास किया है॥ १० १/२ ॥

'मैं कामजनित मोहसे ऐसा आक्रान्त हो गया कि मेरे दस वर्ष एक दिन-रातके समान बीत गये। यह मेरी तपस्यामें बहुत बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया'॥ ११ १/२ ॥

ऐसा विचारकर मुनिवर विश्वामित्र लम्बी साँस खींचते हुए पश्चात्तापसे दुःखित हो गये॥ १२॥

उस समय मेनका अप्सरा भयभीत हो थर-थर काँपती हुई हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ी हो गयी। उसकी ओर देखकर कुशिकनन्दन विश्वामित्रने मधुर वचनोंद्वारा उसे विदा कर दिया और स्वयं वे उत्तर पर्वत (हिमवान्) पर चले गये॥ १३ १/२ ॥

वहाँ उन महायशस्वी मुनिने निश्चयात्मक बुद्धिका आश्रय ले कामदेवको जीतनेके लिये कौशिकी-तटपर जाकर दुर्जय तपस्या आरम्भ की॥ १४ १/२ ॥

श्रीराम! वहाँ उत्तर पर्वतपर एक हजार वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगे हुए विश्वामित्रसे देवताओंको बड़ा भय हुआ॥ १५ १/२ ॥

सब देवता और ऋषि परस्पर मिलकर सलाह करने लगे—'ये कुशिकनन्दन विश्वामित्र महर्षिकी पदवी प्राप्त करें, यही इनके लिये उत्तम बात होगी'॥ १६ १/२ ॥

देवताओंकी बात सुनकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी तपोधन विश्वामित्रके पास जा मधुर वाणीमें बोले— 'महर्षे! तुम्हारा स्वागत है। वत्स कौशिक! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ और तुम्हें महत्ता एवं ऋषियोंमें श्रेष्ठता प्रदान करता हूँ'॥ १७-१८ १/२ ॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर तपोधन विश्वामित्र हाथ जोड़ प्रणाम करके उनसे बोले—'भगवन्! यदि अपने द्वारा उपार्जित शुभकर्मोंके फलसे मुझे आप ब्रह्मर्षिका अनुपम पद प्रदान कर सकें तो मैं अपनेको जितेन्द्रिय समझूँगा'॥ १९-२० १/२ ॥

तब ब्रह्माजीने उनसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! अभी तुम जितेन्द्रिय नहीं हुए हो। इसके लिये प्रयत्न करो।' ऐसा कहकर वे स्वर्गलोकको चले गये॥ २१ १/२ ॥

देवताओंके चले जानेपर महामुनि विश्वामित्रने पुनः घोर तपस्या आरम्भ की। वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये बिना किसी आधारके खड़े होकर केवल वायु पीकर रहते हुए तपमें संलग्न हो गये॥ २२ १/२ ॥

गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निका सेवन करते, वर्षाकालमें

खुले आकाशके नीचे रहते और जाड़ेके समय रात-दिन पानीमें खड़े रहते थे। इस प्रकार उन तपोधनने एक हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की॥ २३-२४॥

महामुनि विश्वामित्रके इस प्रकार तपस्या करते समय देवताओं और इन्द्रके मनमें बड़ा भारी संताप हुआ॥

समस्त मरुद्गणोंसहित इन्द्रने उस समय रम्भा अप्सरासे ऐसी बात कही, जो अपने लिये हितकर और विश्वामित्रके लिये अहितकर थी॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रका रम्भाको शाप देकर पुनः घोर तपस्याके लिये दीक्षा लेना

(**इन्द्र बोले—**) रम्भे! देवताओंका एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है। इसे तुम्हें ही पूरा करना है। तू महर्षि विश्वामित्रको इस प्रकार लुभा, जिससे वे काम और मोहके वशीभूत हो जायँ॥ १॥

श्रीराम! बुद्धिमान् इन्द्रके ऐसा कहनेपर वह अप्सरा लज्जित हो हाथ जोड़कर देवेश्वर इन्द्रसे बोली—॥ २॥

'सुरपते! ये महामुनि विश्वामित्र बड़े भयंकर हैं। देव! इसमें संदेह नहीं कि ये मुझपर भयानक क्रोधका प्रयोग करेंगे॥ ३॥

'अतः देवेश्वर! मुझे उनसे बड़ा डर लगता है, आप मुझपर कृपा करें।' श्रीराम! डरी हुई रम्भाके इस प्रकार भयपूर्वक कहनेपर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हाथ जोड़कर खड़ी और थर-थर काँपती हुई रम्भासे इस प्रकार बोले—'रम्भे! तू भय न कर, तेरा भला हो, तू मेरी आज्ञा मान ले॥ ४-५॥

'वैशाख मासमें जब कि प्रत्येक वृक्ष नवपल्लवोंसे परम सुन्दर शोभा धारण कर लेता है, अपनी मधुर काकलीसे सबके हृदयको खींचनेवाले कोकिल और कामदेवके साथ मैं भी तेरे पास रहूँगा॥ ६॥

'भद्रे! तू अपने परम कान्तिमान् रूपको हाव-भाव आदि विविध गुणोंसे सम्पन्न करके उसके द्वारा विश्वामित्र मुनिको तपस्यासे विचलित कर दे'॥ ७॥

देवराजका यह वचन सुनकर उस मधुर मुसकानवाली सुन्दरी अप्सराने परम उत्तम रूप बनाकर विश्वामित्रको लुभाना आरम्भ किया॥ ८॥

विश्वामित्रने मीठी बोली बोलनेवाले कोकिलकी मधुर काकली सुनी। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर जब उस ओर दृष्टिपात किया, तब सामने रम्भा खड़ी दिखायी दी॥ ९॥

कोकिलके कलरव, रम्भाके अनुपम गीत और अप्रत्याशित दर्शनसे मुनिके मनमें संदेह हो गया॥ १०॥

देवराजका वह सारा कुचक्र उनकी समझमें आ गया। फिर तो मुनिवर विश्वामित्रने क्रोधमें भरकर रम्भाको शाप देते हुए कहा—॥ ११॥

'दुर्भगे रम्भे! मैं काम और क्रोधपर विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाती है। अतः इस अपराधके कारण तू दस हजार वर्षोंतक पत्थरकी प्रतिमा बनकर खड़ी रहेगी॥ १२॥

'रम्भे! शापका समय पूरा हो जानेके बाद एक महान् तेजस्वी और तपोबलसम्पन्न ब्राह्मण (ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ) मेरे क्रोधसे कलुषित तेरा उद्धार करेंगे'॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र अपना क्रोध न रोक सकनेके कारण मन-ही-मन संतप्त हो उठे॥ १४॥

मुनिके उस महाशापसे रम्भा तत्काल पत्थरकी प्रतिमा बन गयी। महर्षिका वह शापयुक्त वचन सुनकर कन्दर्प और इन्द्र वहाँसे खिसक गये॥ १५॥

श्रीराम! क्रोधसे तपस्याका क्षय हो गया और इन्द्रियाँ अभीतक काबूमें न आ सकीं, यह विचारकर उन महातेजस्वी मुनिके चित्तको शान्ति नहीं मिलती थी॥ १६॥

तपस्याका अपहरण हो जानेपर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'अबसे न तो क्रोध करूँगा और न किसी भी अवस्थामें मुँहसे कुछ बोलूँगा॥ १७॥

'अथवा सौ वर्षोंतक मैं श्वास भी न लूँगा। इन्द्रियोंको जीतकर इस शरीरको सुखा डालूँगा॥ १८॥

'जबतक अपनी तपस्यासे उपार्जित ब्राह्मणत्व मुझे प्राप्त न होगा, तबतक चाहे अनन्त वर्ष बीत जायँ, मैं बिना खाये-पीये खड़ा रहूँगा और साँसतक न लूँगा॥ १९॥

'तपस्या करते समय मेरे शरीरके अवयव

कदापि नष्ट नहीं होंगे।' रघुनन्दन! ऐसा निश्चय करके मुनिवर विश्वामित्रने पुनः एक हजार वर्षोंतक तपस्या करनेके लिये दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी संसारमें कहीं तुलना नहीं है॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रकी घोर तपस्या, उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति तथा राजा जनकका उनकी प्रशंसा करके उनसे विदा ले राजभवनको लौटना

(**शतानन्दजी कहते हैं—**) श्रीराम! पूर्वोक्त प्रतिज्ञाके अनन्तर महामुनि विश्वामित्र उत्तर दिशाको त्यागकर पूर्व दिशामें चले गये और वहीं रहकर अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे॥ १॥

रघुनन्दन! एक सहस्र वर्षोंतक परम उत्तम मौन-व्रत धारण करके वे परम दुष्कर तपस्यामें लगे रहे। उनके उस तपकी कहीं तुलना न थी॥ २॥

एक हजार वर्ष पूर्ण होनेतक वे महामुनि काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट बने रहे। बीच-बीचमें उनपर बहुत-से विघ्नोंका आक्रमण हुआ, परंतु क्रोध उनके भीतर नहीं घुसने पाया॥ ३॥

श्रीराम! अपने निश्चयपर अटल रहकर उन्होंने अक्षय तपका अनुष्ठान किया। उनका एक सहस्र वर्षोंका व्रत पूर्ण होनेपर वे महान् व्रतधारी महर्षि व्रत समाप्त करके अन्न ग्रहण करनेको उद्यत हुए। रघुकुलभूषण! इसी समय इन्द्रने ब्राह्मणके वेषमें आकर उनसे तैयार अन्नकी याचना की॥ ४-५॥

तब उन्होंने वह सारा तैयार किया हुआ भोजन उस ब्राह्मणको देनेका निश्चय करके दे डाला। उस अन्नमेंसे कुछ भी शेष नहीं बचा। इसलिये वे महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र बिना खाये-पीये ही रह गये॥ ६॥

फिर भी उन्होंने उस ब्राह्मणसे कुछ कहा नहीं। अपने मौन-व्रतका यथार्थरूपसे पालन किया। इसके बाद पुनः पहलेकी ही भाँति श्वासोच्छ्वाससे रहित मौन-व्रतका अनुष्ठान आरम्भ किया॥ ७॥

पूरे एक हजार वर्षोंतक उन मुनिश्रेष्ठने साँसतक नहीं ली। इस तरह साँस न लेनेके कारण उनके मस्तकसे धुआँ उठने लगा॥ ८॥

उससे तीनों लोकोंके प्राणी घबरा उठे, सभी संतप्त-से होने लगे। उस समय देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, सर्प और राक्षस सब मुनिकी तपस्यासे मोहित हो गये। उनके तेजसे सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वे सब-के-सब दुःखसे व्याकुल हो पितामह ब्रह्माजीसे बोले— ॥ ९-१०॥

'देव! अनेक प्रकारके निमित्तोंद्वारा महामुनि विश्वामित्रको लोभ और क्रोध दिलानेकी चेष्टा की गयी; किंतु वे अपनी तपस्याके प्रभावसे निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं॥ ११॥

'हमें उनमें कोई छोटा-सा भी दोष नहीं दिखायी देता। यदि इन्हें इनकी मनचाही वस्तु नहीं दी गयी तो ये अपनी तपस्यासे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंका नाश कर डालेंगे। इस समय सारी दिशाएँ धूमसे आच्छादित हो गयी हैं, कहीं कुछ भी सूझता नहीं है॥

'समुद्र क्षुब्ध हो उठे हैं, सारे पर्वत विदीर्ण हुए जाते हैं, धरती डगमग हो रही है और प्रचण्ड आँधी चलने लगी है॥ १४॥

'ब्रह्मन्! हमें इस उपद्रवके निवारणका कोई उपाय नहीं समझमें आता है। सब लोग नास्तिककी भाँति कर्मानुष्ठानसे शून्य हो रहे हैं। तीनों लोकोंके प्राणियोंका मन क्षुब्ध हो गया है। सभी किंकर्तव्यविमूढ़-से हो रहे हैं॥ १५॥

'महर्षि विश्वामित्रके तेजसे सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी है। भगवन्! ये महाकान्तिमान् मुनि अग्निस्वरूप हो रहे हैं। देव! महामुनि विश्वामित्र जबतक जगत्के विनाशका विचार नहीं करते तबतक ही इन्हें प्रसन्न कर लेना चाहिये॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

'जैसे पूर्वकालमें प्रलयकालिक अग्निने सम्पूर्ण त्रिलोकीको दग्ध कर डाला था, उसी प्रकार ये भी सबको जलाकर भस्म कर देंगे। यदि ये देवताओंका राज्य प्राप्त करना चाहें तो वह भी इन्हें दे दिया जाय। इनके मनमें जो भी अभिलाषा हो, उसे पूर्ण किया जाय'॥

तदनन्तर ब्रह्मा आदि सब देवता महात्मा विश्वामित्रके पास जाकर मधुर वाणीमें बोले—॥ १८½ ॥

'ब्रह्मर्षे! तुम्हारा स्वागत है, हम तुम्हारी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हुए हैं। कुशिकनन्दन! तुमने अपनी उग्र तपस्यासे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया॥ १९½ ॥

'ब्रह्मन्! मरुद्गणोंसहित मैं तुम्हें दीर्घायु प्रदान करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। सौम्य! तुम मंगलके भागी बनो और तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ सुखपूर्वक जाओ'॥ २०½ ॥

पितामह ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओंको प्रणाम किया और कहा—॥ २१½ ॥

'देवगण! यदि मुझे (आपकी कृपासे) ब्राह्मणत्व मिल गया और दीर्घ आयुकी भी प्राप्ति हो गयी तो ॐकार, वषट्कार और चारों वेद स्वयं आकर मेरा वरण करें। इसके सिवा जो क्षत्रिय-वेद (धनुर्वेद आदि) तथा ब्रह्मवेद (ऋक् आदि चारों वेद) के ज्ञाताओंमें भी सबसे श्रेष्ठ हैं, वे ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ स्वयं आकर मुझसे ऐसा कहें (कि तुम ब्राह्मण हो गये), यदि ऐसा हो जाय तो मैं समझूँगा कि मेरा उत्तम मनोरथ पूर्ण हो गया। उस अवस्थामें आप सभी श्रेष्ठ देवगण यहाँसे जा सकते हैं'॥ २२—२४॥

तब देवताओंने मन्त्रजप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिको प्रसन्न किया। इसके बाद ब्रह्मर्षि वसिष्ठने 'एवमस्तु' कहकर विश्वामित्रका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया और उनके साथ मित्रता स्थापित कर ली॥ २५ ॥

'मुने! तुम ब्रह्मर्षि हो गये, इसमें संदेह नहीं है। तुम्हारा सब ब्राह्मणोचित संस्कार सम्पन्न हो गया।' ऐसा कहकर सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे वैसे लौट गये॥ २६ ॥

इस प्रकार उत्तम ब्राह्मणत्व प्राप्त करके धर्मात्मा विश्वामित्रजीने भी मन्त्र-जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठका पूजन किया॥ २७॥

इस तरह अपना मनोरथ सफल करके तपस्यामें लगे रहकर ही ये सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरने लगे। श्रीराम! इस प्रकार कठोर तपस्या करके इन महात्माने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया॥ २८॥

रघुनन्दन! ये विश्वामित्रजी समस्त मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, ये तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप हैं, उत्तम धर्मके साक्षात् विग्रह हैं और पराक्रमकी परम निधि हैं॥ २९॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी विप्रवर शतानन्दजी चुप हो गये। शतानन्दजीके मुखसे यह कथा सुनकर महाराज जनकने श्रीराम और लक्ष्मणके समीप विश्वामित्रजीसे हाथ जोड़कर कहा—॥ ३०½ ॥

'मुनिप्रवर कौशिक! आप ककुत्स्थकुलनन्दन श्रीराम और लक्ष्मणके साथ मेरे यज्ञमें पधारे, इससे मैं धन्य हो गया। आपने मुझपर बड़ी कृपा की। महामुने! ब्रह्मन्! आपने दर्शन देकर मुझे पवित्र कर दिया॥

'आपके दर्शनसे मुझे बड़ा लाभ हुआ, अनेक प्रकारके गुण उपलब्ध हुए। ब्रह्मन्! आज इस सभामें आकर मैंने महात्मा राम तथा अन्य सदस्योंके साथ आपके महान् तेज (प्रभाव) का वर्णन सुना है, बहुत-से गुण सुने हैं। ब्रह्मन्! शतानन्दजीने आपके महान् तपका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताया है॥ ३३-३४॥

'कुशिकनन्दन! आपकी तपस्या अप्रमेय है, आपका बल अनन्त है तथा आपके गुण भी सदा ही माप और संख्यासे परे हैं॥ ३५॥

'प्रभो! आपकी आश्चर्यमयी कथाओंके श्रवणसे मुझे तृप्ति नहीं होती है; किंतु मुनिश्रेष्ठ! यज्ञका समय हो गया है, सूर्यदेव ढलने लगे हैं॥ ३६॥

'जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी मुने! आपका स्वागत है। कल प्रातःकाल फिर मुझे दर्शन दें, इस समय मुझे जानेकी आज्ञा प्रदान करें'॥ ३७॥

राजाके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्वामित्रजी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रीतियुक्त नरश्रेष्ठ राजा जनककी प्रशंसा करके शीघ्र ही उन्हें विदा कर दिया॥ ३८॥

उस समय मिथिलापति विदेहराज जनकने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे पूर्वोक्त बात कहकर अपने उपाध्याय और बन्धु-बान्धवोंके साथ उनकी शीघ्र ही परिक्रमा की। फिर वहाँसे वे चल दिये॥ ३९॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा विश्वामित्र भी महात्माओंसे पूजित होकर श्रीराम और लक्ष्मणके साथ अपने विश्राम-स्थानपर लौट आये॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

राजा जनकका विश्वामित्र और राम-लक्ष्मणका सत्कार करके उन्हें अपने यहाँ रखे हुए धनुषका परिचय देना और धनुष चढ़ा देनेपर श्रीरामके साथ उनके ब्याहका निश्चय प्रकट करना

तदनन्तर दूसरे दिन निर्मल प्रभातकाल आनेपर धर्मात्मा राजा जनकने अपना नित्य नियम पूरा करके श्रीराम और लक्ष्मणसहित महात्मा विश्वामित्रजीको बुलाया और शास्त्रीय विधिके अनुसार मुनि तथा उन दोनों महामनस्वी राजकुमारोंका पूजन करके इस प्रकार कहा— ॥ १-२ ॥

'भगवन्! आपका स्वागत है। निष्पाप महर्षे! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ; क्योंकि मैं आपका आज्ञापालक हूँ'॥ ३ ॥

महात्मा जनकके ऐसा कहनेपर बोलनेमें कुशल धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उनसे यह बात कही— ॥ ४ ॥

'महाराज! राजा दशरथके ये दोनों पुत्र विश्वविख्यात क्षत्रिय वीर हैं और आपके यहाँ जो यह श्रेष्ठ धनुष रखा है, उसे देखनेकी इच्छा रखते हैं॥ ५ ॥

'आपका कल्याण हो, वह धनुष इन्हें दिखा दीजिये। इससे इनकी इच्छा पूरी हो जायगी। फिर ये दोनों राजकुमार उस धनुषके दर्शनमात्रसे संतुष्ट हो इच्छानुसार अपनी राजधानीको लौट जायँगे'॥ ६ ॥

मुनिके ऐसा कहनेपर राजा जनक महामुनि विश्वामित्रसे बोले—'मुनिवर! इस धनुषका वृत्तान्त सुनिये। जिस उद्देश्यसे यह धनुष यहाँ रखा गया, वह सब बताता हूँ॥ ७ ॥

'भगवन्! निमिके ज्येष्ठ पुत्र राजा देवरातके नामसे विख्यात थे। उन्हीं महात्माके हाथमें यह धनुष धरोहरके रूपमें दिया गया था॥ ८ ॥

'कहते हैं, पूर्वकालमें दक्षयज्ञ-विध्वंसके समय परम पराक्रमी भगवान् शङ्करने खेल-खेलमें ही रोषपूर्वक इस धनुषको उठाकर यज्ञ-विध्वंसके पश्चात् देवताओंसे कहा—'देवगण! मैं यज्ञमें भाग प्राप्त करना चाहता था, किंतु तुमलोगोंने नहीं दिया। इसलिये इस धनुषसे मैं तुम सब लोगोंके परम पूजनीय श्रेष्ठ अंग—मस्तक काट डालूँगा'॥ ९-१० ॥

'मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर सम्पूर्ण देवता उदास हो गये और स्तुतिके द्वारा देवाधिदेव महादेवजीको प्रसन्न करने लगे। अन्तमें उनपर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये॥ ११ ॥

'प्रसन्न होकर उन्होंने उन सब महामनस्वी देवताओंको यह धनुष अर्पण कर दिया। वही यह देवाधिदेव महात्मा भगवान् शङ्करका धनुष-रत्न है, जो मेरे पूर्वज महाराज देवरातके पास धरोहरके रूपमें रखा गया था॥ १२ $\frac{१}{२}$ ॥

'एक दिन मैं यज्ञके लिये भूमिशोधन करते समय खेतमें हल चला रहा था। उसी समय हलके अग्रभागसे जोती गयी भूमि (हराई या सीता) से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हलद्वारा खींची गयी रेखा) से उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम सीता रखा गया। पृथ्वीसे प्रकट हुई वह मेरी कन्या क्रमशः बढ़कर सयानी हुई॥ १३-१४ ॥

'अपनी इस अयोनिजा कन्याके विषयमें मैंने यह निश्चय किया कि जो अपने पराक्रमसे इस धनुषको चढ़ा देगा, उसीके साथ मैं इसका ब्याह करूँगा। इस तरह इसे वीर्यशुल्का (पराक्रमरूप शुल्कवाली) बनाकर अपने घरमें रख छोड़ा है। मुनिश्रेष्ठ! भूतलसे प्रकट होकर दिनों-दिन बढ़नेवाली मेरी पुत्री सीताको कई राजाओंने यहाँ आकर माँगा॥ १५ $\frac{१}{२}$ ॥

'परंतु भगवन्! कन्याका वरण करनेवाले उन सभी राजाओंको मैंने यह बता दिया कि मेरी कन्या वीर्यशुल्का है। (उचित पराक्रम प्रकट करनेपर ही कोई पुरुष उसके साथ विवाह करनेका अधिकारी हो सकता है।) यही कारण है कि मैंने आजतक किसीको अपनी कन्या नहीं दी॥ १६ $\frac{१}{२}$ ॥

'मुनिपुंगव! तब सभी राजा मिलकर मिथिलामें आये और पूछने लगे कि राजकुमारी सीताको प्राप्त करनेके लिये कौन-सा पराक्रम निश्चित किया गया है॥

'मैंने पराक्रमकी जिज्ञासा करनेवाले उन राजाओंके सामने यह शिवजीका धनुष रख दिया; परंतु वे लोग इसे उठाने या हिलानेमें भी समर्थ न हो सके॥ १८ $\frac{१}{२}$ ॥

'महामुने! उन पराक्रमी नरेशोंकी शक्ति बहुत

थोड़ी जानकर मैंने उन्हें कन्या देनेसे इनकार कर दिया। तपोधन! इसके बाद जो घटना घटी, उसे भी आप सुन लीजिये॥ १९½ ॥

'मुनिप्रवर! मेरे इनकार करनेपर ये सब राजा अत्यन्त कुपित हो उठे और अपने पराक्रमके विषयमें संशयापन्न हो मिथिलाको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ २०½ ॥

'मेरे द्वारा अपना तिरस्कार हुआ मानकर उन श्रेष्ठ नरेशोंने अत्यन्त रुष्ट हो मिथिलापुरीको सब ओरसे पीड़ा देना प्रारम्भ कर दिया॥ २१½ ॥

'मुनिश्रेष्ठ! पूरे एक वर्षतक वे घेरा डाले रहे। इस बीचमें युद्धके सारे साधन क्षीण हो गये। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ॥ २२½ ॥

'तब मैंने तपस्याके द्वारा समस्त देवताओंको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की। देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे चतुरंगिणी सेना प्रदान की॥ २३½ ॥

'फिर तो हमारे सैनिकोंकी मार खाकर वे सभी पापाचारी राजा, जो बलहीन थे अथवा जिनके बलवान् होनेमें संदेह था, मन्त्रियोंसहित भागकर विभिन्न दिशाओंमें चले गये॥ २४½ ॥

'मुनिश्रेष्ठ! यही वह परम प्रकाशमान धनुष है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! मैं उसे श्रीराम और लक्ष्मणको भी दिखाऊँगा॥ २५½ ॥

'मुने! यदि श्रीराम इस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या सीताको इन दशरथकुमारके हाथमें दे दूँ'॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६ ॥

सरसठवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा धनुर्भंग तथा राजा जनकका विश्वामित्रकी आज्ञासे राजा दशरथको बुलानेके लिये मन्त्रियोंको भेजना

जनककी यह बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र बोले—'राजन्! आप श्रीरामको अपना धनुष दिखाइये'॥

तब राजा जनकने मन्त्रियोंको आज्ञा दी—'चन्दन और मालाओंसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ ले आओ'॥ २ ॥

राजा जनककी आज्ञा पाकर वे अमित तेजस्वी मन्त्री नगरमें गये और उस धनुषको आगे करके पुरीसे बाहर निकले॥ ३ ॥

वह धनुष आठ पहियोंवाली लोहेकी बहुत बड़ी संदूकमें रखा गया था। उसे मोटे-ताजे पाँच हजार महामनस्वी वीर किसी तरह ठेलकर वहाँतक ला सके॥ ४ ॥

लोहेकी वह संदूक, जिसमें धनुष रखा गया था, लाकर उन मन्त्रियोंने देवोपम राजा जनकसे कहा—॥

'राजन्! मिथिलापते! राजेन्द्र! यह समस्त राजाओंद्वारा सम्मानित श्रेष्ठ धनुष है। यदि आप इन दोनों राजकुमारोंको दिखाना चाहते हैं तो दिखाइये'॥ ६ ॥

उनकी बात सुनकर राजा जनकने हाथ जोड़कर महात्मा विश्वामित्र तथा दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा— ॥ ७ ॥

'ब्रह्मन्! यही वह श्रेष्ठ धनुष है, जिसका जनकवंशी नरेशोंने सदा ही पूजन किया है तथा जो इसे उठानेमें समर्थ न हो सके, उन महापराक्रमी नरेशोंने भी इसका पूर्वकालमें सम्मान किया है॥ ८ ॥

'इसे समस्त देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व, बड़े-बड़े यक्ष, किन्नर और महानाग भी नहीं चढ़ा सके हैं॥ ९ ॥

'फिर इस धनुषको खींचने, चढ़ाने, इसपर बाण संधान करने, इसकी प्रत्यञ्चापर टङ्कार देने तथा इसे उठाकर इधर-उधर हिलानेमें मनुष्योंकी कहाँ शक्ति है?॥ १० ॥

'मुनिप्रवर! यह श्रेष्ठ धनुष यहाँ लाया गया है। महाभाग! आप इसे इन दोनों राजकुमारोंको दिखाइये'॥ ११ ॥

श्रीरामसहित विश्वामित्रने जनकका वह कथन सुनकर रघुनन्दनसे कहा—'वत्स राम! इस धनुषको देखो'॥ १२ ॥

महर्षिकी आज्ञासे श्रीरामने जिसमें वह धनुष था उस संदूकको खोलकर उस धनुषको देखा और कहा— ॥ १३ ॥

'अच्छा अब मैं इस दिव्य एवं श्रेष्ठ धनुषमें हाथ लगाता हूँ। मैं इसे उठाने और चढ़ानेका भी प्रयत्न करूँगा'॥ १४॥

तब राजा और मुनिने एक स्वरसे कहा—'हाँ, ऐसा ही करो।' मुनिकी आज्ञासे रघुकुलनन्दन धर्मात्मा श्रीरामने उस धनुषको बीचसे पकड़कर लीलापूर्वक उठा लिया और खेल-सा करते हुए उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उस समय कई हजार मनुष्योंकी दृष्टि उनपर लगी थी॥ १५-१६॥

प्रत्यञ्चा चढ़ाकर महायशस्वी नरश्रेष्ठ श्रीरामने ज्यों ही उस धनुषको कानतक खींचा त्यों ही वह बीचसे ही टूट गया॥ १७॥

टूटते समय उससे वज्रपातके समान बड़ी भारी आवाज हुई। ऐसा जान पड़ा मानो पर्वत फट पड़ा हो। उस समय महान् भूकम्प आ गया॥ १८॥

मुनिवर विश्वामित्र, राजा जनक तथा रघुकुलभूषण दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको छोड़कर शेष जितने लोग वहाँ खड़े थे, वे सब धनुष टूटनेके उस भयंकर शब्दसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥ १९॥

थोड़ी देरमें जब सबको चेत हुआ, तब निर्भय हुए राजा जनकने, जो बोलनेमें कुशल और वाक्यके मर्मको समझनेवाले थे, हाथ जोड़कर मुनिवर विश्वामित्रसे कहा— ॥ २०॥

'भगवन्! मैंने दशरथनन्दन श्रीरामका पराक्रम आज अपनी आँखों देख लिया। महादेवजीके धनुषको चढ़ाना—यह अत्यन्त अद्भुत, अचिन्त्य और अतर्कित घटना है॥

'मेरी पुत्री सीता दशरथकुमार श्रीरामको पतिरूपमें प्राप्त करके जनकवंशकी कीर्तिका विस्तार करेगी॥ २२॥

'कुशिकनन्दन! मैंने सीताको वीर्यशुल्का (पराक्रमरूपी शुल्कसे ही प्राप्त होनेवाली) बताकर जो प्रतिज्ञा की थी, वह आज सत्य एवं सफल हो गयी। सीता मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर है। अपनी यह पुत्री मैं श्रीरामको समर्पित करूँगा॥ २३॥

'ब्रह्मन्! कुशिकनन्दन! आपका कल्याण हो। यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे मन्त्री रथपर सवार होकर बड़ी उतावलीके साथ शीघ्र ही अयोध्याको जायँ और विनययुक्त वचनोंद्वारा महाराज दशरथको मेरे नगरमें लिवा लायें। साथ ही यहाँका सब समाचार बताकर यह निवेदन करें कि जिसके लिये पराक्रमका ही शुल्क नियत किया गया था, उस जनककुमारी सीताका विवाह श्रीरामचन्द्रजीके साथ होने जा रहा है॥ २४-२५॥

'ये लोग महाराज दशरथसे यह भी कह दें कि आपके दोनों पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा सुरक्षित हो मिथिलामें पहुँच गये हैं। इस प्रकार प्रीतियुक्त हुए राजा दशरथको ये शीघ्रगामी सचिव जल्दी यहाँ बुला लायें'॥ २६॥

विश्वामित्रने 'तथास्तु' कहकर राजाकी बातका समर्थन किया। तब धर्मात्मा राजा जनकने अपनी आज्ञाका पालन करनेवाले मन्त्रियोंको समझा-बुझाकर यहाँका ठीक-ठीक समाचार महाराज दशरथको बताने और उन्हें मिथिलापुरीमें ले आनेके लिये भेज दिया॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

राजा जनकका संदेश पाकर मन्त्रियोंसहित महाराज दशरथका मिथिला जानेके लिये उद्यत होना

राजा जनककी आज्ञा पाकर उनके दूत अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। रास्तेमें वाहनोंके थक जानेके कारण तीन रात विश्राम करके चौथे दिन वे अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे॥ १॥

राजाकी आज्ञासे उनका राजमहलमें प्रवेश हुआ। वहाँ जाकर उन्होंने देवतुल्य तेजस्वी बूढ़े महाराज दशरथका दर्शन किया॥ २॥

उन सभी दूतोंने दोनों हाथ जोड़ निर्भय हो राजासे मधुर वाणीमें यह विनययुक्त बात कही—'महाराज! मिथिलापति राजा जनकने अग्निहोत्रकी अग्निको सामने रखकर स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें सेवकोंसहित आपका तथा आपके उपाध्याय और पुरोहितोंका बारम्बार कुशल-मंगल पूछा है॥ ३—५॥

'इस प्रकार व्यग्रतारहित कुशल पूछकर

मिथिलापति विदेहराजने महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञासे आपको यह संदेश दिया है॥ ६॥

'राजन्! आपको मेरी पहले की हुई प्रतिज्ञाका हाल मालूम होगा। मैंने अपनी पुत्रीके विवाहके लिये पराक्रमका ही शुल्क नियत किया था। उसे सुनकर कितने ही राजा अमर्षमें भरे हुए आये; किंतु यहाँ पराक्रमहीन सिद्ध हुए और विमुख होकर घर लौट गये॥ ७॥

'नरेश्वर! मेरी इस कन्याको विश्वामित्रजीके साथ अकस्मात् घूमते-फिरते आये हुए आपके पुत्र श्रीरामने अपने पराक्रमसे जीत लिया है॥ ८॥

'महाबाहो! महात्मा श्रीरामने महान् जनसमुदायके मध्य मेरे यहाँ रखे हुए रत्नस्वरूप दिव्य धनुषको बीचसे तोड़ डाला है॥ ९॥

'अत: मैं इन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको अपनी वीर्यशुल्का कन्या सीता प्रदान करूँगा। ऐसा करके मैं अपनी प्रतिज्ञासे पार होना चाहता हूँ। आप इसके लिये मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें॥ १०॥

'महाराज! आप अपने गुरु एवं पुरोहितके साथ यहाँ शीघ्र पधारें और अपने दोनों पुत्र रघुकुलभूषण श्रीराम और लक्ष्मणको देखें। आपका भला हो॥ ११॥

'राजेन्द्र! यहाँ पधारकर आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करें। यहाँ आनेसे आपको अपने दोनों पुत्रोंके विवाहजनित आनन्दकी प्राप्ति होगी॥ १२॥

'राजन्! इस तरह विदेहराजने आपके पास यह मधुर संदेश भेजा था। इसके लिये उन्हें विश्वामित्रजीकी आज्ञा और शतानन्दजीकी सम्मति भी प्राप्त हुई थी'॥ १३॥

संदेशवाहक मन्त्रियोंका यह वचन सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महर्षि वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मन्त्रियोंसे कहा—॥ १४॥

'कुशिकनन्दन विश्वामित्रसे सुरक्षित हो कौसल्याका आनन्दवर्धन करनेवाले श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ विदेहदेशमें निवास करते हैं॥ १५॥

'वहाँ महात्मा राजा जनकने ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामके पराक्रमको प्रत्यक्ष देखा है। इसलिये वे अपनी पुत्री सीताका विवाह रघुकुलरत्न रामके साथ करना चाहते हैं॥ १६॥

'यदि आपलोगोंकी रुचि एवं सम्मति हो तो हमलोग शीघ्र ही महात्मा जनककी मिथिलापुरीको चलें। इसमें विलम्ब न हो'॥ १७॥

यह सुनकर समस्त महर्षियोंसहित मन्त्रियोंने 'बहुत अच्छा' कहकर एक स्वरसे चलनेकी सम्मति दी। राजा बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्रियोंसे बोले—'कल सबेरे ही यात्रा कर देनी चाहिये'॥ १८॥

महाराज दशरथके सभी मन्त्री समस्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न थे। राजाने उनका बड़ा सत्कार किया। अत: बारात चलनेकी बात सुनकर उन्होंने बड़े आनन्दसे वह रात्रि व्यतीत की॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

दल-बलसहित राजा दशरथकी मिथिला-यात्रा और वहाँ राजा जनकके द्वारा उनका स्वागत-सत्कार

तदनन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर उपाध्याय और बन्धु-बान्धवोंसहित राजा दशरथ हर्षमें भरकर सुमन्त्रसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'आज हमारे सभी धनाध्यक्ष (खजांची) बहुत-सा धन लेकर नाना प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न हो सबसे आगे चलें। उनकी रक्षाके लिये हर तरहकी सुव्यवस्था होनी चाहिये॥ २॥

'सारी चतुरंगिणी सेना भी यहाँसे शीघ्र ही कूच कर दे। अभी मेरी आज्ञा सुनते ही सुन्दर-सुन्दर पालकियाँ और अच्छे-अच्छे घोड़े आदि वाहन तैयार होकर चल दें॥ ३॥

'वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घजीवी मार्कण्डेय मुनि तथा कात्यायन—ये सभी ब्रह्मर्षि आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी तैयार करो। देर नहीं होनी चाहिये। राजा जनकके दूत मुझे जल्दी करनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं'॥ ४-५॥

राजाकी इस आज्ञाके अनुसार चतुरंगिणी सेना तैयार हो गयी और ऋषियोंके साथ यात्रा करते हुए

महाराज दशरथके पीछे-पीछे चली॥ ६॥

चार दिनका मार्ग तय करके वे सब लोग विदेह-देशमें जा पहुँचे। उनके आगमनका समाचार सुनकर श्रीमान् राजा जनकने स्वागत-सत्कारकी तैयारी की॥ ७॥

तत्पश्चात् आनन्दमग्न हुए राजा जनक बूढ़े महाराज दशरथके पास पहुँचे। उनसे मिलकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ मिथिलानरेशने आनन्दमग्न हुए पुरुषप्रवर राजा दशरथसे कहा—'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! आपका स्वागत है। मेरे बड़े भाग्य, जो आप यहाँ पधारे॥ ९॥

'आप यहाँ अपने दोनों पुत्रोंकी प्रीति प्राप्त करेंगे, जो उन्होंने अपने पराक्रमसे जीतकर पायी है। महातेजस्वी भगवान् वसिष्ठ मुनिने भी हमारे सौभाग्यसे ही यहाँ पदार्पण किया है। ये इन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ वैसी ही शोभा पा रहे हैं, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं॥ १०$\frac{1}{2}$॥

'सौभाग्यसे मेरी सारी विघ्न-बाधाएँ पराजित हो गयीं। रघुकुलके महापुरुष महान् बलसे सम्पन्न और पराक्रममें सबसे श्रेष्ठ होते हैं। इस कुलके साथ सम्बन्ध होनेके कारण आज मेरे कुलका सम्मान बढ़ गया॥ ११$\frac{1}{2}$॥

'नरश्रेष्ठ नरेन्द्र! कल सबेरे इन सभी महर्षियोंके साथ उपस्थित हो मेरे यज्ञकी समाप्तिके बाद आप श्रीरामके विवाहका शुभकार्य सम्पन्न करें'॥ १२$\frac{1}{2}$॥

ऋषियोंकी मण्डलीमें राजा जनककी यह बात सुनकर बोलनेकी कला जाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ एवं वाक्यमर्मज्ञ महाराज दशरथने मिथिलानरेशको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १३$\frac{1}{2}$॥

'धर्मज्ञ! मैंने पहलेसे यह सुन रखा है कि प्रतिग्रह दाताके अधीन होता है। अतः आप जैसा कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे'॥ १४$\frac{1}{2}$॥

सत्यवादी राजा दशरथका वह धर्मानुकूल तथा यशोवर्धक वचन सुनकर विदेहराज जनकको बड़ा विस्मय हुआ॥ १५$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर सभी महर्षि एक-दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और सबने बड़े सुखसे वह रात बितायी॥ १६$\frac{1}{2}$॥

इधर महातेजस्वी श्रीराम विश्वामित्रजीको आगे करके लक्ष्मणके साथ पिताजीके पास गये और उनके चरणोंका स्पर्श किया॥ १७$\frac{1}{2}$॥

राजा दशरथने भी जनकके द्वारा आदर-सत्कार पाकर बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया तथा अपने दोनों रघुकुल-रत्न पुत्रोंको सकुशल देखकर उन्हें अपार हर्ष हुआ। वे रातमें बड़े सुखसे वहाँ रहे॥ १८$\frac{1}{2}$॥

महातेजस्वी तत्त्वज्ञ राजा जनकने भी धर्मके अनुसार यज्ञकार्य सम्पन्न किया तथा अपनी दोनों कन्याओंके लिये मंगलाचारका सम्पादन करके सुखसे वह रात्रि व्यतीत की॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

राजा जनकका अपने भाई कुशध्वजको सांकाश्या नगरीसे बुलवाना, राजा दशरथके अनुरोधसे वसिष्ठजीका सूर्यवंशका परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके लिये सीता तथा ऊर्मिलाको वरण करना

तदनन्तर जब सबेरा हुआ और राजा जनक महर्षियोंके सहयोगसे अपना यज्ञ-कार्य सम्पन्न कर चुके, तब वे वाक्यमर्मज्ञ नरेश अपने पुरोहित शतानन्दजीसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'ब्रह्मन्! मेरे महातेजस्वी और पराक्रमी भाई कुशध्वज जो अत्यन्त धर्मात्मा हैं, इस समय इक्षुमती नदीका जल पीते हुए उसके किनारे बसी हुई कल्याणमयी सांकाश्या नगरीमें निवास करते हैं। उसके चारों ओरके परकोटोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंके निवारणमें समर्थ बड़े-बड़े यन्त्र लगाये गये हैं। वह पुरी पुष्पकविमानके समान विस्तृत तथा पुण्यसे उपलब्ध होनेवाले स्वर्गलोकके सदृश सुन्दर है॥ २-३॥

'वहाँ रहनेवाले अपने भाईको इस शुभ अवसरपर मैं यहाँ उपस्थित देखना चाहता हूँ; क्योंकि मेरी दृष्टिमें वे मेरे इस यज्ञके संरक्षक हैं। महातेजस्वी कुशध्वज भी मेरे साथ श्रीसीता-रामके विवाहसम्बन्धी इस मंगल समारोहका सुख उठावेंगे'॥ ४॥

राजाके इस प्रकार कहनेपर शतानन्दजीके समीप

कुछ धीर स्वभावके पुरुष आये और राजा जनकने उन्हें पूर्वोक्त आदेश सुनाया॥ ५॥

राजाकी आज्ञासे वे श्रेष्ठ दूत तेज चलनेवाले घोड़ोंपर सवार हो पुरुषसिंह कुशध्वजको बुला लानेके लिये चल दिये। मानो इन्द्रकी आज्ञासे उनके दूत भगवान् विष्णुको बुलाने जा रहे हों॥ ६॥

सांकाश्यामें पहुँचकर उन्होंने कुशध्वजसे भेंट की और मिथिलाका यथार्थ समाचार एवं जनकका अभिप्राय भी निवेदन किया॥ ७॥

उन महावेगशाली श्रेष्ठ दूतोंके मुखसे मिथिलाका सारा वृत्तान्त सुनकर राजा कुशध्वज महाराज जनककी आज्ञाके अनुसार मिथिलामें आये॥ ८॥

वहाँ उन्होंने धर्मवत्सल महात्मा जनकका दर्शन किया। फिर शतानन्दजी तथा अत्यन्त धार्मिक जनकको प्रणाम करके वे राजाके योग्य परम दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए॥ ९½ ॥

सिंहासनपर बैठे हुए उन दोनों अमिततेजस्वी वीरबन्धुओंने मन्त्रिप्रवर सुदामनको भेजा और कहा—'मन्त्रिवर! आप शीघ्र ही अमित तेजस्वी इक्ष्वाकुकुलभूषण महाराज दशरथके पास जाइये और पुत्रों तथा मन्त्रियोंसहित उन दुर्जय नरेशको यहाँ बुला लाइये'॥ १०-११½ ॥

आज्ञा पाकर मन्त्री सुदामन महाराज दशरथके खेमेमें जाकर रघुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले उन नरेशसे मिले और मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् इस प्रकार बोले—॥ १२½ ॥

'वीर अयोध्यानरेश! मिथिलापति विदेहराज जनक इस समय उपाध्याय और पुरोहितसहित आपका दर्शन करना चाहते हैं'॥ १३½ ॥

मन्त्रिवर सुदामनकी बात सुनकर राजा दशरथ ऋषियों और बन्धु-बान्धवोंके साथ उस स्थानपर गये जहाँ राजा जनक विद्यमान थे॥ १४½ ॥

मन्त्री, उपाध्याय और भाई-बन्धुओंसहित राजा दशरथ, जो बोलनेकी कला जाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ थे, विदेहराज जनकसे इस प्रकार बोले—॥ १५½ ॥

'महाराज! आपको तो विदित ही होगा कि इक्ष्वाकुकुलके देवता ये महर्षि वसिष्ठजी हैं। हमारे यहाँ सभी कार्योंमें ये भगवान् वसिष्ठ मुनि ही कर्तव्यका उपदेश करते हैं और इन्हींकी आज्ञाका पालन किया जाता है॥ १६½ ॥

'यदि सम्पूर्ण महर्षियोंसहित विश्वामित्रजीकी आज्ञा हो तो ये धर्मात्मा वसिष्ठ ही पहले मेरी कुल-परम्पराका क्रमशः परिचय देंगे'॥ १७½ ॥

यों कहकर जब राजा दशरथ चुप हो गये, तब वाक्यवेत्ता भगवान् वसिष्ठ मुनि पुरोहितसहित विदेहराजसे इस प्रकार बोले—॥ १८½ ॥

'ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका कारण अव्यक्त है—ये स्वयम्भू हैं। नित्य, शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचिकी उत्पत्ति हुई। मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, कश्यपसे विवस्वान्‌का और विवस्वान्‌से वैवस्वत मनुका जन्म हुआ॥ १९-२०॥

'मनु पहले प्रजापति थे, उनसे इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ। उन इक्ष्वाकुको ही आप अयोध्याके प्रथम राजा समझें॥ २१॥

'इक्ष्वाकुके पुत्रका नाम कुक्षि था। वे बड़े तेजस्वी थे। कुक्षिसे विकुक्षि नामक कान्तिमान् पुत्रका जन्म हुआ॥ २२॥

'विकुक्षिके पुत्र महातेजस्वी और प्रतापी बाण हुए। बाणके पुत्रका नाम अनरण्य था। वे भी बड़े तेजस्वी और प्रतापी थे॥ २३॥

'अनरण्यसे पृथु और पृथुसे त्रिशंकुका जन्म हुआ। त्रिशंकुके पुत्र महायशस्वी धुन्धुमार थे॥ २४॥

'धुन्धुमारसे महातेजस्वी महारथी युवनाश्वका जन्म हुआ। युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए, जो समस्त भूमण्डलके स्वामी थे॥ २५॥

'मान्धातासे सुसन्धि नामक कान्तिमान् पुत्रका जन्म हुआ। सुसन्धिके भी दो पुत्र हुए—ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित्॥ २६॥

'ध्रुवसन्धिसे भरत नामक यशस्वी पुत्रका जन्म हुआ। भरतसे महातेजस्वी असितकी उत्पत्ति हुई॥ २७॥

'राजा असितके साथ हैहय, तालजङ्घ और शशबिन्दु—इन तीन राजवंशोंके लोग शत्रुता रखने लगे थे॥ २८॥

'युद्धमें इन तीनों शत्रुओंका सामना करते हुए राजा असित प्रवासी हो गये। वे अपनी दो रानियोंके साथ हिमालयपर आकर रहने लगे॥ २९॥

'राजा असितके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी थी। वे हिमालयपर ही मृत्युको प्राप्त हो गये। उस समय उनकी दोनों रानियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना गया है॥ ३०॥

'उनमेंसे एक रानीने अपनी सौतका गर्भ नष्ट

करनेके लिये उसे विषयुक्त भोजन दे दिया॥ ३०½ ॥

'उस समय उस रमणीय एवं श्रेष्ठ पर्वतपर भृगुकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि च्यवन तपस्यामें लगे हुए थे। हिमालयपर ही उनका आश्रम था। उन दोनों रानियोंमेंसे एक (जिसे जहर दिया गया था) कालिन्दीनामसे प्रसिद्ध थी। विकसित कमलदलके समान नेत्रोंवाली महाभागा कालिन्दी एक उत्तम पुत्र पानेकी इच्छा रखती थी। उसने देवतुल्य तेजस्वी भृगुनन्दन च्यवनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ३१—३३ ॥

'उस समय ब्रह्मर्षि च्यवनने पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली कालिन्दीसे पुत्र-जन्मके विषयमें कहा— 'महाभागे! तुम्हारे उदरमें एक महान् बलवान्, महातेजस्वी और महापराक्रमी उत्तम पुत्र है, वह कान्तिमान् बालक थोड़े ही दिनोंमें गर (जहर) के साथ उत्पन्न होगा। अतः कमललोचने! तुम पुत्रके लिये चिन्ता न करो'॥

'वह विधवा राजकुमारी कालिन्दी बड़ी पतिव्रता थी। महर्षि च्यवनको नमस्कार करके वह देवी अपने आश्रमपर लौट आयी। फिर समय आनेपर उसने एक पुत्रको जन्म दिया॥ ३६ ॥

'उसकी सौतने उसके गर्भको नष्ट कर देनेके लिये जो गर (विष) दिया था, उसके साथ ही उत्पन्न होनेके कारण वह राजकुमार 'सगर' नामसे विख्यात हुआ॥ ३७ ॥

'सगरके पुत्र असमंज और असमंजके पुत्र अंशुमान् हुए। अंशुमान्‌के पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए॥ ३८ ॥

'भगीरथसे ककुत्स्थ और ककुत्स्थसे रघुका जन्म हुआ। रघुके तेजस्वी पुत्र प्रवृद्ध हुए, जो शापसे राक्षस हो गये थे॥ ३९ ॥

'वे ही कल्माषपाद नामसे भी प्रसिद्ध हुए थे। उनसे शङ्खण नामक पुत्रका जन्म हुआ था। शङ्खणके पुत्र सुदर्शन और सुदर्शनके अग्निवर्ण हुए॥ ४० ॥

'अग्निवर्णके शीघ्रग और शीघ्रगके पुत्र मरु थे। मरुसे प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुकसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई॥

'अम्बरीषके पुत्र राजा नहुष हुए। नहुषके ययाति और ययातिके पुत्र नाभाग थे। नाभागके अज हुए। अजसे दशरथका जन्म हुआ। इन्हीं महाराज दशरथसे ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए हैं॥ ४२-४३ ॥

'इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए राजाओंका वंश आदिकालसे ही शुद्ध रहा है। ये सब-के-सब परम धर्मात्मा, वीर और सत्यवादी होते आये हैं॥ ४४ ॥

'नरश्रेष्ठ! नरेश्वर! इसी इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए श्रीराम और लक्ष्मणके लिये मैं आपकी दो कन्याओंका वरण करता हूँ। ये आपकी कन्याओंके योग्य हैं और आपकी कन्याएँ इनके योग्य। अतः आप इन्हें कन्यादान करें'॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

राजा जनकका अपने कुलका परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके लिये क्रमशः सीता और ऊर्मिलाको देनेकी प्रतिज्ञा करना

महर्षि वसिष्ठ जब इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशका परिचय दे चुके, तब राजा जनकने हाथ जोड़कर उनसे कहा— 'मुनिश्रेष्ठ! आपका भला हो। अब हम भी अपने कुलका परिचय दे रहे हैं, सुनिये। महामते! कुलीन पुरुषके लिये कन्यादानके समय अपने कुलका पूर्णरूपेण परिचय देना आवश्यक है; अतः आप सुननेकी कृपा करें॥ १-२ ॥

'प्राचीन कालमें निमि नामक एक परम धर्मात्मा राजा हुए हैं, जो सम्पूर्ण धैर्यशाली महापुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंमें विख्यात थे॥ ३ ॥

'उनके मिथि नामक एक पुत्र हुआ। मिथिके पुत्रका नाम जनक हुआ। ये ही हमारे कुलमें पहले जनक हुए हैं (इन्हींके नामपर हमारे वंशका प्रत्येक राजा 'जनक' कहलाता है)। जनकसे उदावसुका जन्म हुआ॥ ४ ॥

'उदावसुसे धर्मात्मा नन्दिवर्धन उत्पन्न हुए। नन्दिवर्धनके शूरवीर पुत्रका नाम सुकेतु हुआ॥ ५ ॥

'सुकेतुके भी देवरात नामक पुत्र हुआ। देवरात महान् बलवान् और धर्मात्मा थे। राजर्षि देवरातके बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र हुआ॥ ६ ॥

'बृहद्रथके पुत्र महावीर हुए, जो शूर और प्रतापी थे। महावीरके सुधृति हुए, जो धैर्यवान् और सत्यपराक्रमी थे॥ ७ ॥

'सुधृतिके भी धर्मात्मा धृष्टकेतु हुए, जो परम धार्मिक थे। राजर्षि धृष्टकेतुका पुत्र हर्यश्व नामसे विख्यात हुआ॥ ८॥

'हर्यश्वके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रतीन्धक तथा प्रतीन्धकके पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ हुए॥ ९॥

'कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ नामसे विख्यात हुए। देवमीढके विबुध और विबुधके पुत्र महीध्रक हुए॥ १०॥

'महीध्रकके पुत्र महाबली राजा कीर्तिरात हुए। राजर्षि कीर्तिरातके महारोमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥

'महारोमासे धर्मात्मा स्वर्णरोमाका जन्म हुआ। राजर्षि स्वर्णरोमासे ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुए॥ १२॥

'धर्मज्ञ महात्मा राजा ह्रस्वरोमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ज्येष्ठ तो मैं ही हूँ और कनिष्ठ मेरा छोटा भाई वीर कुशध्वज है॥ १३॥

'मेरे पिता मुझ ज्येष्ठ पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके कुशध्वजका सारा भार मुझे सौंपकर वनमें चले गये॥

'वृद्ध पिताके स्वर्गगामी हो जानेपर अपने देवतुल्य भाई कुशध्वजको स्नेह-दृष्टिसे देखता हुआ मैं इस राज्यका भार धर्मके अनुसार वहन करने लगा॥ १५॥

'कुछ कालके अनन्तर पराक्रमी राजा सुधन्वाने सांकाश्य नगरसे आकर मिथिलाको चारों ओरसे घेर लिया॥ १६॥

'उसने मेरे पास दूत भेजकर कहलाया कि 'तुम शिवजीके परम उत्तम धनुष तथा अपनी कमलनयनी कन्या सीताको मेरे हवाले कर दो'॥ १७॥

'महर्षे! मैंने उसकी माँग पूरी नहीं की। इसलिये मेरे साथ उसका युद्ध हुआ। उस संग्राममें सम्मुख युद्ध करता हुआ राजा सुधन्वा मेरे हाथसे मारा गया॥ १८॥

'मुनिश्रेष्ठ! राजा सुधन्वाका वध करके मैंने सांकाश्य नगरके राज्यपर अपने शूरवीर भ्राता कुशध्वजको अभिषिक्त कर दिया॥ १९॥

'महामुने! ये मेरे छोटे भाई कुशध्वज हैं और मैं इनका बड़ा भाई हूँ। मुनिवर! मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ आपको दो बहुएँ प्रदान करता हूँ॥ २०॥

'आपका भला हो! मैं सीताको श्रीरामके लिये और ऊर्मिलाको लक्ष्मणके लिये समर्पित करता हूँ। पराक्रम ही जिसको पानेका शुल्क (शर्त) था, उस देवकन्याके समान सुन्दरी अपनी प्रथम पुत्री सीताको श्रीरामके लिये तथा दूसरी पुत्री ऊर्मिलाको लक्ष्मणके लिये दे रहा हूँ। मैं इस बातको तीन बार दुहराता हूँ, इसमें संशय नहीं है। मुनिप्रवर! मैं परम प्रसन्न होकर आपको दो बहुएँ दे रहा हूँ'॥ २१-२२॥

(वसिष्ठजीसे ऐसा कहकर राजा जनकने महाराज दशरथसे कहा—) 'राजन्! अब आप श्रीराम और लक्ष्मणके मंगलके लिये इनसे गोदान करवाइये, आपका कल्याण हो। नान्दीमुख श्राद्धका कार्य भी सम्पन्न कीजिये। इसके बाद विवाहका कार्य आरम्भ कीजियेगा॥ २३॥

'महाबाहो! प्रभो! आज मघा नक्षत्र है। राजन्! आजके तीसरे दिन उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्रमें वैवाहिक कार्य कीजियेगा। आज श्रीराम और लक्ष्मणके अभ्युदयके लिये (गो, भूमि, तिल और सुवर्ण आदिका) दान कराना चाहिये; क्योंकि वह भविष्यमें सुख देनेवाला होता है'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

विश्वामित्रद्वारा भरत और शत्रुघ्नके लिये कुशध्वजकी कन्याओंका वरण, राजा जनकद्वारा इसकी स्वीकृति तथा राजा दशरथका अपने पुत्रोंके मंगलके लिये नान्दीश्राद्ध एवं गोदान करना

विदेहराज जनक जब अपनी बात समाप्त कर चुके, तब वसिष्ठसहित महामुनि विश्वामित्र उन वीर नरेशसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'नरश्रेष्ठ! इक्ष्वाकु और विदेह दोनों ही राजाओंके वंश अचिन्तनीय हैं। दोनोंके ही प्रभावकी कोई सीमा नहीं है। इन दोनोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई राजवंश नहीं है॥ २॥

'राजन्! इन दोनों कुलोंमें जो यह धर्म-सम्बन्ध स्थापित होने जा रहा है, सर्वथा एक-दूसरेके योग्य है। रूप-वैभवकी दृष्टिसे भी समान योग्यताका है; क्योंकि

ऊर्मिलासहित सीता श्रीराम और लक्ष्मणके अनुरूप है॥ ३॥

'नरश्रेष्ठ! इसके बाद मुझे भी कुछ कहना है; आप मेरी बात सुनिये। राजन्! आपके छोटे भाई जो ये धर्मज्ञ राजा कुशध्वज बैठे हैं, इन धर्मात्मा नरेशके भी दो कन्याएँ हैं, जो इस भूमण्डलमें अनुपम सुन्दरी हैं। नरश्रेष्ठ! भूपाल! मैं आपकी उन दोनों कन्याओंका कुमार भरत और बुद्धिमान् शत्रुघ्न इन दोनों महामनस्वी राजकुमारोंके लिये इनकी धर्मपत्नी बनानेके उद्देश्यसे वरण करता हूँ॥ ४—६॥

'राजा दशरथके ये सभी पुत्र रूप और यौवनसे सुशोभित, लोकपालोंके समान तेजस्वी तथा देवताओंके तुल्य पराक्रमी हैं॥ ७॥

'राजेन्द्र! इन दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) को भी कन्यादान करके आप इस समस्त इक्ष्वाकुकुलको अपने सम्बन्धसे बाँध लीजिये। आप पुण्यकर्मा पुरुष हैं; आपके चित्तमें व्यग्रता नहीं आनी चाहिये (अर्थात् आप यह सोचकर व्यग्र न हों कि ऐसे महान् सम्राट्के साथ मैं एक ही समय चार वैवाहिक सम्बन्धोंका निर्वाह कैसे कर सकता हूँ।)'॥ ८॥

वसिष्ठजीकी सम्मतिके अनुसार विश्वामित्रजीका यह वचन सुनकर उस समय राजा जनकने हाथ जोड़कर उन दोनों मुनिवरोंसे कहा—॥ ९॥

'मुनिपुंगवो! मैं अपने इस कुलको धन्य मानता हूँ, जिसे आप दोनों इक्ष्वाकुवंशके योग्य समझकर इसके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये स्वयं आज्ञा दे रहे हैं॥

'आपका कल्याण हो। आप जैसा कहते हैं, ऐसा ही हो। ये सदा साथ रहनेवाले दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न कुशध्वजकी इन दोनों कन्याओं (मेंसे एक-एक) को अपनी-अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करें॥ ११॥

'महामुने! ये चारों महाबली राजकुमार एक ही दिन हमारी चारों राजकुमारियोंका पाणिग्रहण करें॥ १२॥

'ब्रह्मन्! अगले दो दिन फाल्गुनी नामक नक्षत्रोंसे युक्त हैं। इनमें (पहले दिन तो पूर्वा फाल्गुनी है और) दूसरे दिन (अर्थात् परसों) उत्तरा फाल्गुनी नामक नक्षत्र होगा, जिसके देवता प्रजापति भग (तथा अर्यमा) हैं। मनीषी पुरुष उस नक्षत्रमें वैवाहिक कार्य करना बहुत उत्तम बताते हैं'॥ १३॥

इस प्रकार सौम्य (मनोहर) वचन कहकर राजा जनक उठकर खड़े हो गये और उन दोनों मुनिवरोंसे हाथ जोड़कर बोले—॥ १४॥

'आपलोगोंने कन्याओंका विवाह निश्चित करके मेरे लिये महान् धर्मका सम्पादन कर दिया; मैं आप दोनोंका शिष्य हूँ। मुनिवरो! इन श्रेष्ठ आसनोंपर आप दोनों विराजमान हों॥ १५॥

'आपके लिये जैसी राजा दशरथकी अयोध्या है, वैसी ही यह मेरी मिथिलापुरी भी है। आपका इसपर पूरा अधिकार है, इसमें संदेह नहीं; अतः आप हमें यथायोग्य आज्ञा प्रदान करते रहें'॥ १६॥

विदेहराज जनकके ऐसा कहनेपर रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले राजा दशरथने प्रसन्न होकर उन मिथिलानरेशको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १७॥

'मिथिलेश्वर! आप दोनों भाइयोंके गुण असंख्य हैं; आपलोगोंने ऋषियों तथा राजसमूहोंका भलीभाँति सत्कार किया है॥ १८॥

'आपका कल्याण हो, आप मंगलके भागी हों। अब हम अपने विश्रामस्थानको जायँगे। वहाँ जाकर मैं विधिपूर्वक नान्दीमुखश्राद्धका कार्य सम्पन्न करूँगा।' यह बात भी राजा दशरथने कही॥ १९॥

तदनन्तर मिथिलानरेशकी अनुमति ले महायशस्वी राजा दशरथ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र और वसिष्ठको आगे करके तुरंत अपने आवासस्थानपर चले गये॥ २०॥

डेरेपर जाकर राजा दशरथने (अपराह्णकालमें) विधिपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न किया। तत्पश्चात् (रात बीतनेपर) प्रातःकाल उठकर राजाने तत्कालोचित उत्तम गोदान-कर्म किया॥ २१॥

राजा दशरथने अपने एक-एक पुत्रके मंगलके लिये धर्मानुसार एक-एक लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं॥ २२॥

उन सबके सींग सोनेसे मढ़े हुए थे। उन सबके साथ बछड़े और काँसेके दुग्धपात्र थे। इस प्रकार पुत्रवत्सल रघुकुलनन्दन पुरुषशिरोमणि राजा दशरथने चार लाख गौओंका दान किया तथा और भी बहुत-सा धन पुत्रोंके लिये गोदानके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दिया॥ २३-२४॥

गोदान-कर्म सम्पन्न करके आये हुए पुत्रोंसे घिरे हुए राजा दशरथ उस समय लोकपालोंसे घिरकर बैठे हुए शान्तस्वभाव प्रजापति ब्रह्माके समान शोभा पा रहे थे॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम आदि चारों भाइयोंका विवाह

राजा दशरथने जिस दिन अपने पुत्रोंके विवाहके निमित्त उत्तम गोदान किया, उसी दिन भरतके सगे मामा केकयराजकुमार वीर युधाजित् वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने महाराजका दर्शन करके कुशल-मंगल पूछा और इस प्रकार कहा— ॥ १-२ ॥

'रघुनन्दन! केकयदेशके महाराजने बड़े स्नेहके साथ आपका कुशल-समाचार पूछा है और आप भी हमारे यहाँके जिन-जिन लोगोंकी कुशलवार्ता जानना चाहते होंगे, वे सब इस समय स्वस्थ और सानन्द हैं। राजेन्द्र! केकयनरेश मेरे भान्जे भरतको देखना चाहते हैं। अत: इन्हें लेनेके लिये ही मैं अयोध्या आया था॥ ४½ ॥

'परंतु पृथ्वीनाथ! अयोध्यामें यह सुनकर कि 'आपके सभी पुत्र विवाहके लिये आपके साथ मिथिला पधारे हैं, मैं तुरंत यहाँ चला आया; क्योंकि मेरे मनमें अपनी बहिनके बेटेको देखनेकी बड़ी लालसा थी'॥ ५½ ॥

महाराज दशरथने अपने प्रिय अतिथिको उपस्थित देख बड़े सत्कारके साथ उनकी आवभगत की; क्योंकि वे सम्मान पानेके ही योग्य थे॥ ६½ ॥

तदनन्तर अपने महामनस्वी पुत्रोंके साथ वह रात व्यतीत करके वे तत्त्वज्ञ नरेश प्रात:काल उठे और नित्यकर्म करके ऋषियोंको आगे किये जनककी यज्ञशालामें जा पहुँचे॥ ७-८ ॥

तत्पश्चात् विवाहके योग्य विजय नामक मुहूर्त आनेपर दूल्हेके अनुरूप समस्त वेश-भूषासे अलंकृत हुए भाइयोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी भी वहाँ आये। वे विवाहकालोचित मंगलाचार पूर्ण कर चुके थे तथा वसिष्ठ मुनि एवं अन्यान्य महर्षियोंको आगे करके उस मण्डपमें पधारे थे। उस समय भगवान् वसिष्ठने विदेहराज जनकके पास जाकर इस प्रकार कहा— ॥ ९-१० ॥

'राजन्! नरेशोंमें श्रेष्ठ महाराज दशरथ अपने पुत्रोंका वैवाहिकसूत्र-बन्धनरूप मंगलाचार सम्पन्न करके उन सबके साथ पधारे हैं और भीतर आनेके लिये दाताके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ ११ ॥

'क्योंकि दाता और प्रतिग्रहीता (दान ग्रहण करनेवाले) का संयोग होनेपर ही समस्त दान-धर्मोंका सम्पादन सम्भव होता है; अत: आप विवाह-कालोपयोगी शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें बुलाइये और कन्यादानरूप स्वधर्मका पालन कीजिये'॥ १२ ॥

महात्मा वसिष्ठके ऐसा कहनेपर परम उदार, परम धर्मज्ञ और महातेजस्वी राजा जनकने इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

'मुनिश्रेष्ठ! महाराजके लिये मेरे यहाँ कौन-सा पहरेदार खड़ा है। वे किसके आदेशकी प्रतीक्षा करते हैं। अपने घरमें आनेके लिये कैसा सोच-विचार है? यह जैसे मेरा राज्य है, वैसे ही आपका है। मेरी कन्याओंका वैवाहिक सूत्र-बन्धनरूप मंगलकृत्य सम्पन्न हो चुका है। अब वे यज्ञवेदीके पास आकर बैठी हैं और अग्निकी प्रज्वलित शिखाओंके समान प्रकाशित हो रही हैं॥ १४-१५ ॥

'इस समय तो मैं आपकी ही प्रतीक्षामें वेदीपर बैठा हूँ। आप निर्विघ्नतापूर्वक सब कार्य पूर्ण कीजिये। विलम्ब किसलिये करते हैं?'॥ १६ ॥

वसिष्ठजीके मुखसे राजा जनककी कही हुई बात सुनकर महाराज दशरथ उस समय अपने पुत्रों और सम्पूर्ण महर्षियोंको महलके भीतर ले आये॥ १७ ॥

तदनन्तर विदेहराजने वसिष्ठजीसे इस प्रकार कहा—'धर्मात्मा महर्षे! प्रभो! आप ऋषियोंको साथ लेकर लोकाभिराम श्रीरामके विवाहकी सम्पूर्ण क्रिया कराइये'॥ १८½ ॥

तब जनकजीसे 'बहुत अच्छा' कहकर महातपस्वी भगवान् वसिष्ठ मुनिने विश्वामित्र और धर्मात्मा शतानन्दजीको आगे करके विवाह-मण्डपके मध्यभागमें विधिपूर्वक वेदी बनायी और गन्ध तथा फूलोंके द्वारा उसे चारों ओरसे सुन्दर रूपमें सजाया। साथ ही बहुत-सी सुवर्ण-पालिकाएँ, यवके अंकुरोंसे युक्त चित्रित कलश, अंकुर जमाये हुए सकोरे, धूपयुक्त धूपपात्र, शङ्खपात्र, स्रुवा, स्रुक्, अर्घ्य आदि पूजनपात्र, लावा (खीलों) से भरे हुए पात्र तथा धोये हुए अक्षत आदि समस्त सामग्रियोंको भी यथास्थान रख दिया। तत्पश्चात् महातेजस्वी मुनिवर वसिष्ठजीने बराबर-बराबर कुशोंको वेदीके चारों ओर बिछाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन किया और विधिको प्रधानता देते हुए मन्त्रपाठपूर्वक प्रज्वलित अग्निमें हवन किया॥ १९—२४ ॥

तदनन्तर राजा जनकने सब प्रकारके आभूषणोंसे

विभूषित सीताको ले आकर अग्निके समक्ष श्रीरामचन्द्रजीके सामने बिठा दिया और माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले उन श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणीके रूपमें उपस्थित है; इसे स्वीकार करो और इसका हाथ अपने हाथमें लो। यह परम पतिव्रता, महान् सौभाग्यवती और छायाकी भाँति सदा तुम्हारे पीछे चलनेवाली होगी'॥ २५—२७॥

यह कहकर राजाने श्रीरामके हाथमें मन्त्रसे पवित्र हुआ संकल्पका जल छोड़ दिया। उस समय देवताओं और ऋषियोंके मुखसे जनकके लिये साधुवाद सुनायी देने लगा॥ २८॥

देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई। इस प्रकार मन्त्र और संकल्पके जलके साथ अपनी पुत्री सीताका दान करके हर्षमग्न हुए राजा जनकने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, मैं ऊर्मिलाको तुम्हारी सेवामें दे रहा हूँ। इसे स्वीकार करो। इसका हाथ अपने हाथमें लो। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये'॥ २९-३०$\frac{1}{2}$॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर जनकने भरतसे कहा—'रघुनन्दन! माण्डवीका हाथ अपने हाथमें लो'॥ ३१$\frac{1}{2}$॥

फिर धर्मात्मा मिथिलेशने शत्रुघ्नको सम्बोधित करके कहा—'महाबाहो! तुम अपने हाथसे श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण करो। तुम चारों भाई शान्तस्वभाव हो। तुम सबने उत्तम व्रतका भलीभाँति आचरण किया है। ककुत्स्थकुलके भूषणरूप तुम चारों भाई पत्नीसे संयुक्त हो जाओ। इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये'॥ ३२-३३$\frac{1}{2}$॥

राजा जनकका यह वचन सुनकर उन चारों राजकुमारोंने चारों राजकुमारियोंके हाथ अपने हाथमें लिये। फिर वसिष्ठजीकी सम्मतिसे उन रघुकुलरत्न महामनस्वी राजकुमारोंने अपनी-अपनी पत्नीके साथ अग्नि, वेदी, राजा दशरथ तथा ऋषि-मुनियोंकी परिक्रमा की और वेदोक्त विधिके अनुसार वैवाहिक कार्य पूर्ण किया॥ ३४—३६॥

उस समय आकाशसे फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई, जो सुहावनी लगती थी। दिव्य दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनि, दिव्य गीतोंके मनोहर शब्द और दिव्य वाद्योंके मधुर घोषके साथ झुंड-की-झुंड अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गन्धर्व मधुर गीत गाने लगे। उन रघुवंशशिरोमणि राजकुमारोंके विवाहमें वह अद्भुत दृश्य दिखायी दिया॥ ३७-३८॥

शहनाई आदि बाजोंके मधुर घोषसे गूँजते हुए उस वर्तमान विवाहोत्सवमें उन महातेजस्वी राजकुमारोंने अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके पत्नियोंको स्वीकार करते हुए विवाहकर्म सम्पन्न किया॥ ३९॥

तदनन्तर रघुकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले वे चारों भाई अपनी पत्नियोंके साथ जनवासेमें चले गये। राजा दशरथ भी ऋषियों और बन्धु-बान्धवोंके साथ पुत्रों और पुत्र-वधुओंको देखते हुए उनके पीछे-पीछे गये॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

विश्वामित्रका अपने आश्रमको प्रस्थान, राजा जनकका कन्याओंको भारी दहेज देकर राजा दशरथ आदिको विदा करना, मार्गमें शुभाशुभ शकुन और परशुरामजीका आगमन

तदनन्तर जब रात बीती और सबेरा हुआ, तब महामुनि विश्वामित्र राजा जनक और महाराज दशरथ दोनों राजाओंसे पूछकर उनकी स्वीकृति ले उत्तरपर्वतपर (हिमालयकी शाखाभूत पर्वतपर, जहाँ कौशिकीके तटपर उनका आश्रम था, वहाँ) चले गये॥ १॥

विश्वामित्रजीके चले जानेपर महाराज दशरथ भी विदेहराज मिथिलानरेशसे अनुमति लेकर ही शीघ्र अपनी पुरी अयोध्याको जानेके लिये तैयार हो गये॥ २॥

उस समय विदेहराज जनकने अपनी कन्याओंके निमित्त दहेजमें बहुत अधिक धन दिया। उन मिथिला-नरेशने कई लाख गौएँ, कितनी ही अच्छी-अच्छी कालीनें तथा करोड़ोंकी संख्यामें रेशमी और सूती वस्त्र दिये, भाँति-भाँतिके गहनोंसे सजे हुए बहुत-से दिव्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक भेंट किये॥ ३-४॥

अपनी पुत्रियोंके लिये सहेलीके रूपमें उन्होंने सौ-सौ कन्याएँ तथा उत्तम दास-दासियाँ अर्पित कीं। इन सबके अतिरिक्त राजाने उन सबके लिये एक करोड़ स्वर्णमुद्रा, रजतमुद्रा, मोती तथा मूँगे भी दिये॥ ५॥

इस प्रकार मिथिलापति राजा जनकने बड़े हर्षके साथ उत्तमोत्तम कन्याधन (दहेज) दिया। नाना प्रकारकी

वस्तुएँ दहेजमें देकर महाराज दशरथकी आज्ञा ले वे पुन: मिथिलानगरके भीतर अपने महलमें लौट आये। उधर अयोध्यानरेश राजा दशरथ भी सम्पूर्ण महर्षियोंको आगे करके अपने महात्मा पुत्रों, सैनिकों तथा सेवकोंके साथ अपनी राजधानीकी ओर प्रस्थित हुए॥ ६-७½ ॥

उस समय ऋषि-समूह तथा श्रीरामचन्द्रजीके साथ यात्रा करते हुए पुरुषसिंह महाराज दशरथके चारों ओर भयंकर बोली बोलनेवाले पक्षी चहचहाने लगे और भूमिपर विचरनेवाले समस्त मृग उन्हें दाहिने रखकर जाने लगे॥ ८-९ ॥

उन सबको देखकर राजसिंह दशरथने वसिष्ठजीसे पूछा—'मुनिवर! एक ओर तो ये भयंकर पक्षी घोर शब्द कर रहे हैं और दूसरी ओर ये मृग हमें दाहिनी ओर करके जा रहे हैं; यह अशुभ और शुभ दो प्रकारका शकुन कैसा? यह मेरे हृदयको कम्पित किये देता है। मेरा मन विषादमें डूबा जाता है'॥ १०½ ॥

राजा दशरथका यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! इस शकुनका जो फल है, उसे सुनिये—आकाशमें पक्षियोंके मुखसे जो बात निकल रही है, वह बताती है कि इस समय कोई घोर भय उपस्थित होनेवाला है, परंतु हमें दाहिने रखकर जानेवाले ये मृग उस भयके शान्त हो जानेकी सूचना दे रहे हैं; इसलिये आप यह चिन्ता छोड़िये'॥ ११-१२½ ॥

इन लोगोंमें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि वहाँ बड़े जोरोंकी आँधी उठी। वह सारी पृथ्वीको कँपाती हुई बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी करने लगी। सूर्य अन्धकारसे आच्छन्न हो गये। किसीको दिशाओंका भान न रहा। धूलसे ढक जानेके कारण वह सारी सेना मूर्च्छित-सी हो गयी॥ १३-१४½ ॥

उस समय केवल वसिष्ठ मुनि, अन्यान्य ऋषियों तथा पुत्रोंसहित राजा दशरथको ही चेत रह गया था, शेष सभी लोग अचेत हो गये थे। उस घोर अन्धकारमें राजाकी वह सेना धूलसे आच्छादित-सी हो गयी थी॥

उस समय राजा दशरथने देखा—क्षत्रिय राजाओंका मानमर्दन करनेवाले भृगुकुलनन्दन जमदग्निकुमार परशुराम सामनेसे आ रहे हैं। वे बड़े भयानक-से दिखायी देते थे। उन्होंने मस्तकपर बड़ी-बड़ी जटाएँ धारण कर रखी थीं। वे कैलासके समान दुर्जय और कालाग्निके समान दु:सह प्रतीत होते थे। तेजोमण्डलद्वारा जाज्वल्यमान-से हो रहे थे। साधारण लोगोंके लिये उनकी ओर देखना भी कठिन था। वे कंधेपर फरसा रखे और हाथमें विद्युद्गणोंके समान दीप्तिमान् धनुष एवं भयंकर बाण लिये त्रिपुरविनाशक भगवान् शिवके समान जान पड़ते थे॥ १७—१९ ॥

प्रज्वलित अग्निके समान भयानक-से प्रतीत होनेवाले परशुरामको उपस्थित देख जप और होममें तत्पर रहनेवाले वसिष्ठ आदि सभी ब्रह्मर्षि एकत्र हो परस्पर इस प्रकार बातें करने लगे—॥ २०½ ॥

'क्या अपने पिताके वधसे अमर्षके वशीभूत हो ये क्षत्रियोंका संहार नहीं कर डालेंगे? पूर्वकालमें क्षत्रियोंका वध करके इन्होंने अपना क्रोध उतार लिया है। अब इनकी बदला लेनेकी चिन्ता दूर हो चुकी है। अत: फिर क्षत्रियोंका संहार करना इनके लिये अभीष्ट नहीं है, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है'॥ २१-२२ ॥

ऐसा कहकर ऋषियोंने भयंकर दिखायी देनेवाले भृगुनन्दन परशुरामको अर्घ्य लेकर दिया और 'राम! राम!' कहकर उनसे मधुर वाणीमें बातचीत की॥ २३ ॥

ऋषियोंकी दी हुई उस पूजाको स्वीकार करके प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामने दशरथनन्दन श्रीरामसे इस प्रकार कहा॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथकी बात अनसुनी करके परशुरामका श्रीरामको वैष्णव-धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये ललकारना

'दशरथनन्दन श्रीराम! वीर! सुना जाता है कि तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। तुम्हारे द्वारा शिव-धनुषके तोड़े जानेका सारा समाचार भी मेरे कानोंमें पड़ चुका है॥ १ ॥

'उस धनुषका तोड़ना अद्भुत और अचिन्त्य है; उसके टूटनेकी बात सुनकर मैं एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हूँ॥ २ ॥

'यह है वह जमदग्निकुमार परशुरामका भयंकर और विशाल धनुष। तुम इसे खींचकर इसके ऊपर बाण

चढ़ाओ और अपना बल दिखाओ॥ ३॥

'इस धनुषके चढ़ानेमें भी तुम्हारा बल कैसा है? यह देखकर मैं तुम्हें ऐसा द्वन्द्वयुद्ध प्रदान करूँगा, जो तुम्हारे पराक्रमके लिये स्पृहणीय होगा'॥ ४॥

परशुरामजीका वह वचन सुनकर उस समय राजा दशरथके मुखपर विषाद छा गया। वे दीनभावसे हाथ जोड़कर बोले—॥ ५॥

'ब्रह्मन्! आप स्वाध्याय और व्रतसे शोभा पानेवाले भृगुवंशी ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भी महान् तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हैं; क्षत्रियोंपर अपना रोष प्रकट करके अब शान्त हो चुके हैं; इसलिये मेरे बालक पुत्रोंको आप अभयदान देनेकी कृपा करें; क्योंकि आपने इन्द्रके समीप प्रतिज्ञा करके शस्त्रका परित्याग कर दिया है॥ ६-७॥

'इस तरह आप धर्ममें तत्पर हो कश्यपजीको पृथ्वीका दान करके वनमें आकर महेन्द्रपर्वतपर आश्रम बनाकर रहते हैं॥ ८॥

'महामुने! (इस प्रकार शस्त्रत्यागकी प्रतिज्ञा करके भी) आप मेरा सर्वनाश करनेके लिये कैसे आ गये? (यदि कहें—मेरा रोष तो केवल रामपर है तो) एकमात्र रामके मारे जानेपर ही हम सब लोग अपने जीवनका परित्याग कर देंगे'॥ ९॥

राजा दशरथ इस प्रकार कहते ही रह गये; परंतु प्रतापी परशुरामने उनके उन वचनोंकी अवहेलना करके रामसे ही बातचीत जारी रखी॥ १०॥

वे बोले—'रघुनन्दन! ये दो धनुष सबसे श्रेष्ठ और दिव्य थे। सारा संसार इन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। साक्षात् विश्वकर्माने इन्हें बनाया था। ये बड़े प्रबल और दृढ़ थे॥ ११॥

'नरश्रेष्ठ! इनमेंसे एकको देवताओंने त्रिपुरासुरसे युद्ध करनेके लिये भगवान् शङ्करको दे दिया था। ककुत्स्थनन्दन! जिससे त्रिपुरका नाश हुआ था, वह वही धनुष था; जिसे तुमने तोड़ डाला है॥ १२॥

'और दूसरा दुर्धर्ष धनुष यह है, जो मेरे हाथमें है। इसे श्रेष्ठ देवताओंने भगवान् विष्णुको दिया था। श्रीराम! शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला वही यह वैष्णव धनुष है॥ १३॥

'ककुत्स्थनन्दन! यह भी शिवजीके धनुषके समान ही प्रबल है। उन दिनों समस्त देवताओंने भगवान् शिव और विष्णुके बलाबलकी परीक्षाके लिये पितामह ब्रह्माजीसे पूछा था कि 'इन दोनों देवताओंमें कौन अधिक बलशाली है'॥ १४½॥

'देवताओंके इस अभिप्रायको जानकर सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ पितामह ब्रह्माजीने उन दोनों देवताओं (शिव और विष्णु) में विरोध उत्पन्न कर दिया॥ १५½॥

'विरोध पैदा होनेपर एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले शिव और विष्णुमें बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ १६½॥

'उस समय भगवान् विष्णुने हुङ्कारमात्रसे शिवजीके भयंकर बलशाली धनुषको शिथिल तथा त्रिनेत्रधारी महादेवजीको भी स्तम्भित कर दिया॥ १७½॥

'तब ऋषिसमूहों तथा चारणोंसहित देवताओंने आकर उन दोनों श्रेष्ठ देवताओंसे शान्तिके लिये याचना की; फिर वे दोनों वहाँ शान्त हो गये॥ १८½॥

'भगवान् विष्णुके पराक्रमसे शिवजीके उस धनुषको शिथिल हुआ देख ऋषियोंसहित देवताओंने भगवान् विष्णुको श्रेष्ठ माना॥ १९½॥

'तदनन्तर कुपित हुए महायशस्वी रुद्रने बाण-सहित अपना धनुष विदेहदेशके राजर्षि देवरातके हाथमें दे दिया॥ २०½॥

'श्रीराम! शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले इस वैष्णवधनुषको भगवान् विष्णुने भृगुवंशी ऋचीक मुनिको उत्तम धरोहरके रूपमें दिया था॥ २१½॥

'फिर महातेजस्वी ऋचीकने प्रतीकार (प्रतिशोध) की भावनासे रहित अपने पुत्र एवं मेरे पिता महात्मा जमदग्निके अधिकारमें यह दिव्य धनुष दे दिया॥ २२½॥

'तपोबलसे सम्पन्न मेरे पिता जमदग्नि अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग करके जब ध्यानस्थ होकर बैठे थे, उस समय प्राकृत बुद्धिका आश्रय लेनेवाले कृतवीर्यकुमार अर्जुनने उनको मार डाला॥ २३½॥

'पिताके इस अत्यन्त भयंकर वधका, जो उनके योग्य नहीं था, समाचार सुनकर मैंने रोषपूर्वक बारंबार उत्पन्न हुए क्षत्रियोंका अनेक बार संहार किया॥ २४॥

'श्रीराम! फिर सारी पृथ्वीपर अधिकार करके मैंने एक यज्ञ किया और उस यज्ञके समाप्त होनेपर पुण्यकर्मा महात्मा कश्यपको दक्षिणारूपसे यह सारी पृथ्वी दे डाली॥ २५॥

'पृथ्वीका दान करके मैं महेन्द्रपर्वतपर रहने लगा और वहाँ तपस्या करके तपोबलसे सम्पन्न हुआ। वहाँसे शिवजीके धनुषके तोड़े जानेका समाचार सुनकर मैं

शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया हूँ॥ २६॥

'श्रीराम! इस प्रकार यह महान् वैष्णवधनुष मेरे पिता-पितामहोंके अधिकारमें रहता चला आया है; अब तुम क्षत्रियधर्मको सामने रखकर यह उत्तम धनुष हाथमें लो और इस श्रेष्ठ धनुषपर एक ऐसा बाण चढ़ाओ, जो शत्रुनगरीपर विजय पानेमें समर्थ हो; यदि तुम ऐसा कर सके तो मैं तुम्हें द्वन्द्व-युद्धका अवसर दूँगा॥ २७-२८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीरामका वैष्णव-धनुषको चढ़ाकर अमोघ बाणके द्वारा परशुरामके तपःप्राप्त पुण्यलोकोंका नाश करना तथा परशुरामका महेन्द्रपर्वतको लौट जाना

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताके गौरवका ध्यान रखकर संकोचवश वहाँ कुछ बोल नहीं रहे थे, परंतु जमदग्निकुमार परशुरामजीकी उपर्युक्त बात सुनकर उस समय वे मौन न रह सके। उन्होंने परशुरामजीसे कहा—

'भृगुनन्दन! ब्रह्मन्! आपने पिताके ऋणसे ऊऋण होनेकी—पिताके मारनेवालेका वध करके वैरका बदला चुकानेकी भावना लेकर जो क्षत्रिय-संहाररूपी कर्म किया है, उसे मैंने सुना है और हमलोग आपके उस कर्मका अनुमोदन भी करते हैं (क्योंकि वीर पुरुष वैरका प्रतिशोध लेते ही हैं)॥ २॥

'भार्गव! मैं क्षत्रियधर्मसे युक्त हूँ (इसीलिये आप ब्राह्मण-देवताके समक्ष विनीत रहकर कुछ बोल नहीं रहा हूँ) तो भी आप मुझे पराक्रमहीन और असमर्थ-सा मानकर मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। अच्छा, अब मेरा तेज और पराक्रम देखिये'॥ ३॥

ऐसा कहकर शीघ्र पराक्रम करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कुपित हो परशुरामजीके हाथसे वह उत्तम धनुष और बाण ले लिया (साथ ही उनसे अपनी वैष्णवी शक्तिको भी वापस ले लिया)॥ ४॥

उस धनुषको चढ़ाकर श्रीरामने उसकी प्रत्यञ्चापर बाण रखा, फिर कुपित होकर उन्होंने जमदग्निकुमार परशुरामजीसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'(भृगुनन्दन) राम! आप ब्राह्मण होनेके नाते मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्रजीके साथ भी आपका सम्बन्ध है—इन सब कारणोंसे मैं इस प्राण-संहारक बाणको आपके शरीरपर नहीं छोड़ सकता॥ ६॥

'राम! मेरा विचार है कि आपको जो सर्वत्र शीघ्रतापूर्वक आने-जानेकी शक्ति प्राप्त हुई है उसे अथवा आपने अपने तपोबलसे जिन अनुपम पुण्यलोकोंको प्राप्त किया है उन्हींको नष्ट कर डालूँ; क्योंकि अपने पराक्रमसे विपक्षीके बलके घमंडको चूर कर देनेवाला यह दिव्य वैष्णव बाण, जो शत्रुओंकी नगरीपर विजय दिलानेवाला है, कभी निष्फल नहीं जाता है'॥ ७-८॥

उस समय उस उत्तम धनुष और बाणको धारण करके खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखनेके लिये सम्पूर्ण देवता और ऋषि ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ एकत्र हो गये॥ ९॥

गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस और नाग भी उस अत्यन्त अद्भुत दृश्यको देखनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ १०॥

जब श्रीरामचन्द्रजीने वह श्रेष्ठ धनुष हाथमें ले लिया, उस समय सब लोग आश्चर्यसे जडवत् हो गये। (परशुरामजीका वैष्णव तेज निकलकर श्रीरामचन्द्रजीमें मिल गया। इसलिये) वीर्यहीन हुए जमदग्निकुमार रामने दशरथनन्दन श्रीरामकी ओर देखा॥ ११॥

तेज निकल जानेसे वीर्यहीन हो जानेके कारण जडवत् बने हुए जमदग्निकुमार परशुरामने कमलनयन श्रीरामसे धीरे-धीरे कहा—॥ १२॥

'रघुनन्दन! पूर्वकालमें मैंने कश्यपजीको जब यह पृथिवी दान की थी, तब उन्होंने मुझसे कहा था कि 'तुम्हें मेरे राज्यमें नहीं रहना चाहिये'॥ १३॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! तभीसे अपने गुरु कश्यपजीकी इस आज्ञाका पालन करता हुआ मैं कभी रातमें पृथिवीपर नहीं निवास करता हूँ; क्योंकि यह बात सर्वविदित है कि मैंने कश्यपके सामने रातको पृथिवीपर न रहनेकी प्रतिज्ञा कर रखी है॥ १४॥

'इसलिये वीर राघव! आप मेरी इस गमनशक्तिको नष्ट न करें। मैं मनके समान वेगसे अभी महेन्द्र नामक

श्रेष्ठ पर्वतपर चला जाऊँगा॥ १५॥

'परंतु श्रीराम! मैंने अपनी तपस्यासे जिन अनुपम लोकोंपर विजय पायी है, उन्हींको आप इस श्रेष्ठ बाणसे नष्ट कर दें; अब इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये॥ १६॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! आपने जो इस धनुषको चढ़ा दिया, इससे मुझे निश्चितरूपसे ज्ञात हो गया कि आप मधु दैत्यको मारनेवाले अविनाशी देवेश्वर विष्णु हैं। आपका कल्याण हो॥ १७॥

'ये सब देवता एकत्र होकर आपकी ओर देख रहे हैं। आपके कर्म अनुपम हैं; युद्धमें आपका सामना करनेवाला दूसरा कोई नहीं है॥ १८॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! आपके सामने जो मेरी असमर्थता प्रकट हुई—यह मेरे लिये लज्जाजनक नहीं हो सकती; क्योंकि आप त्रिलोकीनाथ श्रीहरिने मुझे पराजित किया है॥ १९॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! अब आप अपना अनुपम बाण छोड़िये; इसके छूटनेके बाद ही मैं श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वतपर जाऊँगा'॥ २०॥

जमदग्निनन्दन परशुरामजीके ऐसा कहनेपर प्रतापी दशरथनन्दन श्रीमान् रामचन्द्रजीने वह उत्तम बाण छोड़ दिया॥ २१॥

अपनी तपस्याद्वारा उपार्जित किये हुए पुण्यलोकोंको श्रीरामचन्द्रजीके चलाये हुए उस बाणसे नष्ट हुआ देखकर परशुरामजी शीघ्र ही उत्तम महेन्द्र पर्वतपर चले गये॥ २२॥

उनके जाते ही समस्त दिशाओं तथा उपदिशाओंका अन्धकार दूर हो गया। उस समय ऋषियोंसहित देवता उत्तम आयुधधारी श्रीरामकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ २३॥

तदनन्तर दशरथनन्दन श्रीरामने जमदग्निकुमार परशुरामका पूजन किया। उनसे पूजित हो प्रभावशाली परशुराम दशरथकुमार श्रीरामकी परिक्रमा करके अपने स्थानको चले गये॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथका पुत्रों और वधुओंके साथ अयोध्यामें प्रवेश, शत्रुघ्नसहित भरतका मामाके यहाँ जाना, श्रीरामके बर्तावसे सबका संतोष तथा सीता और श्रीरामका पारस्परिक प्रेम

जमदग्निकुमार परशुरामजीके चले जानेपर महायशस्वी दशरथनन्दन श्रीरामने शान्तचित्त होकर अपार शक्तिशाली वरुणके हाथमें वह धनुष दे दिया॥ १॥

तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि ऋषियोंको प्रणाम करके रघुनन्दन श्रीरामने अपने पिताको विकल देखकर उनसे कहा—॥ २॥

'पिताजी! जमदग्निकुमार परशुरामजी चले गये। अब आपके अधिनायकत्वमें सुरक्षित यह चतुरंगिणी सेना अयोध्याकी ओर प्रस्थान करे'॥ ३॥

श्रीरामका यह वचन सुनकर राजा दशरथने अपने पुत्र रघुनाथजीको दोनों भुजाओंसे खींचकर छातीसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघा। 'परशुरामजी चले गये' यह सुनकर राजा दशरथको बड़ा हर्ष हुआ, वे आनन्दमग्न हो गये। उस समय उन्होंने अपना और अपने पुत्रका पुनर्जन्म हुआ माना॥ ४-५॥

तदनन्तर उन्होंने सेनाको नगरकी ओर कूँच करनेकी आज्ञा दी और वहाँसे चलकर बड़ी शीघ्रताके साथ वे अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे। उस समय उस पुरीमें सब ओर ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। सजावटसे नगरकी रमणीयता बढ़ गयी थी और भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनिसे सारी अयोध्या गूँज उठी थी॥ ६॥

सड़कोंपर जलका छिड़काव हुआ था, जिससे पुरीकी सुरम्य शोभा बढ़ गयी थी। यत्र-तत्र ढेर-के-ढेर फूल बिखेरे गये थे। पुरवासी मनुष्य हाथोंमें मांगलिक वस्तुएँ लेकर राजाके प्रवेशमार्गपर प्रसन्नमुख होकर खड़े थे। इन सबसे भरी-पूरी तथा भारी जनसमुदायसे अलंकृत हुई अयोध्यापुरीमें राजाने प्रवेश किया। नागरिकों तथा पुरवासी ब्राह्मणोंने दूरतक आगे जाकर महाराजकी अगवानी की थी॥ ७-८॥

अपने कान्तिमान् पुत्रोंके साथ महायशस्वी श्रीमान् राजा दशरथने अपने प्रिय राजभवनमें, जो हिमालयके समान सुन्दर एवं गगनचुम्बी था, प्रवेश किया॥ ९॥

राजमहलमें स्वजनोंद्वारा मनोवाञ्छित वस्तुओंसे परम पूजित हो राजा दशरथने बड़े आनन्दका अनुभव

किया। महारानी कौसल्या, सुमित्रा, सुन्दर कटिप्रदेशवाली कैकेयी तथा जो अन्य राजपत्नियाँ थीं, वे सब बहुओंको उतारनेके कार्यमें जुट गयीं॥ १०½ ॥

तदनन्तर राजपरिवारकी उन स्त्रियोंने परम सौभाग्यवती सीता, यशस्विनी ऊर्मिला तथा कुशध्वजकी दोनों कन्याओं—माण्डवी और श्रुतकीर्तिको सवारीसे उतारा और मंगल गीत गाती हुई सब वधुओंको घरमें ले गयीं। वे प्रवेशकालिक होमकर्मसे सुशोभित तथा रेशमी साड़ियोंसे अलंकृत थीं॥ ११-१२ ॥

उन सबने देवमन्दिरोंमें ले जाकर उन बहुओंसे देवताओंका पूजन करवाया। तदनन्तर नववधूरूपमें आयी हुई उन सभी राजकुमारियोंने वन्दनीय सास-ससुर आदिके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने पतिके साथ एकान्तमें रहकर वे सब-की-सब बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करने लगीं॥ १३½ ॥

श्रीराम आदि पुरुषश्रेष्ठ चारों भाई अस्त्रविद्यामें निपुण और विवाहित होकर धन और मित्रोंके साथ रहते हुए पिताकी सेवा करने लगे। कुछ कालके बाद रघुकुलनन्दन राजा दशरथने अपने पुत्र कैकेयीकुमार भरतसे कहा—॥ १४-१५½ ॥

'बेटा! ये तुम्हारे मामा केकयराजकुमार वीर युधाजित् तुम्हें लेनेके लिये आये हैं और कई दिनोंसे यहाँ ठहरे हुए हैं'॥ १६½ ॥

दशरथजीकी यह बात सुनकर कैकेयीकुमार भरतने उस समय शत्रुघ्नके साथ मामाके यहाँ जानेका विचार किया॥ १७½ ॥

वे नरश्रेष्ठ शूरवीर भरत अपने पिता राजा दशरथ, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीराम तथा सभी माताओंसे पूछकर उनकी आज्ञा ले शत्रुघ्नसहित वहाँसे चल दिये॥ १८½ ॥

शत्रुघ्नसहित भरतको साथ लेकर वीर युधाजित्‌ने बड़े हर्षके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया, इससे उनके पिताको बड़ा संतोष हुआ॥ १९½ ॥

भरतके चले जानेपर महाबली श्रीराम और लक्ष्मण उन दिनों अपने देवोपम पिताकी सेवा-पूजामें संलग्न रहने लगे॥ २०½ ॥

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके वे नगरवासियोंके सब काम देखने तथा उनके समस्त प्रिय तथा हितकर कार्य करने लगे॥ २१½ ॥

वे अपनेको बड़े संयममें रखते थे और समय-समयपर माताओंके लिये उनके आवश्यक कार्य पूर्ण करके गुरुजनोंके भारी-से-भारी कार्योंको भी सिद्ध करनेका ध्यान रखते थे॥ २२½ ॥

उनके इस बर्तावसे राजा दशरथ, वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा वैश्यवर्ग बड़े प्रसन्न रहते थे; श्रीरामके उत्तम शील और सद्-व्यवहारसे उस राज्यके भीतर निवास करनेवाले सभी मनुष्य बहुत संतुष्ट रहते थे॥ २३½ ॥

राजाके उन चारों पुत्रोंमें सत्यपराक्रमी श्रीराम ही लोकमें अत्यन्त यशस्वी तथा महान् गुणवान् हुए—ठीक उसी तरह जैसे समस्त भूतोंमें स्वयम्भू ब्रह्मा ही अत्यन्त यशस्वी और महान् गुणवान् हैं॥ २४½ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सदा सीताके हृदयमन्दिरमें विराजमान रहते थे तथा मनस्वी श्रीरामका मन भी सीतामें ही लगा रहता था; श्रीरामने सीताके साथ अनेक ऋतुओंतक विहार किया॥ २५½ ॥

सीता श्रीरामको बहुत ही प्रिय थीं; क्योंकि वे अपने पिता राजा जनकद्वारा श्रीरामके हाथमें पत्नी-रूपसे समर्पित की गयी थीं। सीताके पातिव्रत्य आदि गुणसे तथा उनके सौन्दर्यगुणसे भी श्रीरामका उनके प्रति अधिकाधिक प्रेम बढ़ता रहता था; इसी प्रकार सीताके हृदयमें भी उनके पति श्रीराम अपने गुण और सौन्दर्यके कारण द्विगुण प्रीतिपात्र बनकर रहते थे॥ २६-२७ ॥

जनकनन्दिनी मिथिलेशकुमारी सीता श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको भी अपने हृदयसे ही और अधिक रूपसे जान लेती थीं तथा स्पष्ट रूपसे बता भी देती थीं। वे रूपमें देवांगनाओंके समान थीं और मूर्तिमती लक्ष्मी-सी प्रतीत होती थीं॥ २८ ॥

श्रेष्ठ राजकुमारी सीता श्रीरामकी ही कामना रखती थीं और श्रीराम भी एकमात्र उन्हींको चाहते थे; जैसे लक्ष्मीके साथ देवेश्वर भगवान् विष्णुकी शोभा होती है, उसी प्रकार उन सीतादेवीके साथ राजर्षि दशरथकुमार श्रीराम परम प्रसन्न रहकर बड़ी शोभा पाने लगे॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके बालकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७७॥

॥ बालकाण्ड समाप्त ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

अयोध्याकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीरामके सद्‌गुणोंका वर्णन, राजा दशरथका श्रीरामको युवराज बनानेका विचार तथा विभिन्न नरेशों और नगर एवं जनपदके लोगोंको मन्त्रणाके लिये अपने दरबारमें बुलाना

(पहले यह बताया जा चुका है कि) भरत अपने मामाके यहाँ जाते समय काम आदि शत्रुओंको सदाके लिये नष्ट कर देनेवाले निष्पाप शत्रुघ्नको भी प्रेमवश अपने साथ लेते गये थे॥ १॥

वहाँ भाईसहित उनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ और वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। उनके मामा युधाजित्, जो अश्वयूथके अधिपति थे, उन दोनोंपर पुत्रसे भी अधिक स्नेह रखते और बड़ा लाड़-प्यार करते थे॥ २॥

यद्यपि मामाके यहाँ उन दोनों वीर भाइयोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करके उन्हें पूर्णतः तृप्त किया जाता था, तथापि वहाँ रहते हुए भी उन्हें अपने वृद्ध पिता महाराज दशरथकी याद कभी नहीं भूलती थी॥ ३॥

महातेजस्वी राजा दशरथ भी परदेशमें गये हुए महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी अपने उन दोनों पुत्र भरत और शत्रुघ्नका सदा स्मरण किया करते थे॥ ४॥

अपने शरीरसे प्रकट हुई चारों भुजाओंके समान वे सब चारों ही पुरुषशिरोमणि पुत्र महाराजको बहुत ही प्रिय थे॥ ५॥

परंतु उनमें भी महातेजस्वी श्रीराम सबकी अपेक्षा अधिक गुणवान् होनेके कारण समस्त प्राणियोंके लिये ब्रह्माजीकी भाँति पिताके लिये विशेष प्रीतिवर्धक थे॥ ६॥

इसका एक कारण और भी था—वे साक्षात् सनातन विष्णु थे और परम प्रचण्ड रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर मनुष्यलोकमें अवतीर्ण हुए थे॥ ७॥

उन अमित तेजस्वी पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे महारानी कौसल्याकी वैसी ही शोभा होती थी, जैसे वज्रधारी देवराज इन्द्रसे देवमाता अदिति सुशोभित होती हैं॥ ८॥

श्रीराम बड़े ही रूपवान् और पराक्रमी थे। वे किसीके दोष नहीं देखते थे। भूमण्डलमें उनकी समता करनेवाला कोई नहीं था। वे अपने गुणोंसे पिता दशरथके समान एवं योग्य पुत्र थे॥ ९॥

वे सदा शान्त चित्त रहते और सान्त्वनापूर्वक मीठे वचन बोलते थे; यदि उनसे कोई कठोर बात भी कह देता तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे॥ १०॥

कभी कोई एक बार भी उपकार कर देता तो वे उसके उस एक ही उपकारसे सदा संतुष्ट रहते थे और मनको वशमें रखनेके कारण किसीके सैकड़ों अपराध करनेपर भी उसके अपराधोंको याद नहीं रखते थे॥ ११॥

अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासके लिये उपयुक्त समयमें भी बीच-बीचमें अवसर निकालकर वे उत्तम चरित्रमें, ज्ञानमें तथा अवस्थामें बढ़े-चढ़े सत्पुरुषोंके साथ ही सदा बातचीत करते (और उनसे शिक्षा लेते थे)॥ १२॥

वे बड़े बुद्धिमान् थे और सदा मीठे वचन बोलते थे। अपने पास आये हुए मनुष्योंसे पहले स्वयं ही बात करते और ऐसी बातें मुँहसे निकालते जो उन्हें प्रिय लगें; बल और पराक्रमसे सम्पन्न होनेपर भी अपने महान् पराक्रमके कारण उन्हें कभी गर्व नहीं होता था॥ १३॥

झूठी बात तो उनके मुखसे कभी निकलती ही नहीं थी। वे विद्वान् थे और सदा वृद्ध पुरुषोंका सम्मान किया करते थे। प्रजाका श्रीरामके प्रति और श्रीरामका प्रजाके प्रति बड़ा अनुराग था॥ १४॥

वे परम दयालु क्रोधको जीतनेवाले और ब्राह्मणोंके

पुजारी थे। उनके मनमें दीन-दुःखियोंके प्रति बड़ी दया थी। वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले, इन्द्रियोंको सदा वशमें रखनेवाले और बाहर-भीतरसे परम पवित्र थे॥

अपने कुलोचित आचार, दया, उदारता और शरणागतरक्षा आदिमें ही उनका मन लगता था। वे अपने क्षत्रियधर्मको अधिक महत्त्व देते और मानते थे। वे उस क्षत्रियधर्मके पालनसे महान् स्वर्ग (परम धाम) की प्राप्ति मानते थे; अतः बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें संलग्न रहते थे॥ १६॥

अमङ्गलकारी निषिद्ध कर्ममें उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती थी; शास्त्रविरुद्ध बातोंको सुननेमें उनकी रुचि नहीं थी; वे अपने न्याययुक्त पक्षके समर्थनमें बृहस्पतिके समान एक-से-एक बढ़कर युक्तियाँ देते थे॥ १७॥

उनका शरीर नीरोग था और अवस्था तरुण। वे अच्छे वक्ता, सुन्दर शरीरसे सुशोभित तथा देश-कालके तत्त्वको समझनेवाले थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि विधाताने संसारमें समस्त पुरुषोंके सारतत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुषके रूपमें एकमात्र श्रीरामको ही प्रकट किया है॥ १८॥

राजकुमार श्रीराम श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त थे। वे अपने सद्गुणोंके कारण प्रजाजनोंको बाहर विचरनेवाले प्राणकी भाँति प्रिय थे॥ १९॥

भरतके बड़े भाई श्रीराम सम्पूर्ण विद्याओंके व्रतमें निष्णात और छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके यथार्थ ज्ञाता थे। बाणविद्यामें तो वे अपने पितासे भी बढ़कर थे॥ २०॥

वे कल्याणकी जन्मभूमि, साधु, दैन्यरहित, सत्यवादी और सरल थे; धर्म और अर्थके ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मणोंके द्वारा उन्हें उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई थी॥ २१॥

उन्हें धर्म, काम और अर्थके तत्त्वका सम्यक् ज्ञान था। वे स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे। वे लोकव्यवहारके सम्पादनमें समर्थ और समयोचित धर्माचरणमें कुशल थे॥ २२॥

वे विनयशील, अपने आकार (अभिप्राय)-को छिपानेवाले, मन्त्रको गुप्त रखनेवाले और उत्तम सहायकोंसे सम्पन्न थे। उनका क्रोध अथवा हर्ष निष्फल नहीं होता था। वे वस्तुओंके त्याग और संग्रहके अवसरको भलीभाँति जानते थे॥ २३॥

गुरुजनोंके प्रति उनकी दृढ़ भक्ति थी। वे स्थितप्रज्ञ थे और असद्वस्तुओंको कभी ग्रहण नहीं करते थे। उनके मुखसे कभी दुर्वचन नहीं निकलता था। वे आलस्यरहित, प्रमादशून्य तथा अपने और पराये मनुष्योंके दोषोंको अच्छी प्रकार जाननेवाले थे॥ २४॥

वे शास्त्रोंके ज्ञाता, उपकारियोंके प्रति कृतज्ञ तथा पुरुषोंके तारतम्यको अथवा दूसरे पुरुषोंके मनोभावको जाननेमें कुशल थे। यथायोग्य निग्रह और अनुग्रह करनेमें वे पूर्ण चतुर थे॥ २५॥

उन्हें सत्पुरुषोंके संग्रह और पालन तथा दुष्ट पुरुषोंके निग्रहके अवसरोंका ठीक-ठीक ज्ञान था। धनकी आयके उपायोंको वे अच्छी तरह जानते थे (अर्थात् फूलोंको नष्ट न करके उनसे रस लेनेवाले भ्रमरोंकी भाँति वे प्रजाओंको कष्ट दिये बिना ही उनसे न्यायोचित धनका उपार्जन करनेमें कुशल थे) तथा शास्त्रवर्णित व्यय कर्मका भी उन्हें ठीक-ठीक ज्ञान था[१]॥ २६॥

उन्होंने सब प्रकारके अस्त्रसमूहों तथा संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंसे मिश्रित नाटक आदिके ज्ञानमें निपुणता प्राप्त की थी। वे अर्थ और धर्मका संग्रह (पालन) करते हुए तदनुकूल कामका सेवन करते थे और कभी आलस्यको पास नहीं फटकने देते थे॥ २७॥

विहार (क्रीडा या मनोरञ्जन)-के उपयोगमें आनेवाले संगीत, वाद्य और चित्रकारी आदि शिल्पोंके भी वे विशेषज्ञ थे। अर्थोंके विभाजनका भी उन्हें सम्यक् ज्ञान था।[२] वे हाथियों और घोड़ोंपर चढ़ने और उन्हें भाँति-भाँतिकी चालोंकी शिक्षा देनेमें भी निपुण थे॥ २८॥

श्रीरामचन्द्रजी इस लोकमें धनुर्वेदके सभी विद्वानोंमें

---

१. शास्त्रमें व्ययका विधान इस प्रकार देखा जाता है—

कच्चिदायस्य चार्धेन चतुर्भागेन वा पुनः। पादभागैस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुद्ध्यते तव॥ (महा० सभा० ५।७१)

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! क्या तुम्हारी आयके एक चौथाई या आधे अथवा तीन चौथाई भागसे तुम्हारा सारा खर्च चल जाता है?

२. नीचे लिखी पाँच वस्तुओंके लिये अर्थका विभाजन करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी सुखी होता है। वे वस्तुएँ हैं—धर्म, यश, अर्थ, आत्मा और स्वजन। यथा—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च। पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ (श्रीमद्भा० ८। १९। ३७)

श्रेष्ठ थे। अतिरथी वीर भी उनका विशेष सम्मान करते थे। शत्रुसेनापर आक्रमण और प्रहार करनेमें वे विशेष कुशल थे। सेना-संचालनकी नीतिमें उन्होंने अधिक निपुणता प्राप्त की थी॥ २९॥

संग्राममें कुपित होकर आये हुए समस्त देवता और असुर भी उनको परास्त नहीं कर सकते थे। उनमें दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव था। वे क्रोधको जीत चुके थे। दर्प और ईर्ष्याका उनमें अत्यन्त अभाव था॥ ३०॥

किसी भी प्राणीके मनमें उनके प्रति अवहेलनाका भाव नहीं था। वे कालके वशमें होकर उसके पीछे-पीछे चलनेवाले नहीं थे (काल ही उनके पीछे चलता था)। इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण राजकुमार श्रीराम समस्त प्रजाओं तथा तीनों लोकोंके प्राणियोंके लिये आदरणीय थे। वे अपने क्षमासम्बन्धी गुणोंके द्वारा पृथ्वीकी समानता करते थे। बुद्धिमें बृहस्पति और बल-पराक्रममें शचीपति इन्द्रके तुल्य थे॥ ३१-३२॥

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं। उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी समस्त प्रजाओंको प्रिय लगनेवाले तथा पिताकी प्रीति बढ़ानेवाले सद्‌गुणोंसे सुशोभित होते थे॥ ३३॥

ऐसे सदाचारसम्पन्न, अजेय पराक्रमी और लोकपालोंके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको पृथ्वी (भूदेवी और भूमण्डलकी प्रजा)-ने अपना स्वामी बनानेकी कामना की॥ ३४॥

अपने पुत्र श्रीरामको अनेक अनुपम गुणोंसे युक्त देखकर शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा दशरथने मन-ही-मन कुछ विचार करना आरम्भ किया॥ ३५॥

उन चिरञ्जीवी बूढ़े महाराज दशरथके हृदयमें यह चिन्ता हुई कि किस प्रकार मेरे जीते-जी श्रीरामचन्द्र राजा हो जायँ और उनके राज्याभिषेकसे प्राप्त होनेवाली यह प्रसन्नता मुझे कैसे सुलभ हो॥ ३६॥

उनके हृदयमें यह उत्तम अभिलाषा बारम्बार चक्कर लगाने लगी कि कब मैं अपने प्रिय पुत्र श्रीरामका राज्याभिषेक देखूँगा॥ ३७॥

वे सोचने लगे कि 'श्रीराम सब लोगोंके अभ्युदयकी कामना करते और सम्पूर्ण जीवोंपर दया रखते हैं। वे लोकमें वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति मुझसे भी बढ़कर प्रिय हो गये हैं॥ ३८॥

'श्रीराम बल-पराक्रममें यम और इन्द्रके समान, बुद्धिमें बृहस्पतिके समान और धैर्यमें पर्वतके समान हैं। गुणोंमें तो वे मुझसे सर्वथा बढ़े-चढ़े हैं॥ ३९॥

'मैं इसी उम्रमें अपने बेटे श्रीरामको इस सारी पृथ्वीका राज्य करते देख यथासमय सुखसे स्वर्ग प्राप्त करूँ, यही मेरे जीवनकी साध है'॥ ४०॥

इस प्रकार विचारकर तथा अपने पुत्र श्रीरामको उन-उन नाना प्रकारके विलक्षण, सज्जनोचित, असंख्य तथा लोकोत्तर गुणोंसे, जो अन्य राजाओंमें दुर्लभ हैं, विभूषित देख राजा दशरथने मन्त्रियोंके साथ सलाह करके उन्हें युवराज बनानेका निश्चय कर लिया॥ ४१-४२॥

बुद्धिमान् महाराज दशरथने मन्त्रीको स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूतलमें दृष्टिगोचर होनेवाले उत्पातोंका घोर भय सूचित किया और अपने शरीरमें वृद्धावस्थाके आगमनकी भी बात बतायी॥ ४३॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले महात्मा श्रीराम समस्त प्रजाके प्रिय थे। लोकमें उनका सर्वप्रिय होना राजाके अपने आन्तरिक शोकको दूर करनेवाला था, इस बातको राजाने अच्छी तरह समझा॥ ४४॥

तदनन्तर उपयुक्त समय आनेपर धर्मात्मा राजा दशरथने अपने और प्रजाके कल्याणके लिये मन्त्रियोंको श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये शीघ्र तैयारी करनेकी आज्ञा दी। इस उतावलीमें उनके हृदयका प्रेम और प्रजाका अनुराग भी कारण था॥ ४५॥

उन भूपालने भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले प्रधान-प्रधान पुरुषों तथा अन्य जनपदोंके सामन्त राजाओंको भी मन्त्रियोंद्वारा अयोध्यामें बुलवा लिया॥ ४६॥

उन सबको ठहरनेके लिये घर देकर नाना प्रकारके आभूषणोंद्वारा उनका यथायोग्य सत्कार किया। तत्पश्चात् स्वयं भी अलंकृत होकर राजा दशरथ उन सबसे उसी प्रकार मिले, जैसे प्रजापति ब्रह्मा प्रजावर्गसे मिलते हैं॥ ४७॥

जल्दीबाजीके कारण राजा दशरथने केकय-नरेशको तथा मिथिलापति जनकको भी नहीं बुलवाया।*

* केकयनरेशके साथ भरत-शत्रुघ्न भी आ जाते। इन सबके तथा राजा जनकके रहनेसे श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जाता और वे वनमें नहीं जाने पाते—इसी डरसे देवताओंने राजा दशरथको इन सबको नहीं बुलानेकी बुद्धि दे दी।

उन्होंने सोचा वे दोनों सम्बन्धी इस प्रिय समाचारको पीछे सुन लेंगे॥ ४८॥

तदनन्तर शत्रुनगरीको पीड़ित करनेवाले राजा दशरथ जब दरबारमें आ बैठे, तब (केकयराज और जनकको छोड़कर) शेष सभी लोकप्रिय नरेशोंने राजसभामें प्रवेश किया॥ ४९॥

वे सभी नरेश राजाद्वारा दिये गये नाना प्रकारके सिंहासनोंपर उन्हींकी ओर मुँह करके विनीतभावसे बैठे थे॥ ५०॥

राजासे सम्मानित होकर विनीतभावसे उन्हींके आस-पास बैठे हुए सामन्त नरेशों तथा नगर और जनपदके निवासी मनुष्योंसे घिरे हुए महाराज दशरथ उस समय देवताओंके बीचमें विराजमान सहस्रनेत्रधारी भगवान् इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

राजा दशरथद्वारा श्रीरामके राज्याभिषेकका प्रस्ताव तथा सभासदोंद्वारा श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए उक्त प्रस्तावका सहर्ष युक्तियुक्त समर्थन

उस समय राजसभामें बैठे हुए सब लोगोंको सम्बोधित करके महाराज दशरथने मेघके समान शब्द करते हुए दुन्दुभिकी ध्वनिके सदृश अत्यन्त गम्भीर एवं गूँजते हुए उच्च स्वरसे सबके आनन्दको बढ़ानेवाली यह हितकारक बात कही॥ १-२॥

राजा दशरथका स्वर राजोचित स्निग्धता और गम्भीरता आदि गुणोंसे युक्त था, अत्यन्त कमनीय और अनुपम था। वे उस अद्भुत रसमय स्वरसे समस्त नरेशोंको सम्बोधित करके बोले—॥ ३॥

'सज्जनो! आपलोगोंको यह तो विदित ही है कि मेरे पूर्वज राजाधिराजोंने इस श्रेष्ठ राज्यका (यहाँकी प्रजाका) किस प्रकार पुत्रकी भाँति पालन किया था॥

'समस्त इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंने जिसका प्रतिपालन किया है, उस सुख भोगनेके योग्य सम्पूर्ण जगत्को अब मैं भी कल्याणका भागी बनाना चाहता हूँ॥ ५॥

'मेरे पूर्वज जिस मार्गपर चलते आये हैं, उसीका अनुसरण करते हुए मैंने भी सदा जागरूक रहकर समस्त प्रजाजनोंकी यथाशक्ति रक्षा की है॥ ६॥

'समस्त संसारका हित-साधन करते हुए मैंने इस शरीरको श्वेत राजछत्रकी छायामें बूढ़ा किया है॥ ७॥

'अनेक सहस्र (साठ हजार) वर्षोंकी आयु पाकर जीवित रहते हुए अपने इस जराजीर्ण शरीरको अब मैं विश्राम देना चाहता हूँ॥ ८॥

'जगत्के धर्मपूर्वक संरक्षणका भारी भार राजाओंके शौर्य आदि प्रभावोंसे ही उठाना सम्भव है। अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इस बोझको ढोना अत्यन्त कठिन है। मैं दीर्घकालसे इस भारी भारको वहन करते-करते थक गया हूँ॥ ९॥

'इसलिये यहाँ पास बैठे हुए इन सम्पूर्ण श्रेष्ठ द्विजोंकी अनुमति लेकर प्रजाजनोंके हितके कार्यमें अपने पुत्र श्रीरामको नियुक्त करके अब मैं राजकार्यसे विश्राम लेना चाहता हूँ॥ १०॥

'मेरे पुत्र श्रीराम मेरी अपेक्षा सभी गुणोंमें श्रेष्ठ हैं। शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले श्रीरामचन्द्र बल-पराक्रममें देवराज इन्द्रके समान हैं॥ ११॥

'पुष्य-नक्षत्रसे युक्त चन्द्रमाकी भाँति समस्त कार्योंके साधनमें कुशल तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ उन पुरुषशिरोमणि श्रीरामचन्द्रको मैं कल प्रातःकाल पुष्यनक्षत्रमें युवराजके पदपर नियुक्त करूँगा॥ १२॥

'लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीमान् राम आपलोगोंके लिये योग्य स्वामी सिद्ध होंगे; उनके-जैसे स्वामीसे सम्पूर्ण त्रिलोकी भी परम सनाथ हो सकती है॥ १३॥

'ये श्रीराम कल्याणस्वरूप हैं; इनका शीघ्र ही अभिषेक करके मैं इस भूमण्डलको तत्काल कल्याणका भागी बनाऊँगा। अपने पुत्र श्रीरामपर राज्यका भार रखकर मैं सर्वथा क्लेशरहित—निश्चिन्त हो जाऊँगा॥ १४॥

'यदि मेरा यह प्रस्ताव आपलोगोंको अनुकूल जान पड़े और यदि मैंने यह अच्छी बात सोची हो तो आपलोग इसके लिये मुझे सहर्ष अनुमति दें अथवा यह बतावें कि मैं किस प्रकारसे कार्य करूँ॥ १५॥

'यद्यपि यह श्रीरामके राज्याभिषेकका विचार मेरे लिये अधिक प्रसन्नताका विषय है तथापि यदि

इसके अतिरिक्त भी कोई सबके लिये हितकर बात हो तो आपलोग उसे सोचें; क्योंकि मध्यस्थ पुरुषोंका विचार एकपक्षीय पुरुषकी अपेक्षा विलक्षण होता है, कारण कि वह पूर्वपक्ष और अपरपक्षको लक्ष्य करके किया गया होनेके कारण अधिक अभ्युदय करनेवाला होता है'॥ १६॥

राजा दशरथ जब ऐसी बात कह रहे थे, उस समय वहाँ उपस्थित नरेशोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन महाराजका उसी प्रकार अभिनन्दन किया, जैसे मोर मधुर केकारव फैलाते हुए वर्षा करनेवाले महामेघका अभिनन्दन करते हैं॥ १७॥

तत्पश्चात् समस्त जनसमुदायकी स्नेहमयी हर्षध्वनि सुनायी पड़ी। वह इतनी प्रबल थी कि समस्त पृथ्वीको कँपाती हुई-सी जान पड़ी॥ १८॥

धर्म और अर्थके ज्ञाता महाराज दशरथके अभिप्रायको पूर्णरूपसे जानकर सम्पूर्ण ब्राह्मण और सेनापति नगर और जनपदके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंके साथ मिलकर परस्पर सलाह करनेके लिये बैठे और मनसे सब कुछ समझकर जब वे एक निश्चयपर पहुँच गये, तब बूढ़े राजा दशरथसे इस प्रकार बोले—॥ १९-२०॥

'पृथ्वीनाथ! आपकी अवस्था कई हजार वर्षोंकी हो गयी। आप बूढ़े हो गये। अतः पृथ्वीके पालनमें समर्थ अपने पुत्र श्रीरामका अवश्य ही युवराजके पदपर अभिषेक कीजिये॥ २१॥

'रघुकुलके वीर महाबलवान् महाबाहु श्रीराम महान् गजराजपर बैठकर यात्रा करते हों और उनके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ हो—इस रूपमें हम उनकी झाँकी करना चाहते हैं'॥ २२॥

उनकी यह बात राजा दशरथके मनको प्रिय लगनेवाली थी; इसे सुनकर राजा दशरथ अनजान-से बनकर उन सबके मनोभावको जाननेकी इच्छासे इस प्रकार बोले—॥ २३॥

'राजागण! मेरी यह बात सुनकर जो आपलोगोंने श्रीरामको राजा बनानेकी इच्छा प्रकट की है, इसमें मुझे यह संशय हो रहा है जिसे आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। आप इसे सुनकर इसका यथार्थ उत्तर दें॥ २४॥

'मैं धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका निरन्तर पालन कर रहा हूँ, फिर मेरे रहते हुए आपलोग महाबली श्रीरामको युवराजके रूपमें क्यों देखना चाहते हैं?'॥ २५॥

यह सुनकर वे महात्मा नरेश नगर और जनपदके लोगोंके साथ राजा दशरथसे इस प्रकार बोले—'महाराज! आपके पुत्र श्रीराममें बहुत-से कल्याणकारी सद्गुण हैं॥ २६॥

'देव! देवताओंके तुल्य बुद्धिमान् और गुणवान् श्रीरामचन्द्रजीके सारे गुण सबको प्रिय लगनेवाले और आनन्ददायक हैं, हम इस समय उनका यत्किंचित् वर्णन कर रहे हैं, आप उन्हें सुनिये॥ २७॥

'प्रजानाथ! सत्यपराक्रमी श्रीराम देवराज इन्द्रके समान दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं। इक्ष्वाकुकुलमें भी ये सबसे श्रेष्ठ हैं॥ २८॥

'श्रीराम संसारमें सत्यवादी, सत्यपरायण और सत्पुरुष हैं। साक्षात् श्रीरामने ही अर्थके साथ धर्मको भी प्रतिष्ठित किया है॥ २९॥

'ये प्रजाको सुख देनेमें चन्द्रमाकी और क्षमारूपी गुणमें पृथ्वीकी समानता करते हैं। बुद्धिमें बृहस्पति और बल-पराक्रममें साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान हैं॥ ३०॥

'श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, अदोषदर्शी, शान्त, दीन-दुःखियोंको सान्त्वना प्रदान करनेवाले, मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाववाले, स्थिरबुद्धि, सदा कल्याणकारी, असूयारहित, समस्त प्राणियोंके प्रति प्रिय वचन बोलनेवाले और सत्यवादी हैं॥ ३१-३२॥

'वे बहुश्रुत विद्वानों, बड़े-बूढ़ों तथा ब्राह्मणोंके उपासक हैं—सदा ही उनका संग किया करते हैं, इसलिये इस जगत्में श्रीरामकी अनुपम कीर्ति, यश और तेजका विस्तार हो रहा है॥ ३३॥

'देवता, असुर और मनुष्योंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका उन्हें विशेषरूपसे ज्ञान है। वे साङ्ग वेदके यथार्थ विद्वान् और सम्पूर्ण विद्याओंमें भलीभाँति निष्णात हैं॥ ३४॥

'भरतके बड़े भाई श्रीराम गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र)में भी इस भूतलपर सबसे श्रेष्ठ हैं। कल्याणकी तो वे जन्मभूमि हैं। उनका स्वभाव साधु पुरुषोंके समान है, हृदय उदार और बुद्धि विशाल है॥ ३५॥

'धर्म और अर्थके प्रतिपादनमें कुशल श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन्हें उत्तम शिक्षा दी है। वे ग्राम अथवा नगरकी रक्षाके लिये लक्ष्मणके साथ जब संग्रामभूमिमें जाते हैं, उस समय वहाँ जाकर विजय प्राप्त किये बिना पीछे नहीं लौटते॥ ३६ १/२ ॥

'संग्रामभूमिसे हाथी अथवा रथके द्वारा पुनः

अयोध्या लौटनेपर वे पुरवासियोंसे स्वजनोंकी भाँति प्रतिदिन उनके पुत्रों, अग्निहोत्रकी अग्नियों, स्त्रियों, सेवकों और शिष्योंका कुशल-समाचार पूछते रहते हैं॥

'जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका कुशल-मङ्गल पूछता है, उसी प्रकार वे समस्त पुरवासियोंसे क्रमशः उनका सारा समाचार पूछा करते हैं। पुरुषसिंह श्रीराम ब्राह्मणोंसे सदा पूछते रहते हैं कि 'आपके शिष्य आपलोगोंकी सेवा करते हैं न?' क्षत्रियोंसे यह जिज्ञासा करते हैं कि 'आपके सेवक कवच आदिसे सुसज्जित हो आपकी सेवामें तत्पर रहते हैं न?'॥ ३९ $\frac{१}{२}$ ॥

'नगरके मनुष्योंपर संकट आनेपर वे बहुत दुःखी हो जाते हैं और उन सबके घरोंमें सब प्रकारके उत्सव होनेपर उन्हें पिताकी भाँति प्रसन्नता होती है॥ ४० $\frac{१}{२}$ ॥

'वे सत्यवादी, महान् धनुर्धर, वृद्ध पुरुषोंके सेवक और जितेन्द्रिय हैं। श्रीराम पहले मुसकराकर वार्तालाप आरम्भ करते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण हृदयसे धर्मका आश्रय ले रखा है। वे कल्याणका सम्यक् आयोजन करनेवाले हैं, निन्दनीय बातोंकी चर्चामें उनकी कभी रुचि नहीं होती है॥ ४१-४२ ॥

'उत्तरोत्तर उत्तम युक्ति देते हुए वार्तालाप करनेमें वे साक्षात् बृहस्पतिके समान हैं। उनकी भौंहें सुन्दर हैं, आँखें विशाल और कुछ लालिमा लिये हुए हैं। वे साक्षात् विष्णुकी भाँति शोभा पाते हैं॥ ४३ ॥

'सम्पूर्ण लोकोंको आनन्दित करनेवाले ये श्रीराम शूरता, वीरता और पराक्रम आदिके द्वारा सदा प्रजाका पालन करनेमें लगे रहते हैं। उनकी इन्द्रियाँ राग आदि दोषोंसे दूषित नहीं होती हैं॥ ४४ ॥

'इस पृथ्वीकी तो बात ही क्या है, वे सम्पूर्ण त्रिलोकीकी भी रक्षा कर सकते हैं। उनका क्रोध और प्रसाद कभी व्यर्थ नहीं होता है॥ ४५ ॥

'जो शास्त्रके अनुसार प्राणदण्ड पानेके अधिकारी हैं, उनका ये नियमपूर्वक वध कर डालते हैं तथा जो शास्त्रदृष्टिसे अवध्य हैं, उनपर ये कदापि कुपित नहीं होते हैं। जिसपर ये संतुष्ट होते हैं, उसे हर्षमें भरकर धनसे परिपूर्ण कर देते हैं॥ ४६ ॥

'समस्त प्रजाओंके लिये कमनीय तथा मनुष्योंका आनन्द बढ़ानेवाले मन और इन्द्रियोंके संयम आदि सद्गुणोंद्वारा श्रीराम वैसे ही शोभा पाते हैं, जैसे तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंसे सुशोभित होते हैं॥ ४७ ॥

'ऐसे सर्वगुणसम्पन्न, लोकपालोंके समान प्रभावशाली एवं सत्यपराक्रमी श्रीरामको इस पृथ्वीकी जनता अपना स्वामी बनाना चाहती है॥ ४८ ॥

'हमारे सौभाग्यसे आपके वे पुत्र श्रीरघुनाथजी प्रजाका कल्याण करनेमें समर्थ हो गये हैं तथा आपके सौभाग्यसे वे मरीचिनन्दन कश्यपकी भाँति पुत्रोचित गुणोंसे सम्पन्न हैं॥ ४९ ॥

'देवताओं, असुरों, मनुष्यों, गन्धर्वों और नागोंमेंसे प्रत्येक वर्गके लोग तथा इस राज्य और राजधानीमें भी बाहर-भीतर आने-जानेवाले नगर और जनपदके सभी लोग सुविख्यात शीलस्वभाववाले श्रीरामचन्द्रजीके लिये सदा ही बल, आरोग्य और आयुकी शुभ कामना करते हैं॥ ५०-५१ ॥

'इस नगरकी बूढ़ी और युवती—सब तरहकी स्त्रियाँ सबेरे और सायंकालमें एकाग्रचित्त होकर परम उदार श्रीरामचन्द्रजीके युवराज होनेके लिये देवताओंसे नमस्कारपूर्वक प्रार्थना किया करती हैं। देव! उनकी वह प्रार्थना आपके कृपा-प्रसादसे अब पूर्ण होनी चाहिये॥ ५२ ॥

'नृपश्रेष्ठ! जो नीलकमलके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित तथा समस्त शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं, आपके उन ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको हम युवराज-पदपर विराजमान देखना चाहते हैं॥ ५३ ॥

'अतः वरदायक महाराज! आप देवाधिदेव श्रीविष्णुके समान पराक्रमी, सम्पूर्ण लोकोंके हितमें संलग्न रहनेवाले और महापुरुषोंद्वारा सेवित अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका जितना शीघ्र हो सके प्रसन्नतापूर्वक राज्याभिषेक कीजिये, इसीमें हमलोगोंका हित है'॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

राजा दशरथका वसिष्ठ और वामदेवजीको श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी करनेके लिये कहना और उनका सेवकोंको तदनुरूप आदेश देना; राजाकी आज्ञासे सुमन्त्रका श्रीरामको राजसभामें बुला लाना और राजाका अपने पुत्र श्रीरामको हितकर राजनीतिकी बातें बताना

सभासदोंने कमलपुष्पकी-सी आकृतिवाली अपनी अञ्जलियोंको सिरसे लगाकर सब प्रकारसे महाराजके प्रस्तावका समर्थन किया; उनकी वह पद्माञ्जलि स्वीकार करके राजा दशरथ उन सबसे प्रिय और हितकारी वचन बोले—॥ १ ॥

'अहो! आपलोग जो मेरे परमप्रिय ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको युवराजके पदपर प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है तथा मेरा प्रभाव अनुपम हो गया है'॥ २ ॥

इस प्रकारकी बातोंसे पुरवासी तथा अन्यान्य सभासदोंका सत्कार करके राजाने उनके सुनते हुए ही वामदेव और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंसे इस प्रकार कहा—॥ ३ ॥

'यह चैत्रमास बड़ा सुन्दर और पवित्र है, इसमें सारे वन-उपवन खिल उठे हैं; अतः इस समय श्रीरामका युवराजपदपर अभिषेक करनेके लिये आपलोग सब सामग्री एकत्र कराइये'॥ ४ ॥

राजाकी यह बात समाप्त होनेपर सब लोग हर्षके कारण महान् कोलाहल करने लगे। धीरे-धीरे उस जनरवके शान्त होनेपर प्रजापालक नरेश दशरथने मुनिप्रवर वसिष्ठसे यह बात कही—॥ ५½ ॥

'भगवन्! श्रीरामके अभिषेकके लिये जो कर्म आवश्यक हो, उसे साङ्गोपाङ्ग बताइये और आज ही उस सबकी तैयारी करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दीजिये'॥ ६½ ॥

महाराजका यह वचन सुनकर मुनिवर वसिष्ठने राजाके सामने ही हाथ जोड़कर खड़े हुए आज्ञापालनके लिये तैयार रहनेवाले सेवकोंसे कहा—॥ ७½ ॥

'तुमलोग सुवर्ण आदि रत्न, देवपूजनकी सामग्री, सब प्रकारकी ओषधियाँ, श्वेत पुष्पोंकी मालाएँ, खील, अलग-अलग पात्रोंमें शहद और घी, नये वस्त्र, रथ, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, चतुरङ्गिणी सेना, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हाथी, चमरी गायकी पूँछके बालोंसे बने हुए दो व्यजन, ध्वज, श्वेत छत्र, अग्निके समान देदीप्यमान सोनेके सौ कलश, सुवर्णसे मढ़े हुए सींगोंवाला एक साँड, समूचा व्याघ्रचर्म तथा और जो कुछ भी वांछनीय वस्तुएँ हैं, उन सबको एकत्र करो और प्रातःकाल महाराजकी अग्निशालामें पहुँचा दो॥ ८—१२ ॥

'अन्तःपुर तथा समस्त नगरके सभी दरवाजोंको चन्दन और मालाओंसे सजा दो तथा वहाँ ऐसे धूप सुलगा दो जो अपनी सुगन्धसे लोगोंको आकर्षित कर लें॥ १३ ॥

'दही, दूध और घी आदिसे संयुक्त अत्यन्त उत्तम एवं गुणकारी अन्न तैयार कराओ, जो एक लाख ब्राह्मणोंके भोजनके लिये पर्याप्त हो॥ १४ ॥

'कल प्रातःकाल श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें वह अन्न प्रदान करो; साथ ही घी, दही, खील और पर्याप्त दक्षिणाएँ भी दो॥ १५ ॥

'कल सूर्योदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, इसके लिये ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करो और उनके लिये आसनोंका प्रबन्ध कर लो॥ १६ ॥

'नगरमें सब ओर पताकाएँ फहरायी जायँ तथा राजमार्गोंपर छिड़काव कराया जाय। समस्त तालजीवी (संगीतनिपुण) पुरुष और सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित वाराङ्गनाएँ (नर्तकियाँ) राजमहलकी दूसरी कक्षा (ड्योढ़ी) में पहुँचकर खड़ी रहें॥ १७½ ॥

'देव-मन्दिरोंमें तथा चैत्यवृक्षोंके नीचे या चौराहोंपर जो पूजनीय देवता हैं, उन्हें पृथक्-पृथक् भक्ष्य-भोज्य पदार्थ एवं दक्षिणा प्रस्तुत करनी चाहिये॥ १८½ ॥

'लंबी तलवार लिये और गोधाचर्मके बने दस्ताने पहने और कमर कसकर तैयार रहनेवाले शूर-वीर योद्धा स्वच्छ वस्त्र धारण किये महाराजके महान् अभ्युदयशाली आँगनमें प्रवेश करें'॥ १९½ ॥

सेवकोंको इस प्रकार कार्य करनेका आदेश देकर दोनों ब्राह्मण वसिष्ठ और वामदेवने पुरोहितद्वारा सम्पादित होने योग्य क्रियाओंको स्वयं पूर्ण किया। राजाके बताये

हुए कार्योंके अतिरिक्त भी जो शेष आवश्यक कर्तव्य था उसे भी उन दोनोंने राजासे पूछकर स्वयं ही सम्पन्न किया॥ २०½ ॥

तदनन्तर महाराजके पास जाकर प्रसन्नता और हर्षसे भरे हुए वे दोनों श्रेष्ठ द्विज बोले—'राजन्! आपने जैसा कहा था, उसके अनुसार सब कार्य सम्पन्न हो गया'॥ २१½ ॥

इसके बाद तेजस्वी राजा दशरथने सुमन्त्रसे कहा— 'सखे! पवित्रात्मा श्रीरामको तुम शीघ्र यहाँ बुला लाओ'॥ २२½ ॥

तब 'जो आज्ञा' कहकर सुमन्त्र गये तथा राजाके आदेशानुसार रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामको रथपर बिठाकर ले आये॥ २३½ ॥

उस राजभवनमें साथ बैठे हुए पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिणके भूपाल, म्लेच्छ, आर्य तथा वनों और पर्वतोंमें रहनेवाले अन्यान्य मनुष्य सब-के-सब उस समय राजा दशरथकी उसी प्रकार उपासना कर रहे थे जैसे देवता देवराज इन्द्रकी॥ २४-२५½ ॥

उनके बीच अट्टालिकाके भीतर बैठे हुए राजा दशरथ मरुद्गणोंके मध्य देवराज इन्द्रकी भाँति शोभा पा रहे थे; उन्होंने वहींसे अपने पुत्र श्रीरामको अपने पास आते देखा, जो गन्धर्वराजके समान तेजस्वी थे, उनका पौरुष समस्त संसारमें विख्यात था॥ २६-२७॥

उनकी भुजाएँ बड़ी और बल महान् था। वे मतवाले गजराजके समान बड़ी मस्तीके साथ चल रहे थे। उनका मुख चन्द्रमासे भी अधिक कान्तिमान् था। श्रीरामका दर्शन सबको अत्यन्त प्रिय लगता था। वे अपने रूप और उदारता आदि गुणोंसे लोगोंकी दृष्टि और मन आकर्षित कर लेते थे। जैसे धूपमें तपे हुए प्राणियोंको मेघ आनन्द प्रदान करता है, उसी प्रकार वे समस्त प्रजाको परम आह्लाद देते रहते थे॥ २८-२९॥

आते हुए श्रीरामचन्द्रकी ओर एकटक देखते हुए राजा दशरथको तृप्ति नहीं होती थी। सुमन्त्रने उस श्रेष्ठ रथसे श्रीरामचन्द्रजीको उतारा और जब वे पिताके समीप जाने लगे, तब सुमन्त्र भी उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े हुए गये॥ ३०½ ॥

वह राजमहल कैलासशिखरके समान उज्ज्वल और ऊँचा था, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम महाराजका दर्शन करनेके लिये सुमन्त्रके साथ सहसा उसपर चढ़ गये॥ ३१½ ॥

श्रीराम दोनों हाथ जोड़कर विनीतभावसे पिताके पास गये और अपना नाम सुनाते हुए उन्होंने उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया॥ ३२½ ॥

श्रीरामको पास आकर हाथ जोड़ प्रणाम करते देख राजाने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और अपने प्रिय पुत्रको पास खींचकर छातीसे लगा लिया॥ ३३½ ॥

उस समय राजाने उन श्रीरामचन्द्रजीको मणिजटित सुवर्णसे भूषित एक परम सुन्दर सिंहासनपर बैठनेकी आज्ञा दी, जो पहलेसे उन्हींके लिये वहाँ उपस्थित किया गया था॥ ३४½ ॥

जैसे निर्मल सूर्य उदयकालमें मेरुपर्वतको अपनी किरणोंसे उद्भासित कर देते हैं उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी उस श्रेष्ठ आसनको ग्रहण करके अपनी ही प्रभासे उसे प्रकाशित करने लगे॥ ३५½ ॥

उनसे प्रकाशित हुई वह सभा भी बड़ी शोभा पा रही थी। ठीक उसी तरह जैसे निर्मल ग्रह और नक्षत्रोंसे भरा हुआ शरत्-कालका आकाश चन्द्रमासे उद्भासित हो उठता है॥ ३६½ ॥

जैसे सुन्दर वेश-भूषासे अलंकृत हुए अपने ही प्रतिबिम्बको दर्पणमें देखकर मनुष्यको बड़ा संतोष प्राप्त होता है, उसी प्रकार अपने शोभाशाली प्रिय पुत्र उन श्रीरामको देखकर राजा बड़े प्रसन्न हुए॥ ३७½ ॥

जैसे कश्यप देवराज इन्द्रको पुकारते हैं, उसी प्रकार पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ राजा दशरथ सिंहासनपर बैठे हुए अपने पुत्र श्रीरामको सम्बोधित करके उनसे इस प्रकार बोले॥

'बेटा! तुम्हारा जन्म मेरी बड़ी महारानी कौसल्याके गर्भसे हुआ है। तुम अपनी माताके अनुरूप ही उत्पन्न हुए हो। श्रीराम! तुम गुणोंमें मुझसे भी बढ़कर हो, अतः मेरे परम प्रिय पुत्र हो; तुमने अपने गुणोंसे इन समस्त प्रजाओंको प्रसन्न कर लिया है, इसलिये कल पुष्यनक्षत्रके योगमें युवराजका पद ग्रहण करो॥ ३९-४०½ ॥

'बेटा! यद्यपि तुम स्वभावसे ही गुणवान् हो और तुम्हारे विषयमें यही सबका निर्णय है तथापि मैं स्नेहवश सद्गुणसम्पन्न होनेपर भी तुम्हें कुछ हितकी बातें बताता हूँ। तुम और भी अधिक विनयका आश्रय लेकर सदा जितेन्द्रिय बने रहो॥ ४१-४२॥

'काम और क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दुर्व्यसनोंका सर्वथा त्याग कर दो, परोक्षवृत्तिसे (अर्थात् गुप्तचरोंद्वारा यथार्थ बातोंका पता लगाकर) तथा प्रत्यक्षवृत्तिसे (अर्थात् दरबारमें सामने आकर कहनेवाली जनताके मुखसे

उसके वृत्तान्तोंको प्रत्यक्ष देख-सुनकर) ठीक-ठीक न्यायविचारमें तत्पर रहो॥ ४३॥

'मन्त्री, सेनापति आदि समस्त अधिकारियों तथा प्रजाजनोंको सदा प्रसन्न रखना। जो राजा कोष्ठागार (भण्डारगृह) तथा शस्त्रागार आदिके द्वारा उपयोगी वस्तुओंका बहुत बड़ा संग्रह करके मन्त्री, सेनापति और प्रजा आदि समस्त प्रकृतियोंको प्रिय मानकर उन्हें अपने प्रति अनुरक्त एवं प्रसन्न रखते हुए पृथ्वीका पालन करता है, उसके मित्र उसी प्रकार आनन्दित होते हैं, जैसे अमृतको पाकर देवता प्रसन्न हुए थे॥ ४४-४५॥

'इसलिये बेटा! तुम अपने चित्तको वशमें रखकर इस प्रकारके उत्तम आचरणोंका पालन करते रहो।' राजाकी ये बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेवाले सुहृदोंने तुरंत माता कौसल्याके पास जाकर उन्हें यह शुभ समाचार निवेदन किया॥ ४६ $\frac{1}{2}$॥

नारियोंमें श्रेष्ठ कौसल्याने वह प्रिय संवाद सुनानेवाले उन सुहृदोंको तरह-तरहके रत्न, सुवर्ण और गौएँ पुरस्काररूपमें दीं॥ ४७ $\frac{1}{2}$॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी राजाको प्रणाम करके रथपर बैठे और प्रजाजनोंसे सम्मानित होते हुए वे अपने शोभाशाली भवनमें चले गये॥ ४८॥

नगरनिवासी मनुष्योंने राजाकी बातें सुनकर मन-ही-मन यह अनुभव किया कि हमें शीघ्र ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होगी, फिर भी महाराजकी आज्ञा लेकर अपने घरोंको गये और अत्यन्त हर्षसे भरकर अभीष्ट-सिद्धिके उपलक्ष्यमें देवताओंकी पूजा करने लगे॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा सर्ग

श्रीरामको राज्य देनेका निश्चय करके राजाका सुमन्त्रद्वारा पुनः श्रीरामको बुलवाकर उन्हें आवश्यक बातें बताना, श्रीरामका कौसल्याके भवनमें जाकर माताको यह समाचार बताना और मातासे आशीर्वाद पाकर लक्ष्मणसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके अपने महलमें जाना

राजसभासे पुरवासियोंके चले जानेपर कार्यसिद्धिके योग्य देश-कालके नियमको जाननेवाले प्रभावशाली नरेशने पुनः मन्त्रियोंके साथ सलाह करके यह निश्चय किया कि 'कल ही पुष्य-नक्षत्र होगा, अतः कल ही मुझे अपने पुत्र कमलनयन श्रीरामका युवराजके पदपर अभिषेक कर देना चाहिये'॥ १-२॥

तदनन्तर अन्तःपुरमें जाकर महाराज दशरथने सूतको बुलाया और आज्ञा दी—'जाओ, श्रीरामको एक बार फिर यहाँ बुला लाओ'॥ ३॥

उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्र श्रीरामको शीघ्र बुला लानेके लिये पुनः उनके महलमें गये॥ ४॥

द्वारपालोंने श्रीरामको सुमन्त्रके पुनः आगमनकी सूचना दी। उनका आगमन सुनते ही श्रीरामके मनमें संदेह हो गया॥ ५॥

उन्हें भीतर बुलाकर श्रीरामने उनसे बड़ी उतावलीके साथ पूछा—'आपको पुनः यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ी?' यह पूर्णरूपसे बताइये॥ ६॥

तब सूतने उनसे कहा—'महाराज आपसे मिलना चाहते हैं। मेरी इस बातको सुनकर वहाँ जाने या न जानेका निर्णय आप स्वयं करें'॥ ७॥

सूतका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी महाराज दशरथका पुनः दर्शन करनेके लिये तुरंत उनके महलकी ओर चल दिये॥ ८॥

श्रीरामको आया हुआ सुनकर राजा दशरथने उनसे प्रिय तथा उत्तम बात कहनेके लिये उन्हें महलके भीतर बुला लिया॥ ९॥

पिताके भवनमें प्रवेश करते ही श्रीमान् रघुनाथजीने उन्हें देखा और दूरसे ही हाथ जोड़कर वे उनके चरणोंमें पड़ गये॥ १०॥

प्रणाम करते हुए श्रीरामको उठाकर महाराजने छातीसे लगा लिया और उन्हें बैठनेके लिये आसन देकर पुनः उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ११॥

'श्रीराम! अब मैं बूढ़ा हुआ। मेरी आयु बहुत अधिक हो गयी। मैंने बहुत-से मनोवाञ्छित भोग भोग

लिये, अन्न और बहुत-सी दक्षिणाओंसे युक्त सैकड़ों यज्ञ भी कर लिये॥ १२॥

'पुरुषोत्तम! तुम मेरे परम प्रिय अभीष्ट संतानके रूपमें प्राप्त हुए जिसकी इस भूमण्डलमें कहीं उपमा नहीं है, मैंने दान, यज्ञ और स्वाध्याय भी कर लिये॥ १३॥

'वीर! मैंने अभीष्ट सुखोंका भी अनुभव कर लिया। मैं देवता, ऋषि, पितर और ब्राह्मणोंके तथा अपने ऋणसे भी उऋण हो गया॥ १४॥

'अब तुम्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेके सिवा और कोई कर्तव्य मेरे लिये शेष नहीं रह गया है, अत: मैं तुमसे जो कुछ कहूँ, मेरी उस आज्ञाका तुम्हें पालन करना चाहिये॥ १५॥

'बेटा! अब सारी प्रजा तुम्हें अपना राजा बनाना चाहती है, अत: मैं तुम्हें युवराजपदपर अभिषिक्त करूँगा॥ १६॥

'रघुकुलनन्दन श्रीराम! आजकल मुझे बड़े बुरे सपने दिखायी देते हैं। दिनमें वज्रपातके साथ-साथ बड़ा भयंकर शब्द करनेवाली उल्काएँ भी गिर रही हैं॥ १७॥

'श्रीराम! ज्योतिषियोंका कहना है कि मेरे जन्म-नक्षत्रको सूर्य, मङ्गल और राहु नामक भयंकर ग्रहोंने आक्रान्त कर लिया है॥ १८॥

'ऐसे अशुभ लक्षणोंका प्राकट्य होनेपर प्राय: राजा घोर आपत्तिमें पड़ जाता है और अन्ततोगत्वा उसकी मृत्यु भी हो जाती है॥ १९॥

'अत: रघुनन्दन! जबतक मेरे चित्तमें मोह नहीं छा जाता, तबतक ही तुम युवराज-पदपर अपना अभिषेक करा लो; क्योंकि प्राणियोंकी बुद्धि चञ्चल होती है॥

'आज चन्द्रमा पुष्यसे एक नक्षत्र पहले पुनर्वसुपर विराजमान हैं, अत: निश्चय ही कल वे पुष्यनक्षत्रपर रहेंगे—ऐसा ज्योतिषी कहते हैं॥ २१॥

'इसलिये उस पुष्यनक्षत्रमें ही तुम अपना अभिषेक करा लो। शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! मेरा मन इस कार्यमें बहुत शीघ्रता करनेको कहता है। इस कारण कल अवश्य ही मैं तुम्हारा युवराजपदपर अभिषेक कर दूँगा॥ २२॥

'अत: तुम इस समयसे लेकर सारी रात इन्द्रियसंयमपूर्वक रहते हुए वधू सीताके साथ उपवास करो और कुशकी शय्यापर सोओ॥ २३॥

'आज तुम्हारे सुहृद् सावधान रहकर सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें; क्योंकि इस प्रकारके शुभ कार्योंमें बहुत-से विघ्न आनेकी सम्भावना रहती है॥ २४॥

'जबतक भरत इस नगरसे बाहर अपने मामाके यहाँ निवास करते हैं, तबतक ही तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत होता है॥ २५॥

'इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे भाई भरत सत्पुरुषोंके आचार-व्यवहारमें स्थित हैं, अपने बड़े भाईका अनुसरण करनेवाले, धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय हैं तथापि मनुष्योंका चित्त प्राय: स्थिर नहीं रहता—ऐसा मेरा मत है। रघुनन्दन! धर्मपरायण सत्पुरुषोंका मन भी विभिन्न कारणोंसे राग-द्वेषादिसे संयुक्त हो जाता है' ॥ २६-२७॥

राजाके इस प्रकार कहने और कल होनेवाले राज्याभिषेकके निमित्त व्रतपालनके लिये जानेकी आज्ञा देनेपर श्रीरामचन्द्रजी पिताको प्रणाम करके अपने महलमें गये॥ २८॥

राजाने राज्याभिषेकके लिये व्रतपालनके निमित्त जो आज्ञा दी थी, उसे सीताको बतानेके लिये अपने महलके भीतर प्रवेश करके जब श्रीरामने वहाँ सीताको नहीं देखा, तब वे तत्काल ही वहाँसे निकलकर माताके अन्त:पुरमें चले गये॥ २९॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा माता कौसल्या रेशमी वस्त्र पहने मौन हो देवमन्दिरमें बैठकर देवताकी आराधनामें लगी हैं और पुत्रके लिये राजलक्ष्मीकी याचना कर रही हैं॥ ३०॥

श्रीरामके राज्याभिषेकका प्रिय समाचार सुनकर सुमित्रा और लक्ष्मण वहाँ पहलेसे ही आ गये थे तथा बादमें सीता वहीं बुला ली गयी थीं॥ ३१॥

श्रीरामचन्द्रजी जब वहाँ पहुँचे, उस समय भी कौसल्या नेत्र बंद किये ध्यान लगाये बैठी थीं और सुमित्रा, सीता तथा लक्ष्मण उनकी सेवामें खड़े थे॥ ३२॥

पुष्यनक्षत्रके योगमें पुत्रके युवराजपदपर अभिषिक्त होनेकी बात सुनकर वे उसकी मङ्गलकामनासे प्राणायामके द्वारा परमपुरुष नारायणका ध्यान कर रही थीं॥ ३३॥

इस प्रकार नियममें लगी हुई माताके निकट उसी अवस्थामें जाकर श्रीरामने उनको प्रणाम किया और उन्हें हर्ष प्रदान करते हुए यह श्रेष्ठ बात कही—॥ ३४॥

'माँ! पिताजीने मुझे प्रजापालनके कर्ममें नियुक्त किया है। कल मेरा अभिषेक होगा। जैसा कि मेरे लिये पिताजीका आदेश है, उसके अनुसार सीताको भी मेरे साथ इस रातमें उपवास करना होगा। उपाध्यायोंने ऐसी ही बात बतायी थी, जिसे पिताजीने मुझसे कहा है॥

'अत: कल होनेवाले अभिषेकके निमित्तसे आज मेरे और सीताके लिये जो-जो मङ्गलकार्य आवश्यक हों, वे सब कराओ'॥ ३७॥

चिरकालसे माताके हृदयमें जिस बातकी अभिलाषा थी, उसकी पूर्तिको सूचित करनेवाली यह बात सुनकर माता कौसल्याने आनन्दके आँसू बहाते हुए गद्‌गद कण्ठसे इस प्रकार कहा—॥ ३८॥

'बेटा श्रीराम! चिरञ्जीवी होओ। तुम्हारे मार्गमें विघ्न डालनेवाले शत्रु नष्ट हो जायँ। तुम राजलक्ष्मीसे युक्त होकर मेरे और सुमित्राके बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करो॥

'बेटा! तुम मेरे द्वारा किसी मङ्गलमय नक्षत्रमें उत्पन्न हुए थे, जिससे तुमने अपने गुणोंद्वारा पिता दशरथको प्रसन्न कर लिया॥ ४०॥

'बड़े हर्षकी बात है कि मैंने कमलनयन भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये जो व्रत-उपवास आदि किया था, वह आज सफल हो गया। बेटा! उसीके फलसे यह इक्ष्वाकुकुलकी राजलक्ष्मी तुम्हें प्राप्त होनेवाली है'॥ ४१॥

माताके ऐसा कहनेपर श्रीरामने विनीतभावसे हाथ जोड़कर खड़े हुए अपने भाई लक्ष्मणकी ओर देखकर मुसकराते हुए-से कहा—॥ ४२॥

'लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वीके राज्यका शासन (पालन) करो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। यह राजलक्ष्मी तुम्हींको प्राप्त हो रही है॥ ४३॥

'सुमित्रानन्दन! तुम अभीष्ट भोगों और राज्यके श्रेष्ठ फलोंका उपभोग करो। तुम्हारे लिये ही मैं इस जीवन तथा राज्यकी अभिलाषा करता हूँ'॥ ४४॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीरामने दोनों माताओंको प्रणाम किया और सीताको भी साथ चलनेकी आज्ञा दिलाकर वे उनको लिये हुए अपने महलमें चले गये॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

राजा दशरथके अनुरोधसे वसिष्ठजीका सीतासहित श्रीरामको उपवासव्रतकी दीक्षा देकर आना और राजाको इस समाचारसे अवगत कराना; राजाका अन्तःपुरमें प्रवेश

उधर महाराज दशरथ जब श्रीरामचन्द्रजीको दूसरे दिन होनेवाले अभिषेकके विषयमें आवश्यक संदेश दे चुके, तब अपने पुरोहित वसिष्ठजीको बुलाकर बोले—॥ १॥

'नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले तपोधन! आप जाइये और विघ्ननिवारणरूप कल्याणकी सिद्धि तथा राज्यकी प्राप्तिके लिये बहूसहित श्रीरामसे उपवासव्रतका पालन कराइये'॥ २॥

तब राजासे 'तथास्तु' कहकर वेदवेत्ता विद्वानोंमें श्रेष्ठ तथा उत्तम व्रतधारी स्वयं भगवान् वसिष्ठ मन्त्रवेत्ता वीर श्रीरामको उपवास-व्रतकी दीक्षा देनेके लिये ब्राह्मणके चढ़नेयोग्य जुते-जुताये श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो श्रीरामके महलकी ओर चल दिये॥ ३-४॥

श्रीरामका भवन श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल था, उसके पास पहुँचकर मुनिवर वसिष्ठने उसकी तीन ड्योढ़ियोंमें रथके द्वारा ही प्रवेश किया॥ ५॥

वहाँ पधारे हुए उन सम्माननीय महर्षिका सम्मान करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी बड़ी उतावलीके साथ वेगपूर्वक घरसे बाहर निकले॥ ६॥

उन मनीषी महर्षिके रथके समीप शीघ्रतापूर्वक जाकर श्रीरामने स्वयं उनका हाथ पकड़कर उन्हें रथसे नीचे उतारा॥ ७॥

श्रीराम प्रिय वचन सुननेके योग्य थे। उन्हें इतना विनीत देखकर पुरोहितजीने 'वत्स!' कहकर पुकारा और उन्हें प्रसन्न करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा—॥ ८॥

'श्रीराम! तुम्हारे पिता तुमपर बहुत प्रसन्न हैं, क्योंकि तुम्हें उनसे राज्य प्राप्त होगा; अत: आजकी रातमें तुम वधू सीताके साथ उपवास करो॥ ९॥

'रघुनन्दन! जैसे नहुषने ययातिका अभिषेक किया था, उसी प्रकार तुम्हारे पिता महाराज दशरथ कल प्रात:काल बड़े प्रेमसे तुम्हारा युवराज-पदपर अभिषेक करेंगे'॥ १०॥

ऐसा कहकर उन व्रतधारी एवं पवित्र महर्षिने मन्त्रोच्चारणपूर्वक सीतासहित श्रीरामको उस समय उपवास-व्रतकी दीक्षा दी॥ ११॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने महाराजके भी गुरु वसिष्ठका यथावत् पूजन किया; फिर वे मुनि श्रीरामकी अनुमति ले उनके महलसे बाहर निकले॥ १२॥

श्रीराम भी वहाँ प्रियवचन बोलनेवाले सुहृदोंके साथ कुछ देरतक बैठे रहे; फिर उनसे सम्मानित हो उन सबकी अनुमति ले पुनः अपने महलके भीतर चले गये॥ १३॥

उस समय श्रीरामका भवन हर्षोत्फुल्ल नर-नारियोंसे भरा हुआ था और मतवाले पक्षियोंके कलरवोंसे युक्त खिले हुए कमलवाले तालाबके समान शोभा पा रहा था॥ १४॥

राजभवनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामके महलसे बाहर आकर वसिष्ठजीने सारे मार्ग मनुष्योंकी भीड़से भरे हुए देखे॥ १५॥

अयोध्याकी सड़कोंपर सब ओर झुंड-के-झुंड मनुष्य, जो श्रीरामका राज्याभिषेक देखनेके लिये उत्सुक थे, खचाखच भरे हुए थे; सारे राजमार्ग उनसे घिरे हुए थे॥

जनसमुदायरूपी लहरोंके परस्पर टकरानेसे उस समय जो हर्षध्वनि प्रकट होती थी, उससे व्याप्त हुआ राजमार्गका कोलाहल समुद्रकी गर्जनाकी भाँति सुनायी देता था॥ १७॥

उस दिन वन और उपवनोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित हुई अयोध्यापुरीके घर-घरमें ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रही थीं; वहाँकी सभी गलियों और सड़कोंको झाड़-बुहारकर वहाँ छिड़काव किया गया था॥ १८॥

स्त्रियों और बालकोंसहित अयोध्यावासी जनसमुदाय श्रीरामके राज्याभिषेकको देखनेकी इच्छासे उस समय शीघ्र सूर्योदय होनेकी कामना कर रहा था॥ १९॥

अयोध्याका वह महान् उत्सव प्रजाओंके लिये अलंकाररूप और सब लोगोंके आनन्दको बढ़ानेवाला था; वहाँके सभी मनुष्य उसे देखनेके लिये उत्कण्ठित हो रहे थे॥ २०॥

इस प्रकार मनुष्योंकी भीड़से भरे हुए राजमार्गपर पहुँचकर पुरोहितजी उस जनसमूहको एक ओर करते हुए-से धीरे-धीरे राजमहलकी ओर गये॥ २१॥

श्वेत जलद-खण्डके समान सुशोभित होनेवाले महलके ऊपर चढ़कर वसिष्ठजी राजा दशरथसे उसी प्रकार मिले, जैसे बृहस्पति देवराज इन्द्रसे मिल रहे हों॥ २२॥

उन्हें आया देख राजा सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये और पूछने लगे—'मुने! क्या आपने मेरा अभिप्राय सिद्ध किया।' वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'हाँ! कर दिया'॥ २३॥

उनके साथ ही उस समय वहाँ बैठे हुए अन्य सभासद् भी पुरोहितका समादर करते हुए अपने-अपने आसनोंसे उठकर खड़े हो गये॥ २४॥

तदनन्तर गुरुजीकी आज्ञा ले राजा दशरथने उस जनसमुदायको विदा करके पर्वतकी कन्दरामें घुसनेवाले सिंहके समान अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया॥ २५॥

सुन्दर वेश-भूषा धारण करनेवाली सुन्दरियोंसे भरे हुए इन्द्रसदनके समान उस मनोहर राजभवनको अपनी शोभासे प्रकाशित करते हुए राजा दशरथने उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे चन्द्रमा ताराओंसे भरे हुए आकाशमें पदार्पण करते हैं॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठा सर्ग

सीतासहित श्रीरामका नियमपरायण होना, हर्षमें भरे पुरवासियोंद्वारा नगरकी सजावट, राजाके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना तथा अयोध्यापुरीमें जनपदवासी मनुष्योंकी भीड़का एकत्र होना

पुरोहितजीके चले जानेपर मनको संयममें रखनेवाले श्रीरामने स्नान करके अपनी विशाललोचना पत्नीके साथ श्रीनारायणकी* उपासना आरम्भ की॥ १॥

उन्होंने हविष्य-पात्रको सिर झुकाकर नमस्कार

* ऐसा माना जाता है कि यहाँ नारायण शब्दसे श्रीरङ्गनाथजीकी वह अर्चा-मूर्ति अभिप्रेत है; जो कि पूर्वजोंके समयसे ही दीर्घकालतक अयोध्यामें उपास्य देवताके रूपमें रही। बादमें श्रीरामजीने वह मूर्ति विभीषणको दे दी थी, जिससे वह वर्तमान श्रीरंगक्षेत्रमें पहुँची। इसकी विस्तृत कथा पद्मपुराणमें है।

किया और प्रज्वलित अग्निमें महान् देवता (शेषशायी नारायण) की प्रसन्नताके लिये विधिपूर्वक उस हविष्यकी आहुति दी॥ २॥

तत्पश्चात् अपने प्रिय मनोरथकी सिद्धिका संकल्प लेकर उन्होंने उस यज्ञशेष हविष्यका भक्षण किया और मनको संयममें रखकर मौन हो वे राजकुमार श्रीराम विदेहनन्दिनी सीताके साथ भगवान् विष्णुके सुन्दर मन्दिरमें श्रीनारायणदेवका ध्यान करते हुए वहाँ अच्छी तरह बिछी हुई कुशकी चटाईपर सोये॥ ३-४॥

जब तीन पहर बीतकर एक ही पहर रात शेष रह गयी, तब वे शयनसे उठ बैठे। उस समय उन्होंने सभामण्डपको सजानेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी॥ ५॥

वहाँ सूत, मागध और बंदियोंकी श्रवणसुखद वाणी सुनते हुए श्रीरामने प्रातःकालिक संध्योपासना की; फिर एकाग्रचित्त होकर वे जप करने लगे॥ ६॥

तदनन्तर रेशमी वस्त्र धारण किये हुए श्रीरामने मस्तक झुकाकर भगवान् मधुसूदनको प्रणाम और उनका स्तवन किया; इसके बाद ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया॥ ७॥

उन ब्राह्मणोंका पुण्याहवाचनसम्बन्धी गम्भीर एवं मधुर घोष नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिसे व्याप्त होकर सारी अयोध्यापुरीमें फैल गया॥ ८॥

उस समय अयोध्यावासी मनुष्योंने जब यह सुना कि श्रीरामचन्द्रजीने सीताके साथ उपवास-व्रत आरम्भ कर दिया है, तब उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ९॥

सबेरा होनेपर श्रीरामके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर समस्त पुरवासी अयोध्यापुरीको सजानेमें लग गये॥ १०॥

जिनके शिखरोंपर श्वेत बादल विश्राम करते हैं, उन पर्वतोंके समान गगनचुम्बी देवमन्दिरों, चौराहों, गलियों, देववृक्षों, समस्त सभाओं, अट्टालिकाओं, नाना प्रकारकी बेचनेयोग्य वस्तुओंसे भरी हुई व्यापारियोंकी बड़ी-बड़ी दूकानों तथा कुटुम्बी गृहस्थोंके सुन्दर समृद्धिशाली भवनोंमें और दूरसे दिखायी देनेवाले वृक्षोंपर भी ऊँची ध्वजाएँ लगायी गयीं और उनमें पताकाएँ फहरायी गयीं॥ ११—१३॥

उस समय वहाँकी जनता सब ओर नटों और नर्तकोंके समूहों तथा गानेवाले गायकोंकी मन और कानोंको सुख देनेवाली वाणी सुनती थी॥ १४॥

श्रीरामके राज्याभिषेकका शुभ अवसर प्राप्त होनेपर प्रायः सब लोग चौराहोंपर और घरोंमें भी आपसमें श्रीरामके राज्याभिषेककी ही चर्चा करते थे॥ १५॥

घरोंके दरवाजोंपर खेलते हुए झुंड-के-झुंड बालक भी आपसमें श्रीरामके राज्याभिषेककी ही बातें करते थे॥ १६॥

पुरवासियोंने श्रीरामके राज्याभिषेकके समय राजमार्गपर फूलोंकी भेंट चढ़ाकर वहाँ सब ओर धूपकी सुगन्ध फैला दी; ऐसा करके उन्होंने राजमार्गको बहुत सुन्दर बना दिया॥ १७॥

राज्याभिषेक होते-होते रात हो जानेकी आशङ्कासे प्रकाशकी व्यवस्था करनेके लिये पुरवासियोंने सब ओर सड़कोंके दोनों तरफ वृक्षकी भाँति अनेक शाखाओंसे युक्त दीपस्तम्भ खड़े कर दिये॥ १८॥

इस प्रकार नगरको सजाकर श्रीरामके युवराजपदपर अभिषेककी अभिलाषा रखनेवाले समस्त पुरवासी चौराहों और सभाओंमें झुंड-के-झुंड एकत्र हो वहाँ परस्पर बातें करते हुए महाराज दशरथकी प्रशंसा करने लगे—॥

'अहो! इक्ष्वाकुकुलको आनन्दित करनेवाले ये राजा दशरथ बड़े महात्मा हैं, जो कि अपने-आपको बूढ़ा हुआ जानकर श्रीरामका राज्याभिषेक करने जा रहे हैं॥ २१॥

'भगवान्‌का हम सब लोगोंपर बड़ा अनुग्रह है कि श्रीरामचन्द्रजी हमारे राजा होंगे और चिरकालतक हमारी रक्षा करते रहेंगे; क्योंकि वे समस्त लोकोंके निवासियोंमें जो भलाई या बुराई है, उसे अच्छी तरह देख चुके हैं॥ २२॥

'श्रीरामका मन कभी उद्धत नहीं होता। वे विद्वान्, धर्मात्मा और अपने भाइयोंपर स्नेह रखनेवाले हैं। उनका अपने भाइयोंपर जैसा स्नेह है, वैसा ही हमलोगोंपर भी है॥ २३॥

'धर्मात्मा एवं निष्पाप राजा दशरथ चिरकालतक जीवित रहें, जिनके प्रसादसे हमें श्रीरामके राज्याभिषेकका दर्शन सुलभ होगा'॥ २४॥

अभिषेकका वृत्तान्त सुनकर नाना दिशाओंसे उस जनपदके लोग भी वहाँ पहुँचे थे, उन्होंने उपर्युक्त बातें कहनेवाले पुरवासियोंकी सभी बातें सुनीं॥ २५॥

वे सब-के-सब श्रीरामका राज्याभिषेक देखनेके लिये अनेक दिशाओंसे अयोध्यापुरीमें आये थे। उन जनपदनिवासी मनुष्योंने श्रीरामपुरीको अपनी उपस्थितिसे भर दिया था॥ २६॥

वहाँ मनुष्योंकी भीड़-भाड़ बढ़नेसे जो जनरव सुनायी देता था, वह पर्वोंके दिन बढ़े हुए वेगवाले महासागरकी गर्जनाके समान जान पड़ता था॥ २७॥

उस समय श्रीरामके अभिषेकका उत्सव देखनेके लिये पधारे हुए जनपदवासी मनुष्योंद्वारा सब ओरसे भरा हुआ वह इन्द्रपुरीके समान नगर अत्यन्त कोलाहलपूर्ण होनेके कारण मकर, नक्र, तिमिङ्गल आदि विशाल जल-जन्तुओंसे परिपूर्ण महासागरके समान प्रतीत होता था॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

श्रीरामके अभिषेकका समाचार पाकर खिन्न हुई मन्थराका कैकेयीको उभाड़ना, परंतु प्रसन्न हुई कैकेयीका उसे पुरस्काररूपमें आभूषण देना और वर माँगनेके लिये प्रेरित करना

रानी कैकेयीके पास एक दासी थी, जो उसके मायकेसे आयी हुई थी। वह सदा कैकेयीके ही साथ रहा करती थी। उसका जन्म कहाँ हुआ था? उसके देश और माता-पिता कौन थे? इसका पता किसीको नहीं था। अभिषेकसे एक दिन पहले वह स्वेच्छासे ही कैकेयीके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् महलकी छतपर जा चढ़ी॥ १॥

उस दासीका नाम था—मन्थरा। उसने उस महलकी छतसे देखा—अयोध्याकी सड़कोंपर छिड़काव किया गया है और सारी पुरीमें यत्र-तत्र खिले हुए कमल और उत्पल बिखेरे गये हैं॥ २॥

सब ओर बहुमूल्य पताकाएँ फहरा रही हैं। ध्वजाओंसे इस पुरीकी अपूर्व शोभा हो रही है। राजमार्गोंपर चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया है तथा अयोध्यापुरीके सब लोग उबटन लगाकर सिरके ऊपरसे स्नान किये हुए हैं॥ ३॥

श्रीरामके दिये हुए माल्य और मोदक हाथमें लिये श्रेष्ठ ब्राह्मण हर्षनाद कर रहे हैं, देवमन्दिरोंके दरवाजे चूने और चन्दन आदिसे लीपकर सफेद एवं सुन्दर बनाये गये हैं, सब प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनि हो रही है, अत्यन्त हर्षमें भरे हुए मनुष्योंसे सारा नगर परिपूर्ण है और चारों ओर वेदपाठकोंकी ध्वनि गूँज रही है, श्रेष्ठ हाथी और घोड़े हर्षसे उत्फुल्ल दिखायी देते हैं तथा गाय-बैल प्रसन्न होकर रँभा रहे हैं॥ ४-५॥

सारे नगरनिवासी हर्षजनित रोमाञ्चसे युक्त और आनन्दमग्न हैं तथा नगरमें सब ओर श्रेणीबद्ध ऊँचे-ऊँचे ध्वज फहरा रहे हैं। अयोध्याकी ऐसी शोभाको देखकर मन्थराको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ६॥

उसने पासके ही कोठेपर रामकी धायको खड़ी देखा, उसके नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए थे और शरीरपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पा रही थी। उसे देखकर मन्थराने उससे पूछा— ॥ ७॥

'धाय! आज श्रीरामचन्द्रजीकी माता अपने किसी अभीष्ट मनोरथके साधनमें तत्पर हो अत्यन्त हर्षमें भरकर लोगोंको धन क्यों बाँट रही हैं? आज यहाँके सभी मनुष्योंको इतनी अधिक प्रसन्नता क्यों है? इसका कारण मुझे बताओ! आज महाराज दशरथ अत्यन्त प्रसन्न होकर कौन-सा कर्म करायेंगे'॥ ८-९॥

श्रीरामकी धाय तो हर्षसे फूली नहीं समाती थी, उसने कुब्जाके पूछनेपर बड़े आनन्दके साथ उसे बताया—'कुब्जे! रघुनाथजीको बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त होनेवाली है। कल महाराज दशरथ पुष्यनक्षत्रके योगमें क्रोधको जीतनेवाले, पापरहित, रघुकुलनन्दन श्रीरामको युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे'॥ १०-११॥

धायका यह वचन सुनकर कुब्जा मन-ही-मन कुढ़ गयी और उस कैलास-शिखरकी भाँति उज्ज्वल एवं गगनचुम्बी प्रासादसे तुरंत ही नीचे उतर गयी॥ १२॥

मन्थराको इसमें कैकेयीका अनिष्ट दिखायी देता था, वह क्रोधसे जल रही थी। उसने महलमें लेटी हुई कैकेयीके पास जाकर इस प्रकार कहा— ॥ १३॥

'मूर्खे! उठ। क्या सो रही है? तुझपर बड़ा भारी भय आ रहा है। अरी! तेरे ऊपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा है, फिर भी तुझे अपनी इस दुरवस्थाका बोध नहीं होता?'॥ १४॥

'तेरे प्रियतम तेरे सामने ऐसा आकार बनाये आते हैं मानो सारा सौभाग्य तुझे ही अर्पित कर देते हों, परंतु पीठ-पीछे वे तेरा अनिष्ट करते हैं। तू उन्हें अपनेमें अनुरक्त जानकर सौभाग्यकी डींग हाँका करती है, परंतु

जैसे ग्रीष्म ऋतुमें नदीका प्रवाह सूखता चला जाता है, उसी प्रकार तेरा वह सौभाग्य अब अस्थिर हो गया है—तेरे हाथसे चला जाना चाहता है!'॥ १५॥

इष्टमें भी अनिष्टका दर्शन करानेवाली रोषभरी कुब्जाके इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर कैकेयीके मनमें बड़ा दु:ख हुआ॥ १६॥

उस समय केकयराजकुमारीने कुब्जासे पूछा—'मन्थरे! कोई अमङ्गलकी बात तो नहीं हो गयी; क्योंकि तेरे मुखपर विषाद छा रहा है और तू मुझे बहुत दु:खी दिखायी देती है'॥ १७॥

मन्थरा बातचीत करनेमें बड़ी कुशल थी, वह कैकेयीके मीठे वचन सुनकर और भी खिन्न हो गयी, उसके प्रति अपनी हितैषिता प्रकट करती हुई कुपित हो उठी और कैकेयीके मनमें श्रीरामके प्रति भेदभाव और विषाद उत्पन्न करती हुई इस प्रकार बोली—॥

'देवि! तुम्हारे सौभाग्यके महान् विनाशका कार्य आरम्भ हो गया है, जिसका कोई प्रतीकार नहीं है। कल महाराज दशरथ श्रीरामको युवराजके पदपर अभिषिक्त कर देंगे॥ २०॥

'यह समाचार पाकर मैं दु:ख और शोकसे व्याकुल हो अगाध भयके समुद्रमें डूब गयी हूँ, चिन्ताकी आगसे मानो जली जा रही हूँ और तुम्हारे हितकी बात बतानेके लिये यहाँ आयी हूँ'॥ २१॥

'केकयनन्दिनि! यदि तुमपर कोई दु:ख आया तो उससे मुझे भी बड़े भारी दु:खमें पड़ना होगा। तुम्हारी उन्नतिमें ही मेरी भी उन्नति है, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

'देवि! तुम राजाओंके कुलमें उत्पन्न हुई हो और एक महाराजकी महारानी हो, फिर भी राजधर्मोंकी उग्रताको कैसे नहीं समझ रही हो?॥ २३॥

'तुम्हारे स्वामी धर्मकी बातें तो बहुत करते हैं, परंतु हैं बड़े शठ। मुँहसे चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं, परंतु हृदयके बड़े क्रूर हैं। तुम समझती हो कि वे सारी बातें शुद्ध भावसे ही कहते हैं, इसीलिये आज उनके द्वारा तुम बेतरह ठगी गयी॥ २४॥

'तुम्हारे पति तुम्हें व्यर्थ सान्त्वना देनेके लिये यहाँ उपस्थित होते हैं, वे ही अब रानी कौसल्याको अर्थसे सम्पन्न करने जा रहे हैं॥ २५॥

'उनका हृदय इतना दूषित है कि भरतको तो उन्होंने तुम्हारे मायके भेज दिया और कल सबेरे ही अवधके निष्कण्टक राज्यपर वे श्रीरामका अभिषेक करेंगे॥ २६॥

'बाले! जैसे माता हितकी कामनासे पुत्रका पोषण करती है, उसी प्रकार 'पति' कहलानेवाले जिस व्यक्तिका तुमने पोषण किया है, वह वास्तवमें शत्रु निकला। जैसे कोई अज्ञानवश सर्पको अपनी गोदमें लेकर उसका लालन करे, उसी प्रकार तुमने उन सर्पवत् बर्ताव करनेवाले महाराजको अपने अङ्कमें स्थान दिया है॥ २७॥

'उपेक्षित शत्रु अथवा सर्प जैसा बर्ताव कर सकता है, राजा दशरथने आज पुत्रसहित तुझ कैकेयीके प्रति वैसा ही बर्ताव किया है॥ २८॥

'बाले! तुम सदा सुख भोगनेके योग्य हो, परंतु मनमें पाप (दुर्भावना) रखकर ऊपरसे झूठी सान्त्वना देनेवाले महाराजने अपने राज्यपर श्रीरामको स्थापित करनेका विचार करके आज सगे-सम्बन्धियोंसहित तुमको मानो मौतके मुखमें डाल दिया है॥ २९॥

'केकयराजकुमारी! तुम दु:खजनक बात सुनकर भी मेरी ओर इस तरह देख रही हो, मानो तुम्हें प्रसन्नता हुई हो और मेरी बातोंसे तुम्हें विस्मय हो रहा हो, परंतु यह विस्मय छोड़ो और जिसे करनेका समय आ गया है, अपने उस हितकर कार्यको शीघ्र करो तथा ऐसा करके अपनी, अपने पुत्रकी और मेरी भी रक्षा करो'॥ ३०॥

मन्थराकी यह बात सुनकर सुन्दर मुखवाली कैकेयी सहसा शय्यासे उठ बैठी। उसका हृदय हर्षसे भर गया। वह शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलकी भाँति उद्दीप्त हो उठी॥ ३१॥

कैकेयी मन-ही-मन अत्यन्त संतुष्ट हुई। विस्मयविमुग्ध हो मुसकराते हुए उसने कुब्जाको पुरस्कारके रूपमें एक बहुत सुन्दर दिव्य आभूषण प्रदान किया॥ ३२॥

कुब्जाको वह आभूषण देकर हर्षसे भरी हुई रमणीशिरोमणि कैकेयीने पुन: मन्थरासे इस प्रकार कहा—'मन्थरे! यह तूने मुझे बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। तूने मेरे लिये जो यह प्रिय संवाद सुनाया, इसके लिये मैं तेरा और कौन-सा उपकार करूँ॥ ३३-३४॥

'मैं भी राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती। अत: यह जानकर कि राजा श्रीरामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है॥ ३५॥

'मन्थरे! तू मुझसे प्रिय वस्तु पानेके योग्य है। मेरे लिये श्रीरामके अभिषेकसम्बन्धी इस समाचारसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृतके समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। ऐसी परम प्रिय बात तुमने कही है; अतः अब यह प्रिय संवाद सुनानेके बाद तू कोई श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं उसे अवश्य दूँगी'॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

मन्थराका पुनः श्रीरामके राज्याभिषेकको कैकेयीके लिये अनिष्टकारी बताना, कैकेयीका श्रीरामके गुणोंको बताकर उनके अभिषेकका समर्थन करना तत्पश्चात् कुब्जाका पुनः श्रीरामराज्यको भरतके लिये भयजनक बताकर कैकेयीको भड़काना

यह सुनकर मन्थराने कैकेयीकी निन्दा करके उसके दिये हुए आभूषणको उठाकर फेंक दिया और कोप तथा दुःखसे भरकर वह इस प्रकार बोली—॥ १॥

'रानी! तुम बड़ी नादान हो। अहो! तुमने यह बेमौके हर्ष किसलिये प्रकट किया? तुम्हें शोकके स्थानपर प्रसन्नता कैसे हो रही है? अरी! तुम शोकके समुद्रमें डूबी हुई हो, तो भी तुम्हें अपनी इस विपन्नावस्थाका बोध नहीं हो रहा है॥ २॥

'देवि! महान् संकटमें पड़नेपर जहाँ तुम्हें शोक होना चाहिये, वहीं हर्ष हो रहा है। तुम्हारी यह अवस्था देखकर मुझे मन-ही-मन बड़ा क्लेश सहन करना पड़ता है। मैं दुःखसे व्याकुल हुई जाती हूँ॥ ३॥

'मुझे तुम्हारी दुर्बुद्धिके लिये ही अधिक शोक होता है। अरी! सौतका बेटा शत्रु होता है। वह सौतेली माँके लिये साक्षात् मृत्युके समान है। भला, उसके अभ्युदयका अवसर आया देख कौन बुद्धिमती स्त्री अपने मनमें हर्ष मानेगी॥ ४॥

'यह राज्य भरत और राम दोनोंके लिये साधारण भोग्यवस्तु है, इसपर दोनोंका समान अधिकार है, इसलिये श्रीरामको भरतसे ही भय है। यही सोचकर मैं विषादमें डूबी जाती हूँ; क्योंकि भयभीतसे ही भय प्राप्त होता है अर्थात् आज जिसे भय है, वही राज्य प्राप्त कर लेनेपर जब सबल हो जायगा, तब अपने भयके हेतुको उखाड़ फेंकेगा॥ ५॥

'महाबाहु लक्ष्मण सम्पूर्ण हृदयसे श्रीरामचन्द्रजीके अनुगत हैं। जैसे लक्ष्मण श्रीरामके अनुगत हैं, उसी तरह शत्रुघ्न भी भरतका अनुसरण करनेवाले हैं॥ ६॥

'भामिनि! उत्पत्तिके क्रमसे श्रीरामके बाद भरतका ही पहले राज्यपर अधिकार हो सकता है (अतः भरतसे भय होना स्वाभाविक है)। लक्ष्मण और शत्रुघ्न तो छोटे हैं; अतः उनके लिये राज्यप्राप्तिकी सम्भावना दूर है॥

'श्रीराम समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, विशेषतः क्षत्रियचरित्र (राजनीति) के पण्डित हैं तथा समयोचित कर्तव्यका पालन करनेवाले हैं; अतः उनका तुम्हारे पुत्रके प्रति जो क्रूरतापूर्ण बर्ताव होगा, उसे सोचकर मैं भयसे काँप उठती हूँ॥ ८॥

'वास्तवमें कौसल्या ही सौभाग्यवती हैं, जिनके पुत्रका कल पुष्यनक्षत्रके योगमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा युवराजके महान् पदपर अभिषेक होने जा रहा है॥ ९॥

'वे भूमण्डलका निष्कण्टक राज्य पाकर प्रसन्न होंगी; क्योंकि वे राजाकी विश्वासपात्र हैं और तुम दासीकी भाँति हाथ जोड़कर उनकी सेवामें उपस्थित होओगी॥ १०॥

'इस प्रकार हमलोगोंके साथ तुम भी कौसल्याकी दासी बनोगी और तुम्हारे पुत्र भरतको भी श्रीरामचन्द्रजीकी गुलामी करनी पड़ेगी॥ ११॥

'श्रीरामचन्द्रजीके अन्तःपुरकी परम सुन्दरी स्त्रियाँ—सीतादेवी और उनकी सखियाँ निश्चय ही बहुत प्रसन्न होंगी और भरतके प्रभुत्वका नाश होनेसे तुम्हारी बहुएँ शोकमग्न हो जायँगी'॥ १२॥

मन्थराको अत्यन्त अप्रसन्नताके कारण इस प्रकार बहकी-बहकी बातें करती देख देवी कैकेयीने श्रीरामके गुणोंकी ही प्रशंसा करते हुए कहा—॥ १३॥

'कुब्जे! श्रीराम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं; अतः युवराज होनेके योग्य वे ही हैं॥

'वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और भृत्योंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। कुब्जे! उनके अभिषेककी

बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है?॥ १५॥

'श्रीरामकी राज्यप्राप्तिके सौ वर्ष बाद नरश्रेष्ठ भरतको भी निश्चय ही अपने पिता-पितामहोंका राज्य मिलेगा॥ १६॥

'मन्थरे! ऐसे अभ्युदयकी प्राप्तिके समय, जब कि भविष्यमें कल्याण-ही-कल्याण दिखायी दे रहा है, तू इस प्रकार जलती हुई-सी संतप्त क्यों हो रही है?॥ १७॥

'मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही बल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम हैं; क्योंकि वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं॥ १८॥

'यदि श्रीरामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको मिला हुआ समझ; क्योंकि श्रीरामचन्द्र अपने भाइयोंको भी अपने ही समान समझते हैं'॥ १९॥

कैकेयीकी यह बात सुनकर मन्थराको बड़ा दुःख हुआ। वह लंबी और गरम साँस खींचकर कैकेयीसे बोली—॥ २०॥

'रानी! तुम मूर्खतावश अनर्थको ही अर्थ समझ रही हो। तुम्हें अपनी स्थितिका पता नहीं है। तुम दुःखके उस महासागरमें डूब रही हो, जो शोक (इष्टसे वियोगकी चिन्ता) और व्यसन (अनिष्टकी प्राप्तिके दुःख) से महान् विस्तारको प्राप्त हो रहा है॥ २१॥

'केकयराजकुमारी! जब श्रीरामचन्द्र राजा हो जायँगे, तब उनके बाद उनका जो पुत्र होगा, उसीको राज्य मिलेगा। भरत तो राजपरम्परासे अलग हो जायँगे॥ २२॥

'भामिनि! राजाके सभी पुत्र राज्यसिंहासनपर नहीं बैठते हैं; यदि सबको बिठा दिया जाय तो बड़ा भारी अनर्थ हो जाय॥ २३॥

'परमसुन्दरी केकयनन्दिनि! इसीलिये राजालोग राजकाजका भार ज्येष्ठ पुत्रपर ही रखते हैं। यदि ज्येष्ठ पुत्र गुणवान् न हो तो दूसरे गुणवान् पुत्रोंको भी राज्य सौंप देते हैं॥ २४॥

'पुत्रवत्सले! तुम्हारा पुत्र राज्यके अधिकारसे तो बहुत दूर हटा ही दिया जायगा, वह अनाथकी भाँति समस्त सुखोंसे भी वञ्चित हो जायगा॥ २५॥

'इसलिये मैं तुम्हारे ही हितकी बात सुझानेके लिये यहाँ आयी हूँ; परंतु तुम मेरा अभिप्राय तो समझती नहीं, उलटे सौतका अभ्युदय सुनकर मुझे पारितोषिक देने चली हो॥ २६॥

'याद रखो, यदि श्रीरामको निष्कण्टक राज्य मिल गया तो वे भरतको अवश्य ही इस देशसे बाहर निकाल देंगे अथवा उन्हें परलोकमें भी पहुँचा सकते हैं॥ २७॥

'छोटी अवस्थामें ही तुमने भरतको मामाके घर भेज दिया। निकट रहनेसे सौहार्द उत्पन्न होता है। यह बात स्थावर योनियोंमें भी देखी जाती है (लता और वृक्ष आदि एक-दूसरेके निकट होनेपर परस्पर आलिङ्गन-पाशमें बद्ध हो जाते हैं। यदि भरत यहाँ होते तो राजाका उनमें भी समानरूपसे स्नेह बढ़ता; अतः वे उन्हें भी आधा राज्य दे देते)॥ २८॥

'भरतके अनुरोधसे शत्रुघ्न भी उनके साथ ही चले गये (यदि वे यहाँ होते तो भरतका काम बिगड़ने नहीं पाता। क्योंकि—) जैसे लक्ष्मण रामके अनुगामी हैं, उसी प्रकार शत्रुघ्न भरतका अनुसरण करनेवाले हैं॥ २९॥

'सुना जाता है, जंगलकी लकड़ी बेचकर जीविका चलानेवाले कुछ लोगोंने किसी वृक्षको काटनेका निश्चय किया, परंतु वह वृक्ष कँटीली झाड़ियोंसे घिरा हुआ था; इसलिये वे उसे काट नहीं सके। इस प्रकार उन कँटीली झाड़ियोंने निकट रहनेके कारण उस वृक्षको महान् भयसे बचा लिया॥ ३०॥

'सुमित्राकुमार लक्ष्मण श्रीरामकी रक्षा करते हैं और श्रीराम उनकी। उन दोनोंका उत्तम भ्रातृ-प्रेम दोनों अश्विनीकुमारोंकी भाँति तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है॥ ३१॥

'इसलिये श्रीराम लक्ष्मणका तो किञ्चित् भी अनिष्ट नहीं करेंगे, परंतु भरतका अनिष्ट किये बिना वे रह नहीं सकते; इसमें संशय नहीं है॥ ३२॥

'अतः श्रीरामचन्द्र महाराजके महलसे ही सीधे वनको चले जायँ—मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है और इसीमें तुम्हारा परम हित है॥ ३३॥

'यदि भरत धर्मानुसार अपने पिताका राज्य प्राप्त कर लेंगे तो तुम्हारा और तुम्हारे पक्षके अन्य सब लोगोंका भी कल्याण होगा॥ ३४॥

'सौतेला भाई होनेके कारण जो श्रीरामका सहज शत्रु है, वह सुख भोगनेके योग्य तुम्हारा बालक भरत राज्य और धनसे वञ्चित हो राज्य पाकर समृद्धिशाली बने हुए श्रीरामके वशमें पड़कर कैसे जीवित रहेगा॥ ३५॥

'जैसे वनमें सिंह हाथियोंके यूथपतिपर आक्रमण करता है और वह भागा फिरता है, उसी प्रकार राजा राम भरतका तिरस्कार करेंगे; अतः उस तिरस्कारसे तुम भरतकी रक्षा करो॥ ३६॥

'तुमने पहले पतिका अत्यन्त प्रेम प्राप्त होनेके

कारण घमंडमें आकर जिनका अनादर किया था, वे ही तुम्हारी सौत श्रीराममाता कौसल्या पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे परम सौभाग्यशालिनी हो उठी हैं; अब वे तुमसे अपने वैरका बदला क्यों नहीं लेंगी॥ ३७॥

'भामिनि! जब श्रीराम अनेक समुद्रों और पर्वतोंसे युक्त समस्त भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लेंगे, तब तुम अपने पुत्र भरतके साथ ही दीन-हीन होकर अशुभ पराभवका पात्र बन जाओगी॥ ३८॥

'याद रखो, जब श्रीराम इस पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त कर लेंगे, तब निश्चय ही तुम्हारे पुत्र भरत नष्टप्राय हो जायँगे। अतः ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे पुत्रको तो राज्य मिले और शत्रुभूत श्रीरामका वनवास हो जाय'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

कुब्जाके कुचक्रसे कैकेयीका कोपभवनमें प्रवेश

मन्थराके ऐसा कहनेपर कैकेयीका मुख क्रोधसे तमतमा उठा। वह लंबी और गरम साँस खींचकर उससे इस प्रकार बोली—॥ १॥

'कुब्जे! मैं श्रीरामको शीघ्र ही यहाँसे वनमें भेजूँगी और तुरंत ही युवराजके पदपर भरतका अभिषेक कराऊँगी॥ २॥

'परंतु इस समय यह तो सोचो कि किस उपायसे अपना अभीष्ट साधन करूँ? भरतको राज्य प्राप्त हो जाय और श्रीराम उसे किसी तरह भी न पा सकें—यह काम कैसे बने?'॥ ३॥

देवी कैकेयीके ऐसा कहनेपर पापका मार्ग दिखानेवाली मन्थरा श्रीरामके स्वार्थपर कुठाराघात करती हुई वहाँ कैकेयीसे इस प्रकार बोली—॥ ४॥

'केकयनन्दिनि! अच्छा, अब देखो कि मैं क्या करती हूँ? तुम मेरी बात सुनो, जिससे केवल तुम्हारे पुत्र भरत ही राज्य प्राप्त करेंगे (श्रीराम नहीं)॥ ५॥

'कैकेयि! क्या तुम्हें स्मरण नहीं है? या स्मरण होनेपर भी मुझसे छिपा रही हो? जिसकी तुम मुझसे अनेक बार चर्चा करती रहती हो, अपने उसी प्रयोजनको तुम मुझसे सुनना चाहती हो? इसका क्या कारण है?॥

'विलासिनि! यदि मेरे ही मुँहसे सुननेके लिये तुम्हारा आग्रह है तो बताती हूँ, सुनो और सुनकर इसीके अनुसार कार्य करो'॥ ७॥

मन्थराका यह वचन सुनकर कैकेयी अच्छी तरहसे बिछे हुए उस पलंगसे कुछ उठकर उससे यों बोली—॥ ८॥

मन्थरे! मुझसे वह उपाय बताओ। किस उपायसे भरतको तो राज्य मिल जायगा, किंतु श्रीराम उसे किसी तरह नहीं पा सकेंगे'॥ ९॥

देवी कैकेयीके ऐसा कहनेपर पापका मार्ग दिखानेवाली मन्थरा श्रीरामके स्वार्थपर कुठाराघात करती हुई उस समय कैकेयीसे इस प्रकार बोली—॥ १०॥

'देवि! पूर्वकालकी बात है कि देवासुर-संग्रामके अवसरपर राजर्षियोंके साथ तुम्हारे पतिदेव तुम्हें साथ लेकर देवराजकी सहायता करनेके लिये गये थे॥ ११॥

'केकयराजकुमारी! दक्षिण दिशामें दण्डकारण्यके भीतर वैजयन्त नामसे विख्यात एक नगर है, जहाँ शम्बर नामसे प्रसिद्ध एक महान् असुर रहता था। वह अपनी ध्वजामें तिमि (ह्वेल मछली) का चिह्न धारण करता था और सैकड़ों मायाओंका जानकार था। देवताओंके समूह भी उसे पराजित नहीं कर पाते थे। एक बार उसने इन्द्रके साथ युद्ध छेड़ दिया॥ १२-१३॥

'उस महान् संग्राममें क्षत-विक्षत हुए पुरुष जब रातमें थककर सो जाते, उस समय राक्षस उन्हें उनके बिस्तरसे खींच ले जाते और मार डालते थे॥ १४॥

'उन दिनों महाबाहु राजा दशरथने भी वहाँ असुरोंके साथ बड़ा भारी युद्ध किया। उस युद्धमें असुरोंने अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उनके शरीरको जर्जर कर दिया॥ १५॥

'देवि! जब राजाकी चेतना लुप्त-सी हो गयी, उस समय सारथिका काम करती हुई तुमने अपने पतिको रणभूमिसे दूर हटाकर उनकी रक्षा की। जब वहाँ भी राक्षसोंके शस्त्रोंसे वे घायल हो गये, तब तुमने पुनः वहाँसे अन्यत्र ले जाकर उनकी रक्षा की॥ १६॥

'शुभदर्शने! इससे संतुष्ट होकर महाराजने तुम्हें दो वरदान देनेको कहा—देवि! उस समय तुमने अपने पतिसे कहा—'प्राणनाथ! जब मेरी इच्छा होगी, तब मैं इन वरोंको माँग लूँगी।' उस समय उन महात्मा नरेशने

'तथास्तु' कहकर तुम्हारी बात मान ली थी। देवि! मैं इस कथाको नहीं जानती थी। पूर्वकालमें तुम्हींने मुझसे यह वृत्तान्त कहा था॥ १७-१८॥

'तबसे तुम्हारे स्नेहवश मैं इस बातको मन-ही-मन सदा याद रखती आयी हूँ। तुम इन वरोंके प्रभावसे स्वामीको वशमें करके श्रीरामके अभिषेकके आयोजनको पलट दो॥ १९॥

'तुम उन दोनों वरोंको अपने स्वामीसे माँगो। एक वरके द्वारा भरतका राज्याभिषेक और दूसरेके द्वारा श्रीरामका चौदह वर्षतकका वनवास माँग लो॥ २०॥

'जब श्रीराम चौदह वर्षोंके लिये वनमें चले जायँगे।' तब उतने समयमें तुम्हारे पुत्र भरत समस्त प्रजाके हृदयमें अपने लिये स्नेह पैदा कर लेंगे और इस राज्यपर स्थिर हो जायँगे॥ २१॥

'अश्वपतिकुमारी! तुम इस समय मैले वस्त्र पहन लो और कोपभवनमें प्रवेश करके कुपित-सी होकर बिना बिस्तरके ही भूमिपर लेट जाओ॥ २२॥

'राजा आवें तो उनकी ओर आँखें उठाकर न देखो और न उनसे कोई बात ही करो। महाराजको देखते ही रोती हुई शोकमग्न हो धरतीपर लोटने लगो॥ २३॥

'इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि तुम अपने पतिको सदा ही बड़ी प्यारी रही हो। तुम्हारे लिये महाराज आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं॥ २४॥

'वे न तो तुम्हें कुपित कर सकते हैं और न कुपित अवस्थामें तुम्हें देख ही सकते हैं। राजा दशरथ तुम्हारा प्रिय करनेके लिये अपने प्राणोंका भी त्याग कर सकते हैं॥ २५॥

'महाराज तुम्हारी बात किसी तरह टाल नहीं सकते। मुग्धे! तुम अपने सौभाग्यके बलका स्मरण करो॥ २६॥

'राजा दशरथ तुम्हें भुलावेमें डालनेके लिये मणि, मोती, सुवर्ण तथा भाँति-भाँतिके रत्न देनेकी चेष्टा करेंगे; किंतु तुम उनकी ओर मन न चलाना॥ २७॥

'महाभागे! देवासुर-संग्रामके अवसरपर राजा दशरथने वे जो दो वर दिये थे, उनका उन्हें स्मरण दिलाना। वरदानके रूपमें माँगा गया वह तुम्हारा अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकता॥ २८॥

'रघुकुलनन्दन राजा दशरथ जब स्वयं तुम्हें धरतीसे उठाकर वर देनेको उद्यत हो जायँ, तब उन महाराजको सत्यकी शपथ दिलाकर खूब पक्का करके उनसे वर माँगना॥ २९॥

'वर माँगते समय कहना कि नृपश्रेष्ठ! आप श्रीरामको चौदह वर्षोंके लिये बहुत दूर वनमें भेज दीजिये और भरतको भूमण्डलका राजा बनाइये॥ ३०॥

'श्रीरामके चौदह वर्षोंके लिये वनमें चले जानेपर तुम्हारे पुत्र भरतका राज्य सुदृढ़ हो जायगा और प्रजा आदिको वशमें कर लेनेसे यहाँ उनकी जड़ जम जायगी। फिर चौदह वर्षोंके बाद भी वे आजीवन स्थिर बने रहेंगे॥ ३१॥

'देवि! तुम राजासे श्रीरामके वनवासका वर अवश्य माँगो। पुत्रके लिये राज्यकी कामना करनेवाली कैकेयि! ऐसा करनेसे तुम्हारे पुत्रके सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे॥ ३२॥

'इस प्रकार वनवास मिल जानेपर ये राम राम नहीं रह जायँगे (इनका आज जो प्रभाव है वह भविष्यमें नहीं रह सकेगा) और तुम्हारे भरत भी शत्रुहीन राजा होंगे॥

'जिस समय श्रीराम वनसे लौटेंगे, उस समयतक तुम्हारे पुत्र भरत भीतर और बाहरसे भी दृढ़मूल हो जायँगे॥

'उनके पास सैनिक-बलका भी संग्रह हो जायगा; जितेन्द्रिय तो वे हैं ही; अपने सुहृदोंके साथ रहकर दृढ़मूल हो जायँगे। इस समय मेरी मान्यताके अनुसार राजाको श्रीरामके राज्याभिषेकके संकल्पसे हटा देनेका समय आ गया है; अतः तुम निर्भय होकर राजाको अपने वचनोंमें बाँध लो और उन्हें श्रीरामके अभिषेकके संकल्पसे हटा दो'॥ ३५ $\frac{१}{२}$ ॥

ऐसी बातें कहकर मन्थराने कैकेयीकी बुद्धिमें अनर्थको ही अर्थरूपमें जँचा दिया। कैकेयीको उसकी बातपर विश्वास हो गया और वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। यद्यपि वह बहुत समझदार थी, तो भी कुबरीके कहनेसे नादान बालिकाकी तरह कुमार्गपर चली गयी—अनुचित काम करनेको तैयार हो गयी। उसे मन्थराकी बुद्धिपर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उससे इस प्रकार बोली—॥ ३६-३७ $\frac{१}{२}$ ॥

'हितकी बात बतानेमें कुशल कुब्जे! तू एक श्रेष्ठ स्त्री है; मैं तेरी बुद्धिकी अवहेलना नहीं करूँगी। बुद्धिके द्वारा किसी कार्यका निश्चय करनेमें तू इस पृथ्वीपर सभी कुब्जाओंमें उत्तम है। केवल तू ही मेरी हितैषिणी है और सदा सावधान रहकर मेरा कार्य सिद्ध करनेमें लगी रहती है॥ ३८-३९॥

'कुब्जे! यदि तू न होती तो राजा जो षड्यन्त्र रचना चाहते हैं, वह कदापि मेरी समझमें नहीं आता। तेरे सिवा जितनी कुब्जाएँ हैं, वे बेडौल शरीरवाली, टेढ़ी-मेढ़ी और बड़ी पापिनी होती हैं॥ ४०॥

'तू तो वायुके द्वारा झुकायी हुई कमलिनीकी भाँति कुछ झुकी हुई होनेपर भी देखनेमें प्रिय (सुन्दर) है। तेरा वक्ष:स्थल कुब्जताके दोषसे व्याप्त है, अतएव कंधोंतक ऊँचा दिखायी देता है॥ ४१॥

'वक्ष:स्थलसे नीचे सुन्दर नाभिसे युक्त जो उदर है, वह मानो वक्ष:स्थलकी ऊँचाई देखकर लज्जित-सा हो गया है, इसीलिये शान्त—कृश प्रतीत होता है। तेरा जघन विस्तृत है और दोनों स्तन सुन्दर एवं स्थूल हैं॥

'मन्थरे! तेरा मुख निर्मल चन्द्रमाके समान अद्भुत शोभा पा रहा है। करधनीकी लड़ियोंसे विभूषित तेरी कटिका अग्रभाग बहुत ही स्वच्छ—रोमादिसे रहित है॥ ४३॥

'मन्थरे! तेरी पिण्डलियाँ परस्पर अधिक सटी हुई हैं और दोनों पैर बड़े-बड़े हैं। तू विशाल ऊरुओं (जाँघों) से सुशोभित होती है। शोभने! जब तू रेशमी साड़ी पहनकर मेरे आगे-आगे चलती है, तब तेरी बड़ी शोभा होती है॥ ४४ $\frac{1}{2}$ ॥

'असुरराज शम्बरको जिन सहस्रों मायाओंका ज्ञान है, वे सब तेरे हृदयमें स्थित हैं; इनके अलावे भी तू हजारों प्रकारकी मायाएँ जानती है। इन मायाओंका समुदाय ही तेरा यह बड़ा-सा कुब्बड़ है, जो रथके नकुए (अग्रभाग) के समान बड़ा है। इसीमें तेरी मति, स्मृति और बुद्धि, क्षत्रविद्या (राजनीति) तथा नाना प्रकारकी मायाएँ निवास करती हैं॥ ४५-४६ $\frac{1}{2}$ ॥

'सुन्दरी कुब्जे! यदि भरतका राज्याभिषेक हुआ और श्रीराम वनको चले गये तो मैं सफलमनोरथ एवं संतुष्ट होकर अच्छी जातिके खूब तपाये हुए सोनेकी बनी हुई सुन्दर स्वर्णमाला तेरे इस कुब्बड़को पहनाऊँगी और इसपर चन्दनका लेप लगवाऊँगी॥ ४७-४८ $\frac{1}{2}$ ॥

'कुब्जे! तेरे मुख (ललाट) पर सुन्दर और विचित्र सोनेका टीका लगवा दूँगी और तू बहुत-से सुन्दर आभूषण एवं दो उत्तम वस्त्र (लहँगा और दुपट्टा) धारण करके देवाङ्गनाके समान विचरण करेगी॥ ४९-५०॥

'चन्द्रमासे होड़ लगानेवाले अपने मनोहर मुखद्वारा तू ऐसी सुन्दर लगेगी कि तेरे मुखकी कहीं समता नहीं रह जायगी तथा शत्रुओंके बीचमें अपने सौभाग्यपर गर्व प्रकट करती हुई तू सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लेगी॥ ५१॥

'जैसे तू सदा मेरे चरणोंकी सेवा किया करती है, उसी प्रकार समस्त आभूषणोंसे विभूषित बहुत-सी कुब्जाएँ तुझ कुब्जाके भी चरणोंकी सदा परिचर्या किया करेंगी'॥

जब इस प्रकार कुब्जाकी प्रशंसा की गयी, तब उसने वेदीपर प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान शुभ्र शय्यापर शयन करनेवाली कैकेयीसे इस प्रकार कहा—॥ ५३॥

'कल्याणि! नदीका पानी निकल जानेपर उसके लिये बाँध नहीं बाँधा जाता, (यदि रामका अभिषेक हो गया तो तुम्हारा वर माँगना व्यर्थ होगा; अत: बातोंमें समय न बिताओ) जल्दी उठो और अपना कल्याण करो। कोपभवनमें जाकर राजाको अपनी अवस्थाका परिचय दो'॥ ५४॥

मन्थराके इस प्रकार प्रोत्साहन देनेपर सौभाग्यके मदसे गर्व करनेवाली विशाललोचना सुन्दरी कैकेयी देवी उसके साथ ही कोपभवनमें जाकर लाखोंकी लागतके मोतियोंके हार तथा दूसरे-दूसरे सुन्दर बहुमूल्य आभूषणोंको अपने शरीरसे उतार-उतारकर फेंकने लगी॥ ५५-५६॥

सोनेके समान सुन्दर कान्तिवाली कैकेयी कुब्जाकी बातोंके वशीभूत हो गयी थी, अत: वह धरतीपर लेटकर मन्थरासे इस प्रकार बोली—॥ ५७॥

'कुब्जे! मुझे न तो सुवर्णसे, न रत्नोंसे और न भाँति-भाँतिके भोजनोंसे ही कोई प्रयोजन है; यदि श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ तो यह मेरे जीवनका अन्त होगा। अब या तो श्रीरामके वनमें चले जानेपर भरतको इस भूतलका राज्य प्राप्त होगा अथवा तू यहाँ महाराजको मेरी मृत्युका समाचार सुनायेगी'॥ ५८-५९॥

तदनन्तर कुब्जा महाराज दशरथकी रानी और भरतकी माता कैकेयीसे अत्यन्त क्रूर वचनोंद्वारा पुन: ऐसी बात कहने लगी, जो लौकिक दृष्टिसे भरतके लिये हितकर और श्रीरामके लिये अहितकर थी—॥ ६०॥

'कल्याणि! यदि श्रीराम इस राज्यको प्राप्त कर लेंगे तो निश्चय ही अपने पुत्र भरतसहित तुम भारी संतापमें पड़ जाओगी; अत: ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम्हारे पुत्र भरतका राज्याभिषेक हो जाय'॥ ६१॥

इस प्रकार कुब्जाने अपने वचनरूपी बाणोंका बारंबार प्रहार करके जब रानी कैकेयीको अत्यन्त घायल कर दिया, तब वह अत्यन्त विस्मित और कुपित हो अपने हृदयपर दोनों हाथ रखकर कुब्जासे बारंबार इस प्रकार कहने लगी—॥ ६२॥

'कुब्जे! अब या तो रामचन्द्रके अधिक कालके लिये वनमें चले जानेपर भरतका मनोरथ सफल होगा या तू मुझे यहाँसे यमलोकमें चली गयी सुनकर महाराजसे यह समाचार निवेदन करेगी॥ ६३॥

'यदि राम यहाँसे वनको नहीं गये तो मैं न तो भाँति-भाँतिके बिछौने, न फूलोंके हार, न चन्दन, न अञ्जन, न पान, न भोजन और न दूसरी ही कोई वस्तु लेना चाहूँगी। उस दशामें तो मैं यहाँ इस जीवनको भी नहीं रखना चाहूँगी'॥ ६४॥

ऐसे अत्यन्त कठोर वचन कहकर कैकेयीने सारे आभूषण उतार दिये और बिना बिस्तरके ही वह खाली जमीनपर लेट गयी। उस समय वह स्वर्गसे भूतलपर गिरी हुई किसी किन्नरीके समान जान पड़ती थी॥ ६५॥

उसका मुख बढ़े हुए अमर्षरूपी अन्धकारसे आच्छादित हो रहा था। उसके अङ्गोंसे उत्तम पुष्पहार और आभूषण उतर चुके थे। उस दशामें उदास मनवाली राजरानी कैकेयी जिसके तारे डूब गये हों, उस अन्धकाराच्छन्न आकाशके समान प्रतीत होती थी॥ ६६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

राजा दशरथका कैकेयीके भवनमें जाना, उसे कोपभवनमें स्थित देखकर दु:खी होना और उसको अनेक प्रकारसे सान्त्वना देना

पापिनी कुब्जाने जब देवी कैकेयीको बहुत उलटी बातें समझा दीं, तब वह विषाक्त बाणसे विद्ध हुई किन्नरीके समान धरतीपर लोटने लगी॥ १॥

मन्थराके बताये हुए समस्त कार्यको यह बहुत उत्तम है—ऐसा मन-ही-मन निश्चय करके बातचीतमें कुशल भामिनी कैकेयीने मन्थरासे धीरे-धीरे अपना सारा मन्तव्य बता दिया॥ २॥

मन्थराके वचनोंसे मोहित एवं दीन हुई भामिनी कैकेयी पूर्वोक्त निश्चय करके नागकन्याकी भाँति गरम और लंबी साँस खींचने लगी और दो घड़ीतक अपने लिये सुखदायक मार्गका विचार करती रही॥ ३½॥

और वह मन्थरा जो कैकेयीका हित चाहनेवाली सुहृद् थी और उसीके मनोरथको सिद्ध करनेकी अभिलाषा रखती थी, कैकेयीके उस निश्चयको सुनकर बहुत प्रसन्न हुई; मानो उसे कोई बहुत बड़ी सिद्धि मिल गयी हो॥

तदनन्तर रोषमें भरी हुई देवी कैकेयी अपने कर्तव्यका भलीभाँति निश्चय कर मुखमण्डलमें स्थित भौंहोंको टेढ़ी करके धरतीपर सो गयी। और क्या करती अबला ही तो थी॥ ५½॥

तदनन्तर उस केकयराजकुमारीने अपने विचित्र पुष्पहारों और दिव्य आभूषणोंको उतारकर फेंक दिया। वे सारे आभूषण धरतीपर यत्र-तत्र पड़े थे॥ ६½॥

जैसे छिटके हुए तारे आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार फेंके हुए वे पुष्पहार और आभूषण वहाँ भूमिकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ७½॥

मलिन वस्त्र पहनकर और सारे केशोंको दृढ़तापूर्वक एक ही वेणीमें बाँधकर कोपभवनमें पड़ी हुई कैकेयी बलहीन अथवा अचेत हुई किन्नरीके समान जान पड़ती थी॥ ८½॥

उधर महाराज दशरथ मन्त्री आदिको श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारीके लिये आज्ञा दे सबको यथासमय उपस्थित होनेके लिये कहकर रनिवासमें गये॥ ९½॥

उन्होंने सोचा—आज ही श्रीरामके अभिषेककी बात प्रसिद्ध की गयी है, इसलिये यह समाचार अभी किसी रानीको नहीं मालूम हुआ होगा; ऐसा विचारकर जितेन्द्रिय राजा दशरथने अपनी प्यारी रानीको यह प्रिय संवाद सुनानेके लिये अन्त:पुरमें प्रवेश किया॥ १०½॥

उन महायशस्वी नरेशने पहले कैकेयीके श्रेष्ठ भवनमें प्रवेश किया, मानो श्वेत बादलोंसे युक्त राहुयुक्त आकाशमें चन्द्रमाने पदार्पण किया हो॥ ११½॥

उस भवनमें तोते, मोर, क्रौञ्च और हंस आदि पक्षी कलरव कर रहे थे, वहाँ वाद्योंका मधुर घोष गूँज रहा था, बहुत-सी कुब्जा और बौनी दासियाँ भरी हुई थीं, चम्पा और अशोकसे सुशोभित बहुत-से लताभवन और चित्रमन्दिर उस महलकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १२-१३॥

हाथीदाँत, चाँदी और सोनेकी बनी हुई वेदियोंसे संयुक्त उस भवनको नित्य फूलने-फलनेवाले वृक्ष और बहुत-सी बावड़ियाँ सुशोभित कर रही थीं॥ १४॥

उसमें हाथीदाँत, चाँदी और सोनेके बने हुए उत्तम

सिंहासन रखे गये थे। नाना प्रकारके अन्न, पान और भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे वह भवन भरा-पूरा था। बहुमूल्य आभूषणोंसे सम्पन्न कैकेयीका वह भवन स्वर्गके समान शोभा पा रहा था॥ १५ १/२ ॥

अपने उस समृद्धिशाली अन्त:पुरमें प्रवेश करके महाराज राजा दशरथने वहाँकी उत्तम शय्यापर रानी कैकेयीको नहीं देखा॥ १६ १/२ ॥

कामबलसे संयुक्त वे नरेश रानीकी प्रसन्नता बढ़ानेकी अभिलाषासे भीतर गये थे। वहाँ अपनी प्यारी पत्नीको न देखकर उनके मनमें बड़ा विषाद हुआ और वे उनके विषयमें पूछ-ताछ करने लगे॥ १७ १/२ ॥

इससे पहले रानी कैकेयी राजाके आगमनकी उस बेलामें कहीं अन्यत्र नहीं जाती थीं, राजाने कभी सूने भवनमें प्रवेश नहीं किया था, इसीलिये वे घरमें आकर कैकेयीके बारेमें पूछने लगे। उन्हें यह मालूम नहीं था कि वह मूर्खा कोई स्वार्थ सिद्ध करना चाहती है, अत: उन्होंने पहलेकी ही भाँति प्रतिहारीसे उसके विषयमें पूछा॥ १८-१९ १/२ ॥

प्रतिहारी बहुत डरी हुई थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'देव! देवी कैकेयी अत्यन्त कुपित हो कोपभवनकी ओर दौड़ी गयी हैं'॥ २० १/२ ॥

प्रतिहारीकी यह बात सुनकर राजाका मन बहुत उदास हो गया, उनकी इन्द्रियाँ चञ्चल एवं व्याकुल हो उठीं और वे पुन: अधिक विषाद करने लगे॥ २१ १/२ ॥

कोपभवनमें वह भूमिपर पड़ी थी और इस तरह लेटी हुई थी, जो उसके लिये योग्य नहीं था। राजाने दु:खके कारण संतप्त-से होकर उसे इस अवस्थामें देखा॥ २२ १/२ ॥

राजा बूढ़े थे और उनकी वह पत्नी तरुणी थी, अत: वे उसे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर मानते थे। राजाके मनमें कोई पाप नहीं था; परंतु कैकेयी अपने मनमें पापपूर्ण संकल्प लिये हुए थी। उन्होंने उसे कटी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर पड़ी देखा—मानो कोई देवाङ्गना स्वर्गसे भूतलपर गिर पड़ी हो ॥ २३-२४॥

वह स्वर्गभ्रष्ट किन्नरी, देवलोकसे च्युत हुई अप्सरा, लक्ष्यभ्रष्ट माया और जालमें बँधी हुई हरिणीके समान जान पड़ती थी॥ २५ ॥

जैसे कोई महान् गजराज वनमें व्याधके द्वारा विषलिप्त बाणसे विद्ध होकर गिरी हुई अत्यन्त दु:खित हथिनीका स्नेहवश स्पर्श करता है, उसी प्रकार कामी राजा दशरथने महान् दु:खमें पड़ी हुई कमलनयनी भार्या कैकेयीका स्नेहपूर्वक दोनों हाथोंसे स्पर्श किया। उस समय उनके मनमें सब ओरसे यह भय समा गया था कि न जाने यह क्या कहेगी और क्या करेगी? वे उसके अङ्गोंपर हाथ फेरते हुए उससे इस प्रकार बोले—॥ २६-२७॥

'देवि! तुम्हारा क्रोध मुझपर है, ऐसा तो मुझे विश्वास नहीं होता। फिर किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है? किसके द्वारा तुम्हारी निन्दा की गयी है?॥

'कल्याणि! तुम जो इस तरह मुझे दु:ख देनेके लिये धूलमें लोट रही हो, इसका क्या कारण है? मेरे चित्तको मथ डालनेवाली सुन्दरी! मेरे मनमें तो सदा तुम्हारे कल्याणकी ही भावना रहती है। फिर मेरे रहते हुए तुम किस लिये धरतीपर सो रही हो? जान पड़ता है तुम्हारे चित्तपर किसी पिशाचने अधिकार कर लिया है॥ २९ १/२ ॥

'भामिनि! तुम अपना रोग बताओ। मेरे यहाँ बहुत-से चिकित्साकुशल वैद्य हैं, जिन्हें मैंने सब प्रकारसे संतुष्ट कर रखा है, वे तुम्हें सुखी कर देंगे॥ ३० १/२ ॥

'अथवा कहो, आज किसका प्रिय करना है? या किसने तुम्हारा अप्रिय किया है? तुम्हारे किस उपकारीको आज प्रिय मनोरथ प्राप्त हो अथवा किस अपकारीको अत्यन्त अप्रिय—कठोर दण्ड दिया जाय?॥ ३१ १/२ ॥

'देवि! तुम न रोओ, अपनी देहको न सुखाओ; आज तुम्हारी इच्छाके अनुसार किस अवध्यका वध किया जाय? अथवा किस प्राणदण्ड पानेयोग्य अपराधीको भी मुक्त कर दिया जाय? किस दरिद्रको धनवान् और किस धनवान्‌को कंगाल बना दिया जाय?॥ ३२-३३ ॥

'मैं और मेरे सभी सेवक तुम्हारी आज्ञाके अधीन हैं। तुम्हारे किसी भी मनोरथको मैं भंग नहीं कर सकता—उसे पूरा करके ही रहूँगा, चाहे उसके लिये मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें; अत: तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसे स्पष्ट कहो॥ ३४ १/२ ॥

'अपने बलको जानते हुए भी तुम्हें मुझपर संदेह नहीं करना चाहिये। मैं अपने सत्कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, जिससे तुम्हें प्रसन्नता हो, वही करूँगा॥ ३५ १/२ ॥

'जहाँतक सूर्यका चक्र घूमता है, वहाँतक सारी पृथ्वी मेरे अधिकारमें है। द्रविड़, सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण भारतके सारे प्रदेश तथा अङ्ग, वङ्ग, मगध,

मत्स्य, काशी और कोसल—इन सभी समृद्धिशाली देशोंपर मेरा आधिपत्य है॥ ३६-३७॥

'केकयराजनन्दिनि! उनमें पैदा होनेवाले भाँति-भाँतिके द्रव्य, धन-धान्य और बकरी-भेंड़ आदि जो भी तुम मनसे लेना चाहती हो, वह मुझसे माँग लो॥ ३८॥

'भीरु! इतना क्लेश उठाने—प्रयास करनेकी क्या आवश्यकता है? शोभने! उठो, उठो। कैकेयि! ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें किससे कौन-सा भय प्राप्त हुआ है? जैसे अंशुमाली सूर्य कुहरा दूर कर देते हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हारे भयका सर्वथा निवारण कर दूँगा'॥ ३९॥

राजाके ऐसा कहनेपर कैकेयीको कुछ सान्त्वना मिली। अब उसे अपने स्वामीसे वह अप्रिय बात कहनेकी इच्छा हुई। उसने पतिको और अधिक पीड़ा देनेकी तैयारी की॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

कैकेयीका राजाको प्रतिज्ञाबद्ध करके उन्हें पहलेके दिये हुए दो वरोंका स्मरण दिलाकर भरतके लिये अभिषेक और रामके लिये चौदह वर्षोंका वनवास माँगना

भूपाल दशरथ कामदेवके बाणोंसे पीड़ित तथा कामवेगके वशीभूत हो उसीका अनुसरण कर रहे थे। उनसे कैकेयीने यह कठोर वचन कहा—॥ १॥

'देव! न तो किसीने मेरा अपकार किया है और न किसीके द्वारा मैं अपमानित या निन्दित ही हुई हूँ। मेरा कोई एक अभिप्राय (मनोरथ) है और मैं आपके द्वारा उसकी पूर्ति चाहती हूँ॥ २॥

'यदि आप उसे पूर्ण करना चाहते हों तो प्रतिज्ञा कीजिये। इसके बाद मैं अपना वास्तविक अभिप्राय आपसे कहूँगी'॥ ३॥

महाराज दशरथ कामके अधीन हो रहे थे। वे कैकेयीकी बात सुनकर किंचित् मुस्कराये और पृथ्वीपर पड़ी हुई उस देवीके केशोंको हाथसे पकड़कर—उसके सिरको अपनी गोदमें रखकर उससे इस प्रकार बोले—॥ ४॥

'अपने सौभाग्यपर गर्व करनेवाली कैकेयी! क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि नरश्रेष्ठ श्रीरामके अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा मनुष्य नहीं है, जो मुझे तुमसे अधिक प्रिय हो॥

'जो प्राणोंके द्वारा भी आराधनीय हैं और जिन्हें जीतना किसीके लिये भी असम्भव है, उन प्रमुख वीर महात्मा श्रीरामकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारी कामना पूर्ण होगी; अतः तुम्हारे मनकी जो इच्छा हो उसे बताओ॥ ६॥

'कैकेयि! जिन्हें दो घड़ी भी न देखनेपर निश्चय ही मैं जीवित नहीं रह सकता, उन श्रीरामकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम जो कहोगी, उसे पूर्ण करूँगा॥ ७॥

'केकयनन्दिनि! अपने तथा अपने दूसरे पुत्रोंको निछावर करके भी मैं जिन नरश्रेष्ठ श्रीरामका वरण करनेको उद्यत हूँ, उन्हींकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारी कही हुई बात पूरी करूँगा॥ ८॥

'भद्रे! केकयराजकुमारी! मेरा यह हृदय भी तुम्हारे वचनोंकी पूर्तिके लिये तत्पर है। ऐसा सोचकर तुम अपनी इच्छा व्यक्त करके इस दुःखसे मेरा उद्धार करो। श्रीराम सबको अधिक प्रिय हैं—इस बातपर दृष्टिपात करके तुम्हें जो अच्छा जान पड़े, वह कहो॥ ९॥

'अपने बलको देखते हुए भी तुम्हें मुझपर शङ्का नहीं करनी चाहिये। मैं अपने सत्कर्मोंकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य सिद्ध करूँगा'॥ १०॥

रानी कैकेयीका मन स्वार्थकी सिद्धिमें ही लगा हुआ था। उसके हृदयमें भरतके प्रति पक्षपात था और राजाको अपने वशमें देखकर हर्ष हो रहा था; अतः यह सोचकर कि अब मेरे लिये अपना मतलब साधनेका अवसर आ गया है, वह राजासे ऐसी बात बोली, जिसे मुँहसे निकालना (शत्रुके लिये भी) कठिन है॥ ११॥

राजाके उस शपथयुक्त वचनसे उसको बड़ा हर्ष हुआ था। उसने अपने उस अभिप्रायको जो पास आये हुए यमराजके समान अत्यन्त भयंकर था, इन शब्दोंमें व्यक्त किया—॥ १२॥

'राजन्! आप जिस तरह क्रमशः शपथ खाकर मुझे वर देनेको उद्यत हुए हैं, उसे इन्द्र आदि तैंतीस देवता सुन लें॥ १३॥

'चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, ग्रह, रात, दिन, दिशा, जगत्, यह पृथ्वी, गन्धर्व, राक्षस, रातमें विचरनेवाले प्राणी, घरोंमें रहनेवाले गृहदेवता तथा इनके अतिरिक्त भी जितने प्राणी हों, वे सब आपके कथनको जान लें—आपकी बातोंके साक्षी बनें॥ १४-१५॥

'सब देवता सुनें! महातेजस्वी, सत्यप्रतिज्ञ, धर्मके ज्ञाता, सत्यवादी तथा शुद्ध आचार-विचारवाले ये महाराज मुझे वर दे रहे हैं'॥ १६॥

इस प्रकार काममोहित होकर वर देनेको उद्यत हुए महाधनुर्धर राजा दशरथको अपनी मुट्ठीमें करके देवी कैकेयीने पहले उनकी प्रशंसा की; फिर इस प्रकार कहा— ॥ १७॥

'राजन्! उस पुरानी बातको याद कीजिये, जब कि देवासुरसंग्राम हो रहा था। वहाँ शत्रुने आपको घायल करके गिरा दिया था, केवल प्राण नहीं लिये थे॥ १८॥

'देव! उस युद्धस्थलमें सारी रात जागकर अनेक प्रकारके प्रयत्न करके जो मैंने आपके जीवनकी रक्षा की थी उससे संतुष्ट होकर आपने मुझे दो वर दिये थे॥ १९॥

'देव! पृथ्वीपाल रघुनन्दन! आपके दिये हुए वे दोनों वर मैंने धरोहरके रूपमें आपके ही पास रख दिये थे। आज इस समय उन्हींकी मैं खोज करती हूँ॥ २०॥

'इस प्रकार धर्मतः प्रतिज्ञा करके यदि आप मेरे उन वरोंको नहीं देंगे तो मैं अपनेको आपके द्वारा अपमानित हुई समझकर आज ही प्राणोंका परित्याग कर दूँगी'॥ २१॥

जैसे मृग बहेलियेकी वाणीमात्रसे अपने ही विनाशके लिये उसके जालमें फँस जाता है, उसी प्रकार कैकेयीके वशीभूत हुए राजा दशरथ उस समय पूर्वकालके वरदान-वाक्यका स्मरण करानेमात्रसे अपने ही विनाशके लिये प्रतिज्ञाके बन्धनमें बँध गये॥ २२॥

तदनन्तर कैकेयीने काममोहित होकर वर देनेके लिये उद्यत हुए राजासे इस प्रकार कहा—'देव! पृथ्वीनाथ! उन दिनों आपने जो दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उन्हें अब मुझे देना चाहिये। उन दोनों वरोंको मैं अभी बताऊँगी—आप मेरी बात सुनिये—यह जो श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी की गयी है, इसी अभिषेक-सामग्रीद्वारा मेरे पुत्र भरतका अभिषेक किया जाय॥ २३-२४॥

'देव! आपने उस समय देवासुरसंग्राममें प्रसन्न होकर मेरे लिये जो दूसरा वर दिया था, उसे प्राप्त करनेका यह समय भी अभी आया है॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

'धीर स्वभाववाले श्रीराम तपस्वीके वेशमें वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें जाकर रहें। भरतको आज निष्कण्टक युवराजपद प्राप्त हो जाय॥ २६-२७॥

'यही मेरी सर्वश्रेष्ठ कामना है। मैं आपसे पहलेका दिया हुआ वर ही माँगती हूँ। आप ऐसी व्यवस्था करें, जिससे मैं आज ही श्रीरामको वनकी ओर जाते देखूँ॥

'आप राजाओंके राजा हैं; अतः सत्यप्रतिज्ञ बनिये और उस सत्यके द्वारा अपने कुल, शील तथा जन्मकी रक्षा कीजिये। तपस्वी पुरुष कहते हैं कि सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ धर्म है। वह परलोकमें निवास होनेपर मनुष्योंके लिये परम कल्याणकारी होता है॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ सर्ग

महाराज दशरथकी चिन्ता, विलाप, कैकेयीको फटकारना, समझाना और उससे वैसा वर न माँगनेके लिये अनुरोध करना

कैकेयीका यह कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथको बड़ी चिन्ता हुई। वे एक मुहूर्ततक अत्यन्त संताप करते रहे॥ १॥

उन्होंने सोचा—'क्या दिनमें ही यह मुझे स्वप्न दिखायी दे रहा है? अथवा मेरे चित्तका मोह है? या किसी भूत (ग्रह आदि) के आवेशसे चित्तमें विकलता आ गयी है? या आधि-व्याधिके कारण यह कोई मनका ही उपद्रव है'॥ २॥

यही सोचते हुए उन्हें अपने भ्रमके कारणका पता नहीं लगा। उस समय राजाको मूर्च्छित कर देनेवाला महान् दुःख प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् होशमें आनेपर कैकेयीकी बातको याद करके उन्हें पुनः संताप होने लगा॥ ३॥

जैसे किसी बाघिनको देखकर मृग व्यथित हो जाता है, उसी प्रकार वे नरेश कैकेयीको देखकर पीड़ित एवं व्याकुल हो उठे। बिस्तररहित खाली भूमिपर बैठे हुए राजा लंबी साँस खींचने लगे, मानो कोई महा विषैला सर्प किसी मण्डलमें मन्त्रोंद्वारा अवरुद्ध हो गया हो॥ ४$\frac{1}{2}$ ॥

राजा दशरथ रोषमें भरकर 'अहो! धिक्कार है' यह कहकर पुनः मूर्च्छित हो गये। शोकके कारण उनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी॥ ५$\frac{1}{2}$ ॥

बहुत देरके बाद जब उन्हें फिर चेत हुआ, तब वे नरेश अत्यन्त दुःखी होकर कैकेयीको अपने तेजसे दग्ध-सी करते हुए क्रोधपूर्वक उससे बोले— ॥ ६$\frac{1}{2}$ ॥

'दयाहीन दुराचारिणी कैकेयि! तू इस कुलका विनाश करनेवाली डाइन है। पापिनि! बता, मैंने अथवा श्रीरामने तेरा क्या बिगाड़ा है?॥ ७$\frac{1}{2}$ ॥

'श्रीरामचन्द्र तो तेरे साथ सदा सगी माताका-सा बर्ताव करते आये हैं; फिर तू किसलिये उनका इस तरह अनिष्ट करनेपर उतारू हो गयी है॥ ८$\frac{1}{2}$ ॥

'मालूम होता है—मैंने अपने विनाशके लिये ही तुझे अपने घरमें लाकर रखा था। मैं नहीं जानता था कि तू राजकन्याके रूपमें तीखे विषवाली नागिन है॥ ९$\frac{1}{2}$ ॥

'जब सारा जीव-जगत् श्रीरामके गुणोंकी प्रशंसा करता है, तब मैं किस अपराधके कारण अपने उस प्यारे पुत्रको त्याग दूँ?॥ १०$\frac{1}{2}$ ॥

'मैं कौसल्या और सुमित्राको भी छोड़ सकता हूँ, राजलक्ष्मीका भी परित्याग कर सकता हूँ, परंतु अपने प्राणस्वरूप पितृभक्त श्रीरामको नहीं छोड़ सकता॥ ११$\frac{1}{2}$ ॥

'अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको देखते ही मेरे हृदयमें परम प्रेम उमड़ आता है; परंतु जब मैं श्रीरामको नहीं देखता हूँ, तब मेरी चेतना नष्ट होने लगती है॥ १२$\frac{1}{2}$ ॥

'सम्भव है सूर्यके बिना यह संसार टिक सके अथवा पानीके बिना खेती उपज सके, परंतु श्रीरामके बिना मेरे शरीरमें प्राण नहीं रह सकते॥ १३$\frac{1}{2}$ ॥

'अतः ऐसा वर माँगनेसे कोई लाभ नहीं। पापपूर्ण निश्चयवाली कैकेयि! तू इस निश्चय अथवा दुराग्रहको त्याग दे। यह लो, मैं तेरे पैरोंपर अपना मस्तक रखता हूँ, मुझपर प्रसन्न हो जा। पापिनि! तूने ऐसी परम क्रूरतापूर्ण बात किस लिये सोची है?॥ १४-१५ ॥

'यदि यह जानना चाहती है कि भरत मुझे प्रिय हैं या अप्रिय तो रघुनन्दन भरतके सम्बन्धमें तू पहले जो कुछ कह चुकी है, वह पूर्ण हो अर्थात् तेरे प्रथम वरके अनुसार मैं भरतका राज्याभिषेक स्वीकार करता हूँ॥ १६ ॥

'तू पहले कहा करती थी कि 'श्रीराम मेरे बड़े बेटे हैं, वे धर्माचरणमें भी सबसे बड़े हैं!' परंतु अब मालूम हुआ कि तू ऊपर-ऊपरसे चिकनी-चुपड़ी बातें किया करती थी और वह बात तूने श्रीरामसे अपनी सेवा करानेके लिये ही कही होगी॥ १७ ॥

'आज श्रीरामके अभिषेककी बात सुनकर तू शोकसे संतप्त हो उठी है और मुझे भी बहुत संताप दे रही है; इससे जान पड़ता है कि इस सूने घरमें तुझपर भूत आदिका आवेश हो गया है, अतः तू परवश होकर ऐसी बातें कह रही है॥ १८ ॥

'देवि! न्यायशील इक्ष्वाकुवंशमें यह बड़ा भारी अन्याय आकर उपस्थित हुआ है, जहाँ तेरी बुद्धि इस प्रकार विकृत हो गयी है॥ १९ ॥

'विशाललोचने! आजसे पहले तूने कभी कोई ऐसा आचरण नहीं किया है, जो अनुचित अथवा मेरे लिये अप्रिय हो; इसीलिये तेरी आजकी बातपर भी मुझे विश्वास नहीं होता है॥ २० ॥

'तेरे लिये तो श्रीराम भी महात्मा भरतके ही तुल्य हैं। बाले! तू बहुत बार बातचीतके प्रसंगमें स्वयं ही यह बात मुझसे कहती रही है॥ २१ ॥

'भीरु स्वभाववाली देवि! उन्हीं धर्मात्मा और यशस्वी श्रीरामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास तुझे कैसे अच्छा लगता है?॥ २२ ॥

'जो अत्यन्त सुकुमार और धर्ममें दृढ़तापूर्वक मन लगाये रखनेवाले हैं, उन्हीं श्रीरामको वनवास देना तुझे कैसे रुचिकर जान पड़ता है? अहो! तेरा हृदय बड़ा कठोर है॥ २३ ॥

'सुन्दर नेत्रोंवाली कैकेयि! जो सदा तेरी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते हैं, उन नयनाभिराम श्रीरामको देशनिकाला दे देनेकी इच्छा तुझे किसलिये हो रही है?॥

'मैं देखता हूँ, भरतसे अधिक श्रीराम ही सदा तेरी सेवा करते हैं। भरत उनसे अधिक तेरी सेवामें रहते हों, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा है॥ २५ ॥

'नरश्रेष्ठ श्रीरामसे बढ़कर दूसरा कौन है, जो गुरुजनोंकी सेवा करने, उन्हें गौरव देने, उनकी बातोंको मान्यता देने और उनकी आज्ञाका तुरंत पालन करनेमें अधिक तत्परता दिखाता हो॥ २६ ॥

'मेरे यहाँ कई सहस्र स्त्रियाँ हैं और बहुत-से

उपजीवी भृत्यजन हैं, परंतु किसीके मुँहसे श्रीरामके सम्बन्धमें सच्ची या झूठी किसी प्रकारकी शिकायत नहीं सुनी जाती॥ २७॥

'पुरुषसिंह श्रीराम समस्त प्राणियोंको शुद्ध हृदयसे सान्त्वना देते हुए प्रिय आचरणोंद्वारा राज्यकी समस्त प्रजाओंको अपने वशमें किये रहते हैं॥ २८॥

'वीर श्रीरामचन्द्र अपने सात्त्विक भावसे समस्त लोकोंको, दानके द्वारा द्विजोंको, सेवासे गुरुजनोंको और धनुष-बाणद्वारा युद्धस्थलमें शत्रु-सैनिकोंको जीतकर अपने अधीन कर लेते हैं॥ २९॥

'सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-शुश्रूषा—ये सभी सद्‌गुण श्रीराममें स्थिररूपसे रहते हैं॥ ३०॥

'देवि! महर्षियोंके समान तेजस्वी उन सीधे-सादे देवतुल्य श्रीरामका तू क्यों अनिष्ट करना चाहती है?॥

'श्रीराम सब लोगोंसे प्रिय बोलते हैं। उन्होंने कभी किसीको अप्रिय वचन कहा हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। ऐसे सर्वप्रिय रामसे मैं तेरे लिये अप्रिय बात कैसे कहूँगा?॥ ३२॥

'जिनमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता और समस्त जीवोंके प्रति दया भरी हुई है, उन श्रीरामके बिना मेरी क्या गति होगी?॥ ३३॥

'कैकेयि! मैं बूढ़ा हूँ। मौतके किनारे बैठा हूँ। मेरी अवस्था शोचनीय हो रही है और मैं दीनभावसे तेरे सामने गिड़गिड़ा रहा हूँ। तुझे मुझपर दया करनी चाहिये॥

'समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जो कुछ मिल सकता है, वह सब मैं तुझे दे दूँगा, परंतु तू ऐसे दुराग्रहमें न पड़, जो मुझे मौतके मुँहमें ढकेलनेवाला हो॥ ३५॥

'केकयनन्दिनि! मैं हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पैरों पड़ता हूँ। तू श्रीरामको शरण दे, जिससे यहाँ मुझे पाप न लगे'॥ ३६॥

महाराज दशरथ इस प्रकार दुःखसे संतप्त होकर विलाप कर रहे थे। उनकी चेतना बार-बार लुप्त हो जाती थी। उनके मस्तिष्कमें चक्कर आ रहा था और वे शोकमग्न हो उस शोकसागरसे शीघ्र पार होनेके लिये बारंबार अनुनय-विनय कर रहे थे, तो भी कैकेयीका हृदय नहीं पिघला। वह और भी भीषण रूप धारण करके अत्यन्त कठोर वाणीमें उन्हें इस प्रकार उत्तर देने लगी—॥ ३७-३८॥

'राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर उनके लिये पश्चात्ताप करते हैं तो वीर नरेश्वर! इस भूमण्डलमें आप अपनी धार्मिकताका ढिंढोरा कैसे पीट सकेंगे?॥

'धर्मके ज्ञाता महाराज! जब बहुत-से राजर्षि एकत्र होकर आपके साथ मुझे दिये हुए वरदानके विषयमें बातचीत करेंगे, उस समय वहाँ आप उन्हें क्या उत्तर देंगे?॥ ४०॥

'यही कहेंगे न, कि जिसके प्रसादसे मैं जीवित हूँ, जिसने (बहुत बड़े संकटसे) मेरी रक्षा की, उसी कैकेयीको वर देनेके लिये की हुई प्रतिज्ञा मैंने झूठी कर दी॥ ४१॥

'महाराज! आज ही वरदान देकर यदि आप फिर उससे विपरीत बात कहेंगे तो अपने कुलके राजाओंके माथे कलंकका टीका लगायेंगे॥ ४२॥

'राजा शैब्यने बाज और कबूतरके झगड़ेमें (कबूतरके प्राण बचानेकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये) बाज नामक पक्षीको अपने शरीरका मांस काटकर दे दिया था। इसी तरह राजा अलर्कने (एक अंधे ब्राह्मणको) अपने दोनों नेत्रोंका दान करके परम उत्तम गति प्राप्त की थी॥ ४३॥

'समुद्रने (देवताओंके समक्ष) अपनी नियत सीमाको न लाँघनेकी प्रतिज्ञा की थी, सो अबतक वह उसका उल्लङ्घन नहीं करता है। आप भी पूर्ववर्ती महापुरुषोंके बर्तावको सदा ध्यानमें रखकर अपनी प्रतिज्ञा झूठी न करें॥ ४४॥

'(परंतु आप मेरी बात क्यों सुनेंगे?) दुर्बुद्धि नरेश! आप तो धर्मको तिलाञ्जलि देकर श्रीरामको राज्यपर अभिषिक्त करके रानी कौसल्याके साथ सदा मौज उड़ाना चाहते हैं॥ ४५॥

'अब धर्म हो या अधर्म, झूठ हो या सच, जिस बातके लिये आपने मुझसे प्रतिज्ञा कर ली है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता॥ ४६॥

'यदि श्रीरामका राज्याभिषेक होगा तो मैं आपके सामने आपके देखते-देखते आज ही बहुत-सा विष पीकर मर जाऊँगी॥ ४७॥

'यदि मैं एक दिन भी राममाता कौसल्याको राजमाता होनेके नाते दूसरे लोगोंसे अपनेको हाथ जोड़वाती देख लूँगी तो उस समय मैं अपने लिये मर जाना ही अच्छा समझूँगी॥ ४८॥

'नरेश्वर! मैं आपके सामने अपनी और भरतकी शपथ खाकर कहती हूँ कि श्रीरामको इस देशसे निकाल देनेके सिवा दूसरे किसी वरसे मुझे संतोष नहीं होगा'॥

इतना कहकर कैकेयी चुप हो गयी। राजा बहुत रोये-गिड़गिड़ाये; किंतु उसने उनकी किसी बातका जवाब नहीं दिया॥ ५०॥

'श्रीरामका वनवास हो और भरतका राज्याभिषेक' कैकेयीके मुखसे यह परम अमङ्गलकारी वचन सुनकर राजाकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे एक मुहूर्ततक कैकेयीसे कुछ न बोले। उस अप्रिय वचन बोलनेवाली प्यारी रानीकी ओर केवल एकटक दृष्टिसे देखते रहे॥ ५१-५२॥

मनको अप्रिय लगनेवाली कैकेयीकी वह वज्रके समान कठोर तथा दुःख-शोकमयी वाणी सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ। उनकी सुख-शान्ति छिन गयी॥ ५३॥

देवी कैकेयीके उस घोर निश्चय और किये हुए शपथकी ओर ध्यान जाते ही वे 'हा राम!' कहकर लंबी साँस खींचते हुए कटे वृक्षकी भाँति गिर पड़े॥ ५४॥

उनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी। वे उन्मादग्रस्त-से प्रतीत होने लगे। उनकी प्रकृति विपरीत-सी हो गयी। वे रोगी-से जान पड़ते थे। इस प्रकार भूपाल दशरथ मन्त्रसे जिसका तेज हर लिया गया हो उस सर्पके समान निश्चेष्ट हो गये॥ ५५॥

तदनन्तर उन्होंने दीन और आतुर वाणीमें कैकेयीसे इस प्रकार कहा—'अरी! तुझे अनर्थ ही अर्थ-सा प्रतीत हो रहा है, किसने तुझे इसका उपदेश दिया है?॥ ५६॥

'जान पड़ता है, तेरा चित्त किसी भूतके आवेशसे दूषित हो गया है। पिशाचग्रस्त नारीकी भाँति मेरे सामने ऐसी बातें कहती हुई तू लज्जित क्यों नहीं होती? मुझे पहले इस बातका पता नहीं था कि तेरा यह कुलाङ्गनोचित शील इस तरह नष्ट हो गया है॥ ५७॥

'बालावस्थामें जो तेरा शील था, उसे इस समय मैं विपरीत-सा देख रहा हूँ। तुझे किस बातका भय हो गया है जो इस तरहका वर माँगती है ? भरत राज्य-सिंहासनपर बैठें और श्रीराम वनमें रहें—यही तू माँग रही है। यह बड़ा असत्य तथा ओछा विचार है। तू अब भी इससे विरत हो जा॥ ५८-५९॥

'क्रूर स्वभाव और पापपूर्ण विचारवाली नीच दुराचारिणि! यदि अपने पतिका, सारे जगत्‌का और भरतका भी प्रिय करना चाहती है तो इस दूषित संकल्पको त्याग दे॥ ६०॥

'तू मुझमें या श्रीराममें कौन-सा दुःखदायक या अप्रिय बर्ताव देख रही है (कि ऐसा नीच कर्म करनेपर उतारू हो गयी है); श्रीरामके बिना भरत किसी तरह राज्य लेना स्वीकार नहीं करेंगे॥ ६१॥

'क्योंकि मेरी समझमें धर्मपालनकी दृष्टिसे भरत श्रीरामसे भी बढ़े-चढ़े हैं। श्रीरामसे यह कह देनेपर कि तुम वनको जाओ; जब उनके मुखकी कान्ति राहुग्रस्त चन्द्रमाकी भाँति फीकी पड़ जायगी, उस समय मैं कैसे उनके उस उदास मुखकी ओर देख सकूँगा?॥ ६२½॥

'मैंने श्रीरामके अभिषेकका निश्चय सुहृदोंके साथ विचार करके किया है, मेरी यह बुद्धि शुभ कर्ममें प्रवृत्त हुई है; अब मैं इसे शत्रुओंद्वारा पराजित हुई सेनाकी भाँति पलटी हुई कैसे देखूँगा?॥ ६३½॥

'नाना दिशाओंसे आये हुए राजालोग मुझे लक्ष्य करके खेदपूर्वक कहेंगे कि इस मूढ इक्ष्वाकुवंशी राजाने कैसे दीर्घकालतक इस राज्यका पालन किया है?॥ ६४½॥

'जब बहुत-से बहुश्रुत गुणवान् एवं वृद्ध पुरुष आकर मुझसे पूछेंगे कि श्रीराम कहाँ हैं? तब मैं उनसे कैसे यह कहूँगा कि कैकेयीके दबाव देनेपर मैंने अपने बेटेको घरसे निकाल दिया॥ ६५-६६॥

'यदि कहूँ कि श्रीरामको वनवास देकर मैंने सत्यका पालन किया है तो इसके पहले जो उन्हें राज्य देनेकी बात कह चुका हूँ, वह असत्य हो जायगी। यदि राम वनको चले गये तो कौसल्या मुझे क्या कहेगी? उसका ऐसा महान् अपकार करके मैं उसे क्या उत्तर दूँगा॥ ६७½॥

'हाय! जिसका पुत्र मुझे सबसे अधिक प्रिय है, वह प्रिय वचन बोलनेवाली कौसल्या जब-जब दासी, सखी, पत्नी, बहिन और माताकी भाँति मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे मेरी सेवामें उपस्थित होती थी, तब-तब उस सत्कार पानेयोग्य देवीका भी मैंने तेरे ही कारण कभी सत्कार नहीं किया॥ ६८-६९½॥

'तेरे साथ जो मैंने इतना अच्छा बर्ताव किया, वह याद आकर इस समय मुझे उसी प्रकार संताप दे रहा है, जैसे अपथ्य (हानिकारक) व्यञ्जनोंसे युक्त खाया हुआ अन्न किसी रोगीको कष्ट देता है॥ ७०½॥

'श्रीरामके अभिषेकका निवारण और उनका वनकी ओर प्रस्थान देखकर निश्चय ही सुमित्रा भयभीत हो जायगी, फिर वह कैसे मेरा विश्वास करेगी?॥ ७१½॥

'हाय! बेचारी सीताको एक ही साथ दो दुःखद

एवं अप्रिय समाचार सुनने पड़ेंगे—श्रीरामका वनवास और मेरी मृत्यु॥ ७२ १/२ ॥

'जब वह श्रीरामके लिये शोक करने लगेगी, उस समय मेरे प्राणोंका नाश कर डालेगी—उसका शोक देखकर मेरे प्राण इस शरीरमें नहीं रह सकेंगे। उसकी दशा हिमालयके पार्श्वभागमें अपने स्वामी किन्नरसे बिछुड़ी हुई किन्नरीके समान हो जायगी॥ ७३ १/२ ॥

'मैं श्रीरामको विशाल वनमें निवास करते और मिथिलेशकुमारी सीताको रोती देख अधिक कालतक जीवित रहना नहीं चाहता। ऐसी दशामें तू निश्चय ही विधवा होकर बेटेके साथ अयोध्याका राज्य करना॥

'ओह! मैं तुझे अत्यन्त सती-साध्वी समझता था, परंतु तू बड़ी दुष्टा निकली; ठीक उसी तरह जैसे कोई मनुष्य देखनेमें सुन्दर मदिराको पीकर पीछे उसके द्वारा किये गये विकारसे यह समझ पाता है कि इसमें विष मिला हुआ था॥ ७६ ॥

'अबतक जो तू सान्त्वनापूर्ण मीठे वचन बोलकर मुझे आश्वासन देती हुई बातें किया करती थी, वे तेरी कही हुई सारी बातें झूठी थीं। जैसे व्याध हरिणको मधुर संगीतसे आकृष्ट करके उसे मार डालता है, उसी प्रकार तू भी पहले मुझे लुभाकर अब मेरे प्राण ले रही है॥ ७७ ॥

'श्रेष्ठ पुरुष निश्चय ही मुझे नीच और एक नारीके मोहमें पड़कर बेटेको बेच देनेवाला कहकर शराबी ब्राह्मणकी भाँति मेरी राह-बाट और गली-कूचोंमें निन्दा करेंगे॥ ७८ ॥

'अहो! कितना दुःख है! कितना कष्ट है!! जहाँ मुझे तेरी ये बातें सहन करनी पड़ती हैं। मानो यह मेरे पूर्वजन्मके किये हुए पापका ही अशुभ फल है, जो मुझपर ऐसा महान् दुःख आ पड़ा॥ ७९ ॥

'पापिनि! मुझ पापीने बहुत दिनोंसे तेरी रक्षा की और अज्ञानवश तुझे गले लगाया; किंतु तू आज मेरे गलेमें पड़ी हुई फाँसीकी रस्सी बन गयी॥ ८० ॥

'जैसे बालक एकान्तमें खेलता-खेलता काले नागको हाथमें पकड़ ले, उसी प्रकार मैंने एकान्तमें तेरे साथ क्रीड़ा करते हुए तेरा आलिङ्गन किया है; परंतु उस समय मुझे यह न सूझा कि तू ही एक दिन मेरी मृत्युका कारण बनेगी॥ ८१ ॥

'हाय! मुझ दुरात्माने जीते-जी ही अपने महात्मा पुत्रको पितृहीन बना दिया। मुझे यह सारा संसार निश्चय ही धिक्कारेगा—गालियाँ देगा, जो उचित ही होगा॥ ८२ ॥

'लोग मेरी निन्दा करते हुए कहेंगे कि राजा दशरथ बड़ा ही मूर्ख और कामी है, जो एक स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये अपने प्यारे पुत्रको वनमें भेज रहा है॥ ८३ ॥

'हाय! अबतक तो श्रीराम वेदोंका अध्ययन करने, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करने तथा अनेकानेक गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहनेके कारण दुबले होते चले आये हैं। अब जब इनके लिये सुखभोगका समय आया है, तब ये वनमें जाकर महान् कष्टमें पड़ेंगे॥ ८४॥

'अपने पुत्र श्रीरामसे यदि मैं कह दूँ कि तुम वनको चले जाओ तो वे तुरंत 'बहुत अच्छा' कहकर मेरी आज्ञाको स्वीकार कर लेंगे। मेरे पुत्र राम दूसरी कोई बात कहकर मुझे प्रतिकूल उत्तर नहीं दे सकते॥

'यदि मेरे वन जानेकी आज्ञा दे देनेपर भी श्रीरामचन्द्र उसके विपरीत करते—वनमें नहीं जाते तो वही मेरे लिये प्रिय कार्य होगा; किंतु मेरा बेटा ऐसा नहीं कर सकता॥ ८६ ॥

'यदि रघुनन्दन राम वनको चले गये तो सब लोगोंके धिक्कारपात्र बने हुए मुझ अक्षम्य अपराधीको मृत्यु अवश्य यमलोकमें पहुँचा देगी॥ ८७॥

'यदि नरश्रेष्ठ श्रीरामके वनमें चले जानेपर मेरी मृत्यु हो गयी तो शेष जो मेरे प्रियजन (कौसल्या आदि) यहाँ रहेंगे, उनपर तू कौन-सा अत्याचार करेगी?॥ ८८॥

'देवी कौसल्याको यदि मुझसे, श्रीरामसे तथा शेष दोनों पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे विछोह हो जायगा तो वह इतने बड़े दुःखको सहन नहीं कर सकेगी; अतः मेरे ही पीछे वह भी परलोक सिधार जायगी। (सुमित्राका भी यही हाल होगा)॥ ८९॥

'कैकेयि! इस प्रकार कौसल्याको, सुमित्राको और तीनों पुत्रोंके साथ मुझे भी नरक-तुल्य महान् शोकमें डालकर तू स्वयं सुखी होना॥ ९०॥

'अनेकानेक गुणोंसे सत्कृत, शाश्वत तथा क्षोभरहित यह इक्ष्वाकुकुल जब मुझसे और श्रीरामसे परित्यक्त होकर शोकसे व्याकुल हो जायगा, तब उस अवस्थामें तू इसका पालन करेगी॥ ९१॥

'यदि भरतको भी श्रीरामका यह वनमें भेजा जाना प्रिय लगता हो तो मेरी मृत्युके बाद वे मेरे शरीरका दाहसंस्कार न करें॥ ९२॥

'पुरुषशिरोमणि श्रीरामके वन-गमनके पश्चात् मेरी

मृत्यु हो जानेपर अब विधवा होकर तू बेटेके साथ अयोध्याका राज्य करेगी॥ ९३॥

'राजकुमारी! तू मेरे दुर्भाग्यसे मेरे घरमें आकर बस गयी। तेरे कारण संसारमें पापाचारीकी भाँति मुझे निश्चय ही अनुपम अपयश, तिरस्कार और समस्त प्राणियोंसे अवहेलना प्राप्त होगी॥ ९४॥

'मेरे पुत्र सामर्थ्यशाली राम बारंबार रथों, हाथियों और घोड़ोंसे यात्रा किया करते थे। वे ही अब उस विशाल वनमें पैदल कैसे चलेंगे?॥ ९५॥

'भोजनके समय जिनके लिये कुण्डलधारी रसोइये प्रसन्न होकर 'पहले मैं बनाऊँगा' ऐसा कहते हुए खाने-पीनेकी वस्तुएँ तैयार करते थे, वे ही मेरे पुत्र रामचन्द्र वनमें कसैले, तिक्त और कड़वे फलोंका आहार करते हुए किस तरह निर्वाह करेंगे॥ ९६-९७॥

'जो सदा बहुमूल्य वस्त्र पहना करते थे और जिनका चिरकालसे सुखमें ही समय बीता है, वे ही श्रीराम वनमें गेरुए वस्त्र पहनकर कैसे रह सकेंगे?॥ ९८॥

'श्रीरामका वनगमन और भरतका अभिषेक—ऐसा कठोर वाक्य तूने किसकी प्रेरणासे अपने मुँहसे निकाला है॥ ९९॥

'स्त्रियोंको धिक्कार है; क्योंकि वे शठ और स्वार्थपरायण होती हैं; परंतु मैं सारी स्त्रियोंके लिये ऐसा नहीं कह सकता, केवल भरतकी माताकी ही निन्दा करता हूँ॥ १००॥

'अनर्थमें ही अर्थबुद्धि रखनेवाली क्रूर कैकेयि! तू मुझे संताप देनेके लिये ही इस घरमें बसायी गयी है। अरी! मेरे कारण तू अपना कौन-सा अप्रिय होता देख रही है? अथवा सबका निरन्तर हित करनेवाले श्रीराममें ही तुझे कौन-सी बुराई दिखायी देती है॥ १०१॥

'श्रीरामको संकटके समुद्रमें डूबा हुआ देखकर तो पिता अपने पुत्रोंको त्याग देंगे। अनुरागिणी स्त्रियाँ भी अपने पतियोंको त्याग देंगी। इस प्रकार यह सारा जगत् ही कुपित—विपरीत व्यवहार करनेवाला हो जायगा॥ १०२॥

'देवकुमारके समान कमनीय रूपवाले अपने पुत्र श्रीरामको जब वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर सामने आते देखता हूँ तो नेत्रोंसे उनकी शोभा निहारकर निहाल हो जाता हूँ। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो मैं फिर जवान हो गया॥ १०३॥

'कदाचित् सूर्यके बिना भी संसारका काम चल जाय, वज्रधारी इन्द्रके वर्षा न करनेपर भी प्राणियोंका जीवन सुरक्षित रह जाय, परंतु रामको यहाँसे वनकी ओर जाते देखकर कोई भी जीवित नहीं रह सकता—मेरी ऐसी धारणा है॥ १०४॥

'अरी! तू मेरा विनाश चाहनेवाली, अहित करनेवाली और शत्रुरूप है। जैसे कोई अपनी ही मृत्युको घरमें स्थान दे दे, उसी प्रकार मैंने तुझे घरमें बसा लिया है। खेदकी बात है कि मैंने मोहवश तुझ महाविषैली नागिनको चिरकालसे अपने अङ्कमें धारण कर रखा है; इसीलिये आज मैं मारा गया॥ १०५॥

'मुझसे, श्रीराम और लक्ष्मणसे हीन होकर भरत समस्त बान्धवोंका विनाश करके तेरे साथ इस नगर तथा राष्ट्रका शासन करें तथा तू मेरे शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली हो॥ १०६॥

'क्रूरतापूर्ण बर्ताव करनेवाली कैकेयी! तू संकटमें पड़े हुएपर प्रहार कर रही है। अरी! जब तू दुराग्रहपूर्वक आज ऐसी कठोर बातें मुँहसे निकालती है, उस समय तेरे दाँतोंके हजारों टुकड़े होकर मुँहसे नीचे क्यों नहीं गिर जाते?॥ १०७॥

'श्रीराम कभी किसीसे कोई अहितकारक या अप्रिय वचन नहीं करते हैं। वे कटुवचन बोलना जानते ही नहीं हैं। उनका अपने गुणोंके कारण सदा-सर्वदा सम्मान होता है। उन्हीं मनोहर वचन बोलनेवाले श्रीराममें तू दोष कैसे बता रही है? क्योंकि वनवास उसीको दिया जाता है, जिसके बहुत-से दोष सिद्ध हो चुके हों॥ १०८॥

'ओ केकयराजके कुलकी जीती-जागती कलङ्क! तू चाहे ग्लानिमें डूब जा अथवा आगमें जलकर खाक हो जा या विष खाकर प्राण दे दे अथवा पृथ्वीमें हजारों दरारें बनाकर उसीमें समा जा; परंतु मेरा अहित करनेवाली तेरी यह अत्यन्त कठोर बात मैं कदापि नहीं मानूँगा॥ १०९॥

'तू छुरेके समान घात करनेवाली है। बातें तो मीठी-मीठी करती है, परंतु वे सदा झूठी और सद्भावनासे रहित होती हैं। तेरे हृदयका भाव अत्यन्त दूषित है तथा तू अपने कुलका भी नाश करनेवाली है। इतना ही नहीं, तू प्राणोंसहित मेरे हृदयको भी जलाकर भस्म कर डालना चाहती है; इसीलिये मेरे मनको नहीं भाती है। तुझ पापिनीका जीवित रहना मैं नहीं सह सकता॥ ११०॥

'देवि! अपने बेटे श्रीरामके बिना मेरा जीवन नहीं रह सकता, फिर कहाँसे सुख हो सकता है? आत्मज्ञ

पुरुषोंको भी अपने पुत्रसे बिछोह हो जानेपर कैसे चैन मिल सकता है? अतः तू मेरा अहित न कर। मैं तेरे पैर छूता हूँ, तू मुझपर प्रसन्न हो जा'॥ १११॥

इस प्रकार महाराज दशरथ मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाली उस हठीली स्त्रीके वशमें पड़कर अनाथकी भाँति विलाप कर रहे थे। वे देवी कैकेयीके फैलाये हुए दोनों चरणोंको छूना चाहते थे; परंतु उन्हें न पाकर बीचमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। ठीक उसी तरह, जैसे कोई रोगी किसी वस्तुको छूना चाहता है; किंतु दुर्बलताके कारण वहाँतक न पहुँचकर बीचमें ही अचेत होकर गिर जाता है॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

राजाका विलाप और कैकेयीसे अनुनय-विनय

महाराज दशरथ उस अयोग्य और अनुचित अवस्थामें पृथ्वीपर पड़े थे। उस समय वे पुण्य समाप्त होनेपर देवलोकसे भ्रष्ट हुए राजा ययातिके समान जान पड़ते थे। उनकी वैसी दशा देख अनर्थकी साक्षात् मूर्ति कैकेयी, जिसका प्रयोजन अभीतक सिद्ध नहीं हुआ था, जो लोकापवादका भय छोड़ चुकी थी और श्रीरामसे भरतके लिये भय देखती थी, पुनः उसी वरके लिये राजाको सम्बोधित करके कहने लगी—॥ १-२॥

'महाराज! आप तो डींग मारा करते थे कि मैं बड़ा सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ हूँ, फिर आप मेरे इस वरदानको क्यों हजम कर जाना चाहते हैं?'॥ ३॥

कैकेयीके ऐसा कहनेपर राजा दशरथ दो घड़ीतक व्याकुलकी-सी अवस्थामें रहे। तत्पश्चात् कुपित होकर उसे इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ ४॥

'ओ नीच! तू मेरी शत्रु है। नरश्रेष्ठ श्रीरामके वनमें चले जानेपर जब मेरी मृत्यु हो जायगी, उस समय तू सफलमनोरथ होकर सुखसे रहना॥ ५॥

'हाय! स्वर्गमें भी जब देवता मुझसे श्रीरामका कुशल समाचार पूछेंगे, उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? यदि कहूँ, उन्हें वनमें भेज दिया तो उसके बाद वे लोग जो मेरे प्रति धिक्कारपूर्ण बात कहेंगे, उसे कैसे सह सकूँगा? इसके लिये मुझे बड़ा खेद है॥ ६॥

'कैकेयीका प्रिय करनेकी इच्छासे उसके माँगे हुए वरदानके अनुसार मैंने श्रीरामको वनमें भेज दिया, यदि ऐसा कहूँ और इसे सत्य बताऊँ तो मेरी वह पहली बात असत्य हो जायगी, जिसके द्वारा मैंने रामको राज्य देनेका आश्वासन दिया है॥ ७॥

'मैं पहले पुत्रहीन था, फिर महान् परिश्रम करके मैंने जिन महातेजस्वी महापुरुष श्रीरामको पुत्ररूपमें प्राप्त किया है, उनका मेरे द्वारा त्याग कैसे किया जा सकता है?॥ ८॥

'जो शूरवीर, विद्वान्, क्रोधको जीतनेवाले और क्षमापरायण हैं, उन कमलनयन श्रीरामको मैं देशनिकाला कैसे दे सकता हूँ?॥ ९॥

'जिनकी अङ्गकान्ति नीलकमलके समान श्याम है, भुजाएँ विशाल और बल महान् हैं, उन नयनाभिराम श्रीरामको मैं दण्डकवनमें कैसे भेज सकूँगा?॥ १०॥

'जो सदा सुख भोगनेके ही योग्य हैं, कदापि दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, उन बुद्धिमान् श्रीरामको दुःख उठाते मैं कैसे देख सकता हूँ?॥ ११॥

'जो दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, उन श्रीरामको यह वनवासका दुःख दिये बिना ही यदि मैं इस संसारसे विदा हो जाता तो मुझे बड़ा सुख मिलता॥ १२॥

'ओ पापपूर्ण विचार रखनेवाली पाषाणहृदया कैकेयि! सत्यपराक्रमी श्रीराम मुझे बहुत प्रिय हैं, तू मुझसे उनका विछोह क्यों करा रही है? अरी! ऐसा करनेसे निश्चय ही संसारमें तेरी वह अपकीर्ति फैलेगी, जिसकी कहीं तुलना नहीं है'॥ १३½॥

इस प्रकार विलाप करते-करते राजा दशरथका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा। इतनेमें ही सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और प्रदोषकाल आ पहुँचा॥ १४½॥

वह तीन पहरोंवाली रात यद्यपि चन्द्रमण्डलकी चारुचन्द्रिकासे आलोकित हो रही थी, तो भी उस समय आर्त होकर विलाप करते हुए राजा दशरथके लिये प्रकाश या उल्लास न दे सकी॥ १५½॥

बूढ़े राजा दशरथ निरन्तर गरम उच्छ्वास लेते हुए आकाशकी ओर दृष्टि लगाये आर्तकी भाँति दुःखपूर्ण विलाप करने लगे—॥ १६½॥

'नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत कल्याणमयी रात्रिदेवि!

मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे द्वारा प्रभात-काल लाया जाय। मुझपर दया करो। मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ॥

'अथवा शीघ्र बीत जाओ; क्योंकि जिसके कारण मुझे भारी संकट प्राप्त हुआ है, उस निर्दय और क्रूर कैकेयीको अब मैं नहीं देखना चाहता'॥ १८½ ॥

कैकेयीसे ऐसा कहकर राजधर्मके ज्ञाता राजा दशरथने पुनः हाथ जोड़कर उसे मनाने या प्रसन्न करनेकी चेष्टा आरम्भ की—॥ १९½ ॥

'कल्याणमयी देवि! जो सदाचारी, दीन, तेरे आश्रित, गतायु (मरणासन्न) और विशेषतः राजा है—ऐसे मुझ दशरथपर कृपा कर॥ २०½ ॥

'सुन्दर कटिप्रदेशवाली केकयनन्दिनि! मैंने जो यह श्रीरामको राज्य देनेकी बात कही है, वह किसी सूने घरमें नहीं, भरी सभामें घोषित की है, अतः बाले! तू बड़ी सहृदय है; इसलिये मुझपर भलीभाँति कृपा कर (जिससे सभासदोंद्वारा मेरा उपहास न हो)॥ २१½ ॥

'देवि! प्रसन्न हो जा। कजरारे नेत्रप्रान्तवाली प्रिये! मेरे श्रीराम तेरे ही दिये हुए इस अक्षय राज्यको प्राप्त करें, इससे तुझे उत्तम यशकी प्राप्ति होगी॥ २२½ ॥

'पृथुल नितम्बवाली देवि! सुमुखि! सुलोचने! यह प्रस्ताव मुझको, श्रीरामको, समस्त प्रजावर्गको, गुरुजनोंको तथा भरतको भी प्रिय होगा, अतः इसे पूर्ण कर'॥ २३ ॥

राजाके हृदयका भाव अत्यन्त शुद्ध था, उनके आँसूभरे नेत्र लाल हो गये थे और वे दीनभावसे विचित्र करुणाजनक विलाप कर रहे थे, किंतु मनमें दूषित विचार रखनेवाली निष्ठुर कैकेयीने पतिके उस विलापको सुनकर भी उनकी आज्ञाका पालन नहीं किया॥ २४ ॥

(इतनी अनुनय-विनयके बाद भी) जब प्रिया कैकेयी किसी तरह संतुष्ट न हो सकी और बराबर प्रतिकूल बात ही मुँहसे निकालती गयी, तब पुत्रके वनवासकी बात सोचकर राजा पुनः दुःखके मारे मूर्च्छित हो गये और सुध-बुध खोकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २५ ॥

इस प्रकार व्यथित होकर भयंकर उच्छ्वास लेते हुए मनस्वी राजा दशरथकी वह रात धीरे-धीरे बीत गयी। प्रातःकाल राजाको जगानेके लिये मनोहर वाद्योंके साथ मङ्गलगान होने लगा, परंतु उन राज-शिरोमणिने तत्काल मनाही भेजकर वह सब बंद करा दिया॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

कैकेयीका राजाको सत्यपर दृढ़ रहनेके लिये प्रेरणा देकर अपने वरोंकी पूर्तिके लिये दुराग्रह दिखाना, महर्षि वसिष्ठका अन्तःपुरके द्वारपर आगमन और सुमन्त्रको महाराजके पास भेजना, राजाकी आज्ञासे सुमन्त्रका श्रीरामको बुलानेके लिये जाना

इक्ष्वाकुनन्दन राजा दशरथ पुत्रशोकसे पीड़ित हो पृथ्वीपर अचेत पड़े थे और वेदनासे छटपटा रहे थे, उन्हें इस अवस्थामें देखकर पापिनी कैकेयी इस प्रकार बोली—॥ १ ॥

'महाराज! आपने मुझे दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी और जब मैंने उन्हें माँगा, तब आप इस प्रकार सन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो कोई पाप करके पछता रहे हों, यह क्या बात है? आपको सत्पुरुषोंकी मर्यादामें स्थिर रहना चाहिये॥ २ ॥

'धर्मज्ञ पुरुष सत्यको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म बतलाते हैं, उस सत्यका सहारा लेकर मैंने आपको धर्मका पालन करनेके लिये ही प्रेरित किया है॥ ३ ॥

'पृथ्वीपति राजा शैब्यने बाज पक्षीको अपना शरीर देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे दे ही दिया और देकर उत्तम गति प्राप्त कर ली॥ ४॥

'इसी प्रकार तेजस्वी राजा अलर्कने वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणको उसके याचना करनेपर मनमें खेद न लाते हुए अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थीं॥ ५॥

'सत्यको प्राप्त हुआ समुद्र सत्यका ही अनुसरण करनेके कारण पर्व आदिके समय भी अपनी छोटी-सी सीमातट—भूमिका भी उल्लङ्घन नहीं करता॥ ६॥

'सत्य ही प्रणवरूप शब्दब्रह्म है, सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्यसे ही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है॥ ७॥

'इसलिये यदि आपकी बुद्धि धर्ममें स्थित है तो सत्यका अनुसरण कीजिये। साधुशिरोमणे! मेरा माँगा

हुआ वह वर सफल होना चाहिये; क्योंकि आप स्वयं ही उस वरके दाता हैं॥ ८॥

'धर्मके ही अभीष्ट फलकी सिद्धिके लिये तथा मेरी प्रेरणासे भी आप अपने पुत्र श्रीरामको घरसे निकाल दीजिये। मैं अपने इस कथनको तीन बार दुहराती हूँ॥ ९॥

'आर्य! यदि मुझसे की हुई इस प्रतिज्ञाका आप पालन नहीं करेंगे तो मैं आपसे परित्यक्त (उपेक्षित) होकर आपके सामने ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी'॥ १०॥

इस प्रकार कैकेयीने जब निःशङ्क होकर राजाको प्रेरित किया, तब वे उस सत्यरूपी बन्धनको वैसे ही नहीं खोल सके—उस बन्धनसे अपनेको उसी तरह नहीं मुक्त कर सके, जैसे राजा बलि इन्द्रप्रेरित वामनके पाशसे अपनेको मुक्त करनेमें असमर्थ हो गये थे॥ ११॥

दो पहियोंके बीचमें फँसकर वहाँसे निकलनेकी चेष्टा करनेवाले गाड़ीके बैलकी भाँति उनका हृदय उद्भ्रान्त हो उठा था और उनके मुखकी कान्ति भी फीकी पड़ गयी थी॥ १२॥

अपने विकल नेत्रोंसे कुछ भी देखनेमें असमर्थ-से होकर भूपाल दशरथने बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण करके अपने हृदयको सँभाला और कैकेयीसे इस प्रकार कहा— ॥ १३॥

'पापिनि! मैंने अग्निके समीप '**साङ्गुष्ठं ते गृभ्णामि सौभगत्वाय हस्तम्‌०**' इत्यादि वैदिक मन्त्रका पाठ करके तेरे जिस हाथको पकड़ा था, उसे आज छोड़ रहा हूँ। साथ ही तेरे और अपने द्वारा उत्पन्न हुए तेरे पुत्रका भी त्याग करता हूँ॥ १४॥

'देवि! रात बीत गयी। सूर्योदय होते ही सब लोग निश्चय ही श्रीरामका राज्याभिषेक करनेके लिये मुझे शीघ्रता करनेको कहेंगे॥ १५॥

'उस समय जो सामान श्रीरामके अभिषेकके लिये जुटाया गया है, उसके द्वारा मेरे मरनेके बाद श्रीरामके हाथसे मुझे जलाञ्जलि दिलवा देना; परंतु अपने पुत्रसहित तू मेरे लिये जलाञ्जलि न देना॥ १६$\frac{1}{2}$॥

'पापाचारिणि! यदि तू श्रीरामके अभिषेकमें विघ्न डालेगी (तो तुझे मेरे लिये जलाञ्जलि देनेका कोई अधिकार न होगा)। मैं पहले श्रीरामके राज्याभिषेकके समाचारसे जो जन-समुदायका हर्षोल्लाससे परिपूर्ण उन्नत मुख देख चुका हूँ, वैसा देखनेके पश्चात् आज पुनः उसी जनताके हर्ष और आनन्दसे शून्य, नीचे लटके हुए मुखको मैं नहीं देख सकूँगा'॥ १७-१८॥

महात्मा राजा दशरथके कैकेयीसे इस तरहकी बातें करते-करते ही चन्द्रमा और नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत वह पुण्यमयी रजनी बीत गयी और प्रभातकाल आ गया॥ १९॥

तदनन्तर बातचीतके मर्मको समझनेवाली पापाचारिणी कैकेयी रोषसे मूर्च्छित-सी होकर राजासे पुनः कठोर वाणीमें बोली— ॥ २०॥

'राजन्! आप विष और शूल आदि रोगोंके समान कष्ट देनेवाले ऐसे वचन क्यों बोल रहे हैं (इन बातोंसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है)। आप बिना किसी क्लेशके अपने पुत्र श्रीरामको यहाँ बुलवाइये। मेरे पुत्रको राज्यपर प्रतिष्ठित कीजिये और श्रीरामको वनमें भेजकर मुझे निष्कण्टक बनाइये; तभी आप कृतकृत्य हो सकेंगे'॥ २१-२२॥

तीखे कोड़ेकी मारसे पीड़ित हुए उत्तम अश्वकी भाँति कैकेयीद्वारा बारंबार प्रेरित होनेपर व्यथित हुए राजा दशरथने इस प्रकार कहा— ॥ २३॥

'मैं धर्मके बन्धनमें बँधा हुआ हूँ। मेरी चेतना लुप्त होती जा रही है। इसलिये इस समय मैं अपने धर्मपरायण परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको देखना चाहता हूँ'॥ २४॥

उधर जब रात बीती, प्रभात हुआ, सूर्यदेवका उदय हो गया और पुण्यनक्षत्रके योगमें अभिषेकका शुभ मुहूर्त आ पहुँचा, उस समय शिष्योंसे घिरे हुए शुभगुणसम्पन्न महर्षि वसिष्ठ अभिषेककी आवश्यक सामग्रियोंका संग्रह करके शीघ्रतापूर्वक उस श्रेष्ठ पुरीमें आये॥ २५-२६॥

उस पुण्यवेलामें अयोध्याकी सड़कें झाड़-बुहारकर साफ की गयी थीं और उनपर जलका छिड़काव हुआ था। सारी पुरी उत्तम पताकाओंसे सुशोभित थी। वहाँके सभी मनुष्य हर्ष और उत्साहसे भरे हुए थे। बाजार और दूकानें इस तरह सजी हुई थीं कि उनकी समृद्धि देखते ही बनती थी॥ २७॥

सब ओर महान् उत्सव हो रहा था। सारी नगरी श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये उत्सुक थी। चारों ओर चन्दन, अगर और धूपकी सुगन्ध व्याप्त हो रही थी॥ २८॥

इन्द्रनगरी अमरावतीके समान शोभा पानेवाली उस पुरीको पार करके श्रीमान् वसिष्ठजीने राजा

दशरथके अन्तःपुरका दर्शन किया। जहाँ सहस्रों ध्वजाएँ फहरा रही थीं॥ २९॥

नगर और जनपदके लोग वहाँ भरे हुए थे। बहुत-से ब्राह्मण उस स्थानकी शोभा बढ़ाते थे। छड़ीदार राजसेवक तथा सजे-सजाये सुन्दर घोड़े वहाँ अधिक संख्यामें उपस्थित थे॥ ३०॥

श्रेष्ठ महर्षियोंसे घिरे हुए वसिष्ठजी परम प्रसन्न हो उस अन्तःपुरमें पहुँचकर उस जन-समुदायको लाँघकर आगे बढ़ गये॥ ३१॥

वहाँ उन्होंने महाराजके सुन्दर सचिव तथा सारथि सुमन्त्रको अन्तःपुरके द्वारपर उपस्थित देखा, जो उसी समय भीतरसे निकले थे॥ ३२॥

तब महातेजस्वी वसिष्ठने परम चतुर सूतपुत्र सुमन्त्रसे कहा—'सूत! तुम महाराजको शीघ्र ही मेरे आगमनकी सूचना दो॥ ३३॥

'(उन्हें बताओ कि श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये सारी सामग्री एकत्र कर ली गयी है) ये गङ्गाजलसे भरे कलश रखे हैं, इन सोनेके कलशोंमें समुद्रोंसे लाया हुआ जल भरा हुआ है। यह गूलरकी लकड़ीका बना हुआ भद्रपीठ है, जो अभिषेकके लिये लाया गया है (इसीपर बिठाकर श्रीरामका अभिषेक होगा)॥ ३४॥

'सब प्रकारके बीज, गन्ध, भाँति-भाँतिके रत्न, मधु, दही, घी, लावा या खील, कुश, फूल, दूध, आठ सुन्दरी कन्याएँ, मत्त गजराज, चार घोड़ोंवाला रथ, चमचमाता हुआ खड्ग, उत्तम धनुष, मनुष्योंद्वारा ढोयी जानेवाली सवारी (पालकी आदि), चन्द्रमाके समान श्वेत छत्र, सफेद चँवर, सोनेकी झारी, सुवर्णकी मालासे अलंकृत ऊँचे डीलवाला श्वेत पीतवर्णका वृषभ, चार दाढ़ोंवाला सिंह, महाबलवान् उत्तम अश्व, सिंहासन, व्याघ्रचर्म, समिधाएँ, अग्नि, सब प्रकारके बाजे, वाराङ्गनाएँ, शृङ्गारयुक्त सौभाग्यवती स्त्रियाँ, आचार्य, ब्राह्मण, गौ, पवित्र पशु-पक्षी, नगर और जनपदके श्रेष्ठ पुरुष अपने सेवक-गणोंसहित प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यापारी—ये तथा और भी बहुत-से प्रियवादी मनुष्य बहुसंख्यक राजाओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामके अभिषेकके लिये यहाँ उपस्थित हैं॥ ३५—४१॥

'तुम महाराजसे शीघ्रता करनेके लिये कहो, जिससे अब सूर्योदयके पश्चात् पुष्यनक्षत्रके योगमें श्रीराम राज्य प्राप्त कर लें'॥ ४२॥

वसिष्ठजीके ये वचन सुनकर महाबली सूतपुत्र सुमन्त्रने राजसिंह दशरथकी स्तुति करते हुए उनके भवनमें प्रवेश किया॥ ४३॥

राजाका प्रिय करनेकी इच्छा रखनेवाले और उनके द्वारा सम्मानित द्वारपाल उन बूढ़े सचिवको भीतर जानेसे रोक न सके; क्योंकि उनके लिये पहलेसे ही महाराजकी आज्ञा थी कि ये किसी समय भी भीतर आनेसे रोके न जायँ॥ ४४॥

सुमन्त्र राजाके पास जाकर खड़े हो गये। उन्हें उनकी उस अवस्थाका पता नहीं था; इसलिये वे अत्यन्त संतोषदायक वचनोंद्वारा उनकी स्तुति करनेको उद्यत हुए॥ ४५॥

सूत सुमन्त्र राजाके उस महलमें पहलेकी ही भाँति हाथ जोड़कर उन महाराजकी स्तुति करने लगे—॥ ४६॥

'महाराज! जैसे सूर्योदय होनेपर तेजस्वी समुद्र स्वयं हर्षकी तरंगोंसे उल्लसित हो उसमें स्नानकी इच्छावाले मनुष्योंको आनन्दित करता है, उसी प्रकार आप स्वयं प्रसन्न हो प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे हम सेवकोंको आनन्द प्रदान कीजिये॥ ४७॥

'देवसारथि मातलिने इसी बेलामें देवराज इन्द्रकी स्तुति की थी, जिससे उन्होंने समस्त दानवोंपर विजय प्राप्त कर ली, उसी प्रकार मैं भी स्तुति-वचनोंद्वारा आपको जगा रहा हूँ॥ ४८॥

'छहों अङ्गोंसहित चारों वेद तथा समस्त विद्याएँ जैसे स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको जगाती हैं, उसी प्रकार आज मैं आपको जगा रहा हूँ॥ ४९॥

'जैसे चन्द्रमाके साथ सूर्य समस्त भूतोंकी आधारभूता इस शुभ-स्वरूपा पृथ्वीको जगाया करते हैं, उसी प्रकार आज मैं आपको जगा रहा हूँ॥ ५०॥

'महाराज! उठिये और उत्सवकालिक मङ्गलकृत्य पूर्ण करके वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित शरीरसे सिंहासनपर विराजमान होइये। फिर मेरु पर्वतसे ऊपर उठनेवाले सूर्यदेवके समान आपकी शोभा होती रहे॥ ५१॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! चन्द्रमा, सूर्य, शिव, कुबेर, वरुण, अग्नि और इन्द्र आपको विजय प्रदान करें॥ ५२॥

'राजसिंह! भगवती रात्रिदेवी विदा हो गयीं। आपने जिसके लिये आज्ञा दी थी, आपका वह सारा कार्य पूर्ण हो गया। इस बातको आप जान लें और इसके बाद जो अभिषेकका कार्य शेष है, उसे पूर्ण करें॥ ५३॥

'श्रीरामके अभिषेककी सारी तैयारी हो चुकी है।

नगर और जनपदके लोग तथा मुख्य-मुख्य व्यापारी भी हाथ जोड़े हुए उपस्थित हैं॥ ५४॥

'राजन्! ये भगवान् वसिष्ठ मुनि ब्राह्मणोंके साथ द्वारपर खड़े हैं; अतः श्रीरामके अभिषेकका कार्य आरम्भ करनेके लिये शीघ्र आज्ञा दीजिये॥ ५५॥

'जैसे चरवाहोंके बिना पशु, सेनापतिके बिना सेना, चन्द्रमाके बिना रात्रि और साँड़के बिना गौओंकी शोभा नहीं होती, ऐसी ही दशा उस राष्ट्रकी हो जाती है, जहाँ राजाका दर्शन नहीं होता है'॥ ५६½॥

सुमन्त्रके इस प्रकार कहे हुए सान्त्वनापूर्ण और सार्थक वचनको सुनकर राजा दशरथ पुनः शोकसे ग्रस्त हो गये॥ ५७½॥

उस समय पुत्रके वियोगकी सम्भावनासे उनकी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी थी। शोकके कारण उनके नेत्र लाल हो गये थे। उन धर्मात्मा श्रीमान् नरेशने एक बार दृष्टि उठाकर सूतकी ओर देखा और इस प्रकार कहा—'तुम ऐसी बातें सुनाकर मेरे मर्म-स्थानोंपर और अधिक आघात क्यों कर रहे हो'॥ ५८-५९॥

राजाके ये करुण वचन सुनकर और उनकी दीन दशापर दृष्टिपात करके सुमन्त्र हाथ जोड़े हुए उस स्थानसे कुछ पीछे हट गये॥ ६०॥

जब दुःख और दीनताके कारण राजा स्वयं कुछ भी न कह सके, तब मन्त्रणाका ज्ञान रखनेवाली कैकेयीने सुमन्त्रको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ६१॥

'सुमन्त्र! राजा रातभर श्रीरामके राज्याभिषेकजनित हर्षके कारण उत्कण्ठित होकर जागते रहे हैं। अधिक जागरणसे थक जानेके कारण इस समय इन्हें नींद आ गयी है॥ ६२॥

'अतः सूत! तुम्हारा भला हो। तुम तुरंत जाओ और यशस्वी राजकुमार श्रीरामको यहाँ बुला लाओ। इस विषयमें तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये'॥ ६३॥

तब सुमन्त्रने कहा—'भामिनि! मैं महाराजकी आज्ञा सुने बिना कैसे जा सकता हूँ?' मन्त्रीकी बात सुनकर राजाने उनसे कहा—॥ ६४॥

'सुमन्त्र! मैं सुन्दर श्रीरामको देखना चाहता हूँ। तुम शीघ्र उन्हें यहाँ ले आओ।' उस समय श्रीरामके दर्शनसे ही कल्याण मानते हुए राजा मन-ही-मन आनन्दका अनुभव करने लगे॥ ६५॥

इधर सुमन्त्र राजाकी आज्ञासे तुरंत प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चल दिये। कैकेयीने जो तुरंत श्रीरामको बुला लानेकी आज्ञा दी थी, उसे याद करके वे सोचने लगे—'पता नहीं, यह उन्हें बुलानेके लिये इतनी जल्दी क्यों मचा रही है?॥ ६६॥

'जान पड़ता है, श्रीरामचन्द्रके अभिषेकके लिये ही यह जल्दी कर रही है। इस कार्यमें धर्मराज राजा दशरथको अधिक आयास करना पड़ता है (शायद इसीलिये ये बाहर नहीं निकलते)।' ऐसा निश्चय करके महातेजस्वी सूत सुमन्त्र फिर बड़े हर्षके साथ श्रीरामके दर्शनकी इच्छासे चल पड़े। समुद्रके अन्तर्वर्ती जलाशयके समान उस सुन्दर अन्तःपुरसे निकलकर सुमन्त्रने द्वारके सामने मनुष्योंकी भारी भीड़ एकत्र हुई देखी॥ ६७-६८॥

राजाके अन्तःपुरसे सहसा निकलकर सुमन्त्रने द्वारपर एकत्र हुए लोगोंकी ओर दृष्टिपात किया। उन्होंने देखा, बहुसंख्यक पुरवासी वहाँ उपस्थित थे और अनेकानेक महाधनी पुरुष राजद्वारपर आकर खड़े थे॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ सर्ग

सुमन्त्रका राजाकी आज्ञासे श्रीरामको बुलानेके लिये उनके महलमें जाना

वे वेदोंके पारङ्गत ब्राह्मण तथा राजपुरोहित वह रात बिताकर प्रातःकाल (राजाकी प्रेरणाके अनुसार) राजद्वारपर उपस्थित हुए थे॥ १॥

मन्त्री, सेनाके मुख्य-मुख्य अधिकारी और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ एकत्र हुए थे॥ २॥

निर्मल सूर्योदय होनेपर दिनमें जब पुष्यनक्षत्रका योग आया तथा श्रीरामके जन्मका कर्क लग्न उपस्थित हुआ, उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने श्रीरामके अभिषेकके लिये सारी सामग्री एकत्र करके उसे जँचाकर रख दिया। जलसे भरे हुए सोनेके कलश, भलीभाँति सजाया हुआ भद्रपीठ, चमकीले व्याघ्रचर्मसे अच्छी तरह आवृत रथ, गङ्गा-यमुनाके पवित्र सङ्गमसे लाया हुआ जल—ये सब वस्तुएँ एकत्र कर ली गयी थीं॥ ३—५॥

इनके सिवा जो अन्य नदियाँ, पवित्र जलाशय, कूप और सरोवर हैं तथा जो पूर्वकी ओर बहनेवाली (गोदावरी और कावेरी आदि) नदियाँ हैं, ऊपरकी ओर प्रवाहवाले जो (ब्रह्मावर्त आदि) सरोवर हैं तथा दक्षिण और उत्तरकी ओर बहनेवाली जो (गण्डकी एवं शोणभद्र आदि) नदियाँ हैं, जिनमें दूधके समान निर्मल जल भरा रहता है, उन सबसे और समस्त समुद्रोंसे भी लाया हुआ जल वहाँ संग्रह करके रखा गया था। इनके अतिरिक्त दूध, दही, घी, मधु, लावा, कुश, फूल, आठ सुन्दर कन्याएँ, मदमत्त गजराज और दूधवाले वृक्षोंके पल्लवोंसे ढके हुए सोने-चाँदीके जलपूर्ण कलश भी वहाँ विराजमान थे, जो उत्तम जलसे भरे होनेके साथ ही पद्म और उत्पलोंसे संयुक्त होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ६—८½ ॥

श्रीरामके लिये चन्द्रमाकी किरणोंके समान विकसित कान्तिसे युक्त श्वेत, पीतवर्णका रत्नजटित उत्तम चँवर सुसज्जितरूपसे रखा हुआ था॥ ९½ ॥

चन्द्रमण्डलके समान सुसज्जित श्वेत छत्र भी अभिषेक-सामग्रीके साथ शोभा पा रहा था, जो परम सुन्दर और प्रकाश फैलानेवाला था॥ १०½ ॥

सुसज्जित श्वेत वृषभ और श्वेत अश्व भी खड़े थे॥ ११ ॥

सब प्रकारके बाजे मौजूद थे। स्तुति-पाठ करनेवाले वन्दी तथा अन्य मागध आदि भी उपस्थित थे। इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके राज्यमें जैसी अभिषेक-सामग्रीका संग्रह होना चाहिये, राजकुमारके अभिषेककी वैसी ही सामग्री साथ लेकर वे सब लोग महाराज दशरथकी आज्ञाके अनुसार वहाँ उनके दर्शनके लिये एकत्र हुए थे॥ १२-१३ ॥

राजाको द्वारपर न देखकर वे कहने लगे—'कौन महाराजके पास जाकर हमारे आगमनकी सूचना देगा। हम महाराजको यहाँ नहीं देखते हैं। सूर्योदय हो गया है और बुद्धिमान् श्रीरामके यौवराज्याभिषेककी सारी सामग्री जुट गयी है'॥ १४½ ॥

वे सब लोग जब इस प्रकारकी बातें कर रहे थे, उसी समय राजाद्वारा सम्मानित सुमन्त्रने वहाँ खड़े हुए उन समस्त भूपतियोंसे यह बात कही—॥ १५½ ॥

'मैं महाराजकी आज्ञासे श्रीरामको बुलानेके लिये तुरंत जा रहा हूँ। आप सब लोग महाराजके तथा विशेषतः श्रीरामचन्द्रजीके पूजनीय हैं। मैं उन्हींकी ओरसे आप समस्त चिरंजीवी पुरुषोंके कुशल-समाचार पूछ रहा हूँ। आपलोग सुखसे हैं न?'॥ १६-१७ ॥

ऐसा कहकर और जगे हुए होनेपर श्रीमहाराजके बाहर न आनेका कारण बताकर पुरातन वृत्तान्तोंको जाननेवाले सुमन्त्र पुनः अन्तःपुरके द्वारपर लौट आये॥ १८ ॥

वह राजभवन सुमन्त्रके लिये सदा खुला रहता था। उन्होंने भीतर प्रवेश किया और प्रवेश करके महाराजके वंशकी स्तुति की॥ १९ ॥

तदनन्तर वे राजाके शयनगृहके पास जाकर खड़े हो गये। उस घरके अत्यन्त निकट पहुँचकर जहाँ बीचमें केवल चिकका अन्तर रह गया था, खड़े हो वे गुणवर्णनपूर्वक आशीर्वादसूचक वचनोंद्वारा रघुकुलनरेशकी स्तुति करने लगे—॥ २०½ ॥

'ककुत्स्थनन्दन! चन्द्रमा, सूर्य, शिव, कुबेर, वरुण, अग्नि और इन्द्र आपको विजय प्रदान करें॥ २१½ ॥

'भगवती रात्रि विदा हो गयी। अब कल्याणस्वरूप दिन उपस्थित हुआ है। राजसिंह! निद्रा त्यागकर जग जाइये और अब जो कार्य प्राप्त है, उसे कीजिये॥ २२½ ॥

'ब्राह्मण, सेनाके मुख्य अधिकारी और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार यहाँ आ गये हैं। वे सब लोग आपका दर्शन चाहते हैं। रघुनन्दन! जागिये'॥ २३½ ॥

मन्त्रणा करनेमें कुशल सूत सुमन्त्र जब इस प्रकार स्तुति करने लगे, तब राजाने जागकर उनसे यह बात कही—॥ २४½ ॥

'सूत! श्रीरामको बुला लाओ'—यह जो मैंने तुमसे कहा था, उसका पालन क्यों नहीं हुआ? ऐसा कौन-सा कारण है, जिससे मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया जा रहा है? मैं सोया नहीं हूँ। तुम श्रीरामको शीघ्र यहाँ बुला लाओ'॥ २५-२६ ॥

इस प्रकार राजा दशरथने जब सूतको फिर उपदेश दिया, तब वे राजाकी वह आज्ञा सुनकर सिर झुकाकर उसका सम्मान करते हुए राजभवनसे बाहर निकल गये। वे मन-ही-मन अपना महान् प्रिय हुआ मानने लगे। राजभवनसे निकलकर सुमन्त्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित राजमार्गपर आ गये॥ २७-२८ ॥

वे हर्ष और उल्लासमें भरकर सब ओर दृष्टि डालते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ने लगे। सूत सुमन्त्र वहाँ मार्गमें सब लोगोंके मुँहसे श्रीरामके राज्याभिषेककी आनन्ददायिनी बातें सुनते जा रहे थे॥ २९½ ॥

तदनन्तर सुमन्त्रको श्रीरामका सुन्दर भवन दिखायी

दिया, जो कैलासपर्वतके समान श्वेत प्रभासे प्रकाशित हो रहा था। वह इन्द्रभवनके समान दीप्तिमान् था। उसका फाटक विशाल किवाड़ोंसे बंद था (उसके भीतरका छोटा-सा द्वार ही खुला हुआ था)। सैकड़ों वेदिकाएँ उस भवनकी शोभा बढ़ा रही थीं॥ ३०-३१॥

उसका मुख्य अग्रभाग सोनेकी देव-प्रतिमाओंसे अलंकृत था। उसके बाहर फाटकमें मणि और मूँगे जड़े हुए थे। वह सारा भवन शरद् ऋतुके बादलोंकी भाँति श्वेत कान्तिसे युक्त, दीप्तिमान् और मेरुपर्वतकी कन्दराके समान शोभायमान था॥ ३२॥

सुवर्णनिर्मित पुष्पोंकी मालाओंके बीच-बीचमें पिरोयी हुई बहुमूल्य मणियोंसे वह भवन सजा हुआ था। दीवारोंमें जड़ी हुई मुक्तामणियोंसे व्याप्त होकर जगमगा रहा था (अथवा वहाँ मोती और मणियोंके भण्डार भरे हुए थे)। चन्दन और अगरकी सुगन्ध उसकी शोभा बढ़ा रही थी॥ ३३॥

वह भवन मलयाचलके समीपवर्ती दर्दुर नामक चन्दनगिरिके शिखरकी भाँति सब ओर मनोहर सुगन्ध बिखेर रहा था। कलरव करते हुए सारस और मयूर आदि पक्षी उसकी शोभावृद्धि कर रहे थे॥ ३४॥

सोने आदिकी सुन्दर ढंगसे बनी हुई भेड़ियोंकी मूर्तियोंसे वह व्याप्त था। शिल्पियोंने उसकी दीवारोंमें बड़ी सुन्दर नक्काशी की थी। वह अपनी उत्कृष्ट शोभासे समस्त प्राणियोंके मन और नेत्रोंको आकृष्ट कर लेता था॥ ३५॥

चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी, कुबेर-भवनके समान अक्षय सम्पत्तिसे पूर्ण तथा इन्द्रधामके समान भव्य एवं मनोरम उस श्रीरामभवनमें नाना प्रकारके पक्षी चहक रहे थे॥ ३६॥

सुमन्त्रने देखा—श्रीरामका महल मेरु-पर्वतके शिखरकी भाँति शोभा पा रहा है। हाथ जोड़कर श्रीरामकी वन्दना करनेके लिये उपस्थित हुए असंख्य मनुष्योंसे वह भरा हुआ है॥ ३७॥

भाँति-भाँतिके उपहार लेकर जनपद-निवासी मनुष्य उस समय वहाँ पहुँचे हुए थे। श्रीरामके अभिषेकका समाचार सुनकर उनके मुख प्रसन्नतासे खिल उठे थे। वे उस उत्सवको देखनेके लिये उत्कण्ठित थे। उन सबकी उपस्थितिसे भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी॥

वह विशाल राजभवन महान् मेघखण्डके समान ऊँचा और सुन्दर शोभासे सम्पन्न था। उसकी दीवारोंमें नाना प्रकारके रत्न जड़े गये थे और कुबड़े सेवकोंसे वह भरा हुआ था॥ ३९॥

सारथि सुमन्त्र राजभवनकी ओर जानेवाले वरूथ (लोहेकी चद्दर या सींकचोंके बने हुए आवरण) से युक्त तथा अच्छे घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा मनुष्योंकी भीड़से भरे राजमार्गकी शोभा बढ़ाते तथा समस्त नगर-निवासियोंके मनको आनन्द प्रदान करते हुए श्रीरामके भवनके पास जा पहुँचे॥ ४०॥

उत्तम वस्तुको प्राप्त करनेके अधिकारी श्रीरामका वह महान् समृद्धिशाली विशाल भवन शचीपति इन्द्रके भवनकी भाँति सुशोभित होता था। इधर-उधर फैले हुए मृगों और मयूरोंसे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। वहाँ पहुँचकर सारथि सुमन्त्रके शरीरमें अधिक हर्षके कारण रोमाञ्च हो आया॥ ४१॥

वहाँ कैलास और स्वर्गके समान दिव्य शोभासे युक्त, सुन्दर सजी हुई अनेक ड्योढ़ियोंको लाँघकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञामें चलनेवाले बहुतेरे श्रेष्ठ मनुष्योंको बीचमें छोड़ते हुए रथसहित सुमन्त्र अन्तःपुरके द्वारपर उपस्थित हुए॥ ४२॥

उस स्थानपर उन्होंने श्रीरामके अभिषेक-सम्बन्धी कर्म करनेवाले लोगोंकी हर्षभरी बातें सुनीं, जो राजकुमार श्रीरामके लिये सब ओरसे मङ्गलकामना सूचित करती थीं। इसी प्रकार उन्होंने अन्य सब लोगोंकी भी हर्षोल्लाससे परिपूर्ण वार्ताओंको श्रवण किया॥ ४३॥

श्रीरामका वह भवन इन्द्रसदनकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। मृगों और पक्षियोंसे सेवित होनेके कारण उसकी रमणीयता और भी बढ़ गयी थी। सुमन्त्रने उस भवनको देखा। वह अपनी प्रभासे प्रकाशित होनेवाले मेरुगिरिके ऊँचे शिखरकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥ ४४॥

उस भवनके द्वारपर पहुँचकर सुमन्त्रने देखा—श्रीरामकी वन्दनाके लिये हाथ जोड़े उपस्थित हुए जनपदवासी मनुष्य अपनी सवारियोंसे उतरकर हाथोंमें भाँति-भाँतिके उपहार लिये करोड़ों और परार्धोंकी संख्यामें खड़े थे, जिससे वहाँ बड़ी भारी भीड़ लग गयी थी॥ ४५॥

तदनन्तर उन्होंने श्रीरामकी सवारीमें आनेवाले सुन्दर शत्रुञ्जय नामक विशालकाय गजराजको देखा, जो महान् मेघसे युक्त पर्वतके समान प्रतीत होता था। उसके गण्डस्थलसे मदकी धारा बह रही थी। वह अंकुशसे काबूमें आनेवाला नहीं था। उसका वेग शत्रुओंके

लिये अत्यन्त असह्य था। उसका जैसा नाम था, वैसा ही गुण भी था॥ ४६॥

उन्होंने वहाँ राजाके परम प्रिय मुख्य-मुख्य मन्त्रियोंको भी एक साथ उपस्थित देखा, जो सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे और घोड़े, रथ तथा हाथियोंके साथ वहाँ आये थे। सुमन्त्रने उन सबको एक ओर हटाकर स्वयं श्रीरामके समृद्धिशाली अन्त:पुरमें प्रवेश किया॥ ४७॥

जैसे मगर प्रचुर रत्नोंसे भरे हुए समुद्रमें बेरोक-टोक प्रवेश करता है, उसी प्रकार सारथि सुमन्त्रने पर्वत-शिखरपर आरूढ़ हुए अविचल मेघके समान शोभायमान महान् विमानके सदृश सुन्दर गृहोंसे संयुक्त तथा प्रचुर रत्न-भण्डारसे भरपूर उस महलमें बिना किसी रोक-टोकके प्रवेश किया॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

सुमन्त्रका श्रीरामके महलमें पहुँचकर महाराजका संदेश सुनाना और श्रीरामका सीतासे अनुमति ले लक्ष्मणके साथ रथपर बैठकर गाजे-बाजेके साथ मार्गमें स्त्री-पुरुषोंकी बातें सुनते हुए जाना

पुरातन वृत्तान्तोंके ज्ञाता सूत सुमन्त्र मनुष्योंकी भीड़से भरे हुए उस अन्त:पुरके द्वारको लाँघकर महलकी एकान्तकक्षामें जा पहुँचे, जहाँ भीड़ बिलकुल नहीं थी॥ १॥

वहाँ श्रीरामके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले एकाग्रचित्त एवं सावधान युवक प्रास और धनुष आदि लिये डटे हुए थे। उनके कानोंमें शुद्ध सुवर्णके बने हुए कुण्डल झलमला रहे थे॥ २॥

उस ड्यौढ़ीमें सुमन्त्रको गेरुआ वस्त्र पहने और हाथमें छड़ी लिये वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत बहुत-से वृद्ध पुरुष बड़ी सावधानीके साथ द्वारपर बैठे दिखायी दिये, जो अन्त:पुरकी स्त्रियोंके अध्यक्ष (संरक्षक) थे॥ ३॥

सुमन्त्रको आते देख श्रीरामका प्रिय करनेकी इच्छावाले वे सभी पुरुष सहसा वेगपूर्वक आसनोंसे उठकर खड़े हो गये॥ ४॥

राजसेवामें अत्यन्त कुशल तथा विनीत हृदयवाले सूतपुत्र सुमन्त्रने उनसे कहा—'आपलोग श्रीरामचन्द्रजीसे शीघ्र जाकर कहें, कि सुमन्त्र दरवाजेपर खड़े हैं'॥ ५॥

स्वामीका प्रिय करनेकी इच्छावाले वे सब सेवक श्रीरामचन्द्रजीके पास जा पहुँचे। उस समय श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ विराजमान थे। उन सेवकोंने शीघ्र ही उन्हें सुमन्त्रका संदेश सुना दिया॥ ६॥

द्वाररक्षकोंद्वारा दी हुई सूचना पाकर श्रीरामने पिताकी प्रसन्नताके लिये उनके अन्तरङ्ग सेवक सुमन्त्रको वहीं अन्त:पुरमें बुलवा लिया॥ ७॥

वहाँ पहुँचकर सुमन्त्रने देखा श्रीरामचन्द्रजी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो कुबेरके समान जान पड़ते हैं और बिछौनोंसे युक्त सोनेके पलंगपर विराजमान हैं॥ ८॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनाथजीके श्रीअङ्गोंमें वाराहके रुधिरकी भाँति लाल, पवित्र और सुगन्धित उत्तम चन्दनका लेप लगा हुआ है और देवी सीता उनके पास बैठकर अपने हाथसे चवँर डुला रही हैं। सीताके अत्यन्त समीप बैठे हुए श्रीराम चित्रासे संयुक्त चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाते हैं॥ ९-१०॥

विनयके ज्ञाता वन्दी सुमन्त्रने तपते हुए सूर्यकी भाँति अपने नित्य प्रकाशसे सम्पन्न रहकर अधिक प्रकाशित होनेवाले वरदायक श्रीरामको विनीतभावसे प्रणाम किया॥

विहारकालिक शयनके लिये जो आसन था, उस पलंगपर बैठे हुए प्रसन्न मुखवाले राजकुमार श्रीरामका दर्शन करके राजा दशरथद्वारा सम्मानित सुमन्त्रने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'श्रीराम! आपको पाकर महारानी कौसल्या सर्वश्रेष्ठ संतानवाली हो गयी हैं। इस समय रानी कैकेयीके साथ बैठे हुए आपके पिताजी आपको देखना चाहते हैं, अत: वहाँ चलिये, विलम्ब न कीजिये'॥ १३॥

सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी नरश्रेष्ठ श्रीरामने सीताजीका सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनसे इस प्रकार कहा—॥ १४॥

'देवि! जान पड़ता है, पिताजी और माता कैकेयी दोनों मिलकर मेरे विषयमें ही कुछ विचार कर रहे हैं।

निश्चय ही मेरे अभिषेकके सम्बन्धमें ही कोई बात होती होगी॥ १५॥

'मेरे अभिषेकके विषयमें राजाके अभिप्रायको लक्ष्य करके उनका प्रिय करनेकी इच्छावाली परम उदार एवं समर्थ कजरारे नेत्रोंवाली कैकेयी मेरे अभिषेकके लिये ही राजाको प्रेरित कर रही होंगी॥ १६॥

'मेरी माता केकयराजकुमारी इस समाचारसे बहुत प्रसन्न हुई होंगी। वे महाराजका हित चाहनेवाली और उनकी अनुगामिनी हैं। साथ ही वे मेरा भी भला चाहती हैं। अत: वे महाराजको अभिषेक करनेके लिये जल्दी करनेको कह रही होंगी॥ १७॥

'सौभाग्यकी बात है कि महाराज अपनी प्यारी रानीके साथ बैठे हैं और उन्होंने मेरे अभीष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाले सुमन्त्रको ही दूत बनाकर भेजा है॥

'जैसी वहाँ अन्तरङ्ग परिषद् बैठी है, वैसे ही दूत सुमन्त्रजी यहाँ पधारे हैं। अवश्य आज ही महाराज मुझे युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे॥ १९॥

'अत: मैं प्रसन्नतापूर्वक यहाँसे शीघ्र जाकर महाराजका दर्शन करूँगा। तुम परिजनोंके साथ यहाँ सुखपूर्वक बैठो और आनन्द करो'॥ २०॥

पतिके द्वारा इस प्रकार सम्मानित होकर कजरारे नेत्रोंवाली सीतादेवी उनका मङ्गल-चिन्तन करती हुई स्वामीके साथ-साथ द्वारतक उन्हें पहुँचानेके लिये गयीं॥

उस समय वे बोलीं—'आर्यपुत्र! ब्राह्मणोंके साथ रहकर आपका युवराजपदपर अभिषेक करके महाराज दूसरे समयमें राजसूय-यज्ञमें सम्राट्के पदपर आपका अभिषेक करनेयोग्य हैं। ठीक उसी तरह जैसे लोकस्रष्टा ब्रह्माने देवराज इन्द्रका अभिषेक किया था॥ २२॥

'आप राजसूय-यज्ञमें दीक्षित हो तदनुकूल व्रतका पालन करनेमें तत्पर, श्रेष्ठ मृगचर्मधारी, पवित्र तथा हाथमें मृगका शृङ्ग धारण करनेवाले हों और इस रूपमें आपका दर्शन करती हुई मैं आपकी सेवामें संलग्न रहूँ—यही मेरी शुभ-कामना है॥ २३॥

'आपकी पूर्व दिशामें वज्रधारी इन्द्र, दक्षिण दिशामें यमराज, पश्चिम दिशामें वरुण और उत्तर दिशामें कुबेर रक्षा करें'॥ २४॥

तदनन्तर सीताकी अनुमति ले उत्सवकालिक मङ्गलकृत्य पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी सुमन्त्रके साथ अपने महलसे बाहर निकले॥ २५॥

पर्वतकी गुफामें शयन करनेवाला सिंह जैसे पर्वतसे निकलकर आता है, उसी प्रकार महलसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपर लक्ष्मणको उपस्थित देखा, जो विनीतभावसे हाथ जोड़े खड़े थे॥ २६॥

तदनन्तर मध्यम कक्षामें आकर वे मित्रोंसे मिले। फिर प्रार्थी जनोंको उपस्थित देख उन सबसे मिलकर उन्हें संतुष्ट करके पुरुषसिंह राजकुमार श्रीराम व्याघ्रचर्मसे आवृत, शोभाशाली तथा अग्निके समान तेजस्वी उत्तम रथपर आरूढ़ हुए॥ २७-२८॥

उस रथकी घरघराहट मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान प्रतीत होती थी। उसमें स्थानकी संकीर्णता नहीं थी। वह विस्तृत था और मणि एवं सुवर्णसे विभूषित था। उसकी कान्ति सुवर्णमय मेरुपर्वतके समान जान पड़ती थी। वह रथ अपनी प्रभासे लोगोंकी आँखोंमें चकाचौंध-सा पैदा कर देता था॥ २९॥

उसमें उत्तम घोड़े जुते हुए थे, जो अधिक पुष्ट होनेके कारण हाथीके बच्चोंके समान प्रतीत होते थे। जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त शीघ्रगामी रथपर सवार होते हैं, उसी प्रकार श्रीराम अपने उस रथपर आरूढ़ थे॥ ३०॥

अपनी सहज शोभासे प्रकाशित श्रीरघुनाथजी उस रथपर आरूढ़ हो तुरंत वहाँसे चल दिये। वह तेजस्वी रथ आकाशमें गरजनेवाले मेघकी भाँति अपनी घर्घर ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ महान् मेघखण्डसे निकलनेवाले चन्द्रमाके समान श्रीरामके उस भवनसे बाहर निकला॥ ३१½॥

श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण भी हाथमें विचित्र चवँर लिये उस रथपर बैठ गये और पीछेसे अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामकी रक्षा करने लगे॥ ३२½॥

फिर तो सब ओरसे मनुष्योंकी भारी भीड़ निकलने लगी। उस समय उस जन-समूहके चलनेसे सहसा भयंकर कोलाहल मच गया॥ ३३½॥

श्रीरामके पीछे-पीछे अच्छे-अच्छे घोड़े और पर्वतोंके समान विशालकाय श्रेष्ठ गजराज सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें चलने लगे॥ ३४½॥

उनके आगे-आगे कवच आदिसे सुसज्जित तथा चन्दन और अगुरुसे विभूषित हो खड्ग और धनुष धारण किये बहुत-से शूरवीर तथा मङ्गलाशंसी मनुष्य—वन्दी आदि चल रहे थे॥ ३५½॥

तदनन्तर मार्गमें वाद्योंकी ध्वनि, वन्दीजनोंके स्तुतिपाठके शब्द तथा शूरवीरोंके सिंहनाद सुनायी देने

लगे। महलोंकी खिड़कियोंमें बैठी हुई वस्त्राभूषणोंसे विभूषित वनिताएँ सब ओरसे शत्रुदमन श्रीरामपर ढेर-के-ढेर सुन्दर पुष्प बिखेर रही थीं। इस अवस्थामें श्रीराम आगे बढ़ते चले जा रहे थे॥ ३६-३७$\frac{1}{2}$ ॥

उस समय अट्टालिकाओं और भूतलपर खड़ी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी युवतियाँ श्रीरामका प्रिय करनेकी इच्छासे श्रेष्ठ वचनोंद्वारा उनकी स्तुति गाने लगीं॥ ३८$\frac{1}{2}$ ॥

'माताको आनन्द प्रदान करनेवाले रघुवीर! आपकी यह यात्रा सफल होगी और आपको पैतृक राज्य प्राप्त होगा। इस अवस्थामें आपको देखती हुई आपकी माता कौसल्या निश्चय ही आनन्दित हो रही होंगी॥ ३९$\frac{1}{2}$ ॥

'वे नारियाँ श्रीरामकी हृदयवल्लभा सीमन्तिनी सीताको संसारकी समस्त सौभाग्यवती स्त्रियोंसे श्रेष्ठ मानती हुई कहने लगीं—'उन देवी सीताने पूर्वकालमें निश्चय ही बड़ा भारी तप किया होगा, तभी उन्होंने चन्द्रमासे संयुक्त हुई रोहिणीकी भाँति श्रीरामका संयोग प्राप्त किया है'॥ ४०-४१$\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार राजमार्गपर रथपर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी प्रासादशिखरोंपर बैठी हुई युवती स्त्रियोंके द्वारा कही गयी ये प्यारी बातें सुन रहे थे॥ ४२ ॥

उस समय अयोध्यामें आये हुए दूर-दूरके लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें जो वार्तालाप और तरह-तरहकी बातें करते थे, अपने विषयमें कही गयी उन सभी बातोंको श्रीरघुनाथजी सुनते जा रहे थे॥ ४३ ॥

वे कहते थे—'इस समय ये श्रीरामचन्द्रजी महाराज दशरथकी कृपासे बहुत बड़ी सम्पत्तिके अधिकारी होने जा रहे हैं। अब हम सब लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी, क्योंकि ये श्रीराम हमारे शासक होंगे॥ ४४ ॥

यदि यह सारा राज्य चिरकालके लिये इनके हाथमें आ जाय तो इस जगत्की समस्त जनताके लिये यह महान् लाभ होगा। इनके राजा होनेपर कभी किसीका अप्रिय नहीं होगा और किसीको कोई दुःख भी नहीं देखना पड़ेगा'॥ ४५ ॥

हिनहिनाते हुए घोड़ों, चिग्घाड़ते हुए हाथियों, जय-जयकार करते हुए आगे-आगे चलनेवाले वन्दियों, स्तुतिपाठ करनेवाले सूतों, वंशकी विरुदावलि बखाननेवाले मागधों तथा सर्वश्रेष्ठ गुणगायकोंके तुमुल घोषके बीच उन वन्दी आदिसे पूजित एवं प्रशंसित होते हुए श्रीरामचन्द्रजी कुबेरके समान चल रहे थे॥ ४६ ॥

यात्रा करते हुए श्रीरामने उस विशाल राजमार्गको देखा, जो हथिनियों, मतवाले हाथियों, रथों और घोड़ोंसे खचाखच भरा हुआ था। उसके प्रत्येक चौराहेपर मनुष्योंकी भारी भीड़ इकट्ठी हो रही थी। उसके दोनों पार्श्वभागोंमें प्रचुर रत्नोंसे भरी हुई दुकानें थीं तथा विक्रयके योग्य और भी बहुत-से द्रव्योंके ढेर वहाँ दिखायी देते थे। वह राजमार्ग बहुत साफ-सुथरा था॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

श्रीरामका राजपथकी शोभा देखते और सुहृदोंकी बातें सुनते हुए पिताके भवनमें प्रवेश

इस प्रकार श्रीमान् रामचन्द्रजी अपने सुहृदोंको आनन्द प्रदान करते हुए रथपर बैठे राजमार्गके बीचसे चले जा रहे थे; उन्होंने देखा—सारा नगर ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित हो रहा है, चारों ओर बहुमूल्य अगुरु नामक धूपकी सुगन्ध छा रही है और सब ओर असंख्य मनुष्योंकी भीड़ दिखायी देती है। वह राजमार्ग श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल भव्य भवनोंसे सुशोभित तथा अगुरुकी सुगन्धसे व्याप्त हो रहा था॥ २$\frac{1}{2}$ ॥

अच्छी श्रेणीके चन्दनों, अगुरु नामक धूपों, उत्तम गन्धद्रव्यों, अलसी या सन आदिके रेशोंसे बने हुए कपड़ों तथा रेशमी वस्त्रोंके ढेर, अनबिंधे मोती और उत्तमोत्तम स्फटिक रत्न उस विस्तृत एवं उत्तम राजमार्गकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह नाना प्रकारके पुष्पों तथा भाँति-भाँतिके भक्ष्य पदार्थोंसे भरा हुआ था। उसके चौराहोंकी दही, अक्षत, हविष्य, लावा, धूप, अगर, चन्दन, नाना प्रकारके पुष्पहार और गन्धद्रव्योंसे सदा पूजा की जाती थी। स्वर्गलोकमें बैठे हुए देवराज इन्द्रकी भाँति रथारूढ़ श्रीरामने उस राजमार्गको देखा॥ ३—६$\frac{1}{2}$ ॥

वे अपने सुहृदोंके मुखसे कहे गये बहुत-से

आशीर्वादोंको सुनते और यथायोग्य उन सब लोगोंका सम्मान करते हुए चले जा रहे थे॥ ७½ ॥

(उनके हितैषी सुहृद् कहते थे—) 'रघुनन्दन! तुम्हारे पितामह और प्रपितामह (दादे और परदादे) जिसपर चलते आये हैं, आज उसी मार्गको ग्रहण करके युवराज-पदपर अभिषिक्त हो आप हम सब लोगोंका निरन्तर पालन करें'॥ ८½ ॥

(फिर वे आपसमें कहने लगे—)'भाइयो! श्रीरामके पिता तथा समस्त पितामहोंद्वारा जिस प्रकार हमलोगोंका पालन-पोषण हुआ है, श्रीरामके राजा होनेपर हम उससे भी अधिक सुखी रहेंगे॥ ९ ॥

'यदि हम राज्यपर प्रतिष्ठित हुए श्रीरामको पिताके घरसे निकलते हुए देख लें—यदि राजा रामका दर्शन कर लें तो अब हमें इहलोकके भोग और परमार्थस्वरूप मोक्ष लेकर क्या करना है॥ १० ॥

'अमित तेजस्वी श्रीरामका यदि राज्यपर अभिषेक हो जाय तो वह हमारे लिये जैसा प्रियतर कार्य होगा, उससे बढ़कर दूसरा कोई परम प्रिय कार्य नहीं होगा'॥ ११ ॥

सुहृदोंके मुँहसे निकली हुई ये तथा और भी कई तरहकी अपनी प्रशंसासे सम्बन्ध रखनेवाली सुन्दर बातें सुनते हुए श्रीरामचन्द्रजी राजपथपर बढ़े चले जा रहे थे॥

(जो श्रीरामकी ओर एक बार देख लेता, वह उन्हें देखता ही रह जाता था।) श्रीरघुनाथजीके दूर चले जानेपर भी कोई उन पुरुषोत्तमकी ओरसे अपना मन या दृष्टि नहीं हटा पाता था॥ १३ ॥

उस समय जो श्रीरामको नहीं देखता और जिसे श्रीराम नहीं देख लेते थे, वह समस्त लोकोंमें निन्दित समझा जाता था तथा स्वयं उसकी अन्तरात्मा भी उसे धिक्कारती थी॥ १४ ॥

धर्मात्मा श्रीराम चारों वर्णोंके सभी मनुष्योंपर उनकी अवस्थाके अनुरूप दया करते थे, इसलिये वे सभी उनके भक्त थे॥ १५ ॥

राजकुमार श्रीराम चौराहों, देवमार्गों, चैत्यवृक्षों तथा देवमन्दिरोंको अपने दाहिने छोड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ १६ ॥

राजा दशरथका भवन मेघसमूहोंके समान शोभा पानेवाले, सुन्दर अनेक रूप-रंगवाले कैलासशिखरके समान उज्ज्वल प्रासादशिखरों (अट्टालिकाओं) से सुशोभित था। उसमें रत्नोंकी जालीसे विभूषित तथा विमानाकार क्रीड़ागृह भी बने हुए थे, जो अपनी श्वेत आभासे प्रकाशित होते थे। वे अपनी ऊँचाईसे आकाशको भी लाँघते हुए-से प्रतीत होते थे; ऐसे गृहोंसे युक्त वह श्रेष्ठ भवन इस भूतलपर इन्द्रसदनके समान शोभा पाता था। उस राजभवनके पास पहुँचकर अपनी शोभासे प्रकाशित होनेवाले राजकुमार श्रीरामने पिताके महलमें प्रवेश किया॥ १७—१९ ॥

उन्होंने धनुर्धर वीरोंद्वारा सुरक्षित महलकी तीन ड्यौढ़ियोंको तो घोड़े जुते हुए रथसे ही पार किया, फिर दो ड्यौढ़ियोंमें वे पुरुषोत्तम राम पैदल ही गये॥ २० ॥

इस प्रकार सारी ड्यौढ़ियोंको पार करके दशरथनन्दन श्रीराम साथ आये हुए सब लोगोंको लौटाकर स्वयं अन्तःपुरमें गये॥ २१ ॥

जब राजकुमार श्रीराम पिताके पास जानेके लिये अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए, तब आनन्दमग्न हुए सब लोग बाहर खड़े होकर उनके पुनः निकलनेकी प्रतीक्षा करने लगे, ठीक उसी तरह जैसे सरिताओंका स्वामी समुद्र चन्द्रोदयकी प्रतीक्षा करता रहता है॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७ ॥

अठारहवाँ सर्ग

श्रीरामका कैकेयीसे पिताके चिन्तित होनेका कारण पूछना और कैकेयीका कठोरतापूर्वक अपने माँगे हुए वरोंका वृत्तान्त बताकर श्रीरामको वनवासके लिये प्रेरित करना

महलमें जाकर श्रीरामने पिताको कैकेयीके साथ एक सुन्दर आसनपर बैठे देखा। वे विषादमें डूबे हुए थे, उनका मुँह सूख गया था और वे बड़े दयनीय दिखायी देते थे॥ २ ॥

निकट पहुँचनेपर श्रीरामने विनीतभावसे पहले अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया; उसके बाद बड़ी सावधानीके साथ उन्होंने कैकेयीके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया॥ २ ॥

उस समय दीनदशामें पड़े हुए राजा दशरथ एक बार 'राम!' ऐसा कहकर चुप हो गये (इससे आगे

उनसे बोला नहीं गया)। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये, अत: वे श्रीरामकी ओर न तो देख सके और न उनसे कोई बात ही कर सके॥ ३॥

राजाका वह अभूतपूर्व भयंकर रूप देखकर श्रीरामको भी भय हो गया, मानो उन्होंने पैरसे किसी सर्पको छू दिया हो॥ ४॥

राजाकी इन्द्रियोंमें प्रसन्नता नहीं थी; वे शोक और संतापसे दुर्बल हो रहे थे, बारंबार लंबी साँसें भरते थे तथा उनके चित्तमें बड़ी व्यथा और व्याकुलता थी। वे ऐसे दीखते थे, मानो तरङ्गमालाओंसे उपलक्षित अक्षोभ्य समुद्र क्षुब्ध हो उठा हो, सूर्यको राहुने ग्रस लिया हो अथवा किसी महर्षिने झूठ बोल दिया हो॥ ६॥

राजाका वह शोक सम्भावनासे परे था। इस शोकका क्या कारण है—यह सोचते हुए श्रीरामचन्द्रजी पूर्णिमाके समुद्रकी भाँति अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठे॥ ७॥

पिताके हितमें तत्पर रहनेवाले परम चतुर श्रीराम सोचने लगे कि 'आज ही ऐसी क्या बात हो गयी' जिससे महाराज मुझसे प्रसन्न होकर बोलते नहीं हैं॥ ८॥

'और दिन तो पिताजी कुपित होनेपर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे, आज मेरी ओर दृष्टिपात करके इन्हें क्लेश क्यों हो रहा है'॥ ९॥

यह सब सोचकर श्रीराम दीन-से हो गये, शोकसे कातर हो उठे, विषादके कारण उनके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वे कैकेयीको प्रणाम करके उसीसे पूछने लगे—॥ १०॥

'मा! मुझसे अनजानमें कोई अपराध तो नहीं हो गया, जिससे पिताजी मुझपर नाराज हो गये हैं। तुम यह बात मुझे बताओ और तुम्हीं इन्हें मना दो॥ ११॥

'ये तो सदा मुझे प्यार करते थे, आज इनका मन अप्रसन्न क्यों हो गया? देखता हूँ, ये आज मुझसे बोलतेतक नहीं हैं, इनके मुखपर विषाद छा रहा है और ये अत्यन्त दु:खी हो रहे हैं॥ १२॥

'कोई शारीरिक व्याधिजनित संताप अथवा मानसिक अभिताप (चिन्ता) तो इन्हें पीड़ित नहीं कर रहा है? क्योंकि मनुष्यको सदा सुख-ही-सुख मिले—ऐसा सुयोग प्राय: दुर्लभ होता है॥ १३॥

'प्रियदर्शन कुमार भरत, महाबली शत्रुघ्न अथवा मेरी माताओंका तो कोई अमङ्गल नहीं हुआ है?॥ १४॥

'महाराजको असंतुष्ट करके अथवा इनकी आज्ञा न मानकर इन्हें कुपित कर देनेपर मैं दो घड़ी भी जीवित रहना नहीं चाहूँगा॥ १५॥

'मनुष्य जिसके कारण इस जगत्‌में अपना प्रादुर्भाव (जन्म) देखता है, उस प्रत्यक्ष देवता पिताके जीते-जी वह उसके अनुकूल बर्ताव क्यों न करेगा?॥ १६॥

'कहीं तुमने तो अभिमान या रोषके कारण मेरे पिताजीसे कोई कठोर बात नहीं कह डाली, जिससे इनका मन दु:खी हो गया है?॥ १७॥

'देवि! मैं सच्ची बात पूछता हूँ, बताओ, किस कारणसे महाराजके मनमें आज इतना विकार (संताप) है? इनकी ऐसी अवस्था तो पहले कभी नहीं देखी गयी थी'॥ १८॥

महात्मा श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर अत्यन्त निर्लज्ज कैकेयी बड़ी ढिठाईके साथ अपने मतलबकी बात इस प्रकार बोली—॥ १९॥

'राम! महाराज कुपित नहीं हैं और न इन्हें कोई कष्ट ही हुआ है। इनके मनमें कोई बात है, जिसे तुम्हारे डरसे ये कह नहीं पा रहे हैं॥ २०॥

'तुम इनके प्रिय हो, तुमसे कोई अप्रिय बात कहनेके लिये इनकी जबान नहीं खुलती; किंतु इन्होंने जिस कार्यके लिये मेरे सामने प्रतिज्ञा की है, उसका तुम्हें अवश्य पालन करना चाहिये॥ २१॥

'इन्होंने पहले तो मेरा सत्कार करते हुए मुझे मुँहमाँगा वरदान दे दिया और अब ये दूसरे गँवार मनुष्योंकी भाँति उसके लिये पश्चात्ताप करते हैं॥ २२॥

'ये प्रजानाथ पहले 'मैं दूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा करके मुझे वर दे चुके हैं और अब उसके निवारणके लिये व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं, पानी निकल जानेपर उसे रोकनेके लिये बाँध बाँधनेकी निरर्थक चेष्टा करते हैं॥ २३॥

'राम! सत्य ही धर्मकी जड़ है, यह सत्पुरुषोंका भी निश्चय है। कहीं ऐसा न हो कि ये महाराज तुम्हारे कारण मुझपर कुपित होकर अपने उस सत्यको ही छोड़ बैठें। जैसे भी इनके सत्यका पालन हो, वैसा तुम्हें करना चाहिये॥ २४॥

'यदि राजा जिस बातको कहना चाहते हैं, वह शुभ हो या अशुभ, तुम सर्वथा उसका पालन करो तो मैं सारी बात पुन: तुमसे कहूँगी॥ २५॥

'यदि राजाकी कही हुई बात तुम्हारे कानोंमें पड़कर वहीं नष्ट न हो जाय—यदि तुम उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन कर सको तो मैं तुमसे सब कुछ

खोलकर बता दूँगी, ये स्वयं तुमसे कुछ नहीं कहेंगे'॥ २६॥

कैकेयीकी कही हुई यह बात सुनकर श्रीरामके मनमें बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राजाके समीप ही देवी कैकेयीसे इस प्रकार कहा—॥ २७॥

'अहो! धिक्कार है! देवि! तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये। मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विषका भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ! महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं, मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता? इसलिये देवि! राजाको जो अभीष्ट है, वह बात मुझे बताओ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे पूर्ण करूँगा। राम दो तरहकी बात नहीं करता है'॥ २८—३०॥

श्रीराम सरल स्वभावसे युक्त और सत्यवादी थे, उनकी बात सुनकर अनार्या कैकेयीने अत्यन्त दारुण वचन कहना आरम्भ किया—॥ ३१॥

'रघुनन्दन! पहलेकी बात है, देवासुरसंग्राममें तुम्हारे पिता शत्रुओंके बाणोंसे बिंध गये थे, उस महासमरमें मैंने इनकी रक्षा की थी, उससे प्रसन्न होकर इन्होंने मुझे दो वर दिये थे॥ ३२॥

'राघव! उन्हींमेंसे एक वरके द्वारा तो मैंने महाराजसे यह याचना की है कि भरतका राज्याभिषेक हो और दूसरा वर यह माँगा है कि तुम्हें आज ही दण्डकारण्यमें भेज दिया जाय॥ ३३॥

'नरश्रेष्ठ! यदि तुम अपने पिताको सत्यप्रतिज्ञ बनाना चाहते हो और अपनेको भी सत्यवादी सिद्ध करनेकी इच्छा रखते हो तो मेरी यह बात सुनो॥ ३४॥

'तुम पिताकी आज्ञाके अधीन रहो, जैसी इन्होंने प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार तुम्हें चौदह वर्षोंके लिये वनमें प्रवेश करना चाहिये॥ ३५॥

'रघुनन्दन! राजाने तुम्हारे लिये जो यह अभिषेकका सामान जुटाया है, उस सबके द्वारा यहाँ भरतका अभिषेक किया जाय॥ ३६॥

'और तुम इस अभिषेकको त्यागकर चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें रहते हुए जटा और चीर धारण करो॥ ३७॥

'कोसलनरेशकी इस वसुधाका, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और घोड़े तथा रथोंसे व्याप्त है, भरत शासन करें॥ ३८॥

'बस इतनी ही बात है, ऐसा करनेसे तुम्हारे वियोगका कष्ट सहन करना पड़ेगा, यह सोचकर महाराज करुणामें डूब रहे हैं। इसी शोकसे इनका मुख सूख गया है और इन्हें तुम्हारी ओर देखनेका साहस नहीं होता॥

'रघुनन्दन राम! तुम राजाकी इस आज्ञाका पालन करो और इनके महान् सत्यकी रक्षा करके इन नरेशको संकटसे उबार लो'॥ ४०॥

कैकेयीके इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर भी श्रीरामके हृदयमें शोक नहीं हुआ, परंतु महानुभाव राजा दशरथ पुत्रके भावी वियोगजनित दुःखसे संतप्त एवं व्यथित हो उठे॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

श्रीरामकी कैकेयीके साथ बातचीत और वनमें जाना स्वीकार करके उनका माता कौसल्याके पास आज्ञा लेनेके लिये जाना

वह अप्रिय तथा मृत्युके समान कष्टदायक वचन सुनकर भी शत्रुसूदन श्रीराम व्यथित नहीं हुए। उन्होंने कैकेयीसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'मा! बहुत अच्छा! ऐसा ही हो। मैं महाराजकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये जटा और चीर धारण करके वनमें रहनेके निमित्त अवश्य यहाँसे चला जाऊँगा॥ २॥

'परंतु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आज दुर्जय तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज मुझसे पहलेकी तरह प्रसन्नतापूर्वक बोलते क्यों नहीं हैं?॥ ३॥

'देवि! मैं तुम्हारे सामने ऐसी बात पूछ रहा हूँ, इसलिये तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। निश्चय चीर और जटा धारण करके मैं वनको चला जाऊँगा, तुम प्रसन्न रहो॥ ४॥

'राजा मेरे हितैषी, गुरु, पिता और कृतज्ञ हैं।

इनकी आज्ञा होनेपर मैं इनका कौन-सा ऐसा प्रिय कार्य है, जिसे निःशङ्क होकर न कर सकूँ?॥ ५॥

'किंतु मेरे मनको एक ही हार्दिक दुःख अधिक जला रहा है कि स्वयं महाराजने मुझसे भरतके अभिषेककी बात नहीं कही॥ ६॥

'मैं केवल तुम्हारे कहनेसे भी अपने भाई भरतके लिये इस राज्यको, सीताको, प्यारे प्राणोंको तथा सारी सम्पत्तिको भी प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही दे सकता हूँ॥

'फिर यदि स्वयं महाराज—मेरे पिताजी आज्ञा दें और वह भी तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये, तो मैं प्रतिज्ञाका पालन करते हुए उस कार्यको क्यों नहीं करूँगा?॥ ८॥

'तुम मेरी ओरसे विश्वास दिलाकर इन लज्जाशील महाराजको आश्वासन दो। ये पृथ्वीनाथ पृथ्वीकी ओर दृष्टि किये धीरे-धीरे आँसू क्यों बहा रहे हैं?॥ ९॥

'आज ही महाराजकी आज्ञासे दूत शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार होकर भरतको मामाके यहाँसे बुलानेके लिये चले जायँ॥ १०॥

'मैं अभी पिताकी बातपर कोई विचार न करके चौदह वर्षोंतक वनमें रहनेके लिये तुरंत दण्डकारण्यको चला ही जाता हूँ॥ ११॥

श्रीरामकी वह बात सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई। उसे विश्वास हो गया कि ये वनको चले जायँगे। अतः श्रीरामको जल्दी जानेकी प्रेरणा देती हुई वह बोली—॥ १२॥

'तुम ठीक कहते हो, ऐसा ही होना चाहिये। भरतको मामाके यहाँसे बुला लानेके लिये दूतलोग शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार होकर अवश्य जायँगे॥ १३॥

'परंतु राम! तुम वनमें जानेके लिये स्वयं ही उत्सुक जान पड़ते हो; अतः तुम्हारा विलम्ब करना मैं ठीक नहीं समझती। जितना शीघ्र सम्भव हो, तुम्हें यहाँसे वनको चल देना चाहिये॥ १४॥

'नरश्रेष्ठ! राजा लज्जित होनेके कारण जो स्वयं तुमसे नहीं कहते हैं, यह कोई विचारणीय बात नहीं है। अतः इसका दुःख तुम अपने मनसे निकाल दो॥ १५॥

'श्रीराम! तुम जबतक अत्यन्त उतावलीके साथ इस नगरसे वनको नहीं चले जाते, तबतक तुम्हारे पिता स्नान अथवा भोजन नहीं करेंगे'॥ १६॥

कैकेयीकी यह बात सुनकर शोकमें डूबे हुए राजा दशरथ लंबी साँस खींचकर बोले—'धिक्कार है! हाय! बड़ा कष्ट हुआ!' इतना कहकर वे मूर्च्छित हो उस सुवर्णभूषित पलंगपर गिर पड़े॥ १७॥

उस समय श्रीरामने राजाको उठाकर बैठा दिया और कैकेयीसे प्रेरित हो कोड़ेकी चोट खाये हुए घोड़ेकी भाँति वे शीघ्रतापूर्वक वनको जानेके लिये उतावले हो उठे॥ १८॥

अनार्या कैकेयीके उस अप्रिय एवं दारुण वचनको सुनकर भी श्रीरामके मनमें व्यथा नहीं हुई। वे कैकेयीसे बोले—॥ १९॥

'देवि! मैं धनका उपासक होकर संसारमें नहीं रहना चाहता। तुम विश्वास रखो! मैंने भी ऋषियोंकी ही भाँति निर्मल धर्मका आश्रय ले रखा है॥ २०॥

'पूज्य पिताजीका जो भी प्रिय कार्य मैं कर सकता हूँ, उसे प्राण देकर भी करूँगा। तुम उसे सर्वथा मेरे द्वारा हुआ ही समझो॥ २१॥

'पिताकी सेवा अथवा उनकी आज्ञाका पालन करना, जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है॥ २२॥

'यद्यपि पूज्य पिताजीने स्वयं मुझसे नहीं कहा है, तथापि मैं तुम्हारे ही कहनेसे चौदह वर्षोंतक इस भूतलपर निर्जन वनमें निवास करूँगा॥ २३॥

'कैकेयि! तुम्हारा मुझपर पूरा अधिकार है। मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञाका पालन कर सकता हूँ; फिर भी तुमने स्वयं मुझसे न कहकर इस कार्यके लिये महाराजसे कहा—इनको कष्ट दिया। इससे जान पड़ता है कि तुम मुझमें कोई गुण नहीं देखती हो॥ २४॥

'अच्छा! अब मैं माता कौसल्यासे आज्ञा ले लूँ और सीताको भी समझा-बुझा लूँ, इसके बाद आज ही विशाल दण्डकवनकी यात्रा करूँगा॥ २५॥

'तुम ऐसा प्रयत्न करना, जिससे भरत इस राज्यका पालन और पिताजीकी सेवा करते रहें; क्योंकि यही सनातन धर्म है'॥ २६॥

श्रीरामका यह वचन सुनकर पिताको बहुत दुःख हुआ। वे शोकके आवेगसे कुछ बोल न सके, केवल फूट-फूटकर रोने लगे॥ २७॥

महातेजस्वी श्रीराम उस समय अचेत पड़े हुए पिता महाराज दशरथ तथा अनार्या कैकेयीके भी चरणोंमें प्रणाम करके उस भवनसे निकले॥ २८॥

पिता दशरथ और माता कैकेयीकी परिक्रमा करके उस अन्तःपुरसे बाहर निकलकर श्रीराम अपने

सुहृदोंसे मिले॥ २९॥

सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मण उस अन्यायको देखकर अत्यन्त कुपित हो उठे थे, तथापि दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर वे चुपचाप श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले गये॥ ३०॥

श्रीरामचन्द्रजीके मनमें अब वन जानेकी आकांक्षाका उदय हो गया था, अतः अभिषेकके लिये एकत्र की हुई सामग्रियोंकी प्रदक्षिणा करते हुए वे धीरे-धीरे आगे बढ़ गये। उनकी ओर उन्होंने दृष्टिपात नहीं किया॥ ३१॥

श्रीराम अविनाशी कान्तिसे युक्त थे, इसलिये उस समय राज्यका न मिलना उन लोककमनीय श्रीरामकी महती शोभामें कोई अन्तर न डाल सका; जैसे चन्द्रमाका क्षीण होना उसकी सहज शोभाका अपकर्ष नहीं कर पाता है॥ ३२॥

वे वनमें जानेको उत्सुक थे और सारी पृथ्वीका राज्य छोड़ रहे थे; फिर भी उनके चित्तमें सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्माकी भाँति कोई विकार नहीं देखा गया॥ ३३॥

श्रीरामने अपने ऊपर सुन्दर छत्र लगानेकी मनाही कर दी। डुलाये जानेवाले सुसज्जित चँवर भी रोक दिये। वे रथको लौटाकर स्वजनों तथा पुरवासी मनुष्योंको भी बिदा करके (आत्मीय जनोंके दुःखसे होनेवाले) दुःखको मनमें ही दबाकर इन्द्रियोंको काबूमें करके यह अप्रिय समाचार सुनानेके लिये माता कौसल्याके महलमें गये। उस समय उन्होंने मनको पूर्णतः वशमें कर रखा था॥ ३४-३५॥

जो शोभाशाली मनुष्य सदा सत्यवादी श्रीमान् रामके निकट रहा करते थे, उन्होंने भी उनके मुखपर कोई विकार नहीं देखा॥ ३६॥

मनको वशमें रखनेवाले महाबाहु श्रीरामने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता उसी तरह नहीं छोड़ी थी, जैसे शरद्-कालका उद्दीप्त किरणोंवाला चन्द्रमा अपने सहज तेजका परित्याग नहीं करता है॥ ३७॥

महायशस्वी धर्मात्मा श्रीराम मधुर वाणीसे सब लोगोंका सम्मान करते हुए अपनी माताके समीप गये॥ ३८॥

उस समय गुणोंमें श्रीरामकी ही समानता करनेवाले महापराक्रमी भ्राता सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी अपने मानसिक दुःखको मनमें ही धारण किये हुए श्रीरामके पीछे-पीछे गये॥ ३९॥

अत्यन्त आनन्दसे भरे हुए उस भवनमें प्रवेश करके लौकिक दृष्टिसे अपने अभीष्ट अर्थका विनाश हुआ देखकर भी हितैषी सुहृदोंके प्राणोंपर संकट आ जानेकी आशङ्कासे श्रीरामने यहाँ अपने मुखपर कोई विकार नहीं प्रकट होने दिया॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

राजा दशरथकी अन्य रानियोंका विलाप, श्रीरामका कौसल्याजीके भवनमें जाना और उन्हें अपने वनवासकी बात बताना, कौसल्याका अचेत होकर गिरना और श्रीरामके उठा देनेपर उनकी ओर देखकर विलाप करना

उधर पुरुषसिंह श्रीराम हाथ जोड़े हुए ज्यों ही कैकेयीके महलसे बाहर निकलने लगे, त्यों ही अन्तःपुरमें रहनेवाली राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद प्रकट हुआ॥

वे कह रही थीं—'हाय! जो पिताके आज्ञा न देनेपर भी समस्त अन्तःपुरके आवश्यक कार्योंमें स्वतः संलग्न रहते थे, जो हमलोगोंके सहारे और रक्षक थे, वे श्रीराम आज वनको चले जायँगे॥ २॥

'वे रघुनाथजी जन्मसे ही अपनी माता कौसल्याके प्रति सदा जैसा बर्ताव करते थे, वैसा ही हमारे साथ भी करते थे॥ ३॥

'जो कठोर बात कह देनेपर भी कुपित नहीं होते थे, दूसरोंके मनमें क्रोध उत्पन्न करनेवाली बातें नहीं बोलते थे तथा जो सभी रूठे हुए व्यक्तियोंको मना लिया करते थे, वे ही श्रीराम आज यहाँसे वनको चले जायँगे॥

'बड़े खेदकी बात है कि हमारे महाराजकी बुद्धि मारी गयी। ये इस समय सम्पूर्ण जीव-जगत्‌का विनाश करनेपर तुले हुए हैं, तभी तो ये समस्त प्राणियोंके जीवनाधार श्रीरामका परित्याग कर रहे हैं'॥ ५॥

इस प्रकार समस्त रानियाँ अपने पतिको कोसने लगीं और बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगीं॥ ६॥

अन्तःपुरका वह भयङ्कर आर्तनाद सुनकर महाराज

दशरथने पुत्रशोकसे संतप्त हो लज्जाके मारे बिछौनेमें ही अपनेको छिपा लिया॥ ७॥

इधर जितेन्द्रिय श्रीरामचन्द्रजी स्वजनोंके दु:खसे अधिक खिन्न होकर हाथीके समान लंबी साँस खींचते हुए भाई लक्ष्मणके साथ माताके अन्त:पुरमें गये॥ ८॥

वहाँ उन्होंने उस घरके दरवाजेपर एक परम पूजित वृद्ध पुरुषको बैठा हुआ देखा और दूसरे भी बहुत-से मनुष्य वहाँ खड़े दिखायी दिये॥ ९॥

वे सब-के-सब विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन श्रीरामको देखते ही जय-जयकार करते हुए उनकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्हें बधाई देने लगे॥ १०॥

पहली ड्योढ़ी पार करके जब वे दूसरीमें पहुँचे, तब वहाँ उन्हें राजाके द्वारा सम्मानित बहुत-से वेदज्ञ ब्राह्मण दिखायी दिये॥ ११॥

उन वृद्ध ब्राह्मणोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी जब तीसरी ड्योढ़ीमें पहुँचे, तब वहाँ उन्हें द्वाररक्षाके कार्यमें लगी हुई बहुत-सी नववयस्का एवं वृद्ध अवस्थावाली स्त्रियाँ दिखायी दीं॥ १२॥

उन्हें देखकर उन स्त्रियोंको बड़ा हर्ष हुआ। श्रीरामको बधाई देकर उन स्त्रियोंने तत्काल महलके भीतर प्रवेश किया और तुरंत ही श्रीरामचन्द्रजीकी माताको उनके आगमनका प्रिय समाचार सुनाया॥ १३॥

उस समय देवी कौसल्या पुत्रकी मङ्गलकामनासे रातभर जागकर सबेरे एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुकी पूजा कर रही थीं॥ १४॥

वे रेशमी वस्त्र पहनकर बड़ी प्रसन्नताके साथ निरन्तर व्रतपरायण होकर मङ्गलकृत्य पूर्ण करनेके पश्चात् मन्त्रोच्चारणपूर्वक उस समय अग्निमें आहुति दे रही थीं॥ १५॥

उसी समय श्रीरामने माताके शुभ अन्त:पुरमें प्रवेश करके वहाँ माताको देखा। वे अग्निमें हवन करा रही थीं॥ १६॥

रघुनन्दनने देखा तो वहाँ देव-कार्यके लिये बहुत-सी सामग्री संग्रह करके रखी हुई है। दही, अक्षत, घी, मोदक, हविष्य, धानका लावा, सफेद माला, खीर, खिचड़ी, समिधा और भरे हुए कलश—ये सब वहाँ दृष्टिगोचर हुए॥ १७-१८॥

उत्तम कान्तिवाली माता कौसल्या सफेद रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए थीं। वे व्रतके अनुष्ठानसे दुर्बल हो गयी थीं और इष्टदेवताका तर्पण कर रही थीं। इस अवस्थामें श्रीरामने उन्हें देखा॥ १९॥

माताका आनन्द बढ़ानेवाले प्रिय पुत्रको बहुत देरके बाद सामने उपस्थित देख कौसल्यादेवी बड़े हर्षमें भरकर उसकी ओर चलीं, मानो कोई घोड़ी अपने बछेड़ेको देखकर बड़े हर्षसे उसके पास आयी हो॥ २०॥

श्रीरघुनाथजीने निकट आयी हुई माताके चरणोंमें प्रणाम किया और माता कौसल्याने उन्हें दोनों भुजाओंसे कसकर छातीसे लगा लिया तथा बड़े प्यारसे उनका मस्तक सूँघा॥ २१॥

उस समय कौसल्यादेवीने अपने दुर्जय पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे पुत्रस्नेहवश यह प्रिय एवं हितकर बात कही—॥ २२॥

'बेटा! तुम धर्मशील, वृद्ध एवं महात्मा राजर्षियोंके समान आयु, कीर्ति और कुलोचित धर्म प्राप्त करो॥ २३॥

'रघुनन्दन! अब तुम जाकर अपने सत्यप्रतिज्ञ पिता राजाका दर्शन करो। वे धर्मात्मा नरेश आज ही तुम्हारा युवराजके पदपर अभिषेक करेंगे'॥ २४॥

यह कहकर माताने उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया और भोजन करनेको कहा। भोजनके लिये निमन्त्रित होकर श्रीरामने उस आसनका स्पर्शमात्र कर लिया। फिर वे अञ्जलि फैलाकर मातासे कुछ कहनेको उद्यत हुए॥

वे स्वभावसे ही विनयशील थे तथा माताके गौरवसे भी उनके सामने नतमस्तक हो गये थे। उन्हें दण्डकारण्यको प्रस्थान करना था, अत: वे उसके लिये आज्ञा लेनेका उपक्रम करने लगे॥ २६॥

उन्होंने कहा—'देवि! निश्चय ही तुम्हें मालूम नहीं है, तुम्हारे ऊपर महान् भय उपस्थित हो गया है। इस समय मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, उसे सुनकर तुमको, सीताको और लक्ष्मणको भी दु:ख होगा; तथापि कहूँगा॥

'अब तो मैं दण्डकारण्यमें जाऊँगा, अत: ऐसे बहुमूल्य आसनकी मुझे क्या आवश्यकता है? अब मेरे लिये यह कुशकी चटाईपर बैठनेका समय आया है॥

'मैं राजभोग्य वस्तुका त्याग करके मुनिकी भाँति कन्द, मूल और फलोंसे जीवन-निर्वाह करता हुआ चौदह वर्षोंतक निर्जन वनमें निवास करूँगा॥ २९॥

'महाराज युवराजका पद भरतको दे रहे हैं और मुझे तपस्वी बनाकर दण्डकारण्यमें भेज रहे हैं॥ ३०॥

'अत: चौदह वर्षोंतक निर्जन वनमें रहूँगा और जंगलमें सुलभ होनेवाले वल्कल आदिको धारण करके

फल-मूलके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करता रहूँगा'॥

यह अप्रिय बात सुनकर वनमें फरसेसे काटी हुई शालवृक्षकी शाखाके समान कौसल्या देवी सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ीं, मानो स्वर्गसे कोई देवाङ्गना भूतलपर आ गिरी हो॥ ३२॥

जिन्होंने जीवनमें कभी दुःख नहीं देखा था—जो दुःख भोगनेके योग्य थीं ही नहीं, उन्हीं माता कौसल्याको कटी हुई कदलीकी भाँति अचेत-अवस्थामें भूमिपर पड़ी देख श्रीरामने हाथका सहारा देकर उठाया॥ ३३॥

जैसे कोई घोड़ी पहले बड़ा भारी बोझ ढो चुकी हो और थकावट दूर करनेके लिये धरतीपर लोट-पोटकर उठी हो, उसी तरह उठी हुई कौसल्याजीके समस्त अङ्गोंमें धूल लिपट गयी थी और वे अत्यन्त दीन दशाको पहुँच गयी थीं। उस अवस्थामें श्रीरामने अपने हाथसे उनके अङ्गोंकी धूल पोंछी॥ ३४॥

कौसल्याजीने जीवनमें पहले सदा सुख ही देखा था और उसीके योग्य थीं, परंतु उस समय वे दुःखसे कातर हो उठी थीं। उन्होंने लक्ष्मणके सुनते हुए अपने पास बैठे पुरुषसिंह श्रीरामसे इस प्रकार कहा— ॥ ३५॥

'बेटा रघुनन्दन! यदि तुम्हारा जन्म न हुआ होता तो मुझे इस एक ही बातका शोक रहता। आज जो मुझपर इतना भारी दुःख आ पड़ा है, इसे वन्ध्या होनेपर मुझे नहीं देखना पड़ता॥ ३६॥

'बेटा! वन्ध्याको एक मानसिक शोक होता है। उसके मनमें यह संताप बना रहता है कि मुझे कोई संतान नहीं है, इसके सिवा दूसरा कोई दुःख उसे नहीं होता॥

'बेटा राम! पतिके प्रभुत्वकालमें एक ज्येष्ठ पत्नीको जो कल्याण या सुख प्राप्त होना चाहिये, वह मुझे पहले कभी नहीं देखनेको मिला। सोचती थी, पुत्रके राज्यमें मैं सब सुख देख लूँगी और इसी आशासे मैं अबतक जीती रही॥ ३८॥

'बड़ी रानी होकर भी मुझे अपनी बातोंसे हृदयको विदीर्ण कर देनेवाली छोटी सौतोंके बहुत-से अप्रिय वचन सुनने पड़ेंगे॥ ३९॥

'स्त्रियोंके लिये इससे बढ़कर महान् दुःख और क्या होगा; अतः मेरा शोक और विलाप जैसा है, उसका कभी अन्त नहीं है॥ ४०॥

'तात! तुम्हारे निकट रहनेपर भी मैं इस प्रकार सौतोंसे तिरस्कृत रही हूँ, फिर तुम्हारे परदेश चले जानेपर मेरी क्या दशा होगी? उस दशामें तो मेरा मरण ही निश्चित है॥ ४१॥

'पतिकी ओरसे मुझे सदा अत्यन्त तिरस्कार अथवा कड़ी फटकार ही मिली है, कभी प्यार और सम्मान नहीं प्राप्त हुआ है। मैं कैकेयीकी दासियोंके बराबर अथवा उनसे भी गयी-बीती समझी जाती हूँ॥

'जो कोई मेरी सेवामें रहता या मेरा अनुसरण करता है, वह भी कैकेयीके बेटेको देखकर चुप हो जाता है, मुझसे बात नहीं करता है॥ ४३॥

'बेटा! इस दुर्गतिमें पड़कर मैं सदा क्रोधी स्वभावके कारण कटुवचन बोलनेवाले उस कैकेयीके मुखको कैसे देख सकूँगी॥ ४४॥

'रघुनन्दन! तुम्हारे उपनयनरूप द्वितीय जन्म लिये सत्रह वर्ष बीत गये (अर्थात् तुम अब सत्ताईस वर्षके हो गये)। अबतक मैं यही आशा लगाये चली आ रही थी कि अब मेरा दुःख दूर हो जायगा॥ ४५॥

'राघव! अब इस बुढ़ापेमें इस तरह सौतोंका तिरस्कार और उससे होनेवाले महान् अक्षय दुःखको मैं अधिक कालतक नहीं सह सकती॥ ४६॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारे मनोहर मुखको देखे बिना मैं दुःखिनी दयनीय जीवनवृत्तिसे रहकर कैसे निर्वाह करूँगी॥ ४७॥

'बेटा! (यदि तुझे इस देशसे निकल ही जाना है तो) मुझ भाग्यहीनाने बारंबार उपवास, देवताओंका ध्यान तथा बहुत-से परिश्रमजनक उपाय करके व्यर्थ ही तुम्हारा इतने कष्टसे पालन-पोषण किया है॥ ४८॥

'मैं समझती हूँ कि निश्चय ही यह मेरा हृदय बड़ा कठोर है, जो तुम्हारे बिछोहकी बात सुनकर भी वर्षाकालके नूतन जलके प्रवाहसे टकराये हुए महानदीके कगारकी भाँति फट नहीं जाता है॥ ४९॥

निश्चय ही मेरे लिये कहीं मौत नहीं है, यमराजके घरमें भी मेरे लिये जगह नहीं है, तभी तो जैसे किसी रोती हुई मृगीको सिंह जबरदस्ती उठा ले जाता है, उसी प्रकार यमराज मुझे आज ही उठा ले जाना नहीं चाहता है॥ ५०॥

'अवश्य ही मेरा कठोर हृदय लोहेका बना हुआ है, जो पृथिवीपर पड़नेपर भी न तो फटता है और न टूक-टूक हो जाता है। इसी दुःखसे व्याप्त हुए इस शरीरके भी टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाते हैं। निश्चय ही, मृत्युकाल आये बिना किसीका मरण नहीं होता है॥

'सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि पुत्रके सुखके लिये मेरे द्वारा किये गये व्रत, दान और संयम सब व्यर्थ हो गये। मैंने संतानकी हित-कामनासे जो तप किया है, वह भी ऊसरमें बोये हुए बीजकी भाँति निष्फल हो गया॥ ५२॥

'यदि कोई मनुष्य भारी दुःखसे पीड़ित हो असमयमें भी अपनी इच्छाके अनुसार मृत्यु पा सके तो मैं तुम्हारे बिना अपने बछड़ेसे बिछुड़ी हुई गायकी भाँति आज ही यमराजकी सभामें चली जाऊँ॥ ५३॥

'चन्द्रमाके समान मनोहर मुख-कान्तिवाले श्रीराम! यदि मेरी मृत्यु नहीं होती है तो तुम्हारे बिना यहाँ व्यर्थ कुत्सित जीवन क्यों बिताऊँ? बेटा! जैसे गौ दुर्बल होनेपर भी अपने बछड़ेके लोभसे उसके पीछे-पीछे चली जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ ही वनको चली चलूँगी'॥ ५४॥

आनेवाले भारी दुःखको सहनेमें असमर्थ हो महान् संकटका विचार करके सत्यके ध्यानमें बँधे हुए अपने पुत्र श्रीरघुनाथजीकी ओर देखकर माता कौसल्या उस समय बहुत विलाप करने लगीं, मानो कोई किन्नरी अपने पुत्रको बन्धनमें पड़ा हुआ देखकर बिलख रही हो॥ ५५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका रोष, उनका श्रीरामको बलपूर्वक राज्यपर अधिकार कर लेनेके लिये प्रेरित करना तथा श्रीरामका पिताकी आज्ञाके पालनको ही धर्म बताकर माता और लक्ष्मणको समझाना

इस प्रकार विलाप करती हुई श्रीराममाता कौसल्यासे अत्यन्त दुःखी हुए लक्ष्मणने उस समयके योग्य बात कही— ॥ १॥

'बड़ी माँ! मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता कि श्रीराम राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके वनमें जायँ। महाराज तो इस समय स्त्रीकी बातमें आ गये हैं, इसलिये उनकी प्रकृति विपरीत हो गयी है। एक तो वे बूढ़े हैं, दूसरे विषयोंने उन्हें वशमें कर लिया है; अतः कामदेवके वशीभूत हुए वे नरेश कैकेयी-जैसी स्त्रीकी प्रेरणासे क्या नहीं कह सकते हैं?॥ २-३॥

'मैं श्रीरघुनाथजीका ऐसा कोई अपराध या दोष नहीं देखता, जिससे इन्हें राज्यसे निकाला जाय और वनमें रहनेके लिये विवश किया जाय॥ ४॥

'मैं संसारमें एक मनुष्यको भी ऐसा नहीं देखता, जो अत्यन्त शत्रु एवं तिरस्कृत होनेपर भी परोक्षमें भी इनका कोई दोष बता सके॥ ५॥

'धर्मपर दृष्टि रखनेवाला कौन ऐसा राजा होगा, जो देवताके समान शुद्ध, सरल, जितेन्द्रिय और शत्रुओंपर भी स्नेह रखनेवाले (श्रीराम-जैसे) पुत्रका अकारण परित्याग करेगा?॥ ६॥

'जो पुनः बालभाव (विवेकशून्यता) को प्राप्त हो गये हैं, ऐसे राजाके इस वचनको राजनीतिका ध्यान रखनेवाला कौन पुत्र अपने हृदयमें स्थान दे सकता है?॥

'रघुनन्दन! जबतक कोई भी मनुष्य आपके वनवासकी बातको नहीं जानता है, तबतक ही, आप मेरी सहायतासे इस राज्यके शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले लीजिये॥ ८॥

'रघुवीर! जब मैं धनुष लिये आपके पास रहकर आपकी रक्षा करता रहूँ और आप कालके समान युद्धके लिये डट जायँ, उस समय आपसे अधिक पौरुष प्रकट करनेमें कौन समर्थ हो सकता है?॥ ९॥

'नरश्रेष्ठ! यदि नगरके लोग विरोधमें खड़े होंगे तो मैं अपने तीखे बाणोंसे सारी अयोध्याको मनुष्योंसे सूनी कर दूँगा॥ १०॥

'जो-जो भरतका पक्ष लेगा अथवा केवल जो उन्हींका हित चाहेगा, उन सबका मैं वध कर डालूँगा; क्योंकि जो कोमल या नम्र होता है, उसका सभी तिरस्कार करते हैं॥ ११॥

'यदि कैकेयीके प्रोत्साहन देनेपर उसके ऊपर संतुष्ट हो पिताजी हमारे शत्रु बन रहे हैं तो हमें भी मोह-ममता छोड़कर इन्हें कैद कर लेना या मार डालना चाहिये॥ १२॥

'क्योंकि यदि गुरु भी घमंडमें आकर कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और कुमार्गपर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है॥ १३॥

'पुरुषोत्तम! राजा किस बलका सहारा लेकर अथवा किस कारणको सामने रखकर आपको न्यायत: प्राप्त हुआ यह राज्य अब कैकेयीको देना चाहते हैं?॥

'शत्रुदमन श्रीराम! आपके और मेरे साथ भारी वैर बाँधकर इनकी क्या शक्ति है कि यह राज्यलक्ष्मी ये भरतको दे दें?॥ १५॥

'देवि! (बड़ी माँ!) मैं सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञ आदिकी शपथ खाकर तुमसे सच्ची बात कहता हूँ कि मेरा अपने पूज्य भ्राता श्रीराममें हार्दिक अनुराग है॥ १६॥

'देवि! आप विश्वास रखें, यदि श्रीराम जलती हुई आगमें या घोर वनमें प्रवेश करनेवाले होंगे तो मैं इनसे भी पहले उसमें प्रविष्ट हो जाऊँगा॥ १७॥

'इस समय आप, रघुनाथजी तथा अन्य सब लोग भी मेरे पराक्रमको देखें। जैसे सूर्य उदित होकर अन्धकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्तिसे आपके सब दु:ख दूर कर दूँगा॥ १८॥

'जो कैकेयीमें आसक्तचित्त होकर दीन बन गये हैं, बालभाव (अविवेक) में स्थित हैं और अधिक बुढ़ापेके कारण निन्दित हो रहे हैं, उन वृद्ध पिताको मैं अवश्य मार डालूँगा'॥ १९॥

महामनस्वी लक्ष्मणके ये ओजस्वी वचन सुनकर शोकमग्न कौसल्या श्रीरामसे रोती हुई बोलीं—॥ २०॥

'बेटा! तुमने अपने भाई लक्ष्मणकी कही हुई सारी बातें सुन लीं, यदि जँचे तो अब इसके बाद तुम जो कुछ करना उचित समझो, उसे करो॥ २१॥

'मेरी सौतकी कही हुई अधर्मयुक्त बात सुनकर मुझ शोकसे संतप्त हुई माताको छोड़कर तुम्हें यहाँसे नहीं जाना चाहिये॥ २२॥

'धर्मिष्ठ! तुम धर्मको जाननेवाले हो, इसलिये यदि धर्मका पालन करना चाहो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो और इस प्रकार परम उत्तम धर्मका आचरण करो॥

'वत्स! अपने घरमें नियमपूर्वक रहकर माताकी सेवा करनेवाले काश्यप उत्तम तपस्यासे युक्त हो स्वर्गलोकमें चले गये थे॥ २४॥

'जैसे गौरवके कारण राजा तुम्हारे पूज्य हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ। मैं तुम्हें वन जानेकी आज्ञा नहीं देती, अत: तुम्हें यहाँसे वनको नहीं जाना चाहिये॥ २५॥

'तुम्हारे साथ तिनके चबाकर रहना भी मेरे लिये श्रेयस्कर है, परंतु तुमसे विलग हो जानेपर न मुझे इस जीवनसे कोई प्रयोजन है और न सुखसे॥ २६॥

'यदि तुम मुझे शोकमें डूबी हुई छोड़कर वनको चले जाओगे तो मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगी, जीवित नहीं रह सकूँगी॥ २७॥

'बेटा! ऐसा होनेपर तुम संसारप्रसिद्ध वह नरक-तुल्य कष्ट पाओगे, जो ब्रह्महत्याके समान है और जिसे सरिताओंके स्वामी समुद्रने अपने अधर्मके फलरूपसे प्राप्त किया था'*॥ २८॥

माता कौसल्याको इस प्रकार दीन होकर विलाप करती देख धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रने यह धर्मयुक्त वचन कहा—॥ २९॥

'माता! मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। मुझमें पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति नहीं है, अत: मैं वनको ही जाना चाहता हूँ॥ ३०॥

'वनवासी विद्वान् कण्डु मुनिने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अधर्म समझते हुए भी गौका वध कर डाला था॥ ३१॥

'हमारे कुलमें भी पहले राजा सगरके पुत्र ऐसे हो गये हैं, जो पिताकी आज्ञासे पृथ्वी खोदते हुए बुरी तरहसे मारे गये॥ ३२॥

'जमदग्निके पुत्र परशुरामने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही वनमें फरसेसे अपनी माता रेणुकाका गला काट डाला था॥ ३३॥

'देवि! इन्होंने तथा और भी बहुत-से देवतुल्य मनुष्योंने उत्साहके साथ पिताके आदेशका पालन किया है। अत: मैं भी कायरता छोड़कर पिताका हित-साधन करूँगा॥ ३४॥

'देवि! केवल मैं ही इस प्रकार पिताके आदेशका पालन नहीं कर रहा हूँ। जिनकी मैंने अभी चर्चा की है, उन सबने भी पिताके आदेशका पालन किया है॥

'मा! मैं तुम्हारे प्रतिकूल किसी नवीन धर्मका

* किसी कल्पमें समुद्रने अपनी माताको दु:ख दिया था, उससे पिप्पलाद नामक ब्रह्मर्षिने उस अधर्मका दण्ड देनेके लिये उसके ऊपर एक कृत्याका प्रयोग किया। इससे समुद्रको नरकवासतुल्य महान् दु:ख भोगना पड़ा था।

प्रचार नहीं कर रहा हूँ। पूर्वकालके धर्मात्मा पुरुषोंको भी यह अभीष्ट था। मैं तो उनके चले हुए मार्गका ही अनुसरण करता हूँ॥ ३६॥

'इस भूमण्डलपर जो सबके लिये करनेयोग्य है, वही मैं भी करने जा रहा हूँ। इसके विपरीत कोई न करनेयोग्य काम नहीं कर रहा हूँ। पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला कोई भी पुरुष धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता'॥

अपनी मातासे ऐसा कहकर वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समस्त धनुर्धरशिरोमणि श्रीरामने पुनः लक्ष्मणसे कहा— ॥ ३८॥

'लक्ष्मण! मेरे प्रति तुम्हारा जो परम उत्तम स्नेह है, उसे मैं जानता हूँ। तुम्हारे पराक्रम, धैर्य और दुर्धर्ष तेजका भी मुझे ज्ञान है॥ ३९॥

'शुभलक्षण लक्ष्मण! मेरी माताको जो अनुपम एवं महान् दुःख हो रहा है, वह सत्य और शमके विषयमें मेरे अभिप्रायको न समझनेके कारण है॥ ४०॥

'संसारमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्ममें ही सत्यकी प्रतिष्ठा है। पिताजीका यह वचन भी धर्मके आश्रित होनेके कारण परम उत्तम है॥ ४१॥

'वीर! धर्मका आश्रय लेकर रहनेवाले पुरुषको पिता, माता अथवा ब्राह्मणके वचनोंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिये॥ ४२॥

'वीर! अतः मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता; क्योंकि पिताजीके कहनेसे ही कैकेयीने मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दी है॥ ४३॥

'इसलिये केवल क्षात्रधर्मका अवलम्बन करनेवाली इस ओछी बुद्धिका त्याग करो, धर्मका आश्रय लो, कठोरता छोड़ो और मेरे विचारके अनुसार चलो'॥ ४४॥

अपने भाई लक्ष्मणसे सौहार्दवश ऐसी बात कहकर उनके बड़े भ्राता श्रीरामने पुनः कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा— ॥ ४५॥

'देवि! मैं यहाँसे वनको जाऊँगा। तुम मुझे आज्ञा दो और स्वस्तिवाचन कराओ। यह बात मैं अपने प्राणोंकी शपथ दिलाकर कहता हूँ॥ ४६॥

'जैसे पूर्वकालमें राजर्षि ययाति स्वर्गलोकका त्याग करके पुनः भूतलपर उतर आये थे, उसी प्रकार मैं भी प्रतिज्ञा पूर्ण करके पुनः वनसे अयोध्यापुरीको लौट आऊँगा॥ ४७॥

'मा! शोकको अपने हृदयमें ही अच्छी तरह दबाये रखो। शोक न करो। पिताकी आज्ञाका पालन करके मैं फिर वनवाससे यहाँ लौट आऊँगा॥ ४८॥

'तुमको, मुझको, सीताको, लक्ष्मणको और माता सुमित्राको भी पिताजीकी आज्ञामें ही रहना चाहिये। यही सनातन धर्म है॥ ४९॥

'मा! यह अभिषेककी सामग्री ले जाकर रख दो। अपने मनका दुःख मनमें ही दबा लो और वनवासके सम्बन्धमें जो मेरा धर्मानुकूल विचार है, उसका अनुसरण करो—मुझे जानेकी आज्ञा दो'॥ ५०॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह धर्मानुकूल तथा व्यग्रता और आकुलतासे रहित बात सुनकर जैसे मरे हुए मनुष्यमें प्राण आ जाय, उसी प्रकार देवी कौसल्या मूर्च्छा त्यागकर होशमें आ गयीं तथा अपने पुत्र श्रीरामकी ओर देखकर इस प्रकार कहने लगीं— ॥ ५१॥

'बेटा! धर्म और सौहार्दके नाते जैसे पिता तुम्हारे लिये आदरणीय गुरुजन हैं, वैसी ही मैं भी हूँ। मैं तुम्हें वनमें जानेकी आज्ञा नहीं देती। वत्स! मुझ दुःखियाको छोड़कर तुम्हें कहीं नहीं जाना चाहिये॥ ५२॥

'तुम्हारे बिना मुझे यहाँ इस जीवनसे क्या लाभ है? इन स्वजनोंसे, देवता तथा पितरोंकी पूजासे और अमृतसे भी क्या लेना है? तुम दो घड़ी भी मेरे पास रहो तो वही मेरे लिये सम्पूर्ण संसारके राज्यसे भी बढ़कर सुख देनेवाला है'॥ ५३॥

जैसे कोई विशाल गजराज किसी अन्धकूपमें पड़ जाय और लोग उसे जलते लुआठोंसे मार-मारकर पीड़ित करने लगें, उस दशामें वह क्रोधसे जल उठे; उसी प्रकार श्रीराम भी माताका बारंबार करुण-विलाप सुनकर (इसे स्वधर्मपालनमें बाधा मानकर) आवेशमें भर गये। (वनमें जानेका ही दृढ़ निश्चय कर लिया)॥ ५४॥

उन्होंने धर्ममें ही दृढ़तापूर्वक स्थित रहकर अचेत-सी हो रही मातासे और आर्त एवं संतप्त हुए सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे भी ऐसी धर्मानुकूल बात कही, जैसी उस अवसरपर वे ही कह सकते थे॥ ५५॥

'लक्ष्मण! मैं जानता हूँ, तुम सदा ही मुझमें भक्ति रखते हो और तुम्हारा पराक्रम कितना महान् है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है; तथापि तुम मेरे अभिप्रायकी ओर ध्यान न देकर माताजीके साथ स्वयं भी मुझे पीड़ा दे रहे हो। इस तरह मुझे अत्यन्त दुःखमें न डालो॥ ५६॥

'इस जीवजगत्में पूर्वकृत धर्मके फलकी प्राप्तिके अवसरोंपर जो धर्म, अर्थ और काम तीनों देखे गये हैं, वे सब-के-सब जहाँ धर्म है, वहाँ अवश्य प्राप्त होते

हैं—इसमें संशय नहीं है; ठीक उसी तरह जैसे भार्या धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी साधन होती है। वह पतिके वशीभूत या अनुकूल रहकर अतिथि-सत्कार आदि धर्मके पालनमें सहायक होती है। प्रेयसीरूपसे कामका साधन बनती है और पुत्रवती होकर उत्तम लोककी प्राप्तिरूप अर्थकी साधिका होती है॥ ५७॥

'जिस कर्ममें धर्म आदि सब पुरुषार्थोंका समावेश न हो, उसको नहीं करना चाहिये। जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, उसीका आरम्भ करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोकमें सबके द्वेषका पात्र बन जाता है तथा धर्मविरुद्ध काममें अत्यन्त आसक्त होना प्रशंसा नहीं, निन्दाकी बात है॥ ५८॥

'महाराज हमलोगोंके गुरु, राजा और पिता होनेके साथ ही बड़े-बूढ़े माननीय पुरुष हैं। वे क्रोधसे, हर्षसे अथवा कामसे प्रेरित होकर भी यदि किसी कार्यके लिये आज्ञा दें तो हमें धर्म समझकर उसका पालन करना चाहिये। जिसके आचरणोंमें क्रूरता नहीं है, ऐसा कौन पुरुष पिताकी आज्ञाके पालनरूप धर्मका आचरण नहीं करेगा॥ ५९॥

'इसलिये मैं पिताकी इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करनेसे मुँह नहीं मोड़ सकता। तात लक्ष्मण! वे हम दोनोंको आज्ञा देनेमें समर्थ गुरु हैं और माताजीके तो वे ही पति, गति तथा धर्म हैं॥ ६०॥

'वे धर्मके प्रवर्तक महाराज अभी जीवित हैं और विशेषतः अपने धर्ममय मार्गपर स्थित हैं, ऐसी दशामें माताजी, जैसे दूसरी कोई विधवा स्त्री बेटेके साथ रहती है, उस प्रकार मेरे साथ यहाँसे वनमें कैसे चल सकती हैं?॥ ६१॥

'अतः देवि! तुम मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दो और हमारे मङ्गलके लिये स्वस्तिवाचन कराओ, जिससे वनवासकी अवधि समाप्त होनेपर मैं फिर तुम्हारी सेवामें आ जाऊँ। जैसे राजा ययाति सत्यके प्रभावसे फिर स्वर्गमें लौट आये थे॥ ६२॥

'केवल धर्महीन राज्यके लिये मैं महान् फलदायक धर्मपालनरूप सुयशको पीछे नहीं ढकेल सकता। मा! जीवन अधिक कालतक रहनेवाला नहीं है; इसके लिये मैं आज अधर्मपूर्वक इस तुच्छ पृथ्वीका राज्य लेना नहीं चाहता'॥ ६३॥

इस प्रकार नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने धैर्यपूर्वक दण्डकारण्यमें जानेकी इच्छासे माताको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया तथा अपने छोटे भाई लक्ष्मणको भी अपने विचारके अनुसार भलीभाँति धर्मका रहस्य समझाकर मन-ही-मन माताकी परिक्रमा करनेका संकल्प किया॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणको समझाते हुए अपने वनवासमें दैवको ही कारण बताना और अभिषेककी सामग्रीको हटा लेनेका आदेश देना

(श्रीरामके राज्याभिषेकमें विघ्न पड़नेके कारण) सुमित्राकुमार लक्ष्मण मानसिक व्यथासे बहुत दुःखी थे। उनके मनमें विशेष अमर्ष भरा हुआ था। वे रोषसे भरे हुए गजराजकी भाँति क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। अपने मनको वशमें रखनेवाले श्रीराम धैर्यपूर्वक चित्तको निर्विकाररूपसे काबूमें रखते हुए अपने हितैषी सुहृद् प्रिय भाई लक्ष्मणके पास जाकर इस प्रकार बोले—॥ १-२॥

'लक्ष्मण! केवल धैर्यका आश्रय लेकर अपने मनके क्रोध और शोकको दूर करो, चित्तसे अपमानकी भावना निकाल दो और हृदयमें भलीभाँति हर्ष भरकर मेरे अभिषेकके लिये यह जो उत्तम सामग्री एकत्र की गयी है, इसे शीघ्र हटा दो और ऐसा कार्य करो, जिससे मेरे वनगमनमें बाधा उपस्थित न हो॥ ३-४॥

'सुमित्रानन्दन! अबतक अभिषेकके लिये सामग्री जुटानेमें जो तुम्हारा उत्साह था, वह इसे रोकने और मेरे वन जानेकी तैयारी करनेमें होना चाहिये॥ ५॥

'मेरे अभिषेकके कारण जिसके चित्तमें संताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकेयीको जिससे किसी तरहकी शङ्का न रह जाय, वही काम करो॥ ६॥

'लक्ष्मण! उसके मनमें संदेहके कारण दुःख उत्पन्न हो, इस बातको मैं दो घड़ीके लिये भी नहीं सह सकता और न इसकी उपेक्षा ही कर सकता हूँ॥

'मैंने यहाँ कभी जान-बूझकर या अनजानमें

माताओंका अथवा पिताजीका कोई छोटा-सा भी अपराध किया हो, ऐसा याद नहीं आता॥ ८॥

'पिताजी सदा सत्यवादी और सत्यपराक्रमी रहे हैं। वे परलोकके भयसे सदा डरते रहते हैं; इसलिये मुझे वही काम करना चाहिये, जिससे मेरे पिताजीका पारलौकिक भय दूर हो जाय॥ ९॥

'यदि इस अभिषेकसम्बन्धी कार्यको रोक नहीं दिया गया तो पिताजीको भी मन-ही-मन यह सोचकर संताप होगा कि मेरी बात सच्ची नहीं हुई और उनका वह मनस्ताप मुझे सदा संतप्त करता रहेगा॥ १०॥

'लक्ष्मण! इन्हीं सब कारणोंसे मैं अपने अभिषेकका कार्य रोककर शीघ्र ही इस नगरसे वनको चला जाना चाहता हूँ॥ ११॥

'आज मेरे चले जानेसे कृतकृत्य हुई राजकुमारी कैकेयी अपने पुत्र भरतका निर्भय एवं निश्चिन्त होकर अभिषेक करावे॥ १२॥

'मैं वल्कल और मृगचर्म धारण करके सिरपर जटाजूट बाँधे जब वनको चला जाऊँगा, तभी कैकेयीके मनको सुख प्राप्त होगा॥ १३॥

'जिस विधाताने कैकेयीको ऐसी बुद्धि प्रदान की है तथा जिसकी प्रेरणासे उसका मन मुझे वन भेजनेमें अत्यन्त दृढ़ हो गया है, उसे विफलमनोरथ करके कष्ट देना मेरे लिये उचित नहीं है॥ १४॥

'सुमित्राकुमार! मेरे इस प्रवासमें तथा पिताद्वारा दिये हुए राज्यके फिर हाथसे निकल जानेमें दैवको ही कारण समझना चाहिये॥ १५॥

'मेरी समझसे कैकेयीका यह विपरीत मनोभाव दैवका ही विधान है। यदि ऐसा न होता तो वह मुझे वनमें भेजकर पीड़ा देनेका विचार क्यों करती॥ १६॥

'सौम्य! तुम तो जानते ही हो कि मेरे मनमें पहले भी कभी माताओंके प्रति भेदभाव नहीं हुआ और कैकेयी भी पहले मुझमें या अपने पुत्रमें कोई अन्तर नहीं समझती थी॥ १७॥

'मेरे अभिषेकको रोकने और मुझे वनमें भेजनेके लिये उसने राजाको प्रेरित करनेके निमित्त जिन भयंकर और कटुवचनोंका प्रयोग किया है, उन्हें साधारण मनुष्योंके लिये भी मुँहसे निकालना कठिन है। उसकी ऐसी चेष्टामें मैं दैवके सिवा दूसरे किसी कारणका समर्थन नहीं करता॥ १८॥

'यदि ऐसी बात न होती तो वैसे उत्तम स्वभाव और श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त राजकुमारी कैकेयी एक साधारण स्त्रीकी भाँति अपने पतिके समीप मुझे पीड़ा देनेवाली बात कैसे कहती—मुझे कष्ट देनेके लिये रामको वनमें भेजनेका प्रस्ताव कैसे उपस्थित करती॥ १९॥

'जिसके विषयमें कभी कुछ सोचा न गया हो, वही दैवका विधान है। प्राणियोंमें अथवा उनके अधिष्ठाता देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है, जो उस दैवके विधानको मेट सके; अतः निश्चय ही उसीकी प्रेरणासे मुझमें और कैकेयीमें यह भारी उलट-फेर हुआ है (मेरे हाथमें आया हुआ राज्य चला गया और कैकेयीकी बुद्धि बदल गयी)॥ २०॥

'सुमित्रानन्दन! कर्मोंके सुख-दुःखादिरूप फल प्राप्त होनेपर ही जिसका ज्ञान होता है, कर्मफलसे अन्यत्र कहीं भी जिसका पता नहीं चलता, उस दैवके साथ कौन पुरुष युद्ध कर सकता है?॥ २१॥

'सुख-दुःख, भय-क्रोध (क्षोभ), लाभ-हानि, उत्पत्ति और विनाश तथा इस प्रकारके और भी जितने परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनका कोई कारण समझमें नहीं आता, वे सब दैवके ही कर्म हैं॥ २२॥

'उग्र तपस्वी ऋषि भी दैवसे प्रेरित होकर अपने तीव्र नियमोंको छोड़ बैठते और काम-क्रोधके द्वारा विवश हो मर्यादासे भ्रष्ट हो जाते हैं॥ २३॥

'जो बात बिना सोचे-विचारे अकस्मात् सिरपर आ पड़ती है और प्रयत्नोंद्वारा आरम्भ किये हुए कार्यको रोककर एक नया ही काण्ड उपस्थित कर देती है, अवश्य वह दैवका ही विधान है॥ २४॥

'इस तात्त्विक बुद्धिके द्वारा स्वयं ही मनको स्थिर कर लेनेके कारण मुझे अपने अभिषेकमें विघ्न पड़ जानेपर भी दुःख या संताप नहीं हो रहा है॥ २५॥

'इसी प्रकार तुम भी मेरे विचारका अनुसरण करके संतापशून्य हो राज्याभिषेकके इस आयोजनको शीघ्र बंद करा दो॥ २६॥

'लक्ष्मण! राज्याभिषेकके लिये सँजोकर रखे गये इन्हीं सब कलशोंद्वारा मेरा तापस-व्रतके संकल्पके लिये आवश्यक स्नान होगा॥ २७॥

'अथवा राज्याभिषेकसम्बन्धी मङ्गल द्रव्यमय इस कलशजलकी मुझे क्या आवश्यकता है? स्वयं मेरे द्वारा अपने हाथसे निकाला हुआ जल ही मेरे व्रतादेशका साधक होगा॥ २८॥

'लक्ष्मण! लक्ष्मीके इस उलट-फेरके विषयमें तुम कोई चिन्ता न करो। मेरे लिये राज्य अथवा वनवास दोनों समान हैं, बल्कि विशेष विचार करनेपर वनवास ही महान् अभ्युदयकारी प्रतीत होता है॥ २९॥

'लक्ष्मण! मेरे राज्याभिषेकमें जो विघ्न आया है, इसमें मेरी सबसे छोटी माता कारण है, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह दैवके अधीन थी। इसी प्रकार पिताजी भी किसी तरह इसमें कारण नहीं हैं। तुम तो दैव और उसके अद्भुत प्रभावको जानते ही हो, वही कारण है'॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ सर्ग

लक्ष्मणकी ओजभरी बातें, उनके द्वारा दैवका खण्डन और पुरुषार्थका प्रतिपादन तथा उनका श्रीरामके अभिषेकके निमित्त विरोधियोंसे लोहा लेनेके लिये उद्यत होना

श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय लक्ष्मण सिर झुकाये कुछ सोचते रहे; फिर सहसा शीघ्रतापूर्वक वे दुःख और हर्षके बीचकी स्थितिमें आ गये (श्रीरामके राज्याभिषेकमें विघ्न पड़नेके कारण उन्हें दुःख हुआ और उनकी धर्ममें दृढ़ता देखकर प्रसन्नता हुई)॥

नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने उस समय ललाटमें भौंहोंको चढ़ाकर लंबी साँस खींचना आरम्भ किया, मानो बिलमें बैठा हुआ महान् सर्प रोषमें भरकर फुंकार मार रहा हो॥

तनी हुई भौंहोंके साथ उस समय उनका मुख कुपित हुए सिंहके मुखके समान जान पड़ता था, उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था॥ ३॥

जैसे हाथी अपनी सूँड हिलाया करता है, उसी प्रकार वे अपने दाहिने हाथको हिलाते और गर्दनको शरीरमें ऊपर-नीचे और अगल-बगल सब ओर घुमाते हुए नेत्रोंके अग्रभागसे टेढ़ी नजरोंद्वारा अपने भाई श्रीरामको देखकर उनसे बोले— ॥ ४ $\frac{1}{2}$ ॥

'भैया! आप समझते हैं कि यदि पिताकी इस आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं वनको न जाऊँ तो धर्मके विरोधका प्रसङ्ग उपस्थित होता है, इसके सिवा लोगोंके मनमें यह बड़ी भारी शङ्का उठ खड़ी होगी कि जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, वह यदि राजा ही हो जाय तो हमारा धर्मपूर्वक पालन कैसे करेगा? साथ ही आप यह भी सोचते हैं कि यदि मैं पिताकी इस आज्ञाका पालन नहीं करूँ तो दूसरे लोग भी नहीं करेंगे। इस प्रकार धर्मकी अवहेलना होनेसे जगत्के विनाशका भय उपस्थित होगा। इन सब दोषों और शङ्काओंका निराकरण करनेके लिये आपके मनमें वनगमनके प्रति जो यह बड़ा भारी सम्भ्रम (उतावलापन) आ गया है, यह सर्वथा अनुचित एवं भ्रममूलक ही है; क्योंकि आप असमर्थ 'दैव' नामक तुच्छ वस्तुको प्रबल बता रहे हैं। दैवका निराकरण करनेमें समर्थ आप-जैसा क्षत्रियशिरोमणि वीर यदि भ्रममें नहीं पड़ गया होता तो ऐसी बात कैसे कह सकता था? अतः असमर्थ पुरुषोंद्वारा ही अपनाये जाने योग्य और पौरुषके निकट कुछ भी करनेमें असमर्थ 'दैव' की आप साधारण मनुष्यके समान इतनी स्तुति या प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?॥ ५—७॥

'धर्मात्मन्! आपको उन दोनों पापियोंपर संदेह क्यों नहीं होता? संसारमें कितने ही ऐसे पापासक्त मनुष्य हैं, जो दूसरोंको ठगनेके लिये धर्मका ढोंग बनाये रहते हैं, क्या आप उन्हें नहीं जानते हैं?॥ ८॥

'रघुनन्दन! वे दोनों अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये शठतावश धर्मके बहाने आप-जैसे सच्चरित्र पुरुषका परित्याग करना चाहते हैं। यदि उनका ऐसा विचार न होता तो जो कार्य आज हुआ है, वह पहले ही हो गया होता। यदि वरदानवाली बात सच्ची होती तो आपके अभिषेकका कार्य प्रारम्भ होनेसे पहले ही इस तरहका वर दे दिया गया होता॥ ९॥

(गुणवान् ज्येष्ठ पुत्रके रहते हुए छोटेका अभिषेक करना) यह लोकविरुद्ध कार्य है, जिसका आज आरम्भ किया गया है। आपके सिवा दूसरे किसीका राज्याभिषेक हो, यह मुझसे सहन नहीं होनेका। इसके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे॥ १०॥

'महामते! पिताके जिस वचनको मानकर आप मोहमें पड़े हुए हैं और जिसके कारण आपकी बुद्धिमें दुविधा उत्पन्न हो गयी है, मैं उसे धर्म माननेका पक्षपाती नहीं हूँ; ऐसे धर्मका तो मैं घोर विरोध करता हूँ॥ ११॥

'आप अपने पराक्रमसे सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी कैकेयीके वशमें रहनेवाले पिताके अधर्मपूर्ण एवं निन्दित वचनका पालन कैसे करेंगे?॥ १२॥

'वरदानकी झूठी कल्पनाका पाप करके आपके अभिषेकमें रोड़ा अटकाया गया है, फिर भी आप इस रूपमें नहीं ग्रहण करते हैं। इसके लिये मेरे मनमें बड़ा दु:ख होता है। ऐसे कपटपूर्ण धर्मके प्रति होनेवाली आसक्ति निन्दित है॥ १३॥

'ऐसे पाखण्डपूर्ण धर्मके पालनमें जो आपकी प्रवृत्ति हो रही है, वह यहाँके जनसमुदायकी दृष्टिमें निन्दित है। आपके सिवा दूसरा कोई पुरुष सदा पुत्रका अहित करनेवाले, पिता-माता नामधारी उन कामाचारी शत्रुओंके मनोरथको मनसे भी कैसे पूर्ण कर सकता है (उसकी पूर्तिका विचार भी मनमें कैसे ला सकता है?)॥ १४॥

'माता-पिताके इस विचारको कि—'आपका राज्याभिषेक न हो' जो आप दैवकी प्रेरणाका फल मानते हैं, यह भी मुझे अच्छा नहीं लगता। यद्यपि वह आपका मत है, तथापि आपको उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिये॥ १५॥

'जो कायर है, जिसमें पराक्रमका नाम नहीं है, वही दैवका भरोसा करता है। सारा संसार जिन्हें आदरकी दृष्टिसे देखता है, वे शक्तिशाली वीर पुरुष दैवकी उपासना नहीं करते हैं॥ १६॥

'जो अपने पुरुषार्थसे दैवको दबानेमें समर्थ है, वह पुरुष दैवके द्वारा अपने कार्यमें बाधा पड़नेपर खेद नहीं करता—शिथिल होकर नहीं बैठता॥ १७॥

'आज संसारके लोग देखेंगे कि दैवकी शक्ति बड़ी है या पुरुषका पुरुषार्थ। आज दैव और मनुष्यमें कौन बलवान् है और कौन दुर्बल—इसका स्पष्ट निर्णय हो जायगा॥ १८॥

'जिन लोगोंने दैवके बलसे आज आपके राज्याभिषेकको नष्ट हुआ देखा है, वे ही आज मेरे पुरुषार्थसे अवश्य ही दैवका भी विनाश देख लेंगे॥ १९॥

'जो अङ्कुशकी परवा नहीं करता और रस्से या साँकलको भी तोड़ देता है, मदकी धारा बहानेवाले उस मत्त गजराजकी भाँति वेगपूर्वक दौड़नेवाले दैवको भी आज मैं अपने पुरुषार्थसे पीछे लौटा दूँगा॥ २०॥

'समस्त लोकपाल और तीनों लोकोंके सम्पूर्ण प्राणी आज श्रीरामके राज्याभिषेकको नहीं रोक सकते, फिर केवल पिताजीकी तो बात ही क्या है?॥ २१॥

'राजन्! जिन लोगोंने आपसमें आपके वनवासका समर्थन किया है, वे स्वयं चौदह वर्षोंतक वनमें जाकर छिपे रहेंगे॥ २२॥

'मैं पिताकी और जो आपके अभिषेकमें विघ्न डालकर अपने पुत्रको राज्य देनेके प्रयत्नमें लगी हुई है, उस कैकेयीकी भी उस आशाको जलाकर भस्म कर डालूँगा॥ २३॥

'जो मेरे बलके विरोधमें खड़ा होगा, उसे मेरा भयंकर पुरुषार्थ जैसा दु:ख देनेमें समर्थ होगा, वैसा दैवबल उसे सुख नहीं पहुँचा सकेगा॥ २४॥

'सहस्रों वर्ष बीतनेके पश्चात् जब आप अवस्थाक्रमसे वनमें निवास करनेके लिये जायँगे, उस समय आपके बाद आपके पुत्र प्रजापालनरूप कार्य करेंगे (अर्थात् उस समय भी दूसरोंको इस राज्यमें दखल देनेका अवसर नहीं प्राप्त होगा)॥ २५॥

'पुरातन राजर्षियोंकी आचारपरम्पराके अनुसार प्रजाका पुत्रवत् पालन करनेके निमित्त प्रजावर्गको पुत्रोंके हाथमें सौंपकर वृद्ध राजाका वनमें निवास करना उचित बताया जाता है॥ २६॥

'धर्मात्मा श्रीराम! हमारे महाराज वानप्रस्थधर्मके पालनमें चित्तको एकाग्र नहीं कर रहे हैं, इसीलिये यदि आप यह समझते हों कि उनकी आज्ञाके विरुद्ध राज्य ग्रहण कर लेनेपर समस्त जनता विद्रोही हो जायगी, अत: राज्य अपने हाथमें नहीं रह सकेगा और इसी शङ्कासे यदि आप अपने ऊपर राज्यका भार नहीं लेना चाहते हैं अथवा वनमें चले जाना चाहते हैं तो इस शङ्काको छोड़ दीजिये॥ २७॥

'वीर! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जैसे तटभूमि समुद्रको रोके रहती है, उसी प्रकार मैं आपकी और आपके राज्यकी रक्षा करूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो वीरलोकका भागी न होऊँ॥ २८॥

'इसलिये आप मङ्गलमयी अभिषेक-सामग्रीसे अपना अभिषेक होने दीजिये। इस अभिषेकके कार्यमें आप तत्पर हो जाइये। मैं अकेला ही बलपूर्वक समस्त विरोधी भूपालोंको रोक रखनेमें समर्थ हूँ॥ २९॥

'ये मेरी दोनों भुजाएँ केवल शोभाके लिये नहीं हैं। मेरे इस धनुषका आभूषण नहीं बनेगा। यह तलवार केवल कमरमें बाँधे रखनेके लिये नहीं है तथा इन बाणोंके खम्भे नहीं बनेंगे॥ ३०॥

'ये सब चारों वस्तुएँ शत्रुओंका दमन करनेके लिये ही हैं। जिसे मैं अपना शत्रु समझता हूँ, उसे कदापि जीवित रहने देना नहीं चाहता॥ ३१॥

'जिस समय मैं इस तीखी धारवाली तलवारको हाथमें लेता हूँ, यह बिजलीकी तरह चञ्चल प्रभासे चमक उठती है। इसके द्वारा अपने किसी भी शत्रुको, वह वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, मैं कुछ नहीं समझता॥ ३२॥

'आज मेरे खड्गके प्रहारसे पीस डाले गये हाथी, घोड़े और रथियोंके हाथ, जाँघ और मस्तकोंद्वारा पटी हुई यह पृथ्वी ऐसी गहन हो जायगी कि इसपर चलना-फिरना कठिन हो जायगा॥ ३३॥

'मेरी तलवारकी धारसे कटकर रक्तसे लथपथ हुए शत्रु जलती हुई आगके समान जान पड़ेंगे और बिजलीसहित मेघोंके समान आज पृथ्वीपर गिरेंगे॥ ३४॥

'अपने हाथोंमें गोहके चर्मसे बने हुए दस्तानेको बाँधकर जब हाथमें धनुष ले मैं युद्धके लिये खड़ा हो जाऊँगा, उस समय पुरुषोंमेंसे कोई भी मेरे सामने कैसे अपने पौरुषपर अभिमान कर सकेगा?॥ ३५॥

'मैं बहुत-से बाणोंद्वारा एकको और एक ही बाणसे बहुत-से योद्धाओंको धराशायी करता हुआ मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके मर्मस्थानोंपर बाण मारूँगा॥ ३६॥

'प्रभो! आज राजा दशरथकी प्रभुताको मिटाने और आपके प्रभुत्वकी स्थापना करनेके लिये अस्त्रबलसे सम्पन्न मुझ लक्ष्मणका प्रभाव प्रकट होगा॥ ३७॥

'श्रीराम! आज मेरी ये दोनों भुजाएँ, जो चन्दनका लेप लगाने, बाजूबंद पहनने, धनका दान करने और सुहृदोंके पालनमें संलग्न रहनेके योग्य हैं, आपके राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेवालोंको रोकनेके लिये अपने अनुरूप पराक्रम प्रकट करेंगी॥ ३८-३९॥

'प्रभो! बतलाइये, मैं आपके किस शत्रुको अभी प्राण, यश और सुहृज्जनोंसे सदाके लिये बिलग कर दूँ। जिस उपायसे भी यह पृथ्वी आपके अधिकारमें आ जाय, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपका दास हूँ'॥

रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले श्रीरामने लक्ष्मणकी ये बातें सुनकर उनके आँसू पोंछे और उन्हें बारंबार सान्त्वना देते हुए कहा—'सौम्य! मुझे तो तुम माता-पिताकी आज्ञाके पालनमें ही दृढ़तापूर्वक स्थित समझो। यही सत्पुरुषोंका मार्ग है'॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

विलाप करती हुई कौसल्याका श्रीरामसे अपनेको भी साथ ले चलनेके लिये आग्रह करना तथा पतिकी सेवा ही नारीका धर्म है, यह बताकर श्रीरामका उन्हें रोकना और वन जानेके लिये उनकी अनुमति प्राप्त करना

कौसल्याने जब देखा कि श्रीरामने पिताकी आज्ञाके पालनका ही दृढ़ निश्चय कर लिया है, तब वे आँसुओंसे रुँधी हुई गद्‌गद वाणीमें धर्मात्मा श्रीरामसे इस प्रकार बोलीं—॥ १॥

'हाय! जिसने जीवनमें कभी दुःख नहीं देखा है, जो समस्त प्राणियोंसे सदा प्रिय वचन बोलता है, जिसका जन्म महाराज दशरथसे मेरे द्वारा हुआ है, वह मेरा धर्मात्मा पुत्र उञ्छवृत्तिसे—खेतमें गिरे हुए अनाजके एक-एक दानेको बीनकर कैसे जीवन-निर्वाह कर सकेगा?॥ २॥

'जिनके भृत्य और दास भी शुद्ध, स्वादिष्ट अन्न खाते हैं, वे ही श्रीराम वनमें फल-मूलका आहार कैसे करेंगे?॥ ३॥

'जो सद्‌गुणसम्पन्न और महाराज दशरथके प्रिय हैं, उन्हीं ककुत्स्थ-कुल-भूषण श्रीरामको जो वनवास दिया जा रहा है, इसे सुनकर कौन इसपर विश्वास करेगा? अथवा ऐसी बात सुनकर किसको भय नहीं होगा?॥ ४॥

'श्रीराम! निश्चय ही इस जगत्‌में दैव सबसे बड़ा बलवान् है। उसकी आज्ञा सबके ऊपर चलती है—वही सबको सुख-दुःखसे संयुक्त करता है; क्योंकि उसीके प्रभावमें आकर तुम्हारे-जैसा लोकप्रिय मनुष्य भी वनमें जानेको उद्यत है॥ ५॥

'परंतु बेटा! तुमसे बिछुड़ जानेपर यहाँ मुझे शोककी अनुपम एवं बहुत बढ़ी हुई आग उसी तरह जलाकर भस्म कर डालेगी, जैसे ग्रीष्मऋतुमें दावानल सूखी लकड़ियों और घास-फूसको जला डालता है। शोककी यह आग मेरे अपने ही मनमें प्रकट हुई है।

तुम्हें न देख पानेकी सम्भावना ही वायु बनकर इस अग्निको उद्दीप्त कर रही है। विलापजनित दुःख ही इसमें ईंधनका काम कर रहे हैं। रोनेसे जो अश्रुपात होते हैं, वे ही मानो इसमें दी हुई घीकी आहुति हैं। चिन्ताके कारण जो गरम-गरम उच्छ्वास उठ रहा है, वही इसका महान् धूम है। तुम दूर देशमें जाकर फिर किस तरह आओगे—इस प्रकारकी चिंता ही इस शोकाग्निको जन्म दे रही है। साँस लेनेका जो प्रयत्न है, उसीसे इस आगकी प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है। तुम्हीं इसे बुझानेके लिये जल हो। तुम्हारे बिना यह आग मुझे अधिक सुखाकर जला डालेगी॥ ६—८॥

'वत्स! धेनु आगे जाते हुए अपने बछड़ेके पीछे-पीछे कैसे चली जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम जहाँ भी जाओगे, तुम्हारे पीछे-पीछे चली चलूँगी'॥ ९॥

माता कौसल्याने जैसे जो कुछ कहा, उस वचनको सुनकर पुरुषोत्तम श्रीरामने अत्यन्त दुःखमें डूबी हुई अपनी माँसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ १०॥

'माँ! कैकेयीने राजाके साथ धोखा किया है। इधर मैं वनको चला जा रहा हूँ। इस दशामें यदि तुम भी उनका परित्याग कर दोगी तो निश्चय ही वे जीवित नहीं रह सकेंगे॥ ११॥

'पतिका परित्याग नारीके लिये बड़ा ही क्रूरतापूर्ण कर्म है। सत्पुरुषोंने इसकी बड़ी निन्दा की है; अतः तुम्हें तो ऐसी बात कभी मनमें भी नहीं लानी चाहिये॥ १२॥

'मेरे पिता ककुत्स्थकुल-भूषण महाराज दशरथ जबतक जीवित हैं, तबतक तुम उन्हींकी सेवा करो। पतिकी सेवा ही स्त्रीके लिये सनातन धर्म है'॥ १३॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर शुभ कर्मोंपर दृष्टि रखनेवाली देवी कौसल्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामसे कहा—'अच्छा बेटा! ऐसा ही करूँगी'॥ १४॥

माँके इस प्रकार स्वीकृतिसूचक बात कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई अपनी मातासे पुनः इस प्रकार कहा—॥ १५॥

'माँ! पिताजीकी आज्ञाका पालन करना मेरा और तुम्हारा—दोनोंका कर्तव्य है; क्योंकि राजा हम सब लोगोंके स्वामी, श्रेष्ठ गुरु, ईश्वर एवं प्रभु हैं॥ १६॥

'इन चौदह वर्षोंतक मैं विशाल वनमें घूम-फिरकर लौट आऊँगा और बड़े प्रेमसे तुम्हारी आज्ञाका पालन करता रहूँगा'॥ १७॥

उनके ऐसा कहनेपर पुत्रवत्सला कौसल्याके मुखपर पुनः आँसुओंकी धारा बह चली। वे उस समय अत्यन्त आर्त होकर अपने प्रिय पुत्रसे बोलीं—॥ १८॥

'बेटा राम! अब मुझसे इन सौतोंके बीचमें नहीं रहा जायगा। काकुत्स्थ! यदि पिताकी आज्ञाका पालन करनेकी इच्छासे तुमने वनमें जानेका ही निश्चय किया है तो मुझे भी वनवासिनी हरिणीकी भाँति वनमें ही ले चलो'॥ १९½॥

यह कहकर माता कौसल्या रोने लगीं। उन्हें उस तरह रोती देख श्रीराम भी रो पड़े और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—'माँ! स्त्रीके जीते-जी उसका पति ही उसके लिये देवता और ईश्वरके समान है। महाराज तुम्हारे और मेरे दोनोंके प्रभु हैं॥ २०-२१॥

'जबतक बुद्धिमान् जगदीश्वर महाराज दशरथ जीवित हैं, तबतक हमें अपनेको अनाथ नहीं समझना चाहिये। भरत भी बड़े धर्मात्मा हैं। वे समस्त प्राणियोंके प्रति प्रिय वचन बोलनेवाले और सदा ही धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं; अतः वे तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारी सेवा करेंगे॥ २२½॥

'मेरे चले जानेपर जिस तरह भी महाराजको पुत्रशोकके कारण कोई विशेष कष्ट न हो, तुम सावधानीके साथ वैसा ही प्रयत्न करना॥ २३½॥

'कहीं ऐसा न हो कि यह दारुण शोक इनकी जीवनलीला ही समाप्त कर डाले। जैसे भी सम्भव हो, तुम सदा सावधान रहकर बूढ़े महाराजके हित-साधनमें लगी रहना॥ २४½॥

'उत्कृष्ट गुण और जाति आदिकी दृष्टिसे परम उत्तम तथा व्रत-उपवासमें तत्पर होकर भी जो नारी पतिकी सेवा नहीं करती है, उसे पापियोंको मिलनेवाली गति (नरक आदि)-की प्राप्ति होती है॥ २५½॥

'जो अन्यान्य देवताओंकी वन्दना और पूजासे दूर रहती है, वह नारी भी केवल पतिकी सेवामात्रसे उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेती है॥ २६½॥

'अतः नारीको चाहिये कि वह पतिके प्रिय एवं हितसाधनमें तत्पर रहकर सदा उसकी सेवा ही करे, यही स्त्रीका वेद और लोकमें प्रसिद्ध नित्य (सनातन) धर्म है। इसीका श्रुतियों और स्मृतियोंमें भी वर्णन है॥ २७½॥

'देवि! तुम्हें मेरी मङ्गल-कामनासे सदा अग्निहोत्रके

अवसरोंपर पुष्पोंसे देवताओंका तथा सत्कारपूर्वक ब्राह्मणोंका भी पूजन करते रहना चाहिये॥ २८ $\frac{१}{२}$ ॥

'इस प्रकार तुम नियमित आहार करके नियमोंका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें लगी रहो और मेरे आगमनकी इच्छा रखकर समयकी प्रतीक्षा करो॥ २९ $\frac{१}{२}$ ॥

'यदि धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाराज जीवित रहेंगे तो मेरे लौट आनेपर तुम्हारी भी शुभ कामना पूर्ण होगी'॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर कौसल्याके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। वे पुत्रशोकसे पीड़ित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोलीं—॥ ३१ $\frac{१}{२}$ ॥

'बेटा! मैं तुम्हारे वनमें जानेके निश्चित विचारको नहीं पलट सकती। वीर! निश्चय ही कालकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन है॥ ३२ $\frac{१}{२}$ ॥

'सामर्थ्यशाली पुत्र! अब तुम निश्चिन्त होकर वनको जाओ, तुम्हारा सदा ही कल्याण हो। जब फिर तुम वनसे लौट आओगे, उस समय मेरे सारे क्लेश—सब संताप दूर हो जायँगे॥ ३३ $\frac{१}{२}$ ॥

'बेटा! जब तुम वनवासका महान् व्रत पूर्ण करके कृतार्थ एवं महान् सौभाग्यशाली होकर लौट आओगे और ऐसा करके पिताके ऋणसे उऋण हो जाओगे, तभी मैं उत्तम सुखकी नींद सो सकूँगी॥ ३४॥

'बेटा रघुनन्दन! इस भूतलपर दैवकी गतिको समझना बहुत ही कठिन है, जो मेरी बात काटकर तुम्हें वन जानेके लिये प्रेरित कर रहा है॥ ३५॥

'बेटा! महाबाहो! इस समय जाओ, फिर कुशलपूर्वक लौटकर सान्त्वनाभरे मधुर एवं मनोहर वचनोंसे मुझे आनन्दित करना॥ ३६॥

'वत्स! क्या वह समय अभी आ सकता है, जब कि जटा-वल्कल धारण किये वनसे लौटकर आये हुए तुमको फिर देख सकूँगी'॥ ३७॥

देवी कौसल्याने जब देखा कि इस प्रकार श्रीराम वनवासका दृढ़ निश्चय कर चुके हैं, तब वे परम आदरयुक्त हृदयसे उनको शुभसूचक आशीर्वाद देने और उनके लिये स्वस्तिवाचन करानेकी इच्छा करने लगीं॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

कौसल्याका श्रीरामकी वनयात्राके लिये मङ्गलकामनापूर्वक स्वस्तिवाचन करना और श्रीरामका उन्हें प्रणाम करके सीताके भवनकी ओर जाना

तदनन्तर उस क्लेशजनक शोकको मनसे निकालकर श्रीरामकी मनस्विनी माता कौसल्याने पवित्र जलसे आचमन किया, फिर वे यात्राकालिक मङ्गलकृत्योंका अनुष्ठान करने लगीं॥ १॥

(इसके बाद वे आशीर्वाद देती हुई बोलीं—) 'रघुकुलभूषण! अब मैं तुम्हें रोक नहीं सकती, इस समय जाओ, सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थिर रहो और शीघ्र ही वनसे लौट आओ॥ २॥

'रघुकुलसिंह! तुम नियमपूर्वक प्रसन्नताके साथ जिस धर्मका पालन करते हो, वही सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करे॥ ३॥

'बेटा! देवस्थानों और मन्दिरोंमें जाकर तुम जिनको प्रणाम करते हो, वे सब देवता महर्षियोंके साथ वनमें तुम्हारी रक्षा करें॥ ४॥

'तुम सद्गुणोंसे प्रकाशित हो, बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने तुम्हें जो-जो अस्त्र दिये हैं, वे सब-के-सब सदा सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें॥ ५॥

'महाबाहु पुत्र! तुम पिताकी शुश्रूषा, माताकी सेवा तथा सत्यके पालनसे सुरक्षित होकर चिरंजीवी बने रहो॥

'नरश्रेष्ठ! समिधा, कुशा, पवित्री, वेदियाँ, मन्दिर, ब्राह्मणोंके देवपूजनसम्बन्धी स्थान, पर्वत, वृक्ष, क्षुप (छोटी शाखावाले वृक्ष), जलाशय, पक्षी, सर्प और सिंह वनमें तुम्हारी रक्षा करें॥ ७॥

'साध्य, विश्वेदेव तथा महर्षियोंसहित मरुद्गण तुम्हारा कल्याण करें; धाता और विधाता तुम्हारे लिये मङ्गलकारी हों; पूषा, भग और अर्यमा तुम्हारा कल्याण करें॥ ८॥

'वे इन्द्र आदि समस्त लोकपाल, छहों ऋतुएँ, सभी मास, संवत्सर, रात्रि, दिन और मुहूर्त सदा तुम्हारा मङ्गल करें। बेटा! श्रुति, स्मृति और धर्म भी सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें॥ ९-१०॥

'भगवान् स्कन्ददेव, सोम, बृहस्पति, सप्तर्षिगण और नारद—ये सभी सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें॥ ११॥

'बेटा! वे प्रसिद्ध सिद्धगण, दिशाएँ और दिक्पाल मेरी की हुई स्तुतिसे संतुष्ट हो उस वनमें सदा सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें॥ १२॥

'समस्त पर्वत, समुद्र, राजा वरुण, द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, चराचर प्राणी, समस्त नक्षत्र, देवताओंसहित ग्रह, दिन और रात तथा दोनों संध्याएँ—ये सब-के-सब वनमें जानेपर सदा तुम्हारी रक्षा करें॥ १३-१४॥

'छः ऋतुएँ, अन्यान्य मास, संवत्सर, कला और काष्ठा—ये सब तुम्हें कल्याण प्रदान करें॥ १५॥

'मुनिका वेष धारण करके उस विशाल वनमें विचरते हुए तुझ बुद्धिमान् पुत्रके लिये समस्त देवता और दैत्य सदा सुखदायक हों॥ १६॥

'बेटा! तुम्हें भयंकर राक्षसों, क्रूरकर्मा पिशाचों तथा समस्त मांसभक्षी जन्तुओंसे कभी भय न हो॥ १७॥

'वनमें जो मेढक या वानर, बिच्छू, डाँस, मच्छर, पर्वतीय सर्प और कीड़े होते हैं, वे उस गहन वनमें तुम्हारे लिये हिंसक न हों॥ १८॥

'पुत्र! बड़े-बड़े हाथी, सिंह, व्याघ्र, रीछ, दाढ़वाले अन्य जीव तथा विशाल सींगवाले भयंकर भैंसे वनमें तुमसे द्रोह न करें॥ १९॥

'वत्स! इनके सिवा जो सभी जातियोंमें नरमांसभक्षी भयंकर प्राणी हैं, वे मेरे द्वारा यहाँ पूजित होकर वनमें तुम्हारी हिंसा न करें॥ २०॥

'बेटा राम! सभी मार्ग तुम्हारे लिये मङ्गलकारी हों। तुम्हारे पराक्रम सफल हों तथा तुम्हें सब सम्पत्तियाँ प्राप्त होती रहें। तुम सकुशल यात्रा करो॥ २१॥

'तुम्हें आकाशचारी प्राणियोंसे, भूतलके जीव-जन्तुओंसे, समस्त देवताओंसे तथा जो तुम्हारे शत्रु हैं, उनसे भी सदा कल्याण प्राप्त होता रहे॥ २२॥

'श्रीराम! शुक्र, सोम, सूर्य, कुबेर तथा यम—ये मुझसे पूजित हो दण्डकारण्यमें निवास करते समय सदा तुम्हारी रक्षा करें॥ २३॥

'रघुनन्दन! स्नान और आचमनके समय अग्नि, वायु, धूम तथा ऋषियोंके मुखसे निकले हुए मन्त्र तुम्हारी रक्षा करें॥ २४॥

'समस्त लोकोंके स्वामी ब्रह्मा, जगत्के कारणभूत परब्रह्म, ऋषिगण तथा उनके अतिरिक्त जो देवता हैं, वे सब-के-सब वनवासके समय तुम्हारी रक्षा करें'॥ २५॥

ऐसा कहकर विशाललोचना यशस्विनी रानी कौसल्याने पुष्पमाला और गन्ध आदि उपचारोंसे तथा अनुरूप स्तुतियोंद्वारा देवताओंका पूजन किया॥ २६॥

उन्होंने श्रीरामकी मङ्गलकामनासे अग्निको लाकर एक महात्मा ब्राह्मणके द्वारा उसमें विधिपूर्वक होम करवाया॥

श्रेष्ठ नारी महारानी कौसल्याने घी, श्वेत पुष्प और माला, समिधा तथा सरसों आदि वस्तुएँ ब्राह्मणके समीप रखवा दीं॥ २८॥

पुरोहितजीने समस्त उपद्रवोंकी शान्ति और आरोग्यके उद्देश्यसे विधिपूर्वक अग्निमें होम करके हवनसे बचे हुए हविष्यके द्वारा होमकी वेदीसे बाहर दसों दिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंके लिये बलि अर्पित की॥ २९॥

तदनन्तर स्वस्तिवाचनके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको मधु, दही, अक्षत और घृत अर्पित करके 'वनमें श्रीरामका सदा मङ्गल हो' इस कामनासे कौसल्याजीने उन सबसे स्वस्त्ययनसम्बन्धी मन्त्रोंका पाठ करवाया॥ ३०॥

इसके बाद यशस्विनी श्रीराममाताने उन विप्रवर पुरोहितजीको उनकी इच्छाके अनुसार दक्षिणा दी और श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥ ३१॥

'वृत्रासुरका नाश करनेके निमित्त सर्वदेववन्दित सहस्रनेत्रधारी इन्द्रको जो मङ्गलमय आशीर्वाद प्राप्त हुआ था, वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी हो॥ ३२॥

'पूर्वकालमें विनतादेवीने अमृत लानेकी इच्छावाले अपने पुत्र गरुड़के लिये जो मङ्गलकृत्य किया था, वही मङ्गल तुम्हें भी प्राप्त हो॥ ३३॥

'अमृतकी उत्पत्तिके समय दैत्योंका संहार करनेवाले वज्रधारी इन्द्रके लिये माता अदितिने जो मङ्गलमय आशीर्वाद दिया था, वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी सुलभ हो॥ ३४॥

'श्रीराम! तीन पगोंको बढ़ाते हुए अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णुके लिये जो मङ्गलाशंसा की गयी थी, वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी प्राप्त हो॥ ३५॥

'महाबाहो! ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और दिशाएँ तुम्हें मङ्गल प्रदान करें। तुम्हारा सदा शुभ मङ्गल हो'॥ ३६॥

इस प्रकार आशीर्वाद देकर विशाललोचना भामिनी कौसल्याने पुत्रके मस्तकपर अक्षत रखकर चन्दन और रोली लगायी तथा सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली विशल्यकरणी नामक शुभ ओषधि लेकर रक्षाके उद्देश्यसे मन्त्र पढ़ते हुए उसको श्रीरामके हाथमें

बाँध दिया; फिर उसमें उत्कर्ष लानेके लिये मन्त्रका जप भी किया॥ ३७-३८॥

तदनन्तर दुःखके अधीन हुई कौसल्याने ऊपरसे प्रसन्न-सी होकर मन्त्रोंका स्पष्ट उच्चारण भी किया। उस समय वे वाणीमात्रसे ही मन्त्रोच्चारण कर सकीं, हृदयसे नहीं (क्योंकि हृदय श्रीरामके वियोगकी सम्भावनासे व्यथित था, इसीलिये) वे खेदसे गद्गद, लड़खड़ाती हुई वाणीसे मन्त्र बोल रही थीं॥ ३९॥

इसके बाद उनके मस्तकको कुछ झुकाकर यशस्विनी माताने सूँघा और बेटेको हृदयसे लगाकर कहा—'वत्स राम! तुम सफलमनोरथ होकर सुखपूर्वक वनको जाओ। जब पूर्णकाम होकर रोगरहित सकुशल अयोध्यामें लौटोगे, उस समय तुम्हें राजमार्गपर स्थित देखकर सुखी होऊँगी॥ ४०-४१॥

'उस समय मेरे दुःखपूर्ण संकल्प मिट जायँगे, मुखपर हर्षजनित उल्लास छा जायगा और मैं वनसे आये हुए तुमको पूर्णिमाकी रातमें उदित हुए पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति देखूँगी॥ ४३॥

'श्रीराम! वनवाससे यहाँ आकर पिताकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करके जब तुम राजसिंहासनपर बैठोगे, उस समय मैं पुनः प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा दर्शन करूँगी॥ ४३॥

'अब जाओ और वनवाससे यहाँ लौटकर राजोचित मङ्गलमय वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो तुम सदा मेरी बहू सीताकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करते रहो॥ ४४॥

'रघुनन्दन! मैंने सदा जिनका पूजन और सम्मान किया है, वे शिव आदि देवता, महर्षि, भूतगण, देवोपम नाग और सम्पूर्ण दिशाएँ—ये सब-के-सब वनमें जानेपर चिरकालतक तुम्हारे हितसाधनकी कामना करते रहें'॥ ४५॥

इस प्रकार माताने नेत्रोंमें अत्यन्त आँसू भरकर विधिपूर्वक वह स्वस्तिवाचन कर्म पूर्ण किया। फिर श्रीरामकी परिक्रमा की और बारंबार उनकी ओर देखकर उन्हें छातीसे लगाया॥ ४६॥

देवी कौसल्याने जब श्रीरामकी प्रदक्षिणा कर ली, तब महायशस्वी रघुनाथजी बारंबार माताके चरणोंको दबाकर प्रणाम करके माताकी मङ्गलकामना-जनित उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न हो सीताजीके महलकी ओर चल दिये॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीरामको उदास देखकर सीताका उनसे इसका कारण पूछना और श्रीरामका पिताकी आज्ञासे वनमें जानेका निश्चय बताते हुए सीताको घरमें रहनेके लिये समझाना

धर्मिष्ठ मार्गपर स्थित हुए श्रीराम माताद्वारा स्वस्तिवाचन-कर्म सम्पन्न हो जानेपर कौसल्याको प्रणाम करके वहाँसे वनके लिये प्रस्थित हुए॥ १॥

उस समय मनुष्योंकी भीड़से भरे हुए राजमार्गको प्रकाशित करते हुए राजकुमार श्रीराम अपने सद्गुणोंके कारण लोगोंके मनको मथने-से लगे (ऐसे गुणवान् श्रीरामको वनवास दिया जा रहा है, यह सोचकर वहाँके लोगोंका जी कचोटने लगा)॥ २॥

तपस्विनी विदेहनन्दिनी सीताने अभीतक वह सारा हाल नहीं सुना था। उनके हृदयमें यही बात समायी हुई थी कि मेरे पतिका युवराजपदपर अभिषेक हो रहा होगा॥

विदेहराजकुमारी सीता सामयिक कर्तव्यों तथा राजधर्मोंको जानती थीं, अतः देवताओंकी पूजा करके प्रसन्नचित्तसे श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं॥

इतनेमें ही श्रीरामने अपने भलीभाँति सजे-सजाये अन्तःपुरमें, जो प्रसन्न मनुष्योंसे भरा हुआ था, प्रवेश किया। उस समय लज्जासे उनका मुख कुछ नीचा हो रहा था॥

सीता उन्हें देखते ही आसनसे उठकर खड़ी हो गयीं। उनकी अवस्था देखकर काँपने लगीं और चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियोंवाले अपने उन शोकसंतप्त पतिको निहारने लगीं॥ ६॥

धर्मात्मा श्रीराम सीताको देखकर अपने मानसिक शोकका वेग सहन न कर सके, अतः उनका वह शोक प्रकट हो गया॥ ७॥

उनका मुख उदास हो गया था। उनके अङ्गोंसे पसीना निकल रहा था। वे अपने शोकको दबाये रखनेमें असमर्थ हो गये थे। उन्हें इस अवस्थामें देखकर सीता दुःखसे संतप्त हो उठीं और बोलीं—'प्रभो! इस समय यह आपकी कैसी दशा है?॥ ८॥

'रघुनन्दन! आज बृहस्पति देवता-सम्बन्धी

मङ्गलमय पुष्यनक्षत्र है, जो अभिषेकके योग्य है। उसकी पुष्यनक्षत्रके योगमें विद्वान् ब्राह्मणोंने आपका अभिषेक बताया है। ऐसे समयमें जब कि आपको प्रसन्न होना चाहिये था, आपका मन इतना उदास क्यों है?॥ ९ ॥

'मैं देखती हूँ, इस समय आपका मनोहर मुख जलके फेनके समान उज्ज्वल तथा सौ तीलियोंवाले श्वेत छत्रसे आच्छादित नहीं है, अतएव अधिक शोभा नहीं पा रहा है॥ १० ॥

'कमल-जैसे सुन्दर नेत्र धारण करनेवाले आपके इस मुखपर चन्द्रमा और हंसके समान श्वेत वर्णवाले दो श्रेष्ठ चँवरोंद्वारा हवा नहीं की जा रही है॥ ११ ॥

'नरश्रेष्ठ! प्रवचनकुशल वन्दी, सूत और मागधजन आज अत्यन्त प्रसन्न हो अपने माङ्गलिक वचनोंद्वारा आपकी स्तुति करते नहीं दिखायी देते हैं॥ १२ ॥

'वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंने आज मूर्धाभिषिक्त हुए आपके मस्तकपर तीर्थोदकमिश्रित मधु और दधिका विधिपूर्वक अभिषेक नहीं किया॥ १३ ॥

'मन्त्री-सेनापति आदि सारी प्रकृतियाँ, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित मुख्य-मुख्य सेठ-साहूकार तथा नगर और जनपदके लोग आज आपके पीछे-पीछे चलनेकी इच्छा नहीं कर रहे हैं! (इसका क्या कारण है?)॥ १४ ॥

'सुनहरे साज-बाजसे सजे हुए चार वेगशाली घोड़ोंसे जुता हुआ श्रेष्ठ पुष्परथ (पुष्पभूषित केवल भ्रमणोपयोगी रथ) आज आपके आगे-आगे क्यों नहीं चल रहा है?॥ १५ ॥

'वीर! आपकी यात्राके समय समस्त शुभ लक्षणोंसे प्रशंसित तथा काले मेघवाले पर्वतके समान विशालकाय तेजस्वी गजराज आज आपके आगे क्यों नहीं दिखायी देता है?॥ १६ ॥

'प्रियदर्शन वीर! आज आपके सुवर्णजटित भद्रासनको सादर हाथमें लेकर अग्रगामी सेवक आगे जाता क्यों नहीं दिखायी देता है?॥ १७ ॥

'जब अभिषेककी सारी तैयारी हो चुकी है, ऐसे समयमें आपकी यह क्या दशा हो रही है? आपके मुखकी कान्ति उड़ गयी है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। आपके चेहरेपर प्रसन्नताका कोई चिह्न नहीं दिखायी देता है। इसका क्या कारण है?'॥ १८ ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई सीतासे रघुनन्दन श्रीरामने कहा—'सीते! आज पूज्य पिताजी मुझे वनमें भेज रहे हैं॥ १९ ॥

'महान् कुलमें उत्पन्न, धर्मको जाननेवाली तथा धर्मपरायणे जनकनन्दिनि! जिस कारण यह वनवास आज मुझे प्राप्त हुआ है, वह क्रमशः बताता हूँ, सुनो॥

'मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता महाराज दशरथने माता कैकेयीको पहले कभी दो महान् वर दिये थे॥ २१ ॥

'इधर जब महाराजके उद्योगसे मेरे राज्याभिषेककी तैयारी होने लगी, तब कैकेयीने उस वरदानकी प्रतिज्ञाको याद दिलाया और महाराजको धर्मतः अपने काबूमें कर लिया॥ २२ ॥

'इससे विवश होकर पिताजीने भरतको तो युवराजके पदपर नियुक्त किया और मेरे लिये दूसरा वर स्वीकार किया, जिसके अनुसार मुझे चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करना होगा॥ २३ ॥

'इस समय मैं निर्जन वनमें जानेके लिये प्रस्थान कर चुका हूँ और तुमसे मिलनेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम भरतके समीप कभी मेरी प्रशंसा न करना; क्योंकि समृद्धिशाली पुरुष दूसरेकी स्तुति नहीं सहन कर पाते हैं। इसीलिये कहता हूँ कि तुम भरतके सामने मेरे गुणोंकी प्रशंसा न करना॥ २४-२५ ॥

'विशेषतः तुम्हें भरतके समक्ष अपनी सखियोंके साथ भी बारंबार मेरी चर्चा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उनके मनके अनुकूल बर्ताव करके ही तुम उनके निकट रह सकती हो॥ २६ ॥

'सीते! राजाने उन्हें सदाके लिये युवराजपद दे दिया है, इसलिये तुम्हें विशेष प्रयत्नपूर्वक उन्हें प्रसन्न रखना चाहिये; क्योंकि अब वे ही राजा होंगे॥ २७ ॥

'मैं भी पिताजीकी उस प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये आज ही वनको चला जाऊँगा। मनस्विनि! तुम धैर्य धारण करके रहना॥ २८ ॥

'कल्याणि! निष्पाप सीते! मेरे मुनिजनसेवित वनको चले जानेपर तुम्हें प्रायः व्रत और उपवासमें संलग्न रहना चाहिये॥ २९ ॥

'प्रतिदिन सबेरे उठकर देवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करके तुम्हें मेरे पिता महाराज दशरथकी वन्दना करनी चाहिये॥ ३० ॥

'मेरी माता कौसल्याको भी प्रणाम करना चाहिये। एक तो वे बूढ़ी हुईं, दूसरे दुःख और संतापने उन्हें दुर्बल कर दिया है; अतः धर्मको ही सामने रखकर तुमसे वे विशेष सम्मान पानेके योग्य हैं॥ ३१ ॥

'जो मेरी शेष माताएँ हैं, उनके चरणोंमें भी तुम्हें

प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये; क्योंकि स्नेह, उत्कृष्ट प्रेम और पालन-पोषणकी दृष्टिसे सभी माताएँ मेरे लिये समान हैं॥ ३२॥

'भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं, अतः तुम्हें उन दोनोंको विशेषतः अपने भाई और पुत्रके समान देखना और मानना चाहिये॥ ३३॥

'विदेहनन्दिनि! तुम्हें भरतकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस समय वे मेरे देश और कुलके राजा हैं॥ ३४॥

'अनुकूल आचरणके द्वारा आराधना और प्रयत्नपूर्वक सेवा करनेपर राजा लोग प्रसन्न होते हैं तथा विपरीत बर्ताव करनेपर वे कुपित हो जाते हैं॥ ३५॥

'जो अहित करनेवाले हैं, वे अपने औरस पुत्र ही क्यों न हों, राजा उन्हें त्याग देते हैं और आत्मीय न होनेपर भी जो सामर्थ्यवान् होते हैं, उन्हें वे अपना बना लेते हैं॥ ३६॥

'अतः कल्याणि! तुम राजा भरतके अनुकूल बर्ताव करती हुई धर्म एवं सत्यव्रतमें तत्पर रहकर यहाँ निवास करो॥ ३७॥

'प्रिये! अब मैं उस विशाल वनमें चला जाऊँगा। भामिनि! तुम्हें यहीं निवास करना होगा। तुम्हारे बर्तावसे किसीको कष्ट न हो, इसका ध्यान रखते हुए तुम्हें यहाँ मेरी इस आज्ञाका पालन करते रहना चाहिये'॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

सीताकी श्रीरामसे अपनेको भी साथ ले चलनेके लिये प्रार्थना

श्रीरामके ऐसा कहनेपर प्रियवादिनी विदेहकुमारी सीताजी, जो सब प्रकारसे अपने स्वामीका प्यार पाने योग्य थीं, प्रेमसे ही कुछ कुपित होकर पतिसे इस प्रकार बोलीं—॥ १॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम! आप मुझे ओछी समझकर यह क्या कह रहे हैं? आपकी ये बातें सुनकर मुझे बहुत हँसी आती है॥ २॥

'नरेश्वर! आपने जो कुछ कहा है, वह अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता वीर राजकुमारोंके योग्य नहीं है। वह अपयशका टीका लगानेवाला होनेके कारण सुनने योग्य भी नहीं है॥ ३॥

'आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू—ये सब पुण्यादि कर्मोंका फल भोगते हुए अपने-अपने भाग्य (शुभाशुभ कर्म) के अनुसार जीवन-निर्वाह करते हैं॥ ४॥

'पुरुषप्रवर! केवल पत्नी ही अपने पतिके भाग्यका अनुसरण करती है, अतः आपके साथ ही मुझे भी वनमें रहनेकी आज्ञा मिल गयी है॥ ५॥

'नारियोंके लिये इस लोक और परलोकमें एकमात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है॥ ६॥

'रघुनन्दन! यदि आप आज ही दुर्गम वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्तेके कुश और काँटोंको कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी॥ ७॥

'अतः वीर! आप ईर्ष्या[१] और रोषको[२] दूर करके पीनेसे[३] बचे हुए जलकी भाँति मुझे निःशङ्क होकर साथ ले चलिये। मुझमें ऐसा कोई पाप—अपराध नहीं है, जिसके कारण आप मुझे यहाँ त्याग दें॥ ८॥

'ऊँचे-ऊँचे महलोंमें रहना, विमानोंपर चढ़कर घूमना अथवा अणिमा आदि सिद्धियोंके द्वारा आकाशमें विचरना—इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिये सभी अवस्थाओंमें पतिके चरणोंकी छायामें रहना विशेष महत्त्व रखता है॥ ९॥

'मुझे किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें मेरी माता और पिताने मुझे अनेक प्रकारसे शिक्षा दी है। इस समय इसके विषयमें मुझे कोई उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १०॥

---

१. स्त्री होकर यह वनमें जानेका साहस कैसे करती है? इस विचारसे ईर्ष्या होती है।

२. यह मेरी बात नहीं मान रही है, यह सोचकर रोष प्रकट होता है। इन दोनोंका त्याग अपेक्षित है।

३. जैसे किसी जलहीन बीहड़ पथमें लोग अपने पीनेसे बचे हुए पानीको साथ ले चलते हैं, उसी प्रकार मुझे भी आप साथ ले चलें—यह सीताका अनुरोध है।

'अतः नाना प्रकारके वन्य पशुओंसे व्याप्त तथा सिंहों और व्याघ्रोंसे सेवित उस निर्जन एवं दुर्गम वनमें मैं अवश्य चलूँगी॥ ११॥

'मैं तो जैसे अपने पिताके घरमें रहती थी, उसी प्रकार उस वनमें भी सुखपूर्वक निवास करूँगी। वहाँ तीनों लोकोंके ऐश्वर्यको भी कुछ न समझती हुई मैं सदा पतिव्रत-धर्मका चिन्तन करती हुई आपकी सेवामें लगी रहूँगी॥ १२॥

'वीर! नियमपूर्वक रहकर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करूँगी और सदा आपकी सेवामें तत्पर रहकर आपहीके साथ मीठी-मीठी सुगन्धसे भरे हुए वनोंमें विचरूँगी॥ १३॥

'दूसरोंको मान देनेवाले श्रीराम! आप तो वनमें रहकर दूसरे लोगोंकी भी रक्षा कर सकते हैं, फिर मेरी रक्षा करना आपके लिये कौन बड़ी बात है?॥ १४॥

'महाभाग! अतः मैं आपके साथ आज अवश्य वनमें चलूँगी। इसमें संशय नहीं है। मैं हर तरह चलनेको तैयार हूँ। मुझे किसी तरह भी रोका नहीं जा सकता॥ १५॥

'वहाँ चलकर मैं आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी, सदा आपके साथ रहूँगी और प्रतिदिन फल-मूल खाकर ही निर्वाह करूँगी। मेरे इस कथनमें किसी प्रकारके संदेहके लिये स्थान नहीं है॥ १६॥

'आपके आगे-आगे चलूँगी और आपके भोजन कर लेनेपर जो कुछ बचेगा, उसे ही खाकर रहूँगी। प्रभो! मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आप बुद्धिमान् प्राणनाथके साथ निर्भय हो वनमें सर्वत्र घूमकर पर्वतों, छोटे-छोटे तालाबों और सरोवरोंको देखूँ॥ १७½॥

'आप मेरे वीर स्वामी हैं। मैं आपके साथ रहकर सुखपूर्वक उन सुन्दर सरोवरोंकी शोभा देखना चाहती हूँ, जो श्रेष्ठ कमलपुष्पोंसे सुशोभित हैं तथा जिनमें हंस और कारण्डव आदि पक्षी भरे रहते हैं॥ १८½॥

'विशाल नेत्रोंवाले आर्यपुत्र! आपके चरणोंमें अनुरक्त रहकर मैं प्रतिदिन उन सरोवरोंमें स्नान करूँगी और आपके साथ वहाँ सब ओर विचरूँगी, इससे मुझे परम आनन्दका अनुभव होगा॥ १९½॥

'इस तरह सैकड़ों या हजारों वर्षोंतक भी यदि आपके साथ रहनेका सौभाग्य मिले तो मुझे कभी कष्टका अनुभव नहीं होगा। यदि आप साथ न हों तो मुझे स्वर्गलोककी प्राप्ति भी अभीष्ट नहीं है॥ २०½॥

'पुरुषसिंह रघुनन्दन! आपके बिना यदि मुझे स्वर्गलोकका निवास भी मिल रहा हो तो वह मेरे लिये रुचिकर नहीं हो सकता—मैं उसे लेना नहीं चाहूँगी॥ २१॥

'प्राणनाथ! अतः उस अत्यन्त दुर्गम वनमें, जहाँ सहस्रों मृग, वानर और हाथी निवास करते हैं, मैं अवश्य चलूँगी और आपके ही चरणोंकी सेवामें रहकर आपके अनुकूल चलती हुई उस वनमें उसी तरह सुखसे रहूँगी, जैसे पिताके घरमें रहा करती थी॥ २२॥

'मेरे हृदयका सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही अर्पित है, आपके सिवा और कहीं मेरा मन नहीं जाता, यदि आपसे वियोग हुआ तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी। इसलिये आप मेरी याचना सफल करें, मुझे साथ ले चलें, यही अच्छा होगा; मेरे रहनेसे आपपर कोई भार नहीं पड़ेगा'॥ २३॥

धर्ममें अनुरक्त रहनेवाली सीताके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी नरश्रेष्ठ श्रीरामको उन्हें साथ ले जानेकी इच्छा नहीं हुई। वे उन्हें वनवासके विचारसे निवृत्त करनेके लिये वहाँके कष्टोंका अनेक प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

श्रीरामका वनवासके कष्टका वर्णन करते हुए सीताको वहाँ चलनेसे मना करना

धर्मको जाननेवाली सीताके इस प्रकार कहनेपर भी धर्मवत्सल श्रीरामने वनमें होनेवाले दुःखोंको सोचकर उन्हें साथ ले जानेका विचार नहीं किया॥ १॥

सीताके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। धर्मात्मा श्रीराम उन्हें वनवासके विचारसे निवृत्त करनेके लिये सान्त्वना देते हुए इस प्रकार बोले—॥ २॥

'सीते! तुम अत्यन्त उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो और सदा धर्मके आचरणमें ही लगी रहती हो; अतः यहीं रहकर धर्मका पालन करो, जिससे मेरे मनको संतोष हो॥

'सीते! मैं तुमसे जैसा कहूँ, वैसा ही करना तुम्हारा

कर्तव्य है। तुम अबला हो, वनमें निवास करनेवाले मनुष्यको बहुत-से दोष प्राप्त होते हैं; उन्हें बता रहा हूँ, मुझसे सुनो॥ ४॥

'सीते! वनवासके लिये चलनेका यह विचार छोड़ दो, वनको अनेक प्रकारके दोषोंसे व्याप्त और दुर्गम बताया जाता है॥ ५॥

'तुम्हारे हितकी भावनासे ही मैं ये सब बातें कह रहा हूँ। जहाँतक मेरी जानकारी है, वनमें सदा सुख नहीं मिलता। वहाँ तो सदा दुःख ही मिला करता है॥ ६॥

'पर्वतोंसे गिरनेवाले झरनोंके शब्दको सुनकर उन पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहनेवाले सिंह दहाड़ने लगते हैं। उनकी वह गर्जना सुननेमें बड़ी दुःखदायिनी प्रतीत होती है, इसलिये वन दुःखमय ही है॥ ७॥

'सीते! सूने वनमें निर्भय होकर क्रीड़ा करनेवाले मतवाले जंगली पशु मनुष्यको देखते ही उसपर चारों ओरसे टूट पड़ते हैं; अतः वन दुःखसे भरा हुआ है॥

'वनमें जो नदियाँ होती हैं, उनके भीतर ग्राह निवास करते हैं, उनमें कीचड़ अधिक होनेके कारण उन्हें पार करना अत्यन्त कठिन होता है। इसके सिवा वनमें मतवाले हाथी सदा घूमते रहते हैं। इस सब कारणोंसे वन बहुत ही दुःखदायक होता है॥ ९॥

'वनके मार्ग लताओं और काँटोंसे भरे रहते हैं। वहाँ जंगली मुर्गे बोला करते हैं, उन मार्गोंपर चलनेमें बड़ा कष्ट होता है तथा वहाँ आस-पास जल नहीं मिलता, इससे वनमें दुःख-ही-दुःख है॥ १०॥

'दिनभरके परिश्रमसे थके-माँदे मनुष्यको रातमें जमीनके ऊपर अपने-आप गिरे हुए सूखे पत्तोंके बिछौनेपर सोना पड़ता है, अतः वन दुःखसे भरा हुआ है॥ ११॥

'सीते! वहाँ मनको वशमें रखकर वृक्षोंसे स्वतः गिरे हुए फलोंके आहारपर ही दिन-रात संतोष करना पड़ता है, अतः वन दुःख देनेवाला ही है॥ १२॥

'मिथिलेशकुमारी! अपनी शक्तिके अनुसार उपवास करना, सिरपर जटाका भार ढोना और वल्कल वस्त्र धारण करना—यही वहाँकी जीवनशैली है॥ १३॥

'देवताओंका, पितरोंका तथा आये हुए अतिथियोंका प्रतिदिन शास्त्रोक्तविधिके अनुसार पूजन करना—यह वनवासीका प्रधान कर्तव्य है॥ १४॥

'वनवासीको प्रतिदिन नियमपूर्वक तीनों समय स्नान करना होता है। इसलिये वन बहुत ही कष्ट देनेवाला है॥

'सीते! वहाँ स्वयं चुनकर लाये हुए फूलोंद्वारा वेदोक्त विधिसे वेदीपर देवताओंकी पूजा करनी पड़ती है। इसलिये वनको कष्टप्रद कहा गया है॥ १६॥

'मिथिलेशकुमारी जानकी! वनवासियोंको जब जैसा आहार मिल जाय उसीपर संतोष करना पड़ता है; अतः वन दुःखरूप ही है॥ १७॥

'वनमें प्रचण्ड आँधी, घोर अन्धकार, प्रतिदिन भूखका कष्ट तथा और भी बड़े-बड़े भय प्राप्त होते हैं, अतः वन अत्यन्त कष्टप्रद है॥ १८॥

'भामिनि! वहाँ बहुत-से पहाड़ी सर्प, जो अनेक प्रकारके रूपवाले होते हैं, दर्पवश बीच रास्तेमें विचरते रहते हैं; अतः वन अत्यन्त कष्टदायक है॥ १९॥

'जो नदियोंमें निवास करते और नदियोंके समान ही कुटिल गतिसे चलते हैं, ऐसे बहुसंख्यक सर्प वनमें रास्तेको घेरकर पड़े रहते हैं; इसलिये वन बहुत ही कष्टदायक है॥ २०॥

'अबले! पतंगे, बिच्छू, कीड़े, डाँस और मच्छर वहाँ सदा कष्ट पहुँचाते रहते हैं; अतः सारा वन दुःखरूप ही है॥ २१॥

'भामिनि! वनमें काँटेदार वृक्ष, कुश और कास होते हैं, जिनकी शाखाओंके अग्रभाग सब ओर फैले हुए होते हैं; इसलिये वन विशेष कष्टदायक होता है॥ २२॥

'वनमें निवास करनेवाले मनुष्यको बहुत-से शारीरिक क्लेशों और नाना प्रकारके भयोंका सामना करना पड़ता है, अतः वन सदा दुःखरूप ही होता है॥ २३॥

'वहाँ क्रोध और लोभको त्याग देना होता है, तपस्यामें मन लगाना पड़ता है और जहाँ भयका स्थान है, वहाँ भी भयभीत न होनेकी आवश्यकता होती है; अतः वनमें सदा दुःख-ही-दुःख है॥ २४॥

'इसलिये तुम्हारा वनमें जाना ठीक नहीं है। वहाँ जाकर तुम सकुशल नहीं रह सकती। मैं बहुत सोच-विचारकर देखता और समझता हूँ—कि वनमें रहना अनेक दोषोंका उत्पादक बहुत ही कष्टदायक है॥ २५॥

जब महात्मा श्रीरामने उस समय सीताको वनमें ले जानेका विचार नहीं किया, तब सीताने भी उनकी उस बातको नहीं माना। वे अत्यन्त दुःखी होकर श्रीरामसे इस प्रकार बोलीं॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

सीताका श्रीरामके समक्ष उनके साथ अपने वनगमनका औचित्य बताना

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर सीताको बड़ा दु:ख हुआ, उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली और वे धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगीं—॥ १ ॥

'प्राणनाथ! आपने वनमें रहनेके जो-जो दोष बताये हैं, वे सब आपका स्नेह पाकर मेरे लिये गुणरूप हो जायँगे। इस बातको आप अच्छी तरह समझ लें॥

'रघुनन्दन! मृग, सिंह, हाथी, शेर, शरभ, चमरी गाय, नीलगाय तथा जो अन्य जंगली जीव हैं, वे सब-के-सब आपका रूप देखकर भाग जायँगे; क्योंकि ऐसा प्रभावशाली स्वरूप उन्होंने पहले कभी नहीं देखा होगा। आपसे तो सभी डरते हैं; फिर वे पशु क्यों नहीं डरेंगे?॥ ३-४ ॥

'श्रीराम! मुझे गुरुजनोंकी आज्ञासे निश्चय ही आपके साथ चलना है; क्योंकि आपका वियोग हो जानेपर मैं यहाँ अपने जीवनका परित्याग कर दूँगी॥ ५ ॥

'रघुनाथजी! आपके समीप रहनेपर देवताओंके राजा इन्द्र भी बलपूर्वक मेरा तिरस्कार नहीं कर सकते॥ ६ ॥

'श्रीराम! पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे वियोग होनेपर जीवित नहीं रह सकेगी; ऐसी बात आपने भी मुझे भलीभाँति दर्शायी है॥ ७ ॥

'महाप्राज्ञ! यद्यपि वनमें दोष और दु:ख ही भरे हैं, तथापि अपने पिताके घरपर रहते समय मैं ब्राह्मणोंके मुखसे पहले यह बात सुन चुकी हूँ कि 'मुझे अवश्य ही वनमें रहना पड़ेगा' यह बात मेरे जीवनमें सत्य होकर रहेगी॥ ८ ॥

'महाबली वीर! हस्तरेखा देखकर भविष्यकी बातें जान लेनेवाले ब्राह्मणोंके मुखसे अपने घरपर ऐसी बात सुनकर मैं सदा ही वनवासके लिये उत्साहित रहती हूँ॥

'प्रियतम! ब्राह्मणसे ज्ञात हुआ वनमें रहनेका आदेश एक-न-एक दिन मुझे पूरा करना ही पड़ेगा, यह किसी तरह पलट नहीं सकता। अत: मैं अपने स्वामी आपके साथ वनमें अवश्य चलूँगी॥ १० ॥

'ऐसा होनेसे मैं उस भाग्यके विधानको भोग लूँगी। उसके लिये यह समय आ गया है, अत: आपके साथ मुझे चलना ही है; इससे उस ब्राह्मणकी बात भी सच्ची हो जायगी॥ ११ ॥

'वीर! मैं जानती हूँ कि वनवासमें अवश्य ही बहुत-से दु:ख प्राप्त होते हैं; परंतु वे उन्हींको दु:ख जान पड़ते हैं, जिनकी इन्द्रियाँ और मन अपने वशमें नहीं हैं॥ १२ ॥

'पिताके घरपर कुमारी अवस्थामें एक शान्तिपरायणा भिक्षुकीके मुखसे भी मैंने अपने वनवासकी बात सुनी थी। उसने मेरी माताके सामने ही ऐसी बात कही थी॥

'प्रभो! यहाँ आनेपर भी मैंने पहले ही कई बार आपसे कुछ कालतक वनमें रहनेके लिये प्रार्थना की थी और आपको राजी भी कर लिया था। इससे आप निश्चितरूपसे जान लें कि आपके साथ वनको चलना मुझे पहलेसे ही अभीष्ट है॥ १४ ॥

'रघुनन्दन! आपका भला हो। मैं वहाँ चलनेके लिये पहलेसे ही आपकी अनुमति प्राप्त कर चुकी हूँ। अपने शूरवीर वनवासी पतिकी सेवा करना मेरे लिये अधिक रुचिकर है॥ १५ ॥

'शुद्धात्मन्! आप मेरे स्वामी हैं, आपके पीछे प्रेमभावसे वनमें जानेपर मेरे पाप दूर हो जायँगे; क्योंकि स्वामी ही स्त्रीके लिये सबसे बड़ा देवता है॥ १६ ॥

'आपके अनुगमनसे परलोकमें भी मेरा कल्याण होगा और सदा आपके साथ मेरा संयोग बना रहेगा। इस विषयमें यशस्वी ब्राह्मणोंके मुखसे एक पवित्र श्रुति सुनी जाती है (जो इस प्रकार है—)॥ १७ ॥

'महाबली वीर! इस लोकमें पिता आदिके द्वारा जो कन्या जिस पुरुषको अपने धर्मके अनुसार जलसे संकल्प करके दे दी जाती है, वह मरनेके बाद परलोकमें भी उसीकी स्त्री होती है॥ १८ ॥

'मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और पतिव्रता हूँ, फिर क्या कारण है कि आप मुझे यहाँसे अपने साथ ले चलना नहीं चाहते हैं॥ १९ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! मैं आपकी भक्त हूँ, पातिव्रत्यका पालन करती हूँ, आपके बिछोहके भयसे दीन हो रही हूँ तथा आपके सुख-दु:खमें समानरूपसे हाथ बँटानेवाली हूँ। मुझे सुख मिले या दु:ख, मैं दोनों अवस्थाओंमें सम रहूँगी—हर्ष या शोकके वशीभूत नहीं होऊँगी। अत: आप अवश्य ही मुझे साथ ले चलनेकी कृपा करें॥ २० ॥

'यदि आप इस प्रकार दु:खमें पड़ी हुई मुझ

सेविकाको अपने साथ वनमें ले जाना नहीं चाहते हैं तो मैं मृत्युके लिये विष खा लूँगी, आगमें कूद पड़ूँगी अथवा जलमें डूब जाऊँगी'॥ २१॥

इस तरह अनेक प्रकारसे सीताजी वनमें जानेके लिये याचना कर रही थीं तथापि महाबाहु श्रीरामने उन्हें अपने साथ निर्जन वनमें ले जानेकी अनुमति नहीं दी॥

इस प्रकार उनके अस्वीकार कर देनेपर मिथिलेशकुमारी सीताको बड़ी चिन्ता हुई और वे अपने नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहाकर धरतीको भिगोने-सी लगीं॥ २३॥

उस समय विदेहनन्दिनी जानकीको चिन्तित और कुपित देख मनको वशमें रखनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें वनवासके विचारसे निवृत्त करनेके लिये भाँति-भाँतिकी बातें कहकर समझाया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

सीताका वनमें चलनेके लिये अधिक आग्रह, विलाप और घबराहट देखकर श्रीरामका उन्हें साथ ले चलनेकी स्वीकृति देना, पिता-माता और गुरुजनोंकी सेवाका महत्त्व बताना तथा सीताको वनमें चलनेकी तैयारीके लिये घरकी वस्तुओंका दान करनेकी आज्ञा देना

श्रीरामके समझानेपर मिथिलेशकुमारी जानकी वनवासकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये अपने पतिसे फिर इस प्रकार बोलीं॥ १॥

सीता अत्यन्त डरी हुई थीं। वे प्रेम और स्वाभिमानके कारण विशाल वक्ष:स्थलवाले श्रीरामचन्द्रजीपर आक्षेप-सा करती हुई कहने लगीं—॥ २॥

'श्रीराम! क्या मेरे पिता मिथिलानरेश विदेहराज जनकने आपको जामाताके रूपमें पाकर कभी यह भी समझा था कि आप केवल शरीरसे ही पुरुष हैं; कार्यकलापसे तो स्त्री ही हैं॥ ३॥

'नाथ! आपके मुझे छोड़कर चले जानेपर संसारके लोग अज्ञानवश यदि यह कहने लगें कि सूर्यके समान तपनेवाले श्रीरामचन्द्रमें तेज और पराक्रमका अभाव है तो उनकी यह असत्य धारणा मेरे लिये कितने दु:खकी बात होगी॥ ४॥

'आप क्या सोचकर विषादमें पड़े हुए हैं अथवा किससे आपको भय हो रहा है, जिसके कारण आप अपनी पत्नी मुझ सीताका, जो एकमात्र आपके ही आश्रित है, परित्याग करना चाहते हैं॥ ५॥

'जैसे सावित्री द्युमत्सेनकुमार वीरवर सत्यवान्‌की ही अनुगामिनी थी, उसी प्रकार आप मुझे भी अपनी ही आज्ञाके अधीन समझिये॥ ६॥

'निष्पाप रघुनन्दन! जैसी दूसरी कोई कुलकलङ्किनी स्त्री परपुरुषपर दृष्टि रखती है, वैसी मैं नहीं हूँ। मैं तो आपके सिवा किसी दूसरे पुरुषको मनसे भी नहीं देख सकती। इसलिये आपके साथ ही चलूँगी (आपके बिना अकेली यहाँ नहीं रहूँगी)॥ ७॥

'श्रीराम! जिसका कुमारावस्थामें ही आपके साथ विवाह हुआ है और जो चिरकालतक आपके साथ रह चुकी है, उसी मुझ अपनी सती-साध्वी पत्नीको आप औरतकी कमाई खानेवाले नटकी भाँति दूसरोंके हाथमें सौंपना चाहते हैं?॥ ८॥

'निष्पाप रघुनन्दन! आप मुझे जिसके अनुकूल चलनेकी शिक्षा दे रहे हैं और जिसके लिये आपका राज्याभिषेक रोक दिया गया है, उस भरतके सदा ही वशवर्ती और आज्ञापालक बनकर आप ही रहिये, मैं नहीं रहूँगी॥ ९॥

'इसलिये आपका मुझे अपने साथ लिये बिना वनकी ओर प्रस्थान करना उचित नहीं है। यदि तपस्या करनी हो, वनमें रहना हो अथवा स्वर्गमें जाना हो तो सभी जगह मैं आपके साथ रहना चाहती हूँ॥ १०॥

'जैसे बगीचेमें घूमने और पलंगपर सोनेमें कोई कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार आपके पीछे-पीछे वनके मार्गपर चलनेमें भी मुझे कोई परिश्रम नहीं जान पड़ेगा॥

'रास्तेमें जो कुश-कास, सरकंडे, सींक और काँटेदार वृक्ष मिलेंगे, उनका स्पर्श मुझे आपके साथ रहनेसे रूई और मृगचर्मके समान सुखद प्रतीत होगा॥

'प्राणवल्लभ! प्रचण्ड आँधीसे उड़कर मेरे शरीरपर

जो धूल पड़ेगी, उसे मैं उत्तम चन्दनके समान समझूँगी॥ १३॥

'जब वनके भीतर रहूँगी, तब आपके साथ घासोंपर भी सो लूँगी। रंग-बिरंगे कालीनों और मुलायम बिछौनोंसे युक्त पलंगोंपर क्या उससे अधिक सुख हो सकता है?॥ १४॥

'आप अपने हाथसे लाकर थोड़ा या बहुत फल, मूल या पत्ता, जो कुछ दे देंगे, वही मेरे लिये अमृत-रसके समान होगा॥ १५॥

'ऋतुके अनुकूल जो भी फल-फूल प्राप्त होंगे, उन्हें खाकर रहूँगी और माता-पिता अथवा महलको कभी याद नहीं करूँगी॥ १६॥

'वहाँ रहते समय मेरा कोई भी प्रतिकूल व्यवहार आप नहीं देख सकेंगे। मेरे लिये आपको कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। मेरा निर्वाह आपके लिये दूभर नहीं होगा॥ १७॥

'आपके साथ जहाँ भी रहना पड़े, वही मेरे लिये स्वर्ग है और आपके बिना जो कोई भी स्थान हो, वह मेरे लिये नरकके समान है। श्रीराम! मेरे इस निश्चयको जानकर आप मेरे साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वनको चलें॥ १८॥

'मुझे वनवासके कष्टसे कोई घबराहट नहीं है। यदि इस दशामें भी आप अपने साथ मुझे वनमें नहीं ले चलेंगे तो मैं आज ही विष पी लूँगी, परंतु शत्रुओंके अधीन होकर नहीं रहूँगी॥ १९॥

नाथ! यदि आप मुझे त्यागकर वनको चले जायँगे तो पीछे भी इस भारी दुःखके कारण मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं है; ऐसी दशामें मैं इसी समय आपके जाते ही अपना प्राण त्याग देना अच्छा समझती हूँ॥ २०॥

'आपके विरहका यह शोक मैं दो घड़ी भी नहीं सह सकूँगी। फिर मुझ दुःखियासे यह चौदह वर्षोंतक कैसे सहा जायगा?'॥ २१॥

इस प्रकार बहुत देरतक करुणाजनक विलाप करके शोकसे संतप्त हुई सीता शिथिल हो अपने पतिको जोरसे पकड़कर—उनका गाढ़ आलिङ्गन करके फूट-फूटकर रोने लगीं॥ २२॥

जैसे कोई हथिनी विषमें बुझे हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल कर दी गयी हो, उसी प्रकार सीता श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वोक्त अनेकानेक वचनोंद्वारा मर्माहत हो उठी थीं; अतः जैसे अरणी आग प्रकट करती है, उसी प्रकार वे बहुत देरसे रोके हुए आँसुओंको बरसाने लगीं॥ २३॥

उनके दोनों नेत्रोंसे स्फटिकके समान निर्मल संतापजनित अश्रुजल झर रहा था, मानो दो कमलोंसे जलकी धारा गिर रही हो॥ २४॥

बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित और पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान कान्तिमान् उनका वह मनोहर मुख संतापजनित तापके कारण पानीसे बाहर निकाले हुए कमलके समान सूख-सा गया था॥ २५॥

सीताजी दुःखके मारे अचेत-सी हो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें दोनों हाथोंसे सँभालकर हृदयसे लगा लिया और उस समय उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा— ॥ २६॥

'देवि! तुम्हें दुःख देकर मुझे स्वर्गका सुख मिलता हो तो मैं उसे भी लेना नहीं चाहूँगा। स्वयम्भू ब्रह्माजीकी भाँति मुझे किसीसे किञ्चित् भी भय नहीं है॥ २७॥

'शुभानने! यद्यपि वनमें तुम्हारी रक्षा करनेके लिये मैं सर्वथा समर्थ हूँ तो भी तुम्हारे हार्दिक अभिप्रायको पूर्णरूपसे जाने बिना तुमको वनवासिनी बनाना मैं उचित नहीं समझता था॥ २८॥

'मिथिलेशकुमारी! जब तुम मेरे साथ वनमें रहनेके लिये ही उत्पन्न हुई हो तो मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, ठीक उसी तरह जैसे आत्मज्ञानी पुरुष अपनी स्वाभाविक प्रसन्नताका त्याग नहीं करते॥ २९॥

'हाथीकी सूँड़के समान जाँघवाली जनककिशोरी! पूर्वकालके सत्पुरुषोंने अपनी पत्नीके साथ रहकर जिस धर्मका आचरण किया था, उसीका मैं भी तुम्हारे साथ रहकर अनुसरण करूँगा तथा जैसे सुवर्चला (संज्ञा) अपने पति सूर्यका अनुगमन करती है, उसी प्रकार तुम भी मेरा अनुसरण करो॥ ३०॥

'जनकनन्दिनि! यह तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है कि मैं वनको न जाऊँ; क्योंकि पिताजीका वह सत्ययुक्त वचन ही मुझे वनकी ओर ले जा रहा है॥

'सुश्रोणि! पिता और माताकी आज्ञाके अधीन रहना पुत्रका धर्म है, इसलिये मैं उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जीवित नहीं रह सकता॥ ३२॥

'जो अपनी सेवाके अधीन हैं, उन प्रत्यक्ष देवता माता, पिता एवं गुरुका उल्लङ्घन करके जो सेवाके अधीन नहीं है, उस अप्रत्यक्ष देवता दैवकी विभिन्न प्रकारसे किस तरह आराधना की जा सकती है॥ ३३॥

'सुन्दर नेत्रप्रान्तवाली सीते! जिनकी आराधना करनेपर धर्म, अर्थ और काम तीनों प्राप्त होते हैं तथा तीनों लोकोंकी आराधना सम्पन्न हो जाती है, उन माता, पिता और गुरुके समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतलपर नहीं है। इसीलिये भूतलके निवासी इन तीनों देवताओंकी आराधना करते हैं॥ ३४॥

'सीते! पिताकी सेवा करना कल्याणकी प्राप्तिका जैसा प्रबल साधन माना गया है, वैसा न सत्य है, न दान है, न मान है और न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही हैं॥ ३५॥

'गुरुजनोंकी सेवाका अनुसरण करनेसे स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख—कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ३६॥

'माता-पिताकी सेवामें लगे रहनेवाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकोंको भी प्राप्त कर लेते हैं॥ ३७॥

'इसीलिये सत्य और धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले पूज्य पिताजी मुझे जैसी आज्ञा दे रहे हैं, मैं वैसा ही बर्ताव करना चाहता हूँ; क्योंकि वह सनातनधर्म है॥

'सीते! 'मैं आपके साथ वनमें निवास करूँगी'—ऐसा कहकर तुमने मेरे साथ चलनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, इसलिये तुम्हें दण्डकारण्य ले चलनेके सम्बन्धमें जो मेरा पहला विचार था, वह अब बदल गया है॥ ३९॥

'मदभरे नेत्रोंवाली सुन्दरी! अब मैं तुम्हें वनमें चलनेके लिये आज्ञा देता हूँ। भीरु! तुम मेरी अनुगामिनी बनो और मेरे साथ रहकर धर्मका आचरण करो॥ ४०॥

'प्राणवल्लभे सीते! तुमने मेरे साथ चलनेका जो यह परम सुन्दर निश्चय किया है, यह तुम्हारे और मेरे कुलके सर्वथा योग्य ही है॥ ४१॥

'सुश्रोणि! अब तुम वनवासके योग्य दान आदि कर्म प्रारम्भ करो। सीते! इस समय तुम्हारे इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर लेनेपर तुम्हारे बिना स्वर्ग भी मुझे अच्छा नहीं लगता है॥ ४२॥

'ब्राह्मणोंको रत्नस्वरूप उत्तम वस्तुएँ दान करो और भोजन माँगनेवाले भिक्षुकोंको भोजन दो। शीघ्रता करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये॥ ४३॥

तुम्हारे पास जितने बहुमूल्य आभूषण हों, जो-जो अच्छे-अच्छे वस्त्र हों, जो कोई भी रमणीय पदार्थ हों तथा मनोरञ्जनकी जो-जो सुन्दर सामग्रियाँ हों, मेरे और तुम्हारे उपयोगमें आनेवाली जो उत्तमोत्तम शय्याएँ, सवारियाँ तथा अन्य वस्तुएँ हों, उनमेंसे ब्राह्मणोंको दान करनेके पश्चात् जो बचें उन सबको अपने सेवकोंको बाँट दो'॥ ४४-४५॥

'स्वामीने वनमें मेरा जाना स्वीकार कर लिया—मेरा वनगमन उनके मनके अनुकूल हो गया' यह जानकर देवी सीता बहुत प्रसन्न हुईं और शीघ्रतापूर्वक सब वस्तुओंका दान करनेमें जुट गयीं॥ ४६॥

तदनन्तर अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे अत्यन्त हर्षमें भरी हुई यशस्विनी एवं मनस्विनी सीता देवी स्वामीके आदेशपर विचार करके धर्मात्मा ब्राह्मणोंको धन और रत्नोंका दान करनेके लिये उद्यत हो गयीं॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणका संवाद, श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका सुहृदोंसे पूछकर और दिव्य आयुध लाकर वनगमनके लिये तैयार होना, श्रीरामका उनसे ब्राह्मणोंको धन बाँटनेका विचार व्यक्त करना

जिस समय श्रीराम और सीतामें बातचीत हो रही थी, लक्ष्मण वहाँ पहलेसे ही आ गये थे। उन दोनोंका ऐसा संवाद सुनकर उनका मुखमण्डल आँसुओंसे भींग गया। भाईके विरहका शोक अब उनके लिये भी असह्य हो उठा॥ १॥

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले लक्ष्मणने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके दोनों पैर जोरसे पकड़ लिये और अत्यन्त यशस्विनी सीता तथा महान् व्रतधारी श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥ २॥

'आर्य! यदि आपने सहस्रों वन्य पशुओं तथा हाथियोंसे भरे हुए वनमें जानेका निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी आपका अनुसरण करूँगा। धनुष हाथमें लेकर आगे-आगे चलूँगा॥ ३॥

'आप मेरे साथ पक्षियोंके कलरव और भ्रमर-

समूहोंके गुञ्जारवसे गूँजते हुए रमणीय वनोंमें सब ओर विचरण कीजियेगा॥ ४॥

'मैं आपके बिना स्वर्गमें जाने, अमर होने तथा सम्पूर्ण लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त करनेकी भी इच्छा नहीं रखता'॥ ५॥

वनवासके लिये निश्चित विचार करके ऐसी बात कहनेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीने बहुत-से सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा समझाकर जब वनमें चलनेसे मना किया, तब वे फिर बोले—॥ ६॥

'भैया! आपने तो पहलेसे ही मुझे अपने साथ रहनेकी आज्ञा दे रखी है, फिर इस समय आप मुझे क्यों रोकते हैं?॥ ७॥

'निष्पाप रघुनन्दन! जिस कारणसे आपके साथ चलनेकी इच्छावाले मुझको आप मना करते हैं, उस कारणको मैं जानना चाहता हूँ। मेरे हृदयमें इसके लिये बड़ा संशय हो रहा है'॥ ८॥

ऐसा कहकर धीर-वीर लक्ष्मण आगे जानेके लिये तैयार हो भगवान् श्रीरामके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर याचना करने लगे। तब महातेजस्वी श्रीरामने उनसे कहा—॥ ९॥

'लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्मपरायण, धीर-वीर तथा सदा सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो। मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो तथा मेरे वशमें रहनेवाले आज्ञापालक और सखा हो॥ १०॥

'सुमित्रानन्दन! यदि आज मेरे साथ तुम भी वनको चल दोगे तो परम यशस्विनी माता कौसल्या और सुमित्राकी सेवा कौन करेगा?॥ ११॥

'जैसे मेघ पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार जो सबकी कामनाएँ पूर्ण करते थे, वे महातेजस्वी महाराज दशरथ अब कैकेयीके प्रेमपाशमें बँध गये हैं॥ १२॥

'केकयराज अश्वपतिकी पुत्री कैकेयी महाराजके इस राज्यको पाकर मेरे वियोगके दुःखमें डूबी हुई अपनी सौतोंके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करेगी॥ १३॥

'भरत भी राज्य पाकर कैकेयीके अधीन रहनेके कारण दुःखिया कौसल्या और सुमित्राका भरण-पोषण नहीं करेंगे॥ १४॥

'अतः सुमित्राकुमार! तुम यहीं रहकर अपने प्रयत्नसे अथवा राजाकी कृपा प्राप्त करके माता कौसल्याका पालन करो। मेरे बताये हुए इस प्रयोजनको ही सिद्ध करो॥

'ऐसा करनेसे मेरे प्रति जो तुम्हारी भक्ति है, वह भी भलीभाँति प्रकट हो जायगी तथा धर्मज्ञ गुरुजनोंकी पूजा करनेसे जो अनुपम एवं महान् धर्म होता है, वह भी तुम्हें प्राप्त हो जायगा॥ १६॥

'रघुकुलको आनन्दित करनेवाले सुमित्राकुमार! तुम मेरे लिये ऐसा ही करो; क्योंकि हमलोगोंसे बिछुड़ी हुई हमारी माँको कभी सुख नहीं होगा (वह सदा हमारी ही चिन्तामें डूबी रहेगी)'॥ १७॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर बातचीतके मर्मको समझनेवाले लक्ष्मणने उस समय बातका तात्पर्य समझनेवाले श्रीरामको मधुर वाणीमें उत्तर दिया—॥ १८॥

'वीर! आपके ही तेज (प्रभाव) से भरत माता कौसल्या और सुमित्रा दोनोंका पवित्र भावसे पूजन करेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ १९॥

'वीरवर! इस उत्तम राज्यको पाकर यदि भरत बुरे रास्तेपर चलेंगे और दूषित हृदय एवं विशेषतः घमण्डके कारण माताओंकी रक्षा नहीं करेंगे तो मैं उन दुर्बुद्धि और क्रूर भरतका तथा उनके पक्षका समर्थन करनेवाले उन सब लोगोंका वध कर डालूँगा; इसमें संशय नहीं है। यदि सारी त्रिलोकी उनका पक्ष करने लगे तो उसे भी अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा, परंतु बड़ी माता कौसल्या तो स्वयं ही मेरे-जैसे सहस्रों मनुष्योंका भी भरण कर सकती हैं; क्योंकि उन्हें अपने आश्रितोंका पालन करनेके लिये एक सहस्र गाँव मिले हुए हैं॥

'इसलिये वे मनस्विनी कौसल्या स्वयं ही अपना, मेरी माताका तथा मेरे-जैसे और भी बहुत-से मनुष्योंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हैं॥ २३॥

'अतः आप मुझको अपना अनुगामी बना लीजिये। इसमें कोई धर्मकी हानि नहीं होगी। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा तथा आपका भी प्रयोजन मेरे द्वारा सिद्ध हुआ करेगा॥ २४॥

'प्रत्यञ्चासहित धनुष लेकर खंती और पिटारी लिये आपको रास्ता दिखाता हुआ मैं आपके आगे-आगे चलूँगा॥ २५॥

'प्रतिदिन आपके लिये फल-मूल लाऊँगा तथा तपस्वीजनोंके लिये वनमें मिलनेवाली तथा अन्यान्य हवन-सामग्री जुटाता रहूँगा॥ २६॥

'आप विदेहकुमारीके साथ पर्वतशिखरोंपर भ्रमण करेंगे। वहाँ आप जागते हों या सोते, मैं हर समय आपके सभी आवश्यक कार्य पूर्ण करूँगा'॥ २७॥

लक्ष्मणकी इस बातसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उनसे कहा—'सुमित्रानन्दन! जाओ, माता आदि सभी सुहृदोंसे मिलकर अपनी वनयात्राके विषयमें पूछ लो—उनकी आज्ञा एवं अनुमति ले लो॥ २८॥

'लक्ष्मण! राजा जनकके महान् यज्ञमें स्वयं महात्मा वरुणने उन्हें जो देखनेमें भयंकर दो दिव्य धनुष दिये थे, साथ ही, जो दो दिव्य अभेद्य कवच, अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस तथा सूर्यकी भाँति निर्मल दीप्तिसे दमकते हुए जो दो सुवर्णभूषित खड्ग प्रदान किये थे (वे सभी दिव्यास्त्र मिथिलानरेशने मुझे दहेजमें दे दिये थे), उन सबको आचार्यदेवके घरमें सत्कारपूर्वक रखा गया है। तुम उन सारे आयुधोंको लेकर शीघ्र लौट आओ'॥ २९—३१॥

आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी गये और सुहृज्जनोंकी अनुमति लेकर वनवासके लिये निश्चितरूपसे तैयार हो इक्ष्वाकुकुलके गुरु वसिष्ठजीके यहाँ गये। वहाँसे उन्होंने उन उत्तम आयुधोंको ले लिया॥ ३२॥

क्षत्रियशिरोमणि सुमित्राकुमार लक्ष्मणने सत्कारपूर्वक रखे हुए उन माल्यविभूषित समस्त दिव्य आयुधोंको लाकर उन्हें श्रीरामको दिखाया॥ ३३॥

तब मनस्वी श्रीरामने वहाँ आये हुए लक्ष्मणसे प्रसन्न होकर कहा—'सौम्य! लक्ष्मण! तुम ठीक समयपर आ गये। इसी समय तुम्हारा आना मुझे अभीष्ट था॥ ३५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! मेरा जो यह धन है, इसे मैं तुम्हारे साथ रहकर तपस्वी ब्राह्मणोंको बाँटना चाहता हूँ॥ ३५॥

'गुरुजनोंके प्रति सुदृढ़ भक्तिभावसे युक्त जो श्रेष्ठ ब्राह्मण यहाँ मेरे पास रहते हैं, उनको तथा समस्त आश्रितजनोंको भी मुझे अपना यह धन बाँटना है॥ ३६॥

'वसिष्ठजीके पुत्र जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ आर्य सुयज्ञ हैं, उन्हें तुम शीघ्र यहाँ बुला लाओ। मैं इन सबका तथा और जो ब्राह्मण शेष रह गये हों, उनका भी सत्कार करके वनको जाऊँगा'॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

सीतासहित श्रीरामका वसिष्ठपुत्र सुयज्ञको बुलाकर उनके तथा उनकी पत्नीके लिये बहुमूल्य आभूषण, रत्न और धन आदिका दान तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामद्वारा ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों, सेवकों, त्रिजट ब्राह्मण और सुहृज्जनोंको धनका वितरण

तदनन्तर अपने भाई श्रीरामकी प्रियकारक एवं हितकर आज्ञा पाकर लक्ष्मण वहाँसे चल दिये। उन्होंने शीघ्र ही गुरुपुत्र सुयज्ञके घरमें प्रवेश किया॥ १॥

उस समय विप्रवर सुयज्ञ अग्निशालामें बैठे हुए थे। लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम करके कहा—'सखे! दुष्कर कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके घरपर आओ और उनका कार्य देखो'॥ २॥

सुयज्ञने मध्याह्नकालकी संध्योपासना पूरी करके लक्ष्मणके साथ जाकर श्रीरामके रमणीय भवनमें प्रवेश किया, जो लक्ष्मीसे सम्पन्न था॥ ३॥

होमकालमें पूजित अग्निके समान तेजस्वी वेदवेत्ता सुयज्ञको आया जान सीतासहित श्रीरामने हाथ जोड़कर उनकी अगवानी की॥ ४॥

तत्पश्चात् ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने सोनेके बने हुए श्रेष्ठ अङ्गदों, सुन्दर कुण्डलों, सुवर्णमय सूत्रमें पिरोयी हुई मणियों, केयूरों, वलयों तथा अन्य बहुत-से रत्नोंद्वारा उनका पूजन किया॥ ५½॥

इसके बाद सीताकी प्रेरणासे श्रीरामने सुयज्ञसे कहा—'सौम्य! तुम्हारी पत्नीकी सखी सीता तुम्हें अपना हार, सुवर्णसूत्र और करधनी देना चाहती है। इन वस्तुओंको अपनी पत्नीके लिये ले जाओ॥ ६-७॥

'वनको प्रस्थान करनेवाली तुम्हारी स्त्रीकी सखी सीता तुम्हें तुम्हारी पत्नीके लिये विचित्र अङ्गद और सुन्दर केयूर भी देना चाहती है॥ ८॥

'उत्तम बिछौनोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित जो पलंग है, उसे भी विदेहनन्दिनी सीता तुम्हारे ही घरमें भेज देना चाहती है॥ ९॥

'विप्रवर! शत्रुञ्जय नामक जो हाथी है, जिसे मेरे मामाने मुझे भेंट किया था, उसे एक हजार अशर्फियोंके साथ मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ'॥ १०॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुयज्ञने वे सब वस्तुएँ ग्रहण करके श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके लिये मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान किये॥ ११॥

तदनन्तर श्रीरामने शान्तभावसे खड़े हुए और प्रिय वचन बोलनेवाले अपने प्रिय भ्राता सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे उसी तरह निम्नाङ्कित बात कही, जैसे ब्रह्मा देवराज इन्द्रसे कुछ कहते हैं॥ १२॥

'सुमित्रानन्दन! अगस्त्य और विश्वामित्र दोनों उत्तम ब्राह्मणोंको बुलाकर रत्नोंद्वारा उनकी पूजा करो। महाबाहु रघुनन्दन! जैसे मेघ जलकी वर्षाद्वारा खेतीको तृप्त करता है, उसी प्रकार तुम उन्हें सहस्रों गौओं, सुवर्णमुद्राओं, रजतद्रव्यों और बहुमूल्य मणियोंद्वारा संतुष्ट करो॥ १३-१४॥

'लक्ष्मण! यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणोंके जो आचार्य और सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् हैं, साथ ही जिनमें दानप्राप्तिकी योग्यता है तथा जो माता कौसल्याके प्रति भक्तिभाव रखकर प्रतिदिन उनके पास आकर उन्हें आशीर्वाद प्रदान करते हैं, उनको सवारी, दास-दासी, रेशमी वस्त्र और जितने धनसे वे ब्राह्मणदेवता संतुष्ट हों, उतना धन खजानेसे दिलवाओ॥ १५-१६॥

'चित्ररथ नामक सूत श्रेष्ठ सचिव भी हैं। वे सुदीर्घकालसे यहीं राजकुलकी सेवामें रहते हैं। इनको भी तुम बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और धन देकर संतुष्ट करो। साथ ही, इन्हें उत्तम श्रेणीके अज आदि सभी पशु और एक सहस्र गौएँ अर्पित करके पूर्ण संतोष प्रदान करो॥ १७$\frac{१}{२}$॥

'मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जो कठशाखा और कलाप-शाखाके अध्येता बहुत-से दण्डधारी ब्रह्मचारी हैं, वे सदा स्वाध्यायमें ही संलग्न रहनेके कारण दूसरा कोई कार्य नहीं कर पाते। भिक्षा माँगनेमें आलसी हैं, परंतु स्वादिष्ट अन्न खानेकी इच्छा रखते हैं। महान् पुरुष भी उनका सम्मान करते हैं। उनके लिये रत्नोंके बोझसे लदे हुए अस्सी ऊँट, अगहनी चावलका भार ढोनेवाले एक सहस्र बैल तथा भद्रक नामक धान्यविशेष (चने, मूँग आदि) का भार लिये हुए दो सौ बैल और दिलवाओ॥

'सुमित्राकुमार! उपर्युक्त वस्तुओंके सिवा उनके लिये दही, घी आदि व्यञ्जनके निमित्त एक सहस्र गौएँ भी हँकवा दो। माता कौसल्याके पास मेखलाधारी ब्रह्मचारियोंका बहुत बड़ा समुदाय आया है। उनमेंसे प्रत्येकको एक-एक हजार स्वर्णमुद्राएँ दिलवा दो॥ २१॥

'लक्ष्मण! उन समस्त ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंको मेरे द्वारा दिलायी हुई दक्षिणा देखकर जिस प्रकार मेरी माता कौसल्या आनन्दित हो उठे, उसी प्रकार तुम उन सबकी सब प्रकारसे पूजा करो'॥ २२॥

इस प्रकार आज्ञा प्राप्त होनेपर पुरुषसिंह लक्ष्मणने स्वयं ही कुबेरकी भाँति श्रीरामके कथनानुसार उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उस धनका दान किया॥ २३॥

इसके बाद वहाँ खड़े हुए अपने आश्रित सेवकोंको जिनका गला आँसुओंसे रुँधा हुआ था, बुलाकर श्रीरामने उनमेंसे एक-एकको चौदह वर्षोंतक जीविका चलानेयोग्य बहुत-सा द्रव्य प्रदान किया और उन सबसे कहा—'जबतक मैं वनसे लौटकर न आऊँ, तबतक तुमलोग लक्ष्मणके और मेरे इस घरको कभी सूना न करना—छोड़कर अन्यत्र न जाना'॥ २४-२५॥

वे सब सेवक श्रीरामके वनगमनसे बहुत दु:खी थे। उनसे उपर्युक्त बात कहकर श्रीराम अपने धनाध्यक्ष (खजांची) से बोले—'खजानेमें मेरा जितना धन है, वह सब ले आओ'॥ २६॥

यह सुनकर सभी सेवक उनका धन ढो-ढोकर ले आने लगे। वहाँ उस धनकी बहुत बड़ी राशि एकत्र हुई दिखायी देने लगी, जो देखने ही योग्य थी॥ २७॥

तब लक्ष्मणसहित पुरुषसिंह श्रीरामने बालक और बूढ़े ब्राह्मणों तथा दीन-दु:खियोंको वह सारा धन बँटवा दिया॥ २८॥

उन दिनों वहाँ अयोध्याके आस-पास वनमें त्रिजट नामवाले एक गर्गगोत्रीय ब्राह्मण रहते थे। उनके पास जीविकाका कोई साधन नहीं था, इसलिये उपवास आदिके कारण उनके शरीरका रंग पीला पड़ गया था। वे सदा फाल, कुदाल और हल लिये वनमें फल-मूलकी तलाशमें घूमा करते थे॥ २९॥

वे स्वयं तो बूढ़े हो चले थे, परंतु उनकी पत्नी अभी तरुणी थी। उसने छोटे बच्चोंको लेकर ब्राह्मणदेवतासे यह बात कही—'प्राणनाथ! (यद्यपि) स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, (अत: मुझे आपको आदेश देनेका कोई अधिकार नहीं है, तथापि मैं आपकी भक्त हूँ; इसलिये विनयपूर्वक यह अनुरोध करती हूँ कि—) आप यह फाल और कुदाल फेंककर मेरा कहना कीजिये। धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे मिलिये। यदि आप ऐसा करें तो वहाँ अवश्य कुछ पा जायँगे'॥ ३०-३१॥

पत्नीकी बात सुनकर ब्राह्मण एक फटी धोती, जिससे मुश्किलसे शरीर ढक पाता था, पहनकर उस मार्गपर चल दिये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका महल था॥ ३२॥

भृगु और अङ्गिराके समान तेजस्वी त्रिजट, जनसमुदायके बीचसे होकर श्रीराम-भवनकी पाँचवीं ड्यौढ़ीतक चले गये, परंतु उनके लिये किसीने रोक-टोक नहीं की॥ ३३॥

उस समय श्रीरामके पास पहुँचकर त्रिजटने कहा—'महाबली राजकुमार! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं, जीविका नष्ट हो जानेसे सदा वनमें ही रहता हूँ, आप मुझपर कृपादृष्टि कीजिये'॥ ३४½॥

तब श्रीरामने विनोदपूर्वक कहा—'ब्रह्मन्! मेरे पास असंख्य गौएँ हैं, इनमेंसे एक सहस्रका भी मैंने अभीतक किसीको दान नहीं किया है। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँतककी सारी गौएँ आपको मिल जायँगी'॥ ३६॥

यह सुनकर उन्होंने बड़ी तेजीके साथ धोतीके पल्लेको सब ओरसे कमरमें लपेट लिया और अपनी सारी शक्ति लगाकर डंडेको बड़े वेगसे घुमाकर फेंका॥

ब्राह्मणके हाथसे छूटा हुआ वह डंडा सरयूके उस पार जाकर हजारों गौओंसे भरे हुए गोष्ठमें एक साँड़के पास गिरा॥ ३८॥

धर्मात्मा श्रीरामने त्रिजटको छातीसे लगा लिया और उस सरयूतटसे लेकर उस पार गिरे हुए डंडेके स्थानतक जितनी गौएँ थीं, उन सबको मँगवाकर त्रिजटके आश्रमपर भेज दिया॥ ३९॥

उस समय श्रीरामने गर्गवंशी त्रिजटको सान्त्वना देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! मैंने विनोदमें यह बात कही थी, आप इसके लिये बुरा न मानियेगा॥ ४०॥

'आपका यह जो दुर्लङ्घ्य तेज है, इसीको जाननेकी इच्छासे मैंने आपको यह डंडा फेंकनेके लिये प्रेरित किया था, यदि आप और कुछ चाहते हों तो माँगिये॥ ४१॥

मैं सच कहता हूँ कि इसमें आपके लिये कोई संकोचकी बात नहीं है। मेरे पास जो-जो धन हैं, वह सब ब्राह्मणोंके लिये ही है। आप-जैसे ब्राह्मणोंको शास्त्रीय विधिके अनुसार दान देनेसे मेरे द्वारा उपार्जित किया हुआ धन मेरे यशकी वृद्धि करनेवाला होगा'॥ ४२॥

गौओंके उस महान् समूहको पाकर पत्नीसहित महामुनि त्रिजटको बड़ी प्रसन्नता हुई, वे महात्मा श्रीरामको यश, बल, प्रीति तथा सुख बढ़ानेवाले आशीर्वाद देने लगे॥ ४३॥

तदनन्तर पूर्ण पराक्रमी भगवान् श्रीराम धर्मबलसे उपार्जित किये हुए उस महान् धनको लोगोंके यथायोग्य सम्मानपूर्ण वचनोंसे प्रेरित हो बहुत देरतक अपने सुहृदोंमें बाँटते रहे॥ ४४॥

उस समय वहाँ कोई भी ब्राह्मण, सुहृद्, सेवक, दरिद्र अथवा भिक्षुक ऐसा नहीं था, जो श्रीरामके यथायोग्य सम्मान, दान तथा आदर-सत्कारसे तृप्त न किया गया हो॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका दुःखी नगरवासियोंके मुखसे तरह-तरहकी बातें सुनते हुए पिताके दर्शनके लिये कैकेयीके महलमें जाना

विदेहकुमारी सीताके साथ श्रीराम और लक्ष्मण ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान करके वन जानेके लिये उद्यत हो पिताका दर्शन करनेके लिये गये॥ १॥

उनके साथ दो सेवक श्रीराम और लक्ष्मणके वे धनुष आदि आयुध लेकर चले, जिन्हें फूलकी मालाओंसे सजाया गया था और सीताजीने पूजाके लिये चढ़ाये हुए चन्दन आदिसे अलंकृत किया था। उन दोनोंके आयुधोंकी उस समय बड़ी शोभा हो रही थी॥ २॥

उस अवसरपर धनी लोग प्रासादों (तिमंजिले महलों), हर्म्यगृहों (राजभवनों) तथा विमानों (सात मंजिले महलों) की ऊपरी छतोंपर चढ़कर उदासीन भावसे उन तीनोंकी ओर देखने लगे॥ ३॥

उस समय सड़कें मनुष्योंकी भीड़से भरी थीं। इसलिये उनपर सुगमतापूर्वक चलना कठिन हो गया था। अतः अधिकांश मनुष्य प्रासादों (तिमंजिले मकानों) पर चढ़कर वहींसे दुःखी होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख रहे थे॥ ४॥

श्रीरामको अपने छोटे भाई लक्ष्मण और पत्नी

सीताके साथ पैदल जाते देख बहुत-से मनुष्योंका हृदय शोकसे व्याकुल हो उठा। वे खेदपूर्वक कहने लगे—॥ ५॥

'हाय! यात्राके समय जिनके पीछे विशाल चतुरङ्गिणी सेना चलती थी, वे ही श्रीराम आज अकेले जा रहे हैं और उनके पीछे सीताके साथ लक्ष्मण चल रहे हैं॥ ६॥

'जो ऐश्वर्यके सुखका अनुभव करनेवाले तथा भोग्य वस्तुओंके महान् भण्डार थे—जहाँ सबकी कामनाएँ पूर्ण होती थीं, वे ही श्रीराम आज धर्मका गौरव रखनेके लिये पिताकी बात झूठी करना नहीं चाहते हैं॥ ७॥

'ओह! पहले जिसे आकाशमें विचरनेवाले प्राणी भी नहीं देख पाते थे, उसी सीताको इस समय सड़कोंपर खड़े हुए लोग देख रहे हैं॥ ८॥

'सीता अङ्गराग-सेवनके योग्य हैं, लाल चन्दनका सेवन करनेवाली हैं। अब वर्षा, गर्मी और सर्दी शीघ्र ही इनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी कर देगी॥ ९॥

'निश्चय ही आज राजा दशरथ किसी पिशाचके आवेशमें पड़कर अनुचित बात कह रहे हैं; क्योंकि अपनी स्वाभाविक स्थितिमें रहनेवाला कोई भी राजा अपने प्यारे पुत्रको घरसे निकाल नहीं सकता॥ १०॥

'पुत्र यदि गुणहीन हो तो भी उसे घरसे निकाल देनेका साहस कैसे हो सकता है? फिर जिसके केवल चरित्रसे ही यह सारा संसार वशीभूत हो जाता है, उसको वनवास देनेकी तो बात ही कैसे की जा सकती है?॥

'क्रूरताका अभाव, दया, विद्या, शील, दम (इन्द्रियसंयम) और शम (मनोनिग्रह)—ये छः गुण नरश्रेष्ठ श्रीरामको सदा ही सुशोभित करते हैं॥ १२॥

'अतः इनके ऊपर आघात करने—इनके राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेसे प्रजाको उसी तरह महान् क्लेश पहुँचा है, जैसे गर्मीमें जलाशयका पानी सूख जानेसे उसके भीतर रहनेवाले जीव तड़पने लगते हैं॥

'इन जगदीश्वर श्रीरामकी व्यथासे सम्पूर्ण जगत् व्यथित हो उठा है, जैसे जड़ काट देनेसे पुष्प और फलसहित सारा वृक्ष सूख जाता है॥ १४॥

'ये महान् तेजस्वी श्रीराम सम्पूर्ण मनुष्योंके मूल हैं, धर्म ही इनका बल है। जगत्के दूसरे प्राणी पत्र, पुष्प, फल और शाखाएँ हैं॥ १५॥

'अतः हमलोग भी लक्ष्मणकी भाँति पत्नी और बन्धु-बान्धवोंके साथ शीघ्र ही इन जानेवाले श्रीरामके ही पीछे-पीछे चल दें। जिस मार्गसे श्रीरघुनाथजी जा रहे हैं, उसीका हम भी अनुसरण करें॥ १६॥

'बाग-बगीचे, घर-द्वार और खेती-बारी—सब छोड़कर धर्मात्मा श्रीरामका अनुगमन करें। इनके दुःख-सुखके साथी बनें॥ १७॥

'हम अपने घरोंकी गड़ी हुई निधि निकालें। आँगनकी फर्श खोद डालें। सारा धन-धान्य साथ ले लें। सारी आवश्यक वस्तुएँ हटा लें। इनमें चारों ओर धूल भर जाय। देवता इन घरोंको छोड़कर भाग जायँ। चूहे बिलसे बाहर निकलकर इनमें चारों ओर दौड़ लगाने लगें और उनसे ये घर भर जायँ। इनमें न कभी आग जले, न पानी रहे और न झाड़ू ही लगे। यहाँ बलिवैश्वदेव, यज्ञ, मन्त्रपाठ, होम और जप बंद हो जाय। मानो बड़ा भारी अकाल पड़ गया हो, इस प्रकार ये सारे घर ढह जायँ। इनमें टूटे बर्तन बिखरे पड़े हों और हम सदाके लिये इन्हें छोड़ दें—ऐसी दशामें इन घरोंपर कैकेयी आकर अधिकार कर ले॥ १८—२१॥

'जहाँ पहुँचनेके लिये ये श्रीरामचन्द्रजी जा रहे हैं, वह वन ही नगर हो जाय और हमारे छोड़ देनेपर यह नगर भी वनके रूपमें परिणत हो जाय॥ २२॥

'वनमें हमलोगोंके भयसे साँप अपने बिल छोड़कर भाग जायँ। पर्वतपर रहनेवाले मृग और पक्षी उसके शिखरोंको छोड़ दें तथा हाथी और सिंह भी उन वनोंको त्यागकर दूर चले जायँ॥ २३॥

'वे सर्प आदि उन स्थानोंमें चले जायँ, जिन्हें हमलोगोंने छोड़ रखा है और उन स्थानोंको त्याग दें, जिनका हम सेवन करते हैं। यह देश घास चरनेवाले पशुओं, मांसभक्षी हिंसक जन्तुओं और फल खानेवाले पक्षियोंका निवासस्थान बन जाय। यहाँ सर्प, पशु और पक्षी रहने लगें। उस दशामें पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित कैकेयी इसे अपने अधिकारमें कर ले। हम सब लोग वनमें श्रीरघुनाथजीके साथ बड़े आनन्दसे रहेंगे'॥ २४-२५॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने बहुत-से मनुष्योंके मुँहसे निकली हुई तरह-तरहकी बातें सुनीं; किंतु सुनकर भी उनके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। मतवाले गजराजके समान पराक्रमी धर्मात्मा श्रीराम पुनः माता कैकेयीके कैलासशिखरके सदृश शुभ्र भवनमें गये॥ २६-२७॥

विनयशील वीर पुरुषोंसे युक्त उस राजभवनमें प्रवेश करके उन्होंने देखा—सुमन्त्र पास ही दुःखी होकर खड़े हैं॥ २८॥

पूर्वजोंकी निवासभूमि अवधके मनुष्य वहाँ शोकसे आतुर होकर खड़े थे। उन्हें देखकर भी श्रीराम स्वयं शोकसे पीड़ित नहीं हुए—उनके शरीरपर व्यथाका कोई चिह्न प्रकट नहीं हुआ। वे पिताकी आज्ञाका विधिपूर्वक पालन करनेकी इच्छासे उनका दर्शन करनेके लिये हँसते हुए-से आगे बढ़े॥ २९॥

शोकाकुलरूपसे पड़े हुए राजाके पास जानेवाले महात्मा महामना इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीराम वहाँ पहुँचनेसे पहले सुमन्त्रको देखकर पिताके पास अपने आगमनकी सूचना भेजनेके लिये उस समय वहीं ठहर गये॥ ३०॥

पिताके आदेशसे वनमें प्रवेश करनेका बुद्धिपूर्वक निश्चय करके आये हुए धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी सुमन्त्रकी ओर देखकर बोले—'आप महाराजको मेरे आगमनकी सूचना दे दें'॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका रानियोंसहित राजा दशरथके पास जाकर वनवासके लिये विदा माँगना, राजाका शोक और मूर्च्छा, श्रीरामका उन्हें समझाना तथा राजाका श्रीरामको हृदयसे लगाकर पुनः मूर्च्छित हो जाना

जब कमलनयन श्यामसुन्दर उपमारहित महापुरुष श्रीरामने सूत सुमन्त्रसे कहा—'आप पिताजीको मेरे आगमनकी सूचना दे दीजिये' तब श्रीरामकी प्रेरणासे शीघ्र ही भीतर जाकर सारथि सुमन्त्रने राजाका दर्शन किया। उनकी सारी इन्द्रियाँ संतापसे कलुषित हो रही थीं। वे लम्बी साँस खींच रहे थे॥ १-२॥

सुमन्त्रने देखा, पृथ्वीपति महाराज दशरथ राहुग्रस्त सूर्य, राखसे ढकी हुई आग तथा जलशून्य तालाबके समान श्रीहीन हो रहे हैं। उनका चित्त अत्यन्त व्याकुल है और वे श्रीरामका ही चिन्तन कर रहे हैं। तब महाप्राज्ञ सूतने महाराजको सम्बोधित करके हाथ जोड़कर कहा॥

पहले तो सूत सुमन्त्रने विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए महाराजकी अभ्युदय-कामना की; फिर भयसे व्याकुल मन्द-मधुर वाणीद्वारा यह बात कही—॥ ५॥

'पृथ्वीनाथ! आपके पुत्र ये सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह श्रीराम ब्राह्मणों तथा आश्रित सेवकोंको अपना सारा धन देकर द्वारपर खड़े हैं। आपका कल्याण हो, ये अपने सब सुहृदोंसे मिलकर—उनसे विदा लेकर इस समय आपका दर्शन करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो यहाँ आकर आपका दर्शन करें। राजन्! अब ये विशाल वनमें चले जायँगे, अतः किरणोंसे युक्त सूर्यकी भाँति समस्त राजोचित गुणसे सम्पन्न इन श्रीरामको आप भी जी भरकर देख लीजिये'॥ ६—८॥

यह सुनकर समुद्रके समान गम्भीर तथा आकाशकी भाँति निर्मल, सत्यवादी धर्मात्मा महाराज दशरथने उन्हें उत्तर दिया—॥ ९॥

'सुमन्त्र! यहाँ जो कोई भी मेरी स्त्रियाँ हैं, उन सबको बुलाओ। उन सबके साथ मैं श्रीरामको देखना चाहता हूँ'॥ १०॥

तब सुमन्त्रने बड़े वेगसे अन्तःपुरमें जाकर सब स्त्रियोंसे कहा—'देवियो! आपलोगोंको महाराज बुला रहे हैं, अतः वहाँ शीघ्र चलें'॥ ११॥

राजाकी आज्ञासे सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर वे सब रानियाँ स्वामीका आदेश समझकर उस भवनकी ओर चलीं॥ १२॥

कुछ-कुछ लाल नेत्रोंवाली साढ़े तीन सौ पतिव्रता युवती स्त्रियाँ महारानी कौसल्याको सब ओरसे घेरकर धीरे-धीरे उस भवनमें गयीं॥ १३॥

उन सबके आ जानेपर उन्हें देखकर पृथ्वीपति राजा दशरथने सूतसे कहा—'सुमन्त्र! अब मेरे पुत्रको ले आओ'॥

आज्ञा पाकर सुमन्त्र गये और श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीताको साथ लेकर शीघ्र ही महाराजके पास लौट आये॥ १५॥

महाराज दूरसे ही अपने पुत्रको हाथ जोड़कर आते देख सहसा अपने आसनसे उठ खड़े हुए। उस समय स्त्रियोंसे घिरे हुए वे नरेश शोकसे आर्त हो रहे थे॥

श्रीरामको देखते ही वे प्रजापालक महाराज बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े, किंतु उनके पास पहुँचनेके पहले ही दुःखसे व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये॥ १७॥

उस समय श्रीराम और महारथी लक्ष्मण बड़ी तेजीसे चलकर दुःखके कारण अचेत-से हुए शोकमग्न

महाराजके पास जा पहुँचे॥ १८॥

इतनेहीमें उस राजभवनके भीतर सहसा आभूषणोंकी ध्वनिके साथ सहस्रों स्त्रियोंका 'हा राम! हा राम!' यह आर्तनाद गूँज उठा॥ १९॥

श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई भी सीताके साथ रो पड़े और उन तीनोंने महाराजको दोनों भुजाओंसे उठाकर पलंगपर बिठा दिया॥ २०॥

शोकाश्रुके सागरमें डूबे हुए महाराज दशरथको दो घड़ीमें जब फिर चेत हुआ, तब श्रीरामने हाथ जोड़कर उनसे कहा—॥ २१॥

'महाराज! आप हमलोगोंके स्वामी हैं। मैं दण्डकारण्यको जा रहा हूँ और आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। आप अपनी कल्याणमयी दृष्टिसे मेरी ओर देखिये॥

'मेरे साथ लक्ष्मणको भी वनमें जानेकी आज्ञा दीजिये। साथ ही यह भी स्वीकार कीजिये कि सीता भी मेरे साथ वनको जाय। मैंने बहुत-से सच्चे कारण बताकर इन दोनोंको रोकनेकी चेष्टा की है, परंतु ये यहाँ रहना नहीं चाहते हैं; अतः दूसरोंको मान देनेवाले नरेश! आप शोक छोड़कर हम सबको—मुझको, लक्ष्मणको और सीताको भी उसी तरह वनमें जानेकी आज्ञा दीजिये, जैसे ब्रह्माजीने अपने पुत्र सनकादिकोंको तपके लिये वनमें जानेकी अनुमति दी थी'॥ २३-२४॥

इस प्रकार शान्तभावसे वनवासके लिये राजाकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर महाराजने उनसे कहा—॥ २५॥

'रघुनन्दन! मैं कैकेयीको दिये हुए वरके कारण मोहमें पड़ गया हूँ। तुम मुझे कैद करके स्वयं ही अब अयोध्याके राजा बन जाओ'॥ २६॥

महाराजके ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने दोनों हाथ जोड़कर पिताको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २७॥

'महाराज! आप सहस्रों वर्षोंतक इस पृथ्वीके अधिपति बने रहें। मैं तो अब वनमें ही निवास करूँगा। मुझे राज्य लेनेकी इच्छा नहीं है॥ २८॥

'नरेश्वर! चौदह वर्षोंतक वनमें घूम-फिरकर आपकी प्रतिज्ञा पूरी कर लेनेके पश्चात् मैं पुनः आपके युगल चरणोंमें मस्तक झुकाऊँगा'॥ २९॥

राजा दशरथ एक तो सत्यके बन्धनमें बँधे हुए थे, दूसरे एकान्तमें कैकेयी उन्हें श्रीरामको वनमें तुरंत भेजनेके लिये बाध्य कर रही थी—इस अवस्थामें वे आर्तभावसे रोते हुए वहाँ अपने प्रिय पुत्र श्रीरामसे बोले—॥ ३०॥

'तात! तुम कल्याणके लिये, वृद्धिके लिये और फिर लौट आनेके लिये शान्तभावसे जाओ। तुम्हारा मार्ग विघ्न-बाधाओंसे रहित और निर्भय हो॥ ३१॥

'बेटा रघुनन्दन! तुम सत्यस्वरूप और धर्मात्मा हो। तुम्हारे विचारको पलटना तो असम्भव है; परंतु रातभर और रह जाओ। सिर्फ एक रातके लिये सर्वथा अपनी यात्रा रोक दो। केवल एक दिन भी तो तुम्हें देखनेका सुख उठा लूँ॥ ३२-३३॥

'अपनी माताको और मुझको इस अवस्थामें देखकर आजकी इस रातमें यहीं रह जाओ। मेरे द्वारा सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंसे तृप्त होकर कल प्रातःकाल यहाँसे जाना॥ ३४॥

'मेरे प्रिय पुत्र श्रीराम! तुम सर्वथा दुष्कर कार्य कर रहे हो। मेरा प्रिय करनेके लिये ही तुमने इस प्रकार वनका आश्रय लिया है॥ ३५॥

'परंतु बेटा रघुनन्दन! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यह मुझे प्रिय नहीं है। मुझे तुम्हारा वनमें जाना अच्छा नहीं लगता। यह मेरी स्त्री कैकेयी राखमें छिपी हुई आगके समान भयंकर है। इसने अपने क्रूर अभिप्रायको छिपा रखा था। इसीने आज मुझे मेरे अभीष्ट संकल्पसे विचलित कर दिया है। कुलोचित सदाचारका विनाश करनेवाली इस कैकेयीने मुझे वरदानके लिये प्रेरित करके मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है। इसके द्वारा जो वञ्चना मुझे प्राप्त हुई है, उसीको तुम पार करना चाहते हो॥ ३६-३७॥

'पुत्र! तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाना चाहते हो। तुम्हारे लिये यह कोई अधिक आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम गुण और अवस्था दोनों ही दृष्टियोंसे मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो'॥ ३८॥

अपने शोकाकुल पिताका यह कथन सुनकर उस समय छोटे भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामने दुःखी होकर कहा—॥ ३९॥

'महाराज! आज यात्रा करके मैं जिन गुणों (लाभों) को पाऊँगा, उन्हें कल कौन मुझे देगा?* अतः मैं सम्पूर्ण कामनाओंके बदले आज यहाँसे निकल जाना ही

* 'प्राप्स्यामि······' इस आधे श्लोकका अर्थ यह भी हो सकता है कि आज यहाँ रहकर जिन उत्तमोत्तम अभीष्ट पदार्थोंको मैं पाऊँगा, उन्हें कलसे कौन देगा ?

अच्छा समझता हूँ और इसीका वरण करता हूँ॥

'राष्ट्र और यहाँके निवासी मनुष्योंसहित धनधान्यसे सम्पन्न यह सारी पृथ्वी मैंने छोड़ दी। आप इसे भरतको दे दें॥ ४१ ॥

'मेरा वनवासविषयक निश्चय अब बदल नहीं सकेगा। वरदायक नरेश! आपने देवासुर-संग्राममें कैकेयीको जो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्णरूपसे दीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४२½ ॥

'मैं आपकी उक्त आज्ञाका पालन करता हुआ चौदह वर्षोंतक वनमें वनचारी प्राणियोंके साथ निवास करूँगा। आपके मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये। आप यह सारी पृथ्वी भरतको दे दीजिये॥

'रघुनन्दन! मैंने अपने मनको सुख देने अथवा स्वजनोंका प्रिय करनेके उद्देश्यसे राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की थी। आपकी आज्ञाका यथावत्‌रूपसे पालन करनेके लिये ही मैंने उसे ग्रहण करनेकी अभिलाषा की थी॥ ४५ ॥

'आपका दुःख दूर हो जाय, आप इस प्रकार आँसू न बहावें। सरिताओंका स्वामी दुर्धर्ष समुद्र क्षुब्ध नहीं होता है—अपनी मर्यादाका त्याग नहीं करता है (इसी तरह आपको भी क्षुब्ध नहीं होना चाहिये)॥ ४६ ॥

'मुझे न तो इस राज्यकी, न सुखकी, न पृथ्वीकी, न इन सम्पूर्ण भोगोंकी, न स्वर्गकी और न जीवनकी ही इच्छा है॥ ४७ ॥

'पुरुषशिरोमणे! मेरे मनमें यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बनें। आपका वचन मिथ्या न होने पावे। यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभ कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ॥ ४८ ॥

'तात! प्रभो! अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। अतः आप इस शोकको अपने भीतर ही दबा लें। मैं अपने निश्चयके विपरीत कुछ नहीं कर सकता॥

'रघुनन्दन! कैकेयीने मुझसे यह याचना की कि 'राम! तुम वनको चले जाओ' मैंने वचन दिया था कि 'अवश्य जाऊँगा' उस सत्यका मुझे पालन करना है॥

'देव! बीचमें हमें देखने या हमसे मिलनेके लिये आप उत्कण्ठित न होंगे। शान्तस्वभाववाले मृगोंसे भरे हुए और भाँति-भाँतिके पक्षियोंके कलरवोंसे गूँजते हुए उस वनमें हमलोग बड़े आनन्दसे रहेंगे॥ ५१ ॥

'तात! पिता देवताओंके भी देवता माने गये हैं। अतः मैं देवता समझकर ही पिता (आप) की आज्ञाका पालन करूँगा॥ ५२ ॥

'नृपश्रेष्ठ! अब यह संताप छोड़िये। चौदह वर्ष बीत जानेपर आप फिर मुझे आया हुआ देखेंगे॥ ५३ ॥

'पुरुषसिंह! यहाँ जितने लोग आँसू बहा रहे हैं, इन सबको धैर्य बँधाना आपका कर्तव्य है; फिर आप स्वयं ही इतने विकल कैसे हो रहे हैं?॥ ५४ ॥

'यह नगर, यह राज्य और यह सारी पृथ्वी मैंने छोड़ दी। आप यह सब कुछ भरतको दे दीजिये। अब मैं आपके आदेशका पालन करता हुआ दीर्घकालतक वनमें निवास करनेके लिये यहाँसे यात्रा कर रहा हूँ॥

'मेरी छोड़ी हुई पर्वतखण्डों, नगरों और उपवनोंसहित इस सारी पृथ्वीका भरत कल्याणकारिणी मर्यादाओंमें स्थित रहकर पालन करें। नरेश्वर! आपने जो वचन दिया है, वह पूर्ण हो॥ ५६ ॥

'पृथ्वीनाथ! निष्पाप महाराज! सत्पुरुषोंद्वारा अनुमोदित आपकी आज्ञाका पालन करनेमें मेरा मन जैसा लगता है, वैसा बड़े-बड़े भोगोंमें तथा अपने किसी प्रिय पदार्थमें भी नहीं लगता; अतः मेरे लिये आपके मनमें जो दुःख है, वह दूर हो जाना चाहिये॥ ५७ ॥

'निष्पाप नरेश! आज आपको मिथ्यावादी बनाकर मैं अक्षय राज्य, सब प्रकारके भोग, वसुधाका आधिपत्य, मिथिलेशकुमारी सीता तथा अन्य किसी अभिलषित पदार्थको भी स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि 'आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो'॥ ५८ ॥

'मैं विचित्र वृक्षोंसे युक्त वनमें प्रवेश करके फल-मूलका भोजन करता हुआ वहाँके पर्वतों, नदियों और सरोवरोंको देख-देखकर सुखी होऊँगा; इसलिये आप अपने मनको शान्त कीजिये'॥ ५९ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर पुत्र-बिछोहके संकटमें पड़े हुए राजा दशरथने दुःख और संतापसे पीड़ित हो उन्हें छातीसे लगाया और फिर अचेत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय उनका शरीर जडकी भाँति कुछ भी चेष्टा न कर सका॥ ६० ॥

यह देख राजरानी कैकेयीको छोड़कर वहाँ एकत्र हुई अन्य सभी रानियाँ रो पड़ीं। सुमन्त्र भी रोते-रोते मूर्च्छित हो गये तथा वहाँ सब ओर हाहाकार मच गया॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

सुमन्त्रके समझाने और फटकारनेपर भी कैकेयीका टस-से-मस न होना

तदनन्तर होशमें आनेपर सारथि सुमन्त्र सहसा उठकर खड़े हो गये। उनके मनमें बड़ा संताप हुआ, जो अमङ्गलकारी था। वे क्रोधके मारे काँपने लगे। उनके शरीर और मुखकी पहली स्वाभाविक कान्ति बदल गयी। वे क्रोधसे आँखें लाल करके दोनों हाथोंसे सिर पीटने लगे और बारम्बार लम्बी साँस खींचकर, हाथ-से-हाथ मलकर, दाँत कटकटाकर राजा दशरथके मनकी वास्तविक अवस्था देखते हुए अपने वचनरूपी तीखे बाणोंसे कैकेयीके हृदयको कम्पित-सा करने लगे॥ १—३॥

अपने अशुभ एवं अनुपम वचनरूपी वज्रसे कैकेयीके सारे मर्मस्थानोंको विदीर्ण-से करते हुए सुमन्त्रने उससे इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ ४॥

'देवि! जब तुमने सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के स्वामी स्वयं अपने पति महाराज दशरथका ही त्याग कर दिया, तब इस जगत्‌में कोई ऐसा कुकर्म नहीं है, जिसे तुम न कर सको; मैं तो समझता हूँ कि तुम पतिकी हत्या करनेवाली तो हो ही; अन्ततः कुलघातिनी भी हो॥ ५-६॥

'ओह! जो देवराज इन्द्रके समान अजेय, पर्वतके समान अकम्पनीय और महासागरके समान क्षोभरहित हैं, उन महाराज दशरथको भी तुम अपने कर्मोंसे संतप्त कर रही हो॥ ७॥

राजा दशरथ तुम्हारे पति, पालक और वरदाता हैं। तुम इनका अपमान न करो। नारियोंके लिये पतिकी इच्छाका महत्त्व करोड़ों पुत्रोंसे भी अधिक है॥ ८॥

'इस कुलमें राजाका परलोकवास हो जानेपर उसके पुत्रोंकी अवस्थाका विचार करके जो ज्येष्ठ पुत्र होते हैं, वे ही राज्य पाते हैं। राजकुलके इस परम्परागत आचारको तुम इन इक्ष्वाकुवंशके स्वामी महाराज दशरथके जीते-जी ही मिटा देना चाहती हो॥ ९॥

'तुम्हारे पुत्र भरत राजा हो जायँ और इस पृथ्वीका शासन करें; किंतु हमलोग तो वहीं चले जायँगे जहाँ श्रीराम जायँगे॥ १०॥

'तुम्हारे राज्यमें कोई भी ब्राह्मण निवास नहीं करेगा; यदि तुम आज वैसा मर्यादाहीन कर्म करोगी तो निश्चय ही हम सब लोग उसी मार्गपर चले जायँगे, जिसका श्रीरामने सेवन किया है॥ ११$\frac{1}{2}$॥

'सम्पूर्ण बन्धु-बान्धव और सदाचारी ब्राह्मण भी तुम्हारा त्याग कर देंगे। देवि! फिर इस राज्यको पाकर तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा। ओह! तुम ऐसा मर्यादाहीन कर्म करना चाहती हो॥ १२-१३॥

'मुझे तो यह देखकर आश्चर्य-सा हो रहा है कि तुम्हारे इतने बड़े अत्याचार करनेपर भी पृथ्वी तुरंत फट क्यों नहीं जाती?॥ १४॥

'अथवा बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंके धिक्कारपूर्ण वाग्दण्ड (शाप) जो देखनेमें भयंकर और जलाकर भस्म कर देनेवाले होते हैं, श्रीरामको घरसे निकालनेके लिये तैयार खड़ी हुई तुम-जैसी पाषाणहृदयाका सर्वनाश क्यों नहीं कर डालते हैं?॥ १५॥

'भला आमको कुल्हाड़ीसे काटकर उसकी जगह नीमका सेवन कौन करेगा? जो आमकी जगह नीमको ही दूधसे सींचता है, उसके लिये भी यह नीम मीठा फल देनेवाला नहीं हो सकता (अतः वरदानके बहाने श्रीरामको वनवास देकर कैकेयीके चित्तको संतुष्ट करना राजाके लिये कभी सुखद परिणामका जनक नहीं हो सकता)॥ १६॥

'कैकेयि! मैं समझता हूँ कि तुम्हारी माताका अपने कुलके अनुरूप जैसा स्वभाव था, वैसा ही तुम्हारा भी है। लोकमें कही जानेवाली यह कहावत सत्य ही है कि नीमसे मधु नहीं टपकता॥ १७॥

'तुम्हारी माताके दुराग्रहकी बात भी हम जानते हैं। इसके विषयमें पहले जैसा सुना गया है, वह बताया जाता है। एक समय किसी वर देनेवाले साधुने तुम्हारे पिताको अत्यन्त उत्तम वर दिया था॥ १८॥

'उस वरके प्रभावसे केकयनरेश समस्त प्राणियोंकी बोली समझने लगे। तिर्यक् योनिमें पड़े हुए प्राणियोंकी बातें भी उनकी समझमें आ जाती थीं॥ १९॥

'एक दिन तुम्हारे महातेजस्वी पिता शय्यापर लेटे हुए थे। उसी समय जृम्भ नामक पक्षीकी आवाज उनके कानोंमें पड़ी। उसकी बोलीका अभिप्राय उनकी समझमें आ गया। अतः वे वहाँ कई बार हँसे॥ २०॥

'उसी शय्यापर तुम्हारी माँ भी सोयी थी। वह यह

समझकर कि राजा मेरी ही हँसी उड़ा रहे हैं, कुपित हो उठी और गलेमें मौतकी फाँसी लगानेकी इच्छा रखती हुई बोली—'सौम्य! नरेश्वर! तुम्हारे हँसनेका क्या कारण है, यह मैं जानना चाहती हूँ'॥ २१॥

'तब राजाने उस देवीसे कहा—'रानी! यदि मैं अपने हँसनेका कारण बता दूँ तो उसी क्षण मेरी मृत्यु हो जायगी, इसमें संशय नहीं है'॥ २२॥

'देवि! यह सुनकर तुम्हारी रानी माताने तुम्हारे पिता केकयराजसे फिर कहा—'तुम जीओ या मरो, मुझे कारण बता दो। भविष्यमें तुम फिर मेरी हँसी नहीं उड़ा सकोगे'॥ २३॥

'अपनी प्यारी रानीके ऐसा कहनेपर केकयनरेशने उस वर देनेवाले साधुके पास जाकर सारा समाचार ठीक-ठीक कह सुनाया॥ २४॥

'तब उस वर देनेवाले साधुने राजाको उत्तर दिया— 'महाराज! रानी मरे या घरसे निकल जाय; तुम कदापि यह बात उसे न बताना'॥ २५॥

'प्रसन्न चित्तवाले उस साधुका यह वचन सुनकर केकयनरेशने तुम्हारी माताको तुरंत घरसे निकाल दिया और स्वयं कुबेरके समान विहार करने लगे॥ २६॥

'तुम भी इसी प्रकार दुर्जनोंके मार्गपर स्थित हो पापपर ही दृष्टि रखकर मोहवश राजासे यह अनुचित आग्रह कर रही हो॥ २७॥

'आज मुझे यह लोकोक्ति सोलह आने सच मालूम होती है कि पुत्र पिताके समान होते हैं और कन्याएँ माताके समान॥ २८॥

'तुम ऐसी न बनो—इस लोकोक्तिको अपने जीवनमें चरितार्थ न करो। राजाने जो कुछ कहा है, उसे स्वीकार करो (श्रीरामका राज्याभिषेक होने दो)। अपने पतिकी इच्छाका अनुसरण करके इस जन-समुदायको यहाँ शरण देनेवाली बनो॥ २९॥

'पापपूर्ण विचार रखनेवाले लोगोंके बहकावेमें आकर तुम देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी अपने लोक-प्रतिपालक स्वामीको अनुचित कर्ममें न लगाओ॥ ३०॥

'देवि! कमलनयन श्रीमान् राजा दशरथ पापसे दूर रहते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं करेंगे॥ ३१॥

'श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयोंमें ज्येष्ठ, उदार, कर्मठ, स्वधर्मके पालक, जीवजगत्के रक्षक और बलवान् हैं। इनका इस राज्यपर अभिषेक होने दो॥ ३२॥

'देवि! यदि श्रीराम अपने पिता राजा दशरथको छोड़कर वनको चले जायँगे तो संसारमें तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी॥ ३३॥

'अतः श्रीरामचन्द्रजी ही अपने राज्यका पालन करें और तुम निश्चिन्त होकर बैठो। श्रीरामके सिवा दूसरा कोई राजा इस श्रेष्ठ नगरमें रहकर तुम्हारे अनुकूल आचरण नहीं कर सकता॥ ३४॥

'श्रीरामके युवराजपदपर प्रतिष्ठित हो जानेके बाद महाधनुर्धर राजा दशरथ पूर्वजोंके वृत्तान्तका स्मरण करके स्वयं वनमें प्रवेश करेंगे'॥ ३५॥

इस प्रकार सुमन्त्रने हाथ जोड़कर कैकेयीको उस राजभवनमें सान्त्वनापूर्ण तथा तीखे वचनोंसे भी बारम्बार विचलित करनेकी चेष्टा की; किंतु वह टस-से-मस न हुई। देवी कैकेयीके मनमें न तो क्षोभ हुआ और न दुःख ही। उस समय उसके चेहरेके रंगमें भी कोई फर्क पड़ता नहीं दिखायी दिया॥ ३६-३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

राजा दशरथका श्रीरामके साथ सेना और खजाना भेजनेका आदेश, कैकेयीद्वारा इसका विरोध, सिद्धार्थका कैकेयीको समझाना तथा राजाका श्रीरामके साथ जानेकी इच्छा प्रकट करना

तब इक्ष्वाकुकुलनन्दन राजा दशरथ वहाँ अपनी प्रतिज्ञासे पीड़ित हो आँसू बहाते हुए लम्बी साँस खींचकर सुमन्त्रसे फिर इस प्रकार बोले—॥ १॥

'सूत! तुम शीघ्र ही रत्नोंसे भरी-पूरी चतुरङ्गिणी सेनाको श्रीरामके पीछे-पीछे जानेकी आज्ञा दो॥ २॥

'रूपसे आजीविका चलाने और सरस वचन

बोलनेवाली स्त्रियाँ तथा महाधनी एवं विक्रययोग्य द्रव्योंका प्रसारण करनेमें कुशल वैश्य राजकुमार श्रीरामकी सेनाओंको सुशोभित करें॥ ३॥

'जो श्रीरामके पास रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं तथा जिन मल्लोंसे ये उनका पराक्रम देखकर प्रसन्न रहते हैं, उन सबको अनेक प्रकारका धन देकर उन्हें भी इनके साथ जानेकी आज्ञा दे दो॥ ४॥

'मुख्य-मुख्य आयुध, नगरके निवासी, छकड़े तथा वनके भीतरी रहस्यको जाननेवाले व्याध ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामके पीछे-पीछे जायँ॥ ५॥

'वे रास्तेमें आये हुए मृगों एवं हाथियोंको पीछे लौटाते, जंगली मधुका पान करते और नाना प्रकारकी नदियोंको देखते हुए अपने राज्यका स्मरण नहीं करेंगे॥

'श्रीराम निर्जन वनमें निवास करनेके लिये जा रहे हैं, अतः मेरा खजाना और अन्नभण्डार—ये दोनों वस्तुएँ इनके साथ जायँ॥ ७॥

'ये वनके पावन प्रदेशोंमें यज्ञ करेंगे, उनमें आचार्य आदिको पर्याप्त दक्षिणा देंगे तथा ऋषियोंसे मिलकर वनमें सुखपूर्वक रहेंगे॥ ८॥

'महाबाहु भरत अयोध्याका पालन करेंगे। श्रीमान् रामको सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न करके यहाँसे भेजा जाय'॥ ९॥

जब महाराज दशरथ ऐसी बातें कहने लगे, तब कैकेयीको बड़ा भय हुआ। उसका मुँह सूख गया और उसका स्वर भी रुँध गया॥ १०॥

वह केकयराजकुमारी विषादग्रस्त एवं त्रस्त होकर सूखे मुँहसे राजाकी ओर ही मुँह करके बोली— ॥ ११॥

'श्रेष्ठ महाराज! जिसका सारभाग पहलेसे ही पी लिया गया हो, उस आस्वादरहित सुराको जैसे उसका सेवन करनेवाले लोग नहीं ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार इस धनहीन और सूने राज्यको, जो कदापि सेवन करनेयोग्य नहीं रह जायगा, भरत कदापि नहीं ग्रहण करेंगे'॥ १२॥

कैकेयी लाज छोड़कर जब वह अत्यन्त दारुण वचन बोलने लगी, तब राजा दशरथने उस विशाललोचना कैकेयीसे इस प्रकार कहा— ॥ १३॥

'अनार्ये! अहितकारिणि! तू रामको वनवास देनेके दुर्वह भारमें लगाकर जब मैं उस भारको ढो रहा हूँ, उस अवस्थामें क्यों अपने वचनोंका चाबुक मारकर मुझे पीड़ा दे रही है? इस समय जो कार्य तूने आरम्भ किया है अर्थात् श्रीरामके साथ सेना और सामग्री भेजनेमें जो प्रतिबन्ध लगाया है, इसके लिये तूने पहले ही क्यों नहीं प्रार्थना की थी? (अर्थात् पहले ही यह क्यों नहीं कह दिया था कि श्रीरामको अकेले वनमें जाना पड़ेगा, उनके साथ सेना आदि सामग्री नहीं जा सकती)'॥ १४॥

राजाका यह क्रोधयुक्त वचन सुनकर सुन्दरी कैकेयी उनकी अपेक्षा दूना क्रोध करके उनसे इस प्रकार बोली— ॥ १५॥

'महाराज! आपके ही वंशमें पहले राजा सगर हो गये हैं, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्जको निकालकर उसके लिये राज्यका दरवाजा सदाके लिये बंद कर दिया था। इसी तरह इनको भी यहाँसे निकल जाना चाहिये'॥ १६॥

उसके ऐसा कहनेपर राजा दशरथने कहा— 'धिक्कार है।' वहाँ जितने लोग बैठे थे सभी लाजसे गड़ गये; किंतु कैकेयी अपने कथनके अनौचित्यको अथवा राजाद्वारा दिये गये धिक्कारके औचित्यको नहीं समझ सकी॥ १७॥

उस समय वहाँ राजाके प्रधान और वयोवृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ बैठे थे। वे बड़े ही शुद्ध स्वभाववाले और राजाके विशेष आदरणीय थे। उन्होंने कैकेयीसे इस प्रकार कहा— ॥ १८॥

'देवि! असमञ्ज बड़ी दुष्ट बुद्धिका राजकुमार था। वह मार्गपर खेलते हुए बालकोंको पकड़कर सरयूके जलमें फेंक देता था और ऐसे ही कार्योंसे अपना मनोरञ्जन करता था॥ १९॥

'उसकी यह करतूत देखकर सभी नगरनिवासी कुपित हो राजाके पास जाकर बोले—'राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले महाराज! या तो आप अकेले असमञ्जको लेकर रहिये या इन्हें निकालकर हमें इस नगरमें रहने दीजिये'॥ २०॥

'तब राजाने उनसे पूछा—'तुम्हें असमञ्जसे किस कारण भय हुआ है?' राजाके पूछनेपर उन प्रजाजनोंने यह बात कही— ॥ २१॥

'महाराज! यह हमारे खेलते हुए छोटे-छोटे बच्चोंको पकड़ लेते हैं और जब वे बहुत घबरा जाते हैं, तब उन्हें सरयूमें फेंक देते हैं। मूर्खतावश ऐसा करके इन्हें अनुपम आनन्द प्राप्त होता है'॥ २२॥

'उन प्रजाजनोंकी वह बात सुनकर राजा सगरने उनका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने उस अहितकारक

दुष्ट पुत्रको त्याग दिया॥ २३॥

'पिताने अपने उस पुत्रको पत्नी और आवश्यक सामग्रीसहित शीघ्र रथपर बिठाकर अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'इसे जीवनभरके लिये राज्यसे बाहर निकाल दो'॥ २४॥

'असमञ्जने फाल और पिटारी लेकर पर्वतोंकी दुर्गम गुफाओंको ही अपने निवासके योग्य देखा और कन्द आदिके लिये वह सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरने लगा। वह जैसा कि बताया गया है, पापाचारी था, इसलिये परम धार्मिक राजा सगरने उसको त्याग दिया था। श्रीरामने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण इन्हें इस तरह राज्य पानेसे रोका जा रहा है?॥

'हमलोग तो श्रीरामचन्द्रजीमें कोई अवगुण नहीं देखते हैं; जैसे (शुक्लपक्षकी द्वितीयाके) चन्द्रमामें मलिनताका दर्शन दुर्लभ है, उसी प्रकार इनमें कोई पाप या अपराध ढूँढ़नेसे भी नहीं मिल सकता॥ २७॥

'अथवा देवि! यदि तुम्हें श्रीरामचन्द्रजीमें कोई दोष दिखायी देता हो तो आज उसे ठीक-ठीक बताओ। उस दशामें श्रीरामको निकाल दिया जा सकता है॥ २८॥

'जिसमें कोई दुष्टता नहीं है, जो सदा सन्मार्गमें ही स्थित है, ऐसे पुरुषका त्याग धर्मसे विरुद्ध माना जाता है। ऐसा धर्मविरोधी कर्म तो इन्द्रके भी तेजको दग्ध कर देगा॥ २९॥

'अत: देवि! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। शुभानने! तुम्हें लोकनिन्दासे भी बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये'॥ ३०॥

सिद्धार्थकी बातें सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त थके हुए स्वरसे शोकाकुल वाणीमें कैकेयीसे इस प्रकार बोले—॥ ३१॥

'पापिनि! क्या तुझे यह बात नहीं रुची? तुझे मेरे या अपने हितका भी बिलकुल ज्ञान नहीं है? तू दु:खद मार्गका आश्रय लेकर ऐसी कुचेष्टा कर रही है। तेरी यह सारी चेष्टा साधु पुरुषोंके मार्गके विपरीत है॥ ३२॥

'अब मैं भी यह राज्य, धन और सुख छोड़कर श्रीरामके पीछे चला जाऊँगा। ये सब लोग भी उन्हींके साथ जायँगे। तू अकेली राजा भरतके साथ चिरकालतक सुखपूर्वक राज्य भोगती रह'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका वल्कल-वस्त्र-धारण, सीताके वल्कल-धारणसे रनिवासकी स्त्रियोंको खेद तथा गुरु वसिष्ठका कैकेयीको फटकारते हुए सीताके वल्कल-धारणका अनौचित्य बताना

प्रधान मन्त्रीकी पूर्वोक्त बात सुनकर विनयके ज्ञाता श्रीरामने उस समय राजा दशरथसे विनीत होकर कहा—॥ १॥

'राजन्! मैं भोगोंका परित्याग कर चुका हूँ। मुझे जंगलके फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करना है। जब मैं सब ओरसे आसक्ति छोड़ चुका हूँ, तब मुझे सेनासे क्या प्रयोजन है?॥ २॥

'जो श्रेष्ठ गजराजका दान करके उसके रस्सेमें मन लगाता है—लोभवश रस्सेको रख लेना चाहता है, वह अच्छा नहीं करता; क्योंकि उत्तम हाथीका त्याग करनेवाले पुरुषको उसके रस्सेमें आसक्ति रखनेकी क्या आवश्यकता है?॥ ३॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! इसी तरह मुझे सेना लेकर क्या करना है? मैं ये सारी वस्तुएँ भरतको अर्पित करनेकी अनुमति देता हूँ। मेरे लिये तो (माता कैकेयीकी दासियाँ) चीर (चिथड़े या वल्कल-वस्त्र) ला दें॥ ४॥

'दासियो! जाओ, खन्ती और पेटारी अथवा कुदारी और खाँची ये दोनों वस्तुएँ लाओ। चौदह वर्षोंतक वनमें रहनेके लिये ये चीजें उपयोगी हो सकती हैं'॥

कैकेयी लाज-संकोच छोड़ चुकी थी। वह स्वयं ही जाकर बहुत-सी चीर ले आयी और जनसमुदायमें श्रीरामचन्द्रजीसे बोली, 'लो, पहन लो'॥ ६॥

पुरुषसिंह श्रीरामने कैकेयीके हाथसे दो चीर ले लिये और अपने महीन वस्त्र उतारकर मुनियोंके-से वस्त्र धारण कर लिये॥ ७॥

इसी प्रकार लक्ष्मणने भी अपने पिताके सामने ही दोनों सुन्दर वस्त्र उतारकर तपस्वियोंके-से वल्कल-वस्त्र पहन लिये॥ ८॥

तदनन्तर रेशमी-वस्त्र पहनने और धर्मपर ही दृष्टि रखनेवाली धर्मज्ञा शुभलक्षणा जनकनन्दिनी सीता अपने पहननेके लिये भी चीरवस्त्रको प्रस्तुत देख उसी प्रकार डर गयीं, जैसे मृगी बिछे हुए जालको देखकर भयभीत हो जाती है। वे कैकेयीके हाथसे दो वल्कल-वस्त्र लेकर लज्जित-सी हो गयीं। उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ और नेत्रोंमें आँसू भर आये। उस समय उन्होंने गन्धर्वराजके समान तेजस्वी पतिसे इस प्रकार पूछा—'नाथ! वनवासी मुनिलोग चीर कैसे बाँधते हैं?' यह कहकर उसे धारण करनेमें कुशल न होनेके कारण सीता बारम्बार मोहमें पड़ जाती थीं—भूल कर बैठती थीं॥

चीर-धारणमें कुशल न होनेसे जनकनन्दिनी सीता लज्जित हो एक वल्कल गलेमें डाल दूसरा हाथमें लेकर चुपचाप खड़ी रहीं॥ १३॥

तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीराम जल्दीसे उनके पास आकर स्वयं अपने हाथोंसे उनके रेशमी वस्त्रके ऊपर वल्कल-वस्त्र बाँधने लगे॥ १४॥

सीताको उत्तम चीरवस्त्र पहनाते हुए श्रीरामकी ओर देखकर रनवासकी स्त्रियाँ अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं॥ १५॥

वे सब अत्यन्त खिन्न होकर उदीप्त तेजवाले श्रीरामसे बोलीं—'बेटा! मनस्विनी सीताको इस प्रकार वनवासकी आज्ञा नहीं दी गयी है॥ १६॥

'प्रभो! तुम पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये जबतक निर्जन वनमें जाकर रहोगे, तबतक इसीको देखकर हमारा जीवन सफल होने दो॥ १७॥

'बेटा! तुम लक्ष्मणको अपना साथी बनाकर उनके साथ वनको जाओ, परंतु यह कल्याणी सीता तपस्वी मुनिकी भाँति वनमें निवास करनेके योग्य नहीं है॥ १८॥

'पुत्र! तुम हमारी यह याचना सफल करो। भामिनी सीता यहीं रहे। तुम तो नित्य धर्मपरायण हो अतः स्वयं इस समय यहाँ नहीं रहना चाहते हो (परंतु सीताको तो रहने दो)'॥ १९॥

माताओंकी ऐसी बातें सुनते हुए भी दशरथ-नन्दन श्रीरामने सीताको वल्कल-वस्त्र पहना ही दिया। पतिके समान शीलस्वभाववाली सीताके वल्कल धारण कर लेनेपर राजाके गुरु वसिष्ठजीके नेत्रोंमें आँसू भर आया। उन्होंने सीताको रोककर कैकेयीसे कहा—॥ २०-२१॥

'मर्यादाका उल्लङ्घन करके अधर्मकी ओर पैर बढ़ानेवाली दुर्बुद्धि कैकेयी! तू केकयराजके कुलकी जीती-जागती कलङ्क है। अरी! राजाको धोखा देकर अब तू सीमाके भीतर नहीं रहना चाहती है?॥ २२॥

'शीलका परित्याग करनेवाली दुष्टे! देवी सीता वनमें नहीं जायँगी। रामके लिये प्रस्तुत हुए राजसिंहासनपर ये ही बैठेंगी॥ २३॥

'सम्पूर्ण गृहस्थोंकी पत्नियाँ उनका आधा अङ्ग हैं। इस तरह सीता देवी भी श्रीरामकी आत्मा हैं; अतः उनकी जगह ये ही इस राज्यका पालन करेंगी॥ २४॥

'यदि विदेहनन्दिनी सीता श्रीरामके साथ वनमें जायँगी तो हमलोग भी इनके साथ चले जायँगे। यह सारा नगर भी चला जायगा और अन्तःपुरके रक्षक भी चले जायँगे। अपनी पत्नीके साथ श्रीरामचन्द्रजी जहाँ निवास करेंगे, वहीं इस राज्य और नगरके लोग भी धन-दौलत और आवश्यक सामान लेकर चले जायँगे॥

'भरत और शत्रुघ्न भी चीरवस्त्र धारण करके वनमें रहेंगे और वहाँ निवास करनेवाले अपने बड़े भाई श्रीरामकी सेवा करेंगे॥ २७॥

'फिर तू वृक्षोंके साथ अकेली रहकर इस निर्जन एवं सूनी पृथ्वीका राज्य करना। तू बड़ी दुराचारिणी है और प्रजाका अहित करनेमें लगी हुई है॥ २८॥

'याद रख, श्रीराम जहाँके राजा न होंगे, वह राज्य राज्य नहीं रह जायगा—जंगल हो जायगा तथा श्रीराम जहाँ निवास करेंगे, वह वन एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायगा॥ २९॥

'यदि भरत राजा दशरथसे पैदा हुए हैं तो पिताके प्रसन्नतापूर्वक दिये बिना इस राज्यको कदापि लेना नहीं चाहेंगे तथा तेरे साथ पुत्रवत् बर्ताव करनेके लिये भी यहाँ बैठे रहनेकी इच्छा नहीं करेंगे॥ ३०॥

'तू पृथ्वी छोड़कर आसमानमें उड़ जाय तो भी अपने पितृकुलके आचार-व्यवहारको जाननेवाले भरत उसके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे॥ ३१॥

'तूने पुत्रका प्रिय करनेकी इच्छासे वास्तवमें उसका अप्रिय ही किया है; क्योंकि संसारमें कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो श्रीरामका भक्त न हो॥ ३२॥

'कैकेयि! तू आज ही देखेगी कि वनको जाते हुए

श्रीरामके साथ पशु, सर्प, मृग और पक्षी भी चले जा रहे हैं। औरोंकी तो बात ही क्या, वृक्ष भी उनके साथ जानेको उत्सुक हैं॥ ३३॥

'देवि! सीता तेरी पुत्रवधू हैं। इनके शरीरसे वल्कल-वस्त्र हटाकर तू इन्हें पहननेके लिये उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण दे। इनके लिये वल्कल-वस्त्र देना कदापि उचित नहीं है।' ऐसा कहकर वसिष्ठने उसे जानकीको वल्कल-वस्त्र पहनानेसे मना किया॥ ३४॥

वे फिर बोले—'केकयराजकुमारी! तूने अकेले श्रीरामके लिये ही वनवासका वर माँगा है (सीताके लिये नहीं); अतः ये राजकुमारी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सदा शृङ्गार धारण करके वनमें श्रीरामचन्द्रजीके साथ निवास करें॥ ३५॥

'राजकुमारी सीता मुख्य-मुख्य सेवकों तथा सवारियोंके साथ सब प्रकारके वस्त्रों और आवश्यक उपकरणोंसे सम्पन्न होकर वनकी यात्रा करें। तूने वर माँगते समय पहले सीताके वनवासकी कोई चर्चा नहीं की थी (अतः इन्हें वल्कल-वस्त्र नहीं पहनाया जा सकता)'॥

ब्राह्मणशिरोमणि अप्रतिम प्रभावशाली राजगुरु महर्षि वसिष्ठके ऐसा कहनेपर भी सीता अपने प्रियतम पतिके समान ही वेशभूषा धारण करनेकी इच्छा रखकर उस चीर-धारणसे विरत नहीं हुईं॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

राजा दशरथका सीताको वल्कल धारण कराना अनुचित बताकर कैकेयीको फटकारना और श्रीरामका उनसे कौसल्यापर कृपादृष्टि रखनेके लिये अनुरोध करना

सीताजी सनाथ होकर भी जब अनाथकी भाँति चीर-वस्त्र धारण करने लगीं, तब सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे—'राजा दशरथ! तुम्हें धिक्कार है!'॥ १॥

वहाँ होनेवाले उस कोलाहलसे दुःखी हो इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथने अपने जीवन, धर्म और यशकी उत्कट इच्छा त्याग दी। फिर वे गरम साँस खींचकर अपनी भार्या कैकेयीसे इस प्रकार बोले— 'कैकेयि! सीता कुश-चीर (वल्कल-वस्त्र) पहनकर वनमें जानेके योग्य नहीं है॥ २-३॥

'यह सुकुमारी है, बालिका है और सदा सुखोंमें ही पली है। मेरे गुरुजी ठीक कहते हैं कि यह सीता वनमें जाने योग्य नहीं है॥ ४॥

'राजाओंमें श्रेष्ठ जनककी यह तपस्विनी पुत्री क्या किसीका भी कुछ बिगाड़ती है? जो इस प्रकार जन-समुदायके बीच किसी किंकर्तव्यविमूढ़ भिक्षुकीके समान चीर धारण करके खड़ी है?॥ ५॥

'जनकनन्दिनी अपने चीर-वस्त्र उतार डाले। 'यह इस रूपमें वन जाय' ऐसी कोई प्रतिज्ञा मैंने पहले नहीं की है और न किसीको इस तरहका वचन ही दिया है। अतः राजकुमारी सीता सम्पूर्ण वस्त्रालंकारोंसे सम्पन्न हो सब प्रकारके रत्नोंके साथ जिस तरह भी वह सुखी रह सके, उसी तरह वनको जा सकती है॥ ६॥

'मैं जीवित रहनेयोग्य नहीं हूँ। मैंने तेरे वचनोंमें बँधकर एक तो यों ही नियम (शपथ) पूर्वक बड़ी क्रूर प्रतिज्ञा कर डाली है, दूसरे तूने अपनी नादानीके कारण सीताको इस तरह चीर पहनाना प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार बाँसका फूल उसीको सुखा डालता है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञा मुझीको भस्म किये डालती है॥ ७॥

'नीच पापिनि! यदि श्रीरामने तेरा कोई अपराध किया है तो (उन्हें तो तू वनवास दे ही चुकी) विदेहनन्दिनी सीताने ऐसा दण्ड पानेयोग्य तेरा कौन-सा अपकार कर डाला है?॥ ८॥

'जिसके नेत्र हरिणीके नेत्रोंके समान खिले हुए हैं, जिसका स्वभाव अत्यन्त कोमल एवं मधुर है, वह मनस्विनी जनकनन्दिनी तेरा कौन-सा अपराध कर रही है?॥ ९॥

'पापिनि! तूने श्रीरामको वनवास देकर ही पूरा पाप कमा लिया है। अब सीताको भी वनमें भेजने और वल्कल पहनाने आदिका अत्यन्त दुःखद कार्य करके फिर तू इतने पातक किसलिये बटोर रही है?॥ १०॥

'देवि! श्रीराम जब अभिषेकके लिये यहाँ आये थे, उस समय तूने उनसे जो कुछ कहा था, उसे सुनकर मैंने उतनेके लिये ही प्रतिज्ञा की थी॥ ११॥

'उसका उल्लङ्घन करके जो तू मिथिलेशकुमारी

जानकीको भी वल्कल-वस्त्र पहने देखना चाहती है, इससे जान पड़ता है, तुझे नरकमें ही जानेकी इच्छा हो रही है'॥ १२॥

राजा दशरथ सिर नीचा किये बैठे हुए जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय वनकी ओर जाते हुए श्रीरामने पितासे इस प्रकार कहा—॥ १३॥

'धर्मात्मन्! ये मेरी यशस्विनी माता कौसल्या अब वृद्ध हो चली हैं। इनका स्वभाव बहुत ही उच्च और उदार है। देव! यह कभी आपकी निन्दा नहीं करती हैं। इन्होंने पहले कभी ऐसा भारी संकट नहीं देखा होगा। वरदायक नरेश! ये मेरे न रहनेसे शोकके समुद्रमें डूब जायँगी। अतः आप सदा इनका अधिक सम्मान करते रहें॥ १४-१५॥

'आप पूज्यतम पतिसे सम्मानित हो जिस प्रकार यह पुत्रशोकका अनुभव न कर सकें और मेरा चिन्तन करती हुई भी आपके आश्रयमें ही ये मेरी तपस्विनी माता जीवन धारण करें, ऐसा प्रयत्न आपको करना चाहिये॥ १६॥

'इन्द्रके समान तेजस्वी महाराज! ये निरन्तर अपने बिछुड़े हुए बेटेको देखनेके लिये उत्सुक रहेंगी। कहीं ऐसा न हो मेरे वनमें रहते समय ये शोकसे कातर हो अपने प्राणोंको त्याग करके यमलोकको चली जायँ। अतः आप मेरी माताको सदा ऐसी ही परिस्थितिमें रखें, जिससे उक्त आशङ्काके लिये अवकाश न रह जाय'॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

राजा दशरथका विलाप, उनकी आज्ञासे सुमन्त्रका रामके लिये रथ जोतकर लाना, कोषाध्यक्षका सीताको बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण देना, कौसल्याका सीताको पतिसेवाका उपदेश, सीताके द्वारा उसकी स्वीकृति तथा श्रीरामका अपनी मातासे पिताके प्रति दोषदृष्टि न रखनेका अनुरोध करके अन्य माताओंसे भी विदा माँगना

श्रीरामकी बात सुनकर और उन्हें मुनिवेष धारण किये देख स्त्रियोंसहित राजा दशरथ शोकसे अचेत हो गये॥ १॥

दुःखसे संतप्त होनेके कारण वे श्रीरामकी ओर भर आँख देख भी न सके और देखकर भी मनमें दुःख होनेके कारण उन्हें कुछ उत्तर न दे सके॥ २॥

दो घड़ीतक अचेत-सा रहनेके बाद जब उन्हें होश हुआ, तब वे महाबाहु नरेश श्रीरामका ही चिन्तन करते हुए दुःखी होकर विलाप करने लगे—॥ ३॥

'मालूम होता है, मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही बहुत-सी गौओंका उनके बछड़ोंसे विछोह कराया है अथवा अनेक प्राणियोंकी हिंसा की है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह संकट आ पड़ा है॥ ४॥

'समय पूरा हुए बिना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते; तभी तो कैकेयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है॥ ५॥

'ओह! अपने अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीन वस्त्र त्यागकर तपस्वियोंके-से वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ (फिर भी मेरे प्राण नहीं निकलते हैं)॥ ६॥

'इस वरदानरूप शठताका आश्रय लेकर अपने स्वार्थसाधनके प्रयत्नमें लगी हुई एकमात्र कैकेयीके कारण ये सब लोग महान् कष्टमें पड़ गये हैं'॥ ७॥

'ऐसी बात कहते-कहते राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे एक ही बार 'हे राम!' कहकर मूर्च्छित हो गये। आगे कुछ न बोल सके'॥ ८॥

दो घड़ी बाद होशमें आते ही वे महाराज आँसू-भरे नेत्रोंसे देखते हुए सुमन्त्रसे इस प्रकार बोले—॥ ९॥

'तुम सवारीके योग्य एक रथको उसमें उत्तम घोड़े जोतकर यहाँ ले आओ और इन महाभाग श्रीरामको उसपर बिठाकर इस जनपदसे बाहरतक पहुँचा आओ॥

'अपने श्रेष्ठ वीर पुत्रको स्वयं माता-पिता ही जब घरसे निकालकर वनमें भेज रहे हैं, तब ऐसा मालूम होता है कि शास्त्रमें गुणवान् पुरुषोंके गुणोंका यही फल बताया जाता है'॥ ११॥

राजाकी आज्ञा शिरोधार्य करके शीघ्रगामी सुमन्त्र गये और उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित रथ जोतकर ले आये॥

फिर सूत सुमन्त्रने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! राजकुमार श्रीरामके लिये उत्तम घोड़ोंसे जुता

हुआ सुवर्णभूषित रथ तैयार है'॥ १३॥

तब देश और कालको समझनेवाले, सब ओरसे शुद्ध (इहलोक और परलोकसे उऋण) राजा दशरथने तुरंत ही धन-संग्रहके व्यापारमें नियुक्त कोषाध्यक्षको बुलाकर यह निश्चित बात कही—॥ १४॥

'तुम विदेहकुमारी सीताके पहननेयोग्य बहुमूल्य वस्त्र और महान् आभूषण जो चौदह वर्षोंके लिये पर्याप्त हों, गिनकर शीघ्र ले आओ'॥ १५॥

महाराजके ऐसा कहनेपर कोषाध्यक्षने खजानेमें जा वहाँसे सब चीजें लाकर शीघ्र ही सीताको समर्पित कर दीं॥ १६॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न अथवा अयोनिजा और वनवासके लिये प्रस्थित विदेहकुमारी सीताने सुन्दर लक्षणोंसे युक्त अपने सभी अङ्गोंको उन विचित्र आभूषणोंसे विभूषित किया॥ १७॥

उन आभूषणोंसे विभूषित हुई विदेहनन्दिनी सीता उस घरको उसी प्रकार सुशोभित करने लगीं, जैसे प्रात:काल उगते हुए अंशुमाली सूर्यकी प्रभा आकाशको प्रकाशित करती है॥ १८॥

उस समय सास कौसल्याने कभी दु:खद बर्ताव न करनेवाली मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे कसकर छातीसे लगा लिया और उनके मस्तकको सूँघकर कहा—॥ १९॥

'बेटी! जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम पतिके द्वारा सदा सम्मानित होकर भी संकटमें पड़नेपर उसका आदर नहीं करती हैं, वे इस सम्पूर्ण जगत्‌में 'असती' (दुष्टा) के नामसे पुकारी जाती हैं॥ २०॥

'दुष्टा स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पतिके द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं, परंतु जब वह थोड़ी-सी भी विपत्तिमें पड़ता है, तब उसपर दोषारोपण करती और उसका साथ छोड़ देती हैं॥ २१॥

'जो झूठ बोलनेवाली, विकृत चेष्टा करनेवाली, दुष्ट पुरुषोंसे संसर्ग रखनेवाली, पतिके प्रति सदा हृदयहीनताका परिचय देनेवाली, कुलटा, पापके ही मनसूबे बाँधनेवाली और छोटी-सी बातके लिये भी क्षणमात्रमें पतिकी ओरसे विरक्त हो जानेवाली हैं, वे सब-की-सब असती या दुष्टा कही गयी हैं॥ २२॥

'उत्तम कुल, किया हुआ उपकार, विद्या, भूषण आदिका दान और संग्रह (पतिके द्वारा स्नेहपूर्वक अपनाया जाना), यह सब कुछ दुष्टा स्त्रियोंके हृदयको नहीं वशमें कर पाता है; क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित होता है॥

'इसके विपरीत जो सत्य, सदाचार, शास्त्रोंकी आज्ञा और कुलोचित मर्यादाओंमें स्थित रहती हैं, उन साध्वी स्त्रियोंके लिये एकमात्र पति ही परम पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ देवता है॥ २४॥

'इसलिये तुम मेरे पुत्र श्रीरामका, जिन्हें वनवासकी आज्ञा मिली है, कभी अनादर न करना। ये निर्धन हों या धनी, तुम्हारे लिये देवताके तुल्य हैं'॥ २५॥

सासके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंका तात्पर्य भलीभाँति समझकर उनके सामने खड़ी हुई सीताने हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—॥ २६॥

'आर्ये! आप मेरे लिये जो कुछ उपदेश दे रही हैं, मैं उसका पूर्णरूपसे पालन करूँगी। स्वामीके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, यह मुझे भलीभाँति विदित है; क्योंकि इस विषयको मैंने पहलेसे ही सुन रखा है॥

'पूजनीया माताजी! आपको मुझे असती स्त्रियोंके समान नहीं मानना चाहिये; क्योंकि जैसे प्रभा चन्द्रमासे दूर नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं पतिव्रत-धर्मसे विचलित नहीं हो सकती॥ २८॥

'जैसे बिना तारकी वीणा नहीं बज सकती और बिना पहियेका रथ नहीं चल सकता है, उसी प्रकार नारी सौ बेटोंकी माता होनेपर भी बिना पतिके सुखी नहीं हो सकती॥ २९॥

'पिता, भ्राता और पुत्र—ये परिमित सुख प्रदान करते हैं, परंतु पति अपरिमित सुखका दाता है—उसकी सेवासे इहलोक और परलोक दोनोंमें कल्याण होता है; अत: ऐसी कौन स्त्री है, जो अपने पतिका सत्कार नहीं करेगी॥ ३०॥

'आर्ये! मैंने श्रेष्ठ स्त्रियों—माता आदिके मुखसे नारीके सामान्य और विशेष धर्मोंका श्रवण किया है। इस प्रकार पातिव्रत्यका महत्त्व जानकर भी मैं पतिका क्यों अपमान करूँगी? मैं जानती हूँ कि पति ही स्त्रीका देवता है'॥ ३१॥

सीताका यह मनोहर वचन सुनकर शुद्ध अन्त:करणवाली देवी कौसल्याके नेत्रोंसे सहसा दु:ख और हर्षके आँसू बहने लगे॥ ३२॥

तब परम धर्मात्मा श्रीरामने माताओंके बीचमें अत्यन्त सम्मानित होकर खड़ी हुई माता कौसल्याकी ओर देख हाथ जोड़कर कहा—॥ ३३॥

'माँ! (इन्हींके कारण मेरे पुत्रका वनवास हुआ

है; ऐसा समझकर) तुम मेरे पिताजीकी ओर दुःखित होकर न देखना। वनवासकी अवधि भी शीघ्र ही समाप्त हो जायगी॥ ३४॥

'ये चौदह वर्ष तो तुम्हारे सोते-सोते निकल जायँगे, फिर एक दिन देखोगी कि मैं अपने सुहृदोंसे घिरा हुआ सीता और लक्ष्मणके साथ सम्पूर्णरूपसे यहाँ आ पहुँचा हूँ'॥ ३५॥

मातासे इस प्रकार अपना निश्चित अभिप्राय बताकर दशरथनन्दन श्रीरामने अपनी अन्य साढ़े तीन सौ माताओंकी ओर दृष्टिपात किया और उनको भी कौसल्याकी ही भाँति शोकाकुल पाया। तब उन्होंने हाथ जोड़कर उन सबसे यह धर्मयुक्त बात कही—॥ ३६-३७॥

'माताओ! सदा एक साथ रहनेके कारण मैंने जो कुछ कठोर वचन कह दिये हों अथवा अनजानमें भी मुझसे जो अपराध बन गये हों, उनके लिये आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आप सब माताओंसे विदा माँगता हूँ'॥ ३८॥

राजा दशरथकी उन सभी स्त्रियोंने श्रीरघुनाथजीका यह समाधानकारी धर्मयुक्त वचन सुना, सुनकर उन सबका चित्त शोकसे व्याकुल हो गया॥ ३९॥

श्रीरामके ऐसी बात कहते समय महाराज दशरथकी रानियाँ कुररियोंके समान विलाप करने लगीं। उनका वह आर्तनाद उस राजभवनमें सब ओर गूँज उठा॥ ४०॥

राजा दशरथका जो भवन पहले मुरज, पणव और मेघ आदि वाद्योंके गम्भीर घोषसे गूँजता रहता था, वही विलाप और रोदनसे व्याप्त हो संकटमें पड़कर अत्यन्त दुःखमय प्रतीत होने लगा॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

सीता, राम और लक्ष्मणका दशरथकी परिक्रमा करके कौसल्या आदिको प्रणाम करना, सुमित्राका लक्ष्मणको उपदेश, सीतासहित श्रीराम और लक्ष्मणका रथमें बैठकर वनकी ओर प्रस्थान, पुरवासियों तथा रानियोंसहित महाराज दशरथकी शोकाकुल अवस्था

तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीताने हाथ जोड़कर दीनभावसे राजा दशरथके चरणोंका स्पर्श करके उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की॥ १॥

उनसे विदा लेकर सीतासहित धर्मज्ञ रघुनाथजीने माताका कष्ट देखकर शोकसे व्याकुल हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २॥

श्रीरामके बाद लक्ष्मणने भी पहले माता कौसल्याको प्रणाम किया, फिर अपनी माता सुमित्राके भी दोनों पैर पकड़े॥ ३॥

अपने पुत्र महाबाहु लक्ष्मणको प्रणाम करते देख उनका हित चाहनेवाली माता सुमित्राने बेटेका मस्तक सूँघकर कहा—॥ ४॥

'वत्स! तुम अपने सुहृद् श्रीरामके परम अनुरागी हो, इसलिये मैं तुम्हें वनवासके लिये विदा करती हूँ। अपने बड़े भाईके वनमें इधर-उधर जाते समय तुम उनकी सेवामें कभी प्रमाद न करना॥ ५॥

'ये संकटमें हों या समृद्धिमें, ये ही तुम्हारी परम गति हैं। निष्पाप लक्ष्मण! संसारमें सत्पुरुषोंका यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाईकी आज्ञाके अधीन रहें॥

'दान देना, यज्ञमें दीक्षा ग्रहण करना और युद्धमें शरीर त्यागना—यही इस कुलका उचित एवं सनातन आचार है'॥ ७॥

अपने पुत्र लक्ष्मणसे ऐसा कहकर सुमित्राने वनवासके लिये निश्चित विचार रखनेवाले सर्वप्रिय श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'बेटा! जाओ, जाओ (तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो)।' इसके बाद वे लक्ष्मणसे फिर बोलीं—॥ ८॥

'बेटा! तुम श्रीरामको ही अपने पिता महाराज दशरथ समझो, जनकनन्दिनी सीताको ही अपनी माता सुमित्रा मानो और वनको ही अयोध्या जानो। अब सुखपूर्वक यहाँसे प्रस्थान करो'॥ ९॥

इसके बाद जैसे मातलि इन्द्रसे कोई बात कहते हैं, उसी प्रकार विनयके ज्ञाता सुमन्त्रने ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामसे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—॥ १०॥

'महायशस्वी राजकुमार श्रीराम! आपका कल्याण

हो। आप इस रथपर बैठिये। आप मुझसे जहाँ कहेंगे, वहीं मैं शीघ्र आपको पहुँचा दूँगा॥ ११॥

'आपको जिन चौदह वर्षोंतक वनमें रहना है, उनकी गणना आजसे ही आरम्भ हो जानी चाहिये; क्योंकि देवी कैकेयीने आज ही आपको वनमें जानेके लिये प्रेरित किया है'॥ १२॥

तब सुन्दरी सीता अपने अङ्गोंमें उत्तम अलंकार धारण करके प्रसन्न चित्तसे उस सूर्यके समान तेजस्वी रथपर आरूढ़ हुईं॥ १३॥

पतिके साथ जानेवाली सीताके लिये उनके श्वशुरने वनवासकी वर्षसंख्या गिनकर उसके अनुसार ही वस्त्र और आभूषण दिये थे॥ १४॥

इसी प्रकार महाराजने दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणके लिये जो बहुत-से अस्त्र-शस्त्र और कवच प्रदान किये थे, उन्हें रथके पिछले भागमें रखकर उन्होंने चमड़ेसे मढ़ी हुई पिटारी और खन्ती या कुदारी भी उसीपर रख दी॥ १५॥

इसके बाद दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण उस अग्निके समान दीप्तिमान् सुवर्णभूषित रथपर शीघ्र ही आरूढ़ हो गये॥ १६॥

जिनमें सीताकी संख्या तीसरी थी, उन श्रीराम आदिको रथपर आरूढ़ हुआ देख सारथि सुमन्त्रने रथको आगे बढ़ाया। उसमें जुते हुए वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंको हाँका॥ १७॥

जब श्रीरामचन्द्रजी सुदीर्घकालके लिये महान् वनकी ओर जाने लगे, उस समय समस्त पुरवासियों, सैनिकों तथा दर्शकरूपमें आये हुए बाहरी लोगोंको भी मूर्च्छा आ गयी॥ १८॥

उस समय सारी अयोध्यामें महान् कोलाहल मच गया। सब लोग व्याकुल होकर घबरा उठे। मतवाले हाथी श्रीरामके वियोगसे कुपित हो उठे और इधर-उधर भागते हुए घोड़ोंके हिनहिनाने एवं उनके आभूषणोंके खनखनानेकी आवाज सब ओर गूँजने लगी॥ १९॥

अयोध्यापुरीके आबाल वृद्ध सब लोग अत्यन्त पीड़ित होकर श्रीरामके ही पीछे दौड़े, मानो धूपसे पीड़ित हुए प्राणी पानीकी ओर भागे जाते हों॥ २०॥

उनमेंसे कुछ लोग रथके पीछे और अगल-बगलमें लटक गये। सभी श्रीरामके लिये उत्कण्ठित थे और सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे सब-के-सब उच्चस्वरसे कहने लगे—॥ २१॥

'सूत! घोड़ोंकी लगाम खींचो। रथको धीरे-धीरे ले चलो। हम श्रीरामका मुख देखेंगे; क्योंकि अब इस मुखका दर्शन हमलोगोंके लिये दुर्लभ हो जायगा॥ २२॥

निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीकी माताका हृदय लोहेका बना हुआ है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तभी तो देवकुमारके समान तेजस्वी पुत्रके वनकी ओर जाते समय फट नहीं जाता है॥ २३॥

'विदेहनन्दिनी सीता कृतार्थ हो गयीं; क्योंकि वे पतिव्रतधर्ममें तत्पर रहकर छायाकी भाँति पतिके पीछे-पीछे चली जा रही हैं। वे श्रीरामका साथ उसी प्रकार नहीं छोड़ती हैं, जैसे सूर्यकी प्रभा मेरुपर्वतका त्याग नहीं करती है॥ २४॥

'अहो लक्ष्मण! तुम भी कृतार्थ हो गये; क्योंकि तुम सदा प्रिय वचन बोलनेवाले अपने देवतुल्य भाईकी वनमें सेवा करोगे॥ २५॥

'तुम्हारी यह बुद्धि विशाल है। तुम्हारा यह महान् अभ्युदय है और तुम्हारे लिये यह स्वर्गका मार्ग मिल गया है; क्योंकि तुम श्रीरामका अनुसरण कर रहे हो'॥ २६॥

ऐसी बातें कहते हुए वे पुरवासी मनुष्य उमड़े हुए आँसुओंका वेग न सह सके। वे लोग सबके प्रेमपात्र इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले जा रहे थे॥ २७॥

उसी समय दयनीय दशाको प्राप्त हुई अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा दशरथ अत्यन्त दीन होकर 'मैं अपने प्यारे पुत्र श्रीरामको देखूँगा' ऐसा कहते हुए महलसे बाहर निकल आये॥ २८॥

उन्होंने अपने आगे रोती हुई स्त्रियोंका महान् आर्तनाद सुना। वह वैसा ही जान पड़ता था, जैसे बड़े हाथी यूथपतिके बाँध लिये जानेपर हथिनियोंका चीत्कार सुनायी देता है॥ २९॥

उस समय श्रीरामके पिता ककुत्स्थवंशी श्रीमान् राजा दशरथ उसी तरह खिन्न जान पड़ते थे, जैसे पर्वके समय राहुसे ग्रस्त होनेपर पूर्ण चन्द्रमा श्रीहीन प्रतीत होते हैं॥ ३०॥

यह देख अचिन्त्यस्वरूप दशरथनन्दन श्रीमान् भगवान् रामने सुमन्त्रको प्रेरित करते हुए कहा—'आप रथको तेजीसे चलाइये'॥ ३१॥

एक ओर श्रीरामचन्द्रजी सारथिसे रथ हाँकनेके लिये कहते थे और दूसरी ओर सारा जनसमुदाय उन्हें ठहर जानेके लिये कहता था। इस प्रकार दुविधामें

पड़कर सारथि सुमन्त्र उस मार्गपर दोनोंमेंसे कुछ न कर सके—न तो रथको आगे बढ़ा सके और न सर्वथा रोक ही सके॥ ३२॥

महाबाहु श्रीरामके नगरसे निकलते समय पुरवासियोंके नेत्रोंसे गिरे हुए आँसुओंद्वारा भीगकर धरतीकी उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी॥ ३३॥

श्रीरामचन्द्रजीके प्रस्थान करते समय सारा नगर अत्यन्त पीड़ित हो गया। सब रोने और आँसू बहाने लगे तथा सभी हाहाकार करते-करते अचेत-से हो गये॥ ३४॥

नारियोंके नेत्रोंसे उसी तरह खेदजनित अश्रु झर रहे थे, जैसे मछलियोंके उछलनेसे हिले हुए कमलोंद्वारा जलकणोंकी वर्षा होने लगती है॥ ३५॥

श्रीमान् राजा दशरथ सारी अयोध्यापुरीके लोगोंको एक-सा व्याकुलचित्त देखकर अत्यन्त दु:खके कारण जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति भूमिपर गिर पड़े॥ ३६॥

उस समय राजाको अत्यन्त दु:खमें मग्न हो कष्ट पाते देख श्रीरामके पीछे जाते हुए मनुष्योंका पुन: महान् कोलाहल प्रकट हुआ॥ ३७॥

अन्त:पुरकी रानियोंके सहित राजा दशरथको उच्चस्वरसे विलाप करते देख कोई 'हा राम!' कहकर और कोई 'हा राममाता!' की पुकार मचाकर करुणक्रन्दन करने लगे॥ ३८॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने पीछे घूमकर देखा तो उन्हें विषादग्रस्त तथा भ्रान्तचित्त पिता राजा दशरथ और दु:खमें डूबी हुई माता कौसल्या दोनों ही मार्गपर अपने पीछे आते हुए दिखायी दिये॥ ३९॥

जैसे रस्सीमें बँधा हुआ घोड़ेका बच्चा अपनी माको नहीं देख पाता, उसी प्रकार धर्मके बन्धनमें बँधे हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी माताकी ओर स्पष्टरूपसे न देख सके॥ ४०॥

जो सवारीपर चलने योग्य, दु:ख भोगनेके अयोग्य और सुख भोगनेके ही योग्य थे, उन माता-पिताको पैदल ही अपने पीछे-पीछे आते देख श्रीरामचन्द्रजीने सारथिको शीघ्र रथ हाँकनेके लिये प्रेरित किया॥ ४१॥

जैसे अंकुशसे पीड़ित किया हुआ गजराज उस कष्टको नहीं सहन कर पाता है, उसी प्रकार पुरुषसिंह श्रीरामके लिये माता-पिताको इस दु:खद अवस्थामें देखना असह्य हो गया॥ ४२॥

जैसे बँधे हुए बछड़ेवाली सवत्सा गौ शामको घरकी ओर लौटते समय बछड़ेके स्नेहसे दौड़ी चली आती है, उसी प्रकार श्रीरामकी माता कौसल्या उनकी ओर दौड़ी आ रही थीं॥ ४३॥

'हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' की रट लगाती और रोती हुई कौसल्या उस रथके पीछे दौड़ रही थीं। वे श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके लिये नेत्रोंसे आँसू बहा रही थीं एवं इधर-उधर नाचती—चक्कर लगाती-सी डोल रही थीं। इस अवस्थामें माता कौसल्याको श्रीरामचन्द्रजीने बारंबार देखा॥ ४४-४५॥

राजा दशरथ चिल्लाकर कहते थे—'सुमन्त्र! ठहरो।' किंतु श्रीरामचन्द्रजी कहते थे—'आगे बढ़िये, शीघ्र आगे बढ़िये।' उन दो प्रकारके आदेशोंमें पड़े हुए बेचारे सुमन्त्रका मन उस समय दो पहियोंके बीचमें फँसे हुए मनुष्यका-सा हो रहा था॥ ४६॥

उस समय श्रीरामने सुमन्त्रसे कहा—'यहाँ अधिक विलम्ब करना मेरे और पिताजीके लिये दु:ख ही नहीं, महान् दु:खका कारण होगा; इसलिये रथ आगे बढ़ाइये। लौटनेपर महाराज उलाहना दें तो कह दीजियेगा, मैंने आपकी बात नहीं सुनी'॥ ४७॥

अन्तमें श्रीरामके ही आदेशका पालन करते हुए सारथिने पीछेसे आनेवाले लोगोंसे जानेकी आज्ञा ली और स्वत: चलते हुए घोड़ोंको भी तीव्रगतिसे चलनेके लिये हाँका॥ ४८॥

राजा दशरथके साथ आनेवाले लोग मन-ही-मन श्रीरामकी परिक्रमा करके शरीरमात्रसे लौटे (मनसे नहीं लौटे); क्योंकि वह उनके रथकी अपेक्षा भी तीव्रगामी था। दूसरे मनुष्योंका समुदाय शीघ्रगामी मन और शरीर दोनोंसे ही नहीं लौटा (वे सब लोग श्रीरामके पीछे-पीछे दौड़े चले गये)॥ ४९॥

इधर मन्त्रियोंने महाराज दशरथसे कहा—'राजन्! जिसके लिये यह इच्छा की जाय कि वह पुन: शीघ्र लौट आये, उसके पीछे दूरतक नहीं जाना चाहिये'॥ ५०॥

सर्वगुणसम्पन्न राजा दशरथका शरीर पसीनेसे भीग रहा था। वे विषादके मूर्तिमान् स्वरूप जान पड़ते थे। अपने मन्त्रियोंकी उपर्युक्त बात सुनकर वे वहीं खड़े हो गये और रानियोंसहित अत्यन्त दीनभावसे पुत्रकी ओर देखने लगे॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

श्रीरामके वनगमनसे रनवासकी स्त्रियोंका विलाप तथा नगरनिवासियोंकी शोकाकुल अवस्था

पुरुषसिंह श्रीरामने माताओंसहित पिताके लिये दूरसे ही हाथ जोड़ रखे थे, उसी अवस्थामें जब वे रथद्वारा नगरसे बाहर निकलने लगे, उस समय रनवासकी रानियोंमें बड़ा हाहाकार मच गया॥ १॥

वे रोती हुई कहने लगीं—'हाय! जो हम अनाथ, दुर्बल और शोचनीय जनोंकी गति (सब सुखोंकी प्राप्ति करानेवाले) और शरण (समस्त आपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले) थे, वे हमारे नाथ (मनोरथ पूर्ण करनेवाले) श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं?॥ २॥

'जो किसीके द्वारा झूठा कलंक लगाये जानेपर भी क्रोध नहीं करते थे, क्रोध दिलानेवाली बातें नहीं कहते थे और रूठे हुए सभी लोगोंको मनाकर प्रसन्न कर लेते थे, वे दूसरोंके दुःखमें समवेदना प्रकट करनेवाले राम कहाँ जा रहे हैं?॥ ३॥

'जो महातेजस्वी महात्मा श्रीराम अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा बर्ताव करते थे, वैसा ही बर्ताव हमारे साथ भी करते थे, वे कहाँ चले जा रहे हैं?॥ ४॥

'कैकेयीके द्वारा क्लेशमें डाले गये महाराजके वन जानेके लिये कहनेपर हमलोगोंकी अथवा समस्त जगत्‌की रक्षा करनेवाले श्रीरघुवीर कहाँ चले जा रहे हैं?॥

'अहो! ये राजा बड़े बुद्धिहीन हैं, जो कि जीव-जगत्‌के आश्रयभूत, धर्मपरायण, सत्यव्रती श्रीरामको वनवासके लिये देशनिकाला दे रहे हैं'॥ ६॥

इस प्रकार वे सब-की-सब रानियाँ बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह दुःखसे आर्त होकर रोने और उच्चस्वरसे क्रन्दन करने लगीं॥ ७॥

अन्तःपुरमें वह घोर आर्तनाद सुनकर पुत्रशोकसे संतप्त हुए महाराज दशरथ बहुत दुःखी हो गये॥ ८॥

उस दिन अग्निहोत्र बंद हो गया, गृहस्थोंके घर भोजन नहीं बना, प्रजाओंने कोई काम नहीं किया, सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये, हाथियोंने मुँहमें लिया हुआ चारा छोड़ दिया, गौओंने बछड़ोंको दूध नहीं पिलाया और पहले-पहल पुत्रको जन्म देकर भी कोई माता प्रसन्न नहीं हुई॥ ९-१०॥

त्रिशंकु, मङ्गल, गुरु, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रातमें वक्रगतिसे चन्द्रमाके पास पहुँचकर दारुण (क्रूरकान्तियुक्त) होकर स्थित हो गये॥

नक्षत्रोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी और ग्रह निस्तेज हो गये। वे सब-के-सब आकाशमें विपरीत मार्गपर स्थित हो धूमाच्छन्न प्रतीत हो रहे थे॥ १२॥

आकाशमें छायी हुई मेघमाला वायुके वेगसे उमड़े हुए समुद्रके समान प्रतीत होती थी। श्रीरामके वनको जाते समय वह सारा नगर जोर-जोरसे हिलने लगा (वहाँ भूकम्प आ गया)॥ १३॥

समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं, उनमें अन्धकार-सा छा गया। न कोई ग्रह प्रकाशित होता था, न नक्षत्र॥

सहसा सारे नागरिक दीन-दशाको प्राप्त हो गये। किसीने भी आहार या विहारमें मन नहीं लगाया॥ १५॥

अयोध्यावासी सब लोग शोकपरम्परासे संतप्त हो निरन्तर लंबी साँस खींचते हुए राजा दशरथको कोसने लगे॥

सड़कपर निकला हुआ कोई भी मनुष्य प्रसन्न नहीं दिखायी देता था। सबका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ था और सभी शोकमग्न हो रहे थे॥ १७॥

शीतल वायु नहीं चलती थी। चन्द्रमा सौम्य नहीं दिखायी देता था। सूर्य भी जगत्‌को उचित मात्रामें ताप या प्रकाश नहीं दे रहा था। सारा संसार ही व्याकुल हो उठा था॥ १८॥

बालक माँ-बापको भूल गये। पतियोंको स्त्रियोंकी याद नहीं आती थी और भाई भाईका स्मरण नहीं करते थे—सभी सब कुछ छोड़कर केवल श्रीरामका ही चिन्तन करने लगे॥ १९॥

जो श्रीरामके मित्र थे, वे सब तो और भी अपनी सुध-बुध खो बैठे थे। शोकके भारसे आक्रान्त होनेके कारण वे रातमें सोयेतक नहीं॥ २०॥

इस प्रकार सारी अयोध्यापुरी श्रीरामसे रहित होकर भय और शोकसे प्रज्वलित-सी होकर उसी प्रकार घोर हलचलमें पड़ गयी, जैसे देवराज इन्द्रसे रहित हुई मेरु-पर्वतसहित यह पृथ्वी डगमगाने लगती है। हाथी, घोड़े और सैनिकोंसहित उस नगरीमें भयंकर आर्तनाद होने लगा॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

राजा दशरथका पृथ्वीपर गिरना, श्रीरामके लिये विलाप करना, कैकेयीको अपने पास आनेसे मना करना और उसे त्याग देना, कौसल्या और सेवकोंकी सहायतासे उनका कौसल्याके भवनमें आना और वहाँ भी श्रीरामके लिये दुःखका ही अनुभव करना

वनकी ओर जाते हुए श्रीरामके रथकी धूल जबतक दिखायी देती रही, तबतक इक्ष्वाकुवंशके स्वामी राजा दशरथने उधरसे अपनी आँखें नहीं हटायीं॥ १॥

वे महाराज अपने अत्यन्त धार्मिक प्रिय पुत्रको जबतक देखते रहे, तबतक पुत्रको देखनेके लिये उनका शरीर मानो पृथ्वीपर बढ़ रहा था—वे ऊँचे उठ-उठकर उनकी ओर निहार रहे थे॥ २॥

जब राजाको श्रीरामके रथकी धूल भी नहीं दिखायी देने लगी, तब वे अत्यन्त आर्त और विषादग्रस्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३॥

उस समय उन्हें सहारा देनेके लिये उनकी धर्मपत्नी कौसल्या देवी दाहिनी बाँहके पास आयीं और सुन्दरी कैकेयी उनके वामभागमें जा पहुँचीं॥ ४॥

कैकेयीको देखते ही नय, विनय और धर्मसे सम्पन्न राजा दशरथकी समस्त इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं; वे बोल उठे—॥ ५॥

'पापपूर्ण विचार रखनेवाली कैकेयि! तू मेरे अङ्गोंका स्पर्श न कर। मैं तुझे देखना नहीं चाहता। तू न तो मेरी भार्या है और न बान्धवी॥ ६॥

'जो तेरा आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करते हैं, मैं उनका स्वामी नहीं हूँ और वे मेरे परिजन नहीं हैं। तूने केवल धनमें आसक्त होकर धर्मका त्याग किया है, इसलिये मैं तेरा परित्याग करता हूँ॥ ७॥

'मैंने जो तेरा पाणिग्रहण किया है और तुझे साथ लेकर अग्निकी परिक्रमा की है, तेरे साथका वह सारा सम्बन्ध इस लोक और परलोकके लिये भी त्याग देता हूँ॥ ८॥

'तेरा पुत्र भरत भी यदि इस विघ्न-बाधासे रहित राज्यको पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे लिये श्राद्धमें जो कुछ पिण्ड या जल आदि दान करे, वह मुझे प्राप्त न हो'॥ ९॥

तदनन्तर शोकसे कातर हुई कौसल्या देवी उस समय धरतीपर लोटनेके कारण धूलसे व्याप्त हुए महाराजको उठाकर उनके साथ राजभवनकी ओर लौटीं॥ १०॥

जैसे कोई जान-बूझकर स्वेच्छापूर्वक ब्राह्मणकी हत्या कर डाले अथवा हाथसे प्रज्वलित अग्निका स्पर्श कर ले और ऐसा करके संतप्त होता रहे, उसी प्रकार धर्मात्मा राजा दशरथ अपने ही दिये हुए वरदानके कारण वनमें गये हुए श्रीरामका चिन्तन करके अनुतप्त हो रहे थे॥ ११॥

राजा दशरथ बारंबार पीछे लौटकर रथके मार्गोंपर देखनेका कष्ट उठाते थे। उस समय उनका रूप राहुग्रस्त सूर्यकी भाँति अधिक शोभा नहीं पाता था॥ १२॥

वे अपने प्रिय पुत्रका बारंबार स्मरण करके दुःखसे आतुर हो विलाप करने लगे। वे बेटेको नगरकी सीमापर पहुँचा हुआ समझकर इस प्रकार कहने लगे—॥ १३॥

'हाय! मेरे पुत्रको वनकी ओर ले जाते हुए श्रेष्ठ वाहनों (घोड़ों) के पदचिह्न तो मार्गमें दिखायी देते हैं; परंतु उन महात्मा श्रीरामका दर्शन नहीं हो रहा है॥ १४॥

'जो मेरे श्रेष्ठ पुत्र श्रीराम चन्दनसे चर्चित हो तकियोंका सहारा लेकर उत्तम शय्याओंपर सुखसे सोते थे और उत्तम अलंकारोंसे विभूषित सुन्दरी स्त्रियाँ जिन्हें व्यजन डुलाती थीं, वे निश्चय ही आज कहीं वृक्षकी जड़का आश्रय ले अथवा किसी काठ या पत्थरको सिरके नीचे रखकर भूमिपर ही शयन करेंगे॥ १५-१६॥

'फिर अङ्गोंमें धूल लपेटे दीनकी भाँति लंबी साँस खींचते हुए वे उस शयन-भूमिसे उसी प्रकार उठेंगे, जैसे किसी झरनेके पाससे गजराज उठता है॥

'निश्चय ही वनमें रहनेवाले मनुष्य लोकनाथ महाबाहु श्रीरामको वहाँसे अनाथकी भाँति उठकर जाते हुए देखेंगे॥ १८॥

'जो सदा सुख भोगनेके ही योग्य है, वह जनककी प्यारी पुत्री सीता आज अवश्य ही काँटोंपर पैर पड़नेसे व्यथाका अनुभव करती हुई वनको जायगी॥ १९॥

'वह वनके कष्टोंसे अनभिज्ञ है। वहाँ व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंका गम्भीर तथा रोमाञ्चकारी गर्जन-तर्जन सुनकर निश्चय ही भयभीत हो जायगी॥ २०॥

'अरी कैकेयी! तू अपनी कामना सफल कर ले

और विधवा होकर राज्य भोग। मैं पुरुषसिंह श्रीरामके बिना जीवित नहीं रह सकता'॥ २१॥

इस प्रकार विलाप करते हुए राजा दशरथने मरघटसे नहाकर आये हुए पुरुषकी भाँति मनुष्योंकी भारी भीड़से घिरकर अपने शोकपूर्ण उत्तम भवनमें प्रवेश किया॥ २२॥

उन्होंने देखा, अयोध्यापुरीके प्रत्येक घरका बाहरी चबूतरा और भीतरी भाग भी सूना हो रहा है। (क्योंकि उन घरोंके सब लोग श्रीरामके पीछे चले गये थे।) बाजार-हाट बंद है। जो लोग नगरमें हैं, वे भी अत्यन्त क्लान्त, दुर्बल और दु:खसे आतुर हो रहे हैं तथा बड़ी-बड़ी सड़कोंपर भी अधिक आदमी जाते-आते नहीं दिखायी देते हैं। सारे नगरकी यह अवस्था देखकर श्रीरामके लिये ही चिन्ता और विलाप करते हुए राजा उसी तरह महलके भीतर गये, जैसे सूर्य मेघोंकी घटामें छिप जाते हैं॥ २३-२४॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीतासे रहित वह राजभवन उस महान् अक्षोभ्य जलाशयके समान जान पड़ता था, जिसके भीतरके नागको गरुड़ उठा ले गये हों॥ २५॥

उस समय विलाप करते हुए राजा दशरथने गद्गद वाणीमें द्वारपालोंसे यह मधुर, अस्पष्ट, दीनतायुक्त और स्वाभाविक स्वरसे रहित बात कही—॥ २६॥

'मुझे शीघ्र ही श्रीराम-माता कौसल्याके घरमें पहुँचा दो; क्योंकि मेरे हृदयको और कहीं शान्ति नहीं मिल सकती'॥ २७॥

ऐसी बात कहते हुए राजा दशरथको द्वारपालोंने बड़ी विनयके साथ रानी कौसल्याके भवनमें पहुँचाया और पलंगपर सुला दिया॥ २८॥

वहाँ कौसल्याके भवनमें प्रवेश करके पलंगपर आरूढ़ हो जानेपर भी राजा दशरथका मन चञ्चल एवं मलिन ही रहा॥ २९॥

दोनों पुत्र और पुत्रवधू सीतासे रहित वह भवन राजाको चन्द्रहीन आकाशकी भाँति श्रीहीन दिखायी देने लगा॥ ३०॥

उसे देखकर पराक्रमी महाराजने एक बाँह ऊपर उठाकर उच्चस्वरसे विलाप करते हुए कहा—'हा राम! तुम हम दोनों माता-पिताको त्याग दे रहे हो। जो नरश्रेष्ठ चौदह वर्षोंकी अवधितक जीवित रहेंगे और अयोध्यामें पुनः लौटे हुए श्रीरामको हृदयसे लगाकर देखेंगे, वे ही वास्तवमें सुखी होंगे'॥ ३१-३२॥

तदनन्तर अपनी कालरात्रिके समान वह रात्रि आनेपर राजा दशरथने आधी रात होनेपर कौसल्यासे इस प्रकार कहा—॥ ३३॥

'कौसल्ये! मेरी दृष्टि श्रीरामके ही साथ चली गयी और वह अबतक नहीं लौटी है; अतः मैं तुम्हें देख नहीं पाता हूँ। एक बार अपने हाथसे मेरे शरीरका स्पर्श तो करो'॥ ३४॥

शय्यापर पड़े हुए महाराज दशरथको श्रीरामका ही चिन्तन करते और लंबी साँस खींचते देख देवी कौसल्या अत्यन्त व्यथित हो उनके पास आ बैठीं और बड़े कष्टसे विलाप करने लगीं॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

महारानी कौसल्याका विलाप

शय्यापर पड़े हुए राजाको पुत्रशोकसे व्याकुल देख पुत्रके ही शोकसे पीड़ित हुई कौसल्याने उन महाराजसे कहा—॥ १॥

'नरश्रेष्ठ श्रीरामपर अपना विष उँड़ेलकर टेढ़ी चालसे चलनेवाली कैकेयी केंचुल छोड़कर नूतन शरीरसे प्रकट हुई सर्पिणीकी भाँति अब स्वच्छन्द विचरेगी॥ २॥

'जैसे घरमें रहनेवाला दुष्ट सर्प बारंबार भय देता रहता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रको वनवास देकर सफलमनोरथ हुई सुभगा कैकेयी सदा सावधान होकर मुझे त्रास देती रहेगी॥ ३॥

'यदि श्रीराम इस नगरमें भीख माँगते हुए भी घरमें रहते अथवा मेरे पुत्रको कैकेयीका दास भी बना दिया गया होता तो वैसा वरदान मुझे भी अभीष्ट होता (क्योंकि उस दशामें मुझे भी श्रीरामका दर्शन होता रहता। श्रीरामके वनवासका वरदान तो कैकेयीने मुझे दु:ख देनेके लिये ही माँगा है।)॥ ४॥

'कैकेयीने अपनी इच्छाके अनुसार श्रीरामको उनके स्थानसे भ्रष्ट करके वैसा ही किया है, जैसे किसी अग्निहोत्रीने पर्वके दिन देवताओंको उनके भागसे वञ्चित

करके राक्षसोंको वह भाग अर्पित कर दिया हो॥ ५॥

'गजराजके समान मन्द गतिसे चलनेवाले वीर महाबाहु धनुर्धर श्रीराम निश्चय ही अपनी पत्नी और लक्ष्मणके साथ वनमें प्रवेश कर रहे होंगे॥ ६॥

'महाराज! जिन्होंने जीवनमें कभी दुःख नहीं देखे थे, उन श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको आपने कैकेयीकी बातोंमें आकर वनमें भेज दिया। अब उन बेचारोंकी वनवासके कष्ट भोगनेके सिवा और क्या अवस्था होगी?॥

'रत्नतुल्य उत्तम वस्तुओंसे वञ्चित वे तीनों तरुण सुखरूप फल भोगनेके समय घरसे निकाल दिये गये। अब वे बेचारे फल-मूलका भोजन करके कैसे रह सकेंगे?॥ ८॥

'क्या अब फिर मेरे शोकको नष्ट करनेवाला वह शुभ समय आयेगा, जब मैं सीता और लक्ष्मणके साथ वनसे लौटे हुए श्रीरामको देखूँगी?॥ ९॥

'कब वह शुभ अवसर प्राप्त होगा जब कि 'वीर श्रीराम और लक्ष्मण वनसे लौट आये' यह सुनते ही यशस्विनी अयोध्यापुरीके सब लोग हर्षसे उल्लसित हो उठेंगे और घर-घर फहराये गये ऊँचे-ऊँचे ध्वज-समूह पुरीकी शोभा बढ़ाने लगेंगे॥ १०॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणको पुनः वनसे आया हुआ देख यह अयोध्यापुरी पूर्णिमाके उमड़ते हुए समुद्रकी भाँति कब हर्षोल्लाससे परिपूर्ण होगी?॥ ११॥

'जैसे साँड़ गायको आगे करके चलता है, उसी प्रकार वीर महाबाहु श्रीराम रथपर सीताको आगे करके कब अयोध्यापुरीमें प्रवेश करेंगे?॥ १२॥

'कब यहाँके सहस्रों मनुष्य पुरीमें प्रवेश करते और राजमार्गपर चलते हुए मेरे दोनों शत्रुदमन पुत्रोंपर लावा (खील)-की वर्षा करेंगे?॥ १३॥

'उत्तम आयुध एवं खड्ग लिये शिखरयुक्त पर्वतोंके समान प्रतीत होनेवाले श्रीराम और लक्ष्मण सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत हो कब अयोध्यापुरीमें प्रवेश करते हुए मेरे नेत्रोंके समक्ष प्रकट होंगे?॥ १४॥

'कब ब्राह्मणोंकी कन्याएँ हर्षपूर्वक फूल और फल अर्पण करती हुई अयोध्यापुरीकी परिक्रमा करेंगी?॥ १५॥

'कब ज्ञानमें बढ़े-चढ़े और अवस्थामें देवताओंके समान तेजस्वी धर्मात्मा श्रीराम उत्तम वर्षाकी भाँति जनसमुदायका लालन करते हुए यहाँ पधारेंगे?॥ १६॥

'वीर! इसमें संदेह नहीं कि पूर्व जन्ममें मुझ नीच आचार-विचारवाली नारीने बछड़ोंके दूध पीनेके लिये उद्यत होते ही उनकी माताओंके स्तन काट दिये होंगे॥ १७॥

'पुरुषसिंह! जैसे किसी सिंहने छोटे-से बछड़ेवाली वत्सला गौको बलपूर्वक बछड़ेसे हीन कर दिया हो, उसी प्रकार कैकेयीने मुझे बलात् अपने बेटेसे विलग कर दिया है॥ १८॥

'जो उत्तम गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीण हैं, उन अपने पुत्र श्रीरामके बिना मैं इकलौते बेटेवाली माँ जीवित नहीं रह सकती॥ १९॥

'अब प्यारे पुत्र श्रीराम और महाबली लक्ष्मणको देखे बिना मुझमें जीवित रहनेकी कुछ भी शक्ति नहीं है॥ २०॥

'जैसे ग्रीष्म ऋतुमें उत्कृष्ट प्रभावाले भगवान् सूर्य अपनी किरणोंद्वारा इस पृथ्वीको अधिक ताप देते हैं, उसी प्रकार यह पुत्रशोकजनित महान् अहितकारक अग्नि आज मुझे जलाये दे रही है'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

सुमित्राका कौसल्याको आश्वासन देना

नारियोंमें श्रेष्ठ कौसल्याको इस प्रकार विलाप करती देख धर्मपरायणा सुमित्रा यह धर्मयुक्त बात बोली—॥ १॥

'आर्ये! तुम्हारे पुत्र श्रीराम उत्तम गुणोंसे युक्त और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। उनके लिये इस प्रकार विलाप करना और दीनतापूर्वक रोना व्यर्थ है, इस तरह रोने-धोनेसे क्या लाभ?॥ २॥

'बहिन! जो राज्य छोड़कर अपने महात्मा पिताको भलीभाँति सत्यवादी बनानेके लिये वनमें चले गये हैं, वे तुम्हारे महाबली श्रेष्ठ पुत्र श्रीराम उस उत्तम धर्ममें स्थित हैं, जिसका सत्पुरुषोंने सर्वदा और सम्यक् प्रकारसे पालन किया है तथा जो परलोकमें भी सुखमय फल प्रदान करनेवाला है। ऐसे धर्मात्माके लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये॥ ३-४॥

'निष्पाप लक्ष्मण समस्त प्राणियोंके प्रति दयालु हैं। वे सदा श्रीरामके प्रति उत्तम बर्ताव करते हैं, अतः उन महात्मा लक्ष्मणके लिये यह लाभकी ही बात है॥ ५॥

'विदेहनन्दिनी सीता भी जो सुख भोगनेके ही योग्य है, वनवासके दुःखोंको भलीभाँति सोच-समझकर ही तुम्हारे धर्मात्मा पुत्रका अनुसरण करती है॥ ६॥

'जो प्रभु संसारमें अपनी कीर्तिमयी पताका फहरा रहे हैं और सदा सत्यव्रतके पालनमें तत्पर रहते हैं, उन धर्मस्वरूप तुम्हारे पुत्र श्रीरामको कौन-सा श्रेय प्राप्त नहीं हुआ है॥ ७॥

'श्रीरामकी पवित्रता और उत्तम माहात्म्यको जानकर निश्चय ही सूर्य अपनी किरणोंद्वारा उनके शरीरको संतप्त नहीं कर सकते॥ ८॥

'सभी समयोंमें वनोंसे निकली हुई उचित सरदी और गरमीसे युक्त सुखद एवं मङ्गलमय वायु श्रीरघुनाथजीकी सेवा करेगी॥ ९॥

'रात्रिकालमें धूपका कष्ट दूर करनेवाले शीतल चन्द्रमा सोते हुए निष्पाप श्रीरामका अपने किरणरूपी करोंसे आलिङ्गन और स्पर्श करके उन्हें आह्लाद प्रदान करेंगे॥ १०॥

'श्रीरामके द्वारा रणभूमिमें तिमिध्वज (शम्बर)-के पुत्र दानवराज सुबाहुको मारा गया देख विश्वामित्रजीने उन महातेजस्वी वीरको बहुत-से दिव्यास्त्र प्रदान किये थे॥ ११॥

'वे पुरुषसिंह श्रीराम बड़े शूरवीर हैं। वे अपने ही बाहुबलका आश्रय लेकर जैसे महलमें रहते थे, उसी तरह वनमें भी निडर होकर रहेंगे॥ १२॥

'जिनके बाणोंका लक्ष्य बनकर सभी शत्रु विनाशको प्राप्त होते हैं, उनके शासनमें यह पृथ्वी और यहाँके प्राणी कैसे नहीं रहेंगे?॥ १३॥

'श्रीरामकी जैसी शारीरिक शोभा है, जैसा पराक्रम है और जैसी कल्याणकारिणी शक्ति है, उससे जान पड़ता है कि वे वनवाससे लौटकर शीघ्र ही अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे॥ १४॥

'देवि! श्रीराम सूर्यके भी सूर्य (प्रकाशक) और अग्निके भी अग्नि (दाहक) हैं। वे प्रभुके भी प्रभु, लक्ष्मीकी भी उत्तम लक्ष्मी और क्षमाकी भी क्षमा हैं। इतना ही नहीं—वे देवताओंके भी देवता तथा भूतोंके भी उत्तम भूत हैं। वे वनमें रहें या नगरमें, उनके लिये कौन-से चराचर प्राणी दोषावह हो सकते हैं॥ १५-१६॥

'पुरुषशिरोमणि श्रीराम शीघ्र ही पृथ्वी, सीता और लक्ष्मी—इन तीनोंके साथ राज्यपर अभिषिक्त होंगे॥ १७॥

जिनको नगरसे निकलते देख अयोध्याका सारा जनसमुदाय शोकके वेगसे आहत हो नेत्रोंसे दुःखके आँसू बहा रहा है, कुश और चीर धारण करके वनको जाते हुए जिन अपराजित नित्यविजयी वीरके पीछे-पीछे सीताके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी ही गयी है, उनके लिये क्या दुर्लभ है?॥ १८-१९॥

'जिनके आगे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मण स्वयं बाण और खड्ग आदि अस्त्र लिये जा रहे हैं, उनके लिये जगत्में कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?॥ २०॥

'देवि! मैं तुमसे सत्य कहती हूँ। तुम वनवासकी अवधि पूर्ण होनेपर यहाँ लौटे हुए श्रीरामको फिर देखोगी, इसलिये तुम शोक और मोह छोड़ दो॥ २१॥

'कल्याणि! अनिन्दिते! तुम नवोदित चन्द्रमाके समान अपने पुत्रको पुनः अपने चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करते देखोगी॥ २२॥

'राजभवनमें प्रविष्ट होकर पुनः राजपदपर अभिषिक्त हुए अपने पुत्रको बड़ी भारी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न देखकर तुम शीघ्र ही अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाओगी॥ २३॥

'देवि! श्रीरामके लिये तुम्हारे मनमें शोक और दुःख नहीं होना चाहिये; क्योंकि उनमें कोई अशुभ बात नहीं दिखायी देती। तुम सीता और लक्ष्मणके साथ अपने पुत्र श्रीरामको शीघ्र ही यहाँ उपस्थित देखोगी॥ २४॥

'पापरहित देवि! तुम्हें तो इन सब लोगोंको धैर्य बँधाना चाहिये, फिर स्वयं ही इस समय अपने हृदयमें इतना दुःख क्यों करती हो?॥ २५॥

'देवि! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुम्हें रघुकुलनन्दन राम-जैसा बेटा मिला है। श्रीरामसे बढ़कर सन्मार्गमें स्थिर रहनेवाला मनुष्य संसारमें दूसरा कोई नहीं है॥ २६॥

'जैसे वर्षाकालके मेघोंकी घटा जलकी वृष्टि करती है, उसी प्रकार तुम सुहृदोंसहित अपने पुत्र श्रीरामको अपने चरणोंमें प्रणाम करते देख शीघ्र ही आनन्दपूर्वक आँसुओंकी वर्षा करोगी॥ २७॥

'तुम्हारे वरदायक पुत्र पुनः शीघ्र ही अयोध्यामें आकर अपने मोटे-मोटे कोमल हाथोंद्वारा तुम्हारे दोनों पैरोंको दबायँगे॥ २८॥

'जैसे मेघमाला पर्वतको नहलाती है, उसी

प्रकार तुम अभिवादन करके नमस्कार करते हुए सुहृदोंसहित अपने शूरवीर पुत्रका आनन्दके आँसुओंसे अभिषेक करोगी'॥ २९॥

बातचीत करनेमें कुशल, दोषरहित तथा रमणीय रूपवाली देवी सुमित्रा इस प्रकार तरह-तरहकी बातोंसे श्रीराममाता कौसल्याको आश्वासन देती हुई उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गयीं॥ ३०॥

लक्ष्मणकी माताका वह वचन सुनकर महाराज दशरथकी पत्नी तथा श्रीरामकी माता कौसल्याका सारा शोक उनके शरीर (मन) में ही तत्काल विलीन हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे शरद् ऋतुका थोड़े जलवाला बादल शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

श्रीरामका पुरवासियोंसे भरत और महाराज दशरथके प्रति प्रेम-भाव रखनेका अनुरोध करते हुए लौट जानेके लिये कहना; नगरके वृद्ध ब्राह्मणोंका श्रीरामसे लौट चलनेके लिये आग्रह करना तथा उन सबके साथ श्रीरामका तमसातटपर पहुँचना

उधर सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीराम जब वनकी ओर जाने लगे, उस समय उनके प्रति अनुराग रखनेवाले बहुत-से अयोध्यावासी मनुष्य वनमें निवास करनेके लिये उनके पीछे-पीछे चल दिये॥ १॥

'जिसके जल्दी लौटनेकी कामना की जाय, उस स्वजनको दूरतक नहीं पहुँचाना चाहिये'—इत्यादि रूपसे बताये गये सुहृद्धर्मके अनुसार जब राजा दशरथ बलपूर्वक लौटा दिये गये, तब भी जो श्रीरामजीके रथके पीछे-पीछे लगे हुए थे, वे अयोध्यावासी अपने घरकी ओर नहीं लौटे॥ २॥

क्योंकि अयोध्यावासी पुरुषोंके लिये सद्‌गुणसम्पन्न महायशस्वी श्रीराम पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रिय हो गये थे॥

उन प्रजाजनोंने श्रीरामसे घर लौट चलनेके लिये बहुत प्रार्थना की; किंतु वे पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनकी ओर ही बढ़ते गये॥ ४॥

वे प्रजाजनोंको इस प्रकार स्नेहभरी दृष्टिसे देख रहे थे मानो नेत्रोंसे उन्हें पी रहे हों। उस समय श्रीरामने अपनी संतानके समान प्रिय उन प्रजाजनोंसे स्नेहपूर्वक कहा— ॥ ५॥

'अयोध्यानिवासियोंका मेरे प्रति जो प्रेम और आदर है, वह मेरी ही प्रसन्नताके लिये भरतके प्रति और अधिक रूपमें होना चाहिये॥ ६॥

'उनका चरित्र बड़ा ही सुन्दर और सबका कल्याण करनेवाला है। कैकेयीका आनन्द बढ़ानेवाले भरत आप लोगोंका यथावत् प्रिय और हित करेंगे॥ ७॥

'वे अवस्थामें छोटे होनेपर भी ज्ञानमें बड़े हैं। पराक्रमोचित गुणोंसे सम्पन्न होनेपर भी स्वभावके बड़े कोमल हैं। वे आपलोगोंके लिये योग्य राजा होंगे और प्रजाके भयका निवारण करेंगे॥ ८॥

'वे मुझसे भी अधिक राजोचित गुणोंसे युक्त हैं, इसीलिये महाराजने उन्हें युवराज बनानेका निश्चय किया है; अतः आपलोगोंको अपने स्वामी भरतकी आज्ञाका सदा पालन करना चाहिये॥ ९॥

'मेरे वनमें चले जानेपर महाराज दशरथ जिस प्रकार भी शोकसे संतप्त न होने पायें, इस बातके लिये आपलोग सदा चेष्टा रखें। मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे आपको मेरी इस प्रार्थनापर अवश्य ध्यान देना चाहिये'॥

दशरथनन्दन श्रीरामने ज्यों-ज्यों धर्मका आश्रय लेनेके लिये ही दृढ़ता दिखायी, त्यों-ही-त्यों प्रजाजनोंके मनमें उन्हींको अपना स्वामी बनानेकी इच्छा प्रबल होती गयी॥

समस्त पुरवासी अत्यन्त दीन होकर आँसू बहा रहे थे और लक्ष्मणसहित श्रीराम मानो अपने गुणोंमें बाँधकर उन्हें खींचे लिये जा रहे थे॥ १२॥

उनमें बहुत-से ब्राह्मण थे, जो ज्ञान, अवस्था और तपोबल—तीनों ही दृष्टियोंसे बड़े थे। वृद्धावस्थाके कारण कितनोंके तो सिर काँप रहे थे। वे दूरसे ही इस प्रकार बोले— ॥ १३॥

'अरे! ओ तेज चलनेवाले अच्छी जातिके घोड़ो! तुम बड़े वेगशाली हो और श्रीरामको वनकी ओर लिये जा रहे हो, लौटो! अपने स्वामीके हितैषी बनो! तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये॥ १४॥

'यों तो सभी प्राणियोंके कान होते हैं, परंतु घोड़ोंके

कान बड़े होते हैं; अतः तुम्हें हमारी याचनाका ज्ञान तो हो ही गया होगा; इसलिये घरकी ओर लौट चलो॥ १५॥

'तुम्हारे स्वामी श्रीराम विशुद्धात्मा, वीर और उत्तम व्रतका दृढ़तासे पालन करनेवाले हैं, अतः तुम्हें इनका उपवहन करना चाहिये—इन्हें बाहरसे नगरके समीप ले चलना चाहिये। नगरसे वनकी ओर इनका अपवहन करना—इन्हें ले जाना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है'॥ १६॥

वृद्ध ब्राह्मणोंको इस प्रकार आर्तभावसे प्रलाप करते देख श्रीरामचन्द्रजी सहसा रथसे नीचे उतर गये॥

वे सीता और लक्ष्मणके साथ पैदल ही चलने लगे। ब्राह्मणोंका साथ न छूटे, इसके लिये वे अपना पैर बहुत निकट रखते थे—लंबे डगसे नहीं चलते थे। वनमें पहुँचना ही उनकी यात्राका परम लक्ष्य था॥ १८॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें वात्सल्य-गुणकी प्रधानता थी। उनकी दृष्टिमें दया भरी हुई थी; इसलिये वे रथके द्वारा चलकर उन पैदल चलनेवाले ब्राह्मणोंको पीछे छोड़नेका साहस न कर सके॥ १९॥

श्रीरामको अब भी वनकी ओर ही जाते देख वे ब्राह्मण मन-ही-मन घबरा उठे और अत्यन्त संतप्त होकर उनसे इस प्रकार बोले—॥ २०॥

'रघुनन्दन! तुम ब्राह्मणोंके हितैषी हो, इसीसे यह सारा ब्राह्मण-समाज तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा है। इन ब्राह्मणोंके कंधोंपर चढ़कर अग्निदेव भी तुम्हारा अनुसरण कर रहे हैं॥ २१॥

'वर्षा बीतनेपर शरद् ऋतुमें दिखायी देनेवाले सफेद बादलोंके समान हमारे इन श्वेत छत्रोंकी ओर देखो, जो तुम्हारे पीछे-पीछे चल पड़े हैं। ये हमें वाजपेय-यज्ञमें प्राप्त हुए थे॥ २२॥

'तुम्हें राजकीय श्वेतच्छत्र नहीं प्राप्त हुआ, अतएव तुम सूर्यदेवकी किरणोंसे संतप्त हो रहे हो। इस अवस्थामें हम वाजपेय-यज्ञमें प्राप्त हुए इन अपने छत्रोंद्वारा तुम्हारे लिये छाया करेंगे॥ २३॥

'वत्स! हमारी जो बुद्धि सदा वेदमन्त्रोंके पीछे चलती थी—उन्हींके चिन्तनमें लगी रहती थी, वही तुम्हारे लिये वनवासका अनुसरण करनेवाली हो गयी है॥ २४॥

'जो हमारे परम धन वेद हैं, वे हमारे हृदयोंमें स्थित हैं। हमारी स्त्रियाँ अपने चरित्रबलसे सुरक्षित रहकर घरोंमें ही रहेंगी॥ २५॥

'अब हमें अपने कर्तव्यके विषयमें पुनः कुछ निश्चय नहीं करना है। हमने तुम्हारे साथ जानेका विचार स्थिर कर लिया है। तो भी हमें इतना अवश्य कहना है कि 'जब तुम ही ब्राह्मणकी आज्ञाके पालनरूपी धर्मकी ओरसे निरपेक्ष हो जाओगे, तब दूसरा कौन प्राणी धर्ममार्गपर स्थित रह सकेगा॥ २६॥

'सदाचारका पोषण करनेवाले श्रीराम! हमारे सिरके बाल पककर हंसके समान सफेद हो गये हैं और पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करनेसे इनमें धूल भर गयी है। हम अपने ऐसे मस्तकोंको झुकाकर तुमसे याचना करते हैं कि तुम घरको लौट चलो (वे तत्त्वज्ञ ब्राह्मण यह जानते थे कि श्रीराम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। इसीलिये उनका श्रीरामके प्रति प्रणाम करना दोषकी बात नहीं है)॥

'(इतनेपर भी जब श्रीराम नहीं रुके, तब वे ब्राह्मण बोले—) वत्स! जो लोग यहाँ आये हैं, इनमें बहुत-से ऐसे ब्राह्मण हैं, जिन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया है; अब इनके यज्ञोंकी समाप्ति तुम्हारे लौटनेपर ही निर्भर है॥

'संसारके स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी तुम्हारे प्रति भक्ति रखते हैं। वे सब तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। अपने उन भक्तोंपर तुम अपना स्नेह दिखाओ॥

'ये वृक्ष अपनी जड़ोंके कारण अत्यन्त वेगहीन हैं, इसीसे तुम्हारे पीछे नहीं चल सकते; परंतु वायुके वेगसे इनमें जो सनसनाहट पैदा होती है, उनके द्वारा ये ऊँचे वृक्ष मानो तुम्हें पुकार रहे हैं—तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं॥ ३०॥

'जो सब प्रकारकी चेष्टा छोड़ चुके हैं, चारा चुगनेके लिये भी कहीं उड़कर नहीं जाते हैं और निश्चितरूपसे वृक्षके एक स्थानपर ही पड़े रहते हैं, वे पक्षी भी तुमसे लौट चलनेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं; क्योंकि तुम समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेवाले हो'॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीरामसे लौटनेके लिये पुकार मचाते हुए उन ब्राह्मणोंपर मानो कृपा करनेके लिये मार्गमें तमसा नदी दिखायी दी, जो अपने तिर्यक्-प्रवाह (तिरछी धारा) से श्रीरघुनाथजीको रोकती हुई-सी प्रतीत होती थी॥ ३२॥

वहाँ पहुँचनेपर सुमन्त्रने भी थके हुए घोड़ोंको शीघ्र ही रथसे खोलकर उन सबको टहलाया, फिर पानी पिलाया और नहलाया, तत्पश्चात् तमसाके निकट ही चरनेके लिये छोड़ दिया॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका रात्रिमें तमसा-तटपर निवास, माता-पिता और अयोध्याके लिये चिन्ता तथा पुरवासियोंको सोते छोड़कर वनकी ओर जाना

तदनन्तर तमसाके रमणीय तटका आश्रय लेकर श्रीरामने सीताकी ओर देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

'सुमित्रानन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। हमलोग जो वनकी ओर प्रस्थित हुए हैं, हमारे उस वनवासकी आज यह पहली रात प्राप्त हुई है; अतः अब तुम्हें नगरके लिये उत्कण्ठित नहीं होना चाहिये॥ २॥

'इन सूने वनोंकी ओर तो देखो, इनमें वन्य पशु-पक्षी अपने-अपने स्थानपर आकर अपनी बोली बोल रहे हैं। उनके शब्दसे सारी वनस्थली व्याप्त हो गयी है, मानो ये सारे वन हमें इस अवस्थामें देखकर खिन्न हो सब ओरसे रो रहे हैं॥ ३॥

'आज मेरे पिताकी राजधानी अयोध्या नगरी वनमें आये हुए हमलोगोंके लिये समस्त नर-नारियोंसहित शोक करेगी, इसमें संशय नहीं है॥ ४॥

'पुरुषसिंह! अयोध्याके मनुष्य बहुत-से सद्‌गुणोंके कारण महाराजमें, तुममें, मुझमें तथा भरत और शत्रुघ्नमें भी अनुरक्त हैं॥ ५॥

'इस समय मुझे पिता और यशस्विनी माताके लिये बड़ा शोक हो रहा है; कहीं ऐसा न हो कि वे निरन्तर रोते रहनेके कारण अंधे हो जायँ॥ ६॥

'परंतु भरत बड़े धर्मात्मा हैं। अवश्य ही वे धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके अनुकूल वचनोंद्वारा पिताजीको और मेरी माताको भी सान्त्वना देंगे॥ ७॥

'महाबाहो! जब मैं भरतके कोमल स्वभावका बार-बार स्मरण करता हूँ, तब मुझे माता-पिताके लिये अधिक चिन्ता नहीं होती॥ ८॥

'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुमने मेरे साथ आकर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है; क्योंकि तुम न आते तो मुझे विदेहकुमारी सीताकी रक्षाके लिये कोई सहायक ढूँढ़ना पड़ता॥ ९॥

'सुमित्रानन्दन! यद्यपि यहाँ नाना प्रकारके जंगली फल-मूल मिल सकते हैं तथापि आजकी यह रात मैं केवल जल पीकर ही बिताऊँगा। यही मुझे अच्छा जान पड़ता है'॥ १०॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रसे भी कहा—'सौम्य! अब आप घोड़ोंकी रक्षापर ध्यान दें, उनकी ओरसे असावधान न हों'॥ ११॥

सुमन्त्रने सूर्यास्त हो जानेपर घोड़ोंको लाकर बाँध दिया और उनके आगे बहुत-सा चारा डालकर वे श्रीरामके पास आ गये॥ १२॥

फिर (वर्णानुकूल) कल्याणमयी संध्योपासना करके रात आयी देख लक्ष्मणसहित सुमन्त्रने श्रीरामचन्द्रजीके शयन करनेयोग्य स्थान और आसन ठीक किया॥ १३॥

तमसाके तटपर वृक्षके पत्तोंसे बनी हुई वह शय्या देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताके साथ उसपर बैठे॥ १४॥

थोड़ी देरमें सीतासहित श्रीरामको थककर सोया हुआ देख लक्ष्मण सुमन्त्रसे उनके नाना प्रकारके गुणोंका वर्णन करने लगे॥ १५॥

सुमन्त्र और लक्ष्मण तमसाके किनारे श्रीरामके गुणोंकी चर्चा करते हुए रातभर जागते रहे। इतनेहीमें सूर्योदयका समय निकट आ पहुँचा॥ १६॥

तमसाका वह तट गौओंके समुदायसे भरा हुआ था। श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाजनोंके साथ वहीं रात्रिमें निवास किया। वे प्रजाजनोंसे कुछ दूरपर सोये थे॥ १७॥

महातेजस्वी श्रीराम तड़के ही उठे और प्रजाजनोंको सोते देख पवित्र लक्षणोंवाले भाई लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले— ॥ १८॥

'सुमित्राकुमार लक्ष्मण! इन पुरवासियोंकी ओर देखो, ये इस समय वृक्षोंकी जड़से सटकर सो रहे हैं। इन्हें केवल हमारी चाह है। ये अपने घरोंकी ओरसे भी पूर्ण निरपेक्ष हो गये हैं॥ १९॥

'हमें लौटा ले चलनेके लिये ये जैसा उद्योग कर रहे हैं, इससे जान पड़ता है, ये अपना प्राण त्याग देंगे; किंतु अपना निश्चय नहीं छोड़ेंगे॥ २०॥

'अतः जबतक ये सो रहे हैं तभीतक हमलोग रथपर सवार होकर शीघ्रतापूर्वक यहाँसे चल दें। फिर हमें इस मार्गपर और किसीके आनेका भय नहीं रहेगा॥ २१॥

'अयोध्यावासी हमलोगोंके अनुरागी हैं। जब हम यहाँसे निकल चलेंगे, तब उन्हें फिर अब इस प्रकार

वृक्षोंकी जड़ोंसे सटकर नहीं सोना पड़ेगा॥ २२॥

'राजकुमारोंका यह कर्तव्य है कि वे पुरवासियोंको अपने द्वारा होनेवाले दु:खसे मुक्त करें, न कि अपना दु:ख देकर उन्हें और दु:खी बना दें'॥ २३॥

यह सुनकर लक्ष्मणने साक्षात् धर्मके समान विराजमान भगवान् श्रीरामसे कहा—'परम बुद्धिमान् आर्य! मुझे आपकी राय पसंद है। शीघ्र ही रथपर सवार होइये'॥ २४॥

तब श्रीरामने सुमन्त्रसे कहा—'प्रभो! आप जाइये और शीघ्र ही रथ जोतकर तैयार कीजिये। फिर मैं जल्दी ही यहाँसे वनकी ओर चलूँगा'॥ २५॥

आज्ञा पाकर सुमन्त्रने उन उत्तम घोड़ोंको तुरंत ही रथमें जोत दिया और श्रीरामके पास हाथ जोड़कर निवेदन किया—॥ २६॥

'महाबाहो! रथियोंमें श्रेष्ठ वीर! आपका कल्याण हो। आपका यह रथ जुता हुआ तैयार है। अब सीता और लक्ष्मणके साथ शीघ्र इसपर सवार होइये'॥ २७॥

श्रीरामचन्द्रजी सबके साथ रथपर बैठकर तीव्र-गतिसे बहनेवाली भँवरोंसे भरी हुई तमसा नदीके उस पार गये॥ २८॥

नदीको पार करके महाबाहु श्रीमान् राम ऐसे महान् मार्गपर जा पहुँचे जो कल्याणप्रद, कण्टकरहित तथा सर्वत्र भय देखनेवालोंके लिये भी भयसे रहित था॥ २९॥

उस समय श्रीरामने पुरवासियोंको भुलावा देनेके लिये सुमन्त्रसे यह बात कही—'सारथे! (हमलोग तो यहीं उतर जाते हैं;) परंतु आप रथपर आरूढ़ होकर पहले उत्तर दिशाकी ओर जाइये। दो घड़ीतक तीव्र गतिसे उत्तर जाकर फिर दूसरे मार्गसे रथको यहीं लौटा लाइये। जिस तरह भी पुरवासियोंको मेरा पता न चले, वैसा एकाग्रतापूर्वक प्रयत्न कीजिये'॥ ३०-३१॥

श्रीरामजीका यह वचन सुनकर सारथिने वैसा ही किया और लौटकर पुन: श्रीरामकी सेवामें रथ उपस्थित कर दिया॥ ३२॥

तत्पश्चात् सीतासहित श्रीराम और लक्ष्मण, जो रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले थे, लौटाकर लाये गये उस रथपर चढ़े। तदनन्तर सारथिने घोड़ोंको उस मार्गपर बढ़ा दिया, जिससे तपोवनमें पहुँचा जा सकता था॥ ३३॥

तदनन्तर सारथिसहित महारथी श्रीरामने यात्राकालिक मङ्गलसूचक शकुन देखनेके लिये पहले तो उस रथको उत्तराभिमुख खड़ा किया; फिर वे उस रथपर आरूढ़ होकर वनकी ओर चल दिये॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

प्रात:काल उठनेपर पुरवासियोंका विलाप करना और निराश होकर नगरको लौटना

इधर रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब अयोध्यावासी मनुष्य श्रीरघुनाथजीको न देखकर अचेत हो गये। शोकसे व्याकुल होनेके कारण उनसे कोई भी चेष्टा करते न बनी॥ १॥

वे शोकजनित आँसू बहाते हुए अत्यन्त खिन्न हो गये तथा इधर-उधर उनकी खोज करने लगे। परंतु उन दु:खी पुरवासियोंको श्रीराम किधर गये, इस बातका पता देनेवाला कोई चिह्नतक नहीं दिखायी दिया॥ २॥

बुद्धिमान् श्रीरामसे विलग होकर वे अत्यन्त दीन हो गये। उनके मुखपर विषादजनित वेदना स्पष्ट दिखायी देती थी। वे मनीषी पुरवासी करुणाभरे वचन बोलते हुए विलाप करने लगे—॥ ३॥

'हाय! हमारी उस निद्राको धिक्कार है, जिससे अचेत हो जानेके कारण हम उस समय विशाल वक्षवाले महाबाहु श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित हो गये हैं॥ ४॥

'जिनकी कोई भी क्रिया कभी निष्फल नहीं होती, वे तापसवेषधारी महाबाहु श्रीराम हम भक्तजनोंको छोड़कर परदेश (वन) में कैसे चले गये?॥ ५॥

'जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार जो सदा हमारी रक्षा करते थे, वे ही रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम आज हमें छोड़कर वनको क्यों चले गये?॥ ६॥

'अब हमलोग यहीं प्राण दे दें या मरनेका निश्चय करके उत्तर दिशाकी ओर चल दें। श्रीरामसे रहित होकर हमारा जीवन-धारण किसलिये हितकर हो सकता है?॥ ७॥

'अथवा यहाँ बहुत-से बड़े-बड़े सूखे काठ पड़े हैं, उनसे चिता जलाकर हम सब लोग उसीमें प्रवेश कर जायँ॥ ८॥

'(यदि हमसे कोई श्रीरामका वृत्तान्त पूछेगा तो हम उसे क्या उत्तर देंगे?) क्या हम यह कहेंगे कि जो

किसीके दोष नहीं देखते और सबसे प्रिय वचन बोलते हैं, उन महाबाहु श्रीरघुनाथजीको हमने वनमें पहुँचा दिया है? हाय! यह अयोग्य बात हमारे मुँहसे कैसे निकल सकती है?॥ ९॥

'श्रीरामके बिना हमलोगोंको लौटा हुआ देखकर स्त्री, बालक और वृद्धोंसहित सारी अयोध्यानगरी निश्चय ही दीन और आनन्दहीन हो जायगी॥ १०॥

'हमलोग वीरवर महात्मा श्रीरामके साथ सर्वदा निवास करनेके लिये निकले थे। अब उनसे बिछुड़कर हम अयोध्यापुरीको कैसे देख सकेंगे'॥ ११॥

इस प्रकार अनेक तरहकी बातें कहते हुए वे समस्त पुरवासी अपनी भुजा उठाकर विलाप करने लगे। वे बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई अग्रगामिनी गौओंकी भाँति दुःखसे व्याकुल हो रहे थे॥ १२॥

फिर रास्तेपर रथकी लीक देखते हुए सब-के-सब कुछ दूरतक गये; किंतु क्षणभरमें मार्गका चिह्न न मिलनेके कारण वे महान् शोकमें डूब गये॥ १३॥

उस समय यह कहते हुए कि 'यह क्या हुआ? अब हम क्या करें? दैवने हमें मार डाला' वे मनस्वी पुरुष रथकी लीकका अनुसरण करते हुए अयोध्याकी ओर लौट पड़े॥ १४॥

उनका चित्त क्लान्त हो रहा था। वे सब जिस मार्गसे गये थे, उसीसे लौटकर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे, जहाँके सभी सत्पुरुष श्रीरामके लिये व्यथित थे॥ १५॥

उस नगरीको देखकर उनका हृदय दुःखसे व्याकुल हो उठा। वे अपने शोकपीड़ित नेत्रोंद्वारा आँसुओंकी वर्षा करने लगे॥ १६॥

(वे बोले—)'जिसके गहरे कुण्डसे वहाँका नाग गरुड़के द्वारा निकाल लिया गया हो, वह नदी जैसे शोभाहीन हो जाती है, उसी प्रकार श्रीरामसे रहित हुई यह अयोध्यानगरी अब अधिक शोभा नहीं पाती है'॥

उन्होंने देखा, सारा नगर चन्द्रहीन आकाश और जलहीन समुद्रके समान आनन्दशून्य हो गया है। पुरीकी यह दुरवस्था देख वे अचेत-से हो गये॥ १८॥

उनके हृदयका सारा उल्लास नष्ट हो चुका था। वे दुःखसे पीड़ित हो उन महान् वैभवसम्पन्न गृहोंमें बड़े क्लेशके साथ प्रविष्ट हो सबको देखते हुए भी अपने और परायेकी पहचान न कर सके॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

नगरनिवासिनी स्त्रियोंका विलाप करना

इस प्रकार जो विषादग्रस्त, अत्यन्त पीड़ित, शोकमग्न तथा प्राण त्याग देनेकी इच्छासे युक्त हो नेत्रोंसे आँसू बहा रहे थे, श्रीरामचन्द्रजीके साथ जाकर भी जो उन्हें लिये बिना लौट आये थे और इसीलिये जिनका चित्त ठिकाने नहीं था, उन नगरवासियोंकी ऐसी दशा हो रही थी मानो उनके प्राण निकल गये हों॥ १-२॥

वे सब अपने-अपने घरमें आकर पत्नी और पुत्रोंसे घिरे हुए आँसू बहाने लगे। उनके मुख अश्रुधारासे आच्छादित थे॥ ३॥

उनके शरीरमें हर्षका कोई चिह्न नहीं दिखायी देता था तथा मनमें भी आनन्दका अभाव ही था। वैश्योंने अपनी दुकानें नहीं खोलीं। क्रय-विक्रयकी वस्तुएँ बाजारोंमें फैलायी जानेपर भी उनकी शोभा नहीं हुई (उन्हें लेनेके लिये ग्राहक नहीं आये)। उस दिन गृहस्थोंके घरमें चूल्हे नहीं जले—रसोई नहीं बनी॥ ४॥

खोयी हुई वस्तु मिल जानेपर भी किसीको प्रसन्नता नहीं हुई, विपुल धन-राशि प्राप्त हो जानेपर भी किसीने उसका अभिनन्दन नहीं किया। जिसने प्रथम बार पुत्रको जन्म दिया था, वह माता भी आनन्दित नहीं हुई॥ ५॥

प्रत्येक घरकी स्त्रियाँ अपने पतियोंको श्रीरामके बिना ही लौटकर आये देख रो पड़ीं और दुःखसे आतुर हो कठोर वचनोंद्वारा उन्हें कोसने लगीं, मानो महावत अंकुशोंसे हाथियोंको मार रहे हों॥ ६॥

वे बोलीं—'जो लोग श्रीरामको नहीं देखते, उन्हें घर-द्वार, स्त्री-पुत्र, धन-दौलत और सुख-भोगोंसे क्या प्रयोजन है?॥ ७॥

'संसारमें एकमात्र लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं, जो सीताके साथ श्रीरामकी सेवा करनेके लिये उनके पीछे-पीछे वनमें जा रहे हैं॥ ८॥

'उन नदियों, कमलमण्डित बावड़ियों तथा सरोवरोंने अवश्य ही बहुत पुण्य किया होगा, जिनके पवित्र जलमें स्नान करके श्रीरामचन्द्रजी आगे जायँगे॥ ९॥

'जिनमें रमणीय वृक्षावलियाँ शोभा पाती हैं, वे सुन्दर वनश्रेणियाँ, बड़े कछारवाली नदियाँ और शिखरोंसे सम्पन्न पर्वत श्रीरामकी शोभा बढ़ायेंगे॥ १०॥

'श्रीराम जिस वन अथवा पर्वतपर जायँगे, वहाँ उन्हें अपने प्रिय अतिथिकी भाँति आया हुआ देख वे वन और पर्वत उनकी पूजा किये बिना नहीं रह सकेंगे॥

'विचित्र फूलोंके मुकुट पहने और बहुत-सी मञ्जरियाँ धारण किये भ्रमरोंसे सुशोभित वृक्ष वनमें श्रीरामचन्द्रजीको अपनी शोभा दिखायेंगे॥ १२॥

'वहाँके पर्वत अपने यहाँ पधारे हुए श्रीरामको अत्यन्त आदरके कारण असमयमें भी उत्तम-उत्तम फूल और फल दिखायेंगे (भेंट करेंगे)॥ १३॥

'वे पर्वत बारंबार नाना प्रकारके विचित्र झरने दिखाते हुए श्रीरामके लिये निर्मल जलके स्रोत बहायेंगे॥

'पर्वत-शिखरोंपर लहलहाते हुए वृक्ष श्रीरघुनाथजीका मनोरंजन करेंगे। जहाँ श्रीराम हैं वहाँ न तो कोई भय है और न किसीके द्वारा पराभव ही हो सकता है; क्योंकि दशरथनन्दन महाबाहु श्रीराम बड़े शूरवीर हैं। अतः जबतक वे हमलोगोंसे बहुत दूर नहीं निकल जाते, इसके पहले ही हमें उनके पास पहुँचकर पीछे लग जाना चाहिये॥ १५-१६॥

'उनके-जैसे महात्मा एवं स्वामीके चरणोंकी छाया ही हमारे लिये परम सुखद है। वे ही हमारे रक्षक, गति और परम आश्रय हैं॥ १७॥

'हम स्त्रियाँ सीताजीकी सेवा करेंगी और तुम सब लोग श्रीरघुनाथजीकी सेवामें लगे रहना।' इस प्रकार पुरवासियोंकी स्त्रियाँ दुःखसे आतुर हो अपने पतियोंसे उपर्युक्त बातें कहने लगीं॥ १८॥

(वे पुनः बोलीं—) 'वनमें श्रीरामचन्द्रजी आपलोगोंका योगक्षेम सिद्ध करेंगे और सीताजी हम नारियोंके योगक्षेमका निर्वाह करेंगी॥ १९॥

'यहाँका निवास प्रीति और प्रतीतिसे रहित है। यहाँके सब लोग श्रीरामके लिये उत्कण्ठित रहते हैं। किसीको यहाँका रहना अच्छा नहीं लगता तथा यहाँ रहनेसे मन अपनी सुध-बुध खो बैठता है। भला, ऐसे निवाससे किसको प्रसन्नता होगी?॥ २०॥

'यदि इस राज्यपर कैकेयीका अधिकार हो गया तो यह अनाथ-सा हो जायगा। इसमें धर्मकी मर्यादा नहीं रहने पायेगी। ऐसे राज्यमें तो हमें जीवित रहनेकी ही आवश्यकता नहीं जान पड़ती, फिर यहाँ धन और पुत्रोंसे क्या लेना है?॥ २१॥

'जिसने राज्य-वैभवके लिये अपने पुत्र और पतिको त्याग दिया, वह कुलकलङ्किनी कैकेयी दूसरे किसका त्याग नहीं करेगी?॥ २२॥

'हम अपने पुत्रोंकी शपथ खाकर कहती हैं कि जबतक कैकेयी जीवित रहेगी, तबतक हम जीते-जी कभी उसके राज्यमें नहीं रह सकेंगी, भले ही यहाँ हमारा पालन-पोषण होता रहे (फिर भी हम यहाँ रहना नहीं चाहेंगी)॥ २३॥

'जिस निर्दय स्वभाववाली नारीने महाराजके पुत्रको राज्यसे बाहर निकलवा दिया है, उस अधर्मपरायणा दुराचारिणी कैकेयीके अधिकारमें रहकर कौन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है?॥ २४॥

'कैकेयीके कारण यह सारा राज्य अनाथ एवं यज्ञरहित होकर उपद्रवका केन्द्र बन गया है, अतः एक दिन सबका विनाश हो जायगा॥ २५॥

'श्रीरामचन्द्रजीके वनवासी हो जानेपर महाराज दशरथ जीवित नहीं रहेंगे। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि राजा दशरथकी मृत्युके पश्चात् इस राज्यका लोप हो जायगा॥ २६॥

'इसलिये अब तुमलोग यह समझ लो कि अब हमारे पुण्य समाप्त हो गये। यहाँ रहकर हमें अत्यन्त दुःख ही भोगना पड़ेगा। ऐसी दशामें या तो जहर घोलकर पी जाओ या श्रीरामका अनुसरण करो अथवा किसी ऐसे देशमें चले चलो, जहाँ कैकेयीका नाम भी न सुनायी पड़े॥ २७॥

'झूठे वरकी कल्पना करके पत्नी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामको देशनिकाला दे दिया गया और हमें भरतके साथ बाँध दिया गया। अब हमारी दशा कसाईके घर बँधे हुए पशुओंके समान हो गयी है॥ २८॥

'लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है। उनके शरीरकी कान्ति श्याम, गलेकी हँसली मांससे ढकी हुई, भुजाएँ घुटनोंतक लंबी और नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे सामने आनेपर पहले ही बातचीत छेड़ते हैं तथा मीठे और सत्य वचन बोलते हैं। श्रीराम शत्रुओंका दमन करनेवाले और महान् बलवान् हैं। समस्त जगत्के लिये सौम्य (कोमल स्वभाववाले) हैं। उनका दर्शन चन्द्रमाके समान प्यारा है॥ २९-३०॥

'निश्चय ही मतवाले गजराजके समान पराक्रमी पुरुषसिंह महारथी श्रीराम भूतलपर विचरते हुए

वनस्थलियोंकी शोभा बढ़ायेंगे'॥ ३१ ॥

नगरमें नागरिकोंकी स्त्रियाँ इस प्रकार विलाप करती हुई दुःखसे संतप्त हो इस तरह जोर-जोरसे रोने लगीं, मानो उनपर मृत्युका भय आ गया हो॥ ३२ ॥

अपने-अपने घरोंमें श्रीरामके लिये स्त्रियाँ इस प्रकार दिनभर विलाप करती रहीं। धीरे-धीरे सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और रात हो गयी॥ ३३ ॥

उस समय किसीके घरमें अग्निहोत्रके लिये भी आग नहीं जली। स्वाध्याय और कथा-वार्ता भी नहीं हुई। सारी अयोध्यापुरी अन्धकारसे पुती हुई-सी प्रतीत होती थी॥ ३४ ॥

बनियोंकी दुकानें बंद होनेके कारण वहाँ चहल-पहल नहीं थी, सारी पुरीकी हँसी-खुशी छिन गयी थी, श्रीरामरूपी आश्रयसे रहित अयोध्यानगरी जिसके तारे छिप गये हों, उस आकाशके समान श्रीहीन जान पड़ती थी॥ ३५ ॥

उस समय नगरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके लिये इस तरह शोकातुर हो रही थीं, मानो उनके सगे बेटे या भाईको देशनिकाला दे दिया गया हो। वे अत्यन्त दीनभावसे विलाप करके रोने लगीं और रोते-रोते अचेत हो गयीं; क्योंकि श्रीराम उनके लिये पुत्रों (तथा भाइयों)-से भी बढ़कर थे॥ ३६ ॥

वहाँ गाने, बजाने और नाचनेके उत्सव बंद हो गये, सबका उत्साह जाता रहा, बाजारकी दुकानें नहीं खुलीं, इन सब कारणोंसे उस समय अयोध्यानगरी जलहीन समुद्रके समान सूनसान लग रही थी॥ ३७

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

ग्रामवासियोंकी बातें सुनते हुए श्रीरामका कोसल जनपदको लाँघते हुए आगे जाना और वेदश्रुति, गोमती एवं स्यन्दिका नदियोंको पार करके सुमन्त्रसे कुछ कहना

उधर पुरुषसिंह श्रीराम भी पिताकी आज्ञाका बारंबार स्मरण करते हुए उस शेष रात्रिमें ही बहुत दूर निकल गये॥

उसी तरह चलते-चलते उनकी वह कल्याणमयी रजनी भी व्यतीत हो गयी। सबेरा होनेपर मङ्गलमयी संध्योपासना करके वे विभिन्न जनपदोंको लाँघते हुए चल दिये॥ २ ॥

जिनकी सीमाके पासकी भूमि जोत दी गयी थी, उन ग्रामों तथा फूलोंसे सुशोभित वनोंको देखते हुए वे उन उत्तम घोड़ोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े जा रहे थे तथापि सुन्दर दृश्योंके देखनेमें तन्मय रहनेके कारण उन्हें उस रथकी गति धीमी-सी ही जान पड़ती थी॥

मार्गमें जो बड़े और छोटे गाँव मिलते थे, उनमें निवास करनेवाले मनुष्योंकी निम्नाङ्कित बातें उनके कानोंमें पड़ रही थीं—'अहो! कामके वशमें पड़े हुए राजा दशरथको धिक्कार है!॥ ४ ॥

'हाय! हाय! पापशीला, पापासक्त, क्रूर तथा धर्ममर्यादाका त्याग करनेवाली कैकेयीको तो दया छू भी नहीं गयी है, वह क्रूर अब निष्ठुर कर्ममें ही लगी रहती है॥ ५ ॥

'जिसने महाराजके ऐसे धर्मात्मा, महाज्ञानी, दयालु और जितेन्द्रिय पुत्रको वनवासके लिये घरसे निकलवा दिया है॥ ६ ॥

'जनकनन्दिनी महाभागा सीता, जो सदा सुखोंमें ही रत रहती थीं, अब वनवासके दुःख कैसे भोग सकेंगी?

'अहो! क्या राजा दशरथ अपने पुत्रके प्रति इतने स्नेहहीन हो गये, जो प्रजाओंके प्रति कोई अपराध न करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका यहाँ परित्याग कर देना चाहते हैं'॥ ८ ॥

छोटे-बड़े गाँवोंमें रहनेवाले मनुष्योंकी ये बातें सुनते हुए वीर कोसलपति श्रीराम कोसल जनपदकी सीमा लाँघकर आगे बढ़ गये॥ ९ ॥

तदनन्तर शीतल एवं सुखद जल बहानेवाली वेदश्रुति नामक नदीको पार करके श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्यसेवित दक्षिण-दिशाकी ओर बढ़ गये॥ १० ॥

दीर्घकालतक चलकर उन्होंने समुद्रगामिनी गोमती नदीको पार किया, जो शीतल जलका स्रोत बहाती थी। उसके कछारमें बहुत-सी गौएँ विचरती थीं॥ ११ ॥

शीघ्रगामी घोड़ोंद्वारा गोमती नदीको लाँघ करके श्रीरघुनाथजीने मोरों और हंसोंके कलरवोंसे व्याप्त

स्यन्दिका नामक नदीको भी पार किया॥ १२॥

वहाँ जाकर श्रीरामने धन-धान्यसे सम्पन्न और अनेक अवान्तर जनपदोंसे घिरी हुई भूमिका सीताको दर्शन कराया, जिसे पूर्वकालमें राजा मनुने इक्ष्वाकुको दिया था॥ १३॥

फिर श्रीमान् पुरुषोत्तम श्रीरामने 'सूत!' कहकर सारथिको बारंबार सम्बोधित किया और मदमत्त हंसके समान मधुर स्वरमें इस प्रकार कहा—॥ १४॥

'सूत! मैं कब पुनः लौटकर माता-पितासे मिलूँगा और सरयूके पार्श्ववर्ती पुष्पित वनमें मृगयाके लिये भ्रमण करूँगा?॥ १५॥

'मैं सरयूके वनमें शिकार खेलनेकी बहुत अधिक अभिलाषा नहीं रखता। यह लोकमें एक प्रकारकी अनुपम क्रीड़ा है, जो राजर्षियोंके समुदायको अभिमत है॥ १६॥

'इस लोकमें वनमें जाकर शिकार खेलना राजर्षियोंकी क्रीड़ाके लिये प्रचलित हुआ था। अतः मनुपुत्रोंद्वारा उस समय की गयी यह क्रीड़ा अन्य धनुर्धरोंको भी अभीष्ट हुई'॥ १७॥

इक्ष्वाकुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी विभिन्न विषयोंको लेकर सूतसे मधुर वाणीमें उपयुक्त बातें कहते हुए उस मार्गपर बढ़ते चले गये॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

श्रीरामका मार्गमें अयोध्यापुरीसे वनवासकी आज्ञा माँगना और शृङ्गवेरपुरमें गङ्गातटपर पहुँचकर रात्रिमें निवास करना, वहाँ निषादराज गुहद्वारा उनका सत्कार

इस प्रकार विशाल और रमणीय कोसलदेशकी सीमाको पार करके लक्ष्मणके बड़े भाई बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्याकी ओर अपना मुख किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ १॥

'ककुत्स्थवंशी राजाओंसे परिपालित पुरीशिरोमणि अयोध्ये! मैं तुमसे तथा जो-जो देवता तुम्हारी रक्षा करते और तुम्हारे भीतर निवास करते हैं, उनसे भी वनमें जानेकी आज्ञा चाहता हूँ॥ २॥

'वनवासकी अवधि पूरी करके महाराजके ऋणसे उऋण हो मैं पुनः लौटकर तुम्हारा दर्शन करूँगा और अपने माता-पितासे भी मिलूँगा'॥ ३॥

इसके बाद सुन्दर एवं अरुण नेत्रवाले श्रीरामने दाहिनी भुजा उठाकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दुःखी होकर जनपदके लोगोंसे कहा—॥ ४॥

'आपने मुझपर बड़ी कृपा की और यथोचित दया दिखायी। मेरे लिये आपलोगोंने बहुत देरतक कष्ट सहन किया। इस तरह आपका देरतक दुःखमें पड़े रहना अच्छा नहीं है; इसलिये अब आपलोग अपना-अपना कार्य करनेके लिये जाइये'॥ ५॥

यह सुनकर उन मनुष्योंने महात्मा श्रीरामको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की और घोर विलाप करते हुए वे जहाँ-तहाँ खड़े हो गये॥ ६॥

उनकी आँखें अभी श्रीरामके दर्शनसे तृप्त नहीं हुई थीं और वे पूर्वोक्त रूपसे विलाप कर ही रहे थे, इतनेमें श्रीरघुनाथजी उनकी दृष्टिसे ओझल हो गये, जैसे सूर्य प्रदोषकालमें छिप जाते हैं॥ ७॥

इसके बाद पुरुषसिंह श्रीराम रथके द्वारा ही उस कोसल जनपदको लाँघ गये, जो धन-धान्यसे सम्पन्न और सुखदायक था। वहाँके सब लोग दानशील थे। उस जनपदमें कहींसे कोई भय नहीं था। वहाँके भूभाग रमणीय एवं चैत्य-वृक्षों तथा यज्ञ-सम्बन्धी यूपोंसे व्याप्त थे। बहुत-से उद्यान और आमोंके वन उस जनपदकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँ जलसे भरे हुए बहुत-से जलाशय सुशोभित थे। सारा जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरा था; गौओंके समूहोंसे व्याप्त और सेवित था। वहाँके ग्रामोंकी बहुत-से नरेश रक्षा करते थे तथा वहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँजती रहती थी॥ ८—१०॥

कोसलदेशसे आगे बढ़नेपर धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी मध्यमार्गसे ऐसे राज्यमें होकर निकले, जो सुख-सुविधासे युक्त, धन-धान्यसे सम्पन्न, रमणीय उद्यानोंसे व्याप्त तथा सामन्त नरेशोंके उपभोगमें आनेवाला था॥ ११॥

उस राज्यमें श्रीरघुनाथजीने त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गङ्गाका दर्शन किया, जो शीतल जलसे भरी हुई, सेवारोंसे रहित तथा रमणीय थीं। बहुत-से महर्षि उनका सेवन करते थे॥ १२॥

उनके तटपर थोड़ी-थोड़ी दूरपर बहुत-से सुन्दर आश्रम बने थे, जो उन देवनदीकी शोभा बढ़ाते थे। समय-समयपर हर्षभरी अप्सराएँ भी उतरकर उनके जलकुण्डका सेवन करती हैं। वे गङ्गा सबका कल्याण करनेवाली हैं॥ १३॥

देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उन शिवस्वरूपा भागीरथीकी शोभा बढ़ाते हैं। नागों और गन्धर्वोंकी पत्नियाँ उनके जलका सदा सेवन करती हैं॥ १४॥

गङ्गाके दोनों तटोंपर देवताओंके सैकड़ों पर्वतीय क्रीड़ास्थल हैं। उनके किनारे देवताओंके बहुत-से उद्यान भी हैं। वे देवताओंकी क्रीड़ाके लिये आकाशमें भी विद्यमान हैं और वहाँ देवपद्मिनीके रूपमें विख्यात हैं॥ १५॥

प्रस्तरखण्डोंसे गङ्गाके जलके टकरानेसे जो शब्द होता है, वही मानो उनका उग्र अट्टहास है। जलसे जो फेन प्रकट होता है, वही उन दिव्य नदीका निर्मल हास है। कहीं तो उनका जल वेणीके आकारका है और कहीं वे भँवरोंसे सुशोभित होती हैं॥ १६॥

कहीं उनका जल निश्चल एवं गहरा है। कहीं वे महान् वेगसे व्याप्त हैं। कहीं उनके जलसे मृदङ्ग आदिके समान गम्भीर घोष प्रकट होता है और कहीं वज्रपात आदिके समान भयंकर नाद सुनायी पड़ता है॥ १७॥

उनके जलमें देवताओंके समुदाय गोते लगाते हैं। कहीं-कहीं उनका जल नील कमलों अथवा कुमुदोंसे आच्छादित होता है। कहीं विशाल पुलिनका दर्शन होता है तो कहीं निर्मल बालुका-राशिका॥ १८॥

हंसों और सारसोंके कलरव वहाँ गूँजते रहते हैं। चकवे उन देवनदीकी शोभा बढ़ाते हैं। सदा मदमत्त रहनेवाले विहंगम उनके जलपर मँडराते रहते हैं। वे उत्तम शोभासे सम्पन्न हैं॥ १९॥

कहीं तटवर्ती वृक्ष मालाकार होकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। कहीं तो उनका जल खिले हुए उत्पलोंसे आच्छादित है और कहीं कमलवनोंसे व्याप्त॥ २०॥

कहीं कुमुदसमूह तथा कहीं कलिकाएँ उन्हें सुशोभित करती हैं। कहीं नाना प्रकारके पुष्पोंके परागोंसे व्याप्त होकर वे मदमत्त नारीके समान प्रतीत होती हैं॥

वे मलसमूह (पापराशि) दूर कर देती हैं। उनका जल इतना स्वच्छ है कि मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। उनके तटवर्ती वनका भीतरी भाग मदमत्त दिग्गजों, जंगली हाथियों तथा देवराजकी सवारीमें आनेवाले श्रेष्ठ गजराजोंसे कोलाहलपूर्ण बना रहता है॥

वे फलों, फूलों, पल्लवों, गुल्मों तथा पक्षियोंसे आवृत होकर उत्तम आभूषणोंसे यत्नपूर्वक विभूषित हुई युवतीके समान शोभा पाती हैं। उनका प्राकट्य भगवान् विष्णुके चरणोंसे हुआ है। उनमें पापका लेश भी नहीं है। वे दिव्य नदी गङ्गा जीवोंके समस्त पापोंका नाश कर देनेवाली हैं॥ २३-२४॥

उनके जलमें सूँस, घड़ियाल और सर्प निवास करते हैं। सगरवंशी राजा भगीरथके तपोमय तेजसे जिनका शंकरजीके जटाजूटसे अवतरण हुआ था, जो समुद्रकी रानी हैं तथा जिनके निकट सारस और क्रौञ्च पक्षी कलरव करते रहते हैं, उन्हीं देवनदी गङ्गाके पास महाबाहु श्रीरामजी पहुँचे। गङ्गाकी वह धारा शृङ्गवेरपुरमें बह रही थी॥ २५-२६॥

जिनके आवर्त (भँवरें) लहरोंसे व्याप्त थे, उन गङ्गाजीका दर्शन करके महारथी श्रीरामने सारथि सुमन्त्रसे कहा— 'सूत! आज हमलोग यहीं रहेंगे'॥ २७॥

'सारथे! गङ्गाजीके समीप ही जो यह बहुत-से फूलों और नये-नये पल्लवोंसे सुशोभित महान् इङ्गुदीका वृक्ष है, इसीके नीचे आज रातमें हम निवास करेंगे॥ २८॥

'जिनका जल देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, सर्पों, पशुओं तथा पक्षियोंके लिये भी समादरणीय है, उन कल्याणस्वरूपा, सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीका भी मुझे यहाँसे दर्शन होता रहेगा'॥ २९॥

तब लक्ष्मण और सुमन्त्र भी श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत अच्छा कहकर अश्वोंद्वारा उस इंगुदी-वृक्षके समीप गये॥

उस रमणीय वृक्षके पास पहुँचकर इक्ष्वाकुनन्दन श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ रथसे उतर गये॥ ३१॥

फिर सुमन्त्रने भी उतरकर उत्तम घोड़ोंको खोल दिया और वृक्षकी जड़पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ ३२॥

शृङ्गवेरपुरमें गुहनामका राजा राज्य करता था। वह श्रीरामचन्द्रजीका प्राणोंके समान प्रिय मित्र था। उसका जन्म निषादकुलमें हुआ था। वह शारीरिक शक्ति और सैनिक शक्तिकी दृष्टिसे भी बलवान् था तथा वहाँके निषादोंका सुविख्यात राजा था॥ ३३॥

उसने जब सुना कि पुरुषसिंह श्रीराम मेरे राज्यमें पधारे हैं, तब वह बूढ़े मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवोंसे घिरा हुआ वहाँ आया॥ ३४॥

निषादराजको दूरसे आया हुआ देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ आगे बढ़कर उससे मिले॥ ३५॥

श्रीरामचन्द्रजीको वल्कल आदि धारण किये देख गुहको बड़ा दु:ख हुआ। उसने श्रीरघुनाथजीको हृदयसे लगाकर कहा—'श्रीराम! आपके लिये जैसे अयोध्याका राज्य है, उसी प्रकार यह राज्य भी है। बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? महाबाहो! आप-जैसा प्रिय अतिथि किसको सुलभ होगा?'॥ ३६ $\frac{1}{2}$ ॥

फिर भाँति-भाँतिका उत्तम अन्न लेकर वह सेवामें उपस्थित हुआ। उसने शीघ्र ही अर्घ्य निवेदन किया और इस प्रकार कहा—'महाबाहो! आपका स्वागत है। यह सारी भूमि, जो मेरे अधिकारमें है, आपकी ही है। हम आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी, आजसे आप ही हमारे इस राज्यका भलीभाँति शासन करें। यह भक्ष्य (अन्न आदि), भोज्य (खीर आदि), पेय (पानकरस आदि) तथा लेह्य (चटनी आदि) आपकी सेवामें उपस्थित है, इसे स्वीकार करें। ये उत्तमोत्तम शय्याएँ हैं तथा आपके घोड़ोंके खानेके लिये चने और घास आदि भी प्रस्तुत हैं—ये सब सामग्री ग्रहण करें'॥ ३७—३९॥

गुहके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—'सखे! तुम्हारे यहाँतक पैदल आने और स्नेह दिखानेसे ही हमारा सदाके लिये भलीभाँति पूजन—स्वागत-सत्कार हो गया। तुमसे मिलकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है'॥ ४० $\frac{1}{2}$ ॥

फिर श्रीरामने अपनी दोनों गोल-गोल भुजाओंसे गुहका अच्छी तरह आलिङ्गन करते हुए कहा—'गुह! सौभाग्यकी बात है कि मैं आज तुम्हें बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वस्थ एवं सानन्द देख रहा हूँ। बताओ, तुम्हारे राज्यमें, मित्रोंके यहाँ तथा वनोंमें सर्वत्र कुशल तो है?॥ ४१-४२॥

'तुमने प्रेमवश यह जो कुछ सामग्री प्रस्तुत की है, इसे स्वीकार करके मैं तुम्हें वापिस ले जानेकी आज्ञा देता हूँ; क्योंकि इस समय दूसरोंकी दी हुई कोई भी वस्तु मैं ग्रहण नहीं करता—अपने उपयोगमें नहीं लाता॥

'वल्कल और मृगचर्म धारण करके फल-मूलका आहार करता हूँ और धर्ममें स्थित रहकर तापसवेशमें वनके भीतर ही विचरता हूँ। इन दिनों तुम मुझे इसी नियममें स्थित जानो॥ ४४॥

'इन सामग्रियोंमें जो घोड़ोंके खाने-पीनेकी वस्तु है, उसीकी इस समय मुझे आवश्यकता है, दूसरी किसी वस्तुकी नहीं। घोड़ोंको खिला-पिला देनेमात्रसे तुम्हारे द्वारा मेरा पूर्ण सत्कार हो जायगा॥ ४५॥

'ये घोड़े मेरे पिता महाराज दशरथको बहुत प्रिय हैं। इनके खाने-पीनेका सुन्दर प्रबन्ध कर देनेसे मेरा भलीभाँति पूजन हो जायगा'॥ ४६॥

तब गुहने अपने सेवकोंको उसी समय यह आज्ञा दी कि तुम घोड़ोंके खाने-पीनेके लिये आवश्यक वस्तुएँ शीघ्र लाकर दो॥ ४७॥

तत्पश्चात् वल्कलका उत्तरीय-वस्त्र धारण करनेवाले श्रीरामने सायंकालकी संध्योपासना करके भोजनके नामपर स्वयं लक्ष्मणका लाया हुआ केवल जलमात्र पी लिया॥ ४८॥

फिर पत्नीसहित श्रीराम भूमिपर ही तृणकी शय्या बिछाकर सोये। उस समय लक्ष्मण उनके दोनों चरणोंको धो-पोंछकर वहाँसे कुछ दूरपर हट आये और एक वृक्षका सहारा लेकर बैठ गये॥ ४९॥

गुह भी सावधानीके साथ धनुष धारण करके सुमन्त्रके साथ बैठकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे बातचीत करता हुआ श्रीरामकी रक्षाके लिये रातभर जागता रहा॥ ५०॥

इस प्रकार सोये हुए यशस्वी मनस्वी दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामकी, जिन्होंने कभी दु:ख नहीं देखा था तथा जो सुख भोगनेके ही योग्य थे, वह रात उस समय (नींद न आनेके कारण) बहुत देरके बाद व्यतीत हुई॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

निषादराज गुहके समक्ष लक्ष्मणका विलाप

लक्ष्मणको अपने भाईके लिये स्वाभाविक अनुरागसे जागते देख निषादराज गुहको बड़ा संताप हुआ। उसने रघुकुलनन्दन लक्ष्मणसे कहा—॥ १॥

'तात! राजकुमार! तुम्हारे लिये यह आराम देनेवाली शय्या तैयार है, इसपर सुखपूर्वक सोकर भलीभाँति विश्राम कर लो॥ २॥

'यह (मैं) सेवक तथा इसके साथके सब लोग वनवासी होनेके कारण सब प्रकारके क्लेश सहन करनेके योग्य हैं (क्योंकि हम सबको कष्ट सहनेका अभ्यास है), परंतु तुम सुखमें ही पले हो, अत: उसीके योग्य हो (इसलिये सो जाओ)। हम सब लोग श्रीरामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये रातभर जागते रहेंगे॥ ३॥

'मैं सत्यकी ही शपथ खाकर तुमसे सत्य कहता हूँ कि इस भूतलपर मुझे श्रीरामसे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है॥ ४॥

'इन श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे ही मैं इस लोकमें महान् यश, विपुल धर्म-लाभ तथा प्रचुर अर्थ एवं भोग्य वस्तु पानेकी आशा करता हूँ॥ ५॥

'अत: मैं अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ हाथमें धनुष लेकर सीतासहित सोये हुए प्रियसखा श्रीरामकी सब प्रकारसे रक्षा करूँगा॥ ६॥

'इस वनमें सदा विचरते रहनेके कारण मुझसे यहाँकी कोई बात छिपी नहीं है। हमलोग यहाँ शत्रुकी अत्यन्त शक्तिशालिनी विशाल चतुरङ्गिणी सेनाको भी अनायास ही जीत लेंगे'॥ ७॥

यह सुनकर लक्ष्मणने कहा—'निष्पाप निषादराज! तुम धर्मपर ही दृष्टि रखते हुए हमारी रक्षा करते हो, इसलिये इस स्थानपर हम सब लोगोंके लिये कोई भय नहीं है। फिर भी जब महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र सीताके साथ भूमिपर शयन कर रहे हैं, तब मेरे लिये उत्तम शय्यापर सोकर नींद लेना, जीवन-धारणके लिये स्वादिष्ट अन्न खाना अथवा दूसरे-दूसरे सुखोंको भोगना कैसे सम्भव हो सकता है?॥ ८-९॥

'देखो! सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें जिनके वेगको नहीं सह सकते, वे ही श्रीराम इस समय सीताके साथ तिनकोंके ऊपर सुखसे सो रहे हैं॥ १०॥

'गायत्री आदि मन्त्रोंके जप, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तप तथा नाना प्रकारके पराक्रम (यज्ञानुष्ठान आदि प्रयत्न) करनेसे जो महाराज दशरथको अपने समान उत्तम लक्षणोंसे युक्त ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें प्राप्त हुए हैं, उन्हीं इन श्रीरामके वनमें आ जानेसे अब राजा दशरथ अधिक कालतक जीवन धारण नहीं कर सकेंगे। जान पड़ता है, निश्चय ही यह पृथ्वी अब शीघ्र विधवा हो जायगी॥ ११-१२॥

'तात! रनिवासकी स्त्रियाँ बड़े जोरसे आर्तनाद करके अधिक श्रमके कारण अब चुप हो गयी होंगी। मैं समझता हूँ, राजभवनका हाहाकार और चीत्कार अब शान्त हो गया होगा॥ १३॥

'महारानी कौसल्या, राजा दशरथ तथा मेरी माता सुमित्रा—ये सब लोग आजकी राततक जीवित रहेंगे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता॥ १४॥

'शत्रुघ्नकी बाट देखनेके कारण सम्भव है मेरी माता जीवित रह जाय, परंतु यदि वीरजननी कौसल्या श्रीरामके विरहमें नष्ट हो जायँगी तो यह हमलोगोंके लिये बड़े दु:खकी बात होगी॥ १५॥

'जिसमें श्रीरामके अनुरागी मनुष्य भरे हुए हैं तथा जो सदा सुखका दर्शनरूप प्रिय वस्तुकी प्राप्ति करानेवाली रही है, वह अयोध्यापुरी राजा दशरथके निधनजनित दु:खसे युक्त होकर नष्ट हो जायगी॥ १६॥

'अपने ज्येष्ठ पुत्र महात्मा श्रीरामको न देखनेपर महामना राजा दशरथके प्राण उनके शरीरमें कैसे टिके रह सकेंगे॥ १७॥

'महाराजके नष्ट होनेपर देवी कौसल्या भी नष्ट हो जायँगी। तदनन्तर मेरी माता सुमित्रा भी नष्ट हुए बिना नहीं रहेंगी॥ १८॥

'(महाराजकी इच्छा थी कि श्रीरामको राज्यपर अभिषिक्त करूँ) अपने उस मनोरथको न पाकर श्रीरामको राज्यपर स्थापित किये बिना ही 'हाय! मेरा सब कुछ नष्ट हो गया, नष्ट हो गया' ऐसा कहते हुए मेरे पिताजी अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ १९॥

'उनकी उस मृत्युका समय उपस्थित होनेपर जो लोग रहेंगे और मेरे मरे हुए पिता रघुकुलशिरोमणि दशरथका सभी प्रेतकार्योंमें संस्कार करेंगे, वे ही सफलमनोरथ और भाग्यशाली हैं॥ २०॥

'(यदि पिताजी जीवित रहे तो) रमणीय चबूतरों और चौराहोंके सुन्दर स्थानोंसे युक्त, पृथक्-पृथक् बने हुए विशाल राजमार्गोंसे अलंकृत, धनिकोंकी अट्टालिकाओं और देवमन्दिरों एवं राजभवनोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ वाराङ्गनाओंसे सुशोभित, रथों, घोड़ों और हाथियोंके आवागमनसे भरी हुई, विविध वाद्योंकी ध्वनियोंसे निनादित, समस्त कल्याणकारी वस्तुओंसे भरपूर, हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे सेवित, पुष्पवाटिकाओं और उद्यानोंसे विभूषित तथा सामाजिक उत्सवोंसे सुशोभित हुई मेरे पिताकी राजधानी अयोध्यापुरीमें जो लोग विचरेंगे, वास्तवमें वे ही सुखी हैं॥ २१—२३॥

'क्या मेरे पिता महाराज दशरथ हमलोगोंके लौटनेतक जीवित रहेंगे? क्या वनवाससे लौटकर उन उत्तम व्रतधारी महात्माका हम फिर दर्शन कर सकेंगे?॥ २४॥

'क्या वनवासकी इस अवधिके समाप्त होनेपर हमलोग सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामके साथ कुशलपूर्वक अयोध्यापुरीमें प्रवेश कर सकेंगे?'॥ २५॥

इस प्रकार दुःखसे आर्त होकर विलाप करते हुए महामना राजकुमार लक्ष्मणको वह सारी रात जागते ही बीती॥ २६॥

प्रजाके हितमें संलग्न रहनेवाले राजकुमार लक्ष्मण जब बड़े भाईके प्रति सौहार्दवश उपर्युक्तरूपसे यथार्थ बात कह रहे थे, उस समय उसे सुनकर निषादराज गुह दुःखसे पीड़ित हो उठा और व्यथासे व्याकुल हो ज्वरसे आतुर हुए हाथीकी भाँति आँसू बहाने लगा॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे गुहका नाव मँगाना, श्रीरामका सुमन्त्रको समझा-बुझाकर अयोध्यापुरी लौट जानेके लिये आज्ञा देना और माता-पिता आदिसे कहनेके लिये संदेश सुनाना, सुमन्त्रके वनमें ही चलनेके लिये आग्रह करनेपर श्रीरामका उन्हें युक्तिपूर्वक समझाकर लौटनेके लिये विवश करना, फिर तीनोंका नावपर बैठना, सीताकी गङ्गाजीसे प्रार्थना, नावसे पार उतरकर श्रीराम आदिका वत्सदेशमें पहुँचना और सायंकालमें एक वृक्षके नीचे रहनेके लिये जाना

जब रात बीती और प्रभात हुआ, उस समय विशाल वक्षवाले महायशस्वी श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'तात! भगवती रात्रि व्यतीत हो गयी। अब सूर्योदयका समय आ पहुँचा है। वह अत्यन्त काले रंगका पक्षी कोकिल कुहू-कुहू बोल रहा है॥ २॥

'वनमें अव्यक्त शब्द करनेवाले मयूरोंकी केका वाणी भी सुनायी देती है; अतः सौम्य! अब हमें तीव्र गतिसे बहनेवाली समुद्रगामिनी गङ्गाजीके पार उतरना चाहिये'॥

मित्रोंको आनन्दित करनेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीके कथनका अभिप्राय समझकर गुह और सुमन्त्रको बुलाकर पार उतरनेकी व्यवस्था करनेके लिये कहा और स्वयं वे भाईके सामने आकर खड़े हो गये॥

श्रीरामचन्द्रजीका वचन सुनकर उनका आदेश शिरोधार्य करके निषादराजने तुरंत अपने सचिवोंको बुलाया और इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'तुम घाटपर शीघ्र ही एक ऐसी नाव ले आओ, जो मजबूत होनेके साथ ही सुगमतापूर्वक खेनेयोग्य हो, उसमें डाँड़ लगा हुआ हो, कर्णधार बैठा हो तथा वह नाव देखनेमें सुन्दर हो'॥ ६॥

निषादराज गुहका वह आदेश सुनकर उसका महान् मन्त्री गया और एक सुन्दर नाव घाटपर पहुँचाकर उसने गुहको इसकी सूचना दी॥ ७॥

तब गुहने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'देव! यह नौका उपस्थित है; बताइये, इस समय आपकी और क्या सेवा करूँ?॥ ८॥

'देवकुमारके समान तेजस्वी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीराम! समुद्रगामिनी गङ्गानदीको पार करनेके लिये आपकी सेवामें यह नाव आ गयी है, अब आप शीघ्र इसपर आरूढ़ होइये'॥ ९॥

तब महातेजस्वी श्रीराम गुहसे इस प्रकार बोले—'सखे! तुमने मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया, अब शीघ्र ही सब सामान नावपर चढ़ाओ'॥ १०॥

यह कहकर श्रीराम और लक्ष्मणने कवच धारण करके तरकस एवं तलवार बाँधी तथा धनुष लेकर वे दोनों भाई जिस मार्गसे सब लोग घाटपर जाया करते थे, उसीसे सीताके साथ गङ्गाजीके तटपर गये॥ ११॥

उस समय धर्मके ज्ञाता भगवान् श्रीरामके पास जाकर सारथि सुमन्त्रने विनीतभावसे हाथ जोड़कर पूछा—'प्रभो! अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'॥ १२॥

तब दशरथनन्दन श्रीरामने सुमन्त्रको उत्तम दाहिने हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—'सुमन्त्रजी! अब आप शीघ्र ही पुनः महाराजके पास लौट जाइये और वहाँ सावधान होकर रहिये'॥ १३॥

उन्होंने फिर कहा—'इतनी दूरतक महाराजकी आज्ञासे मैंने रथद्वारा यात्रा की है, अब हमलोग रथ छोड़कर पैदल ही महान् वनकी यात्रा करेंगे; अतः आप लौट जाइये'॥ १४॥

अपनेको घर लौटनेकी आज्ञा प्राप्त हुई देख सारथि सुमन्त्र शोकसे व्याकुल हो उठे और इक्ष्वाकुनन्दन पुरुषसिंह श्रीरामसे इस प्रकार बोले—॥ १५॥

'रघुनन्दन! जिसकी प्रेरणासे आपको भाई और पत्नीके साथ साधारण मनुष्योंकी भाँति वनमें रहनेको विवश होना पड़ा है, उस दैवका इस संसारमें किसी भी पुरुषने उल्लङ्घन नहीं किया॥ १६॥

'जब आप-जैसे महान् पुरुषपर यह संकट आ गया, तब मैं समझता हूँ कि ब्रह्मचर्य-पालन, वेदोंके स्वाध्याय, दयालुता अथवा सरलतामें भी किसी फलकी सिद्धि नहीं है॥ १७॥

'वीर रघुनन्दन! (इस प्रकार पिताके सत्यकी रक्षाके लिये) विदेहनन्दिनी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ वनमें निवास करते हुए आप तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाले महापुरुष नारायणकी भाँति उत्कर्ष (महान् यश) प्राप्त करेंगे॥ १८॥

'श्रीराम! निश्चय ही हमलोग हर तरहसे मारे गये; क्योंकि आपने हम पुरवासियोंको अपने साथ न ले जाकर अपने दर्शनजनित सुखसे वञ्चित कर दिया। अब हम पापिनी कैकेयीके वशमें पड़ेंगे और दुःख भोगते रहेंगे'॥ १९॥

आत्माके समान प्रिय श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसी बात कहकर उन्हें दूर जानेको उद्यत देख सारथि सुमन्त्र दुःखसे व्याकुल होकर देरतक रोते रहे॥ २०॥

आँसुओंका प्रवाह रुकनेपर आचमन करके पवित्र हुए सारथिसे श्रीरामचन्द्रजीने बारंबार मधुर वाणीमें कहा—॥ २१॥

'सुमन्त्रजी! मेरी दृष्टिमें इक्ष्वाकुवंशियोंका हित करनेवाला सुहृद् आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे महाराज दशरथको मेरे लिये शोक न हो॥ २२॥

'पृथिवीपति महाराज दशरथ एक तो बूढ़े हैं, दूसरे उनका सारा मनोरथ चूर-चूर हो गया है; इसलिये उनका हृदय शोकसे पीड़ित है। यही कारण है कि मैं आपको उनकी सँभालके लिये कहता हूँ॥ २३॥

'वे महामनस्वी महाराज कैकेयीका प्रिय करनेकी इच्छासे आपको जो कुछ जैसी भी आज्ञा दें, उसका आप आदरपूर्वक पालन करें—यही मेरा अनुरोध है॥ २४॥

'राजालोग इसीलिये राज्यका पालन करते हैं कि किसी भी कार्यमें इनके मनकी इच्छा-पूर्तिमें विघ्न न डाला जाय॥ २५॥

'सुमन्त्रजी! जिस किसी भी कार्यमें जिस किसी तरह भी महाराजको अप्रिय बातसे खिन्न होनेका अवसर न आवे तथा वे शोकसे दुबले न हों, वह आपको उसी प्रकार करना चाहिये॥ २६॥

'जिन्होंने कभी दुःख नहीं देखा है, उन आर्य, जितेन्द्रिय और वृद्ध महाराजको मेरी ओरसे प्रणाम करके यह बात कहियेगा॥ २७॥

'हमलोग अयोध्यासे निकल गये अथवा हमें वनमें रहना पड़ेगा, इस बातको लेकर न तो मैं कभी शोक करता हूँ और न लक्ष्मणको ही इसका शोक है॥ २८॥

'चौदह वर्ष समाप्त होनेपर हम पुनः शीघ्र ही लौट आयँगे और उस समय आप मुझे, लक्ष्मणको और सीताको भी फिर देखेंगे॥ २९॥

'सुमन्त्रजी! महाराजसे ऐसा कहकर आप मेरी मातासे, उनके साथ बैठी हुई अन्य देवियों (माताओं) से तथा कैकेयीसे भी बारंबार मेरा कुशल-समाचार कहियेगा॥ ३०॥

'माता कौसल्यासे कहियेगा कि तुम्हारा पुत्र स्वस्थ एवं प्रसन्न है। इसके बाद सीताकी ओरसे, मुझ ज्येष्ठ पुत्रकी ओरसे तथा लक्ष्मणकी ओरसे भी माताकी चरणवन्दना कह दीजियेगा॥ ३१॥

'तदनन्तर मेरी ओरसे महाराजसे भी यह निवेदन कीजियेगा कि आप भरतको शीघ्र ही बुलवा लें और जब वे आ जायँ, तब अपने अभीष्ट युवराजपदपर उनका अभिषेक कर दें॥ ३२॥

'भरतको छातीसे लगाकर और युवराजके पदपर अभिषिक्त करके आपको हमलोगोंके वियोगसे होनेवाला दुःख दबा नहीं सकेगा॥ ३३॥

'भरतसे भी हमारा यह संदेश कह दीजियेगा कि महाराजके प्रति जैसा तुम्हारा बर्ताव है, वैसा ही समानरूपसे सभी माताओंके प्रति होना चाहिये॥ ३४॥

'तुम्हारी दृष्टिमें कैकेयीका जो स्थान है, वही

समानरूपसे सुमित्रा और मेरी माता कौसल्याका भी होना उचित है, इन सबमें कोई अन्तर न रखना॥ ३५॥

'पिताजीका प्रिय करनेकी इच्छासे युवराजपदको स्वीकार करके यदि तुम राजकाजकी देखभाल करते रहोगे तो इहलोक और परलोकमें सदा ही सुख पाओगे'॥

श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रको लौटाते हुए जब इस प्रकार समझाया, तब उनकी सारी बातें सुनकर वे श्रीरामसे स्नेहपूर्वक बोले— ॥ ३७॥

'तात! सेवकका स्वामीके प्रति जो सत्कारपूर्ण बर्ताव होना चाहिये, उसका यदि मैं आपसे बात करते समय पालन न कर सकूँ, यदि मेरे मुखसे स्नेहवश कोई धृष्टतापूर्ण बात निकल जाय तो 'यह मेरा भक्त है' ऐसा समझकर आप मुझे क्षमा कीजियेगा। जो आपके वियोगसे पुत्रशोकसे आतुर हुई माताकी भाँति संतप्त हो रही है, उस अयोध्यापुरीमें मैं आपको साथ लिये बिना कैसे लौटकर जा सकूँगा? ॥ ३८-३९॥

'आते समय लोगोंने मेरे रथमें श्रीरामको विराजमान देखा था, अब इस रथको श्रीरामसे रहित देखकर उन लोगोंका और उस अयोध्यापुरीका भी हृदय विदीर्ण हो जायगा॥ ४०॥

'जैसे युद्धमें अपने स्वामी वीर रथीके मारे जानेपर जिसमें केवल सारथि शेष रह गया हो ऐसे रथको देखकर उसकी अपनी सेना अत्यन्त दयनीय अवस्थामें पड़ जाती है, उसी प्रकार मेरे इस रथको आपसे सूना देखकर सारी अयोध्या नगरी दीन दशाको प्राप्त हो जायगी॥ ४१॥

'आप दूर रहकर भी प्रजाके हृदयमें निवास करनेके कारण सदा उसके सामने ही खड़े रहते हैं। निश्चय ही इस समय प्रजावर्गके सब लोगोंने आपका ही चिन्तन करते हुए खाना-पीना छोड़ दिया होगा॥ ४२॥

'श्रीराम! जिस समय आप वनको आने लगे, उस समय आपके शोकसे व्याकुलचित्त हुई प्रजाने जैसा आर्तनाद एवं क्षोभ प्रकट किया था, उसे तो आपने देखा ही था॥ ४३॥

'आपके अयोध्यासे निकलते समय पुरवासियोंने जैसा आर्तनाद किया था, आपके बिना मुझे खाली रथ लिये लौटा देख वे उससे भी सौगुना हाहाकार करेंगे॥

'क्या मैं महारानी कौसल्यासे जाकर कहूँगा कि मैंने आपके बेटेको मामाके घर पहुँचा दिया है? इसलिये आप संताप न करें, यह बात प्रिय होनेपर भी असत्य है, अतः ऐसा असत्य वचन भी मैं कभी नहीं कह सकता। फिर यह अप्रिय सत्य भी कैसे सुना सकूँगा कि मैं आपके पुत्रको वनमें पहुँचा आया॥ ४५-४६॥

'ये उत्तम घोड़े मेरी आज्ञाके अधीन रहकर आपके बन्धुजनोंका भार वहन करते हैं (आपके बन्धुजनोंसे हीन रथका ये वहन नहीं करते हैं), ऐसी दशामें आपसे सूने रथको ये कैसे खींच सकेंगे?॥ ४७॥

'अतः निष्पाप रघुनन्दन! अब मैं आपके बिना अयोध्या लौटकर नहीं जा सकूँगा। मुझे भी वनमें चलनेकी ही आज्ञा दीजिये॥ ४८॥

'यदि इस तरह याचना करनेपर भी आप मुझे त्याग ही देंगे तो मैं आपके द्वारा परित्यक्त होकर यहाँ रथसहित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा॥ ४९॥

'रघुनन्दन! वनमें आपकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाले जो-जो जन्तु उपस्थित होंगे, मैं इस रथके द्वारा उन सबको दूर भगा दूँगा॥ ५०॥

'श्रीराम! आपकी कृपासे मुझे आपको रथपर बिठाकर यहाँतक लानेका सुख प्राप्त हुआ। अब आपके ही अनुग्रहसे मैं आपके साथ वनमें रहनेका सुख भी पानेकी आशा करता हूँ॥ ५१॥

'आप प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। मैं वनमें आपके पास ही रहना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि आप प्रसन्नतापूर्वक कह दें कि तुम वनमें मेरे साथ ही रहो॥ ५२॥

'वीर! ये घोड़े भी यदि वनमें रहते समय आपकी सेवा करेंगे तो इन्हें परमगतिकी प्राप्ति होगी॥ ५३॥

'प्रभो! मैं वनमें रहकर अपने सिरसे (सारे शरीरसे) आपकी सेवा करूँगा और इस सुखके आगे अयोध्या तथा देवलोकका भी सर्वथा त्याग कर दूँगा॥

'जैसे सदाचारहीन प्राणी इन्द्रकी राजधानी स्वर्गमें नहीं प्रवेश कर सकता, उसी प्रकार आपके बिना मैं अयोध्यापुरीमें नहीं जा सकता॥ ५५॥

'मेरी यह अभिलाषा है कि जब वनवासकी अवधि समाप्त हो जाय, तब फिर इसी रथपर बिठाकर आपको अयोध्यापुरीमें ले चलूँ॥ ५६॥

'वनमें आपके साथ रहनेसे ये चौदह वर्ष मेरे लिये चौदह क्षणोंके समान बीत जायँगे। अन्यथा चौदह सौ वर्षोंके समान भारी जान पड़ेंगे॥ ५७॥

'अतः भक्तवत्सल! आप मेरे स्वामीके पुत्र हैं। आप जिस पथपर चल रहे हैं, उसीपर आपकी सेवाके लिये साथ चलनेको मैं भी तैयार खड़ा हूँ। मैं

आपके प्रति भक्ति रखता हूँ, आपका भृत्य हूँ और भृत्यजनोचित मर्यादाके भीतर स्थित हूँ; अत: आप मेरा परित्याग न करें'॥ ५८॥

इस तरह अनेक प्रकारसे दीन वचन कहकर बारंबार याचना करनेवाले सुमन्त्रसे सेवकोंपर कृपा करनेवाले श्रीरामने इस प्रकार कहा—॥ ५९॥

'सुमन्त्रजी! आप स्वामीके प्रति स्नेह रखनेवाले हैं। मुझमें आपकी जो उत्कृष्ट भक्ति है, उसे मैं जानता हूँ; फिर भी जिस कार्यके लिये मैं आपको यहाँसे अयोध्यापुरीमें भेज रहा हूँ, उसे सुनिये॥ ६०॥

'जब आप नगरको लौट जायँगे, तब आपको देखकर मेरी छोटी माता कैकेयीको यह विश्वास हो जायगा कि राम वनको चले गये॥ ६१॥

'इसके विपरीत यदि आप नहीं गये तो उसे संतोष नहीं होगा। मेरे वनवासी हो जानेपर भी वह धर्मपरायण महाराज दशरथके प्रति मिथ्यावादी होनेका संदेह करे, ऐसा मैं नहीं चाहता॥ ६२॥

'आपको भेजनेमें मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि मेरी छोटी माता कैकेयी भरतद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली राज्यको हस्तगत कर ले॥ ६३॥

'सुमन्त्रजी! मेरा तथा महाराजका प्रिय करनेके लिये आप अयोध्यापुरीको अवश्य पधारिये और आपको जिनके लिये जो संदेश दिया गया है, वह सब वहाँ जाकर उन लोगोंसे कह दीजिये'॥ ६४॥

ऐसा कहकर श्रीरामने सुमन्त्रको बारंबार सान्त्वना दी। इसके बाद उन्होंने गुहसे उत्साहपूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही—॥ ६५॥

'निषादराज गुह! इस समय मेरे लिये ऐसे वनमें रहना उचित नहीं है, जहाँ जनपदके लोगोंका आना-जाना अधिक होता हो, अब अवश्य मुझे निर्जन वनके आश्रममें ही वास करना होगा। इसके लिये जटा धारण आदि आवश्यक विधिका मुझे पालन करना चाहिये॥

'अत: फल-मूलका आहार और पृथ्वीपर शयन आदि नियमोंको ग्रहण करके मैं सीता और लक्ष्मणकी अनुमति लेकर पिताका हित करनेकी इच्छासे सिरपर तपस्वी जनोंके आभूषणरूप जटा धारण करके यहाँसे वनको जाऊँगा। मेरे केशोंको जटाका रूप देनेके लिये तुम बड़का दूध ला दो।' गुहने तुरंत ही बड़का दूध लाकर श्रीरामको दिया॥ ६७-६८॥

श्रीरामने उसके द्वारा लक्ष्मणकी तथा अपनी जटाएँ बनायीं। महाबाहु पुरुषसिंह श्रीराम तत्काल जटाधारी हो गये॥ ६९॥

उस समय वे दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण वल्कल वस्त्र और जटामण्डल धारण करके ऋषियोंके समान शोभा पाने लगे॥ ७०॥

तदनन्तर वानप्रस्थमार्गका आश्रय लेकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने वानप्रस्थोचित व्रतको ग्रहण किया। तत्पश्चात् वे अपने सहायक गुहसे बोले—॥ ७१॥

'निषादराज! तुम सेना, खजाना, किला और राज्यके विषयमें सदा सावधान रहना; क्योंकि राज्यकी रक्षाका काम बड़ा कठिन माना गया है'॥ ७२॥

गुहको इस प्रकार आज्ञा देकर उससे विदा ले इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्रजी पत्नी और लक्ष्मणके साथ तुरंत ही वहाँसे चल दिये। उस समय उनके चित्तमें तनिक भी व्यग्रता नहीं थी॥ ७३॥

नदीके तटपर लगी हुई नावको देखकर इक्ष्वाकुनन्दन श्रीरामने शीघ्रगामी गङ्गानदीके पार जानेकी इच्छासे लक्ष्मणको सम्बोधित करके कहा—॥ ७४॥

'पुरुषसिंह! यह सामने नाव खड़ी है। तुम मनस्विनी सीताको पकड़कर धीरेसे उसपर बिठा दो, फिर स्वयं भी नावपर बैठ जाओ'॥ ७५॥

भाईका यह आदेश सुनकर मनको वशमें रखनेवाले लक्ष्मणने पूर्णत: उसके अनुकूल चलते हुए पहले मिथिलेशकुमारी श्रीसीताको नावपर बिठाया, फिर स्वयं भी उसपर आरूढ़ हुए॥ ७६॥

सबके अन्तमें लक्ष्मणके बड़े भाई तेजस्वी श्रीराम स्वयं नौकापर बैठे। तदनन्तर निषादराज गुहने अपने भाई-बन्धुओंको नौका खेनेका आदेश दिया॥ ७७॥

महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी भी उस नावपर आरूढ़ होनेके पश्चात् अपने हितके उद्देश्यसे ब्राह्मण और क्षत्रियके जपनेयोग्य 'दैवी नाव' इत्यादि वैदिक मन्त्रका जप करने लगे॥ ७८॥

फिर शास्त्रविधिके अनुसार आचमन करके सीताके साथ उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर गङ्गाजीको प्रणाम किया। महारथी लक्ष्मणने भी उन्हें मस्तक झुकाया॥ ७९॥

इसके बाद श्रीरामने सुमन्त्रको तथा सेनासहित गुहको भी जानेकी आज्ञा दे नावपर भलीभाँति बैठकर मल्लाहोंको उसे चलानेका आदेश दिया॥ ८०॥

तदनन्तर मल्लाहोंने नाव चलायी। कर्णधार सावधान होकर उसका संचालन करता था। वेगसे सुन्दर डाँड़

चलानेके कारण वह नाव बड़ी तेजीसे पानीपर बढ़ने लगी॥ ८१॥

भागीरथीकी बीच धारामें पहुँचकर सती साध्वी विदेहनन्दिनी सीताने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे यह प्रार्थना की—॥ ८२॥

'देवि गङ्गे! ये परम बुद्धिमान् महाराज दशरथके पुत्र हैं और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वनमें जा रहे हैं। ये आपसे सुरक्षित होकर पिताकी इस आज्ञाका पालन कर सकें—ऐसी कृपा कीजिये॥ ८३॥

'वनमें पूरे चौदह वर्षोंतक निवास करके ये मेरे तथा अपने भाईके साथ पुनः अयोध्यापुरीको लौटेंगे॥ ८४॥

'सौभाग्यशालिनी देवि गङ्गे! उस समय वनसे पुनः कुशलपूर्वक लौटनेपर सम्पूर्ण मनोरथोंसे सम्पन्न हुई मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ आपकी पूजा करूँगी॥ ८५॥

'स्वर्ग, भूतल और पाताल—तीनों मार्गोंपर विचरनेवाली देवि! तुम यहाँसे ब्रह्मलोकतक फैली हुई हो और इस लोकमें समुद्रराजकी पत्नीके रूपमें दिखायी देती हो॥ ८६॥

'शोभाशालिनी देवि! पुरुषसिंह श्रीराम जब पुनः वनसे सकुशल लौटकर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे, तब मैं सीता पुनः आपको मस्तक झुकाऊँगी और आपकी स्तुति करूँगी॥ ८७॥

'इतना ही नहीं, मैं आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंको एक लाख गौएँ, बहुत-से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न प्रदान करूँगी॥ ८८॥

'देवि! पुनः अयोध्यापुरीमें लौटनेपर मैं सहस्रों देवदुर्लभ पदार्थोंसे तथा राजकीय भागसे रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्नके द्वारा भी आपकी पूजा करूँगी। आप मुझपर प्रसन्न हों*॥ ८९॥

'आपके किनारे जो-जो देवता, तीर्थ और मन्दिर हैं, उन सबका मैं पूजन करूँगी॥ ९०॥

'निष्पाप गङ्गे! ये महाबाहु पापरहित मेरे पतिदेव मेरे तथा अपने भाईके साथ वनवाससे लौटकर पुनः अयोध्या नगरीमें प्रवेश करें'॥ ९१॥

पतिके अनुकूल रहनेवाली सती-साध्वी सीता इस प्रकार गङ्गाजीसे प्रार्थना करती हुई शीघ्र ही दक्षिणतटपर जा पहुँचीं॥ ९२॥

किनारे पहुँचकर शत्रुओंको संताप देनेवाले नरश्रेष्ठ श्रीरामने नाव छोड़ दी और भाई लक्ष्मण तथा विदेहनन्दिनी सीताके साथ आगेको प्रस्थान किया॥ ९३॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीराम सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्राकुमार! अब तुम सजन या निर्जन वनमें सीताकी रक्षाके लिये सावधान हो जाओ। हम-जैसे लोगोंको निर्जन वनमें नारीकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। अतः तुम आगे-आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे-पीछे चलें और मैं सीताकी तथा तुम्हारी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा। पुरुषप्रवर! हमलोगोंको एक-दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये॥ ९४—९६॥

'अबतक कोई भी दुष्कर कार्य समाप्त नहीं हुआ है—इस समयसे ही कठिनाइयोंका सामना आरम्भ हुआ है। आज विदेहकुमारी सीताको वनवासके वास्तविक कष्टका अनुभव होगा॥ ९७॥

'अब ये ऐसे वनमें प्रवेश करेंगी, जहाँ मनुष्योंके आने-जानेका कोई चिह्न नहीं दिखायी देगा, न धान आदिके खेत होंगे, न टहलनेके लिये बगीचे। जहाँ ऊँची-नीची भूमि होगी और गड्ढे मिलेंगे, जिसमें गिरनेका भय रहेगा'॥ ९८॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर लक्ष्मण आगे बढ़े। उनके पीछे सीता चलने लगीं तथा सीताके पीछे रघुकुलनन्दन श्रीराम थे॥ ९९॥

श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र गङ्गाजीके उस पार पहुँचकर जबतक दिखायी दिये तबतक सुमन्त्र निरन्तर उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये देखते रहे। जब वनके मार्गमें बहुत दूर निकल जानेके कारण वे दृष्टिसे ओझल हो गये, तब तपस्वी सुमन्त्रके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वे नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ १००॥

लोकपालोंके समान प्रभावशाली वरदायक महात्मा श्रीराम महानदी गङ्गाको पार करके क्रमशः समृद्धिशाली वत्सदेश (प्रयाग)-में जा पहुँचे, जो सुन्दर धन-धान्यसे सम्पन्न था। वहाँके लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट थे॥ १०१॥

वहाँ उन दोनों भाइयोंने मृगया-विनोदके लिये वराह, ऋष्य, पृषत् और महारुरु—इन चार महामृगोंपर

* इस श्लोकमें आये हुए 'सुराघटसहस्रेण' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सुरेषु देवेषु न घटन्ते न सन्तीत्यर्थः, तेषां सहस्रं तेन सहस्रसंख्याकसुरदुर्लभपदार्थेनेत्यर्थः।' 'मांसभूतौदनेन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिये—'मांसभूतौदनेन मा नास्ति अंसो राजभागो यस्यां सा एव भूः पृथ्वी च उतं वस्त्रं च ओदनं च एतेषां समाहारः, तेन च त्वां यक्ष्ये।'

बाणोंका प्रहार किया। तत्पश्चात् जब उन्हें भूख लगी, तब पवित्र कन्द-मूल आदि लेकर सायंकालके समय ठहरनेके लिये (वे सीताजीके साथ) एक वृक्षके नीचे चले गये॥ १०२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

श्रीरामका राजाको उपालम्भ देते हुए कैकेयीसे कौसल्या आदिके अनिष्टकी आशङ्का बताकर लक्ष्मणको अयोध्या लौटानेके लिये प्रयत्न करना, लक्ष्मणका श्रीरामके बिना अपना जीवन असम्भव बताकर वहाँ जानेसे इनकार करना, फिर श्रीरामका उन्हें वनवासकी अनुमति देना

उस वृक्षके नीचे पहुँचकर आनन्द प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने सायंकालकी संध्योपासना करके लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'सुमित्रानन्दन! आज हमें अपने जनपदसे बाहर यह पहली रात प्राप्त हुई है; जिसमें सुमन्त्र हमारे साथ नहीं हैं। इस रातको पाकर तुम्हें नगरकी सुख-सुविधाओंके लिये उत्कण्ठित नहीं होना चाहिये॥ २॥

'लक्ष्मण! आजसे हम दोनों भाइयोंको आलस्य छोड़कर रातमें जागना होगा; क्योंकि सीताके योगक्षेम हम दोनोंके ही अधीन हैं॥ ३॥

'सुमित्रानन्दन! यह रात हमलोग किसी तरह बितायँगे और स्वयं संग्रह करके लाये हुए तिनकों और पत्तोंकी शय्या बनाकर उसे भूमिपर बिछाकर उसपर किसी तरह सो लेंगे'॥ ४॥

जो बहुमूल्य शय्यापर सोनेके योग्य थे, वे श्रीराम भूमिपर ही बैठकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे ये शुभ बातें कहने लगे—*॥ ५॥

'लक्ष्मण! आज महाराज निश्चय ही बड़े दुःखसे सो रहे होंगे; परंतु कैकेयी सफलमनोरथ होनेके कारण बहुत संतुष्ट होगी॥ ६॥

'कहीं ऐसा न हो कि रानी कैकेयी भरतको आया देख राज्यके लिये महाराजको प्राणोंसे भी वियुक्त कर दे॥ ७॥

'महाराजका कोई रक्षक न होनेके कारण वे इस समय अनाथ हैं, बूढ़े हैं और उन्हें मेरे वियोगका सामना करना पड़ा है। उनकी कामना मनमें ही रह गयी तथा वे कैकेयीके वशमें पड़ गये हैं; ऐसी दशामें वे बेचारे अपनी रक्षाके लिये क्या करेंगे?॥ ८॥

'अपने ऊपर आये हुए इस संकटको और राजाकी मतिभ्रान्तिको देखकर मुझे ऐसा मालूम होता है कि अर्थ और धर्मकी अपेक्षा कामका ही गौरव अधिक है॥ ९॥

'लक्ष्मण! पिताजीने जिस तरह मुझे त्याग दिया है, उस प्रकार अत्यन्त अज्ञ होनेपर भी कौन ऐसा पुरुष होगा, जो एक स्त्रीके लिये अपने आज्ञाकारी पुत्रका परित्याग कर दे?॥ १०॥

'कैकेयीकुमार भरत ही सुखी और सौभाग्यवती स्त्रीके पति हैं, जो अकेले ही हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए कोसलदेशका सम्राट्की भाँति पालन करेंगे॥ ११॥

'पिताजी अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं और मैं वनमें चला आया हूँ, ऐसी दशामें केवल भरत ही समस्त राज्यके श्रेष्ठ सुखका उपभोग करेंगे॥ १२॥

'सच है, जो अर्थ और धर्मका परित्याग करके केवल कामका अनुसरण करता है, वह उसी प्रकार शीघ्र ही आपत्तिमें पड़ जाता है, जैसे इस समय महाराज दशरथ पड़े हैं॥ १३॥

'सौम्य! मैं समझता हूँ कि महाराज दशरथके प्राणोंका अन्त करने, मुझे देशनिकाला देने और भरतको राज्य दिलानेके लिये ही कैकेयी इस राजभवनमें आयी थी॥ १४॥

'इस समय भी सौभाग्यके मदसे मोहित हुई कैकेयी मेरे कारण कौसल्या और सुमित्राको कष्ट पहुँचा सकती है॥ १५॥

'हमलोगोंके कारण तुम्हारी माता सुमित्रादेवीको

* श्लोक ६ से लेकर २६ तक श्रीरामचन्द्रजीने जो बातें कही हैं, वे लक्ष्मणकी परीक्षाके लिये तथा उन्हें अयोध्या लौटानेके लिये कही गयी हैं; वास्तवमें उनकी ऐसी मान्यता नहीं थी। यही बात यहाँ सभी व्याख्याकारोंने स्वीकार की है।

बड़े दु:खके साथ वहाँ रहना पड़ेगा; अत: लक्ष्मण! तुम यहींसे कल प्रात:काल अयोध्याको लौट जाओ॥ १६॥

'मैं अकेला ही सीताके साथ दण्डकवनको जाऊँगा। तुम वहाँ मेरी असहाय माता कौसल्याके सहायक हो जाओगे॥ १७॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण! कैकेयीके कर्म बड़े खोटे हैं। वह द्वेषवश अन्याय भी कर सकती है। तुम्हारी और मेरी माताको जहर भी दे सकती है॥ १८॥

'तात सुमित्राकुमार! निश्चय ही पूर्वजन्ममें मेरी माताने कुछ स्त्रियोंका उनके पुत्रोंसे वियोग कराया होगा, उसी पापका यह पुत्र-बिछोहरूप फल आज उन्हें प्राप्त हुआ है॥ १९॥

'मेरी माताने चिरकालतक मेरा पालन-पोषण किया और स्वयं दु:ख सहकर मुझे बड़ा किया। अब जब पुत्रसे प्राप्त होनेवाले सुखरूपी फलके भोगनेका अवसर आया, तब मैंने माता कौसल्याको अपनेसे बिलग कर दिया। मुझे धिक्कार है!॥ २०॥

'सुमित्रानन्दन! कोई भी सौभाग्यवती स्त्री कभी ऐसे पुत्रको जन्म न दे, जैसा मैं हूँ; क्योंकि मैं अपनी माताको अनन्त शोक दे रहा हूँ॥ २१॥

'लक्ष्मण! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि माता कौसल्यामें मुझसे अधिक प्रेम उनकी पाली हुई वह सारिका ही करती है; क्योंकि उसके मुखसे माँको सदा यह बात सुनायी देती है कि 'ऐ तोते! तू शत्रुके पैरको काट खा' (अर्थात् हमें पालनेवाली माता कौसल्याके शत्रुके पाँवको चोंच मार दे। वह पक्षिणी होकर माताका इतना ध्यान रखती है और मैं उनका पुत्र होकर भी उनके लिये कुछ नहीं कर पाता)॥ २२॥

'शत्रुदमन! जो मेरे लिये शोकमग्न रहती है, मन्दभागिनी-सी हो रही है और पुत्रका कोई फल न पानेके कारण निपूती-सी हो गयी है, उस मेरी माताको कुछ भी उपकार न करनेवाले मुझ-जैसे पुत्रसे क्या प्रयोजन है?॥ २३॥

'मुझसे बिछुड़ जानेके कारण माता कौसल्या वास्तवमें मन्दभागिनी हो गयी है और शोकके समुद्रमें पड़कर अत्यन्त दु:खसे आतुर हो उसीमें शयन करती है॥

'लक्ष्मण! यदि मैं कुपित हो जाऊँ तो अपने बाणोंद्वारा अकेला ही अयोध्यापुरी तथा समस्त भूमण्डलको निष्कण्टक बनाकर अपने अधिकारमें कर लूँ; परंतु पारलौकिक हित-साधनमें बल-पराक्रम कारण नहीं होता है (इसीलिये मैं ऐसा नहीं कर रहा हूँ।)॥ २५॥

'निष्पाप लक्ष्मण! मैं अधर्म और परलोकके डरसे डरता हूँ; इसीलिये आज अयोध्याके राज्यपर अपना अभिषेक नहीं कराता हूँ'॥ २६॥

यह तथा और भी बहुत-सी बातें कहकर श्रीरामने उस निर्जन वनमें करुणाजनक विलाप किया। तत्पश्चात् वे उस रातमें चुपचाप बैठ गये। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और दीनता छा रही थी॥

विलापसे निवृत्त होनेपर श्रीराम ज्वालारहित अग्नि और वेगशून्य समुद्रके समान शान्त प्रतीत होते थे। उस समय लक्ष्मणने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—॥ २८॥

'अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! आपके निकल आनेसे निश्चय ही आज अयोध्यापुरी चन्द्रहीन रात्रिके समान निस्तेज हो गयी॥ २९॥

'पुरुषोत्तम श्रीराम! आप जो इस तरह संतप्त हो रहे हैं, यह आपके लिये कदापि उचित नहीं है। आप ऐसा करके सीताको और मुझको भी खेदमें डाल रहे हैं॥ ३०॥

'रघुनन्दन! आपके बिना सीता और मैं दोनों दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते। ठीक उसी तरह, जैसे जलसे निकाले हुए मत्स्य नहीं जीते हैं॥ ३१॥

'शत्रुओंको ताप देनेवाले रघुवीर! आपके बिना आज मैं न तो पिताजीको, न भाई शत्रुघ्नको, न माता सुमित्राको और न स्वर्गलोकको ही देखना चाहता हूँ'॥

तदनन्तर वहाँ बैठे हुए धर्मवत्सल सीता और श्रीरामने थोड़ी ही दूरपर वटवृक्षके नीचे लक्ष्मणद्वारा सुन्दर ढंगसे निर्मित हुई शय्या देखकर उसीका आश्रय लिया (अर्थात् वे दोनों वहाँ जाकर सो गये।)॥ ३३॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनाथजीने इस प्रकार वनवासके प्रति आदरपूर्वक कहे हुए लक्ष्मणके अत्यन्त उत्तम वचनोंको सुनकर स्वयं भी दीर्घकालके लिये वनवासरूप धर्मको स्वीकार करके सम्पूर्ण वर्षोंतक लक्ष्मणको अपने साथ वनमें रहनेकी अनुमति दे दी॥

तदनन्तर उस महान् निर्जन वनमें रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले वे दोनों महाबली वीर पर्वतशिखरपर विचरनेवाले दो सिंहोंके समान कभी भय और उद्वेगको नहीं प्राप्त हुए॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामका प्रयागमें गङ्गा-यमुना-संगमके समीप भरद्वाज-आश्रममें जाना, मुनिके द्वारा उनका अतिथिसत्कार, उन्हें चित्रकूट पर्वतपर ठहरनेका आदेश तथा चित्रकूटकी महत्ता एवं शोभाका वर्णन

उस महान् वृक्षके नीचे वह सुन्दर रात बिताकर वे सब लोग निर्मल सूर्योदयकालमें उस स्थानसे आगेको प्रस्थित हुए॥ १॥

जहाँ भागीरथी गङ्गासे यमुना मिलती हैं, उस स्थानपर जानेके लिये वे महान् वनके भीतरसे होकर यात्रा करने लगे॥ २॥

वे तीनों यशस्वी यात्री मार्गमें जहाँ-तहाँ जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, ऐसे अनेक प्रकारके भू-भाग तथा मनोहर प्रदेश देखते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ ३॥

सुखपूर्वक आरामसे उठते-बैठते यात्रा करते हुए उन तीनोंने फूलोंसे सुशोभित भाँति-भाँतिके वृक्षोंका दर्शन किया। इस प्रकार जब दिन प्रायः समाप्त हो चला, तब श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ४॥

'सुमित्रानन्दन! वह देखो, प्रयागके पास भगवान् अग्निदेवकी ध्वजारूप उत्तम धूम उठ रहा है। मालूम होता है, मुनिवर भरद्वाज यहीं हैं॥ ५॥

'निश्चय ही हमलोग गङ्गा-यमुनाके सङ्गमके पास आ पहुँचे हैं; क्योंकि दो नदियोंके जलोंके परस्पर टकरानेसे जो शब्द प्रकट होता है, वह सुनायी दे रहा है॥ ६॥

'वनमें उत्पन्न हुए फल-मूल और काष्ठ आदिसे जीविका चलानेवाले लोगोंने जो लकड़ियाँ काटी हैं, वे दिखायी देती हैं तथा जिनकी लकड़ियाँ काटी गयी हैं, वे नाना प्रकारके वृक्ष भी आश्रमके समीप दृष्टिगोचर हो रहे हैं'॥ ७॥

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों धनुर्धर वीर श्रीराम और लक्ष्मण सूर्यास्त होते-होते गङ्गा-यमुनाके सङ्गमके समीप मुनिवर भरद्वाजके आश्रमपर जा पहुँचे॥ ८॥

श्रीरामचन्द्रजी आश्रमकी सीमामें पहुँचकर अपने धनुर्धर वेशके द्वारा वहाँके पशु-पक्षियोंको डराते हुए दो ही घड़ीमें तै करनेयोग्य मार्गसे चलकर भरद्वाज मुनिके समीप जा पहुँचे॥ ९॥

आश्रममें पहुँचकर महर्षिके दर्शनकी इच्छावाले सीतासहित वे दोनों वीर कुछ दूरपर ही खड़े हो गये॥

(दूर खड़े हो महर्षिके शिष्यसे अपने आगमनकी सूचना दिलवाकर भीतर आनेकी अनुमति प्राप्त कर लेनेके बाद) पर्णशालामें प्रवेश करके उन्होंने तपस्याके प्रभावसे तीनों कालोंकी सारी बातें देखनेकी दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेनेवाले एकाग्रचित्त तथा तीक्ष्ण व्रतधारी महात्मा भरद्वाज ऋषिका दर्शन किया, जो अग्निहोत्र करके शिष्योंसे घिरे हुए आसनपर विराजमान थे। महर्षिको देखते ही लक्ष्मण और सीतासहित महाभाग श्रीरामने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ११-१२॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरघुनाथजीने उनसे इस प्रकार अपना परिचय दिया—'भगवन्! हम दोनों राजा दशरथके पुत्र हैं। मेरा नाम राम और इनका लक्ष्मण है तथा ये विदेहराज जनककी पुत्री और मेरी कल्याणमयी पत्नी सती साध्वी सीता हैं, जो निर्जन तपोवनमें भी मेरा साथ देनेके लिये आयी हैं॥ १३-१४॥

'पिताकी आज्ञासे मुझे वनकी ओर आते देख ये मेरे प्रिय अनुज भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी वनमें ही रहनेका व्रत लेकर मेरे पीछे-पीछे चले आये हैं॥ १५॥

'भगवन्! इस प्रकार पिताकी आज्ञासे हम तीनों तपोवनमें जायँगे और वहाँ फल-मूलका आहार करते हुए धर्मका ही आचरण करेंगे'॥ १६॥

परम बुद्धिमान् राजकुमार श्रीरामका वह वचन सुनकर धर्मात्मा भरद्वाज मुनिने उनके लिये आतिथ्य-सत्कारके रूपमें एक गौ तथा अर्घ्य-जल समर्पित किये॥ १७॥

उन तपस्वी महात्माने उन सबको नाना प्रकारके अन्न, रस और जंगली फल-मूल प्रदान किये। साथ ही उनके ठहरनेके लिये स्थानकी भी व्यवस्था की॥ १८॥

महर्षिके चारों ओर मृग, पक्षी और ऋषि-मुनि बैठे थे और उनके बीचमें वे विराजमान थे। उन्होंने अपने आश्रमपर अतिथिरूपमें पधारे हुए श्रीरामका स्वागतपूर्वक सत्कार किया। उनके उस सत्कारको ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजी जब आसनपर विराजमान हुए, तब भरद्वाजजीने उनसे यह धर्मयुक्त वचन कहा—॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! मैं इस आश्रमपर दीर्घकालसे तुम्हारे शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ (आज मेरा मनोरथ सफल हुआ है)। मैंने यह भी सुना है कि तुम्हें अकारण ही वनवास दे दिया गया है॥ २१॥

'गङ्गा और यमुना—इन दोनों महानदियोंके संगमके पासका यह स्थान बड़ा ही पवित्र और एकान्त है। यहाँकी प्राकृतिक छटा भी मनोरम है, अतः तुम यहीं सुखपूर्वक निवास करो'॥ २२॥

भरद्वाज मुनिके ऐसा कहनेपर समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले रघुकुलनन्दन श्रीरामने इन शुभ वचनोंके द्वारा उन्हें उत्तर दिया—॥ २३॥

'भगवन्! मेरे नगर और जनपदके लोग यहाँसे बहुत निकट पड़ते हैं, अतः मैं समझता हूँ कि यहाँ मुझसे मिलना सुगम समझकर लोग इस आश्रमपर मुझे और सीताको देखनेके लिये प्रायः आते-जाते रहेंगे; इस कारण यहाँ निवास करना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता॥

'भगवन्! किसी एकान्त प्रदेशमें आश्रमके योग्य उत्तम स्थान देखिये (सोचकर बताइये), जहाँ सुख भोगनेके योग्य विदेहराजकुमारी जानकी प्रसन्नतापूर्वक रह सकें'॥ २६॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह शुभ वचन सुनकर महामुनि भरद्वाजजीने उनके उक्त उद्देश्यकी सिद्धिका बोध करानेवाली बात कही—॥ २७॥

'तात! यहाँसे दस कोस (अन्य व्याख्याके अनुसार ३० कोस)* की दूरीपर एक सुन्दर और महर्षियोंद्वारा सेवित परम पवित्र पर्वत है, जिसपर तुम्हें निवास करना होगा॥ २८॥

'उसपर बहुत-से लंगूर विचरते रहते हैं। वहाँ वानर और रीछ भी निवास करते हैं। वह पर्वत चित्रकूट नामसे विख्यात है और गन्धमादनके समान मनोहर है॥

'जब मनुष्य चित्रकूटके शिखरोंका दर्शन कर लेता है, तब कल्याणकारी पुण्य कर्मोंका फल पा लेता है और कभी पापमें मन नहीं लगाता है॥ ३०॥

'वहाँ बहुत-से ऋषि, जिनके सिरके बाल वृद्धावस्थाके कारण खोपड़ीकी भाँति सफेद हो गये थे, तपस्याद्वारा सैकड़ों वर्षोंतक क्रीड़ा करके स्वर्गलोकको चले गये हैं॥ ३१॥

'उसी पर्वतको मैं तुम्हारे लिये एकान्तवासके योग्य और सुखद मानता हूँ अथवा श्रीराम! तुम वनवासके उद्देश्यसे मेरे साथ इस आश्रमपर ही रहो'॥ ३२॥

ऐसा कहकर भरद्वाजजीने पत्नी और भ्रातासहित प्रिय अतिथि श्रीरामका हर्ष बढ़ाते हुए सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंद्वारा उन सबका आतिथ्यसत्कार किया॥ ३३॥

प्रयागमें श्रीरामचन्द्रजी महर्षिके पास बैठकर विचित्र बातें करते रहे, इतनेमें ही पुण्यमयी रात्रिका आगमन हुआ॥ ३४॥

वे सुख भोगनेयोग्य होनेपर भी परिश्रमसे बहुत थक गये थे, इसलिये भरद्वाज मुनिके उस मनोहर आश्रममें श्रीरामने लक्ष्मण और सीताके साथ सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की॥ ३५॥

तदनन्तर जब रात बीती और प्रातःकाल हुआ, तब पुरुषसिंह श्रीराम प्रज्वलित तेजवाले भरद्वाज मुनिके पास गये और बोले—॥ ३६॥

'भगवन्! आप स्वभावतः सत्य बोलनेवाले हैं। आज हमलोगोंने आपके आश्रममें बड़े आरामसे रात बितायी है, अब आप हमें आगेके गन्तव्य-स्थानपर जानेके लिये आज्ञा प्रदान करें'॥ ३७॥

रात बीतने और सबेरा होनेपर श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर भरद्वाजजीने कहा—'महाबली श्रीराम! तुम मधुर फल-मूलसे सम्पन्न चित्रकूट पर्वतपर जाओ। मैं उसीको तुम्हारे लिये उपयुक्त निवासस्थान मानता हूँ॥

'वह सुविख्यात चित्रकूट पर्वत नाना प्रकारके वृक्षोंसे हरा-भरा है। वहाँ बहुत-से किन्नर और सर्प निवास करते हैं। मोरोंके कलरवोंसे वह और भी रमणीय प्रतीत होता है। बहुत-से गजराज उस पर्वतका सेवन करते हैं। तुम वहीं चले जाओ॥ ३९-४०

'वह पर्वत परम पवित्र, रमणीय तथा बहुसंख्यक फल-मूलोंसे सम्पन्न है। वहाँ झुंड-के-झुंड हाथी और हिरन वनके भीतर विचरते रहते हैं। रघुनन्दन! तुम उन

* रामायणशिरोमणिकार दस कोसका अर्थ तीस कोस करते हैं और 'दश च दश च दश च' ऐसी व्युत्पत्ति करके एकशेषके नियमानुसार एक ही दशका प्रयोग होनेपर भी उसे ३० संख्याका बोधक मानते हैं। प्रयागसे चित्रकूटकी दूरी लगभग २८ कोस मानी जाती है, जो उपर्युक्त संख्यासे मिलती-जुलती ही है। आधुनिक मापके अनुसार प्रयागसे चित्रकूट ८० मील है। इस हिसाबसे चालीस कोसकी दूरी हुई। परंतु पहलेका क्रोशमान आधुनिक मानसे कुछ बड़ा रहा होगा, तभी यह अन्तर है।

सबको प्रत्यक्ष देखोगे। मन्दाकिनी नदी, अनेकानेक जलस्रोत, पर्वतशिखर, गुफा, कन्दरा और झरने भी तुम्हारे देखनेमें आयेंगे। वह पर्वत सीताके साथ विचरते हुए तुम्हारे मनको आनन्द प्रदान करेगा॥ ४१-४२॥

'हर्षमें भरे हुए टिट्टिभ और कोकिलोंके कलरवोंद्वारा वह पर्वत यात्रियोंका मनोरञ्जन-सा करता है। वह परम सुखद एवं कल्याणकारी है, मदमत्त मृगों और बहुसंख्यक मतवाले हाथियोंने उसकी रमणीयताको और बढ़ा दिया है। तुम उसी पर्वतपर जाकर डेरा डालो और उसमें निवास करो'॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

भरद्वाजजीका श्रीराम आदिके लिये स्वस्तिवाचन करके उन्हें चित्रकूटका मार्ग बताना, उन सबका अपने ही बनाये हुए बेड़ेसे यमुनाजीको पार करना, सीताकी यमुना और श्यामवटसे प्रार्थना, तीनोंका यमुनाके किनारेके मार्गसे एक कोसतक जाकर वनमें घूमना-फिरना, यमुनाजीके समतल तटपर रात्रिमें निवास करना

उस आश्रममें रातभर रहकर शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों राजकुमार महर्षिको प्रणाम करके चित्रकूट पर्वतपर जानेको उद्यत हुए॥ १॥

उन तीनोंको प्रस्थान करते देख महर्षिने उनके लिये उसी प्रकार स्वस्तिवाचन किया जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंको यात्रा करते देख उनके लिये मंगलसूचक आशीर्वाद देता है॥ २॥

तदनन्तर महातेजस्वी महामुनि भरद्वाजने सत्य पराक्रमी श्रीरामसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'नरश्रेष्ठ! तुम दोनों भाई गङ्गा और यमुनाके संगमपर पहुँचकर जिनमें पश्चिममुखी होकर गङ्गा मिली हैं, उन महानदी यमुनाके निकट जाना॥ ४॥

'रघुनन्दन! तदनन्तर गङ्गाजीके जलके वेगसे अपने प्रवाहके प्रतिकूल दिशामें मुड़ी हुई यमुनाके पास पहुँचकर लोगोंके आने-जानेके कारण उनके पदचिह्नोंसे चिह्नित हुए अवतरण-प्रदेश (पार उतरनेके लिये उपयोगी घाट) को अच्छी तरह देख-भालकर वहाँ जाना और एक बेड़ा बनाकर उसीके द्वारा सूर्यकन्या यमुनाके उस पार उतर जाना॥ ५॥

'तत्पश्चात् आगे जानेपर एक बहुत बड़ा बरगदका वृक्ष मिलेगा, जिसके पत्ते हरे रंगके हैं। वह चारों ओरसे बहुसंख्यक दूसरे वृक्षोंद्वारा घिरा हुआ है। उस वृक्षका नाम श्यामवट है। उसकी छायाके नीचे बहुत-से सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँ पहुँचकर सीता दोनों हाथ जोड़कर उस वृक्षसे आशीर्वादकी याचना करें। यात्रीकी इच्छा हो तो उस वृक्षके पास जाकर कुछ कालतक वहाँ निवास करे अथवा वहाँसे आगे बढ़ जाय॥ ६-७॥

'श्यामवटसे एक कोस दूर जानेपर तुम्हें नीलवनका दर्शन होगा; वहाँ सल्लकी (चीड़) और बेरके भी पेड़ मिले हुए हैं। यमुनाके तटपर उत्पन्न हुए बाँसोंके कारण वह और भी रमणीय दिखायी देता है॥ ८॥

'यह वही स्थान है जहाँसे चित्रकूटको रास्ता जाता है। मैं उस मार्गसे कई बार गया हूँ। वहाँकी भूमि कोमल और दृश्य रमणीय है। उधर कभी दावानलका भय नहीं होता है'॥ ९॥

इस प्रकार मार्ग बताकर जब महर्षि भरद्वाज लौटने लगे, तब श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'अब आप आश्रमको लौट जाइये'॥ १०॥

उन महर्षिके लौट जानेपर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। ये मुनि हमारे ऊपर जो इतनी कृपा रखते हैं, इससे जान पड़ता है कि हमलोगोंने पहले कभी महान् पुण्य किया है'॥

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों मनस्वी पुरुषसिंह सीताको ही आगे करके यमुना नदीके तटपर गये॥ १२॥

वहाँ कालिन्दीका स्रोत बड़ी तीव्रगतिसे प्रवाहित हो रहा था; वहाँ पहुँचकर वे इस चिन्तामें पड़े कि कैसे नदीको पार किया जाय; क्योंकि वे तुरंत ही यमुनाजीके जलको पार करना चाहते थे॥ १३॥

फिर उन दोनों भाइयोंने जंगलके सूखे काठ बटोरकर उन्हींके द्वारा एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार

किया। वह बेड़ा सूखे बाँसोंसे व्याप्त था और उसके ऊपर खस बिछाया गया था। तदनन्तर पराक्रमी लक्ष्मणने बेंत और जामुनकी टहनियोंको काटकर सीताके बैठनेके लिये एक सुखद आसन तैयार किया॥ १४-१५॥

दशरथनन्दन श्रीरामने लक्ष्मीके समान अचिन्त्य ऐश्वर्यवाली अपनी प्रिया सीताको जो कुछ लज्जित-सी हो रही थीं, उस बेड़ेपर चढ़ा दिया और उनके बगलमें वस्त्र एवं आभूषण रख दिये; फिर श्रीरामने बड़ी सावधानीके साथ खन्ती (कुदारी) और बकरेके चमड़ेसे मढ़ी हुई पिटारीको भी बेड़ेपर ही रखा॥ १६-१७॥

इस प्रकार पहले सीताको चढ़ाकर वे दोनों भाई दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण उस बेड़ेको पकड़कर खेने लगे। उन्होंने बड़े प्रयत्न और प्रसन्नताके साथ नदीको पार करना आरम्भ किया॥ १८॥

यमुनाकी बीच धारामें आनेपर सीताने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'देवि! इस बेड़े द्वारा मैं आपके पार जा रही हूँ। आप ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग सकुशल पार हो जायँ और मेरे पतिदेव अपनी वनवासविषयक प्रतिज्ञाको निर्विघ्न पूर्ण करें॥ १९॥

'इक्ष्वाकुवंशी वीरोंद्वारा पालित अयोध्यापुरीमें श्रीरघुनाथजीके सकुशल लौट आनेपर मैं आपके किनारे एक सहस्र गौओंका दान करूँगी और सैकड़ों देवदुर्लभ पदार्थ अर्पित करके आपकी पूजा सम्पन्न करूँगी'॥ २०॥

इस प्रकार सुन्दरी सीता हाथ जोड़कर यमुनाजीसे प्रार्थना कर रही थीं, इतनेहीमें वे दक्षिण तटपर जा पहुँचीं॥ २१॥

इस तरह उन तीनोंने उसी बेड़ेद्वारा बहुसंख्यक तटवर्ती वृक्षोंसे सुशोभित और तरङ्गमालाओंसे अलंकृत शीघ्रगामिनी सूर्य-कन्या यमुना नदीको पार किया॥ २२॥

पार उतरकर उन्होंने बेड़ेको तो वहीं तटपर छोड़ दिया और यमुना-तटवर्ती वनसे प्रस्थान करके वे हरे-हरे पत्तोंसे सुशोभित शीतल छायावाले श्यामवटके पास जा पहुँचे॥ २३॥

वटके समीप पहुँचकर विदेहनन्दिनी सीताने उसे मस्तक झुकाया और इस प्रकार कहा—'महावृक्ष! आपको नमस्कार है। आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पतिदेव अपने वनवास-विषयक व्रतको पूर्ण करें॥ २४॥

'तथा हमलोग वनसे सकुशल लौटकर माता कौसल्या तथा यशस्विनी सुमित्रादेवीका दर्शन कर सकें।' इस प्रकार कहकर मनस्विनी सीताने हाथ जोड़े हुए उस वृक्षकी परिक्रमा की॥ २५॥

सदा अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाली प्राणप्यारी सती-साध्वी सीताको श्यामवटसे आशीर्वादकी याचना करती देख श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ २६॥

'भरतके छोटे भाई नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम सीताको साथ लेकर आगे-आगे चलो और मैं धनुष धारण किये पीछेसे तुमलोगोंकी रक्षा करता हुआ चलूँगा॥ २७॥

'विदेहकुलनन्दिनी जनकदुलारी सीता जो-जो फल या फूल माँगें अथवा जिस वस्तुको पाकर इनका मन प्रसन्न रहे, वह सब इन्हें देते रहो'॥ २८॥

अबला सीता एक-एक वृक्ष, झाड़ी अथवा पहलेकी न देखी हुई पुष्पशोभित लताको देखकर उसके विषयमें श्रीरामचन्द्रजीसे पूछती थीं॥ २९॥

तथा लक्ष्मण सीताके कथनानुसार तुरंत ही भाँति-भाँतिके वृक्षोंकी मनोहर शाखाएँ और फूलोंके गुच्छे ला-लाकर उन्हें देते थे॥ ३०॥

उस समय जनकराजकिशोरी सीता विचित्र वालुका और जलराशिसे सुशोभित तथा हंस और सारसोंके कलनादसे मुखरित यमुना नदीको देखकर बहुत प्रसन्न होती थीं॥ ३१॥

इस तरह एक कोसकी यात्रा करके दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण (प्राणियोंके हितके लिये) मार्गमें मिले हुए हिंसक पशुओंका वध करते हुए यमुना-तटवर्ती वनमें विचरने लगे॥ ३२॥

उदार दृष्टिवाले वे सीता, लक्ष्मण और श्रीराम मोरोंके झुंडोंकी मीठी बोलीसे गूँजते तथा हाथियों और वानरोंसे भरे हुए उस सुन्दर वनमें घूम-फिरकर शीघ्र ही यमुनानदीके समतल तटपर आ गये और रातमें उन्होंने वहीं निवास किया॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

वनकी शोभा देखते-दिखाते हुए श्रीराम आदिका चित्रकूटमें पहुँचना, वाल्मीकिजीका दर्शन करके श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणद्वारा पर्णशालाका निर्माण तथा उसकी वास्तुशान्ति करके उन सबका कुटीमें प्रवेश

तदनन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर रघुकुलशिरोमणि श्रीरामने अपने जागनेके बाद वहाँ सोये हुए लक्ष्मणको धीरेसे जगाया (और इस प्रकार कहा—)॥ १॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले सुमित्राकुमार! मीठी बोली बोलनेवाले शुक-पिक आदि जंगली पक्षियोंका कलरव सुनो। अब हमलोग यहाँसे प्रस्थान करें; क्योंकि प्रस्थानके योग्य समय आ गया है'॥ २॥

सोये हुए लक्ष्मणने अपने बड़े भाईद्वारा ठीक समयपर जगा दिये जानेपर निद्रा, आलस्य तथा राह चलनेकी थकावटको दूर कर दिया॥ ३॥

फिर सब लोग उठे और यमुना नदीके शीतल जलमें स्नान आदि करके ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित चित्रकूटके उस मार्गपर चल दिये॥ ४॥

उस समय लक्ष्मणके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए श्रीरामने कमलनयनी सीतासे इस प्रकार कहा— ॥ ५॥

'विदेहराजनन्दिनी! इस वसन्त-ऋतुमें सब ओरसे खिले हुए इन पलाश-वृक्षोंको तो देखो। ये अपने ही पुष्पोंसे पुष्पमालाधारी-से प्रतीत होते हैं और उन फूलोंकी अरुण प्रभाके कारण प्रज्वलित होते-से दिखायी देते हैं॥ ६॥

'देखो, ये भिलावे और बेलके पेड़ अपने फूलों और फलोंके भारसे झुके हुए हैं। दूसरे मनुष्योंका यहाँतक आना सम्भव न होनेसे ये उनके द्वारा उपयोगमें नहीं लाये गये हैं; अतः निश्चय ही इन फलोंसे हम जीवननिर्वाह कर सकेंगे'॥ ७॥

(फिर लक्ष्मणसे कहा—) 'लक्ष्मण! देखो, यहाँके एक-एक वृक्षमें मधुमक्खियोंद्वारा लगाये और पुष्ट किये गये मधुके छत्ते कैसे लटक रहे हैं। इन सबमें एक-एक द्रोण (लगभग सोलह सेर) मधु भरा हुआ है॥ ८॥

'वनका यह भाग बड़ा ही रमणीय है, यहाँ फूलोंकी वर्षा-सी हो रही है और सारी भूमि पुष्पोंसे आच्छादित दिखायी देती है। इस वनप्रान्तमें यह चातक 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की रट लगा रहा है। उधर वह मोर बोल रहा है, मानो पपीहेकी बातका उत्तर दे रहा हो॥ ९॥

'यह रहा चित्रकूट पर्वत—इसका शिखर बहुत ऊँचा है। झुंड-के-झुंड हाथी उसी ओर जा रहे हैं और वहाँ बहुत-से पक्षी चहक रहे हैं॥ १०॥

'तात! जहाँकी भूमि समतल है और जो बहुत-से वृक्षोंसे भरा हुआ है, चित्रकूटके उस पवित्र काननमें हमलोग बड़े आनन्दसे विचरेंगे'॥ ११॥

सीताके साथ दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण पैदल ही यात्रा करते हुए यथासमय रमणीय एवं मनोरम पर्वत चित्रकूटपर जा पहुँचे॥ १२॥

वह पर्वत नाना प्रकारके पक्षियोंसे परिपूर्ण था। वहाँ फल-मूलोंकी बहुतायत थी और स्वादिष्ट जल पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता था। उस रमणीय शैलके समीप जाकर श्रीरामने कहा— ॥ १३॥

'सौम्य! यह पर्वत बड़ा मनोहर है। नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ इसकी शोभा बढ़ाती हैं। यहाँ फल-मूल भी बहुत हैं; यह रमणीय तो है ही। मुझे जान पड़ता है कि यहाँ बड़े सुखसे जीवन-निर्वाह हो सकता है॥ १४॥

'इस पर्वतपर बहुत-से महात्मा मुनि निवास करते हैं। तात! यही हमारा वासस्थान होनेयोग्य है। हम यहीं निवास करेंगे'॥ १५॥

ऐसा निश्चय करके सीता, श्रीराम और लक्ष्मणने हाथ जोड़कर महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें प्रवेश किया और सबने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया॥ १६॥

धर्मको जाननेवाले महर्षि उनके आगमनसे बहुत प्रसन्न हुए और 'आपलोगोंका स्वागत है। आइये, बैठिये।' ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका आदर-सत्कार किया॥ १७॥

तदनन्तर महाबाहु भगवान् श्रीरामने महर्षिको अपना यथोचित परिचय दिया और लक्ष्मणसे कहा— ॥ १८॥

'सौम्य लक्ष्मण! तुम जंगलसे अच्छी-अच्छी मजबूत लकड़ियाँ ले आओ और रहनेके लिये एक कुटी तैयार करो। यहीं निवास करनेको मेरा जी चाहता है'॥ १९॥

श्रीरामकी यह बात सुनकर शत्रुदमन लक्ष्मण अनेक प्रकारके वृक्षोंकी डालियाँ काट लाये और उनके द्वारा एक पर्णशाला तैयार की॥ २०॥

वह कुटी बाहर-भीतरसे लकड़ीकी ही

दीवारसे सुस्थिर बनायी गयी थी और उसे ऊपरसे छा दिया गया था, जिससे वर्षा आदिका निवारण हो। वह देखनेमें बड़ी सुन्दर लगती थी। उसे तैयार हुई देखकर एकाग्रचित्त होकर अपनी बात सुननेवाले लक्ष्मणसे श्रीरामने इस प्रकार कहा—॥ २१ ॥

'सुमित्राकुमार! हम गजकन्दका गूदा लेकर उसीसे पर्णशालाके अधिष्ठाता देवताओंका पूजन करेंगे;[१] क्योंकि दीर्घ जीवनकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वास्तुशान्ति अवश्य करनी चाहिये॥ २२ ॥

'कल्याणदर्शी लक्ष्मण! तुम 'गजकन्द' नामक कन्दको[२] उखाड़कर या खोदकर शीघ्र यहाँ ले आओ; क्योंकि शास्त्रोक्त विधिका अनुष्ठान हमारे लिये अवश्य-कर्तव्य है। तुम धर्मका ही सदा चिन्तन किया करो'॥ २३ ॥

भाईकी इस बातको समझकर शत्रुवीरोंका वध करनेवाले लक्ष्मणने उनके कथनानुसार कार्य किया। तब श्रीरामने पुनः उनसे कहा—॥ २४ ॥

'लक्ष्मण! इस गजकन्दको पकाओ। हम पर्णशालाके अधिष्ठाता देवताओंका पूजन करेंगे। जल्दी करो। यह सौम्यमुहूर्त है और यह दिन भी 'ध्रुव'[३] संज्ञक है (अतः इसीमें यह शुभ कार्य होना चाहिये)'॥ २५ ॥

प्रतापी सुमित्राकुमार लक्ष्मणने पवित्र और काले छिलकेवाले गजकन्दको उखाड़कर प्रज्वलित आगमें डाल दिया॥ २६ ॥

रक्तविकारका नाश करनेवाले[४] उस गजकंदको भलीभाँति पका हुआ जानकर लक्ष्मणने पुरुषसिंह श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥ २७ ॥

'देवोपम तेजस्वी श्रीरघुनाथजी! यह काले छिलकेवाला गजकन्द, जो बिगड़े हुए सभी अङ्गोंको ठीक करनेवाला है,[५] मेरे द्वारा सम्पूर्णतः पका दिया गया है। अब आप वास्तुदेवताओंका यजन कीजिये; क्योंकि आप इस कर्ममें कुशल हैं॥ २८ ॥

सद्गुणसम्पन्न तथा जपकर्मके ज्ञाता श्रीरामचन्द्रजीने स्नान करके शौच-संतोषादि नियमोंके पालनपूर्वक संक्षेपसे उन सभी मन्त्रोंका पाठ एवं जप किया, जिनसे वास्तुयज्ञकी पूर्ति हो जाती है॥ २९ ॥

समस्त देवताओंका पूजन करके पवित्र भावसे श्रीरामने पर्णकुटीमें प्रवेश किया। उस समय अमित-तेजस्वी श्रीरामके मनमें बड़ा आह्लाद हुआ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् बलिवैश्वदेव कर्म, रुद्रयाग तथा वैष्णवयाग करके श्रीरामने वास्तुदोषकी शान्तिके लिये मङ्गलपाठ किया॥ ३१ ॥

नदीमें विधिपूर्वक स्नान करके न्यायतः गायत्री आदि मन्त्रोंका जप करनेके अनन्तर श्रीरामने पञ्चसूना आदि दोषोंकी शान्तिके लिये उत्तम बलिकर्म सम्पन्न किया॥ ३२ ॥

रघुनाथजीने अपनी छोटी-सी कुटीके अनुरूप ही वेदिस्थलों (आठ दिक्पालोंके लिये बलि-समर्पणके स्थानों), चैत्यों (गणेश आदिके स्थानों) तथा आयतनों (विष्णु आदि देवोंके स्थानों) का निर्माण एवं स्थापना की॥ ३३ ॥

वह मनोहर कुटी उपयुक्त स्थानपर बनी थी। उसे

---

१. यहाँ 'ऐणेयं मांसम्' का अर्थ है—गजकन्द नामक कन्द विशेषका गूदा। इस प्रसंगमें मांसपरक अर्थ नहीं लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा अर्थ लेनेपर '**हित्वा मुनिवदामिषम्**' (२। २०। २९), '**फलानि मूलानि च भक्षयन् वने**' (२। ३४। ५९) तथा '**धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः**' (२। ५४। १६) इत्यादि रूपसे की हुई श्रीरामकी प्रतिज्ञाओंसे विरोध पड़ेगा। इन वचनोंमें निरामिष रहने और फल-मूल खाकर धर्माचरण करनेकी ही बात कही गयी है। '**रामो द्विर्नाभिभाषते**' (श्रीराम दो तरहकी बात नहीं कहते हैं, एक बार जो कह दिया, वह अटल है) इस कथनके अनुसार श्रीरामकी प्रतिज्ञा टलनेवाली नहीं है।

२. मदनपाल-निघण्टुके अनुसार 'मृग' का अर्थ गजकन्द है।

३. '**उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।**' (मुहूर्तचिन्तामणि)

अर्थात तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र तथा रविवार—ये 'ध्रुव' एवं 'स्थिर' संज्ञक हैं। इसमें गृहशान्ति या वास्तुशान्ति आदि कार्य अच्छे माने गये हैं।

४. '**छिन्नशोणितम्**' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'**छिन्नं शोणितं रक्तविकाररूपं रोगजातं येन सः तम्।**' 'गजकन्द' रोगविकारका नाशक है' यह वैद्यकमें प्रसिद्ध है। मदनपाल-निघण्टुके '**षड्दोषादिकुष्ठहन्ता**' आदि वचनसे भी यह चर्मदोष तथा कुष्ठ आदि रक्तविकारका नाशक सिद्ध होता है।

५ '**समस्ताङ्गः**' की व्युत्पत्ति यों समझनी चाहिये—'**सम्यग् भवन्ति अस्तानि अङ्गानि येन सः।**'

वृक्षोंके पत्तोंसे छाया गया था और उसके भीतर प्रचण्ड वायुसे बचनेका पूरा प्रबन्ध था। सीता, लक्ष्मण और श्रीराम सबने एक साथ उसमें निवासके लिये प्रवेश किया। ठीक वैसे ही, जैसे देवतालोग सुधर्मा सभामें प्रवेश करते हैं॥ ३४॥

चित्रकूट पर्वत बड़ा ही रमणीय था। वहाँ उत्तम तीर्थों (तीर्थस्थान, सीढ़ी और घाटों) से सुशोभित माल्यवती (मन्दाकिनी) नदी बह रही थी, जिसका बहुत-से पशु-पक्षी सेवन करते थे। उस पर्वत और नदीका सांनिध्य पाकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा हर्ष और आनन्द हुआ। वे नगरसे दूर वनमें आनेके कारण होनेवाले कष्टको भूल गये॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

सुमन्त्रका अयोध्याको लौटना, उनके मुखसे श्रीरामका संदेश सुनकर पुरवासियोंका विलाप, राजा दशरथ और कौसल्याकी मूर्च्छा तथा अन्तःपुरकी रानियोंका आर्तनाद

इधर, जब श्रीराम गङ्गाके दक्षिणतटपर उतर गये, तब गुह दुःखसे व्याकुल हो सुमन्त्रके साथ बड़ी देरतक बातचीत करता रहा। इसके बाद वह सुमन्त्रको साथ ले अपने घरको चला गया॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीका प्रयागमें भरद्वाजके आश्रमपर जाना, मुनिके द्वारा सत्कार पाना तथा चित्रकूट पर्वतपर पहुँचना—ये सब वृत्तान्त शृङ्गवेरके निवासी गुप्तचरोंने देखे और लौटकर गुहको इन बातोंसे अवगत कराया॥ २॥

इन सब बातोंको जानकर सुमन्त्र गुहसे विदा ले अपने उत्तम घोड़ोंको रथमें जोतकर अयोध्याकी ओर ही लौट पड़े। उस समय उनके मनमें बड़ा दुःख हो रहा था॥ ३॥

वे मार्गमें सुगन्धित वनों, नदियों, सरोवरों, गाँवों और नगरोंको देखते हुए बड़ी सावधानीके साथ शीघ्रतापूर्वक जा रहे थे॥ ४॥

शृङ्गवेरपुरसे लौटनेके दूसरे दिन सायंकालमें अयोध्या पहुँचकर उन्होंने देखा, सारी पुरी आनन्दशून्य हो गयी है॥ ५॥

वहाँ कहीं एक शब्द भी सुनायी नहीं देता था। सारी पुरी ऐसी नीरव थी, मानो मनुष्योंसे सूनी हो गयी हो। अयोध्याकी ऐसी दशा देखकर सुमन्त्रके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे शोकके वेगसे पीड़ित हो इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥ ६॥

'कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि श्रीरामके विरहजनित संतापके दुःखसे व्यथित हो हाथी, घोड़े, मनुष्य और महाराजसहित सारी अयोध्यापुरी शोकाग्निसे दग्ध हो गयी हो'॥ ७॥

इसी चिन्तामें पड़े हुए सारथि सुमन्त्रने शीघ्रगामी घोड़ोंद्वारा नगरद्वारपर पहुँचकर तुरंत ही पुरीके भीतर प्रवेश किया॥ ८॥

सुमन्त्रको देखकर सैकड़ों और हजारों पुरवासी मनुष्य दौड़े आये और 'श्रीराम कहा हैं?' यह पूछते हुए उनके रथके साथ-साथ दौड़ने लगे॥ ९॥

उस समय सुमन्त्रने उन लोगोंसे कहा—'सज्जनो! मैं गङ्गाजीके किनारेतक श्रीरघुनाथजीके साथ गया था। वहाँसे उन धर्मनिष्ठ महात्माने मुझे लौट जानेकी आज्ञा दी। अतः मैं उनसे बिदा लेकर यहाँ लौट आया हूँ। 'वे तीनों व्यक्ति गङ्गाके उस पार चले गये' यह जानकर सब लोगोंके मुखपर आँसुओंकी धाराएँ बह चलीं। 'अहो! हमें धिक्कार है।' ऐसा कहकर वे लंबी साँसें खींचते और 'हा राम!' की पुकार मचाते हुए जोर-जोरसे करुणक्रन्दन करने लगे॥ १०-११॥

सुमन्त्रने उनकी बातें सुनीं। वे झुंड-के-झुंड खड़े होकर कह रहे थे—'हाय! निश्चय ही हमलोग मारे गये; क्योंकि अब हम यहाँ श्रीरामचन्द्रजीको नहीं देख पायँगे॥ १२॥

'दान, यज्ञ, विवाह तथा बड़े-बड़े सामाजिक उत्सवोंके समय अब हम कभी धर्मात्मा श्रीरामको अपने बीचमें खड़ा हुआ नहीं देख सकेंगे॥ १३॥

'अमुक पुरुषके लिये कौन-सी वस्तु उपयोगी है? क्या करनेसे उसका प्रिय होगा? और कैसे किस-किस वस्तुसे उसे सुख मिलेगा, इत्यादि बातोंका विचार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी पिताकी भाँति इस नगरका पालन करते थे'॥ १४॥

बाजारके बीचसे निकलते समय सारथिके कानोंमें स्त्रियोंके रोनेकी आवाज सुनायी दी, जो महलोंकी खिड़कियोंमें बैठकर श्रीरामके लिये ही संतप्त हो विलाप कर रही थीं॥ १५॥

राजमार्गके बीचसे जाते हुए सुमन्त्रने कपड़ेसे अपना मुँह ढक लिया। वे रथ लेकर उसी भवनकी ओर गये, जहाँ राजा दशरथ मौजूद थे॥ १६॥

राजमहलके पास पहुँचकर वे शीघ्र ही रथसे उतर पड़े और भीतर प्रवेश करके बहुत-से मनुष्योंसे भरी हुई सात ड्योढ़ियोंको पार कर गये॥ १७॥

धनियोंकी अट्टालिकाओं, सतमंजिले मकानों तथा राजभवनोंमें बैठी हुई स्त्रियाँ सुमन्त्रको लौटा हुआ देख श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित होनेके दुःखसे दुर्बल हो हाहाकार कर उठीं॥ १८॥

उनके कज्जल आदिसे रहित बड़े-बड़े नेत्र आँसुओंके वेगमें डूबे हुए थे। वे स्त्रियाँ अत्यन्त आर्त होकर अव्यक्तभावसे एक-दूसरीकी ओर देख रही थीं॥ १९॥

तदनन्तर राजमहलोंमें जहाँ-तहाँसे श्रीरामके शोकसे संतप्त हुई राजा दशरथकी रानियोंके मन्दस्वरमें कहे गये वचन सुनायी पड़े॥ २०॥

'ये सारथि सुमन्त्र श्रीरामके साथ यहाँसे गये थे और उनके बिना ही यहाँ लौटे हैं, ऐसी दशामें करुण क्रन्दन करती हुई कौसल्याको ये क्या उत्तर देंगे?॥ २१॥

'मैं समझती हूँ, जैसे जीवन दुःखजनित है, निश्चय ही उसी प्रकार इसका नाश भी सुकर नहीं है; तभी तो न्यायतः प्राप्त हुए अभिषेकको त्यागकर पुत्रके वनमें चले जानेपर भी कौसल्या अभीतक जीवित हैं'॥ २२॥

रानियोंकी वह सच्ची बात सुनकर शोकसे दग्ध-से होते हुए सुमन्त्रने सहसा राजभवनमें प्रवेश किया॥ २३॥

आठवीं ड्योढ़ीमें प्रवेश करके उन्होंने देखा, राजा एक श्वेत भवनमें बैठे और पुत्रशोकसे मलिन, दीन एवं आतुर हो रहे हैं॥ २४॥

सुमन्त्रने वहाँ बैठे हुए महाराजके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं॥ २५॥

राजाने चुपचाप ही वह सुन लिया, सुनकर उनका हृदय द्रवित (व्याकुल) हो गया। फिर वे श्रीरामके शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २६॥

महाराजके मूर्च्छित हो जानेपर सारा अन्तःपुर दुःखसे व्यथित हो उठा। राजाके पृथ्वीपर गिरते ही सब लोग दोनों बाँहें उठाकर जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे॥ २७॥

उस समय कौसल्याने सुमित्राकी सहायतासे अपने गिरे हुए पतिको उठाया और इस प्रकार कहा—॥ २८॥

'महाभाग! ये सुमन्त्रजी दुष्कर कर्म करनेवाले श्रीरामके दूत होकर—उनका संदेश लेकर वनवाससे लौटे हैं। आप इनसे बात क्यों नहीं करते हैं?॥ २९॥

'रघुनन्दन! पुत्रको वनवास दे देना अन्याय है। यह अन्याय करके आप लज्जित क्यों हो रहे हैं? उठिये, आपको अपने सत्यके पालनका पुण्य प्राप्त हो। जब आप इस तरह शोक करेंगे, तब आपके सहायकोंका समुदाय भी आपके साथ ही नष्ट हो जायगा॥ ३०॥

'देव! आप जिसके भयसे सुमन्त्रजीसे श्रीरामका समाचार नहीं पूछ रहे हैं, वह कैकेयी यहाँ मौजूद नहीं है; अतः निर्भय होकर बात कीजिये'॥ ३१॥

महाराजसे ऐसा कहकर कौसल्याका गला भर आया। आँसुओंके कारण उनसे बोला नहीं गया और वे शोकसे व्याकुल होकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ ३२॥

इस प्रकार विलाप करती हुई कौसल्याको भूमिपर पड़ी देख और अपने पतिकी मूर्च्छित दशापर दृष्टिपात करके सभी रानियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं॥ ३३॥

अन्तःपुरसे उठे हुए उस आर्तनादको देख-सुनकर नगरके बूढ़े और जवान पुरुष रो पड़े। सारी स्त्रियाँ भी रोने लगीं। वह सारा नगर उस समय सब ओरसे पुनः शोकसे व्याकुल हो उठा॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

महाराज दशरथकी आज्ञासे सुमन्त्रका श्रीराम और लक्ष्मणके संदेश सुनाना

मूर्च्छा दूर होनेपर जब राजाको चेत हुआ तब सुस्थिर चित्त होकर उन्होंने श्रीरामका वृत्तान्त सुननेके लिये सारथि सुमन्त्रको सामने बुलाया॥ १॥

उस समय सुमन्त्र श्रीरामके ही शोक और चिन्तामें निरन्तर डूबे रहनेवाले दुःख-शोकसे व्याकुल महाराज दशरथके पास हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २॥

जैसे जंगलसे तुरंत पकड़कर लाया हुआ हाथी अपने यूथपति गजराजका चिन्तन करके लंबी साँस खींचता और अत्यन्त संतप्त तथा अस्वस्थ हो जाता है, उसी प्रकार बूढ़े राजा दशरथ श्रीरामके लिये अत्यन्त संतप्त हो लंबी साँस खींचकर उन्हींका ध्यान करते हुए अस्वस्थ-से हो गये थे। राजाने देखा, सारथिका सारा शरीर धूलसे भर गया है। यह सामने खड़ा है। इसके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही है और यह अत्यन्त दीन दिखायी देता है। उस अवस्थामें राजाने अत्यन्त आर्त होकर उससे पूछा—॥

'सूत! धर्मात्मा श्रीराम वृक्षकी जड़का सहारा ले कहाँ निवास करेंगे? जो अत्यन्त सुखमें पले थे, वे मेरे लाड़ले राम वहाँ क्या खायेंगे?॥ ५॥

'सुमन्त्र! जो दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, उन्हीं श्रीरामको भारी दुःख प्राप्त हुआ है। जो राजोचित शय्यापर शयन करनेयोग्य हैं, वे राजकुमार श्रीराम अनाथकी भाँति भूमिपर कैसे सोते होंगे?॥ ६॥

'जिनके यात्रा करते समय पीछे-पीछे पैदलों, रथियों और हाथीसवारोंकी सेना चलती थी, वे ही श्रीराम निर्जन वनमें पहुँचकर वहाँ कैसे निवास करेंगे?॥

'जहाँ अजगर और व्याघ्र-सिंह आदि हिंसक पशु विचरते हैं तथा काले सर्प जिसका सेवन करते हैं, उसी वनका आश्रय लेनेवाले मेरे दोनों कुमार सीताके साथ वहाँ कैसे रहेंगे?॥ ८॥

'सुमन्त्र! परम सुकुमारी तपस्विनी सीताके साथ वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण रथसे उतरकर पैदल कैसे गये होंगे?॥ ९॥

'सारथे! तुम कृतकृत्य हो गये; क्योंकि जैसे दोनों अश्विनीकुमार मन्दराचलके वनमें जाते हैं, उसी प्रकार वनके भीतर प्रवेश करते हुए मेरे दोनों पुत्रोंको तुमने अपनी आँखोंसे देखा है॥ १०॥

'सुमन्त्र! वनमें पहुँचकर श्रीरामने तुमसे क्या कहा? लक्ष्मणने भी क्या कहा? तथा मिथिलेशकुमारी सीताने क्या संदेश दिया?॥ ११॥

'सूत! तुम श्रीरामके बैठने, सोने और खाने-पीनेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बताओ। जैसे स्वर्गसे गिरे हुए राजा ययाति सत्पुरुषोंके बीचमें उपस्थित होनेपर सत्संगके प्रभावसे पुनः सुखी हो गये थे, उसी प्रकार तुम-जैसे साधुपुरुषके मुखसे पुत्रका वृत्तान्त सुननेसे मैं सुखपूर्वक जीवन धारण कर सकूँगा'॥ १२॥

महाराजके इस प्रकार पूछनेपर सारथि सुमन्त्रने आँसुओंसे रुँधी हुई गद्गद वाणीद्वारा उनसे कहा—॥

'महाराज! श्रीरामचन्द्रजीने धर्मका ही निरन्तर पालन करते हुए दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर कहा है—'सूत! तुम मेरी ओरसे आत्मज्ञानी तथा वन्दनीय मेरे महात्मा पिताके दोनों चरणोंमें प्रणाम कहना तथा अन्तःपुरमें सभी माताओंको मेरे आरोग्यका समाचार देते हुए उनसे विशेषरूपसे मेरा यथोचित प्रणाम निवेदन करना॥ १४—१६॥

'इसके बाद मेरी माता कौसल्यासे मेरा प्रणाम करके बताना कि 'मैं कुशलसे हूँ और धर्मपालनमें सावधान रहता हूँ।' फिर उनको मेरा यह संदेश सुनाना कि 'माँ! तुम सदा धर्ममें तत्पर रहकर यथासमय अग्निशालाके सेवन (अग्निहोत्र-कार्य) में संलग्न रहना। देवि! महाराजको देवताके समान मानकर उनके चरणोंकी सेवा करना॥

'अभिमान[1] और मानको[2] त्यागकर सभी माताओंके प्रति समान बर्ताव करना—उनके साथ हिल-मिलकर रहना। अम्बे! जिसमें राजाका अनुराग है, उस कैकेयीको भी श्रेष्ठ मानकर उसका सत्कार करना॥ १९॥

'कुमार भरतके प्रति राजोचित बर्ताव करना। राजा छोटी उम्रके हों तो भी वे आदरणीय ही होते हैं—इस राजधर्मको याद रखना'॥ २०॥

'कुमार भरतसे भी मेरा कुशल-समाचार बताकर उनसे मेरी ओरसे कहना—'भैया! तुम सभी माताओंके प्रति न्यायोचित बर्ताव करते रहना॥ २१॥

'इक्ष्वाकुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु भरतसे यह भी कहना चाहिये कि युवराजपदपर अभिषिक्त

१. मुख्य पटरानी होनेका अहङ्कार। २. अपने बड़प्पनके घमंडमें आकर दूसरोंके तिरस्कार करनेकी भावना।

होनेके बाद भी तुम राज्यसिंहासनपर विराजमान पिताजीकी रक्षा एवं सेवामें संलग्न रहना॥ २२॥

'राजा बहुत बूढ़े हो गये हैं—ऐसा मानकर तुम उनका विरोध न करना—उन्हें राजसिंहासनसे न उतारना। युवराजपदपर ही प्रतिष्ठित रहकर उनकी आज्ञाका पालन करते हुए ही जीवन-निर्वाह करना॥ २३॥

'फिर उन्होंने नेत्रोंसे बहुत आँसू बहाते हुए मुझसे भरतसे कहनेके लिये ही यह संदेश दिया—'भरत! मेरी पुत्रवत्सला माताको अपनी ही माताके समान समझना।' मुझसे इतना ही कहकर महाबाहु महायशस्वी कमलनयन श्रीराम बड़े वेगसे आँसुओंकी वर्षा करने लगे॥

'परंतु लक्ष्मण उस समय अत्यन्त कुपित हो लंबी साँस खींचते हुए बोले—'सुमन्त्रजी! किस अपराधके कारण महाराजने इन राजकुमार श्रीरामको देशनिकाला दे दिया है?॥ २६॥

'राजाने कैकेयीका आदेश सुनकर झटसे उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। उनका यह कार्य उचित हो या अनुचित, परंतु हमलोगोंको उसके कारण कष्ट भोगना ही पड़ता है॥ २७॥

'श्रीरामको वनवास देना कैकेयीके लोभके कारण हुआ हो अथवा राजाके दिये हुए वरदानके कारण, मेरी दृष्टिमें यह सर्वथा पाप ही किया गया है॥ २८॥

'यह श्रीरामको वनवास देनेका कार्य राजाकी स्वेच्छाचारिताके कारण किया गया हो अथवा ईश्वरकी प्रेरणासे, परंतु मुझे श्रीरामके परित्यागका कोई समुचित कारण नहीं दिखायी देता है॥ २९॥

'बुद्धिकी कमी अथवा तुच्छताके कारण उचित-अनुचितका विचार किये बिना ही जो यह राम-वनवासरूपी शास्त्रविरुद्ध कार्य आरम्भ किया गया है, यह अवश्य ही निन्दा और दुःखका जनक होगा॥ ३०॥

'मुझे इस समय महाराजमें पिताका भाव नहीं दिखायी देता। अब तो रघुकुलनन्दन श्रीराम ही मेरे भाई, स्वामी, बन्धु-बान्धव तथा पिता हैं॥ ३१॥

'जो सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर होनेके कारण सब लोगोंके प्रिय हैं, उन श्रीरामका परित्याग करके राजाने जो यह क्रूरतापूर्ण पापकृत्य किया है, इसके कारण अब सारा संसार उनमें कैसे अनुरक्त रह सकता है? (अब उनमें राजोचित गुण कहाँ रह गया है?)॥ ३२॥

'जिनमें समस्त प्रजाका मन रमता है, उन धर्मात्मा श्रीरामको देशनिकाला देकर समस्त लोकोंका विरोध करनेके कारण अब वे कैसे राजा हो सकेंगे?॥ ३३॥

'महाराज! तपस्विनी जनकनन्दिनी सीता तो लंबी साँस खींचती हुई इस प्रकार निश्चेष्ट खड़ी थीं, मानो उनमें किसी भूतका आवेश हो गया हो। वे भूली-सी जान पड़ती थीं॥ ३४॥

'उन यशस्विनी राजकुमारीने पहले कभी ऐसा संकट नहीं देखा था। वे पतिके ही दुःखसे दुःखी होकर रो रही थीं। उन्होंने मुझसे कुछ भी नहीं कहा॥ ३५॥

'मुझे इधर आनेके लिये उद्यत देख वे सूखे मुँहसे पतिकी ओर देखती हुई सहसा आँसू बहाने लगी थीं॥

'इसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजाओंसे सुरक्षित श्रीराम उस समय हाथ जोड़े खड़े थे। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। मनस्विनी सीता भी रोती हुई कभी आपके इस रथकी ओर देखती थीं और कभी मेरी ओर'॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

सुमन्त्रद्वारा श्रीरामके शोकसे जड-चेतन एवं अयोध्यापुरीकी दुरवस्थाका वर्णन तथा राजा दशरथका विलाप

सुमन्त्रने कहा—'जब श्रीरामचन्द्रजी वनकी ओर प्रस्थित हुए, तब मैंने उन दोनों राजकुमारोंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके वियोगके दुःखको हृदयमें धारण करके रथपर आरूढ़ हो उधरसे लौटा। लौटते समय मेरे घोड़े नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहाने लगे। रास्ता चलनेमें उनका मन नहीं लगता था॥ १-२॥

'मैं गुहके साथ कई दिनोंतक वहाँ इस आशासे ठहरा रहा कि सम्भव है, श्रीराम फिर मुझे बुला लें॥ ३॥

'महाराज! आपके राज्यमें वृक्ष भी इस महान् संकटसे कृशकाय हो गये हैं, फूल, अंकुर और कलियोंसहित मुरझा गये हैं॥ ४॥

'नदियों, छोटे जलाशयों तथा बड़े सरोवरोंके जल

गरम हो गये हैं। वनों और उपवनोंके पत्ते सूख गये हैं॥

'वनके जीव-जन्तु आहारके लिये भी कहीं नहीं जाते हैं। अजगर आदि सर्प भी जहाँ-के-तहाँ पड़े हैं, आगे नहीं बढ़ते हैं। श्रीरामके शोकसे पीड़ित हुआ वह सारा वन नीरव-सा हो गया है॥ ६॥

'नदियोंके जल मलिन हो गये हैं। उनमें फैले हुए कमलोंके पत्ते गल गये हैं। सरोवरोंके कमल भी सूख गये हैं। उनमें रहनेवाले मत्स्य और पक्षी भी नष्टप्राय हो गये हैं॥ ७॥

'जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प तथा स्थलसे पैदा होनेवाले फूल भी बहुत थोड़ी सुगन्धसे युक्त होनेके कारण अधिक शोभा नहीं पाते हैं तथा फल भी पूर्ववत् नहीं दृष्टिगोचर होते हैं॥ ८॥

'नरश्रेष्ठ! अयोध्याके उद्यान भी सूने हो गये हैं, उनमें रहनेवाले पक्षी भी कहीं छिप गये हैं। यहाँके बगीचे भी मुझे पहलेकी भाँति मनोहर नहीं दिखायी देते हैं॥ ९॥

'अयोध्यामें प्रवेश करते समय मुझसे किसीने प्रसन्न होकर बात नहीं की। श्रीरामको न देखकर लोग बारंबार लंबी साँसें खींचने लगे॥ १०॥

'देव! सड़कपर आये हुए सब लोग राजाका रथ श्रीरामके बिना ही यहाँ लौट आया है, यह देखकर दूरसे ही आँसू बहाने लगे थे॥ ११॥

'अट्टालिकाओं, विमानों और प्रासादोंपर बैठी हुई स्त्रियाँ वहाँसे रथको सूना ही लौटा देखकर श्रीरामको न देखनेके कारण व्यथित हो उठीं और हाहाकार करने लगीं॥ १२॥

'उनके कज्जल आदिसे रहित बड़े-बड़े नेत्र आँसुओंके वेगमें डूबे हुए थे। वे स्त्रियाँ अत्यन्त आर्त होकर अव्यक्त भावसे एक-दूसरीकी ओर देख रही थीं॥

'शत्रुओं, मित्रों तथा उदासीन (मध्यस्थ) मनुष्योंको भी मैंने समानरूपसे दुःखी देखा है। किसीके शोकमें मुझे कुछ अन्तर नहीं दिखायी दिया है॥ १४॥

'महाराज! अयोध्याके मनुष्योंका हर्ष छिन गया है। वहाँके घोड़े और हाथी भी बहुत दुःखी हैं। सारी पुरी आर्तनादसे मलिन दिखायी देती है। लोगोंकी लंबी-लंबी साँसें ही इस नगरीका उच्छ्वास बन गयी हैं। यह अयोध्यापुरी श्रीरामके वनवाससे व्याकुल हुई पुत्रवियोगिनी कौसल्याकी भाँति मुझे आनन्दशून्य प्रतीत हो रही है'॥ १५-१६॥

सुमन्त्रके वचन सुनकर राजाने उनसे अश्रु-गद्गद परम दीन वाणीमें कहा—॥ १७॥

'सूत! जो पापी कुल और पापपूर्ण देशमें उत्पन्न हुई है तथा जिसके विचार भी पापसे भरे हैं, उस कैकेयीके कहनेमें आकर मैंने सलाह देनेमें कुशल वृद्ध पुरुषोंके साथ बैठकर इस विषयमें कोई परामर्श भी नहीं किया॥ १८॥

'सुहृदों, मन्त्रियों और वेदवेत्ताओंसे सलाह लिये बिना ही मैंने मोहवश केवल एक स्त्रीकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये सहसा यह अनर्थमय कार्य कर डाला है॥

'सुमन्त्र! होनहारवश यह भारी विपत्ति निश्चय ही इस कुलका विनाश करनेके लिये अकस्मात् आ पहुँची है॥ २०॥

'सारथे! यदि मैंने तुम्हारा कभी कुछ थोड़ा-सा भी उपकार किया हो तो तुम मुझे शीघ्र ही श्रीरामके पास पहुँचा दो। मेरे प्राण मुझे श्रीरामके दर्शनके लिये शीघ्रता करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं॥ २१॥

'यदि आज भी इस राज्यमें मेरी ही आज्ञा चलती हो तो तुम मेरे ही आदेशसे जाकर श्रीरामको वनसे लौटा ले आओ; क्योंकि अब मैं उनके बिना दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकूँगा॥ २२॥

'अथवा महाबाहु श्रीराम तो अब दूर चले गये होंगे, इसलिये मुझे ही रथपर बिठाकर ले चलो और शीघ्र ही रामका दर्शन कराओ॥ २३॥

'कुन्दकलीके समान श्वेत दाँतोंवाले, लक्ष्मणके बड़े भाई महाधनुर्धर श्रीराम कहाँ हैं? यदि सीताके साथ भली-भाँति उनका दर्शन कर लूँ, तभी मैं जीवित रह सकता हूँ॥ २४॥

'जिनके लाल नेत्र और बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं तथा जो मणियोंके कुण्डल धारण करते हैं, उन श्रीरामको यदि मैं नहीं देखूँगा तो अवश्य यमलोकको चला जाऊँगा॥ २५॥

'इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी कि मैं इस मरणासन्न अवस्थामें पहुँचकर भी इक्ष्वाकुकुलनन्दन राघवेन्द्र श्रीरामको यहाँ नहीं देख रहा हूँ॥ २६॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा विदेहराजकुमारी तपस्विनी सीते! तुम्हें पता नहीं होगा कि मैं किस प्रकार दुःखसे अनाथकी भाँति मर रहा हूँ'॥ २७॥

राजा उस दुःखसे अत्यन्त अचेत हो रहे थे, अतः वे उस परम दुर्लङ्घ्य शोकसमुद्रमें निमग्न होकर बोले—॥ २८॥

'देवि कौसल्ये! मैं श्रीरामके बिना जिस शोक-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ, उसे जीते-जी पार करना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। श्रीरामका शोक ही उस समुद्रका महान् वेग है। सीताका बिछोह ही उसका दूसरा छोर है। लंबी-लंबी साँसें उसकी लहरें और बड़ी-बड़ी भँवरें हैं। आँसुओंका वेगपूर्वक उमड़ा हुआ प्रवाह ही उसका मलिन जल है। मेरा हाथ पटकना ही उसमें उछलती हुई मछलियोंका विलास है। करुण-क्रन्दन ही उसकी महान् गर्जना है। ये बिखरे हुए केश ही उसमें उपलब्ध होनेवाले सेवार हैं। कैकेयी बड़वानल है। वह शोक-समुद्र मेरी वेगपूर्वक होनेवाली अश्रुवर्षाकी उत्पत्तिका मूल कारण है। मन्थराके कुटिलतापूर्ण वचन ही उस समुद्रके बड़े-बड़े ग्राह हैं। क्रूर कैकेयीके माँगे हुए दो वर ही उसके दो तट हैं तथा श्रीरामका वनवास ही उस शोक-सागरका महान् विस्तार है॥ २९—३२॥

'मैं लक्ष्मणसहित श्रीरामको देखना चाहता हूँ, परंतु इस समय उन्हें यहाँ देख नहीं पाता हूँ—यह मेरे बहुत बड़े पापका फल है।' इस तरह विलाप करते हुए महायशस्वी राजा दशरथ तुरंत ही मूर्च्छित होकर शय्यापर गिर पड़े॥ ३३॥

श्रीरामचन्द्रजीके लिये इस प्रकार विलाप करते हुए राजा दशरथके मूर्च्छित हो जानेपर उनके उस अत्यन्त करुणाजनक वचनको सुनकर राममाता देवी कौसल्याको पुनः दुगुना भय हो गया॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

कौसल्याका विलाप और सारथि सुमन्त्रका उन्हें समझाना

तदनन्तर जैसे उनमें भूतका आवेश हो गया हो, इस प्रकार कौसल्या देवी बारंबार काँपने लगीं और अचेत-सी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उसी अवस्थामें उन्होंने सारथिसे कहा—॥ १॥

'सुमन्त्र! जहाँ श्रीराम हैं, जहाँ सीता और लक्ष्मण हैं, वहीं मुझे भी पहुँचा दो। मैं उनके बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती॥ २॥

'जल्दी रथ लौटाओ और मुझे भी दण्डकारण्यमें ले चलो। यदि मैं उनके पास न जा सकी तो यमलोककी यात्रा करूँगी'॥ ३॥

देवी कौसल्याकी बात सुनकर सारथि सुमन्त्रने हाथ जोड़कर उन्हें समझाते हुए आँसुओंके वेगसे अवरुद्ध हुई गद्गदवाणीमें कहा—॥ ४॥

'महारानी! यह शोक, मोह और दुःखजनित व्याकुलता छोड़िये। श्रीरामचन्द्रजी इस समय सारा संताप भूलकर वनमें निवास करते हैं॥ ५॥

'धर्मज्ञ एवं जितेन्द्रिय लक्ष्मण भी उस वनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करते हुए अपना परलोक बना रहे हैं॥ ६॥

'सीताका मन भगवान् श्रीराममें ही लगा हुआ है। इसलिये निर्जन वनमें रहकर भी घरकी ही भाँति प्रेम एवं प्रसन्नता पाती तथा निर्भय रहती हैं॥ ७॥

'वनमें रहनेके कारण उनके मनमें कुछ थोड़ा-सा भी दुःख नहीं दिखायी देता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो विदेहराजकुमारी सीताको परदेशमें रहनेका पहलेसे ही अभ्यास हो॥ ८॥

'जैसे यहाँ नगरके उपवनमें जाकर वे पहले घूमा करती थीं, उसी प्रकार निर्जन वनमें भी सीता सानन्द विचरती हैं॥ ९॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली रमणी-शिरोमणि उदारहृदया सती-साध्वी सीता उस निर्जन वनमें भी श्रीरामके समीप बालिकाके समान खेलती और प्रसन्न रहती हैं॥ १०॥

'उनका हृदय श्रीराममें ही लगा हुआ है। उनका जीवन भी श्रीरामके ही अधीन है, अतः रामके बिना अयोध्या भी उनके लिये वनके समान ही होगी (और श्रीरामके साथ रहनेपर वे वनमें भी अयोध्याके समान ही सुखका अनुभव करेंगी)॥ ११॥

'विदेहनन्दिनी सीता मार्गमें मिलनेवाले गाँवों, नगरों, नदियोंके प्रवाहों और नाना प्रकारके वृक्षोंको देखकर उनका परिचय पूछा करती हैं॥ १२॥

'श्रीराम और लक्ष्मणको अपने पास देखकर जानकीको यही जान पड़ता है कि मैं अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर मानो घूमने-फिरनेके लिये ही आयी हूँ॥

'सीताके सम्बन्धमें मुझे इतना ही स्मरण है। उन्होंने कैकेयीको लक्ष्य करके जो सहसा कोई बात कह दी थी, वह इस समय मुझे याद नहीं आ रही है'॥ १४॥

इस प्रकार भूलसे निकली हुई कैकेयीविषयक उस बातको पलटकर सारथि सुमन्त्रने देवी कौसल्याके हृदयको आह्लाद प्रदान करनेवाला मधुर वचन कहा—॥ १५॥

'मार्गमें चलनेकी थकावट, वायुके वेग, भयदायक वस्तुओंको देखनेके कारण होनेवाली घबराहट तथा धूपसे भी विदेहराजकुमारीकी चन्द्रकिरणोंके समान कमनीय कान्ति उनसे दूर नहीं होती है॥ १६॥

'उदारहृदया सीताका विकसित कमलके समान सुन्दर तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान आनन्ददायक कान्तिसे युक्त मुख कभी मलिन नहीं होता है॥ १७॥

'जिनमें महावरके रंग नहीं लग रहे हैं, सीताके वे दोनों चरण आज भी महावरके समान ही लाल तथा कमलकोशके समान कान्तिमान् हैं॥ १८॥

'श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अनुरागके कारण उन्हींकी प्रसन्नताके लिये जिन्होंने आभूषणोंका परित्याग नहीं किया है, वे विदेहराजकुमारी भामिनी सीता इस समय भी अपने नूपुरोंकी झनकारसे हंसोंके कलनादका तिरस्कार-सा करती हुई लीलाविलासयुक्त गतिसे चलती हैं॥ १९॥

'वे श्रीरामचन्द्रजीके बाहुबलका भरोसा करके वनमें रहती हैं और हाथी, बाघ अथवा सिंहको भी देखकर कभी भय नहीं मानती हैं॥ २०॥

'अतः आप श्रीराम, लक्ष्मण अथवा सीताके लिये शोक न करें, अपने और महाराजके लिये भी चिन्ता छोड़ें। श्रीरामचन्द्रजीका यह पावन चरित्र संसारमें सदा ही स्थिर रहेगा॥ २१॥

'वे तीनों ही शोक छोड़कर प्रसन्नचित्त हो महर्षियोंके मार्गपर दृढ़तापूर्वक स्थित हैं और वनमें रहकर फल-मूलका भोजन करते हुए पिताकी उत्तम प्रतिज्ञाका पालन कर रहे हैं'॥ २२॥

इस प्रकार युक्तियुक्त वचन कहकर सारथि सुमन्त्रने पुत्रशोकसे पीड़ित हुई कौसल्याको चिन्ता करने और रोनेसे रोका तो भी देवी कौसल्या विलापसे विरत न हुईं । वे 'हा प्यारे!' 'हा पुत्र!' और 'हा रघुनन्दन!' की रट लगाती हुई करुण क्रन्दन करती ही रहीं॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ सर्ग

कौसल्याका विलापपूर्वक राजा दशरथको उपालम्भ देना

प्रजाजनोंको आनन्द प्रदान करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ धर्मपरायण श्रीरामके वनमें चले जानेपर आर्त होकर रोती हुई कौसल्याने अपने पतिसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'महाराज! यद्यपि तीनों लोकोंमें आपका महान् यश फैला हुआ है,—सब लोग यही जानते हैं कि—रघुकुलनरेश दशरथ बड़े दयालु, उदार और प्रिय वचन बोलनेवाले हैं॥ २॥

'नरेशोंमें श्रेष्ठ आर्यपुत्र! तथापि आपने इस बातका विचार नहीं किया कि सुखमें पले हुए आपके वे दोनों पुत्र सीताके साथ वनवासका कष्ट कैसे सहन करेंगे॥ ३॥

'वह सोलह-अठारह वर्षोंकी सुकुमारी तरुणी मिथिलेशकुमारी सीता, जो सुख भोगनेके ही योग्य है, वनमें सर्दी-गरमीका दुःख कैसे सहेगी?॥ ४॥

'विशाललोचना सीता सुन्दर व्यञ्जनोंसे युक्त सुन्दर स्वादिष्ट अन्न भोजन किया करती थी, अब वह जंगलकी तिन्नीके चावलका सूखा भात कैसे खायगी?॥

'जो माङ्गलिक वस्तुओंसे सम्पन्न रहकर सदा गीत और वाद्यकी मधुर ध्वनि सुना करती थी, वही जंगलमें मांसभक्षी सिंहोंका अशोभन (अमङ्गलकारी) शब्द कैसे सुन सकेगी?॥ ६॥

'जो इन्द्रध्वजके समान समस्त लोकोंके लिये उत्सव प्रदान करनेवाले थे, वे महाबली, महाबाहु श्रीराम अपनी परिघ-जैसी मोटी बाँहका तकिया लगाकर कहाँ सोते होंगे?॥ ७॥

'जिसकी कान्ति कमलके समान है, जिसके ऊपर सुन्दर केश शोभा पाते हैं, जिसकी प्रत्येक साँससे कमलकी-सी सुगन्ध निकलती है तथा जिसमें विकसित कमलके सदृश सुन्दर नेत्र सुशोभित होते हैं, श्रीरामके उस मनोहर मुखको मैं कब देखूँगी?॥ ८॥

'मेरा हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है, इसमें

संशय नहीं है; क्योंकि श्रीरामको न देखनेपर भी मेरे इस हृदयके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते हैं॥ ९॥

'आपने यह बड़ा ही निर्दयतापूर्ण कर्म किया है कि बिना कुछ सोच-विचार किये मेरे बान्धवोंको (कैकेयीके कहनेसे) निकाल दिया है, जिसके कारण वे सुख भोगनेके योग्य होनेपर भी दीन होकर वनमें दौड़ रहे हैं॥ १०॥

'यदि पंद्रहवें वर्षमें श्रीरामचन्द्र पुनः वनसे लौटें तो भरत उनके लिये राज्य और खजाना छोड़ देंगे, ऐसी सम्भावना नहीं दिखायी देती॥ ११॥

'कहते हैं, कुछ लोग श्राद्धमें पहले अपने बान्धवों (दौहित्र आदि)-को ही भोजन करा देते हैं, उसके बाद कृतकृत्य होकर निमन्त्रित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी ओर ध्यान देते हैं। परंतु वहाँ जो गुणवान् एवं विद्वान् देवतुल्य उत्तम ब्राह्मण होते हैं, वे पीछे अमृत भी परोसा गया हो तो उसको स्वीकार नहीं करते हैं॥ १२-१३॥

'यद्यपि पहली पंक्तिमें भी ब्राह्मण ही भोजन करके उठे होते हैं, तथापि जो श्रेष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण हैं, वे अपमानके भयसे उस भुक्तशेष अन्नको उसी तरह ग्रहण नहीं कर पाते जैसे अच्छे बैल अपने सींग कटानेको नहीं तैयार होते हैं॥ १४॥

'महाराज! इसी प्रकार ज्येष्ठ और श्रेष्ठ भ्राता अपने छोटे भाईके भोगे हुए राज्यको कैसे ग्रहण करेंगे? वे उसका तिरस्कार (त्याग) क्यों नहीं कर देंगे?॥ १५॥

'जैसे बाघ गीदड़ आदि दूसरे जन्तुओंके लाये या खाये हुए भक्ष्य पदार्थ (शिकार)-को खाना नहीं चाहता, इसी प्रकार पुरुषसिंह श्रीराम दूसरोंके चाटे (भोगे) हुए राज्य-भोगको नहीं स्वीकार करेंगे॥ १६॥

'हविष्य, घृत, पुरोडाश, कुश और खदिर (खैर)-के यूप—ये एक यज्ञके उपयोगमें आ जानेपर 'यातयाम' (उपभुक्त) हो जाते हैं; इसलिये विद्वान् इनका फिर दूसरे यज्ञमें उपयोग नहीं करते हैं॥ १७॥

'इसी प्रकार निःसार सुरा और भुक्तावशिष्ट यज्ञसम्बन्धी सोमरसकी भाँति इस भोगे हुए राज्यको श्रीराम नहीं ग्रहण कर सकते॥ १८॥

'जैसे बलवान् शेर किसीके द्वारा अपनी पूँछका पकड़ा जाना नहीं सह सकता, उसी प्रकार श्रीराम ऐसे अपमानको नहीं सह सकेंगे॥ १९॥

'समस्त लोक एक साथ होकर यदि महासमरमें आ जायँ तो भी वे श्रीरामचन्द्रजीके मनमें भय उत्पन्न नहीं कर सकते, तथापि इस तरह राज्य लेनेमें अधर्म मानकर उन्होंने इसपर अधिकार नहीं किया। जो धर्मात्मा समस्त जगत्‌को धर्ममें लगाते हैं, वे स्वयं अधर्म कैसे कर सकते हैं?॥ २०॥

'वे महापराक्रमी महाबाहु श्रीराम अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा सारे समुद्रोंको भी उसी प्रकार दग्ध कर सकते हैं, जैसे संवर्तक अग्निदेव प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर डालते हैं॥ २१॥

'सिंहके समान बल और बैलके समान बड़े-बड़े नेत्रवाला वैसा नरश्रेष्ठ वीर पुत्र स्वयं अपने पिताके ही हाथोंद्वारा मारा गया (राज्यसे वञ्चित कर दिया गया)। ठीक उसी तरह, जैसे मत्स्यका बच्चा अपने पिता मत्स्यके द्वारा ही खा लिया जाता है॥ २२॥

'आपके द्वारा धर्मपरायण पुत्रको देशनिकाला दे दिया गया, अतः यह प्रश्न उठता है कि सनातन ऋषियोंने वेदमें जिसका साक्षात्कार किया है तथा श्रेष्ठ द्विज जिसे अपने आचरणमें लाये हैं, वह धर्म आपकी दृष्टिमें सत्य है या नहीं॥ २३॥

'राजन्! नारीके लिये एक सहारा उसका पति है, दूसरा उसका पुत्र है तथा तीसरा सहारा उसके पिता-भाई आदि बन्धु-बान्धव हैं, चौथा कोई सहारा उसके लिये नहीं है॥ २४॥

'इन सहारोंमेंसे आप तो मेरे हैं ही नहीं (क्योंकि आप सौतके अधीन हैं)। दूसरा सहारा श्रीराम हैं, जो वनमें भेज दिये गये (और बन्धु-बान्धव भी दूर हैं। अतः तीसरा सहारा भी नहीं रहा)। आपकी सेवा छोड़कर मैं श्रीरामके पास वनमें जाना नहीं चाहती हूँ, इसलिये सर्वथा आपके द्वारा मारी ही गयी॥ २५॥

'आपने श्रीरामको वनमें भेजकर इस राष्ट्रका तथा आस-पासके अन्य राज्योंका भी नाश कर डाला, मन्त्रियोंसहित सारी प्रजाका वध कर डाला। आपके द्वारा पुत्रसहित मैं भी मारी गयी और इस नगरके निवासी भी नष्टप्राय हो गये। केवल आपके पुत्र भरत और पत्नी कैकेयी दो ही प्रसन्न हुए हैं'॥ २६॥

कौसल्याकी यह कठोर शब्दोंसे युक्त वाणी सुनकर राजा दशरथको बड़ा दुःख हुआ। वे 'हा राम!' कहकर मूर्च्छित हो गये। राजा शोकमें डूब गये। फिर उसी समय उन्हें अपने एक पुराने दुष्कर्मका स्मरण हो आया, जिसके कारण उन्हें यह दुःख प्राप्त हुआ था॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

दुःखी हुए राजा दशरथका कौसल्याको हाथ जोड़कर मनाना और कौसल्याका उनके चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगना

शोकमग्न हो कुपित हुई श्रीराममाता कौसल्याने जब राजा दशरथको इस प्रकार कठोर वचन सुनाया, तब वे दुःखित होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ १॥

चिन्तित होनेके कारण राजाकी सारी इन्द्रियाँ मोहसे आच्छन्न हो गयीं। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा दशरथको चेत हुआ॥ २॥

होशमें आनेपर उन्होंने गरम-गरम लंबी साँस ली और कौसल्याको बगलमें बैठी हुई देख वे फिर चिन्तामें पड़ गये॥ ३॥

चिन्तामें पड़े-पड़े ही उन्हें अपने एक दुष्कर्मका स्मरण हो आया, जो इन शब्दवेधी बाण चलानेवाले नरेशके द्वारा पहले अनजानमें बन गया था॥ ४॥

उस शोकसे तथा श्रीरामके शोकसे भी राजाके मनमें बड़ी वेदना हुई। उन दोनों ही शोकोंसे महाराज संतप्त होने लगे॥ ५॥

उन दोनों शोकोंसे दग्ध होते हुए दुःखी राजा दशरथ नीचे मुँह किये थर-थर काँपने लगे और कौसल्याको मनानेके लिये हाथ जोड़कर बोले—॥ ६॥

'कौसल्ये! मैं तुमसे निहोरा करता हूँ, तुम प्रसन्न हो जाओ। देखो, मैंने ये दोनों हाथ जोड़ लिये हैं। तुम तो दूसरोंपर भी सदा वात्सल्य और दया दिखानेवाली हो (फिर मेरे प्रति क्यों कठोर हो गयी?)॥ ७॥

'देवि! पति गुणवान् हो या गुणहीन, धर्मका विचार करनेवाली सती नारियोंके लिये वह प्रत्यक्ष देवता है॥

'तुम तो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली और लोकमें भले-बुरेको समझनेवाली हो। यद्यपि तुम भी दुःखित हो तथापि मैं भी महान् दुःखमें पड़ा हुआ हूँ, अतः तुम्हें मुझसे कठोर वचन नहीं कहना चाहिये'॥ ९॥

दुःखी हुए राजा दशरथके मुखसे कहे गये उस करुणाजनक वचनको सुनकर कौसल्या अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं, मानो छतकी नालीसे नूतन (वर्षाका) जल गिर रहा हो॥ १०॥

वे अधर्मके भयसे रो पड़ीं और राजाके जुड़े हुए कमलसदृश हाथोंको अपने सिरसे सटाकर घबराहटके कारण शीघ्रतापूर्वक एक-एक अक्षरका उच्चारण करती हुई बोलीं—॥ ११॥

'देव! मैं आपके सामने पृथ्वीपर पड़ी हूँ। आपके चरणोंमें मस्तक रखकर याचना करती हूँ, आप प्रसन्न हों। यदि आपने उलटे मुझसे ही याचना की, तब तो मैं मारी गयी। मुझसे अपराध हुआ हो तो भी मैं आपसे क्षमा पानेके योग्य हूँ, प्रहार पानेके नहीं॥ १२॥

'पति अपनी स्त्रीके लिये इहलोक और परलोकमें भी स्पृहणीय है। इस जगत्में जो स्त्री अपने बुद्धिमान् पतिके द्वारा मनायी जाती है, वह कुल-स्त्री कहलानेके योग्य नहीं है॥ १३॥

'धर्मज्ञ महाराज! मैं स्त्री-धर्मको जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि आप सत्यवादी हैं। इस समय मैंने जो कुछ भी न कहने योग्य बात कह दी है, वह पुत्रशोकसे पीड़ित होनेके कारण मेरे मुखसे निकल गयी है॥ १४॥

'शोक धैर्यका नाश कर देता है। शोक शास्त्रज्ञानको भी लुप्त कर देता है तथा शोक सब कुछ नष्ट कर देता है; अतः शोकके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है॥ १५॥

'शत्रुके हाथसे अपने ऊपर पड़ा हुआ शस्त्रोंका प्रहार सह लिया जा सकता है; परंतु दैववश प्राप्त हुआ थोड़ा-सा भी शोक नहीं सहा जा सकता॥ १६॥

'श्रीरामको वनमें गये आज पाँच रातें बीत गयीं। मैं यही गिनती रहती हूँ। शोकने मेरे हर्षको नष्ट कर दिया है, अतः ये पाँच रात मेरे लिये पाँच वर्षोंके समान प्रतीत हुई हैं॥ १७॥

'श्रीरामका ही चिन्तन करनेके कारण मेरे हृदयका यह शोक बढ़ता जा रहा है, जैसे नदियोंके वेगसे समुद्रका जल बहुत बढ़ जाता है'॥ १८॥

कौसल्या इस प्रकार शुभ वचन कह ही रही थीं कि सूर्यकी किरणें मन्द पड़ गयीं और रात्रिकाल आ पहुँचा। देवी कौसल्याकी इन बातोंसे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। साथ ही वे श्रीरामके शोकसे भी पीड़ित थे। इस हर्ष और शोककी अवस्थामें उन्हें नींद आ गयी॥ १९-२०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

राजा दशरथका शोक और उनका कौसल्यासे अपने द्वारा मुनिकुमारके मारे जानेका प्रसङ्ग सुनाना

राजा दशरथ दो ही घड़ीके बाद फिर जाग उठे। उस समय उनका हृदय शोकसे व्याकुल हो रहा था। वे मन-ही-मन चिन्ता करने लगे॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मणके वनमें चले जानेसे इन इन्द्रतुल्य तेजस्वी महाराज दशरथको शोकने उसी प्रकार धर दबाया था, जैसे राहुका अन्धकार सूर्यको ढक देता है॥ २॥

पत्नीसहित श्रीरामके वनमें चले जानेपर कोसलनरेश दशरथने अपने पुरातन पापका स्मरण करके कजरारे नेत्रोंवाली कौसल्यासे कहनेका विचार किया॥ ३॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीको वनमें गये छठी रात बीत रही थी। जब आधी रात हुई, तब राजा दशरथको उस पहलेके किये हुए दुष्कर्मका स्मरण हुआ॥ ४॥

पुत्रशोकसे पीड़ित हुए महाराजने अपने उस दुष्कर्मको याद करके पुत्रशोकसे व्याकुल हुई कौसल्यासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ ५॥

'कल्याणि! मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, भद्रे! अपने उसी कर्मके फलस्वरूप सुख या दुःख कर्ताको प्राप्त होते हैं॥ ६॥

'जो कर्मोंका आरम्भ करते समय उनके फलोंकी गुरुता या लघुताको नहीं जानता, उनसे होनेवाले लाभरूपी गुण अथवा हानिरूपी दोषको नहीं समझता, वह मनुष्य बालक (मूर्ख) कहा जाता है॥ ७॥

'कोई मनुष्य पलाशका सुन्दर फूल देखकर मन-ही-मन यह अनुमान करके कि इसका फल और भी मनोहर तथा सुस्वादु होगा, फलकी अभिलाषासे आमके बगीचेको काटकर वहाँ पलाशके पौदे लगाता और सींचता है, वह फल लगनेके समय पश्चात्ताप करता है (क्योंकि उससे अपनी आशाके अनुरूप फल वह नहीं पाता है)॥ ८॥

'जो क्रियमाण कर्मके फलका ज्ञान या विचार न करके केवल कर्मकी ओर ही दौड़ता है, उसे उसका फल मिलनेके समय उसी तरह शोक होता है, जैसा कि आम काटकर पलाश सींचनेवालेको हुआ करता है॥ ९॥

'मैंने भी आमका वन काटकर पलाशोंको ही सींचा है, इस कर्मके फलकी प्राप्तिके समय अब श्रीरामको खोकर मैं पश्चात्ताप कर रहा हूँ। मेरी बुद्धि कैसी खोटी है?॥

'कौसल्ये! पिताके जीवनकालमें जब मैं केवल राजकुमार था, एक अच्छे धनुर्धरके रूपमें मेरी ख्याति फैल गयी थी। सब लोग यही कहते थे कि 'राजकुमार दशरथ शब्द-वेधी बाण चलाना जानते हैं।' इसी ख्यातिमें पड़कर मैंने यह एक पाप कर डाला था (जिसे अभी बताऊँगा)॥ ११॥

'देवि! उस अपने ही किये हुए कुकर्मका फल मुझे इस महान् दुःखके रूपमें प्राप्त हुआ है। जैसे कोई बालक अज्ञानवश विष खा ले तो उसे भी वह विष मार ही डालता है, उसी प्रकार मोह या अज्ञानवश किये हुए दुष्कर्मका फल भी यहाँ मुझे भोगना पड़ रहा है॥

'जैसे दूसरा कोई गँवार मनुष्य पलाशके फूलोंपर ही मोहित हो उसके कड़वे फलको नहीं जानता, उसी प्रकार मैं भी 'शब्दवेधी बाण-विद्या' की प्रशंसा सुनकर उसपर लट्टू हो गया। उसके द्वारा ऐसा क्रूरतापूर्ण पापकर्म बन सकता है और ऐसा भयंकर फल प्राप्त हो सकता है, इसका ज्ञान मुझे नहीं हुआ॥ १३॥

'देवि! तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था और मैं अभी युवराज ही था, उन्हीं दिनोंकी बात है। मेरी कामभावनाको बढ़ानेवाली वर्षा ऋतु आयी॥ १४॥

'सूर्यदेव पृथ्वीके रसोंको सुखाकर और जगत्को अपनी किरणोंसे भलीभाँति संतप्त करके जिसमें यमलोकवर्ती प्रेत विचरा करते हैं, उस भयंकर दक्षिण दिशामें संचरण करते थे॥ १५॥

'सब ओर सजल मेघ दृष्टिगोचर होने लगे और गरमी तत्काल शान्त हो गयी; इससे समस्त मेढकों, चातकों और मयूरोंमें हर्ष छा गया॥ १६॥

'पक्षियोंकी पाँखें ऊपरसे भींग गयी थीं। वे नहा उठे थे और बड़ी कठिनाईसे उन वृक्षोंतक पहुँच पाते थे, जिनकी डालियोंके अग्रभाग वर्षा और वायुके झोंकोंसे झूम रहे थे॥ १७॥

'गिरे हुए और बारंबार गिरते हुए जलसे आच्छादित हुआ मतवाला हाथी तरङ्गरहित प्रशान्त समुद्र तथा भीगे पर्वतके समान प्रतीत होता था॥ १८॥

'पर्वतोंसे गिरनेवाले स्रोत या झरने निर्मल होनेपर

भी पर्वतीय धातुओंके सम्पर्कसे श्वेत, लाल और भस्मयुक्त होकर सर्पोंकी भाँति कुटिल गतिसे बह रहे थे॥ १९॥

'वर्षा ऋतुके उस अत्यन्त सुखद सुहावने समयमें मैं धनुष-बाण लेकर रथपर सवार हो शिकार खेलनेके लिये सरयू नदीके तटपर गया॥ २०॥

'मेरी इन्द्रियाँ मेरे वशमें नहीं थीं। मैंने सोचा था कि पानी पीनेके घाटपर रातके समय जब कोई उपद्रवकारी भैंसा, मतवाला हाथी अथवा सिंह-व्याघ्र आदि दूसरा कोई हिंसक जन्तु आवेगा तो उसे मारूँगा॥ २१॥

'उस समय वहाँ सब ओर अन्धकार छा रहा था। मुझे अकस्मात् पानीमें घड़ा भरनेकी आवाज सुनायी पड़ी। मेरी दृष्टि तो वहाँतक पहुँचती नहीं थी, किंतु वह आवाज मुझे हाथीके पानी पीते समय होनेवाले शब्दके समान जान पड़ी॥ २२॥

'तब मैंने यह समझकर कि हाथी ही अपनी सूँड़में पानी खींच रहा होगा; अतः वही मेरे बाणका निशाना बनेगा। तरकससे एक तीर निकाला और उस शब्दको लक्ष्य करके चला दिया। वह दीप्तिमान् बाण विषधर सर्पके समान भयंकर था॥ २३॥

'वह उषःकालकी वेला थी। विषैले सर्पके सदृश उस तीखे बाणको मैंने ज्यों ही छोड़ा, त्यों ही वहाँ पानीमें गिरते हुए किसी वनवासीका हाहाकार मुझे स्पष्टरूपसे सुनायी दिया। मेरे बाणसे उसके मर्ममें बड़ी पीड़ा हो रही थी। उस पुरुषके धराशायी हो जानेपर वहाँ यह मानव-वाणी प्रकट हुई—सुनायी देने लगी—॥ २४-२५॥

''आह! मेरे-जैसे तपस्वीपर शस्त्रका प्रहार कैसे सम्भव हुआ? मैं तो नदीके इस एकान्त तटपर रातमें पानी लेनेके लिये आया था॥ २६॥

''किसने मुझे बाण मारा है? मैंने किसका क्या बिगाड़ा था? मैं तो सभी जीवोंको पीड़ा देनेकी वृत्तिका त्याग करके ऋषि-जीवन बिताता था, वनमें रहकर जंगली फल-मूलोंसे ही जीविका चलाता था। मुझ-जैसे निरपराध मनुष्यका शस्त्रसे वध क्यों किया जा रहा है? मैं वल्कल और मृगचर्म पहननेवाला जटाधारी तपस्वी हूँ। मेरा वध करनेमें किसने अपना क्या लाभ सोचा होगा? मैंने मारनेवालेका क्या अपराध किया था? मेरी हत्याका प्रयत्न व्यर्थ ही किया गया! इससे किसीको कुछ लाभ नहीं होगा, केवल अनर्थ ही हाथ लगेगा॥ २७—२९॥

''इस हत्यारेको संसारमें कहीं भी कोई उसी तरह अच्छा नहीं समझेगा, जैसे गुरुपत्नीगामीको। मुझे अपने इस जीवनके नष्ट होनेकी उतनी चिन्ता नहीं है; मेरे मारे जानेसे मेरे माता-पिताको जो कष्ट होगा, उसीके लिये मुझे बारंबार शोक हो रहा है। मैंने इन दोनों वृद्धोंका बहुत समयसे पालन-पोषण किया है; अब मेरे शरीरके न रहनेपर ये किस प्रकार जीवन-निर्वाह करेंगे? घातकने एक ही बाणसे मुझे और मेरे बूढ़े माता-पिताको भी मौतके मुखमें डाल दिया। किस विवेकहीन और अजितेन्द्रिय पुरुषने हम सब लोगोंका एक साथ ही वध कर डाला?'॥ ३०—३२½॥

'ये करुणाभरे वचन सुनकर मेरे मनमें बड़ी व्यथा हुई। कहाँ तो मैं धर्मकी अभिलाषा रखनेवाला था और कहाँ यह अधर्मका कार्य बन गया। उस समय मेरे हाथोंसे धनुष और बाण छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥

'रातमें विलाप करते हुए ऋषिका वह करुण वचन सुनकर मैं शोकके वेगसे घबरा उठा। मेरी चेतना अत्यन्त विलुप्त-सी होने लगी॥ ३४½॥

'मेरे हृदयमें दीनता छा गयी, मन बहुत दुःखी हो गया। सरयूके किनारे उस स्थानपर जाकर मैंने देखा—एक तपस्वी बाणसे घायल होकर पड़े हैं। उनकी जटाएँ बिखरी हुई हैं, घड़ेका जल गिर गया है तथा सारा शरीर धूल और खूनमें सना हुआ है। वे बाणसे बिंधे हुए पड़े थे। उनकी अवस्था देखकर मैं डर गया, मेरा चित्त ठिकाने नहीं था। उन्होंने दोनों नेत्रोंसे मेरी ओर इस प्रकार देखा, मानो अपने तेजसे मुझे भस्म कर देना चाहते हों। वे कठोर वाणीमें यों बोले—॥ ३५—३७½॥

''राजन्! वनमें रहते हुए मैंने तुम्हारा कौन-सा अपराध किया था, जिससे तुमने मुझे बाण मारा? मैं तो माता-पिताके लिये पानी लेनेकी इच्छासे यहाँ आया था॥ ३८½॥

''तुमने एक ही बाणसे मेरा मर्म विदीर्ण करके मेरे दोनों अन्धे और बूढ़े माता-पिताको भी मार डाला॥ ३९½॥

''वे दोनों बहुत दुबले और अन्धे हैं। निश्चय ही प्याससे पीड़ित होकर वे मेरी प्रतीक्षामें बैठे होंगे। वे देरतक मेरे आगमनकी आशा लगाये दुःखदायिनी प्यास लिये बाट जोहते रहेंगे॥ ४०½॥

''अवश्य ही मेरी तपस्या अथवा शास्त्रज्ञानका कोई फल यहाँ प्रकट नहीं हो रहा है; क्योंकि पिताजीको

यह नहीं मालूम है कि मैं पृथ्वीपर गिरकर मृत्युशय्यापर पड़ा हुआ हूँ॥ ४१ १/२ ॥

''यदि जान भी लें तो क्या कर सकते हैं; क्योंकि असमर्थ हैं और चल-फिर भी नहीं सकते हैं। जैसे वायु आदिके द्वारा तोड़े जाते हुए वृक्षको कोई दूसरा वृक्ष नहीं बचा सकता, उसी प्रकार मेरे पिता भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते॥ ४२ १/२ ॥

''अतः रघुकुलनरेश! अब तुम्हीं जाकर शीघ्र ही मेरे पिताको यह समाचार सुना दो। (यदि स्वयं कह दोगे तो) जैसे प्रज्वलित अग्नि समूचे वनको जला डालती है, उस प्रकार वे क्रोधमें भरकर तुमको भस्म नहीं करेंगे॥ ४३ १/२ ॥

''राजन्! यह पगडंडी उधर ही गयी है, जहाँ मेरे पिताका आश्रम है। तुम जाकर उन्हें प्रसन्न करो, जिससे वे कुपित होकर तुम्हें शाप न दें॥ ४४ १/२ ॥

''राजन्! मेरे शरीरसे इस बाणको निकाल दो। यह तीखा बाण मेरे मर्मस्थानको उसी प्रकार पीड़ा दे रहा है, जैसे नदीके जलका वेग उसके कोमल बालुकामय ऊँचे तटको छिन्न-भिन्न कर देता है'॥ ४५ १/२ ॥

'मुनिकुमारकी यह बात सुनकर मेरे मनमें यह चिन्ता समायी कि यदि बाण नहीं निकालता हूँ तो इन्हें क्लेश होता है और निकाल देता हूँ तो ये अभी प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। इस प्रकार बाणको निकालनेके विषयमें मुझ दीन-दुःखी और शोकाकुल दशरथकी इस चिन्ताको उस समय मुनिकुमारने लक्ष्य किया॥ ४६-४७ १/२ ॥

'यथार्थ बातको समझ लेनेवाले उन महर्षिने मुझे अत्यन्त ग्लानिमें पड़ा हुआ देख बड़े कष्टसे कहा—'राजन्! मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरी आँखें चढ़ गयी हैं, अङ्ग-अङ्गमें तड़पन हो रही है। मुझसे कोई चेष्टा नहीं बन पाती। अब मैं मृत्युके समीप पहुँच गया हूँ, फिर भी धैर्यके द्वारा शोकको रोककर अपने चित्तको स्थिर करता हूँ (अब मेरी बात सुनो)॥ ४८-४९ ॥

''मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी—इस चिन्ताको अपने हृदयसे निकाल दो। राजन्! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, इसलिये तुम्हारे मनमें ब्राह्मणवधको लेकर कोई व्यथा नहीं होनी चाहिये॥ ५० ॥

''नरश्रेष्ठ! मैं वैश्य पिताद्वारा शूद्रजातीय माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ।' बाणसे मर्ममें आघात पहुँचनेके कारण वे बड़े कष्टसे इतना ही कह सके। उनकी आँखें घूम रही थीं। उनसे कोई चेष्टा नहीं बनती थी। वे पृथ्वीपर पड़े-पड़े छटपटा रहे थे और अत्यन्त कष्टका अनुभव करते थे। उस अवस्थामें मैंने उनके शरीरसे उस बाणको निकाल दिया। फिर तो अत्यन्त भयभीत हो उन तपोधनने मेरी ओर देखकर अपने प्राण त्याग दिये॥ ५१ ॥

'पानीमें गिरनेके कारण उनका सारा शरीर भीग गया था। मर्ममें आघात लगनेके कारण बड़े कष्टसे विलाप करके और बारंबार उच्छ्वास लेकर उन्होंने प्राणोंका त्याग किया था। कल्याणी कौसल्ये! उस अवस्थामें सरयूके तटपर मरे पड़े मुनिपुत्रको देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ'॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ सर्ग

राजा दशरथका अपने द्वारा मुनिकुमारके वधसे दुःखी हुए उनके माता-पिताके विलाप और उनके दिये हुए शापका प्रसंग सुनाकर कौसल्याके समीप रोते-बिलखते हुए आधी रातके समय अपने प्राणोंको त्याग देना

उन महर्षिके अनुचित वधका स्मरण करके धर्मात्मा रघुकुलनरेशने अपने पुत्रके लिये विलाप करते हुए ही रानी कौसल्यासे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

'देवि! अनजानमें यह महान् पाप कर डालनेके कारण मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं। मैं अकेला ही बुद्धि लगाकर सोचने लगा, अब किस उपायसे मेरा कल्याण हो?॥ २ ॥

'तदनन्तर उस घड़ेको उठाकर मैंने सरयूके उत्तम जलसे भरा और उसे लेकर मुनिकुमारके बताये हुए मार्गसे उनके आश्रमपर गया॥ ३ ॥

'वहाँ पहुँचकर मैंने उनके दुबले, अन्धे और बूढ़े माता-पिताको देखा, जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं था। उनकी अवस्था पंख कटे हुए दो पक्षियोंके समान थी॥ ४ ॥

'वे अपने पुत्रकी ही चर्चा करते हुए उसके आनेकी आशा लगाये बैठे थे। उस चर्चाके कारण उन्हें कुछ परिश्रम या थकावटका अनुभव नहीं होता था। यद्यपि मेरे कारण उनकी वह आशा धूलमें मिल चुकी थी तो भी वे उसीके आसरे बैठे थे। अब वे दोनों सर्वथा अनाथ-से हो गये थे॥ ५॥

'मेरा हृदय पहलेसे ही शोकके कारण घबराया हुआ था। भयसे मेरा होश ठिकाने नहीं था। मुनिके आश्रमपर पहुँचकर मेरा वह शोक और भी अधिक हो गया॥ ६॥

'मेरे पैरोंकी आहट सुनकर वे मुनि इस प्रकार बोले—'बेटा! देर क्यों लगा रहे हो? शीघ्र पानी ले आओ॥ ७॥

''तात! जिस कारणसे तुमने बड़ी देरतक जलमें क्रीड़ा की है, उसी कारणको लेकर तुम्हारी यह माता तुम्हारे लिये उत्कण्ठित हो गयी है; अत: शीघ्र ही आश्रमके भीतर प्रवेश करो॥ ८॥

''बेटा! तात! यदि तुम्हारी माताने अथवा मैंने तुम्हारा कोई अप्रिय किया हो तो उसे तुम्हें अपने मनमें नहीं लाना चाहिये; क्योंकि तुम तपस्वी हो॥ ९॥

'हम असहाय हैं, तुम्हीं हमारे सहायक हो। हम अन्धे हैं, तुम्हीं हमारे नेत्र हो। हमलोगोंके प्राण तुम्हींमें अटके हुए हैं। बताओ, तुम बोलते क्यों नहीं हो?'॥ १०॥

'मुनिको देखते ही मेरे मनमें भय-सा समा गया। मेरी जबान लड़खड़ाने लगी। कितने अक्षरोंका उच्चारण नहीं हो पाता था। इस प्रकार अस्पष्ट वाणीमें मैंने बोलनेका प्रयास किया॥ ११॥

'मानसिक भयको बाहरी चेष्टाओंसे दबाकर मैंने कुछ कहनेकी क्षमता प्राप्त की और मुनिपर पुत्रकी मृत्युसे जो संकट आ पड़ा था, वह उनपर प्रकट करते हुए कहा—॥ १२॥

''महात्मन्! मैं आपका पुत्र नहीं, दशरथ नामका एक क्षत्रिय हूँ। मैंने अपने कर्मवश यह ऐसा दु:ख पाया है, जिसकी सत्पुरुषोंने सदा निन्दा की है॥ १३॥

''भगवन्! मैं धनुष-बाण लेकर सरयूके तटपर आया था। मेरे आनेका उद्‌देश्य यह था कि कोई जंगली हिंसक पशु अथवा हाथी घाटपर पानी पीनेके लिये आवे तो मैं उसे मारूँ॥ १४॥

''थोड़ी देर बाद मुझे जलमें घड़ा भरनेका शब्द सुनायी पड़ा। मैंने समझा कोई हाथी आकर पानी पी रहा है, इसलिये उसपर बाण चला दिया॥ १५॥

''फिर सरयूके तटपर जाकर देखा कि मेरा बाण एक तपस्वीकी छातीमें लगा है और वे मृतप्राय होकर धरतीपर पड़े हैं॥ १६॥

''उस बाणसे उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी, अत: उस समय उन्हींके कहनेसे मैंने सहसा वह बाण उनके मर्म-स्थानसे निकाल दिया॥ १७॥

''बाण निकलनेके साथ ही वे तत्काल स्वर्ग सिधार गये। मरते समय उन्होंने आप दोनों पूजनीय अंधे पिता-माताके लिये बड़ा शोक और विलाप किया था॥ १८॥

''इस प्रकार अनजानमें मेरे हाथसे आपके पुत्रका वध हो गया है। ऐसी अवस्थामे मेरे प्रति जो शाप या अनुग्रह शेष हो, उसे देनेके लिये आप महर्षि मुझपर प्रसन्न हों'॥ १९॥

'मैंने अपने मुँहसे अपना पाप प्रकट कर दिया था, इसलिये मेरी क्रूरतासे भरी हुई वह बात सुनकर भी वे पूज्यपाद महर्षि मुझे कठोर दण्ड—भस्म हो जानेका शाप नहीं दे सके॥ २०॥

'उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली और वे शोकसे मूर्च्छित होकर दीर्घ नि:श्वास लेने लगे। मैं हाथ जोड़े उनके सामने खड़ा था। उस समय उन महातेजस्वी मुनिने मुझसे कहा—॥ २१॥

''राजन्! यदि यह अपना पापकर्म तुम स्वयं यहाँ आकर न बताते तो शीघ्र ही तुम्हारे मस्तकके सैकड़ों-हजारों टुकड़े हो जाते॥ २२॥

''नरेश्वर! यदि क्षत्रिय जान-बूझकर विशेषत: किसी वानप्रस्थीका वध कर डाले तो वह वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, वह उसे अपने स्थानसे भ्रष्ट कर देता है॥

''तपस्यामें लगे हुए वैसे ब्रह्मवादी मुनिपर जान-बूझकर शस्त्रका प्रहार करनेवाले पुरुषके मस्तकके सात टुकड़े हो जाते हैं॥ २४॥

''तुमने अनजानमें यह पाप किया है, इसीलिये अभीतक जीवित हो। यदि जान-बूझकर किया होता तो समस्त रघुवंशियोंका कुल ही नष्ट हो जाता, अकेले तुम्हारी तो बात ही क्या है?'॥ २५॥

'उन्होंने मुझसे यह भी कहा—'नरेश्वर! तुम हम दोनोंको उस स्थानपर ले चलो, जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है। इस समय हम उसे देखना चाहते हैं। यह हमारे लिये उसका अन्तिम दर्शन होगा'॥ २६॥

‘तब मैं अकेला ही अत्यन्त दुःखमें पड़े हुए उन दम्पतिको उस स्थानपर ले गया, जहाँ उनका पुत्र कालके अधीन होकर पृथ्वीपर अचेत पड़ा था। उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, मृगचर्म और वस्त्र बिखरे पड़े थे। मैंने पत्नीसहित मुनिको उनके पुत्रके शरीरका स्पर्श कराया॥ २७-२८॥

‘वे दोनों तपस्वी अपने उस पुत्रका स्पर्श करके उसके अत्यन्त निकट जाकर उसके शरीरपर गिर पड़े। फिर पिताने पुत्रको सम्बोधित करके उससे कहा—॥ २९॥

‘‘बेटा! आज तुम मुझे न तो प्रणाम करते हो और न मुझसे बोलते ही हो। तुम धरतीपर क्यों सो रहे हो? क्या तुम हमसे रूठ गये हो?॥ ३०॥

‘‘बेटा! यदि मैं तुम्हारा प्रिय नहीं हूँ तो तुम अपनी इस धर्मात्मा माताकी ओर तो देखो। तुम इसके हृदयसे क्यों नहीं लग जाते हो? वत्स! कुछ तो बोलो॥ ३१॥

‘‘अब पिछली रातमें मधुर स्वरसे शास्त्र या पुराण आदि अन्य किसी ग्रन्थका विशेषरूपसे स्वाध्याय करते हुए किसके मुँहसे मैं मनोरम शास्त्रचर्चा सुनूँगा?॥ ३२॥

‘‘अब कौन स्नान, संध्योपासना तथा अग्निहोत्र करके मेरे पास बैठकर पुत्रशोकके भयसे पीड़ित हुए मुझ बूढ़ेको सान्त्वना देता हुआ मेरी सेवा करेगा?॥ ३३॥

‘‘अब कौन ऐसा है, जो कन्द, मूल और फल लाकर मुझ अकर्मण्य, अन्नसंग्रहसे रहित और अनाथको प्रिय अतिथिकी भाँति भोजन करायेगा॥ ३४॥

‘‘बेटा! तुम्हारी यह तपस्विनी माता अन्धी, बूढ़ी, दीन तथा पुत्रके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली है। मैं (स्वयं अन्धा होकर) इसका भरण-पोषण कैसे करूँगा?॥

‘‘पुत्र! ठहरो, आज यमराजके घर न जाओ। कल मेरे और अपनी माताके साथ चलना॥ ३६॥

‘‘हम दोनों शोकसे आर्त, अनाथ और दीन हैं। तुम्हारे न रहनेपर हम शीघ्र ही यमलोककी राह लेंगे॥

‘‘तदनन्तर सूर्यपुत्र यमराजका दर्शन करके मैं उनसे यह बात कहूँगा—धर्मराज मेरे अपराधको क्षमा करें और मेरे पुत्रको छोड़ दें, जिससे यह अपने माता-पिताका भरण-पोषण कर सके॥ ३८॥

‘‘ये धर्मात्मा हैं, महायशस्वी लोकपाल हैं। मुझ-जैसे अनाथको वह एक बार अभय दान दे सकते हैं॥

‘‘बेटा! तुम निष्पाप हो, किंतु एक पापकर्मा क्षत्रियने तुम्हारा वध किया है, इस कारण मेरे सत्यके प्रभावसे तुम शीघ्र ही उन लोकोंमें जाओ, जो अस्त्रयोधी शूरवीरोंको प्राप्त होते हैं। बेटा! युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीर सम्मुख युद्धमें मारे जानेपर जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसी उत्तम गतिको तुम भी जाओ॥ ४०-४१॥

‘वत्स! राजा सगर, शैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमार जिस गतिको प्राप्त हुए हैं, वही तुम्हें भी मिले॥ ४२॥

‘‘स्वाध्याय और तपस्यासे समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत जिस परब्रह्मकी प्राप्ति होती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। वत्स! भूमिदाता, अग्निहोत्री, एकपत्नीव्रती, एक हजार गौओंका दान करनेवाले, गुरुकी सेवा करनेवाले तथा महाप्रस्थान आदिके द्वारा देहत्याग करनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो॥

‘‘हम-जैसे तपस्वियोंके इस कुलमें पैदा हुआ कोई पुरुष बुरी गतिको नहीं प्राप्त हो सकता। बुरी गति तो उसकी होगी, जिसने मेरे बान्धवरूप तुम्हें अकारण मारा है?’॥ ४५॥

‘इस प्रकार वे दीनभावसे बारम्बार विलाप करने लगे। तत्पश्चात् अपनी पत्नीके साथ वे पुत्रको जलाञ्जलि देनेके कार्यमें प्रवृत्त हुए॥ ४६॥

‘इसी समय वह धर्मज्ञ मुनिकुमार अपने पुण्य-कर्मोंके प्रभावसे दिव्य रूप धारण करके शीघ्र ही इन्द्रके साथ स्वर्गको जाने लगा॥ ४७॥

‘इन्द्रसहित उस तपस्वीने अपने दोनों बूढ़े पिता-माताको एक मुहूर्ततक आश्वासन देते हुए उनसे बातचीत की; फिर वह अपने पितासे बोला—॥ ४८॥

‘‘मैं आप दोनोंकी सेवासे महान् स्थानको प्राप्त हुआ हूँ, अब आपलोग भी शीघ्र ही मेरे पास आ जाइयेगा’॥ ४९॥

‘यह कहकर वह जितेन्द्रिय मुनिकुमार उस सुन्दर आकारवाले दिव्य विमानसे शीघ्र ही देवलोकको चला गया॥ ५०॥

‘तदनन्तर पत्नीसहित उन महातेजस्वी तपस्वी मुनिने तुरंत ही पुत्रको जलाञ्जलि देकर हाथ जोड़े खड़े हुए मुझसे कहा—॥ ५१॥

‘‘राजन्! तुम आज ही मुझे भी मार डालो; अब मरनेमें मुझे कष्ट नहीं होगा। मेरे एक ही बेटा था, जिसे तुमने अपने बाणका निशाना बनाकर मुझे पुत्रहीन कर दिया॥ ५२॥

‘‘तुमने अज्ञानवश जो मेरे बालककी हत्या की

है, उसके कारण मैं तुम्हें भी अत्यन्त भयंकर एवं भलीभाँति दु:ख देनेवाला शाप दूँगा॥ ५३॥

'राजन्! इस समय पुत्रके वियोगसे मुझे जैसा कष्ट हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्रशोकसे ही कालके गालमें जाओगे॥ ५४॥

''नरेश्वर! क्षत्रिय होकर अनजानमें तुमने वैश्यजातीय मुनिका वध किया है, इसलिये शीघ्र ही तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप तो नहीं लगेगा तथापि जल्दी ही तुम्हें भी ऐसी ही भयानक और प्राण लेनेवाली अवस्था प्राप्त होगी। ठीक उसी तरह, जैसे दक्षिणा देनेवाले दाताको उसके अनुरूप फल प्राप्त होता है,॥ ५५-५६॥

'इस प्रकार मुझे शाप देकर वे बहुत देरतक करुणाजनक विलाप करते रहे; फिर वे दोनों पति-पत्नी अपने शरीरोंको जलती हुई चितामें डालकर स्वर्गको चले गये॥ ५७॥

'देवि! इस प्रकार बालस्वभावके कारण मैंने पहले शब्दवेधी बाण मारकर और फिर उस मुनिके शरीरसे बाणको खींचकर जो उनका वधरूपी पाप किया था, वह आज इस पुत्रवियोगकी चिन्तामें पड़े हुए मुझे स्वयं ही स्मरण हो आया है॥ ५८॥

'देवि! अपथ्य वस्तुओंके साथ अन्नरस ग्रहण कर लेनेपर जैसे शरीरमें रोग पैदा हो जाता है, उसी प्रकार यह उस पापकर्मका फल उपस्थित हुआ है। अत: कल्याणि! उन उदार महात्माका शापरूपी वचन इस समय मेरे पास फल देनेके लिये आ गया है'॥ ५९ $\frac{1}{2}$ ॥

ऐसा कहकर वे भूपाल मृत्युके भयसे त्रस्त हो अपनी पत्नीसे रोते हुए बोले—'कौसल्ये! अब मैं पुत्रशोकसे अपने प्राणोंका त्याग करूँगा। इस समय मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देख नहीं पाता हूँ; तुम मेरा स्पर्श करो॥ ६०-६१॥

'जो मनुष्य यमलोकमें जानेवाले (मरणासन्न) होते हैं, वे अपने बान्धवजनोंको नहीं देख पाते हैं। यदि श्रीराम आकर एक बार मेरा स्पर्श करें अथवा यह धन-वैभव और युवराजपद स्वीकार कर लें तो मेरा विश्वास है कि मैं जी सकता हूँ॥ ६२ $\frac{1}{2}$ ॥

'देवि! मैंने श्रीरामके साथ जो बर्ताव किया है, वह मेरे योग्य नहीं था; परंतु श्रीरामने मेरे साथ जो व्यवहार किया है, वह सर्वथा उन्हींके योग्य है॥ ६३ $\frac{1}{2}$ ॥

'कौन बुद्धिमान् पुरुष इस भूतलपर अपने दुराचारी पुत्रका भी परित्याग कर सकता है? (एक मैं हूँ, जिसने अपने धर्मात्मा पुत्रको त्याग दिया) तथा कौन ऐसा पुत्र है, जिसे घरसे निकाल दिया जाय और वह पिताको कोसेतक नहीं? (परंतु श्रीराम चुपचाप चले गये। उन्होंने मेरे विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा)॥ ६४ $\frac{1}{2}$ ॥

'कौसल्ये! अब मेरी आँखें तुम्हें नहीं देख पाती हैं, स्मरण-शक्ति भी लुप्त होती जा रही है। उधर देखो, ये यमराजके दूत मुझे यहाँसे ले जानेके लिये उतावले हो उठे हैं॥ ६५ $\frac{1}{2}$ ॥

'इससे बढ़कर दु:ख मेरे लिये और क्या हो सकता है कि मैं प्राणान्तके समय सत्यपराक्रमी धर्मज्ञ रामका दर्शन नहीं पा रहा हूँ॥ ६६ $\frac{1}{2}$ ॥

'जिनकी समता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है, उन प्रिय पुत्र श्रीरामके न देखनेका शोक मेरे प्राणोंको उसी तरह सुखाये डालता है, जैसे धूप थोड़े-से जलको शीघ्र सुखा देती है॥ ६७ $\frac{1}{2}$ ॥

'वे मनुष्य नहीं देवता हैं, जो आपके पंद्रहवें वर्ष वनसे लौटनेपर श्रीरामका सुन्दर मनोहर कुण्डलोंसे अलंकृत मुख देखेंगे॥ ६८ $\frac{1}{2}$ ॥

'जो कमलके समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, स्वच्छ दाँत और मनोहर नासिकासे सुशोभित श्रीरामके चन्द्रोपम मुखका दर्शन करेंगे, वे धन्य हैं॥ ६९ $\frac{1}{2}$ ॥

'जो मेरे श्रीरामके शरच्चन्द्रसदृश मनोहर और प्रफुल्ल कमलके समान सुवासित मुखका दर्शन करेंगे, वे धन्य हैं। जैसे (मूढ़ता आदि अवस्थाओंको त्यागकर अपने उच्च) मार्गमें स्थित शुक्रका दर्शन करके लोग सुखी होते हैं, उसी प्रकार वनवासकी अवधि पूरी करके पुन: अयोध्यामें लौटकर आये हुए श्रीरामको जो लोग देखेंगे वे ही सुखी होंगे॥ ७०-७१ $\frac{1}{2}$ ॥

'कौसल्ये! मेरे चित्तपर मोह छा रहा है, हृदय विदीर्ण-सा हो रहा है, इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर भी मुझे शब्द, स्पर्श और रस आदि विषयोंका अनुभव नहीं हो रहा है॥ ७२ $\frac{1}{2}$ ॥

'जैसे तेल समाप्त हो जानेपर दीपककी अरुण प्रभा विलीन हो जाती है, उसी प्रकार चेतनाके नष्ट होनेसे मेरी सारी इन्द्रियाँ ही नष्ट हो चली हैं॥ ७३॥

'जिस प्रकार नदीका वेग अपने ही किनारेको काट गिराता है, उसी प्रकार मेरा अपना ही उत्पन्न किया हुआ शोक मुझे वेगपूर्वक अनाथ और अचेत किये दे रहा है॥ ७४॥

'हा महाबाहु रघुनन्दन! हा मेरे कष्टोंको दूर

करनेवाले श्रीराम! हा पिताके प्रिय पुत्र! हा मेरे नाथ! हा मेरे बेटे! तुम कहाँ चले गये?॥ ७५॥

'हा कौसल्ये! अब मुझे कुछ नहीं दिखायी देता। हा तपस्विनि सुमित्रे! अब मैं इस लोकसे जा रहा हूँ। हा मेरी शत्रु, क्रूर, कुलाङ्गार कैकेयि! (तेरी कुटिल इच्छा पूरी हुई)'॥ ७६॥

इस प्रकार श्रीराम-माता कौसल्या और सुमित्राके निकट शोकपूर्ण विलाप करते हुए राजा दशरथके जीवनका अन्त हो गया॥ ७७॥

अपने प्रिय पुत्रके वनवाससे शोकाकुल हुए राजा दशरथ इस प्रकार दीनतापूर्ण वचन कहते हुए आधी रात बीतते-बीतते अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो गये और उसी समय उन उदारदर्शी नरेशने अपने प्राणोंको त्याग दिया॥ ७८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

वन्दीजनोंका स्तुतिपाठ, राजा दशरथको दिवंगत हुआ जान उनकी रानियोंका करुण विलाप

तदनन्तर रात बीतनेपर दूसरे दिन सबेरे ही वन्दीजन (महाराजकी स्तुति करनेके लिये) राजमहलमें उपस्थित हुए॥ १॥

व्याकरण-ज्ञानसे सम्पन्न (अथवा उत्तम अलङ्कारोंसे विभूषित) सूत, उत्तमरूपसे वंशपरम्पराका श्रवण करानेवाले मागध और सङ्गीतशास्त्रका अनुशीलन करनेवाले गायक अपने-अपने मार्गके अनुसार पृथक्-पृथक् यशोगान करते हुए वहाँ आये॥ २॥

उच्चस्वरसे आशीर्वाद देते हुए राजाकी स्तुति करनेवाले उन सूत-मागध आदिका शब्द राजमहलोंके भीतरी भागमें फैलकर गूँजने लगा॥ ३॥

वे सूतगण स्तुति कर रहे थे; इतनेहीमें पाणिवादक (हाथोंसे ताल देकर गानेवाले) वहाँ आये और राजाओंके बीते हुए अद्भुत कर्मोंका बखान करते हुए तालगतिके अनुसार तालियाँ बजाने लगे॥ ४॥

उस शब्दसे वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे हुए तथा राजकुलमें ही विचरनेवाले पिंजड़ेमें बंद शुक आदि पक्षी जागकर चहचहाने लगे॥ ५॥

शुक आदि पक्षियों तथा ब्राह्मणोंके मुखसे निकले हुए पवित्र शब्द, वीणाओंके मधुर नाद तथा गाथाओंके आशीर्वादयुक्त गानसे वह सारा भवन गूँज उठा॥ ६॥

तदनन्तर सदाचारी तथा परिचर्याकुशल सेवक, जिनमें स्त्रियों और खोजोंकी संख्या अधिक थी, पहलेकी भाँति उस दिन भी राजभवनमें उपस्थित हुए॥ ७॥

स्नानविधिके ज्ञाता भृत्यजन विधिपूर्वक सोनेके घड़ोंमें चन्दनमिश्रित जल लेकर ठीक समयपर आये॥ ८॥

पवित्र आचार-विचारवाली स्त्रियाँ, जिनमें कुमारी कन्याओंकी संख्या अधिक थी, मङ्गलके लिये स्पर्श करने योग्य गौ आदि, पीनेयोग्य गङ्गाजल आदि तथा अन्य उपकरण—दर्पण, आभूषण और वस्त्र आदि ले आयीं॥ ९॥

प्रातःकाल राजाओंके मङ्गलके लिये जो-जो वस्तुएँ लायी जाती हैं, उनका नाम आभिहारिक है। वहाँ लायी गयी सारी आभिहारिक सामग्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, विधिके अनुरूप, आदर और प्रशंसाके योग्य उत्तम गुणसे युक्त तथा शोभायमान थी॥ १०॥

सूर्योदय होनेतक राजाकी सेवाके लिये उत्सुक हुआ सारा परिजनवर्ग वहाँ आकर खड़ा हो गया। जब उस समयतक राजा बाहर नहीं निकले, तब सबके मनमें यह शङ्का हो गयी कि महाराजके न आनेका क्या कारण हो सकता है?॥ ११॥

तदनन्तर जो कोसलनरेश दशरथके समीप रहनेवाली स्त्रियाँ थीं, वे उनकी शय्याके पास जाकर अपने स्वामीको जगाने लगीं॥ १२॥

वे स्त्रियाँ उनका स्पर्श आदि करनेके योग्य थीं; अतः विनीतभावसे युक्तिपूर्वक उन्होंने उनकी शय्याका स्पर्श किया। स्पर्श करके भी वे उनमें जीवनका कोई चिह्न नहीं पा सकीं॥ १३॥

सोये हुए पुरुषकी जैसी स्थिति होती है, उसको भी वे स्त्रियाँ अच्छी तरह समझती थीं; अतः उन्होंने हृदय एवं हाथके मूलभागमें चलनेवाली नाड़ियोंकी भी परीक्षा की, किंतु वहाँ भी कोई चेष्टा नहीं प्रतीत हुई। फिर तो वे काँप उठीं। उनके मनमें राजाके प्राणोंके निकल जानेकी आशङ्का हो गयी॥ १४॥

वे जलके प्रवाहके सम्मुख पड़े हुए तिनकोंके अग्रभागकी भाँति काँपती हुई प्रतीत होने लगीं। संशयमें पड़ी हुई उन स्त्रियोंको राजाकी ओर देखकर उनकी मृत्युके विषयमें जो शङ्का हुई थी, उसका उस समय उन्हें पूरा निश्चय हो गया॥ १५॥

पुत्रशोकसे आक्रान्त हुई कौसल्या और सुमित्रा उस समय मरी हुईके समान सो गयी थीं और उस समयतक उनकी नींद नहीं खुल पायी थी॥ १६॥

सोयी हुई कौसल्या श्रीहीन हो गयी थीं। उनके शरीरका रंग बदल गया था। वे शोकसे पराजित एवं पीड़ित हो अन्धकारसे आच्छादित हुई तारिकाके समान शोभा नहीं पा रही थीं॥ १७॥

राजाके पास कौसल्या थीं और कौसल्याके समीप देवी सुमित्रा थीं। दोनों ही निद्रामग्न हो जानेके कारण शोभाहीन प्रतीत होती थीं। उन दोनोंके मुखपर शोकके आँसू फैले हुए थे॥ १८॥

उस समय उन दोनों देवियोंको निद्रामग्न देख अन्तःपुरकी अन्य स्त्रियोंने यही समझा कि सोते अवस्थामें ही महाराजके प्राण निकल गये हैं॥ १९॥

फिर तो जैसे जंगलमें यूथपति गजराजके अपने वासस्थानसे अन्यत्र चले जानेपर हथिनियाँ करुण चीत्कार करने लगती हैं, उसी प्रकार वे अन्तःपुरकी सुन्दरी रानियाँ अत्यन्त दुःखी हो उच्चस्वरसे आर्तनाद करने लगीं॥ २०॥

उनके रोनेकी आवाजसे कौसल्या और सुमित्राकी भी नींद टूट गयी और वे दोनों सहसा जाग उठीं॥ २१॥

कौसल्या और सुमित्राने राजाको देखा, उनके शरीरका स्पर्श किया और 'हा नाथ!' की पुकार मचाती हुई वे दोनों रानियाँ पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ २२॥

कोसलराजकुमारी कौसल्या धरतीपर लोटने और छटपटाने लगीं। उनका धूलि-धूसरित शरीर शोभाहीन दिखायी देने लगा, मानो आकाशसे टूटकर गिरी हुई कोई तारा धूलमें लोट रही हो॥ २३॥

राजा दशरथके शरीरकी उष्णता शान्त हो गयी थी। इस प्रकार उनका जीवन शान्त हो जानेपर भूमिपर अचेत पड़ी हुई कौसल्याको अन्तःपुरकी उन सारी स्त्रियोंने मरी हुई नागिनके समान देखा॥ २४॥

तदनन्तर पीछे आयी हुई महाराजकी कैकेयी आदि सारी रानियाँ शोकसे संतप्त होकर रोने लगीं और अचेत होकर गिर पड़ीं॥ २५॥

उन क्रन्दन करती हुई रानियोंने वहाँ पहलेसे होनेवाले प्रबल आर्तनादको और भी बढ़ा दिया। उस बढ़े हुए आर्तनादसे वह सारा राजमहल पुनः बड़े जोरसे गूँज उठा॥

कालधर्मको प्राप्त हुए राजा दशरथका वह भवन डरे, घबराये और अत्यन्त उत्सुक हुए मनुष्योंसे भर गया। सब ओर रोने-चिल्लानेका भयंकर शब्द होने लगा। वहाँ राजाके सभी बन्धु-बान्धव शोक-संतापसे पीड़ित होकर जुट गये। वह सारा भवन तत्काल आनन्दशून्य हो दीन-दुःखी एवं व्याकुल दिखायी देने लगा॥ २७-२८॥

उन यशस्वी भूपालशिरोमणिको दिवङ्गत हुआ जान उनकी सारी पत्नियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर अत्यन्त दुःखी हो जोर-जोरसे रोने लगीं और उनकी दोनों बाँहें पकड़कर अनाथकी भाँति करुण-विलाप करने लगीं॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

राजाके लिये कौसल्याका विलाप और कैकेयीकी भर्त्सना, मन्त्रियोंका राजाके शवको तेलसे भरे हुए कड़ाहमें सुलाना, रानियोंका विलाप, पुरीकी श्रीहीनता और पुरवासियोंका शोक

बुझी हुई आग, जलहीन समुद्र तथा प्रभाहीन सूर्यकी भाँति शोभाहीन हुए दिवङ्गत राजाका शव देखकर कौसल्याके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे अनेक प्रकारसे शोकाकुल होकर राजाके मस्तकको गोदमें ले कैकेयीसे इस प्रकार बोलीं—॥ १-२॥

'दुराचारिणी क्रूर कैकेयी! ले, तेरी कामना सफल हुई। अब राजाको भी त्यागकर एकाग्रचित्त हो अपना अकण्टक राज्य भोग॥ ३॥

'राम मुझे छोड़कर वनमें चले गये और मेरे स्वामी स्वर्ग सिधारे। अब मैं दुर्गम मार्गमें साथियोंसे बिछुड़कर असहाय हुई अबलाकी भाँति जीवित नहीं रह सकती॥

'नारीधर्मको त्याग देनेवाली कैकेयीके सिवा संसारमें दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो अपने लिये आराध्य देवस्वरूप पतिका परित्याग करके जीना चाहेगी?॥ ५॥

'जैसे कोई धनका लोभी दूसरोंको विष खिला देता है और उससे होनेवाले हत्याके दोषोंपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार इस कैकेयीने कुब्जाके कारण रघुवंशियोंके इस कुलका नाश कर डाला॥ ६॥

'कैकेयीने महाराजको अयोग्य कार्यमें लगाकर उनके द्वारा पत्नीसहित श्रीरामको वनवास दिलवा दिया। यह समाचार जब राजा जनक सुनेंगे, तब मेरे ही समान उनको भी बड़ा कष्ट होगा॥ ७॥

'मैं अनाथ और विधवा हो गयी—यह बात मेरे धर्मात्मा पुत्र कमलनयन श्रीरामको नहीं मालूम है। वे तो यहाँसे जीते-जी अदृश्य हो गये हैं॥ ८॥

'पति-सेवारूप मनोहर तप करनेवाली विदेहराजकुमारी सीता दुःख भोगनेके योग्य नहीं है। वह वनमें दुःखका अनुभव करके उद्विग्न हो उठेगी॥ ९॥

'रातके समय भयानक शब्द करनेवाले पशु-पक्षियोंकी बोली सुनकर भयभीत हो सीता श्रीरामकी ही शरण लेगी— उन्हींकी गोदमें जाकर छिपेगी॥ १०॥

'जो बूढ़े हो गये हैं, कन्याएँमात्र ही जिनकी संतति हैं, वे राजा जनक भी सीताकी ही बारम्बार चिन्ता करते हुए शोकमें डूबकर अवश्य ही अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ ११॥

'मैं भी आज ही मृत्युका वरण करूँगी। एक पतिव्रताकी भाँति पतिके शरीरका आलिङ्गन करके चिताकी आगमें प्रवेश कर जाऊँगी'॥ १२॥

पतिके शरीरको हृदयसे लगाकर अत्यन्त दुःखसे आर्त हो करुण विलाप करती हुई तपस्विनी कौसल्याको राजकाज देखनेवाले मन्त्रियोंने दूसरी स्त्रियोंद्वारा वहाँसे हटवा दिया॥ १३॥

फिर उन्होंने महाराजके शरीरको तेलसे भरे हुए कड़ाहमें रखकर वसिष्ठ आदिकी आज्ञाके अनुसार शवकी रक्षा आदि अन्य सब राजकीय कार्योंकी सँभाल आरम्भ कर दी॥ १४॥

वे सर्वज्ञ मन्त्री पुत्रके बिना राजाका दाह-संस्कार न कर सके, इसलिये उनके शवकी रक्षा करने लगे॥

जब मन्त्रियोंने राजाके शवको तैलके कड़ाहमें सुलाया, तब यह जानकर सारी रानियाँ 'हाय! ये महाराज परलोकवासी हो गये' ऐसा कहती हुई पुनः विलाप करने लगीं॥ १६॥

उनके मुखपर नेत्रोंसे आँसुओंके झरने झर रहे थे। वे अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर दीनभावसे रोने और शोकसंतप्त हो दयनीय विलाप करने लगीं॥ १७॥

वे बोलीं—'हा महाराज! हम सत्यप्रतिज्ञ एवं सदा प्रिय बोलनेवाले अपने पुत्र श्रीरामसे तो बिछुड़ी ही थीं, अब आप भी क्यों हमारा परित्याग कर रहे हैं?॥ १८॥

'श्रीरामसे बिछुड़कर हम सब विधवाएँ इस दुष्ट विचारवाली सौत कैकेयीके समीप कैसे रहेंगी?॥ १९॥

'जो हमारे और आपके भी रक्षक और प्रभु थे, वे मनस्वी श्रीरामचन्द्र राजलक्ष्मीको छोड़कर वन चले गये।

'वीरवर श्रीराम और आपके भी न रहनेसे हमारे ऊपर बड़ा भारी संकट आ गया, जिससे हम मोहित हो रही हैं। अब सौत कैकेयीके द्वारा तिरस्कृत हो हम यहाँ कैसे रह सकेंगी?॥ २१॥

'जिसने राजाका तथा सीतासहित श्रीराम और महाबली लक्ष्मणका भी परित्याग कर दिया, वह दूसरे किसका त्याग नहीं करेगी?॥ २२॥

रघुकुलनरेश दशरथकी वे सुन्दरी रानियाँ महान् शोकसे ग्रस्त हो आँसू बहाती हुई नाना प्रकारकी चेष्टाएँ और विलाप कर रही थीं। उनका आनन्द लुट गया था॥

महामना राजा दशरथसे हीन हुई वह अयोध्यापुरी नक्षत्रहीन रात्रि और पतिविहीना नारीकी भाँति श्रीहीन हो गयी थी॥ २४॥

नगरके सभी मनुष्य आँसू बहा रहे थे। कुलवती स्त्रियाँ हाहाकार कर रही थीं। चौराहे तथा घरोंके द्वार सूने दिखायी देते थे। (वहाँ झाड़-बुहार, लीपने-पोतने तथा बलि अर्पण करने आदिकी क्रियाएँ नहीं होती थीं।) इस प्रकार वह पुरी पहलेकी भाँति शोभा नहीं पाती थी॥

राजा दशरथ शोकवश स्वर्ग सिधारे और उनकी रानियाँ शोकसे ही भूतलपर लोटती रहीं। इस शोकमें ही सहसा सूर्यकी किरणोंका प्रचार बंद हो गया और सूर्यदेव अस्त हो गये। तत्पश्चात् अन्धकारका प्रचार करती हुई रात्रि उपस्थित हुई॥ २६॥

वहाँ पधारे हुए सुहृदोंने किसी भी पुत्रके बिना राजाका दाह-संस्कार होना नहीं पसंद किया। अब राजाका दर्शन अचिन्त्य हो गया, यह सोचते हुए उन सबने उस तैलपूर्ण कड़ाहमें उनके शवको सुरक्षित रख दिया॥ २७॥

सूर्यके बिना प्रभाहीन आकाश तथा नक्षत्रोंके बिना शोभाहीन रात्रिकी भाँति अयोध्यापुरी महात्मा राजा दशरथसे रहित हो श्रीहीन प्रतीत होती थी। उसकी सड़कों और चौराहोंपर आँसुओंसे अवरुद्ध कण्ठवाले मनुष्योंकी भीड़ एकत्र हो गयी थी॥ २८॥

झुंड-के-झुंड स्त्री और पुरुष एक साथ खड़े

होकर भरत-माता कैकेयीकी निन्दा करने लगे। उस समय महाराजकी मृत्युसे अयोध्यापुरीमें रहनेवाले सभी लोग शोकाकुल हो रहे थे। कोई भी शान्ति नहीं पाता था॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

मार्कण्डेय आदि मुनियों तथा मन्त्रियोंका राजाके बिना होनेवाली देशकी दुरवस्थाका वर्णन करके वसिष्ठजीसे किसीको राजा बनानेके लिये अनुरोध

अयोध्यामें लोगोंकी वह रात रोते-कलपते ही बीती। उसमें आनन्दका नाम भी नहीं था। आँसुओंसे सब लोगोंके कण्ठ भरे हुए थे। दु:खके कारण वह रात सबको बड़ी लम्बी प्रतीत हुई थी॥ १॥

जब रात बीत गयी और सूर्योदय हुआ, तब राज्यका प्रबन्ध करनेवाले ब्राह्मणलोग एकत्र हो दरबारमें आये॥ २॥

मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि—ये सभी ब्राह्मणश्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठजीके सामने बैठकर मन्त्रियोंके साथ अपनी अलग-अलग राय देने लगे॥ ३-४॥

वे बोले—'पुत्रशोकसे इन महाराजके स्वर्गवासी होनेके कारण यह रात बड़े दु:खसे बीती है, जो हमारे लिये सौ वर्षोंके समान प्रतीत हुई थी॥ ५॥

'महाराज दशरथ स्वर्ग सिधारे। श्रीरामचन्द्रजी वनमें रहने लगे और तेजस्वी लक्ष्मण भी श्रीरामके साथ ही चले गये॥ ६॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न केकयदेशके रमणीय राजगृहमें नानाके घरमें निवास करते हैं॥ ७॥

'इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारोंमेंसे किसीको आज ही यहाँका राजा बनाया जाय; क्योंकि राजाके बिना हमारे इस राज्यका नाश हो जायगा॥ ८॥

'जहाँ कोई राजा नहीं होता, ऐसे जनपदमें विद्युन्मालाओंसे अलंकृत महान् गर्जन करनेवाला मेघ पृथ्वीपर दिव्य जलकी वर्षा नहीं करता है॥ ९॥

'जिस जनपदमें कोई राजा नहीं, वहाँके खेतोंमें मुट्ठी-के-मुट्ठी बीज नहीं बिखेरे जाते। राजासे रहित देशमें पुत्र पिता और स्त्री पतिके वशमें नहीं रहती॥ १०॥

'राजहीन देशमें धन अपना नहीं होता है। बिना राजाके राज्यमें पत्नी भी अपनी नहीं रह पाती है। राजारहित देशमें यह महान् भय बना रहता है। (जब वहाँ पति-पत्नी आदिका सत्य सम्बन्ध नहीं रह सकता) तब फिर दूसरा कोई सत्य कैसे रह सकता है?॥ ११॥

'बिना राजाके राज्यमें मनुष्य कोई पञ्चायत-भवन नहीं बनवाते, रमणीय उद्यानका भी निर्माण नहीं करवाते तथा हर्ष और उत्साहके साथ पुण्यगृह (धर्मशाला, मन्दिर आदि) भी नहीं बनवाते हैं॥ १२॥

'जहाँ कोई राजा नहीं, उस जनपदमें स्वभावत: यज्ञ करनेवाले द्विज और कठोर व्रतका पालन करनेवाले जितेन्द्रिय ब्राह्मण उन बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, जिनमें सभी ऋत्विज् और सभी यजमान होते हैं॥

'राजारहित जनपदमें कदाचित् महायज्ञोंका आरम्भ हो भी तो उनमें धनसम्पन्न ब्राह्मण भी ऋत्विजोंको पर्याप्त दक्षिणा नहीं देते (उन्हें भय रहता है कि लोग हमें धनी समझकर लूट न लें)॥ १४॥

'अराजक देशमें राष्ट्रको उन्नतिशील बनानेवाले उत्सव, जिनमें नट और नर्तक हर्षमें भरकर अपनी कलाका प्रदर्शन करते हैं, बढ़ने नहीं पाते हैं तथा दूसरे-दूसरे राष्ट्रहितकारी संघ भी नहीं पनपने पाते हैं॥ १५॥

'बिना राजाके राज्यमें वादी और प्रतिवादीके विवादका संतोषजनक निपटारा नहीं हो पाता अथवा व्यापारियोंको लाभ नहीं होता। कथा सुननेकी इच्छावाले लोग कथावाचक पौराणिकोंकी कथाओंसे प्रसन्न नहीं होते॥

'राजारहित जनपदमें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हुई कुमारियाँ एक साथ मिलकर संध्याके समय उद्यानोंमें क्रीड़ा करनेके लिये नहीं जाती हैं॥ १७॥

'बिना राजाके राज्यमें धनीलोग सुरक्षित नहीं रह पाते तथा कृषि और गोरक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवाले वैश्य भी दरवाजा खोलकर नहीं सो पाते हैं॥ १८॥

'राजासे रहित जनपदमें कामी मनुष्य नारियोंके साथ शीघ्रगामी वाहनोंद्वारा वनविहारके लिये नहीं निकलते हैं॥ १९॥

'जहाँ कोई राजा नहीं होता, उस जनपदमें साठ वर्षके दन्तार हाथी घंटे बाँधकर सड़कोंपर नहीं घूमते हैं॥ २०॥

'बिना राजाके राज्यमें धनुर्विद्याके अभ्यासकालमें निरन्तर लक्ष्यकी ओर बाण चलानेवाले वीरोंकी प्रत्यञ्चा तथा करतलका शब्द नहीं सुनायी देता है॥ २१॥

'राजासे रहित जनपदमें दूर जाकर व्यापार करनेवाले वणिक् बेचनेकी बहुत-सी वस्तुएँ साथ लेकर कुशलपूर्वक मार्ग तै नहीं कर सकते॥ २२॥

'जहाँ कोई राजा नहीं होता, उस जनपदमें जहाँ संध्या हो वहीं डेरा डाल देनेवाला, अपने अन्तःकरणके द्वारा परमात्माका ध्यान करनेवाला और अकेला ही विचरनेवाला जितेन्द्रिय मुनि नहीं घूमता-फिरता है (क्योंकि उसे कोई भोजन देनेवाला नहीं होता)॥ २३॥

'अराजक देशमें लोगोंको अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति और प्राप्त वस्तुकी रक्षा नहीं हो पाती। राजाके न रहनेपर सेना भी युद्धमें शत्रुओंका सामना नहीं करती॥ २४॥

'बिना राजाके राज्यमें लोग वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो हृष्ट-पुष्ट उत्तम घोड़ों तथा रथोंद्वारा सहसा यात्रा नहीं करते हैं (क्योंकि उन्हें लुटेरोंका भय बना रहता है)॥

'राजासे रहित राज्यमें शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् मनुष्य वनों और उपवनोंमें शास्त्रोंकी व्याख्या करते हुए नहीं ठहर पाते हैं॥ २६॥

'जहाँ अराजकता फैल जाती है, उस जनपदमें मनको वशमें रखनेवाले लोग देवताओंकी पूजाके लिये फूल, मिठाई और दक्षिणाकी व्यवस्था नहीं करते हैं॥ २७॥

'जिस जनपदमें कोई राजा नहीं होता है, वहाँ चन्दन और अगुरुका लेप लगाये हुए राजकुमार वसन्त-ऋतुके खिले हुए वृक्षोंकी भाँति शोभा नहीं पाते हैं॥ २८॥

'जैसे जलके बिना नदियाँ, घासके बिना वन और ग्वालोंके बिना गौओंकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजाके बिना राज्य शोभा नहीं पाता है॥ २९॥

'जैसे ध्वज रथका ज्ञान कराता है और धूम अग्निका बोधक होता है, उसी प्रकार राजकाज देखनेवाले हमलोगोंके अधिकारको प्रकाशित करनेवाले जो महाराज थे, वे यहाँसे देवलोकको चले गये॥ ३०॥

'राजाके न रहनेपर राज्यमें किसी भी मनुष्यकी कोई भी वस्तु अपनी नहीं रह जाती। जैसे मत्स्य एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार अराजक देशके लोग सदा एक-दूसरेको खाते—लूटते-खसोटते रहते हैं॥ ३१॥

'जो वेद-शास्त्रोंकी तथा अपनी-अपनी जातिके लिये नियत वर्णाश्रमकी मर्यादाको भङ्ग करनेवाले नास्तिक मनुष्य पहले राजदण्डसे पीड़ित होकर दबे रहते थे, वे भी अब राजाके न रहनेसे निःशङ्क होकर अपना प्रभुत्व प्रकट करेंगे॥ ३२॥

'जैसे दृष्टि सदा ही शरीरके हितमें प्रवृत्त रहती है, उसी प्रकार राजा राज्यके भीतर सत्य और धर्मका प्रवर्त्तक होता है॥ ३३॥

'राजा ही सत्य और धर्म है। राजा ही कुलवानोंका कुल है। राजा ही माता और पिता है तथा राजा ही मनुष्योंका हित करनेवाला है॥ ३४॥

'राजा अपने महान् चरित्रके द्वारा यम, कुबेर, इन्द्र और महाबली वरुणसे भी बढ़ जाते हैं (यमराज केवल दण्ड देते हैं, कुबेर केवल धन देते हैं, इन्द्र केवल पालन करते हैं और वरुण केवल सदाचारमें नियन्त्रित करते हैं; परंतु एक श्रेष्ठ राजामें ये चारों गुण मौजूद होते हैं। अतः वह इनसे बढ़ जाता है)॥ ३५॥

'यदि संसारमें भले-बुरेका विभाग करनेवाला राजा न हो तो यह सारा जगत् अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो जाय, कुछ भी सूझ न पड़े॥ ३६॥

'वसिष्ठजी! जैसे उमड़ता हुआ समुद्र अपनी तटभूमितक पहुँचकर उससे आगे नहीं बढ़ता, उसी प्रकार हम सब लोग महाराजके जीवनकालमें भी केवल आपकी ही बातका उल्लङ्घन नहीं करते थे॥ ३७॥

'अतः विप्रवर! इस समय हमारे व्यवहारको देखकर तथा राजाके अभावमें जंगल बने हुए इस देशपर दृष्टिपात करके आप ही किसी इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारको अथवा दूसरे किसी योग्य पुरुषको राजाके पदपर अभिषिक्त कीजिये'॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

वसिष्ठजीकी आज्ञासे पाँच दूतोंका अयोध्यासे केकयदेशके राजगृह नगरमें जाना

मार्कण्डेय आदिके ऐसे वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने मित्रों, मन्त्रियों और उन समस्त ब्राह्मणोंको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १ ॥

'राजा दशरथने जिनको राज्य दिया है, वे भरत इस समय अपने भाई शत्रुघ्नके साथ मामाके यहाँ बड़े सुख और प्रसन्नताके साथ निवास करते हैं॥ २॥

'उन दोनों वीर बन्धुओंको बुलानेके लिये शीघ्र ही तेज चलनेवाले दूत घोड़ोंपर सवार होकर यहाँसे जायँ, इसके सिवा हमलोग और क्या विचार कर सकते हैं?'॥ ३॥

इसपर सबने वसिष्ठजीसे कहा—'हाँ, दूत अवश्य भेजे जायँ।' उनका वह कथन सुनकर वसिष्ठजीने दूतोंको सम्बोधित करके कहा— ॥ ४॥

'सिद्धार्थ! विजय! जयन्त! अशोक! और नन्दन! तुम सब यहाँ आओ और तुम्हें जो काम करना है, उसे सुनो। मैं तुम सब लोगोंसे ही कहता हूँ॥ ५॥

'तुमलोग शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार होकर तुरंत ही राजगृह नगरको जाओ और शोकका भाव न प्रकट करते हुए मेरी आज्ञाके अनुसार भरतसे इस प्रकार कहो॥ ६॥

'कुमार! पुरोहितजी तथा समस्त मन्त्रियोंने आपसे कुशल-मङ्गल कहा है। अब आप यहाँसे शीघ्र ही चलिये। अयोध्यामें आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है॥

'भरतको श्रीरामचन्द्रके वनवास और पिताकी मृत्युका हाल मत बतलाना और इन परिस्थितियोंके कारण रघुवंशियोंके यहाँ जो कुहराम मचा हुआ है, इसकी चर्चा भी न करना॥ ८॥

'केकयराज तथा भरतको भेंट देनेके लिये रेशमी वस्त्र और उत्तम आभूषण लेकर तुमलोग यहाँसे शीघ्र चल दो'॥

केकय देशको जानेवाले वे दूत रास्तेका खर्च ले अच्छे घोड़ोंपर सवार हो अपने-अपने घरको गये॥ १०॥

तदनन्तर यात्रासम्बन्धी शेष तैयारी पूरी करके वसिष्ठजीकी आज्ञा ले सभी दूत तुरंत वहाँसे प्रस्थित हो गये॥ ११॥

अपरताल नामक पर्वतके अन्तिम छोर अर्थात् दक्षिण भाग और प्रलम्बगिरिके उत्तरभागमें दोनों पर्वतोंके बीचसे बहनेवाली मालिनी नदीके तटपर होते हुए वे दूत आगे बढ़े॥ १२॥

हस्तिनापुरमें गङ्गाको पार करके वे पश्चिमकी ओर गये और पाञ्चालदेशमें पहुँचकर कुरुजाङ्गल प्रदेशके बीचसे होते हुए आगे बढ़ गये॥ १३॥

मार्गमें सुन्दर फूलोंसे सुशोभित सरोवरों तथा निर्मल जलवाली नदियोंका दर्शन करते हुए वे दूत कार्यवश तीव्रगतिसे आगे बढ़ते गये॥ १४॥

तदनन्तर वे स्वच्छ जलसे सुशोभित, पानीसे भरी हुई और भाँति-भाँतिके पक्षियोंसे सेवित दिव्य नदी शरदण्डाके तटपर पहुँचकर उसे वेगपूर्वक लाँघ गये॥ १५॥

शरदण्डाके पश्चिमतटपर एक दिव्य वृक्ष था, जिसपर किसी देवताका आवास था; इसीलिये वहाँ जो याचना की जाती थी, वह सत्य (सफल) होती थी, अतः उसका नाम सत्योपयाचन हो गया था। उस वन्दनीय वृक्षके निकट पहुँचकर दूतोंने उसकी परिक्रमा की और वहाँसे आगे जाकर उन्होंने कुलिङ्गा नामक पुरीमें प्रवेश किया॥

वहाँसे तेजोऽभिभवन नामक गाँवको पार करते हुए वे अभिकाल नामक गाँवमें पहुँचे और वहाँसे आगे बढ़नेपर उन्होंने राजा दशरथके पिता-पितामहोंद्वारा सेवित पुण्यसलिला इक्षुमती नदीको पार किया॥ १७॥

वहाँ केवल अञ्जलिभर जल पीकर तपस्या करनेवाले वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंका दर्शन करके वे दूत बाह्लीक देशके मध्यभागमें स्थित सुदामा नामक पर्वतके पास जा पहुँचे॥ १८॥

उस पर्वतके शिखरपर स्थित भगवान् विष्णुके चरणचिह्नका दर्शन करके वे विपाशा (व्यास) नदी और उसके तटवर्ती शाल्मली वृक्षके निकट गये। वहाँसे आगे बढ़नेपर बहुत-सी नदियों, बावड़ियों, पोखरों, छोटे तालाबों, सरोवरों तथा भाँति-भाँतिके वनजन्तुओं—सिंह, व्याघ्र, मृग और हाथियोंका दर्शन करते हुए वे दूत अत्यन्त विशाल मार्गके द्वारा आगे बढ़ने लगे। वे अपने स्वामीकी आज्ञाका शीघ्र पालन करनेकी इच्छा रखते थे॥ १९-२०॥

उन दूतोंके वाहन (घोड़े) चलते-चलते थक गये

थे। वह मार्ग बड़ी दूरका होनेपर उपद्रवसे रहित था। उसे तै करके सारे दूत शीघ्र ही बिना किसी कष्टके श्रेष्ठ नगर गिरिव्रजमें जा पहुँचे॥ २१॥

अपने स्वामी (आज्ञा देनेवाले वसिष्ठजी) का प्रिय और प्रजावर्गकी रक्षा करने तथा महाराज दशरथके वंशपरम्परागत राज्यको भरतजीसे स्वीकार करानेके लिये सादर तत्पर हुए वे दूत बड़ी उतावलीके साथ चलकर रातमें ही उस नगरमें जा पहुँचे॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

भरतकी चिन्ता, मित्रोंद्वारा उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयास तथा उनके पूछनेपर भरतका मित्रोंके समक्ष अपने देखे हुए भयंकर दुःस्वप्नका वर्णन करना

जिस रातमें दूतोंने उस नगरमें प्रवेश किया था, उससे पहली रातमें भरतने भी एक अप्रिय स्वप्न देखा था॥

रात बीतकर प्रायः सबेरा हो चला था तभी उस अप्रिय स्वप्नको देखकर राजाधिराज दशरथके पुत्र भरत मन-ही-मन बहुत संतप्त हुए॥ २॥

उन्हें चिन्तित जान उनके अनेक प्रियवादी मित्रोंने उनका मानसिक क्लेश दूर करनेकी इच्छासे एक गोष्ठी की और उसमें अनेक प्रकारकी बातें करने लगे॥ ३॥

कुछ लोग वीणा आदि बजाने लगे। दूसरे लोग उनके खेदकी शान्तिके लिये नृत्य कराने लगे। दूसरे मित्रोंने नाना प्रकारके नाटकोंका आयोजन किया, जिनमें हास्यरसकी प्रधानता थी॥ ४॥

किंतु रघुकुलभूषण महात्मा भरत उन प्रियवादी मित्रोंकी गोष्ठीमें हास्यविनोद करनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए॥ ५॥

तब सुहृदोंसे घिरकर बैठे हुए एक प्रिय मित्रने मित्रोंके बीचमें विराजमान भरतसे पूछा—'सखे! तुम आज प्रसन्न क्यों नहीं होते हो?'॥ ६॥

इस प्रकार पूछते हुए सुहृद्‌को भरतने इस प्रकार उत्तर दिया—'मित्र! जिस कारणसे मेरे मनमें यह दैन्य आया है, वह बताता हूँ, सुनो। मैंने आज स्वप्नमें अपने पिताजीको देखा है। उनका मुख मलिन था; बाल खुले हुए थे और वे पर्वतकी चोटीसे एक ऐसे गंदे गढेमें गिर पड़े थे, जिसमें गोबर भरा हुआ था॥ ७-८॥

'मैंने उस गोबरके कुण्डमें उन्हें तैरते देखा था। वे अञ्जलिमें तेल लेकर पी रहे थे और बारम्बार हँसते हुए-से प्रतीत होते थे॥ ९॥

'फिर उन्होंने तिल और भात खाया। इसके बाद उनके सारे शरीरमें तेल लगाया गया और फिर वे सिर नीचे किये तैलमें ही गोते लगाने लगे॥ १०॥

'स्वप्नमें ही मैंने यह भी देखा है कि समुद्र सूख गया, चन्द्रमा पृथ्वीपर गिर पड़े हैं, सारी पृथ्वी उपद्रवसे ग्रस्त और अन्धकारसे आच्छादित-सी हो गयी है॥ ११॥

'महाराजकी सवारीके काममें आनेवाले हाथीका दाँत टूक-टूक हो गया है और पहलेसे प्रज्वलित होती हुई आग सहसा बुझ गयी है॥ १२॥

'मैंने यह भी देखा है कि पृथ्वी फट गयी है, नाना प्रकारके वृक्ष सूख गये हैं तथा पर्वत ढह गये हैं और उनसे धुआँ निकल रहा है॥ १३॥

'काले लोहेकी चौकीपर महाराज दशरथ बैठे हैं। उन्होंने काला ही वस्त्र पहन रखा है और काले एवं पिङ्गलवर्णकी स्त्रियाँ उनके ऊपर प्रहार करती हैं॥ १४॥

'धर्मात्मा राजा दशरथ लाल रंगके फूलोंकी माला पहने और लाल चन्दन लगाये गधे जुते हुए रथपर बैठकर बड़ी तेजीके साथ दक्षिण दिशाकी ओर गये हैं॥

'लाल वस्त्र धारण करनेवाली एक स्त्री, जो विकराल मुखवाली राक्षसी प्रतीत होती थी, महाराजको हँसती हुई-सी खींचकर लिये जा रही थी। यह दृश्य भी मेरे देखनेमें आया॥ १६॥

'इस प्रकार इस भयंकर रात्रिके समय मैंने यह स्वप्न देखा है। इसका फल यह होगा कि मैं, श्रीराम, राजा दशरथ अथवा लक्ष्मण—इनमेंसे किसी एकको अवश्य मृत्यु होगी॥ १७॥

'जो मनुष्य स्वप्नमें गधे जुते हुए रथसे यात्रा करता दिखायी देता है, उसकी चिताका धुआँ शीघ्र ही देखनेमें आता है। यही कारण है कि मैं दुःखी हो रहा हूँ और आपलोगोंकी बातोंका आदर नहीं करता हूँ। मेरा गला सूखा-सा जा रहा है और मन अस्वस्थ-सा हो चला है॥

'मैं भयका कोई कारण नहीं देखता तो भी भयको प्राप्त हो रहा हूँ। मेरा स्वर बदल गया है तथा

मेरी कान्ति भी फीकी पड़ गयी है। मैं अपने-आपसे घृणा-सी करने लगा हूँ, परंतु इसका कारण क्या है, यह मेरी समझमें नहीं आता॥ २०॥

'जिनके विषयमें मैंने पहले कभी सोचातक नहीं था, ऐसे अनेक प्रकारके दु:स्वप्नोंको देखकर तथा महाराजका दर्शन इस रूपमें क्यों हुआ, जिसकी मेरे मनमें कोई कल्पना नहीं थी—यह सोचकर मेरे हृदयसे महान् भय दूर नहीं हो रहा है'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

दूतोंका भरतको उनके नाना और मामाके लिये उपहारकी वस्तुएँ अर्पित करना और वसिष्ठजीका संदेश सुनाना, भरतका पिता आदिकी कुशल पूछना और नानासे आज्ञा तथा उपहारकी वस्तुएँ पाकर शत्रुघ्नके साथ अयोध्याकी ओर प्रस्थान करना

इस प्रकार भरत जब अपने मित्रोंको स्वप्नका वृत्तान्त बता रहे थे, उसी समय थके हुए वाहनोंवाले वे दूत उस रमणीय राजगृहपुरमें प्रविष्ट हुए, जिसकी खाईको लाँघनेका कष्ट शत्रुओंके लिये असह्य था॥ १॥

नगरमें आकर वे दूत केकयदेशके राजा और राजकुमारसे मिले तथा उन दोनोंने भी उनका सत्कार किया। फिर वे भावी राजा भरतके चरणोंका स्पर्श करके उनसे इस प्रकार बोले—॥ २॥

'कुमार! पुरोहितजी तथा समस्त मन्त्रियोंने आपसे कुशल-मङ्गल कहा है। अब आप यहाँसे शीघ्र चलिये। अयोध्यामें आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है॥ ३॥

'विशाल नेत्रोंवाले राजकुमार! ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण आप स्वयं भी ग्रहण कीजिये और अपने मामाको भी दीजिये॥ ४॥

'राजकुमार! यहाँ जो बहुमूल्य सामग्री लायी गयी है, इसमें बीस करोड़की लागतका सामान आपके नाना केकेयनरेशके लिये है और पूरे दस करोड़की लागतका सामान आपके मामाके लिये है'॥ ५॥

वे सारी वस्तुएँ लेकर मामा आदि सुहृदोंमें अनुराग रखनेवाले भरतने उन्हें भेंट कर दीं। तत्पश्चात् इच्छानुसार वस्तुएँ देकर दूतोंका सत्कार करनेके अनन्तर उनसे इस प्रकार कहा—॥ ६॥

'मेरे पिता महाराज दशरथ सकुशल तो हैं न? महात्मा श्रीराम और लक्ष्मण नीरोग तो हैं न?॥ ७॥

'धर्मको जानने और धर्मकी ही चर्चा करनेवाली बुद्धिमान् श्रीरामकी माता धर्मपरायणा आर्या कौसल्याको तो कोई रोग या कष्ट नहीं है?॥ ८॥

'क्या वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी जननी मेरी मझली माता धर्मज्ञा सुमित्रा स्वस्थ और सुखी हैं?॥ ९॥

'जो सदा अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहती और अपनेको बड़ी बुद्धिमती समझती है, उस उग्र स्वभाववाली कोपशीला मेरी माता कैकेयीको तो कोई कष्ट नहीं है? उसने क्या कहा है?'॥ १०॥

महात्मा भरतके इस प्रकार पूछनेपर उस समय दूतोंने विनयपूर्वक उनसे यह बात कही—॥ ११॥

'पुरुषसिंह! आपको जिनका कुशल-मङ्गल अभिप्रेत है, वे सकुशल हैं। हाथमें कमल लिये रहनेवाली लक्ष्मी (शोभा) आपका वरण कर रही है। अब यात्राके लिये शीघ्र ही आपका रथ जुतकर तैयार हो जाना चाहिये'॥ १२॥

उन दूतोंके ऐसा कहनेपर भरतने उनसे कहा—'अच्छा मैं महाराजसे पूछता हूँ कि दूत मुझसे शीघ्र अयोध्या चलनेके लिये कह रहे हैं। आपकी क्या आज्ञा है?'॥ १३॥

दूतोंसे ऐसा कहकर राजकुमार भरत उनसे प्रेरित हो नानाके पास जाकर बोले—॥ १४॥

'राजन्! मैं दूतोंके कहनेसे इस समय पिताजीके पास जा रहा हूँ। पुन: जब आप मुझे याद करेंगे, यहाँ आ जाऊँगा'॥

भरतके ऐसा कहनेपर नाना केकयनरेशने उस समय उन रघुकुलभूषण भरतका मस्तक सूँघकर यह शुभ वचन कहा—॥ १६॥

'तात! जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम्हें पाकर कैकेयी उत्तम संतानवाली हो गयी। शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! तुम अपनी माता और पितासे यहाँका कुशल-समाचार कहना॥ १७॥

'तात! अपने पुरोहितजीसे तथा अन्य जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हों, उनसे भी मेरा कुशल-मङ्गल कहना। उन महाधनुर्धर दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे भी यहाँका कुशल-समाचार सुना देना'॥ १८॥

ऐसा कहकर केकयनरेशने भरतका सत्कार करके उन्हें बहुत-से उत्तम हाथी, विचित्र कालीन, मृगचर्म और बहुत-सा धन दिये॥ १९॥

जो अन्त:पुरमें पाल-पोसकर बड़े किये गये थे, बल और पराक्रममें बाघोंके समान थे, जिनकी दाढ़ें बड़ी-बड़ी और काया विशाल थी, ऐसे बहुत-से कुत्ते भी केकयनरेशने भरतको भेंटमें दिये॥ २०॥

दो हजार सोनेकी मोहरें और सोलह सौ घोड़े भी दिये। इस प्रकार केकयनरेशने केकयीकुमार भरतको सत्कारपूर्वक बहुत-सा धन दिया॥ २१॥

उस समय केकयनरेश अश्वपतिने अपने अभीष्ट, विश्वासपात्र और गुणवान् मन्त्रियोंको भरतके साथ जानेके लिये शीघ्र आज्ञा दी॥ २२॥

भरतके मामाने उन्हें उपहारमें दिये जानेवाले फलके रूपमें इरावान् पर्वत और इन्द्रशिर नामक स्थानके आस-पास उत्पन्न होनेवाले बहुत-से सुन्दर-सुन्दर हाथी तथा तेज चलनेवाले सुशिक्षित खच्चर दिये॥ २३॥

उस समय जानेकी जल्दी होनेके कारण केकयीपुत्र भरतने केकयराजके दिये हुए उस धनका अभिनन्दन नहीं किया॥ २४॥

उस अवसरपर उनके हृदयमें बड़ी भारी चिन्ता हो रही थी। इसके दो कारण थे, एक तो दूत वहाँसे चलनेकी जल्दी मचा रहे थे, दूसरे उन्हें दु:स्वप्नका दर्शन भी हुआ था॥ २५॥

वे यात्राकी तैयारीके लिये पहले अपने आवास-स्थानपर गये। फिर वहाँसे निकलकर मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे भरे हुए परम उत्तम राजमार्गपर गये। उस समय भरतजीके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति जुट गयी थी॥

सड़कको पार करके श्रीमान् भरतने राजभवनके परम उत्तम अन्त:पुरका दर्शन किया और उसमें वे बेरोक-टोक घुस गये॥ २७॥

वहाँ नाना, नानी, मामा युधाजित् और मामीसे विदा ले शत्रुघ्नसहित रथपर सवार हो भरतने यात्रा आरम्भ की॥ २८॥

गोलाकार पहियेवाले सौसे भी अधिक रथोंमें ऊँट, बैल, घोड़े और खच्चर जोतकर सेवकोंने जाते हुए भरतका अनुसरण किया॥ २९॥

शत्रुहीन महामना भरत अपनी और मामाकी सेनासे सुरक्षित हो शत्रुघ्नको अपने साथ रथपर लेकर नानाके अपने ही समान माननीय मन्त्रियोंके साथ मामाके घरसे चले; मानो कोई सिद्ध पुरुष इन्द्रलोकसे किसी अन्य स्थानके लिये प्रस्थित हुआ हो॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरहवाँ सर्ग

रथ और सेनासहित भरतकी यात्रा, विभिन्न स्थानोंको पार करके उनका उज्जिहाना नगरीके उद्यानमें पहुँचना और सेनाको धीरे-धीरे आनेकी आज्ञा दे स्वयं रथद्वारा तीव्र वेगसे आगे बढ़ते हुए सालवनको पार करके अयोध्याके निकट जाना, वहाँसे अयोध्याकी दुरवस्था देखते हुए आगे बढ़ना और सारथिसे अपना दु:खपूर्ण उद्गार प्रकट करते हुए राजभवनमें प्रवेश करना

राजगृहसे निकलकर पराक्रमी भरत पूर्वदिशाकी ओर चले।* उन तेजस्वी राजकुमारने मार्गमें सुदामा नदीका दर्शन करके उसे पार किया। तत्पश्चात् इक्ष्वाकुनन्दन श्रीमान् भरतने, जिसका पाट दूरतक फैला हुआ था, उस

* अयोध्यासे जो पाँच दूत चले थे, वे सीधी राहसे राजगृहमें आये थे; अत: उनके मार्गमें जो-जो स्थान पड़े थे, वे भरतके मार्गमें नहीं पड़े थे। भरतके साथ रथ और चतुरङ्गिणी सेना थी, अत: उसके निर्वाहके अनुकूल मार्गसे चलकर वे अयोध्या पहुँचे थे। इसलिये इनके मार्गमें सर्वथा नये ग्रामों और स्थानोंका उल्लेख मिलता है।

ह्लादिनी नदीको लाँघकर पश्चिमाभिमुख बहनेवाली शतद्रु नदी (सतलज) को पार किया॥ १-२॥

वहाँसे ऐलधान नामक गाँवमें जाकर वहाँ बहनेवाली नदीको पार किया। तत्पश्चात् वे अपरपर्वत नामक जनपदमें गये। वहाँ शिला नामकी नदी बहती थी, जो अपने भीतर पड़ी हुई वस्तुको शिलास्वरूप बना देती थी। उसे पार करके भरत वहाँसे आग्नेय कोणमें स्थित शल्यकर्षण नामक देशमें गये, जहाँ शरीरसे काँटेको निकालनेमें सहायता करनेवाली ओषधि उपलब्ध होती थी॥ ३॥

तदनन्तर सत्यप्रतिज्ञ भरतने पवित्र होकर शिलावहा नामक नदीका दर्शन किया (जो अपनी प्रखर धारासे शिलाखण्डों—बड़ी-बड़ी चट्टानोंको भी बहा ले जानेके कारण उक्त नामसे प्रसिद्ध थी)। उस नदीका दर्शन करके वे आगे बढ़ गये और बड़े-बड़े पर्वतोंको लाँघते हुए चैत्ररथ नामक वनमें जा पहुँचे॥ ४॥

तत्पश्चात् पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा गङ्गाकी धारा-विशेषके सङ्गमसे होते हुए उन्होंने वीरमत्स्य देशके उत्तरवर्ती देशोंमें पदार्पण किया और वहाँसे आगे बढ़कर वे भारुण्डवनके भीतर गये॥ ५॥

फिर अत्यन्त वेगसे बहनेवाली तथा पर्वतोंसे घिरी होनेके कारण अपने प्रखर प्रवाहके द्वारा कलकल नाद करनेवाली कुलिङ्गा नदीको पार करके यमुनाके तटपर पहुँचकर उन्होंने सेनाको विश्राम कराया॥ ६॥

थके हुए घोड़ोंको नहलाकर उनके अङ्गोंको शीतलता प्रदान करके उन्हें छायामें घास आदि देकर आराम करनेका अवसर दे राजकुमार भरत स्वयं भी स्नान और जलपान करके रास्तेके लिये जल साथ ले आगे बढ़े। मङ्गलाचारसे युक्त हो माङ्गलिक रथके द्वारा उन्होंने, जिसमें मनुष्योंका बहुधा आना-जाना या रहना नहीं होता था, उस विशाल वनको उसी प्रकार वेगपूर्वक पार किया, जैसे वायु आकाशको लाँघ जाती है॥ ७-८॥

तत्पश्चात् अंशुधान नामक ग्रामके पास महानदी भागीरथी गङ्गाको दुस्तर जानकर रघुनन्दन भरत तुरंत ही प्राग्वट नामसे विख्यात नगरमें आ गये॥ ९॥

प्राग्वट नगरमें गङ्गाको पार करके वे कुटिकोष्टिका नामवाली नदीके तटपर आये और सेनासहित उसको भी पार करके धर्मवर्धन नामक ग्राममें जा पहुँचे॥ १०॥

वहाँसे तोरण ग्रामके दक्षिणार्ध भागमें होते हुए जम्बूप्रस्थमें गये। तदनन्तर दशरथकुमार भरत एक रमणीय ग्राममें गये, जो वरूथके नामसे विख्यात था॥

वहाँ एक रमणीय वनमें निवास करके वे प्रातःकाल पूर्व दिशाकी ओर गये। जाते-जाते उज्जिहाना नगरीके उद्यानमें पहुँच गये, जहाँ कदम्ब नामवाले वृक्षोंकी बहुतायत थी॥ १२॥

उन कदम्बोंके उद्यानमें पहुँचकर अपने रथमें शीघ्रगामी घोड़ोंको जोतकर सेनाको धीरे-धीरे आनेकी आज्ञा दे भरत तीव्रगतिसे चल दिये॥ १३॥

तत्पश्चात् सर्वतीर्थ नामक ग्राममें एक रात रहकर उत्तानिका नदी तथा अन्य नदियोंको भी नाना प्रकारके पर्वतीय घोड़ोंद्वारा जुते हुए रथसे पार करके नरश्रेष्ठ भरतजी हस्तिपृष्ठक नामक ग्राममें जा पहुँचे। वहाँसे आगे जानेपर उन्होंने कुटिका नदी पार की। फिर लोहित्य नामक ग्राममें पहुँचकर कपीवती नामक नदीको पार किया॥ १४-१५॥

फिर एकसाल नगरके पास स्थाणुमती और विनत-ग्रामके निकट गोमती नदीको पार करके वे तुरंत ही कलिङ्गनगरके पास सालवनमें जा पहुँचे॥ १६॥

वहाँ जाते-जाते भरतके घोड़े थक गये। तब उन्हें विश्राम देकर वे रातों-रात शीघ्र ही सालवनको लाँघ गये और अरुणोदयकालमें राजा मनुकी बसायी हुई अयोध्यापुरीका उन्होंने दर्शन किया। पुरुषसिंह भरत मार्गमें सात रातें व्यतीत करके आठवें दिन अयोध्यापुरीका दर्शन कर सके थे॥ १७-१८॥

सामने अयोध्यापुरीको देखकर वे अपने सारथिसे इस प्रकार बोले—'सूत! पवित्र उद्यानोंसे सुशोभित यह यशस्विनी नगरी आज मुझे अधिक प्रसन्न नहीं दिखायी देती है। यह वही नगरी है, जहाँ निरन्तर यज्ञ-याग करनेवाले गुणवान् और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण निवास करते हैं, जहाँ बहुत-से धनियोंकी भी बस्ती है तथा राजर्षियोंमें श्रेष्ठ महाराज दशरथ जिसका पालन करते हैं, वही अयोध्या इस समय दूरसे सफेद मिट्टीके ढूहकी भाँति दीख रही है॥ १९-२०½॥

'पहले अयोध्यामें चारों ओर नर-नारियोंका महान् तुमुलनाद सुनायी पड़ता था; परंतु आज मैं उसे नहीं सुन रहा हूँ॥ २१½॥

'सायंकालके समय लोग उद्यानोंमें प्रवेश करके वहाँ क्रीड़ा करते और उस क्रीड़ासे निवृत्त होकर सब ओरसे अपने घरोंकी ओर दौड़ते थे, अतः उस समय

इन उद्यानोंकी अपूर्व शोभा होती थी, परंतु आज ये मुझे कुछ और ही प्रकारके दिखायी देते हैं। वे ही उद्यान आज कामीजनोंसे परित्यक्त होकर रोते हुए-से प्रतीत होते हैं॥ २२-२३ ॥

'सारथे! यह पुरी मुझे जंगल-सी जान पड़ती है। अब यहाँ पहलेकी भाँति घोड़ों, हाथियों तथा दूसरी-दूसरी सवारियोंसे आते-जाते हुए श्रेष्ठ मनुष्य नहीं दिखायी दे रहे हैं॥ २४॥

'जो उद्यान पहले मदमत्त एवं आनन्दमग्न भ्रमरों, कोकिलों और नर-नारियोंसे भरे प्रतीत होते थे तथा लोगोंके प्रेम-मिलनके लिये अत्यन्त गुणकारी (अनुकूल सुविधाओंसे सम्पन्न) थे, उन्हींको आज मैं सर्वथा आनन्दशून्य देख रहा हूँ। वहाँ मार्गपर वृक्षोंके जो पत्ते गिर रहे हैं, उनके द्वारा मानो वे वृक्ष करुण क्रन्दन कर रहे हैं (और उनसे उपलक्षित होनेके कारण वे उद्यान आनन्दहीन प्रतीत होते हैं)॥ २५-२६ ॥

'रागयुक्त मधुर कलरव करनेवाले मतवाले मृगों और पक्षियोंका तुमुल शब्द अभीतक सुनायी नहीं पड़ रहा है॥ २७॥

'चन्दन और अगुरुकी सुगन्धसे मिश्रित तथा धूपकी मनोहर गन्धसे व्याप्त निर्मल मनोरम समीर आज पहलेकी भाँति क्यों नहीं प्रवाहित हो रहा है?॥ २८॥

'वादनदण्डद्वारा बजायी जानेवाली भेरी, मृदङ्ग और वीणाका जो आघातजनित शब्द होता है, वह पहले अयोध्यामें सदा होता रहता था, कभी उसकी गति अवरुद्ध नहीं होती थी; परंतु आज वह शब्द न जाने क्यों बंद हो गया है?॥ २९॥

'मुझे अनेक प्रकारके अनिष्टकारी, क्रूर और अशुभसूचक अपशकुन दिखायी दे रहे हैं, जिससे मेरा मन खिन्न हो रहा है॥ ३०॥

'सारथे! इससे प्रतीत होता है कि इस समय मेरे बान्धवोंको कुशल-मङ्गल सर्वथा दुर्लभ है, तभी तो मोहका कोई कारण न होनेपर भी मेरा हृदय बैठा जा रहा है'॥ ३१॥

भरत मन-ही-मन बहुत खिन्न थे। उनका हृदय शिथिल हो रहा था। वे डरे हुए थे और उनकी सारी इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो उठी थीं, इसी अवस्थामें उन्होंने शीघ्रतापूर्वक इक्ष्वाकुवंशी राजाओंद्वारा पालित अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया॥ ३२॥

पुरीके द्वारपर सदा वैजयन्ती पताका फहरानेके कारण उस द्वारका नाम वैजयन्त रखा गया था। (यह पुरीके पश्चिम भागमें था।) उस वैजयन्तद्वारसे भरत पुरीके भीतर प्रविष्ट हुए। उस समय उनके रथके घोड़े बहुत थके हुए थे। द्वारपालोंने उठकर कहा—'महाराजकी जय हो!' फिर वे उनके साथ आगे बढ़े॥ ३३॥

भरतका हृदय एकाग्र नहीं था—वे घबराये हुए थे। अतः उन रघुकुलनन्दन भरतने साथ आये हुए द्वारपालोंको सत्कारपूर्वक लौटा दिया और केकयराज अश्वपतिके थके-माँदे सारथिसे वहाँ इस प्रकार कहा—॥ ३४॥

'निष्पाप सूत! मैं बिना कारण ही इतनी उतावलीके साथ क्यों बुलाया गया? इस बातका विचार करके मेरे हृदयमें अशुभकी आशङ्का होती है। मेरा दीनतारहित स्वभाव भी अपनी स्थितिसे भ्रष्ट-सा हो रहा है॥ ३५॥

'सारथे! अबसे पहले मैंने राजाओंके विनाशके जैसे-जैसे लक्षण सुन रखे हैं, उन सभी लक्षणोंको आज मैं यहाँ देख रहा हूँ॥ ३६॥

'मैं देखता हूँ—गृहस्थोंके घरोंमें झाड़ू नहीं लगी है। वे रूखे और श्रीहीन दिखायी देते हैं। इनकी किवाड़ें खुली हैं। इन घरोंमें बलिवैश्वदेवकर्म नहीं हो रहे हैं। ये धूपकी सुगन्धसे वञ्चित हैं। इनमें रहनेवाले कुटुम्बीजनोंको भोजन नहीं प्राप्त हुआ है तथा ये सारे गृह प्रभाहीन (उदास) दिखायी देते हैं। जान पड़ता है—इनमें लक्ष्मीका निवास नहीं है॥ ३७-३८ $\frac{1}{2}$ ॥

'देवमन्दिर फूलोंसे सजे हुए नहीं दिखायी देते। इनके आँगन झाड़े-बुहारे नहीं गये हैं। ये मनुष्योंसे सूने हो रहे हैं, अतएव इनकी पहले-जैसी शोभा नहीं हो रही है॥ ३९ $\frac{1}{2}$ ॥

'देवप्रतिमाओंकी पूजा बंद हो गयी है। यज्ञशालाओंमें यज्ञ नहीं हो रहे हैं। फूलों और मालाओंके बाजारमें आज बिकनेकी कोई वस्तुएँ नहीं शोभित हो रही हैं। यहाँ पहलेके समान बनिये भी आज नहीं दिखायी देते हैं। चिन्तासे उनका हृदय उद्विग्न जान पड़ता है और अपना व्यापार नष्ट हो जानेके कारण वे संकुचित हो रहे हैं॥ ४०-४१ $\frac{1}{2}$ ॥

'देवालयों तथा चैत्य (देव) वृक्षोंपर जिनका निवास है, वे पशु-पक्षी दीन दिखायी दे रहे हैं। मैं देखता हूँ, नगरके सभी स्त्री-पुरुषोंका मुख मलिन है, उनकी आँखोंमें आँसू भरे हैं और वे सब-के-सब दीन, चिन्तित, दुर्बल तथा उत्कण्ठित हैं'॥ ४२-४३॥

सारथिसे ऐसा कहकर अयोध्यामें होनेवाले उन अनिष्टसूचक चिह्नोंको देखते हुए भरत मन-ही-मन दु:खी हो राजमहलमें गये॥ ४४॥

जो अयोध्यापुरी कभी देवराज इन्द्रकी नगरीके समान शोभा पाती थी; उसीके चौराहे, घर और सड़कें आज सूनी दिखायी देती थीं तथा दरवाजोंकी किवाड़ें धूलि-धूसर हो रही थीं, उसकी ऐसी दुर्दशा देख भरत पूर्णत: दु:खमें निमग्न हो गये॥ ४५॥

उस नगरमें जो पहले कभी नहीं हुई थीं, ऐसी अप्रिय बातोंको देखकर महात्मा भरतने अपना मस्तक नीचेको झुका लिया, उनका हर्ष छिन गया और उन्होंने दीन-हृदयसे पिताके भवनमें प्रवेश किया॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इकहत्तरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

भरतका कैकेयीके भवनमें जाकर उसे प्रणाम करना, उसके द्वारा पिताके परलोकवासका समाचार पा दु:खी हो विलाप करना तथा श्रीरामके विषयमें पूछनेपर कैकेयीद्वारा उनका श्रीरामके वनगमनके वृत्तान्तसे अवगत होना

तदनन्तर पिताके घरमें पिताको न देखकर भरत माताका दर्शन करनेके लिये अपनी माताके महलमें गये॥ १॥

अपने परदेश गये हुए पुत्रको घर आया देख उस समय कैकेयी हर्षसे भर गयी और अपने सुवर्णमय आसनको छोड़ उछलकर खड़ी हो गयी॥ २॥

धर्मात्मा भरतने अपने उस घरमें प्रवेश करके देखा कि सारा घर श्रीहीन हो रहा है, फिर उन्होंने माताके शुभ चरणोंका स्पर्श किया॥ ३॥

अपने यशस्वी पुत्र भरतको छातीसे लगाकर कैकेयीने उनका मस्तक सूँघा और उन्हें गोदमें बिठाकर पूछना आरम्भ किया—॥ ४॥

'बेटा! तुम्हें अपने नानाके घरसे चले आज कितनी रातें व्यतीत हो गयीं? तुम रथके द्वारा बड़ी शीघ्रताके साथ आये हो। रास्तेमें तुम्हें अधिक थकावट तो नहीं हुई?॥ ५॥

'तुम्हारे नाना सकुशल तो हैं न? तुम्हारे मामा युधाजित् तो कुशलसे हैं? बेटा! जब तुम यहाँसे गये थे, तबसे लेकर अबतक सुखसे रहे हो न? ये सारी बातें मुझे बताओ'॥ ६॥

कैकेयीके इस प्रकार प्रिय वाणीमें पूछनेपर दशरथनन्दन कमलनयन भरतने माताको सब बातें बतायीं॥ ७॥

(वे बोले—) 'मा! नानाके घरसे चले मेरी यह सातवीं रात बीती है। मेरे नानाजी और मामा युधाजित् भी कुशलसे हैं॥ ८॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले केकयनरेशने मुझे जो धन-रत्न प्रदान किये हैं, उनके भारसे मार्गमें सब वाहन थक गये थे, इसलिये मैं राजकीय संदेश लेकर गये हुए दूतोंके जल्दी मचानेसे यहाँ पहले ही चला आया हूँ। अच्छा माँ, अब मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसे तुम बताओ'॥ ९-१०॥

'यह तुम्हारी शय्या सुवर्णभूषित पलंग इस समय सूना है, इसका क्या कारण है (आज यहाँ महाराज उपस्थित क्यों नहीं हैं)? ये महाराजके परिजन आज प्रसन्न क्यों नहीं जान पड़ते हैं?॥ ११॥

'महाराज (पिताजी) प्राय: माताजीके ही महलमें रहा करते थे, किंतु आज मैं उन्हें यहाँ नहीं देख रहा हूँ। मैं उन्हींका दर्शन करनेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ॥

'मैं पूछता हूँ, बताओ, पिताजी कहाँ हैं? मैं उनके पैर पकड़ूँगा। अथवा बड़ी माता कौसल्याके घरमें तो वे नहीं हैं?'॥ १३॥

कैकेयी राज्यके लोभसे मोहित हो रही थी। वह राजाका वृत्तान्त न जाननेवाले भरतसे उस घोर अप्रिय समाचारको प्रिय-सा समझती हुई इस प्रकार बताने लगी—॥ १४॥

'बेटा! तुम्हारे पिता महाराज दशरथ बड़े महात्मा, तेजस्वी, यज्ञशील और सत्पुरुषोंके आश्रयदाता थे। एक दिन समस्त प्राणियोंकी जो गति होती है, उसी गतिको वे भी प्राप्त हुए हैं'॥ १५॥

भरत धार्मिक कुलमें उत्पन्न हुए थे और उनका हृदय शुद्ध था। माताकी बात सुनकर वे पितृशोकसे

अत्यन्त पीड़ित हो सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े और 'हाय, मैं मारा गया!' इस प्रकार अत्यन्त दीन और दु:खमय वचन कहकर रोने लगे। पराक्रमी महाबाहु भरत अपनी भुजाओंको बारम्बार पृथ्वीपर पटककर गिरने और लोटने लगे॥ १६-१७॥

उन महातेजस्वी राजकुमारकी चेतना भ्रान्त और व्याकुल हो गयी। वे पिताकी मृत्युसे दु:खी और शोकसे व्याकुलचित्त होकर विलाप करने लगे—॥ १८॥

'हाय! मेरे पिताजीकी जो यह अत्यन्त सुन्दर शय्या पहले शरत्कालकी रातमें चन्द्रमासे सुशोभित होनेवाले निर्मल आकाशकी भाँति शोभा पाती थी, वही यह आज उन्हीं बुद्धिमान् महाराजसे रहित होकर चन्द्रमासे हीन आकाश और सूखे हुए समुद्रके समान श्रीहीन प्रतीत होती है'॥ १९-२०॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ भरत अपने सुन्दर मुख वस्त्रसे ढककर अपने कण्ठस्वरके साथ आँसू गिराकर मन-ही-मन अत्यन्त पीड़ित हो पृथ्वीपर पड़कर विलाप करने लगे॥ २१॥

देवतुल्य भरत शोकसे व्याकुल हो वनमें फरसेसे काटे गये साखूके तनेकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे, मतवाले हाथीके समान पुष्ट तथा चन्द्रमा या सूर्यके समान तेजस्वी अपने शोकाकुल पुत्रको इस तरह भूमिपर पड़ा देख माता कैकेयीने उन्हें उठाया और इस प्रकार कहा—॥ २२-२३॥

'राजन्! उठो! उठो! महायशस्वी कुमार! तुम इस तरह यहाँ धरतीपर क्यों पड़े हो? तुम्हारे-जैसे सभाओंमें सम्मानित होनेवाले सत्पुरुष शोक नहीं किया करते हैं॥ २४॥

'बुद्धिसम्पन्न पुत्र! जैसे सूर्यमण्डलमें प्रभा निश्चलरूपसे रहती है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि सुस्थिर है। वह दान और यज्ञमें लगनेकी अधिकारिणी है; क्योंकि सदाचार और वेदवाक्योंका अनुसरण करनेवाली है'॥ २५॥

भरत पृथ्वीपर लोटते-पोटते बहुत देरतक रोते रहे। तत्पश्चात् अधिकाधिक शोकसे आकुल होकर वे मातासे इस प्रकार बोले—॥ २६॥

'मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञका अनुष्ठान करेंगे—यही सोचकर मैंने बड़े हर्षके साथ वहाँसे यात्रा की थी॥ २७॥

'किंतु यहाँ आनेपर सारी बातें मेरी आशाके विपरीत हो गयीं। मेरा हृदय फटा जा रहा है; क्योंकि सदा अपने प्रिय और हितमें लगे रहनेवाले पिताजीको मैं नहीं देख रहा हूँ॥ २८॥

'मा! महाराजको ऐसा कौन-सा रोग हो गया था, जिससे वे मेरे आनेके पहले ही चल बसे? श्रीराम आदि सब भाई धन्य हैं, जिन्होंने स्वयं उपस्थित रहकर पिताजीका अन्त्येष्टि-संस्कार किया॥ २९॥

'निश्चय ही मेरे पूज्य पिता यशस्वी महाराजको मेरे यहाँ आनेका कुछ पता नहीं है, अन्यथा वे शीघ्र ही मेरे मस्तकको झुकाकर उसे प्यारसे सूँघते॥ ३०॥

'हा! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले मेरे पिताका वह कोमल हाथ कहाँ है, जिसका स्पर्श मेरे लिये बहुत ही सुखदायक था? वे उसी हाथसे मेरे धूलिधूसर शरीरको बारंबार पोंछा करते थे॥ ३१॥

'अब जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं तथा जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ, अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले उन श्रीरामचन्द्रजीको तुम शीघ्र ही मेरे आनेकी सूचना दो॥ ३२॥

'धर्मके ज्ञाता श्रेष्ठ पुरुषके लिये बड़ा भाई पिताके समान होता है। मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं॥ ३३॥

'आर्ये! धर्मका आचरण जिनका स्वभाव बन गया था तथा जो बड़ी दृढ़ताके साथ उत्तम व्रतका पालन करते थे, वे मेरे सत्यपराक्रमी और धर्मज्ञ पिता महाराज दशरथ अन्तिम समयमें क्या कह गये थे? मेरे लिये जो उनका अन्तिम संदेश हो उसे मैं सुनना चाहता हूँ'॥ ३४½॥

भरतके इस प्रकार पूछनेपर कैकेयीने सब बात ठीक-ठीक बता दी। वह कहने लगी—'बेटा! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे महात्मा पिता महाराजने 'हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार विलाप करते हुए परलोककी यात्रा की थी॥ ३५-३६॥

'जैसे पाशोंसे बँधा हुआ महान् गज विवश हो जाता है, उसी प्रकार कालधर्मके वशीभूत हुए तुम्हारे पिताने अन्तिम वचन इस प्रकार कहा था—॥ ३७॥

'जो लोग सीताके साथ पुन: लौटकर आये हुए महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणको देखेंगे, वे ही कृतार्थ होंगे'॥

माताके द्वारा यह दूसरी अप्रिय बात कही जानेपर भरत और भी दु:खी ही हुए। उनके मुखपर विषाद छा

गया और उन्होंने पुनः मातासे पूछा— ॥ ३९ ॥

'मा! माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस अवसरपर भाई लक्ष्मण और सीताके साथ कहाँ चले गये हैं?' ॥ ४० ॥

इस प्रकार पूछनेपर उनकी माता कैकेयीने एक साथ ही प्रिय बुद्धिसे वह अप्रिय संवाद यथोचित रीतिसे सुनाना आरम्भ किया— ॥ ४१ ॥

'बेटा! राजकुमार श्रीराम वल्कल-वस्त्र धारण करके सीताके साथ दण्डकवनमें चले गये हैं। लक्ष्मणने भी उन्हींका अनुसरण किया है' ॥ ४२ ॥

यह सुनकर भरत डर गये, उन्हें अपने भाईके चरित्रपर शङ्का हो आयी। (वे सोचने लगे—श्रीराम कहीं धर्मसे गिर तो नहीं गये?) अपने वंशकी महत्ता (धर्मपरायणता) का स्मरण करके वे कैकेयीसे इस प्रकार पूछने लगे— ॥ ४३ ॥

'मा! श्रीरामने किसी कारणवश ब्राह्मणका धन तो नहीं हर लिया था? किसी निष्पाप धनी या दरिद्रकी हत्या तो नहीं कर डाली थी? ॥ ४४ ॥

'राजकुमार श्रीरामका मन किसी परायी स्त्रीकी ओर तो नहीं चला गया? किस अपराधके कारण भैया श्रीरामको दण्डकारण्यमें जानेके लिये निर्वासित कर दिया गया है?' ॥ ४५ ॥

तब चपल स्वभाववाली भरतकी माता कैकेयीने उस विवेकशून्य चञ्चल नारीस्वभावके कारण ही अपनी करतूतको ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया ॥ ४६ ॥

महात्मा भरतके पूर्वोक्त रूपसे पूछनेपर व्यर्थ ही अपनेको बड़ी विदुषी माननेवाली कैकेयीने बड़े हर्षमें भरकर कहा— ॥ ४७ ॥

'बेटा! श्रीरामने किसी कारणवश किञ्चिन्मात्र भी ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं किया है। किसी निरपराध धनी या दरिद्रकी हत्या भी उन्होंने नहीं की है। श्रीराम कभी किसी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डालते हैं ॥ ४८ ॥

'बेटा! (उनके वनमें जानेका कारण इस प्रकार है)—मैंने सुना था कि अयोध्यामें श्रीरामका राज्याभिषेक होने जा रहा है, तब मैंने तुम्हारे पितासे तुम्हारे लिये राज्य और श्रीरामके लिये वनवासकी प्रार्थना की ॥ ४९ ॥

'उन्होंने अपने सत्यप्रतिज्ञ स्वभावके अनुसार मेरी माँग पूरी की। श्रीराम लक्ष्मण और सीताके साथ वनको भेज दिये गये, फिर अपने प्रिय पुत्र श्रीरामको न देखकर वे महायशस्वी महाराज पुत्रशोकसे पीड़ित हो परलोकवासी हो गये ॥ ५०-५१ ॥

'धर्मज्ञ! अब तुम राजपद स्वीकार करो। तुम्हारे लिये ही मैंने इस प्रकारसे यह सब कुछ किया है ॥ ५२ ॥

'बेटा! शोक और संताप न करो, धैर्यका आश्रय लो। अब यह नगर और निष्कण्टक राज्य तुम्हारे ही अधीन है ॥ ५३ ॥

'अतः वत्स! अब विधि-विधानके ज्ञाता वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंके साथ तुम उदार हृदयवाले महाराजका अन्त्येष्टि-संस्कार करके इस पृथ्वीके राज्यपर अपना अभिषेक कराओ' ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

भरतका कैकेयीको धिक्कारना और उसके प्रति महान् रोष प्रकट करना

पिताके परलोकवास और दोनों भाइयोंके वनवासका समाचार सुनकर भरत दुःखसे संतप्त हो उठे और इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

'हाय! तूने मुझे मार डाला। मैं पितासे सदाके लिये बिछुड़ गया और पितृतुल्य बड़े भाईसे भी बिलग हो गया। अब तो मैं शोकमें डूब रहा हूँ, मुझे यहाँ राज्य लेकर क्या करना है? ॥ २ ॥

'तूने राजाको परलोकवासी तथा श्रीरामको तपस्वी बनाकर मुझे दुःख-पर-दुःख दिया है, घावपर नमक-सा छिड़क दिया है ॥ ३ ॥

'तू इस कुलका विनाश करनेके लिये कालरात्रि बनकर आयी थी। मेरे पिताने तुझे अपनी पत्नी क्या बनाया, दहकते हुए अङ्गारको हृदयसे लगा लिया था; किंतु उस समय यह बात उनकी समझमें नहीं आयी थी ॥ ४ ॥

'पापपर ही दृष्टि रखनेवाली! कुलकलङ्किनी! तूने मेरे महाराजको कालके गालमें डाल दिया और मोहवश इस कुलका सुख सदाके लिये छीन लिया ॥ ५ ॥

'तुझे पाकर मेरे सत्यप्रतिज्ञ महायशस्वी पिता महाराज दशरथ इन दिनों दुःसह दुःखसे संतप्त होकर

प्राण त्यागनेको विवश हुए हैं॥ ६॥

'बता, तूने मेरे धर्मवत्सल पिता महाराज दशरथका विनाश क्यों किया? मेरे बड़े भाई श्रीरामको क्यों घरसे निकाला और वे भी क्यों (तेरे ही कहनेसे) वनको चले गये?॥ ७॥

'कौसल्या और सुमित्रा भी मेरी माता कहलानेवाली तुझ कैकेयीको पाकर पुत्रशोकसे पीड़ित हो गयीं। अब उनका जीवित रहना अत्यन्त कठिन है॥ ८॥

'बड़े भैया श्रीराम धर्मात्मा हैं; गुरुजनोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये—इसे वे अच्छी तरह जानते हैं, इसलिये उनका अपनी माताके प्रति जैसा बर्ताव था, वैसा ही उत्तम व्यवहार वे तेरे साथ भी करते थे॥ ९॥

'मेरी बड़ी माता कौसल्या भी बड़ी दूरदर्शिनी हैं। वे धर्मका ही आश्रय लेकर तेरे साथ बहिनका-सा बर्ताव करती हैं॥ १०॥

'पापिनि! उनके महात्मा पुत्रको चीर और वल्कल पहनाकर तूने वनमें रहनेके लिये भेज दिया। फिर भी तुझे शोक क्यों नहीं हो रहा है॥ ११॥

'श्रीराम किसीकी बुराई नहीं देखते। वे शूरवीर, पवित्रात्मा और यशस्वी हैं। उन्हें चीर पहनाकर वनवास दे देनेमें तू कौन-सा लाभ देख रही है?॥ १२॥

'तू लोभिन है। मैं समझता हूँ, इसीलिये तुझे यह पता नहीं है कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है, तभी तूने राज्यके लिये यह महान् अनर्थ कर डाला है॥ १३॥

'मैं पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणको न देखकर किस शक्तिके प्रभावसे इस राज्यकी रक्षा कर सकता हूँ? (मेरे बल तो मेरे भाई ही हैं)॥ १४॥

'मेरे धर्मात्मा पिता महाराज दशरथ भी सदा उन महातेजस्वी बलवान् श्रीरामका ही आश्रय लेते थे (उन्हींसे अपने लोक-परलोककी सिद्धिकी आशा रखते थे), ठीक उसी तरह जैसे मेरुपर्वत अपनी रक्षाके लिये अपने ऊपर उत्पन्न हुए गहन वनका ही आश्रय लेता है (यदि वह दुर्गम वनसे घिरा हुआ न हो तो दूसरे लोग निश्चय ही उसपर आक्रमण कर सकते हैं)॥ १५॥

'यह राज्यका भार, जिसे किसी महाधुरंधरने धारण किया था, मैं कैसे, किस बलसे धारण कर सकता हूँ? जैसे कोई छोटा-सा बछड़ा बड़े-बड़े बैलोंद्वारा ढोये जानेयोग्य महान् भारको नहीं खींच सकता, उसी प्रकार यह राज्यका महान् भार मेरे लिये असह्य है॥ १६॥

'अथवा नाना प्रकारके उपायों तथा बुद्धिबलसे मुझमें राज्यके भरण-पोषणकी शक्ति हो तो भी केवल अपने बेटेके लिये राज्य चाहनेवाली तुझ कैकेयीकी मन:कामना पूरी नहीं होने दूँगा॥ १७॥

'यदि श्रीराम तुझे सदा अपनी माताके समान नहीं देखते होते तो तेरी-जैसी पापपूर्ण विचारवाली माताका त्याग करनेमें मुझे तनिक भी हिचक नहीं होती॥ १८॥

'उत्तम चरित्रसे गिरी हुई पापिनि! मेरे पूर्वजोंने जिसकी सदा निन्दा की है, वह पापपर ही दृष्टि रखनेवाली बुद्धि तुझमें कैसे उत्पन्न हो गयी?॥ १९॥

'इस कुलमें जो सबसे बड़ा होता है, उसीका राज्याभिषेक होता है; दूसरे भाई सावधानीके साथ बड़ेकी आज्ञाके अधीन रहकर कार्य करते हैं॥ २०॥

'क्रूर स्वभाववाली कैकेयि! मेरी समझमें तू राजधर्मपर दृष्टि नहीं रखती है अथवा उसे बिलकुल नहीं जानती। राजाओंके बर्तावका जो सनातन स्वरूप है, उसका भी तुझे ज्ञान नहीं है॥ २१॥

'राजकुमारोंमें जो ज्येष्ठ होता है, सदा उसीका राजाके पदपर अभिषेक किया जाता है। सभी राजाओंके यहाँ समान रूपसे इस नियमका पालन होता है। इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंके कुलमें इसका विशेष आदर है॥ २२॥

'जिनकी एकमात्र धर्मसे ही रक्षा होती आयी है तथा जो कुलोचित सदाचारके पालनसे ही सुशोभित हुए हैं, उनका यह चरित्रविषयक अभियान आज तुझे पाकर—तेरे सम्बन्धके कारण दूर हो गया॥ २३॥

'महाभागे! तेरा जन्म भी तो महाराज केकयके कुलमें हुआ है, फिर तेरे हृदयमें यह निन्दित बुद्धिमोह कैसे उत्पन्न हो गया?॥ २४॥

'अरी! तेरा विचार बड़ा ही पापपूर्ण है। मैं तेरी इच्छा कदापि नहीं पूर्ण करूँगा। तूने मेरे लिये उस विपत्तिकी नींव डाल दी है, जो मेरे प्राणतक ले सकती है॥ २५॥

'यह ले, मैं अभी तेरा अप्रिय करनेके लिये तुल गया हूँ। मैं वनसे निष्पाप भ्राता श्रीरामको, जो स्वजनोंके प्रिय हैं, लौटा लाऊँगा॥ २६॥

श्रीरामको लौटा लाकर उद्दीप्त तेजवाले उन्हीं महापुरुषका दास बनकर स्वस्थचित्तसे जीवन व्यतीत करूँगा'॥ २७॥

ऐसा कहकर महात्मा भरत शोकसे पीड़ित हो पुन: जली-कटी बातोंसे कैकेयीको व्यथित करते हुए उसे जोर-जोरसे फटकारने लगे, मानो मन्दराचलकी गुहामें बैठा हुआ सिंह गरज रहा हो॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

भरतका कैकेयीको कड़ी फटकार देना

इस प्रकार माताकी निन्दा करके भरत उस समय महान् रोषावेशसे भर गये और फिर कठोर वाणीमें कहने लगे—॥ १॥

'दृष्टतापूर्ण बर्ताव करनेवाली क्रूरहृदया कैकेयि! तू राज्यसे भ्रष्ट हो जा। धर्मने तेरा परित्याग कर दिया है, अत: अब तू मरे हुए महाराजके लिये रोना मत, (क्योंकि तू पत्नीधर्मसे गिर चुकी है) अथवा मुझे मरा हुआ समझकर तू जन्मभर पुत्रके लिये रोया कर॥ २॥

'श्रीरामने अथवा अत्यन्त धर्मात्मा महाराज (पिताजी) ने तेरा क्या बिगाड़ा था, जिससे एक साथ ही उन्हें तुम्हारे कारण वनवास और मृत्युका कष्ट भोगना पड़ा?॥ ३॥

कैकेयि! तूने इस कुलका विनाश करनेके कारण भ्रूणहत्याका पाप अपने सिरपर लिया है, इसलिये तू नरकमें जा और पिताजीका लोक तुझे न मिले॥ ४॥

'तूने इस घोर कर्मके द्वारा समस्त लोकोंके प्रिय श्रीरामको देशनिकाला देकर जो ऐसा बड़ा पाप किया है, उसने मेरे लिये भी भय उपस्थित कर दिया है॥ ५॥

'तेरे कारण मेरे पिताकी मृत्यु हुई, श्रीरामको वनका आश्रय लेना पड़ा और मुझे भी तूने इस जीवजगत्में अपयशका भागी बना दिया॥ ६॥

'राज्यके लोभमें पड़कर क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाली दुराचारिणी पतिघातिनि! तू माताके रूपमें मेरी शत्रु है। तुझे मुझसे बात नहीं करनी चाहिये॥ ७॥

'कौसल्या, सुमित्रा तथा जो अन्य मेरी माताएँ हैं, वे सब तुझ कुलकलङ्किनीके कारण महान् दु:खमें पड़ गयी हैं॥ ८॥

'तू बुद्धिमान् धर्मराज अश्वपतिकी कन्या नहीं है। तू उनके कुलमें कोई राक्षसी पैदा हो गयी है, जो पिताके वंशका विध्वंस करनेवाली है॥ ९॥

'तूने सदा सत्यमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा वीर श्रीरामको जो वनमें भेज दिया और तेरे कारण जो मेरे पिता स्वर्गवासी हो गये, इन सब कुकृत्योंद्वारा तूने प्रधान रूपसे जिस पापका अर्जन किया है, वह पाप मुझमें आकर अपना फल दिखा रहा है; इसलिये मैं पितृहीन हो गया, अपने दो भाइयोंसे बिछुड़ गया और समस्त जगत्के लोगोंके लिये अप्रिय बन गया॥ १०-११॥

'पापपूर्ण विचार रखनेवाली नरकगामिनी कैकेयि! धर्मपरायणा माता कौसल्याको पति और पुत्रसे वञ्चित करके अब तू किस लोकमें जायगी?॥ १२॥

'क्रूरहृदये! कौसल्यापुत्र श्रीराम मेरे बड़े भाई और पिताके तुल्य हैं। वे जितेन्द्रिय और बन्धुओंके आश्रयदाता हैं। क्या तू उन्हें इस रूपमें नहीं जानती है?॥ १३॥

'पुत्र माताके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और हृदयसे उत्पन्न होता है, इसलिये वह माताको अधिक प्रिय होता है। अन्य भाई-बन्धु केवल प्रिय ही होते हैं (किंतु पुत्र प्रियतर होता है)॥ १४॥

'एक समयकी बात है कि धर्मको जाननेवाली देव-सम्मानित सुरभि (कामधेनु) ने पृथ्वीपर अपने दो पुत्रोंको देखा, जो हल जोतते-जोतते अचेत हो गये थे॥ १५॥

'मध्याह्नका समय होनेतक लगातार हल जोतनेसे वे बहुत थक गये थे। पृथ्वीपर अपने उन दोनों पुत्रोंको ऐसी दुर्दशामें पड़ा देख सुरभि पुत्रशोकसे रोने लगी। उसके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये॥ १६॥

'उसी समय महात्मा देवराज इन्द्र सुरभिके नीचेसे होकर कहीं जा रहे थे। उनके शरीरपर कामधेनुके दो बूँद सुगन्धित आँसू गिर पड़े॥ १७॥

'जब इन्द्रने ऊपर दृष्टि डाली, तब देखा— आकाशमें सुरभि खड़ी हैं और अत्यन्त दु:खी हो दीनभावसे रो रही हैं॥ १८॥

'यशस्विनी सुरभिको शोकसे संतप्त हुई देख

वज्रधारी देवराज इन्द्र उद्विग्न हो उठे और हाथ जोड़कर बोले— ॥ १९ ॥

'सबका हित चाहनेवाली देवि! हमलोगोंपर कहींसे कोई महान् भय तो नहीं उपस्थित हुआ है? बताओ, किस कारणसे तुम्हें यह शोक प्राप्त हुआ है?॥ २० ॥

'बुद्धिमान् देवराज इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर बोलनेमें चतुर और धीरस्वभाववाली सुरभिने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ २१ ॥

'देवेश्वर! पाप शान्त हो। तुमलोगोंपर कहींसे कोई भय नहीं है। मैं तो अपने इन दोनों पुत्रोंको विषम अवस्था (घोर सङ्कट) में मग्न हुआ देख शोक कर रही हूँ॥ २२ ॥

'ये दोनों बैल अत्यन्त दुर्बल और दुःखी हैं, सूर्यकी किरणोंसे बहुत तप गये हैं और ऊपरसे वह दुष्ट किसान इन्हें पीट रहा है॥ २३ ॥

'मेरे शरीरसे इनकी उत्पत्ति हुई है। ये दोनों भारसे पीड़ित और दुःखी हैं, इसीलिये इन्हें देखकर मैं शोकसे संतप्त हो रही हूँ; क्योंकि पुत्रके समान प्रिय दूसरा कोई नहीं है'॥ २४ ॥

'जिनके सहस्रों पुत्रोंसे यह सारा जगत् भरा हुआ है, उन्हीं कामधेनुको इस तरह रोती देख इन्द्रने यह माना कि पुत्रसे बढ़कर और कोई नहीं है॥ २५ ॥

'देवेश्वर इन्द्रने अपने शरीरपर उस पवित्र गन्धवाले अश्रुपातको देखकर देवी सुरभिको इस जगत्में सबसे श्रेष्ठ माना॥ २६ ॥

'जिनका चरित्र समस्त प्राणियोंके लिये समान रूपसे हितकर और अनुपम है, जो अभीष्ट दानरूप ऐश्वर्यशक्तिसे सम्पन्न, सत्यरूप प्रधान गुणसे युक्त तथा लोकरक्षाकी कामनासे कार्यमें प्रवृत्त होनेवाली हैं और जिनके सहस्रों पुत्र हैं, वे कामधेनु भी जब अपने दो पुत्रोंके लिये उनके स्वाभाविक चेष्टामें रत होनेपर भी कष्ट पानेके कारण शोक करती हैं तब जिनके एक ही पुत्र है, वे माता कौसल्या श्रीरामके बिना कैसे जीवित रहेंगी?॥ २७-२८ ॥

'इकलौते बेटेवाली इन सती-साध्वी कौसल्याका तूने उनके पुत्रसे बिछोह करा दिया है, इसलिये तू सदा ही इस लोक और परलोकमें भी दुःख ही पायेगी॥ २९ ॥

'मैं तो यह राज्य लौटाकर भाईकी पूजा करूँगा और यह सारा अन्त्येष्टिसंस्कार आदि करके पिताका भी पूर्णरूपसे पूजन करूँगा तथा निःसंदेह मैं वही कर्म करूँगा, जो (तेरे दिये हुए कलङ्कको मिटानेवाला और) मेरे यशको बढ़ानेवाला हो॥ ३० ॥

'महाबली महाबाहु कोसलनरेश श्रीरामको यहाँ लौटा लाकर मैं स्वयं ही मुनिजनसेवित वनमें प्रवेश करूँगा॥

'पापपूर्ण संकल्प करनेवाली पापिनि! पुरवासी मनुष्य आँसू बहाते हुए अवरुद्धकण्ठ हो मुझे देखें और मैं तेरे किये हुए इस पापका बोझ ढोता रहूँ—यह मुझसे नहीं हो सकता॥ ३२ ॥

'अब तू जलती आगमें प्रवेश कर जा, या स्वयं दण्डकारण्यमें चली जा अथवा गलेमें रस्सी बाँधकर प्राण दे दे, इसके सिवा तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है॥ ३३ ॥

'सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी जब अयोध्याकी भूमिपर पदार्पण करेंगे, तभी मेरा कलङ्क दूर होगा और तभी मैं कृतकृत्य होऊँगा'॥ ३४॥

यह कहकर भरत वनमें तोमर और अंकुशद्वारा पीड़ित किये गये हाथीकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए साँपकी भाँति लम्बी साँस खींचने लगे॥ ३५ ॥

शत्रुओंको तपानेवाले राजकुमार भरत उत्सव समाप्त होनेपर नीचे गिराये गये शचीपति इन्द्रके ध्वजकी भाँति उस समय पृथ्वीपर पड़े थे, उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे, वस्त्र ढीले पड़ गये थे और सारे आभूषण टूटकर बिखर गये थे॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

कौसल्याके सामने भरतका शपथ खाना

बहुत देरके बाद होशमें आनेपर जब पराक्रमी भरत उठे, तब आँसूभरे नेत्रोंसे दीन बनी बैठी हुई माताकी ओर देखकर मन्त्रियोंके बीचमें उसकी निन्दा करते हुए बोले— ॥ १$\frac{1}{2}$ ॥

'मन्त्रिवरो! मैं राज्य नहीं चाहता और न मैंने कभी मातासे इसके लिये बातचीत ही की है। महाराजने जिस अभिषेकका निश्चय किया था, उसका भी मुझे पता नहीं था; क्योंकि उस समय मैं शत्रुघ्नके साथ दूर देशमें था॥ २-३॥

'महात्मा श्रीरामके वनवास और सीता तथा लक्ष्मणके निर्वासनका भी मुझे ज्ञान नहीं है कि वह कब और कैसे हुआ?'॥ ४॥

महात्मा भरत जब इस प्रकार अपनी माताको कोस रहे थे, उस समय उनकी आवाजको पहचानकर कौसल्याने सुमित्रासे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'क्रूर कर्म करनेवाली कैकेयीके पुत्र भरत आ गये हैं। वे बड़े दूरदर्शी हैं, अतः मैं उन्हें देखना चाहती हूँ'॥ ६॥

सुमित्रासे ऐसा कहकर उदास मुखवाली, दुर्बल और अचेत-सी हुई कौसल्या जहाँ भरत थे, उस स्थानपर जानेके लिये काँपती हुई चलीं॥ ७॥

उसी समय उधरसे राजकुमार भरत भी शत्रुघ्नको साथ लिये उसी मार्गसे चले आ रहे थे, जिससे कौसल्याके भवनमें आना-जाना होता था॥ ८॥

तदनन्तर शत्रुघ्न और भरतने दूरसे ही देखा कि माता कौसल्या दुःखसे व्याकुल और अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी हैं। यह देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे दौड़कर उनकी गोदीसे लग गये तथा फूट-फूटकर रोने लगे। आर्या मनस्विनी कौसल्या भी दुःखसे रो पड़ीं और उन्हें छातीसे लगाकर अत्यन्त दुःखित हो भरतसे इस प्रकार बोलीं—॥ ९-१०॥

'बेटा! तुम राज्य चाहते थे न? सो यह निष्कण्टक राज्य तुम्हें प्राप्त हो गया; किंतु खेद यही है कि कैकेयीने जल्दीके कारण बड़े क्रूर कर्मके द्वारा इसे पाया है॥

'क्रूरतापूर्ण दृष्टि रखनेवाली कैकेयी न जाने इसमें कौन-सा लाभ देखती थी कि उसने मेरे बेटेको चीर-वस्त्र पहनाकर वनमें भेज दिया और उसे वनवासी बना दिया॥ १२॥

'अब कैकेयीको चाहिये कि मुझे भी शीघ्र ही उसी स्थानपर भेज दे, जहाँ इस समय सुवर्णमयी नाभिसे सुशोभित मेरे महायशस्वी पुत्र श्रीराम हैं॥ १३॥

'अथवा सुमित्राको साथ लेकर और अग्निहोत्रको आगे करके मैं स्वयं ही सुखपूर्वक उस स्थानको प्रस्थान करूँगी, जहाँ श्रीराम निवास करते हैं॥ १४॥

'अथवा तुम स्वयं ही अपनी इच्छाके अनुसार अब मुझे वहीं पहुँचा दो, जहाँ मेरे पुत्र पुरुषसिंह श्रीराम तप करते हैं॥ १५॥

'यह धन-धान्यसे सम्पन्न तथा हाथी, घोड़े एवं रथोंसे भरा-पूरा विस्तृत राज्य कैकेयीने (श्रीरामसे छीनकर) तुम्हें दिलाया है'॥ १६॥

इस तरहकी बहुत-सी कठोर बातें कहकर जब कौसल्याने निरपराध भरतकी भर्त्सना की, तब उनको बड़ी पीड़ा हुई; मानो किसीने घावमें सूई चुभो दी हो॥ १७॥

वे कौसल्याके चरणोंमें गिर पड़े, उस समय उनके चित्तमें बड़ी घबराहट थी। वे बारम्बार विलाप करके अचेत हो गये। थोड़ी देर बाद उन्हें फिर चेत हुआ॥ १८॥

तब भरत अनेक प्रकारके शोकोंसे घिरी हुई और पूर्वोक्त रूपसे विलाप करती हुई माता कौसल्यासे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले—॥ १९॥

'आर्ये! यहाँ जो कुछ हुआ है, इसकी मुझे बिलकुल जानकारी नहीं थी। मैं सर्वथा निरपराध हूँ, तो भी आप क्यों मुझे दोष दे रही हैं? आप तो जानती हैं कि श्रीरघुनाथजीमें मेरा कितना प्रगाढ़ प्रेम है॥ २०॥

'जिसकी अनुमतिसे सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ, आर्य श्रीरामजी वनमें गये हों, उस पापीकी बुद्धि कभी गुरुसे सीखे हुए शास्त्रोंमें बताये गये मार्गका अनुसरण करनेवाली न हो॥ २१॥

'जिसकी सलाहसे बड़े भाई श्रीरामको वनमें जाना पड़ा हो, वह अत्यन्त पापियों—हीन जातियोंका सेवक हो। सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे और सोयी हुई गौओंको लातसे मारे (अर्थात् वह इन पापकर्मोंके दुष्परिणामका भागी हो)॥ २२॥

'जिसकी सम्मतिसे भैया श्रीरामने वनको प्रस्थान किया हो, उसको वही पाप लगे, जो सेवकसे भारी काम कराकर उसे समुचित वेतन न देनेवाले स्वामीको लगता है॥ २३॥

'जिसके कहनेसे आर्य श्रीरामको वनमें भेजा गया हो, उसको वही पाप लगे, जो समस्त प्राणियोंका पुत्रकी भाँति पालन करनेवाले राजासे द्रोह करनेवाले लोगोंको लगता है॥ २४॥

'जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह उसी अधर्मका भागी हो, जो प्रजासे उसकी आयका

छठा भाग लेकर भी प्रजावर्गकी रक्षा न करनेवाले राजाको प्राप्त होता है॥ २५॥

'जिसकी सलाहसे भैया श्रीरामको वनमें जाना पड़ा हो, उसे वही पाप लगे, जो यज्ञमें कष्ट सहनेवाले ऋत्विजोंको दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछे इनकार कर देनेवाले लोगोंको लगता है॥ २६॥

'हाथी, घोड़े और रथोंसे भरे एवं अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे व्याप्त संग्राममें सत्पुरुषोंके धर्मका पालन न करनेवाले योद्धाओंको जो पाप लगता है, वही उस मनुष्यको भी प्राप्त हो, जिसकी सम्मतिसे आर्य श्रीरामजीको वनमें भेजा गया हो॥ २७॥

'जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामको वनमें प्रस्थान करना पड़ा है, वह दुष्टात्मा बुद्धिमान् गुरुके द्वारा यत्नपूर्वक प्राप्त हुआ शास्त्रके सूक्ष्म विषयका उपदेश भुला दे॥ २८॥

'जिसकी सलाहसे बड़े भैया श्रीरामको वनमें भेजा गया हो, वह चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी तथा विशाल भुजाओं और कंधोंसे सुशोभित श्रीरामचन्द्रजीको राज्यसिंहासनपर विराजमान न देख सके—वह राजा श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित रह जाय॥ २९॥

'जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामचन्द्रजी वनमें गये हों, वह निर्दय मनुष्य खीर, खिचड़ी और बकरीके दूधको देवताओं, पितरों एवं भगवान्‌को निवेदन किये बिना व्यर्थ करके खाय॥ ३०॥

'जिसकी सम्मतिसे श्रीरामचन्द्रजीको वनमें जाना पड़ा हो, वह पापी मनुष्य गौओंके शरीरका पैरसे स्पर्श, गुरुजनोंकी निन्दा तथा मित्रके प्रति अत्यन्त द्रोह करे॥ ३१॥

'जिसके कहनेसे बड़े भैया श्रीराम वनमें गये हों, वह दुष्टात्मा गुप्त रखनेके विश्वासपर एकान्तमें कहे हुए किसीके दोषको दूसरोंपर प्रकट कर दे (अर्थात् उसे विश्वासघात करनेका पाप लगे)॥ ३२॥

'जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह मनुष्य उपकार न करनेवाला, कृतघ्न, सत्पुरुषोंद्वारा परित्यक्त, निर्लज्ज और जगत्‌में सबके द्वेषका पात्र हो॥

'जिसकी सलाहसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह अपने घरमें पुत्रों, दासों और भृत्योंसे घिरा रहकर भी अकेले ही मिष्टान्न भोजन करनेके पापका भागी हो॥

'जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीरामका वनगमन हुआ हो, वह अपने अनुरूप पत्नीको न पाकर अग्निहोत्र आदि धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान किये बिना संतानहीन अवस्थामें ही मर जाय॥ ३५॥

'जिसकी सम्मतिसे मेरे बड़े भाई श्रीराम वनमें गये हों, वह सदा दु:खी रहकर अपनी धर्मपत्नीसे होनेवाली संतानका मुँह न देखे तथा सम्पूर्ण आयुका उपभोग किये बिना ही मर जाय॥ ३६॥

'राजा, स्त्री, बालक और वृद्धोंका वध करने तथा भृत्योंको त्याग देनेमें जो पाप होता है, वही पाप उसे भी लगे॥ ३७॥

'जिसकी सम्मतिसे श्रीरामका वनगमन हुआ हो, वह सदैव लाह, मधु, मांस, लोहा और विष आदि निषिद्ध वस्तुओंको बेचकर कमाये हुए धनसे अपने भरण-पोषणके योग्य कुटुम्बीजनोंका पालन करे॥ ३८॥

'जिसकी रायसे श्रीराम वनमें जानेको विवश हुए हों, वह शत्रुपक्षको भय देनेवाले युद्धके प्राप्त होनेपर उसमें पीठ दिखाकर भागता हुआ मारा जाय॥ ३९॥

'जिसकी सम्मतिसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रसे अपने शरीरको ढककर हाथमें खप्पर ले भीख माँगता हुआ उन्मत्तकी भाँति पृथ्वीपर घूमता फिरे॥ ४०॥

'जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजीको वनमें जाना पड़ा हो, वह काम-क्रोधके वशीभूत होकर सदा ही मद्यपान, स्त्रीसमागम और द्यूतक्रीड़ामें आसक्त रहे॥ ४१॥

'जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, उसका मन कभी धर्ममें न लगे, वह अधर्मका ही सेवन करे और अपात्रको धन दान करे॥ ४२॥

'जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामका वन-गमन हुआ हो, उसके द्वारा सहस्रोंकी संख्यामें संचित किये गये नाना प्रकारके धन-वैभवोंको लुटेरे लूट ले जायँ॥ ४३॥

'जिसके कहनेसे भैया श्रीरामको वनमें भेजा गया हो, उसे वही पाप लगे, जो दोनों संध्याओंके समय सोये हुए पुरुषको प्राप्त होता है। आग लगानेवाले मनुष्यको जो पाप लगता है, गुरुपत्नीगामीको जिस पापकी प्राप्ति होती है तथा मित्रद्रोह करनेसे जो पाप प्राप्त होता है, वही पाप उसे भी लगे॥ ४४-४५॥

'जिसकी सम्मतिसे आर्य श्रीरामको वनमें जाना पड़ा है, वह देवताओं, पितरों और माता-पिताकी सेवा कभी न करे (अर्थात् उनकी सेवाके पुण्यसे वञ्चित रह जाय)॥ ४६॥

'जिसकी अनुमतिसे विवश होकर भैया श्रीरामने वनमें पदार्पण किया है, वह पापी आज ही सत्पुरुषोंके लोकसे, सत्पुरुषोंकी कीर्तिसे तथा सत्पुरुषोंद्वारा सेवित

कर्मसे शीघ्र भ्रष्ट हो जाय॥ ४७॥

'जिसकी सम्मतिसे बड़ी-बड़ी बाँह और विशाल वक्षवाले आर्य श्रीरामको वनमें जाना पड़ा है, वह माताकी सेवा छोड़कर अनर्थके पथमें स्थित रहे॥ ४८॥

'जिसकी सलाहसे श्रीरामका वनगमन हुआ हो, वह दरिद्र हो, उसके यहाँ भरण-पोषण पानेके योग्य पुत्र आदिकी संख्या बहुत अधिक हो तथा वह ज्वर-रोगसे पीड़ित होकर सदा क्लेश भोगता रहे॥ ४९॥

'जिसकी अनुमति पाकर आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह आशा लगाये ऊपरकी ओर आँख उठाकर दाताके मुँहकी ओर देखनेवाले दीन याचकोंकी आशाको निष्फल कर दे॥ ५०॥

'जिसके कहनेसे भैया श्रीरामने वनको प्रस्थान किया हो, वह पापात्मा पुरुष चुगला, अपवित्र तथा राजासे भयभीत रहकर सदा छल-कपटमें ही रचा-पचा रहे॥ ५१॥

'जिसके परामर्शसे आर्यका वनमगन हुआ हो, वह दुष्टात्मा ऋतु-स्नानकाल प्राप्त होनेके कारण अपने पास आयी हुई सती-साध्वी ऋतुस्नाता पत्नीको ठुकरा दे (उसकी इच्छा न पूर्ण करनेके पापका भागी हो)॥ ५२॥

'जिसकी सलाहसे मेरे बड़े भाईको वनमें जाना पड़ा हो, उसको वही पाप लगे, जो (अन्न आदिका दान न करने अथवा स्त्रीसे द्वेष रखनेके कारण) नष्ट हुई संतानवाले ब्राह्मणको प्राप्त होता है॥ ५३॥

'जिसकी रायसे आर्यने वनमें पदार्पण किया हो, वह मलिन इन्द्रियवाला पुरुष ब्राह्मणके लिये की जाती हुई पूजामें विघ्न डाल दे और छोटे बछड़ेवाली (दस दिनके भीतरकी ब्यायी हुई) गायका दूध दुहे॥ ५४॥

'जिसने आर्य श्रीरामके वनमगनकी अनुमति दी हो, वह मूढ़ धर्मपत्नीको छोड़कर परस्त्रीका सेवन करे तथा धर्मविषयक अनुरागको त्याग दे॥ ५५॥

'पानीको गन्दा करनेवाले तथा दूसरोंको जहर देनेवाले मनुष्यको जो पाप लगता है, वह सारा पाप अकेला वही प्राप्त करे, जिसकी अनुमतिसे विवश होकर आर्य श्रीरामको वनमें जाना पड़ा है॥ ५६॥

'जिसकी सम्मतिसे आर्यका वनगमन हुआ हो, उसे वही पाप प्राप्त हो, जो पानी होते हुए भी प्यासेको उससे वञ्चित कर देनेवाले मनुष्यको लगता है॥ ५७॥

'जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीराम वनमें गये हों, वह उस पापका भागी हो, जो परस्पर झगड़ते हुए मनुष्योंमेंसे किसी एकके प्रति पक्षपात रखकर मार्गमें खड़ा हो उनका झगड़ा देखनेवाले कलहप्रिय मनुष्यको प्राप्त होता है'॥ ५८॥

इस प्रकार पति और पुत्रसे बिछुड़ी हुई कौसल्याको शपथके द्वारा आश्वासन देते हुए ही राजकुमार भरत दुःखसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५९॥

उस समय दुष्कर शपथोंद्वारा अपनी सफाई देते हुए शोकसंतप्त एवं अचेत भरतसे कौसल्याने इस प्रकार कहा—॥ ६०॥

'बेटा! तुम अनेकानेक शपथ खाकर जो मेरे प्राणोंको पीड़ा दे रहे हो, इससे मेरा यह दुःख और भी बढ़ता जा रहा है॥ ६१॥

'वत्स! सौभाग्यकी बात है कि शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तुम्हारा चित्त धर्मसे विचलित नहीं हुआ है। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, इसलिये तुम्हें सत्पुरुषोंके लोक प्राप्त होंगे'॥ ६२॥

ऐसा कहकर कौसल्याने भ्रातृभक्त महाबाहु भरतको गोदमें खींच लिया और अत्यन्त दुःखी हो उन्हें गलेसे लगाकर वे फूट-फूटकर रोने लगीं॥ ६३॥

महात्मा भरत भी दुःखसे आर्त होकर विलाप कर रहे थे। उनका मन मोह और शोकके वेगसे व्याकुल हो गया था॥ ६४॥

पृथ्वीपर पड़े हुए भरतकी बुद्धि (विवेकशक्ति) नष्ट हो गयी थी। वे अचेत-से होकर विलाप करते और बारंबार लंबी साँस खींचते थे। इस तरह शोकमें ही उनकी वह रात बीत गयी॥ ६५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथका अन्त्येष्टिसंस्कार

इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए केकयीकुमार भरतसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठने उत्तम वाणीमें कहा—

'महायशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। यह शोक छोड़ो, क्योंकि इससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है।

अब समयोचित कर्तव्यपर ध्यान दो। राजा दशरथके शवको दाहसंस्कारके लिये ले चलनेका उत्तम प्रबन्ध करो'॥ २॥

वसिष्ठजीका वचन सुनकर धर्मज्ञ भरतने पृथ्वीपर पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मन्त्रियोंद्वारा पिताके सम्पूर्ण प्रेतकर्मका प्रबन्ध करवाया॥ ३॥

राजा दशरथका शव तेलके कड़ाहसे निकालकर भूमिपर रखा गया। अधिक समयतक तेलमें पड़े रहनेसे उनका मुख कुछ पीला हो गया। उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो भूमिपाल दशरथ सो रहे हों॥ ४॥

तदनन्तर मृत राजा दशरथको धो-पोंछकर नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित उत्तम शय्या (विमान) पर सुलाकर उनके पुत्र भरत अत्यन्त दुःखी हो विलाप करने लगे—॥ ५॥

'राजन्! मैं परदेशमें था और आपके पास पहुँचने भी नहीं पाया था, तबतक ही धर्मज्ञ श्रीराम और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने इस तरह स्वर्गमें जानेका निश्चय कैसे कर लिया?॥ ६॥

'महाराज! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले पुरुषसिंह श्रीरामसे हीन इस दुःखी सेवकको छोड़ आप कहाँ चले जायँगे?॥ ७॥

'तात! आप स्वर्गको चल दिये और श्रीरामने वनका आश्रय लिया—ऐसी दशामें आपके इस नगरमें निश्चिन्ततापूर्वक प्रजाके योगक्षेमकी व्यवस्था कौन करेगा?॥ ८॥

'राजन्! आपके बिना यह पृथ्वी विधवाके समान हो गयी है, अतः इसकी शोभा नहीं हो रही है। यह पुरी भी मुझे चन्द्रहीन रात्रिके समान श्रीहीन प्रतीत होती है'॥ ९॥

इस प्रकार दीनचित्त होकर विलाप करते हुए भरतसे महामुनि वसिष्ठने फिर कहा—॥ १०॥

'महाबाहो! इन महाराजके लिये जो कुछ भी प्रेतकर्म करने हैं, उन्हें बिना विचारे शान्तचित्त होकर करो'॥ ११॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर भरतने वसिष्ठजीकी आज्ञा शिरोधार्य की तथा ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य—सबको इस कार्यके लिये जल्दी करनेको कहा—॥

राजाकी अग्निशालासे जो अग्नियाँ बाहर निकाली गयी थीं, उनमें ऋत्विजों और याजकोंद्वारा विधिपूर्वक हवन किया गया॥ १३॥

तत्पश्चात् महाराज दशरथके प्राणहीन शरीरको पालकीमें बिठाकर परिचारकगण उन्हें श्मशानभूमिको ले चले। उस समय आँसुओंसे उनका गला रुँध गया था और मन-ही-मन उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था॥ १४॥

मार्गमें राजकीय पुरुष राजाके शवके आगे-आगे सोने, चाँदी तथा भाँति-भाँतिके वस्त्र लुटाते चलते थे॥

श्मशानभूमिमें पहुँचकर चिता तैयार की जाने लगी, किसीने चन्दन लाकर रखा तो किसीने अगर, कोई-कोई गुग्गुल तथा कोई सरल, पद्मक और देवदारुकी लकड़ियाँ ला-लाकर चितामें डालने लगे। कुछ लोगोंने तरह-तरहके सुगन्धित पदार्थ लाकर छोड़े। इसके बाद ऋत्विजोंने राजाके शवको चितापर रखा॥

उस समय अग्निमें आहुति देकर उनके ऋत्विजोंने वेदोक्त मन्त्रोंका जप किया। सामगान करनेवाले विद्वान् शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार साम-श्रुतियोंका गायन करने लगे॥ १८॥

(इसके बाद चितामें आग लगायी गयी) तदनन्तर राजा दशरथकी कौसल्या आदि रानियाँ बूढ़े रक्षकोंसे घिरी हुई यथायोग्य शिबिकाओं तथा रथोंपर आरूढ़ होकर नगरसे निकलीं तथा शोकसे संतप्त हो श्मशानभूमिमें आकर अश्वमेधान्त यज्ञोंके अनुष्ठाता राजा दशरथके शवकी परिक्रमा करने लगीं। साथ ही ऋत्विजोंने भी उस शवकी परिक्रमा की॥ १९-२०॥

उस समय वहाँ करुण क्रन्दन करती हुई सहस्रों शोकार्त रानियोंका आर्तनाद कुररियोंके चीत्कारके समान सुनायी देता था॥ २१॥

दाहकर्मके पश्चात् विवश होकर रोती हुई वे राजरानियाँ बारंबार विलाप करके सवारियोंसे ही सरयूके तटपर जाकर उतरीं॥ २२॥

भरतके साथ रानियों, मन्त्रियों और पुरोहितोंने भी राजाके लिये जलाञ्जलि दी, फिर सब-के-सब नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए नगरमें आये और दस दिनोंतक भूमिपर शयन करते हुए उन्होंने बड़े दुःखसे अपना समय व्यतीत किया॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

भरतका पिताके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको बहुत धन-रत्न आदिका दान देना, तेरहवें दिन अस्थि-संचयका शेष कार्य पूर्ण करनेके लिये पिताकी चिताभूमिपर जाकर भरत और शत्रुघ्नका विलाप करना और वसिष्ठ तथा सुमन्त्रका उन्हें समझाना

तदनन्तर दशाह व्यतीत हो जानेपर राजकुमार भरतने ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धिके लिये स्नान और एकादशाह श्राद्धका अनुष्ठान किया, फिर बारहवाँ दिन आनेपर उन्होंने अन्य श्राद्ध कर्म (मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध) किये॥ १॥

उसमें भरतने ब्राह्मणोंको धन, रत्न, प्रचुर अन्न, बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकारके रत्न, बहुत-से बकरे, चाँदी और बहुतेरी गौएँ दान कीं॥ २॥

राजपुत्र भरतने राजाके पारलौकिक हितके लिये बहुत-से दास, दासियाँ, सवारियाँ तथा बड़े-बड़े घर भी ब्राह्मणोंको दिये॥ ३॥

तदनन्तर तेरहवें दिन प्रातःकाल महाबाहु भरत शोकसे मूर्च्छित होकर विलाप करने लगे॥ ४॥

उस समय रोनेसे उनका गला भर आया था, वे पिताके चितास्थानपर अस्थिसंचयके लिये आये और अत्यन्त दुःखी होकर इस प्रकार कहने लगे—'तात! आपने मुझे जिन ज्येष्ठ भ्राता श्रीरघुनाथजीके हाथमें सौंपा था, उनके वनमें चले जानेपर आपने मुझे सूनेमें ही छोड़ दिया (इस समय मेरा कोई सहारा नहीं)॥ ५-६॥

'तात! नरेश्वर! जिन अनाथ हुई देवीके एकमात्र आधार पुत्रको आपने वनमें भेज दिया, उन माता कौसल्याको छोड़कर आप कहाँ चले गये?'॥ ७॥

पिताकी चिताका वह स्थानमण्डल भस्मसे भरा हुआ था, अत्यन्त दाहके कारण कुछ लाल दिखायी देता था। वहाँ पिताकी जली हुई हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। पिताके शरीरके निर्वाणका वह स्थान देखकर भरत अत्यन्त विलाप करते हुए शोकमें डूब गये॥ ८॥

उस स्थानको देखते ही वे दीनभावसे रोकर पृथ्वीपर गिर पड़े। जैसे इन्द्रका यन्त्रबद्ध ऊँचा ध्वज ऊपरको उठाये जाते समय खिसककर गिर पड़ा हो॥ ९॥

तब उनके सारे मन्त्री उन पवित्र व्रतवाले भरतके पास आ पहुँचे, जैसे पुण्योंका अन्त होनेपर स्वर्गसे गिरे हुए राजा ययातिके पास अष्टक आदि राजर्षि आ गये थे॥ १०॥

भरतको शोकमें डूबा हुआ देख शत्रुघ्न भी अपने पिता महाराज दशरथका बारंबार स्मरण करते हुए अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ११॥

वे समय-समयपर अनुभवमें आये हुए पिताके लालन-पालनसम्बन्धी उन-उन गुणोंका स्मरण करके अत्यन्त दुःखी हो सुध-बुध खोकर उन्मत्तके समान विलाप करने लगे—॥ १२॥

हाय! मन्थरासे जिसका प्राकट्य हुआ है, कैकेयीरूपी ग्राहसे जो व्याप्त है तथा जो किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता, उस वरदानमय शोकरूपी उग्र समुद्रने हम सब लोगोंको अपने भीतर निमग्न कर दिया है॥ १३॥

'तात! आपने जिनका सदा लाड़-प्यार किया है तथा जो सुकुमार और बालक हैं, उन रोते-बिलखते हुए भरतको छोड़कर आप कहाँ चले गये?॥ १४॥

'भोजन, पान, वस्त्र और आभूषण—इन सबको अधिक संख्यामें एकत्र करके आप हम सब लोगोंसे अपनी रुचिकी वस्तुएँ ग्रहण करनेको कहते थे। अब कौन हमारे लिये ऐसी व्यवस्था करेगा?॥ १५॥

'आप-जैसे धर्मज्ञ महात्मा राजासे रहित होनेपर पृथ्वीको फट जाना चाहिये। इस फटनेके अवसरपर भी जो यह फट नहीं रही है, यह आश्चर्यकी बात है॥ १६॥

'पिता स्वर्गवासी हो गये और श्रीराम वनमें चले गये। अब मुझमें जीवित रहनेकी क्या शक्ति है? अब तो मैं अग्निमें ही प्रवेश करूँगा॥ १७॥

'बड़े भाई और पितासे हीन होकर इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंद्वारा पालित इस सूनी अयोध्यामें मैं प्रवेश नहीं करूँगा; तपोवनको ही चला जाऊँगा'॥ १८॥

उन दोनोंका विलाप सुनकर और उस संकटको देखकर समस्त अनुचर-वर्गके लोग पुनः अत्यन्त शोकसे व्याकुल हो उठे॥ १९॥

उस समय भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई विषादग्रस्त और थकित होकर टूटे सींगोंवाले दो बैलोंके समान पृथ्वीपर लोट रहे थे॥ २०॥

तदनन्तर दैवी प्रकृतिसे युक्त और सर्वज्ञ वसिष्ठजी, जो इन श्रीराम आदिके पिताके पुरोहित थे, भरतको

उठाकर उनसे इस प्रकार बोले— ॥ २१ ॥

'प्रभो! तुम्हारे पिताके दाहसंस्कार हुए यह तेरहवाँ दिन है; अब अस्थिसंचयका जो शेष कार्य है, उसके करनेमें तुम यहाँ विलम्ब क्यों लगा रहे हो?॥ २२ ॥

'भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा-मृत्यु—ये तीन द्वन्द्व सभी प्राणियोंमें समानरूपसे उपलब्ध होते हैं। इन्हें रोकना सर्वथा असम्भव है—ऐसी स्थितिमें तुम्हें इस तरह शोकाकुल नहीं होना चाहिये'॥ २३ ॥

तत्त्वज्ञ सुमन्त्रने भी शत्रुघ्नको उठाकर उनके चित्तको शान्त किया तथा समस्त प्राणियोंके जन्म और मरणकी अनिवार्यताका उपदेश सुनाया॥ २४ ॥

उस समय उठे हुए वे दोनों यशस्वी नरश्रेष्ठ वर्षा और धूपसे मलिन हुए दो अलग-अलग इन्द्रध्वजोंके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २५ ॥

वे आँसू पोंछते हुए दीनतापूर्ण वाणीमें बोलते थे। उन दोनोंकी आँखें लाल हो गयी थीं तथा मन्त्रीलोग उन दोनों राजकुमारोंको दूसरी-दूसरी क्रियाएँ शीघ्र करनेके लिये प्रेरित कर रहे थे॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्नका रोष, उनका कुब्जाको घसीटना और भरतजीके कहनेसे उसे मूर्च्छित अवस्थामें छोड़ देना

तेरहवें दिनका कार्य पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजीके पास जानेका विचार करते हुए शोकसंतप्त भरतसे लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

'भैया! जो दुःखके समय अपने तथा आत्मीयजनोंके लिये तो बात ही क्या है, समस्त प्राणियोंको भी सहारा देनेवाले हैं, वे सत्त्वगुणसम्पन्न श्रीराम एक स्त्रीके द्वारा वनमें भेज दिये गये (यह कितने खेदकी बात है)॥ २ ॥

'तथा वे जो बल और पराक्रमसे सम्पन्न लक्ष्मण नामधारी शूरवीर हैं, उन्होंने भी कुछ नहीं किया। मैं पूछता हूँ कि उन्होंने पिताको कैद करके भी श्रीरामको इस संकटसे क्यों नहीं छुड़ाया?॥ ३ ॥

'जब राजा एक नारीके वशमें होकर बुरे मार्गपर आरूढ़ हो चुके थे, तब न्याय और अन्यायका विचार करके उन्हें पहले ही कैद कर लेना चाहिये था'॥ ४ ॥

लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न जब इस प्रकार रोषमें भरकर बोल रहे थे, उसी समय कुब्जा समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो उस राजभवनके पूर्वद्वारपर आकर खड़ी हो गयी॥ ५ ॥

उसके अङ्गोंमें उत्तमोत्तम चन्दनका लेप लगा हुआ था तथा वह राजरानियोंके पहनने योग्य विविध वस्त्र धारण करके भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे सज-धजकर वहाँ आयी थी॥ ६ ॥

करधनीकी विचित्र लड़ियों तथा अन्य बहुसंख्यक सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत हो वह बहुत-सी रस्सियोंमें बँधी हुई वानरीके समान जान पड़ती थी॥ ७ ॥

वही सारी बुराइयोंकी जड़ थी। वही श्रीरामके वनवासरूपी पापका मूल कारण थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही द्वारपालने उसे पकड़ लिया और बड़ी निर्दयताके साथ घसीट लाकर शत्रुघ्नके हाथमें देते हुए कहा— ॥ ८ ॥

'राजकुमार! जिसके कारण श्रीरामको वनमें निवास करना पड़ा है और आपलोगोंके पिताने शरीरका परित्याग किया है, वह क्रूर कर्म करनेवाली पापिनी यही है। आप इसके साथ जैसा बर्ताव उचित समझें करें'॥

द्वारपालकी बातपर विचार करके शत्रुघ्नका दुःख और बढ़ गया। उन्होंने अपने कर्तव्यका निश्चय किया और अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोगोंको सुनाकर इस प्रकार कहा— ॥ १० ॥

'इस पापिनीने मेरे भाइयों तथा पिताको जैसा दुःसह दुःख पहुँचाया है, अपने उस क्रूर कर्मका वैसा ही फल यह भी भोगे'॥ ११ ॥

ऐसा कहकर शत्रुघ्नने सखियोंसे घिरी हुई कुब्जाको तुरंत ही बलपूर्वक पकड़ लिया। वह डरके मारे ऐसा चीखने-चिल्लाने लगी कि वह सारा महल गूँज उठा॥ १२ ॥

फिर तो उसकी सारी सखियाँ अत्यन्त संतप्त हो उठीं और शत्रुघ्नको कुपित जानकर सब ओर भाग चलीं॥ १३ ॥

उसकी सम्पूर्ण सखियोंने एक जगह एकत्र होकर आपसमें सलाह की कि 'जिस प्रकार इन्होंने बलपूर्वक कुब्जाको पकड़ा है, उससे जान पड़ता है, ये हमलोगोंमेंसे किसीको जीवित नहीं छोड़ेंगे॥ १४ ॥

'अत: हमलोग परम दयालु, उदार, धर्मज्ञ और यशस्विनी महारानी कौसल्याकी शरणमें चलें। इस समय वे ही हमारी निश्चल गति हैं'॥ १५॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले शत्रुघ्न रोषमें भरकर कुब्जाको जमीनपर घसीटने लगे। उस समय वह जोर-जोरसे चीत्कार कर रही थी॥ १६॥

जब मन्थरा घसीटी जा रही थी, उस समय उसके नाना प्रकारके विचित्र आभूषण टूट-टूटकर पृथ्वीपर इधर-उधर बिखरे जाते थे॥ १७॥

आभूषणोंके उन टुकड़ोंसे वह शोभाशाली विशाल राजभवन नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत शरत्कालके आकाशकी भाँति अधिक सुशोभित हो रहा था॥ १८॥

बलवान् नरश्रेष्ठ शत्रुघ्न जिस समय रोषपूर्वक मन्थराको जोरसे पकड़कर घसीट रहे थे, उस समय उसे छुड़ानेके लिये कैकेयी उनके पास आयी। तब उन्होंने उसे धिक्कारते हुए उसके प्रति बड़ी कठोर बातें कहीं—उसे रोषपूर्वक फटकारा॥ १९॥

शत्रुघ्नके वे कठोर वचन बड़े ही दु:खदायी थे। उन्हें सुनकर कैकेयीको बहुत दु:ख हुआ। वह शत्रुघ्नके भयसे थर्रा उठी और अपने पुत्रकी शरणमें आयी॥ २०॥

शत्रुघ्नको क्रोधमें भरा हुआ देख भरतने उनसे कहा—'सुमित्राकुमार! क्षमा करो। स्त्रियाँ सभी प्राणियोंके लिये अवध्य होती हैं॥ २१॥

'यदि मुझे यह भय न होता कि धर्मात्मा श्रीराम मातृघाती समझकर मुझसे घृणा करने लगेंगे तो मैं भी इस दुष्ट आचरण करनेवाली पापिनी कैकेयीको मार डालता॥ २२॥

'धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी तो इस कुब्जाके भी मारे जानेका समाचार यदि जान लें तो वे निश्चय ही तुमसे और मुझसे बोलना भी छोड़ देंगे'॥ २३॥

भरतजीकी यह बात सुनकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न मन्थराके वधरूपी दोषसे निवृत्त हो गये और उसे मूर्च्छित अवस्थामें ही छोड़ दिया॥ २४॥

मन्थरा कैकेयीके चरणोंमें गिर पड़ी और लंबी साँस खींचती हुई अत्यन्त दु:खसे आर्त हो करुण विलाप करने लगी॥ २५॥

शत्रुघ्नके पटकने और घसीटनेसे आर्त एवं अचेत हुई कुब्जाको देखकर भरतकी माता कैकेयी धीरे-धीरे उसे आश्वासन देने—होशमें लानेकी चेष्टा करने लगी। उस समय कुब्जा पिंजड़ेमें बँधी हुई क्रौञ्चीकी भाँति कातर दृष्टिसे उसकी ओर देख रही थी॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७८॥

उन्नासीवाँ सर्ग

मन्त्री आदिका भरतसे राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रस्ताव तथा भरतका अभिषेक-सामग्रीकी परिक्रमा करके श्रीरामको ही राज्यका अधिकारी बताकर उन्हें लौटा लानेके लिये चलनेके निमित्त व्यवस्था करनेकी सबको आज्ञा देना

तदनन्तर चौदहवें दिन प्रात:काल समस्त राजकर्मचारी मिलकर भरतसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'महायशस्वी राजकुमार! जो हमारे सर्वश्रेष्ठ गुरु थे, वे महाराज दशरथ तो अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर स्वयं स्वर्गलोकको चले गये, अब इस राज्यका कोई स्वामी नहीं है; इसलिये अब आप ही हमारे राजा हों। आपके बड़े भाईको स्वयं महाराजने वनवासकी आज्ञा दी और आपको यह राज्य प्रदान किया! अत: आपका राजा होना न्यायसङ्गत है। इस सङ्गतिके कारण ही आप राज्यको अपने अधिकारमें लेकर किसीके प्रति कोई अपराध नहीं कर रहे हैं॥ २-३॥

'राजकुमार रघुनन्दन! ये मन्त्री आदि स्वजन, पुरवासी तथा सेठलोग अभिषेककी सब सामग्री लेकर आपकी राह देखते हैं॥ ४॥

'भरतजी! आप अपने माता-पितामहोंके इस राज्यको अवश्य ग्रहण कीजिये। नरश्रेष्ठ! राजाके पदपर अपना अभिषेक कराइये और हमलोगोंकी रक्षा कीजिये'॥

यह सुनकर उत्तम व्रतको धारण करनेवाले भरतने अभिषेकके लिये रखी हुई कलश आदि सब सामग्रीकी प्रदक्षिणा की और वहाँ उपस्थित हुए सब लोगोंको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ६॥

'सज्जनो! आपलोग बुद्धिमान् हैं, आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। हमारे कुलमें सदा ज्येष्ठ

पुत्र ही राज्यका अधिकारी होता आया है और यही उचित भी है॥ ७॥

‘श्रीरामचन्द्रजी हमलोगोंके बड़े भाई हैं, अत: वे ही राजा होंगे। उनके बदले मैं ही चौदह वर्षोंतक वनमें निवास करूँगा॥ ८॥

‘आपलोग विशाल चतुरङ्गिणी सेना, जो सब प्रकारसे सबल हो, तैयार कीजिये। मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटा लाऊँगा॥ ९॥

‘अभिषेकके लिये संचित हुई इस सारी सामग्रीको आगे करके मैं श्रीरामसे मिलनेके लिये वनमें चलूँगा और उन नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीका वहीं अभिषेक करके यज्ञसे लायी जानेवाली अग्निके समान उन्हें आगे करके अयोध्यामें ले आऊँगा॥ १०-११॥

‘परंतु जिसमें लेशमात्र मातृभाव शेष है, अपनी माता कहलानेवाली इस कैकेयीको मैं कदापि सफलमनोरथ नहीं होने दूँगा। श्रीराम यहाँके राजा होंगे और मैं दुर्गम वनमें निवास करूँगा॥ १२॥

‘कारीगर आगे जाकर रास्ता बनायें, ऊँची-नीची भूमिको बराबर करें तथा मार्गमें दुर्गम स्थानोंकी जानकारी रखनेवाले रक्षक भी साथ-साथ चलें’॥ १३॥

श्रीरामचन्द्रजीके लिये ऐसी बातें कहते हुए राजकुमार भरतसे वहाँ आये हुए सब लोगोंने इस प्रकार सुन्दर एवं परम उत्तम बात कही—॥ १४॥

‘भरतजी! ऐसे उत्तम वचन कहनेवाले आपके पास कमलवनमें निवास करनेवाली लक्ष्मी अवस्थित हों; क्योंकि आप राजाके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको स्वयं ही इस पृथिवीका राज्य लौटा देना चाहते हैं’॥ १५॥

उन लोगोंका कहा हुआ वह परम उत्तम आशीर्वचन जब कानमें पड़ा, तब उसे सुनकर राजकुमार भरतको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सबकी ओर देखकर भरतके मुखमण्डलमें सुशोभित होनेवाले नेत्रोंसे हर्षजनित आँसुओंकी बूँदें गिरने लगीं॥ १६॥

भरतके मुखसे श्रीरामको ले आनेकी बात सुनकर उस सभाके सभी सदस्यों और मन्त्रियोंसहित समस्त राजकर्मचारी हर्षसे खिल उठे। उनका सारा शोक दूर हो गया और वे भरतसे बोले—‘नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञाके अनुसार राजपरिवारके प्रति भक्तिभाव रखनेवाले कारीगरों और रक्षकोंको मार्ग ठीक करनेके लिये भेज दिया गया है’॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें उन्नासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ सर्ग

अयोध्यासे गङ्गातटतक सुरम्य शिविर और कूप आदिसे युक्त सुखद राजमार्गका निर्माण

तत्पश्चात् ऊँची-नीची एवं सजल-निर्जल भूमिका ज्ञान रखनेवाले, सूत्रकर्म (छावनी आदि बनानेके लिये सूत धारण करने) में कुशल, मार्गकी रक्षा आदि अपने कर्ममें सदा सावधान रहनेवाले शूर-वीर, भूमि खोदने या सुरङ्ग आदि बनानेवाले, नदी आदि पार करनेके लिये तुरंत साधन उपस्थित करनेवाले अथवा जलके प्रवाहको रोकनेवाले वेतनभोगी कारीगर, थवई, रथ और यन्त्र आदि बनानेवाले पुरुष, बढ़ई, मार्गरक्षक, पेड़ काटनेवाले, रसोइये, चूनेसे पोतने आदिका काम करनेवाले, बाँसकी चटाई और सूप आदि बनानेवाले, चमड़ेका चारजामा आदि बनानेवाले तथा रास्तेकी विशेष जानकारी रखनेवाले सामर्थ्यशाली पुरुषोंने पहले प्रस्थान किया॥ १—३॥

उस समय मार्ग ठीक करनेके लिये एक विशाल जनसमुदाय बड़े हर्षके साथ वनप्रदेशकी ओर अग्रसर हुआ, जो पूर्णिमाके दिन उमड़े हुए समुद्रके महान् वेगकी भाँति शोभा पा रहा था॥ ४॥

वे मार्ग-निर्माणमें निपुण कारीगर अपना-अपना दल साथ लेकर अनेक प्रकारके औजारोंके साथ आगे चल दिये॥ ५॥

वे लोग लताएँ, बेलें, झाड़ियाँ, ठूँठे वृक्ष तथा पत्थरोंको हटाते और नाना प्रकारके वृक्षोंको काटते हुए मार्ग तैयार करने लगे॥ ६॥

जिन स्थानोंमें वृक्ष नहीं थे, वहाँ कुछ लोगोंने वृक्ष भी लगाये। कुछ कारीगरोंने कुल्हाड़ों, टंकों (पत्थर तोड़नेके औजारों) तथा हँसियोंसे कहीं-कहीं वृक्षों और घासोंको काट-काटकर रास्ता साफ किया॥ ७॥

अन्य प्रबल मनुष्योंने जिनकी जड़ें नीचेतक जमी हुई थीं, उन कुश, कास आदिके झुरमुटोंको हाथोंसे ही उखाड़ फेंका। वे जहाँ-तहाँ ऊँचे-नीचे दुर्गम स्थानोंको खोद-खोदकर बराबर कर देते थे। दूसरे लोग कुओं और लंबे-चौड़े गड्ढोंको धूलोंसे ही पाट देते थे। जो स्थान नीचे होते, वहाँ सब ओरसे मिट्टी डालकर वे उन्हें

शीघ्र ही बराबर कर देते थे॥ ८-९॥

उन्होंने जहाँ पुल बाँधनेके योग्य पानी देखा, वहाँ पुल बाँध दिये। जहाँ कँकरीली जमीन दिखायी दी, वहाँ उसे ठोक-पीटकर मुलायम कर दिया और जहाँ पानी बहनेके लिये मार्ग बनाना आवश्यक समझा, वहाँ बाँध काट दिया। इस प्रकार विभिन्न देशोंमें वहाँकी आवश्यकताके अनुसार कार्य किया॥ १०॥

छोटे-छोटे सोतोंको, जिनका पानी सब ओर बह जाया करता था, चारों ओरसे बाँधकर शीघ्र ही अधिक जलवाला बना दिया। इस तरह थोड़े ही समयमें उन्होंने भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके बहुत-से सरोवर तैयार कर दिये, जो अगाध जलसे भरे होनेके कारण समुद्रके समान जान पड़ते थे॥ ११॥

निर्जल स्थानोंमें नाना प्रकारके अच्छे-अच्छे कुएँ और बावड़ी आदि बनवा दिये, जो आस-पास बनी हुई वेदिकाओंसे अलंकृत थे॥ १२॥

इस प्रकार सेनाका वह मार्ग देवताओंके मार्गकी भाँति अधिक शोभा पाने लगा। उसकी भूमिपर चूना-सुर्खी और कंकरीट बिछाकर उसे कूट-पीटकर पक्का कर दिया गया था। उसके किनारे-किनारे फूलोंसे सुशोभित वृक्ष लगाये गये थे। वहाँके वृक्षोंपर मतवाले पक्षी चहक रहे थे। सारे मार्गको पताकाओंसे सजा दिया गया था, उसपर चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया था तथा अनेक प्रकारके फूलोंसे वह सड़क सजायी गयी थी॥

मार्ग बन जानेपर जहाँ-तहाँ छावनी आदि बनानेके लिये जिन्हें अधिकार दिया गया था, कार्यमें दत्त-चित्त रहनेवाले उन लोगोंने भरतकी आज्ञाके अनुसार सेवकोंको काम करनेका आदेश देकर जहाँ स्वादिष्ट फलोंकी अधिकता थी उन सुन्दर प्रदेशोंमें छावनियाँ बनवायीं और जो भरतको अभीष्ट था, मार्गके भूषणरूप उस शिविरको नाना प्रकारके अलंकारोंसे और भी सजा दिया॥ १५-१६॥

वास्तु-कर्मके ज्ञाता विद्वानोंने उत्तम नक्षत्रों और मुहूर्तोंमें महात्मा भरतके ठहरनेके लिये जो-जो स्थान बने थे, उनकी प्रतिष्ठा करवायी॥ १७॥

मार्गमें बने हुए वे निवेश (विश्राम-स्थान) इन्द्रपुरीके समान शोभा पाते थे। उनके चारों ओर खाइयाँ खोदी गयी थीं, धूल-मिट्टीके ऊँचे ढेर लगाये गये थे। खेमोंके भीतर इन्द्रनीलमणिकी बनी हुई प्रतिमाएँ सजायी गयी थीं। गलियों और सड़कोंसे उनकी विशेष शोभा होती थी। राजकीय गृहों और देवस्थानोंसे युक्त वे शिविर चूने पुते हुए प्राकारों (चहारदीवारियों)से घिरे थे। सभी विश्रामस्थान पताकाओंसे सुशोभित थे। सर्वत्र बड़ी-बड़ी सड़कोंका सुन्दर ढंगसे निर्माण किया गया था। विटङ्कों (कबूतरोंके रहनेके स्थानों—कावकों) और ऊँचे-ऊँचे श्रेष्ठ विमानोंके कारण उन सभी शिविरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १८—२०॥

नाना प्रकारके वृक्षों और वनोंसे सुशोभित, शीतल निर्मल जलसे भरी हुई और बड़े-बड़े मत्स्योंसे व्याप्त गङ्गाके किनारेतक बना हुआ वह रमणीय राजमार्ग उस समय बड़ी शोभा पा रहा था। अच्छे कारीगरोंने उसका निर्माण किया था। रात्रिके समय वह चन्द्रमा और तारागणोंसे मण्डित निर्मल आकाशके समान सुशोभित होता था॥ २१-२२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ सर्ग

प्रातःकालके मङ्गलवाद्य-घोषको सुनकर भरतका दुःखी होना और उसे बंद कराकर विलाप करना, वसिष्ठजीका सभामें आकर मन्त्री आदिको बुलानेके लिये दूत भेजना

इधर अयोध्यामें उस अभ्युदयसूचक रात्रिका थोड़ा-सा ही भाग अवशिष्ट देख स्तुति-कलाके विशेषज्ञ सूत और मागधोंने मङ्गलमयी स्तुतियोंद्वारा भरतका स्तवन आरम्भ किया॥ १॥

प्रहरकी समाप्तिको सूचित करनेवाली दुन्दुभि सोनेके डंडेसे आहत होकर बज उठी। बाजे बजानेवालोंने शङ्ख तथा दूसरे-दूसरे नाना प्रकारके सैकड़ों बाजे बजाये॥ २॥

वाद्योंका वह महान् तुमुल घोष समस्त आकाशको व्याप्त करता हुआ-सा गूँज उठा और शोकसंतप्त भरतको पुनः शोकाग्निकी आँचसे राँधने लगा॥ ३॥

वाद्योंकी उस ध्वनिसे भरतकी नींद खुल गयी; वे जाग उठे और 'मैं राजा नहीं हूँ' ऐसा कहकर उन्होंने उन

बाजोंका बजना बंद करा दिया। तत्पश्चात् वे शत्रुघ्नसे बोले—

'शत्रुघ्न! देखो तो सही, कैकेयीने जगत्का कितना महान् अपकार किया है। महाराज दशरथ मुझपर बहुत-से दुःखोंका बोझ डालकर स्वर्गलोकको चले गये॥ ५॥

'आज उन धर्मराज महामना नरेशकी यह धर्ममूला राजलक्ष्मी जलमें पड़ी हुई बिना नाविककी नौकाके समान इधर-उधर डगमगा रही है॥ ६॥

'जो हमलोगोंके सबसे बड़े स्वामी और संरक्षक हैं, उन श्रीरघुनाथजीको भी स्वयं मेरी इस माताने धर्मको तिलाञ्जलि देकर वनमें भेज दिया'॥ ७॥

उस समय भरतको इस प्रकार अचेत हो-होकर विलाप करते देख रनिवासकी सारी स्त्रियाँ दीनभावसे फूट-फूटकर रोने लगीं॥ ८॥

जब भरत इस प्रकार विलाप कर रहे थे, उसी समय राजधर्मके ज्ञाता महायशस्वी महर्षि वसिष्ठने इक्ष्वाकुनाथ राजा दशरथके सभाभवनमें प्रवेश किया॥ ९॥

वह सभाभवन अधिकांश सुवर्णका बना हुआ था। उसमें सोनेके खम्भे लगे थे। वह रमणीय सभा देवताओंकी सुधर्मा सभाके समान शोभा पाती थी। सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता धर्मात्मा वसिष्ठने अपने शिष्यगणके साथ उस सभामें पदार्पण किया और सुवर्णमय पीठपर जो स्वस्तिकाकार बिछौनेसे ढका हुआ था, वे विराजमान हुए। आसन ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने दूतोंको आज्ञा दी—॥ १०-११॥

'तुमलोग शान्तभावसे जाकर ब्राह्मणों, क्षत्रियों, योद्धाओं, अमात्यों और सेनापतियोंको शीघ्र बुला लाओ। अन्य राजकुमारोंके साथ यशस्वी भरत और शत्रुघ्नको, मन्त्री युधाजित् और सुमन्त्रको तथा और भी जो हितैषी पुरुष वहाँ हों उन सबको शीघ्र बुलाओ। हमें उनसे बहुत ही आवश्यक कार्य है'॥ १२-१३॥

तदनन्तर घोड़े, हाथी और रथोंसे आनेवाले लोगोंका महान् कोलाहल आरम्भ हुआ॥ १४॥

तत्पश्चात् जैसे देवता इन्द्रका अभिनन्दन करते हैं, उसी प्रकार समस्त प्रकृतियों (मन्त्री-प्रजा आदि) ने आते हुए भरतका राजा दशरथकी ही भाँति अभिनन्दन किया॥ १५॥

तिमि नामक महान् मत्स्य और जलहस्तीसे युक्त, स्थिर जलवाले तथा मुक्ता आदि मणियोंसे युक्त शङ्ख और बालुकावाले समुद्रके जलाशयकी भाँति वह सभा दशरथपुत्र भरतसे सुशोभित होकर वैसी ही शोभा पाने लगी, जैसे पूर्वकालमें राजा दशरथकी उपस्थितिसे शोभा पाती थी*॥ १६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ सर्ग

वसिष्ठजीका भरतको राज्यपर अभिषिक्त होनेके लिये आदेश देना तथा भरतका उसे अनुचित बताकर अस्वीकार करना और श्रीरामको लौटा लानेके लिये वनमें चलनेकी तैयारीके निमित्त सबको आदेश देना

बुद्धिमान् भरतने उत्तम ग्रह-नक्षत्रोंसे सुशोभित और पूर्ण चन्द्रमण्डलसे प्रकाशित रात्रिकी भाँति उस सभाको देखा। वह श्रेष्ठ पुरुषोंकी मण्डलीसे भरी-पूरी तथा वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियोंकी उपस्थितिसे शोभायमान थी॥ १॥

उस समय यथायोग्य आसनोंपर बैठे हुए आर्य पुरुषोंके वस्त्रों तथा अङ्गरागोंकी प्रभासे वह उत्तम सभा अधिक दीप्तिमती हो उठी थी॥ २॥

जैसे वर्षाकाल व्यतीत होनेपर शरद्-ऋतुकी पूर्णिमाको पूर्ण चन्द्रमण्डलसे अलंकृत रजनी बड़ी मनोहर दिखायी देती है, उसी प्रकार विद्वानोंके समुदायसे भरी हुई वह सभा बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी॥ ३॥

उस समय धर्मके ज्ञाता पुरोहित वसिष्ठजीने राजाकी सम्पूर्ण प्रकृतियोंको उपस्थित देख भरतसे यह मधुर वचन कहा—॥ ४॥

'तात! राजा दशरथ यह धन-धान्यसे परिपूर्ण

* यहाँ सभा उपमेय और ह्रद (जलाशय) उपमान है। जलाशयके जो विशेषण दिये गये हैं, वे सभामें इस प्रकार संगत होते हैं—सभामें तिमि और जलहस्तीके चित्र लगे हैं। स्थिर जलकी जगह उसमें स्थिर तेज है, खम्भोंमें मणियाँ जड़ी गयी हैं, शङ्खके चित्र हैं तथा फर्शमें सोनेका लेप लगा है, जो स्वर्णबालुका-सा प्रतीत होता है।

समृद्धिशालिनी पृथिवी तुम्हें देकर स्वयं धर्मका आचरण करते हुए स्वर्गवासी हुए हैं॥ ५॥

'सत्यपूर्ण बर्ताव करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने सत्पुरुषोंके धर्मका विचार करके पिताकी आज्ञाका उसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं किया, जैसे उदित चन्द्रमा अपनी चाँदनीको नहीं छोड़ता है॥ ६॥

'इस प्रकार पिता और ज्येष्ठ भ्राता—दोनोंने ही तुम्हें यह अकण्टक राज्य प्रदान किया है। अतः तुम मन्त्रियोंको प्रसन्न रखते हुए इसका पालन करो और शीघ्र ही अपना अभिषेक करा लो। जिससे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और अपरान्त देशके निवासी राजा तथा समुद्रमें जहाजोंद्वारा व्यापार करनेवाले व्यवसायी तुम्हें असंख्य रत्न प्रदान करें॥ ७-८॥

यह बात सुनकर धर्मज्ञ भरत शोकमें डूब गये और धर्मपालनकी इच्छासे उन्होंने मन-ही-मन श्रीरामकी शरण ली॥ ९॥

नवयुवक भरत उस भरी सभामें आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीद्वारा कलहंसके समान मधुर स्वरसे विलाप करने और पुरोहितजीको उपालम्भ देने लगे—॥ १०॥

'गुरुदेव! जिन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन किया, जो सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात हुए तथा जो सदा ही धर्मके लिये प्रयत्नशील रहते हैं, उन बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीके राज्यका मेरे-जैसा कौन मनुष्य अपहरण कर सकता है?॥ ११॥

'महाराज दशरथका कोई भी पुत्र बड़े भाईके राज्यका अपहरण कैसे कर सकता है? यह राज्य और मैं दोनों ही श्रीरामके हैं; यह समझकर आपको इस सभामें धर्मसंगत बात कहनी चाहिये (अन्याययुक्त नहीं)॥ १२॥

'धर्मात्मा श्रीराम मुझसे अवस्थामें बड़े और गुणोंमें भी श्रेष्ठ हैं। वे दिलीप और नहुषके समान तेजस्वी हैं; अतः महाराज दशरथकी भाँति वे ही इस राज्यको पानेके अधिकारी हैं॥ १३॥

'पापका आचरण तो नीच पुरुष करते हैं। वह मनुष्यको निश्चय ही नरकमें डालनेवाला है। यदि श्रीरामचन्द्रजीका राज्य लेकर मैं भी पापाचरण करूँ तो संसारमें इक्ष्वाकुकुलका कलंक समझा जाऊँगा॥ १४॥

'मेरी माताने जो पाप किया है, उसे मैं कभी पसंद नहीं करता; इसीलिये यहाँ रहकर भी मैं दुर्गम वनमें निवास करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ॥ १५॥

'मैं श्रीरामका ही अनुसरण करूँगा। मनुष्योंमें श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजी ही इस राज्यके राजा हैं। वे तीनों ही लोकोंके राजा होनेयोग्य हैं'॥ १६॥

भरतका वह धर्मयुक्त वचन सुनकर सभी सभासद् श्रीराममें चित्त लगाकर हर्षके आँसू बहाने लगे॥ १७॥

भरतने फिर कहा—'यदि मैं आर्य श्रीरामको वनसे न लौटा सकूँगा तो स्वयं भी नरश्रेष्ठ लक्ष्मणकी भाँति वहीं निवास करूँगा॥ १८॥

'मैं आप सभी सद्गुणयुक्त बर्ताव करनेवाले पूजनीय श्रेष्ठ सभासदोंके समक्ष श्रीरामचन्द्रजीको बलपूर्वक लौटा लानेके लिये सारे उपायोंसे चेष्टा करूँगा॥ १९॥

'मैंने मार्गशोधनमें कुशल सभी अवैतनिक तथा वेतनभोगी कार्यकर्ताओंको पहले ही यहाँसे भेज दिया है। अतः मुझे श्रीरामचन्द्रजीके पास चलना ही अच्छा जान पड़ता है'॥ २०॥

सभासदोंसे ऐसा कहकर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा भरत पास बैठे हुए मन्त्रवेत्ता सुमन्त्रसे इस प्रकार बोले—॥

'सुमन्त्रजी! आप जल्दी उठकर जाइये और मेरी आज्ञासे सबको वनमें चलनेका आदेश सूचित कर दीजिये और सेनाको भी शीघ्र ही बुला भेजिये'॥ २२॥

महात्मा भरतके ऐसा कहनेपर सुमन्त्रने बड़े हर्षके साथ सबको उनके कथनानुसार वह प्रिय संदेश सुना दिया॥ २३॥

'श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये भरत जायँगे और उनके साथ जानेके लिये सेनाको भी आदेश प्राप्त हुआ है'—यह समाचार सुनकर वे सभी प्रजाजन तथा सेनापतिगण बहुत प्रसन्न हुए॥ २४॥

तदनन्तर उस यात्राका समाचार पाकर सैनिकोंकी सभी स्त्रियाँ घर-घरमें हर्षसे खिल उठीं और अपने पतियोंको जल्दी तैयार होनेके लिये प्रेरित करने लगीं॥

सेनापतियोंने घोड़ों, बैलगाड़ियों तथा मनके समान वेगशाली रथोंसहित सम्पूर्ण सेनाको स्त्रियोंसहित यात्राके लिये शीघ्र तैयार होनेकी आज्ञा दी॥ २६॥

सेनाको कूँचके लिये उद्यत देख भरतने गुरुके समीप ही बगलमें खड़े हुए सुमन्त्रसे कहा—'आप मेरे रथको शीघ्र तैयार करके लाइये'॥ २७॥

भरतकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके सुमन्त्र बड़े हर्षके साथ गये और उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ रथ

लेकर लौट आये॥ २८॥

तब सुदृढ़ एवं सत्य पराक्रमवाले सत्यपरायण प्रतापी भरत विशाल वनमें गये हुए अपने बड़े भाई यशस्वी श्रीरामको लौटा लानेके निमित्त राजी करनेके लिये यात्राके उद्देश्यसे उस समय इस प्रकार बोले—॥ २९॥

'सुमन्त्रजी! आप शीघ्र उठकर सेनापतियोंके पास जाइये और उनसे कहकर सेनाको कल कूँच करनेके लिये तैयार होनेका प्रबन्ध कीजिये; क्योंकि मैं सारे जगत्का कल्याण करनेके लिये उन वनवासी श्रीरामको प्रसन्न करके यहाँ ले आना चाहता हूँ'॥ ३०॥

भरतकी यह उत्तम आज्ञा पाकर सूतपुत्र सुमन्त्रने अपना मनोरथ सफल हुआ समझा और उन्होंने प्रजावर्गके सभी प्रधान व्यक्तियों, सेनापतियों तथा सुहृदोंको भरतका आदेश सुना दिया॥ ३१॥

तब प्रत्येक घरके लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उठ-उठकर अच्छी जातिके घोड़े, हाथी, ऊँट, गधे तथा रथोंको जोतने लगे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ सर्ग

भरतकी वनयात्रा और शृङ्गवेरपुरमें रात्रिवास

तदनन्तर प्रात:काल उठकर भरतने उत्तम रथपर आरूढ़ हो श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया॥ १॥

उनके आगे-आगे सभी मन्त्री और पुरोहित घोड़े जुते हुए रथोंपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। वे रथ सूर्यदेवके रथके समान तेजस्वी दिखायी देते थे॥ २॥

यात्रा करते हुए इक्ष्वाकुकुलनन्दन भरतके पीछे-पीछे विधिपूर्वक सजाये गये नौ हजार हाथी चल रहे थे॥

यात्रापरायण यशस्वी राजकुमार भरतके पीछे साठ हजार रथ और नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले धनुर्धर योद्धा भी जा रहे थे॥ ४॥

उसी प्रकार एक लाख घुड़सवार भी उन यशस्वी रघुकुलनन्दन राजकुमार भरतकी यात्राके समय उनका अनुसरण कर रहे थे॥ ५॥

कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या देवी भी श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये की जानेवाली उस यात्रासे संतुष्ट हो तेजस्वी रथके द्वारा प्रस्थित हुईं॥

ब्राह्मण आदि आर्यों (त्रैवर्णिकों) के समूह मनमें अत्यन्त हर्ष लेकर लक्ष्मणसहित श्रीरामका दर्शन करनेके लिये उन्हींके सम्बन्धमें विचित्र बातें कहते-सुनते हुए यात्रा कर रहे थे॥ ७॥

(वे आपसमें कहते थे—) 'हमलोग दृढ़ताके साथ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा संसारका दु:ख दूर करनेवाले, स्थितप्रज्ञ, श्यामवर्ण महाबाहु श्रीरामका कब दर्शन करेंगे?॥ ८॥

'जैसे सूर्यदेव उदय लेते ही सारे जगत्का अन्धकार हर लेते हैं, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी हमारी आँखोंके सामने पड़ते ही हमलोगोंका सारा शोक-संताप दूर कर देंगे'॥ ९॥

इस प्रकारकी बातें कहते और अत्यन्त हर्षसे भरकर एक-दूसरेका आलिङ्गन करते हुए अयोध्याके नागरिक उस समय यात्रा कर रहे थे॥ १०॥

उस नगरमें जो दूसरे सम्मानित पुरुष थे, वे सब लोग तथा व्यापारी और शुभ विचारवाले प्रजाजन भी बड़े हर्षके साथ श्रीरामसे मिलनेके लिये प्रस्थित हुए॥ ११॥

जो कोई मणिकार (मणियोंको सानपर चढ़ाकर चमका देनेवाले), अच्छे कुम्भकार, सूतका ताना-बाना करके वस्त्र बनानेकी कलाके विशेषज्ञ, शस्त्र निर्माण करके जीविका चलानेवाले, मायूरक (मोरकी पाँखोंसे छत्र-व्यजन आदि बनानेवाले), आरेसे चन्दन आदिकी लकड़ी चीरनेवाले, मणि-मोती आदिमें छेद करनेवाले, रोचक (दीवारों और वेदी आदिमें शोभाका सम्पादन करनेवाले), दन्तकार (हाथीके दाँत आदिसे नाना प्रकारकी वस्तुओंका निर्माण करनेवाले), सुधाकार (चूना बनानेवाले), गन्धी, प्रसिद्ध सोनार, कम्बल और कालीन बनानेवाले, गरम जलसे नहलानेका काम करनेवाले, वैद्य, धूपक (धूपन-क्रियाद्वारा जीविका चलानेवाले), शौण्डिक (मद्यविक्रेता), धोबी, दर्जी, गाँवों तथा गोशालाओंके महतो, स्त्रियोंसहित नट, केवट तथा समाहितचित्त सदाचारी वेदवेत्ता सहस्रों ब्राह्मण बैलगाड़ियोंपर चढ़कर वनकी यात्रा

करनेवाले भरतके पीछे-पीछे गये॥ १२—१६॥

सबके वेश सुन्दर थे। सबने शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे तथा सबके अङ्गोंमें ताँबेके समान लाल रंगका अङ्गराग लगा था। वे सब-के-सब नाना प्रकारके वाहनोंद्वारा धीरे-धीरे भरतका अनुसरण कर रहे थे॥ १७॥

हर्ष और आनन्दमें भरी हुई वह सेना भाईको बुलानेके लिये प्रस्थित हुए कैकेयीकुमार भ्रातृवत्सल भरतके पीछे-पीछे चलने लगी॥ १८॥

इस प्रकार रथ, पालकी, घोड़े और हाथियोंके द्वारा बहुत दूरतकका मार्ग तय कर लेनेके बाद वे सब लोग शृङ्गवेरपुरमें गङ्गाजीके तटपर जा पहुँचे॥ १९॥

जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका सखा वीर निषादराज गुह सावधानीके साथ उस देशकी रक्षा करता हुआ अपने भाई-बन्धुओंके साथ निवास करता था॥ २०॥

चक्रवाकोंसे अलंकृत गङ्गातटपर पहुँचकर भरतका अनुसरण करनेवाली वह सेना ठहर गयी॥ २१॥

पुण्यसलिला भागीरथीका दर्शन करके अपनी उस सेनाको शिथिल हुई देख बातचीत करनेकी कलामें कुशल भरतने समस्त सचिवोंसे कहा—॥ २२॥

'आपलोग मेरे सैनिकोंको उनकी इच्छाके अनुसार यहाँ सब ओर ठहरा दीजिये। आज रातमें विश्राम कर लेनेके बाद हम सब लोग कल सबेरे इन सागरगामिनी नदी गंगाजीको पार करेंगे॥ २३॥

'यहाँ ठहरनेका एक और प्रयोजन है—मैं चाहता हूँ कि गङ्गाजीमें उतरकर स्वर्गीय महाराजके पारलौकिक कल्याणके लिये जलाञ्जलि दे दूँ'॥ २४॥

उनके इस प्रकार कहनेपर सभी मन्त्रियोंने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और समस्त सैनिकोंको उनकी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर ठहरा दिया॥ २५॥

महानदी गङ्गाके तटपर खेमे आदिसे सुशोभित होनेवाली उस सेनाको व्यवस्थापूर्वक ठहराकर भरतने महात्मा श्रीरामके लौटनेके विषयमें विचार करते हुए उस समय वहीं निवास किया॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ सर्ग

निषादराज गुहका अपने बन्धुओंको नदीकी रक्षा करते हुए युद्धके लिये तैयार रहनेका आदेश दे भेंटकी सामग्री ले भरतके पास जाना और उनसे आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये अनुरोध करना

उधर निषादराज गुहने गङ्गा नदीके तटपर ठहरी हुई भरतकी सेनाको देखकर सब ओर बैठे हुए अपने भाई-बन्धुओंसे कहा—॥ १॥

'भाइयो! इस ओर जो यह विशाल सेना ठहरी हुई है समुद्रके समान अपार दिखायी देती है; मैं मनसे बहुत सोचनेपर भी इसका पार नहीं पाता हूँ॥ २॥

'निश्चय ही इसमें स्वयं दुर्बुद्धि भरत भी आया हुआ है; यह कोविदारके चिह्नवाली विशाल ध्वजा उसीके रथपर फहरा रही है॥ ३॥

'मैं समझता हूँ कि यह अपने मन्त्रियोंद्वारा पहले हमलोगोंको पाशोंसे बँधवायगा अथवा हमारा वध कर डालेगा; तत्पश्चात् जिन्हें पिताने राज्यसे निकाल दिया है, उन दशरथनन्दन श्रीरामको भी मार डालेगा॥ ४॥

'कैकेयीका पुत्र भरत राजा दशरथकी सम्पन्न एवं सुदुर्लभ राजलक्ष्मीको अकेला ही हड़प लेना चाहता है, इसीलिये वह श्रीरामचन्द्रजीको वनमें मार डालनेके लिये जा रहा है॥ ५॥

'परंतु दशरथकुमार श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं, इसलिये उनके हितकी कामना रखकर तुमलोग अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो यहाँ गङ्गाके तटपर मौजूद रहो॥

'सभी मल्लाह सेनाके साथ नदीकी रक्षा करते हुए गङ्गाके तटपर ही खड़े रहें और नावपर रखे हुए फल-मूल आदिका आहार करके ही आजकी रात बितावें॥ ७॥

'हमारे पास पाँच सौ नावें हैं, उनमेंसे एक-एक नावपर मल्लाहोंके सौ-सौ जवान युद्ध-सामग्रीसे लैस होकर बैठे रहें।' इस प्रकार गुहने उन सबको आदेश दिया॥ ८॥

उसने फिर कहा कि 'यदि यहाँ भरतका भाव श्रीरामके प्रति संतोषजनक होगा, तभी उनकी यह सेना आज कुशलपूर्वक गङ्गाके पार जा सकेगी'॥ ९॥

यों कहकर निषादराज गुह मत्स्यण्डी* (मिश्री), फलके गूदे और मधु आदि भेंटकी सामग्री लेकर भरतके पास गया॥ १०॥

उसे आते देख समयोचित कर्तव्यको समझनेवाले प्रतापी सूतपुत्र सुमन्त्रने विनीतकी भाँति भरतसे कहा—॥ ११॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! यह बूढ़ा निषादराज गुह अपने सहस्रों भाई-बन्धुओंके साथ यहाँ निवास करता है। यह तुम्हारे बड़े भाई श्रीरामका सखा है। इसे दण्डकारण्यके मार्गकी विशेष जानकारी है। निश्चय ही इसे पता होगा कि दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण कहाँ हैं, अतः निषादराज गुह यहाँ आकर तुमसे मिलें, इसके लिये अवसर दो'॥ १२-१३॥

सुमन्त्रके मुखसे यह शुभ वचन सुनकर भरतने कहा—'निषादराज गुह मुझसे शीघ्र मिलें—इसकी व्यवस्था की जाय'॥ १४॥

मिलनेकी अनुमति पाकर गुह अपने भाई-बन्धुओंके साथ वहाँ प्रसन्नतापूर्वक आया और भरतसे मिलकर बड़ी नम्रताके साथ बोला—॥ १५॥

'यह वन-प्रदेश आपके लिये घरमें लगे हुए बगीचेके समान है। आपने अपने आगमनकी सूचना न देकर हमें धोखेमें रख दिया—हम आपके स्वागतकी कोई तैयारी न कर सके। हमारे पास जो कुछ है, वह सब आपकी सेवामें अर्पित है। यह निषादोंका घर आपका ही है, आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें॥ १६॥

'यह फल-मूल आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसे निषाद लोग स्वयं तोड़कर लाये हैं। इनमेंसे कुछ फल तो अभी हरे ताजे हैं और कुछ सूख गये हैं। इनके साथ तैयार किया हुआ फलका गूदा भी है। इन सबके सिवा नाना प्रकारके दूसरे-दूसरे वन्य पदार्थ भी हैं। इन सबको ग्रहण करें॥ १७॥

'हम आशा करते हैं कि यह सेना आजकी रात यहीं ठहरेगी और हमारा दिया हुआ भोजन स्वीकार करेगी। नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंसे आज हम सेनासहित आपका सत्कार करेंगे, फिर कल सबेरे आप अपने सैनिकोंके साथ यहाँसे अन्यत्र जाइयेगा'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८४॥

पचासीवाँ सर्ग

गुह और भरतकी बातचीत तथा भरतका शोक

निषादराज गुहके ऐसा कहनेपर महाबुद्धिमान् भरतने युक्ति और प्रयोजनयुक्त वचनोंमें उसे इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

'भैया! तुम मेरे बड़े भाई श्रीरामके सखा हो। मेरी इतनी बड़ी सेनाका सत्कार करना चाहते हो, यह तुम्हारा मनोरथ बहुत ही ऊँचा है। तुम उसे पूर्ण ही समझो—तुम्हारी श्रद्धासे ही हम सब लोगोंका सत्कार हो गया'॥ २॥

यह कहकर महातेजस्वी श्रीमान् भरतने गन्तव्य मार्गको हाथके संकेतसे दिखाते हुए पुनः गुहसे उत्तम वाणीमें पूछा—॥ ३॥

'निषादराज! इन दो मार्गोंमेंसे किसके द्वारा मुझे भरद्वाज मुनिके आश्रमपर जाना होगा? गङ्गाके किनारेका यह प्रदेश तो बड़ा गहन मालूम होता है। इसे लाँघकर आगे बढ़ना कठिन है'॥ ४॥

बुद्धिमान् राजकुमार भरतका यह वचन सुनकर वनमें विचरनेवाले गुहने हाथ जोड़कर कहा—॥ ५॥

'महाबली राजकुमार! आपके साथ बहुत-से मल्लाह जायँगे, जो इस प्रदेशसे पूर्ण परिचित तथा भलीभाँति सावधान रहनेवाले हैं। इनके सिवा मैं भी आपके साथ चलूँगा॥ ६॥

'परन्तु एक बात बताइये, अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके प्रति आप कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं? आपकी यह विशाल सेना मेरे मनमें शङ्का-सी उत्पन्न कर रही है'॥ ७॥

ऐसी बात कहते हुए गुहसे आकाशके समान निर्मल भरतने मधुर वाणीमें कहा—॥ ८॥

'निषादराज! ऐसा समय कभी न आये। तुम्हारी

* यहाँ मूलमें 'मत्स्य' शब्द 'मत्स्यण्डी' अर्थात् मिश्रीका वाचक है। 'मत्स्यण्डी' इस नामका एक अंश 'मत्स्य' है, अतः नामके एक अंशके ग्रहणसे सम्पूर्ण नामका ग्रहण किया गया है।

बात सुनकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। तुम्हें मुझपर संदेह नहीं करना चाहिये। श्रीरघुनाथजी मेरे बड़े भाई हैं। मैं उन्हें पिताके समान मानता हूँ॥ ९॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम वनमें निवास करते हैं, अतः उन्हें लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। गुह! मैं तुमसे सच कहता हूँ। तुम्हें मेरे विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये'॥ १०॥

भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुँह प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षसे भरकर पुनः भरतसे बोला—॥ ११॥

'आप धन्य हैं, जो बिना प्रयत्नके हाथमें आये हुए राज्यको त्याग देना चाहते हैं। आपके समान धर्मात्मा मुझे इस भूमण्डलमें कोई नहीं दिखायी देता॥ १२॥

'कष्टप्रद वनमें निवास करनेवाले श्रीरामको जो आप लौटा लाना चाहते हैं, इससे समस्त लोकोंमें आपकी अक्षय कीर्तिका प्रसार होगा'॥ १३॥

जब गुह भरतसे इस प्रकारकी बातें कह रहा था, उसी समय सूर्यदेवकी प्रभा अदृश्य हो गयी और रातका अन्धकार सब ओर फैल गया॥ १४॥

गुहके बर्तावसे श्रीमान् भरतको बड़ा संतोष हुआ और वे सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दे शत्रुघ्नके साथ शयन करनेके लिये गये॥ १५॥

धर्मपर दृष्टि रखनेवाले महात्मा भरत शोकके योग्य नहीं थे तथापि उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके लिये चिन्ताके कारण ऐसा शोक उत्पन्न हुआ, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥ १६॥

जैसे वनमें फैले हुए दावानलसे संतप्त हुए वृक्षको उसके खोखलेमें छिपी हुई आग और भी अधिक जलाती है, उसी प्रकार दशरथ-मरणजन्य चिन्ताकी आगसे संतप्त हुए रघुकुलनन्दन भरतको वह राम-वियोगसे उत्पन्न हुई शोकाग्नि और भी जलाने लगी॥ १७॥

जैसे सूर्यकी किरणोंसे तपा हुआ हिमालय अपनी पिघली हुई बर्फको बहाने लगता है, उसी प्रकार भरत शोकाग्निसे संतप्त होनेके कारण अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे पसीना बहाने लगे॥ १८॥

उस समय कैकेयीकुमार भरत दुःखके विशाल पर्वतसे आक्रान्त हो गये थे। श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान ही उसमें छिद्ररहित शिलाओंका समूह था। दुःखपूर्ण उच्छ्वास ही गैरिक आदि धातुका स्थान ले रहा था। दीनता (इन्द्रियोंकी अपने विषयोंसे विमुखता) ही वृक्षसमूहोंके रूपमें प्रतीत होती थी। शोकजनित आयास ही उस दुःखरूपी पर्वतके ऊँचे शिखर थे। अतिशय मोह ही उसमें अनन्त प्राणी थे। बाहर-भीतरकी इन्द्रियोंमें होनेवाले संताप ही उस पर्वतकी ओषधियाँ तथा बाँसके वृक्ष थे॥ १९-२०॥

उनका मन बहुत दुःखी था। वे लंबी साँस खींचते हुए सहसा अपनी सुध-बुध खोकर बड़ी भारी आपत्तिमें पड़ गये। मानसिक चिन्तासे पीड़ित होनेके कारण नरश्रेष्ठ भरतको शान्ति नहीं मिलती थी। उनकी दशा अपने झुंडसे बिछुड़े हुए वृषभकी-सी हो रही थी॥ २१॥

परिवारसहित एकाग्रचित्त महानुभाव भरत जब गुहसे मिले, उस समय उनके मनमें बड़ा दुःख था। वे अपने बड़े भाईके लिये चिन्तित थे, अतः गुहने उन्हें पुनः आश्वासन दिया॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ सर्ग

निषादराज गुहके द्वारा लक्ष्मणके सद्भाव और विलापका वर्णन

वनचारी गुहने अप्रमेय शक्तिशाली भरतसे महात्मा लक्ष्मणके सद्भावका इस प्रकार वर्णन किया—॥ १॥

'लक्ष्मण अपने भाईकी रक्षाके लिये श्रेष्ठ धनुष और बाण धारण किये अधिक कालतक जागते रहे। उस समय उन सद्गुणशाली लक्ष्मणसे मैंने इस प्रकार कहा—॥ २॥

'तात रघुकुलनन्दन! मैंने तुम्हारे लिये यह सुखदायिनी शय्या तैयार की है। तुम इसपर सुखपूर्वक सोओ और भलीभाँति विश्राम करो। यह (मैं) सेवक तथा इसके साथके सब लोग वनवासी होनेके कारण दुःख सहन करनेके योग्य हैं (क्योंकि हम सबको कष्ट सहनेका अभ्यास है); परंतु तुम सुखमें ही पले होनेके कारण उसीके योग्य हो। धर्मात्मन्! हमलोग श्रीरामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये रातभर जागते रहेंगे॥ ३-४॥

'मैं तुम्हारे सामने सत्य कहता हूँ कि इस भूमण्डलमें मुझे श्रीरामसे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं

है; अतः तुम इनकी रक्षाके लिये उत्सुक न होओ॥ ५॥

'इन श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे ही मैं इस लोकमें महान् यश, प्रचुर धर्मलाभ तथा विशुद्ध अर्थ एवं भोग्य वस्तु पानेकी आशा करता हूँ॥ ६॥

'अतः मैं अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ हाथमें धनुष लेकर सीताके साथ सोये प्रिय सखा श्रीरामकी (सब प्रकारसे) रक्षा करूँगा॥ ७॥

'इस वनमें सदा विचरते रहनेके कारण मुझसे यहाँकी कोई बात छिपी नहीं है। हमलोग यहाँ युद्धमें शत्रुकी चतुरङ्गिणी सेनाका भी अच्छी तरह सामना कर सकते हैं'॥ ८॥

'हमारे इस प्रकार कहनेपर धर्मपर ही दृष्टि रखनेवाले महात्मा लक्ष्मणने हम सब लोगोंसे अनुनयपूर्वक कहा—॥ ९॥

'निषादराज! जब दशरथनन्दन श्रीराम देवी सीताके साथ भूमिपर शयन कर रहे हैं, तब मेरे लिये उत्तम शय्यापर सोकर नींद लेना, जीवन-धारणके लिये स्वादिष्ट अन्न खाना अथवा दूसरे-दूसरे सुखोंको भोगना कैसे सम्भव हो सकता है?॥ १०॥

'गुह! देखो, सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें जिनके वेगको नहीं सह सकते, वे ही श्रीराम इस समय सीताके साथ तिनकोंपर सो रहे हैं॥ ११॥

'महान् तप और नाना प्रकारके परिश्रमसाध्य उपायोंद्वारा जो यह महाराज दशरथको अपने समान उत्तम लक्षणोंसे युक्त ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें प्राप्त हुए हैं, उन्हीं इन श्रीरामके वनमें आ जानेसे राजा दशरथ अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकेंगे। जान पड़ता है निश्चय ही यह पृथ्वी अब शीघ्र विधवा हो जायगी॥ १२-१३॥

'अवश्य ही अब रनिवासकी स्त्रियाँ बड़े जोरसे आर्तनाद करके अधिक श्रमके कारण अब चुप हो गयी होंगी और राजमहलका वह हाहाकार इस समय शान्त हो गया होगा॥ १४॥

'महारानी कौसल्या, राजा दशरथ तथा मेरी माता सुमित्रा—ये सब लोग आजकी इस राततक जीवित रह सकेंगे या नहीं; यह मैं नहीं कह सकता॥ १५॥

'शत्रुघ्नकी बाट देखनेके कारण सम्भव है, मेरी माता सुमित्रा जीवित रह जायँ; परंतु पुत्रके विरहसे दुःखमें डूबी हुई वीर-जननी कौसल्या अवश्य नष्ट हो जायँगी॥ १६॥

'(महाराजकी इच्छा थी कि श्रीरामको राज्यपर अभिषिक्त करूँ) अपने उस मनोरथको न पाकर श्रीरामको राज्यपर स्थापित किये बिना ही 'हाय! मेरा सब कुछ नष्ट हो गया! नष्ट हो गया!!' ऐसा कहते हुए मेरे पिताजी अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ १७॥

'उनकी उस मृत्युका समय उपस्थित होनेपर जो लोग वहाँ रहेंगे और मेरे मरे हुए पिता महाराज दशरथका सभी प्रेतकार्योंमें संस्कार करेंगे, वे ही सफलमनोरथ और भाग्यशाली हैं॥ १८॥

'(यदि पिताजी जीवित रहे तो) रमणीय चबूतरों और चौराहोंके सुन्दर स्थानोंसे युक्त, पृथक्-पृथक् बने हुए विशाल राजमार्गोंसे अलंकृत, धनिकोंकी अट्टालिकाओं और देवमन्दिरों एवं राजभवनोंसे सम्पन्न, सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, हाथियों, घोड़ों और रथोंके आवागमनसे भरी हुई, विविध वाद्योंकी ध्वनियोंसे निनादित, समस्त कल्याणकारी वस्तुओंसे भरपूर, हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे व्याप्त, पुष्पवाटिकाओं और उद्यानोंसे परिपूर्ण तथा सामाजिक उत्सवोंसे सुशोभित हुई मेरे पिताकी राजधानी अयोध्यापुरीमें जो लोग विचरेंगे, वास्तवमें वे ही सुखी हैं॥ १९—२१॥

'क्या वनवासकी इस अवधिके समाप्त होनेपर सकुशल लौटे हुए सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामके साथ हमलोग अयोध्यापुरीमें प्रवेश कर सकेंगे'॥ २२॥

'इस प्रकार विलाप करते हुए महामनस्वी राजकुमार लक्ष्मणकी वह सारी रात जागते ही बीती॥ २३॥

'प्रातःकाल निर्मल सूर्योदय होनेपर मैंने भागीरथीके तटपर (वटके दूधसे) उन दोनोंके केशोंको जटाका रूप दिलवाया और उन्हें सुखपूर्वक पार उतारा॥ २४॥

'सिरपर जटा धारण करके वल्कल एवं चीर-वस्त्र पहने हुए, महाबली, शत्रुसंतापी श्रीराम और लक्ष्मण दो गजयूथपतियोंके समान शोभा पाते थे। वे सुन्दर तरकस और धनुष धारण किये इधर-उधर देखते हुए सीताके साथ चले गये'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ सर्ग

भरतकी मूर्च्छासे गुह, शत्रुघ्न और माताओंका दुःखी होना, होशमें आनेपर भरतका गुहसे श्रीराम आदिके भोजन और शयन आदिके विषयमें पूछना और गुहका उन्हें सब बातें बताना

गुहका श्रीरामके जटाधारण आदिसे सम्बन्ध रखनेवाला अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर भरत चिन्तामग्न हो गये। जिन श्रीरामके विषयमें उन्होंने अप्रिय बात सुनी थी, उन्हींका वे चिन्तन करने लगे (उन्हें यह चिन्ता हो गयी कि अब मेरा मनोरथ पूर्ण न हो सकेगा। श्रीरामने जब जटा धारण कर ली, तब वे शायद ही लौटें)॥ १॥

भरत सुकुमार होनेके साथ ही महान् बलशाली थे, उनके कंधे सिंहके समान थे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और नेत्र विकसित कमलके सदृश सुन्दर थे। उनकी अवस्था तरुण थी और वे देखनेमें बड़े मनोरम थे। उन्होंने गुहकी बात सुनकर दो घड़ीतक किसी प्रकार धैर्य धारण किया, फिर उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे अंकुशसे विद्ध हुए हाथीके समान अत्यन्त व्यथित होकर सहसा दुःखसे शिथिल एवं मूर्च्छित हो गये॥ २-३॥

भरतको मूर्च्छित हुआ देख गुहके चेहरेका रंग उड़ गया। वह भूकम्पके समय मथित हुए वृक्षकी भाँति वहाँ व्यथित हो उठा॥ ४॥

शत्रुघ्न भरतके पास ही बैठे थे। वे उनकी वैसी अवस्था देख उन्हें हृदयसे लगाकर जोर-जोरसे रोने लगे और शोकसे पीड़ित हो अपनी सुध-बुध खो बैठे॥ ५॥

तदनन्तर भरतकी सभी माताएँ वहाँ आ पहुँचीं। वे पतिवियोगके दुःखसे दुःखी, उपवास करनेके कारण दुर्बल और दीन हो रही थीं॥ ६॥

भूमिपर पड़े हुए भरतको उन्होंने चारों ओरसे घेर लिया और सब-की-सब रोने लगीं। कौसल्याका हृदय तो दुःखसे और भी कातर हो उठा। उन्होंने भरतके पास जाकर उन्हें अपनी गोदमें चिपका लिया॥ ७॥

जैसे वत्सला गौ अपने बछड़ेको गलेसे लगाकर चाटती है, उसी तरह शोकसे व्याकुल हुई तपस्विनी कौसल्याने भरतको गोदमें लेकर रोते-रोते पूछा—॥

'बेटा! तुम्हारे शरीरको कोई रोग तो कष्ट नहीं पहुँचा रहा है? अब इस राजवंशका जीवन तुम्हारे ही अधीन है॥ ९॥

'वत्स! मैं तुम्हींको देखकर जी रही हूँ। श्रीराम लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये और महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये; अब एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंके रक्षक हो॥ १०॥

'बेटा! सच बताओ, तुमने लक्ष्मणके सम्बन्धमें अथवा मुझ एक ही पुत्रवाली माके बेटे वनमें सीतासहित गये हुए श्रीरामके विषयमें कोई अप्रिय बात तो नहीं सुनी है?'॥ ११॥

दो ही घड़ीमें जब महायशस्वी भरतका चित्त स्वस्थ हुआ, तब उन्होंने रोते-रोते ही कौसल्याको सान्त्वना दी (और कहा—'मा! घबराओ मत, मैंने कोई अप्रिय बात नहीं सुनी है')। फिर निषादराज गुहसे इस प्रकार पूछा—॥ १२॥

'गुह! उस दिन रातमें मेरे भाई श्रीराम कहाँ ठहरे थे? सीता कहाँ थीं? और लक्ष्मण कहाँ रहे? उन्होंने क्या भोजन करके कैसे बिछौनेपर शयन किया था? ये सब बातें मुझे बताओ'॥ १३॥

ये प्रश्न सुनकर निषादराज गुह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने प्रिय एवं हितकारी अतिथि श्रीरामके आनेपर उनके प्रति जैसा बर्ताव किया था, वह सब बताते हुए भरतसे कहा—॥ १४॥

'मैंने भाँति-भाँतिके अन्न, अनेक प्रकारके खाद्य-पदार्थ और कई तरहके फल श्रीरामचन्द्रजीके पास भोजनके लिये प्रचुर मात्रामें पहुँचाये॥ १५॥

'सत्यपराक्रमी श्रीरामने मेरी दी हुई सब वस्तुएँ स्वीकार तो कीं; किंतु क्षत्रियधर्मका स्मरण करते हुए उनको ग्रहण नहीं किया—मुझे आदरपूर्वक लौटा दिया॥

'फिर उन महात्माने हम सब लोगोंको समझाते हुए कहा—'सखे! हम-जैसे क्षत्रियोंको किसीसे कुछ लेना नहीं चाहिये; अपितु सदा देना ही चाहिये'॥ १७॥

'सीतासहित श्रीरामने उस रातमें उपवास ही किया। लक्ष्मण जो जल ले आये थे, केवल उसीको उन महात्माने पीया॥ १८॥

'उनके पीनेसे बचा हुआ जल लक्ष्मणने ग्रहण किया। (जलपानके पहले) उन तीनोंने मौन एवं एकाग्रचित्त होकर संध्योपासना की थी॥ १९॥

'तदनन्तर लक्ष्मणने स्वयं कुश लाकर श्रीरामचन्द्रजीके लिये शीघ्र ही सुन्दर बिछौना बिछाया॥ २०॥

'उस सुन्दर बिस्तरपर जब सीताके साथ श्रीराम विराजमान हुए, तब लक्ष्मण उन दोनोंके चरण पखारकर वहाँसे दूर हट आये॥ २१॥

'यही वह इङ्गुदी-वृक्षकी जड़ है और यही वह तृण है, जहाँ श्रीराम और सीता—दोनोंने रात्रिमें शयन किया था॥ २२॥

'शत्रुसंतापी लक्ष्मण अपनी पीठपर बाणोंसे भरे दो तरकस बाँधे, दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें दस्ताने पहने और महान् धनुष चढ़ाये श्रीरामके चारों ओर घूमकर केवल पहरा देते हुए रातभर खड़े रहे॥ २३॥

'तदनन्तर मैं भी उत्तम बाण और धनुष लेकर वहीं आ खड़ा हुआ, जहाँ लक्ष्मण थे। उस समय अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ, जो निद्रा और आलस्यका त्याग करके धनुष-बाण लिये सदा सावधान रहे, मैं देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी श्रीरामकी रक्षा करता रहा'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८७॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

श्रीरामकी कुश-शय्या देखकर भरतका शोकपूर्ण उद्गार तथा स्वयं भी वल्कल और जटाधारण करके वनमें रहनेका विचार प्रकट करना

निषादराजकी सारी बातें ध्यानसे सुनकर मन्त्रियोंसहित भरतने इंगुदी-वृक्षकी जड़के पास आकर श्रीरामचन्द्रजीकी शय्याका निरीक्षण किया॥ १॥

फिर उन्होंने समस्त माताओंसे कहा—'यहीं महात्मा श्रीरामने भूमिपर शयन करके रात्रि व्यतीत की थी। यही वह कुशसमूह है, जो उनके अङ्गोंसे विमर्दित हुआ था॥

'महाराजोंके कुलमें उत्पन्न हुए परम बुद्धिमान् महाभाग राजा दशरथने जिन्हें जन्म दिया है, वे श्रीराम इस तरह भूमिपर शयन करनेके योग्य नहीं हैं॥ ३॥

'जो पुरुषसिंह श्रीराम मुलायम मृगचर्मकी विशेष चादरसे ढके हुए तथा अच्छे-अच्छे बिछौनोंके समूहसे सजे हुए पलंगपर सदा सोते आये हैं, वे इस समय पृथ्वीपर कैसे शयन करते होंगे?॥ ४॥

'जो सदा विमानाकार प्रासादोंके श्रेष्ठ भवनों और अट्टालिकाओंमें सोते आये हैं तथा जिनकी फर्श सोने और चाँदीकी बनी हुई है, जो अच्छे बिछौनोंसे सुशोभित हैं, पुष्पराशिसे विभूषित होनेके कारण जिनकी विचित्र शोभा होती है, जिनमें चन्दन और अगुरुकी सुगन्ध फैली रहती है, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल कान्ति धारण करते हैं, जिनमें शुकसमूहोंका कलरव होता रहता है, जो शीतल हैं एवं कपूर आदिकी सुगन्धसे व्याप्त होते हैं, जिनकी दीवारोंपर सुवर्णका काम किया गया है तथा जो ऊँचाईमें मेरु पर्वतके समान जान पड़ते हैं, ऐसे सर्वोत्तम राजमहलोंमें जो निवास कर चुके हैं, वे श्रीराम वनमें पृथ्वीपर कैसे सोते होंगे?॥ ५—७॥

'जो गीतों और वाद्योंकी ध्वनियोंसे, श्रेष्ठ आभूषणोंकी झनकारोंसे तथा मृदङ्गोंके उत्तम शब्दोंसे सदा जगाये जाते थे, बहुत-से वन्दीगण समय-समयपर जिनकी वन्दना करते थे, सूत और मागध अनुरूप गाथाओं और स्तुतियोंसे जिनको जगाते थे, वे शत्रुसंतापी श्रीराम अब भूमिपर कैसे शयन करते होंगे?॥ ८-९॥

'यह बात जगत्में विश्वासके योग्य नहीं है। मुझे यह सत्य नहीं प्रतीत होती। मेरा अन्त:करण अवश्य ही मोहित हो रहा है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह कोई स्वप्न है॥ १०॥

'निश्चय ही कालके समान प्रबल कोई दूसरा देवता नहीं है, जिसके प्रभावसे दशरथनन्दन श्रीरामको भी इस प्रकार भूमिपर सोना पड़ा॥ ११॥

'उस कालके ही प्रभावसे विदेहराजकी परम सुन्दरी पुत्री और महाराज दशरथकी प्यारी पुत्रवधू सीता भी पृथ्वीपर शयन करती हैं॥ १२॥

'यही मेरे बड़े भाईकी शय्या है। यहीं उन्होंने करवटें बदली थीं। इस कठोर वेदीपर उनका शुभ शयन हुआ था, जहाँ उनके अङ्गोंसे कुचला गया सारा तृण अभीतक पड़ा है॥ १३॥

'जान पड़ता है, शुभलक्षणा सीता शय्यापर आभूषण पहने ही सोयी थीं; क्योंकि यहाँ यत्र-तत्र सुवर्णके कण सटे दिखायी देते हैं॥ १४॥

'यहाँ उस समय सीताकी चादर उलझ गयी थी, यह साफ दिखायी दे रहा है; क्योंकि यहाँ सटे हुए ये

रेशमके तागे चमक रहे हैं॥ १५॥

'मैं समझता हूँ कि पतिकी शय्या कोमल हो या कठोर, साध्वी स्त्रियोंके लिये वही सुखदायिनी होती है, तभी तो वह तपस्विनी एवं सुकुमारी बाला सती-साध्वी मिथिलेशकुमारी सीता यहाँ दुःखका अनुभव नहीं कर रही हैं॥ १६॥

'हाय! मैं मर गया—मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण सीतासहित श्रीरामको अनाथकी भाँति ऐसी शय्यापर सोना पड़ता है॥ १७॥

'जो चक्रवर्ती सम्राट्के कुलमें उत्पन्न हुए हैं, समस्त लोकोंको सुख देनेवाले हैं तथा सबका प्रिय करनेमें तत्पर रहते हैं, जिनका शरीर नीले कमलके समान श्याम, आँखें लाल और दर्शन सबको प्रिय लगनेवाला है तथा जो सुख भोगनेके ही योग्य हैं, दुःख भोगनेके कदापि योग्य नहीं हैं, वे ही श्रीरघुनाथजी परम उत्तम प्रिय राज्यका परित्याग करके इस समय पृथ्वीपर शयन करते हैं॥ १८-१९॥

'उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मण ही धन्य एवं बड़भागी हैं, जो संकटके समय बड़े भाई श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करते हैं॥ २०॥

'निश्चय ही विदेहनन्दिनी सीता भी कृतार्थ हो गयीं, जिन्होंने पतिके साथ वनका अनुसरण किया है। हम सब लोग उन महात्मा श्रीरामसे बिछुड़कर संशयमें पड़ गये हैं (हमें यह संदेह होने लगा है कि श्रीराम हमारी सेवा स्वीकार करेंगे या नहीं)॥ २१॥

'महाराज दशरथ स्वर्गलोकको गये और श्रीराम वनवासी हो गये, ऐसी दशामें यह पृथ्वी बिना नाविककी नौकाके समान मुझे सूनी-सी प्रतीत हो रही है॥ २२॥

'वनमें निवास करनेपर भी उन्हीं श्रीरामके बाहुबलसे सुरक्षित हुई इस वसुन्धराको कोई शत्रु मनसे भी नहीं लेना चाहता है॥ २३॥

'इस समय अयोध्याकी चहारदीवारीकी सब ओरसे रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है, हाथी और घोड़े बँधे नहीं रहते हैं—खुले विचरते हैं, नगरद्वारका फाटक खुला ही रहता है, सारी राजधानी अरक्षित है, सेनामें हर्ष और उत्साहका अभाव है, समस्त नगरी रक्षकोंसे सूनी-सी जान पड़ती है, सङ्कटमें पड़ी हुई है, रक्षकोंके अभावसे आवरणरहित हो गयी है, तो भी शत्रु विषमिश्रित भोजनकी भाँति इसे ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते हैं। श्रीरामके बाहुबलसे ही इसकी रक्षा हो रही है॥ २४-२५॥

'आजसे मैं भी पृथ्वीपर अथवा तिनकोंपर ही सोऊँगा, फल-मूलका ही भोजन करूँगा और सदा वल्कल वस्त्र तथा जटा धारण किये रहूँगा॥ २६॥

'वनवासके जितने दिन बाकी हैं, उतने दिनोंतक मैं ही वहाँ सुखपूर्वक निवास करूँगा, ऐसा होनेसे आर्य श्रीरामकी की हुई प्रतिज्ञा झूठी नहीं होगी॥ २७॥

'भाईके लिये वनमें निवास करते समय शत्रुघ्न मेरे साथ रहेंगे और मेरे बड़े भाई श्रीराम लक्ष्मणको साथ लेकर अयोध्याका पालन करेंगे॥ २८॥

'अयोध्यामें ब्राह्मणलोग ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामका अभिषेक करेंगे। क्या देवता मेरे इस मनोरथको सत्य (सफल) करेंगे?॥ २९॥

'मैं उनके चरणोंपर मस्तक रखकर उन्हें मनानेकी चेष्टा करूँगा। यदि मेरे बहुत कहनेपर भी वे लौटनेको राजी न होंगे तो उन वनवासी श्रीरामके साथ मैं भी दीर्घकालतक वहीं निवास करूँगा। वे मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे'॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ सर्ग

भरतका सेनासहित गङ्गापार करके भरद्वाजके आश्रमपर जाना

शृङ्गवेरपुरमें ही गङ्गाके तटपर रात्रि बिताकर रघुकुलनन्दन भरत प्रातःकाल उठे और शत्रुघ्नसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'शत्रुघ्न! उठो, क्या सो रहे हो। तुम्हारा कल्याण हो, तुम निषादराज गुहको शीघ्र बुला लाओ, वही हमें गङ्गाके पार उतारेगा'॥ २॥

उनसे इस प्रकार प्रेरित होनेपर शत्रुघ्नने कहा—'भैया! मैं भी आपकी ही भाँति आर्य श्रीरामका चिन्तन करता हुआ जाग रहा हूँ, सोता नहीं हूँ'॥ ३॥

वे दोनों पुरुषसिंह जब इस प्रकार परस्पर बातचीत कर रहे थे, उसी समय गुह उपयुक्त वेलामें आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—॥ ४॥

'ककुत्स्थकुलभूषण भरतजी! इस नदीके तटपर आप रातमें सुखसे रहे हैं न? सेनासहित आपको यहाँ कोई कष्ट तो नहीं हुआ है? आप सर्वथा नीरोग हैं न?'॥

गुहके स्नेहपूर्वक कहे गये इस वचनको सुनकर श्रीरामके अधीन रहनेवाले भरतने यों कहा—॥ ६॥

'बुद्धिमान् निषादराज! हम सब लोगोंकी रात बड़े सुखसे बीती है। तुमने हमारा बड़ा सत्कार किया। अब ऐसी व्यवस्था करो, जिससे तुम्हारे मल्लाह बहुत-सी नौकाओंद्वारा हमें गङ्गाके पार उतार दें'॥ ७॥

भरतका यह आदेश सुनकर गुह तुरंत अपने नगरमें गया और भाई-बन्धुओंसे बोला—॥ ८॥

'उठो, जागो, सदा तुम्हारा कल्याण हो। नौकाओंको खींचकर घाटपर ले आओ। भरतकी सेनाको गङ्गाजीके पार उतारूँगा'॥ ९॥

गुहके इस प्रकार कहनेपर अपने राजाकी आज्ञासे सभी मल्लाह शीघ्र ही उठ खड़े हुए और चारों ओरसे पाँच सौ नौकाएँ एकत्र कर लाये॥ १०॥

इन सबके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक नामसे प्रसिद्ध नौकाएँ थीं; जो स्वस्तिकके चिह्नोंसे अलंकृत होनेके कारण उन्हीं चिह्नोंसे पहचानी जाती थीं। उनपर ऐसी पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनमें बड़ी-बड़ी घण्टियाँ लटक रही थीं। स्वर्ण आदिके बने हुए चित्रोंसे उन नौकाओंकी विशेष शोभा हो रही थी। उनमें नौका खेनेके लिये बहुत-से डाँड़ लगे हुए थे तथा चतुर नाविक उन्हें चलानेके लिये तैयार बैठे थे। वे सभी नौकाएँ बड़ी मजबूत बनी थीं॥ ११॥

उन्हींमेंसे एक कल्याणमयी नाव गुह स्वयं लेकर आया, जिसमें श्वेत कालीन बिछे हुए थे तथा उस स्वस्तिक नामवाली नावपर माङ्गलिक शब्द हो रहा था॥ १२॥

उसपर सबसे पहले पुरोहित, गुरु और ब्राह्मण बैठे। तत्पश्चात् उसपर भरत, महाबली शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा राजा दशरथकी जो अन्य रानियाँ थीं, वे सब सवार हुईं। तदनन्तर राजपरिवारकी दूसरी स्त्रियाँ बैठीं। गाड़ियाँ तथा क्रय-विक्रयकी सामग्रियाँ दूसरी-दूसरी नावोंपर लादी गयीं॥ १३-१४॥

कुछ सैनिक बड़ी-बड़ी मशालें जलाकर[1] अपने खेमोंमें छूटी हुई वस्तुओंको सँभालने लगे। कुछ लोग शीघ्रतापूर्वक घाटपर उतरने लगे तथा बहुत-से सैनिक अपने-अपने सामानको 'यह मेरा है, यह मेरा है' इस तरह पहचानकर उठाने लगे। उस समय जो महान् कोलाहल मचा, वह आकाशमें गूँज उठा॥ १५॥

उन सभी नावोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। सबके ऊपर खेनेवाले कई मल्लाह बैठे थे। वे सब नौकाएँ उस समय चढ़े हुए मनुष्योंको तीव्रगतिसे पार ले जाने लगीं॥ १६॥

कितनी ही नौकाएँ केवल स्त्रियोंसे भरी थीं, कुछ नावोंपर घोड़े थे तथा कुछ नौकाएँ गाड़ियों, उनमें जोते जानेवाले घोड़े, खच्चर, बैल आदि वाहनों तथा बहुमूल्य रत्न आदिको ढो रही थीं॥ १७॥

वे दूसरे तटपर पहुँचकर वहाँ लोगोंको उतारकर जब लौटीं, उस समय मल्लाहबन्धु जलमें उनकी विचित्र गतियोंका प्रदर्शन करने लगे॥ १८॥

वैजयन्ती पताकाओंसे सुशोभित होनेवाले हाथी महावतोंसे प्रेरित होकर स्वयं ही नदी पार करने लगे। उस समय वे पंखधारी पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे॥

कितने ही मनुष्य नावोंपर बैठे थे और कितने ही बाँस तथा तिनकोंसे बने हुए बेड़ोंपर सवार थे। कुछ लोग बड़े-बड़े कलशों, कुछ छोटे घड़ों और कुछ अपनी बाहुओंसे ही तैरकर पार हो रहे थे॥ २०॥

इस प्रकार मल्लाहोंकी सहायतासे वह सारी पवित्र सेना गङ्गाके पार उतारी गयी। फिर वह स्वयं मैत्र[2] नामक मुहूर्तमें उत्तम प्रयागवनकी ओर प्रस्थित हो गयी॥ २१॥

१. यहाँ 'आवासमादीपयताम्' का अर्थ कुछ टीकाकारोंने यह किया है कि 'वे अपने आवासस्थानमें आग लगाने लगे।' आवश्यक वस्तुओंको लाद लेनेके बाद जो मामूली झोंपड़े और नगण्य वस्तुएँ शेष रह जाती हैं, उनमें छावनी उखाड़ते समय आग लगा देना—यह सेनाका धर्म बताया गया है। इसके दो रहस्य हैं, किसी शत्रुपक्षीय व्यक्तिके लिये अपना कोई निशान न छोड़ना—यह सैनिक नीति है। दूसरा यह है कि इस तरह आग लगाकर जानेसे विजय-लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है—ऐसा उनका परम्परागत विश्वास है।

२. दो-दो घड़ी (दण्ड) का एक मुहूर्त होता है। दिनमें कुल पंद्रह मुहूर्त बीतते हैं। इनमेंसे तीसरे मुहूर्तको 'मैत्र' कहते हैं। बृहस्पतिने पंद्रह मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार गिनाये हैं—रौद्र, सार्प, मैत्र, पैत्र, वासव, आप्य, वैश्व, ब्राह्म, प्राज, ईश, ऐन्द्र, ऐन्द्राग्न, नैर्ऋत, वारुणार्यमण तथा भगी। जैसा कि वचन है—

रौद्रः सार्पस्तथा मैत्रः पैत्रो वासव एव च। आप्यो वैश्वस्तथा ब्राह्मः प्राजेशैन्द्रास्तथैव च॥
ऐन्द्राग्नो नैर्ऋतश्चैव वारुणार्यमणो भगी। एतेऽह्नि क्रमशो ज्ञेया मुहूर्ता दश पञ्च च॥

वहाँ पहुँचकर महात्मा भरत सेनाको सुखपूर्वक विश्रामकी आज्ञा दे उसे प्रयागवनमें ठहराकर स्वयं ऋत्विजों तथा राजसभाके सदस्योंके साथ ऋषिश्रेष्ठ भरद्वाजका दर्शन करनेके लिये गये॥ २२॥

देवपुरोहित महात्मा ब्राह्मण भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचकर भरतने उन विप्रशिरोमणिके रमणीय एवं विशाल वनको देखा, जो मनोहर पर्णशालाओं तथा वृक्षावलियोंसे सुशोभित था॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ सर्ग

भरत और भरद्वाज मुनिकी भेंट एवं बातचीत तथा मुनिका अपने आश्रमपर ही ठहरनेका आदेश देना

धर्मके ज्ञाता नरश्रेष्ठ भरतने भरद्वाज-आश्रमके पास पहुँचकर अपने साथके सब लोगोंको आश्रमसे एक कोस इधर ही ठहरा दिया था और अपने भी अस्त्र-शस्त्र तथा राजोचित वस्त्र उतारकर वहीं रख दिये थे। केवल दो रेशमी वस्त्र धारण करके पुरोहितको आगे किये वे मन्त्रियोंके साथ पैदल ही वहाँ गये॥ १-२॥

आश्रममें प्रवेश करके जहाँ दूरसे ही मुनिवर भरद्वाजका दर्शन होने लगा। वहीं उन्होंने उन मन्त्रियोंको खड़ा कर दिया और पुरोहित वसिष्ठजीको आगे करके वे पीछे-पीछे ऋषिके पास गये॥ ३॥

महर्षि वसिष्ठको देखते ही महातपस्वी भरद्वाज आसनसे उठ खड़े हुए और शिष्योंसे शीघ्रतापूर्वक अर्घ्य ले आनेको कहा॥ ४॥

फिर वे वसिष्ठसे मिले। तत्पश्चात् भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महातेजस्वी भरद्वाज समझ गये कि ये राजा दशरथके पुत्र हैं॥ ५॥

धर्मज्ञ ऋषिने क्रमशः वसिष्ठ और भरतको अर्घ्य, पाद्य तथा फल आदि निवेदन करके उन दोनोंके कुलका कुशल-समाचार पूछा॥ ६॥

इसके बाद अयोध्या, सेना, खजाना, मित्रवर्ग तथा मन्त्रिमण्डलका हाल पूछा। राजा दशरथकी मृत्युका वृत्तान्त वे जानते थे; इसलिये उनके विषयमें उन्होंने कुछ नहीं पूछा॥ ७॥

वसिष्ठ और भरतने भी महर्षिके शरीर, अग्निहोत्र, शिष्यवर्ग, पेड़-पत्ते तथा मृग-पक्षी आदिका कुशल समाचार पूछा॥ ८॥

महायशस्वी भरद्वाज 'सब ठीक है' ऐसा कहकर श्रीरामके प्रति स्नेह होनेके कारण भरतसे इस प्रकार बोले— ॥ ९॥

'तुम तो राज्य कर रहे हो न? तुम्हें यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी? यह सब मुझे बताओ, क्योंकि मेरा मन तुम्हारी ओरसे शुद्ध नहीं हो रहा है—मेरा विश्वास तुमपर नहीं जमता है॥ १०॥

'जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है, जिस आनन्दवर्धक पुत्रको कौसल्याने जन्म दिया है तथा तुम्हारे पिताने स्त्रीके कारण जिस महायशस्वी पुत्रको चौदह वर्षोंतक वनमें रहनेकी आज्ञा देकर उसे भाई और पत्नीके साथ दीर्घकालके लिये वनमें भेज दिया है, उस निरपराध श्रीराम और उसके छोटे भाई लक्ष्मणका तुम अकण्टक राज्य भोगनेकी इच्छासे कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते हो?'॥ ११—१३॥

भरद्वाजजीके ऐसा कहनेपर दुःखके कारण भरतकी आँखें डबडबा आयीं। वे लड़खड़ाती हुई वाणीमें उनसे इस प्रकार बोले— ॥ १४॥

'भगवन्! यदि आप पूज्यपाद महर्षि भी मुझे ऐसा समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया। यह मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि श्रीरामके वनवासमें मेरी ओरसे कोई अपराध नहीं हुआ है, अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न कहें॥ १५॥

'मेरी आड़ लेकर मेरी माताने जो कुछ कहा या किया है, यह मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं इससे संतुष्ट नहीं हूँ और न माताकी उस बातको स्वीकार ही करता हूँ॥

'मैं तो उन पुरुषसिंह श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्यामें लौटा लाने और उनके चरणोंकी वन्दना करनेके लिये जा रहा हूँ॥ १७॥

'इसी उद्देश्यसे मैं यहाँ आया हूँ। ऐसा समझकर आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये। भगवन्! आप मुझे बताइये कि इस समय महाराज श्रीराम कहाँ हैं?'॥ १८॥

इसके बाद वसिष्ठ आदि ऋत्विजोंने भी यह

प्रार्थना की कि भरतका कोई अपराध नहीं है। आप इनपर प्रसन्न हों। तब भगवान् भरद्वाजने प्रसन्न होकर भरतसे कहा—॥ १९ ॥

'पुरुषसिंह! तुम रघुकुलमें उत्पन्न हुए हो। तुममें गुरुजनोंकी सेवा, इन्द्रियसंयम तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके अनुसरणका भाव होना उचित ही है॥ २० ॥

'तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे मैं जानता हूँ; तथापि मैंने इसलिये पूछा है कि तुम्हारा यह भाव और भी दृढ़ हो जाय तथा तुम्हारी कीर्तिका अधिकाधिक विस्तार हो॥ २१ ॥

'मैं सीता और लक्ष्मणसहित धर्मज्ञ श्रीरामका पता जानता हूँ। ये तुम्हारे भ्राता श्रीरामचन्द्र महापर्वत चित्रकूटपर निवास करते हैं॥ २२ ॥

'अब कल तुम उस स्थानकी यात्रा करना। आज अपने मन्त्रियोंके साथ इस आश्रममें ही रहो। महाबुद्धिमान् भरत! तुम मेरी इस अभीष्ट वस्तुको देनेमें समर्थ हो, अतः मेरी यह अभिलाषा पूर्ण करो'॥ २३ ॥

तब जिनके स्वरूप एवं स्वभावका परिचय मिल गया था, उन उदार दृष्टिवाले भरतने 'तथास्तु' कहकर मुनिकी आज्ञा शिरोधार्य की तथा उन राजकुमारने उस समय रातको उस आश्रममें ही निवास करनेका विचार किया॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ सर्ग

भरद्वाज मुनिके द्वारा सेनासहित भरतका दिव्य सत्कार

जब भरतने उस आश्रममें ही निवासका दृढ़ निश्चय कर लिया, तब मुनिने कैकेयीकुमार भरतको अपना आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये न्यौता दिया॥ १ ॥

यह सुनकर भरतने उनसे कहा—'मुने! वनमें जैसा आतिथ्य-सत्कार सम्भव है, वह तो आप पाद्य, अर्घ्य और फल-मूल आदि देकर कर ही चुके'॥ २ ॥

उनके ऐसा कहनेपर भरद्वाजजी भरतसे हँसते हुए-से बोले—'भरत! मैं जानता हूँ, मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम है; अतः मैं तुम्हें जो कुछ दूँगा, उसीसे तुम संतुष्ट हो जाओगे॥ ३ ॥

'किंतु इस समय मैं तुम्हारी सेनाको भोजन कराना चाहता हूँ। नरश्रेष्ठ! इससे मुझे प्रसन्नता होगी और जिस तरह मुझे प्रसन्नता हो, वैसा कार्य तुम्हें अवश्य करना चाहिये॥ ४ ॥

'पुरुषप्रवर! तुम अपनी सेनाको किसलिये इतनी दूर छोड़कर यहाँ आये हो, सेनासहित यहाँ क्यों नहीं आये?'॥ ५ ॥

तब भरतने हाथ जोड़कर उन तपोधन मुनिको उत्तर दिया—'भगवन्! मैं आपके ही भयसे सेनाके साथ यहाँ नहीं आया॥ ६ ॥

'प्रभो! राजा और राजपुत्रको चाहिये कि वे सभी देशोंमें प्रयत्नपूर्वक तपस्वीजनोंको दूर छोड़कर रहें (क्योंकि उनके द्वारा उन्हें कष्ट पहुँचनेकी सम्भावना रहती है)॥

'भगवन्! मेरे साथ बहुत-से अच्छे-अच्छे घोड़े, मनुष्य और मतवाले गजराज हैं, जो बहुत बड़े भूभागको ढककर मेरे पीछे-पीछे चलते हैं॥ ८ ॥

'वे आश्रमके वृक्ष, जल, भूमि और पर्णशालाओंको हानि न पहुँचायें, इसलिये मैं यहाँ अकेला ही आया हूँ'॥

तदनन्तर उन महर्षिने आज्ञा दी कि 'सेनाको यहीं ले आओ।' तब भरतने सेनाको वहीं बुलवा लिया॥ १० ॥

इसके बाद मुनिवर भरद्वाजने अग्निशालामें प्रवेश करके जलका आचमन किया और ओठ पोंछकर भरतके आतिथ्य-सत्कारके लिये विश्वकर्मा आदिका आवाहन किया॥ ११ ॥

वे बोले—'मैं विश्वकर्मा त्वष्टा देवताका आवाहन करता हूँ। मेरे मनमें सेनासहित भरतका आतिथ्य-सत्कार करनेकी इच्छा हुई है। इसमें मेरे लिये वे आवश्यक प्रबन्ध करें॥ १२ ॥

'जिनके अगुआ इन्द्र हैं, उन तीन लोकपालोंका (अर्थात् इन्द्रसहित यम, वरुण और कुबेर नामक देवताओंका) मैं आवाहन करता हूँ। इस समय भरतका आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ, इसमें मेरे लिये वे लोग आवश्यक प्रबन्ध करें॥ १३ ॥

'पृथिवी और आकाशमें जो पूर्व एवं पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली नदियाँ हैं, उनका भी मैं आवाहन करता हूँ; वे सब आज यहाँ पधारें॥ १४ ॥

'कुछ नदियाँ मैरेय प्रस्तुत करें। दूसरी अच्छी तरह तैयार की हुई सुरा ले आवें तथा अन्य नदियाँ ईंखके पोरुओंमें होनेवाले रसकी भाँति मधुर एवं शीतल जल तैयार करके रखें॥ १५॥

'मैं विश्वावसु, हाहा और हूहू आदि देव-गन्धर्वोंका तथा उनके साथ समस्त अप्सराओंका भी आवाहन करता हूँ॥

'घृताची विश्वाची, मिश्रकेशी, अलम्बुषा नागदत्ता, हेमा, सोमा तथा अद्रिकृतस्थली (अथवा पर्वतपर निवास करनेवाली सोमा) का भी मैं आवाहन करता हूँ॥ १७॥

'जो अप्सराएँ इन्द्रकी सभामें उपस्थित होती हैं तथा जो देवाङ्गनाएँ ब्रह्माजीकी सेवामें जाया करती हैं, उन सबका मैं तुम्बुरुके साथ आवाहन करता हूँ। वे अलङ्कारों तथा नृत्यगीतके लिये अपेक्षित अन्यान्य उपकरणोंके साथ यहाँ पधारें॥ १८॥

'उत्तर कुरुवर्षमें जो दिव्य चैत्ररथ नामक वन है, जिसमें दिव्य वस्त्र और आभूषण ही वृक्षोंके पत्ते हैं और दिव्य नारियाँ ही फल हैं, कुबेरका वह सनातन दिव्य वन यहीं आ जाय॥ १९॥

'यहाँ भगवान् सोम मेरे अतिथियोंके लिये उत्तम अन्न, नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्यकी प्रचुर मात्रामें व्यवस्था करें॥ २०॥

'वृक्षोंसे तुरंत चुने गये नाना प्रकारके पुष्प, मधु आदि पेय पदार्थ तथा नाना प्रकारके फलोंके गूदे भी भगवान् सोम यहाँ प्रस्तुत करें'॥ २१॥

इस प्रकार उत्तम व्रतका पालन करनेवाले भरद्वाज मुनिने एकाग्रचित्त और अनुपम तेजसे सम्पन्न हो शिक्षा (शिक्षाशास्त्रमें बतायी गयी उच्चारणविधि) और (व्याकरणशास्त्रोक्त प्रकृति-प्रत्यय सम्बन्धी)स्वरसे युक्त वाणीमें उन सबका आवाहन किया॥ २२॥

इस तरह आवाहन करके मुनि पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़े मन-ही-मन ध्यान करने लगे। उनके स्मरण करते ही वे सभी देवता एक-एक करके वहाँ आ पहुँचे॥ २३॥

फिर तो वहाँ मलय और दर्दुर नामक पर्वतोंका स्पर्श करके बहनेवाली अत्यन्त प्रिय और सुखदायिनी हवा धीरे-धीरे चलने लगी, जो स्पर्शमात्रसे शरीरके पसीनेको सुखा देनेवाली थी॥ २४॥

तत्पश्चात् मेघगण दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण दिशाओंमें देवताओंकी दुन्दुभियोंका मधुर शब्द सुनायी देने लगा॥ २५॥

उत्तम वायु चलने लगी। अप्सराओंके समुदायोंका नृत्य होने लगा। देवगन्धर्व गाने लगे और सब ओर वीणाओंकी स्वरलहरियाँ फैल गयीं॥ २६॥

सङ्गीतका वह शब्द पृथ्वी, आकाश तथा प्राणियोंके कर्णकुहरोंमें प्रविष्ट होकर गूँजने लगा। आरोह-अवरोहसे युक्त वह शब्द कोमल एवं मधुर था, समतालसे विशिष्ट और लयगुणसे सम्पन्न था॥ २७॥

इस प्रकार मनुष्योंके कानोंको सुख देनेवाला वह दिव्य शब्द हो ही रहा था कि भरतकी सेनाको विश्वकर्माका निर्माणकौशल दिखायी पड़ा॥ २८॥

चारों ओर पाँच योजनतककी भूमि समतल हो गयी। उसपर नीलम और वैदूर्य मणिके समान नाना प्रकारकी घनी घास छा रही थी॥ २९॥

स्थान-स्थानपर बेल, कैथ, कटहल, आँवला, बिजौरा तथा आमके वृक्ष लगे थे, जो फलोंसे सुशोभित हो रहे थे॥ ३०॥

उत्तर कुरुवर्षसे दिव्य भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न चैत्ररथ नामक वन वहाँ आ गया। साथ ही वहाँकी रमणीय नदियाँ भी आ पहुँचीं, जो बहुसंख्यक तटवर्ती वृक्षोंसे घिरी हुई थीं॥ ३१॥

उज्ज्वल, चार-चार कमरोंसे युक्त गृह (अथवा गृहयुक्त चबूतरे) तैयार हो गये। हाथी और घोड़ोंके रहनेके लिये शालाएँ बन गयीं। अट्टालिकाओं तथा सतमंजिले महलोंसे युक्त सुन्दर नगरद्वार भी निर्मित हो गये॥ ३२॥

राजपरिवारके लिये बना हुआ सुन्दर द्वारसे युक्त दिव्य भवन श्वेत बादलोंके समान शोभा पा रहा था। उसे सफेद फूलोंकी मालाओंसे सजाया और दिव्य सुगन्धित जलसे सींचा गया था॥ ३३॥

वह महल चौकोना तथा बहुत बड़ा था—उसमें संकीर्णताका अनुभव नहीं होता था। उसमें सोने, बैठने और सवारियोंके रहनेके लिये अलग-अलग स्थान थे। वहाँ सब प्रकारके दिव्य रस, दिव्य भोजन और दिव्य वस्त्र प्रस्तुत थे॥ ३४॥

सब तरहके अन्न और धुले हुए स्वच्छ पात्र रखे गये थे। उस सुन्दर भवनमें कहीं बैठनेके लिये सब प्रकारके आसन उपस्थित थे और कहीं सोनेके लिये सुन्दर शय्याएँ बिछी थीं॥ ३५॥

महर्षि भरद्वाजकी आज्ञासे कैकेयीपुत्र महाबाहु भरतने नाना प्रकारके रत्नोंसे भरे हुए उस महलमें प्रवेश किया। उनके साथ-साथ पुरोहित और मन्त्री भी उसमें गये। उस भवनका निर्माणकौशल देखकर उन सब

लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३६-३७॥

उस भवनमें भरतने दिव्य राजसिंहासन, चँवर और छत्र भी देखे तथा वहाँ राजा श्रीरामकी भावना करके मन्त्रियोंके साथ उन समस्त राजभोग्य वस्तुओंकी प्रदक्षिणा की॥ ३८॥

सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजी महाराज विराजमान हैं, ऐसी धारणा बनाकर उन्होंने श्रीरामको प्रणाम किया और उस सिंहासनकी भी पूजा की। फिर अपने हाथमें चँवर ले, वे मन्त्रीके आसनपर जा बैठे॥ ३९॥

तत्पश्चात् पुरोहित और मन्त्री भी क्रमशः अपने योग्य आसनोंपर बैठे; फिर सेनापति और प्रशास्ता (छावनीकी रक्षा करनेवाले) भी बैठ गये॥ ४०॥

तदनन्तर वहाँ दो ही घड़ीमें भरद्वाज मुनिकी आज्ञासे भरतकी सेवामें नदियाँ उपस्थित हुईं, जिनमें कीचके स्थानमें खीर भरी थी॥ ४१॥

उन नदियोंके दोनों तटोंपर ब्रह्मर्षि भरद्वाजकी कृपासे दिव्य एवं रमणीय भवन प्रकट हो गये थे, जो चूनेसे पुते हुए थे॥ ४२॥

उसी मुहूर्तमें ब्रह्माजीकी भेजी हुई दिव्य आभूषणोंसे विभूषित बीस हजार दिव्याङ्गनाएँ वहाँ आयीं॥ ४३॥

इसी तरह सुवर्ण, मणि, मुक्ता और मूँगोंके आभूषणोंसे सुशोभित, कुबेरकी भेजी हुई बीस हजार दिव्य महिलाएँ भी वहाँ उपस्थित हुईं, जिनका स्पर्श पाकर पुरुष उन्मादग्रस्त-सा दिखायी देता है॥ ४४½॥

इनके सिवा नन्दनवनसे बीस हजार अप्सराएँ भी आयीं। नारद, तुम्बुरु और गोप अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित होते थे। ये तीनों गन्धर्वराज भरतके सामने गीत गाने लगे॥ ४५-४६॥

अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका और वामना—ये चार अप्सराएँ भरद्वाज मुनिकी आज्ञासे भरतके समीप नृत्य करने लगीं॥ ४७॥

जो फूल देवताओंके उद्यानोंमें और जो चैत्ररथ वनमें हुआ करते हैं, वे महर्षि भरद्वाजके प्रतापसे प्रयागमें दिखायी देने लगे॥ ४८॥

भरद्वाज मुनिके तेजसे बेलके वृक्ष मृदङ्ग बजाते, बहेड़ेके पेड़ शम्या नामक ताल देते और पीपलके वृक्ष वहाँ नृत्य करते थे॥ ४९॥

तदनन्तर देवदारु, ताल, तिलक और तमाल नामक वृक्ष कुबड़े और बौने बनकर बड़े हर्षके साथ भरतकी सेवामें उपस्थित हुए॥ ५०॥

शिंशपा, आमलकी और जम्बू आदि स्त्रीलिङ्ग वृक्ष तथा मालती, मल्लिका और जाति आदि वनकी लताएँ नारीका रूप धारण करके भरद्वाज मुनिके आश्रममें आ बसीं॥ ५१॥

(वे भरतके सैनिकोंको पुकार-पुकारकर कहती थीं—) 'मधुका पान करनेवाले लोगो! लो, यह मधु पान कर लो। तुममेंसे जिन्हें भूख लगी हो, वे सब लोग यह खीर खाओ और परम पवित्र फलोंके गूदे भी प्रस्तुत हैं, इनका आस्वादन करो। जिसकी जो इच्छा हो, वही भोजन करो'॥ ५२॥

सात-आठ तरुणी स्त्रियाँ मिलकर एक-एक पुरुषको नदीके मनोहर तटोंपर उबटन लगा-लगाकर नहलाती थीं॥

बड़े-बड़े नेत्रोंवाली सुन्दरी रमणियाँ अतिथियोंका पैर दबानेके लिये आयी थीं। वे उनके भीगे हुए अङ्गोंको वस्त्रोंसे पोंछकर शुद्ध वस्त्र धारण कराकर उन्हें स्वादिष्ट पेय (दूध आदि) पिलाती थीं॥ ५४॥

तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न वाहनोंकी रक्षामें नियुक्त मनुष्योंने हाथी, घोड़े, गधे, ऊँट और बैलोंको भलीभाँति दाना-घास आदिका भोजन कराया॥ ५५॥

इक्ष्वाकुकुलके श्रेष्ठ योद्धाओंकी सवारीमें आनेवाले वाहनोंको वे महाबली वाहन-रक्षक (जिन्हें महर्षिने सेवाके लिये नियुक्त किया था) प्रेरणा दे-देकर गन्नेके टुकड़े और मधुमिश्रित लावे खिलाते थे॥ ५६॥

घोड़े बाँधनेवाले सईसको अपने घोड़ेका और हाथीवानको अपने हाथीका कुछ पता नहीं था। सारी सेना वहाँ मत्त-प्रमत्त और आनन्दमग्न प्रतीत होती थी॥ ५७॥

सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंसे तृप्त होकर लाल चन्दनसे चर्चित हुए सैनिक अप्सराओंका संयोग पाकर निम्नाङ्कित बातें कहने लगे—॥ ५८॥

'अब हम अयोध्या नहीं जायँगे, दण्डकारण्यमें भी नहीं जायँगे। भरत सकुशल रहें (जिनके कारण हमें इस भूतलपर स्वर्गका सुख मिला) तथा श्रीरामचन्द्रजी भी सुखी रहें (जिनके दर्शनके लिये आनेपर हमें इस दिव्य सुखकी प्राप्ति हुई)'॥ ५९॥

इस प्रकार पैदल सैनिक तथा हाथीसवार, घुड़सवार, सईस और महावत आदि उस सत्कारको पाकर स्वच्छन्द हो उपर्युक्त बातें कहने लगे॥ ६०॥

भरतके साथ आये हुए हजारों मनुष्य वहाँका वैभव देखकर हर्षके मारे फूले नहीं समाते थे और जोर-जोरसे कहते थे—यह स्थान स्वर्ग है॥ ६१॥

सहस्रों सैनिक फूलोंके हार पहनकर नाचते, हँसते

और गाते हुए सब ओर दौड़ते फिरते थे॥ ६२॥

उस अमृतके समान स्वादिष्ट अन्नका भोजन कर चुकनेपर भी उन दिव्य भक्ष्य पदार्थोंको देखकर उन्हें पुन: भोजन करनेकी इच्छा हो जाती थी॥ ६३॥

दास-दासियाँ, सैनिकोंकी स्त्रियाँ और सैनिक सब-के-सब नूतन वस्त्र धारण करके सब प्रकारसे अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे॥ ६४॥

हाथी, घोड़े, गदहे, ऊँट, बैल, मृग तथा पक्षी भी वहाँ पूर्ण तृप्त हो गये थे; अत: कोई दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता था॥ ६५॥

उस समय वहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखायी देता था, जिसके कपड़े सफेद न हों, जो भूखा या मलिन रह गया हो, अथवा जिसके केश धूलसे धूसरित हो गये हों॥ ६६॥

अजवाइन मिलाकर बनाये गये, वराही कन्दसे तैयार किये गये तथा आम आदि फलोंके गरम किये हुए रसमें पकाये गये उत्तमोत्तम व्यञ्जनोंके संग्रहों, सुगन्धयुक्त रसवाली दालों तथा श्वेत रंगके भातोंसे भरे हुए सहस्रों सुवर्ण आदिके पात्र वहाँ सब ओर रखे हुए थे, जिन्हें फूलोंकी ध्वजाओंसे सजाया गया था। भरतके साथ आये हुए सब लोगोंने उन पात्रोंको आश्चर्यचकित होकर देखा॥

वनके आस-पास जितने कुएँ थे, उन सबमें गाढ़ी स्वादिष्ट खीर भरी हुई थी। वहाँकी गौएँ कामधेनु (सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली) हो गयी थीं और उस दिव्य वनके वृक्ष मधुकी वर्षा करते थे॥ ६९॥

भरतकी सेनामें आये हुए निषाद आदि निम्नवर्गके लोगोंकी तृप्तिके लिये वहाँ मधुसे भरी हुई बावड़ियाँ प्रकट हो गयी थीं तथा उनके तटोंपर तपे हुए पिठर (कुण्ड) में पकाये गये मृग, मोर और मुर्गोंके स्वच्छ मांस भी ढेर-के-ढेर रख दिये गये थे॥ ७०॥

वहाँ सहस्रों सोनेके अन्नपात्र, लाखों व्यञ्जनपात्र और लगभग एक अरब थालियाँ संगृहीत थीं॥ ७१॥

पिठर, छोटे-छोटे घड़े तथा मटके दहीसे भरे हुए थे और उनमें दहीको सुस्वादु बनानेवाले सोंठ आदि मसाले पड़े हुए थे। एक पहर पहलेके तैयार किये हुए केसरमिश्रित पीतवर्णवाले सुगन्धित तक्रके कई तालाब भरे हुए थे। जीरा आदि मिलाये हुए तक्र (रसाल), सफेद दही तथा दूधके भी कई कुण्ड पृथक्-पृथक् भरे हुए थे। शक्करोंके कई ढेर लगे थे॥ ७२-७३॥

स्नान करनेवाले मनुष्योंको नदीके घाटोंपर भिन्न-भिन्न पात्रोंमें पीसे हुए आँवले, सुगन्धित चूर्ण तथा और भी नाना प्रकारके स्नानोपयोगी पदार्थ दिखायी देते थे॥ ७४॥

साथ ही ढेर-के-ढेर दाँतन, जो सफेद कूँचेवाले थे, वहाँ रखे हुए थे। सम्पुटोंमें घिसे हुए सफेद चन्दन विद्यमान थे। इन सब वस्तुओंको लोगोंने देखा॥ ७५॥

इतना ही नहीं, वहाँ बहुत-से स्वच्छ दर्पण, ढेर-के-ढेर वस्त्र और हजारों जोड़े खड़ाऊँ और जूते भी दिखायी देते थे॥ ७६॥

काजलोंसहित कजरौटे, कंघे, कूर्च (थकरी या ब्रश), छत्र, धनुष, मर्मस्थानोंकी रक्षा करनेवाले कवच आदि तथा विचित्र शय्या और आसन भी वहाँ दृष्टिगोचर होते थे॥ ७७॥

गधे, ऊँट, हाथी और घोड़ोंके पानी पीनेके लिये कई जलाशय भरे थे, जिनके घाट बड़े सुन्दर और सुखपूर्वक उतरनेयोग्य थे। उन जलाशयोंमें कमल और उत्पल शोभा पा रहे थे। उनका जल आकाशके समान स्वच्छ था तथा उनमें सुखपूर्वक तैरा जा सकता था॥

पशुओंके खानेके लिये वहाँ सब ओर नील वैदूर्यमणिके समान रंगवाली हरी एवं कोमल घासकी ढेरियाँ लगी थीं। उन सब लोगोंने वे सारी वस्तुएँ देखीं॥ ७९॥

महर्षि भरद्वाजके द्वारा सेनासहित भरतका किया हुआ वह अनिर्वचनीय आतिथ्य-सत्कार अद्‌भुत और स्वप्नके समान था। उसे देखकर वे सब मनुष्य आश्चर्यचकित हो उठे॥ ८०॥

जैसे देवता नन्दनवनमें विहार करते हैं, उसी प्रकार भरद्वाज मुनिके रमणीय आश्रममें यथेष्ट क्रीडा—विहार करते हुए उन लोगोंकी वह रात्रि बड़े सुखसे बीती॥

तत्पश्चात् वे नदियाँ, गन्धर्व और समस्त सुन्दरी अप्सराएँ भरद्वाजजीकी आज्ञा ले जैसे आयी थीं, उसी प्रकार लौट गयीं॥ ८२॥

सबेरा हो जानेपर भी लोग उसी प्रकार मधुपानसे मत्त एवं उन्मत्त दिखायी देते थे। उनके अङ्गोंपर दिव्य अगुरुयुक्त चन्दनका लेप ज्यों-का-त्यों दृष्टिगोचर हो रहा था। मनुष्योंके उपभोगमें लाये गये नाना प्रकारके दिव्य उत्तम पुष्पहार भी उसी अवस्थामें पृथक्-पृथक् बिखरे पड़े थे॥ ८३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ सर्ग

भरतका भरद्वाज मुनिसे जानेकी आज्ञा लेते हुए श्रीरामके आश्रमपर जानेका मार्ग जानना और मुनिको अपनी माताओंका परिचय देकर वहाँसे चित्रकूटके लिये सेनासहित प्रस्थान करना

परिवारसहित भरत इच्छानुसार मुनिका आतिथ्य ग्रहण करके रातभर आश्रममें ही रहे। फिर सबेरे जानेकी आज्ञा लेनेके लिये वे महर्षि भरद्वाजके पास गये॥ १॥

पुरुषसिंह भरतको हाथ जोड़े अपने पास आया देख भरद्वाजजी अग्निहोत्रका कार्य करके उनसे बोले— ॥ २॥

'निष्पाप भरत! क्या हमारे इस आश्रममें तुम्हारी यह रात सुखसे बीती है? क्या तुम्हारे साथ आये हुए सब लोग इस आतिथ्यसे संतुष्ट हुए हैं? यह बताओ'॥

तब भरतने आश्रमसे बाहर निकले हुए उन उत्तम तेजस्वी महर्षिको प्रणाम करके उनसे हाथ जोड़कर कहा— ॥ ४॥

'भगवन्! मैं सम्पूर्ण सेना और सवारीके साथ यहाँ सुखपूर्वक रहा हूँ तथा सैनिकोंसहित मुझे पूर्णरूपसे तृप्त किया गया है॥ ५॥

'सेवकोंसहित हम सब लोग ग्लानि और संतापसे रहित हो उत्तम अन्न-पान ग्रहण करके सुन्दर गृहोंका आश्रय ले बड़े सुखसे यहाँ रातभर रहे हैं॥ ६॥

'भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! अब मैं अपनी इच्छाके अनुसार आपसे आज्ञा लेने आया हूँ और अपने भाईके समीप प्रस्थान कर रहा हूँ; आप मुझे स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखिये॥

'धर्मज्ञ मुनीश्वर! बताइये, धर्मपरायण महात्मा श्रीरामका आश्रम कहाँ है? कितनी दूर है? और वहाँ पहुँचनेके लिये कौन-सा मार्ग है? इसका भी मुझसे स्पष्टरूपसे वर्णन कीजिये'॥ ८॥

इस प्रकार पूछे जानेपर महातपस्वी, महातेजस्वी भरद्वाज मुनिने भाईके दर्शनकी लालसावाले भरतको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ९॥

'भरत! यहाँसे ढाई योजन (दस कोस)* की दूरीपर एक निर्जन वनमें चित्रकूट नामक पर्वत है, जहाँके झरने और वन बड़े ही रमणीय हैं (प्रयागसे चित्रकूटकी आधुनिक दूरी लगभग २८ कोस है)॥ १०॥

'उसके उत्तरी किनारेसे मन्दाकिनी नदी बहती है, जो फूलोंसे लदे सघन वृक्षोंसे आच्छादित रहती है, उसके आस-पासका वन बड़ा ही रमणीय और नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित है। उस नदीके उस पार चित्रकूट पर्वत है। तात! वहाँ पहुँचकर तुम नदी और पर्वतके बीचमें श्रीरामकी पर्णकुटी देखोगे। वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण निश्चय ही उसीमें निवास करते हैं॥ ११-१२॥

'सेनापते! तुम यहाँसे हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई अपनी सेना लेकर पहले यमुनाके दक्षिणी किनारेसे जो मार्ग गया है, उससे जाओ। आगे जाकर दो रास्ते मिलेंगे, उनमेंसे जो रास्ता बायें दाबकर दक्षिण दिशाकी ओर गया है, उसीसे सेनाको ले जाना। महाभाग! उस मार्गसे चलकर तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन पा जाओगे'॥

'अब यहाँसे प्रस्थान करना है'—यह सुनकर महाराज दशरथकी स्त्रियाँ, जो सवारीपर ही रहने योग्य थीं, सवारियोंको छोड़कर ब्रह्मर्षि भरद्वाजको प्रणाम करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं॥

उपवासके कारण अत्यन्त दुर्बल एवं दीन हुई देवी कौसल्याने, जो काँप रही थीं, सुमित्रा देवीके साथ अपने दोनों हाथोंसे भरद्वाज मुनिके पैर पकड़ लिये॥

तत्पश्चात् जो अपनी असफल कामनाके कारण सब लोगोंके लिये निन्दित हो गयी थी, उस कैकेयीने लज्जित होकर वहाँ मुनिके चरणोंका स्पर्श किया और उन महामुनि भगवान् भरद्वाजकी परिक्रमा करके वह दीनचित्त हो उस समय भरतके ही पास आकर खड़ी हो गयी॥ १६-१७½॥

* सर्ग ५४ के श्लोक २८ में मूल ग्रन्थमें दस कोसकी दूरी लिखी है और यहाँ ढाई योजन। दोनों स्थलोंमें दस कोसका ही संकेत है। रामायणशिरोमणि नामक व्याख्यामें दोनों जगह कपि-जलाधिकरणन्यायसे अथवा एकशेषके द्वारा यह दूरी तिगुनी करके दिखायी गयी है। प्रयागसे चित्रकूटकी दूरी लगभग २८ कोसकी मानी जाती है। रामायणशिरोमणिकारकी मान्यताके अनुसार ३० कोसकी दूरीमें और इस दूरीमें अधिक अन्तर नहीं है। मीलका माप पुराने क्रोश-मानकी अपेक्षा छोटा है, इसलिये ८० मीलकी यह दूरी मानी जाती है।

तब महामुनि भरद्वाजने वहाँ भरतसे पूछा—'रघुनन्दन! तुम्हारी इन माताओंका विशेष परिचय क्या है? यह मैं जानना चाहता हूँ'॥ १८ १/२ ॥

भरद्वाजके इस प्रकार पूछनेपर बोलनेकी कलामें कुशल धर्मात्मा भरतने हाथ जोड़कर कहा—॥ १९ १/२ ॥

'भगवन्! आप जिन्हें शोक और उपवासके कारण अत्यन्त दुर्बल एवं दु:खी देख रहे हैं, जो देवी-सी दृष्टिगोचर हो रही हैं' ये मेरे पिताकी सबसे बड़ी महारानी कौसल्या हैं। जैसे अदितिने धाता नामक आदित्यको उत्पन्न किया था, उसी प्रकार इन कौसल्या देवीने सिंहके समान पराक्रमसूचक गतिसे चलनेवाले पुरुषसिंह श्रीरामको जन्म दिया है॥ २०-२१ १/२ ॥

'इनकी बायीं बाँहसे सटकर जो उदास मनसे खड़ी हैं तथा दु:खसे आतुर हो रही हैं और आभूषणशून्य होनेसे वनके भीतर झड़े हुए पुष्पवाले कनेरकी डालके समान दिखायी देती हैं, ये महाराजकी मझली रानी देवी सुमित्रा हैं। सत्यपराक्रमी वीर तथा देवताओंके तुल्य कान्तिमान् वे दोनों भाई राजकुमार लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्हीं सुमित्रा देवीके पुत्र हैं॥ २२—२४॥

'और जिसके कारण पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण यहाँसे प्राण-सङ्कटकी अवस्था (वनवास) में जा पहुँचे हैं तथा राजा दशरथ पुत्रवियोगका कष्ट पाकर स्वर्गवासी हुए हैं, जो स्वभावसे ही क्रोध करनेवाली, अशिक्षित बुद्धिवाली, गर्वीली, अपने-आपको सबसे अधिक सुन्दरी और भाग्यवती समझनेवाली तथा राज्यका लोभ रखनेवाली है, जो शक्ल-सूरतसे आर्या होनेपर भी वास्तवमें अनार्या है, इस कैकेयीको मेरी माता समझिये। यह बड़ी ही क्रूर और पापपूर्ण विचार रखनेवाली है। मैं अपने ऊपर जो महान् संकट आया हुआ देख रहा हूँ, इसका मूल कारण यही है'॥ २५—२७॥

अश्रुगद्गद वाणीसे इस प्रकार कहकर लाल आँखें किये पुरुषसिंह भरत रोषसे भरकर फुफकारते हुए सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचने लगे॥ २८॥

उस समय ऐसी बातें कहते हुए भरतसे श्रीरामावतारके प्रयोजनको जाननेवाले महाबुद्धिमान् महर्षि भरद्वाजने उनसे यह बात कही—॥ २९॥

'भरत! तुम कैकेयीके प्रति दोष-दृष्टि न करो। श्रीरामका यह वनवास भविष्यमें बड़ा ही सुखद होगा॥

'श्रीरामके वनमें जानेसे देवताओं, दानवों तथा परमात्माका चिन्तन करनेवाले महर्षियोंका इस जगत्में हित ही होनेवाला है'॥ ३१॥

श्रीरामका पता जानकर और मुनिका आशीर्वाद पाकर कृतकृत्य हुए भरतने मुनिको मस्तक झुका उनकी प्रदक्षिणा करके जानेकी आज्ञा ले सेनाको कूचके लिये तैयार होनेका आदेश दिया॥ ३२॥

तदनन्तर अनेक प्रकारकी वेश-भूषावाले लोग बहुत-से दिव्य घोड़ों और दिव्य रथोंको, जो सुवर्णसे विभूषित थे, जोतकर यात्राके लिये उनपर सवार हुए॥

बहुत-सी हथिनियाँ और हाथी, जो सुनहरे रस्सोंसे कसे गये थे और जिनके ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं, वर्षा-कालके गरजते हुए मेघोंके समान घण्टानाद करते हुए वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ३४॥

नाना प्रकारके छोटे-बड़े बहुमूल्य वाहनोंपर सवार हो उनके अधिकारी चले और पैदल सैनिक अपने पैरोंसे ही यात्रा करने लगे॥ ३५॥

तत्पश्चात् कौसल्या आदि रानियाँ उत्तम सवारियोंपर बैठकर श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी अभिलाषासे प्रसन्नतापूर्वक चलीं॥ ३६॥

इसी प्रकार श्रीमान् भरत नवोदित चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमती शिविकामें बैठकर आवश्यक सामग्रियोंके साथ प्रस्थित हुए। उस शिविकाको कहाँरोंने अपने कंधोंपर उठा रखा था॥ ३७॥

हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई वह विशाल वाहिनी दक्षिण दिशाको घेरकर उमड़ी हुई महामेघोंकी घटाके समान चल पड़ी॥ ३८॥

गङ्गाके उस पार पर्वतों तथा नदियोंके निकटवर्ती वनोंको, जो मृगों और पक्षियोंसे सेवित थे, लाँघकर वह आगे बढ़ गयी॥ ३९॥

उस सेनाके हाथी और घोड़ोंके समुदाय बड़े प्रसन्न थे। जंगलके मृगों और पक्षिसमूहोंको भयभीत करती हुई भरतकी वह सेना उस विशाल वनमें प्रवेश करके वहाँ बड़ी शोभा पा रही थी॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ सर्ग

सेनासहित भरतकी चित्रकूट-यात्राका वर्णन

यात्रा करनेवाली उस विशाल वाहिनीसे पीड़ित हो वनवासी यूथपति मतवाले हाथी आदि अपने यूथोंके साथ भाग चले॥ १॥

रीछ, चितकबरे मृग तथा रुरु नामक मृग वनप्रदेशोंमें, पर्वतोंमें और नदियोंके तटोंपर चारों ओर उस सेनासे पीड़ित दिखायी देते थे॥ २॥

महान् कोलाहल करनेवाली उस विशाल चतुरंगिणी सेनासे घिरे हुए धर्मात्मा दशरथनन्दन भरत बड़ी प्रसन्नताके साथ यात्रा कर रहे थे॥ ३॥

जैसे वर्षा-ऋतुमें मेघोंकी घटा आकाशको ढक लेती है, उसी प्रकार महात्मा भरतकी समुद्र-जैसी उस विशाल सेनाने दूरतकके भूभागको आच्छादित कर लिया था॥ ४॥

घोड़ोंके समूहों तथा महाबली हाथियोंसे भरी और दूरतक फैली हुई वह सेना उस समय बहुत देरतक दृष्टिमें ही नहीं आती थी॥ ५॥

दूरतकका रास्ता तै कर लेनेपर जब भरतकी सवारियाँ बहुत थक गयीं, तब श्रीमान् भरतने मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा—॥ ६॥

'ब्रह्मन्! मैंने जैसा सुन रखा था और जैसा इस देशका स्वरूप दिखायी देता है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि भरद्वाजजीने जहाँ पहुँचनेका आदेश दिया था, उस देशमें हमलोग आ पहुँचे हैं॥ ७॥

'जान पड़ता है यही चित्रकूट पर्वत है तथा वह मन्दाकिनी नदी बह रही है। यह पर्वतके आस-पासका वन दूरसे नील मेघके समान प्रकाशित हो रहा है॥ ८॥

'इस समय मेरे पर्वताकार हाथी चित्रकूटके रमणीय शिखरोंका अवमर्दन कर रहे हैं॥ ९॥

'ये वृक्ष पर्वतशिखरोंपर उसी प्रकार फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं, जैसे वर्षाकालमें नील जलधर मेघ उनपर जलकी वृष्टि करते हैं'॥ १०॥

(इसके बाद भरत शत्रुघ्नसे कहने लगे—) 'शत्रुघ्न! देखो, इस पर्वतकी उपत्यकामें जो देश है, जहाँपर किन्नर विचरा करते हैं, वही प्रदेश हमारी सेनाके घोड़ोंसे व्याप्त होकर मगरोंसे भरे हुए समुद्रके समान प्रतीत होता है॥ ११॥

'सैनिकोंके खदेड़े हुए ये मृगोंके झुंड तीव्र वेगसे भागते हुए वैसी ही शोभा पा रहे हैं, जैसे शरत्-कालके आकाशमें हवासे उड़ाये गये बादलोंके समूह सुशोभित होते हैं॥ १२॥

'ये सैनिक अथवा वृक्ष मेघके समान कान्तिवाली ढालोंसे उपलक्षित होनेवाले दक्षिण भारतीय मनुष्योंके समान अपने मस्तकों अथवा शाखाओंपर सुगन्धित पुष्प गुच्छमय आभूषणोंको धारण करते हैं॥ १३॥

'यह वन जो पहले जनरव-शून्य होनेके कारण अत्यन्त भयंकर दिखायी देता था, वही इस समय हमारे साथ आये हुए लोगोंसे व्याप्त होनेके कारण मुझे अयोध्यापुरीके समान प्रतीत होता है॥ १४॥

'घोड़ोंकी टापोंसे उड़ी हुई धूल आकाशको आच्छादित करके स्थित होती है, परंतु उसे हवा मेरा प्रिय करती हुई-सी शीघ्र ही अन्यत्र उड़ा ले जाती है॥

'शत्रुघ्न! देखो, इस वनमें घोड़ोंसे जुते हुए और श्रेष्ठ सारथियोंद्वारा संचालित हुए ये रथ कितनी शीघ्रतासे आगे बढ़ रहे हैं॥ १६॥

'जो देखनेमें बड़े प्यारे लगते हैं उन मोरोंको तो देखो। ये हमारे सैनिकोंके भयसे कितने डरे हुए हैं। इसी प्रकार अपने आवास-स्थान पर्वतकी ओर उड़ते हुए अन्य पक्षियोंपर भी दृष्टिपात करो॥ १७॥

'निष्पाप शत्रुघ्न! यह देश मुझे बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है। तपस्वी जनोंका यह निवासस्थान वास्तवमें स्वर्गीय पथ है॥ १८॥

'इस वनमें मृगियोंके साथ विचरनेवाले बहुत-से चितकबरे मृग ऐसे मनोहर दिखायी देते हैं, मानो इन्हें फूलोंसे चित्रित—सुसज्जित किया गया हो॥ १९॥

'मेरे सैनिक यथोचित रूपसे आगे बढ़ें और वनमें सब ओर खोजें, जिससे उन दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणका पता लग जाय'॥ २०॥

भरतका यह वचन सुनकर बहुत-से शूरवीर पुरुषोंने हाथोंमें हथियार लेकर उस वनमें प्रवेश किया। तदनन्तर आगे जानेपर उन्हें कुछ दूरपर ऊपरको धुआँ उठता दिखायी दिया॥ २१॥

उस धूमशिखाको देखकर वे लौट आये और भरतसे बोले—'प्रभो! जहाँ कोई मनुष्य नहीं होता, वहाँ आग नहीं होती। अत: श्रीराम और लक्ष्मण अवश्य यहीं होंगे।

'यदि शत्रुओंको संताप देनेवाले पुरुषसिंह राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण यहाँ न हों तो भी श्रीराम-जैसे तेजस्वी दूसरे कोई तपस्वी तो अवश्य ही होंगे'॥ २३॥

उनकी बातें श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा मानने योग्य थीं, उन्हें सुनकर शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाले भरतने उन समस्त सैनिकोंसे कहा—॥ २४॥

'तुम सब लोग सावधान होकर यहीं ठहरो! यहाँसे आगे न जाना। अब मैं ही वहाँ जाऊँगा। मेरे साथ सुमन्त्र और धृति भी रहेंगे'॥ २५॥

उनकी ऐसी आज्ञा पाकर समस्त सैनिक वहीं सब ओर फैलकर खड़े हो गये और भरतने जहाँ धुआँ उठ रहा था, उस ओर अपनी दृष्टि स्थिर की॥ २६॥

भरतके द्वारा वहाँ ठहरायी गयी वह सेना आगेकी भूमिका निरीक्षण करती हुई भी वहाँ हर्षपूर्वक खड़ी रही; क्योंकि उस समय उसे मालूम हो गया था कि अब शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीसे मिलनेका अवसर आनेवाला है॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ सर्ग

श्रीरामका सीताको चित्रकूटकी शोभा दिखाना

गिरिवर चित्रकूट श्रीरामको बहुत ही प्रिय लगता था। वे उस पर्वतपर बहुत दिनोंसे रह रहे थे। एक दिन अमरतुल्य तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीराम विदेहराजकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे तथा अपने मनको भी बहलानेके लिये अपनी भार्याको विचित्र चित्रकूटकी शोभाका दर्शन कराने लगे, मानो देवराज इन्द्र अपनी पत्नी शचीको पर्वतीय सुषमाका दर्शन करा रहे हों॥

(वे बोले—) 'भद्रे! यद्यपि मैं राज्यसे भ्रष्ट हो गया हूँ तथा मुझे अपने हितैषी सुहृदोंसे विलग होकर रहना पड़ता है, तथापि जब मैं इस रमणीय पर्वतकी ओर देखता हूँ, तब मेरा सारा दुःख दूर हो जाता है—राज्यका न मिलना और सुहृदोंका विछोह होना भी मेरे मनको व्यथित नहीं कर पाता है॥ ३॥

'कल्याणि! इस पर्वतपर दृष्टिपात तो करो, नाना प्रकारके असंख्य पक्षी यहाँ कलरव कर रहे हैं। नाना प्रकारके धातुओंसे मण्डित इसके गगनचुम्बी शिखर मानो आकाशको बेध रहे हैं। इन शिखरोंसे विभूषित हुआ यह चित्रकूट कैसी शोभा पा रहा है!॥ ४॥

'विभिन्न धातुओंसे अलंकृत अचलराज चित्रकूटके प्रदेश कितने सुन्दर लगते हैं! इनमेंसे कोई तो चाँदीके समान चमक रहे हैं। कोई लोहूकी लाल आभाका विस्तार करते हैं। किन्हीं प्रदेशोंके रंग पीले और मंजिष्ठ वर्णके हैं। कोई श्रेष्ठ मणियोंके समान उद्भासित होते हैं। कोई पुखराजके समान, कोई स्फटिकके सदृश और कोई केवड़ेके फूलके समान कान्तिवाले हैं तथा कुछ प्रदेश नक्षत्रों और पारेके समान प्रकाशित होते हैं॥ ५-६॥

'यह पर्वत बहुसंख्यक पक्षियोंसे व्याप्त है तथा नाना प्रकारके मृगों, बड़े-बड़े व्याघ्रों, चीतों और रीछोंसे भरा हुआ है। वे व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु अपने दुष्टभावका परित्याग करके यहाँ रहते हैं और इस पर्वतकी शोभा बढ़ाते हैं॥ ७॥

'आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मरी (मधुपर्णिका), अरिष्ट (नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आँवला, कदम्ब, बेत, धन्वन (इन्द्रजौ), बीजक (अनार) आदि घनी छायावाले वृक्षोंसे, जो फूलों और फलोंसे लदे होनेके कारण मनोरम प्रतीत होते थे, व्याप्त हुआ यह पर्वत अनुपम शोभाका पोषण एवं विस्तार कर रहा है॥ ८—१०॥

'इन रमणीय शैलशिखरोंपर उन प्रदेशोंको देखो, जो प्रेम-मिलनकी भावनाका उद्दीपन करके आन्तरिक हर्षको बढ़ानेवाले हैं। वहाँ मनस्वी किन्नर दो-दो एक साथ होकर टहल रहे हैं॥ ११॥

'इन किन्नरोंके खड्ग पेड़ोंकी डालियोंमें लटक रहे हैं। इधर विद्याधरोंकी स्त्रियोंके मनोरम क्रीड़ास्थलों तथा वृक्षोंकी शाखाओंपर रखे हुए उनके सुन्दर वस्त्रोंकी ओर भी देखो॥ १२॥

'इसके ऊपर कहीं ऊँचेसे झरने गिर रहे हैं, कहीं जमीनके भीतरसे सोते निकले हैं और कहीं-कहीं छोटे-छोटे स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। इन सबके द्वारा यह पर्वत मदकी धारा बहानेवाले हाथीके समान शोभा पाता है॥ १३॥

'गुफाओंसे निकली हुई वायु नाना प्रकारके

पुष्पोंकी प्रचुर गन्ध लेकर नासिकाको तृप्त करती हुई किस पुरुषके पास आकर उसका हर्ष नहीं बढ़ा रही है॥ १४॥

'सती-साध्वी सीते! यदि तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ मैं यहाँ अनेक वर्षोंतक रहूँ तो भी नगरत्यागका शोक मुझे कदापि पीड़ित नहीं करेगा॥ १५॥

'भामिनि! बहुतेरे फूलों और फलोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सेवित इस विचित्र शिखरवाले रमणीय पर्वतपर मेरा मन बहुत लगता है॥ १६॥

'प्रिये! इस वनवाससे मुझे दो फल प्राप्त हुए हैं—दो लाभ हुए हैं—एक तो धर्मानुसार पिताकी आज्ञाका पालनरूप ऋण चुक गया और दूसरा भाई भरतका प्रिय हुआ॥ १७॥

'विदेहकुमारी! क्या चित्रकूट पर्वतपर मेरे साथ मन, वाणी और शरीरको प्रिय लगनेवाले भाँति-भाँतिके पदार्थोंको देखकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होता है?॥ १८॥

'रानी! मेरे प्रपितामह मनु आदि उत्कृष्ट राजर्षियोंने नियमपूर्वक किये गये इन वनवासको ही अमृत बतलाया है; इससे शरीरत्यागके पश्चात् परम कल्याणकी प्राप्ति होती है॥ १९॥

'चारों ओर इस पर्वतकी सैकड़ों विशाल शिलाएँ शोभा पा रही हैं, जो नीले, पीले, सफेद और लाल आदि विविध रंगोंसे अनेक प्रकारकी दिखायी देती हैं॥ २०॥

'रातमें इस पर्वतराजके ऊपर लगी हुई सहस्रों ओषधियाँ अपनी प्रभासम्पत्तिसे प्रकाशित होती हुई अग्निशिखाके समान उद्भासित होती हैं॥ २१॥

'भामिनि! इस पर्वतके कई स्थान घरकी भाँति दिखायी देते हैं (क्योंकि वे वृक्षोंकी घनी छायासे आच्छादित हैं) और कई स्थान चम्पा, मालती आदि फूलोंकी अधिकताके कारण उद्यानके समान सुशोभित होते हैं तथा कितने ही स्थान ऐसे हैं जहाँ बहुत दूरतक एक ही शिला फैली हुई है। इन सबकी बड़ी शोभा होती है॥ २२॥

'ऐसा जान पड़ता है कि यह चित्रकूट पर्वत पृथ्वीको फाड़कर ऊपर उठ आया है। चित्रकूटका यह शिखर सब ओरसे सुन्दर दिखायी देता है॥ २३॥

'प्रिये! देखो, ये विलासियोंके बिस्तर हैं, जिनपर उत्पल, पुत्रजीवक, पुन्नाग और भोजपत्र—इनके पत्ते ही चादरका काम देते हैं तथा इनके ऊपर सब ओरसे कमलोंके पत्ते बिछे हुए हैं॥ २४॥

'प्रियतमे! ये कमलोंकी मालाएँ दिखायी देती हैं, जो विलासियोंद्वारा मसलकर फेंक दी गयी हैं। उधर देखो, वृक्षोंमें नाना प्रकारके फल लगे हुए हैं॥ २५॥

'बहुत-से फल, मूल और जलसे सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेर-नगरी वस्वौकसारा (अलका), इन्द्रपुरी नलिनी (अमरावती अथवा नलिनी नामसे प्रसिद्ध कुबेरकी सौगन्धिक कमलोंसे युक्त पुष्करिणी) तथा उत्तर कुरुको भी अपनी शोभासे तिरस्कृत कर रहा है॥ २६॥

'प्राणवल्लभे सीते! अपने उत्तम नियमोंको पालन करते हुए सन्मार्गपर स्थित रहकर यदि तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ यह चौदह वर्षोंका समय मैं सानन्द व्यतीत कर लूँगा तो मुझे वह सुख प्राप्त होगा जो कुलधर्मको बढ़ानेवाला है'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९४॥

पंचानबेवाँ सर्ग

श्रीरामका सीताके प्रति मन्दाकिनी नदीकी शोभाका वर्णन

तदनन्तर उस पर्वतसे निकलकर कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलेशकुमारी सीताको पुण्यसलिला रमणीय मन्दाकिनी नदीका दर्शन कराया॥ १॥

और उस समय कमलनयन श्रीरामने चन्द्रमाके समान मनोहर मुख तथा सुन्दर कटिप्रदेशवाली विदेहराजनन्दिनी सीतासे इस प्रकार कहा—॥ २॥

'प्रिये! अब मन्दाकिनी नदीकी शोभा देखो, हंस और सारसोंसे सेवित होनेके कारण यह कितनी सुन्दर जान पड़ती है। इसका किनारा बड़ा ही विचित्र है। नाना प्रकारके पुष्प इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं॥ ३॥

'फल और फूलोंके भारसे लदे हुए नाना प्रकारके तटवर्ती वृक्षोंसे घिरी हुई यह मन्दाकिनी कुबेरके सौगन्धिक सरोवरकी भाँति सब ओरसे सुशोभित हो रही है॥ ४॥

'हरिनोंके झुंड पानी पीकर इस समय यद्यपि यहाँका जल गँदला कर गये हैं तथापि इसके रमणीय घाट मेरे मनको बड़ा आनन्द दे रहे हैं॥ ५॥

'प्रिये! वह देखो, जटा, मृगचर्म और वल्कलका उत्तरीय धारण करनेवाले महर्षि उपयुक्त समयमें आकर इस मन्दाकिनी नदीमें स्नान कर रहे हैं॥ ६॥

'विशाललोचने! ये दूसरे मुनि, जो कठोर व्रतका पालन करनेवाले हैं, नैत्यिक नियमके कारण दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्यदेवका उपस्थान कर रहे हैं॥

'हवाके झोंकेसे जिनकी शिखाएँ झूम रही हैं, अतएव जो मन्दाकिनी नदीके उभय तटोंपर फूल और पत्ते बिखेर रहे हैं, उन वृक्षोंसे उपलक्षित हुआ यह पर्वत मानो नृत्य-सा करने लगा है॥ ८॥

'देखो! मन्दाकिनी नदीकी कैसी शोभा है; कहीं तो इसमें मोतियोंके समान स्वच्छ जल बहता दिखायी देता है, कहीं यह ऊँचे कगारोंसे ही शोभा पाती है (वहाँका जल कगारोंमें छिप जानेके कारण दिखायी नहीं देता है) और कहीं सिद्धजन इसमें अवगाहन कर रहे हैं तथा यह उनसे व्याप्त दिखायी देती है॥ ९॥

'सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली सुन्दरि! देखो, वायुके द्वारा उड़ाकर लाये हुए ये ढेर-के-ढेर फूल किस तरह मन्दाकिनीके दोनों तटोंपर फैले हुए हैं और वे दूसरे पुष्पसमूह कैसे पानीपर तैर रहे हैं॥ १०॥

'कल्याणि! देखो तो सही, ये मीठी बोली बोलनेवाले चक्रवाक पक्षी सुन्दर कलरव करते हुए किस तरह नदीके तटोंपर आरूढ़ हो रहे हैं॥ ११॥

'शोभने! यहाँ जो प्रतिदिन चित्रकूट और मन्दाकिनीका दर्शन होता है, वह नित्य-निरन्तर तुम्हारा दर्शन होनेके कारण अयोध्यानिवासकी अपेक्षा भी अधिक सुखद जान पड़ता है॥ १२॥

'इस नदीमें प्रतिदिन तपस्या, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहसे सम्पन्न निष्पाप सिद्ध महात्माओंके अवगाहन करनेसे इसका जल विक्षुब्ध होता रहता है। चलो, तुम भी मेरे साथ इसमें स्नान करो॥ १३॥

'भामिनि सीते! एक सखी दूसरी सखीके साथ जैसे क्रीड़ा करती है, उसी प्रकार तुम मन्दाकिनी नदीमें उतरकर इसके लाल और श्वेत कमलोंको जलमें डुबोती हुई इसमें स्नान-क्रीड़ा करो॥ १४॥

'प्रिये! तुम इस वनके निवासियोंको पुरवासी मनुष्योंके समान समझो, चित्रकूट पर्वतको अयोध्याके तुल्य मानो और इस मन्दाकिनी नदीको सरयूके सदृश जानो॥ १५॥

'विदेहनन्दिनि! धर्मात्मा लक्ष्मण सदा मेरी आज्ञाके अधीन रहते हैं और तुम भी मेरे मनके अनुकूल ही चलती हो; इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है॥ १६॥

'प्रिये! तुम्हारे साथ तीनों काल स्नान करके मधुर फल-मूलका आहार करता हुआ मैं न तो अयोध्या जानेकी इच्छा रखता हूँ और न राज्य पानेकी ही॥ १७॥

'जिसे हाथियोंके समूह मथे डालते हैं तथा सिंह और वानर जिसका जल पिया करते हैं, जिसके तटपर सुन्दर पुष्पोंसे लदे वृक्ष शोभा पाते हैं तथा जो पुष्पसमूहोंसे अलंकृत है, ऐसी इस रमणीय मन्दाकिनी नदीमें स्नान करके जो ग्लानिरहित और सुखी न हो जाय—ऐसा मनुष्य इस संसारमें नहीं है'॥ १८॥

रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी मन्दाकिनी नदीके प्रति ऐसी अनेक प्रकारकी सुसंगत बातें कहते हुए नील-कान्तिवाले रमणीय चित्रकूट पर्वतपर अपनी प्रिया पत्नी सीताके साथ विचरने लगे॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें पंचानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९५॥

छियानबेवाँ सर्ग

वन-जन्तुओंके भागनेका कारण जाननेके लिये श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका शाल-वृक्षपर चढ़कर भरतकी सेनाको देखना और उनके प्रति अपना रोषपूर्ण उद्गार प्रकट करना

इस प्रकार मिथिलेशकुमारी सीताको मन्दाकिनी नदीका दर्शन कराकर उस समय श्रीरामचन्द्रजी पर्वतके समतल प्रदेशमें उनके साथ बैठ गये और तपस्वी-जनोंके उपभोगमें आने योग्य फल-मूलके गूदेसे उनकी मानसिक प्रसन्नताको बढ़ाने—उनका लालन करने लगे॥ १॥

धर्मात्मा रघुनन्दन सीताजीके साथ इस प्रकारकी बातें कर रहे थे—'प्रिये! यह फल परम पवित्र है। यह

बहुत स्वादिष्ट है तथा इस कन्दको अच्छी तरह आगपर सेका गया है'॥ २॥

इस प्रकार वे उस पर्वतीय प्रदेशमें बैठे हुए ही थे कि उनके पास आनेवाली भरतकी सेनाकी धूल और कोलाहल दोनों एक साथ प्रकट हुए और आकाशमें फैलने लगे॥ ३॥

इसी बीचमें सेनाके महान् कोलाहलसे भयभीत एवं पीड़ित हो हाथियोंके कितने ही मतवाले यूथपति अपने यूथोंके साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगे॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीने सेनासे प्रकट हुए उस महान् कोलाहलको सुना तथा भागे जाते हुए उन समस्त यूथपतियोंको भी देखा॥ ५॥

उन भागे हुए हाथियोंको देखकर और उस महाभयंकर शब्दको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उद्दीप्त तेजवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे बोले—॥ ६॥

'लक्ष्मण! इस जगत्‌में तुमसे ही माता सुमित्रा श्रेष्ठ पुत्रवाली हुई हैं। देखो तो सही—यह भयंकर गर्जनाके साथ कैसा गम्भीर तुमुल नाद सुनायी देता है॥ ७॥

'सुमित्रानन्दन! पता तो लगाओ, इस विशाल वनमें ये जो हाथियोंके झुंड अथवा भैंसे या मृग जो सहसा सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले हैं, इसका क्या कारण है? इन्हें सिंहोंने तो नहीं डरा दिया है अथवा कोई राजा या राजकुमार इस वनमें आकर शिकार तो नहीं खेल रहा है या दूसरा कोई हिंसक जन्तु तो नहीं प्रकट हो गया है?॥ ८-९॥

'लक्ष्मण! इस पर्वतपर अपरिचित पक्षियोंका आना-जाना भी अत्यन्त कठिन है (फिर यहाँ किसी हिंसक जन्तु वा राजाका आक्रमण कैसे सम्भव है)। अतः इन सारी बातोंकी ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करो'॥ १०॥

भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण तुरंत ही फूलोंसे भरे हुए एक शाल-वृक्षपर चढ़ गये और सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए उन्होंने पूर्व दिशाकी ओर दृष्टिपात किया॥ ११॥

तत्पश्चात् उत्तरकी ओर मुँह करके देखनेपर उन्हें एक विशाल सेना दिखायी दी, जो हाथी, घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण तथा प्रयत्नशील पैदल सैनिकोंसे संयुक्त थी॥ १२॥

घोड़ों और रथोंसे भरी हुई तथा रथकी ध्वजासे विभूषित उस सेनाकी सूचना उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको दी और यह बात कही—॥ १३॥

'आर्य! अब आप आग बुझा दें (अन्यथा धुआँ देखकर यह सेना यहीं चली आयगी); देवी सीता गुफामें जा बैठें। आप अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा लें और बाण तथा कवच धारण कर लें'॥ १४॥

यह सुनकर पुरुषसिंह श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'प्रिय सुमित्राकुमार! अच्छी तरह देखो तो सही, तुम्हारी समझमें यह किसकी सेना हो सकती है?'॥ १५॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण रोषसे प्रज्वलित हुए अग्निदेवकी भाँति उस सेनाकी ओर इस तरह देखने लगे, मानो उसे जलाकर भस्म कर देना चाहते हों और इस प्रकार बोले—॥ १६॥

'भैया! निश्चय ही यह कैकेयीका पुत्र भरत है, जो अयोध्यामें अभिषिक्त होकर अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेकी इच्छासे हम दोनोंको मार डालनेके लिये यहाँ आ रहा है॥ १७॥

'सामनेकी ओर यह जो बहुत बड़ा शोभासम्पन्न वृक्ष दिखायी देता है, उसके समीप जो रथ है, उसपर उज्ज्वल तनेसे युक्त कोविदार वृक्षसे चिह्नित ध्वज शोभा पा रहा है॥ १८॥

'ये घुड़सवार सैनिक इच्छानुसार शीघ्रगामी घोड़ोंपर आरूढ़ हो इधर ही आ रहे हैं और ये हाथीसवार भी बड़े हर्षसे हाथियोंपर चढ़कर आते हुए प्रकाशित हो रहे हैं॥ १९॥

'वीर! हम दोनोंको धनुष लेकर पर्वतके शिखरपर चलना चाहिये अथवा कवच बाँधकर अस्त्र-शस्त्र धारण किये यहीं डटे रहना चाहिये॥ २०॥

'रघुनन्दन! आज यह कोविदारके चिह्नसे युक्त ध्वजवाला रथ रणभूमिमें हम दोनोंके अधिकारमें आ जायगा और आज मैं अपनी इच्छाके अनुसार उस भरतको भी सामने देखूँगा कि जिसके कारण आपको, सीताको और मुझे भी महान् संकटका सामना करना पड़ा है तथा जिसके कारण आप अपने सनातन राज्याधिकारसे वञ्चित किये गये हैं॥ २२॥

'वीर रघुनाथजी! यह भरत हमारा शत्रु है और सामने आ गया है; अतः वधके ही योग्य है। भरतका वध करनेमें मुझे कोई दोष नहीं दिखायी देता॥ २३॥

'रघुनन्दन! जो पहलेका अपकारी रहा हो, उसको मारकर कोई अधर्मका भागी नहीं होता है। भरतने पहले हमलोगोंका अपकार किया है, अतः उसे मारनेमें नहीं, जीवित छोड़ देनेमें ही अधर्म है॥ २४॥

'इस भरतके मारे जानेपर आप समस्त वसुधाका शासन करें। जैसे हाथी किसी वृक्षको तोड़ डालता है, उसी प्रकार राज्यका लोभ करनेवाली कैकेयी आज अत्यन्त दुःखसे आर्त हो इसे मेरे द्वारा युद्धमें मारा गया देखे॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

'मैं कैकेयीका भी उसके सगे-सम्बन्धियों एवं बन्धु-बान्धवोंसहित वध कर डालूँगा। आज यह पृथ्वी कैकेयीरूप महान् पापसे मुक्त हो जाय॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

'मानद! आज मैं अपने रोके हुए क्रोध और तिरस्कारको शत्रुकी सेनाओंपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे सूखे घास-फूँसके ढेरमें आग लगा दी जाय॥ २७ $\frac{1}{2}$ ॥

'अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े करके मैं अभी चित्रकूटके इस वनको रक्तसे सींच दूँगा॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

'मेरे बाणोंसे विदीर्ण हुए हृदयवाले हाथियों और घोड़ोंको तथा मेरे हाथसे मारे गये मनुष्योंको भी गीदड़ आदि मांसभक्षी जन्तु इधर-उधर घसीटें॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

'इस महान् वनमें सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुष और बाणके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा—इसमें संशय नहीं है'॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें छियानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणके रोषको शान्त करके भरतके सद्भावका वर्णन करना, लक्ष्मणका लज्जित हो श्रीरामके पास खड़ा होना और भरतकी सेनाका पर्वतके नीचे छावनी डालना

लक्ष्मण भरतके प्रति रोषावेशके कारण क्रोधवश अपना विवेक खो बैठे थे, उस अवस्थामें श्रीरामने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और इस प्रकार कहा—॥

'लक्ष्मण! महाबली और महान् उत्साही भरत जब स्वयं यहाँ आ गये हैं, तब इस समय यहाँ धनुष अथवा ढाल-तलवारसे क्या काम है?॥ २॥

'लक्ष्मण! पिताके सत्यकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा करके यदि मैं युद्धमें भरतको मारकर उनका राज्य छीन लूँ तो संसारमें मेरी कितनी निन्दा होगी, फिर उस कलंकित राज्यको लेकर मैं क्या करूँगा?॥ ३॥

'अपने बन्धु-बान्धवों या मित्रोंका विनाश करके जिस धनकी प्राप्ति होती हो, वह तो विषमिश्रित भोजनके समान सर्वथा त्याग देने योग्य है; उसे मैं कदापि ग्रहण नहीं करूँगा॥ ४॥

'लक्ष्मण! मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि—धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वीका राज्य भी मैं तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ॥ ५॥

'सुमित्राकुमार! मैं भाइयोंके संग्रह और सुखके लिये ही राज्यकी भी इच्छा करता हूँ और इस बातकी सच्चाईके लिये मैं अपना धनुष छूकर शपथ खाता हूँ॥

'सौम्य लक्ष्मण! समुद्रसे घिरी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं है, परंतु मैं अधर्मसे इन्द्रका पद पानेकी भी इच्छा नहीं कर सकता॥ ७॥

'मानद! भरतको, तुमको और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें॥ ८॥

'वीर! पुरुषप्रवर! भरत बड़े भ्रातृभक्त हैं। वे मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, भरतने अयोध्यामें आनेपर जब सुना है कि मैं तुम्हारे और जानकीके साथ जटा-वल्कल धारण करके वनमें आ गया हूँ, तब उनकी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठी हैं और वे कुलधर्मका विचार करके स्नेहयुक्त हृदयसे हमलोगोंसे मिलने आये हैं। इन भरतके आगमनका इसके सिवा दूसरा कोई उद्देश्य नहीं हो सकता॥ ९—११॥

'माता कैकेयीके प्रति कुपित हो, उन्हें कठोर वचन सुनाकर और पिताजीको प्रसन्न करके श्रीमान् भरत मुझे राज्य देनेके लिये आये हैं॥ १२॥

'भरतका हमलोगोंसे मिलनेके लिये आना सर्वथा समयोचित है। वे हमसे मिलनेके योग्य हैं। हमलोगोंका कोई अहित करनेका विचार तो वे कभी मनमें भी नहीं ला सकते॥ १३॥

'भरतने तुम्हारे प्रति पहले कब कौन-सा अप्रिय बर्ताव किया है, जिससे आज तुम्हें उनसे ऐसा भय लग रहा है और तुम उनके विषयमें इस तरहकी आशङ्का कर रहे हो?॥ १४॥

'भरतके आनेपर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने उनसे कोई

प्रतिकूल बात कही तो वह मेरे ही प्रति कही हुई समझी जायगी॥ १५॥

'सुमित्रानन्दन! कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाय, पुत्र अपने पिताको कैसे मार सकते हैं? अथवा भाई अपने प्राणोंके समान प्रिय भाईकी हत्या कैसे कर सकता है?॥ १६॥

'यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो मैं भरतसे मिलनेपर उन्हें कह दूँगा कि तुम यह राज्य लक्ष्मणको दे दो॥ १७॥

'लक्ष्मण! यदि मैं भरतसे यह कहूँ कि 'तुम राज्य इन्हें दे दो' तो वे 'बहुत अच्छा' कहकर अवश्य मेरी बात मान लेंगे'॥ १८॥

अपने धर्मपरायण भाईके ऐसा कहनेपर उन्हींके हितमें तत्पर रहनेवाले लक्ष्मण लज्जावश मानो अपने अङ्गोंमें ही समा गये—लाजसे गड़ गये॥ १९॥

श्रीरामका पूर्वोक्त वचन सुनकर लज्जित हुए लक्ष्मणने कहा—'भैया! मैं समझता हूँ, हमारे पिता महाराज दशरथ स्वयं ही आपसे मिलने आये हैं'॥ २०॥

लक्ष्मणको लज्जित हुआ देख श्रीरामने उत्तर दिया—'मैं भी ऐसा ही मानता हूँ कि हमारे महाबाहु पिताजी ही हमलोगोंसे मिलने आये हैं॥ २१॥

'अथवा मैं ऐसा समझता हूँ कि हमें सुख भोगनेके योग्य मानते हुए पिताजी वनवासके कष्टका विचार करके हम दोनोंको निश्चय ही घर लौटा ले जायँगे॥ २२॥

'मेरे पिता रघुकुलतिलक श्रीमान् महाराज दशरथ अत्यन्त सुखका सेवन करनेवाली इन विदेहराजनन्दिनी सीताको भी वनसे साथ लेकर ही घरको लौटेंगे॥ २३॥

'अच्छे घोड़ोंके कुलमें उत्पन्न हुए ये ही वे दोनों वायुके समान वेगशाली, शीघ्रगामी, वीर एवं मनोरम अपने उत्तम घोड़े चमक रहे हैं॥ २४॥

'परम बुद्धिमान् पिताजीकी सवारीमें रहनेवाला यह वही विशालकाय शत्रुंजय नामक बूढ़ा गजराज है, जो सेनाके मुहानेपर झूमता हुआ चल रहा है॥ २५॥

'महाभाग! परंतु इसके ऊपर पिताजीका वह विश्वविख्यात दिव्य श्वेतछत्र मुझे नहीं दिखायी देता है—इससे मेरे मनमें संशय उत्पन्न होता है॥ २६॥

'लक्ष्मण! अब मेरी बात मानो और पेड़से नीचे उतर आओ।' धर्मात्मा श्रीरामने सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे जब ऐसी बात कही, तब युद्धमें विजय पानेवाले लक्ष्मण उस शाल वृक्षके अग्रभागसे उतरे और श्रीरामके पास हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २७-२८॥

उधर भरतने सेनाको आज्ञा दी कि 'यहाँ किसीको हमलोगोंके द्वारा बाधा नहीं पहुँचनी चाहिये।' उनका यह आदेश पाकर समस्त सैनिक पर्वतके चारों ओर नीचे ही ठहर गये॥ २९॥

उस समय हाथी, घोड़े और मनुष्योंसे भरी हुई इक्ष्वाकुवंशी नरेशकी वह सेना पर्वतके आस-पासकी डेढ़ योजन (छः कोस) भूमि घेरकर पड़ाव डाले हुए थी॥

नीतिज्ञ भरत धर्मको सामने रखते हुए गर्वको त्यागकर रघुकुलनन्दन श्रीरामको प्रसन्न करनेके लिये जिसे अपने साथ ले आये थे, वह सेना चित्रकूट पर्वतके समीप बड़ी शोभा पा रही थी॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९७॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

भरतके द्वारा श्रीरामके आश्रमकी खोजका प्रबन्ध तथा उन्हें आश्रमका दर्शन

इस प्रकार सेनाको ठहराकर जंगम प्राणियोंमें श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली भरतने गुरुसेवापरायण (एवं पिताके आज्ञापालक) श्रीरामचन्द्रजीके पास जानेका विचार किया। जब सारी सेना विनीत भावसे यथास्थान ठहर गयी, तब भरतने अपने भाई शत्रुघ्नसे इस प्रकार कहा—॥ १-२॥

'सौम्य! बहुत-से मनुष्योंके साथ इन निषादोंको भी साथ लेकर तुम्हें शीघ्र ही इस वनमें चारों ओर श्रीरामचन्द्रजीकी खोज करनी चाहिये॥ ३॥

'निषादराज गुह स्वयं भी धनुष-बाण और तलवार धारण करनेवाले अपने सहस्रों बन्धु-बान्धवोंसे घिरे हुए जायँ और इस वनमें ककुत्स्थवंशी श्रीराम और लक्ष्मणका अन्वेषण करें॥ ४॥

'मैं स्वयं भी मन्त्रियों, पुरवासियों, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंके साथ उन सबसे घिरा रहकर पैदल ही सारे वनमें विचरण करूँगा॥ ५॥

'जबतक श्रीराम, महाबली लक्ष्मण अथवा महाभागा विदेहराजकुमारी सीताको न देख लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी॥ ६॥

'जबतक अपने पूज्य भ्राता श्रीरामके कमलदलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले सुन्दर मुखचन्द्रका दर्शन न कर लूँगा, तबतक मेरे मनको शान्ति नहीं प्राप्त होगी॥ ७॥

'निश्चय ही सुमित्राकुमार लक्ष्मण कृतार्थ हो गये, जो श्रीरामचन्द्रजीके उस कमलसदृश नेत्रवाले महातेजस्वी मुखका निरन्तर दर्शन करते हैं, जो चन्द्रमाके समान निर्मल एवं आह्लाद प्रदान करनेवाला है॥ ८॥

'जबतक भाई श्रीरामके राजोचित लक्षणोंसे युक्त चरणारविन्दोंको अपने सिरपर नहीं रखूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी॥ ९॥

'जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी आर्य श्रीराम पिता-पितामहोंके राज्यपर प्रतिष्ठित हो अभिषेकके जलसे आर्द्र नहीं हो जायँगे, तबतक मेरे मनको शान्ति नहीं प्राप्त होगी॥ १०॥

'जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी अपने पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीका अनुसरण करती हैं, वे जनककिशोरी विदेहराजनन्दिनी महाभागा सीता अपने इस सत्कर्मसे कृतार्थ हो गयीं॥ ११॥

'जैसे नन्दनवनमें कुबेर निवास करते हैं, उसी प्रकार जिसके वनमें ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी विराज रहे हैं, वह चित्रकूट परम मङ्गलकारी तथा गिरिराज हिमालय एवं वेंकटाचलके समान श्रेष्ठ पर्वत है॥ १२॥

'यह सर्पसेवित दुर्गम वन भी कृतार्थ हो गया, जहाँ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज श्रीराम निवास करते हैं'॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी पुरुषप्रवर महाबाहु भरतने उस विशाल वनमें पैदल ही प्रवेश किया॥ १४॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ भरत पर्वतशिखरोंपर उत्पन्न हुए वृक्षसमूहोंके, जिनकी शाखाओंके अग्रभाग फूलोंसे भरे थे, बीचसे निकले॥ १५॥

आगे जाकर वे बड़ी तेजीसे चित्रकूट पर्वतके एक शाल-वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमपर सुलगती हुई आगका ऊपर उठता हुआ धुआँ देखा॥ १६॥

उस धूमको देखकर श्रीमान् भरतको अपने भाई शत्रुघ्न-सहित बड़ी प्रसन्नता हुई और 'यहीं श्रीराम हैं' यह जानकर उन्हें अथाह जलसे पार हो जानेके समान संतोष प्राप्त हुआ॥ १७॥

इस प्रकार चित्रकूट पर्वतपर पुण्यात्मा महर्षियोंसे युक्त श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम देखकर महात्मा भरतने ढूँढ़नेके लिये आयी हुई सेनाको पुनः पूर्वस्थानपर ठहरा दिया और वे स्वयं गुहके साथ शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर चल दिये॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

भरतका शत्रुघ्न आदिके साथ श्रीरामके आश्रमपर जाना, उनकी पर्णशालाको देखना तथा रोते-रोते उनके चरणोंमें गिर जाना, श्रीरामका उन सबको हृदयसे लगाना और मिलना

सेनाके ठहर जानेपर भाईके दर्शनके लिये उत्कण्ठित होकर भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्नको आश्रमके चिह्न दिखाते हुए उसकी ओर चले॥ १॥

गुरुभक्त भरत महर्षि वसिष्ठको यह संदेश देकर कि आप मेरी माताओंको साथ लेकर शीघ्र ही आइये, तुरंत आगे बढ़ गये॥ २॥

सुमन्त्र भी शत्रुघ्नके समीप ही पीछे-पीछे चल रहे थे। उन्हें भी भरतके समान ही श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी तीव्र अभिलाषा थी॥ ३॥

चलते-चलते ही श्रीमान् भरतने तपस्वीजनोंके आश्रमोंके समान प्रतिष्ठित हुई भाईकी पर्णकुटी और झोंपड़ी देखी॥ ४॥

उस पर्णशालाके सामने भरतने उस समय बहुत-से कटे हुए काष्ठके टुकड़े देखे, जो होमके लिये संगृहीत थे। साथ ही वहाँ पूजाके लिये संचित किये हुए फूल भी दृष्टिगोचर हुए॥ ५॥

आश्रमपर आने-जानेवाले श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा निर्मित मार्गबोधक चिह्न भी उन्हें वृक्षोंमें लगे दिखायी दिये, जो कुशों और चीरोंद्वारा तैयार करके कहीं-कहीं वृक्षोंकी शाखाओंमें लटका दिये गये थे॥ ६॥

उस वनमें शीत-निवारणके लिये मृगोंकी लेंडी और भैंसोंके सूखे हुए गोबरके ढेर एकत्र करके रखे गये थे, जिन्हें भरतने अपनी आँखों देखा॥ ७॥

उस समय चलते-चलते ही परम कान्तिमान्

महाबाहु भरतने शत्रुघ्न तथा सम्पूर्ण मन्त्रियोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—॥ ८॥

'जान पड़ता है कि महर्षि भरद्वाजने जिस स्थानका पता बताया था, वहाँ हमलोग आ गये हैं। मैं समझता हूँ मन्दाकिनी नदी यहाँसे अधिक दूर नहीं है॥ ९॥

'वृक्षोंमें ऊँचे बँधे हुए ये चीर दिखायी दे रहे हैं। अत: समय-बेसमय जल आदि लानेके निमित्त बाहर जानेकी इच्छावाले लक्ष्मणने जिसकी पहचानके लिये यह चिह्न बनाया है, वह आश्रमको जानेवाला मार्ग यही हो सकता है॥ १०॥

'इधरसे बड़े-बड़े दाँतवाले वेगशाली हाथी निकलकर एक-दूसरेके प्रति गर्जना करते हुए इस पर्वतके पार्श्वभागमें चक्कर लगाते रहते हैं (अत: उधर जानेसे रोकनेके लिये लक्ष्मणने ये चिह्न बनाये होंगे)॥ ११॥

'वनमें तपस्वी मुनि सदा जिनका आधान करना चाहते हैं, उन अग्निदेवका यह अति सघन धूम दृष्टिगोचर हो रहा है॥ १२॥

'यहाँ मैं गुरुजनोंका सत्कार करनेवाले पुरुषसिंह आर्य रघुनन्दनका सदा आनन्दमग्न रहनेवाले महर्षिकी भाँति दर्शन करूँगा'॥ १३॥

तदनन्तर रघुकुलभूषण भरत दो ही घड़ीमें मन्दाकिनीके तटपर विराजमान चित्रकूटके पास जा पहुँचे और अपने साथवाले लोगोंसे इस प्रकार बोले—॥

'अहो! मेरे ही कारण पुरुषसिंह महाराज श्रीरामचन्द्र इस निर्जन वनमें आकर खुली पृथ्वीके ऊपर वीरासनसे बैठते हैं; अत: मेरे जन्म और जीवनको धिक्कार है॥ १५॥

'मेरे ही कारण महातेजस्वी लोकनाथ रघुनाथ भारी संकटमें पड़कर समस्त कामनाओंका परित्याग करके वनमें निवास करते हैं॥ १६॥

'इसलिये मैं सब लोगोंके द्वारा निन्दित हूँ, अत: मेरे जन्मको धिक्कार है! आज मैं श्रीरामको प्रसन्न करनेके लिये उनके चरणोंमें गिर जाऊँगा। सीता और लक्ष्मणके भी पैरों पड़ूँगा'॥ १७॥

इस तरह विलाप करते हुए दशरथकुमार भरतने उस वनमें एक बड़ी पर्णशाला देखी, जो परम पवित्र और मनोरम थी॥ १८॥

वह शाल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षोंके बहुत-से पत्तोंद्वारा छायी हुई थी; अत: यज्ञशालामें जिसपर कोमल कुश बिछाये गये हों, उस लंबी-चौड़ी वेदीके समान शोभा पा रही थी॥ १९॥

वहाँ इन्द्रधनुषके समान बहुत-से धनुष रखे गये थे, जो गुरुतर कार्य-साधनमें समर्थ थे। जिनके पृष्ठभाग सोनेसे मढ़े गये थे और जो बहुत ही प्रबल तथा शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले थे। उनसे उस पर्णकुटीकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ २०॥

वहाँ तरकसोंमें बहुत-से बाण भरे थे, जो सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले और भयङ्कर थे। उन बाणोंसे वह पर्णशाला उसी प्रकार सुशोभित होती थी, जैसे दीप्तिमान् मुखवाले सर्पोंसे भोगवती पुरी शोभित होती है॥ २१॥

सोनेकी म्यानोंमें रखी हुई दो तलवारें और स्वर्णमय बिन्दुओंसे विभूषित दो विचित्र ढालें भी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रही थीं॥ २२॥

वहाँ गोहके चमड़ेके बने हुए बहुत-से सुवर्णजटित दस्ताने भी टँगे हुए थे। जैसे मृग सिंहकी गुफापर आक्रमण नहीं कर सकते, उसी प्रकार वह पर्णशाला शत्रुसमूहोंके लिये अगम्य एवं अजेय थी॥ २३॥

श्रीरामके उस निवासस्थानमें भरतने एक पवित्र एवं विशाल वेदी भी देखी, जो ईशानकोणकी ओर कुछ नीची थी। उसपर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी॥ २४॥

पर्णशालाकी ओर थोड़ी देरतक देखकर भरतने कुटियामें बैठे हुए अपने पूजनीय भ्राता श्रीरामको देखा, जो सिरपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उन्होंने अपने अङ्गोंमें कृष्णमृगचर्म तथा चीर एवं वल्कल वस्त्र धारण कर रखे थे। भरतको दिखायी दिया कि श्रीराम पास ही बैठे हैं और प्रज्वलित अग्निके समान अपनी दिव्य प्रभा फैला रहे हैं॥ २५-२६॥

समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी, धर्मात्मा, महाबाहु श्रीराम सनातन ब्रह्माकी भाँति कुश बिछी हुई वेदीपर बैठे थे। उनके कंधे सिंहके समान, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान थे। उस वेदीपर वे सीता और लक्ष्मणके साथ विराजमान थे॥ २७-२८॥

उन्हें इस अवस्थामें देख धर्मात्मा श्रीमान् कैकेयीकुमार भरत शोक और मोहमें डूब गये तथा बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े॥ २९॥

भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही भरत आर्तभावसे विलाप करने लगे। वे अपने शोकके आवेगको धैर्यसे रोक न सके और आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बोले—॥ ३०॥

'हाय! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सेवा तथा सम्मान पानेके योग्य हैं, वे ही ये मेरे बड़े

भ्राता श्रीराम यहाँ जंगली पशुओंसे घिरे हुए बैठे हैं॥

'जो महात्मा पहले कई सहस्र वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे अब धर्माचरण करते हुए यहाँ केवल दो मृगचर्म धारण करते हैं॥ ३२॥

'जो सदा नाना प्रकारके विचित्र फूलोंको अपने सिरपर धारण करते थे, वे ही ये श्रीरघुनाथजी इस समय इस जटाभारको कैसे सहन करते हैं?॥ ३३॥

'जिनके लिये शास्त्रोक्त यज्ञोंके अनुष्ठानद्वारा धर्मका संग्रह करना उचित है, वे इस समय शरीरको कष्ट देनेसे प्राप्त होनेवाले धर्मका अनुसंधान कर रहे हैं॥ ३४॥

'जिनके अङ्गोंकी बहुमूल्य चन्दनसे सेवा होती थी, उन्हीं मेरे पूज्य भ्राताका यह शरीर कैसे मलसे सेवित हो रहा है॥ ३५॥

'हाय! जो सर्वथा सुख भोगनेके योग्य हैं, वे श्रीराम मेरे ही कारण ऐसे दुःखमें पड़ गये हैं। ओह! मैं कितना क्रूर हूँ? मेरे इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है!'॥ ३६॥

इस प्रकार विलाप करते-करते भरत अत्यन्त दुःखी हो गये। उनके मुखारविन्दपर पसीनेकी बूँदें दिखायी देने लगीं। वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंतक पहुँचनेके पहले ही पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३७॥

अत्यन्त दुःखसे संतप्त होकर महाबली राजकुमार भरतने एक बार दीनवाणीमें 'आर्य' कहकर पुकारा। फिर वे कुछ न बोल सके॥ ३८॥

आँसुओंसे उनका गला रुँध गया था। यशस्वी श्रीरामकी ओर देख वे 'हा! आर्य' कहकर चीख उठे। इससे आगे उनसे कुछ बोला न जा सका॥ ३९॥

फिर शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। श्रीरामने उन दोनोंको उठाकर छातीसे लगा लिया। फिर वे भी नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे॥ ४०॥

तत्पश्चात् राजकुमार श्रीराम तथा लक्ष्मण उस वनमें सुमन्त्र और निषादराज गुहसे मिले, मानो आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पतिसे मिल रहे हों॥

यूथपति गजराजपर बैठकर यात्रा करनेयोग्य उन चारों राजकुमारोंको उस विशाल वनमें आया देख समस्त वनवासी हर्ष छोड़कर शोकके आँसू बहाने लगे॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९९॥

सौवाँ सर्ग

श्रीरामका भरतको कुशल-प्रश्नके बहाने राजनीतिका उपदेश करना

जटा और चीर-वस्त्र धारण किये भरत हाथ जोड़कर पृथ्वीपर पड़े थे, मानो प्रलयकालमें सूर्यदेव धरतीपर गिर गये हों। उनको उस अवस्थामें देखना किसी भी स्नेही सुहृद्के लिये अत्यन्त कठिन था। श्रीरामने उन्हें देखा और जैसे-तैसे किसी तरह पहचाना। उनका मुख उदास हो गया था। वे बहुत दुर्बल हो गये थे। श्रीरामने भाई भरतको अपने हाथसे पकड़कर उठाया और उनका मस्तक सूँघकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। इसके बाद रघुकुलभूषण भरतको गोदमें बिठाकर श्रीरामने बड़े आदरसे पूछा—॥ १—३॥

'तात! पिताजी कहाँ थे कि तुम इस वनमें आये हो? उनके जीते-जी तो तुम वनमें नहीं आ सकते थे॥

'मैं दीर्घकालके बाद दूरसे (नानाके घरसे) आये हुए भरतको आज इस वनमें देख रहा हूँ; परंतु इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। तात! तुम क्यों वनमें आये हो?॥ ५॥

'भाई! महाराज जीवित हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे अत्यन्त दुःखी होकर सहसा परलोकवासी हो गये हों और इसीलिये तुम्हें स्वयं यहाँ आना पड़ा हो?॥ ६॥

'सौम्य! तुम अभी बालक हो, इसलिये परम्परासे चला आता हुआ तुम्हारा राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? सत्यपराक्रमी तात भरत! तुम पिताजीकी सेवा-शुश्रूषा तो करते हो न?॥ ७॥

'जो धर्मपर अटल रहनेवाले हैं तथा जिन्होंने राजसूय एवं अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, वे सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ सकुशल तो हैं न?॥ ८॥

'तात! क्या तुम सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले, विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता और इक्ष्वाकुकुलके आचार्य महातेजस्वी वसिष्ठजीकी यथावत् पूजा करते हो?॥ ९॥

'भाई! क्या माता कौसल्या सुखसे हैं? उत्तम संतानवाली सुमित्रा प्रसन्न हैं और आर्या कैकेयी देवी भी आनन्दित हैं?॥ १०॥

'जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, विनयसम्पन्न, बहुश्रुत,

किसीके दोष न देखनेवाले तथा शास्त्रोक्त धर्मोंपर निरन्तर दृष्टि रखनेवाले हैं, उन पुरोहितजीका तुमने पूर्णत: सत्कार किया है?॥ ११॥

'हवनविधिके ज्ञाता, बुद्धिमान् और सरल स्वभाववाले जिन ब्राह्मण देवताको तुमने अग्निहोत्र-कार्यके लिये नियुक्त किया है, वे सदा ठीक समयपर आकर क्या तुम्हें यह सूचित करते हैं कि इस समय अग्निमें आहुति दे दी गयी और अब अमुक समयमें हवन करना है?॥ १२॥

'तात! क्या तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिताके समान आदरणीय वृद्धों, वैद्यों और ब्राह्मणोंका सम्मान करते हो?॥ १३॥

'भाई! जो मन्त्ररहित श्रेष्ठ बाणोंके प्रयोग तथा मन्त्रसहित उत्तम अस्त्रोंके प्रयोगके ज्ञानसे सम्पन्न और अर्थशास्त्र (राजनीति) के अच्छे पण्डित हैं, उन आचार्य सुधन्वाका क्या तुम समादर करते हो?॥ १४॥

'तात! क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओंसे ही मनकी बात समझ लेनेवाले सुयोग्य व्यक्तियोंको ही मन्त्री बनाया है?॥ १५॥

'रघुनन्दन! अच्छी मन्त्रणा ही राजाओंकी विजयका मूलकारण है। वह भी तभी सफल होती है, जब नीति-शास्त्रनिपुण मन्त्रिशिरोमणि अमात्य उसे सर्वथा गुप्त रखें॥ १६॥

'भरत! तुम असमयमें ही निन्द्राके वशीभूत तो नहीं होते? समयपर जाग जाते हो न? रातके पिछले पहरमें अर्थसिद्धिके उपायपर विचार करते हो न?॥ १७॥

'(कोई भी गुप्त मन्त्रणा दोसे चार कानोंतक ही गुप्त रहती है; छ: कानोंमें जाते ही वह फूट जाती है, अत: मैं पूछता हूँ—) तुम किसी गूढ़ विषयपर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत लोगोंके साथ बैठकर तो मन्त्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मन्त्रणा फूटकर शत्रुके राज्यतक फैल जाती हो?॥ १८॥

'रघुनन्दन! जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत बड़ा हो, ऐसे कार्यका निश्चय करनेके बाद तुम उसे शीघ्र प्रारम्भ कर देते हो न? उसमें विलम्ब तो नहीं करते?॥ १९॥

'तुम्हारे सब कार्य पूर्ण हो जानेपर अथवा पूरे होनेके समीप पहुँचनेपर ही दूसरे राजाओंको ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रमको वे पहले ही जान लेते हों?॥ २०॥

'तात! तुम्हारे निश्चित किये हुए विचारोंको तुम्हारे या मन्त्रियोंके प्रकट न करनेपर भी दूसरे लोग तर्क और युक्तियोंके द्वारा जान तो नहीं लेते हैं? (तथा तुमको और तुम्हारे अमात्योंको दूसरोंके गुप्त विचारोंका पता लगता रहता है न?)॥ २१॥

'क्या तुम सहस्रों मूर्खोंके बदले एक पण्डितको ही अपने पास रखनेकी इच्छा रखते हो? क्योंकि विद्वान् पुरुष ही अर्थसंकटके समय महान् कल्याण कर सकता है॥ २२॥

'यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खोंको अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसरपर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती॥ २३॥

'यदि एक मन्त्री भी मेधावी, शूर-वीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमारको बहुत बड़ी सम्पत्तिकी प्राप्ति करा सकता है॥ २४॥

'तात! तुमने प्रधान व्यक्तियोंको प्रधान, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मध्यम और छोटी श्रेणीके लोगोंको छोटे ही कामोंमें नियुक्त किया है न?॥ २५॥

'जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप-दादोंके समयसे ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतरसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्योंको ही तुम उत्तम कार्योंमें नियुक्त करते हो न?॥ २६॥

'कैकेयीकुमार! तुम्हारे राज्यकी प्रजा कठोर दण्डसे अत्यन्त उद्विग्न होकर तुम्हारे मन्त्रियोंका तिरस्कार तो नहीं करती?॥ २७॥

'जैसे पवित्र याजक पतित यजमानका तथा स्त्रियाँ कामचारी पुरुषका तिरस्कार कर देती हैं, उसी प्रकार प्रजा कठोरतापूर्वक अधिक कर लेनेके कारण तुम्हारा अनादर तो नहीं करती?॥ २८॥

'जो साम-दाम आदि उपायोंके प्रयोगमें कुशल, राजनीतिशास्त्रका विद्वान्, विश्वासी भृत्योंको फोड़नेमें लगा हुआ, शूर (मरनेसे न डरनेवाला) तथा राजाके राज्यको हड़प लेनेकी इच्छा रखनेवाला है—ऐसे पुरुषको जो राजा नहीं मार डालता है, वह स्वयं उसके हाथसे मारा जाता है॥ २९॥

'क्या तुमने सदा संतुष्ट रहनेवाले, शूर-वीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन एवं अपनेमें अनुराग रखनेवाले, रणकर्मदक्ष पुरुषको ही सेनापति बनाया है?॥ ३०॥

'तुम्हारे प्रधान-प्रधान योद्धा (सेनापति) बलवान्, युद्धकुशल और पराक्रमी तो हैं न? क्या तुमने उनके शौर्यकी परीक्षा कर ली है? तथा क्या वे तुम्हारे द्वारा सत्कारपूर्वक सम्मान पाते रहते हैं?॥ ३१॥

'सैनिकोंको देनेके लिये नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समयपर दे देते हो न? देनेमें विलम्ब तो नहीं करते?॥ ३२॥

'यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामीपर भी अत्यन्त कुपित हो जाते हैं और इसके कारण बड़ा भारी अनर्थ घटित हो जाता है॥

'क्या उत्तम कुलमें उत्पन्न मन्त्री आदि समस्त प्रधान अधिकारी तुमसे प्रेम रखते हैं? क्या वे तुम्हारे लिये एकचित्त होकर अपने प्राणोंका त्याग करनेके लिये उद्यत रहते हैं?॥ ३४॥

'भरत! तुमने जिसे राजदूतके पदपर नियुक्त किया है, वह पुरुष अपने ही देशका निवासी, विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली और जैसा कहा जाय, वैसी ही बात दूसरेके सामने कहनेवाला और सदसद्विवेकयुक्त है न?॥ ३५॥

'क्या तुम शत्रुपक्षके अठारह[१] और अपने पक्षके पंद्रह[२] तीर्थोंकी तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरोंद्वारा देख-भाल या जाँच-पड़ताल करते रहते हो?॥ ३६॥

'शत्रुसूदन! जिन शत्रुओंको तुमने राज्यसे निकाल दिया है, वे यदि फिर लौटकर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते?॥ ३७॥

'तात! तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते हो? क्योंकि वे बुद्धिको परमार्थकी ओरसे विचलित करनेमें कुशल होते हैं तथा वास्तवमें अज्ञानी होते हुए भी अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानते हैं॥ ३८॥

'उनका ज्ञान वेदके विरुद्ध होनेके कारण दूषित होता है और वे प्रमाणभूत प्रधान-प्रधान धर्मशास्त्रोंके होते हुए भी तार्किक बुद्धिका आश्रय लेकर व्यर्थ बकवाद किया करते हैं॥ ३९॥

'तात! अयोध्या हमारे वीर पूर्वजोंकी निवासभूमि है; उसका जैसा नाम है, वैसा ही गुण है। उसके दरवाजे सब ओरसे सुदृढ़ हैं। वह हाथी, घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण है। अपने-अपने कर्मोंमें लगे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ सदा निवास करते हैं। वे सब-के-सब महान् उत्साही, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ हैं। नाना प्रकारके राजभवन और मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगरी बहुसंख्यक विद्वानोंसे भरी है। ऐसी अभ्युदयशील और समृद्धिशालिनी नगरी अयोध्याकी तुम भलीभाँति रक्षा तो करते हो न?॥ ४०—४२॥

'रघुनन्दन भरत! जहाँ नाना प्रकारके अश्वमेध आदि महायज्ञोंके बहुत-से चयन-प्रदेश (अनुष्ठानस्थल) शोभा पाते हैं, जिसमें प्रतिष्ठित मनुष्य अधिक संख्यामें निवास करते हैं, अनेकानेक देवस्थान, पौंसले और तालाब जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जहाँके स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्न रहते हैं, जो सामाजिक उत्सवोंके कारण सदा शोभासम्पन्न दिखायी देता है, जहाँ खेत जोतनेमें समर्थ पशुओंकी अधिकता है, जहाँ किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होती, जहाँ खेतीके लिये वर्षाके जलपर निर्भर नहीं रहना पड़ता (नदियोंके जलसे ही सिंचाई हो जाती है), जो बहुत ही सुन्दर और हिंसक पशुओंसे रहित है, जहाँ किसी तरहका भय नहीं है, नाना प्रकारकी खानें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, जहाँ पापी मनुष्योंका सर्वथा अभाव है तथा हमारे पूर्वजोंने जिसकी भलीभाँति रक्षा की है, वह अपना कोसल देश धन-धान्यसे सम्पन्न और सुखपूर्वक बसा हुआ है न?॥ ४३—४६॥

---

१. शत्रुपक्षके मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक (अन्तःपुरका अध्यक्ष), कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, यथायोग्य कार्योंमें धनका व्यय करनेवाला सचिव, प्रदेष्टा (पहरेदारोंको काम बतानेवाला), नगराध्यक्ष (कोतवाल), कार्यनिर्माणकर्ता (शिल्पियोंका परिचालक), धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रसीमापाल तथा वनरक्षक—ये अठारह तीर्थ हैं, जिनपर राजाको दृष्टि रखनी चाहिये। मतान्तरसे ये अठारह तीर्थ इस प्रकार हैं—मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तःपुराध्यक्ष, कारागाराध्यक्ष, धनाध्यक्ष, राजाकी आज्ञासे सेवकोंको काम बतानेवाला, वादी-प्रतिवादीसे मामलेकी पूछताछ करनेवाला, प्राड्विवाक (वकील), धर्मासनाधिकारी (न्यायाधीश), व्यवहार-निर्णेता, सभ्य, सेनाको जीविका-निर्वाहके लिये धन देनेका अधिकारी (सेनानायक), कर्मचारियोंको काम पूरा होनेपर वेतन देनेके लिये राजासे धन लेनेवाला, नगराध्यक्ष, राष्ट्रसीमापाल तथा वनरक्षक, दुष्टोंको दण्ड देनेका अधिकारी तथा जल, पर्वत, वन एवं दुर्गम भूमिकी रक्षा करनेवाला—इनपर राजाको दृष्टि रखनी चाहिये।

२. उपर्युक्त अठारह तीर्थोंमेंसे आदिके तीनको छोड़कर शेष पंद्रह तीर्थ अपने पक्षके भी सदा परीक्षणीय हैं।

'तात! कृषि और गोरक्षासे आजीविका चलानेवाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीतिपात्र हैं न? क्योंकि कृषि और व्यापार आदिमें संलग्न रहनेपर ही यह लोक सुखी एवं उन्नतिशील होता है॥ ४७॥

'उन वैश्योंको इष्टकी प्राप्ति कराकर और उनके अनिष्टका निवारण करके तुम उन सब लोगोंका भरण-पोषण तो करते हो न? क्योंकि राजाको अपने राज्यमें निवास करनेवाले सब लोगोंका धर्मानुसार पालन करना चाहिये॥ ४८॥

'क्या तुम अपनी स्त्रियोंको संतुष्ट रखते हो? क्या वे तुम्हारे द्वारा भलीभाँति सुरक्षित रहती हैं? तुम उनपर अधिक विश्वास तो नहीं करते? उन्हें अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते?॥ ४९॥

'जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं, वे जंगल तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हैं न? तुम्हारे पास दूध देनेवाली गौएँ तो अधिक संख्यामें हैं न? (अथवा हाथियोंको फँसानेवाली हथिनियोंकी तो तुम्हारे पास कमी नहीं है?) तुम्हें हथिनियों, घोड़ों और हाथियोंके संग्रहसे कभी तृप्ति तो नहीं होती?॥ ५०॥

'राजकुमार! क्या तुम प्रतिदिन पूर्वाह्णकालमें वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो प्रधान सड़कपर जा-जाकर नगरवासी मनुष्योंको दर्शन देते हो?॥ ५१॥

'काम-काजमें लगे हुए सभी मनुष्य निडर होकर तुम्हारे सामने तो नहीं आते? अथवा वे सब सदा तुमसे दूर तो नहीं रहते? क्योंकि कर्मचारियोंके विषयमें मध्यम स्थितिका अवलम्बन करना ही अर्थसिद्धिका कारण होता है॥ ५२॥

'क्या तुम्हारे सभी दुर्ग (किले) धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र (मशीन), शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकोंसे भरे-पूरे रहते हैं?॥ ५३॥

'रघुनन्दन! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय बहुत कम है? तुम्हारे खजानेका धन अपात्रोंके हाथमें तो नहीं चला जाता?॥ ५४॥

'देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रोंके लिये ही तो तुम्हारा धन खर्च होता है न?॥ ५५॥

'कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुषपर भी दोष लगा दे तथा शास्त्रज्ञानमें कुशल विद्वानोंद्वारा उसके विषयमें विचार कराये बिना ही लोभवश उसे आर्थिक दण्ड दे दिया जाता हो?॥ ५६॥

'नरश्रेष्ठ! जो चोरीमें पकड़ा गया हो, जिसे किसीने चोरी करते समय देखा हो, पूछताछसे भी जिसके चोर होनेका प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध (चोरीका माल बरामद होना आदि) और भी बहुत-से कारण (सबूत) हों, ऐसे चोरको भी तुम्हारे राज्यमें धनके लालचसे छोड़ तो नहीं दिया जाता है?॥ ५७॥

'रघुकुलभूषण! यदि धनी और गरीबमें कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्यके न्यायालयमें निर्णयके लिये आया हो तो तुम्हारे बहुज्ञ मन्त्री धन आदिके लोभको छोड़कर उस मामलेपर विचार करते हैं न?॥ ५८॥

'रघुनन्दन! निरपराध होनेपर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्योंकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे पक्षपातपूर्ण शासन करनेवाले राजाके पुत्र और पशुओंका नाश कर डालते हैं॥ ५९॥

'राघव! क्या तुम वृद्ध पुरुषों, बालकों और प्रधान-प्रधान वैद्योंका आन्तरिक अनुराग, मधुर वचन और धनदान—इन तीनोंके द्वारा सम्मान करते हो?॥ ६०॥

'गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चैत्य वृक्षों और समस्त पूर्णकाम ब्राह्मणोंको नमस्कार करते हो न?॥ ६१॥

'तुम अर्थके द्वारा धर्मको अथवा धर्मके द्वारा अर्थको हानि तो नहीं पहुँचाते? अथवा आसक्ति और लोभरूप कामके द्वारा धर्म और अर्थ दोनोंमें बाधा तो नहीं आने देते?॥ ६२॥

'विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ, समयोचित कर्तव्यके ज्ञाता तथा दूसरोंको वर देनेमें समर्थ भरत! क्या तुम समयका विभाग करके धर्म, अर्थ और कामका योग्य समयमें सेवन करते हो?॥ ६३॥

'महाप्राज्ञ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले ब्राह्मण पुरवासी और जनपदवासी मनुष्योंके साथ तुम्हारे कल्याणकी कामना करते हैं न?॥ ६४॥

'नास्तिकता, असत्य-भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषोंका संग न करना, आलस्य, नेत्र आदि पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत होना, राजकार्योंके विषयमें अकेले ही विचार करना, प्रयोजनको न समझनेवाले विपरीतदर्शी मूर्खोंसे सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्योंका शीघ्र प्रारम्भ न करना, गुप्त मन्त्रणाको सुरक्षित न रखकर प्रकट कर देना, माङ्गलिक आदि कार्योंका अनुष्ठान न करना तथा सब शत्रुओंपर एक ही साथ चढ़ाई कर देना—ये राजाके चौदह दोष हैं। तुम इन दोषोंका सदा

परित्याग करते हो न?॥ ६५—६७॥

'महाप्राज्ञ भरत! दशवर्ग,[१] पञ्चवर्ग,[२] चतुर्वर्ग,[३] सप्तवर्ग,[४] अष्टवर्ग,[५] त्रिवर्ग,[६] तीन विद्या,[७] बुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंको जीतना, छः गुण,[८] दैवी[९] और मानुषी बाधाएँ, राजाके नीतिपूर्ण कार्य,[१०] विंशतिवर्ग,[११] प्रकृतिमण्डल,[१२] यात्रा (शत्रुपर आक्रमण), दण्डविधान (व्यूहरचना) तथा दो-दो गुणोंकी[१३] योनिभूत संधि और विग्रह—इन सबकी ओर तुम यथार्थ रूपसे ध्यान देते हो न? इनमेंसे त्यागनेयोग्य दोषोंको त्यागकर ग्रहण करनेयोग्य गुणोंको ग्रहण करते हो न?॥ ६८—७०॥

'विद्वन्! क्या तुम नीतिशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चार या तीन मन्त्रियोंके साथ—सबको एकत्र करके अथवा सबसे अलग-अलग मिलकर सलाह करते हो?॥ ७१॥

'क्या तुम वेदोंकी आज्ञाके अनुसार काम करके उन्हें सफल करते हो? क्या तुम्हारी क्रियाएँ सफल (उद्देश्यकी सिद्धि करनेवाली) हैं? क्या तुम्हारी स्त्रियाँ भी सफल (संतानवती) हैं? और क्या तुम्हारा शास्त्रज्ञान भी विनय आदि गुणोंका उत्पादक होकर सफल हुआ है?॥ ७२॥

'रघुनन्दन! मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हारी बुद्धिका भी ऐसा ही निश्चय है न? क्योंकि यह विचार आयु और यशको बढ़ानेवाला तथा धर्म, काम और अर्थकी सिद्धि करनेवाला है॥ ७३॥

'हमारे पिताजी जिस वृत्तिका आश्रय लेते हैं, हमारे प्रपितामहोंने जिस आचरणका पालन किया है, सत्पुरुष भी जिसका सेवन करते हैं और जो कल्याणका मूल है, उसीका तुम पालन करते हो न?॥ ७४॥

'रघुनन्दन! तुम स्वादिष्ट अन्न अकेले ही तो नहीं खा जाते? उसकी आशा रखनेवाले मित्रोंको भी देते हो न?॥ ७५॥

'इस प्रकार धर्मके अनुसार दण्ड धारण करनेवाला विद्वान् राजा प्रजाओंका पालन करके समूची पृथ्वीको यथावत्‌रूपसे अपने अधिकारमें कर लेता है तथा देहत्याग करनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें जाता है'॥ ७६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें सौवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १००॥

---

१. कामसे उत्पन्न होनेवाले दस दोषोंको दशवर्ग कहते हैं। ये राजाके लिये त्याज्य हैं। मनुजीने उनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं—आखेट, जुआ, दिनमें सोना, दूसरोंकी निन्दा करना, स्त्रीमें आसक्त होना, मद्यपान, नाचना, गाना, बाजा बजाना और व्यर्थ घूमना। २. जलदुर्ग, पर्वतदुर्ग, वृक्षदुर्ग, ईरिणदुर्ग और धन्वदुर्ग—ये पाँच प्रकारके दुर्ग पञ्चवर्ग कहलाते हैं। इनमें आरम्भके तीन तो प्रसिद्ध ही हैं। जहाँ किसी प्रकारकी खेती नहीं होती, ऐसे प्रदेशको ईरिण कहते हैं। बालूसे भरी मरुभूमिको धन्व कहते हैं। गर्मीके दिनोंमें वह शत्रुओंके लिये दुर्गम होती है। इन सब दुर्गोंका यथासमय उपयोग करके राजाको आत्मरक्षा करनी चाहिये। ३. साम, दान, भेद और दण्ड—इन चार प्रकारकी नीतिको चतुर्वर्ग कहते हैं। ४. राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अङ्ग हैं। इन्हींको सप्तवर्ग कहा गया है। ५. चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणीकी कठोरता और दण्डकी कठोरता—ये क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले आठ दोष अष्टवर्ग माने गये हैं। किसी-किसीके मतमें खेतीकी उन्नति करना, व्यापारको बढ़ाना, दुर्ग बनवाना, पुल निर्माण कराना, जंगलसे हाथी पकड़कर मँगवाना, खानोंपर अधिकार प्राप्त करना, अधीन राजाओंसे कर लेना और निर्जन प्रदेशको आबाद करना—ये राजाके लिये उपादेय आठ गुण ही अष्टवर्ग हैं। ६. धर्म, अर्थ और कामको अथवा उत्साह-शक्ति, प्रभुशक्ति तथा मन्त्रशक्तिको त्रिवर्ग कहते हैं। ७. त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये तीन विद्याएँ हैं। इनमें तीनों वेदोंको त्रयी कहते हैं। कृषि और गोरक्षा आदि वार्ताके अन्तर्गत हैं तथा नीतिशास्त्रका नाम दण्डनीति है। ८. संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ये छः गुण हैं। इनमें शत्रुसे मेल रखना संधि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है। ९. आग लगना, बाढ़ आना, बीमारी फैलना, अकाल पड़ना और महामारीका प्रकोप होना—ये पाँच दैवी बाधाएँ हैं। राज्यके अधिकारियों, चोरों, शत्रुओं और राजाके प्रिय व्यक्तियोंसे तथा स्वयं राजाके लोभसे जो भय प्राप्त होता है, उसे मानवी बाधा कहते हैं। १०. शत्रु राजाओंके सेवकोंमेंसे जिनको वेतन न मिला हो, जो अपमानित किये गये हों, जो अपने मालिकके किसी बर्तावसे कुपित हों तथा जिन्हें भय दिखाकर डराया गया हो, ऐसे लोगोंको मनचाही वस्तु देकर फोड़ लेना राजाका कृत्य (नीतिपूर्ण कार्य) माना गया है। ११. बालक, वृद्ध, दीर्घकालका रोगी, जातिच्युत, डरपोक, भीरु मनुष्योंको साथ रखनेवाला, लोभी-लालची लोगोंको आश्रय देनेवाला, मन्त्री,

एक सौ एकवाँ सर्ग

श्रीरामका भरतसे वनमें आगमनका प्रयोजन पूछना, भरतका उनसे राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना और श्रीरामका उसे अस्वीकार कर देना

लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीने अपने गुरुभक्त भाई भरतको अच्छी तरह समझाकर अथवा उन्हें अपनेमें अनुरक्त जानकर उनसे इस प्रकार पूछना आरम्भ किया—॥ १ ॥

'भाई! तुम राज्य छोड़कर वल्कल, कृष्णमृगचर्म और जटा धारण करके जो इस देशमें आये हो, इसका क्या कारण है? जिस निमित्तसे इस वनमें तुम्हारा प्रवेश हुआ है, यह मैं तुम्हारे मुँहसे सुनना चाहता हूँ। तुम्हें सब कुछ साफ-साफ बताना चाहिये'॥ २-३ ॥

ककुत्स्थवंशी महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर भरतने बलपूर्वक आन्तरिक शोकको दबा पुनः हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ ४ ॥

'आर्य! हमारे महाबाहु पिता अत्यन्त दुष्कर कर्म करके पुत्रशोकसे पीड़ित हो हमें छोड़कर स्वर्गलोकको चले गये॥ ५ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! अपनी स्त्री एवं मेरी माता कैकेयीकी प्रेरणासे ही विवश हो पिताजीने ऐसा कठोर कार्य किया था। मेरी माँने अपने सुयशको नष्ट करनेवाला यह बड़ा भारी पाप किया है॥ ६ ॥

'अतः वह राज्यरूपी फल न पाकर विधवा हो गयी। अब मेरी माता शोकसे दुर्बल हो महाघोर नरकमें पड़ेगी॥ ७ ॥

'अब आप अपने दासस्वरूप मुझ भरतपर कृपा कीजिये और इन्द्रकी भाँति आज ही राज्य ग्रहण करनेके लिये अपना अभिषेक कराइये॥ ८ ॥

'ये सारी प्रकृतियाँ (प्रजा आदि) और सभी विधवा माताएँ आपके पास आयी हैं। आप इन सबपर कृपा करें॥ ९ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले रघुवीर! आप ज्येष्ठ होनेके नाते राज्य-प्राप्तिके क्रमिक अधिकारसे युक्त हैं, न्यायतः आपको ही राज्य मिलना उचित है; अतः आप धर्मानुसार राज्य ग्रहण करें और अपने सुहृदोंको सफल-मनोरथ बनावें॥ १० ॥

'आप-जैसे पतिसे युक्त हो यह सारी वसुधा वैधव्यरहित हो जाय और निर्मल चन्द्रमासे सनाथ हुई शरत्कालकी रात्रिके समान शोभा पाने लगे॥ ११ ॥

'मैं इन समस्त सचिवोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह याचना करता हूँ कि आप राज्य ग्रहण करें। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझपर कृपा करें॥ १२ ॥

'पुरुषसिंह! यह सारा मन्त्रिमण्डल अपने यहाँ कुलपरम्परासे चला आ रहा है। ये सभी सचिव पिताजीके समयमें भी थे। हम सदासे इनका सम्मान करते आये हैं, अतः आप इनकी प्रार्थना न ठुकरायें'॥ १३ ॥

ऐसा कहकर कैकेयीपुत्र महाबाहु भरतने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंसे माथा टेक दिया॥ १४ ॥

उस समय वे मतवाले हाथीके समान बारंबार लंबी साँस खींचने लगे, तब श्रीरामने भाई भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १५ ॥

'भाई! तुम्हीं बताओ। उत्तम कुलमें उत्पन्न, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी और श्रेष्ठ व्रतोंका पालन करनेवाला मेरे-जैसा मनुष्य राज्यके लिये पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन रूप पाप कैसे कर सकता है?॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन! मैं तुम्हारे अंदर थोड़ा-सा भी दोष नहीं देखता। अज्ञानवश तुम्हें अपनी माताकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ १७ ॥

'निष्पाप महाप्राज्ञ! गुरुजनोंका अपनी अभीष्ट

सेनापति आदि प्रकृतियोंको असंतुष्ट रखनेवाला, विषयोंमें आसक्त, चञ्चलचित्त मनुष्योंसे सलाह लेनेवाला, देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, दैवका मारा हुआ, भाग्यके भरोसे पुरुषार्थ न करनेवाला, दुर्भिक्षसे पीड़ित, सैनिक-कष्टसे युक्त (सेनारहित), स्वदेशमें न रहनेवाला, अधिक शत्रुओंवाला, अकाल (क्रूर ग्रहदशा आदिसे युक्त) और सत्यधर्मसे रहित—ये बीस प्रकारके राजा संधिके योग्य नहीं माने गये हैं। इन्हींको विंशतिवर्गके नामसे कहा गया है। १२. राज्यके स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना—राज्यके इन सात अङ्गोंको ही प्रकृतिमण्डल कहते हैं। किसी-किसीके मतमें मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना और दण्ड—ये पाँच प्रकृतियाँ अलग हैं और बारह राजाओंके समूहको मण्डल कहा है। १३. द्वैधीभाव और समाश्रय—ये इनकी योनिसंधि हैं और यान तथा आसन इनकी योनिविग्रह हैं, अर्थात् प्रथम दो संधिमूलक और अन्तिम दो विग्रहमूलक हैं।

स्त्रियों और प्रिय पुत्रोंपर सदा पूर्ण अधिकार होता है। वे उन्हें चाहे जैसी आज्ञा दे सकते हैं॥ १८॥

'सौम्य! माताओंसहित हम भी इस लोकमें श्रेष्ठ पुरुषों-द्वारा महाराजके स्त्री-पुत्र और शिष्य कहे गये हैं, अत: हमें भी उनको सब तरहकी आज्ञा देनेका अधिकार था। इस बातको तुम भी समझने योग्य हो॥

'सौम्य! महाराज मुझे वल्कल वस्त्र और मृगचर्म धारण कराकर वनमें ठहरावें अथवा राज्यपर बिठावें—इन दोनों बातोंके लिये वे सर्वथा समर्थ थे॥ २०॥

'धर्मज्ञ! धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरत! मनुष्यकी विश्ववन्द्य पितामें जितनी गौरव-बुद्धि होती है, उतनी ही मातामें भी होनी चाहिये॥ २१॥

'रघुनन्दन! इन धर्मशील माता और पिता दोनोंने जब मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दे दी है, तब मैं उनकी आज्ञाके विपरीत दूसरा कोई बर्ताव कैसे कर सकता हूँ?॥ २२॥

'तुम्हें अयोध्यामें रहकर समस्त जगत्के लिये आदरणीय राज्य प्राप्त करना चाहिये और मुझे वल्कल वस्त्र धारण करके दण्डकारण्यमें रहना चाहिये॥ २३॥

'क्योंकि महाराज दशरथ बहुत लोगोंके सामने हम दोनोंके लिये इस प्रकार पृथक्-पृथक् दो आज्ञाएँ देकर स्वर्गको सिधारे हैं॥ २४॥

'इस विषयमें लोकगुरु धर्मात्मा राजा ही तुम्हारे लिये प्रमाणभूत हैं—उन्हींकी आज्ञा तुम्हें माननी चाहिये और पिताने तुम्हारे हिस्सेमें जो कुछ दिया है, उसीका तुम्हें यथावत् रूपसे उपभोग करना चाहिये॥ २५॥

'सौम्य! चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें रहनेके बाद ही महात्मा पिताके दिये हुए राज्य-भागका मैं उपभोग करूँगा॥ २६॥

'मनुष्यलोकमें सम्मानित और देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी मेरे महात्मा पिताने मुझे जो वनवासकी आज्ञा दी है, उसीको मैं अपने लिये परम हितकारी समझता हूँ। उनकी आज्ञाके विरुद्ध सर्वलोकेश्वर ब्रह्माका अविनाशी पद भी मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं है'॥ २७॥

*इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०१॥**

एक सौ दोवाँ सर्ग

भरतका पुन: श्रीरामसे राज्य ग्रहण करनेका अनुरोध करके उनसे पिताकी मृत्युका समाचार बताना

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर भरतने इस प्रकार उत्तर दिया—'भैया! मैं राज्यका अधिकारी न होनेके कारण उस राजधर्मके अधिकारसे रहित हूँ, अत: मेरे लिये यह राजधर्मका उपदेश किस काम आयगा?॥ १॥

'नरश्रेष्ठ! हमारे यहाँ सदासे ही इस शाश्वत धर्मका पालन होता आया है कि ज्येष्ठ पुत्रके रहते हुए छोटा पुत्र राजा नहीं हो सकता॥ २॥

'अत: रघुनन्दन! आप मेरे साथ समृद्धिशालिनी अयोध्यापुरीको चलिये और हमारे कुलके अभ्युदयके लिये राजाके पदपर अपना अभिषेक कराइये॥ ३॥

'यद्यपि सब लोग राजाको मनुष्य कहते हैं, तथापि मेरी रायमें वह देवत्वपर प्रतिष्ठित है; क्योंकि उसके धर्म और अर्थयुक्त आचारको साधारण मनुष्यके लिये असम्भावित बताया गया है॥ ४॥

'जब मैं केकयदेशमें था और आप वनमें चले आये थे, तब अश्वमेध आदि यज्ञोंके कर्ता और सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित बुद्धिमान् महाराज दशरथ स्वर्गलोकको चले गये॥ ५॥

'सीता और लक्ष्मणके साथ आपके राज्यसे निकलते ही दु:ख-शोकसे पीड़ित हुए महाराज स्वर्गलोकको चल दिये॥ ६॥

'पुरुषसिंह! उठिये और पिताको जलाञ्जलि दान कीजिये। मैं और यह शत्रुघ्न—दोनों पहले ही उनके लिये जलाञ्जलि दे चुके हैं॥ ७॥

'रघुनन्दन! कहते हैं, प्रिय पुत्रका दिया हुआ जल आदि पितृलोकमें अक्षय होता है और आप पिताके परम प्रिय पुत्र हैं॥ ८॥

'आपके पिता आपसे विलग होते ही शोकके

* कुछ प्रतियोंमें यह सर्ग १०४ वें सर्गके रूपमें वर्णित है। १०० वें सर्गके बादके तीन सर्गोंके बाद इसका उल्लेख हुआ है।

कारण रुग्ण हो गये और आपके ही शोकमें मग्न हो, आपको ही देखनेकी इच्छा रखकर, आपमें ही लगी हुई बुद्धिको आपकी ओरसे न हटाकर, आपका ही स्मरण करते हुए स्वर्गको चले गये'॥ ९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका विलाप, पिताके लिये जलाञ्जलि-दान, पिण्डदान और रोदन

भरतकी कही हुई पिताकी मृत्युसे सम्बन्ध रखनेवाली करुणाजनक बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी दु:खके कारण अचेत हो गये॥ १॥

भरतके मुखसे निकला हुआ वह वचन वज्र-सा लगा, मानो दानवशत्रु इन्द्रने युद्धस्थलमें वज्रका प्रहार-सा कर दिया हो। मनको प्रिय न लगनेवाले उस वाग्-वज्रको सुनकर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर जिसकी डालियाँ खिली हुई हों, वनमें कुल्हाड़ीसे कटे हुए उस वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े (भरतके दर्शनसे श्रीरामको हर्ष हुआ था, पिताकी मृत्युके संवादसे दु:ख; अत: उन्हें खिले और कटे हुए पेड़की उपमा दी गयी है)॥ २-३॥

पृथ्वीपति श्रीराम इस प्रकार पृथ्वीपर गिरकर नदीके तटको दाँतोंसे विदीर्ण करनेके परिश्रमसे थककर सोये हुए हाथीके समान प्रतीत होते थे। शोकके कारण दुर्बल हुए उन महाधनुर्धर श्रीरामको सब ओरसे घेरकर सीतासहित रोते हुए वे तीनों भाई आँसुओंके जलसे भिगोने लगे॥ ४-५॥

थोड़ी देर बाद पुन: होशमें आनेपर नेत्रोंसे अश्रुवर्षा करते हुए ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने अत्यन्त दीन वाणीमें विलाप आरम्भ किया॥ ६॥

पृथ्वीपति महाराज दशरथको स्वर्गगामी हुआ सुनकर धर्मात्मा श्रीरामने भरतसे यह धर्मयुक्त बात कही—॥

'भैया! जब पिताजी परलोकवासी हो गये, तब अयोध्यामें चलकर अब मैं क्या करूँगा? उन राजशिरोमणि पितासे हीन हुई उस अयोध्याका अब कौन पालन करेगा?॥ ८॥

'हाय! जो पिताजी मेरे ही शोकसे मृत्युको प्राप्त हुए, उन्हींका मैं दाह-संस्कारतक न कर सका। मुझ-जैसे व्यर्थ जन्म लेनेवाले पुत्रसे उन महात्मा पिताका कौन-सा कार्य सिद्ध हुआ?॥ ९॥

'निष्पाप भरत! तुम्हीं कृतार्थ हो, तुम्हारा अहोभाग्य है, जिससे तुमने और शत्रुघ्नने सभी प्रेतकार्यों (पारलौकिक कृत्यों) में संस्कार-कर्मके द्वारा महाराजका पूजन किया है॥ १०॥

'महाराज दशरथसे हीन हुई अयोध्या अब प्रधान शासकसे रहित हो अस्वस्थ एवं आकुल हो उठी है; अत: वनवाससे लौटनेपर भी मेरे मनमें अयोध्या जानेका उत्साह नहीं रह गया है॥ ११॥

'परंतप भरत! वनवासकी अवधि समाप्त करके यदि मैं अयोध्यामें जाऊँ तो फिर कौन मुझे कर्तव्यका उपदेश देगा; क्योंकि पिताजी तो परलोकवासी हो गये॥ १२॥

'पहले जब मैं उनकी किसी आज्ञाका पालन करता था, तब वे मेरे सद्व्यवहारको देखकर मेरा उत्साह बढ़ानेके लिये जो-जो बातें कहा करते थे, कानोंको सुख पहुँचानेवाली उन बातोंको अब मैं किसके मुखसे सुनूँगा'॥ १३॥

भरतसे ऐसा कहकर शोकसंतप्त श्रीरामचन्द्रजी पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली अपनी पत्नीके पास आकर बोले—॥ १४॥

'सीते! तुम्हारे श्वशुर चल बसे। लक्ष्मण! तुम पितृहीन हो गये। भरत पृथ्वीपति महाराज दशरथके स्वर्गवासका दु:खदायी समाचार सुना रहे हैं'॥ १५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर उन सभी यशस्वी कुमारोंके नेत्रोंमें बहुत अधिक आँसू उमड़ आये॥ १६॥

तदनन्तर सभी भाइयोंने दु:खी हुए श्रीरामचन्द्रजीको सान्त्वना देते हुए कहा—'भैया! अब पृथ्वीपति पिताजीके लिये जलाञ्जलि दान कीजिये'॥ १७॥

अपने श्वशुर महाराज दशरथके स्वर्गवासका समाचार सुनकर सीताके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख न सकीं॥ १८॥

तदनन्तर रोती हुई जनककुमारीको सान्त्वना देकर दु:खमग्न श्रीरामने अत्यन्त दु:खी हुए लक्ष्मणसे कहा—

'भाई! तुम इङ्गुदीका पिसा हुआ फल और चीर एवं उत्तरीय ले आओ। मैं महात्मा पिताको जलदान देनेके लिये चलूँगा॥ २०॥

'सीता आगे-आगे चलें। इनके पीछे तुम चलो और तुम्हारे पीछे मैं चलूँगा। शोकके समयकी यही परिपाटी है, जो अत्यन्त दारुण होती है'॥ २१॥

तत्पश्चात् उनके कुलके परम्परागत सेवक, आत्मज्ञानी, परम बुद्धिमान्, कोमल स्वभाववाले, जितेन्द्रिय, तेजस्वी और श्रीरामके सुदृढ़ भक्त सुमन्त्र समस्त राजकुमारोंके साथ श्रीरामको धैर्य बँधाकर उन्हें हाथका सहारा दे कल्याणमयी मन्दाकिनीके तटपर ले गये॥ २२-२३॥

वे यशस्वी राजकुमार सदा पुष्पित काननसे सुशोभित, शीघ्र गतिसे प्रवाहित होनेवाली और उत्तम घाटवाली रमणीय नदी मन्दाकिनीके तटपर कठिनाईसे पहुँचे तथा उसके पङ्करहित, कल्याणप्रद, तीर्थभूत जलको लेकर उन्होंने राजाके लिये जल दिया। उस समय वे बोले—'पिताजी! यह जल आपकी सेवामें उपस्थित हो'॥

पृथ्वीपालक श्रीरामने जलसे भरी हुई अञ्जलि ले दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके रोते हुए इस प्रकार कहा—'मेरे पूज्य पिता राजशिरोमणि महाराज दशरथ! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोकमें गये हुए आपको अक्षयरूपसे प्राप्त हो'॥ २६-२७॥

इसके बाद मन्दाकिनीके जलसे निकलकर किनारेपर आकर तेजस्वी श्रीरघुनाथजीने अपने भाइयोंके साथ मिलकर पिताके लिये पिण्डदान किया॥ २८॥

उन्होंने इङ्गुदीके गूदेमें बेर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार किया और बिछे हुए कुशोंपर उसे रखकर अत्यन्त दुःखसे आर्त हो रोते हुए यह बात कही—॥ २९॥

'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं'॥ ३०॥

इसके बाद उसी मार्गसे मन्दाकिनीतटके ऊपर आकर पृथ्वीपालक पुरुषसिंह श्रीराम सुन्दर शिखरवाले चित्रकूट पर्वतपर चढ़े और पर्णकुटीके द्वारपर आकर भरत और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर रोने लगे॥ ३१-३२॥

सीतासहित रोते हुए उन चारों भाइयोंके रुदन-शब्दसे उस पर्वतपर गरजते हुए सिंहोंके दहाड़नेके समान प्रतिध्वनि होने लगी॥ ३३॥

पिताको जलाञ्जलि देकर रोते हुए उन महाबली भाइयोंके रोदनका तुमुल नाद सुनकर भरतके सैनिक किसी भयकी आशङ्कासे डर गये। फिर उसे पहचानकर वे एक-दूसरेसे बोले—'निश्चय ही भरत श्रीरामचन्द्रजीसे मिले हैं। अपने परलोकवासी पिताके लिये शोक करनेवाले उन चारों भाइयोंके रोनेका ही यह महान् शब्द है'॥ ३४-३५॥

यों कहकर उन सबने अपनी सवारियोंको तो वहीं छोड़ दिया और जिस स्थानसे वह आवाज आ रही थी, उसी ओर मुँह किये एकचित्त होकर वे दौड़ पड़े॥

उनसे भिन्न जो सुकुमार मनुष्य थे, उनमेंसे कुछ लोग घोड़ोंसे, कुछ हाथियोंसे और कुछ सजे-सजाये रथोंसे ही आगे बढ़े। कितने ही मनुष्य पैदल ही चल दिये॥ ३७॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीको परदेशमें आये अभी थोड़े ही दिन हुए थे, तथापि लोगोंको ऐसा जान पड़ता था कि मानो वे दीर्घकालसे परदेशमें रह रहे हैं; अतः सब लोग उनके दर्शनकी इच्छासे सहसा आश्रमकी ओर चल दिये॥ ३८॥

वे लोग चारों भाइयोंका मिलन देखनेकी इच्छासे खुरों एवं पहियोंसे युक्त नाना प्रकारकी सवारियोंद्वारा बड़ी उतावलीके साथ चले॥ ३९॥

अनेक प्रकारकी सवारियों तथा रथकी पहियोंसे आक्रान्त हुई वह भूमि भयंकर शब्द करने लगी; ठीक उसी तरह जैसे मेघोंकी घटा घिर आनेपर आकाशमें गड़गड़ाहट होने लगती है॥ ४०॥

उस तुमुल नादसे भयभीत हुए हाथी हथिनियोंसे घिरकर मदकी गन्धसे उस स्थानको सुवासित करते हुए वहाँसे दूसरे वनमें भाग गये॥ ४१॥

वराह, भेड़िये, सिंह, भैंसे, सृमर (मृगविशेष), व्याघ्र, गोकर्ण (मृगविशेष) और गवय (नीलगाय), चितकबरे हरिणोंसहित संत्रस्त हो उठे॥ ४२॥

चक्रवाक, हंस, जलकुक्कुट, वक, कारण्डव, नरकोकिल और क्रौञ्च पक्षी होश-हवाश खोकर विभिन्न दिशाओंमें उड़ गये॥ ४३॥

उस शब्दसे डरे हुए पक्षी आकाशमें छा गये और नीचेकी भूमि मनुष्योंसे भर गयी। इस प्रकार उन दोनोंकी समानरूपसे शोभा होने लगी॥ ४४॥

लोगोंने सहसा पहुँचकर देखा—यशस्वी, पापरहित, पुरुषसिंह श्रीराम वेदीपर बैठे हैं॥ ४५॥

श्रीरामके पास जानेपर सबके मुख आँसुओंसे भीग गये और सब लोग मन्थरासहित कैकेयीकी निन्दा करने लगे॥ ४६॥

उन सब लोगोंके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए थे और वे सब-के-सब अत्यन्त दुःखी हो रहे थे। धर्मज्ञ श्रीरामने उन्हें देखकर पिता-माताकी भाँति हृदयसे लगाया॥

श्रीरामने कुछ मनुष्योंको वहाँ छातीसे लगाया तथा कुछ लोगोंने पहुँचकर वहाँ उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजकुमार श्रीरामने उस समय वहाँ आये हुए सभी मित्रों और बन्धु-बान्धवोंका यथायोग्य सम्मान किया॥ ४८॥

उस समय वहाँ रोते हुए उन महात्माओंका वह रोदन-शब्द पृथ्वी, आकाश, पर्वतोंकी गुफा और सम्पूर्ण दिशाओंको निरन्तर प्रतिध्वनित करता हुआ मृदङ्गकी ध्वनिके समान सुनायी पड़ता था॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०३॥

एक सौ चारवाँ सर्ग

वसिष्ठजीके साथ आती हुई कौसल्याका मन्दाकिनीके तटपर सुमित्रा आदिके समक्ष दुःखपूर्ण उद्गार, श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके द्वारा माताओंकी चरणवन्दना तथा वसिष्ठजीको प्रणाम करके श्रीराम आदिका सबके साथ बैठना

महर्षि वसिष्ठजी महाराज दशरथकी रानियोंको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीको देखनेकी अभिलाषा लिये उस स्थानकी ओर चले, जहाँ उनका आश्रम था॥ १॥

राजरानियाँ मन्द गतिसे चलती हुई जब मन्दाकिनीके तटपर पहुँचीं, तब उन्होंने वहाँ श्रीराम और लक्ष्मणके स्नान करनेका घाट देखा॥ २॥

इस समय कौसल्याके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह चली। उन्होंने सूखे एवं उदास मुखसे दीन सुमित्रा तथा अन्य राजरानियोंसे कहा—॥ ३॥

'जो राज्यसे निकाल दिये गये हैं तथा जो दूसरोंको क्लेश न देनेवाले कार्य ही करते हैं, उन मेरे अनाथ बच्चोंका यह वनमें दुर्गम तीर्थ है, जिसे इन्होंने पहले-पहल स्वीकार किया है॥ ४॥

'सुमित्रे! आलस्यरहित तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण स्वयं आकर सदा यहींसे मेरे पुत्रके लिये जल ले जाया करते हैं॥ ५॥

'यद्यपि तुम्हारे पुत्रने छोटे-से-छोटा सेवा-कार्य भी स्वीकार किया है, तथापि इससे वे निन्दित नहीं हुए हैं; क्योंकि सद्गुणोंसे युक्त ज्येष्ठ भाईके प्रयोजनसे रहित जो कार्य होते हैं, वे ही सब निन्दित माने गये हैं॥ ६॥

'तुम्हारा यह पुत्र भी उन क्लेशोंके योग्य नहीं है, जिन्हें आजकल वह सहन करता है। अब श्रीराम लौट चलें और निम्न श्रेणीके पुरुषोंके योग्य जो दुःखजनक कार्य उसके सामने प्रस्तुत है, उसे वह छोड़ दे—उसे करनेका अवसर ही उसके लिये न रह जाय'॥ ७॥

आगे जाकर विशाललोचना कौसल्याने देखा कि श्रीरामने पृथ्वीपर बिछे हुए दक्षिणाग्र कुशोंके ऊपर अपने पिताके लिये पिसे हुए इङ्गुदीके फलका पिण्ड रख छोड़ा है॥ ८॥

दुःखी रामके द्वारा पिताके लिये भूमिपर रखे हुए उस पिण्डको देखकर देवी कौसल्याने दशरथकी सब रानियोंसे कहा—॥ ९॥

'बहनो! देखो, श्रीरामने इक्ष्वाकुकुलके स्वामी रघुकुलभूषण महात्मा पिताके लिये यह विधिपूर्वक पिण्डदान किया है॥ १०॥

'देवताके समान तेजस्वी वे महामना भूपाल नाना प्रकारके उत्तम भोग भोग चुके हैं। उनके लिये यह भोजन मैं उचित नहीं मानती॥ ११॥

'जो चारों समुद्रोंतककी पृथ्वीका राज्य भोगकर भूतलपर देवराज इन्द्रके समान प्रतापी थे, वे भूपाल महाराज दशरथ पिसे हुए इङ्गुदी-फलका पिण्ड कैसे खा रहे होंगे?॥ १२॥

'संसारमें इससे बढ़कर महान् दुःख मुझे और कोई नहीं प्रतीत होता है, जिसके अधीन होकर श्रीराम समृद्धिशाली होते हुए भी अपने पिताको इङ्गुदीके पिसे हुए फलका पिण्ड दें॥ १३॥

'श्रीरामने अपने पिताको इङ्गुदीका पिण्याक (पिसा हुआ फल) प्रदान किया है—यह देखकर दुःखसे मेरे हृदयके सहस्रों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते हैं?॥ १४॥

'यह लौकिकी श्रुति (लोकविख्यात कहावत) निश्चय ही मुझे सत्य प्रतीत हो रही है कि मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, उसके देवता भी उसी अन्नको ग्रहण करते हैं'॥ १५॥

इस प्रकार शोकसे आर्त हुई कौसल्याको उस समय उनकी सौतें समझा-बुझाकर उन्हें आगे ले गयीं। आश्रमपर पहुँचकर उन सबने श्रीरामको देखा, जो स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान जान पड़ते थे॥ १६॥

भोगोंका परित्याग करके तपस्वी जीवन व्यतीत करनेवाले श्रीरामको देखकर उनकी माताएँ शोकसे कातर हो गयीं और आर्तभावसे फूट-फूटकर रोती हुई आँसू बहाने लगीं॥ १७॥

सत्यप्रतिज्ञ नरश्रेष्ठ श्रीराम माताओंको देखते ही उठकर खड़े हो गये और बारी-बारीसे उन सबके चरणारविन्दोंका स्पर्श किया॥ १८॥

विशाल नेत्रोंवाली माताएँ स्नेहवश जिनकी अंगुलियाँ कोमल और स्पर्श सुखद था, उन सुन्दर हाथोंसे श्रीरामकी पीठसे धूल पोंछने लगीं॥ १९॥

श्रीरामके बाद लक्ष्मण भी उन सभी दु:खिया माताओंको देखकर दु:खी हो गये और उन्होंने स्नेहपूर्वक धीरे-धीरे उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २०॥

उन सब माताओंने श्रीरामके साथ जैसा बर्ताव किया था, वैसे ही उत्तम लक्षणोंसे युक्त दशरथनन्दन लक्ष्मणके साथ भी किया॥ २१॥

तदनन्तर आँसूभरे नेत्रोंवाली दु:खिनी सीता भी सभी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करके उनके आगे खड़ी हो गयी॥ २२॥

तब दु:खसे पीड़ित हुई कौसल्याने जैसे माता अपनी बेटीको हृदयसे लगा लेती है, उसी प्रकार वनवासके कारण दीन (दुर्बल) हुई सीताको छातीसे चिपका लिया और इस प्रकार कहा—॥ २३॥

'विदेहराज जनककी पुत्री, राजा दशरथकी पुत्रवधू तथा श्रीरामकी पत्नी इस निर्जन वनमें क्यों दु:ख भोग रही है?॥ २४॥

'बेटी! तुम्हारा मुख धूपसे तपे हुए कमल, कुचले हुए उत्पल, धूलसे ध्वस्त हुए सुवर्ण और बादलोंसे ढके हुए चन्द्रमाकी भाँति श्रीहीन हो रहा है॥ २५॥

'विदेहनन्दिनि! जैसे आग अपने उत्पत्तिस्थान काष्ठको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार तुम्हारे इस मुखको देखकर मेरे मनमें संकटरूपी अरणिसे उत्पन्न हुआ यह शोकानल मुझे जलाये देता है'॥ २६॥

शोकाकुल हुई माता जब इस प्रकार विलाप कर रही थी, उसी समय भरतके बड़े भाई श्रीरामने वसिष्ठजीके चरणोंमें पड़कर उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़ लिया॥ २७॥

जैसे देवराज इन्द्र बृहस्पतिके चरणोंका स्पर्श करते हैं, उसी प्रकार अग्निके समान बढ़े हुए तेजवाले पुरोहित वसिष्ठजीके दोनों पैर पकड़कर श्रीरामचन्द्रजी उनके साथ ही पृथ्वीपर बैठ गये॥ २८॥

तदनन्तर धर्मात्मा भरत एक साथ आये हुए अपने सभी मन्त्रियों, प्रधान-प्रधान पुरवासियों, सैनिकों तथा परम धर्मज्ञ पुरुषोंके साथ अपने बड़े भाईके पास उनके पीछे जा बैठे॥ २९॥

उस समय श्रीरामके आसनके समीप बैठे हुए अत्यन्त पराक्रमी भरतने दिव्य दीप्तिसे प्रकाशित होनेवाले श्रीरघुनाथजीको तपस्वीके वेशमें देखकर उनके प्रति उसी प्रकार हाथ जोड़ लिये जैसे देवराज इन्द्र प्रजापति ब्रह्माके समक्ष विनीतभावसे हाथ जोड़ते हैं॥ ३०॥

उस समय वहाँ बैठे हुए श्रेष्ठ पुरुषोंके हृदयमें यथार्थ रूपसे यह उत्तम कौतूहल-सा जाग उठा कि देखें ये भरतजी श्रीरामचन्द्रजीको सत्कारपूर्वक प्रणाम करके आज उत्तम रीतिसे उनके समक्ष क्या कहते हैं?॥ ३१॥

वे सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम, महानुभाव लक्ष्मण तथा धर्मात्मा भरत—ये तीनों भाई अपने सुहृदोंसे घिरकर यज्ञशालामें सदस्योंद्वारा घिरे हुए त्रिविध अग्नियोंके समान शोभा पा रहे थे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ सर्ग

भरतका श्रीरामको अयोध्यामें चलकर राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना, श्रीरामका जीवनकी अनित्यता बताते हुए पिताकी मृत्युके लिये शोक न करनेका भरतको उपदेश देना और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही राज्य ग्रहण न करके वनमें रहनेका ही दृढ़ निश्चय बताना

अपने सुहृदोंसे घिरकर बैठे हुए पुरुषसिंह श्रीराम आदि भाइयोंकी वह रात्रि पिताकी मृत्युके दु:खसे शोक करते हुए ही व्यतीत हुई। सबेरा होनेपर भरत आदि तीनों भाई सुहृदोंके साथ ही मन्दाकिनीके तटपर गये और स्नान, होम एवं जप आदि करके पुन: श्रीरामके पास लौट आये॥ १-२॥

वहाँ आकर सभी चुपचाप बैठ गये। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। तब सुहृदोंके बीचमें बैठे हुए भरतने श्रीरामसे इस प्रकार कहा—॥ ३॥

'भैया! पिताजीने वरदान देकर मेरी माताको संतुष्ट कर दिया और माताने यह राज्य मुझे दे दिया। अब मैं अपनी ओरसे यह अकण्टक राज्य आपकी ही सेवामें समर्पित करता हूँ। आप इसका पालन एवं उपभोग कीजिये॥ ४॥

'वर्षाकालमें जलके महान् वेगसे टूटे हुए सेतुकी भाँति इस विशाल राज्यखण्डको सँभालना आपके सिवा दूसरेके लिये अत्यन्त कठिन है॥ ५॥

'पृथ्वीनाथ! जैसे गदहा घोड़ेकी और अन्य साधारण पक्षी गरुड़की चाल नहीं चल सकते, उसी प्रकार मुझमें आपकी गतिका—आपकी पालन-पद्धतिका अनुसरण करनेकी शक्ति नहीं है॥ ६॥

'श्रीराम! जिसके पास आकर दूसरे लोग जीवन-निर्वाह करते हैं, उसीका जीवन उत्तम है और जो दूसरोंका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करता है, उसका जीवन दु:खमय है (अत: आपके लिये राज्य करना ही उचित है)॥ ७॥

'जैसे फलकी इच्छा रखनेवाले किसी पुरुषने एक वृक्ष लगाया, उसे पाल-पोसकर बड़ा किया; फिर उसके तने मोटे हो गये और वह ऐसा विशाल वृक्ष हो गया कि किसी नाटे कदके पुरुषके लिये उसपर चढ़ना अत्यन्त कठिन था। उस वृक्षमें जब फूल लग जायँ, उसके बाद भी यदि वह फल न दिखा सके तो जिसके लिये उस वृक्षको लगाया गया था, वह उद्देश्य पूरा न हो सका। ऐसी स्थितिमें उसे लगानेवाला पुरुष उस प्रसन्नताका अनुभव नहीं करता, जो फलकी प्राप्ति होनेसे सम्भावित थी। महाबाहो ! यह एक उपमा है, इसका अर्थ आप स्वयं समझ लें (अर्थात् पिताजीने आप-जैसे सर्वसद्गुणसम्पन्न पुत्रको लोकरक्षाके लिये उत्पन्न किया था। यदि आपने राज्यपालनका भार अपने हाथमें नहीं लिया तो उनका वह उद्देश्य व्यर्थ हो जायगा)। इस राज्यपालनके अवसरपर आप श्रेष्ठ एवं भरण-पोषणमें समर्थ होकर भी यदि हम भृत्योंका शासन नहीं करेंगे तो पूर्वोक्त उपमा ही आपके लिये लागू होगी॥ ८—१०॥

'महाराज! विभिन्न जातियोंके सङ्घ और प्रधान-प्रधान पुरुष आप शत्रुदमन नरेशको सब ओर तपते हुए सूर्यकी भाँति राज्यसिंहासनपर विराजमान देखें॥ ११॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! इस प्रकार आपके अयोध्याको लौटते समय मतवाले हाथी गर्जना करें और अन्त:पुरकी स्त्रियाँ एकाग्रचित्त होकर प्रसन्नता-पूर्वक आपका अभिनन्दन करें'॥ १२॥

इस प्रकार श्रीरामसे राज्य-ग्रहणके लिये प्रार्थना करते हुए भरतजीकी बात सुनकर नगरके भिन्न-भिन्न मनुष्योंने उसका भलीभाँति अनुमोदन किया॥ १३॥

तब शिक्षित बुद्धिवाले अत्यन्त धीर भगवान् श्रीरामने यशस्वी भरतको इस तरह दु:खी हो विलाप करते देख उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—॥ १४॥

'भाई! यह जीव ईश्वरके समान स्वतन्त्र नहीं है, अत: कोई यहाँ अपनी इच्छाके अनुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इस पुरुषको इधर-उधर खींचता रहता है॥ १५॥

'समस्त संग्रहोंका अन्त विनाश है। लौकिक उन्नतियोंका अन्त पतन है। संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है॥ १६॥

'जैसे पके हुए फलोंको पतनके सिवा और किसीसे भय नहीं है, उसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्योंको

मृत्युके सिवा और किसीसे भय नहीं है॥ १७॥

'जैसे सुदृढ़ खम्भेवाला मकान भी पुराना होनेपर गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जरा और मृत्युके वशमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं॥ १८॥

'जो रात बीत जाती है, वह लौटकर फिर नहीं आती है। जैसे यमुना जलसे भरे हुए समुद्रकी ओर जाती ही है, उधरसे लौटती नहीं॥ १९॥

'दिन-रात लगातार बीत रहे हैं और इस संसारमें सभी प्राणियोंकी आयुका तीव्र गतिसे नाश कर रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म-ऋतुमें जलको शीघ्रतापूर्वक सोखती रहती हैं॥ २०॥

'तुम अपने ही लिये चिन्ता करो, दूसरेके लिये क्यों बार-बार शोक करते हो। कोई इस लोकमें स्थित हो या अन्यत्र गया हो, जिस किसीकी भी आयु तो निरन्तर क्षीण ही हो रही है॥ २१॥

'मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्गकी यात्रामें भी साथ ही जाकर वह मनुष्यके साथ ही लौटती है॥ २२॥

'शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिरके बाल सफेद हो गये। फिर जरावस्थासे जीर्ण हुआ मनुष्य कौन-सा उपाय करके मृत्युसे बचनेके लिये अपना प्रभाव प्रकट कर सकता है?॥ २३॥

'लोग सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं, सूर्यास्त होनेपर भी खुश होते हैं; किंतु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवनका नाश हो रहा है॥ २४॥

'किसी ऋतुका प्रारम्भ देखकर मानो वह नयी-नयी आयी हो (पहले कभी आयी ही न हो), ऐसा समझकर लोग हर्षसे खिल उठते हैं, परंतु यह नहीं जानते कि इन ऋतुओंके परिवर्तनसे प्राणियोंके प्राणोंका (आयुका) क्रमशः क्षय हो रहा है॥ २५॥

'जैसे महासागरमें बहते हुए दो काठ कभी एक-दूसरेसे मिल जाते हैं और कुछ कालके बाद अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं; क्योंकि इनका वियोग अवश्यम्भावी है॥ २६-२७॥

'इस संसारमें कोई भी प्राणी यथासमय प्राप्त होनेवाले जन्म-मरणका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। इसलिये जो किसी मरे हुए व्यक्तिके लिये बारंबार शोक करता है, उसमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी ही मृत्युको टाल सके॥ २८॥

'जैसे आगे जाते हुए यात्रियों अथवा व्यापारियोंके समुदायसे रास्तेमें खड़ा हुआ पथिक यों कहे कि मैं भी आप लोगोंके पीछे-पीछे आऊँगा और तदनुसार वह उनके पीछे-पीछे जाय, उसी प्रकार हमारे पूर्वज पिता-पितामह आदि जिस मार्गसे गये हैं, जिसपर जाना अनिवार्य है तथा जिससे बचनेका कोई उपाय नहीं है, उसी मार्गपर स्थित हुआ मनुष्य किसी औरके लिये शोक कैसे करे?॥ २९-३०॥

'जैसे नदियोंका प्रवाह पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार दिन-दिन ढलती हुई अवस्था फिर नहीं लौटती है। उसका क्रमशः नाश हो रहा है, यह सोचकर आत्माको कल्याणके साधनभूत धर्ममें लगावे; क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं॥ ३१॥

'तात! हमारे पिता धर्मात्मा थे। उन्होंने पर्याप्त दक्षिणाएँ देकर प्रायः सभी परम शुभकारक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उनके सारे पाप धुल गये थे। अतः वे महाराज स्वर्गलोकमें गये हैं॥ ३२॥

'वे भरण-पोषणके योग्य परिजनोंका भरण करते थे। प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन करते थे और प्रजाजनोंसे धर्मके अनुसार कर आदिके रूपमें धन लेते थे—इन सब कारणोंसे हमारे पिता उत्तम स्वर्गलोकमें पधारे हैं॥ ३३॥

'सर्वप्रिय शुभ कर्मों तथा प्रचुर दक्षिणवाले यज्ञोंके अनुष्ठानोंसे हमारे पिता पृथ्वीपति महाराज दशरथ स्वर्गलोकमें गये हैं॥ ३४॥

'उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना की, प्रचुर भोग प्राप्त किये और उत्तम आयु पायी थी, इसके बाद वे महाराज यहाँसे स्वर्गलोकको पधारे हैं॥

'तात! अन्य राजाओंकी अपेक्षा उत्तम आयु और श्रेष्ठ भोगोंको पाकर हमारे पिता सदा सत्पुरुषोंके द्वारा सम्मानित हुए हैं; अतः स्वर्गवासी हो जानेपर भी वे शोक करनेयोग्य नहीं हैं॥ ३६॥

'हमारे पिताने जराजीर्ण मानव-शरीरका परित्याग करके दैवी सम्पत्ति प्राप्त की है, जो ब्रह्मलोकमें विहार करानेवाली है॥ ३७॥

'कोई भी ऐसा विद्वान्, जो तुम्हारे और मेरे समान शास्त्र-ज्ञान-सम्पन्न एवं परम बुद्धिमान् है, पिताजीके लिये शोक नहीं कर सकता॥ ३८॥

'धीर एवं प्रज्ञावान् पुरुषको सभी अवस्थाओंमें ये नाना प्रकारके शोक, विलाप तथा रोदन त्याग देने चाहिये।

'इसलिये तुम स्वस्थ हो जाओ, तुम्हारे मनमें शोक नहीं होना चाहिये। वक्ताओंमे श्रेष्ठ भरत! तुम यहाँसे जाकर अयोध्यापुरीमें निवास करो; क्योंकि मनको वशमें रखनेवाले पूज्य पिताजीने तुम्हारे लिये यही आदेश दिया है॥ ४०॥

'उन पुण्यकर्मा महाराजने मुझे भी जहाँ रहनेकी आज्ञा दी है, वहीं रहकर मैं उन पूज्य पिताके आदेशका पालन करूँगा॥ ४१॥

'शत्रुदमन भरत! पिताकी आज्ञाकी अवहेलना करना मेरे लिये कदापि उचित नहीं है। वे तुम्हारे लिये भी सर्वदा सम्मानके योग्य हैं; क्योंकि वे ही हमलोगोंके हितैषी बन्धु और जन्मदाता थे॥ ४२॥

'रघुनन्दन! मैं इस वनवासरूपी कर्मके द्वारा पिताजीके ही वचनका जो धर्मात्माओंको भी मान्य है, पालन करूँगा॥ ४३॥

'नरश्रेष्ठ! परलोकपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको धार्मिक, क्रूरतासे रहित और गुरुजनोंका आज्ञापालक होना चाहिये॥ ४४॥

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ भरत! हमारे पूज्य पिता दशरथके शुभ आचरणोंपर दृष्टिपात करके तुम अपने धार्मिक स्वभावके द्वारा आत्माकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करो'॥

सर्वशक्तिमान् महात्मा श्रीराम एक मुहूर्ततक अपने छोटे भाई भरतसे पिताकी आज्ञाका पालन करानेके उद्देश्यसे ये अर्थयुक्त वचन कहकर चुप हो गये॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०५॥

एक सौ छठाँ सर्ग

भरतकी पुनः श्रीरामसे अयोध्या लौटने और राज्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना

ऐसा अर्थयुक्त वचन कहकर जब श्रीराम चुप हो गये, तब धर्मात्मा भरतने मन्दाकिनीके तटपर प्रजावत्सल धर्मात्मा श्रीरामसे यह विचित्र बात कही— 'शत्रुदमन रघुवीर! इस जगत्में जैसे आप हैं, वैसा दूसरा कौन हो सकता है?॥ १-२॥

'कोई भी दुःख आपको व्यथित नहीं कर सकता। कितनी ही प्रिय बात क्यों न हो, वह आपको हर्षोत्फुल्ल नहीं कर सकती। वृद्ध पुरुषोंके सम्माननीय होकर भी आप उनसे संदेहकी बातें पूछते हैं॥ ३॥

'जैसे मरे हुए जीवका अपने शरीर आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार जीते-जी भी वह उनके सम्बन्धसे रहित है। जैसे वस्तुके अभावमें उसके प्रति राग-द्वेष नहीं होता, वैसे ही उसके रहनेपर भी मनुष्यको राग-द्वेषसे शून्य होना चाहिये। जिसे ऐसी विवेकयुक्त बुद्धि प्राप्त हो गयी है, उसको संताप क्यों होगा?॥ ४॥

'नरेश्वर! जिसे आपके समान आत्मा और अनात्माका ज्ञान है, वही संकटमें पड़नेपर भी विषाद नहीं कर सकता॥

'रघुनन्दन! आप देवताओंकी भाँति सत्त्वगुणसे सम्पन्न, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सबके साक्षी और बुद्धिमान् हैं॥ ६॥

'ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त और जन्म-मरणके रहस्यको जाननेवाले आपके पास असह्य दुःख नहीं आ सकता॥ ७॥

'जब मैं परदेशमें था, उस समय नीच विचार रखनेवाली मेरी माताने मेरे लिये जो पाप कर डाला, वह मुझे अभीष्ट नहीं है; अतः आप उसे क्षमा करके मुझपर प्रसन्न हों॥ ८॥

'मैं धर्मके बन्धनमें बँधा हूँ, इसलिये इस पाप करनेवाली एवं दण्डनीय माताको मैं कठोर दण्ड देकर मार नहीं डालता॥ ९॥

'जिनके कुल और कर्म दोनों ही शुभ थे, उन महाराज दशरथसे उत्पन्न होकर धर्म और अधर्मको जानता हुआ भी मैं मातृवधरूपी लोकनिन्दित कर्म कैसे करूँ?॥ १०॥

'महाराज मेरे गुरु, श्रेष्ठ यज्ञकर्म करनेवाले, बड़े-बूढ़े, राजा, पिता और देवता रहे हैं और इस समय परलोकवासी हो चुके हैं, इसीलिये इस भरी सभामें मैं उनकी निन्दा नहीं करता हूँ॥ ११॥

'धर्मज्ञ रघुनन्दन! कौन ऐसा मनुष्य है, जो धर्मको जानते हुए भी स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छासे ऐसा धर्म और अर्थसे हीन कुत्सित कर्म कर सकता है?॥ १२॥

'लोकमें एक प्राचीन किंवदन्ती है कि अन्तकालमें सब प्राणी मोहित हो जाते हैं—उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा दशरथने ऐसा कठोर कर्म करके उस किंवदन्तीकी सत्यताको प्रत्यक्ष कर दिखाया॥ १३॥

'पिताजीने क्रोध, मोह और साहसके कारण ठीक समझ कर जो धर्मका उल्लङ्घन किया है, उसे आप

पलट दें—उसका संशोधन कर दें॥ १४॥

'जो पुत्र पिताकी की हुई भूलको ठीक कर देता है, वही लोकमें उत्तम संतान माना गया है। जो इसके विपरीत बर्ताव करता है, वह पिताकी श्रेष्ठ संतति नहीं है॥ १५॥

'अतः आप पिताकी योग्य संतान ही बने रहें। उनके अनुचित कर्मका समर्थन न करें। उन्होंने इस समय जो कुछ किया है, वह धर्मकी सीमासे बाहर है। संसारमें धीर पुरुष उसकी निन्दा करते हैं॥ १६॥

'कैकेयी, मैं, पिताजी, सुहृद्‌गण, बन्धु-बान्धव, पुरवासी तथा राष्ट्रकी प्रजा—इन सबकी रक्षाके लिये आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें॥ १७॥

'कहाँ वनवास और कहाँ क्षात्रधर्म? कहाँ जटा-धारण और कहाँ प्रजाका पालन? ऐसे परस्परविरोधी कर्म आपको नहीं करने चाहिये॥ १८॥

'महाप्राज्ञ! क्षत्रियके लिये पहला धर्म यही है कि उसका राज्यपर अभिषेक हो, जिससे वह प्रजाका भलीभाँति पालन कर सके॥ १९॥

'भला कौन ऐसा क्षत्रिय होगा, जो प्रत्यक्ष सुखके साधनभूत प्रजापालनरूप धर्मका परित्याग करके संशयमें स्थित, सुखके लक्षणसे रहित, भविष्यमें फल देनेवाले अनिश्चित धर्मका आचरण करेगा?॥ २०॥

'यदि आप क्लेशसाध्य धर्मका ही आचरण करना चाहते हैं तो धर्मानुसार चारों वर्णोंका पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये॥ २१॥

'धर्मज्ञ रघुनन्दन! धर्मके ज्ञाता पुरुष चारों आश्रमोंमें गार्हस्थ्यको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं, फिर आप उसका परित्याग क्यों करना चाहते हैं?॥ २२॥

'मैं शास्त्रज्ञान और जन्मजात अवस्था दोनों ही दृष्टियोंसे आपकी अपेक्षा बालक हूँ, फिर आपके रहते हुए मैं वसुधाका पालन कैसे करूँगा?॥ २३॥

'मैं बुद्धि और गुण दोनोंसे हीन हूँ, बालक हूँ तथा मेरा स्थान आपसे बहुत छोटा है; अतः मैं आपके बिना जीवन-धारण भी नहीं कर सकता, राज्यका पालन तो दूरकी बात है॥ २४॥

'धर्मज्ञ रघुनन्दन! पिताका यह सारा राज्य श्रेष्ठ और निष्कण्टक है, अतः आप बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वधर्मानुसार इसका पालन कीजिये॥ २५॥

'मन्त्रज्ञ रघुवीर! मन्त्रोंके ज्ञाता महर्षि वसिष्ठ आदि सभी ऋत्विज् तथा मन्त्री, सेनापति और प्रजा आदि सारी प्रकृतियाँ यहाँ उपस्थित हैं। ये सब लोग यहीं आपका राज्याभिषेक करें॥ २६॥

'हमलोगोंके द्वारा अभिषिक्त होकर आप मरुद्‌गणोंसे अभिषिक्त हुए इन्द्रकी भाँति वेगपूर्वक सब लोकोंको जीतकर प्रजाका पालन करनेके लिये अयोध्याको चलें॥ २७॥

'वहाँ देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण चुकायें, दुष्ट शत्रुओंका भलीभाँति दमन करें तथा मित्रोंको उनके इच्छानुसार वस्तुओंद्वारा तृप्त करते हुए आप ही अयोध्यामें मुझे धर्मकी शिक्षा देते रहें॥ २८॥

'आर्य! आपका अभिषेक सम्पन्न होनेपर सुहृद्‌गण प्रसन्न हों और दुःख देनेवाले आपके शत्रु भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग जायँ॥ २९॥

'पुरुषप्रवर! आज आप मेरी माताके कलङ्कको धो-पोंछकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये॥ ३०॥

'मैं आपके चरणोंमें माथा टेककर याचना करता हूँ। आप मुझपर दया कीजिये। जैसे महादेवजी सब प्राणियोंपर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने बन्धु-बान्धवोंपर कृपा कीजिये॥ ३१॥

'अथवा यदि आप मेरी प्रार्थनाको ठुकराकर यहाँसे वनको ही जायँगे तो मैं भी आपके साथ जाऊँगा'॥ ३२॥

ग्लानिमें पड़े हुए भरतने मनोभिराम राजा श्रीरामको उनके चरणोंमें माथा टेककर प्रसन्न करनेकी चेष्टा की तथापि उन सत्त्वगुणसम्पन्न रघुनाथजीने पिताकी आज्ञामें ही दृढ़तापूर्वक स्थित रहकर अयोध्या जानेका विचार नहीं किया॥ ३३॥

श्रीरामचन्द्रजीकी वह अद्भुत दृढ़ता देखकर सब लोग एक ही साथ दुःखी भी हुए और हर्षको भी प्राप्त हुए। ये अयोध्या नहीं जा रहे हैं—यह सोचकर वे दुःखी हुए और प्रतिज्ञा-पालनमें उनकी दृढ़ता देखकर उन्हें हर्ष हुआ॥ ३४॥

उस समय ऋत्विज् पुरवासी, भिन्न-भिन्न समुदायके नेता और माताएँ अचेत-सी होकर आँसू बहाती हुई पूर्वोक्त बातें कहनेवाली भरतकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं और सबने उनके साथ ही योग्यतानुसार श्रीरामजीके सामने विनीत होकर उनसे अयोध्या लौट चलनेकी याचना की॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ छठाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ सर्ग

श्रीरामका भरतको समझाकर उन्हें अयोध्या जानेका आदेश देना

जब भरत पुनः इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, तब कुटुम्बीजनोंके बीचमें सत्कारपूर्वक बैठे हुए लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीमान् रामचन्द्रजीने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १ ॥

'भाई! तुम नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथके द्वारा केकय-राजकन्या माता कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो; अतः तुमने जो ऐसे उत्तम वचन कहे हैं, वे सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं॥

'भैया! आजसे बहुत पहलेकी बात है—पिताजीका जब तुम्हारी माताजीके साथ विवाह हुआ था, तभी उन्होंने तुम्हारे नानासे कैकेयीके पुत्रको राज्य देनेकी उत्तम शर्त कर ली थी॥ ३ ॥

'इसके बाद देवासुर-संग्राममें तुम्हारी माताने प्रभावशाली महाराजकी बड़ी सेवा की; इससे संतुष्ट होकर राजाने उन्हें वरदान दिया॥ ४ ॥

'उसीकी पूर्तिके लिये प्रतिज्ञा कराकर तुम्हारी श्रेष्ठ वर्णवाली यशस्विनी माताने उन नरश्रेष्ठ पिताजीसे दो वर माँगे॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह! एक वरके द्वारा इन्होंने तुम्हारे लिये राज्य माँगा और दूसरेके द्वारा मेरा वनवास। इनसे इस प्रकार प्रेरित होकर राजाने वे दोनों वर इन्हें दे दिये॥

'पुरुषप्रवर! इस प्रकार उन पिताजीने वरदानके रूपमें मुझे चौदह वर्षोंतक वनवासकी आज्ञा दी है॥

'यही कारण है कि मैं सीता और लक्ष्मणके साथ इस निर्जन वनमें चला आया हूँ। यहाँ मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। मैं यहाँ पिताजीके सत्यकी रक्षामें स्थित रहूँगा॥

'राजेन्द्र! तुम भी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही राज्यपदपर अपना अभिषेक करा लो और पिताको सत्यवादी बनाओ—यही तुम्हारे लिये उचित है॥ ९ ॥

'धर्मज्ञ भरत! तुम मेरे लिये पूज्य पिता राजा दशरथको कैकेयीके ऋणसे मुक्त करो, उन्हें नरकमें गिरनेसे बचाओ और माताका भी आनन्द बढ़ाओ॥ १० ॥

'तात! सुना जाता है कि बुद्धिमान्, यशस्वी राजा गयने गय-देशमें ही यज्ञ करते हुए पितरोंके प्रति एक कहावत कही थी॥ ११ ॥

'(वह इस प्रकार है—) बेटा पुत् नामक नरकसे पिताका उद्धार करता है, इसलिये वह पुत्र कहा गया है। वही पुत्र है, जो पितरोंकी सब ओरसे रक्षा करता है॥

'बहुत-से गुणवान् और बहुश्रुत पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये। सम्भव है कि प्राप्त हुए उन पुत्रोंमेंसे कोई एक भी गयाकी यात्रा करे?॥ १३ ॥

'रघुनन्दन! नरश्रेष्ठ भरत! इस प्रकार सभी राजर्षियोंने पितरोंके उद्धारका निश्चय किया है, अतः प्रभो! तुम भी अपने पिताका नरकसे उद्धार करो॥ १४ ॥

'वीर भरत! तुम शत्रुघ्न तथा समस्त ब्राह्मणोंको साथ लेकर अयोध्याको लौट जाओ और प्रजाको सुख दो॥

'वीर! अब मैं भी लक्ष्मण और सीताके साथ शीघ्र ही दण्डकारण्यमें प्रवेश करूँगा॥ १६ ॥

'भरत! तुम स्वयं मनुष्योंके राजा बनो और मैं जंगली पशुओंका सम्राट् बनूँगा। अब तुम अत्यन्त हर्षपूर्वक श्रेष्ठ नगर अयोध्याको जाओ और मैं भी प्रसन्नतापूर्वक दण्डकवनमें प्रवेश करूँगा॥ १७ ॥

'भरत! सूर्यकी प्रभाको तिरोहित कर देनेवाला छत्र तुम्हारे मस्तकपर शीतल छाया करे। अब मैं भी धीरे-धीरे इन जंगली वृक्षोंकी घनी छायाका आश्रय लूँगा॥ १८ ॥

'भरत! अतुलित बुद्धिवाले शत्रुघ्न तुम्हारी सहायतामें रहें और सुविख्यात सुमित्राकुमार लक्ष्मण मेरे प्रधान मित्र (सहायक) हैं; हम चारों पुत्र अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षा करें। तुम विषाद मत करो'॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ सर्ग

जाबालिका नास्तिकोंके मतका अवलम्बन करके श्रीरामको समझाना

जब धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी भरतको इस प्रकार समझा-बुझा रहे थे, उसी समय ब्राह्मणशिरोमणि जाबालिने उनसे यह धर्मविरुद्ध वचन कहा—॥ १ ॥

'रघुनन्दन! आपने ठीक कहा, परंतु आप श्रेष्ठ बुद्धिवाले और तपस्वी हैं; अतः आपको गँवार मनुष्यकी तरह ऐसा निरर्थक विचार मनमें नहीं लाना चाहिये॥ २ ॥

'संसारमें कौन पुरुष किसका बन्धु है और किससे किसको क्या पाना है? जीव अकेला ही जन्म लेता और अकेला ही नष्ट हो जाता है॥ ३॥

'अत: श्रीराम! जो मनुष्य माता या पिता समझकर किसीके प्रति आसक्त होता है, उसे पागलके समान समझना चाहिये; क्योंकि यहाँ कोई किसीका कुछ भी नहीं है॥ ४॥

'जैसे कोई मनुष्य दूसरे गाँवको जाते समय बाहर किसी धर्मशालामें एक रातके लिये ठहर जाता है और दूसरे दिन उस स्थानको छोड़कर आगेके लिये प्रस्थित हो जाता है, इसी प्रकार पिता, माता, घर और धन— ये मनुष्योंके आवासमात्र हैं। ककुत्स्थकुलभूषण! इनमें सज्जन पुरुष आसक्त नहीं होते हैं॥ ५-६॥

'अत: नरश्रेष्ठ! आपको पिताका राज्य छोड़कर इस दु:खमय, नीचे-ऊँचे तथा बहुकण्टकाकीर्ण वनके कुत्सित मार्गपर नहीं चलना चाहिये॥ ७॥

'आप समृद्धिशालिनी अयोध्यामें राजाके पदपर अपना अभिषेक कराइये। वह नगरी प्रोषितभर्तृका नारीकी भाँति एक वेणी धारण करके आपकी प्रतीक्षा करती है॥ ८॥

'राजकुमार! जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गमें विहार करते हैं, उसी प्रकार आप बहुमूल्य राजभोगोंका उपभोग करते हुए अयोध्यामें विहार कीजिये॥ ९॥

'राजा दशरथ आपके कोई नहीं थे और आप भी उनके कोई नहीं हैं। राजा दूसरे थे और आप भी दूसरे हैं; इसलिये मैं जो कहता हूँ, वही कीजिये॥ १०॥

'पिता जीवके जन्ममें निमित्तकारणमात्र होता है। वास्तवमें ऋतुमती माताके द्वारा गर्भमें धारण किये हुए वीर्य और रजका परस्पर संयोग होनेपर ही पुरुषका यहाँ जन्म होता है॥ ११॥

'राजाको जहाँ जाना था, वहाँ चले गये। यह प्राणियोंके लिये स्वाभाविक स्थिति है। आप तो व्यर्थ ही मारे जाते (कष्ट उठाते) हैं॥ १२॥

'जो-जो मनुष्य प्राप्त हुए अर्थका परित्याग करके धर्मपरायण हुए हैं, उन्हीं-उन्हींके लिये मैं शोक करता हूँ, दूसरोंके लिये नहीं। वे इस जगत्‌में धर्मके नामपर केवल दु:ख भोगकर मृत्युके पश्चात् नष्ट हो गये हैं॥ १३॥

'अष्टका आदि जितने श्राद्ध हैं, उनके देवता पितर हैं—श्राद्धका दान पितरोंको मिलता है। यही सोचकर लोग श्राद्धमें प्रवृत्त होते हैं; किन्तु विचार करके देखिये तो इसमें अन्नका नाश ही होता है। भला, मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा॥ १४॥

'यदि यहाँ दूसरेका खाया हुआ अन्न दूसरेके शरीरमें चला जाता हो तो परदेशमें जानेवालोंके लिये श्राद्ध ही कर देना चाहिये; उनको रास्तेके लिये भोजन देना उचित नहीं है॥ १५॥

'देवताओंके लिये यज्ञ और पूजन करो, दान दो, यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करो, तपस्या करो और घर-द्वार छोड़कर संन्यासी बन जाओ इत्यादि बातें बतानेवाले ग्रन्थ बुद्धिमान् मनुष्योंने दानकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति करानेके लिये ही बनाये हैं॥ १६॥

'अत: महामते! आप अपने मनमें यह निश्चय कीजिये कि इस लोकके सिवा कोई दूसरा लोक नहीं है (अत: वहाँ फल भोगनेके लिये धर्म आदिके पालनकी आवश्यकता नहीं है)। जो प्रत्यक्ष राज्यलाभ है, उसका आश्रय लीजिये, परोक्ष (पारलौकिक लाभ) को पीछे ढकेल दीजिये॥ १७॥

'सत्पुरुषोंकी बुद्धि, जो सब लोगोंके लिये राह दिखानेवाली होनेके कारण प्रमाणभूत है, आगे करके भरतके अनुरोधसे आप अयोध्याका राज्य ग्रहण कीजिये'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०८॥

एक सौ नौवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा जाबालिके नास्तिक मतका खण्डन करके आस्तिक मतका स्थापन

जाबालिका यह वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने अपनी संशयरहित बुद्धिके द्वारा श्रुतिसम्मत सदुक्तिका आश्रय लेकर कहा—॥ १॥

'विप्रवर! आपने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे यहाँ जो बात कही है, वह कर्तव्य-सी दिखायी देती है; किंतु वास्तवमें करनेयोग्य नहीं है। वह पथ्य-सी दीखनेपर भी वास्तवमें अपथ्य है॥ २॥

'जो पुरुष धर्म अथवा वेदकी मर्यादाको त्याग देता है, वह पापकर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। उसके आचार और विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं; इसलिये वह

सत्पुरुषोंमें कभी सम्मान नहीं पाता है॥ ३॥

'आचार ही यह बताता है कि कौन पुरुष उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ है और कौन अधम कुलमें, कौन वीर है और कौन व्यर्थ ही अपनेको पुरुष मानता है तथा कौन पवित्र है और कौन अपवित्र?॥ ४॥

'आपने जो आचार बताया है, उसे अपनानेवाला पुरुष श्रेष्ठ-सा दिखायी देनेपर भी वास्तवमें अनार्य होगा। बाहरसे पवित्र दीखनेपर भी भीतरसे अपवित्र होगा। उत्तम लक्षणोंसे युक्त-सा प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें उसके विपरीत होगा तथा शीलवान्-सा दीखनेपर भी वस्तुतः वह दुःशील ही होगा॥ ५॥

'आपका उपदेश चोला तो धर्मका पहने हुए है, किंतु वास्तवमें अधर्म है। इससे संसारमें वर्ण-संकरताका प्रचार होगा। यदि मैं इसे स्वीकार करके वेदोक्त शुभकर्मोंका अनुष्ठान छोड़ दूँ और विधिहीन कर्मोंमें लग जाऊँ तो कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान रखनेवाला कौन समझदार मनुष्य मुझे श्रेष्ठ समझकर आदर देगा? उस दशामें तो मैं इस जगत्‌में दुराचारी तथा लोकको कलङ्कित करनेवाला समझा जाऊँगा॥ ६-७॥

'जहाँ अपनी की हुई प्रतिज्ञा तोड़ दी जाती है, उस वृत्तिके अनुसार बर्ताव करनेपर मैं किस साधनसे स्वर्गलोक प्राप्त करूँगा तथा आपने जिस आचारका उपदेश दिया है, वह किसका है, जिसका मुझे अनुसरण करना होगा; क्योंकि आपके कथनानुसार मैं पिता आदिमेंसे किसीका कुछ भी नहीं हूँ॥ ८॥

'आपके बताये हुए मार्गसे चलनेपर पहले तो मैं स्वेच्छाचारी हूँगा। फिर यह सारा लोक स्वेच्छाचारी हो जायगा; क्योंकि राजाओंके जैसे आचरण होते हैं, प्रजा भी वैसा ही आचरण करने लगती है॥ ९॥

'सत्यका पालन ही राजाओंका दयाप्रधान धर्म है— सनातन आचार है, अतः राज्य सत्यस्वरूप है। सत्यमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है॥ १०॥

'ऋषियों और देवताओंने सदा सत्यका ही आदर किया है। इस लोकमें सत्यवादी मनुष्य अक्षय परम धाममें जाता है॥ ११॥

'झूठ बोलनेवाले मनुष्यसे सब लोग उसी तरह डरते हैं, जैसे साँपसे। संसारमें सत्य ही धर्मकी पराकाष्ठा है और वही सबका मूल कहा जाता है॥ १२॥

'जगत्‌में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्यके ही आधारपर धर्मकी स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई परम पद नहीं है॥ १३॥

'दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद—इन सबका आधार सत्य ही है; इसलिये सबको सत्यपरायण होना चाहिये॥ १४॥

'एक मनुष्य सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करता है, एक समूचे कुलका पालन करता है, एक नरकमें डूबता है और एक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १५॥

'मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ और सत्यकी शपथ खाकर पिताके सत्यका पालन स्वीकार कर चुका हूँ, ऐसी दशामें मैं पिताके आदेशका किसलिये पालन नहीं करूँ?॥ १६॥

'पहले सत्यपालनकी प्रतिज्ञा करके अब लोभ, मोह अथवा अज्ञानसे विवेकशून्य होकर मैं पिताके सत्यकी मर्यादा भङ्ग नहीं करूँगा॥ १७॥

'हमने सुना है कि जो अपनी प्रतिज्ञा झूठी करनेके कारण धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, उस चञ्चल चित्तवाले पुरुषके दिये हुए हव्य-कव्यको देवता और पितर नहीं स्वीकार करते हैं॥ १८॥

'मैं इस सत्यरूपी धर्मको समस्त प्राणियोंके लिये हितकर और सब धर्मोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। सत्पुरुषोंने जटा-वल्कल आदिके धारणरूप तापस धर्मका पालन किया है, इसलिये मैं भी उसका अभिनन्दन करता हूँ॥

'जो धर्मयुक्त प्रतीत हो रहा है, किंतु वास्तवमें अधर्मरूप है, जिसका नीच, क्रूर, लोभी और पापाचारी पुरुषोंने सेवन किया है, ऐसे क्षात्रधर्मका (पिताकी आज्ञा भङ्ग करके राज्य ग्रहण करनेका) मैं अवश्य त्याग करूँगा (क्योंकि वह न्याययुक्त नहीं है)॥ २०॥

'मनुष्य अपने शरीरसे जो पाप करता है, उसे पहले मनके द्वारा कर्तव्यरूपसे निश्चित करता है। फिर जिह्वाकी सहायतासे उस अनृत कर्म (पाप) को वाणीद्वारा दूसरोंसे कहता है, तत्पश्चात् औरोंके सहयोगसे उसे शरीरद्वारा सम्पन्न करता है। इस तरह एक ही पातक कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तीन प्रकारका होता है॥ २१॥

'पृथ्वी, कीर्ति, यश और लक्ष्मी—ये सब-की-सब सत्यवादी पुरुषको पानेकी इच्छा रखती हैं और शिष्ट पुरुष सत्यका ही अनुसरण करते हैं, अतः मनुष्यको सदा सत्यका ही सेवन करना चाहिये॥ २२॥

'आपने उचित सिद्ध करके तर्कपूर्ण वचनोंके द्वारा मुझसे जो यह कहा है कि राज्य ग्रहण करनेमें ही कल्याण है; अतः इसे अवश्य स्वीकार करो। आपका यह आदेश श्रेष्ठ-सा प्रतीत होनेपर भी सज्जन पुरुषोंद्वारा आचरणमें

लानेयोग्य नहीं है (क्योंकि इसे स्वीकार करनेसे सत्य और न्यायका उल्लङ्घन होता है)॥ २३॥

'मैं पिताजीके सामने इस तरह वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके मैं भरतकी बात कैसे मान लूँगा॥ २४॥

'गुरुके समीप की हुई मेरी वह प्रतिज्ञा अटल है— किसी तरह तोड़ी नहीं जा सकती। उस समय जब कि मैंने प्रतिज्ञा की थी, देवी कैकेयीका हृदय हर्षसे खिल उठा था॥ २५॥

'मैं वनमें ही रहकर बाहर-भीतरसे पवित्र हो नियमित भोजन करूँगा और पवित्र फल, मूल एवं पुष्पोंद्वारा देवताओं और पितरोंको तृप्त करता हुआ प्रतिज्ञाका पालन करूँगा॥ २६॥

'क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इसका निश्चय मैं कर चुका हूँ। अतः फल-मूल आदिसे पाँचों इन्द्रियोंको संतुष्ट करके निश्छल, श्रद्धापूर्वक लोकयात्रा (पिताकी आज्ञाके पालनरूप व्यवहार) का निर्वाह करूँगा॥ २७॥

'इस कर्मभूमिको पाकर जो शुभ कर्म हो, उसका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि अग्नि, वायु तथा सोम भी कर्मोंके ही फलसे उन-उन पदोंके भागी हुए हैं॥

'देवराज इन्द्र सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। महर्षियोंने भी उग्र तपस्या करके दिव्य लोकोंमें स्थान प्राप्त किया है'॥ २९॥

उग्र तेजस्वी राजकुमार श्रीराम परलोककी सत्ताका खण्डन करनेवाले जाबालिके पूर्वोक्त वचनोंको सुनकर उन्हें सहन न कर सकनेके कारण उन वचनोंकी निन्दा करते हुए पुनः उनसे बोले—॥ ३०॥

'सत्य, धर्म, पराक्रम, समस्त प्राणियोंपर दया, सबसे प्रिय वचन बोलना तथा देवताओं, अतिथियों और ब्राह्मणोंकी पूजा करना—इन सबको साधु पुरुषोंने स्वर्गलोकका मार्ग बताया है॥ ३१॥

'सत्पुरुषोंके इस वचनके अनुसार धर्मका स्वरूप जानकर तथा अनुकूल तर्कसे उसका यथार्थ निर्णय करके एक निश्चयपर पहुँचे हुए सावधान ब्राह्मण भलीभाँति धर्माचरण करते हुए उन-उन उत्तम लोकोंको प्राप्त करना चाहते हैं॥ ३२॥

'आपकी बुद्धि विषम-मार्गमें स्थित है—आपने वेद-विरुद्ध मार्गका आश्रय ले रखा है। आप घोर नास्तिक और धर्मके रास्तेसे कोसों दूर हैं। ऐसी पाखण्डमयी बुद्धिके द्वारा अनुचित विचारका प्रचार करनेवाले आपको मेरे पिताजीने जो अपना याजक बना लिया, उनके इस कार्यकी मैं निन्दा करता हूँ॥ ३३॥

'जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेदविरोधी) बुद्ध (बौद्धमतावलम्बी) भी दण्डनीय है। तथागत (नास्तिकविशेष) और नास्तिक (चार्वाक) को भी यहाँ इसी कोटिमें समझना चाहिये। इसलिये प्रजापर अनुग्रह करनेके लिये राजाद्वारा जिस नास्तिकको दण्ड दिलाया जा सके, उसे तो चोरके समान दण्ड दिलाया ही जाय; परंतु जो वशके बाहर हो, उस नास्तिकके प्रति विद्वान् ब्राह्मण कभी उन्मुख न हो— उससे वार्तालापतक न करे॥ ३४॥

'आपके सिवा पहलेके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने इहलोक और परलोककी फल-कामनाका परित्याग करके वेदोक्त धर्म समझकर सदा ही बहुत-से शुभकर्मोंका अनुष्ठान किया है। अतः जो भी ब्राह्मण हैं, वे वेदोंको ही प्रमाण मानकर स्वस्ति (अहिंसा और सत्य आदि), कृत (तप, दान और परोपकार आदि) तथा हुत (यज्ञ-याग आदि) कर्मोंका सम्पादन करते हैं॥ ३५॥

'जो धर्ममें तत्पर रहते हैं, सत्पुरुषोंका साथ करते हैं, तेजसे सम्पन्न हैं, जिनमें दानरूपी गुणकी प्रधानता है, जो कभी किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करते तथा जो मलसंसर्गसे रहित हैं, ऐसे श्रेष्ठ मुनि ही संसारमें पूजनीय होते हैं'॥ ३६॥

महात्मा श्रीराम स्वभावसे ही दैन्यभावसे रहित थे। उन्होंने जब रोषपूर्वक पूर्वोक्त बात कही, तब ब्राह्मण जाबालिने विनयपूर्वक यह आस्तिकतापूर्ण सत्य एवं हितकर वचन कहा—॥ ३७॥

'रघुनन्दन! न तो मैं नास्तिक हूँ और न नास्तिकोंकी बात ही करता हूँ। परलोक आदि कुछ भी नहीं है, ऐसा मेरा मत नहीं है। मैं अवसर देखकर फिर आस्तिक हो गया और लौकिक व्यवहारके समय आवश्यकता होनेपर पुनः नास्तिक हो सकता हूँ—नास्तिकोंकी-सी बातें कर सकता हूँ॥ ३८॥

'इस समय ऐसा अवसर आ गया था, जिससे मैंने धीरे-धीरे नास्तिकोंकी-सी बातें कह डालीं। श्रीराम! मैंने जो यह बात कही, इसमें मेरा उद्देश्य यही था कि किसी तरह आपको राजी करके अयोध्या लौटनेके लिये तैयार कर लूँ'॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ नौवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०९॥

एक सौ दसवाँ सर्ग

वसिष्ठजीका सृष्टिपरम्पराके साथ इक्ष्वाकुकुलकी परम्परा बताकर ज्येष्ठके ही राज्याभिषेकका औचित्य सिद्ध करना और श्रीरामसे राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना

श्रीरामचन्द्रजीको रुष्ट जानकर महर्षि वसिष्ठजीने उनसे कहा—'रघुनन्दन! महर्षि जाबालि भी यह जानते हैं कि इस लोकके प्राणियोंका परलोकमें जाना और आना होता रहता है (अतः ये नास्तिक नहीं हैं)॥ १॥

'जगदीश्वर! इस समय तुम्हें लौटानेकी इच्छासे ही इन्होंने यह नास्तिकतापूर्ण बात कही थी। तुम मुझसे इस लोककी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनो॥ २॥

'सृष्टिके प्रारम्भकालमें सब कुछ जलमय ही था। उस जलके भीतर ही पृथ्वीका निर्माण हुआ। तदनन्तर देवताओंके साथ स्वयंभू ब्रह्मा प्रकट हुए॥ ३॥

'इसके बाद उन भगवान् विष्णुस्वरूप ब्रह्माने ही वराहरूपसे प्रकट होकर जलके भीतरसे इस पृथ्वीको निकाला और अपने कृतात्मा पुत्रोंके साथ इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की॥ ४॥

'आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मासे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ है, जो नित्य, सनातन एवं अविनाशी हैं। उनसे मरीचि उत्पन्न हुए और मरीचिके पुत्र कश्यप हुए॥

'कश्यपसे विवस्वान्का जन्म हुआ। विवस्वान्के पुत्र साक्षात् वैवस्वत मनु हुए, जो पहले प्रजापति थे। मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए॥ ६॥

'जिन्हें मनुने सबसे पहले इस पृथ्वीका समृद्धिशाली राज्य सौंपा था, उन राजा इक्ष्वाकुको तुम अयोध्याका प्रथम राजा समझो॥ ७॥

'इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षिके नामसे विख्यात हुए। कुक्षिके वीर पुत्र विकुक्षि हुए॥ ८॥

'विकुक्षिके महातेजस्वी प्रतापी पुत्र बाण हुए। बाणके महाबाहु पुत्र अनरण्य हुए, जो बड़े भारी तपस्वी थे॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज अनरण्यके राज्यमें कभी अनावृष्टि नहीं हुई, अकाल नहीं पड़ा और कोई चोर भी नहीं उत्पन्न हुआ॥ १०॥

'महाराज! अनरण्यसे राजा पृथु हुए। उन पृथुसे महातेजस्वी त्रिशंकुकी उत्पत्ति हुई॥ ११॥

'वे वीर त्रिशंकु विश्वामित्रके सत्य वचनके प्रभावसे सदेह स्वर्गलोकको चले गये थे। त्रिशंकुके महायशस्वी धुन्धुमार हुए॥ १२॥

'धुन्धुमारसे महातेजस्वी युवनाश्वका जन्म हुआ। युवनाश्वके पुत्र श्रीमान् मान्धाता हुए॥ १३॥

मान्धाताके महान् तेजस्वी पुत्र सुसंधि हुए। सुसंधिके दो पुत्र हुए—ध्रुवसंधि और प्रसेनजित्॥ १४॥

'ध्रुवसंधिके यशस्वी पुत्र शत्रुसूदन भरत थे। महाबाहु भरतसे असित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १५॥

'जिसके शत्रुभूत प्रतिपक्षी राजा ये हैहय, तालजंघ और शूर शशबिन्दु उत्पन्न हुए थे॥ १६॥

'उन सबका सामना करनेके लिये सेनाका व्यूह बनाकर युद्धके लिये डटे रहनेपर भी शत्रुओंकी संख्या अधिक होनेके कारण राजा असितको हारकर परदेशकी शरण लेनी पड़ी। वे रमणीय शैल-शिखरपर प्रसन्नतापूर्वक रहकर मुनिभावसे परमात्माका मनन-चिन्तन करने लगे॥

'सुना जाता है कि असितकी दो पत्नियाँ गर्भवती थीं। उनमेंसे एक महाभागा कमललोचना राजपत्नीने उत्तम पुत्र पानेकी अभिलाषा रखकर देवतुल्य तेजस्वी भृगुवंशी च्यवन मुनिके चरणोंमें वन्दना की और दूसरी रानीने अपनी सौतके गर्भका विनाश करनेके लिये उसे जहर दे दिया॥

'उन दिनों भृगुवंशी च्यवन मुनि हिमालयपर रहते थे। राजा असितकी कालिन्दी नामवाली पत्नीने ऋषिके चरणोंमें पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया॥ २०॥

'मुनिने प्रसन्न होकर पुत्रकी उत्पत्तिके लिये वरदान चाहनेवाली रानीसे इस प्रकार कहा—'देवि! तुम्हें एक महामनस्वी लोकविख्यात पुत्र प्राप्त होगा, जो धर्मात्मा, शत्रुओंके लिये अत्यन्त भयंकर, अपने वंशको चलानेवाला और शत्रुओंका संहारक होगा'॥ २१ $\frac{1}{2}$ ॥

'यह सुनकर रानीने मुनिकी परिक्रमा की और उनसे विदा लेकर वहाँसे अपने घर आनेपर उस रानीने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसकी कान्ति कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर थी और नेत्र कमलदलके समान मनोहर थे॥ २२-२३॥

'सौतने उसके गर्भको नष्ट करनेके लिये जो गर (विष) दिया था, उस गरके साथ ही वह बालक प्रकट हुआ; इसलिये सगर नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ २४॥

'राजा सगर वे ही हैं, जिन्होंने पर्वके दिन यज्ञकी

दीक्षा ग्रहण करके खुदाईके वेगसे इन समस्त प्रजाओंको भयभीत करते हुए अपने पुत्रोंद्वारा समुद्रको खुदवाया था॥

'हमारे सुननेमें आया है कि सगरके पुत्र असमञ्ज हुए, जिन्हें पापकर्ममें प्रवृत्त होनेके कारण पिताने जीते-जी ही राज्यसे निकाल दिया था॥ २६॥

'असमञ्जके पुत्र अंशुमान् हुए, जो बड़े पराक्रमी थे। अंशुमान्‌के दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए॥ २७॥

'भगीरथसे ककुत्स्थका जन्म हुआ, जिनसे उनके वंशवाले 'काकुत्स्थ' कहलाते हैं। ककुत्स्थके पुत्र रघु हुए, जिनसे उस वंशके लोग 'राघव' कहलाये॥ २८॥

'रघुके तेजस्वी पुत्र कल्माषपाद हुए, जो बड़े होनेपर शापवश कुछ वर्षोंके लिये नरभक्षी राक्षस हो गये थे। वे इस पृथ्वीपर सौदास नामसे विख्यात थे॥

'कल्माषपादके पुत्र शङ्खण हुए, यह हमारे सुननेमें आया है, जो युद्धमें सुप्रसिद्ध पराक्रम प्राप्त करके भी सेनासहित नष्ट हो गये थे॥ ३०॥

'शङ्खणके शूरवीर पुत्र श्रीमान् सुदर्शन हुए। सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण और अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग थे॥

'शीघ्रगके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रशुश्रुव तथा प्रशुश्रुवके महाबुद्धिमान् पुत्र अम्बरीष हुए॥ ३२॥

'अम्बरीषके पुत्र सत्यपराक्रमी नहुष थे। नहुषके पुत्र नाभाग हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे॥ ३३॥

'नाभागके दो पुत्र हुए—अज और सुव्रत। अजके धर्मात्मा पुत्र राजा दशरथ थे॥ ३४॥

'दशरथके ज्येष्ठ पुत्र तुम हो, जिसकी 'श्रीराम' के नामसे प्रसिद्धि है। नरेश्वर! यह अयोध्याका राज्य तुम्हारा है, इसे ग्रहण करो और इसकी देखभाल करते रहो॥ ३५॥

'समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके यहाँ ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता आया है। ज्येष्ठके होते हुए छोटा पुत्र राजा नहीं होता है। ज्येष्ठ पुत्रका ही राजाके पदपर अभिषेक होता है॥ ३६॥

'महायशस्वी श्रीराम! रघुवंशियोंका जो अपना सनातन कुलधर्म है, उसको आज तुम नष्ट न करो। बहुत-से अवान्तर देशोंवाली तथा प्रचुर रत्नराशिसे सम्पन्न इस वसुधाका पिताकी भाँति पालन करो'॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

वसिष्ठजीके समझानेपर भी श्रीरामको पिताकी आज्ञाके पालनसे विरत होते न देख भरतका धरना देनेको तैयार होना तथा श्रीरामका उन्हें समझाकर अयोध्या लौटनेकी आज्ञा देना

उस समय राजपुरोहित वसिष्ठने पूर्वोक्त बातें कहकर पुनः श्रीरामसे दूसरी धर्मयुक्त बातें कहीं—॥ १॥

'रघुनन्दन! ककुत्स्थकुलभूषण! इस संसारमें उत्पन्न हुए पुरुषके सदा तीन गुरु होते हैं—आचार्य, पिता और माता॥ २॥

'पुरुषप्रवर! पिता पुरुषके शरीरको उत्पन्न करता है, इसलिये गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है, इसलिये गुरु कहलाता है॥ ३॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुवीर! मैं तुम्हारे पिताका और तुम्हारा भी आचार्य हूँ; अतः मेरी आज्ञाका पालन करनेसे तुम सत्पुरुषोंके पथका त्याग करनेवाले नहीं समझे जाओगे॥ ४॥

'तात! ये तुम्हारे सभासद्, बन्धु-बान्धव तथा सामन्त राजा पधारे हुए हैं, इनके प्रति धर्मानुकूल बर्ताव करनेसे भी तुम्हारे द्वारा सन्मार्गका उल्लङ्घन नहीं होगा॥ ५॥

'अपनी धर्मपरायणा बूढ़ी माताकी बात तो तुम्हें कभी टालनी ही नहीं चाहिये। इनकी आज्ञाका पालन करके तुम श्रेष्ठ पुरुषोंके आश्रयभूत धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले नहीं माने जाओगे॥ ६॥

'सत्य, धर्म और पराक्रमसे सम्पन्न रघुनन्दन! भरत अपने आत्मस्वरूप तुमसे राज्य ग्रहण करने और अयोध्या लौटनेकी प्रार्थना कर रहे हैं, उनकी बात मान लेनेसे भी तुम धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले नहीं कहलाओगे'॥

गुरु वसिष्ठने सुमधुर वचनोंमें जब इस प्रकार कहा, तब साक्षात् पुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्रने वहाँ बैठे हुए वसिष्ठजीको यों उत्तर दिया॥ ८॥

'माता और पिता पुत्रके प्रति जो सर्वदा स्नेहपूर्ण बर्ताव करते हैं, अपनी शक्तिके अनुसार उत्तम खाद्य पदार्थ देने, अच्छे बिछौनेपर सुलाने, उबटन आदि लगाने, सदा मीठी बातें बोलने तथा पालन-पोषण करने

आदिके द्वारा माता और पिताने जो उपकार किया है, उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता॥

'अतः मेरे जन्मदाता पिता महाराज दशरथने मुझे जो आज्ञा दी है, वह मिथ्या नहीं होगी'॥ ११॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर चौड़ी छातीवाले भरतजीका मन बहुत उदास हो गया। वे पास ही बैठे हुए सूत सुमन्त्रसे बोले—॥ १२॥

'सारथे! आप इस वेदीपर शीघ्र ही बहुत-से कुश बिछा दीजिये। जबतक आर्य मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं यहीं इनके पास धरना दूँगा। जैसे साहूकार या महाजनके द्वारा निर्धन किया हुआ ब्राह्मण उसके घरके दरवाजेपर मुँह ढककर बिना खाये-पिये पड़ा रहता है, उसी प्रकार मैं भी उपवासपूर्वक मुखपर आवरण डालकर इस कुटियाके सामने लेट जाऊँगा। जबतक मेरी बात मानकर ये अयोध्याको नहीं लौटेंगे, तबतक मैं इसी तरह पड़ा रहूँगा'॥ १३-१४॥

यह सुनकर सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीका मुँह ताकने लगे। उन्हें इस अवस्थामें देख भरतके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयं ही कुशकी चटाई बिछाकर जमीनपर बैठ गये॥ १५॥

तब महातेजस्वी राजर्षिशिरोमणि श्रीरामने उनसे कहा— 'तात भरत! मैं तुम्हारी क्या बुराई करता हूँ, जो मेरे आगे धरना दोगे?॥ १६॥

'ब्राह्मण एक करवटसे सोकर—धरना देकर मनुष्योंको अन्यायसे रोक सकता है, परंतु राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रियोंके लिये इस प्रकार धरना देनेका विधान नहीं है॥ १७॥

'अतः नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! इस कठोर व्रतका परित्याग करके उठो और यहाँसे शीघ्र ही अयोध्यापुरीको जाओ'॥

यह सुनकर भरत वहाँ बैठे-बैठे ही सब ओर दृष्टि डालकर नगर और जनपदके लोगोंसे बोले—'आपलोग भैयाको क्यों नहीं समझाते हैं?'॥ १९॥

तब नगर और जनपदके लोग महात्मा भरतसे बोले—'हम जानते हैं, काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजीके प्रति आप रघुकुलतिलक भरतजी ठीक ही कहते हैं॥ २०॥

'परंतु ये महाभाग श्रीरामचन्द्रजी भी पिताकी आज्ञाके पालनमें लगे हैं, इसलिये यह भी ठीक ही है। अतएव हम इन्हें सहसा उस ओरसे लौटानेमें असमर्थ हैं'॥ २१॥

उन पुरवासियोंके वचनका तात्पर्य समझकर श्रीरामने भरतसे कहा—'भरत! धर्मपर दृष्टि रखनेवाले सुहृदोंके इस कथनको सुनो और समझो॥ २२॥

'रघुनन्दन! मेरी और इनकी दोनों बातोंको सुनकर उनपर सम्यक् रूपसे विचार करो। महाबाहो! अब शीघ्र उठो तथा मेरा और जलका स्पर्श करो'॥ २३॥

यह सुनकर भरत उठकर खड़े हो गये और श्रीराम एवं जलका स्पर्श करके बोले—'मेरे सभासद् और मन्त्री सब लोग सुनें—न तो मैंने पिताजीसे राज्य माँगा था और न मातासे ही कभी इसके लिये कुछ कहा था। साथ ही, परम धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीके वनवासमें भी मेरी कोई सम्मति नहीं है॥ २४-२५॥

'फिर भी यदि इनके लिये पिताजीकी आज्ञाका पालन करना और वनमें रहना अनिवार्य है तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षोंतक वनमें निवास करूँगा'॥ २६॥

भाई भरतकी इस सत्य बातसे धर्मात्मा श्रीरामको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने पुरवासी तथा राज्यनिवासी लोगोंकी ओर देखकर कहा—॥ २७॥

'पिताजीने अपने जीवनकालमें जो वस्तु बेंच दी है, या धरोहर रख दी है, अथवा खरीदी है, उसे मैं अथवा भरत कोई भी पलट नहीं सकता॥ २८॥

'मुझे वनवासके लिये किसीको प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि सामर्थ्य रहते हुए प्रतिनिधिसे काम लेना लोकमें निन्दित है। कैकेयीने उचित माँग ही प्रस्तुत की थी और मेरे पिताजीने उसे देकर पुण्य कर्म ही किया था॥ २९॥

'मैं जानता हूँ, भरत बड़े क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाले हैं, इन सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण मौजूद हैं॥ ३०॥

'चौदह वर्षोंकी अवधि पूरी करके जब मैं वनसे लौटूँगा, तब अपने इन धर्मशील भाईके साथ इस भूमण्डलका श्रेष्ठ राजा होऊँगा॥ ३१॥

'कैकेयीने राजासे वर माँगा और मैंने उसका पालन स्वीकार कर लिया, अतः भरत! अब तुम मेरा कहना मानकर उस वरके पालनद्वारा अपने पिता महाराज दशरथको असत्यके बन्धनसे मुक्त करो'॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १११॥

एक सौ बारहवाँ सर्ग

ऋषियोंका भरतको श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार लौट जानेकी सलाह देना, भरतका पुनः श्रीरामके चरणोंमें गिरकर चलनेकी प्रार्थना करना, श्रीरामका उन्हें समझाकर अपनी चरणपादुका देकर उन सबको विदा करना

उन अनुपम तेजस्वी भ्राताओंका वह रोमाञ्चकारी समागम देख वहाँ आये हुए महर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ १॥

अन्तरिक्षमें अदृश्य भावसे खड़े हुए मुनि तथा वहाँ प्रत्यक्षरूपमें बैठे हुए महर्षि उन महान् भाग्यशाली ककुत्स्थवंशी बन्धुओंकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे—॥ २॥

'ये दोनों राजकुमार सदा श्रेष्ठ, धर्मके ज्ञाता और धर्ममार्गपर ही चलनेवाले हैं। इन दोनोंकी बातचीत सुनकर हमें उसे बारंबार सुनते रहनेकी ही इच्छा होती है'॥ ३॥

तदनन्तर दशग्रीव रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले ऋषियोंने मिलकर राजसिंह भरतसे तुरंत ही यह बात कही—॥ ४॥

'महाप्राज्ञ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा आचरण बहुत उत्तम और यश महान् है। यदि तुम अपने पिताकी ओर देखो—उन्हें सुख पहुँचाना चाहो तो तुम्हें श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान लेनी चाहिये॥ ५॥

'हमलोग इन श्रीरामको पिताके ऋणसे सदा उऋण देखना चाहते हैं। कैकेयीका ऋण चुका देनेके कारण ही राजा दशरथ स्वर्गमें पहुँचे हैं'॥ ६॥

इतना कहकर वहाँ आये हुए गन्धर्व, महर्षि और राजर्षि सब अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ७॥

जिनके दर्शनसे जगत्का कल्याण हो जाता है, वे भगवान् श्रीराम महर्षियोंके वचनसे बहुत प्रसन्न हुए। उनका मुख हर्षोल्लाससे खिल उठा, इससे उनकी बड़ी शोभा हुई और उन्होंने उन महर्षियोंकी सादर प्रशंसा की॥ ८॥

परंतु भरतका सारा शरीर थर्रा उठा। वे लड़खड़ाती हुई जबानसे हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ ९॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! हमारे कुलधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला जो ज्येष्ठ पुत्रका राज्यग्रहण और प्रजापालनरूप धर्म है, उसकी ओर दृष्टि डालकर आप मेरी तथा माताकी याचना सफल कीजिये॥ १०॥

'मैं अकेला ही इस विशाल राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता तथा आपके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले इन पुरवासी तथा जनपदवासी लोगोंको भी आपके बिना प्रसन्न नहीं रख सकता॥ ११॥

'जैसे किसान मेघकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, उसी प्रकार हमारे बन्धु-बान्धव, योद्धा, मित्र और सुहृद् सब लोग आपकी ही बाट जोहते हैं॥ १२॥

'महाप्राज्ञ! आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये। वही पुरुष आपके प्रजावर्ग अथवा लोकका पालन करनेमें समर्थ हो सकता है'॥ १३॥

ऐसा कहकर भरत अपने भाईके चरणोंपर गिर पड़े। उस समय उन्होंने श्रीरघुनाथजीसे अत्यन्त प्रिय वचन बोलकर उनसे राज्यग्रहण करनेके लिये बड़ी प्रार्थना की॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने श्यामवर्ण कमलनयन भाई भरतको उठाकर गोदमें बिठा लिया और मदमत्त हंसके समान मधुर स्वरमें स्वयं यह बात कही—॥ १५॥

'तात! तुम्हें जो यह स्वाभाविक विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है इस बुद्धिके द्वारा तुम समस्त भूमण्डलकी रक्षा करनेमें भी पूर्णरूपसे समर्थ हो सकते हो॥ १६॥

'इसके सिवा अमात्यों, सुहृदों और बुद्धिमान् मन्त्रियोंसे सलाह लेकर उनके द्वारा सब कार्य, वे कितने ही बड़े क्यों न हों, करा लिया करो॥ १७॥

'चन्द्रमासे उसकी प्रभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे, अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय, किंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता॥ १८॥

'तात! माता कैकेयीने कामनासे अथवा लोभवश तुम्हारे लिये जो कुछ किया है, उसको मनमें न लाना और उसके प्रति सदा वैसा ही बर्ताव करना जैसा अपनी पूजनीया माताके प्रति करना उचित है'॥ १९॥

जो सूर्यके समान तेजस्वी हैं तथा जिनका दर्शन प्रतिपदा (द्वितीया) के चन्द्रमाकी भाँति आह्लादजनक है,

उन कौसल्यानन्दन श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर भरत उनसे यों बोले—॥ २० ॥

'आर्य! ये दो सुवर्णभूषित पादुकाएँ आपके चरणोंमें अर्पित हैं, आप इनपर अपने चरण रखें। ये ही सम्पूर्ण जगत्‌के योगक्षेमका निर्वाह करेंगी'॥ २१ ॥

तब महातेजस्वी पुरुषसिंह श्रीरामने उन पादुकाओंपर चढ़कर उन्हें फिर अलग कर दिया और महात्मा भरतको सौंप दिया॥ २२ ॥

उन पादुकाओंको प्रणाम करके भरतने श्रीरामसे कहा—'वीर रघुनन्दन! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका भोजन करता हुआ आपके आगमनकी प्रतीक्षामें नगरसे बाहर ही रहूँगा। परंतप! इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रखकर मैं आपकी बाट जोहता रहूँगा॥

'रघुकुलशिरोमणे! यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर नूतन वर्षके प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा'॥

श्रीरामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी और बड़े आदरके साथ भरतको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् शत्रुघ्नको भी छातीसे लगाकर यह बात कही—

'रघुनन्दन! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयीकी रक्षा करना, उनके प्रति कभी क्रोध न करना'—इतना कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। उन्होंने व्यथित हृदयसे भाई शत्रुघ्नको विदा किया॥ २७-२८ ॥

धर्मज्ञ भरतने भलीभाँति अलंकृत की हुई उन परम उज्ज्वल चरणपादुकाओंको लेकर श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की तथा उन पादुकाओंको राजाकी सवारीमें आनेवाले सर्वश्रेष्ठ गजराजके मस्तकपर स्थापित किया॥

तदनन्तर अपने धर्ममें हिमालयकी भाँति अविचल भावसे स्थित रहनेवाले रघुवंशवर्धन श्रीरामने क्रमशः वहाँ आये हुए जनसमुदाय, गुरु, मन्त्री, प्रजा तथा दोनों भाइयोंका यथायोग्य सत्कार करके उन्हें विदा किया॥

उस समय कौसल्या आदि सभी माताओंका गला आँसुओंसे रुँध गया था। वे दुःखके कारण श्रीरामको सम्बोधित भी न कर सकीं। श्रीराम भी सब माताओंको प्रणाम करके रोते हुए अपनी कुटियामें चले गये॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११२॥

एक सौ तेरहवाँ सर्ग

भरतका भरद्वाजसे मिलते हुए अयोध्याको लौट आना

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी दोनों चरण-पादुकाओंको अपने मस्तकपर रखकर भरत शत्रुघ्नके साथ प्रसन्नतापूर्वक रथपर बैठे॥ १ ॥

वसिष्ठ, वामदेव तथा दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले जाबालि आदि सब मन्त्री, जो उत्तम मन्त्रणा देनेके कारण सम्मानित थे, आगे-आगे चले॥ २ ॥

वे सब लोग चित्रकूट नामक महान् पर्वतकी परिक्रमा करते हुए परम रमणीय मन्दाकिनी नदीको पार करके पूर्वदिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ ३ ॥

उस समय भरत अपनी सेनाके साथ सहस्रों प्रकारके रमणीय धातुओंको देखते हुए चित्रकूटके किनारेसे होकर निकले॥ ४ ॥

चित्रकूटसे थोड़ी ही दूर जानेपर भरतने वह आश्रम देखा, जहाँ मुनिवर भरद्वाजजी निवास करते थे*॥ ५ ॥

अपने कुलको आनन्दित करनेवाले पराक्रमी भरत महर्षि भरद्वाजके उस आश्रमपर पहुँचकर रथसे उतर पड़े और उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ६ ॥

उनके आनेसे महर्षि भरद्वाजको बड़ी प्रसन्नता हुई

* यह आश्रम यमुनासे दक्षिण दिशामें चित्रकूटके कुछ निकट था। गङ्गा और यमुनाके बीच प्रयागवाला आश्रम, जहाँ वनमें जाते समय श्रीरामचन्द्रजी तथा भरत आदिने विश्राम किया था, इससे भिन्न जान पड़ता है। तभी इस आश्रमपर भरद्वाजसे मिलनेके बाद भरत आदिके यमुना पार करनेका उल्लेख मिलता है—'**ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वोर्मिमालिनीम्।**' इस द्वितीय आश्रमसे श्रीराम और भरतके समागमका समाचार शीघ्र प्राप्त हो सकता था; इसीलिये भरद्वाजजी भरतके लौटनेके समय यहीं मौजूद थे।

और उन्होंने भरतसे पूछा—'तात! क्या तुम्हारा कार्य सम्पन्न हुआ? क्या श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट हुई?'॥ ७॥

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके इस प्रकार पूछनेपर धर्मवत्सल भरतने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ८॥

'मुने! भगवान् श्रीराम अपने पराक्रमपर दृढ़ रहनेवाले हैं। मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की। गुरुजीने भी अनुरोध किया। तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर गुरुदेव वसिष्ठजीसे इस प्रकार कहा—॥ ९॥

'मैं चौदह वर्षोंतक वनमें रहूँ, इसके लिये मेरे पिताजीने जो प्रतिज्ञा कर ली थी, उनकी उस प्रतिज्ञाका ही मैं यथार्थरूपसे पालन करूँगा'॥ १०॥

'उनके ऐसा कहनेपर बातके मर्मको समझनेवाले महाज्ञानी वसिष्ठजीने बातचीत करनेमें कुशल श्रीरघुनाथजीसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ ११॥

'महाप्राज्ञ! तुम प्रसन्नतापूर्वक ये स्वर्णभूषित पादुकाएँ अपने प्रतिनिधिके रूपमें भरतको दे दो और इन्हींके द्वारा अयोध्याके योगक्षेमका निर्वाह करो'॥

'गुरु वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर पूर्वाभिमुख खड़े हुए श्रीरघुनाथजीने अयोध्याके राज्यका संचालन करनेके लिये ये दोनों स्वर्णभूषित पादुकाएँ मुझे दे दीं॥ १३॥

'तत्पश्चात् मैं महात्मा श्रीरामकी आज्ञा पाकर लौट आया हूँ और उनकी इन मङ्गलमयी चरणपादुकाओंको लेकर अयोध्याको ही जा रहा हूँ'॥ १४॥

महात्मा भरतका यह शुभ वचन सुनकर भरद्वाज मुनिने यह परम मङ्गलमय बात कही—॥ १५॥

'भरत! तुम मनुष्योंमें सिंहके समान वीर तथा शील और सदाचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हो। जैसे जल नीची भूमिवाले जलाशयमें सब ओरसे बहकर चला आता है, उसी प्रकार तुममें सारे श्रेष्ठ गुण स्थित हों—यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ १६॥

'तुम्हारे पिता महाबाहु राजा दशरथ सब प्रकारसे उऋण हो गये, जिनके तुम-जैसा धर्मप्रेमी एवं धर्मात्मा पुत्र है'॥ १७॥

उन महाज्ञानी महर्षिके ऐसा कहनेपर भरतने हाथ जोड़कर उनके चरणोंका स्पर्श किया; फिर वे उनसे जानेकी आज्ञा लेनेको उद्यत हुए॥ १८॥

तदनन्तर श्रीमान् भरत बारंबार भरद्वाज मुनिकी परिक्रमा करके मन्त्रियोंसहित अयोध्याकी ओर चल दिये॥ १९॥

फिर वह विस्तृत सेना रथों, छकड़ों, घोड़ों और हाथियोंके साथ भरतका अनुसरण करती हुई अयोध्याको लौटी॥ २०॥

तत्पश्चात् आगे जाकर उन सब लोगोंने तरंग-मालाओंसे सुशोभित दिव्य नदी यमुनाको पार करके पुनः शुभसलिला गङ्गाजीका दर्शन किया॥ २१॥

फिर बन्धु-बान्धवों और सैनिकोंके साथ मनोहर जलसे भरी हुई गङ्गाके भी पार होकर वे परम रमणीय शृङ्गवेरपुरमें जा पहुँचे॥ २२॥

शृङ्गवेरपुरसे प्रस्थान करनेपर उन्हें पुनः अयोध्यापुरीका दर्शन हुआ, जो उस समय पिता और भाई दोनोंसे विहीन थी। उसे देखकर भरतने दुःखसे संतप्त हो सारथिसे इस प्रकार कहा—॥ २३½॥

'सारथि सुमन्त्रजी! देखिये, अयोध्याकी सारी शोभा नष्ट हो गयी है; अतः यह पहलेकी भाँति प्रकाशित नहीं होती है। इसका वह सुन्दर रूप, वह आनन्द जाता रहा। इस समय यह अत्यन्त दीन और नीरव हो रही है'॥ २४-२५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११३॥

एक सौ चौदहवाँ सर्ग

भरतके द्वारा अयोध्याकी दुरवस्थाका दर्शन तथा अन्तःपुरमें प्रवेश करके भरतका दुःखी होना

इसके बाद प्रभावशाली महायशस्वी भरतने स्निग्ध, गम्भीर घर्घर घोषसे युक्त रथके द्वारा यात्रा करके शीघ्र ही अयोध्यामें प्रवेश किया॥ १॥

उस समय वहाँ बिलाव और उल्लू विचर रहे थे। घरोंके किवाड़ बंद थे। सारे नगरमें अन्धकार छा रहा था। प्रकाश न होनेके कारण वह पुरी कृष्णपक्षकी

काली रातके समान जान पड़ती थी॥ २॥

जैसे चन्द्रमाकी प्रिय पत्नी और अपनी शोभासे प्रकाशित कान्तिवाली रोहिणी उदित हुए राहु नामक ग्रहके द्वारा अपने पतिके ग्रस लिये जानेपर अकेली—असहाय हो जाती है, उसी प्रकार दिव्य ऐश्वर्यसे प्रकाशित होनेवाली अयोध्या राजाके कालकवलित हो जानेके कारण पीड़ित एवं असहाय हो रही थी॥ ३॥

वह पुरी उस पर्वतीय नदीकी भाँति कृशकाय दिखायी देती थी, जिसका जल सूर्यकी किरणोंसे तपकर कुछ गरम और गँदला हो रहा हो, जिसके पक्षी धूपसे संतप्त होकर भाग गये हों तथा जिसके मीन, मत्स्य और ग्राह गहरे जलमें छिप गये हों॥ ४॥

जो अयोध्या पहले धूमरहित सुनहरी कान्तिवाली प्रज्वलित अग्निशिखाके समान प्रकाशित होती थी, वही श्रीरामवनवासके बाद हवनीय दुग्धसे सींची गयी अग्निकी ज्वालाके समान बुझकर विलीन-सी हो गयी है॥ ५॥

उस समय अयोध्या महासमरमें संकटग्रस्त हुई उस सेनाके समान प्रतीत होती थी, जिसके कवच कटकर गिर गये हों, हाथी, घोड़े, रथ और ध्वजा छिन्न-भिन्न हो गये हों और मुख्य-मुख्य वीर मार डाले गये हों॥ ६॥

प्रबल वायुके वेगसे फेन और गर्जनाके साथ उठी हुई समुद्रकी उत्ताल तरंग सहसा वायुके शान्त हो जानेपर जैसे शिथिल और नीरव हो जाती है, उसी प्रकार कोलाहलपूर्ण अयोध्या अब शब्दशून्य-सी जान पड़ती थी॥ ७॥

यज्ञकाल समाप्त होनेपर 'स्फ्य' आदि यज्ञसम्बन्धी आयुधों तथा श्रेष्ठ याजकोंसे सूनी हुई वेदी जैसे मन्त्रोच्चारणकी ध्वनिसे रहित हो जाती है, उसी प्रकार अयोध्या सुनसान दिखायी देती थी॥ ८॥

जैसे कोई गाय साँड़के साथ समागमके लिये उत्सुक हो, उसी अवस्थामें उसे साँड़से अलग कर दिया गया हो और वह नूतन घास चरना छोड़कर आर्त भावसे गोष्ठमें बँधी हुई खड़ी हो, उसी तरह अयोध्यापुरी भी आन्तरिक वेदनासे पीड़ित थी॥ ९॥

श्रीराम आदिसे रहित हुई अयोध्या मोतियोंकी उस नूतन मालाके समान श्रीहीन हो गयी थी, जिसकी अत्यन्त चिकनी-चमकीली, उत्तम तथा अच्छी जातिकी पद्मराग आदि मणियाँ उससे निकालकर अलग कर दी गयी हों॥ १०॥

जो पुण्य-क्षय होनेके कारण सहसा अपने स्थानसे भ्रष्ट हो पृथ्वीपर आ पहुँची हो, अतएव जिसकी विस्तृत प्रभा क्षीण हो गयी हो, आकाशसे गिरी हुई उस तारिकाकी भाँति अयोध्या शोभाहीन हो गयी थी॥ ११॥

जो ग्रीष्म-ऋतुमें पहले फूलोंसे लदी हुई होनेके कारण मतवाले भ्रमरोंसे सुशोभित होती रही हो और फिर सहसा दावानलके लपेटमें आकर मुरझा गयी हो, वनकी उस लताके समान पहलेकी उल्लासपूर्ण अयोध्या अब उदास हो गयी थी॥ १२॥

वहाँके व्यापारी वणिक् शोकसे व्याकुल होनेके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे, बाजार-हाट और दूकानें बहुत कम खुली थीं। उस समय सारी पुरी उस आकाशकी भाँति शोभाहीन हो गयी थी, जहाँ बादलोंकी घटाएँ घिर आयी हों और तारे तथा चन्द्रमा ढक गये हों॥ १३॥

(उन दिनों अयोध्यापुरीकी सड़कें झाड़ी-बुहारी नहीं गयी थीं, इसलिये यत्र-तत्र कूड़े-करकटके ढेर पड़े थे। उस अवस्थामें) वह नगरी उस उजड़ी हुई पानभूमि (मधुशाला) के समान श्रीहीन दिखायी देती थी, जिसकी सफाई न की गयी हो, जहाँ मधुसे खाली टूटी-फूटी प्यालियाँ पड़ी हों और जहाँके पीनेवाले भी नष्ट हो गये हों॥ १४॥

उस पुरीकी दशा उस पौंसलेकी-सी हो रही थी, जो खम्भोंके टूट जानेसे ढह गया हो, जिसका चबूतरा छिन्न-भिन्न हो गया हो, भूमि नीची हो गयी हो, पानी चुक गया हो और जलपात्र टूट-फूटकर इधर-उधर सब ओर बिखरे पड़े हों॥ १५॥

जो विशाल और सम्पूर्ण धनुषमें फैली हुई हो, उसकी दोनों कोटियों (किनारों) में बाँधनेके लिये जिसमें रस्सी जुड़ी हुई हो, किंतु वेगशाली वीरोंके बाणोंसे कटकर धनुषसे पृथ्वीपर गिर पड़ी हो, उस प्रत्यञ्चाके समान ही अयोध्यापुरी भी स्थानभ्रष्ट हुई-सी दिखायी देती थी॥ १६॥

जिसपर युद्धकुशल घुड़सवारने सवारी की हो और जिसे शत्रुपक्षकी सेनाने सहसा मार गिराया हो, युद्धभूमिमें पड़ी हुई उस घोड़ीकी जो दशा होती है, वही उस समय अयोध्यापुरीकी भी थी (कैकेयीके कुचक्रसे उसके संचालक नरेशका स्वर्गवास और युवराजका

वनवास हो गया था)॥ १७॥

रथपर बैठे हुए श्रीमान् दशरथनन्दन भरतने उस समय श्रेष्ठ रथका संचालन करनेवाले सारथि सुमन्त्रसे इस प्रकार कहा—॥ १८॥

'अब अयोध्यामें पहलेकी भाँति सब ओर फैला हुआ गाने-बजानेका गम्भीर नाद नहीं सुनायी पड़ता; यह कितने कष्टकी बात है!॥ १९॥

'अब चारों ओर वारुणी (मधु) की मादक गन्ध, व्याप्त हुई फूलोंकी सुगन्ध तथा चन्दन और अगुरुकी पवित्र गन्ध नहीं फैल रही है॥ २०॥

'अच्छी-अच्छी सवारियोंकी आवाज, घोड़ोंके हींसनेका सुस्निग्ध शब्द, मतवाले हाथियोंका चिग्घाड़ना तथा रथोंकी घर्घराहटका महान् शब्द—ये सब नहीं सुनायी दे रहे हैं॥ २१॥

'श्रीरामचन्द्रजीके निर्वासित होनेके कारण ही इस पुरीमें इस समय इन सब प्रकारके शब्दोंका श्रवण नहीं हो रहा है। श्रीरामके चले जानेसे यहाँके तरुण बहुत ही संतप्त हैं। वे चन्दन और अगुरुकी सुगन्धका सेवन नहीं करते तथा बहुमूल्य वनमालाएँ भी नहीं धारण करते। अब इस पुरीके लोग विचित्र फूलोंके हार पहनकर बाहर घूमनेके लिये नहीं निकलते हैं॥ २२-२३॥

'श्रीरामके शोकसे पीड़ित हुए इस नगरमें अब नाना प्रकारके उत्सव नहीं हो रहे हैं। निश्चय ही इस पुरीकी वह सारी शोभा मेरे भाईके साथ ही चली गयी॥

'जैसे वेगयुक्त वर्षाके कारण शुक्लपक्षकी चाँदनी रात भी शोभा नहीं पाती है, उसी प्रकार नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई यह अयोध्या भी शोभित नहीं हो रही है। अब कब मेरे भाई महोत्सवकी भाँति अयोध्यामें पधारेंगे और ग्रीष्म-ऋतुमें प्रकट हुए मेघकी भाँति सबके हृदयमें हर्षका संचार करेंगे॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

'अब अयोध्याकी बड़ी-बड़ी सड़कें हर्षसे उछलकर चलते हुए मनोहर वेषधारी तरुणोंके शुभागमनसे शोभा नहीं पा रही हैं'॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार सारथिके साथ बातचीत करते हुए दुःखी भरत उस समय सिंहसे रहित गुफाकी भाँति राजा दशरथसे हीन पिताके निवासस्थान राजमहलमें गये॥

जैसे सूर्यके छिप जानेसे दिनकी शोभा नष्ट हो जाती है और देवता शोक करने लगते हैं, उसी प्रकार उस समय वह अन्तःपुर शोभाहीन हो गया था और वहाँके लोग शोकमग्न थे। उसे सब ओरसे स्वच्छता और सजावटसे हीन देख भरत धैर्यवान् होनेपर भी अत्यन्त दुःखी हो आँसू बहाने लगे॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११४॥

एक सौ पंद्रहवाँ सर्ग

भरतका नन्दिग्राममें जाकर श्रीरामकी चरणपादुकाओंको राज्यपर अभिषिक्त करके उन्हें निवेदनपूर्वक राज्यका सब कार्य करना

तदनन्तर सब माताओंको अयोध्यामें रखकर दृढप्रतिज्ञ भरतने शोकसे संतप्त हो गुरुजनोंसे इस प्रकार कहा—

'अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ। वहाँ श्रीरामके बिना प्राप्त होनेवाले इस सारे दुःखको सहन करूँगा॥ २॥

'अहो! महाराज (पूज्य पिताजी) तो स्वर्गको सिधारे और वे मेरे गुरु (पूजनीय भ्राता) श्रीरामचन्द्रजी वनमें विराज रहे हैं। मैं इस राज्यके लिये वहाँ श्रीरामकी प्रतीक्षा करता रहूँगा; क्योंकि वे महायशस्वी श्रीराम ही हमारे राजा हैं'॥ ३॥

महात्मा भरतका यह शुभ वचन सुनकर सब मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठजी बोले—॥ ४॥

'भरत! भ्रातृभक्तिसे प्रेरित होकर तुमने जो बात कही है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है। वास्तवमें वह तुम्हारे ही योग्य है॥ ५॥

'तुम अपने भाईके दर्शनके लिये सदा लालायित रहते हो और भाईके ही सौहार्द (हितसाधन) में संलग्न हो। साथ ही श्रेष्ठ मार्गपर स्थित हो, अतः कौन पुरुष तुम्हारे विचारका अनुमोदन नहीं करेगा'॥ ६॥

मन्त्रियोंका अपनी रुचिके अनुरूप प्रिय वचन

सुनकर भरतने सारथिसे कहा—'मेरा रथ जोतकर तैयार किया जाय'॥ ७॥

फिर उन्होंने प्रसन्नवदन होकर सब माताओंसे बातचीत करके जानेकी आज्ञा ली। इसके बाद शत्रुघ्नके सहित श्रीमान् भरत रथपर सवार हुए॥ ८॥

रथपर आरूढ़ होकर परम प्रसन्न हुए भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई मन्त्रियों तथा पुरोहितोंसे घिरकर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ९॥

आगे-आगे वसिष्ठ आदि सभी गुरुजन एवं ब्राह्मण चल रहे थे। उन सब लोगोंने अयोध्यासे पूर्वाभिमुख होकर यात्रा की और उस मार्गको पकड़ा, जो नन्दिग्रामकी ओर जाता था॥ १०॥

भरतके प्रस्थित होनेपर हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई सारी सेना भी बिना बुलाये ही उनके पीछे-पीछे चल दी और समस्त पुरवासी भी उनके साथ हो लिये॥ ११॥

धर्मात्मा भ्रातृवत्सल भरत अपने मस्तकपर भगवान् श्रीरामकी चरणपादुका लिये रथपर बैठकर बड़ी शीघ्रतासे नन्दिग्रामकी ओर चले॥ १२॥

नन्दिग्राममें शीघ्र पहुँचकर भरत तुरंत ही रथसे उतर पड़े और गुरुजनोंसे इस प्रकार बोले—॥ १३॥

'मेरे भाईने यह उत्तम राज्य मुझे धरोहरके रूपमें दिया है, उनकी ये सुवर्णविभूषित चरणपादुकाएँ ही सबके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाली हैं'॥ १४॥

तत्पश्चात् भरतने मस्तक झुकाकर उन चरण-पादुकाओंके प्रति उस धरोहररूप राज्यको समर्पित करके दुःखसे संतप्त हो समस्त प्रकृतिमण्डल (मन्त्री, सेनापति और प्रजा आदि) से कहा—॥ १५॥

'आप सब लोग इन चरणपादुकाओंके ऊपर छत्र धारण करें। मैं इन्हें आर्य रामचन्द्रजीके साक्षात् चरण मानता हूँ। मेरे गुरुकी इन चरणपादुकाओंसे ही इस राज्यमें धर्मकी स्थापना होगी॥ १६॥

'मेरे भाईने प्रेमके कारण ही यह धरोहर मुझे सौंपी है, अतः मैं उनके लौटनेतक इसकी भलीभाँति रक्षा करूँगा॥ १७॥

'इसके बाद मैं स्वयं इन पादुकाओंको पुनः शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीके चरणोंसे संयुक्त करके इन पादुकाओंसे सुशोभित श्रीरामके उन युगल चरणोंका दर्शन करूँगा॥ १८॥

'श्रीरघुनाथजीके आनेपर उनसे मिलते ही मैं अपने उन गुरुदेवको यह राज्य समर्पित करके उनकी आज्ञाके अधीन हो उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। राज्यका यह भार उनपर डालकर मैं हलका हो जाऊँगा॥ १९॥

'मेरे पास धरोहररूपमें रखे हुए इस राज्यको, अयोध्याको तथा इन श्रेष्ठ पादुकाओंको श्रीरघुनाथजीकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके पापतापसे मुक्त हो जाऊँगा॥ २०॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक हो जानेपर जब सब लोग हर्ष और आनन्दमें निमग्न हो जायँगे, तब मुझे राज्य पानेकी अपेक्षा चौगुनी प्रसन्नता और चौगुने यशकी प्राप्ति होगी'॥ २१॥

इस प्रकार दीनभावसे विलाप करते हुए दुःखमग्न महायशस्वी भरत मन्त्रियोंके साथ नन्दिग्राममें रहकर राज्यका शासन करने लगे॥ २२॥

सेनासहित प्रभावशाली धीर-वीर भरतने उस समय वल्कल और जटा धारण करके मुनिवेषधारी हो नन्दिग्राममें निवास किया॥ २३॥

भाईकी आज्ञाका पालन और प्रतिज्ञाके पार जानेकी इच्छा करनेवाले भ्रातृवत्सल भरत श्रीरामचन्द्रजीके आगमनकी आकांक्षा रखते हुए उनकी चरणपादुकाओंको राज्यपर अभिषिक्त करके उन दिनों नन्दिग्राममें रहने लगे॥

भरतजी राज्य-शासनका समस्त कार्य भगवान् श्रीरामकी चरणपादुकाओंको निवेदन करके करते थे तथा स्वयं ही उनके ऊपर छत्र लगाते और चँवर डुलाते थे॥ २५॥

श्रीमान् भरत बड़े भाईकी उन पादुकाओंको राज्यपर अभिषिक्त करके सदा उनके अधीन रहकर उन दिनों राज्यका सब कार्य मन्त्री आदिसे कराते थे॥ २६॥

उस समय जो कोई भी कार्य उपस्थित होता, जो भी बहुमूल्य भेंट आती, वह सब पहले उन पादुकाओंको निवेदन करके पीछे भरतजी उसका यथावत् प्रबन्ध करते थे॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ सर्ग

वृद्ध कुलपतिसहित बहुत-से ऋषियोंका चित्रकूट छोड़कर दूसरे आश्रममें जाना

भरतके लौट जानेपर श्रीरामचन्द्रजी उन दिनों जब वनमें निवास करने लगे, तब उन्होंने देखा कि वहाँके तपस्वी उद्विग्न हो वहाँसे अन्यत्र चले जानेके लिये उत्सुक हैं॥ १॥

पहले चित्रकूटके उस आश्रममें जो तपस्वी श्रीरामका आश्रय लेकर सदा आनन्दमग्न रहते थे, उन्हींको श्रीरामने उत्कण्ठित देखा (मानो वे कहीं जानेके विषयमें कुछ कहना चाहते हों)॥ २॥

नेत्रोंसे, भौंहें टेढ़ी करके, श्रीरामकी ओर संकेत करके मन-ही-मन शङ्कित हो आपसमें कुछ सलाह करते हुए वे तपस्वी मुनि धीरे-धीरे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे॥ ३॥

उनकी उत्कण्ठा देख श्रीरामचन्द्रजीके मनमें यह शङ्का हुई कि मुझसे कोई अपराध तो नहीं बन गया। तब वे हाथ जोड़कर वहाँके कुलपति महर्षिसे इस प्रकार बोले—॥ ४॥

'भगवन्! क्या मुझमें पूर्ववर्ती राजाओंका-सा कोई बर्ताव नहीं दिखायी देता अथवा मुझमें कोई विकृत भाव दृष्टिगोचर होता है, जिससे यहाँके तपस्वी मुनि विकारको प्राप्त हो रहे हैं॥ ५॥

'क्या मेरे छोटे भाई महात्मा लक्ष्मणका प्रमादवश किया हुआ कोई ऐसा आचरण ऋषियोंने देखा है, जो उसके योग्य नहीं है॥ ६॥

'अथवा क्या जो अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा सदा आपलोगोंकी सेवा करती रही है, वह सीता इस समय मेरी सेवामें लग जानेके कारण एक गृहस्थकी सती नारीके अनुरूप ऋषियोंकी समुचित सेवा नहीं कर पाती है?'॥ ७॥

श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर एक महर्षि जो जरावस्थाके कारण तो वृद्ध थे ही, तपस्याद्वारा भी वृद्ध हो गये थे, समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाले श्रीरामसे काँपते हुए-से बोले—॥ ८॥

'तात! जो स्वभावसे ही कल्याणमयी है और सदा सबके कल्याणमें ही रत रहती है, वह विदेहनन्दिनी सीता विशेषत: तपस्वीजनोंके प्रति बर्ताव करते समय अपने कल्याणमय स्वभावसे विचलित हो जाय, यह कैसे सम्भव है?॥ ९॥

'आपके ही कारण तापसोंपर यह राक्षसोंकी ओरसे भय उपस्थित होनेवाला है, उससे उद्विग्न हुए ऋषि आपसमें कुछ बातें (कानाफूसी) कर रहे हैं॥ १०॥

'तात! यहाँ वनप्रान्तमें रावणका छोटा भाई खर नामक राक्षस है, जिसने जनस्थानमें रहनेवाले समस्त तापसोंको उखाड़ फेंका है। वह बड़ा ही ढीठ, विजयोन्मत्त, क्रूर, नरभक्षी और घमंडी है। वह आपको भी सहन नहीं कर पाता है॥ ११-१२॥

'तात! जबसे आप इस आश्रममें रह रहे हैं, तबसे सब राक्षस तापसोंको विशेषरूपसे सताने लगे हैं॥

'वे अनार्य राक्षस बीभत्स (घृणित), क्रूर और भीषण, नाना प्रकारके विकृत एवं देखनेमें दु:खदायक रूप धारण करके सामने आते हैं और पापजनक अपवित्र पदार्थोंसे तपस्वियोंका स्पर्श कराकर अपने सामने खड़े हुए अन्य ऋषियोंको भी पीड़ा देते हैं॥ १४-१५॥

'वे उन-उन आश्रमोंमें अज्ञातरूपसे आकर छिप जाते हैं और अल्पज्ञ अथवा असावधान तापसोंका विनाश करते हुए वहाँ सानन्द विचरते रहते हैं॥ १६॥

'होमकर्म आरम्भ होनेपर वे स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञ-सामग्रियोंको इधर-उधर फेंक देते हैं। प्रज्वलित अग्निमें पानी डाल देते हैं और कलशोंको फोड़ डालते हैं॥ १७॥

'उन दुरात्मा राक्षसोंसे आविष्ट हुए आश्रमोंको त्याग देनेकी इच्छा रखकर ये ऋषिलोग आज मुझे यहाँसे अन्य स्थानमें चलनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं॥ १८॥

'श्रीराम! वे दुष्ट राक्षस तपस्वियोंकी शारीरिक हिंसाका प्रदर्शन करें, इसके पहले ही हम इस आश्रमको त्याग देंगे॥ १९॥

'यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक विचित्र वन है, जहाँ फल-मूलकी अधिकता है। वहीं अश्वमुनिका आश्रम है, अत: ऋषियोंके समूहको साथ लेकर मैं पुन: उसी आश्रमका आश्रय लूँगा॥ २०॥

'श्रीराम! खर आपके प्रति भी कोई अनुचित बर्ताव करे, उसके पहले ही यदि आपका विचार हो तो हमारे साथ ही यहाँसे चल दीजिये॥ २१॥

'रघुनन्दन! यद्यपि आप सदा सावधान रहनेवाले तथा राक्षसोंके दमनमें समर्थ हैं, तथापि पत्नीके साथ आजकल उस आश्रममें आपका रहना संदेहजनक एवं दु:खदायक है'॥ २२॥

ऐसी बात कहकर अन्यत्र जानेके लिये उत्कण्ठित हुए उन तपस्वी मुनिको राजकुमार श्रीराम सान्त्वनाजनक उत्तरवाक्योंद्वारा वहाँ रोक नहीं सके॥ २३॥

तत्पश्चात् वे कुलपति महर्षि श्रीरामचन्द्रजीका अभिनन्दन करके उनसे पूछकर और उन्हें सान्त्वना देकर इस आश्रमको छोड़ वहाँसे अपने दलके ऋषियोंके साथ चले गये॥ २४॥

श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे जानेवाले ऋषियोंके पीछे-पीछे जाकर उन्हें विदा दे कुलपति ऋषिको प्रणाम करके परम प्रसन्न हुए उन ऋषियोंकी अनुमति ले उनके दिये हुए कर्तव्यविषयक उपदेशको सुनकर लौटे और निवास करनेके लिये अपने पवित्र आश्रममें आये॥ २५॥

उन ऋषियोंसे रहित हुए आश्रमको भगवान् श्रीरामने एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ा। जिनका ऋषियोंके समान ही चरित्र था, उन श्रीरामचन्द्रजीमें निश्चय ही ऋषियोंकी रक्षाकी शक्तिरूप गुण विद्यमान है। ऐसा विश्वास रखनेवाले कुछ तपस्वीजनोंने सदा श्रीरामका ही अनुसरण किया। वे दूसरे किसी आश्रममें नहीं गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११६॥

एक सौ सत्रहवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका अत्रिमुनिके आश्रमपर जाकर उनके द्वारा सत्कृत होना तथा अनसूयाद्वारा सीताका सत्कार

उन सब ऋषियोंके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने जब बारंबार विचार किया, तब उन्हें बहुत-से ऐसे कारण ज्ञात हुए, जिनसे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा॥ १॥

उन्होंने मन-ही-मन सोचा, 'इस आश्रममें मैं भरतसे, माताओंसे तथा पुरवासी मनुष्योंसे मिल चुका हूँ। वह स्मृति मुझे बराबर बनी रहती है और मैं प्रतिदिन उन सब लोगोंका चिन्तन करके शोकमग्न हो जाता हूँ॥

'महात्मा भरतकी सेनाका पड़ाव पड़नेके कारण हाथी और घोड़ोंकी लीदोंसे यहाँकी भूमि अधिक अपवित्र कर दी गयी है॥ ३॥

'अत: हमलोग भी अन्यत्र चले जायँ' ऐसा सोचकर श्रीरघुनाथजी सीता और लक्ष्मणके साथ वहाँसे चल दिये॥

वहाँसे अत्रिके आश्रमपर पहुँचकर महायशस्वी श्रीरामने उन्हें प्रणाम किया तथा भगवान् अत्रिने भी उन्हें अपने पुत्रकी भाँति स्नेहपूर्वक अपनाया॥ ५॥

उन्होंने स्वयं ही श्रीरामका सम्पूर्ण आतिथ्य-सत्कार करके महाभाग लक्ष्मण और सीताको भी सत्कारपूर्वक संतुष्ट किया॥ ६॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अत्रिने अपने समीप आयी हुई सबके द्वारा सम्मानित तापसी एवं धर्मपरायणा बूढ़ी पत्नी महाभागा अनसूयाको सम्बोधित करके सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा संतुष्ट किया और कहा—'देवि! विदेहराजनन्दिनी सीताको सत्कारपूर्वक हृदयसे लगाओ'॥ ७-८॥

तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूयाका परिचय देते हुए कहा—'एक समय दस वर्षोंतक वृष्टि नहीं हुई, उस समय जब सारा जगत् निरन्तर दग्ध होने लगा, तब जिन्होंने उग्र तपस्यासे युक्त तथा कठोर नियमोंसे अलंकृत होकर अपने तपके प्रभावसे यहाँ फल-मूल उत्पन्न किये और मन्दाकिनीकी पवित्र धारा बहायी तथा तात! जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या करके अपने उत्तम व्रतोंके प्रभावसे ऋषियोंके समस्त विघ्नोंका निवारण किया था, वे ही यह अनसूया देवी हैं॥ ९—११॥

'निष्पाप श्रीराम! इन्होंने देवताओंके कार्यके लिये अत्यन्त उतावली होकर दस रातके बराबर एक ही रात बनायी थी; वे ही ये अनसूया देवी तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीया हैं॥ १२॥

'ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीया तपस्विनी हैं। क्रोध तो इन्हें कभी छू भी नहीं सका है। विदेहनन्दिनी सीता इन वृद्धा अनसूया देवीके पास जायँ'॥ १३॥

ऐसी बात कहते हुए अत्रि मुनिसे 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने धर्मज्ञा सीताकी ओर देखकर यह बात कही—॥ १४॥

'राजकुमारी! महर्षि अत्रिके वचन तो तुमने सुन ही लिये; अब अपने कल्याणके लिये तुम शीघ्र ही इन तपस्विनी देवीके पास जाओ॥ १५॥

'जो अपने सत्कर्मोंसे संसारमें अनसूयाके नामसे विख्यात हुई हैं, वे तपस्विनी देवी तुम्हारे आश्रय लेने योग्य हैं; तुम शीघ्र उनके पास जाओ'॥ १६॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर यशस्विनी मिथिलेशकुमारी सीता धर्मको जाननेवाली अत्रिपत्नी अनसूयाके पास गयीं॥ १७॥

अनसूया वृद्धावस्थाके कारण शिथिल हो गयी थीं; उनके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं थीं तथा सिरके बाल सफेद हो गये थे। अधिक हवा चलनेपर हिलते हुए कदली-वृक्षके समान उनके सारे अङ्ग निरन्तर काँप रहे थे॥

सीताने निकट जाकर शान्तभावसे अपना नाम बताया और उन महाभागा पतिव्रता अनसूयाको प्रणाम किया॥ १९॥

उन संयमशीला तपस्विनीको प्रणाम करके हर्षसे भरी हुई सीताने दोनों हाथ जोड़कर उनका कुशल-समाचार पूछा॥ २०॥

धर्मका आचरण करनेवाली महाभागा सीताको देखकर बूढ़ी अनसूया देवी उन्हें सान्त्वना देती हुई बोलीं—'सीते! सौभाग्यकी बात है कि तुम धर्मपर ही दृष्टि रखती हो॥ २१॥

'मानिनी सीते! बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर और उनसे प्राप्त होनेवाली मान-प्रतिष्ठाका परित्याग करके तुम वनमें भेजे हुए श्रीरामका अनुसरण कर रही हो—यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥ २२॥

'अपने स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियोंको वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है॥ २३॥

'पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है॥ २४॥

'विदेहराजनन्दिनि! मैं बहुत विचार करनेपर भी पतिसे बढ़कर कोई हितकारी बन्धु नहीं देखती। अपनी की हुई तपस्याके अविनाशी फलकी भाँति वह इस लोकमें और परलोकमें सर्वत्र सुख पहुँचानेमें समर्थ होता है॥ २५॥

'जो अपने पतिपर भी शासन करती हैं, वे कामके अधीन चित्तवाली असाध्वी स्त्रियाँ इस प्रकार पतिका अनुसरण नहीं करतीं। उन्हें गुण-दोषोंका ज्ञान नहीं होता; अतः वे इच्छानुसार इधर-उधर विचरती रहती हैं॥ २६॥

'मिथिलेशकुमारी! ऐसी नारियाँ अवश्य ही अनुचित कर्ममें फँसकर धर्मसे भ्रष्ट हो जाती हैं और संसारमें उन्हें अपयशकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

'किंतु जो तुम्हारे समान लोक-परलोकको जाननेवाली साध्वी स्त्रियाँ हैं, वे उत्तम गुणोंसे युक्त होकर पुण्यकर्मोंमें संलग्न रहती हैं; अतः वे दूसरे पुण्यात्माओंकी भाँति स्वर्गलोकमें विचरण करेंगी॥ २८॥

'अतः तुम इसी प्रकार अपने इन पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगी रहो—सतीधर्मका पालन करो, पतिको प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई अपने स्वामीकी सहधर्मिणी बनो, इससे तुम्हें सुयश और धर्म दोनोंकी प्राप्ति होगी'॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११७॥

एक सौ अठारहवाँ सर्ग

सीता-अनसूया-संवाद, अनसूयाका सीताको प्रेमोपहार देना तथा अनसूयाके पूछनेपर सीताका उन्हें अपने स्वयंवरकी कथा सुनाना

तपस्विनी अनसूयाके इस प्रकार उपदेश देनेपर किसीके प्रति दोषदृष्टि न रखनेवाली विदेहराजकुमारी सीताने उनके वचनोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके धीरे-धीरे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ १॥

'देवि! आप संसारकी स्त्रियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। आपके मुँहसे ऐसी बातोंका सुनना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। नारीका गुरु पति ही है, इस विषयमें जैसा आपने उपदेश किया है, यह बात मुझे भी पहलेसे ही विदित है॥ २॥

'मेरे पतिदेव यदि अनार्य (चरित्रहीन) तथा जीविकाके साधनोंसे रहित (निर्धन) होते तो भी मैं बिना किसी दुविधाके इनकी सेवामें लगी रहती॥ ३॥

'फिर जब कि ये अपने गुणोंके कारण ही सबकी प्रशंसाके पात्र हैं, तब तो इनकी सेवाके लिये कहना ही क्या है। ये श्रीरघुनाथजी परम दयालु, जितेन्द्रिय, दृढ़ अनुराग रखनेवाले, धर्मात्मा तथा माता-पिताके समान प्रिय हैं॥ ४॥

'महाबली श्रीराम अपनी माता कौसल्याके प्रति जैसा बर्ताव करते हैं वैसा ही महाराज दशरथकी दूसरी रानियोंके साथ भी करते हैं॥ ५॥

'महाराज दशरथने एक बार भी जिन स्त्रियोंको प्रेमदृष्टिसे देख लिया है, उनके प्रति भी ये पितृवत्सल धर्मज्ञ वीर श्रीराम मान छोड़कर माताके समान ही बर्ताव करते हैं॥ ६॥

'जब मैं पतिके साथ निर्जन वनमें आने लगी, उस समय मेरी सास कौसल्याने मुझे जो कर्तव्यका उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें ज्यों-का-त्यों स्थिरभावसे अङ्कित है॥ ७॥

'पहले मेरे विवाह-कालमें अग्निके समीप माताने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह भी मुझे अच्छी तरह याद है॥ ८॥

'धर्मचारिणि! इसके सिवा मेरे अन्य स्वजनोंने अपने वचनोंद्वारा जो-जो उपदेश किया है, वह भी मुझे भूला नहीं है। स्त्रीके लिये पतिकी सेवाके अतिरिक्त दूसरे किसी तपका विधान नहीं है॥ ९॥

'सत्यवान्‌की पत्नी सावित्री पतिकी सेवा करके ही स्वर्गलोकमें पूजित हो रही हैं। उन्हींके समान बर्ताव करनेवाली आप (अनसूया देवी) ने भी पतिकी सेवाके ही प्रभावसे स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त कर लिया है॥ १०॥

'सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठ यह स्वर्गकी देवी रोहिणी पतिसेवाके प्रभावसे ही एक मुहूर्तके लिये भी चन्द्रमासे बिलग होती नहीं देखी जाती॥ ११॥

'इस प्रकार दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली बहुत-सी साध्वी स्त्रियाँ अपने पुण्यकर्मके बलसे देवलोकमें आदर पा रही हैं'॥ १२॥

तदनन्तर सीताके कहे हुए वचन सुनकर अनसूयाको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उनका मस्तक सूँघा और फिर उन मिथिलेशकुमारीका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा—

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीते! मैंने अनेक प्रकारके नियमोंका पालन करके बहुत बड़ी तपस्या संचित की है। उस तपोबलका ही आश्रय लेकर मैं तुमसे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहती हूँ॥ १४॥

'मिथिलेशकुमारी सीते! तुमने बहुत ही युक्तियुक्त और उत्तम वचन कहा है। उसे सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ है, अतः बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'॥

उनका यह कथन सुनकर सीताको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे तपोबलसम्पन्न अनसूयासे मन्द-मन्द मुसकराती हुई बोलीं—'आपने अपने वचनोंद्वारा ही मेरा सारा प्रिय कार्य कर दिया, अब और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है'॥

सीताके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ अनसूयाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोलीं—'सीते! तुम्हारी निर्लोभतासे जो मुझे विशेष हर्ष हुआ है (अथवा तुममें जो लोभहीनताके कारण सदा आनन्दोत्सव भरा रहता है), उसे मैं अवश्य सफल करूँगी॥ १७॥

'यह सुन्दर दिव्य हार, यह वस्त्र, ये आभूषण, यह अङ्गराग और बहुमूल्य अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। विदेह-नन्दिनि सीते! मेरी दी हुई ये वस्तुएँ तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ायेंगी। ये सब तुम्हारे ही योग्य हैं और सदा उपयोगमें लायी जानेपर निर्दोष एवं निर्विकार रहेंगी॥

'जनककिशोरी! इस दिव्य अङ्गरागको अङ्गोंमें लगाकर तुम अपने पतिको उसी प्रकार सुशोभित करोगी, जैसे लक्ष्मी अविनाशी भगवान् विष्णुकी शोभा बढ़ाती है'॥

अनसूयाकी आज्ञासे धीर स्वभाववाली यशस्विनी मिथिलेशकुमारी सीताने उस वस्त्र, अङ्गराग, आभूषण और हारको उनकी प्रसन्नताका परम उत्तम उपहार समझकर ले लिया। उस प्रेमोपहारको ग्रहण करके वे दोनों हाथ जोड़कर उन तपोधना अनसूयाकी सेवामें बैठी रहीं॥

तदनन्तर इस प्रकार अपने निकट बैठी हुई सीतासे दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अनसूयाने कोई परम प्रिय कथा सुनानेके लिये इस प्रकार पूछना आरम्भ किया—॥ २३॥

'सीते! इन यशस्वी राघवेन्द्रने तुम्हें स्वयंवरमें प्राप्त किया था, यह बात मेरे सुननेमें आयी है॥ २४॥

'मिथिलेशनन्दिनि! मैं उस वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुनना चाहती हूँ। अतः जो कुछ जिस प्रकार हुआ, वह सब पूर्णरूपसे मुझे बताओ'॥ २५॥

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर सीताने उन धर्मचारिणी तापसी अनसूयासे कहा—'माताजी! सुनिये।' ऐसा कहकर उन्होंने उस कथाको इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'मिथिला जनपदके वीर राजा 'जनक' नामसे प्रसिद्ध हैं। वे धर्मके ज्ञाता हैं, अत: क्षत्रियोचित कर्ममें तत्पर रहकर न्यायपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हैं॥ २७॥

'एक समयकी बात है, वे यज्ञके योग्य क्षेत्रको हाथमें हल लेकर जोत रहे थे; इसी समय मैं पृथ्वीको फाड़कर प्रकट हुई। इतनेमात्रसे ही मैं राजा जनककी पुत्री हुई॥

'वे राजा उस क्षेत्रमें ओषधियोंको मुट्ठीमें लेकर बो रहे थे। इतनेहीमें उनकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। मेरे सारे अङ्गोंमें धूल लिपटी हुई थी। उस अवस्थामें मुझे देखकर राजा जनकको बड़ा विस्मय हुआ॥ २९॥

'उन दिनों उनके कोई दूसरी संतान नहीं थी, इसलिये स्नेहवश उन्होंने स्वयं मुझे गोदमें ले लिया और 'यह मेरी बेटी है' ऐसा कहकर मुझपर अपने हृदयका सारा स्नेह उड़ेल दिया॥ ३०॥

'इसी समय आकाशवाणी हुई, जो स्वरूपत: मानवी भाषामें कही गयी थी (अथवा मेरे विषयमें प्रकट हुई वह वाणी अमानुषी—दिव्य थी)। उसने कहा—'नरेश्वर! तुम्हारा कथन ठीक है, यह कन्या धर्मत: तुम्हारी ही पुत्री है'॥

'यह आकाशवाणी सुनकर मेरे धर्मात्मा पिता मिथिलानरेश बड़े प्रसन्न हुए। मुझे पाकर उन नरेशने मानो कोई बड़ी समृद्धि पा ली थी॥ ३२॥

'उन्होंने पुण्यकर्मपरायणा बड़ी रानीको, जो उन्हें अधिक प्रिय थीं, मुझे दे दिया। उन स्नेहमयी महारानीने मातृसमुचित सौहार्दसे मेरा लालन-पालन किया॥ ३३॥

'जब पिताने देखा कि मेरी अवस्था विवाहके योग्य हो गयी, तब इसके लिये वे बड़ी चिन्तामें पड़े। जैसे कमाये हुए धनका नाश हो जानेसे निर्धन मनुष्यको बड़ा दु:ख होता है, उसी प्रकार वे मेरे विवाहकी चिन्तासे बहुत दु:खी हो गये॥ ३४॥

'संसारमें कन्याके पिताको, वह भूतलपर इन्द्रके ही तुल्य क्यों न हो, वरपक्षके लोगोंसे, वे अपने समान या अपनेसे छोटी हैसियतके ही क्यों न हों, प्राय: अपमान उठाना पड़ता है॥ ३५॥

'वह अपमान सहन करनेकी घड़ी अपने लिये बहुत समीप आ गयी है, यह देखकर राजा चिन्ताके समुद्रमें डूब गये। जैसे नौकारहित मनुष्य पार नहीं पहुँच पाता, उसी प्रकार मेरे पिता भी चिन्ताका पार नहीं पा रहे थे॥

'मुझे अयोनिजा कन्या समझकर वे भूपाल मेरे लिये योग्य और परम सुन्दर पतिका विचार करने लगे; किंतु किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके॥ ३७॥

'सदा मेरे विवाहकी चिन्तामें पड़े रहनेवाले उन महाराजके मनमें एक दिन यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं धर्मत: अपनी पुत्रीका स्वयंवर करूँगा॥ ३८॥

'उन्हीं दिनों उनके एक महान् यज्ञमें प्रसन्न होकर महात्मा वरुणने उन्हें एक श्रेष्ठ दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस दिये॥ ३९॥

'वह धनुष इतना भारी था कि मनुष्य पूरा प्रयत्न करनेपर भी उसे हिला भी नहीं पाते थे। भूमण्डलके नरेश स्वप्नमें भी उस धनुषको झुकानेमें असमर्थ थे॥ ४०॥

'उस धनुषको पाकर मेरे सत्यवादी पिताने पहले भूमण्डलके राजाओंको आमन्त्रित करके उन नरेशोंके समूहमें यह बात कही—॥ ४१॥

'जो मनुष्य इस धनुषको उठाकर इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, मेरी पुत्री सीता उसीकी पत्नी होगी; इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

'अपने भारीपनके कारण पहाड़-जैसे प्रतीत होनेवाले उस श्रेष्ठ धनुषको देखकर वहाँ आये हुए राजा जब उसे उठानेमें समर्थ न हो सके, तब उसे प्रणाम करके चले गये॥ ४३॥

'तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् ये महातेजस्वी रघुकुल-नन्दन सत्यपराक्रमी श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्रजीके साथ मेरे पिताका यज्ञ देखनेके लिये मिथिलामें पधारे। उस समय मेरे पिताने धर्मात्मा विश्वामित्र मुनिका बड़ा आदर-सत्कार किया॥ ४४-४५॥

'तब वहाँ विश्वामित्रजी मेरे पितासे बोले—'राजन्! ये दोनों रघुकुलभूषण श्रीराम और लक्ष्मण महाराज दशरथके पुत्र हैं और आपके उस दिव्य धनुषका दर्शन करना चाहते हैं। आप अपना वह देवप्रदत्त धनुष राजकुमार श्रीरामको दिखाइये'॥ ४६॥

'विप्रवर विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर पिताजीने उस दिव्य धनुषको मँगवाया और राजकुमार श्रीरामको उसे दिखाया॥ ४७॥

'महाबली और परम पराक्रमी श्रीरामने पलक

मारते-मारते उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और उसे तुरंत कानतक खींचा॥ ४८॥

'उनके वेगपूर्वक खींचते समय वह धनुष बीचसे ही टूट गया और उसके दो टुकड़े हो गये। उसके टूटते समय ऐसा भयंकर शब्द हुआ मानो वहाँ वज्र टूट पड़ा हो॥ ४९॥

'तब मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिताने जलका उत्तम पात्र लेकर श्रीरामके हाथमें मुझे दे देनेका उद्योग किया॥ ५०॥

'उस समय अपने पिता अयोध्यानरेश महाराज दशरथके अभिप्रायको जाने बिना श्रीरामने राजा जनकके देनेपर भी मुझे नहीं ग्रहण किया॥ ५१॥

'तदनन्तर मेरे बूढ़े श्वशुर राजा दशरथकी अनुमति लेकर पिताजीने आत्मज्ञानी श्रीरामको मेरा दान कर दिया॥ ५२॥

'तत्पश्चात् पिताजीने स्वयं ही मेरी छोटी बहिन सती साध्वी परम सुन्दरी ऊर्मिलाको लक्ष्मणकी पत्नीरूपसे उनके हाथमें दे दिया॥ ५३॥

'इस प्रकार उस स्वयंवरमें पिताजीने श्रीरामके हाथमें मुझको सौंपा था। मैं धर्मके अनुसार अपने पति बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीराममें सदा अनुरक्त रहती हूँ'॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग

अनसूयाकी आज्ञासे सीताका उनके दिये हुए वस्त्राभूषणोंको धारण करके श्रीरामजीके पास आना तथा श्रीराम आदिका रात्रिमें आश्रमपर रहकर प्रातःकाल अन्यत्र जानेके लिये ऋषियोंसे विदा लेना

धर्मको जाननेवाली अनसूयाने उस लंबी कथाको सुनकर मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे अङ्कमें भर लिया और उनका मस्तक सूँघकर कहा—

'बेटी! तुमने सुस्पष्ट अक्षरवाले शब्दोंमें यह विचित्र एवं मधुर प्रसङ्ग सुनाया। तुम्हारा स्वयंवर जिस प्रकार हुआ था, वह सब मैंने सुन लिया॥ २॥

'मधुरभाषिणी सीते! तुम्हारी इस कथामें मेरा मन बहुत लग रहा है; तथापि तेजस्वी सूर्यदेव रजनीकी शुभ वेलाको निकट पहुँचाकर अस्त हो गये। जो दिनमें चारा चुगनेके लिये चारों ओर छिटके हुए थे, वे पक्षी अब संध्याकालमें नींद लेनेके लिये अपने घोंसलोंमें आकर छिप गये हैं; उनकी यह ध्वनि सुनायी दे रही है॥ ३-४॥

'ये जलसे भीगे हुए वल्कल धारण करनेवाले मुनि, जिनके शरीर स्नानके कारण आर्द्र दिखायी देते हैं, जलसे भरे कलश उठाये एक साथ आश्रमकी ओर लौट रहे हैं॥ ५॥

'महर्षि (अत्रि) ने विधिपूर्वक अग्निहोत्र-सम्बन्धी होमकर्म सम्पन्न कर लिया है, अतः वायुके वेगसे ऊपरको उठा हुआ यह कबूतरके कण्ठकी भाँति श्यामवर्णका धूम दिखायी दे रहा है॥ ६॥

'अपनी इन्द्रियोंसे दूर देशमें चारों ओर जो वृक्ष दिखायी देते हैं, वे थोड़े पत्तेवाले होनेपर भी अन्धकारसे व्याप्त हो घनीभूत हो गये हैं; अतएव दिशाओंका भान नहीं हो रहा है॥ ७॥

'रातको विचरनेवाले प्राणी (उल्लू आदि) सब ओर विचरण कर रहे हैं तथा ये तपोवनके मृग पुण्यक्षेत्रस्वरूप आश्रमके वेदी आदि विभिन्न प्रदेशोंमें सो रहे हैं॥ ८॥

'सीते! अब रात हो गयी, वह नक्षत्रोंसे सज गयी है। आकाशमें चन्द्रदेव चाँदनीकी चादर ओढ़े उदित दिखायी देते हैं॥ ९॥

'अतः अब जाओ, मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा देती हूँ। जाकर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लग जाओ। तुमने अपनी मीठी-मीठी बातोंसे मुझे भी बहुत संतुष्ट किया है॥ १०॥

'बेटी! मिथिलेशकुमारी! पहले मेरी आँखोंके सामने अपने-आपको अलंकृत करो। इन दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण करके इनसे सुशोभित हो मुझे प्रसन्न करो'॥ ११॥

यह सुनकर देवकन्याके समान सुन्दरी सीताने उस समय उन वस्त्राभूषणोंसे अपना शृङ्गार किया और अनसूयाके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर वे श्रीरामके सम्मुख गयीं॥ १२॥

श्रीरामने जब इस प्रकार सीताको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित देखा, तब तपस्विनी अनसूयाके उस प्रेमोपहारके दर्शनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १३॥

उस समय मिथिलेशकुमारी सीताने तपस्विनी अनसूयाके हाथसे जिस प्रकार वस्त्र, आभूषण और हार आदिका प्रेमोपहार प्राप्त हुआ था, वह सब श्रीरामचन्द्रजीसे कह सुनाया॥ १४॥

भगवान् श्रीराम और महारथी लक्ष्मण सीताका वह सत्कार, जो मनुष्योंके लिये सर्वथा दुर्लभ है, देखकर बहुत प्रसन्न हुए॥ १५॥

तदनन्तर समस्त तपस्विजनोंसे सम्मानित हुए रघुकुलनन्दन श्रीरामने अनसूयाके दिये हुए पवित्र अलंकार आदिसे अलंकृत चन्द्रमुखी सीताको देखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ रात्रिभर निवास किया॥ १६॥

वह रात बीतनेपर जब सभी वनवासी तपस्वी मुनि स्नान करके अग्निहोत्र कर चुके, तब पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणने उनसे जानेके लिये आज्ञा माँगी॥ १७॥

तब वे धर्मपरायण वनवासी तपस्वी उन दोनों भाइयोंसे इस प्रकार बोले—'रघुनन्दन! इस वनका मार्ग राक्षसोंसे आक्रान्त है—यहाँ उनका उपद्रव होता रहता है। इस विशाल वनमें नानारूपधारी नरभक्षी राक्षस तथा रक्तभोजी हिंसक पशु निवास करते हैं॥ १८-१९॥

'राघवेन्द्र! जो तपस्वी और ब्रह्मचारी यहाँ अपवित्र अथवा असावधान अवस्थामें मिल जाता है, उसे वे राक्षस और हिंसक जन्तु इस महान् वनमें खा जाते हैं; अतः आप उन्हें रोकिये—यहाँसे मार भगाइये॥ २०॥

'रघुकुलभूषण! यही वह मार्ग है, जिससे महर्षिलोग वनके भीतर फल-मूल लेनेके लिये जाते हैं। आपको भी इसी मार्गसे इस दुर्गम वनमें प्रवेश करना चाहिये'॥ २१॥

तपस्वी ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर जब ऐसी बातें कहीं और उनकी मङ्गलयात्राके लिये स्वस्तिवाचन किया, तब शत्रुओंको संताप देनेवाले भगवान् श्रीरामने अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ उस वनमें प्रवेश किया, मानो सूर्यदेव मेघोंकी घटाके भीतर घुस गये हों॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अयोध्याकाण्डमें एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११९॥

॥ अयोध्याकाण्ड समाप्त ॥

करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

अरण्यकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताका तापसोंके आश्रममण्डलमें सत्कार

दण्डकारण्य नामक महान् वनमें प्रवेश करके मनको वशमें रखनेवाले दुर्जय वीर श्रीरामने तपस्वी मुनियोंके बहुत-से आश्रम देखे॥ १ ॥

वहाँ कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रममण्डल ऋषियोंकी ब्रह्मविद्याके अभ्याससे प्रकट हुए विलक्षण तेजसे व्याप्त था, इसलिये आकाशमें प्रकाशित होनेवाले दुर्दर्श सूर्य-मण्डलकी भाँति वह भूतलपर उद्‌दीप्त हो रहा था। राक्षस आदिके लिये उसकी ओर देखना भी कठिन था॥ २ ॥

वह आश्रमसमुदाय सभी प्राणियोंको शरण देनेवाला था। उसका आँगन सदा झाड़ने-बुहारनेसे स्वच्छ बना रहता था। वहाँ बहुत-से वन्य पशु भरे रहते थे और पक्षियोंके समुदाय भी उसे सब ओरसे घेरे रहते थे॥ ३ ॥

वहाँका प्रदेश इतना मनोरम था कि वहाँ अप्सराएँ प्रतिदिन आकर नृत्य करती थीं। उस स्थानके प्रति उनके मनमें बड़े आदरका भाव था। बड़ी-बड़ी अग्निशालाएँ, स्रुवा आदि यज्ञपात्र, मृगचर्म, कुश, समिधा, जलपूर्ण कलश तथा फल-मूल उसकी शोभा बढ़ाते थे। स्वादिष्ट फल देनेवाले परम पवित्र तथा बड़े-बड़े वन्य वृक्षोंसे वह आश्रममण्डल घिरा हुआ था॥ ४-५ ॥

बलिवैश्वदेव और होमसे पूजित वह पवित्र आश्रमसमूह वेदमन्त्रोंके पाठकी ध्वनिसे गूँजता रहता था। कमलपुष्पोंसे सुशोभित पुष्करिणी उस स्थानकी शोभा बढ़ाती थी तथा वहाँ और भी बहुत-से फूल सब ओर बिखरे हुए थे॥ ६ ॥

उन आश्रमोंमें चीर और काला मृगचर्म धारण करनेवाले तथा फल-मूलका आहार करके रहनेवाले, जितेन्द्रिय एवं सूर्य और अग्निके तुल्य महातेजस्वी, पुरातन मुनि निवास करते थे॥ ७ ॥

नियमित आहार करनेवाले पवित्र महर्षियोंसे सुशोभित वह आश्रमसमूह ब्रह्माजीके धामकी भाँति तेजस्वी तथा वेदध्वनिसे निनादित था॥ ८ ॥

अनेक महाभाग ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण उन आश्रमोंकी शोभा बढ़ाते थे। महातेजस्वी श्रीरामने उस आश्रममण्डलको देखकर अपने महान् धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार दी, फिर वे आश्रमके भीतर गये॥ ९½ ॥

श्रीराम तथा यशस्विनी सीताको देखकर वे दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न महर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके पास गये॥ १० ॥

दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वे महर्षि उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर, धर्मात्मा श्रीरामको, लक्ष्मणको और यशस्विनी विदेहराजकुमारी सीताको भी देखकर उन सबके लिये मङ्गलमय आशीर्वाद देने लगे। उन्होंने उन तीनोंको आदरणीय अतिथिके रूपमें ग्रहण किया॥ ११-१२ ॥

श्रीरामके रूप, शरीरकी गठन, कान्ति, सुकुमारता तथा सुन्दर वेषको उन वनवासी मुनियोंने आश्चर्यचकित होकर देखा॥ १३ ॥

वनमें निवास करनेवाले वे सभी मुनि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता—तीनोंको एकटक नेत्रोंसे देखने लगे। उनका स्वरूप उन्हें आश्चर्यमय प्रतीत होता था॥ १४ ॥

समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने वहाँ अपने प्रिय अतिथि इन भगवान् श्रीरामको पर्णशालामें ले जाकर ठहराया॥ १५ ॥

अग्नितुल्य तेजस्वी और धर्मपरायण उन महाभाग मुनियोंने श्रीरामको विधिवत् सत्कारके साथ जल समर्पित किया॥ १६ ॥

फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ मङ्गलसूचक आशीर्वाद देते हुए उन महात्मा श्रीरामको उन्होंने फल-मूल और फूल आदिके साथ सारा आश्रम भी समर्पित कर दिया॥ १७ ॥

सब कुछ निवेदन करके वे धर्मज्ञ मुनि हाथ जोड़कर बोले—'रघुनन्दन! दण्ड धारण करनेवाला राजा धर्मका पालक, महायशस्वी, इस जन-समुदायको शरण देनेवाला माननीय, पूजनीय और सबका गुरु है। इस भूतलपर इन्द्र (आदि लोकपालों) का ही चौथा अंश होनेके कारण वह प्रजाकी रक्षा करता है, अत: राजा सबसे वन्दित होता तथा उत्तम एवं रमणीय भोगोंका उपभोग करता है। (जब साधारण राजाकी यह स्थिति है, तब आपके लिये तो क्या कहना है। आप तो साक्षात् भगवान् हैं)॥ १८-१९॥

'हम आपके राज्यमें निवास करते हैं, अत: आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। आप नगरमें रहें या वनमें, हमलोगोंके राजा ही हैं। आप समस्त जनसमुदायके शासक एवं पालक हैं॥ २०॥

'राजन्! हमने जीवमात्रको दण्ड देना छोड़ दिया है, क्रोध और इन्द्रियोंको जीत लिया है। अब तपस्या ही हमारा धन है। जैसे माता गर्भस्थ बालककी रक्षा करती है, उसी प्रकार आपको सदा सब तरहसे हमारी रक्षा करनी चाहिये'॥ २१॥

ऐसा कहकर उन तपस्वी मुनियोंने वनमें उत्पन्न होनेवाले फल, मूल, फूल तथा अन्य अनेक प्रकारके आहारोंसे लक्ष्मण (और सीता) सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सत्कार किया॥ २२॥

इनके सिवा दूसरे अग्नितुल्य तेजस्वी तथा न्याययुक्त बर्ताववाले सिद्ध तापसोंने भी सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामको यथोचित रूपसे तृप्त किया॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

वनके भीतर श्रीराम, लक्ष्मण और सीतापर विराधका आक्रमण

रात्रिमें उन महर्षियोंका आतिथ्य ग्रहण करके सबेरे सूर्योदय होनेपर समस्त मुनियोंसे विदा ले श्रीरामचन्द्रजी पुन: वनमें ही आगे बढ़ने लगे॥ १॥

जाते-जाते लक्ष्मणसहित श्रीरामने वनके मध्यभागमें एक ऐसे स्थानको देखा, जो नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त था। वहाँ बहुत-से रीछ और बाघ रहा करते थे। वहाँके वृक्ष, लता और झाड़ियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थीं। उस वनप्रान्तमें किसी जलाशयका दर्शन होना कठिन था। वहाँके पक्षी वहीं चहक रहे थे। झींगुरोंकी झंकार गूँज रही थी॥ २-३॥

भयंकर जंगली पशुओंसे भरे हुए उस दुर्गम वनमें सीताके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक नरभक्षी राक्षस देखा, जो पर्वतशिखरके समान ऊँचा था और उच्चस्वरसे गर्जना कर रहा था॥ ४॥

उसकी आँखें गहरी, मुँह बहुत बड़ा, आकार विकट और पेट विकराल था। वह देखनेमें बड़ा भयंकर, घृणित, बेडौल, बहुत बड़ा और विकृत वेशसे युक्त था॥ ५॥

उसने खूनसे भीगा और चरबीसे गीला व्याघ्रचर्म पहन रखा था। समस्त प्राणियोंको त्रास पहुँचानेवाला वह राक्षस यमराजके समान मुँह बाये खड़ा था॥ ६॥

वह एक लोहेके शूलमें तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस चितकबरे हरिण और दाँतोंसहित एक बहुत बड़ा हाथीका मस्तक, जिसमें चर्बी लिपटी हुई थी, गाँथकर जोर-जोरसे दहाड़ रहा था॥ ७$\frac{१}{२}$॥

श्रीराम, लक्ष्मण और मिथिलेशकुमारी सीताको देखते ही वह क्रोधमें भरकर भैरवनाद करके पृथ्वीको कम्पित करता हुआ उन सबकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे प्राणान्तकारी काल प्रजाकी ओर अग्रसर होता है॥

वह विदेहनन्दिनी सीताको गोदमें ले कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया। फिर उन दोनों भाइयोंसे बोला—'तुम दोनों जटा और चीर धारण करके भी स्त्रीके साथ रहते हो और हाथमें धनुष-बाण और तलवार लिये दण्डकवनमें घुस आये हो; अत: जान पड़ता है, तुम्हारा जीवन क्षीण हो चला है॥ १०$\frac{१}{२}$॥

'तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो, फिर तुम्हारा युवती स्त्रीके साथ रहना कैसे सम्भव हुआ? अधर्मपरायण, पापी तथा मुनिसमुदायको कलङ्कित करनेवाले तुम दोनों कौन हो?॥ ११$\frac{१}{२}$॥

'मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन ऋषियोंके मांसका भक्षण करता हुआ हाथमें अस्त्र-शस्त्र लिये इस दुर्गम वनमें विचरता रहता हूँ॥ १२$\frac{१}{२}$॥

'यह स्त्री बड़ी सुन्दरी है, अतः मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनों पापियोंका मैं युद्धस्थलमें रक्त पान करूँगा'॥

दुरात्मा विराधकी ये दुष्टता और घमंडसे भरी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीता घबरा गयीं और जैसे तेज हवा चलनेपर केलेका वृक्ष जोर-जोरसे हिलने लगता है, उसी प्रकार वे उद्वेगके कारण थरथर काँपने लगीं॥ १४-१५॥

शुभलक्षणा सीताको सहसा विराधके चंगुलमें फँसी देख श्रीरामचन्द्रजी सूखते हुए मुँहसे लक्ष्मणको सम्बोधित करके बोले—॥ १६॥

'सौम्य! देखो तो सही, महाराज जनककी पुत्री और मेरी सती-साध्वी पत्नी सीता विराधके अङ्कमें विवशतापूर्वक जा पहुँची हैं॥ १७॥

'अत्यन्त सुखमें पली हुई यशस्विनी राजकुमारी सीताकी यह अवस्था! (हाय! कितने कष्टकी बात है!) लक्ष्मण! वनमें हमारे लिये जिस दुःखकी प्राप्ति कैकेयीको अभीष्ट थी और जो कुछ उसे प्रिय था, जिसके लिये उसने वर माँगे थे, वह सब आज ही शीघ्रतापूर्वक सिद्ध हो गया। तभी तो वह दूरदर्शिनी कैकेयी अपने पुत्रके लिये केवल राज्य लेकर नहीं संतुष्ट हुई थी॥ १८-१९॥

'जिसने समस्त प्राणियोंके लिये प्रिय होनेपर भी मुझे वनमें भेज दिया, वह मेरी मझली माता कैकेयी आज इस समय सफलमनोरथ हुई है॥ २०॥

'विदेहनन्दिनीका दूसरा कोई स्पर्श कर ले, इससे बढ़कर दुःखकी बात मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है। सुमित्रानन्दन! पिताजीकी मृत्यु तथा अपने राज्यके अपहरणसे भी उतना कष्ट मुझे नहीं हुआ था, जितना अब हुआ है'॥ २१॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर शोकके आँसू बहाते हुए लक्ष्मण कुपित हो मन्त्रसे अवरुद्ध हुए सर्पकी भाँति फुफकारते हुए बोले—॥ २२॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! आप इन्द्रके समान समस्त प्राणियोंके स्वामी एवं संरक्षक हैं। मुझ दासके रहते हुए आप किसलिये अनाथकी भाँति संतप्त हो रहे हैं?॥

'मैं अभी कुपित होकर अपने बाणसे इस राक्षसका वध करता हूँ। आज यह पृथ्वी मेरे द्वारा मारे गये प्राणशून्य विराधका रक्त पीयेगी॥ २४॥

'राज्यकी इच्छा रखनेवाले भरतपर मेरा जो क्रोध प्रकट हुआ था, उसे आज मैं विराधपर छोड़ूँगा। जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतपर अपना वज्र छोड़ते हैं॥ २५॥

'मेरी भुजाओंके बलके वेगसे वेगवान् होकर छूटा हुआ मेरा महान् बाण आज विराधके विशाल वक्षःस्थलपर गिरे। इसके शरीरसे प्राणोंको अलग करे। तत्पश्चात् यह विराध चक्कर खाता हुआ पृथ्वीपर पड़ जाय'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा सर्ग

विराध और श्रीरामकी बातचीत, श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा विराधपर प्रहार तथा विराधका इन दोनों भाइयोंको साथ लेकर दूसरे वनमें जाना

तदनन्तर विराधने उस वनको गुँजाते हुए कहा—'अरे! मैं पूछता हूँ, मुझे बताओ। तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे?'॥ १॥

तब महातेजस्वी श्रीरामने अपना परिचय पूछते हुए प्रज्वलित मुखवाले उस राक्षससे इस प्रकार कहा—'तुझे मालूम होना चाहिये कि महाराज इक्ष्वाकुका कुल ही मेरा कुल है। हम दोनों भाई सदाचारका पालन करनेवाले क्षत्रिय हैं और कारणवश इस समय वनमें निवास करते हैं। अब हम तेरा परिचय जानना चाहते हैं। तू कौन है, जो दण्डकवनमें स्वेच्छासे विचर रहा है?'॥ २-३॥

यह सुनकर विराधने सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा—'रघुवंशी नरेश! मैं प्रसन्नतापूर्वक अपना परिचय देता हूँ। तुम मेरे विषयमें सुनो॥ ४॥

'मैं 'जव' नामक राक्षसका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम 'शतह्रदा' है। भूमण्डलके समस्त राक्षस मुझे विराधके नामसे पुकारते हैं॥ ५॥

'मैंने तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया है कि किसी भी शस्त्रसे मेरा वध न हो। मैं संसारमें अच्छेद्य और अभेद्य होकर रहूँ—कोई भी मेरे शरीरको छिन्न-भिन्न नहीं कर सके॥ ६॥

'अब तुम दोनों इस युवती स्त्रीको यहीं छोड़कर इसे पानेकी इच्छा न रखते हुए जैसे आये हो उसी प्रकार तुरंत यहाँसे भाग जाओ। मैं तुम दोनोंके प्राण नहीं लूँगा'॥ ७॥

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पापपूर्ण विचार और विकट आकारवाले उस पापी राक्षस विराधसे इस प्रकार बोले—॥ ८॥

'नीच! तुझे धिक्कार है। तेरा अभिप्राय बड़ा ही खोटा है। निश्चय ही तू अपनी मौत ढूँढ़ रहा है और वह तुझे युद्धमें मिलेगी। ठहर, अब तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा'॥ ९॥

यह कहकर भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और तुरंत ही तीखे बाणोंका अनुसंधान करके उस राक्षसको बींधना आरम्भ किया॥ १०॥

उन्होंने प्रत्यञ्चायुक्त धनुषके द्वारा विराधके ऊपर लगातार सात बाण छोड़े, जो गरुड़ और वायुके समान महान् वेगशाली थे और सोनेके पंखोंसे सुशोभित हो रहे थे॥ ११॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और मोरपंख लगे हुए वे बाण विराधके शरीरको छेदकर रक्तरञ्जित हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १२॥

घायल हो जानेपर उस राक्षसने विदेहकुमारी सीताको अलग रख दिया और स्वयं हाथमें शूल लिये अत्यन्त कुपित होकर श्रीराम तथा लक्ष्मणपर तत्काल टूट पड़ा॥

वह बड़े जोरसे गर्जना करके इन्द्रध्वजके समान शूल लेकर उस समय मुँह बाये हुए कालके समान शोभा पा रहा था॥ १४॥

तब काल, अन्तक और यमराजके समान उस भयंकर राक्षस विराधके ऊपर उन दोनों भाइयोंने प्रज्वलित बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ १५॥

'यह देख वह महाभयंकर राक्षस अट्टहास करके खड़ा हो गया और जँभाईके साथ अँगड़ाई लेने लगा। उसके वैसा करते ही शीघ्रगामी बाण उसके शरीरसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १६॥

वरदानके सम्बन्धसे उस राक्षस विराधने प्राणोंको रोक लिया और शूल उठाकर उन दोनों रघुवंशी वीरोंपर आक्रमण किया॥ १७॥

उसका वह शूल आकाशमें वज्र और अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा; परंतु शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने दो बाण मारकर उसे काट डाला॥ १८॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे कटा हुआ विराधका वह शूल वज्रसे छिन्न-भिन्न हुए मेरुके शिलाखण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १९॥

फिर तो वे दोनों भाई शीघ्र ही काले सर्पोंके समान दो तलवारें लेकर तुरंत उसपर टूट पड़े और तत्काल बलपूर्वक प्रहार करने लगे॥ २०॥

उनके आघातसे अत्यन्त घायल हुए उस भयंकर राक्षसने अपनी दोनों भुजाओंसे उन अकम्प्य पुरुषसिंह वीरोंको पकड़कर अन्यत्र जानेकी इच्छा की॥ २१॥

उसके अभिप्रायको जानकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! यह राक्षस अपनी इच्छाके अनुसार हम लोगोंको इस मार्गसे ढोकर ले चले। यह जैसा चाहता है, उसी तरह हमारा वाहन बनकर हमें ले चले (इसमें बाधा डालनेकी आवश्यकता नहीं है)। जिस मार्गसे यह निशाचर चल रहा है, यही हमलोगोंके लिये आगे जानेका मार्ग है'॥ २२-२३॥

अत्यन्त बलसे उद्दण्ड बने हुए निशाचर विराधने अपने बल-पराक्रमसे उन दोनों भाइयोंको बालकोंकी तरह उठाकर अपने दोनों कंधोंपर बिठा लिया॥ २४॥

उन दोनों रघुवंशी वीरोंको कंधेपर चढ़ा लेनेके बाद राक्षस विराध भयंकर गर्जना करता हुआ वनकी ओर चल दिया॥ २५॥

तदनन्तर उसने एक ऐसे वनमें प्रवेश किया, जो महान् मेघोंकी घटाके समान घना और नीला था। नाना प्रकारके बड़े-बड़े वृक्ष वहाँ भरे हुए थे। भाँति-भाँतिके पक्षियोंके समुदाय उसे विचित्र शोभासे सम्पन्न बना रहे थे तथा बहुत-से गीदड़ और हिंसक पशु उसमें सब ओर फैले हुए थे॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा विराधका वध

रघुकुलके श्रेष्ठ वीर ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम और लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है—यह देखकर सीता अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगीं—॥ १॥

'हाय! इन सत्यवादी, शीलवान् और शुद्ध आचार-विचारवाले दशरथनन्दन श्रीराम और लक्ष्मणको यह

रौद्ररूपधारी राक्षस लिये जा रहा है॥ २॥

'राक्षसशिरोमणे! तुम्हें नमस्कार है। इस वनमें रीछ, व्याघ्र और चीते मुझे खा जायँगे, इसलिये तुम मुझे ही ले चलो, किंतु इन दोनों ककुत्स्थवंशी वीरोंको छोड़ दो'॥ ३॥

विदेहनन्दिनी सीताकी यह बात सुनकर वे दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मण उस दुरात्मा राक्षसका वध करनेमें शीघ्रता करने लगे॥ ४॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस राक्षसकी बायीं और श्रीरामने उसकी दाहिनी बाँह बड़े वेगसे तोड़ डाली॥ ५॥

भुजाओंके टूट जानेपर वह मेघके समान काला राक्षस व्याकुल हो गया और शीघ्र ही मूर्च्छित होकर वज्रके द्वारा टूटे हुए पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६॥

तब श्रीराम और लक्ष्मण विराधको भुजाओं, मुक्कों और लातोंसे मारने लगे तथा उसे उठा-उठाकर पटकने और पृथ्वीपर रगड़ने लगे॥ ७॥

बहुसंख्यक बाणोंसे घायल और तलवारोंसे क्षत-विक्षत होनेपर तथा पृथ्वीपर बार-बार रगड़ा जानेपर भी वह राक्षस मरा नहीं॥ ८॥

अवध्य तथा पर्वतके समान अचल विराधको बारंबार देखकर भयके अवसरोंपर अभय देनेवाले श्रीमान् रामने लक्ष्मणसे यह बात कही—॥ ९॥

'पुरुषसिंह! यह राक्षस तपस्यासे (वर पाकर) अवध्य हो गया है। इसे शस्त्रके द्वारा युद्धमें नहीं जीता जा सकता। इसलिये हमलोग निशाचर विराधको पराजित करनेके लिये अब गड्ढा खोदकर गाड़ दें॥ १०॥

'लक्ष्मण! हाथीके समान भयंकर तथा रौद्र तेजवाले इस राक्षसके लिये इस वनमें बहुत बड़ा गड्ढा खोदो'॥ ११॥

इस प्रकार लक्ष्मणको गड्ढा खोदनेकी आज्ञा देकर पराक्रमी श्रीराम अपने एक पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े हो गये॥ १२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई यह बात सुनकर राक्षस विराधने पुरुषप्रवर श्रीरामसे यह विनययुक्त बात कही—॥ १३॥

'पुरुषसिंह! नरश्रेष्ठ! आपका बल देवराज इन्द्रके समान है। मैं आपके हाथसे मारा गया। मोहवश पहले मैं आपको पहचान न सका॥ १४॥

'तात! आपके द्वारा माता कौसल्या उत्तम संतानवाली हुई हैं। मैं यह जान गया कि आप ही श्रीरामचन्द्रजी हैं। यह महाभागा विदेहनन्दिनी सीता हैं और ये आपके छोटे भाई महायशस्वी लक्ष्मण हैं॥ १५॥

'मुझे शापके कारण इस भयंकर राक्षसशरीरमें आना पड़ा था। मैं तुम्बुरु नामक गन्धर्व हूँ। कुबेरने मुझे राक्षस होनेका शाप दिया था॥ १६॥

'जब मैंने उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा की, तब वे महायशस्वी कुबेर मुझसे इस प्रकार बोले—'गन्धर्व! जब दशरथनन्दन श्रीराम युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे, तब तुम अपने पहले स्वरूपको प्राप्त होकर स्वर्गलोकको जाओगे॥ १७½॥

'मैं रम्भा नामक अप्सरामें आसक्त था, इसलिये एक दिन ठीक समयसे उनकी सेवामें उपस्थित न हो सका। इसीलिये कुपित हो राजा वैश्रवण (कुबेर) ने मुझे पूर्वोक्त शाप देकर उससे छूटनेकी अवधि बतायी थी॥ १८½॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुवीर! आज आपकी कृपासे मुझे उस भयंकर शापसे छुटकारा मिल गया। आपका कल्याण हो, अब मैं अपने लोकको जाऊँगा॥

'तात! यहाँसे डेढ़ योजनकी दूरीपर सूर्यके समान तेजस्वी प्रतापी और धर्मात्मा महामुनि शरभङ्ग निवास करते हैं। उनके पास आप शीघ्र चले जाइये, वे आपके कल्याणकी बात बतायेंगे॥ २०-२१॥

'श्रीराम! आप मेरे शरीरको गड्ढेमें गाड़कर कुशलपूर्वक चले जाइये। मरे हुए राक्षसोंके शरीरको गड्ढेमें गाड़ना (कब्र खोदकर उसमें दफना देना) यह उनके लिये सनातन (परम्पराप्राप्त) धर्म है॥ २२॥

'जो राक्षस गड्ढेमें गाड़ दिये जाते हैं, उन्हें सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है।' श्रीरामसे ऐसा कहकर बाणोंसे पीड़ित हुआ महाबली विराध (जब उसका शरीर गड्ढेमें डाला गया, तब) उस शरीरको छोड़कर स्वर्गलोकको चला गया॥ २३½॥

(वह किस तरह गड्ढेमें डाला गया?—यह बात अब बतायी जाती है—) उसकी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणको आज्ञा दी—'लक्ष्मण! भयंकर कर्म करनेवाले तथा हाथीके समान भयानक इस राक्षसके लिये इस वनमें बहुत बड़ा गड्ढा खोदो'॥ २४-२५॥

इस प्रकार लक्ष्मणको गड्ढा खोदनेका आदेश दे पराक्रमी श्रीराम एक पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े हो गये॥ २६॥

तब लक्ष्मणने फावड़ा लेकर उस विशालकाय

विराधके पास ही एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर तैयार किया॥ २७॥

तब श्रीरामने उसके गलेको छोड़ दिया और लक्ष्मणने खूँटे-जैसे कानवाले उस विराधको उठाकर उस गड्ढेमें डाल दिया, उस समय वह बड़ी भयानक आवाजमें जोर-जोरसे गर्जना कर रहा था॥ २८॥

युद्धमें स्थिर रहकर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने रणभूमिमें क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले उस भयंकर राक्षस विराधको बलपूर्वक उठाकर गड्ढेमें फेंक दिया। उस समय वह जोर-जोरसे चिल्ला रहा था। उसे गड्ढेमें डालकर वे दोनों बन्धु बड़े प्रसन्न हुए॥ २९॥

महान् असुर विराधका तीखे शस्त्रसे वध होनेवाला नहीं है, यह देखकर अत्यन्त कुशल दोनों भाई नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणने उस समय गड्ढा खोदकर उस गड्ढेमें उसे डाल दिया और उसे मिट्टीसे पाटकर उस राक्षसका वध कर डाला॥ ३०॥

वास्तवमें श्रीरामके हाथसे ही हठपूर्वक मरना उसे अभीष्ट था। उस अपनी मनोवाञ्छित मृत्युकी प्राप्तिके उद्देश्यसे स्वयं वनचारी विराधने ही श्रीरामको यह बता दिया था कि शस्त्रद्वारा मेरा वध नहीं हो सकता॥ ३१॥

उसकी कही हुई उसी बातको सुनकर श्रीरामने उसे गड्ढेमें गाड़ देनेका विचार किया था। जब वह गड्ढेमें डाला जाने लगा, उस समय उस अत्यन्त बलवान् राक्षसने अपनी चिल्लाहटसे सारे वनप्रान्तको गुँजा दिया॥

राक्षस विराधको पृथ्वीके अंदर गड्ढेमें गिराकर श्रीराम और लक्ष्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे ऊपरसे बहुतेरे पत्थर डालकर पाट दिया। फिर वे निर्भय हो उस महान् वनमें सानन्द विचरने लगे॥ ३३॥

इस प्रकार उस राक्षसका वध करके मिथिलेश-कुमारी सीताको साथ ले सोनेके विचित्र धनुषोंसे सुशोभित हो वे दोनों भाई आकाशमें स्थित हुए चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति उस महान् वनमें आनन्दमग्न हो विचरण करने लगे॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताका शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर जाना, देवताओंका दर्शन करना और मुनिसे सम्मानित होना तथा शरभङ्ग मुनिका ब्रह्मलोक-गमन

वनमें उस भयंकर बलशाली राक्षस विराधका वध करके पराक्रमी श्रीरामने सीताको हृदयसे लगाकर सान्त्वना दी और उद्दीप्त तेजवाले भाई लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—'सुमित्रानन्दन! यह दुर्गम वन बड़ा कष्टप्रद है। हमलोग इसके पहले कभी ऐसे वनोंमें नहीं रहे हैं (अत: यहाँके कष्टोंका न तो अनुभव है और न अभ्यास ही है)। अच्छा! हमलोग अब शीघ्र ही तपोधन शरभङ्गजीके पास चलें'—ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर गये॥ १—३॥

देवताओंके तुल्य प्रभावशाली तथा तपस्यासे शुद्ध अन्त:करणवाले (अथवा तपके द्वारा परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार करनेवाले) शरभङ्ग मुनिके समीप जानेपर श्रीरामने एक बड़ा अद्भुत दृश्य देखा॥ ४॥

वहाँ उन्होंने आकाशमें एक श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए देवताओंके स्वामी इन्द्रदेवका दर्शन किया, जो पृथ्वीका स्पर्श नहीं कर रहे थे। उनकी अङ्गकान्ति सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित होती थी। वे अपने तेजस्वी शरीरसे देदीप्यमान हो रहे थे। उनके पीछे और भी बहुत-से देवता थे। उनके दीप्तिमान् आभूषण चमक रहे थे तथा उन्होंने निर्मल वस्त्र धारण कर रखा था॥ ५-६॥

उन्हींके समान वेशभूषावाले दूसरे बहुत-से महात्मा इन्द्रदेवकी पूजा (स्तुति-प्रशंसा) कर रहे थे। उनका रथ आकाशमें खड़ा था और उसमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए थे। श्रीरामने निकटसे उस रथको देखा। वह नवोदित सूर्यके समान प्रकाशित होता था॥ ७½॥

उन्होंने यह भी देखा कि इन्द्रके मस्तकके ऊपर श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल तथा चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् निर्मल छत्र तना हुआ है, जो विचित्र फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित है॥ ८½॥

श्रीरामने सुवर्णमय डंडेवाले दो श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य चँवर और व्यजन भी देखे, जिन्हें दो सुन्दरियाँ लेकर देवराजके मस्तकपर हवा कर रही थीं॥ ९½॥

उस समय बहुत-से गन्धर्व, देवता, सिद्ध और महर्षिगण उत्तम वचनोंद्वारा अन्तरिक्षमें विराजमान देवेन्द्रकी स्तुति करते थे और देवराज इन्द्र शरभङ्ग मुनिके साथ वार्तालाप कर रहे थे। वहाँ इस प्रकार शतक्रतु इन्द्रका दर्शन करके श्रीरामने उनके अद्भुत रथकी ओर अँगुलीसे संकेत करते हुए उसे भाईको दिखाया और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—॥ १०—१२॥

'लक्ष्मण! आकाशमें वह अद्भुत रथ तो देखो, उससे तेजकी लपटें निकल रही हैं। वह सूर्यके समान तप रहा है। शोभा मानो मूर्तिमती होकर उसकी सेवा करती है॥ १३॥

'हमलोगोंने पहले देवराज इन्द्रके जिन दिव्य घोड़ोंके विषयमें जैसा सुन रखा है, निश्चय ही आकाशमें ये वैसे ही दिव्य अश्व विराजमान हैं॥ १४॥

'पुरुषसिंह! इस रथके दोनों ओर जो ये हाथोंमें खड्ग लिये कुण्डलधारी सौ-सौ युवक खड़े हैं, इनके वक्ष:स्थल विशाल एवं विस्तृत हैं, भुजाएँ परिघोंके समान सुदृढ़ एवं बड़ी-बड़ी हैं। ये सब-के-सब लाल वस्त्र धारण किये हुए हैं और व्याघ्रोंके समान दुर्जय प्रतीत होते हैं॥ १५-१६॥

'सुमित्रानन्दन! इन सबके हृदयदेशोंमें अग्निके समान तेजसे जगमगाते हुए हार शोभा पाते हैं। ये नवयुवक पचीस वर्षोंकी अवस्थाका रूप धारण करते हैं॥ १७॥

'कहते हैं, देवताओंकी सदा ऐसी ही अवस्था रहती है, जैसे ये पुरुषप्रवर दिखायी देते हैं। इनका दर्शन कितना प्यारा लगता है॥ १८॥

'लक्ष्मण! जबतक कि मैं स्पष्ट रूपसे यह पता न लगा लूँ कि रथपर बैठे हुए ये तेजस्वी पुरुष कौन हैं? तबतक तुम विदेहनन्दिनी सीताके साथ एक मुहूर्ततक यहीं ठहरो'॥ १९॥

इस प्रकार सुमित्राकुमारको वहीं ठहरनेका आदेश देकर श्रीरामचन्द्रजी टहलते हुए शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर गये॥ २०॥

श्रीरामको आते देख शचीपति इन्द्रने शरभङ्ग मुनिसे विदा ले देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ २१॥

'श्रीरामचन्द्रजी यहाँ आ रहे हैं। वे जबतक मुझसे कोई बात न करें, उसके पहले ही तुमलोग मुझे यहाँसे दूसरे स्थानमें ले चलो। इस समय श्रीरामसे मेरी मुलाकात नहीं होनी चाहिये॥ २२॥

'इन्हें वह महान् कर्म करना है, जिसका सम्पादन करना दूसरोंके लिये बहुत कठिन है। जब ये रावणपर विजय पाकर अपना कर्तव्य पूर्ण करके कृतार्थ हो जायँगे, तब मैं शीघ्र ही आकर इनका दर्शन करूँगा'॥ २३॥

यह कहकर वज्रधारी शत्रुदमन इन्द्रने तपस्वी शरभङ्गका सत्कार किया और उनसे पूछकर अनुमति ले वे घोड़े जुते हुए रथके द्वारा स्वर्गलोकको चल दिये॥

सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्रके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी और भाईके साथ शरभङ्ग मुनिके पास गये। उस समय वे अग्निके समीप बैठकर अग्निहोत्र कर रहे थे॥ २५॥

श्रीराम, सीता और लक्ष्मणने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहाँ बैठ गये। शरभङ्गजीने उन्हें आतिथ्यके लिये निमन्त्रण दे ठहरनेके लिये स्थान दिया॥ २६॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे इन्द्रके आनेका कारण पूछा। तब शरभङ्ग मुनिने श्रीरघुनाथजीसे सब बातें निवेदन करते हुए कहा—॥ २७॥

'श्रीराम! ये वर देनेवाले इन्द्र मुझे ब्रह्मलोकमें ले जाना चाहते हैं। मैंने अपनी उग्र तपस्यासे उस लोकपर विजय पायी है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उन पुरुषोंके लिये वह अत्यन्त दुर्लभ है॥ २८॥

'पुरुषसिंह! परंतु जब मुझे मालूम हो गया कि आप इस आश्रमके निकट आ गये हैं, तब मैंने निश्चय किया कि आप-जैसे प्रिय अतिथिका दर्शन किये बिना मैं ब्रह्मलोकको नहीं जाऊँगा॥ २९॥

'नरश्रेष्ठ! आप धर्मपरायण महात्मा पुरुषसे मिलकर ही मैं स्वर्गलोक तथा उससे ऊपरके ब्रह्मलोकको जाऊँगा॥ ३०॥

'पुरुषशिरोमणे! मैंने ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक आदि जिन अक्षय शुभ लोकोंपर विजय पायी है, मेरे उन सभी लोकोंको आप ग्रहण करें'॥ ३१॥

शरभङ्ग मुनिके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता नरश्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीने यह बात कही—॥ ३२॥

'महामुने! मैं ही आपको उन सब लोकोंकी प्राप्ति कराऊँगा। इस समय तो मैं इस वनमें आपके बताये हुए स्थानपर निवासमात्र करना चाहता हूँ'॥ ३३॥

इन्द्रके समान बलशाली श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर महाज्ञानी शरभङ्ग मुनि फिर बोले—॥ ३४॥

'श्रीराम! इस वनमें थोड़ी ही दूरपर महातेजस्वी धर्मात्मा सुतीक्ष्ण मुनि नियमपूर्वक निवास करते हैं। वे

ही आपका कल्याण (आपके लिये स्थान आदिका प्रबन्ध) करेंगे॥ ३५॥

'आप इस रमणीय वनप्रान्तके उस पवित्र स्थानमें तपस्वी सुतीक्ष्ण मुनिके पास चले जाइये। वे आपके निवासस्थानकी व्यवस्था करेंगे॥ ३६॥

'श्रीराम! आप फूलके समान छोटी-छोटी डोंगियोंसे पार होने योग्य अथवा पुष्पमयी नौकाको बहानेवाली इस मन्दाकिनी नदीके स्रोतके विपरीत दिशामें इसीके किनारे-किनारे चले जाइये। इससे वहाँ पहुँच जाइयेगा॥ ३७॥

'नरश्रेष्ठ! यही वह मार्ग है, परंतु तात! दो घड़ी यहीं ठहरिये और जबतक पुरानी केंचुलका त्याग करनेवाले सर्पकी भाँति मैं अपने इन जराजीर्ण अङ्गोंका त्याग न कर दूँ, तबतक मेरी ही ओर देखिये'॥ ३८॥

यों कहकर महातेजस्वी शरभङ्ग मुनिने विधिवत् अग्निकी स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया और मन्त्रोच्चारणपूर्वक घीकी आहुति देकर वे स्वयं भी उस अग्निमें प्रविष्ट हो गये॥ ३९॥

उस समय अग्निने उन महात्माके रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डी, मांस और रक्त सबको जलाकर भस्म कर दिया॥ ४०॥

वे शरभङ्ग मुनि अग्नितुल्य तेजस्वी कुमारके रूपमें प्रकट हो गये और उस अग्निराशिसे ऊपर उठकर बड़ी शोभा पाने लगे॥ ४१॥

वे अग्निहोत्री पुरुषों, महात्मा मुनियों और देवताओंके भी लोकोंको लाँघकर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे॥ ४२॥

पुण्यकर्म करनेवाले द्विजश्रेष्ठ शरभङ्गने ब्रह्मलोकमें पार्षदोंसहित पितामह ब्रह्माजीका दर्शन किया। ब्रह्माजी भी उन ब्रह्मर्षिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'महामुने! तुम्हारा शुभ स्वागत है'॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठा सर्ग

वानप्रस्थ मुनियोंका राक्षसोंके अत्याचारसे अपनी रक्षाके लिये श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना करना और श्रीरामका उन्हें आश्वासन देना

शरभङ्ग मुनिके ब्रह्मलोक चले जानेपर प्रज्वलित तेजवाले ककुत्स्थवंशी श्रीरामचन्द्रजीके पास बहुत-से मुनियोंके समुदाय पधारे॥ १॥

उनमें वैखानस[1], वालखिल्य[2], सम्प्रक्षाल[3], मरीचिप[4], बहुसंख्यक अश्मकुट्ट[5], पत्राहार[6], दन्तोलूखली[7], उन्मज्जक[8], गात्रशय्य[9], अशय्य[10], अनवकाशिक[11], सलिलाहार[12], वायुभक्ष[13], आकाशनिलय[14], स्थण्डिलशायी[15], ऊर्ध्ववासी[16], दान्त[17], आर्द्रपटवासा[18], सजप[19], तपोनिष्ठ[20] और पञ्चाग्निसेवी[21]—इन सभी श्रेणियोंके तपस्वी मुनि थे॥ २—५॥

वे सभी तपस्वी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे और सुदृढ़ योगके अभ्याससे उन सबका चित्त एकाग्र हो गया था। वे सब-के-सब शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये॥ ६॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ परम धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर वे धर्मके ज्ञाता समागत ऋषिसमुदाय उनसे बोले—॥ ७॥

'रघुनन्दन! आप इस इक्ष्वाकुवंशके साथ ही

१. ऋषियोंका एक समुदाय जो ब्रह्माजीके नखसे उत्पन्न हुआ है। २. ब्रह्माजीके बाल (रोम) से प्रकट हुए महर्षियोंका समूह। ३. जो भोजनके बाद अपने बर्तन धो-पोंछकर रख देते हैं, दूसरे समयके लिये कुछ नहीं बचाते। ४. सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणोंका पान करके रहनेवाले। ५. कच्चे अन्नको पत्थरसे कूटकर खानेवाले। ६. पत्तोंका आहार करनेवाले। ७. दाँतोंसे ही ऊखलका काम लेनेवाले। ८. कण्ठतक पानीमें डूबकर तपस्या करनेवाले। ९. शरीरसे ही शय्याका काम लेनेवाले अर्थात् बिना बिछौनेके ही भुजापर सिर रखकर सोनेवाले। १०. शय्याके साधनोंसे रहित। ११. निरन्तर सत्कर्ममें लगे रहनेके कारण कभी अवकाश न पानेवाले। १२. जल पीकर रहनेवाले। १३. हवा पीकर जीवननिर्वाह करनेवाले। १४. खुले मैदानमें रहनेवाले। १५. वेदीपर सोनेवाले। १६. पर्वतशिखर आदि ऊँचे स्थानोंमें निवास करनेवाले। १७. मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले। १८. सदा भीगे कपड़े पहननेवाले। १९. निरन्तर जप करनेवाले। २०. तपस्या अथवा परमात्मतत्त्वके विचारमें स्थित रहनेवाले। २१. गर्मीके मौसममें ऊपरसे सूर्यका और चारों ओरसे अग्निका ताप सहन करनेवाले।

समस्त भूमण्डलके भी स्वामी, संरक्षक एवं प्रधान महारथी वीर हैं। जैसे इन्द्र देवताओंके रक्षक हैं, उसी प्रकार आप मनुष्यलोकको रक्षा करनेवाले हैं॥ ८॥

'आप अपने यश और पराक्रमसे तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। आपमें पिताकी आज्ञाके पालनका व्रत, सत्य भाषण तथा सम्पूर्ण धर्म विद्यमान हैं॥ ९॥

'नाथ! आप महात्मा, धर्मज्ञ और धर्मवत्सल हैं। हम आपके पास प्रार्थी होकर आये हैं; इसीलिये ये स्वार्थकी बात निवेदन करना चाहते हैं। आपको इसके लिये हमें क्षमा करना चाहिये॥ १०॥

'स्वामिन्! जो राजा प्रजासे उसकी आयका छठा भाग करके रूपमें ले ले और पुत्रकी भाँति प्रजाकी रक्षा न करे, उसे महान् अधर्मका भागी होना पड़ता है॥ ११॥

'श्रीराम! जो भूपाल प्रजाकी रक्षाके कार्यमें संलग्न हो अपने राज्यमें निवास करनेवाले सब लोगोंको प्राणोंके समान अथवा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्रोंके समान समझकर सदा सावधानीके साथ उनकी रक्षा करता है, वह बहुत वर्षोंतक स्थिर रहनेवाली अक्षय कीर्ति पाता है और अन्तमें ब्रह्मलोकमें जाकर वहाँ भी विशेष सम्मानका भागी होता है॥ १२-१३॥

'राजाके राज्यमें मुनि फल-मूलका आहार करके जिस उत्तम धर्मका अनुष्ठान करता है, उसका चौथा भाग धर्मके अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस राजाको प्राप्त हो जाता है॥ १४॥

'श्रीराम! इस वनमें रहनेवाला वानप्रस्थ महात्माओंका यह महान् समुदाय, जिसमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है तथा जिसके रक्षक आप ही हैं, राक्षसोंके द्वारा अनाथकी तरह मारा जा रहा है—इस मुनि-समुदायका बहुत अधिक मात्रामें संहार हो रहा है॥ १५॥

'आइये, देखिये, ये भयंकर राक्षसोंद्वारा बारम्बार अनेक प्रकारसे मारे गये बहुसंख्यक पवित्रात्मा मुनियोंके शरीर (शव या कंकाल) दिखायी देते हैं॥ १६॥

'पम्पा सरोवर और उसके निकट बहनेवाली तुङ्गभद्रा नदीके तटपर जिनका निवास है, जो मन्दाकिनीके किनारे रहते हैं तथा जिन्होंने चित्रकूटपर्वतके किनारे अपना निवासस्थान बना लिया है, उन सभी ऋषि-महर्षियोंका राक्षसोंद्वारा महान् संहार किया जा रहा है॥ १७॥

'इन भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंने इस वनमें तपस्वी मुनियोंका जो ऐसा भयंकर विनाशकाण्ड मचा रखा है, वह हमलोगोंसे सहा नहीं जाता है॥ १८॥

'अतः इन राक्षसोंसे बचनेके लिये शरण लेनेके उद्देश्यसे हम आपके पास आये हैं। श्रीराम! आप शरणागतवत्सल हैं, अतः इन निशाचरोंसे मारे जाते हुए हम मुनियोंकी रक्षा कीजिये॥ १९॥

'वीर राजकुमार! इस भूमण्डलमें हमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई सहारा नहीं दिखायी देता। आप इन राक्षसोंसे हम सबको बचाइये'॥ २०॥

तपस्यामें लगे रहनेवाले उन तपस्वी मुनियोंकी ये बातें सुनकर ककुत्स्थकुलभूषण धर्मात्मा श्रीरामने उन सबसे कहा—॥ २१॥

'मुनिवरो! आपलोग मुझसे इस प्रकार प्रार्थना न करें। मैं तो तपस्वी महात्माओंका आज्ञापालक हूँ। मुझे केवल अपने ही कार्यसे वनमें तो प्रवेश करना ही है (इसके साथ ही आपलोगोंकी सेवाका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हो जायगा)॥ २२॥

'राक्षसोंके द्वारा जो आपको यह कष्ट पहुँच रहा है, इसे दूर करनेके लिये ही मैं पिताके आदेशका पालन करता हुआ इस वनमें आया हूँ॥ २३॥

'आपलोगोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये मैं दैवात् यहाँ आ पहुँचा हूँ। आपकी सेवाका अवसर मिलनेसे मेरे लिये यह वनवास महान् फलदायक होगा॥ २४॥

'तपोधनो! मैं तपस्वी मुनियोंसे शत्रुता रखनेवाले उन राक्षसोंका युद्धमें संहार करना चाहता हूँ। आप सब महर्षि भाईसहित मेरा पराक्रम देखें'॥ २५॥

इस प्रकार उन तपोधनोंको वर देकर धर्ममें मन लगानेवाले तथा श्रेष्ठ दान देनेवाले वीर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण तथा तपस्वी महात्माओंके साथ सुतीक्ष्ण मुनिके पास गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

सीता और भ्रातासहित श्रीरामका सुतीक्ष्णके आश्रमपर जाकर उनसे बातचीत करना तथा उनसे सत्कृत हो रातमें वहीं ठहरना

शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सीता तथा उन ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमकी ओर चले॥ १॥

वे दूरतकका मार्ग तै करके अगाध जलसे भरी हुई बहुत-सी नदियोंको पार करते हुए जब आगे गये, तब उन्हें महान् मेरुगिरिके समान एक अत्यन्त ऊँचा पर्वत दिखायी दिया, जो बड़ा ही निर्मल था॥ २॥

वहाँसे आगे बढ़कर वे दोनों इक्ष्वाकुकुलके श्रेष्ठ वीर रघुवंशी बन्धु सीताके साथ नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए एक वनमें पहुँचे॥ ३॥

उस घोर वनमें प्रविष्ट हो श्रीरघुनाथजीने एकान्त स्थानमें एक आश्रम देखा, जहाँके वृक्ष प्रचुर फल-फूलोंसे लदे हुए थे। इधर-उधर टँगे हुए चीर वस्त्रोंके समुदाय उस आश्रमकी शोभा बढ़ाते थे॥ ४॥

वहाँ आन्तरिक मलकी शुद्धिके लिये पद्मासन धारण किये सुतीक्ष्ण मुनि ध्यानमग्न होकर बैठे थे। श्रीरामने उन तपोधन मुनिके पास विधिवत् जाकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'सत्यपराक्रमी धर्मज्ञ महर्षे! भगवन्! मैं राम हूँ और यहाँ आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ, अतः आप मुझसे बात कीजिये'॥ ६॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामका दर्शन करके धीर महर्षि सुतीक्ष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किया और इस प्रकार कहा—॥ ७॥

'सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ रघुकुलभूषण श्रीराम! आपका स्वागत है। इस समय आपके पदार्पण करनेसे यह आश्रम सनाथ हो गया॥ ८॥

'महायशस्वी वीर! मैं आपकी ही प्रतीक्षामें था, इसीलिये अबतक इस पृथ्वीपर अपने शरीरको त्यागकर मैं यहाँसे देवलोक (ब्रह्मधाम) में नहीं गया॥ ९॥

'मैंने सुना था कि आप राज्यसे भ्रष्ट हो चित्रकूट पर्वतपर आकर रहते हैं। काकुत्स्थ! यहाँ सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले देवराज इन्द्र आये थे॥ १०॥

'वे महान् देवता देवेश्वर इन्द्रदेव मेरे पास आकर कह रहे थे कि 'तुमने अपने पुण्यकर्मके द्वारा समस्त शुभ लोकोंपर विजय पायी है'॥ ११॥

'उनके कथनानुसार मैंने तपस्यासे जिन देवर्षिसेवित लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है, उन लोकोंमें आप सीता और लक्ष्मणके साथ विहार करें। मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ वे सारे लोक आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ'॥

जैसे इन्द्र ब्रह्माजीसे बात करते हैं, उसी प्रकार मनस्वी श्रीरामने उन उग्र तपस्यावाले तेजस्वी एवं सत्यवादी महर्षिको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १३॥

'महामुने! वे लोक तो मैं स्वयं ही आपको प्राप्त कराऊँगा, इस समय तो मेरी यह इच्छा है कि आप बतावें कि मैं इस वनमें अपने ठहरनेके लिये कहाँ कुटिया बनाऊँ?॥ १४॥

'आप समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर तथा इहलोक और परलोककी सभी बातोंके ज्ञानमें निपुण हैं, यह बात मुझसे गौतमगोत्रीय महात्मा शरभङ्गने कही थी'॥ १५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर उन लोकविख्यात महर्षिने बड़े हर्षके साथ मधुर वाणीमें कहा—॥ १६॥

'श्रीराम! यही आश्रम सब प्रकारसे गुणवान् (सुविधाजनक) है, अतः आप यहीं सुखपूर्वक निवास कीजिये। यहाँ ऋषियोंका समुदाय सदा आता-जाता रहता है और फल-मूल भी सर्वदा सुलभ होते हैं॥ १७॥

'इस आश्रमपर बड़े-बड़े मृगोंके झुंड आते और अपने रूप, कान्ति एवं गतिसे मनको लुभाकर किसीको कष्ट दिये बिना ही यहाँसे लौट जाते हैं। उन्हें यहाँ किसीसे कोई भय नहीं प्राप्त होता है॥ १८॥

'इस आश्रममें मृगोंके उपद्रवके सिवा और कोई दोष नहीं है, यह आप निश्चितरूपसे जान लें।' महर्षिका यह वचन सुनकर लक्ष्मणके बड़े भाई धीर-वीर भगवान् श्रीरामने हाथमें धनुष-बाण लेकर कहा—॥ १९½॥

'महाभाग! यहाँ आये हुए उन उपद्रवकारी मृगसमूहोंको यदि मैं झुकी हुई गाँठ और तीखी धारवाले बाणसे मार डालूँ तो इसमें आपका अपमान होगा। यदि ऐसा हुआ तो इससे बढ़कर कष्टकी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है?॥ २०-२१॥

'इसलिये मैं इस आश्रममें अधिक समय नहीं निवास करना चाहता।' मुनिसे ऐसा कहकर मौन हो श्रीरामचन्द्रजी संध्योपासना करने चले गये॥ २२॥

सायंकालकी संध्योपासना करके श्रीरामने सीता

और लक्ष्मणके साथ सुतीक्ष्ण मुनिके उस रमणीय आश्रममें निवास किया॥ २३॥

संध्याका समय बीतनेपर रात हुई देख महात्मा सुतीक्ष्णने स्वयं ही तपस्वी-जनोंके सेवन करने योग्य शुभ अन्न ले आकर उन दोनों पुरुषशिरोमणि बन्धुओंको बड़े सत्कारके साथ अर्पित किया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

प्रात:काल सुतीक्ष्णसे विदा ले श्रीराम, लक्ष्मण, सीताका वहाँसे प्रस्थान

सुतीक्ष्णके द्वारा भलीभाँति पूजित हो लक्ष्मणसहित श्रीराम उनके आश्रममें ही रात बिताकर प्रात:काल जाग उठे॥ १॥

सीतासहित श्रीराम और लक्ष्मणने ठीक समयसे उठकर कमलकी सुगन्धसे सुवासित परम शीतल जलके द्वारा स्नान किया। तदनन्तर उन तीनोंने ही मिलकर विधिपूर्वक अग्नि और देवताओंकी प्रात:कालिक पूजा की। इसके बाद तपस्वीजनोंके आश्रयभूत वनमें उदित हुए सूर्यदेवका दर्शन करके वे तीनों निष्पाप पथिक सुतीक्ष्ण मुनिके पास गये और यह मधुर वचन बोले—॥ २—४॥

'भगवन्! आपने पूजनीय होकर भी हमलोगोंकी पूजा की है। हम आपके आश्रममें बड़े सुखसे रहे हैं। अब हम यहाँसे जायँगे, इसके लिये आपकी आज्ञा चाहते हैं। ये मुनि हमें चलनेके लिये जल्दी मचा रहे हैं॥ ५॥

'हमलोग दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले पुण्यात्मा ऋषियोंके सम्पूर्ण आश्रममण्डलका दर्शन करनेके लिये उतावले हो रहे हैं॥ ६॥

'अत: हमारी इच्छा है कि आप धूमरहित अग्निके समान तेजस्वी, तपस्याद्वारा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले तथा नित्य-धर्मपरायण इन श्रेष्ठ महर्षियोंके साथ यहाँसे जानेके लिये हमें आज्ञा दें॥ ७॥

'जैसे अन्यायसे आयी हुई सम्पत्तिको पाकर किसी नीच कुलके मनुष्यमें असह्य उग्रता आ जाती है, उसी प्रकार यह सूर्यदेव जबतक असह्य ताप देनेवाले होकर प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित न होने लगें, उसके पहले ही हम यहाँसे चल देना चाहते हैं।' ऐसा कहकर लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामने मुनिके चरणोंकी वन्दना की॥

अपने चरणोंका स्पर्श करते हुए श्रीराम और लक्ष्मणको उठाकर मुनिवर सुतीक्ष्णने कसकर हृदयसे लगा लिया और बड़े स्नेहसे इस प्रकार कहा—॥ १०॥

'श्रीराम! आप छायाकी भाँति अनुसरण करनेवाली इस धर्मपत्नी सीता तथा सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ यात्रा कीजिये। आपका मार्ग विघ्न-बाधाओंसे रहित परम मङ्गलमय हो॥ ११॥

'वीर! तपस्यासे शुद्ध अन्त:करणवाले दण्डकारण्य-वासी इन तपस्वी मुनियोंके रमणीय आश्रमोंका दर्शन कीजिये॥ १२॥

'इस यात्रामें आप प्रचुर फल-मूलोंसे युक्त तथा फूलोंसे सुशोभित अनेक वन देखेंगे; वहाँ उत्तम मृगोंके झुंड विचरते होंगे और पक्षी शान्तभावसे रहते होंगे॥ १३॥

'आपको बहुत-से ऐसे तालाब और सरोवर दिखायी देंगे, जिनमें प्रफुल्ल कमलोंके समूह शोभा दे रहे होंगे। उनमें स्वच्छ जल भरे होंगे तथा कारण्डव आदि जलपक्षी सब ओर फैल रहे होंगे॥ १४॥

'नेत्रोंको रमणीय प्रतीत होनेवाले पहाड़ी झरनों और मोरोंकी मीठी बोलीसे गूँजती हुई सुरम्य वनस्थलियोंको भी आप देखेंगे॥ १५॥

'श्रीराम! जाइये, वत्स सुमित्राकुमार! तुम भी जाओ। दण्डकारण्यके आश्रमोंका दर्शन करके आपलोगोंको फिर इसी आश्रममें आ जाना चाहिये'॥ १६॥

उनके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर मुनिकी परिक्रमा की और वहाँसे प्रस्थान करनेकी तैयारी की॥ १७॥

तदनन्तर विशाल नेत्रोंवाली सीताने उन दोनों भाइयोंके हाथमें दो परम सुन्दर तूणीर, धनुष और चमचमाते हुए खड्ग प्रदान किये॥ १८॥

उन सुन्दर तूणीरोंको पीठपर बाँधकर टंकारते हुए धनुषोंको हाथमें ले वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण आश्रमसे बाहर निकले॥ १९॥

वे दोनों रघुवंशी वीर बड़े ही रूपवान् थे, उन्होंने खड्ग और धनुष धारण करके महर्षिकी आज्ञा ले सीताके साथ शीघ्र ही वहाँसे प्रस्थान किया॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

सीताका श्रीरामसे निरपराध प्राणियोंको न मारने और अहिंसा-धर्मका पालन करनेके लिये अनुरोध

सुतीक्ष्णकी आज्ञा लेकर वनकी ओर प्रस्थित हुए अपने स्वामी रघुकुलनन्दन श्रीरामसे सीताने स्नेहभरी मनोहर वाणीमें इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

'आर्यपुत्र! यद्यपि आप महान् पुरुष हैं तथापि अत्यन्त सूक्ष्म विधिसे विचार करनेपर आप अधर्मको प्राप्त हो रहे हैं। जब कामजनित व्यसनसे आप सर्वथा निवृत्त हैं, तब यहाँ इस अधर्मसे भी बच सकते हैं॥ २ ॥

'इस जगत्‌में कामसे उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन होते हैं। मिथ्याभाषण बहुत बड़ा व्यसन है, किंतु उससे भी भारी दो व्यसन और हैं—परस्त्रीगमन और बिना वैरके ही दूसरोंके प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव। रघुनन्दन! इनमेंसे मिथ्याभाषणरूप व्यसन तो न आपमें कभी हुआ है और न आगे होगा ही॥ ३-४ ॥

'परस्त्रीविषयक अभिलाषा तो आपको हो ही कैसे सकती है? नरेन्द्र! धर्मका नाश करनेवाली यह कुत्सित इच्छा न आपके मनमें कभी हुई थी, न है और न भविष्यमें कभी होनेकी सम्भावना ही है। राजकुमार श्रीराम! यह दोष तो आपके मनमें भी कभी उदित नहीं हुआ है। (फिर वाणी और क्रियामें कैसे आ सकता है?) आप सदा ही अपनी धर्मपत्नीमें अनुरक्त रहनेवाले, धर्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ तथा पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। आपमें धर्म और सत्य दोनोंकी स्थिति है। आपमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ ५—७ ॥

'महाबाहो! जो लोग जितेन्द्रिय हैं, वे सदा सत्य और धर्मको पूर्णरूपसे धारण कर सकते हैं। शुभदर्शी महापुरुष! आपकी जितेन्द्रियताको मैं अच्छी तरह जानती हूँ (इसीलिये मुझे विश्वास है कि आपमें पूर्वोक्त दोनों दोष कदापि नहीं रह सकते)॥ ८ ॥

'परंतु दूसरोंके प्राणोंकी हिंसारूप जो यह तीसरा भयंकर दोष है, उसे लोग मोहवश बिना वैर-विरोधके भी किया करते हैं। वही दोष आपके सामने भी उपस्थित है॥ ९ ॥

'वीर! आपने दण्डकारण्यनिवासी ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है॥ १० ॥

'इसीके लिये आप भाईके साथ धनुष-बाण लेकर दण्डकारण्यके नामसे विख्यात वनकी ओर प्रस्थित हुए हैं॥ ११ ॥

'अतः आपको इस घोर कर्मके लिये प्रस्थित हुआ देख मेरा चित्त चिन्तासे व्याकुल हो उठा है। आपके प्रतिज्ञा-पालनरूप व्रतका विचार करके मैं सदा यही सोचती रहती हूँ कि कैसे आपका कल्याण हो?॥ १२ ॥

'वीर! मुझे इस समय आपका दण्डकारण्यमें जाना अच्छा नहीं लगता है। इसका क्या कारण है—यह बता रही हूँ; आप मेरे मुँहसे सुनिये॥ १३ ॥

'आप हाथमें धनुष-बाण लेकर अपने भाईके साथ वनमें आये हैं। सम्भव है, समस्त वनचारी राक्षसोंको देखकर कदाचित् आप उनके प्रति अपने बाणोंका प्रयोग कर बैठें॥ १४ ॥

'जैसे आगके समीप रखे हुए ईंधन उसके तेजरूप बलको अत्यन्त उद्दीप्त कर देते हैं, उसी प्रकार जहाँ क्षत्रियोंके पास धनुष हो तो वह उनके बल और प्रतापको उद्दोधित कर देता है॥ १५ ॥

'महाबाहो! पूर्वकालकी बात है, किसी पवित्र वनमें, जहाँ मृग और पक्षी बड़े आनन्दसे रहते थे, एक सत्यवादी एवं पवित्र तपस्वी निवास करते थे॥ १६ ॥

'उन्हींकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये शचीपति इन्द्र किसी योद्धाका रूप धारण करके हाथमें तलवार लिये एक दिन उनके आश्रमपर आये॥ १७ ॥

'उन्होंने मुनिके आश्रममें अपना उत्तम खड्ग रख दिया। पवित्र तपस्यामें लगे हुए मुनिको धरोहरके रूपमें वह खड्ग दे दिया॥ १८ ॥

'उस शस्त्रको पाकर मुनि उस धरोहरकी रक्षामें लग गये। वे अपने विश्वासकी रक्षाके लिये वनमें विचरते समय भी उसे साथ रखते थे॥ १९ ॥

'धरोहरकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले वे मुनि फल-मूल लानेके लिये जहाँ-कहीं भी जाते, उस खड्गको साथ लिये बिना नहीं जाते थे॥ २० ॥

'तप ही जिनका धन था, उन मुनिने प्रतिदिन शस्त्र ढोते रहनेके कारण क्रमशः तपस्याका निश्चय छोड़कर अपनी बुद्धिको क्रूरतापूर्ण बना लिया॥ २१ ॥

'फिर तो अधर्मने उन्हें आकृष्ट कर लिया। वे

मुनि प्रमादवश रौद्र-कर्ममें तत्पर हो गये और उस शस्त्रके सहवाससे उन्हें नरकमें जाना पड़ा॥ २२॥

'इस प्रकार शस्त्रका संयोग होनेके कारण पूर्वकालमें उन तपस्वी मुनिको ऐसी दुर्दशा भोगनी पड़ी। जैसे आगका संयोग ईंधनोंको जलानेका कारण होता है, उसी प्रकार शस्त्रोंका संयोग शस्त्रधारीके हृदयमें विकारका उत्पादक कहा गया है॥ २३॥

'मेरे मनमें आपके प्रति जो स्नेह और विशेष आदर है, उसके कारण मैं आपको उस प्राचीन घटनाकी याद दिलाती हूँ तथा यह शिक्षा भी देती हूँ कि आपको धनुष लेकर किसी तरह बिना वैरके ही दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके वधका विचार नहीं करना चाहिये। वीरवर! बिना अपराधके ही किसीको मारना संसारके लोग अच्छा नहीं समझेंगे॥ २४-२५॥

'अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले क्षत्रिय वीरोंके लिये वनमें धनुष धारण करनेका इतना ही प्रयोजन है कि वे संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करें॥ २६॥

'कहाँ शस्त्र-धारण और कहाँ वनवास! कहाँ क्षत्रियका हिंसामय कठोर कर्म और कहाँ सब प्राणियोंपर दया करनारूप तप—ये परस्पर विरुद्ध जान पड़ते हैं। अतः हमलोगोंको देशधर्मका ही आदर करना चाहिये (इस समय हम तपोवनरूप देशमें निवास करते हैं, अतः यहाँके अहिंसामय धर्मका पालन करना ही हमारा कर्तव्य है)॥ २७॥

'केवल शस्त्रका सेवन करनेसे मनुष्यकी बुद्धि कृपण पुरुषोंके समान कलुषित हो जाती है; अतः आप अयोध्यामें चलनेपर ही पुनः क्षात्रधर्मका अनुष्ठान कीजियेगा॥ २८॥

'राज्य त्यागकर वनमें आ जानेपर यदि आप मुनिवृत्तिसे ही रहें तो इससे मेरी सास और श्वशुरको अक्षय प्रसन्नता होगी॥ २९॥

'धर्मसे अर्थ प्राप्त होता है, धर्मसे सुखका उदय होता है और धर्मसे ही मनुष्य सब कुछ पा लेता है। इस संसारमें धर्म ही सार है॥ ३०॥

'चतुर मनुष्य भिन्न-भिन्न वानप्रस्थोचित नियमोंके द्वारा अपने शरीरको क्षीण करके यत्नपूर्वक धर्मका सम्पादन करते हैं; क्योंकि सुखदायक साधनसे सुखके हेतुभूत धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है॥ ३१॥

'सौम्य! प्रतिदिन शुद्धचित्त होकर तपोवनमें धर्मका अनुष्ठान कीजिये। त्रिलोकीमें जो कुछ भी है, आपको तो वह सब कुछ यथार्थरूपसे विदित ही है॥ ३२॥

'मैंने नारीजातिकी स्वाभाविक चपलताके कारण ही आपकी सेवामें ये बातें निवेदन कर दी हैं। वास्तवमें आपको धर्मका उपदेश करनेमें कौन समर्थ है? आप इस विषयमें अपने छोटे भाईके साथ बुद्धिपूर्वक विचार कर लें। फिर आपको जो ठीक जँचे, उसे ही शीघ्रतापूर्वक करें'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

श्रीरामका ऋषियोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंके वधके निमित्त की हुई प्रतिज्ञाके पालनपर दृढ़ रहनेका विचार प्रकट करना

अपने स्वामीके प्रति भक्ति रखनेवाली विदेहकुमारी सीताकी कही हुई यह बात सुनकर सदा धर्ममें स्थित रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने जानकीको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

'देवि! धर्मको जाननेवाली जनककिशोरी! तुम्हारा मेरे ऊपर स्नेह है, इसलिये तुमने मेरे हितकी बात कही है। क्षत्रियोंके कुलधर्मका उपदेश करती हुई तुमने जो कुछ कहा है, वह तुम्हारे ही योग्य है॥ २॥

'देवि! मैं तुम्हें क्या उत्तर दूँ, तुमने ही पहले यह बात कही है कि क्षत्रियलोग इसलिये धनुष धारण करते हैं कि किसीको दुःखी होकर हाहाकार न करना पड़े (यदि कोई दुःख या संकटमें पड़ा हो तो उसकी रक्षा की जाय)॥ ३॥

'सीते! दण्डकारण्यमें रहकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले वे मुनि बहुत दुःखी हैं, इसीलिये मुझे शरणागतवत्सल जानकर वे स्वयं मेरे पास आये और शरणागत हुए॥ ४॥

'भीरु! सदा ही वनमें रहकर फल-मूलका आहार करनेवाले वे मुनि इन क्रूरकर्मा राक्षसोंके कारण कभी सुख नहीं पाते हैं। मनुष्योंके मांससे जीवननिर्वाह

करनेवाले ये भयानक राक्षस उन्हें मारकर खा जाते हैं॥

‘उन राक्षसोंके ग्रास बने हुए वे दण्डकारण्यवासी द्विजश्रेष्ठ मुनि हमलोगोंके पास आकर मुझसे बोले—‘प्रभो! हमपर अनुग्रह कीजिये’॥ ६½ ॥

‘उनके मुखसे निकली हुई इस प्रकार रक्षाकी पुकार सुनकर और उनकी आज्ञा-पालनरूपी सेवाका विचार मनमें लेकर मैंने उनसे यह बात कही॥ ७½ ॥

‘महर्षियो! आप-जैसे ब्राह्मणोंकी सेवामें मुझे स्वयं ही उपस्थित होना चाहिये था, परंतु आप स्वयं ही अपनी रक्षाके लिये मेरे पास आये, यह मेरे लिये अनुपम लज्जाकी बात है; अतः आप प्रसन्न हों। बताइये, मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ?’ यह बात मैंने उन ब्राह्मणोंके सामने कही॥ ८-९ ॥

‘तब उन सभीने मिलकर अपना मनोभाव इन वचनोंमें प्रकट किया—‘श्रीराम! दण्डकारण्यमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत-से राक्षस रहते हैं। उनसे हमें बड़ा कष्ट पहुँच रहा है, अतः वहाँ उनके भयसे आप हमारी रक्षा करें॥ १०½ ॥

‘निष्पाप रघुनन्दन! अग्निहोत्रका समय आनेपर तथा पर्वके अवसरोंपर ये अत्यन्त दुर्धर्ष मांसभोजी राक्षस हमें धर दबाते हैं॥ ११½ ॥

‘राक्षसोंद्वारा आक्रान्त होनेवाले हम तपस्वी तापस सदा अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़ते रहते हैं, अतः आप ही हमारे परम आश्रय हों॥ १२½ ॥

‘रघुनन्दन! यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे इच्छानुसार इन राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ हैं तथापि चिरकालसे उपार्जित किये हुए तपको खण्डित करना नहीं चाहते हैं; क्योंकि तपमें सदा ही बहुत-से विघ्न आते रहते हैं तथा इसका सम्पादन बहुत ही कठिन होता है॥ १३-१४ ॥

‘यही कारण है कि राक्षसोंके ग्रास बन जानेपर भी हम उन्हें शाप नहीं देते हैं, इसलिये दण्डकारण्यवासी निशाचरोंसे पीड़ित हुए हम तापसोंकी भाईसहित आप रक्षा करें; क्योंकि इस वनमें अब आप ही हमारे रक्षक हैं’॥ १५½ ॥

‘जनकनन्दिनि! दण्डकारण्यमें ऋषियोंकी यह बात सुनकर मैंने पूर्णरूपसे उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की है॥ १६½ ॥

‘मुनियोंके सामने यह प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी इस प्रतिज्ञाको मिथ्या नहीं कर सकूँगा; क्योंकि सत्यका पालन मुझे सदा ही प्रिय है॥ १७½ ॥

‘सीते! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ, किंतु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको मैं कदापि नहीं तोड़ सकता॥ १८½ ॥

‘इसलिये ऋषियोंकी रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक कर्तव्य है। विदेहनन्दिनि! ऋषियोंके बिना कहे ही उनकी मुझे रक्षा करनी चाहिये थी; फिर जब उन्होंने स्वयं कहा और मैंने प्रतिज्ञा भी कर ली, तब अब उनकी रक्षासे कैसे मुँह मोड़ सकता हूँ॥ १९½ ॥

‘सीते! तुमने स्नेह और सौहार्दवश जो मुझसे ये बातें कही हैं, इससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ; क्योंकि जो अपना प्रिय न हो, उसे कोई हितकर उपदेश नहीं देता॥ २०½ ॥

‘शोभने! तुम्हारा यह कथन तुम्हारे योग्य तो है ही, तुम्हारे कुलके भी सर्वथा अनुरूप है। तुम मेरी सहधर्मिणी हो और मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो’॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्रिया मिथिलेशकुमारी सीतासे ऐसा वचन कहकर हाथमें धनुष ले लक्ष्मणके साथ रमणीय तपोवनोंमें विचरण करने लगे॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

पञ्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनिकी कथा, विभिन्न आश्रमोंमें घूमकर श्रीराम आदिका सुतीक्ष्णके आश्रममें आना, वहाँ कुछ कालतक रहकर उनकी आज्ञासे अगस्त्यके भाई तथा अगस्त्यके आश्रमपर जाना तथा अगस्त्यके प्रभावका वर्णन

तदनन्तर आगे-आगे श्रीराम चले, बीचमें परम सुन्दरी सीता चल रही थीं और उनके पीछे हाथमें धनुष लिये लक्ष्मण चलने लगे॥ १ ॥

सीताके साथ वे दोनों भाई भाँति-भाँतिके पर्वतीय शिखरों, वनों तथा नाना प्रकारकी रमणीय नदियोंको देखते हुए अग्रसर होने लगे॥ २ ॥

उन्होंने देखा, कहीं नदियोंके तटोंपर सारस और चक्रवाक विचर रहे हैं और कहीं खिले हुए कमलों और जलचर पक्षियोंसे युक्त सरोवर शोभा पाते हैं॥ ३॥

कहीं चितकबरे मृग यूथ बाँधे चले जा रहे थे, कहीं बड़े-बड़े सींगवाले मदमत्त भैंसे तथा बढ़े हुए दाँतवाले जंगली सूअर और वृक्षोंके वैरी दन्तार हाथी दिखायी देते थे॥ ४॥

दूरतक यात्रा तै करनेके बाद जब सूर्य अस्ताचलको जाने लगे, तब उन तीनोंने एक साथ देखा—सामने एक बड़ा ही सुन्दर तालाब है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजनकी जान पड़ती है॥ ५॥

वह सरोवर लाल और श्वेत कमलोंसे भरा हुआ था। उसमें क्रीड़ा करते हुए झुंड-के-झुंड हाथी उसकी शोभा बढ़ाते थे। तथा सारस, राजहंस और कलहंस आदि पक्षियों एवं जलमें उत्पन्न होनेवाले मत्स्य आदि जन्तुओंसे वह व्याप्त दिखायी देता था॥ ६॥

स्वच्छ जलसे भरे हुए उस रमणीय सरोवरमें गाने-बजानेका शब्द सुनायी देता था, किंतु कोई दिखायी नहीं दे रहा था॥ ७॥

तब श्रीराम और महारथी लक्ष्मणने कौतूहलवश अपने साथ आये हुए धर्मभृत् नामक मुनिसे पूछना आरम्भ किया—॥ ८॥

'महामुने! यह अत्यन्त अद्भुत संगीतकी ध्वनि सुनकर हम सब लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा है। यह क्या है, इसे अच्छी तरह बताइये'॥ ९॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा धर्मभृत् नामक मुनिने तुरंत ही उस सरोवरके प्रभावका वर्णन आरम्भ किया—॥ १०॥

'श्रीराम! यह पञ्चाप्सर नामक सरोवर है, जो सर्वदा अगाध जलसे भरा रहता है। माण्डकर्णि नामक मुनिने अपने तपके द्वारा इसका निर्माण किया था॥ ११॥

'महामुनि माण्डकर्णिने एक जलाशयमें रहकर केवल वायुका आहार करते हुए दस सहस्र वर्षोंतक तीव्र तपस्या की थी॥ १२॥

'उस समय अग्नि आदि सब देवता उनके तपसे अत्यन्त व्यथित हो उठे और आपसमें मिलकर वे सब-के-सब इस प्रकार कहने लगे॥ १३॥

'जान पड़ता है, ये मुनि हमलोगोंमेंसे किसीके स्थानको लेना चाहते हैं, ऐसा सोचकर वे सब देवता वहाँ मन-ही-मन उद्विग्न हो उठे॥ १४॥

'तब उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये सम्पूर्ण देवताओंने पाँच प्रधान अप्सराओंको नियुक्त किया, जिनकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान चञ्चल थी॥ १५॥

'तदनन्तर जिन्होंने लौकिक एवं पारलौकिक धर्माधर्मका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उन मुनिको उन पाँच अप्सराओंने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये कामके अधीन कर दिया॥ १६॥

'मुनिकी पत्नी बनी हुई वे ही पाँच अप्सराएँ यहाँ रहती हैं। उनके रहनेके लिये इस तालाबके भीतर घर बना हुआ है, जो जलके अंदर छिपा हुआ है॥ १७॥

'उसी घरमें सुखपूर्वक रहती हुई पाँचों अप्सराएँ तपस्याके प्रभावसे युवावस्थाको प्राप्त हुए मुनिको अपनी सेवाओंसे संतुष्ट करती हैं॥ १८॥

'क्रीड़ा-विहारमें लगी हुई उन अप्सराओंके ही वाद्योंकी यह ध्वनि सुनायी देती है, जो भूषणोंकी झनकारके साथ मिली हुई है। साथ ही उनके गीतका भी मनोहर शब्द सुन पड़ता है'॥ १९॥

अपने भाईके साथ महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने उन भावितात्मा महर्षिके इस कथनको 'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है' यों कहकर स्वीकार किया॥ २०॥

इस प्रकार कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीको एक आश्रममण्डल दिखायी दिया, जहाँ सब ओर कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रम ब्राह्मी लक्ष्मी (ब्रह्मतेज) से प्रकाशित होता था॥ २१॥

विदेहनन्दिनी सीता तथा लक्ष्मणके साथ उस तेजस्वी आश्रममण्डलमें प्रवेश करके ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने उस समय सुखपूर्वक निवास किया। वहाँके महर्षियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया॥ २२ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर महान् अस्त्रोंके ज्ञाता श्रीरामचन्द्रजी बारी-बारीसे उन सभी तपस्वी मुनियोंके आश्रमोंपर गये, जिनके यहाँ वे पहले रह चुके थे। उनके पास भी (उनकी भक्ति देख) दुबारा जाकर रहे॥ २३ $\frac{1}{2}$ ॥

कहीं दस महीने, कहीं साल भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या छः महीने, कहीं इससे भी अधिक समय (अर्थात् सात महीने), कहीं उससे भी अधिक (आठ महीने), कहीं आधे मास अधिक अर्थात् साढ़े आठ महीने, कहीं तीन महीने और कहीं आठ और तीन अर्थात् ग्यारह महीनेतक श्रीरामचन्द्रजीने सुखपूर्वक निवास किया॥ २४-२५ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंपर रहते और अनुकूलता

पाकर आनन्दका अनुभव करते हुए उनके दस वर्ष बीत गये॥ २६½ ॥

इस प्रकार सब ओर घूम-फिरकर धर्मके ज्ञाता भगवान् श्रीराम सीताके साथ फिर सुतीक्ष्णके आश्रमपर ही लौट आये॥ २७½ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीराम उस आश्रममें आकर वहाँ रहनेवाले मुनियोंद्वारा भलीभाँति सम्मानित हो वहाँ भी कुछ कालतक रहे॥ २८½ ॥

उस आश्रममें रहते हुए श्रीरामने एक दिन महामुनि सुतीक्ष्णके पास बैठकर विनीतभावसे कहा— ॥ २९½ ॥

'भगवन्! मैंने प्रतिदिन बातचीत करनेवाले लोगोंके मुँहसे सुना है कि इस वनमें कहीं मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी निवास करते हैं; किंतु इस वनकी विशालताके कारण मैं उस स्थानको नहीं जानता हूँ॥ ३०-३१ ॥

'उन बुद्धिमान् महर्षिका सुन्दर आश्रम कहाँ है? मैं लक्ष्मण और सीताके साथ भगवान् अगस्त्यको प्रसन्न करनेके लिये उन मुनीश्वरको प्रणाम करनेके उद्देश्यसे उनके आश्रमपर जाऊँ—यह महान् मनोरथ मेरे हृदयमें चक्कर लगा रहा है॥ ३२-३३ ॥

'मैं चाहता हूँ कि स्वयं भी मुनिवर अगस्त्यकी सेवा करूँ।' धर्मात्मा श्रीरामका यह वचन सुनकर सुतीक्ष्ण मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन दशरथनन्दनसे इस प्रकार बोले— ॥ ३४½ ॥

'रघुनन्दन! मैं भी लक्ष्मणसहित आपसे यही कहना चाहता था कि आप सीताके साथ महर्षि अगस्त्यके पास जायँ। सौभाग्यकी बात है कि इस समय आप स्वयं ही मुझसे वहाँ जानेके विषयमें पूछ रहे हैं॥ ३५-३६ ॥

'श्रीराम! महामुनि अगस्त्य जहाँ रहते हैं, उस आश्रमका पता मैं अभी आपको बताये देता हूँ। तात! इस आश्रमसे चार योजन दक्षिण चले जाइये। वहाँ आपको अगस्त्यके भाईका बहुत बड़ा एवं सुन्दर आश्रम मिलेगा॥ ३७ ॥

'वहाँके वनकी भूमि प्राय: समतल है तथा पिप्पलीका वन उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता है। वहाँ फूलों और फलोंकी बहुतायत है। नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरवोंसे गूँजते हुए उस रमणीय आश्रमके पास भाँति-भाँतिके कमलमण्डित सरोवर हैं, जो स्वच्छ जलसे भरे हुए हैं। हंस और कारण्डव आदि पक्षी उनमें सब ओर फैले हुए हैं तथा चक्रवाक उनकी शोभा बढ़ाते हैं॥ ३८-३९ ॥

'श्रीराम! आप एक रात उस आश्रममें ठहरकर प्रात:काल उस वनखण्डके किनारे दक्षिण दिशाकी ओर जायँ। इस प्रकार एक योजन आगे जानेपर अनेकानेक वृक्षोंसे सुशोभित वनके रमणीय भागमें अगस्त्य मुनिका आश्रम मिलेगा॥ ४०-४१ ॥

'वहाँ विदेहनन्दिनी सीता और लक्ष्मण आपके साथ सानन्द विचरण करेंगे: क्योंकि बहुसंख्यक वृक्षोंसे सुशोभित वह वनप्रान्त बड़ा ही रमणीय है॥ ४२ ॥

'महामते! यदि आपने महामुनि अगस्त्यके दर्शनका निश्चित विचार कर लिया है तो आज ही वहाँकी यात्रा करनेका भी निश्चय करें'॥ ४३ ॥

मुनिका यह वचन सुनकर भाईसहित श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम किया और सीता तथा लक्ष्मणके साथ अगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चल दिये॥ ४४ ॥

मार्गमें मिले हुए विचित्र-विचित्र वनों, मेघमालाके समान पर्वतमालाओं, सरोवरों और सरिताओंको देखते हुए वे आगे बढ़ते गये॥ ४५ ॥

इस प्रकार सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे सुखपूर्वक चलते-चलते श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे यह बात कही— ॥ ४६ ॥

'सुमित्रानन्दन! निश्चय ही यह पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले महात्मा अगस्त्यमुनिके भाईका आश्रम दिखायी दे रहा है॥ ४७ ॥

'क्योंकि सुतीक्ष्णजीने जैसा बतलाया था, उसके अनुसार इस वनके मार्गमें फूलों और फलोंके भारसे झुके हुए सहस्रों परिचित वृक्ष शोभा पा रहे हैं॥ ४८ ॥

'इस वनमें पकी हुई पीपलियोंकी यह गन्ध वायुसे प्रेरित होकर सहसा इधर आयी है, जिससे कटु रसका उदय हो रहा है॥ ४९ ॥

'जहाँ-तहाँ लकड़ियोंके ढेर लगे दिखायी देते हैं और वैदूर्यमणिके समान रंगवाले कुश कटे हुए दृष्टिगोचर होते हैं॥ ५० ॥

'यह देखो, जंगलके बीचमें आश्रमकी अग्निका धुआँ उठता दिखायी दे रहा है, जिसका अग्रभाग काले मेघोंके ऊपरी भाग-सा प्रतीत होता है॥ ५१ ॥

'यहाँके एकान्त एवं पवित्र तीर्थोंमें स्नान करके आये हुए ब्राह्मण स्वयं चुनकर लाये हुए फूलोंसे देवताओंके लिये पुष्पोपहार अर्पित करते हैं॥ ५२ ॥

'सौम्य! मैंने सुतीक्ष्णजीका कथन जैसा सुना था, उसके अनुसार यह निश्चय ही अगस्त्यजीके भाईका आश्रम होगा॥ ५३ ॥

'इन्हींके भाई पुण्यकर्मा अगस्त्यजीने समस्त लोकोंके हितकी कामनासे मृत्युस्वरूप वातापि और इल्वलका वेगपूर्वक दमन करके इस दक्षिण दिशाको शरण लेनेके योग्य बना दिया॥ ५४॥

'एक समयकी बात है, यहाँ क्रूर स्वभाववाला वातापि और इल्वल—ये दोनों भाई एक साथ रहते थे। ये दोनों महान् असुर ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले थे॥

'निर्दयी इल्वल ब्राह्मणका रूप धारण करके संस्कृत बोलता हुआ जाता और श्राद्धके लिये ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आता था। फिर मेष (जीवशाक) का रूप धारण करनेवाले अपने भाई वातापिका संस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त विधिसे ब्राह्मणोंको खिला देता था॥

'वे ब्राह्मण जब भोजन कर लेते, तब इल्वल उच्च स्वरसे बोलता—'वातापे! निकलो'॥ ५८॥

'भाईकी बात सुनकर वातापि भेड़के समान 'में-में' करता हुआ उन ब्राह्मणोंके पेट फाड़-फाड़कर निकल आता था॥ ५९॥

'इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन मांसभक्षी असुरोंने प्रतिदिन मिलकर सहस्रों ब्राह्मणोंका विनाश कर डाला॥ ६०॥

'उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे महर्षि अगस्त्यने श्राद्धमें शाकरूपधारी उस महान् असुरको जान-बूझकर भक्षण किया॥ ६१॥

'तदनन्तर श्राद्धकर्म सम्पन्न हो गया। ऐसा कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें अवनेजनका जल दे इल्वलने भाईको सम्बोधित करके कहा, 'निकलो'॥ ६२॥

'इस प्रकार भाईको पुकारते हुए उस ब्राह्मणघाती असुरसे बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने हँसकर कहा—

'जिस जीवशाकरूपधारी तेरे भाई राक्षसको मैंने खाकर पचा लिया, वह तो यमलोकमें जा पहुँचा है। अब उसमें निकलनेकी शक्ति कहाँ है'॥ ६४॥

'भाईकी मृत्युको सूचित करनेवाले मुनिके इस वचनको सुनकर उस निशाचरने क्रोधपूर्वक उन्हें मार डालनेका उद्योग आरम्भ किया॥ ६५॥

'उसने ज्यों ही द्विजराज अगस्त्यपर धावा किया, त्यों ही उद्दीप्त तेजवाले उन मुनिने अपनी अग्नितुल्य दृष्टिसे उस राक्षसको दग्ध कर डाला। इस प्रकार उसकी मृत्यु हो गयी॥ ६६॥

'ब्राह्मणोंपर कृपा करके जिन्होंने यह दुष्कर कर्म किया था, उन्हीं महर्षि अगस्त्यके भाईका यह आश्रम है, जो सरोवर और वनसे सुशोभित हो रहा है'॥ ६७॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ इस प्रकार बातचीत कर रहे थे। इतनेमें ही सूर्यदेव अस्त हो गये और संध्याका समय हो गया॥ ६८॥

तब भाईके साथ विधिपूर्वक सायं संध्योपासना करके श्रीरामने आश्रममें प्रवेश किया और उन महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाया॥ ६९॥

मुनिने उनका यथावत् आदर-सत्कार किया। सीता और लक्ष्मणसहित श्रीराम वहाँ फल-मूल खाकर एक रात उस आश्रममें रहे॥ ७०॥

वह रात बीतनेपर जब सूर्योदय हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यके भाईसे विदा माँगते हुए कहा—

'भगवन्! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। यहाँ रातभर बड़े सुखसे रहा हूँ। अब आपके बड़े भाई मुनिवर अगस्त्यका दर्शन करनेके लिये जाऊँगा। इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ'॥ ७२॥

तब महर्षिने कहा, 'बहुत अच्छा, जाइये।' इस प्रकार महर्षिसे आज्ञा पाकर भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे वनकी शोभा देखते हुए आगे चले॥ ७३॥

श्रीरामने वहाँ मार्गमें नीवार (जलकदम्ब), कटहल, साखू, अशोक, तिनिश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल, तेंदू तथा और भी सैकड़ों जंगली वृक्ष देखे, जो फूलोंसे भरे थे तथा खिली हुई लताओंसे परिवेष्टित हो बड़ी शोभा पा रहे थे। उनमेंसे कई वृक्षोंको हाथियोंने अपनी सूँड़ोंसे तोड़कर मसल डाला था और बहुत-से वृक्षोंपर बैठे हुए वानर उनकी शोभा बढ़ाते थे। सैकड़ों मतवाले पक्षी उनकी डालियोंपर चहक रहे थे॥ ७४—७६॥

उस समय कमलनयन श्रीराम अपने पीछे-पीछे आते हुए शोभावर्धक वीर लक्ष्मणसे, जो उनके निकट ही थे, इस प्रकार बोले—॥ ७७॥

'यहाँके वृक्षोंके पत्ते जैसे सुने गये थे, वैसे ही चिकने दिखायी देते हैं तथा पशु और पक्षी क्षमाशील एवं शान्त हैं। इससे जान पड़ता है, उन भावितात्मा (शुद्ध अन्त:करणवाले) महर्षि अगस्त्यका आश्रम यहाँसे अधिक दूर नहीं है॥ ७८॥

'जो अपने कर्मसे ही संसारमें अगस्त्य* के नामसे

* **अगं पर्वतं स्तम्भयति इति अगस्त्यः**—जो अग अर्थात् पर्वतको स्तम्भित कर दे, उसे अगस्त्य कहते हैं।

विख्यात हुए हैं, उन्हींका यह आश्रम दिखायी देता है, जो थके-माँदे पथिकोंकी थकावटको दूर करनेवाला है॥

'इस आश्रमके वन यज्ञ-यागसम्बन्धी अधिक धूमोंसे व्याप्त हैं। चीरवस्त्रोंकी पंक्तियाँ इसकी शोभा बढ़ाती हैं। यहाँके मृगोंके झुंड सदा शान्त रहते हैं तथा इस आश्रममें नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरव गूँजते रहते हैं॥ ८०॥

'जिन पुण्यकर्मा महर्षि अगस्त्यने समस्त लोकोंकी हितकामनासे मृत्युस्वरूप राक्षसोंका वेगपूर्वक दमन करके इस दक्षिण दिशाको शरण लेनेके योग्य बना दिया तथा जिनके प्रभावसे राक्षस इस दक्षिण दिशाको केवल दूरसे भयभीत होकर देखते हैं, इसका उपभोग भी नहीं करते, उन्हींका यह आश्रम है॥ ८१-८२॥

'पुण्यकर्मा महर्षि अगस्त्यने जबसे इस दिशामें पदार्पण किया है, तबसे यहाँके निशाचर वैररहित और शान्त हो गये हैं॥ ८३॥

'भगवान् अगस्त्यकी महिमासे इस आश्रमके आस-पास निर्वैरता आदि गुणोंके सम्पादनमें समर्थ तथा क्रूरकर्मा राक्षसोंके लिये दुर्जय होनेके कारण यह सम्पूर्ण दिशा नामसे भी तीनों लोकोंमें 'दक्षिणा' ही कहलायी, इसी नामसे विख्यात हुई तथा इसे 'अगस्त्यकी दिशा' भी कहते हैं॥ ८४॥

'एक बार पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ा था, किंतु महर्षि अगस्त्यके कहनेसे वह नम्र हो गया। तबसे आजतक निरन्तर उनके आदेशका पालन करता हुआ वह कभी नहीं बढ़ता॥ ८५॥

'वे दीर्घायु महात्मा हैं। उनका कर्म (समुद्रशोषण आदि कार्य) तीनों लोकोंमें विख्यात है। उन्हीं अगस्त्यका यह शोभासम्पन्न आश्रम है, जो विनीत मृगोंसे सेवित है॥ ८६॥

'ये महात्मा अगस्त्यजी सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा पूजित तथा सदा सज्जनोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं। अपने पास आये हुए हमलोगोंको वे अपने आशीर्वादसे कल्याणके भागी बनायँगे॥ ८७॥

'सेवा करनेमें समर्थ सौम्य लक्ष्मण! यहाँ रहकर मैं उन महामुनि अगस्त्यकी आराधना करूँगा और वनवासके शेष दिन यहीं रहकर बिताऊँगा॥ ८८॥

'देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि यहाँ नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्य मुनिकी उपासना करते हैं॥ ८९॥

'ये ऐसे प्रभावशाली मुनि हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता॥ ९०॥

'यहाँ धर्मकी आराधना करनेके लिये देवता, यक्ष, नाग और पक्षी नियमित आहार करते हुए निवास करते हैं॥ ९१॥

'इस आश्रमपर अपने शरीरोंको त्यागकर अनेकानेक सिद्ध, महात्मा, महर्षि नूतन शरीरोंके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं॥ ९२॥

'यहाँ सत्कर्मपरायण प्राणियोंद्वारा आराधित हुए देवता उन्हें यक्षत्व, अमरत्व तथा नाना प्रकारके राज्य प्रदान करते हैं॥ ९३॥

'सुमित्रानन्दन! अब हमलोग आश्रमपर आ पहुँचे। तुम पहले प्रवेश करो और महर्षियोंको सीताके साथ मेरे आगमनकी सूचना दो'॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका अगस्त्यके आश्रममें प्रवेश, अतिथि-सत्कार तथा मुनिकी ओरसे उन्हें दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंकी प्राप्ति

श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणने आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यसे भेंट की और उनसे यह बात कही—॥ १॥

'मुने! अयोध्यामें जो दशरथ नामसे प्रसिद्ध राजा थे, उन्हींके ज्येष्ठ पुत्र महाबली श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीताके साथ महर्षिका दर्शन करनेके लिये आये हैं॥

'मैं उनका छोटा भाई, हितैषी और अनुकूल चलनेवाला भक्त हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है। सम्भव है यह नाम कभी आपके कानोंमें पड़ा हो॥ ३॥

'हम सब लोग पिताकी आज्ञासे इस अत्यन्त भयंकर वनमें आये हैं और भगवान् अगस्त्य मुनिका दर्शन करना चाहते हैं। आप उनसे यह समाचार निवेदन कीजिये'॥ ४॥

लक्ष्मणकी वह बात सुनकर उन तपोधनने

'बहुत अच्छा' कहकर महर्षिको समाचार देनेके लिये अग्निशालामें प्रवेश किया॥ ५॥

अग्निशालामें प्रवेश करके अगस्त्यके उस प्रिय शिष्यने जो अपनी तपस्याके प्रभावसे दूसरोंके लिये दुर्जय थे, उन मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके पास जा हाथ जोड़ लक्ष्मणके कथनानुसार उन्हें श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका समाचार शीघ्रतापूर्वक यों सुनाया— ॥ ६½ ॥

'महामुने! राजा दशरथके ये दो पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण आश्रममें पधारे हैं। श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ हैं। वे दोनों शत्रुदमन वीर आपकी सेवाके उद्देश्यसे आपका दर्शन करनेके लिये आये हैं। अब इस विषयमें जो कुछ कहना या करना हो, इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें'॥ ७-८½ ॥

शिष्यसे लक्ष्मणसहित श्रीराम और महाभागा विदेहनन्दिनी सीताके शुभागमनका समाचार सुनकर महर्षिने इस प्रकार कहा— ॥ ९½ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि आज चिरकालके बाद श्रीरामचन्द्रजी स्वयं ही मुझसे मिलनेके लिये आ गये। मेरे मनमें भी बहुत दिनोंसे यह अभिलाषा थी कि वे एक बार मेरे आश्रमपर पधारते। जाओ, पत्नीसहित श्रीराम और लक्ष्मणको सत्कारपूर्वक आश्रमके भीतर मेरे समीप ले आओ। तुम अबतक उन्हें ले क्यों नहीं आये?'॥

धर्मज्ञ महात्मा अगस्त्य मुनिके ऐसा कहनेपर शिष्यने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और कहा— 'बहुत अच्छा अभी ले आता हूँ'॥ १२½ ॥

इसके बाद वह शिष्य आश्रमसे निकलकर शीघ्रतापूर्वक लक्ष्मणके पास गया और बोला— 'श्रीरामचन्द्रजी कौन हैं? वे स्वयं आश्रममें प्रवेश करें और मुनिका दर्शन करनेके लिये चलें'॥ १३½ ॥

तब लक्ष्मणने शिष्यके साथ आश्रमके द्वारपर जाकर उसे श्रीरामचन्द्रजी तथा जनककिशोरी श्रीसीताका दर्शन कराया॥ १४½ ॥

शिष्यने बड़ी विनयके साथ महर्षि अगस्त्यकी कही हुई बात वहाँ दुहरायी और जो सत्कारके योग्य थे, उन श्रीरामका यथोचित रीतिसे भलीभाँति सत्कार करके वह उन्हें आश्रममें ले गया॥ १५½ ॥

उस समय श्रीरामने लक्ष्मण और सीताके साथ आश्रममें प्रवेश किया। वह आश्रम शान्तभावसे रहनेवाले हरिणोंसे भरा हुआ था। आश्रमकी शोभा देखते हुए उन्होंने वहाँ ब्रह्माजीका स्थान और अग्निदेवका स्थान देखा॥ १६-१७॥

फिर क्रमशः भगवान् विष्णु, महेन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, भग, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, पाशधारी महात्मा वरुण, गायत्री, वसु, नागराज अनन्त, गरुड़, कार्तिकेय तथा धर्मराजके पृथक्-पृथक् स्थानका निरीक्षण किया॥ १८—२०½ ॥

इतनेहीमें मुनिवर अगस्त्य भी शिष्योंसे घिरे हुए अग्निशालासे बाहर निकले। वीर श्रीरामने मुनियोंके आगे-आगे आते हुए उद्दीप्त तेजस्वी अगस्त्यजीका दर्शन किया और अपनी शोभाका विस्तार करनेवाले लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा— ॥ २१-२२॥

'लक्ष्मण! भगवान् अगस्त्य मुनि आश्रमसे बाहर निकल रहे हैं। ये तपस्याके निधि हैं। इनके विशिष्ट तेजके आधिक्यसे ही मुझे पता चलता है कि ये अगस्त्यजी हैं'॥ २३॥

सूर्यतुल्य तेजस्वी महर्षि अगस्त्यके विषयमें ऐसा कहकर महाबाहु रघुनन्दनने सामनेसे आते हुए उन मुनीश्वरके दोनों चरण पकड़ लिये॥ २४॥

जिनमें योगियोंका मन रमण करता है अथवा जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, वे धर्मात्मा श्रीराम उस समय विदेहकुमारी सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षिके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २५॥

महर्षिने भगवान् श्रीरामको हृदयसे लगाया और आसन तथा जल (पाद्य, अर्घ्य आदि) देकर उनका आतिथ्य-सत्कार किया। फिर कुशल-समाचार पूछकर उन्हें बैठनेको कहा॥ २६॥

अगस्त्यजीने पहले अग्निमें आहुति दी, फिर वानप्रस्थधर्मके अनुसार अर्घ्य दे अतिथियोंका भलीभाँति पूजन करके उनके लिये भोजन दिया॥ २७॥

धर्मके ज्ञाता मुनिवर अगस्त्यजी पहले स्वयं बैठे, फिर धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर आसनपर विराजमान हुए। इसके बाद महर्षिने उनसे कहा— 'काकुत्स्थ! वानप्रस्थको चाहिये कि वह पहले अग्निको आहुति दे। तदनन्तर अर्घ्य देकर अतिथिका पूजन करे। जो तपस्वी इसके विपरीत आचरण करता है, उसे झूठी गवाही देनेवालेकी भाँति परलोकमें अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है॥ २८-२९॥

'आप सम्पूर्ण लोकके राजा, महारथी और धर्मका आचरण करनेवाले हैं तथा मेरे प्रिय अतिथिके रूपमें

इस आश्रमपर पधारे हैं, अतएव आप हमलोगोंके माननीय एवं पूजनीय हैं'॥ ३०॥

ऐसा कहकर महर्षि अगस्त्यने फल, मूल, फूल तथा अन्य उपकरणोंसे इच्छानुसार भगवान् श्रीरामका पूजन किया। तत्पश्चात् अगस्त्यजी उनसे इस प्रकार बोले—॥ ३१॥

'पुरुषसिंह! यह महान् दिव्य धनुष विश्वकर्माजीने बनाया है। इसमें सुवर्ण और हीरे जड़े हैं। यह भगवान् विष्णुका दिया हुआ है तथा यह जो सूर्यके समान देदीप्यमान अमोघ उत्तम बाण है, ब्रह्माजीका दिया हुआ है। इनके सिवा इन्द्रने ये दो तरकस दिये हैं, जो तीखे तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे सदा भरे रहते हैं। कभी खाली नहीं होते। साथ ही यह तलवार भी है जिसकी मूठमें सोना जड़ा हुआ है। इसकी म्यान भी सोनेकी ही बनी हुई है॥ ३२—३४॥

'श्रीराम! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त लक्ष्मीको उनके अधिकारसे लौटाया था। मानद! आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण और यह तलवार (राक्षसोंपर) विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये। ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं'॥ ३५-३६॥

ऐसा कहकर महान् तेजस्वी अगस्त्यने वे सभी श्रेष्ठ आयुध श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दिये। तत्पश्चात् वे फिर बोले॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

महर्षि अगस्त्यका श्रीरामके प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करके सीताकी प्रशंसा करना, श्रीरामके पूछनेपर उन्हें पञ्चवटीमें आश्रम बनाकर रहनेका आदेश देना तथा श्रीराम आदिका प्रस्थान

'श्रीराम! आपका कल्याण हो। मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ। लक्ष्मण! मैं तुमपर भी बहुत संतुष्ट हूँ। आप दोनों भाई मुझे प्रणाम करनेके लिये जो सीताके साथ यहाँतक आये, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ १॥

'रास्ता चलनेके परिश्रमसे आपलोगोंको बहुत थकावट हुई है। इसके कारण जो कष्ट हुआ है, वह आप दोनोंको पीड़ा दे रहा होगा। मिथिलेशकुमारी जानकी भी अपनी थकावट दूर करनेके लिये अधिक उत्कण्ठित है, यह बात स्पष्ट ही जान पड़ती है॥ २॥

'यह सुकुमारी है और इससे पहले इसे ऐसे दुःखोंका सामना नहीं करना पड़ा है। वनमें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, फिर भी यह पतिप्रेमसे प्रेरित होकर यहाँ आयी है॥ ३॥

'श्रीराम! जिस प्रकार सीताका यहाँ मन लगे—जैसे भी यह प्रसन्न रहे, वही कार्य आप करें। वनमें आपके साथ आकर इसने दुष्कर कार्य किया है॥ ४॥

'रघुनन्दन! सृष्टिकालसे लेकर अबतक स्त्रियोंका प्रायः यही स्वभाव रहता आया है कि यदि पति सम अवस्थामें है अर्थात् धनधान्यसे सम्पन्न, स्वस्थ एवं सुखी है, तब तो वे उसमें अनुराग रखती हैं, परंतु यदि वह विषम अवस्थामें पड़ जाता है—दरिद्र एवं रोगी हो जाता है, तब उसे त्याग देती हैं॥ ५॥

'स्त्रियाँ विद्युत्‌की चपलता, शस्त्रोंकी तीक्ष्णता तथा गरुड एवं वायुकी तीव्र गतिका अनुसरण करती हैं॥

'आपकी यह धर्मपत्नी सीता इन सब दोषोंसे रहित है। स्पृहणीय एवं पतिव्रताओंमें उसी तरह अग्रगण्य है, जैसे देवियोंमें अरुन्धती॥ ७॥

'शत्रुदमन श्रीराम! आजसे इस देशकी शोभा बढ़ गयी, जहाँ सुमित्राकुमार लक्ष्मण और विदेहनन्दिनी सीताके साथ आप निवास करेंगे'॥ ८॥

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षिसे दोनों हाथ जोड़कर यह विनययुक्त बात कही—॥ ९॥

'भाई और पत्नीसहित जिसके अर्थात् मेरे गुणोंसे हमारे गुरुदेव मुनिवर अगस्त्यजी यदि संतुष्ट हो रहे हैं, तब तो मैं धन्य हूँ, मुझपर मुनीश्वरका महान् अनुग्रह है॥

'परंतु मुने! अब आप मुझे ऐसा कोई स्थान बताइये जहाँ बहुत-से वन हों, जलकी भी सुविधा हो

तथा जहाँ आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक सानन्द निवास कर सकूँ'॥ ११॥

श्रीरामका यह कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्यने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार किया। तदनन्तर वे यह शुभ वचन बोले—॥ १२॥

'तात! यहाँसे दो योजनकी दूरीपर पञ्चवटी नामसे विख्यात एक बहुत ही सुन्दर स्थान है, जहाँ बहुत-से मृग रहते हैं तथा फल-मूल और जलकी अधिक सुविधा है॥

'वहीं जाकर लक्ष्मणके साथ आप आश्रम बनाइये और पिताकी यथोक्त आज्ञाका पालन करते हुए वहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिये॥ १४॥

'अनघ! आपका और राजा दशरथका यह सारा वृत्तान्त मुझे अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपके प्रति स्नेह होनेके कारण अच्छी तरह विदित है॥ १५॥

'आपने तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी और वनवासका शेष समय यहीं बितानेकी अभिलाषा प्रकट करके भी जो यहाँसे अन्यत्र रहने योग्य स्थानके विषयमें मुझसे पूछा है, इसमें आपका हार्दिक अभिप्राय क्या है? यह मैंने अपने तपोबलसे जान लिया है (आपने ऋषियोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा की है। इस प्रतिज्ञाका निर्वाह अन्यत्र रहनेसे ही हो सकता है; क्योंकि यहाँ राक्षसोंका आना-जाना नहीं होता)॥ १६॥

'इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि पञ्चवटीमें जाइये। वहाँकी वनस्थली बड़ी ही रमणीय है। वहाँ मिथिलेशकुमारी सीता आनन्दपूर्वक सब ओर विचरेंगी॥

'रघुनन्दन! वह स्पृहणीय स्थान यहाँसे अधिक दूर नहीं है। गोदावरीके पास (उसीके तटपर) है, अतः मैथिलीका मन वहाँ खूब लगेगा॥ १८॥

'महाबाहो! वह स्थान प्रचुर फल-मूलोंसे सम्पन्न, भाँति-भाँतिके विहङ्गमोंसे सेवित, एकान्त, पवित्र और रमणीय है॥ १९॥

'श्रीराम! आप भी सदाचारी और ऋषियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। अतः वहाँ रहकर तपस्वी मुनियोंका पालन कीजियेगा॥ २०॥

'वीर! यह जो महुओंका विशाल वन दिखायी देता है, इसके उत्तरसे होकर जाना चाहिये। उस मार्गसे जाते हुए आपको आगे एक बरगदका वृक्ष मिलेगा। उससे आगे कुछ दूरतक ऊँचा मैदान है, उसे पार करनेके बाद एक पर्वत दिखायी देगा। उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर पञ्चवटी नामसे प्रसिद्ध सुन्दर वन है, जो सदा फूलोंसे सुशोभित रहता है'॥ २१-२२॥

महर्षि अगस्त्यके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने उनका सत्कार करके उन सत्यवादी महर्षिसे वहाँ जानेकी आज्ञा माँगी॥ २३॥

उनकी आज्ञा पाकर उन दोनों भाइयोंने उनके चरणोंकी वन्दना की और सीताके साथ वे पञ्चवटी नामक आश्रमकी ओर चले॥ २४॥

राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणने पीठपर तरकस बाँध हाथमें धनुष ले लिये। वे दोनों भाई समराङ्गणोंमें कातरता दिखानेवाले नहीं थे। वे दोनों बन्धु महर्षिके बताये हुए मार्गसे बड़ी सावधानीके साथ पञ्चवटीकी ओर प्रस्थित हुए॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

पञ्चवटीके मार्गमें जटायुका मिलना और श्रीरामको अपना विस्तृत परिचय देना

पञ्चवटी जाते समय बीचमें श्रीरामचन्द्रजीको एक विशालकाय गृध्र मिला, जो भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाला था॥ १॥

वनमें बैठे हुए उस विशाल पक्षीको देखकर महाभाग श्रीराम और लक्ष्मणने उसे राक्षस ही समझा और पूछा—'आप कौन हैं?'॥ २॥

तब उस पक्षीने बड़ी मधुर और कोमल वाणीमें उन्हें प्रसन्न करते हुए-से कहा—'बेटा! मुझे अपने पिताका मित्र समझो'॥ ३॥

पिताका मित्र जानकर श्रीरामचन्द्रजीने गृध्रका आदर किया और शान्तभावसे उसका कुल एवं नाम पूछा॥ ४॥

श्रीरामका यह प्रश्न सुनकर उस पक्षीने उन्हें अपने कुल और नामका परिचय देते हुए समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका क्रम ही बताना आरम्भ किया॥ ५॥

'महाबाहु रघुनन्दन! पूर्वकालमें जो-जो प्रजापति हो चुके हैं, उन सबका आदिसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो॥ ६॥

'उन प्रजापतियोंमें सबसे प्रथम कर्दम हुए। तदनन्तर दूसरे प्रजापतिका नाम विकृत हुआ, तीसरे शेष, चौथे संश्रय और पाँचवें प्रजापति पराक्रमी बहुपुत्र हुए॥ ७॥

'छठे स्थाणु, सातवें मरीचि, आठवें अत्रि, नवें महान् शक्तिशाली क्रतु, दसवें पुलस्त्य, ग्यारहवें अङ्गिरा, बारहवें प्रचेता (वरुण) और तेरहवें प्रजापति पुलह हुए॥ ८॥

'चौदहवें दक्ष, पंद्रहवें विवस्वान्, सोलहवें अरिष्टनेमि और सत्रहवें प्रजापति महातेजस्वी कश्यप हुए। रघुनन्दन! यह कश्यपजी अन्तिम प्रजापति कहे गये हैं॥ ९॥

'महायशस्वी श्रीराम! प्रजापति दक्षके साठ यशस्विनी कन्याएँ हुईं, जो बहुत ही विख्यात थीं॥ १०॥

उनमेंसे आठ* सुन्दरी कन्याओंको प्रजापति कश्यपने पत्नीरूपमें ग्रहण किया। जिनके नाम इस प्रकार हैं—अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर उन कन्याओंसे प्रसन्न होकर कश्यपजीने फिर उनसे कहा—'देवियो! तुमलोग ऐसे पुत्रोंको जन्म दोगी, जो तीनों लोकोंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ और मेरे समान तेजस्वी होंगे'॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

'महाबाहु श्रीराम! इनमेंसे अदिति, दिति, दनु और कालका—इन चारोंने कश्यपजीकी कही हुई बातको मनसे ग्रहण किया; परंतु शेष स्त्रियोंने उधर मन नहीं लगाया। उनके मनमें वैसा मनोरथ नहीं उत्पन्न हुआ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुवीर! अदितिके गर्भसे तैंतीस देवता उत्पन्न हुए—बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार। शत्रुओंको ताप देनेवाले श्रीराम! ये ही तैंतीस देवता हैं॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

'तात! दितिने दैत्य नामसे प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रोंको जन्म दिया। पूर्वकालमें वन और समुद्रोंसहित सारी पृथिवी उन्हींके अधिकारमें थी॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

'शत्रुदमन! दनुने अश्वग्रीव नामक पुत्रको उत्पन्न किया और कालकाने नरक एवं कालक नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

'ताम्राने क्रौञ्ची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी—इन पाँच विश्वविख्यात कन्याओंको उत्पन्न किया॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

'इनमेंसे क्रौञ्चीने उल्लुओंको, भासीने भास नामक पक्षियोंको, श्येनीने परम तेजस्वी श्येनों (बाजों) और गीधोंको तथा धृतराष्ट्रीने सब प्रकारके हंसों और कलहंसोंको जन्म दिया॥ १८-१९॥

'श्रीराम! आपका कल्याण हो, उसी भामिनी धृतराष्ट्रीने चक्रवाक नामक पक्षियोंको भी उत्पन्न किया था। ताम्राकी सबसे छोटी पुत्री शुकीने नता नामवाली कन्याको जन्म दिया। नतासे विनता नामवाली पुत्री उत्पन्न हुई॥ २०॥

'श्रीराम! क्रोधवशाने अपने पेटसे दस कन्याओंको जन्म दिया। जिनके नाम हैं—मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सर्वलक्षणसम्पन्ना सुरसा और कद्रुका॥ २१-२२॥

'नरेशोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! मृगीकी संतान सारे मृग हैं और मृगमन्दाके ऋक्ष, सृमर और चमर॥ २३॥

'भद्रमदाने इरावती नामक कन्याको जन्म दिया, जिसका पुत्र है ऐरावत नामक महान् गजराज, जो समस्त लोकोंको अभीष्ट है॥ २४॥

'हरीकी संतानें हरि (सिंह) तथा तपस्वी (विचारशील) वानर तथा गोलांगूल (लंगूर) हैं। क्रोधवशाकी पुत्री शार्दूलीने व्याघ्र नामक पुत्र उत्पन्न किये॥ २५॥

'नरश्रेष्ठ! मातङ्गीकी संतानें मातङ्ग (हाथी) हैं। काकुत्स्थ! श्वेताने अपने पुत्रके रूपमें एक दिग्गजको जन्म दिया॥ २६॥

'श्रीराम! आपका भला हो। क्रोधवशाकी पुत्री सुरभी देवीने दो कन्याएँ उत्पन्न कीं—रोहिणी और यशस्विनी गन्धर्वी॥ २७॥

'रोहिणीने गौओंको जन्म दिया और गन्धर्वीने घोड़ोंको ही पुत्ररूपमें प्रकट किया। श्रीराम! सुरसाने नागोंको और कद्रूने पन्नगोंको जन्म दिया॥ २८॥

'नरश्रेष्ठ! महात्मा कश्यपकी पत्नी मनुने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिवाले मनुष्योंको जन्म दिया॥

'मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए और हृदयसे क्षत्रिय।

* यद्यपि पुराणग्रन्थोंमें 'कश्यपाय त्रयोदश' इत्यादि वचनोंद्वारा कश्यपकी तेरह पत्नियोंका उल्लेख किया गया है, तथापि यहाँ जिस संतानपरम्पराका वर्णन करना है, उसमें इन आठोंका ही उपयोग है, इसलिये यहाँ आठकी ही संख्या दी गयी है।

दोनों ऊरुओंसे वैश्योंका जन्म हुआ और दोनों पैरोंसे शूद्रोंका—ऐसी प्रसिद्धि है॥ ३०॥

'(कश्यपपत्नी) अनलाने पवित्र फलवाले समस्त वृक्षोंको जन्म दिया। कश्यपपत्नी ताम्राकी पुत्री जो शुकी थी, उसकी पौत्री विनता थी तथा कद्रू सुरसाकी बहिन (एवं क्रोधवशाकी पुत्री) कही गयी है॥ ३१॥

'इनमेंसे कद्रूने एक सहस्र नागोंको उत्पन्न किया, जो इस पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं तथा विनताके दो पुत्र हुए—गरुड़ और अरुण॥ ३२॥

'उन्हीं विनतानन्दन अरुणसे मैं तथा मेरे बड़े भाई सम्पाति उत्पन्न हुए। शत्रुदमन रघुवीर! आप मेरा नाम जटायु समझें। मैं श्येनीका पुत्र हूँ (ताम्राकी पुत्री जो श्येनी बतायी गयी है, उसीकी परम्परामें उत्पन्न हुई एक श्येनी मेरी माता हुई)॥ ३३॥

'तात! यदि आप चाहें तो मैं यहाँ आपके निवासमें सहायक होऊँगा। यह दुर्गम वन मृगों तथा राक्षसोंसे सेवित है। लक्ष्मणसहित आप यदि अपनी पर्णशालासे कभी बाहर चले जायँ तो उस अवसरपर मैं देवी सीताकी रक्षा करूँगा'॥ ३४॥

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने जटायुका बड़ा सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके गले लगकर वे उनके सामने नतमस्तक हो गये। फिर पिताके साथ जिस प्रकार उनकी मित्रता हुई थी, वह प्रसङ्ग मनस्वी श्रीरामने जटायुके मुखसे बारंबार सुना॥ ३५॥

तत्पश्चात् वे मिथिलेशकुमारी सीताको उनके संरक्षणमें सौंपकर लक्ष्मण और उन अत्यन्त बलशाली पक्षी जटायुके साथ ही पञ्चवटीकी ओर ही चल दिये। श्रीरामचन्द्रजी मुनिद्रोही राक्षसोंको शत्रु समझकर उन्हें उसी प्रकार दग्ध कर डालना चाहते थे, जैसे आग पतिङ्गोंको जलाकर भस्म कर देती है॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ सर्ग

पञ्चवटीके रमणीय प्रदेशमें श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणद्वारा सुन्दर पर्णशालाका निर्माण तथा उसमें सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका निवास

नाना प्रकारके सर्पों, हिंसक जन्तुओं और मृगोंसे भरी हुई पञ्चवटीमें पहुँचकर श्रीरामने उद्दीप्त तेजवाले अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—॥ १॥

'सौम्य! मुनिवर अगस्त्यने हमें जिस स्थानका परिचय दिया था, उनके तथाकथित स्थानमें हमलोग आ पहुँचे। यही पञ्चवटीका प्रदेश है। यहाँका वनप्रान्त पुष्पोंसे कैसी शोभा पा रहा है॥ २॥

'लक्ष्मण! तुम इस वनमें चारों ओर दृष्टि डालो; क्योंकि इस कार्यमें निपुण हो। देखकर यह निश्चय करो कि किस स्थानपर आश्रम बनाना हमारे लिये अच्छा होगा॥ ३॥

'लक्ष्मण! तुम किसी ऐसे स्थानको ढूँढ़ निकालो, जहाँसे जलाशय निकट हो, जहाँ विदेहकुमारी सीताका मन लगे, जहाँ तुम और हम भी प्रसन्नतापूर्वक रह सकें, जहाँ वन और जल दोनोंका रमणीय दृश्य हो तथा जिस स्थानके आस-पास ही समिधा, फूल, कुश और जल मिलनेकी सुविधा हो'॥ ४-५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर सीताके सामने ही उन ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामसे इस प्रकार बोले—॥ ६॥

'काकुत्स्थ! आपके रहते हुए मैं सदा पराधीन ही हूँ। मैं सैकड़ों या अनन्त वर्षोंतक आपकी आज्ञाके अधीन ही रहना चाहता हूँ; अतः आप स्वयं ही देखकर जो स्थान सुन्दर जान पड़े, वहाँ आश्रम बनानेके लिये मुझे आज्ञा दें—मुझसे कहें कि तुम अमुक स्थानपर आश्रम बनाओ'॥ ७॥

लक्ष्मणके इस वचनसे अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्वयं ही सोच-विचारकर एक ऐसा स्थान पसंद किया, जो सब प्रकारके उत्तम गुणोंसे सम्पन्न और आश्रम बनानेके योग्य था। उस सुन्दर स्थानपर आकर श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—॥ ८-९॥

'सुमित्रानन्दन! यह स्थान समतल और सुन्दर है तथा फूले हुए वृक्षोंसे घिरा है। तुम्हें इसी स्थानपर यथोचित रूपसे एक रमणीय आश्रमका निर्माण करना चाहिये॥

'यह पास ही सूर्यके समान उज्ज्वल कान्तिवाले

मनोरम गन्धयुक्त कमलोंसे रमणीय प्रतीत होनेवाली तथा पद्मोंकी शोभासे सम्पन्न पुष्करिणी दिखायी देती है॥ ११॥

'पवित्र अन्त:करणवाले अगस्त्य मुनिने जिसके विषयमें कहा था, वह विकसित वृक्षावलियोंसे घिरी हुई रमणीय गोदावरी नदी यही है॥ १२॥

'इसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी विचर रहे हैं। चकवे इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा पानी पीनेके लिये आये हुए मृगोंके झुंड इसके तटपर छाये रहते हैं। यह नदी इस स्थानसे न तो अधिक दूर है और न अत्यन्त निकट ही॥ १३॥

'सौम्य! यहाँ बहुत-सी कन्दराओंसे युक्त ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखायी दे रहे हैं, जहाँ मयूरोंकी मीठी बोली गूँज रही है। ये रमणीय पर्वत खिले हुए वृक्षोंसे व्याप्त हैं॥ १४॥

'स्थान-स्थानपर सोने, चाँदी तथा ताँबेके समान रंगवाले सुन्दर गैरिक धातुओंसे उपलक्षित ये पर्वत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो झरोखेके आकारमें की गयी नीले, पीले और सफेद आदि रंगोंकी उत्तम शृङ्गाररचनाओंसे अलंकृत हाथी शोभा पा रहे हों॥ १५॥

पुष्पों, गुल्मों तथा लता-वल्लरियोंसे युक्त साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, जलकदम्ब, तिनिश, पुंनाग, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा, चम्पा, स्यन्दन, चन्दन, कदम्ब, पर्णास, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और पाटल (पाडर) आदि वृक्षोंसे घिरे हुए ये पर्वत बड़ी शोभा पा रहे हैं॥ १६—१८॥

'सुमित्रानन्दन! यह बहुत ही पवित्र और बड़ा रमणीय स्थान है। यहाँ बहुत-से पशु-पक्षी निवास करते हैं। हमलोग भी यहीं इन पक्षिराज जटायुके साथ रहेंगे'॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली लक्ष्मणने भाईके लिये शीघ्र ही आश्रम बनाकर तैयार किया॥ २०॥

वह आश्रम एक अत्यन्त विस्तृत पर्णशालाके रूपमें बनाया गया था। महाबली लक्ष्मणने पहले वहाँ मिट्टी एकत्र करके दीवार खड़ी की, फिर उसमें सुन्दर एवं सुदृढ़ खम्भे लगाये। खम्भोंके ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रखे। बाँसोंके रख दिये जानेपर वह कुटी बड़ी सुन्दर दिखायी देने लगी। फिर उन बाँसोंपर उन्होंने शमीवृक्षकी शाखाएँ फैला दीं और उन्हें मजबूत रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया। इसके बाद ऊपरसे कुश, कास, सरकंडे और पत्ते बिछाकर उस पर्णशालाको भलीभाँति छा दिया तथा नीचेकी भूमिको बराबर करके उस कुटीको बड़ा रमणीय बना दिया। इस प्रकार लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीके लिये परम उत्तम निवासगृह बना दिया, जो देखने ही योग्य था॥ २१—२३॥

उसे तैयार करके श्रीमान् लक्ष्मणने गोदावरी नदीके तटपर जाकर तत्काल उसमें स्नान किया और कमलके फूल तथा फल लेकर वे फिर वहीं लौट आये॥ २४॥

तदनन्तर शास्त्रीय विधिके अनुसार देवताओंके लिये फूलोंकी बलि (उपहारसामग्री) अर्पित की तथा वास्तुशान्ति करके उन्होंने अपना बनाया हुआ आश्रम श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया॥ २५॥

भगवान् श्रीराम सीताके साथ उस नये बने हुए सुन्दर आश्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ कालतक उसके भीतर खड़े रहे॥ २६॥

तत्पश्चात् अत्यन्त हर्षमें भरकर उन्होंने दोनों भुजाओंसे लक्ष्मणको कसकर हृदयसे लगा लिया और बड़े स्नेहके साथ यह बात कही—॥ २७॥

'सामर्थ्यशाली लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने यह महान् कार्य किया है। उसके लिये और कोई समुचित पुरस्कार न होनेसे मैंने तुम्हें गाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया है॥ २८॥

'लक्ष्मण! तुम मेरे मनोभावको तत्काल समझ लेनेवाले, कृतज्ञ और धर्मज्ञ हो। तुम-जैसे पुत्रके कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं हैं—तुम्हारे रूपमें वे अब भी जीवित ही हैं'॥ २९॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर अपनी शोभाका विस्तार करनेवाले सुखी श्रीरामचन्द्रजी प्रचुर फलोंसे सम्पन्न उस पञ्चवटी-प्रदेशमें सबके साथ सुखपूर्वक रहने लगे॥ ३०॥

सीता और लक्ष्मणसे सेवित हो धर्मात्मा श्रीराम कुछ कालतक वहाँ उसी प्रकार रहे, जैसे स्वर्गलोकमें देवता निवास करते हैं॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

लक्ष्मणके द्वारा हेमन्त ऋतुका वर्णन और भरतकी प्रशंसा तथा श्रीरामका उन दोनोंके साथ गोदावरी नदीमें स्नान

महात्मा श्रीरामको उस आश्रममें रहते हुए शरद् ऋतु बीत गयी और प्रिय हेमन्तका आरम्भ हुआ॥ १॥

एक दिन प्रातःकाल रघुकुलनन्दन श्रीराम स्नान करनेके लिये परम रमणीय गोदावरी नदीके तटपर गये॥ २॥

उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी, जो बड़े ही विनीत और पराक्रमी थे, सीताके साथ-साथ हाथमें घड़ा लिये उनके पीछे-पीछे गये। जाते-जाते वे श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार बोले—॥ ३॥

प्रिय वचन बोलनेवाले भैया श्रीराम! यह वही हेमन्तकाल आ पहुँचा है, जो आपको अधिक प्रिय है और जिससे यह शुभ संवत्सर अलंकृत-सा प्रतीत होता है॥ ४॥

'इस ऋतुमें अधिक ठण्डक या पालेके कारण लोगोंका शरीर रूखा हो जाता है। पृथ्वीपर रबीकी खेती लहलहाने लगती है। जल अधिक शीतल होनेके कारण पीनेके योग्य नहीं रहता और आग बड़ी प्रिय लगती है॥ ५॥

'नवसस्येष्टि' कर्मके अनुष्ठानकी इस वेलामें नूतन अन्न ग्रहण करनेके लिये की गयी आग्रयणकर्मरूप पूजाओंद्वारा देवताओं तथा पितरोंको संतुष्ट करके उक्त आग्रयणकर्मका सम्पादन करनेवाले सत्पुरुष निष्पाप हो गये हैं॥ ६॥

'इस ऋतुमें प्रायः सभी जनपदोंके निवासियोंकी अन्नप्राप्तिविषयक कामनाएँ प्रचुररूपसे पूर्ण हो जाती हैं। गोरसकी भी बहुतायत होती है तथा विजयकी इच्छा रखनेवाले भूपालगण युद्ध-यात्राके लिये विचरते रहते हैं॥ ७॥

'सूर्यदेव इन दिनों यमसेवित दक्षिणदिशाका दृढ़तापूर्वक सेवन करने लगे हैं। इसलिये उत्तरदिशा सिंदूरविन्दुसे वञ्चित हुई नारीकी भाँति सुशोभित या प्रकाशित नहीं हो रही है॥ ८॥

'हिमालयपर्वत तो स्वभावसे ही घनीभूत हिमके खजानेसे भरा-पूरा होता है, परंतु इस समय सूर्यदेव भी दक्षिणायनमें चले जानेके कारण उससे दूर हो गये हैं; अतः अब अधिक हिमके संचयसे सम्पन्न होकर हिमवान् गिरि स्पष्ट ही अपने नामको सार्थक कर रहा है॥ ९॥

'मध्याह्नकालमें धूपका स्पर्श होनेसे हेमन्तके सुखमय दिन अत्यन्त सुखसे इधर-उधर विचरनेके योग्य होते हैं। इन दिनों सुसेव्य होनेके कारण सूर्यदेव सौभाग्यशाली जान पड़ते हैं और सेवनके योग्य न होनेके कारण छाँह तथा जल अभागे प्रतीत होते हैं॥ १०॥

'आजकलके दिन ऐसे हैं कि सूर्यकी किरणोंका स्पर्श कोमल (प्रिय) जान पड़ता है। कुहासे अधिक पड़ते हैं। सरदी सबल होती है, कड़ाकेका जाड़ा पड़ने लगता है। साथ ही ठण्डी हवा चलती रहती है। पाला पड़नेसे पत्तोंके झड़ जानेके कारण जंगल सूने दिखायी देते हैं और हिमके स्पर्शसे कमल गल जाते हैं॥ ११॥

'इस हेमन्तकालमें रातें बड़ी होने लगती हैं। इनमें सरदी बहुत बढ़ जाती है। खुले आकाशमें कोई नहीं सोते हैं। पौषमासकी ये रातें हिमपातके कारण धूसर प्रतीत होती हैं॥ १२॥

'हेमन्तकालमें चन्द्रमाका सौभाग्य सूर्यदेवमें चला गया है (चन्द्रमा सरदीके कारण असेव्य और सूर्य मन्दरश्मि होनेके कारण सेव्य हो गये हैं)। चन्द्रमण्डल हिमकणोंसे आच्छन्न होकर धूमिल जान पड़ता है; अतः चन्द्रदेव निःश्वासवायुसे मलिन हुए दर्पणकी भाँति प्रकाशित नहीं हो रहे हैं॥ १३॥

'इन दिनों पूर्णिमाकी चाँदनी रात भी तुहिन-बिन्दुओंसे मलिन दिखायी देती है—प्रकाशित नहीं होती है। ठीक उसी तरह, जैसे सीता अधिक धूप लगनेसे साँवली-सी दीखती है—पूर्ववत् शोभा नहीं पाती॥ १४॥

'स्वभावसे ही जिसका स्पर्श शीतल है, वह पछुआ हवा इस समय हिमकणोंसे व्याप्त हो जानेके कारण दूनी सरदी लेकर बड़े वेगसे बह रही है॥ १५॥

'जौ और गेहूँके खेतोंसे युक्त ये बहुसंख्यक वन भापसे ढँके हुए हैं तथा क्रौञ्च और सारस इनमें कलरव कर रहे हैं। सूर्योदयकालमें इन वनोंकी बड़ी शोभा हो रही है॥ १६॥

'ये सुनहरे रंगके जड़हन धान खजूरके फूलके-

से आकारवाली बालोंसे, जिनमें चावल भरे हुए हैं, कुछ लटक गये हैं। इन बालोंके कारण इनकी बड़ी शोभा होती है॥ १७॥

'कुहासेसे ढकी और फैलती हुई किरणोंसे उपलक्षित होनेवाले दूरोदित सूर्य चन्द्रमाके समान दिखायी देते हैं॥ १८॥

'इस समय अधिक लाल और कुछ-कुछ श्वेत, पीत वर्णकी धूप पृथ्वीपर फैलकर शोभा पा रही है। पूर्वाह्णकालमें तो कुछ इसका बल जान ही नहीं पड़ता है, परंतु मध्याह्नकालमें इसके स्पर्शसे सुखका अनुभव होता है॥

'ओसकी बूँदें पड़नेसे जहाँकी घासें कुछ-कुछ भीगी हुई जान पड़ती हैं, वह वनभूमि नवोदित सूर्यकी धूपका प्रवेश होनेसे अद्भुत शोभा पा रही है॥ २०॥

'यह जंगली हाथी बहुत प्यासा हुआ है। यह सुखपूर्वक प्यास बुझानेके लिये अत्यन्त शीतल जलका स्पर्श तो करता है, किंतु उसकी ठंडक असह्य होनेके कारण अपनी सूँड़को तुरंत ही सिकोड़ लेता है॥ २१॥

'ये जलचर पक्षी जलके पास ही बैठे हैं; परंतु जैसे डरपोक मनुष्य युद्धभूमिमें प्रवेश नहीं करते हैं, उसी प्रकार ये पानीमें नहीं उतर रहे हैं॥ २२॥

'रातमें ओसविन्दुओं और अन्धकारसे आच्छादित तथा प्रातःकाल कुहासेके अँधेरेसे ढकी हुई ये पुष्पहीन वनश्रेणियाँ सोयी हुई-सी दिखायी देती हैं॥ २३॥

'इस समय नदियोंके जल भापसे ढके हुए हैं। इनमें विचरनेवाले सारस केवल अपने कलरवोंसे पहचाने जाते हैं तथा ये सरिताएँ भी ओससे भीगी हुई बालूवाले अपने तटोंसे ही प्रकाशमें आती हैं (जलसे नहीं)॥ २४॥

'बर्फ पड़नेसे और सूर्यकी किरणोंके मन्द होनेसे अधिक सर्दीके कारण इन दिनों पर्वतके शिखरपर पड़ा हुआ जल भी प्रायः स्वादिष्ट प्रतीत होता है॥ २५॥

'जो पुराने पड़ जानेके कारण जर्जर हो गये हैं, जिनकी कर्णिका और केसर जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, ऐसे दलोंसे उपलक्षित होनेवाले कमलोंके समूह पाला पड़नेसे गल गये हैं। उनमें डंठलमात्र शेष रह गये हैं। इसीलिये उनकी शोभा नष्ट हो गयी है॥ २६॥

'पुरुषसिंह श्रीराम! इस समय धर्मात्मा भरत आपके लिये बहुत दुःखी हैं और आपमें भक्ति रखते हुए नगरमें ही तपस्या कर रहे हैं॥ २७॥

'वे राज्य, मान तथा नाना प्रकारके बहुसंख्यक भोगोंका परित्याग करके तपस्यामें संलग्न हैं एवं नियमित आहार करते हुए इस शीतल महीतलपर बिना विस्तरके ही शयन करते हैं॥ २८॥

'निश्चय ही भरत भी इसी बेलामें स्नानके लिये उद्यत हो मन्त्री एवं प्रजाजनोंके साथ प्रतिदिन सरयू नदीके तटपर जाते होंगे॥ २९॥

'अत्यन्त सुखमें पले हुए सुकुमार भरत जाड़ेका कष्ट सहते हुए रातके पिछले पहरमें कैसे सरयूजीके जलमें डुबकी लगाते होंगे॥ ३०॥

'जिनके नेत्र कमलदलके समान शोभा पाते हैं, जिनकी अङ्गकान्ति श्याम है और जिनके उदरका कुछ पता ही नहीं लगता है, ऐसे महान् धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जाशील, जितेन्द्रिय, प्रिय वचन बोलनेवाले, मृदुल स्वभाववाले महाबाहु शत्रुदमन श्रीमान् भरतने नाना प्रकारके सुखोंको त्यागकर सर्वथा आपका ही आश्रय ग्रहण किया है॥ ३१-३२॥

'आपके भाई महात्मा भरतने निश्चय ही स्वर्ग-लोकपर विजय प्राप्त कर ली है; क्योंकि वे भी तपस्यामें स्थित होकर आपके वनवासी जीवनका अनुसरण कर रहे हैं॥ ३३॥

'मनुष्य प्रायः माताके गुणोंका ही अनुवर्तन करते हैं पिताके नहीं; इस लौकिक उक्तिको भरतने अपने बर्तावसे मिथ्या प्रमाणित कर दिया है॥ ३४॥

'महाराज दशरथ जिसके पति हैं और भरत-जैसा साधु जिसका पुत्र है, वह माता कैकेयी वैसी क्रूरतापूर्ण दृष्टिवाली कैसे हो गयी?'॥ ३५॥

धर्मपरायण लक्ष्मण जब स्नेहवश इस प्रकार कह रहे थे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीसे माता कैकेयीकी निन्दा नहीं सही गयी। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ३६॥

'तात! तुम्हें मझली माता कैकेयीकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। (यदि कुछ कहना हो तो) पहलेकी भाँति इक्ष्वाकुवंशके स्वामी भरतकी ही चर्चा करो॥ ३७॥

'यद्यपि मेरी बुद्धि दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए वनमें रहनेका अटल निश्चय कर चुकी है, तथापि भरतके स्नेहसे संतप्त होकर पुनः चञ्चल हो उठती है॥ ३८॥

'मुझे भरतकी वे परम प्रिय, मधुर, मनको भानेवाली और अमृतके समान हृदयको आह्लाद प्रदान करनेवाली बातें याद आ रही हैं॥ ३९॥

'रघुकुलनन्दन लक्ष्मण! कब वह दिन आयेगा, जब मैं तुम्हारे साथ चलकर महात्मा भरत और वीरवर शत्रुघ्नसे मिलूँगा'॥ ४०॥

इस प्रकार विलाप करते हुए ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीरामने लक्ष्मण और सीताके साथ गोदावरी नदीके तटपर जाकर स्नान किया॥ ४१॥

वहाँ स्नान करके उन्होंने गोदावरीके जलसे देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब सूर्योदय हुआ, तब वे तीनों निष्पाप व्यक्ति भगवान् सूर्यका उपस्थान करके अन्य देवताओंकी भी स्तुति करने लगे॥

सीता और लक्ष्मणके साथ स्नान करके भगवान् श्रीराम उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे पर्वतराजपुत्री उमा और नन्दीके साथ गङ्गाजीमें अवगाहन करके भगवान् रुद्र सुशोभित होते हैं॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

श्रीरामके आश्रममें शूर्पणखाका आना, उनका परिचय जानना और अपना परिचय देकर उनसे अपनेको भार्याके रूपमें ग्रहण करनेके लिये अनुरोध करना

स्नान करके श्रीराम, लक्ष्मण और सीता तीनों ही उस गोदावरीतटसे अपने आश्रममें लौट आये॥ १॥

उस आश्रममें आकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने पूर्वाह्णकालके होम-पूजन आदि कार्य पूर्ण किये, फिर वे दोनों भाई पर्णशालामें आकर बैठे॥ २॥

वहाँ सीताके साथ वे सुखपूर्वक रहने लगे। उन दिनों बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आकर वहाँ उनका सत्कार करते थे। पर्णशालामें सीताके साथ बैठे हुए महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी चित्राके साथ विराजमान चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ वहाँ तरह-तरहकी बातें किया करते थे॥ ३-४॥

उस समय जब कि श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ बातचीतमें लगे हुए थे, एक राक्षसी अकस्मात् उस स्थानपर आ पहुँची। वह दशमुख राक्षस रावणकी बहिन शूर्पणखा थी। उसने वहाँ आकर देवताओंके समान मनोहर रूपवाले श्रीरामचन्द्रजीको देखा॥ ५-६॥

उनका मुख तेजस्वी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर थे। वे हाथीके समान मन्द गतिसे चलते थे। उन्होंने मस्तकपर जटामण्डल धारण कर रखा था॥ ७॥

परम सुकुमार, महान् बलशाली, राजोचित लक्षणोंसे युक्त, नील कमलके समान श्याम कान्तिसे सुशोभित, कामदेवके सदृश सौन्दर्यशाली तथा इन्द्रके समान तेजस्वी श्रीरामको देखते ही वह राक्षसी कामसे मोहित हो गयी॥ ८½॥

श्रीरामका मुख सुन्दर था और शूर्पणखाका मुख बहुत ही भद्दा एवं कुरूप था। उनका मध्यभाग (कटिप्रदेश और उदर) क्षीण था; किंतु शूर्पणखा बेडौल लंबे पेटवाली थी। श्रीरामकी आँखें बड़ी-बड़ी होनेके कारण मनोहर थीं, परंतु उस राक्षसीके नेत्र कुरूप और डरावने थे। श्रीरघुनाथजीके केश चिकने और सुन्दर थे, परंतु उस निशाचरीके सिरके बाल ताँबे-जैसे लाल थे। श्रीरामका रूप बड़ा प्यारा लगता था, किंतु शूर्पणखाका रूप बीभत्स और विकराल था। श्रीराघवेन्द्र मधुर स्वरमें बोलते थे, किंतु वह राक्षसी भैरवनाद करनेवाली थी॥ ९-१०॥

ये देखनेमें सौम्य और नित्य नूतन तरुण थे, किंतु वह निशाचरी क्रूर और हजारों वर्षोंकी बुढ़िया थी। ये सरलतासे बात करनेवाले और उदार थे, किंतु उसकी बातोंमें कुटिलता भरी रहती थी। ये न्यायोचित सदाचारका पालन करनेवाले थे और वह अत्यन्त दुराचारिणी थी। श्रीराम देखनेमें प्यारे लगते थे और शूर्पणखाको देखते ही घृणा पैदा होती थी॥ ११॥

तो वह राक्षसी कामभावसे आविष्ट हो (मनोहर रूप बनाकर) श्रीरामके पास आयी और बोली—'तपस्वीके वेशमें मस्तकपर जटा धारण किये, साथमें स्त्रीको लिये और हाथमें धनुष-बाण ग्रहण किये, इस राक्षसोंके देशमें तुम कैसे चले आये? यहाँ तुम्हारे आगमनका क्या प्रयोजन है? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताओ'॥ १२-१३॥

राक्षसी शूर्पणखाके इस प्रकार पूछनेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपने सरलस्वभावके कारण सब कुछ बताना आरम्भ किया—॥ १४॥

'देवि! दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो देवताओंके समान पराक्रमी थे।

मैं उन्हींका ज्येष्ठ पुत्र हूँ और लोगोंमें राम नामसे विख्यात हूँ॥ १५॥

'ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं, जो सदा मेरी आज्ञाके अधीन रहते हैं और ये मेरी पत्नी हैं, जो विदेहराज जनककी पुत्री तथा सीता नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १६॥

'अपने पिता महाराज दशरथ और माता कैकेयीकी आज्ञासे प्रेरित होकर मैं धर्मपालनकी इच्छा रखकर धर्मरक्षाके ही उद्देश्यसे इस वनमें निवास करनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ १७॥

'अब मैं तुम्हारा परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा नाम क्या है? और तुम किसकी पत्नी हो? तुम्हारे अङ्ग इतने मनोहर हैं कि तुम मुझे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली कोई राक्षसी प्रतीत होती हो। यहाँ किस लिये तुम आयी हो? यह ठीक-ठीक बताओ'॥ १८$\frac{१}{२}$॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर वह राक्षसी कामसे पीड़ित होकर बोली—'श्रीराम! मैं सब कुछ ठीक-ठीक बता रही हूँ। तुम मेरी बात सुनो। मेरा नाम शूर्पणखा है और मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी हूँ॥

'मैं समस्त प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करती हुई इस वनमें अकेली विचरती हूँ। मेरे भाईका नाम रावण है। सम्भव है, उसका नाम तुम्हारे कानोंतक पहुँचा हो॥

'रावण विश्रवा मुनिका वीर पुत्र है, यह बात भी तुम्हारे सुननेमें आयी होगी। मेरा दूसरा भाई महाबली कुम्भकर्ण है, जिसकी निद्रा सदा ही बढ़ी रहती है॥

'मेरे तीसरे भाईका नाम विभीषण है, परंतु वह धर्मात्मा है, राक्षसोंके आचार-विचारका वह कभी पालन नहीं करता। युद्धमें जिनका पराक्रम विख्यात है, वे खर और दूषण भी मेरे भाई ही हैं॥ २३॥

'श्रीराम! बल और पराक्रममें मैं अपने उन सभी भाइयोंसे बढ़कर हूँ। तुम्हारे प्रथम दर्शनसे ही मेरा मन तुममें आसक्त हो गया है। (अथवा तुम्हारा रूप-सौन्दर्य अपूर्व है। आजसे पहले देवताओंमें भी किसीका ऐसा रूप मेरे देखनेमें नहीं आया है, अतः इस अपूर्व रूपके दर्शनसे मैं तुम्हारे प्रति आकृष्ट हो गयी हूँ।) यही कारण है कि मैं तुम-जैसे पुरुषोत्तमके प्रति पतिकी भावना रखकर बड़े प्रेमसे पास आयी हूँ॥ २४॥

'मैं प्रभाव (उत्कृष्ट भाव—अनुराग अथवा महान् बल-पराक्रम) से सम्पन्न हूँ और अपनी इच्छा तथा शक्तिसे समस्त लोकोंमें विचरण कर सकती हूँ, अतः अब तुम दीर्घकालके लिये मेरे पति बन जाओ। इस अबला सीताको लेकर क्या करोगे?॥ २५॥

'यह विकारयुक्त और कुरूपा है, अतः तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं ही तुम्हारे अनुरूप हूँ, अतः मुझे अपनी भार्याके रूपमें देखो॥ २६॥

'यह सीता मेरी दृष्टिमें कुरूप, ओछी, विकृत, धँसे हुए पेटवाली और मानवी है, मैं इसे तुम्हारे इस भाईके साथ ही खा जाऊँगी॥ २७॥

'फिर तुम कामभावयुक्त हो मेरे साथ पर्वतीय शिखरों और नाना प्रकारके वनोंकी शोभा देखते हुए दण्डकवनमें विहार करना'॥ २८॥

शूर्पणखाके ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी जोर-जोरसे हँसने लगे, फिर उन्होंने उस मतवाले नेत्रोंवाली निशाचरीसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

श्रीरामके टाल देनेपर शूर्पणखाका लक्ष्मणसे प्रणययाचना करना, फिर उनके भी टालनेपर उसका सीतापर आक्रमण और लक्ष्मणका उसके नाक-कान काट लेना

श्रीरामने कामपाशसे बँधी हुई उस शूर्पणखासे अपनी इच्छाके अनुसार मधुर वाणीमें मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहा—॥ १॥

'आदरणीया देवि! मैं विवाह कर चुका हूँ। यह मेरी प्यारी पत्नी विद्यमान है। तुम-जैसी स्त्रियोंके लिये तो सौतका रहना अत्यन्त दुःखदायी ही होगा॥ २॥

'ये मेरे छोटे भाई श्रीमान् लक्ष्मण बड़े शीलवान्, देखनेमें प्रिय लगनेवाले और बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। इनके साथ स्त्री नहीं है। ये अपूर्व गुणोंसे सम्पन्न हैं। ये तरुण तो हैं ही, इनका रूप भी देखनेमें बड़ा मनोरम है। अतः यदि इन्हें भार्याकी चाह होगी तो ये ही तुम्हारे इस सुन्दर रूपके योग्य पति होंगे॥ ३-४॥

'विशाललोचने! वरारोहे! जैसे सूर्यकी प्रभा मेरुपर्वतका सेवन करती है, उसी प्रकार तुम मेरे इन छोटे भाई लक्ष्मणको पतिके रूपमें अपनाकर सौतके भयसे रहित हो इनकी सेवा करो'॥ ५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वह कामसे मोहित हुई राक्षसी उन्हें छोड़कर सहसा लक्ष्मणके पास जा पहुँची और इस प्रकार बोली—॥ ६॥

'लक्ष्मण! तुम्हारे इस सुन्दर रूपके योग्य मैं ही हूँ, अतः मैं ही तुम्हारी परम सुन्दरी भार्या हो सकती हूँ। मुझे अङ्गीकार कर लेनेपर तुम मेरे साथ समूचे दण्डकारण्यमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे'॥ ७॥

उस राक्षसीके ऐसा कहनेपर बातचीतमें निपुण सुमित्राकुमार लक्ष्मण मुसकराकर सूप-जैसे नखवाली उस निशाचरीसे यह युक्तियुक्त बात बोले—॥ ८॥

'लाल कमलके समान गौर वर्णवाली सुन्दरि! मैं तो दास हूँ, अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामके अधीन हूँ, तुम मेरी स्त्री होकर दासी बनना क्यों चाहती हो?॥ ९॥

'विशाललोचने! मेरे बड़े भैया सम्पूर्ण ऐश्वर्यों (अथवा सभी अभीष्ट वस्तुओं) से सम्पन्न हैं। तुम उन्हींकी छोटी स्त्री हो जाओ। इससे तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे और तुम सदा प्रसन्न रहोगी। तुम्हारे रूप-रंग उन्हींके योग्य निर्मल हैं॥ १०॥

'कुरूप, ओछी, विकृत, धँसे हुए पेटवाली और वृद्धा भार्याको त्यागकर ये तुम्हें ही सादर ग्रहण करेंगे*॥ ११॥

'सुन्दर कटिप्रदेशवाली वरवर्णिनि! कौन ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपको छोड़कर मानवकन्याओंसे प्रेम करेगा?'॥ १२॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर परिहासको न समझनेवाली उस लंबे पेटवाली विकराल राक्षसीने उनकी बातको सच्ची माना॥ १३॥

वह पर्णशालामें सीताके साथ बैठे हुए शत्रुसंतापी दुर्जय वीर श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आयी और कामसे मोहित होकर बोली—॥ १४॥

'राम! तुम इस कुरूप, ओछी, विकृत, धँसे हुए पेटवाली और वृद्धाका आश्रय लेकर मेरा विशेष आदर नहीं करते हो॥ १५॥

'अतः आज तुम्हारे देखते-देखते मैं इस मानुषीको खा जाऊँगी और इस सौतके न रहनेपर तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विचरण करूँगी'॥ १६॥

ऐसा कहकर दहकते हुए अंगारोंके समान नेत्रोंवाली शूर्पणखा अत्यन्त क्रोधमें भरकर मृगनयनी सीताकी ओर झपटी, मानो कोई बड़ी भारी उल्का रोहिणी नामक तारेपर टूट पड़ी हो॥ १७॥

महाबली श्रीरामने मौतके फंदेकी तरह आती हुई उस राक्षसीको हुंकारसे रोककर कुपित हो लक्ष्मणसे कहा—

'सुमित्रानन्दन! क्रूर कर्म करनेवाले अनार्योंसे किसी प्रकारका परिहास भी नहीं करना चाहिये। सौम्य! देखो न, इस समय सीताके प्राण किसी प्रकार बड़ी मुश्किलसे बचे हैं॥ १९॥

'पुरुषसिंह! तुम्हें इस कुरूपा, कुलटा, अत्यन्त मतवाली और लंबे पेटवाली राक्षसीको कुरूप—किसी अङ्गसे हीन कर देना चाहिये'॥ २०॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर क्रोधमें भरे हुए महाबली लक्ष्मणने उनके देखते-देखते म्यानसे तलवार खींच ली और शूर्पणखाके नाक-कान काट लिये॥

नाक और कान कट जानेपर भयंकर राक्षसी शूर्पणखा बड़े जोरसे चिल्लाकर जैसे आयी थी, उसी तरह वनमें भाग गयी॥ २२॥

खूनसे भीगी हुई वह महाभयंकर एवं विकराल रूपवाली निशाचरी नाना प्रकारके स्वरोंमें जोर-जोरसे चीत्कार करने लगी, मानो वर्षाकालमें मेघोंकी घटा गर्जन-तर्जन कर रही हो॥ २३॥

वह देखनेमें बड़ी भयानक थी। उसने अपने कटे हुए अङ्गोंसे बारंबार खूनकी धारा बहाते और दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर चिग्घाड़ते हुए एक विशाल वनके भीतर प्रवेश किया॥ २४॥

लक्ष्मणके द्वारा कुरूप की गयी शूर्पणखा वहाँसे भागकर राक्षससमूहसे घिरे हुए भयंकर तेजवाले जनस्थान-निवासी भ्राता खरके पास गयी और जैसे आकाशसे बिजली गिरती है, उसी प्रकार वह पृथ्वीपर गिर पड़ी॥

खरकी वह बहन रक्तसे नहा गयी थी और भय तथा मोहसे अचेत-सी हो रही थी। उसने वनमें सीता और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीके आने और अपने कुरूप किये जानेका सारा वृत्तान्त खरसे कह सुनाया॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

---

* यहाँ लक्ष्मणने उन्हीं विशेषणोंको दुहराया है, जिन्हें शूर्पणखाने सीताके लिये प्रयुक्त किया था। शूर्पणखाकी दृष्टिसे

उन्नीसवाँ सर्ग

शूर्पणखाके मुखसे उसकी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनकर क्रोधमें भरे हुए खरका श्रीराम आदिके वधके लिये चौदह राक्षसोंको भेजना

अपनी बहिनको इस प्रकार अङ्गहीन और रक्तसे भीगी हुई अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ी देख राक्षस खर क्रोधसे जल उठा और इस प्रकार पूछने लगा—॥ १ ॥

'बहिन उठो और अपना हाल बताओ। मूर्च्छा और घबराहट छोड़ो तथा साफ-साफ कहो, किसने तुम्हें इस तरह रूपहीन बनाया है?॥ २ ॥

'कौन अपने सामने आकर चुपचाप बैठे हुए निरपराध एवं विषैले काले साँपको अपनी अँगुलियोंके अग्रभागसे खेल-खेलमें पीड़ा दे रहा है?॥ ३ ॥

'जिसने आज तुमपर आक्रमण करके तुम्हारे नाक-कान काटे हैं, उसने उच्चकोटिका विष पी लिया है तथा अपने गलेमें कालका फंदा डाल लिया है, फिर भी मोहवश वह इस बातको समझ नहीं रहा है॥ ४ ॥

'तुम तो स्वयं ही दूसरे प्राणियोंके लिये यमराजके समान हो, बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो तथा इच्छानुसार सर्वत्र विचरने और अपनी रुचिके अनुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हो, फिर भी तुम्हें किसने इस दुरवस्थामें डाला है; जिससे दुःखी होकर तुम यहाँ आयी हो?॥ ५ ॥

'देवताओं, गन्धर्वों, भूतों तथा महात्मा ऋषियोंमें यह कौन ऐसा महान् बलशाली है, जिसने तुम्हें रूपहीन बना दिया?॥ ६ ॥

'संसारमें तो मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो मेरा अप्रिय कर सके। देवताओंमें सहस्रनेत्रधारी पाकशासन इन्द्र भी ऐसा साहस कर सकें, यह मुझे नहीं दिखायी देता॥ ७ ॥

'जैसे हंस जलमें मिले हुए दूधको पी लेता है, उसी प्रकार मैं आज इन प्राणान्तकारी बाणोंसे तुम्हारे अपराधीके शरीरसे उसके प्राण ले लूँगा॥ ८ ॥

'युद्धमें मेरे बाणोंसे जिसके मर्मस्थान छिन्न-भिन्न हो गये हैं तथा जो मेरे हाथों मारा गया है, ऐसे किस पुरुषके फेनसहित गरम-गरम रक्तको यह पृथ्वी पीना चाहती है?॥ ९ ॥

'रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे गये किस व्यक्तिके शरीरसे मांस कुतर-कुतरकर ये हर्षमें भरे हुए झुंड-के-झुंड पक्षी खायँगे?॥ १० ॥

'जिसे मैं महासमरमें खींच लूँ, उस दीन अपराधीको देवता, गन्धर्व, पिशाच और राक्षस भी नहीं बचा सकते॥

'धीरे-धीरे होशमें आकर तुम मुझे उसका नाम बताओ, जिस उद्दण्डने वनमें तुमपर बलपूर्वक आक्रमण करके तुम्हें परास्त किया है'॥ १२ ॥

भाईका विशेषतः क्रोधमें भरे हुए भाई खरका यह वचन सुनकर शूर्पणखा नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई इस प्रकार बोली—॥ १३ ॥

'भैया! वनमें दो तरुण पुरुष आये हैं, जो देखनेमें बड़े ही सुकुमार, रूपवान् और महान् बलवान् हैं। उन दोनोंके बड़े-बड़े नेत्र ऐसे जान पड़ते हैं मानो खिले हुए कमल हों। वे दोनों ही वल्कल-वस्त्र और मृगचर्म पहने हुए हैं॥ १४ ॥

'फल और मूल ही उनका भोजन है। वे जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। दोनों ही राजा दशरथके पुत्र और आपसमें भाई-भाई हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं॥ १५ ॥

'वे दो गन्धर्वराजोंके समान जान पड़ते हैं और राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। ये दोनों भाई देवता अथवा दानव हैं, यह मैं अनुमानसे भी नहीं जान सकती॥ १६ ॥

'उन दोनोंके बीचमें एक तरुण अवस्थावाली रूपवती स्त्री भी वहाँ देखी है, जिसके शरीरका मध्यभाग बड़ा ही सुन्दर है। वह सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित है॥

'उस स्त्रीके ही कारण उन दोनोंने मिलकर मेरी एक अनाथ और कुलटा स्त्रीकी भाँति ऐसी दुर्गति की है॥ १८ ॥

जो अर्थ है, वह ऊपर दे दिया है; परंतु लक्ष्मणकी दृष्टिमें वे विशेषण निन्दापरक नहीं, स्तुतिपरक है, अतः उनकी दृष्टिसे उन विशेषणोंका अर्थ यहाँ दिया जाता है—विरूपा—विशिष्टरूपवाली त्रिभुवनसुन्दरी। असती—जिससे बढ़कर दूसरी कोई सती नहीं है ऐसी। कराला—शरीरकी गठनके अनुसार ऊँचे-नीचे अङ्गोंवाली। निर्णतोदरी—निम्न उदर अथवा क्षीण कटि-प्रदेशवाली। वृद्धा—ज्ञानमें बढ़ी-चढ़ी अर्थात् तुम्हें छोड़कर उक्त विशेषणोंवाली सीताको ही वे ग्रहण करेंगे।

'मैं युद्धमें उस कुटिल आचारवाली स्त्रीके और उन दोनों राजकुमारोंके भी मारे जानेपर उनका फेनसहित रक्त पीना चाहती हूँ॥ १९॥

'रणभूमिमें उस स्त्रीका और उन पुरुषोंका भी रक्त मैं पी सकूँ—यह मेरी पहली और प्रमुख इच्छा है, जो तुम्हारे द्वारा पूर्ण की जानी चाहिये॥ २०॥

शूर्पणखाके ऐसा कहनेपर खरने कुपित होकर अत्यन्त बलवान् चौदह राक्षसोंको, जो यमराजके समान भयंकर थे, यह आदेश दिया—॥ २१॥

'वीरो! इस भयंकर दण्डकारण्यके भीतर चीर और काला मृगचर्म धारण किये दो शस्त्रधारी मनुष्य एक युवती स्त्रीके साथ घुस आये हैं॥ २२॥

'तुमलोग वहाँ जाकर पहले उन दोनों पुरुषोंको मार डालो; फिर उस दुराचारिणी स्त्रीके भी प्राण ले लो। मेरी यह बहिन उन तीनोंका रक्त पीयेगी॥ २३॥

'राक्षसो! मेरी इस बहिनका यह प्रिय मनोरथ है। तुम वहाँ जाकर अपने प्रभावसे उन दोनों मनुष्योंको मार गिराओ और बहिनके इस मनोरथको शीघ्र पूरा करो॥

'रणभूमिमें उन दोनों भाइयोंको तुम्हारे द्वारा मारा गया देख यह हर्षसे खिल उठेगी और आनन्दमग्न होकर युद्धस्थलमें उनका रक्त पान करेगी'॥ २५॥

खरकी ऐसी आज्ञा पाकर वे चौदहों राक्षस हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान विवश हो शूर्पणखाके साथ पञ्चवटीको गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

श्रीरामद्वारा खरके भेजे हुए चौदह राक्षसोंका वध

तदनन्तर भयानक राक्षसी शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमपर आयी। उसने सीतासहित उन दोनों भाइयोंका उन राक्षसोंको परिचय दिया॥ १॥

राक्षसोंने देखा—महाबली श्रीराम सीताके साथ पर्णशालामें बैठे हैं और लक्ष्मण भी उनकी सेवामें उपस्थित हैं॥ २॥

इधर श्रीमान् रघुनाथजीने भी शूर्पणखा तथा उसके साथ आये हुए उन राक्षसोंको भी देखा। देखकर वे उद्दीप्त तेजवाले अपने भाई लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥ ३॥

'सुमित्राकुमार! तुम थोड़ी देरतक सीताके पास खड़े हो जाओ। मैं इस राक्षसीके सहायक बनकर पीछे-पीछे आये हुए इन निशाचरोंका यहाँ अभी वध कर डालूँगा'॥ ४॥

अपने स्वरूपको समझनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर लक्ष्मणने इसकी भूरि-भूरि सराहना करते हुए 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की॥ ५॥

तब धर्मात्मा रघुनाथजीने अपने सुवर्णमण्डित विशाल धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उन राक्षसोंसे कहा—॥

'हम दोनों भाई राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण हैं तथा सीताके साथ इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आकर फल-मूलका आहार करते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक तपस्यामें संलग्न हैं और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। इस प्रकार दण्डकवनमें निवास करनेवाले हम दोनों भाइयोंकी तुम किसलिये हिंसा करना चाहते हो?॥ ७-८॥

'देखो, तुम सब-के-सब पापात्मा तथा ऋषियोंका अपराध करनेवाले हो। उन ऋषि-मुनियोंकी आज्ञासे ही मैं धनुष-बाण लेकर महासमरमें तुम्हारा वध करनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ ९॥

'निशाचरो! यदि तुम्हें युद्धसे संतोष प्राप्त होता हो तो यहाँ खड़े ही रहो, भाग मत जाना और यदि तुम्हें प्राणोंका लोभ हो तो लौट जाओ (एक क्षणके लिये भी यहाँ न रुको)'॥ १०॥

श्रीरामकी यह बात सुनकर वे चौदहों राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे। ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले वे घोर निशाचर हाथोंमें शूल लिये क्रोधसे लाल आँखें करके कठोर वाणीमें हर्ष और उत्साहके साथ स्वभावतः लाल नेत्रोंवाले मधुरभाषी श्रीरामसे, जिनका पराक्रम वे देख चुके थे, यों बोले—॥ ११-१२॥

'अरे! तूने हमारे स्वामी महाकाय खरको क्रोध दिलाया है; अतः हमलोगोंके हाथसे युद्धमें मारा जाकर तू स्वयं ही तत्काल अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा॥ १३॥

'हम बहुत-से हैं और तू अकेला, तेरी क्या शक्ति है कि तू हमारे सामने रणभूमिमें खड़ा भी रह सके, फिर युद्ध करना तो दूरकी बात है॥ १४॥

'हमारी भुजाओंद्वारा छोड़े गये इन परिघों, शूलों और पट्टिशोंकी मार खाकर तू अपने हाथमें दबाये हुए इस धनुषको, बल-पराक्रमके अभिमानको तथा अपने प्राणोंको भी एक साथ ही त्याग देगा'॥ १५॥

ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए वे चौदहों राक्षस तरह-तरहके आयुध और तलवारें लिये श्रीरामपर ही टूट पड़े॥ १६॥

उन राक्षसोंने दुर्जय वीर श्रीराघवेन्द्रपर वे शूल चलाये, परंतु ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीने उन समस्त चौदहों शूलोंको उतने ही सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा काट डाला॥ १७½॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी रघुनाथजीने अत्यन्त कुपित हो शानपर चढ़ाकर तेज किये गये सूर्यतुल्य तेजस्वी चौदह नाराच हाथमें लिये। फिर धनुष लेकर उसपर उन बाणोंको रखा और कानतक खींचकर राक्षसोंको लक्ष्य करके छोड़ दिया। मानो इन्द्रने वज्रोंका प्रहार किया हो॥ १८-१९½॥

वे बाण बड़े वेगसे उन राक्षसोंकी छाती छेदकर रुधिरमें डूबे हुए निकले और बाँबीसे बाहर आये हुए सर्पोंकी भाँति तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २०½॥

उन नाराचोंसे हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण वे राक्षस जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये। वे सब-के-सब खूनसे नहा गये थे। उनके शरीर विकृत हो गये थे। उस अवस्थामें उनके प्राणपखेरू उड़ गये॥ २१½॥

उन सबको पृथ्वीपर पड़ा देख वह राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छित हो गयी और खरके पास जाकर पुनः आर्तभावसे गिर पड़ी। उसके कटे हुए कानों और नाकोंका खून सूख गया था, इसलिये गोंदयुक्त लताके समान प्रतीत होती थी॥ २२-२३॥

भाईके निकट शोकसे पीड़ित हुई शूर्पणखा बड़े जोरसे आर्तनाद करने और फूट-फूटकर रोने तथा आँसू बहाने लगी। उस समय उसके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी॥ २४॥

रणभूमिमें उन राक्षसोंको मारा गया देख खरकी बहिन शूर्पणखा पुनः वहाँसे भागी हुई आयी। उसने उन समस्त राक्षसोंके वधका सारा समाचार भाईसे कह सुनाया॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

शूर्पणखाका खरके पास आकर उन राक्षसोंके वधका समाचार बताना और रामका भय दिखाकर उसे युद्धके लिये उत्तेजित करना

शूर्पणखाको पुनः पृथ्वीपर पड़ी हुई देख अनर्थके लिये आयी हुई उस बहिनसे खरने क्रोधपूर्वक स्पष्ट वाणीमें फिर कहा—॥ १॥

'बहिन! मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये उस समय बहुत-से शूरवीर एवं मांसाहारी राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे दी थी, अब फिर तुम किसलिये रो रही हो?॥ २॥

'मैंने जिन राक्षसोंको भेजा था, वे मेरे भक्त, मुझमें अनुराग रखनेवाले और सदा मेरा हित चाहनेवाले हैं। वे किसीके मारनेपर भी मर नहीं सकते। उनके द्वारा मेरी आज्ञाका पालन न हो, यह भी सम्भव नहीं है॥ ३॥

'फिर ऐसा कौन-सा कारण उपस्थित हो गया, जिसके लिये तुम 'हा नाथ' की पुकार मचाती हुई साँपकी तरह धरतीपर लोट रही हो। मैं उसे सुनना चाहता हूँ॥ ४॥

'मेरे-जैसे संरक्षकके रहते हुए तुम अनाथकी तरह विलाप क्यों करती हो? उठो! उठो!! इस तरह लोटो मत। घबराहट छोड़ दो'॥ ५॥

खरके इस प्रकार सान्त्वना देनेपर वह दुर्धर्ष राक्षसी अपने आँसूभरे नेत्रोंको पोंछकर भाई खरसे बोली—॥

'भैया मैं इस समय फिर तुम्हारे पास क्यों आयी हूँ—यह बताती हूँ, सुनो—मेरे नाक-कान कट गये और मैं खूनकी धारासे नहा उठी, उस अवस्थामें जब पहली बार मैं आयी थी, तब तुमने मुझे बड़ी सान्त्वना दी थी॥ ७॥

'तत्पश्चात् मेरा प्रिय करनेके लिये लक्ष्मणसहित रामका वध करनेके उद्देश्यसे तुमने जो वे चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे, वे सब-के-सब अमर्षमें भरकर हाथोंमें शूल और पट्टिश लिये वहाँ जा पहुँचे,

परंतु रामने अपने मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन सबको समराङ्गणमें मार गिराया॥ ८-९॥

'उन महान् वेगशाली निशाचरोंको क्षणभरमें ही धराशायी हुआ देख रामके उस महान् पराक्रमपर दृष्टिपात करके मेरे मनमें बड़ा भय उत्पन्न हो गया॥

'निशाचरराज! मैं भयभीत, उद्विग्न और विषादग्रस्त हो गयी हूँ। मुझे सब ओर भय-ही-भय दिखायी देता है, इसीलिये फिर तुम्हारी शरणमें आयी हूँ॥ ११॥

'मैं शोकके उस विशाल समुद्रमें डूब गयी हूँ, जहाँ विषादरूपी मगर निवास करते हैं और त्रासकी तरङ्गमालाएँ उठती रहती हैं। तुम उस शोकसागरसे मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हो?॥ १२॥

'जो मांसभक्षी राक्षस मेरे साथ गये थे, वे सब-के-सब रामके पैने बाणोंसे मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हैं॥

'राक्षसराज! यदि मुझपर और उन मरे हुए राक्षसोंपर तुम्हें दया आती हो तथा यदि रामके साथ लोहा लेनेके लिये तुममें शक्ति और तेज हो तो उन्हें मार डालो; क्योंकि दण्डकारण्यमें घर बनाकर रहनेवाले राम राक्षसोंके लिये कण्टक हैं॥ १४½॥

'यदि तुम आज ही शत्रुघाती रामका वध नहीं कर डालोगे तो मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि मेरी लाज लुट चुकी है॥ १५½॥

'मैं बुद्धिसे बारंबार सोचकर देखती हूँ कि तुम महासमरमें सबल होकर भी रामके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकोगे॥ १६½॥

'तुम अपनेको शूरवीर मानते हो, किंतु तुममें शौर्य है ही नहीं। तुमने झूठे ही अपने-आपमें पराक्रमका आरोप कर लिया है। मूढ़! तुम समराङ्गणमें उन दोनोंको मार डालो अन्यथा अपने कुलमें कलङ्क लगाकर भाई-बन्धुओंके साथ तुरंत ही इस जनस्थानसे भाग जाओ॥ १७-१८॥

'राम और लक्ष्मण मनुष्य हैं, यदि उन्हें भी मारनेकी तुममें शक्ति नहीं है तो तुम्हारे-जैसे निर्बल और पराक्रमशून्य राक्षसका यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है?॥ १९॥

'तुम रामके तेजसे पराजित होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे; क्योंकि दशरथकुमार राम बड़े तेजस्वी हैं। उनका भाई भी महान् पराक्रमी है, जिसने मुझे नाक-कानसे हीन करके अत्यन्त कुरूप बना दिया'॥ २०½॥

इस प्रकार बहुत विलाप करके गुफाके समान गहरे पेटवाली वह राक्षसी शोकसे आतुर हो अपने भाईके पास मूर्च्छित-सी हो गयी और अत्यन्त दु:खी हो दोनों हाथोंसे पेट पीटती हुई फूट-फूटकर रोने लगी॥ २१-२२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

चौदह हजार राक्षसोंकी सेनाके साथ खर-दूषणका जनस्थानसे पञ्चवटीकी ओर प्रस्थान

शूर्पणखाद्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर शूरवीर खरने राक्षसोंके बीच अत्यन्त कठोर वाणीमें कहा—॥ १॥

'बहिन! तुम्हारे अपमानके कारण मुझे बेतरह क्रोध चढ़ आया है। इसे धारण करना या दबा देना उसी प्रकार असम्भव है, जैसे पूर्णिमाको प्रचण्ड वेगसे बढ़े हुए खारे पानीके समुद्रके जलको (अथवा यह उसी प्रकार असह्य है, जैसे घावपर नमकीन पानीका छिड़कना)॥ २॥

'मैं पराक्रमकी दृष्टिसे रामको कुछ भी नहीं गिनता हूँ; क्योंकि उस मनुष्यका जीवन अब क्षीण हो चला है। वह अपने दुष्कर्मोंसे ही मारा जाकर आज प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा॥ ३॥

'तुम अपने आँसुओंको रोको और यह घबराहट छोड़ो। मैं भाईसहित रामको अभी यमलोक पहुँचा देता हूँ॥ ४॥

'राक्षसी! आज मेरे फरसेकी मारसे निष्प्राण होकर धरतीपर पड़े हुए रामका गरम-गरम रक्त तुम्हें पीनेको मिलेगा'॥ ५॥

खरके मुखसे निकली हुई इस बातको सुनकर शूर्पणखाको पड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मूर्खतावश राक्षसोंमें श्रेष्ठ भाई खरकी पुनः भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ ६॥

उसने पहले जिसका कठोर वाणीद्वारा तिरस्कार किया और पुनः जिसकी अत्यन्त सराहना की, उस खरने उस समय अपने सेनापति दूषणसे कहा—॥ ७ ॥

'सौम्य! मेरे मनके अनुकूल चलनेवाले, युद्धके मैदानसे पीछे न हटनेवाले, भयंकर वेगशाली, मेघोंकी काली घटाके समान काले रंगवाले, लोगोंकी हिंसासे ही क्रीड़ा-विहार करनेवाले तथा युद्धमें उत्साहपूर्वक आगे बढ़नेवाले चौदह सहस्र राक्षसोंको युद्धके लिये भेजनेकी पूरी तैयारी कराओ॥ ८-९ ॥

सौम्य सेनापते! तुम शीघ्र ही मेरा रथ भी यहाँ मँगवा लो। उसपर बहुत-से धनुष, बाण, विचित्र-विचित्र खड्ग और नाना प्रकारकी तीखी शक्तियोंको भी रख दो॥ १० ॥

'रणकुशल वीर! मैं इस उद्दण्ड रामका वध करनेके लिये महामनस्वी पुलस्त्यवंशी राक्षसोंके आगे-आगे जाना चाहता हूँ'॥ ११ ॥

उसके इस प्रकार आज्ञा देते ही एक सूर्यके समान प्रकाशमान और चितकबरे रंगके अच्छे घोड़ोंसे जुता हुआ विशाल रथ वहाँ आ गया। दूषणने खरको इसकी सूचना दी॥ १२ ॥

वह रथ मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति ऊँचा था, उसे तपाये हुए सोनेके बने हुए साज-बाजसे सजाया गया था, उसके पहियोंमें सोना जड़ा हुआ था, उसका विस्तार बहुत बड़ा था, उस रथके कूबर वैदूर्यमणिसे जड़े गये थे, उसकी सजावटके लिये सोनेके बने हुए मत्स्य, फूल, वृक्ष, पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य, माङ्गलिक पक्षियोंके समुदाय तथा तारिकाओंसे वह रथ सुशोभित हो रहा था, उसपर ध्वजा फहरा रही थी तथा रथके भीतर खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र रखे हुए थे, छोटी-छोटी घण्टियों अथवा सुन्दर घुँघुरुओंसे सजे और उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए उस रथपर राक्षसराज खर उस समय आरूढ़ हुआ। अपनी बहिनके अपमानका स्मरण करके उसके मनमें बड़ा अमर्ष हो रहा था॥ १३—१५ ॥

रथ, ढाल, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजसे सम्पन्न उस विशाल सेनाकी ओर देखकर खर और दूषणने समस्त राक्षसोंसे कहा—'निकलो, आगे बढ़ो'॥ १६ ॥

कूच करनेकी आज्ञा प्राप्त होते ही भयंकर ढाल, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजासे युक्त वह विशाल राक्षस-सेना जोर-जोरसे गर्जना करती हुई जनस्थानसे बड़े वेगके साथ निकली॥ १७ ॥

सैनिकोंके हाथमें मुद्गर, पट्टिश, शूल, अत्यन्त तीखे फरसे, खड्ग, चक्र और तोमर चमक उठे। शक्ति, भयंकर परिघ, विशाल धनुष, गदा, तलवार, मुसल तथा वज्र (आठ कोणवाले आयुधविशेष) उन राक्षसोंके हाथोंमें आकर बड़े भयानक दिखायी दे रहे थे। इन अस्त्र-शस्त्रोंसे उपलक्षित और खरके मनकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले अत्यन्त भयंकर चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे युद्धके लिये चले॥ १८—२० ॥

उन भयंकर दिखायी देनेवाले राक्षसोंको धावा करते देख खरका रथ भी कुछ देर सैनिकोंके निकलनेकी प्रतीक्षा करके उनके साथ ही आगे बढ़ा॥ २१ ॥

तदनन्तर खरका अभिप्राय जानकर उसके सारथिने तपाये हुए सोनेके आभूषणोंसे विभूषित उन चितकबरे घोड़ोंको हाँका॥ २२ ॥

उसके हाँकनेपर शत्रुघाती खरका रथ शीघ्र ही अपने घर-घर शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओं तथा उपदिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगा॥ २३ ॥

उस समय खरका क्रोध बढ़ा हुआ था। उसका स्वर भी कठोर हो गया था। वह शत्रुके वधके लिये उतावला होकर यमराजके समान भयानक जान पड़ता था। जैसे ओलोंकी वर्षा करनेवाला मेघ बड़े जोरसे गर्जना करता है, उसी प्रकार महाबली खरने उच्चस्वरसे सिंहनाद करके पुनः सारथिको रथ हाँकनेके लिये प्रेरित किया॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

भयंकर उत्पातोंको देखकर भी खरका उनकी परवा नहीं करना तथा राक्षस-सेनाका श्रीरामके आश्रमके समीप पहुँचना

उस सेनाके प्रस्थान करते समय आकाशमें गधेके समान धूसर रंगवाले बादलोंकी महाभयंकर घटा घिर आयी। उसकी तुमुल गर्जना होने लगी तथा सैनिकोंके ऊपर घोर अमङ्गलसूचक रक्तमय जलकी वर्षा आरम्भ हो गयी॥ १ ॥

खरके रथमें जुते हुए महान् वेगशाली घोड़े फूल बिछे हुए समतल स्थानमें सड़कपर चलते-चलते अकस्मात् गिर पड़े॥ २॥

सूर्यमण्डलके चारों ओर अलातचक्रके समान गोलाकार घेरा दिखायी देने लगा, जिसका रंग काला और किनारेका रंग लाल था॥ ३॥

तदनन्तर खरके रथकी सुवर्णमय दण्डवाली ऊँची ध्वजापर एक विशालकाय गीध आकर बैठ गया, जो देखनेमें बड़ा ही भयंकर था॥ ४॥

कठोर स्वरवाले मांसभक्षी पशु और पक्षी जनस्थानके पास आकर विकृत स्वरमें अनेक प्रकारके विकट शब्द बोलने लगे तथा सूर्यकी प्रभासे प्रकाशित हुई दिशाओंमें जोर-जोरसे चीत्कार करनेवाले और मुँहसे आग उगलनेवाले भयंकर गीदड़ राक्षसोंके लिये अमङ्गलजनक भैरवनाद करने लगे॥ ५-६॥

भयंकर मेघ, जो मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान दिखायी देते थे और जलकी जगह रक्त धारण किये हुए थे, तत्काल घिर आये। उन्होंने समूचे आकाशको ढक दिया। थोड़ा-सा भी अवकाश नहीं रहने दिया॥ ७॥

सब ओर अत्यन्त भयंकर तथा रोमाञ्चकारी घना अन्धकार छा गया। दिशाओं अथवा कोणोंका स्पष्टरूपसे भान नहीं हो पाता था॥ ८॥

बिना समयके ही खूनसे भीगे हुए वस्त्रके समान रंगवाली संध्या प्रकट हो गयी। उस समय भयंकर पशु-पक्षी खरके सामने आकर गर्जना करने लगे॥ ९॥

भयकी सूचना देनेवाले कङ्क (सफेद चील), गीदड़ और गीध खरके सामने चीत्कार करने लगे। युद्धमें सदा अमङ्गल सूचित करनेवाली और भय दिखानेवाली गीदड़ियाँ खरकी सेनाके सामने आकर आग उगलनेवाले मुखोंसे घोर शब्द करने लगीं॥ १० १/२ ॥

सूर्यके निकट परिघके समान कबन्ध (सिर कटा हुआ धड़) दिखायी देने लगा। महान् ग्रह राहु अमावास्याके बिना ही सूर्यको ग्रसने लगा। हवा तीव्र गतिसे चलने लगी एवं सूर्यदेवकी प्रभा फीकी पड़ गयी॥ ११-१२॥

बिना रातके ही जुगनूके समान चमकनेवाले तारे आकाशमें उदित हो गये। सरोवरोंमें मछली और जलपक्षी विलीन हो गये। उनके कमल सूख गये॥ १३॥

उस क्षणमें वृक्षोंके फूल और फल झड़ गये। बिना हवाके ही बादलोंके समान धूसर रंगकी धूल ऊपर उठकर आकाशमें छा गयी॥ १४॥

वहाँ वनकी सारिकाएँ चें-चें करने लगीं। भारी आवाजके साथ भयानक उल्काएँ आकाशसे पृथ्वीपर गिरने लगीं॥ १५॥

पर्वत, वन और काननोंसहित धरती डोलने लगी। बुद्धिमान् खर रथपर बैठकर गर्जना कर रहा था। उस समय उसकी बायीं भुजा सहसा काँप उठी। स्वर अवरुद्ध हो गया और सब ओर देखते समय उसकी आँखोंमें आँसू आने लगे॥ १६-१७॥

उसके सिरमें दर्द होने लगा, फिर भी मोहवश वह युद्धसे निवृत्त नहीं हुआ। उस समय प्रकट हुए उन बड़े-बड़े रोमाञ्चकारी उत्पातोंको देखकर खर जोर-जोरसे हँसने लगा और समस्त राक्षसोंसे बोला— ॥ १८ १/२ ॥

'ये जो भयानक दिखायी देनेवाले बड़े-बड़े उत्पात प्रकट हो रहे हैं, इन सबकी मैं अपने बलके भरोसे कोई परवा नहीं करता; ठीक उसी तरह, जैसे बलवान् वीर दुर्बल शत्रुओंको कुछ नहीं समझता है। मैं अपने तीखे बाणोंद्वारा आकाशसे तारोंको भी गिरा सकता हूँ॥ १९-२०॥

'यदि कुपित हो जाऊँ तो मृत्युको भी मौतके मुखमें डाल सकता हूँ। आज बलका घमंड रखनेवाले राम और उसके भाई लक्ष्मणको तीखे बाणोंसे मारे बिना मैं पीछे नहीं लौट सकता॥ २१ १/२ ॥

'जिसे दण्ड देनेके लिये राम और लक्ष्मणकी बुद्धिमें विपरीत विचार (क्रूरतापूर्ण कर्म करनेके भाव) का उदय हुआ है, वह मेरी बहिन शूर्पणखा उन दोनोंका खून पीकर सफलमनोरथ हो जाय॥ २२ १/२ ॥

'आजतक जितने युद्ध हुए हैं, उनमेंसे किसीमें भी पहले मेरी कभी पराजय नहीं हुई है; यह तुमलोगोंने प्रत्यक्ष देखा है। मैं झूठ नहीं कहता हूँ॥ २३ १/२ ॥

'मैं मतवाले ऐरावतपर चलनेवाले वज्रधारी देवराज इन्द्रको भी रणभूमिमें कुपित होकर कालके गालमें डाल सकता हूँ, फिर उन दो मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?'॥ २४ १/२ ॥

खरकी यह गर्जना सुनकर राक्षसोंकी वह विशाल सेना, जो मौतके पाशसे बँधी हुई थी, अनुपम हर्षसे भर गयी॥ २५ १/२ ॥

उस समय युद्ध देखनेकी इच्छावाले बहुत-से

पुण्यकर्मा महात्मा, ऋषि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण वहाँ एकत्र हो गये। एकत्र हो वे सभी मिलकर एक-दूसरेसे कहने लगे—॥ २६-२७॥

'गौओं और ब्राह्मणोंका कल्याण हो तथा जो अन्य लोकप्रिय महात्मा हैं, वे भी कल्याणके भागी हों। जैसे चक्रधारी भगवान् विष्णु समस्त असुरशिरोमणियोंको परास्त कर देते हैं, उसी प्रकार रघुकुलभूषण श्रीराम युद्धमें इन पुलस्त्यवंशी निशाचरोंको पराजित करें'॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

ये तथा और भी बहुत-सी मङ्गलकामनासूचक बातें कहते हुए वे महर्षि और देवता कौतूहलवश विमानपर बैठकर जिनकी आयु समाप्त हो चली थी, उन राक्षसोंकी उस विशाल वाहिनीको देखने लगे॥ २९-३०॥

खर रथके द्वारा बड़े वेगसे चलकर सारी सेनासे आगे निकल आया और श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य तथा रुधिराशन—ये बारह महापराक्रमी राक्षस खरको दोनों ओरसे घेरकर उसके साथ-साथ चलने लगे॥ ३१-३२ $\frac{1}{2}$ ॥

महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा—ये चार राक्षस-वीर सेनाके आगे और सेनापति दूषणके पीछे-पीछे चल रहे थे॥ ३३॥

राक्षस वीरोंकी वह भयंकर वेगवाली अत्यन्त दारुण सेना, जो युद्धकी अभिलाषासे आ रही थी, सहसा उन दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणके पास जा पहुँची, मानो ग्रहोंकी पंक्ति चन्द्रमा और सूर्यके समीप प्रकाशित हो रही हो॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीरामका तात्कालिक शकुनोंद्वारा राक्षसोंके विनाश और अपनी विजयकी सम्भावना करके सीतासहित लक्ष्मणको पर्वतकी गुफामें भेजना और युद्धके लिये उद्यत होना

प्रचण्ड पराक्रमी खर जब श्रीरामके आश्रमकी ओर चला, तब भाईसहित श्रीरामने भी उन्हीं उत्पात-सूचक लक्षणोंको देखा॥ १॥

प्रजाके अहितकी सूचना देनेवाले उन महाभयंकर उत्पातोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंके उपद्रवका विचार करके अत्यन्त अमर्षमें भर गये और लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥ २॥

'महाबाहो! ये जो बड़े-बड़े उत्पात प्रकट हो रहे हैं, इनकी ओर दृष्टिपात करो। समस्त भूतोंके संहारकी सूचना देनेवाले ये महान् उत्पात इस समय इन सारे राक्षसोंका संहार करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं॥ ३॥

'आकाशमें जो गधोंके समान धूसर वर्णवाले बादल इधर-उधर विचर रहे हैं, ये प्रचण्ड गर्जना करते हुए खूनकी धाराएँ बरसा रहे हैं॥ ४॥

'युद्धकुशल लक्ष्मण! मेरे सारे बाण उत्पातवश उठनेवाले धूमसे सम्बद्ध हो युद्धके लिये मानो आनन्दित हो रहे हैं तथा जिनके पृष्ठभागमें सुवर्ण मढ़ा हुआ है, वे मेरे धनुष भी प्रत्यञ्चासे जुड़ जानेके लिये स्वयं ही चेष्टाशील जान पड़ते हैं॥ ५॥

'यहाँ जैसे-जैसे वनचारी पक्षी बोल रहे हैं, उनसे हमारे लिये भविष्यमें अभयकी और राक्षसोंके लिये प्राणसंकटकी प्राप्ति सूचित हो रही है॥ ६॥

'मेरी यह दाहिनी भुजा बारंबार फड़ककर इस बातकी सूचना देती है कि कुछ ही देरमें बहुत बड़ा युद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

'शूरवीर लक्ष्मण! परंतु निकटभविष्यमें ही हमारी विजय और शत्रुकी पराजय होगी; क्योंकि तुम्हारा मुख कान्तिमान् एवं प्रसन्न दिखायी दे रहा है॥ ८॥

'लक्ष्मण! युद्धके लिये उद्यत होनेपर जिनका मुख प्रभाहीन (उदास) हो जाता है, उनकी आयु नष्ट हो जाती है॥ ९॥

'गरजते हुए राक्षसोंका यह घोर नाद सुनायी देता है, तथा क्रूरकर्मा राक्षसोंद्वारा बजायी गयी भेरियोंकी यह महाभयंकर ध्वनि कानोंमें पड़ रही है॥ १०॥

'अपना कल्याण चाहनेवाले विद्वान् पुरुषको उचित है कि आपत्तिकी आशङ्का होनेपर पहलेसे ही उससे बचनेका उपाय कर ले॥ ११॥

'इसलिये तुम धनुष-बाण धारण करके विदेहकुमारी सीताको साथ ले पर्वतकी उस गुफामें चले जाओ, जो वृक्षोंसे आच्छादित है॥ १२॥

'वत्स! तुम मेरे इस वचनके प्रतिकूल कुछ कहो या करो, यह मैं नहीं चाहता। अपने चरणोंकी शपथ

दिलाकर कहता हूँ, शीघ्र चले जाओ॥ १३॥

'इसमें संदेह नहीं कि तुम बलवान् और शूरवीर हो तथा इन राक्षसोंका वध कर सकते हो; तथापि मैं स्वयं ही इन निशाचरोंका संहार करना चाहता हूँ (इसलिये तुम मेरी बात मानकर सीताको सुरक्षित रखनेके लिये इसे गुफामें ले जाओ)'॥ १४॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण धनुष-बाण ले सीताके साथ पर्वतकी दुर्गम गुफामें चले गये॥

सीतासहित लक्ष्मणके गुफाके भीतर चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने 'हर्षकी बात है, लक्ष्मणने शीघ्र मेरी बात मान ली और सीताकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध हो गया' ऐसा कहकर कवच धारण किया॥ १६॥

प्रज्वलित आगके समान प्रकाशित होनेवाले उस कवचसे विभूषित हो श्रीराम अन्धकारमें प्रकट हुए महान् अग्निदेवके समान शोभा पाने लगे॥ १७॥

पराक्रमी श्रीराम महान् धनुष एवं बाण हाथमें लेकर युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये और प्रत्यञ्चाकी टंकारसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाने लगे॥ १८॥

तदनन्तर श्रीराम और राक्षसोंका युद्ध देखनेकी इच्छासे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण आदि महात्मा वहाँ एकत्र हो गये॥ १९॥

इनके सिवा, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि-शिरोमणि पुण्यकर्मा महात्मा ऋषि हैं, वे सभी वहाँ जुट गये और एक साथ खड़े हो परस्पर मिलकर यों कहने लगे—'गौओं, ब्राह्मणों और समस्त लोकोंका कल्याण हो। जैसे चक्रधारी भगवान् विष्णु युद्धमें समस्त श्रेष्ठ असुरोंको परास्त कर देते हैं, उसी प्रकार इस संग्राममें श्रीरामचन्द्रजी पुलस्त्यवंशी निशाचरोंपर विजय प्राप्त करें'॥

ऐसा कहकर वे पुनः एक-दूसरेकी ओर देखते हुए बोले—'एक ओर भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस हैं और दूसरी ओर अकेले धर्मात्मा श्रीराम हैं, फिर यह युद्ध कैसे होगा?'॥ २२-२३॥

ऐसी बातें करते हुए राजर्षि, सिद्ध, विद्याधर आदि देवयोनिगणसहित श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि तथा विमानपर स्थित हुए देवता कौतूहलवश वहाँ खड़े हो गये॥ २४॥

युद्धके मुहानेपर वैष्णव तेजसे आविष्ट हुए श्रीरामको खड़ा देख उस समय सब प्राणी (उनके प्रभावको न जाननेके कारण) भयसे व्यथित हो उठे॥ २५॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले तथा रोषमें भरे हुए महात्मा श्रीरामका वह रूप कुपित हुए रुद्रदेवके समान तुलनारहित प्रतीत होता था॥ २६॥

जब देवता, गन्धर्व और चारण पूर्वोक्तरूपसे श्रीरामकी मङ्गलकामना कर रहे थे, उसी समय भयंकर ढाल-तलवार आदि आयुधों और ध्वजाओंसे उपलक्षित होनेवाली निशाचरोंकी वह सेना गम्भीर गर्जना करती हुई चारों ओरसे श्रीरामजीके पास आ पहुँची॥ २७½॥

वे राक्षस-सैनिक वीरोचित वार्तालाप करते, युद्धका ढंग बतानेके लिये एक-दूसरेके सामने जाते, धनुषोंको खींचकर उनकी टंकार फैलाते, बारंबार मदमत्त होकर उछलते, जोर-जोरसे गर्जना करते और नगाड़े पीटते थे। उनका वह अत्यन्त तुमुल नाद उस वनमें सब ओर गूँजने लगा॥ २८-२९½॥

उस शब्दसे डरे हुए वनचारी हिंसक जन्तु उस वनमें गये, जहाँ किसी प्रकारका कोलाहल नहीं सुनायी पड़ता था। वे वन्यजन्तु भयके मारे पीछे फिरकर देखते भी नहीं थे॥ ३०½॥

वह सेना बड़े वेगसे श्रीरामकी ओर चली। उसमें नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले सैनिक थे। वह समुद्रके समान गम्भीर दिखायी देती थी॥ ३१½॥

युद्धकलाके विद्वान् श्रीरामचन्द्रजीने भी चारों ओर दृष्टिपात करते हुए खरकी सेनाका निरीक्षण किया और वे युद्धके लिये उसके सामने बढ़ गये॥ ३२½॥

फिर उन्होंने तरकससे अनेक बाण निकाले और अपने भयंकर धनुषको खींचकर सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेके लिये तीव्र क्रोध प्रकट किया। कुपित होनेपर वे प्रलयकालिक अग्निके समान प्रज्वलित होने लगे। उस समय उनकी ओर देखना भी कठिन हो गया॥ ३३-३४॥

तेजसे आविष्ट हुए श्रीरामको देखकर वनके देवता व्यथित हो उठे। उस समय रोषमें भरे हुए श्रीरामका रूप दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये उद्यत हुए पिनाकधारी महादेवजीके समान दिखायी देने लगा॥ ३५॥

धनुषों, आभूषणों, रथों और अग्निके समान कान्तिवाले चमकीले कवचोंसे युक्त वह पिशाचोंकी सेना सूर्योदयकालमें नीले मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होती थीं॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

राक्षसोंका श्रीरामपर आक्रमण और श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा राक्षसोंका संहार

खरने अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ आश्रमके पास पहुँचकर क्रोधमें भरे हुए शत्रुघाती श्रीरामको देखा, जो हाथमें धनुष लिये खड़े थे। उन्हें देखते ही अपने तीव्र टंकार करनेवाले प्रत्यञ्चासहित धनुषको उठाकर सूतको आज्ञा दी—'मेरा रथ रामके सामने ले चलो'॥ १-२॥

खरकी आज्ञासे सारथिने घोड़ोंको उधर ही बढ़ाया, जहाँ महाबाहु श्रीराम अकेले खड़े होकर अपने धनुषकी टंकार कर रहे थे॥ ३॥

खरको श्रीरामके समीप पहुँचा देख श्येनगामी आदि उसके निशाचर मन्त्री भी बड़े जोरसे सिंहनाद करके उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ ४॥

उन राक्षसोंके बीचमें रथपर बैठा हुआ खर तारोंके मध्यभागमें उगे हुए मङ्गलकी भाँति शोभा पा रहा था॥ ५॥

उस समय खरने समराङ्गणमें सहस्रों बाणोंद्वारा अप्रतिम बलशाली श्रीरामको पीड़ित-सा करके बड़े जोरसे गर्जना की॥ ६॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए समस्त निशाचर भयंकर धनुष धारण करनेवाले दुर्जय वीर श्रीरामपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे॥ ७॥

उस समराङ्गणमें रुष्ट हुए राक्षसोंने शूरवीर श्रीरामपर लोहेके मुद्गरों, शूलों, प्रासों, खड्गों और फरसोंद्वारा प्रहार किया॥ ८॥

वे मेघोंके समान काले, विशालकाय और महाबली निशाचर रथों, घोड़ों और पर्वतशिखरके समान गजराजोंद्वारा ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामपर चारों ओरसे टूट पड़े। वे युद्धमें उन्हें मार डालना चाहते थे॥ ९½॥

जैसे बड़े-बड़े मेघ गिरिराजपर जलकी धाराएँ बरसा रहे हों, उसी प्रकार वे राक्षसगण श्रीरामपर बाणोंकी वृष्टि कर रहे थे॥ १०½॥

क्रूरतापूर्ण दृष्टिसे देखनेवाले उन सभी राक्षसोंने श्रीरामको उसी प्रकार घेर रखा था, जैसे प्रदोषसंज्ञक तिथियोंमें भगवान् शिवके पार्षदगण उन्हें घेरे रहते हैं॥

श्रीरघुनाथजीने राक्षसोंके छोड़े हुए उन अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंद्वारा उसी तरह ग्रस लिया, जैसे समुद्र नदियोंके प्रवाहको आत्मसात् कर लेता है॥ १२½॥

उन राक्षसोंके घोर अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे यद्यपि श्रीरामका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था तो भी वे व्यथित या विचलित नहीं हुए, जैसे बहुसंख्यक दीप्तिमान् वज्रोंके आघात सहकर भी महान् पर्वत अडिग बना रहता है॥ १३½॥

श्रीरघुनाथजीके सारे अङ्गोंमें अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे घाव हो गया था। वे लहूलुहान हो रहे थे, अतः उस समय संध्याकालके बादलोंसे घिरे हुए सूर्यदेवके समान शोभा पा रहे थे॥ १४½॥

श्रीराम अकेले थे। उस समय उन्हें अनेक सहस्र शत्रुओंसे घिरा हुआ देख देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि विषादमें डूब गये॥ १५½॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त कुपित हो अपने धनुषको इतना खींचा कि वह गोलाकार दिखायी देने लगा। फिर तो वे उस धनुषसे रणभूमिमें सैकड़ों, हजारों ऐसे पैने बाण छोड़ने लगे, जिन्हें रोकना सर्वथा कठिन था, जो दुःसह होनेके साथ ही कालपाशके समान भयंकर थे॥ १६-१७॥

उन्होंने खेल-खेलमें ही चीलके परोंसे युक्त असंख्य सुवर्णभूषित बाण छोड़े। शत्रुके सैनिकोंपर श्रीरामद्वारा लीलापूर्वक छोड़े गये वे बाण कालपाशके समान राक्षसोंके प्राण लेने लगे॥ १८½॥

राक्षसोंके शरीरोंको छेदकर खूनमें डूबे हुए वे बाण जब आकाशमें पहुँचते, तब प्रज्वलित अग्निके समान तेजसे प्रकाशित होने लगते थे॥ १९½॥

श्रीरामके मण्डलाकार धनुषसे अत्यन्त भयंकर और राक्षसोंके प्राण लेनेवाले असंख्य बाण छूटने लगे॥ २०½॥

उन बाणोंद्वारा श्रीरामने समराङ्गणमें शत्रुओंके सैकड़ों-हजारों धनुष, ध्वजाओंके अग्रभाग, ढाल, कवच, आभूषणोंसहित भुजाएँ तथा हाथीकी सूँड़के समान जाँघें काट डालीं॥ २१-२२॥

प्रत्यञ्चासे छूटे हुए श्रीरामके बाणोंने उस समय सोनेके साज-बाज एवं कवचसे सजे और रथोंमें जुते हुए घोड़ों, सारथियों, हाथियों, हाथीसवारों, घोड़ों और घुड़सवारोंको भी छिन्न-भिन्न कर डाला। इसी प्रकार श्रीरामने समरभूमिमें पैदल सैनिकोंको भी मारकर यमलोक पहुँचा दिया॥ २३-२४॥

उस समय उनके नालीक, नाराच और तीखे अग्रभागवाले विकर्णी नामक बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न होते हुए निशाचर भयंकर आर्तनाद करने लगे॥ २५॥

श्रीरामके चलाये हुए नाना प्रकारके मर्मभेदी बाणोंद्वारा पीड़ित हुई वह राक्षससेना आगसे जलते हुए सूखे वनकी भाँति सुख-शान्ति नहीं पाती थी॥ २६॥

कुछ भयंकर बलशाली शूरवीर निशाचर अत्यन्त कुपित हो श्रीरामपर प्रासों, शूलों और फरसोंका प्रहार करने लगे॥ २७॥

परंतु पराक्रमी महाबाहु श्रीरामने रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा उनके उन अस्त्र-शस्त्रोंको रोककर उनके गले काट डाले और प्राण हर लिये॥ २८॥

सिर, ढाल और धनुषके कट जानेपर वे निशाचर गरुड़के पंखकी हवासे टूटकर गिरनेवाले नन्दनवनके वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये। जो बचे थे, वे राक्षस भी श्रीरामके बाणोंसे आहत हो विषादमें डूब गये और अपनी रक्षाके लिये खरके पास ही दौड़े गये॥ २९-३०॥

परंतु बीचमें दूषणने धनुष लेकर उन सबको आश्वासन दिया और अत्यन्त कुपित हो रोषमें भरे हुए यमराजकी भाँति वह क्रुद्ध होकर युद्धके लिये डटे हुए श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा॥ ३१॥

दूषणका सहारा मिल जानेसे निर्भय हो वे सब-के-सब फिर लौट आये और साखू, ताड़ आदिके वृक्ष तथा पत्थर लेकर पुनः श्रीरामपर ही टूट पड़े॥ ३२॥

उस युद्धस्थलमें अपने हाथोंमें शूल, मुद्गर और पाश धारण किये वे महाबली निशाचर बाणों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे॥ ३३॥

कोई राक्षस वृक्षोंकी वर्षा करने लगे तो कोई पत्थरोंकी। उस समय इन श्रीराम और उन निशाचरोंमें पुनः बड़ा ही अद्भुत, महाभयंकर, घमासान और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा॥ ३४½॥

वे राक्षस कुपित होकर चारों ओरसे पुनः श्रीरामचन्द्रजीको पीड़ित करने लगे। तब सब ओरसे आये हुए राक्षसोंसे सम्पूर्ण दिशाओं और उपदिशाओंको घिरी हुई देख बाण-वर्षासे आच्छादित हुए महाबली श्रीरामने भैरव-नाद करके उन राक्षसोंपर परम तेजस्वी गान्धर्व नामक अस्त्रका प्रयोग किया॥ ३५—३७॥

फिर तो उनके मण्डलाकार धनुषसे सहस्रों बाण छूटने लगे। उन बाणोंसे दसों दिशाएँ पूर्णतः आच्छादित हो गयीं॥ ३८॥

बाणोंसे पीड़ित राक्षस यह नहीं देख पाते थे कि श्रीरामचन्द्रजी कब भयंकर बाण हाथमें लेते हैं और कब उन उत्तम बाणोंको छोड़ देते हैं। वे केवल उनको धनुष खींचते देखते थे॥ ३९॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणसमुदायरूपी अन्धकारने सूर्यसहित सारे आकाशमण्डलको ढक दिया। उस समय श्रीराम उन बाणोंको लगातार छोड़ते हुए एक स्थानपर खड़े थे॥ ४०॥

एक ही समय बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो एक साथ ही गिरते और गिरे हुए बहुसंख्यक राक्षसोंकी लाशोंसे वहाँकी भूमि पट गयी॥ ४१॥

जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती थी, वहीं-वहीं वे हजारों राक्षस मरे, गिरे, क्षीण हुए, कटे-पिटे और विदीर्ण हुए दिखायी देते थे॥ ४२॥

वहाँ श्रीरामके बाणोंसे कटे हुए पगड़ियों-सहित मस्तकों, बाजूबंदसहित भुजाओं, जाँघों, बाँहों, भाँति-भाँतिके आभूषणों, घोड़ों, श्रेष्ठ हाथियों, टूटे-फूटे अनेकानेक रथों, चँवरों, व्यजनों, छत्रों, नाना प्रकारकी ध्वजाओं, छिन्न-भिन्न हुए शूलों, पट्टिशों, खण्डित खड्गों, बिखरे प्रासों, फरसों, चूर-चूर हुई शिलाओं तथा टुकड़े-टुकड़े हुए बहुतेरे विचित्र बाणोंसे पटी हुई वह समरभूमि अत्यन्त भयंकर दिखायी देती थी॥ ४३—४६॥

उन सबको मारा गया देख शेष राक्षस अत्यन्त आतुर हो वहाँ शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीरामके सम्मुख जानेमें असमर्थ हो गये॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा दूषणसहित चौदह सहस्र राक्षसोंका वध

महाबाहु दूषणने जब देखा कि मेरी सेना बुरी तरहसे मारी जा रही है, तब उसने युद्धसे पीछे पैर न हटानेवाले भयंकर वेगशाली पाँच हजार राक्षसोंको, जिन्हें जीतना बड़ा ही कठिन था, आगे बढ़नेकी आज्ञा दी॥ १½ ॥

वे श्रीरामपर चारों ओरसे शूल, पट्टिश, तलवार, पत्थर, वृक्ष और बाणोंकी लगातार वर्षा करने लगे॥ २½ ॥

यह देख धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने वृक्षों और शिलाओंकी उस प्राणहारिणी महावृष्टिको अपने तीखे सायकोंद्वारा रोका॥ ३½ ॥

उस सारी वर्षाको रोककर आँख मूँदे हुए साँड़की भाँति अविचल भावसे खड़े हुए श्रीरामने समस्त राक्षसोंके वधके लिये महान् क्रोध धारण किया॥ ४½ ॥

क्रोधसे युक्त और तेजसे उद्दीप्त हुए श्रीरामने दूषणसहित सारी राक्षस-सेनापर चारों ओरसे बाणकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ५½ ॥

इससे शत्रुदूषण सेनापति दूषणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने वज्रके समान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको रोका॥ ६½ ॥

तब अत्यन्त कुपित हुए वीर श्रीरामने समराङ्गणमें क्षुर नामक बाणसे दूषणके विशाल धनुषको काट डाला और चार तीखे सायकोंसे उसके चारों घोड़ोंको मौतके घाट उतारकर एक अर्धचन्द्राकार बाणसे सारथिका भी सिर उड़ा दिया तथा तीन बाणोंसे उस राक्षसकी भी छातीमें चोट पहुँचायी॥ ७-८½ ॥

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए दूषणने पर्वतशिखरके समान एक रोमाञ्चकारी परिघ हाथमें लिया, जिसके ऊपर सोनेके पत्र मढ़े गये थे। वह परिघ देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था॥ ९-१० ॥

उसपर चारों ओरसे लोहेकी तीखी कीलें लगी हुई थीं। वह शत्रुओंकी चर्बीसे लिपटा हुआ था। उसका स्पर्श हीरे तथा वज्रके समान कठोर एवं असह्य था। वह शत्रुओंके नगरद्वारको विदीर्ण कर डालनेमें समर्थ था॥

रणभूमिमें बहुत बड़े सर्पके समान भयंकर उस परिघको हाथमें लेकर वह क्रूरकर्मा निशाचर दूषण श्रीरामपर टूट पड़ा॥ १२॥

उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्रीरामचन्द्रजीने दो बाणोंसे आभूषणोंसहित उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं॥ १३ ॥

युद्धके मुहानेपर जिसकी दोनों भुजाएँ कट गयी थीं, उस दूषणके हाथसे खिसककर वह विशालकाय परिघ इन्द्रध्वजके समान सामने गिर पड़ा॥ १४॥

जैसे दोनों दाँतोंके उखाड़ लिये जानेपर महान् मनस्वी गजराज उनके साथ ही धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार कटकर गिरी हुई अपनी भुजाओंके साथ ही दूषण भी पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १५ ॥

रणभूमिमें मारे गये दूषणको धराशायी हुआ देख समस्त प्राणियोंने 'साधु-साधु' कहकर भगवान् श्रीरामकी प्रशंसा की॥ १६ ॥

इसी समय सेनाके आगे चलनेवाले महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबली प्रमाथी—ये तीन राक्षस कुपित हो मौतके फंदेमें फँसकर संगठितरूपसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर टूट पड़े॥ १७½ ॥

राक्षस महाकपालने एक विशाल शूल उठाया, स्थूलाक्षने पट्टिश हाथमें लिया और प्रमाथीने फरसा सँभालकर आक्रमण किया॥ १८½ ॥

उन तीनोंको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीरामने तीखे अग्रभागवाले पैने सायकोंद्वारा द्वारपर आये हुए अतिथियोंके समान उनका स्वागत किया॥

श्रीरघुनन्दनने महाकपालका सिर एवं कपाल उड़ा दिया। प्रमाथीको असंख्य बाणसमूहोंसे मथ डाला और स्थूलाक्षकी स्थूल आँखोंको सायकोंसे भर दिया॥

तीनों अग्रगामी सैनिकोंका वह समूह अनेक शाखावाले विशाल वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित हो दूषणके अनुयायी पाँच हजार राक्षसोंको उतने ही बाणोंका निशाना बनाकर क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया॥ २२½ ॥

दूषण और उसके अनुयायी मारे गये—यह सुनकर खरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने अपने महाबली सेनापतियोंको आज्ञा दी—'वीरो! यह दूषण अपने सेवकोंसहित युद्धमें मार डाला गया। अत: अब तुम सभी राक्षस बहुत बड़ी सेनाके साथ धावा करके इस दुष्ट मनुष्य रामके साथ युद्ध करो और नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा इसका वध कर डालो'॥ २३—२५ ॥

ऐसा कहकर कुपित हुए खरने श्रीरामपर ही धावा किया। साथ ही श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य तथा रुधिराशन—ये बारह महापराक्रमी सेनापति भी उत्तम बाणोंकी वर्षा करते हुए अपने सैनिकोंके साथ श्रीरामपर ही टूट पड़े॥ २६—२८॥

तब तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने सोने और हीरोंसे विभूषित अग्नितुल्य तेजस्वी सायकोंद्वारा उस सेनाके बचे-खुचे सिपाहियोंका भी संहार कर डाला॥ २९॥

जैसे वज्र बड़े-बड़े वृक्षोंको नष्ट कर डालते हैं, उसी प्रकार धूमयुक्त अग्निके समान प्रतीत होनेवाले उन सोनेकी पाँखवाले बाणोंने उन समस्त राक्षसोंका विनाश कर डाला॥ ३०॥

उस युद्धके मुहानेपर श्रीरामने कर्णिनामक सौ बाणोंसे सौ राक्षसोंका और सहस्र बाणोंसे सहस्र निशाचरोंका एक साथ ही संहार कर डाला॥ ३१॥

उन बाणोंसे निशाचरोंके कवच, आभूषण और धनुष छिन्न-भिन्न हो गये तथा वे खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३२॥

कुशोंसे ढकी हुई विशाल वेदीके समान युद्धमें लहूलुहान होकर गिरे हुए खुले केशवाले राक्षसोंसे सारी रणभूमि पट गयी॥ ३३॥

राक्षसोंके मारे जानेसे उस समय वहाँ रक्त और मांसकी कीचड़ जम गयी; अतः वह महाभयंकर वन नरकके समान प्रतीत होने लगा॥ ३४॥

मानवरूपधारी श्रीराम अकेले और पैदल थे, तो भी उन्होंने भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको तत्काल मौतके घाट उतार दिया॥ ३५॥

उस समूची सेनामें केवल महारथी खर और त्रिशिरा—ये दो ही राक्षस बच रहे। उधर शत्रुसंहारक भगवान् श्रीराम ज्यों-के-त्यों युद्धके लिये डटे रहे॥ ३६॥

उपर्युक्त दो राक्षसोंको छोड़कर शेष सभी निशाचर, जो महान् पराक्रमी, भयंकर और दुर्धर्ष थे, युद्धके मुहानेपर लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामके हाथों मारे गये॥ ३७॥

तदनन्तर महासमरमें महाबली श्रीरामके द्वारा अपनी भयंकर सेनाको मारी गयी देख खर एक विशाल रथके द्वारा श्रीरामका सामना करनेके लिये आया, मानो वज्रधारी इन्द्रने किसी शत्रुपर आक्रमण किया हो॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

त्रिशिराका वध

खरको भगवान् श्रीरामके सम्मुख जाते देख सेनापति राक्षस त्रिशिरा तुरंत उसके पास आ पहुँचा और इस प्रकार बोला— ॥ १॥

'राक्षसराज! मुझ पराक्रमी वीरको इस युद्धमें लगाइये और स्वयं इस साहसपूर्ण कार्यसे अलग रहिये। देखिये, मैं अभी महाबाहु रामको युद्धमें मार गिराता हूँ॥

'आपके सामने मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ और अपने हथियार छूकर शपथ खाता हूँ कि जो समस्त राक्षसोंके लिये वधके योग्य हैं, उन रामका मैं अवश्य वध करूँगा॥ ३॥

'इस युद्धमें या तो मैं इनकी मृत्यु बनूँगा, या ये ही समराङ्गणमें मेरी मृत्युका कारण होंगे। आप इस समय अपने युद्धविषयक उत्साहको रोककर एक मुहूर्तके लिये जय-पराजयका निर्णय करनेवाले साक्षी बन जाइये॥ ४॥

'यदि मेरे द्वारा राम मारे गये तो आप प्रसन्नतापूर्वक जनस्थानको लौट जाइये अथवा यदि रामने ही मुझे मार दिया तो आप युद्धके लिये इनपर धावा बोल दीजियेगा'॥ ५॥

भगवान्के हाथसे मृत्युका लोभ होनेके कारण जब त्रिशिराने इस प्रकार खरको राजी किया, तब उसने आज्ञा दे दी—'अच्छा जाओ, युद्ध करो। आज्ञा पाकर वह श्रीरामचन्द्रजीकी ओर चला॥ ६॥

घोड़े जुते हुए एक तेजस्वी रथके द्वारा त्रिशिराने रणभूमिमें श्रीरामपर आक्रमण किया। उस समय वह तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान जान पड़ता था॥ ७॥

उसने आते ही बड़े भारी मेघकी भाँति बाणरूपी धाराओंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी और वह जलसे भीगे हुए नगाड़ेकी तरह विकट गर्जना करने लगा॥ ८॥

त्रिशिरा नामक राक्षसको आते देख श्रीरघुनाथजीने धनुषके द्वारा पैने बाण छोड़ते हुए उसे अपने प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें ग्रहण किया (अथवा उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया)॥ ९॥

अत्यन्त बलशाली श्रीराम और त्रिशिराका वह संग्राम महाबली सिंह और गजराजके युद्धकी भाँति बड़ा भयंकर प्रतीत होता था॥ १०॥

उस समय त्रिशिराने तीन बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीके ललाटको बींध डाला। श्रीराम उसकी यह उद्दण्डता सहन न कर सके। वे कुपित हो रोषावेशमें भरकर इस प्रकार बोले—॥ ११॥

'अहो! पराक्रम प्रकट करनेमें शूरवीर राक्षसका ऐसा ही बल है, जो तुमने फूलों-जैसे बाणोंद्वारा मेरे ललाटपर प्रहार किया है। अच्छा, अब धनुषकी डोरीसे छूटे हुए मेरे बाणोंको भी ग्रहण करो'॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

ऐसा कहकर रोषमें भरे हुए श्रीरामने त्रिशिराकी छातीमें क्रोधपूर्वक चौदह बाण मारे, जो विषधर सर्पोंके समान भयंकर थे॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर तेजस्वी रघुनाथजीने झुकी गाँठवाले चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार गिराया। फिर आठ सायकोंद्वारा उसके सारथिको भी रथकी बैठकमें ही सुला दिया॥ १४-१५॥

इसके बाद श्रीरामने एक बाणसे उसकी ध्वजा भी काट डाली। तदनन्तर जब वह उस नष्ट हुए रथसे कूदने लगा, उसी समय श्रीराघवेन्द्रने अनेक बाणोंद्वारा उस निशाचरकी छाती छेद डाली। फिर तो वह जडवत् हो गया॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

इसके बाद अप्रमेयस्वरूप श्रीरामने अमर्षमें भरकर तीन वेगशाली एवं विनाशकारी बाणोंद्वारा उस राक्षसके तीनों मस्तक काट गिराये॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

समराङ्गणमें खड़ा हुआ वह निशाचर श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे पीड़ित हो अपने धड़से भापसहित रुधिर उगलता हुआ पहले गिरे हुए मस्तकोंके साथ ही धराशायी हो गया॥ १८ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् खरकी सेवामें रहनेवाले राक्षस, जो मरनेसे बचे हुए थे, भाग खड़े हुए। वे व्याघ्रसे डरे हुए मृगोंके समान भागते ही चले जाते थे, खड़े नहीं होते थे॥

उन्हें भागते देख रोषमें भरे हुए खरने तुरंत लौटाया और जैसे राहु चन्द्रमापर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसने श्रीरामपर ही धावा किया॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

खरके साथ श्रीरामका घोर युद्ध

त्रिशिरासहित दूषणको रणभूमिमें मारा गया देख श्रीरामके पराक्रमपर दृष्टिपात करके खरको भी बड़ा भय हुआ॥ १॥

एकमात्र श्रीरामने महान् बलशाली और असह्य राक्षस-सेनाका वध कर डाला। दूषण और त्रिशिराको भी मार गिराया तथा मेरी सेनाके अधिकांश (चौदह हजार) प्रमुख वीरोंको कालके गालमें भेज दिया—यह सब देख और सोचकर राक्षस खर उदास हो गया। उसने श्रीरामपर उसी तरह आक्रमण किया, जैसे नमुचिने इन्द्रपर किया था॥ २-३॥

खरने एक प्रबल धनुषको खींचकर श्रीरामके प्रति बहुत-से नाराच चलाये, जो रक्त पीनेवाले थे। वे समस्त नाराच रोषमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान प्रतीत होते थे॥ ४॥

धनुर्विद्याके अभ्याससे प्रत्यञ्चाको हिलाता और नाना प्रकारके अस्त्रोंका प्रदर्शन करता हुआ रथारूढ़ खर समराङ्गणमें युद्धके अनेक पैंतरे दिखाता हुआ विचरने लगा॥ ५॥

उस महारथी वीरने अपने बाणोंसे समस्त दिशाओं और विदिशाओंको ढक दिया। उसे ऐसा करते देख श्रीरामने भी अपना विशाल धनुष उठाया और समस्त दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया॥ ६॥

जैसे मेघ जलकी वर्षासे आकाशको ढक देता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीने भी आगकी चिनगारियोंके समान दुःसह सायकोंकी वर्षा करके आकाशको ठसाठस भर दिया। वहाँ थोड़ी-सी भी जगह खाली नहीं रहने दी॥

खर और श्रीरामद्वारा छोड़े गये पैने बाणोंसे व्याप्त हो सब ओर फैला हुआ आकाश चारों ओरसे बाणोंद्वारा भर जानेके कारण अवकाशरहित हो गया॥ ८॥

एक-दूसरेके वधके लिये रोषपूर्वक जूझते हुए उन दोनों वीरोंके बाणजालसे आच्छादित होकर सूर्यदेव प्रकाशित नहीं होते थे॥ ९॥

तदनन्तर खरने रणभूमिमें श्रीरामपर नालीक, नाराच और तीखे अग्रभागवाले विकर्णि नामक बाणोंद्वारा प्रहार किया, मानो किसी महान् गजराजको अङ्कुशोंद्वारा मारा गया हो॥ १०॥

उस समय हाथमें धनुष लेकर रथमें स्थिरतापूर्वक बैठे हुए राक्षस खरको समस्त प्राणियोंने पाशधारी यमराजके समान देखा॥ ११॥

उस वेलामें समस्त सेनाओंका वध करनेवाले तथा पुरुषार्थपर डटे हुए महान् बलशाली श्रीरामको खरने थका हुआ समझा॥ १२॥

यद्यपि वह सिंहके समान चलता और सिंहके ही तुल्य पराक्रम प्रकट करता था तो भी उस खरको देखकर श्रीराम उसी तरह उद्विग्न नहीं होते थे, जैसे छोटे-से मृगको देखकर सिंह भयभीत नहीं होता है॥

तत्पश्चात् जैसे पतिङ्गा आगके पास जाता है, उसी प्रकार खर अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी विशाल रथके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके पास गया॥ १४॥

वहाँ जाकर उस राक्षस खरने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए महात्मा श्रीरामके बाणसहित धनुषकी मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला॥ १५॥

फिर इन्द्रके वज्रकी भाँति प्रकाशित होनेवाले दूसरे सात बाण लेकर रणभूमिमें कुपित हुए खरने उनके द्वारा श्रीरामके मर्मस्थलमें चोट पहुँचायी॥ १६॥

तदनन्तर अप्रतिम बलशाली श्रीरामको सहस्त्रों बाणोंसे पीड़ित करके निशाचर खर समरभूमिमें जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ १७॥

खरके छोड़े हुए उत्तम गाँठवाले बाणोंद्वारा कटकर श्रीरामका सूर्यतुल्य तेजस्वी कवच पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८॥

उनके सभी अङ्गोंमें खरके बाण धँस गये थे। उस समय कुपित हो समरभूमिमें खड़े हुए श्रीरघुनाथजी धूमरहित प्रज्वलित अग्निकी भाँति शोभा पा रहे थे॥ १९॥

तब शत्रुओंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीरामने अपने विपक्षीका विनाश करनेके लिये एक-दूसरे विशाल धनुषपर, जिसकी ध्वनि बहुत ही गम्भीर थी, प्रत्यञ्चा चढ़ायी॥ २०॥

महर्षि अगस्त्यने जो महान् और उत्तम वैष्णव धनुष प्रदान किया था, उसीको लेकर उन्होंने खरपर धावा किया॥ २१॥

उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर श्रीरामने सोनेकी पाँख और झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें खरकी ध्वजा काट डाली॥ २२॥

वह दर्शनीय सुवर्णमय ध्वज अनेक टुकड़ोंमें कटकर धरतीपर गिर पड़ा, मानो देवताओंकी आज्ञासे सूर्यदेव भूमिपर उतर आये हों॥ २३॥

क्रोधमें भरे हुए खरको मर्मस्थानोंका ज्ञान था। उसने श्रीरामके अङ्गोंमें, विशेषत: उनकी छातीमें चार बाण मारे, मानो किसी महावतने गजराजपर तोमरोंसे प्रहार किया हो॥ २४॥

खरके धनुषसे छूटे हुए बहुसंख्यक बाणोंसे घायल होकर श्रीरामका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। इससे उनको बड़ा रोष हुआ॥ २५॥

धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर श्रीरामने युद्धस्थलमें पूर्वोक्त श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर लक्ष्य निश्चित करके खरको छ: बाण मारे॥ २६॥

उन्होंने एक बाण उसके मस्तकमें, दोसे उसकी भुजाओंमें और तीन अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ २७॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर उस राक्षसको शानपर तेज किये हुए और सूर्यके समान चमकनेवाले तेरह बाण मारे॥ २८॥

एक बाणसे तो उसके रथका जूआ काट दिया, चार बाणोंसे चारों चितकबरे घोड़े मार डाले और छठे बाणसे युद्धस्थलमें खरके सारथिका मस्तक काट गिराया॥

तत्पश्चात् तीन बाणोंसे त्रिवेणु (जूएके आधारदण्ड) और दोसे रथके धुरेको खण्डित करके महान् शक्तिशाली और बलवान् श्रीरामने बारहवें बाणसे खरके बाणसहित धनुषके दो टुकड़े कर दिये। इसके बाद इन्द्रके समान तेजस्वी श्रीराघवेन्द्रने हँसते-हँसते वज्रतुल्य तेरहवें बाणके द्वारा समराङ्गणमें खरको घायल कर दिया॥ ३०-३१॥

धनुषके खण्डित होने, रथके टूटने, घोड़ोंके मारे जाने और सारथिके भी नष्ट हो जानेपर खर उस समय हाथमें गदा ले रथसे कूदकर धरतीपर खड़ा हो गया॥ ३२॥

उस अवसरपर विमानपर बैठे हुए देवता और महर्षि हर्षसे उत्फुल्ल हो परस्पर मिलकर हाथ जोड़ महारथी श्रीरामके उस कर्मकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

श्रीरामका खरको फटकारना तथा खरका भी उन्हें कठोर उत्तर देकर उनके ऊपर गदाका प्रहार करना और श्रीरामद्वारा उस गदाका खण्डन

खरको रथहीन होकर गदा हाथमें लिये सामने उपस्थित देख महातेजस्वी भगवान् श्रीराम पहले कोमल और फिर कठोर वाणीमें बोले—॥ १ ॥

'निशाचर! हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई विशाल सेनाके बीचमें खड़े रहकर (असंख्य राक्षसोंके स्वामित्वका अभिमान लेकर) तूने सदा जो क्रूरतापूर्ण कर्म किया है, उसकी समस्त लोकोंद्वारा निन्दा हुई है। जो समस्त प्राणियोंको उद्वेगमें डालनेवाला, क्रूर और पापाचारी है, वह तीनों लोकोंका ईश्वर हो तो भी अधिक कालतक टिक नहीं सकता। जो लोकविरोधी कठोर कर्म करनेवाला है, उसे सब लोग सामने आये हुए दुष्ट सर्पकी भाँति मारते हैं॥ २—४॥

'जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई है, उसकी इच्छाको 'काम' कहते हैं और प्राप्त हुई वस्तुको अधिक-से-अधिक संख्यामें पानेकी इच्छाका नाम 'लोभ' है। जो काम अथवा लोभसे प्रेरित हो पाप करता है और उसके (विनाशकारी) परिणामको नहीं समझता है, उलटे उस पापमें हर्षका अनुभव करता है, वह उसी प्रकार अपना विनाशरूप परिणाम देखता है जैसे वर्षाके साथ गिरे हुए ओलेको खाकर ब्राह्मणी (रक्तपुच्छिका) नामवाली कीड़ी अपना विनाश देखती है *॥ ५॥

'राक्षस! दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले तपस्यामें संलग्न धर्मपरायण महाभाग मुनियोंकी हत्या करके न जाने तू कौन-सा फल पायेगा?॥ ६॥

'जिनकी जड़ खोखली हो गयी हो, वे वृक्ष जैसे अधिक कालतक नहीं खड़े रह सकते, उसी प्रकार पापकर्म करनेवाले लोकनिन्दित क्रूर पुरुष (किसी पूर्वपुण्यके प्रभावसे) ऐश्वर्यको पाकर भी चिरकालतक उसमें प्रतिष्ठित नहीं रह पाते (उससे भ्रष्ट हो ही जाते हैं)॥ ७॥

'जैसे समय आनेपर वृक्षमें ऋतुके अनुसार फूल लगते ही हैं, उसी प्रकार पापकर्म करनेवाले पुरुषको समयानुसार अपने उस पापकर्मका भयंकर फल अवश्य ही प्राप्त होता है॥ ८॥

'निशाचर! जैसे खाये हुए विषमिश्रित अन्नका परिणाम तुरंत ही भोगना पड़ता है, उसी प्रकार लोकमें किये गये पापकर्मोंका फल शीघ्र ही प्राप्त होता है॥ ९॥

'राक्षस! जो संसारका बुरा चाहते हुए घोर पापकर्ममें लगे हुए हैं, उन्हें प्राणदण्ड देनेके लिये मेरे पिता महाराज दशरथने मुझे यहाँ वनमें भेजा है॥ १०॥

'आज मेरे छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाण जैसे सर्प बाँबीको छेदकर निकलते हैं, उसी प्रकार तेरे शरीरको फाड़कर पृथ्वीको भी विदीर्ण करके पातालमें जाकर गिरेंगे॥ ११॥

'तूने दण्डकारण्यमें जिन धर्मपरायण ऋषियोंका भक्षण किया है, आज युद्धमें मारा जाकर सेनासहित तू भी उन्हींका अनुसरण करेगा॥ १२॥

'पहले तूने जिनका वध किया है, वे महर्षि विमानपर बैठकर आज तुझे मेरे बाणोंसे मारा गया और नरकतुल्य कष्ट भोगता हुआ देखें॥ १३॥

'कुलाधम! तेरी जितनी इच्छा हो, प्रहार कर। जितना सम्भव हो, मुझे परास्त करनेका प्रयत्न कर, किंतु आज मैं तेरे मस्तकको ताड़के फलकी भाँति अवश्य काट गिराऊँगा'॥ १४॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर खर कुपित हो उठा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह क्रोधसे अचेत-सा होकर हँसता हुआ श्रीरामको इस प्रकार उत्तर देने लगा—॥ १५॥

'दशरथकुमार! तुम साधारण राक्षसोंको युद्धमें मारकर स्वयं ही अपनी इतनी प्रशंसा कैसे कर रहे हो? तुम प्रशंसाके योग्य कदापि नहीं हो॥ १६॥

'जो श्रेष्ठ पुरुष पराक्रमी अथवा बलवान् होते हैं, वे अपने प्रतापके कारण अधिक घमंडमें भरकर कोई बात नहीं कहते हैं (अपने विषयमें मौन ही रहते हैं)॥ १७॥

'राम! जो क्षुद्र, अजितात्मा और क्षत्रियकुलकलंक होते हैं, वे ही संसारमें अपनी बड़ाईके लिये व्यर्थ डींग हाँका करते हैं; जैसे इस समय तुम (अपने विषयमें) बढ़-बढ़कर बातें बना रहे हो॥ १८॥

* लाल पूँछवाली एक कीड़ी होती है, जो ओला खा लेनेपर मर जाती है। वह उसके लिये विषका काम करता है—यह बात लोकमें प्रसिद्ध है।

'जब कि मृत्युके समान युद्धका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें बिना किसी प्रस्तावके ही समराङ्गणमें कौन वीर अपनी कुलीनता प्रकट करता हुआ आप ही अपनी स्तुति करेगा?॥ १९॥

'जैसे पीतल सुवर्णशोधक आगमें तपाये जानेपर अपनी लघुता (कालेपन) को ही व्यक्त करता है, उसी प्रकार अपनी झूठी प्रशंसाके द्वारा तुमने सर्वथा अपने ओछेपनका ही परिचय दिया है॥ २०॥

'क्या तुम नहीं देखते कि मैं नाना प्रकारके धातुओंकी खानोंसे युक्त तथा पृथ्वीको धारण करनेवाले अविचल कुलपर्वतके समान यहाँ स्थिरभावसे तुम्हारे सामने गदा लेकर खड़ा हूँ॥ २१॥

'मैं अकेला ही पाशधारी यमराजकी भाँति गदा हाथमें लेकर रणभूमिमें तुम्हारे और तीनों लोकोंके भी प्राण लेनेकी शक्ति रखता हूँ॥ २२॥

'यद्यपि तुम्हारे विषयमें मैं इच्छानुसार बहुत कुछ कह सकता हूँ तथापि इस समय कुछ नहीं कहूँगा; क्योंकि सूर्यदेव अस्ताचलको जा रहे हैं, अत: युद्धमें विघ्न पड़ जायगा॥ २३॥

'तुमने चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया है, अत: आज तुम्हारा भी विनाश करके मैं उन सबके आँसू पोछूँगा—उनकी मौतका बदला चुकाऊँगा'॥ २४॥

ऐसा कहकर अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए खरने उत्तम वलय (कड़े) से विभूषित तथा प्रज्वलित वज्रके समान भयंकर गदाको श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाया॥ २५॥

खरके हाथोंसे छूटी हुई वह दीप्तिमान् विशाल गदा वृक्षों और लताओंको भस्म करके उनके समीप जा पहुँची॥ २६॥

मृत्युके पाशकी भाँति उस विशाल गदाको अपने ऊपर आती देख श्रीरामचन्द्रजीने अनेक बाण मारकर आकाशमें ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ २७॥

बाणोंसे विदीर्ण एवं चूर-चूर होकर वह गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी, मानो कोई सर्पिणी मन्त्र और ओषधियोंके बलसे गिरायी गयी हो॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

श्रीरामके व्यङ्ग करनेपर खरका उन्हें फटकारकर उनके ऊपर सालवृक्षका प्रहार करना, श्रीरामका उस वृक्षको काटकर एक तेजस्वी बाणसे खरको मार गिराना तथा देवताओं और महर्षियोंद्वारा श्रीरामकी प्रशंसा

धर्मप्रेमी भगवान् श्रीरामने अपने बाणोंद्वारा खरकी उस गदाको विदीर्ण करके मुसकराते हुए यह रोषसूचक बात कही—॥ १॥

'राक्षसाधम! यही तेरा सारा बल है, जिसे तूने इस गदाके साथ दिखाया है। अब सिद्ध हो गया कि तू मुझसे अत्यन्त शक्तिहीन है, व्यर्थ ही अपने बलकी डींग हाँक रहा था॥ २॥

'मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर तेरी यह गदा पृथ्वीपर पड़ी हुई है। तेरे मनमें जो यह विश्वास था कि मैं इस गदासे शत्रुका वध कर डालूँगा, इसका खण्डन तेरी इस गदाने ही कर दिया। अब यह स्पष्ट हो गया कि तू केवल बातें बनानेमें ढीठ है (तुझसे कोई पराक्रम नहीं हो सकता)॥ ३॥

'तूने जो यह कहा था कि मैं तुम्हारा वध करके तुम्हारे हाथसे मारे गये राक्षसोंका अभी आँसू पोछूँगा, तेरी वह बात भी झूठी हो गयी॥ ४॥

'तू नीच, क्षुद्रस्वभावसे युक्त और मिथ्याचारी राक्षस है। मैं तेरे प्राणोंको उसी प्रकार हर लूँगा, जैसे गरुड़ने देवताओंके यहाँसे अमृतका अपहरण किया था॥ ५॥

'अब मैं अपने बाणोंसे तेरे शरीरको विदीर्ण करके तेरा गला भी काट डालूँगा। फिर यह पृथ्वी फेन और बुद्बुदोंसे युक्त तेरे गरम-गरम रक्तका पान करेगी॥ ६॥

'तेरे सारे अङ्ग धूलसे धूसर हो जायँगे, तेरी दोनों भुजाएँ शरीरसे अलग होकर पृथ्वीपर गिर जायँगी और उस दशामें तू दुर्लभ युवतीके समान इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके सदाके लिये सो जायगा॥ ७॥

'तेरे-जैसे राक्षसकुलकलङ्कके सदाके लिये महानिद्रामें सो जानेपर ये दण्डकवनके प्रदेश शरणार्थियोंको शरण देनेवाले हो जायँगे॥ ८॥

'राक्षस! मेरे बाणोंसे जनस्थानमें बने हुए तेरे

निवासस्थानके नष्ट हो जानेपर मुनिगण इस वनमें सब ओर निर्भय विचर सकेंगे॥ ९॥

'जो अबतक दूसरोंको भय देती थीं, वे राक्षसियाँ आज अपने बान्धवजनोंके मारे जानेसे दीन हो आँसुओंसे भींगे मुँह लिये जनस्थानसे स्वयं ही भयके कारण भाग जायँगी॥ १०॥

'जिनका तुझ-जैसा दुराचारी पति है, वे तदनुरूप कुलवाली तेरी पत्नियाँ आज तेरे मारे जानेपर काम आदि पुरुषार्थोंसे वञ्चित हो शोकरूपी स्थायी भाववाले करुणरसका अनुभव करनेवाली होंगी॥ ११॥

'क्रूरस्वभाववाले निशाचर! तेरा हृदय सदा ही क्षुद्र विचारोंसे भरा रहता है। तू ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप है। तेरे ही कारण मुनिलोग शङ्कित रहकर ही अग्निमें हविष्यकी आहुतियाँ डालते हैं'॥ १२॥

वनमें श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार रोषपूर्ण बातें कह रहे थे, उस समय क्रोधके कारण खरका भी स्वर अत्यन्त कठोर हो गया और उसने उन्हें फटकारते हुए कहा—॥ १३॥

'अहो! निश्चय ही तुम बड़े घमंडी हो, भयके अवसरोंपर भी निर्भय बने हुए हो। जान पड़ता है कि तुम मृत्युके अधीन हो गये हो, इस कारणसे ही तुम्हें यह भी पता नहीं है कि कब क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये?॥ १४॥

'जो पुरुष कालके फन्देमें फँस जाते हैं, उनकी छहों इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं; इसीलिये उन्हें कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान नहीं रह जाता है'॥ १५॥

ऐसा कहकर उस निशाचरने एक बार श्रीरामकी ओर भौंहें टेंढ़ी करके देखा और रणभूमिमें उनपर प्रहार करनेके लिये वह चारों ओर दृष्टिपात करने लगा। इतनेमें ही उसे एक विशाल साखूका वृक्ष दिखायी दिया, जो निकट ही था। खरने अपने होठोंको दाँतोंसे दबाकर उस वृक्षको उखाड़ लिया॥ १६-१७॥

फिर उस महाबली निशाचरने विकट गर्जना करके दोनों हाथोंसे उस वृक्षको उठा लिया और श्रीरामपर दे मारा। साथ ही यह भी कहा—'लो, अब तुम मारे गये'॥ १८॥

परमप्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने ऊपर आते हुए उस वृक्षको बाण-समूहोंसे काट गिराया और उस समरभूमिमें खरको मार डालनेके लिये अत्यन्त क्रोध प्रकट किया॥ १९॥

उस समय श्रीरामके शरीरमें पसीना आ गया। उनके नेत्रप्रान्त रोषसे रक्तवर्णके हो गये। उन्होंने सहस्रों बाणोंका प्रहार करके समराङ्गणमें खरको क्षत-विक्षत कर दिया॥ २०॥

उनके बाणोंके आघातसे उस निशाचरके शरीरमें जो घाव हुए थे, उनसे अधिक मात्रामें फेनयुक्त रक्त प्रवाहित होने लगा, मानो पर्वतके झरनेसे जलकी धाराएँ गिर रही हों॥ २१॥

श्रीरामने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी मारसे खरको व्याकुल कर दिया; तो भी (उसका साहस कम नहीं हुआ।) वह खूनकी गन्धसे उन्मत्त होकर बड़े वेगसे श्रीरामकी ओर ही दौड़ा॥ २२॥

अस्त्र-विद्याके ज्ञाता भगवान् श्रीरामने देखा कि यह राक्षस खूनसे लथपथ होनेपर भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक मेरी ही ओर बढ़ा आ रहा है तो वे तुरंत चरणोंका संचालन करके दो-तीन पग पीछे हट गये (क्योंकि बहुत निकट होनेपर बाण चलाना सम्भव नहीं हो सकता था)॥ २३॥

तदनन्तर श्रीरामने समराङ्गणमें खरका वध करनेके लिये एक अग्निके समान तेजस्वी बाण हाथमें लिया, जो दूसरे ब्रह्मदण्डके समान भयंकर था॥ २४॥

वह बाण बुद्धिमान् देवराज इन्द्रका दिया हुआ था। धर्मात्मा श्रीरामने उसे धनुषपर रखा और खरको लक्ष्य करके छोड़ दिया॥ २५॥

उस महाबाणके छूटते ही वज्रपातके समान भयानक शब्द हुआ। श्रीरामने अपने धनुषको कानतक खींचकर उसे छोड़ा था। वह खरकी छातीमें जा लगा॥ २६॥

जैसे श्वेतवनमें भगवान् रुद्रने अन्धकासुरको जलाकर भस्म किया था, उसी प्रकार दण्डकवनमें श्रीरामके उस बाणकी आगमें जलता हुआ निशाचर खर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २७॥

जैसे वज्रसे वृत्रासुर, फेनसे नमुचि और इन्द्रकी अशनिसे बलासुर मारा गया था, उसी प्रकार श्रीरामके उस बाणसे आहत होकर खर धराशायी हो गया॥ २८॥

इसी समय देवता चारणोंके साथ मिलकर आये और हर्षमें भरकर दुन्दुभि बजाते हुए वहाँ श्रीरामके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। उस समय उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि श्रीरामने अपने पैने बाणोंसे डेढ़ मुहूर्तमें ही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंका इस

महासमरमें संहार कर डाला॥ २९—३१॥

वे बोले—'अहो! अपने स्वरूपको जाननेवाले भगवान् श्रीरामका यह कर्म महान् और अद्भुत है, इनका बल-पराक्रम भी अद्भुत है और इनमें भगवान् विष्णुकी भाँति आश्चर्यजनक दृढ़ता दिखायी देती है'॥ ३२॥

ऐसा कहकर वे सब देवता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। तदनन्तर बहुत-से राजर्षि और अगस्त्य आदि महर्षि मिलकर वहाँ आये तथा प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामका सत्कार करके उनसे इस प्रकार बोले—॥ ३३$\frac{1}{2}$॥

'रघुनन्दन! इसीलिये महातेजस्वी पाकशासन पुरंदर इन्द्र शरभङ्ग मुनिके पवित्र आश्रमपर आये थे और इसी कार्यकी सिद्धिके लिये महर्षियोंने विशेष उपाय करके आपको पञ्चवटीके इस प्रदेशमें पहुँचाया था॥ ३४-३५॥

'मुनियोंके शत्रुरूप इन पापाचारी राक्षसोंके वधके लिये ही आपका यहाँ शुभागमन आवश्यक समझा गया था। दशरथनन्दन! आपने हमलोगोंका यह बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर दिया। अब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि दण्डकारण्यके विभिन्न प्रदेशोंमें निर्भय होकर अपने धर्मका अनुष्ठान करेंगे'॥ ३६$\frac{1}{2}$॥

इसी बीचमें वीर लक्ष्मण भी सीताके साथ पर्वतकी कन्दरासे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक आश्रममें आ गये॥

तत्पश्चात् महर्षियोंसे प्रशंसित और लक्ष्मणसे पूजित विजयी वीर श्रीरामने आश्रममें प्रवेश किया॥ ३८$\frac{1}{2}$॥

महर्षियोंको सुख देनेवाले अपने शत्रुहन्ता पतिका दर्शन करके विदेहराजनन्दिनी सीताको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने परमानन्दमें निमग्न होकर अपने स्वामीका आलिङ्गन किया। राक्षस-समूह मारे गये और श्रीरामको कोई क्षति नहीं पहुँची—यह देख और जानकर जानकीजीको बहुत संतोष हुआ॥ ३९-४०॥

प्रसन्नतासे भरे हुए महात्मा मुनि जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे तथा जिन्होंने राक्षसोंके समुदायको कुचल डाला था, उन प्राणवल्लभ, श्रीरामका बारम्बार आलिङ्गन करके उस समय जनकनन्दिनी सीताको बड़ा हर्ष हुआ। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

रावणका अकम्पनकी सलाहसे सीताका अपहरण करनेके लिये जाना और मारीचके कहनेसे लङ्काको लौट आना

तदनन्तर जनस्थानसे अकम्पन नामक राक्षस बड़ी उतावलीके साथ लङ्काकी ओर गया और शीघ्र ही उस पुरीमें प्रवेश करके रावणसे इस प्रकार बोला—॥ १॥

'राजन्! जनस्थानमें जो बहुत-से राक्षस रहते थे, वे मार डाले गये। खर युद्धमें मारा गया। मैं किसी तरह जान बचाकर यहाँ आया हूँ'॥ २॥

अकम्पनके ऐसा कहते ही दशमुख रावण क्रोधसे जल उठा और लाल आँखें करके उससे इस तरह बोला, मानो उसे अपने तेजसे जलाकर भस्म कर डालेगा॥ ३॥

वह बोला—'कौन मौतके मुखमें जाना चाहता है, जिसने मेरे भयंकर जनस्थानका विनाश किया है? कौन वह दु:साहसी है, जिसे समस्त लोकोंमें कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं मिलनेवाला है?॥ ४॥

'मेरा अपराध करके इन्द्र, यम, कुबेर और विष्णु भी चैनसे नहीं रह सकेंगे॥ ५॥

'मैं कालका भी काल हूँ, आगको भी जला सकता हूँ तथा मौतको भी मृत्युके मुखमें डाल सकता हूँ॥ ६॥

'यदि मैं क्रोधमें भर जाऊँ तो अपने वेगसे वायुकी गतिको भी रोक सकता हूँ तथा अपने तेजसे सूर्य और अग्निको भी जलाकर भस्म कर सकता हूँ'॥ ७॥

रावणको इस प्रकार क्रोधसे भरा देख भयके मारे अकम्पनकी बोलती बंद हो गयी। उसने हाथ जोड़कर संशययुक्त वाणीमें रावणसे अभयकी याचना की॥ ८॥

तब राक्षसोंमें श्रेष्ठ दशग्रीवने उसे अभयदान दिया। इससे अकम्पनको अपने प्राण बचनेका विश्वास हुआ और वह संशयरहित होकर बोला—॥ ९॥

'राक्षसराज! राजा दशरथके नवयुवक पुत्र श्रीराम पञ्चवटीमें रहते हैं। उनके शरीरकी गठन सिंहके समान है, कंधे मोटे और भुजाएँ गोल तथा लम्बी हैं, शरीरका रंग साँवला है। वे बड़े यशस्वी और तेजस्वी दिखायी देते हैं। उनके बल और पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है। उन्होंने जनस्थानमें रहनेवाले खर और दूषण आदिका

वध किया है'॥ १०-११॥

अकम्पनकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावणने नागराज (महान् सर्प) की भाँति लम्बी साँस खींचकर इस प्रकार कहा—॥ १२॥

अकम्पन! बताओ तो सही क्या राम सम्पूर्ण देवताओं तथा देवराज इन्द्रके साथ जनस्थानमें आये हैं?'॥ १३॥

रावणका यह प्रश्न सुनकर अकम्पनने महात्मा श्रीरामके बल और पराक्रमका पुनः इस प्रकार वर्णन किया—

'लङ्केश्वर! जिनका नाम राम है, वे संसारके समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त तेजस्वी हैं। दिव्यास्त्रोंके प्रयोगका जो गुण है, उससे भी वे पूर्णतः सम्पन्न हैं। युद्धकी कलामें तो वे पराकाष्ठाको पहुँचे हुए हैं॥ १५॥

'श्रीरामके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी हैं, जो उन्हींके समान बलवान् हैं। उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर है। उनकी आँखें कुछ-कुछ लाल हैं और स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर है॥ १६॥

'जैसे अग्निके साथ वायु हों, उसी प्रकार अपने भाईके साथ संयुक्त हुए राजाधिराज श्रीमान् राम बड़े प्रबल हैं। उन्होंने ही जनस्थानको उजाड़ डाला है॥ १७॥

'उनके साथ न कोई देवता हैं, न महात्मा मुनि। इस विषयमें आप कोई विचार न करें। श्रीरामके छोड़े हुए सोनेकी पाँखवाले बाण पाँच मुखवाले सर्प बनकर राक्षसोंको खा जाते थे॥ १८½ ॥

'भयसे कातर हुए राक्षस जिस-जिस मार्गसे भागते थे, वहाँ-वहाँ वे श्रीरामको ही अपने सामने खड़ा देखते थे। अनघ! इस प्रकार अकेले श्रीरामने ही आपके जनस्थानका विनाश किया है'॥ १९-२०॥

अकम्पनकी यह बात सुनकर रावणने कहा—'मैं अभी लक्ष्मणसहित रामका वध करनेके लिये जनस्थानको जाऊँगा'॥ २१॥

उसके ऐसा कहनेपर अकम्पन बोला—'राजन्! श्रीरामका बल और पुरुषार्थ जैसा है, उसका यथावत् वर्णन मुझसे सुनिये॥ २२॥

'महायशस्वी श्रीराम यदि कुपित हो जायँ तो उन्हें अपने पराक्रमके द्वारा कोई भी काबूमें नहीं कर सकता। वे अपने बाणोंसे भरी हुई नदीके वेगको भी पलट सकते हैं तथा तारा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित सम्पूर्ण आकाशमण्डलको पीड़ा दे सकते हैं॥ २३½ ॥

'वे श्रीमान् भगवान् राम समुद्रमें डूबती हुई पृथ्वीको ऊपर उठा सकते हैं, महासागरकी मर्यादाका भेदन करके समस्त लोकोंको उसके जलसे आप्लावित कर सकते हैं तथा अपने बाणोंसे समुद्रके वेग अथवा वायुको भी नष्ट कर सकते हैं॥ २४-२५॥

'वे महायशस्वी पुरुषोत्तम अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुनः नये सिरेसे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं॥ २६॥

'दशग्रीव! जैसे पापी पुरुष स्वर्गपर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते, उसी प्रकार आप अथवा समस्त राक्षस-जगत् भी युद्धमें श्रीरामको नहीं जीत सकते॥ २७॥

'मेरी समझमें सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। उनके वधका यह एक उपाय मुझे सूझा है, उसे आप मेरे मुखसे एकचित्त होकर सुनिये॥ २८॥

'श्रीरामकी पत्नी सीता संसारकी सर्वोत्तम सुन्दरी है। उसने यौवनके मध्यमें पदार्पण किया है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर और सुडौल हैं। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित रहती है। सीता सम्पूर्ण स्त्रियोंमें एक रत्न है॥ २९॥

'देवकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या कोई भी रूपमें उसकी समानता नहीं कर सकती, फिर मनुष्य-जातिकी दूसरी कोई नारी उसके समान कैसे हो सकती है॥ ३०॥

'उस विशाल वनमें जिस किसी भी उपायसे श्रीरामको धोखेमें डालकर आप उनकी पत्नीका अपहरण कर लें। सीतासे बिछुड़ जानेपर श्रीराम कदापि जीवित नहीं रहेंगे'॥ ३१॥

राक्षसराज रावणको अकम्पनकी वह बात पसंद आ गयी। उस महाबाहु दशग्रीवने कुछ सोचकर अकम्पनसे कहा—॥ ३२॥

'ठीक है, कल प्रातःकाल सारथिके साथ मैं अकेला ही जाऊँगा और विदेहकुमारी सीताको प्रसन्नतापूर्वक इस महापुरीमें ले आऊँगा'॥ ३३॥

ऐसा कहकर रावण गधोंसे जुते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वहाँसे चला॥ ३४॥

नक्षत्रोंके मार्गपर विचरता हुआ राक्षसराजका वह विशाल रथ बादलोंकी आड़में प्रकाशित होनेवाले चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥ ३५॥

कुछ दूरपर स्थित एक आश्रममें जाकर वह ताटकापुत्र

मारीचसे मिला। मारीचने अलौकिक भक्ष्य-भोज्य अर्पित करके राजा रावणका स्वागत-सत्कार किया॥ ३६॥

आसन और जल आदिके द्वारा स्वयं ही उसका पूजन करके मारीचने अर्थयुक्त वाणीमें पूछा—॥ ३७॥

'राक्षसराज! तुम्हारे राज्यमें लोगोंकी कुशल तो है न? तुम बड़ी उतावलीके साथ आ रहे हो, इसलिये मेरे मनमें कुछ खटका हुआ है। मैं समझता हूँ, तुम्हारे यहाँका अच्छा हाल नहीं है'॥ ३८॥

मारीचके इस प्रकार पूछनेपर बातचीतकी कलाको जाननेवाले महातेजस्वी रावणने इस प्रकार कहा—॥ ३९॥

'तात! अनायास ही महान् पराक्रम दिखानेवाले श्रीरामने मेरे राज्यकी सीमाके रक्षक खर-दूषण आदिको मार डाला है तथा जो जनस्थान अवध्य समझा जाता था, वहाँके सारे राक्षसोंको उन्होंने युद्धमें मार गिराया है॥ ४०॥

'अतः इसका बदला लेनेके लिये मैं उनकी स्त्रीका अपहरण करना चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी सहायता करो।' राक्षसराज रावणका यह वचन सुनकर मारीच बोला—॥ ४१॥

'निशाचरशिरोमणे! मित्रके रूपमें तुम्हारा वह कौन-सा ऐसा शत्रु है, जिसने तुम्हें सीताको हर लेनेकी सलाह दी है? कौन ऐसा पुरुष है, जो तुमसे सुख और आदर पाकर भी प्रसन्न नहीं है, अतः तुम्हारी बुराई करना चाहता है?॥ ४२॥

'कौन कहता है कि तुम सीताको यहाँ हर ले आओ? मुझे उसका नाम बताओ। वह कौन है, जो समस्त राक्षस-जगत्‌का सींग काट लेना चाहता है?॥

'जो इस कार्यमें तुम्हें प्रोत्साहन दे रहा है, वह तुम्हारा शत्रु है, इसमें संशय नहीं है। वह तुम्हारे हाथों विषधर सर्पके मुखसे उसके दाँत उखड़वाना चाहता है॥ ४४॥

'राजन्! किसने तुम्हें ऐसी खोटी सलाह देकर कुमार्गपर पहुँचाया है? किसने सुखपूर्वक सोते समय तुम्हारे मस्तकपर लात मारी है॥ ४५॥

'रावण! राघवेन्द्र श्रीराम वह गन्धयुक्त गजराज हैं, जिसकी गन्ध सूँघकर ही गजरूपी योद्धा दूर भाग जाते हैं। विशुद्ध कुलमें जन्म ग्रहण करना ही उस राघवरूपी गजराजका शुण्डदण्ड है, प्रताप ही मद है और सुडौल बाँहें ही दोनों दाँत हैं। युद्धस्थलमें उनकी ओर देखना भी तुम्हारे लिये उचित नहीं है; फिर जूझनेकी तो बात ही क्या है॥ ४६॥

'वे श्रीराम मनुष्यके रूपमें एक सिंह हैं। रणभूमिके भीतर स्थित होना ही उनके अङ्गोंकी संधियाँ तथा बाल हैं। वह सिंह चतुर राक्षसरूपी मृगोंका वध करनेवाला है, बाणरूपी अङ्गोंसे परिपूर्ण है तथा तलवारें ही उसकी तीखी दाढ़ें हैं। उस सोते हुए सिंहको तुम नहीं जगा सकते॥ ४७॥

'राक्षसराज! श्रीराम एक पातालतलव्यापी महासागर हैं, धनुष ही उस समुद्रके भीतर रहनेवाला ग्राह है, भुजाओंका वेग ही कीचड़ है, बाण ही तरंगमालाएँ हैं और महान् युद्ध ही उसकी अगाध जलराशि है। उसके अत्यन्त भयंकर मुख अर्थात् बड़वानलमें कूद पड़ना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है॥ ४८॥

'लंकेश्वर! प्रसन्न होओ। राक्षसराज! सानन्द रहो और सकुशल लंकाको लौट जाओ। तुम सदा पुरीमें अपनी स्त्रियोंके साथ रमण करो और राम अपनी पत्नीके साथ वनमें विहार करें'॥ ४९॥

मारीचके ऐसा कहनेपर दशमुख रावण लंकाको लौटा और अपने सुन्दर महलमें चला गया॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

शूर्पणखाका लंकामें रावणके पास जाना

उधर शूर्पणखाने जब देखा कि श्रीरामने भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको अकेले ही मार गिराया तथा युद्धके मैदानमें दूषण, खर और त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया, तब वह शोकके कारण मेघ-गर्जनाके समान पुनः बड़े जोर-जोरसे घोर चीत्कार करने लगी॥ १-२॥

श्रीरामने वह कर्म कर दिखाया, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है; यह अपनी आँखों देखकर वह अत्यन्त उद्विग्न हो उठी और रावणद्वारा सुरक्षित लंकापुरीको गयी॥ ३॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, रावण पुष्पक विमान (या सतमहले मकान) के ऊपरी भागमें बैठा हुआ है। उसका राजोचित तेज उद्दीप्त हो रहा है तथा मरुद्गणोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति वह आस-पास बैठे हुए मन्त्रियोंसे घिरा है॥ ४॥

रावण जिस उत्तम सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान था, वह सूर्यके समान जगमगा रहा था। जैसे सोनेकी ईंटोंसे बनी हुई वेदीपर स्थापित अग्निदेव घीकी अधिक आहुति पाकर प्रज्वलित हो उठे हों, उसी प्रकार उस स्वर्णसिंहासनपर रावण शोभा पा रहा था॥ ५॥

देवता, गन्धर्व, भूत और महात्मा ऋषि भी उसे जीतनेमें असमर्थ थे। समरभूमिमें वह मुँह फैलाकर खड़े हुए यमराजकी भाँति भयानक जान पड़ता था। देवताओं और असुरोंके संग्रामके अवसरोंपर उसके शरीरमें वज्र और अशनिके जो घाव हुए थे, उनके चिह्न अबतक विद्यमान थे। उसकी छातीमें ऐरावत हाथीने जो अपने दाँत गड़ाये थे, उसके निशान अब भी दिखायी देते थे॥

उसके बीस भुजाएँ और दस मस्तक थे। उसके छत्र, चँवर और आभूषण आदि उपकरण देखने ही योग्य थे। वक्ष:स्थल विशाल था। वह वीर राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देता था। वह अपने शरीरमें जो वैदूर्यमणि (नीलम) का आभूषण पहने हुए था, उसके समान ही उसके शरीरकी कान्ति भी थी। उसने तपाये हुए सोनेके आभूषण भी पहन रखे थे। उसकी भुजाएँ सुन्दर, दाँत सफेद, मुँह बहुत बड़ा और शरीर पर्वतके समान विशाल था॥ ८-९॥

देवताओंके साथ युद्ध करते समय उसके अङ्गोंपर सैकड़ों बार भगवान् विष्णुके चक्रका प्रहार हुआ था। बड़े-बड़े युद्धोंमें अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंकी भी उसपर मार पड़ी थी (उन सबके चिह्न दृष्टिगोचर होते थे)॥

देवताओंके समस्त आयुधोंके प्रहारोंसे भी जो खण्डित न हो सके थे, उन्हीं अङ्गोंसे वह अक्षोभ्य समुद्रोंमें भी क्षोभ (हलचल) पैदा कर देता था। वह सभी कार्य बड़ी शीघ्रतासे करता था॥ ११॥

पर्वतशिखरोंको भी तोड़कर फेंक देता था, देवताओंको भी रौंद डालता था। धर्मकी तो वह जड़ ही काट देता था और परायी स्त्रियोंके सतीत्वका नाश करनेवाला था॥

वह सब प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करनेवाला और सदा यज्ञोंमें विघ्न डालनेवाला था। एक समय पातालकी भोगवती पुरीमें जाकर नागराज वासुकिको परास्त करके तक्षकको भी हराकर उसकी प्यारी पत्नीको वह हर ले आया था॥ १३$\frac{1}{2}$ ॥

इसी तरह कैलास पर्वतपर जाकर कुबेरको युद्धमें पराजित करके उसने उनके इच्छानुसार चलनेवाले पुष्पकविमानको अपने अधिकारमें कर लिया॥ १४$\frac{1}{2}$ ॥

वह पराक्रमी निशाचर क्रोधपूर्वक कुबेरके दिव्य चैत्ररथ वनको, सौगन्धिक कमलोंसे युक्त नलिनी नामवाली पुष्करिणीको, इन्द्रके नन्दनवनको तथा देवताओंके दूसरे-दूसरे उद्यानोंको नष्ट करता रहता था॥ १५$\frac{1}{2}$ ॥

वह पर्वत-शिखरके समान आकार धारण करके शत्रुओंको संताप देनेवाले महाभाग चन्द्रमा और सूर्यको उनके उदयकालमें अपने हाथोंसे रोक देता था॥ १६$\frac{1}{2}$ ॥

उस धीर स्वभाववाले रावणने पूर्वकालमें एक विशाल वनके भीतर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करके ब्रह्माजीको अपने मस्तकोंकी बलि दे दी थी॥ १७$\frac{1}{2}$ ॥

उसके प्रभावसे उसे देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्पोंसे भी संग्राममें अभय प्राप्त हो गया था। मनुष्यके सिवा और किसीके हाथसे उसे मृत्युका भय नहीं था॥ १८$\frac{1}{2}$ ॥

वह महाबली राक्षस सोमसवनकर्मविशिष्ट यज्ञोंमें द्विजातियोंद्वारा वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक निकाले गये तथा वैदिक मन्त्रोंसे ही सुसंस्कृत एवं स्तुत हुए पवित्र सोमरसको वहाँ पहुँचकर नष्ट कर देता था॥ १९$\frac{1}{2}$ ॥

समाप्तिके निकट पहुँचे हुए यज्ञोंका विध्वंस करनेवाला वह दुष्ट निशाचर ब्राह्मणोंकी हत्या तथा दूसरे-दूसरे क्रूर कर्म करता था। वह बड़े ही रूखे स्वभावका और निर्दय था। सदा प्रजाजनोंके अहितमें ही लगा रहता था॥ २०$\frac{1}{2}$ ॥

समस्त लोकोंको भय देनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियोंको रुलानेवाले अपने इस महाबली क्रूर भाईको राक्षसी शूर्पणखाने उस समय देखा॥ २१$\frac{1}{2}$ ॥

वह दिव्य वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित था। दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। सिंहासनपर बैठा हुआ राक्षसराज पुलस्त्यकुलनन्दन महाभाग दशग्रीव प्रलयकालमें संहारके लिये उद्यत हुए महाकालके समान जान पड़ता था॥ २२-२३॥

मन्त्रियोंसे घिरे हुए शत्रुहन्ता भाई रावणके पास जाकर भयसे विह्वल हुई वह राक्षसी कुछ कहनेको उद्यत हुई॥ २४॥

महात्मा लक्ष्मणने नाक-कान काटकर जिसे कुरूप

कर दिया था तथा जो निर्भय विचरनेवाली थी, वह भय और लोभसे मोहित हुई शूर्पणखा बड़े-बड़े चमकीले नेत्रोंवाले अत्यन्त क्रूर रावणको अपनी दुर्दशा दिखाकर उससे बोली॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

शूर्पणखाका रावणको फटकारना

उस समय शूर्पणखा श्रीरामसे तिरस्कृत होनेके कारण बहुत दुःखी थी। उसने मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणसे अत्यन्त कुपित होकर कठोर वाणीमें कहा— ॥ १॥

'राक्षसराज! तुम स्वेच्छाचारी और निरङ्कुश होकर विषय-भोगोंमें मतवाले हो रहे हो। तुम्हारे लिये घोर भय उत्पन्न हो गया है। तुम्हें इसकी जानकारी होनी चाहिये थी, किंतु तुम इसके विषयमें कुछ नहीं जानते हो॥ २॥

'जो राजा निम्न श्रेणीके भोगोंमें आसक्त हो स्वेच्छाचारी और लोभी हो जाता है, उसे मरघटकी आगके समान हेय मानकर प्रजा उसका अधिक आदर नहीं करती है॥ ३॥

'जो राजा ठीक समयपर स्वयं ही अपने कार्योंका सम्पादन नहीं करता है, वह राज्य और उन कार्योंके साथ ही नष्ट हो जाता है॥ ४॥

'जो राज्यकी देखभालके लिये गुप्तचरोंको नियुक्त नहीं करता है, प्रजाजनोंको जिसका दर्शन दुर्लभ हो जाता है और कामिनी आदि भोगोंमें आसक्त होनेके कारण अपनी स्वाधीनता खो बैठता है, ऐसे राजाको प्रजा दूरसे ही त्याग देती है। ठीक उसी तरह, जैसे हाथी नदीकी कीचड़से दूर ही रहते हैं॥ ५॥

जो नरेश अपने राज्यके उस प्रान्तकी, जो अपनी ही असावधानीके कारण दूसरेके अधिकारमें चला गया हो, रक्षा नहीं करते—उसे पुनः अपने अधिकारमें नहीं लाते, वे समुद्रमें डूबे हुए पर्वतोंकी भाँति अपने अभ्युदयसे प्रकाशित नहीं होते हैं॥ ६॥

'जो अपने मनको काबूमें रखनेवाले एवं प्रयत्नशील हैं, उन देवताओं, गन्धर्वों तथा दानवोंके साथ विरोध करके तुमने अपने राज्यकी देखभालके लिये गुप्तचर नहीं नियुक्त किये हैं, ऐसी दशामें तुम-जैसा विषयलोलुप चपल पुरुष कैसे राजा बना रह सकेगा?॥ ७॥

'राक्षस! तुम्हारा स्वभाव बालकों-जैसा है। तुम निरे बुद्धिहीन हो। तुम्हें जाननेयोग्य बातोंका भी ज्ञान नहीं है। ऐसी दशामें तुम किस तरह राजा बने रह सकोगे?॥ ८॥

'विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ निशाचरपते! जिन नरेशोंके गुप्तचर, कोष और नीति—ये सब अपने अधीन नहीं हैं, वे साधारण लोगोंके ही समान हैं॥ ९॥

'गुप्तचरोंकी सहायतासे राजालोग दूर-दूरके सारे कार्योंकी देखभाल करते रहते हैं, इसीलिये वे दीर्घदर्शी या दूरदर्शी कहलाते हैं॥ १०॥

'मैं समझती हूँ, तुम गवाँर मन्त्रियोंसे घिरे हुए हो, तभी तो तुमने अपने राज्यके भीतर गुप्तचर नहीं तैनात किये हैं। तुम्हारे स्वजन मारे गये और जनस्थान उजाड़ हो गया, फिर भी तुम्हें इसका पता नहीं लगा है॥ ११॥

'अकेले रामने, जो अनायास ही महान् कर्म करनेवाले हैं, भीमकर्मा राक्षसोंकी चौदह हजार सेनाको यमलोक पहुँचा दिया, खर और दूषणके भी प्राण ले लिये, ऋषियोंको भी अभयदान कर दिया तथा दण्डकारण्यमें राक्षसोंकी ओरसे जो विघ्न-बाधाएँ थीं, उन सबको दूर करके वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। जनस्थानको तो उन्होंने चौपट ही कर डाला॥ १२-१३॥

'राक्षस! तुम तो लोभ और प्रमादमें फँसकर पराधीन हो रहे हो, अतः अपने ही राज्यमें उत्पन्न हुए भयका तुम्हें कुछ पता ही नहीं है॥ १४॥

'जो राजा कठोरतापूर्ण बर्ताव करता अथवा तीखे स्वभावका परिचय देता है, सेवकोंको बहुत कम वेतन देता है, प्रमादमें पड़ा और गर्वमें भरा रहता है तथा स्वभावसे ही शठ होता है, उसके संकटमें पड़नेपर सभी प्राणी उसका साथ छोड़ देते हैं—उसकी सहायताके लिये आगे नहीं बढ़ते हैं॥ १५॥

'जो अत्यन्त अभिमानी, अपनानेके अयोग्य, आप ही अपनेको बहुत बड़ा माननेवाला और क्रोधी होता है, ऐसे नर अथवा नरेशको संकटकालमें आत्मीय जन भी मार डालते हैं॥ १६॥

'जो राजा अपने कर्तव्यका पालन अथवा करनेयोग्य कार्योंका सम्पादन नहीं करता तथा भयके अवसरोंपर भयभीत (एवं अपनी रक्षाके लिये सावधान) नहीं होता,

वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट एवं दीन होकर इस भूतलपर तिनकोंके समान उपेक्षणीय हो जाता है॥ १७॥

'लोगोंको सूखे काठोंसे, मिट्टीके ढेलों तथा धूलसे भी कुछ प्रयोजन होता है, किंतु स्थानभ्रष्ट राजाओंसे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं रहता॥ १८॥

'जैसे पहना हुआ वस्त्र और मसल डाली गयी फूलोंकी माला दूसरोंके उपयोगमें आनेयोग्य नहीं होती, इसी प्रकार राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ होनेपर भी दूसरोंके लिये निरर्थक है॥ १९॥

'परंतु जो राजा सदा सावधान रहता, राज्यके समस्त कार्योंकी जानकारी रखता, इन्द्रियोंको वशमें किये रहता, कृतज्ञ (दूसरोंके उपकारको माननेवाला) तथा स्वभावसे ही धर्मपरायण होता है, वह राजा बहुत दिनोंतक राज्य करता है॥ २०॥

'जो स्थूल आँखोंसे तो सोता है, परंतु नीतिकी आँखोंसे सदा जागता रहता है तथा जिसके क्रोध और अनुग्रहका फल प्रत्यक्ष प्रकट होता है, उसी राजाकी लोग पूजा करते हैं॥ २१॥

'रावण! तुम्हारी बुद्धि दूषित है और तुम इन सभी राजोचित गुणोंसे वञ्चित हो; क्योंकि तुम्हें अबतक गुप्तचरोंकी सहायतासे राक्षसोंके इस महान् संहारका समाचार ज्ञात नहीं हो सका था॥ २२॥

'तुम दूसरोंका अनादर करनेवाले, विषयासक्त और देश-कालके विभागको यथार्थरूपसे न जाननेवाले हो, तुमने गुण और दोषके विचार एवं निश्चयमें कभी अपनी बुद्धिको नहीं लगाया है, अतः तुम्हारा राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जायगा और तुम स्वयं भी भारी विपत्तिमें पड़ जाओगे'॥ २३॥

शूर्पणखाके द्वारा कहे गये अपने दोषोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके धन, अभिमान और बलसे सम्पन्न वह निशाचर रावण बहुत देरतक सोच-विचार एवं चिन्तामें पड़ा रहा॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

रावणके पूछनेपर शूर्पणखाका उससे राम, लक्ष्मण और सीताका परिचय देते हुए सीताको भार्या बनानेके लिये उसे प्रेरित करना

शूर्पणखाको इस प्रकार कठोर बातें कहती देख मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने अत्यन्त कुपित होकर पूछा—॥ १॥

'राम कौन है? उसका बल कैसा है? रूप और पराक्रम कैसे हैं? अत्यन्त दुस्तर दण्डकारण्यमें उसने किस लिये प्रवेश किया है?॥ २॥

'रामके पास कौन-सा ऐसा अस्त्र है, जिससे वे सब राक्षस मारे गये तथा युद्धमें खर, दूषण और त्रिशिराका भी संहार हो गया॥ ३॥

'मनोहर अङ्गोंवाली शूर्पणखे! ठीक-ठीक बताओ, किसने तुम्हें कुरूप बनाया है—किसने तुम्हारी नाक और कान काट डाले हैं?' राक्षसराज रावणके इस प्रकार पूछनेपर वह राक्षसी क्रोधसे अचेत-सी हो उठी॥ ४॥

तदनन्तर उसने श्रीरामका यथावत् परिचय देना आरम्भ किया—'भैया! श्रीरामचन्द्र राजा दशरथके पुत्र हैं, उनकी भुजाएँ लंबी, आँखें बड़ी-बड़ी और रूप कामदेवके समान है। वे चीर और काला मृगचर्म धारण करते हैं॥ ५½॥

'श्रीराम इन्द्रधनुषके समान अपने विशाल धनुषको, जिसमें सोनेके छल्ले शोभा दे रहे हैं, खींचकर उसके द्वारा महाविषैले सर्पोंके समान तेजस्वी नाराचोंकी वर्षा करते हैं॥ ६½॥

'वे महाबली राम युद्धस्थलमें कब धनुष खींचते, कब भयंकर बाण हाथमें लेते और कब उन्हें छोड़ते हैं—यह मैं नहीं देख पाती थी॥ ७½॥

'उनके बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंकी सेना मर रही है— इतना ही मुझे दिखायी देता था। जैसे इन्द्र (मेघ) द्वारा बरसाये गये ओलोंकी वृष्टिसे अच्छी खेती चौपट हो जाती है, उसी प्रकार रामके बाणोंसे राक्षसोंका विनाश हो गया॥ ८½॥

'श्रीराम अकेले और पैदल थे, तो भी उन्होंने डेढ़ मुहूर्त (तीन घड़ी) के भीतर ही खर और दूषणसहित चौदह हजार भयंकर बलशाली राक्षसोंका

तीखे बाणोंसे संहार कर डाला, ऋषियोंको अभय दे दिया और समस्त दण्डकवनको राक्षसोंकी विघ्न-बाधासे रहित कर दिया॥ ९—११॥

'आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामने स्त्रीका वध हो जानेके भयसे एकमात्र मुझे किसी तरह केवल अपमानित करके ही छोड़ दिया॥ १२॥

'उनका एक बड़ा ही तेजस्वी भाई है, जो गुण और पराक्रममें उन्हींके समान है। उसका नाम है लक्ष्मण। वह पराक्रमी वीर अपने बड़े भाईका प्रेमी और भक्त है, उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, वह अमर्षशील, दुर्जय, विजयी तथा बल-विक्रमसे सम्पन्न है। श्रीरामका वह मानो दाहिना हाथ और सदा बाहर विचरनेवाला प्राण है॥ १३-१४॥

'श्रीरामकी धर्मपत्नी भी उनके साथ है। वह पतिको बहुत प्यारी है और सदा अपने स्वामीका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगी रहती है। उसकी आँखें विशाल और मुख पूर्ण चन्द्रके समान मनोरम है॥ १५॥

'उसके केश, नासिका, ऊरु तथा रूप बड़े ही सुन्दर तथा मनोहर हैं। वह यशस्विनी राजकुमारी इस दण्डकवनकी देवी-सी जान पड़ती है और दूसरी लक्ष्मीके समान शोभा पाती है॥ १६॥

'उसका सुन्दर शरीर तपाये हुए सुवर्णकी कान्ति धारण करता है, नख ऊँचे तथा लाल हैं। वह शुभलक्षणोंसे सम्पन्न है। उसके सभी अङ्ग सुडौल हैं और कटिभाग सुन्दर तथा पतला है। वह विदेहराज जनककी कन्या है और सीता उसका नाम है॥ १७॥

'देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरोंकी स्त्रियोंमें भी कोई उसके समान सुन्दरी नहीं है। इस भूतलपर वैसी रूपवती नारी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी॥ १८॥

'सीता जिसकी भार्या हो और वह हर्षमें भरकर जिसका आलिङ्गन करे, समस्त लोकोंमें उसीका जीवन इन्द्रसे भी अधिक भाग्यशाली है॥ १९॥

'उसका शील-स्वभाव बड़ा ही उत्तम है। उसका एक-एक अङ्ग स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। उसके रूपकी समानता करनेवाली भूमण्डलमें दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह तुम्हारे योग्य भार्या होगी और तुम भी उसके योग्य श्रेष्ठ पति होओगे॥ २०॥

'महाबाहो! विस्तृत जघन और उठे हुए पुष्ट कुचोंवाली उस सुमुखी स्त्रीको जब मैं तुम्हारी भार्या बनानेके लिये ले आनेको उद्यत हुई, तब क्रूर लक्ष्मणने मुझे इस तरह कुरूप कर दिया॥ २१½॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली विदेहराजकुमारी सीताको देखते ही तुम कामदेवके बाणोंके लक्ष्य बन जाओगे॥ २२½॥

'यदि तुम्हें सीताको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा हो तो शीघ्र ही श्रीरामको जीतनेके लिये यहाँ अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाओ॥ २३॥

'राक्षसराज रावण! यदि तुम्हें मेरी यह बात पसंद हो तो निःशङ्क होकर मेरे कथनानुसार कार्य करो॥ २४॥

'महाबली राक्षसेश्वर! इन राम आदिकी असमर्थता और अपनी शक्तिका विचार करके सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको अपनी भार्या बनानेका प्रयत्न करो (उसे हर लाओ)॥ २५॥

'श्रीरामने अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा जनस्थाननिवासी निशाचरोंको मार डाला और खर तथा दूषणको भी मौतके घाट उतार दिया, यह सब सुनकर और देखकर अब तुम्हारा क्या कर्तव्य है, इसका निश्चय तुम्हें कर लेना चाहिये'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

रावणका समुद्रतटवर्ती प्रान्तकी शोभा देखते हुए पुनः मारीचके पास जाना

शूर्पणखाकी ये रोंगटें खड़ी कर देनेवाली बातें सुनकर रावण मन्त्रियोंसे सलाह ले अपने कर्तव्यका निश्चय करके वहाँसे चल दिया॥ १॥

उसने पहले सीताहरणरूपी कार्यपर मन-ही-मन विचार किया। फिर उसके दोषों और गुणोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करके बलाबलका निश्चय किया। अन्तमें यह स्थिर किया कि इस कामको करना ही चाहिये। जब इस बातपर उसकी बुद्धि जम गयी, तब वह रमणीय रथशालामें गया॥ २-३॥

गुप्तरूपसे रथशालामें जाकर राक्षसराज रावणने

अपने सारथिको यह आज्ञा दी कि 'मेरा रथ जोतकर तैयार करो'॥ ४॥

सारथि शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेमें कुशल था। रावणकी उपर्युक्त आज्ञा पाकर उसने एक ही क्षणमें उसके मनके अनुकूल उत्तम रथ जोतकर तैयार कर दिया॥ ५॥

वह रथ इच्छानुसार चलनेवाला तथा सुवर्णमय था। उसे रत्नोंसे विभूषित किया गया था। उसमें सोनेके साज-बाजोंसे सजे हुए गधे जुते थे, जिनका मुख पिशाचोंके समान था। रावण उसपर आरूढ़ होकर चला॥ ६॥

वह रथ मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घर-घर ध्वनि फैलाता हुआ चलता था। उसके द्वारा वह कुबेरका छोटा भाई श्रीमान् राक्षसराज रावण समुद्रके तटपर गया॥ ७॥

उस समय उसके लिये सफेद चँवरसे हवा की जा रही थी। सिरके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था। उसकी अङ्गकान्ति स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान नीली या काली थी। वह पक्के सोनेके आभूषणोंसे विभूषित था। उसके दस मुख, दस कण्ठ और बीस भुजाएँ थीं। उसके वस्त्राभूषण आदि अन्य उपकरण भी देखने ही योग्य थे। देवताओंका शत्रु और मुनीश्वरोंका हत्यारा वह निशाचर दस शिखरोंवाले पर्वतराजके समान प्रतीत होता था॥ ८-९॥

इच्छानुसार चलनेवाले उस रथपर आरूढ़ हो राक्षसराज रावण आकाशमें विद्युन्मण्डलसे घिरे हुए तथा वकपंक्तियोंसे सुशोभित मेघके समान शोभा पा रहा था॥ १०॥

पराक्रमी रावण पर्वतयुक्त समुद्रके तटपर पहुँचकर उसकी शोभा देखने लगा। सागरका वह किनारा नाना प्रकारके फल-फूलवाले सहस्रों वृक्षोंसे व्याप्त था। चारों ओर मङ्गलकारी शीतल जलसे भरी हुई पुष्करिणियाँ और वेदिकाओंसे मण्डित विशाल आश्रम उस सिन्धुतटकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ११-१२॥

कहीं कदलीवन और कहीं नारियलके कुञ्ज शोभा दे रहे थे। साल, ताल, तमाल तथा सुन्दर फूलोंसे भरे हुए दूसरे-दूसरे वृक्ष उस तटप्रान्तको अलंकृत कर रहे थे॥

अत्यन्त नियमित आहार करनेवाले बड़े-बड़े महर्षियों, नागों, सुपर्णों (गरुड़ों), गन्धर्वों तथा सहस्रों किन्नरोंसे भी उस स्थानकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १४॥

कामविजयी सिद्धों, चारणों, ब्रह्माजीके पुत्रों, वानप्रस्थों, माष गोत्रमें उत्पन्न मुनियों, बालखिल्य महात्माओं तथा केवल सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले तपस्वीजनोंसे भी वह सागरका तटप्रान्त सुशोभित हो रहा था॥ १५॥

दिव्य आभूषणों और पुष्पमालाओंको धारण करनेवाली तथा क्रीड़ा-विहारकी विधिको जाननेवाली सहस्रों दिव्यरूपिणी अप्सराएँ वहाँ सब ओर विचर रही थीं। कितनी ही शोभाशालिनी देवाङ्गनाएँ उस सिन्धुतटका सेवन करती हुई आस-पास बैठी थीं। देवताओं और दानवोंके समूह तथा अमृतभोजी देवगण वहाँ विचर रहे थे॥ १६-१७॥

सिन्धुका वह तट समुद्रके तेजसे उसकी तरङ्गमालाओंके स्पर्शसे स्निग्ध एवं शीतल था। वहाँ हंस, क्रौञ्च तथा मेढक सब ओर फैले हुए थे और सारस उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस तटपर वैदूर्यमणिके सदृश श्याम रंगके प्रस्तर दिखायी देते थे॥ १८॥

आकाशमार्गसे यात्रा करते हुए कुबेरके छोटे भाई रावणने रास्तेमें सब ओर बहुत-से श्वेत वर्णके विमानों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंको भी देखा। वे इच्छानुसार चलनेवाले विशाल विमान उन पुण्यात्मा पुरुषोंके थे, जिन्होंने तपस्यासे पुण्यलोकोंपर विजय पायी थी। उन विमानोंको दिव्य पुष्पोंसे सजाया गया था और उनके भीतरसे गीत-वाद्यकी ध्वनि प्रकट हो रही थी॥ १९-२०॥

आगे बढ़नेपर उसने, जिनकी जड़ोंसे गोंद निकले हुए थे, ऐसे चन्दनोंके सहस्रों वन देखे, जो बड़े ही सुहावने और अपनी सुगन्धसे नासिकाको तृप्त करनेवाले थे॥ २१॥

कहीं श्रेष्ठ अगुरुके वन थे, कहीं उत्तम जातिके सुगन्धित फलवाले तक्कोलों (वृक्षविशेषों) के उपवन थे। कहीं तमालके फूल खिले हुए थे। कहीं गोल मिर्चकी झाड़ियाँ शोभा पाती थीं और कहीं समुद्रके तटपर ढेर-के-ढेर मोती सूख रहे थे। कहीं श्रेष्ठ पर्वतमालाएँ, कहीं मूगोंकी राशियाँ, कहीं सोने-चाँदीके शिखर तथा कहीं सुन्दर, अद्भुत और स्वच्छ पानीके झरने दिखायी देते थे। कहीं धन-धान्यसे सम्पन्न, स्त्री-रत्नोंसे भरे हुए तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे व्याप्त नगर दृष्टिगोचर होते थे। इन सबको देखता हुआ रावण आगे बढ़ा॥ २२—२५ $\frac{१}{२}$ ॥

फिर उसने सिंधुराजके तटपर एक ऐसा स्थान देखा, जो स्वर्गके समान मनोहर, सब ओरसे समतल

और स्निग्ध था। वहाँ मन्द-मन्द वायु चलती थी, जिसका स्पर्श बड़ा कोमल जान पड़ता था॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

वहाँ सागरतटपर एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया, जो अपनी घनी छायाके कारण मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होता था। उसके नीचे चारों ओर मुनि निवास करते थे। उस वृक्षकी सुप्रसिद्ध शाखाएँ चारों ओर सौ योजनोंतक फैली हुई थीं॥ २७ $\frac{1}{2}$ ॥

यह वही वृक्ष था, जिसकी शाखापर किसी समय महाबली गरुड़ एक विशालकाय हाथी और कछुएको लेकर उन्हें खानेके लिये आ बैठे थे॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

पक्षियोंमें श्रेष्ठ महाबली गरुड़ने बहुसंख्यक पत्तोंसे भरी हुई उस शाखाको सहसा अपने भारसे तोड़ डाला था॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

उस शाखाके नीचे बहुत-से वैखानस, माष, बालखिल्य, मरीचिप (सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले), ब्रह्मपुत्र और धूम्रप संज्ञावाले महर्षि एक साथ रहते थे॥ ३० $\frac{1}{2}$ ॥

उनपर दया करके उनके जीवनकी रक्षा करनेके लिये पक्षियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा गरुड़ने उस टूटी हुई सौ योजन लंबी शाखाको और उन दोनों हाथी तथा कछुएको भी वेगपूर्वक एक ही पंजेसे पकड़ लिया तथा आकाशमें ही उन दोनों जंतुओंके मांस खाकर फेंकी हुई उस डालीके द्वारा निषाद देशका संहार कर डाला। उस समय पूर्वोक्त महामुनियोंको मृत्युके संकटसे बचा लेनेसे गरुड़को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ॥ ३१—३३ ॥

उस महान् हर्षसे बुद्धिमान् गरुड़का पराक्रम दूना हो गया और उन्होंने अमृत ले आनेके लिये पक्का निश्चय कर लिया॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् इन्द्रलोकमें जाकर उन्होंने इन्द्रभवनकी उन जालियोंको तोड़ डाला, जो लोहेकी सींकचोंसे बनी हुई थीं। फिर रत्ननिर्मित श्रेष्ठ भवनको नष्ट-भ्रष्ट करके वहाँ छिपाकर रखे हुए अमृतको वे महेन्द्रभवनसे हर लाये॥ ३५ ॥

गरुड़के द्वारा तोड़ी हुई डालीका वह चिह्न उस बरगदमें उस समय भी मौजूद था। उस वृक्षका नाम था सुभद्रवट। बहुत-से महर्षि उस वृक्षकी छायामें निवास करते थे। कुबेरके छोटे भाई रावणने उस वटवृक्षको देखा॥ ३६ ॥

नदियोंके स्वामी समुद्रके दूसरे तटपर जाकर उसने एक रमणीय वनके भीतर पवित्र एवं एकान्तस्थानमें एक आश्रमका दर्शन किया॥ ३७ ॥

वहाँ शरीरमें काला मृगचर्म और सिरपर जटाओंका समूह धारण किये नियमित आहार करते हुए मारीच नामक राक्षस निवास करता था। रावण वहाँ जाकर उससे मिला॥ ३८ ॥

मिलनेपर उस राक्षस मारीचने सब प्रकारके अलौकिक कमनीय पदार्थ अर्पित करके राजा रावणका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया॥ ३९ ॥

अन्न और जलसे स्वयं उसका पूर्ण सत्कार करके मारीचने प्रयोजनकी बातें पूछते हुए उससे इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥

'राजन्! तुम्हारी लङ्कामें कुशल तो है? राक्षसराज! तुम किस कामके लिये पुनः इतनी जल्दी यहाँ आये हो?॥ ४१ ॥

मारीचके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल महातेजस्वी रावणने उससे इस प्रकार कहा— ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

रावणका मारीचसे श्रीरामके अपराध बताकर उनकी पत्नी सीताके अपहरणमें सहायताके लिये कहना

'तात मारीच! मैं सब बता रहा हूँ। मेरी बात सुनो। इस समय मैं बहुत दुःखी हूँ और इस दुःखकी अवस्थामें तुम्हीं मुझे सबसे बढ़कर सहारा देनेवाले हो॥ १ ॥

'तुम जनस्थानको जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर, महाबाहु दूषण, मेरी बहिन शूर्पणखा, मांसभोजी राक्षस महाबाहु त्रिशिरा तथा और भी बहुत-से लक्ष्यवेधमें कुशल शूरवीर निशाचर रहा करते थे॥ २-३ ॥

'वे सभी राक्षस मेरी आज्ञासे वहाँ घर बनाकर

रहते थे और उस विशाल वनमें जो धर्माचरण करनेवाले मुनि थे, उन्हें सताया करते थे॥ ४॥

'वहाँ खरके मनका अनुसरण करनेवाले तथा युद्धविषयक उत्साहसे सम्पन्न चौदह हजार शूरवीर राक्षस रहते थे, जो भयंकर कर्म करनेवाले थे॥ ५॥

'जनस्थानमें निवास करनेवाले जितने महाबली राक्षस थे, वे सब-के-सब उस समय अच्छी तरह सन्नद्ध होकर युद्धक्षेत्रमें रामके साथ जा भिड़े थे॥ ६॥

'वे खर आदि राक्षस नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करनेमें कुशल थे, परंतु युद्धके मुहानेपर रोषमें भरे हुए श्रीरामने अपने मुँहसे कोई कड़वी बात न कहकर बाणोंके साथ धनुषका ही व्यापार आरम्भ किया॥ ७ $\frac{1}{2}$ ॥

'पैदल और मनुष्य होकर भी रामने अपने दमकते हुए बाणोंसे भयंकर तेजवाले चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला और उसी युद्धमें खरको भी मौतके घाट उतारकर दूषणको भी मार गिराया। साथ ही त्रिशिराका वध करके उसने दण्डकारण्यको दूसरोंके लिये निर्भय बना दिया॥ ८-९ $\frac{1}{2}$ ॥

'उसके पिताने कुपित होकर उसे पत्नीसहित घरसे निकाल दिया है। उसका जीवन क्षीण हो चला है। यह क्षत्रियकुल-कलङ्क राम ही उस राक्षस-सेनाका घातक है॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

'वह शीलरहित, क्रूर, तीखे स्वभाववाला, मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्मत्यागी, अधर्मात्मा और समस्त प्राणियोंके अहितमें तत्पर रहनेवाला है। जिसने बिना किसी वैर-विरोधके केवल बलका आश्रय ले मेरी बहिनके नाक-कान काटकर उसका रूप बिगाड़ दिया, उससे बदला लेनेके लिये मैं भी उसकी देवकन्याके समान सुन्दरी पत्नी सीताको जनस्थानसे बलपूर्वक हर लाऊँगा। तुम उस कार्यमें मेरी सहायता करो॥ ११—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

'महाबली राक्षस! तुम-जैसे पार्श्ववर्ती सहायकके और अपने भाइयोंके बलपर ही मैं समस्त देवताओंकी यहाँ कोई परवा नहीं करता, अतः तुम मेरे सहायक हो जाओ; क्योंकि तुम मेरी सहायता करनेमें समर्थ हो॥ १४-१५॥

'पराक्रममें, युद्धमें और वीरोचित अभिमानमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। नाना प्रकारके उपाय बतानेमें भी तुम बड़े बहादुर हो। बड़ी-बड़ी मायाओंका प्रयोग करनेमें भी विशेष कुशल हो॥ १६॥

'निशाचर! इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। सहायताके लिये मेरे कथनानुसार तुम्हें कौन-सा काम करना है, वह भी सुनो॥ १७॥

'तुम सोनेके बने हुए मृग-जैसा रूप धारण करके रजतमय बिन्दुओंसे युक्त चितकबरे हो जाओ और रामके आश्रममें सीताके सामने विचरो॥ १८॥

'विचित्र मृगके रूपमें तुम्हें देखकर सीता अवश्य ही अपने पति रामसे तथा लक्ष्मणसे भी कहेगी कि आपलोग इसे पकड़ लावें॥ १९॥

'जब वे दोनों तुम्हें पकड़नेके लिये दूर निकल जायँगे, तब मैं बिना किसी विघ्न-बाधाके सूने आश्रमसे सीताको उसी तरह सुखपूर्वक हर लाऊँगा, जैसे राहु चन्द्रमाकी प्रभाका अपहरण कर लेता है॥ २०॥

'उसके बाद स्त्रीका अपहरण हो जानेसे जब राम अत्यन्त दुःखी और दुर्बल हो जायगा, उस समय मैं निर्भय हो सुखपूर्वक उसके ऊपर कृतार्थचित्तसे प्रहार करूँगा'॥ २१॥

रावणके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा सुनकर महात्मा मारीचका मुँह सूख गया। वह भयसे थर्रा उठा॥

वह अपलक नेत्रोंसे देखता हुआ अपने सूखे ओठोंको चाटने लगा। उसे इतना दुःख हुआ कि वह मुर्दा-सा दिखायी देने लगा। उसी अवस्थामें उसने रावणकी ओर देखा॥ २३॥

उसे महान् वनमें श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका ज्ञान हो चुका था; इसलिये वह मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत और दुःखी हो गया तथा हाथ जोड़कर रावणसे यथार्थ वचन बोला। उसकी वह बात रावणके तथा अपने लिये भी हितकर थी॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

मारीचका रावणको श्रीरामचन्द्रजीके गुण और प्रभाव बताकर सीताहरणके उद्योगसे रोकना

राक्षसराज रावणकी पूर्वोक्त बात सुनकर बातचीत करनेमें कुशल महातेजस्वी मारीचने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

'राजन्! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले पुरुष तो सर्वत्र सुलभ होते हैं; परंतु जो अप्रिय होनेपर भी हितकर हो, ऐसी बातके कहने और सुननेवाले दोनों ही दुर्लभ हैं॥ २॥

'तुम कोई गुप्तचर तो रखते नहीं और तुम्हारा हृदय भी बहुत ही चञ्चल है; अतः निश्चय ही तुम श्रीरामचन्द्रजीको बिलकुल नहीं जानते। वे पराक्रमोचित गुणोंमें बहुत बढ़े-चढ़े तथा इन्द्र और वरुणके समान हैं॥ ३॥

'तात! मैं तो यही चाहता हूँ कि समस्त राक्षसोंका कल्याण हो। कहीं ऐसा न हो कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त कुपित हो समस्त लोकोंको राक्षसोंसे शून्य कर दें?॥ ४॥

'जनकनन्दिनी सीता तुम्हारे जीवनका अन्त करनेके लिये तो नहीं उत्पन्न हुई है? कहीं ऐसा न हो कि सीताके कारण तुम्हारे ऊपर कोई बहुत बड़ा सङ्कट आ जाय?॥ ५॥

'तुम-जैसे स्वेच्छाचारी और उच्छृङ्खल राजाको पाकर लङ्कापुरी तुम्हारे और राक्षसोंके साथ ही नष्ट न हो जाय?॥ ६॥

'जो राजा तुम्हारे समान दुराचारी, स्वेच्छाचारी, पापपूर्ण विचार रखनेवाला और खोटी बुद्धिवाला होता है, वह अपना, अपने स्वजनोंका तथा समूचे राष्ट्रका भी विनाश कर डालता है॥ ७॥

'श्रीरामचन्द्रजी न तो पिताद्वारा त्यागे या निकाले गये हैं, न उन्होंने धर्मकी मर्यादाका किसी तरह त्याग किया है, न वे लोभी, न दूषित आचार-विचारवाले और न क्षत्रियकुल-कलङ्क ही हैं॥ ८॥

'कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीराम धर्मसम्बन्धी गुणोंसे हीन नहीं हुए हैं। उनका स्वभाव भी किसी प्राणीके प्रति तीखा नहीं है। वे सदा समस्त प्राणियोंके हितमें ही तत्पर रहते हैं॥ ९॥

'रानी कैकेयीने पिताको धोखेमें डालकर मेरे वनवासका वर माँग लिया—यह देखकर धर्मात्मा श्रीरामने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि मैं पिताको सत्यवादी बनाऊँगा (उनके दिये हुए वर या वचनको पूरा करूँगा); इस निश्चयके अनुसार वे स्वयं ही वनको चल दिये॥ १०॥

'माता कैकेयी और पिता राजा दशरथका प्रिय करनेकी इच्छासे ही वे स्वयं राज्य और भोगोंका परित्याग करके दण्डकवनमें प्रविष्ट हुए हैं॥ ११॥

'तात! श्रीराम क्रूर नहीं हैं। वे मूर्ख और अजितेन्द्रिय भी नहीं हैं। श्रीराममें मिथ्याभाषणका दोष मैंने कभी नहीं सुना है; अतः उनके विषयमें तुम्हें ऐसी उलटी बातें कभी नहीं कहनी चाहिये॥ १२॥

'श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। वे साधु और सत्यपराक्रमी हैं। जैसे इन्द्र समस्त देवताओंके अधिपति हैं, उसी प्रकार श्रीराम भी सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं॥ १३॥

'उनकी पत्नी विदेहराजकुमारी सीता अपने ही पातिव्रत्यके तेजसे सुरक्षित हैं। जैसे सूर्यकी प्रभा उससे अलग नहीं की जा सकती, उसी तरह सीताको श्रीरामसे अलग करना असम्भव है। ऐसी दशामें तुम बलपूर्वक उनका अपहरण कैसे करना चाहते हो?॥ १४॥

'श्रीराम प्रज्वलित अग्निके समान हैं। बाण ही उस अग्निकी ज्वाला है। धनुष और खड्ग ही उसके लिये ईंधनका काम करते हैं। तुम्हें युद्धके लिये सहसा उस अग्निमें प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ १५॥

'तात! धनुष ही जिसका फैला हुआ दीप्तिमान् मुख है और बाण ही प्रभा है, जो अमर्षमें भरा हुआ है, धनुष और बाण धारण किये खड़ा है, रोषवश तीखे स्वभावका परिचय देता है और शत्रुसेनाके प्राण लेनेमें समर्थ है, उस रामरूपी यमराजके पास तुम्हें यहाँ अपने राज्यसुख और प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर सहसा नहीं जाना चाहिये॥ १६-१७॥

'जनककिशोरी सीता जिनकी धर्मपत्नी हैं, उनका तेज अप्रमेय है। श्रीरामचन्द्रजीका धनुष उनका आश्रय है, अतः तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि वनमें उनका अपहरण कर सको॥ १८॥

'श्रीरामचन्द्रजी मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी हैं। उनका वक्ष:स्थल सिंहके समान उन्नत है। भामिनी सीता उनकी प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा पत्नी हैं। वे सदा अपने पतिका ही अनुसरण करती हैं॥ १९॥

'मिथिलेशकुमारी सीता ओजस्वी श्रीरामकी प्यारी पत्नी हैं। वे प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाके समान असह्य हैं, अत: उन सुन्दरी सीतापर बलात् नहीं किया जा सकता॥ २०॥

'राक्षसराज! यह व्यर्थका उद्योग करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जिस दिन युद्धमें तुम्हारे ऊपर श्रीरामकी दृष्टि पड़ जाय, उसी दिन तुम अपने जीवनका अन्त समझना॥ २१॥

'यदि तुम अपने जीवनका, सुखका और परम दुर्लभ राज्यका चिरकालतक उपभोग करना चाहते हो तो श्रीरामका अपराध न करो॥ २२॥

'तुम विभीषण आदि सभी धर्मात्मा मन्त्रियोंके साथ सलाह करके अपने कर्तव्यका निश्चय करो। अपने और श्रीरामके दोषों तथा गुणोंके बलाबलपर भलीभाँति विचार करके अपनी और श्रीरामचन्द्रजीकी शक्तिको ठीक-ठीक समझ लो। फिर क्या करनेसे तुम्हारा हित होगा, इसका निश्चय करके जो उचित जान पड़े, वही कार्य तुम्हें करना चाहिये॥ २३-२४॥

'निशाचरराज! मैं तो समझता हूँ कि कोसल-राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है। अब पुन: मेरी एक बात और सुनो, यह तुम्हारे लिये बहुत ही उत्तम, उचित और उपयुक्त सिद्ध होगी'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीरामकी शक्तिके विषयमें अपना अनुभव बताकर मारीचका रावणको उनका अपराध करनेसे मना करना

'एक समयकी बात है कि मैं अपने पराक्रमके अभिमानमें आकर पर्वतके समान शरीर धारण किये इस पृथ्वीपर चक्कर लगा रहा था। उस समय मुझमें एक हजार हाथियोंका बल था॥ १॥

'मेरा शरीर नील मेघके समान काला था। मैंने कानोंमें पक्के सोनेके कुण्डल पहन रखे थे। मेरे मस्तकपर किरीट था और हाथमें परिघ। मैं ऋषियोंके मांस खाता और समस्त जगत्‌के मनमें भय उत्पन्न करता हुआ दण्डकारण्यमें विचर रहा था॥ २½॥

'उन दिनों धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रको मुझसे बड़ा भय हो गया था। वे स्वयं राजा दशरथके पास गये और उनसे इस प्रकार बोले—॥ ३½॥

'नरेश्वर! मुझे मारीच नामक राक्षससे घोर भय प्राप्त हुआ है, अत: ये श्रीराम मेरे साथ चलें और पर्वके दिन एकाग्रचित्त हो मेरी रक्षा करें'॥ ४½॥

'मुनिके ऐसा कहनेपर उस समय धर्मात्मा राजा दशरथने महाभाग महामुनि विश्वामित्रको इस प्रकार उत्तर दिया—

'मुनिश्रेष्ठ! रघुकुलनन्दन रामकी अवस्था अभी बारह* वर्षसे भी कम है। इन्हें अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेका पूरा अभ्यास भी नहीं है। आप चाहें तो मेरे साथ मेरी सारी सेना वहाँ चलेगी और मैं चतुरङ्गिणी सेनाके साथ स्वयं ही चलकर आपकी इच्छाके अनुसार उस शत्रुरूप निशाचरका वध करूँगा'॥ ६-७½॥

'राजाके ऐसा कहनेपर मुनि उनसे इस प्रकार बोले—'उस राक्षसके लिये श्रीरामके सिवा दूसरी कोई शक्ति पर्याप्त नहीं है॥ ८½॥

'राजन्! इसमें संदेह नहीं कि आप समरभूमिमें देवताओंकी भी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। आपने जो महान् कार्य किया है, वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है॥ ९½॥

* यद्यपि बालकाण्डके २०वें सर्गके दूसरे श्लोकमें राजा दशरथने श्रीरामकी अवस्था सोलह वर्षसे कम (पंद्रह वर्षकी) बतायी थी, तथापि यहाँ मारीचने रावणके मनमें भय उत्पन्न करनेके लिये चार वर्ष कम अवस्था बतायी है। जो छोटी अवस्थामें इतने महान् पराक्रमी थे, वे अब बड़े होनेपर न जाने कैसे होंगे? यह लक्ष्य कराना ही यहाँ मारीचको अभीष्ट है।

'शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! आपके पास जो विशाल सेना है, वह आपकी इच्छा हो तो यहीं रहे (आप भी यहीं रहें)। महातेजस्वी श्रीराम बालक हैं तो भी उस राक्षसका दमन करनेमें समर्थ हैं, अत: मैं श्रीरामको ही साथ लेकर जाऊँगा; आपका कल्याण हो'॥ १०-११॥

'ऐसा कहकर (लक्ष्मणसहित) राजकुमार श्रीरामको साथ ले महामुनि विश्वामित्र बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमको गये॥ १२॥

'इस प्रकार दण्डकारण्यमें जाकर उन्होंने यज्ञके लिये दीक्षा ग्रहण की और श्रीराम अपने अद्भुत धनुषकी टङ्कार करते हुए उनकी रक्षाके लिये पास ही खड़े हो गये॥

'उस समयतक श्रीराममें जवानीके चिह्न प्रकट नहीं हुए थे। (उनकी किशोरावस्था थी।) वे एक शोभाशाली बालकके रूपमें दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गका रंग साँवला और आँखें बड़ी सुन्दर थीं। वे एक वस्त्र धारण किये, हाथोंमें धनुष लिये सुन्दर शिखा और सोनेके हारसे सुशोभित थे॥ १४॥

'उस समय अपने उद्दीप्त तेजसे दण्डकारण्यकी शोभा बढ़ाते हुए श्रीरामचन्द्र नवोदित बालचन्द्रके समान दृष्टिगोचर होते थे॥ १५॥

'इधर मैं भी मेघके समान काले शरीरसे बड़े घमंडके साथ उस आश्रमके भीतर घुसा। मेरे कानोंमें तपाये हुए सुवर्णके कुण्डल झलमला रहे थे। मैं बलवान् तो था ही, मुझे वरदान भी मिल चुका था कि देवता मुझे मार नहीं सकेंगे॥ १६॥

'भीतर प्रवेश करते ही श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि मुझपर पड़ी। मुझे देखते ही उन्होंने सहसा धनुष उठा लिया और बिना किसी घबराहटके उसपर डोरी चढ़ा दी॥

'मैं मोहवश श्रीरामचन्द्रजीको 'यह बालक है' ऐसा समझकर उनकी अवहेलना करता हुआ बड़ी तेजीके साथ विश्वामित्रकी उस यज्ञवेदीकी ओर दौड़ा॥ १८॥

'इतनेहीमें श्रीरामने एक ऐसा तीखा बाण छोड़ा, जो शत्रुका संहार करनेवाला था; परंतु उस बाणकी चोट खाकर (मैं मरा नहीं) सौ योजन दूर समुद्रमें आकर गिर पड़ा॥

'तात! वीर श्रीरामचन्द्रजी उस समय मुझे मारना नहीं चाहते थे, इसीलिये मेरी जान बच गयी। उनके बाणके वेगसे मैं भ्रान्तचित्त होकर दूर फेंक दिया गया और समुद्रके गहरे जलमें गिरा दिया गया। तात! फिर दीर्घकालके पश्चात् जब मुझे चेत हुआ, तब मैं लंकापुरीमें गया॥ २०-२१॥

'इस प्रकार उस समय मैं मरनेसे बचा। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीराम उन दिनों अभी बालक थे और उन्हें अस्त्र चलानेका पूरा अभ्यास भी नहीं था तो भी उन्होंने मेरे उन सभी सहायकोंको मार गिराया, जो मेरे साथ गये थे॥ २२॥

'इसलिये मेरे मना करनेपर भी यदि तुम श्रीरामके साथ विरोध करोगे तो शीघ्र ही घोर आपत्तिमें पड़ जाओगे और अन्तमें अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठोगे॥

'खेल-कूद और भोग-विलासके क्रमको जाननेवाले तथा सामाजिक उत्सवोंको ही देख-देखकर दिल बहलानेवाले राक्षसोंके लिये तुम संताप और अनर्थ (मौत) बुला लाओगे॥ २४॥

'मिथिलेशकुमारी सीताके लिये तुम्हें धनियोंकी अट्टालिकाओं तथा राजभवनोंसे भरी हुई एवं नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित लंकापुरीका विनाश भी अपनी आँखों देखना पड़ेगा॥ २५॥

'जो लोग आचार-विचारसे शुद्ध हैं और पाप या अपराध नहीं करते हैं, वे भी यदि पापियोंके सम्पर्कमें चले जायँ तो दूसरोंके पापोंसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे साँपवाले सरोवरमें निवास करनेवाली मछलियाँ उस सर्पके साथ ही मारी जाती हैं॥ २६॥

'तुम देखोगे कि जिनके अङ्ग दिव्य चन्दनसे चर्चित होते थे तथा जो दिव्य आभूषणोंसे विभूषित रहते थे, वे ही राक्षस तुम्हारे ही अपराधसे मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं॥ २७॥

'तुम्हें यह भी दिखायी देगा कि कितने ही निशाचरोंकी स्त्रियाँ हर ली गयी हैं और कुछकी स्त्रियाँ साथ हैं तथा वे युद्धमें मरनेसे बचकर असहाय अवस्थामें दसों दिशाओंकी ओर भाग रहे हैं॥ २८॥

'नि:संदेह तुम्हारे सामने वह दृश्य भी आयेगा कि लंकापुरीपर बाणोंका जाल-सा बिछ गया है। वह आगकी ज्वालाओंसे घिर गयी है और उसका एक-एक घर जलकर भस्म हो गया है॥ २९॥

'राजन्! परायी स्त्रीके संसर्गसे बढ़कर दूसरा कोई महान् पाप नहीं है। तुम्हारे अन्त:पुरमें हजारों युवती स्त्रियाँ हैं, उन अपनी ही स्त्रियोंमें अनुराग रखो। अपने कुलकी रक्षा करो, राक्षसोंके प्राण बचाओ तथा अपनी मान, प्रतिष्ठा, उन्नति, राज्य और प्यारे जीवनको नष्ट न होने दो॥ ३०-३१॥

'यदि तुम अपनी सुन्दरी स्त्रियों तथा मित्रोंका सुख अधिक कालतक भोगना चाहते हो तो श्रीरामका अपराध न करो॥ ३२॥

'मैं तुम्हारा हितैषी सुहृद् हूँ। यदि मेरे बारंबार मना करनेपर भी तुम हठपूर्वक सीताका अपहरण करोगे तो तुम्हारी सारी सेना नष्ट हो जायगी और तुम श्रीरामके बाणोंसे अपने प्राण गँवाकर बन्धु-बान्धवोंके साथ यमलोककी यात्रा करोगे'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

मारीचका रावणको समझाना

'इस प्रकार इस समय तो मैं किसी तरह श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे जीवित बच गया। उसके बाद इन दिनों जो घटना घटित हुई है, उसे भी सुन लो॥ १॥

'श्रीरामने मेरी वैसी दुर्दशा कर दी थी, तो भी मैं उनके विरोधसे बाज नहीं आया। एक दिन मृगरूपधारी दो राक्षसोंके साथ मैं भी मृगका ही रूप धारण करके दण्डकवनमें गया॥ २॥

'मैं महान् बलशाली तो था ही, मेरी जीभ आगके समान उद्दीप्त हो रही थी। दाढ़ें भी बहुत बड़ी थीं, सींग तीखे थे और मैं महान् मृगके रूपमें मांस खाता हुआ दण्डकारण्यमें विचरने लगा॥ ३॥

'रावण! मैं अत्यन्त भयंकर रूप धारण किये अग्निशालाओंमें, जलाशयोंके घाटोंपर तथा देववृक्षोंके नीचे बैठे हुए तपस्वीजनोंको तिरस्कृत करता हुआ सब ओर विचरण करने लगा॥ ४॥

'दण्डकारण्यके भीतर धर्मानुष्ठानमें लगे हुए तापसोंको मारकर उनका रक्त पीना और मांस खाना यही मेरा काम था॥ ५॥

'मेरा स्वभाव तो क्रूर था ही, मैं ऋषियोंके मांस खाता और वनमें विचरनेवाले प्राणियोंको डराता हुआ रक्तपान करके मतवाला हो दण्डकवनमें घूमने लगा॥ ६॥

'इस प्रकार उस समय दण्डकारण्यमें विचरता हुआ धर्मको कलङ्कित करनेवाला मैं मारीच तापस धर्मका आश्रय लेनेवाले श्रीराम, विदेहनन्दिनी महाभागा सीता तथा मिताहारी तपस्वीके रूपमें समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले महारथी लक्ष्मणके पास जा पहुँचा॥ ७-८॥

'वनमें आये हुए महाबली श्रीरामको 'यह एक तपस्वी है' ऐसा जानकर उनकी अवहेलना करके मैं आगे बढ़ा और पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके अत्यन्त कुपित हो उनकी ओर दौड़ा। उस समय मेरी आकृति मृगके ही समान थी। मेरे सींग बड़े तीखे थे। उनके पहलेके प्रहारको याद करके मैं उन्हें मार डालना चाहता था। मेरी बुद्धि शुद्ध न होनेके कारण मैं उनकी शक्ति और प्रभावको भूल-सा गया था॥ ९-१०॥

'हम तीनोंको आते देख श्रीरामने अपने विशाल धनुषको खींचकर तीन पैने बाण छोड़े, जो गरुड़ और वायुके समान शीघ्रगामी तथा शत्रुके प्राण लेनेवाले थे॥ ११॥

'झुकी हुई गाँठवाले वे सब तीनों बाण, जो वज्रके समान दुःसह, अत्यन्त भयंकर तथा रक्त पीनेवाले थे, एक साथ ही हमारी ओर आये॥ १२॥

'मैं तो श्रीरामके पराक्रमको जानता था और पहले एक बार उनके भयका सामना कर चुका था, इसलिये शठतापूर्वक उछलकर भाग निकला। भाग जानेसे मैं तो बच गया; किंतु मेरे वे दोनों साथी राक्षस मारे गये॥

'इस बार श्रीरामके बाणसे किसी तरह छुटकारा पाकर मुझे नया जीवन मिला और तभीसे संन्यास लेकर समस्त दुष्कर्मोंका परित्याग करके स्थिरचित्त हो योगाभ्यासमें तत्पर रहकर तपस्यामें लग गया॥ १४॥

'अब मुझे एक-एक वृक्षमें चीर, काला मृगचर्म और धनुष धारण किये श्रीराम ही दिखायी देते हैं, जो मुझे पाशधारी यमराजके समान प्रतीत होते हैं॥ १५॥

'रावण! मैं भयभीत होकर हजारों रामोंको अपने सामने खड़ा देखता हूँ। यह सारा वन ही मुझे राममय प्रतीत हो रहा है॥ १६॥

'राक्षसराज! जब मैं एकान्तमें बैठता हूँ, तब मुझे श्रीरामके ही दर्शन होते हैं। सपनेमें श्रीरामको देखकर मैं उद्भ्रान्त और अचेत-सा हो उठता हूँ॥ १७॥

'रावण! मैं रामसे इतना भयभीत हो गया हूँ कि रत्न और रथ आदि जितने भी रकारादि नाम हैं, वे मेरे कानोंमें पड़ते ही मनमें भारी भय उत्पन्न कर देते हैं॥

'मैं उनके प्रभावको अच्छी तरह जानता हूँ।

इसीलिये कहता हूँ कि श्रीरामके साथ तुम्हारा युद्ध करना कदापि उचित नहीं है। रघुकुलनन्दन श्रीराम राजा बलि अथवा नमुचिका भी वध कर सकते हैं॥ १९॥

'रावण! तुम्हारी इच्छा हो तो रणभूमिमें श्रीरामके साथ युद्ध करो अथवा उन्हें क्षमा कर दो, किंतु यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने श्रीरामकी चर्चा न करो॥ २०॥

'लोकमें बहुत-से साधुपुरुष, जो योगयुक्त होकर केवल धर्मके ही अनुष्ठानमें लगे रहते थे, दूसरोंके अपराधसे ही परिकरोंसहित नष्ट हो गये॥ २१॥

'निशाचर! मैं भी किसी तरह दूसरोंके अपराधसे नष्ट हो सकता हूँ, अतः तुम्हें जो उचित जान पड़े, वह करो। मैं इस कार्यमें तुम्हारा साथ नहीं दे सकता॥ २२॥

'क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी बड़े तेजस्वी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न तथा अधिक बलशाली हैं। वे समस्त राक्षस-जगत्का भी संहार कर सकते हैं॥ २३॥

'यदि शूर्पणखाका बदला लेनेके लिये जनस्थाननिवासी खर पहले श्रीरामपर चढ़ाई करनेके लिये गया और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके हाथसे मारा गया तो तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ, इसमें श्रीरामका क्या अपराध है?॥ २४॥

'तुम मेरे बन्धु हो। मैं तुम्हारा हित करनेकी इच्छासे ही ये बातें कह रहा हूँ। यदि नहीं मानोगे तो युद्धमें आज रामके सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा घायल होकर तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

रावणका मारीचको फटकारना और सीताहरणके कार्यमें सहायता करनेकी आज्ञा देना

मारीचका वह कथन उचित और माननेयोग्य था तो भी जैसे मरनेकी इच्छावाला रोगी दवा नहीं लेता, उसी प्रकार उसके बहुत कहनेपर भी रावणने उसकी बात नहीं मानी॥ १॥

कालसे प्रेरित हुए उस राक्षसराजने यथार्थ और हितकी बात बतानेवाले मारीचसे अनुचित और कठोर वाणीमें कहा—॥ २॥

'दूषित कुलमें उत्पन्न मारीच! तुमने मेरे प्रति जो ये अनाप-शनाप बातें कही हैं, ये मेरे लिये अनुचित और असंगत हैं, ऊसरमें बोये हुए बीजके समान अत्यन्त निष्फल हैं॥ ३॥

'तुम्हारे इन वचनोंद्वारा मूर्ख, पापाचारी और विशेषतः मनुष्य रामके साथ युद्ध करने अथवा उसकी स्त्रीका अपहरण करनेके निश्चयसे मुझे विचलित नहीं किया जा सकता॥ ४॥

'एक स्त्री (कैकेयी) के मूर्खतापूर्ण वचन सुनकर जो राज्य, मित्र, माता और पिताको छोड़कर सहसा जंगलमें चला आया है तथा जिसने युद्धमें खरका वध किया है, उस रामचन्द्रकी प्राणोंसे भी प्यारी भार्या सीताका मैं तुम्हारे निकट ही अवश्य हरण करूँगा॥

'मारीच! ऐसा मेरे हृदयका निश्चित विचार है, इसे इन्द्र आदि देवता और सारे असुर मिलकर भी बदल नहीं सकते॥ ७॥

'यदि इस कार्यका निर्णय करनेके लिये तुमसे पूछा जाता 'इसमें क्या दोष है, क्या गुण है, इसकी सिद्धिमें कौन-सा विघ्न है अथवा इस कार्यको सिद्ध करनेका कौन-सा उपाय है' तो तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिये थीं॥ ८॥

'जो अपना कल्याण चाहता हो, उस बुद्धिमान् मन्त्रीको उचित है कि वह राजासे उसके पूछनेपर ही अपना अभिप्राय प्रकट करे और वह भी हाथ जोड़कर नम्रताके साथ॥ ९॥

'राजाके सामने ऐसी बात कहनी चाहिये, जो सर्वथा अनुकूल, मधुर, उत्तम, हितकर, आदरसे युक्त और उचित हो॥ १०॥

'राजा सम्मानका भूखा होता है। उसकी बातका खण्डन करके आक्षेपपूर्ण भाषामें यदि हितकर वचन भी कहा जाय तो उस अपमानपूर्ण वचनका वह कभी अभिनन्दन नहीं कर सकता॥ ११॥

'निशाचर! अमित तेजस्वी महामनस्वी राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण—इन पाँच देवताओंके स्वरूप धारण किये रहते हैं, इसीलिये वे अपनेमें इन

पाँचोंके गुण-प्रताप, पराक्रम, सौम्यभाव, दण्ड और प्रसन्नता भी धारण करते हैं॥ १२-१३॥

'अत: सभी अवस्थाओंमें सदा राजाओंका सम्मान और पूजन ही करना चाहिये। तुम तो अपने धर्मको न जानकर केवल मोहके वशीभूत हो रहे हो। मैं तुम्हारा अभ्यागत-अतिथि हूँ तो भी तुम दुष्टतावश मुझसे ऐसी कठोर बातें कह रहे हो। राक्षस! मैं तुमसे अपने कर्तव्यके गुण-दोष नहीं पूछता हूँ और न यही जानना चाहता हूँ कि मेरे लिये क्या उचित है॥ १४-१५॥

'अमितपराक्रमी मारीच! मैंने तो तुमसे इतना ही कहा था कि इस कार्यमें तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये॥ १६॥

'अच्छा, अब तुम्हें सहायताके लिये मेरे कथनानुसार जो कार्य करना है, उसे सुनो। तुम सुवर्णमय चर्मसे युक्त चितकबरे रंगके मृग हो जाओ। तुम्हारे सारे अङ्गमें चाँदीकी-सी सफेद बूँदें रहनी चाहिये। ऐसा रूप धारण करके तुम रामके आश्रममें सीताके सामने विचरो। एक बार विदेहकुमारीको लुभाकर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो उधर ही चले जाओ॥ १७-१८॥

'तुम मायामय काञ्चन मृगको देखकर मिथिलेशकुमारी सीताको बड़ा आश्चर्य होगा और वह शीघ्र ही रामसे कहेगी कि आप इसे पकड़ लाइये॥ १९॥

'जब राम तुम्हें पकड़नेके लिये आश्रमसे दूर चले जायँ तो तुम भी दूरतक जाकर श्रीरामकी बोलीके अनुरूप ही—ठीक उन्हींके स्वरमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारना॥ २०॥

'तुम्हारी उस पुकारको सुनकर सीताकी प्रेरणासे सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी स्नेहवश घबराये हुए अपने भाईके ही मार्गका अनुसरण करेंगे॥ २१॥

'इस प्रकार राम और लक्ष्मण दोनोंके आश्रमसे दूर निकल जानेपर मैं सुखपूर्वक सीताको हर लाऊँगा, ठीक उसी तरह जैसे इन्द्र शचीको हर लाये थे॥ २२॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राक्षस मारीच! इस प्रकार इस कार्यको सम्पन्न करके जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाना। मैं इसके लिये तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा॥ २३॥

'सौम्य! अब इस कार्यकी सिद्धिके लिये प्रस्थान करो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। मैं रथपर बैठकर दण्डकवनतक तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा॥ २४॥

'रामको धोखा देकर बिना युद्ध किये ही सीताको अपने हाथमें करके कृतार्थ हो तुम्हारे साथ ही लंकाको लौट चलूँगा॥ २५॥

'मारीच! यदि तुम इनकार करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूँगा। मेरा यह कार्य तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा। मैं बलप्रयोग करके भी तुमसे यह काम कराऊँगा। राजाके प्रतिकूल चलनेवाला पुरुष कभी सुखी नहीं होता है॥ २६॥

'रामके सामने जानेपर तुम्हारे प्राण जानेका संदेहमात्र है, परंतु मेरे साथ विरोध करनेपर तो आज ही तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इन बातोंपर बुद्धि लगाकर भलीभाँति विचार कर लो। उसके बाद यहाँ जो हितकर जान पड़े, उसे उसी प्रकार तुम करो'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

मारीचका रावणको विनाशका भय दिखाकर पुनः समझाना

रावणने जब राजाकी भाँति उसे ऐसी प्रतिकूल आज्ञा दी, तब मारीचने नि:शङ्क होकर उस राक्षसराजसे कठोर वाणीमें कहा—॥ १॥

'निशाचर! किस पापीने तुम्हें पुत्र, राज्य और मन्त्रियोंसहित तुम्हारे विनाशका यह मार्ग बताया है?॥

'राजन्! कौन ऐसा पापाचारी है, जो तुम्हें सुखी देखकर प्रसन्न नहीं हो रहा है? किसने युक्तिसे तुम्हें मौतके द्वारपर जानेकी यह सलाह दी है?॥ ३॥

'निशाचर! आज यह बात स्पष्टरूपसे ज्ञात हो गयी कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हें किसी बलवान्से भिड़ाकर नष्ट होते देखना चाहते हैं॥ ४॥

'राक्षसराज! तुम्हारे अहितका विचार रखनेवाले किस नीचने तुम्हें यह पाप करनेका उपदेश दिया है? जान पड़ता है कि वह तुम्हें अपने ही कुकर्मसे नष्ट होते देखना चाहता है॥ ५॥

'रावण! निश्चय ही वधके योग्य तुम्हारे वे मन्त्री हैं,

जो कुमार्गपर आरूढ़ हुए तुम-जैसे राजाको सब प्रकारसे रोक नहीं रहे हैं; किंतु तुम उनका वध नहीं करते हो॥

'अच्छे मन्त्रियोंको चाहिये कि जो राजा स्वेच्छाचारी होकर कुमार्गपर चलने लगे, उसे सब प्रकारसे वे रोकें। तुम भी रोकनेके ही योग्य हो; फिर भी वे मन्त्री तुम्हें रोक नहीं रहे हैं॥ ७॥

'विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ निशाचर! मन्त्री अपने स्वामी राजाकी कृपासे ही धर्म, अर्थ, काम और यश पाते हैं॥ ८॥

'रावण! यदि स्वामीकी कृपा न हो तो सब व्यर्थ हो जाता है। राजाके दोषसे दूसरे लोगोंको भी कष्ट भोगना पड़ता है॥ ९॥

'विजयशीलोंमें श्रेष्ठ राक्षसराज! धर्म और यशकी प्राप्तिका मूल कारण राजा ही है; अतः सभी अवस्थाओंमें राजाकी रक्षा करनी चाहिये॥ १०॥

'रात्रिमें विचरनेवाले राक्षस! जिसका स्वभाव अत्यन्त तीखा हो, जो जनताके अत्यन्त प्रतिकूल चलनेवाला और उद्दण्ड हो, ऐसे राजासे राज्यकी रक्षा नहीं हो सकती॥ ११॥

'जो मन्त्री तीखे उपायका उपदेश करते हैं, वे अपनी सलाह माननेवाले उस राजाके साथ ही दुःख भोगते हैं, जैसे जिनके सारथि मूर्ख हों, ऐसे रथ नीची-ऊँची भूमिमें जानेपर सारथियोंके साथ ही संकटमें पड़ जाते हैं॥ १२॥

'उपयुक्त धर्मका अनुष्ठान करनेवाले बहुत-से साधु-पुरुष इस जगत्में दूसरोंके अपराधसे परिवारसहित नष्ट हो गये हैं॥ १३॥

'रावण! प्रतिकूल बर्ताव और तीखे स्वभाववाले राजासे रक्षित होनेवाली प्रजा उसी तरह वृद्धिको नहीं प्राप्त होती है, जैसे गीदड़ या भेड़ियेसे पालित होनेवाली भेड़ें॥ १४॥

'रावण! जिनके तुम क्रूर, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा हो, वे सब राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायँगे॥ १५॥

'काकतालीय न्यायके अनुसार मुझे तुमसे अकस्मात् ही यह घोर दुःख प्राप्त हो गया। इस विषयमें मुझे तुम ही शोकके योग्य जान पड़ते हो; क्योंकि सेनासहित तुम्हारा नाश हो जायगा॥ १६॥

'श्रीरामचन्द्रजी मुझे मारकर तुम्हारा भी शीघ्र ही वध कर डालेंगे। जब दोनों ही तरहसे मेरी मृत्यु निश्चित है, तब श्रीरामके हाथसे होनेवाली जो यह मृत्यु है, इसे पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा; क्योंकि शत्रुके द्वारा युद्धमें मारा जाकर प्राणत्याग करूँगा (तुम-जैसे राजाके हाथसे बलपूर्वक प्राणदण्ड पानेका कष्ट नहीं भोगूँगा)॥ १७॥

'राजन्! यह निश्चित समझो कि श्रीरामके सामने जाकर उनकी दृष्टि पड़ते ही मैं मारा जाऊँगा और यदि तुमने सीताका हरण किया तो तुम अपनेको भी बन्धु-बान्धवोंसहित मरा हुआ ही मानो॥ १८॥

'यदि तुम मेरे साथ जाकर श्रीरामके आश्रमसे सीताका अपहरण करोगे, तब न तो तुम जीवित बचोगे और न मैं ही। न लंकापुरी रहने पायेगी और न वहाँके निवासी राक्षस ही॥ १९॥

'निशाचर! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, इसीलिये तुम्हें पापकर्मसे रोक रहा हूँ; किंतु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं होती है। सच है जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने सुहृदोंकी कही हुई हितकर बातें नहीं स्वीकार करते हैं'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

मारीचका सुवर्णमय मृगरूप धारण करके श्रीरामके आश्रमपर जाना और सीताका उसे देखना

रावणसे इस प्रकार कठोर बातें कहकर उस निशाचर-राजके भयसे दुःखी हुए मारीचने कहा—'चलो चलें॥ १॥

'मेरे वधके लिये जिनका हथियार सदा उठा ही रहता है, उन धनुष-बाण और तलवार धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने यदि फिर मुझे देख लिया तो मेरे जीवनका अन्त निश्चित है॥ २॥

'श्रीरामचन्द्रजीके साथ पराक्रम दिखाकर कोई जीवित नहीं लौटता है। तुम यमदण्डसे मारे गये हो

(इसीलिये उनसे भिड़नेकी बात सोचते हो)। वे श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे लिये यमदण्डके ही समान हैं॥ ३॥

'परंतु जब तुम इस प्रकार दुष्टतापर उतारू हो गये, तब मैं क्या कर सकता हूँ। लो, यह मैं चलता हूँ। तात निशाचर! तुम्हारा कल्याण हो'॥ ४॥

मारीचके उस वचनसे राक्षस रावणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उसे कसकर हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'यह तुमने वीरताकी बात कही है; क्योंकि अब तुम मेरी इच्छाके वशवर्ती हो गये हो। इस समय तुम वास्तवमें मारीच हो। पहले तुममें किसी दूसरे राक्षसका आवेश हो गया था॥ ६॥

'यह रत्नोंसे विभूषित मेरा आकाशगामी रथ तैयार है, इसमें पिशाचोंके-से मुखवाले गधे जुते हुए हैं, इसपर मेरे साथ जल्दीसे बैठ जाओ॥ ७॥

'(तुम्हारे जिम्मे एक ही काम है) विदेहकुमारी सीताके मनमें अपने लिये लोभ उत्पन्न कर दो। उसे लुभाकर तुम जहाँ चाहो जा सकते हो। आश्रम सूना हो जानेपर मैं मिथिलेशकुमारी सीताको जबरदस्ती उठा लाऊँगा'॥ ८॥

तब ताटकाकुमार मारीचने रावणसे कहा—'तथास्तु' ऐसा ही हो। तदनन्तर रावण और मारीच दोनों उस विमानाकार रथपर बैठकर शीघ्र ही उस आश्रममण्डलसे चल दिये॥ ९½॥

मार्गमें पहलेकी ही भाँति अनेकानेक पत्तनों, वनों, पर्वतों, समस्त नदियों, राष्ट्रों तथा नगरोंको देखते हुए दोनोंने दण्डकारण्यमें प्रवेश किया और वहाँ मारीचसहित राक्षसराज रावणने श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम देखा॥ १०-११½॥

तब उस सुवर्णभूषित रथसे उतरकर रावणने मारीचका हाथ अपने हाथमें ले उससे कहा—॥ १२½॥

'सखे! यह केलोंसे घिरा हुआ रामका आश्रम दिखायी दे रहा है। अब शीघ्र ही वह कार्य करो, जिसके लिये हमलोग यहाँ आये हैं'॥ १३½॥

रावणकी बात सुनकर राक्षस मारीच उस समय मृगका रूप धारण करके श्रीरामके आश्रमके द्वारपर विचरने लगा॥ १४॥

उस समय उसने देखनेमें बड़ा ही अद्भुत रूप धारण कर रखा था। उसके सींगोंके ऊपरी भाग इन्द्रनील नामक श्रेष्ठ मणिके बने हुए जान पड़ते थे, मुखमण्डलपर सफेद और काले रंगकी बूँदें थीं, मुखका रंग लाल कमलके समान था। उसके कान नीलकमलके तुल्य थे और गरदन कुछ ऊँची थी, उदरका भाग इन्द्रनीलमणिकी कान्ति धारण कर रहा था। पार्श्वभाग महुएके फूलके समान श्वेतवर्णके थे, शरीरका सुनहरा रंग कमलके केसरकी भाँति सुशोभित होता था॥ १५—१७॥

उसके खुर वैदूर्यमणिके समान, पिंडलियाँ पतली और पूँछ ऊपरसे इन्द्रधनुषके रंगकी थी, जिससे उसका संगठित शरीर विशेष शोभा पा रहा था॥ १८॥

उसकी देहकी कान्ति बड़ी ही मनोहर और चिकनी थी। वह नाना प्रकारकी रत्नमयी बुँदकियोंसे विभूषित दिखायी देता था। राक्षस मारीच क्षणभरमें ही परम शोभाशाली मृग बन गया॥ १९॥

सीताको लुभानेके लिये विविध धातुओंसे चित्रित मनोहर एवं दर्शनीय रूप बनाकर वह निशाचर उस रमणीय वन तथा श्रीरामके उस आश्रमको प्रकाशित करता हुआ सब ओर उत्तम घासोंको चरने और विचरने लगा॥ २०-२१॥

सैकड़ों रजतमय विन्दुओंसे युक्त विचित्र रूप धारण करके वह मृग बड़ा प्यारा दिखायी देता था। वह वृक्षोंके कोमल पल्लवोंको खाता हुआ इधर-उधर विचरने लगा॥ २२॥

केलेके बगीचेमें जाकर वह कनेरोंके कुञ्जमें जा पहुँचा। फिर जहाँ सीताकी दृष्टि पड़ सके, ऐसे स्थानमें जाकर मन्दगतिका आश्रय ले इधर-उधर घूमने लगा॥ २३॥

उसका पृष्ठभाग कमलके केसरकी भाँति सुनहरे रंगका होनेके कारण विचित्र दिखायी देता था, इससे उस महान् मृगकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके निकट ही वह अपनी मौजसे घूम रहा था॥ २४॥

वह श्रेष्ठ मृग कुछ दूर जाकर फिर लौट आता था और वहीं घूमने लगता था। दो घड़ीके लिये कहीं चला जाता और फिर बड़ी उतावलीके साथ लौट आता था॥ २५॥

वह कहीं खेलता, कूदता और पुनः भूमिपर ही बैठ जाता था, फिर आश्रमके द्वारपर आकर मृगोंके झुंडके पीछे-पीछे चल देता॥ २६॥

तत्पश्चात् झुंड-के-झुंड मृगोंको साथ लिये फिर लौट आता था। उस मृगरूपधारी राक्षसके मनमें केवल यह अभिलाषा थी कि किसी तरह सीताकी दृष्टि

मुझपर पड़ जाय॥ २७॥

सीताके समीप आते समय वह विचित्र मण्डल (पैंतरे) दिखाता हुआ चारों ओर चक्कर लगाता था। उस वनमें विचरनेवाले जो दूसरे मृग थे, वे सब उसे देखकर पास आते और उसे सूँघकर दसों दिशाओंमें भाग जाते थे॥ २८½॥

राक्षस मारीच यद्यपि मृगोंके वधमें ही तत्पर रहता था तथापि उस समय अपने भावको छिपानेके लिये उन वन्य मृगोंका स्पर्श करके भी उन्हें खाता नहीं था॥ २९½॥

उसी समय मदभरे सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता, जो फूल चुननेमें लगी हुई थीं, कनेर, अशोक और आमके वृक्षोंको लाँघती हुई उधर आ निकलीं॥

फूलोंको चुनती हुई वे वहीं विचरने लगीं। उनका मुख बड़ा ही सुन्दर था। वे वनवासका कष्ट भोगनेके योग्य नहीं थीं। परम सुन्दरी सीताने उस रत्नमय मृगको देखा, जिसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुक्तामणियोंसे चित्रित-सा जान पड़ता था॥ ३२½॥

उसके दाँत और ओठ बड़े सुन्दर थे तथा शरीरके रोएँ चाँदी एवं ताँबे आदि धातुओंके बने हुए जान पड़ते थे। उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही सीताजीकी आँखें आश्चर्यसे खिल उठीं और वे बड़े स्नेहसे उसकी ओर निहारने लगीं॥ ३३½॥

वह मायामय मृग भी श्रीरामकी प्राणवल्लभा सीताको देखता और उस वनको प्रकाशित-सा करता हुआ वहीं विचरने लगा॥ ३४½॥

सीताने वैसा मृग पहले कभी नहीं देखा था। वह नाना प्रकारके रत्नोंका ही बना जान पड़ता था। उसे देखकर जनककिशोरी सीताको बड़ा विस्मय हुआ॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

कपटमृगको देखकर लक्ष्मणका संदेह, सीताका उस मृगको जीवित या मृत अवस्थामें भी ले आनेके लिये श्रीरामको प्रेरित करना तथा श्रीरामका लक्ष्मणको समझा-बुझाकर सीताकी रक्षाका भार सौंपकर उस मृगको मारनेके लिये जाना

वह मृग सोने और चाँदीके समान कान्तिवाले पार्श्व-भागोंसे सुशोभित था। शुद्ध सुवर्णके समान कान्ति तथा निर्दोष अङ्गोंवाली सुन्दरी सीता फूल चुनते-चुनते ही उस मृगको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुईं और अपने पति श्रीराम तथा देवर लक्ष्मणको हथियार लेकर आनेके लिये पुकारने लगीं॥ १-२॥

वे बार-बार उन्हें पुकारतीं और फिर उस मृगको अच्छी तरह देखने लगती थीं। वे बोलीं, 'आर्यपुत्र! अपने भाईके साथ आइये, शीघ्र आइये'॥ ३॥

विदेहकुमारी सीताके द्वारा पुकारे जानेपर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ आये और उस स्थानपर सब ओर दृष्टि डालते हुए उन्होंने उस समय उस मृगको देखा॥ ४॥

उसे देखकर लक्ष्मणके मनमें संदेह हुआ और वे बोले—'भैया! मैं तो समझता हूँ कि इस मृगके रूपमें वह मारीच नामका राक्षस ही आया है॥ ५॥

'श्रीराम! स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापीने कपट-वेष बनाकर वनमें शिकार खेलनेके लिये आये हुए कितने ही हर्षोत्फुल्ल नरेशोंका वध किया है॥

'पुरुषसिंह! यह अनेक प्रकारकी मायाएँ जानता है। इसकी जो माया सुनी गयी है, वही इस प्रकाशमान मृगरूपमें परिणत हो गयी है। यह गन्धर्व-नगरके समान देखनेभरके लिये ही है (इसमें वास्तविकता नहीं है)॥

'रघुनन्दन! पृथ्वीनाथ! इस भूतलपर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नमय मृग नहीं है; अतः निःसंदेह यह माया ही है'॥ ८॥

मारीचके छलसे जिनकी विचारशक्ति हर ली गयी थी, उन पवित्र मुसकानवाली सीताने उपर्युक्त बातें कहते हुए लक्ष्मणको रोककर स्वयं ही बड़े हर्षके साथ कहा—

'आर्यपुत्र! यह मृग बड़ा ही सुन्दर है। इसने मेरे मनको हर लिया है। महाबाहो! इसे ले आइये। यह हमलोगोंके मन-बहलावके लिये रहेगा॥ १०॥

'राजन्! महाबाहो! यद्यपि हमारे इस आश्रमपर बहुत-से पवित्र एवं दर्शनीय मृग एक साथ आकर चरते

हैं तथा सृमर (काली पूँछवाली चवँरी गाय), चमर (सफेद पूँछवाली चवँरी गाय), रीछ, चितकबरे मृगोंके झुंड, वानर तथा सुन्दर रूपवाले महाबली किन्नर भी विचरण करते हैं, तथापि आजके पहले मैंने दूसरा कोई ऐसा तेजस्वी, सौम्य और दीप्तिमान् मृग नहीं देखा था, जैसा कि यह श्रेष्ठ मृग दिखायी दे रहा है॥ ११—१३॥

'नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त होनेके कारण इसके अङ्ग विचित्र जान पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह अङ्गोंका ही बना हुआ हो। मेरे आगे निर्भय एवं शान्तभावसे स्थित होकर इस वनको प्रकाशित करता हुआ यह चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा है॥ १४॥

'इसका रूप अद्भुत है। इसकी शोभा अवर्णनीय है। इसकी स्वरसम्पत्ति (बोली) बड़ी सुन्दर है। विचित्र अङ्गोंसे सुशोभित यह अद्भुत मृग मेरे मनको मोहे लेता है॥ १५॥

'यदि यह मृग जीते-जी ही आपकी पकड़में आ जाय तो एक आश्चर्यकी वस्तु होगा और सबके हृदयमें विस्मय उत्पन्न कर देगा॥ १६॥

'जब हमारे वनवासकी अवधि पूरी हो जायगी और हम पुनः अपना राज्य पा लेंगे, उस समय यह मृग हमारे अन्तःपुरकी शोभा बढ़ायेगा॥ १७॥

'प्रभो! इस मृगका यह दिव्य रूप भरतके, आपके, मेरी सासुओंके और मेरे लिये भी विस्मयजनक होगा॥

'पुरुषसिंह! यदि कदाचित् यह श्रेष्ठ मृग जीते-जी पकड़ा न जा सके तो इसका चमड़ा ही बहुत सुन्दर होगा॥ १९॥

'घास-फूसकी बनी हुई चटाईपर इस मरे हुए मृगका सुवर्णमय चमड़ा बिछाकर मैं इसपर आपके साथ बैठना चाहती हूँ॥ २०॥

'यद्यपि स्वेच्छासे प्रेरित होकर अपने पतिको ऐसे काममें लगाना यह भयंकर स्वेच्छाचार है और साध्वी स्त्रियोंके लिये उचित नहीं माना गया है तथापि इस जन्तुके शरीरने मेरे हृदयमें विस्मय उत्पन्न कर दिया है (इसीलिये मैं इसको पकड़ लानेके लिये अनुरोध करती हूँ)'॥ २१॥

सुनहरी रोमावली, इन्द्रनील मणिके समान सींग, उदयकालके सूर्यकी-सी कान्ति तथा नक्षत्रलोककी भाँति विन्दुयुक्त तेजसे सुशोभित उस मृगको देखकर श्रीरामचन्द्रजीका मन भी विस्मित हो उठा। सीताकी पूर्वोक्त बातको सुनकर, उस मृगके अद्भुत रूपको देखकर, उसके उस रूपपर लुभाकर और सीतासे प्रेरित होकर हर्षसे भरे हुए श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—॥ २२—२४॥

'लक्ष्मण! देखो तो सही, विदेहनन्दिनी सीताके मनमें इस मृगको पानेके लिये कितनी प्रबल इच्छा जाग उठी है? वास्तवमें इसका रूप है भी बहुत ही सुन्दर। अपने रूपकी इस श्रेष्ठताके कारण ही यह मृग आज जीवित नहीं रह सकेगा॥ २५॥

'सुमित्रानन्दन! देवराज इन्द्रके नन्दनवनमें और कुबेरके चैत्ररथवनमें भी कोई ऐसा मृग नहीं होगा, जो इसकी समानता कर सके। फिर पृथ्वीपर तो हो ही कहाँसे सकता है॥ २६॥

'टेढ़ी और सीधी रुचिर रोमावलियाँ इस मृगके शरीरका आश्रय ले सुनहरे विन्दुओंसे चित्रित हो बड़ी शोभा पा रही हैं॥ २७॥

'देखो न, जब यह जँभाई लेता है, तब इसके मुखसे प्रज्वलित अग्निशिखाके समान दमकती हुई जिह्वा बाहर निकल आती है और मेघसे प्रकट हुई बिजलीके समान चमकने लगती है॥ २८॥

'इसका मुख-सम्पुट इन्द्रनीलमणिके बने हुए चषक (पानपात्र) के समान जान पड़ता है, उदर शङ्ख और मोतीके समान सफेद है। यह अवर्णनीय मृग किसके मनको नहीं लुभा लेगा॥ २९॥

'नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित इसके सुनहरी प्रभावाले दिव्य रूपको देखकर किसके मनमें विस्मय नहीं होगा॥ ३०॥

'लक्ष्मण! राजालोग बड़े-बड़े वनोंमें मृगया खेलते समय मांस (मृगचर्म) के लिये और शिकार खेलनेका शौक पूरा करनेके लिये भी धनुष हाथमें लेकर मृगोंको मारते हैं॥ ३१॥

'मृगयाके उद्योगसे ही राजालोग विशाल वनमें धनका भी संग्रह करते हैं; क्योंकि वहाँ मणि, रत्न और सुवर्ण आदिसे युक्त नाना प्रकारकी धातुएँ उपलब्ध होती हैं॥ ३२॥

'लक्ष्मण! कोशकी वृद्धि करनेवाला वह वन्य धन मनुष्योंके लिये अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। ठीक उसी तरह, जैसे ब्रह्मभावको प्राप्त हुए पुरुषके लिये मनके चिन्तनमात्रसे प्राप्त हुई सारी वस्तुएँ अत्यन्त उत्तम बतायी गयी हैं॥ ३३॥

'लक्ष्मण! अर्थी मनुष्य जिस अर्थ (प्रयोजन) का सम्पादन करनेके लिये उसके प्रति आकृष्ट हो बिना विचारे ही चल देता है, उस अत्यन्त आवश्यक प्रयोजनको ही अर्थसाधनमें चतुर एवं अर्थशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् 'अर्थ' कहते हैं॥ ३४॥

'इस रत्नस्वरूप श्रेष्ठ मृगके बहुमूल्य सुनहरे चमड़ेपर सुन्दरी विदेहराजनन्दिनी सीता मेरे साथ बैठेगी॥ ३५॥

'कदली (कोमल ऊँचे चितकबरे और नीलाग्ररोमवाले मृगविशेष), प्रियक (कोमल ऊँचे चिकने और घने रोमवाले मृगविशेष), प्रवेण (विशेष प्रकारके बकरे) और अवि (भेड़) की त्वचा भी स्पर्श करनेमें इस काञ्चन मृगके छालेके समान कोमल एवं सुखद नहीं हो सकती, ऐसा मेरा विश्वास है॥ ३६॥

'यह सुन्दर मृग और वह जो दिव्य आकाशचारी मृग (मृगशिरा नक्षत्र) है, ये दोनों ही दिव्य मृग हैं। इनमेंसे एक तारामृग[१] और दूसरा महीमृग[२] है॥ ३७॥

'लक्ष्मण! तुम मुझसे जैसा कह रहे हो यदि वैसा ही यह मृग हो, यदि यह राक्षसकी माया ही हो तो भी मुझे उसका वध करना ही चाहिये॥ ३८॥

'क्योंकि अपवित्र (दुष्ट) चित्तवाले इस क्रूरकर्मा मारीचने वनमें विचरते समय पहले अनेकानेक श्रेष्ठ मुनियोंकी हत्या की है॥ ३९॥

'इसने मृगयाके समय प्रकट होकर बहुत-से महाधनुर्धर नरेशोंका वध किया है, अतः इस मृगके रूपमें इसका भी वध अवश्य करनेयोग्य है॥ ४०॥

'इसी वनमें पहले वातापि नामक राक्षस रहता था, जो तपस्वी महात्माओंका तिरस्कार करके कपटपूर्ण उपायसे उनके पेटमें पहुँच जाता और जैसे खच्चरीको अपने ही गर्भका बच्चा नष्ट कर देता है, उसी प्रकार उन ब्रह्मर्षियोंको नष्ट कर देता था॥ ४१॥

'वह वातापि एक दिन दीर्घकालके पश्चात् लोभवश तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीके पास जा पहुँचा और (श्राद्धकालमें) उनका आहार बन गया। उनके पेटमें पहुँच गया॥ ४२॥

'श्राद्धके अन्तमें जब वह अपना राक्षसरूप प्रकट करनेकी इच्छा करने लगा—उनका पेट फाड़कर निकल आनेको उद्यत हुआ, तब उस वातापिको लक्ष्य करके भगवान् अगस्त्य मुसकराये और उससे इस प्रकार बोले—॥ ४३॥

'वातापे! तुमने बिना सोचे-विचारे इस जीव-जगत्में बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपने तेजसे तिरस्कृत किया है, उसी पापसे अब तुम पच गये'॥ ४४॥

'लक्ष्मण! जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले मुझ-जैसे जितेन्द्रिय पुरुषका भी अतिक्रमण करे, उस मारीच नामक राक्षसको भी वातापिके समान ही नष्ट हो जाना चाहिये॥ ४५॥

'जैसे वातापि अगस्त्यके द्वारा नष्ट हुआ, उसी प्रकार यह मारीच अब मेरे सामने आकर अवश्य ही मारा जायगा। तुम अस्त्र और कवच आदिसे सुसज्जित हो जाओ और यहाँ सावधानीके साथ मिथिलेशकुमारीकी रक्षा करो॥ ४६॥

'रघुनन्दन! हमलोगोंका जो आवश्यक कर्तव्य है, वह सीताकी रक्षाके ही अधीन है। मैं इस मृगको मार डालूँगा अथवा इसे जीता ही पकड़ लाऊँगा॥ ४७॥

'सुमित्राकुमार लक्ष्मण! देखो, इस मृगका चर्म हस्तगत करनेके लिये विदेहनन्दिनीको कितनी उत्कण्ठा हो रही है, इसलिये इस मृगको ले आनेके लिये मैं तुरंत ही जा रहा हूँ॥ ४८॥

'इस मृगको मारनेका प्रधान हेतु है, इसके चमड़ेको प्राप्त करना। आज इसीके कारण यह मृग जीवित नहीं रह सकेगा। लक्ष्मण! तुम आश्रमपर रहकर सीताके साथ सावधान रहना—सावधानीके साथ तबतक इसकी रक्षा करना, जबतक कि मैं एक ही बाणसे इस चितकबरे मृगको मार नहीं डालता हूँ। मारनेके पश्चात् इसका चमड़ा लेकर मैं शीघ्र लौट आऊँगा॥ ४९-५०॥

'लक्ष्मण! बुद्धिमान् पक्षी गृध्रराज जटायु बड़े ही बलवान् और सामर्थ्यशाली हैं। उनके साथ ही यहाँ सदा सावधान रहना। मिथिलेशकुमारी सीताको अपने संरक्षणमें लेकर प्रतिक्षण सब दिशाओंमें रहनेवाले राक्षसोंकी ओरसे चौकन्ने रहना'॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

---

१. नक्षत्रलोकमें विचरनेवाला मृग (मृगशिरा नक्षत्र)। २. दूसरा पृथ्वीपर विचरनेवाला काञ्चन मृग।

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा मारीचका वध और उसके द्वारा सीता और लक्ष्मणके पुकारनेका शब्द सुनकर श्रीरामकी चिन्ता

लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने सोनेकी मूँठवाली तलवार कमरमें बाँध ली॥ १॥

तत्पश्चात् महापराक्रमी रघुनाथजी तीन स्थानोंमें झुके हुए अपने आभूषणरूप धनुषको हाथमें ले पीठपर दो तरकस बाँधकर वहाँसे चल दिये॥ २॥

राजाधिराज श्रीरामको आते देख वह वन्य मृगोंका राजा काञ्चनमृग भयके मारे छिप गया, किंतु फिर तुरंत ही उनके दृष्टिपथमें आ गया॥ ३॥

तब तलवार बाँधे और धनुष लिये श्रीराम जिस ओर वह मृग था, उसी ओर दौड़े। धनुर्धर श्रीरामने देखा, वह अपने रूपसे सामनेकी दिशाको प्रकाशित-सी कर रहा था। उस महान् वनमें वह पीछेकी ओर देख-देखकर आगेकी ओर भाग रहा था। कभी छलाँगें मारकर बहुत दूर निकल जाता और कभी इतना निकट दिखायी देता कि हाथसे पकड़ लेनेका लोभ पैदा कर देता था। कभी डरा हुआ, कभी घबराया हुआ और कभी आकाशमें उछलता हुआ दीख पड़ता था। कभी वनके किन्हीं स्थानोंमें छिपकर अदृश्य हो जाता था, मानो शरद्-ऋतुका चन्द्रमण्डल मेघखण्डोंसे आवृत हो गया हो। एक ही मुहूर्तमें वह निकट दिखायी देता और पुनः बहुत दूरके स्थानमें चमक उठता था॥ ४—७॥

इस तरह प्रकट होता और छिपता हुआ वह मृगरूपधारी मारीच श्रीरघुनाथजीको उनके आश्रमसे बहुत दूर खींच ले गया॥ ८॥

उस समय उससे मोहित और विवश होकर श्रीराम कुछ कुपित हो उठे और थककर एक जगह छायाका आश्रय ले हरी-हरी घासवाली भूमिपर खड़े हो गये॥ ९॥

इस मृगरूपधारी निशाचरने उन्हें उन्मत्त-सा कर दिया था। थोड़ी ही देरमें वह दूसरे मृगोंसे घिरा हुआ पास ही दिखायी दिया॥ १०॥

श्रीराम मुझे पकड़ना चाहते हैं, यह देखकर वह फिर भागा और भयके मारे पुनः तत्काल ही अदृश्य हो गया॥ ११॥

तदनन्तर वह पुनः दूरवर्ती वृक्ष-समूहसे होकर निकला। उसे देखकर महातेजस्वी श्रीरामने मार डालनेका निश्चय किया॥ १२॥

तब वहाँ क्रोधमें भरे हुए बलवान् राघवेन्द्र श्रीरामने तरकससे सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी एक प्रज्वलित एवं शत्रु-संहारक बाण निकालकर उसे अपने सुदृढ़ धनुषपर रखा और उस धनुषको जोरसे खींचकर उस मृगको ही लक्ष्य करके फुफकारते सर्पके समान सनसनाता हुआ वह प्रज्वलित एवं तेजस्वी बाण, जिसे ब्रह्माजीने बनाया था, छोड़ दिया॥ १३-१४½॥

वज्रके समान तेजस्वी उस उत्तम बाणने मृगरूपधारी मारीचके शरीरको चीरकर उसके हृदयको भी विदीर्ण कर दिया॥ १५½॥

'उसकी चोटसे अत्यन्त आतुर हो वह राक्षस ताड़के बराबर उछलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसका जीवन समाप्त हो चला। वह पृथ्वीपर पड़ा-पड़ा भयंकर गर्जना करने लगा॥ १६½॥

मरते समय मारीचने अपने उस कृत्रिम शरीरको त्याग दिया। फिर रावणके वचनका स्मरण करके उस राक्षसने सोचा, किस उपायसे सीता लक्ष्मणको यहाँ भेज दे और सूने आश्रमसे रावण उसे हर ले जाय॥

रावणके बताये हुए उपायको काममें लानेका अवसर आ गया है—यह समझकर उसने श्रीरामचन्द्रजीके ही समान स्वरमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा॥

श्रीरामके अनुपम बाणसे उसका मर्म विदीर्ण हो गया था, अतः उस मृगरूपको त्यागकर उसने राक्षसरूप धारण कर लिया॥ २०॥

प्राणत्याग करते समय मारीचने अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया था। भयंकर दिखायी देनेवाले उस राक्षसको भूमिपर पड़कर खूनसे लथपथ हो धरतीपर लोटते और छटपटाते देख श्रीरामको लक्ष्मणकी कही हुई बात याद आ गयी और वे मन-ही-मन सीताकी चिन्ता करने लगे॥ २१-२२॥

वे सोचने लगे, 'अहो! जैसा लक्ष्मणने पहले कहा था, उसके अनुसार यह वास्तवमें मारीचकी माया ही थी। लक्ष्मणकी बात ठीक निकली। आज मेरे द्वारा यह मारीच ही मारा गया॥ २३॥

'परंतु यह राक्षस उच्च स्वरसे 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार करके मरा है। उसके उस शब्दको सुनकर सीताकी कैसी अवस्था हो जायगी और महाबाहु लक्ष्मणकी भी क्या दशा होगी?'॥ २४½ ॥

ऐसा सोचकर धर्मात्मा श्रीरामके रोंगटे खड़े हो गये। उस समय वहाँ मृगरूपधारी उस राक्षसको मारकर और उसके उस शब्दको सुनकर श्रीरामके मनमें विषादजनित तीव्र भय समा गया॥ २५-२६ ॥

उस लोकविलक्षण मृगका वध करके तपस्वीके उपभोगमें आनेयोग्य फल-मूल आदि लेकर श्रीराम तत्काल ही जनस्थानके निकटवर्ती पञ्चवटीमें स्थित अपने आश्रमकी ओर बड़ी उतावलीके साथ चले॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

सीताके मार्मिक वचनोंसे प्रेरित होकर लक्ष्मणका श्रीरामके पास जाना

उस समय वनमें जो आर्तनाद हुआ, उसे अपने पतिके स्वरसे मिलता-जुलता जान श्रीसीताजी लक्ष्मणसे बोलीं—'भैया! जाओ, श्रीरघुनाथजीकी सुधि लो—उनका समाचार जानो॥ १॥

'उन्होंने बड़े आर्तस्वरसे हमलोगोंको पुकारा है। मैंने उनका वह शब्द सुना है। वह बहुत उच्च स्वरसे बोला गया था। उसे सुनकर मेरे प्राण और मन अपने स्थानपर नहीं रह गये हैं—मैं घबरा उठी हूँ॥ २॥

'तुम्हारे भाई वनमें आर्तनाद कर रहे हैं। वे कोई शरण—रक्षाका सहारा चाहते हैं। तुम उन्हें बचाओ। जल्दी ही अपने भाईके पास दौड़े हुए जाओ। जैसे कोई साँड़ सिंहोंके पंजेमें फँस गया हो, उसी प्रकार वे राक्षसोंके वशमें पड़ गये हैं, अतः जाओ।' सीताके ऐसा कहनेपर भी भाईके आदेशका विचार करके लक्ष्मण नहीं गये॥ ३-४॥

उनके इस व्यवहारसे वहाँ जनककिशोरी सीता क्षुब्ध हो उठीं और उनसे इस प्रकार बोलीं—'सुमित्राकुमार! तुम मित्ररूपमें अपने भाईके शत्रु ही जान पड़ते हो, इसीलिये तुम इस संकटकी अवस्थामें भी भाईके पास नहीं पहुँच रहे हो। लक्ष्मण! मैं जानती हूँ, तुम मुझपर अधिकार करनेके लिये इस समय श्रीरामका विनाश ही चाहते हो॥ ५-६॥

'मेरे लिये तुम्हारे मनमें लोभ हो गया है, निश्चय ही इसीलिये तुम श्रीरघुनाथजीके पीछे नहीं जा रहे हो। मैं समझती हूँ, श्रीरामका संकटमें पड़ना ही तुम्हें प्रिय है। तुम्हारे मनमें अपने भाईके प्रति स्नेह नहीं है॥ ७॥

'यही कारण है कि तुम उन महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको देखने न जाकर यहाँ निश्चिन्त खड़े हो। हाय! जो मुख्यतः तुम्हारे सेव्य हैं, जिनकी रक्षा और सेवाके लिये तुम यहाँ आये हो, यदि उन्हींके प्राण संकटमें पड़ गये तो यहाँ मेरी रक्षासे क्या होगा?'॥ ८½ ॥

'विदेहकुमारी सीताजीकी दशा भयभीत हुई हरिणीके समान हो रही थी। उन्होंने शोकमग्न होकर आँसू बहाते हुए जब उपर्युक्त बातें कहीं, तब लक्ष्मण उनसे इस प्रकार बोले—॥ ९½ ॥

'विदेहनन्दिनि! आप विश्वास करें, नाग, असुर, गन्धर्व, देवता, दानव तथा राक्षस—ये सब मिलकर भी आपके पतिको परास्त नहीं कर सकते, मेरे इस कथनमें संशय नहीं है॥ १०½ ॥

'देवि! शोभने! देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, पक्षियों, राक्षसों, पिशाचों, किन्नरों, मृगों तथा घोर दानवोंमें भी ऐसा कोई वीर नहीं है, जो समराङ्गणमें इन्द्रके समान पराक्रमी श्रीरामका सामना कर सके। भगवान् श्रीराम युद्धमें अवध्य हैं, अतएव आपको ऐसी बात ही नहीं कहनी चाहिये॥ ११—१३॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें इस वनके भीतर मैं आपको अकेली नहीं छोड़ सकता। सैनिक-बलसे सम्पन्न बड़े-बड़े राजा अपनी सारी सेनाओंके द्वारा भी श्रीरामके बलको कुण्ठित नहीं कर सकते। देवताओं तथा इन्द्र आदिके साथ मिले हुए तीनों लोक भी यदि आक्रमण करें तो वे श्रीरामके बलका वेग नहीं रोक सकते; अतः आपका हृदय शान्त हो। आप संताप छोड़ दें॥ १४-१५॥

'आपके पतिदेव उस सुन्दर मृगको मारकर शीघ्र ही लौट आयँगे। वह शब्द जो आपने सुना था, अवश्य ही उनका नहीं था। किसी देवताने कोई शब्द प्रकट

किया हो, ऐसी बात भी नहीं है। वह तो उस राक्षसकी गन्धर्वनगरके समान झूठी माया ही थी॥ १६½ ॥

'सुन्दरि! विदेहनन्दिनि! महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने मुझपर आपकी रक्षाका भार सौंपा है। इस समय आप मेरे पास उनकी धरोहरके रूपमें हैं। अत: आपको मैं यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता॥ १७½ ॥

'कल्याणमयी देवि! जिस समय खरका वध किया गया, उस समय जनस्थाननिवासी दूसरे बहुत-से राक्षस भी मारे गये थे, इस कारण इन निशाचरोंने हमारे साथ वैर बाँध लिया है॥ १८½ ॥

'विदेहनन्दिनि! प्राणियोंकी हिंसा ही जिनका क्रीड़ा-विहार या मनोरञ्जन है, वे राक्षस ही इस विशाल वनमें नाना प्रकारकी बोलियाँ बोला करते हैं; अत: आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये'॥ १९½ ॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर सीताको बड़ा क्रोध हुआ, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे सत्यवादी लक्ष्मणसे कठोर बातें कहने लगीं—॥ २०½ ॥

'अनार्य! निर्दयी! क्रूरकर्मा! कुलाङ्गार! मैं तुझे खूब समझती हूँ। श्रीराम किसी भारी विपत्तिमें पड़ जायँ, यही तुझे प्रिय है। इसीलिये तू रामपर संकट आया देखकर भी ऐसी बातें बना रहा है॥ २१-२२ ॥

'लक्ष्मण! तेरे-जैसे क्रूर एवं सदा छिपे हुए शत्रुओंके मनमें इस तरहका पापपूर्ण विचार होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ २३ ॥

'तू बड़ा दुष्ट है, श्रीरामको अकेले वनमें आते देख मुझे प्राप्त करनेके लिये ही अपने भावको छिपाकर तू भी अकेला ही उनके पीछे-पीछे चला आया है, अथवा यह भी सम्भव है कि भरतने ही तुझे भेजा हो॥

'परंतु सुमित्राकुमार! तेरा या भरतका वह मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। नीलकमलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन श्रीरामको पतिरूपमें पाकर मैं दूसरे किसी क्षुद्र पुरुषकी कामना कैसे कर सकती हूँ?॥ २५½ ॥

'सुमित्राकुमार! मैं तेरे सामने ही नि:संदेह अपने प्राण त्याग दूँगी, किंतु श्रीरामके बिना एक क्षण भी इस भूतलपर जीवित नहीं रह सकूँगी'॥ २६½ ॥

सीताने जब इस प्रकार कठोर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाली बात कही, तब जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर उनसे बोले—'देवि! मैं आपकी बातका जवाब नहीं दे सकता; क्योंकि आप मेरे लिये आराधनीया देवीके समान हैं॥ २७-२८ ॥

'मिथिलेशकुमारी! ऐसी अनुचित और प्रतिकूल बातें मुँहसे निकालना स्त्रियोंके लिये आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि इस संसारमें नारियोंका ऐसा स्वभाव बहुधा देखा जाता है॥ २९ ॥

'स्त्रियाँ प्राय: विनय आदि धर्मोंसे रहित, चञ्चल, कठोर तथा घरमें फूट डालनेवाली होती हैं। विदेहकुमारी जानकी! आपकी यह बात मेरे दोनों कानोंमें तपाये हुए लोहेके समान लगी है। मैं ऐसी बात सह नहीं सकता॥ ३०½ ॥

'इस वनमें विचरनेवाले सभी प्राणी साक्षी होकर मेरा कथन सुनें। मैंने न्याययुक्त बात कही है तो भी आपने मेरे प्रति ऐसी कठोर बात अपने मुँहसे निकाली है। निश्चय ही आज आपकी बुद्धि मारी गयी है। आप नष्ट होना चाहती हैं। धिक्कार है आपको, जो आप मुझपर ऐसा संदेह करती हैं। मैं बड़े भाईकी आज्ञाका पालन करनेमें दृढ़तापूर्वक तत्पर हूँ और आप केवल नारी होनेके कारण साधारण स्त्रियोंके दुष्ट स्वभावको अपनाकर मेरे प्रति ऐसी आशङ्का करती हैं। अच्छा अब मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ भैया श्रीराम गये हैं। सुमुखि! आपका कल्याण हो॥ ३१—३३ ॥

'विशाललोचने! वनके सम्पूर्ण देवता आपकी रक्षा करें; क्योंकि इस समय मेरे सामने जो बड़े भयंकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं, उन्होंने मुझे संशयमें डाल दिया है। क्या मैं श्रीरामचन्द्रजीके साथ लौटकर पुन: आपको सकुशल देख सकूँगा?'॥ ३४॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर जनककिशोरी सीता रोने लगीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी तीव्र धारा बह चली। वे उन्हें इस प्रकार उत्तर देती हुई बोलीं—॥ ३५ ॥

'लक्ष्मण! मैं श्रीरामसे बिछुड़ जानेपर गोदावरी नदीमें समा जाऊँगी अथवा गलेमें फाँसी लगा लूँगी अथवा पर्वतके दुर्गम शिखरपर चढ़कर वहाँसे अपने शरीरको नीचे डाल दूँगी या तीव्र विष पान कर लूँगी अथवा जलती आगमें प्रवेश कर जाऊँगी, परंतु श्रीरघुनाथजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका कदापि स्पर्श नहीं करूँगी'॥ ३६-३७॥

लक्ष्मणके सामने यह प्रतिज्ञा करके शोकमग्न होकर रोती हुई सीता अधिक दु:खके कारण दोनों हाथोंसे अपने उदरपर आघात करने लगीं—छाती पीटने लगीं॥ ३८ ॥

विशाललोचना सीताको आर्त होकर रोती देख

सुमित्राकुमार लक्ष्मणने मन-ही-मन उन्हें सान्त्वना दी, परंतु सीता उस समय अपने देवरसे कुछ नहीं बोलीं॥

तब मनको वशमें रखनेवाले लक्ष्मणने दोनों हाथ जोड़ कुछ झुककर मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम किया और बारंबार उनकी ओर देखते हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

रावणका साधुवेषमें सीताके पास जाकर उनका परिचय पूछना और सीताका आतिथ्यके लिये उसे आमन्त्रित करना

सीताके कठोर वचन कहनेपर कुपित हुए लक्ष्मण श्रीरामसे मिलनेकी विशेष इच्छा रखकर शीघ्र ही वहाँसे चल दिये॥ १॥

लक्ष्मणके चले जानेपर रावणको मौका मिल गया, अतः वह संन्यासीका वेष धारण करके शीघ्र ही विदेहकुमारी सीताके समीप गया॥ २॥

वह शरीरपर साफ-सुथरा गेरुए रंगका वस्त्र लपेटे हुए था। उसके मस्तकपर शिखा, हाथमें छाता और पैरोंमें जूते थे। उसने बायें कंधेपर डंडा रखकर उसमें कमण्डलु लटका रखा था॥ ३॥

अत्यन्त बलवान् रावण उस वनमें परिव्राजकका रूप धारण करके श्रीराम और लक्ष्मण दोनों बन्धुओंसे रहित हुई अकेली विदेहकुमारी सीताके पास गया॥ ४॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमासे हीन हुई संध्याके पास महान् अंधकार उपस्थित हो, उसी प्रकार वह सीताके निकट गया। तदनन्तर जैसे चन्द्रमासे रहित हुई रोहिणीपर अत्यन्त दारुण ग्रह मंगल या शनैश्चरकी दृष्टि पड़े, उसी प्रकार उस अतिशय क्रूर रावणने उस भोली-भाली यशस्विनी राजकुमारीकी ओर देखा॥ ५ $\frac{1}{2}$ ॥

उस भयंकर पापाचारीको आया देख जनस्थानके वृक्षोंने हिलना बंद कर दिया और हवाका वेग रुक गया। लाल नेत्रोंवाले रावणको अपनी ओर दृष्टिपात करते देख तीव्र गतिसे बहनेवाली गोदावरी नदी भयके मारे धीरे-धीरे बहने लगी॥ ६-७ $\frac{1}{2}$ ॥

रामसे बदला लेनेका अवसर ढूँढ़नेवाला दशमुख रावण उस समय भिक्षुरूपसे विदेहकुमारी सीताके पास पहुँचा॥ ८ $\frac{1}{2}$ ॥

उस समय विदेहराजकुमारी सीता अपने पतिके लिये शोक और चिन्तामें डूबी हुई थीं। उसी अवस्थामें अभव्य रावण भव्य रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुआ, मानो शनैश्चर ग्रह चित्राके सामने जा पहुँचा हो॥

जैसे कुआँ तिनकोंसे ढका हुआ हो, उसी प्रकार भव्य रूपसे अपनी अभव्यताको छिपाकर रावण सहसा वहाँ जा पहुँचा और यशस्विनी रामपत्नी वैदेहीको देखकर खड़ा हो गया॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

उस समय रावण वहाँ खड़ा-खड़ा रामपत्नी सीताको देखने लगा। वे बड़ी सुन्दरी थीं। उनके दाँत और ओठ भी सुन्दर थे, मुख पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको छीने लेता था। वे पर्णशालामें बैठी हुई शोकसे पीड़ित हो आँसू बहा रही थीं॥ ११-१२॥

वह निशाचर प्रसन्नचित्त हो रेशमी पीताम्बरसे सुशोभित कमलनयनी विदेहकुमारीके सामने गया॥

उन्हें देखते ही कामदेवके बाणोंसे घायल हो राक्षसराज रावण वेदमन्त्रका उच्चारण करने लगा और उस एकान्त स्थानमें विनीतभावसे उनसे कुछ कहनेको उद्यत हुआ॥ १४॥

त्रिलोकसुन्दरी सीता अपने शरीरसे कमलसे रहित कमलालया लक्ष्मीकी भाँति शोभा पा रही थीं। रावण उनकी प्रशंसा करता हुआ बोला—॥ १५॥

'उत्तम सुवर्णकी-सी कान्तिवाली तथा रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली सुन्दरी! (तुम कौन हो?) तुम्हारे मुख, नेत्र, हाथ और पैर कमलोंके समान हैं, अतः तुम पद्मिनी (पुष्करिणी) की भाँति कमलोंकी सुन्दर-सी माला धारण करती हो॥ १६॥

'शुभानने! तुम श्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो? अथवा वरारोहे! तुम भूति या स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेवकी पत्नी रति तो नहीं हो?॥ १७॥

तुम्हारे दाँत बराबर हैं। उनके अग्रभाग कुन्दकी कलियोंके समान शोभा पाते हैं। वे सब-के-सब चिकने और सफेद हैं। तुम्हारी दोनों आँखें बड़ी-बड़ी और

निर्मल हैं। उनके दोनों कोये लाल हैं और पुतलियाँ काली हैं। कटिका अग्रभाग विशाल एवं मांसल है। दोनों जाँघें हाथीकी सूँड़के समान शोभा पाती हैं॥ १८ $\frac{१}{२}$ ॥

'तुम्हारे ये दोनों स्तन पुष्ट, गोलाकार, परस्पर सटे हुए, प्रगल्भ, मोटे, उठे हुए मुखवाले, कमनीय, चिकने ताड़फलके समान आकारवाले, परम सुन्दर और श्रेष्ठ मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हैं॥ १९-२०॥

'सुन्दर मुसकान, रुचिर दन्तावली और मनोहर नेत्रवाली विलासिनी रमणी! तुम अपने रूप-सौन्दर्यसे मेरे मनको वैसे ही हरे लेती हो, जैसे नदी जलके द्वारा अपने तटका अपहरण करती है॥ २१॥

'तुम्हारी कमर इतनी पतली है कि मुट्ठीमें आ जाय। केश चिकने और मनोहर हैं। दोनों स्तन एक-दूसरेसे सटे हुए हैं। सुन्दरी! देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर जातिकी स्त्रियोंमें भी कोई तुम-जैसी नहीं है॥ २२॥

'पृथ्वीपर तो ऐसी रूपवती नारी मैंने आजसे पहले कभी देखी ही नहीं थी। कहाँ तो तुम्हारा यह तीनों लोकोंमें सबसे सुन्दर रूप, सुकुमारता और नयी अवस्था और कहाँ इस दुर्गम वनमें निवास! ये सब बातें ध्यानमें आते ही मेरे मनको मथे डालती हैं। तुम्हारा कल्याण हो। यहाँसे चली जाओ। तुम यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो॥

'यह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भयंकर राक्षसोंके रहनेकी जगह है। तुम्हें तो रमणीय राजमहलों, समृद्धिशाली नगरों और सुगन्धयुक्त उपवनोंमें निवास करना और विचरना चाहिये॥ २५ $\frac{१}{२}$ ॥

'शोभने! वही पुरुष श्रेष्ठ है, वही गन्ध उत्तम है और वही वस्त्र सुन्दर है, जो तुम्हारे उपयोगमें आये। कजरारे नेत्रोंवाली सुन्दरि! मैं उसीको श्रेष्ठ पति मानता हूँ, जिसे तुम्हारा सुखद संयोग प्राप्त हो॥ २६ $\frac{१}{२}$ ॥

'पवित्र मुसकान और सुन्दर अङ्गोंवाली देवि! तुम कौन हो? मुझे तो तुम रुद्रों, मरुद्गणों अथवा वसुओंसे सम्बन्ध रखनेवाली देवी जान पड़ती हो॥

'यहाँ गन्धर्व, देवता तथा किन्नर नहीं आते-जाते हैं। यह राक्षसोंका निवासस्थान है, फिर तुम कैसे यहाँ आ गयी॥ २८ $\frac{१}{२}$ ॥

'यहाँ वानर, सिंह, चीते, व्याघ्र, मृग, भेड़िये, रीछ, शेर और कंक (गीध आदि पक्षी) रहते हैं। तुम्हें इनसे भय क्यों नहीं हो रहा है?॥ २९ $\frac{१}{२}$ ॥

'वरानने! इस विशाल वनके भीतर अत्यन्त वेगशाली और भयंकर मदमत्त गजराजोंके बीच अकेली रहती हुई तुम भयभीत कैसे नहीं होती हो?॥ ३० $\frac{१}{२}$ ॥

'कल्याणमयी देवि! बताओ, तुम कौन हो? किसकी हो? और कहाँसे आकर किस कारण इस राक्षससेवित घोर दण्डकारण्यमें अकेली विचरण करती हो?'॥ ३१ $\frac{१}{२}$ ॥

वेशभूषासे महात्मा बनकर आये हुए रावणने जब विदेहकुमारी सीताकी इस प्रकार प्रशंसा की, तब ब्राह्मणवेषमें वहाँ पधारे हुए रावणको देखकर मैथिलीने अतिथि-सत्कारके लिये उपयोगी सभी सामग्रियोंद्वारा उसका पूजन किया॥ ३२-३३॥

पहले बैठनेके लिये आसन दे, पाद्य (पैर धोनेके लिये जल) निवेदन किया। तदनन्तर ऊपरसे सौम्य दिखायी देनेवाले उस अतिथिको भोजनके लिये निमन्त्रण देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! भोजन तैयार है, ग्रहण कीजिये'॥

वह ब्राह्मणके वेषमें आया था, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए था। ब्राह्मण-वेषमें आये हुए अतिथिकी उपेक्षा असम्भव थी। उसकी वेशभूषामें ब्राह्मणत्वका निश्चय करानेवाले चिह्न दिखायी देते थे, अतः उस रूपमें आये हुए उस रावणको देखकर मैथिलीने ब्राह्मणके योग्य सत्कार करनेके लिये ही उसे निमन्त्रित किया॥ ३५॥

वे बोलीं—'ब्राह्मण! यह चटाई है, इसपर इच्छानुसार बैठ जाइये। यह पैर धोनेके लिये जल है, इसे ग्रहण कीजिये और यह वनमें ही उत्पन्न हुआ उत्तम फल-मूल आपके लिये ही तैयार करके रखा गया है, यहाँ शान्तभावसे उसका उपभोग कीजिये'॥ ३६॥

'अतिथिके लिये सब कुछ तैयार है' ऐसा कहकर सीताने जब उसे भोजनके लिये निमन्त्रित किया, तब रावणने '**सर्वं सम्पन्नम्**' कहनेवाली राजरानी मैथिलीकी ओर देखा और अपने ही वधके लिये उसने हठपूर्वक सीताका हरण करनेके निमित्त मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया॥ ३७॥

तदनन्तर सीता शिकार खेलनेके लिये गये हुए लक्ष्मणसहित अपने सुन्दर वेषधारी पति श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतीक्षा करने लगीं। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, किंतु उन्हें सब ओर हराभरा विशाल वन ही दिखायी दिया, श्रीराम और लक्ष्मण नहीं दीख पड़े॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

सीताका रावणको अपना और पतिका परिचय देकर वनमें आनेका कारण बताना, रावणका उन्हें अपनी पटरानी बनानेकी इच्छा प्रकट करना और सीताका उसे फटकारना

सीताको हरनेकी इच्छासे परिव्राजक (संन्यासी)का रूप धारण करके आये हुए रावणने उस समय जब विदेहराजकुमारीसे इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने स्वयं ही अपना परिचय दिया॥ १॥

वे दो घड़ीतक इस विचारमें पड़ी रहीं कि ये ब्राह्मण और अतिथि हैं, यदि इनकी बातका उत्तर न दिया जाय तो ये मुझे शाप दे देंगे। यह सोचकर सीताने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २॥

'ब्रह्मन्! आपका भला हो। मैं मिथिलानरेश महात्मा जनककी पुत्री और अवधनरेश श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी रानी हूँ। मेरा नाम सीता है॥ ३॥

'विवाहके बाद बारह वर्षोंतक इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके महलमें रहकर मैंने अपने पतिके साथ सभी मानवोचित भोग भोगे हैं। मैं वहाँ सदा मनोवाञ्छित सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न रही हूँ॥ ४॥

'तेरहवें वर्षके प्रारम्भमें सामर्थ्यशाली महाराज दशरथने राजमन्त्रियोंसे मिलकर सलाह की और श्रीरामचन्द्रजीका युवराजपदपर अभिषेक करनेका निश्चय किया॥ ५॥

'जब श्रीरघुनाथजीके राज्याभिषेककी सामग्री जुटायी जाने लगी, उस समय मेरी सास कैकेयीने अपने पतिसे वर माँगा॥ ६॥

'कैकेयीने मेरे श्वशुरको पुण्यकी शपथ दिलाकर वचनबद्ध कर लिया, फिर अपने सत्यप्रतिज्ञ पति उन राजशिरोमणिसे दो वर माँगे—मेरे पतिके लिये वनवास और भरतके लिये राज्याभिषेक॥ ७½॥

'कैकेयी हठपूर्वक कहने लगीं—यदि आज श्रीरामका अभिषेक किया गया तो मैं न तो खाऊँगी, न पीऊँगी और न कभी सोऊँगी ही। यही मेरे जीवनका अन्त होगा॥ ८½॥

'ऐसी बात कहती हुई कैकेयीसे मेरे श्वशुर महाराज दशरथने यह याचना की कि 'तुम सब प्रकारकी उत्तम वस्तुएँ ले लो; किंतु श्रीरामके अभिषेकमें विघ्न न डालो।' किंतु कैकेयीने उनकी वह याचना सफल नहीं की॥

'उस समय मेरे महातेजस्वी पतिकी अवस्था पचीस सालसे ऊपरकी थी और मेरे जन्मकालसे लेकर वनगमनकालतक मेरी अवस्था वर्षगणनाके अनुसार अठारह सालकी हो गयी थी॥ १०½॥

'श्रीराम जगत्में सत्यवादी, सुशील और पवित्र रूपसे विख्यात हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े और भुजाएँ विशाल हैं। वे समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं॥

'उनके पिता महाराज दशरथने स्वयं कामपीड़ित होनेके कारण कैकेयीका प्रिय करनेकी इच्छासे श्रीरामका अभिषेक नहीं किया॥ १२½॥

'श्रीरामचन्द्रजी जब अभिषेकके लिये पिताके समीप आये, तब कैकेयीने मेरे उन पतिदेवसे तुरंत यह बात कही॥ १३½॥

'रघुनन्दन! तुम्हारे पिताने जो आज्ञा दी है, इसे मेरे मुँहसे सुनो। यह निष्कण्टक राज्य भरतको दिया जायगा, तुम्हें तो चौदह वर्षोंतक वनमें ही निवास करना होगा। काकुत्स्थ! तुम वनको जाओ और पिताको असत्यके बन्धनसे छुड़ाओ॥ १४-१५½॥

'किसीसे भी भय न माननेवाले श्रीरामने कैकेयीकी वह बात सुनकर कहा—'बहुत अच्छा'। उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। मेरे स्वामी दृढ़तापूर्वक अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले हैं॥ १६½॥

'श्रीराम केवल देते हैं, किसीसे कुछ लेते नहीं। वे सदा सत्य बोलते हैं, झूठ नहीं। ब्राह्मण! यह श्रीरामचन्द्रजीका सर्वोत्तम व्रत है, जिसे उन्होंने धारण कर रखा है॥ १७½॥

'श्रीरामके सौतेले भाई लक्ष्मण बड़े पराक्रमी हैं। समरभूमिमें शत्रुओंका संहार करनेवाले पुरुषसिंह लक्ष्मण श्रीरामके सहायक हैं, बन्धु हैं, ब्रह्मचारी और उत्तम व्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हैं॥ १८-१९॥

'श्रीरघुनाथजी मेरे साथ जब वनमें आने लगे, तब लक्ष्मण भी हाथमें धनुष लेकर उनके पीछे हो लिये। इस प्रकार मेरे और अपने छोटे भाईके साथ श्रीराम इस दण्डकारण्यमें आये हैं। वे दृढ़प्रतिज्ञ तथा नित्य-निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं और सिरपर जटा धारण किये

तपस्वीके वेशमें यहाँ रहते हैं॥ २०½ ॥

'द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार हम तीनों कैकेयीके कारण राज्यसे वञ्चित हो इस गम्भीर वनमें अपने ही बलके भरोसे विचरते हैं। आप यहाँ ठहर सकें तो दो घड़ी विश्राम करें। अभी मेरे स्वामी प्रचुरमात्रामें जंगली फल-मूल लेकर आते होंगे॥ २१-२२½ ॥

'रुरु, गोह और जंगली सूअर आदि हिंसक पशुओंका वध करके तपस्वी जनोंके उपभोगमें आने योग्य बहुत-सा फल-मूल लेकर वे अभी आयँगे (उस समय आपका विशेष सत्कार होगा)। ब्रह्मन्! अब आप भी अपने नाम-गोत्र और कुलका ठीक-ठीक परिचय दीजिये। आप अकेले इस दण्डकारण्यमें किसलिये विचरते हैं!'॥ २३-२४॥

श्रीरामपत्नी सीताके इस प्रकार पूछनेपर महाबली राक्षसराज रावणने अत्यन्त कठोर शब्दोंमें उत्तर दिया—

'सीते! जिसके नामसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोक थर्रा उठते हैं, मैं वही राक्षसोंका राजा रावण हूँ॥ २६ ॥

'अनिन्द्यसुन्दरि! तुम्हारे अङ्गोंकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनपर रेशमी साड़ी शोभा पा रही है। तुम्हें देखकर अब मेरा मन अपनी स्त्रियोंकी ओर नहीं जाता है॥ २७॥

'मैं इधर-उधरसे बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंको हर लाया हूँ। उन सबमें तुम मेरी पटरानी बनो। तुम्हारा भला हो॥ २८॥

'मेरी राजधानीका नाम लङ्का है। वह महापुरी समुद्रके बीचमें एक पर्वतके शिखरपर बसी हुई है। समुद्रने उसे चारों ओरसे घेर रखा है॥ २९॥

'सीते! वहाँ रहकर तुम मेरे साथ नाना प्रकारके वनोंमें विचरण करोगी। भामिनि! फिर तुम्हारे मनमें इस वनवासकी इच्छा कभी नहीं होगी॥ ३०॥

'सीते! यदि तुम मेरी भार्या हो जाओगी तो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित पाँच हजार दासियाँ सदा तुम्हारी सेवा किया करेंगी'॥ ३१॥

रावणके ऐसा कहनेपर निर्दोष अङ्गोंवाली जनकनन्दिनी सीता कुपित हो उठीं और राक्षसका तिरस्कार करके उसे यों उत्तर देने लगीं—॥ ३२॥

'मेरे पतिदेव भगवान् श्रीराम महान् पर्वतके समान अविचल हैं, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी हैं और महासागरके समान प्रशान्त हैं, उन्हें कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता। मैं तन-मन-प्राणसे उन्हींका अनुसरण करनेवाली तथा उन्हींकी अनुरागिणी हूँ॥ ३३॥

'श्रीरामचन्द्रजी समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, वटवृक्षकी भाँति सबको अपनी छायामें आश्रय देनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और महान् सौभाग्यशाली हैं। मैं उन्हींकी अनन्य अनुरागिणी हूँ॥ ३४॥

'उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी है। वे सिंहके समान पाँव बढ़ाते हुए बड़े गर्वके साथ चलते हैं और सिंहके ही समान पराक्रमी हैं। मैं उन पुरुषसिंह श्रीराममें ही अनन्य भक्ति रखनेवाली हूँ॥ ३५॥

'राजकुमार श्रीरामका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है। वे जितेन्द्रिय हैं और उनका यश महान् है। उन महाबाहु श्रीराममें ही दृढ़तापूर्वक मेरा मन लगा हुआ है॥ ३६॥

'पापी निशाचर! तू सियार है और मैं सिंहिनी हूँ। मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ। क्या तू यहाँ मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है। अरे! जैसे सूर्यकी प्रभापर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता॥ ३७॥

'अभागे राक्षस! तेरा इतना साहस! तू श्रीरघुनाथजीकी प्यारी पत्नीका अपहरण करना चाहता है! निश्चय ही तुझे बहुत-से सोनेके वृक्ष दिखायी देने लगे हैं—अब तू मौतके निकट जा पहुँचा है॥ ३८॥

'तू श्रीरामकी प्यारी पत्नीको हस्तगत करना चाहता है। जान पड़ता है, अत्यन्त वेगशाली मृगवैरी भूखे सिंह और विषधर सर्पके मुखसे उनके दाँत तोड़ लेना चाहता है, पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलको हाथसे उठाकर ले जानेकी इच्छा करता है, कालकूट विषको पीकर कुशलपूर्वक लौट जानेकी अभिलाषा रखता है तथा आँखको सूईसे पोंछता और छुरेको जीभसे चाटता है॥

'क्या तू अपने गलेमें पत्थर बाँधकर समुद्रको पार करना चाहता है? सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको अपने दोनों हाथोंसे हर लानेकी इच्छा करता है? जो श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पत्नीपर बलात् करनेको उतारू हुआ है॥ ४२½ ॥

'यदि तू कल्याणमय आचारका पालन करनेवाली श्रीरामकी भार्याका अपहरण करना चाहता है तो अवश्य ही जलती हुई आगको देखकर भी तू उसे कपड़ेमें बाँधकर ले जानेकी इच्छा करता है॥ ४३½ ॥

'अरे तू श्रीरामकी भार्याको, जो सर्वथा उन्हींके योग्य है, हस्तगत करना चाहता है, तो निश्चय ही लोहमय

मुखवाले शूलोंकी नोकपर चलनेकी अभिलाषा करता है॥ ४४॥

'वनमें रहनेवाले सिंह और सियारमें, समुद्र और छोटी नदीमें तथा अमृत और काँजीमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराममें और तुझमें है॥ ४५॥

'सोने और सीसेमें, चन्दनमिश्रित जल और कीचड़में तथा वनमें रहनेवाले हाथी और बिलावमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुझमें है॥ ४६॥

'गरुड़ और कौएमें, मोर और जलकाकमें तथा वनवासी हंस और गीधमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुझमें है॥ ४७॥

'जिस समय सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके समान प्रभावशाली श्रीरामचन्द्रजी हाथमें धनुष और बाण लेकर खड़े हो जायँगे, उस समय तू मेरा अपहरण करके भी मुझे पचा नहीं सकेगा, ठीक उसी तरह जैसे मक्खी घी पीकर उसे पचा नहीं सकती'॥ ४८॥

सीताके मनमें कोई दुर्भाव नहीं था तो भी उस राक्षससे यह अत्यन्त दुःखजनक बात कहकर सीता रोषसे काँपने लगीं। शरीरके कम्पनसे कृशाङ्गी सीता हवासे हिलायी गयी कदलीके समान व्यथित हो उठीं॥ ४९॥

सीताको काँपती देख मौतके समान प्रभाव रखनेवाला रावण उनके मनमें भय उत्पन्न करनेके लिये अपने कुल, बल, नाम और कर्मका परिचय देने लगा॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

रावणके द्वारा अपने पराक्रमका वर्णन और सीताद्वारा उसको कड़ी फटकार

सीताके ऐसा कहनेपर रावण रोषमें भर गया और ललाटमें भौंहें टेढ़ी करके वह कठोर वाणीमें बोला—॥ १॥

'सुन्दरि! मैं कुबेरका सौतेला भाई परम प्रतापी दशग्रीव रावण हूँ। तुम्हारा भला हो॥ २॥

'जैसे प्रजा मौतके भयसे सदा डरती रहती है, उसी प्रकार देवता, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और नाग सदा जिससे भयभीत होकर भागते हैं, जिसने किसी कारणवश अपने सौतेले भाई कुबेरके साथ द्वन्द्वयुद्ध किया और क्रोधपूर्वक पराक्रम करके रणभूमिमें उन्हें परास्त कर दिया था, वही रावण मैं हूँ॥ ३-४॥

'मेरे ही भयसे पीड़ित हो नरवाहन कुबेरने अपनी समृद्धिशालिनी पुरी लङ्काका परित्याग करके इस समय पर्वतश्रेष्ठ कैलासकी शरण ली है॥ ५॥

'भद्रे! उनका सुप्रसिद्ध पुष्पक नामक सुन्दर विमान, जो इच्छाके अनुसार चलनेवाला है, मैंने पराक्रमसे जीत लिया है और उसी विमानके द्वारा मैं आकाशमें विचरता हूँ॥ ६॥

'मिथिलेशकुमारी! जब मुझे रोष चढ़ता है, उस समय इन्द्र आदि सब देवता मेरा मुँह देखकर ही भयसे थर्रा उठते हैं और इधर-उधर भाग जाते हैं॥ ७॥

'जहाँ मैं खड़ा होता हूँ, वहाँ हवा डरकर धीरे-धीरे चलने लगती है। मेरे भयसे आकाशमें प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य भी चन्द्रमाके समान शीतल हो जाता है॥ ८॥

'जिस स्थानपर मैं ठहरता या भ्रमण करता हूँ, वहाँ वृक्षोंके पत्तेतक नहीं हिलते और नदियोंका पानी स्थिर हो जाता है॥ ९॥

'समुद्रके उस पार लङ्का नामक मेरी सुन्दर पुरी है, जो इन्द्रकी अमरावतीके समान मनोहर तथा घोर राक्षसोंसे भरी हुई है॥ १०॥

'उसके चारों ओर बनी हुई सफेद चहारदिवारी उस पुरीकी शोभा बढ़ाती है। लङ्कापुरीके महलोंके दालान, फर्श आदि सोनेके बने हैं और उसके बाहरी दरवाजे वैदूर्यमय हैं। वह पुरी बहुत ही रमणीय है॥ ११॥

'हाथी, घोड़े और रथोंसे वहाँकी सड़कें भरी रहती हैं। भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनि गूँजा करती है। सब प्रकारके मनोवाञ्छित फल देनेवाले वृक्षोंसे लङ्कापुरी व्याप्त है। नाना प्रकारके उद्यान उसकी शोभा बढ़ाते हैं॥ १२॥

'राजकुमारी सीते! तुम मेरे साथ उस पुरीमें चलकर निवास करो। मनस्विनि! वहाँ रहकर तुम मानवी स्त्रियोंको भूल जाओगी॥ १३॥

'सुन्दरि! लङ्कामें दिव्य और मानुष-भोगोंका उपभोग करती हुई तुम उस मनुष्य रामका कभी स्मरण नहीं करोगी, जिसकी आयु अब समाप्त हो चली है॥ १४॥

'विशाललोचने! राजा दशरथने अपने प्यारे पुत्रको राज्यपर बिठाकर जिस अल्पपराक्रमी ज्येष्ठ पुत्रको वनमें भेज दिया, उस राज्यभ्रष्ट, बुद्धिहीन एवं तपस्यामें लगे हुए तापस रामको लेकर क्या करोगी?॥ १५-१६॥

'यह राक्षसोंका स्वामी स्वयं तुम्हारे द्वारपर आया है, तुम इसकी रक्षा करो, इसे मनसे चाहो। यह कामदेवके बाणोंसे पीड़ित है। इसे ठुकराना तुम्हारे लिये उचित नहीं है॥ १७॥

'भीरु! मुझे ठुकराकर तुम उसी तरह पश्चात्ताप करोगी, जैसे पुरूरवाको लात मारकर उर्वशी पछतायी थी॥ १८॥

'सुन्दरि! युद्धमें मनुष्यजातीय राम मेरी एक अङ्गुलिके बराबर भी नहीं है। तुम्हारे भाग्यसे मैं आ गया हूँ। तुम मुझे स्वीकार करो'॥ १९॥

रावणके ऐसा कहनेपर विदेहकुमारी सीताके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने उस एकान्त स्थानमें राक्षसराज रावणसे कठोर वाणीमें कहा—॥ २०॥

'अरे! भगवान् कुबेर तो सम्पूर्ण देवताओंके वन्दनीय हैं। तू उन्हें अपना भाई बताकर ऐसा पापकर्म कैसे करना चाहता है?॥ २१॥

'रावण! जिनका तुझ-जैसा क्रूर, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा है, वे सब राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायँगे॥ २२॥

'इन्द्रकी पत्नी शचीका अपहरण करके सम्भव है कोई जीवित रह जाय; किंतु रामपत्नी मुझ सीताका हरण करके कोई कुशलसे नहीं रह सकता॥ २३॥

'राक्षस! वज्रधारी इन्द्रकी अनुपम रूपवती भार्या शचीका तिरस्कार करके सम्भव है कोई उसके बाद भी चिरकालतक जीवित रह जाय; परंतु मेरी-जैसी स्त्रीका अपमान करके तू अमृत पी ले तो भी तुझे जीते-जी छुटकारा नहीं मिल सकता'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

रावणद्वारा सीताका अपहरण, सीताका विलाप और उनके द्वारा जटायुका दर्शन

सीताके इस वचनको सुनकर प्रतापी दशमुख रावणने अपने हाथपर हाथ मारकर शरीरको बहुत बड़ा बना लिया॥

वह बातचीत करनेकी कला जानता था। उसने मिथिलेशकुमारी सीतासे फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'मेरी समझमें तुम पागल हो गयी हो, इसीलिये तुमने मेरे बल और पराक्रमकी बातें अनसुनी कर दी हैं॥

'अरी! मैं आकाशमें खड़ा हो इन दोनों भुजाओंसे ही सारी पृथ्वीको उठा ले जा सकता हूँ। समुद्रको पी जा सकता हूँ और युद्धमें स्थित हो मौतको भी मार सकता हूँ॥ ३॥

'काम तथा रूपसे उन्मत्त रहनेवाली नारी! यदि चाहूँ तो अपने तीखे बाणोंसे सूर्यको भी व्यथित कर दूँ और इस भूतलको भी विदीर्ण कर डालूँ। मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हूँ। तुम मेरी ओर देखो'॥ ४॥

ऐसा कहते-कहते क्रोधसे भरे हुए रावणकी आँखें, जिनके प्रान्तभाग काले थे, जलती आगके समान लाल हो गयीं॥ ५॥

कुबेरके छोटे भाई रावणने तत्काल अपने सौम्य रूपको त्यागकर तीखा एवं कालके समान विकराल अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया॥ ६॥

उस समय श्रीमान् रावणके सभी नेत्र लाल हो रहे थे। वह पक्के सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत था और महान् क्रोधसे आविष्ट हो नीलमेघके समान काला दिखायी देने लगा॥ ७॥

वह विशालकाय निशाचर परिव्राजकके उस छद्मवेशको त्यागकर दस मुखों और बीस भुजाओंसे संयुक्त हो गया॥ ८॥

उस समय राक्षसराज रावणने अपने सहज रूपको ग्रहण कर लिया और लाल रंगके वस्त्र पहनकर वह स्त्री-रत्न सीताकी ओर देखता हुआ खड़ा हो गया॥ ९॥

काले केशवाली मैथिली वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सूर्यकी प्रभा-सी जान पड़ती थीं। रावणने उनसे कहा—॥ १०॥

'वरारोहे! यदि तुम तीनों लोकोंमें विख्यात

पुरुषको अपना पति बनाना चाहती हो तो मेरा आश्रय लो। मैं ही तुम्हारे योग्य पति हूँ॥ ११॥

'भद्रे! मुझे सुदीर्घकालके लिये स्वीकार करो। मैं तुम्हारे लिये स्पृहणीय एवं प्रशंसनीय पति होऊँगा तथा कभी तुम्हारे मनके प्रतिकूल कोई बर्ताव नहीं करूँगा॥

'मनुष्य रामके विषयमें जो तुम्हारा अनुराग है, उसे त्याग दो और मुझसे स्नेह करो। अपनेको पण्डित (बुद्धिमती) माननेवाली मूढ़ नारी! जो राज्यसे भ्रष्ट है, जिसका मनोरथ सफल नहीं हुआ तथा जिसकी आयु सीमित है, उस राममें किन गुणोंके कारण तुम अनुरक्त हो॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

'जो एक स्त्रीके कहनेसे सुहृदोंसहित सारे राज्यका त्याग करके इस हिंसक जन्तुओंसे सेवित वनमें निवास करता है, उसकी बुद्धि कैसी खोटी है? (वह सर्वथा मूढ़ है)'॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

जो प्रिय वचन सुननेके योग्य और सबसे प्रिय वचन बोलनेवाली थीं, उन मिथिलेशकुमारी सीतासे ऐसा अप्रिय वचन कहकर कामसे मोहित हुए उस अत्यन्त दुष्टात्मा राक्षस रावणने निकट जाकर (माताके समान आदरणीया) सीताको पकड़ लिया, मानो बुधने आकाशमें अपनी माता रोहिणीको पकड़नेका दुस्साहस किया हो*॥ १५-१६॥

उसने बायें हाथसे कमलनयनी सीताके केशोंसहित मस्तकको पकड़ा तथा दाहिना हाथ उनकी दोनों जाँघोंके नीचे लगाकर उसके द्वारा उन्हें उठा लिया॥ १७॥

उस समय तीखी दाढ़ों और विशाल भुजाओंसे युक्त पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस कालके समान विकराल राक्षसको देखकर वनके समस्त देवता भयभीत होकर भाग गये॥ १८॥

इतनेहीमें गधोंसे जुता हुआ और गधोंके समान ही शब्द करनेवाला रावणका वह विशाल सुवर्णमय मायानिर्मित दिव्य रथ वहाँ दिखायी दिया॥ १९॥

रथके प्रकट होते ही जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले रावणने कठोर वचनोंद्वारा विदेहनन्दिनी सीताको डाँटा और पूर्वोक्त रूपसे गोदमें उठाकर तत्काल रथपर बिठा दिया॥ २०॥

रावणके द्वारा पकड़ी जानेपर यशस्विनी सीता दुःखसे व्याकुल हो गयीं और वनमें दूर गये हुए श्रीरामचन्द्रजीको 'हे राम!' कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगीं॥ २१॥

सीताके मनमें रावणकी कामना नहीं थी—वे उसकी ओरसे सर्वथा विरक्त थीं और उसकी कैदसे अपनेको छुड़ानेके लिये चोट खायी हुई नागिनकी तरह उस रथपर छटपटा रही थीं। उसी अवस्थामें कामपीड़ित राक्षस उन्हें लेकर आकाशमें उड़ चला॥ २२॥

राक्षसराज जब सीताको हरकर आकाशमार्गसे ले जाने लगा, उस समय उनका चित्त भ्रमित हो उठा। वे पगली-सी हो गयीं और दुःखसे आतुर-सी होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगीं—॥ २३॥

'हा महाबाहु लक्ष्मण! तुम गुरुजनोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हो। इस समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस मुझे हरकर लिये जाता है, किंतु तुम्हें इसका पता नहीं है॥ २४॥

'हा रघुनन्दन! आपने धर्मके लिये प्राणोंका मोह, शरीरका सुख तथा राज्य-वैभव सब कुछ छोड़ दिया है। यह राक्षस मुझे अधर्मपूर्वक हरकर लिये जा रहा है, परंतु आप नहीं देखते हैं॥ २५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले आर्यपुत्र! आप तो कुमार्गपर चलनेवाले उद्दण्ड पुरुषोंको दण्ड देकर उन्हें राहपर लानेवाले हैं, फिर ऐसे पापी रावणको क्यों नहीं दण्ड देते हैं॥ २६॥

'उद्दण्ड पुरुषके उद्दण्डतापूर्ण कर्मका फल तत्काल मिलता नहीं दिखायी देता है; क्योंकि इसमें काल भी सहकारी कारण होता है, जैसे कि खेतीके पकनेके लिये तदनुकूल समयकी अपेक्षा होती है॥ २७॥

'रावण! तेरे सिरपर काल नाच रहा है। उसीने तेरी विचारशक्तिको नष्ट कर दी है, इसीलिये तूने ऐसा पापकर्म किया है। तुझे श्रीरामसे वह भयंकर संकट प्राप्त हो, जो तेरे प्राणोंका अन्त कर डाले॥ २८॥

'हाय! इस समय कैकेयी अपने बन्धु-बान्धवोंसहित सफलमनोरथ हो गयी; क्योंकि धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले यशस्वी श्रीरामकी धर्मपत्नी होकर भी मैं एक राक्षसद्वारा हरी जा रही हूँ॥ २९॥

* यहाँ अभूतोपमालंकार है। बुध चन्द्रमाके पुत्र हैं और रोहिणी चन्द्रमाकी पत्नी। बुधने न तो कभी रोहिणीको पकड़ा है और न वे ऐसा कर ही सकते हैं। यहाँ यह दिखाया गया है कि यदि कदाचित् बुध कामवश अपनी माता रोहिणीको पकड़ लें तो वह जैसा घोर पाप होगा, वही पाप रावणने सीताको पकड़नेके कारण किया था।

'मैं जनस्थानमें खिले हुए कनेर वृक्षोंसे प्रार्थना करती हूँ, तुमलोग शीघ्र ही श्रीरामसे कहना कि सीताको रावण हर ले जा रहा है॥ ३०॥

'हंसों और सारसोंके कलरवोंसे मुखरित हुई गोदावरी नदीको मैं प्रणाम करती हूँ। माँ! तुम श्रीरामसे शीघ्र ही कह देना, सीताको रावण हर ले जा रहा है॥ ३१॥

'इस वनके विभिन्न वृक्षोंपर निवास करनेवाले जो-जो देवता हैं, उन सबको मैं नमस्कार करती हूँ। आप सब लोग शीघ्र ही मेरे स्वामीको सूचना दे दें कि आपकी स्त्रीको राक्षस हर ले गया॥ ३२॥

'यहाँ पशु-पक्षी आदि जो कोई भी नाना प्रकारके प्राणी रहते हों, उन सबकी मैं शरण लेती हूँ। वे मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजीसे कहें कि जो आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थी, वह सीता हरी गयी। आपकी सीताको असहाय अवस्थामें रावण हर ले गया॥ ३३-३४॥

'महाबाहु श्रीराम बड़े बलवान् हैं। वे मुझे परलोकमें भी गयी हुई जान लें तो यमराजके द्वारा अपहृत होनेपर भी मुझको पराक्रमपूर्वक वहाँसे लौटा लायेंगे'॥ ३५॥

उस समय अत्यन्त दुःखी हो करुणाजनक बातें कहकर विलाप करती हुई विशाललोचना सीताने एक वृक्षपर बैठे हुए गृध्रराज जटायुको देखा॥ ३६॥

रावणके वशमें पड़ जानेके कारण सुन्दरी सीता अत्यन्त भयभीत हो रही थीं। जटायुको देखकर वे दुःखभरी वाणीमें करुण क्रन्दन करने लगीं—॥ ३७॥

'आर्य जटायो! देखिये, यह पापाचारी राक्षसराज अनाथकी भाँति मुझे निर्दयतापूर्वक हरकर लिये जा रहा है॥ ३८॥

'परंतु आप इस क्रूर निशाचरको रोक नहीं सकते; क्योंकि यह बलवान् है, अनेक युद्धोंमें विजय पानेके कारण इसका दुस्साहस बढ़ा हुआ है। इसके हाथोंमें हथियार है और इसके मनमें दुष्टता भी भरी हुई है॥

'आर्य जटायो! जिस प्रकार मेरा अपहरण हुआ है, यह सब समाचार आप श्रीराम और लक्ष्मणसे ज्यों-का-ज्यों पूर्णरूपसे बता दीजियेगा'॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

जटायुका रावणको सीताहरणके दुष्कर्मसे निवृत्त होनेके लिये समझाना और अन्तमें युद्धके लिये ललकारना

जटायु उस समय सो रहे थे। उसी अवस्थामें उन्होंने सीताकी वह करुण पुकार सुनी। सुनते ही तुरंत आँख खोलकर उन्होंने विदेहनन्दिनी सीता तथा रावणको देखा॥

पक्षियोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् जटायुका शरीर पर्वत-शिखरके समान ऊँचा था और उनकी चोंच बड़ी ही तीखी थी। वे पेड़पर बैठे-ही-बैठे रावणको लक्ष्य करके यह शुभ वचन बोले—॥ २॥

'दशमुख रावण! मैं प्राचीन (सनातन) धर्ममें स्थित, सत्यप्रतिज्ञ और महाबलवान् गृध्रराज हूँ। मेरा नाम जटायु है। भैया! इस समय मेरे सामने तुम्हें ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये॥ ३½॥

'दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी तथा सब लोगोंके हितमें संलग्न रहनेवाले हैं॥ ४½॥

'ये उन्हीं जगदीश्वर श्रीरामकी यशस्विनी धर्मपत्नी हैं। इन सुन्दर शरीरवाली देवीका नाम सीता है, जिन्हें तुम हरकर ले जाना चाहते हो॥ ५½॥

'अपने धर्ममें स्थित रहनेवाला कोई भी राजा भला परायी स्त्रीका स्पर्श कैसे कर सकता है? महाबली रावण! राजाओंकी स्त्रियोंकी तो सभीको विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। परायी स्त्रीके स्पर्शसे जो नीच गति प्राप्त होनेवाली है, उसे अपने-आपसे दूर हटा दो॥

'धीर (बुद्धिमान्) वह कर्म न करे जिसकी दूसरे लोग निन्दा करें। जैसे पराये पुरुषोंके स्पर्शसे अपनी स्त्रीकी रक्षा की जाती है, उसी प्रकार दूसरोंकी स्त्रियोंकी भी रक्षा करनी चाहिये॥ ८॥

'पुलस्त्यकुलनन्दन! जिनकी शास्त्रोंमें चर्चा नहीं है ऐसे धर्म, अर्थ अथवा कामका भी श्रेष्ठ पुरुष केवल राजाकी देखादेखी आचरण करने लगते हैं (अतः राजाको अनुचित या अशास्त्रीय कर्ममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये)॥ ९॥

'राजा धर्म और कामका प्रवर्तक तथा द्रव्योंकी

उत्तम निधि है, अतः धर्म, सदाचार अथवा पाप—इनकी प्रवृत्तिका मूल कारण राजा ही है॥ १०॥

'राक्षसराज! जब तुम्हारा स्वभाव ऐसा पापपूर्ण है और तुम इतने चपल हो, तब पापीको देवताओंके विमानकी भाँति तुम्हें यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया?॥

'जिसके स्वभावमें कामकी प्रधानता है, उसके उस स्वभावका परिमार्जन नहीं किया जा सकता; क्योंकि दुष्टात्माओंके घरमें दीर्घकालके बाद भी पुण्यका आवास नहीं होता॥ १२॥

'जब महाबली धर्मात्मा श्रीराम तुम्हारे राज्य अथवा नगरमें कोई अपराध नहीं करते हैं, तब तुम उनका अपराध कैसे कर रहे हो?॥ १३॥

'यदि पहले शूर्पणखाका बदला लेनेके लिये चढ़कर आये हुए अत्याचारी खरका अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने वध किया तो तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ कि इसमें श्रीरामका क्या अपराध है, जिससे तुम उन जगदीश्वरकी पत्नीको हर ले जाना चाहते हो?॥ १४-१५॥

'रावण! अब शीघ्र ही विदेहकुमारी सीताको छोड़ दो, जिससे श्रीरामचन्द्रजी अपनी अग्निके समान भयंकर दृष्टिसे तुम्हें जलाकर भस्म न कर डालें। जैसे इन्द्रका वज्र वृत्रासुरका विनाश कर डाला था, उसी प्रकार श्रीरामकी रोषपूर्ण दृष्टि दग्ध कर डालेगी॥ १६॥

'तुमने अपने कपड़ेमें विषधर सर्पको बाँध लिया है, फिर भी इस बातको समझ नहीं पाते हो। तुमने अपने गलेमें मौतकी फाँसी डाल ली है, फिर भी यह तुम्हें सूझ नहीं रहा है॥ १७॥

'सौम्य! पुरुषको उतना ही बोझ उठाना चाहिये, जो उसे शिथिल न कर दे और वही अन्न भोजन करना चाहिये, जो पेटमें जाकर पच जाय, रोग न पैदा करे॥

'जो कार्य करनेसे न तो धर्म होता हो, न कीर्ति बढ़ती हो और न अक्षय यश ही प्राप्त होता हो, उल्टे शरीरको खेद हो रहा हो, उस कर्मका अनुष्ठान कौन करेगा?॥ १९॥

'रावण! बाप-दादोंसे प्राप्त इस पक्षियोंके राज्यका विधिवत् पालन करते हुए मुझे जन्मसे लेकर अबतक साठ हजार वर्ष बीत गये॥ २०॥

'अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और तुम नवयुवक हो। (मेरे पास कोई युद्धका साधन नहीं है, किंतु) तुम्हारे पास धनुष, कवच, बाण तथा रथ सब कुछ है, फिर भी तुम सीताको लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकोगे॥

'मेरे देखते-देखते तुम विदेहनन्दिनी सीताका बलपूर्वक अपहरण नहीं कर सकते; ठीक उसी तरह जैसे कोई न्यायसङ्गत हेतुओंसे सत्य सिद्ध हुई वैदिक श्रुतिको अपनी युक्तियोंके बलपर पलट नहीं सकता॥

'रावण! यदि शूरवीर हो तो युद्ध करो। मेरे सामने दो घड़ी ठहर जाओ; फिर जैसे पहले खर मारा गया था, उसी प्रकार तुम भी मेरे द्वारा मारे जाकर सदाके लिये सो जाओगे॥ २३॥

'जिन्होंने युद्धमें अनेक बार दैत्यों और दानवोंका वध किया है, वे चीरवस्त्रधारी भगवान् श्रीराम तुम्हारा भी शीघ्र ही युद्धभूमिमें विनाश करेंगे॥ २४॥

'इस समय मैं क्या कर सकता हूँ, वे दोनों राजकुमार बहुत दूर चले गये हैं। नीच! (यदि मैं उन्हें बुलाने जाऊँ तो) तुम उन दोनोंसे भयभीत होकर शीघ्र ही भाग जाओगे (आँखोंसे ओझल हो जाओगे), इसमें संशय नहीं है॥ २५॥

'कमलके समान नेत्रोंवाली ये शुभलक्षणा सीता श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पटरानी हैं। इन्हें मेरे जीते-जी तुम नहीं ले जाने पाओगे॥ २६॥

'मुझे अपने प्राण देकर भी महात्मा श्रीराम तथा राजा दशरथका प्रिय कार्य अवश्य करना होगा॥ २७॥

'दशमुख रावण! ठहरो, ठहरो! केवल दो घड़ी रुक जाओ, फिर देखो, जैसे डंठलसे फल गिरता है, उसी प्रकार तुम्हें इस उत्तम रथसे नीचे गिराये देता हूँ। निशाचर! अपनी शक्तिके अनुसार युद्धमें मैं तुम्हारा पूरा आतिथ्य-सत्कार करूँगा—तुम्हें भलीभाँति भेंटपूजा दूँगा'॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

जटायु तथा रावणका घोर युद्ध और रावणके द्वारा जटायुका वध

जटायुके ऐसा कहनेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे आँखें लाल किये अमर्षमें भरकर उन पक्षिराजकी ओर दौड़ा। उस समय उसके कानोंमें तपाये हुए सोनेके कुण्डल झलमला रहे थे॥ १॥

उस महासमरमें उन दोनोंका एक-दूसरेपर भयंकर प्रहार होने लगा, मानो आकाशमें वायुसे उड़ाये गये दो मेघखण्ड आपसमें टकरा गये हों॥ २॥

उस समय गृध्र और राक्षसमें वह बड़ा अद्‌भुत युद्ध होने लगा, मानो दो पंखधारी माल्यवान्[1] पर्वत एक-दूसरेसे भिड़ गये हों॥ ३॥

रावणने महाबली गृध्रराज जटायुपर नालीक, नाराच तथा तीखे अग्रभागवाले विकर्णी नामक महाभयंकर अस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ४॥

पक्षिराज गृध्रजातीय जटायुने युद्धमें रावणके उन बाणसमूहों तथा अन्य अस्त्रोंका आघात सह लिया॥ ५॥

साथ ही उन महाबली पक्षिशिरोमणिने अपने तीखे नखोंवाले पंजोंसे मार-मारकर रावणके शरीरमें बहुत-से घाव कर दिये॥ ६॥

तब दशग्रीवने क्रोधमें भरकर अपने शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे दस बाण हाथमें लिये, जो कालदण्डके समान भयंकर थे॥ ७॥

महापराक्रमी रावणने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये उन सीधे जानेवाले तीखे, पैने और भयंकर बाणोंद्वारा, जिनके मुखपर शल्य (काँटे) लगे हुए थे। गृध्रराजको क्षत-विक्षत कर दिया॥ ८॥

जटायुने देखा, जनकनन्दिनी सीता राक्षसके रथपर बैठी हैं और नेत्रोंसे आँसू बहा रही हैं। उन्हें देखकर गृध्रराज अपने शरीरमें लगते हुए उन बाणोंकी परवा न करके सहसा उस राक्षसपर टूट पड़े॥ ९॥

महातेजस्वी पक्षिराज जटायुने मोती-मणियोंसे विभूषित, बाणसहित रावणके धनुषको अपने दोनों पैरोंसे मारकर तोड़ दिया॥ १०॥

फिर तो रावण क्रोधसे भर गया और दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसने सैकड़ों-हजारों बाणोंकी झड़ी लगा दी॥ ११॥

उस समय उस युद्धस्थलमें गृध्रराजके चारों ओर बाणोंका जाल-सा तन गया। वे उस समय घोंसलेमें बैठे हुए पक्षीके समान प्रतीत होने लगे॥ १२॥

तब महातेजस्वी जटायुने अपने दोनों पंखोंसे ही उन बाणोंको उड़ा दिया और पंजोंकी मारसे पुनः उसके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १३॥

रावणका कवच अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। महातेजस्वी पक्षिराजने उसे भी पंखोंसे ही मारकर छिन्न-भिन्न कर दिया॥ १४॥

तत्पश्चात् उन बलवान् वीरने समराङ्गणमें पिशाचके-से मुखवाले उन वेगशाली गधोंको भी, जिनकी छातीपर सोनेके कवच बँधे हुए थे, मार डाला॥ १५॥

तदनन्तर अग्निकी भाँति दीप्तिमान्, मणिमय सोपानसे विचित्र अङ्गोंवाले तथा इच्छानुसार चलनेवाले उसके त्रिवेणुसम्पन्न[2] विशाल रथको भी तोड़-फोड़ डाला॥ १६॥

इसके बाद पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित छत्र और चवँरको भी उन्हें धारण करनेवाले राक्षसोंके साथ ही वेगपूर्वक मार गिराया। फिर उन महाबली तेजस्वी पक्षिराजने बड़े वेगसे चोंच मारकर रावणके सारथिका विशाल मस्तक भी धड़से अलग कर दिया॥ १७-१८॥

इस प्रकार जब धनुष टूटा, रथ चौपट हुआ, घोड़े मारे गये और सारथि भी कालके गालमें चला गया, तब रावण सीताको गोदमें लिये-लिये पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

रथ टूट जानेसे रावणको धरतीपर पड़ा देख सब प्राणी 'साधु-साधु' कहकर गृध्रराजकी प्रशंसा करने लगे॥

वृद्धावस्थाके कारण पक्षिराजको थका हुआ देख रावणको बड़ा हर्ष हुआ और वह मैथिलीको लिये हुए फिर आकाशमें उड़ चला॥ २१॥

जनककिशोरीको गोदमें लेकर जब रावण प्रसन्नतापूर्वक जाने लगा, उस समय उसके अन्य सब साधन तो नष्ट हो गये थे, किंतु एक तलवार उसके

---

१. माल्यवान् पर्वत दो माने गये हैं, एक तो दण्डकारण्यमें किष्किन्धाके समीप है और दूसरा मेरुपर्वतके निकट बताया गया है। ये दोनों पर्वत परस्पर इतने दूर हैं कि इनमें संघर्षकी कोई सम्भावना नहीं हो सकती। इसलिये 'सपक्ष' (पंखधारी) विशेषण दिया गया है। पाँखवाले पर्वत कदाचित् उड़कर एक-दूसरेके समीप पहुँच सकते हैं।

२. त्रिवेणु रथका वह अङ्ग है, जो जूएको धारण करता है। इसका पर्याय है युगन्धर।

पास शेष रह गयी थी। उसे जाते देख महातेजस्वी गृध्रराज जटायु उड़कर रावणकी ओर दौड़े और उसे रोककर इस प्रकार बोले—॥ २२-२३॥

'मन्दबुद्धि रावण! जिनके बाणोंका स्पर्श वज्रके समान है, उन श्रीरामकी इन धर्मपत्नी सीताको तुम अवश्य राक्षसोंके वधके लिये ही लिये जा रहे हो॥

'जैसे प्यासा मनुष्य जल पी रहा हो, उसी प्रकार तुम मित्र, बन्धु, मन्त्री, सेना तथा परिवारसहित यह विषपान कर रहे हो॥ २५॥

'अपने कर्मोंका परिणाम न जाननेवाले अज्ञानीजन जैसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी विनाशके गर्तमें गिरोगे॥ २६॥

'तुम कालपाशमें बँध गये हो। कहाँ जाकर उससे छुटकारा पाओगे? जैसे जलमें उत्पन्न होनेवाला मत्स्य मांसयुक्त बंसीको अपने वधके लिये ही निगल जाता है, उसी प्रकार तुम भी अपने मौतके लिये ही सीताका अपहरण करते हो॥ २७॥

'रावण! ककुत्स्थकुलभूषण रघुकुलनन्दन श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई दुर्धर्ष वीर हैं। वे तुम्हारे द्वारा अपने आश्रमपर किये गये इस अपमानजनक अपराधको कभी क्षमा नहीं करेंगे॥ २८॥

'तुम कायर और डरपोक हो। तुमने जैसा लोकनिन्दित कर्म किया है, यह चोरोंका मार्ग है। वीर पुरुष ऐसे मार्गका आश्रय नहीं लेते हैं॥ २९॥

'रावण! यदि शूरवीर हो तो दो घड़ी और ठहरो और मुझसे युद्ध करो। फिर तो तुम भी उसी प्रकार मरकर पृथ्वीपर सो जाओगे, जैसे तुम्हारा भाई खर सोया था॥ ३०॥

'विनाशके समय पुरुष जैसा कर्म करता है, तुमने भी अपने विनाशके लिये वैसे ही अधर्मपूर्ण कर्मको अपनाया है॥ ३१॥

'जिस कर्मको करनेसे कर्ताका पापके फलसे सम्बन्ध होता है, उस कर्मको कौन पुरुष निश्चितरूपसे कर सकता है। लोकपाल इन्द्र तथा भगवान् स्वयम्भू (ब्रह्मा) भी वैसा कर्म नहीं कर सकते'॥ ३२॥

इस प्रकार उत्तम वचन कहकर पराक्रमी जटायु उस राक्षस दशग्रीवकी पीठपर बड़े वेगसे जा बैठे और उसे पकड़कर अपने तीखे नखोंद्वारा चारों ओरसे चीरने लगे। मानो कोई हाथीवान् किसी दुष्ट हाथीके ऊपर सवार होकर उसे अंकुशसे छेद रहा हो॥ ३३-३४॥

नख, पाँख और चोंच—ये ही जटायुके हथियार थे। वे नखोंसे खरोंचते थे, पीठपर चोंच मारते थे और बाल पकड़कर उखाड़ लेते थे॥ ३५॥

इस प्रकार जब गृध्रराजने बारंबार क्लेश पहुँचाया, तब राक्षस रावण काँप उठा। क्रोधके मारे उसके ओठ फड़कने लगे॥ ३६॥

उस समय क्रोधसे भरे रावणने विदेहनन्दिनी सीताको बायीं गोदमें करके अत्यन्त पीड़ित हो जटायुपर तमाचेका प्रहार किया॥ ३७॥

परंतु उस वारको बचाकर शत्रुदमन गृध्रराज जटायुने अपनी चोंचसे मार-मारकर रावणकी दसों बायीं भुजाओंको उखाड़ लिया॥ ३८॥

उन बाँहोंके कट जानेपर बाँबीसे प्रकट होनेवाले विषकी ज्वाला-मालाओंसे युक्त सर्पोंकी भाँति तुरंत दूसरी नयी भुजाएँ सहसा उत्पन्न हो गयीं॥ ३९॥

तब पराक्रमी दशाननने सीताको तो छोड़ दिया और गृध्रराजको क्रोधपूर्वक मुक्कों और लातोंसे मारना आरम्भ किया॥ ४०॥

उस समय उन दोनों अनुपम पराक्रमी वीर राक्षसराज रावण और पक्षिराज जटायुमें दो घड़ीतक घोर संग्राम होता रहा॥ ४१॥

तदनन्तर रावणने तलवार निकाली और श्रीरामचन्द्रजीके लिये पराक्रम करनेवाले जटायुके दोनों पंख, पैर तथा पार्श्वभाग काट डाले॥ ४२॥

भयंकर कर्म करनेवाले उस राक्षसके द्वारा सहसा पंख काट लिये जानेपर महागृध्र जटायु पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे थोड़ी ही देरके मेहमान थे॥ ४३॥

अपने बान्धवके समान जटायुको खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख सीता दुःखसे व्याकुल हो उनकी ओर दौड़ीं॥ ४४॥

जटायुके शरीरकी कान्ति नीले मेघके समान काली थी। उनकी छातीका रंग श्वेत था। वे बड़े पराक्रमी थे, तो भी उस समय बुझे हुए दावानलके समान पृथ्वीपर पड़ गये। लङ्कापति रावणने उन्हें इस अवस्थामें देखा॥ ४५॥

तदनन्तर रावणके वेगसे रौंदे जाकर धराशायी हुए जटायुको पकड़कर चन्द्रमुखी जनकनन्दिनी सीता पुनः उस समय वहाँ रोने लगीं॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

रावणद्वारा सीताका अपहरण

रावणके द्वारा मारे गये गृध्रराजकी ओर देखकर चन्द्रमुखी सीता अत्यन्त दु:खी होकर विलाप करने लगीं— ॥ १ ॥

'मनुष्योंको सुख-दु:खकी प्राप्तिके सूचक लक्षण, स्वप्न, पक्षियोंके स्वर तथा उनके दायें-बायें दर्शन आदि शुभाशुभ निमित्त अवश्य दिखायी देते हैं॥ २ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! मेरे अपहरणकी सूचना देनेके लिये निश्चय ही ये मृग और पक्षी अशुभसूचक मार्गसे दौड़ रहे हैं, परंतु उनके द्वारा सूचित होनेपर भी अपने इस महान् संकटको अवश्य ही आप नहीं जानते हैं (क्योंकि जाननेपर आप इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे)॥ ३ ॥

'हा राम! मेरा कैसा अभाग्य है कि जो कृपा करके मुझे बचानेके लिये यहाँ आये थे, वे पक्षिप्रवर जटायु इस निशाचरद्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हैं॥

'हे राम! हे लक्ष्मण! अब आप ही दोनों मेरी रक्षा करें।' यों कहकर अत्यन्त डरी हुई सुन्दरी सीता इस प्रकार क्रन्दन करने लगीं, जिससे निकटवर्ती देवता और मनुष्य सुन सकें॥ ५ ॥

उनके पुष्पहार और आभूषण मसलकर छिन्न-भिन्न हो गये थे। वे अनाथकी भाँति विलाप कर रही थीं। उसी अवस्थामें राक्षसराज रावण उन विदेहकुमारी सीताकी ओर दौड़ा॥ ६ ॥

वे लिपटी हुई लताकी भाँति बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपट जातीं और बारंबार कहतीं—'मुझे इस संकटसे छुड़ाओ, छुड़ाओ।' इतनेहीमें वह निशाचरराज उनके पास जा पहुँचा॥ ७ ॥

वनमें श्रीरामसे रहित होकर सीताको राम-रामकी रट लगाती देख उस कालके समान विकराल राक्षसने अपने ही विनाशके लिये उनके केश पकड़ लिये। सीताका इस प्रकार तिरस्कार होनेपर समस्त चराचर जगत् मर्यादारहित तथा अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो गया॥

वहाँ वायुकी गति रुक गयी और सूर्यकी भी प्रभा फीकी पड़ गयी। श्रीमान् पितामह ब्रह्माजी दिव्य दृष्टिसे विदेहनन्दिनीका वह राक्षसके द्वारा केशाकर्षणरूप अपमान देखकर बोले—'बस अब कार्य सिद्ध हो गया'॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

सीताके केशोंका खींचा जाना देखकर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले वे सब महर्षि मन-ही-मन व्यथित हो उठे। साथ ही अकस्मात् रावणका विनाश निकट आया जान उनको बड़ा हर्ष हुआ॥ ११-१२ ॥

बेचारी सीता 'हा राम! हा राम' कहकर रो रही थीं। लक्ष्मणको भी पुकार रही थीं। उसी अवस्थामें राक्षसोंका राजा रावण उन्हें लेकर आकाशमार्गसे चल दिया॥ १३ ॥

तपाये हुए सोनेके आभूषणोंसे उनका सारा अङ्ग विभूषित था। वे पीले रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए थीं। अत: उस समय राजकुमारी सीता सुदाम पर्वतसे प्रकट हुई विद्युत्के समान प्रकाशित हो रही थीं॥ १४ ॥

उनके फहराते हुए पीले वस्त्रसे उपलक्षित रावण दावानलसे उद्भासित होनेवाले पर्वतके समान अधिक शोभा पाने लगा॥ १५ ॥

उन परम कल्याणी विदेहकुमारीके अङ्गोंमें जो कमलपुष्प थे, उनके किंचित् अरुण और सुगन्धित दल बिखर-बिखरकर रावणपर गिरने लगे॥ १६ ॥

आकाशमें उड़ता हुआ उनका सुवर्णके समान कान्तिमान् रेशमी पीताम्बर संध्याकालमें सूर्यकी किरणोंसे रँगे हुए ताम्रवर्णके मेघखण्डकी भाँति शोभा पाता था॥ १७ ॥

आकाशमें रावणके अङ्कमें स्थित सीताका निर्मल मुख श्रीरामके बिना नालरहित कमलकी भाँति शोभित नहीं होता था॥ १८ ॥

सुन्दर ललाट और मनोहर केशोंसे युक्त कमलके भीतरी भागके समान कान्तिमान्, चेचक आदिके दागसे रहित, श्वेत, निर्मल और दीप्तिमान् दाँतोंसे अलंकृत तथा सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित सीताका मुख आकाशमें रावणके अङ्कमें ऐसा जान पड़ता था मानो मेघोंकी काली घटाका भेदन करके चन्द्रमा उदित हुआ हो॥

चन्द्रमाके समान प्यारा दिखायी देनेवाला सीताका वह सुन्दर मुख तुरंतका रोया हुआ था। उसके आँसू पोंछ दिये गये थे। उसकी सुघड़ नासिका तथा ताँबे-जैसे लाल-लाल मनोहर ओठ थे। आकाशमें वह अपनी सुनहरी प्रभा बिखेर रहा था तथा राक्षसराजके वेगपूर्वक चलनेसे उसमें कम्पन हो रहा था। इस प्रकार वह मनोहर मुख भी श्रीरामके बिना उस समय दिनमें उगे हुए चन्द्रमाके समान शोभाहीन प्रतीत होता था॥

मिथिलेशकुमारी सीताका श्रीअङ्ग सुवर्णके समान दीप्तिमान् था और राक्षसराज रावणका शरीर बिलकुल काला था। उसकी गोदमें वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो काले हाथीको सोनेकी करधनी पहना दी गयी हो॥ २३॥

कमलके केसरकी भाँति पीली एवं सुनहरी कान्तिवाली जनककुमारी सीता तपे हुए सोनेके आभूषण धारण किये रावणकी पीठपर वैसी ही शोभा पा रही थीं, जैसे मेघमालाका आश्रय लेकर बिजली चमक रही हो॥ २४॥

विदेहनन्दिनीके आभूषणोंकी झनकारसे राक्षसराज रावण गर्जना करते हुए निर्मल नील मेघके समान प्रतीत होता था॥ २५॥

हरकर ले जायी जाती हुई सीताके सिरसे उनके केशोंमें गुँथे हुए फूल बिखरकर सब ओर पृथ्वीपर गिर रहे थे॥ २६॥

चारों ओर होनेवाली वह फूलोंकी वर्षा रावणके वेगसे उठी हुई वायुके द्वारा प्रेरित हो फिर उस दशाननपर ही आकर पड़ती थी॥ २७॥

कुबेरके छोटे भाई रावणके ऊपर जब वह फूलोंकी धारा गिरती थी, उस समय ऊँचे मेरुपर्वतपर उतरनेवाली निर्मल नक्षत्रमालाकी भाँति शोभा पाती थी॥ २८॥

विदेहनन्दिनीका रत्नजटित नूपुर उनके एक चरणसे खिसककर विद्युन्मण्डलके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २९॥

वृक्षोंके नूतन पल्लवोंके समान किंचित् अरुण वर्णवाली सीता उस काले-कलूटे राक्षसराजको उसी प्रकार सुशोभित कर रही थीं, जैसे हाथीको कसनेवाला सुनहरा रस्सा उसकी शोभा बढ़ाता हो॥ ३०॥

आकाशमें अपने तेजसे बहुत बड़ी उल्काके समान प्रकाशित होनेवाली सीताको रावण आकाशमार्गका ही आश्रय ले हर ले गया॥ ३१॥

जानकीके शरीरपर अग्निके समान प्रकाशमान् आभूषण थे। वे उस समय खन-खनकी आवाज करते हुए एक-एक करके गिरने लगे, मानो आकाशसे ताराएँ टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिर रही हों॥ ३२॥

उन विदेहनन्दिनी सीताके स्तनोंके बीचसे खिसककर गिरता हुआ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार गगनमण्डलसे उतरती हुई गङ्गाके समान प्रतीत हुआ॥ ३३॥

रावणके वेगसे उत्पन्न हुई उत्पातसूचक वायुके झकोरोंसे हिलते हुए वृक्षोंपर नाना प्रकारके पक्षी कोलाहल कर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे वृक्ष अपने सिरोंको हिला-हिलाकर संकेत करते हुए सीतासे कह रहे हैं कि 'तुम डरो मत'॥ ३४॥

जिनके कमल सूख गये थे और मत्स्य आदि जलचर जीव डर गये थे, वे पुष्करिणियाँ उत्साहहीन हुई मिथिलेशकुमारी सीताको मानो अपनी सखी मानकर उनके लिये शोक कर रही थीं॥ ३५॥

उस सीताहरणके समय रावणपर रोष-सा करके सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षी सब ओरसे सीताकी परछाहींका अनुसरण करते हुए दौड़ रहे थे॥ ३६॥

जब सीता हरी जाने लगी, उस समय वहाँके पर्वत झरनोंके रूपमें आँसू बहाते हुए, ऊँचे शिखरोंके रूपमें अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर मानो जोर-जोरसे चीत्कार कर रहे थे॥ ३७॥

सीताका हरण होता देख श्रीमान् सूर्यदेव दुःखी हो गये। उनकी प्रभा नष्ट-सी हो गयी तथा उनका मुख-मण्डल पीला पड़ गया॥ ३८॥

हाय! हाय! जब श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी विदेहनन्दिनी सीताको रावण हरकर लिये जा रहा है, तब यही कहना पड़ता है कि 'संसारमें धर्म नहीं है, सत्य भी कहाँ है? सरलता और दयाका भी सर्वथा लोप हो गया है।' इस प्रकार वहाँ झुंड-के-झुंड एकत्र हो सब प्राणी विलाप कर रहे थे। मृगोंके बच्चे भयभीत हो दीनमुखसे रो रहे थे॥ ३९-४०॥

श्रीरामको जोर-जोरसे पुकारती और वैसे भारी दुःखमें पड़ी हुई सीताको अपनी विलक्षण आँखोंसे बारंबार देख-देखकर भयके मारे वनदेवताओंके अङ्ग थर-थर काँपने लगे॥ ४१ १/२॥

विदेहनन्दिनी मधुर स्वरमें 'हा राम, हा लक्ष्मण' की पुकार करती हुई बारंबार भूतलकी ओर देख रही थीं। उनके केश खुलकर सब ओर फैल गये थे और ललाटकी बेंदी मिट गयी थी। वैसी अवस्थामें दशग्रीव रावण अपने ही विनाशके लिये मनस्विनी सीताको लिये जा रहा था॥ ४२-४३॥

उस समय मनोहर दाँत और पवित्र मुसकानवाली मिथिलेशकुमारी सीता, जो अपने बन्धुजनोंसे बिछुड़ गयी थीं, दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको न देखकर भयके भारसे व्यथित हो उठीं। उनके मुखमण्डलकी कान्ति फीकी पड़ गयी॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

सीताका रावणको धिक्कारना

रावणको आकाशमें उड़ते देख मिथिलेशकुमारी जानकी दु:खमग्न हो अत्यन्त उद्विग्न हो रही थीं। वे बहुत बड़े भयमें पड़ गयी थीं॥ १॥

रोष और रोदनके कारण उनकी आँखें लाल हो गयी थीं। हरी जाती हुई सीता करुणाजनक स्वरमें रोती हुई उस भयंकर नेत्रवाले राक्षसराजसे इस प्रकार बोलीं—

'ओ नीच रावण! क्या तुझे अपने इस कुकर्मसे लज्जा नहीं आती है, जो मुझे स्वामीसे रहित अकेली और असहाय जानकर चुराये लिये भागा जाता है?॥ ३॥

'दुष्टात्मन्! तू बड़ा कायर और डरपोक है। निश्चय ही मुझे हर ले जानेकी इच्छासे तूने ही मायाद्वारा मृगरूपमें उपस्थित हो मेरे स्वामीको आश्रमसे दूर हटा दिया था॥ ४॥

'मेरे श्वशुरके सखा वे जो बूढ़े जटायु मेरी रक्षा करनेके लिये उद्यत हुए थे, उनको भी तूने मार गिराया॥ ५॥

'नीच राक्षस! अवश्य तुझमें बड़ा भारी बल दिखायी देता है (क्योंकि—तू बूढ़े पक्षीको भी मार गिराता है!), तूने अपना नाम बताकर श्रीराम-लक्ष्मणके साथ युद्ध करके मुझे नहीं जीता है। ओ नीच! जहाँ कोई रक्षक न हो—ऐसे स्थानपर जाकर परायी स्त्रीके अपहरण-जैसा निन्दित कर्म करके तू लज्जित कैसे नहीं होता है?॥ ६-७॥

'तू तो अपनेको बड़ा शूर-वीर मानता है, परंतु संसारके सभी वीर पुरुष तेरे इस कर्मको घृणित, क्रूरतापूर्ण और पापरूप ही बतायेंगे॥ ८॥

'तूने पहले स्वयं ही जिसका बड़े तावसे वर्णन किया था, तेरे उस शौर्य और बलको धिक्कार है! कुलमें कलङ्क लगानेवाले तेरे ऐसे चरित्रको संसारमें सदा धिक्कार ही प्राप्त होगा॥ ९॥

'किंतु इस समय क्या किया जा सकता है? क्योंकि तू बड़े वेगसे भागा जा रहा है। अरे! दो घड़ी भी तो ठहर जा, फिर यहाँसे जीवित नहीं लौट सकेगा॥

'उन दोनों राजकुमारोंके दृष्टिपथमें आ जानेपर तू सेनाके साथ हो तो भी दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता॥ ११॥

'जैसे कोई आकाशचारी पक्षी वनमें प्रज्वलित हुए दावानलका स्पर्श सहन करनेमें समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार तू मेरे पति और उनके भाई दोनोंके बाणोंका स्पर्श किसी तरह सह नहीं सकता॥ १२॥

'रावण! यदि तू मुझे छोड़ नहीं देता है तो मेरे तिरस्कारसे कुपित हुए मेरे पतिदेव अपने भाईके साथ चढ़ आयँगे और तेरे विनाशका उपाय करेंगे, अत: तू अच्छी तरह अपनी भलाई सोच ले और मुझे छोड़ दे। यही तेरे लिये अच्छा होगा॥ १३½॥

'नीच! तू जिस संकल्प या अभिप्रायसे बलपूर्वक मेरा हरण करना चाहता है, तेरा वह अभिप्राय व्यर्थ होगा॥ १४½॥

'मैं अपने देवोपम पतिका दर्शन न पानेपर शत्रुके अधीनतामें अधिक कालतक अपने प्राणोंको नहीं धारण कर सकूँगी॥ १५½॥

'निश्चय ही तू अपने कल्याण और हितका विचार नहीं करता है। जैसे मरनेके समय मनुष्य स्वास्थ्यके विरोधी पदार्थोंका सेवन करने लगता है, वही दशा तेरी है। प्राय: सभी मरणासन्न मनुष्योंको पथ्य (हितकारक सलाह या भोजन) नहीं रुचता है॥ १६-१७॥

'निशाचर! मैं देखती हूँ, तेरे गलेमें कालकी फाँसी पड़ चुकी है, इसीसे इस भयके स्थानपर भी तू निर्भय बना हुआ है॥ १८॥

'रावण! अवश्य ही तू सुवर्णमय वृक्षोंको देख रहा है, रक्तका स्रोत बहानेवाली भयंकर वैतरणी नदीका दर्शन कर रहा है, भयानक असिपत्र-वनको भी देखना चाहता है तथा जिसमें तपाये हुए सुवर्णके समान फूल तथा श्रेष्ठ वैदूर्यमणि (नीलम) के समान पत्ते हैं और जिसमें लोहेके काँटे चिने गये हैं, उस तीखी शाल्मलिका भी अब तू शीघ्र ही दर्शन करेगा॥ १९-२०½॥

'निर्दयी निशाचर! तू महात्मा श्रीरामका ऐसा महान् अपराध करके विषपान किये हुए मनुष्यकी भाँति अधिक कालतक जीवन धारण नहीं कर सकेगा। रावण! तू अटल कालपाशसे बँध गया है॥ २१-२२॥

'मेरे महात्मा पतिसे बचकर तू कहाँ जाकर शान्ति पा सकेगा। जिन्होंने अपने भाई लक्ष्मणकी सहायता लिये बिना ही युद्धमें पलक मारते-मारते चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला, वे सम्पूर्ण अस्त्रोंका प्रयोग करनेमें

कुशल बलवान् वीर रघुनाथजी अपनी प्यारी पत्नीका अपहरण करनेवाले तुझ-जैसे पापीको तीखे बाणोंद्वारा क्यों नहीं कालके गालमें भेज देंगे'॥ २३-२४$\frac{1}{2}$॥

रावणके चंगुलमें फँसी हुई विदेहराजकुमारी सीता भय और शोकसे व्याकुल हो ये तथा और भी बहुत-से कठोर वचन सुनाकर करुण-स्वरमें विलाप करने लगीं॥ २५॥

अत्यन्त दुःखसे आतुर हो विलापपूर्वक बहुत-सी करुणाजनक बातें कहती और छूटनेके लिये नाना प्रकारकी चेष्टा करती हुई तरुणी भामिनी राजकुमारी सीताको वह पापी निशाचर हर ले गया। उस समय अधिक बोझके कारण उसका शरीर काँप रहा था॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

सीताका पाँच वानरोंके बीच अपने भूषण और वस्त्रको गिराना, रावणका लङ्कामें पहुँचकर सीताको अन्तःपुरमें रखना तथा जनस्थानमें आठ राक्षसोंको गुप्तचरके रूपमें रहनेके लिये भेजना

रावणके द्वारा हरी जाती हुई विदेहनन्दिनी सीताको उस समय कोई भी अपना सहायक नहीं दिखायी देता था। मार्गमें उन्होंने एक पर्वतके शिखरपर पाँच श्रेष्ठ वानरोंको बैठे देखा॥ १॥

तब सुन्दर अङ्गोंवाली विशाललोचना भामिनी सीताने यह सोचकर कि शायद ये भगवान् श्रीरामको कुछ समाचार कह सकें, अपने सुनहरे रंगकी रेशमी चादर उतारी और उसमें वस्त्र और आभूषण रखकर उसे उनके बीचमें फेंक दिया॥ २-३॥

रावण बड़ी घबराहटमें था, इसलिये सीताके इस कार्यको वह न जान सका। वे भूरी आँखोंवाले श्रेष्ठ वानर उस समय उच्च स्वरसे विलाप करती हुई विशाल-लोचना सीताकी ओर एकटक नेत्रोंसे देखने लगे॥ ४$\frac{1}{2}$॥

राक्षसराज रावण पम्पासरोवरको लाँघकर रोती हुई मैथिली सीताको साथ लिये लङ्कापुरीकी ओर चल दिया॥ ५$\frac{1}{2}$॥

निशाचर रावण बड़े हर्षमें भरकर सीताके रूपमें अपनी मौतको ही हरकर लिये जा रहा था। उसने वैदेहीके रूपमें तीखे दाढ़वाली महाविषैली नागिनको ही अपनी गोदमें उठा रखा था॥ ६$\frac{1}{2}$॥

वह धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह तीव्र गतिसे चलकर आकाशमार्गसे अनेकानेक वनों, नदियों, पर्वतों और सरोवरोंको तुरंत लाँघ गया॥ ७$\frac{1}{2}$॥

उसने तिमि नामक मत्स्यों और नाकोंके निवासस्थान एवं वरुणके अक्षय गृह समुद्रको भी, जो समस्त नदियोंका आश्रय है, पार कर लिया॥ ८$\frac{1}{2}$॥

विदेहनन्दिनी जगन्माता जानकीका अपहरण होते समय वरुणालय समुद्रको बड़ी घबराहट हुई। उससे उसकी उठती हुई लहरें शान्त हो गयीं। उसके भीतर रहनेवाली मछलियों और बड़े-बड़े सर्पोंकी गति रुक गयी॥ ९$\frac{1}{2}$॥

उस समय आकाशमें विचरनेवाले चारण यों बोले—'अब दशग्रीव रावणका यह अन्तकाल निकट आ पहुँचा है' तथा सिद्धोंने भी यही बात दुहरायी॥ १०$\frac{1}{2}$॥

सीता छटपटा रही थीं। रावणने अपनी साकार मृत्युकी भाँति उन्हें अङ्कमें लेकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया॥ ११$\frac{1}{2}$॥

वहाँ पृथक्-पृथक् विशाल राजमार्ग बने हुए थे। पुरीके द्वारपर बहुत-से राक्षस इधर-उधर फैले हुए थे तथा उस नगरीका विस्तार बहुत बड़ा था। उसमें जाकर रावणने अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया॥ १२$\frac{1}{2}$॥

कजरारे नेत्रप्रान्तवाली सीता शोक और मोहमें डूबी हुई थीं। रावणने उन्हें अन्तःपुरमें रख दिया, मानो मयासुरने मूर्तिमती आसुरी मायाको वहाँ स्थापित कर दिया हो*॥ १३$\frac{1}{2}$॥

इसके बाद दशग्रीवने भयंकर आकारवाली

* रामायणतिलक नामक व्याख्याके विद्वान् लेखकने यह बताया है कि यहाँ जो सीताकी मायासे उपमा दी गयी है, उसके द्वारा यह अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि मायामयी सीता ही लङ्कामें आयी थीं; मुख्य सीता तो अग्निमें प्रविष्ट हो चुकी थीं। इसीलिये रावण इन्हें ला सका। मायारूपिणी होनेके कारण ही रावणको इनके स्वरूपका ज्ञान न हो सका।

पिशाचिनोंको बुलाकर कहा—'(तुम सब सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो।) कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञाके बिना सीताको देखने या इनसे मिलने न पाये॥ १४½॥

'उन्हें मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह तुरंत दी जाय; इसके लिये मेरी खुली आज्ञा है॥ १५½॥

'तुमलोगोंमेंसे जो कोई भी जानकर या बिना जाने विदेहकुमारी सीतासे कोई अप्रिय बात कहेगी, मैं समझूँगा, उसे अपनी जिंदगी प्यारी नहीं है'॥ १६½॥

राक्षसियोंको वैसी आज्ञा देकर प्रतापी राक्षसराज 'अब आगे क्या करना चाहिये' यह सोचता हुआ अन्तःपुरसे बाहर निकला और कच्चे मांसका आहार करनेवाले आठ महापराक्रमी राक्षसोंसे तत्काल मिला॥

उनसे मिलकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुए महापराक्रमी रावणने उसके बल और वीर्यकी प्रशंसा करके उनसे इस प्रकार कहा—॥ १९॥

'वीरो! तुमलोग नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लेकर शीघ्र ही जनस्थानको, जहाँ पहले खर रहता था, जाओ। वह स्थान इस समय उजाड़ पड़ा है॥ २०॥

'वहाँके सभी राक्षस मार डाले गये हैं। उस सूने जनस्थानमें तुमलोग अपने ही बल-पौरुषका भरोसा करके भयको दूर हटाकर रहो॥ २१॥

'मैंने वहाँ बहुत बड़ी सेनाके साथ महापराक्रमी खर और दूषणको बसा रखा था, किंतु वे सब-के-सब युद्धमें रामके बाणोंसे मारे गये॥ २२॥

'इससे मेरे मनमें अपूर्व क्रोध जाग उठा है और वह धैर्यकी सीमासे ऊपर उठकर बढ़ने लगा है; इसीलिये रामके साथ मेरा बड़ा भारी और भयंकर वैर ठन गया है॥ २३॥

'मैं अपने महान् शत्रुसे उस वैरका बदला लेना चाहता हूँ। उस शत्रुको संग्राममें मारे बिना मैं चैनसे सो नहीं सकूँगा॥ २४॥

'रामने खर और दूषणका वध किया है, अतः मैं भी इस समय उन्हें मारकर जब बदला चुका लूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी। जैसे निर्धन मनुष्य धन पाकर संतुष्ट होता है, उसी प्रकार मैं रामका वध करके शान्ति पा सकूँगा॥ २५॥

'जनस्थानमें रहकर तुमलोग रामचन्द्रका समाचार जानो और वे कब क्या कर रहे हैं, इसका ठीक-ठीक पता लगाते रहो और जो कुछ मालूम हो, उसकी सूचना मेरे पास भेज दिया करो॥ २६॥

'तुम सभी निशाचर सावधानीके साथ वहाँ जाना और रामके वधके लिये सदा प्रयत्न करते रहना॥ २७॥

'मुझे अनेक बार युद्धके मुहानेपर तुमलोगोंके बलका परिचय मिल चुका है; इसीलिये इस जनस्थानमें मैंने तुम्हीं लोगोंको रखनेका निश्चय किया है'॥ २८॥

रावणकी यह महान् प्रयोजनसे भरी हुई प्रिय बातें सुनकर वे आठों राक्षस उसे प्रणाम करके अदृश्य हो एक साथ ही लङ्काको छोड़कर जनस्थानकी ओर प्रस्थित हो गये॥ २९॥

तदनन्तर मिथिलेशकुमारी सीताको पाकर उन्हें राक्षसियोंकी देख-रेखमें सौंपकर रावणको बड़ा हर्ष हुआ। श्रीरामके साथ भारी वैर ठानकर वह राक्षस मोहवश आनन्द मानने लगा॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

रावणका सीताको अपने अन्तःपुरका दर्शन कराना और अपनी भार्या बन जानेके लिये समझाना

इस प्रकार आठ महाबली भयंकर राक्षसोंको जनस्थानमें जानेकी आज्ञा दे रावणने विपरीत बुद्धिके कारण अपनेको कृतकृत्य माना॥ १॥

वह विदेहकुमारी सीताका स्मरण करके काम-बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था; अतः उन्हें देखनेके लिये उसने बड़ी उतावलीके साथ अपने रमणीय अन्तःपुरमें प्रवेश किया॥ २॥

उस भवनमें प्रवेश करके राक्षसोंके राजा रावणने देखा कि सीता राक्षसियोंके बीचमें बैठकर दुःखमें डूबी हुई हैं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही है और वे शोकके दुस्सह भारसे अत्यन्त पीड़ित एवं दीन हो वायुके वेगसे आक्रान्त हो समुद्रमें डूबती हुई नौकाके समान जान पड़ती हैं। मृगोंके यूथसे बिछुड़कर कुत्तोंसे घिरी हुई अकेली हरिणीके समान

दिखायी देती हैं॥ ३-४½ ॥

शोकवश दीन और विवश हो नीचे मुँह किये बैठी हुई सीताके पास पहुँचकर राक्षसोंके राजा निशाचर रावणने उन्हें जबर्दस्ती अपने देवगृहके समान सुन्दर भवनका दर्शन कराया॥ ५-६ ॥

वह ऊँचे-ऊँचे महलों और सातमंजिले मकानोंसे भरा हुआ था। उसमें सहस्रों स्त्रियाँ निवास करती थीं। झुंड-के-झुंड नाना जातिके पक्षी वहाँ कलरव करते थे। नाना प्रकारके रत्न उस अन्तःपुरकी शोभा बढ़ाते थे॥ ७ ॥

उसमें बहुत-से मनोहर खंभे लगे थे, जो हाथीदाँत, पक्के सोने, स्फटिकमणि, चाँदी, हीरा और वैदूर्यमणि (नीलम) से जटित होनेके कारण बड़े विचित्र दिखायी देते थे॥ ८ ॥

उस महलमें दिव्य दुन्दुभियोंका मधुर घोष होता रहता था। उस अन्तःपुरको तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे सजाया गया था। रावण सीताको साथ लेकर सोनेकी बनी हुई विचित्र सीढ़ीपर चढ़ा॥ ९ ॥

वहाँ हाथीदाँत और चाँदीकी बनी हुई खिड़कियाँ थीं, जो बड़ी सुहावनी दिखायी देती थीं। सोनेकी जालियोंसे ढकी हुई प्रासादमालाएँ भी दृष्टिगोचर होती थीं॥ १० ॥

उस महलमें जो भूभाग (फर्श) थे, वे सुर्खी-चूनाके पक्के बनाये गये थे और उनमें मणियाँ जड़ी गयी थीं, जिनसे वे सब-के-सब विचित्र दिखायी देते थे। दशग्रीवने अपने महलकी वे सारी वस्तुएँ मैथिलीको दिखायीं॥ ११ ॥

रावणने बहुत-सी बावड़ियाँ और भाँति-भाँतिके फूलोंसे आच्छादित बहुत-सी पोखरियाँ भी सीताको दिखायीं। सीता वह सब देखकर शोकमें डूब गयीं॥ १२ ॥

वह पापात्मा निशाचर विदेहनन्दिनी सीताको अपना सारा सुन्दर भवन दिखाकर उन्हें लुभानेकी इच्छासे इस प्रकार बोला— ॥ १३ ॥

'सीते! मेरे अधीन बत्तीस करोड़ राक्षस हैं। यह संख्या बूढ़े और बालक निशाचरोंको छोड़कर बतायी गयी है। भयंकर कर्म करनेवाले इन सभी राक्षसोंका मैं ही स्वामी हूँ। अकेले मेरी सेवामें एक हजार राक्षस रहते हैं॥ १४-१५ ॥

'विशाललोचने! मेरा यह सारा राज्य और जीवन तुमपर ही अवलम्बित है (अथवा यह सब कुछ तुम्हारे चरणोंमें समर्पित है)। तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो॥ १६ ॥

'सीते! मेरा अन्तःपुर मेरी बहुत-सी सुन्दरी भार्याओंसे भरा हुआ है, तुम उन सबकी स्वामिनी बनो—प्रिये! मेरी भार्या बन जाओ॥ १७ ॥

'मेरे इस हितकर वचनको मान लो—इसे पसंद करो; इससे विपरीत विचारको मनमें लानेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? मुझे अङ्गीकार करो। मैं पीड़ित हूँ, मुझपर कृपा करो॥ १८ ॥

'समुद्रसे घिरी हुई इस लङ्काके राज्यका विस्तार सौ योजन है। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी इसे ध्वस्त नहीं कर सकते॥ १९ ॥

'देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों तथा ऋषियोंमें भी मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो पराक्रममें मेरी समानता कर सके॥ २० ॥

'राम तो राज्यसे भ्रष्ट, दीन, तपस्वी, पैदल चलनेवाले और मनुष्य होनेके कारण अल्प तेजवाले हैं, उन्हें लेकर क्या करोगी?॥ २१ ॥

'सीते! मुझको ही अपनाओ! मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ। भीरु! जवानी सदा रहनेवाली नहीं है, अतः यहाँ रहकर मेरे साथ रमण करो॥ २२ ॥

'वरानने! सीते! अब तुम रामके दर्शनका विचार छोड़ दो। इस राममें इतनी शक्ति कहाँ है कि यहाँतक आनेका मनोरथ भी कर सके॥ २३ ॥

'आकाशमें महान् वेगसे बहनेवाली वायुको रस्सियोंमें नहीं बाँधा जा सकता अथवा प्रज्वलित अग्निकी निर्मल ज्वालाओंको हाथोंसे नहीं पकड़ा जा सकता॥ २४ ॥

'शोभने! मैं तीनों लोकोंमें किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो मेरी भुजाओंसे सुरक्षित तुमको पराक्रम करके यहाँसे ले जा सके॥ २५ ॥

'लङ्काके इस विशाल राज्यका तुम्हीं पालन करो। मुझ-जैसे राक्षस, देवता तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् तुम्हारे सेवक बनकर रहेंगे॥ २६ ॥

'स्नानके जलसे आर्द्र (अथवा लङ्काके राज्यपर अपना अभिषेक कराकर उसके जलसे आर्द्र) होकर संतुष्ट हो तुम अपने-आपको क्रीड़ाविनोदमें लगाओ। तुम्हारा पहलेका जो दुष्कर्म था, वह वनवासका कष्ट देकर समाप्त हो गया। अब जो तुम्हारा पुण्यकर्म शेष है, उसका फल यहाँ भोगो॥ २७ ॥

'मिथिलेशकुमारी! तुम मेरे साथ यहाँ रहकर

सब प्रकारके पुष्पहार, दिव्य गन्ध और श्रेष्ठ आभूषण आदिका सेवन करो॥ २८½ ॥

'सुन्दर कटिप्रदेशवाली सुन्दरि! वह सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाला पुष्पकविमान मेरे भाई कुबेरका था। उसे मैंने बलपूर्वक जीता है। यह अत्यन्त रमणीय, विशाल तथा मनके समान वेगसे चलनेवाला है। सीते! तुम उसके ऊपर मेरे साथ बैठकर सुखपूर्वक विहार करो॥ २९-३०½ ॥

'वरारोहे सुमुखि! तुम्हारा यह कमलके समान सुन्दर निर्मल और मनोहर दिखायी देनेवाला मुख शोकसे पीड़ित होनेके कारण शोभा नहीं पा रहा है'॥ ३१½ ॥

जब रावण ऐसी बातें कहने लगा, तब परम सुन्दरी सीता देवी चन्द्रमाके समान मनोहर अपने मुखको आँचलसे ढककर धीरे-धीरे आँसू बहाने लगीं॥ ३२½ ॥

सीता शोकसे अस्वस्थ-सी हो रही थीं, चिन्तासे उनकी कान्ति नष्ट-सी हो गयी थी और वे भगवान् रामका ध्यान करने लगी थीं। उस अवस्थामें उनसे वह वीर निशाचर रावण इस प्रकार बोला—॥ ३३½ ॥

'विदेहनन्दिनि! अपने पतिके त्याग और परपुरुषके अङ्गीकारसे जो धर्मलोपकी आशङ्का होती है, उसके कारण तुम्हें यहाँ लज्जा नहीं होनी चाहिये, इस तरहकी लाज व्यर्थ है। देवि! तुम्हारे साथ जो मेरा स्नेह सम्बन्ध होगा, यह आर्ष धर्मशास्त्रोंद्वारा* समर्थित है॥ ३४½ ॥

'तुम्हारे इन कोमल एवं चिकने चरणोंपर मैं अपने ये दसों मस्तक रख रहा हूँ। अब शीघ्र मुझपर कृपा करो। मैं सदा तुम्हारे अधीन रहनेवाला दास हूँ॥ ३५½ ॥

'मैंने कामाग्निसे संतप्त होकर ये बातें कही हैं। ये शून्य (निष्फल) न हों, ऐसी कृपा करो; क्योंकि रावण किसी स्त्रीको सिर झुकाकर प्रणाम नहीं करता, (केवल) तुम्हारे सामने इसका मस्तक झुका है'॥ ३६½ ॥

मिथिलेशकुमारी जानकीसे ऐसा कहकर कालके वशीभूत हुआ रावण मन-ही-मन मानने लगा कि 'यह अब मेरे अधीन हो गयी'॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ सर्ग

सीताका श्रीरामके प्रति अपना अनन्य अनुराग दिखाकर रावणको फटकारना तथा रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका उन्हें अशोकवाटिकामें ले जाकर डराना

रावणके ऐसा कहनेपर शोकसे कष्ट पाती हुई विदेहराजकुमारी सीता बीचमें तिनकेकी ओट करके उस निशाचरसे निर्भय होकर बोलीं—॥ १ ॥

'महाराज दशरथ धर्मके अचल सेतुके समान थे। वे अपनी सत्यप्रतिज्ञताके लिये सर्वत्र विख्यात थे। उनके पुत्र जो रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे भी अपने धर्मात्मापनके लिये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनकी भुजाएँ लंबी और आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वे ही मेरे आराध्य देवता और पति हैं॥ २-३ ॥

'उनका जन्म इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है। उनके कंधे सिंहके समान और तेज महान् है। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ आकर तेरे प्राणोंका विनाश कर डालेंगे॥ ४॥

'यदि तू उनके सामने बलपूर्वक मेरा अपहरण करता तो अपने भाई खरकी तरह जनस्थानके युद्धस्थलमें ही मारा जाकर सदाके लिये सो जाता॥ ५॥

'तूने जो इन घोर रूपधारी महाबली राक्षसोंकी चर्चा की है, श्रीरामके पास जाते ही इन सबका विष उतर जायगा; ठीक उसी तरह जैसे गरुड़के पास सारे सर्प विषके प्रभावसे रहित हो जाते हैं॥ ६॥

'जैसे बढ़ी हुई गङ्गाकी लहरें अपने कगारोंको काट गिराती हैं, उसी प्रकार श्रीरामके धनुषकी डोरीसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण तेरे शरीरको छिन्न-भिन्न कर डालेंगे॥ ७॥

'रावण! तू असुरों अथवा देवताओंसे यदि अवध्य

---

* ऐसा कहकर रावण देवी सीताको धोखा देना चाहता है। वास्तवमें ऐसे पापपूर्ण कृत्योंका समर्थन धर्मशास्त्रोंमें कहीं नहीं है। कुमारी कन्याका बलपूर्वक अपहरण शास्त्रोंमें राक्षसविवाह कहा गया है; किंतु वह भी निन्द्य ही माना गया है, यहाँ तो वह भी नहीं है। विवाहिता सती साध्वीका अपहरण घोर पाप माना गया है। इसी पापसे सोनेकी लङ्का मिट्टीमें मिल गयी और रावण दल-बल-कुल-परिवारसहित नष्ट हो गया।

है तो सम्भव है वे तुझे न मार सकें; किंतु भगवान् श्रीरामके साथ यह महान् वैर ठानकर तू किसी तरह जीवित नहीं छूट सकेगा॥ ८॥

'श्रीरघुनाथजी बड़े बलवान् हैं। वे तेरे शेष जीवनका अन्त कर डालेंगे। यूपमें बँधे हुए पशुकी भाँति तेरा जीवन दुर्लभ हो जायगा॥ ९॥

'राक्षस! यदि श्रीरामचन्द्रजी अपनी रोषभरी दृष्टिसे तुझे देख लें तो तू अभी उसी तरह जलकर खाक हो जायगा जैसे भगवान् शङ्करने कामदेवको भस्म किया था॥ १०॥

'जो चन्द्रमाको आकाशसे पृथ्वीपर गिराने या नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं अथवा जो समुद्रको भी सुखा सकते हैं, वे भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचकर सीताको भी छुड़ा सकते हैं॥ ११॥

'तू समझ ले कि तेरे प्राण अब चले गये। तेरी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो गयी। तेरे बल और इन्द्रियोंका भी नाश हो गया तथा तेरे ही पापके कारण तेरी यह लङ्का भी अब विधवा हो जायगी॥ १२॥

'तेरा यह पापकर्म तुझे भविष्यमें सुख नहीं भोगने देगा; क्योंकि तूने मुझे बलपूर्वक पतिके पाससे दूर हटाया है॥ १३॥

'मेरे स्वामी महान् तेजस्वी हैं और मेरे देवरके साथ अपने ही पराक्रमका भरोसा करके सूने दण्डकारण्यमें निर्भयतापूर्वक निवास करते हैं॥ १४॥

'वे युद्धमें बाणोंकी वर्षा करके तेरे शरीरसे बल, पराक्रम, घमंड तथा ऐसे उच्छृङ्खल आचरणको भी निकाल बाहर करेंगे॥ १५॥

'जब कालकी प्रेरणासे प्राणियोंका विनाश निकट आता है, उस समय मृत्युके अधीन हुए जीव प्रत्येक कार्यमें प्रमाद करने लगते हैं॥ १६॥

'अधम निशाचर! मेरा अपहरण करनेके कारण तेरे लिये भी वही काल आ पहुँचा है। तेरे अपने लिये, सारे राक्षसोंके लिये तथा इस अन्तःपुरके लिये भी विनाशकी घड़ी निकट आ गयी है॥ १७॥

'यज्ञशालाके बीचकी वेदीपर, जो द्विजातियोंके मन्त्रद्वारा पवित्र की गयी होती है तथा जिसे स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्र सुशोभित करते हैं, चाण्डाल अपना पैर नहीं रख सकता॥ १८॥

'उसी प्रकार मैं नित्य धर्मपरायण भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हूँ तथा दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्य-धर्मका पालन करती हूँ (अतः यज्ञवेदीके समान हूँ) और राक्षसाधम! तू महापापी है (अतः चाण्डालके तुल्य है); इसलिये मेरा स्पर्श नहीं कर सकता॥ १९॥

'जो सदा कमलके समूहोंमें राजहंसके साथ क्रीड़ा करती है, वह हंसी तृणोंमें रहनेवाले जलकाककी ओर कैसे दृष्टिपात करेगी॥ २०॥

'राक्षस! तू इस संज्ञाशून्य जड शरीरको बाँधकर रख ले या काट डाल। मैं स्वयं ही इस शरीर और जीवनको नहीं रखना चाहती॥ २१॥

'मैं इस भूतलपर अपने लिये निन्दा या कलङ्क देनेवाला कोई कार्य नहीं कर सकती।' रावणसे क्रोधपूर्वक यह अत्यन्त कठोर वचन कहकर विदेहकुमारी जानकी चुप हो गयीं; वे वहाँ फिर कुछ नहीं बोलीं॥ २२½॥

सीताका वह कठोर वचन रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उसे सुनकर रावणने उनसे भय दिखानेवाली बात कही—॥ २३½॥

'मनोहर हास्यवाली भामिनि! मिथिलेशकुमारी! मेरी बात सुन लो। मैं तुम्हें बारह महीनेका समय देता हूँ। इतने समयमें यदि तुम स्वेच्छापूर्वक मेरे पास नहीं आओगी तो मेरे रसोइये सबेरेका कलेवा तैयार करनेके लिये तुम्हारे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे'॥

सीतासे ऐसी कठोर बात कहकर शत्रुओंको रुलानेवाला रावण कुपित हो राक्षसियोंसे इस प्रकार बोला—॥ २६॥

'अपने विकराल रूपके कारण भयङ्कर दिखायी देनेवाली तथा रक्त-मांसका आहार करनेवाली राक्षसियो! तुमलोग शीघ्र ही इस सीताका अहंकार दूर करो'॥ २७॥

रावणके इतना कहते ही वे भयंकर दिखायी देनेवाली अत्यन्त घोर राक्षसियाँ हाथ जोड़े मैथिलीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं॥ २८॥

तब राजा रावण अपने पैरोंके धमाकेसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ-सा दो-चार पग चलकर उन भयानक राक्षसियोंसे बोला—॥ २९॥

'निशाचरियो! तुमलोग मिथिलेशकुमारी सीताको अशोकवाटिकामें ले जाओ और चारों ओरसे घेरकर वहाँ गूढ़ भावसे इसकी रक्षा करती रहो॥ ३०॥

'वहाँ पहले तो भयंकर गर्जन-तर्जन करके इसे डराना; फिर मीठे-मीठे वचनोंसे समझा-बुझाकर जंगलकी हथिनीकी भाँति इस मिथिलेशकुमारीको तुम

सब लोग वशमें लानेकी चेष्टा करना'॥ ३१ ॥

रावणके इस प्रकार आदेश देनेपर वे राक्षसियाँ मैथिलीको साथ लेकर अशोकवाटिकामें चली गयीं॥

वह वाटिका समस्त कामनाओंको फलरूपमें प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों तथा भाँति-भाँतिके फल-फूलवाले दूसरे-दूसरे वृक्षोंसे भी भरी थी तथा हर समय मदमत्त रहनेवाले पक्षी उसमें निवास करते थे॥ ३३ ॥

परंतु वहाँ जानेपर मिथिलेशकुमारी जानकीके अङ्ग-अङ्गमें शोक व्याप्त हो गया। राक्षसियोंके वशमें पड़कर उनकी दशा बाघिनोंके बीचमें घिरी हुई हरिणीके समान हो गयी थी॥ ३४॥

महान् शोकसे ग्रस्त हुई मिथिलेशनन्दिनी जानकी जालमें फँसी हुई मृगीके समान भयभीत हो क्षणभरके लिये भी चैन नहीं पाती थीं॥ ३५॥

विकराल रूप और नेत्रोंवाली राक्षसियोंकी अत्यन्त डाँट-फटकार सुननेके कारण मिथिलेशकुमारी सीताको वहाँ शान्ति नहीं मिली। वे भय और शोकसे पीड़ित हो प्रियतम पति और देवरका स्मरण करती हुई अचेत-सी हो गयीं॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

प्रक्षिप्त सर्ग*

ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवराज इन्द्रका निद्रासहित लङ्कामें जाकर सीताको दिव्य खीर अर्पित करना और उनसे विदा लेकर लौटना

जब सीताका लङ्कामें प्रवेश हो गया, तब पितामह ब्रह्माजीने संतुष्ट हुए देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'देवराज! तीनों लोकोंके हित और राक्षसोंके विनाशके लिये दुरात्मा रावणने सीताको लङ्कामें पहुँचा दिया॥ २॥

'पतिव्रता महाभागा जानकी सदा सुखमें ही पली हैं। इस समय वे अपने पतिके दर्शनसे वंचित हो गयी हैं और राक्षसियोंसे घिरी रहनेके कारण सदा उन्हींको अपने सामने देखती हैं। उनके हृदयमें अपने पतिके दर्शनकी तीव्र लालसा बनी हुई है॥ ३½॥

'लङ्कापुरी समुद्रके तटपर बसी हुई है। वहाँ रहती हुई सती-साध्वी सीताका पता श्रीरामचन्द्रजीको कैसे लगेगा॥ ४½॥

'सीता दुःखके साथ नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें डूबी रहती हैं। पतिके लिये इस समय वे अत्यन्त दुर्लभ हो गयी हैं। प्राणयात्रा (भोजन) नहीं करती हैं; अतः ऐसी दशामें निःसंदेह वे अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगी। सीताके प्राणोंका क्षय हो जानेपर हमारे उद्देश्यकी सिद्धिमें पुनः पूर्ववत् संदेह उपस्थित हो जायगा॥ ५-६॥

'अतः तुम शीघ्र ही यहाँसे जाकर लङ्कापुरीमें प्रवेश करके सुमुखी सीतासे मिलो और उन्हें उत्तम हविष्य प्रदान करो'॥ ७॥

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पाकशासन भगवान् इन्द्र निद्राको साथ लेकर रावणद्वारा पालित लङ्कापुरीमें आये॥ ८॥

वहाँ आकर इन्द्रने निद्रासे कहा—'तुम राक्षसोंको मोहित करो।' इन्द्रसे ऐसी आज्ञा पाकर देवी निद्रा बहुत प्रसन्न हुईं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्होंने राक्षसोंको मोह (निद्रा) में डाल दिया॥ ९½॥

इसी बीचमें सहस्त्र नेत्रधारी शचीपति देवराज इन्द्र अशोकवाटिकामें बैठी हुई सीताके पास गये और इस प्रकार बोले—॥ १०½॥

'पवित्र मुसकानवाली देवि! आपका भला हो। मैं देवराज इन्द्र यहाँ आपके पास आया हूँ। जनककिशोरी! मैं आपके उद्धारकार्यकी सिद्धिके लिये महात्मा श्रीरघुनाथजीकी सहायता करूँगा, अतः आप शोक न करें॥ ११-१२॥

'वे मेरे प्रसादसे बड़ी भारी सेनाके साथ समुद्रको पार करेंगे। शुभे! मैंने ही यहाँ इन राक्षसियोंको अपनी

* यह सर्ग प्रसंगके अनुकूल और उत्तम है। कुछ प्रतियोंमें यह सानुवाद प्रकाशित भी है, परंतु इसपर तिलक आदि संस्कृत टीकाएँ नहीं उपलब्ध होती हैं; इसलिये कुछ लोगोंने इसे प्रक्षिप्त माना है। उपयोगी होनेके कारण इसे भी यहाँ सानुवाद प्रकाशित किया जाता है।

मायासे मोहित किया है॥ १३॥

'विदेहनन्दिनी सीते! इसलिये मैं स्वयं ही यह भोजन—यह हविष्यान्न लेकर निद्राके साथ तुम्हारे पास आया हूँ॥ १४॥

'शुभे! रम्भोरु! यदि मेरे हाथसे इस हविष्यको लेकर खा लोगी तो तुम्हें हजारों वर्षोंतक भूख और प्यास नहीं सतायेगी'॥ १५॥

देवराजके ऐसा कहनेपर शङ्कित हुई सीताने उनसे कहा—'मुझे कैसे विश्वास हो कि आप शचीपति देवराज इन्द्र ही यहाँ पधारे हैं?॥ १६॥

'देवेन्द्र! मैंने श्रीराम और लक्ष्मणके समीप देवताओंके लक्षण अपनी आँखों देखे हैं। यदि आप साक्षात् देवराज हैं तो उन लक्षणोंको दिखाइये'॥ १७॥

सीताकी यह बात सुनकर शचीपति इन्द्रने वैसा ही किया। उन्होंने अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया—आकाशमें निराधार खड़े रहे। उनकी आँखोंकी पलकें नहीं गिरती थीं। उन्होंने जो वस्त्र धारण किया था, उसपर धूलका स्पर्श नहीं होता था। उनके कण्ठमें जो पुष्पमाला थी, उसके पुष्प कुम्हलाते नहीं थे। देवोचित लक्षणोंसे इन्द्रको पहचानकर सीता बहुत प्रसन्न हुईं॥ १८-१९॥

वे भगवान् श्रीरामके लिये रोती हुई बोलीं—'भगवन्! सौभाग्यकी बात है कि आज भाईसहित महाबाहु श्रीरामका नाम मेरे कानोंमें पड़ा है॥ २०॥

'मेरे लिये जैसे मेरे श्वशुर महाराज दशरथ तथा पिता मिथिलानरेश जनक हैं, उसी रूपमें मैं आज आपको देखती हूँ। मेरे पति आपके द्वारा सनाथ हैं॥ २१॥

'देवेन्द्र! आपकी आज्ञासे मैं यह पायसरूप हविष्य (दूधकी बनी हुई खीर), जिसे आपने दिया है, खाऊँगी। यह रघुकुलकी वृद्धि करनेवाला हो'॥ २२॥

इन्द्रके हाथसे उस खीरको लेकर उन पवित्र मुसकानवाली मैथिलीने मन-ही-मन पहले उसे अपने स्वामी श्रीराम और देवर लक्ष्मणको निवेदन किया और इस प्रकार कहा—॥ २३॥

'यदि मेरे महाबली स्वामी अपने भाईके साथ जीवित हैं तो यह भक्तिभावसे उन दोनोंके लिये समर्पित है।' इतना कहनेके पश्चात् उन्होंने स्वयं उस खीरको खाया॥ २४॥

इस प्रकार उस हविष्यको खाकर सुन्दर मुखवाली जानकीने भूख-प्यासके कष्टको त्याग दिया और इन्द्रके मुखसे श्रीराम तथा लक्ष्मणका समाचार पाकर वे जनकनन्दिनी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुईं॥ २५॥

तब निद्रासहित महात्मा देवराज इन्द्र भी प्रसन्न हो सीतासे विदा लेकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने निवासस्थान देवलोकको चले गये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें प्रक्षिप्त सर्ग पूरा हुआ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

श्रीरामका लौटना, मार्गमें अपशकुन देखकर चिन्तित होना तथा लक्ष्मणसे मिलनेपर उन्हें उलाहना दे सीतापर सङ्कट आनेकी आशङ्का करना

इधर मृगरूपसे विचरते हुए उस इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस मारीचका वध करके श्रीरामचन्द्रजी तुरंत ही आश्रमके मार्गपर लौटे॥ १॥

वे सीताको देखनेके लिये जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए आ रहे थे। इतनेहीमें पीछेकी ओरसे एक सियारिन बड़े कठोर स्वरमें चीत्कार करने लगी॥ २॥

गीदड़ीके उस स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीके मनमें कुछ शङ्का हुई। उसका स्वर बड़ा ही भयंकर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उसका अनुभव करके वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ ३॥

वे मन-ही-मन कहने लगे—'यह सियारिन जैसी बोली बोल रही है, इससे तो मुझे मालूम हो रहा है कि कोई अशुभ घटना घटित हो गयी। क्या विदेहनन्दिनी सीता कुशलसे होंगी? उन्हें राक्षस तो नहीं खा गये?॥

'मृगरूपधारी मारीचने जान-बूझकर मेरे स्वरका अनुसरण करते हुए जो आर्त-पुकार की थी, वह इसलिये कि शायद इसे लक्ष्मण सुन सकें॥ ५॥

'सुमित्रानन्दन लक्ष्मण वह स्वर सुनते ही सीताके ही भेजनेपर उसे अकेली छोड़कर तुरंत मेरे पास यहाँ पहुँचनेके लिये चल देंगे॥ ६॥

'राक्षसलोग तो सब-के-सब मिलकर सीताका वध अवश्य कर देना चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे यह मारीच राक्षस सोनेका मृग बनकर मुझे आश्रमसे दूर हटा ले आया था और मेरे बाणोंसे आहत होनेपर जो उसने आर्तनाद करते हुए कहा था कि 'हा लक्ष्मण! मैं मारा गया' इसमें भी उसका वही उद्देश्य छिपा था॥ ७-८॥

'वनमें हम दोनों भाइयोंके आश्रमसे अलग हो जानेपर क्या सीता सकुशल वहाँ रह सकेंगी? जनस्थानमें जो राक्षसोंका संहार हुआ है, उसके कारण सारे राक्षस मुझसे वैर बाँधे ही हुए हैं॥ ९॥

'आज बहुत-से भयङ्कर अपशकुन भी दिखायी देते हैं।' सियारिनकी बोली सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते हुए मनको वशमें रखनेवाले श्रीराम तुरंत लौटकर आश्रमकी ओर चले॥ १० १/२ ॥

मृगरूपधारी राक्षसके द्वारा अपनेको आश्रमसे दूर हटानेकी घटनापर विचार करके श्रीरघुनाथजी शङ्कितहृदयसे जनस्थानको आये॥ ११ १/२ ॥

उनका मन बहुत दु:खी था। वे दीन हो रहे थे। उसी अवस्थामें वनके मृग और पक्षी उन्हें बाँयें रखते हुए वहाँ आये और भयङ्कर स्वरमें अपनी बोली बोलने लगे॥ १२॥

उन महाभयङ्कर अपशकुनोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुरंत ही बड़े वेगसे अपने आश्रमकी ओर लौटे॥ १३॥

इतनेहीमें उन्हें लक्ष्मण आते दिखायी दिये। उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। थोड़ी ही देरमें निकट आकर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीसे मिले॥ १४॥

दु:ख और विषादमें डूबे हुए लक्ष्मणने दु:खी और विषादग्रस्त श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट की। उस समय राक्षसोंसे सेवित निर्जन वनमें सीताको अकेली छोड़कर आये हुए लक्ष्मणको देख भाई श्रीरामने उनकी निन्दा की॥ १५ १/२ ॥

लक्ष्मणका बायाँ हाथ पकड़कर रघुनन्दन आर्त-से हो गये और पहले कठोर तथा अन्तमें मधुर वाणीद्वारा इस प्रकार बोले—॥ १६ १/२ ॥

'अहो सौम्य लक्ष्मण! यह तुमने बहुत बुरा किया, जो सीताको अकेली छोड़कर यहाँ चले आये। क्या वहाँ सीता सकुशल होगी?॥ १७ १/२ ॥

'वीर! मुझे इस बातमें संदेह नहीं है कि वनमें विचरनेवाले राक्षसोंने जनककुमारी सीताको या तो सर्वथा नष्ट कर दिया होगा या वे उन्हें खा गये होंगे॥

'क्योंकि मेरे आस-पास बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं। पुरुषसिंह लक्ष्मण! क्या हमलोग जीती-जागती हुई जनकदुलारी सीताको पूर्णत: स्वस्थ एवं सकुशल पा सकेंगे?॥ १९-२०॥

'महाबली लक्ष्मण! ये मृगोंके झुंड (दाहिनी ओरसे आकर) जैसा अमङ्गल सूचित कर रहे हैं, ये गीदड़ जिस तरह भैरवनाद कर रहे हैं तथा जलती-सी प्रतीत होनेवाली सम्पूर्ण दिशाओंमें पक्षी जिस तरहकी बोली बोल रहे हैं—इन सबसे यही अनुमान होता है कि राजकुमारी सीता शायद ही कुशलसे हों॥ २१॥

'यह राक्षस मृगके समान रूप धारण करके मुझे लुभाकर दूर चला आया था। महान् परिश्रम करके जब मैंने इसे किसी तरह मारा, तब यह मरते ही राक्षस हो गया॥ २२॥

'लक्ष्मण! अत: मेरा मन अत्यन्त दीन और अप्रसन्न हो रहा है। मेरी बायीं आँख फड़क रही है, इससे जान पड़ता है, नि:संदेह आश्रमपर सीता नहीं है। उसे कोई हर ले गया, वह मारी गयी अथवा (किसी राक्षसके साथ) मार्गमें होगी'॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

मार्गमें अनेक प्रकारकी आशङ्का करते हुए लक्ष्मणसहित श्रीरामका आश्रममें आना और वहाँ सीताको न पाकर व्यथित होना

लक्ष्मणको दीन, संतोषशून्य तथा सीताको साथ लिये बिना आया देख धर्मात्मा दशरथनन्दन श्रीरामने पूछा—॥ १॥

'लक्ष्मण! जो दण्डकारण्यकी ओर प्रस्थित होनेपर अयोध्यासे मेरे पीछे-पीछे चली आयी तथा जिसे तुम अकेली छोड़कर यहाँ आ गये, वह विदेहराजकुमारी सीता इस समय कहाँ है?॥ २॥

'मैं राज्यसे भ्रष्ट और दीन होकर दण्डकारण्यमें चक्कर लगा रहा हूँ। इस दु:खमें जो मेरी सहायिका हुई, वह तनुमध्यमा (सूक्ष्मकटिप्रदेशवाली)

विदेहराजकुमारी कहाँ है?॥ ३॥

'वीर! जिसके बिना मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता तथा जो मेरे प्राणोंकी सहचरी है, वह देवकन्याके समान सुन्दरी सीता इस समय कहाँ है?॥

'लक्ष्मण! तपाये हुए सोनेके समान कान्तिवाली जनकनन्दिनी सीताके बिना मैं पृथ्वीका राज्य और देवताओंका आधिपत्य भी नहीं चाहता॥ ५॥

'वीर! जो मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है, वह विदेहराजकुमारी सीता क्या अब जीवित होगी? मेरा वनमें आना सीताको खो देनेके कारण व्यर्थ तो नहीं हो जायगा?॥ ६॥

'सुमित्रानन्दन! सीताके नष्ट हो जानेके कारण जब मैं मर जाऊँगा और तुम अकेले ही अयोध्याको लौटोगे, उस समय क्या माता कैकेयी सफलमनोरथ एवं सुखी होगी?॥ ७॥

'जिसका इकलौता पुत्र मैं मर जाऊँगा, वह तपस्विनी माता कौसल्या क्या पुत्र और राज्यसे सम्पन्न तथा कृतकृत्य हुई कैकेयीकी सेवामें विनीतभावसे उपस्थित होगी?॥ ८॥

'लक्ष्मण! यदि विदेहनन्दिनी सीता जीवित होगी, तभी मैं फिर आश्रममें पैर रखूँगा। यदि सदाचार-परायणा मैथिली मर गयी होगी तो मैं भी प्राणोंका परित्याग कर दूँगा॥ ९॥

'लक्ष्मण! यदि आश्रममें जानेपर विदेहराजकुमारी सीता हँसते हुए मुखसे सामने आकर मुझसे बात नहीं करेगी तो मैं जीवित नहीं रहूँगा॥ १०॥

'लक्ष्मण! बोलो तो सही! वैदेही जीवित है या नहीं? तुम्हारे असावधान होनेके कारण राक्षस उस तपस्विनीको खा तो नहीं गये?॥ ११॥

'जो सुकुमारी है, बाला (भोली-भाली) है तथा जिसने वनवासके पहले दुःखका अनुभव नहीं किया था, वह वैदेही आज मेरे वियोगसे व्यथित-चित्त होकर अवश्य ही शोक कर रही होगी॥ १२॥

'उस कुटिल एवं दुरात्मा राक्षसने उच्च स्वरसे 'हा लक्ष्मण!' ऐसा पुकारकर तुम्हारे मनमें भी सर्वथा भय उत्पन्न कर दिया॥ १३॥

'जान पड़ता है, वैदेहीने भी मेरे स्वरसे मिलता-जुलता उस राक्षसका स्वर सुन लिया और भयभीत होकर तुम्हें भेज दिया और तुम भी शीघ्र ही मुझे देखनेके लिये चले आये॥ १४॥

'जो भी हो—तुमने वनमें सीताको अकेली छोड़कर सर्वथा दुःखद कार्य कर डाला। क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर दे दिया॥ १५॥

'मांसभक्षी निशाचर मेरे हाथों खरके मारे जानेसे बहुत दुःखी थे। उन घोर राक्षसोंने सीताको मार डाला होगा, इसमें संशय नहीं है॥ १६॥

'शत्रुनाशन! मैं सर्वथा संकटके समुद्रमें डूब गया हूँ। ऐसे दुःखका अवश्य ही अनुभव करना पड़ेगा—ऐसी शङ्का हो रही है। अतः अब मैं क्या करूँ?'॥ १७॥

इस प्रकार सुन्दरी सीताके विषयमें चिन्ता करते हुए ही लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजी तुरंत जनस्थानमें आये॥ १८॥

अपने दुःखी अनुज लक्ष्मणको कोसते एवं भूख-प्यास तथा परिश्रमसे लंबी साँस खींचते हुए सूखे मुँहवाले श्रीरामचन्द्रजी आश्रमके निकटवर्ती स्थानपर आकर उसे सूना देख विषादमें डूब गये॥ १९॥

वीर श्रीरामने आश्रममें प्रवेश करके उसे भी सूना देख कुछ ऐसे स्थलोंमें अनुसंधान किया, जो सीताके विहारस्थान थे। उन्हें भी सूना पाकर उस क्रीड़ाभूमिमें यही वह स्थान है, जहाँ मैंने अमुक प्रकारकी क्रीड़ा की थी, ऐसा स्मरण करके उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे व्यथासे पीड़ित हो गये॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणकी बातचीत

(आश्रममें आनेसे पहले मार्गमें श्रीराम और लक्ष्मणने परस्पर जो बातें की थीं, उन्हें पुनः विस्तारके साथ बता रहे हैं—) सीताके कथनानुसार आश्रमसे अपने पास आये हुए सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे मार्गमें भी रघुकुलनन्दन श्रीरामने बड़े दुःखसे यह बात पूछी—॥ १॥

'लक्ष्मण! जब मैंने तुम्हारे विश्वासपर ही वनमें सीताको छोड़ा था, तब तुम उसे अकेली छोड़कर क्यों चले आये?॥ २॥

'लक्ष्मण! मिथिलेशकुमारीको छोड़कर तुम जो मेरे पास आये हो, तुम्हें देखते ही जिस महान् अनिष्टकी आशङ्का करके मेरा मन व्यथित हो रहा था, वह सत्य जान पड़ने लगा है॥ ३॥

'लक्ष्मण! मेरी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़क रही है। तुम्हें आश्रमसे दूर सीताके बिना ही मार्गपर आते देख मेरा हृदय भी धक-धक कर रहा है'॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न सुमित्राकुमार लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी होकर अपने शोकग्रस्त भाई श्रीरामसे बोले—॥ ५॥

'भैया! मैं स्वयं अपनी इच्छासे उन्हें छोड़कर नहीं आया हूँ। उन्हींके कठोर वचनोंसे प्रेरित होकर मुझे आपके पास आना पड़ा है॥ ६॥

'आपके ही समान स्वरमें किसीने जोरसे पुकारा, 'लक्ष्मण! मुझे बचाओ।' यह वाक्य मिथिलेशकुमारीके कानोंमें भी पड़ा॥ ७॥

'उस आर्तनादको सुनकर मैथिली आपके प्रति स्नेहके कारण भयसे व्याकुल हो गयीं और रोती हुई मुझसे तुरंत बोलीं—'जाओ, जाओ'॥ ८॥

'जब बारंबार उन्होंने 'जाओ' कहकर मुझे प्रेरित किया, तब उन्हें विश्वास दिलाते हुए मैंने मैथिलीसे यह बात कही—॥ ९॥

'देवि! मैं ऐसे किसी राक्षसको नहीं देखता, जो भगवान् श्रीरामको भी भयमें डाल सके। आप शान्त रहें, यह भैयाकी आवाज नहीं है। किसी दूसरेने इस तरहकी पुकार की है॥ १०॥

'सीते! जो देवताओंकी भी रक्षा कर सकते हैं, वे मेरे बड़े भाई 'मुझे बचाओ' ऐसा निन्दित (कायरतापूर्ण) वचन कैसे कहेंगे?॥ ११॥

'किसी दूसरेने किसी बुरे उद्देश्यसे मेरे भैयाके स्वरकी नकल करके 'लक्ष्मण! मुझे बचाओ' यह बात जोरसे कही है॥ १२॥

'शोभने! उस राक्षसने ही भयके कारण (मुझे बचाओ) यह बात मुँहसे निकाली है। आपको व्यथित नहीं होना चाहिये। ऐसी व्यथाको नीच श्रेणीकी स्त्रियाँ ही अपने मनमें स्थान देती हैं॥ १३॥

'तुम व्याकुल मत होओ, स्वस्थ हो जाओ, चिन्ता छोड़ो। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई पुरुष न तो उत्पन्न हुआ है, न हो रहा है और न होगा ही, जो युद्धमें श्रीरघुनाथजीको परास्त कर सके। संग्राममें इन्द्र आदि देवता भी श्रीरामको नहीं जीत सकते'॥ १४-१५॥

मेरे ऐसा कहनेपर विदेहराजकुमारीकी चेतना मोहसे आच्छन्न हो गयी। वे आँसू बहाती हुई मुझसे अत्यन्त कठोर वचन बोलीं—॥ १६॥

'लक्ष्मण! तेरे मनमें मेरे लिये अत्यन्त पापपूर्ण भाव भरा है। तू अपने भाईके मरनेपर मुझे प्राप्त करना चाहता है, परंतु मुझे पा नहीं सकेगा॥ १७॥

'तू भरतके इशारेसे अपने स्वार्थके लिये श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे आया है। तभी तो वे जोर-जोरसे चिल्ला रहे हैं और तू उनके पास जातातक नहीं है॥ १८॥

'तू अपने भाईका छिपा हुआ शत्रु है। मेरे लिये ही श्रीरामका अनुसरण करता है और श्रीरामके छिद्र ढूँढ़ रहा है तभी तो संकटके समय उनके पास जानेका नाम नहीं लेता है'॥ १९॥

'विदेहकुमारीके ऐसा कहनेपर मैं रोषसे भर गया। मेरी आँखें लाल हो गयीं और क्रोधसे मेरे होंठ फड़कने लगे। इस अवस्थामें मैं आश्रमसे निकल आया'॥ २०॥

लक्ष्मणकी ऐसी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी संतापसे मोहित हो गये और उनसे बोले—'सौम्य! तुमने बड़ा बुरा किया, जो तुम सीताको छोड़कर यहाँ चले आये॥ २१॥

'मैं राक्षसोंका निवारण करनेमें समर्थ हूँ, यह जानते हुए भी तुम मैथिलीके क्रोधयुक्त वचनसे उत्तेजित होकर निकल पड़े॥ २२॥

'क्रोधमें भरी हुई नारीके कठोर वचनको सुनकर जो तुम मिथिलेशकुमारीको छोड़कर यहाँ चले आये, इससे मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट नहीं हूँ॥ २३॥

'सीतासे प्रेरित होकर क्रोधके वशीभूत हो तुमने मेरे आदेशका पालन नहीं किया; यह सर्वथा तुम्हारा अन्याय है॥ २४॥

'जिसने मृगरूप धारण करके मुझे आश्रमसे दूर हटा दिया, वह राक्षस मेरे बाणोंसे घायल होकर सदाके लिये सो रहा है॥ २५॥

'धनुष खींचकर उस बाणका संधान करके मैंने लीलापूर्वक चलाये हुए बाणोंसे ज्यों ही उस मृगको मारा, त्यों ही वह मृगके शरीरका परित्याग करके बाँहोंमें बाजूबंद धारण करनेवाला राक्षस बन गया। उसके स्वरमें बड़ी व्याकुलता आ गयी थी॥ २६॥

'बाणसे आहत होनेपर ही उसने आर्तवाणीमें मेरे स्वरकी नकल करके बहुत दूरतक सुनायी देनेवाला वह अत्यन्त दारुण वचन कहा था, जिससे तुम मिथिलेशकुमारी सीताको छोड़कर यहाँ चले आये हो'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

श्रीरामका विलाप करते हुए वृक्षों और पशुओंसे सीताका पता पूछना, भ्रान्त होकर रोना और बारंबार उनकी खोज करना

आश्रमकी ओर आते समय श्रीरामकी बायीं आँखकी नीचेवाली पलक जोर-जोरसे फड़कने लगी। श्रीराम चलते-चलते लड़खड़ा गये और उनके शरीरमें कम्प होने लगा॥ १॥

बारंबार इन अपशकुनोंको देखकर वे कहने लगे—क्या सीता सकुशल होगी?॥ २॥

सीताको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो वे बड़ी उतावलीके साथ आश्रमपर गये। वहाँ कुटिया सूनी देख उनका मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा॥ ३॥

रघुनन्दन बड़े वेगसे इधर-उधर चक्कर लगाने और हाथ-पैर चलाने लगे। उन्होंने वहाँ जहाँ-तहाँ बनी हुई एक-एक पर्णशालाको चारों ओरसे देख डाला, किंतु उस समय उसे सीतासे सूनी ही पाया। जैसे हेमन्त-ऋतुमें कमलिनी हिमसे ध्वस्त हो श्रीहीन हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक पर्णशाला शोभाशून्य हो गयी थी॥ ४-५॥

वह स्थान वृक्षों (की सनसनाहट) के द्वारा मानो रो रहा था, फूल मुरझा गये थे, मृग और पक्षी मन मारे बैठे थे। वहाँकी सम्पूर्ण शोभा नष्ट हो गयी थी। सारी कुटी उजाड़ दिखायी देती थी। वनके देवता भी उस स्थानको छोड़कर चले गये थे॥ ६॥

सब ओर मृगचर्म और कुश बिखरे हुए थे। चटाइयाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। पर्णशालाको सूनी देख भगवान् श्रीराम बारंबार विलाप करने लगे—॥ ७॥

'हाय! सीताको किसीने हर तो नहीं लिया। उसकी मृत्यु तो नहीं हो गयी अथवा वह खो तो नहीं गयी या किसी राक्षसने उसे खा तो नहीं लिया। वह भीरु कहीं छिप तो नहीं गयी है अथवा फल-फूल लानेके लिये वनके भीतर तो नहीं चली गयी॥ ८॥

'सम्भव है, फल-फूल लानेके लिये ही गयी हो या जल लानेके लिये किसी पुष्करिणी अथवा नदीके तटपर गयी हो'॥ ९॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रयत्नपूर्वक अपनी प्रिय पत्नी सीताको वनमें चारों ओर ढूँढ़ा, किंतु कहीं भी उनका पता न लगा। शोकके कारण श्रीमान् रामकी आँखें लाल हो गयीं। वे उन्मत्तके समान दिखायी देने लगे॥ १०॥

एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके पास दौड़ते हुए वे पर्वतों, नदियों और नदोंके किनारे घूमने लगे। शोकसे समुद्रमें डूबे हुए श्रीरामचन्द्रजी विलाप करते-करते वृक्षोंसे पूछने लगे—॥ ११॥

'कदम्ब! मेरी प्रिया सीता तुम्हारे पुष्पसे बहुत प्रेम करती थी, क्या वह यहाँ है? क्या तुमने उसे देखा है? यदि जानते हो तो उस शुभानना सीताका पता बताओ। उसके अङ्ग सुस्निग्ध पल्लवोंके समान कोमल हैं तथा शरीरपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पाती है। बिल्व! मेरी प्रियाके स्तन तुम्हारे ही समान हैं। यदि तुमने उसे देखा हो तो बताओ॥ १२-१३॥

'अथवा अर्जुन! तुम्हारे फूलोंपर मेरी प्रियाका विशेष अनुराग था, अतः तुम्हीं उसका कुछ समाचार बताओ। कृशाङ्गी जनककिशोरी जीवित है या नहीं॥

'यह ककुभ* अपने ही समान ऊरुवाली मिथिलेशकुमारीको अवश्य जानता होगा; क्योंकि यह वनस्पति लता, पल्लव तथा फूलोंसे सम्पन्न हो बड़ी शोभा पा रहा है। ककुभ! तुम सब वृक्षोंमें श्रेष्ठ हो, क्योंकि ये भ्रमर तुम्हारे समीप आकर अपने झंकारोंद्वारा तुम्हारा यशोगान करते हैं। (तुम्हीं सीताका पता बताओ, अहो! यह भी कोई उत्तर नहीं दे रहा है।) यह तिलक वृक्ष अवश्य सीताके विषयमें जानता होगा; क्योंकि मेरी

* रामायणके व्याख्याकारोंमेंसे किसीने ककुभका अर्थ मरुवक लिखा है और किसीने अर्जुनविशेष, किंतु कोषोंमें यह कुटजका पर्याय बताया गया है।

प्रिया सीताको भी तिलकसे प्रेम था॥ १५-१६॥

'अशोक! तुम शोक दूर करनेवाले हो। इधर मैं शोकसे अपनी चेतना खो बैठा हूँ। मुझे मेरी प्रियतमाका दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने-जैसे नामवाला बना दो—मुझे अशोक (शोकहीन) कर दो॥ १७॥

'ताल वृक्ष! तुम्हारे पके हुए फलके समान स्तनवाली सीताको यदि तुमने देखा हो तो बताओ। यदि मुझपर तुम्हें दया आती हो तो उस सुन्दरीके विषयमें अवश्य कुछ कहो॥ १८॥

'जामुन! जाम्बूनद (सुवर्ण) के समान कान्तिवाली मेरी प्रिया यदि तुम्हारी दृष्टिमें पड़ी हो, यदि तुम उसके विषयमें कुछ जानते हो तो निःशङ्क होकर मुझे बताओ॥ १९॥

'कनेर! आज तो फूलोंके लगनेसे तुम्हारी बड़ी शोभा हो रही है। अहो! मेरी प्रिया साध्वी सीताको तुम्हारे ये पुष्प बहुत पसंद थे। यदि तुमने उसे कहीं देखा हो तो मुझसे कहो'॥ २०॥

इसी प्रकार आम, कदम्ब, विशाल शाल, कटहल, कुरव, धव और अनार आदि वृक्षोंको भी देखकर महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी उनके पास गये और वकुल, पुन्नाग, चन्दन तथा केवड़े आदिके वृक्षोंसे भी पूछते फिरे। उस समय वे वनमें पागलकी तरह इधर-उधर भटकते दिखायी देते थे॥ २१-२२॥

अपने सामने हरिणको देखकर वे बोले—'मृग! अथवा तुम्हीं बताओ! मृगनयनी मैथिलीको जानते हो। मेरी प्रियाकी दृष्टि भी तुम हरिणोंकी-सी है, अतः सम्भव है, वह हरिणियोंके ही साथ हो॥ २३॥

'श्रेष्ठ गजराज! तुम्हारी सूँड़के समान ही जिसके दोनों ऊरु हैं, उस सीताको सम्भवतः तुमने देखा होगा। मालूम होता है, तुम्हें उसका पता विदित है, अतः बताओ! वह कहाँ है?॥ २४॥

'व्याघ्र! यदि तुमने मेरी प्रिया चन्द्रमुखी मैथिलीको देखा हो तो निःशङ्क होकर बता दो, मुझसे तुम्हें कोई भय नहीं होगा'॥ २५॥

(इतनेहीमें उनको भ्रम हुआ कि सीता उधर भागकर छिप रही है, तब वे बोले—) 'प्रिये! क्यों भागी जा रही हो। कमललोचने! निश्चय ही मैंने तुम्हें देख लिया है। तुम वृक्षोंकी ओटमें अपने-आपको छिपाकर मुझसे बात क्यों नहीं करती हो?॥ २६॥

'वरारोहे! ठहरो, ठहरो। क्या तुम्हें मुझपर दया नहीं आती है। अधिक हास-परिहास करनेका तुम्हारा स्वभाव तो नहीं था, फिर किसलिये मेरी उपेक्षा करती हो?॥ २७॥

'सुन्दरि! पीली रेशमी साड़ीसे ही, तुम कहाँ हो—यह सूचना मिल जाती है। भागी जाती हो तो भी मैंने तुम्हें देख लिया है। यदि मेरे प्रति स्नेह एवं सौहार्द हो तो खड़ी हो जाओ'॥ २८॥

(फिर भ्रम दूर होनेपर बोले—) 'अथवा निश्चय ही वह नहीं है। उस मनोहर मुसकानवाली सीताको राक्षसोंने मार डाला, अन्यथा इस तरह संकटमें पड़े हुएकी (मेरी) वह कदापि उपेक्षा नहीं कर सकती थी॥ २९॥

'स्पष्ट जान पड़ता है कि मांसभक्षी राक्षसोंने मुझसे बिछुड़ी हुई मेरी भोली-भाली प्रिया मैथिलीको उसके सारे अङ्ग बाँटकर खा लिया॥ ३०॥

'सुन्दर दाँत, मनोहर ओष्ठ, सुघड़ नासिकासे युक्त तथा रुचिर कुण्डलोंसे अलंकृत वह पूर्ण चन्द्रमाके समान अभिराम मुख राक्षसोंका ग्रास बनकर निश्चय ही अपनी प्रभा खो बैठा होगा॥ ३१॥

'रोती-विलखती हुई प्रियतमा सीताकी वह चम्पाके समान वर्णवाली कोमल एवं सुन्दर ग्रीवा, जो हार और हँसली आदि आभूषण पहननेके योग्य थी, निशाचरोंका आहार बन गयी॥ ३२॥

'वे नूतन पल्लवोंके समान कोमल भुजाएँ, जो इधर-उधर पटकी जा रही होंगी और जिनके अग्रभाग काँप रहे होंगे, हाथोंके आभूषण तथा बाजूबंदसहित निश्चय ही राक्षसोंके पेटमें चली गयीं॥ ३३॥

'मैंने राक्षसोंका भक्ष्य बननेके लिये ही उस बालाको अकेली छोड़ दिया। यद्यपि उसके बन्धु-बान्धव बहुत हैं, तथापि वह यात्रियोंके समुदायसे विलग हुई किसी अकेली स्त्रीकी भाँति निशाचरोंका ग्रास बन गयी॥ ३४॥

'हा महाबाहु लक्ष्मण! क्या तुम कहीं मेरी प्रियतमाको देखते हो! हा प्रिये! हा भद्रे! हा सीते! तुम कहाँ चली गयी?' इस तरह बारंबार विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजी एक वनसे दूसरे वनमें दौड़ने लगे। वे कहीं सीताकी समानता पाकर उद्भ्रान्त हो उठते (उछल पड़ते थे) और कहीं शोककी प्रबलताके कारण विभ्रान्त हो जाते (बवंडरकी भाँति चक्कर काटने लगते) थे॥ ३५-३६॥

अपनी प्रियतमाकी खोज करते हुए वे कभी-कभी पागलोंकी-सी चेष्टा करने लगते थे। उन्होंने बड़ी दौड़-धूप करके कहीं भी विश्राम न करते हुए वनों, नदियों, पर्वतों, पहाड़ी झरनों और विभिन्न काननोंमें घूम-घूमकर अन्वेषण किया॥ ३७॥

उस समय मिथिलेशकुमारीको ढूँढ़नेके लिये वे उस विशाल एवं विस्तृत वनमें गये और सबमें चक्कर लगाकर थक गये तो भी निराश नहीं हुए। उन्होंने पुनः अपनी प्रियतमाके अनुसंधानके लिये बड़ा भारी परिश्रम किया॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा सीताकी खोज और उनके न मिलनेसे श्रीरामकी व्याकुलता

दशरथनन्दन श्रीरामने देखा कि आश्रमके सभी स्थान सीतासे सूने हैं तथा पर्णशालामें भी सीता नहीं हैं और बैठनेके आसन इधर-उधर फेंके पड़े हैं। तब उन्होंने पुनः वहाँके सभी स्थानोंका निरीक्षण किया और चारों ओर ढूँढ़नेपर भी जब विदेहकुमारीका कहीं पता नहीं लगा, तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी दोनों सुन्दर भुजाएँ ऊपर उठाकर सीताका नाम ले जोर-जोरसे पुकार करके लक्ष्मणसे बोले—॥ १-२॥

'भैया लक्ष्मण! विदेहराजकुमारी कहाँ हैं? यहाँसे किस देशमें चली गयीं? सुमित्रानन्दन! मेरी प्रिया सीताको कौन हर ले गया? अथवा किस राक्षसने खा डाला?॥ ३॥

(फिर वे सीताको सम्बोधित करके बोले—) 'सीते! यदि तुम वृक्षोंकी आड़में अपनेको छिपाकर मुझसे हँसी करना चाहती हो तो इस समय यह हँसी ठीक नहीं है। मैं बहुत दुःखी हो रहा हूँ, तुम मेरे पास आ जाओ॥ ४॥

'सौम्य स्वभाववाली सीते! जिन विश्वस्त मृगछौनोंके साथ तुम खेला करती थी, वे आज तुम्हारे बिना दुःखी हो आँखोंमें आँसू भरकर चिन्तामग्न हो गये हैं'॥ ५॥

'लक्ष्मण! सीतासे रहित होकर मैं जीवित नहीं रह सकता। सीताहरणजनित महान् शोकने मुझे चारों ओरसे घेर लिया है। निश्चय ही अब परलोकमें मेरे पिता महाराज दशरथ मुझे देखेंगे॥ ६½॥

वे मुझे उपालम्भ देते हुए कहेंगे—'मैंने तो तुम्हें वनवासके लिये आज्ञा दी थी और तुमने भी वहाँ रहनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। फिर उतने समयतक वहाँ रहकर उस प्रतिज्ञाको पूर्ण किये बिना ही तुम यहाँ मेरे पास कैसे चले आये?॥ ७½॥

'तुम-जैसे स्वेच्छाचारी, अनार्य और मिथ्यावादीको धिक्कार है। यह बात परलोकमें पिताजी मुझसे अवश्य कहेंगे'॥ ८½॥

'वरारोहे! सुमध्यमे! सीते! मैं विवश, शोकसंतप्त, दीन, भग्नमनोरथ हो करुणाजनक अवस्थामें पड़ गया हूँ। जैसे कुटिल मनुष्यको कीर्ति त्याग देती है, उसी प्रकार तुम मुझे यहाँ छोड़कर कहाँ चली जा रही हो? मुझे न छोड़ो, न छोड़ो॥ ९-१०॥

'तुम्हारे वियोगमें मैं अपने प्राण त्याग दूँगा।' इस प्रकार अत्यन्त दुःखसे आतुर हो विलाप करते हुए रघुकुल-नन्दन श्रीराम सीताके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये, किंतु वे जनकनन्दिनी उन्हें दिखायी न पड़ीं॥

जैसे कोई हाथी किसी बड़ी भारी दलदलमें फँसकर कष्ट पा रहा हो, उसी प्रकार सीताको न पाकर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए श्रीरामसे उनके हितकी कामना रखकर लक्ष्मण यों बोले—॥ १२-१३॥

'महामते! आप विषाद न करें; मेरे साथ जानकीको ढूँढ़नेका प्रयत्न करें। वीरवर! यह सामने जो ऊँचा पहाड़ दिखायी देता है, अनेक कन्दराओंसे सुशोभित है। मिथिलेशकुमारीको वनमें घूमना प्रिय लगता है, वे वनकी शोभा देखकर हर्षसे उन्मत्त हो उठती हैं; अतः वनमें गयी होंगी, अथवा सुन्दर कमलके फूलोंसे भरे हुए इस सरोवरके या मत्स्य तथा वेतसलतासे सुशोभित सरिताके तटपर जा पहुँची होंगी। अथवा पुरुषप्रवर! हमलोगोंको डरानेकी इच्छासे हम दोनों उन्हें खोज पाते हैं कि नहीं, इस जिज्ञासासे कहीं वनमें ही छिप गयी होंगी॥ १४—१६½॥

'अतः श्रीमन्! वनमें जहाँ-जहाँ जानकीके होनेकी सम्भावना हो, उन सभी स्थानोंपर हम दोनों शीघ्र ही उनकी खोजके लिये प्रयत्न करें॥ १७½॥

'रघुनन्दन! यदि आपको मेरी यह बात ठीक लगे तो आप शोक छोड़ दें।' लक्ष्मणके द्वारा इस प्रकार सौहार्दपूर्वक समझाये जानेपर श्रीरामचन्द्रजी सावधान हो गये और उन्होंने सुमित्राकुमारके साथ सीताको खोजना आरम्भ किया॥ १८-१९॥

दशरथके वे दोनों पुत्र सीताकी खोज करते हुए वनोंमें, पर्वतोंपर, सरिताओं और सरोवरोंके किनारे घूम-घूमकर पूरी चेष्टाके साथ अनुसंधानमें लगे रहे। उस पर्वतकी चोटियों, शिलाओं और शिखरोंपर उन्होंने अच्छी तरह जानकीको ढूँढ़ा; किंतु कहीं भी उनका पता नहीं लगा॥ २०-२१॥

पर्वतके चारों ओर खोजकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! इस पर्वतपर तो मैं सुन्दरी वैदेहीको नहीं देख पाता हूँ'॥ २२॥

तब दुःखसे संतप्त हुए लक्ष्मणने दण्डकारण्यमें घूमते-घूमते अपने उद्दीप्त तेजस्वी भाईसे इस प्रकार कहा—॥

'महामते! जैसे महाबाहु भगवान् विष्णुने राजा बलिको बाँधकर यह पृथ्वी प्राप्त कर ली थी, उसी प्रकार आप भी मिथिलेशकुमारी जानकीको पा जायँगे'॥

वीर लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर दुःखसे व्याकुलचित्त हुए श्रीरघुनाथजीने दीन वाणीमें कहा—॥ २५॥

'महाप्राज्ञ लक्ष्मण! मैंने सारा वन खोज डाला। विकसित कमलोंसे भरे हुए सरोवर भी देख लिये तथा अनेक कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित इस पर्वतको भी सब ओरसे छान डाला; परंतु मुझे अपने प्राणोंसे भी प्यारी वैदेही कहीं दिखायी नहीं पड़ी'॥ २६॥

इस प्रकार सीता-हरणके कष्टसे पीड़ित हो विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजी दीन और शोकमग्न हो दो घड़ीतक अत्यन्त व्याकुलतामें पड़े रहे॥ २७॥

उनका सारा अङ्ग विह्वल (शिथिल) हो गया, बुद्धि काम नहीं दे रही थी, चेतना लुप्त-सी होती जा रही थी। वे गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए दीन और आतुर होकर विषादमें डूब गये॥ २८॥

बारंबार उच्छ्वास लेकर कमलनयन श्रीराम आँसुओंसे गद्गद वाणीमें 'हा प्रिये!' कहकर बहुत रोने-विलखने लगे॥ २९॥

तब शोकसे पीड़ित हुए लक्ष्मणने विनीतभावसे हाथ जोड़कर अपने प्रिय भाईको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दी॥ ३०॥

लक्ष्मणके ओष्ठपुटोंसे निकली हुई इस बातका आदर न करके श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्यारी पत्नी सीताको न देखनेके कारण उन्हें बारंबार पुकारने और रोने लगे॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

श्रीरामका विलाप

सीताको न देखकर शोकसे व्याकुलचित्त हुए धर्मात्मा महाबाहु कमलनयन श्रीराम विलाप करने लगे॥ १॥

रघुनाथजी सीताके प्रति अधिक प्रेमके कारण उनके वियोगमें कष्ट पा रहे थे। वे उन्हें न देखकर भी देखते हुएके समान ऐसी बात कहने लगे, जो विलापका आश्रय होनेसे गद्गदकण्ठके कारण कठिनतासे बोली जा रही थी—॥ २॥

'प्रिये! तुम्हें फूल अधिक प्रिय हैं, इसलिये खिली हुई अशोककी शाखाओंसे अपने शरीरको छिपाती हो और मेरा शोक बढ़ा रही हो॥ ३॥

'देवि! मैं केलेके तनोंके तुल्य और कदलीदलसे ही छिपे हुए तुम्हारे दोनों ऊरुओं (जाँघों) को देख रहा हूँ। तुम उन्हें छिपा नहीं सकती॥ ४॥

'भद्रे! देवि! तुम हँसती हुई कनेर-पुष्पोंकी वाटिकाका सेवन करती हो। बंद करो इस परिहासको, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है॥ ५॥

'विशेषतः आश्रमके स्थानमें यह हास-परिहास अच्छा नहीं बताया जाता है। प्रिये! मैं जानता हूँ, तुम्हारा स्वभाव परिहासप्रिय है। विशाललोचने! आओ। तुम्हारी यह पर्णशाला सूनी है'॥ ६ $\frac{1}{2}$ ॥

(फिर भ्रम दूर होनेपर वे सुमित्राकुमारसे बोले—) 'लक्ष्मण! अब तो भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि राक्षसोंने सीताको खा लिया अथवा हर लिया; क्योंकि मैं विलाप कर रहा हूँ और वह मेरे पास नहीं आ रही है॥ ७ $\frac{1}{2}$ ॥

'लक्ष्मण! ये जो मृगसमूह हैं, ये भी अपने नेत्रोंमें आँसू भरकर मानो मुझसे यही कह रहे हैं कि देवी सीताको निशाचर खा गये॥ ८ $\frac{1}{2}$ ॥

'हा मेरी आर्ये! (आदरणीये!) तुम कहाँ चली गयी? हा साध्वि! हा वरवर्णिनि! तुम कहाँ गयी? हा देवि! आज कैकेयी सफलमनोरथ हो जायगी॥ ९½॥

'सीताके साथ अयोध्यासे निकला था। यदि सीताके बिना ही वहाँ लौटा तो अपने सूने अन्तःपुरमें कैसे प्रवेश करूँगा॥ १०½॥

'सारा संसार मुझे पराक्रमहीन और निर्दय कहेगा। सीताके अपहरणसे मेरी कायरता ही प्रकाशमें आयेगी॥ ११½॥

'जब वनवाससे लौटनेपर मिथिलानरेश जनक मुझसे कुशल पूछने आयेंगे, उस समय मैं कैसे उनकी ओर देख सकूँगा?॥ १२½॥

'मुझे सीतासे रहित देख विदेहराज जनक अपनी पुत्रीके विनाशसे संतप्त हो निश्चय ही मूर्च्छित हो जायँगे॥

'अथवा अब मैं भरतद्वारा पालित अयोध्यापुरीको नहीं जाऊँगा। जानकीके बिना मुझे स्वर्ग भी सूना ही जान पड़ेगा॥ १४½॥

'इसलिये अब तुम मुझे वनमें ही छोड़कर सुन्दर अयोध्यापुरीको लौट जाओ। मैं तो अब सीताके बिना किसी तरह जीवित नहीं रह सकता॥ १५½॥

'भरतका गाढ़ आलिङ्गन करके तुम उनसे मेरा संदेश कह देना, 'कैकेयीनन्दन! तुम सारी पृथ्वीका पालन करो, इसके लिये रामने तुम्हें आज्ञा दे दी है'॥ १६½॥

'विभो! मेरी माता कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्राको प्रतिदिन यथोचित रीतिसे प्रणाम करते हुए उन सबकी रक्षा करना और सदा उनकी आज्ञाके अनुसार चलना,' यह तुम्हारे लिये मेरी आज्ञा है॥ १७-१८॥

'शत्रुसूदन! मेरी माताके समक्ष सीताके विनाशका यह समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाना'॥ १९॥

सुन्दर केशवाली सीताके विरहमें भगवान् श्रीराम वनके भीतर जाकर जब इस तरह दीनभावसे विलाप करने लगे, तब लक्ष्मणके भी मुखपर भयजनित व्याकुलताके चिह्न दिखायी देने लगे। उनका मन व्यथित हो उठा और वे अत्यन्त घबरा गये॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

श्रीरामका विलाप

अपनी प्रिया सीतासे रहित हो राजकुमार श्रीराम शोक और मोहसे पीड़ित होने लगे। वे स्वयं तो पीड़ित थे ही, अपने भाई लक्ष्मणको भी विषादमें डालते हुए पुनः तीव्र शोकमें मग्न हो गये॥ १॥

लक्ष्मण शोकके अधीन हो रहे थे, उनसे महान् शोकमें डूबे हुए श्रीराम दुःखके साथ रोते हुए गरम उच्छ्वास लेकर अपने ऊपर पड़े हुए संकटके अनुरूप वचन बोले—॥ २॥

'सुमित्रानन्दन! मालूम होता है, मेरे-जैसा पापकर्म करनेवाला मनुष्य इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि एकके बाद दूसरा शोक मेरे हृदय (प्राण) और मनको विदीर्ण करता हुआ लगातार मुझपर आता जा रहा है॥ ३॥

'निश्चय ही पूर्वजन्ममें मैंने अपनी इच्छाके अनुसार बारंबार बहुत-से पापकर्म किये हैं; उन्हींमेंसे कुछ कर्मोंका यह परिणाम आज प्राप्त हुआ है, जिससे मैं एक दुःखसे दूसरे दुःखमें पड़ता जा रहा हूँ॥ ४॥

'पहले तो मैं राज्यसे वञ्चित हुआ; फिर मेरा स्वजनोंसे वियोग हुआ। तत्पश्चात् पिताजीका परलोकवास हुआ, फिर मातासे भी मुझे बिछुड़ जाना पड़ा। लक्ष्मण! ये सारी बातें जब मुझे याद आती हैं, तब मेरे शोकके वेगको बढ़ा देती हैं॥ ५॥

'लक्ष्मण! वनमें आकर क्लेशका अनुभव करके भी यह सारा दुःख सीताके समीप रहनेसे मेरे शरीरमें ही शान्त हो गया था, परंतु सीताके वियोगसे वह फिर उद्दीप्त हो उठा है, जैसे सूखे काठका संयोग पाकर आग सहसा प्रज्वलित हो उठती है॥ ६॥

'हाय! मेरी श्रेष्ठ स्वभाववाली भीरु पत्नीको अवश्य ही राक्षसने आकाशमार्गसे हर लिया। उस समय सुमधुर स्वरमें विलाप करनेवाली सीता भयके मारे बारंबार विकृत स्वरमें क्रन्दन करने लगी होगी॥ ७॥

'मेरी प्रियाके वे दोनों गोल-गोल स्तन, जो सदा लाल चन्दनसे चर्चित होनेयोग्य थे, निश्चय ही रक्तकी कीचमें सन गये होंगे। हाय! इतनेपर भी मेरे शरीरका पतन नहीं होता॥ ८॥

'राक्षसके वशमें पड़ी हुई मेरी प्रियाका वह मुख जो

स्निग्ध एवं सुस्पष्ट मधुर वार्तालाप करनेवाला तथा काले-काले घुँघराले केशोंके भारसे सुशोभित था, वैसे ही श्रीहीन हो गया होगा, जैसे राहुके मुखमें पड़ा हुआ चन्द्रमा शोभा नहीं पाता है॥ ९॥

'हाय! उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेरी प्रियतमाका कण्ठ हर समय हारसे सुशोभित होनेयोग्य था, किंतु रक्तभोजी राक्षसोंने सूने वनमें अवश्य उसे फाड़कर उसका रक्त पिया होगा॥ १०॥

'मेरे न रहनेके कारण निर्जन वनमें राक्षसोंने उसे ले-लेकर घसीटा होगा और विशाल एवं मनोहर नेत्रोंवाली वह जानकी अत्यन्त दीनभावसे कुररीकी भाँति विलाप करती रही होगी॥ ११॥

'लक्ष्मण! यह वही शिलातल है, जिसपर उदार स्वभाववाली सीता पहले एक दिन मेरे साथ बैठी हुई थी। उसकी मुसकान कितनी मनोहर थी, उस समय उसने हँस-हँसकर तुमसे भी बहुत-सी बातें कही थीं॥ १२॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी मेरी प्रियतमाको सदा ही प्रिय रही है। सोचता हूँ, शायद वह इसीके तटपर गयी हो, किंतु अकेली तो वह कभी वहाँ नहीं जाती थी॥ १३॥

'उसका मुख और विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलोंके समान सुन्दर हैं, सम्भव है, वह कमलपुष्प लानेके लिये ही गोदावरीतटपर गयी हो, परंतु यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह मुझे साथ लिये बिना कभी कमलोंके पास नहीं जाती थी॥ १४॥

'हो सकता है कि वह इन पुष्पित वृक्षसमूहोंसे युक्त और नाना प्रकारके पक्षियोंसे सेवित वनमें भ्रमणके लिये गयी हो; परंतु यह भी ठीक नहीं लगता; क्योंकि वह भीरु तो अकेली वनमें जानेसे बहुत डरती थी॥

'सूर्यदेव! संसारमें किसने क्या किया और क्या नहीं किया—इसे तुम जानते हो; लोगोंके सत्य-असत्य (पुण्य और पाप) कर्मोंके तुम्हीं साक्षी हो। मेरी प्रिया सीता कहाँ गयी अथवा उसे किसने हर लिया, यह सब मुझे बताओ; क्योंकि मैं उसके शोकसे पीड़ित हूँ॥ १६॥

'वायुदेव! समस्त विश्वमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हें सदा ज्ञात न रहती हो। मेरी कुलपालिका सीता कहाँ है, यह बता दो। वह मर गयी, हर ली गयी अथवा मार्गमें ही है'॥ १७॥

इस प्रकार शोकके अधीन होकर जब श्रीरामचन्द्रजी संज्ञाशून्य हो विलाप करने लगे, तब उनकी ऐसी अवस्था देख न्यायोचित मार्गपर स्थित रहनेवाले उदारचित्त सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उनसे यह समयोचित बात कही—॥ १८॥

'आर्य! आप शोक छोड़कर धैर्य धारण करें; सीताकी खोजके लिये मनमें उत्साह रखें; क्योंकि उत्साही मनुष्य जगत्में अत्यन्त दुष्कर कार्य आ पड़नेपर भी कभी दुःखी नहीं होते हैं'॥ १९॥

बढ़े हुए पुरुषार्थवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मण जब इस प्रकारकी बातें कह रहे थे, उस समय रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीरामने आर्त होकर उनके कथनके औचित्यपर कोई ध्यान नहीं दिया; उन्होंने धैर्य छोड़ दिया और वे पुनः महान् दुःखमें पड़ गये॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा सीताकी खोज, श्रीरामका शोकोद्‌गार, मृगोंद्वारा संकेत पाकर दोनों भाइयोंका दक्षिण दिशाकी ओर जाना, पर्वतपर क्रोध, सीताके बिखरे हुए फूल, आभूषणोंके कण और युद्धके चिह्न देखकर श्रीरामका देवता आदि सहित समस्त त्रिलोकीपर रोष प्रकट करना

तदनन्तर दीन हुए श्रीरामचन्द्रजीने दीन वाणीमें लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! तुम शीघ्र ही गोदावरी नदीके तटपर जाकर पता लगाओ। सीता कमल लानेके लिये तो नहीं चली गयीं'॥ १$\frac{1}{2}$॥

श्रीरामकी ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण शीघ्र गतिसे पुनः रमणीय गोदावरी नदीके तटपर गये॥ २$\frac{1}{2}$॥

अनेक तीर्थों (घाटों)-से युक्त गोदावरीके तटपर खोजकर लक्ष्मण पुनः लौट आये और श्रीरामसे बोले—'भैया! मैं गोदावरीके घाटोंपर सीताको नहीं देख पाता हूँ; जोर-जोरसे पुकारनेपर भी वे मेरी बात नहीं सुनती हैं॥ ३$\frac{1}{2}$॥

'श्रीराम! क्लेशोंका नाश करनेवाली विदेहराजकुमारी

न जाने किस देशमें चली गयीं। भैया श्रीराम! जहाँ कृशकटि-प्रदेशवाली सीता गयी हैं, उस स्थानको मैं नहीं जानता'॥ ४½ ॥

लक्ष्मणकी यह बात सुनकर दीन एवं संतापसे मोहित हुए श्रीरामचन्द्रजी स्वयं ही गोदावरी नदीके तटपर गये॥ ५½ ॥

वहाँ पहुँचकर श्रीरामने पूछा—'सीता कहाँ है?' परंतु वधके योग्य राक्षसराज रावणद्वारा हरी गयी सीताके विषयमें समस्त भूतोंमेंसे किसीने कुछ नहीं कहा। गोदावरी नदीने भी श्रीरामको कोई उत्तर नहीं दिया॥ ६-७॥

तदनन्तर वनके समस्त प्राणियोंने उन्हें प्रेरित किया कि 'तुम श्रीरामको उनकी प्रियाका पता बता दो!' किंतु शोकमग्न श्रीरामके पूछनेपर भी गोदावरीने सीताका पता नहीं बताया॥ ८॥

दुरात्मा रावणके उस रूप और कर्मको याद करके भयके मारे गोदावरी नदीने वैदेहीके विषयमें श्रीरामसे कुछ नहीं कहा॥ ९॥

सीताके दर्शनके विषयमें जब नदीने उन्हें पूर्ण निराश कर दिया, तब सीताको न देखनेसे कष्टमें पड़े हुए श्रीराम सुमित्राकुमारसे इस प्रकार बोले—॥ १०॥

'सौम्य लक्ष्मण! यह गोदावरी नदी तो मुझे कोई उत्तर ही नहीं देती है। अब मैं राजा जनकसे मिलनेपर उन्हें क्या जवाब दूँगा? जानकीके बिना उसकी मातासे मिलकर भी मैं उनसे यह अप्रिय बात कैसे सुनाऊँगा?॥

'राज्यहीन होकर वनमें जंगली फल-मूलोंसे निर्वाह करते समय भी जो मेरे साथ रहकर मेरे सभी दु:खोंको दूर किया करती थी, वह विदेहराजकुमारी कहाँ चली गयी?॥ १२½ ॥

'बन्धु-बान्धवोंसे तो मेरा बिछोह हो ही गया था, अब सीताके दर्शनसे भी मुझे वञ्चित होना पड़ा; उसकी चिन्तामें निरन्तर जागते रहनेके कारण अब मेरी सभी रातें बहुत बड़ी हो जायँगी॥ १३½ ॥

'मन्दाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत—इन सभी स्थानोंपर मैं बारंबार भ्रमण करूँगा। शायद वहाँ सीताका पता चल जाय॥ १४½ ॥

'वीर लक्ष्मण! ये विशाल मृग मेरी ओर बारंबार देख रहे हैं, मानो यहाँ ये मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। मैं इनकी चेष्टाओंको समझ रहा हूँ'॥ १५½ ॥

तदनन्तर उन सबकी ओर देखकर पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'बताओ, सीता कहाँ हैं?' उन मृगोंकी ओर देखते हुए राजा श्रीरामने जब अश्रुगद्‌गद वाणीसे इस प्रकार पूछा, तब वे मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और ऊपरकी ओर देखकर आकाशमार्गकी ओर लक्ष्य कराते हुए सब-के-सब दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये दौड़े॥ १६-१७½ ॥

मिथिलेशकुमारी सीता हरी जाकर जिस दिशाकी ओर गयी थीं, उसी ओरके मार्गसे जाते हुए वे मृग राजा श्रीरामचन्द्रजीकी ओर मुड़-मुड़कर देखते रहते थे॥ १८½ ॥

वे मृग आकाशमार्ग और भूमि दोनोंकी ओर देखते और गर्जना करते हुए पुन: आगे बढ़ते थे। लक्ष्मणने उनकी इस चेष्टाको लक्ष्य किया। वे जो कुछ कहना चाहते थे, उसका सारसर्वस्वरूप जो उनकी चेष्टा थी, उसे उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया॥ १९-२०॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने आर्त-से होकर अपने बड़े भाईसे इस प्रकार कहा—'आर्य! जब आपने पूछा कि सीता कहाँ हैं, तब ये मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और पृथ्वी तथा दक्षिणकी ओर हमारा लक्ष्य कराने लगे हैं; अत: देव! यही अच्छा होगा कि हमलोग इस नैर्ऋत्य दिशाकी ओर चलें। सम्भव है, इधर जानेसे सीताका कोई समाचार मिल जाय अथवा आर्या सीता स्वयं ही दृष्टिगोचर हो जायँ'॥ २१-२२½ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीमान् रामचन्द्रजी लक्ष्मणको साथ ले पृथ्वीकी ओर ध्यानसे देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये॥ २३½ ॥

वे दोनों भाई आपसमें इसी प्रकारकी बातें करते हुए ऐसे मार्गपर जा पहुँचे, जहाँ भूमिपर कुछ फूल गिरे दिखायी देते थे॥ २४½ ॥

पृथ्वीपर फूलोंकी उस वर्षाको देखकर वीर श्रीरामने दु:खी हो लक्ष्मणसे यह दु:खभरा वचन कहा—॥ २५½ ॥

'लक्ष्मण! मैं इन फूलोंको पहचानता हूँ। ये वे ही फूल यहाँ गिरे हैं, जिन्हें वनमें मैंने विदेहनन्दिनीको दिया था और उन्होंने अपने केशोंमें लगा लिया था॥ २६½ ॥

'मैं समझता हूँ, सूर्य, वायु और यशस्विनी पृथ्वीने मेरा प्रिय करनेके लिये ही इन फूलोंको सुरक्षित रखा है'॥ २७½ ॥

पुरुषप्रवर लक्ष्मणसे ऐसा कहकर धर्मात्मा महाबाहु श्रीरामने झरनोंसे भरे हुए प्रस्रवण गिरिसे कहा—॥ २८½ ॥

'पर्वतराज! क्या तुमने इस वनके रमणीय प्रदेशमें मुझसे बिछुड़ी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी

सीताको देखा है?'॥ २९$\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर जैसे सिंह छोटे मृगको देखकर दहाड़ता है, उसी प्रकार वे कुपित हो वहाँ उस पर्वतसे बोले—'पर्वत! जबतक मैं तुम्हारे सारे शिखरोंका विध्वंस नहीं कर डालता हूँ, इसके पहले ही तुम उस काञ्चनकी-सी काया-कान्तिवाली सीताका मुझे दर्शन करा दो'॥ ३०-३१ ॥

श्रीरामके द्वारा मैथिलीके लिये ऐसा कहे जानेपर उस पर्वतने सीताको दिखाता हुआ-सा कुछ चिह्न प्रकट कर दिया। श्रीरघुनाथजीके समीप वह सीताको साक्षात् उपस्थित न कर सका॥ ३२ ॥

तब दशरथनन्दन श्रीरामने उस पर्वतसे कहा—'अरे! तू मेरे बाणोंकी आगसे जलकर भस्मीभूत हो जायगा। किसी भी ओरसे तू सेवनके योग्य नहीं रह जायगा। तेरे तृण, वृक्ष और पल्लव नष्ट हो जायँगे'॥

(इसके बाद वे सुमित्राकुमारसे बोले—) 'लक्ष्मण! यदि यह नदी आज मुझे चन्द्रमुखी सीताका पता नहीं बताती है तो मैं अब इसे भी सुखा डालूँगा'॥ ३४$\frac{1}{2}$ ॥

ऐसा कहकर रोषमें भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी उसकी ओर इस तरह देखने लगे, मानो अपनी दृष्टिद्वारा उसे जलाकर भस्म कर देना चाहते हैं। इतनेहीमें उस पर्वत और गोदावरीके समीपकी भूमिपर राक्षसका विशाल पदचिह्न उभरा हुआ दिखायी दिया॥ ३५$\frac{1}{2}$ ॥

साथ ही राक्षसने जिनका पीछा किया था और जो श्रीरामकी अभिलाषा रखकर रावणके भयसे संत्रस्त हो इधर-उधर भागती फिरी थीं, उन विदेहराजकुमारी सीताके चरणचिह्न भी वहाँ दिखायी दिये॥ ३६$\frac{1}{2}$ ॥

सीता और राक्षसके पैरोंके निशान, टूटे धनुष, तरकस और छिन्न-भिन्न होकर अनेक टुकड़ोंमें बिखरे हुए रथको देखकर श्रीरामचन्द्रजीका हृदय घबरा उठा। वे अपने प्रिय भ्राता सुमित्राकुमारसे बोले—॥ ३७-३८ ॥

'लक्ष्मण! देखो, ये सीताके आभूषणोंमें लगे हुए सोनेके घुँघुरू बिखरे पड़े हैं। सुमित्रानन्दन! उसके नाना प्रकारके हार भी टूटे पड़े हैं॥ ३९ ॥

'सुमित्राकुमार! देखो, यहाँकी भूमि सब ओरसे सुवर्णकी बूँदोंके समान ही विचित्र रक्तबिन्दुओंसे रँगी दिखायी देती है॥ ४० ॥

'लक्ष्मण! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंने यहाँ सीताके टुकड़े-टुकड़े करके उसे आपसमें बाँटा और खाया होगा॥

'सुमित्रानन्दन! सीताके लिये परस्पर विवाद करनेवाले दो राक्षसोंमें यहाँ घोर युद्ध भी हुआ है॥ ४२ ॥

'सौम्य! तभी तो यहाँ यह मोती और मणियोंसे जटित एवं विभूषित किसीका अत्यन्त सुन्दर और विशाल धनुष खण्डित होकर पृथ्वीपर पड़ा है। यह किसका धनुष हो सकता है?॥ ४३ ॥

'वत्स! पता नहीं, यह राक्षसोंका है या देवताओंका; यह प्रात:कालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है तथा इसमें वैदूर्यमणि (नीलम) के टुकड़े जड़े हुए हैं॥ ४४ ॥

सौम्य! उधर पृथ्वीपर टूटा हुआ एक सोनेका कवच पड़ा है, न जाने वह किसका है? दिव्य मालाओंसे सुशोभित यह सौ कमानियोंवाला छत्र किसका है? इसका डंडा टूट गया है और यह धरतीपर गिरा दिया गया है॥ ४५$\frac{1}{2}$ ॥

'इधर ये पिशाचोंके समान मुखवाले भयंकर रूपधारी गधे मरे पड़े हैं। इनका शरीर बहुत ही विशाल रहा है; इन सबकी छातीमें सोनेके कवच बँधे हैं। ये युद्धमें मारे गये जान पड़ते हैं। पता नहीं ये किसके थे॥

'तथा संग्राममें काम देनेवाला यह किसका रथ पड़ा है? इसे किसीने उलटा गिराकर तोड़ डाला है। समराङ्गणमें स्वामीको सूचित करनेवाली ध्वजा भी इसमें लगी थी। यह तेजस्वी रथ प्रज्वलित अग्निके समान दमक रहा है॥ ४७$\frac{1}{2}$ ॥

'ये भयंकर बाण, जो यहाँ टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरे पड़े हैं, किसके हैं? इनकी लंबाई और मोटाई रथके धुरेके समान प्रतीत होती है। इनके फल-भाग टूट गये हैं तथा ये सुवर्णसे विभूषित हैं॥ ४८$\frac{1}{2}$ ॥

'लक्ष्मण! उधर देखो, ये बाणोंसे भरे हुए दो तरकस पड़े हैं, जो नष्ट कर दिये गये हैं। यह किसका सारथि मरा पड़ा है, जिसके हाथमें चाबुक और लगाम अभीतक मौजूद हैं॥ ४९$\frac{1}{2}$ ॥

'सौम्य! यह अवश्य ही किसी राक्षसका पदचिह्न दिखायी देता है। इन अत्यन्त क्रूर हृदयवाले कामरूपी राक्षसोंके साथ मेरा वैर सौगुना बढ़ गया है। देखो, यह वैर उनके प्राण लेकर ही शान्त होगा॥ ५०-५१ ॥

'अवश्य ही तपस्विनी विदेहराजकुमारी हर ली गयी, मृत्युको प्राप्त हो गयी अथवा राक्षसोंने उसे खा लिया। इस विशाल वनमें हरी जाती हुई सीताकी रक्षा धर्म भी नहीं कर रहा है॥ ५२ ॥

'सौम्य लक्ष्मण! जब विदेहनन्दिनी राक्षसोंका ग्रास

बन गयी अथवा उनके द्वारा हर ली गयी और कोई सहायक नहीं हुआ, तब इस जगत्‌में कौन ऐसे पुरुष हैं, जो मेरा प्रिय करनेमें समर्थ हों॥ ५३॥

'लक्ष्मण! जो समस्त लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले 'त्रिपुर-विजय' आदि शौर्यसे सम्पन्न महेश्वर हैं, वे भी जब अपने करुणामय स्वभावके कारण चुप बैठे रहते हैं, तब सारे प्राणी उनके ऐश्वर्यको न जाननेसे उनका तिरस्कार करने लग जाते हैं॥ ५४॥

'मैं लोकहितमें तत्पर, युक्तचित्त, जितेन्द्रिय तथा जीवोंपर करुणा करनेवाला हूँ, इसीलिये ये इन्द्र आदि देवेश्वर निश्चय ही मुझे निर्बल मान रहे हैं (तभी तो इन्होंने सीताकी रक्षा नहीं की है)॥ ५५॥

'लक्ष्मण! देखो तो सही, यह दयालुता आदि गुण मेरे पास आकर दोष बन गया (तभी तो मुझे निर्बल मानकर मेरी स्त्रीका अपहरण किया गया है। अतः अब मुझे पुरुषार्थ ही प्रकट करना होगा)। जैसे प्रलयकालमें उदित हुआ महान् सूर्य चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना (चाँदनी) का संहार करके प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित हो उठता है, उसी प्रकार अब मेरा तेज आज ही समस्त प्राणियों तथा राक्षसोंका अन्त करनेके लिये मेरे उन कोमल स्वभाव आदि गुणोंको समेटकर प्रचण्डरूपमें प्रकाशित होगा, यह भी तुम देखो॥ ५६-५७॥

'लक्ष्मण! अब न तो यक्ष, न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस, न किन्नर और न मनुष्य ही चैनसे रहने पायेंगे॥ ५८॥

'सुमित्रानन्दन! देखना, थोड़ी ही देरमें आकाशको मैं अपने चलाये हुए बाणोंसे भर दूँगा और तीन लोकोंमें विचरनेवाले प्राणियोंको हिलने-डुलने भी न दूँगा॥ ५९॥

'ग्रहोंकी गति रुक जायगी, चन्द्रमा छिप जायगा, अग्नि, मरुद्‌गण तथा सूर्यका तेज नष्ट हो जायगा, सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न हो जायगा, पर्वतोंके शिखर मथ डाले जायँगे, सारे जलाशय (नदी-सरोवर आदि) सूख जायँगे, वृक्ष, लता और गुल्म नष्ट हो जायँगे और समुद्रोंका भी नाश कर दिया जायगा। इस तरह मैं सारी त्रिलोकीमें ही कालकी विनाशलीला आरम्भ कर दूँगा॥

'सुमित्रानन्दन! यदि देवेश्वरगण इसी मुहूर्तमें मुझे सीता देवीको सकुशल नहीं लौटा देंगे तो वे मेरा पराक्रम देखेंगे॥ ६२½॥

'लक्ष्मण! मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चासे छूटे हुए बाणसमूहोंद्वारा आकाशके ठसाठस भर जानेके कारण उसमें कोई प्राणी उड़ नहीं सकेंगे॥ ६३½॥

'सुमित्रानन्दन! देखो, आज मेरे नाराचोंसे रौंदा जाकर यह सारा जगत् व्याकुल और मर्यादारहित हो जायगा। यहाँके मृग और पक्षी आदि प्राणी नष्ट एवं उद्‌भ्रान्त हो जायँगे॥ ६४½॥

'धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये मेरे बाणोंको रोकना जीवजगत्‌के लिये बहुत कठिन होगा। मैं सीताके लिये उन बाणोंद्वारा इस जगत्‌के समस्त पिशाचों और राक्षसोंका संहार कर डालूँगा॥ ६५½॥

'रोष और अमर्षपूर्वक छोड़े गये मेरे फलरहित दूरगामी बाणोंका बल आज देवतालोग देखेंगे॥ ६६½॥

'मेरे क्रोधसे त्रिलोकीका विनाश हो जानेपर न देवता रह जायँगे न दैत्य, न पिशाच रहने पायँगे न राक्षस॥ ६७½॥

'देवताओं, दानवों, यक्षों और राक्षसोंके जो लोक हैं, वे मेरे बाणसमूहोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर बारंबार नीचे गिरेंगे॥ ६८½॥

'सुमित्रानन्दन! यदि देवेश्वरगण मेरी हरी या मरी हुई सीताको लाकर मुझे नहीं देंगे तो आज मैं अपने सायकोंकी मारसे इन तीनों लोकोंको मर्यादासे भ्रष्ट कर दूँगा॥ ६९½॥

'यदि वे मेरी प्रिया विदेहराजकुमारीको मुझे उसी रूपमें वापस नहीं लौटायेंगे तो मैं चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीका नाश कर डालूँगा। जबतक सीताका दर्शन न होगा, तबतक मैं अपने सायकोंसे समस्त संसारको संतप्त करता रहूँगा'॥ ७०-७१॥

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, होठ फड़कने लगे। उन्होंने वल्कल और मृगचर्मको अच्छी तरह कसकर अपने जटाभारको भी बाँध लिया॥ ७२॥

उस समय क्रोधमें भरकर उस तरह संहारके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीरामका शरीर पूर्वकालमें त्रिपुरका संहार करनेवाले रुद्रके समान प्रतीत होता था॥ ७३॥

उस समय लक्ष्मणके हाथसे धनुष लेकर श्रीरामचन्द्रजीने उसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया और एक विषधर सर्पके समान भयंकर और प्रज्वलित बाण लेकर उसे उस धनुषपर रखा। तत्पश्चात् शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीराम प्रलयाग्निके समान कुपित हो इस प्रकार बोले—॥ ७४-७५॥

'लक्ष्मण! जैसे बुढ़ापा, जैसे मृत्यु, जैसे काल और

जैसे विधाता सदा समस्त प्राणियोंपर प्रहार करते हैं, किंतु उन्हें कोई रोक नहीं पाता है, उसी प्रकार निस्संदेह क्रोधमें भर जानेपर मेरा भी कोई निवारण नहीं कर सकता॥ ७६॥

'यदि देवता आदि आज पहलेकी ही भाँति मनोहर दाँतोंवाली अनिन्द्यसुन्दरी मिथिलेशकुमारी सीताको मुझे लौटा नहीं देंगे तो मैं देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और पर्वतोंसहित सारे संसारको उलट दूँगा'॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

लक्ष्मणका श्रीरामको समझा-बुझाकर शान्त करना

सीताहरणके शोकसे पीड़ित हुए श्रीराम जब उस समय संतप्त हो प्रलयकालिक अग्निके समान समस्त लोकोंका संहार करनेको उद्यत हो गये और धनुषकी डोरी चढ़ाकर बारंबार उसकी ओर देखने लगे तथा लंबी साँस खींचने लगे, साथ ही कल्पान्तकालमें रुद्रदेवकी भाँति समस्त संसारको दग्ध कर देनेकी इच्छा करने लगे, तब जिन्हें इस रूपमें पहले कभी देखा नहीं गया था, उन अत्यन्त कुपित हुए श्रीरामकी ओर देखकर लक्ष्मण हाथ जोड़ सूखे हुए मुँहसे इस प्रकार बोले— ॥ १—३॥

'आर्य! आप पहले कोमल स्वभावसे युक्त, जितेन्द्रिय और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहे हैं। अब क्रोधके वशीभूत होकर अपनी प्रकृति (स्वभाव) का परित्याग न करें॥ ४॥

'चन्द्रमामें शोभा, सूर्यमें प्रभा, वायुमें गति और पृथ्वीमें क्षमा जैसे नित्य विराजमान रहती है, उसी प्रकार आपमें सर्वोत्तम यश सदा प्रकाशित होता है॥ ५॥

'आप किसी एकके अपराधसे समस्त लोकोंका संहार न करें। मैं यह जाननेकी चेष्टा करता हूँ कि यह टूटा हुआ युद्धोपयोगी रथ किसका है॥ ६॥

'अथवा किसने किस उद्देश्यसे जूए तथा अन्य उपकरणोंसहित इस रथको तोड़ा है? इसका भी पता लगाना है। राजकुमार! यह स्थान घोड़ोंकी खुरों और थके पहियोंसे खुदा हुआ है; साथ ही खूनकी बूँदोंसे सिंच उठा है। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ बड़ा भयंकर संग्राम हुआ था, परंतु यह संग्राम-चिह्न किसी एक ही रथीका है, दोका नहीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीराम! मैं यहाँ किसी विशाल सेनाका पदचिह्न नहीं देख रहा हूँ; अतः किसी एकहीके अपराधके कारण आपको समस्त लोकोंका विनाश नहीं करना चाहिये॥ ७—९॥

'क्योंकि राजालोग अपराधके अनुसार ही उचित दण्ड देनेवाले, कोमल स्वभाववाले और शान्त होते हैं। आप तो सदा ही समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले तथा उनकी परम गति हैं॥ १०॥

'रघुनन्दन! आपकी स्त्रीका विनाश या अपहरण कौन अच्छा समझेगा? जैसे यज्ञमें दीक्षित हुए पुरुषका साधुस्वभाववाले ऋत्विज् कभी अप्रिय नहीं कर सकते, उसी प्रकार सरिताएँ, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व और दानव—ये कोई भी आपके प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकते॥ ११ १/२ ॥

'राजन्! जिसने सीताका अपहरण किया है, उसीका अन्वेषण करना चाहिये। आप मेरे साथ धनुष हाथमें लेकर बड़े-बड़े ऋषियोंकी सहायतासे उसका पता लगावें॥ १२ १/२ ॥

'हम सब लोग एकाग्रचित्त हो समुद्रमें खोजेंगे, पर्वतों और वनोंमें ढूँढ़ेंगे, नाना प्रकारकी भयंकर गुफाओं और भाँति-भाँतिके सरोवरोंको छान डालेंगे तथा देवताओं और गन्धर्वोंके लोकोंमें भी तलाश करेंगे। जबतक आपकी पत्नीका अपहरण करनेवाले दुरात्माका पता नहीं लगा लेंगे, तबतक हम अपना यह प्रयत्न जारी रखेंगे। कोसलनरेश! यदि हमारे शान्तिपूर्ण बर्तावसे देवेश्वरगण आपकी पत्नीका पता नहीं देंगे तो उस अवसरके अनुरूप कार्य आप कीजियेगा॥

'नरेन्द्र! यदि अच्छे शील-स्वभाव, सामनीति, विनय और न्यायके अनुसार प्रयत्न करनेपर भी आपको सीताका पता न मिले, तब आप सुवर्णमय पंखवाले महेन्द्रके वज्रतुल्य बाणसमूहोंसे समस्त लोकोंका संहार कर डालें'॥ १६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

लक्ष्मणका श्रीरामको समझाना

श्रीरामचन्द्रजी शोकसे संतप्त हो अनाथकी तरह विलाप करने लगे। वे महान् मोहसे युक्त और अत्यन्त दुर्बल हो गये। उनका चित्त स्वस्थ नहीं था। उन्हें इस अवस्थामें देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने दो घड़ीतक आश्वासन दिया; फिर वे उनका पैर दबाते हुए उन्हें समझाने लगे— ॥ १-२ ॥

'भैया! हमारे पिता महाराज दशरथने बड़ी तपस्या और महान् कर्मका अनुष्ठान करके आपको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जैसे देवताओंने महान् प्रयाससे अमृत पा लिया था॥ ३॥

'आपने भरतके मुँहसे जैसा सुना था, उसके अनुसार भूपाल महाराज दशरथ आपके ही गुणोंसे बँधे हुए थे और आपका ही वियोग होनेसे देवलोकको प्राप्त हुए॥ ४॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! यदि अपने ऊपर आये हुए इस दुःखको आप ही धैर्यपूर्वक नहीं सहेंगे तो दूसरा कौन साधारण पुरुष, जिसकी शक्ति बहुत थोड़ी है, सह सकेगा ?॥ ५॥

'नरश्रेष्ठ! आप धैर्य धारण करें। संसारमें किस प्राणीपर आपत्तियाँ नहीं आतीं। राजन्! आपत्तियाँ अग्निकी भाँति एक क्षणमें स्पर्श करतीं और दूसरे ही क्षणमें दूर हो जाती हैं॥ ६॥

'पुरुषसिंह! यदि आप दुःखी होकर अपने तेजसे समस्त लोकोंको दग्ध कर डालेंगे तो पीड़ित हुई प्रजा किसकी शरणमें जाकर सुख और शान्ति पायेगी॥ ७॥

'यह लोकका स्वभाव ही है कि यहाँ सबपर दुःख-शोक आता-जाता रहता है। नहुषपुत्र ययाति इन्द्रके समान लोक (देवेन्द्रपद) को प्राप्त हुए थे; किंतु वहाँ भी अन्यायमूलक दुःख उनका स्पर्श किये बिना न रहा॥ ८॥

'हमारे पिताके पुरोहित जो महर्षि वसिष्ठजी हैं, उन्हें एक ही दिनमें सौ पुत्र प्राप्त हुए और फिर एक ही दिन वे सब-के-सब विश्वामित्रके हाथसे मारे गये॥ ९॥

'कोसलेश्वर! यह जो विश्ववन्दिता जगन्माता पृथ्वी है, इसका भी हिलना-डुलना देखा जाता है॥ १०॥

'जो धर्मके प्रवर्तक और संसारके नेत्र हैं, जिनके आधारपर ही सारा जगत् टिका हुआ है, वे महाबली सूर्य और चन्द्रमा भी राहुके द्वारा ग्रहणको प्राप्त होते हैं॥ ११॥

'पुरुषप्रवर! बड़े-बड़े भूत और देवता भी दैव (प्रारब्ध-कर्म) की अधीनतासे मुक्त नहीं हो पाते हैं; फिर समस्त देहधारी प्राणियोंके लिये तो कहना ही क्या है॥ १२॥

'नरश्रेष्ठ! इन्द्र आदि देवताओंको भी नीति और अनीतिके कारण सुख और दुःखकी प्राप्ति होती सुनी जाती है; इसलिये आपको शोक नहीं करना चाहिये॥ १३॥

'वीर रघुनन्दन! विदेहराजकुमारी सीता यदि मर जायँ या नष्ट हो जायँ तो भी आपको दूसरे गँवार मनुष्योंकी तरह शोक-चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ १४॥

'श्रीराम! आप-जैसे सर्वज्ञ पुरुष बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी कभी शोक नहीं करते हैं। वे निर्वेद (खेद) रहित हो अपनी विचारशक्तिको नष्ट नहीं होने देते॥ १५॥

'नरश्रेष्ठ! आप बुद्धिके द्वारा तात्त्विक विचार कीजिये—क्या करना चाहिये और क्या नहीं; क्या उचित है और क्या अनुचित—इसका निश्चय कीजिये; क्योंकि बुद्धियुक्त महाज्ञानी पुरुष ही शुभ और अशुभ (कर्तव्य-अकर्तव्य एवं उचित-अनुचित) को अच्छी तरह जानते हैं॥ १६॥

'जिनके गुण-दोष देखे या जाने नहीं गये हैं तथा जो अध्रुव हैं—फल देकर नष्ट हो जानेवाले हैं, ऐसे कर्मोंका शुभाशुभ फल उन्हें आचरणमें लाये बिना नहीं प्राप्त होता है॥ १७॥

'वीर! पहले आप ही अनेक बार इस तरहकी बातें कहकर मुझे समझा चुके हैं, आपको कौन सिखा सकता है। साक्षात् बृहस्पति भी आपको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रखते हैं॥ १८॥

'महाप्राज्ञ! देवताओंके लिये भी आपकी बुद्धिका पता पाना कठिन है। इस समय शोकके कारण आपका ज्ञान सोया—खोया-सा जान पड़ता है। इसलिये मैं उसे जगा रहा हूँ॥ १९॥

'इक्ष्वाकुकुलशिरोमणे! अपने देवोचित तथा मानवोचित पराक्रमको देखकर उसका अवसरके

अनुरूप उपयोग करते हुए आप शत्रुओंके वधका प्रयत्न कीजिये॥ २०॥

'पुरुषप्रवर! समस्त संसारका विनाश करनेसे आपको क्या लाभ होगा? उस पापी शत्रुका पता लगाकर उसीको उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न करना चाहिये'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणकी पक्षिराज जटायुसे भेंट तथा श्रीरामका उन्हें गलेसे लगाकर रोना

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सब वस्तुओंका सार ग्रहण करनेवाले हैं। अवस्थामें बड़े होनेपर भी उन्होंने लक्ष्मणके कहे हुए अत्यन्त सारगर्भित उत्तम वचनोंको सुनकर उन्हें स्वीकार किया॥ १॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामने अपने बढ़े हुए रोषको रोका और उस विचित्र धनुषको उतारकर लक्ष्मणसे कहा— ॥ २॥

'वत्स! अब हमलोग क्या करें? कहाँ जायँ? लक्ष्मण! किस उपायसे हमें सीताका पता लगे? यहाँ इसका विचार करो'॥ ३॥

तब लक्ष्मणने इस प्रकार संतापपीड़ित हुए श्रीरामसे कहा—'भैया! आपको इस जनस्थानमें ही सीताकी खोज करनी चाहिये॥ ४॥

'नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त यह सघन वन अनेक राक्षसोंसे भरा हुआ है। इसमें पर्वतके ऊपर बहुत-से दुर्गम स्थान, फटे हुए पत्थर और कन्दराएँ हैं॥ ५॥

'वहाँ भाँति-भाँतिकी भयंकर गुफाएँ हैं, जो नाना प्रकारके मृगगणोंसे भरी रहती हैं। यहाँके पर्वतपर किन्नरोंके आवासस्थान और गन्धर्वोंके भवन भी हैं॥ ६॥

'मेरे साथ चलकर आप उन सभी स्थानोंमें एकाग्रचित्त हो सीताकी खोज करें। जैसे पर्वत वायुके वेगसे कम्पित नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप-जैसे बुद्धिमान् महात्मा नरश्रेष्ठ आपत्तियोंमें विचलित नहीं होते हैं'॥ ७½॥

उनके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी रोषपूर्वक अपने धनुषपर क्षुर नामक भयंकर बाण चढ़ाये वहाँ सारे वनमें विचरण करने लगे॥ ८½॥

थोड़ी ही दूर आगे जानेपर उन्हें पर्वतशिखरके समान विशाल शरीरवाले पक्षिराज महाभाग जटायु दिखायी पड़े जो खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़े थे। पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होनेवाले उन गृध्रराजको देखकर श्रीराम लक्ष्मणसे बोले— ॥ ९-१०॥

'लक्ष्मण! यह गृध्रके रूपमें अवश्य ही कोई राक्षस जान पड़ता है, जो इस वनमें घूमता रहता है। नि:संदेह इसीने विदेहराजकुमारी सीताको खा लिया होगा॥ ११॥

'विशाललोचना सीताको खाकर यह यहाँ सुखपूर्वक बैठा हुआ है। मैं प्रज्वलित अग्रभागवाले तथा सीधे जानेवाले अपने भयंकर बाणोंसे इसका वध करूँगा'॥

ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए श्रीराम धनुषपर बाण चढ़ाये समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कम्पित करते हुए उसे देखनेके लिये आगे बढ़े॥ १३॥

इसी समय पक्षी जटायु अपने मुँहसे फेनयुक्त रक्त वमन करते हुए अत्यन्त दीन-वाणीमें दशरथनन्दन श्रीरामसे बोले— ॥ १४॥

'आयुष्मन्! इस महान् वनमें तुम जिसे ओषधिके समान ढूँढ़ रहे हो, उस देवी सीताको तथा मेरे इन प्राणोंको भी रावणने हर लिया॥ १५॥

'रघुनन्दन! तुम्हारे और लक्ष्मणके न रहनेपर महाबली रावण आया और देवी सीताको हरकर ले जाने लगा। उस समय मेरी दृष्टि सीतापर पड़ी॥ १६॥

'प्रभो! ज्यों ही मेरी दृष्टि पड़ी, मैं सीताकी सहायताके लिये दौड़ पड़ा। रावणके साथ मेरा युद्ध हुआ। मैंने उस युद्धमें रावणके रथ और छत्र आदि सभी साधन नष्ट कर दिये और वह भी घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १७॥

'श्रीराम! यह रहा उसका टूटा हुआ धनुष, ये हैं उसके खण्डित हुए बाण और यह है उसका युद्धोपयोगी रथ, जो युद्धमें मेरे द्वारा तोड़ डाला गया है॥ १८॥

'यह रावणका सारथि है, जिसे मैंने अपने पंखोंसे मार डाला था। जब मैं युद्ध करते-करते थक गया, तब रावणने तलवारसे मेरे दोनों पंख काट डाले और वह

विदेहकुमारी सीताको लेकर आकाशमें उड़ गया। मैं उस राक्षसके हाथसे पहले ही मार डाला गया हूँ, अब तुम मुझे न मारो'॥ १९-२०॥

सीतासे सम्बन्ध रखनेवाली यह प्रिय वार्ता सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपना महान् धनुष फेंक दिया और गृध्रराज जटायुको गलेसे लगाकर वे शोकसे विवश हो पृथ्वीपर गिर पड़े और लक्ष्मणके साथ ही रोने लगे। अत्यन्त धीर होनेपर भी श्रीरामने उस समय दूने दुःखका अनुभव किया॥ २१-२२॥

असहाय हो एकमात्र ऊर्ध्वश्वासकी संकटपूर्ण अवस्थामें पड़कर बारंबार लंबी साँस खींचते हुए जटायुकी ओर देखकर श्रीरामको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सुमित्राकुमारसे कहा—॥ २३॥

'लक्ष्मण! मेरा राज्य छिन गया, मुझे वनवास मिला (पिताजीकी मृत्यु हुई), सीताका अपहरण हुआ और ये मेरे परम सहायक पक्षिराज भी मर गये। ऐसा जो मेरा यह दुर्भाग्य है, यह तो अग्निको भी जलाकर भस्म कर सकता है॥ २४॥

'यदि आज मैं भरे हुए महासागरको तैरने लगूँ तो मेरे दुर्भाग्यकी आँचसे वह सरिताओंका स्वामी समुद्र भी निश्चय ही सूख जायगा॥ २५॥

'इस चराचर जगत्‌में मुझसे बढ़कर भाग्यहीन दूसरा कोई नहीं है, जिस अभाग्यके कारण मुझे इस विपत्तिके बड़े भारी जालमें फँसना पड़ा है॥ २६॥

'ये महाबली गृध्रराज जटायु मेरे पिताजीके मित्र थे, किंतु आज मेरे दुर्भाग्यवश मारे जाकर इस समय पृथ्वीपर पड़े हैं'॥ २७॥

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीने जटायुके शरीरपर हाथ फेरा और पिताके प्रति जैसा स्नेह होना चाहिये, वैसा ही उनके प्रति प्रदर्शित किया॥ २८॥

पंख कट जानेके कारण गृध्रराज जटायु लहू-लुहान हो रहे थे। उसी अवस्थामें उन्हें गलेसे लगाकर श्रीरघुनाथजीने पूछा—'तात! मेरी प्राणोंके समान प्रिया मिथिलेशकुमारी सीता कहाँ चली गयी?' इतनी ही बात मुँहसे निकालकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अरसठवाँ सर्ग

जटायुका प्राण-त्याग और श्रीरामद्वारा उनका दाह-संस्कार

भयंकर राक्षस रावणने जिसे पृथ्वीपर मार गिराया था, उस गृध्रराज जटायुकी ओर दृष्टि डालकर भगवान् श्रीराम मित्रोचित गुणसे सम्पन्न सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे बोले—॥ १॥

'भाई! यह पक्षी अवश्य मेरा ही कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील था, किंतु उस राक्षसके द्वारा युद्धमें मारा गया। यह मेरे ही लिये अपने प्राणोंका परित्याग कर रहा है॥ २॥

'लक्ष्मण! इस शरीरके भीतर इसके प्राणोंको बड़ी वेदना हो रही है, इसीलिये इसकी आवाज बंद होती जा रही है तथा यह अत्यन्त व्याकुल होकर देख रहा है'॥ ३॥

(लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीराम उस पक्षीसे बोले—) 'जटायो! यदि आप पुनः बोल सकते हों तो आपका भला हो, बताइये, सीताकी क्या अवस्था है? और आपका वध किस प्रकार हुआ?॥ ४॥

'जिस अपराधको देखकर रावणने मेरी प्रिय भार्याका अपहरण किया है, वह अपराध क्या है? और मैंने उसे कब किया? किस निमित्तको लेकर रावणने आर्या सीताका हरण किया है?॥ ५॥

'पक्षिप्रवर! सीताका चन्द्रमाके समान मनोहर मुख कैसा हो गया था? तथा उस समय सीताने क्या-क्या बातें कही थीं?॥ ६॥

'तात! उस राक्षसका बल-पराक्रम तथा रूप कैसा है? वह क्या काम करता है? और उसका घर कहाँ है? मैं जो कुछ पूछ रहा हूँ, वह सब बताइये'॥ ७॥

इस तरह अनाथकी भाँति विलाप करते हुए श्रीरामकी ओर देखकर धर्मात्मा जटायुने लड़खड़ाती जबानसे यों कहना आरम्भ किया—॥ ८॥

'रघुनन्दन! दुरात्मा राक्षसराज रावणने विपुल मायाका आश्रय ले आँधी-पानीकी सृष्टि करके (घबराहटकी अवस्थामें) सीताका हरण किया था॥ ९॥

'तात! जब मैं उससे लड़ता-लड़ता थक गया, उस अवस्थामें मेरे दोनों पंख काटकर वह निशाचर

विदेहनन्दिनी सीताको साथ लिये यहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर गया था॥ १०॥

'रघुनन्दन! अब मेरे प्राणोंकी गति बंद हो रही है, दृष्टि घूम रही है और समस्त वृक्ष मुझे सुनहरे रंगके दिखायी देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उन वृक्षोंपर खशके केश जमे हुए हैं॥ ११॥

'रावण सीताको जिस मुहूर्तमें ले गया है, उसमें खोया हुआ धन शीघ्र ही उसके स्वामीको मिल जाता है। काकुत्स्थ! वह 'विन्द' नामक मुहूर्त था, किंतु उस राक्षसको इसका पता नहीं था। जैसे मछली मौतके लिये ही बंसी पकड़ लेती है, उसी प्रकार वह भी सीताको ले जाकर शीघ्र ही नष्ट हो जायगा॥ १२-१३॥

'अत: अब तुम जनकनन्दिनीके लिये अपने मनमें खेद न करो। संग्रामके मुहानेपर उस निशाचरका वध करके तुम शीघ्र ही पुन: विदेहराजकुमारीके साथ विहार करोगे'॥ १४॥

गृध्रराज जटायु यद्यपि मर रहे थे तो भी उनके मनपर मोह या भ्रम नहीं छाया था (उनके होश-हवास ठीक थे)। वे श्रीरामचन्द्रजीको उनकी बातका उत्तर दे ही रहे थे कि उनके मुखसे मांसयुक्त रुधिर निकलने लगा॥ १५॥

वे बोले—'रावण विश्रवाका पुत्र और कुबेरका सगा भाई है' इतना कहकर उन पक्षिराजने दुर्लभ प्राणोंका परित्याग कर दिया॥ १६॥

श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़े कह रहे थे, 'कहिये, कहिये, कुछ और कहिये!' किंतु उस समय गृध्रराजके प्राण उनका शरीर छोड़कर आकाशमें चले गये॥ १७॥

उन्होंने अपना मस्तक भूमिपर डाल दिया, दोनों पैर फैला दिये और अपने शरीरको भी पृथ्वीपर ही डालते हुए वे धराशायी हो गये॥ १८॥

गृध्रराज जटायुकी आँखें लाल दिखायी देती थीं। प्राण निकल जानेसे वे पर्वतके समान अविचल हो गये। उन्हें इस अवस्थामें देखकर बहुत-से दु:खोंसे दु:खी हुए श्रीरामचन्द्रजीने सुमित्राकुमारसे कहा—॥ १९॥

'लक्ष्मण! राक्षसोंके निवासस्थान इस दण्डकारण्यमें बहुत वर्षोंतक सुखपूर्वक रहकर इन पक्षिराजने यहीं अपने शरीरका त्याग किया है॥ २०॥

'इनकी अवस्था बहुत वर्षोंकी थी। इन्होंने सुदीर्घ कालतक अपना अभ्युदय देखा है; किंतु आज इस वृद्धावस्थामें उस राक्षसके द्वारा मारे जाकर ये पृथ्वीपर सो रहे हैं; क्योंकि कालका उल्लङ्घन करना सबके ही लिये कठिन है॥ २१॥

'लक्ष्मण! देखो, ये जटायु मेरे बड़े उपकारी थे, किंतु आज मारे गये। सीताकी रक्षाके लिये युद्धमें प्रवृत्त होनेपर अत्यन्त बलवान् रावणके हाथसे इनका वध हुआ है॥ २२॥

'बाप-दादोंके द्वारा प्राप्त हुए गीधोंके विशाल राज्यका त्याग करके इन पक्षिराजने मेरे ही लिये अपने प्राणोंकी आहुति दी है॥ २३॥

'शूर, शरणागतरक्षक, धर्मपरायण श्रेष्ठ पुरुष सभी जगह देखे जाते हैं। पशु-पक्षीकी योनियोंमें भी उनका अभाव नहीं है॥ २४॥

'सौम्य! शत्रुओंको संताप देनेवाले लक्ष्मण! इस समय मुझे सीताके हरणका उतना दु:ख नहीं है, जितना कि मेरे लिये प्राणत्याग करनेवाले जटायुकी मृत्युसे हो रहा है॥ २५॥

'महायशस्वी श्रीमान् राजा दशरथ जैसे मेरे माननीय और पूज्य थे, वैसे ही ये पक्षिराज जटायु भी हैं॥ २६॥

'सुमित्रानन्दन! तुम सूखे काष्ठ ले आओ, मैं मथकर आग निकालूँगा और मेरे लिये मृत्युको प्राप्त हुए इन गृध्रराजका दाह-संस्कार करूँगा॥ २७॥

'सुमित्राकुमार! उस भयंकर राक्षसके द्वारा मारे गये इन पक्षिराजको मैं चितापर चढ़ाऊँगा और इनका दाह-संस्कार करूँगा'॥ २८॥

(फिर वे जटायुको सम्बोधित करके बोले—) 'महान् बलशाली गृध्रराज! यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्री, युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंको जिस गतिकी—जिन उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञासे उन्हीं सर्वोत्तम लोकोंमें तुम भी जाओ। मेरे द्वारा दाह-संस्कार किये जानेपर तुम्हारी सद्गति हो'॥ २९-३०॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने दु:खित हो पक्षिराजके शरीरको चितापर रखा और उसमें आग लगाकर अपने बन्धुकी भाँति उनका दाह-संस्कार किया॥

तदनन्तर लक्ष्मणसहित पराक्रमी श्रीराम वनमें जाकर मोटे-मोटे महारोही (कन्दमूल विशेष) काट लाये और उन्हें जटायुके लिये अर्पित करनेके उद्देश्यसे उन्होंने पृथ्वीपर कुश बिछाये। महायशस्वी श्रीरामने रोहीके गूदे निकालकर उनका पिण्ड बनाया और उन सुन्दर हरित कुशाओंपर जटायुको पिण्डदान किया॥ ३२-३३॥

ब्राह्मणलोग परलोकवासी मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति करानेके उद्देश्यसे जिन पितृसम्बन्धी मन्त्रोंका जप आवश्यक बतलाते हैं, उन सबका भगवान् श्रीरामने जप किया॥ ३४॥

तदनन्तर उन दोनों राजकुमारोंने गोदावरी नदीके तटपर जाकर उन गृध्रराजके लिये जलाञ्जलि दी॥ ३५॥

रघुकुलके उन दोनों महापुरुषोंने गोदावरीमें नहाकर शास्त्रीय विधिसे उन गृध्रराजके लिये उस समय जलाञ्जलिका दान किया॥ ३६॥

महर्षितुल्य श्रीरामके द्वारा दाहसंस्कार होनेके कारण गृध्रराज जटायुको आत्माका कल्याण करनेवाली परम पवित्र गति प्राप्त हुई। उन्होंने रणभूमिमें अत्यन्त दुष्कर और यशोवर्धक पराक्रम प्रकट किया था। परंतु अन्तमें रावणने उन्हें मार गिराया॥ ३७॥

तर्पण करनेके पश्चात् वे दोनों भाई पक्षिराज जटायुमें पितृतुल्य सुस्थिरभाव रखकर सीताकी खोजके कार्यमें मन लगा देवेश्वर विष्णु और इन्द्रकी भाँति वनमें आगे बढ़े॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें अरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

लक्ष्मणका अयोमुखीको दण्ड देना तथा श्रीराम और लक्ष्मणका कबन्धके बाहुबन्धमें पड़कर चिन्तित होना

इस प्रकार जटायुके लिये जलाञ्जलि दान करके वे दोनों रघुवंशी बन्धु उस समय वहाँसे प्रस्थित हुए और वनमें सीताकी खोज करते हुए पश्चिम दिशा (नैर्ऋत्य कोण) की ओर गये॥ १॥

धनुष, बाण और खड्ग धारण किये वे दोनों इक्ष्वाकुवंशी वीर उस दक्षिण-पश्चिम दिशाकी ओर आगे बढ़ते हुए एक ऐसे मार्गपर जा पहुँचे, जिसपर लोगोंका आना-जाना नहीं होता था॥ २॥

वह मार्ग बहुत-से वृक्षों, झाड़ियों और लता-बेलोंद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ था। वह बहुत ही दुर्गम, गहन और देखनेमें भयंकर था॥ ३॥

उसे वेगपूर्वक लाँघकर वे दोनों महाबली राजकुमार दक्षिण दिशाका आश्रय ले उस अत्यन्त भयानक और विशाल वनसे आगे निकल गये॥ ४॥

तदनन्तर जनस्थानसे तीन कोस दूर जाकर वे महाबली श्रीराम और लक्ष्मण क्रौञ्चारण्य नामसे प्रसिद्ध गहन वनके भीतर गये॥ ५॥

वह वन अनेक मेघोंके समूहकी भाँति श्याम प्रतीत होता था। विविध रंगके सुन्दर फूलोंसे सुशोभित होनेके कारण वह सब ओरसे हर्षोत्फुल्ल-सा जान पड़ता था। उसके भीतर बहुत-से पशु-पक्षी निवास करते थे॥ ६॥

सीताका पता लगानेकी इच्छासे वे दोनों उस वनमें उनकी खोज करने लगे। जहाँ-तहाँ थक जानेपर वे विश्रामके लिये ठहर जाते थे। विदेहनन्दिनीके अपहरणसे उन्हें बड़ा दु:ख हो रहा था॥ ७॥

तत्पश्चात् वे दोनों भाई तीन कोस पूर्व जाकर क्रौञ्चारण्यको पार करके मतङ्ग मुनिके आश्रमके पास गये॥ ८॥

वह वन बड़ा भयंकर था। उसमें बहुत-से भयानक पशु और पक्षी निवास करते थे। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त वह सारा वन गहन वृक्षावलियोंसे भरा था॥ ९॥

वहाँ पहुँचकर उन दशरथराजकुमारोंने वहाँके पर्वतपर एक गुफा देखी, जो पातालके समान गहरी थी। वह सदा अन्धकारसे आवृत रहती थी॥ १०॥

उसके समीप जाकर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने एक विशालकाय राक्षसी देखी, जिसका मुख बड़ा विकराल था॥

वह छोटे-छोटे जन्तुओंको भय देनेवाली तथा देखनेमें बड़ी भयंकर थी। उसकी सूरत देखकर घृणा होती थी। उसके लंबे पेट, तीखी दाढें और कठोर त्वचा थी। वह बड़ी विकराल दिखायी देती थी॥ १२॥

भयानक पशुओंको भी पकड़कर खा जाती थी। उसका आकार विकट था और बाल खुले हुए थे। उस कन्दराके समीप दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने उसे देखा॥ १३॥

वह राक्षसी उन दोनों वीरोंके पास आयी और अपने भाईके आगे-आगे चलते हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर बोली—'आओ हम दोनों रमण करें।' ऐसा

कहकर उसने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया॥ १४॥

इतना ही नहीं, उसने सुमित्राकुमारको अपनी भुजाओंमें कस लिया और इस प्रकार कहा—'मेरा नाम अयोमुखी है। मैं तुम्हें भार्यारूपसे मिल गयी तो समझ लो, बहुत बड़ा लाभ हुआ और तुम मेरे प्यारे पति हो'॥ १५॥

'प्राणनाथ! वीर! यह दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली आयु पाकर तुम पर्वतकी दुर्गम कन्दराओंमें तथा नदियोंके तटोंपर मेरे साथ सदा रमण करोगे'॥ १६॥

राक्षसीके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन लक्ष्मण क्रोधसे जल उठे। उन्होंने तलवार निकालकर उसके कान, नाक और स्तन काट डाले॥ १७॥

नाक और कानके कट जानेपर वह भयंकर राक्षसी जोर-जोरसे चिल्लाने लगी और जहाँसे आयी थी, उधर ही भाग गयी॥ १८॥

उसके चले जानेपर वे दोनों भाई शक्तिशाली श्रीराम और लक्ष्मण बड़े वेगसे चलकर एक गहन वनमें जा पहुँचे॥ १९॥

उस समय महातेजस्वी, धैर्यवान्, सुशील एवं पवित्र आचार-विचारवाले लक्ष्मणने हाथ जोड़कर अपने तेजस्वी भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ २०॥

'आर्य! मेरी बायीं बाँह जोर-जोरसे फड़क रही है और मन उद्विग्न-सा हो रहा है। मुझे बार-बार बुरे शकुन दिखायी देते हैं, इसलिये आप भयका सामना करनेके लिये तैयार हो जाइये। मेरी बात मानिये। ये जो बुरे शकुन हैं, वे केवल मुझे ही तत्काल प्राप्त होनेवाले भयकी सूचना देते हैं॥ २१-२२॥

'(इसके साथ एक शुभ शकुन भी हो रहा है) यह जो वञ्जुल नामक अत्यन्त दारुण पक्षी है, यह युद्धमें हम दोनोंकी विजय सूचित करता हुआ-सा जोर-जोरसे बोल रहा है'॥ २३॥

इस प्रकार बलपूर्वक उस सारे वनमें वे दोनों भाई जब सीताकी खोज कर रहे थे, उसी समय वहाँ बड़े जोरका शब्द हुआ, जो उस वनका विध्वंस करता हुआ-सा प्रतीत होता था॥ २४॥

उस वनमें जोर-जोरसे आँधी चलने लगी। वह सारा वन उसकी लपेटमें आ गया। वनमें उस शब्दकी जो प्रतिध्वनि उठी, उससे वह सारा वनप्रान्त गूँज उठा॥ २५॥

भाईके साथ तलवार हाथमें लिये भगवान् श्रीराम उस शब्दका पता लगाना ही चाहते थे कि एक चौड़ी छातीवाले विशालकाय राक्षसपर उनकी दृष्टि पड़ी॥ २६॥

उन दोनों भाइयोंने उस राक्षसको अपने सामने खड़ा पाया। वह देखनेमें बहुत बड़ा था; किंतु उसके न मस्तक था न गला। कबन्ध (धड़मात्र) ही उसका स्वरूप था और उसके पेटमें ही मुँह बना हुआ था॥

उसके सारे शरीरमें पैने और तीखे रोयें थे। वह महान् पर्वतके समान ऊँचा था। उसकी आकृति बड़ी भयंकर थी। वह नील मेघके समान काला था और मेघके समान ही गम्भीर स्वरमें गर्जना करता था॥ २८॥

उसकी छातीमें ही ललाट था और ललाटमें एक ही लंबी-चौड़ी तथा आगकी ज्वालाके समान दहकती हुई भयंकर आँख थी, जो अच्छी तरह देख सकती थी। उसकी पलक बहुत बड़ी थी और वह आँख भूरे रंगकी थी। उस राक्षसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं तथा वह अपनी लपलपाती हुई जीभसे अपने विशाल मुखको बारंबार चाट रहा था॥ २९-३०॥

अत्यन्त भयंकर रीछ, सिंह, हिंसक पशु और पक्षी—ये ही उसके भोजन थे। वह अपनी एक-एक योजन लंबी दोनों भयानक भुजाओंको दूरतक फैला देता और उन दोनों हाथोंसे नाना प्रकारके अनेकों भालू, पक्षी, पशु तथा मृगोंके यूथपतियोंको पकड़कर खींच लेता था। उनमेंसे जो उसे भोजनके लिये अभीष्ट नहीं होते, उन जन्तुओंको वह उन्हीं हाथोंसे पीछे ढकेल देता था॥ ३१-३२॥

दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जब उसके निकट पहुँचे, तब वह उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया। तब वे दोनों भाई उससे दूर हट गये और बड़े गौरसे उसे देखने लगे। उस समय वह एक कोस लंबा जान पड़ा। उस राक्षसकी आकृति केवल कबन्ध (धड़) के ही रूपमें थी, इसलिये वह कबन्ध कहलाता था। वह विशाल, हिंसापरायण, भयंकर तथा दो बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त था और देखनेमें अत्यन्त घोर प्रतीत होता था॥ ३३-३४॥

उस महाबाहु राक्षसने अपनी दोनों विशाल भुजाओंको फैलाकर उन दोनों रघुवंशी राजकुमारोंको बलपूर्वक पीड़ा देते हुए एक साथ ही पकड़ लिया॥ ३५॥

दोनोंके हाथोंमें तलवारें थीं, दोनोंके पास मजबूत धनुष थे और वे दोनों भाई प्रचण्ड तेजस्वी, विशाल

भुजाओंसे युक्त तथा महान् बलवान् थे तो भी उस राक्षसके द्वारा खींचे जानेपर विवशताका अनुभव करने लगे॥ ३६॥

उस समय वहाँ शूरवीर रघुनन्दन श्रीराम तो धैर्यके कारण व्यथित नहीं हुए, परंतु बालबुद्धि होने तथा धैर्यका आश्रय न लेनेके कारण लक्ष्मणके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ ३७॥

तब श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण विषादग्रस्त हो श्रीरघुनाथजीसे बोले—'वीरवर! देखिये, मैं राक्षसके वशमें पड़कर विवश हो गया हूँ॥ ३८॥

'रघुनन्दन! एकमात्र मुझे ही इस राक्षसको भेंट देकर आप स्वयं इसके बाहुबन्धनसे मुक्त हो जाइये। इस भूतको मेरी ही बलि देकर आप सुखपूर्वक यहाँसे निकल भागिये॥ ३९॥

'मेरा विश्वास है कि आप शीघ्र ही विदेह-राजकुमारीको प्राप्त कर लेंगे। ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! वनवाससे लौटनेपर पिता-पितामहोंकी भूमिको अपने अधिकारमें लेकर जब आप राजसिंहासनपर विराजमान होइयेगा, तब वहाँ सदा मेरा भी स्मरण करते रहियेगा'॥ ४०½॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामने उन सुमित्रा-कुमारसे कहा—'वीर! तुम भयभीत न होओ। तुम्हारे-जैसे शूरवीर इस तरह विषाद नहीं करते हैं'॥ ४१½॥

इसी बीचमें क्रूर हृदयवाले दानवशिरोमणि महाबाहु कबन्धने उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा—॥ ४२½॥

'तुम दोनों कौन हो? तुम्हारे कंधे बैलके समान ऊँचे हैं। तुमने बड़ी-बड़ी तलवारें और धनुष धारण कर रखे हैं। इस भयंकर देशमें तुम दोनों किसलिये आये हो? यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है? बताओ। भाग्यसे ही तुम दोनों मेरी आँखोंके सामने पड़ गये॥ ४३-४४॥

'मैं यहाँ भूखसे पीड़ित होकर खड़ा था और तुम स्वयं धनुष-बाण और खड्ग लिये तीखे सींगवाले दो बैलोंके समान तुरंत ही इस स्थानपर मेरे निकट आ पहुँचे। अतः अब तुम दोनोंका जीवित रहना कठिन है'॥ ४५½॥

दुरात्मा कबन्धकी ये बातें सुनकर श्रीरामने सूखे मुखवाले लक्ष्मणसे कहा—'सत्यपराक्रमी वीर! कठिन-से-कठिन असह्य दुःखको पाकर हम दुःखी थे ही, तबतक पुनः प्रियतमा सीताके प्राप्त होनेसे पहले ही हम दोनोंपर यह महान् संकट आ गया, जो जीवनका अन्त कर देनेवाला है॥ ४६-४७½॥

'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! कालका महान् बल सभी प्राणियोंपर अपना प्रभाव डालता है। देखो न, तुम और मैं दोनों ही कालके दिये हुए अनेकानेक संकटोंसे मोहित हो रहे हैं। सुमित्रानन्दन! दैव अथवा कालके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंपर शासन करना भाररूप (कठिन) नहीं है॥ ४८-४९॥

'जैसे बालूके बने हुए पुल पानीके आघातसे ढह जाते हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े शूरवीर, बलवान् और अस्त्रवेत्ता पुरुष भी समराङ्गणमें कालके वशीभूत हो कष्टमें पड़ जाते हैं'॥ ५०॥

ऐसा कहकर सुदृढ़ एवं सत्यपराक्रमवाले महान् बल-विक्रमसे सम्पन्न महायशस्वी प्रतापशाली दशरथनन्दन श्रीरामने सुमित्राकुमारकी ओर देखकर उस समय स्वयं ही अपनी बुद्धिको सुस्थिर कर लिया॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणका परस्पर विचार करके कबन्धकी दोनों भुजाओंको काट डालना तथा कबन्धके द्वारा उनका स्वागत

अपने बाहुपाशसे घिरकर वहाँ खड़े हुए उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणकी ओर देखकर कबन्धने कहा—॥ १॥

'क्षत्रियशिरोमणि राजकुमारो! मुझे भूखसे पीड़ित देखकर भी खड़े क्यों हो? (मेरे मुँहमें चले आओ) क्योंकि दैवने मेरे भोजनके लिये ही तुम्हें यहाँ भेजा है। इसीलिये तुम दोनोंकी बुद्धि मारी गयी है'॥ २॥

यह सुनकर पीड़ित हुए लक्ष्मणने उस समय

पराक्रमका ही निश्चय करके यह समयोचित एवं हितकर बात कही— ॥ ३ ॥

'भैया! यह नीच राक्षस मुझको और आपको तुरंत मुँहमें ले ले, इसके पहले ही हमलोग अपनी तलवारोंसे इसकी बड़ी-बड़ी बाँहें शीघ्र ही काट डालें ॥ ४ ॥

'यह महाकाय राक्षस बड़ा भीषण है। इसकी भुजाओंमें ही इसका सारा बल और पराक्रम निहित है। यह समस्त संसारको सर्वथा पराजित-सा करके अब हमलोगोंको भी यहाँ मार डालना चाहता है ॥ ५ ॥

'राजन्! रघुनन्दन! यज्ञमें लाये गये पशुओंके समान निश्चेष्ट प्राणियोंका वध राजाके लिये निन्दित बताया गया है (इसलिये हमें इसके प्राण नहीं लेने चाहिये, केवल भुजाओंका ही उच्छेद कर देना चाहिये)' ॥ ६ ॥

उन दोनोंकी यह बातचीत सुनकर उस राक्षसको बड़ा क्रोध हुआ और वह अपना भयंकर मुख फैलाकर उन्हें खा जानेको उद्यत हो गया ॥ ७ ॥

इतनेमें ही देश-काल (अवसर) का ज्ञान रखनेवाले उन दोनों रघुवंशी राजकुमारोंने अत्यन्त हर्षमें भरकर तलवारोंसे ही उसकी दोनों भुजाएँ कंधोंसे काट गिरायीं ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीराम उसके दाहिने भागमें खड़े थे। उन्होंने अपनी तलवारसे उसकी दाहिनी बाँह बिना किसी रुकावटके वेगपूर्वक काट डाली तथा वाम भागमें खड़े वीर लक्ष्मणने उसकी बायीं भुजाको तलवारसे उड़ा दिया ॥ ९ ॥

भुजाएँ कट जानेपर वह महाबाहु राक्षस मेघके समान गम्भीर गर्जना करके पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओंको गुँजाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा ॥ १० ॥

अपनी भुजाओंको कटी हुई देख खूनसे लथपथ हुए उस दानवने दीन वाणीमें पूछा—'वीरो! तुम दोनों कौन हो?' ॥ ११ ॥

कबन्धके इस प्रकार पूछनेपर शुभ लक्षणोंवाले महाबली लक्ष्मणने उसे श्रीरामचन्द्रजीका परिचय देना आरम्भ किया— ॥ १२ ॥

'ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके पुत्र हैं और लोगोंमें श्रीराम नामसे विख्यात हैं। मुझे इन्हींका छोटा भाई समझो। मेरा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥

'माता कैकेयीके द्वारा जब इनका राज्याभिषेक रोक दिया गया, तब ये पिताकी आज्ञासे वनमें चले आये और मेरे तथा अपनी पत्नीके साथ इस विशाल वनमें विचरण करने लगे। इस निर्जन वनमें रहते हुए इन देवतुल्य प्रभावशाली श्रीरघुनाथजीकी पत्नीको किसी राक्षसने हर लिया है। उन्हींका पता लगानेकी इच्छासे हमलोग यहाँ आये हैं ॥ १४-१५ ॥

'तुम कौन हो? और कबन्धके समान रूप धारण करके क्यों इस वनमें पड़े हो? छातीके नीचे चमकता हुआ मुँह और टूटी हुई जंघा (पिण्डली) लिये तुम किस कारण इधर-उधर लुढ़कते फिरते हो?' ॥ १६ ॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर कबन्धको इन्द्रकी कही हुई बातका स्मरण हो आया। अतः उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ लक्ष्मणको उनकी बातका उत्तर दिया— ॥

'पुरुषसिंह वीरो! आप दोनोंका स्वागत है। बड़े भाग्यसे मुझे आपलोगोंका दर्शन मिला है। ये मेरी दोनों भुजाएँ मेरे लिये भारी बन्धन थीं। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंने इन्हें काट डाला ॥ १८ ॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम! मुझे जो ऐसा कुरूप रूप प्राप्त हुआ है, यह मेरी ही उद्दण्डताका फल है। यह सब कैसे हुआ, वह प्रसङ्ग आपको मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। आप मुझसे सुनें' ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकहत्तरवाँ सर्ग

कबन्धकी आत्मकथा, अपने शरीरका दाह हो जानेपर उसका श्रीरामको सीताके अन्वेषणमें सहायता देनेका आश्वासन

'महाबाहु श्रीराम! पूर्वकालमें मेरा रूप महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न, अचिन्त्य तथा तीनों लोकोंमें विख्यात था ॥ १ ॥

'सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्रका शरीर जैसा तेजस्वी है, वैसा ही मेरा भी था। ऐसा होनेपर भी मैं लोगोंको भयभीत करनेवाले इस अत्यन्त भयंकर राक्षसरूपको धारण करके इधर-उधर घूमता और वनमें रहनेवाले ऋषियोंको डराया करता था ॥ २$\frac{1}{2}$ ॥

अपने इस बर्तावसे एक दिन मैंने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कुपित कर दिया। वे नाना प्रकारके जंगली

फल-मूल आदिका संचय कर रहे थे, उसी समय मैंने उन्हें इस राक्षसरूपसे डरा दिया। मुझे ऐसे विकट रूपमें देखकर उन्होंने घोर शाप देते हुए कहा—॥ ३-४॥

'दुरात्मन्! आजसे सदाके लिये तुम्हारा यही क्रूर और निन्दित रूप रह जाय।' यह सुनकर मैंने उन कुपित महर्षिसे प्रार्थना की—'भगवन्! इस अभिशाप (तिरस्कार) जनित शापका अन्त होना चाहिये।' तब उन्होंने इस प्रकार कहा—॥ ५ १/२ ॥

'जब श्रीराम (और लक्ष्मण) तुम्हारी दोनों भुजाएँ काटकर तुम्हें निर्जन वनमें जलायेंगे, तब तुम पुनः अपने उसी परम उत्तम, सुन्दर और शोभासम्पन्न रूपको प्राप्त कर लोगे।' लक्ष्मण! इस प्रकार तुम मुझे एक दुराचारी दानव समझो॥ ६-७॥

'मेरा जो यह ऐसा रूप है, यह समराङ्गणमें इन्द्रके क्रोधसे प्राप्त हुआ है। मैंने पूर्वकालमें राक्षस होनेके पश्चात् घोर तपस्या करके पितामह ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे दीर्घजीवी होनेका वर दिया। इससे मेरी बुद्धिमें यह भ्रम या अहंकार उत्पन्न हो गया कि मुझे तो दीर्घकालतक बनी रहनेवाली आयु प्राप्त हुई है; फिर इन्द्र मेरा क्या कर लेंगे?॥ ८-९॥

'ऐसे विचारका आश्रय लेकर एक दिन मैंने युद्धमें देवराजपर आक्रमण किया। उस समय इन्द्रने मुझपर सौ धारोंवाले वज्रका प्रहार किया। उनके छोड़े हुए उस वज्रसे मेरी जाँघें और मस्तक मेरे ही शरीरमें घुस गये॥ १० १/२ ॥

'मैंने बहुत प्रार्थना की, इसलिये उन्होंने मुझे यमलोक नहीं पठाया और कहा—'पितामह ब्रह्माजीने जो तुम्हें दीर्घजीवी होनेके लिये वरदान दिया है, वह सत्य हो'॥ ११ १/२ ॥

'तब मैंने कहा—देवराज! आपने अपने वज्रकी मारसे मेरी जाँघें, मस्तक और मुँह सभी तोड़ डाले। अब मैं कैसे आहार ग्रहण करूँगा और निराहार रहकर किस प्रकार सुदीर्घकालतक जीवित रह सकूँगा?॥

'मेरे ऐसा कहनेपर इन्द्रने मेरी भुजाएँ एक-एक योजन लंबी कर दीं एवं तत्काल ही मेरे पेटमें तीखे दाढ़ोंवाला एक मुख बना दिया॥ १३ १/२ ॥

'इस प्रकार मैं विशाल भुजाओंद्वारा वनमें रहनेवाले सिंह, चीते, हरिन और बाघ आदि जन्तुओंको सब ओरसे समेटकर खाया करता था॥ १४ १/२ ॥

'इन्द्रने मुझे यह भी बतला दिया था कि जब लक्ष्मणसहित श्रीराम तुम्हारी भुजाएँ काट देंगे, उस समय तुम स्वर्गमें जाओगे॥ १५ १/२ ॥

'तात! राजशिरोमणे! इस शरीरसे इस वनके भीतर मैं जो-जो वस्तु देखता हूँ, वह सब ग्रहण कर लेना मुझे ठीक लगता है॥ १६ १/२ ॥

'इन्द्र तथा मुनिके कथनानुसार मुझे यह विश्वास था कि एक दिन श्रीराम अवश्य मेरी पकड़में आ जायँगे। इसी विचारको सामने रखकर मैं इस शरीरको त्याग देनेके लिये प्रयत्नशील था॥ १७ १/२ ॥

'रघुनन्दन! अवश्य ही आप श्रीराम हैं। आपका कल्याण हो। मैं आपके सिवा दूसरे किसीसे नहीं मारा जा सकता था। यह बात महर्षिने ठीक ही कही थी॥ १८ १/२ ॥

'नरश्रेष्ठ! आप दोनों जब अग्निके द्वारा मेरा दाह-संस्कार कर देंगे, उस समय मैं आपकी बौद्धिक सहायता करूँगा। आप दोनोंके लिये एक अच्छे मित्रका पता बताऊँगा'॥ १९ १/२ ॥

उस दानवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके सामने उससे यह बात कही—॥ २० १/२ ॥

'कबन्ध! मेरी यशस्विनी भार्या सीताको रावण हर ले गया है। उस समय मैं अपने भाई लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक जनस्थानके बाहर चला गया था। मैं उस राक्षसका नाममात्र जानता हूँ। उसकी शकल-सूरतसे परिचित नहीं हूँ॥ २१-२२॥

'वह कहाँ रहता है और कैसा उसका प्रभाव है, इस बातसे हमलोग सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस समय सीताका शोक हमें बड़ी पीड़ा दे रहा है। हम असहाय होकर इसी तरह सब ओर दौड़ रहे हैं। तुम हमारे ऊपर समुचित करुणा करनेके लिये इस विषयमें हमारा कुछ उपकार करो॥ २३ १/२ ॥

'वीर! फिर हमलोग हाथियोंद्वारा तोड़े गये सूखे काठ लाकर स्वयं खोदे हुए एक बहुत बड़े गड्ढेमें तुम्हारे शरीरको रखकर जला देंगे॥ २४ १/२ ॥

'अतः अब तुम हमें सीताका पता बताओ। इस समय वह कहाँ है? तथा उसे कौन कहाँ ले गया है? यदि ठीक-ठीक जानते हो तो सीताका समाचार बताकर हमारा अत्यन्त कल्याण करो'॥ २५ १/२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बातचीतमें कुशल उस दानवने उन प्रवचनपटु रघुनाथजीसे यह परम उत्तम बात कही—॥ २६ १/२ ॥

'श्रीराम! इस समय मुझे दिव्य ज्ञान नहीं है,

इसलिये मैं मिथिलेशकुमारीके विषयमें कुछ भी नहीं जानता। जब मेरे इस शरीरका दाह हो जायगा, तब मैं अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त होकर किसी ऐसे व्यक्तिका पता बता सकूँगा, जो सीताके विषयमें आपको कुछ बतायेगा तथा जो उस उत्कृष्ट राक्षसको भी जानता होगा, ऐसे पुरुषका आपको परिचय दूँगा॥ २७-२८॥

'प्रभो! जबतक मेरे इस शरीरका दाह नहीं होगा तबतक मुझमें यह जाननेकी शक्ति नहीं आ सकती कि वह महापराक्रमी राक्षस कौन है, जिसने आपकी सीताका अपहरण किया है॥ २९॥

'रघुनन्दन! शाप-दोषके कारण मेरा महान् विज्ञान नष्ट हो गया है। अपनी ही करतूतसे मुझे यह लोकनिन्दित रूप प्राप्त हुआ है॥ ३०॥

'किंतु श्रीराम! जबतक सूर्यदेव अपने वाहनोंके थक जानेपर अस्त नहीं हो जाते, तभीतक मुझे गड्ढेमें डालकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा दाह-संस्कार कर दीजिये॥ ३१॥

'महावीर रघुनन्दन! आपके द्वारा विधिपूर्वक गड्ढेमें मेरे शरीरका दाह हो जानेपर मैं ऐसे महापुरुषका परिचय दूँगा, जो उस राक्षसको जानते होंगे॥ ३२॥

'शीघ्र पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर रघुनाथजी! न्यायोचित आचारवाले उन महापुरुषके साथ आपको मित्रता कर लेनी चाहिये। वे आपकी सहायता करेंगे॥

'रघुनन्दन! उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है; क्योंकि किसी कारणवश वे पहले समस्त लोकोंमें चक्कर लगा चुके हैं'॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें एकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा चिताकी आगमें कबन्धका दाह तथा उसका दिव्य रूपमें प्रकट होकर उन्हें सुग्रीवसे मित्रता करनेके लिये कहना

कबन्धके ऐसा कहनेपर उन दोनों वीर नरेश्वर श्रीराम और लक्ष्मणने उसके शरीरको एक पर्वतके गड्ढेमें डालकर उसमें आग लगा दी॥ १॥

लक्ष्मणने जलती हुई बड़ी-बड़ी लुकारियोंके द्वारा चारों ओरसे उसकी चितामें आग लगायी; फिर तो वह सब ओरसे प्रज्वलित हो उठी॥ २॥

चितामें जलते हुए कबन्धका विशाल शरीर चर्बियोंसे भरा होनेके कारण घीके लोदेके समान प्रतीत होता था। चिताकी आग उसे धीरे-धीरे जलाने लगी॥ ३॥

तदनन्तर वह महाबली कबन्ध तुरंत ही चिताको हिलाकर दो निर्मल वस्त्र और दिव्य पुष्पोंका हार धारण किये धूमरहित अग्निके समान उठ खड़ा हुआ॥ ४॥

फिर वेगपूर्वक चितासे ऊपरको उठा और शीघ्र ही एक तेजस्वी विमानपर जा बैठा। निर्मल वस्त्रोंसे विभूषित हो वह बड़ा तेजस्वी दिखायी देता था। उसके मनमें हर्ष भरा हुआ था तथा समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गमें दिव्य आभूषण शोभा दे रहे थे। हंसोंसे जुते हुए उस यशस्वी विमानपर बैठा हुआ महान् तेजस्वी कबन्ध अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगा और अन्तरिक्षमें स्थित हो श्रीरामसे इस प्रकार बोला— ॥ ५-६ $\frac{1}{2}$ ॥

'रघुनन्दन! आप जिस प्रकार सीताको पा सकेंगे, वह ठीक-ठीक बता रहा हूँ, सुनिये। श्रीराम! लोकमें छः युक्तियाँ हैं, जिनसे राजाओंद्वारा सब कुछ प्राप्त किया जाता है (उन युक्तियों तथा उपायोंके नाम हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय*)। जो मनुष्य दुर्दशासे ग्रस्त होता है, वह दूसरे किसी दुर्दशाग्रस्त पुरुषसे ही सेवा या सहायता प्राप्त करता है (यह नीति है)॥ ७-८॥

'श्रीराम! लक्ष्मणसहित आप बुरी दशाके शिकार हो रहे हैं; इसीलिये आपलोग राज्यसे वञ्चित हैं तथा उस बुरी दशाके कारण ही आपको अपनी भार्याके अपहरणका महान् दुःख प्राप्त हुआ है॥ ९॥

'अतः सुहृदोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! आप अवश्य ही उस पुरुषको अपना सुहृद् बनाइये, जो आपकी ही भाँति दुर्दशामें पड़ा हुआ हो (इस प्रकार आप सुहृद्‌का आश्रय लेकर समाश्रय नीतिको अपनाइये)। मैं

* संधि आदिका विवेचन पृष्ठ ३४१ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

बहुत सोचनेपर भी ऐसा किये बिना आपकी सफलता नहीं देखता हूँ॥ १०॥

'श्रीराम! सुनिये, मैं ऐसे पुरुषका परिचय दे रहा हूँ, उनका नाम है सुग्रीव। वे जातिके वानर हैं। उन्हें उनके भाई इन्द्रकुमार वालीने कुपित होकर घरसे निकाल दिया है॥ ११॥

'वे मनस्वी वीर सुग्रीव इस समय चार वानरोंके साथ उस गिरिवर ऋष्यमूकपर निवास करते हैं, जो पम्पासरोवरतक फैला हुआ है॥ १२॥

'वे वानरोंके राजा महापराक्रमी सुग्रीव तेजस्वी, अत्यन्त कान्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, विनयशील, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, महापुरुष, कार्यदक्ष, निर्भीक, दीप्तिमान् तथा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं॥ १३½॥

'वीर श्रीराम! उनके महामना भाई वालीने सारे राज्यको अपने अधिकारमें कर लेनेके लिये उन्हें राज्यसे बाहर निकाल दिया है; अत: वे सीताकी खोजके लिये आपके सहायक और मित्र होंगे। इसलिये आप अपने मनको शोकमें न डालिये॥ १४-१५॥

'इक्ष्वाकुवंशी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! जो होनहार है, उसे कोई भी पलट नहीं सकता। कालका विधान सभीके लिये दुर्लङ्घ्य होता है (अत: आपपर जो कुछ भी बीत रहा है, इसे काल या प्रारब्धका विधान समझकर आपको धैर्य धारण करना चाहिये)॥ १६॥

'वीर रघुनाथजी! आप यहाँसे शीघ्र ही महाबली सुग्रीवके पास जाइये और जाकर तुरंत उन्हें अपना मित्र बना लीजिये॥ १७॥

'प्रज्वलित अग्निको साक्षी बनाकर परस्पर द्रोह न करनेके लिये मैत्री स्थापित कीजिये और ऐसा करनेके बाद आपको कभी उन वानरराज सुग्रीवका अपमान नहीं करना चाहिये॥ १८॥

'वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, पराक्रमी और कृतज्ञ हैं तथा इस समय स्वयं ही अपने लिये एक सहायक ढूँढ़ रहे हैं। उनका जो अभीष्ट कार्य है उसे सिद्ध करनेमें आप दोनों भाई समर्थ हैं॥ १९॥

'सुग्रीवका मनोरथ पूर्ण हो या न हो, वे आपका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे। वे ऋक्षरजाके क्षेत्रज पुत्र हैं और वालीसे शङ्कित रहकर पम्पासरोवरके तटपर भ्रमण करते हैं॥ २०॥

'उन्हें सूर्यदेवका औरस पुत्र कहा गया है। उन्होंने वालीका अपराध किया है (इसीलिये वे उससे डरते हैं)। रघुनन्दन! अग्निके समीप हथियार रखकर शीघ्र ही सत्यकी शपथ खाकर ऋष्यमूकनिवासी वनचारी वानर सुग्रीवको आप अपना मित्र बना लीजिये॥ २१½॥

'कपिश्रेष्ठ सुग्रीव संसारमें नरमांसभक्षी राक्षसोंके जितने स्थान हैं, उन सबको पूर्णरूपसे निपुणतापूर्वक जानते हैं॥ २२½॥

'रघुनन्दन! शत्रुदमन! सहस्रों किरणोंवाले सूर्यदेव जहाँतक तपते हैं, वहाँतक संसारमें कोई ऐसा स्थान या वस्तु नहीं है, जो सुग्रीवके लिये अज्ञात हो॥ २३½॥

'वे वानरोंके साथ रहकर समस्त नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों, पहाड़ी दुर्गम स्थानों और कन्दराओंमें भी खोज कराकर आपकी पत्नीका पता लगा लेंगे॥ २४½॥

'राघव! वे आपके वियोगमें शोक करती हुई सीताकी खोजके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें विशालकाय वानरोंको भेजेंगे, तथा रावणके घरसे भी सुन्दर अङ्गोंवाली मिथिलेशकुमारीको ढूँढ़ निकालेंगे॥ २५-२६॥

'आपकी प्रिया सती-साध्वी सीता मेरुशिखरके अग्रभागपर पहुँचायी गयी हों या पातालमें प्रवेश करके रखी गयी हों, वानरशिरोमणि सुग्रीव समस्त राक्षसोंका वध करके उन्हें पुन: आपके पास ला देंगे'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

दिव्य रूपधारी कबन्धका श्रीराम और लक्ष्मणको ऋष्यमूक और पम्पासरोवरका मार्ग बताना तथा मतङ्गमुनिके वन एवं आश्रमका परिचय देकर प्रस्थान करना

श्रीरामको सीताकी खोजका उपाय दिखाकर अर्थवेत्ता कबन्धने उनसे पुन: यह प्रयोजनयुक्त बात कही—॥ १॥

'श्रीराम! यहाँसे पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर जहाँ ये फूलोंसे भरे हुए मनोरम वृक्ष शोभा पा रहे हैं, यही आपके जाने लायक सुखद मार्ग है॥ २॥

'जामुन, प्रियाल (चिरौंजी), कटहल, बड़, पाकड़, तेंदू, पीपल, कनेर, आम तथा अन्य वृक्ष, धव, नागकेसर, तिलक, नक्तमाल, नील, अशोक, कदम्ब, खिले हुए करवीर, भिलावा, अशोक, लाल चन्दन तथा मन्दार—ये वृक्ष मार्गमें पड़ेंगे। आप दोनों भाई इनकी डालियोंको बलपूर्वक भूमिपर झुकाकर अथवा इन वृक्षोंपर चढ़कर इनके अमृततुल्य मधुर फलोंका आहार करते हुए यात्रा कीजियेगा॥ ३—५½ ॥

'काकुत्स्थ! खिले हुए वृक्षोंसे सुशोभित उस वनको लाँघकर आपलोग एक दूसरे वनमें प्रवेश कीजियेगा, जो नन्दनवनके समान मनोहर है। उस वनके वृक्ष उत्तर कुरुवर्षके वृक्षोंकी भाँति मधुकी धारा बहानेवाले हैं तथा उनमें सभी ऋतुओंमें सदा फल लगे रहते हैं॥ ६-७॥

'चैत्ररथ वनकी भाँति उस मनोहर काननमें सभी ऋतुएँ निवास करती हैं। वहाँके वृक्ष बड़ी-बड़ी शाखा धारण करनेवाले तथा फलोंके भारसे झुके हुए हैं॥ ८॥

'वे वहाँ सब ओर मेघों और पर्वतोंके समान शोभा पाते हैं। लक्ष्मण उन वृक्षोंपर चढ़कर अथवा सुखपूर्वक उन्हें पृथ्वीपर झुकाकर उनके अमृततुल्य मधुर फल आपको देंगे॥ ९½ ॥

'इस प्रकार सुन्दर पर्वतोंपर भ्रमण करते हुए आप दोनों भाई एक पहाड़से दूसरे पहाड़पर तथा एक वनसे दूसरे वनमें पहुँचेंगे और इस तरह अनेक पर्वतों तथा वनोंको लाँघते हुए आप दोनों वीर पम्पा नामक पुष्करिणीके तटपर पहुँच जायेंगे॥ १०½ ॥

'श्रीराम! वहाँ कंकड़का नाम नहीं है। उसके तटपर पैर फिसलने लायक कीचड़ आदि नहीं है। उसके घाटकी भूमि सब ओरसे बराबर है—ऊँची-नीची या ऊबड़-खाबड़ नहीं है। उस पुष्करिणीमें सेवारका सर्वथा अभाव है। उसके भीतरकी भूमि वालुकापूर्ण है। कमल और उत्पल उस सरोवरकी शोभा बढ़ाते हैं॥ ११½ ॥

'रघुनन्दन! वहाँ पम्पाके जलमें विचरनेवाले हंस, कारण्डव, क्रौञ्च और कुरर सदा मधुर स्वरमें कूजते रहते हैं। वे मनुष्योंको देखकर उद्विग्न नहीं होते हैं। क्योंकि किसी मनुष्यके द्वारा किसी पक्षीका वध भी हो सकता है, ऐसे भयका उन्हें अनुभव नहीं है। ये सभी पक्षी बड़े सुन्दर हैं॥ १२-१३॥

'बाणोंके अग्रभागसे जिनके छिलके छुड़ा दिये गये हैं, अतएव जिनमें एक भी काँटा नहीं रह गया है, जो घीके लोदेके समान चिकने तथा आर्द्र हैं—सूखे नहीं हैं, जिन्हें लोहमय बाणोंके अग्रभागमें गूँथकर आगमें सेका और पकाया गया है, ऐसे फल-मूलके ढेर वहाँ भक्ष्य पदार्थके रूपमें उपलब्ध होंगे। आपके प्रति भक्तिभावसे सम्पन्न लक्ष्मण आपको वे भक्ष्य पदार्थ अर्पित करेंगे। आप दोनों भाई उन पदार्थोंको लेकर उस सरोवरके मोटे-मोटे सुप्रसिद्ध जलचर पक्षियों तथा श्रेष्ठ रोहित (रोहू), वक्रतुण्ड और नलमीन आदि मत्स्योंको थोड़ा-थोड़ा करके खिलाइयेगा (इससे आपका मनोरञ्जन होगा)॥ १४-१५½ ॥

'जिस समय आप पम्पासरोवरकी पुष्पराशिके समीप मछलियोंको भोजन करानेकी क्रीड़ामें अत्यन्त संलग्न होंगे, उस समय लक्ष्मण उस सरोवरका कमलकी गन्धसे सुवासित, कल्याणकारी, सुखद, शीतल, रोगनाशक, क्लेशहारी तथा चाँदी और स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल कमलके पत्तेमें निकालकर लायेंगे और आपको पिलायेंगे॥ १६-१७½ ॥

'श्रीराम! सायंकालमें आपके साथ विचरते हुए लक्ष्मण आपको उन मोटे-मोटे वनचारी वानरोंका दर्शन करायेंगे, जो पर्वतोंकी गुफाओंमें सोते और रहते हैं॥ १८½ ॥

'नरश्रेष्ठ! वे वानर पानी पीनेके लोभसे पम्पाके तटपर आकर साँड़ोंके समान गर्जते हैं। उनके शरीर मोटे और रंग पीले होते हैं। आप उन सबको वहाँ देखेंगे॥ १९½ ॥

'श्रीराम! सायंकालमें चलते समय आप बड़ी-बड़ी शाखावाले, पुष्पधारी वृक्षों तथा पम्पाके शीतल जलका दर्शन करके अपना शोक त्याग देंगे॥ २०½ ॥

'रघुनन्दन! वहाँ फूलोंसे भरे हुए तिलक और नक्तमालके वृक्ष शोभा पाते हैं तथा जलके भीतर उत्पल और कमल फूले हुए दिखायी देते हैं॥ २१½ ॥

'रघुनन्दन! कोई भी मनुष्य वहाँ उन फूलोंको उतारकर धारण नहीं करता है। (क्योंकि वहाँतक किसीकी पहुँच ही नहीं हो पाती है) पम्पासरोवरके फूल न तो मुरझाते हैं और न झरते ही हैं॥ २२½ ॥

'कहते हैं, वहाँ पहले मतंग मुनिके शिष्य ऋषिगण निवास करते थे, जिनका चित्त सदा एकाग्र एवं शान्त रहता था। वे अपने गुरु मतंग मुनिके लिये जब जंगली फल-मूल ले आते और उनके भारसे थक जाते, तब उनके शरीरसे पृथ्वीपर पसीनोंकी जो बूँदें

गिरती थीं, वे ही उन मुनियोंकी तपस्याके प्रभावसे तत्काल फूलके रूपमें परिणत हो जाती थीं। राघव! पसीनोंकी बूँदोंसे उत्पन्न होनेके कारण वे फूल नष्ट नहीं होते हैं॥ २३—२५॥

'वे सब-के-सब ऋषि तो अब चले गये; किंतु उनकी सेवामें रहनेवाली तपस्विनी शबरी आज भी वहाँ दिखायी देती है। काकुत्स्थ! शबरी चिरजीवनी होकर सदा धर्मके अनुष्ठानमें लगी रहती है। श्रीराम! आप समस्त प्राणियोंके लिये नित्य वन्दनीय और देवताके तुल्य हैं। आपका दर्शन करके शबरी स्वर्गलोक (साकेतधाम) को चली जायगी॥ २६-२७॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! तदनन्तर आप पम्पाके पश्चिम तटपर जाकर एक अनुपम आश्रम देखेंगे, जो (सर्वसाधारणकी पहुँचके बाहर होनेके कारण) गुप्त है॥ २८॥

'उस आश्रमपर तथा उस वनमें मतंग मुनिके प्रभावसे हाथी कभी आक्रमण नहीं कर सकते॥ २९॥

'रघुनन्दन! वहाँका जंगल मतंगवनके नामसे प्रसिद्ध है। उस नन्दनतुल्य मनोहर और देववनके समान सुन्दर वनमें नाना प्रकारके पक्षी भरे रहते हैं। श्रीराम! आप वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ सानन्द विचरण करेंगे॥ ३० $\frac{1}{2}$॥

'पम्पासरोवरके पूर्वभागमें ऋष्यमूक पर्वत है, जहाँके वृक्ष फूलोंसे सुशोभित दिखायी देते हैं। उसके ऊपर चढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि वह छोटे-छोटे सर्पों अथवा हाथियोंके बच्चोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। ऋष्यमूक पर्वत उदार (अभीष्ट फलको देनेवाला) है। पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उसका निर्माण किया और उसे औदार्य आदि गुणोंसे सम्पन्न बनाया॥ ३१-३२॥

'श्रीराम! उस पर्वतके शिखरपर सोया हुआ पुरुष सपनेमें जिस सम्पत्तिको पाता है उसे जागनेपर भी प्राप्त कर लेता है। जो पापकर्मी तथा विषम बर्ताव करनेवाला पुरुष उस पर्वतपर चढ़ता है, उसे इस पर्वतशिखरपर ही सो जानेपर राक्षस लोग उठाकर उसके ऊपर प्रहार करते हैं॥ ३३-३४॥

'श्रीराम! मतंग मुनिके आश्रमके आस-पासके वनमें रहने और पम्पासरोवरमें क्रीडा करनेवाले छोटे-छोटे हाथियोंके चिग्घाड़नेका महान् शब्द उस पर्वतपर भी सुनायी देता है॥ ३५॥

'जिनके गण्डस्थलोंपर कुछ लाल रंगकी मदकी धाराएँ बहती हैं, वे वेगशाली और मेघके समान काले बड़े-बड़े गजराज झुंड-के-झुंड एक साथ होकर दूसरी जातिवाले हाथियोंसे पृथक् हो वहाँ विचरते रहते हैं। वनमें विचरनेवाले वे हाथी जब पम्पासरोवरका निर्मल, मनोहर, सुन्दर, छूनेमें अत्यन्त सुखद तथा सब प्रकारकी सुगन्धसे सुवासित जल पीकर लौटते हैं, तब उन वनोंमें प्रवेश करते हैं॥ ३६-३७ $\frac{1}{2}$॥

'रघुनन्दन! वहाँ रीछों, बाघों और नील कोमल कान्तिवाले मनुष्योंको देखकर भागनेवाले तथा दौड़ लगानेमें किसीसे पराजित न होनेवाले मृगोंको देखकर आप अपना सारा शोक भूल जायँगे॥ ३८ $\frac{1}{2}$॥

'श्रीराम! उस पर्वतके ऊपर एक बहुत बड़ी गुफा शोभा पाती है, जिसका द्वार पत्थरसे ढका है। उसके भीतर प्रवेश करनेमें बड़ा कष्ट होता है॥ ३९ $\frac{1}{2}$॥

'उस गुफाके पूर्वद्वारपर शीतल जलसे भरा हुआ एक बहुत बड़ा कुण्ड है। उसके आस-पास बहुत-से फल और मूल सुलभ हैं तथा वह रमणीय ह्रद नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है॥ ४० $\frac{1}{2}$॥

'धर्मात्मा सुग्रीव वानरोंके साथ उसी गुफामें निवास करते हैं। वे कभी-कभी उस पर्वतके शिखरपर भी रहते हैं'॥ ४१ $\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको सब बातें बताकर सूर्यके समान तेजस्वी और पराक्रमी कबन्ध दिव्य पुष्पोंकी माला धारण किये आकाशमें प्रकाशित होने लगा॥ ४२ $\frac{1}{2}$॥

उस समय वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वहाँसे प्रस्थान करनेके लिये उद्यत हो आकाशमें खड़े हुए महाभाग कबन्धसे उसके निकट खड़े होकर बोले—'अब तुम परम धामको जाओ'॥ ४३ $\frac{1}{2}$॥

कबन्धने भी उन दोनों भाइयोंसे कहा—'आपलोग भी अपने कार्यकी सिद्धिके लिये यात्रा करें।' ऐसा कहकर परम प्रसन्न हुए उन दोनों बन्धुओंसे आज्ञा ले कबन्धने तत्काल प्रस्थान किया॥ ४४-४५॥

कबन्ध अपने पहले रूपको पाकर अद्भुत शोभासे सम्पन्न हो गया। उसका सारा शरीर सूर्य-तुल्य प्रभासे प्रकाशित हो उठा। वह रामकी ओर देखकर उन्हें पम्पासरोवरका मार्ग दिखाता हुआ आकाशमें ही स्थित होकर बोला—'आप सुग्रीवके साथ मित्रता अवश्य करें'।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणका पम्पासरोवरके तटपर मतङ्गवनमें शबरीके आश्रमपर जाना, उसका सत्कार ग्रहण करना और उसके साथ मतङ्गवनको देखना, शबरीका अपने शरीरकी आहुति दे दिव्यधामको प्रस्थान करना

तदनन्तर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण कबन्धके बताये हुए पम्पासरोवरके मार्गका आश्रय ले पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये॥ १॥

दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण पर्वतोंपर फैले हुए बहुत-से वृक्षोंको, जो फूल, फल और मधुसे सम्पन्न थे, देखते हुए सुग्रीवसे मिलनेके लिये आगे बढ़े॥ २॥

रातमें एक पर्वत-शिखरपर निवास करके रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले वे दोनों रघुवंशी बन्धु पम्पासरोवरके पश्चिम तटपर जा पहुँचे॥ ३॥

पम्पानामक पुष्करिणीके पश्चिम तटपर पहुँचकर उन दोनों भाइयोंने वहाँ शबरीका रमणीय आश्रम देखा॥

उसकी शोभा निहारते हुए वे दोनों भाई बहुसंख्यक वृक्षोंसे घिरे हुए उस सुरम्य आश्रमपर जाकर शबरीसे मिले॥ ५॥

शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। उन दोनों भाइयोंको आश्रमपर आया देख वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी तथा उसने बुद्धिमान् श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ६॥

फिर पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदि सब सामग्री समर्पित की और विधिवत् उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी उस धर्मपरायणा तपस्विनीसे बोले— ॥ ७॥

'तपोधने! क्या तुमने सारे विघ्नोंपर विजय पा ली? क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है? क्या तुमने क्रोध और आहारको काबूमें कर लिया है?॥ ८॥

'तुमने जिन नियमोंको स्वीकार किया है, वे निभ तो जाते हैं न? तुम्हारे मनमें सुख और शान्ति है न? चारुभाषिणि! तुमने जो गुरुजनोंकी सेवा की है, वह पूर्णरूपसे सफल हो गयी है न?'॥ ९॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर वह सिद्ध तपस्विनी बूढ़ी शबरी, जो सिद्धोंके द्वारा सम्मानित थी, उनके सामने खड़ी होकर बोली— ॥ १०॥

'रघुनन्दन! आज आपका दर्शन मिलनेसे ही मुझे अपनी तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुजनोंकी उत्तम पूजा भी सार्थक हो गयी॥ ११॥

'पुरुषप्रवर श्रीराम! आप देवेश्वरका यहाँ सत्कार हुआ, इससे मेरी तपस्या सफल हो गयी और अब मुझे आपके दिव्य धामकी प्राप्ति भी होगी ही॥ १२॥

'सौम्य! मानद! आपकी सौम्य दृष्टि पड़नेसे मैं परम पवित्र हो गयी। शत्रुदमन! आपके प्रसादसे ही अब मैं अक्षय लोकोंमें जाऊँगी॥ १३॥

'जब आप चित्रकूट पर्वतपर पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन, जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अतुल कान्तिमान् विमानपर बैठकर यहाँसे दिव्यलोकको चले गये॥ १४॥

'उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियोंने जाते समय मुझसे कहा था कि तेरे इस परम पवित्र आश्रमपर श्रीरामचन्द्रजी पधारेंगे और लक्ष्मणके साथ तेरे अतिथि होंगे। तुम उनका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवं अक्षय लोकोंमें जायगी॥ १५-१६॥

'पुरुषप्रवर! उन महाभाग महात्माओंने मुझसे उस समय ऐसी बात कही थी। अतः पुरुषसिंह! मैंने आपके लिये पम्पातटपर उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके जंगली फल-मूलोंका संचय किया है'॥ १७½॥

शबरी (जातिसे वर्णबाह्य होनेपर भी) विज्ञानमें बहिष्कृत नहीं थी—उसे परमात्माके तत्त्वका नित्य ज्ञान प्राप्त था। उसकी पूर्वोक्त बातें सुनकर धर्मात्मा श्रीरामने उससे कहा— ॥ १८½॥

'तपोधने! मैंने कबन्धके मुखसे तुम्हारे महात्मा गुरुजनोंका यथार्थ प्रभाव सुना है। यदि तुम स्वीकार करो तो मैं उनके उस प्रभावको प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ'॥ १९½॥

श्रीरामके मुखसे निकले हुए इस वचनको सुनकर शबरीने उन दोनों भाइयोंको उस महान् वनका दर्शन कराते हुए कहा— ॥ २०½॥

'रघुनन्दन! मेघोंकी घटाके समान श्याम और नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंसे भरे हुए इस वनकी ओर दृष्टिपात कीजिये। यह मतंगवनके नामसे ही विख्यात है॥ २१½॥

'महातेजस्वी श्रीराम! यहीं वे मेरे भावितात्मा

(शुद्ध अन्त:करणवाले एवं परमात्मचिन्तनपरायण) गुरुजन निवास करते थे। इसी स्थानपर उन्होंने गायत्रीमन्त्रके जपसे विशुद्ध हुए अपने देहरूपी पञ्जरको मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अग्निमें होम दिया था॥ २२॥

'यह प्रत्यक्स्थली नामवाली वेदी है, जहाँ मेरे द्वारा भलीभाँति पूजित हुए वे महर्षि वृद्धावस्थाके कारण श्रमसे काँपते हुए हाथोंद्वारा देवताओंको फूलोंकी बलि चढ़ाया करते थे॥ २३॥

'रघुवंशशिरोमणे! देखिये, उनकी तपस्याके प्रभावसे आज भी यह वेदी अपने तेजके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रही है। इस समय भी इसकी प्रभा अतुलनीय है॥ २४॥

'उपवास करनेसे दुर्बल होनेके कारण जब वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये, तब उनके चिन्तनमात्रसे वहाँ सात समुद्रोंका जल प्रकट हो गया। वह सप्तसागर तीर्थ आज भी मौजूद है। उसमें सातों समुद्रोंके जल मिले हुए हैं, उसे चलकर देखिये॥ २५॥

'रघुनन्दन! उसमें स्नान करके उन्होंने वृक्षोंपर जो वल्कल वस्त्र फैला दिये थे, वे इस प्रदेशमें अबतक सूखे नहीं हैं॥ २६॥

'देवताओंकी पूजा करते हुए मेरे गुरुजनोंने कमलोंके साथ अन्य फूलोंकी जो मालाएँ बनायी थीं, वे आज भी मुरझायी नहीं हैं॥ २७॥

'भगवन्! आपने सारा वन देख लिया और यहाँके सम्बन्धमें जो बातें सुननेयोग्य थीं, वे भी सुन लीं। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देहका परित्याग करना चाहती हूँ॥ २८॥

'जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणोंकी मैं दासी रही हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियोंके समीप अब मैं जाना चाहती हूँ'॥ २९॥

शबरीके धर्मयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनके मुँहसे निकल पड़ा, 'आश्चर्य है!'॥ ३०॥

तदनन्तर श्रीरामने कठोर व्रतका पालन करनेवाली शबरीसे कहा—'भद्रे! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोकको यात्रा करो'॥ ३१॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मस्तकपर जटा और शरीरपर चीर एवं काला मृगचर्म धारण करनेवाली शबरीने अपनेको आगमें होमकर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। वह दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्य फूलोंकी माला और दिव्य अनुलेपन धारण किये बड़ी मनोहर दिखायी देने लगी तथा सुदाम पर्वतपर प्रकट होनेवाली बिजलीके समान उस प्रदेशको प्रकाशित करती हुई स्वर्ग (साकेत) लोकको ही चली गयी॥ ३२—३४॥

उसने अपने चित्तको एकाग्र करके उस पुण्यधामकी यात्रा की, जहाँ उसके वे गुरुजन पुण्यात्मा महर्षि विहार करते थे॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणकी बातचीत तथा उन दोनों भाइयोंका पम्पासरोवरके तटपर जाना

अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली शबरीके दिव्यलोकमें चले जानेपर भाई लक्ष्मणसहित धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने उन महात्मा महर्षियोंके प्रभावका चिन्तन किया। चिन्तन करके अपने हितमें संलग्न रहनेवाले एकाग्रचित्त लक्ष्मणसे श्रीरामने इस प्रकार कहा—॥ १-२॥

'सौम्य! मैंने उन पुण्यात्मा महर्षियोंका यह पवित्र आश्रम देखा। यहाँ बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें हैं। हरिण और बाघ एक-दूसरेपर विश्वास करते हैं। नाना प्रकारके पक्षी इस आश्रमका सेवन करते हैं॥ ३॥

'लक्ष्मण! यहाँ जो सातों समुद्रोंके जलसे भरे हुए तीर्थ हैं, उनमें हमने विधिपूर्वक स्नान तथा पितरोंका तर्पण किये हैं। इससे हमारा सारा अशुभ नष्ट हो गया और अब हमारे कल्याणका समय उपस्थित हुआ है। सुमित्राकुमार! इससे इस समय मेरे मनमें अधिक प्रसन्नता हो रही है॥ ४-५॥

'नरश्रेष्ठ! अब मेरे हृदयमें कोई शुभ संकल्प उठनेवाला है। इसलिये आओ, अब हम दोनों परम सुन्दर पम्पासरोवरके तटपर चलें॥ ६॥

'वहाँसे थोड़ी ही दूरपर वह ऋष्यमूक पर्वत शोभा

पाता है, जिसपर सूर्यपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करते हैं॥ ७॥

'वालीके भयसे सदा डरे रहनेके कारण वे चार वानरोंके साथ उस पर्वतपर रहते हैं। मैं वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मिलनेके लिये उतावला हो रहा हूँ; क्योंकि सीताके अन्वेषणका कार्य उन्हींके अधीन है'॥ ८½ ॥

इस प्रकारकी बात कहते हुए वीर श्रीरामसे सुमित्राकुमार लक्ष्मणने यों कहा—'भैया! हम दोनोंको शीघ्र ही वहाँ चलना चाहिये। मेरा मन भी चलनेके लिये उतावला हो रहा है'॥ ९½ ॥

तदनन्तर प्रजापालक भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके साथ उस आश्रमसे निकलकर सब ओर फूलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंकी शोभा निहारते हुए पम्पा-सरोवरके तटपर आये॥ १०-११॥

वह विशाल वन टिट्टिभों, मोरों, कठफोड़वों, तोतों तथा अन्य बहुत-से पक्षियोंके कलरवोंसे गूँज रहा था॥ १२॥

श्रीरामके मनमें सीताजीसे मिलनेकी तीव्र लालसा जाग उठी थी, इससे संतप्त हो वे नाना प्रकारके वृक्षों और भाँति-भाँतिके सरोवरोंकी शोभा देखते हुए उस उत्तम जलाशयके पास गये॥ १३॥

पम्पानामसे प्रसिद्ध वह सरोवर पीनेयोग्य स्वच्छ जल बहानेवाला था। श्रीराम दूर देशसे चलकर उसके तटपर आये। आकर उन्होंने मतंगसरस नामक कुण्डमें स्नान किया॥ १४॥

वे दोनों रघुवंशी वीर वहाँ शान्त और एकाग्रचित्त होकर पहुँचे थे। सीताके शोकसे व्याकुल हुए दशरथनन्दन श्रीरामने उस रमणीय पुष्करिणी पम्पामें प्रवेश किया, जो कमलोंसे व्याप्त थी॥ १५½ ॥

उसके तटपर तिलक, अशोक, नागकेसर, वकुल तथा लिसोड़ेके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। भाँति-भाँतिके रमणीय उपवनोंसे वह घिरी हुई थी। उसका जल कमलपुष्पोंसे आच्छादित था और स्फटिक मणिके समान स्वच्छ दिखायी देता था। जलके नीचे स्वच्छ वालुका फैली हुई थी। मत्स्य और कच्छप उसमें भरे हुए थे। तटवर्ती वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे। सब ओर लताओंद्वारा आवेष्टित होनेके कारण वह सखियोंसे संयुक्त-सी प्रतीत होती थी। किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस उसका सेवन करते थे। भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंसे व्याप्त हुई पम्पा शीतल जलकी सुन्दर निधि प्रतीत होती थी॥ १६—१९॥

अरुण कमलोंसे वह ताम्रवर्णकी, कुमुद-कुसुमोंके समूहसे शुक्लवर्णकी तथा नील कमलोंके समुदायसे नीलवर्णकी दिखायी देनेके कारण बहुरंगे कालीनके समान शोभा पाती थी॥ २०॥

उस पुष्करिणीमें अरविन्द और उत्पल खिले थे। पद्म और सौगन्धिक जातिके पुष्प शोभा पाते थे। मौर लगी हुई अमराइयोंसे वह घिरी हुई थी तथा मयूरोंके केकानाद वहाँ गूँज रहे थे॥ २१॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणसहित श्रीरामने जब उस मनोहर पम्पाको देखा, तब उनके हृदयमें सीताकी वियोग-व्यथा उद्दीप्त हो उठी; अतः वे तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीराम वहाँ विलाप करने लगे॥ २२॥

तिलक, बिजौरा, वट, लोध, खिले हुए करवीर, पुष्पित नागकेसर, मालती, कुन्द, झाड़ी, भंडीर (बरगद), वञ्जुल, अशोक, छितवन, कतक, माधवी लता तथा अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित हुई पम्पा भाँति-भाँतिकी वस्त्रभूषाओंसे सजी हुई युवतीके समान जान पड़ती थी। उसीके तटपर विविध धातुओंसे मण्डित पूर्वोक्त ऋष्यमूक नामसे विख्यात पर्वत सुशोभित था। उसके ऊपर फूलोंसे भरे हुए विचित्र वृक्ष शोभा दे रहे थे॥ २३—२५½ ॥

ऋक्षरजा नामक महात्मा वानरके पुत्र कपिश्रेष्ठ महापराक्रमी सुग्रीव वहीं निवास करते थे॥ २६½ ॥

उस समय सत्यपराक्रमी श्रीरामने पुनः लक्ष्मणसे कहा—'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम वानरराज सुग्रीवके पास चलो, मैं सीताके बिना कैसे जीवित रह सकता हूँ'॥ २७-२८॥

ऐसा कहकर सीताके दर्शनकी कामनासे पीड़ित तथा उनके प्रति अनन्य अनुराग रखनेवाले श्रीराम उस महान् शोकको प्रकट करते हुए उस मनोरम पुष्करिणी पम्पामें उतरे॥ २९॥

वनकी शोभा देखते हुए क्रमशः वहाँ जाकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने पम्पाको देखा। उसके समीपवर्ती कानन बड़े सुन्दर और दर्शनीय थे। अनेक प्रकारके झुंड-के-झुंड पक्षी वहाँ सब ओर भरे हुए थे। भाईसहित श्रीरघुनाथजीने पम्पाके जलमें प्रवेश किया॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके अरण्यकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७५॥

॥ अरण्यकाण्ड समाप्त॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

किष्किन्धाकाण्ड

पहला सर्ग

पम्पासरोवरके दर्शनसे श्रीरामकी व्याकुलता, श्रीरामका लक्ष्मणसे पम्पाकी शोभा तथा वहाँकी उद्दीपनसामग्रीका वर्णन करना, लक्ष्मणका श्रीरामको समझाना तथा दोनों भाइयोंको ऋष्यमूककी ओर आते देख सुग्रीव तथा अन्य वानरोंका भयभीत होना

कमल, उत्पल तथा मत्स्योंसे भरी हुई उस पम्पा नामक पुष्करिणीके पास पहुँचकर सीताकी सुधि आ जानेके कारण श्रीरामकी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठीं। वे विलाप करने लगे। उस समय सुमित्राकुमार लक्ष्मण उनके साथ थे॥ १॥

वहाँ पम्पापर दृष्टि पड़ते ही (कमल-पुष्पोंमें सीताके नेत्रमुख आदिका किञ्चित् सादृश्य पाकर) हर्षोल्लाससे श्रीरामकी सारी इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठीं। उनके मनमें सीताके दर्शनकी प्रबल इच्छा जाग उठी। उस इच्छाके अधीन-से होकर वे सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले— ॥ २॥

'सुमित्रानन्दन! यह पम्पा कैसी शोभा पा रही है? इसका जल वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ एवं श्याम है। इसमें बहुत-से पद्म और उत्पल खिले हुए हैं। तटपर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके वृक्षोंसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है॥ ३॥

'सुमित्राकुमार! देखो तो सही, पम्पाके किनारेका वन कितना सुन्दर दिखायी दे रहा है। यहाँके ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अपनी फैली हुई शाखाओंके कारण अनेक शिखरोंसे युक्त पर्वतोंके समान सुशोभित होते हैं॥ ४॥

'परंतु मैं इस समय भरतके दुःख और सीताहरणकी चिन्ताके शोकसे संतप्त हो रहा हूँ। मानसिक वेदनाएँ मुझे बहुत कष्ट पहुँचा रही हैं॥ ५॥

'यद्यपि मैं शोकसे पीड़ित हूँ तो भी मुझे यह पम्पा बड़ी सुहावनी लग रही है। इसके निकटवर्ती वन बड़े विचित्र दिखायी देते हैं। यह नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त है। इसका जल बहुत शीतल है और यह बहुत सुखदायिनी प्रतीत होती है॥ ६॥

'कमलोंसे यह सारी पुष्करिणी ढकी हुई है। इसलिये बड़ी सुन्दर दिखायी देती है। इसके आस-पास सर्प तथा हिंसक जन्तु विचर रहे हैं। मृग आदि पशु और पक्षी भी सब ओर छा रहे हैं॥ ७॥

'नयी-नयी घासोंसे ढका हुआ यह स्थान अपनी नीली-पीली आभाके कारण अधिक शोभा पा रहा है। यहाँ वृक्षोंके नाना प्रकारके पुष्प सब ओर बिखरे हुए हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है मानो यहाँ बहुत-से गलीचे बिछा दिये गये हों॥ ८॥

'चारों ओर वृक्षोंके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे होनेके कारण समृद्धिशाली प्रतीत होते हैं। ऊपरसे खिली हुई लताएँ उनमें सब ओरसे लिपटी हुई हैं॥ ९॥

'सुमित्रानन्दन! इस समय मन्द-मन्द सुखदायिनी हवा चल रही है, जिससे कामनाका उद्दीपन हो रहा है (सीताको देखनेकी इच्छा प्रबल हो उठी है)। यह चैत्रका महीना है। वृक्षोंमें फूल और फल लग गये हैं और सब ओर मनोहर सुगन्ध छा रही है॥ १०॥

'लक्ष्मण! फूलोंसे सुशोभित होनेवाले इन वनोंके रूप तो देखो। ये उसी तरह फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं जैसे मेघ जलकी वृष्टि करते हैं॥ ११॥

'वनके ये विविध वृक्ष वायुके वेगसे झूम-झूमकर रमणीय शिलाओंपर फूल बरसा रहे हैं और यहाँकी भूमिको ढक देते हैं॥ १२॥

'सुमित्राकुमार! उधर तो देखो, जो वृक्षोंसे झड़ गये हैं, झड़ रहे हैं तथा जो अभी डालियोंमें ही लगे

हुए हैं, उन सभी फूलोंके साथ सब ओर वायु खेल-सा कर रही है॥ १३॥

'फूलोंसे भरी हुई वृक्षोंकी विभिन्न शाखाओंको झकझोरती हुई वायु जब आगेको बढ़ती है, तब अपने-अपने स्थानसे विचलित हुए भ्रमर मानो उसका यशोगान करते हुए उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं॥ १४॥

'पर्वतकी कन्दरासे विशेष ध्वनिके साथ निकली हुई वायु मानो उच्च स्वरसे गीत गा रही है। मतवाले कोकिलोंके कलनाद वाद्यका काम देते हैं और उन वाद्योंकी ध्वनिके साथ वह वायु इन झूमते हुए वृक्षोंको मानो नृत्यकी शिक्षा-सी दे रही है॥ १५॥

'वायुके वेगपूर्वक हिलानेसे जिनकी शाखाओंके अग्रभाग सब ओरसे परस्पर सट गये हैं, वे वृक्ष एक-दूसरेसे गुँथे हुएकी भाँति जान पड़ते हैं॥ १६॥

'मलयचन्दनका स्पर्श करके बहनेवाली यह शीतलवायु शरीरसे छू जानेपर कितनी सुखद जान पड़ती है। यह थकावट दूर करती हुई बह रही है और सर्वत्र पवित्र सुगन्ध फैला रही है॥ १७॥

'मधुर मकरन्द और सुगन्धसे भरे हुए इन वनोंमें गुनगुनाते हुए भ्रमरोंके व्याजसे ये वायुद्वारा हिलाये गये वृक्ष मानो नृत्यके साथ गान कर रहे हैं॥ १८॥

'अपने रमणीय पृष्ठभागोंपर उत्पन्न फूलोंसे सम्पन्न तथा मनको लुभानेवाले विशाल वृक्षोंसे सटे हुए शिखरवाले पर्वत अद्भुत शोभा पा रहे हैं॥ १९॥

'जिनकी शाखाओंके अग्रभाग फूलोंसे ढके हैं, जो वायुके झोंकेसे हिल रहे हैं तथा भ्रमरोंको पगड़ीके रूपमें सिरपर धारण किये हुए हैं, वे वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानो इन्होंने नाचना-गाना आरम्भ कर दिया है॥ २०॥

'देखो, सब ओर सुन्दर फूलोंसे भरे हुए ये कनेर सोनेके आभूषणोंसे विभूषित पीताम्बरधारी मनुष्योंके समान शोभा पा रहे हैं॥ २१॥

'सुमित्रानन्दन! नाना प्रकारके विहङ्गमोंके कलरवोंसे गूँजता हुआ यह वसन्तका समय सीतासे बिछुड़े हुए मेरे लिये शोकको बढ़ानेवाला हो गया है॥ २२॥

'वियोगके शोकसे तो मैं पीड़ित हूँ ही, यह कामदेव (सीता-विषयक अनुराग) मुझे और भी संताप दे रहा है। कोकिल बड़े हर्षके साथ कलनाद करता हुआ मानो मुझे ललकार रहा है॥ २३॥

'लक्ष्मण! वनके रमणीय झरनेके निकट बड़े हर्षके साथ बोलता हुआ यह जलकुक्कुट सीतासे मिलनेकी इच्छावाले मुझ रामको शोकमग्न किये देता है॥ २४॥

'पहले मेरी प्रिया जब आश्रममें रहती थी, उन दिनों इसका शब्द सुनकर आनन्दमग्न हो जाती थी और मुझे भी निकट बुलाकर अत्यन्त आनन्दित कर देती थी॥ २५॥

'देखो, इस प्रकार भाँति-भाँतिकी बोली बोलनेवाले विचित्र पक्षी चारों ओर वृक्षों, झारियों और लताओंकी ओर उड़ रहे हैं॥ २६॥

'सुमित्रानन्दन! देखो, ये पक्षिणियाँ नर पक्षियोंसे संयुक्त हो अपने झुंडमें आनन्दका अनुभव कर रही हैं, भौंरोंका गुञ्जारव सुनकर प्रसन्न हो रही हैं और स्वयं भी मीठी बोली बोल रही हैं॥ २७॥

'इस पम्पाके तटपर यहाँ झुंड-के-झुंड पक्षी आनन्दमग्न होकर चहक रहे हैं। जलकुक्कुटोंके रतिसम्बन्धी कूजन तथा नर कोकिलोंके कलनादके व्याजसे मानो ये वृक्ष ही मधुर बोली बोलते हैं और मेरी अनङ्ग वेदनाको उद्दीप्त कर रहे हैं॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

'जान पड़ता है, यह वसन्तरूपी आग मुझे जलाकर भस्म कर देगी। अशोक पुष्पके लाल-लाल गुच्छे ही इस अग्निके अङ्गार हैं, नूतन पल्लव ही इसकी लाल-लाल लपटें हैं तथा भ्रमरोंका गुञ्जारव ही इस जलती आगका 'चट-चट' शब्द है॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

'सुमित्रानन्दन! यदि मैं सूक्ष्म बरौनियों और सुन्दर केशोंवाली मधुरभाषिणी सीताको न देख सका तो मुझे इस जीवनसे कोई प्रयोजन नहीं है॥ ३० $\frac{1}{2}$ ॥

'निष्पाप लक्ष्मण! वसन्त ऋतुमें वनकी शोभा बड़ी मनोहर हो जाती है, इसकी सीमामें सब ओर कोयलकी मधुर कूक सुनायी पड़ती है। मेरी प्रिया सीताको यह समय बड़ा ही प्रिय लगता था॥ ३१ $\frac{1}{2}$ ॥

'अनङ्गवेदनासे उत्पन्न हुई शोकाग्नि वसन्तऋतुके गुणोंका* ईंधन पाकर बढ़ गयी है; जान पड़ता है, यह मुझे शीघ्र ही अविलम्ब जला देगी॥ ३२ $\frac{1}{2}$ ॥

* मन्द-मन्द मलयानिलका चलना, वनके वृक्षोंका नूतन पल्लवों और फूलोंसे सज जाना, कोकिलोंका कूकना, कमलोंका खिल जाना तथा सब ओर मधुर सुगन्धका छा जाना आदि वसन्तके गुण हैं, जो विरहीकी शोकाग्निको उद्दीप्त करते हैं।

'अपनी उस प्रियतमा पत्नीको मैं नहीं देख पाता हूँ और इन मनोहर वृक्षोंको देख रहा हूँ, इसलिये मेरा यह अनङ्गज्वर अब और बढ़ जायगा॥ ३३½ ॥

'विदेहनन्दिनी सीता यहाँ मुझे नहीं दिखायी दे रही है, इसलिये मेरा शोक बढ़ाती है तथा मन्द मलयानिलके द्वारा स्वेदसंसर्गका निवारण करनेवाला यह वसन्त भी मेरे शोककी वृद्धि कर रहा है॥ ३४½ ॥

'सुमित्राकुमार! मृगनयनी सीता चिन्ता और शोकसे बलपूर्वक पीडित किये गये मुझ रामको और भी संताप दे रही है। साथ ही यह वनमें बहनेवाली चैत्रमासकी वायु भी मुझे पीड़ा दे रही है॥ ३५½ ॥

'ये मोर स्फटिकमणिके बने हुए गवाक्षों (झरोखों) के समान प्रतीत होनेवाले अपने फैले हुए पंखोंसे, जो वायुसे कम्पित हो रहे हैं, इधर-उधर नाचते हुए कैसी शोभा पा रहे हैं?॥ ३६½ ॥

'मयूरियोंसे घिरे हुए ये मदमत्त मयूर अनङ्गवेदनासे संतप्त हुए मेरी इस कामपीड़ाको और भी बढ़ा रहे हैं॥

'लक्ष्मण! वह देखो, पर्वतशिखरपर नाचते हुए अपने स्वामी मयूरके साथ-साथ वह मोरनी भी कामपीड़ित होकर नाच रही है॥ ३८½ ॥

'मयूर भी अपने दोनों सुन्दर पंखोंको फैलाकर मन-ही-मन अपनी उसी रामा (प्रिया) का अनुसरण कर रहा है तथा अपने मधुर स्वरोंसे मेरा उपहास करता-सा जान पड़ता है॥ ३९½ ॥

'निश्चय ही वनमें किसी राक्षसने मोरकी प्रियाका अपहरण नहीं किया है, इसीलिये यह रमणीय वनोंमें अपनी वल्लभाके साथ नृत्य कर रहा है*॥ ४०½ ॥

'फूलोंसे भरे हुए इस चैत्रमासमें सीताके बिना यहाँ निवास करना मेरे लिये अत्यन्त दुःसह है। लक्ष्मण! देखो तो सही, तिर्यग्योनिमें पड़े हुए प्राणियोंमें भी परस्पर कितना अधिक अनुराग है। इस समय यह मोरनी कामभावसे अपने स्वामीके सामने उपस्थित हुई है॥ ४१-४२॥

'यदि विशाल नेत्रोंवाली सीताका अपहरण न हुआ होता तो वह भी इसी प्रकार बड़े प्रेमसे वेगपूर्वक मेरे पास आती॥ ४३॥

'लक्ष्मण! इस वसन्त ऋतुमें फूलोंके भारसे सम्पन्न हुए इन वनोंके ये सारे फूल मेरे लिये निष्फल हो रहे हैं। प्रिया सीताके यहाँ न होनेसे इनका मेरे लिये कोई प्रयोजन नहीं रह गया है॥ ४४॥

'अत्यन्त शोभासे मनोहर प्रतीत होनेवाले ये वृक्षोंके फूल भी निष्फल होकर भ्रमरसमूहोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर जाते हैं॥ ४५॥

'हर्षमें भरे हुए ये झुंड-के-झुंड पक्षी एक-दूसरेको बुलाते हुए-से इच्छानुसार कलरव कर रहे हैं और मेरे मनमें प्रेमोन्माद उत्पन्न किये देते हैं॥ ४६॥

'जहाँ मेरी प्रिया सीता निवास करती है, वहाँ भी यदि इसी तरह वसन्त छा रहा हो तो उसकी क्या दशा होगी? निश्चय ही वहाँ पराधीन हुई सीता मेरी ही तरह शोक कर रही होगी॥ ४७॥

'अवश्य ही जहाँ सीता है, उस एकान्त स्थानमें वसन्तका प्रवेश नहीं है तो भी मेरे बिना वह कजरारे नेत्रोंवाली कमलनयनी सीता कैसे जीवित रह सकेगी॥ ४८॥

'अथवा सम्भव है जहाँ मेरी प्रिया है वहाँ भी इसी तरह वसन्त छा रहा हो, परंतु उसे तो शत्रुओंकी डाँट-फटकार सुननी पड़ती होगी; अतः वह बेचारी सुन्दरी सीता क्या कर सकेगी॥ ४९॥

'जिसकी अभी नयी-नयी अवस्था है और प्रफुल्ल कमलदलके समान मनोहर नेत्र हैं, वह मीठी बोली बोलनेवाली मेरी प्राणवल्लभा जानकी निश्चय ही इस वसन्त ऋतुको पाकर अपने प्राण त्याग देगी॥ ५०॥

'मेरे हृदयमें यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि साध्वी सीता मुझसे अलग होकर अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकती॥ ५१॥

'वास्तवमें विदेहकुमारीका हार्दिक अनुराग मुझमें और मेरा सम्पूर्ण प्रेम सर्वथा विदेहनन्दिनी सीतामें ही प्रतिष्ठित है॥ ५२॥

'फूलोंकी सुगन्ध लेकर बहनेवाली यह शीतल वायु, जिसका स्पर्श बहुत ही सुखद है, प्राणवल्लभा सीताकी याद आनेपर मुझे आगकी भाँति तपाने लगती है॥ ५३॥

'पहले जानकीके साथ रहनेपर जो मुझे सदा सुखद जान पड़ती थी, वही वायु आज सीताके विरहमें मेरे लिये शोकजनक हो गयी है॥ ५४॥

* रामायणशिरोमणिकार इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ यों लिखते हैं—निश्चय ही इस मोरके निवासभूत वनमें उस राक्षसने मेरी प्रिया सीताका अपहरण नहीं किया; नहीं तो यह भी उसीके शोकमें डूबा रहता।

'जब सीता मेरे साथ थी उन दिनों जो पक्षी कौआ आकाशमें जाकर काँव-काँव करता था, वह उसके भावी वियोगको सूचित करनेवाला था। अब सीताके वियोगकालमें वह कौआ वृक्षपर बैठकर बड़े हर्षके साथ अपनी बोली बोल रहा है (इससे सूचित हो रहा है कि सीताका संयोग शीघ्र ही सुलभ होगा)॥ ५५॥

'यही वह पक्षी है, जो आकाशमें स्थित होकर बोलनेपर वैदेहीके अपहरणका सूचक हुआ; किंतु आज यह जैसी बोली बोल रहा है, उससे जान पड़ता है कि यह मुझे विशाललोचना सीताके समीप ले जायगा॥ ५६॥

'लक्ष्मण! देखो, जिनकी ऊपरी डालियाँ फूलोंसे लदी हैं, वनमें उन वृक्षोंपर कलरव करनेवाले पक्षियोंका यह मधुर शब्द विरहीजनोंके मदनोन्मादको बढ़ानेवाला है॥ ५७॥

'वायुके द्वारा हिलायी जाती हुई उस तिलक वृक्षकी मंजरीपर भ्रमर सहसा जा बैठा है। मानो कोई प्रेमी काममदसे कम्पित हुई प्रेयसीसे मिल रहा हो॥ ५८॥

'यह अशोक प्रियाविरही कामी पुरुषोंके लिये अत्यन्त शोक बढ़ानेवाला है। यह वायुके झोंकेसे कम्पित हुए पुष्पगुच्छोंद्वारा मुझे डाँट बताता हुआ-सा खड़ा है॥ ५९॥

'लक्ष्मण! ये मञ्जरियोंसे सुशोभित होनेवाले आमके वृक्ष शृङ्गार-विलाससे मदमत्तहृदय होकर चन्दन आदि अङ्गराग धारण करनेवाले मनुष्योंके समान दिखायी देते हैं॥ ६०॥

'नरश्रेष्ठ सुमित्राकुमार! देखो, पम्पाकी विचित्र वन-श्रेणियोंमें इधर-उधर किन्नर विचर रहे हैं॥ ६१॥

'लक्ष्मण! देखो, पम्पाके जलमें सब ओर खिले हुए ये सुगन्धित कमल प्रात:कालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं॥ ६२॥

'पम्पाका जल बड़ा ही स्वच्छ है। इसमें लाल कमल और नील कमल खिले हुए हैं। हंस और कारण्डव आदि पक्षी सब ओर फैले हुए हैं तथा सौगन्धिक कमल इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं॥ ६३॥

'जलमें प्रात:कालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाले कमलोंके द्वारा सब ओरसे घिरी हुई पम्पा बड़ी शोभा पा रही है। उन कमलोंके केसरोंको भ्रमरोंने चूस लिया है॥ ६४॥

'इसमें चक्रवाक सदा निवास करते हैं। यहाँके वनोंमें विचित्र-विचित्र स्थान हैं तथा पानी पीनेके लिये आये हुए हाथियों और मृगोंके समूहोंसे इस पम्पाकी शोभा और भी बढ़ जाती है॥ ६५॥

'लक्ष्मण! वायुके थपेड़ेसे जिनमें वेग पैदा होता है, उन लहरोंसे ताड़ित होनेवाले कमल पम्पाके निर्मल जलमें बड़ी शोभा पाते हैं॥ ६६॥

'प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली विदेहराजकुमारी सीताको कमल सदा ही प्रिय रहे हैं। उसे न देखनेके कारण मुझे जीवित रहना अच्छा नहीं लगता है॥ ६७॥

'अहो! काम कितना कुटिल है, जो अन्यत्र गयी हुई एवं परम दुर्लभ होनेपर भी कल्याणमय वचन बोलनेवाली उस कल्याणस्वरूपा सीताका बारंबार स्मरण दिला रहा है॥ ६८॥

'यदि खिले हुए वृक्षोंवाला यह वसन्त मुझपर पुनः प्रहार न करे तो प्राप्त हुई कामवेदनाको मैं किसी तरह मनमें ही रोके रह सकता हूँ॥ ६९॥

'सीताके साथ रहनेपर जो-जो वस्तुएँ मुझे रमणीय प्रतीत होती थीं, वे ही आज उसके बिना असुन्दर जान पड़ती हैं॥ ७०॥

'लक्ष्मण! ये कमलकोशोंके दल सीताके नेत्रकोशोंके समान हैं। इसलिये मेरी आँखें इन्हें ही देखना चाहती हैं॥

'कमलकेसरोंका स्पर्श करके दूसरे वृक्षोंके बीचसे निकली हुई यह सौरभयुक्त मनोहर वायु सीताके नि:श्वासकी भाँति चल रही है॥ ७२॥

'सुमित्रानन्दन! वह देखो, पम्पाके दक्षिण भागमें पर्वत-शिखरोंपर खिली हुई कनेरकी डाल कितनी अधिक शोभा पा रही है॥ ७३॥

'विभिन्न धातुओंसे विभूषित हुआ यह पर्वतराज ऋष्यमूक वायुके वेगसे लायी हुई विचित्र धूलिकी सृष्टि कर रहा है॥ ७४॥

'सुमित्राकुमार! चारों ओर खिले हुए और सब ओरसे रमणीय प्रतीत होनेवाले पत्रहीन पलाश वृक्षोंसे उपलक्षित इस पर्वतके पृष्ठभाग आगमें जलते हुए-से जान पड़ते हैं॥ ७५॥

'पम्पाके तटपर उत्पन्न हुए ये वृक्ष इसीके जलसे अभिषिक्त हो बढ़े हैं और मधुर मकरन्द एवं गन्धसे सम्पन्न हुए हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—मालती, मल्लिका, पद्म और करवीर। ये सब-के-सब फूलोंसे सुशोभित हैं॥ ७६॥

'केतकी (केवड़े), सिन्दुवार तथा वासन्ती

लताएँ भी सुन्दर फूलोंसे भरी हुई हैं! गन्धभरी माधवी लता तथा कुन्द-कुसुमोंकी झाड़ियाँ सब ओर शोभा पा रही हैं॥ ७७॥

'चिरिबिल्व (चिलबिल), महुआ, बेंत, मौलसिरी, चम्पा, तिलक और नागकेसर भी खिले दिखायी देते हैं॥ ७८॥

'पर्वतके पृष्ठभागोंपर पद्मक और खिले हुए नील अशोक भी शोभा पाते हैं। वहीं सिंहके अयालकी भाँति पिङ्गल वर्णवाले लोध्र भी सुशोभित हो रहे हैं॥ ७९॥

'अङ्कोल, कुरंट, चूर्णक (सेमल), पारिभद्रक (नीम या मदार), आम, पाटलि, कोविदार, मुचुकुन्द (नारङ्ग) और अर्जुन नामक वृक्ष भी पर्वत-शिखरोंपर फूलोंसे लदे दिखायी देते हैं॥ ८० $\frac{१}{२}$ ॥

'केतक, उद्दालक (लसोड़ा), शिरीष, शीशम, धव, सेमल, पलाश, लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, हिन्ताल, तिलक तथा नागकेसरके पेड़ भी फूलोंसे भरे दिखायी देते हैं॥ ८१-८२ $\frac{१}{२}$ ॥

सुमित्रानन्दन! जिनके अग्रभाग फूलोंसे भरे हुए हैं, उन लता-वल्लरियोंसे लिपटे हुए पम्पाके इन मनोहर और बहुसंख्यक वृक्षोंको तो देखो। वे सब-के-सब यहाँ फूलोंके भारसे लदे हुए हैं॥ ८३ $\frac{१}{२}$ ॥

'हवाके झोंके खाकर जिनकी डालें हिल रही हैं, वे ये वृक्ष झुककर इतने निकट आ जाते हैं कि हाथसे इनकी डालियोंका स्पर्श किया जा सके। सलोनी लताएँ मदमत्त सुन्दरियोंकी भाँति इनका अनुसरण करती हैं॥ ८४ $\frac{१}{२}$ ॥

'एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर, एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर तथा एक वनसे दूसरे वनमें जाती हुई वायु अनेक रसोंके आस्वादनसे आनन्दित-सी होकर बह रही है॥ ८५ $\frac{१}{२}$ ॥

'कुछ वृक्ष प्रचुर पुष्पोंसे भरे हुए हैं और मधु एवं सुगन्धसे सम्पन्न हैं। कुछ मुकुलोंसे आवेष्टित हो श्यामवर्ण-से प्रतीत हो रहे हैं॥ ८६ $\frac{१}{२}$ ॥

'वह भ्रमर रागसे रँगा हुआ है और 'यह मधुर है, यह स्वादिष्ट है तथा यह अधिक खिला हुआ है' इत्यादि बातें सोचता हुआ फूलोंमें ही लीन हो रहा है॥ ८७ $\frac{१}{२}$ ॥

'पुष्पोंमें छिपकर फिर ऊपरको उड़ जाता है और सहसा अन्यत्र चल देता है। इस प्रकार मधुका लोभी भ्रमर पम्पातीरवर्ती वृक्षोंपर विचर रहा है॥ ८८॥

'स्वयं झड़कर गिरे हुए पुष्पसमूहोंसे आच्छादित हुई यह भूमि ऐसी सुखदायिनी हो गयी है, मानो इसपर शयन करनेके लिये मुलायम बिछौने बिछा दिये गये हों॥ ८९॥

'सुमित्रानन्दन! पर्वतके शिखरोंपर जो नाना प्रकारकी विशाल शिलाएँ हैं, उनपर झड़े हुए भाँति-भाँतिके फूलोंने उन्हें लाल-पीले रंगकी शय्याओंके समान बना दिया है॥ ९०॥

'सुमित्राकुमार! वसन्त ऋतुमें वृक्षोंके फूलोंका यह वैभव तो देखो। इस चैत्र मासमें ये वृक्ष मानो परस्पर होड़ लगाकर फूले हुए हैं॥ ९१॥

'लक्ष्मण! वृक्ष अपनी ऊपरी डालियोंपर फूलोंका मुकुट धारण करके बड़ी शोभा पा रहे हैं तथा वे भ्रमरोंके गुञ्जारवसे इस तरह कोलाहलपूर्ण हो रहे हैं, मानो एक-दूसरेका आह्वान कर रहे हों॥ ९२॥

'यह कारण्डव पक्षी पम्पाके स्वच्छ जलमें प्रवेश करके अपनी प्रियतमाके साथ रमण करता हुआ कामका उद्दीपन-सा कर रहा है॥ ९३॥

'मन्दाकिनीके समान प्रतीत होनेवाली इस पम्पाका जब ऐसा मनोरम रूप है, तब संसारमें उसके जो मनोरम गुण विख्यात हैं, वे उचित ही हैं॥ ९४॥

'रघुश्रेष्ठ लक्ष्मण! यदि साध्वी सीता दीख जाय और यदि उसके साथ हम यहाँ निवास करने लगें तो हमें न इन्द्रलोकमें जानेकी इच्छा होगी और न अयोध्यामें लौटनेकी ही॥ ९५॥

'हरी-हरी घासोंसे सुशोभित ऐसे रमणीय प्रदेशोंमें सीताके साथ सानन्द विचरनेका अवसर मिले तो मुझे (अयोध्याका राज्य न मिलनेके कारण) कोई चिन्ता नहीं होगी और न दूसरे ही दिव्य भोगोंकी अभिलाषा हो सकेगी॥ ९६॥

'इस वनमें भाँति-भाँतिके पल्लवोंसे सुशोभित और नाना प्रकारके फूलोंसे उपलक्षित ये वृक्ष प्राण-वल्लभा सीताके बिना मेरे मनमें चिन्ता उत्पन्न कर देते हैं॥

'सुमित्राकुमार! देखो, इस पम्पाका जल कितना शीतल है। इसमें असंख्य कमल खिले हुए हैं। चकवे विचरते हैं और कारण्डव निवास करते हैं। इतना ही नहीं, जलकुक्कुट तथा क्रौञ्च भरे हुए हैं एवं बड़े-बड़े मृग इसका सेवन करते हैं॥ ९८ $\frac{१}{२}$ ॥

'चहकते हुए पक्षियोंसे इस पम्पाकी बड़ी शोभा हो रही है। आनन्दमें निमग्न हुए ये नाना प्रकारके पक्षी मेरे सीताविषयक अनुरागको उद्दीप्त कर देते हैं;

क्योंकि इनकी बोली सुनकर मुझे नूतन अवस्थावाली कमलनयनी चन्द्रमुखी प्रियतमा सीताका स्मरण हो आता है॥ ९९-१००॥

'लक्ष्मण! देखो, पर्वतके विचित्र शिखरोंपर ये हरिण अपनी हरिणियोंके साथ विचर रहे हैं और मैं मृगनयनी सीतासे बिछुड़ गया हूँ। इधर-उधर विचरते हुए ये मृग मेरे चित्तको व्यथित किये देते हैं॥ १०१॥

'मतवाले पक्षियोंसे भरे हुए इस पर्वतके रमणीय शिखरपर यदि प्राणवल्लभा सीताका दर्शन पा सकूँ तभी मेरा कल्याण होगा॥ १०२॥

'सुमित्रानन्दन! यदि सुमध्यमा सीता मेरे साथ रहकर इस पम्पासरोवरके तटपर सुखद समीरका सेवन कर सके तो मैं निश्चय ही जीवित रह सकता हूँ॥ १०३॥

'लक्ष्मण! जो लोग अपनी प्रियतमाके साथ रहकर पद्म और सौगन्धिक कमलोंकी सुगन्ध लेकर बहनेवाली शीतल, मन्द एवं शोकनाशन पम्पा-वनकी वायुका सेवन करते हैं, वे धन्य हैं॥ १०४॥

'हाय! वह नयी अवस्थावाली कमललोचना जनकनन्दिनी प्रिया सीता मुझसे बिछुड़कर बेबसीकी दशामें अपने प्राणोंको कैसे धारण करती होगी॥ १०५॥

'लक्ष्मण! धर्मके जाननेवाले सत्यवादी राजा जनक जब जन-समुदायमें बैठकर मुझसे सीताका कुशल-समाचार पूछेंगे, उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा॥ १०६॥

'हाय! पिताके द्वारा वनमें भेजे जानेपर जो धर्मका आश्रय ले मेरे पीछे-पीछे यहाँ चली आयी, वह मेरी प्रिया इस समय कहाँ है?॥ १०७॥

'लक्ष्मण! जिसने राज्यसे वञ्चित और हताश हो जानेपर भी मेरा साथ नहीं छोड़ा—मेरा ही अनुसरण किया, उसके बिना अत्यन्त दीन होकर मैं कैसे जीवन धारण करूँगा॥ १०८॥

'जो कमलदलके समान सुन्दर, मनोहर एवं प्रशंसनीय नेत्रोंसे सुशोभित है, जिससे मीठी-मीठी सुगन्ध निकलती रहती है, जो निर्मल तथा चेचक आदिके चिह्नसे रहित है, जनककिशोरीके उस दर्शनीय मुखको देखे बिना मेरी सुध-बुध खोयी जा रही है॥ १०९॥

'लक्ष्मण! वैदेहीके द्वारा कभी हँसकर और कभी मुसकराकर कही हुई वे मधुर, हितकर एवं लाभदायक बातें जिनकी कहीं तुलना नहीं है, मुझे अब कब सुननेको मिलेंगी?॥ ११०॥

'सोलह वर्षकी-सी अवस्थावाली साध्वी सीता यद्यपि वनमें आकर कष्ट उठा रही थी, तथापि जब मुझे अनङ्गवेदना या मानसिक कष्टसे पीड़ित देखती, तब मानो उसका अपना सारा दुःख नष्ट हो गया हो, इस प्रकार प्रसन्न-सी होकर मेरी पीड़ा दूर करनेके लिये अच्छी-अच्छी बातें करने लगती थी॥ १११॥

'राजकुमार! अयोध्यामें चलनेपर जब मनस्विनी माता कौसल्या पूछेंगी कि 'मेरी बहूरानी कहाँ है?' तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा?॥ ११२॥

'लक्ष्मण! तुम जाओ, भ्रातृवत्सल भरतसे मिलो। मैं तो जनकनन्दिनी सीताके बिना जीवित नहीं रह सकता।' इस प्रकार महात्मा श्रीरामको अनाथकी भाँति विलाप करते देख भाई लक्ष्मणने युक्तियुक्त एवं निर्दोष वाणीमें कहा—॥ ११३-११४॥

'पुरुषोत्तम श्रीराम! आपका भला हो। आप अपनेको सँभालिये। शोक न कीजिये। आप-जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंकी बुद्धि उत्साहशून्य नहीं होती॥ ११५॥

'स्वजनोंके अवश्यम्भावी वियोगका दुःख सभीको सहना पड़ता है, इस बातको स्मरण करके अपने प्रिय जनोंके प्रति अधिक स्नेह (आसक्ति) को त्याग दीजिये; क्योंकि जल आदिसे भीगी हुई बत्ती भी अधिक स्नेह (तेल) में डुबो दी जानेपर जलने लगती है॥ ११६॥

'तात रघुनन्दन! यदि रावण पातालमें या उससे भी अधिक दूर चला जाय तो भी वह अब किसी तरह जीवित नहीं रह सकता॥ ११७॥

'पहले उस पापी राक्षसका पता लगाइये। फिर या तो वह सीताको वापस करेगा या अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा॥ ११८॥

'रावण यदि सीताको साथ लेकर दितिके गर्भमें जाकर छिप जाय तो भी यदि मिथिलेशकुमारीको लौटा न देगा तो मैं वहाँ भी उसे मार डालूँगा॥ ११९॥

'अतः आर्य! आप कल्याणकारी धैर्यको अपनाइये। वह दीनतापूर्ण विचार त्याग दीजिये। जिनका प्रयत्न और धन नष्ट हो गया है, वे पुरुष यदि उत्साहपूर्वक उद्योग न करें तो उन्हें उस अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ १२०॥

'भैया! उत्साह ही बलवान् होता है। उत्साहसे बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुषके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है॥ १२१॥

'जिनके हृदयमें उत्साह होता है वे पुरुष कठिन-से-कठिन कार्य आ पड़नेपर हिम्मत नहीं हारते।

हमलोग केवल उत्साहका आश्रय लेकर ही जनक-नन्दिनीको प्राप्त कर सकते हैं॥ १२२॥

'शोकको पीछे छोड़कर कामीके-से व्यवहारका त्याग कीजिये। आप महात्मा एवं कृतात्मा (पवित्र अन्त:करणवाले) हैं, किंतु इस समय अपने-आपको भूल गये हैं—अपने स्वरूपका स्मरण नहीं कर रहे हैं'॥ १२३॥

लक्ष्मणके इस प्रकार समझानेपर शोकसे संतप्तचित्त हुए श्रीरामने शोक और मोहका परित्याग करके धैर्य धारण किया॥ १२४॥

तदनन्तर व्यग्रतारहित (शान्तस्वरूप) अचिन्त्य-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी जिसके तटवर्ती वृक्ष वायुके झोंके खाकर झूम रहे थे, उस परम सुन्दर रमणीय पम्पासरोवरको लाँघकर आगे बढ़े॥ १२५॥

सीताके स्मरणसे जिनका चित्त उद्विग्न हो गया था, अतएव जो दु:खमें डूबे हुए थे, वे महात्मा श्रीराम लक्ष्मणकी कही हुई बातोंपर विचार करके सहसा सावधान हो गये और झरनों तथा कन्दराओंसहित उस सम्पूर्ण वनका निरीक्षण करते हुए वहाँसे आगेको प्रस्थित हुए॥ १२६॥

मतवाले हाथीके समान विलासपूर्ण गतिसे चलनेवाले शान्तचित्त महात्मा लक्ष्मण आगे-आगे चलते हुए श्रीरघुनाथजीकी उनके अनुकूल चेष्टा करते धर्म और बलके द्वारा रक्षा करने लगे॥ १२७॥

ऋष्यमूक पर्वतके समीप विचरनेवाले बलवान् वानरराज सुग्रीव पम्पाके निकट घूम रहे थे। उसी समय उन्होंने उन अद्भुत दर्शनीय वीर श्रीराम और लक्ष्मणको देखा। देखते ही उनके मनमें यह भय हो गया कि हो न हो इन्हें मेरे शत्रु वालीने ही भेजा होगा, फिर तो वे इतने डर गये कि खाने-पीने आदिकी भी चेष्टा न कर सके॥ १२८॥

हाथीके समान मन्दगतिसे चलनेवाले महामना वानरराज सुग्रीव जो वहाँ विचर रहे थे, उस समय एक साथ आगे बढ़ते हुए उन दोनों भाइयोंको देखकर चिन्तित हो उठे। भयके भारी भारसे उनका उत्साह नष्ट हो गया। वे महान् दु:खमें पड़ गये॥ १२९॥

मतङ्ग मुनिका वह आश्रम परम पवित्र एवं सुखदायक था। मुनिके शापसे उसमें वालीका प्रवेश होना कठिन था, इसलिये वह दूसरे वानरोंका आश्रय बना हुआ था। उस आश्रम या वनके भीतर सदा ही अनेकानेक शाखामृग निवास करते थे। उस दिन उन महातेजस्वी श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर दूसरे-दूसरे वानर भी भयभीत हो आश्रमके भीतर चले गये॥ १३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

सुग्रीव तथा वानरोंकी आशङ्का, हनुमान्‌जीद्वारा उसका निवारण तथा सुग्रीवका हनुमान्‌जीको श्रीराम-लक्ष्मणके पास उनका भेद लेनेके लिये भेजना

महात्मा श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको श्रेष्ठ आयुध धारण किये वीर वेशमें आते देख (ऋष्यमूक पर्वतपर बैठे हुए) सुग्रीवके मनमें बड़ी शङ्का हुई॥ १॥

वे उद्विग्नचित्त होकर चारों दिशाओंकी ओर देखने लगे। उस समय वानरशिरोमणि सुग्रीव किसी एक स्थानपर स्थिर न रह सके॥ २॥

महाबली श्रीराम और लक्ष्मणको देखते हुए सुग्रीव अपने मनको स्थिर न रख सके। उस समय अत्यन्त भयभीत हुए उन वानरराजका चित्त बहुत दु:खी हो गया॥

सुग्रीव धर्मात्मा थे—उन्हें राजधर्मका ज्ञान था। उन्होंने मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपनी दुर्बलता और शत्रुपक्षकी प्रबलताका निश्चय किया। तत्पश्चात् वे समस्त वानरोंके साथ अत्यन्त उद्विग्न हो उठे॥ ४॥

वानरराज सुग्रीवके हृदयमें बड़ा उद्वेग हो गया था। वे श्रीराम और लक्ष्मणकी ओर देखते हुए अपने मन्त्रियोंसे इस प्रकार बोले—॥ ५॥

'निश्चय ही ये दोनों वीर वालीके भेजे हुए ही इस दुर्गम वनमें विचरते हुए यहाँ आये हैं। इन्होंने छलसे चीर वस्त्र धारण कर लिये हैं, जिससे हम इन्हें पहचान न सकें'॥ ६॥

उधर सुग्रीवके सहायक दूसरे-दूसरे वानरोंने जब उन महाधनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मणको देखा, तब वे उस पर्वततटसे भागकर दूसरे उत्तम शिखरपर जा पहुँचे॥ ७॥

वे यूथपति वानर शीघ्रतापूर्वक जाकर यूथपतियोंके सरदार वानरशिरोमणि सुग्रीवको चारों ओरसे घेरकर उनके पास खड़े हो गये॥ ८॥

इस तरह एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर उछलते-कूदते और अपने वेगसे उन पर्वत-शिखरोंको प्रकम्पित करते हुए वे समस्त महाबली वानर एक मार्गपर आ गये। उन सबने उछल-कूदकर उस समय वहाँ दुर्गम स्थानोंमें स्थित हुए पुष्पशोभित बहुसंख्यक वृक्षोंको तोड़ डाला था॥ ९-१०॥

उस बेलामें चारों ओरसे उस महान् पर्वतपर उछलकर आते हुए वे श्रेष्ठ वानर वहाँ रहनेवाले मृगों, बिलावों तथा व्याघ्रोंको भयभीत करते हुए जा रहे थे॥

इस प्रकार सुग्रीवके सभी सचिव पर्वतराज ऋष्यमूकपर आ पहुँचे और एकाग्रचित्त हो उन वानरराजसे मिलकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ १२॥

तदनन्तर वालीसे बुराईकी आशङ्का करके सुग्रीवको भयभीत देख बातचीत करनेमें कुशल हनुमान्जी बोले—॥ १३॥

'आप सब लोग वालीके कारण होनेवाली इस भारी घबराहटको छोड़ दीजिये। यह मलय नामक श्रेष्ठ पर्वत है। यहाँ वालीसे कोई भय नहीं है॥ १४॥

'वानरशिरोमणे! जिससे उद्विग्नचित्त होकर आप भागे हैं, उस क्रूर दिखायी देनेवाले निर्दय वालीको मैं यहाँ नहीं देखता हूँ॥ १५॥

'सौम्य! आपको अपने जिस पापाचारी बड़े भाईसे भय प्राप्त हुआ है, वह दुष्टात्मा वाली यहाँ नहीं आ सकता; अतः मुझे आपके भयका कोई कारण नहीं दिखायी देता॥ १६॥

'आश्चर्य है कि इस समय आपने अपनी वानरोचित चपलताको ही प्रकट किया है। वानरप्रवर! आपका चित्त चञ्चल है। इसलिये आप अपनेको विचार-मार्गपर स्थिर नहीं रख पाते हैं॥ १७॥

'बुद्धि और विज्ञानसे सम्पन्न होकर आप दूसरोंकी चेष्टाओंके द्वारा उनका मनोभाव समझें और उसीके अनुसार सभी आवश्यक कार्य करें; क्योंकि जो राजा बुद्धि-बलका आश्रय नहीं लेता, वह सम्पूर्ण प्रजापर शासन नहीं कर सकता'॥ १८॥

हनुमान्जीके मुखसे निकले हुए इन सभी श्रेष्ठ वचनोंको सुनकर सुग्रीवने उनसे बहुत ही उत्तम बात कही—॥ १९॥

'इन दोनों वीरोंकी भुजाएँ लंबी और नेत्र बड़े-बड़े हैं। ये धनुष, बाण और तलवार धारण किये देवकुमारोंके समान शोभा पा रहे हैं। इन दोनोंको देखकर किसके मनमें भयका संचार न होगा॥ २०॥

'मेरे मनमें संदेह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष वालीके ही भेजे हुए हैं; क्योंकि राजाओंके बहुत-से मित्र होते हैं। अतः उनपर विश्वास करना उचित नहीं है॥ २१॥

'प्राणिमात्रको छद्मवेषमें विचरनेवाले शत्रुओंको विशेषरूपसे पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि वे दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेते हैं, परंतु स्वयं किसीका विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषोंपर ही प्रहार कर बैठते हैं॥ २२॥

'वाली इन सब कार्योंमें बड़ा कुशल है। राजालोग बहुदर्शी होते हैं—वञ्चनाके अनेक उपाय जानते हैं, इसीलिये शत्रुओंका विध्वंस कर डालते हैं। ऐसे शत्रुभूत राजाओंको प्राकृत वेशभूषावाले मनुष्यों (गुप्तचरों) द्वारा जाननेका प्रयत्न करना चाहिये॥ २३॥

'अतः कपिश्रेष्ठ! तुम भी एक साधारण पुरुषकी भाँति यहाँसे जाओ और उनकी चेष्टाओंसे, रूपसे तथा बातचीतके तौर-तरीकोंसे उन दोनोंका यथार्थ परिचय प्राप्त करो॥ २४॥

'उनके मनोभावोंको समझो। यदि वे प्रसन्नचित्त जान पड़ें तो बारंबार मेरी प्रशंसा करके तथा मेरे अभिप्रायको सूचित करनेवाली चेष्टाओंद्वारा मेरे प्रति उनका विश्वास उत्पन्न करो॥ २५॥

'वानरशिरोमणे! तुम मेरी ही ओर मुँह करके खड़ा होना और उन धनुर्धर वीरोंसे इस वनमें प्रवेश करनेका कारण पूछना॥ २६॥

'यदि उनका हृदय शुद्ध जान पड़े तो भी तरह-तरहकी बातों और आकृतिके द्वारा यह जाननेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये कि वे दोनों कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं आये हैं'॥ २७॥

वानरराज सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर पवनकुमार हनुमान्जीने उस स्थानपर जानेका विचार किया, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे॥ २८॥

अत्यन्त डरे हुए दुर्जय वानर सुग्रीवके उस वचनका आदर करके 'बहुत अच्छा कहकर' महानुभाव हनुमान्जी जहाँ अत्यन्त बलशाली श्रीराम और लक्ष्मण थे, उस स्थानके लिये तत्काल चल दिये॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा सर्ग

हनुमान्‌जीका श्रीराम और लक्ष्मणसे वनमें आनेका कारण पूछना और अपना तथा सुग्रीवका परिचय देना, श्रीरामका उनके वचनोंकी प्रशंसा करके लक्ष्मणको अपनी ओरसे बात करनेकी आज्ञा देना तथा लक्ष्मणद्वारा अपनी प्रार्थना स्वीकृत होनेसे हनुमान्‌जीका प्रसन्न होना

महात्मा सुग्रीवके कथनका तात्पर्य समझकर हनुमान्‌जी ऋष्यमूक पर्वतसे उस स्थानकी ओर उछलते हुए चले, जहाँ वे दोनों रघुवंशी बन्धु विराजमान थे॥

पवनकुमार वानरवीर हनुमान्‌ने यह सोचकर कि मेरे इस कपिरूपपर किसीका विश्वास नहीं जम सकता, अपने उस रूपका परित्याग करके भिक्षु (सामान्य तपस्वी) का रूप धारण कर लिया॥ २॥

तदनन्तर हनुमान्‌ने विनीतभावसे उन दोनों रघुवंशी वीरोंके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाली मधुर वाणीमें उनके साथ वार्तालाप आरम्भ किया। वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने पहले तो उन दोनों वीरोंकी यथोचित प्रशंसा की। फिर विधिवत् उनका पूजन (आदर) करके स्वच्छन्दरूपसे मधुर वाणीमें कहा—'वीरो! आप दोनों सत्यपराक्रमी, राजर्षियों और देवताओंके समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रतका पालन करनेवाले जान पड़ते हैं॥ ३—५॥

'आपके शरीरकी कान्ति बड़ी सुन्दर है। आप दोनों इस वन्य प्रदेशमें किसलिये आये हैं। वनमें विचरनेवाले मृगसमूहों तथा अन्य जीवोंको भी त्रास देते पम्पासरोवरके तटवर्ती वृक्षोंको सब ओरसे देखते और इस सुन्दर जलवाली नदी-सरीखी पम्पाको सुशोभित करते हुए आप दोनों वेगशाली वीर कौन हैं? आपके अङ्गोंकी कान्ति सुवर्णके समान प्रकाशित होती है। आप दोनों बड़े धैर्यशाली दिखायी देते हैं। आप दोनोंके अङ्गोंपर चीर वस्त्र शोभा पाता है। आप दोनों लंबी साँस खींच रहे हैं। आपकी भुजाएँ विशाल हैं। आप अपने प्रभावसे इस वनके प्राणियोंको पीड़ा दे रहे हैं। बताइये, आपका क्या परिचय है?॥ ६—८॥

'आप दोनों वीरोंकी दृष्टि सिंहके समान है। आपके बल और पराक्रम महान् हैं। इन्द्र-धनुषके समान महान् शरासन धारण करके आप शत्रुओंको नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं॥ ९॥

'आप कान्तिमान् तथा रूपवान् हैं। आप विशालकाय साँड़के समान मन्दगतिसे चलते हैं। आप दोनोंकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़के समान जान पड़ती हैं। आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ और परम तेजस्वी हैं॥ १०॥

'आप दोनोंकी प्रभासे गिरिराज ऋष्यमूक जगमगा रहा है। आपलोग देवताओंके समान पराक्रमी और राज्य भोगनेके योग्य हैं। भला, इस दुर्गम वनप्रदेशमें आपका आगमन कैसे सम्भव हुआ॥ ११॥

'आपके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलके समान शोभा पाते हैं। आपमें वीरता भरी है। आप दोनों अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण करते हैं और दोनों ही एक-दूसरेके समान हैं। वीरो! क्या आप देवलोकसे यहाँ पधारे हैं?॥ १२॥

'आप दोनोंको देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो चन्द्रमा और सूर्य स्वेच्छासे ही इस भूतलपर उतर आये हैं। आपके वक्षःस्थल विशाल हैं। मनुष्य होकर भी आपके रूप देवताओंके तुल्य हैं॥ १३॥

'आपके कंधे सिंहके समान हैं। आपमें महान् उत्साह भरा हुआ है। आप दोनों मदमत्त साँड़ोंके समान प्रतीत होते हैं। आपकी भुजाएँ विशाल, सुन्दर, गोल-गोल और परिघके समान सुदृढ़ हैं। ये समस्त आभूषणोंको धारण करनेके योग्य हैं तो भी आपने इन्हें विभूषित क्यों नहीं किया है? मैं तो समझता हूँ कि आप दोनों समुद्रों और वनोंसे युक्त तथा विन्ध्य और मेरु आदि पर्वतोंसे विभूषित इस सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेके योग्य हैं॥ १४-१५½॥

'आपके ये दोनों धनुष विचित्र, चिकने तथा अद्भुत अनुलेपनसे चित्रित हैं। इन्हें सुवर्णसे विभूषित किया गया है; अतः ये इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहे हैं॥ १६½॥

'प्राणोंका अन्त कर देनेवाले सर्पोंके समान भयंकर तथा प्रकाशमान तीखे बाणोंसे भरे हुए आप दोनोंके तूणीर बड़े सुन्दर दिखायी देते हैं'॥ १७½॥

'आपके ये दोनों खड्ग बहुत बड़े और विस्तृत हैं। इन्हें पक्के सोनेसे विभूषित किया गया है। ये दोनों

केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान शोभा पाते हैं॥ १८½ ॥

'वीरो! इस तरह मैं बारम्बार आपका परिचय पूछ रहा हूँ, आपलोग मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? यहाँ सुग्रीव नामक एक श्रेष्ठ वानर रहते हैं, जो बड़े धर्मात्मा और वीर हैं। उनके भाई वालीने उन्हें घरसे निकाल दिया है; इसलिये वे अत्यन्त दु:खी होकर सारे जगत्‌में मारे-मारे फिरते हैं॥ १९-२०॥

'उन्हीं वानरशिरोमणियोंके राजा महात्मा सुग्रीवके भेजनेसे मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं भी वानरजातिका ही हूँ॥ २१॥

'धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंसे मित्रता करना चाहते हैं। मुझे आपलोग उन्हींका मन्त्री समझें। मैं वायुदेवताका वानरजातीय पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो, जा सकता हूँ और जैसा चाहूँ, रूप धारण कर सकता हूँ। इस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये भिक्षुके रूपमें अपनेको छिपाकर मैं ऋष्यमूक पर्वतसे यहाँपर आया हूँ'॥ २२-२३॥

उन दोनों भाई वीरवर श्रीराम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर बातचीत करनेमें कुशल तथा बातका मर्म समझनेमें निपुण हनुमान् चुप हो गये; फिर कुछ न बोले॥ २४॥

उनकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे अपने बगलमें खड़े हुए छोटे भाई लक्ष्मणसे इस प्रकार कहने लगे—॥ २५॥

'सुमित्रानन्दन! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीवके सचिव हैं और उन्हींके हितकी इच्छासे यहाँ मेरे पास आये हैं॥ २६॥

'लक्ष्मण! इन शत्रुदमन सुग्रीवसचिव कपिवर हनुमान्‌से, जो बातके मर्मको समझनेवाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक मीठी वाणीमें बातचीत करो॥ २७॥

'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता॥ २८॥

'निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली॥ २९॥

'सम्भाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य सब अङ्गोंसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ॥ ३०॥

'इन्होंने थोड़ेमें ही बड़ी स्पष्टताके साथ अपना अभिप्राय निवेदन किया है। उसे समझनेमें कहीं कोई संदेह नहीं हुआ है। रुक-रुककर अथवा शब्दों या अक्षरोंको तोड़-मरोड़कर किसी ऐसे वाक्यका उच्चारण नहीं किया है, जो सुननेमें कर्णकटु हो। इनकी वाणी हृदयमें मध्यमारूपसे स्थित है और कण्ठसे बैखरीरूपमें प्रकट होती है, अत: बोलते समय इनकी आवाज न बहुत धीमी रही है न बहुत ऊँची। मध्यम स्वरमें ही इन्होंने सब बातें कही हैं॥ ३१॥

'ये संस्कार[1] और क्रमसे[2] सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित[3] तथा हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणमयी वाणीका उच्चारण करते हैं॥ ३२॥

'हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानोंद्वारा स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणीको सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा। वध करनेके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुका हृदय भी इस अद्भुत वाणीसे बदल सकता है॥ ३३॥

'निष्पाप लक्ष्मण! जिस राजाके पास इनके समान दूत न हो, उसके कार्योंकी सिद्धि कैसे हो सकती है॥

'जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त हों, उस राजाके सभी मनोरथ दूतोंकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाते हैं'॥ ३५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बातचीतकी कला जाननेवाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मण बातका मर्म समझनेवाले पवनकुमार सुग्रीवसचिव कपिवर हनुमान्‌से इस प्रकार बोले—॥ ३६॥

'विद्वन्! महामना सुग्रीवके गुण हमें ज्ञात हो चुके हैं। हम दोनों भाई वानरराज सुग्रीवकी ही खोजमें यहाँ आये हैं॥ ३७॥

'साधुशिरोमणि हनुमान्‌जी! आप सुग्रीवके कथनानुसार यहाँ आकर जो मैत्रीकी बात चला रहे हैं, वह हमें स्वीकार है। हम आपके कहनेसे ऐसा कर सकते हैं'॥ ३८॥

लक्ष्मणके यह स्वीकृतिसूचक निपुणतायुक्त वचन

१. व्याकरणके नियमानुकूल शुद्ध वाणीको संस्कारसम्पन्न (संस्कृत) कहते हैं।

२. शब्दोच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटीका नाम क्रम है।

३. बिना रुके धाराप्रवाहरूपसे बोलना अविलम्बित कहलाता है।

सुनकर पवनकुमार कपिवर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुग्रीवकी विजयसिद्धिमें मन लगाकर उस समय उन दोनों भाइयोंके साथ उनकी मित्रता करनेकी इच्छा की॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा सर्ग

लक्ष्मणका हनुमान्‌जीसे श्रीरामके वनमें आने और सीताजीके हरे जानेका वृत्तान्त बताना तथा इस कार्यमें सुग्रीवके सहयोगकी इच्छा प्रकट करना, हनुमान्‌जीका उन्हें आश्वासन देकर उन दोनों भाइयोंको अपने साथ ले जाना

श्रीरामजीकी बात सुनकर तथा सुग्रीवके विषयमें उनका सौम्यभाव जानकर और साथ ही यह समझकर कि इन्हें भी सुग्रीवसे कोई आवश्यक काम है, हनुमान्‌जीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन सुग्रीवका स्मरण किया॥ १॥

'अब अवश्य ही महामना सुग्रीवको राज्यकी प्राप्ति होनेवाली है; क्योंकि ये महानुभाव किसी कार्य या प्रयोजनसे यहाँ आये हैं और यह कार्य सुग्रीवके ही द्वारा सिद्ध होनेवाला है॥ २॥

तत्पश्चात् बातचीतमें कुशल वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अत्यन्त हर्षमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ ३॥

'पम्पा-तटवर्ती काननसे सुशोभित यह वन भयंकर और दुर्गम है। इसमें नाना प्रकारके हिंसक जन्तु निवास करते हैं। आप अपने छोटे भाईके साथ यहाँ किसलिये आये हैं?'॥ ४॥

हनुमान्‌जीका यह वचन सुनकर श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणने दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामका इस प्रकार परिचय देना आरम्भ किया—॥ ५॥

'विद्वन्! इस पृथ्वीपर दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो धर्मानुरागी तेजस्वी राजा थे, वे सदा ही अपने धर्मके अनुसार चारों वर्णोंकी प्रजाका पालन करते थे॥ ६॥

'इस भूतलपर उनसे द्वेष रखनेवाला कोई नहीं था और वे भी किसीसे द्वेष नहीं रखते थे। वे समस्त प्राणियोंपर दूसरे ब्रह्माजीके समान स्नेह रखते थे॥ ७॥

'उन्होंने पर्याप्त दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। ये उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। लोग इन्हें श्रीराम कहते हैं॥ ८॥

'ये सब प्राणियोंको शरण देनेवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। महाराज दशरथके चारों पुत्रोंमें ये सबसे अधिक गुणवान् हैं॥ ९॥

'ये राजाके उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। जब इन्हें राज्य-सम्पत्तिसे संयुक्त किया जा रहा था, उस समय कुछ ऐसा कारण आ पड़ा, जिससे ये राज्यसे वञ्चित हो गये और वनमें निवास करनेके लिये मेरे साथ यहाँ आ गये॥ १०॥

'महाभाग! जैसे दिनका क्षय होनेपर सायंकाल महातेजस्वी सूर्य अपने प्रभाके साथ अस्ताचलको जाते हैं, उसी प्रकार ये जितेन्द्रिय श्रीरघुनाथजी अपनी पत्नी सीताके साथ वनमें आये थे॥ ११॥

'मैं इनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है। मैं अपने कृतज्ञ और बहुज्ञ भाईके गुणोंसे आकृष्ट होकर इनका दास हो गया हूँ॥ १२॥

'सम्पूर्ण भूतोंके हितमें मन लगानेवाले, सुख भोगनेके योग्य, महापुरुषोंद्वारा पूजनीय, ऐश्वर्यसे हीन तथा वनवासमें तत्पर मेरे भाईकी पत्नीको इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एक राक्षसने सूने आश्रमसे हर लिया। जिसने इनकी पत्नीका हरण किया है, वह राक्षस कौन है और कहाँ रहता है? इत्यादि बातोंका ठीक-ठीक पता नहीं लग रहा है॥ १३-१४॥

'दनु नामक एक दैत्य था, जो शापसे राक्षसभावको प्राप्त हुआ था। उसने सुग्रीवका नाम बताया और कहा—'वानरराज सुग्रीव सामर्थ्यशाली और महान् पराक्रमी हैं। वे आपकी पत्नीका अपहरण करनेवाले राक्षसका पता लगा देंगे।' ऐसा कहकर तेजसे प्रकाशित होता हुआ दनु स्वर्गलोकमें पहुँचनेके लिये आकाशमें उड़ गया॥

'आपके प्रश्नके अनुसार मैंने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। मैं और श्रीराम दोनों ही सुग्रीवकी शरणमें आये हैं॥ १७॥

'ये पहले बहुत-से धन-वैभवका दान करके परम उत्तम यश प्राप्त कर चुके हैं। जो पूर्वकालमें सम्पूर्ण

जगत्‌के नाथ (संरक्षक) थे, वे आज सुग्रीवको अपना रक्षक बनाना चाहते हैं॥ १८॥

'सीता जिनकी पुत्रवधू है, जो शरणागतपालक और धर्मवत्सल रहे हैं, उन्हीं महाराज दशरथके पुत्र शरणदाता श्रीराम आज सुग्रीवकी शरणमें आये हैं॥ १९॥

'जो मेरे धर्मात्मा बड़े भाई श्रीरघुनाथजी पहले सम्पूर्ण जगत्‌को शरण देनेवाले तथा शरणागतवत्सल रहे हैं, वे इस समय सुग्रीवकी शरणमें आये हैं॥ २०॥

'जिनके प्रसन्न होनेपर सदा यह सारी प्रजा प्रसन्नतासे खिल उठती थी, वे ही श्रीराम आज वानरराज सुग्रीवकी प्रसन्नता चाहते हैं॥ २१॥

'जिन राजा दशरथने सदा अपने यहाँ आये हुए भूमण्डलके सर्वसद्‌गुणसम्पन्न समस्त राजाओंका निरन्तर सम्मान किया, उन्हींके ये त्रिभुवनविख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम आज वानरराज सुग्रीवकी शरणमें आये हैं॥

'श्रीराम शोकसे अभिभूत और आर्त होकर शरणमें आये हैं। यूथपतियोंसहित सुग्रीवको इनपर कृपा करनी चाहिये॥'॥ २४॥

नेत्रोंसे आँसू बहाकर करुणाजनक स्वरमें ऐसी बातें कहते हुए सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे कुशल वक्ता हनुमान्‌जीने इस प्रकार कहा—॥ २५॥

'राजकुमारो! वानरराज सुग्रीवको आप-जैसे बुद्धिमान्, क्रोधविजयी और जितेन्द्रिय पुरुषोंसे मिलनेकी आवश्यकता थी। सौभाग्यकी बात है कि आपने स्वयं ही दर्शन दे दिया॥ २६॥

'वे भी राज्यसे भ्रष्ट हैं। वालीके साथ उनकी शत्रुता हो गयी है। उनकी स्त्रीका भी वालीने ही अपहरण कर लिया है तथा उस दुष्ट भाईने उन्हें घरसे निकाल दिया है, इसलिये वे अत्यन्त भयभीत होकर वनमें निवास करते हैं॥ २७॥

'सूर्यनन्दन सुग्रीव सीताका पता लगानेमें हमारे साथ स्वयं रहकर आप दोनोंकी पूर्ण सहायता करेंगे'॥ २८॥

ऐसा कहकर हनुमान्‌जीने श्रीरघुनाथजीसे स्निग्ध मधुर वाणीमें कहा—'अच्छा, अब हमलोग सुग्रीवके पास चलें'॥ २९॥

उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणने उपर्युक्त बात कहनेवाले हनुमान्‌जीका यथोचित सम्मान किया और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—॥ ३०॥

'भैया रघुनन्दन! ये वानरश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान् अत्यन्त हर्षसे भरकर जैसी बात कह रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि सुग्रीवको भी आपसे कुछ काम है। ऐसी दशामें आप अपना कार्य सिद्ध हुआ ही समझें॥ ३१॥

'इनके मुखकी कान्ति स्पष्टत: प्रसन्न दिखायी देती है और ये हर्षसे उत्फुल्ल होकर बातचीत करते हैं। अत: मेरा विश्वास है कि पवनपुत्र वीर हनुमान्‌जी झूठ नहीं बोलेंगे'॥ ३२॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान्‌जी उन दोनों रघुवंशी वीरोंको साथ ले सुग्रीवसे मिलनेके लिये चले॥ ३३॥

कपिवर हनुमान्‌ने भिक्षुरूपको त्यागकर वानररूप धारण कर लिया। वे उन दोनों वीरोंको पीठपर बिठाकर वहाँसे चल दिये॥ ३४॥

महान् यशस्वी तथा शुभ विचारवाले महापराक्रमी वे कपिवीर पवनकुमार कृतकृत्य-से होकर अत्यन्त हर्षमें भर गये और श्रीराम-लक्ष्मणके साथ गिरिवर ऋष्यमूकपर जा पहुँचे॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री तथा श्रीरामद्वारा वालिवधकी प्रतिज्ञा

श्रीराम और लक्ष्मणको ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवके वास-स्थानमें बिठाकर हनुमान्‌जी वहाँसे मलयपर्वतपर गये (जो ऋष्यमूकका ही एक शिखर है) और वहाँ वानरराज सुग्रीवको उन दोनों रघुवंशी वीरोंका परिचय देते हुए इस प्रकार बोले—॥ १॥

'महाप्राज्ञ! जिनका पराक्रम अत्यन्त दृढ़ और अमोघ है, वे श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ पधारे हैं॥ २॥

'इन श्रीरामका आविर्भाव इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है। ये महाराज दशरथके पुत्र हैं और स्वधर्मपालनके लिये संसारमें विख्यात हैं। अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये इस वनमें इनका आगमन हुआ है॥ ३॥

'जिन्होंने राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करके अग्निदेवको तृप्त किया था, ब्राह्मणोंको बहुत-सी दक्षिणाएँ बाँटी थीं और लाखों गौएँ दानमें दी थीं। जिन्होंने सत्यभाषणपूर्वक तपके द्वारा वसुधाका पालन किया था, उन्हीं महाराज दशरथके पुत्र ये श्रीराम पिताद्वारा अपनी पत्नी कैकेयीके लिये दिये हुए वरका पालन करनेके निमित्त इस वनमें आये हैं॥ ४-५ ॥

'महात्मा श्रीराम मुनियोंकी भाँति नियमका पालन करते हुए दण्डकारण्यमें निवास करते थे। एक दिन रावणने आकर सूने आश्रमसे इनकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया। उन्हींकी खोजमें आपसे सहायता लेनेके लिये ये आपकी शरणमें आये हैं॥ ६ ॥

'ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आप चलकर इन्हें अपनावें और इनका यथोचित सत्कार करें; क्योंकि ये दोनों ही वीर हमलोगोंके लिये परम पूजनीय हैं'॥ ७ ॥

हनुमान्‌जीका यह वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव स्वेच्छासे अत्यन्त दर्शनीय रूप धारण करके श्रीरघुनाथजीके पास आये और बड़े प्रेमसे बोले— ॥ ८ ॥

'प्रभो! आप धर्मके विषयमें भलीभाँति सुशिक्षित, परम तपस्वी और सबपर दया करनेवाले हैं। पवनकुमार हनुमान्‌जीने मुझसे आपके यथार्थ गुणोंका वर्णन किया है॥ ९ ॥

'भगवन्! मैं वानर हूँ और आप नर। मेरे साथ जो आप मैत्री करना चाहते हैं, इसमें मेरा ही सत्कार है और मुझे ही उत्तम लाभ प्राप्त हो रहा है॥ १० ॥

'यदि मेरी मैत्री आपको पसंद हो तो मेरा यह हाथ फैला हुआ है। आप इसे अपने हाथमें ले लें और परस्पर मैत्रीका अटूट सम्बन्ध बना रहे—इसके लिये स्थिर मर्यादा बाँध दें'॥ ११ ॥

सुग्रीवका यह सुन्दर वचन सुनकर भगवान् श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने अपने हाथसे उनका हाथ पकड़कर दबाया और सौहार्दका आश्रय ले बड़े हर्षके साथ शोकपीड़ित सुग्रीवको छातीसे लगा लिया॥ १२½ ॥

(सुग्रीवके पास जानेसे पूर्व हनुमान्‌जीने पुनः भिक्षुरूप धारण कर लिया था।) श्रीराम-सुग्रीवकी मैत्रीके समय शत्रुदमन हनुमान्‌जीने भिक्षुरूपको त्यागकर अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया और दो लकड़ियोंको रगड़कर आग पैदा की॥ १३½ ॥

तत्पश्चात् उस अग्निको प्रज्वलित करके उन्होंने फूलोंद्वारा अग्निदेवका सादर पूजन किया; फिर एकाग्रचित्त हो श्रीराम और सुग्रीवके बीचमें साक्षीके रूपमें उस अग्निको प्रसन्नतापूर्वक स्थापित कर दिया॥ १४½ ॥

इसके बाद सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीने उस प्रज्वलित अग्निकी प्रदक्षिणा की और दोनों एक-दूसरेके मित्र बन गये॥ १५½ ॥

इससे उन वानरराज तथा श्रीरघुनाथजी दोनोंके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे एक-दूसरेकी ओर देखते हुए तृप्त नहीं होते थे॥ १६½ ॥

उस समय सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'आप मेरे प्रिय मित्र हैं। आजसे हम दोनोंका दुःख और सुख एक है'॥ १७½ ॥

यह कहकर सुग्रीवने अधिक पत्ते और फूलोंवाली शाल वृक्षकी एक शाखा तोड़ी और उसे बिछाकर वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसपर बैठे॥ १८½ ॥

तदनन्तर पवनपुत्र हनुमान्‌ने अत्यन्त प्रसन्न हो चन्दन-वृक्षकी एक डाली, जिसमें बहुत-से फूल लगे हुए थे, तोड़कर लक्ष्मणको बैठनेके लिये दी॥ १९½ ॥

इसके बाद हर्षसे भरे हुए सुग्रीवने जिनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे, उस समय भगवान् श्रीरामसे स्निग्ध मधुर वाणीमें कहा— ॥ २०½ ॥

'श्रीराम! मैं घरसे निकाल दिया गया हूँ और भयसे पीड़ित होकर यहाँ विचरता हूँ। मेरी पत्नी भी मुझसे छीन ली गयी। मैंने आतङ्कित होकर वनमें इस दुर्गम पर्वतका आश्रय लिया है॥ २१½ ॥

'रघुनन्दन! मेरे बड़े भाई वालीने मुझे घरसे निकालकर मेरे साथ वैर बाँध लिया है। उसीके त्रास और भयसे उद्भ्रान्तचित्त होकर मैं इस वनमें निवास करता हूँ॥ २२½ ॥

'महाभाग! वालीके भयसे पीड़ित हुए मुझ सेवकको आप अभय-दान दीजिये। काकुत्स्थ! आपको ऐसा करना चाहिये, जिससे मेरे लिये किसी प्रकारका भय न रह जाय'॥ २३½ ॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मके ज्ञाता, धर्मवत्सल, ककुत्स्थकुलभूषण तेजस्वी श्रीरामने हँसते हुए-से वहाँ सुग्रीवको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ २४½ ॥

'महाकपे! मुझे मालूम है कि मित्र उपकाररूपी फल देनेवाला होता है। मैं तुम्हारी पत्नीका अपहरण करनेवाले वालीका वध कर दूँगा॥ २५½ ॥

'मेरे तूणीरमें संगृहीत हुए ये सूर्यतुल्य तेजस्वी बाण अमोघ हैं—इनका वार खाली नहीं जाता। ये बड़े वेगशाली हैं। इनमें कंक पक्षीके परोंके पंख लगे हुए हैं, जिनसे ये आच्छादित हैं। इनके अग्रभाग बड़े तीखे हैं और गाँठें भी सीधी हैं। ये रोषमें भरे हुए सर्पोंके समान छूटते हैं और इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर चोट करते हैं। उस दुराचारी वालीपर मेरे ये बाण अवश्य गिरेंगे॥ २६-२७ $\frac{1}{2}$ ॥

'आज देखना, मैं अपने विषधर सर्पोंके समान तीखे बाणोंसे मारकर वालीको पृथ्वीपर गिरा दूँगा। वह इन्द्रके वज्रसे टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समान दिखायी देगा'॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

अपने लिये परम हितकर वह श्रीरघुनाथजीका वचन सुनकर सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उत्तम वाणीमें बोले—॥ २९ ॥

'वीर! पुरुषसिंह! मैं आपकी कृपासे अपनी प्यारी पत्नी तथा राज्यको प्राप्त कर सकूँ, ऐसा यत्न कीजिये। नरदेव! मेरा बड़ा भाई वैरी हो गया है। आप उसकी ऐसी अवस्था कर दें जिससे वह फिर मुझे मार न सके'॥ ३० ॥

सुग्रीव और श्रीरामकी इस प्रेमपूर्ण मैत्रीके प्रसङ्गमें सीताके प्रफुल्ल कमल-जैसे, कपिराज वालीके सुवर्ण-जैसे तथा निशाचरोंके प्रज्वलित अग्नि-जैसे बायें नेत्र एक साथ ही फड़कने लगे॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५ ॥

छठा सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामको सीताजीके आभूषण दिखाना तथा श्रीरामका शोक एवं रोषपूर्ण वचन

सुग्रीवने पुनः प्रसन्नतापूर्वक रघुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'श्रीराम! मेरे मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ सचिव ये हनुमान्‌जी आपके विषयमें वह सारा वृत्तान्त बता चुके हैं, जिसके कारण आपको इस निर्जन वनमें आना पड़ा है॥ १ $\frac{1}{2}$ ॥

'अपने भाई लक्ष्मणके साथ जब आप वनमें निवास करते थे, उस समय राक्षस रावणने आपकी पत्नी मिथिलेशकुमारी जनकनन्दिनी सीताको हर लिया। उस वेलामें आप उनसे अलग थे और बुद्धिमान् लक्ष्मण भी उन्हें अकेली छोड़कर चले गये थे। राक्षस इसी अवसरकी प्रतीक्षामें था। उसने गीध जटायुका वध करके रोती हुई सीताका अपहरण किया है। इस प्रकार उस राक्षसने आपको पत्नी-वियोगके कष्टमें डाल दिया है॥ २—४ ॥

'परंतु इस पत्नी-वियोगके दुःखसे आप शीघ्र ही मुक्त हो जायँगे। मैं राक्षसद्वारा हरी गयी वेदवाणीके समान आपकी पत्नीको वापस ला दूँगा॥ ५ ॥

'शत्रुदमन श्रीराम! आपकी भार्या सीता पातालमें हों या आकाशमें, मैं उन्हें ढूँढ़ लाकर आपकी सेवामें समर्पित कर दूँगा॥ ६ ॥

'रघुनन्दन! आप मेरी इस बातको सत्य मानें। महाबाहो! आपकी पत्नी जहर मिलाये हुए भोजनकी भाँति दूसरोंके लिये अग्राह्य है। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी उन्हें पचा नहीं सकते। आप शोक त्याग दीजिये। मैं आपकी प्राणवल्लभाको अवश्य ला दूँगा॥ ७ ॥

'एक दिन मैंने देखा, भयंकर कर्म करनेवाला कोई राक्षस किसी स्त्रीको लिये जा रहा है। मैं अनुमानसे समझता हूँ, वे मिथिलेशकुमारी सीता ही रही होंगी, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि वे टूटे हुए स्वरमें 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' पुकारती हुई रो रही थीं तथा रावणकी गोदमें नागराजकी वधू (नागिन) की भाँति छटपटाती हुई प्रकाशित हो रही थीं॥ ८—१० ॥

'चार मन्त्रियोंसहित पाँचवाँ मैं इस शैल-शिखरपर बैठा हुआ था। मुझे देखकर देवी सीताने अपनी चादर और कई सुन्दर आभूषण ऊपरसे गिराये॥ ११ ॥

'रघुनन्दन! वे सब वस्तुएँ हमलोगोंने लेकर रख ली हैं। मैं अभी उन्हें लाता हूँ, आप उन्हें पहचान सकते हैं'॥ १२ ॥

तब श्रीरामने यह प्रिय संवाद सुनानेवाले सुग्रीवसे कहा—'सखे! शीघ्र ले आओ, क्यों विलम्ब करते हो?'॥ १३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर सुग्रीव शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे पर्वतकी एक गहन गुफामें गये और चादर तथा वे आभूषण लेकर निकल आये। बाहर

आकर वानरराजने 'लीजिये, यह देखिये' ऐसा कहकर श्रीरामको वे सारे आभूषण दिखाये॥ १४-१५॥

उन वस्त्र और सुन्दर आभूषणोंको लेकर श्रीरामचन्द्रजी कुहासेसे ढके हुए चन्द्रमाकी भाँति आँसुओंसे अवरुद्ध हो गये॥ १६॥

सीताके स्नेहवश बहते हुए आँसुओंसे उनका मुख और वक्षःस्थल भीगने लगे। वे 'हा प्रिये!' ऐसा कहकर रोने लगे और धैर्य छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १७॥

उन उत्तम आभूषणोंको बारम्बार हृदयसे लगाकर वे बिलमें बैठे हुए रोषमें भरे सर्पकी भाँति जोर-जोरसे साँस लेने लगे॥ १८॥

उनके आँसुओंका वेग रुकता ही नहीं था। अपने पास खड़े हुए सुमित्राकुमार लक्ष्मणकी ओर देखकर श्रीराम दीनभावसे विलाप करते हुए बोले—॥ १९॥

'लक्ष्मण! देखो, राक्षसके द्वारा हरी जाती हुई विदेहनन्दिनी सीताने यह चादर और ये गहने अपने शरीरसे उतारकर पृथ्वीपर डाल दिये थे॥ २०॥

'निशाचरके द्वारा अपहृत होती हुई सीताके द्वारा त्यागे गये ये आभूषण निश्चय ही घासवाली भूमिपर गिरे होंगे; क्योंकि इनका रूप ज्यों-का-त्यों दिखायी देता है—ये टूटे-फूटे नहीं हैं'॥ २१॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण बोले—'भैया! मैं इन बाजूबंदोंको तो नहीं जानता और न इन कुण्डलोंको ही समझ पाता हूँ कि किसके हैं; परंतु प्रतिदिन भाभीके चरणोंमें प्रणाम करनेके कारण मैं इन दोनों नूपुरोंको अवश्य पहचानता हूँ'॥ २२$\frac{1}{2}$॥

तब श्रीरघुनाथजी सुग्रीवसे इस प्रकार बोले—'सुग्रीव! तुमने तो देखा है, वह भयंकर रूपधारी राक्षस मेरी प्राणप्यारी सीताको किस दिशाकी ओर ले गया है, यह बताओ॥ २३-२४॥

'मुझे महान् संकट देनेवाला वह राक्षस कहाँ रहता है? मैं केवल उसीके अपराधके कारण समस्त राक्षसोंका विनाश कर डालूँगा॥ २५॥

'उस राक्षसने मैथिलीका अपहरण करके मेरा रोष बढ़ाकर निश्चय ही अपने जीवनका अन्त करनेके लिये मौतका दरवाजा खोल दिया है॥ २६॥

'वानरराज! जिस निशाचरने मुझे धोखेमें डालकर मेरा अपमान करके मेरी प्रियतमाका वनसे अपहरण किया है, वह मेरा घोर शत्रु है। तुम उसका पता बताओ। मैं अभी उसे यमराजके पास पहुँचाता हूँ'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामको समझाना तथा श्रीरामका सुग्रीवको उनकी कार्यसिद्धिका विश्वास दिलाना

श्रीरामने शोकसे पीड़ित होकर जब ऐसी बातें कहीं, तब वानरराज सुग्रीवकी आँखोंमें आँसू भर आये और वे हाथ जोड़कर अश्रुगद्गद कण्ठसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'प्रभो! नीच कुलमें उत्पन्न हुए उस पापात्मा राक्षसका गुप्त निवासस्थान कहाँ है, उसमें कितनी शक्ति है, उसका पराक्रम कैसा है अथवा वह किस वंशका है—इन सब बातोंको मैं सर्वथा नहीं जानता॥ २॥

'परंतु आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं ऐसा यत्न करूँगा कि जिससे मिथिलेशकुमारी सीता आपको मिल जायँ, इसलिये शत्रुदमन वीर! आप शोकका त्याग करें॥ ३॥

'मैं आपके संतोषके लिये सैनिकोंसहित रावणका वध करके अपना ऐसा पुरुषार्थ प्रकट करूँगा, जिससे आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँगे॥ ४॥

'इस तरह मनमें व्याकुलता लाना व्यर्थ है। आपके हृदयमें स्वाभाविकरूपसे जो धैर्य है, उसका स्मरण कीजिये। इस तरह बुद्धि और विचारको हलका बना देना—उसकी सहज गम्भीरताको खो देना आप-जैसे महापुरुषोंके लिये उचित नहीं है॥ ५॥

'मुझे भी पत्नीके विरहका महान् कष्ट प्राप्त हुआ है, परंतु मैं इस तरह शोक नहीं करता और न धैर्यको ही छोड़ता हूँ॥ ६॥

'यद्यपि मैं एक साधारण वानर हूँ तथापि अपनी पत्नीके लिये निरन्तर शोक नहीं करता हूँ। फिर आप-जैसे महात्मा, सुशिक्षित और धैर्यवान् महापुरुष शोक न करें—इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ ७॥

'आपको चाहिये कि धैर्य धारण करके इन गिरते हुए आँसुओंको रोकें। सात्त्विक पुरुषोंकी मर्यादा और धैर्यका परित्याग न करें॥ ८॥

'(आत्मीयजनोंके वियोग आदिसे होनेवाले) शोकमें, आर्थिक संकटमें अथवा प्राणान्तकारी भय उपस्थित होनेपर जो अपनी बुद्धिसे दु:ख-निवारणके उपायका विचार करते हुए धैर्य धारण करता है, वह कष्ट नहीं भोगता है॥ ९॥

'जो मूढ़ मानव सदा घबराहटमें ही पड़ा रहता है, वह पानीमें भारसे दबी हुई नौकाके समान शोकमें विवश होकर डूब जाता है॥ १०॥

'मैं हाथ जोड़ता हूँ। प्रेमपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप प्रसन्न हों और पुरुषार्थका आश्रय लें। शोकको अपने ऊपर प्रभाव डालनेका अवसर न दें॥ ११॥

'जो शोकका अनुसरण करते हैं, उन्हें सुख नहीं मिलता है और उनका तेज भी क्षीण हो जाता है; अत: आप शोक न करें॥ १२॥

'राजेन्द्र! शोकसे आक्रान्त हुए मनुष्यके जीवनमें (उसके प्राणोंकी रक्षामें) भी संशय उपस्थित हो जाता है। इसलिये आप शोकको त्याग दें और केवल धैर्यका आश्रय लें॥ १३॥

'मैं मित्रताके नाते हितकी सलाह देता हूँ। आपको उपदेश नहीं दे रहा हूँ। आप मेरी मैत्रीका आदर करते हुए कदापि शोक न करें'॥ १४॥

सुग्रीवने जब मधुर वाणीमें इस प्रकार सान्त्वना दी, तब श्रीरघुनाथजीने आँसुओंसे भीगे हुए अपने मुखको वस्त्रके छोरसे पोंछ लिया॥ १५॥

सुग्रीवके वचनसे शोकका परित्याग करके स्वस्थचित्त हो ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीरामने मित्रवर सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १६॥

'सुग्रीव! एक स्नेही और हितैषी मित्रको जो कुछ करना चाहिये, वही तुमने किया है। तुम्हारा कार्य सर्वथा उचित और तुम्हारे योग्य है॥ १७॥

'सखे! तुम्हारे आश्वासनसे मेरी सारी चिन्ता जाती रही। अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। तुम्हारे-जैसे बन्धुका विशेषत: ऐसे संकटके समय मिलना कठिन होता है॥

'परंतु तुम्हें मिथिलेशकुमारी सीता तथा रौद्ररूपधारी दुरात्मा राक्षस रावणका पता लगानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये॥ १९॥

'साथ ही मुझे भी इस समय तुम्हारे लिये जो कुछ करना आवश्यक हो, उसे बिना किसी सङ्कोचके बताओ। जैसे वर्षाकालमें अच्छे खेतमें बोया हुआ बीज अवश्य फल देता है, उसी प्रकार तुम्हारा सारा मनोरथ सफल होगा॥ २०॥

'वानरश्रेष्ठ! मैंने जो अभिमानपूर्वक यह वालीके वध आदि करनेकी बात कही है, इसे तुम ठीक ही समझो॥ २१॥

'मैंने पहले भी कभी झूठी बात नहीं कही है और भविष्यमें भी कभी असत्य नहीं बोलूँगा। इस समय जो कुछ कहा है, उसे पूर्ण करनेके लिये प्रतिज्ञा करता हूँ और तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये सत्यकी ही शपथ खाता हूँ'॥ २२॥

श्रीरघुनाथजीकी बात, विशेषत: उनकी प्रतिज्ञा सुनकर अपने वानर-मन्त्रियोंसहित सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ २३॥

इस प्रकार एकान्तमें एक-दूसरेके निकट बैठे हुए वे दोनों नर और वानर (श्रीराम और सुग्रीव) ने परस्पर सुख और दु:खकी बातें कहीं, जो एक-दूसरेके लिये अनुरूप थीं॥ २४॥

राजाधिराज महाराज श्रीरघुनाथजीकी बात सुनकर वानर वीरोंके प्रधान विद्वान् सुग्रीवने उस समय मन-ही-मन अपने कार्यको सिद्ध हुआ ही माना॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामसे अपना दु:ख निवेदन करना और श्रीरामका उन्हें आश्वासन देते हुए दोनों भाइयोंमें वैर होनेका कारण पूछना

श्रीरामचन्द्रजीकी उस बातसे सुग्रीवको बड़ा संतोष हुआ। वे हर्षसे भरकर लक्ष्मणके बड़े भाई शूरवीर श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'भगवन्! इसमें संदेह नहीं कि देवताओंकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है—मैं सर्वथा उनके अनुग्रहका पात्र हूँ; क्योंकि आप-जैसे गुणवान् महापुरुष मेरे सखा हो गये।

'प्रभो! निष्पाप श्रीराम! आप-जैसे सहायकके सहयोगसे तो देवताओंका राज्य भी अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है; फिर अपने खोये हुए राज्यको पाना कौन बड़ी बात है॥ ३॥

'रघुनन्दन! अब मैं अपने बन्धुओं और सुहृदोंके विशेष सम्मानका पात्र हो गया; क्योंकि आज रघुवंशके राजकुमार आप अग्निको साक्षी बनाकर मुझे मित्रके रूपमें प्राप्त हुए हैं॥ ४॥

'मैं भी आपके योग्य मित्र हूँ। इसका ज्ञान आपको धीरे-धीरे हो जायगा। इस समय आपके सामने मैं अपने गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ॥ ५॥

'आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! आप-जैसे पुण्यात्मा महात्माओंका प्रेम और धैर्य अधिकाधिक बढ़ता और अविचल होता है॥ ६॥

'अच्छे स्वभाववाले मित्र अपने घरके सोने-चाँदी अथवा उत्तम आभूषणोंको अपने अच्छे मित्रोंके लिये अविभक्त ही मानते हैं—उन मित्रोंका अपने धनपर अपने ही समान अधिकार समझते हैं॥ ७॥

'अतएव मित्र धनी हो या दरिद्र, सुखी हो या दु:खी अथवा निर्दोष हो या सदोष, वह मित्रके लिये सबसे बड़ा सहायक होता है॥ ८॥

'अनघ! साधुपुरुष अपने मित्रका अत्यन्त उत्कृष्ट प्रेम देख आवश्यकता पड़नेपर उसके लिये धन, सुख और देशका भी परित्याग कर देते हैं'॥ ९॥

यह सुनकर लक्ष्मी (दिव्य कान्ति) से उपलक्षित श्रीरामचन्द्रजीने इन्द्रतुल्य तेजस्वी बुद्धिमान् लक्ष्मणके सामने ही प्रिय वचन बोलनेवाले सुग्रीवसे कहा—'सखे! तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है'॥ १०॥

तदनन्तर (दूसरे दिन) महाबली श्रीराम और लक्ष्मणको खड़ा देख सुग्रीवने वनमें चारों ओर अपनी चञ्चल दृष्टि दौड़ायी॥ ११॥

उस समय वानरराजने पास ही एक सालका वृक्ष देखा, जिसमें थोड़ेसे ही सुन्दर पुष्प लगे हुए थे; परंतु उसमें पत्रोंकी बहुलता थी। उस वृक्षपर मँडराते हुए भौंरे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १२॥

उसकी एक डालीको जिसमें अधिक पत्ते थे और जो पुष्पोंसे सुशोभित थी, सुग्रीवने तोड़ डाला और उसे श्रीरामके लिये बिछाकर वे स्वयं भी उनके साथ ही उसपर बैठ गये॥ १३॥

उन दोनोंको आसनपर विराजमान देख हनुमान्‌जीने भी सालकी एक डाल तोड़ डाली और उसपर विनयशील लक्ष्मणको बैठाया॥ १४॥

उस श्रेष्ठ पर्वतपर, जहाँ सब ओर सालके पुष्प बिखरे हुए थे, सुखपूर्वक बैठे हुए श्रीराम शान्त समुद्रके समान प्रसन्न दिखायी देते थे। उन्हें देखकर अत्यन्त हर्षसे भरे हुए सुग्रीवने श्रीरामसे स्निग्ध एवं सुन्दर वाणीमें वार्तालाप आरम्भ किया। उस समय आनन्दातिरेकसे उनकी वाणी लड़खड़ा जाती थी—अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण नहीं हो पाता था॥ १५-१६॥

'प्रभो! मेरे भाईने मुझे घरसे निकालकर मेरी स्त्रीको भी छीन लिया है। मैं उसीके भयसे अत्यन्त पीड़ित एवं दु:खी होकर इस पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूकपर विचरता रहता हूँ॥ १७॥

'मुझे बराबर उसका त्रास बना रहता है। मैं भयमें डूबा रहकर भ्रान्तचित्त हो इस वनमें भटकता फिरता हूँ। रघुनन्दन! मेरे भाई वालीने मुझे घरसे निकालनेके बाद भी मेरे साथ वैर बाँध रखा है॥ १८॥

'प्रभो! आप समस्त लोकोंको अभय देनेवाले हैं। मैं वालीके भयसे दु:खी और अनाथ हूँ, अत: आपको मुझपर भी कृपा करनी चाहिये'॥ १९॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर तेजस्वी, धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल भगवान् श्रीरामने उन्हें हँसते हुए-से इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २०॥

'सखे! उपकार ही मित्रताका फल है और अपकार शत्रुताका लक्षण है; अत: मैं आज ही तुम्हारी स्त्रीका अपहरण करनेवाले उस वालीका वध करूँगा॥ २१॥

'महाभाग! मेरे इन बाणोंका तेज प्रचण्ड है। सुवर्णभूषित ये शर कार्तिकेयकी उत्पत्तिके स्थानभूत शरोंके वनमें उत्पन्न हुए हैं। (इसलिये अभेद्य हैं) ॥ २२॥

'ये कंकपक्षीके परोंसे युक्त हैं और इन्द्रके वज्रकी भाँति अमोघ हैं। इनकी गाँठें सुन्दर और अग्रभाग तीखे हैं। ये रोषमें भरे भुजङ्गोंकी भाँति भयंकर हैं॥ २३॥

'इन बाणोंसे तुम अपने वाली नामक शत्रुको, जो भाई होकर भी तुम्हारी बुराई कर रहा है, विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति मरकर पृथ्वीपर पड़ा देखोगे'॥ २४॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर वानरसेनापति सुग्रीवको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई और वे उन्हें बारंबार साधुवाद देते हुए बोले—॥ २५॥

'श्रीराम! मैं शोकसे पीड़ित हूँ और आप शोकाकुल प्राणियोंकी परमगति हैं। मित्र समझकर मैं आपसे अपना

दु:ख निवेदन करता हूँ॥ २६॥

'मैंने आपके हाथमें हाथ देकर अग्निदेवके सामने आपको अपना मित्र बनाया है। इसलिये आप मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ॥ २७॥

'आप मेरे मित्र हैं, इसलिये आपपर पूर्ण विश्वास करके मैं अपने भीतरका दु:ख, जो सदा मेरे मनको व्याकुल किये रहता है, आपको बता रहा हूँ'॥ २८॥

इतनी बात कहते-कहते सुग्रीवके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनकी वाणी अश्रुगद्गद हो गयी। इसलिये वे उच्च स्वरसे बोलनेमें समर्थ न हो सके॥ २९॥

तत्पश्चात् सुग्रीवने सहसा बढ़े हुए नदीके वेगके समान उमड़े हुए आँसुओंके वेगको श्रीरामके समीप धैर्यपूर्वक रोका॥ ३०॥

आँसुओंको रोककर अपने दोनों सुन्दर नेत्रोंको पोंछनेके पश्चात् तेजस्वी सुग्रीव पुन: लंबी साँस खींचकर श्रीरघुनाथजीसे बोले— ॥ ३१॥

'श्रीराम! पहलेकी बात है, बलिष्ठ वालीने कटुवचन सुनाकर बलपूर्वक मेरा तिरस्कार किया और अपने राज्य (युवराजपद) से नीचे उतार दिया॥ ३२॥

'इतना ही नहीं, मेरी स्त्रीको भी, जो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; उसने छीन लिया और जितने मेरे सुहृद् थे, उन सबको कैदमें डाल दिया॥ ३३॥

'रघुनन्दन! इसके बाद भी वह दुरात्मा वाली मेरे विनाशके लिये यत्न करता रहता है। उसके भेजे हुए बहुत-से वानरोंका मैं वध कर चुका हूँ॥ ३४॥

'रघुनाथजी! आपको भी देखकर मेरे मनमें ऐसा ही संदेह हुआ था, इसीलिये डर जानेके कारण मैं पहले आपके पास न आ सका; क्योंकि भयका अवसर आनेपर प्राय: सभी डर जाते हैं॥ ३५॥

'केवल ये हनुमान् आदि वानर ही मेरे सहायक हैं; अतएव महान् संकटमें पड़कर भी मैं अबतक प्राण धारण करता हूँ॥ ३६॥

'इन लोगोंका मुझपर स्नेह है, अत: ये सभी वानर सब ओरसे सदा मेरी रक्षा करते रहते हैं। जहाँ जाना होता है वहाँ साथ-साथ जाते हैं और जब कहीं मैं ठहर जाता हूँ वहाँ ये नित्य मेरे साथ रहते हैं॥ ३७॥

'रघुनन्दन! यह मैंने संक्षेपसे अपनी हालत बतलायी है। आपके सामने विस्तारपूर्वक कहनेसे क्या लाभ? वाली मेरा ज्येष्ठ भाई है, फिर भी इस समय मेरा शत्रु हो गया है। उसका पराक्रम सर्वत्र विख्यात है॥ ३८॥

'(यद्यपि भाईका नाश भी दु:खका ही कारण है, तथापि) इस समय जो मेरा दु:ख है, वह उसका नाश होनेपर ही मिट सकता है। मेरा सुख और जीवन उसके विनाशपर ही निर्भर है॥ ३९॥

'श्रीराम! यही मेरे शोकके नाशका उपाय है। मैंने शोकसे पीड़ित होनेके कारण आपसे यह बात निवेदन की है; क्योंकि मित्र दु:खमें हो या सुखमें, वह अपने मित्रकी सदा ही सहायता करता है'॥ ४०॥

यह सुनकर श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'तुम दोनों भाइयोंमें वैर पड़नेका क्या कारण है, यह मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ॥ ४१॥

'वानरराज! तुमलोगोंकी शत्रुताका कारण सुनकर तुम दोनोंकी प्रबलता और निर्बलताका निश्चय करके फिर तत्काल ही तुम्हें सुखी बनानेवाला उपाय करूँगा॥ ४२॥

'जैसे वर्षाकालमें नदी आदिका वेग बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे अपमानित होनेकी बात सुनकर मेरा प्रबल रोष बढ़ता जा रहा है और मेरे हृदयको कम्पित किये देता है॥ ४३॥

'मेरे धनुष चढ़ानेके पहले ही तुम अपनी सब बातें प्रसन्नतापूर्वक कह डालो; क्योंकि ज्यों ही मैंने बाण छोड़ा, तुम्हारा शत्रु तत्काल कालके गालमें चला जायगा'॥ ४४॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सुग्रीवको अपने चारों वानरोंके साथ अपार हर्ष हुआ॥ ४५॥

तदनन्तर सुग्रीवके मुखपर प्रसन्नता छा गयी और उन्होंने श्रीरामको वालीके साथ वैर होनेका यथार्थ कारण बताना आरम्भ किया॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामचन्द्रजीको वालीके साथ अपने वैर होनेका कारण बताना

'रघुनन्दन! वाली मेरे बड़े भाई हैं। उनमें शत्रुओंका संहार करनेकी शक्ति है। मेरे पिता ऋक्षरजा उनको बहुत मानते थे। वैरसे पहले मेरे मनमें भी उनके प्रति आदरका भाव था॥ १॥

'पिताकी मृत्युके पश्चात् मन्त्रियोंने उन्हें ज्येष्ठ समझकर वानरोंका राजा बनाया। वे सबको बड़े प्रिय थे, इसीलिये किष्किन्धाके राज्यपर प्रतिष्ठित किये गये थे॥ २॥

'वे पिता-पितामहोंके विशाल राज्यका शासन करने लगे और मैं हर समय विनीतभावसे दासकी भाँति उनकी सेवामें रहने लगा॥ ३॥

'उन दिनों मायावी नामक एक तेजस्वी दानव रहता था, जो मय दानवका पुत्र और दुन्दुभिका बड़ा भाई था। उसके साथ वालीका स्त्रीके कारण बहुत बड़ा वैर हो गया था॥ ४॥

'एक दिन आधी रातके समय जब सब लोग सो गये, मायावी किष्किन्धापुरीके दरवाजेपर आया और क्रोधसे भरकर गर्जने तथा वालीको युद्धके लिये ललकारने लगा॥ ५॥

'उस समय मेरे भाई सो रहे थे। उसका भैरवनाद सुनकर उनकी नींद खुल गयी। उनसे उस राक्षसकी ललकार सही नहीं गयी; अतः वे तत्काल वेगपूर्वक घरसे निकले॥ ६॥

'जब वे क्रोध करके उस श्रेष्ठ असुरको मारनेके लिये निकले, उस समय मैंने तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंने पैरों पड़कर उन्हें जानेसे रोका॥ ७॥

'परंतु महाबली वाली हम सबको हटाकर निकल पड़े, तब मैं भी स्नेहवश वालीके साथ ही बाहर निकला॥ ८॥

'उस असुरने मेरे भाईको देखा तथा कुछ दूरपर खड़े हुए मेरे ऊपर भी उसकी दृष्टि पड़ी; फिर तो वह भयसे थर्रा उठा और बड़े जोरसे भागा॥ ९॥

'उसके भयभीत होकर भागनेपर हम दोनों भाइयोंने बड़ी तेजीके साथ उसका पीछा किया। उस समय उदित हुए चन्द्रमाने हमारे मार्गको भी प्रकाशित कर दिया था॥ १०॥

'आगे जानेपर धरतीमें एक बहुत बड़ा बिल था, जो घास-फूससे ढका हुआ था। उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था। वह असुर बड़े वेगसे उस बिलमें जा घुसा। वहाँ पहुँचकर हम दोनों ठहर गये॥ ११॥

'शत्रुको बिलके अंदर घुसा देख वालीके क्रोधकी सीमा न रही। उनकी सारी इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो उठीं और वे मुझसे इस प्रकार बोले—॥ १२॥

'सुग्रीव! जबतक मैं इस बिलके भीतर प्रवेश करके युद्धमें शत्रुको मारता हूँ, तबतक तुम आज इसके दरवाजेपर सावधानीसे खड़े रहो'॥ १३॥

'यह बात सुनकर मैंने शत्रुओंको संताप देनेवाले वालीसे स्वयं भी साथ चलनेके लिये प्रार्थना की, किंतु वे अपने चरणोंकी सौगन्ध दिलाकर अकेले ही बिलमें घुसे॥ १४॥

'बिलके भीतर गये हुए उन्हें एक सालसे अधिक समय बीत गया और बिलके दरवाजेपर खड़े-खड़े मेरा भी उतना ही समय निकल गया॥ १५॥

'जब इतने दिनोंतक मुझे भाईका दर्शन नहीं हुआ, तब मैंने समझा कि मेरे भाई इस गुफामें ही कहीं खो गये। उस समय भ्रातृस्नेहके कारण मेरा हृदय व्याकुल हो उठा। मेरे मनमें उनके मारे जानेकी शङ्का होने लगी॥ १६॥

'तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उस बिलसे सहसा फेनसहित खूनकी धारा निकली। उसे देखकर मैं बहुत दुःखी हो गया॥ १७॥

'इतनेहीमें गरजते हुए असुरोंकी आवाज भी मेरे कानोंमें पड़ी। युद्धमें लगे हुए मेरे बड़े भाई भी गरजना कर रहे थे, किंतु उनकी आवाज मैं नहीं सुन सका॥ १८॥

'इन सब चिह्नोंको देखकर बुद्धिद्वारा विचार करनेपर मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि मेरे बड़े भाई मारे गये। फिर तो उस गुफाके दरवाजेपर मैंने पर्वतके समान एक पत्थरकी चट्टान रख दी और उसे बंद करके भाईको जलाञ्जलि दे शोकसे व्याकुल हुआ मैं किष्किन्धापुरीमें लौट आया। सखे! यद्यपि मैं इस यथार्थ बातको छिपा रहा था, तथापि मन्त्रियोंने यत्न करके सुन लिया॥ १९-२०॥

'तब उन सबने मिलकर मुझे राज्यपर अभिषिक्त

कर दिया। रघुनन्दन! मैं न्यायपूर्वक राज्यका संचालन करने लगा। इसी समय अपने शत्रुभूत उस दानवको मारकर वानरराज वाली घर लौटे। लौटनेपर मुझे राज्यपर अभिषिक्त हुआ देख उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं॥ २१-२२॥

'मेरे मन्त्रियोंको उन्होंने कैद कर लिया और उन्हें कठोर बातें सुनायीं। रघुवीर! यद्यपि मैं स्वयं भी उस पापीको कैद करनेमें समर्थ था तो भी भाईके प्रति गुरुभाव होनेके कारण मेरी बुद्धिमें ऐसा विचार नहीं हुआ॥ २३½॥

'इस प्रकार शत्रुका वध करके मेरे भाईने उस समय नगरमें प्रवेश किया। उन महात्माका सम्मान करते हुए मैंने यथोचितरूपसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया तो भी उन्होंने प्रसन्नचित्तसे मुझे आशीर्वाद नहीं दिया॥ २४-२५॥

'प्रभो! मैंने भाईके सामने झुककर अपने मस्तकके मुकुटसे उनके दोनों चरणोंका स्पर्श किया तो भी क्रोधके कारण वाली मुझपर प्रसन्न नहीं हुए'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

भाईके साथ वैरका कारण बतानेके प्रसङ्गमें सुग्रीवका वालीको मनाने और वालीद्वारा अपने निष्कासित होनेका वृत्तान्त सुनाना

(सुग्रीव कहते हैं—) 'तदनन्तर क्रोधसे आविष्ट तथा विक्षुब्ध होकर आये हुए अपने बड़े भाईको उनके हितकी कामनासे मैं पुनः प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा॥ १॥

'मैंने कहा—'अनाथनन्दन! सौभाग्यकी बात है कि आप सकुशल लौट आये और वह शत्रु आपके हाथसे मारा गया। मैं आपके बिना अनाथ हो रहा था। अब एकमात्र आप ही मेरे नाथ हैं॥ २॥

''यह बहुत-सी तीलियोंसे युक्त तथा उदित हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान श्वेत छत्र मैं आपके मस्तकपर लगाता और चँवर डुलाता हूँ। आप इन्हें स्वीकार करें॥

''वानरराज! मैं बहुत दुःखी होकर एक वर्षतक उस बिलके दरवाजेपर खड़ा रहा। उसके बाद बिलके भीतरसे खूनकी धारा निकली। द्वारपर वह रक्त देखकर मेरा हृदय शोकसे उद्विग्न हो उठा और मेरी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयीं॥ ४½॥

''तब उस बिलके द्वारको एक पर्वत-शिखरसे ढककर मैं उस स्थानसे हट गया और पुनः किष्किन्धापुरीमें चला आया॥ ५½॥

''यहाँ विषादपूर्वक मुझे अकेला लौटा देख पुरवासियों और मन्त्रियोंने ही इस राज्यपर मेरा अभिषेक कर दिया। मैंने स्वेच्छासे इस राज्यको नहीं ग्रहण किया है। अतः अज्ञानवश होनेवाले मेरे इस अपराधको आप क्षमा करें॥ ६½॥

''आप ही यहाँके सम्माननीय राजा हैं और मैं सदा आपका पूर्ववत् सेवक हूँ। आपके वियोगसे ही राजाके पदपर मेरी यह नियुक्ति की गयी॥ ७½॥

''मन्त्रियों, पुरवासियों तथा नगरसहित आपका यह सारा अकंटक राज्य मेरे पास धरोहरके रूपमें रखा था। अब इसे मैं आपकी सेवामें लौटा रहा हूँ॥ ८½॥

''सौम्य! शत्रुसूदन! आप मुझपर क्रोध न करें। 'राजन्! मैं इसके लिये मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ और हाथ जोड़ता हूँ॥ ९½॥

''मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने मिलकर जबर्दस्ती मुझे इस राज्यपर बिठाया है। वह भी इसलिये कि राजासे रहित राज्य देखकर कोई शत्रु इसे जीतनेकी इच्छासे आक्रमण न कर बैठे''॥ १०½॥

'मैंने ये सारी बातें बड़े प्रेमसे कही थीं, किंतु उस वानरने मुझे डाँटकर कहा—'तुझे धिक्कार है'। यों कहकर उसने मुझे और भी बहुत-सी कठोर बातें सुनायीं॥ ११½॥

'तत्पश्चात् उसने प्रजाजनों और सम्मान्य मन्त्रियोंको बुलाया तथा सुहृदोंके बीचमें मेरे प्रति अत्यन्त निन्दित वचन कहा॥ १२½॥

'वह बोला—'आपलोगोंको मालूम होगा कि एक दिन रातमें मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छासे मायावी नामक महान् असुर यहाँ आया था। उसने क्रोधमें भरकर पहले मुझे युद्धके लिये ललकारा॥ १३½॥

''उसकी वह ललकार सुनकर मैं राजभवनसे निकल पड़ा। उस समय यह क्रूर स्वभाववाला मेरा

भाई भी तुरंत ही मेरे पीछे-पीछे आया॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

''यद्यपि वह असुर बड़ा बलवान् था तथापि मुझे एक दूसरे सहायकके साथ देखते ही भयभीत हो उस रातमें भाग चला। हम दोनों भाइयोंको आते देख वह बड़े वेगसे दौड़ा और एक विशाल गुफामें घुस गया॥

''उस अत्यन्त भयंकर विशाल गुफामें उस असुरको घुसा हुआ जानकर मैंने अपने इस क्रूरदर्शी भाईसे कहा— ॥ १७ ॥

''सुग्रीव! इस शत्रुको मारे बिना मैं यहाँसे किष्किन्धापुरीको लौट चलनेमें असमर्थ हूँ; अतः जबतक मैं इस असुरको मारकर लौटता हूँ, तबतक तुम इस गुफाके दरवाजेपर रहकर मेरी प्रतीक्षा करो'॥ १८ ॥

''ऐसा कहकर और 'यह तो यहाँ खड़ा है ही' ऐसा विश्वास करके मैं उस अत्यन्त दुर्गम गुफाके भीतर प्रविष्ट हुआ। भीतर जाकर मैं उस दानवकी खोज करने लगा और इसीमें मेरा वहाँ एक वर्षका समय व्यतीत हो गया॥ १९ ॥

''इसके बाद मैंने उस भयंकर शत्रुको देखा। इतने दिनोंतक उसके न मिलनेसे मेरे मनमें कोई क्लेश या उदासीनता नहीं हुई थी। मैंने उसे उसके समस्त बन्धु-बान्धवोंसहित तत्काल कालके गालमें डाल दिया॥ २० ॥

''उसके मुखसे और छातीसे भी भूतलपर रक्तका ऐसा प्रवाह जारी हुआ, जिससे वह सारी दुर्गम गुफा भर गयी॥ २१ ॥

''इस तरह उस पराक्रमी शत्रुका सुखपूर्वक वध करके जब मैं लौटा, तब मुझे निकलनेका कोई मार्ग ही नहीं दिखायी देता था; क्योंकि बिलका दरवाजा बंद कर दिया गया था॥ २२ ॥

''मैंने 'सुग्रीव! सुग्रीव! कहकर बारंबार पुकारा, किंतु कोई उत्तर नहीं मिला। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ॥ २३ ॥

''मैंने बारंबार लात मारकर किसी तरह उस पत्थरको पीछेकी ओर ढकेला। इसके बाद गुफाद्वारसे निकलकर यहाँकी राह पकड़े मैं इस नगरमें लौटा हूँ॥ २४ ॥

''यह सुग्रीव ऐसा क्रूर और निर्दयी है कि इसने भ्रातृ-प्रेमको भुला दिया और सारा राज्य अपने हाथमें कर लेनेके लिये मुझे उस गुफाके अंदर बंद कर दिया था'॥

'ऐसा कहकर वानरराज वालीने निर्भयतापूर्वक मुझे घरसे निकाल दिया। उस समय मेरे शरीरपर एक ही वस्त्र रह गया था॥ २६ ॥

'रघुनन्दन! उसने मुझे घरसे तो निकाल ही दिया, मेरी स्त्रीको भी छीन लिया। उसके भयसे मैं वनों और समुद्रोंसहित सारी पृथ्वीपर मारा-मारा फिरता रहा। अन्ततोगत्वा मैं भार्याहरणके दुःखसे दुःखी हो इस श्रेष्ठ पर्वत ऋष्यमूकपर चला आया; क्योंकि एक विशेष कारणवश वालीके लिये इस स्थानपर आक्रमण करना बहुत कठिन है॥ २७-२८ ॥

'रघुनाथजी! यही वालीके साथ मेरे वैर पड़नेकी विस्तृत कथा है। यह सब मैंने आपको सुना दी। देखिये, बिना अपराधके ही मुझे यह सब संकट भोगना पड़ता है॥ २९ ॥

'वीरवर! आप सम्पूर्ण जगत्का भय दूर करनेवाले हैं। मुझपर कृपा कीजिये और वालीका दमन करके मुझे उसके भयसे बचाइये'॥ ३० ॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मके ज्ञाता परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने उनसे हँसते हुए-से यह धर्मयुक्त वचन कहना आरम्भ किया— ॥ ३१ ॥

'मित्र! ये मेरे सूर्यके समान तेजस्वी तीखे बाण अमोघ हैं, जो दुराचारी वालीपर रोषपूर्वक पड़ेंगे॥ ३२ ॥

'जबतक तुम्हारी भार्याका अपहरण करनेवाले उस वानरको मैं अपने सामने नहीं देखता हूँ तबतक सदाचारको कलंकित करनेवाला वह पापात्मा वाली जीवन धारण कर ले॥ ३३ ॥

'मैं अपने ही अनुमानसे समझता हूँ कि तुम शोकके समुद्रमें डूबे हुए हो। मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम अपनी पत्नी तथा विशाल राज्यको भी अवश्य प्राप्त कर लोगे'॥ ३४ ॥

श्रीरामका यह वचन हर्ष और पुरुषार्थको बढ़ानेवाला था। उसे सुनकर सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहने लगे॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

सुग्रीवके द्वारा वालीके पराक्रमका वर्णन— वालीका दुन्दुभि दैत्यको मारकर उसकी लाशको मतङ्गवनमें फेंकना, मतङ्गमुनिका वालीको शाप देना, श्रीरामका दुन्दुभिके अस्थिसमूहको दूर फेंकना और सुग्रीवका उनसे साल-भेदनके लिये आग्रह करना

श्रीरामचन्द्रजीका वचन हर्ष और पुरुषार्थको बढ़ानेवाला था, उसे सुनकर सुग्रीवने उसके प्रति अपना आदर प्रकट किया और श्रीरघुनाथजीकी इस प्रकार प्रशंसा की—॥ १॥

'प्रभो! आपके बाण प्रज्वलित, तीक्ष्ण एवं मर्मभेदी हैं। यदि आप कुपित हो जायँ तो इनके द्वारा प्रलयकालके सूर्यकी भाँति समस्त लोकोंको भस्म कर सकते हैं। इसमें संशयकी बात नहीं है॥ २॥

'परंतु वालीका जैसा पुरुषार्थ है, जो बल है और जैसा धैर्य है, वह सब एकचित्त होकर सुन लीजिये। उसके बाद जैसा उचित हो, कीजियेगा॥ ३॥

'वाली सूर्योदयके पहले ही पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक और दक्षिण सागरसे उत्तरतक घूम आता है; फिर भी वह थकता नहीं है॥ ४॥

'पराक्रमी वाली पर्वतोंकी चोटियोंपर चढ़कर बड़े-बड़े शिखरोंको बलपूर्वक उठा लेता और ऊपरको उछालकर फिर उन्हें हाथोंसे थाम लेता है॥ ५॥

'वनोंमें नाना प्रकारके जो बहुत-से सुदृढ़ वृक्ष थे, उन्हें अपने बलको प्रकट करते हुए वालीने वेगपूर्वक तोड़ डाला है॥ ६॥

'पहलेकी बात है यहाँ एक दुन्दुभि नामका असुर रहता था, जो भैंसेके रूपमें दिखायी देता था। वह ऊँचाईमें कैलास पर्वतके समान जान पड़ता था। पराक्रमी दुन्दुभि अपने शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल रखता था॥

'बलके घमंडमें भरा हुआ वह विशालकाय दुष्टात्मा दानव अपनेको मिले हुए वरदानसे मोहित हो सरिताओंके स्वामी समुद्रके पास गया॥ ८॥

'जिसमें उत्ताल तरङ्गें उठ रही थीं तथा जो रत्नोंकी निधि हैं, उस महान् जलराशिसे परिपूर्ण समुद्रको लाँघकर—उसे कुछ भी न समझकर दुन्दुभिने उसके अधिष्ठाता देवतासे कहा—'मुझे अपने साथ युद्धका अवसर दो'॥ ९॥

'राजन्! उस समय महान् बलशाली धर्मात्मा समुद्र उस कालप्रेरित असुरसे इस प्रकार बोला—॥ १०॥

''युद्धविशारद वीर! मैं तुम्हें युद्धका अवसर देने— तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हूँ। जो तुम्हें युद्ध प्रदान करेगा, उसका नाम बतलाता हूँ, सुनो॥ ११॥

'विशाल वनमें जो पर्वतोंका राजा और भगवान् शंकरका श्वशुर है, तपस्वी जनोंका सबसे बड़ा आश्रय और संसारमें हिमवान् नामसे विख्यात है, जहाँसे जलके बड़े-बड़े स्रोत प्रकट हुए हैं। तथा जहाँ बहुत-सी कन्दराएँ और झरने हैं, वह गिरिराज हिमालय ही तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ है। वह तुम्हें अनुपम प्रीति प्रदान कर सकता है॥ १२-१३॥

'यह सुनकर असुरशिरोमणि दुन्दुभि समुद्रको डरा हुआ जान धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति तुरंत हिमालयके वनमें जा पहुँचा और उस पर्वतकी गजराजोंके समान विशाल श्वेत शिलाओंको बारंबार भूमिपर फेंकने और गर्जना करने लगा॥ १४-१५॥

'तब श्वेत बादलके समान आकार धारण किये सौम्य स्वभाववाले हिमवान् वहाँ प्रकट हुए। उनकी आकृति प्रसन्नताको बढ़ानेवाली थी। वे अपने ही शिखरपर खड़े होकर बोले—॥ १६॥

''धर्मवत्सल दुन्दुभे! तुम मुझे क्लेश न दो। मैं युद्धकर्ममें कुशल नहीं हूँ। मैं तो केवल तपस्वी जनोंका निवासस्थान हूँ'॥ १७॥

'बुद्धिमान् गिरिराज हिमालयकी यह बात सुनकर दुन्दुभिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह इस प्रकार बोला—॥ १८॥

'यदि तुम युद्ध करनेमें असमर्थ हो अथवा मेरे भयसे ही युद्धकी चेष्टासे विरत हो गये हो तो मुझे उस वीरका नाम बताओ, जो युद्धकी इच्छा रखनेवाले मुझको अपने साथ युद्ध करनेका अवसर दे'॥ १९॥

'उसकी यह बात सुनकर बातचीतमें कुशल धर्मात्मा हिमवान्‌ने श्रेष्ठ असुरसे, जिसके लिये पहले किसीने किसी प्रतिद्वन्द्वी योद्धाका नाम नहीं बताया था, क्रोधपूर्वक कहा—॥ २०॥

''महाप्राज्ञ दानवराज! वाली नामसे प्रसिद्ध एक परम तेजस्वी और प्रतापी वानर हैं, जो देवराज इन्द्रके पुत्र हैं और अनुपम शोभासे पूर्ण किष्किन्धा नामक

पुरीमें निवास करते हैं॥ २१॥

''वे बड़े बुद्धिमान् और युद्धकी कलामें निपुण हैं। वे ही तुमसे जूझनेमें समर्थ हैं। जैसे इन्द्रने नमुचिको युद्धका अवसर दिया था, उसी प्रकार वाली तुम्हें द्वन्द्वयुद्ध प्रदान कर सकते हैं॥ २२॥

''यदि तुम यहाँ युद्ध चाहते हो तो शीघ्र चले जाओ; क्योंकि वालीके लिये किसी शत्रुकी ललकारको सह सकना बहुत कठिन है। वे युद्धकर्ममें सदा शूरता प्रकट करनेवाले हैं'॥ २३॥

'हिमवान्की बात सुनकर क्रोधसे भरा हुआ दुन्दुभि तत्काल वालीकी किष्किन्धापुरीमें जा पहुँचा॥ २४॥

'उसने भैंसेका-सा रूप धारण कर रखा था। उसके सींग बड़े तीखे थे। वह बड़ा भयंकर था और वर्षाकालके आकाशमें छाये हुए जलसे भरे महान् मेघके समान जान पड़ता था॥ २५॥

'वह महाबली दुन्दुभि किष्किन्धापुरीके द्वारपर आकर भूमिको कँपाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा, मानो दुन्दुभिका गम्भीर नाद हो रहा हो॥ २६॥

'वह आसपासके वृक्षोंको तोड़ता, धरतीको खुरोंसे खोदता और घमंडमें आकर पुरीके दरवाजेको सींगोंसे खरोंचता हुआ युद्धके लिये डट गया॥ २७॥

'वाली उस समय अन्त:पुरमें था। उस दानवकी गर्जना सुनकर वह अमर्षसे भर गया और तारोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति स्त्रियोंसे घिरा हुआ नगरके बाहर निकल आया॥ २८॥

'समस्त वनचारी वानरोंके राजा वालीने वहाँ सुस्पष्ट अक्षरों तथा पदोंसे युक्त परिमित वाणीमें उस दुन्दुभिसे कहा— ॥ २९॥

''महाबली दुन्दुभे! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम इस नगरद्वारको रोककर क्यों गरज रहे हो? अपने प्राणोंकी रक्षा करो'॥ ३०॥

'बुद्धिमान् वानरराज वालीका यह वचन सुनकर दुन्दुभिकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वह उससे इस प्रकार बोला— ॥ ३१॥

''वीर! तुम्हें स्त्रियोंके समीप ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मुझे युद्धका अवसर दो, तब मैं तुम्हारा बल समझूँगा॥ ३२॥

''अथवा वानर! मैं आजकी रातमें अपने क्रोधको रोके रहूँगा। तुम स्वेच्छानुसार कामभोगके लिये सूर्योदयतक समय मुझसे ले लो॥ ३३॥

''वानरोंको हृदयसे लगाकर जिसे जो कुछ देना हो दे दो; तुम समस्त कपियोंके राजा हो न! अपने सुहृदोंसे मिल लो, सलाह कर लो॥ ३४॥

''किष्किन्धापुरीको अच्छी तरह देख लो। अपने समान पुत्र आदिको इस नगरीके राज्यपर अभिषिक्त कर दो और स्त्रियोंके साथ आज जीभरकर क्रीडा कर लो। इसके बाद मैं तुम्हारा घमंड चूर कर दूँगा॥ ३५॥

''जो मधुपानसे मत्त, प्रमत्त (असावधान), युद्धसे भगे हुए, अस्त्ररहित, दुर्बल, तुम्हारे-जैसे स्त्रियोंसे घिरे हुए तथा मदमोहित पुरुषका वध करता है, वह जगत्में गर्भ-हत्यारा कहा जाता है'॥ ३६॥

'यह सुनकर वाली मन्द-मन्द मुसकराकर उन तारा आदि सब स्त्रियोंको दूर हटा उस असुरराजसे क्रोधपूर्वक बोला— ॥ ३७॥

''यदि तुम युद्धके लिये निर्भय होकर खड़े हो तो यह न समझो कि यह वाली मधु पीकर मतवाला हो गया है। मेरे इस मदको तुम युद्धस्थलमें उत्साहवृद्धिके लिये वीरोंद्वारा किया जानेवाला औषधविशेषका पान समझो'॥ ३८॥

'उससे ऐसा कहकर पिता इन्द्रकी दी हुई विजयदायिनी सुवर्णमालाको गलेमें डालकर वाली कुपित हो युद्धके लिये खड़ा हो गया॥ ३९॥

'कपिश्रेष्ठ वालीने पर्वताकार दुन्दुभिके दोनों सींग पकड़कर उस समय गर्जना करते हुए उसे बारंबार घुमाया॥ ४०॥

'फिर बलपूर्वक उसे धरतीपर दे मारा और बड़े जोरसे सिंहनाद किया। पृथ्वीपर गिराये जाते समय उसके दोनों कानोंसे खूनकी धाराएँ बहने लगीं॥ ४१॥

'क्रोधके आवेशसे युक्त हो एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले उन दोनों दुन्दुभि और वालीमें घोर युद्ध होने लगा॥ ४२॥

'उस समय इन्द्रके तुल्य पराक्रमी वाली दुन्दुभिपर मुक्कों, लातों, घुटनों, शिलाओं तथा वृक्षोंसे प्रहार करने लगा॥ ४३॥

'उस युद्धस्थलमें परस्पर प्रहार करते हुए वानर और असुर दोनों योद्धाओंमेंसे असुरकी शक्ति तो घटने लगी और इन्द्रकुमार वालीका बल बढ़ने लगा॥ ४४॥

'उन दोनोंमें वहाँ प्राणान्तकारी युद्ध छिड़ गया। उस समय वालीने दुन्दुभिको उठाकर पृथ्वीपर दे मारा, साथ ही अपने शरीरसे उसको दबा दिया,

जिससे दुन्दुभि पिस गया॥ ४५॥

'गिरते समय उसके शरीरके समस्त छिद्रोंसे बहुत-सा रक्त बहने लगा। वह महाबाहु असुर पृथ्वीपर गिरा और मर गया॥ ४६॥

'जब उसके प्राण निकल गये और चेतना लुप्त हो गयी, तब वेगवान् वालीने उसे दोनों हाथोंसे उठाकर एक साधारण वेगसे एक योजन दूर फेंक दिया॥ ४७॥

'वेगपूर्वक फेंके गये उस असुरके मुखसे निकली हुई रक्तकी बहुत-सी बूँदें हवाके साथ उड़कर मतंगमुनिके आश्रममें पड़ गयीं॥ ४८॥

'महाभाग! वहाँ पड़े हुए उन रक्त-बिन्दुओंको देखकर मतंगमुनि कुपित हो उठे और इस विचारमें पड़ गये कि 'यह कौन है, जो यहाँ रक्तके छींटे डाल गया है?॥ ४९॥

''जिस दुष्टने सहसा मेरे शरीरसे रक्तका स्पर्श करा दिया, यह दुरात्मा दुर्बुद्धि, अजितात्मा और मूर्ख कौन है?'॥ ५०॥

'ऐसा कहकर मुनिवर मतंगने बाहर निकलकर देखा तो उन्हें एक पर्वताकार भैंसा पृथ्वीपर प्राणहीन होकर पड़ा दिखायी दिया॥ ५१॥

'उन्होंने अपने तपोबलसे यह जान लिया कि यह एक वानरकी करतूत है। अत: उस लाशको फेंकनेवाले वानरके प्रति उन्होंने बड़ा भारी शाप दिया—॥ ५२॥

''जिसने खूनके छींटे डालकर मेरे निवासस्थान इस वनको अपवित्र कर दिया है, वह आजसे इस वनमें प्रवेश न करे। यदि इसमें प्रवेश करेगा तो उसका वध हो जायगा॥ ५३॥

''इस असुरके शरीरको इधर फेंककर जिसने इन वृक्षोंको तोड़ डाला है, वह दुर्बुद्धि यदि मेरे आश्रमके चारों ओर पूरे एक योजनतककी भूमिमें पैर रखेगा तो अवश्य ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा॥ ५४$\frac{१}{२}$॥

''उस वालीके जो कोई सचिव भी मेरे इस वनमें रहते हों, उन्हें अब यहाँका निवास त्याग देना चाहिये। वे मेरी आज्ञा सुनकर सुखपूर्वक यहाँसे चले जायँ। यदि वे रहेंगे तो उन्हें भी निश्चय ही शाप दे दूँगा॥ ५५-५६॥

''मैंने अपने इस वनकी सदा पुत्रकी भाँति रक्षा की है। जो इसके पत्र और अङ्कुरका विनाश तथा फल-मूलका अभाव करनेके लिये यहाँ रहेंगे, वे अवश्य शापके भागी होंगे॥ ५७॥

''आजका दिन उन सबके आने-जाने या रहनेकी अन्तिम अवधि है—आजभरके लिये मैं उन सबको छुट्टी देता हूँ। कलसे जो कोई वानर यहाँ मेरी दृष्टिमें पड़ जायगा, वह कई हजार वर्षोंके लिये पत्थर हो जायगा'॥ ५८॥

'मुनिके इस वचनको सुनकर वे सभी वानर मतंगवनसे निकल गये। उन्हें देखकर वालीने पूछा—॥ ५९॥

''मतंगवनमें निवास करनेवाले आप सभी वानर मेरे पास क्यों चले आये? वनवासियोंकी कुशल तो है न?''॥ ६०॥

'तब उन सभी वानरोंने सुवर्णमालाधारी वालीसे अपने आनेका सब कारण बताया तथा जो वालीको शाप हुआ था, उसे भी कह सुनाया॥ ६१॥

'वानरोंकी कही हुई यह बात सुनकर वाली महर्षि मतंगके पास गया और हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करने लगा॥ ६२॥

'किंतु महर्षिने उसका आदर नहीं किया। वे चुपचाप अपने आश्रममें चले गये। इधर वाली शाप प्राप्त होनेसे भयभीत हो बहुत ही व्याकुल हो गया॥ ६३॥

'नरेश्वर! तबसे उस शापके भयसे डरा हुआ वाली इस महान् पर्वत ऋष्यमूकके स्थानोंमें न तो कभी प्रवेश करना चाहता है और न इस पर्वतको देखना ही चाहता है॥ ६४॥

'श्रीराम! यहाँ उसका प्रवेश होना असम्भव है, यह जानकर मैं अपने मन्त्रियोंके साथ इस महान् वनमें विषाद-शून्य होकर विचरता हूँ॥ ६५॥

'यह रहा दुन्दुभिकी हड्डियोंका ढेर, जो एक महान् पर्वतशिखरके समान जान पड़ता है। वालीने अपने बलके घमंडमें आकर दुन्दुभिके शरीरको इतनी दूर फेंका था॥ ६६॥

'ये सात सालके विशाल एवं मोटे वृक्ष हैं, जो अनेक उत्तम शाखाओंसे सुशोभित होते हैं। वाली इनमेंसे एक-एकको बलपूर्वक हिलाकर पत्रहीन कर सकता है॥ ६७॥

'श्रीराम! यह मैंने वालीके अनुपम पराक्रमको प्रकाशित किया है। नरेश्वर! आप उस वालीको समराङ्गणमें कैसे मार सकेंगे'॥ ६८॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणको बड़ी हँसी आयी। वे हँसते हुए ही बोले—'कौन-सा काम कर देनेपर तुम्हें विश्वास होगा कि श्रीरामचन्द्रजी

वालीका वध कर सकेंगे'॥ ६९ ॥

तब सुग्रीवने उनसे कहा— 'पूर्वकालमें वालीने सालके इन सातों वृक्षोंको एक-एक करके कई बार बींध डाला है। अत: श्रीरामचन्द्रजी भी यदि इनमेंसे किसी एक वृक्षको एक ही बाणसे छेद डालेंगे तो इनका पराक्रम देखकर मुझे वालीके मारे जानेका विश्वास हो जायगा॥ ७०-७१ ॥

'लक्ष्मण! यदि इस महिषरूपधारी दुन्दुभिकी हड्डीको एक ही पैरसे उठाकर बलपूर्वक दो सौ धनुषकी दूरीपर फेंक सकें तो भी मैं यह मान लूँगा कि इनके हाथसे वालीका वध हो सकता है'॥ ७२ ॥

जिनके नेत्रप्रान्त कुछ-कुछ लाल थे, उन श्रीरामसे ऐसा कहकर सुग्रीव दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारमें पड़े रहे। इसके बाद वे ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामसे फिर बोले— ॥ ७३ ॥

'वाली शूर है और स्वयं भी उसे अपने शौर्यपर अभिमान है। उसके बल और पुरुषार्थ विख्यात हैं। वह बलवान् वानर अबतकके युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुआ है॥ ७४ ॥

'इसके ऐसे-ऐसे कर्म देखे जाते हैं, जो देवताओंके लिये दुष्कर हैं और जिनका चिन्तन करके भयभीत हो मैंने इस ऋष्यमूक पर्वतकी शरण ली है॥ ७५ ॥

'वानरराज वालीको जीतना दूसरोंके लिये असम्भव है। उसपर आक्रमण अथवा उसका तिरस्कार भी नहीं किया जा सकता। वह शत्रुकी ललकारको नहीं सह सकता। जब मैं उसके प्रभावका चिन्तन करता हूँ, तब इस ऋष्यमूक पर्वतको एक क्षणके लिये भी छोड़ नहीं पाता हूँ॥ ७६ ॥

'ये हनुमान् आदि मेरे श्रेष्ठ सचिव मुझमें अनुराग रखनेवाले हैं। इनके साथ रहकर भी मैं इस विशाल वनमें वालीसे उद्विग्न और शङ्कित होकर ही विचरता हूँ॥ ७७ ॥

'मित्रवत्सल! आप मुझे परम स्पृहणीय श्रेष्ठ मित्र मिल गये हैं। पुरुषसिंह! आप मेरे लिये हिमालयके समान हैं और मैं आपका आश्रय ले चुका हूँ। (इसलिये अब मुझे निर्भय हो जाना चाहिये)॥ ७८ ॥

'किंतु रघुनन्दन! मैं उस बलशाली दुष्ट भ्राताके बल-पराक्रमको जानता हूँ और समरभूमिमें आपका पराक्रम मैंने प्रत्यक्ष नहीं देखा है॥ ७९ ॥

'प्रभो! अवश्य ही मैं वालीसे आपकी तुलना नहीं करता हूँ। न तो आपको डराता हूँ और न आपका अपमान ही करता हूँ। वालीके भयानक कर्मोंने ही मेरे हृदयमें कातरता उत्पन्न कर दी है॥ ८० ॥

'रघुनन्दन! निश्चय ही आपकी वाणी मेरे लिये प्रमाणभूत है—विश्वसनीय है; क्योंकि आपका धैर्य और आपकी यह दिव्य आकृति आदि गुण राखसे ढकी हुई आगके समान आपके उत्कृष्ट तेजको सूचित कर रहे हैं'॥ ८१ ॥

महात्मा सुग्रीवकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीराम पहले तो मुसकराये। फिर उस वानरकी बातका उत्तर देते हुए उससे बोले— ॥ ८२ ॥

'वानर! यदि तुम्हें इस समय पराक्रमके विषयमें हम लोगोंपर विश्वास नहीं होता तो युद्धके समय हम तुम्हें उसका उत्तम विश्वास करा देंगे'॥ ८३ ॥

ऐसा कहकर सुग्रीवको सान्त्वना देते हुए लक्ष्मणके बड़े भाई महाबाहु बलवान् श्रीरघुनाथजीने खिलवाड़में ही दुन्दुभिके शरीरको अपने पैरके अँगूठेसे टाँग लिया और उस असुरके उस सूखे हुए कङ्कालको पैरके अँगूठेसे ही दस योजन दूर फेंक दिया॥ ८४-८५ ॥

उसके शररीको फेंका गया देख सुग्रीवने लक्ष्मण और वानरोंके सामने ही तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी वीर श्रीरामचन्द्रजीसे पुन: यह अर्थभरी बात कही— ॥ ८६ ॥

'सखे! मेरा भाई वाली उस समय मदमत्त और युद्धसे थका हुआ था और दुन्दुभिका यह शरीर खूनसे भीगा हुआ, मांसयुक्त तथा नया था। इस दशामें उसने इस शरीरको पूर्वकालमें दूर फेंका था॥ ८७ ॥

'परंतु रघुनन्दन! इस समय यह मांसहीन होनेके कारण तिनकेके समान हलका हो गया है और आपने हर्ष एवं उत्साहसे युक्त होकर इसे फेंका है॥ ८८ ॥

'अत: श्रीराम! इस लाशको फेंकनेपर भी यह नहीं जाना जा सकता कि आपका बल अधिक है या उसका; क्योंकि वह गीला था और यह सूखा। यह इन दोनों अवस्थाओंमें महान् अन्तर है॥ ८९ ॥

''तात! आपके और उसके बलमें वही संशय अबतक बना रह गया। अब इस एक सालवृक्षको विदीर्ण कर देनेपर दोनोंके बलाबलका स्पष्टीकरण हो जायगा॥ ९० ॥

'आपका यह धनुष हाथीकी फैली हुई सूँड़के समान विशाल है। आप इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाइये और

इसे कानतक खींचकर सालवृक्षको लक्ष्य करके एक विशाल बाण छोड़िये॥ ९१ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि आपका छोड़ा हुआ बाण इस सालवृक्षको विदीर्ण कर देगा। राजन्! अब विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अपनी शपथ दिलाकर कहता हूँ, आप मेरा यह प्रिय कार्य अवश्य कीजिये॥ ९२ ॥

'जैसे सम्पूर्ण तेजोंमें सदा सूर्यदेव ही श्रेष्ठ हैं, जैसे बड़े-बड़े पर्वतोंमें गिरिराज हिमवान् श्रेष्ठ हैं और जैसे चौपायोंमें सिंह श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पराक्रमके विषयमें सब मनुष्योंमें आप ही श्रेष्ठ हैं'॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा सात साल-वृक्षोंका भेदन, श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीवका किष्किन्धामें आकर वालीको ललकारना और युद्धमें उससे पराजित होकर मतंगवनमें भाग जाना, वहाँ श्रीरामका उन्हें आश्वासन देना और गलेमें पहचानके लिये गजपुष्पीलता डालकर उन्हें पुनः युद्धके लिये भेजना

सुग्रीवके सुन्दर ढंगसे कहे हुए इस वचनको सुनकर महातेजस्वी श्रीरामने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये धनुष हाथमें लिया॥ १ ॥

दूसरोंको मान देनेवाले श्रीरघुनाथजीने वह भयंकर धनुष और एक बाण लेकर धनुषकी टंकारसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाते हुए उस बाणको सालवृक्षकी ओर छोड़ दिया॥ २ ॥

उन बलवान् वीरशिरोमणिके द्वारा छोड़ा गया वह सुवर्णभूषित बाण उन सातों सालवृक्षोंको एक ही साथ बींधकर पर्वत तथा पृथ्वीके सातों तलोंको छेदता हुआ पातालमें चला गया॥ ३ ॥

इस प्रकार एक ही मुहूर्तमें उन सबका भेदन करके वह महान् वेगशाली बाण पुनः वहाँसे निकलकर उनके तरकसमें ही प्रविष्ट हो गया॥ ४ ॥

श्रीरामके बाणके वेगसे उन सातों सालवृक्षोंको विदीर्ण हुआ देख वानरशिरोमणि सुग्रीवको बड़ा विस्मय हुआ॥ ५ ॥

साथ ही उन्हें मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई। सुग्रीवने हाथ जोड़कर धरतीपर माथा टेक दिया और श्रीरघुनाथजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणामके लिये झुकते समय उनके कण्ठहारादि भूषण लटकते हुए दिखायी देते थे॥ ६ ॥

श्रीरामके उस महान् कर्मसे अत्यन्त प्रसन्न हो उन्होंने सामने खड़े हुए सम्पूर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मज्ञ, शूरवीर श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहा—॥ ७ ॥

'पुरुषप्रवर! भगवन्! आप तो अपने बाणोंसे समराङ्गणमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंका वध भी करनेमें समर्थ हैं। फिर वालीको मारना आपके लिये कौन बड़ी बात है?॥ ८ ॥

'काकुत्स्थ! जिन्होंने सात बड़े-बड़े सालवृक्ष, पर्वत और पृथ्वीको भी एक ही बाणसे विदीर्ण कर डाला, उन्हीं आपके समक्ष युद्धके मुहानेपर कौन ठहर सकता है॥ ९ ॥

'महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी आपको सुहृद्‌के रूपमें पाकर आज मेरा सारा शोक दूर हो गया। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ १० ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! मैं हाथ जोड़ता हूँ। आप आज ही मेरा प्रिय करनेके लिये उस वालीका, जो भाईके रूपमें मेरा शत्रु है, वध कर डालिये'॥ ११ ॥

सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मणके समान प्रिय हो गये थे। उनकी बात सुनकर महाप्राज्ञ श्रीरामने अपने उस प्रिय सुहृद्‌को हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १२ ॥

'सुग्रीव! हमलोग शीघ्र ही इस स्थानसे किष्किन्धाको चलते हैं। तुम आगे जाओ और जाकर व्यर्थ ही भाई कहलानेवाले वालीको युद्धके लिये ललकारो'॥ १३ ॥

तदनन्तर वे सब लोग वालीकी राजधानी किष्किन्धापुरीमें गये और वहाँ गहन वनके भीतर वृक्षोंकी आड़में अपनेको छिपकर खड़े हो गये॥ १४ ॥

सुग्रीवने लँगोटसे अपनी कमर खूब कस ली और वालीको बुलानेके लिये भयंकर गर्जना की। वेगपूर्वक किये हुए उस सिंहनादसे मानो वे

आकाशको फाड़े डालते थे॥ १५॥

भाईका सिंहनाद सुनकर महाबली वालीको बड़ा क्रोध हुआ। वह अमर्षमें भरकर अस्ताचलसे नीचे जानेवाले सूर्यके समान बड़े वेगसे घरसे निकला॥ १६॥

फिर तो वाली और सुग्रीवमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, मानो आकाशमें बुध और मंगल इन दोनों ग्रहोंमें घोर संग्राम हो रहा हो॥ १७॥

वे दोनों भाई क्रोधसे मूर्च्छित हो एक-दूसरेपर वज्र और अशनिके समान तमाचों और घूँसोंका प्रहार करने लगे॥ १८॥

उसी समय श्रीरामचन्द्रजीने धनुष हाथमें लिया और उन दोनोंकी ओर देखा। वे दोनों वीर अश्विनीकुमारोंकी भाँति परस्पर मिलते-जुलते दिखायी दिये॥ १९॥

श्रीरामचन्द्रजीको यह पता न चला कि इनमें कौन सुग्रीव है और कौन वाली; इसलिये उन्होंने अपना वह प्राणान्तकारी बाण छोड़नेका विचार स्थगित कर दिया॥

इसी बीचमें वालीने सुग्रीवके पाँव उखाड़ दिये। वे अपने रक्षक श्रीरघुनाथजीको न देखकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर भागे॥ २१॥

वे बहुत थक गये थे। उनका सारा शरीर लहूलुहान और प्रहारोंसे जर्जर हो रहा था। इतनेपर भी वालीने क्रोधपूर्वक उनका पीछा किया। किंतु वे मतंगमुनिके महान् वनमें घुस गये॥ २२॥

सुग्रीवको उस वनमें प्रविष्ट हुआ देख महाबली वाली शापके भयसे वहाँ नहीं गया और 'जाओ तुम बच गये' ऐसा कहकर वहाँसे लौट आया॥ २३॥

इधर श्रीरघुनाथजी भी अपने भाई लक्ष्मण तथा श्रीहनुमान्‌जीके साथ उसी समय वनमें आ गये, जहाँ वानर सुग्रीव विद्यमान थे॥ २४॥

लक्ष्मणसहित श्रीरामको आया देख सुग्रीवको बड़ी लज्जा हुई और वे पृथ्वीकी ओर देखते हुए दीन वाणीमें उनसे बोले—॥ २५॥

'रघुनन्दन! आपने अपना पराक्रम दिखाया और मुझे यह कहकर भेज दिया कि जाओ, वालीको युद्धके लिये ललकारो, यह सब हो जानेपर आपने शत्रुसे पिटवाया और स्वयं छिप गये। बताइये, इस समय आपने ऐसा क्यों किया? आपको उसी समय सच-सच बता देना चाहिये था कि मैं वालीको नहीं मारूँगा। ऐसी दशामें मैं यहाँसे उसके पास जाता ही नहीं'॥ २६-२७॥

महामना सुग्रीव जब दीन वाणीद्वारा इस प्रकार करुणा जनक बात कहने लगे, तब श्रीराम फिर उनसे बोले—॥ २८॥

'तात सुग्रीव! मेरी बात सुनो, क्रोधको अपने मनसे निकाल दो। मैंने क्यों नहीं बाण चलाया, इसका कारण बतलाता हूँ॥ २९॥

सुग्रीव! वेशभूषा, कद और चाल-ढालमें तुम और वाली दोनों एक-दूसरेसे मिलते-जुलते हो॥ ३०॥

'स्वर, कान्ति, दृष्टि, पराक्रम और बोलचालके द्वारा भी मुझे तुम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता॥ ३१॥'

'वानरश्रेष्ठ! तुम दोनोंके रूपकी इतनी समानता देखकर मैं मोहमें पड़ गया—तुम्हें पहचान न सका; इसीलिये मैंने अपना महान् वेगशाली शत्रुसंहारक बाण नहीं छोड़ा॥ ३२॥'

'मेरा वह भयंकर बाण शत्रुके प्राण लेनेवाला था, इसलिये तुम दोनोंकी समानतासे संदेहमें पड़कर मैंने उस बाणको नहीं छोड़ा। सोचा, कहीं ऐसा न हो कि हम दोनोंके मूल उद्देश्यका ही विनाश हो जाय॥ ३३॥'

'वीर! वानरराज! यदि अनजानमें या जल्दबाजीके कारण मेरे बाणसे तुम्हीं मारे जाते तो मेरी बालोचित चपलता और मूढ़ता ही सिद्ध होती॥ ३४॥'

'जिसको अभय दान दे दिया गया हो, उसका वध करनेसे बड़ा भारी पाप होता है; यह एक अद्भुत पातक है। इस समय मैं, लक्ष्मण और सुन्दरी सीता सब तुम्हारे अधीन हैं। इस वनमें तुम्हीं हमलोगोंके आश्रय हो; इसलिये वानरराज! शङ्का न करो; पुनः चलकर युद्ध प्रारम्भ करो॥ ३५-३६॥

'तुम इसी मुहूर्तमें वालीको मेरे एक ही बाणका निशाना बनकर धरतीपर लोटता देखोगे॥ ३७॥

'वानरेश्वर! अपनी पहचानके लिये तुम कोई चिह्न धारण कर लो, जिससे द्वन्द्वयुद्धमें प्रवृत्त होनेपर मैं तुम्हें पहचान सकूँ'॥ ३८॥

(सुग्रीवसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—) 'लक्ष्मण! यह उत्तम लक्षणोंसे युक्त गजपुष्पी लता फूल रही है। इसे उखाड़कर तुम महामना सुग्रीवके गलेमें पहना दो'॥ ३९॥

यह आज्ञा पाकर लक्ष्मणने पर्वतके किनारे उत्पन्न हुई फूलोंसे भरी वह गजपुष्पी लता उखाड़कर सुग्रीवके गलेमें डाल दिया॥ ४०॥

गलेमें पड़ी हुई उस लतासे श्रीमान् सुग्रीव वकपंक्तिसे अलंकृत संध्याकालके मेघकी भाँति शोभा पाने लगे॥ ४१॥

श्रीरामके वचनसे आश्वासन पाकर अपने सुन्दर शरीरसे शोभा पानेवाले सुग्रीव श्रीरघुनाथजीके साथ फिर किष्किन्धापुरीमें जा पहुँचे॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका मार्गमें वृक्षों, विविध जन्तुओं, जलाशयों तथा सप्तजन आश्रमका दूरसे दर्शन करते हुए पुनः किष्किन्धापुरीमें पहुँचना

लक्ष्मणके बड़े भाई धर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवको साथ लेकर पुनः ऋष्यमूकसे उस किष्किन्धापुरीकी ओर चले, जो वालीके पराक्रमसे सुरक्षित थी॥ १॥

अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको उठाकर और युद्धमें सफलता दिखानेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंको लेकर श्रीराम वहाँसे प्रस्थित हुए॥ २॥

महात्मा रघुनाथजीके आगे-आगे सुगठित ग्रीवावाले सुग्रीव और महाबली लक्ष्मण चल रहे थे॥ ३॥

और उनके पीछे वीर हनुमान्, नल, पराक्रमी नील तथा वानर-यूथपोंके भी यूथपति महातेजस्वी तार चल रहे थे॥ ४॥

वे सब लोग फूलोंके भारसे झुके हुए वृक्षों, स्वच्छ जलवाली समुद्रगामिनी नदियों, कन्दराओं, पर्वतों, शिला-विवरों, गुफाओं, मुख्य-मुख्य शिखरों और सुन्दर दिखायी देनेवाली गहन गुफाओंको देखते हुए आगे बढ़ने लगे॥ ५-६॥

उन्होंने मार्गमें ऐसे सजल सरोवरोंको भी देखा, जो वैदूर्यमणिके समान रंगवाले, निर्मल जल तथा कम खिले हुए मुकुलयुक्त कमलोंसे सुशोभित थे॥ ७॥

कारण्डव, सारस, हंस, वञ्जुल, जलमुर्ग, चक्रवाक तथा अन्य पक्षी उन सरोवरोंमें चहचहा रहे थे। उन सबकी प्रतिध्वनि वहाँ गूँज रही थी॥ ८॥

स्थलोंमें सब ओर हरी-हरी कोमल घासके अङ्कुरोंका आहार करनेवाले वनचारी हरिण कहीं निर्भय होकर चरते थे और कहीं खड़े दिखायी देते थे (इन सबको देखते हुए श्रीराम आदि किष्किन्धाकी ओर जा रहे थे)॥ ९॥

जो सफेद दाँतोंसे सुशोभित थे, देखनेमें भयंकर थे, अकेले विचरते थे और किनारोंको खोदकर नष्ट कर देनेके कारण सरोवरोंके शत्रु समझे जाते थे, ऐसे दो दाँतोंवाले मदमत्त जङ्गली हाथी चलते-फिरते पर्वतोंके समान जाते दिखायी देते थे। उन्होंने अपने दाँतोंसे पर्वतके तटप्रान्तको विदीर्ण कर दिया था। कहीं हाथी-जैसे विशालकाय वानर दृष्टिगोचर होते थे, जो धरतीकी धूलसे नहा उठे थे। इनके सिवा उस वनमें और भी बहुत-से जंगली जीव-जन्तु तथा आकाशचारी पक्षी विचरते देखे जाते थे। इन सबको देखते हुए श्रीराम आदि सब लोग सुग्रीवके वशवर्ती हो तीव्र गतिसे आगे बढ़ने लगे॥ १०—१२॥

उन यात्रा करनेवाले लोगोंमें वहाँ रघुकुलनन्दन श्रीरामने वृक्षसमूहोंसे सघन वनको देखकर सुग्रीवसे पूछा— ॥ १३॥

'वानरराज! आकाशमें मेघकी भाँति जो यह वृक्षोंका समूह प्रकाशित हो रहा है, क्या है? यह इतना विस्तृत है कि मेघोंकी घटाके समान छा रहा है। इसके किनारे-किनारे केलेके वृक्ष लगे हुए हैं, जिनसे वह सारा वृक्षसमूह घिर गया है॥ १४॥

'सखे! यह कौन-सा वन है, यह मैं जानना चाहता हूँ। इसके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे द्वारा मेरे इस कौतूहलका निवारण हो'॥ १५॥

महात्मा रघुनाथजीकी यह बात सुनकर सुग्रीवने चलते-चलते ही उस विशाल वनके विषयमें बताना आरम्भ किया॥ १६॥

'रघुनन्दन! यह एक विस्तृत आश्रम है, जो सबके श्रमका निवारण करनेवाला है। यह उद्यानों और उपवनोंसे युक्त है। यहाँ स्वादिष्ट फल-मूल और जल सुलभ होते हैं॥ १७॥

'इस आश्रममें सप्तजन नामसे प्रसिद्ध सात ही मुनि रहते थे, जो कठोर व्रतके पालनमें तत्पर थे। वे नीचे सिर करके तपस्या करते थे। नियमपूर्वक रहकर जलमें शयन करनेवाले थे॥ १८॥

'सात दिन और सात रात व्यतीत करके वे केवल वायुका आहार करते थे तथा एक स्थानपर निश्चल भावसे रहते थे। इस प्रकार सात सौ वर्षोंतक तपस्या करके वे सशरीर स्वर्गलोकको चले गये॥ १९॥

'उन्हींके प्रभावसे सघन वृक्षोंकी चहारदीवारीसे घिरा हुआ यह आश्रम इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्धर्ष बना हुआ है॥ २०॥

'पक्षी तथा दूसरे वनचर जीव इसे दूरसे ही त्याग देते हैं। जो मोहवश इसके भीतर प्रवेश करते हैं, वे फिर कभी नहीं लौटते हैं॥ २१॥

'रघुनन्दन! यहाँ मधुर अक्षरवाली वाणीके साथ-साथ आभूषणोंकी झनकारें भी सुनी जाती हैं। वाद्य और गीतकी मधुर ध्वनि भी कानोंमें पड़ती है और दिव्य सुगन्धका भी अनुभव होता है॥ २२॥

'यहाँ आहवनीय आदि त्रिविध अग्नियाँ भी प्रज्वलित होती हैं। यह कबूतरके अंगोंकी भाँति धूसर रंगवाला घना धूम उठता दिखायी देता है, जो वृक्षोंकी शिखाओंको आवेष्टित-सा कर रहा है॥ २३॥

'जिनके शिखाओंपर होम-धूम छा रहे हैं, वे ये वृक्ष मेघसमूहोंसे आच्छादित हुए नीलमके पर्वतोंकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं॥ २४॥

'धर्मात्मा रघुनन्दन! आप मनको एकाग्र करके दोनों हाथ जोड़कर भाई लक्ष्मणके साथ उन मुनियोंके उद्देश्यसे प्रणाम कीजिये॥ २५॥

'श्रीराम! जो उन पवित्र अन्तःकरणवाले ऋषियोंको प्रणाम करते हैं, उनके शरीरमें किंचिन्मात्र भी अशुभ नहीं रह जाता है'॥ २६॥

तब भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामने हाथ जोड़कर उन महात्मा ऋषियोंके उद्देश्यसे प्रणाम किया॥ २७॥

धर्मात्मा श्रीराम, उनके छोटे भाई लक्ष्मण, सुग्रीव तथा अन्य सभी वानर उन ऋषियोंको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो आगे बढ़े॥ २८॥

उस सप्तजनाश्रमसे दूरतकका मार्ग तय कर लेनेके पश्चात् उन सबने वालीद्वारा सुरक्षित किष्किन्धापुरीको देखा॥

तदनन्तर श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण, श्रीराम तथा वानर, जिनका उग्रतेज उदित हुआ था, हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर इन्द्रकुमार वालीके पराक्रमसे पालित किष्किन्धापुरीमें शत्रुवधके निमित्त पुनः आ पहुँचे॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

वाली-वधके लिये श्रीरामका आश्वासन पाकर सुग्रीवकी विकट गर्जना

वे सब लोग शीघ्रतापूर्वक वालीकी किष्किन्धापुरीमें पहुँचकर एक गहन वनमें वृक्षोंकी ओटमें अपने-आपको छिपाकर खड़े हो गये॥ १॥

वनके प्रेमी विशाल ग्रीवावाले सुग्रीवने उस वनमें चारों ओर दृष्टि दौड़ायी और अपने मनमें अत्यन्त क्रोधका संचय किया॥ २॥

तदनन्तर अपने सहायकोंसे घिरे हुए उन्होंने अपने सिंहनादसे आकाशको फाड़ते हुए-से घोर गर्जना की और वालीको युद्धके लिये ललकारा॥ ३॥

उस समय सुग्रीव वायुके वेगके साथ गर्जते हुए महामेघके समान जान पड़ते थे। अपनी अङ्गकान्ति और प्रतापके द्वारा प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते थे। उनकी चाल दर्पभरे सिंहके समान प्रतीत होती थी॥ ४॥

कार्यकुशल श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर सुग्रीवने कहा—'भगवन्! वालीकी यह किष्किन्धापुरी तपाये हुए सुवर्णके द्वारा निर्मित नगरद्वारसे सुशोभित है। इसमें सब ओर वानरोंका जाल-सा बिछा हुआ है तथा यह ध्वजों और यन्त्रोंसे सम्पन्न है। हम सब लोग इस पुरीमें आ पहुँचे हैं। वीर! आपने पहले वाली-वधके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे अब शीघ्र सफल कीजिये। ठीक उसी तरह जैसे आया हुआ अनुकूल समय लताको फल-फूलसे सम्पन्न कर देता है'॥ ५-६½॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने फिर अपनी पूर्वोक्त बातको दुहराते हुए ही सुग्रीवसे कहा—॥ ७½॥

'वीर! अब तो इस गजपुष्पी लताके द्वारा तुमने अपनी पहचानके लिये चिह्न धारण कर ही लिया है। लक्ष्मणने इसे उखाड़कर तुम्हारे कण्ठमें पहना ही दिया है। तुम कण्ठमें धारण की हुई इस लताके द्वारा बड़ी शोभा पा रहे हो। यदि आकाशमें यह विपरीत घटना हो कि सूर्यमण्डल नक्षत्रमालासे घिर जाय तभी इस

कण्ठ-लम्बिनी लतासे सुशोभित होनेवाले तुम्हारी उस सूर्यसे तुलना हो सकती है॥ ८-९½ ॥

'वानरराज! आज मैं वालीसे उत्पन्न हुए तुम्हारे भय और वैर दोनोंको युद्धस्थलमें एक ही बार बाण छोड़कर मिटा दूँगा॥ १०½ ॥

'सुग्रीव! तुम मुझे अपने उस भ्रातारूपी शत्रुको दिखा तो दो। फिर वाली मारा जाकर वनके भीतर धूलमें लोटता दिखायी देगा॥ ११½ ॥

'यदि मेरी दृष्टिमें पड़ जानेपर भी वह जीवित लौट जाय तो तुम मुझे दोषी समझना और तत्काल जी भरकर मेरी निन्दा करना॥ १२½ ॥

'तुम्हारी आँखोंके सामने मैंने अपने एक ही बाणसे सात सालके वृक्ष विदीर्ण किये थे, मेरे उसी बलसे आज समराङ्गणमें (एक बाणसे ही) तुम वालीको मारा गया समझो॥ १३½ ॥

'बहुत समयसे संकट झेलते रहनेपर भी मैं कभी झूठ नहीं बोला हूँ। मेरे मनमें धर्मका लोभ है। इसलिये किसी तरह मैं झूठ तो बोलूँगा ही नहीं। साथ ही अपनी प्रतिज्ञाको भी अवश्य सफल करूँगा। अतः तुम भय और घबराहटको अपने हृदयसे निकाल दो॥ १४-१५ ॥

'जैसे इन्द्र वर्षा करके उगे हुए धानके खेतको फलसे सम्पन्न करते हैं, उसी तरह मैं भी बाणका प्रयोग करके वालीके वधद्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। इसलिये सुग्रीव! तुम सुवर्णमालाधारी वालीको बुलानेके लिये इस समय ऐसी गर्जना करो, जिससे तुम्हारा सामना करनेके लिये वह वानर नगरसे बाहर निकल आये॥ १६½ ॥

'वह अनेक युद्धोंमें विजय पाकर विजयश्रीसे सुशोभित हुआ है। सबपर विजय पानेकी इच्छा रखता है और उसने कभी तुमसे हार नहीं खायी है। इसके अलावे युद्धसे उसका बड़ा प्रेम है, अतः वाली कहीं भी आसक्त न होकर नगरके बाहर अवश्य निकलेगा॥

'क्योंकि अपने पराक्रमको जाननेवाले वीर पुरुष, विशेषतः स्त्रियोंके सामने, युद्धके लिये शत्रुओंके तिरस्कारपूर्ण शब्द सुनकर कदापि सहन नहीं करते हैं'॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर सुवर्णके समान पिङ्गलवर्णवाले सुग्रीवने आकाशको विदीर्ण-सा करते हुए कठोर स्वरमें बड़ी भयंकर गर्जना की॥ १९½ ॥

उस सिंहनादसे भयभीत हो बड़े-बड़े बैल शक्तिहीन हो राजाके दोषसे परपुरुषोंद्वारा पकड़ी जानेवाली कुलाङ्गनाओंके समान व्याकुलचित्त हो सब ओर भाग चले॥ २०॥

मृग युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंकी चोट खाकर भागे हुए घोड़ोंके समान तीव्र गतिसे भागने लगे और पक्षी जिनके पुण्य नष्ट हो गये हैं, ऐसे ग्रहोंके समान आकाशसे पृथ्वीपर गिरने लगे॥ २१॥

तदनन्तर जिनका सिंहनाद मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर था और शौर्यके द्वारा जिनका तेज बढ़ा हुआ था, वे सुविख्यात सूर्यकुमार सुग्रीव बड़ी उतावलीके साथ बारंबार गर्जना करने लगे, मानो वायुके वेगसे चञ्चल हुई उत्ताल तरङ्ग-मालाओंसे सुशोभित सरिताओंका स्वामी समुद्र कोलाहल कर रहा हो॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ सर्ग

सुग्रीवकी गर्जना सुनकर वालीका युद्धके लिये निकलना और ताराका उसे रोककर सुग्रीव और श्रीरामके साथ मैत्री कर लेनेके लिये समझाना

उस समय अमर्षशील वाली अपने अन्तःपुरमें था। उसने अपने भाई महामना सुग्रीवका वह सिंहनाद वहींसे सुना॥ १॥

समस्त प्राणियोंको कम्पित कर देनेवाली उनकी वह गर्जना सुनकर उसका सारा मद सहसा उतर गया और उसे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ॥ २॥

फिर तो सुवर्णके समान पीले रंगवाले वालीका सारा शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। वह राहुग्रस्त सूर्यके समान तत्काल श्रीहीन दिखायी देने लगा॥ ३॥

वालीकी दाढ़ें विकराल थीं, नेत्र क्रोधके कारण प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे थे। वह उस तालाबके समान श्रीहीन दिखायी देता था, जिसमें कमलपुष्पोंकी शोभा तो नष्ट हो गयी हो और केवल मृणाल रह गये हों॥ ४॥

वह दु:सह शब्द सुनकर वाली अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको विदीर्ण-सी करता हुआ बड़े वेगसे निकला॥ ५॥

उस समय वालीकी पत्नी तारा भयभीत हो घबरा उठी। उसने वालीको अपनी दोनों भुजाओंमें भर लिया और स्नेहसे सौहार्दका परिचय देते हुए परिणाममें हित करनेवाली यह बात कही—॥ ६॥

'वीर! मेरी अच्छी बात सुनिये और सहसा आये हुए नदीके वेगकी भाँति इस बढ़े हुए क्रोधको त्याग दीजिये। जैसे प्रात:काल शय्यासे उठा हुआ पुरुष रातको उपभोगमें लायी गयी पुष्पमालाका त्याग कर देता है; उसी प्रकार इस क्रोधका परित्याग कीजिये॥ ७॥

'वानरवीर! कल प्रात:काल सुग्रीवके साथ युद्ध कीजियेगा (इस समय रुक जाइये) यद्यपि युद्धमें कोई शत्रु आपसे बढ़कर नहीं है और आप किसीसे छोटे नहीं हैं। तथापि इस समय सहसा आपका घरसे बाहर निकलना मुझे अच्छा नहीं लगता है, आपको रोकनेका एक विशेष कारण भी है। उसे बताती हूँ, सुनिये॥ ८-९॥

'सुग्रीव पहले भी यहाँ आये थे और क्रोधपूर्वक उन्होंने आपको युद्धके लिये ललकारा था। उस समय आपने नगरसे निकलकर उन्हें परास्त किया और वे आपकी मार खाकर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भागते हुए मतङ्ग वनमें चले गये थे॥ १०॥

'इस प्रकार आपके द्वारा पराजित और विशेष पीड़ित होनेपर भी वे पुन: यहाँ आकर आपको युद्धके लिये ललकार रहे हैं। उनका यह पुनरागमन मेरे मनमें शङ्का-सी उत्पन्न कर रहा है॥ ११॥

'इस समय गर्जते हुए सुग्रीवका दर्प और उद्योग जैसा दिखायी देता है तथा उनकी गर्जनामें जो उत्तेजना जान पड़ती है, इसका कोई छोटा-मोटा कारण नहीं होना चाहिये॥ १२॥

'मैं समझती हूँ सुग्रीव किसी प्रबल सहायकके बिना अबकी बार यहाँ नहीं आये हैं। किसी सबल सहायकको साथ लेकर ही आये हैं, जिसके बलपर ये इस तरह गरज रहे हैं॥ १३॥

'वानर सुग्रीव स्वभावसे ही कार्यकुशल और बुद्धिमान् हैं। वे किसी ऐसे पुरुषके साथ मैत्री नहीं करेंगे, जिसके बल और पराक्रमको अच्छी तरह परख न लिया हो॥ १४॥

'वीर! मैंने पहले ही कुमार अङ्गदके मुँहसे यह बात सुन ली है। इसलिये आज मैं आपके हितकी बात बताती हूँ॥ १५॥

'एक दिन कुमार अङ्गद वनमें गये थे। वहाँ गुप्तचरोंने उन्हें एक समाचार बताया, जो उन्होंने यहाँ आकर मुझसे भी कहा था॥ १६॥

'वह समाचार इस प्रकार है—अयोध्यानरेशके दो शूर-वीर पुत्र, जिन्हें युद्धमें जीतना अत्यन्त कठिन है, जिनका जन्म इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है तथा जो श्रीराम और लक्ष्मणके नामसे प्रसिद्ध हैं, यहाँ वनमें आये हुए हैं॥ १७॥

'वे दोनों दुर्जय वीर सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये उनके पास पहुँच गये हैं। उन दोनोंमेंसे जो आपके भाईके युद्ध-कर्ममें सहायक बताये गये हैं, वे श्रीराम शत्रुसेनाका संहार करनेवाले तथा प्रलयकालमें प्रज्वलित हुई अग्निके समान तेजस्वी हैं। वे साधु पुरुषोंके आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं और संकटमें पड़े हुए प्राणियोंके लिये सबसे बड़ा सहारा हैं॥ १८-१९॥

'आर्त पुरुषोंके आश्रय, यशके एकमात्र भाजन, ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा पिताकी आज्ञामें स्थित रहनेवाले हैं॥ २०॥

'जैसे गिरिराज हिमालय नाना धातुओंकी खान है, उसी प्रकार श्रीराम उत्तम गुणोंके बहुत बड़े भंडार हैं। अत: उन महात्मा रामके साथ आपका विरोध करना कदापि उचित नहीं है। क्योंकि वे युद्धकी कलामें अपना सानी नहीं रखते हैं। उनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है॥ २१½॥

'शूरवीर! मैं आपके गुणोंमें दोष देखना नहीं चाहती। अत: आपसे कुछ कहती हूँ। आपके लिये जो हितकर है, वही बता रही हूँ। आप उसे सुनिये और वैसा ही कीजिये॥ २२½॥

'अच्छा यही होगा कि आप सुग्रीवका शीघ्र ही युवराजके पदपर अभिषेक कर दीजिये। वीर वानरराज! सुग्रीव आपके छोटे भाई हैं, उनके साथ युद्ध न कीजिये॥

'मैं आपके लिये यही उचित समझती हूँ कि आप वैरभावको दूर हटाकर श्रीरामके साथ सौहार्द और सुग्रीवके साथ प्रेमका सम्बन्ध स्थापित कीजिये॥ २४½॥

'वानर सुग्रीव आपके छोटे भाई हैं। अत: आपका लाड़-प्यार पानेके योग्य हैं। वे ऋष्यमूकपर रहें या किष्किन्धामें—सर्वथा आपके बन्धु ही हैं। मैं इस

भूतलपर उनके समान बन्धु और किसीको नहीं देखती हूँ॥ २५-२६ ॥

'आप दान-मान आदि सत्कारोंके द्वारा उन्हें अपना अत्यन्त अन्तरङ्ग बना लीजिये, जिससे वे इस वैरभावको छोड़कर आपके पास रह सकें॥ २७॥

'पुष्ट ग्रीवावाले सुग्रीव आपके अत्यन्त प्रेमी बन्धु हैं, ऐसा मेरा मत है। इस समय भ्रातृप्रेमका सहारा लेनेके सिवा आपके लिये यहाँ दूसरी कोई गति नहीं है॥ २८॥

'यदि आपको मेरा प्रिय करना हो तथा आप मुझे अपनी हितकारिणी समझते हों तो मैं प्रेमपूर्वक याचना करती हूँ, आप मेरी यह नेक सलाह मान लीजिये॥ २९॥

'स्वामिन्! आप प्रसन्न होइये। मैं आपके हितकी बात कहती हूँ। आप इसे ध्यान देकर सुनिये। केवल रोषका ही अनुसरण न कीजिये। कोसलराजकुमार श्रीराम इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। उनके साथ वैर बाँधना या युद्ध छेड़ना आपके लिये कदापि उचित नहीं है'॥

उस समय ताराने वालीसे उसके हितकी ही बात कही थी और यह लाभदायक भी थी। किंतु उसकी बात उसे नहीं रुची। क्योंकि उसके विनाशका समय निकट था और वह कालके पाशमें बँध चुका था॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

वालीका ताराको डाँटकर लौटाना और सुग्रीवसे जूझना तथा श्रीरामके बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिरना

तारापति चन्द्रमाके समान मुखवाली ताराको ऐसी बातें करती देख वालीने उसे फटकारा और इस प्रकार कहा— ॥

'वरानने! इस गर्जते हुए भाईकी, जो विशेषत: मेरा शत्रु है, यह उत्तेजनापूर्ण चेष्टा मैं किस कारणसे सहन करूँगा॥ २॥

'भीरु! जो कभी परास्त नहीं हुए और जिन्होंने युद्धके अवसरोंपर कभी पीठ नहीं दिखायी, उन शूरवीरोंके लिये शत्रुकी ललकार सह लेना मृत्युसे भी बढ़कर दु:खदायी होता है॥ ३॥

'यह हीन ग्रीवावाला सुग्रीव संग्रामभूमिमें मेरे साथ युद्धकी इच्छा रखता है। मैं इसके रोषावेश और गर्जन-तर्जनको सहन करनेमें असमर्थ हूँ॥ ४॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी बात सोचकर भी तुम्हें मेरे लिये विषाद नहीं करना चाहिये। क्योंकि वे धर्मके ज्ञाता तथा कर्तव्याकर्तव्यको समझनेवाले हैं। अत: पाप कैसे करेंगे॥ ५॥

'तुम इन स्त्रियोंके साथ लौट जाओ। क्यों मेरे पीछे बार-बार आ रही हो। तुमने मेरे प्रति अपना स्नेह दिखाया। भक्तिका भी परिचय दे दिया। अब जाओ, घबराहट छोड़ो। मैं आगे बढ़कर सुग्रीवका सामना करूँगा। उसके घमण्डको चूर-चूर कर डालूँगा। किंतु प्राण नहीं लूँगा॥ ६-७॥

'युद्धके मैदानमें खड़े हुए सुग्रीवकी जो-जो इच्छा है, उसे मैं पूर्ण करूँगा। वृक्षों और मुक्कोंकी मारसे पीड़ित होकर वह स्वयं ही भाग जायगा॥ ८॥

'तारे! दुरात्मा सुग्रीव मेरे युद्धविषयक दर्प और आयास (उद्योग) को नहीं सह सकेगा। तुमने मेरी बौद्धिक सहायता अच्छी तरह कर दी और मेरे प्रति अपना सौहार्द भी दिखा दिया॥ ९॥

'अब मैं प्राणोंकी सौगन्ध दिलाकर कहता हूँ कि अब तुम इन स्त्रियोंके साथ लौट जाओ। अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है, मैं युद्धमें अपने उस भाईको जीतकर लौट आऊँगा'॥ १०॥

यह सुनकर अत्यन्त उदार स्वभाववाली ताराने वालीका आलिङ्गन करके मन्द स्वरमें रोते-रोते उसकी परिक्रमा की॥ ११॥

वह पतिकी विजय चाहती थी और उसे मन्त्रका भी ज्ञान था। इसलिये उसने वालीकी मङ्गल-कामनासे स्वस्तिवाचन किया और शोकसे मोहित हो वह अन्य स्त्रियोंके साथ अन्त:पुरको चली गयी॥ १२॥

स्त्रियोंसहित ताराके अपने महलमें चले जानेपर वाली क्रोधसे भरे हुए महान् सर्पकी भाँति लम्बी साँस खींचता हुआ नगरसे बाहर निकला॥ १३॥

महान् रोषसे युक्त और अत्यन्त वेगशाली वाली लम्बी साँस छोड़कर शत्रुको देखनेकी इच्छासे चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाने लगा॥ १४॥

इतनेहीमें श्रीमान् वालीने सुवर्णके समान पिङ्गल वर्णवाले सुग्रीवको देखा, जो लँगोट बाँधकर युद्धके

लिये डटकर खड़े थे और प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ १५॥

सुग्रीवको खड़ा देख महाबाहु वाली अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने अपना लँगोट भी दृढ़ताके साथ बाँध लिया॥ १६॥

लँगोटको मजबूतीके साथ कसकर पराक्रमी वाली प्रहारका अवसर देखता हुआ मुक्का तानकर सुग्रीवकी ओर चला॥ १७॥

सुग्रीव भी सुवर्णमालाधारी वालीके उद्देश्यसे बँधा हुआ मुक्का ताने बड़े आवेशके साथ उसकी ओर बढ़े॥

युद्धकलाके पण्डित महावेगशाली सुग्रीवको अपनी ओर आते देख वालीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वह इस प्रकार बोला—॥ १९॥

'सुग्रीव! देख ले। यह बड़ा भारी मुक्का खूब कसकर बँधा हुआ है। इसमें सारी अङ्गुलियाँ सुनियन्त्रितरूपसे परस्पर सटी हुई हैं। मेरे द्वारा वेगपूर्वक चलाया हुआ यह मुक्का तेरे प्राण लेकर ही जायगा'॥ २०॥

वालीके ऐसा कहनेपर सुग्रीव क्रोधपूर्वक उससे बोले—'मेरा यह मुक्का भी तेरे प्राण लेनेके लिये तेरे मस्तकपर गिरे'॥ २१॥

इतनेहीमें वालीने वेगपूर्वक आक्रमण करके सुग्रीवपर मुक्केका प्रहार किया। उस चोटसे घायल एवं कुपित हुए सुग्रीव झरनोंसे युक्त पर्वतकी भाँति मुँहसे रक्त वमन करने लगे॥ २२॥

तत्पश्चात् सुग्रीवने भी निःशङ्क होकर बलपूर्वक एक सालवृक्षको उखाड़ लिया और उसे वालीके शरीरपर दे मारा, मानो इन्द्रने किसी विशाल पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो॥ २३॥

उस वृक्षकी चोटसे वालीके शरीरमें घाव हो गया। उस आघातसे विह्वल हुआ वाली व्यापारियोंके समूहके चढ़नेसे भारी भारके द्वारा दबकर समुद्रमें डगमगाती हुई नौकाके समान काँपने लगा॥ २४॥

उन दोनों भाइयोंका बल और पराक्रम भयंकर था। दोनोंके ही वेग गरुड़के समान थे। वे दोनों भयंकर रूप धारण करके बड़े जोरसे जूझ रहे थे और पूर्णिमाके आकाशमें चन्द्रमा और सूर्यके समान दिखायी देते थे॥

वे शत्रुसूदन वीर अपने विपक्षीको मार डालनेकी इच्छासे एक-दूसरेकी दुर्बलता ढूँढ़ रहे थे; परंतु उस युद्धमें बल-विक्रमसम्पन्न वाली बढ़ने लगा और महापराक्रमी सूर्यपुत्र सुग्रीवकी शक्ति क्षीण होने लगी॥

वालीने सुग्रीवका घमण्ड चूर्ण कर दिया। उनका पराक्रम मन्द पड़ने लगा। तब वालीके प्रति अमर्षमें भरे हुए सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको अपनी अवस्थाका लक्ष्य कराया॥ २७$\frac{1}{2}$॥

इसके बाद डालियोंसहित वृक्षों, पर्वतके शिखरों, वज्रके समान भयंकर नखों, मुक्कों, घुटनों, लातों और हाथोंकी मारसे उन दोनोंमें इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति भयंकर संग्राम होने लगा॥ २८-२९॥

वे दोनों वनचारी वानर लहूलुहान होकर लड़ रहे थे और दो बादलोंकी तरह अत्यन्त भयंकर गर्जना करते हुए एक-दूसरेको डाँट रहे थे॥ ३०॥

श्रीरघुनाथजीने देखा, वानरराज सुग्रीव कमजोर पड़ रहे हैं और बारंबार इधर-उधर दृष्टि दौड़ा रहे हैं॥ ३१॥

वानरराजको पीड़ित देख महातेजस्वी श्रीरामने वालीके वधकी इच्छासे अपने बाणपर दृष्टिपात किया॥

उन्होंने अपने धनुषपर विषधर सर्पके समान भयंकर बाण रखा और उसे जोरसे खींचा, मानो यमराजने कालचक्र उठा लिया हो॥ ३३॥

उसकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कारध्वनिसे भयभीत हो बड़े-बड़े पक्षी और मृग भाग खड़े हुए। वे प्रलयकालके समय मोहित हुए जीवोंके समान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये॥ ३४॥

श्रीरघुनाथजीने वज्रकी भाँति गड़गड़ाहट और प्रज्वलित अशनिकी भाँति प्रकाश पैदा करनेवाला वह महान् बाण छोड़ दिया तथा उसके द्वारा वालीके वक्षःस्थलपर चोट पहुँचायी॥ ३५॥

उस बाणसे वेगपूर्वक आहत हो महातेजस्वी पराक्रमी वानरराज वाली तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३६॥

आश्विनकी पूर्णिमाके दिन इन्द्रध्वजोत्सवके अन्तमें ऊपर फेंका गया इन्द्रध्वज जैसे पृथ्वीपर गिर पड़ता है, उसी प्रकार वाली ग्रीष्मऋतुके अन्तमें श्रीहीन, अचेत और आँसुओंसे गद्गदकण्ठ हो धराशायी हो गया और धीरे-धीरे आर्तनाद करने लगा॥ ३७॥

श्रीरामका वह उत्तम बाण युगान्तकालके समान भयंकर तथा सोने-चाँदीसे विभूषित था। पूर्वकालमें महादेवजीने जैसे अपने मुखसे (मुख-मण्डलके अन्तर्गत ललाटवर्ती नेत्रसे) शत्रुभूत कामदेवका नाश करनेके लिये धूमयुक्त अग्निकी सृष्टि की थी, उसी प्रकार पुरुषोत्तम श्रीरामने सुग्रीवशत्रु वालीका मर्दन करनेके

लिये उस प्रज्वलित बाणको छोड़ा था॥ ३८॥

इन्द्रकुमार वालीके शरीरसे पानीके समान रक्तकी धारा बहने लगी। वह उससे नहा गया और अचेत हो वायुके उखाड़े हुए पुष्पित अशोकवृक्ष एवं आकाशसे नीचे गिरे हुए इन्द्रध्वजके समान समराङ्गणमें पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

वालीका श्रीरामचन्द्रजीको फटकारना

युद्धमें कठोरता दिखानेवाला वाली श्रीरामके बाणसे घायल हो कटे वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १॥

उसका सारा शरीर पृथ्वीपर पड़ा हुआ था। तपाये हुए सुवर्णके आभूषण अब भी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह देवराज इन्द्रके बन्धनरहित ध्वजकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा था॥ २॥

वानरों और भालुओंके यूथपति वालीके धराशायी हो जानेपर यह पृथ्वी चन्द्ररहित आकाशकी भाँति शोभाहीन हो गयी॥ ३॥

पृथ्वीपर पड़े होनेपर भी महामना वालीके शरीरको शोभा, प्राण, तेज और पराक्रम नहीं छोड़ सके थे॥ ४॥

इन्द्रकी दी हुई रत्नजटित श्रेष्ठ सुवर्णमाला उस वानरराजके प्राण, तेज और शोभाको धारण किये हुए थी॥ ५॥

उस सुवर्णमालासे विभूषित हुआ वानरयूथपति वीर वाली संध्याकी लालीसे रँगे हुए प्रान्त भागवाले मेघखण्डके समान शोभा पा रहा था॥ ६॥

पृथ्वीपर गिरे होनेपर भी वालीकी वह सुवर्णमाला, उसका शरीर तथा मर्मस्थलको विदीर्ण करनेवाला वह बाण—ये तीनों पृथक्-पृथक् तीन भागोंमें विभक्त की हुई अङ्गलक्ष्मीके समान शोभा पा रहे थे॥ ७॥

वीरवर श्रीरामके धनुषसे चलाये गये उस अस्त्रने वालीके लिये स्वर्गका मार्ग प्रकाशित कर दिया और उसे परमपदको पहुँचा दिया॥ ८॥

इस प्रकार युद्धस्थलमें गिरा हुआ इन्द्रपुत्र वाली ज्वालारहित अग्निके समान, पुण्योंका क्षय होनेपर पुण्यलोकसे इस पृथ्वीपर गिरे हुए राजा ययातिके समान तथा महाप्रलयके समय कालद्वारा पृथ्वीपर गिराये गये सूर्यके समान जान पड़ता था। उसके गलेमें सोनेकी माला शोभा दे रही थी। वह महेन्द्रके समान दुर्जय और भगवान् विष्णुके समान दुस्सह था। उसकी छाती चौड़ी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, मुख दीप्तिमान् और नेत्र कपिलवर्णके थे॥ ९—११॥

लक्ष्मणको साथ लिये श्रीरामने वालीको इस अवस्थामें देखा और वे उसके समीप गये। इस प्रकार ज्वालारहित अग्निकी भाँति वहाँ गिरा हुआ वह वीर धीरे-धीरे देख रहा था। महापराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण उस वीरका विशेष सम्मान करते हुए उसके पास गये॥ १२-१३॥

उन श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणको देखकर वाली धर्म और विनयसे युक्त कठोर वाणीमें बोला—॥

अब उसमें तेज और प्राण स्वल्पमात्रामें ही रह गये थे। वह बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर पड़ा था और उसकी चेष्टा धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी। उसने युद्धमें गर्वयुक्त पराक्रम प्रकट करनेवाले गर्वीले श्रीरामसे कठोर वाणीमें इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥

रघुनन्दन! आप राजा दशरथके सुविख्यात पुत्र हैं। आपका दर्शन सबको प्रिय है। मैं आपसे युद्ध करने नहीं आया था। मैं तो दूसरेके साथ युद्धमें उलझा हुआ था। उस दशामें आपने मेरा वध करके यहाँ कौन-सा गुण प्राप्त किया है—किस महान् यशका उपार्जन किया है? क्योंकि मैं युद्धके लिये दूसरेपर रोष प्रकट कर रहा था, किंतु आपके कारण बीचमें ही मृत्युको प्राप्त हुआ॥ १६॥

इस भूतलपर सब प्राणी आपके यशका वर्णन करते हुए कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी कुलीन, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले, करुणाका अनुभव करनेवाले, प्रजाके हितैषी, दयालु, महान् उत्साही, समयोचित कार्य एवं सदाचारके ज्ञाता और दृढ़प्रतिज्ञ हैं॥ १७-१८॥

'राजन्! इन्द्रियनिग्रह, मनका संयम, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम तथा अपराधियोंको दण्ड देना—ये राजाके गुण हैं॥ १९॥

'मैं आपमें इन सभी सद्गुणोंका विश्वास करके

आपके उत्तम कुलको यादकर ताराके मना करनेपर भी सुग्रीवके साथ लड़ने आ गया॥ २०॥

जबतक मैंने आपको नहीं देखा था, तबतक मेरे मनमें यही विचार उठता था कि दूसरेके साथ रोषपूर्वक जुझते हुए मुझको आप असावधान अवस्थामें अपने बाणसे बेधना उचित नहीं समझेंगे॥ २१॥

'परंतु आज मुझे मालूम हुआ कि आपकी बुद्धि मारी गयी है। आप धर्मध्वजी हैं। दिखावेके लिये धर्मका चोला पहने हुए हैं। वास्तवमें अधर्मी हैं। आपका आचार-व्यवहार पापपूर्ण है। आप घास-फूससे ढके हुए कूपके समान धोखा देनेवाले हैं॥ २२॥

'आपने साधु पुरुषोंका-सा वेश धारण कर रखा है; परंतु हैं पापी। राखसे ढकी हुई आगके समान आपका असली रूप साधु-वेषमें छिप गया है। मैं नहीं जानता था कि आपने लोगोंको छलनेके लिये ही धर्मकी आड़ ली है॥ २३॥

'जब मैं आपके राज्य या नगरमें कोई उपद्रव नहीं कर रहा था तथा आपका भी तिरस्कार नहीं करता था, तब आपने मुझ निरपराधको क्यों मारा?॥ २४॥

'मैं सदा फल-मूलका भोजन करनेवाला और वनमें ही विचरनेवाला वानर हूँ। मैं यहाँ आपसे युद्ध नहीं करता था, दूसरेके साथ मेरी लड़ाई हो रही थी। फिर बिना अपराधके आपने मुझे क्यों मारा?॥ २५॥

'राजन्! आप एक सम्माननीय नरेशके पुत्र हैं। विश्वासके योग्य हैं और देखनेमें भी प्रिय हैं। आपमें धर्मका साधनभूत चिह्न (जटा) वल्कल धारण आदि भी प्रत्यक्ष दिखायी देता है॥ २६॥

'क्षत्रियकुलमें उत्पन्न शास्त्रका ज्ञाता, संशयरहित तथा धार्मिक वेश-भूषासे आच्छन्न होकर भी कौन मनुष्य ऐसा क्रूरतापूर्ण कर्म कर सकता है॥ २७॥

'महाराज! रघुके कुलमें आपका प्रादुर्भाव हुआ है। आप धर्मात्माके रूपमें प्रसिद्ध हैं तो भी इतने अभव्य (क्रूर) निकले! यदि यही आपका असली रूप है तो फिर किसलिये ऊपरसे भव्य (विनीत एवं दयालु) साधु पुरुषका-सा रूप धारण करके चारों ओर दौड़ते-फिरते हैं?॥ २८॥

'राजन्! साम, दान, क्षमा, धर्म, सत्य, धृति, पराक्रम और अपराधियोंको दण्ड देना—ये भूपालोंके गुण हैं॥ २९॥

'नरेश्वर राम! हम फल-मूल खानेवाले वनचारी मृग हैं। यही हमारी प्रकृति है; किंतु आप तो पुरुष (मनुष्य) हैं (अतः हमारे और आपमें वैरका कोई कारण नहीं है)॥ ३०॥

'पृथ्वी, सोना और चाँदी—इन्हीं वस्तुओंके लिये राजाओंमें परस्पर युद्ध होते हैं। ये ही तीन कलहके मूल कारण हैं। परंतु यहाँ वे भी नहीं हैं। इस दिशामें इस वनमें या हमारे फलोंमें आपका क्या लोभ हो सकता है॥

'नीति और विनय, दण्ड और अनुग्रह—ये राजधर्म हैं, किंतु इनके उपयोगके भिन्न-भिन्न अवसर हैं (इनका अविवेकपूर्वक उपयोग करना उचित नहीं है)। राजाओंको स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिये॥ ३२॥

'परंतु आप तो कामके गुलाम, क्रोधी और मर्यादामें स्थित न रहनेवाले—चञ्चल हैं। नय-विनय आदि जो राजाओंके धर्म हैं, उनके अवसरका विचार किये बिना ही किसीका कहीं भी प्रयोग कर देते हैं। जहाँ कहीं भी बाण चलाते-फिरते हैं॥ ३३॥

'आपका धर्मके विषयमें आदर नहीं है और न अर्थसाधनमें ही आपकी बुद्धि स्थिर है। नरेश्वर! आप स्वेच्छाचारी हैं। इसलिये आपकी इन्द्रियाँ आपको कहीं भी खींच ले जाती हैं॥ ३४॥

'काकुत्स्थ! मैं सर्वथा निरपराध था तो भी यहाँ मुझे बाणसे मारनेका घृणित कर्म करके सत्पुरुषोंके बीचमें आप क्या कहेंगे॥ ३५॥

'राजाका वध करनेवाला, ब्रह्म-हत्यारा, गोघाती, चोर, प्राणियोंकी हिंसामें तत्पर रहनेवाला, नास्तिक और परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई) ये सब-के-सब नरकगामी होते हैं॥ ३६॥

'चुगली खानेवाला, लोभी, मित्र-हत्यारा तथा गुरुपत्नीगामी—ये पापात्माओंके लोकमें जाते हैं—इसमें संशय नहीं है॥ ३७॥

'हम वानरोंका चमड़ा भी तो सत्पुरुषोंके धारण करनेयोग्य नहीं होता। हमारे रोम और हड्डियाँ भी वर्जित हैं (छूनेयोग्य नहीं हैं। आप-जैसे धर्माचारी पुरुषोंके लिये मांस तो सदा ही अभक्ष्य है; फिर किस लोभसे आपने मुझ वानरको अपने बाणोंका शिकार बनाया है?)॥ ३८॥

'रघुनन्दन! त्रैवर्णिकोंमें जिनकी किसी कारणसे मांसाहार (जैसे निन्दनीय कर्म) में प्रवृत्ति हो गयी है, उनके लिये भी पाँच नखवाले जीवोंमेंसे पाँच ही

भक्षणके योग्य बताये गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गेंडा, साही, गोह, खरहा और पाँचवाँ कछुआ॥ ३९॥

'श्रीराम! मनीषी पुरुष मेरे (वानरके) चमड़े और हड्डीका स्पर्श नहीं करते हैं। वानरके मांस भी सभीके लिये अभक्ष्य होते हैं। इस तरह जिसका सब कुछ निषिद्ध है, ऐसा पाँच नखवाला मैं आज आपके हाथसे मारा गया हूँ॥ ४०॥

'मेरी स्त्री तारा सर्वज्ञ है। उसने मुझे सत्य और हितकी बात बतायी थी। किंतु मोहवश उसका उल्लङ्घन करके मैं कालके अधीन हो गया॥ ४१॥

'काकुत्स्थ! जैसे सुशीला युवती पापात्मा पतिसे सुरक्षित नहीं हो पाती, उसी प्रकार आप-जैसे स्वामीको पाकर यह वसुधा सनाथ नहीं हो सकती॥ ४२॥

'आप शठ (छिपे रहकर दूसरोंका अप्रिय करनेवाले), अपकारी, क्षुद्र और झूठे ही शान्तचित्त बने रहनेवाले हैं। महात्मा राजा दशरथने आप-जैसे पापीको कैसे उत्पन्न किया॥ ४३॥

'हाय! जिसने सदाचारका रस्सा तोड़ डाला है, सत्पुरुषोंके धर्म एवं मर्यादाका उल्लङ्घन किया है तथा जिसने धर्मरूपी अङ्कुशकी भी अवहेलना कर दी है, उस रामरूपी हाथीके द्वारा आज मैं मारा गया॥ ४४॥

'ऐसा अशुभ, अनुचित और सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित कर्म करके आप श्रेष्ठ पुरुषोंसे मिलनेपर उनके सामने क्या कहेंगे॥ ४५॥

'श्रीराम! हम उदासीन प्राणियोंपर आपने जो यह पराक्रम प्रकट किया है, ऐसा बल-पराक्रम आप अपना अपकार करनेवालोंपर प्रकट कर रहे हों, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता॥ ४६॥

'राजकुमार! यदि आप युद्धस्थलमें मेरी दृष्टिके सामने आकर मेरे साथ युद्ध करते तो आज मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यपुत्र यम देवताका दर्शन करते होते॥ ४७॥

'जैसे किसी सोये हुए पुरुषको साँप आकर डँस ले और वह मर जाय उसी प्रकार रणभूमिमें मुझ दुर्जय वीरको आपने छिपे रहकर मारा है तथा ऐसा करके आप पापके भागी हुए हैं॥ ४८॥

'जिस उद्देश्यको लेकर सुग्रीवका प्रिय करनेकी कामनासे आपने मेरा वध किया है, उसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये यदि आपने पहले मुझसे ही कहा होता तो मैं मिथिलेशकुमारी जानकीको एक ही दिनमें ढूँढ़कर आपके पास ला देता॥ ४९॥

'आपकी पत्नीका अपहरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणको मैं युद्धमें मारे बिना ही उसके गलेमें रस्सी बाँधकर पकड़ लाता और उसे आपके हवाले कर देता॥

'जैसे मधुकैटभद्वारा अपहृत हुई श्वेताश्वतरी श्रुतिका भगवान् हयग्रीवने उद्धार किया था, उसी प्रकार मैं आपके आदेशसे मिथिलेशकुमारी सीताको यदि वे समुद्रके जलमें या पातालमें रखी गयी होती तो भी वहाँसे ला देता॥ ५१॥

'मेरे स्वर्गवासी हो जानेपर सुग्रीव जो यह राज्य प्राप्त करेंगे, वह तो उचित ही है। अनुचित इतना ही हुआ है कि आपने मुझे रणभूमिमें अधर्मपूर्वक मारा है॥ ५२॥

'यह जगत् कभी-न-कभी कालके अधीन होता ही है। इसका ऐसा स्वभाव ही है। अत: भले ही मेरी मृत्यु हो जाय, इसके लिये मुझे खेद नहीं है। परंतु मेरे इस तरह मारे जानेका यदि आपने उचित उत्तर ढूँढ़ निकाला हो तो उसे अच्छी तरह सोच-विचारकर कहिये'॥

ऐसा कहकर महामनस्वी वानरराजकुमार वाली सूर्यके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर चुप हो गया। उसका मुँह सूख गया था और बाणके आघातसे उसको बड़ी पीड़ा हो रही थी॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

श्रीरामका वालीकी बातका उत्तर देते हुए उसे दिये गये दण्डका औचित्य बताना, वालीका निरुत्तर होकर भगवान्‌से अपने अपराधके लिये क्षमा माँगते हुए अङ्गदकी रक्षाके लिये प्रार्थना करना और श्रीरामका उसे आश्वासन देना

वहाँ मारे जाकर अचेत हुए वालीने जब इस प्रकार विनयाभास, धर्माभास, अर्थाभास और हिताभाससे युक्त कठोर बातें कहीं, आक्षेप किया, तब उन बातोंको कहकर मौन हुए वानरश्रेष्ठ वालीसे श्रीरामचन्द्रजीने धर्म, अर्थ और श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त परम उत्तम बात कही। उस समय वाली प्रभाहीन सूर्य, जलहीन बादल और बुझी

हुई आगके समान श्रीहीन प्रतीत होता था॥ १—३॥

(श्रीराम बोले—) 'वानर! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचारको तो तुम स्वयं ही नहीं जानते हो। फिर बालोचित अविवेकके कारण आज यहाँ मेरी निन्दा क्यों करते हो?॥ ४॥

'सौम्य! तुम आचार्योंद्वारा सम्मानित बुद्धिमान् वृद्ध पुरुषोंसे पूछे बिना ही—उनसे धर्मके स्वरूपको ठीक-ठीक समझे बिना ही वानरोचित चपलतावश मुझे यहाँ उपदेश देना चाहते हो? अथवा मुझपर आक्षेप करनेकी इच्छा रखते हो॥ ५॥

'पर्वत, वन और काननोंसे युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंकी है; अतः वे यहाँके पशु-पक्षी और मनुष्योंपर दया करने और उन्हें दण्ड देनेके भी अधिकारी हैं॥ ६॥

'धर्मात्मा राजा भरत इस पृथ्वीका पालन करते हैं। वे सत्यवादी, सरल तथा धर्म, अर्थ और कामके तत्त्वको जाननेवाले हैं; अतः दुष्टोंके निग्रह तथा साधु पुरुषोंके प्रति अनुग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं॥ ७॥

'जिसमें नीति, विनय, सत्य और पराक्रम आदि सभी राजोचित गुण यथावत्-रूपसे स्थित देखे जायँ, वही देश-काल-तत्त्वको जाननेवाला राजा होता है (भरतमें ये सभी गुण विद्यमान हैं)॥ ८॥

'भरतकी ओरसे हमें तथा दूसरे राजाओंको यह आदेश प्राप्त है कि जगत्में धर्मके पालन और प्रसारके लिये यत्न किया जाय। इसलिये हमलोग धर्मका प्रचार करनेकी इच्छासे सारी पृथ्वीपर विचरते रहते हैं॥ ९॥

'राजाओंमें श्रेष्ठ भरत धर्मपर अनुराग रखनेवाले हैं। वे समूची पृथ्वीका पालन कर रहे हैं। उनके रहते हुए इस पृथ्वीपर कौन प्राणी धर्मके विरुद्ध आचरण कर सकता है?॥ १०॥

'हम सब लोग अपने श्रेष्ठ धर्ममें दृढ़तापूर्वक स्थित रहकर भरतकी आज्ञाको सामने रखते हुए धर्ममार्गसे भ्रष्ट पुरुषको विधिपूर्वक दण्ड देते हैं॥ ११॥

'तुमने अपने जीवनमें कामको ही प्रधानता दे रखी थी। राजोचित मार्गपर तुम कभी स्थिर नहीं रहे। तुमने सदा ही धर्मको बाधा पहुँचायी और बुरे कर्मोंके कारण सत्पुरुषोंद्वारा सदा तुम्हारी निन्दा की गयी॥ १२॥

'बड़ा भाई, पिता तथा जो विद्या देता है, वह गुरु—ये तीनों धर्ममार्गपर स्थित रहनेवाले पुरुषोंके लिये पिताके तुल्य माननीय हैं, ऐसा समझना चाहिये॥ १३॥

'इसी प्रकार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य—ये तीन पुत्रके तुल्य समझे जाने योग्य हैं। उनके प्रति ऐसा भाव रखनेमें धर्म ही कारण है॥ १४॥

'वानर! सज्जनोंका धर्म सूक्ष्म होता है, वह परम दुर्ज्ञेय है—उसे समझना अत्यन्त कठिन है। समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान जो परमात्मा हैं, वे ही सबके शुभ और अशुभको जानते हैं॥ १५॥

'तुम स्वयं भी चपल हो और चञ्चल चित्तवाले अजितात्मा वानरोंके साथ रहते हो; अतः जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष जन्मान्धोंसे ही रास्ता पूछे, उसी प्रकार तुम उन चपल वानरोंके साथ परामर्श करते हो, फिर तुम धर्मका विचार क्या कर सकते हो?—उसके स्वरूपको कैसे समझ सकते हो?॥ १६॥

'मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, उसका अभिप्राय तुम्हें स्पष्ट करके बताता हूँ। तुम्हें केवल रोषवश मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ १७॥

'मैंने तुम्हें क्यों मारा है? उसका कारण सुनो और समझो। तुम सनातन धर्मका त्याग करके अपने छोटे भाईकी स्त्रीसे सहवास करते हो॥ १८॥

'इस महामना सुग्रीवके जीते-जी इसकी पत्नी रुमाका, जो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है, कामवश उपभोग करते हो। अतः पापाचारी हो॥ १९॥

'वानर! इस तरह तुम धर्मसे भ्रष्ट हो स्वेच्छाचारी हो गये हो और अपने भाईकी स्त्रीको गले लगाते हो। तुम्हारे इसी अपराधके कारण तुम्हें यह दण्ड दिया गया है॥ २०॥

'वानरराज! जो लोकाचारसे भ्रष्ट होकर लोकविरुद्ध आचरण करता है, उसे रोकने या राहपर लानेके लिये मैं दण्डके सिवा और कोई उपाय नहीं देखता॥ २१॥

'मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न क्षत्रिय हूँ; अतः मैं तुम्हारे पापको क्षमा नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाईकी स्त्रीके पास काम-बुद्धिसे जाता है, उसका वध करना ही उसके लिये उपयुक्त दण्ड माना गया है॥ २२ $\frac{१}{२}$ ॥

'हमारे राजा भरत हैं। हमलोग तो केवल उनके आदेशका पालन करनेवाले हैं। तुम धर्मसे गिर गये हो; अतः तुम्हारी उपेक्षा कैसे की जा सकती थी॥ २३ $\frac{१}{२}$ ॥

'विद्वान् राजा भरत महान् धर्मसे भ्रष्ट हुए पुरुषको दण्ड देते और धर्मात्मा पुरुषका धर्मपूर्वक पालन करते हुए कामासक्त स्वेच्छाचारी पुरुषोंके निग्रहमें तत्पर रहते हैं।

'हरीश्वर! हमलोग तो भरतकी आज्ञाको ही प्रमाण मानकर धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले तुम्हारे-जैसे लोगोंको दण्ड देनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं॥ २५॥

सुग्रीवके साथ मेरी मित्रता हो चुकी है। उनके प्रति मेरा वही भाव है, जो लक्ष्मणके प्रति है। वे अपनी स्त्री और राज्यकी प्राप्तिके लिये मेरी भलाई करनेके लिये भी कटिबद्ध हैं। मैंने वानरोंके समीप इन्हें स्त्री और राज्य दिलानेके लिये प्रतिज्ञा भी कर ली है। ऐसी दशामें मेरे-जैसा मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाकी ओरसे कैसे दृष्टि हटा सकता है॥ २६-२७॥

ये सभी धर्मानुकूल महान् कारण एक साथ उपस्थित हो गये, जिनसे विवश होकर तुम्हें उचित दण्ड देना पड़ा है। तुम भी इसका अनुमोदन करो॥ २८॥

'धर्मपर दृष्टि रखनेवाले मनुष्यके लिये मित्रका उपकार करना धर्म ही माना गया है; अतः तुम्हें जो यह दण्ड दिया गया है, वह धर्मके अनुकूल है। ऐसा ही तुम्हें समझना चाहिये॥ २९॥

'यदि राजा होकर तुम धर्मका अनुसरण करते तो तुम्हें भी वही काम करना पड़ता, जो मैंने किया है। मनुने राजोचित सदाचारका प्रतिपादन करनेवाले दो श्लोक कहे हैं, जो स्मृतियोंमें सुने जाते हैं और जिन्हें धर्मपालनमें कुशल पुरुषोंने सादर स्वीकार किया। उन्हींके अनुसार इस समय यह मेरा बर्ताव हुआ है (वे श्लोक इस प्रकार हैं—)॥ ३०॥

'मनुष्य पाप करके यदि राजाके दिये हुए दण्डको भोग लेते हैं तो वे शुद्ध होकर पुण्यात्मा साधु पुरुषोंकी भाँति स्वर्गलोकमें जाते हैं। (चोर आदि पापी जब राजाके सामने उपस्थित हों उस समय उन्हें) राजा दण्ड दे अथवा दया करके छोड़ दे। चोर आदि पापी पुरुष अपने पापसे मुक्त हो जाता है; किंतु यदि राजा पापीको उचित दण्ड नहीं देता तो उसे स्वयं उसके पापका फल भोगना पड़ता है*॥ ३१-३२॥

'तुमने जैसा पाप किया है, वैसा ही पाप प्राचीन कालमें एक श्रमणने किया था। उसे मेरे पूर्वज महाराज मान्धाताने बड़ा कठोर दण्ड दिया था, जो शास्त्रके अनुसार अभीष्ट था॥ ३३॥

'यदि राजा दण्ड देनेमें प्रमाद कर जायँ तो उन्हें दूसरोंके किये हुए पाप भी भोगने पड़ते हैं तथा उसके लिये जब वे प्रायश्चित्त करते हैं तभी उनका दोष शान्त होता है॥ ३४॥

'अतः वानरश्रेष्ठ! पश्चात्ताप करनेसे कोई लाभ नहीं है। सर्वथा धर्मके अनुसार ही तुम्हारा वध किया गया है; क्योंकि हमलोग अपने वशमें नहीं हैं (शास्त्रके ही अधीन हैं)॥ ३५॥

'वानरशिरोमणे! तुम्हारे वधका जो दूसरा कारण है, उसे भी सुन लो। वीर! उस महान् कारणको सुनकर तुम्हें मेरे प्रति क्रोध नहीं करना चाहिये॥ ३६॥

'वानरश्रेष्ठ! इस कार्यके लिये मेरे मनमें न तो संताप होता है और न खेद ही। मनुष्य (राजा आदि) बड़े-बड़े जाल बिछाकर फंदे फैलाकर और नाना प्रकारके कूट उपाय (गुप्त गड्ढोंके निर्माण आदि) करके छिपे रहकर सामने आकर बहुत-से मृगोंको पकड़ लेते हैं; भले ही वे भयभीत होकर भागते हों या विश्वस्त होकर अत्यन्त निकट बैठे हों॥ ३७-३८॥

'मांसाहारी मनुष्य (क्षत्रिय) सावधान, असावधान अथवा विमुख होकर भागनेवाले पशुओंको भी अत्यन्त घायल कर देते हैं; किंतु उनके लिये इस मृगयामें दोष नहीं होता॥ ३९॥

'वानर! धर्मज्ञ राजर्षि भी इस जगत्में मृगयाके लिये जाते हैं और विविध जन्तुओंका वध करते हैं। इसलिये मैंने तुम्हें युद्धमें अपने बाणका निशाना बनाया है। तुम मुझसे युद्ध करते थे या नहीं करते थे, तुम्हारी वध्यतामें कोई अन्तर नहीं आता; क्योंकि तुम शाखामृग हो (और मृगया करनेका क्षत्रियको अधिकार है)॥ ४०॥

'वानरश्रेष्ठ! राजालोग दुर्लभ धर्म, जीवन और लौकिक अभ्युदयके देनेवाले होते हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ४१॥

'अतः उनकी हिंसा न करे, उनकी निन्दा न करे, उनके प्रति आक्षेप भी न करे और न उनसे अप्रिय वचन ही बोले; क्योंकि वे वास्तवमें देवता हैं, जो मनुष्यरूपसे इस पृथ्वीपर विचरते रहते हैं॥ ४२॥

'तुम तो धर्मके स्वरूपको न समझकर केवल

* मनुस्मृतिमें ये दोनों श्लोक किंचित् पाठान्तरके साथ इस प्रकार मिलते हैं—

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः। निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते। अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्॥

(८। ३१८,३१६)

रोषके वशीभूत हो गये हो, इसलिये पिता-पितामहोंके धर्मपर स्थित रहनेवाले मेरी निन्दा कर रहे हो'॥ ४३॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर वालीके मनमें बड़ी व्यथा हुई। इसे धर्मके तत्त्वका निश्चय हो गया। उसने श्रीरामचन्द्रजीके दोषका चिन्तन त्याग दिया॥ ४४॥

इसके बाद वानरराज वालीने श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर कहा—'नरश्रेष्ठ! आप जो कुछ कहते हैं, बिलकुल ठीक है; इसमें संशय नहीं है॥ ४५॥

'आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुषको मुझ-जैसा निम्न श्रेणीका प्राणी उचित उत्तर नहीं दे सकता; अतः मैंने प्रमादवश पहले जो अनुचित बात कह डाली है, उसमें भी आपको मेरा अपराध नहीं मानना चाहिये। रघुनन्दन! आप परमार्थतत्त्वके यथार्थ ज्ञाता और प्रजाजनोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। आपकी बुद्धि कार्य-कारणके निश्चयमें निर्भ्रान्त एवं निर्मल है॥ ४६-४७॥

'धर्मज्ञ! मैं धर्मभ्रष्ट प्राणियोंमें अग्रगण्य हूँ और इसी रूपमें मेरी सर्वत्र प्रसिद्धि है तो भी आज आपकी शरणमें आया हूँ। अपनी धर्मतत्त्वकी वाणीसे आज मेरी भी रक्षा कीजिये'॥ ४८॥

इतना कहते-कहते आँसुओंसे वालीका गला भर आया और वह कीचड़में फँसे हुए हाथीकी तरह आर्तनाद करके श्रीरामकी ओर देखता हुआ धीरे-धीरे बोला॥ ४९॥

'भगवन्! मुझे अपने लिये, ताराके लिये तथा बन्धु-बान्धवोंके लिये भी उतना शोक नहीं होता है, जितना सुवर्णका अङ्गद धारण करनेवाले श्रेष्ठ गुणसम्पन्न पुत्र अङ्गदके लिये हो रहा है॥ ५०॥

'मैंने बचपनसे ही उसका बड़ा दुलार किया है; अब मुझे न देखकर वह बहुत दुःखी होगा और जिसका जल पी लिया गया हो, उस तालाबकी तरह सूख जायगा॥ ५१॥

'श्रीराम! वह अभी बालक है। उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई है। मेरा इकलौता बेटा होनेके कारण ताराकुमार अङ्गद मुझे बड़ा प्रिय है। आप मेरे उस महाबली पुत्रकी रक्षा कीजियेगा॥ ५२॥

'सुग्रीव और अङ्गद दोनोंके प्रति आप सद्भाव रखें। अब आप ही इन लोगोंके रक्षक तथा इन्हें कर्तव्य-अकर्तव्यकी शिक्षा देनेवाले हैं॥ ५३॥

'राजन्! नरेश्वर! भरत और लक्ष्मणके प्रति आपका जैसा बर्ताव है, वही सुग्रीव तथा अङ्गदके प्रति भी होना चाहिये। आप उसी भावसे इन दोनोंका स्मरण करें॥ ५४॥

'बेचारी ताराकी बड़ी शोचनीय अवस्था हो गयी है। मेरे ही अपराधसे उसे भी अपराधिनी समझकर सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे, इस बातकी भी व्यवस्था कीजियेगा॥ ५५॥

'सुग्रीव आपका कृपापात्र होकर ही इस राज्यका यथार्थ रूपसे पालन कर सकता है। आपके अधीन होकर आपके चित्तका अनुसरण करनेवाला पुरुष स्वर्ग और पृथ्वीका भी राज्य पा सकता और उसका अच्छी तरह पालन कर सकता है॥ ५६ $\frac{१}{२}$॥

'मैं चाहता था कि आपके हाथसे मेरा वध हो; इसीलिये ताराके मना करनेपर भी मैं अपने भाई सुग्रीवके साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये चला आया'॥ ५७ $\frac{१}{२}$॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर वानरराज वाली चुप हो गया। उस समय उसकी ज्ञानशक्तिका विकास हो गया था। श्रीरामचन्द्रजीने धर्मके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करनेवाली साधु पुरुषोंद्वारा प्रशंसित वाणीमें उससे कहा—'वानरश्रेष्ठ! तुम्हें इसके लिये संताप नहीं करना चाहिये। कपिप्रवर! तुम्हें हमारे और अपने लिये भी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि हमलोग तुम्हारी अपेक्षा विशेषज्ञ हैं, इसलिये हमने धर्मानुकूल कार्य करनेका ही निश्चय कर रखा है॥ ५८—६०॥

'जो दण्डनीय पुरुषको दण्ड देता है तथा जो दण्डका अधिकारी होकर दण्ड भोगता है, उनमेंसे दण्डनीय व्यक्ति अपने अपराधके फलरूपमें शासकका दिया हुआ दण्ड भोगकर तथा दण्ड देनेवाला शासक उसके उस फलभोगमें कारण—निमित्त बनकर कृतार्थ हो जाते हैं—अपना-अपना कर्तव्य पूरा कर लेनेके कारण कर्मरूप ऋणसे मुक्त हो जाते हैं। अतः वे दुःखी नहीं होते॥ ६१॥

'तुम इस दण्डको पाकर पापरहित हुए और इस दण्डका विधान करनेवाले शास्त्रद्वारा कथित दण्डग्रहणरूप मार्गसे ही चलकर तुम्हें धर्मानुकूल शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति हो गयी॥ ६२॥

'अब तुम अपने हृदयमें स्थित शोक, मोह और भयका त्याग कर दो। वानरश्रेष्ठ! तुम दैवके विधानको नहीं लाँघ सकते॥ ६३॥

'वानरेश्वर! कुमार अङ्गद तुम्हारे जीवित रहनेपर जैसा था, उसी प्रकार सुग्रीवके और मेरे पास भी सुखसे रहेगा, इसमें संशय नहीं है'॥ ६४॥

युद्धमें शत्रुका मानमर्दन करनेवाले महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका धर्ममार्गके अनुकूल और मानसिक शङ्काओंका समाधान करनेवाला मधुर वचन सुनकर वानर वालीने यह सुन्दर युक्तियुक्त वचन कहा— ॥ ६५ ॥

'प्रभो! देवराज इन्द्रके समान भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले नरेश्वर! मैं आपके बाणसे पीड़ित होनेके कारण अचेत हो गया था। इसलिये अनजानमें मैंने जो आपके प्रति कठोर बात कह डाली है, उसे आप क्षमा कीजियेगा। इसके लिये मैं प्रार्थनापूर्वक आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ'॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ सर्ग

अङ्गदसहित ताराका भागे हुए वानरोंसे बात करके वालीके समीप आना और उसकी दुर्दशा देखकर रोना

वानरोंका महाराज वाली बाणसे पीड़ित होकर भूमिपर पड़ा था। श्रीरामचन्द्रजीके युक्तियुक्त वचनोंद्वारा अपनी बातका उत्तर पाकर उसे फिर कोई जवाब न सूझा॥ १ ॥

पत्थरोंकी मार पड़नेसे उसके अङ्ग टूट-फूट गये थे। वृक्षोंके आघातसे भी वह बहुत घायल हो गया था और श्रीरामके बाणसे आक्रान्त होकर तो वह जीवनके अन्तकालमें ही पहुँच गया था। उस समय वह मूर्च्छित हो गया॥ २ ॥

उसकी पत्नी ताराने सुना कि युद्धस्थलमें वानरश्रेष्ठ वाली श्रीरामके चलाये हुए बाणसे मारे गये॥ ३ ॥

अपने स्वामीके वधका अत्यन्त भयंकर एवं अप्रिय समाचार सुनकर वह बहुत उद्विग्न हो उठी और अपने पुत्र अङ्गदको साथ ले उस पर्वतकी कन्दरासे बाहर निकली॥ ४ ॥

अङ्गदको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करनेवाले जो महाबली वानर थे, वे श्रीरामचन्द्रजीको धनुष लिये देख भयभीत होकर भाग चले॥ ५ ॥

ताराने वेगसे भागकर आते हुए उन भयभीत वानरोंको देखा। वे जिनके यूथपति मारे गये हों, उन यूथभ्रष्ट मृगोंके समान जान पड़ते थे॥ ६ ॥

वे सब वानर श्रीरामसे इस प्रकार डरे हुए थे, मानो उनके बाण इनके पीछे आ रहे हों। उन दु:खी वानरोंके पास पहुँचकर सती-साध्वी तारा और भी दु:खी हो गयी तथा उनसे इस प्रकार बोली— ॥ ७ ॥

'वानरो! तुम तो उन राजसिंह वालीके आगे-आगे चलनेवाले थे। अब उन्हें छोड़कर अत्यन्त भयभीत हो दुर्गतिमें पड़कर क्यों भागे जा रहे हो?॥ ८ ॥

'यदि राज्यके लोभसे उस क्रूर भाई सुग्रीवने श्रीरामको प्रेरित करके उनके द्वारा दूरसे चलाये हुए और दूरतक जानेवाले बाणोंद्वारा अपने भाईको मरवा दिया है तो तुमलोग क्यों भागे जा रहे हो?'॥ ९ ॥

वालीकी पत्नीका वह वचन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन वानरोंने कल्याणमयी तारा देवीको सम्बोधित करके सर्वसम्मतिसे स्पष्ट शब्दोंमें यह समयोचित बात कही— ॥ १० ॥

'देवि! अभी तुम्हारा पुत्र जीवित है। तुम लौट चलो और अपने पुत्र अङ्गदकी रक्षा करो। श्रीरामका रूप धारण करके स्वयं यमराज आ पहुँचा है, जो वालीको मारकर अपने साथ ले जा रहा है॥ ११ ॥

'वालीके चलाये हुए वृक्षों और बड़ी-बड़ी शिलाओंको अपने वज्रतुल्य बाणोंसे विदीर्ण करके श्रीरामने वालीको मार गिराया है। मानो वज्रधारी इन्द्रने अपने वज्रके द्वारा किसी महान् पर्वतको धराशायी कर दिया हो॥ १२ ॥

'इन्द्रके समान तेजस्वी इन वानरश्रेष्ठ वालीके मारे जानेपर यह सारी वानर-सेना श्रीरामसे पराजित-सी होकर भाग खड़ी हुई है॥ १३ ॥

'तुम शूरवीरोंद्वारा इस नगरीकी रक्षा करो। कुमार अङ्गदका किष्किन्धाके राज्यपर अभिषेक कर दो। राजसिंहासनपर बैठे हुए वालिकुमार अङ्गदकी सभी वानर सेवा करेंगे॥ १४ ॥

'अथवा सुमुखि! अब इस नगरमें तुम्हारा रहना हमें अच्छा नहीं जान पड़ता; क्योंकि किष्किन्धाके दुर्गम स्थानोंमें अभी सुग्रीवपक्षीय वानर शीघ्र प्रवेश करेंगे। यहाँ बहुत-से ऐसे वनचारी वानर हैं, जिनमेंसे कुछ तो अपनी स्त्रियोंके साथ हैं और कुछ स्त्रियोंसे बिछुड़े हुए हैं। उनमें राज्यविषयक लोभ पैदा हो गया है और पहले हमलोगोंके द्वारा राज्य-सुखसे वञ्चित किये गये हैं। अत: इस समय उन सबसे हमलोगोंको महान् भय प्राप्त हो सकता है'॥ १५-१६ ॥

अभी थोड़ी ही दूरतक आये हुए उन वानरोंकी यह बात सुनकर मनोहर हासवाली कल्याणी ताराने उन्हें अपने अनुरूप उत्तर दिया—॥ १७॥

'वानरो! जब मेरे महाभाग पतिदेव कपिसिंह वाली ही नष्ट हो रहे हैं, तब मुझे पुत्रसे, राज्यसे तथा अपने इस जीवनसे भी क्या प्रयोजन है?॥ १८॥

'मैं तो, जिन्हें श्रीरामके चलाये हुए बाणने मार गिराया है, उन महात्मा वालीके चरणोंके समीप ही जाऊँगी'॥ १९॥

ऐसा कहकर शोकसे व्याकुल हुई तारा रोती और अपने दोनों हाथोंसे दु:खपूर्वक सिर एवं छाती पीटती हुई बड़े जोरसे दौड़ी॥ २०॥

आगे बढ़ती हुई ताराने देखा, जो युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले दानवराजोंका भी वध करनेमें समर्थ थे, वे मेरे पति वानरराज वाली पृथ्वीपर पड़े हुए हैं॥ २१॥

वज्र चलानेवाले इन्द्रके समान जो रणभूमिमें बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाकर फेंकते थे, जिनके वेगमें प्रचण्ड आँधीका समावेश था, जिनका सिंहनाद महान् मेघोंकी गम्भीर गर्जनाको भी तिरस्कृत कर देता था तथा जो इन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे, वे ही इस समय वर्षा करके शान्त हुए बादलके समान चेष्टासे विरत हो गये हैं। जो स्वयं गर्जना करके गर्जनेवाले वीरोंके मनमें भय उत्पन्न कर देते थे, वे शूरवीर वाली एक दूसरे शूरवीरके द्वारा मार गिराये गये हैं। जैसे मांसके लिये एक सिंहने दूसरे सिंहको मार डाला हो, उसी प्रकार राज्यके लिये अपने भाईके द्वारा ही इनका वध किया गया है॥ २२-२३॥

जो सब लोगोंके द्वारा पूजित हो, जहाँ पताका फहरायी गयी हो तथा जिसके पास देवताकी वेदी शोभा पाती हो, उस चैत्य वृक्ष या देवालयको वहाँ छिपे हुए किसी नागको पकड़नेके लिये यदि गरुड़ने मथ डाला हो—नष्ट-भ्रष्ट कर दिया हो तो उसकी जैसी दुरवस्था देखी जाती है, वैसी ही दशा आज वालीकी हो रही है (यह सब ताराने देखा)॥ २४॥

आगे जानेपर उसने देखा, अपने तेजस्वी धनुषको धरतीपर टेककर उसके सहारे श्रीरामचन्द्रजी खड़े हैं। साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण हैं और वहीं पतिके छोटे भाई सुग्रीव भी मौजूद हैं॥ २५॥

उन सबको पार करके वह रणभूमिमें घायल पड़े हुए अपने पतिके पास पहुँची। उन्हें देखकर उसके मनमें बड़ी व्यथा हुई और वह अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २६॥

फिर मानो वह सोकर उठी हो, इस प्रकार 'हा आर्यपुत्र!' कहकर मृत्युपाशसे बँधे हुए पतिकी ओर देखती हुई रोने लगी॥ २७॥

उस समय कुररीके समान करुण क्रन्दन करती हुई तारा तथा उसके साथ आये हुए अङ्गदको देखकर सुग्रीवको बड़ा कष्ट हुआ। वे विषादमें डूब गये॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

ताराका विलाप

चन्द्रमुखी ताराने देखा, मेरे स्वामी वानरराज वाली श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए प्राणान्तकारी बाणसे घायल होकर धरतीपर पड़े हैं, उस अवस्थामें उनके पास पहुँचकर वह भामिनी उनके शरीरसे लिपट गयी। जो अपने शरीरसे गजराज और गिरिराजको भी मात करते थे, उन्हीं वानरराजको बाणसे आहत होकर जड़से उखड़े हुए वृक्षकी भाँति धराशायी हुआ देख ताराका हृदय शोकसे संतप्त हो उठा और वह आतुर होकर विलाप करने लगी—॥ १—३॥

'रणमें भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले महान् वीर वानरराज! आज इस समय मुझे अपने सामने पाकर भी आप बोलते क्यों नहीं हैं?॥ ४॥

कपिश्रेष्ठ! उठिये और उत्तम शय्याका आश्रय लीजिये। आप-जैसे श्रेष्ठ भूपाल पृथ्वीपर नहीं सोते हैं॥ ५॥

'पृथ्वीनाथ! निश्चय ही यह पृथ्वी आपको अत्यन्त प्यारी है, तभी तो निष्प्राण होनेपर भी आप आज मुझे छोड़कर अपने अङ्गोंसे इस वसुधाका ही आलिङ्गन किये सो रहे हैं॥ ६॥

'वीरवर! आपने धर्मयुक्त युद्ध करके स्वर्गके मार्गमें भी अवश्य ही किष्किन्धाकी भाँति कोई रमणीय पुरी बना ली है, यह बात आज स्पष्ट हो गयी (अन्यथा आप किष्किन्धाको छोड़कर यहाँ क्यों सोते)॥ ७॥

'आपके साथ मधुर सुगन्धयुक्त वनोंमें हमने जो-जो विहार किये हैं, उन सबको इस समय आपने सदाके लिये समाप्त कर दिया॥ ८॥

'नाथ! आप बड़े-बड़े यूथपतियोंके भी स्वामी थे। आज आपके मारे जानेसे मेरा सारा आनन्द लुट गया। मैं सब प्रकारसे निराश होकर शोकके समुद्रमें डूब गयी हूँ॥ ९॥

'निश्चय ही मेरा हृदय बड़ा कठोर है, जो आज आपको पृथ्वीपर पड़ा देखकर भी शोकसे संतप्त हो फट नहीं जाता—इसके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते॥ १०॥

'वानरराज! आपने जो सुग्रीवकी स्त्री छीन ली और उन्हें घरसे बाहर निकाल दिया, उसीका यह फल आपको प्राप्त हुआ है॥ ११॥

'वानरेन्द्र! मैं आपका हित चाहती थी और आपके कल्याण-साधनमें ही लगी रहती थी तो भी मैंने आपसे जो हितकर बात कही थी, उसे मोहवश आपने नहीं माना और उलटे मेरी ही निन्दा की॥ १२॥

'दूसरोंको मान देनेवाले आर्यपुत्र! निश्चय ही आप स्वर्गमें जाकर रूप और यौवनके अभिमानसे मत्त रहनेवाली केलिकलामें निपुण अप्सराओंके मनको अपने दिव्य सौन्दर्यसे मथ डालेंगे॥ १३॥

'निश्चय ही आज आपके जीवनका अन्त कर देनेवाला संशयरहित काल यहाँ आ पहुँचा था, जिसने किसीके भी वशमें न आनेवाले आपको बलपूर्वक सुग्रीवके वशमें डाल दिया'॥ १४॥

(अब श्रीरामको सुनाकर बोली)—'ककुत्स्थ-कुलमें अवतीर्ण हुए श्रीरामचन्द्रजीने दूसरेके साथ युद्ध करते हुए वालीको मारकर अत्यन्त निन्दित कर्म किया है। इस कुत्सित कर्मको करके भी जो ये संतप्त नहीं हो रहे हैं, यह सर्वथा अनुचित है'॥ १५॥

(फिर वालीसे बोली—)'मैंने कभी दीनतापूर्ण जीवन नहीं बिताया था, ऐसे महान् दुःखका सामना नहीं किया था; परंतु आज आपके बिना मैं दीन हो गयी, अब मुझे अनाथकी भाँति शोक-संतापसे पूर्ण वैधव्य जीवन व्यतीत करना होगा॥ १६॥

'नाथ! आपने अपने वीरपुत्र अङ्गदको, जो सुख भोगने योग्य और सुकुमार है, बड़ा लाड़-प्यार किया था। अब क्रोधसे पागल हुए चाचाके वशमें पड़कर मेरे बेटेकी क्या दशा होगी?॥ १७॥

'बेटा अङ्गद! अपने धर्मप्रेमी पिताको अच्छी तरह देख लो। अब तुम्हारे लिये उनका दर्शन दुर्लभ हो जायगा॥ १८॥

'प्राणनाथ! आप दूसरे देशको जा रहे हैं। अपने पुत्रका मस्तक सूँघकर इसे धैर्य बँधाइये और मेरे लिये भी कुछ संदेश दीजिये॥ १९॥

श्रीरामने आपको मारकर बहुत बड़ा कर्म किया है। उन्होंने सुग्रीवसे जो प्रतिज्ञा की थी, उसके ऋणको उतार दिया'॥ २०॥

(अब सुग्रीवको सुनाकर कहने लगी—)'सुग्रीव! तुम्हारा मनोरथ सफल हो। तुम्हारे भाई, जिन्हें तुम अपना शत्रु समझते थे, मारे गये। अब बेखटके राज्य भोगो। रुमाको भी प्राप्त कर लोगे'॥ २१॥

(फिर वालीसे बोली—)'वानरेश्वर! मैं आपकी प्यारी पत्नी हूँ और इस तरह रोती-कलपती हूँ, फिर भी आप मुझसे बोलते क्यों नहीं हैं? देखिये, आपकी ये बहुत-सी सुन्दरी भार्याएँ यहाँ उपस्थित हैं'॥ २२॥

ताराका विलाप सुनकर अन्य वानर-पत्नियाँ भी सब ओरसे अङ्गदको पकड़कर दीन एवं दुःखसे व्याकुल हो जोर-जोरसे क्रन्दन करने लगीं॥ २३॥

(तदनन्तर ताराने फिर कहा—) 'बाजूबन्दसे विभूषित वीर भुजाओंवाले वानरराज! आप अङ्गदको छोड़कर दीर्घकालके लिये दूसरे देशमें क्यों जा रहे हैं? जो गुणोंमें आपके सर्वथा निकट है—जो आपके समान ही गुणवान् है तथा जिसका प्रिय एवं मनोहर वेश है, ऐसे प्रिय पुत्रको त्यागकर इस प्रकार चला जाना आपके लिये कदापि उचित नहीं है॥ २४॥

'महाबाहो! यदि नासमझीके कारण मैंने आपका कोई अपराध किया हो तो आप उसे क्षमा कर दें। वानरवंशके स्वामी वीर आर्यपुत्र! मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह प्रार्थना करती हूँ'॥ २५॥

इस प्रकार अन्य वानर-पत्नियोंके साथ पतिके समीप करुण विलाप करती हुई अनिन्द्य सुन्दरी ताराने जहाँ वाली पृथ्वीपर पड़ा था, वहीं उसके समीप बैठकर आमरण अनशन करनेका निश्चय किया॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका ताराको समझाना और ताराका पतिके अनुगमनका ही निश्चय करना

ताराको आकाशसे टूटकर गिरी हुई तारिकाके समान पृथ्वीपर पड़ी देख वानरयूथपति हनुमान्‌ने धीरे-धीरे समझाना आरम्भ किया—॥ १ ॥

'देवि! जीवके द्वारा गुणबुद्धिसे अथवा दोषबुद्धिसे किये हुए जो अपने कर्म हैं, वे ही सुख-दु:खरूप फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। परलोकमें जाकर प्रत्येक जीव शान्तभावसे रहकर अपने शुभ और अशुभ—सभी कर्मोंका फल भोगता है॥ २ ॥

'तुम स्वयं शोचनीया हो; फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो? स्वयं दीन होकर दूसरे किस दीनपर दया करती हो? पानीके बुलबुलेके समान इस शरीरमें रहकर कौन जीव किस जीवके लिये शोचनीय है?॥ ३ ॥

'तुम्हारे पुत्र कुमार अङ्गद जीवित हैं। अब तुम्हें इन्हींकी ओर देखना चाहिये और इनके लिये भविष्यमें जो उन्नतिके साधक श्रेष्ठ कार्य हों, उनका विचार करना चाहिये॥ ४ ॥

देवि! तुम विदुषी हो, अत: जानती ही हो कि प्राणियोंके जन्म और मृत्युका कोई निश्चित समय नहीं है। इसलिये शुभ (परलोकके लिये सुखद) कर्म ही करना चाहिये। अधिक रोना-धोना आदि जो लौकिक कर्म (व्यवहार) है, उसे नहीं करना चाहिये॥ ५ ॥

'सैकड़ों, हजारों और लाखों वानर जिनपर आशा लगाये जीवन-निर्वाह करते थे, वे ही ये वानरराज आज अपनी प्रारब्धनिर्मित आयुकी अवधि पूरी कर चुके॥ ६ ॥

'इन्होंने नीतिशास्त्रके अनुसार अर्थका साधन—राज्य-कार्यका संचालन किया है। ये उपयुक्त समयपर साम, दान और क्षमाका व्यवहार करते आये हैं। अत: धर्मानुसार प्राप्त होनेवाले लोकमें गये हैं। इनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये॥ ७ ॥

'सती साध्वी देवि! ये सभी श्रेष्ठ वानर, ये तुम्हारे पुत्र अङ्गद तथा वानर और भालुओंका यह राज्य—सब तुमसे ही सनाथ हैं—तुम्हीं इन सबकी स्वामिनी हो॥ ८ ॥

'भामिनि! ये अङ्गद और सुग्रीव दोनों ही शोकसे संतप्त हो रहे हैं। तुम इन्हें भावी कार्यके लिये प्रेरित करो। तुम्हारे अधीन रहकर अङ्गद इस पृथ्वीका शासन करें॥ ९ ॥

'शास्त्रमें संतान होनेका जो प्रयोजन बतलाया गया है तथा इस समय राजा वालीके पारलौकिक कल्याणके लिये जो कुछ कर्तव्य है, वही करो—यही समयकी निश्चित प्रेरणा है॥ १० ॥

'वानरराजका अन्त्येष्टि-संस्कार और कुमार अङ्गदका राज्याभिषेक किया जाय। बेटेको राजसिंहासनपर बैठा देखकर तुम्हें शान्ति मिलेगी'॥ ११ ॥

तारा अपने स्वामीके विरह-शोकसे पीड़ित थी। वह उपर्युक्त वचन सुनकर सामने खड़े हुए हनुमान्‌जीसे बोली—॥ १२ ॥

'अङ्गदके समान सौ पुत्र एक ओर और मरे होनेपर भी इस वीरवर स्वामीका आलिङ्गन करके सती होना दूसरी ओर—इन दोनोंमेंसे अपने वीर पतिके शरीरका आलिङ्गन ही मुझे श्रेष्ठ जान पड़ता है॥ १३ ॥

'मैं न तो वानरोंके राज्यकी स्वामिनी हूँ और न मुझे अङ्गदके लिये ही कुछ करनेका अधिकार है। इसके चाचा सुग्रीव ही समस्त कार्योंके लिये समर्थ हैं और वे ही मेरी अपेक्षा इसके निकटवर्ती भी हैं॥ १४ ॥

'कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी! अङ्गदके विषयमें आपकी यह सलाह मेरे लिये काममें लाने योग्य नहीं है। आपको यह समझना चाहिये कि पुत्रके वास्तविक बन्धु (सहायक) पिता और चाचा ही हैं। माता नहीं॥ १५ ॥

मेरे लिये वानरराज वालीका अनुगमन करनेसे बढ़कर इस लोक या परलोकमें कोई भी कार्य उचित नहीं है। युद्धमें शत्रुसे जूझकर मरे हुए अपने वीर स्वामीके द्वारा सेवित चिता आदिकी शय्यापर शयन करना ही मेरे लिये सर्वथा योग्य है'॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

वालीका सुग्रीव और अङ्गदसे अपने मनकी बात कहकर प्राणोंको त्याग देना

वालीके प्राणोंकी गति शिथिल पड़ गयी थी। वह धीरे-धीरे ऊर्ध्व साँस लेता हुआ सब ओर देखने लगा। सबसे पहले उसने अपने सामने खड़े हुए छोटे भाई सुग्रीवको देखा॥ १॥

युद्धमें जिन्हें विजय प्राप्त हुई थी, उन वानरराज सुग्रीवको सम्बोधित करके वालीने बड़े स्नेहके साथ स्पष्ट वाणीमें कहा—॥ २॥

'सुग्रीव! पूर्वजन्मके किसी पापसे अवश्यम्भावी बुद्धिमोहने मुझे बलपूर्वक आकृष्ट कर लिया था, इसीलिये मैं तुम्हें शत्रु समझने लगा था और इस कारण मेरे द्वारा जो तुम्हारे प्रति अपराध हुए, उसके लिये तुम्हें मेरे प्रति दोष-दृष्टि नहीं करनी चाहिये॥ ३॥

'तात! मैं समझता हूँ हम दोनोंके लिये एक साथ रहकर सुख भोगना नहीं बदा था, इसीलिये दो भाइयोंमें जो प्रेम होना चाहिये, वह न होकर हमलोगोंमें उसके विपरीत वैरभाव उत्पन्न हो गया॥ ४॥

'भाई! तुम आज ही यह वानरोंका राज्य स्वीकार करो तथा मुझे अभी यमराजके घर जानेको तैयार समझो॥

'मैं अपने जीवन, राज्य, विपुल सम्पत्ति और प्रशंसित यशका भी तुरंत ही त्याग कर रहा हूँ॥ ६॥

'वीर! राजन्! इस अवस्थामें मैं जो कुछ कहूँगा, वह यद्यपि करनेमें कठिन है, तथापि तुम उसे अवश्य करना॥ ७॥

'देखो, मेरा बेटा अङ्गद धरतीपर पड़ा है। इसका मुँह आँसुओंसे भीगा है। यह सुखमें पला है और सुख भोगनेके ही योग्य है। बालक होनेपर भी यह मूढ़ नहीं है॥ ८॥

'यह मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। मेरे न रहनेपर तुम इसे सगे पुत्रकी भाँति मानना। इसके लिये किसी भी सुख-सुविधाकी कमी न होने देना और सदा सब जगह इसकी रक्षा करते रहना॥ ९॥

'वानरराज! मेरे ही समान तुम भी इसके पिता, दाता, सब प्रकारसे रक्षक और भयके अवसरोंपर अभय देनेवाले हो॥ १०॥

'ताराका यह तेजस्वी पुत्र तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। उन राक्षसोंके वधके समय यह सदा तुम्हारे आगे रहेगा॥ ११॥

'यह बलवान् तेजस्वी तरुण ताराकुमार अङ्गद रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करते हुए अपने योग्य कर्म करेगा॥ १२॥

'सुषेणकी पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयोंके निर्णय करने तथा नाना प्रकारके उत्पातोंके चिह्नोंको समझनेमें सर्वथा निपुण है॥ १३॥

'जिस कार्यको अच्छा बताये, उसे संदेहरहित होकर करना। ताराकी किसी भी सम्मतिका परिणाम उलटा नहीं होता॥ १४॥

'श्रीरामचन्द्रजीका काम तुम्हें निःशङ्क होकर करना चाहिये। उसको न करनेसे तुम्हें पाप लगेगा और अपमानित होनेपर श्रीरामचन्द्रजी तुझे मार डालेंगे॥ १५॥

'सुग्रीव! मेरी यह सोनेकी दिव्यमाला तुम धारण कर लो। इसमें उदार लक्ष्मीका वास है। मेरे मर जानेपर इसकी श्री नष्ट हो जायगी। अतः अभीसे पहन लो'॥ १६॥

वालीने भ्रातृस्नेहके कारण जब ऐसी बातें कहीं, तब उसके वधके कारण जो हर्ष हुआ था, उसे त्यागकर सुग्रीव फिर दुःखी हो गये, मानो चन्द्रमापर ग्रहण लग गया हो॥ १७॥

वालीके उस वचनसे सुग्रीवका वैरभाव शान्त हो गया। वे सावधान होकर उचित बर्ताव करने लगे। उन्होंने भाईकी आज्ञासे वह सोनेकी माला ग्रहण कर ली॥ १८॥

सुग्रीवको वह सुवर्णमयी माला देनेके पश्चात् वालीने मरनेका निश्चय कर लिया। फिर अपने सामने खड़े हुए पुत्र अङ्गदकी ओर देखकर स्नेहके साथ कहा—॥ १९॥

'बेटा! अब देश-कालको समझो—कब और कहाँ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका निश्चय करके वैसा ही आचरण करो। समयानुसार प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख—जो कुछ आ पड़े उसको सहो। अपने हृदयमें क्षमाभाव रखो और सदा सुग्रीवकी आज्ञाके अधीन रहो॥ २०॥

'महाबाहो! सदा मेरा दुलार पाकर जिस प्रकार तुम रहते आये हो, यदि वैसा ही बर्ताव अब भी करोगे तो सुग्रीव तुम्हारा विशेष आदर नहीं करेंगे॥ २१॥

'शत्रुदमन अङ्गद! तुम इनके शत्रुओंका साथ मत दो। जो इनके मित्र न हों, उनसे भी न मिलो और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर सदा अपने स्वामी सुग्रीवके कार्य-साधनमें संलग्न रहते हुए उन्हींके अधीन रहो॥ २२॥

'किसीके साथ अत्यन्त प्रेम न करो और प्रेमका सर्वथा अभाव भी न होने दो; क्योंकि ये दोनों ही महान् दोष हैं। अत: मध्यम स्थितिपर ही दृष्टि रखो'॥ २३॥

ऐसा कहकर बाणके आघातसे अत्यन्त घायल हुए वालीकी आँखें घूमने लगीं। उसके भयंकर दाँत खुल गये और प्राण-पखेरू उड़ गये॥ २४॥

उस समय अपने यूथपतिकी मृत्यु हो जानेसे सभी श्रेष्ठ वानर जोर-जोरसे रोने और विलाप करने लगे—॥ २५॥

'हाय! आज वानरराज वालीके स्वर्गलोक चले जानेसे सारी किष्किन्धापुरी सूनी हो गयी। उद्यान, पर्वत और वन भी सूने हो गये॥ २६॥

'वानरश्रेष्ठ वालीके मारे जानेसे सारे वानर श्रीहीन हो गये। जिनके महान् वेग (प्रताप) से समस्त कानन और वन पुष्पसमूहोंसे सदा संयुक्त बने रहते थे, आज उनके न रहनेसे कौन ऐसा चमत्कारपूर्ण कार्य करेगा?॥

'उन्होंने महामना महाबाहु गोलभ नामक गन्धर्वको महान् युद्धका अवसर दिया था। वह युद्ध पंद्रह वर्षोंतक लगातार चलता रहा। न दिनमें बंद होता था, न रातमें॥ २९॥

'तदनन्तर सोलहवाँ वर्ष आरम्भ होनेपर गोलभ वालीके हाथसे मारा गया। उस दुष्ट गन्धर्वका वध करके जिन विकराल दाढ़ोंवाले वालीने हम सबको अभय दान दिया था, वे ही ये हमारे स्वामी वानरराज स्वयं कैसे मार गिराये गये?'॥ ३०॥

उस समय वीर वानरराज वालीके मारे जानेपर वनोंमें विचरनेवाले वानर वहाँ चैन न पा सके। जैसे सिंहसे युक्त विशाल वनमें साँड़के मारे जानेपर गौएँ दु:खी हो जाती हैं, वही दशा उन वानरोंकी हुई॥ ३१॥

तदनन्तर शोकके समुद्रमें डूबी हुई ताराने जब अपने मरे हुए स्वामीकी ओर दृष्टिपात किया, तब वह वालीका आलिङ्गन करके कटे हुए महान् वृक्षसे लिपटी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ सर्ग

ताराका विलाप

उस समय वानरराजका मुख सूँघती हुई लोकविख्यात ताराने रोकर अपने मृत पतिसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'वीर! दु:खकी बात है कि आपने मेरी बात नहीं मानी और अब आप प्रस्तरसे पूर्ण अत्यन्त दु:खदायक और ऊँचे-नीचे भूतलपर शयन कर रहे हैं॥ २॥

'वानरराज! निश्चय ही यह पृथ्वी आपको मुझसे भी बढ़कर प्रिय है, तभी तो आप इसका आलिङ्गन करके सो रहे हैं और मुझसे बाततक नहीं करते॥ ३॥

'वीर! साहसपूर्ण कार्योंसे प्रेम रखनेवाले वानरराज! यह श्रीरामरूपी विधाता सुग्रीवके वशमें हो गया है (—आपके नहीं) यह बड़े आश्चर्यकी बात है, अत: अब इस राज्यपर सुग्रीव ही पराक्रमी राजाके रूपमें आसीन होंगे॥ ४॥

'प्राणनाथ! प्रधान-प्रधान भालू और वानर जो आप महावीरकी सेवामें रहा करते थे, इस समय बड़े दु:खसे विलाप कर रहे हैं। बेटा अङ्गद भी शोकमें पड़ा है। उन वानरोंका दु:खमय विलाप, अङ्गदका शोकोद्गार तथा मेरी यह अनुनय-विनयभरी वाणी सुनकर भी आप जागते क्यों नहीं हैं?॥ ५½॥

'यही वह वीर-शय्या है, जिसपर पूर्वकालमें आपने ही बहुत-से शत्रुओंको मारकर सुलाया था, किंतु आज स्वयं ही युद्धमें मारे जाकर आप इसपर शयन कर रहे हैं॥ ६½॥

'विशुद्ध बलशाली कुलमें उत्पन्न युद्धप्रेमी तथा दूसरोंको मान देनेवाले मेरे प्रियतम! तुम मुझ अनाथाको अकेली छोड़कर कहाँ चले गये?॥ ७½॥

'निश्चय ही बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह अपनी कन्या किसी शूरवीरके हाथमें न दे। देखो, मैं शूरवीरकी पत्नी होनेके कारण तत्काल विधवा बना दी गयी और इस प्रकार सर्वथा मारी गयी॥ ८½॥

'राजरानी होनेका जो मेरा अभिमान था, वह भङ्ग हो गया। नित्य-निरन्तर सुख पानेकी मेरी आशा नष्ट

हो गयी तथा मैं अगाध एवं विशाल शोकसमुद्रमें डूब गयी हूँ॥ ९ १/२ ॥

'निश्चय ही यह मेरा कठोर हृदय लोहेका बना हुआ है। तभी तो अपने स्वामीको मारा गया देखकर इसके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते॥ १० १/२ ॥

'हाय! जो मेरे सुहृद्, स्वामी और स्वभावसे ही प्रिय थे तथा संग्राममें महान् पराक्रम प्रकट करनेवाले शूरवीर थे, वे संसारसे चल बसे॥ ११ १/२ ॥

'पतिहीन नारी भले ही पुत्रवती एवं धन-धान्यसे समृद्ध भी हो, किन्तु लोग उसे विधवा ही कहते हैं॥ १२ १/२ ॥

'वीर! अपने ही शरीरसे प्रकट हुई रक्तराशिमें आप उसी तरह शयन करते हैं, जैसे पहले इन्द्रगोप नामक कीड़ेके-से रंगवाले बिछौनेसे युक्त अपने पलंगपर सोया करते थे॥ १३ १/२ ॥

'वानरश्रेष्ठ! आपका सारा शरीर धूल और रक्तसे लथपथ हो रहा है; इसलिये मैं अपनी दोनों भुजाओंसे आपका आलिङ्गन नहीं कर पाती॥ १४ १/२ ॥

'इस अत्यन्त भयंकर वैरमें आज सुग्रीव कृतकृत्य हो गये। श्रीरामके छोड़े हुए एक ही बाणने उनका सारा भय हर लिया॥ १५ १/२ ॥

'आपकी छातीमें जो बाण धँसा हुआ है; वह मुझे आपके शरीरका आलिङ्गन करनेसे रोक रहा है, इस कारण आपकी मृत्यु हो जानेपर भी मैं चुपचाप देख रही हूँ (आपको हृदयसे लगा नहीं पाती)'॥ १६ १/२ ॥

उस समय नीलने वालीके शरीरमें धँसे हुए उस बाणको निकाला, मानो पर्वतकी कन्दरामें छिपे हुए प्रज्वलित मुखवाले विषधर सर्पको वहाँसे निकाला गया हो॥ १७ १/२ ॥

वालीके शरीरसे निकाले जाते हुए उस बाणकी कान्ति अस्ताचलके शिखरपर अवरुद्ध किरणोंवाले सूर्यकी प्रभाके समान जान पड़ती थी॥ १८ १/२ ॥

बाणके निकाल लिये जानेपर वालीके शरीरके सभी घावोंसे खूनकी धाराएँ गिरने लगीं, मानो किसी पर्वतसे लाल गेरूमिश्रित जलकी धाराएँ बह रही हों॥ १९ १/२ ॥

वालीका शरीर रणभूमिकी धूलसे भर गया था। उस समय तारा बाणसे आहत हुए अपने शूरवीर स्वामीके उस शरीरको पोंछती हुई उन्हें नेत्रोंके अश्रुजलसे सींचने लगी॥ २० १/२ ॥

अपने मारे गये पतिके सारे अङ्गोंको रक्तसे भीगा हुआ देख वालि-पत्नी ताराने अपने भूरे नेत्रोंवाले पुत्र अङ्गदसे कहा—॥ २१ १/२ ॥

'बेटा! देखो, तुम्हारे पिताकी अन्तिम अवस्था कितनी भयंकर है। ये इस समय पूर्व पापके कारण प्राप्त हुए वैरसे पार हो चुके हैं॥ २२ १/२ ॥

'वत्स! प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण गौर शरीरवाले तुम्हारे पिता राजा वाली अब यमलोकको जा पहुँचे। ये तुम्हें बड़ा आदर देते थे। तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करो'॥ २३ १/२ ॥

माताके ऐसा कहनेपर अङ्गदने उठकर अपनी मोटी और गोलाकार भुजाओंद्वारा पिताके दोनों पैर पकड़ लिये और प्रणाम करते हुए कहा—'पिताजी! मैं अङ्गद हूँ'॥ २४॥

तब तारा फिर कहने लगी— 'प्राणनाथ! कुमार अङ्गद पहलेकी ही भाँति आज भी आपके चरणोंमें प्रणाम करता है, किंतु आप इसे 'चिरंजीवी रहो बेटा' ऐसा कहकर आशीर्वाद क्यों नहीं देते हैं?॥ २५ १/२ ॥

'जैसे कोई बछड़ेसहित गाय सिंहके द्वारा तत्काल मार गिराये हुए साँड़के पास खड़ी हो, उसी प्रकार पुत्रसहित मैं प्राणहीन हुए आपकी सेवामें बैठी हूँ॥ २६॥

'आपने युद्धरूपी यज्ञका अनुष्ठान करके श्रीरामके बाणरूपी जलसे मुझ पत्नीके बिना अकेले ही अवभृथस्नान कैसे कर लिया?॥ २७॥

'युद्धमें आपसे संतुष्ट हुए देवराज इन्द्रने आपको जो सोनेकी प्रिय माला दे रखी थी, उसे मैं इस समय आपके गलेमें क्यों नहीं देखती हूँ?॥ २८॥

'दूसरोंको मान देनेवाले वानरराज! प्राणहीन हो जानेपर भी आपको राज्यलक्ष्मी उसी प्रकार नहीं छोड़ रही है, जैसे चारों ओर चक्कर लगानेवाले सूर्यदेवकी प्रभा गिरिराज मेरुको कभी नहीं छोड़ती है॥ २९॥

'मैंने आपके हितकी बात कही थी; परंतु आपने उसे नहीं स्वीकार किया। मैं भी आपको रोक रखनेमें समर्थ न हो सकी। इसका फल यह हुआ कि आप युद्धमें मारे गये। आपके मारे जानेसे मैं भी अपने पुत्रसहित मारी गयी। अब लक्ष्मी आपके साथ ही मुझे और मेरे पुत्रको भी छोड़ रही है'॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका शोकमग्न होकर श्रीरामसे प्राणत्यागके लिये आज्ञा माँगना, ताराका श्रीरामसे अपने वधके लिये प्रार्थना करना और श्रीरामका उसे समझाना

अत्यन्त वेगशाली और दु:सह शोकसमुद्रमें डूबी हुई ताराकी ओर दृष्टिपात करके वालीके छोटे भाई वेगवान् सुग्रीवको उस समय अपने भाईके वधसे बड़ा संताप हुआ॥ १॥

उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उनका मन खिन्न हो गया और वे भीतर-ही-भीतर कष्टका अनुभव करते हुए अपने भृत्योंके साथ धीरे-धीरे श्रीरामचन्द्रजीके पास गये॥ २॥

जिन्होंने धनुष ले रखा था, जिनमें धीरोदात्त नायकका स्वभाव विद्यमान था, जिनके बाण विषधर सर्पके समान भयंकर थे, जिनका प्रत्येक अङ्ग सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार उत्तम लक्षणोंसे लक्षित था तथा जो परम यशस्वी थे, वहाँ खड़े हुए उन श्रीरघुनाथजीके पास जाकर सुग्रीव इस प्रकार बोले—॥ ३॥

'नरेन्द्र! आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार यह काम कर दिखाया। इस कर्मका राज्य-लाभरूप फल भी प्रत्यक्ष ही है। किंतु राजकुमार! इससे मेरा जीवन निन्दनीय हो गया है। अत: अब मेरा मन सभी भोगोंसे निवृत्त हो गया॥ ४॥

'श्रीराम! राजा वालीके मारे जानेसे ये महारानी तारा अत्यन्त विलाप कर रही हैं। सारा नगर दु:खसे संतप्त होकर चीख रहा है तथा कुमार अङ्गदका जीवन भी संशयमें पड़ गया है। इन सब कारणोंसे अब राज्यमें मेरा मन नहीं लगता है॥ ५॥

'इक्ष्वाकुकुलके गौरव श्रीरघुनाथजी! भाईने मेरा बहुत अधिक तिरस्कार किया था, इसलिये क्रोध और अमर्षके कारण पहले मैंने उसके वधके लिये अनुमति दे दी थी; परंतु अब वानर-यूथपति वालीके मारे जानेपर मुझे बड़ा संताप हो रहा है। सम्भवत: जीवनभर यह संताप बना ही रहेगा॥ ६॥

'अपनी जातीय वृत्तिके अनुसार जैसे-तैसे जीवन-निर्वाह करते हुए उस श्रेष्ठ पर्वत ऋष्यमूकपर चिरकालतक रहना ही आज मैं अपने लिये कल्याणकारी समझता हूँ; किंतु अपने इस भाईका वध कराकर अब मुझे स्वर्गका भी राज्य मिल जाय तो मैं उसे अपने लिये श्रेयस्कर नहीं मानता हूँ॥ ७॥

'बुद्धिमान् महात्मा वालीने युद्धके समय मुझसे कहा था कि 'तुम चले जाओ, मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता'। श्रीराम! उनकी यह बात उन्हींके योग्य थी और मैंने जो आपसे कहकर उनका वध कराया, मेरा वह क्रूरतापूर्ण वचन और कर्म मेरे ही अनुरूप है॥ ८॥

'वीर रघुनन्दन! कोई कितना ही स्वार्थी क्यों न हो? यदि राज्यके सुख तथा भ्रातृ-वधसे होनेवाले दु:खकी प्रबलतापर विचार करेगा तो वह भाई होकर अपने महान् गुणवान् भाईका वध कैसे अच्छा समझेगा?॥ ९॥

'वालीके मनमें मेरे वधका विचार नहीं था; क्योंकि इससे उन्हें अपनी मान-प्रतिष्ठामें बट्टा लगनेका डर था। मेरी ही बुद्धिमें दुष्टता भरी थी, जिसके कारण मैंने अपने भाईके प्रति ऐसा अपराध कर डाला, जो उनके लिये घातक सिद्ध हुआ॥ १०॥

'जब वालीने मुझे एक वृक्षकी शाखासे घायल कर दिया और मैं दो घड़ीतक कराहता रहा, तब उन्होंने मुझे सान्त्वना देकर कहा—'जाओ, फिर मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा न करना'॥ ११॥

'उन्होंने भ्रातृभाव, आर्यभाव और धर्मकी भी रक्षा की है; परंतु मैंने केवल काम, क्रोध और वानरोचित चपलताका ही परिचय दिया है॥ १२॥

'मित्र! जैसे वृत्रासुरका वध करनेसे इन्द्र पापके भागी हुए थे, उसी प्रकार मैं भाईका वध कराकर ऐसे पापका भागी हुआ हूँ, जिसको करना तो दूर रहा, सोचना भी अनुचित है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये जो सर्वथा त्याज्य, अवाञ्छनीय तथा देखनेके भी अयोग्य है॥ १३॥

'इन्द्रके पापको तो पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियोंने स्वेच्छासे ग्रहण कर लिया था; परंतु मुझ-जैसे वानरके इस पापको कौन लेना चाहेगा? अथवा कौन ले सकेगा?॥ १४॥

'रघुनाथजी! अपने कुलका नाश करनेवाला ऐसा पापपूर्ण कर्म करके मैं प्रजाके सम्मानका पात्र नहीं रहा। राज्य पाना तो दूरकी बात है, मुझमें युवराज होनेकी भी योग्यता नहीं है॥ १५॥

'मैंने वह लोकनिन्दित पापकर्म किया है, जो नीच

पुरुषोंके योग्य तथा सम्पूर्ण जगत्को हानि पहुँचानेवाला है। जैसे वर्षाके जलका वेग नीची भूमिकी ओर जाता है, उसी प्रकार यह भ्रातृ-वधजनित महान् शोक सब ओरसे मुझपर ही आक्रमण कर रहा है॥ १६॥

'भाईका वध ही जिसके शरीरका पिछला भाग और पुच्छ है तथा उससे होनेवाला संताप ही जिसकी सूँड़, नेत्र, मस्तक और दाँत हैं, वह पापरूपी महान् मदमत्त गजराज नदीतटकी भाँति मुझपर ही आघात कर रहा है॥ १७॥

'नरेश्वर! रघुनन्दन! मैंने जो दुःसह पाप किया है, यह मेरे हृदयस्थित सदाचारको भी नष्ट कर रहा है। ठीक उसी तरह, जैसे आगमें तपाया जानेवाला मलिन सुवर्ण अपने भीतरके मलको नष्ट कर देता है॥ १८॥

'रघुनाथजी! मेरे ही कारण वालीका वध हुआ, जिससे इस अङ्गदका भी शोक-संताप बढ़ गया और इसीलिये इन महाबली वानर-यूथपतियोंका समुदाय अधमरा-सा जान पड़ता है॥ १९॥

'वीरवर! सुजन और वशमें रहनेवाला पुत्र तो मिल सकता है, परंतु अङ्गदके समान बेटा कहाँ मिलेगा? तथा ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ मुझे अपने भाईका सामीप्य मिल सके॥ २०॥

'अब वीरवर अङ्गद भी जीवित नहीं रह सकता। यदि जी सकता तो उसकी रक्षाके लिये उसकी माता भी जीवन धारण करती। वह बेचारी तो यों ही संतापसे दीन हो रही है, यदि पुत्र भी न रहा तो उसके जीवनका अन्त हो जायगा—यह बिलकुल निश्चित बात है॥ २१॥

'अतः मैं अपने भाई और पुत्रका साथ देनेकी इच्छासे प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगा। ये वानर वीर आपकी आज्ञामें रहकर सीताकी खोज करेंगे॥ २२॥

'राजकुमार! मेरी मृत्यु हो जानेपर भी आपका सारा कार्य सिद्ध हो जायगा। मैं कुलकी हत्या करनेवाला और अपराधी हूँ। अतः संसारमें जीवन धारण करनेके योग्य नहीं हूँ। इसलिये श्रीराम! मुझे प्राणत्याग करनेकी आज्ञा दीजिये'॥ २३॥

दुःखसे आतुर हुए सुग्रीवके, जो वालीके छोटे भाई थे, ऐसे वचन सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेमें समर्थ, रघुकुलके वीर भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। वे दो घड़ीतक मन-ही-मन दुःखका अनुभव करते रहे॥ २४॥

श्रीरघुनाथजी पृथ्वीके समान क्षमाशील और सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले हैं। उन्होंने उस समय अधिक उत्सुक होकर जब इधर-उधर बारंबार दृष्टि दौड़ायी, तब शोकमग्ना तारा उन्हें दिखायी दी, जो अपने स्वामीके लिये रो रही थी॥ २५॥

कपियोंमें सिंहके समान वीर वाली जिसके स्वामी एवं संरक्षक थे, जो वानरराज वालीकी रानी थी, जिसका हृदय उदार और नेत्र मनोहर थे, वह तारा उस समय अपने मृत पतिका आलिङ्गन करके पड़ी थी। श्रीरामको आते देख प्रधान-प्रधान मन्त्रियोंने ताराको वहाँसे उठाया॥ २६॥

तारा जब पतिके समीपसे हटायी जाने लगी, तब बारंबार उसका आलिङ्गन करती हुई वह अपनेको छुड़ाने और छटपटाने लगी। इतनेहीमें उसने अपने सामने धनुष-बाण धारण किये श्रीरामको खड़ा देखा, जो अपने तेजसे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २७॥

वे राजोचित शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे। उनके नेत्र बड़े मनोहर थे। उन पुरुषप्रवर श्रीरामको, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, देखकर मृगशावकनयनी तारा समझ गयी कि ये ही ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम हैं॥ २८॥

उस समय घोर संकटमें पड़ी हुई शोकपीड़ित आर्या तारा अत्यन्त विह्वल हो गिरती-पड़ती तीव्र गतिसे महेन्द्रतुल्य दुर्जय वीर महानुभाव भगवान् श्रीरामके समीप गयी॥ २९॥

शोकके कारण वह अपने शरीरकी भी सुध-बुध खो बैठी थी। भगवान् श्रीराम विशुद्ध अन्तःकरणवाले तथा युद्धस्थलमें सबसे अधिक निपुणताके कारण लक्ष्य बेधनेमें अचूक थे, उनके पास पहुँचकर वह मनस्विनी तारा इस प्रकार बोली—॥ ३०॥

'रघुनन्दन! आप अप्रमेय (देश, काल और वस्तुकी सीमासे रहित) हैं। आपको पाना बहुत कठिन है। आप जितेन्द्रिय तथा उत्तम धर्मका पालन करनेवाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती। आप दूरदर्शी एवं पृथ्वीके समान क्षमाशील हैं। आपकी आँखें कुछ-कुछ लाल हैं॥ ३१॥

'आपके हाथमें धनुष और बाण शोभा पा रहे हैं। आपका बल महान् है। आप सुदृढ़ शरीरसे सम्पन्न हैं और मनुष्य-शरीरसे प्राप्त होनेवाले लौकिक सुखका

परित्याग करके भी दिव्य शरीरके ऐश्वर्यसे युक्त हैं॥ ३२॥

('अत: मैं प्रार्थना करती हूँ कि) आपने जिस बाणसे मेरे प्रियतम पतिका वध किया है, उसी बाणसे आप मुझे भी मार डालिये। मैं मरकर उनके समीप चली जाऊँगी। वीर! मेरे बिना वाली कहीं भी सुखी नहीं रह सकेंगे॥ ३३॥

'अमलकमलदललोचन राम! स्वर्गमें जाकर भी जब वाली सब ओर दृष्टि डालनेपर मुझे नहीं देखेंगे, तब उनका मन वहाँ कदापि नहीं लगेगा; नाना प्रकारके लाल फूलोंसे विभूषित चोटी धारण करनेवाली तथा विचित्र वेशभूषासे मनोहर प्रतीत होनेवाली स्वर्गकी अप्सराओंको वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे॥ ३४॥

'वीरवर! स्वर्गमें भी वाली मेरे बिना शोकका अनुभव करेंगे और उनके शरीरकी कान्ति फीकी पड़ जायगी। वे उसी तरह दु:खी रहेंगे जैसे गिरिराज ऋष्यमूकके सुरम्य तट-प्रान्तमें विदेहनन्दिनी सीताके बिना आप कष्टका अनुभव करते हैं॥ ३५॥

'स्त्रीके बिना युवा पुरुषको जो दु:ख उठाना पड़ता है, उसे आप अच्छी तरह जानते हैं। इस तत्त्वको समझकर आप मेरा वध करिये, जिससे वालीको मेरे विरहका दु:ख न भोगना पड़े॥ ३६॥

'महाराजकुमार! आप महात्मा हैं, इसलिये यदि ऐसा चाहते हों कि मुझे स्त्री-हत्याका पाप न लगे तो 'यह वालीकी आत्मा है' ऐसा समझकर मेरा वध कीजिये। इससे आपको स्त्री-हत्याका पाप नहीं लगेगा॥ ३७॥

'शास्त्रोक्त यज्ञ-यागादि कर्मोंमें पति और पत्नी दोनोंका संयुक्त अधिकार होता है—पत्नीको साथ लिये बिना पुरुष यज्ञकर्मका अनुष्ठान नहीं कर सकता। इसके सिवा नाना प्रकारकी वैदिक श्रुतियाँ भी पत्नीको पतिका आधा शरीर बतलाती हैं। दूसरे स्त्रियोंका अपने पतिसे अभिन्न होना सिद्ध होता है। (अत: मुझे मारनेसे आपको स्त्रीवधका दोष नहीं लग सकता और वालीको स्त्रीकी प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि) संसारमें ज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्रीदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है॥ ३८॥

'वीरशिरोमणे! यदि धर्मकी ओर दृष्टि रखते हुए आप भी मुझे मेरे प्रियतम वालीको समर्पित कर देंगे तो इस दानके प्रभावसे मेरी हत्या करनेपर भी आपको पाप नहीं लगेगा॥ ३९॥

'मैं दु:खिनी और अनाथा हूँ। पतिसे दूर कर दी गयी हूँ। ऐसी दशामें मुझे जीवित छोड़ना आपके लिये उचित नहीं है। नरेन्द्र! मैं सुन्दर एवं बहुमूल्य श्रेष्ठ सुवर्णमालासे अलंकृत तथा गजराजके समान विलासयुक्त गतिसे चलनेवाले बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठ वालीके बिना अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकूँगी'॥ ४०॥

ताराके ऐसा कहनेपर महात्मा भगवान् श्रीरामने उसे आश्वासन देकर हितकी बात कही—'वीरपत्नी! तुम मृत्यु-विषयक विपरीत विचारका त्याग करो; क्योंकि विधाताने इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है॥ ४१॥

'विधाताने ही इस सारे जगत्को सुख-दु:खसे संयुक्त किया है। यह बात साधारणलोग भी कहते और जानते हैं। तीनों लोकोंके प्राणी विधाताके विधानका उल्लङ्घन नहीं कर सकते; क्योंकि सभी उसके अधीन हैं॥ ४२॥

'तुम्हें पहलेकी ही भाँति अत्यन्त सुख एवं आनन्दकी प्राप्ति होगी तथा तुम्हारा पुत्र युवराजपद प्राप्त करेगा। विधाताका ऐसा ही विधान है। शूरवीरोंकी स्त्रियाँ इस प्रकार विलाप नहीं करती हैं। (अत: तुम भी शोक छोड़कर शान्त हो जाओ)'॥ ४३॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले परम प्रभावशाली महात्मा श्रीरामके इस प्रकार सान्त्वना देनेपर सुन्दर वेश और रूपवाली वीरपत्नी तारा, जिसके मुखसे विलापकी ध्वनि निकलती रहती थी, चुप हो गयी—उसने रोना-धोना छोड़ दिया॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणसहित श्रीरामका सुग्रीव, तारा और अङ्गदको समझाना तथा वालीके दाह-संस्कारके लिये आज्ञा प्रदान करना, फिर तारा आदिसहित सब वानरोंका वालीके शवको श्मशानभूमिमें ले जाकर अङ्गदके द्वारा उसका दाह-संस्कार कराना और उसे जलाञ्जलि देना

लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव आदिके शोकसे उनके समान ही दुःखी थे। उन्होंने सुग्रीव, अङ्गद और ताराको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—॥ १॥

'शोक-संताप करनेसे मरे हुए जीवकी कोई भलाई नहीं होती। अतः अब आगे जो कुछ कर्तव्य है, उसको तुम्हें विधिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये॥ २॥

'तुम सब लोग बहुत आँसू बहा चुके। अब उसकी आवश्यकता नहीं है। लोकाचारका भी पालन होना चाहिये। समय बिताकर कोई भी विहित कर्म नहीं किया जा सकता (क्योंकि उचित समयपर न किया जाय तो उस कर्मका कोई फल नहीं होता)॥ ३॥

'जगत्में नियति (काल) ही सबका कारण है। वही समस्त कर्मोंका साधन है और काल ही समस्त प्राणियोंको विभिन्न कर्मोंमें नियुक्त करनेका कारण है (क्योंकि वही सबका प्रवर्तक है)॥ ४॥

'कोई भी पुरुष न तो स्वतन्त्रतापूर्वक किसी कामको कर सकता है और न किसी दूसरेको ही उसमें लगानेकी शक्ति रखता है। सारा जगत् स्वभावके अधीन है और स्वभावका आधार काल है॥ ५॥

'काल भी कालका (अपनी की हुई व्यवस्थाका) उल्लंघन नहीं कर सकता। वह काल कभी क्षीण नहीं होता। स्वभाव (प्रारब्धकर्म) को पाकर कोई भी उसका उल्लङ्घन नहीं करता॥ ६॥

'कालका किसीके साथ भाई-चारेका, मित्रताका अथवा जाति-बिरादरीका सम्बन्ध नहीं है। उसको वशमें करनेका कोई उपाय नहीं है तथा उसपर किसीका पराक्रम नहीं चल सकता। कारणस्वरूप भगवान् काल जीवके भी वशमें नहीं है॥ ७॥

'अतः साधुदर्शी विवेकी पुरुषको सब कुछ कालका ही परिणाम समझना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम भी कालक्रमसे ही प्राप्त होते हैं॥ ८॥

'(मेरे द्वारा मारे जानेके कारण) वानरराज वाली शरीरसे मुक्त हो अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त हुए हैं। नीतिशास्त्रके अनुकूल साम, दान और अर्थके समुचित प्रयोगसे मिलनेवाले जो पवित्र कर्म हैं, वे सभी उन्हें प्राप्त हो गये॥ ९॥

'महात्मा वालीने पहले अपने धर्मके संयोगसे जिसपर विजय पायी थी, उसी स्वर्गको इस समय युद्धमें प्राणोंकी रक्षा न करके उन्होंने अपने हाथमें कर लिया है॥ १०॥

'यही सर्वश्रेष्ठ गति है, जिसे वानरोंके सरदार वालीने प्राप्त किया है। अतः अब उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। इस समय तुम्हारे सामने जो कर्तव्य उपस्थित है, उसे पूरा करो'॥ ११॥

श्रीरामचन्द्रजीकी बात समाप्त होनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने, जिनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी थी, उन सुग्रीवसे नम्रतापूर्वक इस प्रकार कहा—॥

'सुग्रीव! अब तुम अङ्गद और ताराके साथ रहकर वालीके दाह-संस्कार-सम्बन्धी प्रेतकार्य करो॥ १३॥

'सेवकोंको आज्ञा दो—वे वालीके दाह-संस्कारके निमित्त प्रचुर मात्रामें सूखी लकड़ियाँ और दिव्य चन्दन ले आवें॥ १४॥

'अङ्गदका चित्त बहुत दुःखी हो गया है। इन्हें धैर्य बँधाओ। तुम अपने मनमें मूढ़ता न लाओ—किंकर्तव्यविमूढ़ न बनो; क्योंकि यह सारा नगर तुम्हारे ही अधीन है॥ १५॥

'अङ्गद पुष्पमाला, नाना प्रकारके वस्त्र, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ तथा अन्य सामान, जिनकी अभी आवश्यकता है, स्वयं ले आवें॥ १६॥

'तार! तुम शीघ्र जाकर वेगपूर्वक एक पालकी ले आओ; क्योंकि इस समय अधिक फुर्ती दिखानी चाहिये। ऐसे अवसरपर वही लाभदायक होती है॥ १७॥

'पालकीको उठाकर ले चलनेके योग्य जो बलवान् एवं समर्थ वानर हों, वे तैयार हो जायँ। वे ही वालीको यहाँसे श्मशानभूमिमें ले चलेंगे'॥ १८॥

सुग्रीवसे ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण अपने भाईके पास जाकर खड़े हो गये॥ १९॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर तारके मनमें हड़बड़ी मच गयी। वह शिबिका ले आनेके लिये शीघ्रतापूर्वक किष्किन्धा नामक गुफामें गया॥ २०॥

वहाँसे शिबिका ढोनेके योग्य शूरवीर वानरोंद्वारा कंधोंपर उठायी हुई उस शिबिकाको साथ लेकर तार फिर तुरंत ही लौट आया॥ २१॥

वह दिव्य पालकी रथके समान बनी हुई थी। उसके बीचमें राजाके बैठने योग्य उत्तम आसन था। उसमें शिल्पियोंद्वारा कृत्रिम पक्षी और वृक्ष बनाये गये थे, जो उस पालकीको विचित्र शोभासे सम्पन्न बना रहे थे॥ २२॥

वह शिबिका चित्रके रूपमें बने हुए पैदल सिपाहियोंसे भरी प्रतीत होती थी। उसकी निर्माणकला सब ओरसे बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी। देखनेमें वह सिद्धोंके विमान-सी प्रतीत होती थी। उसमें कई खिड़कियाँ बनी थीं, जिनमें जालियाँ लगी हुई थीं॥ २३॥

कारीगरोंने उस पालकीको बहुत सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया था। उसका एक-एक भाग बड़ा सुघड़ बनाया गया था। आकारमें वह बहुत बड़ी थी। उसमें लकड़ियोंके क्रीडा-पर्वत बने हुए थे। वह मनोहर शिल्प-कर्मसे सुशोभित थी॥ २४॥

सुन्दर आभूषण और हारोंसे उसको सजाया गया था। विचित्र फूलोंसे उसकी शोभा बढ़ायी गयी थी। शिल्पियोंद्वारा निर्मित गुफा और वनसे वह संयुक्त थी तथा लाल चन्दनद्वारा उसे विभूषित किया गया था॥ २५॥

नाना प्रकारके पुष्पसमूहोंद्वारा वह सब ओरसे आच्छादित थी तथा प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण कान्तिवाली दीप्तिमती पद्ममालाओंसे अलंकृत थी॥ २६॥

ऐसी पालकीका अवलोकन करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी ओर देखते हुए कहा—'अब वालीको शीघ्र ही यहाँसे श्मशानभूमिमें ले जाया जाय और उनका प्रेतकार्य किया जाय'॥ २७॥

तब अङ्गदके साथ करुण-क्रन्दन करते हुए सुग्रीवने वालीके शवको उठाकर उस शिबिकामें रखा॥ २८॥

मृत वालीको शिबिकामें चढ़ाकर उन्हें नाना प्रकारके अलंकारों, फूलोंके गजरों और भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे विभूषित किया॥ २९॥

तदनन्तर वानरोंके स्वामी राजा सुग्रीवने आज्ञा दी कि 'मेरे बड़े भाईका और्ध्वदेहिक संस्कार शास्त्रानुकूल विधिसे सम्पन्न किया जाय॥ ३०॥

'आगे-आगे बहुत-से वानर नाना प्रकारके बहुसंख्यक रत्न लुटाते हुए चलें। उनके पीछे शिबिका चले॥ ३१॥

'इस भूतलपर राजाओंके और्ध्वदेहिक संस्कार उनकी बढ़ी हुई समृद्धिके अनुसार जैसे धूमधामसे होते देखे जाते हैं, उसी प्रकार अधिक धन लगाकर सब वानर अपने स्वामी महाराज वालीका अन्त्येष्टि-संस्कार करें'॥ ३२॥

तब तार आदि वानरोंने वालीके और्ध्वदेहिक संस्कारका शीघ्र वैसा ही आयोजन किया। जिनके बान्धव वाली मारे गये थे, वे सब-के-सब वानर अङ्गदको हृदयसे लगाकर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे रोते हुए शवके साथ चले॥ ३३½॥

उनके पीछे वालीके अधीन रहनेवाली सभी वानर-पत्नियाँ समीप आकर 'हा वीर, हा वीर' कहती हुई अपने प्रियतमको पुकार-पुकारकर बारंबार रोने-चिल्लाने लगीं॥ ३४½॥

जिनके जीवनधनका वध किया गया था, वे तारा आदि सब वानरियाँ करुणस्वरसे विलाप करती हुई अपने स्वामीके पीछे-पीछे चलने लगीं॥ ३५½॥

वनके भीतर रोती हुई उन वानर वधुओंके रोदन-शब्दसे गूँजते हुए वन और पर्वत भी सब ओर रोते हुए-से प्रतीत होते थे॥ ३६½॥

पहाड़ी* नदी तुङ्गभद्राके एकान्त तटपर जो जलसे घिरा था, पहुँचकर बहुत-से वनचारी वानरोंने एक चिता तैयार की॥ ३७½॥

तदनन्तर पालकी ढोनेवाले श्रेष्ठ वानरोंने उसे अपने कंधेसे उतारा और वे सब शोकमग्न हो एकान्त स्थानमें जा बैठे॥ ३८½॥

तत्पश्चात् ताराने शिबिकामें सुलाये हुए अपने पतिके शवको देखकर उनके मस्तकको अपनी गोदमें ले लिया और अत्यन्त दु:खी होकर वह विलाप करने लगी॥ ३९½॥

'हा वानरोंके महाराज! हा मेरे दयालु प्राणनाथ! हा परम पूजनीय महाबाहु वीर! हा मेरे प्रियतम! एक

* यह नदी सह्यपर्वतसे निकलकर किष्किन्धाकी पर्वत-मालाओंके बीचसे बहती हुई कृष्णा नदीमें जा मिली है।

बार मेरी ओर देखो तो सही। इस शोकपीड़ित दासीकी ओर तुम दृष्टिपात क्यों नहीं करते हो?॥ ४०-४१॥

'दूसरोंको मान देनेवाले प्राणवल्लभ! प्राणोंके निकल जानेपर भी तुम्हारा मुख जीवित अवस्थाकी भाँति अस्ताचलवर्ती सूर्यके समान अरुण प्रभासे युक्त एवं प्रसन्न ही दिखायी देता है॥ ४२॥

'वानरराज! श्रीरामके रूपमें यह काल ही तुम्हें खींचकर लिये जा रहा है, जिसने युद्धके मैदानमें एक ही बाण मारकर हम सबको विधवा बना दिया॥ ४३॥

'महाराज! ये तुम्हारी प्यारी वानरियाँ, जो वानरोंकी भाँति उछलकर चलना नहीं जानती हैं, तुम्हारे पीछे-पीछे बहुत दूरके मार्गपर पैदल ही चली आयी हैं। इस बातको क्या तुम नहीं जानते?॥ ४४॥

'वानरराज! जो तुम्हें परम प्रिय थीं वे तुम्हारी सभी चन्द्रमुखी भार्याएँ यहाँ उपस्थित हैं। तुम इन सबको तथा अपने भाई सुग्रीवको भी इस समय क्यों नहीं देख रहे हो?॥ ४५॥

'राजन्! ये तार आदि तुम्हारे सचिव तथा ये पुरवासीजन तुम्हें चारों ओरसे घेरकर दु:खी हो रहे हैं॥

'शत्रुदमन! आप पहलेकी भाँति इन मन्त्रियोंको बिदा कर दीजिये। फिर हम सब प्रेमोन्मत्त होकर इन वनोंमें आपके साथ क्रीडा करेंगी'॥ ४७॥

पतिके शोकमें डूबी हुई ताराको इस प्रकार विलाप करती देख उस समय शोकसे दुर्बल हुई अन्य वानरियोंने उसे उठाया॥ ४८॥

इसके बाद संतापपीड़ित इन्द्रियोंवाले अङ्गदने रोते-रोते सुग्रीवकी सहायतासे पिताको चितापर रखा॥ ४९॥

फिर शास्त्रीय विधिके अनुसार उसमें आग लगाकर उन्होंने उसकी प्रदक्षिणा की। इसके बाद यह सोचकर कि 'मेरे पिता लंबी यात्राके लिये प्रस्थित हुए हैं' अङ्गदकी सारी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठीं॥ ५०॥

इस प्रकार विधिवत् वालीका दाह-संस्कार करके सभी वानर जलाञ्जलि देनेके लिये पवित्र जलसे भरी हुई कल्याणमयी तुङ्गभद्रा नदीके तटपर आये॥ ५१॥

वहाँ अङ्गदको आगे रखकर सुग्रीव और तारासहित सभी वानरोंने वालीके लिये एक साथ जलाञ्जलि दी॥ ५२॥

दु:खी हुए सुग्रीवके साथ ही उन्हींके समान शोकग्रस्त एवं दु:खी हो महाबली श्रीरामने वालीके समस्त प्रेतकार्य करवाये॥ ५३॥

इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशशिरोमणि श्रीरामके बाणसे मारे गये श्रेष्ठ पराक्रमी और प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी सुविख्यात वालीका दाह-संस्कार करके सुग्रीव उस समय लक्ष्मणसहित श्रीरामके पास आये॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका सुग्रीवके अभिषेकके लिये श्रीरामचन्द्रजीसे किष्किन्धामें पधारनेकी प्रार्थना, श्रीरामका पुरीमें न जाकर केवल अनुमति देना, तत्पश्चात् सुग्रीव और अङ्गदका अभिषेक

तदनन्तर वानरसेनाके प्रधान-प्रधान वीर (हनुमान् आदि) भीगे वस्त्रवाले शोक-संतप्त सुग्रीवको चारों ओरसे घेरकर उन्हें साथ लिये अनायास ही महान् कर्म करनेवाले महाबाहु श्रीरामकी सेवामें उपस्थित हुए। श्रीरामके पास आकर वे सभी वानर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये, जैसे ब्रह्माजीके सम्मुख महर्षिगण खड़े रहते हैं॥ १-२॥

तत्पश्चात् सुवर्णमय मेरु पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल शरीरवाले वायुपुत्र हनुमान्‌जी, जिनका मुख प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे प्रकाशित हो रहा था, दोनों हाथ जोड़कर बोले—॥ ३॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! आपकी कृपासे सुग्रीवको सुन्दर दाढ़वाले पूर्ण बलशाली और महामनस्वी वानरोंका यह विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ, जो इनके बाप-दादोंके समयसे चला आ रहा है। प्रभो! यद्यपि इसका मिलना बहुत ही कठिन था तो भी आपके प्रसादसे यह इन्हें सुलभ हो गया। अब यदि आप आज्ञा दें तो ये अपने सुन्दर नगरमें प्रवेश करके सुहृदोंके साथ अपना सब राजकार्य सँभालें॥ ४-५ $\frac{1}{2}$॥

'ये शास्त्रविधिके अनुसार नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थों और ओषधियोंसहित जलसे राज्यपर अभिषिक्त होकर मालाओं तथा रत्नोंद्वारा आपकी विशेष पूजा करेंगे। अत: आप इस रमणीय पर्वत-गुफा किष्किन्धामें पधारनेकी कृपा करें और इन्हें इस राज्यका स्वामी

बनाकर वानरोंका हर्ष बढ़ावें'॥ ६-७½ ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले तथा बातचीतमें कुशल बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने उन्हें यों उत्तर दिया—॥ ८½ ॥

'हनुमन्! सौम्य! मैं पिताकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ, अत: चौदह वर्षोंके पूर्ण होनेतक किसी ग्राम या नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा॥ ९½ ॥

'वानरश्रेष्ठ वीर सुग्रीव इस समृद्धिशालिनी दिव्य गुफामें प्रवेश करें और वहाँ शीघ्र ही इनका विधिपूर्वक राज्याभिषेक कर दिया जाय'॥ १०½ ॥

हनुमान्‌से ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवसे बोले—'मित्र! तुम लौकिक और शास्त्रीय सभी व्यवहार जानते हो। कुमार अङ्गद सदाचारसम्पन्न तथा महान् बल-पराक्रमसे परिपूर्ण हैं। इनमें वीरता कूट-कूटकर भरी है, अत: तुम इनको भी युवराजके पदपर अभिषिक्त करो॥ ११-१२॥

'ये तुम्हारे बड़े भाईके ज्येष्ठ पुत्र हैं। पराक्रममें भी उन्हींके समान हैं तथा इनका हृदय उदार है। अत: अङ्गद युवराजपदके सर्वथा अधिकारी हैं॥ १३॥

'सौम्य! वर्षा कहलानेवाले चार मास या चौमासे आ गये। इनमें पहला मास यह श्रावण, जो जलकी प्राप्ति करानेवाला है, आरम्भ हो गया॥ १४॥

'सौम्य! यह किसीपर चढ़ाई करनेका समय नहीं है। इसलिये तुम अपनी सुन्दर नगरीमें जाओ। मैं लक्ष्मणके साथ इस पर्वतपर निवास करूँगा॥ १५॥

'सौम्य सुग्रीव! यह पर्वतीय गुफा बड़ी रमणीय और विशाल है। इसमें आवश्यकताके अनुरूप हवा भी मिल जाती है। यहाँ पर्याप्त जल भी सुलभ है और कमल तथा उत्पल भी बहुत हैं॥ १६॥

'सखे! कार्तिक आनेपर तुम रावणके वधके लिये प्रयत्न करना। यही हमलोगोंका निश्चय रहा। अब तुम अपने महलमें प्रवेश करो और राज्यपर अभिषिक्त होकर सुहृदोंको आनन्दित करो'॥ १७½ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव उस रमणीय किष्किन्धापुरीमें गये, जिसकी रक्षा वालीने की थी॥ १८½ ॥

उस समय गुफामें प्रविष्ट हुए उन वानरराजको चारों ओरसे घेरकर हजारों वानर उनके साथ ही गुहामें घुसे॥ १९½ ॥

वानरराजको देखकर प्रजा आदि समस्त प्रकृतियोंने एकाग्रचित्त हो पृथ्वीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया॥

महाबली पराक्रमी सुग्रीवने उन सबको उठनेकी आज्ञा दी और उन सबसे बातचीत करके वे भाईके सौम्य अन्त:पुरमें प्रविष्ट हुए॥ २१½ ॥

भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको अन्त:पुरमें आया देख उनके सुहृदोंने उनका उसी प्रकार अभिषेक किया, जैसे देवताओंने सहस्र नेत्रधारी इन्द्रका किया था॥ २२½ ॥

पहले तो वे सब लोग उनके लिये सुवर्णभूषित श्वेत छत्र, सोनेकी डाँड़ीवाले दो सफेद चँवर, सब प्रकारके रत्न, बीज और ओषधियाँ, दूधवाले वृक्षोंकी नीचे लटकनेवाली जटाएँ, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र, श्वेत अनुलेपन, जल और थलमें होनेवाले सुगन्धित फूलोंकी मालाएँ, दिव्य चन्दन, नाना प्रकारके बहुत-से सुगन्धित पदार्थ, अक्षत, सोना, प्रियङ्गु (कगनी), मधु, घी, दही, व्याघ्रचर्म, सुन्दर एवं बहुमूल्य जूते, अङ्गराग, गोरोचन और मैनसिल आदि सामग्री लेकर वहाँ उपस्थित हुए, साथ ही हर्षसे भरी हुई सोलह सुन्दरी कन्याएँ भी सुग्रीवके पास आयीं॥ २३—२८॥

तदनन्तर उन सबने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र और भक्ष्य पदार्थोंसे संतुष्ट करके वानरश्रेष्ठ सुग्रीवका विधिपूर्वक अभिषेक-कार्य आरम्भ किया॥ २९॥

मन्त्रवेत्ता पुरुषोंने वेदीपर अग्निकी स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया और अग्निवेदीके चारों ओर कुश बिछाये। फिर अग्निका संस्कार करके मन्त्रपूत हविष्यके द्वारा प्रज्वलित अग्निमें आहुति दी॥ ३०॥

तत्पश्चात् रंग-बिरंगी पुष्पमालाओंसे सुशोभित रमणीय अट्टालिकापर एक सोनेका सिंहासन रखा गया और उसपर सुन्दर बिछौना बिछाकर उसके ऊपर सुग्रीवको पूर्वाभिमुख करके विधिवत् मन्त्रोच्चारण करते हुए बिठाया गया॥ ३१½ ॥

इसके बाद श्रेष्ठ वानरोंने नदियों, नदों, सम्पूर्ण दिशाओंके तीर्थों और समस्त समुद्रोंसे लाये हुए निर्मल जलको एकत्र करके उसे सोनेके कलशोंमें रखा। फिर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान्‌ने महर्षियोंकी बतायी हुई शास्त्रोक्त विधिके अनुसार सुवर्णमय कलशोंमें रखे हुए स्वच्छ और सुगन्धित जलसे साँड़के सींगोंद्वारा सुग्रीवका उसी प्रकार अभिषेक किया, जैसे वसुओंने इन्द्रका अभिषेक किया था॥ ३२—३६½ ॥

सुग्रीवका अभिषेक हो जानेपर वहाँ लाखोंकी संख्यामें एकत्र हुए समस्त महामनस्वी श्रेष्ठ वानर हर्षसे भरकर जयघोष करने लगे॥ ३७॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करते हुए वानरराज सुग्रीवने अङ्गदको हृदयसे लगाकर उन्हें भी युवराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया॥ ३८॥

अङ्गदका अभिषेक हो जानेपर महामनस्वी दयालु वानर 'साधु-साधु' कहकर सुग्रीवकी सराहना करने लगे॥

इस प्रकार अभिषेक होकर किष्किन्धामें सुग्रीव और अङ्गदके विराजमान होनेपर समस्त वानर परम प्रसन्न हो महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणकी बारंबार स्तुति करने लगे॥ ४०॥

उस समय पर्वतकी गुफामें बसी हुई किष्किन्धापुरी हृष्ट-पुष्ट पुरवासियोंसे व्याप्त तथा ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित होनेके कारण बड़ी रमणीय प्रतीत होती थी॥

वानरसेनाके स्वामी पराक्रमी सुग्रीवने महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर अपने महाभिषेकका समाचार निवेदन किया और अपनी पत्नी रुमाको पाकर उन्होंने उसी प्रकार वानरोंका साम्राज्य प्राप्त किया, जैसे देवराज इन्द्रने त्रिलोकीका॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

प्रस्रवणगिरिपर श्रीराम और लक्ष्मणकी परस्पर बातचीत

जब वानर सुग्रीवका राज्याभिषेक हो गया और वे किष्किन्धामें जाकर रहने लगे, उस समय अपने भाई लक्ष्मणके साथ श्रीरामजी प्रस्रवणगिरिपर चले गये॥ १॥

वहाँ चीतों और मृगोंकी आवाज गूँजती रहती थी। भयंकर गर्जना करनेवाले सिंहोंसे वह स्थान भरा था। नाना प्रकारकी झाड़ियाँ और लताएँ उस पर्वतको आच्छादित किये हुए थीं और घने वृक्षोंके द्वारा वह सब ओरसे व्याप्त था॥ २॥

रीछ, वानर, लंगूर और बिलाव आदि जन्तु वहाँ निवास करते थे। वह पर्वत मेघोंके समूह-सा जान पड़ता था। दर्शन करनेवाले लोगोंके लिये वह सदा ही मङ्गलमय और पवित्रकारक था॥ ३॥

उस पर्वतके शिखरपर एक बहुत बड़ी और विस्तृत गुफा थी। लक्ष्मणसहित श्रीरामने उसीका अपने रहनेके लिये आश्रय लिया॥ ४॥

रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले निष्पाप श्रीरामचन्द्रजी वर्षाका अन्त होनेपर सुग्रीवके साथ रावणपर चढ़ाई करनेका निश्चय करके वहाँ आये थे। उन्होंने लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाले अपने विनययुक्त भ्राता लक्ष्मणसे यह समयोचित बात कही—॥ ५½॥

'शत्रुदमन सुमित्राकुमार! यह पर्वतकी गुफा बड़ी ही सुन्दर और विशाल है। यहाँ हवाके आने-जानेका भी मार्ग है। हमलोग वर्षाकी रातमें इसी गुफाके भीतर निवास करेंगे॥ ६½॥

'राजकुमार! पर्वतका यह शिखर बहुत ही उत्तम और रमणीय है। सफेद, काले और लाल हर तरहके प्रस्तर-खण्ड इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं॥ ७½॥

'यहाँ नाना प्रकारके धातुओंकी खानें हैं। पास ही नदी बहती है। उसमें रहनेवाले मेढक यहाँ भी उछलते-कूदते चले आते हैं। नाना प्रकारके वृक्ष-समूह इसकी शोभा बढ़ाते हैं। सुन्दर और विचित्र लताओंसे यह शैल-शिखर हरा-भरा दिखायी देता है। भाँति-भाँतिके पक्षी यहाँ चहक रहे हैं तथा सुन्दर मोरोंकी मीठी बोली गूँज रही है॥ ८-९॥

'मालती और कुन्दकी झाड़ियाँ, सिन्दुवार, शिरीष, कदम्ब, अर्जुन और सर्जके फूले हुए वृक्ष इस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं॥ १०॥

'राजकुमार! यह पुष्करिणी खिले हुए कमलोंसे अलंकृत हो बड़ी रमणीय दिखायी देती है। यह हमलोगोंकी गुफासे अधिक दूर नहीं होगी॥ ११॥

'सौम्य! यहाँका स्थान ईशानकोणकी ओरसे नीचा है, अत: यहाँ यह गुफा हमारे निवासके लिये बहुत अच्छी रहेगी। पश्चिम-दक्षिणके कोणकी ओरसे ऊँची यह गुफा हवा और वर्षासे बचानेके लिये अच्छी होगी*॥ १२॥

* ईशानकोणकी ओर नीची तथा नैर्ऋत्यकोणकी ओरसे ऊँची होनेसे उसका द्वार नैर्ऋत्यकोणकी ओर था—यह प्रतीत होता है, इससे उसमें पूर्वी हवा और उधरसे आनेवाली वर्षाका प्रवेश नहीं था।

'सुमित्रानन्दन! इस गुफाके द्वारपर समतल शिला है, जो बाहर बैठनेके लिये सुविधाजनक होनेके कारण सुखदायिनी है। यह लंबी-चौड़ी होनेके साथ ही खानसे काटकर निकाले हुए कोयलोंकी राशिके समान काली है॥ १३॥

'तात! देखो, यह सुन्दर पर्वत-शिखर उत्तरकी ओरसे कटे हुए कोयलोंकी राशि तथा घुमड़े हुए मेघोंकी घटाके समान काला दिखायी देता है॥ १४॥

'इसी तरह दक्षिण दिशामें भी इसका जो शिखर है, वह श्वेत वस्त्र और कैलास-शृङ्गके समान श्वेत दिखायी देता है। नाना प्रकारकी धातुएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं॥ १५॥

'वह देखो, इस गुफाके दूसरी ओर त्रिकूट पर्वतके समीप बहनेवाली मन्दाकिनीके समान तुङ्गभद्रा नदी बह रही है। उसकी धारा पश्चिमसे पूर्वकी ओर जा रही है। उसमें कीचड़का नाम भी नहीं है॥ १६॥

'चन्दन, तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल और शोक आदि नाना प्रकारके वृक्षोंसे उस नदीकी कैसी शोभा हो रही है?॥ १७॥

'जलबेंत, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, स्थलबेंत, कृतमाल (अमिलतास) आदि भाँति-भाँतिके तटवर्ती वृक्षोंसे जहाँ-तहाँ सुशोभित हुई यह नदी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शृङ्गारसज्जित युवती स्त्रीके समान जान पड़ती है॥ १८-१९॥

'सैकड़ों पक्षिसमूहोंसे संयुक्त हुई यह नदी उनके नाना प्रकारके कलरवोंसे गूँजती रहती है। परस्पर अनुरक्त हुए चक्रवाक इस सरिताकी शोभा बढ़ाते हैं॥

'अत्यन्त रमणीय तटोंसे अलंकृत, नाना प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न तथा हंस और सारसोंसे सेवित यह नदी अपनी हास्यच्छटा बिखेरती हुई-सी जान पड़ती है॥ २१॥

'कहीं तो यह नील कमलोंसे ढकी हुई है, कहीं लाल कमलोंसे सुशोभित होती है और कहीं श्वेत एवं दिव्य कुमुदकलिकाओंसे शोभा पाती है॥ २२॥

'सैकड़ों जल-पक्षियोंसे सेवित तथा मोर एवं क्रौञ्चके कलरवोंसे मुखरित हुई यह सौम्य नदी बड़ी रमणीय प्रतीत होती है। मुनियोंके समुदाय इसके जलका सेवन करते हैं॥ २३॥

'वह देखो, अर्जुन और चन्दन वृक्षोंकी पंक्तियाँ कितनी सुन्दर दिखायी देती हैं। मालूम होता है ये मनके संकल्पके साथ ही प्रकट हो गयी हैं॥ २४॥

'शत्रुसूदन सुमित्राकुमार! यह स्थान अत्यन्त रमणीय और अद्भुत है। यहाँ हमलोगोंका मन खूब लगेगा। अतः यहीं रहना ठीक होगा॥ २५॥

'राजकुमार! विचित्र काननोंसे सुशोभित सुग्रीवकी रमणीय किष्किन्धापुरी भी यहाँसे अधिक दूर नहीं होगी॥

'विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मण! मृदङ्गकी मधुर ध्वनिके साथ गर्जते हुए वानरोंके गीत और वाद्यका गम्भीर घोष यहाँसे सुनायी देता है॥ २७॥

'निश्चय ही कपिश्रेष्ठ सुग्रीव अपनी पत्नीको पाकर, राज्यको हस्तगत करके और बड़ी भारी लक्ष्मीपर अधिकार प्राप्त करके सुहृदोंके साथ आनन्दोत्सव मना रहे हैं'॥ २८॥

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ उस प्रस्रवण पर्वतपर जहाँ बहुत-सी कन्दराओं और कुञ्जोंके दर्शन होते थे, निवास करने लगे॥ २९॥

यद्यपि उस पर्वतपर परम सुख प्रदान करनेवाले बहुत-से फल-फूल आदि आवश्यक पदार्थ थे, तथापि राक्षसद्वारा हरी गयी प्राणोंसे भी बढ़कर आदरणीय सीताका स्मरण करते हुए भगवान् श्रीरामको वहाँ तनिक भी सुख नहीं मिलता था॥ ३०½॥

विशेषतः उदयाचलपर उदित हुए चन्द्रदेवका दर्शन करके रातमें शय्यापर लेट जानेपर भी उन्हें नींद नहीं आती थी॥ ३१½॥

सीताके वियोगजनित शोकसे आँसू बहाते हुए वे अचेत हो जाते थे। श्रीरामको निरन्तर शोकमग्न रहकर चिन्ता करते देख उनके दुःखमें समानरूपसे भाग लेनेवाले भाई लक्ष्मणने उनसे विनयपूर्वक कहा—॥ ३२-३३॥

'वीर! इस प्रकार व्यथित होनेसे कोई लाभ नहीं है। अतः आपको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक करनेवाले पुरुषके सभी मनोरथ नष्ट हो जाते हैं, यह बात आपसे छिपी नहीं है॥ ३४॥

'रघुनन्दन! आप जगत्‌में कर्मठ-वीर तथा देवताओंका समादर करनेवाले हैं। आस्तिक, धर्मात्मा और उद्योगी हैं॥ ३५॥

'यदि आप शोकवश उद्यम छोड़ बैठते हैं तो पराक्रमके स्थानस्वरूप समराङ्गणमें कुटिल कर्म करनेवाले उस शत्रुका, जो विशेषतः राक्षस है, वध करनेमें समर्थ न हो सकेंगे॥ ३६॥

'अतः आप अपने शोकको जड़से उखाड़ फेंकिये

और उद्योगके विचारको सुस्थिर कीजिये। तभी आप परिवारसहित उस राक्षसका विनाश कर सकते हैं॥ ३७॥

'काकुत्स्थ! आप तो समुद्र, वन और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको भी उलट सकते हैं; फिर उस रावणका संहार करना आपके लिये कौन बड़ी बात है?॥ ३८॥

'यह वर्षाकाल आ गया है। अब शरद्-ऋतुकी प्रतीक्षा कीजिये। फिर राज्य और सेनासहित रावणका वध कीजियेगा॥ ३९॥

'जैसे राखमें छिपी हुई आगको हवनकालमें आहुतियोंद्वारा प्रज्वलित किया जाता है, उसी प्रकार मैं आपके सोये हुए पराक्रमको जगा रहा हूँ—भूले हुए बल-विक्रमकी याद दिला रहा हूँ'॥ ४०॥

लक्ष्मणके इस शुभ एवं हितकर वचनकी सराहना करके श्रीरघुनाथजीने अपने स्नेही सुहृत् सुमित्राकुमारसे इस प्रकार कहा—॥ ४१॥

'लक्ष्मण! अनुरागी, स्नेही, हितैषी और सत्यपराक्रमी वीरको जैसी बात कहनी चाहिये वैसी ही तुमने कही है॥ ४२॥

'लो, सब तरहके काम बिगाड़नेवाले शोकको मैंने त्याग दिया। अब मैं पराक्रमविषयक दुर्धर्ष तेजको प्रोत्साहित करता हूँ (बढ़ाता हूँ)॥ ४३॥

'तुम्हारी बात मान लेता हूँ। सुग्रीवके प्रसन्न होकर सहायता करने और नदियोंके जलके स्वच्छ होनेकी बाट देखता हुआ मैं शरत्-कालकी प्रतीक्षा करूँगा॥ ४४॥

'जो वीर पुरुष किसीके उपकारसे उपकृत होता है, वह प्रत्युपकार करके उसका बदला अवश्य चुकाता है, किंतु यदि कोई उपकारको न मानकर या भुलाकर प्रत्युपकारसे मुँह मोड़ लेता है, वह शक्तिशाली श्रेष्ठ पुरुषोंके मनको ठेस पहुँचाता है॥ ४५॥

'श्रीरामजीके उस कथनको ही युक्तियुक्त मानकर लक्ष्मणने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और दोनों हाथ जोड़कर अपनी शुभ दृष्टिका परिचय देते हुए वे नयनाभिराम श्रीरामसे इस प्रकार बोले—॥ ४६॥

'नरेश्वर! जैसा कि आपने कहा है, वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही आपका यह सारा मनोरथ सिद्ध करेंगे। अतः आप शत्रुके संहार करनेका दृढ़ निश्चय लिये शरत्कालकी प्रतीक्षा कीजिये और इस वर्षाकालके विलम्बको सहन कीजिये॥ ४७॥

'क्रोधको काबूमें रखकर शरत्कालकी राह देखिये। बरसातके चार महीनोंतक जो भी कष्ट हो, उसे सहन कीजिये तथा शत्रुवधमें समर्थ होनेपर भी इस वर्षाकालको व्यतीत करते हुए मेरे साथ इस सिंहसेवित पर्वतपर निवास कीजिये'॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा वर्षा-ऋतुका वर्णन

इस प्रकार वालीका वध और सुग्रीवका राज्याभिषेक करनेके अनन्तर माल्यवान् पर्वतके पृष्ठभागमें निवास करते हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहने लगे—॥ १॥

'सुमित्रानन्दन! अब यह जलकी प्राप्ति करानेवाला वह प्रसिद्ध वर्षाकाल आ गया। देखो, पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले मेघोंसे आकाशमण्डल आच्छन्न हो गया है॥ २॥

'यह आकाशस्वरूपा तरुणी सूर्यकी किरणोंद्वारा समुद्रोंका रस पीकर कार्तिक आदि नौ मासोंतक धारण किये हुए गर्भके रूपमें जलरूपी रसायनको जन्म दे रही है॥ ३॥

'इस समय मेघरूपी सोपानपंक्तियों (सीढ़ियों) द्वारा आकाशमें चढ़कर गिरिमल्लिका और अर्जुनपुष्पकी मालाओंसे सूर्यदेवको अलंकृत करना सरल-सा हो गया है॥ ४॥

'संध्याकालकी लाली प्रकट होनेसे बीचमें लाल तथा किनारेके भागोंमें श्वेत एवं स्निग्ध प्रतीत होनेवाले मेघखण्डोंसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है, मानो उसने अपने घावमें रक्तरञ्जित सफेद कपड़ोंकी पट्टी बाँध रखी हो॥ ५॥

'मन्द-मन्द हवा निःश्वास-सी प्रतीत होती है, संध्याकालकी लाली लाल चन्दन बनकर ललाट आदि अङ्गोंको अनुरञ्जित कर रही है तथा मेघरूपी कपोल कुछ-कुछ पाण्डुवर्णका प्रतीत होता है। इस तरह यह आकाश कामातुर पुरुषके समान जान पड़ता है॥ ६॥

'जो ग्रीष्म-ऋतुमें घामसे तप गयी थी, वह

पृथ्वी वर्षाकालमें नूतन जलसे भीगकर (सूर्य-किरणोंसे तपी और आँसुओंसे भीगी हुई) शोकसंतप्त सीताकी भाँति बाष्प विमोचन (उष्णताका त्याग अथवा अश्रुपात) कर रही है॥ ७॥

'मेघके उदरसे निकली, कपूरकी डलीके समान ठंडी तथा केवड़ेकी सुगन्धसे भरी हुई इस बरसाती वायुको मानो अञ्जलियोंमें भरकर पीया जा सकता है॥

'यह पर्वत, जिसपर अर्जुनके वृक्ष खिले हुए हैं तथा जो केवड़ोंसे सुवासित हो रहा है, शान्त हुए शत्रुवाले सुग्रीवकी भाँति जलकी धाराओंसे अभिषिक्त हो रहा है॥ ९॥

मेघरूपी काले मृगचर्म तथा वर्षाकी धारारूप यज्ञोपवीत धारण किये वायुसे पूरित गुफा (या हृदय) वाले ये पर्वत ब्रह्मचारियोंकी भाँति मानो वेदाध्ययन आरम्भ कर रहे हैं॥ १०॥

'ये बिजलियाँ सोनेके बने हुए कोड़ोंके समान जान पड़ती हैं। इनकी मार खाकर मानो व्यथित हुआ आकाश अपने भीतर व्यक्त हुई मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके रूपमें आर्तनाद-सा कर रहा है॥ ११॥

'नील मेघका आश्रय लेकर प्रकाशित होती हुई यह विद्युत् मुझे रावणके अङ्कमें छटपटाती हुई तपस्विनी सीताके समान प्रतीत होती है॥ १२॥

'बादलोंका लेप लग जानेसे जिनमें ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा अदृश्य हो गये हैं, अतएव जो नष्ट-सी हो गयी है—जिनके पूर्व, पश्चिम आदि भेदोंका विवेक लुप्त-सा हो गया है, वे दिशाएँ, उन कामियोंको, जिन्हें प्रेयसीका संयोगसुख सुलभ है, हितकर प्रतीत होती हैं॥ १३॥

'सुमित्रानन्दन! देखो, इस पर्वतके शिखरोंपर खिले हुए कुटज कैसी शोभा पाते हैं? कहीं तो पहली बार वर्षा होनेपर भूमिसे निकले हुए भापसे ये व्याप्त हो रहे हैं और कहीं वर्षाके आगमनसे अत्यन्त उत्सुक (हर्षोत्फुल्ल) दिखायी देते हैं। मैं तो प्रिया-विरहके शोकसे पीड़ित हूँ और ये कुटज पुष्प मेरी प्रेमाग्निको उद्दीप्त कर रहे हैं॥ १४॥

'धरतीकी धूल शान्त हो गयी। अब वायुमें शीतलता आ गयी। गर्मीके दोषोंका प्रसार बंद हो गया। भूपालोंकी युद्धयात्रा रुक गयी और परदेशी मनुष्य अपने-अपने देशको लौट रहे हैं॥ १५॥

'मानसरोवरमें निवासके लोभी हंस वहाँके लिये प्रस्थित हो गये। इस समय चकवे अपनी प्रियाओंसे मिल रहे हैं। निरन्तर होनेवाली वर्षाके जलसे मार्ग टूट-फूट गये हैं, इसलिये उनपर रथ आदि नहीं चल रहे हैं॥ १६॥

'आकाशमें सब ओर बादल छिटके हुए हैं। कहीं तो उन बादलोंसे ढक जानेके कारण आकाश दिखायी नहीं देता है और कहीं उनके फट जानेपर वह स्पष्ट दिखायी देने लगता है। ठीक उसी तरह जैसे जिसकी तरङ्गमालाएँ शान्त हो गयी हों, उस महासागरका रूप कहीं तो पर्वतमालाओंसे छिप जानेके कारण नहीं दिखायी देता है और कहीं पर्वतोंका आवरण न होनेसे दिखायी देता है॥ १७॥

'इस समय पहाड़ी नदियाँ वर्षाके नूतन जलको बड़े वेगसे बहा रही हैं। वह जल सर्ज और कदम्बके फूलोंसे मिश्रित है, पर्वतके गेरू आदि धातुओंसे लाल रंगका हो गया है तथा मयूरोंकी केकाध्वनि उस जलके कलकलनादका अनुसरण कर रही है॥ १८॥

'काले-काले भौंरोंके समान प्रतीत होनेवाले जामुनके सरस फल आजकल लोग जी भरकर खाते हैं और हवाके वेगसे हिले हुए आमके पके हुए बहुरंगी फल पृथ्वीपर गिरते रहते है॥ १९॥

'जैसे युद्धस्थलमें खड़े हुए मतवाले गजराज उच्चस्वरसे चिग्घाड़ते हैं, उसी प्रकार गिरिराजके शिखरोंकी-सी आकृतिवाले मेघ जोर-जोरसे गर्जना कर रहे हैं। चमकती हुई बिजलियाँ इन मेघरूपी गजराजोंपर पताकाओंके समान फहरा रही हैं और बगुलोंकी पंक्तियाँ मालाके समान शोभा देती हैं॥ २०॥

'देखो, अपराह्णकालमें इन वनोंकी शोभा अधिक बढ़ जाती है। वर्षाके जलसे इनमें हरी-हरी घासें बढ़ गयी हैं। झुंड-के-झुंड मोरोंने अपना नृत्योत्सव आरम्भ कर दिया है और मेघोंने इनमें निरन्तर जल बरसाया है॥

'बक-पंक्तियोंसे सुशोभित ये जलधर मेघ जलका अधिक भार ढोते और गर्जते हुए बड़े-बड़े पर्वतशिखरोंपर मानो विश्राम ले-लेकर आगे बढ़ते हैं॥ २२॥

'गर्भ धारणके लिये मेघोंकी कामना रखकर आकाशमें उड़ती हुई आनन्दमग्न बलाकाओंकी पंक्ति ऐसी जान पड़ती है, मानो आकाशके गलेमें हवासे हिलती हुई श्वेत कमलोंकी सुन्दर माला लटक रही हो॥

'छोटे-छोटे इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंसे बीच-बीचमें चित्रित हुई नूतन घाससे आच्छादित भूमि उस नारीके समान शोभा पाती है, जिसने अपने अङ्गोंपर

तोतेके समान रंगवाला एक ऐसा कम्बल ओढ रखा हो, जिसको बीच-बीचमें महावरके रंगसे रँगकर विचित्र शोभासे सम्पन्न कर दिया गया हो॥ २४॥

'चौमासेके इस आरम्भकालमें निद्रा धीरे-धीरे भगवान् केशवके समीप जा रही है। नदी तीव्र वेगसे समुद्रके निकट पहुँच रही है। हर्षभरी बलाका उड़कर मेघकी ओर जा रही है और प्रियतमा सकामभावसे अपने प्रियतमकी सेवामें उपस्थित हो रही है॥ २५॥

'वनप्रान्त मोरोंके सुन्दर नृत्यसे सुशोभित हो गये हैं। कदम्बवृक्ष फूलों और शाखाओंसे सम्पन्न हो गये हैं। साँड़ गौओंके प्रति उन्हींके समान कामभावसे आसक्त हैं और पृथ्वी हरी-हरी खेती तथा हरे-भरे वनोंसे अत्यन्त रमणीय प्रतीत होने लगी है॥ २६॥

'नदियाँ बह रही हैं, बादल पानी बरसा रहे हैं, मतवाले हाथी चिग्घाड़ रहे हैं, वनप्रान्त शोभा पा रहे हैं, प्रियतमाके संयोगसे वञ्चित हुए वियोगी प्राणी चिन्तामग्न हो रहे हैं, मोर नाच रहे हैं और वानर निश्चिन्त एवं सुखी हो रहे हैं॥ २७॥

'वनके झरनोंके समीप क्रीडासे उल्लसित हुए मदवर्षी गजराज केवड़ेके फूलकी सुगन्धको सूँघकर मतवाले हो उठे हैं और झरनेके जलके गिरनेसे जो शब्द होता है, उससे आकुल हो ये मोरोंके बोलनेके साथ-साथ स्वयं भी गर्जना करते हैं॥ २८॥

'जलकी धारा गिरनेसे आहत होते और कदम्बकी डालियोंपर लटकते हुए भ्रमर तत्काल ग्रहण किये पुष्परससे उत्पन्न गाढ़ मदको धीरे-धीरे त्याग रहे हैं॥

'कोयलोंकी चूर्णराशिके समान काले और प्रचुर रससे भरे हुए बड़े-बड़े फलोंसे लदी हुई जामुन-वृक्षकी शाखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं, मानो भ्रमरोंके समुदाय उनमें सटकर उनके रस पी रहे हैं॥ ३०॥

'विद्युत्-रूपी पताकाओंसे अलंकृत एवं जोर-जोरसे गम्भीर गर्जना करनेवाले इन बादलोंके रूप युद्धके लिये उत्सुक हुए गजराजोंके समान प्रतीत होते हैं॥ ३१॥

'पर्वतीय वनोंमें विचरण करनेवाला तथा अपने प्रतिद्वन्द्वीके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाला मदमत्त गजराज, जो अपने मार्गका अनुसरण करके आगे बढ़ा जा रहा था, पीछेसे मेघकी गर्जना सुनकर प्रतिपक्षी हाथीके गर्जनेकी आशङ्का करके सहसा पीछेको लौट पड़ा॥ ३२॥

'कहीं भ्रमरोंके समूह गीत गा रहे हैं, कहीं मोर नाच रहे हैं और कहीं गजराज मदमत्त होकर विचर रहे हैं। इस प्रकार ये वनप्रान्त अनेक भावोंके आश्रय बनकर शोभा पा रहे हैं॥ ३३॥

'कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और स्थल-कमलसे सम्पन्न वनके भीतरकी भूमि मधु-जलसे परिपूर्ण हो मोरोंके मदयुक्त कलरवों और नृत्योंसे उपलक्षित होकर आपानभूमि (मधुशाला) के समान प्रतीत होती है॥ ३४॥

'आकाशसे गिरता हुआ मोतीके समान स्वच्छ एवं निर्मल जल पत्तोंके दोनोंमें संचित हुआ देख प्यासे पक्षी पपीहे हर्षसे भरकर देवराज इन्द्रके दिये हुए उस जलको पीते हैं। वर्षासे भीग जानेके कारण उनकी पाँखें विविध रंगकी दिखायी देती हैं॥ ३५॥

'भ्रमररूप वीणाकी मधुर झंकार हो रही है। मेढकोंकी आवाज कण्ठताल-सी जान पड़ती है। मेघोंकी गर्जनाके रूपमें मृदङ्ग बज रहे हैं। इस प्रकार वनोंमें संगीतोत्सवका आरम्भ-सा हो रहा है॥ ३६॥

'विशाल पंखरूपी आभूषणोंसे विभूषित मोर वनोंमें कहीं नाच रहे हैं, कहीं जोर-जोरसे मीठी बोली बोल रहे हैं और कहीं वृक्षोंकी शाखाओंपर अपने सारे शरीरका बोझ डालकर बैठे हुए हैं। इस प्रकार उन्होंने संगीत (नाच-गान) का आयोजन-सा कर रखा है॥ ३७॥

'मेघोंकी गर्जना सुनकर चिरकालसे रोकी हुई निद्राको त्यागकर जागे हुए अनेक प्रकारके रूप, आकार, वर्ण और बोलीवाले मेढक नूतन जलकी धारासे अभिहत होकर जोर-जोरसे बोल रहे हैं॥ ३८॥

(कामातुर युवतियोंकी भाँति) दर्पभरी नदियाँ अपने वक्षपर (उरोजोंके स्थानमें) चक्रवाकोंको वहन करती हैं और मर्यादामें रखनेवाले जीर्ण-शीर्ण कूलकगारोंको तोड़-फोड़ एवं दूर बहाकर नूतन पुष्प आदिके उपहारसे पूर्ण भोगके लिये सादर स्वीकृत अपने स्वामी समुद्रके समीप वेगपूर्वक चली जा रही हैं॥ ३९॥

'नीले मेघोंमें सटे हुए नूतन जलसे परिपूर्ण नील मेघ ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो दावानलसे जले हुए पर्वतोंमें दावानलसे दग्ध हुए दूसरे पर्वत बद्धमूल होकर सट गये हों॥ ४०॥

'जहाँ मतवाले मोर कलनाद कर रहे हैं, जहाँकी हरी-हरी घासें वीरबहूटियोंके समुदायसे व्याप्त हो रही हैं तथा जो नीप और अर्जुन-वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धसे सुवासित हैं, उन परम रमणीय वनप्रान्तोंमें बहुत-से हाथी विचरा करते हैं॥ ४१॥

'भ्रमरोंके समुदाय नूतन जलकी धारासे नष्ट हुए

केसरवाले कमल-पुष्पोंको तुरंत त्यागकर केसर-शोभित नवीन कदम्ब-पुष्पोंका रस बड़े हर्षके साथ पी रहे हैं॥

'गजेन्द्र (हाथी) मतवाले हो रहे हैं। गवेन्द्र (वृषभ) आनन्दमें मग्न हैं, मृगेन्द्र (सिंह) वनोंमें अत्यन्त पराक्रम प्रकट करते हैं, नगेन्द्र (बड़े-बड़े पर्वत) रमणीय दिखायी देते हैं, नरेन्द्र (राजालोग) मौन हैं—युद्धविषयक उत्साह छोड़ बैठे हैं और सुरेन्द्र (इन्द्रदेव) जलधरोंके साथ क्रीडा कर रहे हैं॥ ४३॥

'आकाशमें लटके हुए ये मेघ अपनी गर्जनासे समुद्रके कोलाहलको तिरस्कृत करके अपने जलके महान् प्रवाहसे नदी, तालाब, सरोवर, बावली तथा समूची पृथ्वीको आप्लावित कर रहे हैं॥ ४४॥

'बड़े वेगसे वर्षा हो रही है, जोरोंकी हवा चल रही है और नदियाँ अपने कगारोंको काटकर अत्यन्त तीव्र गतिसे जल बहा रही हैं। उन्होंने मार्ग रोक दिये हैं॥

'जैसे मनुष्य जलके कलशोंसे नरेशोंका अभिषेक करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके दिये और वायुदेवके द्वारा लाये गये मेघरूपी जल-कलशोंसे जिनका अभिषेक हो रहा है, वे पर्वतराज अपने निर्मल रूप तथा शोभा सम्पत्तिका दर्शन-सा करा रहे हैं॥ ४६॥

'मेघोंकी घटासे समस्त आकाश आच्छादित हो गया है। न रातमें तारे दिखायी देते हैं, न दिनमें सूर्य। नूतन जलराशि पाकर पृथ्वी पूर्ण तृप्त हो गयी है। दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो रही हैं, अतएव प्रकाशित नहीं होती हैं—उनका स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है॥ ४७॥

'जलकी धाराओंसे घुले हुए पर्वतोंके विशाल शिखर मोतियोंके लटकते हुए हारोंकी भाँति एवं बहुसंख्यक झरनोंके कारण अधिक शोभा पाते हैं॥ ४८॥

'पर्वतीय प्रस्तरखण्डोंपर गिरनेसे जिनका वेग टूट गया है, वे श्रेष्ठ पर्वतोंके बहुतेरे झरने मयूरोंकी बोलीसे गूँजती हुई गुफाओंमें टूटकर बिखरते हुए मोतियोंके हारोंके समान प्रतीत होते हैं॥ ४९॥

'जिनके वेग शीघ्रगामी हैं, जिनकी संख्या अधिक है, जिन्होंने पर्वतीय शिखरोंके निम्न प्रदेशोंको धोकर स्वच्छ बना दिया है तथा जो देखनेमें मुक्तामालाओंके समान प्रतीत होते हैं, पर्वतोंके उन झरते हुए झरनोंको बड़ी-बड़ी गुफाएँ अपनी गोदमें धारण कर लेती हैं॥

'सुरत-क्रीडाके समय होनेवाले अङ्गोंके आमर्दनसे टूटे हुए देवाङ्गनाओंके मौक्तिक हारोंके समान प्रतीत होनेवाली जलकी अनुपम धाराएँ सम्पूर्ण दिशाओंमें सब ओर गिर रही हैं॥ ५१॥

'पक्षी अपने घोसलोंमें छिप रहे हैं, कमल संकुचित हो रहे हैं और मालती खिलने लगी है; इससे जान पड़ता है कि सूर्यदेव अस्त हो गये॥ ५२॥

'राजाओंकी युद्ध-यात्रा रुक गयी। प्रस्थित हुई सेना भी रास्तेमें ही पड़ाव डाले पड़ी है। वर्षाके जलने राजाओंके वैर शान्त कर दिये हैं और मार्ग भी रोक दिये हैं। इस प्रकार वैर और मार्ग दोनोंकी एक-सी अवस्था कर दी है॥ ५३॥

'भादोंका महीना आ गया। यह वेदोंके स्वाध्यायकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणोंके लिये उपाक्रमका समय उपस्थित हुआ है। सामगान करनेवाले विद्वानोंके स्वाध्यायका भी यही समय है॥ ५४॥

'कोसलदेशके राजा भरतने चार महीनेके लिये आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करके गत आषाढकी पूर्णिमाको निश्चय ही किसी उत्तम व्रतकी दीक्षा ली होगी॥ ५५॥

'मुझे वनकी ओर आते देख जिस प्रकार अयोध्यापुरीके लोगोंका आर्तनाद बढ़ गया था, उसी प्रकार इस समय वर्षाके जलसे परिपूर्ण होती हुई सरयू नदीका वेग अवश्य ही बढ़ रहा होगा॥ ५६॥

'यह वर्षा अनेक गुणोंसे सम्पन्न है। इस समय सुग्रीव अपने शत्रुको परास्त करके विशाल वानर-राज्यपर प्रतिष्ठित हैं और अपनी स्त्रीके साथ रहकर सुख भोग रहे हैं॥ ५७॥

'किंतु लक्ष्मण! मैं अपने महान् राज्यसे तो भ्रष्ट हो ही गया हूँ, मेरी स्त्री भी हर ली गयी है; इसलिये पानीसे गले हुए नदीके तटकी भाँति कष्ट पा रहा हूँ॥

'मेरा शोक बढ़ गया है। मेरे लिये वर्षाके दिनोंको बिताना अत्यन्त कठिन हो गया है और मेरा महान् शत्रु रावण भी मुझे अजेय-सा प्रतीत होता है॥ ५९॥

'एक तो यह यात्राका समय नहीं है, दूसरे मार्ग भी अत्यन्त दुर्गम है। इसलिये सुग्रीवके नतमस्तक होनेपर भी मैंने उनसे कुछ कहा नहीं है॥ ६०॥

'वानर सुग्रीव बहुत दिनोंसे कष्ट भोगते थे और दीर्घकालके पश्चात् अब अपनी पत्नीसे मिले हैं। इधर मेरा कार्य बड़ा भारी है (थोड़े दिनोंमें सिद्ध होनेवाला नहीं है); इसलिये मैं इस समय उससे कुछ कहना नहीं चाहता हूँ॥ ६१॥

'कुछ दिनोंतक विश्राम करके उपयुक्त समय आया हुआ जान वे स्वयं ही मेरे उपकारको समझेंगे;

इसमें संशय नहीं है॥ ६२॥

'अतः शुभलक्षण लक्ष्मण! मैं सुग्रीवकी प्रसन्नता और नदियोंके जलकी स्वच्छता चाहता हुआ शरत्कालकी प्रतीक्षामें चुपचाप बैठा हुआ हूँ॥ ६३॥

'जो वीर पुरुष किसीके उपकारसे उपकृत होता है, वह प्रत्युपकार करके उसका बदला अवश्य चुकाता है; किंतु यदि कोई उपकारको न मानकर या भुलाकर प्रत्युपकारसे मुँह मोड़ लेता है, वह शक्तिशाली श्रेष्ठ पुरुषोंके मनको ठेस पहुँचाता है'॥ ६४॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने सोच-विचारकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और दोनों हाथ जोड़कर अपनी शुभ दृष्टिका परिचय देते हुए वे नयनाभिराम श्रीरामसे इस प्रकार बोले॥ ६५॥

'नरेश्वर! जैसा कि आपने कहा है, वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही आपका यह सारा मनोरथ सिद्ध करेंगे। अतः आप शत्रुके संहार करनेका दृढ़ निश्चय लिये शरत्कालकी प्रतीक्षा कीजिये और इस वर्षाकालके विलम्बको सहन कीजिये'॥ ६६।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके समझानेसे सुग्रीवका नीलको वानर-सैनिकोंको एकत्र करनेका आदेश देना

पवनकुमार हनुमान् शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तको जाननेवाले थे। क्या करना चाहिये और क्या नहीं—इन सभी बातोंका उन्हें यथार्थ ज्ञान था। किस समय किस विशेष धर्मका पालन करना चाहिये—इसको भी वे ठीक-ठीक समझते थे। उन्हें बातचीत करनेकी कलाका भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने देखा, आकाश निर्मल हो गया है। अब उसमें न तो बिजली चमकती है और न बादल ही दिखायी देते हैं। अन्तरिक्षमें सब ओर सारस उड़ रहे हैं और उनकी बोली सुनायी देती है। (चन्द्रोदय होनेपर) आकाश ऐसा जान पड़ता है, मानो उसपर श्वेत चन्दनसदृश रमणीय चाँदनीका लेप चढ़ा दिया गया हो। सुग्रीवका प्रयोजन सिद्ध हो जानेके कारण अब वे धर्म और अर्थके संग्रहमें शिथिलता दिखाने लगे हैं। असाधु पुरुषोंके मार्ग (कामसेवन) का ही अधिक आश्रय ले रहे हैं। एकान्तमें ही (जहाँ स्त्रियोंके सङ्गमें कोई बाधा न पड़े) उनका मन लगता है। उनका काम पूरा हो गया है। उनके अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धि हो चुकी है। अब वे सदा युवती स्त्रियोंके साथ क्रीडा-विलासमें ही लगे रहते हैं। उन्होंने अपने सारे अभिलषित मनोरथोंको प्राप्त कर लिया है। अपनी मनोवाञ्छित पत्नी रुमा तथा अभीष्ट सुन्दरी ताराको भी प्राप्त करके अब वे कृतकृत्य एवं निश्चिन्त होकर दिन-रात भोग-विलासमें लगे रहते हैं। जैसे देवराज इन्द्र गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदायके साथ क्रीडामें तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार सुग्रीव भी अपने मन्त्रियोंपर राजकार्यका भार रखकर क्रीडा-विहारमें तत्पर हैं। मन्त्रियोंके कार्योंकी देखभाल वे कभी नहीं करते हैं। मन्त्रियोंकी सज्जनताके कारण यद्यपि राज्यको किसी प्रकारकी हानि पहुँचनेका संदेह नहीं है, तथापि स्वयं सुग्रीव ही स्वेच्छाचारी-से हो रहे हैं। यह सब सोचकर हनुमान्‌जी वानरराज सुग्रीवके पास गये और उन्हें युक्तियुक्त विविध एवं मनोरम वचनोंके द्वारा प्रसन्न करके बातचीतका मर्म समझनेवाले उन सुग्रीवसे हितकर, सत्य, लाभदायक, साम, धर्म और अर्थ-नीतिसे युक्त, शास्त्रविश्वासी पुरुषोंके सुदृढ़ निश्चयसे सम्पन्न तथा प्रेम और प्रसन्नतासे भरे वचन बोले॥ १—८ $\frac{१}{२}$ ॥

'राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुलपरम्परासे आयी हुई लक्ष्मीको भी बढ़ाया; किंतु अभी मित्रोंको अपनानेका कार्य शेष रह गया है, उसे आपको इस समय पूर्ण करना चाहिये॥ ९ $\frac{१}{२}$ ॥

'जो राजा 'कब प्रत्युपकार करना चाहिये' इस बातको जानकर मित्रोंके प्रति सदा साधुतापूर्ण बर्ताव करता है, उसके राज्य, यश और प्रतापकी वृद्धि होती है॥

'पृथ्वीनाथ! जिस राजाका कोश, दण्ड (सेना), मित्र और अपना शरीर—ये सब-के-सब समान रूपसे उसके वशमें रहते हैं, वह विशाल राज्यका पालन एवं उपभोग करता है॥ ११॥

'आप सदाचारसे सम्पन्न और नित्य सनातन धर्मके मार्गपर स्थित हैं; अतः मित्रके कार्यको सफल बनानेके लिये जो प्रतिज्ञा की है, उसे यथोचितरूपसे पूर्ण कीजिये॥ १२॥

'जो अपने सब कार्योंको छोड़कर मित्रका कार्य

सिद्ध करनेके लिये विशेष उत्साहपूर्वक शीघ्रताके साथ नहीं लग जाता है, उसे अनर्थका भागी होना पड़ता है॥

'कार्यसाधनका उपयुक्त अवसर बीत जानेके बाद जो मित्रके कार्योंमें लगता है, वह बड़े-से-बड़े कार्योंको सिद्ध करके भी मित्रके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला नहीं माना जाता है॥ १४॥

'शत्रुदमन! भगवान् श्रीराम हमारे परम सुहृद् हैं। उनके इस कार्यका समय बीता जा रहा है; अतः विदेहकुमारी सीताकी खोज आरम्भ कर देनी चाहिये॥ १५॥

'राजन्! परम बुद्धिमान् श्रीराम समयका ज्ञान रखते हैं और उन्हें अपने कार्यकी सिद्धिके लिये जल्दी लगी हुई है, तो भी वे आपके अधीन बने हुए हैं। संकोचवश आपसे नहीं कहते कि मेरे कार्यका समय बीत रहा है॥ १६॥

'वानरराज! भगवान् श्रीराम चिरकालतक मित्रता निभानेवाले हैं। वे आपके समृद्धिशाली कुलके अभ्युदयके हेतु हैं। उनका प्रभाव अतुलनीय है। वे गुणोंमें अपना शानी नहीं रखते हैं। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिये; क्योंकि उन्होंने आपका काम पहले ही सिद्ध कर दिया है। आप प्रधान-प्रधान वानरोंको इस कार्यके लिये आज्ञा दीजिये॥ १७-१८॥

'श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके पहले ही यदि हमलोग कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीता हुआ नहीं माना जायगा; किंतु यदि उन्हें इसके लिये प्रेरणा करनी पड़ी तो यही समझा जायगा कि हमने समय बिता दिया है—उनके कार्यमें बहुत विलम्ब कर दिया है॥ १९॥

'वानरराज! जिसने आपका कोई उपकार नहीं किया हो, उसका कार्य भी आप सिद्ध करनेवाले हैं। फिर जिन्होंने वालीका वध तथा राज्य प्रदान करके आपका उपकार किया है, उनका कार्य आप शीघ्र सिद्ध करें, इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ २०॥

'वानर और भालू-समुदायके स्वामी सुग्रीव! आप शक्तिमान् और अत्यन्त पराक्रमी हैं; फिर भी दशरथनन्दन श्रीरामका प्रिय कार्य करनेके लिये वानरोंको आज्ञा देनेमें क्यों विलम्ब करते हैं?॥ २१॥

'इसमें संदेह नहीं कि दशरथकुमार भगवान् श्रीराम अपने बाणोंसे समस्त देवताओं, असुरों और बड़े-बड़े नागोंको भी अपने वशमें कर सकते हैं, तथापि आपने जो उनके कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की है, उसीकी वे राह देख रहे हैं॥ २२॥

'उन्हें आपके लिये वालीके प्राणतक लेनेमें हिचक नहीं हुई। वे आपका बहुत बड़ा प्रिय कार्य कर चुके हैं; अतः अब हमलोग उनकी पत्नी विदेहकुमारी सीताका इस भूतलपर और आकाशमें भी पता लगावें॥

'देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण तथा यक्ष भी श्रीरामको भय नहीं पहुँचा सकते; फिर राक्षसोंकी तो बिसात ही क्या है॥ २४॥

'वानरराज! ऐसे शक्तिशाली तथा पहले ही उपकार करनेवाले भगवान् श्रीरामका प्रिय कार्य आपको अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिये॥ २५॥

'कपीश्वर! आपकी आज्ञा हो जाय तो जलमें, थलमें, नीचे (पातालमें) तथा ऊपर आकाशमें—कहीं भी हम लोगोंकी गति रुक नहीं सकती॥ २६॥

'निष्पाप कपिराज! अतः आप आज्ञा दीजिये कि कौन कहाँसे आपकी किस आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्योग करे। आपके अधीन करोड़ोंसे भी अधिक ऐसे वानर मौजूद हैं, जिन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता'॥ २७॥

सुग्रीव सत्त्वगुणसे सम्पन्न थे। उन्होंने हनुमान्‌जीके द्वारा ठीक समयपर अच्छे ढंगसे कही हुई उपर्युक्त बातें सुनकर भगवान् श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये अत्यन्त उत्तम निश्चय किया॥ २८॥

वे परम बुद्धिमान् थे। अतः नित्य उद्यमशील नील नामक वानरको उन्होंने समस्त दिशाओंसे सम्पूर्ण वानर-सेनाओंको एकत्र करनेके लिये आज्ञा दी और कहा—'तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मेरी सारी सेना यहाँ इकट्ठी हो जाय और सभी यूथपति अपनी सेना एवं सेनापतियोंके साथ अविलम्ब उपस्थित हो जायँ॥ २९-३०॥

'राज्य-सीमाकी रक्षा करनेवाले जो-जो उद्योगी और शीघ्रगामी वानर हैं, वे सब मेरी आज्ञासे शीघ्र यहाँ आ जायँ। उसके बाद जो कुछ कर्तव्य हो, उसपर तुम स्वयं ही ध्यान दो॥ ३१॥

'जो वानर पंद्रह दिनोंके बाद यहाँ पहुँचेगा, उसे प्राणान्त दण्ड दिया जायगा। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ३२॥

'यह मेरी निश्चित आज्ञा है। इसके अनुसार इस व्यवस्थाका अधिकार लेकर अङ्गदके साथ तुम स्वयं बड़े-बूढ़े वानरोंके पास जाओ।' ऐसा प्रबन्ध करके महाबली वानरराज सुग्रीव अपने महलमें चले गये॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

शरद्-ऋतुका वर्णन तथा श्रीरामका लक्ष्मणको सुग्रीवके पास जानेका आदेश देना

पूर्वोक्त आदेश देकर सुग्रीव तो अपने महलमें चले गये और उधर श्रीरामचन्द्रजी, जो वर्षाकी रातोंमें प्रस्रवणगिरिपर निवास करते थे, आकाशके मेघोंसे मुक्त एवं निर्मल हो जानेपर सीतासे मिलनेकी उत्कण्ठा लिये उनके विरहजन्य शोकसे अत्यन्त पीड़ाका अनुभव करने लगे॥ १॥

उन्होंने देखा, आकाश श्वेत वर्णका हो रहा है, चन्द्रमण्डल स्वच्छ दिखायी देता है तथा शरद्-ऋतुकी रजनीके अङ्गोंपर चाँदनीका अङ्गराग लगा हुआ है। यह सब देखकर वे सीतासे मिलनेके लिये व्याकुल हो उठे॥ २॥

उन्होंने सोचा 'सुग्रीव काममें आसक्त हो रहा है, जनककुमारी सीताका अबतक कुछ पता नहीं लगा है और रावणपर चढ़ाई करनेका समय भी बीता जा रहा है।' यह सब देखकर अत्यन्त आतुर हुए श्रीरामका हृदय व्याकुल हो उठा॥ ३॥

दो घड़ीके बाद जब उनका मन कुछ स्वस्थ हुआ, तब वे बुद्धिमान् नरेश श्रीरघुनाथजी अपने मनमें बसी हुई विदेहनन्दिनी सीताका चिन्तन करने लगे॥ ४॥

उन्होंने देखा, आकाश निर्मल है। न कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहट है न मेघोंकी घटा। वहाँ सब ओर सारसोंकी बोली सुनायी देती है। यह सब देखकर वे आर्तवाणीमें विलाप करने लगे॥ ५॥

सुनहरे रंगकी धातुओंसे विभूषित पर्वतशिखरपर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी शरत्कालके स्वच्छ आकाशकी ओर दृष्टिपात करके मन-ही-मन अपनी प्यारी पत्नी सीताका ध्यान करने लगे॥ ६॥

वे बोले—'जिसकी बोली सारसोंकी आवाजके समान मीठी थी तथा जो मेरे आश्रमपर सारसोंद्वारा परस्पर एक-दूसरेको बुलानेके लिये किये गये मधुर शब्दोंसे मन बहलाती थी, वह मेरी भोली-भाली स्त्री सीता आज किस तरह मनोरञ्जन करती होगी?॥ ७॥

'सुवर्णमय वृक्षोंके समान निर्मल और खिले हुए असन नामक वृक्षोंको देखकर बार-बार उन्हें निहारती हुई भोली-भाली सीता जब मुझे अपने पास नहीं देखती होगी, तब कैसे उसका मन लगता होगा?॥ ८॥

'जिसके सभी अङ्ग मनोहर हैं तथा जो स्वभावसे ही मधुर भाषण करनेवाली है, वह सीता पहले कलहंसोंके मधुर शब्दसे जागा करती थी; किंतु आज वह मेरी प्रिया वहाँ कैसे प्रसन्न रहती होगी?॥ ९॥

'जिसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं, वह मेरी प्रिया जब साथ विचरनेवाले चकवोंकी बोली सुनती होगी, तब उसकी कैसी दशा हो जाती होगी?॥ १०॥

'हाय! मैं नदी, तालाब, बावली, कानन और वन सब जगह घूमता हूँ; परंतु कहीं भी उस मृगशावकनयनी सीताके बिना अब मुझे सुख नहीं मिलता है॥ ११॥

'कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि शरद्-ऋतुके गुणोंसे निरन्तर वृद्धिको प्राप्त होनेवाला काम भामिनी सीताको अत्यन्त पीड़ित कर दे; क्योंकि ऐसी सम्भावनाके दो कारण हैं—एक तो उसे मेरे वियोगका कष्ट है, दूसरे वह अत्यन्त सुकुमारी होनेके कारण इस कष्टको सहन नहीं कर पाती होगी'॥ १२॥

इन्द्रसे पानीकी याचना करनेवाले प्यासे पपीहेकी भाँति नरश्रेष्ठ नरेन्द्रकुमार श्रीरामने इस तरहकी बहुत-सी बातें कहकर विलाप किया॥ १३॥

उस समय शोभाशाली लक्ष्मण फल लेनेके लिये गये थे। वे पर्वतके रमणीय शिखरोंपर घूम-फिरकर जब लौटे तब उन्होंने अपने बड़े भाईकी अवस्थापर दृष्टिपात किया॥ १४॥

वे दुस्सह चिन्तामें मग्न होकर अचेत-से हो गये थे और एकान्तमें अकेले ही दुःखी होकर बैठे थे। उस समय मनस्वी सुमित्राकुमार लक्ष्मणने जब उन्हें देखा तब वे तुरंत ही भाईके विषादसे अत्यन्त दुःखी हो गये और उनसे इस प्रकार बोले—॥ १५॥

'आर्य! इस प्रकार कामके अधीन होकर अपने पौरुषका तिरस्कार करनेसे—पराक्रमको भूल जानेसे क्या लाभ होगा? इस लज्जाजनक शोकके कारण आपके चित्तकी एकाग्रता नष्ट हो रही है। क्या इस समय योगका सहारा लेनेसे—मनको एकाग्र करनेसे यह सारी चिन्ता दूर नहीं हो सकती?॥ १६॥

'तात! आप आवश्यक कर्मोंके अनुष्ठानमें पूर्णरूपसे लग जाइये, मनको प्रसन्न कीजिये और हर समय चित्तकी एकाग्रता बनाये रखिये। साथ ही, अन्तःकरणमें

दीनताको स्थान न देते हुए अपने पराक्रमकी वृद्धिके लिये सहायता और शक्तिको बढ़ानेका प्रयत्न कीजिये॥

'मानववंशके नाथ तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके भी पूजनीय वीर रघुनन्दन! जिनके स्वामी आप हैं, वे जनकनन्दिनी सीता किसी भी दूसरे पुरुषके लिये सुलभ नहीं हैं; क्योंकि जलती हुई आगकी लपटके पास जाकर कोई भी दग्ध हुए बिना नहीं रह सकता'॥ १८॥

लक्ष्मण उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे। उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता था। भगवान् श्रीरामने उनसे यह स्वाभाविक बात कही—'कुमार! तुमने जो बात कही है, वह वर्तमान समयमें हितकर, भविष्यमें भी सुख पहुँचानेवाली, राजनीतिके सर्वथा अनुकूल तथा सामके साथ-साथ धर्म और अर्थसे भी संयुक्त है। निश्चय ही सीताके अनुसंधान कार्यपर ध्यान देना चाहिये तथा उसके लिये विशेष कार्य या उपायका भी अनुसरण करना चाहिये; किंतु प्रयत्न छोड़कर पूर्णरूपसे बढ़े हुए दुर्लभ एवं बलवान् कर्मके फलपर ही दृष्टि रखना उचित नहीं है'॥ १९-२०॥

तदनन्तर प्रफुल्ल कमलदलके समान नेत्रवाली मिथिलेशकुमारी सीताका बार-बार चिन्तन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणको सम्बोधित करके सूखे हुए (उदास) मुँहसे बोले—॥ २१॥

'सुमित्रानन्दन! सहस्रनेत्रधारी इन्द्र इस पृथ्वीको जलसे तृप्त करके यहाँके अनाजोंको पकाकर अब कृतकृत्य हो गये हैं॥ २२॥

'राजकुमार! देखो, जो अत्यन्त गम्भीर स्वरसे गर्जना किया करते और पर्वतों, नगरों तथा वृक्षोंके ऊपरसे होकर निकलते थे, वे मेघ अपना सारा जल बरसाकर शान्त हो गये हैं॥ २३॥

'नील कमलदलके समान श्यामवर्णवाले मेघ दसों दिशाओंको श्याम बनाकर मदरहित गजराजोंके समान वेगशून्य हो गये हैं; उनका वेग शान्त हो गया है॥ २४॥

'सौम्य! जिनके भीतर जल विद्यमान था तथा जिनमें कुटज और अर्जुनके फूलोंकी सुगन्ध भरी हुई थी, वे अत्यन्त वेगशाली झंझावात उमड़-घुमड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरण करके अब शान्त हो गये हैं॥

'निष्पाप लक्ष्मण! बादलों, हाथियों, मोरों और झरनोंके शब्द इस समय सहसा शान्त हो गये हैं॥ २६॥

'महान् मेघोंद्वारा बरसाये हुए जलसे धुल जानेके कारण ये विचित्र शिखरोंवाले पर्वत अत्यन्त निर्मल हो गये हैं। इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा इनके ऊपर सफेदी कर दी गयी है॥ २७॥

'आज शरद्-ऋतु सप्तच्छद (छितवन) की डालियोंमें, सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी प्रभामें तथा श्रेष्ठ गजराजोंकी लीलाओंमें अपनी शोभा बाँटकर आयी है॥ २८॥

'इस समय शरत्कालके गुणोंसे सम्पन्न हुई लक्ष्मी यद्यपि अनेक आश्रयोंमें विभक्त होकर विचित्र शोभा धारण करती हैं, तथापि सूर्यकी प्रथम किरणोंसे विकसित हुए कमल-वनोंमें वे सबसे अधिक सुशोभित होती हैं॥

'छितवनके फूलोंकी सुगन्ध धारण करनेवाला शरत्काल स्वभावतः वायुका अनुसरण कर रहा है। भ्रमरोंके समूह उसके गुणगान कर रहे हैं। वह मार्गके जलको सोखता और मतवाले हाथियोंके दर्पको बढ़ाता हुआ अधिक शोभा पा रहा है॥ ३०॥

'जिनके पंख सुन्दर और विशाल हैं, जिन्हें कामक्रीडा अधिक प्रिय है, जिनके ऊपर कमलोंके पराग बिखरे हुए हैं, जो बड़ी-बड़ी नदियोंके तटोंपर उतरे हैं और मानसरोवरसे साथ ही आये हैं, उन चक्रवाकोंके साथ हंस क्रीडा कर रहे हैं॥ ३१॥

'मदमत्त गजराजोंमें, दर्प-भरे वृषभोंके समूहोंमें तथा स्वच्छ जलवाली सरिताओंमें नाना रूपोंमें विभक्त हुई लक्ष्मी विशेष शोभा पा रही है॥ ३२॥

'आकाशको बादलोंसे शून्य हुआ देख वनोंमें पंखरूपी आभूषणोंका परित्याग करनेवाले मोर अपनी प्रियतमाओंसे विरक्त हो गये हैं। उनकी शोभा नष्ट हो गयी है और वे आनन्दशून्य हो ध्यानमग्न होकर बैठे हैं॥

'वनके भीतर बहुत-से असन नामक वृक्ष खड़े हैं, जिनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंके अधिक भारसे झुक गये हैं। उनपर मनोहर सुगन्ध छा रही है। वे सभी वृक्ष सुवर्णके समान गौर तथा नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। उनके द्वारा वनप्रान्त प्रकाशित-से हो रहे हैं॥ ३४॥

'जो अपनी प्रियतमाओंके साथ विचरते हैं, जिन्हें कमलके पुष्प तथा वन अधिक प्रिय हैं, जो छितवनके फूलोंको सूँघकर उन्मत्त हो उठे हैं, जिनमें अधिक मद है तथा जिन्हें मदजनित कामभोगकी लालसा बनी हुई है, उन गजराजोंकी गति आज मन्द हो गयी है॥ ३५॥

'इस समय आकाशका रंग शानपर चढ़े हुए शस्त्रकी धारके समान स्वच्छ दिखायी देता है, नदियोंके जल मन्दगतिसे प्रवाहित हो रहे हैं, श्वेत कमलकी

सुगन्ध लेकर शीतल मन्द वायु चल रही है, दिशाओंका अन्धकार दूर हो गया है और अब उनमें पूर्ण प्रकाश छा रहा है॥ ३६॥

'घाम लगनेसे धरतीका कीचड़ सूख गया है। अब उसपर बहुत दिनोंके बाद घनी धूल प्रकट हुई है। परस्पर वैर रखनेवाले राजाओंके लिये युद्धके निमित्त उद्योग करनेका समय अब आ गया है॥ ३७॥

'शरद्-ऋतुके गुणोंने जिनके रूप और शोभाको बढ़ा दिया है, जिनके सारे अङ्गोंपर धूल छा रही है, जिनके मदकी अधिक वृद्धि हुई है तथा जो युद्धके लिये लुभाये हुए हैं, वे साँड़ इस समय गौओंके बीचमें खड़े होकर अत्यन्त हर्षपूर्वक हँकड़ रहे हैं॥ ३८॥

'जिसमें कामभावका उदय हुआ है, इसीलिये जो अत्यन्त तीव्र अनुरागसे युक्त है और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई है, वह मन्दगतिसे चलनेवाली हथिनी वनोंमें जाते हुए अपने मदमत्त स्वामीको घेरकर उसका अनुगमन करती है॥ ३९॥

'अपने आभूषणरूप श्रेष्ठ पंखोंको त्यागकर नदियोंके तटोंपर आये हुए मोर मानो सारस-समूहोंकी फटकार सुनकर दु:खी और खिन्नचित्त हो पीछे लौट जाते हैं॥

'जिनके गण्डस्थलसे मदकी धारा बह रही है, वे गजराज अपनी महती गर्जनासे कारण्डवों तथा चक्रवाकोंको भयभीत करके विकसित कमलोंसे विभूषित सरोवरोंमें जलको हिलोर-हिलोरकर पी रहे हैं॥ ४१॥

'जिनके कीचड़ दूर हो गये हैं। जो बालुकाओंसे सुशोभित हैं, जिनका जल बहुत ही स्वच्छ है तथा गौओंके समुदाय जिनके जलका सेवन करते हैं, सारसोंके कलरवोंसे गूँजती हुई उन सरिताओंमें हंस बड़े हर्षके साथ उतर रहे हैं॥ ४२॥

'नदी, मेघ, झरनोंके जल, प्रचण्ड वायु, मोर और हर्षरहित मेढकोंके शब्द निश्चय ही इस समय शान्त हो गये हैं॥ ४३॥

'नूतन मेघोंके उदित होनेपर जो चिरकालसे बिलोंमें छिपे बैठे थे, जिनकी शरीरयात्रा नष्टप्राय हो गयी थी और इस प्रकार जो मृतवत् हो रहे थे, वे भयंकर विषवाले बहुरंगे सर्प भूखसे पीड़ित होकर अब बिलोंसे बाहर निकल रहे हैं॥ ४४॥

'शोभाशाली चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे होनेवाले हर्षके कारण जिसके तारे किंचित् प्रकाशित हो रहे हैं (अथवा प्रियतमके करस्पर्शजनित हर्षसे जिसके नेत्रोंकी पुतली किंचित् खिल उठी है) वह रागयुक्त संध्या (अथवा अनुरागभरी नायिका) स्वयं ही अम्बर (आकाश अथवा वस्त्र) का त्याग कर रही है, यह कैसे आश्चर्यकी बात है!*॥ ४५॥

'चाँदनीकी चादर ओढ़े हुए शरत्कालकी यह रात्रि श्वेत साड़ीसे ढके हुए अङ्गवाली एक सुन्दरी नारीके समान शोभा पाती है। उदित हुआ चन्द्रमा ही उसका सौम्य मुख है और तारे ही उसकी खुली हुई मनोहर आँखें हैं॥ ४६॥

'पके हुए धानकी बालोंको खाकर हर्षसे भरी हुई और तीव्र वेगसे चलनेवाली सारसोंकी वह सुन्दर पंक्ति वायुकम्पित गुँथी हुई पुष्पमालाकी भाँति आकाशमें उड़ रही है॥ ४७॥

'कुमुदके फूलोंसे भरा हुआ उस महान् तालाबका जल जिसमें एक हंस सोया हुआ है, ऐसा जान पड़ता है मानो रातके समय बादलोंके आवरणसे रहित आकाश सब ओर छिटके हुए तारोंसे व्याप्त होकर पूर्ण चन्द्रमाके साथ शोभा पा रहा हो॥ ४८॥

'सब ओर बिखरे हुए हंस ही जिनकी फैली हुई मेखला (करधनी) हैं, जो खिले हुए कमलों और उत्पलोंकी मालाएँ धारण करती हैं। उन उत्तम बावड़ियोंकी शोभा आज वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हुई सुन्दरी वनिताओंके समान हो रही है॥ ४९॥

'वेणुके स्वरके रूपमें व्यक्त हुए वाद्यघोषसे मिश्रित और प्रात:कालकी वायुसे वृद्धिको प्राप्त होकर सब ओर फैला हुआ दही मथनेके बड़े-बड़े भाण्डों और साँड़ोंका शब्द, मानो एक-दूसरेका पूरक हो रहा है॥ ५०॥

'नदियोंके तट मन्द-मन्द वायुसे कम्पित, पुष्परूपी हाससे सुशोभित और धुले हुए निर्मल रेशमी वस्त्रोंके समान प्रकाशित होनेवाले नूतन कासोंसे बड़ी शोभा पा रहे हैं॥ ५१॥

'वनमें ढिठाईके साथ घूमनेवाले तथा कमल और असनके परागोंसे गौरवर्णको प्राप्त हुए मतवाले भ्रमर, जो पुष्पोंके मकरन्दका पान करनेमें बड़े चतुर हैं, अपनी प्रियाओंके साथ हर्षमें भरकर वनोंमें (गन्धके लोभसे) वायुके पीछे-पीछे जा रहे हैं॥ ५२॥

* यहाँ संध्यामें कामुकी नायिकाके व्यवहारका आरोप होनेसे समासोक्ति अलंकार समझना चाहिये।

'जल स्वच्छ हो गया है, धानकी खेती पक गयी है, वायु मन्दगतिसे चलने लगी है और चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल दिखायी देता है—ये सब लक्षण उस शरत्कालके आगमनकी सूचना देते हैं। जिसमें वर्षाकी समाप्ति हो जाती है, क्रौञ्च पक्षी बोलने लगते हैं और फूल उस ऋतुके हासकी भाँति खिल उठते हैं॥ ५३॥

'रातको प्रियतमके उपभोगमें आकर प्रातःकाल अलसायी गतिसे चलनेवाली कामिनियोंकी भाँति उन नदीस्वरूपा वधुओंकी गति भी आज मन्द हो गयी है, जो मछलियोंकी मेखला-सी धारण किये हुए हैं॥ ५४॥

'नदियोंके मुख नव वधुओंके मुँहके समान शोभा पाते हैं। उनमें जो चक्रवाक हैं, वे गोरोचनद्वारा निर्मित तिलकके समान प्रतीत होते हैं, जो सेवार हैं, वे वधूके मुखपर बनी हुई पत्रभङ्गीके समान जान पड़ते हैं तथा जो काश हैं, वे ही मानो श्वेत दुकूल बनकर नदीरूपिणी वधूके मुँहको ढके हुए हैं॥ ५५॥

'फूले हुए सरकण्डों और असनके वृक्षोंसे जिनकी विचित्र शोभा हो रही है तथा जिनमें हर्षभरे भ्रमरोंकी आवाज गूँजती रहती है, उन वनोंमें आज प्रचण्ड धनुर्धर कामदेव प्रकट हुआ है, जो धनुष हाथमें लेकर विरही जनोंको दण्ड देनेके लिये उद्यत हो अत्यन्त कोपका परिचय दे रहा है॥ ५६॥

'अच्छी वर्षासे लोगोंको संतुष्ट करके नदियों और तालाबोंको पानीसे भरकर तथा भूतलको परिपक्व धानकी खेतीसे सम्पन्न करके बादल आकाश छोड़कर अदृश्य हो गये॥ ५७॥

'शरद्-ऋतुकी नदियाँ धीरे-धीरे जलके हटनेसे अपने नग्न तटोंको दिखा रही हैं। ठीक उसी तरह जैसे प्रथम समागमके समय लजीली युवतियाँ शनैः-शनैः अपने जघन-स्थलको दिखानेके लिये विवश होती हैं॥ ५८॥

'सौम्य! सभी जलाशयोंके जल स्वच्छ हो गये हैं। वहाँ कुरर पक्षियोंके कलनाद गूँज रहे हैं और चक्रवाकोंके समुदाय चारों ओर बिखरे हुए हैं। इस प्रकार उन जलाशयोंकी बड़ी शोभा हो रही है॥ ५९॥

'सौम्य! राजकुमार! जिनमें परस्पर वैर बँधा हुआ है और जो एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखते हैं, उन भूमिपालोंके लिये यह युद्धके निमित्त उद्योग करनेका समय उपस्थित हुआ है॥ ६०॥

'नरेशनन्दन! राजाओंकी विजय-यात्राका यह प्रथम अवसर है, किंतु न तो मैं सुग्रीवको यहाँ उपस्थित देखता हूँ और न उनका कोई वैसा उद्योग ही दृष्टिगोचर होता है॥ ६१॥

'पर्वतके शिखरोंपर असन, छितवन, कोविदार, बन्धु-जीव तथा श्याम तमाल खिले दिखायी देते हैं॥ ६२॥

'लक्ष्मण! देखो तो सही, नदियोंके तटोंपर सब ओर हंस, सारस, चक्रवाक और कुरर नामक पक्षी फैले हुए हैं॥ ६३॥

'मैं सीताको न देखनेके कारण शोकसे संतप्त हो रहा हूँ; अतः ये वर्षाके चार महीने मेरे लिये सौ वर्षोंके समान बीते हैं॥ ६४॥

'जैसे चकवी अपने स्वामीका अनुसरण करती है, उसी प्रकार कल्याणी सीता इस भयंकर एवं दुर्गम दण्डकारण्यको उद्यान-सा समझकर मेरे पीछे यहाँतक चली आयी थी॥ ६५॥

'लक्ष्मण! मैं अपनी प्रियतमासे बिछुड़ा हुआ हूँ। मेरा राज्य छीन लिया गया है और मैं देशसे निकाल दिया गया हूँ। इस अवस्थामें भी राजा सुग्रीव मुझपर कृपा नहीं कर रहा है॥ ६६॥

'सौम्यलक्ष्मण! मैं अनाथ हूँ। राज्यसे भ्रष्ट हो गया हूँ। रावणने मेरा तिरस्कार किया है। मैं दीन हूँ। मेरा घर यहाँसे बहुत दूर है। मैं कामना लेकर यहाँ आया हूँ तथा सुग्रीव यह भी समझता है कि राम मेरी शरणमें आये हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वानरोंका राजा दुरात्मा सुग्रीव मेरा तिरस्कार कर रहा है; किंतु उसे पता नहीं है कि मैं सदा शत्रुओंको संताप देनेमें समर्थ हूँ॥ ६७-६८॥

'उसने सीताकी खोजके लिये समय निश्चित कर दिया था; किंतु उसका तो अब काम निकल गया है, इसीलिये वह दुर्बुद्धि वानर प्रतिज्ञा करके भी उसका कुछ खयाल नहीं कर रहा है॥ ६९॥

'अतः लक्ष्मण! तुम मेरी आज्ञासे किष्किन्धापुरीमें जाओ और विषयभोगमें फँसे हुए मूर्ख वानरराज सुग्रीवसे इस प्रकार कहो—॥ ७०॥

'जो बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करनेवाले कार्यार्थी पुरुषोंको प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसारके सभी पुरुषोंमें नीच है॥ ७१॥

'जो अपने मुखसे प्रतिज्ञाके रूपमें निकले हुए भले या बुरे सभी तरहके वचनोंको अवश्य पालनीय समझकर सत्यकी रक्षाके उद्देश्यसे उनका पालन करता

है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है॥ ७२॥

'जो अपना स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर, जिनके कार्य नहीं पूरे हुए हैं। उन मित्रोंके सहायक नहीं होते—उनके कार्यको सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करते, उन कृतघ्न पुरुषोंके मरनेपर मांसाहारी जन्तु भी उनका मांस नहीं खाते हैं॥ ७३॥

'सुग्रीव! निश्चय ही तुम युद्धमें मेरे द्वारा खींचे गये सोनेकी पीठवाले धनुषका कौंधती हुई बिजलीके समान रूप देखना चाहते हो॥ ७४॥

'संग्राममें कुपित होकर मेरे द्वारा खींची गयी प्रत्यञ्चाकी भयंकर टङ्कारको, जो वज्रकी गड़गड़ाहटको भी मात करनेवाली है, अब फिर तुम्हें सुननेकी इच्छा हो रही है॥ ७५॥

'वीर राजकुमार! सुग्रीवको तुम-जैसे सहायकके साथ रहनेवाले मेरे पराक्रमका ज्ञान हो चुका है, ऐसी दशामें भी यदि उसे यह चिन्ता न हो कि ये वालीकी भाँति मुझे मार सकते हैं तो यह आश्चर्यकी ही बात है!॥

'शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले लक्ष्मण! जिसके लिये यह मित्रता आदिका सारा आयोजन किया गया, सीताकी खोजविषयक उस प्रतिज्ञाको इस समय वानरराज सुग्रीव भूल गया है—उसे याद नहीं कर रहा है; क्योंकि उसका अपना काम सिद्ध हो चुका॥ ७७॥

'सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की थी कि वर्षाका अन्त होते ही सीताकी खोज आरम्भ कर दी जायगी, किंतु वह क्रीड़ा-विहारमें इतना तन्मय हो गया है कि इन बीते हुए चार महीनोंका उसे कुछ पता ही नहीं है॥ ७८॥

'सुग्रीव मन्त्रियों तथा परिजनोंसहित क्रीडाजनित आमोद-प्रमोदमें फँसकर विविध पेय पदार्थोंका ही सेवन कर रहा है। हमलोग शोकसे व्याकुल हो रहे हैं। तो भी वह हमपर दया नहीं करता है॥ ७९॥

'महाबली वीर लक्ष्मण! तुम जाओ। सुग्रीवसे बात करो। मेरे रोषका जो स्वरूप है, वह उसे बताओ और मेरा यह संदेश भी कह सुनाओ॥ ८०॥

सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्तेसे गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो। वालीके मार्गका अनुसरण न करो॥ ८१॥

'वाली तो रणक्षेत्रमें अकेला ही मेरे बाणसे मारा गया था, परंतु यदि तुम सत्यसे विचलित हुए तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित कालके गालमें डाल दूँगा॥ ८२॥

'पुरुषप्रवर! नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! जब इस तरह कार्य बिगड़ने लगे, ऐसे अवसरपर और भी जो-जो बातें कहनी उचित हों— जिनके कहनेसे अपना हित होता हो, वे सब बातें कहना। जल्दी करो; क्योंकि कार्य आरम्भ करनेका समय बीता जा रहा है॥ ८३॥

'सुग्रीवसे कहो—'वानरराज! तुम सनातन धर्मपर दृष्टि रखकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखाओ, अन्यथा ऐसा न हो कि तुम्हें आज ही मेरे बाणोंसे प्रेरित हो प्रेतभावको प्राप्त होकर यमलोकमें वालीका दर्शन करना पड़े'॥ ८४॥

मानव-वंशकी वृद्धि करनेवाले उग्र तेजस्वी लक्ष्मणने जब अपने बड़े भाईको दु:खी, बढ़े हुए तीव्र रोषसे युक्त तथा अधिक बोलते देखा, तब वानरराज सुग्रीवके प्रति कठोर भाव धारण कर लिया॥ ८५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

सुग्रीवपर लक्ष्मणका रोष, श्रीरामका उन्हें समझाना, लक्ष्मणका किष्किन्धाके द्वारपर जाकर अङ्गदको सुग्रीवके पास भेजना, वानरोंका भय तथा प्लक्ष और प्रभावका सुग्रीवको कर्तव्यका उपदेश देना

श्रीरामके छोटे भाई नरेन्द्रकुमार लक्ष्मणने उस समय सीताकी कामनासे युक्त, दु:खी, उदारहृदय, शोकग्रस्त तथा बढ़े हुए रोषवाले ज्येष्ठ भ्राता महाराजपुत्र श्रीरामसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'आर्य! सुग्रीव वानर है, वह श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये उचित सदाचारपर स्थिर नहीं रह सकेगा। सुग्रीव इस बातको भी नहीं मानता है कि अग्निको साक्षी देकर श्रीरघुनाथजीके साथ मित्रता-स्थापनरूप जो सत्-कर्म किया गया है, उसीके फलसे मुझे निष्कण्टक राज्यभोग प्राप्त हुए हैं। अत: वह वानरोंकी राज्य-लक्ष्मीका पालन एवं उपभोग नहीं कर सकेगा; क्योंकि उसकी बुद्धि मित्रधर्मके पालनके लिये अधिक आगे नहीं बढ़ रही है॥ २॥

'सुग्रीवकी बुद्धि मारी गयी है, इसलिये वह विषयभोगोंमें आसक्त हो गया है। आपकी कृपासे जो उसे राज्य आदिका लाभ हुआ है, उस उपकारका बदला चुकानेकी उसकी नीयत नहीं है। अतः अब वह भी मारा जाकर अपने बड़े भाई वीरवर वालीका दर्शन करे। ऐसे गुणहीन पुरुषको राज्य नहीं देना चाहिये॥ ३॥

'मेरे क्रोधका वेग बढ़ा हुआ है। मैं इसे रोक नहीं सकता। असत्यवादी सुग्रीवको आज ही मारे डालता हूँ। अब वालिकुमार अङ्गद ही राजा होकर प्रधान वानर-वीरोंके साथ राजकुमारी सीताकी खोज करे'॥ ४॥

यों कहकर लक्ष्मण धनुष-बाण हाथमें ले बड़े वेगसे चल पड़े। उन्होंने अपने जानेका प्रयोजन स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन कर दिया था। युद्धके लिये उनका प्रचण्ड कोप बढ़ा हुआ था तथा वे क्या करने जा रहे हैं, इसपर उन्होंने अच्छी तरह विचार नहीं किया था। उस समय विपक्षी वीरोंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें शान्त करनेके लिये यह अनुनययुक्त बात कही—॥ ५॥

'सुमित्रानन्दन! तुम-जैसे श्रेष्ठ पुरुषको संसारमें ऐसा (मित्रवधरूप) निषिद्ध आचरण नहीं करना चाहिये। जो उत्तम विवेकके द्वारा अपने क्रोधको मार देता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ है॥ ६॥

'लक्ष्मण! तुम सदाचारी हो। तुम्हें इस प्रकार सुग्रीवके मारनेका निश्चय नहीं करना चाहिये। उसके प्रति जो तुम्हारा प्रेम था, उसीका अनुसरण करो और उसके साथ पहले जो मित्रता की गयी है, उसे निबाहो॥ ७॥

'तुम्हें सान्त्वनापूर्ण वाणीद्वारा कटु वचनोंका परित्याग करते हुए सुग्रीवसे इतना ही कहना चाहिये कि तुमने सीताकी खोजके लिये जो समय नियत किया था, वह बीत गया (फिर भी चुप क्यों बैठे हो)'॥ ८॥

अपने बड़े भाईके इस प्रकार यथोचित रूपसे समझानेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पुरुषप्रवर वीर लक्ष्मणने किष्किन्धापुरीमें प्रवेश (करनेका विचार) किया॥

भाईके प्रिय और हितमें तत्पर रहनेवाले शुभ बुद्धिसे युक्त बुद्धिमान् लक्ष्मण रोषमें भरे हुए ही वानरराज सुग्रीवके भवनकी ओर चले॥ १०॥

उस समय वे इन्द्रधनुषके समान तेजस्वी, काल और अन्तकके समान भयंकर तथा पर्वत-शिखरके समान विशाल धनुषको हाथमें लेकर शृङ्गसहित मन्दराचलके समान जान पड़ते थे॥ ११॥

श्रीरामके अनुज लक्ष्मण अपने बड़े भाईकी आज्ञाका यथोक्तरूपसे पालन करनेवाले तथा बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। वे सुग्रीवसे जो बात कहते, सुग्रीव उसका जो कुछ उत्तर देते और उस उत्तरका भी ये जो कुछ उत्तर देते, उन सबको अच्छी तरह समझ-बूझकर वहाँसे प्रस्थित हुए थे॥ १२॥

सीताकी खोजविषयक जो श्रीरामकी कामना थी और सुग्रीवकी असावधानीके कारण उसमें बाधा पड़नेसे जो उन्हें क्रोध हुआ था, उन दोनोंके कारण लक्ष्मणकी भी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी। उस क्रोधाग्निसे घिरे हुए लक्ष्मण सुग्रीवके प्रति प्रसन्न नहीं थे। वे उसी अवस्थामें वायुके समान वेगसे चले॥ १३॥

उनका वेग ऐसा बढ़ा हुआ था कि वे मार्गमें मिलनेवाले साल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षोंको उसी वेगसे बलपूर्वक गिराते तथा पर्वतशिखरों एवं अन्य वृक्षोंको उठा-उठाकर दूर फेंकते जाते थे॥ १४॥

शीघ्रगामी हाथीके समान अपने पैरोंकी ठोकरसे शिलाओंको चूर-चूर करते और लंबी-लंबी डगें भरते हुए वे कार्यवश बड़ी तेजीके साथ चले॥ १५॥

इक्ष्वाकुकुलके सिंह लक्ष्मणने निकट जाकर वानरराज सुग्रीवकी विशाल पुरी किष्किन्धा देखी, जो पहाड़ोंके बीचमें बसी हुई थी। वानरसेनासे व्याप्त होनेके कारण वह पुरी दूसरोंके लिये दुर्गम थी॥ १६॥

उस समय लक्ष्मणके ओष्ठ सुग्रीवके प्रति रोषसे फड़क रहे थे। उन्होंने किष्किन्धाके पास बहुतेरे भयंकर वानरोंको देखा जो नगरके बाहर विचर रहे थे॥ १७॥

उन वानरोंके शरीर हाथियोंके समान विशाल थे। उन समस्त वानरोंने पुरुषप्रवर लक्ष्मणको देखते ही पर्वतके अंदर विद्यमान सैकड़ों शैल-शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठा लिये॥ १८॥

उन सबको हथियार उठाते देख लक्ष्मण दूने क्रोधसे जल उठे, मानो जलती आगमें बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ डाल दी गयी हों॥ १९॥

क्षुब्ध हुए लक्ष्मण काल, मृत्यु तथा प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर दिखायी देने लगे। उन्हें देखकर उन वानरोंके शरीर भयसे काँपने लगे और वे सैकड़ोंकी संख्यामें चारों दिशाओंमें भाग गये॥ २०॥

तदनन्तर कई श्रेष्ठ वानरोंने सुग्रीवके महलमें जाकर लक्ष्मणके आगमन और क्रोधका समाचार निवेदन किया॥ २१॥

उस समय कामके अधीन हुए वानरराज सुग्रीव भोगासक्त हो ताराके साथ थे। इसलिये उन्होंने उन श्रेष्ठ वानरोंकी बातें नहीं सुनीं॥ २२॥

तब सचिवकी आज्ञासे पर्वत, हाथी और मेघके समान विशालकाय वानर जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे, नगरसे बाहर निकले॥ २३॥

वे सब-के-सब वीर थे। नख और दाँत ही उनके आयुध थे। वे बड़े विकराल दिखायी देते थे। उन सबकी दाढ़ें व्याघ्रोंकी दाढ़ोंके समान थीं और सबके नेत्र खुले हुए थे (अथवा उन सबका वहाँ स्पष्ट दर्शन होता था—कोई छिपे नहीं थे)॥ २४॥

किन्हींमें दस हाथियोंके बराबर बल था तो कोई सौ हाथियोंके समान बलशाली थे तथा किन्हीं-किन्हींका तेज (बल और पराक्रम) एक हजार हाथियोंके तुल्य था॥ २५॥

हाथमें वृक्ष लिये उन महाबली वानरोंसे व्याप्त हुई किष्किन्धापुरी अत्यन्त दुर्जय दिखायी देती थी। लक्ष्मणने कुपित होकर उस पुरीकी ओर देखा॥ २६॥

तदनन्तर वे सभी महाबली वानर पुरीकी चहारदीवारी और खाईंके भीतरसे निकलकर प्रकटरूपसे सामने आकर खड़े हो गये॥ २७॥

आत्मसंयमी वीर लक्ष्मण सुग्रीवके प्रमाद तथा अपने बड़े भाईके महत्त्वपूर्ण कार्यपर दृष्टिपात करके पुनः वानरराजके प्रति क्रोधके वशीभूत हो गये॥ २८॥

वे अधिक गरम और लंबी साँस खींचने लगे। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उस समय पुरुषसिंह लक्ष्मण धूमयुक्त अग्निके समान प्रतीत हो रहे थे॥ २९॥

इतना ही नहीं, वे पाँच मुखवाले सर्पके समान दिखायी देने लगे। बाणका फल ही उस सर्पकी लपलपाती हुई जिह्वा जान पड़ता था, धनुष ही उसका विशाल शरीर था तथा वे सर्परूपी लक्ष्मण अपने तेजोमय विषसे व्याप्त हो रहे थे॥ ३०॥

उस अवसरपर कुमार अङ्गद प्रज्वलित प्रलयाग्नि तथा क्रोधमें भरे हुए नागराज शेषकी भाँति दृष्टिगोचर होनेवाले लक्ष्मणके पास डरते-डरते गये। वे अत्यन्त विषादमें पड़ गये थे॥ ३१॥

महायशस्वी लक्ष्मणने क्रोधसे लाल आँखें करके अङ्गदको आदेश दिया—'बेटा! सुग्रीवको मेरे आनेकी सूचना दो। उनसे कहना—शत्रुदमन वीर! श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके दुःखसे दुःखी होकर आपके पास आये हैं और नगर-द्वारपर खड़े हैं। वानरराज! यदि आपकी इच्छा हो तो उनकी आज्ञाका अच्छी तरह पालन कीजिये। शत्रुदमन वत्स अङ्गद! बस, इतना ही कहकर तुम शीघ्र मेरे पास लौट आओ'॥ ३२—३४॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर शोकाकुल अङ्गदने पिता सुग्रीवके समीप आकर कहा—'तात! ये सुमित्रानन्दन लक्ष्मण यहाँ पधारे हैं'॥ ३५॥

(अब इसी बातको कुछ विस्तारके साथ कहते हैं—) लक्ष्मणकी कठोर वाणीसे अङ्गदके मनमें बड़ी घबराहट हुई। उनके मुखपर अत्यन्त दीनता छा गयी। उन वेगशाली कुमारने वहाँसे निकलकर पहले वानरराज सुग्रीवके, फिर तारा तथा रुमाके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ३६॥

उग्र तेजवाले अङ्गदने पहले तो पिताके दोनों पैर पकड़े फिर अपनी माता ताराके दोनों चरणोंका स्पर्श किया। तदनन्तर रुमाके दोनों पैर दबाये। इसके बाद पूर्वोक्त बात कही॥ ३७॥

किंतु सुग्रीव मदमत्त एवं कामसे मोहित होकर पड़े थे। निद्राने उनके ऊपर पूरा अधिकार जमा लिया था। इसलिये वे जाग न सके॥ ३८॥

इतनेमें बाहर क्रोधमें भरे हुए लक्ष्मणको देखकर भयसे मोहितचित्त हुए वानर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये दीनतासूचक वाणीमें किलकिलाने लगे॥ ३९॥

लक्ष्मणपर दृष्टि पड़ते ही उन वानरोंने सुग्रीवके निकटवर्ती स्थानमें एक साथ ही महान् जलप्रवाह तथा वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जोर-जोरसे सिंहनाद किया (जिससे सुग्रीव जाग उठें)॥ ४०॥

वानरोंकी उस भयंकर गर्जनासे कपिराज सुग्रीवकी नींद खुल गयी। उस समय उनके नेत्र मदसे चञ्चल और लाल हो रहे थे। मन भी स्वस्थ नहीं था। उनके गलेमें सुन्दर पुष्पमाला शोभा दे रही थी॥ ४१॥

अङ्गदकी पूर्वोक्त बात सुनकर उन्हींके साथ आये हुए दो मन्त्री प्लक्ष और प्रभावने भी, जो वानरराजके सम्मानपात्र और उदार दृष्टिवाले थे तथा राजाको अर्थ और धर्मके विषयमें ऊँच-नीच समझानेके लिये नियुक्त थे, लक्ष्मणके आगमनकी सूचना दी॥ ४२-४३॥

राजाके निकट खड़े हुए उन दोनों मन्त्रियोंने देवराज इन्द्रके समान बैठे हुए सुग्रीवको खूब सोच-विचार कर निश्चित किये हुए सार्थक वचनोंद्वारा प्रसन्न

किया और इस प्रकार कहा—'राजन्! महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं। (वे वास्तवमें भगवत्स्वरूप हैं) उन्होंने स्वेच्छासे मनुष्य-शरीर धारण किया है। वे दोनों समस्त त्रिलोकीका राज्य चलानेके योग्य हैं। वे ही आपके राज्यदाता हैं॥ ४४-४५॥

'उनमेंसे एक वीर लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये किष्किन्धाके दरवाजेपर खड़े हैं, जिनके भयसे काँपते हुए वानर जोर-जोरसे चीख रहे हैं॥ ४६॥

'श्रीरामका आदेशवाक्य ही जिनका सारथि और कर्तव्यका निश्चय ही जिनका रथ है, वे लक्ष्मण श्रीरामकी आज्ञासे यहाँ पधारे हैं॥ ४७॥

'राजन्! निष्पाप वानरराज! लक्ष्मणने तारादेवीके इन प्रिय पुत्र अङ्गदको आपके निकट बड़ी उतावलीके साथ भेजा है॥ ४८॥

'वानरपते! पराक्रमी लक्ष्मण क्रोधसे लाल आँखें किये नगरद्वारपर उपस्थित हैं और वानरोंकी ओर इस तरह देख रहे हैं, मानो वे अपनी नेत्राग्निसे उन्हें दग्ध कर डालेंगे॥ ४९॥

'महाराज! आप शीघ्र चलें तथा पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके साथ उनके चरणोंमें मस्तक नवावें और इस प्रकार आज उनका रोष शान्त करें॥ ५०॥

'राजन्! धर्मात्मा श्रीराम जैसा कहते हैं, सावधानीके साथ उसका पालन कीजिये। आप अपनी दी हुई बातपर अटल रहिये और सत्यप्रतिज्ञ बनिये'॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

हनुमान्जीका चिन्तित हुए सुग्रीवको समझाना

मन्त्रियोंसहित अङ्गदका वचन सुनकर और लक्ष्मणके कुपित होनेका समाचार पाकर मनको वशमें रखनेवाले सुग्रीव आसन छोड़कर खड़े हो गये॥ १॥

वे मन्त्रणा (कर्तव्यविषयक विचार) के परिनिष्ठित विद्वान् होनेके कारण मन्त्रप्रयोगमें अत्यन्त कुशल थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी महत्ता और अपनी लघुताका विचार करके मन्त्रज्ञ मन्त्रियोंसे कहा—॥ २॥

'मैंने न तो कोई अनुचित बात मुँहसे निकाली है और न कोई बुरा काम ही किया है। फिर श्रीरघुनाथजीके भ्राता लक्ष्मण मुझपर कुपित क्यों हुए हैं? इस बातपर मैं बारंबार विचार करता हूँ॥ ३॥

'जो सदा मेरे छिद्र देखनेवाले हैं तथा जिनका हृदय मेरे प्रति शुद्ध नहीं है, उन शत्रुओंने निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणसे मेरे ऐसे दोष सुनाये हैं जो मेरे भीतर कभी प्रकट नहीं हुए थे॥ ४॥

'लक्ष्मणके कोपके विषयमें पहले तुम सब लोगोंको धीरे-धीरे कुशलतापूर्वक उनके मनोभावका विधिवत् निश्चय कर लेना चाहिये, जिससे उनके कोपके कारणका यथार्थ रूपसे ज्ञान हो जाय॥ ५॥

'अवश्य ही मुझे लक्ष्मणसे तथा श्रीरघुनाथजीसे कोई भय नहीं है, तथापि बिना अपराधके कुपित हुआ मित्र हृदयमें घबराहट उत्पन्न कर ही देता है॥ ६॥

'किसीको मित्र बना लेना सर्वथा सुकर है, परंतु उस मैत्रीको पालना या निभाना बहुत ही कठिन है; क्योंकि मनका भाव सदा एक-सा नहीं रहता। किसीके द्वारा थोड़ी-सी भी चुगली कर दी जानेपर प्रेममें अन्तर आ जाता है॥ ७॥

'इसी कारण मैं और भी डर गया हूँ; क्योंकि महात्मा श्रीरामने मेरा जो उपकार किया है, उसका बदला चुकानेकी मुझमें शक्ति नहीं है'॥ ८॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्जी अपनी युक्तिका सहारा लेकर वानरमन्त्रियोंके बीचमें बोले—॥ ९॥

'कपिराज! मित्रके द्वारा अत्यन्त स्नेहपूर्वक किये गये उत्तम उपकारको जो आप भूल नहीं रहे हैं, इसमें सर्वथा कोई आश्चर्यकी बात नहीं है (क्योंकि अच्छे पुरुषोंका ऐसा स्वभाव ही होता है)॥ १०॥

'वीरवर श्रीरघुनाथजीने तो लोकापवादके भयको दूर हटाकर आपका प्रिय करनेके लिये इन्द्रतुल्य पराक्रमी वालीका वध किया है; अतः वे निःसंदेह आपपर कुपित नहीं हैं। श्रीरामचन्द्रजीने शोभा-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाले अपने भाई लक्ष्मणको जो आपके पास भेजा है, इसमें सर्वथा आपके प्रति उनका प्रेम ही कारण है॥ ११-१२॥

'समयका ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ कपिराज! आपने सीताकी खोज करनेके लिये जो समय निश्चित किया था, उसे आप इन दिनों प्रमादमें पड़ जानेके

कारण भूल गये हैं। देखिये न, यह सुन्दर शरद्-ऋतु आरम्भ हो गयी है, जो खिले हुए छितवनके फूलोंसे श्यामवर्णकी प्रतीत होती है॥ १३॥

'आकाशमें अब बादल नहीं रहे। ग्रह, नक्षत्र निर्मल दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश छा गया है तथा नदियों और सरोवरोंके जल पूर्णतः स्वच्छ हो गये हैं॥ १४॥

'वानरराज! राजाओंके लिये विजय-यात्राकी तैयारी करनेका समय आ गया है; किंतु आपको कुछ पता ही नहीं है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप प्रमादमें पड़ गये हैं। इसीलिये लक्ष्मण यहाँ आये हैं॥ १५॥

'महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नीका अपहरण हुआ है, इसलिये वे बहुत दुःखी हैं। अतः यदि लक्ष्मणके मुखसे उनका कठोर वचन भी सुनना पड़े तो आपको चुपचाप सह लेना चाहिये॥ १६॥

'आपकी ओरसे अपराध हुआ है। अतः हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके सिवा आपके लिये और कोई उचित कर्तव्य मैं नहीं देखता॥ १७॥

'राज्यकी भलाईके कामपर नियुक्त हुए मन्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि राजाको उसके हितकी बात अवश्य बतावें। अतएव मैं भय छोड़कर अपना निश्चित विचार बता रहा हूँ॥ १८॥

'भगवान् श्रीराम यदि क्रोध करके धनुष हाथमें ले लें तो देवता-असुर-गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें कर सकते हैं॥ १९॥

'जिसे पीछे हाथ जोड़कर मनाना पड़े, ऐसे पुरुषको क्रोध दिलाना कदापि उचित नहीं है। विशेषतः वह पुरुष जो मित्रके किये हुए पहले उपकारको याद रखता हो और कृतज्ञ हो, इस बातका अधिक ध्यान रखे॥ २०॥

'राजन्! इसलिये आप पुत्र और मित्रोंके साथ मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम कीजिये और अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहिये। जैसे पत्नी अपने पतिके वशमें रहती है, उसी प्रकार आप सदा श्रीरामचन्द्रजीके अधीन रहिये॥ २१॥

'वानरराज! श्रीराम और लक्ष्मणके आदेशकी आपको मनसे भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीके अलौकिक बलका ज्ञान तो आपके मनको है ही'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका किष्किन्धापुरीकी शोभा देखते हुए सुग्रीवके महलमें प्रवेश करके क्रोधपूर्वक धनुषको टंकारना, भयभीत सुग्रीवका ताराको उन्हें शान्त करनेके लिये भेजना तथा ताराका समझा-बुझाकर उन्हें अन्तःपुरमें ले आना

इधर गुफामें प्रवेश करनेके लिये अङ्गदके प्रार्थना करनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार किष्किन्धा नामक रमणीय गुफामें प्रवेश किया॥ १॥

किष्किन्धाके द्वारपर जो विशाल शरीरवाले महाबली वानर थे, वे सब लक्ष्मणको देख हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २॥

दशरथनन्दन लक्ष्मणको क्रोधपूर्वक लंबी साँस खींचते देख वे सब वानर अत्यन्त भयभीत हो गये थे। इसलिये वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनके साथ-साथ नहीं चल सके॥ ३॥

श्रीमान् लक्ष्मणने द्वारके भीतर प्रवेश करके देखा, किष्किन्धापुरी एक बहुत बड़ी रमणीय गुफाके रूपमें बसी हुई है। वह रत्नमयी पुरी नाना प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी होनेके कारण दिव्य शोभासे सम्पन्न है। वहाँके वन-उपवन फूलोंसे सुशोभित दिखायी दिये॥ ४॥

हर्म्यों (धनियोंकी अट्टालिकाओं) तथा प्रासादों (देवमन्दिरों और राजभवनों) से वह पुरी अत्यन्त घनी दिखायी देती थी। नाना प्रकारके रत्न उसकी शोभा बढ़ाते थे। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले फलोंसे युक्त खिले हुए वृक्षोंसे वह पुरी सुशोभित थी॥ ५॥

वहाँ दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले परम सुन्दर वानर, जो देवताओं और गन्धर्वोंके पुत्र तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे, निवास करते हुए उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे॥ ६॥

वहाँ चन्दन, अगर और कमलोंकी मनोहर सुगन्ध छा रही थी। उस पुरीकी लंबी-चौड़ी सड़कें भी मैरेय तथा मधुके आमोदसे महक रही थीं॥ ७॥

उस पुरीमें विन्ध्याचल तथा मेरुके समान ऊँचे-ऊँचे महल बने थे, जो कई मंजिलके थे। लक्ष्मणने उस गुफाके निकट ही निर्मल जलसे भरी हुई पहाड़ी नदियाँ देखीं॥ ८॥

उन्होंने राजमार्गपर अङ्गदका रमणीय भवन देखा। साथ ही वहाँ मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान्, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल, कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान्, दधिमुख, नील, सुपाटल और सुनेत्र—इन महामनस्वी वानरशिरोमणियोंके भी अत्यन्त सुदृढ़ श्रेष्ठ भवन लक्ष्मणको दृष्टिगोचर हुए। वे सब-के-सब राजमार्गपर ही बने हुए थे॥ ९—१२॥

वे सभी भवन श्वेत बादलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें सुगन्धित पुष्पमालाओंसे सजाया गया था। वे प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न तथा रत्नस्वरूपा रमणियोंसे सुशोभित थे॥ १३॥

वानरराज सुग्रीवका सुन्दर भवन इन्द्रसदनके समान रमणीय दिखायी देता था। उसमें प्रवेश करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था। वह श्वेत पर्वतकी चहार-दीवारीसे घिरा हुआ था॥ १४॥

कैलास-शिखरके समान श्वेत प्रासाद-शिखर तथा समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले फलोंसे युक्त पुष्पित दिव्य वृक्ष उस राजभवनकी शोभा बढ़ाते थे॥ १५॥

वहाँ इन्द्रके दिये हुए दिव्य फल-फूलोंसे सम्पन्न मनोरम वृक्ष लगाये गये थे, जो परम सुन्दर, नीले मेघके समान श्याम तथा शीतल छायासे युक्त थे॥ १६॥

अनेक बलवान् वानर हाथोंमें हथियार लिये उसकी ड्योढ़ीपर पहरा दे रहे थे। वह सुन्दर महल दिव्य मालाओंसे अलंकृत था और उसका बाहरी फाटक पक्के सोनेका बना हुआ था॥ १७॥

महाबली सुमित्राकुमार लक्ष्मणने सुग्रीवके उस रमणीय भवनमें प्रवेश किया। मानो सूर्यदेव महान् मेघके भीतर प्रविष्ट हुए हों। उस समय किसीने रोक-टोक नहीं की॥ १८॥

धर्मात्मा लक्ष्मणने सवारियों तथा विविध आसनोंसे सुशोभित उस भवनकी सात ड्योढ़ियोंको पार करके बहुत ही गुप्त और विशाल अन्तःपुरको देखा॥ १९॥

उसमें जहाँ-तहाँ चाँदी और सोनेके बहुत-से पलंग तथा अनेकानेक श्रेष्ठ आसन रखे हुए थे और उन सबपर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे। उन सबसे वह अन्तःपुर सुसज्जित दिखायी देता था॥ २०॥

उसमें प्रवेश करते ही लक्ष्मणके कानोंमें संगीतकी मीठी तान सुनायी पड़ी, जो वहाँ निरन्तर गूँज रही थी। वीणाके लयपर कोई कोमल कण्ठसे गा रहा था। प्रत्येक पद और अक्षरका उच्चारण सम* तालका प्रदर्शन करते हुए हो रहा था॥ २१॥

महाबली लक्ष्मणने सुग्रीवके उस अन्तःपुरमें अनेक रूपरंगकी बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं, जो रूप और यौवनके गर्वसे भरी हुई थीं॥ २२॥

वे सब-की-सब उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई थीं, फूलोंके गजरोंसे अलंकृत थीं, उत्तम पुष्पहारोंके निर्माणमें लगी हुई थीं और सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन सबको देखकर लक्ष्मणने सुग्रीवके सेवकोंपर भी दृष्टिपात किया, जो अतृप्त या असंतुष्ट नहीं थे। स्वामीके कार्य सिद्ध करनेके लिये अत्यन्त फुर्तीकी भी उनमें कमी नहीं थी तथा उनके वस्त्र और आभूषण भी निम्न श्रेणीके नहीं थे॥ २३-२४॥

नूपुरोंकी झनकार और करधनीकी खनखनाहट सुनकर श्रीमान् सुमित्राकुमार लज्जित हो गये (परायी स्त्रियोंपर दृष्टि पड़नेके कारण उन्हें स्वभावतः संकोच हुआ)॥ २५॥

तत्पश्चात् पुनः आभूषणोंकी झनकार सुनकर वीर लक्ष्मण रोषके आवेगसे और भी कुपित हो उठे और उन्होंने अपने धनुषपर टंकार दी, जिसकी ध्वनिसे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं॥ २६॥

रघुकुलोचित सदाचारका खयाल करके महाबाहु लक्ष्मण कुछ पीछे हट गये और एकान्तमें जाकर खड़े

---

* संगीतमें वह स्थान जहाँ गाने-बजानेवालोंका सिर या हाथ आप-से-आप हिल जाता है। यह स्थान तालके अनुसार निश्चित होता है। जैसे तितालेमें दूसरे तालपर और चौतालमें पहले तालपर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न तालोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर सम होता है। वाद्योंका आरम्भ और गीतों तथा वाद्योंका अन्त इसी समपर होता है। परंतु गाने-बजानेके बीच-बीचमें भी सम बराबर आता रहता है।

हो गये। श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ कोई प्रयत्न होता न देख वे मन-ही-मन कुपित हो रहे थे॥ २७॥

धनुषकी टंकार सुनकर वानरराज सुग्रीव समझ गये कि लक्ष्मण यहाँतक आ पहुँचे हैं। फिर तो वे भयसे संत्रस्त होकर अपना सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये॥ २८॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे कि अङ्गदने पहले मुझे जैसा बताया था, उसके अनुसार ये भ्रातृवत्सल सुमित्राकुमार लक्ष्मण अवश्य ही यहाँ आ गये॥ २९॥

अङ्गदके द्वारा उनके आगमनका समाचार तो उन्हें पहले ही मिल गया था। अब धनुषकी टंकारसे वानर सुग्रीवको इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया कि लक्ष्मणने अवश्य यहाँ पदार्पण किया है। फिर तो उनका मुख सूख गया॥ ३०॥

भयके कारण वे मन-ही-मन घबरा उठे। (लक्ष्मणके सामने जानेका उन्हें साहस न हुआ।) तथापि किसी तरह धैर्य धारण करके वानरश्रेष्ठ सुग्रीव परम सुन्दरी तारासे हितकी बात बोले—॥ ३१॥

'सुन्दरि! इनके रोषका क्या कारण हो सकता है? जिससे स्वभावतः कोमल चित्त होनेपर भी ये श्रीरघुनाथजीके छोटे भाई रुष्ट-से होकर यहाँ पधारे हैं॥ ३२॥

'अनिन्दिते! तुम्हारे देखनेमें कुमार लक्ष्मणके रोषका आधार क्या है? ये मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। अतः बिना किसी कारणके निश्चय ही क्रोध नहीं कर सकते॥ ३३॥

'यदि हमलोगोंने इनका कोई अपराध किया हो और तुम्हें उसका पता हो तो अपनी बुद्धिसे विचारकर शीघ्र ही बताओ॥ ३४॥

'अथवा भामिनि! तुम स्वयं ही जाकर लक्ष्मणको देखो और सान्त्वनायुक्त बातें कहकर उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करो॥ ३५॥

'उनका हृदय शुद्ध है। तुम्हारे सामने वे क्रोध नहीं करेंगे; क्योंकि महात्मा पुरुष स्त्रियोंके प्रति कभी कठोर बर्ताव नहीं करते हैं॥ ३६॥

'जब तुम उनके पास जाकर मीठे वचनोंसे उन्हें शान्त कर दोगी और जब उनका मन स्वस्थ एवं इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जायँगी, उस समय मैं उन शत्रुदमन कमलनयन लक्ष्मणका दर्शन करूँगा'॥ ३७॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर शुभलक्षणा तारा लक्ष्मणके पास गयी। उसका पतला शरीर स्वाभाविक संकोच एवं विनयसे झुका हुआ था। उसके नेत्र मदसे चञ्चल हो रहे थे, पैर लड़खड़ा रहे थे और उसकी करधनीके सुवर्णमय सूत्र लटक रहे थे॥ ३८॥

वानरराजकी पत्नी तारापर दृष्टि पड़ते ही राजकुमार महात्मा लक्ष्मण अपना मुँह नीचा करके उदासीन भावसे खड़े हो गये। स्त्रीके समीप होनेसे उनका क्रोध दूर हो गया॥ ३९॥

मधुपानके कारण ताराकी नारीसुलभ लज्जा निवृत्त हो गयी थी। उसे राजकुमार लक्ष्मणकी दृष्टिमें कुछ प्रसन्नताका आभास मिला। इसलिये उसने स्नेहजनित निर्भीकताके साथ महान् अर्थसे युक्त यह सान्त्वनापूर्ण बात कही—॥ ४०॥

'राजकुमार! आपके क्रोधका क्या कारण है? कौन आपकी आज्ञाके अधीन नहीं है? कौन निडर होकर सूखे वृक्षोंसे भरे हुए वनके भीतर चारों ओर फैलते हुए दावानलमें प्रवेश कर रहा है?'॥ ४१॥

ताराके इस वचनमें सान्त्वना भरी थी। उसमें अधिक प्रेमपूर्वक हृदयका भाव प्रकट किया गया था। उसे सुनकर लक्ष्मणके हृदयकी आशङ्का जाती रही। वे कहने लगे—॥ ४२॥

'अपने स्वामीके हितमें संलग्न रहनेवाली तारा! तुम्हारा यह पति विषय-भोगमें आसक्त होकर धर्म और अर्थके संग्रहका लोप कर रहा है। क्या तुम्हें इसकी इस अवस्थाका पता नहीं है? तुम इसे समझाती क्यों नहीं?॥ ४३॥

'तारे! सुग्रीव अपने राज्यकी स्थिरताके लिये ही प्रयास करता है। हमलोग शोकमें डूबे हुए हैं, परंतु हमारी इसे तनिक भी चिन्ता नहीं होती है। यह अपने मन्त्रियों तथा राज-सभाके सदस्योंसहित केवल विषय-भोगोंका ही सेवन कर रहा है॥ ४४॥

'वानरराज सुग्रीवने चार महीनोंकी अवधि निश्चित की थी। वे कभी बीत गये, परंतु वह मधुपानके मदसे अत्यन्त उन्मत्त होकर स्त्रियोंके साथ क्रीडा-विहार कर रहा है। उसे बीते हुए समयका पता ही नहीं है॥ ४५॥

'धर्म और अर्थकी सिद्धिके निमित्त प्रयत्न करनेवाले पुरुषके लिये इस तरह मद्यपान अच्छा नहीं माना जाता है; क्योंकि मद्यपानसे अर्थ, धर्म और काम तीनोंका नाश होता है॥ ४६॥

'मित्रके किये हुए उपकारका यदि अवसर आनेपर भी बदला न चुकाया जाय तो धर्मकी हानि तो होती ही है। गुणवान् मित्रके साथ मित्रताका नाता टूट जानेपर

अपने अर्थकी भी बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है॥

'मित्र दो प्रकारके होते हैं—एक तो अपने मित्रके अर्थसाधनमें तत्पर होता है और दूसरा सत्य एवं धर्मके ही आश्रित रहता है। तुम्हारे स्वामीने मित्रके दोनों ही गुणोंका परित्याग कर दिया है। वह न तो मित्रका कार्य सिद्ध करता है और न स्वयं ही धर्ममें स्थित है॥ ४८॥

'ऐसी स्थितिमें प्रस्तुत कार्यकी सिद्धिके लिये हमलोगोंको भविष्यमें क्या करना चाहिये? हमारे लिये जो समुचित कर्तव्य हो, उसे तुम्हीं बताओ; क्योंकि तुम कार्यके तत्त्वको जानती हो'॥ ४९॥

लक्ष्मणका वचन धर्म और अर्थके निश्चयसे संयुक्त था। उससे उनके मधुर स्वभावका परिचय मिल रहा था। उसे सुनकर तारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके विषयमें, जिसका प्रयोजन उसे ज्ञात हो चुका था, पुनः लक्ष्मणसे विश्वासके योग्य बात बोली—॥ ५०॥

'वीर राजकुमार! यह क्रोध करनेका समय नहीं है। आत्मीय जनोंपर क्रोध करना भी नहीं चाहिये। सुग्रीवके मनमें सदा आपका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा बनी रहती है। अतः यदि उनसे कोई भूल भी हो जाय तो उसे आपको क्षमा करना चाहिये॥ ५१॥

'कुमार! गुणोंमें श्रेष्ठ पुरुष किसी हीन गुणवाले प्राणीपर क्रोध कैसे कर सकता है? जो सत्त्वगुणसे अवरुद्ध होनेके कारण शास्त्र-विपरीत व्यापारमें लग नहीं सकता, अतएव जो सद्‌विचारको जन्म देनेवाला है, वह आप-जैसा कौन पुरुष क्रोधके वशीभूत हो सकता है?॥ ५२॥

'वानरवीर सुग्रीवके मित्र भगवान् श्रीरामके क्रोधका कारण मैं जानती हूँ। उनके कार्यमें जो विलम्ब हुआ है, उससे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ। सुग्रीवका जो कार्य आपके अधीन था और जिसे आपलोगोंने पूरा किया है, उसका भी मुझे पता है तथा इस समय जो आपका कार्य प्रस्तुत है, उसके विषयमें हमलोगोंका क्या कर्तव्य है, इसका भी मुझे अच्छी तरह ज्ञान है॥ ५३॥

'नरश्रेष्ठ! इस शरीरमें उत्पन्न हुए कामका जो असह्य बल है, उसको भी मैं जानती हूँ तथा उस कामद्वारा आबद्ध होकर सुग्रीव जहाँ आसक्त हो रहे हैं, वह भी मुझे मालूम है। साथ ही इस बातसे भी मैं परिचित हूँ कि कामासक्तिके कारण ही इन दिनों सुग्रीवका मन दूसरे किसी काममें नहीं लगता॥ ५४॥

'आप जो क्रोधके वशीभूत हो गये हैं, इससे जान पड़ता है कि कामके अधीन हुए पुरुषकी स्थितिका आपको बिलकुल ज्ञान नहीं है, वानरकी तो बात ही क्या है? कामासक्त मनुष्यको भी देश, काल, अर्थ और धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता—उनकी ओर उसकी दृष्टि नहीं जाती है॥ ५५॥

'विपक्षी वीरोंका विनाश करनेवाले राजकुमार! वानरराज सुग्रीव विषय-भोगमें आसक्त होकर इस समय मेरे ही पास थे। कामके आवेशमें उन्होंने अपनी लज्जाका परित्याग कर दिया है, तो भी उन्हें अपना भाई समझकर क्षमा कीजिये॥ ५६॥

'जो निरन्तर धर्म और तपस्यामें ही संलग्न रहते हैं, जिन्होंने मोहको अवरुद्ध कर दिया है—अविवेकको दूर भगा दिया है, वे महर्षि भी कभी-कभी विषयाभिलाषी हो जाते हैं; फिर जो स्वभावसे ही चञ्चल वानर हैं, वह राजा सुग्रीव सुख-भोगमें क्यों न आसक्त हों?'॥ ५७॥

अप्रमेय शक्तिशाली लक्ष्मणसे इस प्रकार महान् अर्थसे युक्त बात कहकर मदसे चञ्चल नेत्रवाली वानरपत्नी ताराने पुनः खेदपूर्वक स्वामीके लिये यह हितकर वचन कहा—॥ ५८॥

'नरश्रेष्ठ! यद्यपि सुग्रीव इस समय कामके गुलाम हो रहे हैं, तथापि इन्होंने आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये बहुत पहलेसे ही उद्योग आरम्भ करनेकी आज्ञा दे रखी है॥ ५९॥

'इसके फलस्वरूप इस समय विभिन्न पर्वतोंपर निवास करनेवाले लाखों और करोड़ों वानर, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ एवं महान् पराक्रमी हैं, यहाँ उपस्थित हुए हैं॥ ६०॥

'महाबाहो! (दूसरेकी स्त्रियोंको देखना अनुचित समझकर जो आप भीतर नहीं आये, बाहर ही खड़े रह गये—इसके द्वारा) आपने सदाचारकी रक्षा की है; अतः अब भीतर आइये। मित्रभावसे स्त्रियोंकी ओर देखना (उनके प्रति माता-बहन आदिका भाव रखकर दृष्टि डालना) सत्पुरुषोंके लिये अधर्म नहीं है'॥ ६१॥

ताराके आग्रह और कार्यकी जल्दीसे प्रेरित होकर शत्रुदमन महाबाहु लक्ष्मण सुग्रीवके महलके भीतर गये॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, एक सोनेके सिंहासनपर बहुमूल्य बिछौना बिछा है और वानरराज सुग्रीव सूर्यतुल्य तेजस्वी रूप धारण किये उसके ऊपर विराजमान हैं॥ ६३॥

उस समय दिव्य आभूषणोंके कारण उनके

शरीरकी विचित्र शोभा हो रही थी। दिव्यरूपधारी यशस्वी सुग्रीव दिव्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र धारण करके दुर्जय वीर देवराज इन्द्रके समान दिखायी दे रहे थे॥ ६४॥

दिव्य आभूषणों और मालाओंसे अलंकृत युवती स्त्रियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। उन्हें इस अवस्थामें देख लक्ष्मणके नेत्र रोषावेशके कारण लाल हो गये। वे उस समय यमराजके समान भयंकर प्रतीत होने लगे॥ ६५॥

सुन्दर सुवर्णके समान कान्ति और विशाल नेत्रवाले वीर सुग्रीव अपनी पत्नी रुमाको गाढ आलिङ्गनपाशमें बाँधे हुए एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान थे। उसी अवस्थामें उन्होंने उदार हृदय और विशाल नेत्रवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणको देखा॥ ६६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका लक्ष्मणके पास जाना और लक्ष्मणका उन्हें फटकारना

लक्ष्मण बेरोक-टोक भीतर घुस आये थे। उन पुरुषशिरोमणिको क्रोधसे भरा देख सुग्रीवकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं॥ १॥

दशरथपुत्र लक्ष्मण रोषपूर्वक लंबी साँस खींच रहे थे और तेजसे प्रज्वलित-से जान पड़ते थे। अपने भाईके कष्टसे उनके मनमें बड़ा संताप था। उन्हें सामने आया देख वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सुवर्णका सिंहासन छोड़कर कूद पड़े, मानो देवराज इन्द्रका भलीभाँति सजाया हुआ महान् ध्वज आकाशसे पृथ्वीपर उतर आया हो॥ २-३॥

सुग्रीवके उतरते ही रुमा आदि स्त्रियाँ भी उनके पीछे उस सिंहासनसे उतरकर खड़ी हो गयीं। जैसे आकाशमें पूर्ण चन्द्रमाका उदय होनेपर तारोंके समुदाय भी उदित हो गये हों॥ ४॥

श्रीमान् सुग्रीवके नेत्र मदसे लाल हो रहे थे। वे टहलते हुए लक्ष्मणके पास आये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। लक्ष्मण वहाँ महान् कल्पवृक्षके समान स्थित थे॥ ५॥

सुग्रीवके साथ उनकी पत्नी रुमा भी थी। वे स्त्रियोंके बीचमें खड़े होकर तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाते थे। उन्हें देखकर लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा—॥ ६॥

'वानरराज! धैर्यवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय और सत्यवादी राजाका ही संसारमें आदर होता है॥

'जो राजा अधर्ममें स्थित होकर उपकारी मित्रोंके सामने की हुई अपनी प्रतिज्ञाको झूठी कर देता है, उससे बढ़कर अत्यन्त क्रूर कौन होगा?॥ ८॥

'अश्वदानकी प्रतिज्ञा करके उसकी पूर्ति न करनेपर 'अश्वानृत' (अश्वविषयक असत्य) नामक पाप होता है। यह पाप बन जानेपर मनुष्य सौ अश्वोंकी हत्याके पापका भागी होता है। इसी प्रकार गोदानविषयक प्रतिज्ञाको मिथ्या कर देनेपर सहस्र गौओंके वधका पाप लगता है तथा किसी पुरुषके समक्ष उसका कार्य पूर्ण कर देनेकी प्रतिज्ञा करके जो उसकी पूर्ति नहीं करता है, वह पुरुष आत्मघात और स्वजन-वधके पापका भागी होता है (फिर जो परम पुरुष श्रीरामके समक्ष की हुई प्रतिज्ञाको मिथ्या करता है, उसके पापकी कोई इयत्ता नहीं हो सकती)॥ ९॥

'वानरराज! जो पहले मित्रोंके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करके बदलेमें उन मित्रोंका कोई उपकार नहीं करता है, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियोंके लिये वध्य है॥ १०॥

'कपिराज! किसी कृतघ्नको देखकर कुपित हुए ब्रह्माजीने सब लोगोंके लिये आदरणीय यह एक श्लोक कहा है, इसे सुनो—॥ ११॥

'गोहत्यारे, शराबी, चोर और व्रत-भंग करनेवाले पुरुषके लिये सत्पुरुषोंने प्रायश्चित्तका विधान किया है; किंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है॥ १२॥

'वानर! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी हो; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी सहायतासे तुमने पहले अपना काम तो बना लिया, किंतु जब उनके लिये सहायता करनेका अवसर आया, तब तुम कुछ नहीं करते॥ १३॥

'वानर! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो चुका है; अतः अब तुम्हें प्रत्युपकारकी इच्छासे श्रीरामकी पत्नी सीताकी खोजके लिये प्रयत्न करना चाहिये॥ १४॥

'परंतु तुम्हारी दशा यह है कि अपनी प्रतिज्ञाको झूठी करके ग्राम्यभोगोंमें आसक्त हो रहे हो। श्रीरामचन्द्रजी

यह नहीं जानते हैं कि तुम मेढककी-सी बोली बोलनेवाले सर्प हो (जैसे साँप अपने मुँहमें किसी मेढकको जब दबा लेता है, तब केवल मेढक ही बोलता है, दूरके लोग उसे मेढक ही समझते हैं; परंतु वह वास्तवमें सर्प होता है। वही दशा तुम्हारी है। तुम्हारी बातें कुछ और हैं और स्वरूप कुछ और)॥ १५॥

'महाभाग श्रीरामचन्द्रजी परम महात्मा तथा दयासे द्रवित हो जानेवाले हैं; अतएव उन्होंने तुम-जैसे पापी और दुरात्माको भी वानरोंके राज्यपर बिठा दिया॥ १६॥

'यदि तुम महात्मा रघुनाथजीके किये हुए उपकारको नहीं समझोगे तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर वालीका दर्शन करोगे॥ १७॥

'सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्तेसे गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो। वालीके मार्गका अनुसरण न करो॥

'इक्ष्वाकुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए उन वज्रतुल्य बाणोंकी ओर निश्चय ही तुम्हारी दृष्टि नहीं जा रही है। इसीलिये तुम ग्राम्यसुखका सेवन कर रहे हो और उसीमें सुख मानकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यका मनसे भी विचार नहीं करते हो'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

ताराका लक्ष्मणको युक्तियुक्त वचनोंद्वारा शान्त करना

सुमित्राकुमार लक्ष्मण अपने तेजके कारण प्रज्वलित-से हो रहे थे। वे जब उपर्युक्त बात कह चुके, तब चन्द्रमुखी तारा उनसे बोली—॥ १॥

'कुमार लक्ष्मण! आपको सुग्रीवसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। ये वानरोंके राजा हैं; अतः इनके प्रति कठोर वचन बोलना उचित नहीं है। विशेषतः आप-जैसे सुहृद्‌के मुखसे तो ये कदापि कटु वचन सुननेके अधिकारी नहीं हैं॥ २॥

'वीर! कपिराज सुग्रीव न कृतघ्न हैं, न शठ हैं, न क्रूर हैं, न असत्यवादी हैं और न कुटिल ही हैं॥ ३॥

'वीर लक्ष्मण! श्रीरामचन्द्रजीने इनका जो उपकार किया है, वह युद्धमें दूसरोंके लिये दुष्कर है। उसे इन वीर कपिराजने कभी भुलाया नहीं है॥ ४॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले सुमित्रानन्दन! श्रीरामचन्द्रजीके कृपाप्रसादसे ही सुग्रीवने वानरोंके अक्षय राज्यको, यशको, रुमाको तथा मुझको भी प्राप्त किया है॥ ५॥

'पहले इन्होंने बड़ा दुःख उठाया है। अब इस उत्तम सुखको पाकर ये इसमें ऐसे रम गये कि इन्हें प्राप्त हुए समयका ज्ञान ही नहीं रहा। ठीक उसी तरह, जैसे विश्वामित्र मुनिको मेनकामें आसक्त हो जानेके कारण समयकी सुध-बुध नहीं रह गयी थी*॥ ६॥

'लक्ष्मण! कहते हैं, धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रने घृताची (मेनका) नामक अप्सरामें आसक्त होनेके कारण दस वर्षके समयको एक दिन ही माना था॥ ७॥

'कालका ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी विश्वामित्रको भी जब भोगासक्त होनेपर कालका ज्ञान नहीं रह गया, तब फिर दूसरे साधारण प्राणीको कैसे रह सकता है?॥ ८॥

'कुमार लक्ष्मण! आहार, निद्रा और मैथुन आदि जो देहके धर्म हैं, (जो पशुओंमें भी समानरूपसे पाये जाते हैं) उनमें स्थित हुए ये सुग्रीव पहले तो चिरकालतक दुःख भोगनेके कारण थके-माँदे एवं खिन्न थे। अब भगवान् श्रीरामकी कृपासे इन्हें जो काम-भोग प्राप्त हुए हैं, उनसे अभीतक इनकी तृप्ति नहीं हुई (इसीलिये इनसे कुछ असावधानी हो गयी); अतः परम कृपालु श्रीरघुनाथजीको यहाँ इनका अपराध क्षमा करना चाहिये॥ ९॥

'तात लक्ष्मण! आपको यथार्थ बात जाने बिना साधारण मनुष्यकी भाँति सहसा क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये॥ १०॥

'पुरुषप्रवर! आप-जैसे सत्त्वगुणसम्पन्न पुरुष विचार किये बिना ही सहसा रोषके वशीभूत नहीं होते हैं॥ ११॥

'धर्मज्ञ! मैं एकाग्र हृदयसे सुग्रीवके लिये आपसे कृपाकी याचना करती हूँ। आप क्रोधसे उत्पन्न हुए इस महान् क्षोभका परित्याग कीजिये॥ १२॥

* यह प्रसंग बालकाण्डके तिरसठवें सर्गमें आया है।

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये रुमाका, मेरा, कुमार अङ्गदका तथा धन-धान्य और पशुओंसहित सम्पूर्ण राज्यका भी परित्याग कर सकते हैं॥ १३॥

'सुग्रीव उस अधम राक्षसका वध करके श्रीरामको सीतासे उसी तरह मिलायेंगे, जैसे चन्द्रमाका रोहिणीके साथ संयोग हुआ हो॥ १४॥

'कहते हैं कि लङ्कामें सौ हजार करोड़, छत्तीस अयुत, छत्तीस हजार और छत्तीस सौ राक्षस रहते हैं*॥

'वे सब-के-सब राक्षस इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तथा दुर्जय हैं। उन सबका संहार किये बिना रावणका, जिसने मिथिलेशकुमारी सीताका अपहरण किया है, वध नहीं हो सकता॥ १६॥

'लक्ष्मण! किसीकी सहायता लिये बिना अकेले किसी वीरके द्वारा न तो उन राक्षसोंका संग्राममें वध किया जा सकता है और न क्रूरकर्मा रावणका ही। इसलिये सुग्रीवसे सहायता लेनेकी विशेष आवश्यकता है॥ १७॥

'वानरराज वाली लङ्काके राक्षसोंकी इस संख्यासे परिचित थे, उन्हींने मुझे उनकी इस तरह गणना बतायी थी। रावणने इतनी सेनाका संग्रह कैसे किया? यह तो मुझे नहीं मालूम है। किंतु इस संख्याको मैंने उनके मुँहसे सुना था। वह इस समय मैं आपको बता रही हूँ॥ १८॥

'आपकी सहायताके लिये सुग्रीवने बहुतेरे श्रेष्ठ वानरोंको युद्धके निमित्त असंख्य वानर वीरोंकी सेना एकत्र करनेके लिये भेज रखा है॥ १९॥

'वानरराज सुग्रीव उन महाबली और पराक्रमी वीरोंके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतएव भगवान् श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये अभी नगरसे बाहर नहीं निकल सके हैं॥ २०॥

'सुमित्रानन्दन! सुग्रीवने उन सबके एकत्र होनेके लिये पहलेसे ही जो अवधि निश्चित कर रखी है, उसके अनुसार उन समस्त महाबली वानरोंको आज ही यहाँ उपस्थित हो जाना चाहिये॥ २१॥

'शत्रुदमन लक्ष्मण! आज आपकी सेवामें कोटि सहस्र (दस अरब) रीछ, सौ करोड़ (एक अरब) लंगूर तथा और भी बढ़े हुए तेजवाले कई करोड़ वानर उपस्थित होंगे। इसलिये आप क्रोधको त्याग दीजिये॥ २२॥

'आपका मुख क्रोधसे तमतमा उठा है और आँखें रोषसे लाल हो गयी हैं। यह सब देखकर हम वानरराजकी स्त्रियोंको शान्ति नहीं मिल रही है। हम सबको प्रथम भय (वालिवध) के समान ही किसी अनिष्टकी आशङ्का हो रही है'॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका अपनी लघुता तथा श्रीरामकी महत्ता बताते हुए लक्ष्मणसे क्षमा माँगना और लक्ष्मणका उनकी प्रशंसा करके उन्हें अपने साथ चलनेके लिये कहना

ताराने जब इस प्रकार धर्मके अनुकूल विनययुक्त बात कही, तब कोमल स्वभाववाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उसे मान लिया (क्रोधको त्याग दिया)॥ १॥

उनके द्वारा ताराकी बात मान ली जानेपर वानरयूथपति सुग्रीवने लक्ष्मणसे प्राप्त होनेवाले महान् भयको भीगे हुए वस्त्रकी भाँति त्याग दिया॥ २॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवने अपने कण्ठमें पड़ी हुई फूलोंकी विचित्र, विशाल एवं बहुगुणसम्पन्न माला तोड़ डाली और वे मदसे रहित हो गये॥ ३॥

फिर समस्त वानरोंमें शिरोमणि सुग्रीवने भयंकर बलशाली लक्ष्मणका हर्ष बढ़ाते हुए उनसे यह विनययुक्त बात कही—॥ ४॥

'सुमित्राकुमार! मेरी श्री, कीर्ति तथा सदासे चला आता हुआ वानरोंका राज्य—ये सब नष्ट हो चुके थे। भगवान् श्रीरामकी कृपासे ही मुझे पुनः इन सबकी प्राप्ति हुई है॥ ५॥

'राजकुमार! वे भगवान् श्रीराम अपने कर्मोंसे ही सर्वत्र विख्यात हैं। उनके उपकारका वैसा ही बदला अंशमात्रसे भी कौन चुका सकता है?॥ ६॥

'धर्मात्मा श्रीराम अपने ही तेजसे रावणका वध

* आधुनिक गणनाके अनुसार यह संख्या दस खरब तीन लाख निन्यानबे हजार छः सौ होती है।

करेंगे और सीताको प्राप्त कर लेंगे। मैं तो उनका एक तुच्छ सहायकमात्र रहूँगा॥ ७॥

'जिन्होंने एक ही बाणसे सात बड़े-बड़े ताल वृक्ष, पर्वत, पृथ्वी, पाताल और वहाँ रहनेवाले दैत्योंको भी विदीर्ण कर दिया था, उनको दूसरे किसी सहायककी आवश्यकता भी क्या है?॥ ८॥

'लक्ष्मण! जिनके धनुष खींचते समय उसकी टंकारसे पर्वतोंसहित पृथ्वी काँप उठी थी, उन्हें सहायकोंसे क्या लेना है?॥ ९॥

'नरश्रेष्ठ! मैं तो वैरी रावणका वध करनेके लिये अग्रगामी सैनिकोंसहित यात्रा करनेवाले महाराज श्रीरामके पीछे-पीछे चलूँगा॥ १०॥

'विश्वास अथवा प्रेमके कारण यदि कोई अपराध बन गया हो तो मुझ दासके उस अपराधको क्षमा कर देना चाहिये; क्योंकि ऐसा कोई सेवक नहीं है, जिससे कभी कोई अपराध होता ही न हो'॥ ११॥

महात्मा सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये और बड़े प्रेमसे इस प्रकार बोले—॥ १२॥

'वानरराज सुग्रीव! विशेषतः तुम-जैसे विनयशील सहायकको पाकर मेरे भाई श्रीराम सर्वथा सनाथ हैं॥

'सुग्रीव! तुम्हारा जो प्रभाव है और तुम्हारे हृदयमें जो इतना शुद्ध भाव है, इससे तुम वानरराज्यकी परम उत्तम लक्ष्मीका सदा ही उपभोग करनेके अधिकारी हो॥

'सुग्रीव! तुम्हें सहायकके रूपमें पाकर प्रतापी श्रीराम रणभूमिमें अपने शत्रुओंका शीघ्र ही वध कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ १५॥

'सुग्रीव! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले हो। तुम्हारा यह भाषण सर्वथा युक्तिसंगत और उचित है॥ १६॥

'वानरशिरोमणे! तुमको और मेरे बड़े भाईको छोड़कर दूसरा कौन ऐसा विद्वान् है, जो अपनेमें सामर्थ्य होते हुए भी ऐसा नम्रतापूर्ण वचन कह सके॥ १७॥

'कपिराज! तुम बल और पराक्रममें भगवान् श्रीरामके बराबर हो। देवताओंने ही हमें दीर्घकालके लिये तुम-जैसा सहायक प्रदान किया है॥ १८॥

'किंतु वीर! अब तुम शीघ्र ही मेरे साथ इस पुरीसे बाहर निकलो। तुम्हारे मित्र अपनी पत्नीके अपहरणसे बहुत दुःखी हैं। उन्हें चलकर सान्त्वना दो॥ १९॥

'सखे! शोकमग्न श्रीरामके वचनोंको सुनकर जो मैंने तुम्हारे प्रति कठोर बातें कह दी हैं, उनके लिये मुझे क्षमा करो'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका हनुमान्‌जीको वानरसेनाके संग्रहके लिये दोबारा दूत भेजनेकी आज्ञा देना, उन दूतोंसे राजाकी आज्ञा सुनकर समस्त वानरोंका किष्किन्धाके लिये प्रस्थान और दूतोंका लौटकर सुग्रीवको भेंट देनेके साथ ही वानरोंके आगमनका समाचार सुनाना

महात्मा लक्ष्मणने जब ऐसा कहा, तब सुग्रीव अपने पास ही खड़े हुए हनुमान्‌जीसे यों बोले—॥ १॥

'महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्य, कैलास तथा श्वेत शिखरवाले मन्दराचल—इन पाँच पर्वतोंके शिखरोंपर जो श्रेष्ठ वानर रहते हैं, पश्चिम दिशामें समुद्रके परवर्ती तटपर प्रातःकालिक सूर्यके समान कान्तिमान् और नित्य प्रकाशमान पर्वतोंपर जिन वानरोंका निवास है, भगवान् सूर्यके निवासस्थान तथा संध्याकालिक मेघसमूहके समान अरुण वर्णवाले उदयाचल एवं अस्ताचलपर जो वानर वास करते हैं, पद्माचलवर्ती वनका आश्रय लेकर जो भयानक पराक्रमी वानर-शिरोमणि निवास करते हैं, अञ्जनपर्वतपर जो काजल और मेघके समान काले तथा गजराजके समान महाबली वानर रहते हैं, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें निवास करनेवाले तथा मेरुपर्वतके आस-पास रहनेवाले जो सुवर्णकी-सी कान्तिवाले वानर हैं, जो धूम्रगिरिका आश्रय लेकर रहते हैं, मैरेय मधुका पान करते हुए जो महारुण पर्वतपर प्रातःकालके सूर्यकी भाँति लाल रंगके भयानक वेगशाली वानर निवास करते हैं तथा सुगन्धसे परिपूर्ण एवं तपस्वियोंके आश्रमोंसे सुशोभित बड़े-बड़े रमणीय वनों और वनान्तोंमें चारों ओर जो वानर रहते हैं, भूमण्डलके उन सभी वानरोंको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ। शक्तिशाली तथा

अत्यन्त वेगवान् वानरोंको भेजकर उनके द्वारा साम, दान आदि उपायोंका प्रयोग करके उन सबको यहाँ बुलवाओ॥ २—९॥

'मेरी आज्ञासे पहले जो महान् वेगशाली वानर भेजे गये हैं, उनको जल्दी करनेके लिये प्रेरणा देनेके निमित्त तुम पुनः दूसरे श्रेष्ठ वानरोंको भेजो॥ १०॥

'जो वानर कामभोगमें फँसे हुए हों तथा जो दीर्घसूत्री (प्रत्येक कार्यको विलम्बसे करनेवाले) हों, उन सभी कपीश्वरोंको शीघ्र यहाँ ले आओ॥ ११॥

'जो मेरी आज्ञासे दस दिनके भीतर यहाँ न आ जायँ, राजाज्ञाको कलङ्कित करनेवाले उन दुरात्मा वानरोंको मार डालना चाहिये॥ १२॥

'जो मेरी आज्ञाके अधीन रहते हों, ऐसे सैकड़ों, हजारों तथा करोड़ों वानरसिंह मेरे आदेशसे जायँ॥ १३॥

'जो मेघ और पर्वतके समान अपने विशाल शरीरसे आकाशको आच्छादित-सा कर लेते हैं, वे घोर रूपधारी श्रेष्ठ वानर मेरा आदेश मानकर यहाँसे यात्रा करें॥ १४॥

'वानरोंके निवासस्थानोंको जाननेवाले सभी वानर तीव्र गतिसे भूमण्डलमें चारों ओर जाकर मेरे आदेशसे उन-उन स्थानोंके सम्पूर्ण वानरगणोंको तुरंत यहाँ ले आवें'॥

वानरराज सुग्रीवकी बात सुनकर वायुपुत्र हनुमान्‌जीने सम्पूर्ण दिशाओंमें बहुत-से पराक्रमी वानरोंको भेजा॥ १६॥

राजाकी आज्ञा पाकर वे सब वानर तत्काल आकाशमें पक्षियों और नक्षत्रोंके मार्गसे चल दिये॥ १७॥

उन वानरोंने समुद्रोंके किनारे, पर्वतोंपर, वनोंमें और सरोवरोंके तटोंपर रहनेवाले समस्त वानरोंको श्रीरामचन्द्रजीका कार्य करनेके लिये चलनेको कहा॥ १८॥

अपने सम्राट् सुग्रीवका, जो मृत्यु एवं कालके समान भयानक दण्ड देनेवाले थे, आदेश सुनकर वे सभी वानर उनके भयसे थर्रा उठे और तुरंत ही किष्किन्धाकी ओर प्रस्थित हुए॥ १९॥

तदनन्तर कज्जल गिरिसे काजलके ही समान काले और महान् बलवान् तीन करोड़ वानर उस स्थानपर जानेके लिये निकले, जहाँ श्रीरघुनाथजी विराजमान थे॥ २०॥

जहाँ सूर्यदेव अस्त होते हैं, उस श्रेष्ठ पर्वतपर रहनेवाले दस करोड़ वानर, जिनकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान थी, वहाँसे किष्किन्धाके लिये चले॥

कैलासके शिखरोंसे सिंहके अयालकी-सी श्वेत कान्तिवाले दस अरब वानर आये॥ २२॥

जो हिमालयपर रहकर फल-मूलसे जीवननिर्वाह करते थे, वे वानर एक नीलकी संख्यामें वहाँ आये॥ २३॥

विन्ध्याचल पर्वतसे मङ्गलके समान लाल रंगवाले भयानक पराक्रमी भयंकर रूपधारी वानरोंकी दस अरब सेना बड़े वेगसे किष्किन्धामें आयी॥ २४॥

क्षीरसमुद्रके किनारे और तमालवनमें नारियल खाकर रहनेवाले वानर इतनी अधिक संख्यामें आये कि उनकी गणना नहीं हो सकती थी॥ २५॥

वनोंसे, गुफाओंसे और नदियोंके किनारोंसे असंख्य महाबली वानर एकत्र हुए। वानरोंकी वह सारी सेना सूर्यदेवको पीती (आच्छादित करती) हुई-सी आयी॥ २६॥

जो वानर समस्त वानरोंको शीघ्र आनेके लिये प्रेरित करनेके निमित्त किष्किन्धासे दुबारा भेजे गये थे, उन वीरोंने हिमालय पर्वतपर उस प्रसिद्ध विशाल वृक्षको देखा (जो भगवान् शंकरकी यज्ञशालामें स्थित था)॥ २७॥

उस पवित्र एवं श्रेष्ठ पर्वतपर पूर्वकालमें भगवान् शंकरका यज्ञ हुआ था, जो सम्पूर्ण देवताओंके मनको संतोष देनेवाला और अत्यन्त मनोरम था॥ २८॥

उस पर्वतपर खीर आदि अन्न (होमद्रव्य) से घृत आदिका स्राव हुआ था, उससे वहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट फल और मूल उत्पन्न हुए थे। उन फलोंको उन वानरोंने देखा॥ २९॥

उक्त अन्नसे उत्पन्न हुए उस दिव्य एवं मनोहर फल-मूलको जो कोई एक बार खा लेता था, वह एक मासतक उससे तृप्त बना रहता था॥ ३०॥

फलाहार करनेवाले उन वानरशिरोमणियोंने उन दिव्य मूल-फलों और दिव्य औषधोंको अपने साथ ले लिया॥ ३१॥

वहाँ जाकर उस यज्ञ-मण्डपसे वे सब वानर सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये सुगन्धित पुष्प भी लेते आये॥ ३२॥

वे समस्त श्रेष्ठ वानर भूमण्डलके सम्पूर्ण वानरोंको तुरंत चलनेका आदेश देकर उनके यूथोंके पहुँचनेके पहले ही सुग्रीवके पास आ गये॥ ३३॥

वे शीघ्रगामी वानर उसी मुहूर्तमें चलकर बड़ी उतावलीके साथ किष्किन्धापुरीमें जहाँ वानरराज सुग्रीव थे, जा पहुँचे॥ ३४॥

उस सम्पूर्ण ओषधियों और फल-मूलोंको लेकर उन वानरोंने सुग्रीवकी सेवामें अर्पित कर दिया और इस प्रकार कहा—॥ ३५॥

'महाराज! हमलोग सभी पर्वतों, नदियों और वनोंमें घूम आये। भूमण्डलके समस्त वानर आपकी आज्ञासे यहाँ आ रहे हैं'॥ ३६॥

यह सुनकर वानरराज सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उनकी दी हुई सारी भेंट-सामग्री सानन्द ग्रहण की॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणसहित सुग्रीवका भगवान् श्रीरामके पास आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करना, श्रीरामका उन्हें समझाना, सुग्रीवका अपने किये हुए सैन्यसंग्रहविषयक उद्योगको बताना और उसे सुनकर श्रीरामका प्रसन्न होना

उनके लाये हुए उन समस्त उपहारोंको ग्रहण करके सुग्रीवने सम्पूर्ण वानरोंको मधुर वचनोंद्वारा सान्त्वना दी। फिर सबको विदा कर दिया॥ १॥

कार्य पूरा करके लौटे हुए उन सहस्रों वानरोंको विदा करके सुग्रीवने अपने-आपको कृतार्थ माना और महाबली श्रीरघुनाथजीका भी कार्य सिद्ध हुआ ही समझा॥ २॥

तत्पश्चात् लक्ष्मण समस्त वानरोंमें श्रेष्ठ भयंकर बलशाली सुग्रीवका हर्ष बढ़ाते हुए उनसे यह विनीत वचन बोले—॥ ३॥

'सौम्य! यदि तुम्हारी रुचि हो तो अब किष्किन्धासे बाहर निकलो।' लक्ष्मणकी यह सुन्दर बात सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—॥ ४½॥

'अच्छा, ऐसा ही हो। चलिये, चलें। मुझे तो आपकी आज्ञाका पालन करना है।' शुभ लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणसे ऐसा कहकर सुग्रीवने तारा आदि सब स्त्रियोंको तत्काल विदा कर दिया॥ ५-६॥

इसके बाद सुग्रीवने शेष वानरोंको 'आओ, आओ' कहकर उच्च स्वरसे पुकारा। उनकी वह पुकार सुनकर सब वानर, जो अन्तःपुरकी स्त्रियोंको देखनेके अधिकारी थे, दोनों हाथ जोड़े शीघ्रतापूर्वक उनके पास आये॥ ७½॥

पास आये हुए उन वानरोंसे सूर्यतुल्य तेजस्वी राजा सुग्रीवने कहा—'वानरो! तुमलोग शीघ्र मेरी शिबिकाको यहाँ ले आओ'॥ ८½॥

उनकी बात सुनकर शीघ्रगामी वानरोंने एक सुन्दर शिबिका (पालकी) वहाँ उपस्थित कर दी॥ ९½॥

पालकीको वहाँ उपस्थित देख वानरराज सुग्रीवने सुमित्राकुमारसे कहा—'कुमार लक्ष्मण! आप शीघ्र इसपर आरूढ़ हो जायँ'॥ १०½॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणसहित सुग्रीव उस सूर्यकी-सी प्रभावाली सुवर्णमयी पालकीपर, जिसे ढोनेके लिये बहुत-से वानर लगे थे, आरूढ़ हुए॥ ११½॥

उस समय सुग्रीवके ऊपर श्वेत छत्र लगाया गया और सब ओरसे सफेद चँवर डुलाये जाने लगे। शङ्ख और भेरीकी ध्वनिके साथ वन्दीजनोंका अभिनन्दन सुनते हुए राजा सुग्रीव परम उत्तम राजलक्ष्मीको पाकर किष्किन्धापुरीसे बाहर निकले॥ १२-१३½॥

हाथमें शस्त्र लिये तीक्ष्ण स्वभाववाले कई सौ वानरोंसे घिरे हुए राजा सुग्रीव उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् श्रीराम निवास करते थे॥ १४½॥

श्रीरामचन्द्रजीसे सेवित उस श्रेष्ठ स्थानमें पहुँचकर लक्ष्मणसहित महातेजस्वी सुग्रीव पालकीसे उतरे और श्रीरामके पास जा हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ १५-१६॥

वानरराजके हाथ जोड़कर खड़े होनेपर उनके अनुयायी वानर भी उन्हींकी भाँति अञ्जलि बाँधे खड़े हो गये। मुकुलित कमलोंसे भरे हुए विशाल सरोवरकी भाँति वानरोंकी उस बड़ी भारी सेनाको देखकर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवपर बहुत प्रसन्न हुए॥ १७½॥

वानरराजको चरणोंमें मस्तक रखकर पड़ा हुआ देख श्रीरघुनाथजीने हाथसे पकड़कर उठाया और बड़े आदर तथा प्रेमके साथ उन्हें हृदयसे लगाया॥ १८½॥

हृदयसे लगाकर धर्मात्मा श्रीरामने उनसे कहा—'बैठो'। उन्हें पृथ्वीपर बैठा देख श्रीराम बोले—॥

'वीर! वानरशिरोमणे! जो धर्म, अर्थ और कामके लिये समयका विभाग करके सदा उचित समयपर उनका (न्याययुक्त) सेवन करता है, वही श्रेष्ठ राजा है। किंतु जो धर्म-अर्थका त्याग करके केवल कामका ही सेवन करता है, वह वृक्षकी अगली शाखापर सोये हुए मनुष्यके समान है। गिरनेपर ही उसकी आँख खुलती है॥ २०-२१½॥

'जो राजा शत्रुओंके वध और मित्रोंके संग्रहमें संलग्न रहकर योग्य समयपर धर्म, अर्थ और कामका (न्याययुक्त) सेवन करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है॥ २२½ ॥

'शत्रुसूदन! यह हमलोगोंके लिये उद्योगका समय आया है। वानरराज! तुम इस विषयमें इन वानरों और मन्त्रियोंके साथ विचार करो'॥ २३½ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुग्रीवने उनसे कहा—'महाबाहो! मेरी श्री, कीर्ति तथा सदासे चला आनेवाला वानरोंका राज्य—ये सब नष्ट हो चुके थे। आपकी कृपासे ही मुझे पुनः इन सबकी प्राप्ति हुई है॥ २४-२५ ॥

'विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ देव! आप और आपके भाईकी कृपासे ही मैं वानर-राज्यपर पुनः प्रतिष्ठित हुआ हूँ। जो किये हुए उपकारका बदला नहीं चुकाता है, वह पुरुषोंमें धर्मको कलङ्कित करनेवाला माना गया है॥ २६ ॥

'शत्रुसूदन! ये सैकड़ों बलवान् और मुख्य वानर भूमण्डलके सभी बलशाली वानरोंको साथ लेकर यहाँ आये हैं॥ २७॥

'रघुनन्दन! इनमें रीछ हैं, वानर हैं और शौर्य-सम्पन्न गोलाङ्गूल (लङ्गूर) हैं। ये सब-के-सब देखनेमें बड़े भयंकर हैं और बीहड़ वनों तथा दुर्गम स्थानोंके जानकार हैं॥ २८॥

'रघुनाथजी! जो देवताओं और गन्धर्वोंके पुत्र हैं और इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं, वे श्रेष्ठ वानर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ चल पड़े हैं और इस समय मार्गमें हैं॥ २९ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! इनमेंसे किसीके साथ सौ, किसीके साथ लाख, किसीके साथ करोड़, किसीके साथ अयुत (दस हजार) और किसीके साथ एक शंकु वानर हैं॥ ३० ॥

'कितने ही वानर अर्बुद (दस करोड़), सौ अर्बुद (दस अरब), मध्य (दस पद्म) तथा अन्त्य (एक पद्म) वानर-सैनिकोंके साथ आ रहे हैं। कितने ही वानरों तथा वानर-यूथपतियोंकी संख्या समुद्र (दस नील) तथा परार्ध (शंख) तक पहुँच गयी है*॥ ३१ ॥

'राजन्! वे देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी तथा मेघों और पर्वतोंके समान विशालकाय वानर, जो मेरु और विन्ध्याचलमें निवास करते हैं, यहाँ शीघ्र ही उपस्थित होंगे॥ ३२ ॥

'जो युद्धमें रावणका वध करके मिथिलेश-कुमारी सीताको लङ्कासे ला देंगे, वे महान् शक्तिशाली वानर संग्राममें उस राक्षससे युद्ध करनेके लिये अवश्य आपके पास आयेंगे'॥ ३३ ॥

यह सुनकर परम पराक्रमी राजकुमार श्रीराम अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले वानरोंके प्रमुख वीर सुग्रीवका यह सैन्य-विषयक उद्योग देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे और प्रफुल्ल नील कमलके समान दिखायी देने लगे॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका सुग्रीवके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना तथा विभिन्न वानर-यूथपतियोंका अपनी सेनाओंके साथ आगमन

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने अपनी दोनों भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किया और हाथ जोड़कर खड़े हुए उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

'सखे! इन्द्र जो जलकी वर्षा करते हैं, सहस्रों किरणोंसे शोभा पानेवाले सूर्यदेव जो आकाशका अन्धकार दूर कर देते हैं तथा सौम्य! चन्द्रमा अपनी प्रभासे जो

* यहाँ अर्बुद, शंकु, अन्त्य और मध्य आदि संख्यावाचक शब्दोंका आधुनिक गणितके अनुसार मान समझनेके लिये प्राचीन संज्ञाओंका पूर्ण रूपसे उल्लेख किया जाता है और कोष्ठमें उसका आधुनिक मान दिया जा रहा है—एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शंकु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शंख)—ये संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं। (नारदपुराणसे)

अँधेरी रातको भी उज्ज्वल कर देते हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि यह उनका स्वाभाविक गुण है। शत्रुओंको संताप देनेवाले सुग्रीव! इसी तरह तुम्हारे समान पुरुष भी यदि अपने मित्रोंका उपकार करके उन्हें प्रसन्न कर दें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये॥ २-३॥

'सौम्य सुग्रीव! इसी प्रकार तुममें जो मित्रोंका हितसाधनरूप कल्याणकारी गुण है, वह आश्चर्यका विषय नहीं है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम सदा प्रिय बोलनेवाले हो—यह तुम्हारा स्वाभाविक गुण है॥ ४॥

'सखे! तुम्हारी सहायतासे सनाथ होकर मैं युद्धमें समस्त शत्रुओंको जीत लूँगा। तुम्हीं मेरे हितैषी मित्र हो और मेरी सहायता कर सकते हो॥ ५॥

'राक्षसाधम रावणने अपना नाश करनेके लिये ही मिथिलेशकुमारीको धोखा देकर उसका अपहरण किया है। ठीक उसी तरह, जैसे अनुह्लादने अपने विनाशके लिये ही पुलोमपुत्री शचीको छलपूर्वक हर लिया था*॥ ६॥

'जैसे शत्रुहन्ता इन्द्रने शचीके घमंडी पिताको मार डाला था, उसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही अपने तीखे बाणोंसे रावणका वध कर डालूँगा'॥ ७॥

श्रीराम और सुग्रीवमें जब इस प्रकार बातें हो रही थीं, उसी समय बड़े जोरकी धूल उठी, जिसने आकाशमें फैलकर सूर्यकी प्रचण्ड प्रभाको ढक दिया॥ ८॥

फिर तो उस धूलजनित अन्धकारसे सम्पूर्ण दिशाएँ दूषित एवं व्याप्त हो गयीं तथा पर्वत, वन और काननोंके साथ समूची पृथ्वी डगमग होने लगी॥ ९॥

तदनन्तर पर्वतराजके समान शरीर और तीखी दाढ़वाले असंख्य महाबली वानरोंसे वहाँकी सारी भूमि आच्छादित हो गयी॥ १०॥

पलक मारते-मारते अरबों वानरोंसे घिरे हुए अनेकानेक यूथपतियोंने वहाँ आकर सारी भूमिको ढक लिया॥ ११॥

नदी, पर्वत, वन और समुद्र सभी स्थानोंके निवासी महाबली वानर जुट गये, जो मेघोंकी गर्जनाके समान उच्च स्वरसे सिंहनाद करते थे॥ १२॥

कोई बालसूर्यके समान लाल रंगके थे तो कोई चन्द्रमाके समान गौर वर्णके। कितने ही वानर कमलके केसरोंके समान पीले रंगके थे और कितने ही हिमाचलवासी वानर सफेद दिखायी देते थे॥ १३॥

उस समय परम कान्तिमान् शतबलि नामक वीर वानर दस अरब वानरोंके साथ दृष्टिगोचर हुआ॥ १४॥

तत्पश्चात् सुवर्णशैलके समान सुन्दर एवं विशाल शरीरवाले ताराके महाबली पिता कई सहस्र कोटि वानरोंके साथ वहाँ उपस्थित देखे गये॥ १५॥

इसी प्रकार रुमाके पिता और सुग्रीवके श्वशुर, जो बड़े वैभवशाली थे, वहाँ उपस्थित हुए। उनके साथ भी दस अरब वानर थे॥ १६॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीके पिता कपिश्रेष्ठ श्रीमान् केसरी दिखायी दिये। उनके शरीरका रंग कमलके केसरोंकी भाँति पीला और मुख प्रातःकालके सूर्यके समान लाल था। वे बड़े बुद्धिमान् और समस्त वानरोंमें श्रेष्ठ थे। वे कई सहस्र वानरोंसे घिरे हुए थे॥ १७-१८॥

फिर लंगूर-जातिवाले वानरोंके महाराज भयंकर पराक्रमी गवाक्षका दर्शन हुआ। उनके साथ दस अरब वानरोंकी सेना थी॥ १९॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले धूम्र भयंकर वेगशाली बीस अरब रीछोंकी सेना लेकर आये॥ २०॥

महापराक्रमी यूथपति पनस तीन करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित हुए। वे सब-के-सब बड़े भयंकर तथा महान् पर्वताकार दिखायी देते थे॥ २१॥

यूथपति नीलका शरीर भी बड़ा विशाल था। वे नीले कज्जल गिरिके समान नीलवर्णके थे और दस करोड़ कपियोंसे घिरे हुए थे॥ २२॥

तदनन्तर यूथपति गवय, जो सुवर्णमय पर्वत मेरुके समान कान्तिमान् और महापराक्रमी थे, पाँच करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित हुए॥ २३॥

उसी समय वानरोंके बलवान् सरदार दरीमुख भी आ पहुँचे। वे दस अरब वानरोंके साथ सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित हुए थे॥ २४॥

अश्विनीकुमारोंके महाबली पुत्र मैन्द और द्विविद, ये दोनों भाई भी दस-दस अरब वानरोंकी सेनाके साथ वहाँ दिखायी दिये॥ २५॥

* पुलोम दानवकी कन्या शची इन्द्रदेवके प्रति अनुरक्त थीं, परंतु अनुह्लादने उनके पिताको फुसलाकर अपने पक्षमें कर लिया और उसकी अनुमतिसे शचीको हर लिया। जब इन्द्रको इसका पता लगा, तब वे अनुमति देनेवाले पुलोमको और अपहरण करनेवाले अनुह्लादको भी मारकर शचीको अपने घर ले आये। यह पुराणप्रसिद्ध कथा है। (रामायणतिलकसे)

तदनन्तर महातेजस्वी बलवान् वीर गज तीन करोड़ वानरोंके साथ सुग्रीवके पास आया॥ २६॥

रीछोंके राजा जाम्बवान् बड़े तेजस्वी थे। वे दस करोड़ रीछोंसे घिरे हुए आये और सुग्रीवके अधीन होकर खड़े हुए॥ २७॥

रुमण (रुमण्वान्) नामक तेजस्वी और बलवान् वानर एक अरब पराक्रमी वानरोंको साथ लिये बड़ी तीव्र गतिसे वहाँ आया॥ २८॥

इसके बाद यूथपति गन्धमादन उपस्थित हुए। उनके पीछे एक पद्म वानरोंकी सेना आयी थी॥ २९॥

तत्पश्चात् युवराज अङ्गद आये। ये अपने पिताके समान ही पराक्रमी थे। इनके साथ एक सहस्र पद्म और सौ शंकु (एक पद्म) वानरोंकी सेना थी (इनके सैनिकोंकी कुल संख्या दस शंख एक पद्म थी)॥ ३०॥

तदनन्तर तारोंके समान कान्तिमान् तार नामक वानर पाँच करोड़ भयंकर पराक्रमी वानर वीरोंके साथ दूरसे आता दिखायी दिया॥ ३१॥

इन्द्रजानु (इन्द्रभानु) नामक वीर यूथपति, जो बड़ा ही विद्वान् एवं बुद्धिमान् था, ग्यारह करोड़ वानरोंके साथ उपस्थित देखा गया। वह उन सबका स्वामी था॥ ३२॥

इसके बाद रम्भ नामक वानर उपस्थित हुआ, जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति लाल रंगका था। उसके साथ ग्यारह हजार एक सौ वानरोंकी सेना थी॥ ३३॥

तत्पश्चात् वीर यूथपति दुर्मुख नामक बलवान् वानर उपस्थित देखा गया, जो दो करोड़ वानर सैनिकोंसे घिरा हुआ था॥ ३४॥

इसके बाद हनुमान्‌जीने दर्शन दिया। उनके साथ कैलासशिखरके समान श्वेत शरीरवाले भयंकर पराक्रमी वानर दस अरबकी संख्यामें मौजूद थे॥ ३५॥

फिर महापराक्रमी नल उपस्थित हुए, जो एक अरब एक हजार एक सौ द्रुमवासी वानरोंसे घिरे हुए थे॥ ३६॥

तदनन्तर श्रीमान् दधिमुख दस करोड़ वानरोंके साथ गर्जना करते हुए किष्किन्धामें महात्मा सुग्रीवके पास आये॥ ३७॥

इनके सिवा शरभ, कुमुद, वह्नि तथा रंह—ये और दूसरे भी बहुत-से इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरयूथपति सारी पृथ्वी, पर्वत और वनोंको आवृत करके वहाँ उपस्थित हुए, जिनकी कोई गणना नहीं की जा सकती॥ ३८-३९॥

वहाँ आये हुए सभी वानर पृथ्वीपर बैठे। वे सब-के-सब उछलते, कूदते और गर्जते हुए वहाँ सुग्रीवके चारों ओर जमा हो गये। जैसे सूर्यको सब ओरसे घेरकर बादलोंके समूह छा रहे हों॥ ४०॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले बहुतेरे श्रेष्ठ वानरोंने (जो भीड़के कारण सुग्रीवके पासतक न पहुँच सके थे) अनेक प्रकारकी बोली बोलकर तथा मस्तक झुकाकर वानरराज सुग्रीवको अपने आगमनकी सूचना दी॥ ४१॥

बहुत-से श्रेष्ठ वानर उनके पास गये और यथोचितरूपसे मिलकर लौटे तथा कितने ही वानर सुग्रीवसे मिलनेके बाद उनके पास ही हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ ४२॥

धर्मके ज्ञाता वानरराज सुग्रीवने वहाँ आये हुए उन सब वानरशिरोमणियोंका समाचार निवेदन करके श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्रतापूर्वक उनका परिचय दिया, फिर हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये॥ ४३॥

उन वानर-यूथपतियोंने वहाँके पर्वतीय झरनोंके आस-पास तथा समस्त वनोंमें अपनी सेनाओंको यथोचितरूपसे सुखपूर्वक ठहरा दिया। तत्पश्चात् सब सेनाओंके ज्ञाता सुग्रीव उनका पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीवका सीताकी खोजके लिये पूर्व दिशामें वानरोंको भेजना और वहाँके स्थानोंका वर्णन करना

तदनन्तर बल-वैभवसे सम्पन्न वानरराज राजा सुग्रीव शत्रुसेनाका संहार करनेवाले पुरुषसिंह श्रीरामसे बोले—॥ १॥

'भगवन्! जो मेरे राज्यमें निवास करते हैं, वे महेन्द्रके समान तेजस्वी, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् वानर-यूथपति यहाँ आकर पड़ाव डाले बैठे हैं।

'ये अपने साथ ऐसे बलवान् वानर योद्धाओंको ले आये हैं, जो बहुत-से युद्धस्थलोंमें अपना पराक्रम प्रकट कर चुके हैं और भयंकर पुरुषार्थ कर दिखानेवाले हैं। यहाँ ऐसे-ऐसे वानर उपस्थित हुए हैं, जो दैत्यों और दानवोंके समान भयानक हैं॥ ३॥

'अनेक युद्धोंमें इन वानर वीरोंकी शूर-वीरताका परिचय मिल चुका है। ये बलके भण्डार हैं, युद्धसे थकते नहीं हैं—इन्होंने थकावटको जीत लिया है। ये अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध और उद्योग करनेमें श्रेष्ठ हैं॥

'श्रीराम! यहाँ आये हुए ये वानरोंके करोड़ों यूथ विभिन्न पर्वतोंपर निवास करनेवाले हैं। जल और थल—दोनोंमें समानरूपसे चलनेकी शक्ति रखते हैं। ये सब-के-सब आपके किंकर (आज्ञापालक) हैं॥ ५॥

'शत्रुदमन! ये सभी आपकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं। आप इनके गुरु—स्वामी हैं। ये आपके हितसाधनमें तत्पर रहकर आपके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध कर सकेंगे॥ ६॥

'दैत्यों और दानवोंके समान घोर रूपधारी ये सभी वानर-यूथपति अपने साथ भयंकर पराक्रम करनेवाली कई सहस्र सेनाएँ लेकर आये हैं॥ ७॥

'पुरुषसिंह! अब इस समय आप जो कर्तव्य उचित समझते हैं, उसे बताइये। आपकी यह सेना आपके वशमें है। आप इसे यथोचित कार्यके लिये आज्ञा प्रदान करें॥ ८॥

'यद्यपि सीताजीके अन्वेषणका यह कार्य इन सबको तथा मुझे भी अच्छी तरह ज्ञात है, तथापि आप जैसा उचित हो, वैसे कार्यके लिये हमें आज्ञा दें'॥ ९॥

जब सुग्रीवने ऐसी बात कही, तब दशरथनन्दन श्रीरामने दोनों भुजाओंसे पकड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १०॥

'सौम्य! महाप्राज्ञ! पहले यह तो पता लगाओ कि विदेहकुमारी सीता जीवित है या नहीं तथा वह देश, जिसमें रावण निवास करता है, कहाँ है?॥ ११॥

'जब सीताके जीवित होनेका और रावणके निवासस्थानका निश्चित पता मिल जायगा, तब जो समयोचित कर्तव्य होगा, उसका मैं तुम्हारे साथ मिलकर निश्चय करूँगा॥ १२॥

'वानरराज! इस कार्यको सिद्ध करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न लक्ष्मण ही। कपीश्वर! इस कार्यकी सिद्धि तुम्हारे ही हाथ है। तुम्हीं इसे पूर्ण करनेमें समर्थ हो॥ १३॥

'प्रभो! मेरे कार्यका भलीभाँति निश्चय करके तुम्हीं वानरोंको उचित आज्ञा दो। वीर! मेरा कार्य क्या है? इसे तुम्हीं ठीक-ठीक जानते हो, इसमें संशय नहीं है॥ १४॥

'लक्ष्मणके बाद तुम्हीं मेरे दूसरे सुहृद् हो। तुम पराक्रमी, बुद्धिमान्, समयोचित कर्तव्यके ज्ञाता, हितमें संलग्न रहनेवाले, हितैषी बन्धु, विश्वासपात्र तथा मेरे प्रयोजनको अच्छी तरह समझनेवाले हो'॥ १५॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सुग्रीवने उनके और बुद्धिमान् लक्ष्मणके समीप ही विनत नामक यूथपतिसे, जो पर्वतके समान विशालकाय, मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले, बलवान् तथा वानरोंके शासक थे और चन्द्रमा एवं सूर्यके समान कान्तिवाले वानरोंके साथ उपस्थित हुए थे, कहा—'वानरशिरोमणे! तुम देश और कालके अनुसार नीतिका प्रयोग करनेवाले तथा कार्यका निश्चय करनेमें चतुर हो। तुम एक लाख वेगवान् वानरोंके साथ पर्वत, वन और काननोंसहित पूर्व दिशाकी ओर जाओ और वहाँ पहाड़ोंके दुर्गम प्रदेशों, वनों तथा सरिताओंमें विदेहकुमारी सीता एवं रावणके निवास-स्थानकी खोज करो॥ १६—१९½॥

'भागीरथी गङ्गा, रमणीय सरयू, कौशिकी, सुरम्य कलिन्दनन्दिनी यमुना, महापर्वत यामुन, सरस्वती नदी, सिंधु, मणिके समान निर्मल जलवाले शोणभद्र, मही तथा पर्वतों और वनोंसे सुशोभित कालमही आदि नदियोंके किनारे ढूँढ़ो॥ २०-२१½॥

'ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कोसल, मगध देशके बड़े-बड़े ग्राम, पुण्ड्रदेश तथा अङ्ग आदि जनपदोंमें छानबीन करो॥ २२½॥

'रेशमके कीड़ोंकी उत्पत्तिके स्थानों और चाँदीके खानोंमें भी खोज करनी चाहिये। इधर-उधर ढूँढ़ते हुए तुम सब लोगोंको इन सभी स्थानोंमें राजा दशरथकी पुत्रवधू तथा श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पत्नी सीताका अन्वेषण करना चाहिये॥ २३-२४॥

'समुद्रके भीतर प्रविष्ट हुए पर्वतोंपर, उसके अन्तर्वर्ती द्वीपोंके विभिन्न नगरोंमें तथा मन्दराचलकी चोटीपर जो कोई गाँव बसे हैं, उन सबमें सीताका अनुसंधान करो॥ २५॥

'जो कर्णप्रावरण (वस्त्रकी भाँति पैरतक लटके हुए कानवाले), ओष्ठकर्णक (ओठतक फैले हुए

कानवाले) तथा घोरलोहमुख (लोहेके समान काले एवं भयंकर मुखवाले) हैं, जो एक ही पैरके होते हुए भी वेगपूर्वक चलनेवाले हैं, जिनकी संतानपरम्परा कभी क्षीण नहीं होती, वे पुरुष तथा जो बलवान् नरभक्षी राक्षस हैं, जो सूचीके अग्रभागकी भाँति तीखी चोटीवाले, सुवर्णके समान कान्तिमान्, प्रियदर्शन (सुन्दर), कच्ची मछली खानेवाले, द्वीपवासी तथा जलके भीतर विचरनेवाले किरात हैं, जिनके नीचेका आकार मनुष्य-जैसा और ऊपरकी आकृति व्याघ्रके समान है, ऐसे जो भयंकर प्राणी बताये गये हैं; वानरो! इन सबके निवासस्थानोंमें जाकर तुम्हें सीता तथा रावणकी खोज करनी चाहिये॥ २६—२८$\frac{1}{2}$ ॥

'जिन द्वीपोंमें पर्वतोंपर होकर जाना पड़ता है, जहाँ समुद्रको तैरकर या नाव आदिके द्वारा पहुँचा जाता है, उन सब स्थानोंमें सीताको ढूँढ़ना चाहिये॥ २९॥

'इसके सिवा तुमलोग यत्नशील होकर सात राज्योंसे सुशोभित यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) तथा रूप्यकद्वीपमें भी जो सुवर्णकी खानोंसे सुशोभित हैं, ढूँढ़नेका प्रयत्न करो॥ ३०॥

'यवद्वीपको लाँघकर आगे जानेपर एक शिशिर नामक पर्वत मिलता है, जिसके ऊपर देवता और दानव निवास करते हैं। वह पर्वत अपने उच्च शिखरसे स्वर्गलोकका स्पर्श करता-सा जान पड़ता है॥ ३१॥

'इन सब द्वीपोंके पर्वतों तथा शिशिर पर्वतके दुर्गम प्रदेशोंमें, झरनोंके आस-पास और जंगलोंमें तुम सब लोग एक साथ होकर श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी पत्नी सीताका अन्वेषण करो॥ ३२॥

'तदनन्तर समुद्रके उस पार जहाँ सिद्ध और चारण निवास करते हैं, जाकर लाल जलसे भरे हुए शीघ्र प्रवाहित होनेवाले शोण नामक नदके तटपर पहुँच जाओगे। उसके तटवर्ती रमणीय तीर्थों और विचित्र वनोंमें जहाँ-तहाँ विदेहकुमारी सीताके साथ रावणकी खोज करना॥ ३३-३४॥

'पर्वतोंसे निकली हुई बहुत-सी ऐसी नदियाँ मिलेंगी, जिनके तटोंपर बड़े भयंकर अनेकानेक उपवन प्राप्त होंगे। साथ ही वहाँ बहुत-सी गुफाओंवाले पर्वत उपलब्ध होंगे और अनेक वन भी दृष्टिगोचर होंगे। उन सबमें सीताका पता लगाना चाहिये॥ ३५॥

'तत्पश्चात् पूर्वोक्त देशोंसे परे जाकर तुम इक्षुरससे परिपूर्ण समुद्र तथा उसके द्वीपोंको देखोगे, जो बड़े ही भयंकर प्रतीत होते हैं। इक्षुरसका वह समुद्र महाभयंकर है। उसमें हवाके वेगसे उत्ताल तरंगें उठती रहती हैं तथा वह गर्जना करता हुआ-सा जान पड़ता है॥ ३६॥

'उस समुद्रमें बहुत-से विशालकाय असुर निवास करते हैं। वे बहुत दिनोंके भूखे होते हैं और छाया पकड़कर ही प्राणियोंको अपने पास खींच लेते हैं। यही उनका नित्यका आहार है। इसके लिये उन्हें ब्रह्माजीसे अनुमति मिल चुकी है॥ ३७॥

'इक्षुरसका वह समुद्र काले मेघके समान श्याम दिखायी देता है। बड़े-बड़े नाग उसके भीतर निवास करते हैं। उससे बड़ी भारी गर्जना होती रहती है। विशेष उपायोंसे उस महासागरके पार जाकर तुम लाल रंगके जलसे भरे हुए लोहित नामक भयंकर समुद्रके तटपर पहुँच जाओगे और वहाँ शाल्मलीद्वीपके चिह्नभूत कूटशाल्मली नामक विशाल वृक्षका दर्शन करोगे॥ ३८-३९॥

'उसके पास ही विश्वकर्माका बनाया हुआ विनतानन्दन गरुड़का एक सुन्दर भवन है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित तथा कैलास पर्वतके समान उज्ज्वल एवं विशाल है॥ ४०॥

'उस द्वीपमें पर्वतके समान शरीरवाले भयंकर मंदेह नामक राक्षस निवास करते हैं, जो सुरासमुद्रके मध्यवर्ती शैल-शिखरोंपर लटकते रहते हैं। वे अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले तथा भयदायक हैं॥ ४१॥

'प्रतिदिन सूर्योदयके समय वे राक्षस ऊर्ध्वमुख होकर सूर्यसे जूझने लगते हैं, परंतु सूर्यमण्डलके तापसे संतप्त तथा ब्रह्मतेजसे निहत हो सुरा-समुद्रके जलमें गिर पड़ते हैं। वहाँसे फिर जीवित हो उन्हीं शैल-शिखरोंपर लटक जाते हैं। उनका बारंबार ऐसा ही क्रम चला करता है॥ ४२$\frac{1}{2}$ ॥

'शाल्मलिद्वीप एवं सुरा-समुद्रसे आगे बढ़नेपर (क्रमशः घृत और दधिके समुद्र प्राप्त होंगे। वहाँ सीताकी खोज करनेके पश्चात् जब आगे बढ़ोगे, तब) सफेद बादलोंकी-सी आभावाले क्षीरसमुद्रका दर्शन करोगे॥ ४३॥

'दुर्धर्ष वानरो! वहाँ पहुँचकर उठती हुई लहरोंसे युक्त क्षीरसागरको इस प्रकार देखोगे, मानो उसने मोतियोंके हार पहन रखे हों। उस सागरके बीचमें ऋषभ नामसे प्रसिद्ध एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो श्वेत वर्णका है॥

'उस पर्वतपर सब ओर बहुत-से वृक्ष भरे हुए हैं, जो फूलोंसे सुशोभित तथा दिव्य गन्धसे सुवासित हैं।

उसके ऊपर सुदर्शन नामका एक सरोवर है, जिसमें चाँदीके समान श्वेत रंगवाले कमल खिले हुए हैं। उन कमलोंके केसर सुवर्णमय होते हैं और सदा दिव्य दीप्तिसे दमकते रहते हैं। वह सरोवर राजहंसोंसे भरा रहता है॥ ४५½ ॥

'देवता, चारण, यक्ष, किन्नर और अप्सराएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ जल-विहार करनेके लिये वहाँ आया करती हैं॥ ४६½ ॥

'वानरो! क्षीरसागर लाँघकर जब तुमलोग आगे बढ़ोगे, तब शीघ्र ही सुस्वादु जलसे भरे हुए समुद्रको देखोगे। वह महासागर समस्त प्राणियोंको भय देनेवाला है। उसमें ब्रह्मर्षि और्वके कोपसे प्रकट हुआ वडवामुख नामक महान् तेज विद्यमान है॥ ४७-४८ ॥

'उस समुद्रमें जो चराचर प्राणियोंसहित महान् वेगशाली जल है, वही उस वडवामुख नामक अग्निका आहार बताया जाता है। वहाँ जो वडवानल प्रकट हुआ है, उसे देखकर उसमें पतनके भयसे चीखते-चिल्लाते हुए समुद्रनिवासी असमर्थ प्राणियोंका आर्तनाद निरन्तर सुनायी देता है॥ ४९ ॥

'स्वादिष्ट जलसे भरे हुए उस समुद्रके उत्तर तेरह योजनकी दूरीपर सुवर्णमयी शिलाओंसे सुशोभित, कनककी कमनीय कान्ति धारण करनेवाला एक बहुत ऊँचा पर्वत है॥ ५० ॥

'वानरो! उसके शिखरपर इस पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त बैठे दिखायी देंगे। उनका श्रीविग्रह चन्द्रमाके समान गौरवर्णका है। वे सर्प जातिके हैं; परंतु उनका स्वरूप देवताओंके तुल्य है। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान हैं और शरीर नील वस्त्रसे आच्छादित है। उन अनन्तदेवके सहस्र मस्तक हैं॥

'पर्वतके ऊपर उन महात्माकी ताड़के चिह्नसे युक्त सुवर्णमयी ध्वजा फहराती रहती है। उस ध्वजाकी तीन शिखाएँ हैं और उसके नीचे आधारभूमिपर वेदी बनी हुई है। इस तरह उस ध्वजकी बड़ी शोभा होती है॥ ५३ ॥

'यही तालध्वज पूर्व दिशाकी सीमाके सूचक-चिह्नके रूपमें देवताओंद्वारा स्थापित किया गया है। उसके बाद सुवर्णमय उदयपर्वत है, जो दिव्य शोभासे सम्पन्न है॥ ५४ ॥

'उसका गगनचुम्बी शिखर सौ योजन लंबा है। उसका आधारभूत पर्वत भी वैसा ही है। उसके साथ वह दिव्य सुवर्णशिखर अद्भुत शोभा पाता है॥ ५५ ॥

'वहाँके साल, ताल, तमाल और फूलोंसे लदे कनेर आदि वृक्ष भी सुवर्णमय ही हैं। उन सूर्यतुल्य तेजस्वी दिव्य वृक्षोंसे उदयगिरिकी बड़ी शोभा होती है॥ ५६ ॥

'उस सौ योजन लंबे उदयगिरिके शिखरपर एक सौमनस नामक सुवर्णमय शिखर है, जिसकी चौड़ाई एक योजन और ऊँचाई दस योजन है॥ ५७ ॥

'पूर्वकालमें वामन अवतारके समय पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपना पहला पैर उस सौमनस नामक शिखरपर रखकर दूसरा पैर मेरु पर्वतके शिखरपर रखा था॥ ५८ ॥

'सूर्यदेव उत्तरसे घूमकर जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करते हुए जब अत्यन्त ऊँचे 'सौमनस' नामक शिखरपर आकर स्थित होते हैं, तब जम्बूद्वीपनिवासियोंको उनका अधिक स्पष्टताके साथ दर्शन होता है॥ ५९ ॥

'उस सौमनस नामक शिखरपर वैखानस महात्मा महर्षि बालखिल्यगण प्रकाशित होते देखे जाते हैं, जो सूर्यके समान कान्तिमान् और तपस्वी हैं॥ ६० ॥

'यह उदयगिरिके सौमनस शिखरके सामनेका द्वीप सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध है; क्योंकि उक्त शिखरपर जब भगवान् सूर्य उदित होते हैं, तभी इस द्वीपके समस्त प्राणियोंका तेजसे सम्बन्ध होता है और सबके नेत्रोंको प्रकाश प्राप्त होता है (यही इस द्वीपके 'सुदर्शन' नाम होनेका कारण है)॥ ६१ ॥

'उदयाचलके पृष्ठभागोंमें, कन्दराओंमें तथा वनोंमें भी तुम्हें जहाँ-तहाँ विदेहकुमारी सीतासहित रावणका पता लगाना चाहिये॥ ६२ ॥

'उस सुवर्णमय उदयाचल तथा महात्मा सूर्यदेवके तेजसे व्याप्त हुई उदयकालिक पूर्व संध्या रक्तवर्णकी प्रभासे प्रकाशित होती है॥ ६३ ॥

'सूर्यके उदयका यह स्थान सबसे पहले ब्रह्माजीने बनाया है; अतः यही पृथ्वी एवं ब्रह्मलोकका द्वार है (ऊपरके लोकोंमें रहनेवाले प्राणी इसी द्वारसे भूलोकमें प्रवेश करते हैं तथा भूलोकके प्राणी इसी द्वारसे ब्रह्मलोकमें जाते हैं)। पहले इसी दिशामें इस द्वारका निर्माण हुआ, इसलिये इसे पूर्व दिशा कहते हैं॥ ६४ ॥

'उदयाचलकी घाटियों, झरनों और गुफाओंमें यत्र-तत्र घूमकर तुम्हें विदेहकुमारी सीतासहित रावणका अन्वेषण करना चाहिये॥ ६५ ॥

'इससे आगे पूर्व दिशा अगम्य है। उधर देवता रहते हैं। उस ओर चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश न होनेसे वहाँकी भूमि अन्धकारसे आच्छन्न एवं अदृश्य है॥ ६६॥

'उदयाचलके आस-पासके जो समस्त पर्वत, कन्दराएँ तथा नदियाँ हैं, उनमें तथा जिन स्थानोंका मैंने निर्देश नहीं किया है, उनमें भी तुम्हें जानकीकी खोज करनी चाहिये॥ ६७॥

'वानरशिरोमणियो! केवल उदयगिरितक ही वानरोंकी पहुँच हो सकती है। इससे आगे न तो सूर्यका प्रकाश है और न देश आदिकी कोई सीमा ही है। अत: आगेकी भूमिके बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नहीं है॥ ६८॥

'तुमलोग उदयाचलतक जाकर सीता और रावणके स्थानका पता लगाना और एक मास पूरा होते-होतेतक लौट आना॥ ६९॥

'एक महीनेसे अधिक न ठहरना। जो अधिक कालतक वहाँ रह जायगा, वह मेरे द्वारा मारा जायगा। मिथिलेशकुमारीका पता लगाकर अन्वेषणका प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर अवश्य लौट आना॥ ७०॥

'वानरो! वनसमूहसे अलंकृत पूर्व दिशामें अच्छी तरह भ्रमण करके श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पत्नी सीताका समाचार जानकर तुम वहाँसे लौट आओ। इससे तुम सुखी होओगे'॥ ७१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका दक्षिण दिशाके स्थानोंका परिचय देते हुए वहाँ प्रमुख वानर वीरोंको भेजना

इस प्रकार वानरोंकी बहुत बड़ी सेनाको पूर्व दिशामें प्रस्थापित करके सुग्रीवने दक्षिण दिशाकी ओर चुने हुए वानरोंको, जो भलीभाँति परख लिये गये थे, भेजा॥ १॥

अग्निपुत्र नील, कपिवर हनुमान्‌जी, ब्रह्माजीके महाबली पुत्र जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण[1] (प्रथम), वृषभ, मैन्द, द्विविद, सुषेण (द्वितीय), गन्धमादन, हुताशनके दो पुत्र उल्कामुख और अनङ्ग (असङ्ग) तथा अङ्गद आदि प्रधान-प्रधान वीरोंको, जो महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न थे, विशेषज्ञ वानरराज सुग्रीवने दक्षिणकी ओर जानेकी आज्ञा दी॥ २—५॥

महान् बलशाली अङ्गदको उन समस्त वानर वीरोंका अगुआ बनाकर उन्हें दक्षिण दिशामें सीताकी खोजका भार सौंपा॥ ६॥

उस दिशामें जो कोई भी स्थान अत्यन्त दुर्गम थे, उनका भी कपिराज सुग्रीवने उन श्रेष्ठ वानरोंको परिचय दिया[2]॥ ७॥

वे बोले—'वानरो! तुमलोग भाँति-भाँतिके वृक्षों और लताओंसे सुशोभित सहस्रों शिखरोंवाले विन्ध्यपर्वत, बड़े-बड़े नागोंसे सेवित रमणीय नर्मदा नदी, सुरम्य गोदावरी, महानदी, कृष्णवेणी तथा बड़े-बड़े नागोंसे सेवित महाभागा वरदा आदि नदियोंके तटोंपर और मेखल (मेकल), उत्कल एवं दशार्ण देशके नगरोंमें तथा आब्रवन्ती और अवन्तीपुरीमें भी सब जगह सीताकी खोज करो॥ ८-९½॥

'इसी प्रकार विदर्भ, ऋष्टिक, रम्य माहिषक देश, वङ्ग[3], कलिङ्ग तथा कौशिक आदि देशोंमें सब ओर देखभाल करके पर्वत, नदी और गुफाओंसहित समूचे दण्डकारण्यमें छानबीन करना। वहाँ जो गोदावरी नदी है, उसमें सब ओर बारंबार देखना। इसी प्रकार आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य तथा केरल आदि देशोंमें भी ढूँढ़ना॥ १०—१२॥

'तदनन्तर अनेक धातुओंसे अलंकृत अयोमुख[4]

---

१. सुषेण दो थे—एक ताराके पिता और दूसरा उनसे भिन्न वानरयूथपति था।

२. यहाँ दक्षिण दिशाका विभाग किष्किन्धासे न करके आर्यावर्तसे किया गया है। पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र और हिमालयसे विन्ध्यके भागको आर्यावर्त कहते हैं। सुग्रीवने दक्षिण दिशाके जिन स्थानोंका परिचय दिया है, उनकी सङ्गति आर्यावर्तसे ही दिशाका विभाजन करनेपर लगती है।

३. अन्य पाठके अनुसार यहाँ मत्स्य देश समझना चाहिये।

४. रामायणतिलकके लेखक अयोमुखको मलय-पर्वतका नामान्तर मानते हैं। गोविन्दराज इसे सह्यपर्वतका पर्याय

(मलय) पर्वतपर भी जाना, उसके शिखर बड़े विचित्र हैं। वह शोभाशाली पर्वत फूले हुए विचित्र काननोंसे युक्त है। उसके सभी स्थानोंमें सुन्दर चन्दनके वन हैं। उस महापर्वत मलयपर सीताकी अच्छी तरह खोज करना॥ १३½ ॥

'तत्पश्चात् स्वच्छ जलवाली दिव्य नदी कावेरीको देखना, जहाँ अप्सराएँ विहार करती हैं॥ १४½ ॥

'उस प्रसिद्ध मलयपर्वतके शिखरपर बैठे हुए सूर्यके समान महान् तेजसे सम्पन्न मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका[१] दर्शन करना॥ १५½ ॥

'इसके बाद उन प्रसन्नचित्त महात्मासे आज्ञा लेकर ग्राहोंसे सेवित महानदी ताम्रपर्णीको पार करना॥ १६½ ॥

'उसके द्वीप और जल विचित्र चन्दनवनोंसे आच्छादित हैं; अतः वह सुन्दर साड़ीसे विभूषित युवती प्रेयसीकी भाँति अपने प्रियतम समुद्रसे मिलती है॥ १७½ ॥

'वानरो! वहाँसे आगे बढ़नेपर तुमलोग पाण्ड्यवंशी राजाओंके नगरद्वारपर[२] लगे हुए सुवर्णमय कपाटका दर्शन करोगे, जो मुक्तामणियोंसे विभूषित एवं दिव्य है॥

'तत्पश्चात् समुद्रके तटपर जाकर उसे पार करनेके सम्बन्धमें अपने कर्तव्यका भलीभाँति निश्चय करके उसका पालन करना। महर्षि अगस्त्यने समुद्रके भीतर एक सुन्दर सुवर्णमय पर्वतको स्थापित किया है, जो महेन्द्रगिरिके नामसे विख्यात है। उसके शिखर तथा वहाँके वृक्ष विचित्र शोभासे सम्पन्न हैं। वह शोभाशाली पर्वत श्रेष्ठ समुद्रके भीतर गहराईतक घुसा हुआ है॥

'नाना प्रकारके खिले हुए वृक्ष और लताएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ाती हैं। देवता, ऋषि, श्रेष्ठ यक्ष और अप्सराओंकी उपस्थितिसे उसकी शोभा और भी बढ़ जाती है। सिद्धों और चारणोंके समुदाय वहाँ सब ओर फैले रहते हैं। इन सबके कारण महेन्द्रपर्वत अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है। सहस्र नेत्रधारी इन्द्र प्रत्येक पर्वके दिन उस पर्वतपर पदार्पण करते हैं॥ २१-२२½ ॥

'उस समुद्रके उस पार एक द्वीप है, जिसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ मनुष्योंकी पहुँच नहीं है। वह जो दीप्तिशाली द्वीप है, उसमें चारों ओर पूरा प्रयत्न करके तुम्हें सीताकी विशेषरूपसे खोज करनी चाहिये॥

'वही देश इन्द्रके समान तेजस्वी दुरात्मा राक्षसराज रावणका, जो हमारा वध्य है, निवासस्थान है॥ २५॥

'उस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारका नामसे प्रसिद्ध एक राक्षसी रहती है, जो छाया पकड़कर ही प्राणियोंको खींच लेती और उन्हें खा जाती है॥ २६॥

'उस लङ्काद्वीपमें जो संदिग्ध स्थान हैं, उन सबमें इस तरह खोज करके जब तुम उन्हें संदेहरहित समझ लो और तुम्हारे मनका संशय निकल जाय, तब तुम लङ्काद्वीपको भी लाँघकर आगे बढ़ जाना और अमिततेजस्वी महाराज श्रीरामकी पत्नीका अन्वेषण करना॥ २७॥

'लङ्काको लाँघकर आगे बढ़नेपर सौ योजन विस्तृत समुद्रमें एक पुष्पितक नामका पर्वत है, जो परम शोभासे सम्पन्न तथा सिद्धों और चारणोंसे सेवित है॥ २८॥

'वह चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान है तथा समुद्रके जलमें गहराईतक घुसा हुआ है। वह अपने विस्तृत शिखरोंसे आकाशमें रेखा खींचता हुआ-सा सुशोभित होता है॥ २९॥

'उस पर्वतका एक सुवर्णमय शिखर है, जिसका प्रतिदिन सूर्यदेव सेवन करते हैं। उसी प्रकार इसका एक रजतमय श्वेत-शिखर है, जिसका चन्द्रमा सेवन करते हैं। कृतघ्न, नृशंस और नास्तिक पुरुष उस पर्वत-शिखरको नहीं देख पाते हैं॥ ३०॥

'वानरो! तुमलोग मस्तक झुकाकर उस पर्वतको प्रणाम करना और वहाँ सब ओर सीताको ढूँढ़ना। उस दुर्धर्ष पर्वतको लाँघकर आगे बढ़नेपर सूर्यवान् नामक पर्वत मिलेगा॥ ३१॥

'वहाँ जानेका मार्ग बड़ा दुर्गम है और वह पुष्पितकसे

समझते हैं तथा रामायणशिरोमणिकार अयोमुखको इन दोनोंसे भिन्न स्वतन्त्र पर्वत मानते हैं। यहाँ तिलककारके मतका अनुसरण किया गया है।

१. यद्यपि पहले पञ्चवटीसे उत्तर भागमें अगस्त्यके आश्रमका वर्णन आया है तथापि यहाँ मलयपर्वतपर भी उनका आश्रम था, ऐसा मानना चाहिये। जैसे वाल्मीकि मुनिका आश्रम अनेक स्थानोंमें था, उसी तरह इनका भी था अथवा ये उसी नामके कोई दूसरे ऋषि थे।

२. आधुनिक तंजौर ही प्राचीन पाण्ड्यवंशी नरेशोंका नगर है। इस नगरमें भी छानबीन करनेके लिये सुग्रीव वानरोंको आदेश दे रहे हैं।

चौदह योजन दूर है। सूर्यवान्‌को लाँघकर जब तुमलोग आगे जाओगे, तब तुम्हें 'वैद्युत' नामक पर्वत मिलेगा॥

'वहाँके वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंसे युक्त और सभी ऋतुओंमें मनोहर शोभासे सम्पन्न हैं। वानरो! उनसे सुशोभित वैद्युत पर्वतपर उत्तम फल-मूल खाकर और सेवन करने योग्य मधु पीकर तुमलोग आगे जाना॥

'फिर कुञ्जर नामक पर्वत दिखायी देगा, जो नेत्रों और मनको भी अत्यन्त प्रिय लगनेवाला है। उसके ऊपर विश्वकर्माका बनाया हुआ महर्षि अगस्त्यका* एक सुन्दर भवन है॥ ३४½ ॥

'कुञ्जर पर्वतपर बना हुआ अगस्त्यका वह दिव्य भवन सुवर्णमय तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित है। उसका विस्तार एक योजनका और ऊँचाई दस योजनकी है॥ ३५½ ॥

'उसी पर्वतपर सर्पोंकी निवासभूता एक नगरी है, जिसका नाम भोगवती है (यह पातालकी भोगवती पुरीसे भिन्न है)। यह पुरी दुर्जय है। उसकी सड़कें बहुत बड़ी और विस्तृत हैं। वह सब ओरसे सुरक्षित है। तीखी दाढ़वाले महाविषैले भयंकर सर्प उसकी रक्षा करते हैं॥ ३६-३७ ॥

'उस भोगवती पुरीमें महाभयंकर सर्पराज वासुकि निवास करते हैं (ये योगशक्तिसे अनेक रूप धारण करके दोनों भोगवती पुरियोंमें एक साथ रह सकते हैं)। तुम्हें विशेषरूपसे उस भोगवती पुरीमें प्रवेश करके वहाँ सीताकी खोज करनी चाहिये॥ ३८ ॥

'उस पुरीमें जो गुप्त एवं व्यवधानरहित स्थान हों, उन सबमें सीताका अन्वेषण करना चाहिये। उस प्रदेशको लाँघकर आगे बढ़नेपर तुम्हें ऋषभ नामक महान् पर्वत मिलेगा॥ ३९ ॥

'वह शोभाशाली ऋषभ पर्वत सम्पूर्ण रत्नोंसे भरा हुआ है। वहाँ गोशीर्षक, पद्मक, हरिश्याम आदि नामोंवाला दिव्य चन्दन उत्पन्न होता है। वह चन्दनवृक्ष अग्निके समान प्रज्वलित होता रहता है। उस चन्दनको देखकर कदापि तुम्हें उसका स्पर्श नहीं करना चाहिये॥

'क्योंकि 'रोहित' नामवाले गन्धर्व उस घोर वनकी रक्षा करते हैं। वहाँ सूर्यके समान कान्तिमान् पाँच गन्धर्वराज रहते हैं॥ ४२ ॥

'उनके नाम ये हैं—शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष (शिग्रु), शुक और बभ्रु। उस ऋषभसे आगे पृथिवीकी अन्तिम सीमापर सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निके तुल्य तेजस्वी पुण्यकर्मा पुरुषोंका निवास-स्थान है। अतः वहाँ दुर्धर्ष स्वर्गविजयी (स्वर्गके अधिकारी) पुरुष ही वास करते हैं॥ ४३½ ॥

'उससे आगे अत्यन्त भयानक पितृलोक है; वहाँ तुम लोगोंको नहीं जाना चाहिये। यह भूमि यमराजकी राजधानी है, जो कष्टप्रद अन्धकारसे आच्छादित है॥

'वीर वानरपुङ्गवो! बस, दक्षिण दिशामें इतनी ही दूरतक तुम्हें जाना और खोजना है। उससे आगे पहुँचना असम्भव है; क्योंकि उधर जंगम प्राणियोंकी गति नहीं है॥ ४५ ॥

'इन सब स्थानोंमें अच्छी तरह देख-भाल करके और भी जो स्थान अन्वेषणके योग्य दिखायी दे, वहाँ भी विदेहकुमारीका पता लगाना; तदनन्तर तुम सबको लौट आना चाहिये॥ ४६ ॥

'जो एक मास पूर्ण होनेपर सबसे पहले यहाँ आकर यह कहेगा कि 'मैंने सीताजीका दर्शन किया है' वह मेरे समान वैभवसे सम्पन्न हो भोग्य-पदार्थोंका अनुभव करता हुआ सुखपूर्वक विहार करेगा॥ ४७ ॥

'उससे बढ़कर प्रिय मेरे लिये दूसरा कोई नहीं होगा। वह मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा होगा तथा अनेक बार अपराध किया हो तो भी वह मेरा बन्धु होकर रहेगा॥ ४८ ॥

'तुम सबके बल और पराक्रम असीम हैं। तुम विशेष गुणशाली उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए हो। राजकुमारी सीताका जिस प्रकार भी पता मिल सके, उसके अनुरूप उच्च कोटिका पुरुषार्थ आरम्भ करो'॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१ ॥

---

* यह महर्षि अगस्त्यका तीसरा स्थान है।

बयालीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका पश्चिम दिशाके स्थानोंका परिचय देते हुए सुषेण आदि वानरोंको वहाँ भेजना

दक्षिण दिशाकी ओर वानरोंको भेजनेके पश्चात् राजा सुग्रीवने ताराके पिता और अपने श्वशुर 'सुषेण' नामक वानरके पास जाकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कुछ कहना आरम्भ किया। सुषेण मेघके समान काले और भयंकर पराक्रमी थे। उनके सिवा, महर्षि मरीचिके पुत्र महाकपि अर्चिष्मान् भी वहाँ उपस्थित थे, जो देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी तथा शूरवीर श्रेष्ठ वानरोंसे घिरे हुए थे। उनकी कान्ति विनतानन्दन गरुड़के समान थी। वे बुद्धि और पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके अतिरिक्त मरीचिके पुत्र मारीच नामवाले वानर भी थे, जो महाबली और 'अर्चिर्माल्य' नामसे प्रसिद्ध थे। इनके सिवा और भी बहुत-से ऋषिकुमार थे, जो वानररूपमें वहाँ विराजमान थे। सुषेणके साथ उन सबको सुग्रीवने पश्चिम दिशाकी ओर जानेकी आज्ञा दी और कहा—'कपिवरो! आप सब लोग दो लाख वानरोंको साथ ले सुषेणजीकी प्राधनतामें पश्चिमको जाइये और विदेहनन्दिनी सीताकी खोज कीजिये॥ १—५½ ॥

'श्रेष्ठ वानरो! सौराष्ट्र, बाह्लीक और चन्द्रचित्र आदि देशों, अन्यान्य समृद्धिशाली एवं रमणीय जनपदों, बड़े-बड़े नगरों तथा पुन्नाग, बकुल और उद्दालक आदि वृक्षोंसे भरे हुए कुक्षिदेशमें एवं केवड़ेके वनोंमें सीताकी खोज करो॥ ६-७½ ॥

'पश्चिमकी ओर बहनेवाली शीतल जलसे सुशोभित कल्याणमयी नदियों, तपस्वी जनोंके वनों तथा दुर्गम पर्वतोंमें भी विदेहकुमारीका पता लगाओ॥ ८½ ॥

'पश्चिम दिशामें प्राय: मरुभूमि है। अत्यन्त ऊँची और ठंढी शिलाएँ हैं तथा पर्वतमालाओंसे घिरे हुए बहुत-से दुर्गम प्रदेश हैं। उन सभी स्थानोंमें सीताकी खोज करते हुए क्रमश: आगे बढ़कर पश्चिम समुद्रतक जाना और वहाँके प्रत्येक स्थानका निरीक्षण करना। वानरो! समुद्रका जल तिमि नामक मत्स्यों तथा बड़े-बड़े ग्राहोंसे भरा हुआ है। वहाँ सब ओर देख-भाल करना॥ ९-१०½ ॥

'समुद्रके तटपर केवड़ोंके कुञ्जोंमें, तमालके काननोंमें तथा नारियलके वनोंमें तुम्हारे सैनिक वानर भलीभाँति विचरण करेंगे। वहाँ तुमलोग सीताको खोजना और रावणके निवास-स्थानका पता लगाना॥

समुद्रतटवर्ती पर्वतों और वनोंमें भी उन्हें ढूँढ़ना चाहिये। मुरवीपत्तन (मोरवी) तथा रमणीय जटापुरमें, अवन्ती* तथा अङ्गलेपापुरीमें, अलक्षित वनमें और बड़े-बड़े राष्ट्रों एवं नगरोंमें जहाँ-तहाँ घूमकर पता लगाना॥ १३-१४॥

'सिंधु-नद और समुद्रके संगमपर सोमगिरि नामक एक महान् पर्वत है, जिसके सौ शिखर हैं। वह पर्वत ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे भरा है। उसकी रमणीय चोटियोंपर सिंह नामक पक्षी रहते हैं। जो तिमि नामवाले विशालकाय मत्स्यों और हाथियोंको भी अपने घोंसलोंमें उठा लाते हैं॥ १५-१६॥

'सिंह नामक पक्षियोंके उन घोंसलोंमें पहुँचकर उस पर्वत-शिखरपर उपस्थित हुए जो हाथी हैं, वे उस पंखधारी सिंहसे सम्मानित होनेके कारण गर्वका अनुभव करते और मन-ही-मन संतुष्ट होते हैं। इसीलिये मेघोंकी गर्जनाके समान शब्द करते हुए उस पर्वतके जलपूर्ण विशाल शिखरपर चारों ओर विचरते रहते हैं॥

'सोमगिरिका गगनचुम्बी शिखर सुवर्णमय है। उसके ऊपर विचित्र वृक्ष शोभा पाते हैं। इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंको चाहिये कि वहाँके सब स्थानोंको शीघ्रतापूर्वक अच्छी तरह देख लें॥ १८½ ॥

'वहाँसे आगे समुद्रके बीचमें पारियात्र पर्वतका सुवर्णमय शिखर दिखायी देगा, जो सौ योजन विस्तृत है। वानरो! उसका दर्शन दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वहाँ जाकर तुम्हें सीताकी खोज करनी चाहिये॥

'पारियात्र पर्वतके शिखरपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, भयंकर, अग्नितुल्य तेजस्वी तथा वेगशाली चौबीस करोड़ गन्धर्व निवास करते हैं। वे सब-के-सब अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशमान हैं और सब ओरसे आकर उस पर्वतपर एकत्र हुए हैं॥ २०-२१॥

'भयंकर पराक्रमी वानरोंको चाहिये कि वे उन गन्धर्वोंके अधिक निकट न जायँ—उनका कोई अपराध न करें और उस पर्वतशिखरसे कोई फल न लें॥ २२॥

* यह अवन्ती पूर्व दिशाके मार्गमें बतायी गयी अवन्तीसे भिन्न है।

‘क्योंकि वे भयंकर बल-विक्रमसे सम्पन्न धैर्यवान् महाबली वीर गन्धर्व वहाँके फल-मूलोंकी रक्षा करते हैं। उनपर विजय पाना बहुत ही कठिन है॥ २३॥

‘वहाँ भी जानकीकी खोज करनी चाहिये और उनका पता लगानेके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। प्राकृत वानरके स्वभावका अनुसरण करनेवाले तुम्हारी सेनाके वीरोंको उन गन्धर्वोंसे कोई भय नहीं है॥ २४॥

‘पारियात्र पर्वतके पास ही समुद्रमें वज्रनामसे प्रसिद्ध एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त दिखायी देता है। वह वज्रगिरि वैदूर्यमणिके समान नील वर्णका है। वह कठोरतामें वज्रमणि (हीरे) के समान है॥ २५॥

‘वह सुन्दर पर्वत वहाँ सौ योजनके घेरेमें प्रतिष्ठित है। उसकी लंबाई और चौड़ाई दोनों बराबर हैं। वानरो! उस पर्वतपर बहुत-सी गुफाएँ हैं। उन सबमें प्रयत्नपूर्वक सीताका अनुसंधान करना चाहिये॥ २६॥

‘समुद्रके चतुर्थ भागमें चक्रवान् नामक पर्वत है। वहीं विश्वकर्माने सहस्रार* चक्रका निर्माण किया था॥ २७॥

‘वहींसे पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु पञ्चजन और हयग्रीव नामक दानवोंका वध करके पाञ्चजन्य शङ्ख तथा वह सहस्रार सुदर्शन चक्र लाये थे॥ २८॥

‘चक्रवान् पर्वतके रमणीय शिखरों और विशाल गुफाओंमें भी इधर-उधर वैदेहीसहित रावणका पता लगाना चाहिये॥ २९॥

‘उससे आगे समुद्रकी अगाध जलराशिमें सुवर्णमय शिखरोंवाला वराह नामक पर्वत है, जिसका विस्तार चौंसठ योजनकी दूरीमें है॥ ३०॥

‘वहीं प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्णमय नगर है, जिसमें दुष्टात्मा नरक नामक दानव निवास करता है॥ ३१॥

‘उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर तथा वहाँकी विशाल गुफाओंमें सीतासहित रावणकी तलाश करनी चाहिये॥ ३२॥

‘जिसका भीतरी भाग सुवर्णमय दिखायी देता है, उस पर्वतराज वराहको लाँघकर आगे बढ़नेपर एक ऐसा पर्वत मिलेगा, जिसका सब कुछ सुवर्णमय है तथा जिसमें लगभग दस सहस्र झरने हैं॥ ३३॥

‘उसके चारों ओर हाथी, सूअर, सिंह और व्याघ्र सदा गर्जना करते हैं और अपनी ही गर्जनाकी प्रतिध्वनिके शब्दसे दर्पमें भरकर पुनः दहाड़ने लगते हैं॥ ३४॥

‘उस पर्वतका नाम है मेघगिरि। जिसपर देवताओंने हरित रंगके अश्ववाले श्रीमान् पाकशासन इन्द्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया था॥ ३५॥

‘देवराज इन्द्रद्वारा सुरक्षित गिरिराज मेघको लाँघकर जब तुम आगे बढ़ोगे, तब तुम्हें सोनेके साठ हजार पर्वत मिलेंगे, जो सब ओरसे सूर्यके समान कान्तिसे देदीप्यमान हो रहे हैं और सुन्दर फूलोंसे भरे हुए सुवर्णमय वृक्षोंसे सुशोभित हैं॥ ३७॥

‘उनके मध्यभागमें पर्वतोंका राजा गिरिश्रेष्ठ मेरु विराजमान है, जिसे पूर्वकालमें सूर्यदेवने प्रसन्न होकर वर दिया था। उन्होंने उस शैलराजसे कहा था कि ‘जो दिन-रात तुम्हारे आश्रयमें रहेंगे, वे मेरी कृपासे सुवर्णमय हो जायँगे तथा देवता, दानव, गन्धर्व जो भी तुम्हारे ऊपर निवास करेंगे, वे सुवर्णके समान कान्तिमान् और मेरे भक्त हो जायँगे’॥ ३८—४०॥

‘विश्वेदेव, वसु, मरुद्गण तथा अन्य देवता सायंकालमें उत्तम पर्वत मेरुपर आकर सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं। उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर भगवान् सूर्य सब प्राणियोंकी आँखोंसे ओझल होकर अस्ताचलको चले जाते हैं॥ ४१-४२॥

‘मेरुसे अस्ताचल दस हजार योजनकी दूरीपर है, किंतु सूर्यदेव आधे मुहूर्तमें ही वहाँ पहुँच जाते हैं॥ ४३॥

‘उसके शिखरपर विश्वकर्माका बनाया हुआ एक बहुत बड़ा दिव्य भवन है, जो सूर्यके समान दीप्तिमान् दिखायी देता है। वह अनेक प्रासादोंसे भरा हुआ है॥

‘नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त विचित्र-विचित्र वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह पाशधारी महात्मा वरुणका निवास-स्थान है॥ ४५॥

‘मेरु और अस्ताचलके बीच एक स्वर्णमय ताड़का वृक्ष है, जो बड़ा ही सुन्दर और बहुत ही ऊँचा है। उसके दस स्कन्ध (बड़ी शाखाएँ) हैं। उसके नीचेकी वेदी बड़ी विचित्र है। इस तरह वह वृक्ष बड़ी शोभा पाता है॥ ४६॥

‘वहाँके उन सभी दुर्गम स्थानों, सरोवरों और सरिताओंमें इधर-उधर सीतासहित रावणका अनुसंधान करना चाहिये॥ ४७॥

‘मेरुगिरिपर धर्मके ज्ञाता महर्षि मेरुसावर्णि रहते हैं, जो अपनी तपस्यासे ऊँची स्थितिको प्राप्त हुए हैं। वे

* जिसमें एक हजार अरे हों, उसे सहस्रार चक्र कहते हैं।

प्रजापतिके समान शक्तिशाली एवं विख्यात ऋषि हैं॥

'सूर्यतुल्य तेजस्वी महर्षि मेरुसावर्णिके चरणोंमें पृथ्वीपर मस्तक टेककर प्रणाम करनेके अनन्तर तुमलोग उनसे मिथिलेशकुमारीका समाचार पूछना॥ ४९॥

'रात्रिके अन्तमें (प्रात:काल) उदित हुए भगवान् सूर्य जीव-जगत्‌के इन सभी स्थानोंको अन्धकाररहित (एवं प्रकाशपूर्ण) करके अन्तमें अस्ताचलको चले जाते हैं॥

'वानरशिरोमणियो! पश्चिम दिशामें इतनी ही दूरतक वानर जा सकते हैं। उसके आगे न तो सूर्यका प्रकाश है और न किसी देश आदिकी सीमा ही। अत: वहाँसे आगेकी भूमिके विषयमें मुझे कोई जानकारी नहीं है॥

'अस्ताचलतक जाकर रावणके स्थान और सीताका पता लगाओ तथा एक मास पूर्ण होते ही यहाँ लौट आओ॥ ५२॥

'एक महीनेसे अधिक न ठहरना। जो ठहरेगा, उसे मेरे हाथसे प्राणदण्ड मिलेगा। तुमलोगोंके साथ मेरे पूजनीय श्वशुरजी भी जायँगे॥ ५३॥

'तुम सब लोग इनकी आज्ञाके अधीन रहकर इनकी सभी बातें ध्यानसे सुनना; क्योंकि ये महाबाहु महाबली सुषेणजी मेरे श्वशुर एवं गुरुजन हैं (अत: तुम्हारे लिये भी गुरुकी भाँति ही आदरणीय हैं)॥ ५४॥

'तुम सब लोग भी बड़े पराक्रमी तथा कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें प्रमाणभूत (विश्वसनीय) हो, तथापि इन्हें अपना प्रधान बनाकर तुम पश्चिम दिशाकी देखभाल आरम्भ करो॥ ५५॥

'अमित तेजस्वी महाराज श्रीरामकी पत्नीका पता लग जानेपर हम कृतकृत्य हो जायँगे; क्योंकि उन्होंने जो उपकार किया है, उसका बदला इसी तरह चुक सकेगा॥

'अत: इस कार्यके अनुकूल और भी जो कर्तव्य देश, काल और प्रयोजनसे सम्बन्ध रखता हो, उसका विचार करके आपलोग उसे भी करें'॥ ५७॥

सुग्रीवकी बातें अच्छी तरह सुनकर सुषेण आदि सब वानर उन वानरराजकी अनुमति ले वरुणद्वारा सुरक्षित पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका उत्तर दिशाके स्थानोंका परिचय देते हुए शतबलि आदि वानरोंको वहाँ भेजना

इस प्रकार अपने श्वशुरको पश्चिम दिशाकी ओर जानेका संदेश दे सर्वज्ञ, सर्व-वानर-शिरोमणि वानरेश्वर राजा सुग्रीव अपने हितैषी शतबलि नामक वीर वानरसे श्रीरामचन्द्रजीके हितकी बात बोले—॥ १-२॥

'पराक्रमी वीर! तुम अपने ही समान एक लाख वनवासी वानरोंको जो यमराजके बेटे हैं, साथ लेकर अपने समस्त मन्त्रियोंसहित उस उत्तर दिशामें प्रवेश करो, जो हिमालयरूपी आभूषणोंसे विभूषित है और वहाँ सब ओर यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताका अन्वेषण करो॥ ३-४॥

'अपने मुख्य प्रयोजनको समझनेवाले वीरोंमें श्रेष्ठ वानरो! यदि हमलोगोंके द्वारा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामका यह प्रिय कार्य सम्पन्न हो जाय तो हम उनके उपकारके ऋणसे मुक्त और कृतार्थ हो जायँगे॥ ५॥

'महात्मा श्रीरघुनाथजीने हमलोगोंका प्रिय कार्य किया है। उसका यदि कुछ बदला दिया जा सके तो हमारा जीवन सफल हो जाय॥ ६॥

'जिसने कोई उपकार न किया हो, वह भी यदि किसी कार्यके लिये प्रार्थी होकर आया हो तो जो पुरुष उसके कार्यको सिद्ध कर देता है, उसका जन्म भी सफल हो जाता है। फिर जिसने पहलेके उपकारीके कार्यको सिद्ध किया हो, उसके जीवनकी सफलताके विषयमें तो कहना ही क्या है॥ ७॥

'इसी विचारका आश्रय लेकर मेरा प्रिय और हित चाहनेवाले तुम सब वानरोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे जनकनन्दिनी सीताका पता लग जाय॥ ८॥

'शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले ये नरश्रेष्ठ श्रीराम समस्त प्राणियोंके लिये माननीय हैं। हमलोगोंपर भी इनका बहुत प्रेम है॥ ९॥

'तुम सब लोग बुद्धि और पराक्रमके द्वारा इन अत्यन्त दुर्गम प्रदेशों, पर्वतों और नदियोंके तटोंपर जा-जाकर सीताकी खोज करो॥ १०॥

'उत्तरमें म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत (इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुरके आस-पासके प्रान्त), कुरु (दक्षिण कुरु—कुरुक्षेत्रके आस-पासकी भूमि), मद्र, काम्बोज, यवन, शकोंके देशों एवं नगरोंमें भलीभाँति

अनुसंधान करके दरद देशमें और हिमालय पर्वतपर ढूँढ़ो॥ १२॥

'वहाँ लोध्र और पद्मककी झाड़ियोंमें तथा देवदारुके जंगलोंमें वैदेहीसहित रावणकी खोज करनी चाहिये॥ १३॥

'फिर देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित सोमाश्रममें होते हुए ऊँचे शिखरवाले काल नामक पर्वतपर जाओ॥

'उस पर्वतकी शाखाभूत अन्य छोटे-बड़े पर्वतों और उन सबकी गुफाओंमें सती-साध्वी श्रीरामपत्नी महाभागा सीताका अन्वेषण करो॥ १५॥

'जिसके भीतर सुवर्णकी खान हैं, उस गिरिराज कालको लाँघकर तुम्हें सुदर्शन नामक महान् पर्वतपर जाना चाहिये॥ १६॥

'उससे आगे बढ़नेपर देवसख नामवाला पहाड़ मिलेगा, जो पक्षियोंका निवासस्थान है। वह भाँति-भाँतिके विहंगमोंसे व्याप्त तथा नाना प्रकारके वृक्षोंसे विभूषित है॥ १७॥

'उसके वनसमूहों, निर्झरों और गुफाओंमें तुम्हें विदेहकुमारी सीतासहित रावणकी खोज करनी चाहिये॥

'वहाँसे आगे बढ़नेपर एक सुनसान मैदान मिलेगा, जो सब ओरसे सौ योजन विस्तृत है। वहाँ नदी, पर्वत, वृक्ष और सब प्रकारके जीव-जन्तुओंका अभाव है॥ १९॥

'रोंगटे खड़े कर देनेवाले उस दुर्गम प्रान्तको शीघ्रतापूर्वक लाँघ जानेपर तुम्हें श्वेतवर्णका कैलास पर्वत मिलेगा। वहाँ पहुँचनेपर तुम सब लोग हर्षसे खिल उठोगे॥ २०॥

'वहीं विश्वकर्माका बनाया हुआ कुबेरका रमणीय भवन है, जो श्वेत बादलोंके समान प्रतीत होता है। उस भवनको जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित किया गया है॥ २१॥

'उसके पास ही एक बहुत बड़ा सरोवर है, जिसमें कमल और उत्पल प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं। उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे रहते हैं तथा अप्सराएँ उसमें जल-क्रीड़ा करती हैं॥ २२॥

'वहाँ यक्षोंके स्वामी विश्रवाकुमार श्रीमान् राजा कुबेर जो समस्त विश्वके लिये वन्दनीय और धन देनेवाले हैं, गुह्यकोंके साथ विहार करते हैं॥ २३॥

'उस कैलासके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल शाखा-पर्वतोंपर तथा उनकी गुफाओंमें सब ओर घूम-फिरकर तुम्हें सीतासहित रावणका अनुसंधान करना चाहिये॥ २४॥

'इसके बाद क्रौञ्चगिरिपर जाकर वहाँकी अत्यन्त दुर्गम विवररूप गुफामें (जो स्कन्दकी शक्तिसे पर्वतके विदीर्ण होनेके कारण बन गयी है) तुम्हें सावधानीके साथ प्रवेश करना चाहिये; क्योंकि उसके भीतर प्रवेश करना अत्यन्त कठिन माना गया है॥ २५॥

'उस गुफामें सूर्यके समान तेजस्वी महात्मा निवास करते हैं। उन देवस्वरूप महर्षियोंकी देवतालोग भी अभ्यर्थना करते हैं॥ २६॥

क्रौञ्च पर्वतकी और भी बहुत-सी गुफाएँ, अनेकानेक चोटियाँ, शिखर, कन्दराएँ तथा नितम्ब (ढालू प्रदेश) हैं; उन सबमें सब ओर घूम-फिरकर तुम्हें सीता और रावणका पता लगाना चाहिये॥ २७॥

'वहाँसे आगे वृक्षोंसे रहित मानस नामक शिखर है, जहाँ शून्य होनेके कारण कभी पक्षीतक नहीं जाते हैं। कामदेवकी तपस्याका स्थान होनेके कारण वह क्रौञ्चशिखर कामशैलके नामसे विख्यात है। वहाँ भूतों, देवताओं तथा राक्षसोंका भी कभी जाना नहीं होता है॥ २८॥

'शिखरों, घाटियों और शाखापर्वतोंसहित समूचे क्रौञ्चपर्वतकी तुमलोग छानबीन करना। क्रौञ्चगिरिको लाँघकर आगे बढ़नेपर मैनाक पर्वत मिलेगा॥ २९॥

'वहाँ मयदानवका घर है, जिसे उसने स्वयं ही अपने लिये बनाया है। तुमलोगोंको शिखरों, चौरस मैदानों और कन्दराओंसहित मैनाक पर्वतपर भलीभाँति सीताजीकी खोज करनी चाहिये॥ ३०॥

'वहाँ यत्र-तत्र घोड़ेके-से मुँहवाली किन्नरियोंके निवासस्थान हैं। उस प्रदेशको लाँघ जानेपर सिद्धसेवित आश्रम मिलेगा॥ ३१॥

'उसमें सिद्ध, वैखानख तथा वालखिल्य नामक तपस्वी निवास करते हैं। तपस्यासे उनके पाप धुल गये हैं। उन सिद्धोंको तुमलोग प्रणाम करना और विनीतभावसे सीताका समाचार पूछना॥ ३२½॥

'उस आश्रमके पास 'वैखानस सर' के नामसे प्रसिद्ध एक सरोवर है, जिसका जल सुवर्णमय कमलोंसे आच्छादित रहता है। उसमें प्रात:कालिक सूर्यके समान सुनहरे एवं अरुणवर्णवाले सुन्दर हंस विचरते रहते हैं॥

'कुबेरकी सवारीमें काम आनेवाला सार्वभौम-नामक गजराज अपनी हथिनियोंके साथ उस देशमें सदा घूमता रहता है॥ ३४½॥

'उस सरोवरको लाँघकर आगे जानेपर सूना

आकाश दिखायी देगा। उसमें सूर्य, चन्द्रमा तथा तारोंके दर्शन नहीं होंगे। वहाँ न तो मेघोंकी घटा दिखायी देगी और न उनकी गर्जना ही सुनायी पड़ेगी॥ ३५॥

'तथापि उस देशमें ऐसा प्रकाश छाया होगा, मानो सूर्यकी किरणोंसे ही वह प्रकाशित हो रहा है। वहाँ अपनी ही प्रभासे प्रकाशित तपःसिद्ध देवोपम महर्षि विश्राम करते हैं। उन्हींकी अङ्गप्रभासे उस देशमें उजाला छाया रहता है॥ ३६॥

'उस प्रदेशको लाँघकर आगे बढ़नेपर 'शैलोदा' नामवाली नदीका दर्शन होगा। उसके दोनों तटोंपर कीचक (वंशीकी-सी ध्वनि करनेवाले) बाँस हैं; यह बात प्रसिद्ध है॥ ३७॥

'वे बाँस ही (साधन बनकर) सिद्ध पुरुषोंको शैलोदाके उस पार ले जाते और वहाँसे इस पार ले आते हैं। जहाँ केवल पुण्यात्मा पुरुषोंका वास है, वह उत्तर कुरुदेश शैलोदाके तटपर ही है॥ ३८॥

'उत्तर कुरुदेशमें नील वैदूर्यमणिके समान हरे-हरे कमलोंके पत्तोंसे सुशोभित सहस्रों नदियाँ बहती हैं, जिनके जल सुवर्णमय पद्मोंसे अलंकृत अनेकानेक पुष्करिणियोंसे मिले हुए हैं॥ ३९॥

'वहाँके जलाशय लाल और सुनहरे कमल-समूहोंसे मण्डित होकर प्रातःकाल उदित हुए सूर्यके समान शोभा पाते हैं॥ ४०॥

'बहुमूल्य मणियोंके समान पत्तों और सुवर्णके समान कान्तिमान् केसरोंवाले विचित्र-विचित्र नील कमलोंके द्वारा वहाँका प्रदेश सब ओरसे सुशोभित होता है॥ ४१॥

'वहाँकी नदियोंके तट गोल-गोल मोतियों, बहुमूल्य मणियों और सुवर्णोंसे सम्पन्न हैं। इतना ही नहीं, उन नदियोंके किनारे सम्पूर्ण रत्नोंसे युक्त विचित्र-विचित्र पर्वत भी विद्यमान हैं, जो उनके जलके भीतरतक घुसे हुए हैं। उन पर्वतोंमेंसे कितने ही सुवर्णमय हैं, जिनसे अग्निके समान प्रकाश फैलता रहता है॥ ४२-४३॥

'वहाँके वृक्षोंमें सदा ही फल-फूल लगे रहते हैं और उनपर पक्षी चहकते रहते हैं। वे वृक्ष दिव्य गन्ध, दिव्य रस और दिव्य स्पर्श प्रदान करते हैं तथा प्राणियोंकी सारी मनचाही वस्तुओंकी वर्षा करते रहते हैं॥ ४४॥

'इनके सिवा दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष फलोंके रूपमें नाना प्रकारके वस्त्र, मोती और वैदूर्यमणिसे जटित आभूषण देते हैं, जो स्त्रियों तथा पुरुषोंके भी उपयोगमें आने योग्य होते हैं॥ ४५॥

'दूसरे उत्तम वृक्ष सभी ऋतुओंमें सुखपूर्वक सेवन करने योग्य अच्छे-अच्छे फल देते हैं। अन्यान्य सुन्दर वृक्ष बहुमूल्य मणियोंके समान विचित्र फल उत्पन्न करते हैं॥ ४६॥

'कितने ही अन्य वृक्ष विचित्र बिछौनोंसे युक्त शय्याओंको ही फलोंके रूपमें प्रकट करते हैं, मनको प्रिय लगनेवाली सुन्दर मालाएँ भी प्रस्तुत करते हैं, बहुमूल्य पेय पदार्थ और भाँति-भाँतिके भोजन भी देते हैं तथा रूप और यौवनसे प्रकाशित होनेवाली सद्‌गुणवती युवतियोंको भी जन्म देते हैं॥ ४७-४८॥

'वहाँ सूर्यके समान कान्तिमान् गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर सदा नारियोंके साथ क्रीडा-विहार करते हैं॥ ४९॥

'वहाँके सब लोग पुण्यकर्मा हैं, सभी अर्थ और कामसे सम्पन्न हैं तथा सब लोग काम-क्रीडापरायण होकर युवती स्त्रियोंके साथ निवास करते हैं॥ ५०॥

'वहाँ निरन्तर उत्कृष्ट हास-परिहासकी ध्वनिसे युक्त गीतवाद्यका मधुर घोष सुनायी देता है, जो समस्त प्राणियोंके मनको आनन्द प्रदान करनेवाला है॥ ५१॥

'वहाँ कोई भी अप्रसन्न नहीं रहता। किसीकी भी बुरे कामोंमें प्रीति नहीं होती। वहाँ रहनेसे प्रतिदिन मनोरम गुणोंकी वृद्धि होती है॥ ५२॥

'उस देशको लाँघकर आगे जानेपर उत्तरदिग्वर्ती समुद्र उपलब्ध होगा। उस समुद्रके मध्यभागमें सोमगिरि नामक एक बहुत ऊँचा सुवर्णमय पर्वत है॥ ५३॥

'जो लोग स्वर्गलोकमें गये हैं, वे तथा इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवता उस गिरिराज सोमगिरिका दर्शन करते हैं॥ ५४॥

'वह देश सूर्यसे रहित है तो भी सोमगिरिकी प्रभासे सदा प्रकाशित होता रहता है। तपते हुए सूर्यकी प्रभासे जो देश प्रकाशित होते हैं, उन्हींकी भाँति उसे सूर्यदेवकी शोभासे सम्पन्न-सा जानना चाहिये॥ ५५॥

'वहाँ विश्वात्मा भगवान् विष्णु, एकादश रुद्रोंके रूपमें प्रकट होनेवाले भगवान् शंकर तथा ब्रह्मर्षियोंसे घिरे हुए देवेश्वर ब्रह्माजी निवास करते हैं॥ ५६॥

'तुमलोग उत्तर कुरुके मार्गसे सोमगिरितक जाकर उसकी सीमासे आगे किसी तरह बढ़ना। तुम्हारी तरह दूसरे प्राणियोंकी भी वहाँ गति नहीं है॥ ५७॥

'वह सोमगिरि देवताओंके लिये भी दुर्गम है। अतः

उसका दर्शनमात्र करके तुमलोग शीघ्र लौट आना॥ ५८॥

'श्रेष्ठ वानरो! बस, उत्तर दिशामें इतनी ही दूरतक तुम सब वानर जा सकते हो। उसके आगे न तो सूर्यका प्रकाश है और न किसी देश आदिकी सीमा ही। अत: आगेकी भूमिके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं जानता॥ ५९॥

'मैंने जो-जो स्थान बताये हैं, उन सबमें सीताकी खोज करना और जिन स्थानोंका नाम नहीं लिया है, वहाँ भी ढूँढ़नेका ही निश्चित विचार रखना॥ ६०॥

'अग्नि और वायुके समान तेजस्वी तथा बलशाली वानरो! विदेहनन्दिनी सीताके दर्शनके लिये तुम जो-जो कार्य या प्रयास करोगे, उन सबके द्वारा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामका महान् प्रिय कार्य सम्पन्न होगा तथा उसीसे मेरा भी प्रिय कार्य पूर्ण हो जायगा॥ ६१॥

'वानरो! श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य करके जब तुम लौटोगे, तब मैं सर्वगुणसम्पन्न एवं मनोऽनुकूल पदार्थोंके द्वारा तुम सब लोगोंका सत्कार करूँगा। तत्पश्चात् तुमलोग शत्रुहीन होकर अपने हितैषियों और बन्धु-बान्धवोंसहित कृतार्थ एवं समस्त प्राणियोंके आश्रयदाता होकर अपनी प्रियतमाओंके साथ सारी पृथ्वीपर सानन्द विचरण करोगे'॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीरामका हनुमान्‌जीको अँगूठी देकर भेजना

सुग्रीवने हनुमान्‌जीके समक्ष विशेषरूपसे सीताके अन्वेषणरूप प्रयोजनको उपस्थित किया; क्योंकि उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी इस कार्यको सिद्ध कर सकेंगे॥ १॥

समस्त वानरोंके स्वामी सुग्रीवने अत्यन्त प्रसन्न होकर परम पराक्रमी वायुपुत्र हनुमान्‌से इस प्रकार कहा— ॥ २॥

कपिश्रेष्ठ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध मैं कभी नहीं देखता हूँ॥ ३॥

'असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका तुम्हें ज्ञान है॥ ४॥

'वीर! महाकपे! सर्वत्र अबाधित गति, वेग, तेज और फुर्ती—ये सभी सद्‌गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं॥ ५॥

'इस भूमण्डलमें कोई भी प्राणी तुम्हारे तेजकी समानता करनेवाला नहीं है; अत: जिस प्रकार सीताकी उपलब्धि हो सके, वह उपाय तुम्हीं सोचो॥ ६॥

'हनुमन्! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हींमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं'॥ ७॥

सुग्रीवकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको यह ज्ञात हुआ कि इस कार्यकी सिद्धिका सम्बन्ध—इसे पूर्ण करनेका सारा भार हनुमान्‌पर ही है। उन्होंने स्वयं भी यह अनुभव किया कि हनुमान् इस कार्यको सफल करनेमें समर्थ हैं। फिर वे इस प्रकार मन-ही-मन विचार करने लगे— ॥ ८॥

'वानरराज सुग्रीव सर्वथा हनुमान्‌पर ही यह भरोसा किये बैठे हैं कि ये ही निश्चितरूपसे हमारे इस प्रयोजनको सिद्ध कर सकते हैं। स्वयं हनुमान् भी अत्यन्त निश्चितरूपसे इस कार्यको सिद्ध करनेका विश्वास रखते हैं॥ ९॥

'इस प्रकार कार्योंद्वारा जिनकी परीक्षा कर ली गयी है तथा जो सबसे श्रेष्ठ समझे गये हैं, वे हनुमान् अपने स्वामी सुग्रीवके द्वारा सीताकी खोजके लिये भेजे जा रहे हैं। इनके द्वारा इस कार्यके फलका उदय (सीताका दर्शन) होना निश्चित है'॥ १०॥

ऐसा विचारकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी कार्यसाधनके उद्योगमें सर्वश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी ओर दृष्टिपात करके अपनेको कृतार्थ-सा मानते हुए प्रसन्न हो गये। उनकी सारी इन्द्रियाँ और मन हर्षसे खिल उठे॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीरामने प्रसन्नतापूर्वक अपने नामके अक्षरोंसे सुशोभित एक अँगूठी हनुमान्‌जीके हाथमें दी, जो राजकुमारी सीताको पहचानके रूपमें अर्पण करनेके लिये थी॥ १२॥

अँगूठी देकर वे बोले—'कपिश्रेष्ठ! इस चिह्नके द्वारा जनककिशोरी सीताको यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पाससे ही गये हो। इससे वह भय त्यागकर तुम्हारी ओर देख सकेगी॥ १३॥

'वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य, पराक्रम और सुग्रीवका संदेश—ये सब मुझे इस बातकी सूचना-सी

दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी'॥ १४॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌ने वह अँगूठी लेकर उसे मस्तकपर रखा और फिर हाथ जोड़कर श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके वे वानरशिरोमणि वहाँसे प्रस्थित हुए॥ १५॥

उस समय वीर-वानर पवनकुमार हनुमान् अपने साथ वानरोंकी उस विशाल सेनाको ले जाते हुए उसी तरह शोभा पाने लगे, जैसे मेघरहित आकाशमें विशुद्ध (निर्मल) मण्डलसे उपलक्षित चन्द्रमा नक्षत्र-समूहोंके साथ सुशोभित होता है॥ १६॥

जाते हुए हनुमान्‌को सम्बोधित करके श्रीरामचन्द्रजीने फिर कहा—'अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे बलका आश्रय लिया है। पवनकुमार हनुमान्! जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रमसे वैसा ही प्रयत्न करो। अच्छा, अब जाओ'॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

विभिन्न दिशाओंमें जाते हुए वानरोंका सुग्रीवके समक्ष अपने उत्साहसूचक वचन सुनाना

तदनन्तर वानरशिरोमणि राजा सुग्रीव अन्य समस्त वानरोंको बुलाकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये उन सबसे बोले—॥ १॥

'कपिवरो! जैसा मैंने बताया है, उसके अनुसार तुम सभी श्रेष्ठ वानरोंको इस जगत्‌में सीताकी खोज करनी चाहिये।' स्वामीकी उस कठोर आज्ञाको भलीभाँति समझकर वे सम्पूर्ण श्रेष्ठ वानर टिड्डियोंके दलकी भाँति पृथ्वीको आच्छादित करके वहाँसे प्रस्थित हुए॥ २½॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ उस प्रस्रवणगिरिपर ही ठहरे रहे और सीताका समाचार लानेके लिये जो एक मासकी अवधि निश्चित की गयी थी, उसकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ३½॥

उस समय वीर वानर शतबलिने गिरिराज हिमालयसे घिरी हुई रमणीय उत्तर दिशाकी ओर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया॥ ४½॥

वानर-यूथपति विनत पूर्व दिशाकी ओर गये। कपिगणोंके अधिपति पवनकुमार वानर हनुमान्‌जी तार और अङ्गद आदिके साथ अगस्त्यसेवित दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थित हुए तथा वानरेश्वर कपिश्रेष्ठ सुषेणने वरुणद्वारा सुरक्षित घोर पश्चिम दिशाकी यात्रा की॥ ५—७॥

वानर-सेनाके स्वामी वीर राजा सुग्रीव सम्पूर्ण दिशाओंमें यथायोग्य वानरोंको भेजकर बहुत सुखी हुए और मन-ही-मन हर्षका अनुभव करने लगे॥ ८॥

इस तरह राजाकी आज्ञा पाकर समस्त वानर-यूथपति बड़ी उतावलीके साथ अपनी-अपनी दिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ ९॥

वे समस्त महाबली वानर और उनके यूथपति अपने राजाके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हो भाँति-भाँतिके शब्द करते, उच्च स्वरसे गर्जते, दहाड़ते, किलकारियाँ मारते, दौड़ते और कोलाहल करते हुए कहने लगे—'राजन्! हम सीताको साथ लायेंगे और रावणका वध कर डालेंगे। युद्धमें यदि रावण मेरे सामने आ जाय तो मैं अकेला ही उसे मार गिराऊँगा। तत्पश्चात् उसकी सारी सेनाको मथकर कष्ट एवं भयसे काँपती हुई जानकीजीको सहसा यहाँ उठा लाऊँगा। आपलोग यहीं ठहरें। मैं अकेला ही पातालसे भी जनककिशोरीको निकाल लाऊँगा, वृक्षोंको उखाड़ फेकूँगा, पर्वतोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँगा और समुद्रोंको भी विक्षुब्ध कर डालूँगा। मैं सौ योजनतक कूद सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं सौ योजनसे भी अधिक दूरतक जा सकता हूँ। पृथ्वी, समुद्र, पर्वत, वन और पातालमें भी मेरी गति नहीं रुकती'॥ १०—१६॥

इस तरह वहाँ वानरराज सुग्रीवके समीप बलके घमंडमें भरे हुए वानर उस समय एक-एक करके आते और उनके सामने उपर्युक्त बातें कहते थे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामचन्द्रजीको अपने भूमण्डल-भ्रमणका वृत्तान्त बताना

उन समस्त वानरयूथपतियोंके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे पूछा—'सखे! तुम समस्त भूमण्डलके स्थानोंका परिचय कैसे जानते हो?'॥ १॥

तब सुग्रीवने विनीत होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'भगवन्! मैं सब कुछ विस्तारके साथ बता रहा हूँ। मेरी बातें सुनिये॥ २॥

'जब वाली महिषरूपधारी दानव दुन्दुभि* (उसके पुत्र मायावी) का पीछा कर रहे थे, उस समय वह महिष मलयपर्वतकी ओर भागा और उस पर्वतकी कन्दरामें घुस गया। यह देख वालीने उसके वधकी इच्छासे उस गुफाके भीतर भी प्रवेश किया॥ ३-४॥

'उस समय मैं विनीतभावसे उस गुफाके द्वारपर खड़ा रहा; क्योंकि वालीने मुझे वहीं रख छोड़ा था। परंतु एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी वाली उसके भीतरसे नहीं निकले॥ ५॥

'तदनन्तर वेगपूर्वक बहे हुए रक्तकी धारासे उस समय वह सारी गुफा भर गयी। यह देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ तथा मैं भाईके शोकसे व्यथित हो उठा॥ ६॥

'फिर मेरी बुद्धिमें यह बात आयी कि अब मेरे बड़े भाई निश्चय ही मारे गये। यह विचार पैदा होते ही मैंने उस गुफाके द्वारपर एक पहाड़-जैसी चट्टान रख दी॥ ७॥

'सोचा—इस शिलासे द्वार बंद हो जानेपर मायावी निकल नहीं सकेगा, भीतर ही घुट-घुटकर मर जायगा। इसके बाद भाईके जीवनसे निराश होकर मैं किष्किन्धापुरीमें लौट आया॥ ८॥

'यहाँ विशाल राज्य तथा रुमासहित ताराको पाकर मित्रोंके साथ मैं निश्चिन्ततापूर्वक रहने लगा॥ ९॥

'तत्पश्चात् वानरश्रेष्ठ वाली उस दानवका वध करके आ पहुँचे। उनके आते ही मैंने भाईके गौरवसे भयभीत हो वह राज्य उन्हें वापस कर दिया॥ १०॥

'परंतु दुष्टात्मा वाली मुझे मार डालना चाहता था, उसकी सारी इन्द्रियाँ यह सोचकर व्यथित हो उठी थीं कि 'यह मुझे मारनेके लिये ही गुफाका द्वार बंद करके भाग आया था।' मैं अपनी प्राण-रक्षाके लिये मन्त्रियोंके साथ भागा और वाली मेरा पीछा करने लगा॥ ११॥

'वाली मेरे पीछे लगा रहा और मैं जोर-जोरको भागता गया। उसी समय मैंने विभिन्न नदियों, वनों और नगरोंको देखते हुए सारी पृथ्वीको गायकी खुरीकी भाँति मानकर उसकी परिक्रमा कर डाली। भागते समय मुझे यह पृथ्वी दर्पण और अलातचक्रके समान दिखायी दी॥ १२-१३॥

'तदनन्तर पूर्व दिशामें जाकर मैंने नाना प्रकारके वृक्ष, कन्दराओंसहित रमणीय पर्वत और भाँति-भाँतिके सरोवर देखे॥ १४॥

'वहीं नाना प्रकारके धातुओंसे मण्डित उदयाचल तथा अप्सराओंके नित्य-निवासस्थान क्षीरोद सागरका भी मैंने दर्शन किया॥ १५॥

'उस समय वाली पीछा करते रहे और मैं भागता रहा। प्रभो! जब मैं यहाँ फिर लौटकर आया, तब वालीके डरसे पुनः सहसा मुझे भागना पड़ा॥ १६॥

'उस दिशाको छोड़कर मैं फिर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थित हुआ, जहाँ विन्ध्यपर्वत और नाना प्रकारके वृक्ष भरे हुए हैं तथा चन्दनके वृक्ष जिसकी शोभा बढ़ाते हैं॥ १७॥

'वृक्षों और पर्वतोंकी ओटमें बारंबार वालीको देखकर मैंने दक्षिण दिशाको छोड़ दिया तथा वालीके खदेड़नेपर पश्चिम दिशाकी शरण ली॥ १८॥

'वहाँ नाना प्रकारके देशोंको देखता हुआ मैं गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलतक जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर मैं पुनः उत्तर दिशाकी ओर भागा॥ १९॥

'हिमालय, मेरु और उत्तर समुद्रतक पहुँचकर भी जब वालीके पीछा करनेके कारण मुझे कहीं शरण नहीं मिली, तब परम बुद्धिमान् हनुमान्जीने

---

* यहाँ दुन्दुभि और महिष शब्दसे उसके पुत्र मायावी नामक दानवका ही वर्णन हुआ है—ऐसा मानना चाहिये; क्योंकि आगे कही जानेवाली सारी बातें उसीके वृत्तान्तसे सम्बन्ध रखती हैं। पिता भैंसेका रूप धारण करता था, यही गुण उसके पुत्र मायावीमें भी था। इसलिये उसको भी महिष या महिषाकृति कहना असङ्गत नहीं है।

मुझसे यह बात कही— ॥ २०$\frac{1}{2}$ ॥

''राजन्! इस समय मुझे उस घटनाका स्मरण हो आया है, जैसा कि मतङ्गमुनिने उन दिनों वानरराज वालीको शाप दिया था कि 'यदि वाली इस आश्रम-मण्डलमें प्रवेश करेगा तो उसके मस्तकके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे'॥ २१-२२॥

''अतः वहीं निवास करना हमलोगोंके लिये सुखद और निर्भय होगा'। राजकुमार! इस निश्चयके अनुसार हमलोग ऋष्यमूक पर्वतपर आकर रहने लगे। उस समय मतङ्ग ऋषिके भयसे वालीने वहाँ प्रवेश नहीं किया॥ २३॥

'राजन्! इस प्रकार मैंने उन दिनों समस्त भूमण्डलको प्रत्यक्ष देखा था। उसके बाद ऋष्यमूकको गुफामें आया था'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

पूर्व आदि तीन दिशाओंमें गये हुए वानरोंका निराश होकर लौट आना

वानरराजके द्वारा समस्त दिशाओंकी ओर जानेकी आज्ञा पाकर वे सभी श्रेष्ठ वानर, जिनके लिये जिस ओर जानेका आदेश मिला था उसी ओर विदेहकुमारी सीताका पता लगानेके लिये उत्साहपूर्वक चल दिये॥ १॥

वे सरोवरों, सरिताओं, लतामण्डपों, खुले स्थानों और नगरोंमें तथा नदियोंके कारण दुर्गम प्रदेशोंमें सब ओर घूम-फिरकर सीताकी खोज करने लगे॥ २॥

सुग्रीवने जिन्हें आज्ञा दी थी, वे सभी वानरयूथपति अपनी-अपनी दिशाओंके पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण देशोंकी छानबीन करने लगे॥ ३॥

सीताजीका पता लगानेकी निश्चित इच्छा मनमें लिये वे सब वानर दिनभर इधर-उधर अन्वेषण करते और रातके समय किसी नियत स्थानपर एकत्र हो जाते थे॥ ४॥

सारे दिन भिन्न-भिन्न देशोंमें घूम-फिरकर वे वानर सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले वृक्षोंके पास जाकर रातको वहीं सोया अथवा विश्राम किया करते थे॥ ५॥

जानेके दिनको पहला दिन मानकर एक मास पूर्ण होनेतक वे श्रेष्ठ वानर निराश हो लौट आये और कपिराज सुग्रीवसे मिलकर प्रस्रवणगिरिपर ठहर गये॥ ६॥

महाबली विनत अपने मन्त्रियोंके साथ पहले बताये अनुसार पूर्व दिशामें खोज करके वहाँ सीताको न पाकर किष्किन्धा लौट आये॥ ७॥

महाकपि शतबलि सारी उत्तर दिशाकी छानबीन करके भयभीत हो तत्काल सेनासहित किष्किन्धा आ गये॥ ८॥

वानरोंसहित सुषेण भी पश्चिम दिशाका अनुसंधान करके वहाँ सीताको न पाकर एक मास पूर्ण होनेपर सुग्रीवके पास चले आये॥ ९॥

प्रस्रवणगिरिपर श्रीरामचन्द्रजीके साथ बैठे हुए सुग्रीवके पास आकर सब वानरोंने उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा— ॥ १०॥

'राजन्! हमने समस्त पर्वत, घने जंगल, समुद्रपर्यन्त नदियाँ, सम्पूर्ण देश, आपकी बतायी हुई सारी गुफाएँ तथा लतावितानसे व्याप्त हुई झाड़ियाँ भी खोज डालीं॥

'घने वनों, विभिन्न देशों, दुर्गम स्थानों और ऊँची-ऊँची भूमियोंमें भी ढूँढ़ा है। बड़े-बड़े प्राणियोंकी भी तलाशी ली और उन्हें मार डाला। जो-जो प्रदेश घने और दुर्गम जान पड़े, वहाँ बारंबार खोज की (किंतु कहीं भी सीताजीका पता न लगा)॥ १३॥

'वानरराज! वायुपुत्र हनुमान् परम शक्तिमान् और कुलीन हैं। वे ही मिथिलेशकुमारीका पता लगा सकेंगे; क्योंकि वे उसी दिशामें गये हैं, जिधर सीता गयी हैं'॥ १४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

दक्षिण दिशामें गये हुए वानरोंका सीताकी खोज आरम्भ करना

उधर तार और अङ्गदके साथ हनुमान्‌जी सहसा सुग्रीवके बताये हुए दक्षिण दिशाके देशोंकी ओर चले॥

उन सभी श्रेष्ठ वानरोंके साथ बहुत दूरका रास्ता तै करके वे विन्ध्याचलपर गये और वहाँकी गुफाओं, जंगलों, पर्वतशिखरों, नदियों, दुर्गम स्थानों, सरोवरों, बड़े-बड़े वृक्षों, झाड़ियों और भाँति-भाँतिके पर्वतों एवं वन्य वृक्षोंमें सब ओर ढूँढ़ते फिरे; परंतु वहाँ उन समस्त वीर वानरोंने मिथिलेशकुमारी जनकनन्दिनी सीताको कहीं नहीं देखा॥ २—४॥

वे सभी दुर्धर्ष वीर नाना प्रकारके फल-मूलका भोजन करते हुए सीताको खोजते और जहाँ-तहाँ ठहर जाया करते थे॥ ५॥

विन्ध्यपर्वतके आस-पासका महान् देश बहुत-सी गुफाओं तथा घने जंगलोंसे भरा था। इससे वहाँ जानकीको ढूँढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती थी। भयंकर दिखायी देनेवाले वहाँके सुनसान जंगलमें न तो पानी मिलता था और न कोई मनुष्य ही दिखायी देता था॥ ६॥

वैसे जंगलोंमें भी खोज करते समय उन वानरोंको अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ा। वह विशाल प्रदेश अनेक गुहाओं और सघन वनोंसे व्याप्त था। अतः वहाँ अन्वेषणका कार्य बहुत कठिन प्रतीत होता था॥ ७॥

तदनन्तर वे समस्त वानर-यूथपति उस देशको छोड़कर दूसरे प्रदेशमें घुसे, जहाँ जाना और भी कठिन था तो भी उन्हें कहीं किसीसे भय नहीं होता था॥ ८॥

वहाँके वृक्ष कभी फल नहीं देते थे। उनमें फूल भी नहीं लगते थे और उनकी डालियोंमें पत्ते भी नहीं थे। वहाँकी नदियोंमें पानीका नाम नहीं था। कन्द-मूल आदि तो वहाँ सर्वथा दुर्लभ थे॥ ९॥

उस प्रदेशमें न भैंसे थे न हिरन और हाथी, न बाघ थे न पक्षी तथा वनमें विचरनेवाले अन्य प्राणियोंका भी वहाँ अभाव था॥ १०॥

वहाँ न पेड़ थे न पौधे, न ओषधियाँ थीं न लता-बेलें। उस देशकी पोखरियोंमें चिकने पत्तों और खिले हुए फूलोंसे युक्त कमल भी नहीं थे। इसीलिये न तो वे देखने योग्य थीं, न उनमें सुगन्ध छा रही थी और न वहाँ भौंरे ही गुंजार करते थे॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

पहले वहाँ कण्डु नामसे प्रसिद्ध एक महाभाग सत्यवादी और तपस्याके धनी महर्षि रहते थे, जो बड़े अमर्षशील थे—अपने प्रति किये गये अपराधको सहन नहीं करते थे। शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करनेके कारण उन महर्षिको कोई तिरस्कृत या पराजित नहीं कर सकता था॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

उस वनमें उनका एक बालक पुत्र, जिसकी अवस्था दस वर्षकी थी, किसी कारणसे मर गया। इससे कुपित होकर वे महामुनि उस वनके जीवनका अन्त करनेके लिये उद्यत हो गये॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

उन धर्मात्मा महर्षिने उस समूचे विशाल वनको वहाँ शाप दे दिया, जिससे वह आश्रयहीन, दुर्गम तथा पशु-पक्षियोंसे शून्य हो गया॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

वहाँ सुग्रीवका प्रिय करनेवाले उन महामनस्वी वानरोंने उस वनके सभी प्रदेशों, पर्वतोंकी कन्दराओं तथा नदियोंके उद्गमस्थानोंमें एकाग्रचित्त होकर अनुसंधान किया; परंतु वहाँ भी उन्हें जनकनन्दिनी सीता अथवा उनका अपहरण करनेवाले रावणका कुछ पता नहीं चला॥

तत्पश्चात् लताओं और झाड़ियोंसे व्याप्त हुए दूसरे किसी भयंकर वनमें प्रवेश करके उन हनुमान् आदि वानरोंने भयानक कर्म करनेवाले एक असुरको देखा, जिसे देवताओंसे कोई भय नहीं था॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

उस घोर निशाचरको पहाड़के समान सामने खड़ा देख सभी वानरोंने अपने ढीले-ढाले वस्त्रोंको अच्छी तरह कस लिया और सब-के-सब उस पर्वताकार असुरसे भिड़नेको तैयार हो गये॥ १८ $\frac{1}{2}$ ॥

उधर वह बलवान् असुर भी उन सब वानरोंको देखकर बोला—'अरे, आज तुम सभी मारे गये।' इतना कहकर वह अत्यन्त कुपित हो बँधा हुआ मुक्का तानकर उनकी ओर दौड़ा॥ १९ $\frac{1}{2}$ ॥

उसे सहसा आक्रमण करते देख वालिपुत्र अङ्गदने समझा कि यही रावण है; अतः उन्होंने आगे बढ़कर उसे एक तमाचा जड़ दिया॥ २० $\frac{1}{2}$ ॥

वालिपुत्रके मारनेपर वह असुर मुँहसे रक्त वमन करता हुआ फटकर गिरे हुए पहाड़की भाँति पृथ्वीपर जा पड़ा और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। तत्पश्चात् विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वानर प्रायः वहाँकी

सारी पर्वतीय गुफाओंमें अनुसंधान करने लगे॥ २१-२२$\frac{१}{२}$॥

जब वहाँके सारे प्रदेशमें खोज कर ली गयी, तब उन समस्त वनवासी वानरोंने किसी दूसरी पर्वतीय कन्दरामें प्रवेश किया, जो पहलेकी अपेक्षा भी भयानक थी॥ २३$\frac{१}{२}$॥

उसमें भी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे थक गये और निराश होकर निकल आये। फिर सब-के-सब एकान्त स्थानमें एक वृक्षके नीचे खिन्नचित्त होकर बैठ गये॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

अङ्गद और गन्धमादनके आश्वासन देनेपर वानरोंका पुनः उत्साहपूर्वक अन्वेषण-कार्यमें प्रवृत्त होना

तदनन्तर परिश्रमसे थके हुए महाबुद्धिमान् अङ्गद सम्पूर्ण वानरोंको आश्वासन देकर धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगे—॥ १॥

'हमलोगोंने वन, पर्वत, नदियाँ, दुर्गम स्थान, घने जंगल, कन्दरा और गुफाएँ भीतर प्रवेश करके अच्छी तरह देख डालीं; परंतु उन स्थानोंमें हमें न तो जानकीके दर्शन हुए और न उनका अपहरण करनेवाला वह पापी राक्षस ही मिला॥ २-३॥

'हमारा समय भी बहुत बीत गया। राजा सुग्रीवका शासन बड़ा भयंकर है। अतः आपलोग मिलकर पुनः सब ओर सीताकी खोज आरम्भ करें॥ ४॥

'आलस्य, शोक और आयी हुई निद्राका परित्याग करके इस प्रकार ढूँढ़ें, जिससे हमें जनककुमारी सीताका दर्शन हो सके॥ ५॥

'उत्साह, सामर्थ्य और मनमें हिम्मत न हारना— ये कार्यकी सिद्धि करानेवाले सद्गुण कहे गये हैं; इसीलिये मैं आपलोगोंसे यह बात कह रहा हूँ॥ ६॥

'आज भी सारे वानर खेद छोड़कर इस दुर्गम वनमें खोज आरम्भ करें और सारे वनको ही छान डालें॥ ७॥

'कर्ममें लगे रहनेवाले लोगोंको उस कर्मका फल अवश्य होता दिखायी देता है; अतः अत्यन्त खिन्न होकर उद्योगको छोड़ बैठना कदापि उचित नहीं है॥

'सुग्रीव क्रोधी राजा हैं। उनका दण्ड भी बड़ा कठोर होता है। वानरो! उनसे तथा महात्मा श्रीरामसे आपलोगोंको सदा डरते रहना चाहिये॥ ९॥

'आपलोगोंकी भलाईके लिये ही मैंने ये बातें कही हैं। यदि अच्छी लगें तो आप इन्हें स्वीकार करें। अथवा वानरो! जो सबके लिये उचित हो, वह कार्य आप ही लोग बतावें'॥ १०॥

अङ्गदकी यह बात सुनकर गन्धमादनने प्यास और थकावटसे शिथिल हुई स्पष्ट वाणीमें कहा—॥ ११॥

'वानरो! युवराज अङ्गदने जो बात कही है, वह आपलोगोंके योग्य, हितकर और अनुकूल है; अतः सब लोग इनके कथनानुसार कार्य करें॥ १२॥

'हमलोग पुनः पर्वतों, कन्दराओं, शिलाओं, निर्जन वनों और पर्वतीय झरनोंकी खोज करें॥ १३॥

'महात्मा सुग्रीवने जिन स्थानोंकी चर्चा की थी, उन सबमें वन और पर्वतीय दुर्गम प्रदेशोंमें सब वानर एक साथ होकर खोज आरम्भ करें'॥ १४॥

यह सुनकर वे महाबली वानर उठकर खड़े हो गये और विन्ध्य पर्वतके काननोंसे व्याप्त दक्षिण दिशामें विचरने लगे॥ १५॥

सामने शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शोभाशाली रजत पर्वत दिखायी दिया, जिसमें अनेक शिखर और कन्दराएँ थीं। वे सब वानर उसपर चढ़कर खोजने लगे॥ १६॥

सीताके दर्शनकी इच्छा रखनेवाले वे सभी श्रेष्ठ वानर वहाँके रमणीय लोध्रवनमें और सप्तपर्ण (छितवन) के जंगलोंमें उनकी खोज करने लगे॥ १७॥

उस पर्वतके शिखरपर चढ़े हुए वे महापराक्रमी वानर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये, परंतु श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी रानी सीताका दर्शन न पा सके॥ १८॥

अनेक कन्दराओंवाले उस पर्वतका अच्छी तरह निरीक्षण करके सब ओर दृष्टिपात करनेवाले वे वानर उससे नीचे उतर गये॥ १९॥

पृथ्वीपर उतरकर अधिक थक जानेके कारण अचेत हुए वे सभी वानर वहाँ एक वृक्षके नीचे गये और दो घड़ीतक वहाँ बैठे रहे॥ २०॥

एक मुहूर्ततक सुस्ता लेनेपर जब उनकी थकावट कुछ कम हो गयी तब वे पुनः सम्पूर्ण दक्षिण दिशामें

खोजके लिये उद्यत हो गये॥ २१॥

हनुमान् आदि सभी श्रेष्ठ वानर सीताके अन्वेषणके लिये प्रस्थित हो पहले विन्ध्य पर्वतके ही चारों ओर विचरने लगे॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

भूखे-प्यासे वानरोंका एक गुफामें घुसकर वहाँ दिव्य वृक्ष, दिव्य सरोवर, दिव्य भवन तथा एक वृद्धा तपस्विनीको देखना और हनुमान्‌जीका उससे उसका परिचय पूछना

हनुमान्‌जी तार और अङ्गदके साथ मिलकर विन्ध्यगिरिकी गुफाओं और घने जंगलोंमें सीताजीको ढूँढ़ने लगे॥ १॥

उन्होंने सिंह और बाघोंसे भरी हुई कन्दराओं तथा उसके आस-पासकी भूमिको भी छान डाला। गिरिराज विन्ध्यपर जो बड़े-बड़े झरने और दुर्गम स्थान थे, वहाँ भी अन्वेषण किया॥ २॥

घूमते-फिरते वे तीनों वानर उस पर्वतके नैर्ऋत्य-कोणवाले शिखरपर जा पहुँचे। वहीं रहते हुए उनका वह समय, जो सुग्रीवने निश्चित किया था, बीत गया॥ ३॥

गुफाओं और जंगलोंसे भरे हुए उस महान् प्रदेशमें सीताको ढूँढ़नेका काम बहुत ही कठिन था तो भी वहाँ वायुपुत्र हनुमान्‌जी सारे पर्वतकी छानबीन करने लगे॥ ४॥

फिर अलग-अलग एक-दूसरेसे थोड़ी ही दूरपर रहकर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद तथा वनवासी वानर तार—ये दक्षिण दिशाके देशोंमें जो पर्वतमालाओंसे घिरे हुए थे, सीताकी खोज करने लगे। खोजते-खोजते उन्हें वहाँ एक गुफा दिखायी दी, जिसका द्वार बंद नहीं था॥ ५—७॥

उसमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। वह गुफा ऋक्षबिल नामसे विख्यात थी और एक दानव उसकी रक्षामें रहता था। वानरोंको भूख-प्यास सता रही थी। वे बहुत थक गये थे और पानी पीना चाहते थे॥ ८॥

अतः लता और वृक्षोंसे आच्छादित विशाल गुफाकी ओर वे देखने लगे। इतनेमें उसके भीतरसे क्रौञ्च, हंस, सारस तथा जलसे भीगे हुए चक्रवाक पक्षी, जिनके अङ्ग कमलोंके परागसे रक्तवर्णके हो रहे थे, बाहर निकले॥ ९½॥

तब उस सुगन्धित एवं दुर्लङ्घ्य गुफाके पास जाकर उन सभी श्रेष्ठ वानरोंका मन आश्चर्यसे चकित हो उठा। उस बिलके अंदर उन्हें जल होनेका संदेह हुआ॥ १०-११॥

वे महाबली और तेजस्वी वानर बड़े हर्षमें भरकर उस गुफाके पास आये, जो नाना प्रकारके जन्तुओंसे भरी हुई तथा दैत्यराजोंके निवासस्थान पातालके समान भयंकर प्रतीत होती थी। वह इतनी भयानक थी कि उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था। उसके भीतर घुसना सर्वथा कष्टसाध्य था॥ १२½॥

उस समय पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होनेवाले पवनपुत्र हनुमान्‌जी, जो दुर्गम वनके ज्ञाता थे, उन घोर वानरोंसे बोले—॥ १३½॥

'बन्धुओ! दक्षिण दिशाके देश प्रायः पर्वतमालाओंसे घिरे हुए हैं। इनमें मिथिलेशकुमारी सीताको खोजते-खोजते हम सब लोग बहुत थक गये; किंतु कहीं भी हमें उनके दर्शन नहीं हुए॥ १४½॥

'सामनेकी इस गुफासे हंस, क्रौञ्च, सारस और जलसे भीगे हुए चकवे सब ओर निकल रहे हैं। अतः निश्चय ही इसमें पानीका कुआँ अथवा और कोई जलाशय होना चाहिये। तभी इस गुफाके द्वारवर्ती वृक्ष हरे-भरे हैं'॥ १५-१६½॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर वे सभी वानर अन्धकारसे भरी हुई गुफामें, जहाँ चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें भी नहीं पहुँच पाती थीं, घुस गये। भीतर जाकर उन्होंने देखा, वह गुफा रोंगटे खड़े कर देनेवाली थी॥ १७½॥

उस बिलसे निकलते हुए उन-उन सिंहों, मृगों और पक्षियोंको देखकर वे श्रेष्ठ वानर अन्धकारसे आच्छादित हुई उस गुफामें प्रवेश करने लगे॥ १८½॥

उनकी दृष्टि कहीं अटकती नहीं थी। उनका तेज और पराक्रम भी अवरुद्ध नहीं होता था। उनकी गति वायुके समान थी। अन्धकारमें भी उनकी दृष्टि काम कर रही थी॥ १९½॥

वे श्रेष्ठ वानर उस बिलमें वेगपूर्वक घुस गये। भीतर जाकर उन्होंने देखा, वह स्थान बहुत ही उत्तम,

प्रकाशमान और मनोहर था॥ २०½ ॥

नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरी हुई उस भयंकर गुफामें वे एक योजनतक एक-दूसरेको पकड़े हुए गये॥ २१½ ॥

प्यासके मारे उनकी चेतना लुप्त-सी हो रही थी। वे जल पीनेके लिये उत्सुक होकर घबरा गये थे और कुछ कालतक आलस्यरहित हो उस बिलमें लगातार आगे बढ़ते गये॥ २२½ ॥

वे वानरवीर जब दुर्बल, खिन्नवदन और श्रान्त होकर जीवनसे निराश हो गये, तब उन्हें वहाँ प्रकाश दिखायी दिया॥ २३½ ॥

तदनन्तर उस अन्धकारसे प्रकाशपूर्ण देशमें आकर उन सौम्य वानरोंने वहाँ अन्धकाररहित वन देखा, जहाँके सभी वृक्ष सुवर्णमय थे और उनसे अग्निके समान प्रभा निकल रही थी॥ २४½ ॥

साल, ताल, तमाल, नागकेसर, अशोक, धव, चम्पा, नागवृक्ष और कनेर—ये सभी वृक्ष फूलोंसे भरे हुए थे॥

विचित्र सुवर्णमय गुच्छे और लाल-लाल पल्लव मानो उन वृक्षोंके मुकुट थे। उनमें लताएँ लिपटी हुई थीं तथा वे अपने फलस्वरूप सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित थे॥ २६½ ॥

वे देखनेमें प्रातःकालिक सूर्यके समान जान पड़ते थे। उनके नीचे वैदूर्यमणिकी वेदी बनी थी। वे सुवर्णमय वृक्ष अपने दीप्तिमान् स्वरूपसे ही प्रकाशित हो रहे थे॥ २७½ ॥

वहाँ नील वैदूर्यमणिकी-सी कान्तिवाली पद्मलताएँ दिखायी देती थीं, जो पक्षियोंसे आवृत थीं। कई ऐसे सरोवर भी देखनेमें आये, जो बाल सूर्यकी-सी आभावाले विशाल काञ्चनवृक्षोंसे घिरे हुए थे। उनके भीतर सुनहरे रंगके बड़े-बड़े मत्स्य शोभा पाते थे। वे सरोवर सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित तथा स्वच्छ जलसे भरे हुए थे॥ २८-२९½ ॥

वानरोंने वहाँ सब ओर सोने-चाँदीके बने हुए बहुत-से श्रेष्ठ भवन देखे, जिनकी खिड़कियाँ मोतीकी जालियोंसे ढकी थीं। उन भवनोंमें सोनेके जँगले लगे हुए थे। सोने-चाँदीके ही विमान भी थे। कोई घर सोनेके बने थे तो कोई चाँदीके। कितने ही गृह पार्थिव वस्तुओं (ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि-) से निर्मित हुए थे। उनमें वैदूर्यमणियाँ भी जड़ी गयी थीं॥ ३०-३१½ ॥

वहाँके वृक्षोंमें फूल और फल लगे थे। वे वृक्ष मूँगे और मणियोंके समान चमकीले थे। उनपर सुनहरे रंगके भौंरे मड़रा रहे थे। वहाँके घरोंमें सब ओर मधु संचित थे। मणि और सुवर्णसे जटित विचित्र पलंग तथा आसन सब ओर सजाकर रखे गये थे, जो अनेक प्रकारके और विशाल थे। वानरोंने उन्हें भी देखा। वहाँ ढेर-के-ढेर सोने, चाँदी और कांस-(फूल-) के पात्र रखे गये थे। अगुरु तथा दिव्य चन्दनकी राशियाँ सुरक्षित थीं। पवित्र भोजनके सामान तथा फल-मूल भी विद्यमान थे। बहुमूल्य सवारियाँ, सरस मधु, महामूल्यवान् दिव्य वस्त्रोंके ढेर, विचित्र कम्बल एवं कालीनोंकी राशियाँ तथा मृगचर्मोंके समूह जहाँ-तहाँ रखे हुए थे। वे सब अग्निके समान प्रभासे उद्दीप्त हो रहे थे। वानरोंने वहाँ चमकीले सुवर्णके ढेर भी देखे॥ ३२—३७½ ॥

उस गुफामें जहाँ-तहाँ खोज करते हुए उन महातेजस्वी शूरवीर वानरोंने थोड़ी ही दूरपर किसी स्त्रीको भी देखा, जो वल्कल और काला मृगचर्म पहनकर नियमित आहार करती तपस्यामें संलग्न थी और अपने तेजसे दिप रही थी। वानरोंने वहाँ उसे बड़े ध्यानसे देखा और आश्चर्यचकित होकर सब ओर खड़े रहे। उस समय हनुमान्जीने उससे पूछा—'देवि! तुम कौन हो और यह किसकी गुफा है?'॥ ३८—४०॥

पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्जीने हाथ जोड़कर उस वृद्धा तपस्विनीको प्रणाम किया और पूछा—'देवि! तुम कौन हो? यह गुफा, ये भवन तथा ये रत्न किसके हैं? यह हमें बताओ'॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

हनुमान्जीके पूछनेपर वृद्धा तापसीका अपना तथा उस दिव्य स्थानका परिचय देकर सब वानरोंको भोजनके लिये कहना

इस तरह पूछकर हनुमान्जी चीर एवं कृष्ण मृगचर्म धारण करनेवाली उस धर्मपरायणा महाभागा तपस्विनीसे वहाँ फिर बोले—॥ १॥

'देवि! हम सब लोग भूख-प्यास और थकावटसे

कष्ट पा रहे थे। इसलिये सहसा इस अन्धकारपूर्ण गुफामें घुस आये। भूतलका यह विवर बहुत बड़ा है। हम प्याससे पीड़ित होनेके कारण यहाँ आये हैं, किंतु यहाँके इन ऐसे अद्‌भुत विविध पदार्थोंको देखकर हमारे मनमें बड़ी व्यथा हुई है—हम यह सोचकर चिन्तित हो उठे हैं कि यह असुरोंकी माया तो नहीं है, इसीलिये हमारे मनमें घबराहट हो रही है। हमारी विवेकशक्ति लुप्त-सी हो गयी है। हम जानना चाहते हैं कि ये बालसूर्यके समान कान्तिमान् सुवर्णमय वृक्ष किसके हैं?॥ २—४॥

'ये भोजनकी पवित्र वस्तुएँ, फल-मूल, सोनेके विमान, चाँदीके घर, मणियोंकी जालीसे ढकी हुई सोनेकी खिड़कियाँ तथा पवित्र सुगन्धसे युक्त एवं फल-फूलोंसे लदे हुए ये सुवर्णमय पावन वृक्ष किसके तेजसे प्रकट हुए हैं?॥

'यहाँके निर्मल जलमें सोनेके कमल कैसे उत्पन्न हुए? इन सरोवरोंके मत्स्य और कछुए सुवर्णमय कैसे दिखायी देते हैं? यह सब तुम्हारे अपने प्रभावसे हुआ है या और किसीके? यह किसके तपोबलका प्रभाव है? हम सब अनजान हैं; इसलिये पूछते हैं। तुम हमें सारी बातें बतानेकी कृपा करो'॥ ७-८½ ॥

हनुमान्‌जीके इस प्रकार पूछनेपर समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाली उस धर्मपरायणा तापसीने उत्तर दिया— ॥ ९½ ॥

'वानरश्रेष्ठ! मायाविशारद महातेजस्वी मयका नाम तुमने सुना होगा। उसीने अपनी मायाके प्रभावसे इस समूचे स्वर्णमय वनका निर्माण किया था॥ १०½ ॥

'मयासुर पहले दानव-शिरोमणियोंका विश्वकर्मा था, जिसने इस दिव्य सुवर्णमय उत्तम भवनको बनाया है॥ १९½ ॥

'उसने एक सहस्र वर्षोंतक वनमे घोर तपस्या करके ब्रह्माजीसे वरदानके रूपमें शुक्राचार्यका सारा शिल्प-वैभव प्राप्त किया था॥ १२½ ॥

'सम्पूर्ण कामनाओंके स्वामी बलवान् मयासुरने यहाँकी सारी वस्तुओंका निर्माण करके इस महान् वनमें कुछ कालतक सुखपूर्वक निवास किया था॥ १३½ ॥

'आगे चलकर उस दानवराजका हेमा नामकी अप्सराके साथ सम्पर्क हो गया। यह जानकर देवेश्वर इन्द्रने हाथमें वज्र ले उसके साथ युद्ध करके उसे मार भगाया॥ १४½ ॥

'तत्पश्चात् ब्रह्माजीने यह उत्तम वन, यहाँका अक्षय काम-भोग तथा यह सोनेका भवन हेमाको दे दिया॥

'मैं मेरुसावर्णिकी कन्या हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। वानरश्रेष्ठ! मैं उस हेमाके इस भवनकी रक्षा करती हूँ॥

'नृत्य और गीतकी कलामें चतुर हेमा मेरी प्यारी सखी है। उसने मुझसे अपने भवनकी रक्षाके लिये प्रार्थना की थी, इसलिये मैं इस विशाल भवनका संरक्षण करती हूँ॥ १७½ ॥

'तुमलोगोंका यहाँ क्या काम है? किस उद्देश्यसे तुम इन दुर्गम स्थानोंमें विचरते हो? इस वनमें आना तो बहुत कठिन है। तुमने कैसे इसे देख लिया?॥ १८½ ॥

'अच्छा, ये शुद्ध भोजन और फल-मूल प्रस्तुत हैं। इन्हें खाकर पानी पी लो। फिर मुझसे अपना सारा वृत्तान्त कहो'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

तापसी स्वयंप्रभाके पूछनेपर वानरोंका उसे अपना वृत्तान्त बताना और उसके प्रभावसे गुफाके बाहर निकलकर समुद्रतटपर पहुँचना

तत्पश्चात् जब सब वानर-यूथपति खा-पीकर विश्राम कर चुके, तब धर्मका आचरण करनेवाली वह एकाग्रहृदया तपस्विनी उन सबसे इस प्रकार बोली—॥

'वानरो! यदि फल खानेसे तुम्हारी थकावट दूर हो गयी हो और यदि तुम्हारा वृत्तान्त मेरे सुनने योग्य हो तो मैं उसे सुनना चाहती हूँ'॥ २॥

उसकी यह बात सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी बड़ी सरलताके साथ यथार्थ बात कहने लगे—॥ ३॥

'देवि! सम्पूर्ण जगत्‌के राजा दशरथनन्दन श्रीमान् भगवान् राम, जो देवराज इन्द्र और वरुणके समान तेजस्वी हैं, दण्डकारण्यमें पधारे थे॥ ४॥

'उनके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा उनकी धर्मपत्नी विदेहनन्दिनी सीता भी थीं। जनस्थानमें आकर रावणने उनकी स्त्रीका बलपूर्वक अपहरण कर लिया॥ ५॥

'श्रेष्ठ वानरोंके राजा वानरजातीय वीरवर सुग्रीव महाराज श्रीरामचन्द्रजीके मित्र हैं, जिन्होंने इन अङ्गद

आदि प्रधान वीरोंके साथ हमलोगोंको सीताकी खोज करनेके लिये अगस्त्यसेवित और यमराजद्वारा सुरक्षित दक्षिण दिशामें भेजा है॥ ६-७॥

'उन्होंने आज्ञा दी थी कि तुम सब लोग एक साथ रहकर विदेहकुमारी सीतासहित उस इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसराज रावणका पता लगाना॥ ८॥

'हमने यहाँका सारा जंगल छान डाला। अब दक्षिण दिशामें समुद्रके भीतर उनका अन्वेषण करना है। अबतक सीताका कुछ पता नहीं लगा और हमलोग भूख-प्याससे पीड़ित हो गये। अन्तमें हम सब-के-सब एक वृक्षके नीचे थककर बैठ गये॥ ९॥

'हमारे मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। हम सभी चिन्तामें मग्न हो गये। चिन्ताके महासागरमें डूबकर हम उसका पार नहीं पा रहे थे॥ १०॥

'इसी समय चारों ओर दृष्टि दौड़ानेपर हमको यह विशाल गुफा दिखायी पड़ी, जो लता और वृक्षोंसे ढकी हुई तथा अन्धकारसे आच्छन्न थी॥ ११॥

'थोड़ी ही देरमें इस गुफासे हंस, कुरर और सारस आदि पक्षी निकले, जिनके पंख जलसे भीगे थे और उनमें कीचड़ लगी हुई थी॥ १२॥

'तब मैंने वानरोंसे कहा, 'अच्छा होगा कि हमलोग इसके भीतर प्रवेश करें'। इन सब वानरोंको भी यह अनुमान हो गया कि गुफाके भीतर पानी है॥ १३॥

'हम सब लोग अपने कार्यकी सिद्धिके लिये उतावले थे ही, अतः इस गुफामें कूद पड़े। अपने हाथोंसे एक-दूसरेको दृढ़तापूर्वक पकड़कर हम गुफामें आगे बढ़ने लगे॥ १४॥

'इस तरह सहसा हमलोगोंने इस अँधेरी गुफामें प्रवेश किया। यही हमारा कार्य है और इसी कार्यसे हम इधर आये हैं॥ १५॥

'भूखसे व्याकुल एवं दुर्बल होनेके कारण हम सबने तुम्हारी शरण ली। तुमने आतिथ्य-धर्मके अनुसार हमें फल और मूल अर्पित किये और हमने भी भूखसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें भरपेट खाया॥ १६½॥

'देवि! हम भूखसे मर रहे थे। तुमने हम सब लोगोंके प्राण बचा लिये। अतः बताओ ये वानर तुम्हारे उपकारका बदला चुकानेके लिये क्या सेवा करें'॥ १७½॥

स्वयंप्रभा सर्वज्ञ थी। उन वानरोंके ऐसा कहनेपर उसने उन सभी यूथपतियोंको इस प्रकार उत्तर दिया'—

'मैं तुम सभी वेगशाली वानरोंपर यों ही बहुत संतुष्ट हूँ। धर्मानुष्ठानमें लगी रहनेके कारण मुझे किसीसे कोई प्रयोजन नहीं रह गया है'॥ १९½॥

उस तपस्विनीने जब इस प्रकार धर्मयुक्त उत्तम बात कही, तब हनुमान्‌जीने निर्दोष दृष्टिवाली उस देवीसे यों कहा—॥ २०½॥

'देवि! तुम धर्माचरणमें लगी हुई हो। अतः हम सब लोग तुम्हारी शरणमें आये हैं। महात्मा सुग्रीवने हमलोगोंके लौटनेके लिये जो समय निश्चित किया था, वह इस गुफाके भीतर घूमनेमें ही बीत गया॥ २१-२२॥

'अब तुम कृपा करके हमें इस बिलसे बाहर निकाल दो। सुग्रीवके बताये हुए समयको हम लाँघ चुके हैं, इसलिये अब हमारी आयु पूरी हो चुकी है। हम सबके-सब सुग्रीवके भयसे डरे हुए हैं। अतः तुम हमारा उद्धार करो॥ २३½॥

'धर्मचारिणि! हमें जो महान् कार्य करना है, उसे भी हम इस गुफामें रहनेके कारण नहीं कर सके हैं'॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर तापसी बोली—'मैं समझती हूँ जो एक बार इस गुफामें चला आता है, उसका जीते-जी यहाँसे लौटना बहुत कठिन हो जाता है। तथापि नियमोंके पालन और तपस्याके उत्तम प्रभावसे मैं तुम सभी वानरोंको इस गुफासे बाहर निकाल दूँगी॥

'श्रेष्ठ वानरो! तुम सब लोग अपनी-अपनी आँखें बंद कर लो। आँख बंद किये बिना यहाँसे निकलना असम्भव है'॥ २७½॥

यह सुनकर सबने सुकुमार अङ्गुलिवाले हाथोंसे आँखें मूँद लीं। गुफासे बाहर निकलनेकी इच्छासे प्रसन्न होकर उन सबने सहसा नेत्र बंद कर लिये॥ २८½॥

इस प्रकार उस समय हाथोंसे मुँह ढक लेनेके कारण उन महात्मा वानरोंको स्वयंप्रभाने पलक मारते-मारते बिलसे बाहर निकाल दिया॥ २९½॥

तत्पश्चात् वहाँ उस धर्मपरायणा तापसीने उस विषम गुफासे बाहर निकले हुए समस्त वानरोंको आश्वासन देकर इस प्रकार कहा—॥ ३०½॥

'श्रेष्ठ वानरो! यह रहा नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त शोभाशाली विन्ध्यगिरि। इधर यह प्रस्रवणगिरि है और सामने यह महासागर लहरा रहा है। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं अपने स्थानपर जाती हूँ।' ऐसा कहकर स्वयंप्रभा उस सुन्दर गुफामें चली गयी॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

लौटनेकी अवधि बीत जानेपर भी कार्य सिद्ध न होनेके कारण सुग्रीवके कठोर दण्डसे डरनेवाले अङ्गद आदि वानरोंका उपवास करके प्राण त्याग देनेका निश्चय

तदनन्तर उन श्रेष्ठ वानरोंने वरुणकी निवासभूमि भयंकर महासागरको देखा, जिसका कहीं पार नहीं था और जो भयानक लहरोंसे व्याप्त होकर निरन्तर गर्जना कर रहा था॥ १॥

मयासुरके अपनी मायाद्वारा बनाये हुए पर्वतकी दुर्गम गुफामें सीताकी खोज करते हुए उन वानरोंका वह एक मास बीत गया, जिसे राजा सुग्रीवने लौटनेका समय निश्चित किया था॥ २॥

विन्ध्यगिरिके पार्श्ववर्ती पर्वतपर, जहाँके वृक्ष फूलोंसे लदे थे, बैठकर वे सभी महात्मा वानर चिन्ता करने लगे॥ ३॥

जो वसन्त-ऋतुमें फलते हैं, उन आम आदि वृक्षोंकी डालियोंको मञ्जरी एवं फूलोंके अधिक भारसे झुकी हुई तथा सैकड़ों लता-वेलोंसे व्याप्त देख वे सभी सुग्रीवके भयसे थर्रा उठे (वे शरद्-ऋतुमें चले थे और शिशिर-ऋतु आ गयी थी। इसीलिये उनका भय बढ़ गया था)॥

वे एक-दूसरेको यह बताकर कि अब वसन्तका समय आना चाहता है, राजाके आदेशके अनुसार एक मासके भीतर जो काम कर लेना चाहिये था, वह न कर सकने या उसे नष्ट कर देनेके कारण भयके मारे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५॥

तब जिनके कंधे सिंह और बैलके समान मांसल थे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और मोटी थीं तथा जो बड़े बुद्धिमान् थे, वे युवराज अङ्गद उन श्रेष्ठ वानरों तथा अन्य वनवासी कपियोंको यथावत् सम्मान देते हुए मधुर वाणीसे सम्बोधित करके बोले—॥ ६-७॥

'वानरो! हम सब लोग वानरराजकी आज्ञासे आश्विन मास बीतते-बीतते एक मासकी निश्चित अवधि स्वीकार करके सीताकी खोजके लिये निकले थे, किंतु हमारा वह एक मास उस गुफामें ही पूरा हो गया, क्या आपलोग इस बातको नहीं जानते? हम जब चले थे, तबसे लौटनेके लिये जो मास निर्धारित हुआ था, वह भी बीत गया; अतः अब आगे क्या करना चाहिये?॥

'आपलोगोंको राजाका विश्वास प्राप्त है। आप नीतिमार्गमें निपुण हैं और स्वामीके हितमें तत्पर रहते हैं। इसीलिये आपलोग यथासमय सब कार्योंमें नियुक्त किये जाते हैं॥ १०॥

कार्य सिद्ध करनेमें आपलोगोंकी समानता करनेवाला कोई नहीं है। आप सभी अपने पुरुषार्थके लिये सभी दिशाओंमें विख्यात हैं। इस समय वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे मुझे आगे करके आपलोग जिस कार्यके लिये निकले थे, उसमें आप और हम सफल न हो सके। ऐसी दशामें हमलोगोंको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है। भला वानरराजके आदेशका पालन न करके कौन सुखी रह सकता है?॥ ११-१२॥

'स्वयं सुग्रीवने जो समय निश्चित किया था, उसके बीत जानेपर हम सब वानरोंके लिये उपवास करके प्राण त्याग देना ही ठीक जान पड़ता है॥ १३॥

'सुग्रीव स्वभावसे ही कठोर हैं। फिर इस समय तो वे हमारे राजाके पदपर स्थित हैं। जब हम अपराध करके उनके पास जायँगे, तब वे कभी हमें क्षमा नहीं करेंगे॥ १४॥

'उलटे सीताका समाचार न पानेपर हमारा वध ही कर डालेंगे, अतः हमें आज ही यहाँ स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति और घर-द्वारका मोह छोड़कर मरणान्त उपवास आरम्भ कर देना चाहिये॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

'यहाँसे लौटनेपर राजा सुग्रीव निश्चय ही हम सबका वध कर डालेंगे। अनुचित वधकी अपेक्षा यहीं मर जाना हमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

'सुग्रीवने युवराजपदपर मेरा अभिषेक नहीं किया है। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले महाराज श्रीरामने ही उस पदपर मेरा अभिषेक किया है॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

'राजा सुग्रीवने तो पहलेसे ही मेरे प्रति वैर बाँध रखा है। इस समय आज्ञा-लङ्घनरूप मेरे अपराधको देखकर पूर्वोक्त निश्चयके अनुसार तीखे दण्डद्वारा मुझे मरवा डालेंगे॥ १८ $\frac{1}{2}$ ॥

'जीवन-कालमें मेरा व्यसन (राजाके हाथसे मेरा मरण) देखनेवाले सुहृदोंसे मुझे क्या काम है? यहीं समुद्रके पावन तटपर मैं मरणान्त उपवास करूँगा'॥ १९॥

युवराज वालिकुमार अङ्गदकी यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर करुणस्वरमें बोले—॥ २०॥

'सचमुच सुग्रीवका स्वभाव बड़ा कठोर है। उधर

श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्रिय पत्नी सीताके प्रति अनुरक्त हैं। सीताको खोजकर लौटनेके लिये जो अवधि निश्चित की गयी थी, वह समय व्यतीत हो जानेपर भी यदि हम कार्य किये बिना ही वहाँ उपस्थित होंगे तो उस अवस्थामें हमें देखकर और विदेहकुमारीका दर्शन किये बिना ही हमें लौटा हुआ जानकर श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे सुग्रीव हमें मरवा डालेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ २१-२२॥

'अतः अपराधी पुरुषोंका स्वामीके पास लौटकर जाना कदापि उचित नहीं है। हम सुग्रीवके प्रधान सहयोगी या सेवक होनेके कारण इधर उनके भेजनेसे आये थे॥ २३॥

'यदि यहीं सीताका दर्शन करके अथवा उनका समाचार जानकर वीर सुग्रीवके पास नहीं जायँगे तो अवश्य ही हमें यमलोकमें जाना पड़ेगा'॥ २४॥

भयसे पीड़ित हुए उन वानरोंका यह वचन सुनकर तारने कहा—'यहाँ बैठकर विषाद करनेसे कोई लाभ नहीं है। यदि आपलोगोंको ठीक जँचे तो हम सब लोग स्वयंप्रभाकी उस गुफामें ही प्रवेश करके निवास करें॥ २५॥

'यह गुफा मायासे निर्मित होनेके कारण अत्यन्त दुर्गम है। यहाँ फल-फूल, जल और खाने-पीनेकी दूसरी वस्तुएँ भी प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हैं। अतः उसमें हमें न तो देवराज इन्द्रसे, न श्रीरामचन्द्रजीसे और न वानरराज सुग्रीवसे ही भय है'॥ २६॥

तारकी कही हुई पूर्वोक्त बात, जो अङ्गदके भी अनुकूल थी, सुनकर सभी वानरोंको उसपर विश्वास हो गया। वे सब-के-सब बोल उठे—'बन्धुओ! हमें वैसा कार्य आज ही अविलम्ब करना चाहिये, जिससे हम मारे न जायँ'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका भेदनीतिके द्वारा वानरोंको अपने पक्षमें करके अङ्गदको अपने साथ चलनेके लिये समझाना

तारापति चन्द्रमाके समान तेजस्वी तारके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने यह माना कि अब अङ्गदने वह राज्य (जो अबतक सुग्रीवके अधिकारमें था) हर लिया (इस तरह वानरोंमें फूट पड़नेसे बहुत-से वानर अङ्गदका साथ देंगे और बलवान् अङ्गद सुग्रीवको राज्यसे वञ्चित कर देंगे—ऐसी सम्भावनाका हनुमान्‌जीके मनमें उदय हो गया)॥ १॥

हनुमान्‌जी यह अच्छी तरह जानते थे कि वालिकुमार अङ्गद आठ[1] गुणवाली बुद्धिसे, चार[2] प्रकारके बलसे और चौदह[3] गुणोंसे सम्पन्न हैं॥ २॥

वे तेज, बल और पराक्रमसे सदा परिपूर्ण हो रहे हैं। शुक्ल पक्षके आरम्भमें चन्द्रमाके समान राजकुमार अङ्गदकी श्री दिनोदिन बढ़ रही है॥ ३॥

ये बुद्धिमें बृहस्पतिके समान और पराक्रममें अपने पिता वालीके तुल्य हैं। जैसे देवराज इन्द्र बृहस्पतिके मुखसे नीतिकी बातें सुनते हैं, उसी प्रकार ये अङ्गद तारकी बातें सुनते हैं॥ ४॥

अपने स्वामी सुग्रीवका कार्य सिद्ध करनेमें ये परिश्रम (थकावट या शिथिलता) का अनुभव करते हैं। ऐसा विचारकर सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हनुमान्‌जीने अङ्गदको तार आदि वानरोंकी ओरसे फोड़नेका प्रयत्न आरम्भ किया॥ ५॥

---

१. बुद्धिके आठ गुण ये हैं—सुननेकी इच्छा, सुनना, सुनकर ग्रहण करना, ग्रहण करके धारण करना, ऊहापोह करना, अर्थ या तात्पर्यको भलीभाँति समझना तथा तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न होना।

२. साम, दान, भेद और दण्ड—ये जो शत्रुको वशमें करनेके चार उपाय नीति-शास्त्रमें बताये गये हैं, उन्हींको यहाँ चार प्रकारका बल कहा गया है। किन्हीं-किन्हींके मतमें बाहुबल, मनोबल, उपायबल और बन्धुबल—ये चार बल हैं।

३. चौदह गुण यों बताये गये हैं—देश-कालका ज्ञान, दृढ़ता, सब प्रकारके क्लेशोंको सहन करनेकी क्षमता, सभी विषयोंका ज्ञान प्राप्त करना, चतुरता, उत्साह या बल, मन्त्रणाको गुप्त रखना, परस्पर विरोधी बात न कहना, शूरता, अपनी और शत्रुकी शक्तिका ज्ञान, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अमर्षशीलता तथा अचञ्चलता (स्थिरता या गम्भीरता)।

वे साम, दाम, भेद और दण्ड—इन चार उपायोंमेंसे तीसरेका वर्णन करते हुए अपने युक्तियुक्त वाक्य-वैभवके द्वारा उन सभी वानरोंको फोड़ने लगे॥ ६॥

जब वे सब वानर फूट गये, तब उन्होंने दण्डरूप चौथे उपायसे युक्त नाना प्रकारके भयदायक वचनोंद्वारा अङ्गदको डराना आरम्भ किया—॥ ७॥

'तारानन्दन! तुम युद्धमें अपने पिताके समान ही अत्यन्त शक्तिशाली हो—यह निश्चितरूपसे सबको विदित है। जैसे तुम्हारे पिता वानरोंका राज्य सँभालते थे, उसी प्रकार तुम भी उसे दृढ़तापूर्वक धारण करनेमें समर्थ हो॥ ८॥

'किंतु वानरशिरोमणे! ये कपिलोग सदा ही चञ्चलचित्त होते हैं। अपने स्त्री-पुत्रोंसे अलग रहकर तुम्हारी आज्ञाका पालन करना इनके लिये सह्य नहीं होगा॥ ९॥

'मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ, ये कोई भी वानर सुग्रीवसे विरोध करके तुम्हारे प्रति अनुरक्त नहीं हो सकते। जैसे ये जाम्बवान्, नील और महाकपि सुहोत्र हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ। मैं तथा ये सब लोग साम, दाम आदि उपायोंद्वारा सुग्रीवसे अलग नहीं किये जा सकते। तुम दण्डके द्वारा भी हम सबको वानरराजसे दूर कर सको, यह भी सम्भव नहीं है (अतः सुग्रीव तुम्हारी अपेक्षा प्रबल हैं)॥ १०-११॥

'दुर्बलके साथ विरोध करके बलवान् पुरुष चुपचाप बैठा रहे, यह तो सम्भव है। परंतु किसी बलवान्से वैर बाँधकर कोई दुर्बल पुरुष कहीं भी सुखसे नहीं रह सकता; अतः अपनी रक्षा चाहनेवाले दुर्बल पुरुषको बलवान्के साथ विग्रह नहीं करना चाहिये—यह नीतिज्ञ पुरुषोंका कथन है॥ १२॥

'तुम जो ऐसा मानने लगे हो कि यह गुफा हमें माताके समान अपनी गोदमें छिपा लेगी, इसलिये हमारी रक्षा हो जायगी तथा इस बिलकी अभेद्यताके विषयमें जो तुमने तारके मुँहसे कुछ सुना है, यह सब व्यर्थ है; क्योंकि इस गुफाको विदीर्ण कर देना लक्ष्मणके बाणोंके लिये बायें हाथका खेल है (अत्यन्त तुच्छ कार्य है)॥ १३॥

'पूर्वकालमें यहाँ वज्रका प्रहार करके इन्द्रने तो इस गुफाको बहुत थोड़ी हानि पहुँचायी थी; परंतु लक्ष्मण अपने पैने बाणोंद्वारा इसे पत्तेके दोनेकी भाँति विदीर्ण कर डालेंगे॥ १४॥

'लक्ष्मणके पास ऐसे बहुत-से नाराच हैं, जिनका हलका-सा स्पर्श भी वज्र और अशनिके समान चोट पहुँचानेवाला है। वे नाराच पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकते हैं॥ १५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! ज्यों ही तुम इस गुफामें रहना आरम्भ करोगे, त्यों ही ये सब वानर तुम्हें त्याग देंगे; क्योंकि इन्होंने ऐसा करनेका निश्चय कर लिया है॥ १६॥

'ये अपने बाल-बच्चोंको याद करके सदा उद्विग्न रहेंगे। जब यहाँ इन्हें भूखका कष्ट सहना पड़ेगा और दुःखद शय्यापर सोने या दुरवस्थामें रहनेके कारण इनके मनमें खेद होगा, तब ये तुम्हें पीछे छोड़कर चल देंगे॥

'ऐसी दशामें तुम हितैषी बन्धुओं और सुहृदोंके सहयोगसे वञ्चित हो उड़ते हुए तिनकेसे भी तुच्छ हो जाओगे और सदा अधिक डरते रहोगे (अथवा हिलते हुए तिनके-से अत्यन्त भयभीत होते रहोगे)॥ १८॥

'लक्ष्मणके बाण घोर, महान् वेगशाली और दुर्जय हैं। श्रीरामके कार्यसे विमुख होनेपर तुम्हें कदापि मारे बिना नहीं रहेंगे॥ १९॥

'हमारे साथ चलकर जब तुम विनीत पुरुषकी भाँति उनकी सेवामें उपस्थित होगे, तब सुग्रीव क्रमशः अपने बाद तुम्हींको राज्यपर बिठायेंगे॥ २०॥

'तुम्हारे चाचा सुग्रीव धर्मके मार्गपर चलनेवाले राजा हैं। वे सदा तुम्हारी प्रसन्नता चाहनेवाले, दृढ़व्रत, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं। अतः कदापि तुम्हारा नाश नहीं कर सकते॥ २१॥

'अङ्गद! उनके मनमें सदा तुम्हारी माताका प्रिय करनेकी इच्छा रहती है। उनकी प्रसन्नताके लिये ही वे जीवन धारण करते हैं। सुग्रीवके तुम्हारे सिवा कोई दूसरा पुत्र भी नहीं है, इसलिये तुम्हें उनके पास चलना चाहिये'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

अङ्गदसहित वानरोंका प्रायोपवेशन

हनुमान्‌जीका वचन विनययुक्त, धर्मानुकूल और स्वामीके प्रति सम्मानसे युक्त था। उसे सुनकर अङ्गदने कहा— ॥ १ ॥

'कपिश्रेष्ठ! राजा सुग्रीवमें स्थिरता, शरीर और मनकी पवित्रता, क्रूरताका अभाव, सरलता, पराक्रम और धैर्य है—यह मान्यता ठीक नहीं जान पड़ती ॥ २ ॥

'जिसने अपने बड़े भाईके जीते-जी उनकी प्यारी महारानीको, जो धर्मत: उसकी माताके समान थी, कुत्सित भावनासे ग्रहण कर लिया था, वह धर्मको जानता है, यह कैसे कहा जा सकता है? जिस दुरात्माने युद्धके लिये जाते हुए भाईके द्वारा बिलकी रक्षाके कार्यमें नियुक्त होनेपर भी पत्थरसे उसका मुँह बंद कर दिया, वह कैसे धर्मज्ञ माना जा सकता है?॥ ३-४ ॥

'जिन्होंने सत्यको साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा और पहले ही उसका कार्य सिद्ध कर दिया, उन महायशस्वी भगवान् श्रीरामको ही जब उसने भुला दिया, तब दूसरे किसके उपकारको वह याद रख सकता है?॥ ५ ॥

'जिसने अधर्मके भयसे डरकर नहीं, लक्ष्मणके ही भयसे भीत हो हमलोगोंको सीताकी खोजके लिये भेजा है, उसमें धर्मकी सम्भावना कैसे हो सकती है?॥

'उस पापी, कृतघ्न, स्मरण-शक्तिसे हीन और चञ्चलचित्त सुग्रीवपर कोई श्रेष्ठ पुरुष, विशेषत: जो उसके कुलमें उत्पन्न हुआ हो, कभी भी किस तरह विश्वास कर सकता है?॥ ७ ॥

'अपना पुत्र गुणवान् हो या गुणहीन, उसीको राज्यपर बिठाना चाहिये, ऐसी धारणा रखनेवाला सुग्रीव मुझ शत्रुकुलमें उत्पन्न हुए बालकको कैसे जीवित रहने देगा?॥ ८ ॥

'सुग्रीवसे अलग रहनेका जो मेरा गूढ़ विचार था, वह आज प्रकट हो गया। साथ ही, उसकी आज्ञाका पालन न करनेके कारण मैं अपराधी भी हूँ। इतना ही नहीं, मेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। मैं अनाथके समान दुर्बल हूँ। ऐसी दशामें किष्किन्धामें जाकर कैसे जीवित रह सकूँगा?॥ ९ ॥

'सुग्रीव शठ, क्रूर और निर्दयी है। वह राज्यके लिये मुझे गुप्तरूपसे दण्ड देगा अथवा सदाके लिये मुझे बन्धनमें डाल देगा॥ १० ॥

'इस प्रकार बन्धनजनित कष्ट भोगनेकी अपेक्षा उपवास करके प्राण दे देना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अत: सब वानर मुझे यहीं रहनेकी आज्ञा दें और अपने-अपने घरको चले जायँ॥ ११ ॥

'मैं आपलोगोंसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं किष्किन्धापुरीको नहीं जाऊँगा। यहीं मरणान्त उपवास करूँगा। मेरा मर जाना ही अच्छा है॥ १२ ॥

'आपलोग राजा सुग्रीवको प्रणाम करके उनसे मेरा कुशल-समाचार कहियेगा। अपने बलके कारण शोभा पानेवाले दोनों रघुवंशी बन्धुओंसे भी मेरा सादर प्रणाम निवेदन करते हुए कुशल-समाचार कह दीजियेगा॥

'मेरे छोटे पिता वानरराज सुग्रीव और माता रुमासे भी मेरा आरोग्यपूर्वक कुशल-समाचार बताइयेगा॥ १४ ॥

'मेरी माता ताराको भी धैर्य बँधाइयेगा। वह बेचारी स्वभावसे ही दयालु और पुत्रपर प्रेम रखनेवाली है॥ १५ ॥

'यहाँ मेरे नष्ट होनेका समाचार सुनकर वह निश्चय ही अपने प्राण त्याग देगी।' इतना कहकर अङ्गदने उन सभी बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम किया और धरतीपर कुश बिछाकर उदास मुँहसे रोते-रोते वे मरणान्त उपवासके लिये बैठ गये॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

उनके इस प्रकार बैठनेपर सभी श्रेष्ठ वानर रोने लगे और दु:खी हो नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहाने लगे। सुग्रीवकी निन्दा और वालीकी प्रशंसा करते हुए उन सबने अङ्गदको सब ओरसे घेरकर आमरण उपवास करनेका निश्चय किया॥ १७-१८ $\frac{1}{2}$ ॥

वालिकुमारके वचनोंपर विचार करके उन वानरशिरोमणियोंने मरना ही उचित समझा और मृत्युकी इच्छासे आचमन करके समुद्रके उत्तर तटपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर वे सब-के-सब पूर्वाभिमुख हो बैठ गये॥ १९-२० $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीरामके वनवास, राजा दशरथकी मृत्यु, जन-स्थानवासी राक्षसोंके संहार, विदेहकुमारी सीताके अपहरण, जटायुके मरण, वालीके वध और श्रीरामके क्रोधकी चर्चा करते हुए उन वानरोंपर एक दूसरा ही भय आ पहुँचा॥ २१-२२ ॥

महान् पर्वत-शिखरोंके समान शरीरवाले वहाँ बैठे

हुए बहुसंख्यक वानर भयके मारे जोर-जोरसे शब्द करने लगे, जिससे उस पर्वतकी कन्दराओंका भीतरी भाग प्रतिध्वनित हो उठा और गर्जते हुए मेघोंसे युक्त आकाशके समान प्रतीत होने लगा॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

सम्पातिसे वानरोंको भय, उनके मुखसे जटायुके वधकी बात सुनकर सम्पातिका दुःखी होना और अपनेको नीचे उतारनेके लिये वानरोंसे अनुरोध करना

पर्वतके जिस स्थानपर वे सब वानर आमरण उपवासके लिये बैठे थे, उस प्रदेशमें चिरंजीवी पक्षी श्रीमान् गृध्रराज सम्पाति आये। वे जटायुके भाई थे और अपने बल तथा पुरुषार्थके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे॥ १-२॥

महागिरि विन्ध्यकी कन्दरासे निकलकर सम्पातिने जब वहाँ बैठे हुए वानरोंको देखा, तब उनका हृदय हर्षसे खिल उठा और वे इस प्रकार बोले—॥ ३॥

'जैसे लोकमें पूर्वजन्मके कर्मानुसार मनुष्यको उसके कियेका फल स्वतः प्राप्त होता है, उसी प्रकार आज दीर्घकालके पश्चात् यह भोजन स्वतः मेरे लिये प्राप्त हो गया। अवश्य ही यह मेरे किसी कर्मका फल है। इन वानरोंमेंसे जो-जो मरता जायगा, उसको मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊँगा' यह बात उस पक्षीने उन सब वानरोंको देखकर कहा॥ ४-५॥

भोजनपर लुभाये हुए उस पक्षीका यह वचन सुनकर अङ्गदको बड़ा दुःख हुआ और वे हनुमान्‌जीसे बोले—

'देखिये, सीताके निमित्तसे वानरोंको विपत्तिमें डालनेके लिये साक्षात् सूर्यपुत्र यम इस देशमें आ पहुँचे॥

'हमलोगोंने न तो श्रीरामचन्द्रजीका कार्य किया और न राजाकी आज्ञाका पालन ही। इसी बीच वानरोंपर यह सहसा अज्ञात विपत्ति आ पड़ी॥ ८॥

'विदेहकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे गृध्रराज जटायुने जो साहसपूर्ण कार्य किया था, वह सब आपलोगोंने सुना ही होगा॥ ९॥

'समस्त प्राणी, वे पशु-पक्षियोंकी योनिमें ही क्यों न उत्पन्न हुए हों, हमारी तरह प्राण देकर भी श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य करते हैं॥ १०॥

'शिष्ट पुरुष स्नेह और करुणाके वशीभूत हो एक-दूसरेका उपकार करते हैं, अतः आपलोग भी श्रीरामके उपकारके लिये स्वयं ही अपने शरीरका परित्याग करें॥ ११॥

'धर्मज्ञ जटायुने ही श्रीरामका प्रिय किया है। हमलोग श्रीरघुनाथजीके लिये अपने जीवनका मोह छोड़कर परिश्रम करते हुए इस दुर्गम वनमें आये, किंतु मिथिलेशकुमारीका दर्शन न कर सके॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

'गृध्रराज जटायु ही सुखी हैं, जो युद्धमें रावणके हाथसे मारे गये और परमगतिको प्राप्त हुए। वे सुग्रीवके भयसे मुक्त हैं॥ १३॥

'राजा दशरथकी मृत्यु, जटायुका विनाश और विदेहकुमारी सीताका अपहरण—इन घटनाओंसे इस समय वानरोंका जीवन संशयमें पड़ गया है॥ १४॥

'श्रीराम और लक्ष्मणको सीताके साथ वनमें निवास करना पड़ा, श्रीरघुनाथजीके बाणसे वालीका वध हुआ और अब श्रीरामके कोपसे समस्त राक्षसोंका संहार होगा—ये सारी बुराइयाँ कैकेयीको दिये गये वरदानसे ही पैदा हुई हैं'॥ १५-१६॥

वानरोंके द्वारा बारम्बार कहे गये इन दुःखमय वचनोंको सुनकर और उन सबको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर परम बुद्धिमान् सम्पातिका हृदय अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा और वे दीन वाणीमें बोलनेको उद्यत हुए॥ १७॥

अङ्गदके मुखसे निकले हुए उस वचनको सुनकर तीखी चोंचवाले उस गीधने उच्च स्वरसे इस प्रकार पूछा—॥ १८॥

'यह कौन है, जो मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भाई जटायुके वधकी बात कह रहा है। इसे सुनकर मेरा हृदय कम्पित-सा होने लगा है॥ १९॥

'जनस्थानमें राक्षसका गृध्रके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ था? अपने भाईका प्यारा नाम आज बहुत दिनोंके बाद मेरे कानमें पड़ा है॥ २०॥

'जटायु मुझसे छोटा, गुणज्ञ और पराक्रमके कारण अत्यन्त प्रशंसाके योग्य था। दीर्घकालके पश्चात् आज उसका नाम सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं चाहता

हूँ कि पर्वतके इस दुर्गम स्थानसे आपलोग मुझे नीचे उतार दें। श्रेष्ठ वानरो! मुझे अपने भाईके विनाशका वृत्तान्त सुननेकी इच्छा है॥ २१-२२॥

'मेरा भाई जटायु तो जनस्थानमें रहता था। गुरुजनोंके प्रेमी श्रीरामचन्द्रजी जिनके ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्र हैं, वे महाराज दशरथ मेरे भाईके मित्र कैसे हुए?॥ २३ $\frac{१}{२}$ ॥

'शत्रुदमन वीरो! मेरे पंख सूर्यकी किरणोंसे जल गये हैं, इसलिये मैं उड़ नहीं सकता; किंतु इस पर्वतसे नीचे उतरना चाहता हूँ'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

अङ्गदका सम्पातिको पर्वत-शिखरसे नीचे उतारकर उन्हें जटायुके मारे जानेका वृत्तान्त बताना तथा राम-सुग्रीवकी मित्रता एवं वालिवधका प्रसंग सुनाकर अपने आमरण उपवासका कारण निवेदन करना

शोकके कारण सम्पातिका स्वर विकृत हो गया था। उनकी कही हुई बात सुनकर भी वानर-यूथपतियोंने उसपर विश्वास नहीं किया; क्योंकि वे उनके कर्मसे शङ्कित थे॥ १॥

आमरण उपवासके लिये बैठे हुए उन वानरोंने उस समय गीधको देखकर यह भयंकर बात सोची, 'यह हम सबको खा तो नहीं जायगा॥ २॥

'अच्छा, हम तो सब प्रकारसे मरणान्त उपवासका व्रत लेकर बैठे ही थे। यदि यह पक्षी हमें खा लेगा तो हमारा काम ही बन जायगा। हमें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जायगी'॥ ३॥

फिर तो उन समस्त वानर-यूथपतियोंने यही निश्चय किया। उस समय गीधको उस पर्वत-शिखरसे उतारकर अङ्गदने कहा—॥ ४॥

'पक्षिराज! पहले एक प्रतापी वानरराज हो गये हैं, जिनका नाम था ऋक्षरजा! राजा ऋक्षरजा मेरे पितामह लगते थे। उनके दो धर्मात्मा पुत्र हुए—सुग्रीव और वाली। दोनों ही बड़े बलवान् हुए। उनमेंसे राजा वाली मेरे पिता थे। संसारमें अपने पराक्रमके कारण उनकी बड़ी ख्याति थी॥ ५-६॥

'आजसे कुछ वर्ष पहले इक्ष्वाकुवंशके महारथी वीर दशरथकुमार श्रीमान् रामचन्द्रजी, जो सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं, पिताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर हो धर्म-मार्गका आश्रय ले दण्डकारण्यमें आये थे। उनके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा उनकी धर्मपत्नी विदेहकुमारी सीता भी थीं॥ ७-८॥

'जनस्थानमें आनेपर उनकी पत्नी सीताको रावणने बलपूर्वक हर लिया। उस समय गृध्रराज जटायुने, जो उनके पिताके मित्र थे, देखा—रावण आकाशमार्गसे विदेहकुमारीको लिये जा रहा है। देखते ही वे रावणपर टूट पड़े और उसके रथको नष्ट-भ्रष्ट करके उन्होंने मिथिलेशकुमारीको सुरक्षितरूपसे भूमिपर खड़ा कर दिया। किंतु वे वृद्ध तो थे ही। युद्ध करते-करते थक गये और अन्ततोगत्वा रणक्षेत्रमें रावणके हाथसे मारे गये॥ ९-१०॥

'इस प्रकार महाबली रावणके द्वारा जटायुका वध हुआ। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने उनका दाह-संस्कार किया और वे उत्तम गति (साकेतधामको) प्राप्त हुए॥ ११॥

'तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने मेरे चाचा महात्मा सुग्रीवसे मित्रता की और उनके कहनेसे उन्होंने मेरे पिताका वध कर दिया॥ १२॥

'मेरे पिताने मन्त्रियोंसहित सुग्रीवको राज्य-सुखसे वञ्चित कर दिया था। इसलिये श्रीरामचन्द्रजीने मेरे पिता वालीको मारकर सुग्रीवका अभिषेक करवाया॥ १३॥

'उन्होंने ही सुग्रीवको वालीके राज्यपर स्थापित किया। अब सुग्रीव वानरोंके स्वामी हैं। मुख्य-मुख्य वानरोंके भी राजा हैं। उन्होंने हमें सीताकी खोजके लिये भेजा है॥ १४॥

'इस तरह श्रीरामसे प्रेरित होकर हमलोग इधर-उधर विदेहकुमारी सीताको खोजते-फिरते हैं, किंतु अबतक उनका पता नहीं लगा। जैसे रातमें सूर्यकी प्रभाका दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार हमें इस वनमें जानकीका दर्शन नहीं हुआ॥ १५॥

'हमलोग अपने मनको एकाग्र करके दण्डकारण्यमें भलीभाँति खोज करते हुए अज्ञानवश पृथ्वीके एक खुले

हुए विवरमें घुस गये॥ १६॥

'वह विवर मयासुरकी मायासे निर्मित हुआ है। उसमें खोजते-खोजते हमारा एक मास बीत गया, जिसे राजा सुग्रीवने हमारे लौटनेके लिये अवधि निश्चित किया था॥ १७॥

'हम सब लोग कपिराज सुग्रीवके आज्ञाकारी हैं, किंतु उनके द्वारा नियत की हुई अवधिको लाँघ गये हैं। अतः उन्हींके भयसे हम यहाँ आमरण उपवास कर रहे हैं॥ १८॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव तीनों हमपर कुपित होंगे। उस दशामें वहाँ लौट जानेके बाद भी हम सबके प्राण नहीं बच सकते'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

सम्पातिका अपने पंख जलनेकी कथा सुनाना, सीता और रावणका पता बताना तथा वानरोंकी सहायतासे समुद्र-तटपर जाकर भाईको जलाञ्जलि देना

जीवनकी आशा त्यागकर बैठे हुए वानरोंके मुखसे यह करुणाजनक बात सुनकर सम्पातिके नेत्रोंमें आँसू आ गये। उन्होंने उच्च स्वरसे उत्तर दिया—॥ १॥

'वानरो! तुम जिसे महाबली रावणके द्वारा युद्धमें मारा गया बता रहे हो, वह जटायु मेरा छोटा भाई था॥

'मैं बूढ़ा हुआ। मेरे पंख जल गये। इसलिये अब मुझमें अपने भाईके वैरका बदला लेनेकी शक्ति नहीं रह गयी है। यही कारण है कि यह अप्रिय बात सुनकर भी मैं चुपचाप सहे लेता हूँ॥ ३॥

'पहलेकी बात है जब इन्द्रके द्वारा वृत्रासुरका वध हो गया, तब इन्द्रको प्रबल जानकर हम दोनों भाई उन्हें जीतनेकी इच्छासे पहले आकाशमार्गके द्वारा बड़े वेगसे स्वर्गलोकमें गये। इन्द्रको जीतकर लौटते समय हम दोनों ही स्वर्गको प्रकाशित करनेवाले अंशुमाली सूर्यके पास आये। हममेंसे जटायु सूर्यके मध्याह्नकालमें उनके तेजसे शिथिल होने लगा॥ ४-५॥

'भाईको सूर्यकी किरणोंसे पीड़ित और अत्यन्त व्याकुल देख मैंने स्नेहवश अपने दोनों पंखोंसे उसे ढक लिया॥ ६॥

'वानरशिरोमणियो! उस समय मेरे दोनों पंख जल गये और मैं इस विन्ध्य पर्वतपर गिर पड़ा। यहाँ रहकर मैं कभी अपने भाईका समाचार न पा सका (आज पहले-पहल तुमलोगोंके मुखसे उसके मारे जानेकी बात मालूम हुई है)'॥ ७॥

जटायुके भाई सम्पातिके उस समय ऐसा कहनेपर परम बुद्धिमान् युवराज अङ्गदने उनसे इस प्रकार कहा—

'गृध्रराज! यदि आप जटायुके भाई हैं, यदि आपने मेरी कही हुई बातें सुनी हैं और यदि आप उस राक्षसका निवासस्थान जानते हैं तो हमें बताइये॥ ९॥

'वह अदूरदर्शी नीच राक्षस रावण यहाँसे निकट हो या दूर, यदि आप जानते हैं तो हमें उसका पता बता दें'॥ १०॥

तब जटायुके बड़े भाई महातेजस्वी सम्पातिने वानरोंका हर्ष बढ़ाते हुए अपने अनुरूप बात कही—॥ ११॥

'वानरो! मेरे पंख जल गये। अब मैं बेपरका गीध हूँ। मेरी शक्ति जाती रही (अतः मैं शरीरसे तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता, तथापि) वचनमात्रसे भगवान् श्रीरामकी उत्तम सहायता अवश्य करूँगा॥ १२॥

'मैं वरुणके लोकोंको जानता हूँ। वामनावतारके समय भगवान् विष्णुने जहाँ-जहाँ अपने तीन पग रखे थे, उन स्थानोंका भी मुझे ज्ञान है। अमृत-मन्थन तथा देवासुरसंग्राम भी मेरी देखी और जानी हुई घटनाएँ हैं॥

'यद्यपि वृद्धावस्थाने मेरा तेज हर लिया है और मेरी प्राणशक्ति शिथिल हो गयी है तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह कार्य मुझे सबसे पहले करना है॥ १४॥

'एक दिन मैंने भी देखा, दुरात्मा रावण सब प्रकारके गहनोंसे सजी हुई एक रूपवती युवतीको हरकर लिये जा रहा था॥ १५॥

'वह मानिनी देवी 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण' की रट लगाती हुई अपने गहने फेंकती और अपने शरीरके अवयवोंको कम्पित करती हुई छटपटा रही थी॥

'उसका सुन्दर रेशमी पीताम्बर उदयाचलके शिखरपर फैली हुई सूर्यकी प्रभाके समान सुशोभित होता था। वह उस काले राक्षसके समीप बादलोंमें चमकती हुई बिजलीके समान प्रकाशित हो रही थी॥ १७॥

'श्रीरामका नाम लेनेसे मैं समझता हूँ, वह सीता ही

थी। अब मैं उस राक्षसके घरका पता बताता हूँ, सुनो॥

'रावण नामक राक्षस महर्षि विश्रवाका पुत्र और साक्षात् कुबेरका भाई है। वह लङ्का नामवाली नगरीमें निवास करता है॥ १९॥

'यहाँसे पूरे चार सौ कोसके अन्तरपर समुद्रमें एक द्वीप है, जहाँ विश्वकर्माने अत्यन्त रमणीय लङ्कापुरीका निर्माण किया है॥ २०॥

'उसके विचित्र दरवाजे और बड़े-बड़े महल सुवर्णके बने हुए हैं। उनके भीतर सोनेके चबूतरे या वेदियाँ हैं॥ २१॥

'उस नगरीकी चहारदीवारी बहुत बड़ी है और सूर्यकी भाँति चमकती रहती है। उसीके भीतर पीले रंगकी रेशमी साड़ी पहने विदेहकुमारी सीता बड़े दुःखसे निवास करती हैं॥ २२॥

'रावणके अन्तःपुरमें नजरबंद हैं। बहुत-सी राक्षसियाँ उनके पहरेपर तैनात हैं। वहाँ पहुँचनेपर तुमलोग राजा जनककी कन्या मैथिली सीताको देख सकोगे॥ २३॥

'लङ्का चारों ओरसे समुद्रके द्वारा सुरक्षित है। पूरे सौ योजन समुद्रको पार करके उसके दक्षिण तटपर पहुँचनेपर तुमलोग रावणको देख सकोगे। अतः वानरो! समुद्रको पार करनेमें ही तुरंत शीघ्रतापूर्वक अपने पराक्रमका परिचय दो॥ २४-२५॥

'निश्चय ही मैं ज्ञानदृष्टिसे देखता हूँ। तुमलोग सीताका दर्शन करके लौट आओगे। आकाशका पहला मार्ग गौरैयों तथा अन्न खानेवाले कबूतर आदि पक्षियोंका है॥ २६॥

'उससे ऊपरका दूसरा मार्ग कौओं तथा वृक्षोंके फल खाकर रहनेवाले दूसरे-दूसरे पक्षियोंका है। उससे भी ऊँचा जो आकाशका तीसरा मार्ग है, उससे चील, क्रौञ्च और कुरर आदि पक्षी जाते हैं॥ २७॥

'बाज चौथे और गीध पाँचवें मार्गसे उड़ते हैं। रूप, बल और पराक्रमसे सम्पन्न तथा यौवनसे सुशोभित होनेवाले हंसोंका छठा मार्ग है। उनसे भी ऊँची उड़ान गरुड़की है। वानरशिरोमणियो! हम सबका जन्म गरुड़से ही हुआ है॥ २८-२९॥

'परंतु पूर्वजन्ममें हमसे कोई निन्दित कर्म बन गया था, जिससे इस समय हमें मांसाहारी होना पड़ा है। तुमलोगोंकी सहायता करके मुझे रावणसे अपने भाईके वैरका बदला लेना है॥ ३०॥

'मैं यहींसे रावण और जानकीको देखता हूँ। हमलोगोंमें भी गरुड़की भाँति दूरतक देखनेकी दिव्य शक्ति है॥ ३१॥

'इसलिये वानरो! हम भोजनजनित बलसे तथा स्वाभाविक शक्तिसे भी सदा सौ योजन और उससे आगेतक भी देख सकते हैं॥ ३२॥

'जातीय स्वभावके अनुसार हमलोगोंकी जीविका-वृत्ति दूरसे देखे गये दूरस्थ भक्ष्यविशेषके द्वारा नियत की गयी है तथा जो कुक्कुट आदि पक्षी हैं, उनकी जीवन-वृत्ति वृक्षकी जड़तक ही सीमित है—वे वहींतक उपलब्ध होनेवाली वस्तुसे जीवन-निर्वाह करते हैं॥ ३३॥

'अब तुम इस खारे पानीके समुद्रको लाँघनेका कोई उपाय सोचो। विदेहकुमारी सीताके पास जा सफलमनोरथ होकर किष्किन्धापुरीको लौटोगे॥ ३४॥

'अब मैं तुम्हारी सहायतासे समुद्रके किनारे चलना चाहता हूँ। वहाँ अपने स्वर्गवासी भाई महात्मा जटायुको जलाञ्जलि प्रदान करूँगा'॥ ३५॥

यह सुनकर महापराक्रमी वानरोंने जले पंखवाले पक्षिराज सम्पातिको उठाकर समुद्रके किनारे पहुँचा दिया और जलाञ्जलि देनेके पश्चात् वे पुनः उनको वहाँसे उठाकर उनके रहनेके स्थानपर ले आये। उनके मुखसे सीताका समाचार जानकर उन सभी वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

सम्पातिका अपने पुत्र सुपार्श्वके मुखसे सुनी हुई सीता और रावणको देखनेकी घटनाका वृत्तान्त बताना

उस समय वार्तालाप करते हुए गृध्रराजके द्वारा कहे गये उस अमृतके समान स्वादिष्ट मधुर वचनको सुनकर सब वानरश्रेष्ठ हर्षसे खिल उठे॥ १॥

वानरों और भालुओंमें श्रेष्ठ जाम्बवान् सब वानरोंके साथ सहसा भूतलसे उठकर खड़े हो गये और गृध्रराजसे इस प्रकार पूछने लगे—॥ २॥

'पक्षिराज! सीता कहाँ हैं? किसने उन्हें देखा है? और कौन उन मिथिलेशकुमारीको हरकर ले गया है? ये सब बातें बताइये और हम सब वनवासी वानरोंके आश्रयदाता होइये॥ ३॥

'कौन ऐसा धृष्ट है, जो वज्रके समान वेगपूर्वक चोट करनेवाले दशरथनन्दन श्रीरामके बाणों तथा स्वयं लक्ष्मणके चलाये हुए सायकोंके पराक्रमको कुछ नहीं समझता है?'॥ ४॥

उस समय उपवास छोड़कर बैठे और सीताजीका वृत्तान्त सुननेके लिये एकाग्र हुए वानरोंको प्रसन्नता-पूर्वक पुनः आश्वासन देते हुए सम्पातिने उनसे यह बात कही—॥ ५॥

'वानरो! विदेहकुमारी सीताका जिस प्रकार अपहरण हुआ है, विशाललोचना सीता इस समय जहाँ है और जिसने मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा है एवं जिस तरह मैंने सुना है, वह सब बताता हूँ, सुनो—॥ ६॥

'यह दुर्गम पर्वत कई योजनोंतक फैला है। दीर्घकाल हुआ, जब मैं इस पर्वतपर गिरा था। मेरी प्राणशक्ति क्षीण हो गयी थी और मैं वृद्ध था॥ ७॥

'इस अवस्थामें मेरा पुत्र पक्षिप्रवर सुपार्श्व ही यथासमय आहार देकर प्रतिदिन मेरा भरण-पोषण करता है॥ ८॥

'जैसे गन्धर्वोंका कामभाव तीव्र होता है, सर्पोंका क्रोध तेज होता है और मृगोंको भय अधिक होता है, उसी प्रकार हमारी जातिके लोगोंकी भूख बड़ी तीव्र होती है॥ ९॥

'एक दिनकी बात है मैं भूखसे पीड़ित होकर आहार प्राप्त करना चाहता था। मेरा पुत्र मेरे लिये भोजनकी तलाशमें निकला था, किंतु सूर्यास्त होनेके बाद वह खाली हाथ लौट आया, उसे कहीं मांस नहीं मिला॥ १०॥

'भोजन न मिलनेसे मैंने कठोर बातें सुनाकर अपनी प्रीति बढ़ानेवाले उस पुत्रको बहुत पीड़ा दी, किंतु उसने नम्रतापूर्वक मुझे आदर देते हुए यह यथार्थ बात कही—॥ ११॥

'तात! मैं यथासमय मांस प्राप्त करनेकी इच्छासे आकाशमें उड़ा और महेन्द्र पर्वतके द्वारको रोककर खड़ा हो गया॥ १२॥

'वहाँ अपनी चोंच नीची करके मैं समुद्रके भीतर विचरनेवाले सहस्रों जन्तुओंके मार्गको रोकनेके लिये अकेला ठहर गया॥ १३॥

'उस समय मैंने देखा खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेकी राशिके समान काला कोई पुरुष एक स्त्रीको लेकर जा रहा है। उस स्त्रीकी कान्ति सूर्योदयकालकी प्रभाके समान प्रकाशित हो रही थी॥ १४॥

'उस स्त्री और उस पुरुषको देखकर मैंने उन्हें आपके आहारके लिये लानेका निश्चय किया, किंतु उस पुरुषने नम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें मुझसे मार्गकी याचना की॥ १५॥

'पिताजी! भूतलपर नीच पुरुषोंमें भी कोई ऐसा नहीं है, जो विनयपूर्वक मीठे वचन बोलनेवालोंपर प्रहार करे। फिर मुझ-जैसा कुलीन पुरुष कैसे कर सकता है?॥ १६॥

'फिर तो वह तेजसे आकाशको व्याप्त करता हुआ-सा वेगपूर्वक चला गया। उसके चले जानेपर आकाशचारी प्राणी सिद्ध-चारण आदिने आकर मेरा बड़ा सम्मान किया॥ १७॥

'वे महर्षि मुझसे बोले—'सौभाग्यकी बात है कि सीता जीवित हैं। तुम्हारी दृष्टि पड़नेपर भी स्त्रीके साथ आया हुआ वह पुरुष किसी तरह सकुशल बच गया; अतः अवश्य तुम्हारा कल्याण हो'॥ १८॥

'उन परम शोभायमान सिद्ध पुरुषोंने मुझसे ऐसा कहा, तत्पश्चात् उन्होंने यह भी बताया कि 'वह काला पुरुष राक्षसोंका राजा रावण था'॥ १९॥

'तात! दशरथनन्दन श्रीरामकी पत्नी जनककिशोरी सीता शोकके वेगसे पराजित हो गयी थीं। उनके आभूषण गिर रहे थे और रेशमी वस्त्र भी सिरसे खिसक गया था। उनके केश खुले हुए थे और वे श्रीराम तथा लक्ष्मणका नाम ले-लेकर उन्हें पुकार रही थीं। मैं उनकी इस दयनीय दशाको देखता रह गया। यही मेरे विलम्बसे आनेका कारण है।' इस प्रकार बातचीतकी कला जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सुपार्श्वने मेरे सामने इन सारी बातोंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भी मेरे हृदयमें पराक्रम कर दिखानेका कोई विचार नहीं उठा॥ २०—२२॥

'बिना पंखका पक्षी कैसे कोई पराक्रम कर सकता है? अपनी वाणी और बुद्धिके द्वारा साध्य जो उपकाररूप गुण है, उसे करना मेरा स्वभाव बन गया है। ऐसे स्वभावसे मैं जो कुछ कर सकता हूँ, वह कार्य तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। वह कार्य तुमलोगोंके पुरुषार्थसे ही सिद्ध होनेवाला है॥ २३ $\frac{1}{2}$ ॥

'मैं वाणी और बुद्धिके द्वारा तुम सब लोगोंका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा; क्योंकि दशरथनन्दन श्रीरामका जो कार्य है, वह मेरा ही है—इसमें संशय नहीं है॥ २४½ ॥

'तुमलोग भी उत्तम बुद्धिसे युक्त, बलवान्, मनस्वी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जय हो। इसीलिये वानरराज सुग्रीवने तुम्हें इस कार्यके लिये भेजा है॥ २५½ ॥

'श्रीराम और लक्ष्मणके कङ्कपत्रसे युक्त जो बाण हैं, वे साक्षात् विधाताके बनाये हुए हैं। वे तीनों लोकोंका संरक्षण और दमन करनेके लिये पर्याप्त शक्ति रखते हैं॥

'तुम्हारा विपक्षी दशग्रीव रावण भले ही तेजस्वी और बलवान् है, किंतु तुम-जैसे सामर्थ्यशाली वीरोंके लिये उसे परास्त करना आदि कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है॥ २७॥

'अतः अब अधिक समय बितानेकी आवश्यकता नहीं है। अपनी बुद्धिके द्वारा दृढ निश्चय करके सीताके दर्शनके लिये उद्योग करो; क्योंकि तुम-जैसे बुद्धिमान् लोग कार्योंकी सिद्धिमें विलम्ब नहीं करते हैं'॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

सम्पातिकी आत्मकथा

गृध्रराज सम्पाति अपने भाईको जलाञ्जलि देकर जब स्नान कर चुके, तब उस रमणीय पर्वतपर वे समस्त वानरयूथपति उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये॥ १॥

उन समस्त वानरोंसे घिरे हुए अङ्गद उनके पास बैठे थे। सम्पातिने सबके हृदयमें अपनी ओरसे विश्वास पैदा कर दिया था। वे हर्षोत्फुल्ल होकर फिर इस प्रकार कहने लगे—॥ २॥

'सब वानर एकाग्रचित्त एवं मौन होकर मेरी बात सुनो। मैं मिथिलेशकुमारीको जिस प्रकार जानता हूँ, वह सारा प्रसङ्ग ठीक-ठीक बता रहा हूँ॥ ३॥

'निष्पाप अङ्गद! प्राचीन कालमें मैं सूर्यकी किरणोंसे झुलसकर इस विन्ध्यपर्वतके शिखरपर गिरा था। उस समय मेरे सारे अङ्ग सूर्यके प्रचण्ड तापसे संतप्त हो रहे थे॥ ४॥

'छः रातें बीतनेपर जब मुझे होश हुआ और मैं विवश एवं विह्वल-सा होकर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगा, तब सहसा किसी भी वस्तुको मैं पहचान न सका॥

'तदनन्तर धीरे-धीरे समुद्र, पर्वत, समस्त नदी, सरोवर, वन और यहाँके विभिन्न प्रदेशोंपर दृष्टि डाली, तब मेरी स्मरण-शक्ति लौटी॥ ६॥

'फिर मैंने निश्चय किया कि यह दक्षिण समुद्रके तटपर स्थित विन्ध्यपर्वत है, जो हर्षोत्फुल्ल विहंगमोंके समुदायसे व्याप्त है। यहाँ बहुत-सी कन्दराएँ, गुफाएँ और शिखर हैं॥ ७॥

'पूर्वकालमें यहाँ एक पवित्र आश्रम था, जिसका देवता भी बड़ा सम्मान करते थे। उस आश्रममें निशाकर (चन्द्रमा) नामधारी एक ऋषि रहते थे, जो बड़े ही उग्र तपस्वी थे॥ ८॥

'वे धर्मज्ञ निशाकर मुनि अब स्वर्गवासी हो चुके हैं। उन महर्षिके बिना इस पर्वतपर रहते हुए मेरे आठ हजार वर्ष बीत गये॥ ९॥

'होशमें आनेके बाद मैं इस पर्वतके नीचे-ऊँचे शिखरसे धीरे-धीरे बड़े कष्टके साथ भूमिपर उतरा, उस समय ऐसे स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ तीखे कुश उगे हुए थे। फिर वहाँसे भी कष्ट सहन करता हुआ आगे बढ़ा॥ १०॥

'मैं उन महर्षिका दर्शन करना चाहता था, इसीलिये अत्यन्त कष्ट उठाकर वहाँ गया था। इसके पहले मैं और जटायु दोनों कई बार उनसे मिल चुके थे॥ ११॥

'उनके आश्रमके समीप सदा सुगन्धित वायु चलती थी। वहाँका कोई भी वृक्ष फल अथवा फूलसे रहित नहीं देखा जाता था॥ १२॥

'उस पवित्र आश्रमपर पहुँचकर मैं एक वृक्षके नीचे ठहर गया और भगवान् निशाकरके दर्शनकी इच्छासे उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा॥ १३॥

'थोड़ी ही देरमें महर्षि मुझे दूरसे आते दिखायी दिये। वे अपने तेजसे दिप रहे थे और स्नान करके उत्तरकी ओर लौटे आ रहे थे। उनका तिरस्कार करना किसीके लिये भी कठिन था॥ १४॥

'अनेकानेक रीछ, हरिन, सिंह, बाघ और नाना प्रकारके सर्प उन्हें इस प्रकार घेरे आ रहे थे, जैसे याचना करनेवाले प्राणी दाताको घेरकर चलते हैं॥ १५॥

'ऋषिको आश्रमपर आया जान वे सभी प्राणी लौट गये। ठीक उसी तरह, जैसे राजाके अपने महलमें चले जानेपर मन्त्रीसहित सारी सेना अपने-अपने विश्रामस्थानको लौट जाती है॥ १६॥

'ऋषि मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने आश्रममें प्रवेश करके पुनः दो ही घड़ीमें बाहर निकल आये। फिर पास आकर उन्होंने मेरे आनेका प्रयोजन पूछा— ॥ १७॥

'वे बोले—'सौम्य! तुम्हारे रोएँ गिर गये और दोनों पंख जल गये हैं। इसका कारण नहीं जान पड़ता। इतनेपर भी तुम्हारे शरीरमें प्राण टिके हुए हैं॥ १८॥

'मैंने पहले वायुके समान वेगशाली दो गीधोंको देखा है। वे दोनों परस्पर भाई और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। साथ ही वे गीधोंके राजा भी थे॥ १९॥

'सम्पाते! मैं तुम्हें पहचान गया। तुम उन दो भाइयोंमेंसे बड़े हो। जटायु तुम्हारा छोटा भाई था। तुम दोनों मनुष्यरूप धारण करके मेरा चरण-स्पर्श किया करते थे॥ २०॥

'यह तुम्हें कौन-सा रोग लग गया है। तुम्हारे दोनों पंख कैसे गिर गये? किसीने दण्ड तो नहीं दिया है? मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब तुम स्पष्टरूपसे कहो'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ सर्ग

सम्पातिका निशाकर मुनिको अपने पंखके जलनेका कारण बताना

'उनके इस प्रकार पूछनेपर मैंने बिना सोचे-समझे सूर्यका अनुगमनरूप जो दुष्कर एवं दारुण कार्य किया था, वह सब उन्हें बताया॥ १॥

'मैंने कहा—'भगवन्! मेरे शरीरमें घाव हो गया है तथा मेरी इन्द्रियाँ लज्जासे व्याकुल हैं, इसलिये अधिक कष्ट पानेके कारण मैं अच्छी तरह बात भी नहीं कर सकता॥ २॥

'मैं और जटायु दोनों ही गर्वसे मोहित हो रहे थे; अतः अपने पराक्रमकी थाह लगानेके लिये हम दोनों दूरतक पहुँचनेके उद्देश्यसे उड़ने लगे॥ ३॥

'कैलास पर्वतके शिखरपर मुनियोंके सामने हम दोनोंने यह शर्त बदी थी कि सूर्य जबतक अस्ताचलपर जायँ, उसके पहले ही हम दोनोंको उनके पास पहुँच जाना चाहिये॥ ४॥

'यह निश्चय करके हम साथ ही आकाशमें जा पहुँचे। वहाँसे पृथ्वीके भिन्न-भिन्न नगरमें हम रथके पहियेके बराबर दिखायी देते थे॥ ५॥

'ऊपरके लोकोंमें कहीं वाद्योंका मधुर घोष हो रहा था, कहीं आभूषणोंकी झनकारें सुनायी पड़ती थीं और कहीं लाल रंगकी साड़ी पहने बहुत-सी सुन्दरियाँ गीत गा रही थीं, जिन्हें हम दोनोंने अपनी आँखों देखा था॥ ६॥

'उससे भी ऊँचे उड़कर हम तुरंत सूर्यके मार्गपर जा पहुँचे। वहाँसे नीचे दृष्टि डालकर जब दोनोंने देखा, तब यहाँके जंगल हरी-हरी घासकी तरह दिखायी देते थे॥ ७॥

'पर्वतोंके कारण यह भूमि ऐसी जान पड़ती थी, मानो इसपर पत्थर बिछाये गये हों और नदियोंसे ढकी हुई भूमि ऐसी लगती थी, मानो उसमें सूतके धागे लपेटे गये हों॥ ८॥

'भूतलपर हिमालय, मेरु और विन्ध्य आदि बड़े-बड़े पर्वत तालाबमें खड़े हुए हाथियोंके समान प्रतीत होते थे। उस समय हम दोनों भाइयोंके शरीरसे बहुत पसीना निकलने लगा। हमें बड़ी थकावट मालूम हुई। फिर तो हमारे ऊपर भय, मोह और भयानक मूर्च्छाने अधिकार जमा लिया॥ ९-१०॥

'उस समय न दक्षिण दिशाका ज्ञान होता था, न अग्निकोण अथवा पश्चिम आदि दिशाका ही। यद्यपि यह जगत् नियमितरूपसे स्थित था, तथापि उस समय मानो युगान्तकालमें अग्निसे दग्ध हो गया हो, इस प्रकार नष्टप्राय दिखायी देता था॥ ११॥

'मेरा मन नेत्ररूपी आश्रयको पाकर उसके साथ ही हतप्राय हो गया—सूर्यके तेजसे उसकी दर्शन-शक्ति लुप्त हो गयी। तदनन्तर महान् प्रयास करके मैंने पुनः मन और नेत्रोंको सूर्यदेवमें लगाया। इस प्रकार विशेष प्रयत्न करनेपर फिर सूर्यदेवका दर्शन हुआ। वे हमें पृथ्वीके बराबर ही जान पड़ते थे॥ १२-१३॥

'जटायु मुझसे पूछे बिना ही पृथ्वीपर उतर पड़ा। उसे नीचे जाते देख मैंने भी तुरंत अपने-आपको

आकाशसे नीचेकी ओर छोड़ दिया॥ १४॥

'मैंने अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढक लिया था, इसलिये वह जल न सका। मैं ही असावधानीके कारण वहाँ जल गया। वायुके पथसे नीचे गिरते समय मुझे ऐसा संदेह हुआ कि जटायु जनस्थानमें गिरा है; परंतु मैं इस विन्ध्यपर्वतपर गिरा था। मेरे दोनों पंख जल गये थे, इसलिये यहाँ जडवत् हो गया॥ १५-१६॥

'राज्यसे भ्रष्ट हुआ, भाईसे बिछुड़ गया और पंख तथा पराक्रमसे भी हाथ धो बैठा। अब मैं सर्वथा मरनेकी ही इच्छासे इस पर्वतशिखरसे नीचे गिरूँगा'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

निशाकर मुनिका सम्पातिको सान्त्वना देते हुए उन्हें भावी श्रीरामचन्द्रजीके कार्यमें सहायता देनेके लिये जीवित रहनेका आदेश देना

'वानरो! उन मुनिश्रेष्ठसे ऐसा कहकर मैं बहुत दु:खी हो विलाप करने लगा। मेरी बात सुनकर थोड़ी देरतक ध्यान करनेके बाद महर्षि भगवान् निशाकर बोले—

'सम्पाते! चिन्ता न करो। तुम्हारे छोटे और बड़े दोनों तरहके पंख फिर नये निकल आयेंगे। आँखें भी ठीक हो जायँगी तथा खोयी हुई प्राणशक्ति, बल और पराक्रम—सब लौट आयेंगे॥ २॥

'मैंने पुराणमें आगे होनेवाले अनेक बड़े-बड़े कार्योंकी बात सुनी है। सुनकर तपस्याके द्वारा भी मैंने उन सब बातोंको प्रत्यक्ष किया और जाना है॥ ३॥

'इक्ष्वाकुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले कोई दशरथ नामसे प्रसिद्ध राजा होंगे। उनके एक महातेजस्वी पुत्र होंगे, जिनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि होगी॥ ४॥

'सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ वनमें जायँगे; इसके लिये उन्हें पिताकी ओरसे आज्ञा प्राप्त होगी॥ ५॥

'वनवास-कालमें जनस्थानमें रहते समय उनकी पत्नी सीताको राक्षसोंका राजा रावण नामक असुर हर ले जायगा। वह देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य होगा॥ ६॥

'मिथिलेशकुमारी सीता बड़ी ही यशस्विनी और सौभाग्यवती होगी। यद्यपि राक्षसराजकी ओरसे उसको तरह-तरहके भोगों और भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंका प्रलोभन दिया जायगा, तथापि वह उन्हें स्वीकार नहीं करेगी और निरन्तर अपने पतिके लिये चिन्तित होकर दु:खमें डूबी रहेगी॥ ७॥

'सीता राक्षसका अन्न नहीं ग्रहण करती—यह मालूम होनेपर देवराज इन्द्र उसके लिये अमृतके समान खीर, जो देवताओंको दुर्लभ है, निवेदन करेंगे॥ ८॥

'उस अन्नको इन्द्रका दिया हुआ जानकर जानकी उसे स्वीकार कर लेगी और सबसे पहले उसमेंसे अग्रभाग निकालकर श्रीरामचन्द्रजीके उद्देश्यसे पृथ्वीपर रखकर अर्पण करेगी॥ ९॥

'उस समय वह इस प्रकार कहेगी—'मेरे पति भगवान् श्रीराम तथा देवर लक्ष्मण यदि जीवित हों अथवा देवभावको प्राप्त हो गये हों, यह अन्न उनके लिये समर्पित है'॥ १०॥

'सम्पाते! रघुनाथजीके भेजे हुए उनके दूत वानर यहाँ सीताका पता लगाते हुए आयेंगे। उन्हें तुम श्रीरामकी महारानी सीताका पता बताना॥ ११॥

'यहाँसे किसी तरह कभी दूसरी जगह न जाना। ऐसी दशामें तुम जाओगे भी कहाँ। देश और कालकी प्रतीक्षा करो। तुम्हें फिर नये पंख प्राप्त हो जायँगे॥ १२॥

'यद्यपि मैं आज ही तुम्हें पंखयुक्त कर सकता हूँ; फिर भी इसलिये ऐसा नहीं करता कि यहाँ रहनेपर तुम संसारके लिये हितकर कार्य कर सकोगे॥ १३॥

'तुम भी उन दोनों राजकुमारोंके कार्यमें सहायता करना। वह कार्य केवल उन्हींका नहीं, समस्त ब्राह्मणों, गुरुजनों, मुनियों और देवराज इन्द्रका भी है॥ १४॥

'यद्यपि मैं भी उन दोनों भाइयोंका दर्शन करना चाहता हूँ; परंतु अधिक कालतक इन प्राणोंको धारण करनेकी इच्छा नहीं है। अत: वह समय आनेसे पहले ही मैं प्राणोंको त्याग दूँगा' ऐसा उन तत्त्वदर्शी महर्षिने मुझे कहा था'॥ १५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

सम्पातिका पंखयुक्त होकर वानरोंको उत्साहित करके उड़ जाना और वानरोंका वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करना

'बातचीतकी कलामें चतुर महर्षि निशाकरने ये तथा और भी बहुत-सी बातें कहकर मुझे समझाया और श्रीरामकार्यमें सहायक बननेके कारण मेरे सौभाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् मेरी अनुमति लेकर वे अपने आश्रमके भीतर चले गये॥ १॥

'तदनन्तर कन्दरासे धीरे-धीरे निकलकर मैं विन्ध्य पर्वतके शिखरपर चढ़ आया और तबसे तुम लोगोंके आनेकी बाट देख रहा हूँ॥ २॥

'मुनिसे बातचीतके बाद आजतक जो समय बीता है, इसमें आठ* हजारसे अधिक वर्ष निकल गये। मुनिके कथनको हृदयमें धारण करके मैं देश-कालकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ॥ ३॥

'निशाकर मुनि महाप्रस्थान करके जब स्वर्ग-लोकको चले गये, तभीसे मैं अनेक प्रकारके तर्क-वितर्कोंसे घिर गया। संतापकी आग मुझे रात-दिन जलाती रहती है॥ ४॥

'मेरे मनमें कई बार प्राण त्यागनेकी इच्छा हुई, किंतु मुनिके वचनोंको याद करके मैं उस संकल्पको टालता आया हूँ। उन्होंने मुझे प्राणोंको रखनेके लिये जो बुद्धि (सम्मति) दी थी, वह मेरे दुःखको उसी प्रकार दूर कर देती है, जैसे जलती हुई अग्निशिखा अन्धकारको॥ ५½ ॥

'दुरात्मा रावणमें कितना बल है, इसे मैं जानता हूँ। इसलिये मैंने कठोर वचनोंद्वारा अपने पुत्रको डाँटा था कि तूने मिथिलेशकुमारी सीताकी रक्षा क्यों नहीं की॥ ६½ ॥

'सीताका विलाप सुनकर और उनसे बिछुड़े हुए श्रीराम तथा लक्ष्मणका परिचय पाकर तथा राजा दशरथके प्रति मेरे स्नेहका स्मरण करके भी मेरे पुत्रने जो सीताकी रक्षा नहीं की, अपने इस बर्तावसे उसने मुझे प्रसन्न नहीं किया—मेरा प्रिय कार्य नहीं होने दिया'॥ ७½ ॥

वहाँ एकत्र होकर बैठे हुए वानरोंके साथ सम्पाति इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उन वनचारी वानरोंके समक्ष उसी समय उनके दो नये पंख निकल आये॥ ८½ ॥

अपने शरीरको नये निकले हुए लाल रंगके पंखोंसे संयुक्त हुआ देख सम्पातिको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। वे वानरोंसे इस प्रकार बोले—॥ ९½ ॥

'कपिवरो! अमिततेजस्वी राजर्षि निशाकरके प्रसादसे सूर्यकिरणोंद्वारा दग्ध हुए मेरे दोनों पंख फिर उत्पन्न हो गये॥ १०½ ॥

'युवावस्थामें मेरा जैसा पराक्रम और बल था, वैसे ही बल और पुरुषार्थका इस समय मैं अनुभव कर रहा हूँ॥ ११½ ॥

'वानरो! तुम सब प्रकारसे यत्न करो। निश्चय ही तुम्हें सीताका दर्शन प्राप्त होगा। मुझे पंखोंका प्राप्त होना तुमलोगोंकी कार्य-सिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है'॥ १२½ ॥

उन समस्त वानरोंसे ऐसा कहकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ सम्पाति अपने आकाश-गमनकी शक्तिका परिचय पानेके लिये उस पर्वतशिखरसे उड़ गये॥ १३½ ॥

उनकी वह बात सुनकर उन श्रेष्ठ वानरोंका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे पराक्रमसाध्य अभ्युदयके लिये उद्यत हो गये॥ १४॥

तदनन्तर वायुके समान पराक्रमी वे श्रेष्ठ वानर अपने भूले हुए पुरुषार्थको फिरसे पा गये और जनकनन्दिनी सीताकी खोजके लिये उत्सुक हो अभिजित् नक्षत्रसे युक्त दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये॥ १५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३॥

---

* यहाँ मूलमें साग्रशतम् (सौ वर्षसे अधिक) समय बीतनेकी बात कही गयी है; परंतु साठवें सर्गके नवें श्लोकमें आठ सहस्र वर्ष बीतनेकी चर्चा आयी है। अत: दोनोंकी एकवाक्यताके लिये यहाँ शत शब्दोंको आठ सहस्र वर्षका उपलक्षण मानना चाहिये।

चौंसठवाँ सर्ग

समुद्रकी विशालता देखकर विषादमें पड़े हुए वानरोंको आश्वासन दे अङ्गदका उनसे पृथक्-पृथक् समुद्र-लङ्घनके लिये उनकी शक्ति पूछना

गृध्रराज सम्पातिके इस प्रकार कहनेपर सिंहके समान पराक्रमी सभी वानर बड़े प्रसन्न हुए और परस्पर मिलकर उछल-उछलकर गर्जने लगे॥ १॥

सम्पातिकी बातोंसे रावणके निवासस्थान तथा उसके भावी विनाशकी सूचना मिली थी। उन्हें सुनकर हर्षसे भरे हुए वे सभी वानर सीताजीके दर्शनकी इच्छा मनमें लिये समुद्रके तटपर आये॥ २॥

उन भयंकर पराक्रमी वानरोंने उस देशमें पहुँचकर समुद्रको देखा, जो इस विराट् विश्वके सम्पूर्ण प्रतिबिम्बकी भाँति स्थित था॥ ३॥

दक्षिण समुद्रके उत्तर तटपर जाकर उन महाबली वानर वीरोंने डेरा डाला॥ ४॥

वह समुद्र कहीं तो तरङ्गहीन एवं शान्त होनेके कारण सोया हुआ-सा जान पड़ता था। अन्यत्र जहाँ थोड़ी-थोड़ी लहरें उठ रही थीं, वहाँ वह क्रीडा करता-सा प्रतीत होता था और दूसरे स्थलोंमें जहाँ उत्ताल तरङ्गें उठती थीं, वहाँ पर्वतके बराबर जलराशियोंसे आवृत दिखायी देता था॥ ५॥

वह सारा समुद्र पातालनिवासी दानवराजोंसे व्याप्त था। उस रोमाञ्चकारी महासागरको देखकर वे समस्त श्रेष्ठ वानर बड़े विषादमें पड़ गये॥ ६॥

आकाशके समान दुर्लङ्घ्य समुद्रपर दृष्टिपात करके वे सब वानर 'अब कैसे करना चाहिये' ऐसा कहते हुए एक साथ बैठकर चिन्ता करने लगे॥ ७॥

उस महासागरका दर्शन करके सारी वानर-सेनाको विषादमें डूबी हुई देख कपिश्रेष्ठ अङ्गद उन भयातुर वानरोंको आश्वासन देते हुए बोले—॥ ८॥

'वीरो! तुम्हें अपने मनको विषादमें नहीं डालना चाहिये; क्योंकि विषादमें बहुत बड़ा दोष है। जैसे क्रोधमें भरा हुआ साँप अपने पास आये हुए बालकको काट खाता है, उसी प्रकार विषाद पुरुषका नाश कर डालता है॥ ९॥

'जो पराक्रमका अवसर आनेपर विषादग्रस्त हो जाता है, उसके तेजका नाश होता है। उस तेजोहीन पुरुषका पुरुषार्थ नहीं सिद्ध होता है'॥ १०॥

उस रात्रिके बीत जानेपर बड़े-बड़े वानरोंके साथ मिलकर अङ्गदने पुनः विचार आरम्भ किया॥ ११॥

उस समय अङ्गदको घेरकर बैठी हुई वानरोंकी वह सेना इन्द्रको घेरकर स्थित हुई देवताओंकी विशाल वाहिनीके समान शोभा पाती थी॥ १२॥

वालिपुत्र अङ्गद तथा पवनकुमार हनुमान्‌जीको छोड़कर दूसरा कौन वीर उस वानरसेनाको सुस्थिर रख सकता था॥ १३॥

शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले श्रीमान् अङ्गदने उन बड़े-बूढ़े वानरोंका सम्मान करके उनसे यह अर्थयुक्त बात कही—॥ १४॥

'सज्जनो! तुमलोगोंमें कौन ऐसा महातेजस्वी वीर है जो इस समय समुद्रको लाँघ जायगा और शत्रुदमन सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ बनायेगा॥ १५॥

'कौन वीर वानर सौ योजन समुद्रको लाँघ सकेगा? और कौन इन समस्त यूथपतियोंको महान् भयसे मुक्त कर देगा?॥ १६॥

'किसके प्रसादसे हमलोग सफलमनोरथ एवं सुखी होकर यहाँसे लौटेंगे और घर-द्वार तथा स्त्री-पुत्रोंका मुँह देख सकेंगे॥ १७॥

'किसके प्रसादसे हमलोग हर्षोत्फुल्ल होकर श्रीराम, महाबली लक्ष्मण तथा वानरवीर सुग्रीवके पास चल सकेंगे॥ १८॥

'यदि तुमलोगोंमेंसे कोई वानरवीर समुद्रको लाँघ जानेमें समर्थ हो तो वह शीघ्र ही हमें यहाँ परम पवित्र अभय दान दे'॥ १९॥

अङ्गदकी यह बात सुनकर कोई कुछ नहीं बोला। वह सारी वानर-सेना वहाँ जडवत् स्थिर रही॥ २०॥

तब वानरश्रेष्ठ अङ्गदने पुनः उन सबसे कहा—'बलवानोंमें श्रेष्ठ वानरो! तुम सब लोग दृढ़तापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले हो। तुम्हारा जन्म कलङ्करहित उत्तम कुलमें हुआ है। इसके लिये तुम्हारी बारम्बार प्रशंसा हो चुकी है॥ २१॥

'श्रेष्ठ वानरो! तुमलोगोंमें कभी किसीकी भी गति कहीं नहीं रुकती। इसलिये समुद्रको लाँघनेमें जिसकी जितनी शक्ति हो, वह उसे बतावे'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

बारी-बारीसे वानर-वीरोंके द्वारा अपनी-अपनी गमनशक्तिका वर्णन, जाम्बवान् और अङ्गदकी बातचीत तथा जाम्बवान्‌का हनुमान्‌जीको प्रेरित करनेके लिये उनके पास जाना

अङ्गदकी यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर लम्बी छलाँग मारनेके सम्बन्धमें अपने-अपने उत्साहका—शक्तिका क्रमशः परिचय देने लगे॥ १॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, सुषेण और जाम्बवान्—इन सबने अपनी-अपनी शक्तिका वर्णन किया॥ २॥

इनमेंसे गजने कहा—'मैं दस योजनकी छलाँग मार सकता हूँ।' गवाक्ष बोले—'मैं बीस योजनतक चला जाऊँगा'॥ ३॥

इसके बाद वहाँ शरभ नामक वानरने उन कपिवरोंसे कहा—'वानरो! मैं तीस योजनतक एक छलाँगमें चला जाऊँगा'॥ ४॥

तदनन्तर कपिवर ऋषभने उन वानरोंसे कहा—'मैं चालीस योजनतक चला जाऊँगा, इसमें संशय नहीं है'॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी गन्धमादनने उन वानरोंसे कहा—'इसमें संदेह नहीं कि मैं पचास योजनतक एक छलाँगमें चला जाऊँगा'॥ ६॥

इसके बाद वहाँ वानर-वीर मैन्द उन वानरोंसे बोले— 'मैं साठ योजनतक एक छलाँगमें कूद जानेका उत्साह रखता हूँ'॥ ७॥

तदनन्तर महातेजस्वी द्विविद बोले—'मैं सत्तर योजनतक चला जाऊँगा, इसमें संदेह नहीं है'॥ ८॥

इसके बाद धैर्यशाली कपिश्रेष्ठ महातेजस्वी सुषेण बोले—'मैं एक छलाँगमें असी योजनतक जानेकी प्रतिज्ञा करता हूँ'॥ ९॥

इस प्रकार कहनेवाले सब वानरोंका सम्मान करके ऋक्षराज जाम्बवान्, जो सबसे बूढ़े थे, बोले—॥ १०॥

'पहले युवावस्थामें मेरे अंदर भी दूरतक छलाँग मारनेकी कुछ शक्ति थी। यद्यपि अब मैं उस अवस्थाको पार कर चुका हूँ तो भी जिस कार्यके लिये वानरराज सुग्रीव तथा भगवान् श्रीराम दृढ़ निश्चय कर चुके हैं, उसकी मेरे द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस समय मेरी जो गति है, उसे आपलोग सुनें। मैं एक छलाँगमें नब्बे योजनतक चला जाऊँगा, इसमें संशय नहीं है'॥

ऐसा कहकर जाम्बवान् उन समस्त श्रेष्ठ वानरोंसे पुनः इस प्रकार बोले—'पूर्वकालमें मेरे अंदर इतनी ही दूरतक चलनेकी शक्ति नहीं थी। पहले राजा बलिके यज्ञमें सर्वव्यापी एवं सबके कारणभूत सनातन भगवान् विष्णु जब तीन पग भूमि नापनेके लिये अपने पैर बढ़ा रहे थे, उस समय मैंने उनके उस विराट् स्वरूपकी थोड़े ही समयमें परिक्रमा कर ली थी॥ १४-१५॥

'इस समय तो मैं बूढ़ा हो गया, अतः छलाँग मारनेकी मेरी शक्ति बहुत कम हो गयी है; किंतु युवावस्थामें मेरे भीतर वह महान् बल था, जिसकी कहीं तुलना नहीं है॥ १६॥

'आजकल तो मुझमें स्वतः चलनेकी इतनी ही शक्ति है, परंतु इतनी ही गतिसे समुद्रलङ्घनरूप इस वर्तमान कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती'॥ १७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् महाकपि अङ्गदने उस समय जाम्बवान्‌का विशेष आदर करके यह उदारतापूर्ण बात कही—॥ १८॥

'मैं इस महासागरके सौ योजनकी विशाल दूरीको लाँघ जाऊँगा, किंतु उधरसे लौटनेमें मेरी ऐसी ही शक्ति रहेगी या नहीं, यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता'॥ १९॥

तब बातचीतकी कलामें चतुर जाम्बवान्‌ने कपिश्रेष्ठ अङ्गदसे कहा—'रीछों और वानरोंमें श्रेष्ठ युवराज! तुम्हारी गमनशक्तिसे हमलोग भलीभाँति परिचित हैं॥ २०॥

'भले ही, तुम एक लाख योजनतक चले जाओ, तथापि तुम सबके स्वामी हो, अतः तुम्हें भेजना हमारे लिये उचित नहीं है। तुम लाखों योजन जाने और वहाँसे लौटनेमें समर्थ हो॥ २१॥

'किंतु तात! वानरशिरोमणे! जो सबको भेजनेवाला स्वामी है, वह किसी तरह प्रेष्य (आज्ञापालक) नहीं हो सकता। ये सब लोग तुम्हारे सेवक हैं, तुम इन्हींमेंसे किसीको भेजो॥ २२॥

'तुम कलत्र (स्त्रीकी भाँति रक्षणीय) हो, (जैसे नारी पतिके हृदयकी स्वामिनी होती है, उसी प्रकार)

तुम हमारे स्वामीके पदपर प्रतिष्ठित हो। परंतप! स्वामी सेनाके लिये कलत्र (स्त्री) के समान संरक्षणीय होता है। यही लोककी मान्यता है॥ २३॥

'शत्रुदमन! तात! तुम्हीं उस कार्यके मूल हो, अत: सदा कलत्रकी भाँति तुम्हारा पालन करना उचित है॥ २४॥

'कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिये। यही कार्यके तत्त्वको जाननेवाले विद्वानोंकी नीति है; क्योंकि मूलके रहनेपर ही सभी गुण सफल सिद्ध होते हैं॥ २५॥

'अत: सत्यपराक्रमी शत्रुदमन वीर! तुम्हीं इस कार्यके साधन तथा बुद्धि और पराक्रमसे सम्पन्न हेतु हो॥ २६॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम्हीं हमारे गुरु और गुरुपुत्र हो। तुम्हारा आश्रय लेकर ही हम सब लोग कार्यसाधनमें समर्थ हो सकते हैं'॥ २७॥

जब परम बुद्धिमान् जाम्बवान् पूर्वोक्त बात कह चुके, तब महाकपि वालिकुमार अङ्गदने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २८॥

'यदि मैं नहीं जाऊँगा और दूसरा कोई भी श्रेष्ठ वानर जानेको तैयार न होगा, तब फिर हमलोगोंको निश्चितरूपसे मरणान्त उपवास ही करना चाहिये॥ २९॥

'बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवके आदेशका पालन किये बिना यदि हमलोग किष्किन्धाको लौट चलें तो वहाँ जाकर भी हमें अपने प्राणोंकी रक्षाका कोई उपाय नहीं दिखायी देता॥ ३०॥

'वे हमपर कृपा करने और अत्यन्त कुपित होकर हमें दण्ड देनेमें भी समर्थ हैं। उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जानेपर हमारा विनाश अवश्यम्भावी है॥ ३१॥

'अत: जिस उपायसे इस सीता दर्शनरूपी कार्यकी सिद्धिमें कोई रुकावट न पड़े, उसका आप ही विचार करें; क्योंकि आपको सब बातोंका अनुभव है'॥ ३२॥

उस समय अङ्गदके ऐसा कहनेपर वीर वानर-शिरोमणि जाम्बवान्ने उनसे यह उत्तम बात कही—॥ ३३॥

'वीर! तुम्हारे इस कार्यमें कोई किंचित् भी त्रुटि नहीं आने पायेगी। अब मैं ऐसे वीरको प्रेरित कर रहा हूँ, जो इस कार्यको सिद्ध कर सकेगा'॥ ३४॥

ऐसा कहकर वानरों और भालुओंके वीर यूथपति जाम्बवान्ने वानरसेनाके श्रेष्ठ वीर हनुमान्जीको ही प्रेरित किया, जो एकान्तमें जाकर मौजसे बैठे हुए थे। उन्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं थी और वे दूरतककी छलाँग मारनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ थे॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

जाम्बवान्का हनुमान्जीको उनकी उत्पत्तिकथा सुनाकर समुद्रलङ्घनके लिये उत्साहित करना

लाखों वानरोंकी सेनाको इस तरह विषादमें पड़ी देख जाम्बवान्ने हनुमान्जीसे कहा—॥ १॥

'वानरजगत्के वीर तथा सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हनुमान्! तुम एकान्तमें आकर चुपचाप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?॥ २॥

'हनूमन्! तुम तो वानरराज सुग्रीवके समान पराक्रमी हो तथा तेज और बलमें श्रीराम और लक्ष्मणके तुल्य हो॥ ३॥

'कश्यपजीके महाबली पुत्र और समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ जो विनतानन्दन गरुड़ हैं, उन्हींके समान तुम भी विख्यात शक्तिशाली एवं तीव्रगामी हो॥ ४॥

'महाबली महाबाहु पक्षिराज गरुड़को मैंने समुद्रमें कई बार देखा है, जो बड़े-बड़े सर्पोंको वहाँसे निकाल लाते हैं॥ ५॥

'उनके दोनों पंखोंमें जो बल है, वही बल, वही पराक्रम तुम्हारी इन दोनों भुजाओंमें भी है। इसीलिये तुम्हारा वेग और विक्रम भी उनसे कम नहीं है॥ ६॥

'वानरशिरोमणे! तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज और धैर्य भी समस्त प्राणियोंमें सबसे बढ़कर है। फिर तुम अपने-आपको ही समुद्र लाँघनेके लिये क्यों नहीं तैयार करते?॥ ७॥

'(वीरवर! तुम्हारे प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—) पुञ्जिकस्थला नामसे विख्यात जो अप्सरा है, वह समस्त अप्सराओंमें अग्रगण्य है। तात! एक समय शापवश वह कपियोनिमें अवतीर्ण हुई। उस समय वह वानरराज महामनस्वी कुञ्जरकी पुत्री इच्छानुसार रूप

धारण करनेवाली थी। इस भूतलपर उसके रूपकी समानता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। वह तीनों लोकोंमें विख्यात थी। उसका नाम अञ्जना था। वह वानरराज केसरीकी पत्नी हुई॥ ८-९½ ॥

'एक दिनकी बात है, रूप और यौवनसे सुशोभित होनेवाली अञ्जना मानवी स्त्रीका शरीर धारण करके वर्षाकालके मेघकी भाँति श्याम कान्तिवाले एक पर्वत-शिखरपर विचर रही थी। उसके अङ्गोंपर रेशमी साड़ी शोभा पाती थी। वह फूलोंके विचित्र आभूषणोंसे विभूषित थी॥ १०-११ ॥

'उस विशाललोचना बालाका सुन्दर वस्त्र तो पीले रंगका था, किंतु उसके किनारेका रंग लाल था। वह पर्वतके शिखरपर खड़ी थी। उसी समय वायुदेवताने उसके उस वस्त्रको धीरेसे हर लिया॥ १२ ॥

'तत्पश्चात् उन्होंने उसकी परस्पर सटी हुई गोल-गोल जाँघों, एक-दूसरेसे लगे हुए पीन उरोजों तथा मनोहर मुखको भी देखा॥ १३ ॥

'उसके नितम्ब ऊँचे और विस्तृत थे। कटिभाग बहुत ही पतला था। उसके सारे अङ्ग परम सुन्दर थे। इस प्रकार बलपूर्वक यशस्विनी अञ्जनाके अङ्गोंका अवलोकन करके पवन देवता कामसे मोहित हो गये॥

'उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें कामभावका आवेश हो गया। मन अञ्जनामें ही लग गया। उन्होंने उस अनिन्द्य सुन्दरीको अपनी दोनों विशाल भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया॥ १५ ॥

'अञ्जना उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सती नारी थी। अतः उस अवस्थामें पड़कर वह वहीं घबरा उठी और बोली—'कौन मेरे इस पातिव्रत्यका नाश करना चाहता है'?॥ १६ ॥

अञ्जनाकी बात सुनकर पवनदेवने उत्तर दिया—'सुश्रोणि! मैं तुम्हारे एकपत्नी-व्रतका नाश नहीं कर रहा हूँ। अतः तुम्हारे मनसे यह भय दूर हो जाना चाहिये॥ १७ ॥

'यशस्विनि! मैंने अव्यक्तरूपसे तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक संकल्पके द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्राप्त होगा॥ १८ ॥

'वह महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारनेमें मेरे समान होगा'॥ १९ ॥

'महाकपे! वायुदेवके ऐसा कहनेपर तुम्हारी माता प्रसन्न हो गयीं। महाबाहो! वानरश्रेष्ठ! फिर उन्होंने तुम्हें एक गुफामें जन्म दिया॥ २० ॥

'बाल्यावस्थामें एक विशाल वनके भीतर एक दिन उदित हुए सूर्यको देखकर तुमने समझा कि यह भी कोई फल है; अतः उसे लेनेके लिये तुम सहसा आकाशमें उछल पड़े॥ २१ ॥

'महाकपे! तीन सौ योजन ऊँचे जानेके बाद सूर्यके तेजसे आक्रान्त होनेपर भी तुम्हारे मनमें खेद या चिन्ता नहीं हुई॥ २२ ॥

'कपिप्रवर! अन्तरिक्षमें जाकर जब तुरंत ही तुम सूर्यके पास पहुँच गये, तब इन्द्रने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर तेजसे प्रकाशित वज्रका प्रहार किया॥ २३ ॥

'उस समय उदयगिरिके शिखरपर तुम्हारे हनु (ठोड़ी) का बायाँ भाग वज्रकी चोटसे खण्डित हो गया। तभीसे तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ गया॥ २४ ॥

'तुमपर प्रहार किया गया है, यह देखकर गन्धवाहक वायुदेवताको बड़ा क्रोध हुआ। उन प्रभञ्जनदेवने तीनों लोकोंमें प्रवाहित होना छोड़ दिया॥ २५ ॥

'इससे सम्पूर्ण देवता घबरा गये; क्योंकि वायुके अवरुद्ध हो जानेसे तीनों लोकोंमें खलबली मच गयी थी। उस समय समस्त लोकपाल कुपित हुए वायुदेवको मनाने लगे॥ २६ ॥

'सत्यपराक्रमी तात! पवनदेवके प्रसन्न होनेपर ब्रह्माजीने तुम्हारे लिये यह वर दिया कि तुम समराङ्गणमें किसी भी अस्त्र-शस्त्रके द्वारा मारे नहीं जा सकोगे॥ २७ ॥

'प्रभो! वज्रके प्रहारसे भी तुम्हें पीड़ित न देखकर सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने तुम्हारे लिये यह उत्तम वर दिया—'मृत्यु तुम्हारी इच्छाके अधीन होगी—तुम जब चाहोगे, तभी मर सकोगे, अन्यथा नहीं'॥ २८½ ॥

'इस प्रकार तुम केसरीके क्षेत्रज पुत्र हो। तुम्हारा पराक्रम शत्रुओंके लिये भयंकर है। तुम वायुदेवके औरस पुत्र हो, इसलिये तेजकी दृष्टिसे भी उन्हींके समान हो॥ २९½ ॥

'वत्स! तुम पवनके पुत्र हो, अतः छलाँग मारनेमें भी उन्हींके तुल्य हो। हमारी प्राणशक्ति अब चली गयी। इस समय तुम्हीं हमलोगोंमें दूसरे वानरराजकी भाँति चातुर्य एवं पौरुषसे सम्पन्न हो॥ ३०-३१ ॥

'तात! भगवान् वामनने त्रिलोकीको नापनेके लिये जब पैर बढ़ाया था, उस समय मैंने पर्वत, वन और काननोंसहित समूची पृथ्वीकी इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी॥ ३२॥

'समुद्र-मन्थनके समय देवताओंकी आज्ञासे हमने उन ओषधियोंका संचय किया था, जिनके द्वारा अमृतको मथकर निकालना था। उन दिनों हममें महान् बल था॥ ३३॥

'अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मेरा पराक्रम घट गया है। इस समय हमलोगोंमें तुम्हीं सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न हो॥ ३४॥

'अतः पराक्रमी वीर! तुम अपने असीम बलका विस्तार करो। छलाँग मारनेवालोंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो। यह सारी वानरसेना तुम्हारे बल-पराक्रमको देखना चाहती है॥ ३५॥

'वानरश्रेष्ठ हनुमान्! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ; क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियोंसे बढ़कर है॥ ३६॥

'हनुमन्! समस्त वानर चिन्तामें पड़े हैं। तुम क्यों इनकी उपेक्षा करते हो? महान् वेगशाली वीर! जैसे भगवान् विष्णुने त्रिलोकीको नापनेके लिये तीन पग बढ़ाये थे, उसी प्रकार तुम भी अपने पैर बढ़ाओ'॥ ३७॥

इस प्रकार वानरों और भालुओंमें श्रेष्ठ जाम्बवान्की प्रेरणा पाकर कपिवर पवनकुमार हनुमान्को अपने महान् वेगपर विश्वास हो आया। उन्होंने वानर वीरोंकी उस सेनाका हर्ष बढ़ाते हुए उस समय अपना विराट्‌रूप प्रकट किया॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका समुद्र लाँघनेके लिये उत्साह प्रकट करना, जाम्बवान्‌के द्वारा उनकी प्रशंसा तथा वेगपूर्वक छलाँग मारनेके लिये हनुमान्‌जीका महेन्द्र पर्वतपर चढ़ना

सौ योजनके समुद्रको लाँघनेके लिये वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको सहसा बढ़ते और वेगसे परिपूर्ण होते देख सब वानर तुरंत शोक छोड़कर अत्यन्त हर्षसे भर गये और महाबली हनुमान्‌जीकी स्तुति करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ १-२॥

वे उनके चारों ओर खड़े हो प्रसन्न एवं चकित होकर उन्हें इस प्रकार देखने लगे, जैसे उत्साहयुक्त नारायणावतार वामनजीको समस्त प्रजाने देखा था॥ ३॥

अपनी प्रशंसा सुनकर महाबली हनुमान्‌ने शरीरको और भी बढ़ाना आरम्भ किया। साथ ही हर्षके साथ अपनी पूँछको बारम्बार घुमाकर अपने महान् बलका स्मरण किया॥ ४॥

बड़े-बूढ़े वानरशिरोमणियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते और तेजसे परिपूर्ण होते हुए हनुमान्‌जीका रूप उस समय बड़ा ही उत्तम प्रतीत होता था॥ ५॥

जैसे पर्वतकी विस्तृत कन्दरामें सिंह अँगड़ाई लेता है, उसी प्रकार वायुदेवताके औरस पुत्रने उस समय अपने शरीरको अँगड़ाई ले-लेकर बढ़ाया॥ ६॥

जँभाई लेते समय बुद्धिमान् हनुमान्‌जीका दीप्तिमान् मुख जलते हुए भाड़ तथा धूमरहित अग्निके समान शोभा पा रहा था॥ ७॥

वे वानरोंके बीचसे उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उस अवस्थामें हनुमान्‌जीने बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ ८॥

'आकाशमें विचरनेवाले वायुदेवता बड़े बलवान् हैं। उनकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। वे अग्निदेवके सखा हैं और अपने वेगसे बड़े-बड़े पर्वत-शिखरोंको भी तोड़ डालते हैं॥ ९॥

'अत्यन्त शीघ्र वेगसे चलनेवाले उन शीघ्रगामी महात्मा वायुका मैं औरस पुत्र हूँ और छलाँग मारनेमें उन्हींके समान हूँ॥ १०॥

'कई सहस्र योजनोंतक फैले हुए मेरुगिरिकी, जो आकाशके बहुत बड़े भागको ढके हुए है और उसमें रेखा खींचता-सा जान पड़ता है, मैं बिना विश्राम लिये सहस्रों बार परिक्रमा कर सकता हूँ॥ ११॥

'अपनी भुजाओंके वेगसे समुद्रको विक्षुब्ध करके उसके जलसे मैं पर्वत, नदी और जलाशयोंसहित

सम्पूर्ण जगत्को आप्लावित कर सकता हूँ॥ १२॥

'वरुणका निवासस्थान यह महासागर मेरी जाँघों और पिंडलियोंके वेगसे विक्षुब्ध हो उठेगा और इसके भीतर रहनेवाले बड़े-बड़े ग्राह ऊपर आ जायँगे॥ १३॥

'समस्त पक्षी जिनकी सेवा करते हैं, वे सर्पभोजी विनतानन्दन गरुड़ आकाशमें उड़ते हों तो भी मैं हजारों बार उनके चारों ओर घूम सकता हूँ॥ १४॥

'श्रेष्ठ वानरो! उदयाचलसे चलकर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए सूर्यदेवको मैं अस्त होनेसे पहले ही छू सकता हूँ और वहाँसे पृथ्वीतक आकर यहाँ पैर रखे बिना ही पुन: उनके पासतक बड़े भयंकर वेगसे जा सकता हूँ॥ १५-१६॥

'आकाशचारी समस्त ग्रह-नक्षत्र आदिको लाँघकर आगे बढ़ जानेका उत्साह रखता हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्रोंको सोख लूँगा, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँगा और कूद-कूदकर पर्वतोंको चूर-चूर कर डालूँगा; क्योंकि मैं दूरतककी छलाँगें मारनेवाला वानर हूँ। महान् वेगसे महासागरको फाँदता हुआ मैं अवश्य उसके पार पहुँच जाऊँगा॥

'आज आकाशमें वेगपूर्वक जाते समय लताओं और वृक्षोंके नाना प्रकारके फूल मेरे साथ-साथ उड़ते जायँगे॥ १९॥

'बहुत-से फूल बिखरे होनेके कारण मेरा मार्ग आकाशमें अनेक नक्षत्रपुञ्जोंसे सुशोभित स्वातिमार्ग (छायापथ) के समान प्रतीत होगा। वानरो! आज समस्त प्राणी मुझे भयंकर आकाशमें सीधे जाते हुए, ऊपर उछलते हुए और नीचे उतरते हुए देखेंगे॥ २०$\frac{1}{2}$॥

'कपिवरो! तुम देखोगे, मैं महागिरि मेरुके समान विशाल शरीर धारण करके स्वर्गको ढकता और आकाशको निगलता हुआ-सा आगे बढ़ूँगा, बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालूँगा, पर्वतोंको हिला दूँगा और एकचित्त हो छलाँग मारकर आगे बढ़नेपर समुद्रको भी सुखा दूँगा॥ २१-२२॥

'विनतानन्दन गरुडमें, मुझमें अथवा वायुदेवतामें ही समुद्रको लाँघ जानेकी शक्ति है। पक्षिराज गरुड अथवा महाबली वायुदेवताके सिवा और किसी प्राणीको मैं ऐसा नहीं देखता, जो यहाँसे छलाँग मारनेपर मेरे साथ जा सके॥ २३॥

'मेघसे उत्पन्न हुई विद्युत्की भाँति मैं पलक मारते-मारते सहसा निराधार आकाशमें उड़ जाऊँगा॥ २४॥

'समुद्रको लाँघते समय मेरा वही रूप प्रकट होगा, जो तीनों पगोंको बढ़ाते समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुका हुआ था॥ २५॥

'वानरो! मैं बुद्धिसे जैसा देखता या सोचता हूँ, मेरे मनकी चेष्टा भी उसके अनुरूप ही होती है। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि मैं विदेहकुमारीका दर्शन करूँगा, अत: अब तुमलोग खुशियाँ मनाओ॥ २६॥

'मैं वेगमें वायुदेवता तथा गरुडके समान हूँ। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि इस समय मैं दस हजार योजनतक जा सकता हूँ॥ २७॥

'वज्रधारी इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्माजीके हाथसे भी मैं बलपूर्वक अमृत छीनकर सहसा यहाँ ला सकता हूँ। समूची लङ्काको भी भूमिसे उखाड़कर हाथपर उठाये चल सकता हूँ। ऐसा मेरा विश्वास है'॥ २८$\frac{1}{2}$॥

अमिततेजस्वी वानरश्रेष्ठ हनुमान्जी जब इस प्रकार गर्जना कर रहे थे, उस समय सम्पूर्ण वानर अत्यन्त हर्षमें भरकर चकितभावसे उनकी ओर देख रहे थे॥ २९$\frac{1}{2}$॥

हनुमान्जीकी बातें भाई-बन्धुवोंके शोकको नष्ट करनेवाली थीं। उन्हें सुनकर वानर-सेनापति जाम्बवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—॥ ३०$\frac{1}{2}$॥

'वीर! केसरीके सुपुत्र! वेगशाली पवनकुमार! तात! तुमने अपने बन्धुओंका महान् शोक नष्ट कर दिया॥ ३१$\frac{1}{2}$॥

'यहाँ आये हुए सभी श्रेष्ठ वानर तुम्हारे कल्याणकी कामना करते हैं। अब ये कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे एकाग्रचित्त हो तुम्हारे लिये मङ्गलकृत्य—स्वस्तिवाचन आदिका अनुष्ठान करेंगे॥ ३२$\frac{1}{2}$॥

'ऋषियोंके प्रसाद, वृद्ध वानरोंकी अनुमति तथा गुरुजनोंकी कृपासे तुम इस महासागरके पार हो जाओ॥ ३३$\frac{1}{2}$॥

'जबतक तुम लौटकर यहाँ आओगे, तबतक हम तुम्हारी प्रतीक्षामें एक पैरसे खड़े रहेंगे; क्योंकि हम सब वानरोंका जीवन तुम्हारे ही अधीन है'॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने उन वनवासी वानरोंसे कहा—'जब मैं यहाँसे छलाँग मारूँगा, उस समय संसारमें कोई भी मेरे वेगको धारण नहीं कर सकेगा॥ ३५$\frac{1}{2}$॥

'शिलाओंके समूहसे शोभा पानेवाले केवल इस महेन्द्र पर्वतके ये शिखर ही ऊँचे-ऊँचे और स्थिर हैं, जिनपर नाना प्रकारके वृक्ष फैले हुए हैं तथा गैरिक

आदि धातुओंके समुदाय शोभा दे रहे हैं। इन महेन्द्र-शिखरोंपर ही वेगपूर्वक पैर रखकर मैं यहाँसे छलाँग मारूँगा॥ ३६-३७½ ॥

'यहाँसे सौ योजनके लिये छलाँग मारते समय महेन्द्र पर्वतके ये महान् शिखर ही मेरे वेगको धारण कर सकेंगे'॥ ३८½ ॥

यों कहकर वायुके समान महापराक्रमी शत्रुमर्दन पवनकुमार हनुमान्‌जी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्रपर चढ़ गये॥ ३९ ॥

वह पर्वत नाना प्रकारके पुष्पयुक्त वृक्षोंसे भरा हुआ था, वन्य पशु वहाँकी हरी-हरी घास चर रहे थे, लताओं और फूलोंसे वह सघन जान पड़ता था और वहाँके वृक्षोंमें सदा ही फल-फूल लगे रहते थे॥ ४० ॥

महेन्द्र पर्वतके वनोंमें सिंह और बाघ भी निवास करते थे, मतवाले गजराज विचरते थे, मदमत्त पक्षियोंके समूह सदा कलरव किया करते थे तथा जलके स्रोतों और झरनोंसे वह पर्वत व्याप्त दिखायी देता था॥ ४१ ॥

बड़े-बड़े शिखरोंसे ऊँचे प्रतीत होनेवाले महेन्द्र पर्वतपर आरूढ़ हो इन्द्रतुल्य पराक्रमी महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान् वहाँ इधर-उधर टहलने लगे॥ ४२ ॥

महाकाय हनुमान्‌जीके दोनों पैरोंसे दबा हुआ वह महान् पर्वत सिंहसे आक्रान्त हुए महान् मदमत्त गजराजकी भाँति चीत्कार-सा करने लगा (वहाँ रहनेवाले प्राणियोंका शब्द ही मानो उसका आर्त चीत्कार था)॥ ४३ ॥

उसके शिलासमूह इधर-उधर बिखर गये। उससे नये-नये झरने फूट निकले। वहाँ रहनेवाले मृग और हाथी भयसे थर्रा उठे और बड़े-बड़े वृक्ष झोंके खाकर झूमने लगे॥ ४४ ॥

मधुपानके संसर्गसे उद्धत चित्तवाले अनेकानेक गन्धर्वोंके जोड़े, विद्याधरोंके समुदाय और उड़ते हुए पक्षी भी उस पर्वतके विशाल शिखरोंको छोड़कर जाने लगे। बड़े-बड़े सर्प बिलोंमें छिप गये तथा उस पर्वतके शिखरोंसे बड़ी-बड़ी शिलाएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं। इस प्रकार वह महान् पर्वत बड़ी दुरवस्थामें पड़ गया॥ ४५-४६ ॥

बिलोंसे अपने आधे शरीरको बाहर निकालकर लम्बी साँस खींचते हुए सर्पोंसे उपलक्षित होनेवाला वह महान् पर्वत उस समय अनेकानेक पताकाओंसे अलंकृत-सा प्रतीत होता था॥ ४७ ॥

भयसे घबराये हुए ऋषि-मुनि भी उस पर्वतको छोड़ने लगे। जैसे विशाल दुर्गम वनमें अपने साथियोंसे बिछुड़ा हुआ एक राही भारी विपत्तिमें फँस जाता है, यही दशा उस महान् पर्वत महेन्द्रकी हो रही थी॥ ४८ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वानरसेनाके श्रेष्ठ वीर वेगशाली महामनस्वी महानुभाव हनुमान्‌जीका मन वेगपूर्वक छलाँग मारनेकी योजनामें लगा हुआ था। उन्होंने चित्तको एकाग्र करके मन-ही-मन लङ्काका स्मरण किया॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके किष्किन्धाकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

॥ किष्किन्धाकाण्ड समाप्त ॥

लङ्कादहन

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

सुन्दरकाण्ड

पहला सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा समुद्रका लङ्घन, मैनाकके द्वारा उनका स्वागत, सुरसापर उनकी विजय तथा सिंहिकाका वध करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लंकाकी शोभा देखना

तदनन्तर शत्रुओंका संहार करनेवाले हनुमान्जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताके निवासस्थानका पता लगानेके लिये उस आकाशमार्गसे जानेका विचार किया, जिसपर चारण (देवजातिविशेष) विचरा करते हैं॥ १ ॥

कपिवर हनुमान्जी ऐसा कर्म करना चाहते थे, जो दूसरोंके लिये दुष्कर था तथा उस कार्यमें उन्हें किसी और की सहायता भी नहीं प्राप्त थी। उन्होंने मस्तक और ग्रीवा ऊँची की। उस समय वे हृष्ट-पुष्ट साँड़के समान प्रतीत होने लगे॥ २ ॥

फिर धीर स्वभाववाले वे महाबली पवनकुमार वैदूर्यमणि (नीलम) और समुद्रके जलकी भाँति हरी-हरी घासपर सुखपूर्वक विचरने लगे॥ ३ ॥

उस समय बुद्धिमान् हनुमान्जी पक्षियोंको त्रास देते, वृक्षोंको वक्ष:स्थलके आघातसे धराशायी करते तथा बहुत-से मृगों (वन-जन्तुओं) को कुचलते हुए पराक्रममें बढ़े-चढ़े सिंहके समान शोभा पा रहे थे॥ ४ ॥

उस पर्वतका जो तलप्रदेश था, वह पहाड़ोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न होनेवाली नीली, लाल, मजीठ और कमलके-से रंगवाली श्वेत तथा श्याम वर्णवाली निर्मल धातुओंसे अच्छी तरह अलंकृत था॥ ५ ॥

उसपर देवोपम यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और नाग, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे, निरन्तर परिवारसहित निवास करते थे॥ ६ ॥

बड़े-बड़े गजराजोंसे भरे हुए उस पर्वतके समतल प्रदेशमें खड़े हुए कपिवर हनुमान्जी वहाँ जलाशयमें स्थित हुए विशालकाय हाथीके समान जान पड़ते थे॥

उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और भूतों (देवयोनिविशेषों) को भी हाथ जोड़कर उस पार जानेका विचार किया॥ ८ ॥

फिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवनदेवको प्रणाम किया। तत्पश्चात् कार्यकुशल हनुमान्जी दक्षिण दिशामें जानेके लिये बढ़ने लगे (अपने शरीरको बढ़ाने लगे)॥ ९ ॥

बड़े-बड़े वानरोंने देखा, जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आने लगता है, उसी प्रकार समुद्र-लङ्घनके लिये दृढ़ निश्चय करनेवाले हनुमान्जी श्रीरामकी कार्य-सिद्धिके लिये बढ़ने लगे॥ १० ॥

समुद्रको लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको बेहद बढ़ा लिया और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणोंसे उस पर्वतको दबाया॥ ११ ॥

कपिवर हनुमान्जीके द्वारा दबाये जानेपर तुरंत ही वह पर्वत काँप उठा और दो घड़ीतक डगमगाता रहा। उसके ऊपर जो वृक्ष उगे थे, उनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंसे लदे हुए थे; किंतु उस पर्वतके हिलनेसे उनके वे सारे फूल झड़ गये॥ १२ ॥

वृक्षोंसे झड़ी हुई उस सुगन्धित पुष्पराशिके द्वारा सब ओरसे आच्छादित हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था, मानो वह फूलोंका ही बना हुआ हो॥ १३ ॥

महापराक्रमी हनुमान्जीके द्वारा दबाया जाता हुआ महेन्द्रपर्वत जलके स्रोत बहाने लगा, मानो कोई मदमत्त गजराज अपने कुम्भस्थलसे मदकी धारा बहा रहा हो॥ १४ ॥

बलवान् पवनकुमारके भारसे दबा हुआ महेन्द्रगिरि सुनहरे, रुपहले और काले रंगके जलस्रोत प्रवाहित करने लगा॥ १५ ॥

इतना ही नहीं, जैसे मध्यम ज्वालासे युक्त अग्नि लगातार धुआँ छोड़ रही हो, उसी प्रकार वह पर्वत मैनसिलसहित बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिराने लगा॥ १६ ॥

हनुमान्जीके उस पर्वत-पीडनसे पीड़ित होकर

वहाँके समस्त जीव गुफाओंमें घुसे हुए बुरी तरहसे चिल्लाने लगे॥ १७॥

इस प्रकार पर्वतको दबानेके कारण उत्पन्न हुआ वह जीव-जन्तुओंका महान् कोलाहल पृथ्वी, उपवन और सम्पूर्ण दिशाओंमें भर गया॥ १८॥

जिनमें स्वस्तिक* चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे थे, उन स्थूल फणोंसे विषकी भयानक आग उगलते हुए बड़े-बड़े सर्प उस पर्वतकी शिलाओंको अपने दाँतोंसे डँसने लगे॥ १९॥

क्रोधसे भरे हुए उन विषैले साँपोंके काटनेपर वे बड़ी- बड़ी शिलाएँ इस प्रकार जल उठीं, मानो उनमें आग लग गयी हो। उस समय उन सबके सहस्रों टुकड़े हो गये॥ २०॥

उस पर्वतपर जो बहुत-सी ओषधियाँ उगी हुई थीं, वे विषको नष्ट करनेवाली होनेपर भी उन नागोंके विषको शान्त न कर सकीं॥ २१॥

उस समय वहाँ रहनेवाले तपस्वी और विद्याधरोंने समझा कि इस पर्वतको भूतलोग तोड़ रहे हैं, इससे भयभीत होकर वे अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँसे ऊपर उठकर अन्तरिक्षमें चले गये॥ २२॥

मधुपानके स्थानमें रखे हुए सुवर्णमय आसवपात्र, बहुमूल्य बर्तन, सोनेके कलश, भाँति-भाँतिके भक्ष्य पदार्थ, चटनी, नाना प्रकारके फलोंके गूदे, बैलोंकी खालकी बनी हुई ढालें और सुवर्णजटित मूठवाली तलवारें छोड़कर कण्ठमें माला धारण किये, लाल रंगके फूल और अनुलेपन (चन्दन) लगाये, प्रफुल्ल कमलके सदृश सुन्दर एवं लाल नेत्रवाले वे मतवाले विद्याधरगण भयभीत-से होकर आकाशमें चले गये॥ २३—२५॥

उनकी स्त्रियाँ गलेमें हार, पैरोंमें नूपुर, भुजाओंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कंगन धारण किये आकाशमें अपने पतियोंके साथ मन्द-मन्द मुसकराती हुई चकित-सी खड़ी हो गयीं॥ २६॥

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाशमें निराधार खड़े होनेकी शक्ति)-का परिचय देते हुए अन्तरिक्षमें एक साथ खड़े हो गये और उस पर्वतकी ओर देखने लगे॥ २७॥

उन्होंने उस समय निर्मल आकाशमें खड़े हुए भावितात्मा (पवित्र अन्त:करणवाले) महर्षियों, चारणों और सिद्धोंकी ये बातें सुनीं—॥ २८॥

'अहा! ये पर्वतके समान विशालकाय महान् वेगशाली पवनपुत्र हनुमान्जी वरुणालय समुद्रको पार करना चाहते हैं॥ २९॥

'श्रीरामचन्द्रजी और वानरोंके कार्यकी सिद्धिके लिये दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले ये पवनकुमार समुद्रके दूसरे तटपर पहुँचना चाहते हैं, जहाँ जाना अत्यन्त कठिन है'॥ ३०॥

इस प्रकार विद्याधरोंने उन तपस्वी महात्माओंकी कही हुई ये बातें सुनकर पर्वतके ऊपर अतुलित बलशाली वानरशिरोमणि हनुमान्जीको देखा॥ ३१॥

उस समय हनुमान्जी अग्निके समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने शरीरको हिलाया और रोएँ झाड़े तथा महान् मेघके समान बड़े जोर-जोरसे गर्जना की॥ ३२॥

हनुमान्जी अब ऊपरको उछलना ही चाहते थे। उन्होंने क्रमश: गोलाकार मुड़ी तथा रोमावलियोंसे भरी हुई अपनी पूँछको उसी प्रकार आकाशमें फेंका, जैसे पक्षिराज गरुड़ सर्पको फेंकते हैं॥ ३३॥

अत्यन्त वेगशाली हनुमान्जीके पीछे आकाशमें फैली हुई उनकी कुछ-कुछ मुड़ी हुई पूँछ गरुड़के द्वारा ले जाये जाते हुए महान् सर्पके समान दिखायी देती थी॥ ३४॥

उन्होंने अपनी विशाल परिघके समान भुजाओंको पर्वतपर जमाया। फिर ऊपरके सब अंगोंको इस तरह सिकोड़ लिया कि वे कटिकी सीमामें ही आ गये; साथ ही उन्होंने दोनों पैरोंको भी समेट लिया॥ ३५॥

तत्पश्चात् तेजस्वी और पराक्रमी हनुमान्जीने अपनी दोनों भुजाओं और गर्दनको भी सिकोड़ लिया। इस समय उनमें तेज, बल और पराक्रम—सभीका आवेश हुआ॥ ३६॥

उन्होंने अपने लम्बे मार्गपर दृष्टि दौड़ानेके लिये नेत्रोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए प्राणोंको हृदयमें रोका॥ ३७॥

इस प्रकार ऊपरको छलाँग मारनेकी तैयारी करते हुए कपिश्रेष्ठ महाबली हनुमान्ने अपने पैरोंको अच्छी तरह जमाया और कानोंको सिकोड़कर उन वानरशिरोमणिने अन्य वानरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ३८ $\frac{1}{2}$ ॥

'जैसे श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ बाण वायुवेगसे

* साँपके फनोंमें दिखायी देनेवाली नील रेखाको 'स्वस्तिक' कहते हैं।

चलता है, उसी प्रकार मैं रावणद्वारा पालित लंकापुरीमें जाऊँगा॥ ३९ $\frac{1}{2}$ ॥

'यदि लंकामें जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे मैं स्वर्गलोकमें चला जाऊँगा॥ ४० $\frac{1}{2}$ ॥

'इस प्रकार परिश्रम करनेपर यदि मुझे स्वर्गमें भी सीताका दर्शन नहीं होगा तो राक्षसराज रावणको बाँधकर लाऊँगा॥ ४१ $\frac{1}{2}$ ॥

'सर्वथा कृतकृत्य होकर मैं सीताके साथ लौटूँगा अथवा रावणसहित लंकापुरीको ही उखाड़कर लाऊँगा'॥ ४२ ॥

ऐसा कहकर वेगशाली वानरप्रवर श्रीहनुमान्‌जीने विघ्न-बाधाओंका कोई विचार न करके बड़े वेगसे ऊपरकी ओर छलाँग मारी। उस समय उन वानरशिरोमणिने अपनेको साक्षात् गरुड़के समान ही समझा॥ ४३-४४ ॥

जिस समय वे कूदे, उस समय उनके वेगसे आकृष्ट हो पर्वतपर उगे हुए सब वृक्ष उखड़ गये और अपनी सारी डालियोंको समेटकर उनके साथ ही सब ओरसे वेगपूर्वक उड़ चले॥ ४५ ॥

वे हनुमान्‌जी मतवाले कोयष्टि आदि पक्षियोंसे युक्त, बहुसंख्यक पुष्पशोभित वृक्षोंको अपने महान् वेगसे ऊपरकी ओर खींचते हुए निर्मल आकाशमें अग्रसर होने लगे॥ ४६ ॥

उनकी जाँघोंके महान् वेगसे ऊपरको उठे हुए वृक्ष एक मुहूर्ततक उनके पीछे-पीछे इस प्रकार गये, जैसे दूर-देशके पथपर जानेवाले अपने भाई-बन्धुको उसके बन्धु-बान्धव पहुँचाने जाते हैं॥ ४७ ॥

हनुमान्‌जीकी जाँघोंके वेगसे उखड़े हुए साल तथा दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष उनके पीछे-पीछे उसी प्रकार चले, जैसे राजाके पीछे उसके सैनिक चलते हैं॥ ४८ ॥

जिनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंसे सुशोभित थे, उन बहुतेरे वृक्षोंसे संयुक्त हुए पर्वताकार हनुमान्‌जी अद्भुत शोभासे सम्पन्न दिखायी दिये॥ ४९ ॥

उन वृक्षोंमेंसे जो भारी थे, वे थोड़ी ही देरमें गिरकर क्षारसमुद्रमें डूब गये। ठीक उसी तरह, जैसे कितने ही पंखधारी पर्वत देवराज इन्द्रके भयसे वरुणालयमें निमग्न हो गये थे॥ ५० ॥

मेघके समान विशालकाय हनुमान्‌जी अपने साथ खींचकर आये हुए वृक्षोंके अंकुर और कोरसहित फूलोंसे आच्छादित हो जुगुनुओंकी जगमगाहटसे युक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे॥ ५१ ॥

वे वृक्ष जब हनुमान्‌जीके वेगसे मुक्त हो जाते (उनके आकर्षणसे छूट जाते), तब अपने फूल बरसाते हुए इस प्रकार समुद्रके जलमें डूब जाते थे, जैसे सुहृद्वर्गके लोग परदेश जानेवाले अपने किसी बन्धुको दूरतक पहुँचाकर लौट आते हैं॥ ५२ ॥

हनुमान्‌जीके शरीरसे उठी हुई वायुसे प्रेरित हो वृक्षोंके भाँति-भाँतिके पुष्प अत्यन्त हलके होनेके कारण जब समुद्रमें गिरते थे, तब डूबते नहीं थे। इसलिये उनकी विचित्र शोभा होती थी। उन फूलोंके कारण वह महासागर तारोंसे भरे हुए आकाशके समान सुशोभित होता था॥ ५३ ॥

अनेक रंगकी सुगन्धित पुष्पराशिसे उपलक्षित वानर-वीर हनुमान्‌जी बिजली-से सुशोभित होकर उठते हुए मेघके समान जान पड़ते थे॥ ५४ ॥

उनके वेगसे झड़े हुए फूलोंके कारण समुद्रका जल उगे हुए रमणीय तारोंसे खचित आकाशके समान दिखायी देता था॥ ५५ ॥

आकाशमें फैलायी गयी उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी दिखायी देती थीं, मानो किसी पर्वतके शिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकले हुए हों॥ ५६ ॥

उस समय महाकपि हनुमान् ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तरङ्गमालाओंसहित महासागरको पी रहे हों। वे ऐसे दिखायी देते थे, मानो आकाशको भी पी जाना चाहते हों॥ ५७ ॥

वायुके मार्गका अनुसरण करनेवाले हनुमान्‌जीके बिजलीकी-सी चमक पैदा करनेवाले दोनों नेत्र ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो पर्वतपर दो स्थानोंमें लगे हुए दावानल दहक रहे हों॥ ५८ ॥

पिंगल नेत्रवाले वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी दोनों गोल बड़ी-बड़ी और पीले रंगकी आँखें चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रही थीं॥ ५९ ॥

लाल-लाल नासिकाके कारण उनका सारा मुँह लाली लिये हुए था, अतः वह संध्याकालसे संयुक्त सूर्यमण्डलके समान सुशोभित होता था॥ ६० ॥

आकाशमें तैरते हुए पवनपुत्र हनुमान्‌की उठी हुई टेढ़ी पूँछ इन्द्रकी ऊँची ध्वजाके समान जान पड़ती थी॥ ६१ ॥

महाबुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान्‌जीकी दाढ़ें सफेद थीं और पूँछ गोलाकार मुड़ी हुई थी। इसलिये वे परिधिसे घिरे हुए सूर्यमण्डलके समान जान पड़ते थे॥

उनकी कमरके नीचेका भाग बहुत लाल था।

इससे वे महाकपि हनुमान् फटे हुए गेरूसे युक्त विशाल पर्वतके समान शोभा पाते थे॥ ६३॥

ऊपर-ऊपरसे समुद्रको पार करते हुए वानरसिंह हनुमान्की काँखसे होकर निकली हुई वायु बादलके समान गरजती थी॥ ६४॥

जैसे ऊपरकी दिशासे प्रकट हुई पुच्छयुक्त उल्का आकाशमें जाती देखी जाती है, उसी प्रकार अपनी पूँछके कारण कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी भी दिखायी देते थे॥ ६५॥

चलते हुए सूर्यके समान विशालकाय हनुमान्जी अपनी पूँछके कारण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो कोई बड़ा गजराज अपनी कमरमें बँधी हुई रस्सीसे सुशोभित हो रहा हो॥ ६६॥

हनुमान्जीका शरीर समुद्रसे ऊपर-ऊपर चल रहा था और उनकी परछाईं जलमें डूबी हुई-सी दिखायी देती थी। इस प्रकार शरीर और परछाईं दोनोंसे उपलक्षित हुए वे कपिवर हनुमान् समुद्रके जलमें पड़ी हुई उस नौकाके समान प्रतीत होते थे, जिसका ऊपरी भाग (पाल) वायुसे परिपूर्ण हो और निम्नभाग समुद्रके जलसे लगा हुआ हो॥ ६७॥

वे समुद्रके जिस-जिस भागमें जाते थे, वहाँ-वहाँ उनके अंगके वेगसे उत्ताल तरङ्गें उठने लगती थीं। अतः वह भाग उन्मत्त (विक्षुब्ध)-सा दिखायी देता था॥ ६८॥

महान् वेगशाली महाकपि हनुमान् पर्वतोंके समान ऊँची महासागरकी तरङ्गमालाओंको अपनी छातीसे चूर-चूर करते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ ६९॥

कपिश्रेठ हनुमान्के शरीरसे उठी हुई तथा मेघोंकी घटामें व्याप्त हुई प्रबल वायुने भीषण गर्जना करनेवाले समुद्रमें भारी हलचल मचा दी॥ ७०॥

वे कपिकेसरी अपने प्रचण्ड वेगसे समुद्रमें बहुत-सी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको आकर्षित करते हुए इस प्रकार उड़े जा रहे थे, मानो पृथ्वी और आकाश दोनोंको विक्षुब्ध कर रहे हैं॥ ७१॥

वे महान् वेगशाली वानरवीर उस महासमुद्रमें उठी हुई सुमेरु और मन्दराचलके समान उत्ताल तरङ्गोंकी मानो गणना करते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ ७२॥

उस समय उनके वेगसे ऊँचे उठकर मेघमण्डलके साथ आकाशमें स्थित हुआ समुद्रका जल शरत्कालके फैले हुए मेघोंके समान जान पड़ता था॥ ७३॥

जल हट जानेके कारण समुद्रके भीतर रहनेवाले मगर, नाकें, मछलियाँ और कछुए साफ-साफ दिखायी देते थे। जैसे वस्त्र खींच लेनेपर देहधारियोंके शरीर नंगे दीखने लगते हैं॥ ७४॥

समुद्रमें विचरनेवाले सर्प आकाशमें जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीको देखकर उन्हें गरुड़के ही समान समझने लगे॥ ७५॥

कपिकेसरी हनुमान्जीकी दस योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी छाया वेगके कारण अत्यन्त रमणीय जान पड़ती थी॥ ७६॥

खारे पानीके समुद्रमें पड़ी हुई पवनपुत्र हनुमान्का अनुसरण करनेवाली उनकी वह छाया श्वेत बादलोंकी पंक्तिके समान शोभा पाती थी॥ ७७॥

वे परम तेजस्वी महाकाय महाकपि हनुमान् आलम्बनहीन आकाशमें पंखधारी पर्वतके समान जान पड़ते थे॥ ७८॥

वे बलवान् कपिश्रेष्ठ जिस मार्गसे वेगपूर्वक निकल जाते थे, उस मार्गसे संयुक्त समुद्र सहसा कठौते या कड़ाहके समान हो जाता था (उनके वेगसे उठी हुई वायुके द्वारा वहाँका जल हट जानेसे वह स्थान कठौते आदिके समान गहरा-सा दिखायी पड़ता था)॥ ७९॥

पक्षी-समूहोंके उड़नेके मार्गमें पक्षिराज गरुड़की भाँति जाते हुए हनुमान् वायुके समान मेघमालाओंको अपनी ओर खींच लेते थे॥ ८०॥

हनुमान्जीके द्वारा खींचे जाते हुए वे श्वेत, अरुण, नील और मजीठके-से रंगवाले बड़े-बड़े मेघ वहाँ बड़ी शोभा पाते थे॥ ८१॥

वे बारम्बार बादलोंके समूहमें घुस जाते और बाहर निकल आते थे। इस तरह छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर होते थे॥ ८२॥

उस समय तीव्रगतिसे आगे बढ़ते हुए वानरवीर हनुमान्जीको देखकर देवता, गन्धर्व और चारण उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ८३॥

वे श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये जा रहे थे, अतः उस समय वेगसे जाते हुए वानरराज हनुमान्को सूर्यदेवने ताप नहीं पहुँचाया और वायुदेवने भी उनकी सेवा की॥ ८४॥

आकाशमार्गसे यात्रा करते हुए वानरवीर हनुमान्की ऋषि-मुनि स्तुति करने लगे तथा देवता और गन्धर्व उनकी प्रशंसाके गीत गाने लगे॥ ८५॥

उन कपिश्रेष्ठको बिना थकावटके सहसा आगे

बढ़ते देख नाग, यक्ष और नाना प्रकारके राक्षस सभी उनकी स्तुति करने लगे॥ ८६॥

जिस समय कपिकेसरी हनुमान्‌जी उछलकर समुद्र पार कर रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुकुलका सम्मान करनेकी इच्छासे समुद्रने विचार किया—॥ ८७॥

'यदि मैं वानरराज हनुमान्‌जीकी सहायता नहीं करूँगा तो बोलनेकी इच्छावाले सभी लोगोंकी दृष्टिमें मैं सर्वथा निन्दनीय हो जाऊँगा॥ ८८॥

'मुझे इक्ष्वाकुकुलके महाराज सगरने बढ़ाया था। इस समय ये हनुमान्‌जी भी इक्ष्वाकुवंशी वीर श्रीरघुनाथजीकी सहायता कर रहे हैं, अत: इन्हें इस यात्रामें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये॥ ८९॥

'मुझे ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे वानरवीर यहाँ कुछ विश्राम कर लें। मेरे आश्रयमें विश्राम कर लेनेपर मेरे शेष भागको ये सुगमतासे पार कर लेंगे'॥

यह शुभ विचार करके समुद्रने अपने जलमें छिपे हुए सुवर्णमय गिरिश्रेष्ठ मैनाकसे कहा—॥ ९१॥

'शैलप्रवर! महामना देवराज इन्द्रने तुम्हें यहाँ पातालवासी असुरसमूहोंके निकलनेके मार्गको रोकनेके लिये परिघरूपसे स्थापित किया है॥ ९२॥

'इन असुरोंका पराक्रम सर्वत्र प्रसिद्ध है। वे फिर पातालसे ऊपरको आना चाहते हैं, अत: उन्हें रोकनेके लिये तुम अप्रमेय पाताललोकके द्वारको बंद करके खड़े हो॥ ९३॥

'शैल! ऊपर-नीचे और अगल-बगलमें सब ओर बढ़नेकी तुममें शक्ति है। गिरिश्रेष्ठ! इसीलिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम ऊपरकी ओर उठो॥ ९४॥

'देखो, ये पराक्रमी कपिकेसरी हनुमान् तुम्हारे ऊपर होकर जा रहे हैं। ये बड़ा भयंकर कर्म करनेवाले हैं, इस समय श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये इन्होंने आकाशमें छलाँग मारी है॥ ९५॥

'ये इक्ष्वाकुवंशी रामके सेवक हैं, अत: मुझे इनकी सहायता करनी चाहिये। इक्ष्वाकुवंशके लोग मेरे पूजनीय हैं और तुम्हारे लिये तो वे परम पूजनीय हैं॥

'अत: तुम हमारी सहायता करो। जिससे हमारे कर्तव्य-कर्मका (हनुमान्‌जीके सत्काररूपी कार्यका) अवसर बीत न जाय। यदि कर्तव्यका पालन नहीं किया जाय तो वह सत्पुरुषोंके क्रोधको जगा देता है॥ ९७॥

'इसलिये तुम पानीसे ऊपर उठो, जिससे ये छलाँग मारनेवालोंमें श्रेष्ठ कपिवर हनुमान् तुम्हारे ऊपर कुछ कालतक ठहरें—विश्राम करें। वे हमारे पूजनीय अतिथि भी हैं॥ ९८॥

'देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सेवित तथा सुवर्णमय विशाल शिखरवाले मैनाक! तुम्हारे ऊपर विश्राम करनेके पश्चात् हनुमान्‌जी शेष मार्गको सुखपूर्वक तय कर लेंगे॥ ९९॥

'ककुत्स्थवंशी श्रीरामचन्द्रजीकी दयालुता, मिथिलेशकुमारी सीताका परदेशमें रहनेके लिये विवश होना तथा वानरराज हनुमान्‌का परिश्रम देखकर तुम्हें अवश्य ऊपर उठना चाहिये'॥ १००॥

यह सुनकर बड़े-बड़े वृक्षों और लताओंसे आवृत सुवर्णमय मैनाक पर्वत तुरंत ही क्षार समुद्रके जलसे ऊपरको उठ गया॥ १०१॥

जैसे उद्दीप्त किरणोंवाले दिवाकर (सूर्य) मेघोंके आवरणको भेदकर उदित होते हैं, उसी प्रकार उस समय महासागरके जलका भेदन करके वह पर्वत बहुत ऊँचा उठ गया॥ १०२॥

समुद्रकी आज्ञा पाकर जलमें छिपे रहनेवाले उस विशालकाय पर्वतने दो ही घड़ीमें हनुमान्‌जीको अपने शिखरोंका दर्शन कराया॥ १०३॥

उस पर्वतके वे शिखर सुवर्णमय थे। उनपर किन्नर और बड़े-बड़े नाग निवास करते थे। सूर्योदयके समान तेज:पुञ्जसे विभूषित वे शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाशमें रेखा-सी खींच रहे थे॥ १०४॥

उस पर्वतके उठे हुए सुवर्णमय शिखरोंके कारण शस्त्रके समान नील वर्णवाला आकाश सुनहरी प्रभासे उद्भासित होने लगा॥ १०५॥

उन परम कान्तिमान् और तेजस्वी सुवर्णमय शिखरोंसे वह गिरिश्रेष्ठ मैनाक सैकड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहा था॥ १०६॥

क्षार समुद्रके बीचमें अविलम्ब उठकर सामने खड़े हुए मैनाकको देखकर हनुमान्‌जीने मन-ही-मन निश्चित किया कि यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है॥ १०७॥

अत: वायु जैसे बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्‌ने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाक पर्वतके उस उच्चतर शिखरको अपनी छातीके धक्केसे नीचे गिरा दिया॥ १०८॥

इस प्रकार कपिवर हनुमान्‌जीके द्वारा नीचा देखनेपर उनके उस महान् वेगका अनुभव करके

पर्वतश्रेष्ठ मैनाक बड़ा प्रसन्न हुआ और गर्जना करने लगा॥ १०९॥

तब आकाशमें स्थित हुए उस पर्वतने आकाशगत वीर वानर हनुमान्‌जीसे प्रसन्नचित्त होकर कहा। वह मनुष्यरूप धारण करके अपने ही शिखरपर स्थित हो इस प्रकार बोला—॥ ११०½॥

'वानरशिरोमणे! आपने यह दुष्कर कर्म किया है। अब उतरकर मेरे इन शिखरोंपर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये, फिर आगेकी यात्रा कीजियेगा॥ १११½॥

'श्रीरघुनाथजीके पूर्वजोंने समुद्रकी वृद्धि की थी, इस समय आप उनका हित करनेमें लगे हैं; अतः समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है॥ ११२½॥

'किसीने उपकार किया हो तो बदलेमें उसका भी उपकार किया जाय—यह सनातन धर्म है। इस दृष्टिसे प्रत्युपकार करनेकी इच्छावाला यह सागर आपसे सम्मान पानेके योग्य है (आप इसका सत्कार ग्रहण करें, इतनेसे ही इसका सम्मान हो जायगा)॥ ११३½॥

'आपके सत्कारके लिये समुद्रने बड़े आदरसे मुझे नियुक्त किया है और कहा है—'इन कपिवर हनुमान्‌ने सौ योजन दूर जानेके लिये आकाशमें छलाँग मारी है, अतः कुछ देरतक तुम्हारे शिखरोंपर ये विश्राम कर लें, फिर शेष भागका लङ्घन करेंगे'॥ ११४-११५॥

'अतः कपिश्रेष्ठ! आप कुछ देरतक मेरे ऊपर विश्राम कर लीजिये, फिर जाइयेगा। इस स्थानपर ये बहुत-से सुगन्धित और सुस्वादु कन्द, मूल तथा फल हैं। वानरशिरोमणे! इनका आस्वादन करके थोड़ी देरतक सुस्ता लीजिये। उसके बाद आगेकी यात्रा कीजियेगा॥ ११६½॥

'कपिवर! आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है। आप महान् गुणोंका संग्रह करनेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात हैं॥ ११७॥

'कपिश्रेष्ठ पवननन्दन! जो-जो वेगशाली और छलाँग मारनेवाले वानर हैं, उन सबमें मैं आपको ही श्रेष्ठतम मानता हूँ॥ ११८॥

'धर्मकी जिज्ञासा रखनेवाले विज्ञ पुरुषके लिये एक साधारण अतिथि भी निश्चय ही पूजाके योग्य माना गया है। फिर आप-जैसे असाधारण शौर्यशाली पुरुष कितने सम्मानके योग्य हैं, इस विषयमें तो कहना ही क्या है?॥ ११९॥

'कपिश्रेष्ठ! आप देवशिरोमणि महात्मा वायुके पुत्र हैं और वेगमें भी उन्हींके समान हैं॥ १२०॥

'आप धर्मके ज्ञाता हैं। आपकी पूजा होनेपर साक्षात् वायुदेवका पूजन हो जायगा। इसलिये आप अवश्य ही मेरे पूजनीय हैं। इसमें एक और भी कारण है, उसे सुनिये॥ १२१॥

'तात! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है। उन दिनों पर्वतोंके भी पंख होते थे। वे भी गरुड़के समान वेगशाली होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें उड़ते फिरते थे॥ १२२॥

'उनके इस तरह वेगपूर्वक उड़ने और आने-जानेपर देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंको उनके गिरनेकी आशङ्कासे बड़ा भय होने लगा॥ १२३॥

'इससे सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपने वज्रसे लाखों पर्वतोंके पंख काट डाले॥ १२४॥

'उस समय कुपित हुए देवराज इन्द्र वज्र उठाये मेरी ओर भी आये, किन्तु महात्मा वायुने सहसा मुझे इस समुद्रमें गिरा दिया॥ १२५॥

'वानरश्रेष्ठ! इस क्षार समुद्रमें गिराकर आपके पिताने मेरे पंखोंकी रक्षा कर ली और मैं अपने सम्पूर्ण अंशसे सुरक्षित बच गया॥ १२६॥

'पवननन्दन! कपिश्रेष्ठ! इसीलिये मैं आपका आदर करता हूँ, आप मेरे माननीय हैं। आपके साथ मेरा यह सम्बन्ध महान् गुणोंसे युक्त है॥ १२७॥

'महामते! इस प्रकार चिरकालके बाद जो यह प्रत्युपकाररूप कार्य (आपके पिताके उपकारका बदला चुकानेका अवसर) प्राप्त हुआ है, इसमें आप प्रसन्नचित्त होकर मेरी और समुद्रकी भी प्रीतिका सम्पादन करें (हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमें संतुष्ट करें)॥ १२८॥

'वानरशिरोमणे! आप यहाँ अपनी थकान उतारिये, हमारी पूजा ग्रहण कीजिये और मेरे प्रेमको भी स्वीकार कीजिये। मैं आप-जैसे माननीय पुरुषके दर्शनसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ'॥ १२९॥

मैनाकके ऐसा कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उस उत्तम पर्वतसे कहा—'मैनाक! मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा आतिथ्य हो गया। अब आप अपने मनसे यह दुःख अथवा चिन्ता निकाल दीजिये कि इन्होंने मेरी पूजा ग्रहण नहीं की॥ १३०॥

'मेरे कार्यका समय मुझे बहुत जल्दी करनेके लिये प्रेरित कर रहा है। यह दिन भी बीता जा रहा है। मैंने वानरोंके समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं यहाँ

बीचमें कहीं नहीं ठहर सकता'॥ १३१॥

ऐसा कहकर महाबली वानरशिरोमणि हनुमान्ने हँसते हुएसे वहाँ मैनाकका अपने हाथसे स्पर्श किया और आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे॥ १३२॥

उस समय पर्वत और समुद्र दोनोंने ही बड़े आदरसे उनकी ओर देखा, उनका सत्कार किया और यथोचित आशीर्वादोंसे उनका अभिनन्दन किया॥ १३३॥

फिर पर्वत और समुद्रको छोड़कर उनसे दूर ऊपर उठकर अपने पिताके मार्गका आश्रय ले हनुमान्जी निर्मल आकाशमें चलने लगे॥ १३४॥

तत्पश्चात् और भी ऊँचे उठकर उस पर्वतको देखते हुएकपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्जी बिना किसी आधारके आगे बढ़ने लगे॥ १३५॥

हनुमान्जीका यह दूसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देखकर सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा करने लगे॥ १३६॥

वहाँ आकाशमें ठहरे हुए देवता तथा सहस्र नेत्रधारी इन्द्र उस सुन्दर मध्य भागवाले सुवर्णमय मैनाक पर्वतके उस कार्यसे बहुत प्रसन्न हुए॥ १३७॥

उस समय स्वयं बुद्धिमान् शचीपति इन्द्रने अत्यन्त संतुष्ट होकर पर्वतश्रेष्ठ सुनाभ मैनाकसे गद्गद वाणीमें कहा— ॥ १३८॥

'सुवर्णमय शैलराज मैनाक! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। सौम्य! तुम्हें अभय दान देता हूँ। तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो, जाओ॥ १३९॥

'सौ योजन समुद्रको लाँघते समय जिनके मनमें कोई भय नहीं रहा है, फिर भी जिनके लिये हमारे हृदयमें यह भय था कि पता नहीं इनका क्या होगा ? उन्हीं हनुमान्जीको विश्रामका अवसर देकर तुमने उनकी बहुत बड़ी सहायता की है॥ १४०॥

'ये वानरश्रेष्ठ हनुमान् दशरथनन्दन श्रीरामकी सहायताके लिये ही जा रहे हैं। तुमने यथाशक्ति इनका सत्कार करके मुझे पूर्ण संतोष प्रदान किया है'॥ १४१॥

देवताओंके स्वामी शतक्रतु इन्द्रको संतुष्ट देखकर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मैनाकको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ॥ १४२॥

इस प्रकार इन्द्रका दिया हुआ वर पाकर मैनाक उस समय जलमें स्थित हो गया और हनुमान्जी समुद्रके उस प्रदेशको उसी मुहूर्तमें लाँघ गये॥ १४३॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने सूर्यतुल्य तेजस्विनी नागमाता सुरसासे कहा— ॥ १४४॥

'ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान्जी समुद्रके ऊपर होकर जा रहे हैं। तुम दो घड़ीके लिये इनके मार्गमें विघ्न डाल दो॥ १४५॥

'तुम पर्वतके समान अत्यन्त भयंकर राक्षसीका रूप धारण करो। उसमें विकराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाशको स्पर्श करनेवाला विकट मुँह बनाओ॥ १४६॥

'हमलोग पुनः हनुमान्जीके बल और पराक्रमकी परीक्षा लेना चाहते हैं। या तो किसी उपायसे ये तुम्हें जीत लेंगे अथवा विषादमें पड़ जायँगे (इससे इनके बलाबलका ज्ञान हो जायगा)'॥ १४७॥

देवताओंके सत्कारपूर्वक इस प्रकार कहनेपर देवी सुरसाने समुद्रके बीचमें राक्षसीका रूप धारण किया। उसका वह रूप बड़ा ही विकट, बेडौल और सबके लिये भयावना था। वह समुद्रके पार जाते हुए हनुमान्जीको घेरकर उनसे इस प्रकार बोली— ॥ १४८-१४९॥

'कपिश्रेष्ठ! देवेश्वरोंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित कर दिया है, अतः मैं तुम्हें खाऊँगी। तुम मेरे इस मुँहमें चले आओ॥ १५०॥

'पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझे यह वर दिया था।' ऐसा कहकर वह तुरंत ही अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान्जीके सामने खड़ी हो गयी॥ १५१॥

सुरसाके ऐसा कहनेपर हनुमान्जीने प्रसन्नमुख होकर कहा—'देवि! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजीके साथ दण्डकारण्यमें आये थे॥ १५२॥

'वहाँ परहित-साधनमें लगे हुए श्रीरामका राक्षसोंके साथ वैर बँध गया। अतः रावणने उनकी यशस्विनी भार्या सीताको हर लिया॥ १५३॥

'मैं श्रीरामकी आज्ञासे उनका दूत बनकर सीताजीके पास जा रहा हूँ। तुम भी श्रीरामके राज्यमें निवास करती हो। अतः तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये॥ १५४॥

'अथवा (यदि तुम मुझे खाना ही चाहती हो तो) मैं सीताजीका दर्शन करके अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे जब मिल लूँगा, तब तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा—यह तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ'॥ १५५॥

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा बोली—'मुझे यह वर मिला है कि कोई भी मुझे लाँघकर आगे नहीं जा सकता'॥ १५६॥

फिर भी हनुमान्जीको जाते देख उनके बलको

जाननेकी इच्छा रखनेवाली नागमाता सुरसाने उनसे कहा— ॥ १५७ ॥

'वानरश्रेष्ठ! आज मेरे मुखमें प्रवेश करके ही तुम्हें आगे जाना चाहिये। पूर्वकालमें विधाताने मुझे ऐसा ही वर दिया था।' ऐसा कहकर सुरसा तुरंत अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान्जीके सामने खड़ी हो गयी॥ १५८½ ॥

सुरसाके ऐसा कहनेपर वानरशिरोमणि हनुमान्जी कुपित हो उठे और बोले—'तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको' यों कहकर जब वे मौन हुए, तब सुरसाने अपना मुख दस योजन विस्तृत बना लिया। यह देखकर कुपित हुए हनुमान्जी भी तत्काल दस योजन बड़े हो गये। उन्हें मेघके समान दस योजन विस्तृत शरीरसे युक्त हुआ देख सुरसाने भी अपने मुखको बीस योजन बड़ा बना लिया॥ १५९—१६१ ॥

तब हनुमान्जीने क्रुद्ध होकर अपने शरीरको तीस योजन अधिक बढ़ा दिया। फिर तो सुरसाने भी अपने मुँहको चालीस योजन ऊँचा कर लिया॥ १६२ ॥

यह देख वीर हनुमान् पचास योजन ऊँचे हो गये। तब सुरसाने अपना मुँह साठ योजन ऊँचा बना लिया॥

फिर तो वीर हनुमान् उसी क्षण सत्तर योजन ऊँचे हो गये। अब सुरसाने अस्सी योजन ऊँचा मुँह बना लिया॥ १६४ ॥

तदनन्तर अग्निके समान तेजस्वी हनुमान् नब्बे योजन ऊँचे हो गये। यह देख सुरसाने भी अपने मुँहका विस्तार सौ योजनका कर लिया*॥ १६५ ॥

सुरसाके फैलाये हुए उस विशाल जिह्वासे युक्त और नरकके समान अत्यन्त भयंकर मुँहको देखकर बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्ने मेघकी भाँति अपने शरीरको संकुचित कर लिया। वे उसी क्षण अँगूठेके बराबर छोटे हो गये॥ १६६-१६७ ॥

फिर वे महाबली श्रीमान् पवनकुमार सुरसाके उस मुँहमें प्रवेश करके तुरंत निकल आये और आकाशमें खड़े होकर इस प्रकार बोले— ॥ १६८ ॥

'दक्षकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुँहमें प्रवेश कर चुका। लो तुम्हारा वर भी सत्य हो गया। अब मैं उस स्थानको जाऊँगा, जहाँ विदेहकुमारी सीता विद्यमान हैं'॥ १६९ ॥

राहुके मुखसे छूटे हुए चन्द्रमाकी भाँति अपने मुखसे मुक्त हुए हनुमान्जीको देखकर सुरसा देवीने अपने असली रूपमें प्रकट होकर उन वानरवीरसे कहा— ॥ १७० ॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक जाओ। सौम्य! विदेहनन्दिनी सीताको महात्मा श्रीरामसे शीघ्र मिलाओ'॥ १७१ ॥

कपिवर हनुमान्जीका यह तीसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देख सब प्राणी वाह-वाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे॥ १७२ ॥

वे वरुणके निवासभूत अलङ्घ्य समुद्रके निकट आकर आकाशका ही आश्रय ले गरुड़के समान वेगसे आगे बढ़ने लगे॥ १७३ ॥

जो जलकी धाराओंसे सेवित, पक्षियोंसे संयुक्त, गानविद्याके आचार्य तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंके विचरणका स्थान तथा ऐरावतके आने-जानेका मार्ग है, सिंह, हाथी, बाघ, पक्षी और सर्प आदि वाहनोंसे जुते और उड़ते हुए निर्मल विमान जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जिनका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह तथा तेज अग्निके समान प्रकाशमान है तथा जो स्वर्गलोकपर विजय पा चुके हैं, ऐसे महाभाग पुण्यात्मा पुरुषोंका जो निवासस्थान है, देवताके लिये अधिक मात्रामें हविष्यका भार वहन करनेवाले अग्निदेव जिसका सदा सेवन करते हैं, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारे आभूषणकी भाँति जिसे सजाते हैं, महर्षियोंके समुदाय, गन्धर्व, नाग और यक्ष जहाँ भरे रहते हैं, जो जगत्का आश्रयस्थान, एकान्त और निर्मल है, गन्धर्वराज विश्वावसु जिसमें निवास करते हैं, देवराज इन्द्रका हाथी जहाँ चलता-फिरता है, जो चन्द्रमा और सूर्यका भी मङ्गलमय मार्ग है, इस जीव-जगत्के लिये विमल वितान (चँदोवा) है, साक्षात् परब्रह्म परमात्माने ही जिसकी सृष्टि की है, जो बहुसंख्यक वीरोंसे सेवित और विद्याधरगणोंसे आवृत है, उस वायुपथ आकाशमें पवननन्दन हनुमान्जी गरुड़के समान वेगसे चले॥ १७४—१८० ॥

वायुके समान हनुमान्जी अगरके समान काले

* १६२ से लेकर १६५ तकके चार श्लोक कुछ टीकाकारोंने प्रक्षिप्त बताये हैं, किंतु रामायणशिरोमणि नामक टीकामें इनकी व्याख्या उपलब्ध होती है। अतः यहाँ मूलमें इन्हें सम्मिलित कर लिया गया है।

तथा लाल, पीले और श्वेत बादलोंको खींचते हुए आगे बढ़ने लगे॥ १८१॥

उनके द्वारा खींचे जाते हुए वे बड़े-बड़े बादल अद्भुत शोभा पा रहे थे। वे बारम्बार मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और बाहर निकलते थे। उस अवस्थामें बादलोंमें छिपते तथा प्रकट होते हुए वर्षाकालके चन्द्रमाकी भाँति उनकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १८२½ ॥

सर्वत्र दिखायी देते हुए पवनकुमार हनुमान्‌जी पंखधारी गिरिराजके समान निराधार आकाशका आश्रय लेकर आगे बढ़ रहे थे॥ १८३½ ॥

इस तरह जाते हुए हनुमान्‌जीको इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली विशालकाया सिंहिका नामवाली राक्षसीने देखा। देखकर वह मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी—॥ १८४½ ॥

'आज दीर्घकालके बाद यह विशाल जीव मेरे वशमें आया है। इसे खा लेनेपर बहुत दिनोंके लिये मेरा पेट भर जायगा'॥ १८५½ ॥

अपने हृदयमें ऐसा सोचकर उस राक्षसीने हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ ली। छाया पकड़ी जानेपर वानरवीर हनुमान्‌ने सोचा—'अहो! सहसा किसने मुझे पकड़ लिया, इस पकड़के सामने मेरा पराक्रम पङ्गु हो गया है। जैसे प्रतिकूल हवा चलनेपर समुद्रमें जहाजकी गति अवरुद्ध हो जाती है, वैसी ही दशा आज मेरी भी हो गयी है'॥ १८६-१८७½ ॥

यही सोचते हुए कपिवर हनुमान्‌ने उस समय अगल-बगलमें, ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इतनेहीमें उन्हें समुद्रके जलके ऊपर उठा हुआ एक विशालकाय प्राणी दिखायी दिया॥ १८८½ ॥

उस विकराल मुखवाली राक्षसीको देखकर पवनकुमार हनुमान् सोचने लगे—वानरराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्‌भुत जीवकी चर्चा की थी, वह नि:संदेह यही है॥ १८९-१९०॥

तब बुद्धिमान् कपिवर हनुमान्‌जीने यह निश्चय करके कि वास्तवमें यही सिंहिका है, वर्षाकालके मेघकी भाँति अपने शरीरको बढ़ाना आरम्भ किया। इस प्रकार वे विशालकाय हो गये॥ १९१॥

उन महाकपिके शरीरको बढ़ते देख सिंहिकाने अपना मुँह पाताल और आकाशके मध्यभागके समान फैला लिया और मेघोंकी घटाके समान गर्जना करती हुई उन वानरवीरकी ओर दौड़ी॥ १९२½ ॥

हनुमान्‌जीने उसका अत्यन्त विकराल और बढ़ा हुआ मुँह देखा। उन्हें अपने शरीरके बराबर ही उसका मुँह दिखायी दिया। उस समय बुद्धिमान् महाकपि हनुमान्‌ने सिंहिकाके मर्मस्थानोंको अपना लक्ष्य बनाया॥

तदनन्तर वज्रोपम शरीरवाले महाकपि पवनकुमार अपने शरीरको संकुचित करके उसके विकराल मुखमें आ गिरे॥ १९४½ ॥

उस समय सिद्धों और चारणोंने हनुमान्‌जीको सिंहिकाके मुखमें उसी प्रकार निमग्न होते देखा, जैसे पूर्णिमाकी रातमें पूर्ण चन्द्रमा राहुके ग्रास बन गये हों॥

मुखमें प्रवेश करके उन वानरवीरने अपने तीखे नखोंसे उस राक्षसीके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर डाला। इसके पश्चात् वे मनके समान गतिसे उछलकर वेगपूर्वक बाहर निकल आये॥ १९६½ ॥

दैवके अनुग्रह, स्वाभाविक धैर्य तथा कौशलसे उस राक्षसीको मारकर वे मनस्वी वानरवीर पुन: वेगसे बढ़कर बड़े हो गये॥ १९७½ ॥

हनुमान्‌जीने प्राणोंके आश्रयभूत उसके हृदयस्थलको ही नष्ट कर दिया, अत: वह प्राणशून्य होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ी। विधाताने ही उसे मार गिरानेके लिये हनुमान्‌जीको निमित्त बनाया था॥ १९८॥

उन वानरवीरके द्वारा शीघ्र ही मारी जाकर सिंहिका जलमें गिर पड़ी। यह देख आकाशमें विचरनेवाले प्राणी उन कपिश्रेष्ठसे बोले—॥ १९९॥

'कपिवर! तुमने यह बड़ा ही भयंकर कर्म किया है, जो इस विशालकाय प्राणीको मार गिराया है। अब तुम बिना किसी विघ्न-बाधाके अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करो॥ २००॥

'वानरेन्द्र! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं होती'॥ २०१॥

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेसे उन आकाशचारी प्राणियोंने हनुमान्‌जीका बड़ा सत्कार किया। इसके बाद वे आकाशमें चढ़कर गरुड़के समान वेगसे चलने लगे॥ २०२॥

सौ योजनके अन्तमें प्राय: समुद्रके पार पहुँचकर जब उन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, तब उन्हें एक हरी-भरी वनश्रेणी दिखायी दी॥ २०३॥

आकाशमें उड़ते हुए ही शाखामृगोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीने भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित लंका नामक द्वीप देखा।

उत्तर तटकी भाँति समुद्रके दक्षिण तटपर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन दिखायी दिये॥ २०४॥

समुद्र, सागरतटवर्ती जलप्राय देश तथा वहाँ उगे हुए वृक्ष एवं सागरपत्नी सरिताओंके मुहानोंको भी उन्होंने देखा॥ २०५॥

मनको वशमें रखनेवाले बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने अपने शरीरको महान् मेघोंकी घटाके समान विशाल तथा आकाशको अवरुद्ध करता-सा देख मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—॥ २०६॥

'अहो! मेरे शरीरकी विशालता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही राक्षसोंके मनमें मेरे प्रति बड़ा कौतूहल होगा—वे मेरा भेद जाननेके लिये उत्सुक हो जायँगे।' परम बुद्धिमान् हनुमान्‌जीके मनमें यह धारणा पक्की हो गयी॥ २०७॥

मनस्वी हनुमान् अपने पर्वताकार शरीरको संकुचित करके पुनः अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो गये। ठीक उसी तरह, जैसे मनको वशमें रखनेवाला मोहरहित पुरुष अपने मूल स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है॥ २०८॥

जैसे बलिके पराक्रमसम्बन्धी अभिमानको हर लेनेवाले श्रीहरिने विराट्‌रूपसे तीन पग चलकर तीनों लोकोंको नाप लेनेके पश्चात् अपने उस स्वरूपको समेट लिया था, उसी प्रकार हनुमान्‌जी समुद्रको लाँघ जानेके बाद अपने उस विशाल रूपको संकुचित करके अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो गये॥ २०९॥

हनुमान्‌जी बड़े ही सुन्दर और नाना प्रकारके रूप धारण कर लेते थे। उन्होंने समुद्रके दूसरे तटपर, जहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव था, पहुँचकर अपने विशाल शरीरकी ओर दृष्टिपात किया। फिर अपने कर्तव्यका विचार करके छोटा-सा रूप धारण कर लिया॥ २१०॥

महान् मेघ-समूहके समान शरीरवाले महात्मा हनुमान्‌जी केवड़े, लसोड़े और नारियलके वृक्षोंसे विभूषित लम्बपर्वतके विचित्र लघु शिखरोंवाले महान् समृद्धिशाली शृङ्गपर कूद पड़े॥ २११॥

तदनन्तर समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँसे उन्होंने एक श्रेष्ठ पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंकाको देखा। देखकर अपने पहले रूपको तिरोहित करके वे वानरवीर वहाँके पशु-पक्षियोंको व्यथित करते हुए उसी पर्वतपर उतर पड़े॥ २१२॥

इस प्रकार दानवों और सर्पोंसे भरे हुए तथा बड़ी-बड़ी उत्ताल तरङ्गमालाओंसे अलंकृत महासागरको बलपूर्वक लाँघकर वे उसके तटपर उतर गये और अमरावतीके समान सुशोभित लंकापुरीकी शोभा देखने लगे॥ २१३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

लंकापुरीका वर्णन, उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार, उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन

महाबली हनुमान्‌जी अलङ्घनीय समुद्रको पार करके त्रिकूट (लम्ब) नामक पर्वतके शिखरपर स्वस्थ भावसे खड़े हो लंकापुरीकी शोभा देखने लगे॥ १॥

उस समय उनके ऊपर वहाँ वृक्षोंसे झड़े हुए फूलोंकी वर्षा होने लगी। इससे वहाँ बैठे हुए पराक्रमी हनुमान् फूलके बने हुए वानरके समान प्रतीत होने लगे॥ २॥

उत्तम पराक्रमी श्रीमान् वानरवीर हनुमान् सौ योजन समुद्र लाँघकर भी वहाँ लम्बी साँस नहीं खींच रहे थे और न ग्लानिका ही अनुभव करते थे॥ ३॥

उलटे वे यह सोचते थे, मैं सौ-सौ योजनोंके बहुत-से समुद्र लाँघ सकता हूँ; फिर इस गिने-गिनाये सौ योजन समुद्रको पार करना कौन बड़ी बात है?॥ ४॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ तथा वानरोंमें उत्तम वे वेगवान् पवनकुमार महासागरको लाँघकर शीघ्र ही लंकामें जा पहुँचे॥ ५॥

रास्तेमें हरी-हरी दूब और वृक्षोंसे भरे हुए मकरन्दपूर्ण सुगन्धित वन देखते हुए वे मध्यमार्गसे जा रहे थे॥ ६॥

तेजस्वी वानरशिरोमणि हनुमान् वृक्षोंसे आच्छादित पर्वतों और फूलोंसे भरी हुई वन-श्रेणियोंमें विचरने लगे॥ ७॥

उस पर्वतपर स्थित हो पवनपुत्र हनुमान्‌ने बहुत-से वन और उपवन देखे तथा उस पर्वतके अग्रभागमें

बसी हुई लंकाका भी अवलोकन किया॥ ८॥

उन कपिश्रेष्ठने वहाँ सरल (चीड़), कनेर, खिले हुए खजूर, प्रियाल (चिरौंजी), मुचुलिन्द (जम्बीरी नीबू), कुटज, केतक (केवड़े), सुगन्धपूर्ण प्रियङ्गु (पिप्पली), नीप (कदम्ब या अशोक), छितवन, असन, कोविदार तथा खिले हुए करवीर भी देखे। फूलोंके भारसे लदे हुए तथा मुकुलित (अधखिले) बहुत-से वृक्ष उन्हें दृष्टिगोचर हुए, जिनमें पक्षी भरे हुए थे और हवाके झोंकेसे जिनकी डालियाँ झूम रही थीं॥ ९— ११॥

हंसों और कारण्डवोंसे व्याप्त तथा कमल और उत्पलसे आच्छादित हुई बहुत-सी बावड़ियाँ, भाँति-भाँतिके रमणीय क्रीड़ास्थान तथा नाना प्रकारके जलाशय उनके दृष्टिपथमें आये॥ १२॥

उन जलाशयोंके चारों ओर सभी ऋतुओंमें फल-फूल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्ष फैले हुए थे। उन वानरशिरोमणिने वहाँ बहुत-से रमणीय उद्यान भी देखे॥ १३॥

अद्भुत शोभासे सम्पन्न हनुमान्‌जी धीरे-धीरे रावण-पालित लंकापुरीके पास पहुँचे। उसके चारों ओर खुदी हुई खाइयाँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। उनमें उत्पल और पद्म आदि कई जातियोंके कमल खिले थे। सीताको हर लानेके कारण रावणने लंकापुरीकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर रखा था। उसके चारों ओर भयंकर धनुष धारण करनेवाले राक्षस घूमते रहते थे॥ १४-१५॥

वह महापुरी सोनेकी चहारदीवारीसे घिरी हुई थी तथा पर्वतके समान ऊँचे और शरद्-ऋतुके बादलोंके समान श्वेत भवनोंसे भरी हुई थी॥ १६॥

श्वेत रंगकी ऊँची-ऊँची सड़कें उस पुरीको सब ओरसे घेरे हुए थीं। सैकड़ों अट्टालिकाएँ वहाँ शोभा पा रही थीं तथा फहराती हुई ध्वजा-पताकाएँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थीं॥ १७॥

उसके बाहरी फाटक सोनेके बने हुए थे और उनकी दीवारें लता-बेलोंके चित्रसे सुशोभित थीं। हनुमान्‌जीने उन फाटकोंसे सुशोभित लंकाको उसी प्रकार देखा, जैसे कोई देवता देवपुरीका निरीक्षण कर रहा हो॥ १८॥

तेजस्वी कपि हनुमान्‌ने सुन्दर शुभ्र सदनोंसे सुशोभित और पर्वतके शिखरपर स्थित लंकाको इस तरह देखा, मानो वह आकाशमें विचरनेवाली नगरी हो॥ १९॥

कपिवर हनुमान्‌ने विश्वकर्माद्वारा निर्मित तथा राक्षसराज रावणद्वारा सुरक्षित उस पुरीको आकाशमें तैरती-सी देखा॥ २०॥

विश्वकर्माकी बनायी हुई लंका मानो उनके मानसिक संकल्पसे रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी। चहारदीवारी और उसके भीतरकी वेदी उसकी जघनस्थली जान पड़ती थीं, समुद्रका विशाल जलराशि और वन उसके वस्त्र थे, शतघ्नी और शूल नामक अस्त्र ही उसके केश थे और बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ उसके लिये कर्णभूषण-सी प्रतीत हो रही थीं॥ २१ $\frac{१}{२}$ ॥

उस पुरीके उत्तर द्वारपर पहुँचकर वानरवीर हनुमान्‌जी चिन्तामें पड़ गये। वह द्वार कैलास पर्वतपर बसी हुई अलकापुरीके बहिर्द्वारके समान ऊँचा था और आकाशमें रेखा-सी खींचता जान पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था मानो अपने ऊँचे-ऊँचे प्रासादोंपर आकाशको उठा रखा है॥ २२-२३॥

लंकापुरी भयानक राक्षसोंसे उसी तरह भरी थी, जैसे पातालकी भोगवतीपुरी नागोंसे भरी रहती है। उसकी निर्माणकला अचिन्त्य थी। उसकी रचना सुन्दर ढंगसे की गयी थी। वह हनुमान्‌जीको स्पष्ट दिखायी देती थी। पूर्वकालमें साक्षात् कुबेर वहाँ निवास करते थे। हाथोंमें शूल और पट्टिश लिये बड़ी-बड़ी दाढोंवाले बहुत-से शूरवीर घोर राक्षस लंकापुरीकी उसी प्रकार रक्षा करते थे, जैसे विषधर सर्प अपनी पुरीकी करते हैं॥ २४-२५॥

उस नगरकी बड़ी भारी चौकसी, उसके चारों ओर समुद्रकी खाईं तथा रावण-जैसे भयंकर शत्रुको देखकर हनुमान्‌जी इस प्रकार विचारने लगे—॥ २६॥

'यदि वानर यहाँतक आ जायँ तो भी वे व्यर्थ ही सिद्ध होंगे; क्योंकि युद्धके द्वारा देवता भी लंकापर विजय नहीं पा सकते॥ २७॥

'जिससे बढ़कर विषम (संकटपूर्ण) स्थान और कोई नहीं है, उस रावणपालित इस दुर्गम लंकामें आकर महाबाहु श्रीरघुनाथजी भी क्या करेंगे?॥ २८॥

'राक्षसोंपर सामनीतिके प्रयोगके लिये तो कोई गुंजाइश ही नहीं है। इनपर दान,भेद और युद्ध (दण्ड) नीतिका प्रयोग भी सफल होता नहीं दिखायी देता॥ २९॥

'यहाँ चार ही वेगशाली वानरोंकी पहुँच हो सकती है—बालिपुत्र अंगदकी, नीलकी, मेरी और बुद्धिमान् राजा सुग्रीवकी॥ ३०॥

'अच्छा, पहले यह तो पता लगाऊँ कि विदेहकुमारी सीता जीवित हैं या नहीं। जनककिशोरीका दर्शन करनेके पश्चात् ही मैं इस विषयमें कोई विचार करूँगा'॥ ३१ ॥

तदनन्तर उस पर्वत-शिखरपर खड़े हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयके लिये सीताजीका पता लगानेके उपायपर दो घड़ीतक विचार करते रहे॥ ३२ ॥

उन्होंने सोचा—'मैं इस रूपसे राक्षसोंकी इस नगरीमें प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि बहुत-से क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं॥ ३३ ॥

'जानकीकी खोज करते समय मुझे अपनेको छिपानेके लिये यहाँके सभी महातेजस्वी, महापराक्रमी और बलवान् राक्षसोंसे आँख बचानी होगी॥ ३४ ॥

'अत: मुझे रात्रिके समय ही नगरमें प्रवेश करना चाहिये और सीताका अन्वेषणरूप यह महान् समयोचित कार्य सिद्ध करनेके लिये ऐसे रूपका आश्रय लेना चाहिये, जो आँखसे देखा न जा सके। केवल कार्यसे यह अनुमान हो कि कोई आया था'॥ ३५ ॥

देवताओं और असुरोंके लिये भी दुर्जय वैसी लंकापुरीको देखकर हनुमान्‌जी बारम्बार लम्बी साँस खींचते हुए यों विचार करने लगे—॥ ३६ ॥

'किस उपायसे काम लूँ, जिससे दुरात्मा राक्षसराज रावणकी दृष्टिसे ओझल रहकर मैं मिथिलेशनन्दिनी जनककिशोरी सीताका दर्शन प्राप्त कर सकूँ॥ ३७ ॥

'किस रीतिसे कार्य किया जाय, जिससे जगद्विख्यात श्रीरामचन्द्रजीका काम भी न बिगड़े और मैं एकान्तमें अकेली जानकीजीसे भेंट भी कर लूँ॥ ३८ ॥

'कई बार कातर अथवा अविवेकपूर्ण कार्य करनेवाले दूतके हाथमें पड़कर देश और कालके विपरीत व्यवहार होनेके कारण बने-बनाये काम भी उसी तरह बिगड़ जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है॥ ३९ ॥

'राजा और मन्त्रियोंके द्वारा निश्चित किया हुआ कर्तव्याकर्तव्यविषयक विचार भी किसी अविवेकी दूतका आश्रय लेनेसे शोभा (सफलता) नहीं पाता है। अपनेको पण्डित माननेवाले अविवेकी दूत सारा काम ही चौपट कर देते हैं॥ ४० ॥

'अच्छा तो किस उपायका अवलम्बन करनेसे स्वामीका कार्य नहीं बिगड़ेगा; मुझे घबराहट या अविवेक नहीं होगा और मेरा यह समुद्रका लाँघना भी व्यर्थ नहीं होने पायेगा॥ ४१ ॥

'यदि राक्षसोंने मुझे देख लिया तो रावणका अनर्थ चाहनेवाले उन विख्यातनामा भगवान् श्रीरामका यह कार्य सफल न हो सकेगा॥ ४२ ॥

'यहाँ दूसरे किसी रूपकी तो बात ही क्या है, राक्षसका रूप धारण करके भी राक्षसोंसे अज्ञात रहकर कहीं ठहरना असम्भव है॥ ४३ ॥

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि राक्षसोंसे छिपे रहकर वायुदेव भी इस पुरीमें विचरण नहीं कर सकते। यहाँ कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो इन भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको ज्ञात न हो॥ ४४ ॥

'यदि यहाँ मैं अपने इस रूपसे छिपकर भी रहूँगा तो मारा जाऊँगा और मेरे स्वामीके कार्यमें भी हानि पहुँचेगी॥ ४५ ॥

'अत: मैं श्रीरघुनाथजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये रातमें अपने इसी रूपसे छोटा-सा शरीर धारण करके लंकामें प्रवेश करूँगा॥ ४६ ॥

'यद्यपि रावणकी इस पुरीमें जाना बहुत ही कठिन है तथापि रातको इसके भीतर प्रवेश करके सभी घरोंमें घुसकर मैं जानकीजीकी खोज करूँगा'॥ ४७ ॥

ऐसा निश्चय करके वीर वानर हनुमान् विदेहनन्दिनीके दर्शनके लिये उत्सुक हो उस समय सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ४८ ॥

सूर्यास्त हो जानेपर रातके समय उन पवनकुमारने अपने शरीरको छोटा बना लिया। वे बिल्लीके बराबर होकर अत्यन्त अद्भुत दिखायी देने लगे॥ ४९ ॥

प्रदोषकालमें पराक्रमी हनुमान् तुरंत ही उछलकर उस रमणीय पुरीमें घुस गये। वह नगरी पृथक्-पृथक् बने हुए चौड़े और विशाल राजमार्गोंसे सुशोभित थी॥ ५० ॥

उसमें प्रासादोंकी लंबी पंक्तियाँ दूरतक फैली हुई थीं। सुनहरे रंगके खम्भों और सोनेकी जालियोंसे विभूषित वह नगरी गन्धर्वनगरके समान रमणीय प्रतीत होती थी॥ ५१ ॥

हनुमान्‌जीने उस विशाल पुरीको सतमहले, अठमहले मकानों और सुवर्णजटित स्फटिक मणिकी फर्शोंसे सुशोभित देखा। उनमें वैदूर्य (नीलम) भी जड़े गये थे, जिससे उनकी विचित्र शोभा होती थी। मोतियोंकी जालियाँ भी उन महलोंकी शोभा बढ़ाती थीं।

उन सबके कारण राक्षसोंके वे भवन बड़ी सुन्दर शोभासे सम्पन्न हो रहे थे॥ ५२-५३॥

सोनेके बने हुए विचित्र फाटक सब ओरसे सजी हुई राक्षसोंकी उस लंकाको और भी उद्दीप्त कर रहे थे॥ ५४॥

ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लंकाको देखकर महाकपि हनुमान् विषादमें पड़ गये; परंतु जानकीजीके दर्शनके लिये उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा थी, इसलिये उनका हर्ष और उत्साह भी कम नहीं हुआ॥ ५५॥

परस्पर सटे हुए श्वेतवर्णके सतमंजिले महलोंकी पंक्तियाँ लंकापुरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्णकी जालियों और वन्दनवारोंसे वहाँके घरोंको सजाया गया था। भयंकर बलशाली निशाचर उस पुरीकी अच्छी तरह रक्षा करते थे। रावणके बाहुबलसे भी वह सुरक्षित थी। उसके यशकी ख्याति सुदूरतक फैली हुई थी। ऐसी लंकापुरीमें हनुमान्‌जीने प्रवेश किया॥ ५६॥

उस समय तारागणोंके साथ उनके बीचमें विराजमान अनेक सहस्र किरणोंवाले चन्द्रदेव भी हनुमान्‌जीकी सहायता-सी करते हुए समस्त लोकोंपर अपनी चाँदनीका चँदोवा-सा तानकर उदित हो गये॥ ५७॥

वानरोंके प्रमुख वीर श्रीहनुमान्‌जीने शङ्ख-की-सी कान्ति तथा दूध और मृणालके-से वर्णवाले चन्द्रमाको आकाशमें इस प्रकार उदित एवं प्रकाशित होते देखा, मानो किसी सरोवरमें कोई हंस तैर रहा हो॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा सर्ग

लंकापुरीका अवलोकन करके हनुमान्‌जीका विस्मित होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लंकाका उन्हें रोकना और उनकी मारसे विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना

ऊँचे शिखरवाले लंब (त्रिकूट) पर्वतपर जो महान् मेघोंकी घटाके समान जान पड़ता था, बुद्धिमान् महाशक्तिशाली कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान्‌ने सत्त्व-गुणका आश्रय ले रातके समय रावणपालित लंकापुरीमें प्रवेश किया। वह नगरी सुरम्य वन और जलाशयोंसे सुशोभित थी॥ १-२॥

शरत्कालके बादलोंकी भाँति श्वेत कान्तिवाले सुन्दर भवन उसकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँ समुद्रकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द होता रहता था। सागरकी लहरोंको छूकर बहनेवाली वायु इस पुरीकी सेवा करती थी॥ ३॥

वह अलकापुरीके समान शक्तिशालिनी सेनाओंसे सुरक्षित थी। उस पुरीके सुन्दर फाटकोंपर मतवाले हाथी शोभा पाते थे। उस पुरीके अन्तर्द्वार और बहिर्द्वार दोनों ही श्वेत कान्तिसे सुशोभित थे॥ ४॥

उस नगरीकी रक्षाके लिये बड़े-बड़े सर्पोंका संचरण (आना-जाना) होता रहता है, इसलिये वह नागोंसे सुरक्षित सुन्दर भोगवतीपुरीके समान जान पड़ती थी। अमरावतीपुरीके समान वहाँ आवश्यकताके अनुसार बिजलियोंसहित मेघ छाये रहते थे। ग्रहों और नक्षत्रोंके सदृश विद्युत्-दीपोंके प्रकाशसे वह पुरी प्रकाशित थी तथा प्रचण्ड वायुकी ध्वनि वहाँ सदा होती रहती थी॥ ५$\frac{1}{2}$॥

सोनेके बने हुए विशाल परकोटेसे घिरी हुई लंकापुरी क्षुद्र घंटिकाओंकी झनकारसे युक्त पताकाओंद्वारा अलंकृत थी॥ ६$\frac{1}{2}$॥

उस पुरीके समीप पहुँचकर हर्ष और उत्साहसे भरे हुए हनुमान्‌जी सहसा उछलकर उसके परकोटेपर चढ़ गये। वहाँ सब ओरसे लंकापुरीका अवलोकन करके हनुमान्‌जीका चित्त आश्चर्यसे चकित हो उठा॥ ७$\frac{1}{2}$॥

सुवर्णके बने हुए द्वारोंसे उस नगरीकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उन सभी द्वारोंपर नीलमके चबूतरे बने हुए थे। वे सब द्वार हीरों, स्फटिकों और मोतियोंसे जड़े गये थे। मणिमयी फर्शें उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। उनके दोनों ओर तपाये सुवर्णके बने हुए हाथी शोभा पाते थे। उन द्वारोंका ऊपरी भाग चाँदीसे निर्मित होनेके कारण स्वच्छ और श्वेत था। उनकी सीढ़ियाँ नीलमकी

बनी हुई थीं। उन द्वारोंके भीतरी भाग स्फटिक मणिके बने हुए और धूलसे रहित थे। वे सभी द्वार रमणीय सभा-भवनोंसे युक्त और सुन्दर थे तथा इतने ऊँचे थे कि आकाशमें उठे हुए-से जान पड़ते थे॥ ८—१०॥

वहाँ क्रौञ्च और मयूरोंके कलरव गूँजते रहते थे, उन द्वारोंपर राजहंस नामक पक्षी भी निवास करते थे। वहाँ भाँति-भाँतिके वाद्यों और आभूषणोंकी मधुर ध्वनि होती रहती थी, जिससे लंकापुरी सब ओरसे प्रतिध्वनित हो रही थी॥ ११॥

कुबेरकी अलकाके समान शोभा पानेवाली लंकानगरी त्रिकूटके शिखरपर प्रतिष्ठित होनेके कारण आकाशमें उठी हुई-सी प्रतीत होती थी। उसे देखकर कपिवर हनुमान्‌को बड़ा हर्ष हुआ॥ १२॥

राक्षसराजकी वह सुन्दर पुरी लंका सबसे उत्तम और समृद्धिशालिनी थी। उसे देखकर पराक्रमी हनुमान् इस प्रकार सोचने लगे— ॥ १३॥

'रावणके सैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये इस पुरीकी रक्षा करते हैं, अतः दूसरा कोई बलपूर्वक इसे अपने काबूमें नहीं कर सकता॥ १४॥

'केवल कुमुद, अंगद, महाकपि सुषेण, मैन्द, द्विविद, सूर्यपुत्र सुग्रीव, वानर कुशपर्वा और वानरसेनाके प्रमुख वीर ऋक्षराज जाम्बवान्‌की तथा मेरी भी पहुँच इस पुरीके भीतर हो सकती है'॥ १५-१६॥

फिर महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणके पराक्रमका विचार करके कपिवर हनुमान्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १७॥

महाकपि हनुमान्‌ने देखा, राक्षसराज रावणकी नगरी लंका वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी युवतीके समान जान पड़ती है। रत्नमय परकोटे ही इसके वस्त्र हैं, गोष्ठ (गोशाला) तथा दूसरे-दूसरे भवन आभूषण हैं। परकोटोंपर लगे हुए यन्त्रोंके जो गृह हैं, ये ही मानो इस लंकारूपी युवतीके स्तन हैं। यह सब प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न है। प्रकाशपूर्ण द्वीपों और महान् ग्रहोंने यहाँका अन्धकार नष्ट कर दिया है॥ १८-१९॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ महाकपि पवनकुमार हनुमान् उस पुरीमें प्रवेश करने लगे। इतनेमें ही उस नगरीकी अधिष्ठात्री देवी लंकाने अपने स्वाभाविक रूपमें प्रकट होकर उन्हें देखा॥ २०॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को देखते ही रावणपालित लंका स्वयं ही उठ खड़ी हुई। उसका मुँह देखनेमें बड़ा विकट था॥ २१॥

वह उन वीर पवनकुमारके सामने खड़ी हो गयी और बड़े जोरसे गर्जना करती हुई उनसे इस प्रकार बोली— ॥ २२॥

'वनचारी वानर! तू कौन है और किस कार्यसे यहाँ आया है ? तुम्हारे प्राण जबतक बने हुए हैं, तबतक ही यहाँ आनेका जो यथार्थ रहस्य है, उसे ठीक-ठीक बता दो॥ २३॥

'वानर! रावणकी सेना सब ओरसे इस पुरीकी रक्षा करती है, अतः निश्चय ही तू इस लंकामें प्रवेश नहीं कर सकता'॥ २४॥

तब वीरवर हनुमान् अपने सामने खड़ी हुई लंकासे बोले—'क्रूर स्वभाववाली नारी! तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है, उसे मैं ठीक-ठीक बता दूँगा; किंतु पहले यह तो बता, तू है कौन? तेरी आँखें बड़ी भयंकर हैं। तू इस नगरके द्वारपर खड़ी है। क्या कारण है कि तू इस प्रकार क्रोध करके मुझे डाँट रही है'॥ २५-२६॥

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली लंका कुपित हो उन पवनकुमारसे कठोर वाणीमें बोली— ॥ २७॥

'मैं महामना राक्षसराज रावणकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाली उनकी सेविका हूँ। मुझपर आक्रमण करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। मैं इस नगरीकी रक्षा करती हूँ॥ २८॥

'मेरी अवहेलना करके इस पुरीमें प्रवेश करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है। आज मेरे हाथसे मारा जाकर तू प्राणहीन हो इस पृथ्वीपर शयन करेगा॥ २९॥

'वानर! मैं स्वयं ही लंका नगरी हूँ, अतः सब ओरसे इसकी रक्षा करती हूँ। यही कारण है कि मैंने तेरे प्रति कठोर वाणीका प्रयोग किया है'॥ ३०॥

लंकाकी यह बात सुनकर पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसे जीतनेके लिये यत्नशील हो दूसरे पर्वतके समान वहाँ खड़े हो गये॥ ३१॥

लंकाको विकराल राक्षसीके रूपमें देखकर बुद्धिमान् वानरशिरोमणि शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने उससे इस प्रकार कहा— ॥ ३२॥

'मैं अट्टालिकाओं, परकोटों और नगरद्वारोंसहित इस लंका नगरीको देखूँगा। इसी प्रयोजनसे यहाँ आया हूँ। इसे देखनेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है॥

'इस लंकाके जो वन, उपवन, कानन और मुख्य-मुख्य भवन हैं, उन्हें देखनेके लिये ही यहाँ मेरा

आगमन हुआ है'॥ ३४॥

हनुमान्‌जीका यह कथन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली लंका पुनः कठोर वाणीमें बोली—॥

'खोटी बुद्धिवाले नीच वानर! राक्षसेश्वर रावणके द्वारा मेरी रक्षा हो रही है। तू मुझे परास्त किये बिना आज इस पुरीको नहीं देख सकता'॥ ३६॥

तब उन वानरशिरोमणिने उस निशाचरीसे कहा—'भद्रे! इस पुरीको देखकर मैं फिर जैसे आया हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगा'॥ ३७॥

यह सुनकर लंकाने बड़ी भयंकर गर्जना करके वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को बड़े जोरसे एक थप्पड़ मारा॥ ३८॥

लंकाद्वारा इस प्रकार जोरसे पीटे जानेपर उन परम पराक्रमी पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ३९॥

फिर उन्होंने अपने बायें हाथकी अंगुलियोंको मोड़कर मुट्ठी बाँध ली और अत्यन्त कुपित हो उस लंकाको एक मुक्का जमा दिया॥ ४०॥

उसे स्त्री समझकर हनुमान्‌जीने स्वयं ही अधिक क्रोध नहीं किया। किंतु उस लघु प्रहारसे ही उस निशाचरीके सारे अंग व्याकुल हो गये। वह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस समय उसका मुख बड़ा विकराल दिखायी देता था॥ ४१॥

अपने ही द्वारा गिरायी गयी उस लंकाकी ओर देखकर और उसे स्त्री समझकर तेजस्वी वीर हनुमान्‌को उसपर दया आ गयी। उन्होंने उसपर बड़ी कृपा की॥

उधर अत्यन्त उद्विग्न हुई लंका उन वानरवीर हनुमान्‌से अभिमानशून्य गद्‌गदवाणीमें इस प्रकार बोली—॥ ४३॥

'महाबाहो! प्रसन्न होइये। कपिश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये। सौम्य! महाबली सत्त्वगुणशाली वीर पुरुष शास्त्रकी मर्यादापर स्थिर रहते हैं (शास्त्रमें स्त्रीको अवध्य बताया है, इसलिये आप मेरे प्राण न लीजिये)॥

'महाबली वीर वानर! मैं स्वयं लंकापुरी ही हूँ, आपने अपने पराक्रमसे मुझे परास्त कर दिया है॥ ४५॥

'वानरेश्वर! मैं आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। आप इसे सुनिये। साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीने मुझे जैसा वरदान दिया था, वह बता रही हूँ॥ ४६॥

'उन्होंने कहा था—'जब कोई वानर तुझे अपने पराक्रमसे वशमें कर ले, तब तुझे यह समझ लेना चाहिये कि अब राक्षसोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है॥ ४७॥

'सौम्य! आपका दर्शन पाकर आज मेरे सामने वही घड़ी आ गयी है। ब्रह्माजीने जिस सत्यका निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता॥ ४८॥

'अब सीताके कारण दुरात्मा राजा रावण तथा समस्त राक्षसोंके विनाशका समय आ पहुँचा है॥ ४९॥

'कपिश्रेष्ठ! अतः आप इस रावणपालित पुरीमें प्रवेश कीजिये और यहाँ जो-जो कार्य करना चाहते हों, उन सबको पूर्ण कर लीजिये॥ ५०॥

'वानरेश्वर! राक्षसराज रावणके द्वारा पालित यह सुन्दर पुरी अभिशापसे नष्टप्राय हो चुकी है। अतः इसमें प्रवेश करके आप स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक सर्वत्र सती-साध्वी जनकनन्दिनी सीताकी खोज कीजिये'॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा सर्ग

हनुमान्‌जीका लंकापुरी एवं रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली श्रेष्ठ राक्षसी लंकापुरीको अपने पराक्रमसे परास्त करके महातेजस्वी महाबली महान् सत्त्वशाली वानरशिरोमणि कपिकुञ्जर हनुमान् बिना दरवाजेके ही रातमें चहारदीवारी फाँद गये और लंकाके भीतर घुस गये॥ १-२॥

कपिराज सुग्रीवका हित करनेवाले हनुमान्‌जीने इस तरह लंकापुरीमें प्रवेश करके मानो शत्रुओंके सिरपर अपना बायाँ पैर रख दिया॥ ३॥

सत्त्वगुणसे सम्पन्न पवनपुत्र हनुमान् उस रातमें परकोटेके भीतर प्रवेश करके बिखेरे गये फूलोंसे सुशोभित राजमार्गका आश्रय ले उस रमणीय लंकापुरीकी ओर चले॥ ४½॥

जैसे आकाश श्वेत बादलोंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह रमणीय पुरी अपने श्वेत मेघसदृश गृहोंसे उत्तम शोभा पा रही थी। वे गृह अट्टहासजनित उत्कृष्ट शब्दों तथा वाद्यघोषोंसे मुखरित थे। उनमें वज्रों तथा अंकुशोंके चित्र अङ्कित थे और हीरोंके बने हुए झरोखे उनकी शोभा बढ़ाते थे॥ ५-६॥

उस समय लंका श्वेत बादलोंके समान सुन्दर एवं विचित्र राक्षस-गृहोंसे प्रकाशित हो रही थी। उन गृहोंमेंसे कोई तो कमलके आकारमें बने हुए थे। कोई[१] स्वस्तिकके चिह्न या आकारसे युक्त थे और किन्हींका निर्माण वर्धमानसंज्ञक[२] गृहोंके रूपमें हुआ था। वे सभी सब ओरसे सजाये गये थे॥ ७½ ॥

वानरराज सुग्रीवका हित करनेवाले श्रीमान् हनुमान् श्रीरघुनाथजीकी कार्यसिद्धिके लिये विचित्र पुष्पमय आभरणोंसे अलंकृत लंकामें विचरने लगे। उन्होंने उस पुरीको अच्छी तरह देखा और देखकर प्रसन्नताका अनुभव किया॥ ८½ ॥

उन कपिश्रेष्ठने जहाँ-तहाँ एक घरसे दूसरे घरपर जाते हुए विविध आकार-प्रकारके भवन देखे तथा हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवाले मन्द, मध्यम और उच्च स्वरसे विभूषित मनोहर गीत सुने॥ ९-१० ॥

उन्होंने स्वर्गीय अप्सराओंके समान सुन्दरी तथा कामवेदनासे पीड़ित कामिनियोंकी करधनी और पायजेबोंकी झनकार सुनी॥ ११ ॥

इसी तरह जहाँ-तहाँ महामनस्वी राक्षसोंके घरोंमें सीढ़ियोंपर चढ़ते समय स्त्रियोंकी काञ्ची और मंजीरकी मधुर ध्वनि तथा पुरुषोंके ताल ठोकने और गर्जनेकी भी आवाजें उन्हें सुनायी दीं॥ १२ ॥

राक्षसोंके घरोंमें बहुतोंको तो उन्होंने वहाँ मन्त्र जपते हुए सुना और कितने ही निशाचरोंको स्वाध्यायमें तत्पर देखा॥ १३ ॥

कई राक्षसोंको उन्होंने रावणकी स्तुतिके साथ गर्जना करते और निशाचरोंकी एक बड़ी भीड़को राजमार्ग रोककर खड़ी हुई देखा॥ १४ ॥

नगरके मध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी दिये। उनमें कोई योगकी दीक्षा लिये हुए, कोई जटा बढ़ाये, कोई मूड़ मुँड़ाये, कोई गोचर्म या मृगचर्म धारण किये और कोई नंग-धड़ंग थे। कोई मुट्ठीभर कुशोंको ही अस्त्र-रूपसे धारण किये हुए थे। किन्हींका अग्निकुण्ड ही आयुध था। किन्हींके हाथमें कूट या मुद्गर था। कोई डंडेको ही हथियाररूपमें लिये हुए थे॥

किन्हींके एक ही आँख थी तो किन्हींके रूप बहुरंगे थे। कितनोंके पेट और स्तन बहुत बड़े थे। कोई बड़े विकराल थे। किन्हींके मुँह टेढ़े-मेढ़े थे। कोई विकट थे तो कोई बौने॥ १७ ॥

किन्हींके पास धनुष, खड्ग, शतघ्नी और मूसलरूप आयुध थे। किन्हींके हाथोंमें उत्तम परिघ विद्यमान थे और कोई विचित्र कवचोंसे प्रकाशित हो रहे थे॥ १८ ॥

कुछ निशाचर न तो अधिक मोटे थे, न अधिक दुर्बल, न बहुत लंबे थे न अधिक छोटे, न बहुत गोरे थे न अधिक काले तथा न अधिक कुबड़े थे न विशेष बौने ही॥ १९ ॥

कोई बड़े कुरूप थे, कोई अनेक प्रकारके रूप धारण कर सकते थे, किन्हींका रूप सुन्दर था, कोई बड़े तेजस्वी थे तथा किन्हींके पास ध्वजा, पताका और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे॥ २० ॥

कोई शक्ति और वृक्षरूप आयुध धारण किये देखे जाते थे तथा किन्हींके पास पट्टिश, वज्र, गुलेल और पाश थे। महाकपि हनुमान्ने उन सबको देखा॥ २१ ॥

किन्हींके गलेमें फूलोंके हार थे और ललाट आदि अंग चन्दनसे चर्चित थे। कोई श्रेष्ठ आभूषणोंसे सजे हुए थे। कितने ही नाना प्रकारके वेशभूषासे संयुक्त थे और बहुतेरे स्वेच्छानुसार विचरनेवाले जान पड़ते थे॥ २२ ॥

कितने ही राक्षस तीखे शूल तथा वज्र लिये हुए थे। वे सब-के-सब महान् बलसे सम्पन्न थे। इनके सिवा कपिवर हनुमान्ने एक लाख रक्षक सेनाको राक्षसराज रावणकी आज्ञासे सावधान होकर नगरके

१-२ वाराहमिहिरकी संहितामें गृहोंके विभिन्न संस्थानों (आकृतियों) का वर्णन किया गया है। उन्हीं संस्थानोंके अनुसार उनके नाम दिये गये हैं। जहाँ स्वस्तिकसंस्थान और वर्धमानसंज्ञक गृहका उल्लेख हुआ है, इनके लक्षणोंको स्पष्ट करनेवाले वचनोंको यहाँ उद्धृत किया जाता है—

चतुःशालं चतुर्द्वारं सर्वतोभद्रसंज्ञितम्। पश्चिमद्वाररहितं नन्द्यावर्ताह्वयन्तु तत्॥
दक्षिणद्वाररहितं वर्धमानं धनप्रदम्। प्राग्द्वाररहितं स्वस्तिकाख्यं पुत्रधनप्रदम्॥

चार शालाओंसे युक्त गृहको, जिसके प्रत्येक दिशामें एक-एक करके चार द्वार हों, 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। जिसमें तीन ही द्वार हों, पश्चिम दिशाकी ओर द्वार न हो, उसका नाम 'नन्द्यावर्त' है। जिसमें दक्षिणके सिवा अन्य तीन दिशाओंमें द्वार हों, उसे 'वर्धमान' गृह कहते हैं। वह धन देनेवाला होता है तथा जिसमें केवल पूर्व दिशाकी ओर द्वार न हो, उस गृहका नाम 'स्वस्तिक' है। वह पुत्र और धन देनेवाला होता है।

मध्यभागकी रक्षामें संलग्न देखा। वे सारे सैनिक रावणके अन्त:पुरके अग्रभागमें स्थित थे॥ २३ $\frac{1}{2}$ ॥

रक्षक सेनाके लिये जो विशाल भवन बना था, उसका फाटक बहुमूल्य सुवर्णद्वारा निर्मित हुआ था। उस आरक्षाभवनको देखकर महाकपि हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके सुप्रसिद्ध राजमहलपर दृष्टिपात किया, जो त्रिकूट पर्वतके एक शिखरपर प्रतिष्ठित था। वह सब ओरसे श्वेत कमलोंद्वारा अलंकृत खाइयोंसे घिरा हुआ था। उसके चारों ओर बहुत ऊँचा परकोटा था, जिसने उस राजभवनको घेर रखा था। वह दिव्य भवन स्वर्गलोकके समान मनोहर था और वहाँ संगीत आदिके दिव्य शब्द गूँज रहे थे॥ २४—२६ ॥

घोड़ोंकी हिनहिनाहटकी आवाज भी वहाँ सब ओर फैली हुई थी। आभूषणोंकी रुनझुन भी कानोंमें पड़ती रहती थी। नाना प्रकारके रथ, पालकी आदि सवारी, विमान, सुन्दर हाथी, घोड़े, श्वेत बादलोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले चार दाँतोंसे युक्त सजे-सजाये मतवाले हाथी तथा मदमत्त पशु-पक्षियोंके संचरणसे उस राजमहलका द्वार बड़ा सुन्दर दिखायी देता था॥ २७-२८ ॥

सहस्रों महापराक्रमी निशाचर राक्षसराजके उस महलकी रक्षा करते थे। उस गुप्त भवनमें भी कपिवर हनुमान्‌जी जा पहुँचे॥ २९ ॥

तदनन्तर जिसके चारों ओर सुवर्ण एवं जाम्बूनदका परकोटा था, जिसका ऊपरी भाग बहुमूल्य मोती और मणियोंसे विभूषित था तथा अत्यन्त उत्तम काले अगुरु एवं चन्दनसे जिसकी अर्चना की जाती थी, रावणके उस अन्त:पुरमें हनुमान्‌जीने प्रवेश किया॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका रावणके अन्त:पुरमें घर-घरमें सीताको ढूँढ़ना और उन्हें न देखकर दु:खी होना

तत्पश्चात् बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने देखा, जिस प्रकार गोशालाके भीतर गौओंके झुंडमें मतवाला साँड़ विचरता है, उसी प्रकार पृथ्वीके ऊपर बारम्बार अपनी चाँदनीका चँदोवा तानते हुए चन्द्रदेव आकाशके मध्यभागमें तारिकाओंके बीच विचरण कर रहे हैं॥ १ ॥

वे शीतरश्मि चन्द्रमा जगत्‌के पाप-तापका नाश कर रहे हैं, महासागरमें ज्वार उठा रहे हैं, समस्त प्राणियोंको नयी दीप्ति एवं प्रकाश दे रहे हैं और आकाशमें क्रमश: ऊपरकी ओर उठ रहे हैं॥ २ ॥

भूतलपर मन्दराचलमें, संध्याके समय महासागरमें और जलके भीतर कमलोंमें जो लक्ष्मी जिस प्रकार सुशोभित होती हैं, वे ही उसी प्रकार मनोहर चन्द्रमामें शोभा पा रही थीं॥ ३ ॥

जैसे चाँदीके पिंजरेमें हंस, मन्दराचलकी कन्दरामें सिंह तथा मदमत्त हाथीकी पीठपर वीर पुरुष शोभा पाते हैं, उसी प्रकार आकाशमें चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे॥

जैसे तीखे सींगवाला बैल खड़ा हो, जैसे ऊपरको उठे शिखरवाला महान् पर्वत श्वेत (हिमालय) शोभा पाता हो और जैसे सुवर्णजटित दाँतोंसे युक्त गजराज सुशोभित होता हो, उसी प्रकार हरिणके शृङ्गरूपी चिह्नसे युक्त परिपूर्ण चन्द्रमा छबि पा रहे थे॥ ५ ॥

जिनका शीतल जल और हिमरूपी पङ्कसे संसर्गका दोष नष्ट हो गया है, अर्थात् जो इनके संसर्गसे बहुत दूर है, सूर्य-किरणोंको ग्रहण करनेके कारण जिन्होंने अपने अन्धकाररूपी पङ्कको भी नष्ट कर दिया है तथा प्रकाशरूप लक्ष्मीका आश्रयस्थान होनेके कारण जिनकी कालिमा भी निर्मल प्रतीत होती है, वे भगवान् शशलाञ्छन चन्द्रदेव आकाशमें प्रकाशित हो रहे थे॥ ६ ॥

जैसे गुफाके बाहर शिलातलपर बैठा हुआ मृगराज (सिंह) शोभा पाता है, जैसे विशाल वनमें पहुँचकर गजराज सुशोभित होता है तथा जैसे राज्य पाकर राजा अधिक शोभासे सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार निर्मल प्रकाशसे युक्त होकर चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे॥ ७ ॥

प्रकाशयुक्त चन्द्रमाके उदयसे जिसका अन्धकाररूपी दोष दूर हो गया है, जिसमें राक्षसोंके जीव-हिंसा और मांसभक्षणरूपी दोष बढ़ गये हैं तथा रमणियोंके रमण-विषयक चित्तदोष (प्रणय-कलह) निवृत्त हो गये हैं, वह पूजनीय प्रदोषकाल स्वर्गसदृश सुखका प्रकाश करने लगा॥ ८ ॥

वीणाके श्रवणसुखद शब्द झङ्कृत हो रहे थे,

सदाचारिणी स्त्रियाँ पतियोंके साथ सो रही थीं तथा अत्यन्त अद्भुत और भयंकर शील-स्वभाववाले निशाचर निशीथ कालमें विहार कर रहे थे॥ ९॥

बुद्धिमान् वानर हनुमान्ने वहाँ बहुत-से घर देखे। किन्हींमें ऐश्वर्य-मदसे मत्त निशाचर निवास करते थे, किन्हींमें मदिरापानसे मतवाले राक्षस भरे हुए थे। कितने ही घर रथ, घोड़े आदि वाहनों और भद्रासनोंसे सम्पन्न थे तथा कितने ही वीर-लक्ष्मीसे व्याप्त दिखायी देते थे। वे सभी गृह एक-दूसरेसे मिले हुए थे॥ १०॥

राक्षसलोग आपसमें एक-दूसरेपर अधिक आक्षेप करते थे। अपनी मोटी-मोटी भुजाओंको भी हिलाते और चलाते थे। मतवालोंकी-सी बहकी-बहकी बातें करते थे और मदिरासे उन्मत्त होकर परस्पर कटु वचन बोलते थे॥ ११॥

इतना ही नहीं, वे मतवाले राक्षस अपनी छाती भी पीटते थे। अपने हाथ आदि अंगोंको अपनी प्यारी पत्नियोंपर रख देते थे। सुन्दर रूपवाले चित्रोंका निर्माण करते थे और अपने सुदृढ़ धनुषोंको कानतक खींचा करते थे॥ १२॥

हनुमान्जीने यह भी देखा कि नायिकाएँ अपने अंगोंमें चन्दन आदिका अनुलेपन करती हैं। दूसरी वहीं सोती हैं। तीसरी सुन्दर रूप और मनोहर मुखवाली ललनाएँ हँसती हैं तथा अन्य वनिताएँ प्रणय-कलहसे कुपित हो लंबी साँसें खींच रही हैं॥ १३॥

चिग्घाड़ते हुए महान् गजराजों, अत्यन्त सम्मानित श्रेष्ठ सभासदों तथा लंबी साँसें छोड़नेवाले वीरोंके कारण वह लंकापुरी फुफकारते हुए सर्पोंसे युक्त सरोवरोंके समान शोभा पा रही थी॥ १४॥

हनुमान्जीने उस पुरीमें बहुत-से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलनेवाले, सम्यक् श्रद्धा रखनेवाले, अनेक प्रकारके रूप-रंगवाले और मनोहर नाम धारण करनेवाले विश्वविख्यात राक्षस देखे॥ १५॥

वे सुन्दर रूपवाले, नाना प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न, अपने गुणोंके अनुरूप व्यवहार करनेवाले और तेजस्वी थे। उन्हें देखकर हनुमान्जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुतेरे राक्षसोंको सुन्दर रूपसे सम्पन्न देखा और कोई-कोई उन्हें बड़े कुरूप दिखायी दिये॥ १६॥

तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करनेके योग्य सुन्दरी राक्षस-रमणियोंको देखा, जिनका भाव अत्यन्त विशुद्ध था। वे बड़ी प्रभावशालिनी थीं। उनका मन प्रियतममें तथा मधुपानमें आसक्त था। वे तारिकाओंकी भाँति कान्तिमती और सुन्दर स्वभाववाली थीं॥ १७॥

हनुमान्जीकी दृष्टिमें कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी आयीं, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे प्रकाशित हो रही थीं। वे बड़ी लजीली थीं और आधी रातके समय अपने प्रियतमके आलिङ्गनपाशमें इस प्रकार बँधी हुई थीं जैसे पक्षिणी पक्षीके द्वारा आलिङ्गित होती है। वे सब-के-सब आनन्दमें मग्न थीं॥ १८॥

दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ महलोंकी छतोंपर बैठी थीं। वे पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली, धर्मपरायणा, विवाहिता और कामभावनासे भावित थीं। हनुमान्जीने उन सबको अपने प्रियतमके अङ्कमें सुखपूर्वक बैठी देखा॥ १९॥

कितनी ही कामिनियाँ सुवर्ण-रेखाके समान कान्तिमती दिखायी देती थीं। उन्होंने अपनी ओढ़नी उतार दी थी। कितनी ही उत्तम वनिताएँ तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाली थीं तथा कितनी ही पतिवियोगिनी बालाएँ चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णकी दिखायी देती थीं। उनकी अंगकान्ति बड़ी ही सुन्दर थी॥ २०॥

तदनन्तर वानरोंके प्रमुख वीर हनुमान्जीने विभिन्न गृहोंमें ऐसी परम सुन्दरी रमणियोंका अवलोकन किया, जो मनोभिराम प्रियतमका संयोग पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थीं। फूलोंके हारसे विभूषित होनेके कारण उनकी रमणीयता और भी बढ़ गयी थी और वे सब-की-सब हर्षसे उत्फुल्ल दिखायी देती थीं॥ २१॥

उन्होंने चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुखोंकी पंक्तियाँ, सुन्दर पलकोंवाले तिरछे नेत्रोंकी पंक्तियाँ और चमचमाती हुई विद्युल्लेखाओंके समान आभूषणोंकी भी मनोहर पंक्तियाँ देखीं॥ २२॥

किंतु जो परमात्माके मानसिक संकल्पसे धर्ममार्गपर स्थिर रहनेवाले राजकुलमें प्रकट हुई थीं, जिनका प्रादुर्भाव परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाला है, जो परम सुन्दर रूपमें उत्पन्न हुई प्रफुल्ल लताके समान शोभा पाती थीं, उन कृशाङ्गी सीताको उन्होंने वहाँ कहीं नहीं देखा था॥ २३॥

जो सदा सनातन मार्गपर स्थित रहनेवाली, श्रीरामपर ही दृष्टि रखनेवाली, श्रीरामविषयक काम या प्रेमसे परिपूर्ण, अपने पतिके तेजस्वी मनमें बसी हुई तथा दूसरी सभी स्त्रियोंसे सदा ही श्रेष्ठ थीं; जिन्हें विरहजनित ताप सदा पीड़ा देता रहता था, जिनके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी झड़ी लगी रहती थी और कण्ठ उन

आँसुओंसे गद्‌गद रहता था, पहले संयोग-कालमें जिनका कण्ठ श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य निष्क (पदक)-से विभूषित रहा करता था, जिनकी पलकें बहुत ही सुन्दर थीं और कण्ठस्वर अत्यन्त मधुर था तथा जो वनमें नृत्य करनेवाली मयूरीके समान मनोहर लगती थीं, जो मेघ आदिसे आच्छादित होनेके कारण अव्यक्त रेखावाली चन्द्रलेखाके समान दिखायी देती थीं, धूलि-धूसर सुवर्ण-रेखा-सी प्रतीत होती थीं, बाणके आघातसे उत्पन्न हुई रेखा (चिह्न)-सी जान पड़ती थीं तथा वायुके द्वारा उड़ायी जाती हुई बादलोंकी रेखा-सी दृष्टिगोचर होती थीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी उन सीताजीको बहुत देरतक ढूँढ़नेपर भी जब हनुमान्‌जी न देख सके, तब वे तत्क्षण अत्यन्त दुःखी और शिथिल हो गये॥ २४—२७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठा सर्ग

हनुमान्‌जीका रावण तथा अन्यान्य राक्षसोंके घरोंमें सीताजीकी खोज करना

फिर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कपिवर हनुमान्‌जी बड़ी शीघ्रताके साथ लंकाके सतमहले मकानोंमें यथेच्छ विचरने लगे॥ १॥

अत्यन्त बल-वैभवसे सम्पन्न वे पवनकुमार राक्षसराज रावणके महलमें पहुँचे, जो चारों ओरसे सूर्यके समान चमचमाते हुए सुवर्णमय परकोटोंसे घिरा हुआ था॥ २॥

जैसे सिंह विशाल वनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे भयानक राक्षस रावणके उस महलकी रक्षा कर रहे थे। उस भवनका निरीक्षण करते हुए कपिकुञ्जर हनुमान्‌जी मन-ही-मन हर्षका अनुभव करने लगे॥ ३॥

वह महल चाँदीसे मढ़े हुए चित्रों, सोने जड़े हुए दरवाजों और बड़ी अद्भुत ड्योढ़ियों तथा सुन्दर द्वारोंसे युक्त था॥ ४॥

हाथीपर चढ़े हुए महावत तथा श्रमहीन शूरवीर वहाँ उपस्थित थे। जिनके वेगको कोई रोक नहीं सकता था, ऐसे रथवाहक अश्व भी वहाँ शोभा पा रहे थे॥ ५॥

सिंहों और बाघोंके चमड़ोंके बने हुए कवचोंसे वे रथ ढके हुए थे, उनमें हाथी-दाँत, सुवर्ण तथा चाँदीकी प्रतिमाएँ रखी हुई थीं। उन रथोंमें लगी हुई छोटी-छोटी घंटिकाओंकी मधुर ध्वनि वहाँ होती रहती थी; ऐसे विचित्र रथ उस रावण-भवनमें सदा आ-जा रहे थे॥

रावणका वह भवन अनेक प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त था, बहुमूल्य आसन उसकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें सब ओर बड़े-बड़े रथोंके ठहरनेके स्थान बने थे और महारथी वीरोंके लिये विशाल वासस्थान बनाये गये थे॥

दर्शनीय एवं परम सुन्दर नाना प्रकारके सहस्रों पशु और पक्षी वहाँ सब ओर भरे हुए थे॥ ८॥

सीमाकी रक्षा करनेवाले विनयशील राक्षस उस भवनकी रक्षा करते थे। वह सब ओरसे मुख्य-मुख्य सुन्दरियोंसे भरा रहता था॥ ९॥

वहाँकी रत्नस्वरूपा युवती रमणियाँ सदा प्रसन्न रहा करती थीं। सुन्दर आभूषणोंकी झनकारोंसे झंकृत राक्षसराजका वह महल समुद्रके कल-कलनादकी भाँति मुखरित रहता था॥ १०॥

वह भवन राजोचित सामग्रीसे पूर्ण था, श्रेष्ठ एवं सुन्दर चन्दनोंसे चर्चित था तथा सिंहोंसे भरे हुए विशाल वनकी भाँति प्रधान-प्रधान पुरुषोंसे परिपूर्ण था॥ ११॥

वहाँ भेरी और मृदङ्गकी ध्वनि सब ओर फैली हुई थी। वहाँ शङ्खकी ध्वनि गूँज रही थी। उसकी नित्य पूजा एवं सजावट होती थी। पर्वोंके दिन वहाँ होम किया जाता था। राक्षसलोग सदा ही उस राजभवनकी पूजा करते थे॥ १२॥

वह समुद्रके समान गम्भीर और उसीके समान कोलाहलपूर्ण था। महामना रावणका वह विशाल भवन महान् रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत था॥ १३॥

उसमें हाथी-घोड़े और रथ भरे हुए थे तथा वह महान् रत्नोंसे व्याप्त होनेके कारण अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा था। महाकपि हनुमान्‌ने उसे देखा॥ १४॥

देखकर कपिवर हनुमान्‌ने उस भवनको लंकाका आभूषण ही माना। तदनन्तर वे उस रावण-भवनके आस-पास ही विचरने लगे॥ १५॥

इस प्रकार वे एक घरसे दूसरे घरमें जाकर राक्षसोंके बगीचोंके सभी स्थानोंको देखते हुए बिना किसी भयसे अट्टालिकाओंपर विचरण करने लगे॥ १६॥

महान् वेगशाली और पराक्रमी वीर हनुमान् वहाँसे कूदकर प्रहस्तके घरमें उतर गये। फिर वहाँसे उछले और महापार्श्वके महलमें पहुँच गये॥ १७॥

तदनन्तर वे महाकपि हनुमान् मेघके समान प्रतीत होनेवाले कुम्भकर्णके भवनमें और वहाँसे विभीषणके महलमें कूद गये॥ १८॥

इसी तरह क्रमशः ये महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युन्मालिके घरमें गये॥ १९॥

इसके बाद महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्ने फिर छलाँग मारी और वे वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारणके घरोंमें जा पहुँचे॥ २०॥

इसके बाद वे वानर-यूथपति कपिश्रेष्ठ इन्द्रजित्के घरमें गये और वहाँसे जम्बुमालि तथा सुमालिके घरमें पहुँच गये॥ २१॥

तदनन्तर वे महाकपि उछलते-कूदते हुए रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंमें जा पहुँचे॥ २२॥

फिर क्रमशः वे कपिवर पवनकुमार धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, द्रंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और शोणिताक्ष आदिके महलोंमें गये। इस प्रकार क्रमशः कूदते-फाँदते हुए महा यशस्वी पवनपुत्र हनुमान् उन-उन बहुमूल्य भवनोंमें पधारे। वहाँ उन महाकपिने उन समृद्धिशाली राक्षसोंकी समृद्धि देखी॥ २३—२७॥

तत्पश्चात् बल-वैभवसे सम्पन्न हनुमान् उन सब भवनोंको लाँघकर पुनः राक्षसराज रावणके महलपर आ गये॥ २८॥

वहाँ विचरते हुए उन वानरशिरोमणि कपिश्रेष्ठने रावणके निकट सोनेवाली (उसके पलंगकी रक्षा करनेवाली) राक्षसियोंको देखा, जिनकी आँखें बड़ी विकराल थीं॥ २९॥

साथ ही, उन्होंने उस राक्षसराजके भवनमें राक्षसियोंके बहुत-से समुदाय देखे, जिनके हाथोंमें शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे॥ ३०॥

उनके सिवा, वहाँ बहुत-से विशालकाय राक्षस भी दिखायी दिये, जो नाना प्रकारके हथियारोंसे लैस थे। इतना ही नहीं, वहाँ लाल और सफेद रंगके बहुत-से अत्यन्त वेगशाली घोड़े भी बँधे हुए थे॥ ३१॥

साथ ही अच्छी जातिके रूपवान् हाथी भी थे, जो शत्रु-सेनाके हाथियोंको मार भगानेवाले थे। वे सब-के-सब गजशिक्षामें सुशिक्षित, युद्धमें ऐरावतके समान पराक्रमी तथा शत्रुसेनाओंका संहार करनेमें समर्थ थे। वे बरसते हुए मेघों और झरने बहाते हुए पर्वतोंके समान मदकी धारा बहा रहे थे। उनकी गर्जना मेघ-गर्जनाके समान जान पड़ती थी। वे समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुर्जय थे। हनुमान्जीने रावणके भवनमें उन सबको देखा॥ ३२-३३$\frac{1}{2}$॥

राक्षसराज रावणके उस महलमें उन्होंने सहस्रों ऐसी सेनाएँ देखीं, जो जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित थीं। उनके सारे अंग सोनेके गहनोंसे ढके हुए थे तथा वे प्रातःकालके सूर्यकी भाँति उद्दीप्त हो रही थीं॥

पवनपुत्र हनुमान्जीने राक्षसराज रावणके उस भवनमें अनेक प्रकारकी पालकियाँ, विचित्र लता-गृह, चित्रशालाएँ, क्रीडाभवन, काष्ठमय क्रीडापर्वत, रमणीय विलासगृह और दिनमें उपयोगमें आनेवाले विलासभवन भी देखे॥ ३६-३७$\frac{1}{2}$॥

उन्होंने वह महल मन्दराचलके समान ऊँचा, क्रीडा-मयूरोंके रहनेके स्थानोंसे युक्त, ध्वजाओंसे व्याप्त, अनन्त रत्नोंका भण्डार और सब ओरसे निधियोंसे भरा हुआ देखा। उसमें धीर पुरुषोंने निधिरक्षाके उपयुक्त कर्माङ्गोंका अनुष्ठान किया था तथा वह साक्षात् भूतनाथ (महेश्वर या कुबेर)-के भवनके समान जान पड़ता था॥

रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजके कारण वह घर किरणोंसे युक्त सूर्यके समान जगमगा रहा था॥ ४०॥

वानरयूथपति हनुमान्ने वहाँके पलंग, चौकी और पात्र सभी अत्यन्त उज्ज्वल तथा जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए ही देखे॥ ४१॥

उसमें मधु और आसवके गिरनेसे वहाँकी भूमि गीली हो रही थी। मणिमय पात्रोंसे भरा हुआ वह सुविस्तृत महल कुबेर-भवनके समान मनोरम जान पड़ता था। नूपुरोंकी झनकार, करधनियोंकी खनखनाहट, मृदङ्गों और तालियोंकी मधुर ध्वनि तथा अन्य गम्भीर घोष करनेवाले वाद्योंसे वह भवन मुखरित हो रहा था॥

उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएँ थीं, सैकड़ों रमणी-रत्नोंसे वह व्याप्त था। उसकी ड्योढ़ियाँ बहुत बड़ी-बड़ी थीं। ऐसे विशाल भवनमें हनुमान्जीने प्रवेश किया॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

रावणके भवन एवं पुष्पक विमानका वर्णन

बलवान् वीर हनुमान्‌जीने नीलमसे जड़ी हुई सोनेकी खिड़कियोंसे सुशोभित तथा पक्षि-समूहोंसे युक्त भवनोंका समुदाय देखा, जो वर्षाकालमें बिजलीसे युक्त महती मेघमालाके समान मनोहर जान पड़ता था॥ १॥

उसमें नाना प्रकारकी बैठकें, शङ्ख, आयुध और धनुषोंकी मुख्य-मुख्य शालाएँ तथा पर्वतोंके समान ऊँचे महलोंके ऊपर मनोहर एवं विशाल चन्द्रशालाएँ (अट्टालिकाएँ) देखीं॥ २॥

कपिवर हनुमान्‌ने वहाँ नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित ऐसे-ऐसे घर देखे, जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा करते थे। वे गृह सम्पूर्ण दोषोंसे रहित थे तथा रावणने उन्हें अपने पुरुषार्थसे प्राप्त किया था॥ ३॥

वे भवन बड़े प्रयत्नसे बनाये गये थे और ऐसे अद्भुत लगते थे, मानो साक्षात् मयदानवने ही उनका निर्माण किया हो। हनुमान्‌जीने उन्हें देखा, लंकापति रावणके वे घर इस भूतलपर सभी गुणोंमें सबसे बढ़-चढ़कर थे॥ ४॥

फिर उन्होंने राक्षसराज रावणका उसकी शक्तिके अनुरूप अत्यन्त उत्तम और अनुपम भवन (पुष्पक विमान) देखा, जो मेघके समान ऊँचा, सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाला तथा मनोहर था॥ ५॥

वह इस भूतलपर बिखरे हुए स्वर्णके समान जान पड़ता था। अपनी कान्तिसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। अनेकानेक रत्नोंसे व्याप्त, भाँति-भाँतिके वृक्षोंके फूलोंसे आच्छादित तथा पुष्पोंके परागसे भरे हुए पर्वत-शिखरके समान शोभा पाता था॥ ६॥

वह विमानरूप भवन विद्युन्मालाओंसे पूजित मेघके समान रमणी-रत्नोंसे देदीप्यमान हो रहा था और श्रेष्ठ हंसोंद्वारा आकाशमें ढोये जाते हुए विमानकी भाँति जान पड़ता था। उस दिव्य विमानको बहुत सुन्दर ढंगसे बनाया गया था। वह अद्भुत शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था॥

जैसे अनेक धातुओंके कारण पर्वतशिखर, ग्रहों और चन्द्रमाके कारण आकाश तथा अनेक वर्णोंसे युक्त होनेके कारण मनोहर मेघ विचित्र शोभा धारण करते हैं, उसी तरह नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण वह विमान भी विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था॥ ८॥

उस विमानकी आधारभूमि (आरोहियोंके खड़े होनेका स्थान) सोने और मणियोंके द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्वत-मालाओंसे पूर्ण बनायी गयी थी। वे पर्वत वृक्षोंकी विस्तृत पंक्तियोंसे हरे-भरे रचे गये थे। वे वृक्ष फूलोंके बाहुल्यसे व्याप्त बनाये गये थे तथा वे पुष्प भी केसर एवं पंखुड़ियोंसे पूर्ण निर्मित हुए थे*॥ ९॥

उस विमानमें श्वेतभवन बने हुए थे। सुन्दर फूलोंसे सुशोभित पोखरे बनाये गये थे। केसरयुक्त कमल, विचित्र वन और अद्‌भुत सरोवरोंका भी निर्माण किया गया था॥ १०॥

महाकपि हनुमान्‌ने जिस सुन्दर विमानको वहाँ देखा, उसका नाम पुष्पक था। वह रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशमान था और इधर-उधर भ्रमण करता था। देवताओंके गृहाकार उत्तम विमानोंमें सबसे अधिक आदर उस महाविमान पुष्पकका ही होता था॥ ११॥

उसमें नीलम, चाँदी और मूँगोंके आकाशचारी पक्षी बनाये गये थे। नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र वर्णके सर्पोंका निर्माण किया गया था और अच्छी जातिके घोड़ोंके समान ही सुन्दर अंगवाले अश्व भी बनाये गये थे॥ १२॥

उस विमानपर सुन्दर मुख और मनोहर पंखवाले बहुत-से ऐसे विहङ्गम निर्मित हुए थे, जो साक्षात् कामदेवके सहायक जान पड़ते थे। उनकी पाँखें मूँगे और सुवर्णके बने हुए फूलोंसे युक्त थीं तथा उन्होंने लीलापूर्वक अपने बाँके पंखोंको समेट रखा था॥ १३॥

उस विमानके कमलमण्डित सरोवरमें ऐसे हाथी बनाये गये थे, जो लक्ष्मीके अभिषेक-कार्यमें नियुक्त थे। उनकी सूँड़ बड़ी सुन्दर थी। उनके अंगोंमें

* जहाँ पूर्वकथित वस्तुओंके प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तुओंका विशेषण-भावसे स्थापन किया जाय, वहाँ 'एकावली' अलंकार माना गया है। इस लक्षणके अनुसार इस श्लोकमें एकावली अलंकार है। यहाँ 'मही' का विशेषण पर्वत, पर्वतका वृक्ष और वृक्षका विशेषण पुष्प आदि समझना चाहिये। गोविन्दराजने यहाँ 'अधिक' नामक अलंकार माना है, परंतु जहाँ आधारसे आधेयकी विशेषता बतायी गयी हो वही इसका विषय है; यहाँ ऐसी बात नहीं है।

कमलोंके केसर लगे हुए थे तथा उन्होंने अपनी सूँड़ोंमें कमल-पुष्प धारण किये थे। उनके साथ ही वहाँ तेजस्विनी लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा भी विराजमान थी, जिनका उन हाथियोंके द्वारा अभिषेक हो रहा था। उनके हाथ बड़े सुन्दर थे। उन्होंने अपने हाथमें कमल-पुष्प धारण कर रखा था॥ १४॥

इस प्रकार सुन्दर कन्दराओंवाले पर्वतके समान तथा वसन्त-ऋतुमें सुन्दर कोटरोंवाले परम सुगन्धयुक्त वृक्षके समान उस शोभायमान मनोहर भवन (विमान)-में पहुँचकर हनुमान्‌जी बड़े विस्मित हुए॥ १५॥

तदनन्तर दशमुख रावणके बाहुबलसे पालित उस प्रशंसित पुरीमें जाकर चारों ओर घूमनेपर भी पतिके गुणोंके वेगसे पराजित (विमुग्ध) अत्यन्त दुःखिनी और परम पूजनीया जनककिशोरी सीताको न देखकर कपिवर हनुमान् बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ १६॥

महात्मा हनुमान्‌जी अनेक प्रकारसे परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले कृतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाले) सन्मार्गगामी तथा उत्तम दृष्टि रखनेवाले थे। इधर-उधर बहुत घूमनेपर भी जब उन महात्माको जानकीजीका पता न लगा, तब उनका मन बहुत दुःखी हो गया॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके द्वारा पुनः पुष्पक विमानका दर्शन

रावणके भवनके मध्यभागमें खड़े हुए बुद्धिमान् पवनकुमार कपिवर हनुमान्‌जीने मणि तथा रत्नोंसे जटित एवं तपे हुए सुवर्णमय गवाक्षोंकी रचनासे युक्त उस विशाल विमानको पुनः देखा॥ १॥

उसकी रचनाको सौन्दर्य आदिकी दृष्टिसे मापा नहीं जा सकता था। उसका निर्माण अनुपम रीतिसे किया गया था। स्वयं विश्वकर्माने ही उसे बनाया था और बहुत उत्तम कहकर उसकी प्रशंसा की थी। जब वह आकाशमें उठकर वायुमार्गमें स्थित होता था, तब सौर मार्गके चिह्न-सा सुशोभित होता था॥ २॥

उसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं थी, जो अत्यन्त प्रयत्नसे न बनायी गयी हो तथा वहाँ कोई भी ऐसा स्थान या विमानका अंग नहीं था, जो बहुमूल्य रत्नोंसे जटित न हो। उसमें जो विशेषताएँ थीं, वे देवताओंके विमानोंमें भी नहीं थीं। उसमें कोई ऐसी चीज नहीं थी, जो बड़ी भारी विशेषतासे युक्त न हो॥ ३॥

रावणने जो निराहार रहकर तप किया था और भगवान्‌के चिन्तनमें चित्तको एकाग्र किया था, इससे मिले हुए पराक्रमके द्वारा उसने उस विमानपर अधिकार प्राप्त किया था। मनमें जहाँ भी जानेका संकल्प उठता, वहीं वह विमान पहुँच जाता था। अनेक प्रकारकी विशिष्ट निर्माण-कलाओंद्वारा उस विमानकी रचना हुई थी तथा जहाँ-तहाँसे प्राप्त की गयी दिव्य विमान-निर्माणोचित विशेषताओंसे उसका निर्माण हुआ था॥ ४॥

वह स्वामीके मनका अनुसरण करते हुए बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाला, दूसरोंके लिये दुर्लभ और वायुके समान वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाला था तथा श्रेष्ठ आनन्द (महान् सुख)के भागी, बढ़े-चढ़े तपवाले, पुण्यकारी महात्माओंका ही वह आश्रय था॥ ५॥

वह विमान गतिविशेषका आश्रय ले व्योमरूप देश-विशेषमें स्थित था। आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओंका समुदाय उसमें एकत्र किया गया था। बहुत-सी शालाओंके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह शरद्-ऋतुके चन्द्रमाके समान निर्मल और मनको आनन्द प्रदान करनेवाला था। विचित्र छोटे-छोटे शिखरोंसे युक्त किसी पर्वतके प्रधान शिखरकी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार अद्भुत शिखरवाले उस पुष्पक विमानकी भी शोभा हो रही थी॥

जिनके मुखमण्डल कुण्डलोंसे सुशोभित और नेत्र घूमते या घूरते रहनेवाले, निमेषरहित तथा बड़े-बड़े थे, वे अपरिमित भोजन करनेवाले, महान् वेगशाली, आकाशमें विचरनेवाले तथा रातमें भी दिनके समान ही चलनेवाले सहस्रों भूतगण जिसका भार वहन करते थे, जो वसन्त-कालिक पुष्प-पुञ्जके समान रमणीय दिखायी देता था और वसन्त माससे भी अधिक सुहावना दृष्टिगोचर होता था, उस उत्तम पुष्पक विमानको वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने वहाँ देखा॥ ७-८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका रावणके श्रेष्ठ भवन पुष्पक विमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीको देखकर उसके भीतर सोयी हुई सहस्त्रों सुन्दरी स्त्रियोंका अवलोकन करना

लंकावर्ती सर्वश्रेष्ठ महान् गृहके मध्यभागमें पवनपुत्र हनुमान्‌जीने देखा—एक उत्तम भवन शोभा पा रहा है। वह बहुत ही निर्मल एवं विस्तृत था। उसकी लंबाई एक योजनकी और चौड़ाई आधे योजनकी थी। राक्षसराज रावणका वह विशाल भवन बहुत-सी अट्टालिकाओंसे व्याप्त था॥ १-२॥

विशाललोचना विदेह-नन्दिनी सीताकी खोज करते हुए शत्रुसूदन हनुमान्‌जी उस भवनमें सब ओर चक्कर लगाते फिरे॥ ३॥

बल-वैभवसे सम्पन्न हनुमान् राक्षसोंके उस उत्तम आवासका अवलोकन करते हुए एक ऐसे सुन्दर गृहमें जा पहुँचे, जो राक्षसराज रावणका निजी निवास-स्थान था॥ ४॥

चार दाँत तथा तीन दाँतोंवाले हाथी इस विस्तृत भवनको चारों ओरसे घेरकर खड़े थे और हाथोंमें हथियार लिये बहुत-से राक्षस उसकी रक्षा करते थे॥ ५॥

रावणका वह महल उसकी राक्षसजातीय पत्नियों तथा पराक्रमपूर्वक हरकर लायी हुई राजकन्याओंसे भरा हुआ था॥ ६॥

इस प्रकार नर-नारियोंसे भरा हुआ वह कोलाहलपूर्ण भवन नाके और मगरोंसे व्याप्त, तिमिंगलों और मत्स्योंसे पूर्ण, वायुवेगसे विक्षुब्ध तथा सर्पोंसे आवृत महासागरके समान प्रतीत होता था॥ ७॥

जो लक्ष्मी कुबेर, चन्द्रमा और इन्द्रके यहाँ निवास करती हैं, वे ही और भी सुरम्य रूपसे रावणके घरमें नित्य ही निश्चल होकर रहती थीं॥ ८॥

जो समृद्धि महाराज कुबेर, यम और वरुणके यहाँ दृष्टिगोचर होती है, वही अथवा उससे भी बढ़कर राक्षसोंके घरोंमे देखी जाती थीं॥ ९॥

उस (एक योजन लंबे और आधे योजन चौड़े) महलके मध्यभागमें एक दूसरा भवन (पुष्पक विमान) था, जिसका निर्माण बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया था। वह भवन बहुसंख्यक मतवाले हाथियोंसे युक्त था। पवनकुमार हनुमान्‌जीने फिर उसे देखा॥ १०॥

वह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोकमें विश्वकर्माने ब्रह्माजीके लिये बनाया था॥ ११॥

कुबेरने बड़ी भारी तपस्या करके उसे ब्रह्माजीसे प्राप्त किया और फिर कुबेरको बलपूर्वक परास्त करके राक्षसराज रावणने उसे अपने हाथमें कर लिया॥ १२॥

उसमें भेड़ियोंकी मूर्तियोंसे युक्त सोने-चाँदीके सुन्दर खम्भे बनाये गये थे, जिनके कारण वह भवन अद्भुत कान्तिसे उद्दीप्त-सा हो रहा था॥ १३॥

उसमें सुमेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे अनेकानेक गुप्त गृह और मङ्गल भवन बने थे, जो अपनी ऊँचाईसे आकाशमें रेखा-सी खींचते हुए जान पड़ते थे। उनके द्वारा वह विमान सब ओरसे सुशोभित होता था॥ १४॥

उनका प्रकाश अग्नि और सूर्यके समान था। विश्वकर्माने बड़ी कारीगरीसे उसका निर्माण किया था। उसमें सोनेकी सीढ़ियाँ और अत्यन्त मनोहर उत्तम वेदियाँ बनायी गयी थीं॥ १५॥

सोने और स्फटिकके झरोखे और खिड़कियाँ लगायी गयी थीं। इन्द्रनील और महानील मणियोंकी श्रेष्ठतम वेदियाँ रची गयी थीं॥ १६॥

उसकी फर्श विचित्र मूँगे, बहुमूल्य मणियों तथा अनुपम गोल-गोल मोतियोंसे जड़ी गयी थी, जिससे उस विमानकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १७॥

सुवर्णके समान लाल रंगके सुगन्धयुक्त चन्दनसे संयुक्त होनेके कारण वह बालसूर्यके समान जान पड़ता था॥ १८॥

महाकपि हनुमान्‌जी उस दिव्य पुष्पक विमानपर चढ़ गये, जो नाना प्रकारके सुन्दर कूटागारों (अट्टालिकाओं) से अलंकृत था। वहाँ बैठकर वे सब ओर फैली हुई नाना प्रकारके पेय, भक्ष्य और अन्नकी दिव्य गन्ध सूँघने लगे। वह गन्ध मूर्तिमान् पवन-सी प्रतीत होती थी॥ १९ $\frac{१}{२}$ ॥

जैसे कोई बन्धु-बान्धव अपने उत्तम बन्धुको अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार वह सुगन्ध उन महाबली हनुमान्‌जीको मानो यह कहकर कि 'इधर चले

आओ' जहाँ रावण था, वहाँ बुला रही थी॥ २०½॥

तदनन्तर हनुमान्‌जी उस ओर प्रस्थित हुए। आगे बढ़नेपर उन्होंने एक बहुत बड़ी हवेली देखी, जो बहुत ही सुन्दर और सुखद थी। वह हवेली रावणको बहुत ही प्रिय थी, ठीक वैसे ही जैसे पतिको कान्तिमयी सुन्दरी पत्नी अधिक प्रिय होती है॥ २१½॥

उसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं और सोनेकी खिड़कियाँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं। उसकी फर्श स्फटिक मणिसे बनायी गयी थी, जहाँ बीच-बीचमें हाथीके दाँतके द्वारा विभिन्न प्रकारकी आकृतियाँ बनी हुई थीं। मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोनेके द्वारा भी उसमें अनेक प्रकारके आकार अङ्कित किये गये थे॥

मणियोंके बने हुए बहुत-से खम्भे, जो समान, सीधे, बहुत ही ऊँचे और सब ओरसे विभूषित थे, आभूषणकी भाँति उस हवेलीकी शोभा बढ़ा रहे थे॥

अपने अत्यन्त ऊँचे स्तम्भरूपी पंखोंसे मानो वह आकाशको उड़ती हुई-सी जान पड़ती थी। उसके भीतर पृथ्वीके वन-पर्वत आदि चिह्नोंसे अङ्कित एक बहुत बड़ा कालीन बिछा हुआ था॥ २५॥

राष्ट्र और गृह आदिके चित्रोंसे सुशोभित वह शाला पृथ्वीके समान विस्तीर्ण जान पड़ती थी। वहाँ मतवाले विहङ्गमोंके कलरव गूँजते रहते थे तथा वह दिव्य सुगन्धसे सुवासित थी॥ २६॥

उस हवेलीमें बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे तथा स्वयं राक्षसराज रावण उसमें निवास करता था। वह अगुरु नामक धूपके धूएँसे धूमिल दिखायी देती थी, किंतु वास्तवमें हंसके समान श्वेत एवं निर्मल थी॥ २७॥

पत्र-पुष्पके उपहारसे वह शाला चितकबरी-सी जान पड़ती थी। अथवा वसिष्ठ मुनिकी शबला गौकी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंकी देनेवाली थी। उसकी कान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। वह मनको आनन्द देनेवाली तथा शोभाको भी सुशोभित करनेवाली थी॥ २८॥

वह दिव्य शाला शोकका नाश करनेवाली तथा सम्पत्तिकी जननी-सी जान पड़ती थी। हनुमान्‌जीने उसे देखा। उस रावणपालित शालाने उस समय माताकी भाँति शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषयोंसे हनुमान्‌जीकी श्रोत्र आदि पाँचों इन्द्रियोंको तृप्त कर दिया॥ २९½॥

उसे देखकर हनुमान्‌जी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि सम्भव है, यही स्वर्गलोक या देवलोक हो। यह इन्द्रकी पुरी भी हो सकती है अथवा यह परमसिद्धि (ब्रह्मलोककी प्राप्ति) है॥ ३०॥

हनुमान्‌जीने उस शालामें सुवर्णमय दीपकोंको एकतार जलते देखा, मानो वे ध्यानमग्न हो रहे हों; ठीक उसी तरह जैसे किसी बड़े जुआरीसे जुएमें हारे हुए छोटे जुआरी धननाशकी चिन्ताके कारण ध्यानमें डूबे हुए-से दिखायी देते हैं॥ ३१॥

दीपकोंके प्रकाश, रावणके तेज और आभूषणोंकी कान्तिसे वह सारी हवेली जलती हुई-सी जान पड़ती थी॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीने कालीनपर बैठी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं, जो रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकारकी वेश-भूषाओंसे विभूषित थीं॥ ३३॥

आधी रात बीत जानेपर वे क्रीड़ासे उपरत हो मधुपानके मद और निद्राके वशीभूत हो उस समय गाढ़ी नींदमें सो गयी थीं॥ ३४॥

उन सोयी हुई सहस्रों नारियोंके कटिभागमें अब करधनीकी खनखनाहटका शब्द नहीं हो रहा था। हंसोंके कलरव तथा भ्रमरोंके गुञ्जारवसे रहित विशाल कमल-वनके समान उन सुप्त सुन्दरियोंका समुदाय बड़ी शोभा पा रहा था॥ ३५॥

पवनकुमार हनुमान्‌जीने उन सुन्दरी युवतियोंके मुख देखे, जिनसे कमलोंकी-सी सुगन्ध फैल रही थी। उनके दाँत ढँके हुए थे और आँखें मुँद गयी थीं॥ ३६॥

रात्रिके अन्तमें खिले हुए कमलोंके समान उन सुन्दरियोंके जो मुखारविन्द हर्षसे उत्फुल्ल दिखायी देते थे, वे ही फिर रात आनेपर सो जानेके कारण मुँदे हुए दलवाले कमलोंके समान शोभा पा रहे थे॥ ३७॥

उन्हें देखकर श्रीमान् महाकपि हनुमान् यह सम्भावना करने लगे कि 'मतवाले भ्रमर प्रफुल्ल कमलोंके समान इन मुखारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ही बारंबार प्रार्थना करते होंगे—उनपर सदा स्थान पानेके लिये तरसते होंगे'; क्योंकि वे गुणकी दृष्टिसे उन मुखारविन्दोंको पानीसे उत्पन्न होनेवाले कमलोंके समान ही समझते थे॥ ३८-३९॥

रावणकी वह हवेली उन स्त्रियोंसे प्रकाशित होकर वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे शरत्कालमें निर्मल आकाश ताराओंसे प्रकाशित एवं सुशोभित होता है॥ ४०॥

उन स्त्रियोंसे घिरा हुआ राक्षसराज रावण ताराओंसे घिरे हुए कान्तिमान् नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥ ४१॥

उस समय हनुमान्‌जीको ऐसा मालूम हुआ कि आकाश (स्वर्ग)-से भोगावशिष्ट पुण्यके साथ जो ताराएँ नीचे गिरती हैं, वे सब-की-सब मानो यहाँ इन सुन्दरियोंके रूपमें एकत्र हो गयी हैं*॥ ४२॥

क्योंकि वहाँ उन युवतियोंके तेज, वर्ण और प्रसाद स्पष्टत: सुन्दर प्रभावाले महान् तारोंके समान ही सुशोभित होते थे॥ ४३॥

मधुपानके अनन्तर व्यायाम (नृत्य, गान, क्रीड़ा आदि)- के समय जिनके केश खुलकर बिखर गये थे, पुष्पमालाएँ मर्दित होकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं और सुन्दर आभूषण भी शिथिल होकर इधर-उधर खिसक गये थे, वे सभी सुन्दरियाँ वहाँ निद्रासे अचेत-सी होकर सो रही थीं॥ ४४॥

किन्हींके मस्तकको (सिंदूर-कस्तूरी आदिकी) वेदियाँ पुछ गयी थीं, किन्हींके नूपुर पैरोंसे निकलकर दूर जा पड़े थे तथा किन्हीं सुन्दरी युवतियोंके हार टूटकर उनके बगलमें ही पड़े थे॥ ४५॥

कोई मोतियोंके हार टूट जानेसे उनके बिखरे दानोंसे आवृत थीं, किन्हींके वस्त्र खिसक गये थे और किन्हींकी करधनीकी लड़ें टूट गयी थीं। वे युवतियाँ बोझ ढोकर थकी हुई अश्वजातिकी नयी बछेड़ियोंके समान जान पड़ती थीं॥ ४६॥

किन्हींके कानोंके कुण्डल गिर गये थे, किन्हींकी पुष्पमालाएँ मसली जाकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। इससे वे महान् वनमें गजराजद्वारा दली-मली गयी फूली लताओंके समान प्रतीत होती थीं॥ ४७॥

किन्हींके चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान हार उनके वक्ष:स्थलपर पड़कर उभरे हुए प्रतीत होते थे। वे उन युवतियोंके स्तनमण्डलपर ऐसे जान पड़ते थे मानो वहाँ हंस सो रहे हों॥ ४८॥

दूसरी स्त्रियोंके स्तनोंपर नीलमके हार पड़े थे, जो कादम्ब (जलकाक) नामक पक्षीके समान शोभा पाते थे तथा अन्य स्त्रियोंके उरोजोंपर जो सोनेके हार थे, वे चक्रवाक (पुरखाव) नामक पक्षियोंके समान जान पड़ते थे॥ ४९॥

इस प्रकार वे हंस, कारण्डव (जलकाक) तथा चक्रवाकोंसे सुशोभित नदियोंके समान शोभा पाती थीं। उनके जघनप्रदेश उन नदियोंके तटोंके समान जान पड़ते थे॥ ५०॥

वे सोयी हुई सुन्दरियाँ वहाँ सरिताओंके समान सुशोभित होती थीं। किङ्किणियों (घुँघुरुओं)-के समूह उनमें मुकुलके समान प्रतीत होते थे। सोनेके विभिन्न आभूषण ही वहाँ बहुसंख्यक स्वर्णकमलोंकी शोभा धारण करते थे। भाव (सुप्तावस्थामें भी वासनावश होनेवाली शृंगारचेष्टाएँ) ही मानो ग्राह थे तथा यश (कान्ति) ही तटके समान जान पड़ते थे॥ ५१॥

किन्हीं सुन्दरियोंके कोमल अंगोंमें तथा कुचोंके अग्रभागपर उभरी हुई आभूषणोंकी सुन्दर रेखाएँ नये गहनोंके समान ही शोभा पाती थीं॥ ५२॥

किन्हींके मुखपर पड़े हुए उनकी झीनी साड़ीके अञ्चल उनकी नासिकासे निकली हुई साँससे कम्पित हो बारंबार हिल रहे थे॥ ५३॥

नाना प्रकारके सुन्दर रूप-रंगवाली उन रावणपत्नियोंके मुखोंपर हिलते हुए वे अञ्चल सुन्दर कान्तिवाली फहराती हुई पताकाओंके समान शोभा पा रहे थे॥ ५४॥

वहाँ किन्हीं-किन्हीं सुन्दर कान्तिमती कामिनियोंके कानोंके कुण्डल उनके नि:श्वासजनित कम्पनसे धीरे-धीरे हिल रहे थे॥ ५५॥

उन सुन्दरियोंके मुखसे निकली हुई स्वभावसे ही सुगन्धित श्वासवायु शर्करानिर्मित आसवकी मनोहर गन्धसे युक्त हो और भी सुखद बनकर उस समय रावणकी सेवा करती थी॥ ५६॥

रावणकी कितनी ही तरुणी पत्नियाँ रावणका ही मुख समझकर बारंबार अपनी सौतोंके ही मुखोंको सूँघ रही थीं॥ ५७॥

उन सुन्दरियोंका मन रावणमें अत्यन्त आसक्त था, इसलिये वे आसक्ति तथा मदिराके मदसे परवश हो उस समय रावणके मुखके भ्रमसे अपनी सौतोंका मुख सूँघकर उनका प्रिय ही करती थीं (अर्थात् वे भी उस समय अपने मुख-संलग्न हुए उन सौतोंके मुखोंको रावणका ही मुख समझकर उसे सूँघनेका सुख उठाती थीं)॥ ५८॥

अन्य मदमत्त युवतियाँ अपनी वलयविभूषित भुजाओंका ही तकिया लगाकर तथा कोई-कोई सिरके नीचे अपने सुरम्य वस्त्रोंको ही रखकर वहाँ सो रही थीं॥ ५९॥

एक स्त्री दूसरीकी छातीपर सिर रखकर सोयी थी

* इस श्लोकमें 'अत्युक्ति' अलंकार है।

तो कोई दूसरी स्त्री उसकी भी एक बाँहको ही तकिया बनाकर सो गयी थी। इसी तरह एक अन्य स्त्री दूसरीकी गोदमें सिर रखकर सोयी थी तो कोई दूसरी उसके भी कुचोंका ही तकिया लगाकर सो गयी थी॥

इस तरह रावणविषयक स्नेह और मदिराजनित मदके वशीभूत हुई वे सुन्दरियाँ एक-दूसरीके ऊरु, पार्श्वभाग, कटिप्रदेश तथा पृष्ठभागका सहारा ले आपसमें अंगों-से-अंग मिलाये वहाँ बेसुध पड़ी थीं॥ ६१ ॥

वे सुन्दर कटिप्रदेशवाली समस्त युवतियाँ एक-दूसरीके अंगस्पर्शको प्रियतमका स्पर्श मानकर उससे मन-ही-मन आनन्दका अनुभव करती हुई परस्पर बाँह-से-बाँह मिलाये सो रही थीं॥ ६२ ॥

एक-दूसरीके बाहुरूपी सूत्रमें गुँथी हुई काले-काले केशोंवाली स्त्रियोंकी वह माला सूतमें पिरोयी हुई मतवाले भ्रमरोंसे युक्त पुष्पमालाकी भाँति शोभा पा रही थी॥ ६३ ॥

माधवमास (वसन्त)-में मलयानिलके सेवनसे जैसे खिली हुई लताओंका वन कम्पित होता रहता है, उसी प्रकार रावणकी स्त्रियोंका वह समुदाय निःश्वासवायुके चलनेसे अञ्चलोंके हिलनेके कारण कम्पित होता-सा जान पड़ता था। जैसे लताएँ परस्पर मिलकर मालाकी भाँति आबद्ध हो जाती हैं, उनकी सुन्दर शाखाएँ परस्पर लिपट जाती हैं और इसीलिये उनके पुष्पसमूह भी आपसमें मिले हुए-से प्रतीत होते हैं तथा उनपर बैठे हुए भ्रमर भी परस्पर मिल जाते हैं, उसी प्रकार वे सुन्दरियाँ एक-दूसरीसे मिलकर मालाकी भाँति गुँथ गयी थीं। उनकी भुजाएँ और कंधे परस्पर सटे हुए थे। उनकी वेणीमें गुँथे हुए फूल भी आपसमें मिल गये थे तथा उन सबके केशकलाप भी एक-दूसरेसे जुड़ गये थे॥ ६४-६५ ॥

यद्यपि उन युवतियोंके वस्त्र, अंग, आभूषण और हार उचित स्थानोंपर ही प्रतिष्ठित थे, यह बात स्पष्ट दिखायी दे रही थी, तथापि उन सबके परस्पर गुँथ जानेके कारण यह विवेक होना असम्भव हो गया था कि कौन वस्त्र, आभूषण, अंग अथवा हार किसके हैं*॥

रावणके सुखपूर्वक सो जानेपर वहाँ जलते हुए सुवर्णमय प्रदीप उन अनेक प्रकारकी कान्तिवाली कामिनियोंको मानो एकटक दृष्टिसे देख रहे थे॥ ६७॥

राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वों तथा राक्षसोंकी कन्याएँ कामके वशीभूत होकर रावणकी पत्नियाँ बन गयी थीं॥ ६८॥

उन सब स्त्रियोंका रावणने युद्धकी इच्छासे अपहरण किया था और कुछ मदमत्त रमणियाँ कामदेवसे मोहित होकर स्वयं ही उसकी सेवामें उपस्थित हो गयी थीं॥ ६९ ॥

वहाँ ऐसी कोई स्त्रियाँ नहीं थीं, जिन्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न होनेपर भी रावण उनकी इच्छाके विरुद्ध बलात् हर लाया हो। वे सब-की-सब उसे अपने अलौकिक गुणसे ही उपलब्ध हुई थीं। जो श्रेष्ठतम पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके ही योग्य थीं, उन जनककिशोरी सीताको छोड़कर दूसरी कोई ऐसी स्त्री वहाँ नहीं थी, जो रावणके सिवा किसी दूसरेकी इच्छा रखनेवाली हो अथवा जिसका पहले कोई दूसरा पति रहा हो॥ ७० ॥

रावणकी कोई भार्या ऐसी नहीं थी, जो उत्तम कुलमें उत्पन्न न हुई हो अथवा जो कुरूप, अनुदार या कौशलरहित, उत्तम वस्त्राभूषण एवं माला आदिसे वञ्चित, शक्तिहीन तथा प्रियतमको अप्रिय हो॥ ७१ ॥

उस समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले वानरराज हनुमान्‌जीके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये महान् राक्षसराज रावणकी भार्याएँ जिस तरह अपने पतिके साथ रहकर सुखी हैं, उसी प्रकार यदि रघुनाथजीकी धर्मपत्नी सीताजी भी इन्हींकी भाँति अपने पतिके साथ रहकर सुखका अनुभव करतीं अर्थात् यदि रावण शीघ्र ही उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर देता तो यह इसके लिये परम मंगलकारी होता॥ ७२ ॥

फिर उन्होंने सोचा, निश्चय ही सीता गुणोंकी दृष्टिसे इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बढ़-चढ़कर हैं। इस महाबली लंकापतिने मायामय रूप धारण करके सीताको धोखा देकर इनके प्रति यह अपहरणरूप महान् कष्टप्रद नीच कर्म किया है॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९ ॥

---

* इस श्लोकमें 'भ्रान्तिमान्' नामक अलंकार है।

दसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका अन्तःपुरमें सोये हुए रावण तथा गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई उसकी स्त्रियोंको देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रसन्न होना

वहाँ इधर-उधर दृष्टिपात करते हुए हनुमान्‌जीने एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिसपर पलंग बिछाया जाता था। वह वेदी स्फटिक मणिकी बनी हुई थी और उसमें अनेक प्रकारके रत्न जड़े गये थे॥ १॥

वहाँ वैदूर्यमणि (नीलम)-के बने हुए श्रेष्ठ आसन (पलंग) बिछे हुए थे, जिनकी पाटी-पाये आदि अंग हाथी-दाँत और सुवर्णसे जटित होनेके कारण चितकबरे दिखायी देते थे। उन महामूल्यवान् पलंगोंपर बहुमूल्य बिछौने बिछाये गये थे। उन सबके कारण उस वेदीकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ २॥

उस पलंगके एक भागमें उन्होंने चन्द्रमाके समान एक श्वेत छत्र देखा, जो दिव्य मालाओंसे सुशोभित था॥

वह उत्तम पलंग सुवर्णसे जटित होनेके कारण अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। हनुमान्‌जीने उसे अशोकपुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत देखा॥ ४॥

उसके चारों ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथोंमें चँवर लिये उसपर हवा कर रही थीं। वह पलंग अनेक प्रकारकी गन्धोंसे सेवित तथा उत्तम धूपसे सुवासित था॥ ५॥

उसपर उत्तमोत्तम बिछौने बिछे हुए थे। उसमें भेड़की खाल मढ़ी हुई थी तथा वह सब ओरसे उत्तम फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित था॥ ६॥

उस प्रकाशमान पलंगपर महाकपि हनुमान्‌जीने वीर राक्षसराज रावणको सोते देखा, जो सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, दिव्य आभरणोंसे अलंकृत और सुरूपवान् था। वह राक्षस-कन्याओंका प्रियतम तथा राक्षसोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसके अंगोंमें सुगन्धित लाल चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था, जिससे वह आकाशमें संध्याकालकी लाली तथा विद्युल्लेखासे युक्त मेघके समान शोभा पाता था। उसकी अंगकान्ति मेघके समान श्याम थी। उसके कानोंमें उज्ज्वल कुण्डल झिलमिला रहे थे। आँखें लाल थीं और भुजाएँ बड़ी-बड़ी। उसके वस्त्र सुनहरे रंगके थे। वह रातको स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करके मदिरा पीकर आराम कर रहा था। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वृक्ष, वन और लता-गुल्मोंसे सम्पन्न मन्दराचल सो रहा हो॥ ७—११॥

उस समय साँस लेता हुआ रावण फुफकारते हुए सर्पके समान जान पड़ता था। उसके पास पहुँचकर वानरशिरोमणि हनुमान् अत्यन्त उद्विग्न हो भलीभाँति डरे हुएकी भाँति सहसा दूर हट गये और सीढ़ियोंपर चढ़कर एक-दूसरी वेदीपर जाकर खड़े हो गये। वहाँसे उन महाकपिने उस मतवाले राक्षससिंहको देखना आरम्भ किया॥ १२-१३॥

राक्षसराज रावणके सोते समय वह सुन्दर पलंग उसी प्रकार शोभा पा रहा था, जैसे गन्धहस्तीके शयन करनेपर विशाल प्रस्रवणगिरि सुशोभित हो रहा हो॥ १४॥

उन्होंने महाकाय राक्षसराज रावणकी फैलायी हुई दो भुजाएँ देखीं, जो सोनेके बाजूबंदसे विभूषित हो इन्द्रध्वजके समान जान पड़ती थीं॥ १५॥

युद्धकालमें उन भुजाओंपर ऐरावत हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे जो प्रहार किये गये थे, उनके आघातका चिह्न बन गया था। उन भुजाओंके मूलभाग या कंधे बहुत मोटे थे और उनपर वज्रद्वारा किये गये आघातके भी चिह्न दिखायी देते थे। भगवान् विष्णुके चक्रसे भी किसी समय वे भुजाएँ क्षत-विक्षत हो चुकी थीं॥ १६॥

वे भुजाएँ सब ओरसे समान और सुन्दर कंधोंवाली तथा मोटी थीं। उनकी संधियाँ सुदृढ़ थीं। वे बलिष्ठ और उत्तम लक्षणवाले नखों एवं अंगुष्ठोंसे सुशोभित थीं। उनकी अंगुलियाँ और हथेलियाँ बड़ी सुन्दर दिखायी देती थीं॥ १७॥

वे सुगठित एवं पुष्ट थीं। परिघके समान गोलाकार तथा हाथीके शुण्डदण्डकी भाँति चढ़ाव-उतारवाली एवं लंबी थीं। उस उज्ज्वल पलंगपर फैली वे बाँहें पाँच-पाँच फनवाले दो सर्पोंके समान दृष्टिगोचर होती थीं॥

खरगोशके खूनकी भाँति लाल रंगके उत्तम, सुशीतल एवं सुगन्धित चन्दनसे चर्चित हुई वे भुजाएँ अलंकारोंसे अलंकृत थीं॥ १९॥

सुन्दरी युवतियाँ धीरे-धीरे उन बाँहोंको दबाती थीं। उनपर उत्तम गन्ध-द्रव्यका लेप हुआ था। वे यक्ष, नाग, गन्धर्व, देवता और दानव सभीको युद्धमें रुलानेवाली थीं॥ २०॥

कपिवर हनुमान्ने पलंगपर पड़ी हुई उन दोनों भुजाओंको देखा। वे मन्दराचलकी गुफामें सोये हुए दो रोषभरे अजगरोंके समान जान पड़ती थीं॥ २१॥

उन बड़ी-बड़ी और गोलाकार दो भुजाओंसे युक्त पर्वताकार राक्षसराज रावण दो शिखरोंसे संयुक्त मन्दराचलके समान शोभा पा रहा था*॥ २२॥

वहाँ सोये हुए राक्षसराज रावणके विशाल मुखसे आम और नागकेसरकी सुगन्धसे मिश्रित, मौलसिरीके सुवाससे सुवासित और उत्तम अन्नरससे संयुक्त तथा मधुपानकी गन्धसे मिली हुई जो सौरभयुक्त साँस निकल रही थी, वह उस सारे घरको सुगन्धसे परिपूर्ण-सा कर देती थी॥ २३-२४॥

उसका कुण्डलसे प्रकाशमान मुखारविन्द अपने स्थानसे हटे हुए तथा मुक्तामणिसे जटित होनेके कारण विचित्र आभावाले सुवर्णमय मुकुटसे और भी उद्भासित हो रहा था॥ २५॥

उसकी छाती लाल चन्दनसे चर्चित, हारसे सुशोभित, उभरी हुई तथा लंबी-चौड़ी थी। उसके द्वारा उस राक्षसराजके सम्पूर्ण शरीरकी बड़ी शोभा हो रही थी॥

उसकी आँखें लाल थीं। उसकी कटिके नीचेका भाग ढीले-ढाले श्वेत रेशमी वस्त्रसे ढका हुआ था तथा वह पीले रंगकी बहुमूल्य रेशमी चादर ओढ़े हुए था॥

वह स्वच्छ स्थानमें रखे हुए उड़दके ढेरके समान जान पड़ता था और सर्पके समान साँसें ले रहा था। उस उज्ज्वल पलंगपर सोया हुआ रावण गंगाकी अगाध जलराशिमें सोये हुए गजराजके समान दिखायी देता था॥

उसकी चारों दिशाओंमें चार सुवर्णमय दीपक जल रहे थे; जिनकी प्रभासे वह देदीप्यमान हो रहा था और उसके सारे अंग प्रकाशित होकर स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। ठीक उसी तरह, जैसे विद्युद्गणोंसे मेघ प्रकाशित एवं परिलक्षित होता है॥ २९॥

पत्नियोंके प्रेमी उस महाकाय राक्षसराजके घरमें हनुमान्जीने उसकी पत्नियोंको भी देखा, जो उसके चरणोंके आस-पास ही सो रही थीं॥ ३०॥

वानरयूथपति हनुमान्जीने देखा, उन रावणपत्नियोंके मुख चन्द्रमाके समान प्रकाशमान थे। वे सुन्दर कुण्डलोंसे विभूषित थीं तथा ऐसे फूलोंके हार पहने हुए थीं, जो कभी मुरझाते नहीं थे॥ ३१॥

वे नाचने और बाजे बजानेमें निपुण थीं, राक्षसराज रावणकी बाँहों और अंकमें स्थान पानेवाली थीं तथा सुन्दर आभूषण धारण किये हुए थीं। कपिवर हनुमान्ने उन सबको वहाँ सोती देखा॥ ३२॥

उन्होंने उन सुन्दरियोंके कानोंके समीप हीरे तथा नीलम जड़े हुए सोनेके कुण्डल और बाजूबंद देखे॥ ३३॥

ललित कुण्डलोंसे अलंकृत तथा चन्द्रमाके समान मनोहर उनके सुन्दर मुखोंसे वह विमानाकार पर्यङ्क तारिकाओंसे मण्डित आकाशकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥ ३४॥

क्षीण कटिप्रदेशवाली वे राक्षसराजकी स्त्रियाँ मद तथा रतिक्रीड़ाके परिश्रमसे थककर जहाँ-तहाँ जो जिस अवस्थामें थीं वैसे ही सो गयी थीं॥ ३५॥

विधाताने जिसके सारे अंगोंको सुन्दर एवं विशेष शोभासे सम्पन्न बनाया था, वह कोमलभावसे अंगोंके संचालन (चटकाने-मटकाने आदि) द्वारा नाचनेवाली कोई अन्य नृत्यनिपुणा सुन्दरी स्त्री गाढ़ निद्रामें सोकर भी वासनावश जाग्रत्-अवस्थाकी ही भाँति नृत्यके अभिनयसे सुशोभित हो रही थी॥ ३६॥

कोई वीणाको छातीसे लगाकर सोयी हुई सुन्दरी ऐसी जान पड़ती थी, मानो महानदीमें पड़ी हुई कोई कमलिनी किसी नौकासे सट गयी हो॥ ३७॥

दूसरी कजरारे नेत्रोंवाली भामिनी काँखमें दबे हुए मड्डुक (लघुवाद्य विशेष)-के साथ ही सो गयी थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई पुत्रवत्सला जननी अपने छोटे-से शिशुको गोदमें लिये सो रही हो॥ ३८॥

कोई सर्वांगसुन्दरी एवं रुचिर कुचोंवाली कामिनी पटहको अपने नीचे रखकर सो रही थी, मानो चिरकालके पश्चात् प्रियतमको अपने निकट पाकर कोई प्रेयसी उसे हृदयसे लगाये सो रही हो॥ ३९॥

कोई कमललोचना युवती वीणाका आलिंगन करके सोयी हुई ऐसी जान पड़ती थी, मानो कामभावसे युक्त कामिनी अपने श्रेष्ठ प्रियतमको भुजाओंमें भरकर सो गयी हो॥ ४०॥

* यहाँ शयनागारमें सोये हुए रावणके एक ही मुख और दो ही बाँहोंका वर्णन आया है। इससे जान पड़ता है कि वह साधारण स्थितिमें इसी तरह रहता था। युद्ध आदिके विशेष अवसरोंपर ही वह स्वेच्छापूर्वक दस मुख और बीस भुजाओंसे संयुक्त होता था।

नियमपूर्वक नृत्यकलासे सुशोभित होनेवाली एक अन्य युवती विपञ्ची (विशेष प्रकारकी वीणा)-को अंकमें भरकर प्रियतमके साथ सोयी हुई प्रेयसीकी भाँति निद्राके अधीन हो गयी थी॥ ४१॥

कोई मतवाले नयनोंवाली दूसरी सुन्दरी अपने सुवर्ण-सदृश गौर, कोमल, पुष्ट और मनोरम अंगोंसे मृदंगको दबाकर गाढ़ निद्रामें सो गयी थी॥ ४२॥

नशेसे थकी हुई कोई कृशोदरी अनिन्द्य सुन्दरी रमणी अपने भुजपाशोंके बीचमें स्थित और काँखमें दबे हुए पणवके साथ ही सो गयी थी॥ ४३॥

दूसरी स्त्री डिण्डिमको लेकर उसी तरह उससे सटी हुई सो गयी थी, मानो कोई भामिनी अपने बालक पुत्रको हृदयसे लगाये हुए नींद ले रही हो॥ ४४॥

मदिराके मदसे मोहित हुई कोई कमलनयनी नारी आडम्बर नामक वाद्यको अपनी भुजाओंके आलिंगनसे दबाकर प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी॥ ४५॥

कोई दूसरी युवती निद्रावश जलसे भरी हुई सुराहीको लुढ़काकर भीगी अवस्थामें ही बेसुध सो रही थी। उस अवस्थामें वह वसन्त-ऋतुमें विभिन्न वर्णके पुष्पोंकी बनी और जलके छींटेसे सींची हुई मालाके समान प्रतीत होती थी॥ ४६॥

निद्राके बलसे पराजित हुई कोई अबला सुवर्णमय कलशके समान प्रतीत होनेवाले अपने कुचोंको दोनों हाथोंसे दबाकर सो रही थी॥ ४७॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली दूसरी कमललोचना कामिनी सुन्दर नितम्बवाली किसी अन्य सुन्दरीका आलिंगन करके मदसे विह्वल होकर सो गयी थी॥ ४८॥

जैसे कामिनियाँ अपने चाहनेवाले कामुकोंको छातीसे लगाकर सोती हैं, उसी प्रकार कितनी ही सुन्दरियाँ विचित्र-विचित्र वाद्योंका आलिंगन करके उन्हें कुचोंसे दबाये सो गयी थीं॥ ४९॥

उन सबकी शय्याओंसे पृथक् एकान्तमें बिछी हुई सुन्दर शय्यापर सोयी हुई एक रूपवती युवतीको वहाँ हनुमान्‌जीने देखा॥ ५०॥

वह मोती और मणियोंसे जड़े हुए आभूषणोंसे भलीभाँति विभूषित थी और अपनी शोभासे उस उत्तम भवनको विभूषित-सा कर रही थी॥ ५१॥

वह गोरे रंगकी थी। उसकी अंगकान्ति सुवर्णके समान दमक रही थी। वह रावणकी प्रियतमा और उसके अन्तःपुरकी स्वामिनी थी। उसका नाम मन्दोदरी था। वह अपने मनोहर रूपसे सुशोभित हो रही थी। वही वहाँ सो रही थी। हनुमान्‌जीने उसीको देखा। रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त और वस्त्राभूषणोंसे विभूषित मन्दोदरीको देखकर महाबाहु पवनकुमारने अनुमान किया कि ये ही सीताजी हैं। फिर तो ये वानरयूथपति हनुमान् महान् हर्षसे युक्त हो आनन्दमग्न हो गये॥

वे अपनी पूँछको पटकने और चूमने लगे। अपनी वानरों-जैसी प्रकृतिका प्रदर्शन करते हुए आनन्दित होने, खेलने और गाने लगे, इधर-उधर आने-जाने लगे। वे कभी खंभोंपर चढ़ जाते और कभी पृथ्वीपर कूद पड़ते थे॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

वह सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्‌जीका पुनः अन्तःपुरमें और उसकी पानभूमिमें सीताका पता लगाना, उनके मनमें धर्मलोपकी आशंका और स्वतः उसका निवारण होना

फिर उस समय इस विचारको छोड़कर महाकपि हनुमान्‌जी अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हुए और वे सीताजीके विषयमें दूसरे प्रकारकी चिन्ता करने लगे॥

(उन्होंने सोचा—) 'भामिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीसे बिछुड़ गयी हैं। इस दशामें वे न तो सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, न शृंगार एवं अलंकार धारण कर सकती हैं, फिर मदिरापानका सेवन तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकतीं॥ २॥

'वे किसी दूसरे पुरुषके पास, वह देवताओंका भी ईश्वर क्यों न हो, नहीं जा सकतीं। देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो श्रीरामचन्द्रजीकी समानता कर सके॥ ३॥

'अतः अवश्य ही यह सीता नहीं, कोई दूसरी स्त्री

है।' ऐसा निश्चय करके वे कपिश्रेष्ठ सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो पुनः वहाँकी मधुशालामें विचरने लगे॥

वहाँ कोई स्त्रियाँ क्रीड़ा करनेसे थकी हुई थीं तो कोई गीत गानेसे। दूसरी नृत्य करके थक गयी थीं और कितनी ही स्त्रियाँ अधिक मद्यपान करके अचेत हो रही थीं॥ ५॥

बहुत-सी स्त्रियाँ ढोल, मृदंग और चेलिका नामक वाद्योंपर अपने अंगोंको टेककर सो गयी थीं तथा दूसरी महिलाएँ अच्छे-अच्छे बिछौनोंपर सोयी हुई थीं॥ ६॥

वानरयूथपति हनुमान्जीने उस पानभूमिको ऐसी सहस्रों रमणियोंसे संयुक्त देखा, जो भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित, रूप-लावण्यकी चर्चा करनेवाली, गीतके समुचित अभिप्रायको अपनी वाणीद्वारा प्रकट करनेवाली, देश और कालको समझनेवाली, उचित बात बोलनेवाली और रति-क्रीड़ामें अधिक भाग लेनेवाली थीं॥ ७-८॥

दूसरे स्थानपर भी उन्होंने ऐसी सहस्रों सुन्दरी युवतियोंको सोते देखा, जो आपसमें रूप-सौन्दर्यकी चर्चा करती हुई लेट रही थीं॥ ९॥

वानरयूथपति पवनकुमारने ऐसी बहुत-सी स्त्रियोंको देखा, जो देश-कालको जाननेवाली, उचित बात कहनेवाली तथा रतिक्रीड़ाके पश्चात् गाढ़ निद्रामें सोयी हुई थीं॥ १०॥

उन सबके बीचमें महाबाहु राक्षसराज रावण विशाल गोशालामें श्रेष्ठ गौओंके बीच सोये हुए साँड़की भाँति शोभा पा रहा था॥ ११॥

जैसे वनमें हाथियोंसे घिरा हुआ कोई महान् गजराज सो रहा हो, उसी प्रकार उस भवनमें उन सुन्दरियोंसे घिरा हुआ स्वयं राक्षसराज रावण सुशोभित हो रहा था॥ १२॥

उस महाकाय राक्षसराजके भवनमें कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने वह पानभूमि देखी, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न थी। उस मधुशालामें अलग-अलग मृगों, भैंसों और सूअरोंके मांस रखे गये थे, जिन्हें हनुमान्जीने देखा॥ १३-१४॥

वानरसिंह हनुमान्ने वहाँ सोनेके बड़े-बड़े पात्रोंमें मोर, मुर्गे, सूअर, गेंडा, साही, हरिण तथा मयूरोंके मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे। वे अभी खाये नहीं गये थे॥ १५-१६॥

कृकल नामक पक्षी, भाँति-भाँतिके बकरे, खरगोश, आधे खाये हुए भैंसे, एकशल्य नामक मत्स्य और भेड़ें— ये सब-के-सब राँध-पकाकर रखे हुए थे। इनके साथ अनेक प्रकारकी चटनियाँ भी थीं। भाँति-भाँतिके पेय तथा भक्ष्य पदार्थ भी विद्यमान थे। जीभकी शिथिलता दूर करनेके लिये खटाई और नमकके साथ भाँति-भाँतिके राग[1] और खाण्डव भी रखे गये थे॥ १७-१८॥

बहुमूल्य बड़े-बड़े नूपुर और बाजूबंद जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे। मद्यपानके पात्र इधर-उधर लुढ़काये हुए थे। भाँति-भाँतिके फल भी बिखरे पड़े थे। इन सबसे उपलक्षित होनेवाली वह पानभूमि, जिसे फूलोंसे सजाया गया था, अधिक शोभाका पोषण एवं संवर्धन कर रही थी॥ १९½॥

यत्र-तत्र रखी हुई सुदृढ़ शय्याओं और सुन्दर स्वर्णमय सिंहासनोंसे सुशोभित होनेवाली वह मधुशाला ऐसी जगमगा रही थी कि बिना आगके ही जलती हुई-सी दिखायी देती थी॥ २०½॥

अच्छी छौंक-बघारसे तैयार किये गये नाना प्रकारके विविध मांस चतुर रसोइयोंद्वारा बनाये गये थे और उस पानभूमिमें पृथक्-पृथक् सजाकर रखे गये थे। उनके साथ ही स्वच्छ दिव्य सुराएँ (जो कदम्ब आदि वृक्षोंसे स्वतः उत्पन्न हुई थीं) और कृत्रिम सुराएँ (जिन्हें शराब बनानेवाले लोग तैयार करते हैं) भी वहाँ रखी गयी थीं। उनमें शर्करासव,२ माध्वीक,३ पुष्पासव४ और फलासव५ भी थे। इन सबको नाना प्रकारके सुगन्धित चूर्णोंसे पृथक्-पृथक् वासित किया गया था॥ २१—२३॥

वहाँ अनेक स्थानोंपर रखे हुए नाना प्रकारके फूलों, सुवर्णमय कलशों, स्फटिकमणिके पात्रों तथा जाम्बूनदके बने हुए अन्यान्य कमण्डलुओंसे व्याप्त हुई वह पानभूमि बड़ी शोभा पा रही थी॥ २४½॥

चाँदी और सोनेके घड़ोंमें, जहाँ श्रेष्ठ पेय पदार्थ

१. अंगूर और अनारके रसमें मिश्री और मधु आदि मिलानेसे जो मधुर रस तैयार होता है, वह पतला हो तो 'राग' कहलाता है और गाढ़ा हो जाय तो 'खाण्डव' नाम धारण करता है। जैसा कि कहा है—

सितामध्वादिमधुरो द्राक्षादाडिमयो रसः। विरलश्चेत् कृतो रागः सान्द्रश्चेत् खाण्डवः स्मृतः॥

२. शर्करासे तैयार की हुई सुरा 'शर्करासव' कहलाती है।

३. मधुसे बनायी हुई 'मदिरा'।

४. महुआके फूलसे तथा अन्यान्य पुष्पोंके मकरन्दसे बनायी हुई सुराको 'पुष्पासव' कहते हैं।

५. द्राक्षा आदि फलोंके रससे तैयार की हुई 'सुरा'।

रखे थे, उस पानभूमिको कपिवर हनुमान्‌जीने वहाँ अच्छी तरह घूम-घूमकर देखा॥ २५½ ॥

महाकपि पवनकुमारने देखा, वहाँ मदिरासे भरे हुए सोने और मणियोंके भिन्न-भिन्न पात्र रखे गये हैं॥ २६½ ॥

किसी घड़ेमें आधी मदिरा शेष थी तो किसी घड़ेकी सारी-की-सारी पी ली गयी थी तथा किन्हीं-किन्हीं घड़ोंमें रखे हुए मद्य सर्वथा पीये नहीं गये थे। हनुमान्‌जीने उन सबको देखा॥ २७½ ॥

कहीं नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ और कहीं पीनेकी वस्तुएँ अलग-अलग रखी गयी थीं और कहीं उनमेंसे आधी-आधी सामग्री ही बची थी। उन सबको देखते हुए वे वहाँ सर्वत्र विचरने लगे॥ २८½ ॥

उस अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी बहुत-सी शय्याएँ सूनी पड़ी थीं और कितनी ही सुन्दरियाँ एक ही जगह एक-दूसरीका आलिंगन किये सो रही थीं॥ २९ ॥

निद्राके बलसे पराजित हुई कोई अबला दूसरी स्त्रीका वस्त्र उतारकर उसे धारण किये उसके पास जा उसीका आलिंगन करके सो गयी थी॥ ३० ॥

उनकी साँसकी हवासे उनके शरीरके विविध प्रकारके वस्त्र और पुष्पमाला आदि वस्तुएँ उसी तरह धीरे-धीरे हिल रही थीं, जैसे धीमी-धीमी वायुके चलनेसे हिला करती हैं॥ ३१ ॥

उस समय पुष्पकविमानमें शीतल चन्दन, मद्य, मधुरस, विविध प्रकारकी माला, भाँति-भाँतिके पुष्प, स्नान-सामग्री, चन्दन और धूपकी अनेक प्रकारकी गन्धका भार वहन करती हुई सुगन्धित वायु सब ओर प्रवाहित हो रही थी॥ ३२-३३½ ॥

उस राक्षसराजके भवनमें कोई साँवली, कोई गोरी, कोई काली और कोई सुवर्णके समान कान्तिवाली सुन्दरी युवतियाँ सो रही थीं॥ ३४½ ॥

निद्राके वशमें होनेके कारण उनका काममोहित रूप मुँदे हुए मुखवाले कमलपुष्पोंके समान जान पड़ता था॥ ३५ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी कपिवर हनुमान्‌ने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला तो भी वहाँ उन्हें जनकनन्दिनी सीताका दर्शन नहीं हुआ॥ ३६ ॥

उन सोती हुई स्त्रियोंको देखते-देखते महाकपि हनुमान् धर्मके भयसे शंकित हो उठे। उनके हृदयमें बड़ा भारी संदेह उपस्थित हो गया॥ ३७ ॥

वे सोचने लगे कि 'इस तरह गाढ़ निद्रामें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना अच्छा नहीं है। यह तो मेरे धर्मका अत्यन्त विनाश कर डालेगा॥ ३८ ॥

'मेरी दृष्टि अबतक कभी परायी स्त्रियोंपर नहीं पड़ी थी। यहीं आनेपर मुझे परायी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले इस पापी रावणका भी दर्शन हुआ है (ऐसे पापीको देखना भी धर्मका लोप करनेवाला होता है)'॥ ३९ ॥

तदनन्तर मनस्वी हनुमान्‌जीके मनमें एक दूसरी विचारधारा उत्पन्न हुई। उनका चित्त अपने लक्ष्यमें सुस्थिर था; अतः यह नयी विचारधारा उन्हें अपने कर्तव्यका ही निश्चय करानेवाली थी॥ ४० ॥

(वे सोचने लगे—) 'इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निःशंक सो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन सबको अच्छी तरह देखा है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ है॥ ४१ ॥

'सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शुभ और अशुभ अवस्थाओंमें लगनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है; किंतु मेरा वह मन पूर्णतः स्थिर है (उसका कहीं राग या द्वेष नहीं है; इसलिये मेरा यह परस्त्री-दर्शन धर्मका लोप करनेवाला नहीं हो सकता)॥ ४२ ॥

'विदेहनन्दिनी सीताको दूसरी जगह मैं ढूँढ़ भी तो नहीं सकता था; क्योंकि स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय उन्हें स्त्रियोंके ही बीचमें देखा जाता है॥ ४३ ॥

'जिस जीवकी जो जाति होती है, उसीमें उसे खोजा जाता है। खोयी हुई युवती स्त्रीको हरिनियोंके बीचमें नहीं ढूँढ़ा जा सकता है॥ ४४ ॥

'अतः मैंने रावणके इस सारे अन्तःपुरमें शुद्ध हृदयसे ही अन्वेषण किया है; किंतु यहाँ जानकीजी नहीं दिखायी देती हैं'॥ ४५ ॥

अन्तःपुरका निरीक्षण करते हुए पराक्रमी हनुमान्‌ने देवताओं, गन्धर्वों और नागोंकी कन्याओंको वहाँ देखा, किंतु जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा॥ ४६ ॥

दूसरी सुन्दरियोंको देखते हुए वीर वानर हनुमान्‌ने जब वहाँ सीताको नहीं देखा, तब वे वहाँसे हटकर अन्यत्र जानेको उद्यत हुए॥ ४७ ॥

फिर तो श्रीमान् पवनकुमारने उस पानभूमिको छोड़कर अन्य सब स्थानोंमें उन्हें बड़े यत्नका आश्रय लेकर खोजना आरम्भ किया॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

सीताके मरणकी आशंकासे हनुमान्‌जीका शिथिल होना, फिर उत्साहका आश्रय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना

उस राजभवनके भीतर स्थित हुए हनुमान्‌जी सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो क्रमशः लतामण्डपोंमें, चित्रशालाओंमें तथा रात्रिकालिक विश्रामगृहोंमें गये; परंतु वहाँ भी उन्हें परम सुन्दरी सीताका दर्शन नहीं हुआ॥ १॥

रघुनन्दन श्रीरामकी प्रियतमा सीता जब वहाँ भी दिखायी न दीं, तब वे महाकपि हनुमान् इस प्रकार चिन्ता करने लगे— 'निश्चय ही अब मिथिलेशकुमारी सीता जीवित नहीं हैं; इसीलिये बहुत खोजनेपर भी वे मेरे दृष्टिपथमें नहीं आ रही हैं॥ २॥

'सती-साध्वी सीता उत्तम आर्यमार्गपर स्थित रहनेवाली थीं। वे अपने शील और सदाचारकी रक्षामें तत्पर रही हैं; इसलिये निश्चय ही इस दुराचारी राक्षसराजने उन्हें मार डाला होगा॥ ३॥

'राक्षसराज रावणके यहाँ जो दास्यकर्म करनेवाली राक्षसियाँ हैं, उनके रूप बड़े बेडौल हैं। वे बड़ी विकट और विकराल हैं। उनकी कान्ति भी भयंकर है। उनके मुँह विशाल और आँखें भी बड़ी-बड़ी एवं भयानक हैं। उन सबको देखकर जनकराजनन्दिनीने भयके मारे प्राण त्याग दिये होंगे॥ ४॥

'सीताका दर्शन न होनेसे मुझे अपने पुरुषार्थका फल नहीं प्राप्त हो सका। इधर वानरोंके साथ सुदीर्घकालतक इधर-उधर भ्रमण करके मैंने लौटनेकी अवधि भी बिता दी है; अतः अब मेरा सुग्रीवके पास जानेका भी मार्ग बंद हो गया; क्योंकि वह वानर बड़ा बलवान् और अत्यन्त कठोर दण्ड देनेवाला है॥ ५॥

'मैंने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला, एक-एक करके रावणकी समस्त स्त्रियोंको भी देख लिया; किंतु अभीतक साध्वी सीताका दर्शन नहीं हुआ; अतः मेरा समुद्रलङ्घनका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया॥ ६॥

'जब मैं लौटकर जाऊँगा, तब सारे वानर मिलकर मुझसे क्या कहेंगे; वे पूछेंगे, वीर! वहाँ जाकर तुमने क्या किया है—यह मुझे बताओ॥ ७॥

'किंतु जनकनन्दिनी सीताको न देखकर मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। सुग्रीवके निश्चित किये हुए समयका उल्लङ्घन कर देनेपर अब मैं निश्चय ही आमरण उपवास करूँगा॥ ८॥

'बड़े-बूढ़े जाम्बवान् और युवराज अंगद मुझसे क्या कहेंगे? समुद्रके पार जानेपर अन्य वानर भी जब मुझसे मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे?'॥ ९॥

(इस प्रकार थोड़ी देरतक हताश-से होकर वे फिर सोचने लगे—) 'हताश न होकर उत्साहको बनाये रखना ही सम्पत्तिका मूल कारण है। उत्साह ही परम सुखका हेतु है; अतः मैं पुनः उन स्थानोंमें सीताकी खोज करूँगा, जहाँ अबतक अनुसन्धान नहीं किया गया था॥ १०॥

'उत्साह ही प्राणियोंको सर्वदा सब प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और वही उन्हें वे जो कुछ करते हैं उस कार्यमें सफलता प्रदान करता है॥ ११॥

'इसलिये अब मैं और भी उत्तम एवं उत्साह-पूर्वक प्रयत्नके लिये चेष्टा करूँगा। रावणके द्वारा सुरक्षित जिन स्थानोंको अबतक नहीं देखा था, उनमें भी पता लगाऊँगा॥ १२॥

'आपानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीड़ागृह, गृहोद्यानकी गलियाँ और पुष्पक आदि विमान—इन सबका तो मैंने चप्पा-चप्पा देख डाला (अब अन्यत्र खोज करूँगा)।' यह सोचकर उन्होंने पुनः खोजना आरम्भ किया॥ १३-१४॥

वे भूमिके भीतर बने हुए घरों (तहखानों)-में, चौराहोंपर बने हुए मण्डपोंमें तथा घरोंको लाँघकर उनसे थोड़ी ही दूरपर बने हुए विलास-भवनोंमें सीताकी खोज करने लगे। वे किसी घरके ऊपर चढ़ जाते, किसीसे नीचे कूद पड़ते, कहीं ठहर जाते और किसीको चलते-चलते ही देख लेते थे॥ १५॥

घरोंके दरवाजोंको खोल देते, कहीं किंवाड़ बंदकर देते, किसीके भीतर घुसकर देखते और फिर निकल आते थे। वे नीचे कूदते और ऊपर उछलते हुए-से सर्वत्र खोज करने लगे॥ १६॥

उन महाकपिने वहाँके सभी स्थानोंमें विचरण किया। रावणके अन्तःपुरमें कोई चार अंगुलका भी ऐसा स्थान

नहीं रह गया, जहाँ कपिवर हनुमान्‌जी न पहुँचे हों॥
उन्होंने परकोटेके भीतरकी गलियाँ, चौराहेके वृक्षोंके नीचे बनी हुई वेदियाँ, गड्ढे और पोखरियाँ—सबको छान डाला॥ १८॥

हनुमान्‌जीने जगह-जगह नाना प्रकारके आकारवाली, कुरूप और विकट राक्षसियाँ देखीं; किंतु वहाँ उन्हें जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ॥ १९॥

संसारमें जिनके रूप-सौन्दर्यकी कहीं तुलना नहीं थी ऐसी बहुत-सी विद्याधरियाँ भी हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें आयीं; परंतु वहाँ उन्हें श्रीरघुनाथजीको आनन्द प्रदान करनेवाली सीता नहीं दिखायी दीं॥ २०॥

हनुमान्‌जीने सुन्दर नितम्ब और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली बहुत-सी नागकन्याएँ भी वहाँ देखीं; किंतु जनककिशोरीका उन्हें दर्शन नहीं हुआ॥ २१॥

राक्षसराजके द्वारा नागसेनाको मथकर बलात् हरकर लायी हुई नागकन्याओंको तो पवनकुमारने वहाँ देखा; किंतु जानकीजी उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुईं॥ २२॥

महाबाहु पवनकुमार हनुमान्‌को दूसरी बहुत-सी सुन्दरियाँ दिखायी दीं; परंतु सीताजी उनके देखनेमें नहीं आयीं। इसलिये वे बहुत दुःखी हो गये॥ २३॥

उन वानरशिरोमणि वीरोंके उद्योग और अपने द्वारा किये गये समुद्रलंघनको व्यर्थ हुआ देखकर पवनपुत्र हनुमान् वहाँ पुनः बड़ी भारी चिन्तामें पड़ गये॥

उस समय वायुनन्दन हनुमान् विमानसे नीचे उतर आये और बड़ी चिन्ता करने लगे। शोकसे उनकी चेतनाशक्ति शिथिल हो गयी॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

सीताजीके नाशकी आशंकासे हनुमान्‌जीकी चिन्ता, श्रीरामको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनर्थकी सम्भावना देख हनुमान्‌जीका न लौटनेका निश्चय करके पुनः खोजनेका विचार करना और अशोकवाटिकामें ढूँढ़नेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना

वानरयूथपति हनुमान् विमानसे उतरकर महलके परकोटेपर चढ़ आये। वहाँ आकर वे मेघमालाके अंकमें चमकती हुई बिजलीके समान बड़े वेगसे इधर-उधर घूमने लगे*॥ १॥

रावणके सभी घरोंमें एक बार पुनः चक्कर लगाकर जब कपिवर हनुमान्‌जीने जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा, तब वे मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे—॥ २॥

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये कई बार लंकाको छान डाला; किंतु सर्वांगसुन्दरी विदेहनन्दिनी सीता मुझे कहीं नहीं दिखायी देती हैं॥ ३॥

'मैंने यहाँके छोटे तालाब, पोखरे, सरोवर, सरिताएँ, नदियाँ, पानीके आस-पासके जंगल तथा दुर्गम पहाड़—सब देख डाले। इस नगरके आस-पासकी सारी भूमि खोज डाली; किंतु कहीं भी मुझे जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ॥ ४½॥

'गृध्रराज सम्पातिने तो सीताजीको यहाँ रावणके महलमें ही बताया था। फिर भी न जाने क्यों वे यहाँ दिखायी नहीं देती हैं॥ ५॥

'क्या रावणके द्वारा बलपूर्वक हरकर लायी हुई विदेह-कुलनन्दिनी मिथिलेशकुमारी जनकदुलारी सीता कभी विवश होकर रावणकी सेवामें उपस्थित हो सकती हैं (यह असम्भव है)॥ ६॥

'मैं तो समझता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे भयभीत हो वह राक्षस जब सीताको लेकर शीघ्रतापूर्वक आकाशमें उछला है, उस समय कहीं बीचमें ही वे छूटकर गिर पड़ी हों॥ ७॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि जब आर्या सीता सिद्धसेवित आकाशमार्गसे ले जायी जाती रही हों, उस समय समुद्रको देखकर भयके मारे उनका हृदय ही फटकर नीचे गिर पड़ा हो॥ ८॥

---

* घनमालामें विद्युत्‌की उपमासे यह ध्वनित होता है कि रावणका वह परकोटा इन्द्रनीलमणिका बना हुआ था और उसपर सुवर्णके समान गौर कान्तिवाले हनुमान्‌जी विद्युत्‌के समान प्रतीत होते थे।

'अथवा यह भी मालूम होता है कि रावणके प्रबल वेग और उसकी भुजाओंके दृढ़ बन्धनसे पीड़ित होकर विशाललोचना आर्या सीताने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया है॥ ९॥

'ऐसा भी हो सकता है कि जिस समय रावण उन्हें समुद्रके ऊपर होकर ला रहा हो, उस समय जनककुमारी सीता छटपटाकर समुद्रमें गिर पड़ी हों। अवश्य ऐसा ही हुआ होगा॥ १०॥

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपने शीलकी रक्षामें तत्पर हुई किसी सहायक बन्धुकी सहायतासे वञ्चित तपस्विनी सीताको इस नीच रावणने ही खा लिया हो अथवा मनमें दुष्ट भावना रखनेवाली राक्षसराज रावणकी पत्नियोंने ही कजरारे नेत्रोंवाली साध्वी सीताको अपना आहार बना लिया होगा॥ ११-१२॥

'हाय! श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर तथा प्रफुल्ल कमलदलके सदृश नेत्रवाले मुखका चिन्तन करती हुई दयनीया सीता इस संसारसे चल बसीं॥ १३॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्यापुरी! इस प्रकार पुकार-पुकारकर बहुत विलाप करके मिथिलेशकुमारी विदेहनन्दिनी सीताने अपने शरीरको त्याग दिया होगा॥ १४॥

'अथवा मेरी समझमें यह आता है कि वे रावणके ही किसी गुप्त गृहमें छिपाकर रखी गयी हैं। हाय! वहाँ वह बाला पींजरेमें बन्द हुई मैनाकी तरह बारम्बार आर्तनाद करती होगी॥ १५॥

'जो जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, वे नील कमलके-से नेत्रोंवाली सुमध्यमा सीता रावणके अधीन कैसे हो सकती हैं?॥ १६॥

'जनककिशोरी सीता चाहे गुप्त गृहमें अदृश्य करके रखी गयी हों, चाहे समुद्रमें गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठी हों अथवा श्रीरामचन्द्रजीके विरहका कष्ट न सह सकनेके कारण उन्होंने मृत्युकी शरण ली हो, किसी भी दशामें श्रीरामचन्द्रजीको इस बातकी सूचना देना उचित न होगा; क्योंकि वे अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं॥

'इस समाचारके बतानेमें भी दोष है और न बतानेमें भी दोषकी सम्भावना है, ऐसी दशामें किस उपायसे काम लेना चाहिये ? मुझे तो बताना और न बताना—दोनों ही दुष्कर प्रतीत होते हैं॥ १८॥

'ऐसी दशामें जब कोई भी कार्य करना दुष्कर प्रतीत होता है, तब मेरे लिये इस समयके अनुसार क्या करना उचित होगा?' इन्हीं बातोंपर हनुमान्‌जी बारम्बार विचार करने लगे॥ १९॥

(उन्होंने फिर सोचा—) 'यदि मैं सीताजीको देखे बिना ही यहाँसे वानरराजकी पुरी किष्किन्धाको लौट जाऊँगा तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या रह जायगा?॥ २०॥

'फिर तो मेरा यह समुद्रलंघन, लंकामें प्रवेश और राक्षसोंको देखना सब व्यर्थ हो जायगा॥ २१॥

'किष्किन्धामें पहुँचनेपर मुझसे मिलकर सुग्रीव, दूसरे-दूसरे वानर तथा वे दोनों दशरथराजकुमार भी क्या कहेंगे?॥ २२॥

'यदि वहाँ जाकर मैं श्रीरामचन्द्रजीसे यह कठोर बात कह दूँ कि मुझे सीताका दर्शन नहीं हुआ तो वे प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ २३॥

'सीताजीके विषयमें ऐसे रूखे, कठोर, तीखे और इन्द्रियोंको संताप देनेवाले दुर्वचनको सुनकर वे कदापि जीवित नहीं रहेंगे॥ २४॥

'उन्हें संकटमें पड़कर प्राणोंके परित्यागका संकल्प करते देख उनके प्रति अत्यन्त अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् लक्ष्मण भी जीवित नहीं रहेंगे॥ २५॥

'अपने इन दो भाइयोंके विनाशका समाचार सुनकर भरत भी प्राण त्याग देंगे और भरतकी मृत्यु देखकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे॥ २६॥

'इस प्रकार चारों पुत्रोंकी मृत्यु हुई देख कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी—ये तीनों माताएँ भी निस्संदेह प्राण दे देंगी॥ २७॥

'कृतज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी जब श्रीरामचन्द्रजीको ऐसी अवस्थामें देखेंगे तो स्वयं भी प्राणविसर्जन कर देंगे॥ २८॥

'तत्पश्चात् पतिशोकसे पीड़ित हो दुःखितचित्त, दीन, व्यथित और आनन्दशून्य हुई तपस्विनी रुमा भी जान दे देगी॥ २९॥

'फिर तो रानी तारा भी जीवित नहीं रहेंगी। वे वालीके विरहजनित दुःखसे तो पीड़ित थीं ही, इस नूतन शोकसे कातर हो शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायँगी॥ ३०॥

'माता-पिताके विनाश और सुग्रीवके मरणजनित संकटसे पीड़ित हो कुमार अंगद भी अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ ३१॥

'तदनन्तर स्वामीके दुःखसे पीड़ित हुए सारे वानर अपने हाथों और मुक्कोंसे सिर पीटने लगेंगे। यशस्वी वानरराजने सान्त्वनापूर्ण वचनों और दान-मानसे जिनका

लालन-पालन किया था, वे वानर अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥ ३२-३३॥

'ऐसी अवस्थामें शेष वानर वनों, पर्वतों और गुफाओंमें एकत्र होकर फिर कभी क्रीड़ा-विहारका आनन्द नहीं लेंगे॥ ३४॥

'अपने राजाके शोकसे पीड़ित हो सब वानर अपने पुत्र, स्त्री और मन्त्रियोंसहित पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे सम अथवा विषम स्थानोंमें गिरकर प्राण दे देंगे॥

'अथवा सारे विष पी लेंगे या फाँसी लगा लेंगे या जलती आगमें प्रवेश कर जायेंगे। उपवास करने लगेंगे अथवा अपने ही शरीरमें छुरा भोंक लेंगे॥ ३६॥

'मेरे वहाँ जानेपर मैं समझता हूँ बड़ा भयंकर आर्तनाद होने लगेगा। इक्ष्वाकुकुलका नाश और वानरोंका भी विनाश हो जायगा॥ ३७॥

'इसलिये मैं यहाँसे किष्किन्धापुरीको तो नहीं जाऊँगा। मिथिलेशकुमारी सीताको देखे बिना मैं सुग्रीवका भी दर्शन नहीं कर सकूँगा॥ ३८॥

'यदि मैं यहीं रहूँ और वहाँ न जाऊँ तो मेरी आशा लगाये वे दोनों धर्मात्मा महारथी बन्धु प्राण धारण किये रहेंगे और वे वेगशाली वानर भी जीवित रहेंगे॥ ३९॥

'जानकीजीका दर्शन न मिलनेपर मैं यहाँ वानप्रस्थी हो जाऊँगा। मेरे हाथपर अपने-आप जो फल आदि खाद्य वस्तु प्राप्त हो जायगी, उसीको खाकर रहूँगा या परेच्छासे मेरे मुँहमें जो फल आदि खाद्य वस्तु पड़ जायगी, उसीसे निर्वाह करूँगा तथा शौच, संतोष आदि नियमोंके पालनपूर्वक वृक्षके नीचे निवास करूँगा॥ ४०॥

'अथवा सागरतटवर्ती स्थानमें, जहाँ फल-मूल और जलकी अधिकता होती है, मैं चिता बनाकर जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा॥ ४१॥

'अथवा आमरण उपवासके लिये बैठकर लिंगशरीरधारी जीवात्माका शरीरसे वियोग करानेके प्रयत्नमें लगे हुए मेरे शरीरको कौवे तथा हिंसक जन्तु अपना आहार बना लेंगे॥ ४२॥

'यदि मुझे जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ तो मैं खुशी-खुशी जल-समाधि ले लूँगा। मेरे विचारसे इस तरह जल-प्रवेश करके परलोकगमन करना ऋषियोंकी दृष्टिमें भी उत्तम ही है॥ ४३॥

'जिसका प्रारम्भ शुभ है, ऐसी सुभगा, यशस्विनी और मेरी कीर्तिमालारूपा यह दीर्घ रात्रि भी सीताजीको देखे बिना ही बीत चली॥ ४४॥

'अथवा अब मैं नियमपूर्वक वृक्षके नीचे निवास करनेवाला तपस्वी हो जाऊँगा; किंतु उस असितलोचना सीताको देखे बिना यहाँसे कदापि नहीं लौटूँगा॥ ४५॥

'यदि सीताका पता लगाये बिना ही मैं लौट जाऊँ तो समस्त वानरोंसहित अंगद जीवित नहीं रहेंगे॥ ४६॥

'इस जीवनका नाश कर देनेमें बहुत-से दोष हैं। जो पुरुष जीवित रहता है, वह कभी-न-कभी अवश्य कल्याणका भागी होता है; अतः मैं इन प्राणोंको धारण किये रहूँगा। जीवित रहनेपर अभीष्ट वस्तु अथवा सुखकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है'॥ ४७॥

इस तरह मनमें अनेक प्रकारके दुःख धारण किये कपिकुञ्जर हनुमान्‌जी शोकका पार न पा सके॥ ४८॥

तदनन्तर धैर्यवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने पराक्रमका सहारा लेकर सोचा—'अथवा महाबली दशमुख रावणका ही वध क्यों न कर डालूँ। भले ही सीताका अपहरण हो गया हो, इस रावणको मार डालनेसे उस वैरका भरपूर बदला सध जायगा॥ ४९॥

'अथवा इसे उठाकर समुद्रके ऊपर-ऊपरसे ले जाऊँ और जैसे पशुपति (रुद्र या अग्नि)-को पशु अर्पित किया जाय, उसी प्रकार श्रीरामके हाथमें इसको सौंप दूँ'॥ ५०॥

इस प्रकार सीताजीको न पाकर वे चिन्तामें निमग्न हो गये। उनका मन सीताके ध्यान और शोकमें डूब गया। फिर वे वानरवीर इस प्रकार विचार करने लगे—॥ ५१॥

'जबतक मैं यशस्विनी श्रीराम-पत्नी सीताका दर्शन न कर लूँगा, तबतक इस लंकापुरीमें बारंबार उनकी खोज करता रहूँगा॥ ५२॥

'यदि सम्पातिके कहनेसे भी मैं श्रीरामको यहाँ बुला ले आऊँ तो अपनी पत्नीको यहाँ न देखनेपर श्रीरघुनाथजी समस्त वानरोंको जलाकर भस्म कर देंगे॥ ५३॥

'अतः यहीं नियमित आहार और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक निवास करूँगा। मेरे कारण वे समस्त नर और वानर नष्ट न हों॥ ५४॥

'इधर यह बहुत बड़ी अशोकवाटिका है, इसके भीतर बड़े-बड़े वृक्ष हैं। इसमें मैंने अभीतक अनुसंधान नहीं किया है, अतः अब इसीमें चलकर ढूँढ़ूँगा॥ ५५॥

'राक्षसोंके शोकको बढ़ानेवाला मैं यहाँसे वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुद्गणोंको नमस्कार करके अशोकवाटिकामें चलूँगा॥ ५६॥

'वहाँ समस्त राक्षसोंको जीतकर जैसे तपस्वीको सिद्धि प्रदान की जाती है, इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें इक्ष्वाकुकुलको आनन्दित करनेवाली देवी सीताको सौंप दूँगा'॥ ५७॥

इस प्रकार दो घड़ीतक सोच-विचारकर चिन्तासे शिथिल इन्द्रियवाले महाबाहु पवनकुमार हनुमान् सहसा उठकर खड़े हो गये (और देवताओंको नमस्कार करते हुए बोले—) 'लक्ष्मणसहित श्रीरामको नमस्कार है। जनकनन्दिनी सीता देवीको भी नमस्कार है। रुद्र, इन्द्र, यम और वायु देवताको नमस्कार है तथा चन्द्रमा, अग्नि एवं मरुद्‌गणोंको भी नमस्कार है'॥ ५८-५९॥

इस प्रकार उन सबको तथा सुग्रीवको भी नमस्कार करके पवनकुमार हनुमान्‌जी सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करके अशोकवाटिकामें जानेको उद्यत हुए॥ ६०॥

उन वानरवीर पवनकुमारने पहले मनके द्वारा ही उस सुन्दर अशोक-वाटिकामें जाकर भावी कर्तव्यका इस प्रकार चिन्तन किया॥ ६१॥

'वह पुण्यमयी अशोकवाटिका सींचने-कोड़ने आदि सब प्रकारके संस्कारोंसे सँवारी गयी है। वह दूसरे-दूसरे वनोंसे भी घिरी हुई है; अतः उसकी रक्षाके लिये वहाँ निश्चय ही बहुत-से राक्षस तैनात किये गये होंगे॥ ६२॥

'राक्षसराजके नियुक्त किये हुए रक्षक अवश्य ही वहाँके वृक्षोंकी रक्षा करते होंगे; इसलिये जगत्‌के प्राणस्वरूप भगवान् वायुदेव भी वहाँ अधिक वेगसे नहीं बहते होंगे॥ ६३॥

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि तथा रावणसे अदृश्य रहनेके लिये अपने शरीरको संकुचित करके छोटा बना लिया है। मुझे इस कार्यमें ऋषियोंसहित समस्त देवता सिद्धि—सफलता प्रदान करें॥ ६४॥

'स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, अन्य देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु तथा वज्रधारी इन्द्र भी मुझे सफलता प्रदान करें॥ ६५॥

'पाशधारी वरुण, सोम, आदित्य, महात्मा अश्विनी-कुमार, समस्त मरुद्‌गण, सम्पूर्ण भूत और भूतोंके अधिपति तथा और भी जो मार्गमें दीखनेवाले एवं न दीखनेवाले देवता हैं, वे सब मुझे सिद्धि प्रदान करेंगे॥ ६६-६७॥

'जिसकी नाक ऊँची और दाँत सफेद हैं, जिसमें चेचक आदिके दाग नहीं हैं, जहाँ पवित्र मुसकानकी छटा छायी रहती है, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुशोभित होते हैं तथा जो निष्कलंक कलाधरके तुल्य कमनीय कान्तिसे युक्त है, वह आर्या सीताका मुख मुझे कब दिखायी देगा ?॥ ६८॥

'इस क्षुद्र, नीच, नृशंसरूपधारी और अत्यन्त दारुण होनेपर भी अलंकारयुक्त विश्वसनीय वेष धारण करनेवाले रावणने उस तपस्विनी अबलाको बलात् अपने अधीन कर लिया है। अब किस प्रकार वह मेरे दृष्टिपथमें आ सकती हैं?'॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शोभा देखना तथा एक अशोकवृक्षपर छिपे रहकर वहींसे सीताका अनुसन्धान करना

महातेजस्वी हनुमान्‌जी एक मुहूर्ततक इसी प्रकार विचार करते रहे। तत्पश्चात् मन-ही-मन सीताजीका ध्यान करके वे रावणके महलसे कूद पड़े और अशोकवाटिकाकी चहारदीवारीपर चढ़ गये॥ १॥

उस चहारदीवारीपर बैठे हुए महाकपि हनुमान्‌जीके सारे अंगोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया। उन्होंने वसन्तके आरम्भमें वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष देखे, जिनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे थे॥ २॥

वहाँ साल, अशोक, निम्ब और चम्पाके वृक्ष खूब खिले हुए थे। बहुवार, नागकेसर और बन्दरके मुँहकी भाँति लाल फल देनेवाले आम भी पुष्प एवं मञ्जरियोंसे सुशोभित हो रहे थे। अमराइयोंसे युक्त वे सभी वृक्ष शत-शत लताओंसे आवेष्टित थे। हनुमान्‌जी प्रत्यञ्चासे छूटे हुए बाणके समान उछले और उन वृक्षोंकी वाटिकामें जा पहुँचे॥ ३-४॥

वह विचित्र वाटिका सोने और चाँदीके समान वर्णवाले वृक्षोंद्वारा सब ओरसे घिरी हुई थी। उसमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे, जिससे वह सारी

वाटिका गूँज रही थी। उसके भीतर प्रवेश करके बलवान् हनुमान्‌जीने उसका निरीक्षण किया। भाँति-भाँतिके विहंगमों और मृगसमूहोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। वह विचित्र काननोंसे अलंकृत थी और नवोदित सूर्यके समान अरुण रंगकी दिखायी देती थी॥

फूलों और फलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त हुई उस अशोकवाटिकाका मतवाले कोकिल और भ्रमर सेवन करते थे॥ ७॥

वह वाटिका ऐसी थी, जहाँ जानेसे हर समय लोगोंके मनमें प्रसन्नता होती थी। मृग और पक्षी मदमत्त हो उठते थे। मतवाले मोरोंका कलनाद वहाँ निरन्तर गूँजता रहता था और नाना प्रकारके पक्षी वहाँ निवास करते थे॥ ८॥

उस वाटिकामें सती-साध्वी सुन्दरी राजकुमारी सीताकी खोज करते हुए वानरवीर हनुमान्‌ने घोंसलोंमें सुखपूर्वक सोये हुए पक्षियोंको जगा दिया॥ ९॥

उड़ते हुए विहंगमोंके पंखोंकी हवा लगनेसे वहाँके वृक्ष अनेक प्रकारके रंग-बिरंगे फूलोंकी वर्षा करने लगे॥

उस समय पवनकुमार हनुमान्‌जी उन फूलोंसे आच्छादित होकर ऐसी शोभा पाने लगे, मानो उस अशोकवनमें कोई फूलोंका बना हुआ पहाड़ शोभा पा रहा हो॥ ११॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ते और वृक्षसमूहोंमें घूमते हुए कपिवर हनुमान्‌जीको देखकर समस्त प्राणी एवं राक्षस ऐसा मानने लगे कि साक्षात् ऋतुराज वसन्त ही यहाँ वानरवेशमें विचर रहा है॥ १२॥

वृक्षोंसे झड़कर गिरे हुए भाँति-भाँतिके फूलोंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि फूलोंके शृंगारसे विभूषित हुई युवती स्त्रीके समान शोभा पाने लगी॥ १३॥

उस समय उन वेगशाली वानरवीरके द्वारा वेगपूर्वक बारंबार हिलाये हुए वे वृक्ष विचित्र पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे॥ १४॥

इस प्रकार डालियोंके पत्ते झड़ जाने तथा फल-फूल और पल्लवोंके टूटकर बिखर जानेसे नंग-धड़ंग दिखायी देनेवाले वे वृक्ष उन हारे हुए जुआरियोंके समान जान पड़ते थे, जिन्होंने अपने गहने और कपड़े भी दावँपर रख दिये हों॥ १५॥

वेगशाली हनुमान्‌जीके हिलाये हुए वे फलशाली श्रेष्ठ वृक्ष तुरंत ही अपने फल-फूल और पत्तोंका परित्याग कर देते थे॥ १६॥

पवनपुत्र हनुमान्‌द्वारा कम्पित किये गये वे वृक्ष फल-फूल आदिके न होनेसे केवल डालियोंके आश्रय बने हुए थे; पक्षियोंके समुदाय भी उन्हें छोड़कर चल दिये थे। उस अवस्थामें वे सब-के-सब प्राणिमात्रके लिये अगम्य (असेवनीय) हो गये थे॥ १७॥

जिसके केश खुल गये हैं, अंगराग मिट गये हैं, सुन्दर दन्तावलीसे युक्त अधर-सुधाका पान कर लिया गया है तथा जिसके कतिपय अंग नखक्षत एवं दन्तक्षतसे उपलक्षित हो रहे हैं, प्रियतमके उपभोगमें आयी हुई उस युवतीके समान ही उस अशोकवाटिकाकी भी दशा हो रही थी। हनुमान्‌जीके हाथ-पैर और पूँछसे रौंदी जा चुकी थी तथा उसके अच्छे-अच्छे वृक्ष टूटकर गिर गये थे; इसलिये वह श्रीहीन हो गयी थी॥ १८-१९॥

जैसे वायु वर्षा-ऋतुमें अपने वेगसे मेघसमूहोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार कपिवर हनुमान्‌ने वहाँ फैली हुई विशाल लता-वल्लरियोंके वितान वेगपूर्वक तोड़ डाले॥ २०॥

वहाँ विचरते हुए उन वानरवीरने पृथक्-पृथक् ऐसी मनोरम भूमियोंका दर्शन किया, जिनमें मणि, चाँदी एवं सोने जड़े गये थे॥ २१॥

उस वाटिकामें उन्होंने जहाँ-तहाँ विभिन्न आकारोंकी बावड़ियाँ देखीं, जो उत्तम जलसे भरी हुईं और मणिमय सोपानोंसे युक्त थीं। उनके भीतर मोती और मूँगोंकी बालुकाएँ थीं। जलके नीचेकी फर्श स्फटिक मणिकी बनी हुई थी और उन बावड़ियोंके तटोंपर तरह-तरहके विचित्र सुवर्णमय वृक्ष शोभा दे रहे थे॥ २२-२३॥

उनमें खिले हुए कमलोंके वन और चक्रवाकोंके जोड़े शोभा बढ़ा रहे थे तथा पपीहा, हंस और सारसोंके कलनाद गूँज रहे थे॥ २४॥

अनेकानेक विशाल, तटवर्ती वृक्षोंसे सुशोभित, अमृतके समान मधुर जलसे पूर्ण तथा सुखदायिनी सरिताएँ चारों ओरसे उन बावड़ियोंका सदा संस्कार करती थीं (उन्हें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण बनाये रखती थीं)॥ २५॥

उनके तटोंपर सैकड़ों प्रकारकी लताएँ फैली हुई थीं। खिले हुए कल्पवृक्षोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा था। उनके जल नाना प्रकारकी झाड़ियोंसे ढके हुए थे तथा बीच-बीचमें खिले हुए कनेरके वृक्ष गवाक्षकी-सी शोभा पाते थे॥ २६॥

फिर वहाँ कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने एक मेघके समान

काला और ऊँचे शिखरोंवाला पर्वत देखा, जिसकी चोटियाँ बड़ी विचित्र थीं। उसके चारों ओर दूसरे-दूसरे भी बहुत-से पर्वत-शिखर शोभा पाते थे। उसमें बहुत-सी पत्थरकी गुफाएँ थीं और उस पर्वतपर अनेकानेक वृक्ष उगे हुए थे। वह पर्वत संसारभरमें बड़ा रमणीय था॥

कपिवर हनुमान्ने उस पर्वतसे गिरी हुई एक नदी देखी, जो प्रियतमके अंकसे उछलकर गिरी हुई प्रियतमाके समान जान पड़ती थी॥ २९॥

जिनकी डालियाँ नीचे झुककर पानीसे लग गयी थीं, ऐसे तटवर्ती वृक्षोंसे उस नदीकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो प्रियतमसे रूठकर अन्यत्र जाती हुई युवतीको उसकी प्यारी सखियाँ उसे आगे बढ़नेसे रोक रही हों॥ ३०॥

फिर उन महाकपिने देखा कि वृक्षोंकी उन डालियोंसे टकराकर उस नदीके जलका प्रवाह पीछेकी ओर मुड़ गया है। मानो प्रसन्न हुई प्रेयसी पुनः प्रियतमकी सेवामें उपस्थित हो रही हो॥ ३१॥

उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्ने बहुत-से कमलमण्डित सरोवर देखे, जिनमें नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे॥ ३२॥

उनके सिवा उन्होंने एक कृत्रिम तालाब भी देखा, जो शीतल जलसे भरा हुआ था। उसमें श्रेष्ठ मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं और वह मोतियोंकी बालुकाराशिसे सुशोभित था॥ ३३॥

उस अशोकवाटिकामें विश्वकर्माके बनाये हुए बड़े-बड़े महल और कृत्रिम कानन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। नाना प्रकारके मृगसमूहोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। उस वाटिकामें विचित्र वन-उपवन शोभा दे रहे थे॥ ३४½॥

वहाँ जो कोई भी वृक्ष थे, वे सब फल-फूल देनेवाले थे, छत्रकी भाँति घनी छाया किये रहते थे। उन सबके नीचे चाँदीकी और उसके ऊपर सोनेकी वेदियाँ बनी हुई थीं॥ ३५½॥

तदनन्तर महाकपि हनुमान्ने एक सुवर्णमयी शिंशपा (अशोक)-का वृक्ष देखा, जो बहुत-से लतावितानों और अगणित पत्तोंसे व्याप्त था। वह वृक्ष भी सब ओरसे सुवर्णमयी वेदिकाओंसे घिरा था॥ ३६-३७॥

इसके सिवा उन्होंने और भी बहुत-से खुले मैदान, पहाड़ी झरने और अग्निके समान दीप्तिमान् सुवर्णमय वृक्ष देखे॥ ३८॥

उस समय वीर महाकपि हनुमान्जीने सुमेरुके समान उन वृक्षोंकी प्रभाके कारण अपनेको भी सब ओरसे सुवर्णमय ही समझा॥ ३९॥

वे सुवर्णमय वृक्षसमूह जब वायुके झोंके खाकर हिलने लगते, तब उनसे सैकड़ों घुँघुरुओंके बजनेकी-सी मधुर ध्वनि होती थी। वह सब देखकर हनुमान्जीको बड़ा विस्मय हुआ। उन वृक्षोंकी डालियोंमें सुन्दर फूल खिले हुए थे और नये-नये अंकुर तथा पल्लव निकले हुए थे, जिससे वे बड़े सुन्दर दिखायी देते थे॥ ४०½॥

महान् वेगशाली हनुमान्जी पत्तोंसे हरी-भरी उस शिंशपापर यह सोचकर चढ़ गये कि 'मैं यहींसे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हुई उन विदेहनन्दिनी सीताको देखूँगा, जो दुःखसे आतुर हो इच्छानुसार इधर-उधर जाती-आती होंगी॥ ४१-४२॥

'दुरात्मा रावणकी यह अशोकवाटिका बड़ी ही रमणीय है। चन्दन, चम्पा और मौलसिरीके वृक्ष इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इधर यह पक्षियोंसे सेवित कमलमण्डित सरोवर भी बड़ा सुन्दर है। राजरानी जानकी इसके तटपर निश्चय ही आती होंगी॥ ४३-४४॥

'रघुनाथजीकी प्रियतमा राजरानी रामा सती-साध्वी जानकी वनमें घूमने-फिरनेमें बहुत कुशल हैं। वे अवश्य इधर आयेंगी॥ ४५॥

'अथवा इस वनकी विशेषताओंके ज्ञानमें निपुण मृग-शावकनयनी सीता आज यहाँ इस तालाबके तटवर्ती वनमें अवश्य पधारेंगी; क्योंकि वे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगकी चिन्तासे अत्यन्त दुबली हो गयी होंगी (और इस सुन्दर स्थानमें आनेसे उनकी चिन्ता कुछ कम हो सकेगी)॥ ४६॥

'सुन्दर नेत्रवाली देवी सीता भगवान् श्रीरामके विरह-शोकसे बहुत ही संतप्त होंगी। वनवासमें उनका सदा ही प्रेम रहा है, अतः वे वनमें विचरती हुई इधर अवश्य आयेंगी॥ ४७॥

'श्रीरामकी प्यारी पत्नी सती-साध्वी जनकनन्दिनी सीता पहले निश्चय ही वनवासी जन्तुओंसे सदा प्रेम करती रही होंगी। (इसलिये उनके लिये वनमें भ्रमण करना स्वाभाविक है, अतः यहाँ उनके दर्शनकी सम्भावना है ही)॥ ४८॥

'यह प्रातःकालकी संध्या (उपासना)-का समय है, इसमें मन लगानेवाली और सदा सोलह वर्षकी-सी

अवस्थामें रहनेवाली अक्षययौवना जनककुमारी सुन्दरी सीता संध्याकालिक उपासनाके लिये इस पुण्यसलिला नदीके तटपर अवश्य पधारेंगी॥ ४९॥

'जो राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीकी समादरणीया पत्नी हैं, उन शुभलक्षणा सीताके लिये यह सुन्दर अशोकवाटिका भी सब प्रकारसे अनुकूल ही है॥ ५०॥

'यदि चन्द्रमुखी सीता देवी जीवित हैं तो वे इस शीतल जलवाली सरिताके तटपर अवश्य पदार्पण करेंगी'॥

ऐसा सोचते हुए महात्मा हनुमान्जी नरेन्द्रपत्नी सीताके शुभागमनकी प्रतीक्षामें तत्पर हो सुन्दर फूलोंसे सुशोभित तथा घने पत्तेवाले उस अशोकवृक्षपर छिपे रहकर उस सम्पूर्ण वनपर दृष्टिपात करते रहे॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ सर्ग

वनकी शोभा देखते हुए हनुमान्जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर)-के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रसन्न होना

उस अशोकवृक्षपर बैठे-बैठे हनुमान्जी सम्पूर्ण वनको देखते और सीताको ढूँढ़ते हुए वहाँकी सारी भूमिपर दृष्टिपात करने लगे॥ १॥

वह भूमि कल्पवृक्षकी लताओं तथा वृक्षोंसे सुशोभित थी, दिव्य गन्ध तथा दिव्य रससे परिपूर्ण थी और सब ओरसे सजायी गयी थी॥ २॥

मृगों और पक्षियोंसे व्याप्त होकर वह भूमि नन्दनवनके समान शोभा पा रही थी, अट्टालिकाओं तथा राजभवनोंसे युक्त थी तथा कोकिल-समूहोंकी काकलीसे कोलाहलपूर्ण जान पड़ती थी॥ ३॥

सुवर्णमय उत्पल और कमलोंसे भरी हुई बावड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत-से आसन और कालीन वहाँ बिछे हुए थे। अनेकानेक भूमिगृह वहाँ शोभा पा रहे थे॥ ४॥

सभी ऋतुओंमें फूल देनेवाले और फलोंसे भरे हुए रमणीय वृक्ष उस भूमिको विभूषित कर रहे थे। खिले हुए अशोकोंकी शोभासे सूर्योदयकालकी छटा-सी छिटक रही थी॥ ५॥

पवनकुमार हनुमान्ने उस अशोकपर बैठे-बैठे ही उस दमकती हुई-सी वाटिकाको देखा। वहाँके पक्षी उस वाटिकाको बारंबार पत्रों और शाखाओंसे हीन कर रहे थे॥ ६॥

वृक्षोंसे झड़ते हुए सैकड़ों विचित्र पुष्प-गुच्छोंसे नीचेसे ऊपरतक मानो फूलसे बने हुए शोकनाशक अशोकोंसे, फूलोंके भारी भारसे झुककर पृथ्वीका स्पर्श-सा करते हुए खिले हुए कनेरोंसे तथा सुन्दर फूलवाले पलाशोंसे उपलक्षित वह भूभाग उनकी प्रभाके कारण सब ओरसे उद्दीप्त-सा हो रहा था॥ ७-८½॥

पुंनाग (श्वेत कमल या नागकेसर), छितवन, चम्पा तथा बहुवार आदि बहुत-से सुन्दर पुष्पवाले वृक्ष, जिनकी जड़ें बहुत मोटी थीं, वहाँ शोभा पा रहे थे॥

वहाँ सहस्त्रों अशोकके वृक्ष थे, जिनमेंसे कुछ तो सुवर्णके समान कान्तिमान् थे, कुछ आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रहे थे और कोई-कोई काले काजलकी-सी कान्तिवाले थे॥ १०½॥

वह अशोकवन देवोद्यान नन्दनके समान आनन्ददायी, कुबेरके चैत्ररथ वनके समान विचित्र तथा उन दोनोंसे भी बढ़कर अचिन्त्य, दिव्य एवं रमणीय शोभासे सम्पन्न था॥ ११½॥

वह पुष्परूपी नक्षत्रोंसे युक्त दूसरे आकाशके समान सुशोभित होता था तथा पुष्पमय सैकड़ों रत्नोंसे विचित्र शोभा पानेवाले पाँचवें समुद्रके समान जान पड़ता था॥ १२½॥

सब ऋतुओंमें फूल देनेवाले मनोरम गन्धयुक्त वृक्षोंसे भरा हुआ तथा भाँति-भाँतिके कलरव करनेवाले मृगों और पक्षियोंसे सुशोभित वह उद्यान बड़ा रमणीय प्रतीत होता था। वह अनेक प्रकारकी सुगन्धका भार वहन करनेके कारण पवित्र गन्धसे युक्त और मनोहर जान पड़ता था। दूसरे गिरिराज गन्धमादनके समान उत्तम सुगन्धसे व्याप्त था॥ १३-१४½॥

उस अशोकवाटिकामें वानर-शिरोमणि हनुमान्ने थोड़ी ही दूरपर एक गोलाकार ऊँचा मन्दिर देखा, जिसके भीतर एक हजार खंभे लगे हुए थे। वह मन्दिर कैलास पर्वतके समान श्वेत वर्णका था। उसमें मूँगेकी

सीढ़ियाँ बनी थीं तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनायी गयी थीं। वह निर्मल प्रासाद अपनी शोभासे देदीप्यमान-सा हो रहा था। दर्शकोंकी दृष्टिमें चकाचौंध-सा पैदा कर देता था और बहुत ऊँचा होनेके कारण आकाशमें रेखा खींचता-सा जान पड़ता था॥ १५—१७½ ॥

वह चैत्यप्रासाद (मन्दिर) देखनेके अनन्तर उनकी दृष्टि वहाँ एक सुन्दरी स्त्रीपर पड़ी, जो मलिन वस्त्र धारण किये राक्षसियोंसे घिरी हुई बैठी थी। वह उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल और दीन दिखायी देती थी तथा बारंबार सिसक रही थी। शुक्लपक्षके आरम्भमें चन्द्रमाकी कला जैसी निर्मल और कृश दिखायी देती है, वैसी ही वह भी दृष्टिगोचर होती थी॥ १८-१९ ॥

धुँधली-सी स्मृतिके आधारपर कुछ-कुछ पहचाने जानेवाले अपने रूपसे वह सुन्दर प्रभा बिखेर रही थी और धूएँसे ढकी हुई अग्निकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी॥ २० ॥

एक ही पीले रंगके पुराने रेशमी वस्त्रसे उसका शरीर ढका हुआ था। वह मलिन, अलंकारशून्य होनेके कारण कमलोंसे रहित पुष्करिणीके समान श्रीहीन दिखायी देती थी॥ २१ ॥

वह तपस्विनी मंगलग्रहसे आक्रान्त रोहिणीके समान शोकसे पीड़ित, दुःखसे संतप्त और सर्वथा क्षीणकाय हो रही थी॥ २२ ॥

उपवाससे दुर्बल हुई उस दुःखिया नारीके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वह शोक और चिन्तामें मग्न हो दीन दशामें पड़ी हुई थी एवं निरन्तर दुःखमें ही डूबी रहती थी॥ २३ ॥

वह अपने प्रियजनोंको तो देख नहीं पाती थी। उसकी दृष्टिके समक्ष सदा राक्षसियोंका समूह ही बैठा रहता था। जैसे कोई मृगी अपने यूथसे बिछुड़कर कुत्तोंके झुंडसे घिर गयी हो, वही दशा उसकी भी हो रही थी॥ २४ ॥

काली नागिनके समान कटिसे नीचेतक लटकी हुई एकमात्र काली वेणीके द्वारा उपलक्षित होनेवाली वह नारी बादलोंके हट जानेपर नीली वनश्रेणीसे घिरी हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होती थी॥ २५ ॥

वह सुख भोगनेके योग्य थी, किंतु दुःखसे संतप्त हो रही थी। इसके पहले उसे संकटोंका कोई अनुभव नहीं था। उस विशाल नेत्रोंवाली, अत्यन्त मलिन और क्षीणकाय अबलाका अवलोकन करके युक्तियुक्त कारणोंद्वारा हनुमान्‌जीने यह अनुमान किया कि हो-न-हो यही सीता है॥ २६½ ॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वह राक्षस जब सीताजीको हरकर ले जा रहा था, उस दिन जिस रूपमें उनका दर्शन हुआ था, कल्याणी नारी भी वैसे ही रूपसे युक्त दिखायी देती है॥ २७½ ॥

देवी सीताका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था। उनकी भौंहें बड़ी सुन्दर थीं। दोनों स्तन मनोहर और गोलाकार थे। वे अपनी अंगकान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार दूर किये देती थीं॥ २८½ ॥

उनके केश काले-काले और ओष्ठ बिम्बफलके समान लाल थे। कटिभाग बहुत ही सुन्दर था। सारे अंग सुडौल और सुगठित थे॥ २९ ॥

कमलनयनी सीता कामदेवकी प्रेयसी रतिके समान सुन्दरी थीं, पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान समस्त जगत्‌के लिये प्रिय थीं। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर था। वे नियमपरायणा तापसीके समान भूमिपर बैठी थीं। यद्यपि वे स्वभावसे ही भीरु और चिन्ताके कारण बारंबार लंबी साँस खींचती थीं तो भी दूसरोंके लिये नागिनके समान भयंकर थीं॥ ३०-३१ ॥

वे विस्तृत महान् शोकजालसे आच्छादित होनेके कारण विशेष शोभा नहीं पा रही थीं। धूएँके समूहसे मिली हुई अग्निशिखाके समान दिखायी देती थीं॥ ३२ ॥

वे संदिग्ध अर्थवाली स्मृति, भूतलपर गिरी हुई ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, भग्न हुई आशा, विघ्नयुक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि और मिथ्या कलंकसे भ्रष्ट हुई कीर्तिके समान जान पड़ती थीं॥ ३३-३४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें रुकावट पड़ जानेसे उनके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी। राक्षसोंसे पीड़ित हुई मृग-शावकनयनी अबला सीता असहायकी भाँति इधर-उधर देख रही थीं॥ ३५ ॥

उनका मुख प्रसन्न नहीं था। उसपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और नेत्रोंकी पलकें काली एवं टेढ़ी दिखायी देती थीं। वे बारंबार लंबी साँस खींचती थीं॥ ३६ ॥

उनके शरीरपर मैल जम गयी थी। वे दीनताकी मूर्ति बनी बैठी थीं तथा शृंगार और भूषण धारण करनेके योग्य होनेपर भी अलंकारशून्य थीं, अतः काले बादलोंसे ढकी हुई चन्द्रमाकी प्रभाके समान जान पड़ती थीं॥ ३७ ॥

अभ्यास न करनेसे शिथिल (विस्मृत) हुई विद्याके समान क्षीण हुई सीताको देखकर हनुमान्‌जीकी बुद्धि संदेहमें पड़ गयी॥ ३८॥

अलंकार तथा स्नान-अनुलेपन आदि अंगसंस्कारसे रहित हुई सीता व्याकरणादिजनित संस्कारसे शून्य होनेके कारण अर्थान्तरको प्राप्त हुई वाणीके समान पहचानी नहीं जा रही थीं। हनुमान्‌जीने बड़े कष्टसे उन्हें पहचाना॥ ३९॥

उन विशाललोचना सती-साध्वी राजकुमारीको देखकर उन्होंने कारणों (युक्तियों)-द्वारा उपपादन करते हुए मनमें निश्चय किया कि यही सीता हैं॥ ४०॥

उन दिनों श्रीरामचन्द्रजीने विदेहकुमारीके अंगोंमें जिन-जिन आभूषणोंके होनेकी चर्चा की थी, वे ही आभूषण-समूह इस समय उनके अंगोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। हनुमान्‌जीने इस बातकी ओर लक्ष्य किया॥ ४१॥

सुन्दर बने हुए कुण्डल और कुत्तेके दाँतोंकी-सी आकृतिवाले त्रिकर्ण नामधारी कर्णफूल कानोंमें सुन्दर ढंगसे सुप्रतिष्ठित एवं सुशोभित थे। हाथोंमें कंगन आदि आभूषण थे, जिनमें मणि और मूँगे जड़े हुए थे॥ ४२॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पहने गये होनेके कारण वे कुछ काले पड़ गये थे, तथापि उनके आकार-प्रकार वैसे ही थे। (हनुमान्‌जीने सोचा—) 'श्रीरामचन्द्रजीने जिनकी चर्चा की थी, मेरी समझमें ये वे ही आभूषण हैं। सीताजीने जो आभूषण वहाँ गिरा दिये थे, उनको मैं इनके अंगोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे, वे ही ये दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४३-४४॥

'उस समय वानरोंने पर्वतपर गिराये हुए सुवर्णपत्रके समान जो सुन्दर पीला वस्त्र और पृथ्वीपर पड़े हुए उत्तमोत्तम बहुमूल्य एवं बजनेवाले आभूषण देखे थे, वे इन्हींके गिराये हुए थे॥ ४५-४६॥

'यह वस्त्र बहुत दिनोंसे पहने जानेके कारण यद्यपि बहुत पुराना हो गया है, तथापि इसका पीला रंग अभीतक उतरा नहीं है। यह भी वैसा ही कान्तिमान् है, जैसा वह दूसरा वस्त्र था॥ ४७॥

'ये सुवर्णके समान गौर अंगवाली श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी महारानी हैं, जो अदृश्य हो जानेपर भी उनके मनसे विलग नहीं हुई हैं॥ ४८॥

'ये वे ही सीता हैं, जिनके लिये श्रीरामचन्द्रजी इस जगत्‌में करुणा, दया, शोक और प्रेम—इन चार कारणोंसे संतप्त होते रहते हैं॥ ४९॥

'एक स्त्री खो गयी, यह सोचकर उनके हृदयमें करुणा भर आती है। वह हमारे आश्रित थी, यह सोचकर वे दयासे द्रवित हो उठते हैं। मेरी पत्नी ही मुझसे बिछुड़ गयी, इसका विचार करके वे शोकसे व्याकुल हो उठते हैं तथा मेरी प्रियतमा मेरे पास नहीं रही, ऐसी भावना करके उनके हृदयमें प्रेमकी वेदना होने लगती है॥ ५०॥

जैसा अलौकिक रूप श्रीरामचन्द्रजीका है तथा जैसा मनोहर रूप एवं अंग-प्रत्यंगकी सुघड़ता इन देवी सीतामें है; इसे देखते हुए कजरारे नेत्रोंवाली सीता उन्हींके योग्य पत्नी हैं॥ ५१॥

'इन देवीका मन श्रीरघुनाथजीमें और श्रीरघुनाथजीका मन इनमें लगा हुआ है, इसीलिये ये तथा धर्मात्मा श्रीराम जीवित हैं। इनके मुहूर्तमात्र जीवनमें भी यही कारण है॥

'इनके बिछुड़ जानेपर भी भगवान् श्रीराम जो अपने शरीरको धारण करते हैं, शोकसे शिथिल नहीं हो जाते हैं, यह उन्होंने अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है'॥ ५३॥

इस प्रकार उस अवस्थामें सीताका दर्शन पाकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए। वे मन-ही-मन भगवान् श्रीरामके पास जा पहुँचे—उनका चिन्तन करने लगे तथा सीता-जैसी साध्वीको पत्नीरूपमें पानेसे उनके सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका मन-ही-मन सीताजीके शील और सौन्दर्यकी सराहना करते हुए उन्हें कष्टमें पड़ी देख स्वयं भी उनके लिये शोक करना

परम प्रशंसनीया सीता और गुणाभिराम श्रीरामकी प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी फिर विचार करने लगे॥

लगभग दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेपर उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे तेजस्वी हनुमान्

सीताके विषयमें इस प्रकार विलाप करने लगे॥ २॥

'अहो! जिन्होंने गुरुजनोंसे शिक्षा पायी है, उन लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामकी प्रियतमा पत्नी सीता भी यदि इस प्रकार दुःखसे आतुर हो रही हैं तो यह कहना पड़ता है कि कालका उल्लङ्घन करना सभीके लिये अत्यन्त कठिन है॥ ३॥

'जैसे वर्षा-ऋतु आनेपर भी देवी गंगा अधिक क्षुब्ध नहीं होती हैं, उसी प्रकार श्रीराम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मणके अमोघ पराक्रमका निश्चित ज्ञान रखनेवाली देवी सीता भी शोकसे अधिक विचलित नहीं हो रही हैं॥ ४॥

'सीताके शील, स्वभाव, अवस्था और बर्ताव श्रीरामके ही समान हैं। उनका कुल भी उन्हींके तुल्य महान् है, अतः श्रीरघुनाथजी विदेहकुमारी सीताके सर्वथा योग्य हैं तथा ये कजरारे नेत्रोंवाली सीता भी उन्हींके योग्य हैं'॥

नूतन सुवर्णके समान दीप्तिमती और लोककमनीया लक्ष्मीजीके समान शोभामयी श्रीसीताको देखकर हनुमान्जीने श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया और मन-ही-मन इस प्रकार कहा— ॥ ६॥

'इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये भगवान् श्रीरामने महाबली वालीका वध किया और रावणके समान पराक्रमी कबन्धको भी मार गिराया॥ ७॥

'इन्हींके लिये श्रीरामने वनमें पराक्रम करके भयानक पराक्रमी राक्षस विराधको भी उसी प्रकार युद्धमें मार डाला, जैसे देवराज इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था॥ ८॥

'इन्हींके कारण आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें अपने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी बाणोंद्वारा भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें भेज दिया और युद्धमें खर, त्रिशिरा तथा महातेजस्वी दूषणको भी मार गिराया॥ ९-१०॥

'वानरोंका वह दुर्लभ ऐश्वर्य, जो वालीके द्वारा सुरक्षित था, इन्हींके कारण विश्वविख्यात सुग्रीवको प्राप्त हुआ है॥ ११॥

'इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये मैंने नदों और नदियोंके स्वामी श्रीमान् समुद्रका उल्लङ्घन किया और इस लंकापुरीको छान डाला है॥ १२॥

'इनके लिये तो यदि भगवान् श्रीराम समुद्रपर्यन्त पृथ्वी तथा सारे संसारको भी उलट देते तो भी वह मेरे विचारसे उचित ही होता॥ १३॥

'एक ओर तीनों लोकोंका राज्य और दूसरी ओर जनककुमारी सीताको रखकर तुलना की जाय तो त्रिलोकीका सारा राज्य सीताकी एक कलाके बराबर भी नहीं हो सकता॥ १४॥

'ये धर्मशील मिथिलानरेश महात्मा राजा जनककी पुत्री सीता पतिव्रत-धर्ममें बहुत दृढ़ हैं॥ १५॥

'जब हलके मुख (फाल)-से खेत जोता जा रहा था, उस समय ये पृथ्वीको फाड़कर कमलके परागकी भाँति क्यारीकी सुन्दर धूलोंसे लिपटी हुई प्रकट हुई थीं॥ १६॥

'जो परम पराक्रमी, श्रेष्ठ शील-स्वभाववाले और युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले थे, उन्हीं महाराज दशरथकी ये यशस्विनी ज्येष्ठ पुत्रवधू हैं॥ १७॥

'धर्मज्ञ, कृतज्ञ एवं आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामकी ये प्यारी पत्नी सीता इस समय राक्षसियोंके वशमें पड़ गयी हैं॥ १८॥

'ये केवल पतिप्रेमके कारण सारे भोगोंको लात मारकर विपत्तियोंका कुछ भी विचार न करके श्रीरघुनाथजीके साथ निर्जन वनमें चली आयी थीं॥ १९॥

'यहाँ आकर फल-मूलोंसे ही संतुष्ट रहती हुई पतिदेवकी सेवामें लगी रहीं और वनमें भी उसी प्रकार परम प्रसन्न रहती थीं, जैसे राजमहलोंमें रहा करती थीं॥ २०॥

'वे ही ये सुवर्णके समान सुन्दर अंगवाली और सदा मुसकराकर बात करनेवाली सुन्दरी सीता, जो अनर्थ भोगनेके योग्य नहीं थीं, इस यातनाको सहन करती हैं॥ २१॥

'यद्यपि रावणने इन्हें बहुत कष्ट दिये हैं तो भी ये अपने शील, सदाचार एवं सतीत्वसे सम्पन्न हैं। (उसके वशीभूत नहीं हो सकी हैं।) अतएव जैसे प्यासा मनुष्य पौंसलेपर जाना चाहता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी इन्हें देखना चाहते हैं॥ २२॥

'जैसे राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा पुनः पृथ्वीका राज्य पाकर बहुत प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उनकी पुनः प्राप्ति होनेसे श्रीरघुनाथजीको निश्चय ही बड़ी प्रसन्नता होगी॥ २३॥

'ये अपने बन्धुजनोंसे बिछुड़कर विषयभोगोंको तिलाञ्जलि दे केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समागमकी आशासे ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं॥ २४॥

'ये न तो राक्षसियोंकी ओर देखती हैं और न

इन फल-फूलवाले वृक्षोंपर ही दृष्टि डालती हैं, सर्वथा एकाग्रचित्त हो मनकी आँखोंसे केवल श्रीरामका ही निरन्तर दर्शन (ध्यान) करती हैं—इसमें संदेह नहीं है॥ २५॥

'निश्चय ही पति नारीके लिये आभूषणकी अपेक्षा भी अधिक शोभाका हेतु है। ये सीता उन्हीं पतिदेवसे बिछुड़ गयी हैं, इसलिये शोभाके योग्य होनेपर भी शोभा नहीं पा रही हैं॥ २६॥

'भगवान् श्रीराम इनसे बिछुड़ जानेपर भी जो अपने शरीरको धारण कर रहे हैं, दुःखसे अत्यन्त शिथिल नहीं हो जाते हैं, यह उनका अत्यन्त दुष्कर कर्म है॥ २७॥

'काले केश और कमल-जैसे नेत्रवाली ये सीता वास्तवमें सुख भोगनेके योग्य हैं। इन्हें दुःखी जानकर मेरा मन भी व्यथित हो उठता है॥ २८॥

'अहो! जो पृथ्वीके समान क्षमाशील और प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रोंवाली हैं तथा श्रीराम और लक्ष्मणने जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सीता आज इस वृक्षके नीचे बैठी हैं और ये विकराल नेत्रोंवाली राक्षसियाँ इनकी रखवाली करती हैं॥ २९॥

'हिमकी मारी हुई कमलिनीके समान इनकी शोभा नष्ट हो गयी है, दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं तथा अपने सहचरसे बिछुड़ी हुई चकवीके समान पति-वियोगका कष्ट सहन करती हुई ये जनककिशोरी सीता बड़ी दयनीय दशाको पहुँच गयी हैं॥ ३०॥

'फूलोंके भारसे जिनकी डालियोंके अग्रभाग झुक गये हैं, वे अशोकवृक्ष इस समय सीतादेवीके लिये अत्यन्त शोक उत्पन्न कर रहे हैं तथा शिशिरका अन्त हो जानेसे वसन्तकी रातमें उदित हुए शीतल किरणोंवाले चन्द्रदेव भी इनके लिये अनेक सहस्र किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवकी भाँति संताप दे रहे हैं'॥ ३१॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरश्रेष्ठ वेगशाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही सीता हैं' उसी वृक्षपर बैठे रहे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

भयंकर राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्जीका प्रसन्न होना

तदनन्तर वह दिन बीतनेके पश्चात् कुमुदसमूहके समान श्वेत वर्णवाले तथा निर्मलरूपसे उदित हुए चन्द्रदेव स्वच्छ आकाशमें कुछ ऊपरको चढ़ आये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई हंस किसी नील जलराशिमें तैर रहा हो॥ १॥

निर्मल कान्तिवाले चन्द्रमा अपनी प्रभासे सीताजीके दर्शन आदिमें पवनकुमार हनुमान्जीकी सहायता-सी करते हुए अपनी शीतल किरणोंद्वारा उनकी सेवा करने लगे॥ २॥

उस समय उन्होंने पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली सीताको देखा, जो जलमें अधिक बोझके कारण दबी हुई नौकाकी भाँति शोकके भारी भारसे मानो झुक गयी थीं॥ ३॥

वायुपुत्र हनुमान्जीने जब विदेहकुमारी सीताको देखनेके लिये अपनी दृष्टि दौड़ायी, तब उन्हें उनके पास ही बैठी हुई भयानक दृष्टिवाली बहुत-सी राक्षसियाँ दिखायी दीं॥ ४॥

उनमेंसे किसीके एक आँख थी तो दूसरीके एक कान। किसी-किसीके कान इतने बड़े थे कि वह उन्हें चादरकी भाँति ओढ़े हुए थीं। किसीके कान ही नहीं थे और किसीके कान ऐसे दिखायी देते थे मानो खूँटे गड़े हुए हों। किसी-किसीकी साँस लेनेवाली नाक उसके मस्तकपर थी॥ ५॥

किसीका शरीर बहुत बड़ा था और किसीका बहुत उत्तम। किसीकी गर्दन पतली और बड़ी थी। किसीके केश उड़ गये थे और किसी-किसीके माथेपर केश उगे ही नहीं थे। कोई-कोई राक्षसी अपने शरीरके केशोंका ही कम्बल धारण किये हुए थी॥ ६॥

किसीके कान और ललाट बड़े-बड़े थे तो किसीके पेट और स्तन लंबे थे। किसीके ओठ बड़े होनेके कारण लटक रहे थे तो किसीके ठोड़ीमें ही सटे हुए थे। किसीका मुँह बड़ा था और किसीके घुटने॥ ७॥

कोई नाटी, कोई लंबी, कोई कुबड़ी, कोई टेढ़ी-मेढ़ी, कोई बवनी, कोई विकराल, कोई टेढ़े मुँहवाली,

कोई पीली आँखवाली और कोई विकट मुँहवाली थीं॥

कितनी ही राक्षसियाँ बिगड़े शरीरवाली, काली, पीली, क्रोध करनेवाली और कलह पसंद करनेवाली थीं। उन सबने काले लोहेके बने हुए बड़े-बड़े शूल, कूट और मुद्गर धारण कर रखे थे॥ ९॥

कितनी ही राक्षसियोंके मुख सूअर, मृग, सिंह, भैंस, बकरी और सियारिनोंके समान थे। किन्हींके पैर हाथियोंके समान, किन्हींके ऊँटोंके समान और किन्हींके घोड़ोंके समान थे। किन्हीं-किन्हींके सिर कबन्धकी भाँति छातीमें स्थित थे; अतः गड्ढेके समान दिखायी देते थे। (अथवा किन्हीं-किन्हींके सिरमें गड्ढे थे)॥ १०॥

किन्हींके एक हाथ थे तो किन्हींके एक पैर। किन्हींके कान गदहोंके समान थे तो किन्हींके घोड़ोंके समान। किन्हीं-किन्हींके कान गौओं, हाथियों और सिंहोंके समान दृष्टिगोचर होते थे॥ ११॥

किन्हींकी नासिकाएँ बहुत बड़ी थीं और किन्हींकी तिरछी। किन्हीं-किन्हींके नाक ही नहीं थी। कोई-कोई हाथीकी सूँड़के समान नाकवाली थीं और किन्हीं-किन्हींकी नासिकाएँ ललाटमें ही थीं, जिनसे वे साँस लिया करती थीं॥ १२॥

किन्हींके पैर हाथियोंके समान थे और किन्हींके गौओंके समान। कोई बड़े-बड़े पैर धारण करती थीं और कितनी ही ऐसी थीं जिनके पैरोंमें चोटीके समान केश उगे हुए थे। बहुत-सी राक्षसियाँ बेहद लंबे सिर और गर्दनवाली थीं और कितनोंके पेट तथा स्तन बहुत बड़े-बड़े थे॥ १३॥

किन्हींके मुँह और नेत्र सीमासे अधिक बड़े थे, किन्हीं-किन्हींके मुखोंमें बड़ी-बड़ी जिह्वाएँ थीं और कितनी ही ऐसी राक्षसियाँ थीं, जो बकरी, हाथी, गाय, सूअर, घोड़े, ऊँट और गदहोंके समान मुँह धारण करती थीं। इसीलिये वे देखनेमें बड़ी भयंकर थीं॥ १४½॥

किन्हींके हाथमें शूल थे तो किन्हींके मुद्गर। कोई क्रोधी स्वभावकी थीं तो कोई कलहसे प्रेम रखती थीं। धुएँ-जैसे केश और विकृत मुखवाली कितनी ही विकराल राक्षसियाँ सदा मद्यपान किया करती थीं। मदिरा और मांस उन्हें सदा प्रिय थे॥ १५-१६॥

कितनी ही अपने अंगोंमें रक्त और मांसका लेप लगाये रहती थीं। रक्त और मांस ही उनके भोजन थे। उन्हें देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उन सबको देखा॥ १७॥

वे उत्तम शाखावाले उस अशोकवृक्षको चारों ओरसे घेरकर उससे थोड़ी दूरपर बैठी थीं और सती साध्वी राजकुमारी सीता देवी उसी वृक्षके नीचे उसकी जड़से सटी हुई बैठी थीं। उस समय शोभाशाली हनुमान्‌जीने जनककिशोरी जानकीजीकी ओर विशेषरूपसे लक्ष्य किया। उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। वे शोकसे संतप्त थीं और उनके केशोंमें मैल जम गयी थी॥ १८-१९॥

जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर कोई तारा स्वर्गसे टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो, उसी तरह वे भी कान्तिहीन दिखायी देती थीं। वे आदर्श चरित्र (पातिव्रत्य)-से सम्पन्न तथा इसके लिये सुविख्यात थीं। उन्हें पतिके दर्शनके लिये लाले पड़े थे॥ २०॥

वे उत्तम भूषणोंसे रहित थीं तो भी पतिके वात्सल्यसे विभूषित थीं (पतिका स्नेह ही उनके लिये शृंगार था)। राक्षसराज रावणने उन्हें बंदिनी बना रखा था। वे स्वजनोंसे बिछुड़ गयी थीं॥ २१॥

जैसे कोई हथिनी अपने यूथसे अलग हो गयी हो, यूथपतिके स्नेहसे बँधी हो और उसे किसी सिंहने रोक लिया हो। रावणकी कैदमें पड़ी हुई सीताकी भी वैसी ही दशा थी। वे वर्षाकाल बीत जानेपर शरद्-ऋतुके श्वेत बादलोंसे घिरी हुई चन्द्ररेखाके समान प्रतीत होती थीं॥ २२॥

जैसे वीणा अपने स्वामीकी अंगुलियोंके स्पर्शसे वञ्चित हो वादन आदिकी क्रियासे रहित अयोग्य अवस्थामें मूक पड़ी रहती है, उसी प्रकार सीता पतिके सम्पर्कसे दूर होनेके कारण महान् क्लेशमें पड़कर ऐसी अवस्थाको पहुँच गयी थीं, जो उनके योग्य नहीं थी। पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली सीता राक्षसोंके अधीन रहनेके योग्य नहीं थीं; फिर भी वैसी दशामें पड़ी थीं। अशोकवाटिकामें रहकर भी वे शोकके सागरमें डूबी हुई थीं। क्रूर ग्रहसे आक्रान्त हुई रोहिणीकी भाँति वे वहाँ उन राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं। हनुमान्‌जीने उन्हें देखा। वे पुष्पहीन लताकी भाँति श्रीहीन हो रही थीं॥ २३-२४॥

उनके सारे अंगोंमें मैल जम गयी थी। केवल शरीर-सौन्दर्य ही उनका अलंकार था। वे कीचड़से लिपटी हुई कमलनालकी भाँति शोभा और अशोभा दोनोंसे युक्त हो रही थीं॥ २५॥

मैले और पुराने वस्त्रसे ढकी हुई मृगशावकनयनी

भामिनी सीताको कपिवर हनुमान्ने उस अवस्थामें देखा॥

यद्यपि देवी सीताके मुखपर दीनता छा रही थी तथापि अपने पतिके तेजका स्मरण हो आनेसे उनके हृदयसे वह दैन्य दूर हो जाता था। कजरारे नेत्रोंवाली सीता अपने शीलसे ही सुरक्षित थीं॥ २७॥

उनके नेत्र मृगछौनोंके समान चञ्चल थे। वे डरी हुई मृगकन्याकी भाँति सब ओर सशंक दृष्टिसे देख रही थीं। अपने उच्छ्वासोंसे पल्लवधारी वृक्षोंको दग्ध-सी करती जान पड़ती थीं। शोकोंकी मूर्तिमती प्रतिमा-सी दिखायी देती थीं और दु:खकी उठी हुई तरंग-सी प्रतीत होती थीं। उनके सभी अंगोंका विभाग सुन्दर था। यद्यपि वे विरह-शोकसे दुर्बल हो गयी थीं तथापि आभूषणोंके बिना ही शोभा पाती थीं। इस अवस्थामें मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर पवनपुत्र हनुमान्को उनका पता लग जानेके कारण अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ॥ २८—३०॥

मनोहर नेत्रवाली सीताको वहाँ देखकर हनुमान्जी हर्षके आँसू बहाने लगे। उन्होंने मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीको नमस्कार किया॥ ३१॥

सीताके दर्शनसे उल्लसित हो श्रीराम और लक्ष्मणको नमस्कार करके पराक्रमी हनुमान् वहीं छिपे रहे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्जीका उसे देखना

इस प्रकार फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित उस वनकी शोभा देखते और विदेहनन्दिनीका अनुसंधान करते हुए हनुमान्जीकी वह सारी रात प्राय: बीत चली। केवल एक पहर रात बाकी रही॥ १॥

रातके उस पिछले पहरमें छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् तथा श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले ब्रह्म-राक्षसोंके घरमें वेदपाठकी ध्वनि होने लगी, जिसे हनुमान्जीने सुना॥ २॥

तदनन्तर मंगल वाद्यों तथा श्रवण-सुखद शब्दोंद्वारा महाबली महाबाहु दशमुख रावणको जगाया गया॥ ३॥

जागनेपर महान् भाग्यशाली एवं प्रतापी राक्षसराज रावणने सबसे पहले विदेहनन्दिनी सीताका चिन्तन किया। उस समय नींदके कारण उसके पुष्पहार और वस्त्र अपने स्थानसे खिसक गये थे॥ ४॥

वह मदमत्त निशाचर कामसे प्रेरित हो सीताके प्रति अत्यन्त आसक्त हो गया था। अत: उस कामभावको अपने भीतर छिपाये रखनेमें असमर्थ हो गया॥ ५॥

उसने सब प्रकारके आभूषण धारण किये और परम उत्तम शोभासे सम्पन्न हो उस अशोकवाटिकामें ही प्रवेश किया, जो सब प्रकारके फूल और फल देनेवाले भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित थी। नाना प्रकारके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। बहुत-से सरोवरोंद्वारा वह वाटिका घिरी हुई थी। सदा मतवाले रहनेवाले परम अद्‌भुत पक्षियोंके कारण उसकी विचित्र शोभा होती थी। कितने ही नयनाभिराम क्रीडामृगोंसे भरी हुई वह वाटिका भाँति-भाँतिके मृगसमूहोंसे व्याप्त थी। बहुत-से गिरे हुए फलोंके कारण वहाँकी भूमि ढक गयी थी। पुष्पवाटिकामें मणि और सुवर्णके फाटक लगे थे और उसके भीतर पंक्तिबद्ध वृक्ष बहुत दूरतक फैले हुए थे। वहाँकी गलियोंको देखता हुआ रावण उस वाटिकामें घुसा॥ ६—९॥

जैसे देवताओं और गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ देवराज इन्द्रके पीछे चलती हैं, उसी प्रकार अशोकवनमें जाते हुए पुलस्त्यनन्दन रावणके पीछे-पीछे लगभग एक सौ सुन्दरियाँ गयीं॥ १०॥

उन युवतियोंमेंसे किन्हींने सुवर्णमय दीपक ले रखे थे। किन्हींके हाथोंमें चँवर थे तो किन्हींके हाथोंमें ताड़के पंखे॥ ११॥

कुछ सुन्दरियाँ सोनेकी झारियोंमें जल लिये आगे-आगे चल रही थीं और कई दूसरी स्त्रियाँ गोलाकार बृसी नामक आसन लिये पीछे-पीछे जा रही थीं॥ १२॥

कोई चतुर-चालाक युवती दाहिने हाथमें पेयरससे भरी हुई रत्ननिर्मित चमचमाती कलशी लिये हुए थी॥

कोई दूसरी स्त्री सोनेके डंडेसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमा तथा राजहंसके समान श्वेतछत्र लेकर रावणके पीछे-पीछे चल रही थी॥ १४॥

जैसे बादलके साथ-साथ बिजलियाँ चलती हैं, उसी प्रकार रावणकी सुन्दरी स्त्रियाँ अपने वीर पतिके

पीछे-पीछे जा रही थीं। उस समय नींदके नशेमें उनकी आँखें झपी जाती थीं॥ १५॥

उनके हार और बाजूबंद अपने स्थानसे खिसक गये थे। अंगराग मिट गये थे। चोटियाँ खुल गयी थीं और मुखपर पसीनेकी बूँदें छा रही थीं॥ १६॥

वे सुमुखी स्त्रियाँ अवशेष मद और निद्रासे झूमती हुई-सी चल रही थीं। विभिन्न अंगोंमें धारण किये गये पुष्प पसीनेसे भींग गये थे और पुष्पमालाओंसे अलंकृत केश कुछ-कुछ हिल रहे थे॥ १७॥

जिनकी आँखें मदमत्त बना देनेवाली थीं, वे राक्षसराजकी प्यारी पत्नियाँ अशोकवनमें जाते हुए पतिके साथ बड़े आदरसे और अनुरागपूर्वक जा रही थीं॥ १८॥

उन सबका पति महाबली मन्दबुद्धि रावण कामके अधीन हो रहा था। वह सीतामें मन लगाये मन्दगतिसे आगे बढ़ता हुआ अद्भुत शोभा पा रहा था॥ १९॥

उस समय वायुनन्दन कपिवर हनुमान्जीने उन परम सुन्दरी रावणपत्नियोंकी करधनीका कलनाद और नूपुरोंकी झनकार सुनी॥ २०॥

साथ ही, अनुपम कर्म करनेवाले तथा अचिन्त्य बल-पौरुषसे सम्पन्न रावणको भी कपिवर हनुमान्ने देखा, जो अशोकवाटिकाके द्वारतक आ पहुँचा था॥ २१॥

उसके आगे-आगे सुगन्धित तेलसे भीगी हुई और स्त्रियोंद्वारा हाथोंमें धारण की हुई बहुत-सी मशालें जल रही थीं, जिनके द्वारा वह सब ओरसे प्रकाशित हो रहा था॥ २२॥

वह काम, दर्प और मदसे युक्त था। उसकी आँखें टेढ़ी, लाल और बड़ी-बड़ी थीं। वह धनुषरहित साक्षात् कामदेवके समान जान पड़ता था॥ २३॥

उसका वस्त्र मथे हुए दूधके फेनकी भाँति श्वेत, निर्मल और उत्तम था। उसमें मोतीके दाने और फूल टँके हुए थे। वह वस्त्र उसके बाजूबंदमें उलझ गया था और रावण उसे खींचकर सुलझा रहा था॥ २४॥

अशोक-वृक्षके पत्तों और डालियोंमें छिपे हुए हनुमान्जी सैकड़ों पत्रों तथा पुष्पोंसे ढक गये थे। उसी अवस्थामें उन्होंने निकट आये हुए रावणको पहचाननेका प्रयत्न किया॥ २५॥

उसकी ओर देखते समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने रावणकी सुन्दरी स्त्रियोंको भी लक्ष्य किया, जो रूप और यौवनसे सम्पन्न थीं॥ २६॥

उन सुन्दर रूपवाली युवतियोंसे घिरे हुए महायशस्वी राजा रावणने उस प्रमदावनमें प्रवेश किया, जहाँ अनेक प्रकारके पशु-पक्षी अपनी-अपनी बोली बोल रहे थे॥ २७॥

वह मतवाला दिखायी देता था। उसके आभूषण विचित्र थे। उसके कान ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वहाँ खूँटे गाड़े गये हैं। इस प्रकार वह विश्रवामुनिका पुत्र महाबली राक्षसराज रावण हनुमान्जीके दृष्टिपथमें आया॥ २८॥

ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति वह परम सुन्दरी युवतियोंसे घिरा हुआ था। महातेजस्वी महाकपि हनुमान्ने उस तेजस्वी राक्षसको देखा और देखकर यह निश्चय किया कि यही महाबाहु रावण है। पहले यही नगरमें उत्तम महलके भीतर सोया हुआ था। ऐसा सोचकर वे वानरवीर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी जिस डालीपर बैठे थे, वहाँसे कुछ नीचे उतर आये (क्योंकि वे निकटसे रावणकी सारी चेष्टाएँ देखना चाहते थे)॥ २९-३०॥

यद्यपि मतिमान् हनुमान्जी भी बड़े उग्र तेजस्वी थे, तथापि रावणके तेजसे तिरस्कृत-से होकर सघन पत्तोंमें घुसकर छिप गये॥ ३१॥

उधर रावण काले केश, कजरारे नेत्र, सुन्दर कटिभाग और परस्पर सटे हुए स्तनवाली सुन्दरी सीताको देखनेके लिये उनके पास गया॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

रावणको देखकर दुःख, भय और चिन्तामें डूबी हुई सीताकी अवस्थाका वर्णन

उस समय अनिन्दिता सुन्दरी राजकुमारी सीताने जब उत्तमोत्तम आभूषणोंसे विभूषित तथा रूप-यौवनसे सम्पन्न राक्षसराज रावणको आते देखा, तब वे प्रचण्ड हवामें हिलनेवाली कदलीके समान भयके मारे थर-थर काँपने लगीं॥ १-२॥

सुन्दर कान्तिवाली विशाललोचना जानकीने अपनी

जाँघोंसे पेट और दोनों भुजाओंसे स्तन छिपा लिये तथा वहाँ बैठी-बैठी वे रोने लगीं॥ ३॥

राक्षसियोंके पहरेमें रहती हुई विदेहराजकुमारी सीता अत्यन्त दीन और दुःखी हो रही थीं। वे समुद्रमें जीर्ण-शीर्ण होकर डूबी हुई नौकाके समान दुःखके सागरमें निमग्न थीं। उस अवस्थामें दशमुख रावणने उनकी ओर देखा। वे बिना बिछौनेके खुली जमीनपर बैठी थीं और कटकर पृथ्वीपर गिरी हुई वृक्षकी शाखाके समान जान पड़ती थीं। उनके द्वारा बड़े कठोर व्रतका पालन किया जा रहा था॥ ४-५॥

उनके अंगोंमें अंगरागकी जगह मैल जमी हुई थी। वे आभूषण धारण तथा शृंगार करनेयोग्य होनेपर भी उन सबसे वञ्चित थीं और कीचड़में सनी हुई कमलनालकी भाँति शोभा पाती थीं तथा नहीं भी पाती थीं (कमलनाल जैसे सुकुमारताके कारण शोभा पाती है और कीचड़में सनी रहनेके कारण शोभा नहीं पाती, वैसे ही वे अपने सहज सौन्दर्यसे सुशोभित थीं, किंतु मलिनताके कारण शोभा नहीं देती थीं।)॥ ६॥

संकल्पोंके घोड़ोंसे जुते हुए मनोमय रथपर चढ़कर आत्मज्ञानी राजसिंह भगवान् श्रीरामके पास जाती हुई-सी प्रतीत होती थीं॥ ७॥

उनका शरीर सूखता जा रहा था। वे अकेली बैठकर रोती तथा श्रीरामचन्द्रजीके ध्यान एवं उनके वियोगके शोकमें डूबी रहती थीं। उन्हें अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था। वे श्रीरामचन्द्रजीमें अनुराग रखनेवाली तथा उनकी रमणीय भार्या थीं॥ ८॥

जैसे नागराजकी वधू (नागिन) मणि-मन्त्रादिसे अभिभूत हो छटपटाने लगती है, उसी तरह सीता भी पतिके वियोगमें तड़प रही थीं तथा धूमके समान वर्णवाले केतुग्रहसे ग्रस्त हुई रोहिणीके समान संतप्त हो रही थीं॥ ९॥

यद्यपि सदाचारी और सुशील कुलमें उनका जन्म हुआ था। फिर धार्मिक तथा उत्तम आचार-विचारवाले कुलमें वे ब्याही गयी थीं—विवाह-संस्कारसे सम्पन्न हुई थीं, तथापि दूषित कुलमें उत्पन्न हुई नारीके समान मलिन दिखायी देती थीं॥ १०॥

वे क्षीण हुई विशाल कीर्ति, तिरस्कृत हुई श्रद्धा, सर्वथा ह्रासको प्राप्त हुई बुद्धि, टूटी हुई आशा, नष्ट हुए भविष्य, उल्लङ्घित हुई राजाज्ञा, उत्पातकालमें दहकती हुई दिशा, नष्ट हुई देवपूजा, चन्द्रग्रहणसे मलिन हुई पूर्णमासीकी रात, तुषारपातसे जीर्ण-शीर्ण हुई कमलिनी, जिसका शूरवीर सेनापति मारा गया हो—ऐसी सेना, अन्धकारसे नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई सरिता, अपवित्र प्राणियोंके स्पर्शसे अशुद्ध हुई वेदी और बुझी हुई अग्निशिखाके समान प्रतीत होती थीं॥ ११—१४॥

जिसे हाथीने अपनी सूँड़से हुँड़ेर डाला हो; अतएव जिसके पत्ते और कमल उखड़ गये हों तथा जलपक्षी भयसे थर्रा उठे हों, उस मथित एवं मलिन हुई पुष्करिणीके समान सीता श्रीहीन दिखायी देती थीं॥ १५॥

पतिके विरह-शोकसे उनका हृदय बड़ा व्याकुल था। जिसका जल नहरोंके द्वारा इधर-उधर निकाल दिया गया हो, ऐसी नदीके समान वे सूख गयी थीं तथा उत्तम उबटन आदिके न लगनेसे कृष्णपक्षकी रात्रिके समान मलिन हो रही थीं॥ १६॥

उनके अंग बड़े सुकुमार और सुन्दर थे। वे रत्नजटित राजमहलमें रहनेके योग्य थीं; परंतु गर्मीसे तपी और तुरंत तोड़कर फेंकी हुई कमलिनीके समान दयनीय दशाको पहुँच गयी थीं॥ १७॥

जिसे यूथपतिसे अलग करके पकड़कर खंभेमें बाँध दिया गया हो, उस हथिनीके समान वे अत्यन्त दुःखसे आतुर होकर लम्बी साँस खींच रही थीं॥ १८॥

बिना प्रयत्नके ही बँधी हुई एक ही लम्बी वेणीसे सीताकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे वर्षा-ऋतु बीत जानेपर सुदूरतक फैली हुई हरी-भरी वनश्रेणीसे पृथ्वी सुशोभित होती है॥ १९॥

वे उपवास, शोक, चिन्ता और भयसे अत्यन्त क्षीण, कृशकाय और दीन हो गयी थीं। उनका आहार बहुत कम हो गया था तथा एकमात्र तप ही उनका धन था॥

वे दुःखसे आतुर हो अपने कुलदेवतासे हाथ जोड़कर मन-ही-मन यह प्रार्थना-सी कर रही थीं कि श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे दशमुख रावणकी पराजय हो॥

सुन्दर बरौनियोंसे युक्त, लाल, श्वेत एवं विशाल नेत्रोंवाली सती-साध्वी मिथिलेशकुमारी सीता श्रीरामचन्द्रजीमें अत्यन्त अनुरक्त थीं और इधर-उधर देखती हुई रो रही थीं। इस अवस्थामें उन्हें देखकर राक्षसराज रावण अपने ही वधके लिये उनको लुभानेकी चेष्टा करने लगा॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

रावणका सीताजीको प्रलोभन

राक्षसियोंसे घिरी हुई दीन और आनन्दशून्य तपस्विनी सीताको सम्बोधित करके रावण अभिप्राययुक्त मधुर वचनोंद्वारा अपने मनका भाव प्रकट करने लगा—॥

'हाथीकी सूँड़के समान सुन्दर जाँघोंवाली सीते! मुझे देखते ही तुम अपने स्तन और उदरको इस प्रकार छिपाने लगी हो, मानो डरके मारे अपनेको अदृश्य कर देना चाहती हो॥ २॥

'किंतु विशाललोचने! मैं तो तुम्हें चाहता हूँ—तुमसे प्रेम करता हूँ। समस्त संसारका मन मोहनेवाली सर्वांगसुन्दरी प्रिये! तुम भी मुझे विशेष आदर दो—मेरी प्रार्थना स्वीकार करो॥ ३॥

'यहाँ तुम्हारे लिये कोई भय नहीं है। इस स्थानमें न तो मनुष्य आ सकते हैं, न इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दूसरे राक्षस ही, केवल मैं आ सकता हूँ। परन्तु सीते! मुझसे जो तुम्हें भय हो रहा है, वह तो दूर हो ही जाना चाहिये॥ ४॥

'भीरु! (तुम यह न समझो कि मैंने कोई अधर्म किया है) परायी स्त्रियोंके पास जाना अथवा बलात् उन्हें हर लाना यह राक्षसोंका सदा ही अपना धर्म रहा है—इसमें संदेह नहीं है॥ ५॥

'मिथिलेशनन्दिनि! ऐसी अवस्थामें भी जबतक तुम मुझे न चाहोगी, तबतक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा। भले ही कामदेव मेरे शरीरपर इच्छानुसार अत्याचार करे॥

'देवि! इस विषयमें तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। प्रिये! मुझपर विश्वास करो और यथार्थरूपसे प्रेमदान दो। इस तरह शोकसे व्याकुल न हो जाओ॥ ७॥

'एक वेणी धारण करना, नीचे पृथ्वीपर सोना, चिन्तामग्न रहना, मैले वस्त्र पहनना और बिना अवसरके उपवास करना—ये सब बातें तुम्हारे योग्य नहीं हैं॥ ८॥

'मिथिलेशकुमारी! मुझे पाकर तुम विचित्र पुष्पमाला, चन्दन, अगुरु, नाना प्रकारके वस्त्र, दिव्य आभूषण, बहुमूल्य पेय, शय्या, आसन, नाच, गान और वाद्यका सुख भोगो॥ ९-१०॥

'तुम स्त्रियोंमें रत्न हो। इस तरह मलिन वेषमें न रहो। अपने अंगोंमें आभूषण धारण करो। सुन्दरि! मुझे पाकर भी तुम भूषण आदिसे असम्मानित कैसे रहोगी!॥

'यह तुम्हारा नवोदित सुन्दर यौवन बीता जा रहा है। जो बीत जाता है, वह नदियोंके प्रवाहकी भाँति फिर लौटकर नहीं आता॥ १२॥

'शुभदर्शने! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि रूपकी रचना करनेवाला लोकस्रष्टा विधाता तुम्हें बनाकर फिर उस कार्यसे विरत हो गया; क्योंकि तुम्हारे रूपकी समता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं है॥ १३॥

'विदेहनन्दिनि! रूप और यौवनसे सुशोभित होनेवाली तुमको पाकर कौन ऐसा पुरुष है, जो धैर्यसे विचलित न होगा। भले ही वह साक्षात् ब्रह्मा क्यों न हो॥ १४॥

'चन्द्रमाके समान मुखवाली सुमध्यमे! मैं तुम्हारे जिस-जिस अंगको देखता हूँ, उसी-उसीमें मेरे नेत्र उलझ जाते हैं॥ १५॥

'मिथिलेशकुमारी! तुम मेरी भार्या बन जाओ। पातिव्रत्यके इस मोहको छोड़ो। मेरे यहाँ बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ हैं। तुम उन सबमें श्रेष्ठ पटरानी बनो॥ १६॥

'भीरु! मैं अनेक लोकोंसे उन्हें मथकर जो-जो रत्न लाया हूँ, वे सब तुम्हारे ही होंगे और यह राज्य भी मैं तुम्हींको समर्पित कर दूँगा॥ १७॥

'विलासिनि! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं विभिन्न नगरोंकी मालाओंसे अलंकृत इस सारी पृथ्वीको जीतकर राजा जनकके हाथमें सौंप दूँगा॥ १८॥

'इस संसारमें मैं किसी दूसरे ऐसे पुरुषको नहीं देखता, जो मेरा सामना कर सके। तुम युद्धमें मेरा वह महान् पराक्रम देखना, जिसके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी टिक नहीं पाता॥ १९॥

'मैंने युद्धस्थलमें जिनकी ध्वजाएँ तोड़ डाली थीं, वे देवता और असुर मेरे सामने ठहरनेमें असमर्थ होनेके कारण कई बार पीठ दिखा चुके हैं॥ २०॥

'तुम मुझे स्वीकार करो। आज तुम्हारा उत्तम शृंगार किया जाय और तुम्हारे अंगोंमें चमकीले आभूषण पहनाये जायँ॥ २१॥

'सुमुखि! आज मैं शृंगारसे सुसज्जित हुए तुम्हारे सुन्दर रूपको देख रहा हूँ*। तुम उदारतावश मुझपर

* यहाँ भविष्यका वर्तमानकी भाँति वर्णन होनेसे 'भाविक' अलंकार समझना चाहिये।

कृपा करके शृंगारसे सम्पन्न हो जाओ॥ २२॥

'भीरु! फिर इच्छानुसार भाँति-भाँतिके भोग भोगो, दिव्य रसका पान करो, विहरो तथा पृथ्वी या धनका यथेष्टरूपसे दान करो॥ २३॥

'तुम मुझपर विश्वास करके भोग भोगनेकी इच्छा करो और निर्भय होकर मुझे अपनी सेवाके लिये आज्ञा दो। मुझपर कृपा करके इच्छानुसार भोग भोगती हुई तुम-जैसी पटरानीके भाई-बन्धु भी मनमाने भोग भोग सकते हैं॥ २४॥

'भद्रे! यशस्विनि! तुम मेरी समृद्धि और धन-सम्पत्तिकी ओर तो देखो। सुभगे! चीर-वस्त्र धारण करनेवाले रामको लेकर क्या करोगी?॥ २५॥

'रामने विजयकी आशा त्याग दी है। वे श्रीहीन होकर वन-वनमें विचर रहे हैं, व्रतका पालन करते हैं और मिट्टीकी वेदीपर सोते हैं। अब तो मुझे यह भी संदेह होने लगा है कि वे जीवित भी हैं या नहीं॥ २६॥

'विदेहनन्दिनि! जिनके आगे बगुलोंकी पंक्तियाँ चलती हैं, उन काले बादलोंसे छिपी हुई चन्द्रिकाके समान तुमको अब राम पाना तो दूर रहा, देख भी नहीं सकते हैं॥ २७॥

'जैसे हिरण्यकशिपु इन्द्रके हाथमें गयी हुई कीर्तिको न पा सका, उसी प्रकार राम भी मेरे हाथसे तुम्हें नहीं पा सकते॥ २८॥

'मनोहर मुसकान, सुन्दर दन्तावलि तथा रमणीय नेत्रोंवाली विलासिनि! भीरु! जैसे गरुड़ सर्पको उठा ले जाते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे मनको हर लेती हो॥ २९॥

'तुम्हारा रेशमी पीताम्बर मैला हो गया है। तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो और तुम्हारे अंगोंमें आभूषण भी नहीं हैं तो भी तुम्हें देखकर अपनी दूसरी स्त्रियोंमें मेरा मन नहीं लगता॥ ३०॥

'जनकनन्दिनि! मेरे अन्तःपुरमें निवास करनेवाली जितनी भी सर्वगुणसम्पन्न रानियाँ हैं, उन सबकी तुम स्वामिनी बन जाओ॥ ३१॥

'काले केशोंवाली सुन्दरी! जैसे अप्सराएँ लक्ष्मीकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनकी श्रेष्ठ सुन्दरियाँ यहाँ तुम्हारी परिचर्या करेंगी॥ ३२॥

'सुभ्रु! सुश्रोणि! कुबेरके यहाँ जितने भी अच्छे रत्न और धन हैं, उन सबका तथा सम्पूर्ण लोकोंका तुम मेरे साथ सुखपूर्वक उपभोग करो॥ ३३॥

'देवि! राम तो न तपसे, न बलसे, न पराक्रमसे, न धनसे और न तेज अथवा यशके द्वारा ही मेरी समानता कर सकते हैं॥ ३४॥

'तुम दिव्य रसका पान, विहार एवं रमण करो तथा अभीष्ट भोग भोगो। मैं तुम्हें धनकी राशि और सारी पृथ्वी भी समर्पित किये देता हूँ। ललने! तुम मेरे पास रहकर मौजसे मनचाही वस्तुएँ ग्रहण करो और तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे भाई-बन्धु भी सुखपूर्वक इच्छानुसार भोग आदि प्राप्त करें॥ ३५॥

'भीरु! तुम सोनेके निर्मल हारोंसे अपने अंगको विभूषित करके मेरे साथ समुद्र-तटवर्ती उन काननोंमें विहार करो, जिनमें खिले हुए वृक्षोंके समुदाय सब ओर फैले हुए हैं और उनपर भ्रमर मँड़रा रहे हैं'॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

सीताजीका रावणको समझाना और उसे श्रीरामके सामने नगण्य बताना

उस भयंकर राक्षसकी वह बात सुनकर सीताको बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने दीन वाणीमें बड़े दुःखके साथ धीरे-धीरे उत्तर देना आरम्भ किया॥ १॥

उस समय सुन्दर अंगोंवाली पतिव्रता देवी तपस्विनी सीता दुःखसे आतुर होकर रोती हुई काँप रही थीं और अपने पतिदेवका ही चिन्तन कर रही थीं॥ २॥

पवित्र मुसकानवाली विदेहनन्दिनीने तिनकेकी ओट करके रावणको इस प्रकार उत्तर दिया—'तुम मेरी ओरसे अपना मन हटा लो और आत्मीय जनों (अपनी ही पत्नियों)-पर प्रेम करो॥ ३॥

'जैसे पापाचारी पुरुष सिद्धिकी इच्छा नहीं कर सकता, उसी प्रकार तुम मेरी इच्छा करनेके योग्य नहीं हो। जो पतिव्रताके लिये निन्दित है, वह न करनेयोग्य कार्य मैं कदापि नहीं कर सकती॥ ४॥

'क्योंकि मैं एक महान् कुलमें उत्पन्न हुई हूँ और ब्याह करके एक पवित्र कुलमें आयी हूँ।' रावणसे ऐसा कहकर यशस्विनी विदेहराजकुमारीने उसकी ओर अपनी पीठ फेर ली और इस प्रकार कहा—'रावण! मैं सती

और परायी स्त्री हूँ। तुम्हारी भार्या बननेयोग्य नहीं हूँ॥

'निशाचर! तुम श्रेष्ठ धर्मकी ओर दृष्टिपात करो और सत्पुरुषोंके व्रतका अच्छी तरह पालन करो। जैसे तुम्हारी स्त्रियाँ तुमसे संरक्षण पाती हैं, उसी प्रकार दूसरोंकी स्त्रियोंकी भी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये॥ ७॥

'तुम अपनेको आदर्श बनाकर अपनी ही स्त्रियोंमें अनुरक्त रहो। जो अपनी स्त्रियोंसे संतुष्ट नहीं रहता तथा जिसकी बुद्धि धिक्कार देनेयोग्य है, उस चपल इन्द्रियोंवाले चञ्चल पुरुषको परायी स्त्रियाँ पराभवको पहुँचा देती हैं—उसे फजीहतमें डाल देती हैं॥ ८॥

'क्या यहाँ सत्पुरुष नहीं रहते हैं अथवा रहनेपर भी तुम उनका अनुसरण नहीं करते हो? जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी विपरीत एवं सदाचारशून्य हो गयी है?॥ ९॥

'अथवा बुद्धिमान् पुरुष जो तुम्हारे हितकी बात कहते हैं, उसे निःसार मानकर राक्षसोंके विनाशपर तुले रहनेके कारण तुम ग्रहण ही नहीं करते हो?॥ १०॥

'जिसका मन अपवित्र तथा सदुपदेशको नहीं ग्रहण करनेवाला है, ऐसे अन्यायी राजाके हाथमें पड़कर बड़े-बड़े समृद्धिशाली राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं॥ ११॥

'इसी प्रकार यह रत्नराशिसे पूर्ण लंकापुरी तुम्हारे हाथमें आ जानेसे अब अकेले तुम्हारे ही अपराधसे बहुत जल्द नष्ट हो जायगी॥ १२॥

'रावण! जब कोई अदूरदर्शी पापाचारी अपने कुकर्मोंसे मारा जाता है, उस समय उसका विनाश होनेपर समस्त प्राणियोंको प्रसन्नता होती है॥ १३॥

'इसी प्रकार तुमने जिन लोगोंको कष्ट पहुँचाया है, वे तुम्हें पापी कहेंगे और 'बड़ा अच्छा हुआ, जो इस आततायीको यह कष्ट प्राप्त हुआ' ऐसा कहकर हर्ष मनायेंगे॥ १४॥

'जैसे प्रभा सूर्यसे अलग नहीं होती, उसी प्रकार मैं श्रीरघुनाथजीसे अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धनके द्वारा तुम मुझे लुभा नहीं सकते॥ १५॥

'जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मानित भुजापर सिर रखकर अब मैं किसी दूसरेकी बाँहका तकिया कैसे लगा सकती हूँ?॥ १६॥

'जिस प्रकार वेदविद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल उन पृथ्वीपति रघुनाथजीकी ही भार्या होनेयोग्य हूँ॥ १७॥

'रावण! तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि जिस प्रकार वनमें समागमकी वासनासे युक्त हथिनीको कोई गजराजसे मिला दे, उसी प्रकार तुम मुझ दुःखियाको श्रीरघुनाथजीसे मिला दो॥ १८॥

'यदि तुम्हें अपने नगरकी रक्षा और दारुण बन्धनसे बचनेकी इच्छा हो तो पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको अपना मित्र बना लेना चाहिये; क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं॥ १९॥

'भगवान् श्रीराम समस्त धर्मोंके ज्ञाता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उनके साथ तुम्हारी मित्रता हो जानी चाहिये॥ २०॥

'तुम शरणागतवत्सल श्रीरामकी शरण लेकर उन्हें प्रसन्न करो और शुद्धहृदय होकर मुझे उनके पास लौटा दो॥ २१॥

'इस प्रकार मुझे श्रीरघुनाथजीको सौंप देनेपर तुम्हारा भला होगा। इसके विपरीत आचरण करनेपर तुम बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाओगे॥ २२॥

'तुम्हारे-जैसे निशाचरको कदाचित् हाथसे छूटा हुआ वज्र बिना मारे छोड़ सकता है और काल भी बहुत दिनोंतक तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है; किंतु क्रोधमें भरे हुए लोकनाथ रघुनाथजी कदापि नहीं छोड़ेंगे॥ २३॥

'इन्द्रके छोड़े हुए वज्रकी गड़गड़ाहटके समान तुम श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी घोर टंकार सुनोगे॥ २४॥

'यहाँ श्रीराम और लक्ष्मणके नामोंसे अङ्कित और सुन्दर गाँठवाले बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान शीघ्र ही गिरेंगे॥ २५॥

'वे कङ्कपत्रवाले बाण इस पुरीमें राक्षसोंका संहार करेंगे, इसमें संशय नहीं है। वे इस तरह बरसेंगे कि यहाँ तिल रखनेकी भी जगह नहीं रह जायगी॥ २६॥

'जैसे विनतानन्दन गरुड़ सर्पोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार श्रीरामरूपी महान् गरुड़ राक्षसराजरूपी बड़े-बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक उच्छिन्न कर डालेंगे॥ २७॥

'जैसे भगवान् विष्णुने अपने तीन ही पगोंद्वारा असुरोंसे उनकी उद्दीप्त राजलक्ष्मी छीन ली थी, उसी प्रकार मेरे स्वामी शत्रुसूदन श्रीराम मुझे शीघ्र ही तेरे यहाँसे निकाल ले जायँगे॥ २८॥

'राक्षस! जब राक्षसोंकी सेनाका संहार हो जानेसे जनस्थानका तुम्हारा आश्रय नष्ट हो गया और तुम युद्ध करनेमें असमर्थ हो गये, तब तुमने छल और चोरीसे यह नीच कर्म किया है॥ २९॥

'नीच निशाचर! तुमने पुरुषसिंह श्रीराम और

लक्ष्मणके सूने आश्रममें घुसकर मेरा हरण किया था। वे दोनों उस समय मायामृगको मारनेके लिये वनमें गये हुए थे (नहीं तो तभी तुम्हें इसका फल मिल जाता)॥ ३०॥

'श्रीराम और लक्ष्मणकी तो गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं ठहर सकते। क्या कुत्ता कभी दो-दो बाघोंके सामने टिक सकता है?॥ ३१॥

'जैसे इन्द्रकी दो बाँहोंके साथ युद्ध छिड़नेपर वृत्रासुरकी एक बाँहके लिये संग्रामके बोझको सँभालना असम्भव हो गया, उसी प्रकार समरांगणमें उन दोनों भाइयोंके साथ युद्धका जुआ उठाये रखना या टिकना तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भव है॥ ३२॥

'वे मेरे प्राणनाथ श्रीराम सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ आकर अपने बाणोंद्वारा शीघ्र तुम्हारे प्राण हर लेंगे। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य थोड़े-से जलको अपनी किरणोंद्वारा शीघ्र सुखा देते हैं॥ ३३॥

'तुम कुबेरके कैलासपर्वतपर चले जाओ अथवा वरुणकी सभामें जाकर छिप रहो, किंतु कालका मारा हुआ विशाल वृक्ष जैसे वज्रका आघात लगते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम दशरथनन्दन श्रीरामके बाणसे मारे जाकर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठोगे, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि काल तुम्हें पहलेसे ही मार चुका है'॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

रावणका सीताको दो मासकी अवधि देना, सीताका उसे फटकारना, फिर रावणका उन्हें धमकाकर राक्षसियोंके नियन्त्रणमें रखकर स्त्रियोंसहित पुनः महलको लौट जाना

सीताके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणने उन प्रियदर्शना सीताको यह अप्रिय उत्तर दिया—॥ १॥

'लोकमें पुरुष जैसे-जैसे स्त्रियोंसे अनुनय-विनय करता है, वैसे-वैसे वह उनका प्रिय होता जाता है; परंतु मैं तुमसे ज्यों-ज्यों मीठे वचन बोलता हूँ, त्यों-ही-त्यों तुम मेरा तिरस्कार करती जा रही हो॥ २॥

'किंतु जैसे अच्छा सारथि कुमार्गमें दौड़ते हुए घोड़ोंको रोकता है, वैसे ही तुम्हारे प्रति जो मेरा प्रेम उत्पन्न हो गया है, वही मेरे क्रोधको रोक रहा है॥ ३॥

'मनुष्योंमें यह काम (प्रेम) बड़ा टेढ़ा है। वह जिसके प्रति बँध जाता है, उसीके प्रति करुणा और स्नेह उत्पन्न हो जाता है॥ ४॥

'सुमुखि! यही कारण है कि झूठे वैराग्यमें तत्पर तथा वध और तिरस्कारके योग्य होनेपर भी तुम्हारा मैं वध नहीं कर रहा हूँ॥ ५॥

'मिथिलेशकुमारी! तुम मुझसे जैसी-जैसी कठोर बातें कह रही हो, उनके बदले तो तुम्हें कठोर प्राणदण्ड देना ही उचित है'॥ ६॥

विदेहराजकुमारी सीतासे ऐसा कहकर क्रोधके आवेशमें भरे हुए राक्षसराज रावणने उन्हें फिर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ७॥

'सुन्दरि! मैंने तुम्हारे लिये जो अवधि नियुक्त की है, उसके अनुसार मुझे दो महीने और प्रतीक्षा करनी है। तत्पश्चात् तुम्हें मेरी शय्यापर आना होगा॥ ८॥

'अतः याद रखो—यदि दो महीनेके बाद तुम मुझे अपना पति बनाना स्वीकार नहीं करोगी तो रसोइये मेरे कलेवेके लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे'॥ ९॥

राक्षसराज रावणके द्वारा जनकनन्दिनी सीताको इस प्रकार धमकायी जाती देख देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याओंको बड़ा विषाद हुआ। उनकी आँखें विकृत हो गयीं॥ १०॥

तब उनमेंसे किसीने ओठोंसे, किसीने नेत्रोंसे तथा किसीने मुँहके संकेतसे उस राक्षसद्वारा डाँटी जाती हुई सीताको धैर्य बँधाया॥ ११॥

उनके धैर्य बँधानेपर सीताने राक्षसराज रावणसे अपने सदाचार (पातिव्रत्य) और पतिके शौर्यके अभिमानसे पूर्ण हितकर वचन कहा—॥ १२॥

'निश्चय ही इस नगरमें कोई भी पुरुष तेरा भला चाहनेवाला नहीं है, जो तुझे इस निन्दित कर्मसे रोके॥

'जैसे शची इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, उसी प्रकार मैं धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी पत्नी हूँ। त्रिलोकीमें तेरे सिवा दूसरा कौन है, जो मनसे भी मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करे॥ १४॥

'नीच राक्षस! तूने अमित तेजस्वी श्रीरामकी भार्यासे जो पापकी बात कही है, उसके फलस्वरूप दण्डसे तू कहाँ जाकर छुटकारा पायेगा?॥ १५॥

'जिस प्रकार वनमें कोई मतवाला हाथी और कोई खरगोश दैववश एक-दूसरेके साथ युद्धके लिये तुल जायँ, वैसे ही भगवान् श्रीराम और तू है। नीच निशाचर! भगवान् राम तो गजराजके समान हैं और तू खरगोशके तुल्य है॥ १६॥

'अरे! इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामका तिरस्कार करते तुझे लज्जा नहीं आती। तू जबतक उनकी आँखोंके सामने नहीं जाता, तबतक जो चाहे कह ले॥ १७॥

'अनार्य! मेरी ओर दृष्टि डालते समय तेरी ये क्रूर और विकारयुक्त काली-पीली आँखें पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़ीं?॥ १८॥

'मैं धर्मात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नी और महाराज दशरथकी पुत्रवधू हूँ। पापी! मुझसे पापकी बातें करते समय तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती है?॥ १९॥

'दशमुख रावण! मेरा तेज ही तुझे भस्म कर डालनेके लिये पर्याप्त है। केवल श्रीरामकी आज्ञा न होनेसे और अपनी तपस्याको सुरक्षित रखनेके विचारसे मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ॥ २०॥

'मैं मतिमान् श्रीरामकी भार्या हूँ, मुझे हर ले आनेकी शक्ति तेरे अंदर नहीं थी। नि:संदेह तेरे वधके लिये ही विधाताने यह विधान रच दिया है॥ २१॥

'तू तो बड़ा शूरवीर बनता है, कुबेरका भाई है और तेरे पास सेनाएँ भी बहुत हैं, फिर श्रीरामको छलसे दूर हटाकर क्यों तूने उनकी स्त्रीकी चोरी की है?'॥ २२॥

सीताकी ये बातें सुनकर राक्षसराज रावणने उन जनकदुलारीकी ओर आँखें तरेरकर देखा। उसकी दृष्टिसे क्रूरता टपक रही थी॥ २३॥

वह नीलमेघके समान काला और विशालकाय था। उसकी भुजाएँ और ग्रीवा बड़ी थीं। वह गति और पराक्रममें सिंहके समान था और तेजस्वी दिखायी देता था। उसकी जीभ आगकी लपटके समान लपलपा रही थी तथा नेत्र बड़े भयंकर प्रतीत होते थे॥ २४॥

क्रोधके कारण उसके मुकुटका अग्रभाग हिल रहा था, जिससे वह बहुत ऊँचा जान पड़ता था। उसने तरह-तरहके हार और अनुलेपन धारण कर रखे थे तथा पक्के सोनेके बने हुए बाजूबंद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह लाल रंगके फूलोंकी माला और लाल वस्त्र पहने हुए था। उसकी कमरके चारों ओर काले रंगका लम्बा कटिसूत्र बँधा हुआ था, जिससे वह अमृत-मन्थनके समय वासुकिसे लिपटे हुए मन्दराचलके समान जान पड़ता था॥ २५-२६॥

पर्वतके समान विशालकाय राक्षसराज रावण अपनी दोनों परिपुष्ट भुजाओंसे उसी प्रकार शोभा पा रहा था, मानो दो शिखरोंसे मन्दराचल सुशोभित हो रहा हो॥ २७॥

प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण-पीत कान्तिवाले दो कुण्डल उसके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, मानो लाल पल्लवों और फूलोंसे युक्त दो अशोक वृक्ष किसी पर्वतको सुशोभित कर रहे हों॥ २८॥

वह अभिनव शोभासे सम्पन्न होकर कल्पवृक्ष एवं मूर्तिमान् वसन्तके समान जान पड़ता था। आभूषणोंसे विभूषित होनेपर भी श्मशानचैत्य* (मरघटमें बने हुए देवालय)-की भाँति भयंकर प्रतीत होता था॥ २९॥

रावणने क्रोधसे लाल आँखें करके विदेहकुमारी सीताकी ओर देखा और फुफकारते हुए सर्पके समान लम्बी साँसें खींचकर कहा— ॥ ३०॥

'अन्यायी और निर्धन मनुष्यका अनुसरण करनेवाली नारी! जैसे सूर्यदेव अपने तेजसे प्रात:कालिक संध्याके अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार आज मैं तेरा विनाश किये देता हूँ'॥ ३१॥

मिथिलेशकुमारीसे ऐसा कहकर शत्रुओंको रुलानेवाले राजा रावणने भयंकर दिखायी देनेवाली समस्त राक्षसियोंकी ओर देखा॥ ३२॥

उसने एकाक्षी (एक आँखवाली), एककर्णा (एक कानवाली), कर्णप्रावरणा (लंबे कानोंसे अपने शरीरको ढक लेनेवाली), गोकर्णी (गौके-से कानोंवाली), हस्तिकर्णी (हाथीके समान कानोंवाली), लम्बकर्णी (लम्बे कानवाली), अकर्णिका (बिना कानकी), हस्तिपदी

* प्राचीनकालमें नगरकी श्मशानभूमिके पास एक गोलाकार देवालय-सा बना रहता था, जहाँ राजाकी आज्ञासे प्राणदण्डके अपराधियोंका जल्लादोंके द्वारा वध कराया जाता था। जब वहाँ किसीको प्राणदण्ड देनेका अवसर आता, तब उस देवालयको लीप-पोतकर फूलोंकी बन्दनवारोंसे सजाया जाता था। उस विभूषित श्मशानचैत्यको देखते ही लोग यह सोचकर भयभीत हो उठते थे कि आज यहाँ किसीके जीवनका अन्त होनेवाला है। इस तरह जैसे वह श्मशानचैत्य विभूषित होनेपर भी भयंकर लगता था, उसी प्रकार रावण सुन्दर शृङ्गार करके भी सीताको भयानक प्रतीत होता था; क्योंकि वह उनके सतीत्वको नष्ट करना चाहता था।

(हाथीके-से पैरोंवाली), अश्वपदी (घोड़के समान पैरवाली), गोपदी (गायके समान पैरवाली), पादचूलिका (केशयुक्त पैरोंवाली), एकाक्षी, एकपादी (एक पैरवाली), पृथुपादी (मोटे पैरवाली), अपादिका (बिना पैरोंकी), अतिमात्रशिरोग्रीवा (विशाल सिर और गर्दनवाली), अतिमात्रकुचोदरी (बहुत बड़े-बड़े स्तन और पेटवाली), अतिमात्रास्यनेत्रा (विशाल मुख और नेत्रवाली), दीर्घजिह्वानखा (लंबी जीभ और नखोंवाली), अनासिका (बिना नाककी), सिंहमुखी (सिंहके समान मुखवाली), गोमुखी (गौके समान मुखवाली) तथा सूकरीमुखी (सूकरीके समान मुखवाली)—इन सब राक्षसियोंसे कहा— 'निशाचरियो! तुम सब लोग मिलकर अथवा अलग-अलग शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न करो, जिससे जनककिशोरी सीता बहुत जल्द मेरे वशमें आ जाय। अनुकूल-प्रतिकूल उपायोंसे, साम, दान और भेदनीतिसे तथा दण्डका भी भय दिखाकर विदेहकुमारी सीताको वशमें लानेकी चेष्टा करो'॥ ३३—३७½ ॥

राक्षसियोंको इस प्रकार बारम्बार आज्ञा देकर काम और क्रोधसे व्याकुल हुआ राक्षसराज रावण जानकीजीकी ओर देखकर गर्जना करने लगा॥ ३८½ ॥

तदनन्तर राक्षसियोंकी स्वामिनी मन्दोदरी तथा धान्यमालिनी नामवाली राक्षस-कन्या शीघ्र रावणके पास आयीं और उसका आलिंगन करके बोलीं—॥ ३९½ ॥

'महाराज राक्षसराज! आप मेरे साथ क्रीडा कीजिये। इस कान्तिहीन और दीन-मानव-कन्या सीतासे आपको क्या प्रयोजन है?॥ ४०½ ॥

'महाराज! निश्चय ही देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने इसके भाग्यमें आपके बाहुबलसे उपार्जित दिव्य एवं उत्तम भोग नहीं लिखे हैं॥ ४१½ ॥

'प्राणनाथ! जो स्त्री अपनेसे प्रेम नहीं करती, उसकी कामना करनेवाले पुरुषके शरीरमें केवल ताप ही होता है और अपने प्रति अनुराग रखनेवाली स्त्रीकी कामना करनेवालेको उत्तम प्रसन्नता प्राप्त होती है'॥

जब राक्षसीने ऐसा कहा और उसे दूसरी ओर वह हटा ले गयी, तब मेघके समान काला और बलवान् राक्षस रावण जोर-जोरसे हँसता हुआ महलकी ओर लौट पड़ा॥ ४३ ॥

अशोकवाटिकासे प्रस्थित होकर पृथ्वीको कम्पित-सी करते हुए दशग्रीवने उद्दीप्त सूर्यके सदृश प्रकाशित होनेवाले अपने भवनमें प्रवेश किया॥ ४४ ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ भी रावणको सब ओरसे घेरकर उसके साथ ही उस उत्तम राजभवनमें चली गयीं॥ ४५ ॥

इस प्रकार अपने धर्ममें तत्पर, स्थिरचित्त और भयसे काँपती हुई मिथिलेशकुमारी सीताको धमकाकर काममोहित रावण अपने ही महलमें चला गया॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

राक्षसियोंका सीताजीको समझाना

शत्रुओंको रुलानेवाला राजा रावण सीताजीसे पूर्वोक्त बातें कहकर तथा सब राक्षसियोंको उन्हें वशमें लानेके लिये आदेश दे वहाँसे निकल गया॥ १ ॥

अशोकवाटिकासे निकलकर जब राक्षसराज रावण अन्त:पुरको चला गया, तब वहाँ जो भयानक रूपवाली राक्षसियाँ थीं, वे सब चारों ओरसे दौड़ी हुई सीताके पास आयीं॥ २ ॥

विदेहकुमारी सीताके समीप आकर क्रोधसे व्याकुल हुई उन राक्षसियोंने अत्यन्त कठोर वाणीद्वारा उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ३ ॥

'सीते! तुम पुलस्त्यजीके कुलमें उत्पन्न हुए सर्वश्रेष्ठ दशग्रीव महामना रावणकी भार्या बनना भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं समझती?'॥ ४ ॥

तत्पश्चात् एकजटा नामवाली राक्षसीने क्रोधसे लाल आँखें करके कृशोदरी सीताको पुकारकर कहा—॥ ५ ॥

'विदेहकुमारी! पुलस्त्यजी छ: * प्रजापतियोंमें चौथे हैं और ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। इस रूपमें उनकी सर्वत्र ख्याति है॥ ६ ॥

'पुलस्त्यजीके मानस पुत्र तेजस्वी महर्षि विश्रवा

* मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु—ये छ: प्रजापति हैं।

हैं। वे भी प्रजापतिके समान ही प्रकाशित होते हैं॥ ७॥

'विशाललोचने! ये शत्रुओंके रुलानेवाले महाराज रावण उन्हींके पुत्र हैं और समस्त राक्षसोंके राजा हैं। तुम्हें इनकी भार्या हो जाना चाहिये। सर्वांगसुन्दरी! मेरी इस कही हुई बातका तुम अनुमोदन क्यों नहीं करतीं?'॥

इसके बाद बिल्लीके समान भूरे आँखोंवाली हरिजटा नामकी राक्षसीने क्रोधसे आँखें फाड़कर कहना आरम्भ किया—'अरी! जिन्होंने तैंतीसों* देवताओं तथा देवराज इन्द्रको भी परास्त कर दिया है, उन राक्षसराज रावणकी रानी तो तुम्हें अवश्य बन जाना चाहिये॥

'उन्हें अपने पराक्रमपर गर्व है। वे युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर हैं। ऐसे बल-पराक्रमसम्पन्न पुरुषकी भार्या बनना तुम क्यों नहीं चाहती हो?॥ ११॥

'महाबली राजा रावण अपनी अधिक प्रिय और सम्मानित भार्या मन्दोदरीको भी, जो सबकी स्वामिनी हैं, छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे। तुम्हारा कितना महान् सौभाग्य है। वे सहस्रों रमणियोंसे भरे हुए और अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित उस अन्त:पुरको छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे (अत: तुम्हें उनकी प्रार्थना मान लेनी चाहिये)'॥ १२-१३॥

तदनन्तर विकटा नामवाली दूसरी राक्षसीने कहा—'जिन भयानक पराक्रमी राक्षसराजने नागों, गन्धर्वों और दानवोंको भी समरांगणमें बारम्बार परास्त किया है, वे ही तुम्हारे पास पधारे थे। नीच नारी! उन्हीं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न महामना राक्षसराज रावणकी भार्या बननेके लिये तुम्हें क्यों इच्छा नहीं होती है?'॥ १४-१५॥

फिर उनसे दुर्मुखी नामवाली राक्षसीने कहा—'विशाललोचने! जिनसे भय मानकर सूर्य तपना छोड़ देता है और वायुकी गति रुक जाती है, उनके पास तुम क्यों नहीं रहती?॥ १६॥

'भामिनि! जिनके भयसे वृक्ष फूल बरसाने लगते हैं और जो जब इच्छा करते हैं, तभी पर्वत तथा मेघ जलका स्रोत बहाने लगते हैं। उन्हीं राजाधिराज राक्षसराज रावणकी भार्या बननेके लिये तुम्हारे मनमें क्यों नहीं विचार होता है?॥ १७-१८॥

'देवि! मैंने तुमसे उत्तम, यथार्थ और हितकी बात कही है। सुन्दर मुसकानवाली सीते! तुम मेरी बात मान लो, नहीं तो तुम्हें प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

सीताजीका राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार कर देना तथा राक्षसियोंका उन्हें मारने-काटनेकी धमकी देना

तदनन्तर विकराल मुखवाली उन समस्त राक्षसियोंने जो कटुवचन सुननेके योग्य नहीं थीं, उन सीतासे अप्रिय तथा कठोर वचन कहना आरम्भ किया—॥ १॥

'सीते! रावणका अन्त:पुर समस्त प्राणियोंके लिये मनोरम है। वहाँ बहुमूल्य शय्याएँ बिछी रहती हैं। उस अन्त:पुरमें तुम्हारा निवास हो, इसके लिये तुम क्यों नहीं अनुमति देतीं?॥ २॥

'तुम मानुषी हो, इसलिये मनुष्यकी भार्याका जो पद है, उसीको तुम अधिक महत्त्व देती हो; किंतु अब तुम रामकी ओरसे अपना मन हटा लो, अन्यथा कदापि जीवित नहीं रहोगी॥ ३॥

'तुम त्रिलोकीके ऐश्वर्यको भोगनेवाले राक्षसराज रावणको पतिरूपमें पाकर आनन्दपूर्वक विहार करो॥ ४॥

'अनिन्द्य सुन्दरि! तुम मानवी हो, इसीलिये मनुष्य-जातीय रामको ही चाहती हो; परंतु राम इस समय राज्यसे भ्रष्ट हैं। उनका कोई मनोरथ सफल नहीं होता है तथा वे सदा व्याकुल रहते हैं'॥ ५॥

राक्षसियोंकी ये बातें सुनकर कमलनयनी सीताने आँसूभरे नेत्रोंसे उनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—॥ ६॥

'तुम सब मिलकर मुझसे जो यह लोक-विरुद्ध प्रस्ताव कर रही हो, तुम्हारा यह पापपूर्ण वचन मेरे हृदयमें एक क्षणके लिये भी नहीं ठहर पाता है॥ ७॥

'एक मानवकन्या किसी राक्षसकी भार्या नहीं हो सकती। तुम सब लोग भले ही मुझे खा जाओ; किंतु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती॥ ८॥

* बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और दो अश्विनीकुमार—ये तैंतीस देवता हैं।

'मेरे पति दीन हों अथवा राज्यहीन—वे ही मेरे स्वामी हैं, वे ही मेरे गुरु हैं, मैं सदा उन्हींमें अनुरक्त हूँ और रहूँगी। जैसे सुवर्चला सूर्यमें अनुरक्त रहती हैं॥ ९॥

'जैसे महाभागा शची इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती हैं, जैसे देवी अरुन्धती महर्षि वसिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, लोपामुद्रा अगस्त्यमें, सुकन्या च्यवनमें, सावित्री सत्यवान्‌में, श्रीमती कपिलमें, मदयन्ती सौदासमें, केशिनी सगरमें तथा भीमकुमारी दमयन्ती अपने पति निषधनरेश नलमें अनुराग रखती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पतिदेव इक्ष्वाकुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हूँ'॥ १०—१२ १/२ ॥

सीताकी बात सुनकर राक्षसियोंके क्रोधकी सीमा न रही। वे रावणकी आज्ञाके अनुसार कठोर वचनोंद्वारा उन्हें धमकाने लगीं॥ १३॥

अशोकवृक्षमें चुपचाप छिपे बैठे हुए वानर हनुमान्‌जी सीताको फटकारती हुई राक्षसियोंकी बातें सुनते रहे॥ १४॥

वे सब राक्षसियाँ कुपित हो वहाँ काँपती हुई सीतापर चारों ओरसे टूट पड़ीं और अपने लम्बे एवं चमकीले ओठोंको बारम्बार चाटने लगीं॥ १५॥

उनका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था। वे सब-की-सब तुरंत हाथोंमें फरसे लेकर बोल उठीं—'यह राक्षसराज रावणको पतिरूपमें पानेयोग्य है ही नहीं'॥ १६॥

उस भयानक राक्षसियोंके बारम्बार डाँटने और धमकानेपर सर्वांगसुन्दरी कल्याणी सीता अपने आँसू पोंछती हुई उसी अशोकवृक्षके नीचे चली आयीं (जिसके ऊपर हनुमान्‌जी छिपे बैठे थे)॥ १७॥

विशाललोचना वैदेही शोक-सागरमें डूबी हुई थीं। इसलिये वहाँ चुपचाप बैठ गयीं। किंतु उन राक्षसियोंने वहाँ भी आकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ १८॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गयी थीं। उनके मुखपर दीनता छा रही थी और उन्होंने मलिन वस्त्र पहन रखा था। उस अवस्थामें उन जनकनन्दिनीको चारों ओर खड़ी हुई भयानक राक्षसियोंने फिर धमकाना आरम्भ किया॥ १९॥

तदनन्तर विनता नामकी राक्षसी आगे बढ़ी। वह देखनेमें बड़ी भयंकर थी। उसकी देह क्रोधकी सजीव प्रतिमा जान पड़ती थी। उस विकराल राक्षसीके पेट भीतरकी ओर धँसे हुए थे। वह बोली—॥ २०॥

'सीते! तूने अपने पतिके प्रति जितना स्नेह दिखाया है, इतना ही बहुत है। भद्रे! अति करना तो सब जगह दुःखका ही कारण होता है॥ २१॥

'मिथिलेशकुमारी! तुम्हारा भला हो। मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ; क्योंकि तुमने मानवोचित शिष्टाचारका अच्छी तरह पालन किया है। अब मैं भी तुम्हारे हितके लिये जो बात कहती हूँ, उसपर ध्यान दो—उसका शीघ्र पालन करो॥ २२॥

'समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाले महाराज रावणको तुम अपना पति स्वीकार कर लो। वे देवराज इन्द्रके समान बड़े पराक्रमी तथा रूपवान् हैं॥ २३॥

'दीन-हीन मनुष्य रामका परित्याग करके सबसे प्रिय वचन बोलनेवाले, उदार और त्यागी रावणका आश्रय लो॥ २४॥

'विदेहराजकुमारी! तुम आजसे समस्त लोकोंकी स्वामिनी बन जाओ और दिव्य अंगराग तथा दिव्य आभूषण धारण करो॥ २५॥

'शोभने! जैसे अग्निकी प्रिय पत्नी स्वाहा और इन्द्रकी प्राणवल्लभा शची हैं, उसी प्रकार तुम रावणकी प्रेयसी बन जाओ। विदेहकुमारी! श्रीराम तो दीन हैं। उनकी आयु भी अब समाप्त हो चली है। उनसे तुम्हें क्या मिलेगा!॥ २६॥

'यदि तुम मेरी कही हुई इस बातको नहीं मानोगी तो हम सब मिलकर तुम्हें इसी मुहूर्तमें अपना आहार बना लेंगी'॥ २७॥

तदनन्तर दूसरी राक्षसी सामने आयी। उसके लम्बे-लम्बे स्तन लटक रहे थे। उसका नाम विकटा था। वह कुपित हो मुक्का तानकर डाँटती हुई सीतासे बोली—॥ २८॥

'अत्यन्त खोटी बुद्धिवाली मिथिलेशकुमारी! अबतक हमलोगोंने अपने कोमल स्वभाववश तुमपर दया आ जानेके कारण तुम्हारी बहुत-सी अनुचित बातें सह ली हैं॥ २९॥

'इतनेपर भी तुम हमारी बात नहीं मानती हो। हमने तुम्हारे हितके लिये ही समयोचित सलाह दी थी। देखो, तुम्हें समुद्रके इस पार ले आया गया है, जहाँ पहुँचना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। यहाँ भी रावणके भयानक अन्तःपुरमें तुम लाकर रखी गयी हो। मिथिलेशकुमारी! याद रखो, रावणके घरमें कैद हो और हम-जैसी राक्षसियाँ तुम्हारी चौकसी कर रही हैं॥ ३०-३१॥

'मैथिलि! साक्षात् इन्द्र भी यहाँ तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः मेरा कहना मानो,

मैं तुम्हारे हितकी बात बता रही हूँ॥ ३२॥

'आँसू बहानेसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। यह व्यर्थका शोक त्याग दो। सदा छायी रहनेवाली दीनताको दूर करके अपने हृदयमें प्रसन्नता और उल्लासको स्थान दो॥ ३३॥

'सीते! राक्षसराज रावणके साथ सुखपूर्वक क्रीडाविहार करो। भीरु! हम सभी स्त्रियाँ जानती हैं कि नारियोंका यौवन टिकनेवाला नहीं होता॥ ३४॥

'जबतक तुम्हारा यौवन नहीं ढल जाता, तबतक सुख भोग लो। मदमत्त बना देनेवाले नेत्रोंसे शोभा पानेवाली सुन्दरी ! तुम राक्षसराज रावणके साथ लङ्काके रमणीय उद्यानों और पर्वतीय उपवनोंमें विहार करो। देवि! ऐसा करनेसे सहस्रों स्त्रियाँ सदा तुम्हारी आज्ञाके अधीन रहेंगी॥ ३५-३६॥

'महाराज रावण समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाले स्वामी हैं। तुम उन्हें अपना पति बना लो। मैथिलि! याद रखो, मैंने जो बात कही है, यदि उसका ठीक-ठीक पालन नहीं करोगी तो मैं अभी तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी'॥ ३७ १/२॥

अब चण्डोदरी नामवाली राक्षसीकी बारी आयी। उसकी दृष्टिसे ही क्रूरता टपकती थी। उसने विशाल त्रिशूल घुमाते हुए यह बात कही—॥ ३८ १/२॥

'महाराज रावण जब इसे हरकर ले आये थे, उस समय भयके मारे यह थर-थर काँप रही थी, जिससे इसके दोनों स्तन हिल रहे थे। उस दिन इस मृगशावकनयनी मानवकन्याको देखकर मेरे हृदयमें यह बड़ी भारी इच्छा जाग्रत् हुई—इसके जिगर, तिल्ली, विशाल वक्ष:स्थल, हृदय, उसके आधारस्थान, अन्यान्य अंग तथा सिरको मैं खा जाऊँ। इस समय भी मेरा ऐसा ही विचार है'॥ ३९-४० १/२॥

तदनन्तर प्रघसा नामक राक्षसी बोल उठी—'फिर तो हमलोग इस क्रूर-हृदया सीताका गला घोंट दें; अब चुपचाप बैठे रहनेकी क्या आवश्यकता है? इसे मारकर महाराजको सूचना दे दी जाय कि वह मानवकन्या मर गयी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समाचारको सुनकर महाराज यह आज्ञा दे देंगे कि तुम सब लोग उसे खा जाओ'॥ ४१-४२ १/२॥

तत्पश्चात् राक्षसी अजामुखीने कहा—'मुझे तो व्यर्थका वाद-विवाद अच्छा नहीं लगता। आओ, पहले इसे काटकर इसके बहुत-से टुकड़े कर डालें। वे सभी टुकड़े बराबर माप-तौलके होने चाहिये। फिर उन टुकड़ोंको हमलोग आपसमें बाँट लेंगी। साथ ही नाना प्रकारकी पेय-सामग्री तथा फूल-माला आदि भी शीघ्र ही प्रचुर मात्रामें मँगा ली जाय'॥ ४३-४४ १/२॥

तदनन्तर राक्षसी शूर्पणखाने कहा—'अजामुखीने जो बात कही है, वही मुझे भी अच्छी लगती है। समस्त शोकोंको नष्ट कर देनेवाली सुराको भी शीघ्र मँगवा लो। उसके साथ मनुष्यके मांसका आस्वादन करके हम निकुम्भिला देवीके सामने नृत्य करेंगी'॥ ४५-४६ १/२॥

उन विकराल रूपवाली राक्षसियोंके द्वारा इस प्रकार धमकायी जानेपर देवकन्याके समान सुन्दरी सीता धैर्य छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगीं॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार करके शोक-संतप्त सीताका विलाप करना

जब वे क्रूर राक्षसियाँ इस प्रकारकी बहुत-सी कठोर एवं क्रूरतापूर्ण बातें कह रही थीं, उस समय जनकनन्दिनी सीता अधीर हो-होकर रो रही थीं॥ १॥

उन राक्षसियोंके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त भयभीत हुई मनस्विनी विदेहराजकुमारी सीता नेत्रोंसे आँसू बहाती गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ २॥

'राक्षसियो! मनुष्यकी कन्या कभी राक्षसकी भार्या नहीं हो सकती। तुम्हारा जी चाहे तो तुम सब लोग मिलकर मुझे खा जाओ, परंतु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी'॥

राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देवकन्याके समान सुन्दरी सीता रावणके द्वारा धमकायी जानेके कारण शोकसे आर्त-सी होकर चैन नहीं पा रही थीं॥ ४॥

जैसे वनमें अपने यूथसे बिछुड़ी हुई मृगी भेड़ियोंसे पीड़ित होकर भयके मारे काँप रही हो, उसी प्रकार सीता जोर-जोरसे काँप रही थीं और इस तरह सिकुड़ी जा रही थीं, मानो अपने अंगोंमें ही समा जायँगी॥ ५॥

उनका मनोरथ भंग हो गया था। वे हताश-सी

होकर अशोकवृक्षकी खिली हुई एक विशाल शाखाका सहारा ले शोकसे पीड़ित हो अपने पतिदेवका चिन्तन करने लगीं॥ ६॥

आँसुओंके प्रवाहसे अपने स्थूल उरोजोंका अभिषेक करती हुई वे चिन्तामें डूबी थीं और उस समय शोकका पार नहीं पा रही थीं॥ ७॥

प्रचण्ड वायुके चलनेपर कम्पित होकर गिरे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे राक्षसियोंके भयसे त्रस्त हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी॥ ८॥

उस बेलामें काँपती हुई सीताकी विशाल एवं घनीभूत वेणी भी कम्पित हो रही थी, इसलिये वह रेंगती हुई सर्पिणीके समान दिखायी देती थी॥ ९॥

वे शोकसे पीड़ित होकर लम्बी साँसें खींच रही थीं और क्रोधसे अचेत-सी होकर आर्तभावसे आँसू बहा रही थीं। उस समय मिथिलेशकुमारी इस प्रकार विलाप करने लगीं—॥ १०॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सासु कौसल्ये! हा आर्ये सुमित्रे! बारम्बार ऐसा कहकर दुःखसे पीड़ित हुई भामिनी सीता रोने-बिलखने लगीं॥ ११॥

'हाय! पण्डितोंने यह लोकोक्ति ठीक ही कही है कि 'किसी भी स्त्री या पुरुषकी मृत्यु बिना समय आये नहीं होती'॥ १२॥

'तभी तो मैं श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित तथा इन क्रूर राक्षसियोंद्वारा पीड़ित होनेपर भी यहाँ मुहूर्तभर भी जी रही हूँ॥ १३॥

'मैंने पूर्वजन्ममें बहुत थोड़े पुण्य किये थे, इसीलिये इस दीन दशामें पड़कर मैं अनाथकी भाँति मारी जाऊँगी। जैसे समुद्रके भीतर सामानसे भरी हुई नौका वायुके वेगसे आहत हो डूब जाती है, उसी प्रकार मैं भी नष्ट हो जाऊँगी॥ १४॥

'मुझे पतिदेवके दर्शन नहीं हो रहे हैं। मैं इन राक्षसियोंके चंगुलमें फँस गयी हूँ और पानीके थपेड़ोंसे आहत हो कटते हुए कगारोंके समान शोकसे क्षीण होती जा रही हूँ॥ १५॥

'आज जिन लोगोंको सिंहके समान पराक्रमी और सिंहकी-सी चालवाले मेरे कमलदललोचन, कृतज्ञ और प्रियवादी प्राणनाथके दर्शन हो रहे हैं, वे धन्य हैं॥ १६॥

'उन आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामसे बिछुड़कर मेरा जीवित रहना उसी तरह सर्वथा दुर्लभ है, जैसे तेज विषका पान करके किसीका भी जीना अत्यन्त कठिन हो जाता है॥ १७॥

'पता नहीं, मैंने पूर्वजन्ममें दूसरे शरीरसे कैसा महान् पाप किया था, जिससे यह अत्यन्त कठोर, घोर और महान् दुःख मुझे प्राप्त हुआ है?॥ १८॥

'इन राक्षसियोंके संरक्षणमें रहकर तो मैं अपने प्राणाराम श्रीरामको कदापि नहीं पा सकती, इसलिये महान् शोकसे घिर गयी हूँ और इससे तंग आकर अपने जीवनका अन्त कर देना चाहती हूँ॥ १९॥

'इस मानव-जीवन और परतन्त्रताको धिक्कार है, जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार प्राणोंका परित्याग भी नहीं किया जा सकता'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

सीताका करुण-विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना

जनकनन्दिनी सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। उन्होंने अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया था। वे उपर्युक्त बातें कहती हुई ऐसी जान पड़ती थीं मानो उन्मत्त हो गयी हों—उनपर भूत सवार हो गया हो अथवा पित्त बढ़ जानेसे पागलोंका-सा प्रलाप कर रही हों अथवा दिग्भ्रम आदिके कारण, उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो। वे शोकमग्न हो धरतीपर लोटती हुई बछेड़ीके समान पड़ी-पड़ी छटपटा रही थीं। उसी अवस्थामें सरलहृदया सीताने इस प्रकार विलाप करना आरम्भ किया—॥ १-२॥

'हाय! इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस मारीचके द्वारा जब रघुनाथजी दूर हटा दिये गये और मेरी ओरसे असावधान हो गये, उस अवस्थामें रावण मुझ रोती, चिल्लाती हुई अबलाको बलपूर्वक उठाकर यहाँ ले आया॥ ३॥

'अब मैं राक्षसियोंके वशमें पड़ी हूँ और इनकी कठोर धमकियाँ सुनती एवं सहती हूँ। ऐसी दशामें अत्यन्त दुःखसे आर्त एवं चिन्तित होकर मैं

जीवित नहीं रह सकती॥ ४॥

'महारथी श्रीरामके बिना राक्षसियोंके बीचमें रहकर मुझे न तो जीवनसे कोई प्रयोजन है, न धनकी आवश्यकता है और न आभूषणोंसे ही कोई काम है॥

'अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहेका बना हुआ है अथवा अजर-अमर है, जिससे इस महान् दुःखमें पड़कर भी यह फटता नहीं है॥ ६॥

'मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूँ, मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हूँ। अब तो यह जीवन केवल दुःख देनेके लिये ही है॥ ७॥

'उस लोकनिन्दित निशाचर रावणको तो मैं बायें पैरसे भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या है?॥ ८॥

'यह राक्षस अपने क्रूर स्वभावके कारण न तो मेरे इनकारपर ध्यान देता है, न अपने महत्त्वको समझता है और न अपने कुलकी प्रतिष्ठाका ही विचार करता है। बारम्बार मुझे प्राप्त करनेकी ही इच्छा करता है॥ ९॥

'राक्षसियो! तुम्हारे देरतक बकवाद करनेसे क्या लाभ? तुम मुझे छेदो, चीरो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो, आगमें सेंक दो अथवा सर्वथा जलाकर भस्म कर डालो तो भी मैं रावणके पास नहीं फटक सकती॥ १०॥

'श्रीरघुनाथजी विश्वविख्यात ज्ञानी, कृतज्ञ, सदाचारी और परम दयालु हैं तथापि मुझे संदेह हो रहा है कि कहीं वे मेरे भाग्यके नष्ट हो जानेसे मेरे प्रति निर्दय तो नहीं हो गये?॥ ११॥

'अन्यथा जिन्होंने जनस्थानमें अकेले ही चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें डाल दिया, वे मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हैं?॥ १२॥

'इस अल्प बलवाले राक्षस रावणने मुझे कैद कर रखा है। निश्चय ही मेरे पतिदेव समरांगणमें इस रावणका वध करनेमें समर्थ हैं॥ १३॥

'जिन श्रीरामने दण्डकारण्यके भीतर राक्षसशिरोमणि विराधको युद्धमें मार डाला था, वे मेरी रक्षा करनेके लिये यहाँ क्यों नहीं आ रहे हैं?॥ १४॥

'यह लङ्का समुद्रके बीचमें बसी है, अतः किसी दूसरेके लिये यहाँ आक्रमण करना भले ही कठिन हो; किंतु श्रीरघुनाथजीके बाणोंकी गति यहाँ भी कुण्ठित नहीं हो सकती॥ १५॥

'वह कौन-सा कारण है, जिससे बाधित होकर सुदृढ़ पराक्रमी श्रीराम राक्षसद्वारा अपहृत हुई अपनी प्राणपत्नी सीताको छुड़ानेके लिये नहीं आ रहे हैं॥ १६॥

'मुझे तो संदेह होता है कि लक्ष्मणजीके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीको मेरे इस लङ्कामें होनेका पता ही नहीं है। मेरे यहाँ होनेकी बात यदि वे जानते होते तो उनके-जैसा तेजस्वी पुरुष अपनी पत्नीका यह तिरस्कार कैसे सह सकता था?॥ १७॥

'जो श्रीरघुनाथजीको मेरे हरे जानेकी सूचना दे सकते थे, उन गृध्रराज जटायुको भी रावणने युद्धमें मार गिराया था॥ १८॥

'जटायु यद्यपि बूढ़े थे तो भी मुझपर अनुग्रह करके रावणका वध करनेके लिये उद्यत हो उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया था॥ १९॥

'यदि श्रीरघुनाथजीको मेरे यहाँ रहनेका पता लग जाता तो वे आज ही कुपित होकर सारे संसारको राक्षसोंसे शून्य कर डालते॥ २०॥

'लङ्कापुरीको भी जला देते, महासागरको भी भस्म कर डालते तथा इस नीच निशाचर रावणके नाम और यशका भी नाश कर देते॥ २१॥

'फिर तो निःसंदेह अपने पतियोंका संहार हो जानेसे घर-घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज मैं रो रही हूँ॥ २२॥

'श्रीराम और लक्ष्मण लङ्काका पता लगाकर निश्चय ही राक्षसोंका संहार करेंगे। जिस शत्रुको उन दोनों भाइयोंने एक बार देख लिया, वह दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता॥ २३॥

'अब थोड़े ही समयमें यह लङ्कापुरी श्मशान-भूमिके समान हो जायगी। यहाँकी सड़कोंपर चिताका धुआँ फैल रहा होगा और गीधोंकी जमातें इस भूमिकी शोभा बढ़ाती होंगी॥ २४॥

'वह समय शीघ्र आनेवाला है जब कि मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा। तुम सब लोगोंका यह दुराचार तुम्हारे लिये शीघ्र ही विपरीत परिणाम उपस्थित करेगा, ऐसा स्पष्ट जान पड़ता है॥ २५॥

'लङ्कामें जैसे-जैसे अशुभ लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक-दमक नष्ट हो जायगी॥ २६॥

'पापाचारी राक्षसराज रावणके मारे जानेपर यह दुर्धर्ष लङ्कापुरी भी निश्चय ही विधवा युवतीकी भाँति सूख जायगी, नष्ट हो जायगी॥ २७॥

'आज जिस लङ्कामें पुण्यमय उत्सव होते हैं, वह राक्षसोंके सहित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेपर विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हो जायगी॥ २८॥

'निश्चय ही मैं बहुत शीघ्र लङ्काके घर-घरमें दु:खसे आतुर होकर रोती हुई राक्षसकन्याओंकी क्रन्दन-ध्वनि सुनूँगी॥ २९॥

'श्रीरामचन्द्रजीके सायकोंसे दग्ध हो जानेके कारण लङ्कापुरीकी प्रभा नष्ट हो जायगी। इसमें अन्धकार छा जायगा और यहाँके सभी प्रमुख राक्षस कालके गालमें चले जायँगे॥ ३०॥

'यह सब तभी सम्भव होगा, जब कि लाल नेत्र-प्रान्तवाले शूरवीर भगवान् श्रीरामको यह पता लग जाय कि मैं राक्षसके अन्त:पुरमें बंदी बनाकर रखी गयी हूँ॥

'इस नीच और नृशंस रावणने मेरे लिये जो समय नियत किया है, उसकी पूर्ति भी निकट भविष्यमें ही हो जायगी॥ ३२॥

'उसी समय दुष्ट रावणने मेरे वधका निश्चय किया है। ये पापाचारी राक्षस इतना भी नहीं जानते हैं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं॥ ३३॥

'इस समय अधर्मसे ही महान् उत्पात होनेवाला है। ये मांसभक्षी राक्षस धर्मको बिलकुल नहीं जानते हैं॥

'वह राक्षस अवश्य ही अपने कलेवेके लिये मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े करा डालेगा। उस समय अपने प्रियदर्शन पतिके बिना मैं असहाय अबला क्या करूँगी?॥

'जिनके नेत्रप्रान्त अरुण वर्णके हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन न पाकर अत्यन्त दु:खमें पड़ी हुई मुझ असहाय अबलाको पतिका चरणस्पर्श किये बिना ही शीघ्र यमदेवताका दर्शन करना पड़ेगा॥ ३६॥

'भरतके बड़े भाई भगवान् श्रीराम यह नहीं जानते हैं कि मैं जीवित हूँ। यदि उन्हें इस बातका पता होता तो ऐसा सम्भव नहीं था कि वे पृथ्वीपर मेरी खोज नहीं करते॥ ३७॥

'मुझे तो यह निश्चित जान पड़ता है कि मेरे ही शोकसे लक्ष्मणके बड़े भाई वीरवर श्रीराम भूतलपर अपने शरीरका त्याग करके यहाँसे देवलोकको चले गये हैं॥ ३८॥

'वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण धन्य हैं, जो मेरे पतिदेव वीर-शिरोमणि कमलनयन श्रीरामका दर्शन पा रहे हैं॥ ३९॥

'अथवा केवल धर्मकी कामना रखनेवाले परमात्मस्वरूप बुद्धिमान् राजर्षि श्रीरामको भार्यासे कोई प्रयोजन नहीं है (इसलिये वे मेरी सुध नहीं ले रहे हैं)॥

'जो स्वजन अपनी दृष्टिके सामने होते हैं, उन्हींपर प्रीति बनी रहती है। जो आँखसे ओझल होते हैं, उनपर लोगोंका स्नेह नहीं रहता है (शायद इसीलिये श्रीरघुनाथजी मुझे भूल गये हैं, परंतु यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि) कृतघ्न मनुष्य ही पीठ-पीछे प्रेमको ठुकरा देते हैं। भगवान् श्रीराम ऐसा नहीं करेंगे॥ ४१॥

'अथवा मुझमें कोई दुर्गुण हैं या मेरा भाग्य ही फूट गया है, जिससे इस समय मैं मानिनी सीता अपने परम पूजनीय पति श्रीरामसे बिछुड़ गयी हूँ॥ ४२॥

'मेरे पति भगवान् श्रीरामका सदाचार अक्षुण्ण है। वे शूरवीर होनेके साथ ही शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं। मैं उनसे संरक्षण पानेके योग्य हूँ, परंतु उन महात्मासे बिछुड़ गयी। ऐसी दशामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है॥ ४३॥

'अथवा वनमें फल-मूल खाकर विचरनेवाले वे दोनों वनवासी बन्धु नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण अब अहिंसाका व्रत लेकर अपने अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर चुके हैं॥ ४४॥

'अथवा दुरात्मा राक्षसराज रावणने उन दोनों शूरवीर बन्धु श्रीराम और लक्ष्मणको छलसे मरवा डाला है॥ ४५॥

'अत: ऐसे समयमें मैं सब प्रकारसे अपने जीवनका अन्त कर देनेकी इच्छा रखती हूँ; परंतु मालूम होता है इस महान् दु:खमें होते हुए भी अभी मेरी मृत्यु नहीं लिखी है॥ ४६॥

'सत्यस्वरूप परमात्माको ही अपना आत्मा माननेवाले और अपने अन्त:करणको वशमें रखनेवाले वे महाभाग महात्मा महर्षिगण धन्य हैं, जिनके कोई प्रिय और अप्रिय नहीं हैं॥ ४७॥

'जिन्हें प्रियके वियोगसे दु:ख नहीं होता और अप्रियका संयोग प्राप्त होनेपर उससे भी अधिक कष्टका अनुभव नहीं होता—इस प्रकार जो प्रिय और अप्रिय दोनोंसे परे हैं, उन महात्माओंको मेरा नमस्कार है॥ ४८॥

'मैं अपने प्रियतम आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामसे बिछुड़ गयी हूँ और पापी रावणके चंगुलमें आ फँसी हूँ; अत: अब इन प्राणोंका परित्याग कर दूँगी'॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

त्रिजटाका स्वप्न, राक्षसोंके विनाश और श्रीरघुनाथजीकी विजयकी शुभ सूचना

सीताने जब ऐसी भयंकर बात कही, तब वे राक्षसियाँ क्रोधसे अचेत-सी हो गयीं और उनमेंसे कुछ उस दुरात्मा रावणसे वह संवाद कहनेके लिये चल दीं॥ १॥

तत्पश्चात् भयंकर दिखायी देनेवाली वे राक्षसियाँ सीताके पास आकर पुन: एक ही प्रयोजनसे सम्बन्ध रखनेवाली कठोर बातें, जो उनके लिये ही अनर्थकारिणी थीं, कहने लगीं—॥ २॥

'पापपूर्ण विचार रखनेवाली अनार्ये सीते! आज इसी समय ये सब राक्षसियाँ मौजके साथ तेरा यह मांस खायेंगी'॥ ३॥

उन दुष्ट निशाचरियोंके द्वारा सीताको इस प्रकार डरायी जाती देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल सोकर उठी थी, उन सबसे कहने लगी—॥ ४॥

'नीच निशाचरियो! तुमलोग अपने-आपको ही खा जाओ। राजा जनककी प्यारी बेटी तथा महाराज दशरथकी प्रिय पुत्रवधू सीताजीको नहीं खा सकोगी॥ ५॥

'आज मैंने बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है, जो राक्षसोंके विनाश और सीतापतिके अभ्युदयकी सूचना देनेवाला है'॥ ६॥

त्रिजटाके ऐसा कहनेपर वे सब राक्षसियाँ, जो पहले क्रोधसे मूर्च्छित हो रही थीं, भयभीत हो उठीं और त्रिजटासे इस प्रकार बोलीं—॥ ७॥

'अरी! बताओ तो सही, तुमने आज रातमें यह कैसा स्वप्न देखा है?' उन राक्षसियोंके मुखसे निकली हुई यह बात सुनकर त्रिजटाने उस समय वह स्वप्न-सम्बन्धी बात इस प्रकार कही—॥ ८½॥

'आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि आकाशमें चलनेवाली एक दिव्य शिबिका है। वह हाथीदाँतकी बनी हुई है। उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए हैं और श्वेत पुष्पोंकी माला तथा श्वेत वस्त्र धारण किये स्वयं श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणके साथ उस शिबिकापर चढ़कर यहाँ पधारे हैं॥

'आज स्वप्नमें मैंने यह भी देखा है कि सीता श्वेत वस्त्र धारण किये श्वेत पर्वतके शिखरपर बैठी हैं और वह पर्वत समुद्रसे घिरा हुआ है, वहाँ जैसे सूर्यदेवसे उनकी प्रभा मिलती है, उसी प्रकार सीता श्रीरामचन्द्रजीसे मिली हैं॥ ११½॥

'मैंने श्रीरघुनाथजीको फिर देखा, वे चार दाँतवाले विशाल गजराजपर, जो पर्वतके समान ऊँचा था, लक्ष्मणके साथ बैठे हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥ १२½॥

'तदनन्तर अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होते तथा श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किये वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जानकीजीके पास आये॥ १३½॥

'फिर उस पर्वत-शिखरपर आकाशमें ही खड़े हुए और पतिद्वारा पकड़े गये उस हाथीके कंधेपर जानकीजी भी आ पहुँचीं॥ १४½॥

'इसके बाद कमलनयनी सीता अपने पतिके अङ्कसे ऊपरको उछलकर चन्द्रमा और सूर्यके पास पहुँच गयीं। वहाँ मैंने देखा, वे अपने दोनों हाथोंसे चन्द्रमा और सूर्यको पोंछ रही हैं—उनपर हाथ फेर रही हैं*॥ १५½॥

तत्पश्चात् जिसपर वे दोनों राजकुमार और विशाललोचना सीताजी विराजमान थीं, वह महान् गजराज लङ्काके ऊपर आकर खड़ा हो गया॥ १६॥

'फिर मैंने देखा कि आठ सफेद बैलोंसे जुते हुए एक रथपर आरूढ़ हो ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी श्वेत पुष्पोंकी माला और वस्त्र धारण किये अपनी धर्मपत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ पधारे हैं॥ १७½॥

'इसके बाद दूसरी जगह मैंने देखा, सत्यपराक्रमी और बल-विक्रमशाली पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी दिव्य पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो उत्तर दिशाको लक्ष्य करके यहाँसे प्रस्थित हुए हैं॥ १८-१९½॥

---

* जो स्त्री या पुरुष स्वप्नमें अपने दोनों हाथोंसे सूर्यमण्डल अथवा चन्द्रमण्डलको छू लेता है, उसे विशाल राज्यकी प्राप्ति होती है। जैसा कि स्वप्नाध्यायका वचन है—

आदित्यमण्डलं वापि चन्द्रमण्डलमेव वा। स्वप्ने गृह्णाति हस्ताभ्यां राज्यं सम्प्राप्नुयान्महत्॥

(गोविन्दराजविरचित रामायणभूषण)

'इस प्रकार मैंने स्वप्नमें भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी श्रीरामका उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दर्शन किया॥ २०½ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी महातेजस्वी हैं। उन्हें देवता, असुर, राक्षस तथा दूसरे लोग भी कदापि जीत नहीं सकते। ठीक उसी तरह, जैसे पापी मनुष्य स्वर्गलोकपर विजय नहीं पा सकते॥ २१½ ॥

'मैंने रावणको भी सपनेमें देखा था। वह मूड़ मुड़ाये तेलसे नहाकर लाल कपड़े पहने हुए था। मदिरा पीकर मतवाला हो रहा था तथा करवीरके फूलोंकी माला पहने हुए था। इसी वेशभूषामें आज रावण पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर गिर पड़ा था॥ २२-२३ ॥

'एक स्त्री उस मुण्डित-मस्तक रावणको कहीं खींचे लिये जा रही थी। उस समय मैंने फिर देखा, रावणने काले कपड़े पहन रखे हैं। वह गधे जुते हुए रथसे यात्रा कर रहा था। लाल फूलोंकी माला और लाल चन्दनसे विभूषित था। तेल पीता, हँसता और नाचता था। पागलोंकी तरह उसका चित्त भ्रान्त और इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। वह गधेपर सवार हो शीघ्रतापूर्वक दक्षिण-दिशाकी ओर जा रहा था॥ २४-२५ ॥

'तदनन्तर मैंने फिर देखा राक्षसराज रावण गधेसे नीचे भूमिपर गिर पड़ा है। उसका सिर नीचेकी ओर है (और पैर ऊपरकी ओर) तथा वह भयसे मोहित हो रहा है॥ २६ ॥

'फिर वह भयातुर हो घबराकर सहसा उठा और मदसे विह्वल हो पागलके समान नंग-धड़ंग वेषमें बहुत-से दुर्वचन (गाली आदि) बकता हुआ आगे बढ़ गया। सामने ही दुर्गन्धयुक्त दुःसह घोर अन्धकारपूर्ण और नरकतुल्य मलका पङ्क था, रावण उसीमें घुसा और वहीं डूब गया॥ २७-२८ ॥

'तदनन्तर फिर देखा, रावण दक्षिणकी ओर जा रहा है। उसने एक ऐसे तालाबमें प्रवेश किया है, जिसमें कीचड़का नाम नहीं है। वहाँ एक काले रंगकी स्त्री है, जिसके अंगोंमें कीचड़ लिपटी हुई है। वह युवती लाल वस्त्र पहने हुए है और रावणका गला बाँधकर उसे दक्षिण-दिशाकी ओर खींच रही है। वहाँ महाबली कुम्भकर्णको भी मैंने इसी अवस्थामें देखा है॥

'रावणके सभी पुत्र भी मूड़ मुड़ाये और तेलमें नहाये दिखायी दिये हैं। यह भी देखनेमें आया कि रावण सूअरपर, इन्द्रजित् सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार हो दक्षिण-दिशाको गये हैं॥ ३१½ ॥

'राक्षसोंमें एकमात्र विभीषण ही ऐसे हैं, जिन्हें मैंने वहाँ श्वेत छत्र लगाये, सफेद माला पहने, श्वेत वस्त्र धारण किये तथा श्वेत चन्दन और अंगराग लगाये देखा है॥ ३२½ ॥

'उनके पास शङ्खध्वनि हो रही थी, नगाड़े बजाये जा रहे थे। इनके गम्भीर घोषके साथ ही नृत्य और गीत भी हो रहे थे, जो विभीषणकी शोभा बढ़ा रहे थे। विभीषण वहाँ अपने चार मन्त्रियोंके साथ पर्वतके समान विशालकाय मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा चार दाँतोंवाले दिव्य गजराजपर आरूढ़ हो आकाशमें खड़े थे॥ ३३—३५ ॥

'यह भी देखनेमें आया कि तेल पीनेवाले तथा लाल माला और लाल वस्त्र धारण करनेवाले राक्षसोंका वहाँ बहुत बड़ा समाज जुटा हुआ है एवं गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही है॥ ३६ ॥

'यह रमणीय लङ्कापुरी घोड़े, रथ और हाथियोंसहित समुद्रमें गिरी हुई देखी गयी है। इसके बाहरी और भीतरी दरवाजे टूट गये हैं॥ ३७ ॥

'मैंने स्वप्नमें देखा है कि रावणद्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीको श्रीरामचन्द्रजीका दूत बनकर आये हुए एक वेगशाली वानरने जलाकर भस्म कर दिया है॥ ३८ ॥

'राखसे रूखी हुई लङ्कामें सारी राक्षसरमणियाँ तेल पीकर मतवाली हो बड़े जोर-जोरसे ठहाका मारकर हँसती हैं॥ ३९ ॥

'कुम्भकर्ण आदि ये समस्त राक्षसशिरोमणि वीर लाल कपड़े पहनकर गोबरके कुण्डमें घुस गये हैं॥ ४० ॥

'अतः अब तुमलोग हट जाओ और देखो कि किस तरह श्रीरघुनाथजी सीताको प्राप्त कर रहे हैं। वे बड़े अमर्षशील हैं, राक्षसोंके साथ तुम सबको भी मरवा डालेंगे॥ ४१ ॥

'जिन्होंने वनवासमें भी उनका साथ दिया है, उन अपनी पतिव्रता भार्या और परमादरणीया प्रियतमा सीताका इस तरह धमकाया और डराया जाना श्रीरघुनाथजी कदापि सहन नहीं करेंगे॥ ४२ ॥

'अतः अब इस तरह कठोर बातें सुनाना छोड़ो; क्योंकि इनसे कोई लाभ नहीं होगा। अब तो मधुर वचनका ही प्रयोग करो। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि हमलोग विदेहनन्दिनी सीतासे कृपा और क्षमाकी याचना करें॥ ४३ ॥

'जिस दुःखिनी नारीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है, वह बहुसंख्यक दुःखोंसे छुटकारा पाकर परम उत्तम प्रिय वस्तु प्राप्त कर लेती है॥ ४४॥

'राक्षसियो! मैं जानती हूँ, तुम्हें कुछ और कहने या बोलनेकी इच्छा है; किंतु इससे क्या होगा? यद्यपि तुमने सीताको बहुत धमकाया है तो भी इनकी शरणमें आकर इनसे अभयकी याचना करो; क्योंकि श्रीरघुनाथजीकी ओरसे राक्षसोंके लिये घोर भय उपस्थित हुआ है॥ ४५॥

'राक्षसियो! जनकनन्दिनी मिथिलेशकुमारी सीता केवल प्रणाम करनेसे ही प्रसन्न हो जायँगी। ये ही उस महान् भयसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं॥ ४६॥

'इन विशाललोचना सीताके अंगोंमें मुझे कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भी विपरीत लक्षण नहीं दिखायी देता (जिससे समझा जाय कि ये सदा कष्टमें ही रहेंगी)॥ ४७॥

'मैं तो समझती हूँ कि इन्हें जो वर्तमान दुःख प्राप्त हुआ है, वह ग्रहणके समय चन्द्रमापर पड़ी हुई छायाके समान थोड़ी ही देरका है; क्योंकि ये देवी सीता मुझे स्वप्नमें विमानपर बैठी दिखायी दी हैं, अतः ये दुःख भोगनेके योग्य कदापि नहीं हैं॥ ४८॥

'मुझे तो अब जानकीजीके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि उपस्थित दिखायी देती है। राक्षसराज रावणके विनाश और रघुनाथजीकी विजयमें अब अधिक विलम्ब नहीं है॥ ४९॥

'कमलदलके समान इनका विशाल बायाँ नेत्र फड़कता दिखायी देता है। यह इस बातका सूचक है कि इन्हें शीघ्र ही अत्यन्त प्रिय संवाद सुननेको मिलेगा॥

'इन उदारहृदया विदेहराजकुमारीकी एक बायीं बाँह कुछ रोमाञ्चित होकर सहसा काँपने लगी है (यह भी शुभका ही सूचक है)॥ ५१॥

'हाथीकी सूँड़के समान जो इनकी परम उत्तम बायीं जाँघ है, वह भी कम्पित होकर मानो यह सूचित कर रही है कि अब श्रीरघुनाथजी शीघ्र ही तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे॥ ५२॥

'देखो, सामने यह पक्षी शाखाके ऊपर अपने घोंसलेमें बैठकर बारम्बार उत्तम सान्त्वनापूर्ण मीठी बोली बोल रहा है। इसकी वाणीसे 'सुस्वागतम्' की ध्वनि निकल रही है और इसके द्वारा यह हर्षमें भरकर मानो पुनः-पुनः मंगलप्राप्तिकी सूचना दे रहा है अथवा आनेवाले प्रियतमकी अगवानीके लिये प्रेरित कर रहा है'॥ ५३॥

इस प्रकार पतिदेवकी विजयके संवादसे हर्षमें भरी हुई लजीली सीता उन सबसे बोलीं—'यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं अवश्य ही तुम सबकी रक्षा करूँगी'॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये उद्यत होना

पतिके विरहके दुःखसे व्याकुल हुई सीता राक्षसराज रावणके उन अप्रिय वचनोंको याद करके उसी तरह भयभीत हो गयीं, जैसे वनमें सिंहके पंजेमें पड़ी हुई कोई गजराजकी बच्ची॥ १॥

राक्षसियोंके बीचमें बैठकर उनके कठोर वचनोंसे बारम्बार धमकायी और रावणद्वारा फटकारी गयी भीरु स्वभाववाली सीता निर्जन एवं बीहड़ वनमें अकेली छूटी हुई अल्पवयस्का बालिकाके समान विलाप करने लगीं॥ २॥

वे बोलीं—'संतजन लोकमें यह बात ठीक ही कहते हैं कि बिना समय आये किसीकी मृत्यु नहीं होती, तभी तो इस प्रकार धमकायी जानेपर भी मैं पुण्यहीना नारी क्षणभर भी जीवित रह पाती हूँ॥ ३॥

'मेरा यह हृदय सुखसे रहित और अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरा होनेपर भी निश्चय ही अत्यन्त दृढ़ है। इसीलिये वज्रके मारे हुए पर्वतशिखरकी भाँति आज इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते॥ ४॥

'मैं इस दुष्ट रावणके हाथसे मारी जानेवाली हूँ, इसलिये यहाँ आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लग सकता। कुछ भी हो, जैसे द्विज किसी शूद्रको वेदमन्त्रका उपदेश नहीं देता, उसी प्रकार मैं भी इस निशाचरको अपने हृदयका अनुराग नहीं दे सकती॥ ५॥

'हाय! लोकनाथ भगवान् श्रीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज निश्चय ही अपने तीखे शस्त्रोंसे

मेरे अंगोंके शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। ठीक वैसे ही, जैसे शल्यचिकित्सक किसी विशेष अवस्थामें गर्भस्थ शिशुके टूक-टूक कर देता है (अथवा जैसे इन्द्रने दितिके गर्भमें स्थित शिशुके उनचास टुकड़े कर डाले थे)॥ ६॥

'मैं बड़ी दु:खिया हूँ। दु:खकी बात है कि मेरी अवधिके ये दो महीने भी जल्दी ही समाप्त हो जायँगे। राजाके कारागारमें कैद हुए और रात्रिके अन्तमें फाँसीकी सजा पानेवाले अपराधी चोरकी जो दशा होती है, वही मेरी भी है॥ ७॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा श्रीरामजननी कौसल्ये! और हा मेरी माताओ! जिस प्रकार बवंडरमें पड़ी हुई नौका महासागरमें डूब जाती है, उसी प्रकार आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसङ्कटकी दशामें पड़ी हुई हूँ॥ ८॥

'निश्चय ही उस मृगरूपधारी जीवने मेरे कारण उन दोनों वेगशाली राजकुमारोंको मार डाला होगा। जैसे दो श्रेष्ठ सिंह बिजलीसे मार दिये जायँ, वही दशा उन दोनों भाइयोंकी हुई होगी॥ ९॥

'अवश्य ही उस समय कालने ही मृगका रूप धारण करके मुझ मन्दभागिनीको लुभाया था, जिससे प्रभावित हो मुझ मूढ़ नारीने उन दोनों आर्यपुत्रों—श्रीराम और लक्ष्मणको उसके पीछे भेज दिया था॥ १०॥

'हा सत्यव्रतधारी महाबाहु श्रीराम! हा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले रघुनन्दन! हा जीवजगत्‌के हितैषी और प्रियतम! आपको पता नहीं है कि मैं राक्षसोंके हाथसे मारी जानेवाली हूँ॥ ११॥

'मेरी यह अनन्योपासना, क्षमा, भूमिशयन, धर्मसम्बन्धी नियमोंका पालन और पतिव्रतपरायणता— ये सब-के-सब कृतघ्नोंके प्रति किये गये मनुष्योंके उपकारकी भाँति निष्फल हो गये॥ १२॥

'प्रभो! यदि मैं अत्यन्त कृश और कान्तिहीन होकर आपसे बिछुड़ी ही रह गयी तथा आपसे मिलनेकी आशा खो बैठी, तब तो मैंने जिसका जीवनभर आचरण किया है, वह धर्म मेरे लिये व्यर्थ हो गया और यह एकपत्नीव्रत भी किसी काम नहीं आया॥ १३॥

'मैं तो समझती हूँ आप नियमानुसार पिताकी आज्ञाका पालन करके अपने व्रतको पूर्ण करनेके पश्चात् जब वनसे लौटेंगे, तब निर्भय एवं सफलमनोरथ हो विशाल नेत्रोंवाली बहुत-सी सुन्दरियोंके साथ विवाह करके उनके साथ रमण करेंगे॥ १४॥

'किंतु श्रीराम! मैं तो केवल आपमें ही अनुराग रखती हूँ। मेरा हृदय चिरकालतक आपसे ही बँधा रहेगा। मैं अपने विनाशके लिये ही आपसे प्रेम करती हूँ। अबतक मैंने तप और व्रत आदि जो कुछ भी किया है, वह मेरे लिये व्यर्थ सिद्ध हुआ है। उस अभीष्ट फलको न देनेवाले धर्मका आचरण करके अब मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा। अत: मुझ मन्दभागिनीको धिक्कार है॥ १५॥

'मैं शीघ्र ही किसी तीखे शस्त्र अथवा विषसे अपने प्राण त्याग दूँगी; परंतु इस राक्षसके यहाँ मुझे कोई विष या शस्त्र देनेवाला भी नहीं है'॥ १६॥

शोकसे संतप्त हुई सीताने इसी प्रकार बहुत कुछ विचार करके अपनी चोटीको पकड़कर निश्चय किया कि मैं शीघ्र ही इस चोटीसे फाँसी लगाकर यमलोकमें पहुँच जाऊँगी॥ १७॥

सीताजीके सभी अंग बड़े कोमल थे। वे उस अशोक-वृक्षके निकट उसकी शाखा पकड़कर खड़ी हो गयीं। इस प्रकार प्राण-त्यागके लिये उद्यत हो जब वे श्रीराम, लक्ष्मण और अपने कुलके विषयमें विचार करने लगीं, उस समय शुभांगी सीताके समक्ष ऐसे बहुत-से लोकप्रसिद्ध श्रेष्ठ शकुन प्रकट हुए, जो शोककी निवृत्ति करनेवाले और उन्हें ढाढ़स बँधानेवाले थे। उन शकुनोंका दर्शन और उनके शुभ फलोंका अनुभव उन्हें पहले भी हो चुका था॥ १८-१९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

सीताजीके शुभ शकुन

इस प्रकार अशोकवृक्षके नीचे आनेपर बहुत-से शुभ शकुन प्रकट हो उन व्यथितहृदया, सती-साध्वी, हर्षशून्य, दीनचित्त तथा शुभलक्षणा सीताका उसी तरह सेवन करने लगे, जैसे श्रीसम्पन्न पुरुषके पास सेवा करनेवाले लोग स्वयं पहुँच जाते हैं॥ १॥

उस समय सुन्दर केशोंवाली सीताका बाँकी

बरौनियोंसे घिरा हुआ परम मनोहर काला, श्वेत और विशाल बायाँ नेत्र फड़कने लगा। जैसे मछलीके आघातसे लाल कमल हिलने लगा हो॥ २॥

साथ ही उनकी सुन्दर प्रशंसित गोलाकार मोटी, बहुमूल्य काले अगुरु और चन्दनसे चर्चित होनेयोग्य तथा परम उत्तम प्रियतमद्वारा चिरकालसे सेवित बायीं भुजा भी तत्काल फड़क उठी॥ ३॥

फिर उनकी परस्पर जुड़ी हुई दोनों जाँघोंमेंसे एक बायीं जाँघ, जो गजराजकी सूँड़के समान पीन (मोटी) थी, बारम्बार फड़ककर मानो यह सूचना देने लगी कि भगवान् श्रीराम तुम्हारे सामने खड़े हैं॥ ४॥

तत्पश्चात् अनारके बीजकी भाँति सुन्दर दाँत, मनोहर गात्र और अनुपम नेत्रवाली सीताका, जो वहाँ वृक्षके नीचे खड़ी थीं, सोनेके समान रंगवाला किंचित् मलिन रेशमी पीताम्बर तनिक-सा खिसक गया और भावी शुभकी सूचना देने लगा॥ ५॥

इनसे तथा और भी अनेक शकुनोंसे, जिनके द्वारा पहले भी मनोरथसिद्धिका परिचय मिल चुका था, प्रेरित हुई सुन्दर भौंहोंवाली सीता उसी प्रकार हर्षसे खिल उठीं, जैसे हवा और धूपसे सूखकर नष्ट हुआ बीज वर्षाके जलसे सिंचकर हरा हो गया हो॥ ६॥

उनका बिम्बफलके समान लाल ओठों, सुन्दर नेत्रों, मनोहर भौंहों, रुचिर केशों, बाँकी बरौनियों तथा श्वेत, उज्ज्वल दाँतोंसे सुशोभित मुख राहुके ग्राससे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगा॥ ७॥

उनका शोक जाता रहा, सारी थकावट दूर हो गयी, मनका ताप शान्त हो गया और हृदय हर्षसे खिल उठा। उस समय आर्या सीता शुक्लपक्षमें उदित हुए शीतरश्मि चन्द्रमासे सुशोभित रात्रिकी भाँति अपने मनोहर मुखसे अद्भुत शोभा पाने लगीं॥ ८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

सीताजीसे वार्तालाप करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार करना

पराक्रमी हनुमान्‌जीने भी सीताजीका विलाप, त्रिजटाकी स्वप्नचर्चा तथा राक्षसियोंकी डाँट-डपट—ये सब प्रसंग ठीक-ठीक सुन लिये॥ १॥

सीताजी ऐसी जान पड़ती थीं मानो नन्दनवनमें कोई देवी हों। उन्हें देखते हुए वानरवीर हनुमान्‌जी तरह-तरहकी चिन्ता करने लगे—॥ २॥

'जिन सीताजीको हजारों-लाखों वानर समस्त दिशाओंमें ढूँढ़ रहे हैं, आज उन्हें मैंने पा लिया॥ ३॥

'मैं स्वामीद्वारा नियुक्त दूत बनकर गुप्तरूपसे शत्रुकी शक्तिका पता लगा रहा था। इसी सिलसिलेमें मैंने राक्षसोंके तारतम्यका, इस पुरीका तथा इस राक्षसराज रावणके प्रभावका भी निरीक्षण कर लिया॥ ४-५॥

'श्रीसीताजी असीम प्रभावशाली तथा सब जीवोंपर दया करनेवाले भगवान् श्रीरामकी भार्या हैं। ये अपने पतिदेवका दर्शन पानेकी अभिलाषा रखती हैं, अतः इन्हें सान्त्वना देना उचित है॥ ६॥

'इनका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर है। इन्होंने पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा था, परंतु इस समय दुःखका पार नहीं पा रही हैं। अतः मैं इन्हें आश्वासन दूँगा॥ ७॥

'ये शोकके कारण अचेत-सी हो रही हैं, यदि मैं इन सती-साध्वी सीताको सान्त्वना दिये बिना ही चला जाऊँगा तो मेरा वह जाना दोषयुक्त होगा॥ ८॥

'मेरे चले जानेपर अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर ये यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने जीवनका अन्त कर देंगी॥ ९॥

'पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी भी सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हैं। जिस प्रकार उन्हें सीताका संदेश सुनाकर सान्त्वना देना उचित है, उसी प्रकार सीताको भी उनका संदेश सुनाकर आश्वासन देना उचित होगा॥ १०॥

'परंतु राक्षसियोंके सामने इनसे बात करना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। ऐसी अवस्थामें यह कार्य कैसे सम्पन्न करना चाहिये, यही निश्चय करना मेरे लिये सबसे बड़ी कठिनाई है॥ ११॥

'यदि इस रात्रिके बीतते-बीतते मैं सीताको सान्त्वना नहीं दे देता हूँ तो ये सर्वथा अपने जीवनका परित्याग कर देंगी, इसमें संदेह नहीं है॥ १२॥

'यदि श्रीरामचन्द्रजी मुझसे पूछें कि सीताने मेरे लिये क्या संदेश भेजा है तो इन सुमध्यमा सीतासे बात

किये बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा॥ १३॥

'यदि मैं सीताका संदेश लिये बिना ही यहाँसे तुरंत लौट गया तो ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम अपनी क्रोधभरी दुःसह दृष्टिसे मुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे॥ १४॥

'यदि मैं इन्हें सान्त्वना दिये बिना ही लौट जाऊँ और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने स्वामी वानरराज सुग्रीवको उत्तेजित करूँ तो वानरसेनाके साथ उनका यहाँतक आना व्यर्थ हो जायगा (क्योंकि सीता इसके पहले ही अपने प्राण त्याग देंगी)॥ १५॥

'अच्छा तो राक्षसियोंके रहते हुए ही अवसर पाकर आज मैं यहीं बैठे-बैठे इन्हें धीरे-धीरे सान्त्वना दूँगा; क्योंकि इनके मनमें बड़ा संताप है॥ १६॥

'एक तो मेरा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है, दूसरे मैं वानर हूँ। विशेषतः वानर होकर भी मैं यहाँ मानवोचित संस्कृत-भाषामें बोलूँगा॥ १७॥

'परंतु ऐसा करनेमें एक बाधा है, यदि मैं द्विजकी भाँति संस्कृत-वाणीका प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी॥ १८॥

'ऐसी दशामें अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषाका प्रयोग करना चाहिये, जिसे अयोध्याके आस-पासकी साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीताको मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता॥ १९॥

'यदि मैं सामने जाऊँ तो मेरे इस वानररूपको देखकर और मेरे मुखसे मानवोचित भाषा सुनकर ये जनकनन्दिनी सीता, जिन्हें पहलेसे ही राक्षसोंने भयभीत कर रखा है और भी डर जायँगी॥ २०॥

'मनमें भय उत्पन्न हो जानेपर ये विशाललोचना मनस्विनी सीता मुझे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला रावण समझकर जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगेंगी॥

'सीताके चिल्लानेपर ये यमराजके समान भयानक राक्षसियाँ तरह-तरहके हथियार लेकर सहसा आ धमकेंगी॥

'तदनन्तर ये विकट मुखवाली महाबलवती राक्षसियाँ मुझे सब ओरसे घेरकर मारने या पकड़ लेनेका प्रयत्न करेंगी॥ २३॥

'फिर मुझे बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखा और मोटी-मोटी डालियोंपर दौड़ता देख ये सब-की-सब सशङ्क हो उठेंगी॥ २४॥

'वनमें विचरते हुए मेरे इस विशाल रूपको देखकर राक्षसियाँ भी भयभीत हो बुरी तरहसे चिल्लाने लगेंगी॥

'इसके बाद वे निशाचरियाँ राक्षसराज रावणके महलमें उसके द्वारा नियुक्त किये गये राक्षसोंको बुला लेंगी॥ २६॥

'इस हलचलमें वे राक्षस भी उद्विग्न होकर शूल, बाण, तलवार और तरह-तरहके शस्त्रास्त्र लेकर बड़े वेगसे आ धमकेंगे॥ २७॥

'उनके द्वारा सब ओरसे घिर जानेपर मैं राक्षसोंकी सेनाका संहार तो कर सकता हूँ; परंतु समुद्रके उस पार नहीं पहुँच सकता॥ २८॥

'यदि बहुत-से फुर्तीले राक्षस मुझे घेरकर पकड़ लें तो सीताजीका मनोरथ भी पूरा नहीं होगा और मैं भी बंदी बना लिया जाऊँगा॥ २९॥

'इसके सिवा हिंसामें रुचि रखनेवाले राक्षस यदि इन जनकदुलारीको मार डालें तो श्रीरघुनाथजी और सुग्रीवका यह सीताकी प्राप्तिरूप अभीष्ट कार्य ही नष्ट हो जायगा॥ ३०॥

'यह स्थान राक्षसोंसे घिरा हुआ है। यहाँ आनेका मार्ग दूसरोंका देखा या जाना हुआ नहीं है तथा इस प्रदेशको समुद्रने चारों ओरसे घेर रखा है। ऐसे गुप्त स्थानमें जानकीजी निवास करती हैं॥ ३१॥

'यदि राक्षसोंने मुझे संग्राममें मार दिया या पकड़ लिया तो फिर श्रीरघुनाथजीके कार्यको पूर्ण करनेके लिये कोई दूसरा सहायक भी मैं नहीं देख रहा हूँ॥

'बहुत विचार करनेपर भी मुझे ऐसा कोई वानर नहीं दिखायी देता है, जो मेरे मारे जानेपर सौ योजन विस्तृत महासागरको लाँघ सके॥ ३३॥

'मैं इच्छानुसार सहस्रों राक्षसोंको मार डालनेमें समर्थ हूँ; परंतु युद्धमें फँस जानेपर महासागरके उस पार नहीं जा सकूँगा॥ ३४॥

'युद्ध अनिश्चयात्मक होता है (उसमें किस पक्षकी विजय होगी, यह निश्चित नहीं रहता) और मुझे संशययुक्त कार्य प्रिय नहीं है। कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा, जो संशयरहित कार्यको संशययुक्त बनाना चाहेगा॥ ३५॥

'सीताजीसे बातचीत करनेमें मुझे यही महान् दोष प्रतीत होता है और यदि बातचीत नहीं करता हूँ तो विदेहनन्दिनी सीताका प्राणत्याग भी निश्चित ही है॥ ३६॥

अविवेकी या असावधान दूतके हाथमें पड़नेपर बने-बनाये काम भी देश-कालके विरोधी होकर उसी प्रकार असफल हो जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर सब ओर फैले हुए अन्धकारका कोई वश नहीं चलता,

वह निष्फल हो जाता है॥ ३७॥

'कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें स्वामीकी निश्चित बुद्धि भी अविवेकी दूतके कारण शोभा नहीं पाती है; क्योंकि अपनेको बड़ा बुद्धिमान् या पण्डित समझनेवाले दूत अपनी ही नासमझीसे कार्यको नष्ट कर डालते हैं॥ ३८॥

'फिर किस प्रकार यह काम न बिगड़े, किस तरह मुझसे कोई असावधानी न हो, किस प्रकार मेरा समुद्र लाँघना व्यर्थ न हो जाय और किस तरह सीताजी मेरी सारी बातें सुन लें, किंतु घबराहटमें न पड़ें—इन सब बातोंपर विचार करके बुद्धिमान् हनुमान्जीने यह निश्चय किया॥ ३९-४०॥

'जिनका चित्त अपने जीवन-बन्धु श्रीराममें ही लगा है, उन सीताजीको मैं उनके प्रियतम श्रीरामका जो अनायास ही महान् कर्म करनेवाले हैं, गुण गा-गाकर सुनाऊँगा और उन्हें उद्विग्न नहीं होने दूँगा॥ ४१॥

'मैं इक्ष्वाकुकुलभूषण विदितात्मा भगवान् श्रीरामके सुन्दर, धर्मानुकूल वचनोंको सुनाता हुआ यहीं बैठा रहूँगा॥

'मीठी वाणी बोलकर श्रीरामके सारे संदेशोंको इस प्रकार सुनाऊँगा, जिससे सीताका उन वचनोंपर विश्वास हो। जिस तरह उनके मनका संदेह दूर हो, उसी तरह मैं सब बातोंका समाधान करूँगा'॥ ४३॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके अशोक-वृक्षकी शाखाओंमें छिपकर बैठे हुए महाप्रभावशाली हनुमान्जी पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याकी ओर देखते हुए मधुर एवं यथार्थ बात कहने लगे॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

हनुमान्जीका सीताको सुनानेके लिये श्रीराम-कथाका वर्णन करना

इस प्रकार बहुत-सी बातें सोच-विचारकर महामति हनुमान्जीने सीताको सुनाते हुए मधुर वाणीमें इस तरह कहना आरम्भ किया—॥ १॥

'इक्ष्वाकुवंशमें राजा दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा राजा हो गये हैं। वे अत्यन्त कीर्तिमान् और महान् यशस्वी थे। उनके यहाँ रथ, हाथी और घोड़े बहुत अधिक थे॥ २॥

'उन श्रेष्ठ नरेशमें राजर्षियोंके समान गुण थे। तपस्यामें भी वे ऋषियोंकी समानता करते थे। उनका जन्म चक्रवर्ती नरेशोंके कुलमें हुआ था। वे देवराज इन्द्रके समान बलवान् थे॥ ३॥

'उनके मनमें अहिंसा-धर्मके प्रति बड़ा अनुराग था। उनमें क्षुद्रताका नाम नहीं था। वे दयालु, सत्य-पराक्रमी और श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशकी शोभा बढ़ानेवाले थे। वे लक्ष्मीवान् नरेश राजोचित लक्षणोंसे युक्त, परिपुष्ट शोभासे सम्पन्न और भूपालोंमें श्रेष्ठ थे। चारों समुद्र जिसकी सीमा हैं, उस सम्पूर्ण भूमण्डलमें सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे स्वयं तो सुखी थे ही। दूसरोंको भी सुख देनेवाले थे॥ ४-५॥

'उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम-नामसे प्रसिद्ध हैं। वे पिताके लाड़ले, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले, सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और शस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ हैं॥ ६॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम अपने सदाचारके, स्वजनोंके, इस जीव-जगत्के तथा धर्मके भी रक्षक हैं॥ ७॥

'उनके बूढ़े पिता महाराज दशरथ बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे। उनकी आज्ञासे वीर श्रीरघुनाथजी अपनी पत्नी और भाई लक्ष्मणके साथ वनमें चले आये॥ ८॥

'वहाँ विशाल वनमें शिकार खेलते हुए श्रीरामने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत-से शूरवीर राक्षसोंका वध कर डाला॥ ९॥

'उनके द्वारा जनस्थानके विध्वंस और खर-दूषणके वधका समाचार सुनकर रावणने अमर्षवश जनकनन्दिनी सीताका अपहरण कर लिया॥ १०॥

'पहले तो उस राक्षसने मायासे मृग बने हुए मारीचके द्वारा वनमें श्रीरामचन्द्रजीको धोखा दिया और स्वयं जानकीजीको हर ले गया। भगवान् श्रीराम परम साध्वी सीतादेवीकी खोज करते हुए मतंग-वनमें आकर सुग्रीव नामक वानरसे मिले और उनके साथ उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली॥ ११ $\frac{१}{२}$ ॥

'तदनन्तर शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले श्रीरामने वालीका वध करके वानरोंका राज्य महात्मा सुग्रीवको दे दिया॥ १२ $\frac{१}{२}$ ॥

'तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे इच्छानुसार

रूप धारण करनेवाले हजारों वानर सीतादेवीका पता लगानेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें निकले हैं॥ १३½ ॥

'उन्हींमेंसे एक मैं भी हूँ। मैं सम्पातिके कहनेसे विशाललोचना विदेहनन्दिनीकी खोजके लिये सौ योजन विस्तृत समुद्रको वेगपूर्वक लाँघकर यहाँ आया हूँ॥ १४½ ॥

'मैंने श्रीरघुनाथजीके मुखसे जानकीजीका जैसा रूप, जैसा रंग तथा जैसे लक्षण सुने थे, उनके अनुरूप ही इन्हें पाया है।' इतना ही कहकर वानरशिरोमणि हनुमान्‌जी चुप हो गये॥ १५-१६ ॥

उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीताको बड़ा विस्मय हुआ। उनके केश घुँघराले और बड़े ही सुन्दर थे। भीरु सीताने केशोंसे ढके हुए अपने मुँहको ऊपर उठाकर उस अशोक-वृक्षकी ओर देखा॥ १७॥

कपिके वचन सुनकर सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सम्पूर्ण वृत्तियोंसे भगवान् श्रीरामका स्मरण करती हुई समस्त दिशाओंमें दृष्टि दौड़ाने लगीं॥ १८॥

उन्होंने ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टिपात करके उन अचिन्त्य बुद्धिवाले पवनपुत्र हनुमान्‌को, जो वानरराज सुग्रीवके मन्त्री थे, उदयाचलपर विराजमान सूर्यके समान देखा॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ सर्ग

सीताजीका तर्क-वितर्क

तब शाखाके भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्जके समान अत्यन्त पिंगल वर्णवाले और श्वेत वस्त्रधारी हनुमान्‌जीपर उनकी दृष्टि पड़ी। फिर तो उनका चित्त चञ्चल हो उठा। उन्होंने देखा, फूले हुए अशोकके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित एक विनीत और प्रियवादी वानर डालियोंके बीचमें बैठा है। उसके नेत्र तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रहे हैं॥ १-२ ॥

विनीतभावसे बैठे हुए वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखकर मिथिलेशकुमारीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन सोचने लगीं—॥ ३ ॥

'अहो! वानरयोनिका यह जीव तो बड़ा ही भयंकर है। इसे पकड़ना बहुत ही कठिन है। इसकी ओर तो आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता।' ऐसा विचारकर वे पुनः भयसे मूर्च्छित-सी हो गयीं॥ ४॥

भयसे मोहित हुई भामिनी सीता अत्यन्त करुणाजनक स्वरमें 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहकर दुःखसे आतुर हो अत्यन्त विलाप करने लगीं॥ ५॥

उस समय सीता मन्द स्वरमें सहसा रो पड़ीं। इतनेहीमें उन्होंने देखा, वह श्रेष्ठ वानर बड़ी विनयके साथ निकट आ बैठा है। तब भामिनी मिथिलेशकुमारीने सोचा—'यह कोई स्वप्न तो नहीं है'॥ ६ ॥

उधर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने वानरराज सुग्रीवके आज्ञापालक विशाल और टेढ़े मुखवाले परम आदरणीय, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, वानरप्रवर पवनपुत्र हनुमान्‌जीको देखा॥ ७॥

उन्हें देखते ही सीताजी अत्यन्त व्यथित होकर ऐसी दशाको पहुँच गयीं, मानो उनके प्राण निकल गये हों। फिर बड़ी देरमें चेत होनेपर विशाललोचना विदेह-राजकुमारीने इस प्रकार विचार किया—॥ ८॥

'आज मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। सपनेमें वानरको देखना शास्त्रोंने निषिद्ध बताया है। मेरी भगवान्‌से प्रार्थना है कि श्रीराम, लक्ष्मण और मेरे पिता जनकका मंगल हो (उनपर इस दुःस्वप्नका प्रभाव न पड़े)॥ ९॥

'परंतु यह स्वप्न तो हो नहीं सकता; क्योंकि शोक और दुःखसे पीड़ित रहनेके कारण मुझे कभी नींद आती ही नहीं है (नींद उसे आती है, जिसे सुख हो)। मुझे तो उन पूर्णचन्द्रके समान मुखवाले श्रीरघुनाथजीसे बिछुड़ जानेके कारण अब सुख सुलभ ही नहीं है॥ १०॥

'मैं बुद्धिसे सर्वदा 'राम! राम!' ऐसा चिन्तन करके वाणीद्वारा भी राम-नामका ही उच्चारण करती रहती हूँ; अतः उस विचारके अनुरूप वैसे ही अर्थवाली यह कथा देख और सुन रही हूँ॥ ११॥

'मेरा हृदय सर्वदा श्रीरघुनाथमें ही लगा हुआ है; अतः श्रीराम-दर्शनकी लालसासे अत्यन्त पीड़ित हो सदा उन्हींका चिन्तन करती हुई उन्हींको देखती और उन्हींकी कथा सुनती हूँ॥ १२॥

'सोचती हूँ कि सम्भव है यह मेरे मनकी ही कोई भावना हो तथापि बुद्धिसे भी तर्क-वितर्क करती हूँ कि यह जो कुछ दिखायी देता है, इसका क्या कारण

है? मनोरथ या मनकी भावनाका कोई स्थूल रूप नहीं होता; परंतु इस वानरका रूप तो स्पष्ट दिखायी दे रहा है और यह मुझसे बातचीत भी करता है॥ १३॥

'मैं वाणीके स्वामी बृहस्पतिको, वज्रधारी इन्द्रको, स्वयम्भू ब्रह्माजीको तथा वाणीके अधिष्ठातृ-देवता अग्निको भी नमस्कार करती हूँ। इस वनवासी वानरने मेरे सामने यह जो कुछ कहा है, वह सब सत्य हो, उसमें कुछ भी अन्यथा न हो'॥ १४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सीताजीका हनुमान्‌जीको अपना परिचय देते हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त बताना

उधर मूँगेके समान लाल मुखवाले महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जीने उस अशोक-वृक्षसे नीचे उतरकर माथेपर अञ्जलि बाँध ली और विनीतभावसे दीनतापूर्वक निकट आकर प्रणाम करनेके अनन्तर सीताजीसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ १-२॥

'प्रफुल्लकमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली देवि! यह मलिन रेशमी पीताम्बर धारण किये आप कौन हैं? अनिन्दिते! इस वृक्षकी शाखाका सहारा लिये आप यहाँ क्यों खड़ी हैं? कमलके पत्तोंसे झरते हुए जल-बिन्दुओंके समान आपकी आँखोंसे ये शोकके आँसू क्यों गिर रहे हैं॥ ३-४॥

'शोभने! आप देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, रुद्र, मरुद्गण अथवा वसुओंमेंसे कौन हैं? इनमेंसे किसकी कन्या अथवा पत्नी हैं? सुमुखि! वरारोहे! मुझे तो आप कोई देवता-सी जान पड़ती हैं॥ ५-६॥

'क्या आप चन्द्रमासे बिछुड़कर देवलोकसे गिरी हुई नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ और गुणोंमें सबसे बढ़ी-चढ़ी रोहिणी देवी हैं?॥ ७॥

'अथवा कजरारे नेत्रोंवाली देवि! आप कोप या मोहसे अपने पति वसिष्ठजीको कुपित करके यहाँ आयी हुई कल्याणस्वरूपा सतीशिरोमणि अरुन्धती तो नहीं हैं॥ ८॥

'सुमध्यमे! आपका पुत्र, पिता, भाई अथवा पति कौन इस लोकसे चलकर परलोकवासी हो गया है, जिसके लिये आप शोक करती हैं॥ ९॥

'रोने, लम्बी साँस खींचने तथा पृथ्वीका स्पर्श करनेके कारण मैं आपको देवी नहीं मानता। आप बारम्बार किसी राजाका नाम ले रही हैं तथा आपके चिह्न और लक्षण जैसे दिखायी देते हैं, उन सबपर दृष्टिपात करनेसे यही अनुमान होता है कि आप किसी राजाकी महारानी तथा किसी नरेशकी कन्या हैं॥ १०-११॥

'रावण जनस्थानसे जिन्हें बलपूर्वक हर लाया था, वे सीताजी ही यदि आप हों तो आपका कल्याण हो। आप ठीक-ठीक मुझे बताइये। मैं आपके विषयमें जानना चाहता हूँ॥ १२॥

'दु:खके कारण आपमें जैसी दीनता आ गयी है, जैसा आपका अलौकिक रूप है तथा जैसा तपस्विनीका-सा वेष है, इन सबके द्वारा निश्चय ही आप श्रीरामचन्द्रजीकी महारानी जान पड़ती हैं'॥ १३॥

हनुमान्‌जीकी बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे बहुत प्रसन्न थीं; अत: वृक्षका सहारा लिये खड़े हुए उन पवनकुमारसे इस प्रकार बोलीं॥

'कपिवर! जो भूमण्डलके श्रेष्ठ राजाओंमें प्रधान थे, जिनकी सर्वत्र प्रसिद्धि थी तथा जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेमें समर्थ थे, उन महाराज दशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ, विदेहराज महात्मा जनककी पुत्री हूँ और परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हूँ। मेरा नाम सीता है॥ १५-१६॥

'अयोध्यामें श्रीरघुनाथजीके अन्त:पुरमें बारह वर्षोंतक मैं सब प्रकारके मानवीय भोग भोगती रही और मेरी सारी अभिलाषाएँ सदैव पूर्ण होती रहीं॥ १७॥

'तदनन्तर तेरहवें वर्षमें महाराज दशरथने राजगुरु वसिष्ठजीके साथ इक्ष्वाकुकुलभूषण भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी आरम्भ की॥ १८॥

'जब वे श्रीरघुनाथजीके अभिषेकके लिये आवश्यक सामग्रीका संग्रह कर रहे थे, उस समय उनकी कैकेयी नामवाली भार्याने पतिसे इस प्रकार कहा— ॥ १९॥

'अब न तो मैं जलपान करूँगी और न प्रतिदिनका भोजन ही ग्रहण करूँगी। यदि श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ तो यही मेरे जीवनका अन्त होगा॥ २०॥

'नृपश्रेष्ठ! आपने प्रसन्नतापूर्वक मुझे जो वचन दिया है, उसे यदि असत्य नहीं करना है तो श्रीराम वनको चले जायँ'॥ २१ ॥

'महाराज दशरथ बड़े सत्यवादी थे। उन्होंने कैकेयी देवीको दो वर देनेके लिये कहा था। उस वरदानका स्मरण करके कैकेयीके क्रूर एवं अप्रिय वचनको सुनकर वे मूर्च्छित हो गये॥ २२ ॥

'तदनन्तर सत्यधर्ममें स्थित हुए बूढ़े महाराजने अपने यशस्वी ज्येष्ठ पुत्र श्रीरघुनाथजीसे भरतके लिये राज्य माँगा॥ २३ ॥

'श्रीमान् रामको पिताके वचन राज्याभिषेकसे भी बढ़कर प्रिय थे। इसलिये उन्होंने पहले उन वचनोंको मनसे ग्रहण किया, फिर वाणीसे भी स्वीकार कर लिया॥ २४ ॥

'सत्य-पराक्रमी भगवान् श्रीराम केवल देते हैं, लेते नहीं। वे सदा सत्य बोलते हैं, अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये भी कभी झूठ नहीं बोल सकते॥ २५ ॥

'उन महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने बहुमूल्य उत्तरीय वस्त्र उतार दिये और मनसे राज्यका त्याग करके मुझे अपनी माताके हवाले कर दिया॥ २६ ॥

'किंतु मैं तुरंत ही उनके आगे-आगे वनकी ओर चल दी; क्योंकि उनके बिना मुझे स्वर्गमें रहना अच्छा नहीं लगता॥ २७ ॥

'अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले सुमित्राकुमार महाभाग लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका अनुसरण करनेके लिये उनसे भी पहले कुश तथा चीर-वस्त्र धारण करके तैयार हो गये॥ २८ ॥

'इस प्रकार हम तीनोंने अपने स्वामी महाराज दशरथकी आज्ञाको अधिक आदर देकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए उस सघन वनमें प्रवेश किया, जिसे पहले कभी नहीं देखा था॥ २९ ॥

'वहाँ दण्डकारण्यमें रहते समय उन अमिततेजस्वी भगवान् श्रीरामकी भार्या मुझ सीताको दुरात्मा राक्षस रावण यहाँ हर लाया है॥ ३० ॥

'उसने अनुग्रहपूर्वक मेरे जीवन-धारणके लिये दो मासकी अवधि निश्चित कर दी है। उन दो महीनोंके बाद मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा'॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

सीताजीका हनुमान्‌जीके प्रति संदेह और उसका समाधान तथा हनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान

दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण पीड़ित हुई सीताका उपर्युक्त वचन सुनकर वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—॥ १ ॥

'देवि! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ और आपके लिये उनका संदेश लेकर आया हूँ। विदेहनन्दिनी! श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं और उन्होंने आपका कुशल-समाचार पूछा है॥ २ ॥

'देवि! जिन्हें ब्रह्मास्त्र और वेदोंका भी पूर्ण ज्ञान है, वे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीराम स्वयं सकुशल रहकर आपकी भी कुशल पूछ रहे हैं॥ ३ ॥

'आपके पतिके अनुचर तथा प्रिय महातेजस्वी लक्ष्मणने भी शोकसे संतप्त हो आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है'॥ ४ ॥

पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणका समाचार सुनकर देवी सीताके सम्पूर्ण अंगोंमें हर्षजनित रोमांच हो आया और वे हनुमान्‌जीसे बोलीं—॥ ५ ॥

'यदि मनुष्य जीवित रहे तो उसे सौ वर्ष बाद भी आनन्द प्राप्त होता ही है, यह लौकिक कहावत आज मुझे बिलकुल सत्य एवं कल्याणमयी जान पड़ती है'॥ ६ ॥

सीता और हनुमान्‌के इस मिलाप (परस्पर दर्शन)-से दोनोंको ही अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हुई। वे दोनों विश्वस्त होकर एक-दूसरेसे वार्तालाप करने लगे॥ ७ ॥

शोकसंतप्त सीताकी वे बातें सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी उनके कुछ निकट चले गये॥ ८ ॥

हनुमान्‌जी ज्यों-ज्यों निकट आते, त्यों-ही-त्यों सीताको यह शङ्का होती कि यह कहीं रावण न हो॥ ९ ॥

ऐसा विचार आते ही वे मन-ही-मन कहने

लगीं— 'अहो! धिक्कार है, जो इसके सामने मैंने अपने मनकी बात कह दी। यह दूसरा रूप धारण करके आया हुआ वह रावण ही है'॥ १०॥

फिर तो निर्दोष अङ्गोंवाली सीता उस अशोक-वृक्षकी शाखाको छोड़ शोकसे कातर हो वहीं जमीनपर बैठ गयीं॥ ११॥

तत्पश्चात् महाबाहु हनुमान्‌ने जनकनन्दिनी सीताके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु वे भयभीत होनेके कारण फिर उनकी ओर देख न सकीं॥ १२॥

वानर हनुमान्‌को बारम्बार वन्दना करते देख चन्द्रमुखी सीता लम्बी साँस खींचकर उनसे मधुर वाणीमें बोलीं— ॥ १३॥

'यदि तुम स्वयं मायावी रावण हो और मायामय शरीरमें प्रवेश करके फिर मुझे कष्ट दे रहे हो तो यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है॥ १४॥

'जिसे मैंने जनस्थानमें देखा था तथा जो अपने यथार्थ रूपको छोड़कर संन्यासीका रूप धारण करके आया था, तुम वही रावण हो॥ १५॥

'इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले निशाचर! मैं उपवास करते-करते दुबली हो गयी हूँ और मन-ही-मन दुःखी रहती हूँ। इतनेपर भी जो तुम फिर मुझे संताप दे रहे हो, यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है॥ १६॥

'अथवा जिस बातकी मेरे मनमें शङ्का हो रही है, वह न भी हो; क्योंकि तुम्हें देखनेसे मेरे मनमें प्रसन्नता हुई है॥ १७॥

'वानरश्रेष्ठ! सचमुच ही यदि तुम भगवान् श्रीरामके दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे उनकी बातें पूछती हूँ; क्योंकि श्रीरामकी चर्चा मुझे बहुत ही प्रिय है॥

'वानर! मेरे प्रियतम श्रीरामके गुणोंका वर्णन करो। सौम्य! जैसे जलका वेग नदीके तटको हर लेता है, उसी प्रकार तुम श्रीरामकी चर्चासे मेरे चित्तको चुराये लेते हो॥ १९॥

'अहो! यह स्वप्न कैसा सुखद हुआ? जिससे यहाँ चिरकालसे हरकर लायी गयी मैं आज भगवान् श्रीरामके भेजे हुए दूत वानरको देख रही हूँ॥ २०॥

'यदि मैं लक्ष्मणसहित वीरवर श्रीरघुनाथजीको स्वप्नमें भी देख लिया करूँ तो मुझे इतना कष्ट न हो; परंतु स्वप्न भी मुझसे डाह करता है॥ २१॥

'मैं इसे स्वप्न नहीं समझती; क्योंकि स्वप्नमें वानरको देख लेनेपर किसीका अभ्युदय नहीं हो सकता और मैंने यहाँ अभ्युदय प्राप्त किया है (अभ्युदयकालमें जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता मेरे मनमें छा रही है)॥ २२॥

'अथवा यह मेरे चित्तका मोह तो नहीं है। वात-विकारसे होनेवाला भ्रम तो नहीं है। उन्मादका विकार तो नहीं उमड़ आया अथवा यह मृगतृष्णा तो नहीं है॥

'अथवा यह उन्मादजनित विकार नहीं है। उन्मादके समान लक्षणवाला मोह भी नहीं है; क्योंकि मैं अपने-आपको देख और समझ रही हूँ तथा इस वानरको भी ठीक-ठीक देखती और समझती हूँ (उन्माद आदिकी अवस्थाओंमें इस तरह ठीक-ठीक ज्ञान होना सम्भव नहीं है।)'॥ २४॥

इस तरह सीता अनेक प्रकारसे राक्षसोंकी प्रबलता और वानरकी निर्बलताका निश्चय करके उन्हें राक्षसराज रावण ही माना; क्योंकि राक्षसोंमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति होती है। ऐसा विचारकर सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली जनककुमारी सीताने कपिवर हनुमान्‌जीसे फिर कुछ नहीं कहा॥ २५-२६॥

सीताके इस निश्चयको समझकर पवनकुमार हनुमान्‌जी उस समय कानोंको सुख पहुँचानेवाले अनुकूल वचनोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले— ॥ २७॥

'भगवान् श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान लोककमनीय तथा देव कुबेरकी भाँति सम्पूर्ण जगत्‌के राजा हैं॥ २८॥

'महायशस्वी भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी तथा बृहस्पतिजीकी भाँति सत्यवादी एवं मधुरभाषी हैं॥

'रूपवान्, सौभाग्यशाली और कान्तिमान् तो वे इतने हैं, मानो मूर्तिमान् कामदेव हों। वे क्रोधके पात्रपर ही प्रहार करनेमें समर्थ और संसारके श्रेष्ठ महारथी हैं॥ ३०॥

'सम्पूर्ण विश्व उन महात्माकी भुजाओंके आश्रयमें—उन्हींकी छत्रछायामें विश्राम करता है। मृगरूपधारी निशाचरद्वारा श्रीरघुनाथजीको आश्रमसे दूर हटाकर जिसने सूने आश्रममें पहुँचकर आपका अपहरण किया है, उसे उस पापका जो फल मिलनेवाला है, उसको आप अपनी आँखों देखेंगी॥३१ $\frac{1}{2}$ ॥

'पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी क्रोधपूर्वक छोड़े गये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करेंगे॥३२ $\frac{1}{2}$ ॥

'मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत होकर यहाँ आपके

पास आया हूँ। भगवान् श्रीराम आपके वियोगजनित दु:खसे पीड़ित हैं। उन्होंने आपके पास अपनी कुशल कहलायी है और आपकी भी कुशल पूछी है॥ ३३½॥

'सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी महाबाहु लक्ष्मणने भी आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है॥ ३४½॥

'देवि! श्रीरघुनाथजीके सखा एक सुग्रीव नामक वानर हैं, जो मुख्य-मुख्य वानरोंके राजा हैं, उन्होंने भी आपसे कुशल पूछी है। सुग्रीव और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं॥ ३५-३६॥

'विदेहनन्दिनि! राक्षसियोंके चंगुलमें फँसकर भी आप अभीतक जीवित हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अब आप शीघ्र ही महारथी श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन करेंगी॥ ३७॥

'साथ ही करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए अमिततेजस्वी सुग्रीवको भी आप देखेंगी। मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूँ॥ ३८॥

'मैंने महासागरको लाँघकर और दुरात्मा रावणके सिरपर पैर रखकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया है॥ ३९॥

'मैं अपने पराक्रमका भरोसा करके आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। देवि! आप मुझे जैसा समझ रही हैं, मैं वैसा नहीं हूँ। आप यह विपरीत आशङ्का छोड़ दीजिये और मेरी बातपर विश्वास कीजिये'॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

सीताजीके पूछनेपर हनुमान्‌जीका श्रीरामके शारीरिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा नर-वानरकी मित्रताका प्रसङ्ग सुनाकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न करना

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा सुनकर विदेहराजकुमारी सीता शान्तिपूर्वक मधुर वाणीमें बोलीं—॥ १॥

'कपिवर! तुम्हारा श्रीरामचन्द्रजीके साथ सम्बन्ध कहाँ हुआ? तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो? मनुष्यों और वानरोंका यह मेल किस प्रकार सम्भव हुआ?॥ २॥

'वानर! श्रीराम और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं, उनका फिरसे वर्णन करो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारके शोकका समावेश न हो॥ ३॥

'मुझे बताओ भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणकी आकृति कैसी है? उनका रूप किस तरहका है? उनकी जाँघें और भुजाएँ कैसी हैं?'॥ ४॥

विदेहराजकुमारी सीताके इस प्रकार पूछनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका यथावत् वर्णन आरम्भ किया—॥ ५॥

'कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहराजकुमारी! आप अपने पतिदेव श्रीरामके तथा देवर लक्ष्मणजीके शरीरके विषयमें जानती हुई भी जो मुझसे पूछ रही हैं, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है॥ ६॥

'विशाललोचने! श्रीराम और लक्ष्मणके जिन-जिन चिह्नोंको मैंने लक्ष्य किया है, उन्हें बताता हूँ। मुझसे सुनिये॥ ७॥

'जनकनन्दिनि! श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र प्रफुल्लकमल-दलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मनोहर है। वे जन्मकालसे ही रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं॥ ८॥

'वे तेजमें सूर्यके समान, क्षमामें पृथ्वीके तुल्य, बुद्धिमें बृहस्पतिके सदृश और यशमें इन्द्रके समान हैं। वे सम्पूर्ण जीव-जगत्‌के तथा स्वजनोंके भी रक्षक हैं। शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम अपने सदाचार और धर्मकी रक्षा करते हैं॥ ९-१०॥

'भामिनि! श्रीरामचन्द्रजी जगत्‌के चारों वर्णोंकी रक्षा करते हैं। लोकमें धर्मकी मर्यादाओंको बाँधकर उनका पालन करने और करानेवाले भी वे ही हैं॥ ११॥

'सर्वत्र अत्यन्त भक्तिभावसे उनकी पूजा होती है। ये कान्तिमान् एवं परम प्रकाशस्वरूप हैं, ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें लगे रहते हैं, साधु पुरुषोंका उपकार मानते और आचरणोंद्वारा सत्कर्मोंके प्रचारका ढंग जानते हैं॥ १२॥

'वे राजनीतिमें पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानवान्, शीलवान्, विनम्र तथा शत्रुओंको संताप देनेमें समर्थ हैं॥ १३॥

'उन्हें यजुर्वेदकी भी अच्छी शिक्षा मिली है। वेदवेत्ता विद्वानोंने उनका बड़ा सम्मान किया है। वे चारों वेद, धनुर्वेद और छहों वेदाङ्गोंके भी परिनिष्ठित विद्वान् हैं॥ १४॥

'उनके कंधे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शङ्खके समान और मुख सुन्दर है। गलेकी हँसली मांससे ढकी हुई है तथा नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा है। वे लोगोंमें 'श्रीराम' के नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १५॥

'उनका स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर और शरीरका रंग सुन्दर एवं चिकना है। उनका प्रताप बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके सभी अङ्ग सुडौल और बराबर हैं। उनकी कान्ति स्याम है॥ १६॥

'उनके तीन अङ्ग (वक्षःस्थल, कलाई और मुट्ठी) स्थिर (सुदृढ़) हैं। भौंहें, भुजाएँ और मेढ्र—ये तीन अङ्ग लंबे हैं। केशोंका अग्रभाग, अण्डकोष और घुटने—ये तीन समान बराबर हैं। वक्षःस्थल, नाभिके किनारेका भाग और उदर—ये तीन उभरे हुए हैं। नेत्रोंके कोने, नख और हाथ-पैरके तलवे—ये तीन लाल हैं। शिश्नके अग्रभाग, दोनों पैरोंकी रेखाएँ और सिरके बाल—ये तीन चिकने हैं तथा स्वर, चाल और नाभि—ये तीन गम्भीर हैं॥ १७॥

'उनके उदर तथा गलेमें तीन रेखाएँ हैं। तलवोंके मध्यभाग, पैरोंकी रेखाएँ और स्तनोंके अग्रभाग—ये तीन धँसे हुए हैं। गला, पीठ तथा दोनों पिण्डलियाँ—ये चार अङ्ग छोटे हैं। मस्तकमें तीन भँवरें हैं। पैरोंके अँगूठेके नीचे तथा ललाटमें चार-चार रेखाएँ हैं। वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके कपोल, भुजाएँ, जाँघें और घुटने—ये चार अङ्ग बराबर हैं॥ १८॥

'शरीरमें जो दो-दोकी संख्यामें चौदह* अङ्ग होते हैं, वे भी उनके परस्पर सम हैं। उनकी चारों कोनोंकी चारों दाढ़ें शास्त्रीय लक्षणोंसे युक्त हैं। वे सिंह, बाघ, हाथी और साँड़—इन चारके समान चार प्रकारकी गतिसे चलते हैं। उनके ओठ, ठोढ़ी और नासिका—सभी प्रशस्त हैं। केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैरके तलवे—इन पाँचों अङ्गोंमें स्निग्धता भरी है। दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें, दोनों पिण्डलियाँ, हाथ और पैरोंकी अँगुलियाँ—ये आठ अङ्ग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न (लंबे) हैं॥ १९॥

'उनके नेत्र, मुख-विवर, मुख-मण्डल, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके समान हैं। छाती, मस्तक, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ और कान—ये दस अङ्ग विशाल हैं। वे श्री, यश और प्रताप—इन तीनोंसे व्याप्त हैं। उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं। पार्श्वभाग, उदर, वक्षःस्थल, नासिका, कंधे और ललाट—ये छः अङ्ग ऊँचे हैं। केश, नख, लोम, त्वचा, अंगुलियोंके पोर, शिश्न, बुद्धि और दृष्टि आदि नौ सूक्ष्म (पतले) हैं तथा वे श्रीरघुनाथजी पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण—इन तीन कालोंद्वारा क्रमशः धर्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं॥ २०॥

'श्रीरामचन्द्रजी सत्यधर्मके अनुष्ठानमें संलग्न, श्रीसम्पन्न, न्यायसङ्गत धनका संग्रह और प्रजापर अनुग्रह करनेमें तत्पर, देश और कालके विभागको समझनेवाले तथा सब लोगोंसे प्रिय वचन बोलनेवाले हैं॥ २१॥

'उनके सौतेले भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। अनुराग, रूप और सद्‌गुणोंकी दृष्टिसे भी वे श्रीरामचन्द्रजीके ही समान हैं॥ २२॥

'उन दोनों भाइयोंमें अन्तर इतना ही है कि लक्ष्मणके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान गौर है और महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजीका विग्रह श्यामसुन्दर है। वे दोनों नरश्रेष्ठ आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो सारी पृथ्वीपर आपकी ही खोज करते हुए हमलोगोंसे मिले थे॥ २३ $\frac{१}{२}$ ॥

'आपको ही ढूँढ़नेके लिये पृथ्वीपर विचरते हुए उन दोनों भाइयोंने वानरराज सुग्रीवका साक्षात्कार किया, जो अपने बड़े भाईके द्वारा राज्यसे उतार दिये गये थे॥ २४ $\frac{१}{२}$ ॥

'ऋष्यमूक पर्वतके मूलभागमें जो बहुत-से वृक्षोंद्वारा घिरा हुआ है, भाईके भयसे पीड़ित हो बैठे हुए प्रियदर्शन सुग्रीवसे वे दोनों भाई मिले॥ २५ $\frac{१}{२}$ ॥

'उन दिनों जिन्हें बड़े भाईने राज्यसे उतार दिया था, उन सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीवकी सेवामें हम सब लोग रहा करते थे॥ २६ $\frac{१}{२}$ ॥

'शरीरपर वल्कलवस्त्र तथा हाथमें धनुष धारण किये वे दोनों भाई जब ऋष्यमूक पर्वतके रमणीय प्रदेशमें आये, तब धनुष धारण करनेवाले उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको वहाँ उपस्थित देख वानरशिरोमणि सुग्रीव भयसे घबरा उठे और उछलकर उस पर्वतके उच्चतम शिखरपर जा चढ़े॥ २७-२८ $\frac{१}{२}$ ॥

'उस शिखरपर बैठनेके पश्चात् वानरराज सुग्रीवने मुझे ही शीघ्रतापूर्वक उन दोनों बन्धुओंके पास भेजा॥

* भौंह, नथुने, नेत्र, कान, ओठ, स्तन, कोहनी, कलाई, जाँघ, घुटने, अण्डकोष, कमरके दोनों भाग, हाथ और पैर।

'सुग्रीवकी आज्ञासे उन प्रभावशाली रूपवान् तथा शुभलक्षणसम्पन्न दोनों पुरुषसिंह वीरोंकी सेवामें मैं हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ॥ ३०½ ॥

'मुझसे यथार्थ बातें जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर मैं अपनी पीठपर चढ़ाकर उन दोनों पुरुषोत्तम बन्धुओंको उस स्थानपर ले गया (जहाँ वानरराज सुग्रीव थे)॥ ३१½ ॥

'वहाँ महात्मा सुग्रीवको मैंने इन दोनों बन्धुओंका यथार्थ परिचय दिया। तत्पश्चात् श्रीराम और सुग्रीवने परस्पर बातें कीं, इससे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया॥

'वहाँ उन दोनों यशस्वी वानरेश्वर और नरेश्वरोंने अपने ऊपर बीती हुई पहलेकी घटनाएँ सुनायीं तथा दोनोंने दोनोंको आश्वासन दिया॥ ३३½ ॥

'उस समय लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरघुनाथजीने स्त्रीके लिये अपने महातेजस्वी भाई वालीद्वारा घरसे निकाले हुए सुग्रीवको सान्त्वना दी॥ ३४½ ॥

'तत्पश्चात् अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामको आपके वियोगसे जो शोक हो रहा था, उसे लक्ष्मणने वानरराज सुग्रीवको सुनाया॥ ३५½ ॥

'लक्ष्मणजीकी कही हुई वह बात सुनकर वानरराज सुग्रीव उस समय ग्रहग्रस्त सूर्यके समान अत्यन्त कान्तिहीन हो गये॥ ३६½ ॥

'तदनन्तर वानर-यूथपतियोंने आपके शरीरपर शोभा पानेवाले उन सब आभूषणोंको ले आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया, जिन्हें आपने उस समय पृथ्वीपर गिराया था, जब कि राक्षस आपको हरकर लिये जा रहा था। वानरोंने आभूषण तो दिखाये, किंतु उन्हें आपका पता कुछ भी मालूम नहीं था॥ ३७-३८½ ॥

'आपके द्वारा गिराये जानेपर वे सब आभूषण झनझनकी आवाजके साथ जमीनपर गिरे और बिखर गये थे। मैं ही उन सबको बटोरकर ले आया था। उस दिन जब वे गहने श्रीरामचन्द्रजीको दिये गये, उस समय वे उन्हें अपनी गोदमें लेकर अचेत-से हो गये थे। उन दर्शनीय आभूषणोंको छातीसे लगाकर देवतुल्य आभावाले भगवान् श्रीरामने बहुत विलाप किया॥ ३९-४०½ ॥

'उन आभूषणोंको बारंबार देखते, रोते और तिलमिला उठते थे। उस समय दशरथनन्दन श्रीरामकी शोकाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उस दुःखसे आतुर हो वे महात्मा रघुवीर बहुत देरतक मूर्च्छित अवस्थामें पड़े रहे। तब मैंने नाना प्रकारके सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर बड़ी कठिनाईसे उन्हें उठाया॥ ४१—४३ ॥

'लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीने उन बहुमूल्य आभूषणोंको बारंबार देखा और दिखाया। फिर वे सब सुग्रीवको दे दिये॥ ४४ ॥

'आर्ये! आपको न देख पानेके कारण श्रीरघुनाथजीको बड़ा दुःख और संताप हो रहा है। जैसे ज्वालामुखी पर्वत जलती हुई बड़ी भारी आगसे सदा तपता रहता है, उसी प्रकार वे आपकी विरहाग्निसे जल रहे हैं॥ ४५ ॥

'आपके लिये महात्मा श्रीरघुनाथजीको अनिद्रा (निरन्तर जागरण), शोक और चिन्ता—ये तीनों उसी प्रकार संताप देते हैं, जैसे आहवनीय आदि त्रिविध अग्नियाँ अग्निशालाको तपाती रहती हैं॥ ४६ ॥

'देवि! आपको न देख पानेका शोक श्रीरघुनाथजीको उसी प्रकार विचलित कर देता है, जैसे भारी भूकम्पसे महान् पर्वत भी हिल जाता है॥ ४७ ॥

'राजकुमारि! आपको न देखनेके कारण रमणीय काननों, नदियों और झरनोंके पास विचरनेपर भी श्रीरामको सुख नहीं मिलता है॥ ४८ ॥

'जनकनन्दिनि! पुरुषसिंह भगवान् श्रीराम रावणको उसके मित्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे मिलेंगे॥ ४९ ॥

'उन दिनों श्रीराम और सुग्रीव जब मित्रभावसे मिले, तब दोनोंने एक-दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की। श्रीरामने वालीको मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करानेका वचन दिया॥ ५० ॥

'इसके बाद उन दोनों वीर राजकुमारोंने किष्किन्धामें जाकर वानरराज वालीको युद्धमें मार गिराया॥ ५१ ॥

'युद्धमें वेगपूर्वक वालीको मारकर श्रीरामने सुग्रीवको समस्त भालुओं और वानरोंका राजा बना दिया॥ ५२ ॥

'देवि! श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार मित्रता हुई है। मैं उन दोनोंका दूत बनकर यहाँ आया हूँ। आप मुझे हनुमान् समझें॥ ५३ ॥

'अपना राज्य पानेके अनन्तर सुग्रीवने अपने आश्रयमें रहनेवाले बड़े-बड़े बलवान् वानरोंको बुलाया और उन्हें आपकी खोजके लिये दसों दिशाओंमें भेजा॥ ५४ ॥

'वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाकर गिरिराजके समान विशालकाय महाबली वानर पृथ्वीपर सब ओर चल दिये॥ ५५ ॥

'सुग्रीवकी आज्ञासे भयभीत हो हम तथा अन्य

वानर आपकी खोज करते हुए समस्त भूमण्डलमें विचर रहे हैं॥ ५६॥

'वालीके शोभाशाली पुत्र महाबली कपिश्रेष्ठ अंगद वानरोंकी एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी खोजमें निकले थे (उन्हींके दलमें मैं भी था)॥ ५७॥

'पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्यमें आकर खो जानेके कारण हमने वहाँ बड़ा कष्ट उठाया और वहीं हमारे बहुत दिन बीत गये॥ ५८॥

'अब हमें कार्य-सिद्धिकी कोई आशा नहीं रह गयी और निश्चित अवधिसे भी अधिक समय बिता देनेके कारण वानरराज सुग्रीवका भी भय था, इसलिये हम सब लोग अपने प्राण त्याग देनेके लिये उद्यत हो गये॥ ५९॥

'पर्वतके दुर्गम स्थानोंमें, नदियोंके तटोंपर और झरनोंके आस-पासकी सारी भूमि छान डाली तो भी जब हमें देवी सीता-(आप-) के स्थानका पता न चला, तब हम प्राण त्याग देनेको तैयार हो गये॥ ६०॥

'मरणान्त उपवासका निश्चय करके हम सब-के-सब उस पर्वतके शिखरपर बैठ गये। उस समय समस्त वानर-शिरोमणियोंको प्राण त्याग देनेके लिये बैठे देख कुमार अङ्गद अत्यन्त शोकके समुद्रमें डूब गये और विलाप करने लगे॥ ६१ १/२ ॥

'विदेहनन्दिनि! आपका पता न लगने, वालीके मारे जाने, हमलोगोंके मरणान्त उपवास करने तथा जटायुके मरनेकी बातपर विचार करके कुमार अङ्गदको बड़ा दु:ख हुआ था॥ ६२ १/२ ॥

'स्वामीके आज्ञापालनसे निराश होकर हम मरना ही चाहते थे कि दैववश हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये गृध्रराज जटायुके बड़े भाई सम्पाति, जो स्वयं भी गीधोंके राजा और महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे॥ ६३-६४॥

'हमारे मुँहसे अपने भाईके वधकी चर्चा सुनकर वे कुपित हो उठे और बोले—'वानरशिरोमणियो! बताओ, मेरे छोटे भाई जटायुका वध किसने किया है? वह कहाँ मारा गया है? यह सब वृत्तान्त मैं तुमलोगोंसे सुनना चाहता हूँ'॥ ६५ १/२ ॥

'तब अंगदने जनस्थानमें आपकी रक्षाके उद्देश्यसे जूझते समय जटायुका उस भयानक रूपधारी राक्षसके द्वारा जो महान् वध किया गया था, वह सब प्रसंग ज्यों-का-त्यों कह सुनाया॥ ६६ १/२ ॥

'जटायुके वधका वृत्तान्त सुनकर अरुणपुत्र सम्पातिको बड़ा दु:ख हुआ। वरारोहे! उन्होंने ही हमें बताया कि आप रावणके घरमें निवास कर रही हैं॥

'सम्पातिका वह वचन वानरोंके लिये बड़ा हर्षवर्धक था। उसे सुनकर उन्हींके भेजनेसे अङ्गद आदि हम सभी वानर आपके दर्शनकी आशासे उत्साहित हो विन्ध्यपर्वतसे उठकर समुद्रके उत्तम तटपर आये। इस प्रकार अङ्गद आदि सभी हृष्ट-पुष्ट वानर समुद्रके किनारे आ पहुँचे॥

'आपके दर्शनके लिये उत्सुक होनेपर भी सामने अपार समुद्रको देखकर सब वानर फिर भयानक चिन्तामें पड़ गये। समुद्रको देखकर वानर-सेना कष्टमें पड़ गयी है, यह जानकर मैं उन सबके तीव्र भयको दूर करता हुआ सौ योजन समुद्रको लाँघकर यहाँ आ गया॥ ७१ १/२ ॥

'राक्षसोंसे भरी हुई लङ्कामें मैंने रातमें ही प्रवेश किया है। यहाँ आकर रावणको देखा है और शोकसे पीड़ित हुई आपका भी दर्शन किया है॥ ७२ १/२ ॥

'सतीशिरोमणे! यह सारा वृत्तान्त मैंने ठीक-ठीक आपके सामने रखा है। देवि! मैं दशरथनन्दन श्रीरामका दूत हूँ, अत: आप मुझसे बात कीजिये॥ ७३ १/२ ॥

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह सारा उद्योग किया है और आपके दर्शनके निमित्त मैं यहाँ आया हूँ। देवि! आप मुझे सुग्रीवका मन्त्री तथा वायुदेवताका पुत्र हनुमान् समझें॥ ७४ १/२ ॥

'देवि! आपके पतिदेव समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं तथा बड़े भाईकी सेवामें संलग्न रहनेवाले शुभलक्षण लक्ष्मण भी प्रसन्न हैं। वे आपके उन पराक्रमी पतिदेवके हित-साधनमें ही तत्पर रहते हैं॥ ७५-७६॥

'मैं सुग्रीवकी आज्ञासे अकेला ही यहाँ आया हूँ। इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति रखता हूँ। आपका पता लगानेकी इच्छासे मैंने बिना किसी सहायकके अकेले ही घूम-फिरकर इस दक्षिण-दिशाका अनुसंधान किया है॥ ७७ १/२ ॥

'आपके विनाशकी सम्भावनासे जो निरन्तर शोकमें डूबे रहते हैं, उन वानरसैनिकोंको यह बताकर कि आप मिल गयीं, मैं उनका संताप दूर करूँगा। यह मेरे लिये बड़े हर्षकी बात होगी॥ ७८ १/२ ॥

'देवि! मेरा समुद्रको लाँघकर यहाँतक आना व्यर्थ नहीं हुआ। सबसे पहले आपके दर्शनका यह यश मुझे

ही मिलेगा। यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है॥ ७९ १/२ ॥

'महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज रावणको उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे आ मिलेंगे॥८० १/२ ॥

'विदेहनन्दिनि! पर्वतोंमें माल्यवान् नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है। वहाँ केसरी नामक वानर निवास करते थे। एक दिन वे वहाँसे गोकर्ण पर्वतपर गये। महाकपि केसरी मेरे पिता हैं। उन्होंने समुद्रके तटपर विद्यमान उस पवित्र गोकर्ण-तीर्थमें देवर्षियोंकी आज्ञासे शम्बसादन नामक दैत्यका संहार किया था। मिथिलेशकुमारी! उन्हीं कपिराज केसरीकी स्त्रीके गर्भसे वायुदेवताके द्वारा मेरा जन्म हुआ है। मैं लोकमें अपने ही कर्मद्वारा 'हनुमान्' नामसे विख्यात हूँ॥ ८१—८३ ॥

'विदेहनन्दिनि! आपको विश्वास दिलानेके लिये मैंने आपके स्वामीके गुणोंका वर्णन किया है। देवि! श्रीरघुनाथजी शीघ्र ही आपको यहाँसे ले चलेंगे—यह निश्चित बात है'॥ ८४ ॥

इस प्रकार युक्तियुक्त एवं विश्वसनीय कारणों तथा पहचानके रूपमें बताये गये श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंद्वारा हनुमान्जीने शोकसे दुर्बल हुई सीताको अपना विश्वास दिलाया। तब उन्होंने हनुमान्जीको श्रीरामका दूत समझा॥ ८५ ॥

उस समय जनकनन्दिनी सीताको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। उस महान् हर्षके कारण वे कुटिल बरौनियोंवाले दोनों नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगीं॥ ८६ ॥

उस अवसरपर विशाललोचना सीताका मनोहर मुख, जो लाल, सफेद और बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त था, राहुके ग्रहणसे मुक्त हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥

अब वे हनुमान्को वास्तविक वानर मानने लगीं। इसके विपरीत मायामय रूपधारी राक्षस नहीं। तदनन्तर हनुमान्जीने प्रियदर्शना सीतासे फिर कहा—॥ ८८ ॥

'मिथिलेशकुमारी! इस प्रकार आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब आप धैर्य धारण करें। बताइये, मैं आपकी कैसी और क्या सेवा करूँ। इस समय आपकी रुचि क्या है, आज्ञा हो तो अब मैं लौट जाऊँ॥ ८९ ॥

'महर्षियोंकी प्रेरणासे कपिवर केसरीद्वारा युद्धमें शम्बसादन नामक असुरके मारे जानेपर मैंने पवनदेवताके द्वारा जन्म ग्रहण किया। अत: मैथिलि! मैं उन वायुदेवताके समान ही प्रभावशाली वानर हूँ'॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

हनुमान्जीका सीताको मुद्रिका देना, सीताका 'श्रीराम कब मेरा उद्धार करेंगे' यह उत्सुक होकर पूछना तथा हनुमान्जीका श्रीरामके सीताविषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना

तदनन्तर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये पुन: विनययुक्त वचन बोले—॥ १ ॥

'महाभागे! मैं परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामका दूत वानर हूँ। देवि! यह श्रीरामनामसे अङ्कित मुद्रिका है, इसे लेकर देखिये॥ २ ॥

'आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे लेता आया हूँ। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं यह अंगूठी मेरे हाथमें दी थी। आपका कल्याण हो। अब आप धैर्य धारण करें। आपको जो दु:खरूपी फल मिल रहा था, वह अब समाप्त हो चला है'॥ ३ ॥

पतिके हाथको सुशोभित करनेवाली उस मुद्रिकाको लेकर सीताजी उसे ध्यानसे देखने लगीं। उस समय जानकीजीको इतनी प्रसन्नता हुई, मानो स्वयं उनके पतिदेव ही उन्हें मिल गये हों॥ ४॥

उनका लाल, सफेद और विशाल नेत्रोंसे युक्त मनोहर मुख हर्षसे खिल उठा, मानो चन्द्रमा राहुके ग्रहणसे मुक्त हो गया हो॥ ५ ॥

वे लजीली विदेहबाला प्रियतमका संदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उनके मनको बड़ा संतोष हुआ। वे महाकपि हनुमान्जीका आदर करके उनकी प्रशंसा करने लगीं—॥ ६ ॥

'वानरश्रेष्ठ! तुम बड़े पराक्रमी, शक्तिशाली और बुद्धिमान् हो; क्योंकि तुमने अकेले ही इस राक्षसपुरीको

पददलित कर दिया है॥ ७॥

'तुम अपने पराक्रमके कारण प्रशंसाके योग्य हो; क्योंकि तुमने मगर आदि जन्तुओंसे भरे हुए सौ योजन विस्तारवाले महासागरको लाँघते समय उसे गायकी खुरीके बराबर समझा है, इसलिये प्रशंसाके पात्र हो॥

'वानरशिरोमणे! मैं तुम्हें कोई साधारण वानर नहीं मानती हूँ; क्योंकि तुम्हारे मनमें रावण-जैसे राक्षससे भी न तो भय होता है और न घबराहट ही॥ ९॥

'कपिश्रेष्ठ! यदि तुम्हें आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामने भेजा है तो तुम अवश्य इस योग्य हो कि मैं तुमसे बातचीत करूँ॥ १०॥

'दुर्धर्ष वीर श्रीरामचन्द्रजी विशेषतः मेरे निकट ऐसे किसी पुरुषको नहीं भेजेंगे, जिसके पराक्रमका उन्हें ज्ञान न हो तथा जिसके शीलस्वभावकी उन्होंने परीक्षा न कर ली हो॥ ११॥

'सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम सकुशल हैं तथा सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी लक्ष्मण भी स्वस्थ एवं सुखी हैं, यह जानकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ है और यह शुभ संवाद मेरे लिये सौभाग्यका सूचक है॥ १२॥

'यदि ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम सकुशल हैं तो वे प्रलयकालमें उठे हुए प्रलयंकर अग्निके समान कुपित हो समुद्रोंसे घिरी हुई सारी पृथ्वीको दग्ध क्यों नहीं कर देते हैं?॥ १३॥

'अथवा वे दोनों भाई देवताओंको भी दण्ड देनेकी शक्ति रखते हैं (तो भी अबतक जो चुप बैठे हैं, इसमें उनका नहीं मेरे ही भाग्यका दोष है)। मैं समझती हूँ कि अभी मेरे ही दुःखोंका अन्त नहीं आया है॥ १४॥

'अच्छा, यह तो बताओ, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके मनमें कोई व्यथा तो नहीं है? वे संतप्त तो नहीं होते? उन्हें आगे जो कुछ करना है, उसे वे करते हैं या नहीं?॥ १५॥

'उन्हें किसी प्रकारकी दीनता या घबराहट तो नहीं है? वे काम करते-करते मोहके वशीभूत तो नहीं हो जाते? क्या राजकुमार श्रीराम पुरुषोचित कार्य (पुरुषार्थ) करते हैं ?॥ १६॥

'क्या शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम मित्रोंके प्रति मित्रभाव रखकर साम और दानरूप दो उपायोंका ही अवलम्बन करते हैं? तथा शत्रुओंके प्रति उन्हें जीतनेकी इच्छा रखकर दान, भेद और दण्ड—इन तीन प्रकारके उपायोंका ही आश्रय लेते हैं?॥ १७॥

'क्या श्रीराम स्वयं प्रयत्नपूर्वक मित्रोंका संग्रह करते हैं ? क्या उनके शत्रु भी शरणागत होकर अपनी रक्षाके लिये उनके पास आते हैं? क्या उन्होंने मित्रोंका उपकार करके उन्हें अपने लिये कल्याणकारी बना लिया है? क्या वे कभी अपने मित्रोंसे भी उपकृत या पुरस्कृत होते हैं?॥ १८॥

'क्या राजकुमार श्रीराम कभी देवताओंका भी कृपाप्रसाद चाहते हैं—उनकी कृपाके लिये प्रार्थना करते हैं? क्या वे पुरुषार्थ और दैव दोनोंका आश्रय लेते हैं?॥

'दुर्भाग्यवश मैं उनसे दूर हो गयी हूँ। इस कारण श्रीरघुनाथजी मुझपर स्नेहहीन तो नहीं हो गये हैं? क्या वे मुझे कभी इस संकटसे छुड़ायेंगे?॥ २०॥

'वे सदा सुख भोगनेके ही योग्य हैं, दुःख भोगनेके योग्य कदापि नहीं हैं; परंतु इन दिनों दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण श्रीराम अधिक खिन्न और शिथिल तो नहीं हो गये हैं?॥ २१॥

'क्या उन्हें माता कौसल्या, सुमित्रा तथा भरतका कुशल-समाचार बराबर मिलता रहता है?॥ २२॥

'क्या सम्माननीय श्रीरघुनाथजी मेरे लिये होनेवाले शोकसे अधिक संतप्त हैं? वे मेरी ओरसे अन्यमनस्क तो नहीं हो गये हैं? क्या श्रीराम मुझे इस संकटसे उबारेंगे?॥

'क्या भाईपर अनुराग रखनेवाले भरतजी मेरे उद्धारके लिये मन्त्रियोंद्वारा सुरक्षित भयंकर अक्षौहिणी सेना भेजेंगे?॥ २४॥

'क्या श्रीमान् वानरराज सुग्रीव दाँत और नखोंसे प्रहार करनेवाले वीर वानरोंको साथ ले मुझे छुड़ानेके लिये यहाँतक आनेका कष्ट करेंगे?॥ २५॥

'क्या सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले शूरवीर लक्ष्मण, जो अनेक अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अपने बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंका संहार करेंगे?॥ २६॥

'क्या मैं रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित थोड़े ही दिनोंमें श्रीरघुनाथजीके द्वारा युद्धमें भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंसे मारा गया देखूँगी?॥ २७॥

'जैसे पानी सूख जानेपर धूपसे कमल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे बिना शोकसे दुःखी हुआ श्रीरामका वह सुवर्णके समान कान्तिमान् और कमलके सदृश सुगन्धित मुख सूख तो नहीं गया है?॥ २८॥

'धर्मपालनके उद्देश्यसे अपने राज्यका त्याग करते

और मुझे पैदल ही वनमें लाते समय जिन्हें तनिक भी भय और शोक नहीं हुआ, वे श्रीरघुनाथजी इस संकटके समय हृदयमें धैर्य तो धारण करते हैं न?॥ २९ ॥

'दूत! उनके माता-पिता तथा अन्य कोई सम्बन्धी भी ऐसे नहीं हैं, जिन्हें उनका स्नेह मुझसे अधिक अथवा मेरे बराबर भी मिला हो। मैं तो तभीतक जीवित रहना चाहती हूँ, जबतक यहाँ आनेके सम्बन्धमें अपने प्रियतमकी प्रवृत्ति सुन रही हूँ'॥ ३० ॥

देवी सीता वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के प्रति इस प्रकार महान् अर्थसे युक्त मधुर वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी मनोहर वाणी पुनः सुननेके लिये चुप हो गयीं॥ ३१ ॥

सीताजीका वचन सुनकर भयंकर पराक्रमी पवनकुमार हनुमान् मस्तकपर अञ्जलि बाँधे उन्हें इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ ३२ ॥

'देवि! कमलनयन भगवान् श्रीरामको यह पता ही नहीं है कि आप लङ्कामें रह रही हैं। इसीलिये जैसे इन्द्र दानवोंके यहाँसे शचीको उठा ले गये, उस प्रकार वे शीघ्र यहाँसे आपको नहीं ले जा रहे हैं॥ ३३ ॥

'जब मैं यहाँसे लौटकर जाऊँगा, तब मेरी बात सुनते ही श्रीरघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत वहाँसे चल देंगे॥ ३४॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम अपने बाण-समूहोंद्वारा अक्षोभ्य महासागरको भी स्तब्ध करके उसपर सेतु बाँधकर लङ्कापुरीमें पहुँच जायँगे और उसे राक्षसोंसे सूनी कर देंगे॥ ३५ ॥

'उस समय श्रीरामके मार्गमें यदि मृत्यु, देवता अथवा बड़े-बड़े असुर भी विघ्न बनकर खड़े होंगे तो वे उन सबका भी संहार कर डालेंगे॥ ३६ ॥

'आर्ये! आपको न देखनेके कारण उत्पन्न हुए शोकसे उनका हृदय भरा रहता है; अतः श्रीराम सिंहसे पीड़ित हुए हाथीकी भाँति क्षणभरको भी चैन नहीं पाते हैं॥ ३७ ॥

'देवि! मन्दर आदि पर्वत हमारे वासस्थान हैं और फल-मूल भोजन। अतः मैं मन्दराचल, मलय, विन्ध्य, मेरु तथा दर्दुर पर्वतकी और अपनी जीविकाके साधन फल-मूलकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि आप शीघ्र ही श्रीरामका नवोदित पूर्ण चन्द्रमाके समान वह मनोहर मुख देखेंगी, जो सुन्दर नेत्र, बिम्बफलके समान लाल-लाल ओठ और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत एवं चित्ताकर्षक है॥ ३८-३९ ॥

'विदेहनन्दिनि! ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए देवराज इन्द्रके समान प्रस्रवण गिरिके शिखरपर विराजमान श्रीरामका आप शीघ्र दर्शन करेंगी॥ ४० ॥

'कोई भी रघुवंशी न तो मांस खाता है और न मधुका ही सेवन करता है; फिर भगवान् श्रीराम इन वस्तुओंका सेवन क्यों करते? वे सदा चार समय उपवास करके पाँचवें समय शास्त्रविहित जंगली फल-मूल और नीवार आदि भोजन करते हैं॥ ४१ ॥

'श्रीरघुनाथजीका चित्त सदा आपमें लगा रहता है, अतः उन्हें अपने शरीरपर चढ़े हुए डाँस, मच्छर, कीड़ों और सर्पोंको हटानेकी भी सुधि नहीं रहती॥ ४२ ॥

'श्रीराम आपके प्रेमके वशीभूत हो सदा आपका ही ध्यान करते और निरन्तर आपके ही विरह-शोकमें डूबे रहते हैं। आपको छोड़कर दूसरी कोई बात वे सोचते ही नहीं हैं॥ ४३ ॥

'नरश्रेष्ठ! श्रीरामको सदा आपकी चिन्ताके कारण कभी नींद नहीं आती है। यदि कभी आँख लगी भी तो 'सीता-सीता' इस मधुर वाणीका उच्चारण करते हुए वे जल्दी ही जाग उठते हैं॥ ४४॥

'किसी फल, फूल अथवा स्त्रियोंके मनको लुभानेवाली दूसरी वस्तुको भी जब वे देखते हैं, तब लंबी साँस लेकर बारंबार 'हा प्रिये! हा प्रिये!' कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं॥ ४५ ॥

'देवि! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुःखी रहते हैं, सीता-सीता कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम व्रतका पालन करते हुए आपकी ही प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए हैं'॥ ४६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे सीताका अपना शोक तो दूर हो गया; किंतु श्रीरामके शोककी बात सुनकर वे पुनः उन्हींके समान शोकमें निमग्न हो गयीं। उस समय विदेहनन्दिनी सीता शरद्-ऋतु आनेपर मेघोंकी घटा और चन्द्रमा—दोनोंसे युक्त (अन्धकार और प्रकाशपूर्ण) रात्रिके समान हर्ष और शोकसे युक्त प्रतीत होती थीं॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

सीताका हनुमान्‌जीसे श्रीरामको शीघ्र बुलानेका आग्रह, हनुमान्‌जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार करना

हनुमान्‌जीका पूर्वोक्त वचन सुनकर पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली सीताने उनसे धर्म और अर्थसे युक्त बात कही—॥ १ ॥

'वानर! तुमने जो कहा कि श्रीरघुनाथजीका चित्त दूसरी ओर नहीं जाता और वे शोकमें डूबे रहते हैं, तुम्हारा यह कथन मुझे विषमिश्रित अमृतके समान लगा है॥ २ ॥

'कोई बड़े भारी ऐश्वर्यमें स्थित हो अथवा अत्यन्त भयंकर विपत्तिमें पड़ा हो, काल मनुष्यको इस तरह खींच लेता है, मानो उसे रस्सीमें बाँध रखा हो॥

'वानरशिरोमणे! दैवके विधानको रोकना प्राणियोंके वशकी बात नहीं है। उदाहरणके लिये सुमित्राकुमार लक्ष्मणको, मुझको और श्रीरामको भी देख लो। हमलोग किस तरह वियोग-दुःखसे मोहित हो रहे हैं॥ ४ ॥

'समुद्रमें नौकाके नष्ट हो जानेपर अपने हाथोंसे तैरनेवाले पराक्रमी पुरुषकी भाँति श्रीरघुनाथजी कैसे इस शोक-सागरसे पार होंगे?॥ ५ ॥

'राक्षसोंका वध, रावणका संहार और लङ्कापुरीका विध्वंस करके मेरे पतिदेव मुझे कब देखेंगे?॥ ६ ॥

'तुम उनसे जाकर कहना, वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जबतक पूरा नहीं हो जाता, तभीतक मेरा जीवन शेष है॥ ७ ॥

'वानर! यह दसवाँ महीना चल रहा है। अब वर्ष पूरा होनेमें दो ही मास शेष हैं। निर्दयी रावणने मेरे जीवनके लिये जो अवधि निश्चित की है, उसमें इतना ही समय बाकी रह गया है॥ ८ ॥

'रावणके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिये उससे यत्नपूर्वक बड़ी अनुनय-विनय की थी, किंतु वह उनकी बात नहीं मानता है॥ ९ ॥

'मेरा लौटाया जाना रावणको अच्छा नहीं लगता; क्योंकि वह कालके अधीन हो रहा है और युद्धमें मौत उसे ढूँढ़ रही है॥ १० ॥

'कपे! विभीषणकी ज्येष्ठ पुत्रीका नाम कला है। उसकी माताने स्वयं उसे मेरे पास भेजा था। उसीने ये सारी बातें मुझसे कही हैं॥ ११ ॥

'अविन्ध्य नामका एक श्रेष्ठ राक्षस है, जो बड़ा ही बुद्धिमान्, विद्वान्, धीर, सुशील, वृद्ध तथा रावणका सम्मानपात्र है॥ १२ ॥

'उसने रावणको यह बताकर कि श्रीरामके हाथसे राक्षसोंके विनाशका अवसर आ पहुँचा है, मुझे लौटा देनेके लिये प्रेरित किया था, किंतु वह दुष्टात्मा उसके हितकारी वचनोंको भी नहीं सुनता है॥ १३ ॥

'कपिश्रेष्ठ! मुझे तो यह आशा हो रही है कि मेरे पतिदेव मुझसे शीघ्र ही आ मिलेंगे; क्योंकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है और श्रीरघुनाथजीमें बहुत-से गुण हैं॥ १४ ॥

'वानर! श्रीरामचन्द्रजीमें उत्साह, पुरुषार्थ, बल, दयालुता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव आदि सभी गुण विद्यमान हैं॥ १५ ॥

'जिन्होंने जनस्थानमें अपने भाईकी सहायता लिये बिना ही चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, उनसे कौन शत्रु भयभीत न होगा?॥ १६ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। वे संकटोंसे तोले या विचलित किये जायँ, यह सर्वथा असम्भव है। जैसे पुलोमकन्या शची इन्द्रके प्रभावको जानती हैं, उसी तरह मैं श्रीरघुनाथजीकी शक्ति-सामर्थ्यको अच्छी तरह जानती हूँ॥ १७ ॥

'कपिवर! शूरवीर भगवान् श्रीराम सूर्यके समान हैं। उनके बाणसमूह ही उनकी किरणें हैं। वे उनके द्वारा शत्रुभूत राक्षसरूपी जलको शीघ्र ही सोख लेंगे'॥ १८ ॥

इतना कहते-कहते सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। वे श्रीरामचन्द्रजीके लिये शोकसे पीड़ित हो रही थीं। उस समय कपिवर हनुमान्‌जीने उनसे कहा—॥ १९ ॥

'देवि! आप धैर्य धारण करें। मेरा वचन सुनते ही श्रीरघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर शीघ्र यहाँके लिये प्रस्थान कर देंगे॥ २० ॥

'अथवा मैं अभी आपको इस राक्षसजनित दुःखसे छुटकारा दिला दूँगा। सती-साध्वी देवि! आप मेरी पीठपर बैठ जाइये॥ २१ ॥

'आपको पीठपर बैठाकर मैं समुद्रको लाँघ जाऊँगा। मुझमें रावणसहित सारी लङ्काको भी ढो ले जानेकी शक्ति है॥ २२ ॥

'मिथिलेशकुमारी! रघुनाथजी प्रस्रवणगिरिपर रहते हैं। मैं आज ही आपको उनके पास पहुँचा दूँगा। ठीक उसी तरह, जैसे अग्निदेव हवन किये गये हविष्यको इन्द्रकी सेवामें ले जाते हैं॥ २३॥

'विदेहनन्दिनि! दैत्योंके वधके लिये उत्साह रखनेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षसोंके संहारके लिये सचेष्ट हुए श्रीराम और लक्ष्मणका आप आज ही दर्शन करेंगी॥ २४॥

'आपके दर्शनका उत्साह मनमें लिये महाबली श्रीराम पर्वत-शिखरपर अपने आश्रममें उसी प्रकार बैठे हैं, जैसे देवराज इन्द्र गजराज ऐरावतकी पीठपर विराजमान होते हैं॥ २५॥

'देवि! आप मेरी पीठपर बैठिये। शोभने! मेरे कथनकी उपेक्षा न कीजिये। चन्द्रमासे मिलनेवाली रोहिणीकी भाँति आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ मिलनेका निश्चय कीजिये॥ २६॥

'मुझे भगवान् श्रीरामसे मिलना है, इतना कहते ही आप चन्द्रमासे रोहिणीकी भाँति श्रीरघुनाथजीसे मिल जायँगी। आप मेरी पीठपर आरूढ़ होइये और आकाशमार्गसे ही महासागरको पार कीजिये॥ २७॥

'कल्याणि! मैं आपको लेकर जब यहाँसे चलूँगा, उस समय समूचे लङ्का-निवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकते॥ २८॥

'विदेहनन्दिनि! जिस प्रकार मैं यहाँ आया हूँ, उसी तरह आपको लेकर आकाशमार्गसे चला जाऊँगा, इसमें संदेह नहीं है। आप मेरा पराक्रम देखिये'॥ २९॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर मिथिलेशकुमारी सीताके सारे शरीरमें हर्ष और विस्मयके कारण रोमाञ्च हो आया। उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—॥

'वानरयूथपति हनुमान्! तुम इतने दूरके मार्गपर मुझे कैसे ले चलना चाहते हो? तुम्हारे इस दुःसाहसको मैं वानरोचित चपलता ही समझती हूँ॥ ३१॥

'वानरशिरोमणे! तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है। फिर तुम मुझे मेरे स्वामी महाराज श्रीरामके पास ले जानेकी इच्छा कैसे करते हो?'॥ ३२॥

सीताजीकी यह बात सुनकर शोभाशाली पवनकुमार हनुमान्‌ने इसे अपने लिये नया तिरस्कार ही माना॥ ३३॥

वे सोचने लगे—'कजरारे नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता मेरे बल और प्रभावको नहीं जानतीं। इसलिये आज मेरे उस रूपको, जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर लेता हूँ, ये देख लें'॥ ३४॥

ऐसा विचार करके शत्रुमर्दन वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने उस समय सीताको अपना स्वरूप दिखाया॥ ३५॥

वे बुद्धिमान् कपिवर उस वृक्षसे नीचे कूद पड़े और सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये बढ़ने लगे॥ ३६॥

बात-की-बातमें उनका शरीर मेरुपर्वतके समान ऊँचा हो गया। वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी प्रतीत होने लगे। इस तरह विशाल रूप धारण करके वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् सीताजीके सामने खड़े हो गये॥

तत्पश्चात् पर्वतके समान विशालकाय, तामेके समान लाल मुख तथा वज्रके समान दाढ़ और नखवाले भयानक महाबली वानरवीर हनुमान् विदेहनन्दिनीसे इस प्रकार बोले— ॥ ३८॥

'देवि! मुझमें पर्वत, वन, अट्टालिका, चहारदिवारी और नगरद्वारसहित इस लङ्कापुरीको रावणके साथ ही उठा ले जानेकी शक्ति है॥ ३९॥

'अतः आप मेरे साथ चलनेका निश्चय कर लीजिये। आपकी आशङ्का व्यर्थ है। देवि! विदेहनन्दिनि! आप मेरे साथ चलकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीका शोक दूर कीजिये'॥ ४०॥

वायुके औरस पुत्र हनुमान्‌जीको पर्वतके समान विशाल शरीर धारण किये देख प्रफुल्ल कमलदलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाली जनककिशोरीने उनसे कहा—

'महाकपे! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती हूँ। वायुके समान तुम्हारी गति और अग्निके समान तुम्हारा अद्भुत तेज है॥ ४२॥

'वानरयूथपते! दूसरा कोई साधारण वानर अपार महासागरके पारकी इस भूमिमें कैसे आ सकता है?॥

'मैं जानती हूँ' तुम समुद्र पार करने और मुझे ले जानेमें भी समर्थ हो, तथापि तुम्हारी तरह मुझे भी अपनी कार्यसिद्धिके विषयमें अवश्य भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये॥ ४४॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे साथ मेरा जाना किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं है; क्योंकि तुम्हारा वेग वायुके वेगके समान तीव्र है। जाते समय यह वेग मुझे मूर्च्छित कर सकता है॥ ४५॥

'मैं समुद्रके ऊपर-ऊपर आकाशमें पहुँच जानेपर अधिक वेगसे चलते हुए तुम्हारे पृष्ठभागसे नीचे गिर सकती हूँ॥ ४६॥

'इस तरह समुद्रमें, जो तिमि नामक बड़े-बड़े

मत्स्यों, नाकों और मछलियोंसे भरा हुआ है, गिरकर विवश हो मैं शीघ्र ही जल-जन्तुओंका उत्तम आहार बन जाऊँगी॥

'इसलिये शत्रुनाशन वीर! मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगी। एक स्त्रीको साथ लेकर जब तुम जाने लगोगे, उस समय राक्षसोंको तुमपर संदेह होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ४८॥

'मुझे हरकर ले जायी जाती देख दुरात्मा रावणकी आज्ञासे भयंकर पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीछा करेंगे॥ ४९॥

'वीर! उस समय मुझ-जैसी रक्षणीया अबलाके साथ होनेके कारण तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करनेवाले उन शौर्यशाली राक्षसोंसे घिरकर प्राणसंशयकी अवस्थामें पहुँच जाओगे॥ ५०॥

'आकाशमें अस्त्र-शस्त्रधारी बहुत-से राक्षस तुमपर आक्रमण करेंगे और तुम्हारे हाथमें कोई भी अस्त्र न होगा। उस दशामें तुम उन सबके साथ युद्ध और मेरी रक्षा दोनों कार्य कैसे कर सकोगे?॥ ५१॥

'कपिश्रेष्ठ! उन क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ जब तुम युद्ध करने लगोगे, उस समय मैं भयसे पीड़ित होकर तुम्हारी पीठसे अवश्य ही गिर जाऊँगी॥ ५२॥

'कपिश्रेष्ठ! यदि कहीं वे महान् बलवान् भयानक राक्षस किसी तरह तुम्हें युद्धमें जीत लें अथवा युद्ध करते समय मेरी रक्षाकी ओर तुम्हारा ध्यान न रहनेसे यदि मैं गिर गयी तो वे पापी राक्षस मुझ गिरी हुई अबलाको फिर पकड़ ले जायँगे॥ ५३-५४॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि वे निशाचर मुझे तुम्हारे हाथसे छीन ले जायँ या मेरा वध ही कर डालें; क्योंकि युद्धमें विजय और पराजयको अनिश्चित ही देखा जाता है॥ ५५॥

'अथवा वानरशिरोमणे! यदि राक्षसोंकी अधिक डाँट पड़नेपर मेरे प्राण निकल गये तो फिर तुम्हारा यह सारा प्रयत्न निष्फल ही हो जायगा॥ ५६॥

'यद्यपि तुम भी सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हो तथापि तुम्हारे द्वारा राक्षसोंका वध हो जानेपर श्रीरघुनाथजीके सुयशमें बाधा आयेगी (लोग यही कहेंगे कि श्रीराम स्वयं कुछ भी न कर सके)॥ ५७॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि राक्षसलोग मुझे ले जाकर किसी ऐसे गुप्त स्थानमें रख दें, जहाँ न तो वानरोंको मेरा पता लगे और न श्रीरघुनाथजीको ही॥

'यदि ऐसा हुआ तो मेरे लिये किया गया तुम्हारा यह सारा उद्योग व्यर्थ हो जायगा। यदि तुम्हारे साथ श्रीरामचन्द्रजी यहाँ पधारें तो उनके आनेसे बहुत बड़ा लाभ होगा॥ ५९॥

'महाबाहो! अमित पराक्रमी श्रीरघुनाथजीका, उनके भाइयोंका, तुम्हारा तथा वानरराज सुग्रीवके कुलका जीवन मुझपर ही निर्भर है॥ ६०॥

'शोक और संतापसे पीड़ित हुए वे दोनों भाई जब मेरी प्राप्तिकी ओरसे निराश हो जायँगे, तब सम्पूर्ण रीछों और वानरोंके साथ अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे॥

'वानरश्रेष्ठ! (तुम्हारे साथ न चल सकनेका एक प्रधान कारण और भी है—) वानरवीर! पतिभक्तिकी ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श करना नहीं चाहती॥ ६२॥

'रावणके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बलात् हुआ है। उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी, क्या करती॥ ६३॥

'यदि श्रीरघुनाथजी यहाँ राक्षसोंसहित दशमुख रावणका वध करके मुझे यहाँसे ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा॥ ६४॥

'मैंने युद्धमें शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महात्मा श्रीरामके पराक्रम अनेक बार देखे और सुने हैं। देवता, गन्धर्व, नाग और राक्षस सब मिलकर भी संग्राममें उनकी समानता नहीं कर सकते॥ ६५॥

'युद्धस्थलमें विचित्र धनुष धारण करनेवाले इन्द्रतुल्य पराक्रमी महाबली श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणके साथ रह वायुका सहारा पाकर प्रज्वलित हुए अग्निकी भाँति उद्दीप्त हो उठते हैं। उस समय उन्हें देखकर उनका वेग कौन सह सकता है?॥ ६६॥

'वानरशिरोमणे! समराङ्गणमें अपने बाणरूपी तेजसे प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले और मतवाले दिग्गजकी भाँति खड़े हुए रणमर्दन श्रीराम और लक्ष्मणका सामना कौन कर सकता है?॥ ६७॥

'इसलिये कपिश्रेष्ठ! वानरवीर! तुम प्रयत्न करके यूथपति सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरे प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्र यहाँ बुला ले आओ। मैं श्रीरामके लिये चिरकालसे शोकाकुल हो रही हूँ। तुम उनके शुभागमनसे मुझे हर्ष प्रदान करो'॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

सीताजीका हनुमान्‌जीको पहचानके रूपमें चित्रकूट पर्वतपर घटित हुए एक कौएके प्रसंगको सुनाना, भगवान् श्रीरामको शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना और चूड़ामणि देना

सीताके इस वचनसे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बातचीतमें कुशल थे। उन्होंने पूर्वोक्त बातें सुनकर सीतासे कहा—॥ १ ॥

'देवि! आपका कहना बिलकुल ठीक और युक्तिसंगत है। शुभदर्शने! आपकी यह बात नारी-स्वभावके तथा पतिव्रताओंकी विनयशीलताके अनुरूप है॥ २ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि आप अबला होनेके कारण मेरी पीठपर बैठकर सौ योजन विस्तृत समुद्रके पार जानेमें समर्थ नहीं हैं॥ ३ ॥

'जनकनन्दिनि! आपने जो दूसरा कारण बताते हुए कहा है कि मेरे लिये श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका स्वेच्छापूर्वक स्पर्श करना उचित नहीं है, यह आपके ही योग्य है। देवि! महात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नीके मुखसे ऐसी बात निकल सकती है। आपको छोड़कर दूसरी कौन स्त्री ऐसा वचन कह सकती है॥ ४-५ ॥

'देवि! मेरे सामने आपने जो-जो पवित्र चेष्टाएँ कीं और जैसी-जैसी उत्तम बातें कही हैं, वे सब पूर्णरूपसे श्रीरामचन्द्रजी मुझसे सुनेंगे॥ ६ ॥

'देवि! मैंने जो आपको अपने साथ ले जानेका आग्रह किया, उसके बहुत-से कारण हैं। एक तो मैं श्रीरामचन्द्रजीका शीघ्र ही प्रिय करना चाहता था। अतः स्नेहपूर्ण हृदयसे ही मैंने ऐसी बात कही है॥ ७ ॥

'दूसरा कारण यह है कि लङ्कामें प्रवेश करना सबके लिये अत्यन्त कठिन है। तीसरा कारण है, महासागरको पार करनेकी कठिनाई। इन सब कारणोंसे तथा अपनेमें आपको ले जानेकी शक्ति होनेसे मैंने ऐसा प्रस्ताव किया था॥ ८ ॥

'मैं आज ही आपको श्रीरघुनाथजीसे मिला देना चाहता था। अतः अपने परमाराध्य गुरु श्रीरामके प्रति स्नेह और आपके प्रति भक्तिके कारण ही मैंने ऐसी बात कही थी, किसी और उद्देश्यसे नहीं॥ ९ ॥

'किंतु सती-साध्वी देवि! यदि आपके मनमें मेरे साथ चलनेका उत्साह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्रजी यह जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है'॥ १० ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर देवकन्याके समान तेजस्विनी सीता अश्रुगद्गदवाणीमें धीरे-धीरे इस प्रकार बोलीं—॥ ११ ॥

'वानरश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रियतमसे यह उत्तम पहचान बताना—'नाथ! चित्रकूट पर्वतके उत्तर-पूर्ववाले भागपर, जो मन्दाकिनी नदीके समीप है तथा जहाँ फल-मूल और जलकी अधिकता है, उस सिद्धसेवित प्रदेशमें तापसाश्रमके भीतर जब मैं निवास करती थी, उन्हीं दिनों नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धसे वासित उस आश्रमके उपवनोंमें जलविहार करके आप भीगे हुए आये और मेरी गोदमें बैठ गये॥ १२—१४ ॥

'तदनन्तर (किसी दूसरे समय) एक मांसलोलुप कौआ आकर मुझपर चोंच मारने लगा। मैंने ढेला उठाकर उसे हटानेकी चेष्टा की, परंतु मुझे बार-बार चोंच मारकर वह कौआ वहीं कहीं छिप जाता था। उस बलिभोजी कौएको खानेकी इच्छा थी, इसलिये वह मेरा मांस नोचनेसे निवृत्त नहीं होता था॥ १५-१६ ॥

'मैं उस पक्षीपर बहुत कुपित थी। अतः अपने लहँगेको दृढ़तापूर्वक कसनेके लिये कटिसूत्र (नारे)-को खींचने लगी। उस समय मेरा वस्त्र कुछ नीचे खिसक गया और उसी अवस्थामें आपने मुझे देख लिया॥ १७ ॥

'देखकर आपने मेरी हँसी उड़ायी। इससे मैं पहले तो कुपित हुई और फिर लज्जित हो गयी। इतनेमें ही उस भक्ष्य-लोलुप कौएने फिर चोंच मारकर मुझे क्षत-विक्षत कर दिया और उसी अवस्थामें मैं आपके पास आयी॥ १८ ॥

'आप वहाँ बैठे हुए थे। मैं उस कौएकी हरकतसे तंग आ गयी थी। अतः थककर आपकी गोदमें आ बैठी। उस समय मैं कुपित-सी हो रही थी और आपने प्रसन्न होकर मुझे सान्त्वना दी॥ १९ ॥

'नाथ! कौएने मुझे कुपित कर दिया था। मेरे मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और मैं धीरे-धीरे आँखें

पोंछ रही थी। आपने मेरी उस अवस्थाको लक्ष्य किया'॥

'हनुमान्! मैं थक जानेके कारण उस दिन बहुत देरतक श्रीरघुनाथजीकी गोदमें सोयी रही। फिर उनकी बारी आयी और वे भरतके बड़े भाई मेरी गोदमें सिर रखकर सो रहे॥ २१॥

'इसी समय वह कौआ फिर वहाँ आया। मैं सोकर जगनेके बाद श्रीरघुनाथजीकी गोदसे उठकर बैठी ही थी कि उस कौएने सहसा झपटकर मेरी छातीमें चोंच मार दी॥ २२॥

'उसने बारंबार उड़कर मुझे अत्यन्त घायल कर दिया। मेरे शरीरसे रक्तकी बूँदें झरने लगीं, इससे श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुल गयी और वे जागकर उठ बैठे॥ २३॥

'मेरी छातीमें घाव हुआ देख महाबाहु श्रीराम उस समय कुपित हो उठे और फुफकारते हुए विषधर सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेते हुए बोले— ॥ २४॥

'हाथीकी सूँड़के समान जाँघोंवाली सुन्दरी! किसने तुम्हारी छातीको क्षत-विक्षत किया है? कौन रोषसे भरे हुए पाँच मुखवाले सर्पके साथ खेल रहा है?'॥ २५॥

'इतना कहकर जब उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उस कौएको देखा, जो मेरी ओर ही मुँह किये बैठा था। उसके तीखे पंजे खूनसे रँग गये थे॥ २६॥

'वह पक्षियोंमें श्रेष्ठ कौआ इन्द्रका पुत्र था। उसकी गति वायुके समान तीव्र थी। वह शीघ्र ही स्वर्गसे उड़कर पृथ्वीपर आ पहुँचा था॥ २७॥

'उस समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाबाहु श्रीरामके नेत्र क्रोधसे घूमने लगे। उन्होंने उस कौएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया॥ २८॥

'श्रीरामने कुशकी चटाईसे एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित करते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसका लक्ष्य वह पक्षी ही था॥ २९॥

'श्रीरघुनाथजीने वह प्रज्वलित कुश उस कौएकी ओर छोड़ा। फिर तो वह आकाशमें उसका पीछा करने लगा॥ ३०॥

'वह कौआ कई प्रकारकी उड़ानें लगाता अपने प्राण बचानेके लिये इस सम्पूर्ण जगत्में भागता फिरा, किंतु उस बाणने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा॥ ३१॥

'उसके पिता इन्द्र तथा समस्त श्रेष्ठ महर्षियोंने भी उसका परित्याग कर दिया। तीनों लोकोंमें घूमकर अन्तमें वह पुनः भगवान् श्रीरामकी ही शरणमें आया॥

'रघुनाथजी शरणागतवत्सल हैं। उनकी शरणमें आकर जब वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब उन्हें उसपर दया आ गयी; अतः वधके योग्य होनेपर भी उस कौएको उन्होंने मारा नहीं, उबारा॥ ३३॥

'उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और वह उदास होकर सामने गिरा था। इस अवस्थामें उसको लक्ष्य करके भगवान् बोले—'ब्रह्मास्त्रको तो व्यर्थ किया नहीं जा सकता। अतः बताओ, इसके द्वारा तुम्हारा कौन-सा अङ्ग-भङ्ग किया जाय'॥ ३४॥

'फिर उसकी सम्मतिके अनुसार श्रीरामने उस अस्त्रसे उस कौएकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी। इस प्रकार दायाँ नेत्र देकर वह अपने प्राण बचा सका॥ ३५॥

'तदनन्तर दशरथनन्दन राजा रामको नमस्कार करके उन वीरशिरोमणिसे विदा लेकर वह अपने निवासस्थानको चला गया॥ ३६॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम मेरे स्वामीसे जाकर कहना—'प्राणनाथ ! पृथ्वीपते! आपने मेरे लिये एक साधारण अपराध करनेवाले कौएपर भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था; फिर जो आपके पाससे मुझे हर ले आया, उसको आप कैसे क्षमा कर रहे हैं?॥ ३७॥

'नरश्रेष्ठ! मेरे ऊपर महान् उत्साहसे पूर्ण कृपा कीजिये। प्राणनाथ! जो सदा आपसे सनाथ है, वह सीता आज अनाथ-सी दिखायी देती है॥ ३८॥

'दया करना सबसे बड़ा धर्म है, यह मैंने आपसे ही सुना है। मैं आपको अच्छी तरह जानती हूँ। आपका बल, पराक्रम और उत्साह महान् है॥ ३९॥

'आपका कहीं आर-पार नहीं है—आप असीम हैं। आपको कोई क्षुब्ध या पराजित नहीं कर सकता। आप गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं। समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके स्वामी हैं तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। मैं आपके प्रभावको जानती हूँ॥ ४०॥

'रघुनन्दन! इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, बलवान् और शक्तिशाली होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं करते हैं?॥ ४१॥

'पवनकुमार! नाग, गन्धर्व, देवता और मरुद्गण—कोई भी समराङ्गणमें श्रीरामचन्द्रजीका वेग नहीं सह सकते॥ ४२॥

'उन परम पराक्रमी श्रीरामके हृदयमें यदि मेरे लिये कुछ व्याकुलता है तो वे अपने तीखे सायकोंसे

इन राक्षसोंका संहार क्यों नहीं कर डालते?॥ ४३॥

'अथवा शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली वीर लक्ष्मण ही अपने बड़े भाईकी आज्ञा लेकर मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हैं?॥ ४४॥

'वे दोनों पुरुषसिंह वायु तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। यदि वे देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं तो किसलिये मेरी उपेक्षा करते हैं?॥ ४५॥

'नि:संदेह मेरा ही कोई महान् पाप उदित हुआ है, जिससे वे दोनों शत्रुसंतापी वीर मेरा उद्धार करनेमें समर्थ होते हुए भी मुझपर कृपादृष्टि नहीं कर रहे हैं'॥

विदेहकुमारी सीताने आँसू बहाते हुए जब यह करुणायुक्त बात कही, तब इसे सुनकर वानरयूथपति महातेजस्वी हनुमान् इस प्रकार बोले—॥ ४७॥

'देवि! मैं सत्यकी शपथ खाकर आपसे कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी आपके विरह-शोकसे पीड़ित हो अन्य सब कार्योंसे विमुख हो गये हैं—केवल आपका ही चिन्तन करते रहते हैं। श्रीरामके दु:खी होनेसे लक्ष्मण भी सदा संतप्त रहते हैं॥ ४८॥

'किसी तरह आपका दर्शन हो गया। अब शोक करनेका अवसर नहीं है। शोभने! इसी घड़ीसे आप अपने दु:खोंका अन्त होता देखेंगी॥ ४९॥

'वे दोनों पुरुषसिंह राजकुमार बड़े बलवान् हैं तथा आपको देखनेके लिये उनके मनमें विशेष उत्साह है। अत: वे समस्त राक्षस-जगत्‌को भस्म कर डालेंगे॥ ५०॥

'विशाललोचने! रघुनाथजी समराङ्गणमें क्रूरता प्रकट करनेवाले रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे॥ ५१॥

'अब भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण, तेजस्वी सुग्रीव तथा वहाँ एकत्र हुए वानरोंके प्रति आपको जो कुछ कहना हो, वह कहिये'॥ ५२॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर देवी सीताने फिर कहा—'कपिश्रेष्ठ! मनस्विनी कौसल्या देवीने जिन्हें जन्म दिया है तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, उन श्रीरघुनाथजीको मेरी ओरसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करना और उनका कुशल-समाचार पूछना॥ ५३ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् विशाल भूमण्डलमें भी जिसका मिलना कठिन है ऐसे उत्तम ऐश्वर्यका, भाँति-भाँतिके हारों, सब प्रकारके रत्नों तथा मनोहर सुन्दरी स्त्रियोंका भी परित्याग कर पिता-माताको सम्मानित एवं राजी करके जो श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें चले आये, जिनके कारण सुमित्रा देवी उत्तम संतानवाली कही जाती हैं, जिनका चित्त सदा धर्ममें लगा रहता है, जो सर्वोत्तम सुखको त्यागकर वनमें बड़े भाई श्रीरामकी रक्षा करते हुए सदा उनके अनुकूल चलते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो देखनेमें प्रिय लगते और मनको वशमें रखते हैं, जिनका श्रीरामके प्रति पिताके समान और मेरे प्रति माताके समान भाव तथा बर्ताव रहता है, जिन वीर लक्ष्मणको उस समय मेरे हरे जानेकी बात नहीं मालूम हो सकी थी, जो बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें संलग्न रहनेवाले, शोभाशाली, शक्तिमान् तथा कम बोलनेवाले हैं, राजकुमार श्रीरामके प्रिय व्यक्तियोंमें जिनका सबसे ऊँचा स्थान है, जो मेरे श्वशुरके सदृश पराक्रमी हैं तथा श्रीरघुनाथजीका जिन छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति सदा मुझसे भी अधिक प्रेम रहता है, जो पराक्रमी वीर अपने ऊपर डाले हुए कार्यभारको बड़ी योग्यताके साथ वहन करते हैं तथा जिन्हें देखकर श्रीरघुनाथजी अपने मरे हुए पिताको भी भूल गये हैं (अर्थात् जो पिताके समान श्रीरामके पालनमें दत्तचित्त रहते हैं)। उन लक्ष्मणसे भी तुम मेरी ओरसे कुशल पूछना और वानरश्रेष्ठ! मेरे कथनानुसार उनसे ऐसी बातें कहना, जिन्हें सुनकर नित्य कोमल, पवित्र, दक्ष तथा श्रीरामके प्रिय बन्धु लक्ष्मण मेरा दु:ख दूर करनेको तैयार हो जायँ॥ ५४—६२॥

'वानरयूथपते! अधिक क्या कहूँ? जिस तरह यह कार्य सिद्ध हो सके, वही उपाय तुम्हें करना चाहिये। इस विषयमें तुम्हीं प्रमाण हो—इसका सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। तुम्हारे प्रोत्साहन देनेसे ही श्रीरघुनाथजी मेरे उद्धारके लिये प्रयत्नशील हो सकते हैं॥ ६३॥

'तुम मेरे स्वामी शूरवीर भगवान् श्रीरामसे बारंबार कहना—'दशरथनन्दन! मेरे जीवनकी अवधिके लिये जो मास नियत हैं, उनमेंसे जितना शेष है, उतने ही समयतक मैं जीवन धारण करूँगी। उन अवशिष्ट दो महीनोंके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। यह मैं आपसे सत्यकी शपथ खाकर कह रही हूँ॥ ६४ $\frac{1}{2}$ ॥

'वीर! पापाचारी रावणने मुझे कैद कर रखा है। अत: राक्षसियोंद्वारा शठतापूर्वक मुझे बड़ी पीड़ा दी जाती है। जैसे भगवान् विष्णुने इन्द्रकी लक्ष्मीका पातालसे उद्धार किया था, उसी प्रकार आप यहाँसे मेरा उद्धार करें'॥ ६५॥

ऐसा कहकर सीताने कपड़ेमें बँधी हुई सुन्दर

दिव्य चूड़ामणिको खोलकर निकाला और 'इसे श्रीरामचन्द्रजीको दे देना' ऐसा कहकर हनुमान्‌जीके हाथपर रख दिया॥ ६६॥

उस परम उत्तम मणिरत्नको लेकर वीर हनुमान्‌जीने उसे अपनी अङ्गुलीमें डाल लिया। उनकी बाँह अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी उसके छेदमें न आ सकी (इससे जान पड़ता है कि हनुमान्‌जीने अपना विशाल रूप दिखानेके बाद फिर सूक्ष्म रूप धारण कर लिया था)॥ ६७॥

वह मणिरत्न लेकर कपिवर हनुमान्‌ने सीताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके वे विनीतभावसे उनके पास खड़े हो गये॥ ६८॥

सीताजीका दर्शन होनेसे उन्हें महान् हर्ष प्राप्त हुआ था। वे मन-ही-मन भगवान् श्रीराम और शुभ-लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणके पास पहुँच गये थे। उन दोनोंका चिन्तन करने लगे थे॥ ६९॥

राजा जनककी पुत्री सीताने अपने विशेष प्रभावसे जिसे छिपाकर धारण कर रखा था, उस बहुमूल्य मणि-रत्नको लेकर हनुमान्‌जी मन-ही-मन उस पुरुषके समान सुखी एवं प्रसन्न हुए, जो किसी श्रेष्ठ पर्वतके ऊपरी भागसे उठी हुई प्रबल वायुके वेगसे कम्पित होकर पुनः उसके प्रभावसे मुक्त हो गया हो। तदनन्तर उन्होंने वहाँसे लौट जानेकी तैयारी की॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

चूड़ामणि लेकर जाते हुए हनुमान्‌जीसे सीताका श्रीराम आदिको उत्साहित करनेके लिये कहना तथा समुद्र-तरणके विषयमें शङ्कित हुई सीताको वानरोंका पराक्रम बताकर हनुमान्‌जीका आश्वासन देना

मणि देनेके पश्चात् सीता हनुमान्‌जीसे बोलीं—'मेरे इस चिह्नको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भलीभाँति पहचानते हैं॥ १॥

'इस मणिको देखकर वीर श्रीराम निश्चय ही तीन व्यक्तियोंका—मेरी माताका, मेरा तथा महाराज दशरथका एक साथ ही स्मरण करेंगे॥ २॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम पुनः विशेष उत्साहसे प्रेरित हो इस कार्यकी सिद्धिके लिये जो भावी कर्तव्य हो, उसे सोचो॥ ३॥

'वानरशिरोमणे! इस कार्यको निभानेमें तुम्हीं प्रमाण हो—तुमपर ही सारा भार है। तुम इसके लिये कोई ऐसा उपाय सोचो, जो मेरे दुःखका निवारण करनेवाला हो॥ ४॥

'हनूमन्! तुम विशेष प्रयत्न करके मेरा दुःख दूर करनेमें सहायक बनो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर सीताजीकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके वे भयंकर पराक्रमी पवनकुमार विदेहनन्दिनीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर वहाँसे जानेको तैयार हुए॥ ५ $\frac{1}{2}$ ॥

पवनपुत्र वानरवीर हनुमान्‌को वहाँसे लौटनेके लिये उद्यत जान मिथिलेशकुमारीका गला भर आया और वे अश्रुगद्गद वाणीमें बोलीं—॥ ६ $\frac{1}{2}$ ॥

'हनूमन्! तुम श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको एक साथ ही मेरा कुशल-समाचार बताना और उनका कुशल-मङ्गल पूछना। वानरश्रेष्ठ! फिर मन्त्रियोंसहित सुग्रीव तथा अन्य सब बड़े-बूढ़े वानरोंसे धर्मयुक्त कुशल-समाचार कहना और पूछना॥ ७-८॥

'महाबाहु श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार इस दुःखके समुद्रसे मेरा उद्धार करें, वैसा ही यत्न तुम्हें करना चाहिये॥

'हनुमन्! यशस्वी रघुनाथजी जिस प्रकार मेरे जीते-जी यहाँ आकर मुझसे मिलें—मुझे सँभालें वैसी ही बातें तुम उनसे कहो और ऐसा करके वाणीके द्वारा धर्माचरणका फल प्राप्त करो॥ १०॥

'यों तो दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम सदा ही उत्साहसे भरे रहते हैं, तथापि मेरी कही हुई बातें सुनकर मेरी प्राप्तिके लिये उनका पुरुषार्थ और भी बढ़ेगा॥ ११॥

'तुम्हारे मुखसे मेरे संदेशसे युक्त बातें सुनकर ही वीर रघुनाथजी पराक्रम करनेमें विधिवत् अपना मन लगायेंगे'॥ १२॥

सीताकी यह बात सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌ने माथेपर अञ्जलि बाँधकर विनयपूर्वक उनकी बातका उत्तर दिया—॥ १३॥

'देवि! जो युद्धमें सारे शत्रुओंको जीतकर आपके

शोकका निवारण करेंगे, वे ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम श्रेष्ठ वानरों और भालुओंके साथ शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे॥ १४॥

'मैं मनुष्यों, असुरों अथवा देवताओंमें भी किसीको ऐसा नहीं देखता, जो बाणोंकी वर्षा करते हुए भगवान् श्रीरामके सामने ठहर सके॥ १५॥

'भगवान् श्रीराम विशेषतः आपके लिये तो युद्धमें सूर्य, इन्द्र और सूर्यपुत्र यमका भी सामना कर सकते हैं॥ १६॥

'वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको भी जीत लेनेयोग्य हैं। जनकनन्दिनि! आपके लिये युद्ध करते समय श्रीरामचन्द्रजीको निश्चय ही विजय प्राप्त होगी'॥ १७॥

हनुमान्‌जीका कथन युक्तियुक्त, सत्य और सुन्दर था। उसे सुनकर जनकनन्दिनीने उनका बड़ा आदर किया और वे उनसे फिर कुछ कहनेको उद्यत हुईं॥

तदनन्तर वहाँसे प्रस्थित हुए हनुमान्‌जीकी ओर बार-बार देखती हुई सीताने सौहार्दवश स्वामीके प्रति स्नेहसे युक्त सम्मानपूर्ण बात कही—॥ १९॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ एक दिन किसी गुप्त स्थानमें निवास करो। इस तरह एक दिन विश्राम करके कल चले जाना॥ २०॥

'वानरवीर! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीके महान् शोकका थोड़ी देरके लिये निवारण हो जायगा॥ २१॥

'कपिश्रेष्ठ! विश्रामके पश्चात् यहाँसे यात्रा करनेके अनन्तर यदि फिर तुमलोगोंके आनेमें संदेह या विलम्ब हुआ तो मेरे प्राणोंपर भी संकट आ जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

'वानरवीर! मैं दुःख-पर-दुःख उठा रही हूँ। तुम्हारे चले जानेपर तुम्हें न देख पानेका शोक मुझे पुनः दग्ध करता हुआ-सा संताप देता रहेगा॥ २३॥

'वीर वानरेश्वर! तुम्हारे साथी रीछों और वानरोंके विषयमें मेरे सामने अब भी यह महान् संदेह तो विद्यमान ही है कि वे रीछ और वानरोंकी सेनाएँ तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण इस दुष्पार महासागरको कैसे पार करेंगे॥ २४-२५॥

'इस संसारमें समुद्रको लाँघनेकी शक्ति तो केवल तीन प्राणियोंमें ही देखी गयी है। तुममें, गरुड़में अथवा वायुदेवतामें॥ २६॥

'वीर! इस प्रकार इस समुद्रलङ्घनरूपी कार्यको निभाना अत्यन्त कठिन हो गया है। ऐसी दशामें तुम्हें कार्यसिद्धिका कौन-सा उपाय दिखायी देता है? यह बताओ; क्योंकि कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवाले लोगोंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो॥ २७॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पवनकुमार! इसमें संदेह नहीं कि तुम अकेले ही मेरे उद्धाररूपी कार्यको सिद्ध करनेमें पूर्णतः समर्थ हो; परंतु ऐसा करनेसे जो विजयरूप फल प्राप्त होगा, उसका यश केवल तुम्हींको मिलेगा, भगवान् श्रीरामको नहीं॥ २८॥

'यदि रघुनाथजी सारी सेनाके साथ रावणको युद्धमें पराजित करके विजयी हो मुझे साथ ले अपनी पुरीको पधारें तो वह उनके अनुरूप कार्य होगा॥ २९॥

'शत्रुसेनाका संहार करनेवाले श्रीराम यदि अपनी सेनाओंद्वारा लङ्काको पददलित करके मुझे अपने साथ ले चलें तो वही उनके योग्य होगा॥ ३०॥

'अतः तुम ऐसा उपाय करो जिससे समरशूर महात्मा श्रीरामका उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो'॥ ३१॥

देवी सीताकी उपर्युक्त बात अर्थयुक्त, स्नेहयुक्त तथा युक्तियुक्त थी। उनकी उस अवशिष्ट बातको सुनकर हनुमान्‌जीने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३२॥

'देवि! वानर और भालुओंकी सेनाके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव सत्यवादी हैं। वे आपके उद्धारके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं॥ ३३॥

'विदेहनन्दिनि! उनमें राक्षसोंका संहार करनेकी शक्ति है। वे सहस्रों कोटि वानरोंकी सेना साथ लेकर शीघ्र ही लङ्कापर चढ़ाई करेंगे॥ ३४॥

'उनके पास पराक्रमी, धैर्यशाली, महाबली और मानसिक संकल्पके समान बहुत दूरतक उछलकर जानेवाले बहुत-से वानर हैं, जो उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं॥ ३५॥

'जिनकी ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर कहीं भी गति नहीं रुकती। वे बड़े-से-बड़े कार्योंके आ पड़नेपर भी कभी हिम्मत नहीं हारते। उनमें महान् तेज है॥ ३६॥

'उन्होंने अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण होकर वायुपथ (आकाश)-का अनुसरण करते हुए समुद्र और पर्वतोंसहित इस पृथ्वीकी अनेक बार परिक्रमा की है॥ ३७॥

'सुग्रीवकी सेनामें मेरे समान तथा मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी वानर हैं। उनके पास कोई भी ऐसा वानर नहीं है जो बल-पराक्रममें मुझसे कम हो॥ ३८॥

'जब मैं ही यहाँ आ गया, तब अन्य महाबली

वीरोंके आनेमें क्या संदेह है? जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, उन्हें संदेश-वाहक दूत बनाकर नहीं भेजा जाता। साधारण कोटिके लोग ही भेजे जाते हैं॥ ३९ ॥

'अत: देवि! आपको संताप करनेकी आवश्यकता नहीं है। आपका शोक दूर हो जाना चाहिये। वानरयूथपति एक ही छलाँगमें लङ्का पहुँच जायँगे॥ ४० ॥

'उदयकालके सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति शोभा पानेवाले और महान् वानर-समुदायके साथ रहनेवाले वे दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण मेरी पीठपर बैठकर आपके पास आ पहुँचेंगे॥ ४१ ॥

'वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ आकर अपने सायकोंसे लङ्कापुरीका विध्वंस कर डालेंगे॥ ४२ ॥

'वरारोहे! रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरघुनाथजी रावणको उसके सैनिकोंसहित मारकर आपको साथ ले अपनी पुरीको लौटेंगे॥ ४३ ॥

'इसलिये आप धैर्य धारण करें। आपका कल्याण हो। आप समयकी प्रतीक्षा करें। प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी श्रीरघुनाथजी आपको शीघ्र ही दर्शन देंगे॥ ४४ ॥

'पुत्र, मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंसहित राक्षसराज रावणके मारे जानेपर आप श्रीरामचन्द्रजीसे उसी प्रकार मिलेंगी, जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है॥ ४५ ॥

'देवि! मिथिलेशकुमारी! आप शीघ्र ही अपने शोकका अन्त हुआ देखेंगी। आपको यह भी दृष्टिगोचर होगा कि श्रीरामचन्द्रजीने रावणको बलपूर्वक मार डाला है'॥ ४६ ॥

विदेहनन्दिनी सीताको इस प्रकार आश्वासन दे पवनकुमार हनुमान्‌जीने वहाँसे लौटनेका निश्चय करके उनसे फिर कहा—॥ ४७ ॥

'देवि! आप शीघ्र ही देखेंगी कि शुद्ध हृदयवाले शत्रुनाशक श्रीरघुनाथजी तथा लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके द्वारपर आ पहुँचे हैं॥ ४८ ॥

'नख और दाढ़ ही जिनके अस्त्र-शस्त्र हैं तथा जो सिंह और व्याघ्रके समान पराक्रमी एवं गजराजोंके समान विशालकाय हैं, ऐसे वानरोंको भी आप शीघ्र ही एकत्र हुआ देखेंगी॥ ४९ ॥

'आर्ये! पर्वत और मेघके समान विशालकाय मुख्य-मुख्य वानरोंके बहुत-से झुंड लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर गर्जते दिखायी देंगे॥ ५० ॥

'श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थलमें कामदेवके भयंकर बाणोंसे चोट पहुँची है। इसलिये वे सिंहसे पीड़ित हुए गजराजकी भाँति चैन नहीं पाते हैं॥ ५१ ॥

'देवि! आप शोकके कारण रोदन न करें। आपके मनका भय दूर हो जाय। शोभने! जैसे शची देवराज इन्द्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार आप अपने पतिदेवसे मिलेंगी॥ ५२ ॥

'भला, श्रीरामचन्द्रजीसे बढ़कर दूसरा कौन है? तथा लक्ष्मणजीके समान भी कौन हो सकता है? अग्नि और वायुके तुल्य तेजस्वी वे दोनों भाई आपके आश्रय हैं (आपको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये)॥ ५३ ॥

'देवि! राक्षसोंद्वारा सेवित इस अत्यन्त भयंकर देशमें आपको अधिक दिनोंतक नहीं रहना पड़ेगा। आपके प्रियतमके आनेमें विलम्ब नहीं होगा। जबतक मेरी उनसे भेंट न हो, उतने समयतकके विलम्बको आप क्षमा करें'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ सर्ग

सीताका श्रीरामसे कहनेके लिये पुन: संदेश देना तथा हनुमान्‌जीका उन्हें आश्वासन दे उत्तर-दिशाकी ओर जाना

वायुपुत्र महात्मा हनुमान्‌जीका वचन सुनकर देवकन्याके समान तेजस्विनी सीताने अपने हितके विचारसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

'वानरवीर! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है। तुम्हें देखकर हर्षके मारे मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आया है। ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाका पानी पड़नेसे आधी जमी हुई खेतीवाली भूमि हरी-भरी हो जाती है॥ २ ॥

'मुझपर ऐसी दया करो, जिससे मैं शोकके कारण दुर्बल हुए अपने अङ्गोंद्वारा नरश्रेष्ठ श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्पर्श कर सकूँ॥ ३ ॥

'वानरश्रेष्ठ! श्रीरामने क्रोधवश जो कौएकी एक

आँखको फोड़नेवाली सींकका बाण चलाया था, उस प्रसङ्गकी तुम पहचानके रूपमें उन्हें याद दिलाना॥ ४॥

'मेरी ओरसे यह भी कहना कि प्राणनाथ! पहलेकी उस बातको भी याद कीजिये, जब कि मेरे कपोलमें लगे हुए तिलकके मिट जानेपर आपने अपने हाथसे मैन्सिलका तिलक लगाया था॥ ५॥

'महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी प्रियतम! आप बलवान् होकर भी अपहृत होकर राक्षसोंके घरमें निवास करनेवाली मुझ सीताका तिरस्कार कैसे सहन करते हैं?॥ ६॥

'निष्पाप प्राणेश्वर! इस दिव्य चूड़ामणिको मैंने बड़े यत्नसे सुरक्षित रखा था और संकटके समय इसे देखकर मानो मुझे आपका ही दर्शन हो गया हो, इस तरह मैं हर्षका अनुभव करती थी॥ ७॥

'समुद्रके जलसे उत्पन्न हुआ यह कान्तिमान् मणिरत्न आज आपको लौटा रही हूँ। अब शोकसे आतुर होनेके कारण मैं अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकूँगी॥ ८॥

'दुःसह दुःख, हृदयको छेदनेवाली बातें और राक्षसियोंके साथ निवास—यह सब कुछ मैं आपके लिये ही सह रही हूँ॥ ९॥

'राजकुमार! शत्रुसूदन! मैं आपकी प्रतीक्षामें किसी तरह एक मासतक जीवन धारण करूँगी। इसके बाद आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगी॥ १०॥

'यह राक्षसराज रावण बड़ा क्रूर है। मेरे प्रति इसकी दृष्टि भी अच्छी नहीं है। अब यदि आपको भी विलम्ब करते सुन लूँगी तो मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती'॥ ११॥

सीताजीके यह आँसू बहाते कहे हुए करुणाजनक वचन सुनकर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी बोले—॥

'देवि! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरघुनाथजी आपके शोकसे ही सब कामोंसे विमुख हो रहे हैं। श्रीरामके शोकातुर होनेसे लक्ष्मण भी बहुत दुःखी रहते हैं॥ १३॥

'अब किसी तरह आपका दर्शन हो गया, इसलिये रोने-धोने या शोक करनेका अवसर नहीं रहा। भामिनि! आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखोंका अन्त हुआ देखेंगी॥ १४॥

'वे दोनों भाई पुरुषसिंह राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण सर्वत्र प्रशंसित वीर हैं। आपके दर्शनके लिये उत्साहित होकर वे लङ्कापुरीको भस्म कर डालेंगे॥ १५॥

'विशाललोचने! राक्षस रावणको समराङ्गणमें उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर वे दोनों रघुवंशी बन्धु आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे॥ १६॥

'सती-साध्वी देवि! जिसे श्रीरामचन्द्रजी जान सकें और जो उनके हृदयमें प्रेम एवं प्रसन्नताका संचार करनेवाली हो, ऐसी कोई और भी पहचान आपके पास हो तो वह उनके लिये आप मुझे दें'॥ १७॥

तब सीताजीने कहा—'कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हें उत्तम-से-उत्तम पहचान तो दे ही दी। वीर हनुमन्! इसी आभूषणको यत्नपूर्वक देख लेनेपर श्रीरामके लिये तुम्हारी सारी बातें विश्वसनीय हो जायँगी'॥ १८½॥

उस श्रेष्ठ मणिको लेकर वानरशिरोमणि श्रीमान् हनुमान् देवी सीताको सिर झुका प्रणाम करनेके पश्चात् वहाँसे जानेको उद्यत हुए॥ १९½॥

वानरयूथपति महावेगशाली हनुमान्को वहाँसे छलाँग मारनेके लिये उत्साहित हो बढ़ते देख जनकनन्दिनी सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे दुःखी हो अश्रु-गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ २०-२१॥

'हनूमन्! सिंहके समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे तथा मन्त्रियोंसहित सुग्रीव एवं अन्य सब वानरोंसे मेरा कुशल-मङ्गल कहना॥ २२॥

'महाबाहु श्रीरघुनाथजीको तुम्हें इस प्रकार समझाना चाहिये, जिससे वे दुःखके इस महासागरसे मेरा उद्धार करें॥ २३॥

'वानरोंके प्रमुख वीर! मेरा यह दुःसह शोकवेग और इन राक्षसोंकी यह डाँट-डपट भी तुम श्रीरामके समीप जाकर कहना। जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो'॥ २४॥

राजकुमारी सीताके उक्त अभिप्रायको जानकर कपिवर हनुमान्ने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रसन्नचित्त होकर थोड़े-से शेष रहे कार्यका विचार करते हुए वहाँसे उत्तर-दिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके द्वारा प्रमदावन (अशोकवाटिका)-का विध्वंस

सीताजीसे उत्तम वचनोंद्वारा समादर पाकर वानरवीर हनुमान्‌जी जब वहाँसे जाने लगे, तब उस स्थानसे दूसरी जगह हटकर वे इस प्रकार विचार करने लगे—॥ १ ॥

'मैंने कजरारे नेत्रोंवाली सीताजीका दर्शन तो कर लिया, अब मेरे इस कार्यका थोड़ा-सा अंश (शत्रुकी शक्तिका पता लगाना) शेष रह गया है। इसके लिये चार उपाय हैं—साम, दान, भेद और दण्ड। यहाँ साम आदि तीन उपायोंको लाँघकर केवल चौथे उपाय (दण्ड)-का प्रयोग ही उपयोगी दिखायी देता है॥ २ ॥

'राक्षसोंके प्रति सामनीतिका प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं होता। इनके पास धन भी बहुत है, अत: इन्हें दान देनेका भी कोई उपयोग नहीं है। इसके सिवा, ये बलके अभिमानमें चूर रहते हैं, अत: भेदनीतिके द्वारा भी इन्हें वशमें नहीं किया जा सकता। ऐसी दशामें मुझे यहाँ पराक्रम दिखाना ही उचित जान पड़ता है॥ ३ ॥

'इस कार्यकी सिद्धिके लिये पराक्रमके सिवा यहाँ और किसी उपायका अवलम्बन ठीक नहीं जँचता। यदि युद्धमें राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीर मारे जायँ तो ये लोग किसी तरह कुछ नरम पड़ सकते हैं॥ ४॥

'जो पुरुष प्रधान कार्यके सम्पन्न हो जानेपर दूसरे-दूसरे बहुत-से कार्योंको भी सिद्ध कर लेता है और पहलेके कार्योंमें बाधा नहीं आने देता, वही कार्यको सुचारु रूपमें कर सकता है॥ ५ ॥

'छोटे-से-छोटे कर्मकी भी सिद्धिके लिये कोई एक ही साधक हेतु नहीं हुआ करता। जो पुरुष किसी कार्य या प्रयोजनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कला जानता हो, वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है॥

'यदि इसी यात्रामें मैं इस बातको ठीक-ठीक समझ लूँ कि अपने और शत्रुपक्षमें युद्ध होनेपर कौन प्रबल होगा और कौन निर्बल, तत्पश्चात् भविष्यके कार्यका भी निश्चय करके आज सुग्रीवके पास चलूँ तो मेरे द्वारा स्वामीकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन हुआ समझा जायगा॥ ७॥

'परंतु आज मेरा यहाँतक आना सुखद अथवा शुभ परिणामका जनक कैसे होगा? राक्षसोंके साथ हठात् युद्ध करनेका अवसर मुझे कैसे प्राप्त होगा? तथा दशमुख रावण समरमें अपनी सेनाको और मुझे भी तुलनात्मक दृष्टिसे देखकर कैसे यह समझ सकेगा कि कौन सबल है?॥ ८॥

'उस युद्धमें मन्त्री, सेना और सहायकोंसहित रावणका सामना करके मैं उसके हार्दिक अभिप्राय तथा सैनिक-शक्तिका अनायास ही पता लगा लूँगा। उसके बाद यहाँसे जाऊँगा॥ ९ ॥

'इस निर्दयी रावणका यह सुन्दर उपवन नेत्रोंको आनन्द देनेवाला और मनोरम है। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त होनेके कारण यह नन्दनवनके समान उत्तम प्रतीत होता है॥ १० ॥

'जैसे आग सूखे वनको जला डालती है, उसी प्रकार मैं भी आज इस उपवनका विध्वंस कर डालूँगा। इसके भग्न हो जानेपर रावण अवश्य मुझपर क्रोध करेगा॥

'तत्पश्चात् वह राक्षसराज हाथी, घोड़े तथा विशाल रथोंसे युक्त और त्रिशूल, कालायस एवं पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत बड़ी सेना लेकर आयेगा। फिर तो यहाँ महान् संग्राम छिड़ जायगा'॥ १२ ॥

'उस युद्धमें मेरी गति रुक नहीं सकती। मेरा पराक्रम कुण्ठित नहीं हो सकता। मैं प्रचण्ड पराक्रम दिखानेवाले उन राक्षसोंसे भिड़ जाऊँगा और रावणकी भेजी हुई उस सारी सेनाको मौतके घाट उतारकर सुखपूर्वक सुग्रीवके निवासस्थान किष्किन्धापुरीको लौट जाऊँगा'॥ १३ ॥

ऐसा सोचकर भयानक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जी क्रोधसे भर गये और वायुके समान बड़े भारी वेगसे वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे॥

तदनन्तर वीर हनुमान्‌ने मतवाले पक्षियोंके कलरवसे मुखरित और नाना प्रकारके वृक्षों एवं लताओंसे भरे-पूरे उस प्रमदावन (अन्त:पुरके उपवन)-को उजाड़ डाला॥ १५ ॥

वहाँके वृक्षोंको खण्ड-खण्ड कर दिया। जलाशयोंको मथ डाला और पर्वत-शिखरोंको चूर-चूर कर डाला। इससे वह सुन्दर वन कुछ ही क्षणोंमें अभव्य दिखायी देने लगा॥ १६ ॥

नाना प्रकारके पक्षी वहाँ भयके मारे चें-चें करने लगे, जलाशयोंके घाट टूट-फूट गये, तामेके समान वृक्षोंके लाल-लाल पल्लव मुरझा गये तथा वहाँके वृक्ष और लताएँ भी रौंद डाली गयीं। इन सब कारणोंसे वह प्रमदावन

वहाँ ऐसा जान पड़ता था, मानो दावानलसे झुलस गया हो। वहाँकी लताएँ अपने आवरणोंके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेसे घबरायी हुई स्त्रियोंके समान प्रतीत होती थीं॥

लतामण्डप और चित्रशालाएँ उजाड़ हो गयीं। पाले हुए हिंसक जन्तु, मृग तथा तरह-तरहके पक्षी आर्तनाद करने लगे। प्रस्तरनिर्मित प्रासाद तथा अन्य साधारण गृह भी तहस-नहस हो गये। इससे उस महान् प्रमदावनका सारा रूप-सौन्दर्य नष्ट हो गया॥ १९॥

दशमुख रावणकी स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाले तथा अन्त:पुरके क्रीडाविहारके लिये उपयोगी उस विशाल काननकी भूमि, जहाँ चंचल अशोक-लताओंके समूह शोभा पाते थे, कपिवर हनुमान्‌जीके बलप्रयोगसे श्रीहीन होकर शोचनीय लताओंके विस्तारसे युक्त हो गयी (उसकी दुरवस्था देखकर दर्शकके मनमें दु:ख होता था)॥ २०॥

इस प्रकार महामना राजा रावणके मनको विशेष कष्ट पहुँचानेवाला कार्य करके अनेक महाबलियोंके साथ अकेले ही युद्ध करनेका हौसला लेकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी प्रमदावनके फाटकपर आ गये। उस समय वे अपने अद्भुत तेजसे प्रकाशित हो रहे थे॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

राक्षसियोंके मुखसे एक वानरके द्वारा प्रमदावनके विध्वंसका समाचार सुनकर रावणका किंकर नामक राक्षसोंको भेजना और हनुमान्‌जीके द्वारा उन सबका संहार

उधर पक्षियोंके कोलाहल और वृक्षोंके टूटनेकी आवाज सुनकर समस्त लंकानिवासी भयसे घबरा उठे॥ १॥

पशु और पक्षी भयभीत होकर भागने तथा आर्तनाद करने लगे। राक्षसोंके सामने भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे॥ २॥

प्रमदावनमें सोयी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियोंकी निद्रा टूट गयी। उन्होंने उठनेपर उस वनको उजड़ा हुआ देखा। साथ ही उनकी दृष्टि उन वीर महाकपि हनुमान्‌जीपर भी पड़ी॥ ३॥

महाबली, महान् साहसी एवं महाबाहु हनुमान्‌जीने जब उन राक्षसियोंको देखा, तब उन्हें डरानेवाला विशाल रूप धारण कर लिया॥ ४॥

पर्वतके समान बड़े शरीरवाले महाबली वानरको देखकर वे राक्षसियाँ जनकनन्दिनी सीतासे पूछने लगीं— ॥ ५॥

'विशाललोचने! यह कौन है? किसका है? और कहाँसे किसलिये यहाँ आया है? इसने तुम्हारे साथ क्यों बातचीत की है? कजरारे नेत्रप्रान्तवाली सुन्दरि! ये सब बातें हमें बताओ। तुम्हें डरना नहीं चाहिये। इसने तुम्हारे साथ क्या बातें की थीं?'॥ ६-७॥

तब सर्वांगसुन्दरी साध्वी सीताने कहा—'इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंको समझने या पहचाननेका मेरे पास क्या उपाय है?॥ ८॥

'तुम्हीं जानो यह कौन है और क्या करेगा? साँपके पैरोंको साँप ही पहचानता है, इसमें संशय नहीं है॥

'मैं भी इसे देखकर बहुत डरी हुई हूँ। मुझे नहीं मालूम कि यह कौन है? मैं तो इसे इच्छानुसार रूप धारण करके आया हुआ कोई राक्षस ही समझती हूँ'॥ १०॥

विदेहनन्दिनी सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियाँ बड़े वेगसे भागीं। उनमेंसे कुछ तो वहीं खड़ी हो गयीं और कुछ रावणको सूचना देनेके लिये चली गयीं॥ ११॥

रावणके समीप जाकर उन विकराल मुखवाली राक्षसियोंने रावणको यह सूचना दी कि कोई विकटरूपधारी भयंकर वानर प्रमदावनमें आ पहुँचा है॥ १२॥

वे बोलीं—'राजन्! अशोकवाटिकामें एक वानर आया है, जिसका शरीर बड़ा भयंकर है। उसने सीतासे बातचीत की है। वह महापराक्रमी वानर अभी वहीं मौजूद है॥ १३॥

'हमने बहुत पूछा तो भी जनककिशोरी मृगनयनी सीता उस वानरके विषयमें हमें कुछ बताना नहीं चाहती हैं॥ १४॥

'सम्भव है वह इन्द्र या कुबेरका दूत हो अथवा श्रीरामने ही उसे सीताकी खोजके लिये भेजा हो॥ १५॥

'अद्भुत रूप धारण करनेवाले उस वानरने आपके मनोहर प्रमदावनको, जिसमें नाना प्रकारके पशु-पक्षी रहा करते थे, उजाड़ दिया॥ १६॥

'प्रमदावनका कोई भी ऐसा भाग नहीं है, जिसको उसने नष्ट न कर डाला हो। केवल वह स्थान, जहाँ जानकी देवी रहती हैं, उसने नष्ट नहीं किया है॥ १७॥

'जानकीजीकी रक्षाके लिये उसने उस स्थानको बचा दिया है या परिश्रमसे थककर—यह निश्चित रूपसे नहीं जान पड़ता है। अथवा उसे परिश्रम तो क्या हुआ होगा? उसने उस स्थानको बचाकर सीताकी ही रक्षा की है॥ १८॥

'मनोहर पल्लवों और पत्तोंसे भरा हुआ वह विशाल अशोक वृक्ष, जिसके नीचे सीताका निवास है, उसने सुरक्षित रख छोड़ा है॥ १९॥

'जिसने सीतासे वार्तालाप किया और उस वनको उजाड़ डाला, उस उग्र रूपधारी वानरको आप कोई कठोर दण्ड देनेकी आज्ञा प्रदान करें॥ २०॥

'राक्षसराज! जिन्हें आपने अपने हृदयमें स्थान दिया है, उन सीता देवीसे कौन बातें कर सकता है? जिसने अपने प्राणोंका मोह नहीं छोड़ा है, वह उनसे वार्तालाप कैसे कर सकता है?'॥ २१॥

राक्षसियोंकी यह बात सुनकर राक्षसोंका राजा रावण प्रज्वलित चिताकी भाँति क्रोधसे जल उठा। उसके नेत्र रोषसे घूमने लगे॥ २२॥

क्रोधमें भरे हुए रावणकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लगीं, मानो जलते हुए दो दीपकोंसे आगकी लपटोंके साथ तेलकी बूँदें झर रही हों॥ २३॥

उस महातेजस्वी निशाचरने हनुमान्‌जीको कैद करनेके लिये अपने ही समान वीर किंकर नामधारी राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दी॥ २४॥

राजाकी आज्ञा पाकर अस्सी हजार वेगवान् किंकर हाथोंमें कूट और मुद्‌गर लिये उस महलसे बाहर निकले॥ २५॥

उनकी दाढ़ें विशाल, पेट बड़ा और रूप भयानक था। वे सब-के-सब महान् बली, युद्धके अभिलाषी और हनुमान्‌जीको पकड़नेके लिये उत्सुक थे॥ २६॥

प्रमदावनके फाटकपर खड़े हुए उन वानरवीरके पास पहुँचकर वे महान् वेगशाली निशाचर उनपर चारों ओरसे इस प्रकार झपटे, जैसे फतिंगे आगपर टूट पड़े हों॥ २७॥

वे विचित्र गदाओं, सोनेसे मढ़े हुए परिघों और सूर्यके समान प्रज्वलित बाणोंके साथ वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌पर चढ़ आये॥ २८॥

हाथमें प्रास और तोमर लिये मुद्गर, पट्टिश और शूलोंसे सुसज्जित हो वे सहसा हनुमान्‌को चारों ओरसे घेरकर उनके सामने खड़े हो गये॥ २९॥

तब पर्वतके समान विशाल शरीरवाले तेजस्वी श्रीमान् हनुमान् भी अपनी पूँछको पृथ्वीपर पटककर बड़े जोरसे गर्जने लगे॥ ३०॥

पवनपुत्र हनुमान् अत्यन्त विशाल शरीर धारण करके अपनी पूँछ फटकारने और उसके शब्दसे लङ्काको प्रतिध्वनित करने लगे॥ ३१॥

उनकी पूँछ फटकारनेका गम्भीर घोष बहुत दूरतक गूँज उठता था। उससे भयभीत हो पक्षी आकाशसे गिर पड़ते थे। उस समय हनुमान्‌जीने उच्च स्वरसे इस प्रकार घोषणा की—॥ ३२॥

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा'॥

हनुमान्‌जीकी इस गर्जनासे समस्त राक्षसोंपर भय एवं आतङ्क छा गया। उन सबने हनुमान्‌जीको देखा। वे संध्या-कालके ऊँचे मेघके समान लाल एवं विशालकाय दिखायी देते थे॥ ३७॥

हनुमान्‌जीने अपने स्वामीका नाम लेकर स्वयं ही अपना परिचय दे दिया था, इसलिये राक्षसोंको उन्हें पहचाननेमें कोई संदेह नहीं रहा। वे नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े॥ ३८॥

उन शूरवीर राक्षसोंद्वारा सब ओरसे घिर जानेपर महाबली हनुमान्‌ने फाटकपर रखा हुआ एक भयंकर लोहेका परिघ उठा लिया॥ ३९॥

जैसे विनतानन्दन गरुड़ने छटपटाते हुए सर्पको पंजोंमें दाब रखा हो, उसी प्रकार उस परिघको हाथमें लेकर हनुमान्‌जीने उन निशाचरोंका संहार आरम्भ किया॥

वीर पवनकुमार उस परिघको लेकर आकाशमें

विचरने लगे। जैसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने वज्रसे दैत्योंका वध करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने उस परिघसे सामने आये हुए समस्त राक्षसोंको मार डाला॥ ४१ ॥

उन किंकर नामधारी राक्षसोंका वध करके महावीर पवनपुत्र हनुमान्‌जी युद्धकी इच्छासे पुनः उस फाटकपर खड़े हो गये॥ ४२ ॥

तदनन्तर वहाँ उस भयसे मुक्त हुए कुछ राक्षसोंने जाकर रावणको यह समाचार निवेदन किया कि समस्त किंकर नामक राक्षस मार डाले गये॥ ४३ ॥

राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको मारी गयी सुनकर राक्षसराज रावणकी आँखें चढ़ गयीं और उसने प्रहस्तके पुत्रको जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी तथा युद्धमें जिसे परास्त करना नितान्त कठिन था, हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये भेजा॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विध्वंस तथा उसके रक्षकोंका वध

इधर किंकरोंका वध करके हनुमान्‌जी यह सोचने लगे कि 'मैंने वनको तो उजाड़ दिया, परंतु इस चैत्य* प्रासादको नष्ट नहीं किया है॥ १ ॥

'अतः आज इस चैत्यप्रासादका भी विध्वंस किये देता हूँ। मन-ही-मन ऐसा विचारकर पवनपुत्र वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपने बलका प्रदर्शन करते हुए मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति ऊँचे उस चैत्यप्रासादपर उछलकर चढ़ गये'॥ २-३ ॥

उस पर्वताकार प्रासादपर चढ़कर महातेजस्वी वानर-यूथपति हनुमान् तुरंतके उगे हुए दूसरे सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे॥ ४॥

उस ऊँचे प्रासादपर आक्रमण करके दुर्धर्ष वीर हनुमान्‌जी अपनी सहज शोभासे उद्भासित होते हुए पारियात्र पर्वतके समान प्रतीत होने लगे॥ ५ ॥

वे तेजस्वी पवनकुमार विशाल शरीर धारण करके लङ्काको प्रतिध्वनित करते हुए धृष्टतापूर्वक उस प्रासादको तोड़ने-फोड़ने लगे॥ ६ ॥

जोर-जोरसे होनेवाला वह तोड़-फोड़का शब्द कानोंसे टकराकर उन्हें बहरा किये देता था। इससे मूर्च्छित हो वहाँके पक्षी और प्रासादरक्षक भी पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ७॥

उस समय हनुमान्‌जीने पुनः यह घोषणा की—'अस्त्रवेत्ता भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्षों और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा'॥ ८—११ ॥

ऐसा कहकर चैत्यप्रासादपर खड़े हुए विशालकाय वानरयूथपति हनुमान् राक्षसोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए भयानक आवाजमें गर्जना करने लगे॥ १२ ॥

उस भीषण गर्जनासे प्रभावित हो सैकड़ों प्रासादरक्षक नाना प्रकारके प्रास, खड्ग और फरसे लिये वहाँ आये॥ १३ ॥

उन विशालकाय राक्षसोंने उन सब अस्त्रोंका प्रहार करते हुए वहाँ पवनकुमार हनुमान्‌जीको घेर लिया। विचित्र गदाओं, सोनेके पत्र जड़े हुए परिघों और सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंसे सुसज्जित हो वे सब-के-सब उन वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌पर चढ़ आये॥ १४½ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को चारों ओरसे घेरकर खड़ा हुआ राक्षसोंका वह महान् समुदाय गङ्गाजीके जलमें उठे हुए बड़े भारी भँवरके समान जान पड़ता था॥ १५½ ॥

तब राक्षसोंको इस प्रकार आक्रमण करते देख पवनकुमार हनुमान्‌ने कुपित हो बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उन महावीरने उस प्रासादके एक सुवर्णभूषित खंभेको, जिसमें सौ धारें थीं, बड़े वेगसे उखाड़ लिया। उखाड़कर उन महाबली वीरने उसे घुमाना आरम्भ किया। घुमानेपर उससे आग प्रकट हो

* लङ्कामें राक्षसोंके कुलदेवताका जो स्थान था, उसीका नाम 'चैत्यप्रासाद' रखा गया था।

गयी, जिससे वह प्रासाद जलने लगा॥ १६—१८॥

प्रासादको जलते देख वानरयूथपति हनुमान्‌ने वज्रसे असुरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकी भाँति उन सैकड़ों राक्षसोंको उस खंभेसे ही मार डाला और आकाशमें खड़े होकर उन तेजस्वी वीरने इस प्रकार कहा—॥ १९½॥

'राक्षसो! सुग्रीवके वशमें रहनेवाले मेरे-जैसे सहस्रों विशालकाय बलवान् वानरश्रेष्ठ सब ओर भेजे गये हैं॥ २०½॥

'हम तथा दूसरे सभी वानर समूची पृथ्वीपर घूम रहे हैं। किन्हींमें दस हाथियोंका बल है तो किन्हींमें सौ हाथियोंका। कितने ही वानर एक सहस्र हाथियोंके समान बल-विक्रमसे सम्पन्न हैं॥ २१-२२॥

'किन्हींका बल जलके महान् प्रवाहकी भाँति असह्य है। कितने ही वायुके समान बलवान् हैं और कितने ही वानर-यूथपति अपने भीतर असीम बल धारण करते हैं॥ २३॥

'दाँत और नख ही जिनके आयुध हैं ऐसे अनन्त बलशाली सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए वानरराज सुग्रीव यहाँ पधारेंगे, जो तुम सब निशाचरोंका संहार करनेमें समर्थ हैं॥ २४½॥

'अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रह सकेगा, जिसने इक्ष्वाकुवंशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रखा है'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

प्रहस्त-पुत्र जम्बुमालीका वध

राक्षसराज रावणकी आज्ञा पाकर प्रहस्तका बलवान् पुत्र जम्बुमाली, जिसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं, हाथमें धनुष लिये राजमहलसे बाहर निकला॥ १॥

वह लाल रंगके फूलोंकी माला और लाल रंगके ही वस्त्र पहने हुए था। उसके गलेमें हार और कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा दे रहे थे। उसकी आँखें घूम रही थीं। वह विशालकाय, क्रोधी और संग्राममें दुर्जय था॥ २॥

उसका धनुष इन्द्रधनुषके समान विशाल था। उसके द्वारा छोड़े जानेवाले बाण भी बड़े सुन्दर थे। जब वह वेगसे उस धनुषको खींचता, तब उससे वज्र और अशनिके समान गड़गड़ाहट पैदा होती थी॥ ३॥

उस धनुषकी महती टंकार-ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ, विदिशाएँ और आकाश सभी सहसा गूँज उठे॥ ४॥

वह गधे जुते हुए रथपर बैठकर आया था। उसे देखकर वेगशाली हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ५॥

महातेजस्वी जम्बुमालीने महाकपि हनुमान्‌जीको फाटकके छज्जेपर खड़ा देख उन्हें तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया॥ ६॥

उसने अर्द्धचन्द्र नामक बाणसे उनके मुखपर, कर्णी नामक एक बाणसे मस्तकपर और दस नाराचोंसे उन कपीश्वरकी दोनों भुजाओंपर गहरी चोट की॥ ७॥

उसके बाणसे घायल हुआ हनुमान्‌जीका लाल मुँह शरद्-ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे विद्ध हो खिले हुए लाल कमलके समान शोभा पा रहा था॥ ८॥

रक्तसे रञ्जित हुआ उनका वह रक्तवर्णका मुख ऐसी शोभा पा रहा था, मानो आकाशमें लाल रंगके विशाल कमलको सुवर्णमय जलकी बूँदोंसे सींच दिया गया हो—उसपर सोनेका पानी चढ़ा दिया गया हो॥ ९॥

राक्षस जम्बुमालीके बाणोंकी चोट खाकर महाकपि हनुमान्‌जी कुपित हो उठे। उन्होंने अपने पास ही पत्थरकी एक बहुत बड़ी चट्टान पड़ी देखी और उसे वेगसे उठाकर उन बलवान् वीरने बड़े जोरसे उस राक्षसकी ओर फेंका॥ १०½॥

किंतु क्रोधमें भरे उस राक्षसने दस बाण मारकर उस प्रस्तर-शिलाको तोड़-फोड़ डाला। अपने उस कर्मको व्यर्थ हुआ देख प्रचण्ड पराक्रमी और बलशाली हनुमान्‌ने एक विशाल सालका वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ किया॥ ११-१२॥

उन महान् बलशाली वानरवीरको सालका वृक्ष घुमाते देख महाबली जम्बुमालीने उनके ऊपर बहुत-से बाणोंकी वर्षा की॥ १३॥

उसने चार बाणोंसे सालवृक्षको काट गिराया, पाँचसे हनुमान्‌जीकी भुजाओंमें, एक बाणसे उनकी छातीमें और दस बाणोंसे उनके दोनों स्तनोंके मध्यभागमें चोट पहुँचायी॥ १४॥

बाणोंसे हनुमान्‌जीका सारा शरीर भर गया। फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उसी परिघको उठाकर उसे बड़े वेगसे घुमाना आरम्भ किया॥ १५॥

अत्यन्त वेगवान् और उत्कट बलशाली हनुमान्‌ने बड़े वेगसे घुमाकर उस परिघको जम्बुमालीकी विशाल छातीपर दे मारा॥ १६॥

फिर तो न उसके मस्तकका पता लगा और न दोनों भुजाओं तथा घुटनोंका ही। न धनुष बचा न रथ, न वहाँ घोड़े दिखायी दिये और न बाण ही॥ १७॥

उस परिघसे वेगपूर्वक मारा गया महारथी जम्बुमाली चूर-चूर हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८॥

जम्बुमाली तथा महाबली किंकरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें रोषसे रक्तवर्णकी हो गयीं॥ १९॥

महाबली प्रहस्तपुत्र जम्बुमालीके मारे जानेपर निशाचरराज रावणके नेत्र रोषसे लाल होकर घूमने लगे। उसने तुरंत ही अपने मन्त्रीके पुत्रोंको, जो बड़े बलवान् और पराक्रमी थे, युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

मन्त्रीके सात पुत्रोंका वध

राक्षसोंके राजा रावणकी आज्ञा पाकर मन्त्रीके सात बेटे,जो अग्निके समान तेजस्वी थे, उस राजमहलसे बाहर निकले॥ १॥

उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। वे अत्यन्त बलवान्, धनुर्धर, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा परस्पर होड़ लगाकर शत्रुपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले थे॥ २॥

उनके घोड़े जुते हुए विशाल रथ सोनेकी जालीसे ढके हुए थे। उनपर ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं और उनके पहियोंके चलनेसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान ध्वनि होती थी। ऐसे रथोंपर सवार हो वे अमित पराक्रमी मन्त्रिकुमार तपाये हुए सोनेसे चित्रित अपने धनुषोंकी टङ्कार करते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ आगे बढ़े। उस समय वे सब-के-सब विद्युत्सहित मेघके समान शोभा पाते थे॥ ३-४॥

तब, पहले जो किंकर नामक राक्षस मारे गये थे, उनकी मृत्युका समाचार पाकर इन सबकी माताएँ अमङ्गलकी आशङ्कासे भाई-बन्धु और सुहृदोंसहित शोकसे घबरा उठीं॥ ५॥

तपाये हुए सोनेके आभूषणोंसे विभूषित वे सातों वीर परस्पर होड़-सी लगाकर फाटकपर खड़े हुए हनुमान्‌जीपर टूट पड़े॥ ६॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हुए विचरते हैं, उसी प्रकार वे राक्षसरूपी बादल बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ विचरण करने लगे। रथोंकी घर्घराहट ही उनकी गर्जना थी॥ ७॥

तदनन्तर राक्षसोंद्वारा की गयी उस बाण-वर्षासे हनुमान्‌जी उसी तरह आच्छादित हो गये, जैसे कोई गिरिराज जलकी वर्षासे ढक गया हो॥ ८॥

उस समय निर्मल आकाशमें शीघ्रतापूर्वक विचरते हुए कपिवर हनुमान् उन राक्षसवीरोंके बाणों तथा रथके वेगोंको व्यर्थ करते हुए अपने-आपको बचाने लगे॥ ९॥

जैसे व्योममण्डलमें शक्तिशाली वायुदेव इन्द्रधनुषयुक्त मेघोंके साथ क्रीडा करते हैं, उसी प्रकार वीर पवनकुमार उन धनुर्धर वीरोंके साथ खेल-सा करते हुए आकाशमें अद्भुत शोभा पा रहे थे॥ १०॥

पराक्रमी हनुमान्‌ने राक्षसोंकी उस विशाल वाहिनीको भयभीत करते हुए घोर गर्जना की और उन राक्षसोंपर बड़े वेगसे आक्रमण किया॥ ११॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले उन वानरवीरने किन्हींको थप्पड़से ही मार गिराया, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला, किन्हींका घूँसोंसे काम तमाम किया और किन्हींको नखोंसे फाड़ डाला॥ १२॥

कुछ लोगोंको छातीसे दबाकर उनका कचूमर निकाल दिया और किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर मसल डाला। कितने ही निशाचर उनकी गर्जनासे ही प्राणहीन होकर वहीं पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १३॥

इस प्रकार जब मन्त्रीके सारे पुत्र मारे जाकर धराशायी हो गये, तब उनकी बची-खुची सारी सेना भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गयी॥ १४॥

उस समय हाथी वेदनाके मारे बुरी तरहसे चिग्घाड़ रहे थे, घोड़े धरतीपर मरे पड़े थे तथा जिनके बैठक, ध्वज और छत्र आदि खण्डित हो गये थे, ऐसे टूटे हुए

रथोंसे समूची रणभूमि पट गयी थी॥ १५॥

मार्गमें खूनकी नदियाँ बहती दिखायी दीं तथा लङ्कापुरी राक्षसोंके विविध शब्दोंके कारण मानो उस समय विकृत स्वरसे चीत्कार कर रही थी॥ १६॥

प्रचण्ड पराक्रमी और महाबली वानरवीर हनुमान्जी उन बढ़े-चढ़े राक्षसोंको मौतके घाट उतारकर दूसरे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे फिर उसी फाटकपर जा पहुँचे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

रावणके पाँच सेनापतियोंका वध

महात्मा हनुमान्जीके द्वारा मन्त्रीके पुत्र भी मारे गये—यह जानकर रावणने भयभीत होनेपर भी अपने आकारको प्रयत्नपूर्वक छिपाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले आगेके कर्तव्यका निश्चय किया॥ १॥

दशग्रीवने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच सेनापतियोंको, जो बड़े वीर, नीतिनिपुण, धैर्यवान् तथा युद्धमें वायुके समान वेगशाली थे, हनुमान्जीको पकड़नेके लिये आज्ञा दी॥ २-३॥

उसने कहा—'सेनाके अग्रगामी वीरो! तुमलोग घोड़े, रथ और हाथियोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उस वानरको बलपूर्वक पकड़कर उसे अच्छी तरह शिक्षा दो॥ ४॥

'उस वनचारी वानरके पास पहुँचकर तुम सब लोगोंको सावधान और अत्यन्त प्रयत्नशील हो जाना चाहिये तथा काम वही करना चाहिये, जो देश और कालके अनुरूप हो॥ ५॥

'जब मैं उसके अलौकिक कर्मको देखते हुए उसके स्वरूपपर विचार करता हूँ, तब वह मुझे वानर नहीं जान पड़ता है। वह सर्वथा कोई महान् प्राणी है, जो महान् बलसे सम्पन्न है॥ ६॥

'यह वानर है' ऐसा समझकर मेरा मन उसकी ओरसे शुद्ध (विश्वस्त) नहीं हो रहा है। यह जैसा प्रसङ्ग उपस्थित है या जैसी बातें चल रही हैं, उन्हें देखते हुए मैं उसे वानर नहीं मानता हूँ॥ ७॥

'सम्भव है इन्द्रने हमलोगोंका विनाश करनेके लिये अपने तपोबलसे इसकी सृष्टि की हो। मेरी आज्ञासे तुम सब लोगोंने मेरे साथ रहकर नागोंसहित यक्षों, गन्धर्वों, देवताओं, असुरों और महर्षियोंको भी अनेक बार पराजित किया है; अतः वे अवश्य हमारा कुछ अनिष्ट करना चाहेंगे॥ ८-९॥

'अतः यह उन्हींका रचा हुआ प्राणी है, इसमें संदेह नहीं। तुमलोग उसे हठपूर्वक पकड़ ले आओ। मेरी सेनाके अग्रगामी वीरो! तुम हाथी, घोड़े और रथोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उस वानरको अच्छी तरह शिक्षा दो॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

'वानर समझकर तुम्हें उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह धीर और पराक्रमी है। मैंने पहले बड़े-बड़े पराक्रमी वानर और भालू देखे हैं॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

'जिनके नाम इस प्रकार हैं—वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानर॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

'किंतु उनका वेग ऐसा भयंकर नहीं है और न उनमें ऐसा तेज, पराक्रम, बुद्धि, बल, उत्साह तथा रूप धारण करनेकी शक्ति ही है॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

'वानरके रूपमें यह कोई बड़ा शक्तिशाली जीव प्रकट हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। अतः तुमलोग महान् प्रयत्न करके उसे कैद करो॥ १४ $\frac{1}{2}$ ॥

'भले ही इन्द्रसहित देवता, असुर, मनुष्य एवं तीनों लोक उतर आयें, वे रणभूमिमें तुम्हारे सामने ठहर नहीं सकते॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

'तथापि समराङ्गणमें विजयकी इच्छा रखनेवाले नीतिज्ञ पुरुषको यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि युद्धमें सफलता अनिश्चित होती है'॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

स्वामीकी आज्ञा स्वीकार करके वे सब-के-सब अग्निके समान तेजस्वी, महान् वेगशाली और अत्यन्त बलवान् राक्षस तेज चलनेवाले घोड़ों, मतवाले हाथियों तथा विशाल रथोंपर बैठकर युद्धके लिये चल दिये। वे सब प्रकारके तीखे शस्त्रों और सेनाओंसे सम्पन्न थे॥ १७-१८ $\frac{1}{2}$ ॥

आगे जानेपर उन वीरोंने देखा, महाकपि हनुमान्जी फाटकपर खड़े हैं और अपनी तेजोमयी किरणोंसे मण्डित हो उदयकालके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहे

हैं। उनकी शक्ति, बल, वेग, बुद्धि, उत्साह, शरीर और भुजाएँ सभी महान् थीं॥ १९-२०$\frac{1}{2}$ ॥

उन्हें देखते ही वे सब राक्षस, जो सभी दिशाओंमें खड़े थे, भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े॥ २१$\frac{1}{2}$ ॥

निकट पहुँचनेपर पहले दुर्धरने हनुमान्‌जीके मस्तकपर लोहेके बने हुए पाँच बाण मारे। वे सभी बाण मर्मभेदी और पैनी धारवाले थे। उनके अग्रभागपर सोनेका पानी दिया गया था। जिससे वे पीतमुख दिखायी देते थे। वे पाँचों बाण उनके सिरपर प्रफुल्लकमलदलके समान शोभा पा रहे थे॥ २२ ॥

मस्तकमें उन पाँच बाणोंसे गहरी चोट खाकर वानरवीर हनुमान्‌जी अपनी भीषण गर्जनासे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए आकाशमें ऊपरकी ओर उछल पड़े॥ २३ ॥

तब रथमें बैठे हुए महाबली वीर दुर्धरने धनुष चढ़ाये कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया॥

आकाशमें खड़े हुए उन वानरवीरने बाणोंकी वर्षा करते हुए दुर्धरको अपने हुंकारमात्रसे उसी प्रकार रोक दिया, जैसे वर्षा-ऋतुके अन्तमें वृष्टि करनेवाले बादलको वायु रोक देती है॥ २५ ॥

जब दुर्धर अपने बाणोंसे अधिक पीड़ा देने लगा, तब वे परम पराक्रमी पवनकुमार पुनः विकट गर्जना करने और अपने शरीरको बढ़ाने लगे॥ २६ ॥

तत्पश्चात् वे महावेगशाली वानरवीर बहुत दूरतक ऊँचे उछलकर सहसा दुर्धरके रथपर कूद पड़े, मानो किसी पर्वतपर बिजलीका समूह गिर पड़ा हो॥ २७ ॥

उनके भारसे रथके आठों घोड़ोंका कचूमर निकल गया, धुरी और कूबर टूट गये तथा दुर्धर प्राणहीन हो उस रथको छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २८ ॥

दुर्धरको धराशायी हुआ देख शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्धर्ष वीर विरूपाक्ष और यूपाक्षको बड़ा क्रोध हुआ। वे दोनों आकाशमें उछले॥ २९ ॥

उन दोनोंने सहसा उछलकर निर्मल आकाशमें खड़े हुए महाबाहु कपिवर हनुमान्‌जीकी छातीमें मुद्‌गरोंसे प्रहार किया॥ ३० ॥

उन दोनों वेगवान् वीरोंके वेगको विफल करके महाबली हनुमान्‌जी वेगशाली गरुड़के समान पुनः पृथ्वीपर कूद पड़े॥ ३१ ॥

वहाँ वानरशिरोमणि पवनकुमारने एक साल-वृक्षके पास जाकर उसे उखाड़ लिया और उसीके द्वारा उन दोनों राक्षसवीरोंको मार डाला॥ ३२ ॥

उन वेगशाली वानरवीरके द्वारा उन तीनों राक्षसोंको मारा गया देख महान् वेगसे युक्त बलवान् वीर प्रघस हँसता हुआ उनके पास आया। दूसरी ओरसे पराक्रमी वीर भासकर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर शूल हाथमें लिये वहाँ आ पहुँचा। वे दोनों यशस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके निकट एक ही ओर खड़े हो गये॥ ३३-३४ ॥

प्रघसने तेज धारवाले पट्टिशसे तथा राक्षस भासकर्णने शूलसे कपिकुञ्जर हनुमान्‌जीपर प्रहार किया॥ ३५ ॥

उन दोनोंके प्रहारोंसे हनुमान्‌जीके शरीरमें कई जगह घाव हो गये और उनके शरीरकी रोमावली रक्तसे रँग गयी। उस समय क्रोधमें भरे हुए वानरवीर हनुमान् प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे॥ ३६ ॥

तब मृग, सर्प और वृक्षोंसहित एक पर्वत-शिखरको उखाड़कर कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान्‌ने उन दोनों राक्षसोंपर दे मारा। पर्वत-शिखरके आघातसे वे दोनों पिस गये और उनके शरीर तिलके समान खण्ड-खण्ड हो गये॥ ३७ ॥

इस प्रकार उन पाँचों सेनापतियोंके नष्ट हो जानेपर हनुमान्‌जीने उनकी बची-खुची सेनाका भी संहार आरम्भ किया॥ ३८ ॥

जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका विनाश करते हैं, उसी प्रकार उन वानरवीरने घोड़ोंसे घोड़ोंका, हाथियोंसे हाथियोंका, योद्धाओंसे योद्धाओंका और रथोंसे रथोंका संहार कर डाला॥ ३९ ॥

मरे हुए हाथियों और तीव्रगामी घोड़ोंसे, टूटी हुई धुरीवाले विशाल रथोंसे तथा मारे गये राक्षसोंकी लाशोंसे वहाँकी सारी भूमि चारों ओरसे इस तरह पट गयी थी कि आने-जानेका रास्ता बंद हो गया था॥ ४० ॥

इस प्रकार सेना और वाहनोंसहित उन पाँचों वीर सेनापतियोंको रणभूमिमें मौतके घाट उतारकर महावीर वानर हनुमान्‌जी पुनः युद्धके लिये अवसर पाकर पहलेकी ही भाँति फाटकपर जाकर खड़े हो गये। उस समय वे प्रजाका संहार करनेके लिये उद्यत हुए कालके समान जान पड़ते थे॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

रावणपुत्र अक्षकुमारका पराक्रम और वध

हनुमान्‌जीके द्वारा अपने पाँच सेनापतियोंको सेवकों और वाहनोंसहित मारा गया सुनकर राजा रावणने अपने सामने बैठे हुए पुत्र अक्षकुमारकी ओर देखा, जो युद्धमें उद्धत और उसके लिये उत्कण्ठित रहनेवाला था॥ १॥

पिताके दृष्टिपातमात्रसे प्रेरित हो वह प्रतापी वीर युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठा। उसका धनुष सुवर्णजटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था। जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञशालामें हविष्यकी आहुति देनेपर अग्निदेव प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार वह भी सभामें उठकर खड़ा हो गया॥ २॥

वह महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि अक्ष प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् तथा तपाये हुए सुवर्णके जालसे आच्छादित रथपर आरूढ़ हो उन महाकपि हनुमान्‌जीके पास चल दिया॥ ३॥

वह रथ उसे बड़ी भारी तपस्याओंके संग्रहसे प्राप्त हुआ था। उसमें तपे हुए जाम्बूनद (सुवर्ण)-की जाली जड़ी हुई थी। पताका फहरा रही थी। उसका ध्वजदण्ड रत्नोंसे विभूषित था। उसमें मनके समान वेगवाले आठ घोड़े अच्छी तरह जुते हुए थे। देवता और असुर कोई भी उस रथको नष्ट नहीं कर सकते थे। उसकी गति कहीं रुकती नहीं थी। वह बिजलीके समान प्रकाशित होता और आकाशमें भी चलता था। उस रथको सब सामग्रियोंसे सुसज्जित किया गया था। उसमें तरकस रखे गये थे। आठ तलवारोंके बँधे रहनेसे वह और भी सुन्दर दिखायी देता था। उसमें यथास्थान शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र क्रमसे रखे गये थे। चन्द्रमा और सूर्यके समान दीप्तिमान् तथा सोनेकी रस्सीसे युक्त युद्धके समस्त उपकरणोंसे सुशोभित उस सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर बैठकर देवताओंके तुल्य पराक्रमी अक्षकुमार राजमहलसे बाहर निकला॥ ४—६॥

घोड़े, हाथी और बड़े-बड़े रथोंकी भयंकर आवाजसे पर्वतोंसहित पृथ्वी तथा आकाशको गुँजाता हुआ वह बड़ी भारी सेना साथ लेकर वाटिकाके द्वारपर बैठे हुए शक्तिशाली वीर वानर हनुमान्‌जीके पास जा पहुँचा॥ ७॥

सिंहके समान भयंकर नेत्रवाले अक्षने वहाँ पहुँचकर लोकसंहारके समय प्रज्वलित हुई प्रलयाग्निके समान स्थित और विस्मय एवं सम्भ्रममें पड़े हुए हनुमान्‌जीको अत्यन्त गर्वभरी दृष्टिसे देखा॥ ८॥

उन महात्मा कपिश्रेष्ठके वेग तथा शत्रुओंके प्रति उनके पराक्रमका और अपने बलका भी विचार करके वह महाबली रावणकुमार प्रलयकालके सूर्यकी भाँति बढ़ने लगा॥ ९॥

हनुमान्‌जीके पराक्रमपर दृष्टिपात करके उसे क्रोध आ गया। अतः स्थिरतापूर्वक स्थित हो उसने एकाग्रचित्तसे तीन तीखे बाणोंद्वारा रणदुर्जय हनुमान्‌जीको युद्धके लिये प्रेरित किया॥ १०॥

तदनन्तर हाथमें धनुष और बाण लिये अक्षने यह जानकर कि 'ये खेद या थकावटको जीत चुके हैं, शत्रुओंको पराजित करनेकी योग्यता रखते हैं और युद्धके लिये इनके मनका उत्साह बढ़ा हुआ है; इसीलिये ये गर्वीले दिखायी देते हैं, उनकी ओर दृष्टिपात किया॥ ११॥

गलेमें सुवर्णके निष्क (पदक), बाँहोंमें बाजूबंद और कानोंमें मनोहर कुण्डल धारण किये वह शीघ्रपराक्रमी रावणकुमार हनुमान्‌जीके पास आया। उस समय उन दोनों वीरोंमें जो टक्कर हुई, उसकी कहीं तुलना नहीं थी। उनका युद्ध देवताओं और असुरोंके मनमें भी घबराहट पैदा कर देनेवाला था॥ १२॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् और अक्षकुमारका वह संग्राम देखकर भूतलके सारे प्राणी चीख उठे। सूर्यका ताप कम हो गया। वायुकी गति रुक गयी। पर्वत हिलने लगे। आकाशमें भयंकर शब्द होने लगा और समुद्रमें तूफान आ गया॥ १३॥

अक्षकुमार निशाना साधने, बाणको धनुषपर चढ़ाने और उसे लक्ष्यकी ओर छोड़नेमें बड़ा प्रवीण था। उस वीरने विषधर सर्पोंके समान भयंकर, सुवर्णमय पंखोंसे युक्त, सुन्दर अग्रभागवाले तथा पत्रयुक्त तीन बाण हनुमान्‌जीके मस्तकमें मारे॥ १४॥

उन तीनोंकी चोट हनुमान्‌जीके माथेमें एक साथ ही लगी, इससे खूनकी धारा गिरने लगी। वे उस रक्तसे नहा उठे और उनकी आँखें घूमने लगीं। उस समय बाणरूपी किरणोंसे युक्त हो वे तुरंतके उगे हुए अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पाने लगे॥ १५॥

तदनन्तर वानरराजके श्रेष्ठ मन्त्री हनुमान्‌जी राक्षसराज

रावणके राजकुमार अक्षको अति उत्तम विचित्र आयुध एवं अद्‌भुत धनुष धारण किये देख हर्ष और उत्साहसे भर गये और युद्धके लिये उत्कण्ठित हो अपने शरीरको बढ़ाने लगे॥ १६॥

हनुमान्‌जीका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था। वे बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे, अतः मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवके समान वे अपनी नेत्राग्निमयी किरणोंसे उस समय सेना और सवारियोंसहित राजकुमार अक्षको दग्ध-सा करने लगे॥ १७॥

तब जैसे बादल श्रेष्ठ पर्वतपर जल बरसाता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें अपने शरासनरूपी इन्द्र-धनुषसे युक्त वह राक्षसरूपी मेघ बाणवर्षी होकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌रूपी पर्वतपर बड़े वेगसे बाणोंकी वृष्टि करने लगा॥ १८॥

रणभूमिमें अक्षकुमारका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड दिखायी देता था। उसके तेज, बल, पराक्रम और बाण सभी बढ़े-चढ़े थे। युद्धस्थलमें उसकी ओर दृष्टिपात करके हनुमान्‌जीने हर्ष और उत्साहमें भरकर मेघके समान भयानक गर्जना की॥ १९॥

समराङ्गणमें बलके घमंडमें भरे हुए अक्षकुमारको उनकी गर्जना सुनकर बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें रक्तके समान लाल हो गयीं। वह अपने बालोचित अज्ञानके कारण अनुपम पराक्रमी हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। ठीक उसी तरह, जैसे कोई हाथी तिनकोंसे ढके हुए विशाल कूपकी ओर अग्रसर होता है॥ २०॥

उसके बलपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे विद्ध होकर हनुमान्‌जीने तुरंत ही उत्साहपूर्वक आकाशको विदीर्ण करते हुए-से मेघके समान गम्भीर स्वरसे भीषण गर्जना की। उस समय दोनों भुजाओं और जाँघोंको चलानेके कारण वे बड़े भयंकर दिखायी देते थे॥ २१॥

उन्हें आकाशमें उछलते देख रथियोंमें श्रेष्ठ और रथपर चढ़े हुए उस बलवान्, प्रतापी एवं राक्षसशिरोमणि वीरने बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मेघ किसी पर्वतपर ओले और पत्थरोंकी वर्षा कर रहा हो॥ २२॥

उस युद्धस्थलमें मनके समान वेगवाले वीर हनुमान्‌जी भयंकर पराक्रम प्रकट करने लगे। वे अक्षकुमारके उन बाणोंको व्यर्थ करते हुए वायुके पथपर विचरते और दो बाणोंके बीचसे हवाकी भाँति निकल जाते थे॥ २३॥

अक्षकुमार हाथमें धनुष लिये युद्धके लिये उन्मुख हो नाना प्रकारके उत्तम बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित किये देता था। पवनकुमार हनुमान्‌ने उसे बड़े आदरकी दृष्टिसे देखा और वे मन-ही-मन कुछ सोचने लगे॥ २४॥

इतनेहीमें महामना वीर अक्षकुमारने अपने बाणोंद्वारा कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग—छातीमें गहरा आघात किया। वे महाबाहु वानरवीर समयोचित कर्तव्यविशेषको ठीक-ठीक जानते थे; अतः वे रणक्षेत्रमें उस चोटको सहकर सिंहनाद करते हुए उसके पराक्रमके विषयमें इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ २५॥

'यह महाबली अक्षकुमार बालसूर्यके समान तेजस्वी है और बालक होकर भी बड़ोंके समान महान् कर्म कर रहा है। युद्धसम्बन्धी समस्त कर्मोंमें कुशल होनेके कारण अद्‌भुत शोभा पानेवाले इस वीरको यहाँ मार डालनेकी मेरी इच्छा नहीं हो रही है॥ २६॥

'यह महामनस्वी राक्षसकुमार बल-पराक्रमकी दृष्टिसे महान् है। युद्धमें सावधान एवं एकाग्रचित्त है तथा शत्रुके वेगको सहन करनेमें अत्यन्त समर्थ है। अपने कर्म और गुणोंकी उत्कृष्टताके कारण यह नागों, यक्षों और मुनियोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २७॥

'पराक्रम और उत्साहसे इसका मन बढ़ा हुआ है। यह युद्धके मुहानेपर मेरे सामने खड़ा हो मुझे ही देख रहा है। शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले इस वीरका पराक्रम देवताओं और असुरोंके हृदयको भी कम्पित कर सकता है॥ २८॥

'किंतु यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह मुझे परास्त किये बिना नहीं रहेगा; क्योंकि संग्राममें इसका पराक्रम बढ़ता जा रहा है। अतः अब इसे मार डालना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है। बढ़ती हुई आगकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है'॥ २९॥

इस प्रकार शत्रुके वेगका विचार कर उसके प्रतीकारके लिये अपने कर्तव्यका निश्चय करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हनुमान्‌जीने उस समय अपना वेग बढ़ाया और उस शत्रुको मार डालनेका विचार किया॥ ३०॥

तत्पश्चात् आकाशमें विचरते हुए वीर वानर पवनकुमारने थप्पड़ोंकी मारसे अक्षकुमारके उन आठों उत्तम और विशाल घोड़ोंको, जो भार सहन करनेमें

समर्थ और नाना प्रकारके पैंतरे बदलनेकी कलामें सुशिक्षित थे, यमलोक पहुँचा दिया॥ ३१॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्‌जीने अक्षकुमारके उस विशाल रथको भी अभिभूत कर दिया, उन्होंने हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसके हरसेको उलट दिया। घोड़े तो पहले ही मर चुके थे, अतः वह महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३२॥

उस समय महारथी अक्षकुमार धनुष और तलवार ले रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे कोई उग्रशक्तिसे सम्पन्न महर्षि योगमार्गसे शरीर त्यागकर स्वर्गलोककी ओर चला जा रहा हो॥ ३३॥

तब वायुके समान वेग और पराक्रमवाले कपिवर हनुमान्‌जीने पक्षिराज गरुड़, वायु तथा सिद्धोंसे सेवित व्योममार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पास पहुँचकर क्रमशः उसके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये॥ ३४॥

फिर तो अपने पिता वायु देवताके तुल्य पराक्रमी वानर-शिरोमणि हनुमान्‌ने जिस प्रकार गरुड़ बड़े-बड़े सर्पोंको घुमाते हैं, उसी तरह उसे हजारों बार घुमाकर बड़े वेगसे उस युद्ध-भूमिमें पटक दिया॥ ३५॥

नीचे गिरते ही उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े-टुकड़े हो गये, खूनकी धारा बहने लगी, शरीरकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं, अस्थियोंके जोड़ टूट गये और नस-नाड़ियोंके बन्धन शिथिल हो गये। इस तरह वह राक्षस पवनकुमार हनुमान्‌जीके हाथसे मारा गया॥ ३६॥

अक्षकुमारको पृथ्वीपर पटककर महाकपि हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बड़ा भय उत्पन्न कर दिया। उसके मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों, यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने वहाँ एकत्र होकर बड़े विस्मयके साथ हनुमान्‌जीका दर्शन किया॥ ३७॥

युद्धमें इन्द्रपुत्र जयन्तके समान पराक्रमी और लाल-लाल आँखोंवाले अक्षकुमारका काम तमाम करके वीरवर हनुमान्‌जी प्रजाके संहारके लिये उद्यत हुए कालकी भाँति पुनः युद्धकी प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाके उसी द्वारपर जा पहुँचे॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और हनुमान्‌जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बँधकर हनुमान्‌जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

तदनन्तर हनुमान्‌जीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर राक्षसोंका स्वामी महाकाय रावण अपने मनको किसी तरह सुस्थिर करके रोषसे जल उठा और देवताओंके तुल्य पराक्रमी कुमार इन्द्रजित् (मेघनाद)-को इस प्रकार आज्ञा दी—॥ १॥

'बेटा! तुमने ब्रह्माजीकी आराधना करके अनेक प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है। तुम अस्त्रवेत्ता, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा देवताओं और असुरोंको भी शोक प्रदान करनेवाले हो। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है॥ २॥

'इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं॥ ३॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो युद्धसे थकता न हो। तुम अपने बाहुबलसे तो सुरक्षित हो ही, तपस्याके बलसे भी पूर्णतः निरापद हो। देश-कालका ज्ञान रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धिकी दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो॥ ४॥

'युद्धमें तुम्हारे वीरोचित कर्मोंके द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है। शास्त्रानुकूल बुद्धिपूर्वक राजकार्यका विचार करते समय तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। तुम्हारा कोई भी विचार ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो। त्रिलोकीमें एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र-बलको न जानता हो॥ ५॥

'तुम्हारा तपोबल, युद्धविषयक पराक्रम और अस्त्र-बल मेरे ही समान है। युद्धस्थलमें तुमको पाकर मेरा मन कभी खेद या विषादको नहीं प्राप्त होता; क्योंकि इसे यह निश्चित विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी॥ ६॥

'देखो, किंकर नामवाले समस्त राक्षस मार डाले गये। जम्बुमाली नामका राक्षस भी जीवित न रह सका, मन्त्रीके सातों वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी कालके गालमें चले गये॥ ७॥

'उनके साथ ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित मेरी बहुत-सी बल-वीर्यसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयीं और तुम्हारा प्रिय बन्धु कुमार अक्ष भी मार डाला गया। शत्रुसूदन! मुझमें जो तीनों लोकोंपर विजय पानेकी शक्ति है, वह तुम्हींमें है। पहले जो लोग मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इसलिये तुम्हारी विजय निश्चित है)॥ ८॥

'इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार और उस वानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो; फिर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करो॥ ९॥

'शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर! तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं। तुम अपने और पराये बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे युद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश रुक जाय॥ १०॥

'वीरवर! तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये; क्योंकि वे सेनाएँ समूह-की-समूह या तो भाग जाती हैं या मारी जाती हैं। इसी तरह अधिक तीक्ष्णता और कठोरतासे युक्त वज्र लेकर भी जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी व्यर्थ सिद्ध हो चुका है)। उस वायुपुत्र हनुमान्‌की गति अथवा शक्तिका कोई माप-तौल या सीमा नहीं है। वह अग्नि-तुल्य तेजस्वी वानर किसी साधनविशेषसे नहीं मारा जा सकता॥ ११॥

'इन सब बातोंका अच्छी तरह विचार करके प्रतिपक्षीमें अपने समान ही पराक्रम समझकर तुम अपने चित्तको एकाग्र कर लो—सावधान हो जाओ। अपने इस धनुषके दिव्य प्रभावको याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम करके दिखाओ, जो खाली न जाय॥

'उत्तम बुद्धिवाले वीर! मैं तुम्हें जो ऐसे संकटमें भेज रहा हूँ, यह यद्यपि (स्नेहकी दृष्टिसे) उचित नहीं है, तथापि मेरा यह विचार राजनीति और क्षत्रिय-धर्मके अनुकूल है॥ १३॥

'शत्रुदमन! वीर पुरुषको संग्राममें नाना प्रकारके शस्त्रोंकी कुशलता अवश्य प्राप्त करनी चाहिये, साथ ही युद्धमें विजय पानेकी भी अभिलाषा रखनी चाहिये'॥ १४॥

अपने पिता राक्षसराज रावणके इस वचनको सुनकर देवताओंके समान प्रभावशाली वीर मेघनादने युद्धके लिये निश्चित विचार करके जल्दीसे अपने स्वामी रावणकी परिक्रमा की॥ १५॥

तत्पश्चात् सभामें बैठे हुए अपने दलके प्रिय राक्षसोंद्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हो इन्द्रजित् विकट युद्धके लिये मनमें उत्साह भरकर संग्रामभूमिकी ओर जानेको उद्यत हुआ॥ १६॥

उस समय प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाला राक्षसराज रावणका पुत्र महातेजस्वी श्रीमान् इन्द्रजित् पर्वके दिन उमड़े हुए समुद्रके समान विशेष हर्ष और उत्साहसे पूर्ण हो राजमहलसे बाहर निकला॥

जिसका वेग शत्रुओंके लिये असह्य था, वह इन्द्रके समान पराक्रमी मेघनाद पक्षिराज गरुड़के समान तीव्र गति तथा तीखे दाढ़ोंवाले चार सिंहोंसे जुते हुए उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ॥ १८॥

अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, अस्त्रवेत्ताओंमें अग्रगण्य और धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ वह रथी वीर रथके द्वारा शीघ्र उस स्थानपर गया, जहाँ हनुमान्‌जी उसकी प्रतीक्षामें बैठे थे॥ १९॥

उसके रथकी घर्घराहट और धनुषकी प्रत्यञ्चाका गम्भीर घोष सुनकर वानरवीर हनुमान्‌जी अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गये॥ २०॥

इन्द्रजित् युद्धकी कलामें प्रवीण था। वह धनुष और तीखे अग्रभागवाले सायकोंको लेकर हनुमान्‌जीको लक्ष्य करके आगे बढ़ा॥ २१॥

हृदयमें हर्ष और उत्साह तथा हाथोंमें बाण लेकर वह ज्यों ही युद्धके लिये निकला, त्यों ही सम्पूर्ण दिशाएँ मलिन हो गयीं और भयानक पशु नाना प्रकारसे आर्तनाद करने लगे॥ २२॥

उस समय वहाँ नाग, यक्ष, महर्षि और नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले सिद्धगण भी आ गये। साथ ही पक्षियोंके समुदाय भी आकाशको आच्छादित करके अत्यन्त हर्षमें भरकर उच्च स्वरसे चहचहाने लगे॥ २३॥

इन्द्राकार चिह्नवाली ध्वजासे सुशोभित रथपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक आते हुए मेघनादको देखकर वेगशाली वानर-वीर हनुमान्‌ने बड़े जोरसे गर्जना की और अपने शरीरको बढ़ाया॥ २४॥

उस दिव्य रथपर बैठकर विचित्र धनुष धारण करनेवाले इन्द्रजित्‌ने बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान

टंकार करनेवाले अपने धनुषको खींचा॥ २५॥

फिर तो अत्यन्त दु:सह वेग और महान् बलसे सम्पन्न हो युद्धमें निर्भय होकर आगे बढ़नेवाले वे दोनों वीर कपिवर हनुमान् तथा राक्षसराजकुमार मेघनाद परस्पर वैर बाँधकर देवराज इन्द्र और दैत्यराज बलिकी भाँति एक-दूसरेसे भिड़ गये॥ २६॥

अप्रमेय शक्तिशाली हनुमान्‌जी विशाल शरीर धारण करके अपने पिता वायुके मार्गपर विचरने और युद्धमें सम्मानित होनेवाले उस धनुर्धर महारथी राक्षसवीरके बाणोंके महान् वेगको व्यर्थ करने लगे॥ २७॥

इतनेहीमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रजित्‌ने बड़ी और तीखी नोक तथा सुन्दर परोंवाले, सोनेकी विचित्र पंखोंसे सुशोभित और वज्रके समान वेगशाली बाणोंको लगातार छोड़ना आरम्भ किया॥ २८॥

उस समय उसके रथकी घर्घराहट, मृदङ्ग, भेरी और पटह आदि बाजोंके शब्द एवं खींचे जाते हुए धनुषकी टंकार सुनकर हनुमान्‌जी फिर ऊपरकी ओर उछले॥ २९॥

ऊपर जाकर वे महाकपि वानरवीर लक्ष्य बेधनेमें प्रसिद्ध मेघनादके साधे हुए निशानेको व्यर्थ करते हुए उसके छोड़े हुए बाणोंके बीचसे शीघ्रतापूर्वक निकलकर अपनेको बचाने लगे॥ ३०॥

वे पवनकुमार हनुमान् बारंबार उसके बाणोंके सामने आकर खड़े हो जाते और फिर दोनों हाथ फैलाकर बात-की-बातमें उड़ जाते थे॥ ३१॥

वे दोनों वीर महान् वेगसे सम्पन्न तथा युद्ध करनेकी कलामें चतुर थे। वे सम्पूर्ण भूतोंके चित्तको आकर्षित करनेवाला उत्तम युद्ध करने लगे॥ ३२॥

वह राक्षस हनुमान्‌जीपर प्रहार करनेका अवसर नहीं पाता था और पवनकुमार हनुमान्‌जी भी उस महामनस्वी वीरको धर दबानेका मौका नहीं पाते थे। देवताओंके समान पराक्रमी वे दोनों वीर परस्पर भिड़कर एक-दूसरेके लिये दु:सह हो उठे थे॥ ३३॥

लक्ष्यवेधके लिये चलाये हुए मेघनादके वे अमोघ बाण भी जब व्यर्थ होकर गिर पड़े, तब लक्ष्यपर बाणोंका संधान करनेमें सदा एकाग्रचित्त रहनेवाले उस महामनस्वी वीरको बड़ी चिन्ता हुई॥ ३४॥

उन कपिश्रेष्ठको अवध्य समझकर राक्षसराजकुमार मेघनाद वानरवीरोंमें प्रमुख हनुमान्‌जीके विषयमें यह विचार करने लगा कि 'इन्हें किसी तरह कैद कर लेना चाहिये, परंतु ये मेरी पकड़में आ कैसे सकते हैं?'॥ ३५॥

फिर तो अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उस महातेजस्वी वीरने उन कपिश्रेष्ठको लक्ष्य करके अपने धनुषपर ब्रह्माजीके दिये हुए अस्त्रका संधान किया॥ ३६॥

अस्त्रतत्त्वके ज्ञाता इन्द्रजित्‌ने महाबाहु पवनकुमारको अवध्य जानकर उन्हें उस अस्त्रसे बाँध लिया॥ ३७॥

राक्षसद्वारा उस अस्त्रसे बाँध लिये जानेपर वानरवीर हनुमान्‌जी निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३८॥

अपनेको ब्रह्मास्त्रसे बँधा हुआ जानकर भी उन्हीं भगवान् ब्रह्माके प्रभावसे हनुमान्‌जीको थोड़ी-सी भी पीड़ाका अनुभव नहीं हुआ। वे प्रमुख वानरवीर अपने ऊपर ब्रह्माजीके महान् अनुग्रहका विचार करने लगे॥ ३९॥

जिन मन्त्रोंके देवता साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्मा हैं, उनसे अभिमन्त्रित हुए उस ब्रह्मास्त्रको देखकर हनुमान्‌जीको पितामह ब्रह्मासे अपने लिये मिले हुए वरदानका स्मरण हो आया (ब्रह्माजीने उन्हें वर दिया था कि मेरा अस्त्र तुम्हें एक ही मुहूर्तमें अपने बन्धनसे मुक्त कर देगा)॥ ४०॥

फिर वे सोचने लगे 'लोकगुरु ब्रह्माके प्रभावसे मुझमें इस अस्त्रके बन्धनसे छुटकारा पानेकी शक्ति नहीं है—ऐसा मानकर ही इन्द्रजित्‌ने मुझे इस प्रकार बाँधा है, तथापि मुझे भगवान् ब्रह्माके सम्मानार्थ इस अस्त्रबन्धनका अनुसरण करना चाहिये'॥ ४१॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उस अस्त्रकी शक्ति, अपने ऊपर पितामहकी कृपा तथा अपनेमें उसके बन्धनसे छूट जानेकी सामर्थ्य—इन तीनोंपर विचार करके अन्तमें ब्रह्माजीकी आज्ञाका ही अनुसरण किया॥ ४२॥

उनके मनमें यह बात आयी कि 'इस अस्त्रसे बँध जानेपर भी मुझे कोई भय नहीं है; क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र और वायुदेवता तीनों मेरी रक्षा करते हैं॥ ४३॥

'राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मुझे महान् लाभ ही दिखायी देता है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। अत: शत्रु मुझे पकड़कर ले चलें'॥ ४४॥

ऐसा निश्चय करके विचारपूर्वक कार्य करनेवाले शत्रुवीरोंके संहारक हनुमान्‌जी निश्चेष्ट हो गये। फिर तो सभी शत्रु निकट आकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ने और डाँट बताने लगे। उस समय हनुमान्‌जी, मानो कष्ट पा रहे हों, इस प्रकार चीखते और कटकटाते थे॥ ४५॥

राक्षसोंने देखा, अब यह हाथ-पैर नहीं हिलाता, तब वे शत्रुहन्ता हनुमान्‌जीको सुतरी और वृक्षोंके वल्कलको बटकर बनाये गये रस्सोंसे बाँधने लगे॥ ४६॥

शत्रुवीरोंने जो उन्हें हठपूर्वक बाँधा और उनका तिरस्कार किया, यह सब कुछ उस समय उन्हें अच्छा लगा। उनके मनमें यह निश्चित विचार हो गया था कि ऐसी अवस्थामें राक्षसराज रावण सम्भवतः कौतूहलवश मुझे देखनेकी इच्छा करेगा (इसीलिये वे सब कुछ सह रहे थे)॥ ४७॥

वल्कलके रस्सेसे बँध जानेपर पराक्रमी हनुमान् ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये; क्योंकि उस अस्त्रका बन्धन किसी दूसरे बन्धनके साथ नहीं रहता॥ ४८॥

वीर इन्द्रजित्ने जब देखा कि यह वानरशिरोमणि तो केवल वृक्षोंके वल्कलसे बँधा है, दिव्यास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो चुका है, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा—'दूसरी वस्तुओंसे बँधा हुआ होनेपर भी यह अस्त्र-बन्धनमें बँधे हुएकी भाँति बर्ताव कर रहा है। ओह! इन राक्षसोंने मेरा किया हुआ बहुत बड़ा काम चौपट कर दिया। इन्होंने मन्त्रकी शक्तिपर विचार नहीं किया। यह अस्त्र जब एक बार व्यर्थ हो जाता है, तब पुनः दूसरी बार इसका प्रयोग नहीं हो सकता। अब तो विजयी होकर भी हम सब लोग संशयमें पड़ गये॥

हनुमान्जी यद्यपि अस्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये थे तो भी उन्होंने ऐसा बर्ताव किया, मानो वे इस बातको जानते ही न हों। क्रूर राक्षस उन्हें बन्धनोंसे पीड़ा देते और कठोर मुक्कोंसे मारते हुए खींचकर ले चले। इस तरह वे वानरवीर राक्षसराज रावणके पास पहुँचाये गये॥

तब इन्द्रजित्ने उन महाबली वानरवीरको ब्रह्मास्त्रसे मुक्त तथा वृक्षके वल्कलोंकी रस्सियोंसे बँधा देख उन्हें वहाँ सभासद्गणोंसहित राजा रावणको दिखाया॥ ५३॥

मतवाले हाथीके समान बँधे हुए उन वानर-शिरोमणिको राक्षसोंने राक्षसराज रावणकी सेवामें समर्पित कर दिया॥ ५४॥

उन्हें देखकर राक्षसवीर आपसमें कहने लगे—'यह कौन है? किसका पुत्र या सेवक है? कहाँसे आया है? यहाँ इसका क्या काम है? तथा इसे सहारा देनेवाला कौन है?॥ ५५॥

कुछ दूसरे राक्षस जो अत्यन्त क्रोधसे भरे थे, परस्पर इस प्रकार बोले—'इस वानरको मार डालो, जला डालो या खा डालो'॥ ५६॥

महात्मा हनुमान्जी सारा रास्ता तै करके जब सहसा राक्षसराज रावणके पास पहुँच गये, तब उन्होंने उसके चरणोंके समीप बहुत-से बड़े-बूढ़े सेवकोंको और बहुमूल्य रत्नोंसे विभूषित सभाभवनको भी देखा॥

उस समय महातेजस्वी रावणने विकट आकारवाले राक्षसोंके द्वारा इधर-उधर घसीटे जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीको देखा॥ ५८॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने भी राक्षसराज रावणको तपते हुए सूर्यके समान तेज और बलसे सम्पन्न देखा॥ ५९॥

हनुमान्जीको देखकर दशमुख रावणकी आँखें रोषसे चञ्चल और लाल हो गयीं। उसने वहाँ बैठे हुए कुलीन, सुशील और मुख्य मन्त्रियोंको उनसे परिचय पूछनेके लिये आज्ञा दी॥ ६०॥

उन सबने पहले क्रमशः कपिवर हनुमान्से उनका कार्य, प्रयोजन तथा उसके मूल कारणके विषयमें पूछा। तब उन्होंने यह बताया कि 'मैं वानरराज सुग्रीवके पाससे उनका दूत होकर आया हूँ'॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

रावणके प्रभावशाली स्वरूपको देखकर हनुमान्जीके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका उठना

इन्द्रजित्के उस नीतिपूर्ण कर्मसे विस्मित तथा रावणके सीताहरण आदि कर्मोंसे कुपित हो रोषसे लाल आँखें किये भयंकर पराक्रमी हनुमान्जीने राक्षसराज रावणकी ओर देखा॥ १॥

वह महातेजस्वी राक्षसराज सोनेके बने हुए बहुमूल्य एवं दीप्तिमान् मुकुटसे, जिसमें मोतियोंका काम किया हुआ था, उद्भासित हो रहा था॥ २॥

उसके विभिन्न अङ्गोंमें सोनेके विचित्र आभूषण ऐसे सुन्दर लगते थे मानो मानसिक संकल्पद्वारा बनाये गये हों। उनमें हीरे तथा बहुमूल्य मणिरत्न जड़े हुए थे, उन आभूषणोंसे रावणकी अद्भुत शोभा होती थी॥ ३॥

बहुमूल्य रेशमी वस्त्र उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह लाल चन्दनसे चर्चित था और भाँति-

भाँतिकी विचित्र रचनाओंसे युक्त सुन्दर अङ्गरागोंसे उसका सारा अङ्ग सुशोभित हो रहा था॥ ४॥

उसकी आँखें देखने योग्य लाल-लाल और भयावनी थीं; उनसे और चमकीली तीखी एवं बड़ी-बड़ी दाढ़ों तथा लंबे-लंबे ओठोंके कारण उसकी विचित्र शोभा होती थी॥ ५॥

वीर हनुमान्‌जीने देखा, अपने दस मस्तकोंसे सुशोभित महाबली रावण नाना प्रकारके सर्पोंसे भरे हुए अनेक शिखरोंद्वारा शोभा पानेवाले मन्दराचलके समान प्रतीत हो रहा है॥ ६॥

उसका शरीर काले कोयलेके ढेरकी भाँति काला था और वक्ष:स्थल चमकीले हारसे विभूषित था। वह पूर्ण चन्द्रके समान मनोरम मुखद्वारा प्रात:कालके सूर्यसे युक्त मेघकी भाँति शोभा पा रहा था॥ ७॥

जिनमें केयूर बँधे थे, उत्तम चन्दनका लेप हुआ था और चमकीले अङ्गद शोभा दे रहे थे, उन भयंकर भुजाओंसे सुशोभित रावण ऐसा जान पड़ता था, मानो पाँच सिरवाले अनेक सर्पोंसे सेवित हो रहा हो॥ ८॥

वह स्फटिकमणिके बने हुए विशाल एवं सुन्दर सिंहासनपर, जो नाना प्रकारके रत्नोंके संयोगसे चित्रित, विचित्र तथा सुन्दर बिछौनोंसे आच्छादित था, बैठा हुआ था॥ ९॥

वस्त्र और आभूषणोंसे खूब सजी हुई बहुत-सी युवतियाँ हाथमें चँवर लिये सब ओरसे आस-पास खड़ी हो उसकी सेवा करती थीं॥ १०॥

मन्त्र-तत्त्वको जाननेवाले दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा निकुम्भ—ये चार राक्षसजातीय मन्त्री उसके पास बैठे थे। उन चारों राक्षसोंसे घिरा हुआ बलाभिमानी रावण चार समुद्रोंसे घिरे हुए समस्त भूलोकको भाँति शोभा पा रहा था॥ ११-१२॥

जैसे देवता देवराज इन्द्रको सान्त्वना देते हैं, उसी प्रकार मन्त्र-तत्त्वके ज्ञाता मन्त्री तथा दूसरे-दूसरे शुभचिन्तक सचिव उसे आश्वासन दे रहे थे॥ १३॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीने मन्त्रियोंसे घिरे हुए अत्यन्त तेजस्वी, सिंहासनारूढ़ राक्षसराज रावणको मेरुशिखरपर विराजमान सजल जलधरके समान देखा॥ १४॥

उन भयानक पराक्रमी राक्षसोंसे पीड़ित होनेपर भी हनुमान्‌जी अत्यन्त विस्मित होकर राक्षसराज रावणको बड़े गौरसे देखते रहे॥ १५॥

उस दीप्तिशाली राक्षसराजको अच्छी तरह देखकर उसके तेजसे मोहित हो हनुमान्‌जी मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—॥ १६॥

'अहो! इस राक्षसराजका रूप कैसा अद्भुत है! कैसा अनोखा धैर्य है। कैसी अनुपम शक्ति है! और कैसा आश्चर्यजनक तेज है! इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न होना कितने आश्चर्यकी बात है!॥ १७॥

'यदि इसमें प्रबल अधर्म न होता तो यह राक्षसराज रावण इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवलोकका संरक्षक हो सकता था॥ १८॥

'इसके लोकनिन्दित क्रूरतापूर्ण निष्ठुर कर्मोंके कारण देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण लोक इससे भयभीत रहते हैं। यह कुपित होनेपर समस्त जगत्‌को एकार्णवमें निमग्न कर सकता है—संसारमें प्रलय मचा सकता है।' अमित तेजस्वी राक्षसराजके प्रभावको देखकर वे बुद्धिमान् वानरवीर ऐसी अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करते रहे॥ १९-२०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

रावणका प्रहस्तके द्वारा हनुमान्‌जीसे लङ्कामें आनेका कारण पुछवाना और हनुमान्‌का अपनेको श्रीरामका दूत बताना

समस्त लोकोंको रुलानेवाला महाबाहु रावण भूरी आँखोंवाले हनुमान्‌जीको सामने खड़ा देख महान् रोषसे भर गया॥ १॥

साथ ही तरह-तरहकी आशङ्काओंसे उसका दिल बैठ गया। अत: वह तेजस्वी वानरराजके विषयमें विचार करने लगा—'क्या इस वानरके रूपमें साक्षात् भगवान् नन्दी यहाँ पधारे हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें कैलास पर्वतपर जब कि मैंने उनका उपहास किया था, मुझे शाप दे दिया था? वे ही तो वानरका स्वरूप धारण करके यहाँ नहीं आये हैं? अथवा इस रूपमें बाणासुरका आगमन तो नहीं हुआ है?'॥ २-३॥

इस तरह तर्क-वितर्क करते हुए राजा रावणने

क्रोधसे लाल आँखें करके मन्त्रिवर प्रहस्तसे समयानुकूल गम्भीर एवं अर्थयुक्त बात कही— ॥ ४ ॥

'अमात्य! इस दुरात्मासे पूछो तो सही, यह कहाँसे आया है? इसके आनेका क्या कारण है? प्रमदावनको उजाड़ने तथा राक्षसोंको मारनेमें इसका क्या उद्देश्य था?॥

'मेरी दुर्जय पुरीमें जो इसका आना हुआ है, इसमें इसका क्या प्रयोजन है? अथवा इसने जो राक्षसोंके साथ युद्ध छेड़ दिया है, उसमें इसका क्या उद्देश्य है? ये सारी बातें इस दुर्बुद्धि वानरसे पूछो'॥ ६ ॥

रावणकी बात सुनकर प्रहस्तने हनुमान्‌जीसे कहा— 'वानर! तुम घबराओ न, धैर्य रखो। तुम्हारा भला हो। तुम्हें डरनेकी आवश्यकता नहीं है॥ ७ ॥

'यदि तुम्हें इन्द्रने महाराज रावणकी नगरीमें भेजा है तो ठीक-ठीक बता दो। वानर! डरो न। छोड़ दिये जाओगे॥ ८ ॥

'अथवा यदि तुम कुबेर, यम या वरुणके दूत हो और यह सुन्दर रूप धारण करके हमारी इस पुरीमें घुस आये हो तो यह भी बता दो॥ ९ ॥

'अथवा विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विष्णुने तुम्हें दूत बनाकर भेजा है? तुम्हारा तेज वानरोंका-सा नहीं है। केवल रूपमात्र वानरका है॥ १० ॥

'वानर! इस समय सच्ची बात कह दो, फिर तुम छोड़ दिये जाओगे। यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असम्भव हो जायगा॥ ११ ॥

'अथवा और सब बातें छोड़ो। तुम्हारा इस रावणके नगरमें आनेका क्या उद्देश्य है? यही बता दो।' प्रहस्तके इस प्रकार पूछनेपर उस समय वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌ने राक्षसोंके स्वामी रावणसे कहा—'मैं इन्द्र, यम अथवा वरुणका दूत नहीं हूँ। कुबेरके साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान् विष्णुने भी मुझे यहाँ नहीं भेजा है॥ १२-१३ ॥

'मैं जन्मसे ही वानर हूँ और राक्षस रावणसे मिलनेके उद्देश्यसे ही मैंने उनके इस दुर्लभ वनको उजाड़ा है। इसके बाद तुम्हारे बलवान् राक्षस युद्धकी इच्छासे मेरे पास आये और मैंने अपने शरीरकी रक्षाके लिये रणभूमिमें उनका सामना किया॥ १४-१५ $\frac{1}{2}$ ॥

'देवता अथवा असुर भी मुझे अस्त्र अथवा पाशसे बाँध नहीं सकते। इसके लिये मुझे भी ब्रह्माजीसे वरदान मिल चुका है॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

'राक्षसराजको देखनेकी इच्छासे ही मैंने अस्त्रसे बँधना स्वीकार किया है। यद्यपि इस समय मैं अस्त्रसे मुक्त हूँ तथापि इन राक्षसोंने मुझे बँधा समझकर ही यहाँ लाकर तुम्हें सौंपा है॥ १७ $\frac{1}{2}$ ॥

'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका कुछ कार्य है, जिसके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। प्रभो! मैं अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथजीका दूत हूँ, ऐसा समझकर मेरे इस हितकारी वचनको अवश्य सुनो'॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणको समझाना

महाबली दशमुख रावणकी ओर देखते हुए शक्तिशाली वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने शान्तभावसे यह अर्थयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

'राक्षसराज! मैं सुग्रीवका संदेश लेकर यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। वानरराज सुग्रीव तुम्हारे भाई हैं। इसी नाते उन्होंने तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है॥ २ ॥

'अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीवका संदेश— धर्म और अर्थयुक्त वचन, जो इहलोक और परलोकमें भी लाभदायक है, सुनो॥ ३ ॥

'अभी हालमें ही दशरथनामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो पिताकी भाँति प्रजाके हितैषी, इन्द्रके समान तेजस्वी तथा रथ, हाथी, घोड़े आदिसे सम्पन्न थे॥

'उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र महातेजस्वी, प्रभावशाली महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गका आश्रय लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें आये थे॥ ५-६ ॥

'सीता विदेहदेशके राजा महात्मा जनककी पुत्री हैं। जनस्थानमें आनेपर श्रीरामपत्नी सीता कहीं खो गयी हैं॥

'राजकुमार श्रीराम अपने भाईके साथ उन्हीं सीतादेवीकी खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वतपर आये और सुग्रीवसे मिले॥ ८ ॥

'सुग्रीवने उनसे सीताको ढूँढ़ निकालनेकी प्रतिज्ञा की और श्रीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिलानेका वचन दिया॥ ९ ॥

'तत्पश्चात् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें वालीको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपर स्थापित कर दिया। इस समय सुग्रीव वानरों और भालुओंके समुदायके स्वामी हैं॥ १०॥

'वानरराज वालीको तो तुम पहलेसे ही जानते हो। उस वानरवीरको युद्धभूमिमें श्रीरामने एक ही बाणसे मार गिराया था॥ ११॥

'अब सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव सीताको खोज निकालनेके लिये व्यग्र हो उठे हैं। उन वानरराजने समस्त दिशाओंमें वानरोंको भेजा है॥ १२॥

'इस समय सैकड़ों, हजारों और लाखों वानर सम्पूर्ण दिशाओं तथा आकाश और पातालमें भी सीताजीकी खोज कर रहे हैं॥ १३॥

'उन वानरवीरोंमेंसे कोई गरुड़के समान वेगवान् हैं तो कोई वायुके समान। उनकी गति कहीं नहीं रुकती। वे कपिवीर शीघ्रगामी और महान् बली हैं॥ १४॥

'मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ। सीताका पता लगाने और तुमसे मिलनेके लिये सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर तीव्र गतिसे यहाँ आया हूँ। घूमते-घूमते तुम्हारे अन्तःपुरमें मैंने जनकनन्दिनी सीताको देखा है॥ १५-१६॥

'महामते! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जानते हो। तुमने बड़े भारी तपका संग्रह किया है। अतः दूसरेकी स्त्रीको अपने घरमें रोक रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है॥ १७॥

'धर्मविरुद्ध कार्योंमें बहुत-से अनर्थ भरे रहते हैं। वे कर्ताका जड़मूलसे नाश कर डालते हैं। अतः तुम-जैसे बुद्धिमान् पुरुष ऐसे कार्योंमें नहीं प्रवृत्त होते॥ १८॥

'देवताओं और असुरोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो श्रीरामचन्द्रजीके क्रोध करनेके पश्चात् लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंके सामने ठहर सके॥ १९॥

'राजन्! तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्रीरामका अपराध करके सुखी रह सके॥ २०॥

'इसलिये मेरी धर्म और अर्थके अनुकूल बात, जो तीनों कालोंमें हितकर है, मान लो और जानकीजीको श्रीरामचन्द्रजीके पास लौटा दो॥ २१॥

'मैंने इन देवी सीताका दर्शन कर लिया। जो दुर्लभ वस्तु थी, उसे यहाँ पा लिया। इसके बाद जो कार्य शेष है, उसके साधनमें श्रीरघुनाथजी ही निमित्त हैं॥ २२॥

'मैंने यहाँ सीताकी अवस्थाको लक्ष्य किया है। वे निरन्तर शोकमें डूबी रहती हैं। सीता तुम्हारे घरमें पाँच फनवाली नागिनके समान निवास करती हैं, जिन्हें तुम नहीं जानते हो॥ २३॥

'जैसे अत्यन्त विषमिश्रित अन्नको खाकर कोई उसे बलपूर्वक नहीं पचा सकता, उसी प्रकार सीताजीको अपनी शक्तिसे पचा लेना देवताओं और असुरोंके लिये भी असम्भव है॥ २४॥

'तुमने तपस्याका कष्ट उठाकर धर्मके फलस्वरूप जो यह ऐश्वर्यका संग्रह किया है तथा शरीर और प्राणोंको चिरकालतक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है, उसका विनाश करना उचित नहीं॥ २५॥

'तुम तपस्याके प्रभावसे देवताओं और असुरोंद्वारा जो अपनी अवध्यता देख रहे हो, उसमें भी तपस्याजनित यह धर्म ही महान् कारण है (अथवा उस अवध्यताके होते हुए भी तुम्हारे वधका दूसरा महान् कारण उपस्थित है)॥ २६॥

'राक्षसराज! सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजी न तो देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही हैं। श्रीरघुनाथजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरोंके राजा। अतः उनके हाथसे तुम अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करोगे?॥ २७॥

'जो पुरुष प्रबल अधर्मके फलसे बँधा हुआ है, उसे धर्मका फल नहीं मिलता। वह उस अधर्मफलको ही पाता है। हाँ, यदि उस अधर्मके बाद किसी प्रबल धर्मका अनुष्ठान किया गया हो तो वह पहलेके अधर्मका नाशक होता है*॥ २८॥

'तुमने पहले जो धर्म किया था, उसका पूरा-पूरा फल तो यहाँ पा लिया, अब इस सीताहरणरूपी अधर्मका फल भी तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा॥ २९॥

'जनस्थानके राक्षसोंका संहार, वालीका वध और श्रीराम तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन तीनों कार्योंको अच्छी तरह समझ लो। उसके बाद अपने हितका विचार करो॥ ३०॥

'यद्यपि मैं अकेला ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकता हूँ, तथापि श्रीरघुनाथजीका

* जैसा कि श्रुतिका वचन है—'**धर्मेण पापमपनुदति।**' अर्थात् धर्मसे मनुष्य अपने पापको दूर करता है। स्मृतियोंमें बताये गये प्रायश्चित्त कृच्छ्रव्रत आदि भी इसी बातके समर्थक हैं।

ऐसा विचार नहीं है—उन्होंने मुझे इस कार्यके लिये आज्ञा नहीं दी है॥ ३१॥

'जिन लोगोंने सीताका तिरस्कार किया है, उन शत्रुओंका स्वयं ही संहार करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीने वानरों और भालुओंके सामने प्रतिज्ञा की है॥ ३२॥

'भगवान् श्रीरामका अपराध करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकते, फिर तुम्हारे-जैसे साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है?॥ ३३॥

'जिनको तुम सीताके नामसे जानते हो और जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुरमें मौजूद हैं, उन्हें सम्पूर्ण लङ्काका विनाश करनेवाली कालरात्रि समझो॥ ३४॥

'सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी फाँसी आ पहुँची है, उसमें स्वयं गला फँसाना ठीक नहीं है; अतः अपने कल्याणकी चिन्ता करो॥ ३५॥

'देखो, अट्टालिकाओं और गलियोंसहित यह लङ्कापुरी सीताजीके तेज और श्रीरामकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्म होने जा रही है (बचा सको तो बचाओ)॥ ३६॥

'इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बीजनों, भाइयों, पुत्रों, हितकारियों, स्त्रियों, सुख-भोगके साधनों तथा समूची लङ्काको मौतके मुखमें न झोंको॥ ३७॥

'राक्षसोंके राजाधिराज! मैं भगवान् श्रीरामका दास हूँ, दूत हूँ और विशेषतः वानर हूँ। मेरी सच्ची बात सुनो—॥ ३८॥

'महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं॥ ३९॥

'भगवान् श्रीराम श्रीविष्णुके तुल्य पराक्रमी हैं। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किंनर, पक्षी एवं अन्य समस्त प्राणियोंमें कहीं किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है, जो श्रीरघुनाथजीके साथ लोहा ले सके॥ ४०-४१ $\frac{1}{2}$॥

'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर राजसिंह श्रीरामका ऐसा महान् अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है॥

'निशाचरराज! श्रीरामचन्द्रजी तीनों लोकोंके स्वामी हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब मिलकर भी युद्धमें उनके सामने नहीं टिक सकते॥ ४३॥

'चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा देवताओंके स्वामी महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते'॥ ४४॥

वीरभावसे निर्भयतापूर्वक भाषण करनेवाले महाकपि हनुमान्जीकी बातें बड़ी सुन्दर एवं युक्तियुक्त थीं, तथापि वे रावणको अप्रिय लगीं। उन्हें सुनकर अनुपम शक्तिशाली दशानन रावणने क्रोधसे आँखें तरेरकर सेवकोंको उनके वधके लिये आज्ञा दी॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

विभीषणका दूतके वधको अनुचित बताकर उसे दूसरा कोई दण्ड देनेके लिये कहना तथा रावणका उनके अनुरोधको स्वीकार कर लेना

वानरशिरोमणि महात्मा हनुमान्जीका वचन सुनकर क्रोधसे तमतमाये हुए रावणने अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'इस वानरका वध कर डालो'॥ १॥

दुरात्मा रावणने जब उनके वधकी आज्ञा दी, तब विभीषण भी वहीं थे। उन्होंने उस आज्ञाका अनुमोदन नहीं किया; क्योंकि हनुमान्जी अपनेको सुग्रीव एवं श्रीरामका दूत बता चुके थे॥ २॥

एक ओर राक्षसराज रावण क्रोधसे भरा हुआ था, दूसरी ओर वह दूतके वधका कार्य उपस्थित था। यह सब जानकर यथोचित कार्यके सम्पादनमें लगे हुए विभीषणने समयोचित कर्तव्यका निश्चय किया॥ ३॥

निश्चय हो जानेपर वार्तालापकुशल विभीषणने पूजनीय ज्येष्ठ भ्राता शत्रुविजयी रावणसे शान्तिपूर्वक यह हितकर वचन कहा—॥ ४॥

'राक्षसराज! क्षमा कीजिये, क्रोधको त्याग दीजिये, प्रसन्न होइये और मेरी यह बात सुनिये। ऊँच-नीचका ज्ञान रखनेवाले श्रेष्ठ राजालोग दूतका वध नहीं करते हैं॥

'वीर महाराज! इस वानरको मारना धर्मके विरुद्ध और लोकाचारकी दृष्टिसे भी निन्दित है। आप-जैसे वीरके लिये तो यह कदापि उचित नहीं है॥ ६॥

'आप धर्मके ज्ञाता, उपकारको माननेवाले और राजधर्मके विशेषज्ञ हैं, भले-बुरेका ज्ञान रखनेवाले और परमार्थके ज्ञाता हैं। यदि आप-जैसे विद्वान् भी रोषके वशीभूत हो जायँ तब तो समस्त शास्त्रोंका पाण्डित्य प्राप्त करना केवल श्रम ही होगा॥ ७-८॥

'अतः शत्रुओंका संहार करनेवाले दुर्जय राक्षसराज! आप प्रसन्न होइये और उचित-अनुचितका विचार करके दूतके योग्य किसी दण्डका विधान कीजिये'॥ ९॥

विभीषणकी बात सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण महान् कोपसे भरकर उन्हें उत्तर देता हुआ बोला—॥

'शत्रुसूदन! पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है। इस वानरने वाटिकाका विध्वंस तथा राक्षसोंका वध करके पाप किया है। इसलिये अवश्य ही इसका वध करूँगा'॥ ११॥

रावणका वचन अनेक दोषोंसे युक्त और पापका मूल था। वह श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं था। उसे सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने उत्तम कर्तव्यका निश्चय करानेवाली बात कही—॥ १२॥

'लङ्केश्वर! प्रसन्न होइये। राक्षसराज! मेरे धर्म और अर्थतत्त्वसे युक्त वचनको ध्यान देकर सुनिये। राजन्! सत्पुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते॥ १३॥

'इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है; क्योंकि इसने वह अपराध किया है जिसकी कहीं तुलना नहीं है, तथापि सत्पुरुष दूतका वध करना उचित नहीं बताते हैं। दूतके लिये अन्य प्रकारके बहुत-से दण्ड देखे गये हैं॥ १४॥

'किसी अङ्गको भङ्ग या विकृत कर देना, कोड़ेसे पिटवाना, सिर मुड़वा देना तथा शरीरमें कोई चिह्न दाग देना—ये ही दण्ड दूतके लिये उचित बताये गये हैं। उसके लिये वधका दण्ड तो मैंने कभी नहीं सुना है॥

'आपकी बुद्धि धर्म और अर्थकी शिक्षासे युक्त है। आप ऊँच-नीचका विचार करके कर्तव्यका निश्चय करनेवाले हैं। आप-जैसा नीतिज्ञ पुरुष कोपके अधीन कैसे हो सकता है? क्योंकि शक्तिशाली पुरुष क्रोध नहीं करते हैं॥ १६॥

'वीर! धर्मकी व्याख्या करने, लोकाचारका पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंमें श्रेष्ठ हैं॥ १७॥

'पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न जो मनस्वी देवता और असुर हैं, उनके लिये भी आपपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। आप अप्रमेय शक्तिशाली हैं। आपने अनेक युद्धोंमें बारंबार देवेश्वरों तथा नरेशोंको पराजित किया है॥ १८॥

'देवताओं और दैत्योंसे भी शत्रुता रखनेवाले ऐसे आप अपराजित शूरवीरका पहले कभी शत्रुपक्षी वीर मनसे भी पराभव नहीं कर सके हैं। जिन्होंने सिर उठाया, वे तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ १९॥

'इस वानरको मारनेमें मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। जिन्होंने इसे भेजा है, उन्हींको यह प्राणदण्ड दिया जाय॥ २०॥

'यह भला हो या बुरा, शत्रुओंने इसे भेजा है; अतः यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है, अतः वह वधके योग्य नहीं होता है॥ २१॥

'राजन्! इसके मारे जानेपर मैं दूसरे किसी ऐसे आकाशचारी प्राणीको नहीं देखता, जो शत्रुके समीपसे महासागरके इस पार फिर आ सके (ऐसी दशामें शत्रुकी गति-विधिका आपको पता नहीं लग सकेगा)॥ २२॥

'अतः शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाराज! आपको इस दूतके वधके लिये कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये। आप तो इस योग्य हैं कि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंपर चढ़ाई कर सकें॥ २३॥

'युद्धप्रेमी महाराज! इसके नष्ट हो जानेपर मैं दूसरे किसी प्राणीको ऐसा नहीं देखता, जो आपसे विरोध करनेवाले उन दोनों स्वतन्त्र प्रकृतिके राजकुमारोंको युद्धके लिये तैयार कर सके॥ २४॥

'राक्षसोंके हृदयको आनन्दित करनेवाले वीर! आप देवताओं और दैत्योंके लिये भी दुर्जय हैं; अतः पराक्रम और उत्साहसे भरे हुए हृदयवाले इन राक्षसोंके मनमें जो युद्ध करनेका हौसला बढ़ा हुआ है, उसे नष्ट कर देना आपके लिये कदापि उचित नहीं है॥ २५॥

'मेरी राय तो यह है कि उन विरह-दुःखसे विकलचित्त राजकुमारोंको कैद करके शत्रुओंपर आपका प्रभाव डालने— दबदबा जमानेके लिये आपकी आज्ञासे थोड़ी-सी सेनाके साथ कुछ ऐसे योद्धा यहाँसे यात्रा करें, जो हितैषी, शूरवीर, सावधान, अधिक गुणवाले, महान् कुलमें उत्पन्न, मनस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, अपने रोष और जोशके लिये प्रशंसित तथा अधिक वेतन देकर अच्छी तरह पाले-पोसे गये हों'॥ २६-२७॥

अपने छोटे भाई विभीषणके इस उत्तम और प्रिय वचनको सुनकर निशाचरोंके स्वामी तथा देवलोकके शत्रु महाबली राक्षसराज रावणने बुद्धिसे सोच-विचारकर उसे स्वीकार कर लिया॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

राक्षसोंका हनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना

छोटे भाई महात्मा विभीषणकी बात देश और कालके लिये उपयुक्त एवं हितकर थी। उसको सुनकर दशाननने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

'विभीषण! तुम्हारा कहना ठीक है। वास्तवमें दूतके वधकी बड़ी निन्दा की गयी है; परंतु वधके अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड इसे अवश्य देना चाहिये॥

'वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है। वही इनका आभूषण है। अत: जितना जल्दी हो सके, इसकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकर ही यह यहाँसे जाय॥ ३॥

'वहाँ इसके मित्र, कुटुम्बी, भाई-बन्धु तथा हितैषी सुहृद् इसे अङ्ग-भङ्गके कारण पीड़ित एवं दीन अवस्थामें देखें'॥ ४॥

फिर राक्षसराज रावणने यह आज्ञा दी कि 'राक्षसगण इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे सड़कों और चौराहोंसहित समूचे नगरमें घुमावें'॥ ५॥

स्वामीका यह आदेश सुनकर क्रोधके कारण कठोरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले राक्षस हनुमान्‌जीकी पूँछमें पुराने सूती कपड़े लपेटने लगे॥ ६॥

जब उनकी पूँछमें वस्त्र लपेटा जाने लगा, उस समय वनोंमें सूखी लकड़ी पाकर भभक उठनेवाली आगकी भाँति उन महाकपिका शरीर बढ़कर बहुत बड़ा हो गया॥

राक्षसोंने वस्त्र लपेटनेके पश्चात् उनकी पूँछपर तेल छिड़क दिया और आग लगा दी। तब हनुमान्‌जीका हृदय रोषसे भर गया। उनका मुख प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण आभासे उद्भासित हो उठा और वे अपनी जलती हुई पूँछसे ही राक्षसोंको पीटने लगे॥ ८½॥

तब क्रूर राक्षसोंने मिलकर पुन: उन वानरशिरोमणिको कसकर बाँध दिया। यह देख स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंसहित समस्त निशाचर बड़े प्रसन्न हुए॥ ९½॥

तब वीरवर हनुमान्‌जी बँधे-बँधे ही उस समयके योग्य विचार करने लगे—'यद्यपि मैं बँधा हुआ हूँ तो भी इन राक्षसोंका मुझपर जोर नहीं चल सकता। इन बन्धनोंको तोड़कर मैं ऊपर उछल जाऊँगा और पुन: इन्हें मार सकूँगा॥ १०-११॥

'मैं अपने स्वामी श्रीरामके हितके लिये विचर रहा हूँ तो भी ये दुरात्मा राक्षस यदि अपने राजाके आदेशसे मुझे बाँध रहे हैं तो इससे मैं जो कुछ कर चुका हूँ, उसका बदला नहीं पूरा हो सका है॥ १२॥

'मैं युद्धस्थलमें अकेला ही इन समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें पूर्णत: समर्थ हूँ, किंतु इस समय श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये मैं ऐसे बन्धनको चुपचाप सह लूँगा॥ १३॥

'ऐसा करनेसे मुझे पुन: समूची लङ्कामें विचरने और इसके निरीक्षण करनेका अवसर मिलेगा; क्योंकि रातमें घूमनेके कारण मैंने दुर्गरचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए इसका अच्छी तरह अवलोकन नहीं किया था॥ १४॥

'अत: सबेरा हो जानेपर मुझे अवश्य ही लङ्का देखनी है। भले ही ये राक्षस मुझे बारंबार बाँधें और पूँछमें आग लगाकर पीड़ा पहुँचायें। मेरे मनमें इसके कारण तनिक भी कष्ट नहीं होगा'॥ १५½॥

तदनन्तर वे क्रूरकर्मा राक्षस अपने दिव्य आकारको छिपाये रखनेवाले सत्त्वगुणशाली महान् वानरवीर कपिकुञ्जर हनुमान्‌जीको पकड़कर बड़े हर्षके साथ ले चले और शङ्ख एवं भेरी बजाकर उनके (रावण-द्रोह आदि) अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें लङ्कापुरीमें सब ओर घुमाने लगे॥ १६-१७½॥

शत्रुदमन हनुमान्‌जी बड़ी मौजसे आगे बढ़ने लगे। समस्त राक्षस उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। महाकपि हनुमान्‌जी राक्षसोंकी उस विशाल पुरीमें विचरते हुए उसे देखने लगे। उन्होंने वहाँ बड़े विचित्र विमान देखे॥ १८-१९॥

परकोटेसे घिरे हुए कितने ही भूभाग, पृथक्-पृथक् बने हुए सुन्दर चबूतरे, घनीभूत गृहपंक्तियोंसे घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी-बड़ी गलियाँ और घरोंके मध्यभाग—इन सबको वे बड़े गौरसे देखने लगे॥ २०½॥

सब राक्षस उन्हें चौराहोंपर, चार खंभेवाले मण्डपोंमें तथा सड़कोंपर घुमाने और जासूस कहकर उनका परिचय देने लगे॥ २१½ ॥

भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जलती पूँछवाले हनुमान्‌जीको देखनेके लिये वहाँ बहुत-से बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ कौतूहलवश घरसे बाहर निकल आती थीं॥ २२½ ॥

हनुमान्‌जीकी पूँछमें जब आग लगायी जा रही थी, उस समय भयंकर नेत्रोंवाली राक्षसियोंने सीतादेवीके पास जाकर उनसे यह अप्रिय समाचार कहा— ॥ २३½ ॥

'सीते! जिस लाल मुँहवाले बन्दरने तुम्हारे साथ बातचीत की थी, उसकी पूँछमें आग लगाकर उसे सारे नगरमें घुमाया जा रहा है'॥ २४½ ॥

अपने अपहरणकी ही भाँति दुःख देनेवाली यह क्रूरतापूर्ण बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता शोकसे संतप्त हो उठीं और मन-ही-मन अग्निदेवकी उपासना करने लगीं॥ २५½ ॥

उस समय विशाललोचना पवित्रहृदया सीता महाकपि हनुमान्‌जीके लिये मङ्गलकामना करती हुई अग्निदेवकी उपासनामें संलग्न हो गयीं और इस प्रकार बोलीं— ॥ २६½ ॥

'अग्निदेव! यदि मैंने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ॥ २७॥

'यदि बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामके मनमें मेरे प्रति किंचिन्मात्र भी दया है अथवा यदि मेरा सौभाग्य शेष है तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ॥ २८॥

'यदि धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी मुझे सदाचारसे सम्पन्न और अपनेसे मिलनेके लिये उत्सुक जानते हैं तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ॥ २९॥

'यदि सत्यप्रतिज्ञ आर्य सुग्रीव इस दुःखके महासागरसे मेरा उद्धार कर सकें तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ'॥ ३०॥

मृगनयनी सीताके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीखी लपटोंवाले अग्निदेव मानो उन्हें हनुमान्‌के मङ्गलकी सूचना देते हुए शान्तभावसे जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिण-भावसे उठने लगी॥ ३१॥

हनुमान्‌के पिता वायुदेवता भी उनकी पूँछमें लगी हुई आगसे युक्त हो बर्फीली हवाके समान शीतल और देवी सीताके लिये स्वास्थ्यकारी (सुखद) होकर बहने लगे॥ ३२॥

उधर पूँछमें आग लगायी जानेपर हनुमान्‌जी सोचने लगे—'अहो! यह आग सब ओरसे प्रज्वलित होनेपर भी मुझे जलाती क्यों नहीं है?॥ ३३॥

'इसमें इतनी ऊँची ज्वाला उठती दिखायी देती है, तथापि यह आग मुझे पीड़ा नहीं दे रही है। मालूम होता है मेरी पूँछके अग्रभागमें बर्फका ढेर-सा रख दिया गया है॥ ३४॥

'अथवा उस दिन समुद्रको लाँघते समय मैंने सागरमें श्रीरामचन्द्रजीके प्रभावसे पर्वतके प्रकट होनेकी जो आश्चर्यजनक घटना देखी थी, उसी तरह आज यह अग्निकी शीतलता भी व्यक्त हुई है॥ ३५॥

'यदि श्रीरामके उपकारके लिये समुद्र और बुद्धिमान् मैनाकके मनमें वैसी आदरपूर्ण उतावली देखी गयी तो क्या अग्निदेव उन भगवान्‌के उपकारके लिये शीतलता नहीं प्रकट करेंगे?॥ ३६॥

'निश्चय ही भगवती सीताकी दया, श्रीरघुनाथजीके तेज तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं'॥ ३७॥

तदनन्तर कपिकुञ्जर हनुमान्‌ने पुनः एक मुहूर्ततक इस प्रकार विचार किया 'मेरे-जैसे पुरुषका यहाँ इन नीच निशाचरोंद्वारा बाँधा जाना कैसे उचित हो सकता है? पराक्रम रहते हुए मुझे अवश्य इसका प्रतीकार करना चाहिये'॥ ३८½ ॥

यह सोचकर वे वेगशाली महाकपि हनुमान् (जिन्हें राक्षसोंने पकड़ रखा था) उन बन्धनोंको तोड़कर बड़े वेगसे ऊपरको उछले और गर्जना करने लगे (उस समय भी उनका शरीर रस्सियोंमें बँधा हुआ ही था)॥ ३९½ ॥

उछलकर वे श्रीमान् पवनकुमार पर्वत-शिखरके समान ऊँचे नगरद्वारपर जा पहुँचे, जहाँ राक्षसोंकी भीड़ नहीं थी॥ ४०½ ॥

पर्वताकार होकर भी वे मनस्वी हनुमान् पुनः क्षणभरमें बहुत ही छोटे और पतले हो गये। इस प्रकार उन्होंने अपने सारे बन्धनोंको निकाल फेंका। उन बन्धनोंसे मुक्त होते ही तेजस्वी हनुमान्‌जी फिर पर्वतके समान विशालकाय हो गये॥ ४१-४२॥

उस समय उन्होंने जब इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उन्हें फाटकके सहारे रखा हुआ एक परिघ दिखायी दिया। काले लोहेके बने हुए उस परिघको लेकर महाबाहु पवनपुत्रने वहाँके समस्त रक्षकोंको फिर मार गिराया॥ ४३॥

उन राक्षसोंको मारकर रणभूमिमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाले हनुमान्‌जी पुन: लङ्कापुरीका निरीक्षण करने लगे। उस समय जलती हुई पूँछसे जो ज्वालाओंकी माला-सी उठ रही थी, उससे अलंकृत हुए वे वानरवीर तेज:पुञ्जसे देदीप्यमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका विलाप

हनुमान्‌जीके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे। उनका उत्साह बढ़ता जा रहा था। अत: वे लङ्काका निरीक्षण करते हुए शेष कार्यके सम्बन्धमें विचार करने लगे—॥ १॥

'अब इस समय लङ्कामें मेरे लिये कौन-सा ऐसा कार्य बाकी रह गया है, जो इन राक्षसोंको अधिक संताप देनेवाला हो॥ २॥

'प्रमदावनको तो मैंने पहले ही उजाड़ दिया था, बड़े-बड़े राक्षसोंको भी मौतके घाट उतार दिया और रावणकी सेनाके भी एक अंशका संहार कर डाला। अब दुर्गका विध्वंस करना शेष रह गया॥ ३॥

'दुर्गका विनाश हो जानेपर मेरे द्वारा समुद्र-लङ्घन आदि कर्मके लिये किया गया प्रयास सुखद एवं सफल होगा। मैंने सीताजीकी खोजके लिये जो परिश्रम किया है, वह थोड़े-से ही प्रयत्नद्वारा सिद्ध होनेवाले लङ्कादहनसे सफल हो जायगा॥ ४॥

'मेरी पूँछमें जो ये अग्निदेव देदीप्यमान हो रहे हैं, इन्हें इन श्रेष्ठ गृहोंकी आहुति देकर तृप्त करना न्यायसंगत जान पड़ता है'॥ ५॥

ऐसा सोचकर जलती हुई पूँछके कारण बिजली-सहित मेघकी भाँति शोभा पानेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी लङ्काके महलोंपर घूमने लगे॥ ६॥

वे वानरवीर राक्षसोंके एक घरसे दूसरे घरपर पहुँचकर उद्यानों और राजभवनोंको देखते हुए निर्भय होकर विचरने लगे॥ ७॥

घूमते-घूमते वायुके समान बलवान् और महान् वेगशाली हनुमान् उछलकर प्रहस्तके महलपर जा पहुँचे और उसमें आग लगाकर दूसरे घरपर कूद पड़े। वह महापार्श्वका निवासस्थान था। पराक्रमी हनुमान्‌ने उसमें भी कालाग्निकी लपटोंके समान प्रज्वलित होनेवाली आग फैला दी॥ ८-९॥

तत्पश्चात् वे महातेजस्वी महाकपि क्रमश: वज्रदंष्ट्र, शुक और बुद्धिमान् सारणके घरोंपर कूदे और उनमें आग लगाकर आगे बढ़ गये॥ १०॥

इसके बाद वानरयूथपति हनुमान्‌ने इन्द्रविजयी मेघनादका घर जलाया। फिर जम्बुमाली और सुमालीके घरोंको फूँक दिया॥ ११॥

तदनन्तर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त मत्त, ध्वजग्रीव, भयानक विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि राक्षसोंके घरोंमें जा-जाकर उन्होंने आग लगायी॥ १२—१५॥

उस समय महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने केवल विभीषणका घर छोड़कर अन्य सब घरोंमें क्रमश: पहुँचकर उन सबमें आग लगा दी॥ १६॥

महायशस्वी कपिकुञ्जर पवनकुमारने विभिन्न बहुमूल्य भवनोंमें जा-जाकर समृद्धिशाली राक्षसोंके घरोंकी सारी सम्पत्ति जलाकर भस्म कर डाली॥ १७॥

सबके घरोंको लाँघते हुए शोभाशाली पराक्रमी हनुमान् राक्षसराज रावणके महलपर जा पहुँचे॥ १८॥

वही लङ्काके सब महलोंमें श्रेष्ठ, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित, मेरुपर्वतके समान ऊँचा और नाना प्रकारके माङ्गलिक उत्सवोंसे सुशोभित था। अपनी पूँछके अग्रभागमें प्रतिष्ठित हुई प्रज्वलित अग्निको उस महलमें छोड़कर वीरवर हनुमान् प्रलयकालके मेघकी भाँति भयानक गर्जना करने लगे॥ १९-२०॥

हवाका सहारा पाकर वह प्रबल आग बड़े वेगसे बढ़ने लगी और कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठी॥

वायु उस प्रज्वलित अग्निको सभी घरोंमें फैलाने लगी। सोनेकी खिड़कियोंसे सुशोभित, मोती और मणियोंद्वारा निर्मित तथा रत्नोंसे विभूषित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद एवं सतमहले भवन फट-फटकर पृथ्वीपर गिरने लगे॥ २२-२३॥

वे गिरते हुए भवन पुण्यका क्षय होनेपर आकाशसे नीचे गिरनेवाले सिद्धोंके घरोंके समान जान पड़ते थे। उस समय राक्षस अपने-अपने घरोंको बचाने—उनकी आग बुझानेके लिये इधर-उधर दौड़ने लगे। उनका उत्साह जाता रहा और उनकी श्री नष्ट हो गयी थी। उन सबका तुमुल आर्तनाद चारों ओर गूँजने लगा॥ २४½ ॥

वे कहते थे—'हाय! यह वानरके रूपमें साक्षात् अग्निदेवता ही आ पहुँचा है।' कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बच्चे लिये सहसा क्रन्दन करती हुई नीचे गिर पड़ीं॥

कुछ राक्षसियोंके सारे अङ्ग आगकी लपेटमें आ गये, वे बाल बिखेरे अट्टालिकाओंसे नीचे गिर पड़ीं। गिरते समय वे आकाशमें स्थित मेघोंसे गिरनेवाली बिजलियोंके समान प्रकाशित होती थीं॥ २६½ ॥

हनुमान्‌जीने देखा, जलते हुए घरोंसे हीरा, मूँगा, नीलम, मोती तथा सोने, चाँदी आदि विचित्र-विचित्र धातुओंकी राशि पिघल-पिघलकर बही जा रही है॥ २७½ ॥

जैसे आग सूखे काठ और तिनकोंको जलानेसे कभी तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार हनुमान् बड़े-बड़े राक्षसोंके वध करनेसे तनिक भी तृप्त नहीं होते थे और हनुमान्‌जीके मारे हुए राक्षसोंको अपनी गोदमें धारण करनेसे इस वसुन्धराका भी जी नहीं भरता था॥ २८-२९ ॥

जैसे भगवान् रुद्रने पूर्वकालमें त्रिपुरको दग्ध किया था, उसी प्रकार वेगशाली वानरवीर महात्मा हनुमान्‌जीने लङ्कापुरीको जला दिया॥ ३० ॥

तत्पश्चात् लङ्कापुरीके पर्वत-शिखरपर आग लगी, वहाँ अग्निदेवका बड़ा भयानक पराक्रम प्रकट हुआ। वेगशाली हनुमान्‌जीकी लगायी हुई वह आग चारों ओर अपने ज्वाला-मण्डलको फैलाकर बड़े जोरसे प्रज्वलित हो उठी॥ ३१ ॥

हवाका सहारा पाकर वह आग इतनी बढ़ गयी कि उसका रूप प्रलयकालीन अग्निके समान दिखायी देने लगा। उसकी ऊँची लपटें मानो स्वर्गलोकका स्पर्श कर रही थीं। लङ्काके भवनोंमें लगी हुई उस आगकी ज्वालामें धूमका नाम भी नहीं था। राक्षसोंके शरीररूपी घीकी आहुति पाकर उसकी ज्वालाएँ उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं॥ ३२ ॥

समूची लङ्कापुरीको अपनी लपटोंमें लपेटकर फैली हुई वह प्रचण्ड आग करोड़ों सूर्योंके समान प्रज्वलित हो रही थी। मकानों और पर्वतोंके फटने आदिसे होनेवाले नाना प्रकारके धड़ाकोंके शब्द बिजलीकी कड़कको भी मात करते थे, उस समय वह विशाल अग्नि ब्रह्माण्डको फोड़ती हुई-सी प्रकाशित हो रही थी॥

वहाँ धरतीसे आकाशतक फैली हुई अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी आगकी प्रभा बड़ी तीखी प्रतीत होती थी। उसकी लपटें टेसूके फूलकी भाँति लाल दिखायी देती थीं। नीचेसे जिनका सम्बन्ध टूट गया था, वे आकाशमें फैली हुई धूम-पंक्तियाँ नील कमलके समान रंगवाले मेघोंकी भाँति प्रकाशित हो रही थीं॥ ३४ ॥

प्राणियोंके समुदाय, गृह और वृक्षोंसहित समस्त लङ्कापुरीको सहसा दग्ध हुई देख बड़े-बड़े राक्षस झुंड-के-झुंड एकत्र हो गये और वे सब-के-सब परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'यह देवताओंका राजा वज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यमराज तो नहीं है? वरुण, वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्रमामेंसे तो कोई नहीं है? यह वानर नहीं साक्षात् काल ही है। क्या सम्पूर्ण जगत्‌के पितामह चतुर्मुख ब्रह्माजीका प्रचण्ड कोप ही वानरका रूप धारण करके राक्षसोंका संहार करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ है? अथवा भगवान् विष्णुका महान् तेज जो अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त और अद्वितीय है, अपनी मायासे वानरका शरीर ग्रहण करके राक्षसोंके विनाशके लिये तो इस समय नहीं आया है?'॥ ३५—३८ ॥

इस प्रकार घोड़े, हाथी, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंसहित लङ्कापुरी सहसा दग्ध हो गयी। वहाँके निवासी दीनभावसे तुमुल नाद करते हुए फूट-फूटकर रोने लगे॥ ३९ ॥

वे बोले—'हाय रे बप्पा! हाय बेटा! हा स्वामिन्! हा मित्र! हा प्राणनाथ! हमारे सब पुण्य नष्ट हो गये।' इस तरह भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए राक्षसोंने बड़ा भयंकर एवं घोर आर्तनाद किया॥ ४० ॥

हनुमान्‌जीके क्रोध-बलसे अभिभूत हुई लङ्कापुरी आगकी ज्वालासे घिर गयी थी। उसके प्रमुख-प्रमुख वीर मार डाले गये थे। समस्त योद्धा तितर-बितर और उद्विग्न हो गये थे। इस प्रकार वह पुरी शापसे आक्रान्त हुई-सी जान पड़ती थी॥ ४१ ॥

महामनस्वी हनुमान्‌ने लङ्कापुरीको स्वयम्भू ब्रह्माजीके रोषसे नष्ट हुई पृथ्वीके समान देखा। वहाँके समस्त राक्षस बड़ी घबराहटमें पड़कर त्रस्त और विषादग्रस्त हो गये थे। अत्यन्त प्रज्वलित ज्वाला-मालाओंसे अलंकृत अग्निदेवने उसपर अपनी छाप लगा दी थी॥ ४२ ॥

पवनकुमार वानरवीर हनुमान्‌जी उत्तमोत्तम वृक्षोंसे भरे हुए वनको उजाड़कर, युद्धमें बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर तथा सुन्दर महलोंसे सुशोभित लङ्कापुरीको जलाकर शान्त हो गये॥ ४३॥

महात्मा हनुमान् बहुत-से राक्षसोंका वध और बहुसंख्यक वृक्षोंसे भरे हुए प्रमदावनका विध्वंस करके निशाचरोंके घरोंमें आग लगाकर मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करने लगे॥ ४४॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने वानरवीरोंमें प्रधान, महाबलवान्, वायुके समान वेगवान्, परम बुद्धिमान् और वायुदेवताके श्रेष्ठ पुत्र हनुमान्‌जीका स्तवन किया॥ ४५॥

उनके इस कार्यसे सभी देवता, मुनिवर, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण महान् प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके उस हर्षकी कहीं तुलना नहीं थी॥ ४६॥

महातेजस्वी महाकपि पवनकुमार प्रमदावनको उजाड़कर, युद्धमें राक्षसोंको मारकर और भयंकर लङ्कापुरीको जलाकर बड़ी शोभा पाने लगे॥ ४७॥

श्रेष्ठ भवनोंके विचित्र शिखरपर खड़े हुए वानरराजसिंह हनुमान् अपनी जलती पूँछसे उठती हुई ज्वाला-मालाओंसे अलंकृत हो तेज:पुञ्जसे देदीप्यमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित होने लगे॥ ४८॥

इस प्रकार सारी लङ्कापुरीको पीड़ा दे वानरशिरोमणि महाकपि हनुमान्‌ने उस समय समुद्रके जलमें अपनी पूँछकी आग बुझायी॥ ४९॥

तत्पश्चात् लङ्कापुरीको दग्ध हुई देख देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि बड़े विस्मित हुए॥ ५०॥

उस समय वानरश्रेष्ठ महाकपि हनुमान्‌को देख 'ये कालाग्नि हैं' ऐसा मानकर समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

सीताजीके लिये हनुमान्‌जीकी चिन्ता और उसका निवारण

वानरवीर हनुमान्‌जीने जब देखा कि सारी लङ्कापुरी जल रही है, वहाँके निवासियोंपर त्रास छा गया है और राक्षसगण अत्यन्त भयभीत हो गये हैं, तब उनके मनमें सीताके दग्ध होनेकी आशङ्कासे बड़ी चिन्ता हुई॥ १॥

साथ ही उनपर महान् त्रास छा गया और उन्हें अपने प्रति घृणा-सी होने लगी। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हाय! मैंने लङ्काको जलाते समय यह कैसा कुत्सित कर्म कर डाला?॥ २॥

'जो महामनस्वी महात्मा पुरुष उठे हुए कोपको अपनी बुद्धिके द्वारा उसी प्रकार रोक देते हैं, जैसे साधारण लोग जलसे प्रज्वलित अग्निको शान्त कर देते हैं, वे ही इस संसारमें धन्य हैं॥ ३॥

'क्रोधसे भर जानेपर कौन पुरुष पाप नहीं करता? क्रोधके वशीभूत हुआ मनुष्य गुरुजनोंकी भी हत्या कर सकता है। क्रोधी मानव साधु पुरुषोंपर भी कटुवचनोंद्वारा आक्षेप करने लगता है॥ ४॥

'अधिक कुपित हुआ मनुष्य कभी इस बातका विचार नहीं करता कि मुँहसे क्या कहना चाहिये और क्या नहीं? क्रोधीके लिये कोई ऐसा बुरा काम नहीं, जिसे वह न कर सके और कोई ऐसी बुरी बात नहीं, जिसे वह मुँहसे न निकाल सके॥ ५॥

'जो हृदयमें उत्पन्न हुए क्रोधको क्षमाके द्वारा उसी तरह निकाल देता है, जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ देता है, वही पुरुष कहलाता है॥ ६॥

'मेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, मैं निर्लज्ज और महान् पापाचारी हूँ। मैंने सीताकी रक्षाका कोई विचार न करके लङ्कामें आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामीकी ही हत्या कर डाली। मुझे धिक्कार है॥ ७॥

'यदि यह सारी लङ्का जल गयी तो आर्या जानकी भी निश्चय ही उसमें दग्ध हो गयी होंगी। ऐसा करके मैंने अनजानमें अपने स्वामीका सारा काम ही चौपट कर डाला॥ ८॥

'जिस कार्यकी सिद्धिके लिये यह सारा उद्योग किया गया था, वह कार्य ही मैंने नष्ट कर दिया; क्योंकि लङ्का जलाते समय मैंने सीताकी रक्षा नहीं की॥ ९॥

'इसमें संदेह नहीं कि यह लङ्का-दहन एक छोटा-सा कार्य शेष रह गया था, जिसे मैंने पूर्ण किया; परंतु क्रोधसे पागल होनेके कारण मैंने श्रीरामचन्द्रजीके

कार्यकी तो जड़ ही काट डाली॥ १०॥

'लङ्काका कोई भी भाग ऐसा नहीं दिखायी देता, जहाँ आग न लगी हो। सारी पुरी ही मैंने भस्म कर डाली है, अत: जानकी नष्ट हो गयी, यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है॥ ११॥

'यदि अपनी विपरीत बुद्धिके कारण मैंने सारा काम चौपट कर दिया तो यहीं आज मेरे प्राणोंका भी विसर्जन हो जाना चाहिये। यही मुझे अच्छा जान पड़ता है॥ १२॥

'क्या मैं अब जलती आगमें कूद पड़ूँ या वडवानलके मुखमें? अथवा समुद्रमें निवास करनेवाले जल-जन्तुओंको ही यहाँ अपना शरीर समर्पित कर दूँ॥ १३॥

'जब मैंने सारा कार्य ही नष्ट कर दिया, तब अब जीते-जी कैसे वानरराज सुग्रीव अथवा उन दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन कर सकता हूँ या उन्हें अपना मुँह दिखा सकता हूँ?॥ १४॥

'मैंने रोषके दोषसे तीनों लोकोंमें विख्यात इस वानरोचित चपलताका ही यहाँ प्रदर्शन किया है॥ १५॥

'यह राजस भाव कार्य-साधनमें असमर्थ और अव्यवस्थित है, इसे धिक्कार है; क्योंकि इस रजोगुणमूलक क्रोधके ही कारण समर्थ होते हुए भी मैंने सीताकी रक्षा नहीं की॥ १६॥

'सीताके नष्ट हो जानेसे वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण भी नष्ट हो जायँगे। उन दोनोंका नाश होनेपर बन्धु-बान्धवोंसहित सुग्रीव भी जीवित नहीं रहेंगे॥ १७॥

'फिर इसी समाचारको सुन लेनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा भरत और शत्रुघ्न भी कैसे जीवन धारण कर सकेंगे?॥ १८॥

'इस प्रकार धर्मनिष्ठ इक्ष्वाकुवंशके नष्ट हो जानेपर सारी प्रजा भी शोक-संतापसे पीड़ित हो जायगी, इसमें संशय नहीं है॥ १९॥

'अत: सीताकी रक्षा न करनेके कारण मैंने धर्म और अर्थके संग्रहको नष्ट कर दिया, अतएव मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ। मेरा हृदय रोषदोषके वशीभूत हो गया है, इसलिये मैं अवश्य ही समस्त लोकका विनाशक हो गया हूँ—मुझे सम्पूर्ण जगत्के विनाशके पापका भागी होना पड़ेगा'॥ २०॥

इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए हनुमान्जीको कई शुभ शकुन दिखायी पड़े, जिनके अच्छे फलोंका वे पहले भी प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे; अत: वे फिर इस प्रकार सोचने लगे—॥ २१॥

'अथवा सम्भव है सर्वाङ्गसुन्दरी सीता अपने ही तेजसे सुरक्षित हों। कल्याणी जनकनन्दिनीका नाश कदापि नहीं होगा; क्योंकि आग आगको नहीं जलाती है॥ २२॥

'सीता अमित तेजस्वी धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी पत्नी हैं। वे अपने चरित्रके बलसे—पातिव्रत्यके प्रभावसे सुरक्षित हैं। आग उन्हें छू भी नहीं सकती॥ २३॥

'अवश्य श्रीरामके प्रभाव तथा विदेहनन्दिनी सीताके पुण्यबलसे ही यह दाहक अग्नि मुझे नहीं जला सकी है॥ २४॥

'फिर जो भरत आदि तीनों भाइयोंकी आराध्य देवी और श्रीरामचन्द्रजीकी हृदयवल्लभा हैं, वे आगसे कैसे नष्ट हो सकेंगी॥ २५॥

'यह दाहक एवं अविनाशी अग्नि सर्वत्र अपना प्रभाव रखती है, सबको जला सकती है, तो भी यह जिनके प्रभावसे मेरी पूँछको नहीं जला पाती है, उन्हीं साक्षात् माता जानकीको कैसे जला सकेगी?'॥ २६॥

उस समय हनुमान्जीने वहाँ विस्मित होकर पुन: उस घटनाको स्मरण किया, जब कि समुद्रके जलमें उन्हें मैनाक पर्वतका दर्शन हुआ था॥ २७॥

वे सोचने लगे—'तपस्या, सत्यभाषण तथा पतिमें अनन्य भक्तिके कारण आर्या सीता ही अग्निको जला सकती हैं, आग उन्हें नहीं जला सकती'॥ २८॥

इस प्रकार भगवती सीताकी धर्मपरायणताका विचार करते हुए हनुमान्जीने वहाँ महात्मा चारणोंके मुखसे निकली हुई ये बातें सुनीं—॥ २९॥

'अहो! हनुमान्जीने राक्षसोंके घरोंमें दु:सह एवं भयंकर आग लगाकर बड़ा ही अद्भुत और दुष्कर कार्य किया है॥ ३०॥

'घरमेंसे भागे हुए राक्षसों, स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंसे भरी हुई सारी लङ्का जन-कोलाहलसे परिपूर्ण हो चीत्कार करती हुई-सी जान पड़ती है। पर्वतकी कन्दराओं, अटारियों, परकोटों और नगरके फाटकोंसहित यह सारी लङ्का नगरी दग्ध हो गयी; परंतु सीतापर आँच नहीं आयी। यह हमारे लिये बड़ी अद्भुत और आश्चर्यकी बात है'॥ ३१-३२॥

हनुमान्जीने जब चारणोंके कहे हुए ये अमृतके समान मधुर वचन सुने, तब उनके हृदयमें तत्काल हर्षोल्लास छा गया॥ ३३॥

अनेक बारके प्रत्यक्ष अनुभव किये हुए शुभ शकुनों, महान् गुणदायक कारणों तथा चारणोंके कहे हुए

पूर्वोक्त वचनोंद्वारा सीताजीके जीवित होनेका निश्चय करके हनुमान्‌जीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३४॥

राजकुमारी सीताको कोई क्षति नहीं पहुँची है, यह जानकर कपिवर हनुमान्‌जीने अपना सम्पूर्ण मनोरथ सफल समझा और पुनः उनका प्रत्यक्ष दर्शन करके लौट जानेका विचार किया॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका पुनः सीताजीसे मिलकर लौटना और समुद्रको लाँघना

तदनन्तर हनुमान्‌जी अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जानकीजीके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले— 'आर्ये! सौभाग्यकी बात है कि इस समय मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ'॥ १॥

सीता अपने पतिके स्नेहमें डूबी हुई थीं। वे हनुमान्‌जीको प्रस्थान करनेके लिये उद्यत जान उन्हें बारम्बार देखती हुई बोलीं—॥ २॥

'तात! निष्पाप वानरवीर! यदि तुम उचित समझो तो एक दिन और यहाँ किसी गुप्त स्थानमें ठहर जाओ, आज विश्राम करके कल चले जाना॥ ३॥

'वानरप्रवर! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीका अपार शोक भी थोड़ी देरके लिये कम हो जायगा॥ ४॥

'कपिश्रेष्ठ! वानरशिरोमणे! जब तुम चले जाओगे, तब फिर तुम्हारे आनेतक मेरे प्राण रहेंगे या नहीं, इसका कोई विश्वास नहीं है॥ ५॥

'वीर! मुझपर दुःख-पर-दुःख पड़ते गये हैं। मैं मानसिक शोकसे दिन-दिन दुर्बल होती जा रही हूँ। अब तुम्हारा दर्शन न होना मेरे हृदयको और भी विदीर्ण करता रहेगा॥ ६॥

'वीर! मेरे सामने यह संदेह अभीतक बना ही हुआ है कि बड़े-बड़े वानरों और रीछोंके सहायक होनेपर भी महाबली सुग्रीव इस दुर्लङ्घ्य समुद्रको कैसे पार करेंगे? उनकी सेनाके वे वानर और भालू तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण भी इस महासागरको कैसे लाँघ सकेंगे?॥ ७-८॥

'तीन ही प्राणियोंमें इस समुद्रको लाँघनेकी शक्ति है—तुममें, गरुड़में अथवा वायुदेवतामें॥ ९॥

'इस कार्यसम्बन्धी दुष्कर प्रतिबन्धके उपस्थित होनेपर तुम्हें क्या समाधान दिखायी देता है ? बताओ, क्योंकि तुम कार्यकुशल हो॥ १०॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कपिश्रेष्ठ! इसमें संदेह नहीं कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें तुम अकेले ही पूर्ण समर्थ हो; परंतु तुम्हारे द्वारा जो विजयरूप फलकी प्राप्ति होगी, उससे तुम्हारा ही यश बढ़ेगा, भगवान् श्रीरामका नहीं॥ ११॥

'परंतु शत्रुसेनाको पीड़ा देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी यदि लङ्काको अपनी सेनासे पददलित करके मुझे यहाँसे ले चलें तो वह उनके योग्य पराक्रम होगा॥ १२॥

'अतः तुम ऐसा उपाय करो, जिससे युद्धवीर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका उनके योग्य पराक्रम प्रकट हो'॥ १३॥

सीताजीकी यह बात स्नेहयुक्त तथा विशेष अभिप्रायसे भरी हुई थी। इसे सुनकर वीर हनुमान्‌ने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १४॥

'देवि! वानर और भालुओंकी सेनाओंके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं। वे तुम्हारे उद्धारके लिये प्रतिज्ञा कर चुके हैं॥ १५॥

'विदेहनन्दिनि! अतः वे वानरराज सुग्रीव सहस्रों कोटि वानरोंसे घिरे हुए तुरंत यहाँ आयेंगे॥ १६॥

'साथ ही वे दोनों वीर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी एक साथ आकर अपने सायकोंसे इस लङ्कापुरीका विध्वंस कर डालेंगे॥ १७॥

'वरारोहे! राक्षसराज रावणको उसके सैनिकोंसहित कालके गालमें डालकर श्रीरघुनाथजी आपको साथ ले शीघ्र ही अपनी पुरीको पधारेंगे॥ १८॥

'इसलिये आप धैर्य धारण करें। आपका भला हो। आप समयकी प्रतीक्षा करें। रावण शीघ्र ही रणभूमिमें श्रीरामके हाथसे मारा जायगा, यह आप अपनी आँखों देखेंगी॥ १९॥

'पुत्र, मन्त्री और भाई-बन्धुओंसहित राक्षसराज रावणके मारे जानेपर आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसी प्रकार मिलेंगी, जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है॥ २०॥

'वानरों और भालुओंके प्रमुख वीरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर आपका सारा शोक दूर कर देंगे'॥ २१॥

विदेहनन्दिनी सीताको इस प्रकार आश्वासन दे वहाँसे जानेका विचार करके पवनकुमार हनुमान्‌ने उन्हें प्रणाम किया॥ २२॥

वे बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर अपने महान् बलका परिचय दे वहाँ ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने सीताको आश्वासन दे, लङ्कापुरीको व्याकुल करके, रावणको चकमा देकर, उसे अपना भयानक बल दिखा, वैदेहीको प्रणाम करके पुनः समुद्रके बीचसे होकर लौट जानेका विचार किया॥ २३-२४½॥

(अब यहाँ उनके लिये कोई कार्य बाकी नहीं रह गया था; अतः) अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो वे शत्रुमर्दन कपिश्रेष्ठ हनुमान् पर्वतोंमें उत्तम अरिष्टगिरिपर चढ़ गये॥२५½॥

ऊँचे-ऊँचे पद्मकों—पद्मके समान वर्णवाले वृक्षोंसे सेवित नीली वनश्रेणियाँ मानो उस पर्वतका परिधान वस्त्र थीं। शिखरोंपर लटके हुए श्याम मेघ उसके लिये उत्तरीय वस्त्र-(चादर-)से प्रतीत होते थे॥ २६½॥

सूर्यकी कल्याणमयी किरणें प्रेमपूर्वक उसे जगाती-सी जान पड़ती थीं। नाना प्रकारके धातु मानो उसके खुले हुए नेत्र थे, जिनसे वह सब कुछ देखता हुआ-सा स्थित था। पर्वतीय नदियोंकी जलराशिके गम्भीर घोषसे ऐसा लगता था, मानो वह पर्वत सस्वर वेदपाठ कर रहा हो॥ २७-२८॥

अनेकानेक झरनोंके कलकल नादसे वह अरिष्टगिरि स्पष्टतया गीत-सा गा रहा था। ऊँचे-ऊँचे देवदारु वृक्षोंके कारण मानो हाथ ऊपर उठाये खड़ा था॥ २९॥

सब ओर जल-प्रपातोंकी गम्भीर ध्वनिसे व्याप्त होनेके कारण चिल्लाता या हल्ला मचाता-सा जान पड़ता था। झूमते हुए सरकंडोंके श्याम वनोंसे वह काँपता-सा प्रतीत होता था॥ ३०॥

वायुके झोंके खाकर हिलते और मधुरध्वनि करते बाँसोंसे उपलक्षित होनेवाला वह पर्वत मानो बाँसुरी बजा रहा था। भयानक विषधर सर्पोंके फुंकारसे लंबी साँस खींचता-सा जान पड़ता था॥ ३१॥

कुहरेके कारण गहरी प्रतीत होनेवाली निश्चल गुफाओंद्वारा वह ध्यान-सा कर रहा था। उठते हुए मेघोंके समान शोभा पानेवाले पार्श्ववर्ती पर्वतोंद्वारा सब ओर विचरता-सा प्रतीत होता था॥ ३२॥

मेघमालाओंसे अलंकृत शिखरोंद्वारा वह आकाशमें अँगड़ाई-सी ले रहा था। अनेकानेक शृङ्गोंसे व्याप्त तथा बहुत-सी कन्दराओंसे सुशोभित था॥ ३३॥

साल, ताल, कर्ण और बहुसंख्यक बाँसके वृक्ष उसे सब ओरसे घेरे हुए थे। फूलोंके भारसे लदे और फैले हुए लता-वितान उस पर्वतके अलंकार थे॥ ३४॥

नाना प्रकारके पशु वहाँ सब ओर भरे हुए थे। विविध धातुओंके पिघलनेसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह पर्वत बहुसंख्यक झरनोंसे विभूषित तथा राशि-राशि शिलाओंसे भरा हुआ था॥ ३५॥

महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागगण वहाँ निवास करते थे। लताओं और वृक्षोंद्वारा वह सब ओरसे आच्छादित था। उसकी कन्दराओंमें सिंह दहाड़ रहे थे॥

व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु भी वहाँ सब ओर फैले हुए थे। स्वादिष्ट फलोंसे लदे हुए वृक्ष और मधुर कन्द-मूल आदिकी वहाँ बहुतायत थी। ऐसे रमणीय पर्वतपर वानरशिरोमणि पवनकुमार हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी शीघ्रता और अत्यन्त हर्षसे प्रेरित होकर चढ़ गये॥ ३७½॥

उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर जो शिलाएँ थीं, वे उनके पैरोंके आघातसे भारी आवाजके साथ चूर-चूर होकर बिखर जाती थीं॥ ३८½॥

उस शैलराज अरिष्टपर आरूढ़ हो महाकपि हनुमान्‌जीने समुद्रके दक्षिण तटसे उत्तर तटपर जानेकी इच्छासे अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया॥ ३९½॥

उस पर्वतपर आरूढ़ होनेके पश्चात् वीरवर पवनकुमारने भयानक सर्पोंसे सेवित उस भीषण महासागरकी ओर दृष्टिपात किया॥ ४०½॥

वायुदेवताके औरस पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान् जैसे वायु आकाशमें तीव्रगतिसे प्रवाहित होती है, उसी प्रकार दक्षिणसे उत्तर दिशाकी ओर बड़े वेगसे (उछलकर) चले॥ ४१½॥

हनुमान्‌जीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण उस श्रेष्ठ पर्वतसे बड़ी भयंकर आवाज हुई और वह अपने काँपते हुए शिखरों, टूटकर गिरते हुए वृक्षों तथा भाँति-भाँतिके प्राणियोंसहित तत्काल धरतीमें धँस गया॥

उनके महान् वेगसे कम्पित हो फूलोंसे लदे हुए बहुसंख्यक वृक्ष इस प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उन्हें वज्र मार गया हो॥ ४४॥

उस समय उस पर्वतकी कन्दराओंमें रहकर दबे हुए महाबली सिंहोंका भयंकर नाद आकाशको फाड़ता हुआ-सा सुनायी दे रहा था॥ ४५॥

भयके कारण जिनके वस्त्र ढीले पड़ गये थे और आभूषण उलट-पलट गये थे, वे विद्याधरियाँ सहसा उस पर्वतसे ऊपरकी ओर उड़ चलीं॥ ४६॥

बड़े-बड़े आकार और चमकीली जीभवाले महाविषैले बलवान् सर्प अपने फन तथा गलेको दबाकर कुण्डलाकार हो गये॥ ४७॥

किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर उस धँसते हुए पर्वतको छोड़कर आकाशमें स्थित हो गये॥ ४८॥

बलवान् हनुमान्‌जीके वेगसे दबकर वह शोभाशाली महीधर वृक्षों और ऊँचे शिखरोंसहित रसातलमें चला गया॥ ४९॥

अरिष्ट पर्वत तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा था। फिर भी उनके पैरोंसे दबकर भूमिके बराबर हो गया॥ ५०॥

जिसकी ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठकर अपने किनारोंका चुम्बन करती थीं, उस खारे पानीके भयानक समुद्रको लीलापूर्वक लाँघ जानेकी इच्छासे हनुमान्‌जी आकाशमें उड़ चले॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका समुद्रको लाँघकर जाम्बवान् और अङ्गद आदि सुहृदोंसे मिलना

पङ्खधारी पर्वतके समान महान् वेगशाली हनुमान्‌जी बिना थके-माँदे उस सुन्दर एवं रमणीय आकाशरूपी समुद्रको पार करने लगे, जिसमें नाग, यक्ष और गन्धर्व खिले हुए कमल और उत्पलके समान थे। चन्द्रमा कुमुद और सूर्य जलकुक्कुटके समान थे। पुष्य और श्रवण नक्षत्र कलहंस तथा बादल सेवार और घासके तुल्य थे। पुनर्वसु विशाल मत्स्य और मंगल बड़े भारी ग्राहके सदृश थे। ऐरावत हाथी वहाँ महान् द्वीप-सा प्रतीत होता था। वह आकाशरूपी समुद्र स्वातीरूपी हंसके विलाससे सुशोभित था तथा वायुसमूहरूप तरङ्गों और चन्द्रमाकी किरणरूप शीतल जलसे भरा हुआ था॥ १—४॥

हनुमान्‌जी आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए, चन्द्रमण्डलको नखोंसे खरोंचते हुए, नक्षत्रों तथा सूर्यमण्डलसहित अन्तरिक्षको समेटते हुए और बादलोंके समूहको खींचते हुए-से अनायास ही अपार महासागरके पार चले जा रहे थे॥ ५-६॥

उस समय आसमानमें सफेद, लाल, नीले, मंजीठके रंगके, हरे और अरुण वर्णके बड़े-बड़े मेघ शोभा पा रहे थे॥ ७॥

वे कभी उन मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे। बारम्बार ऐसा करते हुए हनुमान्‌जी छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ८॥

नाना प्रकारके मेघोंकी घटाओंके भीतर होकर जाते हुए धवलाम्बरधारी वीरवर हनुमान्‌जीका शरीर कभी दीखता था और कभी अदृश्य हो जाता था; अतः वे आकाशमें बादलोंकी आड़में छिपते और प्रकाशित होते चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे॥ ९॥

बारम्बार मेघ-समूहोंको विदीर्ण करने और उनमें होकर निकलनेके कारण वे पवनकुमार हनुमान् आकाशमें गरुड़के समान प्रतीत होते थे॥ १०॥

इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान् अपने महान् सिंहनादसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाको भी मात करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे प्रमुख राक्षसोंको मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे। बड़े-बड़े वीरोंको रौंदकर उन्होंने लङ्कानगरीको व्याकुल तथा रावणको व्यथित कर दिया था। तत्पश्चात् विदेहनन्दिनी सीताको नमस्कार करके वे चले और तीव्र गतिसे पुनः समुद्रके मध्यभागमें आ पहुँचे॥ ११-१२½॥

वहाँ पर्वतराज सुनाभ (मैनाक)-का स्पर्श करके वे पराक्रमी एवं महान् वेगशाली वानरवीर धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति आगे बढ़ गये॥ १३½॥

उत्तर तटके कुछ निकट पहुँचनेपर महागिरि महेन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही उन महाकपिने मेघके समान बड़े जोरसे गर्जना की॥ १४½॥

उस समय मेघकी भाँति गम्भीर स्वरसे बड़ी भारी गर्जना करके उन वानरवीरने सब ओरसे दसों दिशाओंको कोलाहलपूर्ण कर दिया॥ १५½॥

फिर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर उनके विश्रामस्थानकी ओर बढ़े और पूँछ हिलाने एवं जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ १६½॥

जहाँ गरुड़ चलते हैं, उसी मार्गपर बारम्बार सिंहनाद करते हुए हनुमान्‌जीके गम्भीर घोषसे सूर्यमण्डलसहित आकाश मानो फटा जा रहा था॥ १७$\frac{1}{2}$ ॥

उस समय वायुपुत्र हनुमान्‌के दर्शनकी इच्छासे जो शूरवीर महाबली वानर समुद्रके उत्तर तटपर पहलेसे ही बैठे थे, उन्होंने वायुसे टकराये हुए महान् मेघकी गर्जनाके समान हनुमान्‌जीका जोर-जोरसे सिंहनाद सुना॥ १८-१९ ॥

अनिष्टकी आशङ्कासे जिनके मनमें दीनता छा गयी थी, उन समस्त वनवासी वानरोंने उन वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌का मेघ-गर्जनाके समान सिंहनाद सुना॥ २० ॥

गर्जते हुए पवनकुमारका वह सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त वानर अपने सुहृद् हनुमान्‌जीको देखनेकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हो गये॥ २१ ॥

वानर-भालुओंमें श्रेष्ठ जाम्बवान्‌के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हर्षसे खिल उठे और सब वानरोंको निकट बुलाकर इस प्रकार बोले—॥ २२ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि हनुमान्‌जी सब प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। कृतकार्य हुए बिना इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती॥ २३ ॥

महात्मा हनुमान्‌जीकी भुजाओं और जाँघोंका महान् वेग देख तथा उनका सिंहनाद सुन सभी वानर हर्षमें भरकर इधर-उधर उछलने-कूदने लगे॥ २४ ॥

हनुमान्‌जीको देखनेकी इच्छासे वे प्रसन्नतापूर्वक एक वृक्षसे दूसरे वृक्षोंपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरोंपर चढ़ने लगे॥ २५ ॥

वृक्षोंकी सबसे ऊँची शाखापर खड़े होकर वे प्रीतियुक्त वानर अपने स्पष्ट दिखायी देनेवाले वस्त्र हिलाने लगे॥ २६ ॥

जैसे पर्वतकी गुफाओंमें अवरुद्ध हुई वायु बड़े जोरसे शब्द करती है, उसी प्रकार बलवान् पवनकुमार हनुमान्‌ने गर्जना की॥ २७ ॥

मेघोंकी घटाके समान पास आते हुए महाकपि हनुमान्‌को देखकर वे सब वानर उस समय हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २८ ॥

तत्पश्चात् पर्वतके समान विशाल शरीरवाले वेगशाली वीर वानर हनुमान् जो अरिष्ट पर्वतसे उछलकर चले थे, वृक्षोंसे भरे हुए महेन्द्र गिरिके शिखरपर कूद पड़े॥

हर्षसे भरे हुए हनुमान्‌जी पर्वतके रमणीय झरनेके निकट पंख कटे हुए पर्वतके समान आकाशसे नीचे आ गये॥ ३० ॥

उस समय वे सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्नचित्त हो महात्मा हनुमान्‌जीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ ३१ ॥

उन्हें घेरकर खड़े होनेसे उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सब वानर प्रसन्नमुख होकर तुरंतके आये हुए पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌के पास भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री तथा फल-मूल लेकर आये और उनका स्वागत-सत्कार करने लगे॥ ३२-३३ ॥

कोई आनन्दमग्न होकर गर्जने लगे, कोई किलकारियाँ भरने लगे और कितने ही श्रेष्ठ वानर हर्षसे भरकर हनुमान्‌जीके बैठनेके लिये वृक्षोंकी शाखाएँ तोड़ लाये॥

महाकपि हनुमान्‌जीने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों तथा कुमार अङ्गदको प्रणाम किया॥ ३५ ॥

फिर जाम्बवान् और अङ्गदने भी आदरणीय हनुमान्‌जीका आदर-सत्कार किया तथा दूसरे-दूसरे वानरोंने भी उनका सम्मान करके उनको संतुष्ट किया। तत्पश्चात् उन पराक्रमी वानरवीरने संक्षेपमें निवेदन किया—'मुझे सीतादेवीका दर्शन हो गया'॥ ३६ ॥

तदनन्तर वालिकुमार अङ्गदका हाथ अपने हाथमें लेकर हनुमान्‌जी महेन्द्रगिरिके रमणीय वनप्रान्तमें जा बैठे और सबके पूछनेपर उन वानरशिरोमणियोंसे इस प्रकार बोले— 'जनकनन्दिनी सीता लङ्काके अशोकवनमें निवास करती हैं। वहीं मैंने उनका दर्शन किया है'॥

'अत्यन्त भयंकर आकारवाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। साध्वी सीता बड़ी भोली-भाली हैं। वे एक वेणी धारण किये वहाँ रहती हैं और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। उपवासके कारण बहुत थक गयी हैं, दुर्बल और मलिन हो रही हैं तथा उनके केश जटाके रूपमें परिणत हो गये हैं'॥ ३९$\frac{1}{2}$ ॥

उस समय 'सीताका दर्शन हो गया' यह वचन वानरोंको अमृतके समान प्रतीत हुआ। यह उनके महान् प्रयोजनकी सिद्धिका सूचक था। हनुमान्‌जीके मुखसे यह शुभ संवाद सुनकर सब वानर बड़े प्रसन्न हुए॥

कोई हर्षनाद और कोई सिंहनाद करने लगे। दूसरे महाबली वानर गर्जने लगे। कितने ही किलकारियाँ भरने लगे और दूसरे वानर एकको गर्जनाके उत्तरमें स्वयं भी गर्जना करने लगे॥ ४१$\frac{1}{2}$ ॥

बहुत-से कपिकुञ्जर हर्षसे उल्लसित हो अपनी पूँछ ऊपर उठाकर नाचने लगे। कितने ही अपनी लम्बी और मोटी पूँछें घुमाने या हिलाने लगे॥ ४२$\frac{1}{2}$ ॥

कितने ही वानर हर्षोल्लाससे भरकर छलाँगें भरते हुए पर्वत-शिखरोंपर वानरशिरोमणि श्रीमान् हनुमान्‌को छूने लगे॥ ४३½ ॥

हनुमान्‌जीकी उपर्युक्त बात सुनकर अङ्गदने उस समय समस्त वानरवीरोंके बीचमें यह परम उत्तम बात कही— ॥ ४४½ ॥

'वानरश्रेष्ठ! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई नहीं है; क्योंकि तुम इस विशाल समुद्रको लाँघकर फिर इस पार लौट आये॥ ४५½ ॥

'कपिशिरोमणे! एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो। तुम्हारे प्रसादसे ही हम सब लोग सफलमनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे॥ ४६½ ॥

'अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीके प्रति तुम्हारी भक्ति अद्‌भुत है। तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी आश्चर्यजनक है। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी पत्नी सीतादेवीका दर्शन कर आये, अब भगवान् श्रीराम सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकको त्याग देंगे, यह भी सौभाग्यका ही विषय है'॥ ४७-४८ ॥

तत्पश्चात् सभी श्रेष्ठ वानर समुद्रलङ्घन, लङ्का, रावण एवं सीताके दर्शनका समाचार सुननेके लिये एकत्र हुए तथा अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान्‌को चारों ओरसे घेरकर पर्वतकी बड़ी-बड़ी शिलाओंपर आनन्दपूर्वक बैठ गये। वे सब-के-सब हाथ जोड़े हुए थे और उन सबकी आँखें हनुमान्‌जीके मुखपर लगी थीं॥ ४९—५१ ॥

जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गमें देवताओंद्वारा सेवित होकर बैठते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् अङ्गद वहाँ बीचमें विराजमान हुए॥ ५२ ॥

कीर्तिमान् एवं यशस्वी हनुमान्‌जी तथा बाँहोंमें भुजबंद धारण किये अङ्गदके प्रसन्नतापूर्वक बैठनेसे वह ऊँचा एवं महान् पर्वतशिखर दिव्य कान्तिसे प्रकाशित हो उठा॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

जाम्बवान्‌के पूछनेपर हनुमान्‌जीका अपनी लङ्कायात्राका सारा वृत्तान्त सुनाना

तदनन्तर हनुमान् आदि महाबली वानर महेन्द्रगिरिके शिखरपर परस्पर मिलकर बड़े प्रसन्न हुए॥ १ ॥

जब सभी महामनस्वी वानर वहाँ प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये, तब हर्षमें भरे हुए जाम्बवान्‌ने उन पवनकुमार महाकपि हनुमान्‌से प्रेमपूर्वक कार्यसिद्धिका समाचार पूछा—'महाकपे! तुमने देवी सीताको कैसे देखा? वे वहाँ किस प्रकार रहती हैं? और क्रूरकर्मा दशानन उनके प्रति कैसा बर्ताव करता है? ये सब बातें तुम हमें ठीक-ठीक बताओ॥ २—४ ॥

'तुमने देवी सीताको किस प्रकार ढूँढ़ निकाला और उन्होंने तुमसे क्या कहा? इन सब बातोंको सुनकर हमलोग आगेके कार्यक्रमका निश्चितरूपसे विचार करेंगे॥

'वहाँ किष्किन्धामें चलनेपर हमलोगोंको कौन-सी बात कहनी चाहिये और किस बातको गुप्त रखना चाहिये? तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये तुम्हीं इन सब बातोंपर प्रकाश डालो'॥ ६ ॥

जाम्बवान्‌के इस प्रकार पूछनेपर हनुमान्‌जीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सीतादेवीको मन-ही-मन मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा— ॥ ७ ॥

'मैं आपलोगोंके सामने ही समुद्रके दक्षिण तटपर जानेकी इच्छासे सावधान हो महेन्द्रपर्वतके शिखरसे आकाशमें उछला था॥ ८ ॥

'आगे बढ़ते ही मैंने देखा एक परम मनोहर दिव्य सुवर्णमय शिखर प्रकट हुआ है, जो मेरी राह रोककर खड़ा है। वह मेरी यात्राके लिये भयानक विघ्न-सा प्रतीत हुआ। मैंने उसे मूर्तिमान् विघ्न ही माना॥ ९½ ॥

'उस दिव्य उत्तम सुवर्णमय पर्वतके निकट पहुँचनेपर मैंने मन-ही-मन यह विचार किया कि मैं इसे विदीर्ण कर डालूँ॥ १०½ ॥

'फिर तो मैंने अपनी पूँछसे उसपर प्रहार किया। उसकी टक्कर लगते ही उस महान् पर्वतके सूर्यतुल्य तेजस्वी शिखरके सहस्रों टुकड़े हो गये॥ ११½ ॥

'मेरे उस निश्चयको समझकर महागिरि मैनाकने मनको आह्लादित-सा करते हुए मधुर वाणीमें 'पुत्र' कहकर मुझे पुकारा और कहा—'मुझे अपना चाचा समझो। मैं तुम्हारे पिता वायुदेवताका मित्र हूँ॥ १२-१३ ॥

'मेरा नाम मैनाक है और मैं यहाँ महासागरमें निवास करता हूँ। बेटा! पूर्वकालमें सभी श्रेष्ठ पर्वत पङ्खधारी हुआ करते थे॥ १४॥

'वे समस्त प्रजाको पीड़ा देते हुए अपनी इच्छाके अनुसार सब ओर विचरते रहते थे। पर्वतोंका ऐसा आचरण सुनकर पाकशासन भगवान् इन्द्रने वज्रसे इन सहस्रों पर्वतोंके पङ्ख काट डाले; परंतु उस समय तुम्हारे महात्मा पिताने मुझे इन्द्रके हाथसे बचा लिया॥ १५-१६॥

'बेटा! उस समय वायुदेवताने मुझे समुद्रमें लाकर डाल दिया था (जिससे मेरे पङ्ख बच गये); अत: शत्रुदमन वीर! मुझे श्रीरघुनाथजीकी सहायताके कार्यमें अवश्य तत्पर होना चाहिये; क्योंकि भगवान् श्रीराम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं'॥ १७½॥

'महामना मैनाककी यह बात सुनकर मैंने अपना कार्य उन्हें बताया और उनकी आज्ञा लेकर फिर मेरा मन वहाँसे आगे जानेको उत्साहित हुआ। महाकाय मैनाकने उस समय मुझे जानेकी आज्ञा दे दी॥ १८-१९॥

'वह महान् पर्वत भी अपने मानवशरीरसे तो अन्तर्हित हो गया; परंतु पर्वतरूपसे महासागरमें ही स्थित रहा॥ २०॥

'फिर मैं उत्तम वेगका आश्रय ले शेष मार्गपर आगे बढ़ा और दीर्घकालतक बड़े वेगसे उस पथपर चलता रहा॥ २१॥

'तत्पश्चात् बीच समुद्रमें मुझे नागमाता सुरसा देवीका दर्शन हुआ। देवी सुरसा मुझसे इस प्रकार बोलीं—॥

'कपिश्रेष्ठ! देवताओंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताया है, इसलिये मैं तुम्हारा भक्षण करूँगी; क्योंकि सारे देवताओंने आज तुम्हें ही मेरा आहार नियत किया है'॥ २३॥

'सुरसाके ऐसा कहनेपर मैं हाथ जोड़कर विनीतभावसे उसके सामने खड़ा हो गया और उदासमुख होकर यों बोला—॥ २४॥

'देवि! शत्रुओंको संताप देनेवाले दशरथनन्दन श्रीमान् राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ दण्डकारण्यमें आये थे॥ २५॥

'वहाँ दुरात्मा रावणने उनकी पत्नी सीताको हर लिया। मैं इस समय श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूत होकर उन्हीं सीतादेवीके पास जा रहा हूँ॥ २६॥

'तुम भी श्रीरामचन्द्रजीके ही राज्यमें रहती हो, इसलिये तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये। अथवा मैं मिथिलेशकुमारी सीता तथा अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा, यह तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ'॥ २७½॥

'मेरे ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा बोली—'मुझे यह वर मिला हुआ है कि मेरे आहारके रूपमें निकट आया हुआ कोई भी प्राणी मुझे टालकर आगे नहीं जा सकता'॥ २८½॥

'जब सुरसाने ऐसा कहा—उस समय मेरा शरीर दस योजन बड़ा था, किंतु एक ही क्षणमें मैं उससे ड्योढ़ा बड़ा हो गया। तब सुरसाने भी अपने मुँहको मेरे शरीरकी अपेक्षा अधिक फैला लिया॥ २९-३०॥

'उसके फैले हुए मुँहको देखकर मैंने फिर अपने स्वरूपको छोटा कर लिया। उसी मुहूर्तमें मेरा शरीर अँगूठेके बराबर हो गया॥ ३१॥

'फिर तो मैं सुरसाके मुँहमें शीघ्र ही घुस गया और तत्क्षण बाहर निकल आया। उस समय सुरसा देवीने अपने दिव्य रूपमें स्थित होकर मुझसे कहा—

'सौम्य! कपिश्रेष्ठ! अब तुम कार्यसिद्धिके लिये सुखपूर्वक यात्रा करो और विदेहनन्दिनी सीताको महात्मा रघुनाथजीसे मिलाओ॥ ३३॥

'महाबाहु वानर! तुम सुखी रहो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' उस समय सभी प्राणियोंने 'साधु-साधु' कहकर मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ ३४॥

'तत्पश्चात् मैं गरुड़की भाँति उस विशाल आकाशमें फिर उड़ने लगा। उस समय किसीने मेरी परछाईं पकड़ ली, किंतु मैं किसीको देख नहीं पाता था॥ ३५॥

'छाया पकड़ी जानेसे मेरा वेग अवरुद्ध हो गया, अत: मैं दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा; परंतु जिसने मेरी गति रोक दी थी, ऐसा कोई प्राणी मुझे वहाँ नहीं दिखायी दिया॥ ३६॥

'तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि मेरी यात्रामें ऐसा कौन-सा विघ्न पैदा हो गया, जिसका यहाँ रूप नहीं दिखायी दे रहा है॥ ३७॥

'इसी सोचमें पड़े-पड़े मैंने जब नीचेकी ओर दृष्टि डाली, तब मुझे एक भयानक राक्षसी दिखायी दी, जो जलमें निवास करती थी॥ ३८॥

'उस भीषण निशाचरीने बड़े जोरसे अट्टहास करके निर्भय खड़े हुए मुझसे गरज-गरजकर यह अमङ्गलजनक बात कही—॥ ३९॥

'विशालकाय वानर! कहाँ जाओगे ? मैं भूखी हुई हूँ। तुम मेरे लिये मनोवाञ्छित भोजन हो। आओ, चिरकालसे निराहार पड़े हुए मेरे शरीर और प्राणोंको तृप्त करो'॥ ४०॥

'तब मैंने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी बात मान

ली और अपने शरीरको उसके मुखके प्रमाणसे बहुत अधिक बढ़ा लिया॥ ४१ ॥

'परंतु उसका विशाल और भयानक मुख भी मुझे भक्षण करनेके लिये बढ़ने लगा। उसने मुझे या मेरे प्रभावको नहीं जाना तथा मैंने जो छल किया था, वह भी उसकी समझमें नहीं आया॥ ४२ ॥

'फिर तो पलक मारते-मारते मैंने अपने विशाल रूपको अत्यन्त छोटा बना लिया और उसका कलेजा निकालकर आकाशमें उड़ गया॥ ४३ ॥

'मेरे द्वारा कलेजेके काट लिये जानेपर पर्वतके समान भयानक शरीरवाली वह दुष्टा राक्षसी अपनी दोनों बाँहें शिथिल हो जानेके कारण समुद्रके जलमें गिर पड़ी॥ ४४ ॥

'उस समय मुझे आकाशचारी सिद्ध महात्माओंकी यह सौम्य वाणी सुनायी दी—'अहो! इस सिंहिका नामवाली भयानक राक्षसीको हनुमान्‌जीने शीघ्र ही मार डाला'॥ ४५ ॥

'उसे मारकर मैंने फिर अपने उस आवश्यक कार्यपर ध्यान दिया, जिसकी पूर्तिमें अधिक विलम्ब हो चुका था। उस विशाल मार्गको समाप्त करके मैंने पर्वतमालाओंसे मण्डित समुद्रका वह दक्षिण किनारा देखा, जहाँ लङ्कापुरी बसी हुई है॥ ४६½ ॥

'सूर्यदेवके अस्ताचलको चले जानेपर मैंने राक्षसोंकी निवासस्थानभूता लङ्कापुरीमें प्रवेश किया, किंतु वे भयानक पराक्रमी राक्षस मेरे विषयमें कुछ भी जान न सके॥ ४७½ ॥

'मेरे प्रवेश करते ही प्रलयकालके मेघकी भाँति काली कान्तिवाली एक स्त्री अट्टहास करती हुई मेरे सामने खड़ी हो गयी॥ ४८½ ॥

'उसके सिरके बाल प्रज्वलित अग्निके समान दिखायी देते थे। वह मुझे मार डालना चाहती थी। यह देख मैंने बायें हाथके मुक्केसे प्रहार करके उस भयंकर निशाचरीको परास्त कर दिया और प्रदोषकालमें पुरीके भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय उस डरी हुई निशाचरीने मुझसे इस प्रकार कहा—॥ ४९-५० ॥

'वीर! मैं साक्षात् लङ्कापुरी हूँ। तुमने अपने पराक्रमसे मुझे जीत लिया है, इसलिये तुम समस्त राक्षसोंपर पूर्णतः विजय प्राप्त कर लोगे'॥ ५१ ॥

'वहाँ सारी रात नगरमें घर-घर घूमने और रावणके अन्तःपुरमें पहुँचनेपर भी मैंने सुन्दर कटिप्रदेशवाली जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा॥ ५२ ॥

'रावणके महलमें सीताको न देखनेपर मैं शोक-सागरमें डूब गया। उस समय मुझे उस शोकका कहीं पार नहीं दिखायी देता था॥ ५३ ॥

'सोचमें पड़े-पड़े ही मैंने एक उत्तम गृहोद्यान देखा, जो सोनेके बने हुए सुन्दर परकोटेसे घिरा हुआ था॥ ५४ ॥

'तब उस परकोटेको लाँघकर मैंने उस गृहोद्यानको देखा, जो बहुसंख्यक वृक्षोंसे भरा हुआ था। उस अशोकवाटिकाके बीचमें मुझे एक बहुत ऊँचा अशोक-वृक्ष दिखायी दिया॥ ५५ ॥

'उसपर चढ़कर मैंने सुवर्णमय कदलीवन देखा तथा उस अशोक-वृक्षके पास ही मुझे सर्वाङ्गसुन्दरी सीताजीका दर्शन हुआ॥ ५६ ॥

वे सदा सोलह वर्षकी-सी अवस्थामें युक्त दिखायी देती हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं। सीताजी उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं और उनकी यह दुर्बलता उनका मुख देखते ही स्पष्ट हो जाती है। वे एक ही वस्त्र पहनी हुई हैं और उनके केश धूलसे धूसर हो गये हैं॥ ५७ ॥

'उनके सारे अङ्ग शोक-संतापसे दीन दिखायी देते हैं। वे अपने स्वामीके हित-चिन्तनमें तत्पर हैं। रक्त-मांसका भोजन करनेवाली क्रूर एवं कुरूप राक्षसियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनकी रखवाली करती हैं। ठीक उसी तरह जैसे बहुत-सी बाघिनें किसी हरिणीको घेरे हुए खड़ी हों॥ ५८½ ॥

'मैंने देखा, वे राक्षसियोंके बीचमें बैठी थीं और राक्षसियाँ उन्हें बारम्बार धमका रही थीं। वे सिरपर एक ही वेणी धारण किये दीनभावसे अपने पतिके चिन्तनमें तल्लीन हो रही थीं। धरती ही उनकी शय्या है। जैसे हेमन्त-ऋतु आनेपर कमलिनी सूखकर श्रीहीन हो जाती है, उसी प्रकार उनके सारे अङ्ग कान्तिहीन हो गये हैं॥ ५९-६० ॥

'रावणकी ओरसे उनका हार्दिक भाव सर्वथा दूर है। वे मरनेका निश्चय कर चुकी हैं। उसी अवस्थामें मैं किसी तरह शीघ्रतापूर्वक मृगनयनी सीताके पास पहुँच सका॥ ६१ ॥

'वैसी अवस्थामें पड़ी हुई उन यशस्विनी नारी श्रीरामपत्नी सीताको अशोक-वृक्षके नीचे बैठी देख मैं भी उस वृक्षपर स्थित हो गया और उन्हें वहींसे निहारने लगा॥ ६२ ॥

'इतनेहीमें रावणके महलमें करधनी और नूपुरोंकी झनकारसे मिला हुआ अधिक गम्भीर कोलाहल सुनायी पड़ा॥ ६३॥

'फिर तो मैंने अत्यन्त उद्विग्न होकर अपने स्वरूपको समेट लिया—छोटा बना लिया और पक्षीके समान उस गहन शिंशपा (अशोक) वृक्षमें छिपा बैठा रहा॥ ६४॥

'इतनेहीमें रावणकी स्त्रियाँ और महाबली रावण—ये सब-के-सब उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ सीतादेवी विराजमान थीं॥ ६५॥

'राक्षसोंके स्वामी रावणको देखते ही सुन्दर कटिप्रदेशवाली सीता अपनी जाँघोंको सिकोड़कर और उभरे हुए दोनों स्तनोंको भुजाओंसे ढककर बैठ गयीं॥

'वे अत्यन्त भयभीत और उद्विग्न होकर इधर-उधर देखने लगीं। उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी देता था। भयसे काँपती हुई अत्यन्त दु:खिनी तपस्विनी सीताके सामने जा दशमुख रावण नीचे सिर किये उनके चरणोंमें गिर पड़ा और इस प्रकार बोला—'विदेहकुमारी! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। तुम मुझे अधिक आदर दो'॥ ६७-६८॥

'(इतनेपर भी अपने प्रति उनकी उपेक्षा देख वह कुपित होकर बोला—) 'गर्वीली सीते! यदि तू घमंडमें आकर मेरा अभिनन्दन नहीं करेगी तो आजसे दो महीनेके बाद मैं तेरा खून पी जाऊँगा'॥ ६९॥

'दुरात्मा रावणकी यह बात सुनकर सीताने अत्यन्त कुपित हो यह उत्तम वचन कहा—॥ ७०॥

'नीच निशाचर! अमित तेजस्वी भगवान् श्रीरामकी पत्नी और इक्ष्वाकुकुलके स्वामी महाराज दशरथकी पुत्रवधूसे यह न कहने योग्य बात कहते समय तेरी जीभ क्यों नहीं गिर गयी?॥ ७१$\frac{1}{2}$॥

'दुष्ट पापी! तुझमें क्या पराक्रम है ? मेरे पतिदेव जब निकट नहीं थे, तब तू उन महात्माकी दृष्टिसे छिपकर चोरी-चोरी मुझे हर लाया॥ ७२$\frac{1}{2}$॥

'तू भगवान् श्रीरामकी समानता नहीं कर सकता। तू तो उनका दास होने योग्य भी नहीं है। श्रीरघुनाथजी सर्वथा अजेय, सत्यभाषी, शूरवीर और युद्धके अभिलाषी एवं प्रशंसक हैं'॥ ७३$\frac{1}{2}$॥

'जनकनन्दिनीके ऐसी कठोर बात कहनेपर दशमुख रावण चितामें लगी हुई आगकी भाँति सहसा क्रोधसे जल उठा और अपनी क्रूर आँखें फाड़-फाड़कर देखता हुआ दाहिना मुक्का तानकर मिथिलेशकुमारीको मारनेके लिये तैयार हो गया। यह देख उस समय वहाँ खड़ी हुई स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं। इतनेहीमें उन स्त्रियोंके बीचसे उस दुरात्माकी सुन्दरी भार्या मन्दोदरी झपटकर आगे आयी और उसने रावणको ऐसा करनेसे रोका। साथ ही उस कामपीड़ित निशाचरसे मधुर वाणीमें कहा—॥ ७४—७७॥

'महेन्द्रके समान पराक्रमी राक्षसराज! सीतासे तुम्हें क्या काम है? आज मेरे साथ रमण करो। जनकनन्दिनी सीता मुझसे अधिक सुन्दरी नहीं है॥ ७८॥

'प्रभो! देवताओं, गन्धर्वों और यक्षोंकी कन्याएँ हैं, इनके साथ रमण करो; सीताको लेकर क्या करोगे?'॥ ७९॥

'तदनन्तर वे सब स्त्रियाँ मिलकर उस महाबली निशाचर रावणको सहसा वहाँसे उठाकर अपने महलमें ले गयीं॥ ८०॥

'दशमुख रावणके चले जानेपर विकराल मुखवाली राक्षसियाँ अत्यन्त दारुण क्रूरतापूर्ण वचनोंद्वारा सीताको डराने-धमकाने लगीं॥ ८१॥

'परंतु जानकीने उनकी बातोंको तिनकेके समान तुच्छ समझा। उनका सारा गर्जन-तर्जन सीताके पास पहुँचकर व्यर्थ हो गया॥ ८२॥

'इस प्रकार गर्जना और सारी चेष्टाओंके व्यर्थ हो जानेपर उन मांसभक्षिणी राक्षसियोंने रावणके पास जाकर उसे सीताजीका महान् निश्चय कह सुनाया॥ ८३॥

'फिर वे सब-की-सब उन्हें अनेक प्रकारसे कष्ट दे हताश तथा उद्योगशून्य हो निद्राके वशीभूत होकर सो गयीं॥ ८४॥

'उन सबके सो जानेपर पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली सीताजी करुणापूर्वक विलापकर अत्यन्त दीन और दु:खी हो शोक करने लगीं॥ ८५॥

'उन राक्षसियोंके बीचसे त्रिजटा नामवाली राक्षसी उठी और अन्य निशाचरियोंसे इस प्रकार बोली—'अरी! तुम सब अपने-आपको ही जल्दी-जल्दी खा जाओ, कजरारे नेत्रोंवाली सीताको नहीं; ये राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी लाड़ली सती-साध्वी सीता इस योग्य नहीं हैं॥ ८६$\frac{1}{2}$॥

'आज अभी मैंने बड़ा भयंकर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला स्वप्न देखा है; वह राक्षसोंके विनाश तथा इन सीतादेवीके पतिकी विजयका सूचक है॥ ८७$\frac{1}{2}$॥

'ये सीता ही श्रीरघुनाथजीके रोषसे हमारी और इन

सब राक्षसियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं; अत: हमलोग विदेहनन्दिनीसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करें—यही मुझे अच्छा लगता है॥ ८८½ ॥

'यदि किसी दु:खिनीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है तो वह अनेक विध दु:खोंसे छूटकर परम उत्तम सुख पाती है॥ ८९½ ॥

'राक्षसियो! केवल प्रणाम करनेमात्रसे मिथिलेशकुमारी जानकी प्रसन्न हो जायँगी और ये महान् भयसे मेरी रक्षा करेंगी'॥ ९०½ ॥

'तब लज्जावती बाला सीता पतिकी विजयकी सम्भावनासे प्रसन्न हो बोलीं—'यदि यह बात सच होगी तो मैं अवश्य तुमलोगोंकी रक्षा करूँगी'॥ ९१½ ॥

'कुछ विश्रामके पश्चात् मैं सीताकी वैसी दारुण दशा देखकर बड़ी चिन्तामें पड़ गया। मेरे मनको शान्ति नहीं मिलती थी। फिर मैंने जानकीजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये एक उपाय सोचा॥ ९२-९३ ॥

'पहले मैंने इक्ष्वाकुवंशकी प्रशंसा की। राजर्षियोंकी स्तुतिसे विभूषित मेरी वह वाणी सुनकर देवी सीताके नेत्रोंमें आँसू भर आया और वे मुझसे बोलीं— ॥ ९४½ ॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम कौन हो? किसने तुम्हें भेजा है? यहाँ कैसे आये हो? और भगवान् श्रीरामके साथ तुम्हारा कैसा प्रेम है? यह सब मुझे बताओ'॥ ९५½ ॥

'उनका वह वचन सुनकर मैंने भी कहा—'देवि! तुम्हारे पतिदेव श्रीरामके सहायक एक भयंकर पराक्रमी बलविक्रमसम्पन्न महाबली वानरराज हैं, जिनका नाम सुग्रीव है॥ ९६-९७ ॥

'उन्हींका मुझे सेवक समझो। मेरा नाम हनुमान् है। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले तुम्हारे पति श्रीरामने मुझे भेजा है। इसलिये मैं यहाँ आया हूँ॥ ९८ ॥

'यशस्विनि! पुरुषसिंह दशरथनन्दन साक्षात् श्रीमान् रामने पहचानके लिये यह अँगूठी तुम्हें दी है॥ ९९ ॥

'देवि! मैं चाहता हूँ कि आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप कहें तो मैं अभी आपको श्रीराम और लक्ष्मणके पास पहुँचा दूँ। इस विषयमें आपका क्या उत्तर है?'॥ १०० ॥

'मेरी यह बात सुनकर और सोच-समझकर जनकनन्दिनी सीताने कहा—'मेरी इच्छा है कि श्रीरघुनाथजी रावणका संहार करके मुझे यहाँसे ले चलें'॥ १०१ ॥

'तब मैंने उन सती-साध्वी देवी आर्या सीताको सिर झुकाकर प्रणाम किया और कोई ऐसी पहचान माँगी, जो श्रीरघुनाथजीके मनको आनन्द प्रदान करनेवाली हो॥

'मेरे माँगनेपर सीताजीने कहा—'लो, यह उत्तम चूडामणि है, जिसे पाकर महाबाहु श्रीराम तुम्हारा विशेष आदर करेंगे'॥ १०३ ॥

'ऐसा कहकर सुन्दरी सीताने मुझे वह परम उत्तम चूडामणि दी और अत्यन्त उद्विग्न होकर वाणीद्वारा अपना संदेश कहा॥ १०४ ॥

'तब मन-ही-मन यहाँ आनेके लिये उत्सुक हो एकाग्रचित्त होकर मैंने राजकुमारी सीताको प्रणाम किया और उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की॥ १०५ ॥

'उस समय उन्होंने मनसे कुछ निश्चय करके पुन: मुझे उत्तर दिया—'हनुमन्! तुम श्रीरघुनाथजीको मेरा सारा वृत्तान्त सुनाना और ऐसा प्रयत्न करना, जिससे सुग्रीवसहित वे दोनों वीरबन्धु श्रीराम और लक्ष्मण मेरा हाल सुनते ही अविलम्ब यहाँ आ जायँ॥ १०६-१०७ ॥

'यदि इसके विपरीत हुआ तो दो महीनेतक मेरा जीवन और शेष है। उसके बाद श्रीरघुनाथजी मुझे नहीं देख सकेंगे। मैं अनाथकी भाँति मर जाऊँगी'॥ १०८ ॥

'उनका यह करुणाजनक वचन सुनकर राक्षसोंके प्रति मेरा क्रोध बहुत बढ़ गया। फिर मैंने शेष बचे हुए भावी कार्यपर विचार किया॥ १०९ ॥

'तदनन्तर मेरा शरीर बढ़ने लगा और तत्काल पर्वतके समान हो गया। मैंने युद्धकी इच्छासे रावणके उस वनको उजाड़ना आरम्भ किया॥ ११० ॥

'जहाँके पशु और पक्षी घबराये और डरे हुए थे, उस उजड़े हुए वनखण्डको वहाँ सोकर उठी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियोंने देखा॥ १११ ॥

'उस वनमें मुझे देखकर वे सब इधर-उधरसे जुट गयीं और तुरंत रावणके पास जाकर उन्होंने वनविध्वंसका सारा समाचार कहा— ॥ ११२ ॥

'महाबली राक्षसराज! एक दुरात्मा वानरने आपके बल-पराक्रमको कुछ भी न समझकर इस दुर्गम प्रमदावनको उजाड़ डाला है॥ ११३ ॥

'महाराज! यह उसकी दुर्बुद्धि ही है, जो उसने आपका अपराध किया। आप शीघ्र ही उसके वधकी आज्ञा दें, जिससे वह फिर बचकर चला न जाय'॥ ११४ ॥

'यह सुनकर राक्षसराजने अपने मनके अनुकूल चलनेवाले किंकर नामक राक्षसोंको भेजा, जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन था॥ ११५ ॥

'वे हाथोंमें शूल और मुद्गर लेकर आये थे। उनकी संख्या अस्सी हजार थी; परंतु मैंने उस वनप्रान्तमें एक परिघसे ही उन सबका संहार कर डाला॥ ११६॥

'उनमें जो मरनेसे बच गये, वे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए भाग गये। उन्होंने रावणको मेरे द्वारा सारी सेनाके मारे जानेका समाचार बताया॥ ११७॥

'तत्पश्चात् मेरे मनमें एक नया विचार उत्पन्न हुआ और मैंने क्रोधपूर्वक वहाँके उत्तम चैत्यप्रासादको, जो लङ्काका सबसे सुन्दर भवन था तथा जिसमें सौ खम्भे लगे हुए थे, वहाँके राक्षसोंका संहार करके तोड़-फोड़ डाला॥११८½॥

तब रावणने घोर रूपवाले भयानक राक्षसोंके साथ जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, प्रहस्तके बेटे जम्बुमालीको युद्धके लिये भेजा॥ ११९½॥

'वह राक्षस बड़ा बलवान् तथा युद्धकी कलामें कुशल था तो भी मैंने अत्यन्त घोर परिघसे मारकर सेवकोंसहित उसे कालके गालमें डाल दिया॥ १२०½॥

'यह सुनकर राक्षसराज रावणने पैदल सेनाके साथ अपने मन्त्रीके पुत्रोंको भेजा, जो बड़े बलवान् थे; किंतु मैंने परिघसे ही उन सबको यमलोक भेज दिया॥ १२१-१२२॥

'समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले मन्त्रिकुमारोंको मारा गया सुनकर रावणने पाँच शूरवीर सेनापतियोंको भेजा॥ १२३॥

'उन सबको भी मैंने सेनासहित मौतके घाट उतार दिया। तब दशमुख रावणने अपने पुत्र महाबली अक्षकुमारको बहुसंख्यक राक्षसोंके साथ युद्धके लिये भेजा॥ १२४½॥

'मन्दोदरीका वह पुत्र युद्धकी कलामें बड़ा प्रवीण था। वह आकाशमें उड़ रहा था। उसी समय मैंने सहसा उसके दोनों पैर पकड़ लिये और सौ बार घुमाकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया। इस तरह वहाँ पड़े हुए कुमार अक्षको मैंने पीस डाला॥ १२५-१२६॥

'अक्षकुमार युद्धभूमिमें आया और मारा गया— यह सुनकर दशमुख रावणने अत्यन्त कुपित हो अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजित्‌को, जो बड़ा ही रणदुर्मद और बलवान् था, भेजा॥ १२७½॥

'उसके साथ आयी हुई सारी सेनाको और उस राक्षस-शिरोमणिको भी युद्धमें हतोत्साह करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ॥ १२८½॥

'रावणने इस महाबली महाबाहु वीरको अनेक मदमत्त वीरोंके साथ बड़े विश्वाससे भेजा था॥ १२९½॥

'इन्द्रजित्‌ने देखा, मेरी सारी सेना कुचल डाली गयी, तब उसने समझ लिया कि इस वानरका सामना करना असम्भव है। अत: उसने बड़े वेगसे ब्रह्मास्त्र चलाकर मुझे बाँध लिया। फिर तो वहाँ राक्षसोंने मुझे रस्सियोंसे भी बाँधा॥ १३०-१३१॥

'इस तरह मुझे पकड़कर वे सब रावणके समीप ले आये। दुरात्मा रावणने मुझे देखकर वार्तालाप आरम्भ किया और पूछा—'तू लङ्कामें क्यों आया? तथा राक्षसोंका वध तूने क्यों किया ?' मैंने वहाँ उत्तर दिया, 'यह सब कुछ मैंने सीताजीके लिये किया है'॥ १३२-१३३॥

'प्रभो! जनकनन्दिनीके दर्शनकी इच्छासे ही मैं तुम्हारे महलमें आया हूँ। मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ, जातिका वानर हूँ और हनुमान् मेरा नाम है। मुझे श्रीरामचन्द्रजीका दूत और सुग्रीवका मन्त्री समझो। श्रीरामचन्द्रजीका दूतकार्य करनेके लिये ही मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ॥ १३४-१३५॥

'तुम मेरे स्वामीका संदेश, जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। राक्षसराज! वानरराज सुग्रीवने तुमसे एकाग्रतापूर्वक जो बात कही है, उसपर ध्यान दो॥ १३६॥

'महाभाग सुग्रीवने तुम्हारी कुशल पूछी है और तुम्हें सुनानेके लिये यह धर्म, अर्थ एवं कामसे युक्त हितकर तथा लाभदायक बात कही है—॥ १३७॥

'जब मैं बहुसंख्यक वृक्षोंसे हरे-भरे ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करता था, उन दिनों रणमें महान् पराक्रम प्रकट करनेवाले रघुनाथजीने मेरे साथ मित्रता स्थापित की थी॥ १३८॥

'राजन्! उन्होंने मुझे बताया कि 'राक्षस रावणने मेरी पत्नीको हर लिया है। उसके उद्धारके कार्यमें सहायता करनेके लिये तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो'॥

'वालीने जिनका राज्य छीन लिया था, उन सुग्रीवके साथ (अर्थात् मेरे साथ) लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामने अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की है॥ १४०॥

'श्रीरघुनाथजीने युद्धस्थलमें एक ही बाणसे वालीको मारकर सुग्रीवको (मुझको) उछलने-कूदनेवाले वानरोंका महाराज बना दिया है॥ १४१॥

'अत: हमलोगोंको सम्पूर्ण हृदयसे उनकी सहायता करनी है। यही सोचकर सुग्रीवने धर्मानुसार मुझे तुम्हारे पास भेजा है॥ १४२॥

'उनका कहना है कि तुम तुरंत सीताको ले आओ और जबतक वीर वानर तुम्हारी सेनाका संहार नहीं करते हैं तभीतक उन्हें श्रीरघुनाथजीको सौंप दो॥ १४३॥

'कौन ऐसा वीर है जिसे वानरोंका यह प्रभाव पहलेसे ही ज्ञात नहीं है। ये वे ही वानर हैं, जो युद्धके लिये निमन्त्रित होकर देवताओंके पास भी उनकी सहायताके लिये जाते हैं'॥ १४४॥

'इस प्रकार वानरराज सुग्रीवने तुमसे संदेश कहा है। मेरे इतना कहते ही रावणने रुष्ट होकर मुझे इस तरह देखा, मानो अपनी दृष्टिसे मुझे दग्ध कर डालेगा॥ १४५॥

'भयंकर कर्म करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणने मेरे प्रभावको न जानकर अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि इस वानरका (मेरा) वध कर दिया जाय॥ १४६॥

'तब उसके परम बुद्धिमान् भाई विभीषणने मेरे लिये राक्षसराज रावणसे प्रार्थना करते हुए कहा—॥

'राक्षसशिरोमणे! ऐसा करना उचित नहीं है। आप अपने इस निश्चयको त्याग दीजिये। आपकी दृष्टि इस समय राजनीतिके विरुद्ध मार्गपर जा रही है॥ १४८॥

'राक्षसराज! राजनीति-सम्बन्धी शास्त्रोंमें कहीं भी दूतके वधका विधान नहीं है। दूत तो वही कहता है, जैसा कहनेके लिये उसे बताया गया होता है। उसका कर्तव्य है कि वह अपने स्वामीके अभिप्रायका ज्ञान करा दे॥ १४९॥

'अनुपम पराक्रमी वीर! दूतका महान् अपराध होनेपर भी शास्त्रमें उसके वधका दण्ड नहीं देखा गया है। उसके किसी अङ्गको विकृत कर देनामात्र ही बताया गया है'॥ १५०॥

'विभीषणके ऐसा कहनेपर रावणने उन राक्षसोंको आज्ञा दी—'अच्छा तो आज इसकी यह पूँछ ही जला दो'॥ १५१॥

'उसकी यह आज्ञा सुनकर राक्षसोंने मेरी पूँछमें सब ओरसे सुतरीकी रस्सियाँ तथा रेशमी और सूती कपड़े लपेट दिये॥ १५२॥

'इस प्रकार बाँध देनेके पश्चात् उन प्रचण्ड पराक्रमी राक्षसोंने काठके डंडों और मुक्कोंसे मारते हुए मेरी पूँछमें आग लगा दी॥ १५३॥

'मैं दिनमें लङ्कापुरीको अच्छी तरह देखना चाहता था, इसलिये राक्षसोंद्वारा बहुत-सी रस्सियोंसे बाँधे और कसे जानेपर भी मुझे कोई पीड़ा नहीं हुई॥ १५४॥

'तत्पश्चात् नगरद्वारपर आकर वे शूरवीर राक्षस पूँछमें लगी हुई आगसे घिरे और बँधे हुए मुझको सड़कपर घुमाते हुए सब ओर मेरे अपराधकी घोषणा करने लगे॥ १५५॥

'इतनेहीमें अपने उस विशाल रूपको संकुचित करके मैंने अपने-आपको उस बन्धनसे छुड़ा लिया और फिर स्वाभाविक रूपमें आकर मैं वहाँ खड़ा हो गया॥ १५६॥

'फिर फाटकपर रखे हुए एक लोहेके परिघको उठाकर मैंने उन सब राक्षसोंको मार डाला। इसके बाद बड़े वेगसे कूदकर मैं उस नगरद्वारपर चढ़ गया॥ १५७॥

'तत्पश्चात् समस्त प्रजाको दग्ध करनेवाली प्रलयाग्निके समान मैं बिना किसी घबराहटके अट्टालिका और गोपुरसहित उस पुरीको अपनी जलती हुई पूँछकी आगसे जलाने लगा॥ १५८॥

'फिर मैंने सोचा 'लङ्काका कोई भी स्थान ऐसा नहीं दिखायी देता है, जो जला हुआ न हो, सारी नगरी जलकर भस्म हो गयी है। अतः अवश्य ही जानकीजी भी नष्ट हो गयी होंगी। इसमें संदेह नहीं कि लङ्काको जलाते-जलाते मैंने सीताजीको भी जला दिया और इस प्रकार भगवान् श्रीरामके इस महान् कार्यको मैंने निष्फल कर दिया'॥ १५९-१६०॥

'इस तरह शोकाकुल होकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया। इतनेहीमें आश्चर्ययुक्त वृत्तान्तका वर्णन करनेवाले चारणोंकी शुभ अक्षरोंसे विभूषित यह वाणी मेरे कानोंमें पड़ी कि जानकीजी इस आगसे नहीं जली हैं॥ १६१½॥

'उस अद्भुत वाणीको सुनकर मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'शुभ शकुनोंसे भी यही जान पड़ता है कि जानकीजी नहीं जली हैं; क्योंकि पूँछमें आग लग जानेपर भी अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं। मेरे हृदयमें महान् हर्ष भरा हुआ है और उत्तम सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायु चल रही है'॥१६२-१६३½॥

'जिनके फलोंका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका था, उन उत्तम शकुनों, महान् गुणशाली कारणों तथा ऋषियों (चारणों) की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंसे भी सीताजीके सकुशल होनेका विश्वास करके मेरा मन हर्षसे भर गया॥ १६४½॥

'तत्पश्चात् मैंने पुनः विदेहनन्दिनीका दर्शन किया और फिर उनसे विदा लेकर मैं अरिष्ट पर्वतपर आ गया। वहींसे आपलोगोंके दर्शनकी इच्छासे मैंने

प्रतिप्लवन (दुबारा आकाशमें उड़ना) आरम्भ किया॥

'तत्पश्चात् वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित मार्गका आश्रय ले यहाँ पहुँचकर मैंने आपलोगोंका दर्शन किया है॥ १६७॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और आपलोगोंके प्रभावसे मैंने सुग्रीवके कार्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ किया है॥ १६८॥

'यह सारा कार्य मैंने वहाँ यथोचित रूपसे सम्पन्न किया है। जो कार्य नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है, वह सब आपलोग पूर्ण करें'॥ १६९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

यह सब वृत्तान्त बताकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने पुनः उत्तम बातें कहनी आरम्भ कीं—॥ १॥

'कपिवरो! श्रीरामचन्द्रजीका उद्योग और सुग्रीवका उत्साह सफल हुआ। सीताजीका उत्तम शील-स्वभाव (पातिव्रत्य) देखकर मेरा मन अत्यन्त संतुष्ट हुआ है॥

'वानरशिरोमणियो! जिस नारीका शील-स्वभाव आर्या सीताके समान होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुपित होनेपर तीनों लोकोंको जला सकती है॥ ३॥

'राक्षसराज रावण सर्वथा महान् तपोबलसे सम्पन्न जान पड़ता है। जिसका अङ्ग सीताका स्पर्श करते समय उनकी तपस्यासे नष्ट नहीं हो गया॥ ४॥

'हाथसे छू जानेपर आगकी लपट भी वह काम नहीं कर सकती, जो क्रोध दिलानेपर जनकनन्दिनी सीता कर सकती हैं॥ ५॥

'इस कार्यमें मुझे जहाँतक सफलता मिली है, वह सब इस रूपमें मैंने आपलोगोंको बता दिया। अब जाम्बवान् आदि सभी महाकपियोंकी सम्मति लेकर हम (सीताको रावणके कारावाससे लौटाकर) सीताके साथ ही श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणका दर्शन करें, यही न्यायसङ्गत जान पड़ता है॥ ६॥

'मैं अकेला भी राक्षसगणोंसहित समस्त लङ्कापुरीका वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ। फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप-जैसे वीर, बलवान्, शुद्धात्मा, शक्तिशाली और विजयाभिलाषी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है॥ ७-८॥

'युद्धस्थलमें सेना, अग्रगामी सैनिक, पुत्र और सगे भाइयोंसहित रावणका तो मैं ही वध कर डालूँगा॥ ९॥

'यद्यपि इन्द्रजित्‌के ब्राह्म अस्त्र, रौद्र, वायव्य तथा वारुण आदि अस्त्र युद्धमें दुर्लक्ष्य होते हैं—किसीकी दृष्टिमें नहीं आते हैं, तथापि मैं ब्रह्माजीके वरदानसे उनका निवारण कर दूँगा और राक्षसोंका संहार कर डालूँगा॥ १०॥

'यदि आपलोगोंकी आज्ञा मिल जाय तो मेरा पराक्रम रावणको कुण्ठित कर देगा। मेरे द्वारा लगातार बरसाये जानेवाले पत्थरोंकी अनुपम वृष्टि रणभूमिमें देवताओंको भी मौतके घाट उतार देगी; फिर उन निशाचरोंकी तो बात ही क्या है?॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

'आपलोगोंकी आज्ञा न होनेके कारण ही मेरा पुरुषार्थ मुझे रोक रहा है। समुद्र अपनी मर्यादाको लाँघ जाय और मन्दराचल अपने स्थानसे हट जाय, परंतु समराङ्गणमें शत्रुओंकी सेना जाम्बवान्‌को विचलित कर दे, यह कभी सम्भव नहीं है॥ १२-१३॥

'सम्पूर्ण राक्षसों और उनके पूर्वजोंको भी यमलोक पहुँचानेके लिये वालीके वीर पुत्र कपिश्रेष्ठ अङ्गद अकेले ही काफी हैं॥ १४॥

'वानरवीर महात्मा नीलके महान् वेगसे मन्दराचल भी विदीर्ण हो सकता है; फिर युद्धमें राक्षसोंका नाश करना उनके लिये कौन बड़ी बात है?॥ १५॥

'तुम सब-के-सब बताओ तो सही—देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, नाग और पक्षियोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो मैन्द अथवा द्विविदके साथ लोहा ले सके?॥ १६॥

'ये दोनों वानरशिरोमणि महान् वेगशाली तथा अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं। समराङ्गणमें इन दोनोंका

सामना करनेवाला मुझे कोई नहीं दिखायी देता॥ १७॥

'मैंने अकेले ही लङ्कावासियोंको मार गिराया, नगरमें आग लगा दी और सारी पुरीको जलाकर भस्म कर दिया। इतना ही नहीं, वहाँकी सब सड़कोंपर मैंने अपने नामका डंका पीट दिया॥ १८॥

'अत्यन्त बलशाली श्रीराम और महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास और वायुदेवताका पुत्र हूँ। हनुमान् मेरा नाम है—इस प्रकार सर्वत्र अपने नामकी घोषणा कर दी है॥ १९-२०॥

'दुरात्मा रावणकी अशोकवाटिकाके मध्यभागमें एक अशोक-वृक्षके नीचे साध्वी सीता बड़ी दयनीय अवस्थामें रहती हैं॥ २१॥

'राक्षसियोंसे घिरी हुई होनेके कारण वे शोक-संतापसे दुर्बल होती जा रही हैं। बादलोंकी पंक्तिसे घिरी हुई चन्द्रलेखाकी भाँति श्रीहीन हो गयी हैं॥ २२॥

'सुन्दर कटिप्रदेशवाली विदेहनन्दिनी जानकी पतिव्रता हैं। वे बलके घमंडमें भरे रहनेवाले रावणको कुछ भी नहीं समझती हैं तो भी उसीकी कैदमें पड़ी हैं॥ २३॥

'कल्याणी सीता श्रीराममें सम्पूर्ण हृदयसे अनुरक्त हैं, जैसे शची देवराज इन्द्रमें अनन्य प्रेम रखती हैं, उसी प्रकार सीताका चित्त अनन्यभावसे श्रीरामके ही चिन्तनमें लगा हुआ है॥ २४॥

'वे एक ही साड़ी पहने धूलि-धूसरित हो रही हैं। राक्षसियोंके बीचमें रहती हैं और उन्हें बारंबार उनकी डाँट-फटकार सुननी पड़ती है। इस अवस्थामें कुरूप राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताको मैंने प्रमदावनमें देखा है। वे एक ही वेणी धारण किये दीनभावसे केवल अपने पतिदेवके चिन्तनमें लगी रहती हैं॥ २५-२६॥

'वे नीचे भूमिपर सोती हैं। हेमन्त-ऋतुमें कमलिनीकी भाँति उनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है। रावणसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। वे मरनेका निश्चय किये बैठी हैं॥ २७॥

'उन मृगनयनी सीताको मैंने बड़ी कठिनाईसे किसी तरह अपना विश्वास दिलाया। तब उनसे बातचीतका अवसर मिला और सारी बातें मैं उनके समक्ष रख सका॥

'श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रताकी बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। सीताजीमें सुदृढ़ सदाचार (पातिव्रत्य) विद्यमान है। अपने पतिके प्रति उनके हृदयमें उत्तम भक्ति है॥ २९॥

'सीता स्वयं ही जो रावणको नहीं मार डालती हैं, इससे जान पड़ता है कि दशमुख रावण महात्मा है—तपोबलसे सम्पन्न होनेके कारण शाप पानेके अयोग्य है (तथापि सीताहरणके पापसे वह नष्टप्राय ही है)। श्रीरामचन्द्रजी उसके वधमें केवल निमित्तमात्र होंगे॥ ३०॥

'भगवती सीता एक तो स्वभावसे ही दुबली-पतली हैं, दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगसे और भी कृश हो गयी हैं। जैसे प्रतिपदाके दिन स्वाध्याय करनेवाले विद्यार्थीकी विद्या क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी अत्यन्त दुर्बल हो गया है॥ ३१॥

'इस प्रकार महाभागा सीता सदा शोकमें डूबी रहती हैं। अत: इस समय जो प्रतीकार करना हो, वह सब आपलोग करें'॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

अङ्गदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उत्साहपूर्ण विचार और जाम्बवान्‌के द्वारा उसका निवारण

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर बालिपुत्र अङ्गदने कहा—'अश्विनीकुमारके पुत्र ये मैन्द और द्विविद दोनों वानर अत्यन्त वेगशाली और बलवान् हैं॥ १॥

'पूर्वकालमें ब्रह्माजीका वर मिलनेसे इनका अभिमान बढ़ गया और ये बड़े घमण्डमें भर गये थे। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने अश्विनीकुमारोंका मान रखनेके लिये पहले इन दोनोंको यह अनुपम वरदान दिया था कि तुम्हें कोई भी मार नहीं सकता। उस वरके अभिमानसे मत्त हो इन दोनों महाबली वीरोंने देवताओंकी विशाल सेनाको मथकर अमृत पी लिया था॥ २-३$\frac{1}{2}$॥

'ये ही दोनों यदि क्रोधमें भर जायँ तो हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकते हैं। भले ही और सब वानर बैठे रहें॥ ४$\frac{1}{2}$॥

'मैं अकेला भी राक्षसगणोंसहित समस्त लङ्कापुरीका

वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ। फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप-जैसे वीर, बलवान्, शुद्धात्मा, शक्तिशाली और विजयाभिलाषी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है?॥ ५-६½ ॥

'वायुपुत्र हनुमान्‌जीने अकेले जाकर अपने पराक्रमसे ही लङ्काको फूँक डाला—यह बात हम सबलोगोंने सुन ही ली। आप-जैसे ख्यातनामा पुरुषार्थी वीरोंके रहते हुए मुझे भगवान् श्रीरामके सामने यह निवेदन करना उचित नहीं जान पड़ता कि 'हमने सीतादेवीका दर्शन तो किया, किंतु उन्हें ला नहीं सके'॥ ७-८ ॥

'वानरशिरोमणियो! देवताओं और दैत्योंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो दूरतककी छलाँग मारने और पराक्रम दिखानेमें आप-लोगोंकी समानता कर सके॥ ९ ॥

'अतः निशाचरसमुदायसहित लङ्काको जीतकर, युद्धमें रावणका वध करके, सीताको साथ ले, सफल-मनोरथ एवं प्रसन्नचित्त होकर हमलोग श्रीरामचन्द्रजीके पास चलें॥ १० ॥

'जब हनुमान्‌जीने राक्षसोंके प्रमुख वीरोंको मार डाला है, ऐसी परिस्थितिमें हमारा इसके सिवा और क्या कर्तव्य हो सकता है कि हम जनकनन्दिनी सीताको साथ लेकर ही चलें॥ ११ ॥

'कपिवरो! हम जनककिशोरीको ले चलकर श्रीराम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी कर दें। किष्किन्धामें जुटे हुए उन सब वानरोंको कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है। हमलोग ही लङ्कामें चलकर वहाँके मुख्य-मुख्य राक्षसोंका वध कर डालें, उसके बाद लौटकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीवका दर्शन करें'॥ १२-१३ ॥

अङ्गदका ऐसा संकल्प जानकर वानर-भालुओंमें श्रेष्ठ और अर्थतत्त्वके ज्ञाता जाम्बवान्‌ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सार्थक बात कही—॥ १४ ॥

'महाकपे! तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि इस समय जो कुछ कह रहे हो, यह बुद्धिमानीकी बात नहीं है; क्योंकि वानरराज सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने हमें उत्तम दक्षिण दिशामें केवल सीताको खोजनेकी आज्ञा दी है, साथ ले आनेकी नहीं॥ १५½ ॥

'यदि हमलोग किसी तरह सीताको जीतकर उनके पास ले भी चलें तो नृपश्रेष्ठ श्रीराम अपने कुलके व्यवहारका स्मरण करते हुए हमारे इस कार्यको पसंद नहीं करेंगे॥ १६½ ॥

'राजा श्रीरामने सभी प्रमुख वानरवीरोंके सामने स्वयं ही सीताको जीतकर लानेकी प्रतिज्ञा की है, उसे वे मिथ्या कैसे करेंगे?॥ १७½ ॥

'अतः वानरशिरोमणियो! ऐसी अवस्थामें हमारा किया-कराया कार्य निष्फल हो जायगा। भगवान् श्रीरामको संतोष भी नहीं होगा और हमारा पराक्रम दिखाना भी व्यर्थ सिद्ध होगा॥ १८½ ॥

'इसलिये हम सब लोग इस कार्यकी सूचना देनेके लिये वहीं चलें, जहाँ लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीराम और महातेजस्वी सुग्रीव विद्यमान हैं॥ १९ ॥

'राजकुमार! तुम जैसा देखते या सोचते हो, यह विचार हमलोगोंके योग्य ही है—हम इसे न कर सकें, ऐसी बात नहीं है; तथापि इस विषयमें भगवान् श्रीरामका जैसा निश्चय हो, उसीके अनुसार तुम्हें कार्यसिद्धिपर दृष्टि रखनी चाहिये'॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६० ॥

इकसठवाँ सर्ग

वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एवं फलोंका मनमाना उपभोग करना और वनरक्षकको घसीटना

तदनन्तर अङ्गद आदि सभी वीर वानरों और महाकपि हनुमान्‌ने भी जाम्बवान्‌की बात मान ली॥ १ ॥

फिर वे सब श्रेष्ठ वानर पवनपुत्र हनुमान्‌को आगे करके मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव करते हुए महेन्द्रगिरिके शिखरसे उछलते-कूदते चल दिये॥ २ ॥

वे मेरु पर्वतके समान विशालकाय और बड़े-बड़े मदमत्त गजराजोंके समान महाबली वानर आकाशको आच्छादित करते हुए-से जा रहे थे॥ ३ ॥

उस समय सिद्ध आदि भूतगण अत्यन्त वेगशाली महाबली बुद्धिमान् हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे और अपलक नेत्रोंसे उनकी ओर इस तरह देख रहे थे, मानो अपनी दृष्टियोंद्वारा ही उन्हें ढो रहे हों॥

श्रीरघुनाथजीके कार्यकी सिद्धि करनेका उत्तम यश पाकर उन वानरोंका मनोरथ सफल हो गया था। उस कार्यकी सिद्धि हो जानेसे उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। वे सभी भगवान् श्रीरामको प्रिय संवाद सुनानेके लिये उत्सुक थे। सभी युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रावणका पराभव हो—ऐसा सबने निश्चय कर लिया था तथा वे सब-के-सब मनस्वी वीर थे॥ ५-६॥

आकाशमें छलाँग मारते हुए वे वनवासी वानर सैकड़ों वृक्षोंसे भरे हुए एक सुन्दर वनमें जा पहुँचे, जो नन्दनवनके समान मनोहर था॥ ७॥

उसका नाम मधुवन था। सुग्रीवका वह मधुवन सर्वथा सुरक्षित था। समस्त प्राणियोंमेंसे कोई भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता था। उसे देखकर सभी प्राणियोंका मन लुभा जाता था॥ ८॥

कपिश्रेष्ठ महात्मा सुग्रीवके मामा महावीर दधिमुख नामक वानर सदा उस वनकी रक्षा करते थे॥ ९॥

वानरराज सुग्रीवके उस मनोरम महावनके पास पहुँचकर वे सभी वानर वहाँका मधु पीने और फल खाने आदिके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये॥ १०॥

तब हर्षसे भरे हुए तथा मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले उन वानरोंने उस महान् मधुवनको देखकर कुमार अङ्गदसे मधुपान करनेकी आज्ञा माँगी॥ ११॥

उस समय कुमार अङ्गदने जाम्बवान् आदि बड़े-बूढ़े वानरोंकी अनुमति लेकर उन सबको मधु पीनेकी आज्ञा दे दी॥ १२॥

बुद्धिमान् वालिपुत्र राजकुमार अङ्गदकी आज्ञा पाकर वे वानर भौंरोंके झुंडसे भरे हुए वृक्षोंपर चढ़ गये॥ १३॥

वहाँके सुगन्धित फल-मूलोंका भक्षण करते हुए उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी मदसे उन्मत्त हो गये॥ १४॥

युवराजकी अनुमति मिल जानेसे सभी वानरोंको बड़ा हर्ष हुआ। वे आनन्दमग्न होकर इधर-उधर नाचने लगे॥ १५॥

कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई नमस्कार करते, कोई गिरते-पड़ते, कोई जोर-जोरसे चलते, कोई उछलते-कूदते और कोई प्रलाप करते थे॥ १६॥

कोई एक-दूसरेके पास जाकर मिलते, कोई आपसमें विवाद करते, कोई एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर दौड़ जाते और कोई वृक्षोंकी डालियोंसे पृथ्वीपर कूद पड़ते थे॥

कितने ही प्रचण्ड वेगवाले वानर पृथ्वीसे दौड़कर बड़े-बड़े वृक्षोंकी चोटियोंतक पहुँच जाते थे। कोई गाता तो दूसरा उसके पास हँसता हुआ जाता था। कोई हँसते हुएके पास जोर-जोरसे रोता हुआ पहुँचता था॥ १८॥

कोई दूसरेको पीड़ा देता तो दूसरा उसके पास बड़े जोरसे गर्जना करता हुआ आता था। इस प्रकार वह सारी वानरसेना मदोन्मत्त होकर उसके अनुरूप चेष्टा कर रही थी। वानरोंके उस समुदायमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो मतवाला न हो गया हो और कोई भी ऐसा नहीं था, जो दर्पसे भर न गया हो॥ १९॥

तदनन्तर मधुवनके फल-मूल आदिका भक्षण होता और वहाँके वृक्षोंके पत्तों एवं फूलोंको नष्ट किया जाता देख दधिमुख नामक वानरको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन वानरोंको वैसा करनेसे रोका॥ २०॥

जिनपर अधिक नशा चढ़ गया था, उन बड़े-बड़े वानरोंने वनकी रक्षा करनेवाले उस वृद्ध वानरवीरको उलटे डाँट बतानी शुरू की, तथापि उग्र तेजस्वी दधिमुखने पुनः उन वानरोंसे वनकी रक्षा करनेका विचार किया॥ २१॥

उन्होंने निर्भय होकर किन्हीं-किन्हींको कड़ी बातें सुनायीं। कितनोंको थप्पड़ोंसे मारा। बहुतोंके साथ भिड़कर झगड़ा किया और किन्हीं-किन्हींके प्रति शान्तिपूर्ण उपायसे ही काम लिया॥ २२॥

मदके कारण जिनके वेगको रोकना असम्भव हो गया था, उन वानरोंको जब दधिमुख बलपूर्वक रोकनेकी चेष्टा करने लगे, तब वे सब मिलकर उन्हें बलपूर्वक इधर-उधर घसीटने लगे। वनरक्षकपर आक्रमण करनेसे राजदण्ड प्राप्त होगा, इसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। अतएव वे सब निर्भय होकर उन्हें इधर-उधर खींचने लगे॥ २३॥

मदके प्रभावसे वे वानर कपिवर दधिमुखको नखोंसे बकोटने, दाँतोंसे काटने और थप्पड़ों तथा लातोंसे मार-मारकर अधमरा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने उस विशाल वनको सब ओरसे फल आदिसे शून्य कर दिया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

वानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुखका पराभव तथा सेवकोंसहित दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना

उस समय वानरशिरोमणि कपिवर हनुमान्‌ने अपने साथियोंसे कहा—'वानरो! तुम सब लोग बेखटके मधुका पान करो। मैं तुम्हारे विरोधियोंको रोकूँगा'॥

हनुमान्‌जीकी बात सुनकर वानरप्रवर अङ्गदने भी प्रसन्नचित्त होकर कहा—'वानरगण अपनी इच्छाके अनुसार मधुपान करें। हनुमान्‌जी इस समय कार्य सिद्ध करके लौटे हैं, अत: इनकी बात स्वीकार करनेके योग्य न हो तो भी मुझे अवश्य माननी चाहिये। फिर ऐसी बातके लिये तो कहना ही क्या है?'॥ २-३½ ॥

अङ्गदके मुखसे ऐसी बात सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर हर्षसे खिल उठे और 'साधु-साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे॥ ४½ ॥

वानरशिरोमणि अङ्गदकी प्रशंसा करके वे सब वानर जहाँ मधुवन था, उस मार्गपर उसी तरह दौड़े गये, जैसे नदीके जलका वेग तटवर्ती वृक्षकी ओर जाता है॥ ५½ ॥

मिथिलेशकुमारी सीताको हनुमान्‌जी तो देखकर आये थे और अन्य वानरोंने उन्हींके मुखसे यह सुन लिया था कि वे लङ्कामें हैं, अत: उन सबका उत्साह बढ़ा हुआ था। इधर युवराज अङ्गदका आदेश भी मिल गया था, इसलिये वे सामर्थ्यशाली सभी वानर वनरक्षकोंपर पूरी शक्तिसे आक्रमण करके मधुवनमें घुस गये और वहाँ इच्छानुसार मधु पीने तथा रसीले फल खाने लगे॥

रोकनेके लिये अपने पास आये हुए रक्षकोंको वे सब वानर सैकड़ोंकी संख्यामें जुटकर उछल-उछलकर मारते थे और मधुवनके मधु पीने एवं फल खानेमें लगे हुए थे॥ ८॥

कितने ही वानर झुंड-के-झुंड एकत्र हो वहाँ अपनी भुजाओंद्वारा एक-एक द्रोण* मधुसे भरे हुए छत्तोंको पकड़ लेते और सहर्ष पी जाते थे॥ ९॥

मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वे सब वानर एक साथ होकर मधुके छत्तोंको पीटते, दूसरे वानर उस मधुको पीते और कितने ही पीकर बचे हुए मधुको फेंक देते थे। कितने ही मदमत्त हो एक-दूसरेको मोमसे मारते थे और कितने ही वानर वृक्षोंके नीचे डालियाँ पकड़कर खड़े हो गये थे॥ १०-११॥

कितने ही वानर मदके कारण अत्यन्त ग्लानिका अनुभव कर रहे थे। उनका वेग उन्मत्त पुरुषोंके समान देखा जाता था। वे मधु पी-पीकर मतवाले हो गये थे, अत: बड़े हर्षके साथ पत्ते बिछाकर सो गये॥ १२॥

कोई एक-दूसरेपर मधु फेंकते, कोई लड़खड़ाकर गिरते, कोई गरजते और कोई हर्षके साथ पक्षियोंकी भाँति कलरव करते थे॥ १३॥

मधुसे मतवाले हुए कितने ही वानर पृथ्वीपर सो गये थे। कुछ ढीठ वानर हँसते और कुछ रोदन करते थे॥ १४॥

कुछ वानर दूसरा काम करके दूसरा बताते थे और कुछ उस बातका दूसरा ही अर्थ समझते थे। उस वनमें जो दधिमुखके सेवक मधुकी रक्षामें नियुक्त थे, वे भी उन भयंकर वानरोंद्वारा रोके या पीटे जानेपर सभी दिशाओंमें भाग गये। उनमेंसे कई रखवालोंको अङ्गदके दलवालोंने जमीनपर पटककर घुटनोंसे खूब रगड़ा और कितनोंको पैर पकड़कर आकाशमें उछाल दिया था अथवा उन्हें पीठके बल गिराकर आकाश दिखा दिया था॥ १५-१६॥

वे सब सेवक अत्यन्त उद्विग्न हो दधिमुखके पास जाकर बोले—'प्रभो! हनुमान्‌जीके बढ़ावा देनेसे उनके दलके सभी वानरोंने बलपूर्वक मधुवनका विध्वंस कर डाला, हमलोगोंको गिराकर घुटनोंसे रगड़ा और हमें पीठके बल पटककर आकाशका दर्शन करा दिया'॥ १७॥

तब उस वनके प्रधान रक्षक दधिमुख नामक वानर मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर वहाँ कुपित हो उठे और उन वानरोंको सान्त्वना देते हुए बोले—॥

'आओ-आओ, चलें इन वानरोंके पास। इनका घमंड बहुत बढ़ गया है। मधुवनके उत्तम मधुको लूटकर खानेवाले इन सबको मैं बलपूर्वक रोकूँगा'॥

दधिमुखका यह वचन सुनकर वे वीर कपिश्रेष्ठ पुन: उन्हींके साथ मधुवनको गये॥ २०॥

* आठ आढक या बत्तीस सेरके मापको 'द्रोण' कहते हैं। यह प्राचीन कालमें प्रचलित था।

इनके बीचमें खड़े हुए दधिमुखने एक विशाल वृक्ष हाथमें लेकर बड़े वेगसे हनुमान्‌जीके दलपर धावा किया। साथ ही वे सब वानर भी उन मधु पीनेवाले वानरोंपर टूट पड़े॥ २१॥

क्रोधसे भरे हुए वे वानर शिला, वृक्ष और पाषाण लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे हनुमान् आदि कपिश्रेष्ठ मधुका सेवन कर रहे थे॥ २२॥

अपने ओठोंको दाँतोंसे दबाते और क्रोधपूर्वक बारंबार धमकाते हुए ये सब वानर उन वानरोंको बलपूर्वक रोकनेके लिये उनके पास आ पहुँचे॥ २३॥

दधिमुखको कुपित हुआ देख हनुमान् आदि सभी श्रेष्ठ वानर उस समय बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े॥ २४॥

वृक्ष लेकर आते हुए वेगशाली महाबली महाबाहु दधिमुखको कुपित हुए अङ्गदने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया॥ २५॥

वे मधु पीकर मदान्ध हो रहे थे, अतः 'ये मेरे नाना हैं' ऐसा समझकर उन्होंने उनपर दया नहीं दिखायी। वे तुरंत बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटककर उन्हें रगड़ने लगे॥ २६॥

उनकी भुजाएँ, जाँघें और मुँह सभी टूट-फूट गये। वे खूनसे नहा गये और व्याकुल हो उठे। वे महावीर कपिकुञ्जर दधिमुख वहाँ दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़े रहे॥ २७॥

उन वानरोंके हाथसे किसी तरह छुटकारा मिलनेपर वानरश्रेष्ठ दधिमुख एकान्तमें आये और वहाँ एकत्र हुए अपने सेवकोंसे बोले—॥ २८॥

'आओ-आओ, अब वहाँ चलें, जहाँ हमारे स्वामी मोटी गर्दनवाले सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके साथ विराजमान हैं॥ २९॥

'राजाके पास चलकर सारा दोष अङ्गदके माथे मढ़ देंगे। सुग्रीव बड़े क्रोधी हैं। मेरी बात सुनकर वे इन सभी वानरोंको मरवा डालेंगे॥ ३०॥

'महात्मा सुग्रीवको यह मधुवन बहुत ही प्रिय है। यह उनके बाप-दादोंका दिव्य वन है। इसमें प्रवेश करना देवताओंके लिये भी कठिन है॥ ३१॥

'मधुके लोभी इन सभी वानरोंकी आयु समाप्त हो चली है। सुग्रीव इन्हें कठोर दण्ड देकर इनके सुहृदोंसहित इन सबको मरवा डालेंगे॥ ३२॥

'राजाकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले ये दुरात्मा राजद्रोही वानर वधके ही योग्य हैं। इनका वध होनेपर ही मेरा अमर्षजनित रोष सफल होगा'॥ ३३॥

वनके रक्षकोंसे ऐसा कहकर उन्हें साथ ले महाबली दधिमुख सहसा उछलकर आकाशमार्गसे चले॥ ३४॥

और पलक मारते-मारते वे उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ बुद्धिमान् सूर्यपुत्र वानरराज सुग्रीव विराजमान थे॥ ३५॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको दूरसे ही देखकर वे आकाशसे समतल भूमिपर कूद पड़े॥ ३६॥

वनरक्षकोंके स्वामी महावीर वानर दधिमुख पृथ्वीपर उतरकर उन रक्षकोंसे घिरे हुए उदास मुख किये सुग्रीवके पास गये और सिरपर अञ्जलि बाँधे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

दधिमुखसे मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान् आदि वानरोंकी सफलताके विषयमें अनुमान

वानर दधिमुखको माथा टेक प्रणाम करते देख वानरशिरोमणि सुग्रीवका हृदय उद्विग्न हो उठा। वे उनसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'उठो-उठो! तुम मेरे पैरोंपर कैसे पड़े हो? मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। तुम सच्ची बात बताओ॥ २॥

'कहो, किसके भयसे यहाँ आये हो। जो पूर्णतः हितकर बात हो, उसे बताओ; क्योंकि तुम सब कुछ कहनेके योग्य हो। मधुवनमें कुशल तो है न ? वानर! मैं तुम्हारे मुखसे यह सब सुनना चाहता हूँ'॥ ३॥

महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आश्वासन देनेपर महाबुद्धिमान् दधिमुख खड़े होकर बोले—॥ ४॥

'राजन्! आपके पिता ऋक्षरजाने, वालीने और आपने भी पहले कभी जिस वनके मनमाने उपभोगके लिये किसीको आज्ञा नहीं दी थी, उसीका हनुमान् आदि वानरोंने आज नाश कर दिया॥ ५॥

'मैंने इन वनरक्षक वानरोंके साथ उन सबको

रोकनेकी बहुत चेष्टा की, परंतु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़े हर्षके साथ फल खाते और मधु पीते हैं॥

'देव! इन हनुमान् आदि वानरोंने जब मधुवनमें लूट मचाना आरम्भ किया, तब हमारे इन वनरक्षकोंने उन सबको रोकनेकी चेष्टा की; परंतु वे वानर इनको और मुझे भी कुछ नहीं गिनते हुए वहाँके फल आदिका भक्षण कर रहे हैं॥ ७॥

'दूसरे, वानर वहाँ खाते-पीते तो हैं ही, उनके सामने जो कुछ बच जाता है, उसे उठाकर फेंक देते हैं और जब हमलोग रोकते हैं, तब वे सब हमें टेढ़ी भौंहें दिखाते हैं॥ ८॥

'जब ये रक्षक उनपर अधिक कुपित हुए, तब उन्होंने इनपर आक्रमण कर दिया। इतना ही नहीं, क्रोधसे भरे हुए उन वानरपुङ्गवोंने इन रक्षकोंको उस वनसे बाहर निकाल दिया॥ ९॥

'बाहर निकालकर उन बहुसंख्यक वीर वानरोंने क्रोधसे लाल आँखें करके वनकी रक्षा करनेवाले इन श्रेष्ठ वानरोंको धर दबाया॥ १०॥

'किन्हींको थप्पड़ोंसे मारा, किन्हींको घुटनोंसे रगड़ दिया, बहुतोंको इच्छानुसार घसीटा और कितनोंको पीठके बल पटककर आकाश दिखा दिया॥ ११॥

'प्रभो! आप-जैसे स्वामीके रहते हुए ये शूरवीर वनरक्षक उनके द्वारा इस तरह मारे-पीटे गये हैं और वे अपराधी वानर अपनी इच्छाके अनुसार सारे मधुवनका उपभोग कर रहे हैं'॥ १२॥

वानरशिरोमणि सुग्रीवको जब इस प्रकार मधुवनके लूटे जानेका वृत्तान्त बताया जा रहा था, उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले परम बुद्धिमान् लक्ष्मणने उनसे पूछा—॥ १३॥

'राजन्! वनकी रक्षा करनेवाला यह वानर यहाँ किस लिये उपस्थित हुआ है? और किस विषयकी ओर संकेत करके इसने दुःखी होकर बात की है?'॥

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल सुग्रीवने यों उत्तर दिया—॥ १५॥

'आर्य लक्ष्मण! वीर वानर दधिमुखने मुझसे यह कहा है कि 'अङ्गद आदि वीर वानरोंने मधुवनका सारा मधु खा-पी लिया है'॥ १६॥

'इसकी बात सुनकर मुझे यह अनुमान होता है कि वे जिस कार्यके लिये गये थे, उसे अवश्य ही उन्होंने पूरा कर लिया है। तभी उन्होंने मधुवनपर आक्रमण किया है। यदि वे अपना कार्य सिद्ध करके न आये होते तो उनके द्वारा ऐसा अपराध नहीं बना होता—वे मेरे मधुवनको लूटनेका साहस नहीं कर सकते थे॥ १७॥

'जब रक्षक उन्हें बारंबार रोकनेके लिये आये, तब उन्होंने इन सबको पटककर घुटनोंसे रगड़ा है तथा इन बलवान् वानर दधिमुखको भी कुछ नहीं समझा है। ये ही मेरे उस वनके मालिक या प्रधान रक्षक हैं। मैंने स्वयं ही इन्हें इस कार्यमें नियुक्त किया है (फिर भी उन्होंने इनकी बात नहीं मानी है)। इससे जान पड़ता है, उन्होंने देवी सीताका दर्शन अवश्य कर लिया। इसमें कोई संदेह नहीं है। यह काम और किसीका नहीं, हनुमान्‌जीका ही है (उन्होंने ही सीताका दर्शन किया है)॥ १८-१९॥

'इस कार्यको सिद्ध करनेमें हनुमान्‌जीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है। वानरशिरोमणि हनुमान्‌में ही कार्य-सिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है। उन्हींमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्रज्ञान भी प्रतिष्ठित है॥

'जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अङ्गद हों तथा अधिष्ठाता हनुमान् हों, उस दलको विपरीत परिणाम— असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है॥ २१$\frac{1}{2}$॥

'दक्षिण दिशासे सीताजीका पता लगाकर लौटे हुए अङ्गद आदि वीर वानरपुङ्गवोंने उस मधुवनपर प्रहार किया है, जिसे पददलित करना किसीके लिये भी असम्भव था। उन्होंने मधुवनको नष्ट किया, उजाड़ा और सब वानरोंने मिलकर समूचे वनका मनमाने ढंगसे उपभोग किया। इतना ही नहीं, उन्होंने वनके रक्षकोंको भी दे मारा और उन्हें अपने घुटनोंसे मार-मारकर घायल किया। इसी बातको बतानेके लिये ये विख्यात पराक्रमी वानर दधिमुख, जो बड़े मधुरभाषी हैं यहाँ आये हैं॥ २२—२५॥

'महाबाहु सुमित्रानन्दन! इस बातको आप ठीक समझें कि अब सीताका पता लग गया; क्योंकि वे सभी वानर उस वनमें जाकर मधु पी रहे हैं॥ २६॥

'पुरुषप्रवर! विदेहनन्दिनीका दर्शन किये बिना उस दिव्य वनका, जो देवताओंसे मेरे पूर्वजको वरदानके रूपमें प्राप्त हुआ है, वे विख्यात वानर कभी विध्वंस नहीं कर सकते थे'॥ २७॥

सुग्रीवके मुखसे निकली हुई कानोंको सुख देनेवाली यह बात सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामके हर्षकी सीमा न रही और

महायशस्वी लक्ष्मण भी हर्षसे खिल उठे॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

दधिमुखकी उपर्युक्त बात सुनकर सुग्रीवको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अपने वनरक्षकको फिर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

'मामा! अपना कार्य सिद्ध करके लौटे हुए उन वानरोंने जो मेरे मधुवनका उपभोग किया है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ; अतः तुम्हें भी कृतकृत्य होकर आये हुए उन कपियोंकी ढिठाई तथा उद्दण्डतापूर्ण चेष्टाओंको क्षमा कर देना चाहिये। अब शीघ्र जाओ और तुम्हीं उस मधुवनकी रक्षा करो। साथ ही हनुमान् आदि सब वानरोंको जल्दी यहाँ भेजो॥ ३०-३१॥

'मैं सिंहके समान दर्पसे भरे हुए उन हनुमान् आदि वानरोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ और इन दोनों रघुवंशी बन्धुओंके साथ मैं उन कृतार्थ होकर लौटे हुए वीरोंसे यह पूछना तथा सुनना चाहता हूँ कि सीताकी प्राप्तिके लिये क्या प्रयत्न किया जाय'॥ ३२॥

वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण पूर्वोक्त समाचारसे अपनेको सफलमनोरथ मानकर हर्षसे पुलकित हो गये थे। उनकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठी थीं। उन्हें इस तरह प्रसन्न देख तथा अपने हर्षोत्फुल्ल अङ्गोंसे कार्यसिद्धिको हाथोंमें आयी हुई जान वानरराज सुग्रीव अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गये॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

दधिमुखसे सुग्रीवका संदेश सुनकर अङ्गद-हनुमान् आदि वानरोंका किष्किन्धामें पहुँचना और हनुमान्‌जीका श्रीरामको प्रणाम करके सीता देवीके दर्शनका समाचार बताना

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर प्रसन्नचित्त वानर दधिमुखने श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको प्रणाम किया॥ १॥

सुग्रीव तथा उन महाबली रघुवंशी बन्धुओंको प्रणाम करके वे शूरवीर वानरोंके साथ आकाशमार्गसे उड़ चले॥

जैसे पहले आये थे, उतनी ही शीघ्रतासे वे वहाँ जा पहुँचे और आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर उन्होंने उस मधुवनमें प्रवेश किया॥ ३॥

मधुवनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने देखा कि समस्त वानर-यूथपति जो पहले उद्दण्ड हो रहे थे, अब मदरहित हो गये हैं—इनका नशा उतर गया है और ये मधुमिश्रित जलका मेहन (मूत्रेन्द्रियद्वारा त्याग) कर रहे हैं॥ ४॥

वीर दधिमुख उनके पास गये और दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँध अङ्गदसे हर्षयुक्त मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले— ॥ ५॥

'सौम्य! इन रक्षकोंने जो अज्ञानवश आपको रोका था, क्रोधपूर्वक आपलोगोंको मधु पीनेसे मना किया था, इसके लिये आप अपने मनमें क्रोध न करें॥ ६॥

'आपलोग दूरसे थके-माँदे आये हैं, अतः फल खाइये और मधु पीजिये। यह सब आपकी ही सम्पत्ति है। महाबली वीर! आप हमारे युवराज और इस वनके स्वामी हैं॥ ७॥

'कपिश्रेष्ठ! मैंने पहले मूर्खतावश जो रोष प्रकट किया था, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि पूर्वकालमें जैसे आपके पिता वानरोंके राजा थे, उसी प्रकार आप और सुग्रीव भी हैं। आपलोगोंके सिवा दूसरा कोई हमारा स्वामी नहीं है॥ ८ $\frac{1}{2}$ ॥

'निष्पाप युवराज! मैंने यहाँसे जाकर आपके चाचा सुग्रीवसे इन सब वानरोंके यहाँ पधारनेका हाल कहा था। इन वानरोंके साथ आपका आगमन सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस वनके विध्वंसका समाचार सुनकर भी उन्हें रोष नहीं हुआ॥ ९-१० $\frac{1}{2}$ ॥

'आपके चाचा वानरराज सुग्रीवने बड़े हर्षके साथ मुझसे कहा है कि उन सबको शीघ्र यहाँ भेजो'॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

दधिमुखकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें कुशल कपिश्रेष्ठ अङ्गदने उन सबसे मधुर वाणीमें कहा— ॥

'वानरयूथपतियो! जान पड़ता है भगवान् श्रीरामने हमलोगोंके लौटनेका समाचार सुन लिया; क्योंकि ये बहुत प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहे हैं। इसीसे मुझे ऐसा ज्ञात होता है। अतः शत्रुओंको संताप देनेवाले वीरो! कार्य पूरा हो जानेपर अब हमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये॥ १३-१४॥

'पराक्रमी वानर इच्छानुसार मधु पी चुके। अब यहाँ कौन-सा कार्य शेष है। इसलिये वहीं चलना चाहिये, जहाँ वानरराज सुग्रीव हैं॥ १५॥

'वानरपुङ्गवो! आप सब लोग मिलकर मुझसे जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा; क्योंकि कर्तव्यके विषयमें मैं आपलोगोंके अधीन हूँ॥ १६॥

'यद्यपि मैं युवराज हूँ तो भी आपलोगोंपर हुक्म नहीं चला सकता। आपलोग बहुत बड़ा कार्य पूरा करके आये हैं, अत: बलपूर्वक आपपर शासन चलाना कदापि उचित नहीं है'॥ १७॥

उस समय इस तरह बोलते हुए अङ्गदका उत्तम वचन सुनकर सब वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—॥ १८॥

'राजन्! कपिश्रेष्ठ! स्वामी होकर भी अपने अधीन रहनेवाले लोगोंसे कौन इस तरहकी बात करेगा? प्राय: सब लोग ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो अहंकारवश अपनेको ही सर्वोपरि मानने लगते हैं॥ १९॥

'आपकी यह बात आपके ही योग्य है। दूसरे किसीके मुँहसे प्राय: ऐसी बात नहीं निकलती। यह नम्रता आपकी भावी शुभयोग्यताका परिचय दे रही है॥ २०॥

'हम सब लोग भी जहाँ वानरवीरोंके अविनाशी पति सुग्रीव विराजमान हैं, वहाँ चलनेके लिये उत्साहित हो यहाँ आपके समीप आये हैं॥ २१॥

'वानरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा प्राप्त हुए बिना हम वानरगण कहीं एक पग भी नहीं जा सकते, यह आपसे सच्ची बात कहते हैं'॥ २२॥

वे वानरगण जब ऐसी बातें कहने लगे, तब अङ्गद बोले—'बहुत अच्छा, अब हमलोग चलें।' इतना कहकर वे महाबली वानर आकाशमें उड़ चले॥ २३॥

आगे-आगे अङ्गद और उनके पीछे वे समस्त वानरयूथपति उड़ने लगे। वे आकाशको आच्छादित करके गुलेलसे फेंके गये पत्थरोंकी भाँति तीव्रगतिसे जा रहे थे॥ २४॥

अङ्गद और वानरवीर हनुमान्‌को आगे करके सभी वेगवान् वानर सहसा आकाशमें उछलकर वायुसे उड़ाये गये बादलोंकी भाँति बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हुए किष्किन्धाके निकट जा पहुँचे॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

अङ्गदके निकट पहुँचते ही वानरराज सुग्रीवने शोकसंतप्त कमलनयन श्रीरामसे कहा—॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

'प्रभो! धैर्य धारण कीजिये। आपका कल्याण हो। सीता देवीका पता लग गया है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि कृतकार्य हुए बिना दिये हुए समयकी अवधिको बिताकर ये वानर कदापि यहाँ नहीं आ सकते थे॥

'शुभदर्शन श्रीराम! अङ्गदकी अत्यन्त प्रसन्नतासे भी मुझे इसी बातकी सूचना मिल रही है। यदि काम बिगाड़ दिया गया होता तो वानरोंमें श्रेष्ठ युवराज महाबाहु अङ्गद मेरे पास कदापि लौटकर नहीं आते॥ २८-२९॥

'यद्यपि कार्य सिद्ध न होनेपर भी इस तरह लोगोंका अपने घर लौटना देखा गया है, तथापि उस दशामें अङ्गदके मुखपर उदासी छायी होती और उनके चित्तमें घबराहटके कारण उथल-पुथल मची होती॥ ३०॥

'मेरे बाप-दादोंके इस मधुवनका, जिसकी पूर्वजोंने भी सदा रक्षा की है, कोई जनककिशोरीका दर्शन किये बिना विध्वंस नहीं कर सकता था॥ ३१॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! आपको पाकर माता कौसल्या उत्तम संतानकी जननी हुई हैं। आप धैर्य धारण कीजिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि देवी सीताका दर्शन हो गया। किसी औरने नहीं, हनुमान्‌जीने ही उनका दर्शन किया है॥ ३२॥

'मतिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! इस कार्यको सिद्ध करनेमें हनुमान्‌जीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है। वानरशिरोमणि हनुमान्‌में ही कार्यसिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है। उन्हींमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्रज्ञान भी प्रतिष्ठित है। जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अङ्गद हों तथा अधिष्ठाता हनुमान् हों, उस दलको विपरीत परिणाम—असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है॥ ३३-३४ $\frac{1}{2}$ ॥

'अमित पराक्रमी श्रीराम! अब आप चिन्ता न करें। ये वनवासी वानर जो इतने अहंकारमें भरे हुए आ रहे हैं, कार्य सिद्ध हुए बिना इनका इस तरह आना सम्भव नहीं था। इनके मधु पीने और वन उजाड़नेसे भी मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है'॥ ३५-३६ $\frac{1}{2}$ ॥

वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि उन्हें आकाशमें निकटसे वानरोंकी किलकारियाँ सुनायी दीं। हनुमान्‌जीके पराक्रमपर गर्व करके किष्किन्धाके पास आ गर्जना करनेवाले वे वनवासी वानर मानो सिद्धिकी सूचना दे रहे थे॥ ३७-३८॥

उन वानरोंका वह सिंहनाद सुनकर कपिश्रेष्ठ सुग्रीवका हृदय हर्षसे खिल उठा। उन्होंने अपनी पूँछ लंबी एवं ऊँची कर दी॥ ३९॥

इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे अङ्गद और वानरवीर हनुमान्‌को आगे करके वे सब वानर वहाँ आ पहुँचे॥ ४०॥

वे अङ्गद आदि वीर आनन्द और उत्साहसे भरकर वानरराज सुग्रीव तथा रघुनाथजीके समीप आकाशसे नीचे उतरे॥ ४१॥

महाबाहु हनुमान्ने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और उन्हें यह बताया कि 'देवी सीता पातिव्रत्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं'॥ ४२॥

'मैंने देवी सीताका दर्शन किया है' हनुमान्जीके मुखसे यह अमृतके समान मधुर वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४३॥

पवनपुत्र हनुमान्के विषयमें सुग्रीवने पहलेसे ही निश्चय कर लिया था कि उन्हींके द्वारा कार्य सिद्ध हुआ है। इसलिये प्रसन्न हुए लक्ष्मणने प्रीतियुक्त सुग्रीवकी ओर बड़े आदरसे देखा॥ ४४॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीरघुनाथजीने परम प्रीति और महान् सम्मानके साथ हनुमान्जीकी ओर देखा॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

हनुमान्जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना

तदनन्तर विचित्र काननोंसे सुशोभित प्रस्रवण पर्वतपर जाकर युवराज अङ्गदको आगे करके श्रीराम, महाबली लक्ष्मण तथा सुग्रीवको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर सब वानरोंने सीताका समाचार बताना आरम्भ किया—॥ १-२॥

'सीता देवी रावणके अन्त:पुरमें रोक रखी गयी हैं। राक्षसियाँ उन्हें धमकाती रहती हैं। श्रीरामके प्रति उनका अनन्य अनुराग है। रावणने सीताके जीवित रहनेके लिये केवल दो मासकी अवधि दे रखी है। इस समय विदेहकुमारीको कोई क्षति नहीं पहुँची है—वे सकुशल हैं।' श्रीरामचन्द्रजीके निकट ये सब बातें बताकर वे वानर चुप हो गये। विदेहकुमारीके सकुशल होनेका वृत्तान्त सुनकर श्रीरामने आगेकी बात पूछते हुए कहा—॥ ३-४॥

'वानरो ! देवी सीता कहाँ हैं ? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? विदेहकुमारीके विषयमें ये सारी बातें मुझसे कहो'॥ ५॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन सुनकर वे वानर श्रीरामके निकट सीताके वृत्तान्तको अच्छी तरह जाननेवाले हनुमान्जीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित करने लगे॥ ६॥

उन वानरोंकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जीने पहले देवी सीताके उद्देश्यसे दक्षिण दिशाकी ओर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया॥ ७॥

फिर बातचीतकी कलाको जाननेवाले उन वानरवीरने सीताजीका दर्शन जिस प्रकार हुआ था, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली उस दिव्य काञ्चनमणिको भगवान् श्रीरामके हाथमें देकर हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—॥८½॥

'प्रभो! मैं जनकनन्दिनी सीताके दर्शनकी इच्छासे उनका पता लगाता हुआ सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर उसके दक्षिण किनारेपर जा पहुँचा॥९½॥

'वहीं दुरात्मा रावणकी नगरी लङ्का है। वह समुद्रके दक्षिण तटपर ही बसी हुई है॥१०½॥

'श्रीराम! लङ्कामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्त:पुरमें प्रमदावनके भीतर राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई सती-साध्वी सुन्दरी देवी सीताका दर्शन किया। वे अपनी सारी अभिलाषाओंको आपमें ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन धारण कर रही हैं। विकराल रूपवाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं और बारंबार उन्हें डाँटती-फटकारती रहती हैं॥ ११-१२½॥

'वीरवर ! देवी सीता आपके साथ सुख भोगनेके योग्य हैं, परंतु इस समय बड़े दु:खसे दिन बिता रही हैं। उन्हें रावणके अन्त:पुरमें रोक रखा गया है और वे राक्षसियोंके पहरेमें रहती हैं। सिरपर एक वेणी धारण किये दु:खी हो सदा आपकी चिन्तामें डूबी रहती हैं॥ १३-१४॥

'वे नीचे भूमिपर सोती हैं। जैसे जाड़ेके दिनोंमें पाला पड़नेके कारण कमलिनी सूख जाती है, उसी प्रकार उनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है। रावणसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। उन्होंने प्राण त्याग देनेका निश्चय कर लिया है॥ १५॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है। निष्पाप नरश्रेष्ठ! मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह महारानी सीताका पता लगाया और धीरे-

धीरे इक्ष्वाकुवंशकी कीर्तिका वर्णन करते हुए किसी प्रकार उनके हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया। तत्पश्चात् देवीसे वार्तालाप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायीं॥ १६-१७॥

'आपकी सुग्रीवके साथ मित्रताका समाचार सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उनका उच्चकोटिका आचार-विचार (पातिव्रत्य) सुदृढ़ है। वे सदा आपमें ही भक्ति रखती हैं॥ १८॥

'महाभाग! पुरुषोत्तम! इस प्रकार जनकनन्दिनीको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते देखा है॥ १९॥

'महामते! रघुनन्दन! चित्रकूटमें आपके पास देवीके रहते समय एक कौएको लेकर जो घटना घटित हुई थी, उस वृत्तान्तको उन्होंने पहचानके रूपमें मुझसे कहा था॥ २०॥

'जानकीजीने आते समय मुझसे कहा—'वायुनन्दन! तुम यहाँ जैसी मेरी हालत देख चुके हो, वह सब भगवान् श्रीरामको बताना और इस मणिको बड़े यत्नसे सुरक्षितरूपमें ले जाकर उनके हाथमें देना॥ २१ $\frac{१}{२}$ ॥

'ऐसे समयमें देना, जब कि सुग्रीव भी निकट बैठकर तुम्हारी कही हुई बातें सुन रहे हों। साथ ही मेरी ये बातें भी उनसे निवेदन करना—'प्रभो! आपकी दी हुई यह कान्तिमती चूड़ामणि मैंने बड़े यत्नसे सुरक्षित रखी थी। जलसे प्रकट हुए इस दीप्तिमान् रत्नको मैंने आपकी सेवामें लौटाया है। निष्पाप रघुनन्दन! संकटके समय इसे देखकर मैं उसी प्रकार आनन्दमग्न हो जाती थी, जैसे आपके दर्शनसे आनन्दित होती हूँ। आपने मेरे ललाटमें जो मैनसिलका तिलक लगाया था, इसको स्मरण कीजिये।' ये बातें जानकीजीने कही थीं॥ २२—२४॥

'उन्होंने यह भी कहा—'दशरथनन्दन! मैं एक मास और जीवन धारण करूँगी। उसके बाद राक्षसोंके वशमें पड़कर प्राण त्याग दूँगी—किसी तरह जीवित नहीं रह सकूँगी'॥ २५॥

'इस प्रकार दुबले-पतले शरीरवाली धर्मपरायणा सीताने मुझे आपसे कहनेके लिये यह संदेश दिया था। वे रावणके अन्तःपुरमें कैद हैं और भयके मारे आँख फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखनेवाली हरिणीके समान वे सशङ्क दृष्टिसे सब ओर देखा करती हैं॥ २६॥

'रघुनन्दन! यही वहाँका वृत्तान्त है, जो सब-का-सब मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दिया। अब सब प्रकारसे समुद्रको पार करनेका प्रयत्न कीजिये'॥ २७॥

राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणको कुछ आश्वासन मिल गया, ऐसा जानकर तथा वह पहचान श्रीरघुनाथजीके हाथमें देकर वायुपुत्र हनुमान्ने देवी सीताकी कही हुई सारी बातें क्रमशः अपनी वाणीद्वारा पूर्णरूपसे कह सुनायीं॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

चूडामणिको देखकर और सीताका समाचार पाकर श्रीरामका उनके लिये विलाप

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर दशरथनन्दन श्रीराम उस मणिको अपनी छातीसे लगाकर रोने लगे। साथ ही लक्ष्मण भी रो पड़े॥ १॥

उस श्रेष्ठ मणिकी ओर देखकर शोकसे व्याकुल हुए श्रीरघुनाथजी अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर सुग्रीवसे इस प्रकार बोले—॥ २॥

'मित्र! जैसे वत्सला धेनु अपने बछड़ेके स्नेहसे थनोंसे दूध झरने लगती है, उसी प्रकार इस उत्तम मणिको देखकर आज मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो रहा है॥ ३॥

'मेरे श्वशुर राजा जनकने विवाहके समय वैदेहीको यह मणिरत्न दिया था, जो उसके मस्तकपर आबद्ध होकर बड़ी शोभा पाता था॥ ४॥

'जलसे प्रकट हुई यह मणि श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजित है। किसी यज्ञमें बहुत संतुष्ट हुए बुद्धिमान् इन्द्रने राजा जनकको यह मणि दी थी॥ ५॥

'सौम्य! इस मणिरत्नका दर्शन करके आज मुझे मानो अपने पूज्य पिताका और विदेहराज महाराज जनकका भी दर्शन मिल गया हो, ऐसा अनुभव हो रहा है॥ ६॥

'यह मणि सदा मेरी प्रिया सीताके सीमन्तपर शोभा पाती थी। आज इसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो सीता ही मुझे मिल गयी॥ ७॥

'सौम्य पवनकुमार! जैसे बेहोश हुए मनुष्यको होशमें लानेके लिये उसपर जलके छींटे दिये जाते हैं, उसी प्रकार विदेहनन्दिनी सीताने मूर्च्छित हुए-से मुझ रामको अपने वाक्यरूपी शीतल जलसे सींचते हुए क्या-क्या कहा है? यह बारंबार बताओ'॥ ८॥

(अब वे लक्ष्मणसे बोले—) 'सुमित्रानन्दन! सीताके यहाँ आये बिना ही जो जलसे उत्पन्न हुई इस मणिको मैं देख रहा हूँ। इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है'॥ ९॥

(फिर वे हनुमान्‌जीसे बोले—) 'वीर पवनकुमार! यदि विदेहनन्दिनी सीता एक मासतक जीवन धारण कर लेगी, तब तो वह बहुत समयतक जी रही है। मैं तो कजरारे नेत्रोंवाली जानकीके बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता॥ १०॥

'तुमने जहाँ मेरी प्रियाको देखा है, उसी देशमें मुझे भी ले चलो। उसका समाचार पाकर अब मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता॥ ११॥

'हाय! मेरी सती-साध्वी सुमध्यमा सीता बड़ी भीरु है। वह उन घोर रूपधारी भयंकर राक्षसोंके बीचमें कैसे रहती होगी?॥ १२॥

'निश्चय ही अन्धकारसे मुक्त किंतु बादलोंसे ढके हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सीताका मुख इस समय शोभा नहीं पा रहा होगा॥ १३॥

'हनुमन्! मुझे ठीक-ठीक बताओ, सीताने क्या-क्या कहा है ? जैसे रोगी दवा लेनेसे जीता है, उसी प्रकार मैं सीताके इस संदेश-वाक्यको सुनकर ही जीवन धारण करूँगा॥ १४॥

'हनुमन्! मुझसे बिछुड़ी हुई मेरी सुन्दर कटिप्रदेशवाली मधुरभाषिणी सुन्दरी प्रियतमा जनक-नन्दिनी सीताने मेरे लिये कौन-सा संदेश दिया है? वह दुःख-पर-दुःख उठाकर भी कैसे जीवन धारण कर रही है?'॥ १५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका भगवान् श्रीरामको सीताका संदेश सुनाना

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर श्रीहनुमान्‌जीने सीताजीकी कही हुई सब बातें उनसे निवेदन कर दीं॥ १॥

वे बोले—'पुरुषोत्तम! जानकी देवीने पहले चित्रकूटपर बीती हुई एक घटनाका यथावत् रूपसे वर्णन किया था। उसे उन्होंने पहचानके तौरपर इस प्रकार कहा था॥ २॥

'पहले चित्रकूटमें कभी जानकी देवी आपके साथ सुखपूर्वक सोयी थीं। वे सोकर आपसे पहले उठ गयीं। उस समय किसी कौएने सहसा उड़कर उनकी छातीमें चोंच मार दी॥ ३॥

'भरताग्रज! आपलोग बारी-बारीसे एक-दूसरेके अङ्कमें सिर रखकर सोते थे। जब आप देवीके अङ्कमें मस्तक रखकर सोये थे, उस समय पुनः उसी पक्षीने आकर देवीको कष्ट देना आरम्भ किया॥ ४॥

'कहते हैं उसने फिर आकर जोरसे चोंच मार दी। तब देवीके शरीरसे रक्त बहने लगा और उससे भीग जानेके कारण आप जग उठे॥ ५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! उस कौएने जब लगातार इस तरह पीड़ा दी, तब देवी सीताने सुखसे सोये हुए आपको जगा दिया॥ ६॥

'महाबाहो! उनकी छातीमें घाव हुआ देख आप विषधर सर्पके समान कुपित हो उठे और इस प्रकार बोले—॥ ७॥

'भीरु! किसने अपने नखोंके अग्रभागसे तुम्हारी छातीमें घाव कर दिया है? कौन कुपित हुए पाँच मुँहवाले सर्पके साथ खेल रहा है?'॥ ८॥

'ऐसा कहकर आपने जब सहसा इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उस कौएको देखा। उसके तीखे पंजे खूनमें रँगे हुए थे और वह सीता देवीकी ओर मुँह करके ही कहीं बैठा था॥ ९॥

सुना है, उड़नेवालोंमें श्रेष्ठ वह कौआ साक्षात् इन्द्रका पुत्र था, जो उन दिनों पृथ्वीपर विचर रहा था। वह वायुदेवताके समान शीघ्रगामी था॥ १०॥

'मतिमानोंमें श्रेष्ठ महाबाहो! उस समय आपके नेत्र क्रोधसे घूमने लगे और आपने उस कौएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया॥ ११॥

'आपने अपनी चटाईमेंसे एक कुशा निकालकर हाथमें ले लिया और उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया।

फिर तो वह कुश प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसका लक्ष्य वह कौआ ही था॥ १२॥

'आपने उस जलते हुए कुशको कौएकी ओर छोड़ दिया। फिर तो वह दीप्तिमान् दर्भ उस कौएका पीछा करने लगा॥ १३॥

'आपके भयसे डरे हुए समस्त देवताओंने भी उस कौएको त्याग दिया। वह तीनों लोकोंमें चक्कर लगाता फिरा, किंतु कहीं भी उसे कोई रक्षक नहीं मिला॥ १४॥

'शत्रुदमन श्रीराम! सब ओरसे निराश होकर वह कौआ फिर वहीं आपकी शरणमें आया। शरणमें आकर पृथ्वीपर पड़े हुए उस कौएको आपने शरणमें ले लिया; क्योंकि आप शरणागतवत्सल हैं। यद्यपि वह वधके योग्य था तो भी आपने कृपापूर्वक उसकी रक्षा की॥ १५½॥

'रघुनन्दन! उस ब्रह्मास्त्रको व्यर्थ नहीं किया जा सकता था, इसलिये आपने उस कौएकी दाहिनी आँख फोड़ डाली॥ १६½॥

'श्रीराम! तदनन्तर आपसे विदा ले वह कौआ भूतलपर आपको और स्वर्गमें राजा दशरथको नमस्कार करके अपने घरको चला गया॥ १७½॥

'(सीता कहती हैं—) 'रघुनन्दन! इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, शक्तिशाली और शीलवान् होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रका प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ?॥ १८½॥

'श्रीराम! दानव, गन्धर्व, असुर और देवता कोई भी समराङ्गणमें आपका सामना नहीं कर सकते॥ १९½॥

'आप बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। यदि मेरे प्रति आपका कुछ भी आदर है तो आप शीघ्र ही अपने तीखे बाणोंसे रणभूमिमें रावणको मार डालिये॥ २०½॥

'हनुमन्! अथवा अपने भाईकी आज्ञा लेकर शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुकुलतिलक नरश्रेष्ठ लक्ष्मण क्यों नहीं मेरी रक्षा करते हैं?॥ २१½॥

'वे दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण वायु तथा अग्निके तुल्य तेजस्वी एवं शक्तिशाली हैं, देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं; फिर किसलिये मेरी उपेक्षा कर रहे हैं?॥ २२½॥

'इसमें संदेह नहीं कि मेरा ही कोई ऐसा महान् पाप है, जिसके कारण वे दोनों शत्रुसंतापी वीर एक साथ रहकर समर्थ होते हुए मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं'॥ २३½॥

'रघुनन्दन! विदेहनन्दिनीका करुणाजनक उत्तम वचन सुनकर मैंने पुनः आर्या सीतासे यह बात कही—॥

'देवि! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे शोकके कारण ही सब कार्योंसे विरत हो रहे हैं। श्रीरामके दुःखी होनेसे लक्ष्मण भी संतप्त हो रहे हैं॥ २५½॥

'किसी तरह आपका दर्शन हो गया (आपके निवास-स्थानका पता लग गया), अतः अब शोक करनेका अवसर नहीं है। भामिनि! आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखोंका अन्त हुआ देखेंगी॥ २६½॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ राजकुमार आपके दर्शनके लिये उत्साहित हो लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर देंगे॥ २७½॥

'वरारोहे! समराङ्गणमें रौद्र राक्षस रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर रघुनाथजी अवश्य ही आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे॥ २८½॥

'सती-साध्वी देवि! अब आप मुझे कोई ऐसी पहचान दीजिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजी जानते हों और जो उनके मनको प्रसन्न करनेवाला हो॥ २९½॥

'महाबली वीर! तब उन्होंने चारों ओर देखकर वेणीमें बाँधने योग्य इस उत्तम मणिको अपने वस्त्रसे खोलकर मुझे दे दिया॥ ३०½॥

'रघुवंशियोंके प्रियतम श्रीराम! आपके लिये इस मणिको दोनों हाथोंमें लेकर मैंने सीतादेवीको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और यहाँ आनेके लिये मैं उतावला हो उठा॥ ३१½॥

'लौटनेके लिये उत्साहित हो मुझे अपने शरीरको बढ़ाते देख सुन्दरी जनकनन्दिनी सीता बहुत दुःखी हो गयीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। मेरी उछलनेकी तैयारीसे वे घबरा गयीं और शोकके वेगसे आहत हो उठीं। उस समय उनका स्वर अश्रुगद्गद हो गया था। वे मुझसे कहने लगीं—'महाकपे! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो, जो मेरे महाबाहु प्रियतम कमलनयन श्रीरामको तथा मेरे यशस्वी देवर महाबाहु लक्ष्मणको भी अपनी आँखोंसे देखोगे'॥ ३२—३५॥

'सीताजीके ऐसा कहनेपर मैंने उन मिथिलेशकुमारीसे कहा—'देवि! जनकनन्दिनी! आप शीघ्र मेरी पीठपर चढ़ जाइये। महाभागे! श्यामलोचने! मैं अभी सुग्रीव और लक्ष्मणसहित आपके पतिदेव श्रीरघुनाथजीका आपको दर्शन कराता हूँ'॥ ३६-३७॥

'यह सुनकर सीतादेवी मुझसे बोलीं—'महाकपे!

वानरशिरोमणे! मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं अपने वशमें होती हुई भी स्वेच्छासे तुम्हारी पीठका आश्रय लूँ॥ ३८॥

'वीर! पहले जो राक्षस रावणके द्वारा मेरे अङ्गोंका स्पर्श हो गया, उस समय वहाँ मैं क्या कर सकती थी? मुझे तो कालने ही पीड़ित कर रखा था। अतः वानरप्रवर! जहाँ वे दोनों राजकुमार हैं, वहाँ तुम जाओ'॥ ३९$\frac{1}{2}$॥

'ऐसा कहकर वे फिर मुझे संदेश देने लगीं—'हनुमन्! सिंहके समान पराक्रमी उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे, मन्त्रियोंसहित सुग्रीवसे तथा अन्य सब लोगोंसे भी मेरा कुशल-समाचार कहना और उनका पूछना॥

'तुम वहाँ ऐसी बात कहना, जिससे महाबाहु रघुनाथजी इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार करें॥ ४२॥

'वानरोंके प्रमुख वीर! मेरे इस तीव्र शोक-वेगको तथा इन राक्षसोंद्वारा जो मुझे डराया-धमकाया जाता है, इसको भी उन श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर कहना। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो'॥ ४३॥

'नरेश्वर! आपकी प्रियतमा संयमशीला आर्या सीताने बड़े विषादके साथ ये सारी बातें कही हैं। मेरी कही हुई इन सब बातोंपर विचार करके आप विश्वास करें कि सतीशिरोमणि सीता सकुशल हैं'॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका सीताके संदेह और अपने द्वारा उनके निवारणका वृत्तान्त बताना

'पुरुषसिंह रघुनन्दन! आपके प्रति स्नेह और सौहार्दके कारण देवी सीताने मेरा सत्कार करके जानेके लिये उतावले हुए मुझसे पुनः यह उत्तम बात कही—॥ १॥

'पवनकुमार! तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामसे अनेक प्रकारसे ऐसी बातें कहना, जिससे वे समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करके मुझे प्राप्त कर लें॥ २॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ किसी गुप्त स्थानमें एक दिनके लिये ठहर जाओ। आज विश्राम करके कल सबेरे यहाँसे चले जाना॥ ३॥

'वानर! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्द-भागिनीको इस शोकविपाकसे थोड़ी देरके लिये भी छुटकारा मिल जाय॥ ४॥

'तुम पराक्रमी वीर हो। जब पुनः आनेके लिये यहाँसे चले जाओगे, तब मेरे प्राणोंके लिये भी संदेह उपस्थित हो जायगा। इसमें संशय नहीं है॥ ५॥

'तुम्हें न देखनेसे होनेवाला शोक दुःख-पर-दुःख उठानेसे पराभव तथा दुर्गतिमें पड़ी हुई मुझ दुःखियाको और भी संताप देता रहेगा॥ ६॥

'वीर! वानरराज! मेरे सामने यह महान् संदेह-सा खड़ा हो गया है कि तुम जिनके सहायक हो, उन वानरों और भालुओंके होते हुए भी रीछों और वानरोंकी वे सेनाएँ तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण इस अपार पारावारको कैसे पार करेंगे?॥ ७-८॥

'निष्पाप पवनकुमार! तीन ही भूतोंमें इस समुद्रको लाँघनेकी शक्ति देखी जाती है—विनतानन्दन गरुड़में, वायुदेवतामें और तुममें॥ ९॥

'वीर! जब इस प्रकार इस कार्यका साधन दुष्कर हो गया है, तब इसकी सिद्धिके लिये तुम कौन-सा समाधान (उपाय) देखते हो। कार्यसिद्धिके उपाय जाननेवालोंमें तुम श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बातका उत्तर दो॥ १०॥

'विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले कपिश्रेष्ठ! इसमें संदेह नहीं कि इस कार्यकी सिद्धिके लिये तुम अकेले ही बहुत हो, तथापि तुम्हारे बलका यह उद्रेक तुम्हारे लिये ही यशकी वृद्धि करनेवाला होगा (श्रीरामके लिये नहीं)॥ ११॥

'यदि श्रीराम अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ यहाँ आकर युद्धमें रावणको मार डालें और विजयी होकर मुझे अपनी पुरीको ले चलें तो यह उनके लिये यशकी वृद्धि करनेवाला होगा॥ १२॥

'जिस प्रकार राक्षस रावणने वीरवर भगवान् श्रीरामके भयसे ही उनके सामने न जाकर छलपूर्वक वनसे मेरा अपहरण किया था, उस तरह श्रीरघुनाथजीको मुझे नहीं प्राप्त करना चाहिये (वे रावणको मारकर ही मुझे ले चलें)॥ १३॥

'शत्रुसेनाका संहार करनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम यदि अपने सैनिकोंद्वारा लङ्काको पददलित करके मुझे अपने साथ ले जायँ तो यह उनके योग्य पराक्रम होगा॥ १४॥

'महात्मा श्रीराम संग्राममें शौर्य प्रकट करनेवाले हैं, अतः जिस प्रकार उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो सके, वैसा ही उपाय तुम करो'॥ १५॥

'सीतादेवीके उस अभिप्राययुक्त, विनयपूर्ण और युक्तिसंगत वचनको सुनकर अन्तमें मैंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १६॥

'देवि! वानर और भालुओंकी सेनाके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े शक्तिशाली हैं। वे आपका उद्धार करनेके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं॥ १७॥

'उनके पास पराक्रमी, शक्तिशाली और महाबली वानर हैं, जो मनके संकल्पके समान तीव्र गतिसे चलते हैं। वे सब-के-सब सदा उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं॥ १८॥

'नीचे, ऊपर और अगल-बगलमें कहीं भी उनकी गति नहीं रुकती है। वे अमिततेजस्वी वानर बड़े-से-बड़े कार्य आ पड़नेपर भी कभी शिथिल नहीं होते हैं॥ १९॥

'वायुमार्ग (आकाश)-का अनुसरण करनेवाले उन महाभाग बलवान् वानरोंने अनेक बार इस पृथ्वीकी परिक्रमा की है॥ २०॥

'वहाँ मुझसे बढ़कर तथा मेरे समान शक्तिशाली बहुतसे वानर हैं। सुग्रीवके पास कोई ऐसा वानर नहीं है, जो मुझसे किसी बातमें कम हो॥ २१॥

'जब मैं ही यहाँ आ गया, तब फिर उन महाबली वानरोंके आनेमें क्या संदेह हो सकता है? आप जानती होंगी कि दूत या धावन बनाकर वे ही लोग भेजे जाते हैं, जो निम्नश्रेणीके होते हैं। अच्छी श्रेणीके लोग नहीं भेजे जाते॥ २२॥

'अतः देवि! अब संताप करनेकी आवश्यकता नहीं है। आपका मानसिक दुःख दूर हो जाना चाहिये। वे वानरयूथपति एक ही छलाँगमें लङ्कामें पहुँच जायँगे॥ २३॥

'महाभागे! वे पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण भी उदयाचलपर उदित होनेवाले चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति मेरी पीठपर बैठकर आपके पास आ जायँगे॥ २४॥

'आप शीघ्र ही देखेंगी कि सिंहके समान पराक्रमी शत्रुनाशक श्रीराम और लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके द्वारपर आ पहुँचे हैं॥ २५॥

'नख और दाढ़ें ही जिनके आयुध हैं, जो सिंह और बाघके समान पराक्रमी हैं तथा बड़े-बड़े गजराजोंके समान जिनकी विशाल काया है, उन वीर वानरोंको आप शीघ्र ही यहाँ एकत्र हुआ देखेंगी॥ २६॥

'लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर पहाड़ों और मेघोंके समान विशाल शरीरवाले प्रधान-प्रधान वानर आकर गर्जना करेंगे और आप शीघ्र ही उनका सिंहनाद सुनेंगी॥ २७॥

'आपको जल्दी ही यह देखनेका भी सौभाग्य प्राप्त होगा कि शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीरघुनाथजी वनवासकी अवधि पूरी करके आपके साथ अयोध्यामें जाकर वहाँके राज्यपर अभिषिक्त हो गये हैं'॥ २८॥

'आपके अत्यन्त शोकसे बहुत ही पीड़ित होनेपर भी जिनकी वाणीमें कभी दीनता नहीं आने पाती, उन मिथिलेशकुमारीको जब मैंने प्रिय एवं मङ्गलमय वचनोंद्वारा सान्त्वना देकर प्रसन्न किया, तब उनके मनको कुछ शान्ति मिली'॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

॥ सुन्दरकाण्ड समाप्त॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

युद्धकाण्ड

पहला सर्ग

हनुमान्‌जीकी प्रशंसा करके श्रीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना

हनुमान्‌जीके द्वारा यथावत्‌रूपसे कहे हुए इन वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार उत्तम वचन बोले—॥ १॥

'हनुमान्‌ने बड़ा भारी कार्य किया है। भूतलपर ऐसा कार्य होना कठिन है। इस भूमण्डलमें दूसरा कोई तो ऐसा कार्य करनेकी बात मनके द्वारा सोच भी नहीं सकता॥ २॥

'गरुड़, वायु और हनुमान्‌को छोड़कर दूसरे किसीको मैं ऐसा नहीं देखता, जो महासागरको लाँघ सके॥ ३॥

'देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमेंसे किसीके लिये भी जिसपर आक्रमण करना असम्भव है तथा जो रावणके द्वारा भलीभाँति सुरक्षित है, उस लङ्कापुरीमें अपने बलके भरोसे प्रवेश करके कौन वहाँसे जीवित निकल सकता है?॥ ४ $\frac{1}{2}$ ॥

'जो हनुमान्‌के समान बल-पराक्रमसे सम्पन्न न हो, ऐसा कौन पुरुष राक्षसोंद्वारा सुरक्षित अत्यन्त दुर्जय लङ्कामें प्रवेश कर सकता है॥ ५ $\frac{1}{2}$ ॥

'हनुमान्‌ने समुद्र-लङ्घन आदि कार्योंके द्वारा अपने पराक्रमके अनुरूप बल प्रकट करके एक सच्चे सेवकके योग्य सुग्रीवका बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया है॥ ६॥

'जो सेवक स्वामीके द्वारा किसी दुष्कर कार्यमें नियुक्त होनेपर उसे पूरा करके तदनुरूप दूसरे कार्यको भी (यदि वह मुख्य कार्यका विरोधी न हो) सम्पन्न करता है, वह सेवकोंमें उत्तम कहा गया है॥ ७॥

'जो एक कार्यमें नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य होनेपर भी स्वामीके दूसरे प्रिय कार्यको नहीं करता (स्वामीने जितना कहा है, उतना ही करके लौट आता है) वह मध्यम श्रेणीका सेवक बताया गया है॥

'जो सेवक मालिकके किसी कार्यमें नियुक्त होकर अपनेमें योग्यता और सामर्थ्यके होते हुए भी उसे सावधानीसे पूरा नहीं करता, वह अधम कोटिका कहा गया है॥ ९॥

'हनुमान्‌ने स्वामीके एक कार्यमें नियुक्त होकर उसके साथ ही दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्योंको भी पूरा किया, अपने गौरवमें भी कमी नहीं आने दी—अपने-आपको दूसरोंकी दृष्टिमें छोटा नहीं बनने दिया और सुग्रीवको भी पूर्णतः संतुष्ट कर दिया॥ १०॥

'आज हनुमान्‌ने विदेहनन्दिनी सीताका पता लगाकर—उन्हें अपनी आँखों देखकर धर्मके अनुसार मेरी, समस्त रघुवंशकी और महाबली लक्ष्मणकी भी रक्षा की है॥ ११॥

'आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है, यह बात मेरे मनमें बड़ी कसक पैदा कर रही है कि यहाँ जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ॥ १२॥

'इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है'॥ १३॥

ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया॥ १४॥

फिर थोड़ी देरतक विचार करके रघुवंशशिरोमणि श्रीरामने वानरराज सुग्रीवको सुनाकर यह बात कही—॥

'बन्धुओ! सीताकी खोजका काम तो सुचारुरूपसे सम्पन्न हो गया; किंतु समुद्रतककी दुस्तरताका विचार करके मेरे मनका उत्साह फिर नष्ट हो गया॥ १६॥

'महान् जलराशिसे परिपूर्ण समुद्रको पार करना तो बड़ा ही कठिन काम है। यहाँ एकत्र हुए ये वानर समुद्रके दक्षिण तटपर कैसे पहुँचेंगे॥ १७॥

'मेरी सीताने भी यही संदेह उठाया था, जिसका वृत्तान्त अभी-अभी मुझसे कहा गया है। इन वानरोंके समुद्रके पार जानेके विषयमें जो प्रश्न खड़ा हुआ है, उसका वास्तविक उत्तर क्या है?'॥ १८॥

हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर शत्रुसूदन महाबाहु श्रीराम शोकाकुल होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामको उत्साह प्रदान करना

इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए दशरथनन्दन श्रीरामसे सुग्रीवने उनके शोकका निवारण करनेवाली बात कही—॥

'वीरवर! आप दूसरे साधारण मनुष्योंकी भाँति क्यों संताप कर रहे हैं? आप इस तरह चिन्तित न हों। जैसे कृतघ्न पुरुष सौहार्दको त्याग देता है, उसी तरह आप भी इस संतापको छोड़ दें॥ २॥

'रघुनन्दन! जब सीताका समाचार मिल गया और शत्रुके निवास-स्थानका पता लग गया, तब मुझे आपके इस दुःख और चिन्ताका कोई कारण नहीं दिखायी देता॥ ३॥

'रघुकुलभूषण! आप बुद्धिमान्, शास्त्रोंके ज्ञाता विचारकुशल और पण्डित हैं, अतः कृतात्मा पुरुषकी भाँति इस अर्थदूषक प्राकृत बुद्धिका परित्याग कर दीजिये॥ ४॥

'बड़े-बड़े नाकोंसे भरे हुए समुद्रको लाँघकर हमलोग लङ्कापर चढ़ाई करेंगे और आपके शत्रुको नष्ट कर डालेंगे॥ ५॥

'जो पुरुष उत्साहशून्य, दीन और मन-ही-मन शोकसे व्याकुल रहता है, उसके सारे काम बिगड़ जाते हैं और वह बड़ी विपत्तिमें पड़ जाता है॥ ६॥

'ये वानरयूथपति सब प्रकारसे समर्थ एवं शूरवीर हैं। आपका प्रिय करनेके लिये इनके मनमें बड़ा उत्साह है। ये आपके लिये जलती आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं। समुद्रको लाँघने और रावणको मारनेका प्रसंग चलनेपर इनका मुँह प्रसन्नतासे खिल जाता है। इनके इस हर्ष और उत्साहसे ही मैं इस बातको जानता हूँ तथा इस विषयमें मेरा अपना तर्क (निश्चय) भी सुदृढ़ है॥ ७॥

'आप ऐसा कीजिये, जिससे हमलोग पराक्रम-पूर्वक अपने शत्रु पापाचारी रावणका वध करके सीताको यहाँ ले आवें॥ ८॥

'रघुनन्दन! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे समुद्रपर सेतु बँध सके और हम उस राक्षसराजकी लङ्कापुरीको देख सकें॥ ९॥

'त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्कापुरी एक बार दीख जाय तो आप यह निश्चित समझिये कि युद्धमें रावण दिखायी दिया और मारा गया॥ १०॥

'वरुणके निवासभूत घोर समुद्रपर पुल बाँधे बिना तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी लङ्काको पददलित नहीं कर सकते॥ ११॥

'अतः जब लङ्काके निकटतक समुद्रपर पुल बँध जायगा, तब हमारी सारी सेना उस पार चली जायगी। फिर तो आप यही समझिये कि अपनी जीत हो गयी; क्योंकि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ये वानर युद्धमें बड़ी वीरता दिखानेवाले हैं॥ १२॥

'अतः राजन्! आप इस व्याकुल बुद्धिका आश्रय न लें—बुद्धिकी इस व्याकुलताको त्याग दें; क्योंकि यह समस्त कार्योंको बिगाड़ देनेवाली है और शोक इस जगत्‌में पुरुषके शौर्यको नष्ट कर देता है॥ १३॥

'मनुष्यको जिसका आश्रय लेना चाहिये, उस शौर्यका ही वह अवलम्बन करे; क्योंकि वह कर्ताको शीघ्र ही अलंकृत कर देता है—उसके अभीष्ट फलकी सिद्धि करा देता है॥ १४॥

'अतः महाप्राज्ञ श्रीराम! आप इस समय तेजके साथ ही धैर्यका आश्रय लें। कोई वस्तु खो गयी हो या नष्ट हो गयी हो, उसके लिये आप-जैसे शूरवीर महात्मा पुरुषोंको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक सब कामोंको बिगाड़ देता है॥ १५॥

'आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं। अतः हम-जैसे मन्त्रियों एवं सहायकोंके साथ रहकर अवश्य ही शत्रुपर विजय प्राप्त कर सकते हैं॥ १६॥

'रघुनन्दन! मुझे तो तीनों लोकोंमें ऐसा कोई वीर नहीं दिखायी देता, जो रणभूमिमें धनुष लेकर खड़े हुए आपके सामने ठहर सके॥ १७॥

'वानरोंपर जिसका भार रखा गया है, आपका वह कार्य बिगड़ने नहीं पायेगा। आप शीघ्र ही इस अक्षय

समुद्रको पार करके सीताका दर्शन करेंगे॥ १८॥

'पृथ्वीनाथ! अपने हृदयमें शोकको स्थान देना व्यर्थ है। इस समय तो आप शत्रुओंके प्रति क्रोध धारण कीजिये। जो क्षत्रिय मन्द (क्रोधशून्य) होते हैं, उनसे कोई चेष्टा नहीं बन पाती; परंतु जो शत्रुके प्रति आवश्यक रोषसे भरा होता है, उससे सब डरते हैं॥ १९॥

'नदियोंके स्वामी घोर समुद्रको पार करनेके लिये क्या उपाय किया जाय, इस विषयमें आप हमारे साथ बैठकर विचार कीजिये; क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है॥ २०॥

'यदि हमारे सैनिक समुद्रको लाँघ गये तो यही निश्चय रखिये कि अपनी जीत अवश्य होगी। सारी सेनाका समुद्रके उस पार पहुँच जाना ही अपनी विजय समझिये॥ २१॥

'ये वानर संग्राममें बड़े शूरवीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। ये पत्थरों और पेड़ोंकी वर्षा करके ही उन शत्रुओंका संहार कर डालेंगे॥ २२॥

'शत्रुसूदन श्रीराम! यदि किसी प्रकार मैं इस वानर-सेनाको समुद्रके उस पार पहुँची देख सकूँ तो मैं रावणको युद्धमें मरा हुआ ही समझता हूँ॥ २३॥

'बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरा तो विश्वास है कि आप सर्वथा विजयी होंगे; क्योंकि मुझे ऐसे ही शकुन दिखायी देते हैं और मेरा हृदय भी हर्ष एवं उत्साहसे भरा है'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा सर्ग

हनुमान्‌जीका लङ्काके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग और संक्रम आदिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना

सुग्रीवके ये युक्तियुक्त और उत्तम अभिप्रायसे पूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें स्वीकार किया और फिर हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ १॥

'मैं तपस्यासे पुल बाँधकर और समुद्रको सुखाकर सब प्रकारसे महासागरको लाँघ जानेमें समर्थ हूँ॥ २॥

'वानरवीर! तुम मुझे यह तो बताओ कि उस दुर्गम लङ्कापुरीके कितने दुर्ग हैं। मैं देखे हुएके समान उसका सारा विवरण स्पष्टरूपसे जानना चाहता हूँ॥ ३॥

'तुमने रावणकी सेनाका परिमाण, पुरीके दरवाजोंको दुर्गम बनानेके साधन, लङ्काकी रक्षाके उपाय तथा राक्षसोंके भवन—इन सबको सुखपूर्वक यथावत्-रूपसे वहाँ देखा है। अतः इन सबका ठीक-ठीक वर्णन करो; क्योंकि तुम सब प्रकारसे कुशल हो'॥ ४-५॥

श्रीरघुनाथजीका यह वचन सुनकर वाणीके मर्मको समझनेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान्‌ने श्रीरामसे फिर कहा— ॥ ६॥

'भगवन्! सुनिये। मैं सब बातें बता रहा हूँ। लङ्काके दुर्ग किस विधिसे बने हैं, किस प्रकार लङ्कापुरीकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी है, किस तरह वह सेनाओंसे सुरक्षित है, रावणके तेजसे प्रभावित हो राक्षस उसके प्रति कैसा स्नेह रखते हैं, लङ्काकी समृद्धि कितनी उत्तम है, समुद्र कितना भयंकर है, पैदल सैनिकोंका विभाग करके कहाँ कितने सैनिक रखे गये हैं और वहाँके वाहनोंकी कितनी संख्या है—इन सब बातोंका मैं वर्णन करूँगा। ऐसा कहकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने वहाँकी बातोंको ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया॥ ७—९॥

'प्रभो! लङ्कापुरी हर्ष और आमोद-प्रमोदसे पूर्ण है। वह विशाल पुरी मतवाले हाथियोंसे व्याप्त तथा असंख्य रथोंसे भरी हुई है। राक्षसोंके समुदाय सदा उसमें निवास करते हैं॥ १०॥

'उस पुरीके चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं, जो बहुत लंबे-चौड़े हैं। उनमें बहुत मजबूत किवाड़ लगे हैं और मोटी-मोटी अर्गलाएँ हैं॥ ११॥

'उन दरवाजोंपर बड़े विशाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं। जो तीर और पत्थरोंके गोले बरसाते हैं। उनके द्वारा आक्रमण करनेवाली शत्रुसेनाको आगे बढ़नेसे रोका जाता है॥ १२॥

'जिन्हें वीर राक्षसगणोंने बनाया है, जो काले लोहेकी बनी हुई, भयंकर और तीखी हैं तथा जिनका अच्छी तरह संस्कार किया गया है, ऐसी सैकड़ों शतघ्नियाँ* (लोहेके काँटोंसे भरी हुई चार हाथ लंबी गदाएँ) उन दरवाजोंपर सजाकर रखी गयी हैं॥ १३॥

* शतघ्नी च चतुर्हस्ता लोहकंटकिनी गदा। इति वैजयन्ती।

'उस पुरीके चारों ओर सोनेका बना हुआ बहुत ऊँचा परकोटा है, जिसको तोड़ना बहुत ही कठिन है। उसमें मणि, मूँगे, नीलम और मोतियोंका काम किया गया है॥ १४॥

'परकोटोंके चारों ओर महाभयंकर, शत्रुओंका महान् अमङ्गल करनेवाली, ठंडे जलसे भरी हुई और अगाध गहराईसे युक्त कई खाइयाँ बनी हुई हैं, जिनमें ग्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते हैं॥ १५॥

'उक्त चारों दरवाजोंके सामने उन खाइयोंपर मचानोंके रूपमें चार संक्रम* (लकड़ीके पुल) हैं, जो बहुत ही विस्तृत हैं। उनमें बहुत-से बड़े-बड़े यन्त्र लगे हुए हैं और उनके आस-पास परकोटेपर बने हुए मकानोंकी पंक्तियाँ हैं॥ १६॥

'जब शत्रुकी सेना आती है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्षा की जाती है तथा उन यन्त्रोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर खाइयोंमें गिरा दिया जाता है और वहाँ पहुँची हुई शत्रु-सेनाओंको भी सब ओर फेंक दिया जाता है॥ १७॥

'उनमेंसे एक संक्रम तो बड़ा ही सुदृढ़ और अभेद्य है। वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह सोनेके अनेक खंभों तथा चबूतरोंसे सुशोभित है॥ १८॥

'रघुनाथजी! रावण युद्धके लिये उत्सुक होता हुआ स्वयं कभी क्षुब्ध नहीं होता—स्वस्थ एवं धीर बना रहता है। वह सेनाओंके बारंबार निरीक्षणके लिये सदा सावधान एवं उद्यत रहता है॥ १९॥

'लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये कोई अवलम्ब नहीं है। वह पुरी देवताओंके लिये भी दुर्गम और बड़ी भयावनी है। उसके चारों ओर नदी, पर्वत, वन और कृत्रिम (खाई, परकोटा आदि)—ये चार प्रकारके दुर्ग हैं॥ २०॥

'रघुनन्दन! वह बहुत दूरतक फैले हुए समुद्रके दक्षिण किनारेपर बसी हुई है। वहाँ जानेके लिये नावका भी मार्ग नहीं है; क्योंकि उसमें लक्ष्यका भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है॥ २१॥

'वह दुर्गम पुरी पर्वतके शिखरपर बसायी गयी है और देवपुरीके समान सुन्दर दिखायी देती है, हाथी, घोड़ोंसे भरी हुई वह लङ्का अत्यन्त दुर्जय है॥ २२॥

'खाइयाँ, शतघ्नियाँ और तरह-तरहके यन्त्र दुरात्मा रावणकी उस लङ्कानगरीकी शोभा बढ़ाते हैं॥ २३॥

'लङ्काके पूर्वद्वारपर दस हजार राक्षस रहते हैं, जो सब-के-सब हाथोंमें शूल धारण करते हैं। वे अत्यन्त दुर्जय और युद्धके मुहानेपर तलवारोंसे जूझनेवाले हैं॥

'लङ्काके दक्षिण द्वारपर चतुरंगिणी सेनाके साथ एक लाख राक्षस योद्धा डटे रहते हैं। वहाँके सैनिक भी बड़े बहादुर हैं॥ २५॥

'पुरीके पश्चिम द्वारपर दस लाख राक्षस निवास करते हैं। वे सब-के-सब ढाल और तलवार धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं॥ २६॥

'उस पुरीके उत्तर द्वारपर एक अर्बुद (दस करोड़) राक्षस रहते हैं। जिनमेंसे कुछ तो रथी हैं और कुछ घुड़सवार। वे सभी उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी वीरताके लिये प्रशंसित हैं॥ २७॥

'लङ्काके मध्यभागकी छावनीमें सैकड़ों सहस्र दुर्जय राक्षस रहते हैं, जिनकी संख्या एक करोड़से अधिक है॥

'किंतु मैंने उन सब संक्रमोंको तोड़ डाला है, खाइयाँ पाट दी हैं, लङ्कापुरीको जला दिया है और उसके परकोटोंको भी धराशायी कर दिया है। इतना ही नहीं, वहाँके विशालकाय राक्षसोंकी सेनाका एक चौथाई भाग नष्ट कर डाला है॥ २९॥

'हमलोग किसी-न-किसी मार्ग या उपायसे एक बार समुद्रको पार कर लें; फिर तो लङ्काको वानरोंके द्वारा नष्ट हुई ही समझिये॥ ३०॥

'अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील—इतने ही वानर लङ्काविजय करनेके लिये पर्याप्त हैं। बाकी सेना लेकर आपको क्या करना है?॥

'रघुनन्दन! ये अङ्गद आदि वीर आकाशमें उछलते-कूदते हुए रावणकी महापुरी लङ्कामें पहुँचकर उसे पर्वत, वन, खाई, दरवाजे, परकोटे और मकानोंसहित नष्ट करके सीताजीको यहाँ ले आयेंगे॥ ३२॥

'ऐसा समझकर आप शीघ्र ही समस्त सैनिकोंको सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करके कूच करनेकी आज्ञा दीजिये और उचित मुहूर्तसे प्रस्थानकी इच्छा कीजिये'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

---

* मालूम होता है 'संक्रम' इस प्रकारके पुल थे, जिन्हें जब आवश्यकता होती, तभी यन्त्रोंद्वारा गिरा दिया जाता था। इसीसे शत्रुकी सेना आनेपर उसे खाईमें गिरा देनेकी बात कही गयी है।

चौथा सर्ग

श्रीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव

हनुमान्‌जीके वचनोंको क्रमशः यथावत्-रूपसे सुनकर सत्यपराक्रमी महातेजस्वी भगवान् श्रीरामने कहा—॥ १॥

'हनुमन्! मैं तुमसे सच कहता हूँ—तुमने उस भयानक राक्षसकी जिस लङ्कापुरीका वर्णन किया है, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर डालूँगा॥ २॥

'सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्तमें प्रस्थानकी तैयारी करो। सूर्यदेव दिनके मध्य भागमें जा पहुँचे हैं। इसलिये इस विजय* नामक मुहूर्तमें हमारी यात्रा उपयुक्त होगी॥ ३॥

'रावण सीताको हरकर ले जाय; किंतु वह जीवित बचकर कहाँ जायगा? सिद्ध आदिके मुँहसे लङ्कापर मेरी चढ़ाईका समाचार सुनकर सीताको अपने जीवनकी आशा बँध जायगी; ठीक उसी तरह जैसे जीवनका अन्त उपस्थित होनेपर यदि रोगी अमृतका (अमृतत्वके साधनभूत दिव्य ओषधिका) स्पर्श कर ले अथवा अमृतोपम द्रवभूत ओषधिको पी ले तो उसे जीनेकी आशा हो जाती है॥ ४॥

'आज उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र है। कल चन्द्रमाका हस्त नक्षत्रसे योग होगा। इसलिये सुग्रीव! हमलोग आज ही सारी सेनाओंके साथ यात्रा कर दें॥

'इस समय जो शकुन प्रकट हो रहे हैं और जिन्हें मैं देख रहा हूँ, उनसे यह विश्वास होता है कि मैं अवश्य ही रावणका वध करके जनकनन्दिनी सीताको ले आऊँगा॥ ६॥

'इसके सिवा मेरी दाहिनी आँखका ऊपरी भाग फड़क रहा है। वह भी मानो मेरी विजय-प्राप्ति और मनोरथसिद्धिको सूचित कर रहा है'॥ ७॥

यह सुनकर वानरराज सुग्रीव तथा लक्ष्मणने भी उनका बड़ा आदर किया। तत्पश्चात् अर्थवेत्ता (नीतिनिपुण) धर्मात्मा श्रीरामने फिर कहा—॥ ८॥

'इस सेनाके आगे-आगे एक लाख वेगवान् वानरोंसे घिरे हुए सेनापति नील मार्ग देखनेके लिये चलें॥ ९॥

'सेनापति नील! तुम सारी सेनाको ऐसे मार्गसे शीघ्रतापूर्वक ले चलो, जिसमें फल-मूलकी अधिकता हो, शीतल छायासे युक्त सघन वन हो, ठंडा जल मिल सके और मधु भी उपलब्ध हो सके॥ १०॥

'सम्भव है दुरात्मा राक्षस रास्तेके फल-मूल और जलको विष आदिसे दूषित कर दें, अतः तुम मार्गमें सतत सावधान रहकर उनसे इन वस्तुओंकी रक्षा करना॥

'वानरोंको चाहिये कि जहाँ गड्ढे, दुर्गम वन और साधारण जंगल हों, वहाँ सब ओर कूद-फाँदकर यह देखते रहें कि कहीं शत्रुओंकी सेना तो नहीं छिपी है (ऐसा न हो कि हम आगे निकल जायँ और शत्रु अकस्मात् पीछेसे आक्रमण कर दे)॥ १२॥

'जिस सेनामें बाल, वृद्ध आदिके कारण दुर्बलता हो, वह यहाँ किष्किन्धामें ही रह जाय; क्योंकि हमारा यह युद्धरूपी कृत्य बड़ा भयंकर है, अतः इसके लिये बल-विक्रमसम्पन्न सेनाको ही यात्रा करनी चाहिये॥ १३॥

'सैकड़ों और हजारों महाबली कपिकेसरी वीर महासागरकी जलराशिके समान भयंकर एवं अपार वानर-सेनाके अग्रभागको अपने साथ आगे बढ़ाये चलें॥ १४॥

'पर्वतके समान विशालकाय गज, महाबली गवय तथा मतवाले साँड़की भाँति पराक्रमी गवाक्ष सेनाके आगे-आगे चलें॥ १५॥

'उछल-कूदकर चलनेवाले कपियोंके पालक वानरशिरोमणि ऋषभ इस वानर-सेनाके दाहिने भागकी रक्षा करते हुए चलें॥ १६॥

'गन्धहस्तीके समान दुर्जय और वेगशाली वानर गन्धमादन इस वानर-वाहिनीके वामभागमें रहकर इसकी रक्षा करते हुए आगे बढ़ें॥ १७॥

'जैसे देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होते हैं, उसी प्रकार मैं हनुमान्‌के कंधेपर चढ़कर सेनाके बीचमें रहकर सारी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ चलूँगा॥ १८॥

'जैसे धनाध्यक्ष कुबेर सार्वभौम नामक दिग्गजकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार कालके समान पराक्रमी लक्ष्मण अंगदपर आरूढ़ होकर यात्रा करें॥ १९॥

---

* दिनमें दोपहरीके समय अभिजित् मुहूर्त होता है, इसीको विजय-मुहूर्त भी कहते हैं। यह यात्राके लिये बहुत उत्तम माना गया है। यद्यपि—'**भुक्तौ दक्षिणयात्रायां प्रतिष्ठायां द्विजन्मनि। आधाने च ध्वजारोहे मृत्युदः स्यात् सदाभिजित्॥**' इस ज्योतिष-रत्नाकरके वचनके अनुसार उक्त मुहूर्तमें दक्षिणयात्रा निषिद्ध है, तथापि किष्किन्धासे लङ्का दक्षिणपूर्वके कोणमें होनेके कारण वह दोष यहाँ नहीं प्राप्त होता है।

'महाबाहु ऋक्षराज जाम्बवान्, सुषेण और वानर वेगदर्शी—ये तीनों वानर सेनाके पृष्ठभागकी रक्षा करें'॥

रघुनाथजीका यह वचन सुनकर महापराक्रमी वानरशिरोमणि सेनापति सुग्रीवने उन वानरोंको यथोचित आज्ञा दी॥ २१॥

तब वे समस्त महाबली वानरगण अपनी गुफाओं और शिखरोंसे शीघ्र ही निकलकर उछलते-कूदते हुए चलने लगे॥ २२॥

तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणके सादर अनुरोध करनेपर सेनासहित धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ २३॥

उस समय सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे, जो हाथीके समान विशालकाय थे, घिरे हुए श्रीरघुनाथजी आगे बढ़ने लगे॥ २४॥

यात्रा करते हुए श्रीरामके पीछे वह विशाल वानरवाहिनी चलने लगी। उस सेनाके सभी वीर सुग्रीवसे पालित होनेके कारण हृष्ट-पुष्ट एवं प्रसन्न थे॥ २५॥

उनमेंसे कुछ वानर उस सेनाकी रक्षाके लिये उछलते-कूदते हुए चारों ओर चक्कर लगाते थे, कुछ मार्गशोधनके लिये कूदते-फाँदते आगे बढ़ जाते थे, कुछ वानर मेघोंके समान गर्जते, कुछ सिंहोंके समान दहाड़ते और कुछ किलकारियाँ भरते हुए दक्षिण दिशाकी ओर अग्रसर हो रहे थे॥ २६॥

वे सुगन्धित मधु पीते और मीठे फल खाते हुए मञ्जरीपुञ्ज धारण करनेवाले विशाल वृक्षोंको उखाड़कर कंधोंपर लिये चल रहे थे॥ २७॥

कुछ मतवाले वानर विनोदके लिये एक दूसरेको ढो रहे थे। कोई अपने ऊपर चढ़े हुए वानरको झटककर दूर फेंक देते थे। कोई चलते-चलते ऊपरको उछल पड़ते थे और दूसरे वानर दूसरों-दूसरोंको ऊपरसे धक्के देकर नीचे गिरा देते थे॥ २८॥

श्रीरघुनाथजीके समीप चलते हुए वानर यह कहते हुए गर्जना करते थे कि 'हमें रावणको मार डालना चाहिये। समस्त निशाचरोंका भी संहार कर देना चाहिये'॥

सबसे आगे ऋषभ, नील और वीर कुमुद—ये बहुसंख्यक वानरोंके साथ रास्ता ठीक करते जाते थे॥ ३०॥

सेनाके मध्यभागमें राजा सुग्रीव, श्रीराम और लक्ष्मण—ये तीनों शत्रुसूदन वीर अनेक बलशाली एवं भयंकर वानरोंसे घिरे हुए चल रहे थे॥ ३१॥

शतबलि नामका एक वीर वानर दस करोड़ वानरोंके साथ अकेला ही सारी सेनाको अपने नियन्त्रणमें रखकर उसकी रक्षा करता था॥ ३२॥

सौ करोड़ वानरोंसे घिरे हुए केसरी और पनस—ये सेनाके एक (दक्षिण) भागकी तथा बहुत-से वानर सैनिकोंको साथ लिये गज और अर्क—ये उस वानर-सेनाके दूसरे (वाम) भागकी रक्षा करते थे॥ ३३॥

बहुसंख्यक भालुओंसे घिरे हुए सुषेण और जाम्बवान्—ये दोनों सुग्रीवको आगे करके सेनाके पिछले भागकी रक्षा कर रहे थे॥ ३४॥

उन सबके सेनापति कपिश्रेष्ठ वानरशिरोमणि वीरवर नील उस सेनाकी सब ओरसे रक्षा एवं नियन्त्रण कर रहे थे॥ ३५॥

दरीमुख, प्रजङ्घ, जम्भ और रभस—ये वीर सब ओरसे वानरोंको शीघ्र आगे बढ़नेकी प्रेरणा देते हुए चल रहे थे॥ ३६॥

इस प्रकार वे बलोन्मत्त कपि-केसरी वीर बराबर आगे बढ़ते गये। चलते-चलते उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ सह्यगिरिको देखा, जिसके आस-पास और भी सैकड़ों पर्वत थे॥ ३७॥

रास्तेमें उन्हें बहुत-से सुन्दर सरोवर और तालाब दिखायी दिये, जिनमें मनोहर कमल खिले हुए थे। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी कि रास्तेमें कोई किसी प्रकारका उपद्रव न करे। भयंकर कोपवाले श्रीरामचन्द्रजीके इस आदेशको जानकर समुद्रके जलप्रवाहकी भाँति अपार एवं भयंकर दिखायी देनेवाली वह विशाल वानरसेना भयभीत-सी होकर नगरोंके समीपवर्ती स्थानों और जनपदोंको दूरसे ही छोड़ती चली जा रही थी। विकट गर्जना करनेके कारण भयानक शब्दवाले समुद्रकी भाँति वह महाघोर जान पड़ती थी॥ ३८-३९ $\frac{१}{२}$ ॥

वे सभी शूरवीर कपिकुञ्जर हाँके गये अच्छे घोड़ोंकी भाँति उछलते-कूदते हुए तुरंत ही दशरथनन्दन श्रीरामके पास पहुँच जाते थे॥ ४० $\frac{१}{२}$ ॥

हनुमान् और अंगद—इन दो वानर वीरोंद्वारा ढोये जाते हुए वे नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण शुक्र और बृहस्पति—इन दो महाग्रहोंसे संयुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान शोभा पा रहे थे॥ ४१ $\frac{१}{२}$ ॥

उस समय वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणसे सम्मानित हुए धर्मात्मा श्रीराम सेनासहित दक्षिण दिशाकी

ओर बढ़े जा रहे थे॥ ४२½ ॥

लक्ष्मणजी अंगदके कंधेपर बैठे हुए थे। वे शकुनोंके द्वारा कार्यसिद्धिकी बात अच्छी तरह जान लेते थे। उन्होंने पूर्णकाम भगवान् श्रीरामसे मङ्गलमयी वाणीमें कहा— ॥४३½ ॥

'रघुनन्दन! मुझे पृथ्वी और आकाशमें बहुत अच्छे-अच्छे शकुन दिखायी देते हैं। ये सब आपके मनोरथकी सिद्धिको सूचित करते हैं। इनसे निश्चय होता है कि आप शीघ्र ही रावणको मारकर हरी हुई सीताजीको प्राप्त करेंगे और सफलमनोरथ होकर समृद्धिशालिनी अयोध्याको पधारेंगे॥ ४४-४५½ ॥

'देखिये सेनाके पीछे शीतल, मन्द, हितकर और सुखमय समीर चल रहा है। ये पशु और पक्षी पूर्ण मधुर स्वरमें अपनी-अपनी बोली बोल रहे हैं। सब दिशाएँ प्रसन्न हैं। सूर्यदेव निर्मल दिखायी दे रहे हैं। भृगुनन्दन शुक्र भी अपनी उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित हो आपके पीछेकी दिशामें प्रकाशित हो रहे हैं। जहाँ सप्तर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है, वह ध्रुवतारा भी निर्मल दिखायी देता है। शुद्ध और प्रकाशमान समस्त सप्तर्षिगण ध्रुवको अपने दाहिने रखकर उनकी परिक्रमा करते हैं॥ ४६—४८ ॥

'हमारे साथ ही महामना इक्ष्वाकुवंशियोंके पितामह राजर्षि त्रिशंकु अपने पुरोहित वसिष्ठजीके साथ हमलोगोंके सामने ही निर्मल कान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं॥ ४९ ॥

'हम महामनस्वी इक्ष्वाकुवंशियोंके लिये जो सबसे उत्तम है, वह विशाखा नामक युगल नक्षत्र निर्मल एवं उपद्रवशून्य (मंगल आदि दुष्ट ग्रहोंकी आक्रान्तिसे रहित) होकर प्रकाशित हो रहा है॥ ५० ॥

'राक्षसोंका नक्षत्र मूल, जिसके देवता निर्ऋति हैं, अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। उस मूलके नियामक धूमकेतुसे आक्रान्त होकर वह संतापका भागी हो रहा है॥ ५१ ॥

'यह सब कुछ राक्षसोंके विनाशके लिये ही उपस्थित हुआ है; क्योंकि जो लोग कालपाशमें बँधे होते हैं, उन्हींका नक्षत्र समयानुसार ग्रहोंसे पीड़ित होता है॥

'जल स्वच्छ और उत्तम रससे पूर्ण दिखायी देता है, जंगलोंमें पर्याप्त फल उपलब्ध होते हैं, सुगन्धित वायु अधिक तीव्रगतिसे नहीं बह रही है और वृक्षोंमें ऋतुओंके अनुसार फूल लगे हुए हैं॥ ५३ ॥

'प्रभो! व्यूहबद्ध वानरी सेना बड़ी शोभासम्पन्न जान पड़ती है। तारकामय संग्रामके अवसरपर देवताओंकी सेनाएँ जिस तरह उत्साहसे सम्पन्न थीं, इसी प्रकार आज ये वानर-सेनाएँ भी हैं। आर्य! ऐसे शुभ लक्षण देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिये'॥ ५४ ॥

अपने भाई श्रीरामको आश्वासन देते हुए हर्षसे भरे सुमित्राकुमार लक्ष्मण जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय वानरोंकी सेना वहाँकी सारी भूमिको घेरकर आगे बढ़ने लगी॥ ५५ ॥

उस सेनामें कुछ रीछ थे और कुछ सिंहके समान पराक्रमी वानर। नख और दाँत ही उनके शस्त्र थे। वे सभी वानर सैनिक हाथों और पैरोंकी अंगुलियोंसे बड़ी धूल उड़ा रहे थे॥ ५६ ॥

उनकी उड़ायी हुई उस भयंकर धूलने सूर्यकी प्रभाको ढककर सम्पूर्ण जगत्‌को छिपा-सा दिया। वह भयानक वानरसेना पर्वत, वन और आकाशसहित दक्षिण दिशाको आच्छादित-सी करती हुई उसी तरह आगे बढ़ रही थी, जैसे मेघोंकी घटा आकाशको ढककर अग्रसर होती है॥ ५७½ ॥

वह वानरी सेना जब किसी नदीको पार करती थी, उस समय लगातार कई योजनोंतक उसकी समस्त धाराएँ उलटी बहने लगती थीं॥ ५८½ ॥

वह विशाल सेना निर्मल जलवाले सरोवर, वृक्षोंसे ढके हुए पर्वत, भूमिके समतल प्रदेश और फलोंसे भरे हुए वन—इन सभी स्थानोंके मध्यमें, इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे सब ओरकी सारी भूमिको घेरकर चल रही थी॥ ५९-६०½ ॥

उस सेनाके सभी वानर प्रसन्नमुख तथा वायुके समान वेगवाले थे। रघुनाथजीकी कार्यसिद्धिके लिये उनका पराक्रम उबला पड़ता था॥ ६१½ ॥

वे जवानीके जोश और अभिमानजनित दर्पके कारण रास्तेमें एक-दूसरेको उत्साह, पराक्रम तथा नाना प्रकारके बल-सम्बन्धी उत्कर्ष दिखा रहे थे॥ ६२½ ॥

उनमेंसे कोई तो बड़ी तेजीसे भूतलपर चलते थे और दूसरे उछलकर आकाशमें उड़ जाते थे। कितने ही वनवासी वानर किलकारियाँ भरते, पृथ्वीपर अपनी पूँछ फटकारते और पैर पटकते थे॥ ६३-६४॥

कितने ही अपनी बाँहें फैलाकर पर्वत-शिखरों और वृक्षोंको तोड़ डालते थे तथा पर्वतोंपर विचरनेवाले बहुतेरे वानर पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ जाते थे॥ ६५ ॥

कोई बड़े जोरसे गर्जते और कोई सिंहनाद करते थे। कितने ही अपनी जाँघोंके वेगसे अनेकानेक लता-

समूहोंको मसल डालते थे॥ ६६॥

वे सभी वानर बड़े पराक्रमी थे। अँगड़ाई लेते हुए पत्थरकी चट्टानों और बड़े-बड़े वृक्षोंसे खेल करते थे। उन सहस्रों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे घिरी हुई सारी पृथ्वी बड़ी शोभा पाती थी॥ ६७ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार वह विशाल वानरसेना दिन-रात चलती रही। सुग्रीवसे सुरक्षित सभी वानर हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न थे। सभी बड़ी उतावलीके साथ चल रहे थे। सभी युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे और सभी सीताजीको रावणकी कैदसे छुड़ाना चाहते थे। इसलिये उन्होंने रास्तेमें कहीं दो घड़ी भी विश्राम नहीं लिया॥

चलते-चलते घने वृक्षोंसे व्याप्त और अनेकानेक काननोंसे संयुक्त सह्य पर्वतके पास पहुँचकर वे सब वानर उसके ऊपर चढ़ गये॥ ७०॥

श्रीरामचन्द्रजी सह्य और मलयके विचित्र काननों, नदियों तथा झरनोंकी शोभा देखते हुए यात्रा कर रहे थे॥

वे वानर मार्गमें मिले हुए चम्पा, तिलक, आम, अशोक, सिन्दुवार, तिनिश और करवीर आदि वृक्षोंको तोड़ देते थे॥ ७२॥

उछल-उछलकर चलनेवाले वे वानरसैनिक रास्तेके अंकोल, करंज, पाकड़, बरगद, जामुन, आँवले और नीप आदि वृक्षोंको भी तोड़ डालते थे॥ ७३॥

रमणीय पत्थरोंपर उगे हुए नाना प्रकारके जंगली वृक्ष वायुके झोंकेसे झूम-झूमकर उन वानरोंपर फूलोंकी वर्षा करते थे॥ ७४॥

मधुसे सुगन्धित वनोंमें गुनगुनाते हुए भौंरोंके साथ चन्दनके समान शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी॥ ७५॥

वह पर्वतराज गैरिक आदि धातुओंसे विभूषित हो बड़ी शोभा पा रहा था। उन धातुओंसे फैली हुई धूल वायुके वेगसे उड़कर उस विशाल वानरसेनाको सब ओरसे आच्छादित कर देती थी॥ ७६ $\frac{1}{2}$ ॥

रमणीय पर्वतशिखरोंपर सब ओर खिली हुई केतकी, सिन्दुवार और वासन्ती लताएँ बड़ी मनोरम जान पड़ती थीं। प्रफुल्ल माधवी लताएँ सुगन्धसे भरी थीं और कुन्दकी झाड़ियाँ भी फूलोंसे लदी हुई थीं॥ ७७-७८॥

चिरिबिल्व, मधूक (महुआ), वञ्जुल, बकुल, रंजक, तिलक और नागकेसरके वृक्ष भी वहाँ खिले हुए थे॥

आम, पाडर और कोविदार भी फूलोंसे लदे थे। मुचुलिन्द, अर्जुन, शिंशपा, कुटज, हिंताल, तिनिश, चूर्णक, कदम्ब, नीलाशोक, सरल, अंकोल और पद्मक भी सुन्दर फूलोंसे सुशोभित थे॥ ८०-८१॥

प्रसन्नतासे भरे हुए वानरोंने उन सब वृक्षोंको घेर लिया था। उस पर्वतपर बहुत-सी रमणीय बावड़ियाँ तथा छोटे-छोटे जलाशय थे, जहाँ चकवे विचरते और जलकुक्कुट निवास करते थे। जलकाक और क्रौञ्च भरे हुए थे तथा सूअर और हिरन उनमें पानी पीते थे॥

रीछ, तरक्षु (लकड़बग्घे), सिंह, भयंकर बाघ तथा बहुसंख्यक दुष्ट हाथी, जो बड़े भीषण थे, सब ओरसे आ-आकर उन जलाशयोंका सेवन करते थे॥ ८४॥

खिले हुए सुगन्धित कमल, कुमुद, उत्पल तथा जलमें होनेवाले भाँति-भाँतिके अन्य पुष्पोंसे वहाँके जलाशय बड़े रमणीय दिखायी देते थे॥ ८५॥

उस पर्वतके शिखरोंपर नाना प्रकारके पक्षी कलरव करते थे। वानर उन जलाशयोंमें नहाते, पानी पीते और जलमें क्रीड़ा करते थे॥ ८६॥

वे आपसमें एक-दूसरेपर पानी भी उछालते थे। कुछ वानर पर्वतपर चढ़कर वहाँके वृक्षोंके अमृततुल्य मीठे फलों, मूलों और फूलोंको तोड़ते थे। मधुके समान वर्णवाले कितने ही मदमत्त वानर वृक्षोंमें लटके और एक-एक द्रोण शहदसे भरे हुए मधुके छत्तोंको तोड़कर उनका मधु पी लेते और स्वस्थ (संतुष्ट) होकर चलते थे॥८७-८८ $\frac{1}{2}$ ॥

पेड़ोंको तोड़ते, लताओंको खींचते और बड़े-बड़े पर्वतोंको प्रतिध्वनित करते हुए वे श्रेष्ठ वानर तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहे थे॥८९ $\frac{1}{2}$ ॥

दूसरे वानर दर्पमें भरकर वृक्षोंसे मधुके छत्ते उतार लेते और जोर-जोरसे गर्जना करते थे। कुछ वानर वृक्षोंपर चढ़ जाते और कुछ मधु पीने लगते थे॥ ९० $\frac{1}{2}$ ॥

उन वानरशिरोमणियोंसे भरी हुई वहाँकी भूमि पके हुए बालवाले कलमी धानोंकी क्यारियोंसे ढकी हुई धरतीके समान सुशोभित हो रही थी॥ ९१॥

कमलनयन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी महेन्द्र पर्वतके पास पहुँचकर भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित उसके शिखरपर चढ़ गये॥ ९२॥

महेन्द्र पर्वतके शिखरपर आरूढ़ हो दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने कछुओं और मत्स्योंसे भरे हुए समुद्रको देखा॥ ९३॥

इस प्रकार वे सह्य तथा मलयको लाँघकर क्रमशः महेन्द्र पर्वतके समीपवर्ती समुद्रके तटपर जा पहुँचे, जहाँ

बड़ा भयंकर शब्द हो रहा था॥ ९४॥

उस पर्वतसे उतरकर भक्तोंके मनको रमानेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ शीघ्र ही सागर-तटवर्ती परम उत्तम वनमें जा पहुँचे॥ ९५॥

जहाँ सहसा उठी हुई जलकी तरङ्गोंसे प्रस्तरकी शिलाएँ धुल गयी थीं, उस विस्तृत सिन्धुतटपर पहुँचकर श्रीरामने कहा—॥ ९६॥

'सुग्रीव! लो, हम सब लोग समुद्रके किनारे तो आ गये। अब यहाँ मनमें फिर वही चिन्ता उत्पन्न हो गयी, जो हमारे सामने पहले उपस्थित थी॥ ९७॥

'इससे आगे तो यह सरिताओंका स्वामी महासागर ही विद्यमान है, जिसका कहीं पार नहीं दिखायी देता। अब बिना किसी समुचित उपायके सागरको पार करना असम्भव है॥ ९८॥

'इसलिये यहीं सेनाका पड़ाव पड़ जाय और हमलोग यहाँ बैठकर यह विचार आरम्भ करें कि किस प्रकार यह वानर-सेना समुद्रके उस पारतक पहुँच सकती है'॥ ९९॥

इस प्रकार सीताहरणके शोकसे दुर्बल हुए महाबाहु श्रीरामने समुद्रके किनारे पहुँचकर उस समय सारी सेनाको वहाँ ठहरनेकी आज्ञा दी॥ १००॥

वे बोले—'कपिश्रेष्ठ! समस्त सेनाओंको समुद्रके तटपर ठहराया जाय। अब यहाँ हमारे लिये समुद्र-लङ्घनके उपायपर विचार करनेका अवसर प्राप्त हुआ है॥ १०१॥

'इस समय कोई भी सेनापति किसी भी कारणसे अपनी-अपनी सेनाको छोड़कर कहीं अन्यत्र न जाय। समस्त शूरवीर वानर-सेनाकी रक्षाके लिये यथास्थान चले जायँ। सबको यह जान लेना चाहिये कि हमलोगोंपर राक्षसोंकी मायासे गुप्त भय आ सकता है'॥ १०२॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर लक्ष्मणसहित सुग्रीवने वृक्षावलियोंसे सुशोभित सागर-तटपर सेनाको ठहरा दिया॥ १०३॥

समुद्रके पास ठहरी हुई वह विशाल वानर-सेना मधुके समान पिङ्गलवर्णके जलसे भरे हुए दूसरे सागरकी-सी शोभा धारण करती थी॥ १०४॥

सागर-तटवर्ती वनमें पहुँचकर वे सभी श्रेष्ठ वानर समुद्रके उस पार जानेकी अभिलाषा मनमें लिये वहीं ठहर गये॥ १०५॥

वहाँ डेरा डालते हुए उन श्रीराम आदिकी सेनाओंके संचरणसे जो महान् कोलाहल हुआ, वह महासागरकी गम्भीर गर्जनाको भी दबाकर सुनायी देने लगा॥ १०६॥

सुग्रीवद्वारा सुरक्षित वह वानरोंकी विशाल सेना श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो रीछ, लंगूर और वानरोंके भेदसे तीन भागोंमें विभक्त होकर ठहर गयी॥

महासागरके तटपर पहुँचकर वह वानर-सेना वायुके वेगसे कम्पित हुए समुद्रकी शोभा देखती हुई बड़े हर्षका अनुभव करती थी॥ १०८॥

जिसका दूसरा तट बहुत दूर था और बीचमें कोई आश्रय नहीं था तथा जिसमें राक्षसोंके समुदाय निवास करते थे, उस वरुणालय समुद्रको देखते हुए वे वानर-यूथपति उसके तटपर बैठे रहे॥ १०९॥

क्रोधमें भरे हुए नाकोंके कारण समुद्र बड़ा भयंकर दिखायी देता था। दिनके अन्त और रातके आरम्भमें—प्रदोषके समय चन्द्रोदय होनेपर उसमें ज्वार आ गया था। उस समय वह फेन-समूहोंके कारण हँसता और उत्ताल तरङ्गोंके कारण नाचता-सा प्रतीत होता था। चन्द्रमाके प्रतिविम्बोंसे भरा-सा जान पड़ता था। प्रचण्ड वायुके समान वेगशाली बड़े-बड़े ग्राहोंसे और तिमि नामक महामत्स्योंको भी निगल जानेवाले महाभयंकर जल-जन्तुओंसे व्याप्त दिखायी देता था॥ ११०-१११॥

वह वरुणालय प्रदीप्त फणोंवाले सर्पों, विशालकाय जलचरों और नाना पर्वतोंसे व्याप्त जान पड़ता था॥ ११२॥

राक्षसोंका निवासभूत वह अगाध महासागर अत्यन्त दुर्गम था। उसे पार करनेका कोई मार्ग या साधन दुर्लभ था। उसमें वायुकी प्रेरणासे उठी हुई चञ्चल तरङ्गें, जो मगरों और विशालकाय सर्पोंसे व्याप्त थीं, बड़े उल्लाससे ऊपरको उठती और नीचेको उतर आती थीं॥ ११३॥

समुद्रके जल-कण बड़े चमकीले दिखायी देते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो सागरमें आगकी चिनगारियाँ बिखेर दी गयी हों। (फैले हुए नक्षत्रोंके कारण आकाश भी वैसा ही दिखायी देता था।) समुद्रमें बड़े-बड़े सर्प थे (आकाशमें भी राहु आदि सर्पाकार ही देखे जाते थे)। समुद्र देवद्रोही दैत्यों और राक्षसोंका आवास-स्थान था (आकाश भी वैसा ही था; क्योंकि वहाँ भी उनका संचरण देखा जाता था)। दोनों ही देखनेमें भयंकर और पातालके समान गम्भीर थे। इस प्रकार समुद्र आकाशके समान और आकाश समुद्रके समान जान पड़ता था। समुद्र और आकाशमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था॥ ११४-११५॥

जल आकाशसे मिला हुआ था और आकाश जलसे, आकाशमें तारे छिटके हुए थे और समुद्रमें मोती। इसलिये दोनों एक-से दिखायी देते थे॥ ११६॥

आकाशमें मेघोंकी घटा घिर आयी थी और समुद्र तरङ्गमालाओंसे व्याप्त हो रहा था। अतः समुद्र और आकाश दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह गया था॥ ११७॥

परस्पर टकराकर और सटकर सिन्धुराजकी लहरें आकाशमें बजनेवाली देवताओंकी बड़ी-बड़ी भेरियोंके समान भयानक शब्द करती थीं॥ ११८॥

वायुसे प्रेरित हो रत्नोंको उछालनेवाली जलकी तरङ्गोंके कलकल नादसे युक्त और जल-जन्तुओंसे भरा हुआ समुद्र इस प्रकार ऊपरको उछल रहा था, मानो रोषसे भरा हुआ हो॥ ११९॥

उन महामनस्वी वानरवीरोंने देखा, समुद्र वायुके थपेड़े खाकर पवनकी प्रेरणासे आकाशमें ऊँचे उठकर उत्ताल तरङ्गोंके द्वारा नृत्य-सा कर रहा था॥ १२०॥

तदनन्तर वहाँ खड़े हुए वानरोंने यह भी देखा कि चक्कर काटते हुए तरङ्ग-समूहोंके कल-कल नादसे युक्त महासागर अत्यन्त चञ्चल-सा हो गया है। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ॥ १२१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

श्रीरामका सीताके लिये शोक और विलाप

नीलने, जिसकी विधिवत् रक्षाकी व्यवस्था की गयी थी, उस परम सावधान वानर-सेनाको समुद्रके उत्तर तटपर अच्छे ढंगसे ठहराया॥ १॥

मैन्द और द्विविद—ये दो प्रमुख वानरवीर उस सेनाकी रक्षाके लिये सब ओर विचरते रहते थे॥ २॥

समुद्रके किनारे सेनाका पड़ाव पड़ जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपने पास बैठे हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा— ॥ ३॥

'सुमित्रानन्दन! कहा जाता है कि शोक बीतते हुए समयके साथ स्वयं भी दूर हो जाता है; परंतु मेरा शोक तो अपनी प्राणवल्लभाको न देखनेके कारण दिनोंदिन बढ़ रहा है॥ ४॥

'मुझे इस बातका दुःख नहीं है कि मेरी प्रिया मुझसे दूर है। उसका अपहरण हुआ—इसका भी दुःख नहीं है। मैं तो बारंबार इसीलिये शोकमें डूबा रहता हूँ कि उसके जीवित रहनेके लिये जो अवधि नियत कर दी गयी है, वह शीघ्रतापूर्वक बीती जा रही है॥ ५॥

'हवा! तुम वहाँ बह, जहाँ मेरी प्राणवल्लभा है। उसका स्पर्श करके मेरा भी स्पर्श कर। उस दशामें तुझसे जो मेरे अङ्गोंका स्पर्श होगा, वह चन्द्रमासे होनेवाले दृष्टिसंयोगकी भाँति मेरे सारे संतापको दूर करनेवाला और आह्लादजनक होगा॥ ६॥

'अपहरण होते समय मेरी प्यारी सीताने जो मुझे 'हा नाथ!' कहकर पुकारा था, वह पीये हुए उदरस्थित विषकी भाँति मेरे सारे अङ्गोंको दग्ध किये देता है॥

'प्रियतमाका वियोग ही जिसका ईंधन है, उसकी चिन्ता ही जिसकी दीप्तिमती लपटें हैं, वह प्रेमाग्नि मेरे शरीरको रात-दिन जलाती रहती है॥ ८॥

'सुमित्रानन्दन! तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारे बिना अकेला ही समुद्रके भीतर घुसकर सोऊँगा। इस तरह जलमें शयन करनेपर यह प्रज्वलित प्रेमाग्नि मुझे दग्ध नहीं कर सकेगी॥ ९॥

'मैं और वह वामोरु सीता एक ही भूतलपर सोते हैं। प्रियतमाके संयोगकी इच्छा रखनेवाले मुझ विरहीके लिये इतना ही बहुत है। इतनेसे भी मैं जीवित रह सकता हूँ॥ १०॥

'जैसे जलसे भरी हुई क्यारीके सम्पर्कसे बिना जलकी क्यारीका धान भी जीवित रहता है—सूखता नहीं है, उसी प्रकार मैं जो यह सुनता हूँ कि सीता अभी जीवित है, इसीसे जी रहा हूँ॥ ११॥

'कब वह समय आयेगा, जब शत्रुओंको परास्त करके मैं समृद्धिशालिनी राजलक्ष्मीके समान कमलनयनी सुमध्यमा सीताको देखूँगा॥ १२॥

'जैसे रोगी रसायनका पान करता है, उसी प्रकार मैं कब सुन्दर दाँतों और बिम्बसदृश मनोहर ओठोंसे युक्त सीताके प्रफुल्लकमल-जैसे मुखको कुछ ऊपर उठाकर चूमूँगा॥ १३॥

'मेरा आलिङ्गन करती हुई प्रिया सीताके वे परस्पर सटे हुए, तालफलके समान गोल और मोटे दोनों स्तन कब किंचित् कम्पनके साथ मेरा स्पर्श करेंगे॥ १४॥

'कजरारे नेत्रप्रान्तवाली वह सती-साध्वी सीता, जिसका मैं ही नाथ हूँ, आज अनाथकी भाँति राक्षसोंके बीचमें पड़कर निश्चय ही कोई रक्षक नहीं पा रही होगी॥

'राजा जनककी पुत्री, महाराज दशरथकी पुत्रवधू और मेरी प्रियतमा सीता राक्षसियोंके बीचमें कैसे सोती होगी॥ १६॥

'वह समय कब आयेगा, जब कि सीता मेरे द्वारा उन दुर्धर्ष राक्षसोंका विनाश करके उसी प्रकार अपना उद्धार करेगी, जैसे शरत्कालमें चन्द्रलेखा काले बादलोंका निवारण करके उनके आवरणसे मुक्त हो जाती है॥ १७॥

'स्वभावसे ही दुबले-पतले शरीरवाली सीता विपरीत देशकालमें पड़ जानेके कारण निश्चय ही शोक और उपवास करके और भी दुर्बल हो गयी होगी॥ १८॥

'मैं राक्षसराज रावणकी छातीमें अपने सायकोंको धँसाकर अपने मानसिक शोकका निराकरण करके कब सीताका शोक दूर करूँगा॥ १९॥

'देवकन्याके समान सुन्दरी मेरी सती-साध्वी सीता कब उत्कण्ठापूर्वक मेरे गलेसे लगकर अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहायेगी॥ २०॥

'ऐसा समय कब आयेगा, जब मैं मिथिलेशकुमारीके वियोगसे होनेवाले इस भयंकर शोकको मलिन वस्त्रकी भाँति सहसा त्याग दूँगा?'॥ २१॥

बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी वहाँ इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि दिनका अन्त होनेके कारण मन्द किरणोंवाले सूर्यदेव अस्ताचलको जा पहुँचे॥ २२॥

उस समय लक्ष्मणके धैर्य बँधानेपर शोकसे व्याकुल हुए श्रीरामने कमलनयनी सीताका चिन्तन करते हुए संध्योपासना की॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठा सर्ग

रावणका कर्तव्य-निर्णयके लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचित सलाह देनेका अनुरोध करना

इधर इन्द्रतुल्य पराक्रमी महात्मा हनुमान्‌जीने लङ्कामें जो अत्यन्त भयावह घोर कर्म किया था, उसे देखकर राक्षसराज रावणका मुख लज्जासे कुछ नीचेको झुक गया और उसने समस्त राक्षसोंसे इस प्रकार कहा—॥

'निशाचरो! वह हनुमान्, जो एक वानरमात्र है, अकेला इस दुर्धर्ष पुरीमें घुस आया। उसने इसे तहस-नहस कर डाला और जनककुमारी सीतासे भेंट भी कर लिया॥ २॥

'इतना ही नहीं, हनुमान्‌ने चैत्यप्रासादको धराशायी कर दिया, मुख्य-मुख्य राक्षसोंको मार गिराया और सारी लङ्कापुरीमें खलबली मचा दी॥ ३॥

'तुमलोगोंका भला हो। अब मैं क्या करूँ? तुम्हें जो कार्य उचित और समर्थ जान पड़े तथा जिसे करनेपर कोई अच्छा परिणाम निकले, उसे बताओ॥ ४॥

'महाबली वीरो! मनस्वी पुरुषोंका कहना है कि विजयका मूल कारण मन्त्रियोंकी दी हुई अच्छी सलाह ही है। इसलिये मैं श्रीरामके विषयमें आपलोगोंसे सलाह लेना अच्छा समझता हूँ॥ ५॥

'संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके पुरुष होते हैं। मैं उन सबके गुण-दोषोंका वर्णन करता हूँ॥ ६॥

'जिसका मन्त्र आगे बताये जानेवाले तीन लक्षणोंसे युक्त होता है तथा जो पुरुष मन्त्रनिर्णयमें समर्थ मित्रों, समान दुःख-सुखवाले बान्धुवों और उनसे भी बढ़कर अपने हितकारियोंके साथ सलाह करके कार्यका आरम्भ करता है तथा दैवके सहारे प्रयत्न करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं॥ ७-८॥

'जो अकेला ही अपने कर्तव्यका विचार करता है, अकेला ही धर्ममें मन लगाता है और अकेला ही सब काम करता है, उसे मध्यम श्रेणीका पुरुष कहा जाता है॥ ९॥

'जो गुण-दोषका विचार न करके दैवका भी आश्रय छोड़कर केवल 'करूँगा' इसी बुद्धिसे कार्य आरम्भ करता है और फिर उसकी उपेक्षा कर देता है, वह पुरुषोंमें अधम है॥ १०॥

'जैसे ये पुरुष सदा उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके होते हैं, वैसे ही मन्त्र (निश्चित किया हुआ विचार) भी उत्तम, मध्यम और अधम-भेदसे तीन प्रकारका समझना चाहिये॥ ११॥

'जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टिसे सब मन्त्री एकमत होकर प्रवृत्त होते हैं, उसे उत्तम मन्त्र कहते हैं॥ १२॥

'जहाँ प्रारम्भमें कई प्रकारका मतभेद होनेपर भी

अन्तमें सब मन्त्रियोंका कर्तव्यविषयक निर्णय एक हो जाता है, वह मन्त्र मध्यम माना गया है॥ १३॥

'जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धिका आश्रय ले सब ओरसे स्पर्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी जिससे कल्याणकी सम्भावना न हो, वह मन्त्र या निश्चय अधम कहलाता है॥ १४॥

'आप सब लोग परम बुद्धिमान् हैं; इसलिये अच्छी तरह सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें। उसीको मैं अपना कर्तव्य समझूँगा॥ १५॥

'(ऐसे निश्चयकी आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि) राम सहस्रों धीरवीर वानरोंके साथ हमारी लङ्कापुरीपर चढ़ाई करनेके लिये आ रहे हैं॥ १६॥

'यह बात भी भलीभाँति स्पष्ट हो चुकी है कि वे रघुवंशी राम अपने समुचित बलके द्वारा भाई, सेना और सेवकोंसहित सुखपूर्वक समुद्रको पार कर लेंगे॥ १७॥

'वे या तो समुद्रको ही सुखा डालेंगे या अपने पराक्रमसे कोई दूसरा ही उपाय करेंगे। ऐसी स्थितिमें वानरोंसे विरोध आ पड़नेपर नगर और सेनाके लिये जो भी हितकर हो, वैसी सलाह आपलोग दीजिये'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

राक्षसोंका रावण और इन्द्रजित्‌के बल-पराक्रमका वर्णन करते हुए उसे रामपर विजय पानेका विश्वास दिलाना

राक्षसोंको न तो नीतिका ज्ञान था और न वे शत्रुपक्षके बलाबलको ही समझते थे। वे बलवान् तो बहुत थे; किंतु नीतिकी दृष्टिसे महामूर्ख थे। इसलिये जब राक्षसराज रावणने उनसे पूर्वोक्त बातें कहीं, तब वे सब-के-सब हाथ जोड़कर उससे बोले—॥ १½॥

'राजन्! हमारे पास परिघ, शक्ति, ऋष्टि, शूल, पट्टिश और भालोंसे लैस बहुत बड़ी सेना मौजूद है; फिर आप विषाद क्यों करते हैं॥ २½॥

'आपने तो भोगवतीपुरीमें जाकर नागोंको भी युद्धमें परास्त कर दिया था। बहुसंख्यक यक्षोंसे घिरे हुए कैलासशिखरके निवासी कुबेरको भी युद्धमें भारी मार-काट मचाकर वशमें कर लिया था॥ ३-४॥

'प्रभो! महाबली लोकपाल कुबेर महादेवजीके साथ मित्रता होनेके कारण आपके साथ बड़ी स्पर्धा रखते थे; परंतु आपने समराङ्गणमें रोषपूर्वक उन्हें हरा दिया॥ ५॥

'यक्षोंकी सेनाको विचलित करके बंदी बना लिया और कितनोंको धराशायी करके कैलासशिखरसे आप उनका यह विमान छीन लाये थे॥ ६॥

'राक्षसशिरोमणे! दानवराज मयने आपसे भयभीत होकर ही आपको अपना मित्र बना लेनेकी इच्छा की और इसी उद्देश्यसे आपको धर्मपत्नीके रूपमें अपनी पुत्री समर्पित कर दी॥ ७॥

'महाबाहो! अपने पराक्रमका घमंड रखनेवाले दुर्जय दानवराज मधुको भी, जो आपकी बहिन कुम्भीनसीको सुख देनेवाला उसका पति है, आपने युद्ध छेड़कर वशमें कर लिया॥ ८॥

'विशालबाहु वीर! आपने रसातलपर चढ़ाई करके वासुकि, तक्षक, शङ्ख और जटी आदि नागोंको युद्धमें जीता और अपने अधीन कर लिया॥ ९॥

'प्रभो! शत्रुदमन राक्षसराज! दानवलोग बड़े ही बलवान्, किसीसे नष्ट न होनेवाले, शूरवीर तथा वर पाकर अद्भुत शक्तिसे सम्पन्न हो गये थे; परंतु आपने समराङ्गणमें एक वर्षतक युद्ध करके अपने ही बलके भरोसे उन सबको अपने अधीन कर लिया और वहाँ उनसे बहुत-सी मायाएँ भी प्राप्त कीं॥ १०-११॥

'महाभाग! आपने वरुणके शूरवीर और बलवान् पुत्रोंको भी उनकी चतुरंगिणी सेनासहित युद्धमें परास्त कर दिया था॥ १२॥

'राजन्! मृत्युका दण्ड ही जिसमें महान् ग्राहके समान है, जो यम-यातना-सम्बन्धी शाल्मलि आदि वृक्षोंसे मण्डित है, कालपाशरूपी उत्ताल तरङ्गें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, यमदूतरूपी सर्प जिसमें निवास करते हैं तथा जो महान् ज्वरके कारण दुर्जय है, उस यमलोकरूपी महासागरमें प्रवेश करके आपने यमराजकी सागर-जैसी सेनाको मथ डाला, मृत्युको रोक दिया और महान् विजय प्राप्त की। यही नहीं, युद्धकी उत्तम कलासे आपने वहाँके सब लोगोंको पूर्ण संतुष्ट कर दिया था॥ १३—१५॥

'पहले यह पृथ्वी विशाल वृक्षोंकी भाँति इन्द्रतुल्य पराक्रमी बहुसंख्यक क्षत्रिय वीरोंसे भरी हुई थी॥ १६॥

'उन वीरोंमें जो पराक्रम, गुण और उत्साह थे, उनकी दृष्टिसे राम रणभूमिमें उनके समान कदापि नहीं है; राजन्! जब आपने उन समरदुर्जय वीरोंको भी बलपूर्वक मार डाला, तब रामपर विजय पाना आपके लिये कौन बड़ी बात है?॥ १७॥

'अथवा महाराज! आप चुपचाप यहीं बैठे रहें। आपको परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है। अकेले ये महाबाहु इन्द्रजित् ही सब वानरोंका संहार कर डालेंगे॥ १८॥

'महाराज! इन्होंने परम उत्तम माहेश्वर यज्ञका अनुष्ठान करके वह वर प्राप्त किया है, जो संसारमें दूसरेके लिये अत्यन्त दुर्लभ है॥ १९॥

'देवताओंकी सेना समुद्रके समान थी। शक्ति और तोमर ही उसमें मत्स्य थे। निकालकर फेंकी हुई आँतें सेवारका काम देती थीं। हाथी ही उस सैन्य-सागरमें कछुओंके समान भरे थे। घोड़े मेढकोंके समान उसमें सब ओर व्याप्त थे। रुद्रगण और आदित्यगण उस सेनारूपी समुद्रके बड़े-बड़े ग्राह थे। मरुद्गण और वसुगण वहाँके विशाल नाग थे। रथ, हाथी और घोड़े जलराशिके समान थे और पैदल सैनिक उसके विशाल तट थे; परंतु इस इन्द्रजित्ने देवताओंके उस सैन्य-समुद्रमें घुसकर देवराज इन्द्रको कैद कर लिया और उन्हें लङ्कापुरीमें लाकर बंद कर दिया॥ २०—२२॥

'राजन्! फिर ब्रह्माजीके कहनेसे इन्होंने शम्बर और वृत्रासुरको मारनेवाले सर्वदेववन्दित इन्द्रको मुक्त किया। तब वे स्वर्गलोकमें गये॥ २३॥

'अतः महाराज! इस कामके लिये आप राजकुमार इन्द्रजित्को ही भेजिये, जिससे ये रामसहित वानर-सेनाका यहाँ आनेसे पहले ही संहार कर डालें॥ २४॥

'राजन्! साधारण नर और वानरोंसे प्राप्त हुई इस आपत्तिके विषयमें चिन्ता करना आपके लिये उचित नहीं है। आपको तो अपने हृदयमें इसे स्थान ही नहीं देना चाहिये। आप अवश्य ही रामका वध कर डालेंगे'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ और वज्रहनुका रावणके सामने शत्रु-सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखाना

इसके बाद नील मेघके समान श्यामवर्णवाले शूर सेनापति प्रहस्त नामक राक्षसने हाथ जोड़कर कहा—॥

'महाराज! हमलोग देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प सभीको पराजित कर सकते हैं; फिर उन दो मनुष्योंको रणभूमिमें हराना कौन बड़ी बात है॥ २॥

'पहले हमलोग असावधान थे। हमारे मनमें शत्रुओंकी ओरसे कोई खटका नहीं था। इसीलिये हम निश्चिन्त बैठे थे। यही कारण है कि हनुमान् हमें धोखा दे गया। नहीं तो मेरे जीते-जी वह वानर यहाँसे जीता-जागता नहीं जा सकता था॥ ३॥

'यदि आपकी आज्ञा हो तो पर्वत, वन और काननोंसहित समुद्रतककी सारी भूमिको मैं वानरोंसे सूनी कर दूँ॥ ४॥

'राक्षसराज! मैं वानरमात्रसे आपकी रक्षा करूँगा, अतः अपने द्वारा किये गये सीता-हरणरूपी अपराधके कारण कोई दुःख आपपर नहीं आने पायेगा'॥ ५॥

तत्पश्चात् दुर्मुख नामक राक्षसने अत्यन्त कुपित होकर कहा—'यह क्षमा करनेयोग्य अपराध नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा हम सब लोगोंका तिरस्कार हुआ है॥ ६॥

'वानरके द्वारा हमलोगोंपर जो आक्रमण हुआ है, यह समस्त लङ्कापुरीका, महाराजके अन्तःपुरका और श्रीमान् राक्षसराज रावणका भी भारी पराभव है॥ ७॥

'मैं अभी इसी मुहूर्तमें अकेला ही जाकर सारे वानरोंको मार भगाऊँगा। भले ही वे भयंकर समुद्रमें, आकाशमें अथवा रसातलमें ही क्यों न घुस गये हों'॥

इतनेहीमें महाबली वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रोधसे भरकर रक्त, मांससे सने हुए भयानक परिघको हाथमें लिये हुए बोला—॥ ९॥

'दुर्जय वीर राम, सुग्रीव और लक्ष्मणके रहते हुए हमें उस बेचारे तपस्वी हनुमान्से क्या काम है?॥ १०॥

'आज मैं अकेला ही वानर-सेनामें तहलका मचा दूँगा और इस परिघसे सुग्रीव तथा लक्ष्मणसहित रामका भी काम तमाम करके लौट आऊँगा॥ ११॥

'राजन्! यदि आपकी इच्छा हो तो आप यह मेरी दूसरी बात सुनें। उपायकुशल पुरुष ही यदि आलस्य छोड़कर प्रयत्न करे तो वह शत्रुओंपर विजय पा सकता है॥ १२॥

'अत: राक्षसराज! मेरी दूसरी राय यह है कि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त भयानक तथा भयंकर दृष्टिवाले सहस्रों शूरवीर राक्षस एक निश्चित विचार करके मनुष्यका रूप धारण कर श्रीरामके पास जायँ और सब लोग बिना किसी घबराहटके उन रघुवंशशिरोमणिसे कहें कि हम आपके सैनिक हैं। हमें आपके छोटे भाई भरतने भेजा है। इतना सुनते ही वे वानर-सेनाको उठाकर तुरंत लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये वहाँसे चल देंगे॥ १३—१५॥

'तत्पश्चात् हमलोग यहाँसे शूल, शक्ति, गदा, धनुष, बाण और खड्ग धारण किये शीघ्र ही मार्गमें उनके पास जा पहुँचें॥ १६॥

'फिर आकाशमें अनेक यूथ बनाकर खड़े हो जायँ और पत्थरों तथा शस्त्र-समूहोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उस वानर-सेनाको यमलोक पहुँचा दें॥ १७॥

'यदि इस प्रकार हमारी बातें सुनकर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दे देंगे और वहाँसे चल देंगे तो उन्हें हमारी अनीतिका शिकार होना पड़ेगा; उन्हें हमारे छलपूर्ण प्रहारसे पीड़ित होकर अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा॥ १८॥

तदनन्तर पराक्रमी वीर कुम्भकर्णकुमार निकुम्भने अत्यन्त कुपित होकर समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणसे कहा—॥ १९॥

'आप सब लोग यहाँ महाराजके साथ चुपचाप बैठे रहें। मैं अकेला ही राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् तथा अन्य सब वानरोंको भी यहाँ मौतके घाट उतार दूँगा'॥ २० $\frac{1}{2}$ ॥

तब पर्वतके समान विशालकाय वज्रहनु नामक राक्षस कुपित हो जीभसे अपने जबड़ेको चाटता हुआ बोला—॥ २१ $\frac{1}{2}$ ॥

'आप सब लोग निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपना-अपना काम करें। मैं अकेला ही सारी वानर-सेनाको खा जाऊँगा॥२२ $\frac{1}{2}$ ॥

'आपलोग स्वस्थ रहकर क्रीड़ा करें और निश्चिन्त हो वारुणी मदिराको पियें। मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, हनुमान् और अन्य सब वानरोंका भी यहाँ वध कर डालूँगा'॥ २३-२४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

विभीषणका रावणसे श्रीरामकी अजेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना

तत्पश्चात् निकुम्भ, रभस, महाबली सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, दुर्जय अग्निकेतु, राक्षस रश्मिकेतु, महातेजस्वी बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित्, प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबली वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, अतिकाय और निशाचर दुर्मुख—ये सब राक्षस अत्यन्त कुपित हो हाथोंमें परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, शक्ति, फरसे, धनुष, बाण तथा पैनी धारवाले बड़े-बड़े खड्ग लिये उछलकर रावणके सामने आये और अपने तेजसे उद्दीप्त-से होकर वे सब-के-सब उससे बोले—॥ १—५॥

'हमलोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और उस कायर हनुमान्को भी मार डालेंगे, जिसने लङ्कापुरी जलायी है'॥ ६॥

हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये खड़े हुए उन सब राक्षसोंको जानेके लिये उद्यत देख विभीषणने रोका और पुन: उन्हें बिठाकर दोनों हाथ जोड़ रावणसे कहा—॥ ७॥

'तात! जो मनोरथ साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे प्राप्त न हो सके, उसीकी प्राप्तिके लिये नीतिशास्त्रके ज्ञाता मनीषी विद्वानोंने पराक्रम करनेके योग्य अवसर बताये हैं॥ ८॥

'तात! जो शत्रु असावधान हों, जिनपर दूसरे-दूसरे शत्रुओंने आक्रमण किया हो तथा जो महारोग आदिसे ग्रस्त होनेके कारण दैवसे मारे गये हों, उन्हींपर भलीभाँति परीक्षा करके विधिपूर्वक किये गये पराक्रम सफल होते हैं॥ ९॥

'श्रीरामचन्द्रजी बेखबर नहीं हैं। वे विजयकी इच्छासे आ रहे हैं और उनके साथ सेना भी है। उन्होंने क्रोधको सर्वथा जीत लिया है। अत: वे सर्वथा दुर्जय हैं। ऐसे अजेय वीरको तुमलोग परास्त करना चाहते हो॥ १०॥

'निशाचरो! नदों और नदियोंके स्वामी भयंकर महासागरको जो एक ही छलाँगमें लाँघकर यहाँतक आ पहुँचे थे, उन हनुमान्‌जीकी गतिको इस संसारमें कौन जान सकता है अथवा कौन उसका अनुमान लगा सकता है? शत्रुओंके पास असंख्य सेनाएँ हैं, उनमें असीम बल और पराक्रम है; इस बातको तुमलोग अच्छी तरह जान लो। दूसरोंकी शक्तिको भुलाकर किसी तरह भी सहसा उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये॥ ११-१२॥

'श्रीरामचन्द्रजीने पहले राक्षसराज रावणका कौन-सा अपराध किया था, जिससे उन यशस्वी महात्माकी पत्नीको ये जनस्थानसे हर लाये?॥ १३॥

'यदि कहें कि उन्होंने खरको मारा था तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि खर अत्याचारी था। उसने स्वयं ही उन्हें मार डालनेके लिये उनपर आक्रमण किया था। इसलिये श्रीरामने रणभूमिमें उसका वध किया; क्योंकि प्रत्येक प्राणीको यथाशक्ति अपने प्राणोंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये॥ १४॥

'यदि इसी कारणसे सीताको हरकर लाया गया हो तो उन्हें जल्दी ही लौटा देना चाहिये; अन्यथा हमलोगोंपर महान् भय आ सकता है। जिस कर्मका फल केवल कलह है, उसे करनेसे क्या लाभ?॥ १५॥

'श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। उनके साथ व्यर्थ वैर करना उचित नहीं है। मिथिलेशकुमारी सीताको उनके पास लौटा देना चाहिये॥ १६॥

'जबतक हाथी, घोड़े और अनेकों रत्नोंसे भरी हुई लङ्कापुरीका श्रीराम अपने बाणोंद्वारा विध्वंस नहीं कर डालते, तबतक ही मैथिलीको उन्हें लौटा दिया जाय॥ १७॥

'जबतक अत्यन्त भयंकर, विशाल और दुर्जय वानर-वाहिनी हमारी लङ्काको पददलित नहीं कर देती, तभीतक सीताको वापस कर दिया जाय॥ १८॥

'यदि श्रीरामकी प्राणवल्लभा सीताको हमलोग स्वयं ही नहीं लौटा देते हैं तो यह लङ्कापुरी नष्ट हो जायगी और समस्त शूरवीर राक्षस मार डाले जायँगे॥ १९॥

'आप मेरे बड़े भाई हैं। अत: मैं आपको विनयपूर्वक प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप मेरी बात मान लें। मैं आपके हितके लिये सच्ची बात कहता हूँ—आप श्रीरामचन्द्रजीको उनकी सीता वापस कर दें॥ २०॥

'राजकुमार श्रीराम जबतक आपके वधके लिये शरत्कालके सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, उज्ज्वल अग्रभाग एवं पंखोंसे सुशोभित, सुदृढ़ तथा अमोघ बाणोंकी वर्षा करें, उसके पहले ही आप उन दशरथनन्दनकी सेवामें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दें॥ २१॥

'भैया! आप क्रोधको त्याग दें; क्योंकि वह सुख और धर्मका नाश करनेवाला है। धर्मका सेवन कीजिये; क्योंकि वह सुख और सुयशको बढ़ानेवाला है। हमपर प्रसन्न होइये, जिससे हम पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित जीवित रह सकें। इसी दृष्टिसे मेरी प्रार्थना है कि आप दशरथनन्दन श्रीरामके हाथमें मिथिलेशकुमारी सीताको लौटा दें'॥ २२॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण उन सब सभासदोंको विदा करके अपने महलमें चला गया॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपशकुनोंका भय दिखाकर सीताको लौटा देनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना

दूसरे दिन सबेरा होते ही धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले भीमकर्मा महातेजस्वी वीर विभीषण अपने बड़े भाई राक्षसराज रावणके घर गये। वह घर अनेक प्रासादोंके कारण पर्वतशिखरोंके समूहकी भाँति शोभा पाता था। उसकी ऊँचाई भी पहाड़की चोटीको लज्जित करती थी। उसमें अलग-अलग बड़ी-बड़ी

कक्षाएँ (ड्योढ़ियाँ) सुन्दर ढंगसे बनी हुई थीं। बहुतेरे श्रेष्ठ पुरुषोंका वहाँ आना-जाना लगा रहता था। अनेकानेक बुद्धिमान् महामन्त्री, जो राजाके प्रति अनुराग रखनेवाले थे, उसमें बैठे थे। विश्वसनीय, हितैषी तथा कार्यसाधनमें कुशल बहुसंख्यक राक्षस सब ओरसे उस भवनकी रक्षा करते थे। वहाँकी वायु मतवाले हाथियोंके नि:श्वाससे मिश्रित हो बवंडर-सी जान पड़ती थी। शङ्ख-ध्वनिके समान राक्षसोंका गम्भीर घोष वहाँ गूँजता रहता था। नाना प्रकारके वाद्योंके मनोरम शब्द उस भवनको निनादित करते थे। रूप और यौवनके मदसे मतवाली युवतियोंकी वहाँ भीड़-सी लगती रहती थी। वहाँके बड़े-बड़े मार्ग लोगोंके वार्तालापसे मुखरित जान पड़ते थे। उसके फाटक तपाये हुए सुवर्णके बने हुए थे। उत्तम सजावटकी वस्तुओंसे वह महल अच्छी तरह सजा हुआ था, अतएव वह गन्धर्वोंके आवास और देवताओंके निवासस्थान-सा मनोरम प्रतीत होता था। रत्नराशिसे परिपूर्ण होनेके कारण वह नागभवनके समान उद्भासित होता था। जैसे तेजसे विस्तृत किरणोंवाले सूर्य महान् मेघोंकी घटामें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार तेजस्वी विभीषणने रावणके उस भवनमें पदार्पण किया॥ १—७॥

वहाँ पहुँचकर उन महातेजस्वी विभीषणने अपने भाईकी विजयके उद्देश्यसे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा किये गये पुण्याहवाचनके पवित्र घोष सुने॥ ८॥

तत्पश्चात् उन महाबली विभीषणने वेदमन्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंका दर्शन किया, जिनके हाथोंमें दही और घीके पात्र थे। फूलों और अक्षतोंसे उन सबकी पूजा की गयी थी॥ ९॥

वहाँ जानेपर राक्षसोंने उनका स्वागत-सत्कार किया। फिर उन महाबाहु विभीषणने अपने तेजसे देदीप्यमान और सिंहासनपर विराजमान कुबेरके छोटे भाई रावणको प्रणाम किया॥ १०॥

तदनन्तर शिष्टाचारके ज्ञाता विभीषण '**विजयतां महाराजः**' (महाराजकी जय हो) इत्यादि रूपसे राजाके प्रति परम्पराप्राप्त शुभाशंसासूचक वचनका प्रयोग करके राजाके द्वारा दृष्टिके संकेतसे बताये गये सुवर्णभूषित सिंहासनपर बैठ गये॥ ११॥

विभीषण जगत्‌की भली-बुरी बातोंको अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने प्रणाम आदि व्यवहारका यथार्थरूपसे निर्वाह करके सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा अपने बड़े भाई महामना रावणको प्रसन्न किया और उससे एकान्तमें मन्त्रियोंके निकट देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप, युक्तियोंद्वारा निश्चित तथा अत्यन्त हितकारक बात कही—॥ १२-१३॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! जबसे विदेहकुमारी सीता यहाँ आयी हैं, तभीसे हमलोगोंको अनेक प्रकारके अमङ्गलसूचक अपशकुन दिखायी दे रहे हैं॥ १४॥

'मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक धधकानेपर भी आग अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं हो रही है। उससे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। उसकी लपटके साथ धुआँ उठने लगता है और मन्थनकालमें जब अग्नि प्रकट होती है, उस समय भी वह धूएँसे मलिन ही रहती है॥ १५॥

'रसोईघरोंमें, अग्निशालाओंमें तथा वेदाध्ययनके स्थानोंमें भी साँप देखे जाते हैं और हवन-सामग्रियोंमें चीटियाँ पड़ी दिखायी देती हैं॥ १६॥

'गायोंका दूध सूख गया है, बड़े-बड़े गजराज मदरहित हो गये हैं, घोड़े नये ग्राससे आनन्दित (भोजनसे संतुष्ट) होनेपर भी दीनतापूर्ण स्वरमें हिनहिनाते हैं॥ १७॥

'राजन्! गधों, ऊँटों और खच्चरोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगते हैं। विधिपूर्वक चिकित्सा की जानेपर भी वे पूर्णतः स्वस्थ हो नहीं पाते हैं॥ १८॥

'क्रूर कौए झुंड-के-झुंड एकत्र होकर कर्कश स्वरमें काँव-काँव करने लगते हैं तथा वे सतमहले मकानोंपर समूह-के-समूह इकट्ठे हुए देखे जाते हैं॥ १९॥

लङ्कापुरीके ऊपर झुंड-के-झुंड गीध उसका स्पर्श करते हुए-से मड़राते रहते हैं। दोनों संध्याओंके समय सियारिनें नगरके समीप आकर अमङ्गलसूचक शब्द करती हैं॥ २०॥

'नगरके सभी फाटकोंपर समूह-के-समूह एकत्र हुए मांसभक्षी पशुओंके जोर-जोरसे किये जानेवाले चीत्कार बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ते हैं॥ २१॥

'वीरवर! ऐसी परिस्थितिमें मुझे तो यही प्रायश्चित्त अच्छा जान पड़ता है कि विदेहकुमारी सीता श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी जायँ॥ २२॥

'महाराज! यदि यह बात मैंने मोह या लोभसे कही हो तो भी आपको मुझमें दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये॥

'सीताका अपहरण तथा इससे होनेवाला

अपशकुनरूपी दोष यहाँकी सारी जनता, राक्षस-राक्षसी तथा नगर और अन्त:पुर—सभीके लिये उपलक्षित होता है॥ २४॥

'यह बात आपके कानोंतक पहुँचानेमें प्राय: सभी मन्त्री संकोच करते हैं; परंतु जो बात मैंने देखी या सुनी है वह मुझे तो आपके आगे अवश्य निवेदन कर देनी चाहिये; अत: उसपर यथोचित विचार करके आप जैसा उचित समझें, वैसा करें'॥ २५॥

इस प्रकार भाई विभीषणने अपने मन्त्रियोंके बीचमें बड़े भाई राक्षसराज रावणसे ये हितकारी वचन कहे॥ २६॥

विभीषणकी ये हितकर, महान् अर्थकी साधक, कोमल, युक्तिसंगत तथा भूत, भविष्य और वर्तमानकालमें भी कार्यसाधनमें समर्थ बातें सुनकर रावणको बुखार चढ़ आया। श्रीरामके साथ वैर बढ़ानेमें उसकी आसक्ति हो गयी थी। इसलिये उसने इस प्रकार उत्तर दिया—'विभीषण! मैं तो कहींसे भी कोई भय नहीं देखता। राम मिथिलेशकुमारी सीताको कभी नहीं पा सकते। इन्द्रसहित देवताओंकी सहायता प्राप्त कर लेनेपर भी लक्ष्मणके बड़े भाई राम मेरे सामने संग्राममें कैसे टिक सकेंगे?'॥ २७-२८॥

ऐसा कहकर देवसेनाके नाशक और समराङ्गणमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली दशाननने अपने यथार्थवादी भाई विभीषणको तत्काल विदा कर दिया॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

रावण और उसके सभासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना

राक्षसोंका राजा रावण मिथिलेशकुमारी सीताके प्रति कामसे मोहित हो रहा था, उसके हितैषी सुहृद् विभीषण आदि उसका अनादर करने लगे थे—उसके कुकृत्योंकी निन्दा करते थे तथा वह सीताहरणरूपी जघन्य पाप-कर्मके कारण पापी घोषित किया गया था—इन सब कारणोंसे वह अत्यन्त कृश (चिन्तायुक्त एवं दुर्बल) हो गया था॥ १॥

वह अत्यन्त कामसे पीड़ित होकर बारंबार विदेहकुमारीका चिन्तन करता था, इसलिये युद्धका अवसर बीत जानेपर भी उसने उस समय मन्त्रियों और सुहृदोंके साथ सलाह करके युद्धको ही समयोचित कर्तव्य माना॥ २॥

वह सोनेकी जालीसे आच्छादित तथा मणि एवं मूँगोंसे विभूषित एक विशाल रथपर, जिसमें सुशिक्षित घोड़े जुते हुए थे; जा चढ़ा॥ ३॥

महान् मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले उस उत्तम रथपर आरूढ़ हो राक्षसशिरोमणि दशग्रीव सभाभवनकी ओर प्रस्थित हुआ॥ ४॥

उस समय राक्षसराज रावणके आगे-आगे ढाल-तलवार एवं सब प्रकारके आयुध धारण करनेवाले बहुसंख्यक राक्षस योद्धा जा रहे थे॥ ५॥

इसी तरह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित और नाना प्रकारके विकराल वेषवाले अगणित निशाचर उसे दायें-बायें और पीछेकी ओरसे घेरकर चल रहे थे॥ ६॥

रावणके प्रस्थान करते ही बहुत-से अतिरथी वीर रथों, मतवाले गजराजों और खेल-खेलमें तरह-तरहकी चालें दिखानेवाले घोड़ोंपर सवार हो तुरंत उसके पीछे चल दिये॥ ७॥

किन्हींके हाथोंमें गदा और परिघ शोभा पा रहे थे। कोई शक्ति और तोमर लिये हुए थे। कुछ लोगोंने फरसे धारण कर रखे थे तथा अन्य राक्षसोंके हाथोंमें शूल चमक रहे थे, फिर तो वहाँ सहस्रों वाद्योंका महान् घोष होने लगा॥ ८॥

रावणके सभाभवनकी ओर यात्रा करते समय तुमुल शङ्खध्वनि होने लगी। उसका वह विशाल रथ अपने पहियोंकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ सहसा शोभाशाली राजमार्गपर जा पहुँचा॥ ९ $\frac{1}{2}$॥

उस समय राक्षसराज रावणके ऊपर तना हुआ निर्मल श्वेत छत्र पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥ १० $\frac{1}{2}$॥

उसके दाहिने और बायें भागमें शुद्ध स्फटिकके डंडेवाले चँवर और व्यजन, जिनमें सोनेकी मञ्जरियाँ बनी हुई थीं, बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ११ $\frac{1}{2}$॥

मार्गमें पृथ्वीपर खड़े हुए सभी राक्षस दोनों हाथ जोड़ रथपर बैठे हुए राक्षसशिरोमणि रावणकी सिर

झुकाकर वन्दना करते थे॥ १२ $\frac{१}{२}$ ॥

राक्षसोंद्वारा की गयी स्तुति, जय-जयकार और आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमन महातेजस्वी रावण उस समय विश्वकर्माद्वारा निर्मित राजसभामें पहुँचा॥ १३ $\frac{१}{२}$ ॥

उस सभाके फर्शमें सोने-चाँदीका काम किया हुआ था तथा बीच-बीचमें विशुद्ध स्फटिक भी जड़ा गया था। उसमें सोनेके कामवाले रेशमी वस्त्रोंकी चादरें बिछी हुई थीं। वह सभा सदा अपनी प्रभासे उद्भासित होती रहती थी। छः सौ पिशाच उसकी रक्षा करते थे। विश्वकर्माने उसे बहुत ही सुन्दर बनाया था। अपने शरीरसे सुशोभित होनेवाले महातेजस्वी रावणने उस सभामें प्रवेश किया॥ १४-१५ $\frac{१}{२}$ ॥

उस सभाभवनमें वैदूर्यमणि (नीलम)-का बना हुआ एक विशाल और उत्तम सिंहासन था, जिसपर अत्यन्त मुलायम चमड़ेवाले 'प्रियक' नामक मृगका चर्म बिछा था और उसपर मसनँद भी रखा हुआ था। रावण उसीपर बैठ गया। फिर उसने अपने शीघ्रगामी दूतोंको आज्ञा दी—॥ १६-१७॥

'तुमलोग शीघ्र ही यहाँ बैठनेवाले सुविख्यात राक्षसोंको मेरे पास बुला ले आओ; क्योंकि शत्रुओंके साथ करनेयोग्य महान् कार्य मुझपर आ पड़ा है। इस बातको मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ (अतः इसपर विचार करनेके लिये सब सभासदोंका यहाँ आना अत्यन्त आवश्यक है)'॥ १८॥

रावणका यह आदेश सुनकर वे राक्षस लङ्कामें सब ओर चक्कर लगाने लगे। वे एक-एक घर, विहारस्थान, शयनागार और उद्यानमें जा-जाकर बड़ी निर्भयतासे उन सब राक्षसोंको राजसभामें चलनेके लिये प्रेरित करने लगे॥ १९॥

तब उन राक्षसोंमेंसे कोई रथपर चढ़कर चले, कोई मतवाले हाथियोंपर और कोई मजबूत घोड़ोंपर सवार होकर अपने-अपने स्थानसे प्रस्थित हुए। बहुत-से राक्षस पैदल ही चल दिये॥ २०॥

उस समय दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंसे व्याप्त हुई वह पुरी बहुसंख्यक गरुड़ोंसे आच्छादित हुए आकाशकी भाँति शोभा पा रही थी॥ २१॥

गन्तव्य स्थानतक पहुँचकर अपने-अपने वाहनों और नाना प्रकारकी सवारियोंको बाहर ही रखकर वे सब सभासद् पैदल ही उस सभाभवनमें प्रविष्ट हुए, मानो बहुत-से सिंह किसी पर्वतकी कन्दरामें घुस रहे हों॥ २२॥

वहाँ पहुँचकर उन सबने राजाके पाँव पकड़े तथा राजाने भी उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् कुछ लोग सोनेके सिंहासनोंपर, कुछ लोग कुशकी चटाइयोंपर और कुछ लोग साधारण बिछौनोंसे ढकी हुई भूमिपर ही बैठ गये॥ २३॥

राजाकी आज्ञासे उस सभामें एकत्र होकर वे सब राक्षस राक्षसराज रावणके आसपास यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये॥ २४॥

यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयोंके लिये उचित सम्मति देनेवाले मुख्य-मुख्य मन्त्री, कर्तव्य-निश्चयमें पाण्डित्यका परिचय देनेवाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सर्वज्ञ, सद्गुण-सम्पन्न उपमन्त्री तथा और भी बहुत-से शूरवीर सम्पूर्ण अर्थोंके निश्चयके लिये और सुखप्राप्तिके उपायपर विचार करनेके लिये उस सुनहरी कान्तिवाली सभाके भीतर सैकड़ोंकी संख्यामें उपस्थित थे॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् यशस्वी महात्मा विभीषण भी एक सुवर्णजटित, सुन्दर अश्वोंसे युक्त, विशाल, श्रेष्ठ एवं शुभकारक रथपर आरूढ़ हो अपने बड़े भाईकी सभामें जा पहुँचे॥ २७॥

छोटे भाई विभीषणने पहले अपना नाम बताया, फिर बड़े भाईके चरणोंमें मस्तक झुकाया। इसी तरह शुक और प्रहस्तने भी किया। तब रावणने उन सबको यथायोग्य पृथक्-पृथक् आसन दिये॥ २८॥

सुवर्ण एवं नाना प्रकारकी मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित उन सुन्दर वस्त्रधारी राक्षसोंकी उस सभामें सब ओर बहुमूल्य अगुरु, चन्दन तथा पुष्पहारोंकी सुगन्ध छा रही थी॥ २९॥

उस समय उस सभाका कोई भी सदस्य असत्य नहीं बोलता था। वे सभी सभासद् न तो चिल्लाते थे और न जोर-जोरसे बातें ही करते थे। वे सब-के-सब सफलमनोरथ एवं भयंकर पराक्रमी थे और सभी अपने स्वामी रावणके मुँहकी ओर देख रहे थे॥ ३०॥

उस सभामें शस्त्रधारी महाबली मनस्वी वीरोंका समागम होनेपर उनके बीचमें बैठा हुआ मनस्वी रावण अपनी प्रभासे उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा था, जैसे वसुओंके बीचमें वज्रधारी इन्द्र देदीप्यमान होते हैं॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ सर्ग

नगरकी रक्षाके लिये सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताके प्रति अपनी आसक्ति बताकर उनके हरणका प्रसंग बताना और भावी कर्तव्यके लिये सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका पहले तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके वधका स्वयं ही भार उठाना

शत्रुविजयी रावणने उस सम्पूर्ण सभाकी ओर दृष्टिपात करके सेनापति प्रहस्तको उस समय इस प्रकार आदेश दिया—॥ १॥

'सेनापते! तुम सैनिकोंको ऐसी आज्ञा दो, जिससे तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पारंगत रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल योद्धा नगरकी रक्षामें तत्पर रहें'॥ २॥

अपने मनको वशमें रखनेवाले प्रहस्तने राजाके आदेशका पालन करनेकी इच्छासे सारी सेनाको नगरके बाहर और भीतर यथायोग्य स्थानोंपर नियुक्त कर दिया॥

नगरकी रक्षाके लिये सारी सेनाको तैनात करके प्रहस्त राजा रावणके सामने आ बैठा और इस प्रकार बोला— ॥ ४॥

'राक्षसराज! आप महाबली महाराजकी सेनाको मैंने नगरके बाहर और भीतर यथास्थान नियुक्त कर दिया है। अब आप स्वस्थचित्त होकर शीघ्र ही अपने अभीष्ट कार्यका सम्पादन कीजिये'॥ ५॥

राज्यका हित चाहनेवाले प्रहस्तकी यह बात सुनकर अपने सुखकी इच्छा रखनेवाले रावणने सुहृदोंके बीचमें यह बात कही— ॥ ६॥

'सभासदो! धर्म, अर्थ और कामविषयक संकट उपस्थित होनेपर आपलोग प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-हानि और हिताहितका विचार करनेमें समर्थ हैं॥

'आपलोगोंने सदा परस्पर विचार करके जिन-जिन कार्योंका आरम्भ किया है, वे सब-के-सब मेरे लिये कभी निष्फल नहीं हुए हैं॥ ८॥

'जैसे चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित मरुद्गणोंसे घिरे हुए इन्द्र स्वर्गकी सम्पत्तिका उपभोग करते हैं, उसी भाँति आपलोगोंसे घिरा रहकर मैं भी लङ्काकी प्रचुर राजलक्ष्मीका सुख भोगता रहूँ—यही मेरी अभिलाषा है॥ ९॥

'मैंने जो काम किया है, उसे मैं पहले ही आप सबके सामने रखकर आपके द्वारा उसका समर्थन चाहता था, परंतु उस समय कुम्भकर्ण सोये हुए थे, इसलिये मैंने इसकी चर्चा नहीं चलायी॥ १०॥

'समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबली कुम्भकर्ण छः महीनेसे सो रहे थे। अभी इनकी नींद खुली है॥ ११॥

'मैं दण्डकारण्यसे, जो राक्षसोंके विचरनेका स्थान है, रामकी प्यारी रानी जनकदुलारी सीताको हर लाया हूँ॥ १२॥

'किंतु वह मन्दगामिनी सीता मेरी शय्यापर आरूढ़ होना नहीं चाहती है। मेरी दृष्टिमें तीनों लोकोंके भीतर सीताके समान सुन्दरी दूसरी कोई स्त्री नहीं है॥ १३॥

'उसके शरीरका मध्यभाग अत्यन्त सूक्ष्म है, कटिके पीछेका भाग स्थूल है, मुख शरत्कालके चन्द्रमाको लज्जित करता है, वह सौम्य रूप और स्वभाववाली सीता सोनेकी बनी हुई प्रतिमा-सी जान पड़ती है। ऐसा लगता है, जैसे वह मयासुरकी रची हुई कोई माया हो॥ १४॥

'उसके चरणोंके तलवे लाल रंगके हैं। दोनों पैर सुन्दर, चिकने और सुडौल हैं तथा उनके नख ताँबे-जैसे लाल हैं। सीताके उन चरणोंको देखकर मेरी कामाग्नि प्रज्वलित हो उठती है॥ १५॥

'जिसमें घीकी आहुति डाली गयी हो, उस अग्निकी लपट और सूर्यकी प्रभाके समान इस तेजस्विनी सीताको देखकर तथा ऊँची नाक और विशाल नेत्रोंसे सुशोभित उसके निर्मल एवं मनोहर मुखका अवलोकन करके मैं अपने वशमें नहीं रह गया हूँ। कामने मुझे अपने अधीन कर लिया है॥ १६½ ॥

'जो क्रोध और हर्ष दोनों अवस्थाओंमें समानरूपसे बना रहता है, शरीरकी कान्तिको फीकी कर देता है और शोक तथा संतापके समय भी कभी मनसे दूर नहीं होता, उस कामने मेरे हृदयको कलुषित (व्याकुल) कर दिया है॥ १७½ ॥

'विशाल नेत्रोंवाली माननीय सीताने मुझसे एक वर्षका समय माँगा है। इस बीचमें वह अपने पति श्रीरामकी प्रतीक्षा करेगी। मैंने मनोहर नेत्रोंवाली सीताके

उस सुन्दर वचनको सुनकर उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है[१]॥ १८-१९॥

'जैसे बड़े मार्गमें चलते-चलते घोड़ा थक जाता है, उसी प्रकार मैं भी कामपीड़ासे थकावटका अनुभव कर रहा हूँ। वैसे तो मुझे शत्रुओंकी ओरसे कोई डर नहीं है; क्योंकि वे वनवासी वानर अथवा वे दोनों दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण असंख्य जल-जन्तुओं तथा मत्स्योंसे भरे हुए अलङ्घ्य महासागरको कैसे पार कर सकेंगे?॥ २०$\frac{1}{2}$॥

'अथवा एक ही वानरने आकर हमारे यहाँ महान् संहार मचा दिया था। इसलिये कार्यसिद्धिके उपायोंको समझ लेना अत्यन्त कठिन है। अत: जिसको अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा उचित जान पड़े, वह वैसा ही बतावे। तुम सब लोग अपने विचार अवश्य व्यक्त करो। यद्यपि हमें मनुष्यसे कोई भय नहीं है, तथापि तुम्हें विजयके उपायपर विचार तो करना ही चाहिये॥ २१-२२॥

'उन दिनों जब देवताओं और असुरोंका युद्ध चल रहा था, उसमें आप सब लोगोंकी सहायतासे ही मैंने विजय प्राप्त की थी। आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं। वे दोनों राजकुमार सीताका पता पाकर सुग्रीव आदि वानरोंको साथ लिये समुद्रके उस तटतक पहुँच चुके हैं॥ २३-२४॥

'अब आपलोग आपसमें सलाह कीजिये और कोई ऐसी सुन्दर नीति बताइये, जिससे सीताको लौटाना न पड़े तथा वे दोनों दशरथकुमार मारे जायँ॥ २५॥

'वानरोंके साथ समुद्रको पार करके यहाँतक आनेकी शक्ति जगत्‌में रामके सिवा और किसीमें नहीं देखता हूँ (किंतु राम और वानर यहाँ आकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते), अत: यह निश्चय है कि जीत मेरी ही होगी'॥ २६॥

कामातुर रावणका यह खेदपूर्ण प्रलाप सुनकर कुम्भकर्णको क्रोध आ गया और उसने इस प्रकार कहा—॥ २७॥

'जब तुम लक्ष्मणसहित श्रीरामके आश्रमसे एक बार स्वयं ही मनमाना विचार करके सीताको यहाँ बलपूर्वक हर लाये थे, उसी समय तुम्हारे चित्तको हमलोगोंके साथ इस विषयमें सुनिश्चित विचार कर लेना चाहिये था। ठीक उसी तरह जैसे यमुना जब पृथ्वीपर उतरनेको उद्यत हुईं, तभी उन्होंने यमुनोत्री पर्वतके कुण्डविशेषको अपने जलसे पूर्ण किया था (पृथ्वीपर उतर जानेके बाद उनका वेग जब समुद्रमें जाकर शान्त हो गया, तब वे पुन: उस कुण्डको नहीं भर सकतीं, उसी प्रकार तुमने भी जब विचार करनेका अवसर था, तब तो हमारे साथ बैठकर विचार किया नहीं। अब अवसर बिताकर सारा काम बिगड़ जानेके बाद तुम विचार करने चले हो)॥ २८॥

'महाराज! तुमने जो यह छलपूर्वक छिपकर परस्त्री-हरण आदि कार्य किया है, यह सब तुम्हारे लिये बहुत अनुचित है। इस पापकर्मको करनेसे पहले ही आपको हमारे साथ परामर्श कर लेना चाहिये था॥ २९॥

'दशानन! जो राजा सब राजकार्य न्यायपूर्वक करता है, उसकी बुद्धि निश्चयपूर्ण होनेके कारण उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता है॥ ३०॥

'जो कर्म उचित उपायका अवलम्बन किये बिना ही किये जाते हैं तथा जो लोक और शास्त्रके विपरीत होते हैं, वे पापकर्म उसी तरह दोषकी प्राप्ति कराते हैं, जैसे अपवित्र आभिचारिक यज्ञोंमें होमे गये हविष्य॥ ३१॥

'जो पहले करनेयोग्य कार्योंको पीछे करना चाहता है और पीछे करनेयोग्य काम पहले ही कर डालता है, वह नीति और अनीतिको नहीं जानता॥ ३२॥

'शत्रुलोग अपने विपक्षीके बलको अपनेसे अधिक देखकर भी यदि वह हर काममें चपल (जल्दबाज) है तो उसका दमन करनेके लिये उसी तरह उसके छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं, जैसे पक्षी दुर्लङ्घ्य क्रौञ्च पर्वतको लाँघकर आगे बढ़नेके लिये उसके (उस) छिद्रका[२] आश्रय लेते हैं (जिसे कुमार कार्तिकेयने अपनी शक्तिका प्रहार करके बनाया था)॥ ३३॥

'महाराज! तुमने भावी परिणामका विचार किये

१. यहाँ रावणने सभासदोंके सामने अपनी झूठी उदारता दिखानेके लिये सर्वथा असत्य कहा है। सीताजीने कभी अपने मुँहसे यह नहीं कहा था कि 'मुझे एक वर्षका समय दो। यदि उतने दिनोंतक श्रीराम नहीं आये तो मैं तुम्हारी हो जाऊँगी।' सीताने तो सदा तिरस्कारपूर्वक उसके जघन्य प्रस्तावको ठुकराया ही था। इसने स्वयं ही अपनी ओरसे उन्हें एक वर्षका अवसर दिया था। (देखिये अरण्यकाण्ड सर्ग ५६ श्लोक २४-२५)

२. कुमार कार्तिकेयने अपनी शक्तिके द्वारा क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण करके उसमें छेद कर दिया था—यह प्रसंग महाभारतमें आया है। (देखिये शल्य प० ४६। ८४)

बिना ही यह बहुत बड़ा दुष्कर्म आरम्भ किया है। जैसे विषमिश्रित भोजन खानेवालेके प्राण हर लेता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा वध कर डालेंगे। उन्होंने अभीतक तुम्हें मार नहीं डाला, इसे अपने लिये सौभाग्यकी बात समझो॥ ३४॥

'अनघ! यद्यपि तुमने शत्रुओंके साथ अनुचित कर्म आरम्भ किया है, तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओंका संहार करके सबको ठीक कर दूँगा॥ ३५॥

'निशाचर! तुम्हारे शत्रु यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर और वरुण भी हों तो मैं उनके साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारे सभी शत्रुओंको उखाड़ फेंकूँगा॥ ३६॥

'मैं पर्वतके समान विशाल एवं तीखी दाढ़ोंसे युक्त शरीर धारण करके महान् परिघ हाथमें ले समरभूमिमें जूझता हुआ जब गर्जना करूँगा, उस समय देवराज इन्द्र भी भयभीत हो जायँगे॥ ३७॥

'राम मुझे एक बाणसे मारकर दूसरे बाणसे मारने लगेंगे, उसी बीचमें मैं उनका खून पी लूँगा। इसलिये तुम पूर्णतः निश्चिन्त हो जाओ॥ ३८॥

'मैं दशरथनन्दन श्रीरामका वध करके तुम्हारे लिये सुखदायिनी विजय सुलभ करानेका प्रयत्न करूँगा। लक्ष्मणसहित रामको मारकर समस्त वानरयूथपतियोंको खा जाऊँगा॥ ३९॥

'तुम मौजसे विहार करो। उत्तम वारुणीका पान करो और निश्चिन्त होकर अपने लिये हितकर कार्य करते रहो। मेरे द्वारा रामके यमलोक भेज दिये जानेपर सीता चिरकालके लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी'॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

महापार्श्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उकसाना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके गीत गाना

तब रावणको कुपित हुआ जान महाबली महापार्श्वने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेके बाद हाथ जोड़कर कहा—॥ १॥

'जो हिंसक पशुओं और सर्पोंसे भरे हुए दुर्गम वनमें जाकर वहाँ पीने योग्य मधु पाकर भी उसे पीता नहीं है, वह पुरुष मूर्ख ही है॥ २॥

'शत्रुसूदन महाराज! आप तो स्वयं ही ईश्वर हैं। आपका ईश्वर कौन है? आप शत्रुओंके सिरपर पैर रखकर विदेहकुमारी सीताके साथ रमण कीजिये॥ ३॥

'महाबली वीर! आप कुक्कुटोंके बर्तावको अपनाकर सीताके साथ बलात्कार कीजिये। बारंबार आक्रमण करके उनके साथ रमण एवं उपभोग कीजिये॥ ४॥

'जब आपका मनोरथ सफल हो जायगा, तब फिर आपपर कौन-सा भय आयेगा? यदि वर्तमान एवं भविष्यकालमें कोई भय आया भी तो उस समस्त भयका यथोचित प्रतीकार किया जायगा॥ ५॥

'हमलोगोंके साथ यदि महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् खड़े हो जायँ तो ये दोनों वज्रधारी इन्द्रको भी आगे बढ़नेसे रोक सकते हैं॥ ६॥

'मैं तो नीतिनिपुण पुरुषोंके द्वारा प्रयुक्त साम, दान और भेदको छोड़कर केवल दण्डके द्वारा काम बना लेना ही अच्छा समझता हूँ॥ ७॥

'महाबली राक्षसराज! यहाँ आपके जो भी शत्रु आयेंगे, उन्हें हमलोग अपने शस्त्रोंके प्रतापसे वशमें कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है'॥ ८॥

महापार्श्वके ऐसा कहनेपर उस समय लङ्काके राजा रावणने उसके वचनोंकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ९॥

'महापार्श्व! बहुत दिन हुए पूर्वकालमें एक गुप्त घटना घटित हुई थी—मुझे शाप प्राप्त हुआ था। अपने जीवनके उस गुप्त रहस्यको आज मैं बता रहा हूँ, उसे सुनो॥ १०॥

'एक बार मैंने आकाशमें अग्निशिखाके समान प्रकाशित होती हुई पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सराको देखा, जो पितामह ब्रह्माजीके भवनकी ओर जा रही थी। वह अप्सरा मेरे भयसे लुकती-छिपती आगे बढ़ रही थी॥

'मैंने बलपूर्वक उसके वस्त्र उतार दिये और हठात् उसका उपभोग किया। इसके बाद वह ब्रह्माजीके भवनमें गयी। उसकी दशा हाथीद्वारा मसलकर फेंकी हुई कमलिनीके समान हो रही थी॥ १२॥

'मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा उसकी जो दुर्दशा की गयी थी, वह पितामह ब्रह्माजीको ज्ञात हो

गयी। इससे वे अत्यन्त कुपित हो उठे और मुझसे इस प्रकार बोले—॥ १३ ॥

'आजसे यदि तू किसी दूसरी नारीके साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तकके सौ टुकड़े हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है'॥ १४ ॥

'इस तरह मैं ब्रह्माजीके शापसे भयभीत हूँ। इसीलिये अपनी शुभ-शय्यापर विदेहकुमारी सीताको हठात् एवं बलपूर्वक नहीं चढ़ाता हूँ॥ १५ ॥

'मेरा वेग समुद्रके समान है और मेरी गति वायुके तुल्य है। इस बातको दशरथनन्दन राम नहीं जानते हैं, इसीसे वे मुझपर चढ़ाई करते हैं॥ १६ ॥

'अन्यथा पर्वतकी कन्दरामें सुखपूर्वक सोये हुए सिंहके समान तथा कुपित होकर बैठी हुई मृत्युके तुल्य भयंकर मुझ रावणको कौन जगाना चाहेगा?॥ १७ ॥

'मेरे धनुषसे छूटे हुए दो जीभवाले सर्पोंके समान भयंकर बाणोंको समराङ्गणमें श्रीरामने कभी देखा नहीं है, इसीलिये वे मुझपर चढ़े आ रहे हैं॥ १८ ॥

'मैं अपने धनुषसे शीघ्रतापूर्वक छूटे हुए सैकड़ों वज्रसदृश बाणोंद्वारा रामको उसी प्रकार जला डालूँगा, जैसे लोग उल्काओंद्वारा हाथीको उसे भगानेके लिये जलाते हैं॥ १९ ॥

'जैसे प्रातःकाल उदित हुए सूर्यदेव नक्षत्रोंकी प्रभाको छीन लेते हैं, उसी प्रकार अपनी विशाल सेनासे घिरा हुआ मैं उनकी उस वानर-सेनाको आत्मसात् कर लूँगा॥ २० ॥

युद्धमें तो हजार नेत्रोंवाले इन्द्र और वरुण भी मेरा सामना नहीं कर सकते। पूर्वकालमें कुबेरके द्वारा पालित हुई इस लङ्कापुरीको मैंने अपने बाहुबलसे ही जीता था'॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

विभीषणका रामको अजेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना

राक्षसराज रावणके इन वचनों और कुम्भकर्णकी गर्जनाओंको सुनकर विभीषणने रावणसे ये सार्थक और हितकारी वचन कहे—॥ १ ॥

'राजन्! सीता नामधारी विशालकाय महान् सर्पको किसने आपके गलेमें बाँध दिया है? उसके हृदयका भाग ही उस सर्पका शरीर है, चिन्ता ही विष है, सुन्दर मुसकान ही तीखी दाढ़ हैं और प्रत्येक हाथकी पाँच-पाँच अङ्गुलियाँ ही इस सर्पके पाँच सिर हैं॥ २ ॥

'जबतक पर्वत-शिखरके समान ऊँचे वानर, जिनके दाँत और नख ही आयुध हैं, लङ्कापर चढ़ाई नहीं करते, तभीतक आप दशरथनन्दन श्रीरामके हाथमें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दीजिये॥ ३ ॥

'जबतक श्रीरामचन्द्रजीके चलाये हुए वायुके समान वेगशाली तथा वज्रतुल्य बाण राक्षसशिरोमणियोंके सिर नहीं काट रहे हैं, तभीतक आप दशरथनन्दन श्रीरामकी सेवामें सीताजीको समर्पित कर दीजिये॥ ४ ॥

'राजन्! ये कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय—कोई भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते हैं॥ ५ ॥

'यदि सूर्य या वायु आपकी रक्षा करें, इन्द्र या यम आपको गोदमें छिपा लें अथवा आप आकाश या पातालमें घुस जायँ तो भी श्रीरामके हाथसे जीवित नहीं बच सकेंगे'॥ ६ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर प्रहस्तने कहा—'हम देवताओं अथवा दानवोंसे कभी नहीं डरते। भय क्या वस्तु है? यह हम जानते ही नहीं हैं॥ ७ ॥

'हमें युद्धमें यक्षों, गन्धर्वों, बड़े-बड़े नागों, पक्षियों और सर्पोंसे भी भय नहीं होता है; फिर समराङ्गणमें राजकुमार रामसे हमें कभी भी कैसे भय होगा?'॥ ८ ॥

विभीषण राजा रावणके सच्चे हितैषी थे। उनकी बुद्धिका धर्म, अर्थ और काममें अच्छा प्रवेश था। उन्होंने प्रहस्तके अहितकर वचन सुनकर यह महान् अर्थसे युक्त बात कही—॥ ९ ॥

'प्रहस्त! महाराज रावण, महोदर, तुम और कुम्भकर्ण—श्रीरामके प्रति जो कुछ कह रहे हो, वह सब तुम्हारे किये नहीं हो सकता। ठीक उसी तरह, जैसे पापात्मा पुरुषकी स्वर्गमें पहुँच नहीं हो सकती है॥ १० ॥

'प्रहस्त! श्रीराम अर्थविशारद हैं—समस्त कार्योंके साधनमें कुशल हैं। जैसे बिना जहाज या नौकाके कोई महासागरको पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार मुझसे,

तुमसे अथवा समस्त राक्षसोंसे भी श्रीरामका वध होना कैसे सम्भव है?॥ ११॥

'श्रीराम धर्मको ही प्रधान वस्तु मानते हैं। उनका प्रादुर्भाव इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है। वे सभी कार्योंके सम्पादनमें समर्थ और महारथी वीर हैं (उन्होंने विराध, कबन्ध और वाली-जैसे वीरोंको बात-की-बातमें यमलोक भेज दिया था)। ऐसे प्रसिद्ध पराक्रमी राजा श्रीरामसे सामना पड़नेपर तो देवता भी अपनी हेकड़ी भूल जायँगे (फिर हमारी-तुम्हारी तो बात ही क्या है?)॥ १२॥

'प्रहस्त! अभीतक श्रीरामके चलाये हुए कङ्कपत्रयुक्त, दुर्जय एवं तीखे बाण तुम्हारे शरीरको विदीर्ण करके भीतर नहीं घुसे हैं; इसीलिये तुम बढ़-बढ़कर बोल रहे हो॥ १३॥

'प्रहस्त! श्रीरामके बाण वज्रके समान वेगशाली होते हैं। वे प्राणोंका अन्त करके ही छोड़ते हैं। श्रीरघुनाथजीके धनुषसे छूटे हुए वे तीखे बाण तुम्हारे शरीरको फोड़कर अंदर नहीं घुसे हैं; इसीलिये तुम इतनी शेखी बघारते हो॥ १४॥

'रावण, महाबली त्रिशिरा, कुम्भकर्णकुमार निकुम्भ और इन्द्रविजयी मेघनाद भी समराङ्गणमें इन्द्रतुल्य तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीरामका वेग सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ १५॥

'देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, महाकाय, अतिरथ तथा पर्वतके समान शक्तिशाली अकम्पन भी युद्धभूमिमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते हैं॥ १६॥

'ये महाराज रावण तो व्यसनोंके* वशीभूत हैं, इसलिये सोच-विचारकर काम नहीं करते हैं। इसके सिवा ये स्वभावसे ही कठोर हैं तथा राक्षसोंके सत्यानाशके लिये तुम-जैसे शत्रुतुल्य मित्रकी सेवामें उपस्थित रहते हैं॥

'अनन्त शारीरिक बलसे सम्पन्न, सहस्र फनवाले और महान् बलशाली भयंकर नागने इस राजाको बलपूर्वक अपने शरीरसे आवेष्टित कर रखा है। तुम सब लोग मिलकर इसे बन्धनसे बाहर करके प्राणसंकटसे बचाओ (अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीके साथ वैर बाँधना महान् सर्पके शरीरसे आवेष्टित होनेके समान है। इस भावको व्यक्त करनेके कारण यहाँ निदर्शना अलङ्कार व्यंग्य है)॥ १८॥

'इस राजासे अबतक आपलोगोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण हुई हैं। आप सब लोग इसके हितैषी सुहृद् हैं। अतः जैसे भयंकर बलशाली भूतोंसे गृहीत हुए पुरुषको उसके हितैषी आत्मीयजन उसके प्रति बलपूर्वक व्यवहार करके भी उसकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप सब लोग एकमत होकर—आवश्यकता हो तो इसके केश पकड़कर भी इसे अनुचित मार्गपर जानेसे रोकें और सब प्रकारसे इसकी रक्षा करें॥ १९॥

'उत्तम चरित्ररूपी जलसे परिपूर्ण श्रीरघुनाथरूपी समुद्र इसे डुबो रहा है अथवा यों समझो कि यह श्रीरामरूपी पातालके गहरे गर्तमें गिर रहा है। ऐसी दशामें तुम सब लोगोंको मिलकर इसका उद्धार करना चाहिये॥ २०॥

'मैं तो राक्षसोंसहित इस सारे नगरके और सुहृदोंसहित स्वयं महाराजके हितके लिये अपनी यही उत्तम सम्मति देता हूँ कि 'ये राजकुमार श्रीरामके हाथोंमें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दें'॥ २१॥

'वास्तवमें सच्चा मन्त्री वही है जो अपने और शत्रु-पक्षके बल-पराक्रमको समझकर तथा दोनों पक्षोंकी स्थिति, हानि और वृद्धिका अपनी बुद्धिके द्वारा विचार करके जो स्वामीके लिये हितकर और उचित हो वही बात कहे'॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

---

* राजाओंमें सात व्यसन माने गये हैं—

वाग्दण्डयोस्तु पारुष्यमर्थदूषणमेव च। पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनं सप्तधा प्रभो॥

(कामन्दक नीतिका वचन गोविन्दराजकी टीका रामायण-भूषणसे) वाणी और दण्डकी कठोरता, धनका अपव्यय, मद्यपान, स्त्री, मृगया और द्यूत—ये राजाके सात प्रकारके व्यसन हैं।

पंद्रहवाँ सर्ग

इन्द्रजित्‌द्वारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकारकर सभामें अपनी उचित सम्मति देना

विभीषण बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। उनके वचनोंको जैसे-तैसे बड़े कष्टसे सुनकर राक्षस-यूथपतियोंमें प्रधान महाकाय इन्द्रजित्‌ने वहाँ यह बात कही—॥ १ ॥

'मेरे छोटे चाचा! आप बहुत डरे हुएकी भाँति यह कैसी निरर्थक बात कह रहे हैं? जिसने इस कुलमें जन्म न लिया होगा, वह पुरुष भी न तो ऐसी बात कहेगा और न ऐसा काम ही करेगा॥ २ ॥

'पिताजी! हमारे इस राक्षसकुलमें एकमात्र ये छोटे चाचा विभीषण ही बल, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य और तेजसे रहित हैं॥ ३ ॥

'वे दोनों मानव राजकुमार क्या हैं? उन्हें तो हमारा एक साधारण-सा राक्षस भी मार सकता है; फिर मेरे डरपोक चाचा! आप हमें क्यों डरा रहे हैं?॥ ४ ॥

'मैंने तीनों लोकोंके स्वामी देवराज इन्द्रको भी स्वर्गसे हटाकर इस भूतलपर ला बिठाया था। उस समय सारे देवताओंने भयभीत हो भागकर सम्पूर्ण दिशाओंकी शरण ली थी॥ ५ ॥

'मैंने हठपूर्वक ऐरावत हाथीके दोनों दाँत उखाड़कर उसे स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरा दिया था। उस समय वह जोर-जोरसे चिग्घाड़ रहा था। अपने इस पराक्रमद्वारा मैंने सम्पूर्ण देवताओंको आतङ्कमें डाल दिया था॥ ६ ॥

'जो देवताओंके भी दर्पका दलन कर सकता है, बड़े-बड़े दैत्योंको भी शोकमग्न कर देनेवाला है तथा जो उत्तम बल-पराक्रमसे सम्पन्न है, वही मुझ-जैसा वीर मनुष्य-जातिके दो साधारण राजकुमारोंका सामना कैसे नहीं कर सकता है?'॥ ७ ॥

इन्द्रतुल्य तेजस्वी महापराक्रमी दुर्जय वीर इन्द्रजित्‌की यह बात सुनकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणने ये महान् अर्थसे युक्त वचन कहे—॥ ८ ॥

'तात! अभी तुम बालक हो। तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। तुम्हारे मनमें कर्तव्य और अकर्तव्यका यथार्थ निश्चय नहीं हुआ है। इसीलिये तुम भी अपने ही विनाशके लिये बहुत-सी निरर्थक बातें बक गये हो॥ ९ ॥

'इन्द्रजित्! तुम रावणके पुत्र कहलाकर भी ऊपरसे ही उसके मित्र हो। भीतरसे तो तुम पिताके शत्रु ही जान पड़ते हो। यही कारण है कि तुम श्रीरघुनाथजीके द्वारा राक्षसराजके विनाशकी बातें सुनकर भी मोहवश उन्हींकी हाँ-में-हाँ मिला रहे हो॥ १० ॥

'तुम्हारी बुद्धि बहुत ही खोटी है। तुम स्वयं तो मार डालनेके योग्य हो ही, जो तुम्हें यहाँ बुला लाया है, वह भी वधके ही योग्य है। जिसने आज तुम-जैसे अत्यन्त दु:साहसी बालकको इन सलाहकारोंके समीप आने दिया है, वह प्राणदण्डका ही अपराधी है॥ ११ ॥

'इन्द्रजित्! तुम अविवेकी हो। तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं है। विनय तो तुम्हें छूतक नहीं गयी है। तुम्हारा स्वभाव बड़ा तीखा और बुद्धि बहुत थोड़ी है। तुम अत्यन्त दुर्बुद्धि, दुरात्मा और मूर्ख हो। इसीलिये बालकोंकी-सी बे-सिर-पैरकी बातें करते हो॥ १२ ॥

'भगवान् श्रीरामके द्वारा युद्धके मुहानेपर शत्रुओंके समक्ष छोड़े गये तेजस्वी बाण साक्षात् ब्रह्मदण्डके समान प्रकाशित होते हैं, कालके समान जान पड़ते हैं और यमदण्डके समान भयंकर होते हैं। भला, उन्हें कौन सह सकता है?॥ १३ ॥

'अत: राजन्! हमलोग धन, रत्न, सुन्दर आभूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणि और देवी सीताको श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके ही शोकरहित होकर इस नगरमें निवास कर सकते हैं'॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकारकर चल देना

रावणके सिरपर काल मँडरा रहा था, इसलिये उसने सुन्दर अर्थसे युक्त और हितकर बात कहनेपर भी विभीषणसे कठोर वाणीमें कहा—॥ १॥

'भाई! शत्रु और कुपित विषधर सर्पके साथ रहना पड़े तो रह ले; परंतु जो मित्र कहलाकर भी शत्रुकी सेवा कर रहा हो, उसके साथ कदापि न रहे॥ २॥

'राक्षस! सम्पूर्ण लोकोंमें सजातीय बन्धुओंका जो स्वभाव होता है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जातिवाले सर्वदा अपने अन्य सजातीयोंकी आपत्तियोंमें ही हर्ष मानते हैं॥ ३॥

'निशाचर! जो ज्येष्ठ होनेके कारण राज्य पाकर सबमें प्रधान हो गया हो, राज्यकार्यको अच्छी तरह चला रहा हो और विद्वान्, धर्मशील तथा शूरवीर हो, उसे भी कुटुम्बीजन अपमानित करते हैं और अवसर पाकर उसे नीचा दिखानेकी भी चेष्टा करते हैं॥ ४॥

'जातिवाले सदा एक-दूसरेपर संकट आनेपर हर्षका अनुभव करते हैं। वे बड़े आततायी होते हैं—मौका पड़नेपर आग लगाने, जहर देने, शस्त्र चलाने, धन हड़पने और क्षेत्र तथा स्त्रीका अपहरण करनेमें भी नहीं हिचकते हैं। अपना मनोभाव छिपाये रहते हैं; अतएव क्रूर और भयंकर होते हैं॥ ५॥

'पूर्वकालकी बात है, पद्मवनमें हाथियोंने अपने हृदयके उद्गार प्रकट किये थे, जो अब भी श्लोकोंके रूपमें गाये और सुने जाते हैं। एक बार कुछ लोगोंको हाथमें फंदा लिये आते देख हाथियोंने जो बातें कही थीं, उन्हें बता रहा हूँ, मुझसे सुनो॥ ६॥

'हमें अग्नि, दूसरे-दूसरे शस्त्र तथा पाश भय नहीं दे सकते। हमारे लिये तो अपने स्वार्थी जाति-भाई ही भयानक और खतरेकी वस्तु हैं॥ ७॥

'ये ही हमारे पकड़े जानेका उपाय बता देंगे, इसमें संशय नहीं; अतः सम्पूर्ण भयोंकी अपेक्षा हमें अपने जाति-भाइयोंसे प्राप्त होनेवाला भय ही अधिक कष्टदायक जान पड़ता है॥ ८॥

'जैसे गौओंमें हव्य-कव्यकी सम्पत्ति दूध होता है, स्त्रियोंमें चपलता होती है और ब्राह्मणमें तपस्या रहा करती है, उसी प्रकार जाति-भाइयोंसे भय अवश्य प्राप्त होता है॥ ९॥

'अतः सौम्य! आज जो सारा संसार मेरा सम्मान करता है और मैं जो ऐश्वर्यवान्, कुलीन और शत्रुओंके सिरपर स्थित हूँ, यह सब तुम्हें अभीष्ट नहीं है॥ १०॥

'जैसे कमलके पत्तेपर गिरी हुई पानीकी बूँदें उसमें सटती नहीं हैं, उसी प्रकार अनार्योंके हृदयमें सौहार्द नहीं टिकता है॥ ११॥

'जैसे शरद्-ऋतुमें गर्जते और बरसते हुए मेघोंके जलसे धरती गीली नहीं होती है, उसी प्रकार अनार्योंके हृदयमें स्नेहजनित आर्द्रता नहीं होती है॥ १२॥

'जैसे भौंरा बड़ी चाहसे फूलोंका रस पीता हुआ भी वहाँ ठहरता नहीं है, उसी प्रकार अनार्योंमें सुहृज्जनोचित स्नेह नहीं टिक पाता है। तुम भी ऐसे ही अनार्य हो॥

'जैसे भ्रमर रसकी इच्छासे काशके फूलका पान करे तो उसमें रस नहीं पा सकता, उसी प्रकार अनार्योंमें जो स्नेह होता है, वह किसीके लिये लाभदायक नहीं होता॥ १४॥

'जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँड़से धूल उछालकर अपने शरीरको गँदला कर लेता है, उसी प्रकार दुर्जनोंकी मैत्री दूषित होती है॥ १५॥

'कुलकलङ्क निशाचर! तुझे धिक्कार है। यदि तेरे सिवा दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो उसे इसी मुहूर्तमें अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता'॥ १६॥

विभीषण न्यायानुकूल बातें कह रहे थे तो भी रावणने जब उनसे ऐसे कठोर वचन कहे, तब वे हाथमें गदा लेकर अन्य चार राक्षसोंके साथ उसी समय उछलकर आकाशमें चले गये॥ १७॥

उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए तेजस्वी भ्राता विभीषणने कुपित होकर राक्षसराज रावणसे कहा—॥

'राजन्! तुम्हारी बुद्धि भ्रममें पड़ी हुई है। तुम धर्मके मार्गपर नहीं हो। यों तो मेरे बड़े भाई होनेके कारण तुम पिताके समान आदरणीय हो। इसलिये मुझे जो-जो चाहो, कह लो; परंतु अग्रज होनेपर भी तुम्हारे इस कठोर वचनको कदापि नहीं सह सकता॥ १९॥

'दशानन! जो अजितेन्द्रिय पुरुष कालके वशीभूत हो जाते हैं, वे हितकी कामनासे कहे हुए सुन्दर

नीतियुक्त वचनोंको भी नहीं ग्रहण करते हैं॥ २०॥

'राजन्! सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले लोग तो सुगमतासे मिल सकते हैं; परंतु जो सुननेमें अप्रिय किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं॥ २१॥

'तुम समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले कालके पाशमें बँध चुके हो। जिसमें आग लग गयी हो, उस घरकी भाँति नष्ट हो रहे हो। ऐसी दशामें मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर सकता था, इसीलिये तुम्हें हितकी बात सुझा दी थी॥ २२॥

'श्रीरामके सुवर्णभूषित बाण प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और तीखे हैं। मैं श्रीरामके द्वारा उन बाणोंसे तुम्हारी मृत्यु नहीं देखना चाहता था, इसीलिये तुम्हें समझानेकी चेष्टा की थी॥ २३॥

'कालके वशीभूत होनेपर बड़े-बड़े शूरवीर, बलवान् और अस्त्रवेत्ता भी बालूकी भीति या बाँधके समान नष्ट हो जाते हैं॥ २४॥

'राक्षसराज! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ। इसीलिये जो कुछ भी कहा है, वह यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगा तो उसके लिये मुझे क्षमा कर दो; क्योंकि तुम मेरे बड़े भाई हो। अब तुम अपनी तथा राक्षसोंसहित इस समस्त लङ्कापुरीकी सब प्रकारसे रक्षा करो। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं यहाँसे चला जाऊँगा। तुम मेरे बिना सुखी हो जाओ॥ २५॥

'निशाचरराज! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। इसीलिये मैंने तुम्हें बार-बार अनुचित मार्गपर चलनेसे रोका है, किंतु तुम्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगती है। वास्तवमें जिन लोगोंकी आयु समाप्त हो जाती है, वे जीवनके अन्तकालमें अपने सुहृदोंकी कही हुई हितकर बात भी नहीं मानते हैं'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना

रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर उसके छोटे भाई विभीषण दो ही घड़ीमें उस स्थानपर आ गये, जहाँ लक्ष्मणसहित श्रीराम विराजमान थे॥ १॥

विभीषणका शरीर सुमेरु पर्वतके शिखरके समान ऊँचा था। वे आकाशमें चमकती हुई बिजलीके समान जान पड़ते थे। पृथ्वीपर खड़े हुए वानरयूथपतियोंने उन्हें आकाशमें स्थित देखा॥ २॥

उनके साथ जो चार अनुचर थे। वे भी बड़ा भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले थे। उन्होंने भी कवच धारण करके अस्त्र-शस्त्र ले रखे थे और वे सब-के-सब उत्तम आभूषणोंसे विभूषित थे॥ ३॥

वीर विभीषण भी मेघ और पर्वतके समान जान पड़ते थे। वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी और दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे॥ ४॥

उन चारों राक्षसोंके साथ पाँचवें विभीषणको देखकर दुर्धर्ष एवं बुद्धिमान् वीर वानरराज सुग्रीवने वानरोंके साथ विचार किया॥ ५॥

थोड़ी देरतक सोचकर उन्होंने हनुमान् आदि सब वानरोंसे यह उत्तम बात कही—॥ ६॥

'देखो, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न यह राक्षस दूसरे चार निशाचरोंके साथ आ रहा है। इसमें संदेह नहीं कि यह हमें मारनेके लिये ही आता है'॥ ७॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर सालवृक्ष और पर्वतकी शिलाएँ उठाकर इस प्रकार बोले—॥ ८॥

'राजन्! आप शीघ्र ही हमें इन दुरात्माओंके वधकी आज्ञा दीजिये, जिससे ये मन्दमति निशाचर मरकर ही इस पृथ्वीपर गिरें'॥ ९॥

आपसमें वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि विभीषण समुद्रके उत्तर तटपर आकर आकाशमें ही खड़े हो गये॥ १०॥

महाबुद्धिमान् महापुरुष विभीषणने आकाशमें ही स्थित रहकर सुग्रीव तथा उन वानरोंकी ओर देखते हुए उच्च स्वरसे कहा—॥ ११॥

'रावण नामका जो दुराचारी राक्षस निशाचरोंका राजा है, उसीका मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है॥ १२॥

'रावणने जटायुको मारकर जनस्थानसे सीताका अपहरण किया था। उसीने दीन एवं असहाय सीताको रोक रखा है। इन दिनों सीता राक्षसियोंके पहरेमें रहती हैं॥ १३॥

'मैंने भाँति-भाँतिके युक्तिसंगत वचनोंद्वारा उसे बारंबार समझाया कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें सीताको सादर लौटा दो—इसीमें भलाई है॥ १४॥

'यद्यपि मैंने यह बात उसके हितके लिये ही कही थी तथापि कालसे प्रेरित होनेके कारण रावणने मेरी बात नहीं मानी। ठीक उसी प्रकार, जैसे मरणासन्न पुरुष औषध नहीं लेता॥ १५॥

'यही नहीं, उसने मुझे बहुत-सी कठोर बातें सुनायीं और दासकी भाँति मेरा अपमान किया। इसलिये मैं अपने स्त्री-पुत्रोंको वहीं छोड़कर श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आया हूँ॥ १६॥

'वानरो! जो समस्त लोकोंको शरण देनेवाले हैं, उन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर शीघ्र मेरे आगमनकी सूचना दो और उनसे कहो—'शरणार्थी विभीषण सेवामें उपस्थित हुआ है'॥ १७॥

विभीषणकी यह बात सुनकर शीघ्रगामी सुग्रीवने तुरंत ही भगवान् श्रीरामके पास जाकर लक्ष्मणके सामने ही कुछ आवेशके साथ इस प्रकार कहा—॥ १८॥

'प्रभो! आज कोई वैरी, जो राक्षस होनेके कारण पहले हमारे शत्रु रावणकी सेनामें सम्मिलित हुआ था, अब अकस्मात् हमारी सेनामें प्रवेश पानेके लिये आ गया है। वह मौका पाकर हमें उसी तरह मार डालेगा, जैसे उल्लू कौओंका काम तमाम कर देता है॥ १९॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! अत: आपको अपने वानरसैनिकोंपर अनुग्रह और शत्रुओंका निग्रह करनेके लिये कार्याकार्यके विचार, सेनाकी मोर्चेबंदी, नीतियुक्त उपायोंके प्रयोग तथा गुप्तचरोंकी नियुक्ति आदिके विषयमें सतत सावधान रहना चाहिये। ऐसा करनेसे ही आपका भला होगा॥ २०॥

'ये राक्षसलोग मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है। शूरवीर और मायावी तो ये होते ही हैं। इसलिये इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये॥ २१॥

'सम्भव है यह राक्षसराज रावणका कोई गुप्तचर हो। यदि ऐसा हुआ तो हमलोगोंमें घुसकर यह फूट पैदा कर देगा, इसमें संदेह नहीं॥ २२॥

'अथवा यह बुद्धिमान् राक्षस छिद्र पाकर हमारी विश्वस्त सेनाके भीतर घुसकर कभी स्वयं ही हमलोगोंपर प्रहार कर बैठेगा, इस बातकी भी सम्भावना है॥ २३॥

'मित्रोंकी, जंगली जातियोंकी तथा परम्परागत भृत्योंकी जो सेनाएँ हैं, इन सबका संग्रह तो किया जा सकता है; किंतु जो शत्रुपक्षसे मिले हुए हों, ऐसे सैनिकोंका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये॥ २४॥

'प्रभो! यह स्वभावसे तो राक्षस है ही, अपनेको शत्रुका भाई भी बता रहा है। इस दृष्टिसे यह साक्षात् हमारा शत्रु ही यहाँ आ पहुँचा है; फिर इसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है॥ २५॥

'रावणका छोटा भाई, जो विभीषणके नामसे प्रसिद्ध है, चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणमें आया है॥ २६॥

'आप उस विभीषणको रावणका भेजा हुआ ही समझें। उचित व्यापार करनेवालोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! मैं तो उसको कैद कर लेना ही उचित समझता हूँ॥ २७॥

'निष्पाप श्रीराम! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह राक्षस रावणके कहनेसे ही यहाँ आया है। इसकी बुद्धिमें कुटिलता भरी है। यह मायासे छिपा रहेगा तथा जब आप इसपर पूरा विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँगे, तब यह आपहीपर चोट कर बैठेगा। इसी उद्देश्यसे इसका यहाँ आना हुआ है॥ २८॥

'यह महाक्रूर रावणका भाई है, इसलिये इसे कठोर दण्ड देकर इसके मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये'॥ २९॥

बातचीतकी कला जाननेवाले एवं रोषमें भरे हुए सेनापति सुग्रीव प्रवचनकुशल श्रीरामसे ऐसी बातें कहकर चुप हो गये॥ ३०॥

सुग्रीवका वह वचन सुनकर महाबली श्रीराम अपने निकट बैठे हुए हनुमान् आदि वानरोंसे इस प्रकार बोले—॥ ३१॥

'वानरो! वानरराज सुग्रीवने रावणके छोटे भाई विभीषणके विषयमें जो अत्यन्त युक्तियुक्त बातें कही हैं, वे तुमलोगोंने भी सुनी हैं॥ ३२॥

'मित्रोंकी स्थायी उन्नति चाहनेवाले बुद्धिमान् एवं

समर्थ पुरुषको कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें संशय उपस्थित होनेपर सदा ही अपनी सम्मति देनी चाहिये'॥ ३३॥

इस प्रकार सलाह पूछी जानेपर श्रीरामका प्रिय करनेकी इच्छा रखनेवाले वे सब वानर आलस्य छोड़ उत्साहित हो सादर अपना-अपना मत प्रकट करने लगे—॥ ३४॥

'रघुनन्दन! तीनों लोकोंमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो, तथापि हम आपके अपने ही अङ्ग हैं, अत: आप मित्रभावसे हमारा सम्मान बढ़ाते हुए हमसे सलाह पूछते हैं॥ ३५॥

'आप सत्यव्रती, शूरवीर, धर्मात्मा, सुदृढ़ पराक्रमी, जाँच-बूझकर काम करनेवाले, स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और मित्रोंपर विश्वास करके उन्हींके हाथोंमें अपने-आपको सौंप देनेवाले हैं॥ ३६॥

'इसलिये आपके सभी बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली सचिव एक-एक करके बारी-बारीसे अपने युक्तियुक्त विचार प्रकट करें'॥ ३७॥

वानरोंके ऐसा कहनेपर सबसे पहले बुद्धिमान् वानर अङ्गद विभीषणकी परीक्षाके लिये सुझाव देते हुए श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ ३८॥

'भगवन्! विभीषण शत्रुके पाससे आया है, इसलिये उसपर अभी शङ्का ही करनी चाहिये। उसे सहसा विश्वासपात्र नहीं बना लेना चाहिये॥ ३९॥

'बहुत-से शठतापूर्ण विचार रखनेवाले लोग अपने मनोभावको छिपाकर विचरते रहते हैं और मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं। इससे बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता है॥ ४०॥

'अत: गुण-दोषका विचार करके पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस व्यक्तिसे अर्थकी प्राप्ति होगी या अनर्थकी (यह हितका साधन करेगा या अहितका)। यदि उसमें गुण हों तो उसे स्वीकार करे और यदि दोष दिखायी दें तो त्याग दे॥ ४१॥

'महाराज! यदि उसमें महान् दोष हो तो नि:संदेह उसका त्याग कर देना ही उचित है। गुणोंकी दृष्टिसे यदि उसमें बहुत-से सद्‌गुणोंके होनेका पता लगे, तभी उस व्यक्तिको अपनाना चाहिये'॥ ४२॥

तदनन्तर शरभने सोच-विचारकर यह सार्थक बात कही—'पुरुषसिंह! इस विभीषणके ऊपर शीघ्र ही कोई गुप्तचर नियुक्त कर दिया जाय॥ ४३॥

'सूक्ष्म बुद्धिवाले गुप्तचरको भेजकर उसके द्वारा यथावत्‌रूपसे उसकी परीक्षा कर ली जाय। इसके बाद यथोचित रीतिसे उसका संग्रह करना चाहिये'॥ ४४॥

इसके बाद परम चतुर जाम्बवान्‌ने शास्त्रीय बुद्धिसे विचार करके ये गुणयुक्त दोषरहित वचन कहे—॥

'राक्षसराज रावण बड़ा पापी है। उसने हमारे साथ वैर बाँध रखा है और यह विभीषण उसीके पाससे आ रहा है। वास्तवमें न तो इसके आनेका यह समय है और न स्थान ही। इसलिये इसके विषयमें सब प्रकारसे सशङ्क ही रहना चाहिये'॥ ४६॥

तदनन्तर नीति और अनीतिके ज्ञाता तथा वाग्वैभवसे सम्पन्न मैन्दने सोच-विचारकर यह युक्तियुक्त उत्तम बात कही—॥ ४७॥

'महाराज! यह विभीषण रावणका छोटा भाई ही तो है, इसलिये इससे मधुर व्यवहारके साथ धीरे-धीरे सब बातें पूछनी चाहिये॥ ४८॥

'नरश्रेष्ठ! फिर इसके भावको समझकर आप बुद्धिपूर्वक यह ठीक-ठीक निश्चय करें कि यह दुष्ट है या नहीं। उसके बाद जैसा उचित हो, वैसा करना चाहिये'॥

तत्पश्चात् सचिवोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानजनित संस्कारसे युक्त हनुमान्‌जीने ये श्रवणमधुर, सार्थक, सुन्दर और संक्षिप्त वचन कहे—॥ ५०॥

'प्रभो! आप बुद्धिमानोंमें उत्तम, सामर्थ्यशाली और वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। यदि बृहस्पति भी भाषण दें तो वे अपनेको आपसे बढ़कर वक्ता नहीं सिद्ध कर सकते॥ ५१॥

'महाराज श्रीराम! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद-विवाद या तर्क, स्पर्धा, अधिक बुद्धिमत्ताके अभिमान अथवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं करूँगा। मैं तो कार्यकी गुरुतापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात कहूँगा॥ ५२॥

'आपके मन्त्रियोंने जो अर्थ और अनर्थके निर्णयके लिये गुण-दोषकी परीक्षा करनेका सुझाव दिया है, उसमें मुझे दोष दिखायी देता है; क्योंकि इस समय परीक्षा लेना कदापि सम्भव नहीं है॥ ५३॥

'विभीषण आश्रय देनेके योग्य हैं या नहीं—इसका निर्णय उसे किसी काममें नियुक्त किये बिना नहीं हो सकता और सहसा उसे किसी काममें लगा देना भी मुझे सदोष ही प्रतीत होता है॥ ५४॥

'आपके मन्त्रियोंने जो गुप्तचर नियुक्त करनेकी बात कही है, उसका कोई प्रयोजन न होनेसे वैसा

करनेका कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दिखायी देता। (जो दूर रहता हो और जिसका वृत्तान्त ज्ञात न हो, उसीके लिये गुप्तचरकी नियुक्ति की जाती है। जो सामने खड़ा है और स्पष्टरूपसे अपना वृत्तान्त बता रहा है, उसके लिये गुप्तचर भेजनेकी क्या आवश्यकता है)॥ ५५॥

'इसके सिवा जो यह कहा गया है कि विभीषणका इस समय यहाँ आना देश-कालके अनुरूप नहीं है। उसके विषयमें भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ कहना चाहता हूँ। आप सुनें॥ ५६॥

'उसके यहाँ आनेका यही उत्तम देश और काल है, यह बात जिस तरह सिद्ध होती है, वैसा बता रहा हूँ। विभीषण एक नीच पुरुषके पाससे चलकर एक श्रेष्ठ पुरुषके पास आया है। उसने दोनोंके दोषों और गुणोंका भी विवेचन किया है। तत्पश्चात् रावणमें दुष्टता और आपमें पराक्रम देख वह रावणको छोड़कर आपके पास आ गया है। इसलिये उसका यहाँ आगमन सर्वथा उचित और उसकी उत्तम बुद्धिके अनुरूप है॥ ५७-५८॥

'राजन्! किसी मन्त्रीके द्वारा जो यह कहा गया है कि अपरिचित पुरुषोंद्वारा इससे सारी बातें पूछी जायँ। उसके विषयमें मेरा जाँच-बूझकर निश्चित किया हुआ विचार है, जिसे आपके सामने रखता हूँ॥ ५९॥

'यदि कोई अपरिचित व्यक्ति यह पूछेगा कि तुम कौन हो, कहाँसे आये हो? किसलिये आये हो? इत्यादि, तब कोई बुद्धिमान् पुरुष सहसा उस पूछनेवालेपर संदेह करने लगेगा और यदि उसे यह मालूम हो जायगा कि सब कुछ जानते हुए भी मुझसे झूठे ही पूछा जा रहा है, तब सुखके लिये आये हुए उस नवागत मित्रका हृदय कलुषित हो जायगा (इस प्रकार हमें एक मित्रके लाभसे वञ्चित होना पड़ेगा)॥ ६०॥

'इसके सिवा महाराज! किसी दूसरेके मनकी बातको सहसा समझ लेना असम्भव है। बीच-बीचमें स्वरभेदसे आप अच्छी तरह यह निश्चय कर लें कि यह साधुभावसे आया है या असाधुभावसे॥ ६१॥

इसकी बातचीतसे भी कभी इसका दुर्भाव नहीं लक्षित होता। इसका मुख भी प्रसन्न है। इसलिये मेरे मनमें इसके प्रति कोई संदेह नहीं है॥ ६२॥

'दुष्ट पुरुष कभी निःशङ्क एवं स्वस्थचित्त होकर सामने नहीं आ सकता। इसके सिवा इसकी वाणी भी दोषयुक्त नहीं है। अतः मुझे इसके विषयमें कोई संदेह नहीं है॥

'कोई अपने आकारको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतरका भाव कभी छिप नहीं सकता। बाहरका आकार पुरुषोंके आन्तरिक भावको बलात् प्रकट कर देता है॥ ६४॥

'कार्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! विभीषणका यहाँ आगमनरूप जो कार्य है, वह देश-कालके अनुरूप ही है। ऐसा कार्य यदि योग्य पुरुषके द्वारा सम्पादित हो तो अपने-आपको शीघ्र सफल बनाता है॥ ६५॥

'आपके उद्योग, रावणके मिथ्याचार, वालीके वध और सुग्रीवके राज्याभिषेकका समाचार जान-सुनकर राज्य पानेकी इच्छासे यह समझ-बूझकर ही यहाँ आपके पास आया है (इसके मनमें यह विश्वास है कि शरणागतवत्सल दयालु श्रीराम अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे और राज्य भी दे देंगे)। इन्हीं सब बातोंको दृष्टिमें रखकर विभीषणका संग्रह करना—उसे अपना लेना मुझे उचित जान पड़ता है॥ ६६-६७॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनाथ! इस प्रकार इस राक्षसकी सरलता और निर्दोषताके विषयमें मैंने यथाशक्ति निवेदन किया। इसे सुनकर आगे आप जैसा उचित समझें, वैसा करें'॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

भगवान् श्रीरामका शरणागतकी रक्षाका महत्त्व एवं अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना

वायुनन्दन हनुमान्‌जीके मुखसे अपने मनमें बैठी हुई बात सुनकर दुर्जय वीर भगवान् श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया। वे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'मित्रो! विभीषणके सम्बन्धमें मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ। आप सब लोग मेरे हितसाधनमें संलग्न रहनेवाले हैं। अतः मेरी इच्छा है कि आप भी उसे सुन लें॥ २॥

'जो मित्रभावसे मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता। सम्भव है उसमें कुछ दोष भी हों, परंतु दोषीको आश्रय देना भी सत्पुरुषोंके लिये निन्दित नहीं है (अतः विभीषणको मैं अवश्य अपनाऊँगा)'॥ ३ ॥

वानरराज सुग्रीवने भगवान् श्रीरामके इस कथनको सुनकर स्वयं भी उसे दोहराया और उसपर विचार करके यह परम सुन्दर बात कही—॥ ४ ॥

'प्रभो! यह दुष्ट हो या अदुष्ट, इससे क्या? है तो यह निशाचर ही। फिर जो पुरुष ऐसे संकटमें पड़े हुए अपने भाईको छोड़ सकता है, उसका दूसरा ऐसा कौन सम्बन्धी होगा, जिसे वह त्याग न सके'॥ ५½ ॥

वानरराज सुग्रीवकी यह बात सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरघुनाथजी सबकी ओर देखकर कुछ मुसकराये और पवित्र लक्षणवाले लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥

'सुमित्रानन्दन! इस समय वानरराजने जैसी बात कही है, वैसी कोई भी पुरुष शास्त्रोंका अध्ययन और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना नहीं कह सकता॥ ८ ॥

'परंतु सुग्रीव! तुमने विभीषणमें जो भाईके परित्यागरूप दोषकी उद्भावना की है, उस विषयमें मुझे एक ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म अर्थकी प्रतीति हो रही है, जो समस्त राजाओंमें प्रत्यक्ष देखा गया है और सभी लोगोंमें प्रसिद्ध है (मैं उसीको तुम सब लोगोंसे कहना चाहता हूँ॥ ९ ॥

'राजाओंके छिद्र दो प्रकारके बताये गये हैं—एक तो उसी कुलमें उत्पन्न हुए जाति-भाई और दूसरे पड़ोसी देशोंके निवासी। ये संकटमें पड़नेपर अपने विरोधी राजा या राजपुत्रपर प्रहार कर बैठते हैं। इसी भयसे यह विभीषण यहाँ आया है (इसे भी अपने जाति-भाइयोंसे भय है)॥ १० ॥

'जिनके मनमें पाप नहीं है, ऐसे एक कुलमें उत्पन्न हुए भाई-बन्धु अपने कुटुम्बीजनोंको हितैषी मानते हैं, परंतु यही सजातीय बन्धु अच्छा होनेपर भी प्रायः राजाओंके लिये शङ्कनीय होता है (रावण भी विभीषणको शङ्काकी दृष्टिसे देखने लगा है; इसलिये इसका अपनी रक्षाके लिये यहाँ आना अनुचित नहीं है। अतः तुम्हें इसके ऊपर भाईके त्यागका दोष नहीं लगाना चाहिये)॥ ११ ॥

'तुमने शत्रुपक्षीय सैनिकको अपनानेमें जो यह दोष बताया है कि वह अवसर देखकर प्रहार कर बैठता है, उसके विषयमें मैं तुम्हें यह नीतिशास्त्रके अनुकूल उत्तर दे रहा हूँ, सुनो॥ १२ ॥

'हमलोग इसके कुटुम्बी तो हैं नहीं (अतः हमसे स्वार्थ-हानिकी आशंका इसे नहीं है) और यह राक्षस राज्य पानेका अभिलाषी है (इसलिये भी यह हमारा त्याग नहीं कर सकता)। इन राक्षसोंमें बहुत-से लोग बड़े विद्वान् भी होते हैं (अतः वे मित्र होनेपर बड़े कामके सिद्ध होंगे) इसलिये विभीषणको अपने पक्षमें मिला लेना चाहिये॥ १३ ॥

'हमसे मिल जानेपर ये विभीषण आदि निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो जायँगे। इनकी जो यह शरणागतिके लिये प्रबल पुकार है, इससे मालूम होता है, राक्षसोंमें एक-दूसरेसे भय बना हुआ है। इसी कारणसे इनमें परस्पर फूट होगी और ये नष्ट हो जायँगे। इसलिये भी विभीषणको ग्रहण कर लेना चाहिये॥ १४ ॥

'तात सुग्रीव! संसारमें सब भाई भरतके ही समान नहीं होते। बापके सब बेटे मेरे ही जैसे नहीं होते और सभी मित्र तुम्हारे ही समान नहीं हुआ करते हैं'॥ १५ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित महाबुद्धिमान् सुग्रीवने उठकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १६ ॥

'उचित कार्य करनेवालोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! आप उस राक्षसको रावणका भेजा हुआ ही समझें। मैं तो उसे कैद कर लेना ही ठीक समझता हूँ॥ १७ ॥

'निष्पाप श्रीराम! यह निशाचर रावणके कहनेसे मनमें कुटिल विचार लेकर ही यहाँ आया है। जब हमलोग इसपर विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँगे, उस समय यह आपपर, मुझपर अथवा लक्ष्मणपर भी प्रहार कर सकता है। इसलिये महाबाहो! क्रूर रावणके भाई इस विभीषणका मन्त्रियोंसहित वध कर देना ही उचित है'॥ १८-१९ ॥

प्रवचनकुशल रघुकुलतिलक श्रीरामसे ऐसा कहकर बातचीतकी कला जाननेवाले सेनापति सुग्रीव मौन हो गये॥ २० ॥

सुग्रीवका वह वचन सुनकर और उसपर भलीभाँति विचार करके श्रीरामने उन वानरशिरोमणिसे यह परम मङ्गलमयी बात कही—॥ २१ ॥

'वानरराज! विभीषण दुष्ट हो या साधु। क्या यह

निशाचर किसी तरह भी मेरा सूक्ष्म-से-सूक्ष्मरूपमें भी अहित कर सकता है?॥ २२॥

'वानरयूथपते! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने भी पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं, उन सबको एक अंगुलिके अग्रभागसे मार सकता हूँ॥ २३॥

'सुना जाता है कि एक कबूतरने अपनी शरणमें आये हुए अपने ही शत्रु एक व्याधका यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया था और उसे निमन्त्रण दे अपने शरीरके मांसका भोजन कराया था॥ २४॥

'उस व्याधने उस कबूतरकी भार्या कबूतरीको पकड़ लिया था तो भी अपने घर आनेपर कबूतरने उसका आदर किया; फिर मेरे-जैसा मनुष्य शरणागतपर अनुग्रह करे, इसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ २५॥

'पूर्वकालमें कण्व मुनिके पुत्र सत्यवादी महर्षि कण्डुने एक धर्मविषयक गाथाका गान किया था। उसे बताता हूँ, सुनो॥ २६॥

'परंतप! यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनभावसे हाथ जोड़कर दयाकी याचना करे तो उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये॥ २७॥

'शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाय तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये॥

'यदि वह भय, मोह अथवा किसी कामनासे न्यायानुसार यथाशक्ति उसकी रक्षा नहीं करता तो उसके उस पाप-कर्मकी लोकमें बड़ी निन्दा होती है॥ २९॥

'यदि शरणमें आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यको अपने साथ ले जाता है॥ ३०॥

'इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष बताया गया है। शरणागतका त्याग स्वर्ग और सुयशकी प्राप्तिको मिटा देता है और मनुष्यके बल और वीर्यका नाश करता है॥ ३१॥

'इसलिये मैं तो महर्षि कण्डुके उस यथार्थ और उत्तम वचनका ही पालन करूँगा; क्योंकि वह परिणाममें धर्म, यश और स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ३२॥

'जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है॥ ३३॥

'अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव! वह विभीषण हो या स्वयं रावण आ गया हो। तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभयदान दे दिया'॥ ३४॥

भगवान् श्रीरामका यह वचन सुनकर वानरराज सुग्रीवने सौहार्दसे भरकर उनसे कहा—॥ ३५॥

धर्मज्ञ! लोकेश्वरशिरोमणे! आपने जो यह श्रेष्ठ धर्मकी बात कही है, इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि आप महान् शक्तिशाली और सन्मार्गपर स्थित हैं॥ ३६॥

'यह मेरी अन्तरात्मा भी विभीषणको शुद्ध समझती है। हनुमान्‌जीने भी अनुमान और भावसे उनकी भीतर-बाहर सब ओरसे भलीभाँति परीक्षा कर ली हैं॥ ३७॥

'अतः रघुनन्दन! अब विभीषण शीघ्र ही यहाँ हमारे-जैसे होकर रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें'॥ ३८॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवकी कही हुई वह बात सुनकर राजा श्रीराम शीघ्र आगे बढ़कर विभीषणसे मिले, मानो देवराज इन्द्र पक्षिराज गरुड़से मिल रहे हों॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

विभीषणका आकाशसे उतरकर भगवान् श्रीरामके चरणोंकी शरण लेना, उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिका परिचय देना और श्रीरामका रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्रतटपर धरना देनेके लिये बैठना

इस प्रकार श्रीरघुनाथजीके अभय देनेपर विनयशील महाबुद्धिमान् विभीषणने नीचे उतरनेके लिये पृथ्वीकी ओर देखा॥ १॥

वे अपने भक्त सेवकोंके साथ हर्षसे भरकर आकाशसे पृथ्वीपर उतर आये। उतरकर चारों राक्षसोंके साथ धर्मात्मा विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े॥ २$\frac{1}{2}$॥

उस समय विभीषणने श्रीरामसे धर्मानुकूल, युक्तियुक्त, समयोचित और हर्षवर्द्धक बात कही—॥ ३½ ॥

'भगवन्! मैं रावणका छोटा भाई हूँ। रावणने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, इसलिये मैंने आपकी शरण ली है॥ ४½ ॥

'अपने सभी मित्र, धन और लङ्कापुरीको मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है'॥ ५½ ॥

विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरामने मधुर वाणीद्वारा उन्हें सान्त्वना दी और नेत्रोंसे मानो उन्हें पी जायँगे, इस प्रकार प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा— ॥ ६½ ॥

'विभीषण! तुम मुझे ठीक-ठीक राक्षसोंका बलाबल बताओ।' अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके ऐसा कहनेपर राक्षस विभीषणने रावणके सम्पूर्ण बलका परिचय देना आरम्भ किया—॥ ७-८ ॥

'राजकुमार! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे दशमुख रावण (केवल मनुष्यको छोड़कर) गन्धर्व, नाग और पक्षी आदि सभी प्राणियोंके लिये अवध्य है॥ ९ ॥

'रावणसे छोटा और मुझसे बड़ा जो मेरा भाई कुम्भकर्ण है, वह महातेजस्वी और पराक्रमी है। युद्धमें वह इन्द्रके समान बलशाली है॥ १० ॥

'श्रीराम! रावणके सेनापतिका नाम प्रहस्त है। शायद आपने भी उसका नाम सुना होगा। उसने कैलासपर घटित हुए युद्धमें कुबेरके सेनापति मणिभद्रको भी पराजित कर दिया था॥ ११ ॥

'रावणका पुत्र जो इन्द्रजित् है, वह गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहनकर अवध्य कवच धारण करके हाथमें धनुष ले जब युद्धमें खड़ा होता है, उस समय अदृश्य हो जाता है॥ १२ ॥

'रघुनन्दन! श्रीमान् इन्द्रजित्ने अग्निदेवको तृप्त करके ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह विशाल व्यूहसे युक्त संग्राममें अदृश्य होकर शत्रुओंपर प्रहार करता है॥ १३ ॥

'महोदर, महापार्श्व और अकम्पन—ये तीनों राक्षस रावणके सेनापति हैं और युद्धमें लोकपालोंके समान पराक्रम प्रकट करते हैं॥ १४ ॥

'लङ्कामें रक्त और मांसका भोजन करनेवाले और इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ जो दस कोटि सहस्र (एक खरब) राक्षस निवास करते हैं, उन्हें साथ लेकर राजा रावणने लोकपालोंसे युद्ध किया था। उस समय देवताओंसहित वे सब लोकपाल दुरात्मा रावणसे पराजित हो भाग खड़े हुए'॥ १५-१६ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर रघुकुलतिलक श्रीरामने मन-ही-मन उस सबपर बारंबार विचार किया और इस प्रकार कहा—॥ १७ ॥

'विभीषण! तुमने रावणके युद्धविषयक जिन-जिन पराक्रमोंका वर्णन किया है, उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ १८ ॥

'परंतु सुनो! मैं सच कहता हूँ कि प्रहस्त और पुत्रोंके सहित रावणका वध करके मैं तुम्हें लङ्काका राजा बनाऊँगा॥ १९ ॥

'रावण रसातल या पातालमें प्रवेश कर जाय अथवा पितामह ब्रह्माजीके पास चला जाय तो भी वह अब मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा॥ २० ॥

'मैं अपने तीनों भाइयोंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि युद्धमें पुत्र, भृत्यजन और बन्धु-बान्धवोंसहित रावणका वध किये बिना अयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करूँगा'॥ २१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २२ ॥

'प्रभो! राक्षसोंके संहारमें और लङ्कापुरीपर आक्रमण करके उसे जीतनेमें मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूँगा तथा प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धके लिये रावणकी सेनामें भी प्रवेश करूँगा'॥ २३ ॥

विभीषणके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न होकर लक्ष्मणसे कहा—'दूसरोंको मान देनेवाले सुमित्रानन्दन! तुम समुद्रसे जल ले आओ और उसके द्वारा इन परम बुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका लङ्काके राज्यपर शीघ्र ही अभिषेक कर दो। मेरे प्रसन्न होनेपर इन्हें यह लाभ मिलना ही चाहिये'॥ २४-२५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने मुख्य-मुख्य वानरोंके बीच महाराज श्रीरामके आदेशसे विभीषणका राक्षसोंके राजाके पदपर अभिषेक कर दिया॥ २६ ॥

भगवान् श्रीरामका यह तात्कालिक प्रसाद

(अनुग्रह) देखकर सब वानर हर्षध्वनि करने और महात्मा श्रीरामको साधुवाद देने लगे॥ २७॥

तत्पश्चात् हनुमान् और सुग्रीवने विभीषणसे पूछा—'राक्षसराज! हम सब लोग इस अक्षोभ्य समुद्रको महाबली वानरोंकी सेनाओंके साथ किस प्रकार पार कर सकेंगे?

'जिस उपायसे हम सब लोग सेनासहित नदों और नदियोंके स्वामी वरुणालय समुद्रके पार जा सकें, वह बताओ'॥ २९॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा विभीषणने यों उत्तर दिया—'रघुवंशी राजा श्रीरामको समुद्रकी शरण लेनी चाहिये॥ ३०॥

'इस अपार महासागरको राजा सगरने खुदवाया था। श्रीरामचन्द्रजी सगरके वंशज हैं। इसलिये समुद्रको इनका काम अवश्य करना चाहिये'॥ ३१॥

विद्वान् राक्षस विभीषणके ऐसा कहनेपर सुग्रीव उस स्थानपर आये, जहाँ लक्ष्मणसहित श्रीराम विद्यमान थे॥ ३२॥

वहाँ विशाल ग्रीवावाले सुग्रीवने समुद्रपर धरना देनेके विषयमें जो विभीषणका शुभ वचन था, उसे कहना आरम्भ किया॥ ३३॥

भगवान् श्रीराम स्वभावसे ही धर्मशील थे, अत: उन्हें भी विभीषणकी यह बात अच्छी लगी। वे महातेजस्वी रघुनाथजी लक्ष्मणसहित कार्यदक्ष वानरराज सुग्रीवका सत्कार करते हुए उनसे मुसकराकर बोले—॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

'लक्ष्मण! विभीषणकी यह सम्मति मुझे भी अच्छी लगती है; परंतु सुग्रीव राजनीतिके बड़े पण्डित हैं और तुम भी समयोचित सलाह देनेमें सदा ही कुशल हो। इसलिये तुम दोनों प्रस्तुत कार्यपर अच्छी तरह विचार करके जो ठीक जान पड़े, वह बताओ'॥ ३५-३६॥

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर वे दोनों वीर सुग्रीव और लक्ष्मण उनसे आदरपूर्वक बोले—॥ ३७॥

पुरुषसिंह रघुनन्दन! इस समय विभीषणने जो सुखदायक बात कही है, वह हम दोनोंको क्यों नहीं अच्छी लगेगी?॥ ३८॥

'इस भयंकर समुद्रमें पुल बाँधे बिना इन्द्रसहित देवता और असुर भी इधरसे लङ्कापुरीमें नहीं पहुँच सकते॥ ३९॥

'इसलिये आप शूरवीर विभीषणके यथार्थ वचनके अनुसार ही कार्य करें। अब अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं है। इस समुद्रसे यह अनुरोध किया जाय कि वह हमारी सहायता करे, जिससे हम सेनाके साथ रावणपालित लङ्कापुरीमें पहुँच सकें'॥ ४०॥

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी उस समय समुद्रके तटपर कुश बिछाकर उसके ऊपर उसी तरह बैठे, जैसे वेदीपर अग्निदेव प्रतिष्ठित होते हैं॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

शार्दूलके कहनेसे रावणका शुकको दूत बनाकर सुग्रीवके पास संदेश भेजना, वहाँ वानरोंद्वारा उसकी दुर्दशा, श्रीरामकी कृपासे उसका संकटसे छूटना और सुग्रीवका रावणके लिये उत्तर देना

इसी बीचमें दुरात्मा राक्षसराज रावणके गुप्तचर पराक्रमी राक्षस शार्दूलने वहाँ आकर सागर-तटपर छावनी डाले पड़ी हुई सुग्रीवद्वारा सुरक्षित वानरी सेनाको देखा। सब ओर शान्तभावसे स्थित हुई उस विशाल सेनाको देखकर वह राक्षस लौट गया और जल्दीसे लङ्कापुरीमें जाकर राजा रावणसे यों बोला—॥ १-२$\frac{1}{2}$॥

'महाराज! लङ्काकी ओर वानरों और भालुओंका एक प्रवाह-सा बढ़ा चला आ रहा है। वह दूसरे समुद्रके समान अगाध और असीम है॥ ३$\frac{1}{2}$॥

'राजा दशरथके ये पुत्र दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण बड़े ही रूपवान् और श्रेष्ठ वीर हैं। वे सीताका उद्धार करनेके लिये आ रहे हैं॥ ४$\frac{1}{2}$॥

'महातेजस्वी महाराज! ये दोनों रघुवंशी बन्धु भी इस समय समुद्र-तटपर ही आकर ठहरे हुए हैं। वानरोंकी वह सेना सब ओरसे दस योजनतकके खाली स्थानको घेरकर वहाँ ठहरी हुई है। यह बिलकुल ठीक बात है। आप शीघ्र ही इस विषयमें विशेष जानकारी प्राप्त करें॥ ५-६॥

'राक्षससम्राट्! आपके दूत शीघ्र सारी बातोंका पता लगा लेनेके योग्य हैं, अत: उन्हें भेजें। तत्पश्चात् जैसा उचित समझें, वैसा करें—चाहे उन्हें सीताको लौटा दें, चाहे सुग्रीवसे मीठी-मीठी बातें करके उन्हें अपने पक्षमें मिला लें अथवा सुग्रीव और श्रीराममें फूट डलवा दें'॥ ७॥

शार्दूलकी बात सुनकर राक्षसराज रावण सहसा व्यग्र हो उठा और अपने कर्तव्यका निश्चय करके अर्थवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुक नामक राक्षससे यह उत्तम वचन बोला—॥

'दूत! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही वानरराज सुग्रीवके पास जाओ और मधुर एवं उत्तम वाणीद्वारा निर्भीकतापूर्वक उनसे मेरा यह संदेश कहो—॥ ९॥

वानरराज! आप वानरोंके महाराजके कुलमें उत्पन्न हुए हैं। आदरणीय ऋक्षरजाके पुत्र हैं और स्वयं भी बड़े बलवान् हैं। मैं आपको अपने भाईके समान समझता हूँ। यदि मुझसे आपका कोई लाभ नहीं हुआ है तो मेरे द्वारा आपकी कोई हानि भी नहीं हुई है॥ १०॥

सुग्रीव! यदि मैं बुद्धिमान् राजपुत्र रामकी स्त्रीको हर लाया हूँ तो इसमें आपकी क्या हानि है? अत: आप किष्किन्धाको लौट जाइये॥ ११॥

हमारी इस लङ्कामें वानरलोग किसी तरह भी नहीं पहुँच सकते। यहाँ देवताओं और गन्धर्वोंका भी प्रवेश होना असम्भव है; फिर मनुष्यों और वानरोंकी तो बात ही क्या है?''॥ १२॥

राक्षसराज रावणके इस प्रकार संदेश देनेपर उस समय निशाचर शुक तोता नामक पक्षीका रूप धारण करके तुरंत आकाशमें उड़ चला॥ १३॥

समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर बहुत दूरका रास्ता तय करके वह सुग्रीवके पास जा पहुँचा और आकाशमें ही ठहरकर उसने दुरात्मा रावणकी आज्ञाके अनुसार वे सारी बातें सुग्रीवसे कहीं॥ १४½॥

जिस समय वह संदेश सुना रहा था, उसी समय वानर उछलकर तुरंत उसके पास जा पहुँचे। वे चाहते थे कि हम शीघ्र ही इसकी पाँखें नोच लें और इसे घूँसोंसे ही मार डालें॥१५½॥

इस निश्चयके साथ सारे वानरोंने उस निशाचरको बलपूर्वक पकड़ लिया और उसे कैद करके तुरंत आकाशसे भूतलपर उतारा॥ १६½॥

इस प्रकार वानरोंके पीड़ा देनेपर शुक पुकार उठा—'रघुनन्दन! राजालोग दूतोंका वध नहीं करते हैं, अत: आप इन वानरोंको भलीभाँति रोकिये। जो स्वामीके अभिप्रायको छोड़कर अपना मत प्रकट करने लगता है, वह दूत बिना कही हुई बात कहनेका अपराधी है; अत: वही वधके योग्य होता है'॥ १७-१८॥

शुकके वचन और विलापको सुनकर भगवान् श्रीरामने उसे पीटनेवाले प्रमुख वानरोंको पुकारकर कहा—'इसे मत मारो'॥ १९॥

उस समयतक शुकके पंखोंका भार कुछ हलका हो गया था; (क्योंकि वानरोंने उन्हें नोंच डाला था) फिर उनके अभय देनेपर शुक आकाशमें खड़ा हो गया और पुन: बोला—॥ २०॥

'महान् बल और पराक्रमसे युक्त शक्तिशाली सुग्रीव! समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणको मुझे आपकी ओरसे क्या उत्तर देना चाहिये'॥ २१॥

शुकके इस प्रकार पूछनेपर उस समय कपिशिरोमणि महाबली उदारचेता वानरराज सुग्रीवने उस निशाचरके दूतसे यह स्पष्ट एवं निश्छल बात कही—॥ २२॥

'(दूत! तुम रावणसे इस प्रकार कहना—)वधके योग्य दशानन! तुम न तो मेरे मित्र हो, न दयाके पात्र हो, न मेरे उपकारी हो और न मेरे प्रिय व्यक्तियोंमेंसे ही कोई हो। भगवान् श्रीरामके शत्रु हो, इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियोंसहित तुम वालीकी भाँति ही मेरे लिये वध्य हो॥ २३॥

'निशाचरराज! मैं पुत्र, बन्धु और कुटुम्बीजनों-सहित तुम्हारा संहार करूँगा और बड़ी भारी सेनाके साथ आकर समस्त लङ्कापुरीको भस्म कर डालूँगा॥ २४॥

'मूर्ख रावण! यदि इन्द्र आदि समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें तो भी श्रीरघुनाथजीके हाथसे अब तुम जीवित नहीं छूट सकोगे। तुम अन्तर्धान हो जाओ, आकाशमें चले जाओ, पातालमें घुस जाओ अथवा महादेवजीके चरणारविन्दोंका आश्रय लो; फिर भी अपने भाइयोंसहित तुम अवश्य श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंसे मारे जाओगे॥ २५॥

'तीनों लोकोंमें मुझे कोई भी पिशाच, राक्षस, गन्धर्व या असुर ऐसा नहीं दिखायी देता, जो तुम्हारी रक्षा कर सके॥ २६॥

'चिरकालके बूढ़े गृध्रराज जटायुको तुमने क्यों मारा? यदि तुममें बड़ा बल था तो श्रीराम और लक्ष्मणके पाससे तुमने विशाललोचना सीताका अपहरण क्यों नहीं

किया? तुम सीताजीको ले जाकर अपने सिरपर आयी हुई विपत्तिको क्यों नहीं समझ रहे हो?॥ २७॥

'रघुकुलतिलक श्रीराम महाबली, महात्मा और देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं, किंतु तुम उन्हें अभीतक समझ नहीं सके। (तुमने छिपकर सीताका हरण किया है, परंतु) वे (सामने आकर) तुम्हारे प्राणोंका अपहरण करेंगे'॥ २८॥

तत्पश्चात् वानरशिरोमणि वालिकुमार अङ्गदने कहा—'महाराज! मुझे तो यह दूत नहीं, कोई गुप्तचर प्रतीत होता है। इसने यहाँ खड़े-खड़े आपकी सारी सेनाका माप-तौल कर लिया है—पूरा-पूरा अंदाजा लगा लिया है। अत: इसे पकड़ लिया जाय, लङ्काको न जाने पाये। मुझे यही ठीक जान पड़ता है'॥ २९-३०॥

फिर तो राजा सुग्रीवके आदेशसे वानरोंने उछलकर उसे पकड़ लिया और बाँध दिया। वह बेचारा अनाथकी भाँति विलाप करता रहा॥ ३१॥

उन प्रचण्ड वानरोंसे पीड़ित हो शुकने दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामको बड़े जोरसे पुकारा और कहा—'प्रभो! बलपूर्वक मेरी पाँखें नोची और आँखें फोड़ी जा रही हैं। यदि आज मैंने प्राणोंका त्याग किया तो जिस रातमें मेरा जन्म हुआ था और जिस रातको मैं मरूँगा, जन्म और मरणके इस मध्यवर्ती कालमें, मैंने जो भी पाप किया है, वह सब आपको ही लगेगा'॥ ३२-३३॥

उस समय उसका वह विलाप सुनकर श्रीरामने उसका वध नहीं होने दिया। उन्होंने वानरोंसे कहा—'छोड़ दो। यह दूत होकर ही आया था'॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीरामका समुद्रके तटपर कुशा बिछाकर तीन दिनोंतक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन न देनेसे कुपित हो उसे बाण मारकर विक्षुब्ध कर देना

तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर कुशा बिछा महासागरके समक्ष हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो वहाँ लेट गये॥ १॥

उस समय शत्रुसूदन श्रीरामने सर्पके शरीरकी भाँति कोमल और वनवासके पहले सोनेके बने हुए सुन्दर आभूषणोंसे सदा विभूषित रहनेवाली अपनी एक (दाहिनी) बाँहको तकिया बना रखा था॥ २॥

अयोध्यामें रहते समय मातृकोटिकी अनेक उत्तम नारियाँ (धायें) मणि और सुवर्णके बने हुए केयूरों तथा मोतीके श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित अपने कर-कमलोंद्वारा नहलाने-धुलाने आदिके समय अनेक बार श्रीरामके उस बाँहको सहलाती और दबाती थीं॥ ३॥

पहले चन्दन और अगुरुसे उस बाँहकी सेवा होती थी। प्रात:कालके सूर्यकी-सी कान्तिवाले लाल चन्दन उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ४॥

सीताहरणसे पहले शयनकालमें सीताका सिर उस बाँहकी शोभा बढ़ाता था और श्वेत शय्यापर स्थित एवं लाल चन्दनसे चर्चित हुई वह बाँह गङ्गाजलमें निवास करनेवाले तक्षकके* शरीरकी भाँति सुशोभित होती थी॥ ५॥

युद्धस्थलमें जूएके समान वह विशाल भुजा शत्रुओंका शोक बढ़ानेवाली और सुहृदोंको दीर्घकालतक आनन्दित करनेवाली थी। समुद्रपर्यन्त अखण्ड भूमण्डलकी रक्षाका भार उनकी उसी भुजापर प्रतिष्ठित था॥ ६॥

बायीं ओरको बारंबार बाण चलानेके कारण प्रत्यञ्चाके आघातसे जिसकी त्वचापर रगड़ पड़ गयी थी, जो विशाल परिघके समान सुदृढ़ एवं बलिष्ठ थी तथा जिसके द्वारा उन्होंने सहस्रों गौओंका दान किया था, उस विशाल दाहिनी भुजाका तकिया लगाकर उदारता आदि गुणोंसे युक्त महाबाहु श्रीराम 'आज या तो मैं समुद्रके पार जाऊँगा या मेरे द्वारा समुद्रका संहार होगा' ऐसा निश्चय करके मौन हो मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर महासागरको अनुकूल करनेके उद्देश्यसे विधिपूर्वक धरना देते हुए उस कुशासनपर सो गये॥ ७—९॥

कुश बिछी हुई भूमिपर सोकर नियमसे असावधान न होते हुए श्रीरामकी वहाँ तीन रातें व्यतीत हो गयीं॥

* तक्षकनागका रंग लाल माना गया है। (देखिये महाभारत, आदिपर्व ४४। २-३)

इस प्रकार उस समय वहाँ तीन रात लेटे रहकर नीतिके ज्ञाता, धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी सरिताओंके स्वामी समुद्रकी उपासना करते रहे; परंतु नियमपूर्वक रहते हुए श्रीरामके द्वारा यथोचित पूजा और सत्कार पाकर भी उस मन्दमति महासागरने उन्हें अपने आधिदैविक रूपका दर्शन नहीं कराया—वह उनके समक्ष प्रकट नहीं हुआ॥ ११-१२॥

तब अरुणनेत्रप्रान्तवाले भगवान् श्रीराम समुद्रपर कुपित हो उठे और पास ही खड़े हुए शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले— ॥ १३॥

'समुद्रको अपने ऊपर बड़ा अहङ्कार है, जिससे वह स्वयं मेरे सामने प्रकट नहीं हो रहा है। शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण—ये जो सत्पुरुषोंके गुण हैं, इनका गुणहीनोंके प्रति प्रयोग करनेपर यही परिणाम होता है कि वे उस गुणवान् पुरुषको भी असमर्थ समझ लेते हैं॥ १४½ ॥

'जो अपनी प्रशंसा करनेवाला, दुष्ट, धृष्ट, सर्वत्र धावा करनेवाला और अच्छे-बुरे सभी लोगोंपर कठोर दण्डका प्रयोग करनेवाला होता है, उस मनुष्यका सब लोग सत्कार करते हैं॥ १५½ ॥

'लक्ष्मण! सामनीति (शान्ति)-के द्वारा इस लोकमें न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती है, न यशका प्रसार हो सकता है और न संग्राममें विजय ही पायी जा सकती है॥

'सुमित्रानन्दन! आज मेरे बाणोंसे खण्ड-खण्ड हो मगर और मत्स्य सब ओर उतराकर बहने लगेंगे और उनकी लाशोंसे इस मकरालय (समुद्र)-का जल आच्छादित हो जायगा। तुम यह दृश्य आज अपनी आँखों देख लो॥ १७½ ॥

'लक्ष्मण! तुम देखो कि मैं यहाँ जलमें रहनेवाले सर्पोंके शरीर, मत्स्योंके विशाल कलेवर और जल-हस्तियोंके शुण्ड-दण्डके किस तरह टुकड़े-टुकड़े कर डालता हूँ॥ १८½ ॥

'आज महान् युद्ध ठानकर शङ्खों और सीपियोंके समुदाय तथा मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रको मैं अभी सुखाये देता हूँ॥ १९½ ॥

'मगरोंका निवासभूत यह समुद्र मुझे क्षमासे युक्त देख असमर्थ समझने लगा है। ऐसे मूर्खोंके प्रति की गयी क्षमाको धिक्कार है॥ २०½ ॥

'सुमित्रानन्दन! सामनीतिका आश्रय लेनेसे यह समुद्र मेरे सामने अपना रूप नहीं प्रकट कर रहा है, इसलिये धनुष तथा विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण ले आओ। मैं समुद्रको सुखा डालूँगा; फिर वानरलोग पैदल ही लङ्कापुरीको चलें॥ २१-२२॥

'यद्यपि समुद्रको अक्षोभ्य कहा गया है; फिर भी आज कुपित होकर मैं इसे विक्षुब्ध कर दूँगा। इसमें सहस्रों तरङ्गें उठती रहती हैं; फिर भी यह सदा अपने तटकी मर्यादा (सीमा) में ही रहता है। किंतु अपने बाणोंसे मारकर मैं इसकी मर्यादा नष्ट कर दूँगा। बड़े-बड़े दानवोंसे भरे हुए इस महासागरमें हलचल मचा दूँगा—तूफान ला दूँगा'॥ २३-२४॥

यों कहकर दुर्धर्ष वीर भगवान् श्रीरामने हाथमें धनुष ले लिया। वे क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे और प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठे॥ २५॥

उन्होंने अपने भयंकर धनुषको धीरेसे दबाकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और उसकी टङ्कारसे सारे जगत्को कम्पित करते हुए बड़े भयंकर बाण छोड़े, मानो इन्द्रने बहुत-से वज्रोंका प्रहार किया हो॥ २६॥

तेजसे प्रज्वलित होते हुए वे महान् वेगशाली श्रेष्ठ बाण समुद्रके जलमें घुस गये। वहाँ रहनेवाले सर्प भयसे थर्रा उठे॥ २७॥

'मत्स्यों और मगरोंसहित महासागरके जलका महान् वेग सहसा अत्यन्त भयंकर हो गया। वहाँ तूफानका कोलाहल छा गया॥ २८॥

बड़ी-बड़ी तरङ्ग-मालाओंसे सारा समुद्र व्याप्त हो उठा। शङ्ख और सीपियाँ पानीके ऊपर छा गयीं। वहाँ धुआँ उठने लगा और सारे महासागरमें सहसा बड़ी-बड़ी लहरें चक्कर काटने लगीं॥ २९॥

चमकीले फन और दीप्तिशाली नेत्रोंवाले सर्प व्यथित हो उठे तथा पातालमें रहनेवाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये॥ ३०॥

सिन्धुराजकी सहस्रों लहरें जो विन्ध्याचल और मन्दराचलके समान विशाल एवं विस्तृत थीं, नाकों और मकरोंको साथ लिये ऊपरको उठने लगीं॥ ३१॥

सागरकी उत्ताल तरङ्ग-मालाएँ झूमने और चक्कर काटने लगीं। वहाँ निवास करनेवाले नाग और राक्षस घबरा गये। बड़े-बड़े ग्राह ऊपरको उछलने लगे तथा वरुणके निवासभूत उस समुद्रमें सब ओर भारी कोलाहल मच गया॥ ३२॥

तदनन्तर श्रीरघुनाथजी रोषसे लंबी साँस लेते हुए अपने भयंकर वेगशाली अनुपम धनुषको पुनः खींचने लगे। यह देख सुमित्राकुमार लक्ष्मण उछलकर उनके पास जा पहुँचे और 'बस, बस, अब नहीं, अब नहीं' ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका धनुष पकड़ लिया॥ ३३ ॥

(फिर वे बोले—)'भैया! आप वीर-शिरोमणि हैं। इस समुद्रको नष्ट किये बिना भी आपका कार्य सम्पन्न हो जायगा। आप-जैसे महापुरुष क्रोधके अधीन नहीं होते हैं। अब आप सुदीर्घकालतक उपयोगमें लाये जानेवाले किसी अच्छे उपायपर दृष्टि डालें—कोई दूसरी उत्तम युक्ति सोचें'॥ ३४॥

इसी समय अन्तरिक्षमें अव्यक्तरूपसे स्थित महर्षियों और देवर्षियोंने भी 'हाय! यह तो बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहते हुए 'अब नहीं, अब नहीं' कहकर बड़े जोरसे कोलाहल किया॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौ योजन लंबे पुलका निर्माण तथा उसके द्वारा श्रीराम आदिसहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना

तब रघुकुलतिलक श्रीरामने समुद्रसे कठोर शब्दोंमें कहा—'महासागर! आज मैं पातालसहित तुझे सुखा डालूँगा'॥ १॥

'सागर! मेरे बाणोंसे तुम्हारी सारी जलराशि दग्ध हो जायगी, तू सूख जायगा और तेरे भीतर रहनेवाले सब जीव नष्ट हो जायँगे। उस दशामें तेरे यहाँ जलके स्थानमें विशाल बालुकाराशि पैदा हो जायगी॥ २॥

'समुद्र! मेरे धनुषद्वारा की गयी बाण-वर्षासे जब तेरी ऐसी दशा हो जायगी, तब वानरलोग पैदल ही चलकर तेरे उस पार पहुँच जायँगे॥ ३॥

'दानवोंके निवासस्थान! तू केवल चारों ओरसे बहकर आयी हुई जलराशिका संग्रह करता है। तुझे मेरे बल और पराक्रमका पता नहीं है। किंतु याद रख, (इस उपेक्षाके कारण) तुझे मुझसे भारी संताप प्राप्त होगा'॥ ४॥

यों कहकर महाबली श्रीरामने एक ब्रह्मदण्डके समान भयंकर बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुषपर चढ़ाकर खींचा॥ ५॥

श्रीरघुनाथजीके द्वारा सहसा उस धनुषके खींचे जाते ही पृथ्वी और आकाश मानो फटने लगे और पर्वत डगमगा उठे॥ ६॥

सारे संसारमें अन्धकार छा गया। किसीको दिशाओंका ज्ञान न रहा। सरिताओं और सरोवरोंमें तत्काल हलचल पैदा हो गयी॥ ७॥

चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंके साथ तिर्यक्-गतिसे चलने लगे। सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होनेपर भी आकाशमें अन्धकार छा गया॥ ८॥

उस समय आकाशमें सैकड़ों उल्काएँ प्रज्वलित होकर उसे प्रकाशित करने लगीं तथा अन्तरिक्षसे अनुपम एवं भारी गड़गड़ाहटके साथ वज्रपात होने लगे॥ ९॥

परिवह आदि वायुभेदोंका समूह बड़े वेगसे बहने लगा। वह मेघोंकी घटाको उड़ाता हुआ बारंबार वृक्षोंको तोड़ने, बड़े-बड़े पर्वतोंसे टकराने और उनके शिखरोंको खण्डित करके गिराने लगा॥ १०$\frac{१}{२}$॥

आकाशमें महान् वेगशाली विशाल वज्र भारी गड़गड़ाहटके साथ टकराकर उस समय वैद्युत अग्निकी वर्षा करने लगे। जो प्राणी दिखायी दे रहे थे और जो नहीं दिखायी देते थे, वे सब बिजलीकी कड़कके समान भयंकर शब्द करने लगे॥ ११-१२$\frac{१}{२}$॥

उनमेंसे कितने ही अभिभूत होकर धराशायी हो गये। कितने ही भयभीत और उद्विग्न हो उठे। कोई व्यथासे व्याकुल हो गये और कितने ही भयके मारे जडवत् हो गये॥ १३$\frac{१}{२}$॥

समुद्र अपने भीतर रहनेवाले प्राणियों, तरङ्गों, सर्पों और राक्षसोंसहित सहसा भयानक वेगसे युक्त हो गया और प्रलयकालके बिना ही तीव्रगतिसे अपनी मर्यादा लाँघकर एक-एक योजन आगे बढ़ गया॥ १४-१५॥

इस प्रकार नदों और नदियोंके स्वामी उस उद्धत समुद्रके मर्यादा लाँघकर बढ़ जानेपर भी शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजी अपने स्थानसे पीछे नहीं हटे॥ १६॥

तब समुद्रके बीचसे सागर स्वयं मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ, मानो महाशैल मेरुपर्वतके अङ्गभूत उदयाचलसे सूर्यदेव उदित हुए हों॥ १७॥

चमकीले मुखवाले सर्पोंके साथ समुद्रका दर्शन हुआ। उसका वर्ण स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान श्याम था। उसने जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए आभूषण पहन रखे थे॥ १८॥

लाल रंगके फूलोंकी माला तथा लाल ही वस्त्र धारण किये थे। उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर थे। उसने सिरपर एक दिव्य पुष्पमाला धारण कर रखी थी, जो सब प्रकारके फूलोंसे बनायी गयी थी॥

सुवर्ण और तपे हुए काञ्चनके आभूषण उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह अपने ही भीतर उत्पन्न हुए रत्नोंके उत्तम आभूषणोंसे विभूषित था॥ २०॥

इसीलिये नाना प्रकारके धातुओंसे अलंकृत हिमवान् पर्वतके समान शोभा पाता था। वह अपने विशाल वक्षःस्थलपर कौस्तुभ मणिके सहोदर (सदृश) एक श्वेत प्रभासे युक्त मुख्य रत्न धारण किये हुए था, जो मोतियोंकी इकहरी मालाके मध्यभागमें प्रकाशित हो रहा था॥ २१½॥

चञ्चल तरङ्गें उसे घेरे हुए थीं। मेघमाला और वायुसे वह व्याप्त था तथा गङ्गा और सिन्धु आदि नदियाँ उसे सब ओरसे घेरकर खड़ी थीं॥ २२½॥

उसके भीतर बड़े-बड़े ग्राह उद्भ्रान्त हो रहे थे, नाग और राक्षस घबराये हुए थे। देवताओंके समान सुन्दर रूप धारण करके आयी हुई विभिन्न रूपवाली नदियोंके साथ शक्तिशाली नदीपति समुद्रने निकट आकर पहले धनुर्धर श्रीरघुनाथजीको सम्बोधित किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—॥ २३—२५॥

'सौम्य रघुनन्दन! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—ये सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित रहते हैं। अपने सनातन मार्गको कभी नहीं छोड़ते—सदा उसीके आश्रित रहते हैं॥ २६॥

'मेरा भी यह स्वभाव ही है जो मैं अगाध और अथाह हूँ—कोई मेरे पार नहीं जा सकता। यदि मेरी थाह मिल जाय तो यह विकार—मेरे स्वभावका व्यतिक्रम ही होगा। इसलिये मैं आपसे पार होनेका यह उपाय बताता हूँ॥ २७॥

'राजकुमार! मैं मगर और नाक आदिसे भरे हुए अपने जलको किसी कामनासे, लोभसे अथवा भयसे किसी तरह स्तम्भित नहीं होने दूँगा॥ २८॥

'श्रीराम! मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे आप मेरे पार चले जायँगे, ग्राह वानरोंको कष्ट नहीं देंगे, सारी सेना पार उतर जायगी और मुझे भी खेद नहीं होगा। मैं आसानीसे सब कुछ सह लूँगा। वानरोंके पार जानेके लिये जिस प्रकार पुल बन जाय, वैसा प्रयत्न मैं करूँगा'॥ २९॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'वरुणालय! मेरी बात सुनो। मेरा यह विशाल बाण अमोघ है। बताओ, इसे किस स्थानपर छोड़ा जाय'॥ ३०॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर और उस महान् बाणको देखकर महातेजस्वी महासागरने रघुनाथजीसे कहा—॥ ३१॥

'प्रभो! जैसे जगत्‌में आप सर्वत्र विख्यात एवं पुण्यात्मा हैं, उसी प्रकार मेरे उत्तरकी ओर द्रुमकुल्य नामसे विख्यात एक बड़ा ही पवित्र देश है॥ ३२॥

'वहाँ आभीर आदि जातियोंके बहुत-से मनुष्य निवास करते हैं, जिनके रूप और कर्म बड़े ही भयानक हैं। वे सब-के-सब पापी और लुटेरे हैं। वे लोग मेरा जल पीते हैं॥ ३३॥

'उन पापाचारियोंका स्पर्श मुझे प्राप्त होता रहता है, इस पापको मैं नहीं सह सकता। श्रीराम! आप अपने इस उत्तम बाणको वहीं सफल कीजिये'॥ ३४॥

महामना समुद्रका यह वचन सुनकर सागरके दिखाये अनुसार उसी देशमें श्रीरामचन्द्रजीने वह अत्यन्त प्रज्वलित बाण छोड़ दिया॥ ३५॥

वह वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाण जिस स्थानपर गिरा था, वह स्थान उस बाणके कारण ही पृथ्वीमें दुर्गम मरुभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३६॥

उस बाणसे पीड़ित होकर उस समय वसुधा आर्तनाद कर उठी। उसकी चोटसे जो छेद हुआ, उसमें होकर रसातलका जल ऊपरको उछलने लगा॥ ३७॥

वह छिद्र कुएँके समान हो गया और व्रणके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस कुएँसे सदा निकलता हुआ जल समुद्रके जलकी भाँति ही दिखायी देता है॥ ३८॥

उस समय वहाँ भूमिके विदीर्ण होनेका भयंकर शब्द सुनायी पड़ा। उस बाणको गिराकर वहाँके भूतलकी कुक्षिमें (तालाब-पोखरे आदिमें) वर्तमान जलको श्रीरामने सुखा दिया॥ ३९॥

तबसे वह स्थान तीनों लोकोंमें मरुकान्तारके नामसे ही विख्यात हो गया। जो पहले समुद्रका कुक्षिप्रदेश था, उसे सुखाकर देवोपम पराक्रमी विद्वान् दशरथनन्दन श्रीरामने उस मरुभूमिको वरदान दिया॥ ४०-४१॥

'यह मरुभूमि पशुओंके लिये हितकारी होगी। यहाँ रोग कम होंगे। यह भूमि फल, मूल और रसोंसे सम्पन्न होगी। यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे, दूधकी भी बहुतायत होगी। यहाँ सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होंगी'॥ ४२॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामके वरदानसे वह मरुप्रदेश इस तरहके बहुसंख्यक गुणोंसे सम्पन्न हो सबके लिये मङ्गलकारी मार्ग बन गया॥ ४३॥

उस कुक्षिस्थानके दग्ध हो जानेपर सरिताओंके स्वामी समुद्रने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजीसे कहा— ॥ ४४॥

'सौम्य! आपकी सेनामें जो यह नल नामक कान्तिमान् वानर है, साक्षात् विश्वकर्माका पुत्र है। इसे इसके पिताने यह वर दिया है कि 'तुम मेरे ही समान समस्त शिल्पकलामें निपुण होओगे।' प्रभो! आप भी तो इस विश्वके स्रष्टा विश्वकर्मा हैं। इस नलके हृदयमें आपके प्रति बड़ा प्रेम है॥ ४५॥

'यह महान् उत्साही वानर अपने पिताके समान ही शिल्पकर्ममें समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुलका निर्माण करे। मैं उस पुलको धारण करूँगा'॥ ४६॥

यों कहकर समुद्र अदृश्य हो गया। तब वानरश्रेष्ठ नल उठकर महाबली भगवान् श्रीरामसे बोला— ॥ ४७॥

'प्रभो! मैं पिताकी दी हुई शक्तिको पाकर इस विस्तृत समुद्रपर सेतुका निर्माण करूँगा। महासागरने ठीक कहा है॥ ४८॥

'संसारमें पुरुषके लिये अकृतज्ञोंके प्रति दण्डनीतिका प्रयोग ही सबसे बड़ा अर्थसाधक है, ऐसा मेरा विश्वास है। वैसे लोगोंके प्रति क्षमा, सान्त्वना और दाननीतिके प्रयोगको धिक्कार है॥ ४९॥

'इस भयानक समुद्रको राजा सगरके पुत्रोंने ही बढ़ाया है। फिर भी इसने कृतज्ञतासे नहीं, दण्डके भयसे ही सेतुकर्म देखनेकी इच्छा मनमें लाकर श्रीरघुनाथजीको अपनी थाह दी है॥ ५०॥

'मन्दराचलपर विश्वकर्माजीने मेरी माताको यह वर दिया था कि 'देवि! तुम्हारे गर्भसे मेरे ही समान पुत्र होगा'॥ ५१॥

'इस प्रकार मैं विश्वकर्माका औरस पुत्र हूँ और शिल्पकर्ममें उन्हींके समान हूँ। इस समुद्रने आज मुझे इन सब बातोंका स्मरण दिला दिया है। महासागरने जो कुछ कहा है, ठीक है। मैं बिना पूछे आपलोगोंसे अपने गुणोंको नहीं बता सकता था, इसीलिये अबतक चुप था॥ ५२॥

'मैं महासागरपर पुल बाँधनेमें समर्थ हूँ, अतः सब वानर आज ही पुल बाँधनेका कार्य आरम्भ कर दें'॥

तब भगवान् श्रीरामके भेजनेसे लाखों बड़े-बड़े वानर हर्ष और उत्साहमें भरकर सब ओर उछलते हुए गये और बड़े-बड़े जंगलोंमें घुस गये॥ ५४॥

वे पर्वतके समान विशालकाय वानरशिरोमणि पर्वतशिखरों और वृक्षोंको तोड़ देते और उन्हें समुद्रतक खींच लाते थे॥ ५५॥

वे साल, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कुटज, अर्जुन, ताल, तिलक, तिनिश, बेल, छितवन, खिले हुए कनेर, आम और अशोक आदि वृक्षोंसे समुद्रको पाटने लगे॥ ५६-५७॥

वे श्रेष्ठ वानर वहाँके वृक्षोंको जड़से उखाड़ लाते या जड़के ऊपरसे भी तोड़ लाते थे। इन्द्रध्वजके समान ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उठाये लिये चले आते थे॥ ५८॥

ताड़ों, अनारकी झाड़ियों, नारियल और बहेड़ेके वृक्षों, करीर, बकुल तथा नीमको भी इधर-उधरसे तोड़-तोड़कर लाने लगे॥ ५९॥

महाकाय महाबली वानर हाथीके समान बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वतोंको उखाड़कर यन्त्रों (विभिन्न साधनों) द्वारा समुद्रतटपर ले आते थे॥ ६०॥

शिलाखण्डोंको फेंकनेसे समुद्रका जल सहसा आकाशमें उठ जाता और फिर वहाँसे नीचेको गिर जाता था॥ ६१॥

उन वानरोंने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्रमें हलचल मचा दी। कुछ दूसरे वानर सौ योजन लंबा सूत

पकड़े हुए थे॥ ६२॥

नल नदों और नदियोंके स्वामी समुद्रके बीचमें महान् सेतुका निर्माण कर रहे थे। भयंकर कर्म करनेवाले वानरोंने मिल-जुलकर उस समय सेतुनिर्माणका कार्य आरम्भ किया था॥ ६३॥

कोई नापनेके लिये दण्ड पकड़ते थे तो कोई सामग्री जुटाते थे। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके सैकड़ों वानर जो पर्वतों और मेघोंके समान प्रतीत होते थे, वहाँ तिनकों और काष्ठोंद्वारा भिन्न-भिन्न स्थानोंमें पुल बाँध रहे थे। जिनके अग्रभाग फूलोंसे लदे थे, ऐसे वृक्षोंद्वारा भी वे वानर सेतु बाँधते थे॥ ६४-६५॥

पर्वतों-जैसी बड़ी-बड़ी चट्टानें और पर्वत-शिखर लेकर सब ओर दौड़ते वानर दानवोंके समान दिखायी देते थे॥ ६६॥

उस समय उस महासागरमें फेंकी जाती हुई शिलाओं और गिराये जाते हुए पहाड़ोंके गिरनेसे बड़ा भीषण शब्द हो रहा था॥ ६७॥

हाथीके समान विशालकाय वानर बड़े उत्साह और तेजीके साथ काममें लगे हुए थे। पहले दिन उन्होंने चौदह योजन लंबा पुल बाँधा॥ ६८॥

फिर दूसरे दिन भयंकर शरीरवाले महाबली वानरोंने तेजीसे काम करके बीस योजन लंबा पुल बाँध दिया॥ ६९॥

तीसरे दिन शीघ्रतापूर्वक काममें जुटे हुए महाकाय कपियोंने समुद्रमें इक्कीस योजन लंबा पुल बाँध दिया॥ ७०॥

चौथे दिन महान् वेगशाली और शीघ्रकारी वानरोंने बाईस योजन लंबा पुल और बाँध दिया॥ ७१॥

तथा पाँचवें दिन शीघ्रता करनेवाले उन वानर वीरोंने सुवेल पर्वतके निकटतक तेईस योजन लंबा पुल बाँधा॥

इस प्रकार विश्वकर्माके बलवान् पुत्र कान्तिमान् कपिश्रेष्ठ नलने समुद्रमें सौ योजन लंबा पुल तैयार कर दिया। इस कार्यमें वे अपने पिताके समान ही प्रतिभाशाली थे॥ ७३॥

मकरालय समुद्रमें नलके द्वारा निर्मित हुआ वह सुन्दर और शोभाशाली सेतु आकाशमें स्वातीपथ (छायापथ)-के समान सुशोभित होता था॥ ७४॥

उस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस अद्भुत कार्यको देखनेके लिये आकाशमें आकर खड़े थे॥

नलके बनाये हुए सौ योजन लंबे और दस योजन चौड़े उस पुलको देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जिसे बनाना बहुत ही कठिन काम था॥ ७६॥

वानरलोग भी इधर-उधर उछल-कूदकर गर्जना करते हुए उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और रोमाञ्चकारी पुलको देख रहे थे। समस्त प्राणियोंने ही समुद्रमें सेतु बाँधनेका वह कार्य देखा॥ ७७½॥

इस प्रकार उन सहस्र कोटि (एक खरब) महाबली एवं उत्साही वानरोंका दल पुल बाँधते-बाँधते ही समुद्रके उस पार पहुँच गया॥ ७८½॥

वह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरतासे बनाया हुआ, शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था। वह महान् सेतु सागरमें सीमन्तके समान शोभा पाता था॥ ७९½॥

पुल तैयार हो जानेपर अपने सचिवोंके साथ विभीषण गदा हाथमें लेकर समुद्रके दूसरे तटपर खड़े हो गये, जिससे शत्रुपक्षीय राक्षस यदि पुल तोड़नेके लिये आवें तो उन्हें दण्ड दिया जा सके॥ ८०½॥

तदनन्तर सुग्रीवने सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा— 'वीरवर! आप हनुमान्के कंधेपर चढ़ जाइये और लक्ष्मण अङ्गदकी पीठपर सवार हो लें; क्योंकि यह मकरालय समुद्र बहुत लंबा-चौड़ा है। ये दोनों वानर आकाश-मार्गसे चलनेवाले हैं। अतः ये ही दोनों आप दोनों भाइयोंको धारण कर सकेंगे'॥ ८१-८२½॥

इस प्रकार धनुर्धर एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ उस सेनाके आगे-आगे चले॥

दूसरे वानर सेनाके बीचमें और अगल-बगलमें होकर चलने लगे। कितने ही वानर जलमें कूद पड़ते और तैरते हुए चलते थे। दूसरे पुलका मार्ग पकड़कर जाते थे और कितने ही आकाशमें उछलकर गरुड़के समान उड़ते थे॥ ८४-८५॥

इस प्रकार पार जाती हुई उस भयंकर वानर-सेनाने अपने महान् घोषसे समुद्रकी बढ़ी हुई भीषण गर्जनाको भी दबा दिया॥ ८६॥

धीरे-धीरे वानरोंकी सारी सेना नलके बनाये हुए पुलसे समुद्रके उस पार पहुँच गयी। राजा सुग्रीवने फल, मूल और जलकी अधिकता देख सागरके तटपर ही सेनाका पड़ाव डाला॥ ८७॥

भगवान् श्रीरामका वह अद्भुत और दुष्कर कर्म देखकर सिद्ध, चारण और महर्षियोंके साथ देवतालोग

उनके पास आये तथा उन्होंने अलग-अलग पवित्र एवं शुभ जलसे उनका अभिषेक किया॥ ८८॥

फिर बोले—'नरदेव! तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो और समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका सदा पालन करते रहो।' इस प्रकार भाँति-भाँतिके मङ्गलसूचक वचनोंद्वारा राजसम्मानित श्रीरामका उन्होंने अभिवादन किया॥ ८९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणसे उत्पातसूचक लक्षणोंका वर्णन और लङ्कापर आक्रमण

उत्पातसूचक लक्षणोंके ज्ञाता तथा लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने बहुत-से अपशकुन देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणको हृदयसे लगाया और इस प्रकार कहा—॥

'लक्ष्मण! जहाँ शीतल जलकी सुविधा हो और फलोंसे भरे हुए जंगल हों, उन स्थानोंका आश्रय लेकर हम अपने सैन्यसमूहको कई भागोंमें बाँट दें और इसे व्यूहबद्ध करके इसकी रक्षाके लिये सदा सावधान रहें॥

'मैं देखता हूँ समस्त लोकोंका संहार करनेवाला भीषण भय उपस्थित हुआ है, जो रीछों, वानरों और राक्षसोंके प्रमुख वीरोंके विनाशका सूचक है॥ ३॥

'धूलसे भरी हुई प्रचण्ड वायु चल रही है। धरती काँपती है। पर्वतोंके शिखर हिल रहे हैं और पेड़ गिर रहे हैं॥ ४॥

'मेघोंकी घटा घिर आयी है, जो मांसभक्षी राक्षसोंके समान दिखायी देती है। वे मेघ देखनेमें तो क्रूर हैं ही, इनकी गर्जना भी बड़ी कठोर है। ये क्रूरतापूर्वक रक्तकी बूँदोंसे मिले हुए जलकी वर्षा करते हैं॥ ५॥

'यह संध्या लाल चन्दनके समान कान्ति धारण करके बड़ी भयंकर दिखायी देती है। प्रज्वलित सूर्यसे ये आगकी ज्वालाएँ टूट-टूटकर गिर रही हैं॥ ६॥

'क्रूर पशु और पक्षी दीन आकार धारण कर सूर्यकी ओर मुँह करके दीनतापूर्ण स्वरमें चीत्कार करते हुए महान् भय उत्पन्न कर रहे हैं॥ ७॥

रातमें भी चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित नहीं होते और अपने स्वभावके विपरीत ताप दे रहे हैं। ये काली और लाल किरणोंसे व्याप्त हो इस तरह उदित हुए हैं, मानो जगत्के प्रलयका काल आ पहुँचा हो॥ ८॥

'लक्ष्मण! निर्मल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखायी देता है। सूर्यके चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है, जो छोटा, रूखा, अशुभ तथा लाल है॥ ९॥

'सुमित्रानन्दन! देखो ये तारे बड़ी भारी धूलिराशिसे आच्छादित हो हतप्रभ हो गये हैं, अतएव जगत्के भावी संहारकी सूचना दे रहे हैं॥ १०॥

'कौए, बाज तथा अधम गीध चारों ओर उड़ रहे हैं और सियारिनें अशुभसूचक महाभयंकर बोली बोल रही हैं॥ ११॥

'जान पड़ता है वानरों और राक्षसोंके चलाये हुए शिलाखण्डों, शूलों और तलवारोंसे यह सारी भूमि पट जायगी तथा यहाँ मांस और रक्तकी कीच जम जायगी॥

'हमलोग आज ही जितनी जल्दी हो सके, इस रावणपालित दुर्जय नगरी लङ्कापर समस्त वानरोंके साथ वेगपूर्वक धावा बोल दें'॥ १३॥

ऐसा कहकर संग्रामविजयी भगवान् श्रीराम हाथमें धनुष लिये सबसे आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए॥ १४॥

फिर विभीषण और सुग्रीवके साथ वे सभी श्रेष्ठ वानर गर्जना करते हुए युद्धका ही निश्चय रखनेवाले शत्रुओंका वध करनेके लिये आगे बढ़े॥ १५॥

वे सब-के-सब रघुनाथजीका प्रिय करना चाहते थे। उन बलशाली वानरोंके कर्मों और चेष्टाओंसे रघुकुलनन्दन श्रीरामको बड़ा संतोष हुआ॥ १६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना, श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हाँकना

सुग्रीवने उस वीर वानरसेनाकी यथोचित व्यवस्था की थी। उनके कारण वह वैसी ही शोभा पाती थी, जैसे चन्द्रमा और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त शरत्कालकी पूर्णिमा सुशोभित हो रही हो॥ १॥

वह विशाल सैन्य-समूह समुद्रके समान जान पड़ता था। उसके भारसे दबी हुई वसुधा भयभीत हो उठी और उसके वेगसे डोलने लगी॥ २॥

तदनन्तर वानरोंने लङ्कामें महान् कोलाहल सुना, जो भेरी और मृदङ्गके गम्भीर घोषसे मिलकर बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी जान पड़ता था॥ ३॥

उस तुमुलनादको सुनकर वानरयूथपति हर्ष और उत्साहमें भर गये और उसे न सह सकनेके कारण उससे भी बढ़कर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ४॥

राक्षसोंने वानरोंकी वह गर्जना सुनी, जो दर्पमें भरकर सिंहनाद कर रहे थे। उनकी आवाज आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी॥ ५॥

दशरथनन्दन श्रीरामने विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित लङ्कापुरीको देखकर व्यथितचित्तसे मन-ही-मन सीताका स्मरण किया॥ ६॥

वे भीतर-ही-भीतर कहने लगे—'हाय! यहीं वह मृगलोचना सीता रावणकी कैदमें पड़ी है। उसकी दशा मंगलग्रहसे आक्रान्त हुई रोहिणीके समान हो रही है'॥ ७॥

मन-ही-मन ऐसा कहकर वीर श्रीराम गरम-गरम लंबी साँस खींचकर लक्ष्मणकी ओर देखते हुए अपने लिये समयानुकूल हितकर वचन बोले—॥ ८॥

'लक्ष्मण! इस लङ्काकी ओर तो देखो। यह अपनी ऊँचाईसे आकाशमें रेखा खींचती हुई-सी जान पड़ती है। जान पड़ता है पूर्वकालमें विश्वकर्माने अपने मनसे ही इस पर्वत-शिखरपर लङ्कापुरीका निर्माण किया है॥ ९॥

'पूर्वकालमें यह पुरी अनेक सतमंजले मकानोंसे भरी-पूरी बनायी गयी थी। इसके श्वेत एवं सघन विमानाकार भवनोंसे भगवान् विष्णुके चरणस्थापनका स्थानभूत आकाश आच्छादित-सा हो गया॥ १०॥

'फूलोंसे भरे हुए चैत्ररथ वनके सदृश सुन्दर काननोंसे लङ्कापुरी सुशोभित हो रही है। उन काननोंमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं तथा फलों और फूलोंकी प्राप्ति करानेके कारण वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं॥ ११॥

'देखो, यह शीतल सुखद वायु इन वनोंको, जिनमें मतवाले पक्षी चहचहा रहे हैं, भौंरे पत्तों और फूलोंमें लीन हो रहे हैं तथा जिनके प्रत्येक खण्ड कोकिलोंके समूह एवं संगीतसे व्याप्त हैं, बारंबार कम्पित कर रहा है'॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे ऐसा कहा और युद्धके शास्त्रीय नियमानुसार सेनाका विभाग किया॥ १३॥

उस समय श्रीरामने वानरसैनिकोंको यह आदेश दिया—'इस विशाल सेनामेंसे अपनी सेनाको साथ लेकर दुर्जय एवं पराक्रमी वीर अङ्गद नीलके साथ वानरसेनाके पुरुषव्यूहमें हृदयके स्थानमें स्थित हों॥ १४॥

'इसी तरह ऋषभ नामक वानर कपियोंके समुदायसे घिरे रहकर इस वानरवाहिनीके दाहिने पार्श्वमें खड़े रहें॥ १५॥

'जो गन्धहस्तीके समान दुर्जय एवं वेगशाली हैं, वे कपिश्रेष्ठ गन्धमादन वानरवाहिनीके वाम पार्श्वमें खड़े हों॥ १६॥

'मैं लक्ष्मणके साथ सावधान रहकर इस व्यूहके मस्तकके स्थानमें खड़ा होऊँगा। जाम्बवान्, सुषेण और वानर वेगदर्शी—ये तीन महामनस्वी वीर जो रीछोंकी सेनाके प्रधान हैं, वे सैन्यव्यूहके कुक्षिभागकी रक्षा करें॥

'वानरराज सुग्रीव वानरवाहिनीके पिछले भागकी रक्षामें उसी प्रकार लगे रहें, जैसे तेजस्वी वरुण इस जगत्की पश्चिम दिशाका संरक्षण करते हैं'॥ १८॥

इस प्रकार सुन्दरतासे विभक्त हो विशाल व्यूहमें बद्ध हुई वह सेना, जिसकी बड़े-बड़े वानर रक्षा करते थे, मेघोंसे घिरे हुए आकाशके समान जान पड़ती थी॥

वानरलोग पर्वतोंके शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्धके लिये लङ्कापर चढ़ आये। वे उस पुरीको पददलित करके धूलमें मिला देना चाहते थे॥ २०॥

सभी वानरयूथपति ये ही मनसूबे बाँधते थे कि हम लङ्कापर पर्वत-शिखरोंकी वर्षा करें और लङ्कावासियोंको मुक्कोंसे मार-मारकर यमलोक पहुँचा दें॥ २१॥

तदनन्तर महातेजस्वी रामने सुग्रीवसे कहा—'हमलोगोंने अपनी सेनाओंको सुन्दर ढंगसे विभक्त करके उन्हें व्यूहबद्ध कर लिया है, अतः अब इस शुकको छोड़ दिया जाय'॥ २२॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर महाबली वानरराजने उनके आदेशसे रावणदूत शुकको बन्धनमुक्त करा दिया॥ २३॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे छुटकारा पाकर वानरोंसे पीड़ित होनेके कारण अत्यन्त भयभीत हुआ शुक राक्षसराजके पास गया॥ २४॥

उस समय रावणने हँसते हुए-से ही शुकसे कहा—'ये तुम्हारी दोनों पाँखें बाँध क्यों दी गयी हैं। इससे तुम इस तरह दिखायी देते हो मानो तुम्हारे पंख नोच लिये गये हों। कहीं तुम उन चञ्चलचित्तवाले वानरोंके चंगुलमें तो नहीं फँस गये थे?'॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

राजा रावणके इस प्रकार पूछनेपर भयसे घबराये हुए शुकने उस समय उस श्रेष्ठ राक्षसराजको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २६॥

'महाराज! मैंने समुद्रके उत्तर तटपर पहुँचकर आपका संदेश बहुत स्पष्ट शब्दोंमें मधुर वाणीद्वारा सान्त्वना देते हुए सुनाया॥ २७॥

'किंतु मुझपर दृष्टि पड़ते ही कुपित हुए वानरोंने उछलकर मुझे पकड़ लिया और घूसोंसे मारना एवं पाँखें नोचना आरम्भ किया॥ २८॥

'राक्षसराज! वे वानर स्वभावसे ही क्रोधी और तीखे हैं। उनसे बात भी नहीं की जा सकती थी। फिर यह पूछनेका अवसर कहाँ था कि तुम मुझे क्यों मार रहे हो?॥ २९॥

'जो विराध, कबन्ध और खरका वध कर चुके हैं, वे श्रीराम सुग्रीवके साथ सीताके स्थानका पता पाकर उनका उद्धार करनेके लिये आये हैं॥ ३०॥

'वे रघुनाथजी समुद्रपर पुल बाँध लवणसागरको पार करके राक्षसोंको तिनकोंके समान समझकर धनुष हाथमें लिये यहाँ पास ही खड़े हैं॥ ३१॥

'पर्वत और मेघोंके समान विशालकाय रीछों और वानर-समूहोंकी सहस्रों सेनाएँ इस पृथ्वीपर छा गयी हैं॥ ३२॥

'देवता और दानवोंमें जैसे मेल होना असम्भव है, उसी प्रकार राक्षसों और वानरराज सुग्रीवके सैनिकोंमें संधि नहीं हो सकती॥ ३३॥

'अतः जबतक वे लङ्कापुरीकी चहारदिवारीपर नहीं चढ़ आते, उसके पहले ही आप शीघ्रतापूर्वक दोमेंसे एक काम कर डालिये—या तो तुरंत ही उन्हें सीताको लौटा दीजिये या फिर सामने खड़े होकर युद्ध कीजिये'॥ ३४॥

शुककी यह बात सुनकर रावणकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। वह इस तरह घूर-घूरकर देखने लगा, मानो अपनी दृष्टिसे उसको दग्ध कर देगा। वह बोला—॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करनेको तैयार हो जायँ तथा सारे संसारके लोग मुझे भय दिखाने लगें तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा॥ ३६॥

'जैसे मतवाले भ्रमर वसन्त-ऋतुमें फूलोंसे भरे हुए वृक्षपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे बाण कब उस रघुवंशीपर धावा करेंगे?॥ ३७॥

'वह अवसर कब आयेगा जब मेरे धनुषसे छूटे हुए तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल होकर रामका शरीर लहूलुहान हो जायगा और जैसे जलती हुई लुकारीसे लोग हाथीको जलाते हैं, उसी तरह मैं उन बाणोंसे रामको दग्ध कर डालूँगा॥ ३८॥

'जैसे सूर्य अपने उदयके साथ ही समस्त नक्षत्रोंकी प्रभा हर लेते हैं, उसी प्रकार मैं विशाल सेनाके साथ रणभूमिमें खड़ा हो रामकी समस्त वानर-सेनाको आत्मसात् कर लूँगा॥ ३९॥

दशरथकुमार रामने अभी समरभूमिमें समुद्रके समान मेरे वेग और वायुके समान मेरे बलका अनुभव नहीं किया है, इसलिये वह मेरे साथ युद्ध करना चाहता है॥

'मेरे तरकसमें सोये हुए बाण विषधर सर्पोंके समान भयंकर हैं। रामने संग्राममें उन बाणोंको देखा ही नहीं है; इसलिये वह मुझसे जूझना चाहता है॥ ४१॥

'पहले कभी युद्धमें रामका मेरे बल-पराक्रमसे पाला नहीं पड़ा है, इसीलिये वह मेरे साथ लड़नेका हौसला रखता है। मेरा धनुष एक सुन्दर वीणा है,

जो बाणोंके कोनोंसे बजायी जाती है। उसकी प्रत्यञ्चासे जो टङ्कार-ध्वनि उठती है, वही उसकी भयंकर स्वरलहरी है। आर्तोंकी चीत्कार और पुकार ही उसपर उच्च स्वरसे गाया जानेवाला गीत है। नाराचोंको छोड़ते समय जो चट-चट शब्द होता है, वही मानो हथेलीपर दिया जानेवाला ताल है। बहती हुई नदीके समान जो शत्रुओंकी वाहिनी है, वही मानो उस संगीतोत्सवके लिये विशाल रंगभूमि है। मैं समराङ्गणमें उस रंगभूमिके भीतर प्रवेश करके अपनी वह भयंकर वीणा बजाऊँगा॥ ४२-४३॥

'यदि महासमरमें सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् वरुण या स्वयं यमराज अथवा मेरे बड़े भाई कुबेर ही आ जायँ तो वे भी अपनी बाणाग्निसे मुझे पराजित नहीं कर सकते'॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

रावणका शुक और सारणको गुप्तरूपसे वानरसेनामें भेजना, विभीषणद्वारा उनका पकड़ा जाना, श्रीरामकी कृपासे छुटकारा पाना तथा श्रीरामका संदेश लेकर लङ्कामें लौटकर उनका रावणको समझाना

दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम जब सेनासहित समुद्र पार कर चुके, तब श्रीमान् रावणने अपने दोनों मन्त्री शुक और सारणसे फिर कहा—॥ १॥

'यद्यपि समुद्रको पार करना अत्यन्त कठिन था तो भी सारी वानरसेना उसे लाँघकर इस पार चली आयी। रामके द्वारा सागरपर सेतुका बाँधा जाना अभूतपूर्व कार्य है॥ २॥

'लोगोंके मुँहसे सुननेपर भी मुझे किसी तरह यह विश्वास नहीं होता कि समुद्रपर पुल बाँधा गया होगा। वानरसेना कितनी है? इसका ज्ञान मुझे अवश्य प्राप्त करना चाहिये॥ ३॥

'तुम दोनों इस तरह वानर-सेनामें प्रवेश करो कि तुम्हें कोई पहचान न सके। वहाँ जाकर यह पता लगाओ कि वानरोंकी संख्या कितनी है? उनकी शक्ति कैसी है? उनमें मुख्य-मुख्य वानर कौन-कौनसे हैं। श्रीराम और सुग्रीवके मनोऽनुकूल मन्त्री कौन-कौन हैं? कौन-कौन शूरवीर वानर-सेनाके आगे रहते हैं? अगाध जलराशिसे भरे हुए समुद्रमें वह पुल किस तरह बाँधा गया? महामनस्वी वानरोंकी छावनी कैसे पड़ी है? श्रीराम और वीर लक्ष्मणका निश्चय क्या है?—वे क्या करना चाहते हैं? उनके बल-पराक्रम कैसे हैं? उन दोनोंके पास कौन-कौनसे अस्त्र-शस्त्र हैं? और उन महामना वानरोंका प्रधान सेनापति कौन है? इन सब बातोंकी तुमलोग ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करो और सबका यथार्थ ज्ञान हो जानेपर शीघ्र लौट आओ'॥

ऐसा आदेश पाकर दोनों वीर राक्षस शुक और सारण वानररूप धारण करके उस वानरी सेनामें घुस गये॥ ९॥

वानरोंकी वह सेना कितनी है? यह गिनना तो दूर रहा; मनसे उसका अंदाजा लगाना भी असम्भव था। उस अपार सेनाको देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस समय शुक और सारण किसी तरह भी उसकी गणना नहीं कर सके॥ १०॥

वह सेना पर्वतके शिखरोंपर, झरनोंके आसपास, गुफाओंमें, समुद्रके किनारे तथा वनों और उपवनोंमें भी फैली हुई थी। उसका कुछ भाग समुद्र पार कर रहा था, कुछ पार कर चुका था और कुछ सब प्रकारसे समुद्रको पार करनेकी तैयारीमें लगा था॥ ११॥

भयंकर कोलाहल करनेवाली वह विशाल सेना कुछ स्थानोंपर छावनी डाल चुकी थी और कुछ जगहोंपर डालती जा रही थी। दोनों निशाचरोंने देखा, वह वानरवाहिनी समुद्रके समान अक्षोभ्य थी॥ १२॥

वानरवेशमें छिपकर सेनाका निरीक्षण करते हुए दोनों राक्षस शुक और सारणको महातेजस्वी विभीषणने देखा, देखते ही पहचाना और उन दोनोंको पकड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—॥ १३॥

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले नरेश्वर! ये दोनों लङ्कासे आये हुए गुप्तचर एवं राक्षसराज रावणके मन्त्री

शुक तथा सारण हैं'॥ १४॥

वे दोनों राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको देखकर अत्यन्त व्यथित हुए और जीवनसे निराश हो गये। उन दोनोंके मनमें भय समा गया। वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले— ॥ १५ ॥

'सौम्य! रघुनन्दन! हम दोनोंको रावणने भेजा है और हम इस सारी सेनाके विषयमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेके लिये आये हैं'॥ १६ ॥

उन दोनोंकी वह बात सुनकर सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम हँसते हुए बोले— ॥ १७ ॥

'यदि तुमने सारी सेना देख ली हो, हमारी सैनिक-शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा रावणके कथनानुसार सब काम पूरा कर लिया हो तो अब तुम दोनों अपनी इच्छाके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ॥

'अथवा यदि अभी कुछ देखना बाकी रह गया हो तो फिर देख लो। विभीषण तुम्हें सब कुछ पुनः पूर्णरूपसे दिखा देंगे॥ १९ ॥

'इस समय जो तुम पकड़ लिये गये हो, इससे तुम्हें अपने जीवनके विषयमें कोई भय नहीं होना चाहिये; क्योंकि शस्त्रहीन अवस्थामें पकड़े गये तुम दोनों दूत वधके योग्य नहीं हो॥ २० ॥

'विभीषण! ये दोनों राक्षस रावणके गुप्तचर हैं और छिपकर यहाँका भेद लेनेके लिये आये हैं। ये अपने शत्रुपक्ष (वानरसेना)-में फूट डालनेका प्रयास कर रहे हैं। अब तो इनका भण्डा फूट ही गया; अतः इन्हें छोड़ दो॥ २१ ॥

'शुक और सारण! जब तुम दोनों लङ्कामें पहुँचो, तब कुबेरके छोटे भाई राक्षसराज रावणको मेरी ओरसे यह संदेश सुना देना— ॥ २२ ॥

'रावण! जिस बलके भरोसे तुमने मेरी सीताका अपहरण किया है, उसे अब सेना और बन्धुजनोंसहित आकर इच्छानुसार दिखाओ॥ २३ ॥

'कल प्रातःकाल ही तुम परकोटे और दरवाजोंके सहित लङ्कापुरी तथा राक्षसी सेनाका मेरे बाणोंसे विध्वंस होता देखोगे॥ २४॥

'रावण! जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंपर अपना वज्र छोड़ते हैं, उसी प्रकार मैं कल सबेरे ही सेनासहित तुमपर अपना भयंकर क्रोध छोड़ूँगा'॥ २५ ॥

भगवान् श्रीरामका यह संदेश पाकर दोनों राक्षस शुक और सारण धर्मवत्सल श्रीरघुनाथजीका 'आपकी जय हो', 'आप चिरंजीवी हों' इत्यादि वचनोंद्वारा अभिनन्दन करके लङ्कापुरीमें आकर राक्षसराज रावणसे बोले— ॥

'राक्षसेश्वर! हमें तो विभीषणने वध करनेके लिये पकड़ लिया था; किंतु जब अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामने देखा, तब हमें छुड़वा दिया॥ २७$\frac{१}{२}$ ॥

'दशरथनन्दन श्रीराम, श्रीमान् लक्ष्मण, विभीषण तथा महेन्द्रतुल्य पराक्रमी महातेजस्वी सुग्रीव—ये चारों वीर लोकपालोंके समान शौर्यशाली, दृढ़ पराक्रमी और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं। जहाँ ये चारों पुरुषप्रवर एक जगह एकत्र हो गये हैं, वहाँ विजय निश्चित है। और सब वानर अलग रहें तो भी ये चार ही परकोटे और दरवाजोंके सहित सारी लङ्कापुरीको उखाड़कर फेंक सकते हैं॥ २८—३०$\frac{१}{२}$ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीका जैसा रूप है और जैसे उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तो यही मालूम होता है कि वे अकेले ही सारी लङ्कापुरीका वध कर डालेंगे। भले ही वे बाकी तीन वीर भी बैठे ही रहें॥ ३१$\frac{१}{२}$ ॥

'महाराज! श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह वानरोंकी सेना तो समस्त देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय है॥ ३२ ॥

'महामनस्वी वानर इस समय युद्ध करनेके लिये उत्सुक हैं। उनकी सेनाके सभी वीर योद्धा बड़े प्रसन्न हैं। अतः उनके साथ विरोध करनेसे आपको कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये संधि कर लीजिये और श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें सीताको लौटा दीजिये'॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

सारणका रावणको पृथक्-पृथक् वानरयूथपतियोंका परिचय देना

(शुक और) सारणके ये सच्चे और जोशीले शब्द सुनकर रावणने सारणसे कहा—॥ १ ॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करने आ जायँ और समस्त लोक भय दिखाने लगे तो भी मैं सीताको नहीं दूँगा॥ २॥

'सौम्य! जान पड़ता है कि तुम्हें बंदरोंने बहुत तंग किया है। इसीसे भयभीत होकर तुम आज ही सीताको लौटा देना ठीक समझने लगे हो। भला, कौन ऐसा शत्रु है, जो समराङ्गणमें मुझे जीत सके'॥ ३½ ॥

ऐसा कठोर वचन कहकर श्रीमान् राक्षसराज रावण वानरोंकी सेनाका निरीक्षण करनेके लिये अपनी कई ताल ऊँची और बर्फके समान श्वेत रंगकी अट्टालिकापर चढ़ गया॥ ४-५॥

उस समय रावण क्रोधसे तमतमा उठा था। उसने उन दोनों गुप्तचरोंके साथ जब समुद्र, पर्वत और वनोंपर दृष्टिपात किया, तब पृथिवीका सारा प्रदेश वानरोंसे भरा दिखायी दिया॥ ६½ ॥

वानरोंकी वह विशाल सेना अपार और असह्य थी। उसे देखकर राजा रावणने सारणसे पूछा— ॥ ७½ ॥

'सारण! इन वानरोंमें कौन-कौनसे मुख्य हैं? कौन शूरवीर हैं और कौन बलमें बहुत बढ़े-चढ़े हैं?॥ ८॥

'कौन-कौनसे वानर महान् उत्साहसे सम्पन्न होकर युद्धमें आगे-आगे रहते हैं? सुग्रीव किनकी बातें सुनते हैं और कौन यूथपतियोंके भी यूथपति हैं? सारण! ये सारी बातें मुझे बताओ। साथ ही यह भी कहो कि उन वानरोंका प्रभाव कैसा है?'॥ ९½ ॥

इस प्रकार पूछते हुए राक्षसराज रावणका वचन सुनकर मुख्य-मुख्य वानरोंको जाननेवाले सारणने उन मुख्य वानरोंका परिचय देते हुए कहा—॥ १०½ ॥

'महाराज! यह जो लङ्काकी ओर मुख करके खड़ा है और गरज रहा है, एक लाख यूथपोंसे घिरा हुआ है तथा जिसकी गर्जनाके अत्यन्त गम्भीर घोषसे परकोटे, दरवाजे, पर्वत और वनोंके सहित सारी लङ्का प्रतिहत हो गूँज उठी है, इसका नाम नील है। यह वीर यूथपतियोंमेंसे है। समस्त वानरोंके राजा महामना सुग्रीवकी सेनाके आगे यही खड़ा होता है॥ ११—१३½ ॥

'जो पराक्रमी वानर दोनों उठी हुई बाँहोंको एक दूसरीसे पकड़कर दोनों पैरोंसे पृथ्वीपर टहल रहा है, लङ्काकी ओर मुख करके क्रोधपूर्वक देखता है और बारंबार अँगड़ाई लेता है, जिसका शरीर पर्वतशिखरके समान ऊँचा है, जिसकी कान्ति कमलकेसरके समान सुनहले रंगकी है, जो रोषसे भरकर बारंबार अपनी पूँछ पटक रहा है तथा जिसकी पूँछके पटकनेकी आवाजसे दसों दिशाएँ गूँज उठती हैं, यह युवराज अङ्गद है। वानरराज सुग्रीवने इसका युवराजके पदपर अभिषेक किया है। यह अपने साथ युद्धके लिये आपको ललकारता है॥ १४—१७॥

'वालीका यह पुत्र अपने पिताके समान ही बलशाली है। सुग्रीवको यह सदा ही प्रिय है। जैसे वरुण इन्द्रके लिये पराक्रम प्रकट करते हैं, उसी प्रकार यह श्रीरामचन्द्रजीके लिये अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेके लिये उद्यत है॥ १८॥

'श्रीरघुनाथजीका हित चाहनेवाले वेगशाली हनुमान्‌जीने जो यहाँ आकर जनकनन्दिनी सीताका दर्शन किया, उसके भीतर इस अङ्गदकी ही सारी बुद्धि काम कर रही थी॥ १९॥

'पराक्रमी अङ्गद वानरशिरोमणियोंके बहुत-से यूथ लिये अपनी सेनाके साथ आपको कुचल डालनेके लिये आ रहा है॥ २०॥

'अङ्गदके पीछे संग्रामभूमिमें जो वीर विशाल सेनासे घिरा हुआ खड़ा है, इसका नाम नल है। यही सेतु-निर्माणका प्रधान हेतु है॥ २१॥

'जो अपने अङ्गोंको सुस्थिर करके सिंहनाद करते और गर्जते हैं तथा जो कपिश्रेष्ठ वीर अपने आसनोंसे उठकर क्रोधपूर्वक अँगड़ाई लेते हैं, इनके वेगको सह लेना अत्यन्त कठिन है। ये बड़े भयंकर, अत्यन्त क्रोधी और प्रचण्ड पराक्रमी हैं। इनकी संख्या दस अरब और आठ लाख है। ये सब वानर तथा चन्दनवनमें निवास करनेवाले वीर वानर इस यूथपति नलका ही अनुसरण करते हैं। यह नल भी अपनी सेनाद्वारा लङ्कापुरीको

कुचल देनेका हौसला रखता है॥ २२-२३½ ॥

'यह जो चाँदीके समान सफेद रंगका चञ्चल वानर दिखायी देता है, इसका नाम श्वेत है। यह भयंकर पराक्रम करनेवाला, बुद्धिमान्, शूरवीर और तीनों लोकोंमें विख्यात है। श्वेत बड़ी तेजीसे सुग्रीवके पास आकर फिर लौट जाता है। यह वानरीसेनाका विभाग करता और सैनिकोंमें हर्ष तथा उत्साह भरता है॥ २४-२५½ ॥

'गोमतीके तटपर जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त संरोचन नामक पर्वत है, उसी रमणीय पर्वतके चारों ओर जो पहले विचरा करता था और वहीं अपने वानरराज्यका शासन करता था, वही यह कुमुद नामक यूथपति है॥

'वह जो लाखों वानर-सैनिकोंको सहर्ष अपने साथ खींचे लाता है, जिसकी लंबी दुममें बहुत बड़े-बड़े लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगके बाल फैले हुए हैं और देखनेमें बड़े भयंकर हैं तथा जो कभी दीनता न दिखाकर सदा युद्धकी ही इच्छा रखता है, उस वानरका नाम चण्ड है। यह चण्ड भी अपनी सेनाद्वारा लङ्काको कुचल देनेकी इच्छा रखता है॥ २८-२९ ॥

'राजन्! जो सिंहके समान पराक्रमी और कपिल वर्णका है, जिसकी गर्दनमें लंबे-लंबे बाल हैं और जो ध्यान लगाकर लङ्काकी ओर इस प्रकार देख रहा है, मानो इसे भस्म कर देगा, वह रम्भ नामक यूथपति है। वह निरन्तर विन्ध्य, कृष्णगिरि, सह्य और सुदर्शन आदि पर्वतोंपर रहा करता है। जब वह युद्धके लिये चलता है, उस समय उसके पीछे एक करोड़ तीस श्रेष्ठ भयंकर, अत्यन्त क्रोधी और प्रचण्ड पराक्रमी वानर चलते हैं। वे सब-के-सब अपने बलसे लङ्काको मसल डालनेके लिये रम्भको सब ओरसे घेरे हुए आ रहे हैं॥ ३०—३२ ॥

'जो कानोंको फैलाता है, बारंबार जँभाई लेता है, मृत्युसे भी नहीं डरता है और सेनाके पीछे न जाकर अर्थात् सेनाका भरोसा न करके अकेले ही युद्ध करना चाहता है, रोषसे काँप रहा है, तिरछी नजरसे देखता है और पूँछ फटकारकर सिंहनाद करता है, इसका नाम शरभ है। देखिये, यह महाबली वानर कैसी गर्जना करता है॥ ३३-३४ ॥

'इसका वेग महान् है। भय तो इसे छूतक नहीं गया है। राजन्! यह यूथपति शरभ सदा रमणीय साल्वेय पर्वतपर निवास करता है॥ ३५ ॥

'इसके पास जो यूथपति हैं, उन सबकी 'विहार' संज्ञा है। वे बड़े बलवान् हैं। राजन्! उनकी संख्या एक लाख चालीस हजार है॥ ३६ ॥

'जो विशाल वानर मेघके समान आकाशको घेरे हुए खड़ा है तथा वानरवीरोंके बीचमें ऐसा जान पड़ता है, जैसे देवताओंमें इन्द्र हों, युद्धकी इच्छावाले वानरोंके बीचमें जिसकी गम्भीर गर्जना ऐसी सुनायी देती है, मानो बहुत-सी भेरियोंका तुमुल नाद हो रहा हो तथा जो युद्धमें दुःसह है, वह 'पनस' नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। यह पनस परम उत्तम पारियात्र पर्वतपर निवास करता है। यूथपतियोंमें श्रेष्ठ पनसकी सेवामें पचास लाख यूथपति रहते हैं, जिनके अपने-अपने यूथ अलग-अलग हैं॥ ३७—४० ॥

'जो समुद्रके तटपर स्थित हुई इस उछलती-कूदती भीषण सेनाको दूसरे मूर्तिमान् समुद्रकी भाँति सुशोभित करता हुआ खड़ा है, वह दर्दुर पर्वतके समान विशालकाय वानर विनत नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। वह नदियोंमें श्रेष्ठ वेणा नदीका पानी पीता हुआ विचरता है। साठ लाख वानर उसके सैनिक हैं॥ ४१-४२½ ॥

'जो युद्धके लिये सदा आपको ललकारता रहता है तथा जिसके पास बल-विक्रमशाली अनेक यूथपति रहते हैं और उन यूथपतियोंके पास पृथक्-पृथक् बहुत-से यूथ हैं, वह 'क्रोधन' नामसे प्रसिद्ध वानर है॥ ४३½ ॥

'वह जो गेरुके समान लाल रंगके शरीरका पोषण करता है, उस तेजस्वी वानरका नाम 'गवय' है। उसे अपने बलपर बड़ा घमंड है। वह सदा सब वानरोंका तिरस्कार किया करता है। देखिये, कितने रोषसे वह आपकी ओर बढ़ा आ रहा है। इसकी सेवामें सत्तर लाख वानर रहते हैं। यह भी अपनी सेनाके द्वारा लङ्काको धूलमें मिला देनेकी इच्छा रखता है॥ ४४—४६ ॥

'ये सारे-के-सारे वानर दुःसह वीर हैं। इनकी गणना करना भी असम्भव है। यूथपतियोंमें श्रेष्ठ जो यूथप हैं, उन सबके अलग-अलग यूथ हैं'॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

वानरसेनाके प्रधान यूथपतियोंका परिचय

(सारणने कहा—) 'राक्षसराज! आप वानर-सेनाका निरीक्षण कर रहे हैं, इसलिये मैं आपको उन यूथपतियोंका परिचय दे रहा हूँ, जो रघुनाथजीके लिये पराक्रम करनेको उद्यत हैं और अपने प्राणोंका मोह नहीं रखते हैं॥ १॥

'इधर यह हर नामका वानर है। भयंकर कर्म करनेवाले इस वानरकी लंबी पूँछपर लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगके साढ़े तीन-तीन हाथ बड़े-बड़े चिकने रोएँ हैं। ये इधर-उधर फैले हुए रोम उठे होनेके कारण सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं तथा चलते समय भूमिपर लोटते रहते हैं। इसके पीछे वानरराजके किंकररूप सैकड़ों और हजारों यूथपति उपस्थित हो वृक्ष उठाये सहसा लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये चले आ रहे हैं॥ २—४½ ॥

'उधर नील महामेघ और अञ्जनके समान काले रंगके जिन रीछोंको आप खड़े देख रहे हैं, वे युद्धमें सच्चा पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं। समुद्रके दूसरे तटपर स्थित हुए बालुका-कणोंके समान इनकी गणना नहीं की जा सकती, इसीलिये पृथक्-पृथक् नाम लेकर इनके विषयमें कुछ बताना सम्भव नहीं है। ये सब पर्वतों, विभिन्न देशों और नदियोंके तटोंपर रहते हैं। राजन्! ये अत्यन्त भयंकर स्वभाववाले रीछ आपपर चढ़े आ रहे हैं। इनके बीचमें इनका राजा खड़ा है, जिसकी आँखें बड़ी भयानक और जो दूसरोंके देखनेमें भी बड़ा भयंकर जान पड़ता है। वह काले मेघोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति चारों ओरसे इन रीछोंद्वारा घिरा हुआ है। इसका नाम धूम्र है। यह समस्त रीछोंका राजा और यूथपति है। यह रीछराज धूम्र पर्वतश्रेष्ठ ऋक्षवान्पर रहता और नर्मदाका जल पीता है॥ ५—९ ॥

'इस धूम्रके छोटे भाई जाम्बवान् हैं, जो महान् यूथपतियोंके भी यूथपति हैं। देखिये ये कैसे पर्वताकार दिखायी देते हैं। ये रूपमें तो अपने भाईके समान ही हैं; किंतु पराक्रममें उससे भी बढ़कर हैं। इनका स्वभाव शान्त है। ये बड़े भाई तथा गुरुजनोंकी आज्ञाके अधीन रहते हैं और उनकी सेवा करते हैं। युद्धके अवसरोंपर इनका रोष और अमर्ष बहुत बढ़ जाता है॥ १०-११ ॥

'इन बुद्धिमान् जाम्बवान्ने देवासुर-संग्राममें इन्द्रकी बहुत बड़ी सहायता की थी और उनसे इन्हें बहुत-से वर भी प्राप्त हुए थे॥ १२॥

'इनके बहुत-से सैनिक विचरते हैं, जिनके बल-पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। इन सबके शरीर बड़ी-बड़ी रोमावलियोंसे भरे हुए हैं। ये राक्षसों और पिशाचोंके समान क्रूर हैं और बड़े-बड़े पर्वत-शिखरोंपर चढ़कर वहाँसे महान् मेघोंके समान विशाल एवं विस्तृत शिलाखण्ड शत्रुओंपर छोड़ते हैं। इन्हें मृत्युसे कभी भय नहीं होता॥ १३-१४॥

'जो खेल-खेलमें ही कभी उछलता और कभी खड़ा होता है, वहाँ खड़े हुए सब वानर जिसकी ओर आश्चर्यपूर्वक देखते हैं, जो यूथपतियोंका भी सरदार है और रोषसे भरा दिखायी देता है, यह दम्भ नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। इसके पास बहुत बड़ी सेना है। राजन्! यह वानरराज दम्भ अपनी सेनाद्वारा ही सहस्राक्ष इन्द्रकी उपासना करता है—उनकी सहायताके लिये सेनाएँ भेजता रहता है॥ १५-१६ ॥

'जो चलते समय एक योजन दूर खड़े हुए पर्वतको भी अपने पार्श्वभागसे छू लेता है और एक योजन ऊँचेकी वस्तुतक अपने शरीरसे ही पहुँचकर उसे ग्रहण कर लेता है, चौपायोंमें जिससे बड़ा रूप कहीं नहीं है, वह वानर संनादन नामसे विख्यात है। उसे वानरोंका पितामह कहा जाता है। उस बुद्धिमान् वानरने किसी समय इन्द्रको अपने साथ युद्धका अवसर दिया था, किंतु वह उनसे परास्त नहीं हुआ था, वही यह यूथपतियोंका भी सरदार है॥ १७—१९ ॥

'युद्धके लिये जाते समय जिसका पराक्रम इन्द्रके समान दृष्टिगोचर होता है तथा देवताओं और असुरोंके युद्धमें देवताओंकी सहायताके लिये जिसे अग्निदेवने एक गन्धर्व-कन्याके गर्भसे उत्पन्न किया था, वही यह क्रथन नामक यूथपति है। राक्षसराज! बहुत-से किन्नर जिनका सेवन करते हैं, उन बड़े-बड़े पर्वतोंका जो राजा है और आपके भाई कुबेरको सदा विहारका सुख प्रदान करता है तथा जिसपर उगे हुए जामुनके वृक्षके नीचे राजाधिराज कुबेर बैठा करते हैं, उसी पर्वतपर यह

तेजस्वी बलवान् वानरशिरोमणि श्रीमान् क्रथन भी रमण करता है। यह युद्धमें कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता और दस अरब वानरोंसे घिरा रहता है। यह भी अपनी सेनाके द्वारा लङ्काको रौंद डालनेका हौसला रखता है॥ २०—२४॥

'जो हाथियों और वानरोंके पुराने* वैरका स्मरण करके गज-यूथपतियोंको भयभीत करता हुआ गङ्गाके किनारे विचरा करता है, जंगली पेड़ोंको तोड़-उखाड़कर उनके द्वारा हाथियोंको आगे बढ़नेसे रोक देता है, पर्वतोंकी कन्दरामें सोता और जोर-जोरसे गर्जना करता है, वानरयूथोंका स्वामी तथा संचालक है, वानरोंकी सेनामें जिसे प्रमुख वीर माना जाता है, जो गङ्गातटपर विद्यमान उशीरबीज नामक पर्वत तथा गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलका आश्रय लेकर रहता एवं रमण करता है और जो वानरोंमें उसी प्रकार श्रेष्ठ स्थान रखता है जैसे स्वर्गके देवताओंमें साक्षात् इन्द्र, वही यह दुर्जय वीर प्रमाथी नामक यूथपति है। इसके साथ बल और पराक्रमपर गर्व रखकर गर्जना करनेवाले दस करोड़ वानर रहते हैं, जो अपने बाहुबलसे सुशोभित होते हैं। यह प्रमाथी इन सभी महात्मा वानरोंका नेता है। वायुके वेगसे उठे हुए मेघकी भाँति जिस वानरकी ओर आप बारंबार देख रहे हैं, जिससे सम्बन्ध रखनेवाले वेगशाली वानरोंकी सेना भी रोषसे भरी दिखायी देती है तथा जिसकी सेनाद्वारा उड़ायी गयी धूमिल रंगकी बहुत बड़ी धूलिराशि वायुसे सब ओर फैलकर जिसके निकट गिर रही है, वही यह प्रमाथी नामक वीर है॥ २५—३१½ ॥

'ये काले मुँहवाले लंगूरजातिके वानर हैं। इनमें महान् बल है। इन भयंकर वानरोंकी संख्या एक करोड़ है। महाराज! जिसने सेतु बाँधनेमें सहायता की है, उस लंगूरजातिके गवाक्ष नामक यूथपतिको चारों ओरसे घेरकर ये वानर चल रहे हैं और लङ्काको बलपूर्वक कुचल डालनेके लिये जोर-जोरसे गर्जना करते हैं॥ ३२-३३½ ॥

'जिस पर्वतपर सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले वृक्ष भ्रमरोंसे सेवित दिखायी देते हैं, सूर्यदेव अपने ही समान वर्णवाले जिस पर्वतकी प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं, जिसकी कान्तिसे वहाँके मृग और पक्षी सदा सुनहरे रंगके प्रतीत होते हैं, महात्मा महर्षिगण जिसके शिखरका कभी त्याग नहीं करते हैं, जहाँके सभी वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंको फलके रूपमें प्रदान करते हैं और उनमें सदा फल लगे रहते हैं, जिस श्रेष्ठ शैलपर बहुमूल्य मधु उपलब्ध होता है, उसी रमणीय सुवर्णमय पर्वत महामेरुपर ये प्रमुख वानरोंमें प्रधान यूथपति केसरी रमण करते हैं॥ ३४—३७½ ॥

'साठ हजार जो रमणीय सुवर्णमय पर्वत हैं, उनके बीचमें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम है सावर्णिमेरु। निष्पाप निशाचरपते! जैसे राक्षसोंमें आप श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पर्वतोंमें वह सावर्णिमेरु उत्तम है॥ ३८½ ॥

'वहाँ जो पर्वतका अन्तिम शिखर है, उसपर कपिल (भूरे), श्वेत, लाल मुँहवाले और मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वानर निवास करते हैं, जिनके दाँत बड़े तीखे हैं और नख ही उनके आयुध हैं। वे सब सिंहके समान चार दाँतोंवाले, व्याघ्रके समान दुर्जय, अग्निके समान तेजस्वी और प्रज्वलित मुखवाले विषधर सर्पके समान क्रोधी होते हैं। उनकी पूँछ बहुत बड़ी ऊपरको उठी हुई और सुन्दर होती है। वे मतवाले हाथीके समान पराक्रमी, महान् पर्वतके समान ऊँचे और सुदृढ़ शरीरवाले तथा महान् मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले हैं। उनके नेत्र गोल-गोल एवं पिङ्गल वर्णके होते हैं। उनके चलनेपर बड़ा भयानक शब्द होता है। वे सभी वानर यहाँ आकर इस तरह खड़े हैं, मानो आपकी लङ्काको देखते ही मसल डालेंगे॥ ३९—४२½ ॥

'देखिये उनके बीचमें यह उनका पराक्रमी सेनापति खड़ा है। यह बड़ा बलवान् है और विजयकी प्राप्तिके लिये सदा सूर्यदेवकी उपासना करता है। राजन्! यह वीर इस भूमण्डलमें शतबलिके नामसे विख्यात है॥ ४३-४४॥

'बलवान्, पराक्रमी तथा शूरवीर यह शतबलि भी अपने ही पुरुषार्थके भरोसे युद्धके लिये खड़ा है और अपनी सेनाद्वारा लङ्कापुरीको मसल डालना चाहता है। यह वानरवीर श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये अपने प्राणोंपर भी दया नहीं करता है॥ ४५½ ॥

* हनुमान्जीके पिता वानरराज केसरीने शम्बसादन नामक राक्षसको, जो हाथीका रूप धारण करके आया था, मार डाला था। इसीसे पूर्वकालमें हाथियोंसे वानरोंका वैर बँध गया था।

'गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील—इनमेंसे एक-एक सेनापति दस-दस करोड़ योद्धाओंसे घिरा हुआ है॥ ४६½ ॥

'इसी तरह विन्ध्यपर्वतपर निवास करनेवाले और भी बहुत-से शीघ्र पराक्रमी श्रेष्ठ वानर हैं, जो अधिक होनेके कारण गिने नहीं जा सकते॥ ४७॥

'महाराज! ये सभी वानर बड़े प्रभावशाली हैं। सभीके शरीर बड़े-बड़े पर्वतोंके समान विशाल हैं और सभी क्षणभरमें भूमण्डलके समस्त पर्वतोंको चूर-चूर करके सब ओर बिखेर देनेकी शक्ति रखते हैं'॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

शुकके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, हनुमान्का, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर वानरसेनाकी संख्याका निरूपण करना

'उस सारी वानरीसेनाका परिचय देकर जब सारण चुप हो गया, तब उसका कथन सुनकर शुकने राक्षसराज रावणसे कहा—॥ १॥

'राजन्! जिन्हें आप मतवाले महागजराजोंके समान वहाँ खड़ा देख रहे हैं, जो गङ्गातटके वटवृक्षों और हिमालयके सालवृक्षोंके समान जान पड़ते हैं, इनका वेग दुस्सह है। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् हैं। दैत्यों और दानवोंके समान शक्तिशाली तथा युद्धमें देवताओंके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं॥ २-३॥

'इनकी संख्या इक्कीस कोटि सहस्त्र, सहस्त्र शङ्कु और सौ वृन्द है*। ये सब-के-सब वानर सदा किष्किन्धामें रहनेवाले सुग्रीवके मन्त्री हैं। इनकी उत्पत्ति देवताओं और गन्धर्वोंसे हुई है। ये सभी इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं॥ ४-५॥

'राजन्! आप इन वानरोंमें देवताओंके समान रूपवाले जिन दो वानरोंको खड़ा देख रहे हैं उनके नाम हैं मैन्द और द्विविद। युद्धमें उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन दोनोंने अमृतपान किया है। ये दोनों वीर अपने बल-पराक्रमसे लङ्काको कुचल डालनेकी इच्छा रखते हैं॥ ६-७॥

'इधर जिसे आप मदकी धारा बहानेवाले मतवाले हाथीकी भाँति खड़ा देख रहे हैं, जो वानर कुपित होनेपर समुद्रको भी विक्षुब्ध कर सकता है, जो लङ्कामें आपके पास आया था और विदेहनन्दिनी सीतासे मिलकर गया था, उसे देखिये। पहलेका देखा हुआ यह वानर फिर आया है। यह केसरीका बड़ा पुत्र है। पवनपुत्रके भी नामसे विख्यात है। उसे लोग हनुमान् कहते हैं। इसीने पहले समुद्र लाँघा था॥ ८—१०॥

'बल और रूपसे सम्पन्न यह श्रेष्ठ वानर अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर सकता है। इसकी गति कहीं नहीं रुकती। यह वायुके समान सर्वत्र जा सकता है॥ ११।

'जब यह बालक था उस समयकी बात है, एक दिन इसको बहुत भूख लगी थी। उस समय उगते हुए सूर्यको देखकर यह तीन हजार योजन ऊँचा उछल गया था। उस समय मन-ही-मन यह निश्चय करके कि 'यहाँके फल आदिसे मेरी भूख नहीं जायगी, इसलिये सूर्यको (जो आकाशका दिव्य फल है) ले आऊँगा' यह बलाभिमानी वानर ऊपरको उछला था॥ १२-१३॥

'देवर्षि और राक्षस भी जिन्हें परास्त नहीं कर सकते, उन सूर्यदेवतक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरिपर ही गिर पड़ा॥ १४॥

'वहाँके शिलाखण्डपर गिरनेके कारण इस वानरकी एक हनु (ठोढ़ी) कुछ कट गयी; साथ ही अत्यन्त दृढ़ हो गयी, इसलिये यह 'हनुमान्' नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १५॥

'विश्वसनीय व्यक्तियोंके सम्पर्कसे मैंने इस वानरका वृत्तान्त ठीक-ठीक जाना है। इसके बल, रूप और प्रभावका पूर्णरूपसे वर्णन करना किसीके लिये भी असम्भव है। यह अकेला ही सारी लङ्काको मसल देना चाहता है। जिसे आपने लङ्कामें रोक रखा था, उस अग्निको भी जिसने अपनी पूँछद्वारा प्रज्वलित करके सारी लङ्का जला डाली, उस वानरको आप

* इन संख्याओंका स्पष्टीकरण इसी सर्गके अन्तमें दी हुई परिभाषाके अनुसार समझना चाहिये।

भूलते कैसे हैं?॥ १६-१७॥

'हनुमान्‌जीके पास ही जो कमलके समान नेत्रवाले साँवले शूरवीर विराज रहे हैं, वे इक्ष्वाकुवंशके अतिरथी हैं। इनका पौरुष सम्पूर्ण लोकोंमें प्रसिद्ध है॥ १८॥

'धर्म उनसे कभी अलग नहीं होता। ये धर्मका कभी उल्लङ्घन नहीं करते तथा ब्रह्मास्त्र और वेद दोनोंके ज्ञाता हैं। वेदवेत्ताओंमें इनका बहुत ऊँचा स्थान है॥ १९॥

'ये अपने बाणोंसे आकाशका भी भेदन कर सकते हैं, पृथ्वीको भी विदीर्ण करनेकी क्षमता रखते हैं। इनका क्रोध मृत्युके समान और पराक्रम इन्द्रके तुल्य है॥ २०॥

'राजन्! जिनकी भार्या सीताको आप जनस्थानसे हर लाये हैं, वे ही ये श्रीराम आपसे युद्ध करनेके लिये सामने आकर खड़े हैं॥ २१॥

'उनके दाहिने भागमें जो ये शुद्ध सुवर्णके समान कान्तिमान्, विशाल वक्ष:स्थलसे सुशोभित, कुछ-कुछ लाल नेत्रवाले तथा मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश धारण करनेवाले हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। ये अपने भाईके प्रिय और हितमें लगे रहनेवाले हैं, राजनीति और युद्धमें कुशल हैं तथा सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं॥ २२-२३॥

'ये अमर्षशील, दुर्जय, विजयी, पराक्रमी, शत्रुको पराजित करनेवाले तथा बलवान् हैं। लक्ष्मण सदा ही श्रीरामके दाहिने हाथ और बाहर विचरनेवाले प्राण हैं॥

'इन्हें श्रीरघुनाथजीके लिये अपने प्राणोंकी रक्षाका भी ध्यान नहीं रहता। ये अकेले ही युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर देनेकी इच्छा रखते हैं॥ २५॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी बायीं ओर जो राक्षसोंसे घिरे हुए खड़े हैं, ये राजा विभीषण हैं। राजाधिराज श्रीरामने इन्हें लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है। अब ये आपपर कुपित होकर युद्धके लिये सामने आ गये हैं॥

'जिन्हें आप सब वानरोंके बीचमें पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा देखते हैं, वे समस्त वानरोंके स्वामी अमित तेजस्वी सुग्रीव हैं॥ २८॥

'जैसे हिमालय सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है, उसी प्रकार वे तेज, यश, बुद्धि, बल और कुलकी दृष्टिसे समस्त वानरोंमें सर्वोपरि विराजमान हैं॥ २९॥

'ये गहन वृक्षोंसे युक्त किष्किन्धा नामक दुर्गम गुफामें निवास करते हैं। पर्वतोंके कारण उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। इनके साथ वहाँ प्रधान-प्रधान यूथपति भी रहते हैं॥ ३०॥

'इनके गलेमें जो सौ कमलोंकी सुवर्णमयी माला सुशोभित है, उसमें सर्वदा लक्ष्मीदेवीका निवास है। उसे देवता और मनुष्य सभी पाना चाहते हैं॥ ३१॥

'भगवान् श्रीरामने वालीको मारकर यह माला, तारा और वानरोंका राज्य—ये सब वस्तुएँ सुग्रीवको समर्पित कर दीं॥ ३२॥

'मनीषी पुरुष सौ लाखकी संख्याको एक कोटि कहते हैं और सौ सहस्र कोटि (एक नील)-को एक शङ्कु कहा जाता है॥ ३३॥

'एक लाख शङ्कुको महाशङ्कु नाम दिया गया है। एक लाख महाशङ्कुको वृन्द कहते हैं॥ ३४॥

'एक लाख वृन्दका नाम महावृन्द है। एक लाख महावृन्दको पद्म कहते हैं॥ ३५॥

'एक लाख पद्मको महापद्म माना गया है। एक लाख महापद्मको खर्व कहते हैं॥ ३६॥

'एक लाख खर्वका महाखर्व होता है। एक सहस्र महाखर्वको समुद्र कहते हैं। एक लाख समुद्रको ओघ कहते हैं और एक लाख ओघकी महौघ संज्ञा है॥ ३७½॥

'इस प्रकार सहस्र कोटि, सौ शङ्कु, सहस्र महाशङ्कु, सौ वृन्द, सहस्र महावृन्द, सौ पद्म, सहस्र महापद्म, सौ खर्व, सौ समुद्र, सौ महौघ तथा समुद्र-सदृश (सौ) कोटि महौघ सैनिकोंसे, वीर विभीषणसे तथा अपने सचिवोंसे घिरे हुए वानरराज सुग्रीव आपको युद्धके लिये ललकारते हुए सामने आ रहे हैं। विशाल सेनासे घिरे हुए सुग्रीव महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं॥ ३८—४१॥

'महाराज! यह सेना एक प्रकाशमान ग्रहके समान है। इसे उपस्थित देख आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे आपकी विजय हो और शत्रुओंके सामने आपको नीचा न देखना पड़े'॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

रावणका शुक और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निकाल देना, उसके भेजे हुए गुप्तचरोंका श्रीरामकी दयासे वानरोंके चंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना

शुकके बताये अनुसार रावणने समस्त यूथपतियोंको देखकर श्रीरामकी दाहिनी बाँह महापराक्रमी लक्ष्मणको, श्रीरामके निकट बैठे हुए अपने भाई विभीषणको, समस्त वानरोंके राजा भयंकर पराक्रमी सुग्रीवको, इन्द्रपुत्र वालीके बेटे बलवान् अङ्गदको, बल-विक्रमशाली हनुमान्‌को, दुर्जय वीर जाम्बवान्‌को तथा सुषेण, कुमुद, नील, वानरश्रेष्ठ नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द एवं द्विविदको भी देखा॥ १—४॥

उन सबको देखकर रावणका हृदय कुछ उद्विग्न हो उठा। उसे क्रोध आ गया और उसने बात समाप्त होनेपर वीर शुक और सारणको फटकारा॥ ५॥

'बेचारे शुक और सारण विनीत भावसे नीचे मुँह किये खड़े रहे और रावणने रोषगद्गद वाणीमें क्रोधपूर्वक यह कठोर बात कही—॥ ६॥

'राजा निग्रह और अनुग्रह करनेमें भी समर्थ होता है। उसके सहारे जीविका चलानेवाले मन्त्रियोंको ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिये, जो उसे अप्रिय लगे॥ ७॥

'जो शत्रु अपने विरोधी हैं और युद्धके लिये सामने आये हैं; उनकी बिना किसी प्रसङ्गके ही स्तुति करना क्या तुम दोनोंके लिये उचित था?॥ ८॥

'तुमलोगोंने आचार्य, गुरु और वृद्धोंकी व्यर्थ ही सेवा की है; क्योंकि राजनीतिका जो संग्रहणीय सार है, उसे तुम नहीं ग्रहण कर सके॥ ९॥

'यदि तुमने उसे ग्रहण भी किया हो तो भी इस समय तुम्हें उसका ज्ञान नहीं रह गया है—तुमने उसे भुला दिया है। तुमलोग केवल अज्ञानका बोझ ढो रहे हो। ऐसे मूर्ख मन्त्रियोंके सम्पर्कमें रहते हुए भी जो मैं अपने राज्यको सुरक्षित रख सका हूँ, यह सौभाग्यकी ही बात है॥ १०॥

'मैं इस राज्यका शासक हूँ। मेरी जिह्वा ही तुम्हें शुभ या अशुभकी प्राप्ति करा सकती है—मैं वाणीमात्रसे तुमपर निग्रह और अनुग्रह कर सकता हूँ; फिर भी तुम दोनोंने मेरे सामने कठोर बात कहनेका साहस किया। क्या तुम्हें मृत्युका भय नहीं है?॥ ११॥

'वनमें दावानलका स्पर्श करके भी वहाँके वृक्ष खड़े रह जायँ, यह सम्भव है; परंतु राजदण्डके अधिकारी अपराधी नहीं टिक सकते। वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं॥ १२॥

'यदि इनके पहलेके उपकारोंको याद करके मेरा क्रोध नरम न पड़ जाता तो शत्रुपक्षकी प्रशंसा करनेवाले इन दोनों पापियोंको मैं अभी मार डालता॥ १३॥

'अब तुम दोनों मेरी सभामें प्रवेशके अधिकारसे वञ्चित हो। मेरे पाससे चले जाओ; फिर कभी मुझे अपना मुँह न दिखाना। मैं तुम दोनोंका वध करना नहीं चाहता; क्योंकि तुम दोनोंके किये हुए उपकारोंको सदा स्मरण रखता हूँ। तुम दोनों मेरे स्नेहसे विमुख और कृतघ्न हो, अतः मरे हुएके ही समान हो'॥ १४॥

उसके ऐसा कहनेपर शुक और सारण बहुत लज्जित हुए और जय-जयकारके द्वारा रावणका अभिनन्दन करके वहाँसे निकल गये॥ १५॥

इसके पश्चात् दशमुख रावणने अपने पास बैठे हुए महोदरसे कहा—'मेरे सामने शीघ्र ही गुप्तचरोंको उपस्थित होनेकी आज्ञा दो।' यह आदेश पाकर निशाचर महोदरने शीघ्र ही गुप्तचरोंको हाजिर होनेकी आज्ञा दी॥ १६॥

राजाकी आज्ञा पाकर गुप्तचर उसी समय विजयसूचक आशीर्वाद दे हाथ जोड़े सेवामें उपस्थित हुए॥ १७॥

वे सभी गुप्तचर विश्वासपात्र, शूरवीर, धीर एवं निर्भय थे। राक्षसराज रावणने उनसे यह बात कही—

'तुमलोग अभी वानरसेनामें रामका क्या निश्चय है, यह जाननेके लिये तथा गुप्तमन्त्रणामें भाग लेनेवाले जो उनके अन्तरङ्ग मन्त्री हैं और जो लोग प्रेमपूर्वक उनसे मिले हैं—उनके मित्र हो गये हैं; उन सबके भी निश्चित विचार क्या हैं, इसकी जाँच करनेके लिये यहाँसे जाओ॥ १९॥

'वे कैसे सोते हैं? किस तरह जागते हैं और आज क्या करेंगे?—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे अच्छी तरह पता लगाकर लौट आओ॥ २०॥

'गुप्तचरके द्वारा यदि शत्रुकी गतिविधिका पता चल जाय तो बुद्धिमान् राजा थोड़े-से ही प्रयत्नके द्वारा

युद्धमें उसे धर दबाते और मार भगाते हैं'॥ २१॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर हर्षमें भरे हुए गुप्तचरोंने शार्दूलको आगे करके राक्षसराज रावणकी परिक्रमा की॥ २२॥

इस प्रकार वे गुप्तचर राक्षसशिरोमणि महाकाय रावणकी परिक्रमा करके उस स्थानपर गये, जहाँ लक्ष्मणसहित श्रीराम विराजमान थे॥ २३॥

सुवेल पर्वतके निकट जाकर उन गुप्तचरोंने छिपे रहकर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणको देखा॥

वानरोंकी उस सेनाको देखकर वे भयसे व्याकुल हो उठे। इतनेहीमें धर्मात्मा राक्षसराज विभीषणने उन सब राक्षसोंको देख लिया॥ २५॥

तब उन्होंने अकस्मात् वहाँ आये हुए राक्षसोंको फटकारा और अकेले शार्दूलको यह सोचकर पकड़वा लिया कि यह राक्षस बड़ा पापी है॥ २६॥

फिर तो वानर उसे पीटने लगे। तब भगवान् श्रीरामने दयावश उसे तथा अन्य राक्षसोंको भी छुड़ा दिया॥ २७॥

बल-विक्रमसम्पन्न शीघ्र पराक्रमी वानरोंसे पीड़ित हो उन राक्षसोंके होश उड़ गये और वे हाँफते-हाँफते फिर लङ्कामें जा पहुँचे॥ २८॥

तदनन्तर रावणकी सेवामें उपस्थित हो चरके वेशमें सदा बाहर विचरनेवाले उन महाबली निशाचरोंने यह सूचना दी कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतके निकट डेरा डाले पड़ी है॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

रावणके भेजे हुए गुप्तचरों एवं शार्दूलका उससे वानर-सेनाका समाचार बताना और मुख्य-मुख्य वीरोंका परिचय देना

गुप्तचरोंने लङ्कापति रावणको यह बताया कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतके पास आकर ठहरी है और वह सर्वथा अजेय है॥ १॥

गुप्तचरोंके मुँहसे यह सुनकर कि महाबली श्रीराम आ पहुँचे हैं; रावणको कुछ भय हो गया। वह शार्दूलसे बोला—॥ २॥

'निशाचर! तुम्हारे शरीरकी कान्ति पहले-जैसी नहीं रह गयी है। तुम दीन (दुःखी) दिखायी दे रहे हो। कहीं कुपित हुए शत्रुओंके वशमें तो नहीं पड़ गये थे?'॥ ३॥

उसके इस प्रकार पूछनेपर भयसे घबराये हुए शार्दूलने राक्षसप्रवर रावणसे मन्द स्वरमें कहा—॥ ४॥

'राजन्! उन श्रेष्ठ वानरोंकी गतिविधिका पता गुप्तचरोंद्वारा नहीं लगाया जा सकता। वे बड़े पराक्रमी, बलवान् तथा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा सुरक्षित हैं॥ ५॥

'उनसे वार्तालाप करना भी असम्भव है; अतः 'आप कौन हैं, आपका क्या विचार है' इत्यादि प्रश्नोंके लिये वहाँ अवकाश ही नहीं मिलता। पर्वतोंके समान विशालकाय वानर सब ओरसे मार्गकी रक्षा करते हैं; अतः वहाँ प्रवेश होना भी कठिन ही है॥ ६॥

'उस सेनामें प्रवेश करके ज्यों ही उसकी गतिविधिका विचार करना आरम्भ किया, त्यों ही विभीषणके साथी राक्षसोंने मुझे पहचानकर बलपूर्वक पकड़ लिया और बारंबार इधर-उधर घुमाया॥ ७॥

'उस सेनाके बीच अमर्षसे भरे हुए वानरोंने घुटनों, मुक्कों, दाँतों और थप्पड़ोंसे मुझे बहुत मारा और सारी सेनामें मेरे अपराधकी घोषणा करते हुए सब ओर मुझे घुमाया॥ ८॥

'सर्वत्र घुमाकर मुझे श्रीरामके दरबारमें ले जाया गया। उस समय मेरे शरीरसे खून निकल रहा था और अङ्ग-अङ्गमें दीनता छा रही थी। मैं व्याकुल हो गया था। मेरी इन्द्रियाँ विचलित हो रही थीं॥ ९॥

'वानर पीट रहे थे और मैं हाथ जोड़कर रक्षाके लिये याचना कर रहा था। उस दशामें श्रीरामने अकस्मात् 'मत मारो, मत मारो' कहकर मेरी रक्षा की॥ १०॥

'श्रीराम पर्वतीय शिलाखण्डोंद्वारा समुद्रको पाटकर लङ्काके दरवाजेपर आ धमके हैं और हाथमें धनुष लिये खड़े हैं॥ ११॥

'वे महातेजस्वी रघुनाथजी गरुड़व्यूहका आश्रय ले वानरोंके बीचमें विराजमान हैं और मुझे विदा करके वे लङ्कापर चढ़े चले आ रहे हैं॥ १२॥

'जबतक वे लङ्काके परकोटेतक पहुँचें, उसके पहले ही आप शीघ्रतापूर्वक दोमेंसे एक काम अवश्य कर डालिये—या तो उन्हें सीताजीको लौटा दीजिये या युद्धस्थलमें खड़े होकर उनका सामना कीजिये'॥ १३॥

उसकी बात सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करनेके पश्चात् राक्षसराज रावणने शार्दूलसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही— ॥ १४ ॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव मुझसे युद्ध करें और सम्पूर्ण लोक मुझे भय देने लगे तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा'॥ १५ ॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी रावण फिर बोला—'तुम तो वानरोंकी सेनामें विचरण कर चुके हो; उसमें कौन-कौन-से वानर अधिक शूरवीर हैं?॥ १६ ॥

'सौम्य! जो दुर्जय वानर हैं, वे कैसे हैं? उनका प्रभाव कैसा है? तथा वे किसके पुत्र और पौत्र हैं? राक्षस! ये सब बातें ठीक-ठीक बताओ॥ १७ ॥

'उन वानरोंका बलाबल जानकर तदनुसार कर्तव्यका निश्चय करूँगा। युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने तथा शत्रुपक्षकी सेनाकी गणना—उसके विषयकी आवश्यक जानकारी अवश्य करनी चाहिये'॥ १८ ॥

रावणके इस प्रकार पूछनेपर श्रेष्ठ गुप्तचर शार्दूलने उसके समीप यों कहना आरम्भ किया— ॥ १९ ॥

'राजन्! उस वानरसेनामें जाम्बवान् नामसे प्रसिद्ध एक वीर है, जिसको युद्धमें परास्त करना बहुत ही कठिन है। वह ऋक्षरजा तथा गद्गदका पुत्र है॥ २० ॥

'गद्गदका एक दूसरा पुत्र भी है (जिसका नाम धूम्र है)। इन्द्रके गुरु बृहस्पतिका पुत्र केसरी है, जिसके पुत्र हनुमान्‌ने अकेले ही यहाँ आकर पहले बहुत-से राक्षसोंका संहार कर डाला था॥ २१ ॥

'धर्मात्मा और पराक्रमी सुषेण धर्मका पुत्र है। राजन्! दधिमुख नामक सौम्य वानर चन्द्रमाका बेटा है॥ २२ ॥

'सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी नामक वानर—ये मृत्युके पुत्र हैं। निश्चय ही स्वयम्भू ब्रह्माने मृत्युकी ही इन वानरोंके रूपमें सृष्टि की है॥ २३ ॥

'स्वयं सेनापति नील अग्निका पुत्र है। सुविख्यात वीर हनुमान् वायुका बेटा है॥ २४ ॥

'बलवान् एवं दुर्जय वीर अङ्गद इन्द्रका नाती है। वह अभी नौजवान है। बलवान् वानर मैन्द और द्विविद—ये दोनों अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं॥ २५ ॥

'गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन—ये पाँच यमराजके पुत्र हैं और काल एवं अन्तकके समान पराक्रमी हैं॥ २६ ॥

'इस प्रकार देवताओंसे उत्पन्न हुए तेजस्वी शूरवीर वानरोंकी संख्या दस करोड़ है। वे सब-के-सब युद्धकी इच्छा रखनेवाले हैं। इनके अतिरिक्त जो शेष वानर हैं, उनके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता; क्योंकि उनकी गणना असम्भव है॥ २७ ॥

'दशरथनन्दन श्रीरामका श्रीविग्रह सिंहके समान सुगठित है। इनकी युवावस्था है। इन्होंने अकेले ही खर-दूषण और त्रिशिराका संहार किया था॥ २८ ॥

'इस भूमण्डलमें श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी वीर दूसरा कोई नहीं है। इन्होंने ही विराधका और कालके समान विकराल कबन्धका भी वध किया था॥

'इस भूतलपर कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो श्रीरामके गुणोंका पूर्णरूपसे वर्णन कर सके। श्रीरामने ही जनस्थानमें उतने राक्षसोंका संहार किया था॥ ३० ॥

'धर्मात्मा लक्ष्मण भी श्रेष्ठ गजराजके समान पराक्रमी हैं, उनके बाणोंका निशाना बन जानेपर देवराज इन्द्र भी जीवित नहीं रह सकते॥ ३१ ॥

'इनके सिवा उस सेनामें श्वेत और ज्योतिर्मुख—ये दो वानर भगवान् सूर्यके औरस पुत्र हैं। हेमकूट नामका वानर वरुणका पुत्र बताया जाता है॥ ३२ ॥

'वानरशिरोमणि वीरवर नल विश्वकर्माके पुत्र हैं। वेगशाली और पराक्रमी दुर्धर वसु देवताका पुत्र है॥

'आपके भाई राक्षसशिरोमणि विभीषण भी लङ्कापुरीका राज्य लेकर श्रीरघुनाथजीके ही हितसाधनमें तत्पर रहते हैं॥ ३४ ॥

'इस प्रकार मैंने सुवेल पर्वतपर ठहरी हुई वानरसेनाका पूरा-पूरा वर्णन कर दिया। अब जो शेष कार्य है, वह आपके ही हाथ है'*॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३० ॥

---

* इस सर्गमें जो वानरोंके जन्मका वर्णन किया गया है, वह प्राय: बालकाण्डके सत्रहवें सर्गमें किये गये वर्णनसे विरुद्ध है। वहाँ वरुणसे सुषेण, पर्जन्यसे शरभ और कुबेरसे गन्धमादनकी उत्पत्ति कही गयी है। परंतु इस सर्गमें सुषेणको धर्मका तथा शरभ और गन्धमादनको वैवस्वत यमका पुत्र कहा गया है। इस विरोधका परिहार यही है कि यहाँ कहे गये सुषेण आदि बालकाण्डवर्णित सुषेण आदिसे भिन्न हैं।

इकतीसवाँ सर्ग

मायारचित श्रीरामका कटा मस्तक दिखाकर रावणद्वारा सीताको मोहमें डालनेका प्रयत्न

राक्षसराज रावणके गुप्तचरोंने जब लङ्कामें लौटकर यह बताया कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतपर आकर ठहरी है और उसपर विजय पाना असम्भव है, तब उन गुप्तचरोंकी बात सुनकर और महाबली श्रीराम आ गये, यह जानकर रावणको कुछ उद्वेग हुआ। उसने अपने मन्त्रियोंसे इस प्रकार कहा—॥ १-२ ॥

'मेरे सभी मन्त्री एकाग्रचित्त होकर शीघ्र यहाँ आ जायँ। राक्षसो! यह हमारे लिये गुप्त मन्त्रणा करनेका अवसर आ गया है'॥ ३ ॥

रावणका आदेश सुनकर समस्त मन्त्री शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ गये। तब रावणने उन राक्षसजातीय सचिवोंके साथ बैठकर आवश्यक कर्तव्यपर विचार किया॥ ४ ॥

दुर्धर्ष वीर रावणने जो उचित कर्तव्य था, उसके विषयमें शीघ्र ही विचार-विमर्श करके उन सचिवोंको विदा कर दिया और अपने भवनमें प्रवेश किया॥ ५ ॥

फिर उसने महाबली, महामायावी, मायाविशारद राक्षस विद्युज्जिह्वको साथ लेकर उस प्रमदावनमें प्रवेश किया, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता विद्यमान थीं॥ ६ ॥

उस समय राक्षसराज रावणने माया जाननेवाले विद्युज्जिह्वसे कहा—'हम दोनों मायाद्वारा जनकनन्दिनी सीताको मोहित करेंगे॥ ७ ॥

'निशाचर! तुम श्रीरामचन्द्रजीका मायानिर्मित मस्तक लेकर एक महान् धनुष-बाणके साथ मेरे पास आओ'॥

रावणकी यह आज्ञा पाकर निशाचर विद्युज्जिह्वने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर उसने रावणको बड़ी कुशलतासे प्रकट की हुई अपनी माया दिखायी॥ ९ ॥

इससे राजा रावण उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना आभूषण उतारकर दे दिया। फिर वह महाबली राक्षसराज सीताजीको देखनेके लिये अशोकवाटिकामें गया॥ १०½ ॥

कुबेरके छोटे भाई रावणने वहाँ सीताको दीन दशामें पड़ी देखा, जो उस दीनताके योग्य नहीं थीं। वे अशोक-वाटिकामें रहकर भी शोकमग्न थीं और सिर नीचा किये पृथ्वीपर बैठकर अपने पतिदेवका चिन्तन कर रही थीं॥

उनके आसपास बहुत-सी भयंकर राक्षसियाँ बैठी थीं। रावणने बड़े हर्षके साथ अपना नाम बताते हुए जनककिशोरी सीताके पास जाकर धृष्टतापूर्ण वचनोंमें कहा—॥ १३½ ॥

'भद्रे! मेरे बार-बार सान्त्वना देने और प्रार्थना करनेपर भी तुम जिनका आश्रय लेकर मेरी बात नहीं मानती थीं, खरका वध करनेवाले वे तुम्हारे पतिदेव श्रीराम समरभूमिमें मारे गये॥ १४½ ॥

'तुम्हारी जो जड़ थी, सर्वथा कट गयी। तुम्हारे दर्पको मैंने चूर्ण कर दिया। अब अपने ऊपर आये हुए इस संकटसे ही विवश होकर तुम स्वयं मेरी भार्या बन जाओगी। मूढ़ सीते! अब यह रामविषयक चिन्तन छोड़ दो। उस मरे हुए रामको लेकर क्या करोगी॥ १५-१६ ॥

'भद्रे! मेरी सब रानियोंकी स्वामिनी बन जाओ। मूढे! तुम अपनेको बड़ी बुद्धिमती समझती थी न। तुम्हारा पुण्य बहुत कम हो गया था। इसीलिये ऐसा हुआ है। अब रामके मारे जानेसे तुम्हारा जो उनकी प्राप्तिरूप प्रयोजन था, वह समाप्त हो गया। सीते! यदि सुनना चाहो तो वृत्रासुरके वधकी भयंकर घटनाके समान अपने पतिके मारे जानेका घोर समाचार सुन लो॥ १७ ॥

'कहा जाता है राम मुझे मारनेके लिये समुद्रके किनारेतक आये थे। उनके साथ वानरराज सुग्रीवकी लायी हुई विशाल सेना भी थी॥ १८ ॥

'उस विशाल सेनाके द्वारा राम समुद्रके उत्तर तटको दबाकर ठहरे। उस समय सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये थे॥ १९ ॥

'जब आधी रात हुई, उस समय रास्तेकी थकी-माँदी सारी सेना सुखपूर्वक सो गयी थी। उस अवस्थामें वहाँ पहुँचकर मेरे गुप्तचरोंने पहले तो उसका भलीभाँति निरीक्षण किया॥ २० ॥

'फिर प्रहस्तके सेनापतित्वमें वहाँ गयी हुई मेरी बहुत बड़ी सेनाने रातमें, जहाँ राम और लक्ष्मण थे, उस वानर-सेनाको नष्ट कर दिया॥ २१ ॥

'उस समय राक्षसोंने पट्टिश, परिघ, चक्र, ऋष्टि, दण्ड, बड़े-बड़े आयुध, बाणोंके समूह, त्रिशूल, चमकीले कूट और मुद्गर, डंडे, तोमर, प्रास तथा मूसल उठा-उठाकर वानरोंपर प्रहार किया था॥ २२-२३ ॥

'तदनन्तर शत्रुओंको मथ डालनेवाले प्रहस्तने,

जिसके हाथ खूब सधे हुए हैं, बहुत बड़ी तलवार हाथमें लेकर उससे बिना किसी रुकावटके रामका मस्तक काट डाला॥ २४॥

'फिर अकस्मात् उछलकर उसने विभीषणको पकड़ लिया और वानरसैनिकोंसहित लक्ष्मणको विभिन्न दिशाओंमें भाग जानेको विवश किया॥ २५॥

'सीते! वानरराज सुग्रीवकी ग्रीवा काट दी गयी, हनुमान्‌की हनु (ठोढ़ी) नष्ट करके उसे राक्षसोंने मार डाला॥ २६॥

'जाम्बवान् ऊपरको उछल रहे थे, उसी समय युद्धस्थलमें राक्षसोंने बहुत-से पट्टिशोंद्वारा उनके दोनों घुटनोंपर प्रहार किया। वे छिन्न-भिन्न होकर कटे हुए पेड़की भाँति धराशायी हो गये॥ २७॥

'मैन्द और द्विविद दोनों श्रेष्ठ वानर खूनसे लथपथ होकर पड़े हैं। वे लंबी साँसें खींचते और रोते थे। उसी अवस्थामें उन दोनों विशालकाय शत्रुसूदन वानरोंको तलवारद्वारा बीचसे ही काट डाला गया है॥

'पनस नामका वानर पककर फटे हुए पनस (कटहल) के समान पृथ्वीपर पड़ा-पड़ा अन्तिम साँसें ले रहा है। दरीमुख अनेक नाराचोंसे छिन्न-भिन्न हो किसी दरी (कन्दरा) में पड़ा सो रहा है। महातेजस्वी कुमुद सायकोंसे घायल हो चीखता-चिल्लाता हुआ मर गया॥ २९-३०॥

'अङ्गदधारी अङ्गदपर आक्रमण करके बहुत-से राक्षसोंने उन्हें बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया है। वे सब अङ्गोंसे रक्त बहाते हुए पृथ्वीपर पड़े हैं॥ ३१॥

'जैसे बादल वायुके वेगसे फट जाते हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े हाथियों तथा रथसमूहोंने वहाँ सोये हुए वानरोंको रौंदकर मथ डाला॥ ३२॥

'जैसे सिंहके खदेड़नेसे बड़े-बड़े हाथी भागते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके पीछा करनेपर बहुत-से वानर पीठपर बाणोंकी मार खाते हुए भाग गये हैं॥ ३३॥

'कोई समुद्रमें कूद पड़े और कोई आकाशमें उड़ गये हैं। बहुत-से रीछ वानरी वृत्तिका आश्रय ले पेड़ोंपर चढ़ गये हैं॥ ३४॥

'विकराल नेत्रोंवाले राक्षसोंने इन बहुसंख्यक भूरे बंदरोंको समुद्रतट, पर्वत और वनोंमें खदेड़-खदेड़कर मार डाला है॥ ३५॥

'इस प्रकार मेरी सेनाने सैनिकोंसहित तुम्हारे पतिको मौतके घाट उतार दिया। खूनसे भीगा और धूलमें सना हुआ उनका यह मस्तक यहाँ लाया गया है'॥ ३६॥

'ऐसा कहकर अत्यन्त दुर्जय राक्षसराज रावणने सीताके सुनते-सुनते एक राक्षसीसे कहा—॥ ३७॥

'तुम क्रूरकर्मा राक्षस विद्युज्जिह्वको बुला ले आओ, जो स्वयं संग्रामभूमिसे रामका सिर यहाँ ले आया है'॥ ३८॥

तब विद्युज्जिह्व धनुषसहित उस मस्तकको लेकर आया और सिर झुका रावणको प्रणाम करके उसके सामने खड़ा हो गया। उस समय अपने पास खड़े हुए विशाल जिह्वावाले राक्षस विद्युज्जिह्वसे राजा रावण यों बोला—॥ ४०॥

'तुम दशरथकुमार रामका मस्तक शीघ्र ही सीताके आगे रख दो, जिससे यह बेचारी अपने पतिकी अन्तिम अवस्थाका अच्छी तरह दर्शन कर ले'॥ ४१॥

रावणके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उस सुन्दर मस्तकको सीताके निकट रखकर तत्काल अदृश्य हो गया॥ ४२॥

रावणने भी उस विशाल चमकीले धनुषको यह कहकर सीताके सामने डाल दिया कि यही रामका त्रिभुवनविख्यात धनुष है॥ ४३॥

फिर बोला—'सीते! यही तुम्हारे रामका प्रत्यञ्चासहित धनुष है। रातके समय उस मनुष्यको मारकर प्रहस्त इस धनुषको यहाँ ले आया है'॥ ४४॥

जब विद्युज्जिह्वने मस्तक वहाँ रखा, उसके साथ ही रावणने वह धनुष पृथ्वीपर डाल दिया। तत्पश्चात् वह विदेहराजकुमारी यशस्विनी सीतासे बोला—'अब तुम मेरे वशमें हो जाओ'॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंके सलाहसे युद्धविषयक उद्योग करना

सीताजीने उस मस्तक और उस उत्तम धनुषको देखकर तथा हनुमान्‌जीकी कही हुई सुग्रीवके साथ मैत्री-सम्बन्ध होनेकी बात याद करके अपने पतिके-जैसे ही नेत्र, मुखका वर्ण, मुखाकृति, केश, ललाट और उस सुन्दर चूडामणिको लक्ष्य किया। इन सब चिह्नोंसे पतिको पहचानकर वे बहुत दुखी हुईं और कुररीकी भाँति रो-रोकर कैकेयीकी निन्दा करने लगीं—॥ १—३ ॥

'कैकेयि! अब तुम सफलमनोरथ हो जाओ, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले ये मेरे पतिदेव मारे गये। तुम स्वभावसे ही कलहकारिणी हो। तुमने समस्त रघुकुलका संहार कर डाला॥ ४॥

'आर्य श्रीरामने कैकेयीका कौन-सा अपराध किया था, जिससे उसने इन्हें चीरवस्त्र देकर मेरे साथ वनमें भेज दिया था'॥ ५॥

ऐसा कहकर दुःखकी मारी तपस्विनी वैदेही बाला थर-थर काँपती हुई कटी कदलीके समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ ६॥

फिर दो घड़ीमें उनकी चेतना लौटी और वे विशाललोचना सीता कुछ धीरज धारणकर उस मस्तकको अपने निकट रखकर विलाप करने लगीं—॥ ७॥

'हाय! महाबाहो! मैं मारी गयी। आप वीरव्रतका पालन करनेवाले थे। आपकी इस अन्तिम अवस्थाको मुझे अपनी आँखोंसे देखना पड़ा। आपने मुझे विधवा बना दिया॥ ८॥

'स्त्रीसे पहले पतिका मरना उसके लिये महान् अनर्थकारी दोष बताया जाता है। मुझ सती-साध्वीके रहते हुए मेरे सामने आप-जैसे सदाचारी पतिका निधन हुआ, यह मेरे लिये महान् दुःखकी बात है॥ ९॥

'मैं महान् संकटमें पड़ी हूँ, शोकके समुद्रमें डूबी हूँ, जो मेरा उद्धार करनेके लिये उद्यत थे, उन आप-जैसे वीरको भी शत्रुओंने मार गिराया॥ १०॥

'रघुनन्दन! जैसे कोई बछड़ेके प्रति स्नेहसे भरी हुई गायको उस बछड़ेसे विलग कर दे, यही दशा मेरी सास कौसल्याकी हुई है। वे दयामयी जननी आप-जैसे पुत्रसे बिछुड़ गयीं॥ ११॥

'रघुवीर! ज्योतिषियोंने तो आपकी आयु बहुत बड़ी बतायी थी, किंतु उनकी बात झूठी सिद्ध हुई। रघुनन्दन! आप बड़े अल्पायु निकले॥ १२॥

'अथवा बुद्धिमान् होकर भी आपकी बुद्धि मारी गयी। तभी तो आप सोते हुए ही शत्रुके वशमें पड़ गये अथवा यह काल ही समस्त प्राणियोंके उद्‌भवमें हेतु है। अतः वही प्राणिमात्रको पकाता है—उन्हें शुभाशुभ कर्मोंके फलसे संयुक्त करता है॥ १३॥

'आप तो नीतिशास्त्रके विद्वान् थे। संकटसे बचनेके उपायोंको जानते थे और व्यसनोंके निवारणमें कुशल थे तो भी कैसे आपको ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई, जो दूसरे किसी वीर पुरुषको प्राप्त होती नहीं देखी गयी थी?॥

'कमलनयन! भीषण और अत्यन्त क्रूर कालरात्रि आपको हृदयसे लगाकर मुझसे हठात् छीन ले गयी॥

'पुरुषोत्तम! महाबाहो! आप मुझ तपस्विनीको त्यागकर अपनी प्रियतमा नारीकी भाँति इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके यहाँ सो रहे हैं॥ १६॥

'वीर! जिसका मैं प्रयत्नपूर्वक गन्ध और पुष्पमाला आदिके द्वारा नित्यप्रति पूजन करती थी तथा जो मुझे बहुत प्रिय था, यह आपका वही स्वर्णभूषित धनुष है॥

'निष्पाप रघुनन्दन! निश्चय ही आप स्वर्गमें जाकर मेरे श्वशुर और अपने पिता महाराज दशरथसे तथा अन्य सब पितरोंसे भी मिले होंगे॥ १८॥

'आप पिताकी आज्ञाका पालनरूपी महान् कर्म करके अद्भुत पुण्यका उपार्जन कर यहाँसे अपने उस राजर्षिकुलकी उपेक्षा करके (उसे छोड़कर) जा रहे हैं, जो आकाशमें नक्षत्र* बनकर प्रकाशित होता है (आपको

* इक्ष्वाकुवंशके राजा त्रिशंकु आकाशमें नक्षत्र होकर प्रकाशित होते हैं, उन्हींके कारण क्षत्रिन्यायसे समस्त कुलको ही नक्षत्रकुल बताया है।

ऐसा नहीं करना चाहिये)॥ १९॥

'राजन्! आपने अपनी छोटी अवस्थामें ही जब कि मेरी भी छोटी ही अवस्था थी, मुझे पत्नीरूपमें प्राप्त किया। मैं सदा आपके साथ विचरनेवाली सहधर्मिणी हूँ। आप मेरी ओर क्यों नहीं देखते हैं अथवा मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं देते हैं?॥ २०॥

'काकुत्स्थ! मेरा पाणिग्रहण करते समय जो आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे साथ धर्माचरण करूँगा, उसका स्मरण कीजिये और मुझ दुःखिनीको भी साथ ही ले चलिये॥ २१॥

'गतिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! आप मुझे अपने साथ वनमें लाकर और यहाँ मुझ दुःखिनीको छोड़कर इस लोकसे परलोकको क्यों चले गये?॥ २२॥

'मैंने ही अनेक मङ्गलमय उपचारोंसे सुन्दर आपके जिस श्रीविग्रहका आलिङ्गन किया था, आज उसीको मांस-भक्षी हिंसक जन्तु अवश्य इधर-उधर घसीट रहे होंगे॥

'आपने तो पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना की है; फिर क्या कारण है कि अग्निहोत्रकी अग्निसे दाह-संस्कारका सुयोग आपको नहीं मिल रहा है॥ २४॥

'हम तीन व्यक्ति एक साथ वनमें आये थे; परंतु अब शोकाकुल हुई माता कौसल्या केवल एक व्यक्ति लक्ष्मणको ही घर लौटा हुआ देख सकेंगी॥ २५॥

'उनके पूछनेपर लक्ष्मण उन्हें रात्रिके समय राक्षसोंके हाथसे आपके मित्रकी सेनाके तथा सोते हुए आपके भी वधका समाचार अवश्य सुनायेंगे॥ २६॥

'रघुनन्दन! जब उन्हें यह ज्ञात होगा कि आप सोते समय मारे गये और मैं राक्षसके घरमें हर लायी गयी हूँ तो उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा और वे अपने प्राण त्याग देंगी॥ २७॥

'हाय! मुझ अनार्याके लिये निष्पाप राजकुमार श्रीराम, जो महान् पराक्रमी थे, समुद्रलङ्घन-जैसा महान् कर्म करके भी गायकी खुरीके बराबर जलमें डूब गये—बिना युद्ध किये सोते समय मारे गये॥ २८॥

'हाय! दशरथनन्दन श्रीराम मुझ-जैसी कुलकलङ्किनी नारीको मोहवश ब्याह लाये। पत्नी ही आर्यपुत्र श्रीरामके लिये मृत्युरूप बन गयी॥ २९॥

'जिनके यहाँ सब लोग याचक बनकर आते थे एवं सभी अतिथि जिन्हें प्रिय थे, उन्हीं श्रीरामकी पत्नी होकर जो मैं आज शोक कर रही हूँ, इससे जान पड़ता है कि मैंने दूसरे जन्ममें निश्चय ही उत्तम दानधर्ममें बाधा डाली थी॥ ३०॥

'रावण! मुझे भी श्रीरामके शवके ऊपर रखकर मेरा वध करा डालो; इस प्रकार पतिको पत्नीसे मिला दो; यह उत्तम कल्याणकारी कार्य है, इसे अवश्य करो॥

'रावण! मेरे सिरसे पतिके सिरका और मेरे शरीरसे उनके शरीरका संयोग करा दो। इस प्रकार मैं अपने महात्मा पतिकी गतिका ही अनुसरण करूँगी'॥

इस प्रकार दुःखसे संतप्त हुई विशाललोचना जनकनन्दिनी सीता पतिके मस्तक तथा धनुषको देखने और विलाप करने लगीं॥ ३३॥

जब सीता इस तरह विलाप कर रही थीं, उसी समय वहाँ रावणकी सेनाका एक राक्षस हाथ जोड़े हुए अपने स्वामीके पास आया॥ ३४॥

उसने 'आर्यपुत्र महाराजकी जय हो' कहकर रावणका अभिवादन किया और उसे प्रसन्न करके यह सूचना दी कि 'सेनापति प्रहस्त पधारे हैं॥ ३५॥

'प्रभो! सब मन्त्रियोंके साथ प्रहस्त महाराजकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। वे आपका दर्शन करना चाहते हैं, इसीलिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है॥ ३६॥

'क्षमाशील महाराज! निश्चय ही कोई अत्यन्त आवश्यक राजकीय कार्य आ पड़ा है, अतः आप उन्हें दर्शन देनेका कष्ट करें?॥ ३७॥

राक्षसकी कही हुई यह बात सुनकर दशग्रीव रावण अशोकवाटिका छोड़कर मन्त्रियोंसे मिलनेके लिये चला गया॥ ३८॥

उसने मन्त्रियोंसे अपने सारे कृत्यका समर्थन कराया और श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका पता लगाकर सभाभवनमें प्रवेश करके वह प्रस्तुत कार्यकी व्यवस्था करने लगा॥ ३९॥

रावणके वहाँसे निकलते ही वह सिर और उत्तम धनुष दोनों अदृश्य हो गये॥ ४०॥

राक्षसराज रावणने अपने उन भयानक मन्त्रियोंके साथ बैठकर रामके प्रति किये जानेवाले तत्कालोचित कर्तव्यका निश्चय किया॥ ४१॥

फिर राक्षसराज रावणने पास ही खड़े हुए अपने हितैषी सेनापतियोंसे इस प्रकार समयानुकूल बात कही—॥

'तुम सब लोग शीघ्र ही डंडेसे पीट-पीटकर

धौंसा बजाते हुए समस्त सैनिकोंको एकत्र करो; परंतु उन्हें इसका कारण नहीं बताना चाहिये'॥ ४३॥

तब दूतोंने 'तथास्तु' कहकर रावणकी आज्ञा स्वीकार की और उसी समय सहसा विशाल सेनाको एकत्र कर दिया; फिर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले अपने स्वामीको यह सूचना दी कि 'सारी सेना आ गयी'॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सरमाका सीताको सान्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खोलना, श्रीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विजयी होनेका विश्वास दिलाना

विदेहनन्दिनी सीताको मोहमें पड़ी हुई देख सरमा नामकी राक्षसी उनके पास उसी तरह आयी, जैसे प्रेम रखनेवाली सखी अपनी प्यारी सखीके पास जाती है॥

सीता राक्षसराजकी मायासे मोहित हो बड़े दुःखमें पड़ गयी थीं। उस समय मृदुभाषिणी सरमाने उन्हें अपने वचनोंद्वारा सान्त्वना दी॥ २॥

सरमा रावणकी आज्ञासे सीताजीकी रक्षा करती थी। उसने अपनी रक्षणीया सीताके साथ मैत्री कर ली थी। वह बड़ी दयालु और दृढ-संकल्प थी॥ ३॥

सरमाने सखी सीताको देखा। उनकी चेतना नष्ट-सी हो रही थी। जैसे परिश्रमसे थकी हुई घोड़ी धरतीकी धूलमें लोटकर खड़ी हुई हो, उसी प्रकार सीता भी पृथ्वीपर लोटकर रोने और विलाप करनेके कारण धूलिधूसरित हो रही थीं॥ ४॥

उसने एक सखीके स्नेहसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीताको आश्वासन दिया—'विदेहनन्दिनी! धैर्य धारण करो। तुम्हारे मनमें व्यथा नहीं होनी चाहिये। भीरु! रावणने तुमसे जो कुछ कहा है और स्वयं तुमने उसे जो उत्तर दिया है, वह सब मैंने सखीके प्रति स्नेह होनेके कारण सुन लिया है। विशाललोचने! तुम्हारे लिये मैं रावणका भय छोड़कर अशोकवाटिकामें सूने गहन स्थानमें छिपकर सारी बातें सुन रही थी। मुझे रावणसे कोई डर नहीं है॥ ५-६॥

'मिथिलेशकुमारी! राक्षसराज रावण जिस कारण यहाँसे घबराकर निकल गया है, उसका भी मैं वहाँ जाकर पूर्णरूपसे पता लगा आयी हूँ॥ ७॥

'भगवान् श्रीराम अपने स्वरूपको जाननेवाले सर्वज्ञ परमात्मा हैं। उनका सोते समय वध करना किसीके लिये भी सर्वथा असम्भव है। पुरुषसिंह श्रीरामके विषयमें इस तरह उनके वध होनेकी बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती॥

'वानरलोग वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनेवाले हैं। उनका भी इस तरह मारा जाना कदापि सम्भव नहीं है; क्योंकि जैसे देवतालोग देवराज इन्द्रसे पालित होते हैं, उसी प्रकार ये वानर श्रीरामचन्द्रजीसे भलीभाँति सुरक्षित हैं॥

'सीते! श्रीमान् राम गोलाकार बड़ी-बड़ी भुजाओंसे सुशोभित, चौड़ी छातीवाले, प्रतापी, धनुर्धर, सुगठित शरीरसे युक्त और भूमण्डलमें सुविख्यात धर्मात्मा हैं। उनमें महान् पराक्रम है। वे भाई लक्ष्मणकी सहायतासे अपनी तथा दूसरेकी भी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। नीतिशास्त्रके ज्ञाता और कुलीन हैं। उनके बल और पौरुष अचिन्त्य हैं। वे शत्रुपक्षके सैन्यसमूहोंका संहार करनेकी शक्ति रखते हैं। शत्रुसूदन श्रीराम कदापि मारे नहीं गये हैं॥ १०—१२॥

'रावणकी बुद्धि और कर्म दोनों ही बुरे हैं। वह समस्त प्राणियोंका विरोधी, क्रूर और मायावी है। उसने तुमपर यह मायाका प्रयोग किया था (वह मस्तक और धनुष मायाद्वारा रचे गये थे)॥ १३॥

'अब तुम्हारे शोकके दिन बीत गये। सब प्रकारसे कल्याणका अवसर उपस्थित हुआ है। निश्चय ही लक्ष्मी तुम्हारा सेवन करती हैं। तुम्हारा प्रिय कार्य होने जा रहा है। उसे बताती हूँ, सुनो॥ १४॥

'श्रीरामचन्द्रजी वानरसेनाके साथ समुद्रको लाँघकर इस पार आ रहे हैं। उन्होंने सागरके दक्षिणतटपर पड़ाव डाला है॥ १५॥

'मैंने स्वयं लक्ष्मणसहित पूर्णकाम श्रीरामका दर्शन किया है। वे समुद्रतटपर ठहरी हुई अपनी संगठित सेनाओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हैं॥ १६॥

'रावणने जो-जो शीघ्रगामी राक्षस भेजे थे, वे सब यहाँ यही समाचार लाये हैं कि 'श्रीरघुनाथजी समुद्रको पार करके आ गये'॥ १७॥

'विशाललोचने! इस समाचारको सुनकर यह राक्षसराज रावण अपने सभी मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श कर रहा है'॥ १८॥

जब राक्षसी सरमा सीतासे ये बातें कह रही थी, उसी समय उसने युद्धके लिये पूर्णतः उद्योगशील सैनिकोंका भैरव नाद सुना॥ १९॥

डंडेकी चोटसे बजनेवाले धौंसेका गम्भीर नाद सुनकर मधुरभाषिणी सरमाने सीतासे कहा—॥ २०॥

'भीरु! यह भयानक भेरीनाद युद्धके लिये तैयारीकी सूचना दे रहा है। मेघकी गर्जनाके समान रणभेरीका गम्भीर घोष तुम भी सुन लो॥ २१॥

'मतवाले हाथी सजाये जा रहे हैं। रथमें घोड़े जोते जा रहे हैं और हजारों घुड़सवार हाथमें भाला लिये दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ २२॥

'जहाँ-तहाँसे युद्धके लिये संनद्ध हुए सहस्रों सैनिक दौड़े चले आ रहे हैं। सारी सड़कें अद्भुत वेषमें सजे और बड़े वेगसे गर्जना करते हुए सैनिकोंसे उसी तरह भरती जा रही हैं जैसे जलके असंख्य प्रवाह सागरमें मिल रहे हों॥ २३½॥

'नाना प्रकारकी प्रभा बिखेरनेवाले चमचमाते हुए अस्त्र-शस्त्रों, ढालों और कवचोंकी वह चमक देखो। राक्षसराज रावणका अनुगमन करनेवाले रथों, घोड़ों, हाथियों तथा रोमाञ्चित हुए वेगशाली राक्षसोंमें इस समय यह बड़ी हड़बड़ी दिखायी देती है। ग्रीष्म ऋतुमें वनको जलाते हुए दावानलका जैसा जाज्वल्यमान रूप होता है, वैसी ही प्रभा इन अस्त्र-शस्त्र आदिकी दिखायी देती है॥ २४—२६॥

'हाथियोंपर बजते हुए घण्टोंका गम्भीर घोष सुनो, रथोंकी घर्घराहट सुनो और हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा भाँति-भाँतिके बाजोंकी आवाज भी सुन लो॥ २७॥

'हाथोंमें हथियार लिये रावणके अनुगामी राक्षसोंमें इस समय बड़ी घबराहट है। इससे यह जान लो कि उनपर कोई बड़ा भारी रोमाञ्चकारी भय उपस्थित हुआ है और शोकका निवारण करनेवाली लक्ष्मी तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो रही है॥ २८½॥

'तुम्हारे पति कमलनयन श्रीराम क्रोधको जीत चुके हैं। उनका पराक्रम अचिन्त्य है। वे दैत्योंको परास्त करनेवाले इन्द्रकी भाँति राक्षसोंको हराकर समराङ्गणमें रावणका वध करके तुम्हें प्राप्त कर लेंगे॥ २९-३०॥

'जैसे शत्रुसूदन इन्द्रने उपेन्द्रकी सहायतासे शत्रुओंपर पराक्रम प्रकट किया था, उसी प्रकार तुम्हारे पतिदेव श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके सहयोगसे राक्षसोंपर अपने बलविक्रमका प्रदर्शन करेंगे॥ ३१॥

'शत्रु रावणका संहार हो जानेपर मैं शीघ्र ही तुम-जैसी सतीसाध्वीको यहाँ पधारे हुए श्रीरघुनाथजीकी गोदमें समोद बैठी देखूँगी। अब शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा॥ ३२॥

'जनकनन्दिनि! विशाल वक्षःस्थलसे विभूषित श्रीरामके मिलनेपर उनकी छातीसे लगकर तुम शीघ्र ही नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाओगी॥ ३३॥

'देवि सीते! कई महीनोंसे तुम्हारे केशोंकी एक ही वेणी जटाके रूपमें परिणत हो जो कटिप्रदेशतक लटक रही है, उसे महाबली श्रीराम शीघ्र ही अपने हाथोंसे खोलेंगे॥ ३४॥

'देवि! जैसे नागिन केंचुल छोड़ती है, उसी प्रकार तुम उदित हुए पूर्णचन्द्रके समान अपने पतिका मुदित मुख देखकर शोकके आँसू बहाना छोड़ दोगी॥ ३५॥

'मिथिलेशकुमारी! समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करके सुख भोगनेके योग्य श्रीराम सफलमनोरथ हो तुझ प्रियतमाके साथ मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करेंगे॥

'जैसे पृथ्वी उत्तम वर्षासे अभिषिक्त होनेपर हरी-भरी खेतीसे लहलहा उठती है, उसी प्रकार तुम महात्मा श्रीरामसे सम्मानित हो आनन्दमग्न हो जाओगी॥ ३७॥

'देवि! जो गिरिवर मेरुके चारों ओर घूमते हुए अश्वकी भाँति शीघ्रतापूर्वक मण्डलाकार-गतिसे चलते हैं, उन्हीं भगवान् सूर्यकी (जो तुम्हारे कुलके देवता हैं) तुम यहाँ शरण लो; क्योंकि ये प्रजाजनोंको सुख देने तथा उनका दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं'॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना

रावणके पूर्वोक्त वचनसे मोहित एवं संतप्त हुई सीताको सरमाने अपनी वाणीद्वारा उसी प्रकार आह्लाद प्रदान किया, जैसे ग्रीष्म-ऋतुके तापसे दग्ध हुई पृथ्वीको वर्षा-कालकी मेघमाला अपने जलसे आह्लादित कर देती है॥

तदनन्तर समयको पहचानने और मुसकराकर बात करनेवाली सखी सरमा अपनी प्रिय सखी सीताका हित करनेकी इच्छा रखकर यह समयोचित वचन बोली—॥

'कजरारे नेत्रोंवाली सखी! मुझमें यह साहस और उत्साह है कि मैं श्रीरामके पास जाकर तुम्हारा संदेश और कुशल-समाचार निवेदन कर दूँ और फिर छिपी हुई वहाँसे लौट आऊँ॥ ३॥

'निराधार आकाशमें तीव्र वेगसे जाती हुई मेरी गतिका अनुसरण करनेमें वायु अथवा गरुड़ भी समर्थ नहीं हैं'॥

ऐसी बात कहती हुई सरमासे सीताने उस स्नेहभरी मधुर वाणीद्वारा जो पहले शोकसे व्याप्त थी, इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'सरमे! तुम आकाश और पाताल सभी जगह जानेमें समर्थ हो। मेरे लिये जो कर्तव्य तुम्हें करना है, उसे अब बता रही हूँ, सुनो और समझो॥ ६॥

'यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना है और यदि इस विषयमें तुम्हारी बुद्धि स्थिर है तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि रावण यहाँसे जाकर क्या कर रहा है?॥ ७॥

'शत्रुओंको रुलानेवाला रावण मायाबलसे सम्पन्न है। वह दुष्टात्मा मुझे उसी प्रकार मोहित कर रहा है, जैसे वारुणी अधिक मात्रामें पी लेनेपर वह पीनेवालेको मोहित (अचेत) कर देती है॥ ८॥

'वह राक्षस अत्यन्त भयानक राक्षसियोंद्वारा प्रतिदिन मुझे डाँट बताता है, धमकाता है और सदा मेरी रखवाली करता है॥ ९॥

'मैं सदा उससे उद्विग्न और शङ्कित रहती हूँ। मेरा चित्त स्वस्थ नहीं हो पाता। मैं उसीके भयसे व्याकुल होकर अशोकवाटिकामें चली आयी थी॥ १०॥

'यदि मन्त्रियोंके साथ उसकी बातचीत चल रही है तो वहाँ जो कुछ निश्चय हो अथवा रावणका जो निश्चित विचार हो, वह सब मुझे बताती रहो। यह मुझपर तुम्हारी बहुत बड़ी कृपा होगी'॥ ११॥

ऐसी बातें कहती हुई सीतासे मधुरभाषिणी सरमाने उनके आँसुओंसे भीगे हुए मुखमण्डलको हाथसे पोंछते हुए इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'मिथिलेशकुमारी जनकनन्दिनि! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं जाती हूँ और शत्रुके अभिप्रायको जानकर अभी लौटती हूँ'॥ १३॥

ऐसा कहकर सरमाने उस राक्षसके समीप जाकर मन्त्रियोंसहित रावणकी कही हुई सारी बातें सुनीं॥ १४॥

उस दुरात्माके निश्चयको सुनकर उसने अच्छी तरह समझ लिया और फिर वह शीघ्र ही सुन्दर अशोकवाटिकामें लौट आयी॥ १५॥

वहाँ प्रवेश करके उसने अपनी ही प्रतीक्षामें बैठी हुई जनककिशोरीको देखा, जो उस लक्ष्मीके समान जान पड़ती थीं, जिसके हाथका कमल कहीं गिर गया हो॥

फिर लौटकर आयी हुई प्रियभाषिणी सरमाको बड़े स्नेहसे गले लगाकर सीताने स्वयं उसे बैठनेके लिये आसन दिया और कहा—॥ १७॥

'सखी! यहाँ सुखसे बैठकर सारी बातें ठीक-ठीक बताओ। उस क्रूर एवं दुरात्मा रावणने क्या निश्चय किया'॥

काँपती हुई सीताके इस प्रकार पूछनेपर सरमाने मन्त्रियोंसहित रावणकी कही हुई सारी बातें बतायीं—॥

'विदेहनन्दिनि! राक्षसराज रावणकी माताने तथा रावणके प्रति अत्यन्त स्नेह रखनेवाले एक बूढ़े मन्त्रीने भी बड़ी-बड़ी बातें कहकर तुम्हें छोड़ देनेके लिये रावणको प्रेरित किया॥ २०॥

'राक्षसराज! तुम महाराज श्रीरामको सत्कारपूर्वक उनकी पत्नी सीता लौटा दो। जनस्थानमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, वही श्रीरामके पराक्रमको समझनेके लिये पर्याप्त प्रमाण एवं उदाहरण है॥ २१॥

'(उनके सेवकोंमें भी अद्भुत शक्ति है) हनुमान्ने जो समुद्रको लाँघा, सीतासे भेंट की और युद्धमें बहुत-से राक्षसोंका वध किया—यह सब कार्य दूसरा कौन मनुष्य कर सकता है?'॥ २२॥

'इस प्रकार बूढ़े मन्त्रियों तथा माताके बहुत समझानेपर भी वह तुम्हें उसी तरह छोड़नेकी इच्छा नहीं करता है, जैसे धनका लोभी धनको त्यागना नहीं चाहता है॥ २३॥

'मिथिलेशकुमारी! वह युद्धमें मरे बिना तुम्हें छोड़नेका साहस नहीं कर सकता। मन्त्रियोंसहित उस नृशंस निशाचरका यही निश्चय है॥ २४॥

'रावणके सिरपर काल नाच रहा है। इसलिये उसके मनमें मृत्युके प्रति लोभ पैदा हो गया है। यही कारण है कि तुम्हें न लौटानेके निश्चयपर उसकी बुद्धि सुस्थिर हो गयी है। वह जबतक युद्धमें राक्षसोंके संहार और अपने वधके द्वारा (नष्ट) नहीं हो जायगा; केवल भय दिखानेसे तुम्हें नहीं छोड़ सकता॥ २५ १/२ ॥

'कजरारे नेत्रोंवाली सीते! इसका परिणाम यही होगा कि भगवान् श्रीराम अपने सर्वथा तीखे बाणोंसे युद्धस्थलमें रावणका वध करके तुम्हें अयोध्याको ले जायँगे'॥ २६॥

इसी समय भेरीनाद और शङ्खध्वनिसे मिला हुआ समस्त सैनिकोंका महान् कोलाहल सुनायी दिया, जो भूकम्प पैदा कर रहा था॥ २७॥

वानरसैनिकोंके उस भीषण सिंहनादको सुनकर लङ्कामें रहनेवाले राक्षसराज रावणके सेवक हतोत्साह हो गये। उनकी सारी चेष्टा दीनतासे व्याप्त हो गयी। रावणके दोषसे उन्हें भी कोई कल्याणका उपाय नहीं दिखायी देता था॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

माल्यवान्‌का रावणको श्रीरामसे संधि करनेके लिये समझाना

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाबाहु श्रीरामने शङ्खध्वनिसे मिश्रित हो तुमुल नाद करनेवाली भेरीकी आवाजके साथ लङ्कापर आक्रमण किया॥ १॥

उस भेरीनादको सुनकर राक्षसराज रावणने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेके पश्चात् अपने मन्त्रियोंकी ओर देखा॥ २॥

उन सब मन्त्रियोंको सम्बोधित करके जगत्‌को संताप देनेवाले, महाबली, क्रूर राक्षसराज रावणने सारी सभाको प्रतिध्वनित करके किसीपर आक्षेप न करते हुए कहा—॥ ३ १/२ ॥

'आपलोगोंने रामके पराक्रम, बल-पौरुष तथा समुद्र-लङ्घनकी जो बात बतायी है, वह सब मैंने सुन ली; परंतु मैं तो आपलोगोंको भी, जो इस समय रामके पराक्रमकी बातें जानकर चुपचाप एक-दूसरेका मुँह देख रहे हैं, संग्रामभूमिमें सत्यपराक्रमी वीर समझता हूँ'॥ ४-५॥

रावणके इस आक्षेपपूर्ण वचनको सुननेके पश्चात् महाबुद्धिमान् माल्यवान् नामक राक्षसने, जो रावणका नाना था, इस प्रकार कहा—॥ ६॥

'राजन्! जो राजा चौदहों विद्याओंमें सुशिक्षित और नीतिका अनुसरण करनेवाला होता है, वह दीर्घकालतक राज्यका शासन करता है। वह शत्रुओंको भी वशमें कर लेता है॥ ७॥

'जो समयके अनुसार आवश्यक होनेपर शत्रुओंके साथ संधि और विग्रह करता है तथा अपने पक्षकी वृद्धिमें लगा रहता है, वह महान् ऐश्वर्यका भागी होता है॥ ८॥

'जिस राजाकी शक्ति क्षीण हो रही हो अथवा जो शत्रुके समान ही शक्ति रखता हो, उससे संधि कर लेनी चाहिये। अपनेसे अधिक या समान शक्तिवाले शत्रुका कभी अपमान न करे। यदि स्वयं ही शक्तिमें बढ़ा-चढ़ा हो, तभी शत्रुके साथ वह युद्ध ठाने॥ ९॥

'इसलिये रावण! मुझे तो श्रीरामके साथ संधि करना ही अच्छा लगता है। जिसके लिये तुम्हारे ऊपर आक्रमण हो रहा है, वह सीता तुम श्रीरामको लौटा दो॥

'देखो देवता, ऋषि और गन्धर्व सभी श्रीरामकी विजय चाहते हैं, अतः तुम उनसे विरोध न करो। उनके साथ संधि कर लेनेकी ही इच्छा करो॥ ११॥

'भगवान् ब्रह्माने सुर और असुर दो ही पक्षोंकी सृष्टि की है। धर्म और अधर्म ही इनके आश्रय हैं॥ १२॥

'सुना जाता है महात्मा देवताओंका पक्ष धर्म है। राक्षसराज! राक्षसों और असुरोंका पक्ष अधर्म है॥ १३॥

'जब सत्ययुग होता है, तब धर्म बलवान् होकर अधर्मको ग्रस लेता है और जब कलियुग आता है, तब अधर्म ही धर्मको दबा देता है॥ १४॥

'तुमने दिग्विजयके लिये सब लोकोंमें भ्रमण करते हुए महान् धर्मका नाश किया है और अधर्मको गले लगाया है, इसलिये हमारे शत्रु हमसे प्रबल हैं।

'तुम्हारे प्रमादसे बढ़ा हुआ अधर्मरूपी अजगर अब हमें निगल जाना चाहता है और देवताओंद्वारा

पालित धर्म उनके पक्षकी वृद्धि कर रहा है॥ १६॥

'विषयोंमें आसक्त होकर जो कुछ भी कर डालनेवाले तुमने जो मनमाना आचरण किया है, इससे अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंको बड़ा ही उद्वेग प्राप्त हुआ है॥ १७॥

'उनका प्रभाव प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष है। वे ऋषि-मुनि तपस्याके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके धर्मके ही संग्रहमें तत्पर रहते हैं॥ १८॥

'ये द्विजगण मुख्य-मुख्य यज्ञोंद्वारा यजन करते, विधिवत् अग्निमें आहुति देते और उच्च स्वरसे वेदोंका पाठ करते हैं॥ १९॥

'उन्होंने राक्षसोंको अभिभूत करके वेदमन्त्रोंकी ध्वनिका विस्तार किया है, इसलिये ग्रीष्म ऋतुमें मेघकी भाँति राक्षस सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग खड़े हुए हैं॥ २०॥

'अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषियोंके अग्निहोत्रसे प्रकट हुआ धूम दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर राक्षसोंके तेजको हर लेता है॥ २१॥

'भिन्न-भिन्न देशोंमें पुण्य कर्मोंमें ही लगे रहकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषिलोग जो तीव्र तपस्या करते हैं, वही राक्षसोंको संताप दे रही है॥ २२॥

'तुमने देवताओं, दानवों और यक्षोंसे ही अवध्य होनेका वर प्राप्त किया है, मनुष्य आदिसे नहीं। परंतु यहाँ तो मनुष्य, वानर, रीछ और लंगूर आकर गरज रहे हैं। वे सब-के-सब हैं भी बड़े बलवान्, सैनिकशक्तिसे सम्पन्न तथा सुदृढ़ पराक्रमी॥ २३॥

'नाना प्रकारके बहुत-से भयंकर उत्पातोंको लक्ष्य करके मैं तो इन समस्त राक्षसोंके विनाशका ही अवसर उपस्थित देख रहा हूँ॥ २४॥

'घोर एवं भयंकर मेघ प्रचण्ड गर्जन-तर्जनके साथ लङ्कापर सब ओरसे गर्म खूनकी वर्षा कर रहे हैं॥ २५॥

'घोड़े-हाथी आदि वाहन रो रहे हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रुविन्दु झर रहे हैं। दिशाएँ धूल भर जानेसे मलिन हो अब पहलेकी भाँति प्रकाशित नहीं हो रही हैं॥ २६॥

मांसभक्षी हिंसक पशु, गीदड़ और गीध भयंकर बोली बोलते हैं तथा लङ्काके उपवनमें घुसकर झुंड बनाकर बैठते हैं॥ २७॥

'सपनेमें काले रंगकी स्त्रियाँ अपने पीले दाँत दिखाती हुई सामने आकर खड़ी हो जाती और प्रतिकूल बातें कहकर घरके सामान चुराती हुई जोर-जोरसे हँसती हैं॥ २८॥

'घरोंमें जो बलिकर्म किये जाते हैं, उस बलि-सामग्रीको कुत्ते खा जाते हैं। गौओंसे गधे और नेवलोंसे चूहे पैदा होते हैं॥ २९॥

'बाघोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ सूअर तथा राक्षसों और मनुष्योंके साथ किन्नर समागम करते हैं॥

'जिनकी पाँखें सफेद और पंजे लाल हैं, वे कबूतर पक्षी दैवसे प्रेरित हो राक्षसोंका भावी विनाश सूचित करनेके लिये यहाँ सब ओर विचरते हैं॥ ३१॥

'घरोंमें रहनेवाली सारिकाएँ कलहकी इच्छावाले दूसरे पक्षियोंसे चें-चें करती हुई गुँथ जाती हैं और उनसे पराजित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती हैं॥ ३२॥

'पक्षी और मृग सभी सूर्यकी ओर मुँह करके रोते हैं। विकराल, विकट, काले और भूरे रंगके मूँड़ मुड़ाये हुए पुरुषका रूप धारण करके काल समय-समयपर हम सबके घरोंकी ओर देखता है॥ ३३ $\frac{१}{२}$ ॥

'ये तथा और भी बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि साक्षात् भगवान् विष्णु ही मानवरूप धारण करके राम होकर आये हैं। जिन्होंने समुद्रमें अत्यन्त अद्भुत सेतु बाँधा है, वे दृढपराक्रमी रघुवीर साधारण मनुष्यमात्र नहीं हैं। रावण! तुम नरराज श्रीरामके साथ संधि कर लो। श्रीरामके अलौकिक कर्मों और लङ्कामें होनेवाले उत्पातोंको जानकर जो कार्य भविष्यमें सुख देनेवाला हो, उसका निश्चय करके वही करो'॥ ३४—३६॥

यह बात कहकर तथा राक्षसराज रावणके मनोभावकी परीक्षा करके उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ पौरुषशाली महाबली माल्यवान् रावणकी ओर देखता हुआ चुप हो गया॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

माल्यवान्पर आक्षेप और नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके रावणका अपने अन्तःपुरमें जाना

दुष्टात्मा दशमुख रावण कालके अधीन हो रहा था, इसलिये माल्यवान्की कही हुई हितकर बातको भी वह सहन नहीं कर सका॥ १॥

वह क्रोधके वशीभूत हो गया। अमर्षसे उसके नेत्र घूमने लगे। उसने भौंहें टेढ़ी करके माल्यवान्से कहा— ॥ २॥

'तुमने शत्रुका पक्ष लेकर हित-बुद्धिसे जो मेरे अहितकी कठोर बात कही है, वह पूरी तौरसे मेरे कानोंतक नहीं पहुँची॥ ३॥

'बेचारा राम एक मनुष्य ही तो है, जिसने सहारा लिया है कुछ बंदरोंका। पिताके त्याग देनेसे उसने वनकी शरण ली है। उसमें कौन-सी ऐसी विशेषता है, जिससे तुम उसे बड़ा सामर्थ्यशाली मान रहे हो॥ ४॥

'मैं राक्षसोंका स्वामी तथा सभी प्रकारके पराक्रमोंसे सम्पन्न हूँ, देवताओंके मनमें भी भय उत्पन्न करता हूँ; फिर किस कारणसे तुम मुझे रामकी अपेक्षा हीन समझते हो ?॥ ५॥

'तुमने जो मुझे कठोर बातें सुनायी हैं, उनके विषयमें मुझे शङ्का है कि तुम या तो मुझ-जैसे वीरसे द्वेष रखते हो या शत्रुसे मिले हुए हो अथवा शत्रुओंने ऐसा कहने या करनेके लिये तुम्हें प्रोत्साहन दिया है॥ ६॥

'जो प्रभावशाली होनेके साथ ही अपने राज्यपर प्रतिष्ठित है, ऐसे पुरुषको कौन शास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् शत्रुका प्रोत्साहन पाये बिना कटुवचन सुना सकता है?॥ ७॥

'कमलहीन कमलाकी भाँति सुन्दरी सीताको वनसे ले आकर अब केवल रामके भयसे मैं कैसे लौटा दूँ?॥ ८॥

'करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए सुग्रीव और लक्ष्मण-सहित रामको मैं कुछ ही दिनोंमें मार डालूँगा, यह तुम अपनी आँखों देख लेना॥ ९॥

'जिसके सामने द्वन्द्वयुद्धमें देवता भी नहीं ठहर पाते हैं, वही रावण युद्धमें किससे भयभीत होगा॥ १०॥

'मैं बीचसे दो टूक हो जाऊँगा, पर किसीके सामने झुक नहीं सकूँगा, यह मेरा सहज दोष है और स्वभाव किसीके लिये भी दुर्लङ्घ्य होता है॥ ११॥

'यदि रामने दैववश समुद्रपर सेतु बाँध लिया तो इसमें विस्मयकी कौन बात है, जिससे तुम्हें इतना भय हो गया है?॥ १२॥

'मैं तुम्हारे आगे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि समुद्र पार करके वानरसेनासहित आये हुए राम यहाँसे जीवित नहीं लौट सकेंगे'॥ १३॥

ऐसी बातें कहते हुए रावणको क्रोधसे भरा हुआ एवं रुष्ट जानकर माल्यवान् बहुत लज्जित हुआ और उसने कोई उत्तर नहीं दिया॥ १४॥

माल्यवान्ने 'महाराजकी जय हो' इस विजयसूचक आशीर्वादसे राजाको यथोचित बढ़ावा दिया और उससे आज्ञा लेकर वह अपने घर चला गया॥ १५॥

तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राक्षस रावणने परस्पर विचार-विमर्श करके तत्काल लङ्काकी रक्षाका प्रबन्ध किया॥ १६॥

उसने पूर्व द्वारपर उसकी रक्षाके लिये राक्षस प्रहस्तको तैनात किया, दक्षिण द्वारपर महापराक्रमी महापार्श्व और महोदरको नियुक्त किया तथा पश्चिम द्वारपर अपने पुत्र इन्द्रजित्को रखा, जो महान् मायावी था। वह बहुत-से राक्षसोंद्वारा घिरा हुआ था॥ १७-१८॥

तदनन्तर नगरके उत्तर द्वारपर शुक और सारणको रक्षाके लिये जानेकी आज्ञा दे मन्त्रियोंसे रावणने कहा—'मैं स्वयं भी उत्तर द्वारपर जाऊँगा'॥ १९॥

नगरके बीचकी छावनीपर उसने बहुसंख्यक राक्षसोंके साथ महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राक्षस विरूपाक्षको स्थापित किया॥ २०॥

इस प्रकार लङ्कामें पुरीकी रक्षाका प्रबन्ध करके कालप्रेरित राक्षसशिरोमणि रावण अपने-आपको कृतकृत्य मानने लगा॥ २१॥

इस तरह नगरके संरक्षणकी प्रचुर व्यवस्थाके लिये आज्ञा देकर रावणने सब मन्त्रियोंको विदा कर दिया और स्वयं भी उनके विजयसूचक आशीर्वादसे सम्मानित हो अपने समृद्धिशाली एवं विशाल अन्तःपुरमें चला गया॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

विभीषणका श्रीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रबन्धका वर्णन तथा श्रीरामद्वारा लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति

शत्रुके देशमें पहुँचे हुए नरराज श्रीराम, सुमित्राकुमार लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, वायुपुत्र हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान्, राक्षस विभीषण, वालिपुत्र अङ्गद, शरभ, बन्धु-बान्धवोंसहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस—ये सब आपसमें मिलकर विचार करने लगे— ॥ १—३ ॥

'यही वह लङ्कापुरी दिखायी देती है, जिसका पालन रावण करता है। असुर, नाग और गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी इसपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है॥ ४॥

'राक्षसराज रावण इस पुरीमें सदा निवास करता है। अब आपलोग इसपर विजय पानेके उपायोंका निर्णय करनेके लिये परस्पर विचार करें'॥ ५॥

उन सबके इस प्रकार कहनेपर रावणके छोटे भाई विभीषणने संस्कारयुक्त पद और प्रचुर अर्थसे भरी हुई वाणीमें कहा— ॥ ६ ॥

'मेरे मन्त्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति—ये चारों लङ्कापुरीमें जाकर फिर यहाँ लौट आये हैं॥ ७॥

'ये सब लोग पक्षीका रूप धारण करके शत्रुकी सेनामें गये थे और वहाँ जो व्यवस्था की गयी है, उसे अपनी आँखों देखकर फिर यहाँ उपस्थित हुए हैं॥ ८॥

'श्रीराम! इन्होंने दुरात्मा रावणके द्वारा किये गये नगर-रक्षाके प्रबन्धका जैसा वर्णन किया है, उसे मैं ठीक-ठीक बताता हूँ। आप वह सब मुझसे सुनिये॥ ९॥

'सेनासहित प्रहस्त नगरके पूर्व द्वारका आश्रय लेकर खड़ा है। महापराक्रमी महापार्श्व और महोदर दक्षिण द्वारपर खड़े हैं॥ १०॥

'बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ इन्द्रजित् नगरके पश्चिम द्वारपर खड़ा है। उसके साथी राक्षस पट्टिश, खड्ग, धनुष, शूल और मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्र हाथोंमें लिये हुए हैं। नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले शूरवीरोंसे घिरा हुआ वह रावणकुमार पश्चिमद्वारकी रक्षाके लिये डटा है॥

'स्वयं मन्त्रवेत्ता रावण शुक, सारण आदि कई सहस्र शस्त्रधारी राक्षसोंके साथ नगरके उत्तर द्वारपर सावधानीके साथ खड़ा है। वह मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न जान पड़ता है॥ १२-१३॥

'विरूपाक्ष शूल, खड्ग और धनुष धारण करनेवाली विशाल राक्षससेनाके साथ नगरके बीचकी छावनीपर खड़ा है॥ १४॥

'इस प्रकार मेरे सारे मन्त्री लङ्कामें विभिन्न स्थानोंपर नियुक्त हुई इन सेनाओंका निरीक्षण करके फिर शीघ्र यहाँ लौटे हैं॥ १५॥

'रावणकी सेनामें दस हजार हाथी, दस हजार रथ, बीस हजार घोड़े और एक करोड़से भी ऊपर पैदल राक्षस हैं॥ १६॥

'वे सभी बड़े वीर, बल-पराक्रमसे सम्पन्न और युद्धमें आततायी हैं। ये सभी निशाचर राक्षसराज रावणको सदा ही प्रिय हैं॥ १७॥

'प्रजानाथ! इनमेंसे एक-एक राक्षसके पास युद्धके लिये दस-दस लाखका परिवार उपस्थित है'॥ १८॥

महाबाहु विभीषणने मन्त्रियोंद्वारा बताये गये लङ्काविषयक समाचारको इस प्रकार बताकर उन मन्त्रीस्वरूप राक्षसोंको भी श्रीरामसे मिलाया और उनके द्वारा लङ्काका सारा वृत्तान्त पुनः उनसे कहलाया॥ १९½ ॥

तदनन्तर रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणने कमलनयन श्रीरामसे उनका प्रिय करनेके लिये स्वयं भी यह उत्तम बात कही— ॥ २०½ ॥

'श्रीराम! जब रावणने कुबेरके साथ युद्ध किया था, उस समय साठ लाख राक्षस उसके साथ गये थे। वे सब-के-सब बल, पराक्रम, तेज, धैर्यकी अधिकता और दर्पकी दृष्टिसे दुरात्मा रावणके ही समान थे॥ २१-२२॥

'मैंने जो रावणकी शक्तिका वर्णन किया है, इसको लेकर न तो आपको अपने मनमें दीनता लानी चाहिये और न मुझपर रोष ही करना चाहिये। मैं आपको डराता नहीं, शत्रुके प्रति आपके क्रोधको उभाड़ रहा हूँ; क्योंकि आप अपने बलपराक्रमद्वारा देवताओंका भी दमन करनेमें समर्थ हैं॥ २३॥

'इसलिये आप इस वानरसेनाका व्यूह बनाकर ही विशाल चतुरङ्गिणी सेनासे घिरे हुए रावणका विनाश कर सकेंगे'॥ २४॥

विभीषणके ऐसी बात कहनेपर भगवान् श्रीरामने शत्रुओंको परास्त करनेके लिये इस प्रकार कहा—॥

'बहुसंख्यक वानरोंसे घिरे हुए कपिश्रेष्ठ नील पूर्व द्वारपर जाकर प्रहस्तका सामना करें॥ २६॥

'विशाल वाहिनीसे युक्त वालिकुमार अङ्गद दक्षिण द्वारपर स्थित हो महापार्श्व और महोदरके कार्यमें बाधा दें॥ २७॥

'पवनकुमार हनुमान् अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न हैं। ये बहुत-से वानरोंके साथ लङ्काके पश्चिम फाटकमें प्रवेश करें॥ २८॥

'दैत्यों, दानवसमूहों तथा महात्मा ऋषियोंका अपकार करना ही जिसे प्रिय लगता है, जिसका स्वभाव क्षुद्र है, जो वरदानकी शक्तिसे सम्पन्न है और प्रजाजनोंको संताप देता हुआ सम्पूर्ण लोकोंमें घूमता रहता है, उस राक्षसराज रावणके वधका दृढ़ निश्चय लेकर मैं स्वयं ही सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ नगरके उत्तर फाटकपर आक्रमण करके उसके भीतर प्रवेश करूँगा, जहाँ सेनासहित रावण विद्यमान है॥ २९—३१॥

'बलवान् वानरराज सुग्रीव, रीछोंके पराक्रमी राजा जाम्बवान् तथा राक्षसराज रावणके छोटे भाई विभीषण—ये लोग नगरके बीचके मोर्चेपर आक्रमण करें॥ ३२॥

'वानरोंको युद्धमें मनुष्यका रूप नहीं धारण करना चाहिये। इस युद्धमें वानरोंकी सेनाका हमारे लिये यही संकेत या चिह्न होगा॥ ३३॥

'इस स्वजनवर्गमें वानर ही हमारे चिह्न होंगे। केवल हम सात व्यक्ति ही मनुष्यरूपमें रहकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥ ३४॥

'मैं अपने महातेजस्वी भाई लक्ष्मणके साथ रहूँगा और ये मेरे मित्र विभीषण अपने चार मन्त्रियोंके साथ पाँचवें होंगे (इस प्रकार हम सात व्यक्ति मनुष्यरूपमें रहकर युद्ध करेंगे)'॥ ३५॥

अपने विजयरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये विभीषणसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने सुवेल पर्वतपर चढ़नेका विचार किया। सुवेल पर्वतका तटप्रान्त बड़ा ही रमणीय था, उसे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३६॥

तदनन्तर महामना महात्मा श्रीराम अपनी विशाल सेनाके द्वारा वहाँकी सारी पृथ्वीको आच्छादित करके शत्रुवधका निश्चय किये बड़े हर्ष और उत्साहसे लङ्काकी ओर चले॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीरामका प्रमुख वानरोंके साथ सुवेल पर्वतपर चढ़कर वहाँ रातमें निवास करना

सुवेल पर्वतपर चढ़नेका विचार करके जिनके पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे, वे भगवान् श्रीराम सुग्रीवसे और धर्मके ज्ञाता, मन्त्रवेत्ता, विधिज्ञ एवं अनुरागी निशाचर विभीषणसे भी उत्तम एवं मधुर वाणीमें बोले—॥ १-२॥

'मित्रो! यह पर्वतराज सुवेल सैकड़ों धातुओंसे भलीभाँति भरा हुआ है। हम सब लोग इसपर चढ़ें और आजकी इस रातमें यहीं निवास करें॥ ३॥

'यहाँसे हमलोग उस राक्षसकी निवासभूत लङ्कापुरीका भी अवलोकन करेंगे, जिस दुरात्माने अपनी मृत्युके लिये ही मेरी भार्याका अपहरण किया है॥ ४॥

'जिसने न तो धर्मको जाना है, न सदाचारको ही कुछ समझा है और न कुलका ही विचार किया है; केवल राक्षसोचित नीच बुद्धिके कारण ही वह निन्दित कर्म किया है॥ ५॥

'उस नीच राक्षसका नाम लेते ही उसपर मेरा रोष जाग उठता है। केवल उसी अधम निशाचरके अपराधसे मैं समस्त राक्षसोंका वध देखूँगा॥ ६॥

'कालके पाशमें बँधा हुआ एक ही पुरुष पाप करता है, किंतु उस नीचके अपने ही दोषसे सारा कुल नष्ट हो जाता है'॥ ७॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही श्रीराम रावणके प्रति कुपित हो विचित्र शिखरवाले सुवेल पर्वतपर निवास करनेके लिये चढ़ गये॥ ८॥

उनके पीछे लक्ष्मण भी महान् पराक्रममें तत्पर एवं एकाग्रचित्त हो धनुष-बाण लिये हुए उस पर्वतपर आरूढ़ हो गये॥ ९॥

तत्पश्चात् सुग्रीव, मन्त्रियोंसहित विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, महामति ऋषभ, महातेजस्वी दुर्मुख तथा कपिवर शतवलि—ये और दूसरे भी बहुत-से शीघ्रगामी वानर जो वायुके समान वेगसे चलनेवाले तथा पर्वतोंपर ही विचरनेवाले थे, उस सुवेलगिरिपर चढ़ गये॥ १०—१३॥

सुवेल पर्वतपर जहाँ श्रीरघुनाथजी विराजमान थे, वे सैकड़ों वानर थोड़ी ही देरमें चढ़ गये और चढ़कर सब ओर विचरने लगे॥ १४॥

उन वानर-यूथपतियोंने सुवेलपर्वतके शिखरपर खड़े हो उस सुन्दर लङ्कापुरीका निरीक्षण किया, जो आकाशमें ही बनी हुई-सी जान पड़ती थी। उसके फाटक बड़े मनोहर थे। उत्तम परकोटे उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे तथा वह पुरी राक्षसोंसे भरी-पूरी थी॥

उत्तम परकोटोंपर खड़े हुए नीलवर्णके राक्षस ऐसे जान पड़ते थे, मानो उन परकोटोंपर दूसरा परकोटा बना दिया गया हो। उन श्रेष्ठ वानरोंने वह सब कुछ देखा॥ १६-१७॥

युद्धकी इच्छा रखनेवाले राक्षसोंको देखकर वे सब वानर श्रीरामके देखते-देखते नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगे॥ १८॥

तदनन्तर संध्याकी लालीसे रँगे हुए सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और पूर्णचन्द्रमासे प्रकाशित उजेली रात वहाँ सब ओर छा गयी॥ १९॥

तत्पश्चात् विभीषणद्वारा सादर सम्मानित हो वानरसेनाके स्वामी श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मण और यूथपतियोंके समुदायके साथ सुवेल पर्वतके पृष्ठभागपर सुखपूर्वक निवास किया॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

वानरोंसहित श्रीरामका सुवेल-शिखरसे लङ्कापुरीका निरीक्षण करना

वानर-यूथपतियोंने वह रात उस सुवेलपर्वतपर ही बितायी और वहाँसे उन वीरोंने लङ्काके वन और उपवन भी देखे॥ १॥

वे बड़े ही चौरस, शान्त, सुन्दर, विशाल और विस्तृत थे तथा देखनेमें अत्यन्त रमणीय जान पड़ते थे। उन्हें देखकर उन सब वानरोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ २॥

चम्पा, अशोक, बकुल, शाल और ताल-वृक्षोंसे व्याप्त, तमाल-वनसे आच्छादित और नागकेसरोंसे आवृत लङ्कापुरी हिंताल, अर्जुन, नीप (कदम्ब), खिले हुए छितवन, तिलक, कनेर तथा पाटल आदि नाना प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे जिनके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे थे तथा जिनपर लताबल्लरियाँ फैली हुई थीं, इन्द्रकी अमरावतीके समान शोभा पाती थी॥ ३—५॥

विचित्र फूलोंसे युक्त लाल कोमल पल्लवों, हरी-हरी घासों तथा विचित्र वनश्रेणियोंसे भी उस पुरीकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ६॥

जैसे मनुष्य आभूषण धारण करते हैं, उसी प्रकार वहाँके वृक्ष सुगन्धित फूल और अत्यन्त रमणीय फल धारण करते थे॥ ७॥

चैत्ररथ और नन्दनवनके समान वहाँका मनोहर वन सभी ऋतुओंमें भ्रमरोंसे व्याप्त हो रमणीय शोभा धारण करता था॥ ८॥

दात्यूह, कोयष्टि, बक और नाचते हुए मोर उस वनको सुशोभित करते थे। वनमें झरनोंके आसपास कोकिलकी कूक सुनायी पड़ती थी॥ ९॥

लङ्काके वन और उपवन नित्य मतवाले विहङ्गमोंसे विभूषित थे। वहाँ वृक्षोंकी डालियोंपर भौंरे मँडराते रहते थे। उनके प्रत्येक खण्डमें कोकिलाएँ कुहू-कुहू बोला करती थीं। पक्षी चहचहाते रहते थे। भृङ्गराजके गीत मुखरित होते थे। कुररके शब्द गूँजा करते थे। कोणालकके कलरव होते रहते थे तथा सारसोंकी स्वरलहरी सब ओर छायी रहती थी। कुछ वानरवीर उन वनों और उपवनोंमें घुस गये॥ १०-११॥

वे सभी वीर वानर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, उत्साही और आनन्दमग्न थे। उन महातेजस्वी वानरोंके वहाँ प्रवेश करते ही फूलोंके संसर्गसे सुगन्धित

तथा घ्राणेन्द्रियको सुख देनेवाली मन्द वायु चलने लगी। दूसरे बहुत-से यूथपति उन वानरवीरोंके समूहसे निकलकर सुग्रीवकी आज्ञा ले ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीमें गये॥ १२-१३॥

गर्जनेवाले लोगोंमेंसे श्रेष्ठ वे वानरवीर अपने सिंहनादसे पक्षियोंको डराते, मृगों और हाथियोंके हर्ष छीनते तथा लङ्काको कम्पित करते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ १४॥

वे महान् वेगशाली वानर पृथ्वीको जब चरणोंसे दबाते थे, उस समय उनके पैरोंसे उठी हुई धूल सहसा ऊपरको उड़ जाती थी॥ १५॥

वानरोंके उस सिंहनादसे त्रस्त एवं भयभीत हुए रीछ, सिंह, भैंसे, हाथी, मृग और पक्षी दसों दिशाओंकी ओर भाग गये॥ १६॥

त्रिकूट पर्वतका एक शिखर बहुत ऊँचा था। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वर्गलोकको छू रहा हो। उसपर सब ओर पीले रंगके फूल खिले हुए थे, जिनसे वह सोनेका-सा जान पड़ता था॥ १७॥

उस शिखरका विस्तार सौ योजन था। वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर, स्वच्छ, स्निग्ध, कान्तिमान् और विशाल था। पक्षियोंके लिये भी उसकी चोटीतक पहुँचना कठिन होता था॥ १८॥

लोग त्रिकूटके उस शिखरपर मनके द्वारा चढ़नेकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। फिर क्रियाद्वारा उसपर आरूढ़ होनेकी तो बात ही क्या है? रावणद्वारा पालित लङ्का त्रिकूटके उसी शिखरपर बसी हुई थी॥ १९॥

वह पुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी थी। सफेद बादलोंके समान ऊँचे-ऊँचे गोपुर तथा सोने और चाँदीके परकोटे उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ २०॥

जैसे ग्रीष्मके अन्तकाल—वर्षा ऋतुमें घनीभूत बादल आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार प्रासादों[1] और विमानोंसे[2] लङ्कापुरी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी॥

उस पुरीमें सहस्र खम्भोंसे अलंकृत एक चैत्यप्रासाद था, जो कैलास-शिखरके समान दिखायी देता था। वह आकाशको मापता हुआ-सा जान पड़ता था॥ २२॥

राक्षसराज रावणका वह चैत्यप्रासाद लङ्कापुरीका आभूषण था। कई सौ राक्षस रक्षाके सभी साधनोंसे सम्पन्न होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे॥ २३॥

इस प्रकार वह पुरी बड़ी ही मनोहर, सुवर्णमयी, अनेकानेक पर्वतोंसे अलंकृत, नाना प्रकारकी विचित्र धातुओंसे चित्रित और अनेक उद्यानोंसे सुशोभित थी॥

भाँति-भाँतिके विहङ्गम वहाँ अपनी मधुर बोली बोल रहे थे। नाना प्रकारके मृग आदि पशु उसका सेवन करते थे। अनेक प्रकारके फूलोंकी सम्पत्तिसे वह सम्पन्न थी और विविध प्रकारके आकारवाले राक्षस वहाँ निवास करते थे॥ २५॥

धन-धान्यसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे भरी-पूरी उस रावण-पुरीको लक्ष्मणके बड़े भाई लक्ष्मीवान् श्रीरामने वानरोंके साथ देखा॥ २६॥

बड़े-बड़े महलोंसे सघन बसी हुई उस स्वर्गतुल्य नगरीको देखकर पराक्रमी श्रीराम बड़े विस्मित हुए॥

इस प्रकार अपनी विशाल सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने

१. अमरकोशके अनुसार देवताओंके मन्दिरों तथा राजाओंके महलोंको प्रासाद कहते हैं। प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार बहुत लंबा, चौड़ा, ऊँचा और कई भूमियोंका पक्का या पत्थरका बना हुआ भव्य भवन जिसमें अनेक शृङ्ग, शृङ्खला और अण्डक आदि हों 'प्रासाद' कहा गया है। उसमें बहुत-से गवाक्षोंसे युक्त त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत और वृत्तशालाएँ बनी होती हैं। आकृतिके भेदसे पुराणोंमें प्रासादके पाँच भेद किये गये हैं—चतुरस्र, चतुरायत, वृत्त, वृत्तायत और अष्टास्र। इनका नाम क्रमशः वैराज, पुष्पक, कैलास, मालक और त्रिविष्टप है। भूमि, अण्डक और शिखर आदिकी न्यूनता-अधिकताके कारण इन पाँचोंके नौ-नौ भेद माने गये हैं। जैसे वैराजके मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स; पुष्पकके वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिविकावेश्म; कैलासके वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, गवाक्ष और गवावृत्त; मालकके गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय और पृथ्वीधर तथा त्रिविष्टपके वज्र, चक्र, मुष्टिक या वभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष और विजय।

२. आकाशमार्गसे गमन करनेवाला रथ जो देवता आदिके पास होता है 'विमान' कहलाता है। सात मंजिलके मकानको भी विमान कहते हैं। प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार उस देवमन्दिरको विमानकी संज्ञा दी गयी है जो ऊपरकी ओर पतला होता चला गया हो। मानसार नामक प्राचीन ग्रन्थके अनुसार विमान गोल, चौपहला और अठपहला होता है। गोलको बेसर, चौपहलेको नागर और अठपहलेको द्राविड़ कहते हैं (हिंदी-शब्दसागरसे)।

अनेक प्रकारके रत्नोंसे पूर्ण, तरह-तरहकी रचनाओंसे सुसज्जित, ऊँचे-ऊँचे महलोंकी पंक्तिसे अलंकृत और बड़े-बड़े यन्त्रोंसे युक्त मजबूत किवाड़ोंवाली वह अद्भुत पुरी देखी॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध

तदनन्तर वानरयूथोंसे युक्त सुग्रीवसहित श्रीराम सुवेल पर्वतके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़े, जिसका विस्तार दो योजनका था॥ १॥

वहाँ दो घड़ी ठहरकर दसों दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करते हुए श्रीरामने त्रिकूट पर्वतके रमणीय शिखरपर सुन्दर ढंगसे बसी हुई विश्वकर्माद्वारा निर्मित लङ्कापुरीको देखा, जो मनोहर काननोंसे सुशोभित थी॥

उस नगरके गोपुरकी छतपर उन्हें दुर्जय राक्षसराज रावण बैठा दिखायी दिया, जिसके दोनों ओर श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, सिरपर विजय-छत्र शोभा दे रहा था। रावणका सारा शरीर रक्तचन्दनसे चर्चित था। उसके अङ्ग लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित थे॥ ३-४॥

वह काले मेघके समान जान पड़ता था। उसके वस्त्रोंपर सोनेके काम किये गये थे। ऐरावत हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे आहत होनेके कारण उसके वक्ष:स्थलमें आघातचिह्न बन गया था॥ ५॥

खरगोशके रक्तके समान लाल रंगसे रँगे हुए वस्त्रसे आच्छादित होकर वह आकाशमें संध्याकालकी धूपसे ढकी हुई मेघमालाके समान दिखायी देता था॥ ६॥

मुख्य-मुख्य वानरों तथा श्रीरघुनाथजीके सामने ही राक्षसराज रावणपर दृष्टि पड़ते ही सुग्रीव सहसा खड़े हो गये॥ ७॥

वे क्रोधके वेगसे युक्त और शारीरिक एवं मानसिक बलसे प्रेरित हो सुवेलके शिखरसे उठकर उस गोपुरकी छतपर कूद पड़े॥ ८॥

वहाँ खड़े होकर वे कुछ देर तो रावणको देखते रहे। फिर निर्भय चित्तसे उस राक्षसको तिनकेके समान समझकर वे कठोर वाणीमें बोले—॥ ९॥

'राक्षस! मैं लोकनाथ भगवान् श्रीरामका सखा और दास हूँ। महाराज श्रीरामके तेजसे आज तू मेरे हाथसे छूट नहीं सकेगा'॥ १०॥

ऐसा कहकर वे अकस्मात् उछलकर रावणके ऊपर जा कूदे और उसके विचित्र मुकुटोंको खींचकर उन्होंने पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ११॥

उन्हें इस प्रकार तीव्र गतिसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख रावणने कहा—'अरे! जबतक तू मेरे सामने नहीं आया था, तभीतक सुग्रीव (सुन्दर कण्ठसे युक्त) था। अब तो तू अपनी इस ग्रीवासे रहित हो जायगा'॥

ऐसा कहकर रावणने अपनी दो भुजाओंद्वारा उन्हें शीघ्र ही उठाकर उस छतकी फर्शपर दे मारा। फिर वानरराज सुग्रीवने भी गेंदकी तरह उछलकर रावणको दोनों भुजाओंसे उठा लिया और उसी फर्शपर जोरसे पटक दिया॥ १३॥

फिर तो वे दोनों आपसमें गुँथ गये। दोनोंके ही शरीर पसीनेसे तर और खूनसे लथपथ हो गये तथा दोनों ही एक-दूसरेकी पकड़में आनेके कारण निश्चेष्ट होकर खिले हुए सेमल और पलाश नामक वृक्षोंके समान दिखायी देने लगे॥ १४॥

राक्षसराज रावण और वानरराज सुग्रीव दोनों ही बड़े बलवान् थे, अत: दोनों घूँसे, थप्पड़, कोहनी और पंजोंकी मारके साथ बड़ा असह्य युद्ध करने लगे॥ १५॥

गोपुरके चबूतरेपर बहुत देरतक भारी मल्लयुद्ध करके वे भयानक वेगवाले दोनों वीर बार-बार एक-दूसरेको उछालते और झुकाते हुए पैरोंको विशेष दाँव-पेंचके साथ चलाते-चलाते उस चबूतरेसे जा लगे॥ १६॥

एक-दूसरेको दबाकर परस्पर सटे हुए शरीरवाले वे दोनों योद्धा किलेके परकोटे और खाईंके बीचमें गिर गये। वहाँ हाँफते हुए दो घड़ीतक पृथ्वीका आलिङ्गन किये पड़े रहे। तत्पश्चात् उछलकर खड़े हो गये॥ १७॥

फिर वे एक-दूसरेका बार-बार आलिङ्गन करके उसे बाहुपाशमें जकड़ने लगे। दोनों ही क्रोध, शिक्षा (मल्लयुद्ध-विषयक अभ्यास) तथा शारीरिक बलसे सम्पन्न थे; अत: उस युद्धस्थलमें कुश्तीके अनेक दाँव-पेंच दिखाते हुए भ्रमण करने लगे॥ १८॥

जिनके नये-नये दाँत निकले हों, ऐसे बाघ और सिंहके बच्चों तथा परस्पर लड़ते हुए गजराजके छोटे छौनोंके समान वे दोनों वीर अपने वक्ष:स्थलसे एक-दूसरेको दबाते और हाथोंसे परस्पर बल आजमाते हुए एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १९ ॥

दोनों ही कसरती जवान थे और युद्धकी शिक्षा तथा बलसे सम्पन्न थे। अत: युद्ध जीतनेके लिये उद्यमशील हो एक-दूसरेपर आक्षेप करते हुए युद्धमार्गपर अनेक प्रकारसे विचरण करते थे तथापि उन वीरोंको जल्दी थकावट नहीं होती थी॥ २० ॥

मतवाले हाथियोंके समान सुग्रीव और रावण गजराजके शुण्ड-दण्डकी भाँति मोटे एवं बलिष्ठ बाहुदण्डोंद्वारा एक-दूसरेके दाँवको रोकते हुए बहुत देरतक बड़े आवेशके साथ युद्ध करते और शीघ्रतापूर्वक पैंतरे बदलते रहे॥ २१ ॥

वे परस्पर भिड़कर एक-दूसरेको मार डालनेका प्रयत्न कर रहे थे। जैसे दो बिलाव किसी भक्ष्य वस्तुके लिये क्रोधपूर्वक स्थित हो परस्पर दृष्टिपात कर बारंबार गुर्राते रहते हैं, उसी तरह रावण और सुग्रीव भी लड़ रहे थे॥ २३ ॥

विचित्र मण्डल[1] और भाँति-भाँतिके स्थानका[2] प्रदर्शन करते हुए गोमूत्रकी रेखाके समान कुटिल गतिसे चलते और विचित्र रीतिसे कभी आगे बढ़ते और कभी पीछे हटते थे॥ २३ ॥

वे कभी तिरछी चालसे चलते, कभी टेढ़ी चालसे दायें-बायें घूम जाते, कभी अपने स्थानसे हटकर शत्रुके प्रहारको व्यर्थ कर देते, कभी बदलेमें स्वयं भी दाँव-पेंचका प्रयोग करके शत्रुके आक्रमणसे अपनेको बचा लेते, कभी एक खड़ा रहता तो दूसरा उसके चारों ओर दौड़ लगाता, कभी दोनों एक-दूसरेके सम्मुख शीघ्रतापूर्वक दौड़कर आक्रमण करते, कभी झुककर या मेढककी भाँति धीरेसे उछलकर चलते, कभी लड़ते हुए एक ही जगहपर स्थिर रहते, कभी पीछेकी ओर लौट पड़ते, कभी सामने खड़े-खड़े ही पीछे हटते, कभी विपक्षीको पकड़नेकी इच्छासे अपने शरीरको सिकोड़कर या झुकाकर उसकी ओर दौड़ते, कभी प्रतिद्वन्द्वीपर पैरसे प्रहार करनेके लिये नीचे मुँह किये उसपर टूट पड़ते, कभी प्रतिपक्षी योद्धाकी बाँह पकड़नेके लिये अपनी बाँह फैला देते और कभी विरोधीकी पकड़से बचनेके लिये अपनी बाँहोंको पीछे खींच लेते। इस प्रकार मल्लयुद्धकी कलामें परम प्रवीण वानरराज सुग्रीव तथा रावण एक दूसरेपर आघात करनेके लिये मण्डलाकार विचर रहे थे॥

इसी बीचमें राक्षस रावणने अपनी मायाशक्तिसे काम लेनेका विचार किया। वानरराज सुग्रीव इस बातको ताड़ गये; इसलिये सहसा आकाशमें उछल पड़े। वे विजयोल्लाससे सुशोभित होते थे और थकावटको जीत चुके थे। वानरराज रावणको चकमा देकर निकल गये और वह खड़ा-खड़ा देखता ही रह गय॥ २७-२८ ॥

जिन्हें संग्राममें कीर्ति प्राप्त हुई थी, वे वानरराज सूर्यपुत्र सुग्रीव निशाचरपति रावणको युद्धमें थकाकर अत्यन्त विशाल आकाशमार्गका लङ्घन करके वानरोंकी सेनाके बीच श्रीरामचन्द्रजीके पास आ पहुँचे॥ २९ ॥

इस प्रकार वहाँ अद्भुत कर्म करके वायुके समान शीघ्रगामी सूर्यपुत्र सुग्रीवने दशरथराजकुमार श्रीरामके युद्धविषयक उत्साहको बढ़ाते हुए बड़े हर्षके साथ वानरसेनामें प्रवेश किया। उस समय प्रधान-प्रधान वानरोंने वानरराजका अभिनन्दन किया॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४० ॥

---

१. भरतने मल्लयुद्धमें चार प्रकारके मण्डल बताये हैं। इनके नाम हैं—चारिमण्डल, करणमण्डल, खण्डमण्डल और महामण्डल। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—एक पैरसे आगे बढ़कर चक्कर काटते हुए शत्रुपर आक्रमण करना चारिमण्डल कहलाता है। दो पैरसे मण्डलाकार घूमते हुए आक्रमण करना करणमण्डल कहा गया है। अनेक करणमण्डलोंका संयोग होनेसे खण्डमण्डल होता है और तीन या चार खण्डमण्डलोंके संयोगसे महामण्डल कहा गया है।

२. भरत मुनिने मल्लयुद्धमें छ: स्थानोंका उल्लेख किया है—वैष्णव, समपाद, वैशाख, मण्डल, प्रत्यालीढ़ और अनालीढ़। पैरोंको आगे-पीछे अगल-बगलमें चलाते हुए विशेष प्रकारसे उन्हें यथास्थान स्थापित करना ही स्थान कहलाता है। कोई-कोई बाघ, सिंह आदि जन्तुओंके समान खड़े होनेकी रीतिको ही स्थान कहते हैं।

इकतालीसवाँ सर्ग

श्रीरामका सुग्रीवको दुःसाहससे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरसैनिकोंकी नियुक्ति, रामदूत अङ्गदका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरोंके आक्रमणसे राक्षसोंको भय

सुग्रीवके शरीरमें युद्धके चिह्न देखकर लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

'सुग्रीव! तुमने मुझसे सलाह लिये बिना ही यह बड़े साहसका काम कर डाला। राजालोग ऐसे दुःसाहसपूर्ण कार्य नहीं किया करते हैं॥ २ ॥

'साहसप्रिय वीर! तुमने मुझको, इस वानरसेनाको और विभीषणको भी संशयमें डालकर जो यह साहसपूर्ण कार्य किया है, इससे हमें बड़ा कष्ट हुआ॥ ३ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! अब फिर तुम ऐसा दुःसाहस न करना। शत्रुसूदन महाबाहो! यदि तुम्हें कुछ हो गया तो मैं, सीता, भरत, लक्ष्मण, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा अपने इस शरीरको भी लेकर क्या करूँगा?॥

'महेन्द्र और वरुणके समान महाबली! यद्यपि मैं तुम्हारे बल-पराक्रमको जानता था, तथापि जबतक तुम यहाँ लौटकर नहीं आये थे, उससे पहले मैंने यह निश्चित विचार कर लिया था कि युद्धमें पुत्र, सेना और वाहनों-सहित रावणका वध करके लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक कर दूँगा और अयोध्याका राज्य भरतको देकर अपने इस शरीरको त्याग दूँगा'॥ ६-७½ ॥

ऐसी बातें कहते हुए श्रीरामको सुग्रीवने यों उत्तर दिया—'वीर रघुनन्दन! अपने पराक्रमका ज्ञान रखते हुए मैं आपकी भार्याका अपहरण करनेवाले रावणको देखकर कैसे क्षमा कर सकता था?'॥ ८-९ ॥

वीर सुग्रीवने जब ऐसी बात कही, तब उनका अभिनन्दन करके श्रीरामचन्द्रजीने शोभासम्पन्न लक्ष्मणसे कहा— ॥ १० ॥

'लक्ष्मण! शीतल जलसे भरे हुए जलाशय और फलोंसे सम्पन्न वनका आश्रय ले हमलोग इस विशाल वानरसेनाका विभाग करके व्यूहरचना कर लें और युद्धके लिये उद्यत हो जायँ॥ ११ ॥

'इस समय मैं लोकसंहारकी सूचना देनेवाला भयानक अपशकुन उपस्थित देखता हूँ, जिससे सिद्ध होता है रीछों, वानरों और राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीरोंका संहार होगा॥ १२ ॥

'प्रचण्ड आँधी चल रही है, पृथ्वी काँपने लगी है, पर्वतोंके शिखर हिलने लगे हैं और दिग्गज चीत्कार करते हैं॥ १३ ॥

'मेघ हिंसक जीवोंके समान क्रूर हो गये हैं। वे कठोर स्वरमें विकट गर्जना करते हैं तथा रक्तविन्दुओंसे मिले हुए जलकी क्रूरतापूर्ण वर्षा कर रहे हैं॥ १४ ॥

'अत्यन्त दारुण संध्या रक्त-चन्दनके समान लाल दिखायी देती है। सूर्यसे यह जलती आगका पुञ्ज गिर रहा है॥ १५ ॥

'निषिद्ध पशु और पक्षी दीन हो दीनतासूचक स्वरमें सूर्यकी ओर देखते हुए चीत्कार करते हैं, इससे वे बड़े भयंकर लगते और महान् भय उत्पन्न करते हैं॥

'रातमें चन्द्रमाका प्रकाश क्षीण हो जाता है। वे शीतलताकी जगह संताप देते हैं। उनके किनारेका भाग काला और लाल दिखायी देता है। समस्त लोकोंके संहारकालमें चन्द्रमाका जैसा रूप रहता है, वैसा ही इस समय भी देखा जाता है॥ १७ ॥

'लक्ष्मण! सूर्यमण्डलमें छोटा, रूखा, अमङ्गलकारी और अत्यन्त लाल घेरा दिखायी देता है। साथ ही वहाँ काला चिह्न भी दृष्टिगोचर होता है॥ १८ ॥

'लक्ष्मण! ये नक्षत्र अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो रहे हैं—मलिन दिखायी देते हैं। यह अशुभ लक्षण संसारका प्रलय-सा सूचित करता हुआ मेरे सामने प्रकट हो रहा है॥ १९ ॥

'कौए, बाज और गीध नीचे गिरते हैं—भूतलपर आ-आ बैठते हैं और गीदड़ियाँ बड़े जोर-जोरसे अमङ्गलसूचक बोली बोलती हैं॥ २० ॥

'इससे सूचित होता है कि वानरों और राक्षसोंद्वारा चलाये गये शिलाखण्डों, शूलों और खड्गोंसे यह धरती पट जायगी और यहाँ रक्त-मांसकी कीच जम जायगी॥

'रावणके द्वारा पालित यह लङ्कापुरी शत्रुओंके लिये दुर्जय है, तथापि अब हम शीघ्र ही वानरोंके साथ इसपर सब ओरसे वेगपूर्वक आक्रमण करें'॥ २२ ॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहते हुए वीर महाबली श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वत-शिखरसे तत्काल नीचे उतर आये॥ २३ ॥

उस पर्वतसे उतरकर धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनाका निरीक्षण किया, जो शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय थी॥ २४॥

फिर सुग्रीवकी सहायतासे कपिराजकी उस विशाल सेनाको सुसज्जित करके समयका ज्ञान रखनेवाले श्रीरामने ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभ समयमें उसे युद्धके लिये कूच करनेकी आज्ञा दी॥ २५॥

तदनन्तर महाबाहु धनुर्धर श्रीरघुनाथजी उस विशाल सेनाके साथ शुभ मुहूर्तमें आगे-आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए॥ २६॥

उस समय विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान्, नल, नील तथा लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चले॥ २७॥

तत्पश्चात् रीछों और वानरोंकी वह विशाल सेना बहुत बड़ी भूमिको आच्छादित करके श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे चली॥ २८॥

शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोकनेवाले हाथीके समान विशालकाय वानरोंने सैकड़ों शैलशिखरों और बड़े-बड़े वृक्षोंको हाथमें ले रखा था॥ २९॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण थोड़ी ही देरमें लङ्कापुरीके पास पहुँच गये॥

वह रमणीय ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत थी। अनेकानेक उद्यान और वन उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और ऊँचा परकोटा था। उस परकोटेसे मिला हुआ ही नगरका सदर फाटक था। उन परकोटोंके कारण लङ्कापुरीमें पहुँचना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था॥ ३१॥

यद्यपि देवताओंके लिये भी लङ्कापर आक्रमण करना कठिन काम था तो भी श्रीरामकी आज्ञासे प्रेरित हो वानर यथास्थान रहकर उस पुरीपर घेरा डालकर उसके भीतर प्रवेश करने लगे॥ ३२॥

लङ्काका उत्तर द्वार पर्वतशिखरके समान ऊँचा था। श्रीराम और लक्ष्मणने धनुष हाथमें लेकर उसका मार्ग रोक लिया और वहीं रहकर वे अपनी सेनाकी रक्षा करने लगे॥ ३३॥

दशरथनन्दन वीर श्रीराम लक्ष्मणको साथ ले रावणपालित लङ्कापुरीके पास जा उत्तर द्वारपर पहुँचकर जहाँ स्वयं रावण खड़ा था, वहीं डट गये। श्रीरामके सिवा दूसरा कोई उस द्वारपर अपने सैनिकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था॥ ३४-३५॥

अस्त्र-शस्त्रधारी भयंकर राक्षसोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित उस भयानक द्वारपर रावण उसी तरह खड़ा था, जैसे वरुण देवता समुद्रमें अधिष्ठित होते हैं॥ ३६॥

वह उत्तर द्वार अल्प बलशाली पुरुषोंके मनमें उसी प्रकार भय उत्पन्न करता था, जैसे दानवोंद्वारा सुरक्षित पाताल भयदायक जान पड़ता है। उस द्वारके भीतर योद्धाओंके बहुत-से भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और कवच रखे गये थे, जिन्हें भगवान् श्रीरामने देखा॥

वानरसेनापति पराक्रमी नील मैन्द और द्विविदके साथ लङ्काके पूर्वद्वारपर जाकर डट गये॥ ३८½॥

महाबली अङ्गदने ऋषभ, गवाक्ष, गज और गवयके साथ दक्षिण द्वारपर अधिकार जमा लिया॥ ३९½॥

प्रमाथी, प्रघस तथा अन्य वानरवीरोंके साथ बलवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने पश्चिम द्वारका मार्ग रोक लिया॥ ४०½॥

उत्तर और पश्चिमके मध्यभागमें (वायव्यकोणमें) जो राक्षससेनाकी छावनी थी, उसपर गरुड़ और वायुके समान वेगशाली श्रेष्ठ वानरवीरोंके साथ सुग्रीवने आक्रमण किया॥ ४१½॥

जहाँ वानरराज सुग्रीव थे, वहाँ वानरोंके छत्तीस करोड़ विख्यात यूथपति राक्षसोंको पीड़ा देते हुए उपस्थित रहते थे॥ ४२½॥

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणसहित लक्ष्मणने लङ्काके प्रत्येक द्वारपर एक-एक करोड़ वानरोंको नियुक्त कर दिया॥ ४३½॥

सुषेण और जाम्बवान् बहुत-सी सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे थोड़ी ही दूरपर रहकर बीचके मोर्चेकी रक्षा करते रहे॥ ४४½॥

वे वानरसिंह बाघोंके समान बड़े-बड़े दाढ़ोंसे युक्त थे। वे हर्ष और उत्साहमें भरकर हाथोंमें वृक्ष और पर्वत-शिखर लिये युद्धके लिये डट गये॥ ४५॥

सभी वानरोंकी पूँछें क्रोधके कारण अस्वाभाविक रूपसे हिल रही थीं। दाढ़ें और नख ही उन सबके आयुध थे। उन सबके मुख आदि अङ्गोंपर क्रोधरूप विकारके विचित्र चिह्न परिलक्षित होते थे तथा सबके मुख विकट एवं विकराल दिखायी देते थे॥ ४६॥

इनमेंसे किन्हीं वानरोंमें दस हाथियोंका बल था, कोई उनसे भी दस गुने अधिक बलवान् थे तथा

किन्हींमें एक हजार हाथियोंके समान बल था॥ ४७॥

किन्हींमें दस हजार हाथियोंकी शक्ति थी, कोई इनसे भी सौ गुने बलवान् थे तथा अन्य बहुतेरे वानर-यूथपतियोंमें तो बलका परिमाण ही नहीं था। वे असीम बलशाली थे॥ ४८॥

वहाँ उन वानरसेनाओंका टिड्डीदलके उद्गमके समान अद्भुत एवं विचित्र समागम हुआ था॥ ४९॥

लङ्कामें उछल-उछलकर आते हुए वानरोंसे आकाश भर गया था और पुरीमें प्रवेश करके खड़े हुए कपिसमूहोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी॥ ५०॥

रीछों और वानरोंकी एक करोड़ सेना तो लङ्काके चारों द्वारोंपर आकर डटी थी और अन्य सैनिक सब ओर युद्धके लिये चले गये थे॥ ५१॥

समस्त वानरोंने चारों ओरसे उस त्रिकूट पर्वतको (जिसपर लङ्का बसी थी) घेर लिया था। सहस्र अयुत (एक करोड़) वानर तो उस पुरीमें सभी द्वारोंपर लड़ती हुई सेनाका समाचार लेनेके लिये नगरमें सब ओर घूमते रहते थे॥ ५२॥

हाथोंमें वृक्ष लिये बलवान् वानरोंद्वारा सब ओरसे घिरी हुई लङ्कामें वायुके लिये भी प्रवेश पाना कठिन हो गया था॥ ५३॥

मेघके समान काले एवं भयंकर तथा इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानरोंद्वारा सहसा पीड़ित होनेके कारण राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ ५४॥

जैसे सेतुको विदीर्ण कर अथवा मर्यादाको तोड़कर बहनेवाले समुद्रके जलका महान् शब्द होता है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करती हुई विशाल वानरसेनाका महान् कोलाहल हो रहा था॥ ५५॥

उस महान् कोलाहलसे परकोटों, फाटकों, पर्वतों, वनों तथा काननोंसहित समूची लङ्कापुरीमें हलचल मच गयी॥ ५६॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह विशाल वानरवाहिनी समस्त देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय हो गयी थी॥ ५७॥

इस प्रकार राक्षसोंके वधके लिये अपनी सेनाको यथास्थान खड़ी करके उसके बादके कर्तव्यको जाननेकी इच्छासे श्रीरघुनाथजीने मन्त्रियोंके साथ बारंबार सलाह की और एक निश्चयपर पहुँचकर साम, दान आदि उपायोंके क्रमशः प्रयोगसे सुलभ होनेवाले अर्थतत्त्वके ज्ञाता श्रीराम विभीषणकी अनुमति ले राजधर्मका विचार करते हुए वालिपुत्र अङ्गदको बुलाकर उनसे इस प्रकार बोले— ॥ ५८-५९ $\frac{१}{२}$ ॥

'सौम्य! कपिप्रवर! दशमुख रावण राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया, अब उसका ऐश्वर्य समाप्त हो चला, वह मरना ही चाहता है, इसलिये उसकी चेतना (विचार-शक्ति) नष्ट हो गयी है। तुम परकोटा लाँघकर लङ्कापुरीमें भय छोड़कर जाओ और व्यथारहित हो उससे मेरी ओरसे ये बातें कहो— ॥ ६०-६१॥

''निशाचर! राक्षसराज! तुमने मोहवश घमंडमें आकर ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा अपराध किया है। ब्रह्माजीका वरदान पाकर तुम्हें जो अभिमान हो गया था, निश्चय ही उसके नष्ट होनेका अब समय आ गया है। तुम्हारे उस पापका दुःसह फल आज उपस्थित है॥ ६२-६३॥

''मैं अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने जो मेरी भार्याका अपहरण किया है, इससे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है; अतः तुम्हें उसका दण्ड देनेके लिये मैं लङ्काके द्वारपर आकर खड़ा हूँ॥ ६४॥

''राक्षस! यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक खड़े रहे तो उन समस्त देवताओं, महर्षियों और राजर्षियोंकी पदवीको पहुँच जाओगे—उन्हींकी भाँति तुम्हें परलोकवासी होना पड़ेगा॥ ६५॥

''नीच निशाचर! जिस बलके भरोसे तुमने मुझे धोखा देकर मायासे सीताका हरण किया है, उसे आज युद्धके मैदानमें दिखाओ॥ ६६॥

''यदि तुम मिथिलेशकुमारीको लेकर मेरी शरणमें नहीं आये तो मैं अपने तीखे बाणोंद्वारा इस संसारको राक्षसोंसे सूना कर दूँगा॥ ६७॥

''राक्षसोंमें श्रेष्ठ ये श्रीमान् धर्मात्मा विभीषण भी मेरे साथ यहाँ आये हैं, निश्चय ही लङ्काका निष्कण्टक राज्य इन्हें ही प्राप्त होगा॥ ६८॥

''तुम पापी हो। तुम्हें अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं है और तुम्हारे संगी-साथी भी मूर्ख हैं; अतः इस प्रकार अधर्मपूर्वक अब तुम एक क्षण भी इस राज्यको नहीं भोग सकोगे॥ ६९॥

''राक्षस! शूरताका आश्रय ले धैर्य धारण करके मेरे साथ युद्ध करो। रणभूमिमें मेरे बाणोंसे शान्त (प्राणशून्य)

होकर तुम पूत (शुद्ध एवं निष्पाप) हो जाओगे॥ ७०॥

"निशाचर! मेरे दृष्टिपथमें आनेके पश्चात् यदि तुम पक्षी होकर तीनों लोकोंमें उड़ते और छिपते फिरो तो भी अपने घरको जीवित नहीं लौट सकोगे॥ ७१॥

"अब मैं तुम्हें हितकी बात बताता हूँ। तुम अपना श्राद्ध कर डालो—परलोकमें सुख देनेवाले दान-पुण्य कर लो और लङ्काको जी भरकर देख लो; क्योंकि तुम्हारा जीवन मेरे अधीन हो चुका है"॥ ७२॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर ताराकुमार अङ्गद मूर्तिमान् अग्निकी भाँति आकाशमार्गसे चल दिये॥ ७३॥

श्रीमान् अङ्गद एक ही मुहूर्तमें परकोटा लाँघकर रावणके राजभवनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मन्त्रियोंके साथ शान्तभावसे बैठे हुए रावणको देखा॥ ७४॥

वानरश्रेष्ठ अङ्गद सोनेके बाजूबंद पहने हुए थे और प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे, वे रावणके निकट पहुँचकर खड़े हो गये॥ ७५॥

उन्होंने पहले अपना परिचय दिया और मन्त्रियों-सहित रावणको श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सारी उत्तम बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। न तो एक भी शब्द कम किया और न बढ़ाया॥ ७६॥

वे बोले—'मैं अनायास ही बड़े-बड़े उत्तम कर्म करनेवाले कोसलनरेश महाराज श्रीरामका दूत और वालीका पुत्र अङ्गद हूँ। सम्भव है कभी मेरा नाम भी तुम्हारे कानोंमें पड़ा हो॥ ७७॥

'माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले रघुकुल-तिलक श्रीरामने तुम्हारे लिये यह संदेश दिया है—'नृशंस रावण! जरा मर्द बनो और घरसे बाहर निकलकर युद्धमें मेरा सामना करो॥ ७८॥

"मैं मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा वध करूँगा; क्योंकि तुम्हारे मारे जानेसे तीनों लोकोंके प्राणी निर्भय हो जायँगे॥ ७९॥

"तुम देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—सभीके शत्रु हो। ऋषियोंके लिये तो कंटकरूप ही हो; अतः आज मैं तुम्हें उखाड़ फेंकूँगा॥ ८०॥

"अतः यदि तुम मेरे चरणोंमें गिरकर आदरपूर्वक सीताको नहीं लौटाओगे तो मेरे हाथसे मारे जाओगे और तुम्हारे मारे जानेपर लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणको प्राप्त होगा"॥ ८१॥

वानरशिरोमणि अङ्गदके ऐसे कठोर वचन कहनेपर निशाचरगणोंका राजा रावण अत्यन्त अमर्षसे भर गया॥

रोषसे भरे हुए रावणने उस समय अपने मन्त्रियोंसे बार-बार कहा—'पकड़ लो इस दुर्बुद्धि वानरको और मार डालो'॥ ८३॥

रावणकी यह बात सुनकर चार भयंकर निशाचरोंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अङ्गदको पकड़ लिया॥

आत्मबलसे सम्पन्न ताराकुमार अङ्गदने उस समय राक्षसोंको अपना बल दिखानेके लिये स्वयं ही अपने-आपको पकड़ा दिया॥ ८५॥

फिर वे पक्षियोंकी तरह अपनी दोनों भुजाओंसे जकड़े हुए उन चारों राक्षसोंको लिये-दिये ही उछले और उस महलकी छतपर, जो पर्वतशिखरके समान ऊँची थी, चढ़ गये॥ ८६॥

उनके उछलनेके वेगसे झटका खाकर वे सब राक्षस राक्षसराज रावणके देखते-देखते पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८७॥

तदनन्तर प्रतापी वालिकुमार अङ्गद राक्षसराजके उस महलकी चोटीपर, जो पर्वतशिखरके समान ऊँची थी, पैर पटकते हुए घूमने लगे॥ ८८॥

उनके पैरोंसे आक्रान्त होकर वह छत रावणके देखते-देखते फट गयी। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें वज्रके आघातसे हिमालयका शिखर विदीर्ण हो गया था॥

इस प्रकार महलकी छत तोड़कर उन्होंने अपना नाम सुनाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया और वे आकाशमार्गसे उड़ चले॥ ९०॥

राक्षसोंको पीड़ा देते और समस्त वानरोंका हर्ष बढ़ाते हुए वे वानरसेनाके बीच श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आये॥ ९१॥

अपने महलके टूटनेसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ, परंतु विनाशकी घड़ी आयी देख वह लंबी साँस छोड़ने लगा॥ ९२॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी हर्षसे भरकर गर्जना करते हुए बहुसंख्यक वानरोंसे घिरे रहकर युद्धके लिये ही डटे रहे। वे अपने शत्रुका वध करना चाहते थे॥ ९३॥

इसी समय पर्वतशिखरके समान विशालकाय महापराक्रमी दुर्जय वानर वीर सुषेणने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुसंख्यक वानरोंके साथ लङ्काके सभी दरवाजोंको काबूमें कर लिया और सुग्रीवकी

आज्ञाके अनुसार वे (अपने सैनिकोंकी रक्षा करने एवं सभी द्वारोंका समाचार जाननेके लिये) बारी-बारीसे उन सबपर विचरने लगे, जैसे चन्द्रमा क्रमशः सब नक्षत्रोंपर गमन करते हैं॥ ९४-९५॥

लङ्कापर घेरा डालकर समुद्रतक फैले हुए उन वनवासी वानरोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाओंको देख राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ। बहुत-से निशाचर भयभीत हो गये तथा अन्य कितने ही राक्षस समराङ्गणमें हर्ष और उत्साहसे भर गये॥ ९६-९७॥

उस समय लङ्काकी चहारदीवारी और खाईं सारी-की-सारी वानरोंसे व्याप्त हो रही थी। इस तरह राक्षसोंने चहारदीवारीको जब वानराकार हुई देखा, तब वे दीन-दुःखी और भयभीत हो हाहाकार करने लगे॥ ९८॥

वह महाभीषण कोलाहल आरम्भ होनेपर राक्षसराज रावणके योद्धा निशाचर बड़े-बड़े आयुध हाथोंमें लेकर प्रलयकालकी प्रचण्ड वायुके समान सब ओर विचरने लगे॥ ९९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध

तदनन्तर उन राक्षसोंने रावणके महलमें जाकर यह निवेदन किया कि 'वानरोंके साथ श्रीरामने लङ्कापुरीको चारों ओरसे घेर लिया है'॥ १॥

लङ्काके घेरे जानेकी बात सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और वह नगरकी रक्षाका पहलेसे भी दुगुना प्रबन्ध करके महलकी अटारीपर चढ़ गया॥ २॥

वहींसे उसने देखा कि पर्वत, वन और काननोंसहित सारी लङ्का सब ओरसे असंख्य युद्धाभिलाषी वानरोंद्वारा घिरी हुई है॥ ३॥

इस प्रकार समस्त वानरोंसे आच्छादित वसुधाको कपिल वर्णकी हुई देख वह इस चिन्तामें पड़ गया कि इन सबका विनाश कैसे होगा?॥ ४॥

बहुत देरतक चिन्ता करनेके पश्चात् धैर्य धारण करके विशाल नेत्रोंवाले रावणने श्रीराम और वानर-सेनाओंकी ओर पुनः देखा॥ ५॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सेनाके साथ प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े। उन्होंने देखा, लङ्का सब ओरसे राक्षसोंद्वारा आवृत और सुरक्षित है॥ ६॥

विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीको देखकर दशरथनन्दन श्रीराम व्यथित चित्तसे मन-ही-मन सीताका स्मरण करने लगे—॥ ७॥

'हाय! वह मृगशावकनयनी जनकनन्दिनी सीता यहीं मेरे लिये शोकसंतप्त हो पीड़ा सहन करती है और पृथ्वीकी वेदीपर सोती है। सुनता हूँ, बहुत दुर्बल हो गयी है'॥

इस प्रकार राक्षसियोंद्वारा पीड़ित विदेहनन्दिनीका बारम्बार चिन्तन करते हुए धर्मात्मा श्रीरामने तत्काल वानरोंको शत्रुभूत राक्षसोंका वध करनेके लिये आज्ञा दी॥ ९॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामके इस प्रकार आज्ञा देते ही आगे बढ़नेके लिये परस्पर होड़-सी लगानेवाले वानरोंने अपने सिंहनादोंसे वहाँकी धरती और आकाशको गुँजा दिया॥ १०॥

वे समस्त वानर-यूथपति अपने मनमें यह निश्चय किये खड़े थे कि हमलोग पर्वत-शिखरोंकी वर्षा करके लङ्काके महलोंको चूर-चूर कर देंगे अथवा मुक्कोंसे ही मार-मारकर ढहा देंगे॥ ११॥

वे वानरसेनापति पर्वतोंके बड़े-बड़े शिखर उठाकर और नाना प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर प्रहार करनेके लिये खड़े थे॥ १२॥

राक्षसराज रावणके देखते-देखते विभिन्न भागोंमें बँटे हुए वे वानर-सैनिक श्रीरघुनाथजीका प्रिय करनेकी इच्छासे तत्काल लङ्काके परकोटोंपर चढ़ गये॥ १३॥

ताँबे-जैसे लाल मुँह और सुवर्णकी-सी कान्तिवाले वे वानर श्रीरामचन्द्रजीके लिये प्राण निछावर करनेको तैयार थे। वे सब-के-सब सालवृक्ष और शैल-शिखरोंसे युद्ध करनेवाले थे; इसलिये उन्होंने लङ्कापर ही आक्रमण किया॥ १४॥

वे सभी वानर वृक्षों, पर्वत-शिखरों और मुक्कोंसे असंख्य परकोटों और दरवाजोंको तोड़ने लगे॥ १५॥

उन वानरोंने स्वच्छ जलसे भरी हुई खाइयोंको धूल, पर्वत-शिखर, घास-फूस और काठोंसे पाट दिया॥

फिर तो सहस्र यूथ, कोटि यूथ और सौ कोटि यूथोंको साथ लिये अनेक यूथपति उस समय लङ्काके किलेपर चढ़ गये॥ १७॥

बड़े-बड़े गजराजोंके समान विशालकाय वानर सोनेके बने हुए दरवाजोंको धूलमें मिलाते, कैलास-शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे गोपुरोंको भी ढहाते, उछलते-कूदते एवं गर्जते हुए लङ्कापर धावा बोलने लगे॥ १८-१९॥

'अत्यन्त बलशाली श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, महाबली लक्ष्मणकी जय हो और श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो' ऐसी घोषणा करते और गर्जते हुए इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर लङ्काके परकोटेपर टूट पड़े॥ २०-२१॥

इसी समय वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस—ये वानरयूथपति लङ्काके परकोटेपर चढ़कर बैठ गये और उसी बीचमें उन्होंने वहाँ अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया॥ २२॥

बलवान् कुमुद विजयश्रीसे सुशोभित होनेवाले दस करोड़ वानरोंके साथ (ईशानकोणमें रहकर) लङ्काके पूर्व[1] द्वारको घेरकर खड़ा हो गया॥ २३॥

उसीकी सहायताके लिये अन्य वानरोंके साथ महाबाहु पनस और प्रघस भी आकर डट गये॥ २४॥

वीर शतबलिने (आग्नेयकोणमें स्थित हो) दक्षिण[2] द्वारपर आकर बीस करोड़ वानरोंके साथ उसे घेर लिया और वहीं पड़ाव डाल दिया॥ २५॥

ताराके बलवान् पिता सुषेण (नैर्ऋत्यकोणमें स्थित हो) कोटि-कोटि वानरोंके साथ पश्चिम[3] द्वारपर आक्रमण करके उसे घेरकर खड़े हो गये॥ २६॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणसहित महाबलवान् श्रीराम तथा वानरराज सुग्रीव उत्तर[4] द्वारको घेरकर खड़े हुए (सुग्रीव पूर्ववर्णनके अनुसार वायव्यकोणमें स्थित हो उत्तर द्वारवर्ती श्रीरामकी सहायता करते थे।)॥ २७॥

लंगूर जातिके विशालकाय महापराक्रमी वानर गवाक्ष, जो देखनेमें बड़े भयंकर थे, एक करोड़ वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके एक बगलमें खड़े हो गये॥ २८॥

इसी तरह महाबली शत्रुसूदन ऋक्षराज धूम्र एक करोड़ भयानक क्रोधी रीछोंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके दूसरी ओर खड़े हुए॥ २९॥

कवच आदिसे सुसज्जित महान् पराक्रमी विभीषण हाथमें गदा लिये अपने सावधान मन्त्रियोंके साथ वहीं आकर डट गये, जहाँ महाबली श्रीराम विद्यमान थे॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन—सब ओर घूम-घूमकर वानर-सेनाकी रक्षा करने लगे॥ ३१॥

इसी समय अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए राक्षसराज रावणने अपनी सारी सेनाको तुरंत ही बाहर निकलनेकी आज्ञा दी॥ ३२॥

रावणके मुखसे बाहर निकलनेका आदेश सुनते ही राक्षसोंने सहसा बड़ी भयानक गर्जना की॥ ३३॥

फिर तो राक्षसोंके यहाँ जिनके मुखभाग चन्द्रमाके समान उज्ज्वल थे और जो सोनेके डंडेसे बजाये या पीटे जाते थे, वे बहुत-से धौंसे एक साथ बज उठे॥

साथ ही भयानक राक्षसोंके मुखकी वायुसे पूरित हो लाखों गम्भीर घोषवाले शङ्ख बजने लगे॥ ३५॥

आभूषणोंकी प्रभासे सुशोभित काले शरीरवाले वे निशाचर शङ्ख बजाते समय विद्युत्प्रभासे उद्भासित तथा वकपंक्तियोंसे युक्त नील मेघोंके समान जान पड़ते थे॥

तदनन्तर रावणकी प्रेरणासे उसके सैनिक बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये निकलने लगे, मानो प्रलयकालमें महान् मेघोंके जलसे भरे जाते हुए समुद्रके वेग आगे बढ़ रहे हों॥ ३७॥

तत्पश्चात् वानर सैनिकोंने सब ओर बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जिससे छोटे-बड़े शिखरों और कन्दराओंसहित मलयपर्वत गूँज उठा॥ ३८॥

इस प्रकार हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने, रथोंके पहियोंकी घर्घराहट एवं राक्षसोंके मुखसे प्रकट हुई आवाजके साथ ही शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्द तथा वेगवान् वानरोंके निनादसे पृथ्वी, आकाश और समुद्र निनादित हो उठे॥ ३९-४०॥

१, २, ३, ४—यहाँ जो पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर शब्द आये हैं, वे क्रमशः ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायव्यकोणका लक्ष्य करानेवाले हैं; क्योंकि पहले (४१ वें सर्गमें) पूर्व आदि दरवाजोंपर नील आदि यूथपतियोंके आक्रमणकी बात कह दी गयी है वे कुमुद आदि वानर निकटवर्ती ईशान आदि कोणोंमें रहकर पूर्वादि द्वारोंपर आक्रमण करके नील आदिकी सहायता करते थे।

इतनेहीमें पूर्वकालमें घटित हुए देवासुर-संग्रामकी भाँति राक्षसों और वानरोंमें घोर युद्ध होने लगा॥ ४१ ॥

वे राक्षस दमकती हुई गदाओं तथा शक्ति, शूल और फरसोंसे समस्त वानरोंको मारने एवं अपने पराक्रमकी घोषणा करने लगे॥ ४२ ॥

उसी प्रकार वेगशाली विशालकाय वानर भी राक्षसोंपर बड़े-बड़े वृक्षों, पर्वत-शिखरों, नखों और दाँतोंसे चोट करने लगे॥ ४३ ॥

वानरसेनामें 'वानरराज सुग्रीवकी जय हो' यह महान् शब्द होने लगा। उधर राक्षसलोग भी 'महाराज रावणकी जय हो' ऐसा कहकर अपने-अपने नामका उल्लेख करने लगे॥ ४४ ॥

दूसरे बहुत-से भयानक राक्षस जो परकोटेपर चढ़े हुए थे, पृथ्वीपर खड़े हुए वानरोंको भिन्दिपालों और शूलोंसे विदीर्ण करने लगे॥ ४५ ॥

तब पृथ्वीपर खड़े हुए वानर भी अत्यन्त कुपित हो उठे और आकाशमें उछलकर परकोटेपर बैठे हुए राक्षसोंको अपनी बाँहोंसे पकड़-पकड़कर गिराने लगे॥

इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा ही अद्भुत घमासान युद्ध हुआ, जिससे वहाँ रक्त और मांसकी कीच जम गयी॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

द्वन्द्वयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय

तदनन्तर परस्पर युद्ध करते हुए महामना वानरों और राक्षसोंको एक-दूसरेकी सेनाको देखकर बड़ा भयंकर रोष हुआ॥ १ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित घोड़ों, हाथियों, अग्निकी ज्वालाके समान देदीप्यमान रथों तथा सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोरम कवचोंसे युक्त वे वीर राक्षस दसों दिशाओंको अपनी गर्जनासे गुँजाते हुए निकले। भयानक कर्म करनेवाले वे सभी निशाचर रावणकी विजय चाहते थे॥ ३-४ ॥

भगवान् श्रीरामकी विजय चाहनेवाले वानरोंकी उस विशाल सेनाने भी घोर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी सेनापर धावा किया॥ ४ ॥

इसी समय एक-दूसरेपर धावा बोलते हुए राक्षसों और वानरोंमें द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया॥ ५ ॥

वालिपुत्र अङ्गदके साथ महातेजस्वी राक्षस इन्द्रजित् उसी तरह भिड़ गया, जैसे त्रिनेत्रधारी महादेवजीके साथ अन्धकासुर लड़ रहा हो॥ ६ ॥

प्रजङ्घ नामक राक्षसके साथ सदा ही रणदुर्जय वीर सम्पातिने और जम्बुमालीके साथ वानर वीर हनुमान्‌जीने युद्ध आरम्भ किया॥ ७ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए रावणानुज राक्षस विभीषण समराङ्गणमें प्रचण्ड वेगशाली शत्रुघ्नके साथ उलझ गये॥ ८ ॥

महाबली गज तपन नामक राक्षसके साथ लड़ने लगे। महातेजस्वी नील भी निकुम्भसे जूझने लगे॥ ९ ॥

वानरराज सुग्रीव प्रघसके साथ और श्रीमान् लक्ष्मण समरभूमिमें विरूपाक्षके साथ युद्ध करने लगे॥

दुर्जय वीर अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप—ये सब राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके साथ जूझने लगे॥ ११ ॥

मैन्दके साथ वज्रमुष्टि और द्विविदके साथ अशनिप्रभ युद्ध करने लगे। इस प्रकार इन दोनों भयानक राक्षसोंके साथ वे दोनों कपिशिरोमणि वीर भिड़े हुए थे॥ १२ ॥

प्रतपन नामसे प्रसिद्ध एक घोर राक्षस था, जिसे रणभूमिमें परास्त करना अत्यन्त कठिन था। वह वीर निशाचर समराङ्गणमें प्रचण्ड वेगशाली नलके साथ युद्ध करने लगा॥ १३ ॥

धर्मके बलवान् पुत्र महाकपि सुषेण राक्षस विद्युन्मालीके साथ लोहा लेने लगे॥ १४ ॥

इसी प्रकार अन्यान्य भयानक वानर बहुतोंके साथ युद्ध करनेके पश्चात् दूसरे-दूसरे राक्षसोंके साथ सहसा द्वन्द्वयुद्ध करने लगे॥ १५ ॥

वहाँ राक्षस और वानरवीर अपनी-अपनी विजय चाहते थे। उनमें बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा॥ १६ ॥

वानरों और राक्षसोंके शरीरोंसे निकलकर बहुत-सी खूनकी नदियाँ बहने लगीं। उनके सिरके बाल ही वहाँ शैवाल (सेवार) के समान जान पड़ते थे। वे नदियाँ सैनिकोंकी लाशरूपी काष्ठसमूहोंको बहाये लिये जाती थीं॥ १७॥

जिस प्रकार इन्द्र वज्रसे प्रहार करते हैं, उसी तरह इन्द्रजित् मेघनादने शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाले वीर अङ्गदपर गदासे आघात किया॥ १८॥

किंतु वेगशाली वानर श्रीमान् अङ्गदने उसकी गदा हाथसे पकड़ ली और उसी गदासे इन्द्रजित्के सुवर्णजटित रथको सारथि और घोड़ोंसहित चूर-चूर कर डाला॥ १९॥

प्रजङ्घने सम्पातिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। तब सम्पातिने भी अश्वकर्ण नामक वृक्षसे युद्धके मुहानेपर प्रजङ्घको मार डाला॥ २०॥

महाबली जम्बुमाली रथपर बैठा हुआ था। उसने कुपित होकर समराङ्गणमें एक रथ-शक्तिके द्वारा हनुमान्‌जीकी छातीपर चोट की॥ २१॥

परंतु पवननन्दन हनुमान् उछलकर उसके उस रथपर चढ़ गये और तुरंत ही थप्पड़से मारकर उन्होंने उस राक्षसके साथ ही उस रथको भी चौपट कर दिया (जम्बुमाली मर गया)॥ २२॥

दूसरी ओर भयानक राक्षस प्रतपन भीषण गर्जना करके नलकी ओर दौड़ा। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस राक्षसने अपने तीखे बाणोंसे नलके शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया। तब नलने तत्काल ही उसकी दोनों आँखें निकाल लीं॥ २३॥

उधर राक्षस प्रघस वानरसेनाको कालका ग्रास बना रहा था। यह देख वानरराज सुग्रीवने सप्तपर्ण नामक वृक्षसे उसे वेगपूर्वक मार गिराया॥ २४½॥

लक्ष्मणने पहले बाणोंकी वर्षा करके भयंकर दृष्टिवाले राक्षस विरूपाक्षको बहुत पीड़ा दी। फिर एक बाणसे मारकर उसे मौतके घाट उतार दिया॥ २५½॥

अग्निकेतु, दुर्जय रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप नामक राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीको अपने बाणोंसे घायल कर दिया॥ २६॥

तब श्रीरामने कुपित हो अग्निशिखाके समान भयंकर बाणोंद्वारा समराङ्गणमें उन चारोंके सिर काट लिये॥ २७॥

उस युद्धस्थलमें मैन्दने वज्रमुष्टिपर मुक्केका प्रहार किया, जिससे वह रथ और घोड़ोंसहित उसी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो देवताओंका विमान धराशायी हो गया हो॥ २८॥

निकुम्भने काले कोयलेके समूहकी भाँति नील वर्णवाले नीलको रणक्षेत्रमें अपने पैने बाणोंद्वारा उसी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे सूर्यदेव अपनी प्रचण्ड किरणोंद्वारा बादलोंको फाड़ देते हैं॥ २९॥

परंतु शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस निशाचरने समराङ्गणमें नीलको पुनः सौ बाणोंसे घायल कर दिया। ऐसा करके निकुम्भ जोर-जोरसे हँसने लगा॥ ३०॥

यह देख नीलने उसीके रथके पहियेसे युद्धस्थलमें निकुम्भ तथा उसके सारथिका उसी तरह सिर काट लिया, जैसे भगवान् विष्णु संग्रामभूमिमें अपने चक्रसे दैत्योंके मस्तक उड़ा देते हैं॥ ३१॥

द्विविदका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह था। उन्होंने सब राक्षसोंके देखते-देखते अशनिप्रभ नामक निशाचरपर एक पर्वतशिखरसे प्रहार किया॥ ३२॥

तब अशनिप्रभने युद्धस्थलमें वृक्ष लेकर युद्ध करनेवाले वानरराज द्विविदको वज्रतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ ३३॥

द्विविदका सारा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गया था, इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने एक सालवृक्षसे रथ और घोड़ोंसहित अशनिप्रभको मार गिराया॥ ३४॥

रथपर बैठे हुए विद्युन्मालीने अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा सुषेणको बारम्बार घायल किया। फिर वह जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ३५॥

उसे रथपर बैठा देख वानरशिरोमणि सुषेणने एक विशाल पर्वत-शिखर चलाकर उसके रथको शीघ्र ही चूर-चूर कर डाला॥ ३६॥

निशाचर विद्युन्माली तुरंत ही बड़ी फुर्तीके साथ रथसे नीचे कूद पड़ा और हाथमें गदा लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ ३७॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए वानरशिरोमणि सुषेण एक बहुत बड़ी शिला लेकर उस निशाचरकी ओर दौड़े॥ ३८॥

कपिश्रेष्ठ सुषेणको आक्रमण करते देख निशाचर विद्युन्मालीने तत्काल ही गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया॥ ३९॥

गदाके उस भीषण प्रहारकी कुछ भी परवा न

करके वानरप्रवर सुषेणने उसी पहलेवाली शिलाको चुपचाप उठा लिया और उस महासमरमें उसे विद्युन्मालीकी छातीपर दे मारा॥ ४०॥

शिलाके प्रहारसे घायल हुए निशाचर विद्युन्मालीकी छाती चूर-चूर हो गयी और वह प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४१॥

इस प्रकार वे शूरवीर निशाचर शौर्यसम्पन्न वानर-वीरोंद्वारा वहाँ द्वन्द्वयुद्धमें उसी तरह कुचल दिये गये जैसे देवताओंद्वारा दैत्य मथ डाले गये थे॥ ४२॥

उस समय भालों, अन्यान्य बाणों, गदाओं, शक्तियों, तोमरों, सायकों, टूटे और फेंके हुए रथों, फौजी घोड़ों, मरे हुए मतवाले हाथियों, वानरों, राक्षसों, पहियों तथा टूटे हुए जूओंसे, जो धरतीपर बिखरे पड़े थे, वह युद्धभूमि बड़ी भयानक हो रही थी। गीदड़ोंके समुदाय वहाँ सब ओर विचर र हे थे। देवासुर-संग्रामके समान उस भयानक मार-काटमें वानरों और राक्षसोंके कबन्ध (मस्तकरहित धड़) सम्पूर्ण दिशाओंमें उछल रहे थे॥ ४३—४५॥

उस समय उन वानरशिरोमणियोंद्वारा मारे जाते हुए निशाचर रक्तकी गन्धसे मतवाले हो रहे थे। वे सूर्यके अस्त होनेकी प्रतीक्षा करते हुए पुनः बड़े वेगसे घमासान युद्धमें तत्पर हो गये*॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

रातमें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्‌की पराजय, मायासे अदृश्य हुए इन्द्रजित्‌का नागमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँधना

इस प्रकार उन वानर और राक्षसोंमें युद्ध चल ही रहा था कि सूर्यदेव अस्त हो गये तथा प्राणोंका संहार करनेवाली रात्रिका आगमन हुआ॥ १॥

वानरों और राक्षसोंमें परस्पर वैर बँध गया था। दोनों ही पक्षोंके योद्धा बड़े भयंकर थे तथा अपनी-अपनी विजय चाहते थे; अतः उस समय उनमें रात्रियुद्ध होने लगा॥ २॥

उस दारुण अन्धकारमें वानरलोग अपने विपक्षीसे पूछते थे, क्या तुम राक्षस हो? और राक्षसलोग भी पूछते थे, क्या तुम वानर हो? इस प्रकार पूछ-पूछकर समराङ्गणमें वे एक दूसरेपर प्रहार करते थे॥ ३॥

सेनामें सब ओर 'मारो, काटो, आओ तो, क्यों भागे जाते हो'—ये भयंकर शब्द सुनायी दे रहे थे॥ ४॥

काले-काले राक्षस सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित होकर उस अन्धकारमें ऐसे दिखायी देते थे, मानो चमकती हुई ओषधियोंके वनसे युक्त काले पहाड़ हों॥

उस अन्धकारसे पार पाना कठिन हो रहा था। उसमें क्रोधसे अधीर हुए महान् वेगशाली राक्षस वानरोंको खाते हुए उनपर सब ओरसे टूट पड़े॥ ६॥

तब वानरोंका कोप बड़ा भयानक हो उठा। वे उछल-उछलकर अपने तीखे दाँतोंद्वारा सुनहरे साजसे सजे हुए राक्षस-दलके घोड़ोंको और विषधर सर्पोंके समान दिखायी देनेवाले उनके ध्वजोंको भी विदीर्ण कर देते थे॥ ७॥

बलवान् वानरोंने युद्धमें राक्षस-सेनाके भीतर हलचल मचा दी। वे सब-के-सब क्रोधसे पागल हो रहे थे; अतः हाथियों एवं हाथीसवारोंको तथा ध्वजा-पताकासे सुशोभित रथोंको भी खींच लेते और दाँतोंसे काट-काटकर क्षत-विक्षत कर देते थे॥ ८½॥

बड़े-बड़े राक्षस कभी प्रकट होकर युद्ध करते थे और कभी अदृश्य हो जाते थे; परंतु श्रीराम और लक्ष्मण विषधर सर्पोंके समान अपने बाणोंद्वारा दृश्य और अदृश्य सभी राक्षसोंको मार डालते थे॥ ९½॥

घोड़ोंकी टापसे चूर्ण होकर रथके पहियोंसे उड़ायी हुई धरतीकी धूल योद्धाओंके कान और नेत्र बंद कर देती थी॥१०½॥

इस प्रकार रोमाञ्चकारी भयंकर संग्रामके छिड़ जानेपर वहाँ रक्तके प्रवाहको बहानेवाली खूनकी बड़ी

* सूर्यास्तके बाद प्रदोषकालसे लेकर पूरी रातभर राक्षसोंका बल अधिक बढ़ा होता है, इसीलिये वे सूर्यास्त होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भयंकर नदियाँ बहने लगीं॥ ११॥

तदनन्तर भेरी, मृदङ्ग और पणव आदि बाजोंकी ध्वनि होने लगी, जो शङ्खोंके शब्द तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिलकर बड़ी अद्भुत जान पड़ती थी॥ १२॥

घायल होकर कराहते हुए राक्षसों और शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हुए वानरोंका आर्तनाद वहाँ बड़ा भयंकर प्रतीत होता था॥ १३॥

शक्ति, शूल और फरसोंसे मारे गये मुख्य-मुख्य वानरों तथा वानरोंद्वारा कालके गालमें डाले गये इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ पर्वताकार राक्षसोंसे उपलक्षित उस युद्धभूमिमें रक्तके प्रवाहसे कीच हो गयी थी। उसे पहचानना कठिन हो रहा था तथा वहाँ ठहरना तो और मुश्किल हो गया था। ऐसा जान पड़ता था उस भूमिको शस्त्ररूपी पुष्पोंका उपहार अर्पित किया गया है॥

वानरों और राक्षसोंका संहार करनेवाली वह भयंकर रजनी कालरात्रिके समान समस्त प्राणियोंके लिये दुर्लङ्घ्य हो गयी थी॥ १६॥

तदनन्तर उस दारुण अन्धकारमें वहाँ वे सब राक्षस हर्ष और उत्साहमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते हुए श्रीरामपर ही धावा करने लगे॥ १७॥

उस समय कुपित हो गर्जना करते हुए उन आक्रमणकारी राक्षसोंका शब्द प्रलयके समय सातों समुद्रोंके महान् कोलाहल-सा जान पड़ता था॥ १८॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने पलक मारते-मारते अग्निज्वालाके समान छः भयानक बाणोंसे निम्नाङ्कित छः निशाचरोंको घायल कर दिया॥ १९॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—दुर्धर्ष वीर यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय, वज्रदंष्ट्र तथा वे दोनों शुक और सारण॥ २०॥

श्रीरामके बाणसमूहोंसे सारे मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचनेके कारण वे छहों राक्षस युद्ध छोड़कर भाग गये; इसीलिये उनकी आयु शेष रह गयी—जान बच गयी॥ २१॥

महारथी श्रीरामने अग्निशिखाके समान प्रज्वलित भयंकर बाणोंद्वारा पलक मारते-मारते सम्पूर्ण दिशाओं और उनके कोणोंको निर्मल (प्रकाशपूर्ण) कर दिया॥ २२॥

दूसरे भी जो-जो राक्षसवीर श्रीरामके सामने खड़े थे, वे भी उसी प्रकार नष्ट हो गये, जैसे आगमें पड़कर पतिंगे जल जाते हैं॥ २३॥

चारों ओर सुवर्णमय पङ्खवाले बाण गिर रहे थे। उनकी प्रभासे वह रजनी जुगुनुओंसे विचित्र दिखायी देनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रिके समान अद्भुत प्रतीत होती थी॥ २४॥

राक्षसोंके सिंहनादों और भेरियोंकी आवाजोंसे वह भयानक रात्रि और भी भयंकर हो उठी थी॥ २५॥

सब ओर फैले हुए उस महान् शब्दसे प्रतिध्वनित हो कन्दराओंसे व्याप्त त्रिकूट पर्वत मानो किसीकी बातका उत्तर देता-सा जान पड़ता था॥ २६॥

लंगूर जातिके विशालकाय वानर जो अन्धकारके समान काले थे, निशाचरोंको दोनों भुजाओंमें कसकर मार डालते और उन्हें कुत्ते आदिको खिला देते थे॥

दूसरी ओर अङ्गद रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करनेके लिये आगे बढ़े। उन्होंने रावणपुत्र इन्द्रजित्को घायल कर दिया तथा उसके सारथि और घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया॥ २८॥

अङ्गदके द्वारा घोड़े और सारथिके मारे जानेपर महान् कष्टमें पड़ा हुआ इन्द्रजित् रथको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गया॥ २९॥

प्रशंसाके योग्य वालिकुमार अङ्गदके उस पराक्रमकी ऋषियोंसहित देवताओं तथा दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ ३०॥

सम्पूर्ण प्राणी युद्धमें इन्द्रजित्के प्रभावको जानते थे; अतः अङ्गदके द्वारा उसको पराजित हुआ देख उन महात्मा अंगदपर दृष्टिपात करके सबको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३१॥

शत्रुको पराजित हुआ देख सुग्रीव और विभीषण-सहित सब वानर बड़े प्रसन्न हुए और अङ्गदको साधुवाद देने लगे॥ ३२॥

युद्धस्थलमें भयानक कर्म करनेवाले वालिपुत्र अङ्गदसे पराजित होकर इन्द्रजित्ने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया॥ ३३॥

रावणकुमार वीर इन्द्रजित् ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर चुका था। युद्धमें अधिक कष्ट पानेके कारण वह पापी रावणपुत्र क्रोधसे अचेत-सा हो रहा था; अतः अन्तर्धान-विद्याका आश्रय ले अदृश्य हो उसने वज्रके समान तेजस्वी और तीखे बाण बरसाने आरम्भ किये॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

समराङ्गणमें कुपित हुए इन्द्रजित्ने घोर सर्पमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको घायल कर दिया। वे दोनों रघुवंशी बन्धु अपने सभी अङ्गोंमें चोट खाकर

क्षत-विक्षत हो रहे थे॥ ३५$\frac{1}{2}$॥

मायासे आवृत हो समस्त प्राणियोंके लिये अदृश्य होकर वहाँ कूटयुद्ध करनेवाले उस निशाचरने युद्धस्थलमें दोनों रघुवंशी बन्धु श्रीराम और लक्ष्मणको मोहमें डालते हुए उन्हें सर्पाकार बाणोंके बन्धनमें बाँध लिया॥ ३६-३७॥

इस प्रकार क्रोधसे भरे हुए इन्द्रजित्ने उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको सहसा सर्पाकार बाणोंद्वारा बाँध लिया। उस समय वानरोंने उन्हें नागपाशमें बद्ध देखा॥ ३८॥

प्रकटरूपसे युद्ध करते समय जब राक्षस-राजकुमार इन्द्रजित् उन दोनों राजकुमारोंको बाधा देनेमें समर्थ न हो सका, तब उनपर मायाका प्रयोग करनेको उतारू हो गया और उन दोनों भाइयोंको उस दुरात्माने बाँध लिया॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित्के बाणोंसे श्रीराम और लक्ष्मणका अचेत होना और वानरोंका शोक करना

तदनन्तर अत्यन्त बलशाली प्रतापी राजकुमार श्रीरामने इन्द्रजित्का पता लगानेके लिये दस वानर-यूथपतियोंको आज्ञा दी॥ १॥

उनमें दो तो सुषेणके पुत्र थे और शेष आठ वानरराज नील, वालिपुत्र अङ्गद, वेगशाली वानर शरभ, द्विविद, हनुमान्, महाबली सानुप्रस्थ, ऋषभ तथा ऋषभस्कन्ध थे। शत्रुओंको संताप देनेवाले इन दसोंको उसका अनुसंधान करनेके लिये आज्ञा दी॥ २-३॥

तब वे सभी वानर भयंकर वृक्ष उठाकर दसों दिशाओंमें खोजते हुए बड़े हर्षके साथ आकाशमार्गसे चले॥ ४॥

किंतु अस्त्रोंके ज्ञाता रावणकुमार इन्द्रजित्ने अत्यन्त वेगशाली बाणोंकी वर्षा करके अपने उत्तम अस्त्रोंद्वारा उन वेगवान् वानरोंके वेगको रोक दिया॥ ५॥

बाणोंसे क्षत-विक्षत हो जानेपर भी वे भयानक वेगशाली वानर अन्धकारमें मेघोंसे ढके हुए सूर्यकी भाँति इन्द्रजित्को न देख सके॥ ६॥

तत्पश्चात् युद्धविजयी रावणपुत्र इन्द्रजित् फिर श्रीराम और लक्ष्मणपर ही उनके सम्पूर्ण अङ्गोंको विदीर्ण करनेवाले बाणोंकी बारम्बार वर्षा करने लगा॥ ७॥

कुपित हुए इन्द्रजित्ने उन दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मणको बाणरूपधारी सर्पोंद्वारा इस तरह बींधा कि उनके शरीरमें थोड़ा-सा भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जहाँ बाण न लगे हों॥ ८॥

उन दोनोंके अङ्गोंमें जो घाव हो गये थे, उनके मार्गसे बहुत रक्त बहने लगा। उस समय वे दोनों भाई खिले हुए दो पलाश-वृक्षोंके समान प्रकाशित हो रहे थे॥

इसी समय जिसके नेत्रप्रान्त कुछ लाल थे और शरीर खानसे काटकर निकाले गये कोयलोंके ढेरकी भाँति काला था, वह रावणकुमार इन्द्रजित् अन्तर्धान-अवस्थामें ही उन दोनों भाइयोंसे इस प्रकार बोला—॥ १०॥

'युद्धके समय अलक्ष्य हो जानेपर तो मुझे देवराज इन्द्र भी नहीं देख या पा सकता; फिर तुम दोनोंकी क्या बिसात है?॥ ११॥

'मैंने तुम दोनों रघुवंशियोंको कंकपत्रयुक्त बाणके जालमें फँसा लिया है। अब रोषसे भरकर मैं अभी तुम दोनोंको यमलोक भेज देता हूँ'॥ १२॥

ऐसा कहकर वह धर्मके ज्ञाता दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको पैने बाणोंसे बींधने लगा और हर्षका अनुभव करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ १३॥

कटे-छटे कोयलेकी राशिके समान काला इन्द्रजित् फिर अपने विशाल धनुषको फैलाकर उस महासमरमें घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १४॥

मर्मस्थलको जाननेवाला वह वीर श्रीराम और लक्ष्मणके मर्मस्थानोंमें अपने पैने बाणोंको डुबोता हुआ बारम्बार गर्जना करने लगा॥ १५॥

युद्धके मुहानेपर बाणके बन्धनसे बँधे हुए वे दोनों बन्धु पलक मारते-मारते ऐसी दशाको पहुँच गये कि उनमें आँख उठाकर देखनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी (वास्तवमें यह उनकी मनुष्यताका नाट्य करनेवाली लीलामात्र थी। वे तो कालके भी काल हैं। उन्हें कौन बाँध सकता था?)॥ १६॥

इस प्रकार उनके सारे अङ्ग बिंध गये थे। बाणोंसे व्याप्त हो गये थे। वे रस्सीसे मुक्त हुए देवराज इन्द्रके

दो ध्वजोंके समान कम्पित होने लगे॥ १७॥

वे महान् धनुर्धर वीर भूपाल मर्मस्थलके भेदनसे विचलित एवं कृशकाय हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १८॥

युद्धभूमिमें वीरशय्यापर सोये हुए वे दोनों वीर रक्तसे नहा उठे थे। उनके सारे अङ्गोंमें बाणरूपधारी नाग लिपटे हुए थे तथा वे अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित हो रहे थे॥ १९॥

उनके शरीरमें एक अङ्गुल भी जगह ऐसी नहीं थी, जो बाणोंसे बिंधी न हो तथा हाथोंके अग्रभागतक कोई भी अङ्ग ऐसा नहीं था, जो बाणोंसे विदीर्ण अथवा क्षुब्ध न हुआ हो॥ २०॥

जैसे झरने जल गिराते रहते हैं, उसी प्रकार वे दोनों भाई इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उस क्रूर राक्षसके बाणोंसे घायल हो तीव्र वेगसे रक्तकी धारा बहा रहे थे॥ २१॥

जिसने पूर्वकालमें इन्द्रको परास्त किया था, उस इन्द्रजित्के क्रोधपूर्वक चलाये हुए बाणोंद्वारा मर्मस्थलमें आहत होनेके कारण पहले श्रीराम ही धराशायी हुए॥ २२॥

इन्द्रजित्ने उन्हें सोनेके पंख, स्वच्छ अग्रभाग और धूलके समान गतिवाले (अर्थात् धूलकी भाँति छिद्ररहित स्थानमें भी प्रवेश करनेवाले) शीघ्रगामी नाराच[१], अर्धनाराच[२], भल्ल[३], अञ्जलिक[४], वत्सदन्त[५], सिंहदंष्ट्र[६] और क्षुर[७] जातिके बाणोंद्वारा घायल कर दिया था॥ २३॥

जिसकी प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई थी, किंतु मुट्ठीका बन्धन ढीला पड़ गया था, जो दोनों पार्श्वभाग और मध्यभाग तीनों स्थानोंमें झुका हुआ तथा सुवर्णसे भूषित था, उस धनुषको त्यागकर भगवान् श्रीराम वीरशय्यापर सोये हुए थे॥ २४॥

फेंका हुआ बाण जितनी दूरीपर गिरता है, अपनेसे उतनी ही दूरीपर धरतीपर पड़े हुए पुरुषप्रवर श्रीरामको देखकर लक्ष्मण वहाँ अपने जीवनसे निराश हो गये॥ २५॥

सबको शरण देनेवाले और युद्धसे संतुष्ट होनेवाले अपने भाई कमलनयन श्रीरामको पृथ्वीपर पड़ा देख लक्ष्मणको बड़ा शोक हुआ॥ २६॥

उन्हें उस अवस्थामें देखकर वानरोंको भी बड़ा संताप हुआ। वे शोकसे आतुर हो नेत्रोंमें आँसू भरकर घोर आर्तनाद करने लगे॥ २७॥

नागपाशमें बँधकर वीरशय्यापर सोये हुए उन दोनों भाइयोंको चारों ओरसे घेरकर सब वानर खड़े हो गये। वहाँ आये हुए हनुमान् आदि मुख्य-मुख्य वानर व्यथित हो बड़े विषादमें पड़ गये॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्च्छित देख वानरोंका शोक, इन्द्रजित्का हर्षोद्गार, विभीषणका सुग्रीवको समझाना, इन्द्रजित्का लङ्कामें जाकर पिताको शत्रुवधका वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन

तदनन्तर जब उपर्युक्त दस वानर पृथ्वी और आकाशकी छानबीन करके लौटे, तब उन्होंने दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको बाणोंसे बिंधा हुआ देखा॥ १॥

जैसे वर्षा करके देवराज इन्द्र शान्त हो गये हों, उसी प्रकार वह राक्षस इन्द्रजित् जब अपना काम बनाकर बाणवर्षासे विरत हो गया, तब सुग्रीवसहित विभीषण भी उस स्थानपर आये॥ २॥

हनुमान्जीके साथ नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अङ्गद तुरंत ही श्रीरघुनाथजीके लिये शोक करने लगे॥ ३॥

१. जिसका अग्रभाग सीधा और गोल हो, उस बाणको 'नाराच' कहते हैं। २. अर्ध भागमें नाराचकी समानता रखनेवाले बाण 'अर्धनाराच' कहलाते हैं। ३. जिनका अग्रभाग फरसेके समान हो, उस बाणकी 'भल्ल' संज्ञा है। आधुनिक भालेको भी भल्ल कहते हैं। ४. जिसका मुखभाग दोनों हाथोंकी अञ्जलिके समान हो, वह बाण 'अञ्जलिक' कहा गया है। ५. जिसका अग्रभाग बछड़ेके दाँतोंके समान दिखायी देता हो, उस बाणकी 'वत्सदन्त' संज्ञा होती है। ६. सिंहकी दाढ़के समान अग्रभागवाला बाण। ७. जिसका अग्रभाग क्षुरेकी धारके समान हो, उस बाणको 'क्षुर' कहते हैं।

उस समय वे दोनों भाई खूनसे लथपथ होकर बाण-शय्यापर पड़े थे। बाणोंसे उनका सारा शरीर व्याप्त हो रहा था। वे निश्चल होकर धीरे-धीरे साँस ले रहे थे। उनकी चेष्टाएँ बंद हो गयी थीं॥ ४॥

सर्पोंके समान साँस खींचते और निश्चेष्ट पड़े हुए उन दोनों भाइयोंका पराक्रम मन्द हो गया था। उनके सारे अङ्ग रक्त बहाकर उसीमें सन गये थे। वे दोनों टूटकर गिरे हुए दो सुवर्णमय ध्वजोंके समान जान पड़ते थे॥ ५॥

वीरशय्यापर सोये हुए मन्द चेष्टावाले वे दोनों वीर आँसूभरे नेत्रोंवाले अपने यूथपतियोंसे घिरे हुए थे॥ ६॥

बाणोंके जालसे आवृत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए उन दोनों रघुवंशी बन्धुओंको देखकर विभीषणसहित सब वानर व्यथित हो उठे॥ ७॥

समस्त वानर सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशमें बारम्बार दृष्टिपात करनेपर भी मायाच्छन्न रावणकुमार इन्द्रजित्को रणभूमिमें नहीं देख पाते थे॥ ८॥

तब विभीषणने मायासे ही देखना आरम्भ किया। उस समय उन्होंने मायासे ही छिपे हुए अपने उस भतीजेको सामने खड़ा देखा, जिसके कर्म अनुपम थे और युद्धस्थलमें जिसका सामना करनेवाला कोई योद्धा नहीं था॥ ९॥

तेज, यश और पराक्रमसे युक्त विभीषणने मायाके द्वारा ही वरदानके प्रभावसे छिपे हुए वीर इन्द्रजित्को देख लिया॥ १०॥

श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धभूमिमें सोते देख इन्द्रजित्को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने समस्त राक्षसोंका हर्ष बढ़ाते हुए अपने पराक्रमका वर्णन आरम्भ किया—॥

वह देखो, जिन्होंने खर और दूषणका वध किया था, वे दोनों भाई महाबली श्रीराम और लक्ष्मण मेरे बाणोंसे मारे गये॥ १२॥

'यदि सारे मुनिसमूहोंसहित समस्त देवता और असुर भी आ जायँ तो वे इस बाण-बन्धनसे इन दोनोंको छुटकारा नहीं दिला सकते॥ १३॥

'जिसके कारण चिन्ता और शोकसे पीड़ित हुए मेरे पिताको सारी रात शय्याका स्पर्श किये बिना ही बितानी पड़ती थी तथा जिसके कारण यह सारी लङ्का वर्षाकालमें नदीकी भाँति व्याकुल रहा करती थी, हम सबकी जड़को काटनेवाले उस अनर्थको आज मैंने शान्त कर दिया॥ १४-१५॥

'जैसे शरद्-ऋतुके सारे बादल पानी न बरसानेके कारण व्यर्थ होते हैं, उसी प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सम्पूर्ण वानरोंके सारे बल-विक्रम निष्फल हो गये'॥ १६॥

अपनी ओर देखते हुए उन सब राक्षसोंसे ऐसा कहकर रावणकुमार इन्द्रजित्ने वानरोंके उन समस्त सुप्रसिद्ध यूथपतियोंको भी मारना आरम्भ किया॥ १७॥

उस शत्रुसूदन निशाचर वीरने नीलको नौ बाणोंसे घायल करके मैन्द और द्विविदको तीन-तीन उत्तम सायकोंद्वारा मारकर संतप्त कर दिया॥ १८॥

महाधनुर्धर इन्द्रजित्ने जाम्बवान्की छातीमें एक बाणसे गहरी चोट पहुँचाकर वेगशाली हनुमान्जीको भी दस बाण मारे॥ १९॥

रावणकुमारका वेग उस समय बहुत बढ़ा हुआ था। उसने युद्धस्थलमें अमित पराक्रमी गवाक्ष और शरभको भी दो-दो बाण मारकर घायल कर दिया॥ २०॥

तदनन्तर बड़ी उतावलीके साथ बाण चलाते हुए रावणकुमार इन्द्रजित्ने पुनः बहुसंख्यक बाणोंद्वारा लंगूरोंके राजा-(गवाक्ष)-को और वालिपुत्र अङ्गदको भी गहरी चोट पहुँचायी॥ २१॥

इस प्रकार अग्नितुल्य तेजस्वी सायकोंसे उन मुख्य-मुख्य वानरोंको घायल करके महान् धैर्यशाली और बलवान् रावणकुमार वहाँ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ २२॥

अपने बाणसमूहोंसे उन वानरोंको पीड़ित तथा भयभीत करके महाबाहु इन्द्रजित् अट्टहास करने लगा और इस प्रकार बोला—॥ २३॥

'राक्षसो! देख लो, मैंने युद्धके मुहानेपर भयंकर बाणोंके पाशसे इन दोनों भाइयों श्रीराम और लक्ष्मणको एक साथ ही बाँध लिया है'॥ २४॥

इन्द्रजित्के ऐसा कहनेपर कूट-युद्ध करनेवाले वे सब राक्षस बड़े चकित हुए और उसके उस कर्मसे उन्हें बड़ा हर्ष भी हुआ॥ २५॥

वे सब-के-सब मेघोंके समान गम्भीर स्वरसे महान् सिंहनाद करने लगे तथा यह समझकर कि श्रीराम मारे गये, उन्होंने रावणकुमारका बड़ा अभिनन्दन किया॥

इन्द्रजित्ने भी जब यह देखा कि श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई पृथ्वीपर निश्चेष्ट पड़े हैं तथा उनका श्वास भी नहीं चल रहा है, तब उन दोनोंको मरा

हुआ ही समझा॥ २७॥

इससे युद्धविजयी इन्द्रजित्‌को बड़ा हर्ष हुआ तथा वह समस्त राक्षसोंका हर्ष बढ़ाता हुआ लङ्कापुरीमें चला गया॥ २८॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरों तथा सभी अङ्ग-उपाङ्गोंको बाणोंसे व्याप्त देख सुग्रीवके मनमें भय समा गया॥ २९॥

उनके मुखपर दीनता छा गयी, आसुओंकी धारा बह चली और नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे। उस समय अत्यन्त भयभीत हुए वानरराजसे विभीषणने कहा—'सुग्रीव! डरो मत। डरनेसे कोई लाभ नहीं। आँसुओंका यह वेग रोको॥ ३०½॥

'वीर! सभी युद्धोंकी प्रायः ऐसी ही स्थिति होती है, उनमें विजय निश्चित नहीं हुआ करती। यदि हमलोगोंका भाग्य शेष होगा तो ये दोनों महाबली महात्मा अवश्य मूर्छा त्याग देंगे। वानरराज! तुम अपनेको और मुझ अनाथको भी सँभालो। जो लोग सत्य-धर्ममें अनुराग रखते हैं, उन्हें मृत्युका भय नहीं होता है'॥ ३१—३३॥

ऐसा कहकर विभीषणने जलसे भीगे हुए हाथसे सुग्रीवके दोनों सुन्दर नेत्र पोंछ दिये॥ ३४॥

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर उसे मन्त्रपूत करके धर्मात्मा विभीषणने सुग्रीवके नेत्रोंमें लगाया॥ ३५॥

फिर बुद्धिमान् वानरराजके भीगे हुए मुखको पोंछकर उन्होंने बिना किसी घबराहटके यह समयोचित बात कही—॥ ३६॥

'वानरसम्राट्! यह समय घबरानेका नहीं है। ऐसे समयमें अधिक स्नेहका प्रदर्शन भी मौतका भय उपस्थित कर देता है॥ ३७॥

'इसलिये सब कामोंको बिगाड़ देनेवाली इस घबराहटको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी जिनके अगुआ अथवा स्वामी हैं, उन सेनाओंके हितका विचार करो॥

'अथवा जबतक श्रीरामचन्द्रजीको चेत न हो, तबतक इनकी रक्षा करनी चाहिये। होशमें आ जानेपर ये दोनों रघुवंशी वीर हमारा सारा भय दूर कर देंगे॥

'श्रीरामके लिये यह संकट कुछ भी नहीं है। ये मर नहीं सकते हैं; क्योंकि जिनकी आयु समाप्त हो चली है, उनके लिये जो दुर्लभ लक्ष्मी (शोभा) है, वह इनका त्याग नहीं कर रही है॥ ४०॥

'अतः तुम अपनेको सँभालो और अपनी सेनाको आश्वासन दो। तबतक मैं इस घबरायी हुई सेनाको फिरसे धैर्य बँधाकर सुस्थिर करता हूँ॥ ४१॥

'कपिश्रेष्ठ! देखो, इन वानरोंके मनमें भय समा गया है, इसीलिये ये आँखें फाड़-फाड़कर देखते हैं और आपसमें कानाफूसी करते हैं॥ ४२॥

'(अतः मैं इन्हें आश्वासन देने जाता हूँ) मुझे हर्षपूर्वक इधर-उधर दौड़ते देख और मेरे द्वारा धैर्य बँधायी हुई सेनाको प्रसन्न होती जान ये सभी वानर पहलेकी भोगी हुई मालाकी भाँति अपनी सारी भय-शङ्काको त्याग दें'॥ ४३॥

इस प्रकार सुग्रीवको आश्वासन दे राक्षसराज विभीषणने भागनेके लिये उद्यत हुई वानर-सेनाको फिरसे सान्त्वना दी॥ ४४॥

इधर महामायावी इन्द्रजित् सारी सेनाके साथ लङ्कापुरीमें लौटा और अपने पिताके पास आया॥ ४५॥

वहाँ रावणके पास पहुँचकर उसने उसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और श्रीराम-लक्ष्मणके मारे जानेका प्रिय संवाद सुनाया॥ ४६॥

राक्षसोंके बीचमें अपने दोनों शत्रुओंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावण हर्षसे उछल पड़ा और उसने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया॥ ४७॥

फिर उसका मस्तक सूँघकर उसने प्रसन्नचित्त होकर उस घटनाका पूरा विवरण पूछा। पूछनेपर इन्द्रजित्‌ने पिताको सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों निवेदन किया और यह बताया कि किस प्रकार बाणोंके बन्धनमें बाँधकर श्रीराम और लक्ष्मणको निश्चेष्ट एवं निस्तेज किया गया है॥ ४८-४९॥

महारथी इन्द्रजित्‌की उस बातको सुनकर रावणकी अन्तरात्मा हर्षके उद्रेकसे खिल उठी। दशरथनन्दन श्रीरामकी ओरसे जो उसे भय और चिन्ता प्राप्त हुई थी, उसे उसने त्याग दिया और प्रसन्नतापूर्ण वचनोंद्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन किया॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

वानरोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणकी रक्षा, रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका सीताको पुष्पकविमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन कराना और सीताका दुःखी होकर रोना

रावणकुमार इन्द्रजित् जब अपना काम बनाकर लङ्कामें चला गया, तब सभी श्रेष्ठ वानर श्रीरघुनाथजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे॥ १॥

हनुमान्, अङ्गद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, ऋषभ, स्कन्ध, रम्भ, शतबलि और पृथु—ये सब सावधान हो अपनी सेनाकी व्यूहरचना करके हाथोंमें वृक्ष लिये सब ओरसे पहरा देने लगे॥ २-३॥

वे सब वानर सम्पूर्ण दिशाओंमें ऊपर-नीचे और अगल-बगलमें भी देखते रहते थे तथा तिनकोंके भी हिल जानेपर यही समझते थे कि राक्षस आ गये॥ ४॥

उधर हर्षसे भरे हुए रावणने भी अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को विदा करके उस समय सीताजीकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंको बुलवाया॥ ५॥

आज्ञा पाते ही त्रिजटा तथा अन्य राक्षसियाँ उसके पास आयीं। तब हर्षमें भरे हुए राक्षसराजने उन राक्षसियोंसे कहा—॥ ६॥

'तुमलोग विदेहकुमारी सीतासे जाकर कहो कि इन्द्रजित्‌ने राम और लक्ष्मणको मार डाला। फिर पुष्पकविमानपर सीताको चढ़ाकर रणभूमिमें ले जाओ और उन मारे गये दोनों बन्धुओंको उसे दिखा दो॥ ७॥

'जिसके आश्रयसे गर्वमें भरकर यह मेरे पास नहीं आती थी, वह इसका पति अपने भाईके साथ युद्धके मुहानेपर मारा गया॥ ८॥

'अब मिथिलेशकुमारी सीताको उसकी अपेक्षा नहीं रहेगी। वह समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो भय और शङ्काको त्यागकर मेरी सेवामें उपस्थित होगी॥ ९॥

आज रणभूमिमें कालके अधीन हुए राम और लक्ष्मणको देखकर वह उनकी ओरसे अपना मन हटा लेगी तथा अपने लिये दूसरा कोई आश्रय न देखकर उधरसे निराश हो विशाललोचना सीता स्वयं ही मेरे पास चली आयेगी'॥ १०½॥

दुरात्मा रावणकी वह बात सुनकर वे सब राक्षसियाँ 'बहुत अच्छा' कह उस स्थानपर गयीं, जहाँ पुष्पकविमान था॥ ११½॥

रावणकी आज्ञासे उस पुष्पकविमानको वे राक्षसियाँ अशोकवाटिकामें बैठी हुई मिथिलेशकुमारीके पास ले आयीं॥ १२½॥

उन राक्षसियोंने पतिके शोकसे व्याकुल हुई सीताको तत्काल पुष्पकविमानपर चढ़ाया॥ १३½॥

सीताको पुष्पकविमानपर बिठाकर त्रिजटा-सहित वे राक्षसियाँ उन्हें राम-लक्ष्मणका दर्शन करानेके लिये चलीं। इस प्रकार रावणने उन्हें ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीके ऊपर विचरण करवाया॥ १४-१५॥

इधर हर्षसे भरे हुए राक्षसराज रावणने लङ्कामें सर्वत्र यह घोषणा करा दी कि राम और लक्ष्मण रणभूमिमें इन्द्रजित्‌के हाथसे मारे गये॥ १६॥

त्रिजटाके साथ उस विमानद्वारा वहाँ जाकर सीताने रणभूमिमें जो वानरोंकी सेनाएँ मारी गयी थीं, उन सबको देखा॥ १७॥

उन्होंने मांसभक्षी राक्षसोंको तो भीतरसे प्रसन्न देखा और श्रीराम तथा लक्ष्मणके पास खड़े हुए वानरोंको अत्यन्त दुःखसे पीड़ित पाया॥ १८॥

तदनन्तर सीताने बाणशय्यापर सोये हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको भी देखा, जो बाणोंसे पीड़ित हो संज्ञाशून्य होकर पड़े थे॥ १९॥

उन दोनों वीरोंके कवच टूट गये थे, धनुष-बाण अलग पड़े थे, सायकोंसे सारे अङ्ग छिद गये थे और वे बाणसमूहोंके बने हुए पुतलोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे॥

जो प्रमुख वीर और समस्त पुरुषोंमें उत्तम थे, वे दोनों भाई कमलनयन राम और लक्ष्मण अग्निपुत्र कुमार शाख और विशाखकी भाँति शरसमूहमें सो रहे थे। उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको उस अवस्थामें बाणशय्यापर पड़ा देख दुःखसे पीड़ित हुई सीता करुणाजनक स्वरमें जोर-जोरसे विलाप करने लगीं॥ २१-२२॥

निर्दोष अङ्गोंवाली श्यामलोचना जनकनन्दिनी सीता अपने पति श्रीराम और देवर लक्ष्मणको धूलमें

लोटते देख फूट-फूटकर रोने लगीं॥ २३॥

उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे और हृदय शोकके आघातसे पीड़ित था। देवताओंके तुल्य प्रभावशाली उन दोनों भाइयोंको उस अवस्थामें देखकर उनके मरणकी आशङ्का करती हुई वे दुःख एवं चिन्तामें डूब गयीं और इस प्रकार बोलीं॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीताका विलाप और त्रिजटाका उन्हें समझा-बुझाकर श्रीराम-लक्ष्मणके जीवित होनेका विश्वास दिलाकर पुनः लङ्कामें ही लौटा लाना

अपने स्वामी श्रीरामको तथा महाबली लक्ष्मणको भी मारा गया देख शोकसे पीड़ित हुई सीता बारम्बार करुणाजनक विलाप करने लगीं—॥ १॥

'सामुद्रिक लक्षणोंके ज्ञाता विद्वानोंने मुझे पुत्रवती और सधवा बताया था। आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सब लक्षण-ज्ञानी पुरुष असत्यवादी हो गये॥ २॥

'जिन्होंने मुझे यज्ञपरायण तथा विविध सत्रोंका संचालन करनेवाले राजाधिराजकी पत्नी बताया था, आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सभी लक्षणवेत्ता पुरुष झूठे हो गये॥ ३॥

'जिन लोगोंने लक्षणोंद्वारा मुझे वीर राजाओंकी पत्नियोंमें पूजनीय और पतिके द्वारा सम्मानित समझा था, आज श्रीरामके न रहनेसे वे सभी लक्षणज्ञ पुरुष मिथ्यावादी हो गये॥ ४॥

'ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तको जाननेवाले जिन ब्राह्मणोंने मेरे सामने ही मुझे नित्य मङ्गलमयी कहा था, वे सभी लक्षणवेत्ता पुरुष आज श्रीरामके मारे जानेपर असत्यवादी सिद्ध हो गये॥ ५॥

'जिन लक्षणभूत कमलोंके हाथ-पैर आदिमें होनेपर कुलवती स्त्रियाँ अपने पति राजाधिराजके साथ सम्राज्ञीके पदपर अभिषिक्त होती हैं, वे मेरे दोनों पैरोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान हैं॥ ६॥

'जिन अशुभ लक्षणोंके कारण सौभाग्य दुर्लभ होता है और स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, मैं बहुत देखनेपर भी अपने अङ्गोंमें ऐसे लक्षणोंको नहीं देख पाती, तथापि मेरे सारे शुभ लक्षण निष्फल हो गये॥ ७॥

'स्त्रियोंके हाथ-पैरोंमें जो कमलके चिह्न होते हैं, उन्हें लक्षणवेत्ता विद्वानोंने अमोघ बताया है; किंतु आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सारे शुभ लक्षण मेरे लिये व्यर्थ हो गये॥ ८॥

'मेरे सिरके बाल महीन, बराबर और काले हैं। भौंहें परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं। मेरी पिंडलियाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) गोल-गोल तथा रोमरहित हैं तथा मेरे दाँत भी परस्पर सटे हुए हैं॥ ९॥

'मेरे नेत्रोंके आसपासके भाग, दोनों नेत्र, दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों गुल्फ (तखने) और जाँघें बराबर, विशाल एवं मांसल (पुष्ट) हैं। दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ बराबर एवं चिकनी हैं और उनके नख गोल एवं उतार-चढ़ाववाले हैं॥ १०॥

'मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए और स्थूल हैं। इनके अग्रभाग भीतरकी ओर दबे हुए हैं। मेरी नाभि गहरी और उसके आसपासके भाग ऊँचे हैं। मेरे पार्श्वभाग तथा छाती मांसल हैं॥ ११॥

'मेरी अङ्गकान्ति खरादी हुई मणिके समान उज्ज्वल है। शरीरके रोएँ कोमल हैं तथा पैरोंकी दसों अँगुलियाँ और दोनों तलवे—ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं। इन सबके कारण लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था॥ १२॥

'मेरे हाथ-पैर लाल एवं उत्तम कान्तिसे युक्त हैं। उनमें जौकी समूची रेखाएँ हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियाँ जब परस्पर सटी होती हैं, उस समय उनमें तनिक भी छिद्र नहीं रह जाता है। कन्याके शुभलक्षणोंको जाननेवाले विद्वानोंने मुझे मन्द-मुसकानवाली बताया था॥ १३॥

ज्योतिषके सिद्धान्तको जाननेवाले निपुण ब्राह्मणोंने यह बताया था कि मेरा पतिके साथ राज्याभिषेक होगा, किंतु आज वे सारी बातें झूठी हो गयीं॥ १४॥

'इन दोनों भाइयोंने मेरे लिये जनस्थानको छान

डाला तथा मेरा समाचार पाकर अक्षोभ्य समुद्रको पार किया, किंतु हाय! इतना सब कर लेनेके बाद थोड़ी-सी राक्षससेनाके द्वारा जिसे हराना इनके लिये गोपदको लाँघनेके समान था, वे दोनों मारे गये॥ १५॥

'परंतु ये दोनों रघुवंशी बन्धु तो वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और ब्रह्मशिर आदि अस्त्रोंको भी जानते थे। मरनेसे पहले इन्होंने उन अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं किया?॥ १६॥

'मुझ अनाथाके रक्षक श्रीराम और लक्ष्मण इन्द्रतुल्य पराक्रमी थे, किंतु इन्द्रजित्‌ने स्वयं मायासे अदृश्य रहकर ही इन्हें रणभूमिमें मार डाला है॥ १७॥

'अन्यथा युद्धस्थलमें इन श्रीरघुनाथजीके दृष्टिपथमें आकर कोई भी शत्रु, वह मनके समान वेगशाली क्यों न हो, जीवित नहीं लौट सकता था॥ १८॥

'परंतु कालके लिये कुछ भी अधिक बोझ नहीं है (वह सब कुछ कर सकता है)। उसके लिये दैवको भी जीतना विशेष कठिन नहीं है। इस कालके ही वशमें पड़कर आज श्रीराम अपने भाईके साथ मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं॥ १९॥

'मैं श्रीराम, महारथी लक्ष्मण, अपने और अपनी माताके लिये भी उतना शोक नहीं करती हूँ जितना अपनी तपस्विनी सासुजीके लिये कर रही हूँ। वे तो प्रतिदिन यही सोचती होंगी कि वह दिन कब आयेगा जब कि वनवासका व्रत समाप्त करके वनसे लौटे हुए श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मैं देखूँगी'॥ २०-२१॥

इस प्रकार विलाप करती हुई सीतासे राक्षसी त्रिजटाने कहा—'देवि! विषाद न करो। तुम्हारे ये पतिदेव जीवित हैं॥ २२॥

'देवि! मैं तुम्हें कई ऐसे महान् और उचित कारण बताऊँगी, जिनसे यह सूचित होता है कि ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं॥ २३॥

'युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर योद्धाओंके मुँह क्रोध और हर्षकी उत्सुकतासे युक्त नहीं रहते (किंतु यहाँ वे दोनों बातें पायी जाती हैं। इसलिये ये दोनों जीवित हैं)॥ २४॥

'विदेहनन्दिनि! यह पुष्पक नामक विमान दिव्य है। यदि इन दोनोंके प्राण चले गये होते तो (वैधव्यावस्थामें) यह तुम्हें धारण न करता॥ २५॥

'इसके सिवा जब प्रधान वीर मारा जाता है, तब उसकी सेना उत्साह और उद्योगसे हीन हो युद्धस्थलमें उसी तरह मारी-मारी फिरती है, जैसे कर्णधारके नष्ट हो जानेपर नौका जलमें ही बहती रहती है। परंतु तपस्विनि! इस सेनामें किसी प्रकारकी घबराहट या उद्वेग नहीं है। यह इन दोनों राजकुमारोंकी रक्षा कर रही है। इस प्रकार मैंने प्रेमपूर्वक तुम्हें यह बताया है कि ये दोनों भाई जीवित हैं॥ २६-२७॥

'इसलिये अब तुम इन भावी सुखकी सूचना देनेवाले अनुमानों (हेतुओं) से निश्चिन्त हो जाओ—विश्वास करो कि ये जीवित हैं। तुम इन दोनों रघुवंशी राजकुमारोंको इसी रूपमें देखो कि ये मारे नहीं गये हैं। यह बात मैं तुमसे स्नेहवश कह रही हूँ॥ २८॥

'मिथिलेशकुमारी! तुम्हारा शील-स्वभाव तुम्हारे निर्मल चरित्रके कारण बड़ा सुखदायक जान पड़ता है, इसीलिये तुम मेरे मनमें घर कर गयी हो। अतएव मैंने तुमसे न तो पहले कभी झूठ कहा है और न आगे ही कहूँगी॥ २९॥

'इन दोनों वीरोंको रणभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जीत सकते। वैसा लक्षण देखकर ही मैंने तुमसे ये बातें कही हैं॥ ३०॥

'मिथिलेशकुमारी! यह महान् आश्चर्यकी बात तो देखो। बाणोंके लगनेसे ये अचेत होकर पड़े हैं तो भी लक्ष्मी (शरीरकी सहज कान्ति) इनका त्याग नहीं कर रही है॥ ३१॥

'जिनके प्राण निकल जाते हैं अथवा जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, उनके मुखोंपर यदि दृष्टिपात किया जाय तो प्रायः वहाँ बड़ी विकृति दिखायी देती है (इन दोनोंके मुखोंकी शोभा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है; इसलिये ये जीवित हैं)॥ ३२॥

'जनककिशोरी! तुम श्रीराम और लक्ष्मणके लिये शोक, दुःख और मोह त्याग दो। ये अब मर नहीं सकते'॥ ३३॥

त्रिजटाकी यह बात सुनकर देवकन्याके समान सुन्दरी मिथिलेशकुमारी सीताने हाथ जोड़कर उससे कहा—'बहिन! ऐसा ही हो'॥ ३४॥

फिर मनके समान वेगवाले पुष्पकविमानको लौटाकर त्रिजटा दुःखिनी सीताको लङ्कापुरीमें ही ले आयी॥ ३५॥

तत्पश्चात् त्रिजटाके साथ विमानसे उतरनेपर राक्षसियोंने उन्हें पुनः अशोकवाटिकामें ही पहुँचा दिया॥

बहुसंख्यक वृक्षसमूहोंसे सुशोभित राक्षसराजकी उस विहारभूमिमें पहुँचकर सीताने उसे देखा और उन दोनों राजकुमारोंका चिन्तन करके वे महान् शोकमें डूब गयीं॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

श्रीरामका सचेत होकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और स्वयं प्राणत्यागका विचार करके वानरोंको लौट जानेकी आज्ञा देना

दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर सर्पाकार बाणके बन्धनमें बँधे हुए-से पड़े थे। वे लहूलुहान हो रहे थे और फुफकारते हुए सर्पोंके समान साँस ले रहे थे॥ १॥

उन दोनों महात्माओंको चारों ओरसे घेरकर सुग्रीव आदि सभी श्रेष्ठ महाबली वानर शोकमें डूबे खड़े थे॥ २॥

इसी बीचमें पराक्रमी श्रीराम नागपाशसे बँधे होनेपर भी अपने शरीरकी दृढ़ता और शक्तिमत्ताके कारण मूर्छासे जाग उठे॥ ३॥

उन्होंने देखा कि भाई लक्ष्मण बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर खूनसे लथपथ हुए पड़े हैं और उनका चेहरा बहुत उतर गया है; अतः वे आतुर होकर विलाप करने लगे— ॥ ४॥

'हाय! यदि मुझे सीता मिल भी गयीं तो मैं उन्हें लेकर क्या करूँगा? अथवा इस जीवनको ही रखकर क्या करना है? जब कि आज मैं अपने पराजित हुए भाईको युद्धस्थलमें पड़ा हुआ देख रहा हूँ॥ ५॥

'मर्त्यलोकमें ढूँढ़नेपर मुझे सीता-जैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है; परंतु लक्ष्मणके समान सहायक और युद्धकुशल भाई नहीं मिल सकता॥ ६॥

'सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मण यदि जीवित न रहे तो मैं वानरोंके देखते-देखते अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा॥ ७॥

'लक्ष्मणके बिना यदि मैं अयोध्याको लौटूँ तो माता कौसल्या और कैकेयीको क्या जवाब दूँगा तथा अपने पुत्रको देखनेके लिये उत्सुक हो बछड़ेसे बिछुड़ी गायके समान काँपती और कुररीकी भाँति रोती-बिलखती माता सुमित्रासे क्या कहूँगा? उन्हें किस तरह धैर्य बँधाऊँगा?॥ ८-९॥

'मैं यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे किस तरह यह कह सकूँगा कि लक्ष्मण मेरे साथ वनको गये थे; किंतु मैं उन्हें वहीं खोकर उनके बिना ही लौट आया हूँ॥

'दोनों माताओंसहित सुमित्राका उपालम्भ मैं नहीं सह सकूँगा; अतः यहीं इस देहको त्याग दूँगा। अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं है॥ ११॥

'मुझ-जैसे दुष्कर्मी और अनार्यको धिक्कार है, जिसके कारण लक्ष्मण मरे हुएके समान बाण-शय्यापर सो रहे हैं॥ १२॥

'लक्ष्मण! जब मैं अत्यन्त विषादमें डूब जाता था, उस समय तुम्हीं सदा मुझे आश्वासन देते थे; परंतु आज तुम्हारे प्राण नहीं रहे, इसलिये आज तुम मुझ दुःखियासे बात करनेमें भी असमर्थ हो॥ १३॥

'भैया! जिस रणभूमिमें आज तुमने बहुत-से राक्षसोंको मार गिराया था, उसीमें शूरवीर होकर भी तुम बाणोंद्वारा मारे जाकर सो रहे हो॥ १४॥

'इस बाण-शय्यापर तुम खूनसे लथपथ होकर पड़े हो और बाणोंसे व्याप्त होकर अस्ताचलको जाते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हो॥ १५॥

'बाणोंसे तुम्हारा मर्मस्थल विदीर्ण हो गया, इसलिये तुम यहाँ बात भी नहीं कर सकते। यद्यपि तुम बोल नहीं रहे हो, तथापि तुम्हारे नेत्रोंकी लालीसे तुम्हारी मार्मिक पीड़ा सूचित हो रही है॥ १६॥

'जिस तरह वनकी यात्रा करते समय महातेजस्वी लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी प्रकार मैं भी यमलोकमें इनका अनुसरण करूँगा॥ १७॥

'जो मेरे प्रिय बन्धुजन थे और सदा मुझमें अनुराग एवं भक्तिभाव रखते थे, वे ही लक्ष्मण आज मुझ अनार्यकी दुर्नीतियोंके कारण इस अवस्थाको पहुँच गये॥

'मुझे ऐसा कोई प्रसंग याद नहीं आता, जब कि

वीर लक्ष्मणने अत्यन्त कुपित होनेपर भी मुझे कभी कोई कठोर या अप्रिय बात सुनायी हो॥ १९॥

'लक्ष्मण एक ही वेगसे पाँच सौ बाणोंकी वर्षा करते थे; इसलिये धनुर्विद्यामें कार्तवीर्य अर्जुनसे भी बढ़कर थे॥ २०॥

'जो अपने अस्त्रोंद्वारा महात्मा इन्द्रके भी अस्त्रोंको काट सकते थे; वे ही बहुमूल्य शय्यापर सोनेयोग्य लक्ष्मण आज स्वयं मारे जाकर पृथ्वीपर सो रहे हैं॥

'मैं विभीषणको राक्षसोंका राजा न बना सका; अतः मेरा वह झूठा प्रलाप मुझे सदा जलाता रहेगा, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

'वानरराज सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्तमें यहाँसे लौट जाओ; क्योंकि मेरे बिना तुम्हें असहाय समझकर रावण तुम्हारा तिरस्कार करेगा॥ २३॥

'मित्र सुग्रीव! सेना और सामग्रियोंसहित अङ्गदको आगे करके नल और नीलके साथ तुम समुद्रके पार चले जाओ॥ २४॥

'मैं लंगूरोंके स्वामी गवाक्ष तथा ऋक्षराज जाम्बवान्से भी बहुत संतुष्ट हूँ। तुम सब लोगोंने युद्धमें वह महान् पुरुषार्थ कर दिखाया है, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर था॥ २५॥

'अङ्गद, मैन्द और द्विविदने भी महान् पराक्रम प्रकट किया है। केसरी और सम्पातिने भी समराङ्गणमें घोर युद्ध किया है॥ २६॥

'गवय, गवाक्ष, शरभ, गज तथा अन्य वानरोंने भी मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़कर संग्राम किया है॥ २७॥

'किंतु सुग्रीव! मनुष्योंके लिये दैवके विधानको लाँघना असम्भव है। मेरे परम मित्र अथवा उत्तम सुहृद्के नाते तुम-जैसे धर्मभीरु पुरुषके द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब तुमने किया है। वानर-शिरोमणियो! तुम सबने मिलकर मित्रके इस कार्यको सम्पन्न किया है। अब मैं आज्ञा देता हूँ—तुम सब जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाओ'॥ २८-२९ $\frac{1}{2}$ ॥

भगवान् श्रीरामका यह विलाप भूरी आँखोंवाले जिन-जिन वानरोंने सुना, वे सब अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ ३०-३१॥

तदनन्तर समस्त सेनाओंको स्थिरतापूर्वक स्थापित करके विभीषण हाथमें गदा लिये तुरंत उस स्थानपर लौट आये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजी विद्यमान थे॥ ३२॥

काले कोयलोंकी राशिके समान कृष्ण कान्तिवाले विभीषणको शीघ्रतापूर्वक आते देख सब वानर उन्हें रावणपुत्र इन्द्रजित् समझकर इधर-उधर भागने लगे॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

विभीषणको इन्द्रजित् समझकर वानरोंका पलायन और सुग्रीवकी आज्ञासे जाम्बवान्का उन्हें सान्त्वना देना, विभीषणका विलाप और सुग्रीवका उन्हें समझाना, गरुड़का आना और श्रीराम-लक्ष्मणको नागपाशसे मुक्त करके चला जाना

उस समय महातेजस्वी महाबली वानरराज सुग्रीवने पूछा—'वानरो! जैसे जलमें बवंडरकी मारी हुई नौका डगमगाने लगती है, उसी प्रकार जो यह हमारी सेना सहसा व्यथित हो उठी है, इसका क्या कारण है?'॥ १॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर वालिपुत्र अङ्गदने कहा—'क्या आप श्रीराम और महारथी लक्ष्मणकी दशा नहीं देख रहे हैं?॥ २॥

'ये दोनों वीर महात्मा दशरथकुमार रक्तसे भीगे हुए बाण-शय्यापर पड़े हैं और बाणोंके समूहसे व्याप्त हो रहे हैं'॥ ३॥

तब वानरराज सुग्रीवने पुत्र अङ्गदसे कहा—'बेटा! मैं ऐसा नहीं मानता कि सेनामें अकारण ही भगदड़ मच गयी है। किसी-न-किसी भयके कारण ऐसा होना चाहिये॥ ४॥

'ये वानर उदास मुँहसे अपने-अपने हथियार फेंककर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे हैं और भयके कारण आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं॥ ५॥

'पलायन करते समय उन्हें एक दूसरेसे लज्जा नहीं होती है। वे पीछेकी ओर नहीं देखते हैं। एक-दूसरेको घसीटते हैं और जो गिर जाता है, उसे लाँघकर

चल देते हैं (भयके मारे उठातेतक नहीं हैं)'॥ ६॥

इसी बीचमें वीर विभीषण हाथमें गदा लिये वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने विजयसूचक आशीर्वाद देकर सुग्रीव तथा श्रीरघुनाथजीकी अभ्युदय-कामना की॥ ७॥

वानरोंको भयभीत करनेवाले विभीषणको देखकर सुग्रीवने अपने पास ही खड़े हुए महात्मा ऋक्षराज जाम्बवान्से कहा—॥ ८॥

'ये विभीषण आये हैं, जिन्हें देखकर वानरशिरोमणियोंको यह संदेह हुआ है कि रावणका बेटा इन्द्रजित् आ गया। इसीलिये इनका भय बहुत बढ़ गया है और वे भागे जा रहे हैं॥ ९॥

'तुम शीघ्र जाकर यह बताओ कि इन्द्रजित् नहीं, विभीषण आये हैं। ऐसा कहकर बहुधा भयभीत हो पलायन करते हुए इन सब वानरोंको सुस्थिर करो—भागनेसे रोको'॥ १०॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर ऋक्षराज जाम्बवान्ने भागते हुए वानरोंको लौटाकर उन्हें सान्त्वना दी॥ ११॥

ऋक्षराजकी बात सुनकर और विभीषणको अपनी आँखों देखकर वानरोंने भयको त्याग दिया तथा वे सब-के-सब फिर लौट आये॥ १२॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे व्याप्त हुआ देख धर्मात्मा विभीषणको उस समय बड़ी व्यथा हुई॥ १३॥

उन्होंने जलसे भीगे हुए उन दोनों भाइयोंके नेत्र पोंछे और मन-ही-मन शोकसे पीड़ित हो वे रोने और विलाप करने लगे—॥ १४॥

'हाय! जिन्हें युद्ध अधिक प्रिय था और जो बल-विक्रमसे सम्पन्न थे, वे ही ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण मायासे युद्ध करनेवाले राक्षसोंद्वारा इस अवस्थाको पहुँचा दिये गये॥ १५॥

'ये दोनों वीर सरलतापूर्वक पराक्रम प्रकट कर रहे थे। परंतु भाईके इस दुरात्मा कुपुत्रने अपनी कुटिल राक्षसी बुद्धिके द्वारा इन दोनोंके साथ धोखा किया॥ १६॥

'इन दोनोंके शरीर बाणोंद्वारा पूर्णतः छिद गये हैं। ये दोनों भाई खूनसे नहा उठे हैं और इस अवस्थामें पृथ्वीपर सोये हुए ये दोनों राजकुमार काँटोंसे भरे हुए साही नामक जन्तुके समान दिखायी देते हैं॥ १७॥

'जिनके बल-पराक्रमका आश्रय लेकर मैंने लङ्काके राज्यपर प्रतिष्ठित होनेकी अभिलाषा की थी; वे ही दोनों भाई पुरुषशिरोमणि श्रीराम और लक्ष्मण देह-त्यागके लिये सोये हुए हैं॥ १८॥

'आज मैं जीते-जी मर गया। मेरा राज्यविषयक मनोरथ नष्ट हो गया। शत्रु रावणने जो सीताको न लौटानेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। उसके पुत्रने उसे सफलमनोरथ बना दिया'॥ १९॥

इस प्रकार विलाप करते हुए विभीषणको हृदयसे लगाकर शक्तिशाली वानरराज सुग्रीवने उनसे यों कहा—॥ २०॥

'धर्मज्ञ! तुम्हें लङ्काका राज्य प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है। पुत्रसहित रावण यहाँ अपनी कामना पूरी नहीं कर सकेगा॥ २१॥

'ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण मूर्छा त्यागनेके पश्चात् गरुड़की पीठपर बैठकर रणभूमिमें राक्षसगणोंसहित रावणका वध करेंगे'॥ २२॥

राक्षस विभीषणको इस प्रकार सान्त्वना और आश्वासन देकर सुग्रीवने अपने बगलमें खड़े हुए श्वशुर सुषेणसे कहा—॥ २३॥

'आप होशमें आ जानेपर इन दोनों शत्रुदमन श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले शूरवीर वानरगणोंके साथ किष्किन्धाको चले जाइये॥ २४॥

'मैं रावणको पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर उसके हाथसे मिथिलेशकुमारी सीताको उसी प्रकार छीन लाऊँगा, जैसे देवराज इन्द्र अपनी खोयी हुई राजलक्ष्मीको दैत्योंके यहाँसे हर लाये थे'॥ २५॥

वानरराज सुग्रीवकी यह बात सुनकर सुषेणने कहा—'पूर्वकालमें जो देवासुर-महायुद्ध हुआ था, उसे हमने देखा था॥ २६॥

'उस समय अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा लक्ष्यवेधमें कुशल देवताओंको बारम्बार बाणोंसे आच्छादित करते हुए दानवोंने बहुत घायल कर दिया था॥ २७॥

'उस युद्धमें जो देवता अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित, अचेत और प्राणशून्य हो जाते थे, उन सबकी रक्षाके लिये बृहस्पतिजी मन्त्रयुक्त विद्याओं तथा दिव्य ओषधियोंद्वारा उनकी चिकित्सा करते थे॥ २८॥

'मेरी राय है कि उन ओषधियोंको ले आनेके लिये सम्पाति और पनस आदि वानर शीघ्र ही वेगपूर्वक

क्षीरसागरके तटपर जायँ॥ २९॥

'सम्पाति आदि वानर वहाँ पर्वतपर प्रतिष्ठित हुई दो प्रसिद्ध महौषधियोंको जानते हैं। उनमेंसे एकका नाम है संजीवकरणी और दूसरीका नाम है विशल्यकरणी। इन दोनों दिव्य ओषधियोंका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है॥ ३०॥

'सागरोंमें उत्तम क्षीरसमुद्रके तटपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं, जहाँ पूर्वकालमें अमृतका मन्थन किया गया था। उन्हीं दोनों पर्वतोंपर वे श्रेष्ठ ओषधियाँ वर्तमान हैं। महासागरमें देवताओंने ही उन दोनों पर्वतोंको प्रतिष्ठित किया था। राजन्! ये वायुपुत्र हनुमान् उन दिव्य ओषधियोंको लानेके लिये वहाँ जायँ'॥ ३१-३२॥

ओषधियोंको लानेकी वार्ता वहाँ चल ही रही थी कि बड़े जोरसे वायु प्रकट हुई, मेघोंकी घटा घिर आयी और बिजलियाँ चमकने लगीं। वह वायु सागरके जलमें हलचल मचाकर पर्वतोंको कम्पित-सी करने लगी॥ ३३॥

गरुड़के पंखसे उठी हुई प्रचण्ड वायुने सम्पूर्ण द्वीपके बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ डालीं और उन्हें लवणसमुद्रके जलमें गिरा दिया॥ ३४॥

लङ्कावासी महाकाय सर्प भयसे थर्रा उठे। सम्पूर्ण जल-जन्तु शीघ्रतापूर्वक समुद्रके जलमें घुस गये॥ ३५॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें समस्त वानरोंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी महाबली विनतानन्दन गरुड़को वहाँ उपस्थित देखा॥ ३६॥

उन्हें आया देख जिन महाबली नागोंने बाणके रूपमें आकर उन दोनों महापुरुषोंको बाँध रखा था, वे सब-के-सब वहाँसे भाग खड़े हुए॥ ३७॥

तत्पश्चात् गरुड़ने उन दोनों रघुवंशी बन्धुओंको स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथोंसे उनके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखोंको पोंछा॥ ३८॥

गरुड़जीका स्पर्श प्राप्त होते ही श्रीराम और लक्ष्मणके सारे घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर कान्तिसे युक्त एवं स्निग्ध हो गये॥ ३९॥

उनमें तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टिशक्ति, बुद्धि और स्मरणशक्ति आदि महान् गुण पहलेसे भी दुगुने हो गये॥ ४०॥

फिर महातेजस्वी गरुड़ने उन दोनों भाइयोंको, जो साक्षात् इन्द्रके समान थे, उठाकर हृदयसे लगा लिया। तब श्रीरामजीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—॥ ४१॥

'इन्द्रजित्के कारण हमलोगोंपर जो महान् संकट आ गया था, उसे हम आपकी कृपासे लाँघ गये। आप विशिष्ट उपायके ज्ञाता हैं; अतः आपने हम दोनोंको शीघ्र ही पूर्ववत् बलसे सम्पन्न कर दिया है॥ ४२॥

जैसे पिता दशरथ और पितामह अजके पास जानेसे मेरा मन प्रसन्न हो सकता था, वैसे ही आपको पाकर मेरा हृदय हर्षसे खिल उठा है॥ ४३॥

'आप बड़े रूपवान् हैं, दिव्य पुष्पोंकी माला और दिव्य अङ्गरागसे विभूषित हैं। आपने दो स्वच्छ वस्त्र धारण कर रखे हैं तथा दिव्य आभूषण आपकी शोभा बढ़ाते हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं?' (सर्वज्ञ होते हुए भी भगवान्ने मानवभावका आश्रय लेकर गरुड़से ऐसा प्रश्न किया)॥ ४४॥

तब महातेजस्वी महाबली पक्षिराज विनतानन्दन गरुड़ने मन-ही-मन प्रसन्न हो आनन्दके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रवाले श्रीरामसे कहा—॥ ४५॥

'काकुत्स्थ! मैं आपका प्रिय मित्र गरुड़ हूँ। बाहर विचरनेवाला आपका प्राण हूँ। आप दोनोंकी सहायताके लिये ही मैं इस समय यहाँ आया हूँ॥ ४६॥

'महापराक्रमी असुर, महाबली दानव, देवता तथा गन्धर्व भी यदि इन्द्रको आगे करके यहाँ आते तो वे भी इस भयंकर सर्पाकार बाणके बन्धनसे आपको छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो सकते थे॥ ४७ $\frac{1}{2}$ ॥

'क्रूरकर्मा इन्द्रजित्ने मायाके बलसे जिन नागरूपी बाणोंका बन्धन तैयार किया था, वे नाग ये कद्रूके पुत्र ही थे। इनके दाँत बड़े तीखे होते हैं। इन नागोंका विष बड़ा भयंकर होता है। ये राक्षसकी मायाके प्रभावसे बाण बनकर आपके शरीरमें लिपट गये थे॥ ४८-४९॥

'धर्मके ज्ञाता सत्यपराक्रमी श्रीराम! समराङ्गणमें शत्रुओंका संहार करनेवाले अपने भाई लक्ष्मणके साथ ही आप बड़े सौभाग्यशाली हैं (जो अनायास ही इस नागपाशसे मुक्त हो गये)॥ ५०॥

'मैं देवताओंके मुखसे आपलोगोंके नागपाशमें बँधनेका समाचार सुनकर बड़ी उतावलीके साथ यहाँ आया हूँ। हम दोनोंमें जो स्नेह है, उससे प्रेरित हो मित्रधर्मका पालन करता हुआ सहसा आ पहुँचा हूँ।

'आकर मैंने इस महाभयंकर बाण-बन्धनसे

आप दोनोंको छुड़ा दिया। अब आपको सदा ही सावधान रहना चाहिये॥ ५२॥

'समस्त राक्षस स्वभावसे ही संग्राममें कपटपूर्वक युद्ध करनेवाले होते हैं, परंतु शुद्धभाववाले आप-जैसे शूरवीरोंका सरलता ही बल है॥ ५३॥

'इसलिये इसी दृष्टान्तको सामने रखकर आपको रणक्षेत्रमें राक्षसोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि राक्षस सदा ही कुटिल होते हैं'॥ ५४॥

ऐसा कहकर महाबली गरुड़ने उस समय परम स्नेही श्रीरामको हृदयसे लगाकर उनसे जानेकी आज्ञा लेनेका विचार किया॥ ५५॥

वे बोले—'शत्रुओंपर भी दया दिखानेवाले धर्मज्ञ मित्र रघुनन्दन! अब मैं सुखपूर्वक यहाँसे प्रस्थान करूँगा। इसके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ॥ ५६॥

'वीर रघुनन्दन! मैंने जो अपनेको आपका सखा बताया है, इसके विषयमें आपको अपने मनमें कोई कौतूहल नहीं रखना चाहिये। आप युद्धमें सफलता प्राप्त कर लेनेपर मेरे इस सख्यभावको स्वयं समझ लेंगे॥ ५७॥

'आप समुद्रकी लहरोंके समान अपने बाणोंकी परम्परासे लङ्काकी ऐसी दशा कर देंगे कि यहाँ केवल बालक और बूढ़े ही शेष रह जायँगे। इस तरह अपने शत्रु रावणका संहार करके आप सीताको अवश्य प्राप्त कर लेंगे'॥ ५८॥

ऐसी बातें कहकर शीघ्रगामी एवं शक्तिशाली गरुड़ने श्रीरामको नीरोग करके उन वानरोंके बीचमें उनकी परिक्रमा की और उन्हें हृदयसे लगाकर वे वायुके समान गतिसे आकाशमें चले गये॥ ५९-६०॥

श्रीराम और लक्ष्मणको नीरोग हुआ देख उस समय सारे वानर-यूथपति सिंहनाद करने और पूँछ हिलाने लगे॥ ६१॥

फिर तो वानरोंने डंके पीटे, मृदंग बजाये, शङ्खनाद किये और हर्षोल्लाससे भरकर पहलेकी भाँति वे गर्जने और ताल ठोंकने लगे॥ ६२॥

दूसरे पराक्रमी वानर जो वृक्षों और पर्वतशिखरोंको हाथमें लेकर युद्ध करते थे, नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर लाखोंकी संख्यामें युद्धके लिये खड़े हो गये॥ ६३॥

जोर-जोरसे गर्जते और निशाचरोंको डराते हुए सारे वानर युद्धकी इच्छासे लङ्काके दरवाजोंपर आकर डट गये॥ ६४॥

उस समय उन वानरयूथपतियोंका बड़ा भयंकर एवं तुमुल सिंहनाद सब ओर गूँजने लगा, मानो ग्रीष्म-ऋतुके अन्तमें आधी रातके समय गर्जते हुए मेघोंकी गम्भीर गर्जना सब ओर व्याप्त हो रही हो॥ ६५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

श्रीरामके बन्धनमुक्त होनेका पता पाकर चिन्तित हुए रावणका धूम्राक्षको युद्धके लिये भेजना और सेनासहित धूम्राक्षका नगरसे बाहर आना

उस समय भीषण गर्जना करते हुए महाबली वानरोंका वह तुमुलनाद राक्षसोंसहित रावणने सुना॥

मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने जब वह स्निग्ध गम्भीर घोष, वह उच्चस्वरसे किया हुआ सिंहनाद सुना, तब वह इस प्रकार बोला—॥ २॥

'इस समय गर्जते हुए मेघोंके समान जो अधिक हर्षमें भरे हुए बहुसंख्यक वानरोंका यह महान् कोलाहल प्रकट हो रहा है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि इन सबको बड़ा भारी हर्ष प्राप्त हुआ है; इसमें संशय नहीं है। तभी इस तरह बारम्बार की गयी गर्जनाओंसे यह खारे पानीका समुद्र विक्षुब्ध हो उठा है॥ ३-४॥

'परंतु वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तो तीखे बाणोंसे बँधे हुए हैं। इधर यह महान् हर्षनाद भी हो रहा है, जो मेरे मनमें शङ्का-सी उत्पन्न कर रहा है'॥ ५॥

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने अपने पास ही खड़े हुए राक्षसोंसे कहा—॥ ६॥

'तुमलोग शीघ्र ही जाकर इस बातका पता लगाओ कि शोकका अवसर उपस्थित होनेपर भी इन सब वानरोंके हर्षका कौन-सा कारण प्रकट हो गया है'॥ ७॥

रावणके इस प्रकार आदेश देनेपर वे राक्षस घबराये हुए गये और परकोटेपर चढ़कर महात्मा सुग्रीवके द्वारा

पालित वानरसेनाकी ओर देखने लगे॥ ८॥

जब उन्हें मालूम हुआ कि महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण उस अत्यन्त भयंकर नागरूपी बाणोंके बन्धनसे मुक्त होकर उठ गये हैं, तब समस्त राक्षसोंको बड़ा दुःख हुआ॥ ९॥

उनका हृदय भयसे थर्रा उठा। वे सब भयानक राक्षस परकोटेसे उतरकर उदास हो राक्षसराज रावणकी सेवामें उपस्थित हुए॥ १०॥

वे बातचीतकी कलामें कुशल थे। उनके मुखपर दीनता छा रही थी। उन निशाचरोंने वह सारा अप्रिय समाचार रावणको यथावत् रूपसे बताया॥ ११॥

(वे बोले—) 'महाराज! कुमार इन्द्रजित्ने जिन राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको युद्धस्थलमें नागरूपी बाणोंके बन्धनसे बाँधकर हाथ हिलानेमें भी असमर्थ कर दिया था, वे गजराजके समान पराक्रमी दोनों वीर जैसे हाथी रस्सेको तोड़कर स्वतन्त्र हो जायँ, उसी तरह बाणबन्धनसे मुक्त हो समराङ्गणमें खड़े दिखायी देते हैं'॥ १२-१३॥

उनका वह वचन सुनकर महाबली राक्षसराज रावण चिन्ता तथा शोकके वशीभूत हो गया और उसका चेहरा उतर गया॥ १४॥

(वह मन-ही-मन सोचने लगा—) 'जो विषधर सर्पोंके समान भयंकर, वरदानमें प्राप्त हुए और अमोघ थे तथा जिनका तेज सूर्यके समान था, उन्हींके द्वारा युद्धस्थलमें इन्द्रजित्ने जिन्हें बाँध दिया था, वे मेरे दोनों शत्रु यदि उस अस्त्रबन्धनमें पड़कर भी उससे छूट गये, तब तो अब मैं अपनी सारी सेनाको संशयापन्न ही देखता हूँ॥ १५-१६॥

'जिन्होंने पहले युद्धस्थलमें मेरे शत्रुओंके प्राण ले लिये थे, वे अग्नितुल्य तेजस्वी बाण निश्चय ही आज निष्फल हो गये'॥ १७॥

ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित हुआ रावण फुफकारते हुए सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेने लगा और राक्षसोंके बीचमें धूम्राक्ष नामक निशाचरसे बोला—॥

'भयानक पराक्रमी वीर! तुम राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर वानरोंसहित रामका वध करनेके लिये शीघ्र जाओ'॥ १९॥

बुद्धिमान् राक्षसराजके इस प्रकार आज्ञा देनेपर धूम्राक्षने उसकी परिक्रमा की तथा वह तुरंत राजभवनसे बाहर निकल गया॥ २०॥

रावणके गृहद्वारपर पहुँचकर उसने सेनापतिसे कहा—'सेनाको उतावलीके साथ शीघ्र तैयार करो। युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको विलम्ब करनेसे क्या लाभ?'॥ २१॥

धूम्राक्षकी बात सुनकर रावणकी आज्ञाके अनुसार सेनापतिने जिनके पीछे बहुत बड़ी सेना थी, भारी संख्यामें सैनिकोंको तैयार कर दिया॥ २२॥

वे भयानक रूपधारी बलवान् निशाचर प्रास और शक्ति आदि अस्त्रोंमें घण्टे बाँधकर हर्ष और उत्साहसे युक्त हो जोर-जोरसे गर्जते हुए आये और धूम्राक्षको घेरकर खड़े हो गये॥ २३॥

उनके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे। कुछ लोगोंने अपने हाथोंमें शूल और मुद्गर ले रखे थे। गदा-पट्टिश, लोहदण्ड, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और फरसे लिये बहुतेरे भयानक राक्षस युद्धके लिये निकले। वे सभी मेघोंके समान गम्भीर गर्जना करते थे॥

कितने ही निशाचर ध्वजोंसे अलंकृत तथा सोनेकी जालीसे आच्छादित रथोंद्वारा युद्धके लिये बाहर आये। वे सब-के-सब कवच धारण किये हुए थे। कितने ही श्रेष्ठ राक्षस नाना प्रकारके मुखवाले गधों, परम शीघ्रगामी घोड़ों तथा मदमत्त हाथियोंपर सवार हो दुर्जय व्याघ्रोंके समान युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले॥ २६-२७॥

धूम्राक्षके रथमें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित ऐसे गधे नधे हुए थे जिनके मुँह भेड़ियों और सिंहोंके समान थे। गधेकी भाँति रेंकनेवाला धूम्राक्ष उस दिव्य रथपर सवार हुआ॥ २८॥

इस प्रकार बहुत-से राक्षसोंके साथ महापराक्रमी धूम्राक्ष हँसता हुआ पश्चिम द्वारसे, जहाँ हनुमान्जी शत्रुका सामना करनेके लिये खड़े थे, युद्धके लिये निकला॥ २९॥

गदहोंसे जुते और गदहोंकी-सी आवाज करनेवाले उस श्रेष्ठ रथपर बैठकर युद्धके लिये जाते हुए महाघोर राक्षस धूम्राक्षको, जो बड़ा भयानक दिखायी देता था, आकाशचारी क्रूर पक्षियोंने अशुभसूचक बोली बोलकर आगे बढ़नेसे मना किया॥ ३०$\frac{१}{२}$॥

उसके रथके ऊपरी भागपर एक महाभयानक गीध आ गिरा। ध्वजके अग्रभागपर बहुत-से मुर्दाखोर पक्षी परस्पर गुँथे हुए-से गिर पड़े। उसी समय एक बहुत बड़ा श्वेत कबन्ध (धड़) खूनसे लथपथ होकर

पृथ्वीपर गिरा॥ ३१-३२॥

वह कबन्ध बड़े जोर-जोरसे चीत्कार करता हुआ धूम्राक्षके पास ही गिरा था। बादल रक्तकी वर्षा करने लगे और पृथ्वी डोलने लगी॥ ३३॥

वायु प्रतिकूल दिशाकी ओरसे बहने लगी। उसमें वज्रपातके समान गड़गड़ाहट पैदा होती थी। सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो जानेके कारण प्रकाशित नहीं होती थीं॥ ३४॥

राक्षसोंके लिये भय देनेवाले वहाँ प्रकट हुए उन भयंकर उत्पातोंको देखकर धूम्राक्ष व्यथित हो उठा और उसके आगे चलनेवाले सभी राक्षस अचेत-से हो गये॥

इस प्रकार बहुसंख्यक निशाचरोंसे घिरे हुए और युद्धके लिये उत्सुक रहनेवाले महाभयंकर बलवान् राक्षस धूम्राक्षने नगरसे बाहर निकलकर श्रीरामचन्द्रजीके बाहुबलसे सुरक्षित एवं प्रलयकालिक समुद्रके समान विशाल वानरी सेनाको देखा॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्‌जीके द्वारा उसका वध

भयंकर पराक्रमी निशाचर धूम्राक्षको निकलत देख युद्धकी इच्छा रखनेवाले समस्त वानर हर्ष और उत्साहसे भरकर सिंहनाद करने लगे॥ १॥

उस समय उन वानरों और राक्षसोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। वे घोर वृक्षों तथा शूलों और मुद्गरोंसे एक-दूसरेको चोट पहुँचाने लगे॥ २॥

राक्षसोंने चारों ओरसे घोर वानरोंको काटना आरम्भ किया तथा वानरोंने भी राक्षसोंको वृक्षोंसे मार-मारकर धराशायी कर दिया॥ ३॥

क्रोधसे भरे हुए राक्षसोंने अपने कङ्कपत्रयुक्त, सीधे जानेवाले, घोर एवं तीखे बाणोंसे वानरोंको गहरी चोट पहुँचायी॥ ४॥

राक्षसोंद्वारा भयंकर गदाओं, पट्टिशों, कूट, मुद्गरों, घोर परिघों और हाथमें लिये हुए विचित्र त्रिशूलोंसे विदीर्ण किये जाते हुए वे महाबली वानर अमर्षजनित उत्साहसे निर्भयकी भाँति महान् कर्म करने लगे॥ ५-६॥

बाणोंकी चोटसे उनके शरीर छिद गये थे। शूलोंकी मारसे देह विदीर्ण हो गयी थी। इस अवस्थामें उन वानर-यूथपतियोंने हाथोंमें वृक्ष और शिलाएँ उठायीं॥

उस समय उनका वेग बड़ा भयंकर था। वे जोर-जोरसे गर्जना करते हुए जहाँ-तहाँ वीर राक्षसोंको पटक-पकटकर मथने लगे और अपने नामोंकी भी घोषणा करने लगे॥ ८॥

नाना प्रकारकी शिलाओं और बहुत-सी शाखावाले वृक्षोंके प्रहारसे वहाँ वानरों और राक्षसोंमें घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा॥ ९॥

विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वानरोंने कितने ही राक्षसोंको मसल डाला। कितने ही रक्तभोजी राक्षस उनकी मार खाकर अपने मुखोंसे रक्त वमन करने लगे॥ १०॥

कुछ राक्षसोंकी पसलियाँ फाड़ डाली गयीं। कितने ही वृक्षोंकी चोट खाकर ढेर हो गये, किन्हींका पत्थरोंकी चोटोंसे चूर्ण बन गया और कितने ही दाँतोंसे विदीर्ण कर दिये गये॥ ११॥

कितनोंके ध्वज खण्डित करके मसल डाले गये। तलवारें छीनकर नीचे गिरा दी गयीं और रथ चौपट कर दिये गये। इस प्रकार दुर्दशामें पड़कर बहुत-से राक्षस व्यथित हो गये॥ १२॥

वानरोंके चलाये हुए पर्वत-शिखरोंसे कुचल डाले गये पर्वताकार गजराजों, घोड़ों और घुड़सवारोंसे वह सारी रणभूमि पट गयी॥ १३॥

भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले वेगशाली वानर उछल-उछलकर अपने पंजोंसे राक्षसोंके मुँह नोच लेते या विदीर्ण कर देते थे॥ १४॥

उन राक्षसोंके मुखोंपर विषाद छा जाता। उनके बाल सब ओर बिखर जाते और रक्तकी गन्धसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर पड़ जाते थे॥ १५॥

दूसरे भीषण पराक्रमी राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने वज्रसदृश कठोर तमाचोंसे मारते हुए वहाँ वानरोंपर धावा करते थे॥ १६॥

प्रतिपक्षीको वेगपूर्वक गिरानेवाले उन राक्षसोंका बहुत-से अत्यन्त वेगशाली वानरोंने लातों, मुक्कों, दाँतों

और वृक्षोंकी मारसे कचूमर निकाल दिया॥ १७॥

अपनी सेनाको वानरोंद्वारा भगायी गयी देख राक्षसशिरोमणि धूम्राक्षने युद्धकी इच्छासे सामने आये हुए वानरोंका रोषपूर्वक संहार आरम्भ किया॥ १८॥

कुछ वानरोंको उसने भालोंसे गाँथ दिया, जिससे वे खूनकी धारा बहाने लगे। कितने ही वानर उसके मुद्गरोंसे आहत होकर धरतीपर लोट गये॥ १९॥

कुछ वानर परिघोंसे कुचल डाले गये। कुछ भिन्दिपालोंसे चीर दिये गये और कुछ पट्टिशोंसे मथे जाकर व्याकुल हो अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ २०॥

कितने ही वानर राक्षसोंद्वारा मारे जाकर खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर सो गये और कितने ही क्रोधभरे राक्षसोंद्वारा युद्धस्थलमें खदेड़े जानेपर कहीं भागकर छिप गये॥ २१॥

कितनोंके हृदय विदीर्ण हो गये। कितने ही एक करवटसे सुला दिये गये तथा कितनोंको त्रिशूलसे विदीर्ण करके धूम्राक्षने उनकी आँतें बाहर निकाल दीं॥ २२॥

वानरों और राक्षसोंसे भरा हुआ वह महान् युद्ध बड़ा भयानक प्रतीत होता था। उसमें अस्त्र-शस्त्रोंकी बहुलता थी तथा शिलाओं और वृक्षोंकी वर्षासे सारी रणभूमि भर गयी थी॥ २३॥

वह युद्धरूपी गान्धर्व (संगीत-महोत्सव) अद्भुत प्रतीत होता था। धनुषकी प्रत्यञ्चासे जो टंकार-ध्वनि होती थी, वही मानो वीणाका मधुर नाद था, हिचकियाँ तालका काम देती थीं और मन्दस्वरसे घायलोंका जो कराहना होता था वही गीतका स्थान ले रहा था॥ २४॥

इस प्रकार धनुष हाथमें लिये धूम्राक्षने युद्धके मुहानेपर बाणोंकी वर्षा करके वानरोंको हँसते-हँसते सम्पूर्ण दिशाओंमें मार भगाया॥ २५॥

धूम्राक्षकी मारसे अपनी सेनाको पीड़ित एवं व्यथित हुई देख पवनकुमार हनुमान्जी अत्यन्त कुपित हो उठे और एक विशाल शिला हाथमें ले उसके सामने आये॥ २६॥

उस समय क्रोधके कारण उनके नेत्र दुगुने लाल हो रहे थे। उनका पराक्रम अपने पिता वायुदेवताके ही समान था। उन्होंने धूम्राक्षके रथपर वह विशाल शिला दे मारी॥ २७॥

उस शिलाको रथकी ओर आती देख धूम्राक्ष हड़बड़ीमें गदा लिये उठा और वेगपूर्वक रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ २८॥

वह शिला पहिये, कूबर, अश्व, ध्वज और धनुषसहित उसके रथको चूर-चूर करके पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २९॥

इस प्रकार धूम्राक्षके रथको चौपट करके पवनपुत्र हनुमान्ने छोटी-बड़ी डालियोंसहित वृक्षोंद्वारा राक्षसोंका संहार आरम्भ किया॥ ३०॥

बहुतेरे राक्षसोंके सिर फूट गये और वे रक्तसे नहा उठे। दूसरे बहुत-से निशाचर वृक्षोंकी मारसे कुचले जाकर धरतीपर लोट गये॥ ३१॥

इस प्रकार राक्षससेनाको खदेड़कर पवनकुमार हनुमान्ने एक पर्वतका शिखर उठा लिया और धूम्राक्षपर धावा किया॥ ३२॥

उन्हें आते देख पराक्रमी धूम्राक्षने भी गदा उठा ली और गर्जना करता हुआ वह सहसा हनुमान्जीकी ओर दौड़ा॥ ३३॥

धूम्राक्षने कुपित हुए हनुमान्जीके मस्तकपर बहुसंख्यक काँटोंसे भरी हुई वह गदा दे मारी॥ ३४॥

भयानक वेगवाली उस गदाकी चोट खाकर भी वायुके समान बलशाली कपिवर हनुमान्ने वहाँ इस प्रहारको कुछ भी नहीं गिना और धूम्राक्षके मस्तकपर वह पर्वतशिखर चला दिया॥ ३५ $\frac{1}{2}$ ॥

पर्वतशिखरकी गहरी चोट खाकर धूम्राक्षके सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और वह बिखरे हुए पर्वतकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३६ $\frac{1}{2}$ ॥

धूम्राक्षको मारा गया देख मरनेसे बचे हुए निशाचर भयभीत हो वानरोंकी मार खाते हुए लङ्कामें घुस गये॥ ३७॥

इस प्रकार शत्रुओंको मारकर और रक्तकी धारा बहानेवाली बहुत-सी नदियोंको प्रवाहित करके महात्मा पवनकुमार हनुमान् यद्यपि शत्रुवधजनित परिश्रमसे थक गये थे, तथापि वानरोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होनेसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्रका सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान, वानरों और राक्षसोंका युद्ध, वज्रदंष्ट्रद्वारा वानरोंका तथा अङ्गदद्वारा राक्षसोंका संहार

धूम्राक्षके मारे जानेका समाचार सुनकर राक्षसराज रावणको महान् क्रोध हुआ। वह फुफकारते हुए सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेने लगा॥ १॥

क्रोधसे कलुषित हो गर्म-गर्म लम्बी साँस खींचकर उसने क्रूर निशाचर महाबली वज्रदंष्ट्रसे कहा—॥ २॥

'वीर! तुम राक्षसोंके साथ जाओ और दशरथकुमार राम और वानरोंसहित सुग्रीवको मार डालो'॥ ३॥

तब वह मायावी राक्षस 'बहुत अच्छा' कहकर बहुत बड़ी सेनाके साथ तुरंत युद्धके लिये चल दिया॥

वह हाथी, घोड़े, गदहे और ऊँट आदि सवारियोंसे युक्त था, चित्तको पूर्णतः एकाग्र किये हुए था और पताका, ध्वजा आदिसे विचित्र शोभा पानेवाले बहुत-से सेनाध्यक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ५॥

विचित्र भुजबंद और मुकुटसे विभूषित हो कवच धारण करके हाथमें धनुष लिये वह शीघ्र ही निकला॥

ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत, दीप्तिमान् तथा सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित रथकी परिक्रमा करके सेनापति वज्रदंष्ट्र उसपर आरूढ़ हुआ॥ ७॥

उसके साथ ऋष्टि, विचित्र तोमर, चिकने मूसल, भिन्दिपाल, धनुष, शक्ति, पट्टिश, खड्ग, चक्र, गदा और तीखे फरसोंसे सुसज्जित बहुत-से पैदल योद्धा चले। उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे थे॥ ८-९॥

विचित्र वस्त्र धारण करनेवाले सभी राक्षस वीर अपने तेजसे उद्भासित हो रहे थे। शौर्यसम्पन्न मदमत्त गजराज चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ते थे॥

हाथोंमें तोमर, अंकुश धारण करनेवाले महावत जिनकी गर्दनपर सवार थे तथा जो युद्धकी कलामें कुशल थे, वे हाथी युद्धके लिये आगे बढ़े। उत्तम लक्षणोंसे युक्त जो दूसरे-दूसरे महाबली घोड़े थे, जिनके ऊपर शूरवीर सैनिक सवार थे, वे भी युद्धके लिये निकले॥ ११॥

युद्धके उद्देश्यसे प्रस्थित हुई राक्षसोंकी वह सारी सेना वर्षाकालमें गर्जते हुए बिजलियोंसहित मेघके समान शोभा पा रही थी॥ १२॥

वह सेना लङ्काके दक्षिणद्वारसे निकली, जहाँ वानर-यूथपति अङ्गद राह रोके खड़े थे। उधरसे निकलते ही उन राक्षसोंके सामने अशुभसूचक अपशकुन होने लगा॥

मेघरहित आकाशसे तत्काल दुःसह उल्कापात होने लगे। भयानक गीदड़ मुँहसे आगकी ज्वाला उगलते हुए अपनी बोली बोलने लगे॥ १४॥

घोर पशु ऐसी बोली बोलने लगे, जिससे राक्षसोंके संहारकी सूचना मिल रही थी। युद्धके लिये आते हुए योद्धा बुरी तरह लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे। इससे उनकी बड़ी दारुण अवस्था हो जाती थी॥ १५॥

इन उत्पातसूचक लक्षणोंको देखकर भी महाबली वज्रदंष्ट्रने धैर्य नहीं छोड़ा। वह तेजस्वी वीर युद्धके लिये उत्सुक होकर निकला॥ १६॥

तीव्रगतिसे आते हुए उन राक्षसोंको देखकर विजयलक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाले वानर बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उन्होंने अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा दिया॥ १७॥

तदनन्तर भयानक रूप धारण करनेवाले घोर वानरोंका राक्षसोंके साथ तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों दलोंके योद्धा एक-दूसरेका वध करना चाहते थे॥ १८॥

वे बड़े उत्साहसे युद्धके लिये निकलते; परंतु देह और गर्दन कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे। उस समय उनके सारे अङ्ग रक्तसे भीग जाते थे॥ १९॥

युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले और परिघ-जैसी बाँहोंवाले कितने ही शूरवीर एक-दूसरेके निकट पहुँचकर परस्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते थे॥

उस युद्धस्थलमें प्रयुक्त होनेवाले वृक्षों, शिलाओं और शस्त्रोंका महान् एवं घोर शब्द जब कानोंमें पड़ता था, तब वह हृदयको विदीर्ण-सा कर देता था॥ २१॥

वहाँ रथके पहियोंकी घर्घराहट, धनुषकी भयानक टंकार तथा शङ्ख, भेरी और मृदङ्गोंका शब्द एकमें मिलकर बड़ा भयंकर प्रतीत होता था॥ २२॥

कुछ योद्धा अपने हथियार फेंककर बाहुयुद्ध करने लगते थे। थप्पड़ों, लातों, मुक्कों, वृक्षों और घुटनोंकी

मार खाकर कितने ही राक्षसोंके शरीर चूर-चूर हो गये थे। रणदुर्मद वानरोंने शिलाओंसे मार-मारकर कितने ही राक्षसोंका चूरा बना दिया था॥ २३-२४॥

उस समय वज्रदंष्ट्र अपने बाणोंकी मारसे वानरोंको अत्यन्त भयभीत करता हुआ तीनों लोकोंके संहारके लिये उठे हुए पाशधारी यमराजके समान रणभूमिमें विचरने लगा॥ २५॥

साथ ही क्रोधसे भरे तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अन्य अस्त्रवेत्ता बलवान् राक्षस भी वानरसेनाओंका रणभूमिमें संहार करने लगे॥ २६॥

किंतु प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि जैसे प्राणियोंका संहार करती है, उसी तरह वालिपुत्र अङ्गद और भी निर्भय हो दूने क्रोधसे भरकर उन सब राक्षसोंका वध करने लगे॥ २७॥

उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वे इन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे। जैसे सिंह छोटे वन्य-पशुओंको अनायास ही नष्ट कर देता है, उसी तरह पराक्रमी अङ्गदने एक वृक्ष उठाकर उन समस्त राक्षसगणोंका घोर संहार आरम्भ किया॥ २८½॥

अङ्गदकी मार खाकर वे भयानक पराक्रमी राक्षस सिर फट जानेके कारण कटे हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिरने लगे॥ २९½॥

उस समय रथों, चित्र-विचित्र ध्वजों, घोड़ों, राक्षस और वानरोंके शरीरों तथा रक्तकी धाराओंसे भर जानेके कारण वह रणभूमि बड़ी भयानक जान पड़ती थी॥ ३०½॥

योद्धाओंके हार, केयूर (बाजूबंद), वस्त्र और शस्त्रोंसे अलंकृत हुई रणभूमि शरत्कालकी रात्रिके समान शोभा पाती थी॥ ३१½॥

अङ्गदके वेगसे वहाँ वह विशाल राक्षससेना उस समय उसी तरह काँपने लगी, जैसे वायुके वेगसे मेघ कम्पित हो उठता है॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्र और अङ्गदका युद्ध तथा अङ्गदके हाथसे उस निशाचरका वध

अङ्गदके पराक्रमसे अपनी सेनाका संहार होता देख महाबली राक्षस वज्रदंष्ट्र अत्यन्त कुपित हो उठा॥

वह इन्द्रके वज्रके समान तेजस्वी अपना भयंकर धनुष खींचकर वानरोंकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २॥

उसके साथ अन्य प्रधान-प्रधान शूरवीर राक्षस भी रथोंपर बैठकर हाथोंमें तरह-तरहके हथियार लिये संग्रामभूमिमें युद्ध करने लगे॥ ३॥

वानरोंमें भी जो विशेष शूरवीर थे, वे सभी वानरशिरोमणि सब ओरसे एकत्र हो हाथोंमें शिलाएँ लिये जूझने लगे॥ ४॥

उस समय इस रणभूमिमें राक्षसोंने मुख्य-मुख्य वानरोंपर हजारों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की॥ ५॥

मतवाले हाथीके समान विशालकाय वीर वानरोंने भी राक्षसोंपर अनेकानेक पर्वत, वृक्ष और बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरायीं॥ ६॥

युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और उत्साहपूर्वक जूझनेवाले शूरवीर वानरों और राक्षसोंका वह युद्ध उत्तरोत्तर बढ़ता गया॥ ७॥

किन्हींके सिर फूटे, किन्हींके हाथ और पैर कट गये और बहुत-से योद्धाओंके शरीर शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हो रक्तसे नहा गये॥ ८॥

वानर और राक्षस दोनों ही धराशायी हो गये। उनपर कङ्क, गीध और कौए टूट पड़े। गीदड़ोंकी जमातें छा गयीं॥ ९॥

वहाँ जिनके मस्तक कट गये थे, ऐसे धड़ सब ओर उछलने लगे, जो भीरु स्वभाववाले सैनिकोंको भयभीत करते थे। योद्धाओंकी कटी हुई भुजाएँ, हाथ, सिर तथा शरीरके मध्यभाग पृथ्वीपर पड़े हुए थे॥ १०॥

वानर और राक्षस दोनों ही दलोंके लोग वहाँ धराशायी हो रहे थे। तत्पश्चात् कुछ ही देरमें वानर-सैनिकोंके प्रहारोंसे पीड़ित हो सारी निशाचरसेना वज्रदंष्ट्रके देखते-देखते भाग चली॥ ११½॥

वानरोंकी मारसे राक्षसोंको भयभीत हुआ देख प्रतापी वज्रदंष्ट्रकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं॥ १२½॥

वह हाथमें धनुष ले वानरसेनाको भयभीत करता

हुआ उसके भीतर घुस गया और सीधे जानेवाले कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा शत्रुओंको विदीर्ण करने लगा॥

अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ प्रतापी वज्रदंष्ट्र वहाँ एक-एक प्रहारसे पाँच, सात, आठ और नौ-नौ वानरोंको घायल कर देता था। इस तरह उसने वानर-सैनिकोंको गहरी चोट पहुँचायी॥ १४½ ॥

बाणोंसे जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये थे, वे समस्त वानरगण भयभीत हो अङ्गदकी ओर दौड़े, मानो प्रजा प्रजापतिकी शरणमें जा रही हो॥ १५॥

उस समय वानरोंको भागते देख वालिकुमार अङ्गदने अपनी ओर देखते हुए वज्रदंष्ट्रको क्रोधपूर्वक देखा॥ १६॥

फिर तो वज्रदंष्ट्र और अङ्गद अत्यन्त कुपित हो एक-दूसरेसे वेगपूर्वक युद्ध करने लगे। वे दोनों रणभूमिमें बाघ और मतवाले हाथीके समान विचर रहे थे॥ १७॥

उस समय वज्रदंष्ट्रने महाबली वालिपुत्र अङ्गदके मर्मस्थानोंमें अग्निशिखाके समान तेजस्वी एक लाख बाण मारे॥ १८॥

इससे उनके सारे अङ्ग लहू-लुहान हो उठे। तब भयानक पराक्रमी महाबली वालिकुमारने वज्रदंष्ट्रपर एक वृक्ष चलाया॥ १९॥

उस वृक्षको अपनी ओर आते देखकर भी वज्रदंष्ट्रके मनमें घबराहट नहीं हुई। उसने बाण मारकर उस वृक्षके कई टुकड़े कर दिये। इस प्रकार खण्डित होकर वह वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २०॥

वज्रदंष्ट्रके उस पराक्रमको देखकर वानरशिरोमणि अङ्गदने एक विशाल चट्टान लेकर उसके ऊपर दे मारी और बड़े जोरसे गर्जना की॥ २१॥

उस चट्टानको आती देख वह पराक्रमी राक्षस बिना किसी घबराहटके रथसे कूद पड़ा और केवल गदा हाथमें लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ २२॥

अङ्गदकी फेंकी हुई वह चट्टान उसके रथपर पहुँच गयी और युद्धके मुहानेपर उसने पहिये, कूबर तथा घोड़ोंसहित उस रथको तत्काल चूर-चूर कर डाला॥ २३॥

तत्पश्चात् वानरवीर अङ्गदने वृक्षोंसे अलंकृत दूसरा विशाल शिखर हाथमें लेकर उसे वज्रदंष्ट्रके मस्तकपर दे मारा॥ २४॥

वज्रदंष्ट्र उसकी चोटसे मूर्च्छित हो गया और रक्त वमन करने लगा। वह गदाको हृदयसे लगाये दो घड़ीतक अचेत पड़ा रहा। केवल उसकी साँस चलती रही॥ २५॥

होशमें आनेपर उस निशाचरने अत्यन्त कुपित हो सामने खड़े हुए वालिपुत्रकी छातीमें गदासे प्रहार किया॥ २६॥

फिर गदा त्यागकर वह वहाँ मुक्केसे युद्ध करने लगा। वे वानर और राक्षस दोनों वीर एक-दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे॥ २७॥

दोनों ही बड़े पराक्रमी थे और परस्पर जूझते हुए मङ्गल एवं बुधके समान जान पड़ते थे। आपसके प्रहारोंसे पीड़ित हो दोनों ही थक गये और मुँहसे रक्त वमन करने लगे॥ २८॥

तत्पश्चात् परम तेजस्वी वानरशिरोमणि अङ्गद एक वृक्ष उखाड़कर खड़े हो गये। वे वहाँ उस वृक्षसम्बन्धी फल-फूलोंके कारण स्वयं भी फल और फूलोंसे युक्त दिखायी देते थे॥ २९॥

उधर वज्रदंष्ट्रने ऋषभके चर्मकी बनी हुई ढाल और सुन्दर एवं विशाल तलवार ले ली। वह तलवार छोटी-छोटी घण्टियोंके जालसे आच्छादित तथा चमड़ेकी म्यानसे सुशोभित थी॥ ३०॥

उस समय परस्पर विजयकी इच्छा रखनेवाले वे वानर और राक्षस वीर सुन्दर एवं विचित्र पैंतरे बदलने तथा गर्जते हुए एक-दूसरेपर चोट करने लगे॥ ३१॥

दोनोंके घावोंसे रक्तकी धारा बहने लगी, जिससे वे खिले हुए पलाश-वृक्षोंके समान शोभा पाने लगे। लड़ते-लड़ते थक जानेके कारण दोनोंने ही पृथ्वीपर घुटने टेक दिये॥ ३२॥

किंतु पलक मारते-मारते कपिश्रेष्ठ अङ्गद उठकर खड़े हो गये। उनके नेत्र रोषसे उद्दीप्त हो उठे थे और वे डंडेकी चोट खाये हुए सर्पके समान उत्तेजित हो रहे थे॥ ३३॥

महाबली वालिकुमारने अपनी निर्मल एवं तेज धारवाली चमकीली तलवारसे वज्रदंष्ट्रका विशाल मस्तक काट डाला॥ ३४॥

खूनसे लथपथ शरीरवाले उस राक्षसका वह खड्गसे कटा हुआ सुन्दर मस्तक, जिसके नेत्र उलट गये थे, धरतीपर गिरकर दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया॥

वज्रदंष्ट्रको मारा गया देख राक्षस भयसे अचेत हो गये। वे वानरोंकी मार खाकर भयके मारे लङ्कामें भाग गये। उनके मुखपर विषाद छा रहा था। वे बहुत दुःखी

थे और लज्जाके कारण उन्होंने अपना मुँह कुछ नीचा कर लिया था॥ ३६॥

वज्रधारी इन्द्रके समान प्रतापी महाबली वालिकुमार अङ्गद उस निशाचर वज्रदंष्ट्रको मारकर वानरसेनामें सम्मानित हो देवताओंसे घिरे हुए सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके समान बड़े हर्षको प्राप्त हुए॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

रावणकी आज्ञासे अकम्पन आदि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानरोंके साथ उनका घोर युद्ध

वालिपुत्र अङ्गदके हाथसे वज्रदंष्ट्रके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणने हाथ जोड़कर अपने पास खड़े हुए सेनापति प्रहस्तसे कहा—॥ १॥

'अकम्पन सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अत: उन्हींको आगे करके भयंकर पराक्रमी दुर्धर्ष राक्षस शीघ्र यहाँसे युद्धके लिये जायँ॥ २॥

'अकम्पनको युद्ध सदा ही प्रिय है। ये सर्वदा मेरी उन्नति चाहते हैं। इन्हें युद्धमें एक श्रेष्ठ योद्धा माना गया है। ये शत्रुओंको दण्ड देने, अपने सैनिकोंकी रक्षा करने तथा रणभूमिमें सेनाका संचालन करनेमें समर्थ हैं॥ ३॥

'अकम्पन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको तथा महाबली सुग्रीवको भी परास्त कर देंगे और दूसरे-दूसरे भयानक वानरोंका भी संहार कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है'॥ ४॥

रावणकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके शीघ्र-पराक्रमी महाबली सेनाध्यक्षने उस समय युद्धके लिये सेना भेजी॥ ५॥

सेनापतिसे प्रेरित हो भयानक नेत्रोंवाले मुख्य-मुख्य भयंकर राक्षस नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये नगरसे बाहर निकले॥ ६॥

उसी समय तपे हुए सोनेसे विभूषित विशाल रथपर आरूढ़ हो घोर राक्षसोंसे घिरा हुआ अकम्पन भी निकला। वह मेघके समान विशाल था, मेघके समान ही उसका रंग था और मेघके ही तुल्य उसकी गर्जना थी॥ ७½॥

महासमरमें देवता भी उसे कम्पित नहीं कर सकते थे, इसीलिये वह अकम्पन नामसे विख्यात था और राक्षसोंमें सूर्यके समान तेजस्वी था॥ ८½॥

रोषावेशसे भरकर युद्धकी इच्छासे धावा करनेवाले अकम्पनके रथमें जुते हुए घोड़ोंका मन अकस्मात् दीनभावको प्राप्त हो गया॥ ९½॥

यद्यपि अकम्पन युद्धका अभिनन्दन करनेवाला था, तथापि उस समय उसकी बायीं आँख फड़कने लगी। मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी और वाणी गद्गद हो गयी॥

यद्यपि वह समय सुदिनका था, तथापि सहसा रूखी हवासे युक्त दुर्दिन छा गया। सभी पशु और पक्षी क्रूर एवं भयदायक बोली बोलने लगे॥ ११½॥

अकम्पनके कन्धे सिंहके समान पुष्ट थे। उसका पराक्रम व्याघ्रके समान था। वह पूर्वोक्त उत्पातोंकी कोई परवा न करके रणभूमिकी ओर चला॥ १२½॥

जिस समय वह राक्षस दूसरे राक्षसोंके साथ लङ्कासे निकला, उस समय ऐसा महान् कोलाहल हुआ कि समुद्रमें भी हलचल-सी मच गयी॥ १३½॥

उस महान् कोलाहलसे वानरोंकी वह विशाल सेना भयभीत हो गयी। युद्धके लिये उपस्थित हो वृक्षों और शैल-शिखरोंका प्रहार करनेवाले उन वानरों और राक्षसोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा॥ १४-१५॥

श्रीराम और रावणके निमित्त आत्मत्यागके लिये उद्यत हुए वे समस्त शूरवीर अत्यन्त बलशाली और पर्वतके समान विशालकाय थे॥ १६॥

वानर तथा राक्षस एक-दूसरेके वधकी इच्छासे वहाँ एकत्र हुए थे। वे युद्धस्थलमें अत्यन्त वेगशाली थे। कोलाहल करते और एक-दूसरेको लक्ष्य करके क्रोधपूर्वक गर्जते थे। उनका महान् शब्द सुदूरतक सुनायी देता था॥ १७½॥

वानरों और राक्षसोंद्वारा उड़ायी गयी लाल रंगकी धूल बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। उसने दसों दिशाओंको आच्छादित कर लिया था॥ १८½॥

परस्पर उड़ायी हुई वह धूल हिलते हुए रेशमी वस्त्रके समान पाण्डुवर्णकी दिखायी देती थी। उसके

द्वारा समराङ्गणमें समस्त प्राणी ढक गये थे। अतः वानर और राक्षस उन्हें देख नहीं पाते थे॥ १९½ ॥

उस धूलसे आच्छादित होनेके कारण ध्वज, पताका, ढाल, घोड़ा, अस्त्र-शस्त्र अथवा रथ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी॥ २०½ ॥

उन गर्जते और दौड़ते हुए प्राणियोंका महाभयंकर शब्द युद्धस्थलमें सबको सुनायी पड़ता था, परंतु उनके रूप नहीं दिखायी देते थे॥ २१½ ॥

अन्धकारसे आच्छादित युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हुए वानर वानरोंपर ही प्रहार कर बैठते थे तथा राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगते थे॥ २२½ ॥

अपने तथा शत्रुपक्षके योद्धाओंको मारते हुए वानरों तथा राक्षसोंने उस रणभूमिको रक्तकी धारासे भिगो दिया और वहाँ कीच मचा दी॥ २३½ ॥

तदनन्तर रक्तके प्रवाहसे सिंच जानेके कारण वहाँकी धूल बैठ गयी और सारी युद्धभूमि लाशोंसे भर गयी॥ २४½ ॥

वानर और राक्षस एक-दूसरेपर वृक्ष, शक्ति, गदा, प्रास, शिला, परिघ और तोमर आदिसे बलपूर्वक जल्दी-जल्दी प्रहार करने लगे॥ २५½ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले वानर अपनी परिघके समान भुजाओंद्वारा पर्वताकार राक्षसोंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिमें उन्हें मारने लगे॥ २६½ ॥

उधर राक्षसलोग भी अत्यन्त कुपित हो हाथोंमें प्रास और तोमर लिये अत्यन्त भयंकर शस्त्रोंद्वारा वानरोंका वध करने लगे॥ २७½ ॥

इस समय अधिक रोषसे भरा हुआ राक्षस-सेनापति अकम्पन भी भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले उन सभी राक्षसोंका हर्ष बढ़ाने लगा॥ २८½ ॥

वानर भी बलपूर्वक आक्रमण करके राक्षसोंके अस्त्र-शस्त्र छीनकर बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंद्वारा उन्हें विदीर्ण करने लगे॥ २९½ ॥

इसी समय वीर वानर कुमुद, नल, मैन्द और द्विविदने कुपित हो अपना परम उत्तम वेग प्रकट किया॥ ३०½ ॥

उन महावीर वानरशिरोमणियोंने युद्धके मुहानेपर वृक्षोंद्वारा खेल-खेलमें ही राक्षसोंका बड़ा भारी संहार किया। उन सबने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा राक्षसोंको भलीभाँति मथ डाला॥ ३१-३२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके द्वारा अकम्पनका वध

उन वानरशिरोमणियोंद्वारा किये गये उस महान् पराक्रमको देखकर युद्धस्थलमें अकम्पनको बड़ा भारी एवं दुःसह क्रोध हुआ॥ १ ॥

शत्रुओंका कर्म देख रोषसे उसका सारा शरीर व्याप्त हो गया और अपने उत्तम धनुषको हिलाते हुए उसने सारथिसे कहा—॥ २ ॥

'सारथे! ये बलवान् वानर युद्धमें बहुतेरे राक्षसोंका वध कर रहे हैं, अतः पहले वहीं शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ पहुँचाओ॥ ३ ॥

'ये वानर बलवान् तो हैं ही, इनका क्रोध भी बड़ा भयानक है। ये वृक्षों और शिलाओंका प्रहार करते हुए मेरे सामने खड़े हैं॥ ४ ॥

'ये युद्धकी स्पृहा रखनेवाले हैं; अतः मैं इन सबका वध करना चाहता हूँ। इन्होंने सारी राक्षससेनाको मथ डाला है। यह साफ दिखायी देता है'॥ ५ ॥

तदनन्तर तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा रथियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन दूरसे ही बाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ उन वानरोंपर टूट पड़ा॥ ६ ॥

अकम्पनके बाणोंसे घायल हो सभी वानर भाग चले। वे युद्धस्थलमें खड़े भी न रह सके; फिर युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है?॥ ७ ॥

अकम्पनके बाण वानरोंके पीछे लगे थे और वे मृत्युके अधीन होते जाते थे। अपने जाति-भाइयोंकी यह दशा देखकर महाबली हनुमान्‌जी अकम्पनके पास आये॥

महाकपि हनुमान्‌जीको आया देख वे समस्त वीर वानरशिरोमणि एकत्र हो हर्षपूर्वक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ ९ ॥

हनुमान्‌जीको युद्धके लिये डटा हुआ देख वे सभी श्रेष्ठ वानर उन बलवान् वीरका आश्रय ले स्वयं भी बलवान् हो गये॥ १० ॥

पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्‌जीको अपने सामने उपस्थित देख अकम्पन उनपर बाणोंकी फिर वर्षा करने लगा, मानो देवराज इन्द्र जलकी धारा बरसा रहे हों॥ ११॥

अपने शरीरपर गिराये गये उन बाण-समूहोंकी परवा न करके महाबली हनुमान्‌ने अकम्पनको मार डालनेका विचार किया॥ १२॥

फिर तो महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान् महान् अट्टहास करके पृथ्वीको कँपाते हुए-से उस राक्षसकी ओर दौड़े॥ १३॥

उस समय वहाँ गर्जते और तेजसे देदीप्यमान होते हुए हनुमान्‌जीका रूप प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष हो गया था॥ १४॥

अपने हाथमें कोई हथियार नहीं है, यह जानकर क्रोधसे भरे हुए वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने बड़े वेगसे पर्वत उखाड़ लिया॥ १५॥

उस महान् पर्वतको एक ही हाथसे लेकर पराक्रमी पवनकुमार बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हुए उसे घुमाने लगे॥ १६॥

फिर उन्होंने राक्षसराज अकम्पनपर धावा किया, ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें देवेन्द्रने वज्र लेकर युद्धस्थलमें नमुचिपर आक्रमण किया था॥ १७॥

अकम्पनने उस उठे हुए पर्वतशिखरको देख अर्धचन्द्राकार विशाल बाणोंके द्वारा उसे दूरसे ही विदीर्ण कर दिया॥ १८॥

उस राक्षसके बाणसे विदीर्ण हो वह पर्वतशिखर आकाशमें ही बिखरकर गिर पड़ा। यह देख हनुमान्‌जीके क्रोधकी सीमा न रही॥ १९॥

फिर रोष और दर्पसे उन वानरवीरने महान् पर्वतके समान ऊँचे अश्वकर्ण नामक वृक्षके पास जाकर उसे शीघ्रतापूर्वक उखाड़ लिया॥ २०॥

विशाल तनेवाले उस अश्वकर्णको हाथमें लेकर महातेजस्वी हनुमान्‌ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे युद्धभूमिमें घुमाना आरम्भ किया॥ २१॥

प्रचण्ड क्रोधसे भरे हुए हनुमान्‌ने बड़े वेगसे दौड़कर कितने ही वृक्षोंको तोड़ डाला और पैरोंकी धमकसे वे पृथ्वीको भी विदीर्ण-सी करने लगे॥ २२॥

सवारोंसहित हाथियों, रथोंसहित रथियों तथा पैदल राक्षसोंको भी बुद्धिमान् हनुमान्‌जी मौतके घाट उतारने लगे॥ २३॥

क्रोधसे भरे हुए यमराजकी भाँति वृक्ष हाथमें लिये प्राणहारी हनुमान्‌को देख राक्षस भागने लगे॥ २४॥

राक्षसोंको भय देनेवाले हनुमान् अत्यन्त कुपित होकर शत्रुओंपर आक्रमण कर रहे थे। उस समय वीर अकम्पनने उन्हें देखा। देखते ही वह क्षोभसे भर गया और जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ २५॥

अकम्पनने देहको विदीर्ण कर देनेवाले चौदह पैने बाण मारकर महापराक्रमी हनुमान्‌को घायल कर दिया॥ २६॥

इस प्रकार नाराचों और तीखी शक्तियोंसे छिदे हुए वीर हनुमान् उस समय वृक्षोंसे व्याप्त पर्वतके समान दिखायी देते थे॥ २७॥

उनका सारा शरीर रक्तसे रँग गया था, इसलिये वे महापराक्रमी महाबली और महाकाय हनुमान् खिले हुए अशोक एवं धूमरहित अग्निके समान शोभा पा रहे थे॥

तदनन्तर महान् वेग प्रकट करके हनुमान्‌जीने एक दूसरा वृक्ष उखाड़ लिया और तुरंत ही उसे राक्षसराज अकम्पनके सिरपर दे मारा॥ २९॥

क्रोधसे भरे वानरश्रेष्ठ महात्मा हनुमान्‌के चलाये हुए उस वृक्षकी गहरी चोट खाकर राक्षस अकम्पन पृथ्वीपर गिरा और मर गया॥ ३०॥

जैसे भूकम्प आनेपर सारे वृक्ष काँपने लगते हैं, उसी प्रकार राक्षसराज अकम्पनको रणभूमिमें मारा गया देख समस्त राक्षस व्यथित हो उठे॥ ३१॥

वानरोंके खदेड़नेपर वहाँ परास्त हुए वे सब राक्षस अपने अस्त्र-शस्त्र फेंककर डरके मारे लङ्कामें भाग गये॥ ३२॥

उनके केश खुले हुए थे। वे घबरा गये थे और पराजित होनेसे उनका घमंड चूर-चूर हो गया था। भयके कारण उनके अङ्गोंसे पसीने चू रहे थे और इसी अवस्थामें वे भाग रहे थे॥ ३३॥

भयके कारण एक-दूसरेको कुचलते हुए वे भागकर लङ्कापुरीमें घुस गये। भागते समय वे बारंबार पीछे घूम-घूमकर देखते रहते थे॥ ३४॥

उन राक्षसोंके लङ्कामें घुस जानेपर समस्त महाबली वानरोंने एकत्र हो वहाँ हनुमान्‌जीका अभिनन्दन किया॥ ३५॥

उन शक्तिशाली हनुमान्‌जीने भी उत्साहित हो

यथायोग्य अनुकूल बर्ताव करते हुए उन समस्त वानरोंका समादर किया॥ ३६॥

तत्पश्चात् विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वानरोंने पूरा बल लगाकर उच्च स्वरसे गर्जना की और वहाँ जीवित राक्षसोंको ही पकड़-पकड़कर घसीटना आरम्भ किया॥ ३७॥

जैसे भगवान् विष्णुने शत्रुनाशन, महाबली, भयंकर एवं महान् असुर मधुकैटभ आदिका वध करके वीर-शोभा (विजयलक्ष्मी)-का वरण किया था, उसी प्रकार महाकपि हनुमान्ने राक्षसोंके पास पहुँचकर उन्हें मौतके घाट उतार वीरोचित शोभाको धारण किया॥ ३८॥

उस समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि वानर तथा अत्यन्त बलशाली विभीषणने भी कपिवर हनुमान्जीका यथोचित सत्कार किया॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

प्रहस्तका रावणकी आज्ञासे विशाल सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान

अकम्पनके वधका समाचार पाकर राक्षसराज रावणको बड़ा क्रोध हुआ। उसके मुखपर कुछ दीनता छा गयी और वह मन्त्रियोंकी ओर देखने लगा॥ १॥

पहले तो दो घड़ीतक वह कुछ सोचता रहा। फिर उसने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और उसके बाद दिनके पूर्वभागमें राक्षसराज रावण स्वयं लङ्काके सब मोरचोंका निरीक्षण करनेके लिये गया॥ २॥

राक्षसगणोंसे सुरक्षित और बहुत-सी छावनियोंसे घिरी हुई, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित उस नगरीको राजा रावणने अच्छी तरह देखा॥ ३॥

लङ्कापुरी चारों ओरसे शत्रुओंद्वारा घेर ली गयी थी। यह देखकर राक्षसराज रावणने अपने हितैषी युद्धकलाकोविद प्रहस्तसे यह समयोचित बात कही—॥ ४॥

'युद्धविशारद वीर! नगरके अत्यन्त निकट शत्रुओंकी सेना छावनी डाले पड़ी है, इसीलिये सारा नगर सहसा व्यथित हो उठा है। अब मैं दूसरे किसीके युद्ध करनेसे इसका छुटकारा होता नहीं देखता हूँ॥ ५॥

'अब तो इस तरहके युद्धका भार मैं, कुम्भकर्ण, मेरे सेनापति तुम, बेटा इन्द्रजित् अथवा निकुम्भ ही उठा सकते हैं॥ ६॥

'अत: तुम शीघ्र ही सेना लेकर विजयके लिये प्रस्थान करो और जहाँ ये सब वानर जुटे हुए हैं, वहाँ जाओ॥ ७॥

'तुम्हारे निकलते ही सारी वानरसेना तुरंत विचलित हो उठेगी और गर्जते हुए राक्षसशिरोमणियोंका सिंहनाद सुनकर भाग खड़ी होगी॥ ८॥

'वानरलोग बड़े चञ्चल, ढीठ और डरपोक होते हैं, जैसे हाथी सिंहकी गर्जना नहीं सह सकते, उसी प्रकार वे वानर तुम्हारा सिंहनाद नहीं सह सकेंगे॥ ९॥

'प्रहस्त! जब वानरसेना भाग जायगी, तब कोई सहारा न रहनेके कारण लक्ष्मणसहित श्रीराम विवश होकर तुम्हारे अधीन हो जायँगे॥ १०॥

'युद्धमें मृत्यु संदिग्ध होती है, हो भी सकती है और न भी हो। किंतु ऐसी मृत्यु ही श्रेष्ठ है। (इसके विपरीत) जीवनको बिना संशय (जोखिम)-में डाले (बिना युद्धस्थलके) जो मृत्यु होती है, वह श्रेष्ठ नहीं होती (ऐसा मेरा विचार है)। इसके अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ तुम हमारे लिये हितकर समझते हो, उसे बताओ'॥ ११॥

रावणके ऐसा कहनेपर सेनापति प्रहस्तने उस राक्षसराजके समक्ष उसी तरह अपना विचार व्यक्त किया, जैसे शुक्राचार्य असुरराज बलिको अपनी सलाह दिया करते हैं॥ १२॥

(उसने कहा—) 'राजन्! हमलोगोंने कुशल मन्त्रियोंके साथ पहले भी इस विषयपर विचार किया है। उन दिनों एक-दूसरेके मतकी आलोचना करके हमलोगोंमें विवाद भी खड़ा हो गया था (हमलोग सर्वसम्मतिसे किसी एक निर्णयपर नहीं पहुँच सके थे)॥ १३॥

'मेरा पहलेसे ही यह निश्चय रहा है कि सीताजीको लौटा देनेसे ही हमलोगोंका कल्याण होगा और न लौटानेपर युद्ध अवश्य होगा। उस निश्चयके अनुसार ही हमें आज यह युद्धका संकट दिखायी दिया है॥ १४॥

'परंतु आपने दान, मान और विविध सान्त्वनाओंके

द्वारा समय-समयपर सदा ही मेरा सत्कार किया है। फिर मैं आपका हितसाधन क्यों नहीं करूँगा? (अथवा आपके हितके लिये कौन-सा कार्य नहीं कर सकूँगा)॥

'मुझे अपने जीवन, स्त्री, पुत्र और धन आदिकी रक्षा नहीं करनी है—इनकी रक्षाके लिये मुझे कोई चिन्ता नहीं। आप देखिये कि मैं किस तरह आपके लिये युद्धकी ज्वालामें अपने जीवनकी आहुति देता हूँ'॥ १६॥

अपने स्वामी रावणसे ऐसा कहकर प्रधान सेनापति प्रहस्तने अपने सामने खड़े हुए सेनाध्यक्षोंसे इस प्रकार कहा—॥ १७॥

'तुमलोग शीघ्र मेरे पास राक्षसोंकी विशाल सेना ले आओ। आज मांसाहारी पक्षी समराङ्गणमें मेरे बाणोंके वेगसे मारे गये वानरोंके मांस खाकर तृप्त हो जायँ'॥

प्रहस्तकी यह बात सुनकर महाबली सेनाध्यक्षोंने रावणके उस महलके पास विशाल सेनाको युद्धके लिये तैयार किया॥ १९½॥

दो ही घड़ीमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी-जैसे भयानक राक्षसवीरोंसे लङ्कापुरी भर गयी॥

कितने ही राक्षस घीकी आहुति देकर अग्निदेवको तृप्त करने लगे और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके आशीर्वाद लेने लगे। उस समय घीकी गन्ध लेकर सुगन्धित वायु सब ओर बहने लगी॥ २१½॥

राक्षसोंने मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित नाना प्रकारकी मालाएँ ग्रहण कीं और हर्ष एवं उत्साहसे युक्त हो युद्धोपयोगी वेश-भूषा धारण की॥ २२½॥

धनुष और कवच धारण किये राक्षस वेगसे उछलकर आगे बढ़े और राजा रावणका दर्शन करते हुए प्रहस्तको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ २३½॥

तदनन्तर राजाकी आज्ञा ले भयंकर भेरी बजवाकर कवच आदि धारण करके युद्धके लिये उद्यत हुआ प्रहस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित रथपर आरूढ़ हुआ॥ २४½॥

प्रहस्तके उस रथमें बड़े वेगशाली घोड़े जुते हुए थे, उसका सारथि भी अपने कार्यमें कुशल था। वह रथ पूर्णत: सारथिके नियन्त्रणमें था। उसके चलनेपर महान् मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घर-ध्वनि होती थी। वह रथ साक्षात् चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान था॥

सर्पाकार या सर्पचिह्नित ध्वजके कारण वह दुर्धर्ष प्रतीत होता था। उस रथकी रक्षाके लिये जो कवच था, वह बहुत ही सुन्दर दिखायी देता था। उसके सारे अङ्ग सुन्दर थे और उसमें अच्छी-अच्छी सामग्रियाँ रखी गयी थीं। उस रथमें सोनेकी जाली लगी थी। वह अपनी कान्तिसे हँसता-सा प्रतीत होता था (अथवा दूसरे कान्तिमान् पदार्थोंका उपहास-सा कर रहा था)॥ २६½॥

उस रथपर बैठकर रावणकी आज्ञा शिरोधार्य करके विशाल सेनासे घिरा हुआ प्रहस्त तुरंत लङ्कासे बाहर निकला॥ २७½॥

उसके निकलते ही मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान धौंसा बजने लगा। अन्य रणवाद्योंका निनाद भी पृथ्वीको परिपूर्ण करता-सा प्रतीत होने लगा॥ २८॥

सेनापतिके प्रस्थानकालमें शङ्खोंकी ध्वनि भी सुनायी देने लगी। प्रहस्तके आगे चलनेवाले भयानक रूपधारी विशालकाय राक्षस भयंकर स्वरसे गर्जना करते हुए आगे बढ़े॥ २९½॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्तके चार सचिव उसे चारों ओरसे घेरकर निकले॥

प्रहस्तकी वह विशाल सेना हाथियोंके समूह-सी अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी। उसकी व्यूह-रचना हो चुकी थी। उस व्यूहबद्ध सेनाके साथ ही प्रहस्त लङ्काके पूर्वद्वारसे निकला॥ ३१॥

समुद्रके समान उस अपार सेनाके साथ जब प्रहस्त बाहर निकला, उस समय वह क्रोधसे भरे हुए प्रलय-कालके संहारकारी यमराजके समान जान पड़ता था॥

उसके प्रस्थान करते समय जो भेरी आदि बाजों और गर्जते हुए राक्षसोंका गम्भीर घोष हुआ, उससे भयभीत हो लङ्काके सब प्राणी विकृत स्वरमें चीत्कार करने लगे॥ ३३॥

उस समय बिना बादलके आकाशमें उड़कर रक्त-मांसका भोजन करनेवाले पक्षी मण्डल बनाकर प्रहस्तके रथकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करने लगे॥ ३४॥

भयानक गीदड़ियाँ मुँहसे आगकी ज्वाला उगलती हुई अशुभसूचक बोली बोलने लगीं। आकाशसे उल्कापात होने लगा और प्रचण्ड वायु चलने लगी॥ ३५॥

ग्रह रोषपूर्वक आपसमें युद्ध करने लगे, जिससे उनका प्रकाश मन्द पड़ गया तथा मेघ उस राक्षसके रथके ऊपर गधोंकी-सी आवाजमें गर्जना करने लगे, रक्त बरसाने लगे और आगे चलनेवाले सैनिकोंको खींचने लगे। उसके ध्वजके ऊपर गीध दक्षिणकी ओर मुँह करके आ बैठा। उसने दोनों ओर अपनी अशुभ

बोली बोलकर उस राक्षसकी सारी शोभा-सम्पत्ति हर ली॥ ३६-३७½ ॥

संग्रामभूमिमें प्रवेश करते समय घोड़ेको काबूमें रखनेवाले उसके सारथिके हाथसे कई बार चाबुक गिर पड़ा॥ ३८½ ॥

युद्धके लिये निकलते समय प्रहस्तकी जो परम दुर्लभ और प्रकाशमान शोभा थी, वह दो ही घड़ीमें नष्ट हो गयी। उसके घोड़े समतल भूमिमें भी लड़खड़ाकर गिर पड़े॥ ३९½ ॥

जिसके गुण और पौरुष विख्यात थे, वह प्रहस्त ज्यों ही युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ, त्यों ही शिला, वृक्ष आदि नाना प्रकारके प्रहार-साधनोंसे सम्पन्न वानरसेना उसका सामना करनेके लिये आ गयी॥ ४० ॥

तदनन्तर वृक्षोंको तोड़ते और भारी शिलाओंको उठाते हुए वानरोंका अत्यन्त भयंकर कोलाहल वहाँ सब ओर छा गया॥ ४१ ॥

एक ओर राक्षस सिंहनाद कर रहे थे तो दूसरी ओर वानर गरज रहे थे। उन सबका तुमुल नाद वहाँ फैल गया। राक्षसों और वानरोंकी वे दोनों सेनाएँ हर्ष और उल्लाससे भरी थीं॥ ४२ ॥

अत्यन्त वेगशाली, समर्थ तथा एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले योद्धा परस्पर ललकार रहे थे। उनका महान् कोलाहल सबको सुनायी देता था॥ ४३ ॥

इसी समय दुर्बुद्धि प्रहस्त विजयकी अभिलाषासे वानरराज सुग्रीवकी सेनाकी ओर बढ़ा और जैसे पतंग मरनेके लिये आगपर टूट पड़ता है, उसी प्रकार वह बढ़े हुए वेगवाली उस वानरसेनामें घुसनेकी चेष्टा करने लगा॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

नीलके द्वारा प्रहस्तका वध

(इसके पूर्व) प्रहस्तको युद्धकी तैयारी करके लङ्कासे बाहर निकलते देख शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे मुसकराकर कहा—॥ १ ॥

'महाबाहो! यह बड़े शरीर और महान् वेगवाला तथा बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ कौन योद्धा आ रहा है? इसका रूप, बल और पौरुष कैसा है? इस पराक्रमी निशाचरका मुझे परिचय दो'॥ २½ ॥

श्रीरघुनाथजीका वचन सुनकर विभीषणने इस प्रकार उत्तर दिया—'प्रभो! इस राक्षसका नाम प्रहस्त है। यह राक्षसराज रावणका सेनापति है और लङ्काकी एक तिहाई सेनासे घिरा हुआ है। इसका पराक्रम भलीभाँति विख्यात है। यह नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, बल-विक्रमसे सम्पन्न और शूरवीर है'॥ ३-४ ॥

इसी समय महाबलवान् वानरोंकी विशाल सेनाने भी भयानक पराक्रमी, भीषण रूपधारी तथा महाकाय प्रहस्तको बड़े गर्जन-तर्जनके साथ लङ्कासे बाहर निकलते देखा। वह बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ था। उसे देखते ही वानरोंके दलमें भी महान् कोलाहल होने लगा और वे प्रहस्तकी ओर देख-देखकर गर्जने लगे॥

विजयकी इच्छावाले राक्षस वानरोंकी ओर दौड़े। उनके हाथोंमें खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, नाना प्रकारके फरसे और विचित्र-विचित्र धनुष शोभा पा रहे थे॥ ७-८ ॥

तब वानरोंने भी युद्धकी इच्छासे खिले हुए वृक्ष, पर्वत तथा बड़े-बड़े पत्थर उठा लिये॥ ९ ॥

फिर दोनों पक्षोंके बहुसंख्यक वीरोंमें पत्थरों और बाणोंकी वर्षाके साथ-साथ आपसमें बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया॥ १० ॥

उस युद्धस्थलमें बहुत-से राक्षसोंने बहुतेरे वानरोंका और बहुसंख्यक वानरोंने बहुत-से राक्षसोंका संहार कर डाला॥ ११ ॥

वानरोंमेंसे कोई शूलोंसे और कोई चक्रोंसे मथ डाले गये। कितने ही परिघोंकी मारसे आहत हो गये और कितनोंके फरसोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये॥

कितने ही योद्धा साँसरहित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही बाणोंके लक्ष्य बन गये, जिससे उनके हृदय विदीर्ण हो गये॥ १३ ॥

कितने ही वानर तलवारोंकी मारसे दो टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और तड़फड़ाने लगे। कितने ही

शूरवीर राक्षसोंने वानरोंकी पसलियाँ फाड़ डालीं॥ १४॥

इसी तरह वानरोंने भी अत्यन्त कुपित हो वृक्षों और पर्वत-शिखरोंद्वारा सब ओर भूतलपर झुंड-के-झुंड राक्षसोंको पीस डाला॥ १५॥

वानरोंके वज्रतुल्य कठोर थप्पड़ों और मुक्कोंसे भलीभाँति पीटे गये राक्षस मुँहसे रक्त वमन करने लगे। उनके दाँत और नेत्र छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये॥ १६॥

कोई आर्तनाद करते तो कोई सिंहोंके समान दहाड़ते थे। इस प्रकार वानरों और राक्षसोंका भयंकर कोलाहल वहाँ सब ओर गूँज उठा॥ १७॥

क्रोधसे भरे हुए वानर और राक्षस वीरोचित मार्गका अनुसरण करके युद्धमें पीठ नहीं दिखाते थे। वे मुँह बा-बाकर निर्भयके समान क्रूरतापूर्ण कर्म करते थे॥ १८॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्तके सारे सचिव वानरोंका वध करने लगे॥ १९॥

शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते और वानरोंको मारते हुए प्रहस्तके सचिवोंमेंसे एकको, जिसका नाम नरान्तक था, द्विविदने एक पर्वतके शिखरसे मार डाला॥ २०॥

फिर दुर्मुखने एक विशाल वृक्ष लिये उठकर शीघ्रता-पूर्वक हाथ चलानेवाले राक्षस समुन्नतको कुचल डाला॥ २१॥

तत्पश्चात् अत्यन्त कुपित हुए तेजस्वी जाम्बवान्ने एक बड़ी भारी शिला उठा ली और उसे महानादकी छातीपर दे मारा॥ २२॥

बाकी रहा पराक्रमी कुम्भहनु। वह तार नामक वानरसे भिड़ा और अन्तमें एक विशाल वृक्षकी चपेटमें आकर उसे भी रणभूमिमें अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़े॥

रथपर बैठे हुए प्रहस्तसे वानरोंका यह अद्भुत पराक्रम नहीं सहा गया। उसने हाथमें धनुष लेकर वानरोंका घोर संहार आरम्भ किया॥ २४॥

उस समय दोनों सेनाएँ जलके भँवरकी भाँति चक्कर काट रही थीं। विक्षुब्ध अपार महासागरकी गर्जनाके समान उनकी गर्जना सुनायी दे रही थी॥ २५॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए रणदुर्मद राक्षस प्रहस्तने अपने बाण-समूहोंद्वारा उस महासमरमें वानरोंको पीड़ित करना आरम्भ किया॥ २६॥

पृथ्वीपर वानरों और राक्षसोंकी लाशोंके ढेर लग गये। उनसे आच्छादित हुई रणभूमि भयानक पर्वतोंसे ढकी हुई-सी जान पड़ती थी॥ २७॥

रक्तके प्रवाहसे आच्छादित हुई वह युद्धभूमि वैशाख-मासमें खिले हुए पलाश-वृक्षोंसे ढकी हुई वन्य भूमि-सी सुशोभित होती थी॥ २८॥

मारे गये वीरोंकी लाशें ही जिसके दोनों तट थे। रक्तका प्रवाह ही जिसकी महान् जलराशि थी। टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र ही जिसके तटवर्ती विशाल वृक्षोंके समान जान पड़ते थे। जो यमलोकरूपी समुद्रसे मिली हुई थी। सैनिकोंके यकृत् और प्लीहा (हृदयके दाहिने और बायें भाग) जिसके महान् पंक थे। निकली हुई आँतें जहाँ सेवारका काम देती थीं। कटे हुए सिर और धड़ जहाँ मत्स्य-से प्रतीत होते थे। शरीरके छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें घासका भ्रम उत्पन्न करते थे। जहाँ गीध ही हंस बनकर बैठे थे। कङ्करूपी सारस जिसका सेवन करते थे। मेदे ही फेन बनकर जहाँ सब ओर फैले थे। पीड़ितोंकी कराह जिसकी कलकल ध्वनि थी और कायरोंके लिये जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था, उस युद्धभूमिरूपिणी नदीको प्रवाहित करके राक्षस और श्रेष्ठ वानर वर्षाके अन्तमें हंसों और सारसोंसे सेवित सरिताकी भाँति उस दुस्तर नदीको उसी तरह पार कर रहे थे, जैसे गजयूथपति कमलोंके परागसे आच्छादित किसी पुष्करिणीको पार करते हैं॥ २९—३३॥

तदनन्तर नीलने देखा, रथपर बैठा हुआ प्रहस्त बाणसमूहोंकी वर्षा करके वेगपूर्वक वानरोंका संहार कर रहा है॥ ३४॥

तब जैसे उठी हुई प्रचण्ड वायु आकाशमें महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करके उड़ा देती है, उसी प्रकार नील भी बलपूर्वक राक्षस-सेनाका संहार करने लगे। इससे उस युद्धस्थलमें राक्षसी-सेना भाग खड़ी हुई। सेनापति प्रहस्तने जब अपनी सेनाकी ऐसी दुरवस्था देखी, तब उसने सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा नीलपर ही धावा किया॥ ३५½॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और निशाचरोंकी सेनाके नायक प्रहस्तने उस महासमरमें अपने धनुषको खींचकर नीलपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ३६½॥

रोषसे भरे हुए सर्पोंके समान वे महान् वेगशाली बाण नीलतक पहुँचकर उन्हें विदीर्ण करके बड़ी सावधानीके साथ धरतीमें समा गये॥ ३७½॥

प्रहस्तके पैने बाण प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे। उनकी चोटसे नील बहुत घायल हो गये। इस तरह उस परम दुर्जय राक्षस प्रहस्तको अपने ऊपर आक्रमण करते देख बल-विक्रमशाली महाकपि नीलने एक वृक्ष उखाड़कर उसीके द्वारा उसपर आघात किया॥

नीलकी चोट खाकर कुपित हुआ राक्षसशिरोमणि प्रहस्त बड़े जोरसे गर्जता हुआ उन वानर-सेनापतिपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४०॥

उस दुरात्मा राक्षसके बाण-समूहोंका निवारण करनेमें समर्थ न हो सकनेपर नील आँख बंद करके उन सब बाणोंको अपने अंगोंपर ही ग्रहण करने लगे। जैसे साँड़ सहसा आयी हुई शरद्-ऋतुकी वर्षाको चुपचाप अपने शरीरपर ही सह लेता है, उसी प्रकार प्रहस्तकी उस दुःसह बाणवर्षाको नील चुपचाप नेत्र बंद करके सहन करते रहे॥ ४१-४२॥

प्रहस्तकी बाणवर्षासे कुपित हो महाबली महाकपि नीलने एक विशाल सालवृक्षके द्वारा उसके घोड़ोंको मार डाला॥ ४३॥

तत्पश्चात् रोषसे भरे हुए नीलने उस दुरात्माके धनुषको भी वेगपूर्वक तोड़ दिया और बारंबार वे गर्जना करने लगे॥ ४४॥

नीलके द्वारा धनुषरहित किया गया सेनापति प्रहस्त एक भयानक मूसल हाथमें लेकर अपने रथसे कूद पड़ा॥ ४५॥

वे दोनों वीर अपनी-अपनी सेनाके प्रधान थे। दोनों ही एक-दूसरेके वैरी और वेगशाली थे। वे मदकी धारा बहानेवाले दो गजराजोंके समान खूनसे नहा उठे थे॥ ४६॥

दोनों ही अपनी तीखी दाढ़ोंसे काट-काटकर एक-दूसरेके अंगोंको घायल किये देते थे। वे दोनों सिंह और बाघके समान शक्तिशाली और उन्हींके समान विजयके लिये सचेष्ट थे॥ ४७॥

दोनों वीर पराक्रमी, विजयी और युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले थे तथा वृत्रासुर और इन्द्रके समान युद्धमें यश पानेकी अभिलाषा रखते थे॥ ४८॥

उस समय परम उद्योगी प्रहस्तने नीलके ललाटमें मूसलसे आघात किया। इससे उनके ललाटसे रक्तकी धारा बह चली॥ ४९॥

उनके सारे अंग रक्तसे भीग गये। तब क्रोधसे भरे हुए महाकपि नीलने एक विशाल वृक्ष उठाकर प्रहस्तकी छातीपर दे मारा॥ ५०॥

उस प्रहारकी कोई परवा न करके प्रहस्त महान् मूसल हाथमें लिये बलवान् वानर नीलकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा॥ ५१॥

उस भयंकर वेगशाली राक्षसको रोषसे भरकर आक्रमण करते देख महान् वेगशाली महाकपि नीलने एक बड़ी भारी शिला हाथमें ले ली॥ ५२॥

उस शिलाको नीलने रणभूमिमें संग्रामकी इच्छावाले मूसलयोधी निशाचर प्रहस्तके मस्तकपर तत्काल दे मारा॥ ५३॥

कपिप्रवर नीलके द्वारा चलायी गयी उस भयंकर एवं विशाल शिलाने प्रहस्तके मस्तकको कुचलकर उसके कई टुकड़े कर डाले॥ ५४॥

उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी कान्ति, उसका बल और उसकी सारी इन्द्रियाँ भी चली गयीं। वह राक्षस जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५५॥

उसके छिन्न-भिन्न हुए मस्तकसे और शरीरसे भी बहुत खून गिरने लगा, मानो पर्वतसे पानीका झरना झर रहा हो॥ ५६॥

नीलके द्वारा प्रहस्तके मारे जानेपर दुःखी हुए राक्षसोंकी वह अकम्पनीय विशाल सेना लंकाको लौट गयी॥ ५७॥

सेनापतिके मारे जानेपर वह सेना ठहर न सकी। जैसे बाँध टूट जानेपर नदीका पानी रुक नहीं पाता॥

सेनानायकके मारे जानेसे वे सारे राक्षस अपना युद्धविषयक उत्साह खो बैठे और राक्षसराज रावणके भवनमें जाकर चिन्ताके कारण चुपचाप खड़े हो गये। तीव्र शोक-समुद्रमें डूब जानेके कारण वे सब-के-सब अचेत-से हो गये थे॥ ५९-६०॥

तदनन्तर विजयी सेनापति महाबली नील अपने इस महान् कर्मके कारण प्रशंसित होते हुए श्रीराम और लक्ष्मणसे आकर मिले और बड़े हर्षका अनुभव करने लगे॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

प्रहस्तके मारे जानेसे दुःखी हुए रावणका स्वयं ही युद्धके लिये पधारना, उसके साथ आये हुए मुख्य वीरोंका परिचय, रावणकी मारसे सुग्रीवका अचेत होना, लक्ष्मणका युद्धमें आना, हनुमान् और रावणमें थप्पड़ोंकी मार, रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना, लक्ष्मणका शक्तिके आघातसे मूर्च्छित एवं सचेत होना तथा श्रीरामसे परास्त होकर रावणका लङ्कामें घुस जाना

वानरश्रेष्ठ नीलके द्वारा युद्धस्थलमें उस राक्षस-सेनापति प्रहस्तके मारे जानेपर समुद्रके समान वेगशालिनी और भयानक आयुधोंसे युक्त वह राक्षसराजकी सेना भाग चली॥ १॥

राक्षसोंने निशाचरराज रावणके पास जाकर अग्निपुत्र नीलके हाथसे प्रहस्तके मारे जानेका समाचार सुनाया। उनकी वह बात सुनकर राक्षसराज रावणको बड़ा क्रोध हुआ॥ २॥

'युद्धस्थलमें प्रहस्त मारा गया' यह सुनते ही वह क्रोधसे तमतमा उठा; किंतु थोड़ी ही देरमें उसका चित्त उसके लिये शोकसे व्याकुल हो गया। अतः वह मुख्य-मुख्य देवताओंसे बातचीत करनेवाले इन्द्रकी भाँति राक्षससेनाके मुख्य अधिकारियोंसे बोला—॥ ३॥

'शत्रुओंको नगण्य समझकर उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। मैं जिन्हें बहुत छोटा समझता था, उन्हीं शत्रुओंने मेरे उस सेनापतिको सेवकों और हाथियोंसहित मार गिराया, जो इन्द्रकी सेनाका भी संहार करनेमें समर्थ था॥ ४॥

'अब मैं शत्रुओंके संहार और अपनी विजयके लिये बिना कोई विचार किये स्वयं ही उस अद्भुत युद्धके मुहानेपर जाऊँगा॥ ५॥

'जैसे प्रज्वलित आग वनको जला देती है, उसी तरह आज अपने बाणसमूहोंसे वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामको मैं भस्म कर डालूँगा। आज वानरोंके रक्तसे मैं इस पृथ्वीको तृप्त करूँगा'॥ ६॥

ऐसा कहकर वह देवराजका शत्रु रावण अग्निके समान प्रकाशमान रथपर सवार हुआ। उसके रथमें उत्तम घोड़ोंके समूह जुते हुए थे। वह अपने शरीरसे भी प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित हो रहा था॥ ७॥

उसके प्रस्थान करते समय शङ्ख, भेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे। योद्धालोग ताल ठोकने, गर्जने और सिंहनाद करने लगे। वन्दीजन पवित्र स्तुतियोंद्वारा राक्षसराज शिरोमणि रावणकी भलीभाँति समाराधना करने लगे। इस प्रकार उसने यात्रा की॥ ८॥

पर्वत और मेघोंके समान काले एवं विशाल रूपवाले मांसाहारी राक्षसोंसे, जिनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे थे, घिरा हुआ राक्षस-राजाधिराज रावण भूतगणोंसे घिरे हुए देवेश्वर रुद्रके समान शोभा पाता था॥ ९॥

महातेजस्वी रावणने लङ्कापुरीसे सहसा निकलकर महासागर और मेघोंके समान गर्जना करनेवाली उस भयंकर वानर-सेनाको देखा, जो हाथोंमें पर्वत-शिखर एवं वृक्ष लिये युद्धके लिये तैयार थी॥ १०॥

उस अत्यन्त प्रचण्ड राक्षससेनाको देखकर नागराज शेषके समान भुजावाले, वानर-सेनासे घिरे हुए तथा पुष्ट शोभा-सम्पत्तिसे युक्त श्रीरामचन्द्रजीने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणसे पूछा—॥ ११॥

'जो नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओं और छत्रोंसे सुशोभित, प्रास, खड्ग और शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न, अजेय, निडर योद्धाओंसे सेवित और महेन्द्रपर्वत-जैसे विशालकाय हाथियोंसे भरी हुई है, ऐसी यह सेना किसकी है?'॥ १२॥

इन्द्रके समान बलशाली विभीषण श्रीरामकी उपर्युक्त बात सुनकर महामना राक्षसशिरोमणियोंके बल एवं सैनिकशक्तिका परिचय देते हुए उनसे बोले—॥ १३॥

'राजन्! यह जो महामनस्वी वीर हाथीकी पीठपर बैठा है, जिसका मुख नवोदित सूर्यके समान लाल रंगका है तथा जो अपने भारसे हाथीके मस्तकमें कम्पन उत्पन्न करता हुआ इधर आ रहा है, इसे आप अकम्पन* समझें॥ १४॥

* यह अकम्पन हनुमानजीके द्वारा मारे गये अकम्पनसे भिन्न है।

'वह जो रथपर चढ़ा हुआ है, जिसकी ध्वजापर सिंहका चिह्न है, जिसके दाँत हाथीके समान उग्र और बाहर निकले हुए हैं तथा जो इन्द्रधनुषके समान कान्तिमान् धनुष हिलाता हुआ आ रहा है, उसका नाम इन्द्रजित् है। वह वरदानके प्रभावसे बड़ा प्रबल हो गया है॥ १५॥

'यह जो विन्ध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्रगिरिके समान विशालकाय, अतिरथी एवं अतिशय वीर धनुष लिये रथपर बैठा है तथा अपने अनुपम धनुषको बारंबार खींच रहा है, इसका नाम अतिकाय है। इसकी काया बहुत बड़ी है॥ १६॥

'जिसके नेत्र प्रात:काल उदित हुए सूर्यके समान लाल हैं तथा जिसकी आवाज घण्टाकी ध्वनिसे भी उत्कृष्ट है, ऐसे क्रूर स्वभाववाले गजराजपर आरूढ़ होकर जो जोर-जोरसे गर्जना कर रहा है, वह महामनस्वी वीर महोदर नामसे प्रसिद्ध है॥ १७॥

'जो सायंकालीन मेघसे युक्त पर्वतकी-सी आभावाले और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित घोड़ेपर चढ़कर चमकीले प्रास (भाले)-को हाथमें लिये इधर आ रहा है, इसका नाम पिशाच है। यह वज्रके समान वेगशाली योद्धा है॥ १८॥

'जिसने वज्रके वेगको भी अपना दास बना लिया है और जिससे बिजलीकी-सी प्रभा छिटकती रहती है, ऐसे तीखे त्रिशूलको हाथमें लिये जो यह चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले साँड़पर चढ़कर युद्धभूमिमें आ रहा है, यह यशस्वी वीर त्रिशिरा[1] है॥ १९॥

'जिसका रूप मेघके समान काला है, जिसकी छाती उभरी हुई, चौड़ी और सुन्दर है, जिसकी ध्वजापर नागराज वासुकिका चिह्न बना हुआ है तथा जो एकाग्रचित्त हो अपने धनुषको हिलाता और खींचता आ रहा है, वह कुम्भ नामक योद्धा है॥ २०॥

'जो सुवर्ण और वज्रसे जटित होनेके कारण दीप्तिमान् तथा इन्द्रनीलमणिसे मण्डित होनेके कारण धूमयुक्त अग्नि-सा प्रकाशित होता है, ऐसे परिघको हाथमें लेकर जो राक्षससेनाकी ध्वजाके समान आ रहा है, उसका नाम निकुम्भ है। उसका पराक्रम घोर एवं अद्भुत है॥ २१॥

'यह जो धनुष, खड्ग और बाणसमूहसे भरे हुए, ध्वजा-पताकासे अलंकृत तथा प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान रथपर आरूढ़ हो अतिशय शोभा पा रहा है, वह ऊँचे कदका योद्धा नरान्तक[2] है। वह पहाड़ोंकी चोटियोंसे युद्ध करता है॥ २२॥

'यह जो व्याघ्र, ऊँट, हाथी, हिरन और घोड़ेके-से मुँहवाले, चढ़ी हुई आँखवाले तथा अनेक प्रकारके भयंकर रूपवाले भूतोंसे घिरा हुआ है, जो देवताओंका भी दर्प दलन करनेवाला है तथा जिसके ऊपर पूर्ण चन्द्रमाके समान श्वेत एवं पतली कमानीवाला सुन्दर छत्र शोभा पाता है, वही यह राक्षसराज महामना रावण है, जो भूतोंसे घिरे हुए रुद्रदेवके समान सुशोभित होता है॥ २३-२४॥

'यह सिरपर मुकुट धारण किये है। इसका मुख कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंसे अलंकृत है। इसका शरीर गिरिराज हिमालय और विन्ध्याचलके समान विशाल एवं भयंकर है तथा यह इन्द्र और यमराजके भी घमंडको चूर करनेवाला है। देखिये, यह राक्षसराज साक्षात् सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है'॥ २५॥

तब शत्रुदमन श्रीरामने विभीषणको इस प्रकार उत्तर दिया—'अहो! राक्षसराज रावणका तेज तो बहुत ही बढ़ा-चढ़ा और देदीप्यमान है॥ २६॥

'रावण अपनी प्रभासे सूर्यकी ही भाँति ऐसी शोभा पा रहा है कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। तेजोमण्डलसे व्याप्त होनेके कारण इसका रूप मुझे स्पष्ट नहीं दिखायी देता॥ २७॥

'इस राक्षसराजका शरीर जैसा सुशोभित हो रहा है, ऐसा तो देवता और दानव वीरोंका भी नहीं होगा॥

'इस महाकाय राक्षसके सभी योद्धा पर्वतोंके समान विशाल हैं। सभी पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले हैं और सब-के-सब चमकीले अस्त्र-शस्त्र लिये हुए हैं॥ २९॥

'जो दीप्तिमान्, भयंकर दिखायी देनेवाले और तीखे स्वभाववाले हैं, उन राक्षसोंसे घिरा हुआ यह राक्षसराज रावण देहधारी भूतोंसे घिरे हुए यमराजके समान जान पड़ता है॥ ३०॥

'सौभाग्यकी बात है कि यह पापात्मा मेरी आँखोंके सामने आ गया। सीताहरणके कारण मेरे मनमें जो क्रोध संचित हुआ है, उसे आज इसके ऊपर छोड़ूँगा'॥ ३१॥

ऐसा कहकर बल-विक्रमशाली श्रीराम धनुष लेकर उत्तम बाण निकालकर युद्धके लिये डट गये। इस कार्यमें लक्ष्मणने भी उनका साथ दिया॥ ३२॥

तदनन्तर महामना राक्षसराज रावणने अपने साथ

---

१. यह त्रिशिरा जनस्थानमें मारे गये त्रिशिरासे भिन्न है। यह रावणका पुत्र है और वह भाई था।

२. यह नरान्तक रावणका पुत्र है।

आये हुए उन महाबली राक्षसोंसे कहा—'तुमलोग निर्भय और सुप्रसन्न होकर नगरके द्वारों तथा राजमार्गके मकानोंकी ड्योढ़ियोंपर खड़े हो जाओ॥ ३३॥

'क्योंकि वानरलोग मेरे साथ तुम सबको यहाँ आया देख इसे अपने लिये अच्छा मौका समझकर सहसा एकत्र हो मेरी सूनी नगरीमें, जिसके भीतर प्रवेश होना दूसरोंके लिये बहुत कठिन है, घुस जायँगे और इसे मथकर चौपट कर डालेंगे'॥ ३४॥

इस प्रकार जब अपने मन्त्रियोंको विदा कर दिया और वे राक्षस उसकी आज्ञाके अनुसार उन-उन स्थानोंपर चले गये, तब रावण जैसे महामत्स्य (तिमिङ्गिल) पूरे महासागरको विक्षुब्ध कर देता है, उसी प्रकार समुद्र-जैसी वानरसेनाको विदीर्ण करने लगा॥ ३५॥

चमकीले धनुष-बाण लिये राक्षसराज रावणको युद्धस्थलमें सहसा आया देख वानरराज सुग्रीवने एक बड़ा भारी पर्वत-शिखर उखाड़ लिया और उसे लेकर उस निशाचरराजपर आक्रमण किया॥ ३६॥

अनेक वृक्षों और शिखरोंसे युक्त उस महान् शैल-शिखरको सुग्रीवने रावणपर दे मारा। उस शिखरको अपने ऊपर आता देख रावणने सहसा सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥

उत्तम वृक्ष और शिखरवाला वह महान् शैलशृङ्ग जब विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राक्षसलोकके स्वामी रावणने महान् सर्प और यमराजके समान एक भयंकर बाणका संधान किया॥ ३८॥

उस बाणका वेग वायुके समान था। उससे चिनगारियाँ छूटती थीं और प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाश फैलता था। इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर वेगवाले उस बाणको रावणने रुष्ट होकर सुग्रीवके वधके लिये चलाया॥ ३९॥

रावणके हाथोंसे छूटे हुए उस सायकने इन्द्रके वज्रकी भाँति कान्तिमान् शरीरवाले सुग्रीवके पास पहुँचकर उसी तरह वेगपूर्वक उन्हें घायल कर दिया, जैसे स्वामी कार्तिकेयकी चलायी हुई भयानक शक्तिने क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण कर डाला था॥ ४०॥

उस बाणकी चोटसे वीर सुग्रीव अचेत हो गये और आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। सुग्रीवको बेहोश हो घूमकर गिरा देख उस युद्धस्थलमें आये हुए सब राक्षस बड़े हर्षके साथ सिंहनाद करने लगे॥ ४१॥

तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल—ये विशालकाय वानर पर्वतशिखरोंको उखाड़कर राक्षसराज रावणपर टूट पड़े॥ ४२॥

परंतु निशाचरोंके राजा रावणने सैकड़ों तीखे बाण छोड़कर उन सबके प्रहारोंको व्यर्थ कर दिया और उन वानरेश्वरोंको भी सोनेके विचित्र पंखवाले बाण-समूहोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया। देवद्रोही रावणके बाणोंसे घायल हो वे भीमकाय वानरेन्द्रगण धरतीपर गिर पड़े॥४३ $\frac{1}{2}$ ॥

फिर तो रावणने अपने बाण-समूहोंद्वारा उस भयंकर वानरसेनाको आच्छादित कर दिया। रावणके बाणोंसे पीड़ित और डरे हुए वीर वानर उसकी मार खा-खाकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए धराशायी होने लगे॥

रावणके सायकोंसे पीड़ित हो बहुत-से वानर शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये। तब धनुर्धर महात्मा श्रीराम सहसा धनुष लेकर आगे बढ़े। उसी समय लक्ष्मणजीने उनके सामने आकर हाथ जोड़ उनसे ये यथार्थ वचन कहे—॥ ४५-४६॥

'आर्य! इस दुरात्माका वध करनेके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं इसका नाश करूँगा'॥ ४७॥

उनकी बात सुनकर महातेजस्वी सत्यपराक्रमी श्रीरामने कहा—'अच्छा लक्ष्मण! जाओ। किंतु संग्राममें विजय पानेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील रहना'॥ ४८॥

'क्योंकि रावण महान् बल-विक्रमसे सम्पन्न है। यह युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाता है। रावण यदि अधिक कुपित होकर युद्ध करने लगे तो तीनों लोकोंके लिये इसके वेगको सहन करना कठिन हो जायगा॥ ४९॥

'तुम युद्धमें रावणके छिद्र देखना। उसकी कमजोरियोंसे लाभ उठाना और अपने छिद्रोंपर भी दृष्टि रखना (कहीं शत्रु उनसे लाभ न उठाने पाये)। एकाग्रचित्त हो पूरी सावधानीके साथ अपनी दृष्टि और धनुषसे भी आत्मरक्षा करना'॥ ५०॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण उनके हृदयसे लग गये और श्रीरामका पूजन एवं अभिवादन करके वे युद्धके लिये चल दिये॥ ५१॥

उन्होंने देखा, रावणकी भुजाएँ हाथीके शुण्ड-दण्डके समान हैं। उसने बड़ा भयंकर एवं दीप्तिमान् धनुष उठा रखा है और बाण-समूहोंकी वर्षा करके वानरोंको ढकता तथा उनके शरीरोंको छिन्न-भिन्न किये डालता है॥ ५२॥

रावणको इस प्रकार पराक्रम करते देख महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान्जी उसके बाण-समूहोंका निवारण करते हुए उसकी ओर दौड़े॥ ५३॥

उसके रथके पास पहुँचकर अपना दायाँ हाथ उठा बुद्धिमान् हनुमान्ने रावणको भयभीत करते हुए कहा— ॥

'निशाचर! तुमने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंसे न मारे जानेका वर प्राप्त कर लिया है; परंतु वानरोंसे तो तुम्हें भय है ही॥ ५५॥

'देखो, पाँच अँगुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ उठा हुआ है। तुम्हारे शरीरमें चिरकालसे जो जीवात्मा निवास करता है, उसे आज यह इस देहसे अलग कर देगा'॥ ५६॥

हनुमान्जीका यह वचन सुनकर भयानक पराक्रमी रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे और उसने रोषपूर्वक कहा— ॥ ५७॥

'वानर! तुम निःशङ्क होकर शीघ्र मेरे ऊपर प्रहार करो और सुस्थिर यश प्राप्त कर लो। तुममें कितना पराक्रम है, यह जान लेनेपर ही मैं तुम्हारा नाश करूँगा'॥

रावणकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जी बोले—'मैंने तो पहले ही तुम्हारे पुत्र अक्षको मार डाला है। इस बातको याद तो करो'॥ ५९॥

उनके इतना कहते ही बल-विक्रमसम्पन्न महातेजस्वी राक्षसराज रावणने उन पवनकुमारकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया॥ ६०॥

उस थप्पड़की चोटसे हनुमान्जी बारंबार इधर-उधर चक्कर काटने लगे; परंतु वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे, अतः दो ही घड़ीमें अपनेको सुस्थिर करके खड़े हो गये। फिर उन्होंने भी अत्यन्त कुपित होकर उस देवद्रोहीको थप्पड़से ही मारा॥ ६१½॥

उन महात्मा वानरके थप्पड़की मार खाकर दशमुख रावण उसी तरह काँप उठा, जैसे भूकम्प आनेपर पर्वत हिलने लगता है॥ ६२½॥

संग्रामभूमिमें रावणको थप्पड़ खाते देख ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता और असुर सभी हर्षध्वनि करने लगे॥ ६३½॥

तदनन्तर महातेजस्वी रावणने सँभलकर कहा— 'शाबाश वानर! शाबाश, तुम पराक्रमकी दृष्टिसे मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्वी हो'॥ ६४½॥

रावणके ऐसा कहनेपर पवनकुमार हनुमान्ने कहा—'रावण! तू अब भी जीवित है, इसलिये मेरे पराक्रमको धिक्कार है!॥ ६५½॥

'दुर्बुद्धे! अब तुम एक बार और मुझपर प्रहार करो। बढ़-बढ़कर बातें क्यों बना रहे हो। तुम्हारे प्रहारके पश्चात् जब मेरा मुक्का पड़ेगा, तब वह तुम्हें तत्काल यमलोक पहुँचा देगा'॥ ६६½॥

हनुमान्जीकी इस बातसे रावणका क्रोध प्रज्वलित हो उठा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उस पराक्रमी राक्षसने बड़े यत्नसे दाहिना मुक्का तानकर हनुमान्जीकी छातीमें वेगपूर्वक प्रहार किया॥ ६७-६८॥

छातीमें चोट लगनेपर हनुमान्जी पुनः विचलित हो उठे। महाबली हनुमान्जीको उस समय विह्वल देख अतिरथी रावण रथके द्वारा शीघ्र ही नीलपर जा चढ़ा॥

राक्षसोंके राजा प्रतापी दशग्रीवने शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले सर्पतुल्य भयंकर बाणोंद्वारा वानर-सेनापति नीलको संताप देना आरम्भ किया॥ ७०-७१॥

उसके बाण-समूहोंसे पीड़ित हुए वानर-सेनापति नीलने उस राक्षसराजपर एक ही हाथसे पर्वतका एक शिखर उठाकर चलाया॥ ७२॥

इतनेहीमें तेजस्वी महामना हनुमान्जी भी सँभल गये और पुनः युद्धकी इच्छासे रावणकी ओर देखने लगे। उस समय राक्षसराज रावण नीलके साथ उलझा हुआ था। हनुमान्जीने उससे रोषपूर्वक कहा—'ओ निशाचर! इस समय तुम दूसरेके साथ युद्ध कर रहे हो, अतः अब तुमपर धावा करना मेरे लिये उचित न होगा'॥

उधर महातेजस्वी रावणने नीलके चलाये हुए पर्वत-शिखरपर तीखे अग्रभागवाले सात बाण मारे, जिससे वह टूट-फूटकर पृथ्वीपर बिखर गया॥ ७५॥

उस पर्वतशिखरको बिखरा हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वानर-सेनापति नील प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे॥ ७६॥

उन्होंने युद्धस्थलमें अश्वकर्ण, साल, खिले हुए आम्र तथा अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर रावणपर चलाना आरम्भ किया॥ ७७॥

रावणने उन सब वृक्षोंको सामने आनेपर काट गिराया और अग्निपुत्र नीलपर बाणोंकी भयानक वर्षा की॥

जैसे मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी वर्षा करता है, उसी तरह रावणने जब नीलपर बाणसमूहोंकी वर्षा की, तब वे छोटा-सा रूप बनाकर रावणकी ध्वजाके शिखरपर चढ़ गये॥ ७९॥

अपनी ध्वजाके ऊपर बैठे हुए अग्निपुत्र नीलको देखकर रावण क्रोधसे जल उठा और उधर नील जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ८०॥

नीलको कभी रावणकी ध्वजापर, कभी धनुषपर

और कभी मुकुटपर बैठा देख श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान्‌जीको भी बड़ा विस्मय हुआ॥ ८१॥

वानर नीलकी वह फुर्ती देखकर महातेजस्वी रावणको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने अद्‌भुत तेजस्वी आग्नेयास्त्र हाथमें लिया॥ ८२॥

नीलकी फुर्तीसे रावणको घबराया हुआ देख हर्षका अवसर पाकर सब वानर बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकारियाँ भरने लगे॥ ८३॥

उस समय वानरोंके हर्षनादसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ। साथ ही हृदयमें घबराहट छा गयी थी, इसलिये वह कर्तव्यका कुछ निश्चय नहीं कर सका॥

तदनन्तर निशाचर रावणने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित बाण हाथमें लेकर ध्वजके अग्रभागपर बैठे हुए नीलको देखा॥ ८५॥

देखकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने उनसे कहा—'वानर! तुम उच्चकोटिकी मायाके साथ ही अपने भीतर बड़ी फुर्ती भी रखते हो॥ ८६॥

'वानर! यदि शक्तिशाली हो तो मेरे बाणसे अपने जीवनकी रक्षा करो। यद्यपि तुम अपने पराक्रमके योग्य ही भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्म कर रहे हो तथापि मेरा छोड़ा हुआ दिव्यास्त्र-प्रेरित बाण जीवन-रक्षाकी चेष्टा करनेपर भी तुम्हें प्राणहीन कर देगा'॥ ८७-८८॥

ऐसा कहकर महाबाहु राक्षसराज रावणने आग्नेयास्त्र-युक्त बाणका संधान करके उसके द्वारा सेनापति नीलको मारा॥ ८९॥

उसके धनुषसे छूटे हुए उस बाणने नीलकी छातीपर गहरी चोट की। वे उसकी आँचसे जलते हुए सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ९०॥

यद्यपि नीलने पृथ्वीपर घुटने टेक दिये, तथापि पिता अग्निदेवके माहात्म्यसे और अपने तेजके प्रभावसे उनके प्राण नहीं निकले॥ ९१॥

वानर नीलको अचेत हुआ देख रणोत्सुक रावणने मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले रथके द्वारा सुमित्राकुमार लक्ष्मणपर धावा किया॥ ९२॥

युद्धभूमिमें सारी वानरसेनाको आगे बढ़नेसे रोककर वह लक्ष्मणके पास पहुँच गया और प्रज्वलित अग्निके समान सामने खड़ा हो प्रतापी राक्षसराज रावण अपने धनुषकी टंकार करने लगा॥ ९३॥

उस समय अपने अनुपम धनुषको खींचते हुए रावणसे उदार शक्तिशाली लक्ष्मणने कहा—'निशाचरराज! समझ लो, मैं आ गया। अतः अब तुम्हें वानरोंके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये'॥ ९४॥

लक्ष्मणकी यह बात गम्भीर ध्वनिसे युक्त थी और उनकी प्रत्यञ्चासे भी भयानक टंकार-ध्वनि हो रही थी। उसे सुनकर युद्धके लिये उपस्थित हुए सुमित्राकुमारके निकट जा राक्षसोंके राजा रावणने रोषपूर्वक कहा—॥

'रघुवंशी राजकुमार! सौभाग्यकी बात है कि तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये। तुम्हारा शीघ्र ही अन्त होनेवाला है, इसीलिये तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी है। अब तुम मेरे बाणसमूहोंसे पीड़ित हो इसी क्षण यमलोककी यात्रा करोगे'॥ ९६॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणको उसकी बात सुनकर कोई विस्मय नहीं हुआ। उसके दाँत बड़े ही तीखे और उत्कट थे और वह जोर-जोरसे गर्जना कर रहा था। उस समय सुमित्राकुमारने उससे कहा—'राजन्! महान् प्रभावशाली पुरुष तुम्हारी तरह केवल गर्जना नहीं करते हैं (कुछ पराक्रम करके दिखाते हैं)। पापाचारियोंमें अग्रगण्य रावण! तुम तो झूठे ही डींग हाँकते हो॥ ९७॥

'राक्षसराज! (तुमने सूने घरसे जो चोरी-चोरी एक असहाय नारीका अपहरण किया, इसीसे) मैं तुम्हारे बल, वीर्य, प्रताप और पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ; इसीलिये हाथमें धनुष-बाण लेकर सामने खड़ा हूँ। आओ युद्ध करो। व्यर्थ बातें बनानेसे क्या होगा?'॥ ९८॥

उनके ऐसा कहनेपर कुपित हुए राक्षसराजने उनपर सुन्दर पंखवाले सात बाण छोड़े; परंतु लक्ष्मणने सोनेके बने हुए विचित्र पंखोंसे सुशोभित और तेज धारवाले बाणोंसे उन सबको काट डाला॥ ९९॥

जैसे बड़े-बड़े सर्पोंके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायँ, उसी प्रकार अपने समस्त बाणोंको सहसा खण्डित हुआ देख लङ्कापति रावण क्रोधके वशीभूत हो गया और उसने दूसरे तीखे बाण छोड़े॥ १००॥

परंतु श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने धनुषसे बाणोंकी भयंकर वर्षा की और क्षुर, अर्धचन्द्र, उत्तम कर्णी तथा भल्ल जातिके बाणोंद्वारा रावणके छोड़े हुए उन सब बाणोंको काट डाला॥ १०१॥

उन सभी बाणसमूहोंको निष्फल हुआ देख राक्षसराज रावण लक्ष्मणकी फुर्तीसे आश्चर्यचकित रह गया और उनपर पुनः तीखे बाण छोड़ने लगा॥ १०२॥

देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने भी

रावणके वधके लिये वज्रके समान भयानक वेग और तीखी धारवाले पैने बाणोंको, जो अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे, धनुषपर रखा॥ १०३॥

परंतु राक्षसराजने उन सभी तीखे बाणोंको काट डाला और ब्रह्माजीके दिये हुए कालाग्निके समान तेजस्वी बाणसे लक्ष्मणजीके ललाटपर चोट की॥ १०४॥

रावणके उस बाणसे पीड़ित हो लक्ष्मणजी विचलित हो उठे। उन्होंने हाथमें जो धनुष ले रखा था, उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गयी। फिर उन्होंने बड़े कष्टसे होश सँभाला और देवद्रोही रावणके धनुषको काट दिया॥ १०५॥

धनुष कट जानेपर रावणको लक्ष्मणने तीन बाण मारे, जो बहुत ही तीखे थे। उन बाणोंसे पीड़ित हो राजा रावण व्याकुल हो गया और बड़ी कठिनाईसे वह फिर सचेत हो सका॥ १०६॥

जब धनुष कट गया और बाणोंकी गहरी चोट खानी पड़ी, तब रावणका सारा शरीर मेदे और रक्तसे भीग गया। उस अवस्थामें उस भयंकर शक्तिशाली देवद्रोही राक्षसने युद्धस्थलमें ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति उठा ली॥ १०७॥

वह शक्ति धूमयुक्त अग्निके समान दिखायी देती थी और युद्धमें वानरोंको भयभीत करनेवाली थी। राक्षसराजके स्वामी रावणने वह जलती हुई शक्ति बड़े वेगसे सुमित्राकुमारपर चलायी॥ १०८॥

अपनी ओर आती हुई उस शक्तिपर लक्ष्मणने अग्नितुल्य तेजस्वी बहुत-से बाणों तथा अस्त्रोंका प्रहार किया; तथापि वह शक्ति दशरथकुमार लक्ष्मणके विशाल वक्ष:स्थलमें घुस गयी॥ १०९॥

रघुकुलके प्रधान वीर लक्ष्मण यद्यपि बड़े शक्तिशाली थे, तथापि उस शक्तिसे आहत हो पृथ्वीपर गिर पड़े और जलने-से लगे। उन्हें विह्वल हुआ देख राजा रावण सहसा उनके पास जा पहुँचा और उनको वेगपूर्वक अपनी दोनों भुजाओंसे उठाने लगा॥ ११०॥

जिस रावणमें देवताओंसहित हिमालय, मन्दराचल, मेरुगिरि अथवा तीनों लोकोंको भुजाओंद्वारा उठा लेनेकी शक्ति थी, वही भरतके छोटे भाई लक्ष्मणको उठानेमें समर्थ न हो सका॥ १११॥

ब्रह्माकी शक्तिसे छातीमें चोट खानेपर भी लक्ष्मणजीने भगवान् विष्णुके अचिन्त्य अंशरूपसे अपना चिन्तन किया॥ ११२॥

अत: देवशत्रु रावण दानवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले लक्ष्मणको अपनी दोनों भुजाओंमें दबाकर हिलानेमें भी समर्थ न हो सका॥ ११३॥

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वायुपुत्र हनुमान्जी रावणकी ओर दौड़े और अपने वज्र-सरीखे मुक्केसे रावणकी छातीमें मारा॥ ११४॥

उस मुक्केकी मारसे राक्षसराज रावणने धरतीपर घुटने टेक दिये। वह काँपने लगा और अन्ततोगत्वा गिर पड़ा॥ ११५॥

उसके मुख, नेत्र और कानोंसे बहुत-सा रक्त गिरने लगा और वह चक्कर काटता हुआ रथके पिछले भागमें निश्चेष्ट होकर जा बैठा॥ ११६॥

वह मूर्च्छित होकर अपनी सुध-बुध खो बैठा। वहाँ भी वह स्थिर न रह सका—तड़पता और छटपटाता रहा। समराङ्गणमें भयंकर पराक्रमी रावणको अचेत हुआ देख ऋषि, देवता, असुर और वानर हर्षनाद करने लगे॥

इसके पश्चात् तेजस्वी हनुमान् रावणपीड़ित लक्ष्मणको दोनों हाथोंसे उठाकर श्रीरघुनाथजीके निकट ले आये॥ ११८½॥

हनुमान्जीके सौहार्द और उत्कट भक्तिभावके कारण लक्ष्मणजी उनके लिये हलके हो गये। शत्रुओंके लिये तो वे अब भी अकम्पनीय थे—वे उन्हें हिला नहीं सकते थे॥ ११९॥

युद्धमें पराजित हुए लक्ष्मणको छोड़कर वह शक्ति पुन: रावणके रथपर लौट आयी॥ १२०॥

थोड़ी देरमें होशमें आनेपर महातेजस्वी रावणने फिर विशाल धनुष उठाया और पैंने बाण हाथमें लिये॥

शत्रुसूदन लक्ष्मणजी भी भगवान् विष्णुके अचिन्तनीय अंशरूपसे अपना चिन्तन करके स्वस्थ और नीरोग हो गये॥ १२२॥

वानरोंकी विशाल वाहिनीके बड़े-बड़े वीर मार गिराये गये, यह देखकर रणभूमिमें रघुनाथजीने रावणपर धावा किया॥ १२३॥

उस समय हनुमान्जीने उनके पास आकर कहा—'प्रभो! जैसे भगवान् विष्णु गरुड़पर चढ़कर दैत्योंका संहार करते हैं, उसी प्रकार आप मेरी पीठपर चढ़कर इस राक्षसको दण्ड दें'॥ १२४½॥

पवनकुमारकी कही हुई यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजी सहसा उन महाकपि हनुमान्की पीठपर चढ़ गये॥ १२५½॥

महाराज श्रीरामने समराङ्गणमें रावणको रथपर बैठा देखा। उसे देखते ही महातेजस्वी श्रीराम रावणकी

ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे कुपित हुए भगवान् विष्णु अपना चक्र उठाये विरोचनकुमार बलिपर टूट पड़े थे॥

उन्होंने अपने धनुषकी तीव्र टंकार प्रकट की, जो वज्रकी गड़गड़ाहटसे भी अधिक कठोर थी। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज रावणसे गम्भीर वाणीमें बोले—

'राक्षसोंमें बाघ बने हुए रावण! खड़ा रह, खड़ा रह। मेरा ऐसा अपराध करके तू कहाँ जाकर प्राणसंकटसे छुटकारा पा सकेगा॥ १२९॥

'यदि तू इन्द्र, यम अथवा सूर्यके पास, ब्रह्मा, अग्नि या शंकरके समीप अथवा दसों दिशाओंमें भागकर जायगा तो भी अब मेरे हाथसे बच नहीं सकेगा॥ १३०॥

'तूने आज अपनी शक्तिके द्वारा युद्धमें जाते हुए जिन लक्ष्मणको आहत किया और जो उस शक्तिकी चोटसे सहसा मूर्च्छित हो गये थे, उन्हींके उस तिरस्कारका बदला लेनेके लिये आज मैं युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ हूँ। राक्षसराज! मैं पुत्र-पौत्रोंसहित तेरी मौत बनकर आया हूँ॥ १३१॥

'रावण! तेरे सामने खड़े हुए इस रघुवंशी राजकुमारने ही अपने बाणोंद्वारा जनस्थाननिवासी उन चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला था, जो अद्भुत एवं दर्शनीय योद्धा थे और उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे'॥ १३२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर महाबली राक्षसराज रावण महान् रोषसे भर गया। उसे पहलेके वैरका स्मरण हो आया और उसने कालाग्निकी शिखाके समान दीप्तिशाली बाणोंद्वारा रणभूमिमें श्रीरघुनाथजीका वाहन बने हुए महान् वेगशाली वायुपुत्र हनुमान्‌को अत्यन्त घायल कर दिया॥ १३३-१३४॥

युद्धस्थलमें उस राक्षसके सायकोंसे आहत होनेपर भी स्वाभाविक तेजसे सम्पन्न हनुमान्‌जीका शौर्य और भी बढ़ गया॥ १३५॥

वानरशिरोमणि हनुमान्‌को रावणने घायल कर दिया, यह देखकर महातेजस्वी श्रीराम क्रोधके वशीभूत हो गये॥ १३६॥

फिर तो उन भगवान् श्रीरामने आक्रमण करके पहिये, घोड़े, ध्वजा, छत्र, पताका, सारथि, अशनि, शूल और खड्गसहित उसके रथको अपने पैने बाणोंसे तिल-तिल करके काट डाला॥ १३७॥

जैसे भगवान् इन्द्रने वज्रके द्वारा मेरु पर्वतपर आघात किया हो, उसी प्रकार प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाणसे इन्द्रशत्रु रावणकी विशाल एवं सुन्दर छातीमें वेगपूर्वक आघात किया॥

जो राजा रावण वज्र और अशनिके आघातसे भी कभी क्षुब्ध एवं विचलित नहीं हुआ था, वही वीर उस समय श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे घायल हो अत्यन्त आर्त एवं कम्पित हो उठा और उसके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा॥ १३९॥

रावणको व्याकुल हुआ देख महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने एक चमचमाता हुआ अर्धचन्द्राकार बाण हाथमें लिया और उसके द्वारा राक्षसराजका सूर्यके समान देदीप्यमान मुकुट सहसा काट डाला॥ १४०॥

उस समय धनुष न होनेसे रावण विषहीन सर्पके समान अपना प्रभाव खो बैठा था। सायंकालमें जिसकी प्रभा शान्त हो गयी हो, उस सूर्यदेवके समान निस्तेज हो गया था तथा मुकुटोंका समूह कट जानेसे श्रीहीन दिखायी देता था। उस अवस्थामें श्रीरामने युद्धभूमिमें राक्षसराजसे कहा—॥ १४१॥

'रावण! तुमने आज बड़ा भयंकर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है। इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणोंद्वारा तुझे मौतके अधीन नहीं कर रहा हूँ॥ १४२॥

'निशाचरराज! मैं जानता हूँ तू युद्धसे पीड़ित है। इसलिये आज्ञा देता हूँ, जा, लङ्कामें प्रवेश करके कुछ देर विश्राम कर ले। फिर रथ और धनुषके साथ निकलना। उस समय रथारूढ़ रहकर तू फिर मेरा बल देखना'॥

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर राजा रावण सहसा लङ्कामें घुस गया। उसका हर्ष और अभिमान मिट्टीमें मिल चुका था, धनुष काट दिया गया था, घोड़े तथा सारथि मार डाले गये थे, महान् किरीट खण्डित हो चुका था और वह स्वयं भी बाणोंसे बहुत पीड़ित था॥ १४४॥

देवताओं और दानवोंके शत्रु महाबली निशाचरराज रावणके लङ्कामें चले जानेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने उस महायुद्धके मुहानेपर वानरोंके शरीरसे बाण निकाले॥

देवराज इन्द्रका शत्रु रावण जब युद्धस्थलसे भाग गया, तब उसके पराभवका विचार करके देवता, असुर, भूत, दिशाएँ, समुद्र, ऋषिगण, बड़े-बड़े नाग तथा भूचर और जलचर प्राणी भी बहुत प्रसन्न हुए॥ १४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ सर्ग

अपनी पराजयसे दुःखी हुए रावणकी आज्ञासे सोये हुए कुम्भकर्णका जगाया जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत होना

भगवान् श्रीरामके बाणों और भयसे पीड़ित हो राक्षसराज रावण जब लङ्कापुरीमें पहुँचा, तब उसका अभिमान चूर-चूर हो गया था। उसकी सारी इन्द्रियाँ व्यथासे व्याकुल थीं॥ १॥

जैसे सिंह गजराजको और गरुड़ विशाल नागको पीड़ित एवं पराजित कर देता है, उसी प्रकार महात्मा रघुनाथजीने राजा रावणको अभिभूत कर दिया था॥ २॥

भगवान् श्रीरामके बाण ब्रह्मदण्डके प्रतीक जान पड़ते थे। उनकी दीप्ति चपलाके समान चञ्चल थी। उन्हें याद करके राक्षसराज रावणके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ ३॥

सोनेके बने हुए दिव्य एवं श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठकर राक्षसोंकी ओर देखता हुआ रावण उस समय इस प्रकार कहने लगा— ॥ ४॥

'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब अवश्य ही व्यर्थ हो गयी; क्योंकि आज महेन्द्रतुल्य पराक्रमी मुझ रावणको एक मनुष्यने परास्त कर दिया॥

'ब्रह्माजीने मुझसे कहा था कि 'तुम्हें मनुष्योंसे भय प्राप्त होगा। इस बातको अच्छी तरह जान लो'। उनका कहा हुआ यह घोर वचन इस समय सफल होकर मेरे समक्ष उपस्थित हुआ है॥ ६॥

'मैंने तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पोंसे ही अवध्य होनेका वर माँगा था, मनुष्योंसे अभय होनेकी वर-याचना नहीं की थी॥ ७॥

'पूर्वकालमें इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्यने मुझे शाप देते हुए कहा था कि 'राक्षसाधम! कुलाङ्गार! दुर्मते! मेरे ही वंशमें एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझे पुत्र, मन्त्री, सेना, अश्व और सारथिके सहित समराङ्गणमें मार डालेगा।' मालूम होता है कि अनरण्यने जिसकी ओर संकेत किया था, यह दशरथकुमार राम वही मनुष्य है॥ ८-९ $\frac{1}{2}$ ॥

'इसके सिवा पूर्वकालमें मुझे वेदवतीने भी शाप दिया था; क्योंकि मैंने उसके साथ बलात्कार किया था। जान पड़ता है वही यह महाभागा जनकनन्दिनी सीता होकर प्रकट हुई है॥ १० $\frac{1}{2}$ ॥

'इसी तरह उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण-कन्याने भी जैसा-जैसा कहा था, वैसा ही परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है।* सच है ऋषियोंकी बात कभी झूठी नहीं होती॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

'ये शाप ही मुझपर भय अथवा संकट लानेमें कारण हुए हैं। इस बातको जानकर अब तुमलोग आये हुए संकटको टालनेका प्रयत्न करो। राक्षसलोग राजमार्गों तथा गोपुरोंके शिखरोंपर उनकी रक्षाके लिये डटे रहें॥

'साथ ही जिसके गाम्भीर्यकी कहीं तुलना नहीं है, जो देवताओं और दानवोंका दर्प दलन करनेवाला है तथा ब्रह्माजीके शापसे प्राप्त हुई निद्रा जिसे सदा अभिभूत किये रहती है, उस कुम्भकर्णको भी जगाया जाय'॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

'प्रहस्त मारा गया और मैं भी समराङ्गणमें परास्त हो गया' ऐसा जानकर महाबली रावणने राक्षसोंकी भयानक सेनाको आदेश दिया कि 'तुमलोग नगरके दरवाजोंपर रहकर उनकी रक्षाके लिये यत्न करो। परकोटोंपर भी चढ़ जाओ और निद्राके अधीन हुए कुम्भकर्णको जगा दो॥ १४-१५ $\frac{1}{2}$ ॥

'(मैं तो दुःखी, चिन्तित और अपूर्णकाम होकर जाग रहा हूँ और) वह राक्षस कामभोगसे अचेत हो बड़ी निश्चिन्तताके साथ सुखपूर्वक सो रहा है। वह कभी नौ, कभी सात, कभी दस और कभी आठ मासतक सोता रहता है। यह आजसे नौ महीने पहले मुझसे सलाह करके सोया था॥ १६-१७॥

'अतः तुमलोग महाबली कुम्भकर्णको शीघ्र जगा दो। महाबाहु कुम्भकर्ण सभी राक्षसोंमें श्रेष्ठ है। वह युद्धस्थलमें वानरों और उन राजकुमारोंको भी शीघ्र ही मार डालेगा॥ १८॥

'समस्त राक्षसोंमें प्रधान यह कुम्भकर्ण समरभूमिमें

* उमाने कैलास उठानेके समय भयभीत होनेसे रावणको शाप दिया था कि 'तेरी मृत्यु स्त्रीके कारण होगी।' नन्दीश्वरकी वानरमूर्ति देखकर रावण हँसा था, इसलिये उन्होंने कहा था—'मेरे समान रूप और पराक्रमवाले ही तेरे कुलका नाश करेंगे।' रम्भाके निमित्तसे नल-कूबरने और वरुण-कन्या पुञ्जिकस्थलाके निमित्तसे ब्रह्माजीने शाप दिया था कि 'अनिच्छासे किसी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेपर तेरी मृत्यु हो जायगी।'

हमारे लिये सर्वोत्तम विजय-वैजयन्तीके समान है; किंतु खेदकी बात है कि वह मूर्ख ग्राम्यसुखमें आसक्त होकर सदा सोता रहता है॥ १९॥

'यदि कुम्भकर्णको जगा दिया जाय तो इस भयंकर संग्राममें मुझे रामसे पराजित होनेका शोक नहीं होगा॥ २०॥

'यदि इस घोर संकटके समय भी कुम्भकर्ण मेरी सहायता करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है तो इन्द्रके तुल्य बलशाली होनेपर भी उससे मेरा प्रयोजन ही क्या है—मैं उसे लेकर क्या करूँगा?'॥ २१॥

राक्षसराज रावणकी वह बात सुनकर समस्त राक्षस बड़ी घबराहटमें पड़कर कुम्भकर्णके घर गये॥ २२॥

रक्त-मांसका भोजन करनेवाले वे राक्षस रावणकी आज्ञा पाकर गन्ध, माल्य तथा खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री लिये सहसा कुम्भकर्णके पास गये॥ २३॥

कुम्भकर्ण एक गुफामें रहता था, जो बड़ी ही सुन्दर थी और वहाँके वातावरणमें फूलोंकी सुगन्ध छायी रहती थी। उसकी लंबाई-चौड़ाई सब ओरसे एक-एक योजनकी थी तथा उसका दरवाजा बहुत बड़ा था। उसमें प्रवेश करते ही वे महाबली राक्षस कुम्भकर्णकी साँसके वेगसे सहसा पीछेको ठेल दिये गये। फिर बड़ी कठिनाईसे पैर जमाते हुए वे पूरा प्रयत्न करके उस गुफाके भीतर घुसे॥ २४-२५॥

उस गुफाकी फर्शमें रत्न और सुवर्ण जड़े गये थे, जिससे उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। उसके भीतर प्रवेश करके उन श्रेष्ठ राक्षसोंने देखा, भयानक पराक्रमी कुम्भकर्ण सो रहा है॥ २६॥

महानिद्रामें निमग्न हुआ कुम्भकर्ण बिखरे हुए पर्वतके समान विकृतावस्थामें सोकर खर्राटे ले रहा था, अत: वे सब राक्षस एकत्र हो उसे जगानेकी चेष्टा करने लगे॥ २७॥

उसका सारा शरीर ऊपर उठी हुई रोमावलियोंसे भरा था। वह सर्पके समान साँस लेता और अपने नि:श्वासोंसे लोगोंको चक्करमें डाल देता था। वहाँ सोया हुआ वह राक्षस भयानक बल-विक्रमसे सम्पन्न था॥ २८॥

उसकी नासिकाके दोनों छिद्र बड़े भयंकर थे। मुँह पातालके समान विशाल था। उसने अपना सारा शरीर शय्यापर डाल रखा था और उसकी देहसे रक्त और चर्बीकी-सी गन्ध प्रकट होती थी॥ २९॥

उसकी भुजाओंमें बाजूबन्द शोभा पाते थे। मस्तकपर तेजस्वी किरीट धारण करनेके कारण वह सूर्यदेवके समान प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था। इस रूपमें निशाचरश्रेष्ठ शत्रुदमन कुम्भकर्णको उन राक्षसोंने देखा॥ ३०॥

तदनन्तर उन महाकाय निशाचरोंने कुम्भकर्णके सामने प्राणियोंके मेरुपर्वत-जैसे ढेर लगा दिये, जो उसे अत्यन्त तृप्ति प्रदान करनेवाले थे॥ ३१॥

उन श्रेष्ठ राक्षसोंने वहाँ मृगों, भैंसों और सूअरोंके समूह खड़े कर दिये तथा अन्नकी भी अद्‌भुत राशि एकत्र कर दी॥ ३२॥

इतना ही नहीं, उन देवद्रोहियोंने कुम्भकर्णके आगे रक्तसे भरे हुए बहुतेरे घड़े और नाना प्रकारके मांस भी रख दिये॥ ३३॥

तत्पश्चात् उन्होंने शत्रुसंतापी कुम्भकर्णके शरीरमें बहुमूल्य चन्दनका लेप किया। दिव्य सुगन्धित पुष्प और चन्दन सुघाँये। धूपोंकी सुगन्ध फैलायी। उस शत्रुदमन वीरकी स्तुति की तथा जहाँ-तहाँ खड़े हुए राक्षस मेघोंके समान गम्भीर ध्वनिसे गर्जना करने लगे॥

(इतनेपर भी जब कुम्भकर्ण नहीं उठा, तब) अमर्षसे भरे हुए राक्षस चन्द्रमाके समान श्वेत रंगके बहुत-से शङ्ख फूँकने तथा एक साथ तुमुल-ध्वनिसे गर्जना करने लगे॥ ३६॥

वे निशाचर सिंहनाद करने, ताल ठोंकने और कुम्भकर्णके विभिन्न अङ्गोंको झकझोरने लगे। उन्होंने कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़े जोर-जोरसे गम्भीर ध्वनि की॥ ३७॥

शङ्ख, भेरी और पणव बजने लगे। ताल ठोंकने, गर्जने और सिंहनादका शब्द सब ओर गूँज उठा। वह तुमुल नाद सुनकर पक्षी समस्त दिशाओंकी ओर भागने और आकाशमें उड़ने लगे। उड़ते-उड़ते वे सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे॥ ३८॥

जब उस महान् कोलाहलसे भी सोया हुआ विशालकाय कुम्भकर्ण नहीं जग सका, तब उन समस्त राक्षसोंने अपने हाथोंमें भुशुण्डी, मूसल और गदाएँ ले लीं॥ ३९॥

कुम्भकर्ण भूतलपर ही सुखसे सो रहा था। उसी अवस्थामें उन प्रचण्ड राक्षसोंने उस समय उसकी छातीपर पर्वतशिखरों, मूसलों, गदाओं, मुद्गरों और मुक्कोंसे मारना आरम्भ किया॥ ४०॥

किंतु राक्षस कुम्भकर्णकी नि:श्वास-वायुसे प्रेरित

हो वे सब निशाचर उसके आगे ठहर नहीं पाते थे॥

तदनन्तर अपने वस्त्रोंको खूब कसकर बाँध लेनेके पश्चात् वे भयानक पराक्रमी राक्षस जिनकी संख्या लगभग दस हजार थी, एक ही समय कुम्भकर्णको घेरकर खड़े हो गये और काले कोयलेके ढेरके समान पड़े हुए उस निशाचरको जगानेका प्रयत्न करने लगे। उन सबने एक साथ मृदंग, पणव, भेरी, शङ्ख और कुम्भ (धौंसे) बजाने आरम्भ किये॥ ४२-४३॥

इस तरह वे राक्षस बाजे बजाते और गर्जते रहे तो भी कुम्भकर्णकी निद्रा नहीं टूटी। जब वे उसे किसी तरह जगा न सके, तब उन्होंने पहलेसे भी भारी प्रयत्न आरम्भ किया॥ ४४ $\frac{1}{2}$ ॥

वे घोड़ों, ऊँटों, गदहों और हाथियोंको डंडों, कोड़ों तथा अंकुशोंसे मार-मारकर उसके ऊपर ठेलने लगे। सारी शक्ति लगाकर भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख बजाने लगे तथा पूरा बल लगाकर उठाये गये बड़े-बड़े काष्ठोंके समूहों, मुद्गरों और मूसलोंसे भी उसके अङ्गोंपर प्रहार करने लगे। उस महान् कोलाहलसे पर्वतों और वनोंसहित सारी लङ्का गूँज उठी, परंतु कुम्भकर्ण नहीं जागा, नहीं जागा॥ ४५—४७॥

तदनन्तर सब ओर सहस्रों धौंसे एक साथ बजाये जाने लगे। वे सब-के-सब लगातार बजते रहे। उन्हें बजानेके लिये जो डंडे थे, वे सुन्दर सुवर्णके बने हुए थे॥ ४८॥

इतनेपर भी शापके अधीन हुआ वह अतिशय निद्रालु निशाचर नहीं जागा। इससे वहाँ आये हुए सब राक्षसोंको बड़ा क्रोध हुआ॥ ४९॥

फिर वे रोषसे भरे हुए सभी भयानक पराक्रमी निशाचर उस राक्षसको जगानेके लिये पराक्रम करने लगे॥

कोई धौंसे बजाने लगे, कोई महान् कोलाहल करने लगे, कोई कुम्भकर्णके सिरके बाल नोचने लगे और कोई दाँतोंसे उसके कान काटने लगे॥ ५१॥

दूसरे राक्षसोंने उसके दोनों कानोंमें सौ घड़े पानी डाल दिये तो भी महानिद्राके वशमें पड़ा हुआ कुम्भकर्ण टस-से-मस नहीं हुआ॥ ५२॥

दूसरे बलवान् राक्षस काँटेदार मुद्गर हाथमें लेकर उन्हें उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराने लगे॥ ५३॥

तत्पश्चात् रस्सियोंसे बँधी हुई शतघ्नियोंद्वारा उसपर सब ओरसे चोटें पड़ने लगीं। फिर भी उस महाकाय राक्षसकी नींद नहीं टूटी॥ ५४॥

इसके बाद उसके शरीरपर हजारों हाथी दौड़ाये गये। तब उसे कुछ स्पर्श मालूम हुआ और वह जाग उठा॥

यद्यपि उसके ऊपर पर्वतशिखर और वृक्ष गिराये जाते थे, तथापि उसने उन भारी प्रहारोंको कुछ भी नहीं गिना। हाथियोंके स्पर्शसे जब उसकी नींद टूटी, तब वह भूखके भयसे पीड़ित हो अँगड़ाई लेता हुआ सहसा उछलकर खड़ा हो गया॥ ५६॥

उसकी दोनों भुजाएँ नागोंके शरीर और पर्वत-शिखरोंके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने वज्रकी शक्तिको पराजित कर दिया था। उन दोनों बाँहों और मुँहको फैलाकर जब वह निशाचर जम्हाई लेने लगा, उस समय उसका मुख बड़वानलके समान विकराल जान पड़ता था॥ ५७॥

जम्हाई लेते समय कुम्भकर्णका पाताल-जैसा मुख मेरुपर्वतके शिखरपर उगे हुए सूर्यके समान दिखायी देता था॥ ५८॥

इस तरह जम्हाई लेता हुआ वह अत्यन्त बलशाली निशाचर जब जगा, तब उसके मुखसे जो साँस निकलती थी, वह पर्वत-से चली हुई वायुके समान प्रतीत होती थी॥

नींदसे उठे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके संहारकी इच्छा रखनेवाले कालके समान जान पड़ता था॥ ६०॥

उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें प्रज्वलित अग्नि और विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो दो महान् ग्रह प्रकाशित हो रहे हों॥ ६१॥

तदनन्तर राक्षसोंने वहाँ जो अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें रखी गयी थीं, वे सब-की-सब कुम्भकर्णको दिखायीं। वह महाबली राक्षस बात-की-बातमें बहुतेरे भैंसों और सूअरोंको चट कर गया॥ ६२॥

उसे बड़ी भूख लगी थी, अत: उसने भरपेट मांस खाया और प्यास बुझानेके लिये रक्त पान किया। तदनन्तर उस इन्द्रद्रोही निशाचरने चर्बीसे भरे हुए कितने ही घड़े साफ कर दिये और वह कई घड़े मदिरा भी पी गया॥ ६३॥

तब उसे तृप्त जानकर राक्षस उछल-उछलकर उसके सामने आये और उसे सिर झुका प्रणाम करके उसके चारों ओर खड़े हो गये॥ ६४॥

उस समय उसके नेत्र निद्राके कारण अप्रसन्न—कुछ-कुछ खुले हुए थे और मलिन जान पड़ते थे। उसने सब ओर दृष्टि डालकर वहाँ खड़े हुए निशाचरोंको देखा॥ ६५॥

निशाचरोंमें श्रेष्ठ कुम्भकर्णने उन सब राक्षसोंको सान्त्वना दी और अपने जगाये जानेके कारण विस्मित हो उनसे इस प्रकार पूछा—॥ ६६॥

'तुमलोगोंने इस प्रकार आदर करके मुझे किसलिये जगाया है? राक्षसराज रावण कुशलसे हैं न? यहाँ कोई भय तो नहीं उपस्थित हुआ है?॥ ६७॥

'अथवा निश्चय ही यहाँ दूसरोंसे कोई महान् भय उपस्थित हुआ है, जिसके निवारणके लिये तुमलोगोंने इतनी उतावलीके साथ मुझे जगाया है॥ ६८॥

'अच्छा तो आज मैं राक्षसराजके भयको उखाड़ फेंकूँगा। महेन्द्र (पर्वत या इन्द्र)-को भी चीर डालूँगा और अग्निको भी ठंडा कर दूँगा॥ ६९॥

'मुझ-जैसे पुरुषको किसी छोटे-मोटे कारणवश नींदसे नहीं जगाया जायगा। अत: तुमलोग ठीक-ठीक बताओ, मेरे जगाये जानेका क्या कारण है?'॥ ७०॥

शत्रुसूदन कुम्भकर्ण जब रोषमें भरकर इस प्रकार पूछने लगा, तब राजा रावणके सचिव यूपाक्षने हाथ जोड़कर कहा—॥ ७१॥

'महाराज! हमें देवताओंकी ओरसे तो कभी कोई भय हो ही नहीं सकता। इस समय केवल एक मनुष्यसे तुमुल भय प्राप्त हुआ है, जो हमें सता रहा है॥ ७२॥

'राजन्! इस समय एक मनुष्यसे हमारे लिये जैसा भय उपस्थित हो गया है, वैसा तो कभी दैत्यों और दानवोंसे भी नहीं हुआ था॥ ७३॥

'पर्वताकार वानरोंने आकर इस लङ्कापुरीको चारों ओरसे घेर लिया है। सीताहरणसे संतप्त हुए श्रीरामकी ओरसे हमें तुमुल भयकी प्राप्ति हुई है॥ ७४॥

'पहले एक ही वानरने यहाँ आकर इस महापुरीको जला दिया था और हाथियों तथा साथियोंसहित राजकुमार अक्षको भी मार डाला था॥ ७५॥

'श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उन्होंने देवशत्रु पुलस्त्यकुलनन्दन साक्षात् राक्षसराज रावणको भी युद्धमें हराकर जीवित छोड़ दिया और कहा—'लङ्काको लौट जाओ'॥ ७६॥

'महाराजकी जो दशा देवता, दैत्य और दानव भी नहीं कर सके थे, वह रामने कर दी। उनके प्राण बड़े संकटसे बचे हैं'॥ ७७॥

युद्धमें भाईकी पराजयसे सम्बन्ध रखनेवाली यूपाक्षकी यह बात सुनकर कुम्भकर्ण आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और यूपाक्षसे इस प्रकार बोला—॥ ७८॥

'यूपाक्ष! मैं अभी सारी वानरसेनाको तथा लक्ष्मणसहित रामको भी रणभूमिमें परास्त करके रावणका दर्शन करूँगा॥ ७९॥

'आज वानरोंके मांस और रक्तसे राक्षसोंको तृप्त करूँगा और स्वयं भी राम और लक्ष्मणके खून पीऊँगा'॥ ८०॥

कुम्भकर्णके बढ़े हुए रोष-दोषसे युक्त अहङ्कारपूर्ण वचन सुनकर राक्षस-योद्धाओंमें प्रधान महोदरने हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ८१॥

'महाबाहो! पहले चलकर महाराज रावणकी बात सुन लीजिये। फिर गुण-दोषका विचार करनेके पश्चात् युद्धमें शत्रुओंको परास्त कीजियेगा'॥ ८२॥

महोदरकी यह बात सुनकर राक्षसोंसे घिरा हुआ महातेजस्वी महाबली कुम्भकर्ण वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगा॥ ८३॥

इस तरह सोये हुए भयानक नेत्र, रूप और पराक्रमवाले कुम्भकर्णको उठाकर वे राक्षस शीघ्र ही दशमुख रावणके महलमें गये॥ ८४॥

दशग्रीव उत्तम सिंहासनपर बैठा हुआ था, उसके पास जा सभी निशाचर हाथ जोड़कर बोले—॥ ८५॥

'राक्षसेश्वर! आपके भाई कुम्भकर्ण जाग उठे हैं। कहिये, वे क्या करें? सीधे युद्धस्थलमें ही पधारें या आप उन्हें यहाँ उपस्थित देखना चाहते हैं?॥ ८६॥

तब रावणने बड़े हर्षके साथ उन उपस्थित हुए राक्षसोंसे कहा—'मैं कुम्भकर्णको यहाँ देखना चाहता हूँ, उनका यथोचित सत्कार किया जाय'॥ ८७॥

तब 'जो आज्ञा' कहकर रावणके भेजे हुए वे सब राक्षस पुन: कुम्भकर्णके पास आ इस प्रकार बोले—॥

'प्रभो! सर्वराक्षसशिरोमणि महाराज रावण आपको देखना चाहते हैं। अत: आप वहाँ चलनेका विचार करें और पधारकर अपने भाईका हर्ष बढ़ावें'॥ ८९॥

भाईका यह आदेश पाकर महापराक्रमी दुर्जय वीर कुम्भकर्ण 'बहुत अच्छा' कहकर शय्यासे उठकर खड़ा हो गया॥ ९०॥

उसने बड़े हर्ष और प्रसन्नताके साथ मुँह धोकर स्नान किया और पीनेकी इच्छासे तुरंत बलवर्धक पेय

ले आनेकी आज्ञा दी॥ ९१॥

तब रावणके आदेशसे वे सब राक्षस तुरंत मद्य तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ ले आये॥ ९२॥

कुम्भकर्ण दो हजार घड़े मद्य गटककर चलनेको उद्यत हुआ। इससे उसमें कुछ ताजगी आ गयी तथा वह मतवाला, तेजस्वी और शक्तिसम्पन्न हो गया॥ ९३॥

फिर जब राक्षसोंकी सेनाके साथ कुम्भकर्ण भाईके महलकी ओर चला, उस समय वह रोषसे भरे हुए प्रलयकालके विनाशकारी यमराजके समान जान पड़ता था। कुम्भकर्ण अपने पैरोंकी धमकसे सारी पृथ्वीको कम्पित कर रहा था॥ ९४॥

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे भूतलको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार वह अपने तेजस्वी शरीरसे राजमार्गको उद्भासित करता हुआ हाथ जोड़े अपने भाईके महलमें गया। ठीक उसी तरह, जैसे देवराज इन्द्र ब्रह्माजीके धाममें जाते हैं॥ ९५॥

राजमार्गपर चलते समय शत्रुघाती कुम्भकर्ण पर्वतशिखरके समान जान पड़ता था। नगरके बाहर खड़े हुए वानर सहसा उस विशालकाय राक्षसको देखकर सेनापतियोंसहित सहम गये॥ ९६॥

उनमेंसे कुछ वानरोंने शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरण ली। कुछ व्यथित होकर गिर पड़े। कोई पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये और जहाँ-तहाँ धराशायी हो गये और कितने ही वानर भयसे पीड़ित हो धरतीपर लेट गये॥ ९७॥

वह पर्वतशिखरके समान ऊँचा था। उसके मस्तकपर मुकुट शोभा देता था। वह अपने तेजसे सूर्यका स्पर्श करता-सा जान पड़ता था। उस बढ़े हुए विशालकाय एवं अद्‍भुत राक्षसको देखकर सभी वनवासी वानर भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे॥ ९८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ सर्ग

विभीषणका श्रीरामसे कुम्भकर्णका परिचय देना और श्रीरामकी आज्ञासे वानरोंका युद्धके लिये लङ्काके द्वारोंपर डट जाना

तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर बल-विक्रमसे सम्पन्न महातेजस्वी श्रीरामने किरीटधारी महाकाय राक्षस कुम्भकर्णको देखा॥ १॥

वह पर्वतके समान दिखायी देता था और राक्षसोंमें सबसे बड़ा था। जैसे पूर्वकालमें भगवान् नारायणने आकाशको नापनेके लिये डग भरे थे, उसी प्रकार वह भी डग बढ़ाता जा रहा था। सजल जलधरके समान काला कुम्भकर्ण सोनेके बाजूबन्दसे विभूषित था। उसे देखकर वानरोंकी वह विशाल सेना पुनः बड़े वेगसे भागने लगी॥ २-३॥

अपनी सेनाको भागते तथा राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ते देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विभीषणसे पूछा—॥ ४॥

'यह लङ्कापुरीमें पर्वतके समान विशालकाय वीर कौन है, जिसके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है और नेत्र भूरे हैं? यह ऐसा दिखायी देता है मानो बिजलीसहित मेघ हो॥ ५॥

'इस भूतलपर यह एकमात्र महान् ध्वज-सा दृष्टिगोचर होता है। इसे देखकर सारे वानर इधर-उधर भाग चले हैं॥ ६॥

'विभीषण! बताओ। यह इतने बड़े डील-डौलका कौन है? कोई राक्षस है या असुर? मैंने ऐसे प्राणीको पहले कभी नहीं देखा'॥ ७॥

अनायास ही बड़े-बड़े कर्म करनेवाले राजकुमार श्रीरामने जब इस प्रकार पूछा, तब परम बुद्धिमान् विभीषणने उन ककुत्स्थकुलभूषण रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥ ८॥

'भगवन्! जिसने युद्धमें वैवस्वत यम और देवराज इन्द्रको भी पराजित किया था, वही यह विश्रवाका प्रतापी पुत्र कुम्भकर्ण है। इसके बराबर लंबा दूसरा कोई राक्षस नहीं है॥ ९॥

'रघुनन्दन! इसने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंको सहस्रों बार युद्धमें मार भगाया है॥ १०॥

'इसके नेत्र बड़े भयंकर हैं। यह महाबली कुम्भकर्ण जब हाथमें शूल लेकर युद्धमें खड़ा हुआ, उस समय देवता भी इसे मारनेमें समर्थ न हो सके। यह कालरूप है, ऐसा समझकर वे सब-के-सब मोहित हो गये थे॥

'कुम्भकर्ण स्वभावसे ही तेजस्वी और महाबलवान् है। अन्य राक्षसपतियोंके पास जो बल है, वह वरदानसे प्राप्त हुआ है॥ १२॥

'इस महाकाय राक्षसने जन्म लेते ही बाल्यावस्थामें भूखसे पीड़ित हो कई सहस्र प्रजाजनोंको खा डाला था॥

'जब सहस्रों प्रजाजन इसका आहार बनने लगे, तब भयसे पीड़ित हो वे सब-के-सब देवराज इन्द्रकी शरणमें गये और उन सबने उनके समक्ष अपना कष्ट निवेदन किया॥ १४॥

'इससे वज्रधारी देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने तीखे वज्रसे कुम्भकर्णको घायल कर दिया। इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर यह महाकाय राक्षस क्षुब्ध हो उठा और रोषपूर्वक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा॥ १५॥

'राक्षस कुम्भकर्णके बारंबार गर्जना करनेपर उसका भयंकर सिंहनाद सुनकर प्रजावर्गके लोग भयभीत हो और भी डर गये॥ १६॥

'तदनन्तर कुपित हुए महाबली कुम्भकर्णने इन्द्रके ऐरावतके मुँहसे एक दाँत उखाड़ लिया और उसीसे देवेन्द्रकी छातीपर प्रहार किया॥ १७॥

'कुम्भकर्णके प्रहारसे इन्द्र व्याकुल हो गये और उनके हृदयमें जलन होने लगी। यह देखकर सब देवता, ब्रह्मर्षि और दानव सहसा विषादमें डूब गये॥ १८॥

'तत्पश्चात् इन्द्र उन प्रजाजनोंके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ जाकर उन सबने प्रजापतिके समक्ष कुम्भकर्णकी दुष्टताका विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥

'इसके द्वारा प्रजाके भक्षण, देवताओंके धर्षण (तिरस्कार), ऋषियोंके आश्रमोंके विध्वंस तथा परायी स्त्रियोंके बारंबार हरण होनेकी भी बात बतायी॥ २०॥

'इन्द्रने कहा—'भगवन्! यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार प्रजाजनोंका भक्षण करता रहा तो थोड़े ही समयमें सारा संसार सूना हो जायगा'॥ २१॥

'इन्द्रकी यह बात सुनकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माने सब राक्षसोंको बुलाया और कुम्भकर्णसे भी भेंट की॥ २२॥

'कुम्भकर्णको देखते ही स्वयम्भू प्रजापति थर्रा उठे। फिर अपनेको सँभालकर वे उस राक्षससे बोले— ॥ २३॥

''कुम्भकर्ण! निश्चय ही इस जगत्का विनाश करनेके लिये ही विश्रवाने तुझे उत्पन्न किया है; अतः मैं शाप देता हूँ, आजसे तू मुर्देके समान सोता रहेगा'॥

'ब्रह्माजीके शापसे अभिभूत होकर वह रावणके सामने ही गिर पड़ा। इससे रावणको बड़ी घबराहट हुई और उसने कहा— ॥ २५॥

''प्रजापते! अपने द्वारा लगाया और बढ़ाया हुआ सुवर्णरूप फल देनेवाला वृक्ष फल देनेके समय नहीं काटा जाता है। यह आपका नाती है, इसे इस प्रकार शाप देना कदापि उचित नहीं है॥ २६॥

''आपकी बात कभी झूठी नहीं होती, इसलिये अब इसे सोना ही पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है; परंतु आप इसके सोने और जागनेका कोई समय नियत कर दें'॥ २७॥

'रावणका यह कथन सुनकर स्वयम्भू ब्रह्माने कहा—'यह छः मासतक सोता रहेगा और एक दिन जगेगा॥ २८॥

''उस एक दिन ही यह वीर भूखा होकर पृथ्वीपर विचरेगा और प्रज्वलित अग्निके समान मुँह फैलाकर बहुत-से लोगोंको खा जायगा'॥ २९॥

'महाराज! इस समय आपत्तिमें पड़कर और आपके पराक्रमसे भयभीत होकर राजा रावणने कुम्भकर्णको जगाया है॥ ३०॥

'यह भयानक पराक्रमी वीर अपने शिबिरसे निकला है और अत्यन्त कुपित हो वानरोंको खा जानेके लिये सब ओर दौड़ रहा है॥ ३१॥

'जब कुम्भकर्णको देखकर ही आज सारे वानर भाग चले, तब रणभूमिमें कुपित हुए इस वीरको ये आगे बढ़नेसे कैसे रोक सकेंगे?॥ ३२॥

'सब वानरोंसे यह कह दिया जाय कि यह कोई व्यक्ति नहीं, कायाद्वारा निर्मित ऊँचा यन्त्रमात्र है। ऐसा जानकर वानर निर्भय हो जायँगे'॥ ३३॥

विभीषणके सुन्दर मुखसे निकली हुई यह युक्तियुक्त बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने सेनापति नीलसे कहा— ॥

'अग्निनन्दन! जाओ, समस्त सेनाओंकी मोर्चेबंदी करके युद्धके लिये तैयार रहो और लङ्काके द्वारों तथा राजमार्गोंपर अधिकार जमाकर वहीं डटे रहो॥ ३५॥

'पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और शिलाएँ एकत्र कर लो तथा तुम और सब वानर अस्त्र-शस्त्र एवं पत्थर लिये तैयार रहो'॥ ३६॥

श्रीरघुनाथजीकी यह आज्ञा पाकर वानरसेनापति कपिश्रेष्ठ नीलने वानरसैनिकोंको यथोचित कार्यके लिये

आदेश दिया॥ ३७॥

तदनन्तर गवाक्ष, शरभ, हनुमान् और अङ्गद आदि पर्वताकार वानर पर्वतशिखर लिये लङ्काके द्वारपर डट गये॥ ३८॥

विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वीर वानर श्रीरामचन्द्रजीकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर वृक्षोंद्वारा शत्रुसेनाको पीड़ित करने लगे॥ ३९॥

तदनन्तर हाथोंमें शैल-शिखर और वृक्ष लिये वानरोंकी वह भयंकर सेना पर्वतके समीप घिरी हुई मेघोंकी बड़ी भारी उग्र घटाके समान सुशोभित होने लगी॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णका रावणके भवनमें प्रवेश तथा रावणका रामसे भय बताकर उसे शत्रुसेनाके विनाशके लिये प्रेरित करना

महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि कुम्भकर्ण निद्रा और मदसे व्याकुल हो अलसाया हुआ-सा शोभाशाली राजमार्गसे जा रहा था॥ १॥

वह परम दुर्जय वीर हजारों राक्षसोंसे घिरा हुआ यात्रा कर रहा था। सड़कके किनारेपर जो मकान थे, उनमेंसे उसके ऊपर फूल बरसाये जा रहे थे॥ २॥

उसने राक्षसराज रावणके रमणीय एवं विशाल भवनका दर्शन किया, जो सोनेकी जालीसे आच्छादित होनेके कारण सूर्यदेवके समान दीप्तिमान् दिखायी देता था॥ ३॥

जैसे सूर्य मेघोंकी घटामें छिप जायँ, उसी प्रकार कुम्भकर्णने राक्षसराजके महलमें प्रवेश किया और राजसिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईको दूरसे ही देखा, मानो देवराज इन्द्रने दिव्य कमलासनपर विराजमान स्वयम्भू ब्रह्माका दर्शन किया हो॥ ४॥

राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण अपने भाईके भवनमें जाते समय जब-जब एक-एक पैर आगे बढ़ाता था, तब-तब पृथ्वी काँप उठती थी॥ ५॥

भाईके भवनमें जाकर जब वह भीतरकी कक्षामें प्रविष्ट हुआ, तब उसने अपने बड़े भाईको उद्विग्न अवस्थामें पुष्पक विमानपर विराजमान देखा॥ ६॥

कुम्भकर्णको उपस्थित देख दशमुख रावण तुरंत उठकर खड़ा हो गया और बड़े हर्षके साथ उसे अपने समीप बुला लिया॥ ७॥

महाबली कुम्भकर्णने सिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'कौन-सा कार्य आ पड़ा है?'॥ ८॥

रावणने उछलकर बड़ी प्रसन्नताके साथ कुम्भकर्णको हृदयसे लगा लिया। भाई रावणने उसका आलिंगन करके यथावत्‌रूपसे अभिनन्दन किया॥ ९॥

इसके बाद कुम्भकर्ण सुन्दर दिव्य सिंहासनपर बैठा। उस आसनपर बैठकर महाबली कुम्भकर्णने क्रोधसे लाल आँखें किये रावणसे पूछा—॥ १०$\frac{१}{२}$॥

'राजन्! किसलिये तुमने बड़े आदरके साथ मुझे जगाया है? बताओ, यहाँ तुम्हें किससे भय प्राप्त हुआ है? अथवा कौन परलोकका पथिक होनेवाला है?'॥ ११$\frac{१}{२}$॥

तब रावण अपने पास बैठे हुए कुपित भाई कुम्भकर्णसे रोषसे चञ्चल आँखें किये बोला—॥ १२$\frac{१}{२}$॥

'महाबली वीर! तुम्हारे सोये-सोये दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तुम गाढ़ निद्रामें निमग्न होनेके कारण नहीं जानते कि मुझे रामसे भय प्राप्त हुआ है॥ १३$\frac{१}{२}$॥

'ये दशरथकुमार बलवान् श्रीमान् राम सुग्रीवके साथ समुद्र लाँघकर यहाँ आये हैं और हमारे कुलका विनाश कर रहे हैं॥ १४$\frac{१}{२}$॥

'हाय! देखो तो सही, समुद्रमें पुल बाँधकर सुखपूर्वक यहाँ आये हुए वानरोंने लङ्काके समस्त वनों और उपवनोंको एकार्णवमय बना दिया है—यहाँ वानररूपी जलका समुद्र-सा लहरा रहा है॥ १५$\frac{१}{२}$॥

'हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस वीर थे, उन्हें वानरोंने युद्धमें मार डाला; किंतु रणभूमिमें वानरोंका संहार होता मुझे किसी तरह नहीं दिखायी देता। युद्धमें कभी कोई वानर पहले जीते नहीं गये हैं॥ १६-१७॥

'महाबली वीर! इस समय हमारे ऊपर यही भय उपस्थित हुआ है। तुम इससे हमारी रक्षा करो और आज इन वानरोंको नष्ट कर दो। इसीलिये हमने तुम्हें जगाया है॥ १८॥

'हमारा सारा खजाना खाली हो गया है; अतः मुझपर अनुग्रह करके तुम इस लङ्कापुरीकी रक्षा करो; अब यहाँ केवल बालक और वृद्ध ही शेष रह गये हैं॥ १९॥

'महाबाहो! तुम अपने इस भाईके लिये अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करो। परंतप! आजसे पहले कभी किसी भाईसे मैंने ऐसी अनुनय-विनय नहीं की थी॥ २०॥

'तुम्हारे ऊपर मेरा बड़ा स्नेह है और मुझे तुमसे बड़ी आशा है। राक्षसशिरोमणे! तुमने देवासुर-संग्रामके अवसरोंपर अनेक बार प्रतिद्वन्द्वीका स्थान लेकर रणभूमिमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त किया है॥

'अतः भयंकर पराक्रमी वीर! तुम्हीं यह सारा पराक्रमपूर्ण कार्य सम्पन्न करो; क्योंकि समस्त प्राणियोंमें तुम्हारे समान बलवान् मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता है॥ २३॥

'तुम युद्धप्रेमी तो हो ही, अपने बन्धु-बान्धवोंसे भी बड़ा प्रेम रखते हो। इस समय तुम मेरा यही प्रिय और उत्तम हित करो। अपने तेजसे शत्रुओंकी सेनाको उसी तरह व्यथित कर दो, जैसे वेगसे उठी हुई प्रचण्ड वायु शरद्-ऋतुके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णका रावणको उसके कुकृत्योंके लिये उपालम्भ देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्धविषयक उत्साह प्रकट करना

राक्षसराज रावणका यह विलाप सुनकर कुम्भकर्ण ठहाका मारकर हँसने लगा और इस प्रकार बोला—॥

'भाईसाहब! पहले (विभीषण आदिके साथ) विचार करते समय हमलोगोंने जो दोष देखा था, वही तुम्हें इस समय प्राप्त हुआ है; क्योंकि तुमने हितैषी पुरुषों और उनकी बातोंपर विश्वास नहीं किया था॥ २॥

'तुम्हें शीघ्र ही अपने पापकर्मका फल मिल गया। जैसे कुकर्मी पुरुषोंका नरकोंमें पड़ना निश्चित है, उसी प्रकार तुम्हें भी अपने दुष्कर्मका फल मिलना अवश्यम्भावी था॥ ३॥

'महाराज! केवल बलके घमंडसे तुमने पहले इस पापकर्मकी कोई परवा नहीं की। इसके परिणामका कुछ भी विचार नहीं किया था॥ ४॥

'जो ऐश्वर्यके अभिमानमें आकर पहले करनेयोग्य कार्योंको पीछे करता है और पीछे करनेयोग्य कार्योंको पहले कर डालता है, वह नीति तथा अनीतिको नहीं जानता है॥ ५॥

'जो कार्य उचित देश-काल न होनेपर विपरीत स्थितिमें किये जाते हैं, वे संस्कारहीन अग्नियोंमें होमे गये हविष्यकी भाँति केवल दुःखके ही कारण होते हैं॥ ६॥

'जो राजा सचिवोंके साथ विचार करके क्षय, वृद्धि और स्थानरूपसे उपलक्षित साम, दान और दण्ड—इन तीनों कर्मोंके पाँच[1] प्रकारके प्रयोगको काममें लाता है, वही उत्तम नीति-मार्गपर विद्यमान है, ऐसा समझना चाहिये॥ ७॥

'जो नरेश नीतिशास्त्रके अनुसार मन्त्रियोंके साथ क्षय[2] आदिके लिये उपयुक्त समयका विचार करके तदनुरूप कार्य करता है और अपनी बुद्धिसे सुहृदोंकी भी पहचान कर लेता है, वही कर्तव्य और अकर्तव्यका विवेक कर पाता है॥ ८॥

'राक्षसराज! नीतिज्ञ पुरुषको चाहिये कि धर्म, अर्थ या कामका अथवा सबका अपने समयपर सेवन करे अथवा तीनों द्वन्द्वोंका—धर्म-अर्थ, अर्थ-धर्म और काम-अर्थ इन सबका भी उपयुक्त समयमें ही सेवन करे[3]॥

१. कार्यको आरम्भ करनेका उपाय, पुरुष और द्रव्यरूप सम्पत्ति, देश-कालका विभाग, विपत्तिको टालनेका उपाय और कार्यकी सिद्धि—ये पाँच प्रकारके योग हैं।

२. जब अपनी वृद्धि और शत्रुकी हानिका समय हो तब दण्डोपयोगी यान (युद्धयात्रा) उचित है। अपनी और शत्रुकी समान स्थिति हो तो सामपूर्वक संधि कर लेना उचित है। तथा जब अपनी हानि और शत्रुकी वृद्धिका समय हो, तब उसे कुछ देकर उसका आश्रय ग्रहण करना उचित होता है।

३. यहाँ यह बात कही गयी है कि शास्त्रके अनुसार प्रातःकाल धर्मका, मध्याह्नकालमें अर्थका और रात्रिमें कामसेवनका विधान है; अतः उन-उन समयोंमें धर्म आदिका सेवन करना चाहिये अथवा प्रातःकालमें धर्म और अर्थरूप द्वन्द्वका, मध्याह्नकालमें अर्थ और धर्मका और रात्रिमें काम और अर्थका सेवन करे। जो हर समय केवल कामका ही सेवन करता हे, वह पुरुषोंमें अधम कोटिका है।

'धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है; अतः विशेष अवसरोंपर अर्थ और कामकी उपेक्षा करके भी धर्मका ही सेवन करना चाहिये—इस बातको विश्वसनीय पुरुषोंसे सुनकर भी जो राजा या राजपुरुष नहीं समझता अथवा समझकर भी स्वीकार नहीं करता, उसका अनेक शास्त्रोंका अध्ययन व्यर्थ ही है॥ १०॥

'राक्षसशिरोमणे! जो मनस्वी राजा मन्त्रियोंसे अच्छी तरह सलाह करके समयके अनुसार दान, भेद और पराक्रमका, इनके पूर्वोक्त पाँच प्रकारके योगका, नय और अनयका तथा ठीक समयपर धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोकमें कभी दुःख या विपत्तिका भागी नहीं होता॥ ११-१२॥

'राजाको चाहिये कि वह अर्थतत्त्वज्ञ एवं बुद्धिजीवी मन्त्रियोंकी सलाह लेकर जो अपने लिये परिणाममें हितकर दिखायी देता हो, वही कार्य करे॥ १३॥

'जो पशुके समान बुद्धिवाले किसी तरह मन्त्रियोंके भीतर सम्मिलित कर लिये गये हैं, वे शास्त्रके अर्थको तो जानते नहीं, केवल धृष्टतावश बातें बनाना चाहते हैं॥ १४॥

'शास्त्रके ज्ञानसे शून्य और अर्थशास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए भी प्रचुर सम्पत्ति चाहनेवाले उन अयोग्य मन्त्रियोंकी कही हुई बात कभी नहीं माननी चाहिये॥

'जो लोग धृष्टताके कारण अहितकर बातको हितका रूप देकर कहते हैं, वे निश्चय ही सलाह लेनेयोग्य नहीं हैं। अतः उन्हें इस कार्यसे अलग कर देना चाहिये। वे तो काम बिगाड़नेवाले ही होते हैं॥ १६॥

'कुछ बुरे मन्त्री साम आदि उपायोंके ज्ञाता शत्रुओंके साथ मिल जाते हैं और अपने स्वामीका विनाश करनेके लिये ही उससे विपरीत कर्म करवाते हैं॥ १७॥

'जब किसी वस्तु या कार्यके निश्चयके लिये मन्त्रियोंकी सलाह ली जा रही हो, उस समय राजा व्यवहारके द्वारा ही उन मन्त्रियोंको पहचाननेका प्रयत्न करे, जो घूस आदि लेकर शत्रुओंसे मिल गये हैं और अपने मित्र-से बने रहकर वास्तवमें शत्रुका काम करते हैं॥

'जो राजा चंचल है—आपातरमणीय वचनोंको सुनकर ही संतुष्ट हो जाता है और सहसा बिना सोचे-विचारे ही किसी भी कार्यकी ओर दौड़ पड़ता है, उसके इस छिद्र (दुर्बलता)-को शत्रुलोग उसी तरह ताड़ जाते हैं, जैसे क्रौंच पर्वतके छेदको पक्षी। (क्रौंचपर्वतके छेदसे होकर पक्षी जैसे पर्वतके उस पार आते-जाते हैं, उसी तरह शत्रु भी राजाके उस छिद्र या कमजोरीसे लाभ उठाते हैं)॥ १९॥

'जो राजा शत्रुकी अवहेलना करके अपनी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता है, वह अनेक अनर्थोंका भागी होता और अपने स्थान (राज्य)-से नीचे उतार दिया जाता है॥

'तुम्हारी प्रिय पत्नी मन्दोदरी और मेरे छोटे भाई विभीषणने पहले तुमसे जो कुछ कहा था, वही हमारे लिये हितकर था। यों तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो'॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर दशमुख रावणने भौंहें टेढ़ी कर लीं और कुपित होकर उससे कहा—॥ २२॥

'तुम माननीय गुरु और आचार्यकी भाँति मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो? इस तरह भाषण देनेका परिश्रम करनेसे क्या लाभ होगा? इस समय जो उचित और आवश्यक हो, वह काम करो॥ २३॥

'मैंने भ्रमसे, चितके मोहसे अथवा अपने बल-पराक्रमके भरोसे पहले जो तुमलोगोंकी बात नहीं मानी थी, उसकी इस समय पुनः चर्चा करना व्यर्थ है॥ २४॥

'जो बात बीत गयी, सो तो बीत ही गयी। बुद्धिमान् लोग बीती बातके लिये बारंबार शोक नहीं करते हैं। अब इस समय हमें क्या करना चाहिये, इसका विचार करो। अपने पराक्रमसे मेरे अनीतिजनित दुःखको शान्त कर दो॥ २५$\frac{1}{2}$॥

'यदि मुझपर तुम्हारा स्नेह है, यदि अपने भीतर यथेष्ट पराक्रम समझते हो और यदि मेरे इस कार्यको परम कर्तव्य समझकर हृदयमें स्थान देते हो तो युद्ध करो॥

'वही सुहृद् है, जो सारा कार्य नष्ट हो जानेसे दुःखी हुए स्वजनपर अकारण अनुग्रह करता है तथा वही बन्धु है, जो अनीतिके मार्गपर चलनेसे संकटमें पड़े हुए पुरुषोंकी सहायता करता है'॥ २७$\frac{1}{2}$॥

रावणको इस प्रकार धीर एवं दारुण वचन बोलते देख उसे रुष्ट समझकर कुम्भकर्ण धीरे-धीरे मधुर वाणीमें कुछ कहनेको उद्यत हुआ॥ २८$\frac{1}{2}$॥

उसने देखा मेरे भाईकी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठी हैं; अतः कुम्भकर्णने धीरे-धीरे उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ २९$\frac{1}{2}$॥

'शत्रुदमन महाराज! सावधान होकर मेरी बात सुनो। राक्षसराज! संताप करना व्यर्थ है। अब तुम्हें रोष त्यागकर स्वस्थ हो जाना चाहिये॥ ३०-३१॥

'पृथ्वीनाथ! मेरे जीते-जी तुम्हें मनमें ऐसा भाव नहीं लाना चाहिये। तुम्हें जिसके कारण संतप्त होना पड़

रहा है, उसे मैं नष्ट कर दूँगा॥ ३२॥

'महाराज! अवश्य ही सब अवस्थाओंमें मुझे तुम्हारे हितकी बात कहनी चाहिये। अत: मैंने बन्धुभाव और भ्रातृ-स्नेहके कारण ही ये बातें कही हैं॥ ३३॥

'इस समय एक भाईको स्नेहवश जो कुछ करना उचित है, वही करूँगा। अब रणभूमिमें मेरे द्वारा किया जानेवाला शत्रुओंका संहार देखो॥ ३४॥

'महाबाहो! आज युद्धके मुहानेपर मेरे द्वारा भाईसहित रामके मारे जानेके पश्चात् तुम देखोगे कि वानरोंकी सेना किस तरह भागी जा रही है॥ ३५॥

'महाबाहो! आज मैं संग्रामभूमिमें रामका सिर काट लाऊँगा। उसे देखकर तुम सुखी होना और सीता दु:खमें डूब जायगी॥ ३६॥

'लङ्कामें जिन राक्षसोंके सगे-सम्बन्धी मारे गये हैं, वे भी आज रामकी मृत्यु देख लें। यह उनके लिये बहुत ही प्रिय बात होगी॥ ३७॥

'अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेसे जो लोग अत्यन्त शोकमें डूबे हुए हैं, आज युद्धमें शत्रुका नाश करके मैं उनके आँसू पोंछूँगा॥ ३८॥

'आज पर्वतके समान विशालकाय वानरराज सुग्रीवको समराङ्गणमें खूनसे लथपथ होकर गिरे हुए देखोगे, जो सूर्यसहित मेघके समान दृष्टिगोचर होंगे॥

'निष्पाप निशाचरराज! ये राक्षस तथा मैं—सब लोग दशरथपुत्र रामको मार डालनेकी इच्छा रखते हैं और तुम्हें इस बातके लिये आश्वासन देते हैं तो भी तुम सदा व्यथित क्यों रहते हो?॥ ४०॥

'राक्षसराज! पहले मेरा वध करके ही राम तुम्हें मार सकेंगे; किंतु मैं अपने विषयमें रामसे संताप या भय नहीं मानता॥ ४१॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले अनुपम पराक्रमी वीर! इस समय तुम इच्छानुसार मुझे युद्धके लिये आदेश दो। शत्रुओंसे जूझनेके लिये तुम्हें दूसरे किसीकी ओर देखनेकी आवश्यकता नहीं है॥ ४२॥

'तुम्हारे महाबली शत्रु यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु, कुबेर और वरुण भी हों तो मैं उनसे भी युद्ध करूँगा तथा उन सबको उखाड़ फेंकूँगा॥ ४३ $\frac{१}{२}$ ॥

'मेरा पर्वतके समान विशाल शरीर है। मैं हाथमें तीखा त्रिशूल धारण करता हूँ और मेरी दाढ़ें भी बहुत तीखी हैं। मेरे सिंहनाद करनेपर इन्द्र भी भयसे थर्रा उठेंगे॥ ४४ $\frac{१}{२}$ ॥

'अथवा यदि मैं शस्त्र त्याग करके भी वेगपूर्वक शत्रुओंको रौंदता हुआ रणभूमिमें विचरने लगूँ तो कोई भी जीवित रहनेकी इच्छावाला पुरुष मेरे सामने नहीं ठहर सकता॥ ४५ $\frac{१}{२}$ ॥

'मैं न तो शक्तिसे, न गदासे, न तलवारसे और न पैने बाणोंसे ही काम लूँगा। रोषसे भरकर केवल दोनों हाथोंसे ही वज्रधारी इन्द्र-जैसे शत्रुको भी मौतके घाट उतार दूँगा॥ ४६ $\frac{१}{२}$ ॥

'यदि राम आज मेरी मुट्ठीका वेग सह लेंगे तो मेरे बाणसमूह अवश्य ही उनका रक्त पान करेंगे॥ ४७ $\frac{१}{२}$ ॥

'राजन्! मेरे रहते हुए तुम किसलिये चिन्ताकी आगसे झुलस रहे हो? मैं तुम्हारे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये अभी रणभूमिमें जानेको उद्यत हूँ॥ ४८ $\frac{१}{२}$ ॥

'तुम्हें रामसे जो घोर भय हो रहा है, उसे त्याग दो। मैं रणभूमिमें राम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवको अवश्य मार डालूँगा॥ ४९ $\frac{१}{२}$ ॥

'युद्ध उपस्थित होनेपर मैं राक्षसोंका संहार करनेवाले उस हनुमान्को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा, जिसने लङ्का जलायी थी। साथ ही अन्य वानरोंको भी खा जाऊँगा। आज मैं तुम्हें अलौकिक एवं महान् यश प्रदान करना चाहता हूँ॥ ५०-५१॥

'राजन्! यदि तुम्हें इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्मासे भी भय है तो मैं उस भयको भी उसी तरह नष्ट कर दूँगा, जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारको॥ ५२॥

'मेरे कुपित होनेपर देवता भी धराशायी हो जायँगे। (फिर मनुष्यों और वानरोंकी तो बात ही क्या है?) मैं यमराजको भी शान्त कर दूँगा। सर्वभक्षी अग्निका भी भक्षण कर जाऊँगा॥ ५३॥

'नक्षत्रोंसहित सूर्यको भी पृथ्वीपर मार गिराऊँगा, इन्द्रका भी वध कर डालूँगा और समुद्रको भी पी जाऊँगा॥ ५४॥

'पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा। भूमण्डलको विदीर्ण कर डालूँगा। आज मेरे द्वारा खाये जानेवाले सब प्राणी दीर्घकालतक सोकर उठे हुए मुझ कुम्भकर्णका पराक्रम देखें। यह सारी त्रिलोकी आहार बन जाय तो भी मेरा पेट नहीं भर सकता॥ ५५-५६॥

'दशरथकुमार श्रीरामका वध करके मैं तुम्हें उत्तरोत्तर सुखकी प्राप्ति करानेवाले सुख-सौभाग्यको देना चाहता हूँ। लक्ष्मणसहित रामका वध करके सभी प्रधान-प्रधान वानरयूथपतियोंको खा जाऊँगा॥ ५७॥

'राजन्! अब मौज करो, मदिरा पीओ और मानसिक दु:खको दूर करके सब कार्य करो। आज मेरे द्वारा राम यमलोक पहुँचा दिये जायँगे; फिर तो सीता चिरकाल (सदा)-के लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

महोदरका कुम्भकर्णके प्रति आक्षेप करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले विशालकाय एवं बलवान् राक्षस कुम्भकर्णका यह वचन सुनकर महोदरने कहा—॥ १॥

'कुम्भकर्ण! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; परंतु तुम्हारी दृष्टि (बुद्धि) निम्नश्रेणीके लोगोंके समान है। तुम ढीठ और घमंडी हो, इसलिये सभी विषयोंमें क्या कर्तव्य है—इस बातको नहीं जान सकते॥ २॥

'कुम्भकर्ण! हमारे महाराज नीति और अनीतिको नहीं जानते हैं, ऐसी बात नहीं है। तुम केवल अपने बचपनके कारण धृष्टतापूर्वक इस तरहकी बातें कहना चाहते हो॥ ३॥

'राक्षसशिरोमणि रावण देश-कालके लिये उचित कर्तव्यको जानते हैं और अपने तथा शत्रुपक्षके स्थान, वृद्धि एवं क्षयको अच्छी तरह समझते हैं॥ ४॥

'जिसने वृद्ध पुरुषोंकी उपासना या सत्संग नहीं किया है और जिसकी बुद्धि गँवारोंके समान है, ऐसा बलवान् पुरुष भी जिस कर्मको नहीं कर सकता—जिसे अनुचित समझता है, वैसे कर्मको कोई बुद्धिमान् पुरुष कैसे कर सकता है?॥ ५॥

'जिन अर्थ, धर्म और कामको तुम पृथक्-पृथक् आश्रयवाले बता रहे हो, उन्हें ठीक-ठीक समझनेकी तुम्हारे भीतर शक्ति ही नहीं है॥ ६॥

'सुखके साधनभूत जो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) हैं, उन सबका एकमात्र कर्म ही प्रयोजक है (क्योंकि जो कर्मानुष्ठानसे रहित है, उसका धर्म, अर्थ अथवा काम—कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं होता)। इसी तरह एक पुरुषके प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाले सभी शुभाशुभ व्यापारोंका फल यहाँ एक ही कर्ताको प्राप्त होता है (इस प्रकार जब परस्पर विरुद्ध होनेपर भी धर्म और कामका अनुष्ठान एक ही पुरुषके द्वारा होता देखा जाता है, तब तुम्हारा यह कहना कि केवल धर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये, धर्मविरोधी कामका नहीं, कैसे संगत हो सकता है?)॥ ७॥

'निष्कामभावसे किये गये धर्म (जप, ध्यान आदि) और अर्थ (धनसाध्य यज्ञ, दान आदि)—ये चित्तशुद्धिके द्वारा यद्यपि नि:श्रेयस (मोक्ष)-रूप फलकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथापि कामना-विशेषसे स्वर्ग एवं अभ्युदय आदि अन्य फलोंकी भी प्राप्ति कराते हैं। पूर्वोक्त जपादिरूप या क्रियामय नित्य-धर्मका लोप होनेपर अधर्म और अनर्थ प्राप्त होते हैं और उनके रहते हुए प्रत्यवायजनित फल भोगना पड़ता है (परंतु काम्य-कर्म न करनेसे प्रत्यवाय नहीं होता, यह धर्म और अर्थकी अपेक्षा कामकी विशेषता है)॥ ८॥

'जीवोंको धर्म और अधर्मके फल इस लोक और परलोकमें भी भोगने पड़ते हैं। परंतु जो कामना-विशेषके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक कर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसे यहाँ भी उसके सुख-मनोरथकी प्राप्ति हो जाती है। धर्म आदिके फलकी भाँति उसके लिये कालान्तर या लोकान्तरकी अपेक्षा नहीं होती है (इस तरह काम धर्म और अर्थसे विलक्षण सिद्ध होता है)॥ ९॥

'यहाँ राजाके लिये कामरूपी पुरुषार्थका सेवन उचित है ही*। ऐसा ही राक्षसराजने अपने हृदयमें निश्चित किया है और यही हम मन्त्रियोंकी भी सम्मति है। शत्रुके प्रति साहसपूर्ण कार्य करना कौन-सी अनीति है (अत: इन्होंने जो कुछ किया है, उचित ही किया है)॥ १०॥

'तुमने युद्धके लिये अकेले अपने ही प्रस्थान करनेके विषयमें जो हेतु दिया है (अपने महान् बलके

* यहाँ महोदरने रावणकी चापलूसी करनेके लिये 'कामवाद' की स्थापना या प्रशंसा की है। यह आदर्श मत नहीं है। वास्तवमें धर्म, अर्थ और काममें धर्म ही प्रधान है; अत: उसीके सेवनसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।

द्वारा शत्रुको परास्त कर देनेकी जो घोषणा की है) उसमें भी जो असंगत एवं अनुचित बात कही गयी है, उसे मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ॥ ११॥

'जिन्होंने पहले जनस्थानमें बहुत-से अत्यन्त बलशाली राक्षसोंको मार डाला था, उन्हीं रघुवंशी वीर श्रीरामको तुम अकेले ही कैसे परास्त करोगे?॥ १२॥

'जनस्थानमें श्रीरामने पहले जिन महान् बलशाली निशाचरोंको मार भगाया था, वे आज भी इस लङ्कापुरीमें विद्यमान हैं और उनका वह भय अबतक दूर नहीं हुआ है। क्या तुम उन राक्षसोंको नहीं देखते हो?॥ १३॥

'दशरथकुमार श्रीराम अत्यन्त कुपित हुए सिंहके समान पराक्रमी एवं भयंकर हैं, क्या तुम उनसे भिड़नेका साहस करते हो? क्या जान-बूझकर सोये हुए सर्पको जगाना चाहते हो? तुम्हारी मूर्खतापर आश्चर्य होता है!॥ १४॥

'श्रीराम सदा ही अपने तेजसे देदीप्यमान हैं। वे क्रोध करनेपर अत्यन्त दुर्जय और मृत्युके समान असह्य हो उठते हैं। भला कौन योद्धा उनका सामना कर सकता है ?॥ १५॥

'हमारी यह सारी सेना भी यदि उस अजेय शत्रुका सामना करनेके लिये खड़ी हो तो उसका जीवन भी संशयमें पड़ सकता है। अतः तात! युद्धके लिये तुम्हारा अकेले जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता है॥ १६॥

'जो सहायकोंसे सम्पन्न और प्राणोंकी बाजी लगाकर शत्रुओंका संहार करनेके लिये निश्चित विचार रखनेवाला हो, ऐसे शत्रुको अत्यन्त साधारण मानकर कौन असहाय योद्धा वशमें लानेकी इच्छा कर सकता है?॥

'राक्षसशिरोमणे! मनुष्योंमें जिनकी समता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है तथा जो इन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी हैं, उन श्रीरामके साथ युद्ध करनेका हौसला तुम्हें कैसे हो रहा है?'॥ १८॥

रोषके आवेशसे युक्त कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महोदरने समस्त राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए लोकोंको रुलानेवाले रावणसे कहा—॥ १९॥

'महाराज! आप विदेहकुमारीको अपने सामने पाकर भी किसलिये विलम्ब कर रहे हैं? आप जब चाहें तभी सीता आपके वशमें हो जायगी॥ २०॥

'राक्षसराज! मुझे एक ऐसा उपाय सूझा है, जो सीताको आपकी सेवामें उपस्थित करके ही रहेगा। आप उसे सुनिये। सुनकर अपनी बुद्धिसे उसपर विचार कीजिये और ठीक जँचे तो उसे काममें लाइये॥ २१॥

'आप नगरमें यह घोषित करा दें कि महोदर, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन—ये पाँच राक्षस रामका वध करनेके लिये जा रहे हैं॥ २२॥

'हमलोग रणभूमिमें जाकर प्रयत्नपूर्वक श्रीरामके साथ युद्ध करेंगे। यदि आपके शत्रुओंपर हम विजय पा गये तो हमारे लिये सीताको वशमें करनेके निमित्त दूसरे किसी उपायकी आवश्यकता ही नहीं रह जायगी॥ २३॥

'यदि हमारा शत्रु अजेय होनेके कारण जीवित ही रह गया और हम भी युद्ध करते-करते मारे नहीं गये तो हम उस उपायको काममें लायेंगे, जिसे हमने मनसे सोचकर निश्चित किया है॥ २४॥

रामनामसे अङ्कित बाणोंद्वारा अपने शरीरको घायल कराकर खूनसे लथपथ हो हम यह कहते हुए युद्धभूमिसे यहाँ लौटेंगे कि हमने राम और लक्ष्मणको खा लिया है। उस समय हम आपके पैर पकड़कर यह भी कहेंगे कि हमने शत्रुको मारा है। इसलिये आप हमारी इच्छा पूरी कीजिये॥ २५-२६॥

'पृथ्वीनाथ! तब आप हाथीकी पीठपर किसीको बिठाकर सारे नगरमें यह घोषणा करा दें कि भाई और सेनाके सहित राम मारा गया॥ २७॥

'शत्रुदमन! इतना ही नहीं, आप प्रसन्नता दिखाते हुए अपने वीर सेवकोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ, तरह-तरहकी भोग-सामग्रियाँ, दास-दासी आदि, धन-रत्न, आभूषण, वस्त्र और अनुलेपन दिलावें। अन्य योद्धाओंको भी बहुत-से उपहार दें तथा स्वयं भी खुशी मनाते हुए मद्यपान करें॥ २८-२९॥

'तदनन्तर जब लोगोंमें सब ओर यह चर्चा फैल जाय कि राम अपने सुहृदोंसहित राक्षसोंके आहार बन गये और सीताके कानोंमें भी यह बात पड़ जाय, तब आप सीताको समझानेके लिये एकान्तमें उसके वासस्थानपर जायँ और तरह-तरहसे धीरज बँधाकर उसे धन-धान्य, भाँति-भाँतिके भोग और रत्न आदिका लोभ दिखावें॥

'राजन्! इस प्रवञ्चनासे अपनेको अनाथ माननेवाली सीताका शोक और भी बढ़ जायगा और वह इच्छा न होनेपर भी आपके अधीन हो जायगी॥ ३२॥

'अपने रमणीय पतिको विनष्ट हुआ जान वह निराशा तथा नारी-सुलभ चपलताके कारण आपके वशमें आ जायगी॥ ३३॥

'वह पहले सुखमें पली हुई है और सुख भोगनेके

योग्य है; परंतु इन दिनों दु:खसे दुर्बल हो गयी है। ऐसी दशामें अब आपके ही अधीन अपना सुख समझकर सर्वथा आपकी सेवामें आ जायगी॥ ३४॥

'मेरे देखनेमें यही सबसे सुन्दर नीति है। युद्धमें तो श्रीरामका दर्शन करते ही आपको अनर्थ (मृत्यु)-की प्राप्ति हो सकती है; अत: आप युद्धस्थलमें जानेके लिये उत्सुक न हों, यहीं आपके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। बिना युद्धके ही आपको सुखका महान् लाभ होगा॥ ३५॥

'महाराज! जो राजा बिना युद्धके ही शत्रुपर विजय पाता है, उसकी सेना नष्ट नहीं होती। उसका जीवन भी संशयमें नहीं पड़ता, वह पवित्र एवं महान् यश पाता तथा दीर्घकालतक लक्ष्मी एवं उत्तम कीर्तिका उपभोग करता है'॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णकी रणयात्रा

महोदरके ऐसा कहनेपर कुम्भकर्णने उसे डाँटा और अपने भाई राक्षसशिरोमणि रावणसे कहा—॥ १॥

'राजन्! आज मैं उस दुरात्मा रामका वध करके तुम्हारे घोर भयको दूर कर दूँगा। तुम वैरभावसे मुक्त होकर सुखी हो जाओ॥ २॥

'शूरवीर जलहीन बादलके समान व्यर्थ गर्जना नहीं किया करते। तुम देखना, अब युद्धस्थलमें मैं अपने पराक्रमके द्वारा ही गर्जना करूँगा॥ ३॥

'शूरवीरोंको अपने ही मुँहसे अपनी तारीफ करना सहन नहीं होता। वे वाणीके द्वारा प्रदर्शन न करके चुपचाप दुष्कर पराक्रम प्रकट करते हैं॥ ४॥

'महोदर! जो भीरु, मूर्ख और झूठे ही अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे, उन्हीं राजाओंको तुम्हारे द्वारा कही जानेवाली ये चिकनी-चुपड़ी बातें सदा अच्छी लगेंगी॥ ५॥

'युद्धमें कायरता दिखानेवाले तुम-जैसे चापलूसोंने ही सदा राजाकी हाँ-में-हाँ मिलाकर सारा काम चौपट किया है॥ ६॥

'अब तो लङ्कामें केवल राजा शेष रह गये हैं। खजाना खाली हो गया और सेना मार डाली गयी। इस राजाको पाकर तुमलोगोंने मित्रके रूपमें शत्रुका काम किया है॥ ७॥

'यह देखो, अब मैं शत्रुको जीतनेके लिये उद्यत होकर समरभूमिमें जा रहा हूँ। तुमलोगोंने अपनी खोटी नीतिके कारण जो विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, उसका आज महासमरमें समीकरण करना है—इस विषम संकटको सर्वदाके लिये टाल देना है'॥ ८॥

बुद्धिमान् कुम्भकर्णने जब ऐसी वीरोचित बात कही, तब राक्षसराज रावणने हँसते हुए उत्तर दिया—॥

'युद्धविशारद तात! यह महोदर श्रीरामसे बहुत डर गया है, इसमें संशय नहीं है। इसीलिये यह युद्धको पसंद नहीं करता है॥ १०॥

'कुम्भकर्ण! मेरे आत्मीयजनोंमें सौहार्द और बलकी दृष्टिसे कोई भी तुम्हारी समानता करनेवाला नहीं है। तुम शत्रुओंका वध करने और विजय पानेके लिये युद्धभूमिमें जाओ॥ ११॥

'शत्रुदमन वीर! तुम सो रहे थे। तुम्हारे द्वारा शत्रुओंका नाश करानेके लिये ही मैंने तुम्हें जगाया है। राक्षसोंकी युद्धयात्राके लिये यह सबसे उत्तम समय है॥ १२॥

'तुम पाशधारी यमराजकी भाँति शूल लेकर जाओ और सूर्यके समान तेजस्वी उन दोनों राजकुमारों तथा वानरोंको मारकर खा जाओ॥ १३॥

'वानर तुम्हारा रूप देखते ही भाग जायँगे तथा राम और लक्ष्मणके हृदय भी विदीर्ण हो जायँगे'॥ १४॥

महाबली कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने अपना पुन: नया जन्म हुआ-सा माना॥

राजा रावण कुम्भकर्णके बलको अच्छी तरह जानता था, उसके पराक्रमसे भी पूर्ण परिचित था; इसलिये वह निर्मल चन्द्रमाके समान परम आह्लादसे भर गया॥ १६॥

रावणके ऐसा कहनेपर महाबली कुम्भकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। वह राजा रावणकी बात सुनकर उस समय युद्धके लिये उद्यत हो गया और लङ्कापुरीसे बाहर निकला॥ १७॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले उस वीरने बड़े वेगसे तीखा शूल हाथमें लिया, जो सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ, चमकीला और तपाये हुए सुवर्णसे

विभूषित था॥ १८॥

उसकी कान्ति इन्द्रके अशनिके समान थी। वह वज्रके समान भारी था तथा देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों और नागोंका संहार करनेवाला था॥ १९॥

उसमें लाल फूलोंकी बहुत बड़ी माला लटक रही थी और उससे आगकी चिनगारियाँ झड़ रही थीं। शत्रुओंके रक्तसे रँगे हुए उस विशाल शूलको हाथमें लेकर महातेजस्वी कुम्भकर्ण रावणसे बोला—'मैं अकेला ही युद्धके लिये जाऊँगा। अपनी यह सारी सेना यहीं रहे॥ २०-२१॥

'आज मैं भूखा हूँ और मेरा क्रोध भी बढ़ा हुआ है। इसलिये समस्त वानरोंको भक्षण कर जाऊँगा।' कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर रावण बोला—॥ २२॥

'कुम्भकर्ण! तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करनेवाले सैनिकोंसे घिरे रहकर युद्धके लिये यात्रा करो, क्योंकि महामनस्वी वानर बड़े वीर और अत्यन्त उद्योगी हैं। वे तुम्हें अकेला या असावधान देख दाँतोंसे काट-काटकर नष्ट कर डालेंगे; इसलिये सेनासे घिरकर सब ओरसे सुरक्षित हो यहाँसे जाओ। उस दशामें तुम्हें परास्त करना शत्रुओंके लिये बहुत कठिन होगा। तुम राक्षसोंका अहित करनेवाले समस्त शत्रुदलका संहार करो'॥ २३-२४॥

यों कहकर महातेजस्वी रावण अपने आसनसे उठा और एक सोनेकी माला, जिसके बीच-बीचमें मणियाँ पिरोयी हुई थीं, लेकर उसने कुम्भकर्णके गलेमें पहना दी॥ २५॥

बाजूबंद, अँगूठियाँ, अच्छे-अच्छे आभूषण और चन्द्रमाके समान चमकीला हार—इन सबको उसने महाकाय कुम्भकर्णके अङ्गोंमें पहनाया॥ २६॥

उतना ही नहीं, रावणने उसके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य सुगन्धित फूलोंकी मालाएँ भी बँधवा दीं और दोनों कानोंमें कुण्डल पहना दिये॥ २७॥

सोनेके अङ्गद, केयूर और पदक आदि आभूषणोंसे भूषित तथा घड़ेके समान विशाल कानोंवाला कुम्भकर्ण घीकी उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलित हुई अग्निके समान प्रकाशित हो उठा॥ २८॥

उसके कटिप्रदेशमें काले रंगकी एक विशाल करधनी थी, जिससे वह अमृतकी उत्पत्तिके लिये किये गये समुद्रमन्थनके समय नागराज वासुकिसे लिपटे हुए मन्दराचलके समान शोभा पाता था॥ २९॥

तदनन्तर कुम्भकर्णकी छातीमें एक सोनेका कवच बाँधा गया, जो भारी-से-भारी आघात सहन करनेमें समर्थ, अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य तथा अपनी प्रभासे विद्युत्के समान देदीप्यमान था। उसे धारण करके कुम्भकर्ण संध्याकालके लाल बादलोंसे संयुक्त गिरिराज अस्ताचलके समान सुशोभित हो रहा था॥ ३०॥

सारे अङ्गोंमें सभी आवश्यक आभूषण धारण करके हाथोंमें शूल लिये वह राक्षस कुम्भकर्ण जब आगे बढ़ा, उस समय त्रिलोकीको नापनेके लिये तीन डग बढ़ानेको उत्साहित हुए भगवान् नारायण (वामन)-के समान जान पड़ा॥ ३१॥

भाईको हृदयसे लगाकर उसकी परिक्रमा करके उस महाबली वीरने उसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह युद्धके लिये चला॥ ३२॥

उस समय रावणने उत्तम आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आयुधोंसे सुसज्जित सेनाओंके साथ उसे युद्धके लिये विदा किया। यात्राके समय उसने शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे भी बजवाये॥ ३३॥

हाथी, घोड़े और मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो अनेकानेक महामनस्वी रथी वीर रथियोंमें श्रेष्ठ कुम्भकर्णके साथ गये॥ ३४॥

कितने ही राक्षस साँप, ऊँट,गधे, सिंह, हाथी, मृग और पक्षियोंपर सवार हो-होकर उस भयंकर महाबली कुम्भकर्णके पीछे-पीछे गये॥ ३५॥

उस समय उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रही थी। सिरपर श्वेत छत्र तना हुआ था और उसने हाथमें तीखा त्रिशूल ले रखा था। इस प्रकार देवताओं और दानवोंका शत्रु तथा रक्तकी गन्धसे मतवाला कुम्भकर्ण, जो स्वाभाविक मदसे भी उन्मत्त हो रहा था, युद्धके लिये निकला॥ ३६॥

उसके साथ बहुत-से पैदल राक्षस भी गये, जो बड़े बलवान्, जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले, भीषण नेत्रधारी और भयानक रूपवाले थे। उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे॥ ३७॥

उनके नेत्र रोषसे लाल हो रहे थे। वे सभी कई व्याम* ऊँचे और काले कोयलेके ढेरकी भाँति काले

* लंबाईका एक नाप। दोनों भुजाओंको दोनों ओर फैलानेपर एक हाथकी उँगलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी उँगलियोंके सिरेतक जितनी दूरी होती है, उसे 'व्याम' कहते हैं।

थे। उन्होंने अपने हाथोंमें शूल, तलवार, तीखी धारवाले फरसे, भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, बड़े-बड़े ताड़के वृक्षोंके तने और जिन्हें कोई काट न सके, ऐसी गुलेलें ले रखी थीं॥ ३८-३९॥

तदनन्तर महातेजस्वी महाबली कुम्भकर्णने बड़ा उग्र रूप धारण किया, जिसे देखनेपर भय मालूम होता था। ऐसा रूप धारण करके वह युद्धके लिये चल पड़ा॥ ४०॥

उस समय वह छः सौ धनुषके बराबर विस्तृत और सौ धनुषके बराबर ऊँचा हो गया। उसकी आँखें दो गाड़ीके पहियोंके समान जान पड़ती थीं। वह विशाल पर्वतके समान भयंकर दिखायी देता था॥ ४१॥

पहले तो उसने राक्षस-सेनाकी व्यूह-रचना की। फिर दावानलसे दग्ध हुए पर्वतके समान महाकाय कुम्भकर्ण अपना विशाल मुख फैलाकर अट्टहास करता हुआ इस प्रकार बोला—॥ ४२॥

'राक्षसो! जैसे आग पतंगोंको जलाती है, उसी प्रकार मैं भी कुपित होकर आज प्रधान-प्रधान वानरोंके एक-एक झुंडको भस्म कर डालूँगा॥ ४३॥

'यों तो वनमें विचरनेवाले बेचारे वानर स्वेच्छासे मेरा कोई अपराध नहीं कर रहे हैं; अतः वे वधके योग्य नहीं हैं। वानरोंकी जाति तो हम-जैसे लोगोंके नगरोद्यानका आभूषण है॥ ४४॥

'वास्तवमें लङ्कापुरीपर घेरा डालनेके प्रधान कारण हैं—लक्ष्मणसहित राम। अतः सबसे पहले मैं उन्हींको युद्धमें मारूँगा। उनके मारे जानेपर सारी वानर-सेना स्वतः मरी हुई-सी हो जायगी'॥ ४५॥

कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर राक्षसोंने समुद्रको कम्पित-सा करते हुए बड़ी भयानक गर्जना की॥ ४६॥

बुद्धिमान् राक्षस कुम्भकर्णके रणभूमिकी ओर पैर बढ़ाते ही चारों ओर घोर अपशकुन होने लगे॥ ४७॥

गदहोंके समान भूरे रंगवाले बादल घिर आये। साथ ही उल्कापात हुआ और बिजलियाँ गिरीं। समुद्र और वनोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी॥ ४८॥

भयानक गीदड़ियाँ मुँहसे आग उगलती हुई अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं। पक्षी मण्डल बाँधकर उसकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करने लगे॥ ४९॥

रास्तेमें चलते समय कुम्भकर्णके शूलपर गीध आ बैठा। उसकी बायीं आँख फड़कने लगी और बायीं भुजा कम्पित होने लगी॥ ५०॥

फिर उसी समय जलती हुई उल्का भयंकर आवाजके साथ गिरी। सूर्यकी प्रभा क्षीण हो गयी और हवा इतने वेगसे चल रही थी कि सुखद नहीं जान पड़ती थी॥

इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देनेवाले बहुत-से बड़े-बड़े उत्पात प्रकट हुए; किंतु उनकी कुछ भी परवा न करके कालकी शक्तिसे प्रेरित हुआ कुम्भकर्ण युद्धके लिये निकल पड़ा॥ ५२॥

वह पर्वतके समान ऊँचा था। उसने लङ्काकी चहारदीवारीको दोनों पैरोंसे लाँघकर देखा कि वानरोंकी अद्भुत सेना मेघोंकी घनीभूत घटाके समान छा रही है॥ ५३॥

उस पर्वताकार श्रेष्ठ राक्षसको देखते ही समस्त वानर हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान तत्काल सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चले॥ ५४॥

छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके समूहकी भाँति उस अतिशय प्रचण्ड वानर-वाहिनीको सम्पूर्ण दिशाओंमें भागती देख मेघोंके समान काला कुम्भकर्ण बड़े हर्षके साथ सजल जलधरके सदृश गम्भीर स्वरमें बारंबार गर्जना करने लगा॥ ५५॥

आकाशमें जैसी मेघोंकी गर्जना होती है, उसीके समान उस राक्षसका घोर सिंहनाद सुनकर बहुत-से वानर जड़से कटे हुए सालवृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५६॥

महाकाय कुम्भकर्णने शूलकी ही भाँति अपने एक हाथमें विशाल परिघ भी ले रखा था। वह वानर-समूहोंको अत्यन्त घोर भय प्रदान करता हुआ प्रलय-कालमें संहारके साधनभूत कालदण्डोंसे युक्त भगवान् कालरुद्रके समान शत्रुओंका विनाश करनेके लिये पुरीसे बाहर निकला॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अङ्गदद्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका संहार, पुनः वानर-सेनाका पलायन और अङ्गदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

महाबली कुम्भकर्ण पर्वत-शिखरके समान ऊँचा और विशालकाय था। वह परकोटा लाँघकर बड़ी तेजीके साथ नगरसे बाहर निकला॥ १॥

बाहर आकर पर्वतोंको कँपाता और समुद्रको गुँजाता हुआ-सा वह उच्चस्वरसे गम्भीर नाद करने लगा। उसकी वह गर्जना बिजलीकी कड़कको भी मात कर रही थी॥

इन्द्र, यम अथवा वरुणके द्वारा भी उसका वध होना असम्भव था। उस भयानक नेत्रवाले निशाचरको आते देख सभी वानर भाग खड़े हुए॥ ३॥

उन सबको भागते देख राजकुमार अङ्गदने नल, नील, गवाक्ष और महाबली कुमुदको सम्बोधित करके कहा— ॥ ४॥

'वानर वीरो! अपने उत्तम कुलों और उन अलौकिक पराक्रमोंको भुलाकर साधारण बंदरोंकी भाँति भयभीत हो तुम कहाँ भागे जा रहे हो?॥ ५॥

'सौम्य स्वभाववाले बहादुरो! अच्छा होगा कि तुम लौट आओ। क्यों जान बचानेके फेरमें पड़े हो? यह राक्षस हमारे साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखता। यह तो इसकी बड़ी भारी विभीषिका है—इसने मायासे विशाल रूप धारण करके तुम्हें डरानेके लिये व्यर्थ घटाटोप फैला रखा है॥ ६॥

'अपने सामने उठी हुई राक्षसोंकी इस बड़ी भारी विभीषिकाको हम अपने पराक्रमसे नष्ट कर देंगे। अतः वानरवीरो! लौट आओ'॥ ७॥

तब वानरोंने बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण किया और जहाँ-तहाँसे एकत्र हो हाथोंमें वृक्ष लेकर वे रणभूमिकी ओर चले॥ ८॥

लौटनेपर वे महाबली वानर मतवाले हाथियोंकी भाँति अत्यन्त क्रोध और रोषसे भर गये और कुम्भकर्णके ऊपर ऊँचे-ऊँचे पर्वतीय-शिखरों, शिलाओं तथा खिले हुए वृक्षोंसे प्रहार करने लगे। उनकी मार खाकर भी कुम्भकर्ण विचलित नहीं होता था॥ ९-१०॥

उसके अङ्गोंपर गिरी हुई बहुतेरी शिलाएँ चूर-चूर हो जाती थीं और वे खिले हुए वृक्ष भी उसके शरीरसे टकराते ही टूक-टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे॥ ११॥

उधर क्रोधसे भरा हुआ कुम्भकर्ण भी अत्यन्त सावधान हो महाबली वानरोंकी सेनाओंको उसी प्रकार रौंदने लगा, जैसे बढ़ा हुआ दावानल बड़े-बड़े जंगलोंको जलाकर भस्म कर देता है॥ १२॥

बहुत-से श्रेष्ठ वानर खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो गये। जिन्हें उठाकर उसने ऊपर फेंक दिया, वे लाल फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १३॥

वानर ऊँची-नीची भूमिको लाँघते हुए जोर-जोरसे भागने लगे। वे आगे-पीछे और अगल-बगलमें कहीं भी दृष्टि नहीं डालते थे। कोई समुद्रमें गिर पड़े और कोई आकाशमें ही उड़ते रह गये॥ १४॥

उस राक्षसने खेल-खेलमें ही जिन्हें मारा, वे वीर वानर जिस मार्गसे समुद्र पार करके लङ्कामें आये थे, उसी मार्गसे भागने लगे॥ १५॥

भयके मारे वानरोंके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वे नीची जगह देख-देखकर भागने और छिपने लगे। कितने ही रीछ वृक्षोंपर जा चढ़े और कितनोंने पर्वतोंकी शरण ली॥ १६॥

कितने ही वानर और भालू समुद्रमें डूब गये। कितनोंने पर्वतोंकी गुफाओंका आश्रय लिया। कोई गिरे, कोई एक स्थानपर खड़े न रह सके, इसलिये भागे। कुछ धराशायी हो गये और कोई-कोई मुर्दोंके समान साँस रोककर पड़ गये॥ १७॥

उन वानरोंको भागते देख अङ्गदने इस प्रकार कहा—'वानरवीरो! ठहरो, लौट आओ। हम सब मिलकर युद्ध करेंगे॥ १८॥

'यदि तुम भाग गये तो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके भी कहीं तुम्हें ठहरनेके लिये स्थान मिल सके, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता (सुग्रीवकी आज्ञाके बिना कहीं भी जानेपर तुम जीवित नहीं बच सकोगे)। इसलिये सब लोग लौट आओ। क्यों अपने ही प्राण बचानेकी फिक्रमें पड़े हो?॥ १९॥

'तुम्हारे वेग और पराक्रमको कोई रोकनेवाला नहीं है। यदि तुम हथियार डालकर भाग जाओगे तो तुम्हारी स्त्रियाँ ही तुमलोगोंका उपहास करेंगी और वह उपहास जीवित रहनेपर भी तुम्हारे लिये मृत्युके समान दु:खदायी होगा॥ २०॥

'तुम सब लोग महान् और बहुत दूरतक फैले हुए श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए हो। फिर साधारण वानरोंकी भाँति भयभीत होकर कहाँ भागे जा रहे हो ? यदि तुम पराक्रम छोड़कर भयके कारण भागते हो तो निश्चय ही अनार्य समझे जाओगे॥ २१॥

'तुम जन-समुदायमें बैठकर जो डींग हाँका करते थे कि हम बड़े प्रचण्ड वीर हैं और स्वामीके हितैषी हैं, तुम्हारी वे सब बातें आज कहाँ चली गयीं ?॥ २२॥

'जो सत्पुरुषोंद्वारा धिक्कृत होकर भी जीवन धारण करता है, उसके उस जीवनको धिक्कार है, इस तरहके निन्दात्मक वचन कायरोंको सदा सुनने पड़ते हैं। इसलिये तुमलोग भय छोड़ो और सत्पुरुषोंद्वारा सेवित मार्गका आश्रय लो॥ २३॥

'यदि हमलोग अल्पजीवी हों और शत्रुके द्वारा मारे जाकर रणभूमिमें सो जायँ तो हमें उस ब्रह्मलोककी प्राप्ति होगी, जो कुयोगियोंके लिये परम दुर्लभ है॥ २४॥

'वानरो! यदि युद्धमें हमने शत्रुको मार गिराया तो हमें उत्तम कीर्ति मिलेगी और यदि स्वयं ही मारे गये तो हम वीरलोकके वैभवका उपभोग करेंगे॥ २५॥

'श्रीरघुनाथजीके सामने जानेपर कुम्भकर्ण जीवित नहीं लौट सकेगा; ठीक उसी तरह, जैसे प्रज्वलित अग्निके पास पहुँचकर पतङ्ग भस्म हुए बिना नहीं रह सकता॥ २६॥

'यदि हमलोग प्रख्यात वीर होकर भी भागकर अपने प्राण बचायेंगे और अधिक संख्यामें होकर भी एक योद्धाका सामना नहीं कर सकेंगे तो हमारा यश मिट्टीमें मिल जायगा'॥ २७॥

सोनेका बाजूबंद धारण करनेवाले शूरवीर अङ्गद जब ऐसा कह रहे थे, उस समय उन भागते हुए वानरोंने उन्हें ऐसा उत्तर दिया, जिसकी शौर्य-सम्पन्न योद्धा सदा निन्दा करते हैं॥ २८॥

वे बोले—'राक्षस कुम्भकर्णने हमारा घोर संहार मचा रखा है; अत: यह ठहरनेका समय नहीं है। हम जा रहे हैं; क्योंकि हमें अपनी जान प्यारी है'॥ २९॥

इतनी बात कहकर भयानक नेत्रवाले भीषण कुम्भकर्णको आते देख उन सब वानर-यूथपतियोंने विभिन्न दिशाओंकी शरण ली॥ ३०॥

तब उन भागते हुए सभी वीर वानरोंको अङ्गदने सान्त्वना और आदर-सम्मानके द्वारा लौटाया॥ ३१॥

बुद्धिमान् वालिपुत्रने उन सबको प्रसन्न कर लिया। वे सब वानरयूथपति सुग्रीवकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये॥ ३२॥

तदनन्तर ऋषभ, शरभ, मैन्द, धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद, पनस और वायुपुत्र हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानर-वीर तुरंत ही कुम्भकर्णका सामना करनेके लिये रणक्षेत्रकी ओर बढ़े॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णका भयंकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध

अङ्गदके पूर्वोक्त वचन सुनकर वे सब विशालकाय वानर मरने-मारनेका निश्चय करके युद्धकी इच्छासे लौटे थे॥ १॥

महाबली अङ्गदने उनके पूर्व-पराक्रमोंका वर्णन करके अपने वचनोंद्वारा उन्हें सुदृढ़ एवं बल-विक्रमसम्पन्न बनाकर खड़ा कर दिया था॥ २॥

अब वे वानर मरनेका निश्चय करके बड़े हर्षके साथ आगे बढ़े और जीवनका मोह छोड़कर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे॥ ३॥

उन विशालकाय वानर-वीरोंने वृक्ष तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर लेकर तुरंत ही कुम्भकर्णपर धावा किया॥

परंतु अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए विक्रमशाली महाकाय कुम्भकर्णने गदा उठाकर शत्रुओंको घायल करके उन्हें चारों ओर बिखेर दिया॥ ५॥

कुम्भकर्णकी मार खाकर आठ हजार सात सौ वानर तत्काल धराशायी हो गये॥ ६॥

वह सोलह, आठ, दस, बीस और तीस-तीस वानरोंको अपनी दोनों भुजाओंसे समेट लेता और

जैसे गरुड़ सर्पोंको खाता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनका भक्षण करता हुआ सब ओर दौड़ता-फिरता था॥ ७॥

उस समय वानर बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण करके इधर-उधरसे एकत्र हुए और वृक्ष तथा पर्वतशिखर हाथमें लेकर संग्रामभूमिमें डटे रहे॥ ८॥

तत्पश्चात् मेघके समान विशाल शरीरवाले वानरशिरोमणि द्विविदने एक पर्वत उखाड़कर पर्वतशिखरके समान ऊँचे कुम्भकर्णपर आक्रमण किया॥ ९॥

उस पर्वतको उखाड़कर द्विविदने कुम्भकर्णके ऊपर फेंका; किंतु वह उस विशालकाय राक्षसतक न पहुँचकर उसकी सेनामें जा गिरा॥ १०॥

उस पर्वत-शिखरने राक्षससेनाके कितने ही घोड़ों, हाथियों, रथों, गजराजों तथा दूसरे-दूसरे राक्षसोंको भी कुचल डाला॥ ११॥

उस समय वह महान् युद्धस्थल, जिसमें शैल-शिखरके वेगसे कितने ही घोड़े और सारथि कुचल गये थे, राक्षसोंके रुधिरसे गीला हो गया॥ १२॥

तब भयानक सिंहनाद करनेवाले राक्षस-सेनाके रथियोंने प्रलयकालीन यमराजके समान भयंकर बाणोंसे गर्जते हुए वानरयूथपतियोंके मस्तकोंको सहसा काटना आरम्भ किया॥ १३॥

महामनस्वी वानर भी बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर शत्रुसेनाके रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट और राक्षसोंका संहार करने लगे॥ १४॥

हनुमान्‌जी आकाशमें पहुँचकर कुम्भकर्णके मस्तकपर पर्वत-शिखरों, शिलाओं और नाना प्रकारके वृक्षोंकी वर्षा करने लगे॥ १५॥

परंतु महाबली कुम्भकर्णने अपने शूलसे उन पर्वत-शिखरोंको फोड़ डाला और बरसाये जानेवाले वृक्षोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १६॥

तत्पश्चात् उसने अपने तीक्ष्ण शूलको हाथमें लेकर वानरोंकी उस भयंकर सेनापर आक्रमण किया। यह देख हनुमान्‌जी एक पर्वत-शिखर हाथमें लेकर उस आक्रमणकारी राक्षसका सामना करनेके लिये खड़े हो गये॥ १७॥

उन्होंने कुपित हो श्रेष्ठ पर्वतके समान भयानक शरीरवाले कुम्भकर्णपर बड़े वेगसे प्रहार किया। उनकी उस मारसे कुम्भकर्ण व्याकुल हो उठा। उसका सारा शरीर चर्बीसे गीला हो गया और वह रक्तसे नहा गया॥

फिर तो उसने भी बिजलीके समान चमकते हुए शूलको घुमाकर जिसके शिखरपर आग जल रही हो, उस पर्वतके समान हनुमान्‌जीकी छातीमें उसी तरह मारा, जैसे स्वामी कार्तिकेयने अपनी भयानक शक्तिसे क्रौञ्चपर्वतपर आघात किया था॥ १९॥

उस महासमरमें शूलकी चोटसे हनुमान्‌जीकी दोनों भुजाओंके बीचका भाग (वक्षःस्थल) विदीर्ण हो गया। वे व्याकुल हो गये और मुँहसे रक्त वमन करने लगे। उस समय पीड़ाके मारे उन्होंने बड़ा भयंकर आर्तनाद किया, जो प्रलयकालके मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था॥ २०॥

हनुमान्‌जीको आघातसे पीड़ित देख राक्षसोंके हर्षकी सीमा न रही। वे सहसा जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे। इधर कुम्भकर्णके भयसे पीड़ित एवं व्यथित हुए वानर युद्धभूमि छोड़कर भागने लगे॥ २१॥

यह देख बलवान् नीलने वानरसेनाको धैर्य बँधाने एवं सुस्थिर रखनेके लिये बुद्धिमान् कुम्भकर्णपर एक पर्वतका शिखर चलाया॥ २२॥

उस पर्वत शिखरको अपने ऊपर आता देख कुम्भकर्णने उसपर मुक्केसे आघात किया। उसका मुक्का लगते ही वह शिखर चूर-चूर होकर बिखर गया और आगकी चिनगारियाँ तथा लपटें निकालता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २३॥

इसके बाद ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन—इन पाँच प्रमुख वानरवीरोंने कुम्भकर्णपर धावा किया॥ २४॥

वे महाबली वीर चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें महाकाय कुम्भकर्णको पर्वतों, वृक्षों, थप्पड़ों, लातों और मुक्कोंसे मारने लगे॥ २५॥

यद्यपि ये लोग बड़े जोर-जोरसे प्रहार करते थे, तथापि उसे ऐसा जान पड़ता था मानो कोई धीरेसे छू रहा हो। अतः इनकी मारसे उसे तनिक भी पीड़ा नहीं हुई। उसने महान् वेगशाली ऋषभको अपनी दोनों भुजाओंमें भर लिया॥ २६॥

कुम्भकर्णकी दोनों भुजाओंसे दबकर पीड़ित हुए भयंकर वानरशिरोमणि ऋषभके मुँहसे खून निकलने लगा और वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २७॥

तदनन्तर उस समरभूमिमें इन्द्रद्रोही कुम्भकर्णने शरभको मुक्केसे मारकर नीलको घुटनेसे रगड़ दिया और गवाक्षको थप्पड़से मारा। फिर क्रोधसे भरकर उसने गन्धमादनको बड़े वेगसे लात मारी॥ २८॥

उसके प्रहारसे व्यथित हुए वानर मूर्च्छित हो गये और रक्तसे नहा उठे। फिर कटे हुए पलाश-वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २९॥

उन महामनस्वी प्रमुख वानरोंके धराशायी हो जानेपर हजारों वानर एक साथ कुम्भकर्णपर टूट पड़े॥

पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले वे समस्त महाबली वानर-यूथपति उस पर्वताकार राक्षसके ऊपर चढ़ गये और उछल-उछलकर उसे दाँतोंसे काटने लगे॥ ३१॥

वे वानरशिरोमणि नखों, दाँतों, मुक्कों और हाथोंसे महाबाहु कुम्भकर्णको मारने लगे॥ ३२॥

जैसे पर्वत अपने ऊपर उगे हुए वृक्षोंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार सहस्रों वानरोंसे व्याप्त हुआ वह पर्वताकार राक्षस वीर अद्भुत शोभा पाने लगा॥ ३३॥

जैसे गरुड़ सर्पोंको अपना आहार बनाते हैं, उसी तरह अत्यन्त कुपित हुआ वह महाबली राक्षस समस्त वानरोंको दोनों हाथोंसे पकड़-पकड़कर भक्षण करने लगा॥ ३४॥

कुम्भकर्ण अपने पातालके समान मुखमें वानरोंको झोंकता जाता था और वे उसके कानों तथा नाकोंकी राहसे बाहर निकलते जाते थे॥ ३५॥

अत्यन्त क्रोधसे भरकर वानरोंका भक्षण करते हुए पर्वतके समान विशालकाय उस राक्षसराजने समस्त वानरोंके अङ्ग-भङ्ग कर डाले॥ ३६॥

रणभूमिमें रक्त और मांसकी कीच मचाता हुआ वह राक्षस बढ़ी हुई प्रलयाग्निके समान वानरसेनामें विचरने लगा॥ ३७॥

शूल हाथमें लेकर संग्रामभूमिमें विचरता हुआ महाबली कुम्भकर्ण वज्रधारी इन्द्र और पाशधारी यमराजके समान जान पड़ता था॥ ३८॥

जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें दावानल सूखे जंगलोंको जला देता है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण वानरसेनाओंको दग्ध करने लगा॥ ३९॥

जिनके यूथ-के-यूथ नष्ट हो गये थे, वे वानर कुम्भकर्णकी मार खाकर भयसे उद्विग्न हो उठे और विकृत स्वरमें चीत्कार करने लगे॥ ४०॥

कुम्भकर्णके हाथसे मारे जाते हुए बहुत-से वानर, जिनका दिल टूट गया था, व्यथित हो श्रीरघुनाथजीकी शरणमें गये॥ ४१॥

वानरोंको भागते देख वालिकुमार अङ्गद उस महासमरमें कुम्भकर्णकी ओर बड़े वेगसे दौड़े॥ ४२॥

उन्होंने बारंबार गर्जना करके एक विशाल शैल-शिखर हाथमें ले लिया और कुम्भकर्णके पीछे चलनेवाले समस्त राक्षसोंको भयभीत करते हुए उस पर्वत-शिखरको उसके मस्तकपर दे मारा॥ ४३ $\frac{1}{2}$॥

मस्तकपर उस पर्वत-शिखरकी चोट खाकर इन्द्रद्रोही कुम्भकर्ण उस समय महान् क्रोधसे जल उठा और उस प्रहारको सहन न कर सकनेके कारण बड़े वेगसे वालिपुत्रकी ओर दौड़ा॥ ४४-४५॥

बड़े जोरसे गर्जना करनेवाले महाबली कुम्भकर्णने समस्त वानरोंको संत्रस्त करते हुए अङ्गदपर बड़े रोषसे शूलका प्रहार किया॥ ४६॥

किंतु युद्धमार्गके ज्ञाता बलवान् वानरशिरोमणि अङ्गदने फुर्तीसे हटकर अपनी ओर आते हुए उस शूलसे अपने-आपको बचा लिया॥ ४७॥

साथ ही बड़े वेगसे उछलकर उन्होंने उसकी छातीमें एक थप्पड़ मारा। क्रोधपूर्वक चलाये हुए उस थप्पड़की मार खाकर वह पर्वताकार राक्षस मूर्च्छित हो गया॥ ४८॥

थोड़ी देरमें जब उसे होश हुआ, तब उस अत्यन्त बलशाली राक्षसने भी बायें हाथसे मुक्का बाँधकर अङ्गदपर प्रहार किया, जिससे वे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४९॥

वानरप्रवर अङ्गदके अचेत एवं धराशायी हो जानेपर कुम्भकर्ण वही शूल लेकर सुग्रीवकी ओर दौड़ा॥ ५०॥

महाबली कुम्भकर्णको अपनी ओर आते देख वीर वानरराज सुग्रीव तत्काल ऊपरकी ओर उछले॥

महाकपि सुग्रीवने एक पर्वत-शिखरको उठा लिया और उसे घुमाकर महाबली कुम्भकर्णपर वेगपूर्वक धावा किया॥ ५२॥

वानर सुग्रीवको आक्रमण करते देख कुम्भकर्ण अपने सारे अङ्गोंको फैलाकर उन वानरराजके सामने खड़ा हो गया॥ ५३॥

कुम्भकर्णका सारा शरीर वानरोंके रक्तसे नहा उठा था। वह बड़े-बड़े वानरोंको खाता हुआ उनके सामने खड़ा था। उसे देखकर सुग्रीवने कहा—॥ ५४॥

'राक्षस! तुमने बहुत-से वीरोंको मार गिराया, अत्यन्त दुष्कर कर्म कर दिखाया और कितने ही सैनिकोंको अपना आहार बना लिया। इससे तुम्हें शौर्यका महान् यश प्राप्त हुआ है। अब इन वानरोंकी सेनाको छोड़ दो। इन साधारण बंदरोंसे लड़कर क्या

करोगे? यदि शक्ति हो तो मेरे चलाये हुए इस पर्वतकी एक ही चोट सह लो'॥ ५५-५६॥

वानरराजकी यह सत्त्व और धैर्यसे युक्त बात सुनकर राक्षसप्रवर कुम्भकर्ण बोला—॥ ५७॥

'वानर! तुम प्रजापतिके पौत्र, ऋक्षरजाके पुत्र तथा धैर्य एवं पौरुषसे सम्पन्न हो। इसीलिये इस तरह गरज रहे हो'॥ ५८॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर सुग्रीवने उस शैल-शिखरको घुमाकर सहसा उसके ऊपर छोड़ दिया। वह वज्र और अशनिके समान था। उसके द्वारा उन्होंने कुम्भकर्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ ५९॥

किंतु उसके विशाल वक्ष:स्थलसे टकराकर वह शैल-शिखर सहसा चूर-चूर हो गया। यह देख वानर तत्काल विषादमें डूब गये और राक्षस बड़े हर्षके साथ गर्जना करने लगे॥ ६०॥

उस पर्वत-शिखरकी चोट खाकर कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ। वह रोषसे मुँह फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। फिर उसने बिजलीके समान चमकनेवाले उस शूलको घुमाकर सुग्रीवके वधके लिये चलाया॥ ६१॥

कुम्भकर्णके हाथसे छूटे हुए उस तीखे शूलको, जिसके डंडेमें सोनेकी लड़ियाँ लगी हुई थीं, वायुपुत्र हनुमान्‌ने शीघ्र उछलकर दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे वेगपूर्वक तोड़ डाला॥ ६२॥

वह महान् शूल हजार भार काले लोहेका बना हुआ था, जिसे हनुमान्‌जीने बड़े हर्षके साथ अपने घुटनोंमें लगाकर तत्काल तोड़ दिया॥ ६३॥

हनुमान्‌जीके द्वारा शूलको तोड़ा गया देख वानर-सेना बड़े हर्षसे भरकर बारंबार सिंहनाद करने लगी और चारों ओर दौड़ लगाने लगी॥ ६४॥

परंतु वह राक्षस भयसे थर्रा उठा। उसके मुखपर उदासी छा गयी और वनचारी वानर अत्यन्त प्रसन्न हो सिंहनाद करने लगे। उन सबने शूलको खण्डित हुआ देख पवनकुमार हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥

इस प्रकार उस शूलको भग्न हुआ देख महाकाय राक्षसराज कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ और उसने लङ्काके निकटवर्ती मलय पर्वतका शिखर उठाकर सुग्रीवके निकट जा उनपर दे मारा॥ ६६॥

उस शैल-शिखरसे आहत हो वानरराज सुग्रीव अपनी सुध-बुध खो बैठे और युद्धभूमिमें गिर पड़े। उन्हें अचेत होकर पृथ्वीपर पड़ा देख निशाचरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे रणक्षेत्रमें सिंहनाद करने लगे॥ ६७॥

तदनन्तर कुम्भकर्णने युद्धस्थलमें अद्भुत एवं भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले वानरराज सुग्रीवके पास जाकर उन्हें उठा लिया और जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी तरह वह उन्हें हर ले गया॥ ६८॥

कुम्भकर्णका स्वरूप मेरुपर्वतके समान जान पड़ता था। वह महान् मेघके समान रूपवाले सुग्रीवको उठाकर जब युद्धस्थलसे चला, उस समय भयानक ऊँचे शिखरोंवाले मेरुगिरिके समान ही शोभा पाने लगा॥

उन्हें लेकर वह वीर राक्षसराज लङ्काकी ओर चल दिया। उस समय युद्धस्थलमें सभी राक्षस उसकी स्तुति कर रहे थे। वानरराजके पकड़े जानेसे आश्चर्यचकित हुए देवताओंका दु:खजनित शब्द उसे स्पष्ट सुनायी दे रहा था॥ ७०॥

इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रद्रोही कुम्भकर्णने उस समय देवेन्द्रतुल्य तेजस्वी वानरराज सुग्रीवको पकड़कर मन-ही-मन यह मान लिया कि इनके मारे जानेसे श्रीरामसहित यह सारी वानर-सेना स्वत: नष्ट हो जायगी॥

'वानरोंकी सेना इधर-उधर भाग रही है और वानरराज सुग्रीवको कुम्भकर्णने पकड़ लिया है', यह देखकर बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्‌ने सोचा—'सुग्रीवके इस प्रकार पकड़ लिये जानेपर मुझे क्या करना चाहिये?॥

'मेरे लिये जो भी करना उचित होगा, उसे मैं नि:सन्देह करूँगा। पर्वताकार रूप धारण करके उस राक्षसका नाश कर डालूँगा॥ ७४॥

'युद्धस्थलमें अपने मुक्कोंसे मार-मारकर महाबली कुम्भकर्णके शरीरको चूर-चूर कर दूँगा; इस प्रकार जब वह मेरे हाथसे मारा जायगा तथा वानरराज सुग्रीवको उसकी कैदसे छुड़ा लिया जायगा, तब सारे वानर हर्षसे खिल उठेंगे; अच्छा ऐसा ही हो॥ ७५॥

'अथवा ये सुग्रीव स्वयं ही उसकी पकड़से छूट जायँगे। यदि इन्हें देवता, असुर अथवा नाग भी पकड़ लें तो ये अपने ही प्रयत्नसे उनकी कैदसे भी छुटकारा पा जायँगे॥ ७६॥

'मैं समझता हूँ कि युद्धमें कुम्भकर्णने शिलाके प्रहारसे सुग्रीवको जो गहरी चोट पहुँचायी है, उससे अचेत हुए वानरराजको अभीतक होश नहीं हुआ है॥

'एक ही मुहूर्तमें जब सुग्रीव सचेत होंगे, तब

महासमरमें अपने और वानरोंके लिये जो हितकर कर्म होगा, उसे करेंगे॥ ७८॥

'यदि मैं इन्हें छुड़ाऊँ तो महात्मा सुग्रीवको प्रसन्नता नहीं होगी, उलटे इनके मनमें खेद होगा और सदाके लिये इनके यशका नाश हो जायगा॥ ७९॥

'अत: मैं एक मुहूर्ततक उनके छूटनेकी प्रतीक्षा करूँगा। फिर वे छूट जायँगे तो उनका पराक्रम देखूँगा। तबतक भागी हुई वानर-सेनाको धैर्य बँधाता हूँ'॥ ८०॥

ऐसा विचारकर पवनकुमार हनुमान्ने वानरोंकी उस विशाल वाहिनीको पुन: आश्वासन दे स्थिरतापूर्वक स्थापित किया॥ ८१॥

उधर कुम्भकर्ण हाथ-पैर हिलाते हुए महावानर सुग्रीवको लिये-दिये लङ्कामें घुस गया। उस समय विमानों (सतमहले मकानों), सड़कके दोनों ओर बनी हुई गृहपंक्तियों तथा गोपुरोंमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष उत्तम फूलोंकी वर्षा करके कुम्भकर्णका स्वागत-सत्कार कर रहे थे॥ ८२॥

लावा और गन्धयुक्त जलकी वर्षाद्वारा अभिषिक्त हो राजमार्गकी शीतलताके कारण महाबली सुग्रीवको धीरे-धीरे होश आ गया॥ ८३॥

तब बड़ी कठिनाईसे सचेत हो बलवान् कुम्भकर्णकी भुजाओंमें दबे हुए महात्मा सुग्रीव नगर और राजमार्गकी ओर देखकर बारंबार इस प्रकार विचार करने लगे—॥ ८४॥

'इस प्रकार इस राक्षसकी पकड़में आकर अब मैं किस तरह इससे भरपूर बदला ले सकता हूँ? मैं वही करूँगा, जिससे वानरोंका अभीष्ट और हितकर कार्य हो'॥ ८५॥

ऐसा निश्चय करके वानरोंके राजा सुग्रीवने सहसा हाथोंके तीखे नखोंद्वारा इन्द्रशत्रु कुम्भकर्णके दोनों कान नोच लिये, दाँतोंसे उसकी नाक काट ली और अपने पैरोंके नखोंसे उस राक्षसकी दोनों पसलियाँ फाड़ डालीं॥ ८६॥

सुग्रीवके दाँतों और नखोंसे दोनों कानोंका निम्न भाग और नाक कट जाने तथा पार्श्वभागके विदीर्ण हो जानेसे कुम्भकर्णका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। तब उसे बड़ा रोष हुआ और उसने सुग्रीवको घुमाकर भूमिपर पटक दिया। पटककर वह उन्हें भूमिपर रगड़ने लगा॥ ८७॥

भयानक बलशाली कुम्भकर्ण जब उन्हें पृथ्वीपर रगड़ रहा था और वे देवद्रोही राक्षस उनपर सब ओरसे चोट कर रहे थे, उसी समय सुग्रीव सहसा गेंदकी भाँति वेगपूर्वक आकाशमें उछले और पुन: श्रीरामचन्द्रजीसे आ मिले॥ ८८॥

महाबली कुम्भकर्ण अपनी नाक और कान खो बैठा। उसके अङ्गोंसे इस तरह खून बहने लगा, जैसे पर्वतसे पानीके झरने गिरते हैं। वह रक्तसे नहा उठा और झरनोंसे युक्त शैलशिखरकी भाँति शोभा पाने लगा॥

महाकाय राक्षस रक्तसे नहाकर और भी भयानक दिखायी देने लगा। उस निशाचरने पुन: शत्रुके सामने जाकर युद्ध करनेका विचार किया॥ ९०॥

अमर्षपूर्वक रक्त वमन करता हुआ रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण, जिसके शरीरका रंग काले मेघके समान था, संध्याकालके बादलकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥

सुग्रीवके निकल भागनेपर वह इन्द्रद्रोही राक्षस फिर युद्धके लिये दौड़ा। उस समय यह सोचकर कि 'मेरे पास कोई हथियार नहीं है' उसने एक बड़ा भयंकर मुद्‌गर ले लिया॥ ९२॥

तदनन्तर महाबलशाली राक्षस कुम्भकर्ण सहसा लङ्कापुरीसे निकलकर प्रजाका भक्षण करनेवाली प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्निके समान उस भयंकर वानर-सेनाको युद्धस्थलमें अपना आहार बनाने लगा॥

उस समय कुम्भकर्णको भूख सता रही थी, अतएव वह रक्त और मांसके लिये लालायित हो रहा था। उसने उस भयंकर वानर-सेनामें प्रवेश करके मोहवश वानरों और भालुओंके साथ-साथ राक्षसों तथा पिशाचोंको भी खाना आरम्भ कर दिया। वह प्रधान-प्रधान वानरोंको उसी प्रकार अपना ग्रास बना रहा था, जैसे प्रलयकालमें मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है॥ ९४॥

वह बड़ी उतावलीके साथ एक हाथसे क्रोधपूर्वक एक, दो, तीन तथा बहुत-बहुत राक्षसों और वानरोंको समेटकर अपने मुँहमें झोंक लेता था॥ ९५॥

उस समय वह महाबली निशाचर पर्वत-शिखरोंकी मार खाता हुआ भी मुँहसे वानरोंकी चर्बी और रक्त गिराता हुआ उन सबका भक्षण कर रहा था॥ ९६॥

उसके द्वारा खाये जाते हुए वानर भयभीत हो उस समय भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये। उधर कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ सब ओर उनपर धावा करने लगा॥ ९७॥

वह सात, आठ, बीस, तीस तथा सौ-सौ वानरोंको अपनी दोनों भुजाओंमें भर लेता और उन्हें खाता हुआ रणभूमिमें दौड़ता-फिरता था॥ ९८॥

उसके शरीरमें मेद, चर्बी और रक्त लिपटे हुए थे। उसके कानोंमें आँतोंकी मालाएँ उलझी हुई थीं तथा उसकी दाढ़ें बहुत तीखी थीं। वह महाप्रलयके समय प्राणियोंका संहार करनेवाले विशाल रूपधारी कालके समान वानरोंपर शूलोंकी वर्षा कर रहा था॥ ९९॥

उस समय शत्रुनगरीपर विजय पाने तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मण कुपित होकर उस राक्षसके साथ युद्ध करने लगे॥ १००॥

उन पराक्रमी लक्ष्मणने कुम्भकर्णके शरीरमें सात बाण धँसा दिये। फिर दूसरे बाण लिये और उन्हें भी उसपर छोड़ दिया॥ १०१॥

उनसे पीड़ित हुए उस राक्षसने लक्ष्मणके उस अस्त्रको निःशेष कर दिया। तब सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले बलवान् लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ॥ १०२॥

उन्होंने कुम्भकर्णके सुवर्णनिर्मित सुन्दर एवं दीप्तिमान् कवचको अपने बाणोंसे ढककर उसी तरह अदृश्य कर दिया, जैसे हवाने संध्याकालके बादलको उखाड़कर अदृश्य कर दिया हो॥ १०३॥

काले कोयलेके ढेरकी-सी कान्तिवाला कुम्भकर्ण लक्ष्मणके सुवर्णभूषित बाणोंसे आच्छादित हो मेघोंसे ढके हुए अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था॥

तब उस भयंकर राक्षसने मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सुमित्रानन्दन लक्ष्मणका तिरस्कार करते हुए कहा— ॥ १०५॥

'लक्ष्मण! मैं युद्धमें यमराजको भी बिना कष्ट उठाये ही जीत लेनेकी शक्ति रखता हूँ। तुमने मेरे साथ निर्भय होकर युद्ध करते हुए अपनी अद्भुत वीरताका परिचय दिया है॥ १०६॥

'जब मैं महासमरमें मृत्युके समान हथियार लेकर युद्धके लिये उद्यत होऊँ, उस समय जो मेरे सामने खड़ा रह जाय, वह भी प्रशंसाका पात्र है। फिर जो मुझे युद्ध प्रदान कर रहा हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ १०७॥

'ऐरावतपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए शक्तिशाली इन्द्र भी पहले मेरे सामने युद्धमें नहीं ठहर सके हैं॥ १०८॥

'सुमित्रानन्दन! तुमने बालक होकर भी आज अपने पराक्रमसे मुझे संतुष्ट कर दिया, अतः मैं तुम्हारी अनुमति लेकर युद्धके लिये श्रीरामके पास जाना चाहता हूँ॥ १०९॥

'तुमने अपने वीर्य, बल और उत्साहसे रणभूमिमें मुझे संतोष प्रदान किया है; इसलिये अब मैं केवल रामको ही मारना चाहता हूँ, जिनके मारे जानेपर सारी शत्रुसेना स्वतः मर जायगी॥ ११०॥

'मेरे द्वारा रामके मारे जानेपर जो दूसरे लोग युद्धभूमिमें खड़े रहेंगे, उन सबके साथ मैं अपने संहारकारी बलके द्वारा युद्ध करूँगा'॥ १११॥

वह राक्षस जब पूर्वोक्त बात कह चुका, तब सुमित्राकुमार लक्ष्मण रणभूमिमें ठठाकर हँस पड़े और उससे प्रशंसा मिश्रित कठोर वाणीमें बोले— ॥ ११२॥

'वीर कुम्भकर्ण! तुम महान् पौरुष पाकर जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी असह्य हो उठे हो, वह तुम्हारा कथन बिलकुल ठीक है, झूठ नहीं है। मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे आज तुम्हारा पराक्रम देख लिया। ये रहे दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम, जो पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हैं'॥ ११३½॥

लक्ष्मणकी यह बात सुनकर उसका आदर न करते हुए महाबली निशाचर कुम्भकर्णने सुमित्राकुमारको लाँघकर श्रीरामपर ही धावा किया। उस समय वह अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कम्पित-सी किये देता था॥

उसे आते देख दशरथनन्दन श्रीरामने रौद्रास्त्रका प्रयोग करके कुम्भकर्णके हृदयमें अनेक तीखे बाण मारे॥ ११६॥

श्रीरामके बाणोंसे घायल हो वह सहसा उनपर टूट पड़ा। उस समय क्रोधसे भरे हुए कुम्भकर्णके मुखसे अङ्गारमिश्रित आगकी लपटें निकल रही थीं॥ ११७॥

भगवान् श्रीरामके अस्त्रसे पीड़ित हो राक्षसप्रवर कुम्भकर्ण घोर गर्जना करता और रणभूमिमें वानरोंको खदेड़ता हुआ क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौड़ा॥ ११८॥

श्रीरामके बाणोंमें मोरके पंख लगे हुए थे। वे कुम्भकर्णकी छातीमें धँस गये। अतः व्याकुलताके कारण उसके हाथसे गदा छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ११९॥

इतना ही नहीं, उसके अन्य सब आयुध भी भूमिपर बिखर गये। जब उसने समझ लिया कि अब मेरे पास कोई हथियार नहीं है, तब उस महाबली निशाचरने दोनों मुक्कों और हाथोंसे ही वानरोंका महान् संहार आरम्भ किया॥ १२०½॥

बाणोंसे उसके सारे अङ्ग अत्यन्त घायल हो गये थे, इसलिये वह खूनसे नहा उठा और जैसे पर्वत झरने बहाता है, उसी तरह वह अपनी देहसे रक्तकी धारा बहाने लगा॥ १२१॥

वह खूनसे लथपथ और दु:सह क्रोधसे व्याकुल होकर वानरों, भालुओं तथा राक्षसोंको भी खाता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा॥ १२२॥

इसी बीचमें यमराजके समान प्रतीत होनेवाले उस बलवान् एवं भयानक पराक्रमी निशाचरने एक भयंकर पर्वतका शिखर उठाया और उसे घुमाकर श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्य करके चला दिया॥ १२३॥

परंतु श्रीरामने पुन: धनुषका संधान करके सीधे जानेवाले सात बाण मारकर उस पर्वत-शिखरको बीचमें ही टूक-टूक कर डाला, अपने पासतक नहीं आने दिया॥

भरतके बड़े भाई धर्मात्मा श्रीरामने सुवर्णभूषित विचित्र बाणोंद्वारा जब उस महान् पर्वतशिखरको काट दिया, उस समय अपनी प्रभासे प्रकाशित-सा होते हुए उस मेरुपर्वतके शृङ्गसदृश शिखरने भूमिपर गिरते-गिरते दो सौ वानरोंको धराशायी कर दिया॥ १२५-१२६॥

उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणने, जो कुम्भकर्णके वधके लिये नियुक्त थे, उसके वधकी अनेक युक्तियोंका विचार करते हुए श्रीरामसे कहा— ॥ १२७॥

'राजन्! यह राक्षस शोणितकी गन्धसे मतवाला हो गया है; अत: न वानरोंको पहचानता है न राक्षसोंको। अपने और पराये दोनों ही पक्षोंके योद्धाओंको खा रहा है॥ १२८॥

'अत: श्रेष्ठ वानर-यूथपतियोंमें जो प्रधान लोग हैं, वे सब ओरसे इसके ऊपर चढ़ जायँ और इसके शरीरपर ही बैठे रहें॥ १२९॥

'ऐसा होनेसे यह दुर्बुद्धि निशाचर इस समय भारी भारसे पीड़ित हो रणभूमिमें विचरण करते समय दूसरे वानरोंको नहीं मार सकेगा'॥ १३०॥

बुद्धिमान् राजकुमार लक्ष्मणकी यह बात सुनकर वे महाबली वानर-यूथपति बड़े हर्षके साथ कुम्भकर्णपर चढ़ गये॥ १३१॥

वानरोंके चढ़ जानेपर कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और जैसे बिगड़ैल हाथी महावतोंको गिरा देता है, उसी प्रकार उसने वेगपूर्वक वानरोंको अपनी देह हिलाकर गिरा दिया॥ १३२॥

उन सबको गिराया गया देख श्रीरामने यह समझ लिया कि कुम्भकर्ण रुष्ट हो गया है। फिर वे बड़े वेगसे उछलकर उस राक्षसकी ओर दौड़े और एक उत्तम धनुष हाथमें ले लिया॥ १३३॥

उस समय उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। वे धीर-वीर श्रीरघुनाथजी उसकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उसे अपनी दृष्टिसे दग्ध कर डालेंगे। उन्होंने कुम्भकर्णके बलसे पीड़ित समस्त वानरयूथपतियोंका हर्ष बढ़ाते हुए बड़े वेगसे उस राक्षसपर धावा किया॥ १३४॥

सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे संयुक्त, सर्पके समान भयंकर और सुवर्णसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न उग्र धनुषको हाथमें लेकर श्रीरामने उत्तम तरकस और बाण बाँध लिये और वानरोंको आश्वासन देकर उन्होंने कुम्भकर्णपर बड़े वेगसे आक्रमण किया॥ १३५॥

उस समय अत्यन्त दुर्जय वानरसमूहोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा था। लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार वे महाबली वीर श्रीराम आगे बढ़े॥ १३६॥

उन महान् बलशाली श्रीरामने देखा, महाकाय शत्रुदमन कुम्भकर्ण मस्तकपर किरीट धारण किये सब ओर धावा कर रहा है। उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे हैं। वह रोषसे भरे हुए दिग्गजकी भाँति क्रोधपूर्वक वानरोंको खोज रहा है और उन सबपर आक्रमण करता है। बहुत-से राक्षस उसे घेरे हुए हैं॥ १३७-१३८॥

वह विन्ध्य और मन्दराचलके समान जान पड़ता है। सोनेके बाजूबंद उसकी भुजाओंको विभूषित किये हुए हैं तथा वह (वर्षाकालमें) उमड़े हुए जलवर्षी मेघकी भाँति मुँहसे रक्तकी वर्षा कर रहा है॥ १३९॥

जिह्वाके द्वारा रक्तसे भीगे हुए जबड़े चाट रहा है और प्रलयकालके संहारकारी यमराजकी भाँति वानरोंकी सेनाको रौंद रहा है॥ १४०॥

इस प्रकार प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी राक्षसशिरोमणि कुम्भकर्णको देखकर पुरुषप्रवर श्रीरामने तत्काल अपना धनुष खींचा॥ १४१॥

उनके धनुषकी टंकार सुनकर राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण कुपित हो उठा और उस टंकारध्वनिको सहन न करके श्रीरघुनाथजीकी ओर दौड़ा*॥ १४२॥

* इस श्लोकके बाद कुछ प्रतियोंमें निम्नाङ्कित श्लोक अधिक उपलब्ध होते हैं, जो उपयोगी होनेसे यहाँ अर्थसहित

तदनन्तर जिनकी भुजाएँ नागराज वासुकिके समान विशाल और मोटी थीं, उन भगवान् श्रीरामने पवनकी प्रेरणासे उमड़े हुए मेघके समान काले और पर्वतके समान ऊँचे शरीरवाले कुम्भकर्णको आक्रमण करते देख रणभूमिमें उससे कहा—॥ १४३॥

'राक्षसराज! आओ, विषाद न करो। मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ। मुझे राक्षसवंशका विनाश करनेवाला समझो। अब तुम भी दो ही घड़ीमें अपनी चेतना खो बैठोगे (मर जाओगे)'॥ १४४॥

'यही राम हैं'—यह जानकर वह राक्षस विकृत स्वरमें अट्टहास करने लगा और अत्यन्त कुपित हो रणक्षेत्रमें वानरोंको भगाता हुआ उनकी ओर दौड़ा॥ १४५॥

महातेजस्वी कुम्भकर्ण समस्त वानरोंके हृदयको विदीर्ण-सा करता हुआ विकृत स्वरमें जोर-जोरसे हँसकर मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर एवं भयंकर वाणीमें श्रीरघुनाथजीसे बोला—'राम! मुझे विराध, कबन्ध और खर नहीं समझना चाहिये। मैं मारीच और वाली भी नहीं हूँ। यह कुम्भकर्ण तुमसे लड़ने आया है॥ १४६-१४७॥

'मेरे इस भयंकर एवं विशाल मुद्गरकी ओर देखो। यह सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ है। मैंने पूर्वकालमें इसीके द्वारा समस्त देवताओं और दानवोंको परास्त किया है॥ १४८॥

'मेरे नाक-कान नीचेसे कट गये हैं, ऐसा समझकर तुम्हें मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। इन दोनों अङ्गोंके नष्ट होनेसे मुझे थोड़ी-सी भी पीड़ा नहीं होती है॥

'निष्पाप रघुनन्दन! तुम इक्ष्वाकुवंशके वीर पुरुष हो, अतः मेरे अङ्गोंपर अपना पराक्रम दिखाओ। तुम्हारे

दिये जा रहे हैं—

पुरस्ताद् राघवस्यार्थे गदायुक्तो विभीषणः। अभिदुद्राव वेगेन भ्राता भ्रातरमाहवे॥
विभीषणं पुरो दृष्ट्वा कुम्भकर्णोऽब्रवीदिदम्। प्रहरस्व रणे शीघ्रं क्षत्रधर्मे स्थिरो भव॥
भ्रातृस्नेहं परित्यज्य राघवस्य प्रियं कुरु। अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः॥
त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता। नास्ति धर्माभिरक्तानां व्यसनं तु कदाचन॥
संतानार्थं त्वमेवैकः कुलस्यास्य भविष्यसि। राघवस्य प्रसादात् त्वं रक्षसां राज्यमाप्स्यसि॥
प्रकृत्या मम दुर्धर्ष शीघ्रं मार्गादपक्रम। न स्थातव्यं पुरस्तान्मे सम्भ्रमान्नष्टचेतसः॥
न वेद्मि संयुगे सक्तः स्वान् परान् वा निशाचर। रक्षणीयोऽसि मे वत्स सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
एवमुक्तो वचस्तेन कुम्भकर्णेन धीमता। विभीषणो महाबाहुः कुम्भकर्णमुवाच ह॥
गदितं मे कुलस्यास्य रक्षणार्थमरिंदम। न श्रुतं सर्वरक्षोभिस्ततोऽहं राममागतः॥
कृतं तु तन्महाभाग सुकृतं दुष्कृतं तु वा। एवमुक्त्वाश्रुपूर्णाक्षो गदापाणिर्विभीषणः।
एकान्तमाश्रितो भूत्वा चिन्तयामास संस्थितः॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके लिये युद्ध करनेके निमित्त गदा हाथमें लिये विभीषण उनके आगे आकर खड़े हो गये और उस युद्धस्थलमें भाई होकर भाईका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े। विभीषणको सामने देखकर कुम्भकर्णने इस प्रकार कहा—'वत्स ! तुम भाईका स्नेह छोड़कर श्रीरघुनाथजीका प्रिय करो और रणभूमिमें शीघ्र मेरे ऊपर गदा चलाओ। इस समय तुम क्षात्रधर्ममें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहो। तुम जो श्रीरामकी शरणमें आ गये, इससे तुमने हमलोगोंका काम बना दिया। राक्षसोंमें एक तुम्हीं ऐसे हो, जिसने इस जगत्‌में सत्य और धर्मकी रक्षा की है। जो धर्ममें अनुरक्त होते हैं, उन्हें कभी कोई दुःख नहीं भोगना पड़ता है। अब एकमात्र तुम्हीं इस कुलकी संतानपरम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये जीवित रहोगे। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे तुम्हें राक्षसोंका राज्य प्राप्त होगा। दुर्जय वीर ! मेरी प्रकृतिसे तो तुम परिचित ही हो; अतः शीघ्र मेरा रास्ता छोड़कर दूर हट जाओ। इस समय सम्भ्रमके कारण मेरी विचारशक्ति नष्ट हो गयी है; अतः तुम्हें मेरे सामने नहीं खड़ा होना चाहिये। निशाचर ! इस समय युद्धमें आसक्त होनेके कारण मुझे अपने अथवा परायेकी पहचान नहीं हो रही है, तथापि वत्स ! तुम मेरे लिये रक्षणीय हो—मैं तुम्हारा वध करना नहीं चाहता। यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ।' बुद्धिमान् कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु विभीषणने उससे कहा—'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर ! मैंने इस कुलकी रक्षाके लिये बहुत कुछ कहा था; किंतु समस्त राक्षसोंने मेरी बात नहीं सुनी; अतः मैं निराश होकर श्रीरामकी शरणमें आ गया। महाभाग ! यह मेरे लिये पुण्य हो या पाप। अब मैंने श्रीरामका आश्रय तो ग्रहण कर ही लिया।' ऐसा कहकर गदाधारी विभीषणके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे एकान्तका आश्रय ले खड़े होकर चिन्ता करने लगे।

पौरुष एवं बल-विक्रमको देख लेनेके बाद ही मैं तुम्हें खाऊँगा'॥ १५०॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर श्रीरामने उसके ऊपर सुन्दर पंखवाले बहुत-से बाण मारे। वज्रके समान वेगवाले उन बाणोंकी गहरी चोट खानेपर भी वह देवद्रोही राक्षस न तो क्षुब्ध हुआ और न व्यथित ही॥

जिन बाणोंसे श्रेष्ठ सालवृक्ष काटे गये और वानरराज वालीका वध हुआ, वे ही वज्रोपम बाण उस समय कुम्भकर्णके शरीरको व्यथा न पहुँचा सके॥ १५२॥

देवराज इन्द्रका शत्रु कुम्भकर्ण जलकी धाराके समान श्रीरामकी बाणवर्षाको अपने शरीरसे पीने लगा और भयंकर वेगशाली मुद्गरको चारों ओरसे घुमा-घुमाकर उनके बाणोंके महान् वेगको नष्ट करने लगा॥

तदनन्तर वह राक्षस देवताओंकी विशाल सेनाको भयभीत करनेवाले और खूनसे लिपटे हुए उस उग्र वेगशाली मुद्गरको घुमा-घुमाकर वानरोंकी वाहिनीको खदेड़ने लगा॥ १५४॥

यह देख भगवान् श्रीरामने वायव्य नामक दूसरे अस्त्रका संधान करके उसे कुम्भकर्णपर चलाया और उसके द्वारा उस निशाचरकी मुद्गरसहित दाहिनी बाँह काट डाली। बाँह कट जानेपर वह राक्षस भयानक आवाजमें चीत्कार करने लगा॥ १५५॥

श्रीरघुनाथजीके बाणसे कटी हुई वह बाँह, जो पर्वतशिखरके समान जान पड़ती थी, मुद्गरके साथ ही वानरोंकी सेनामें गिरी। उसके नीचे दबकर कितने ही वानर-सैनिक अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ १५६॥

जो अङ्ग-भङ्ग होने या मरनेसे बचे, वे खिन्नचित्त हो किनारे जाकर खड़े हो गये। उनके शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही थी और वे चुपचाप महाराज श्रीराम और राक्षस कुम्भकर्णके घोर संग्रामको देखने लगे॥ १५७॥

वायव्यास्त्रसे एक बाँह कट जानेपर कुम्भकर्ण शिखरहीन पर्वतके समान प्रतीत होने लगा। उसने एक ही हाथसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़ लिया और उसे लेकर रणभूमिमें महाराज श्रीरामपर धावा किया॥ १५८॥

तब श्रीरामने एक सुवर्णभूषित बाण निकालकर उसे ऐन्द्रास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसके द्वारा सर्पके समान उठी हुई राक्षसकी दूसरी बाँहको भी वृक्षसहित काट गिराया॥ १५९॥

कुम्भकर्णकी वह कटी हुई बाँह पर्वत-शिखरके समान पृथ्वीपर गिरी और छटपटाने लगी। उसने कितने ही वृक्षों, शैलशिखरों, शिलाओं, वानरों और राक्षसोंको भी कुचल डाला॥ १६०॥

उन दोनों भुजाओंके कट जानेपर वह राक्षस सहसा आर्तनाद करता हुआ श्रीरामपर टूट पड़ा। उसे आक्रमण करते देख श्रीरामने दो तीखे अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उनके द्वारा युद्धस्थलमें उस राक्षसके दोनों पैर भी उड़ा दिये॥ १६१॥

उसके दोनों पैर दिशा-विदिशा, पर्वतकी कन्दरा, महासागर, लङ्कापुरी तथा वानरों और राक्षसोंकी सेनाओंको भी प्रतिध्वनित करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १६२॥

दोनों बाँहों और पैरोंके कट जानेपर उसने वडवानलके समान अपने विकराल मुखको फैलाया और जैसे राहु आकाशमें चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार वह श्रीरामको ग्रसनेके लिये भयानक गर्जना करता हुआ सहसा उनके ऊपर टूट पड़ा॥ १६३॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णजटित पंखवाले अपने तीखे बाणोंसे उसका मुँह भर दिया। मुँह भर जानेपर वह बोलनेमें भी असमर्थ हो गया और बड़ी कठिनाईसे आर्तनाद करके मूर्च्छित हो गया॥ १६४॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मदण्ड तथा विनाशकारी कालके समान भयंकर एवं तीखा बाण, जो सूर्यकी किरणोंके समान उद्दीप्त, इन्द्रास्त्रसे अभिमन्त्रित, शत्रुनाशक, तेजस्वी सूर्य और प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान, हीरे और सुवर्णसे विभूषित सुन्दर पंखसे युक्त, वायु तथा इन्द्रके वज्र और अशनिके समान वेगशाली था, हाथमें लिया और उस निशाचरको लक्ष्य करके छोड़ दिया॥ १६५-१६६॥

श्रीरघुनाथजीकी भुजाओंसे प्रेरित होकर वह बाण अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर वेगसे चला। वह धूमरहित अग्निके समान भयानक दिखायी देता था॥ १६७॥

जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका मस्तक काट डाला था, उसी प्रकार उस बाणने राक्षसराज कुम्भकर्णके महान् पर्वतशिखरके समान ऊँचे, सुन्दर गोलाकार दाढ़ोंसे युक्त तथा हिलते हुए मनोहर कुण्डलोंसे अलंकृत मस्तकको धड़से अलग कर दिया॥ १६८॥

कुम्भकर्णका वह कुण्डलोंसे अलंकृत विशाल मस्तक प्रात:काल सूर्योदय होनेपर आकाशके मध्यमें विराजमान चन्द्रमाकी भाँति निस्तेज प्रतीत होता था॥ १६९॥

श्रीरामके बाणोंसे कटा हुआ राक्षसका वह पर्वताकार

मस्तक लङ्कामें जा गिरा। उसने अपने धक्केसे सड़कके आस-पासके कितने ही मकानों, दरवाजों और ऊँचे परकोटेको भी धराशायी कर दिया॥ १७०॥

इसी प्रकार उस राक्षसका विशाल धड़ भी, जो हिमालयके समान जान पड़ता था, तत्काल समुद्रके जलमें गिर पड़ा और बड़े-बड़े ग्राहों, मत्स्यों तथा साँपोंको पीसता हुआ पृथ्वीके भीतर समा गया॥ १७१॥

ब्राह्मणों और देवताओंके शत्रु महाबली कुम्भकर्णके युद्धमें मारे जानेपर पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत हिलने लगे और सम्पूर्ण देवता हर्षसे भरकर तुमुल नाद करने लगे॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए देवर्षि, महर्षि, सर्प, देवता, भूतगण, गरुड़, गुह्यक, यक्ष और गन्धर्वगण श्रीरामका पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए॥ १७३॥

कुम्भकर्णके महान् वधसे राक्षसराज रावणके मनस्वी बन्धुओंको बड़ा दुःख हुआ। वे रघुकुलतिलक श्रीरामकी ओर देखकर उसी तरह उच्च स्वरसे रोने-कल्पने लगे, जैसे सिंहपर दृष्टि पड़ते ही मतवाले हाथी चीत्कार कर उठते हैं॥ १७४॥

देवसमूहको दुःख देनेवाले कुम्भकर्णका युद्धमें वध करके वानर-सेनाके बीचमें खड़े हुए भगवान् श्रीराम अन्धकारका नाश करके राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ १७५॥

भयानक बलशाली शत्रुके मारे जानेसे बहुसंख्यक वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके मुख विकसित कमलकी भाँति हर्षोल्लाससे खिल उठे तथा उन्होंने सफलमनोरथ हुए राजकुमार भगवान् श्रीरामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १७६॥

जो बड़े-बड़े युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुआ था तथा देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था, उस महान् राक्षस कुम्भकर्णको रणभूमिमें मारकर रघुनाथजीको वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको हुई थी॥ १७७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णके वधका समाचार सुनकर रावणका विलाप

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा कुम्भकर्णको मारा गया देख राक्षसोंने अपने राजा रावणसे जाकर कहा— ॥ १॥

'महाराज! कालके समान भयंकर पराक्रमी कुम्भकर्ण वानरसेनाको भगाकर तथा बहुत-से वानरोंको अपना आहार बनाकर स्वयं भी कालके गालमें चले गये॥ २॥

'वे दो घड़ीतक अपने प्रतापसे तपकर अन्तमें श्रीरामके तेजसे शान्त हो गये। उनका आधा शरीर (धड़) भयानक दिखायी देनेवाले समुद्रमें घुस गया और आधा शरीर (मस्तक) नाक-कान कट जानेसे खून बहाता हुआ लङ्काके द्वारपर पड़ा है। उस शरीरके द्वारा आपके भाई पर्वताकार कुम्भकर्ण लङ्काका द्वार रोककर पड़े हैं। वे श्रीरामके बाणोंसे पीड़ित हो हाथ, पैर और मस्तकसे हीन नंग-धड़ंग धड़के रूपमें परिणत हो दावानलसे दग्ध हुए वृक्षकी भाँति नष्ट हो गये'॥ ३—५॥

'महाबली कुम्भकर्ण युद्धस्थलमें मारा गया' यह सुनकर रावण शोकसे संतप्त एवं मूर्च्छित हो गया और तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६॥

अपने चाचाके निधनका समाचार सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय दुःखसे पीड़ित हो फूट-फूटकर रोने लगे॥ ७॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा भाई कुम्भकर्ण मारे गये, यह सुनकर उसके सौतेले भाई महोदर और महापार्श्व शोकसे व्याकुल हो गये॥ ८॥

तदनन्तर बड़े कष्टसे होशमें आनेपर राक्षसराज रावण कुम्भकर्णके वधसे दुःखी हो विलाप करने लगा। उसकी सारी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठी थीं॥ ९॥

(वह रो-रोकर कहने लगा—) 'हा वीर! हा महाबली कुम्भकर्ण! तुम शत्रुओंके दर्पका दलन करनेवाले थे; किंतु दुर्भाग्यवश मुझे असहाय छोड़कर यमलोकको चल दिये॥ १०॥

'महाबली वीर! तुम मेरा तथा इन भाई-बन्धुओंका कण्टक दूर किये बिना शत्रुसेनाको संतप्त करके मुझे छोड़ अकेले कहाँ चले जा रहे हो?॥ ११॥

'इस समय मैं अवश्य ही नहींके बराबर हूँ; क्योंकि मेरी दाहिनी बाँह कुम्भकर्ण धराशायी हो गया। जिसका भरोसा करके मैं देवता और असुर किसीसे नहीं डरता था॥ १२॥

'देवताओं और दानवोंका दर्प चूर करनेवाला ऐसा वीर, जो कालाग्निके समान प्रतीत होता था, आज रणक्षेत्रमें रामके हाथसे कैसे मारा गया?॥ १३॥

'भाई! तुम्हें तो वज्रका प्रहार भी कभी कष्ट नहीं पहुँचा सकता था। वही तुम आज रामके बाणोंसे पीड़ित हो भूतलपर कैसे सो रहे हो?॥ १४॥

'आज समराङ्गणमें तुम्हें मारा गया देख आकाशमें खड़े हुए ये ऋषियोंसहित देवता हर्षनाद कर रहे हैं॥

'निश्चय ही अब अवसर पाकर हर्षसे भरे हुए वानर आज ही लङ्काके समस्त दुर्गम द्वारोंपर चढ़ जायँगे॥ १६॥

'अब मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। सीताको लेकर भी मैं क्या करूँगा? कुम्भकर्णके बिना जीनेका मेरा मन नहीं है॥ १७॥

'यदि मैं युद्धस्थलमें अपने भाईका वध करनेवाले रामको नहीं मार सकता तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। इस निरर्थक जीवनको सुरक्षित रखना कदापि अच्छा नहीं है॥ १८॥

'मैं आज ही उस देशको जाऊँगा, जहाँ मेरा छोटा भाई कुम्भकर्ण गया है। मैं अपने भाइयोंको छोड़कर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता॥ १९॥

'मैंने पहले देवताओंका अपकार किया था। अब वे मुझे देखकर हँसेंगे। हा कुम्भकर्ण! तुम्हारे मारे जानेपर अब मैं इन्द्रको कैसे जीत सकूँगा?॥ २०॥

'मैंने महात्मा विभीषणकी कही हुई जिन उत्तम बातोंको अज्ञानवश स्वीकार नहीं किया था, वे मेरे ऊपर आज प्रत्यक्षरूपसे घटित हो रही हैं॥ २१॥

'जबसे कुम्भकर्ण और प्रहस्तका यह दारुण विनाश उत्पन्न हुआ है, तभीसे विभीषणकी बात याद आकर मुझे लज्जित कर रही है॥ २२॥

'मैंने धर्मपरायण श्रीमान् विभीषणको जो घरसे निकाल दिया था, उसी कर्मका यह शोकदायक परिणाम अब मुझे भोगना पड़ रहा है'॥ २३॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिसे दीनतापूर्वक अत्यन्त विलाप करके व्याकुलचित्त हुआ दशमुख रावण अपने छोटे भाई इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्णके वधका स्मरण करके बहुत ही व्यथित हो पुनः पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

रावणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरान्तकका अङ्गदके द्वारा वध

दुरात्मा रावण जब शोकसे पीड़ित हो इस प्रकार विलाप करने लगा, तब त्रिशिराने कहा—॥ १॥

'राजन्! इसमें संदेह नहीं कि हमारे मझले चाचा, जो इस समय युद्धमें मारे गये हैं, ऐसे ही महान् पराक्रमी थे; परंतु आप जिस प्रकार रोते-कलपते हैं, उस तरह श्रेष्ठ पुरुष किसीके लिये विलाप नहीं करते हैं॥ २॥

'प्रभो! निश्चय आप अकेले ही तीनों लोकोंसे भी लोहा लेनेमें समर्थ हैं; फिर इस तरह साधारण पुरुषकी भाँति क्यों अपने-आपको शोकमें डाल रहे हैं?॥ ३॥

'आपके पास ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, धनुष तथा बाण हैं; साथ ही मेघ-गर्जनाके समान शब्द करनेवाला रथ भी है, जिसमें एक हजार गदहे जोते जाते हैं॥ ४॥

'आपने एक ही शस्त्रसे देवताओं और दानवोंको अनेक बार पछाड़ा है, अतः सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेपर आप रामको भी दण्ड दे सकते हैं॥ ५॥

'अथवा महाराज! आपकी इच्छा हो तो यहीं रहें। मैं स्वयं युद्धके लिये जाऊँगा और जैसे गरुड़ सर्पोंका संहार करते हैं, उसी तरह मैं आपके शत्रुओंको जड़से उखाड़ फेंकूँगा॥ ६॥

'जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको और भगवान् विष्णुने नरकासुरको* मार गिराया था, उसी प्रकार युद्धस्थलमें आज मेरे द्वारा मारे जाकर राम सदाके लिये सो जायँगे'॥ ७॥

त्रिशिराकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावणको इतना संतोष हुआ कि वह अपना नया जन्म हुआ-सा मानने लगा। कालसे प्रेरित होकर ही उसकी ऐसी बुद्धि हो गयी॥ ८॥

* यहाँ जिस नरकासुरका नाम आया है, वह विप्रचित्ति नामक दानवके द्वारा सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हुए वातापि आदि सात पुत्रोंमेंसे एक था। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—वातापि, नमुचि, इल्वल, सृमर, अन्धक, नरक और कालनाभ। भगवान् श्रीकृष्णने द्वापरमें जिस भूमिपुत्र नरकासुरका वध किया था, वह यहाँ उल्लिखित नरकासुरसे भिन्न था। त्रिशिरा और रावणके समयमें तो उसका जन्म ही नहीं हुआ था।

त्रिशिराका उपर्युक्त कथन सुनकर देवान्तक, नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय—ये तीनों युद्धके लिये उत्साहित हो गये॥ ९॥

'मैं युद्धके लिये जाऊँगा, मैं जाऊँगा' ऐसा कहते और गर्जते हुए वे तीनों श्रेष्ठ निशाचर युद्धके लिये तैयार हो गये। रावणके वे वीर पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी थे॥

वे सब-के-सब आकाशमें विचरण करनेवाले, मायाविशारद, रणदुर्मद तथा देवताओंका भी दर्प दलन करनेवाले थे॥ ११॥

वे सभी उत्तम बलसे सम्पन्न थे। उन सबकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैली हुई थी और समरभूमिमें आनेपर गन्धर्वों, किन्नरों तथा बड़े-बड़े नागोंसहित देवताओंसे भी कभी उन सबकी पराजय नहीं सुनी गयी थी। वे सभी अस्त्रवेत्ता, सभी वीर और सभी युद्धकी कलामें निपुण थे। उन सबको शस्त्रों और शास्त्रोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त था और सबने तपस्याके द्वारा वरदान प्राप्त किया था॥ १२-१३॥

सूर्यके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंकी सेना और सम्पत्तिको रौंद डालनेवाले उन पुत्रोंसे घिरा हुआ राक्षसोंका राजा रावण बड़े-बड़े दानवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पा रहा था॥

उसने अपने पुत्रोंको हृदयसे लगाकर नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया और उत्तम आशीर्वाद देकर रणभूमिमें भेजा॥ १५॥

रावणने अपने दोनों भाई युद्धोन्मत्त (महापार्श्व) और मत्त (महोदर)-को भी युद्धमें कुमारोंकी रक्षाके लिये भेजा॥ १६॥

वे सभी महाकाय राक्षस समस्त लोकोंको रुलानेवाले महामना रावणको प्रणाम और उसकी परिक्रमा करके युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥ १७॥

सब प्रकारकी ओषधियों तथा गन्धोंका स्पर्श करके युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व—ये छ: महाबली श्रेष्ठ निशाचर कालसे प्रेरित हो युद्धके लिये पुरीसे बाहर निकले॥ १९॥

उस समय महोदर ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए काले मेघके समान रंगवाले 'सुदर्शन' नामक हाथीपर सवार हुआ॥ २०॥

समस्त आयुधोंसे सम्पन्न और तूणीरोंसे अलंकृत महोदर उस हाथीकी पीठपर बैठकर अस्ताचलके शिखरपर विराजमान सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था॥ २१॥

रावणकुमार त्रिशिरा एक उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ, जिसमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र रखे गये थे और उत्तम घोड़े जुते हुए थे॥ २२॥

उस रथमें बैठकर धनुष धारण किये त्रिशिरा विद्युत्, उल्का, ज्वाला और इन्द्रधनुषसे युक्त मेघके समान शोभा पाने लगा॥ २३॥

उस उत्तम रथमें सवार हो तीन किरीटोंसे युक्त त्रिशिरा तीन सुवर्णमय शिखरोंसे युक्त गिरिराज हिमालयके समान शोभा पा रहा था॥ २४॥

राक्षसराज रावणका अत्यन्त तेजस्वी पुत्र अतिकाय समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ था। वह भी उस समय एक उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ॥ २५॥

उस रथके पहिये और धुरे बहुत सुन्दर थे। उसमें उत्तम घोड़े जुते हुए थे तथा उसके अनुकर्ष[1] और कूबर[2] भी सुदृढ़ थे। तूणीर, बाण और धनुषके कारण वह रथ उद्दीप्त हो रहा था। प्रास, खड्ग और परिघोंसे वह भरा हुआ था॥ २६॥

वह सुवर्णनिर्मित विचित्र एवं दीप्तिशाली किरीट तथा अन्य आभूषणोंसे विभूषित हो अपनी प्रभासे प्रकाशका विस्तार करते हुए मेरुपर्वतके समान सुशोभित होता था॥ २७॥

उस रथपर श्रेष्ठ निशाचरोंसे घिरकर बैठा हुआ वह महाबली राक्षसराजकुमार देवताओंसे घिरे हुए वज्रपाणि इन्द्रके समान शोभा पाता था॥ २८॥

नरान्तक उच्चै:श्रवाके समान श्वेत वर्णवाले एक सुवर्णभूषित विशालकाय और मनके समान वेगशाली अश्वपर आरूढ़ हुआ॥ २९॥

उल्काके समान दीप्तिमान् प्रास हाथमें लेकर तेजस्वी नरान्तक शक्ति लिये मोरपर बैठे हुए तेज:पुञ्जसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयके समान सुशोभित हो रहा था॥ ३०॥

देवान्तक स्वर्णभूषित परिघ लेकर समुद्रमन्थनके समय दोनों हाथोंसे मन्दराचल उठाये हुए भगवान् विष्णुके स्वरूपका अनुकरण-सा कर रहा था॥ ३१॥

महातेजस्वी और पराक्रमी महापार्श्व हाथमें गदा लेकर युद्धस्थलमें गदाधारी कुबेरके समान शोभा पाने लगा॥

१. रथके धुरेपर कूबरके आधाररूपसे स्थापित काष्ठविशेषको अनुकर्ष कहते हैं।

२. कूबर उस काष्ठको कहते हैं, जिसपर जुआ रखा जाता है। गाड़ीके हरसोंको भी प्राचीनकालमें कूबर कहा जाता था।

अमरावतीपुरीसे निकलनेवाले देवताओंके समान वे सभी महाकाय निशाचर लङ्कापुरीसे चले। उनके पीछे श्रेष्ठ आयुध धारण किये विशालकाय राक्षस हाथी, घोड़ों तथा मेघकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो युद्धके लिये निकले॥ ३३½ ॥

वे सूर्यतुल्य तेजस्वी, महामनस्वी राक्षसराजकुमार मस्तकपर किरीट धारण करके उत्तम शोभा-सम्पत्तिसे सेवित हो आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३४½ ॥

उनके द्वारा धारण की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी श्वेत पंक्ति आकाशमें शरद्‌ऋतुके बादलोंकी भाँति उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हंसोंकी श्रेणीके समान शोभा पा रही थी॥ ३५½ ॥

आज या तो हम शत्रुओंको परास्त कर देंगे, या स्वयं ही मृत्युकी गोदमें सदाके लिये सो जायँगे—ऐसा निश्चय करके वे वीर राक्षस युद्धके लिये आगे बढ़े॥

वे युद्धदुर्मद महामनस्वी निशाचर गर्जते, सिंहनाद करते, बाण हाथमें लेते और उन्हें शत्रुओंपर छोड़ देते थे॥ ३७½ ॥

उन राक्षसोंके गर्जने, ताल ठोंकने और सिंहनाद करनेसे पृथ्वी कम्पित-सी होने लगी और आकाश फटने-सा लगा॥ ३८½ ॥

उन महाबली राक्षसशिरोमणि वीरोंने प्रसन्नतापूर्वक नगरकी सीमासे बाहर निकलकर देखा, वानरोंकी सेना पर्वत-शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठाये युद्धके लिये तैयार खड़ी है॥ ३९½ ॥

महामना वानरोंने भी राक्षससेनापर दृष्टिपात किया। वह हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी थी, सैकड़ों-हजारों घुँघुरुओंकी रुनझुनसे निनादित थी, काले मेघोंकी घटा-जैसी दिखायी देती थी और हाथोंमें बड़े-बड़े आयुध लिये हुए थी॥ ४०-४१ ॥

प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी राक्षसोंने उसे सब ओरसे घेर रखा था। निशाचरोंकी उस सेनाको आती देख वानर प्रहार करनेका अवसर पाकर महान् पर्वतशिखर उठाये बारंबार गर्जना करने लगे। वे राक्षसोंका सिंहनाद सहन न करनेके कारण बदलेमें जोर-जोरसे दहाड़ने लगे थे॥ ४२-४३ ॥

वानरयूथपतियोंका वह उच्च स्वरसे किया हुआ गर्जन-तर्जन सुनकर भयंकर एवं महान् बलसे सम्पन्न राक्षसगण शत्रुओंका हर्ष सहन न कर सके; अतः स्वयं भी अत्यन्त भीषण सिंहनाद करने लगे॥ ४४ ॥

तब वानर-यूथपति राक्षसोंकी उस भयंकर सेनामें घुस गये और शैलशृङ्ग उठाये शिखरोंवाले पर्वतोंकी भाँति वहाँ विचरण करने लगे॥ ४५ ॥

वृक्षों और शिलाओंको आयुधके रूपमें धारण किये वानर योद्धा राक्षससैनिकोंपर अत्यन्त कुपित हो आकाशमें उड़-उड़कर विचरने लगे। कितने ही वानरशिरोमणि वीर मोटी-मोटी शाखाओंवाले वृक्षोंको हाथमें लेकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे॥ ४६½ ॥

उस समय राक्षसों और वानरोंके उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। राक्षसोंने बाणसमूहोंकी वर्षाद्वारा जब वानरोंको आगे बढ़नेसे रोका, उस समय वे भयंकर पराक्रमी वानर उनपर वृक्षों, शिलाओं तथा शैल-शिखरोंकी अनुपम वृष्टि करने लगे॥ ४७-४८ ॥

राक्षस और वानर दोनों ही वहाँ रणक्षेत्रमें सिंहोंके समान दहाड़ रहे थे। कुपित हुए वानरोंने कवचों और आभूषणोंसे विभूषित बहुतेरे राक्षसोंको युद्धस्थलमें शिलाओंकी मारसे कुचल दिया—मार डाला॥ ४९½ ॥

कितने ही वानर रथ, हाथी और घोड़ेपर बैठे हुए वीर राक्षसोंको भी सहसा उछलकर मार डालते थे॥

वहाँ प्रधान-प्रधान राक्षसोंके शरीर पर्वत-शिखरोंसे आच्छादित हो गये थे। वानरोंके मुक्कोंकी मार खाकर कितनोंकी आँखें बाहर निकल आयी थीं। वे निशाचर भागते, गिरते-पड़ते और चीत्कार करते थे॥ ५१½ ॥

राक्षसोंने भी पैने बाणोंसे कितने ही वानर-शिरोमणियोंको विदीर्ण कर दिया था तथा शूलों, मुद्गरों, खड्गों, प्रासों और शक्तियोंसे बहुतोंको मार गिराया था॥

शत्रुओंके रक्त जिनके शरीरोंमें लिपटे हुए थे, वे वानर और राक्षस वहाँ परस्पर विजय पानेकी इच्छासे एक-दूसरेको धराशायी कर रहे थे॥ ५३½ ॥

थोड़ी ही देरमें वह युद्धभूमि वानरों और राक्षसोंद्वारा चलाये गये पर्वत-शिखरों तथा तलवारोंसे आच्छादित हो रक्तके प्रवाहसे सिंच उठी॥ ५४½ ॥

युद्धके मदसे उन्मत्त हुए पर्वताकार राक्षस जो शिलाओंकी मारसे कुचल दिये गये थे, सब ओर बिखरे पड़े थे। उनसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी थी॥ ५५ ॥

राक्षसोंने जिनके युद्धके साधनभूत शैल-शिखरोंको तोड़-फोड़ डाला था, वे वानर उनके प्रहारोंसे विचलित किये जानेपर उन राक्षसोंके अत्यन्त निकट जा अपने हाथ-पैर आदि अङ्गोंद्वारा ही अद्भुत युद्ध करने लगे॥ ५६ ॥

राक्षसोंके प्रधान-प्रधान वीर वानरोंको पकड़कर उन्हें दूसरे वानरोंपर पटक देते थे। इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंसे ही राक्षसोंको मार रहे थे॥ ५७॥

उस समय राक्षस अपने शत्रुओंके हाथसे शिलाओं और शैल-शिखरोंको छीनकर उन्हींसे उनपर प्रहार करने लगे तथा वानर भी राक्षसोंके हथियार छीनकर उन्हींके द्वारा उनका वध करने लगे॥ ५८॥

इस तरह राक्षस और वानर दोनों ही दलोंके योद्धा एक-दूसरेको पर्वत-शिखरसे मारने, अस्त्र-शस्त्रोंसे विदीर्ण करने तथा रणभूमिमें सिंहोंके समान दहाड़ने लगे॥ ५९॥

राक्षसोंकी शरीर-रक्षाके साधनभूत कवच आदि छिन्न-भिन्न हो गये। वानरोंकी मार खाकर वे अपने शरीरसे उसी प्रकार रक्त बहाने लगे, जैसे वृक्ष अपने तनोंसे गोंद बहाया करते हैं॥ ६०॥

कितने ही वानर रणभूमिमें रथसे रथको, हाथीसे हाथीको और घोड़ेसे घोड़ेको मार गिराते थे॥ ६१॥

वानर-यूथपतियोंके चलाये हुए वृक्षों और शिलाओंको निशाचर योद्धा तीखे क्षुरप्र, अर्धचन्द्र और भल्ल नामक बाणोंसे तोड़-फोड़ डालते थे॥ ६२॥

टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतों, कटे हुए वृक्षों तथा राक्षसों और वानरोंकी लाशोंसे पट जानेके कारण उस भूमिमें चलना-फिरना कठिन हो गया॥ ६३॥

वानरोंकी सारी चेष्टाएँ गर्वसे भरी हुई तथा हर्ष और उत्साहसे युक्त थीं। उनके हृदयमें दीनता नहीं थी तथा उन्होंने राक्षसोंके ही नाना प्रकारके आयुध छीनकर हस्तगत कर लिये थे, अतः वे सब संग्राममें पहुँचकर राक्षसोंके साथ भय छोड़कर युद्ध कर रहे थे॥ ६४॥

इस प्रकार जब भयंकर मारकाट मची हुई थी, वानर प्रसन्न थे और राक्षसोंकी लाशें गिर रही थीं, उस समय महर्षि तथा देवगण हर्षनाद करने लगे॥ ६५॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र वेगवाले घोड़ेपर सवार हो हाथमें तीखी शक्ति लिये नरान्तक वानरोंकी भयंकर सेनामें उसी तरह घुसा, जैसे कोई मत्स्य महासागरमें प्रवेश कर रहा हो॥ ६६॥

उस महाकाय इन्द्रद्रोही वीर निशाचरने चमचमाते हुए भालेसे अकेले ही सात सौ वानरोंको चीर डाला और क्षणभरमें वानर-यूथपतियोंकी एक बहुत बड़ी सेनाका संहार कर डाला॥ ६७॥

घोड़ेकी पीठपर बैठे हुए उस महामनस्वी वीरको विद्याधरों और महर्षियोंने वानरोंकी सेनामें विचरते देखा॥ ६८॥

वह जिस मार्गसे निकल जाता, वही धराशायी हुए पर्वताकार वानरोंसे ढका दिखायी देता था और वहाँ रक्त एवं मांसकी कीच मच जाती थी॥ ६९॥

वानरोंके प्रधान-प्रधान वीर जबतक पराक्रम करनेका विचार करते, तबतक ही नरान्तक इन सबको लाँघकर भालेकी मारसे घायल कर देता था॥ ७०॥

जैसे दावानल सूखे जंगलोंको जलाता है, उसी प्रकार प्रज्वलित प्रास लिये नरान्तक युद्धके मुहानेपर वानर-सेनाओंको दग्ध करने लगा॥ ७१॥

वानरलोग जबतक वृक्ष और पर्वत-शिखरोंको उखाड़ते, तबतक ही उसके भालेकी चोट खाकर वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति ढह जाते थे॥ ७२॥

जैसे वर्षाकालमें प्रचण्ड वायु सब ओर वृक्षोंको तोड़ती-उखाड़ती हुई विचरती है, उसी प्रकार बलवान् नरान्तक रणभूमिमें वानरोंको रौंदता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरने लगा॥ ७३॥

वानर-वीर भयके मारे न तो भाग पाते थे, न खड़े रह पाते थे और न उनसे दूसरी ही कोई चेष्टा करते बनती थी। पराक्रमी नरान्तक उछलते हुए, पड़े हुए और जाते हुए सभी वानरोंपर भालेकी चोट कर देता था॥ ७४॥

उसका प्रास (भाला) अपनी प्रभासे सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहा था और यमराजके समान भयंकर जान पड़ता था। उस एक ही भालेकी मारसे घायल होकर झुंड-के-झुंड वानर धरतीपर सो गये॥ ७५॥

वज्रके आघातको भी मात करनेवाले उस प्रासके दारुण प्रहारको वानर नहीं सह सके। वे जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे॥ ७६॥

वहाँ गिरते हुए वानर-वीरोंके रूप उन पर्वतोंके समान दिखायी देते थे, जो वज्रके आघातसे शिखरोंके विदीर्ण हो जानेसे धराशायी हो रहे हों॥ ७७॥

पहले कुम्भकर्णने जिन्हें रणभूमिमें गिरा दिया था, वे महामनस्वी श्रेष्ठ वानर उस समय स्वस्थ हो सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित हुए॥ ७८॥

सुग्रीवने जब सब ओर दृष्टिपात किया, तब देखा कि वानरोंकी सेना नरान्तकसे भयभीत होकर इधर-उधर भाग रही है॥ ७९॥

सेनाको भागती देख उन्होंने नरान्तकपर भी दृष्टि डाली, जो घोड़ेकी पीठपर बैठकर हाथमें भाला लिये

आ रहा था॥ ८०॥

उसे देखकर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने इन्द्रतुल्य पराक्रमी वीर कुमार अङ्गदसे कहा—॥ ८१॥

'बेटा! वह जो घोड़ेपर बैठा हुआ वानर-सेनामें हलचल मचा रहा है, उस वीर राक्षसका सामना करनेके लिये जाओ और उसके प्राणोंका शीघ्र ही अन्त कर दो'॥ ८२॥

स्वामीकी यह आज्ञा सुनकर पराक्रमी अङ्गद उस समय मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाली वानर-सेनासे उसी तरह निकले, जैसे सूर्यदेव बादलोंके ओटसे प्रकट हो रहे हों॥ ८३॥

वानरोंमें श्रेष्ठ अङ्गद शैल-समूहके समान विशालकाय थे। वे अपनी बाँहोंमें बाजूबंद धारण किये हुए थे, इसलिये सुवर्ण आदि धातुओंसे युक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे॥ ८४॥

वालिपुत्र अङ्गद महातेजस्वी थे। उनके पास कोई हथियार नहीं था। केवल नख और दाढ़ ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। वे नरान्तकके पास पहुँचकर इस प्रकार बोले— ॥ ८५॥

'ओ निशाचर! ठहर जा। इन साधारण बंदरोंको मारकर तू क्या करेगा? तेरे भालेकी चोट वज्रके समान असह्य है; किंतु जरा इसे मेरी इस छातीपर तो मार'॥ ८६॥

अङ्गदकी यह बात सुनकर नरान्तकको बड़ा क्रोध हुआ। वह कुपित हो, दाँतोंसे ओठ दबा सर्पकी भाँति लंबी साँस ले, वालिपुत्र अङ्गदके पास आकर खड़ा हो गया॥ ८७॥

उसने उस चमकते हुए भालेको घुमाकर सहसा उसे अङ्गदपर दे मारा। वालिपुत्र अङ्गदका वक्षःस्थल वज्रके समान कठोर था। नरान्तकका भाला उसपर टकराकर टूट गया और जमीनपर जा पड़ा॥ ८८॥

उस भालेको गरुड़के द्वारा खण्डित किये गये सर्पके शरीरकी भाँति टूक-टूक होकर पड़ा देख वालिपुत्र अङ्गदने हथेली ऊँची करके नरान्तकके घोड़ेके मस्तकपर बड़े जोरसे थप्पड़ मारा॥ ८९॥

उस प्रहारसे घोड़ेका सिर फट गया, पैर नीचेको धँस गये, आँखें फूट गयीं और जीभ बाहर निकल आयी। वह पर्वताकार अश्व प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

घोड़ेको मरकर पृथ्वीपर पड़ा देख नरान्तकके क्रोधकी सीमा न रही। उस महाप्रभावशाली निशाचरने युद्धस्थलमें मुक्का तानकर वालिकुमारके मस्तकपर मारा॥ ९१॥

मुक्केकी मारसे अङ्गदका सिर फूट गया। उससे वेगपूर्वक गर्म-गर्म रक्तकी धारा बहने लगी। उनके माथेमें बड़ी जलन हुई। वे मूर्च्छित हो गये और थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब उस राक्षसकी शक्ति देखकर आश्चर्यचकित हो उठे॥ ९२॥

फिर अङ्गदने पर्वत-शिखरके समान अपना मुक्का ताना, जिसका वेग मृत्युके समान था। फिर उन महात्मा वालिकुमारने उससे नरान्तककी छातीमें प्रहार किया॥

मुक्केके आघातसे नरान्तकका हृदय विदीर्ण हो गया। वह मुँहसे आगकी ज्वाला-सी उगलने लगा। उसके सारे अङ्ग लहूलुहान हो गये और वह वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ९४॥

वालिकुमारके द्वारा युद्धस्थलमें उत्तम पराक्रमी नरान्तकके मारे जानेपर उस समय आकाशमें देवताओंने और भूतलपर वानरोंने बड़े जोरसे हर्षनाद किया॥ ९५॥

अङ्गदने श्रीरामचन्द्रजीके मनको अत्यन्त हर्ष प्रदान करनेवाला वह परम दुष्कर पराक्रम किया था। उससे श्रीरामचन्द्रजीको भी बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् भीषण कर्म करनेवाले अङ्गद पुनः युद्धके लिये हर्ष और उत्साहसे भर गये॥ ९६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका, नीलके द्वारा महोदरका तथा ऋषभके द्वारा महापार्श्वका वध

नरान्तकको मारा गया देख देवान्तक, पुलस्त्य-कुलनन्दन त्रिशिरा और महोदर—ये श्रेष्ठ राक्षस हाहाकार करने लगे॥ १॥

महोदरने मेघके समान गजराजपर बैठकर महापराक्रमी अङ्गदके ऊपर बड़े वेगसे धावा किया॥ २॥

भाईके मारे जानेसे संतप्त हुए बलवान् देवान्तकने

भयानक परिघ हाथमें लेकर अङ्गदपर आक्रमण किया॥ ३॥

इस प्रकार वीर त्रिशिरा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर बैठकर वालिकुमारका सामना करनेके लिये आया॥ ४॥

देवताओंका दर्प दलन करनेवाले उन तीनों निशाचरपतियोंके आक्रमण करनेपर वीर अङ्गदने विशाल शाखाओंसे युक्त एक वृक्षको उखाड़ लिया और जैसे इन्द्र प्रज्वलित वज्रका प्रहार करते हैं, उसी प्रकार उन वालिकुमारने बड़ी-बड़ी शाखाओंसे युक्त उस महान् वृक्षको सहसा देवान्तकपर दे मारा॥ ५-६॥

परंतु त्रिशिराने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण मारकर उस वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वृक्षको खण्डित हुआ देख कपिकुञ्जर अङ्गद तत्काल आकाशमें उछले और त्रिशिरापर वृक्षों तथा शिलाओंकी वर्षा करने लगे; किंतु क्रोधसे भरे हुए त्रिशिराने पैने बाणोंद्वारा उनको भी काट गिराया॥ ७-८॥

महोदरने अपने परिघके अग्रभागसे उन वृक्षोंको तोड़-फोड़ डाला। तत्पश्चात् सायकोंकी वर्षा करते हुए त्रिशिराने वीर अङ्गदपर धावा किया॥ ९॥

साथ ही कुपित हुए महोदरने हाथीके द्वारा आक्रमण करके वालिकुमारकी छातीमें वज्रतुल्य तोमरोंका प्रहार किया॥ १०॥

इसी प्रकार देवान्तक भी अङ्गदके निकट आ अत्यन्त क्रोधपूर्वक परिघके द्वारा उन्हें चोट पहुँचाकर तुरंत वेगपूर्वक वहाँसे दूर हट गया॥ ११॥

उन तीनों प्रमुख निशाचरोंने एक साथ ही धावा किया था, तो भी महातेजस्वी और प्रतापी वालिकुमार अङ्गदके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई॥ १२॥

वे अत्यन्त दुर्जय और बड़े वेगशाली थे। उन्होंने महान् वेग प्रकट करके महोदरके महान् गजराजपर आक्रमण किया और उसके मस्तकपर जोरसे थप्पड़ मारा॥ १३॥

युद्धस्थलमें उनके उस प्रहारसे गजराजकी दोनों आँखें निकलकर पृथ्वीपर गिर गयीं और वह तत्काल मर गया॥ १४॥

फिर महाबली वालिकुमारने उस हाथीका एक दाँत उखाड़ लिया और युद्धस्थलमें दौड़कर उसीके द्वारा देवान्तकपर चोट की॥ १५॥

तेजस्वी देवान्तक उस प्रहारसे व्याकुल हो गया और वायुके हिलाये हुए वृक्षकी भाँति काँपने लगा। उसके शरीरसे महावरके समान रंगवाला रक्तका महान् प्रवाह बह चला॥ १६॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी बलवान् देवान्तकने बड़ी कठिनाईसे अपनेको सँभालकर परिघ उठाया और उसे वेगपूर्वक घुमाकर अङ्गदपर दे मारा॥ १७॥

उस परिघकी चोट खाकर वानरराजकुमार अङ्गदने भूमिपर घुटने टेक दिये। फिर तुरंत ही उठकर वे ऊपरकी ओर उछले॥ १८॥

उछलते समय त्रिशिराने तीन सीधे जानेवाले भयंकर बाणोंद्वारा वानरराजकुमारके ललाटमें गहरी चोट पहुँचायी॥

तदनन्तर अङ्गदको तीन प्रमुख निशाचरोंसे घिरा हुआ जान हनुमान् और नील भी उनकी सहायताके लिये अग्रसर हुए॥ २०॥

उस समय नीलने त्रिशिरापर एक पर्वत-शिखर चलाया; किंतु उस बुद्धिमान् रावणपुत्रने तीखे बाण मारकर उसे तोड़-फोड़ डाला॥ २१॥

उसके सैकड़ों बाणोंसे विदीर्ण होकर उसकी एक-एक शिला बिखर गयी और वह पर्वत-शिखर आगकी चिनगारियों तथा ज्वालाके साथ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २२॥

अपने भाईका पराक्रम बढ़ता देख बलवान् देवान्तकको बड़ा हर्ष हुआ और उसने परिघ लेकर युद्धस्थलमें हनुमान्‌जीपर धावा किया॥ २३॥

उसे आते देख कपिकुञ्जर हनुमान्‌जीने उछलकर अपने वज्र-सरीखे मुक्केसे उसके सिरपर मारा॥ २४॥

बलवान् वायुकुमार महाकपि हनुमान्‌जीने उस समय देवान्तकके मस्तकपर प्रहार किया और अपनी भीषण गर्जनासे राक्षसोंको कम्पित कर दिया॥ २५॥

उनके मुष्टि-प्रहारसे देवान्तकका मस्तक फट गया और पिस उठा। दाँत, आँखें और लंबी जीभ बाहर निकल आयीं तथा वह राक्षसराजकुमार प्राणशून्य होकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २६॥

राक्षस-योद्धाओंमें प्रधान महाबली देवद्रोही देवान्तकके युद्धमें मारे जानेपर त्रिशिराको बड़ा क्रोध हुआ और उसने नीलकी छातीपर पैने बाणोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी॥ २७॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ महोदर पुनः शीघ्र ही एक पर्वताकार हाथीपर सवार हुआ, मानो सूर्यदेव मन्दराचलपर आरूढ़ हुए हों॥ २८॥

हाथीपर चढ़कर उसने नीलके ऊपर बाणोंकी विकट वर्षा की, मानो इन्द्रधनुष एवं विद्युन्मण्डलसे युक्त मेघ किसी पर्वतपर जलकी वर्षा कर रहा हो।

बाण-समूहोंकी निरन्तर वर्षा होनेसे वानरसेनापति नीलके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। उनका शरीर शिथिल हो गया। इस प्रकार महाबली महोदरने उन्हें मूर्च्छित करके उनके बल-विक्रमको कुण्ठित कर दिया॥

तत्पश्चात् होशमें आनेपर नीलने वृक्ष-समूहोंसे युक्त एक शैल-शिखरको उखाड़ लिया। उनका वेग बड़ा भयंकर था। उन्होंने उछलकर उस वृक्षको महोदरके मस्तकपर दे मारा॥ ३१॥

उस पर्वत-शिखरके आघातसे महोदर उस महान् गजराजके साथ ही चूर-चूर हो गया और मूर्च्छित एवं प्राणशून्य हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३२॥

पिताके भाईको मारा गया देख त्रिशिराके क्रोधकी सीमा न रही। उसने धनुष हाथमें ले लिया और हनुमान्‌जीको पैने बाणोंसे बींधना आरम्भ किया॥ ३३॥

तब पवनकुमारने कुपित होकर उस राक्षसके ऊपर पर्वतका शिखर चलाया, परंतु बलवान् त्रिशिराने अपने तीखे सायकोंसे उसके कई टुकड़े कर डाले॥

उस पर्वतशिखरके प्रहारको व्यर्थ हुआ देख कपिवर हनुमान्‌ने उस रणभूमिमें रावणपुत्र त्रिशिराके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की॥ ३५॥

किंतु प्रतापी त्रिशिराने आकाशमें होनेवाली वृक्षोंकी उस वृष्टिको अपने पैने बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया और बड़े जोरसे गर्जना की॥ ३६॥

तब हनुमान्‌जी कूदकर त्रिशिराके पास जा पहुँचे और जैसे कुपित सिंह गजराजको अपने पंजोंसे चीर डालता है, उसी प्रकार रोषसे भरे हुए उन पवनकुमारने त्रिशिराके घोड़ेको अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला॥ ३७॥

यह देख रावणकुमार त्रिशिराने शक्ति हाथमें ली, मानो यमराजने कालरात्रिको साथ ले लिया हो, वह शक्ति लेकर उसने पवनकुमार हनुमान्‌पर चलायी॥ ३८॥

जैसे आकाशसे उल्कापात हुआ हो, उसी प्रकार वह शक्ति, जिसकी गति कहीं कुण्ठित नहीं होती थी, चली; परंतु वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उसे अपने शरीरमें लगनेसे पहले ही हाथसे पकड़ लिया और तोड़ डाला, तोड़नेके बाद उन्होंने भयंकर गर्जना की॥ ३९॥

हनुमान्‌जीने वह भयानक शक्ति तोड़ दी, यह देख वानरवृन्द अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो मेघोंके समान गम्भीर गर्जना करने लगे॥ ४०॥

तब राक्षसशिरोमणि त्रिशिराने तलवार उठायी और कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी छातीपर उसकी भरपूर चोट की॥ ४१॥

तलवारकी चोटसे घायल हो पराक्रमी पवनकुमार हनुमान्‌ने त्रिशिराकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया॥

उनका थप्पड़ लगते ही महातेजस्वी त्रिशिरा अपनी चेतना खो बैठा। उसके हाथसे हथियार खिसक गया और वह स्वयं भी पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४३॥

गिरते समय उस राक्षसके खड्गको छीनकर पर्वताकार महाकपि हनुमान्‌जी सब राक्षसोंको भयभीत करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ४४॥

उनकी वह गर्जना उस निशाचरसे सही नहीं गयी, अतः वह सहसा उछलकर खड़ा हो गया। उठते ही उसने हनुमान्‌जीको एक मुक्का मारा॥ ४५॥

उसके मुक्केकी चोट खाकर महाकपि हनुमान्‌जीको बड़ा क्रोध हुआ। कुपित होनेपर उन्होंने उस राक्षसका मुकुटमण्डित मस्तक पकड़ लिया॥ ४६॥

फिर तो जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके तीनों मस्तकोंको वज्रसे काट गिराया था, उसी प्रकार कुपित हुए पवनपुत्र हनुमान्‌ने रावणपुत्र त्रिशिराके किरीट और कुण्डलोंसहित तीनों मस्तकोंको तीखी तलवारसे काट डाला॥ ४७॥

उन मस्तकोंकी सभी इन्द्रियाँ विशाल थीं। उनकी आँखें प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रही थीं। उस इन्द्रद्रोही त्रिशिराके वे तीनों सिर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिरे, जैसे आकाशसे तारे टूटकर गिरते हैं॥ ४८॥

देवद्रोही त्रिशिरा जब इन्द्रतुल्य पराक्रमी हनुमान्‌जीके हाथसे मारा गया, तब समस्त वानर हर्षनाद करने लगे, धरती काँपने लगी तथा राक्षस चारों दिशाओंकी ओर भाग चले॥ ४९॥

त्रिशिरा तथा महोदरको मारा गया देख और दुर्जय वीर देवान्तक एवं नरान्तकको भी कालके गालमें गया हुआ जान अत्यन्त अमर्षशील राक्षसशिरोमणि मत्त (महापार्श्व) कुपित हो उठा। उसने एक तेजस्विनी गदा हाथमें ली, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी॥

उसपर सोनेका पत्र जड़ा हुआ था। युद्धस्थलमें पहुँचनेपर वह शत्रुओंके रक्त और मांसमें सन जाती थी। उसका आकार विशाल था। वह सुन्दर शोभासे सम्पन्न तथा शत्रुओंके रक्तसे तृप्त होनेवाली थी॥ ५२॥

उसका अग्रभाग तेजसे प्रज्वलित होता था। वह लाल रंगके फूलोंसे सजायी गयी थी तथा ऐरावत,

पुण्डरीक और सार्वभौम नामक दिग्गजोंको भी भयभीत करनेवाली थी॥ ५३॥

उस गदाको हाथमें लेकर क्रोधसे भरा हुआ राक्षस-शिरोमणि मत्त (महापार्श्व) प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा और वानरोंकी ओर दौड़ा॥ ५४॥

तब ऋषभ नामक बलवान् वानर उछलकर रावणके छोटे भाई मत्तानीक (महापार्श्व)-के पास आ पहुँचे और उसके सामने खड़े हो गये॥ ५५॥

पर्वताकार वानरवीर ऋषभको सामने खड़ा देख कुपित हुए महापार्श्वने अपनी वज्रतुल्य गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया॥ ५६॥

उसकी उस गदाके आघातसे वानरशिरोमणि ऋषभका वक्ष:स्थल क्षत-विक्षत हो गया। वे काँप उठे और अधिक मात्रामें खूनकी धारा बहाने लगे॥ ५७॥

बहुत देरके बाद होशमें आनेपर वानरराज ऋषभ कुपित हो उठे और महापार्श्वकी ओर देखने लगे। उस समय उनके ओठ फड़क रहे थे॥ ५८॥

वानरवीरोंमें प्रधान ऋषभका रूप पर्वतके समान जान पड़ता था। वे बड़े वेगशाली थे। उन्होंने वेगपूर्वक उस राक्षसके पास पहुँचकर मुक्का ताना और सहसा उसकी छातीपर प्रहार किया॥ ५९॥

फिर तो महापार्श्व जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे। इधर ऋषभ उस निशाचरकी यमदण्डके समान भयंकर गदाको शीघ्र ही हाथमें लेकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ६०॥

देवद्रोही महापार्श्व दो घड़ीतक मुर्देकी भाँति पड़ा रहा। फिर होशमें आनेपर वह सहसा उछलकर खड़ा हो गया। उसका रक्तरञ्जित शरीर संध्याकालके बादलोंके समान लाल दिखायी देता था। उसने वरुणपुत्र ऋषभको गहरी चोट पहुँचायी॥ ६१॥

उस चोटसे ऋषभ मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर वे पुन: उछलकर सामने आ गये और उन्होंने युद्धस्थलमें महापार्श्वकी उसी गदाको, जो किसी पर्वतराजकी चट्टानके समान जान पड़ती थी, घुमाकर उस निशाचरपर दे मारा॥ ६२॥

उसकी उस भयंकर गदाने देवता, यज्ञ और ब्राह्मणसे शत्रुता रखनेवाले उस रौद्र-राक्षसके शरीरपर चोट करके उसके वक्ष:स्थलको विदीर्ण कर दिया। फिर तो जैसे पर्वतराज हिमालय गेरु आदि धातुओंसे मिला हुआ जल बहाता है, उसी प्रकार वह भी अधिक मात्रामें रक्त बहाने लगा॥ ६३॥

उस समय उस राक्षसने महामना ऋषभके हाथसे अपनी गदा लेनेके लिये उनपर धावा किया; किंतु ऋषभने उस भयानक गदाको हाथमें लेकर बारंबार घुमाया और बड़े वेगसे महापार्श्वपर आक्रमण किया। इस तरह उन महामनस्वी वानर-वीरने युद्धके मुहानेपर उस निशाचरकी जीवन-लीला समाप्त कर दी थी॥ ६४½॥

अपनी ही गदाकी चोट खाकर महापार्श्वके दाँत टूट गये और आँखें फूट गयीं। वह वज्रके मारे हुए पर्वत-शिखरकी भाँति तत्काल धराशायी हो गया॥ ६५½॥

जिसकी आँखें नष्ट और चेतना विलुप्त हो गयी थी, वह राक्षस महापार्श्व जब गतायु होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राक्षसोंकी सेना सब ओर भाग चली॥ ६६॥

रावणके भाई महापार्श्वका वध हो जानेपर राक्षसोंकी वह समुद्रके समान विशाल सेना हथियार फेंककर केवल जान बचानेके लिये सब ओर भागने लगी, मानो महासागर फूटकर सब ओर बहने लगा हो॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

अतिकायका भयंकर युद्ध और लक्ष्मणके द्वारा उसका वध

अतिकायने देखा, शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाली मेरी भयंकर सेना व्यथित हो उठी है, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी मेरे भाइयोंका संहार हो गया है तथा मेरे चाचा—दोनों भाई युद्धोन्मत्त (महोदर) और मत्त (महापार्श्व) भी समराङ्गणमें मार गिराये गये हैं, तब उस महातेजस्वी निशाचरको बड़ा क्रोध हुआ। उसे ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हो चुका था। अतिकाय पर्वतके समान विशालकाय तथा देवता और दानवोंके दर्पका दलन करनेवाला था॥ १—३॥

वह इन्द्रका शत्रु था। उसने सहस्रों सूर्योंके समूहकी भाँति देदीप्यमान तेजस्वी रथपर आरूढ़ होकर वानरोंपर धावा किया॥ ४॥

उसके मस्तकपर किरीट और कानोंमें शुद्ध सुवर्णके बने हुए कुण्डल झलमला रहे थे। उसने धनुषकी टङ्कार करके अपना नाम सुनाया और बड़े जोरसे गर्जना की॥ ५॥

उस सिंहनादसे, अपने नामकी घोषणासे और प्रत्यञ्चाकी भयानक टङ्कारसे उसने वानरोंको भयभीत कर दिया॥ ६॥

उसके शरीरकी विशालता देखकर वे वानर ऐसा मानने लगे कि यह कुम्भकर्ण ही फिर उठकर खड़ा हो गया। यह सोचकर सब वानर भयसे पीड़ित हो एक-दूसरेका सहारा लेने लगे॥ ७॥

त्रिविक्रम-अवतारके समय बढ़े हुए भगवान् विष्णुके विराट् रूपकी भाँति उसका शरीर देखकर वे वानर-सैनिक भयके मारे इधर-उधर भागने लगे॥ ८॥

अतिकायके निकट जाते ही वानरोंके चित्तपर मोह छा गया। वे युद्धस्थलमें लक्ष्मणके बड़े भाई शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये॥ ९॥

रथपर बैठे हुए पर्वताकार अतिकायको श्रीरामचन्द्रजीने भी देखा। वह हाथमें धनुष लिये कुछ दूरपर प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना कर रहा था॥ १०॥

उस महाकाय निशाचरको देखकर श्रीरामचन्द्रजीको भी बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने वानरोंको सान्त्वना देकर विभीषणसे पूछा—॥ ११॥

'विभीषण! हजार घोड़ोंसे जुते हुए विशाल रथपर बैठा हुआ वह पर्वताकार निशाचर कौन है? उसके हाथमें धनुष है और आँखें सिंहके समान तेजस्विनी दिखायी देती हैं॥ १२॥

'यह भूतोंसे घिरे हुए भूतनाथ महादेवजीके समान तीखे शूल तथा अत्यन्त तेजधारवाले तेजस्वी प्रासों और तोमरोंसे घिरकर अद्भुत शोभा पा रहा है॥ १३॥

'इतना ही नहीं, कालकी जिह्वाके समान प्रकाशित होनेवाली रथशक्तियोंसे घिरा हुआ यह वीर निशाचर विद्युन्मालाओंसे आवृत मेघके समान प्रकाशित हो रहा है॥ १४॥

'जिनके पृष्ठभागमें सोने मढ़े हुए हैं, ऐसे अनेकानेक सुसज्जित धनुष उसके श्रेष्ठ रथकी सब ओरसे उसी तरह शोभा बढ़ा रहे हैं, जैसे इन्द्रधनुष आकाशको सुशोभित करता है॥ १५॥

'यह राक्षसोंमें सिंहके समान पराक्रमी और रथियोंमें श्रेष्ठ वीर अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा रणभूमिकी शोभा बढ़ाता हुआ मेरे सामने आ रहा है॥ १६॥

'इसके ध्वजके शिखरपर पताकामें राहुका चिह्न अङ्कित है, जिससे रथकी बड़ी शोभा हो रही है। यह सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले बाणोंसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा है॥ १७॥

'इसके धनुषका पृष्ठभाग सोनेसे मढ़ा हुआ तथा पुष्प आदिसे अलंकृत है। वह आदि, मध्य और अन्त तीन स्थानोंमें झुका हुआ है। उसकी प्रत्यञ्चासे मेघोंकी गर्जनाके समान टंकार-ध्वनि प्रकट होती है। इस निशाचरका धनुष इन्द्र-धनुषके समान शोभा पाता है॥ १८॥

'इसका विशाल रथ ध्वजा, पताका और अनुकर्ष (रथके नीचे लगे हुए आधारभूत काष्ठ)-से युक्त, चार सारथियोंसे नियन्त्रित और मेघकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाला है॥ १९॥

'इसके रथपर बीस तरकस, दस भयंकर धनुष और आठ सुनहरे एवं पिङ्गलवर्णकी प्रत्यञ्चाएँ रखी हुई हैं॥ २०॥

'दोनों बगलमें दो चमकीली तलवारें शोभा पा रही हैं, जिनकी मूँठें चार हाथकी और लंबाई दस हाथकी है॥ २१॥

'गलेमें लाल रंगकी माला धारण किये महान् पर्वतके समान आकारवाला यह धीरवीर निशाचर काले रंगका दिखायी देता है। इसका विशाल मुख कालके मुखके समान भयंकर है तथा यह मेघोंकी ओटमें स्थित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होता है॥ २२॥

'इसकी बाँहोंमें सोनेके बाजूबंद बँधे हुए हैं। उन भुजाओंके द्वारा यह विशालकाय निशाचर दो ऊँचे शिखरोंसे युक्त गिरिराज हिमालयके समान शोभा पाता है॥ २३॥

'इसका अत्यन्त भीषण मुखमण्डल दोनों कुण्डलोंसे मण्डित हो पुनर्वसु नामक दो नक्षत्रोंके बीच स्थित हुए परिपूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा है॥ २४॥

'महाबाहो! तुम मुझे इस श्रेष्ठ राक्षसका परिचय दो, जिसे देखते ही सब वानर भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले हैं'॥ २५॥

अमित तेजस्वी राजकुमार श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर महातेजस्वी विभीषणने रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥ २६॥

'भगवन्! जो कुबेरका छोटा भाई, महातेजस्वी, महाकाय, भयानक कर्म करनेवाला तथा राक्षसोंका स्वामी दशमुख राजा रावण है, उसके एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बलमें रावणके ही समान है। वह वृद्ध पुरुषोंका सेवन करनेवाला, वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है॥ २७-२८॥

'हाथी-घोड़ोंकी सवारी करने, तलवार चलाने, धनुषपर बाणोंका संधान करने, प्रत्यञ्चा खींचने, लक्ष्य बेधने, साम और दानका प्रयोग करने तथा न्याययुक्त बर्ताव एवं मन्त्रणा देनेमें वह सबके द्वारा सम्मानित है॥ २९॥

'उसीके बाहुबलका आश्रय लेकर लङ्कापुरी सदा निर्भय रहती आयी है। वही यह वीर निशाचर है। यह रावणकी दूसरी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र है। इसे लोग अतिकायके नामसे जानते हैं॥ ३०॥

'तपस्यासे विशुद्ध अन्तःकरणवाले इस अतिकायने दीर्घकालतक ब्रह्माजीकी आराधना की थी। इसने ब्रह्माजीसे अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं और उनके द्वारा बहुत-से शत्रुओंको पराजित किया है॥ ३१॥

'ब्रह्माजीने इसे देवताओं और असुरोंसे न मारे जानेका वरदान दिया है। ये दिव्य कवच और सूर्यके समान तेजस्वी रथ भी उन्हींके दिये हुए हैं॥ ३२॥

'इसने देवता और दानवोंको सैकड़ों बार पराजित किया है, राक्षसोंकी रक्षा की है और यक्षोंको मार भगाया है॥ ३३॥

'इस बुद्धिमान् राक्षसने अपने बाणोंद्वारा इन्द्रके वज्रको भी कुण्ठित कर दिया है तथा युद्धमें जलके स्वामी वरुणके पाशको भी सफल नहीं होने दिया है॥

'राक्षसोंमें श्रेष्ठ यह बुद्धिमान् रावणकुमार अतिकाय बड़ा बलवान् तथा देवताओं और दानवोंके दर्पको भी दलन करनेवाला है॥ ३५॥

'पुरुषोत्तम! अपने सायकोंसे यह सारी वानर-सेनाका संहार कर डाले, इसके पहले ही आप इस राक्षसको परास्त करनेका शीघ्र प्रयत्न कीजिये'॥ ३६॥

विभीषण और भगवान् श्रीराममें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बलवान् अतिकाय वानरोंकी सेनामें घुस आया और बारम्बार गर्जना करता हुआ अपने धनुषपर टंकार देने लगा॥ ३७॥

रथियोंमें श्रेष्ठ और भयंकर शरीरवाले उस राक्षसको रथपर बैठकर आते देख कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ आदि जो प्रधान-प्रधान महामनस्वी वानर थे, वे वृक्ष तथा पर्वतशिखर धारण किये एक साथ ही उसपर टूट पड़े॥ ३८-३९॥

परंतु अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायने अपने सुवर्णभूषित बाणोंसे वानरोंके चलाये हुए वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको काट गिराया॥ ४०॥

साथ ही उस बलवान् और भीमकाय निशाचरने युद्धस्थलमें सामने आये हुए उन समस्त वानरोंको लोहेके बाणोंसे बींध डाला॥ ४१॥

उसकी बाणवर्षासे आहत हो सबके शरीर क्षत-विक्षत हो गये। सबने हार मान ली और कोई भी उस महासमरमें अतिकायका सामना करनेमें समर्थ न हो सके॥ ४२॥

जैसे जवानीके जोशसे भरा हुआ कुपित सिंह मृगोंके झुण्डको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार वह राक्षस वानरवीरोंकी उस सेनाको त्रास देने लगा॥ ४३॥

वानरोंके झुण्डमें विचरते हुए राक्षसराज अतिकायने किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मारा, जो उसके साथ युद्ध न कर रहा हो। धनुष और तरकस धारण किये वह निशाचर उछलकर श्रीरामके पास आ गया तथा बड़े गर्वसे इस प्रकार बोला—॥ ४४॥

'मैं धनुष और बाण लेकर रथपर बैठा हूँ। किसी साधारण प्राणीसे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है। जिसके अंदर शक्ति हो, साहस और उत्साह हो, वह शीघ्र यहाँ आकर मुझे युद्धका अवसर दे'॥ ४५॥

उसके ये अहंकारपूर्ण वचन सुनकर शत्रुहन्ता सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ। उसकी बातोंको सहन न कर सकनेके कारण वे आगे बढ़ आये और किंचित् मुसकराकर उन्होंने अपना धनुष उठाया॥

कुपित हुए लक्ष्मण उछलकर आगे आये और तरकससे बाण खींचकर अतिकायके सामने आ अपने विशाल धनुषको खींचने लगे॥ ४७॥

लक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका वह शब्द बड़ा भयंकर था। वह सारी पृथ्वी, आकाश, समुद्र तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँज उठा और निशाचरोंको त्रास देने लगा॥ ४८॥

सुमित्राकुमारके धनुषकी वह भयानक टंकार सुनकर उस समय महातेजस्वी बलवान् राक्षसराजकुमार अतिकायको बड़ा विस्मय हुआ॥ ४९॥

लक्ष्मणको अपना सामना करनेके लिये उठा देख

अतिकाय रोषसे भर गया और तीखा बाण हाथमें लेकर इस प्रकार बोला— ॥ ५० ॥

'सुमित्राकुमार! तुम अभी बालक हो। पराक्रम करनेमें कुशल नहीं हो, अतः लौट जाओ। मैं तुम्हारे लिये कालके समान हूँ। मुझसे जूझनेकी इच्छा क्यों करते हो?॥ ५१ ॥

'मेरे हाथसे छूटे हुए बाणोंका वेग गिरिराज हिमालय भी नहीं सह सकता। पृथ्वी और आकाश भी उसे नहीं सहन कर सकते॥ ५२ ॥

'तुम सुखसे सोयी (शान्त) हुई प्रलयाग्निको क्यों जगाना (प्रज्वलित करना) चाहते हो? धनुषको यहीं छोड़कर लौट जाओ। मुझसे भिड़कर अपने प्राणोंका परित्याग न करो॥ ५३ ॥

'अथवा तुम बड़े अहंकारी हो, इसीलिये लौटना नहीं चाहते। अच्छा, खड़े रहो। अभी अपने प्राणोंसे हाथ धोकर यमलोककी यात्रा करोगे॥ ५४ ॥

'शत्रुओंका दर्प चूर्ण करनेवाले मेरे इन तीखे बाणोंको, जो तपे हुए सुवर्णसे भूषित हैं, देखो; ये भगवान् शंकरके त्रिशूलकी समानता करते हैं॥ ५५ ॥

'जैसे कुपित हुआ सिंह गजराजका खून पीता है, उसी प्रकार यह सर्पके समान भयंकर बाण तुम्हारे रक्तका पान करेगा।' ऐसा कहकर अतिकायने अत्यन्त कुपित हो अपने धनुषपर बाणका संधान किया॥ ५६ ॥

युद्धस्थलमें अतिकायके रोष और गर्वसे भरे हुए इस वचनको सुनकर अत्यन्त बलशाली एवं मनस्वी राजकुमार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ। वे यह महान् अर्थसे युक्त वचन बोले— ॥ ५७ ॥

'दुरात्मन्! केवल बातें बनानेसे तू बड़ा नहीं हो सकता। सिर्फ डींग हाँकनेसे कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं होते। मैं हाथमें धनुष और बाण लेकर तेरे सामने खड़ा हूँ। तू अपना सारा बल मुझे दिखा॥ ५८ ॥

'पराक्रमके द्वारा अपनी वीरताका परिचय दे। झूठी शेखी बघारना तेरे लिये उचित नहीं है। शूर वही माना गया है, जिसमें पुरुषार्थ हो॥ ५९ ॥

'तेरे पास सब तरहके हथियार मौजूद हैं। तू धनुष लेकर रथपर बैठा हुआ है; अतः बाणों अथवा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा पहले अपना पराक्रम दिखा ले॥ ६० ॥

'उसके बाद मैं अपने तीखे बाणोंसे तेरा मस्तक उसी तरह काट गिराऊँगा, जैसे वायु कालक्रमसे पके हुए ताड़के फलको उसके वृन्त (बौंडी)-से नीचे गिरा देती है॥ ६१ ॥

'आज तपे हुए सुवर्णसे विभूषित मेरे बाण अपनी नोंकद्वारा किये गये छिद्रसे निकले हुए तेरे शरीरके रक्तका पान करेंगे॥ ६२ ॥

'तू मुझे बालक जानकर मेरी अवहेलना न कर। मैं बालक होऊँ अथवा वृद्ध, संग्राममें तो तू मुझे अपना काल ही समझ ले॥ ६३ ॥

'वामनरूपधारी भगवान् विष्णु देखनेमें बालक ही थे; किंतु अपने तीन ही पगोंसे उन्होंने समूची त्रिलोकी नाप ली थी।' लक्ष्मणकी वह परम सत्य और युक्तियुक्त बात सुनकर अतिकायके क्रोधकी सीमा न रही। उसने एक उत्तम बाण अपने हाथमें ले लिया॥ ६४ ॥

तदनन्तर विद्याधर, भूत, देवता, दैत्य, महर्षि तथा महामना गुह्यकगण उस युद्धको देखनेके लिये आये॥

उस समय अतिकायने कुपित हो धनुषपर वह उत्तम बाण चढ़ाया और आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए-से उसे लक्ष्मणपर चला दिया॥ ६६ ॥

किंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने एक अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा अपनी ओर आते हुए उस विषधर सर्पके तुल्य भयंकर एवं तीखे बाणको काट डाला॥ ६७ ॥

जैसे सर्पका फन कट जाय, उसी प्रकार उस बाणको खण्डित हुआ देख अत्यन्त कुपित हुए अतिकायने पाँच बाणोंको धनुषपर रखा॥ ६८ ॥

फिर उस निशाचरने लक्ष्मणपर ही वे पाँचों बाण चला दिये। वे बाण उनके समीप अभी आने भी नहीं पाये थे कि लक्ष्मणने तीखे सायकोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ६९ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अपने पैने सायकोंसे उन बाणोंका खण्डन करनेके पश्चात् एक तेज बाण हाथमें लिया, जो अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था॥ ७० ॥

उसे लेकर लक्ष्मणने अपने श्रेष्ठ धनुषपर रखा, उसकी प्रत्यञ्चाको खींचा और बड़े वेगसे वह सायक अतिकायपर छोड़ दिया॥ ७१ ॥

धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये तथा झुकी हुई गाँठवाले उस बाणके द्वारा पराक्रमी लक्ष्मणने राक्षसश्रेष्ठ अतिकायके ललाटमें गहरा आघात किया॥

वह बाण उस भयानक राक्षसके ललाटमें धँस गया और रक्तसे भींगकर पर्वतसे सटे हुए किसी

नागराजके समान दिखायी देने लगा॥ ७३॥

लक्ष्मणके बाणसे अत्यन्त पीड़ित हो वह राक्षस काँप उठा। ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् रुद्रके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरका भयंकर गोपुर हिल उठा था। फिर थोड़ी ही देरमें सँभलकर महाबली अतिकाय बड़ी चिन्तामें पड़ गया और कुछ सोच-विचारकर बोला— ॥ ७४ १/२ ॥

'शाबाश! इस प्रकार अमोघ बाणका प्रयोग करनेके कारण तुम मेरे स्पृहणीय शत्रु हो।' मुँह फैलाकर ऐसा कहनेके पश्चात् अतिकाय अपनी दोनों विशाल भुजाओंको काबूमें करके रथके पिछले भागमें बैठकर उस रथके द्वारा ही आगे बढ़ा॥ ७५-७६॥

उस राक्षसशिरोमणि वीरने क्रमशः एक, तीन, पाँच और सात सायकोंको लेकर उन्हें धनुषपर चढ़ाया और वेगपूर्वक खींचकर चला दिया॥ ७७॥

उस राक्षसराजके धनुषसे छूटे हुए उन सुवर्णभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी तथा कालके समान भयंकर बाणोंने आकाशको प्रकाशसे पूर्ण-सा कर दिया॥ ७८॥

परंतु रघुनाथजीके छोटे भाई लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके उस निशाचरद्वारा चलाये हुए उन बाणसमूहोंको तेज धारवाले बहुसंख्यक सायकोंद्वारा काट गिराया॥ ७९॥

उन बाणोंको कटा हुआ देख इन्द्रद्रोही रावणकुमारको बड़ा क्रोध हुआ और उसने एक तीखा बाण हाथमें लिया॥ ८०॥

उसे धनुषपर रखकर उस महातेजस्वी वीरने सहसा छोड़ दिया और उसके द्वारा सामने आते हुए सुमित्राकुमारकी छातीमें आघात किया॥ ८१॥

अतिकायके उस बाणकी चोट खाकर सुमित्राकुमार युद्धस्थलमें अपने वक्षःस्थलसे तीव्रगतिसे रक्त बहाने लगे, मानो कोई मतवाला हाथी मस्तकसे मदकी वर्षा कर रहा हो॥ ८२॥

फिर सामर्थ्यशाली लक्ष्मणने सहसा अपनी छातीसे उस बाणको निकाल दिया और एक तीखा सायक हाथमें लेकर उसे दिव्यास्त्रसे संयोजित किया॥ ८३॥

उस समय अपने उस सायकको उन्होंने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित होते ही महात्मा लक्ष्मणके धनुषपर रखा हुआ वह बाण तत्काल प्रज्वलित हो उठा॥ ८४॥

उधर अत्यन्त तेजस्वी अतिकायने भी रौद्रास्त्रको एक सुवर्णमय पंखवाले सर्पाकार बाणपर समायोजित किया॥ ८५॥

इतनेहीमें लक्ष्मणने दिव्यास्त्रकी शक्तिसे सम्पन्न उस प्रज्वलित एवं भयंकर बाणको अतिकायके ऊपर चलाया, मानो यमराजने अपने कालदण्डका प्रयोग किया हो॥ ८६॥

आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित हुए उस बाणको अपनी ओर आते देख निशाचर अतिकायने तत्काल ही अपने भयंकर बाणको सूर्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके चलाया॥ ८७॥

उन दोनों सायकोंके अग्रभाग तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। आकाशमें पहुँचकर वे दोनों कुपित हुए दो सर्पोंकी भाँति आपसमें टकरा गये और एक-दूसरेको दग्ध करके पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८८-८९॥

वे दोनों ही बाण उत्तम कोटिके थे और अपनी दीप्तिसे प्रकाशित हो रहे थे, तथापि एक-दूसरेके तेजसे भस्म होकर अपना-अपना तेज खो बैठे। इसलिये भूतलपर निष्प्रभ होनेके कारण उनकी शोभा नहीं हो रही थी॥

तदनन्तर अतिकायने अत्यन्त कुपित हो त्वष्टा देवताके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक सींकका बाण छोड़ा; परंतु पराक्रमी लक्ष्मणने उस अस्त्रको ऐन्द्रास्त्रसे काट दिया॥ ९१॥

सींकके बाणको नष्ट हुआ देख रावणपुत्र कुमार अतिकायके क्रोधकी सीमा न रही। उस राक्षसने एक सायकको याम्यास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसे लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया; परंतु लक्ष्मणने वायव्यास्त्रद्वारा उसको भी नष्ट कर दिया॥ ९२-९३॥

तत्पश्चात् जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार अत्यन्त कुपित हुए लक्ष्मणने रावणकुमार अतिकायपर बाणधाराकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ९४॥

अतिकायने एक दिव्य कवच बाँध रखा था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे। लक्ष्मणके बाण अतिकायतक पहुँचकर उसके कवचसे टकराते और नोक टूट जानेके कारण सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे॥ ९५॥

उन बाणोंको असफल हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महायशस्वी लक्ष्मणने पुनः सहस्रों बाणोंकी वर्षा की॥ ९६॥

महाबली अतिकायका कवच अभेद्य था, इसलिये युद्धस्थलमें बाण-समूहोंकी वर्षा होनेपर भी वह राक्षस व्यथित नहीं होता था॥ ९७॥

उसने लक्ष्मणपर विषधर सर्पके समान भयंकर बाण चलाया। उस बाणसे सुमित्राकुमारके मर्मस्थलमें

चोट पहुँची॥ ९८॥

अत: शत्रुओंको संताप देनेवाले लक्ष्मण दो घड़ीतक अचेत-अवस्थामें पड़े रहे। फिर होशमें आनेपर उन महाबली शत्रुदमन वीरने बाणोंकी वर्षासे शत्रुके रथकी ध्वजाको नष्ट कर दिया और चार उत्तम सायकोंसे रणभूमिमें उसके घोड़ों तथा सारथिको भी यमलोक पहुँचा दिया॥ ९९-१००॥

तत्पश्चात् सम्भ्रमरहित नरश्रेष्ठ सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस राक्षसके वधके लिये जाँचे-बूझे हुए बहुत-से अमोघ बाण छोड़े, तथापि वे समराङ्गणमें उस निशाचरके शरीरको वेध न सके॥ १०१ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर वायुदेवताने उनके पास आकर कहा— 'सुमित्रानन्दन! इस राक्षसको ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हुआ है। यह अभेद्य कवचसे ढका हुआ है। अत: इसको ब्रह्मास्त्रसे विदीर्ण कर डालो; अन्यथा यह नहीं मारा जा सकेगा। यह कवचधारी बलवान् निशाचर अन्य अस्त्रोंके लिये अवध्य है'॥ १०२-१०३॥

लक्ष्मण इन्द्रके समान पराक्रमी थे। उन्होंने वायुदेवताका उपर्युक्त वचन सुनकर एक भयंकर वेगवाले बाणको सहसा ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर रखा॥ १०४॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणके द्वारा तेज धारवाले उस श्रेष्ठ बाणमें ब्रह्मास्त्रकी संयोजना की जानेपर उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ, चन्द्रमा और सूर्य आदि बड़े-बड़े ग्रह तथा अन्तरिक्षलोकके प्राणी थर्रा उठे और भूमण्डलमें महान् कोलाहल मच गया॥ १०५॥

सुमित्राकुमारने धनुषपर रखे हुए उस सुन्दर पंखवाले बाणको जब ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया, तब वह यमदूतके समान भयंकर और वज्रके समान अमोघ हो गया। उन्होंने युद्धस्थलमें उस बाणको इन्द्रद्रोही रावणके बेटे अतिकायको लक्ष्य करके चला दिया॥ १०६॥

लक्ष्मणके चलाये हुए उस बाणका वेग बहुत बढ़ा हुआ था। उसके पंख गरुड़के समान थे और उनमें हीरे जड़े हुए थे; इसलिये उनकी विचित्र शोभा होती थी। अतिकायने समराङ्गणमें उस बाणको उस समय वायुके समान भयंकर वेगसे अपनी ओर आते देखा॥ १०७॥

उसे देखकर अतिकायने सहसा उसके ऊपर बहुत-से पैने बाण चलाये तो भी वह गरुड़के समान वेगशाली सायक बड़े वेगसे उसके पास जा पहुँचा॥

प्रलयङ्कर कालके समान प्रज्वलित हुए उस बाणको अत्यन्त निकट आया देखकर भी अतिकायकी युद्धविषयक चेष्टा नष्ट नहीं हुई। उसने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल तथा बाणोंद्वारा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया॥ १०९॥

परंतु अग्निके समान प्रज्वलित हुए उस बाणने उन अद्भुत अस्त्रोंको व्यर्थ करके अतिकायके मुकुटमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर दिया॥ ११०॥

लक्ष्मणके बाणसे कटा हुआ राक्षसका वह शिरस्त्राणसहित मस्तक हिमालयके शिखरकी भाँति सहसा पृथ्वीपर जा पड़ा॥ १११॥

उसके वस्त्र और आभूषण सब ओर बिखर गये। उसे धरतीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए समस्त निशाचर व्यथित हो उठे॥ ११२॥

उनके मुखपर विषाद छा गया। उनपर जो मार पड़ी थी, उससे थक जानेके कारण वे और भी दु:खी हो गये थे। अत: वे बहुसंख्यक राक्षस सहसा विकृत स्वरमें जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगे॥ ११३॥

सेनानायकके मारे जानेपर निशाचरोंका युद्ध-विषयक उत्साह नष्ट हो गया, अत: वे भयभीत हो तुरंत ही लङ्कापुरीकी ओर भाग चले॥ ११४॥

इधर उस भयंकर बलशाली दुर्जय शत्रुके मारे जानेपर बहुसंख्यक वानर हर्ष और उत्साहसे भर गये। उनके मुख प्रफुल्ल कमलोंके समान खिल उठे और वे अभीष्ट विजयके भागी वीरवर लक्ष्मणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ११५॥

युद्धस्थलमें अत्यन्त बलशाली और मेघके समान विशाल अतिकायको धराशायी करके लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए। वे उस समय वानर-समूहोंसे सम्मानित हो तुरंत ही श्रीरामचन्द्रजीके पास गये॥ ११६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

रावणकी चिन्ता तथा उसका राक्षसोंको पुरीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेका आदेश

महात्मा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायको मारा गया सुनकर राजा रावण उद्विग्न हो उठा और इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

'अत्यन्त अमर्षशील धूम्राक्ष, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन, प्रहस्त तथा कुम्भकर्ण—ये महाबली वीर राक्षस सदा युद्धकी अभिलाषा रखते थे। ये सब-के-सब शत्रुओंकी सेनाओंपर विजय पाते और स्वयं विपक्षियोंसे कभी पराजित नहीं होते थे॥ २-३ ॥

'परंतु अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामने नाना प्रकारके शस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण उन विशालकाय वीर राक्षसोंका सेनासहित संहार कर डाला॥ ४॥

'और भी बहुत-से महामनस्वी शूरवीर राक्षस उनके द्वारा मार गिराये गये। जिसके बल और पराक्रम सर्वत्र विख्यात हैं, उस मेरे बेटे इन्द्रजित्ने उन दोनों भाइयोंको वरदानप्राप्त घोर नागस्वरूप बाणोंसे बाँध लिया था। वह घोर बन्धन समस्त देवता और महाबली असुर भी नहीं खोल सकते थे। यक्ष, गन्धर्व और नागोंके लिये भी उस बन्धनसे छुटकारा दिलाना असम्भव था, तो भी ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण उस बाण-बन्धनसे मुक्त हो गये। न जाने कौन-सा प्रभाव था, कैसी माया थी अथवा किस तरहकी मोहिनी ओषधि आदिका प्रयोग किया गया था, जिससे वे उस बन्धनसे छूट गये॥ ५—७½ ॥

'मेरी आज्ञासे जो-जो शूरवीर योद्धा राक्षस युद्धके लिये निकले, उन सबको समराङ्गणमें महाबली वानरोंने मार डाला॥ ८½ ॥

'मैं आज ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें लक्ष्मणसहित रामको और सेना तथा सुग्रीवसहित वीर विभीषणको नष्ट कर दे॥ ९½ ॥

'अहो! राम बड़े बलवान् हैं, निश्चय ही उनका अस्त्र-बल महान् है; जिनके बल-विक्रमका सामना करके असंख्य राक्षस कालके गालमें चले गये॥ १०½ ॥

'मैं उन वीर रघुनाथको रोग-शोकसे रहित साक्षात् नारायणरूप मानता हूँ; क्योंकि उन्हींके भयसे लङ्कापुरीके सभी दरवाजे और सदर फाटक सदा बंद रहते हैं॥ ११½ ॥

'राक्षसो! तुमलोग हर समय सावधान रहकर सैनिकोंसहित इस पुरीकी और जहाँ सीता रखी गयी हैं, उस अशोक-शिविर वाटिकाकी भी विशेषरूपसे रक्षा करो॥ १२½ ॥

'अशोक-वाटिकामें कब कौन प्रवेश करता है और कब वहाँसे बाहर निकलता है, इसकी हमें सदा ही जानकारी रखनी चाहिये। जहाँ-जहाँ सैनिकोंके शिविर हों, वहाँ बारम्बार देखभाल करना, सब ओर अपने-अपने सैनिकोंके साथ पहरेपर रहना॥ १३-१४ ॥

'निशाचरो! प्रदोषकाल, आधी रात तथा प्रातःकालमें भी सर्वथा वानरोंके आने-जानेपर दृष्टि रखना॥ १५ ॥

'वानरोंकी ओरसे कभी उपेक्षाभाव नहीं रखना चाहिये और सदा इस बातपर दृष्टि रखनी चाहिये कि शत्रुओंकी सेना युद्धके लिये उद्यमशील तो नहीं है? आक्रमण तो नहीं कर रही है अथवा पूर्ववत् जहाँ-की-तहाँ खड़ी है न?'॥ १६ ॥

लङ्कापतिका यह आदेश सुनकर समस्त महाबली राक्षस उन सारी बातोंका यथावत् रूपसे पालन करने लगे॥ १७ ॥

उन सबको पूर्वोक्त आदेश देकर राक्षसराज रावण अपने हृदयमें चुभे हुए दुःख और क्रोधरूपी काँटेकी पीड़ाका भार वहन करता हुआ दीनभावसे अपने महलमें गया॥ १८ ॥

महाबली निशाचरराज रावणकी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी। वह अपने पुत्रकी उस मृत्युको ही याद करके उस समय बारम्बार लंबी साँस खींच रहा था॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

इन्द्रजित्‌के ब्रह्मास्त्रसे वानरसेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणका मूर्च्छित होना

संग्रामभूमिमें जो निशाचर मरनेसे बच गये थे, उन्होंने तुरंत रावणके पास जाकर उसे देवान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय आदि राक्षसपुङ्गवोंके मारे जानेका समाचार सुनाया॥ १॥

उनके वधकी बात सुनकर राजा रावणके नेत्रोंमें सहसा आँसुओंकी बाढ़ आ गयी। पुत्रों और भाइयोंके भयानक वधकी बात सोचकर उसको बड़ी चिन्ता हुई॥

राजा रावणको शोकके समुद्रमें निमग्न एवं दीन हुआ देख रथियोंमें श्रेष्ठ राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्‌ने यह बात कही—॥ ३॥

'तात! राक्षसराज! जबतक इन्द्रजित् जीवित है तबतक आप चिन्ता और मोहमें न पड़िये। इस इन्द्रशत्रुके बाणोंसे घायल होकर कोई भी समराङ्गणमें अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कर सकता॥ ४॥

'देखिये, आज मैं राम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके उनके सारे अङ्गोंको तीखे सायकोंसे भर देता हूँ, और वे दोनों भाई गतायु होकर सदाके लिये धरतीपर सो जाते हैं॥ ५॥

'आप मुझ इन्द्रशत्रुकी इस सुनिश्चित प्रतिज्ञाको, जो मेरे पुरुषार्थसे और दैवबल (ब्रह्माजीकी कृपा)-से भी सिद्ध होनेवाली है, सुन लीजिये—मैं आज ही लक्ष्मणसहित रामको अपने अमोघ बाणोंसे पूर्णत: तृप्त करूँगा—उनकी युद्धविषयक पिपासाको बुझा दूँगा॥ ६॥

'आज इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा बलिके यज्ञमण्डपमें भगवान् विष्णुके भयंकर विक्रमकी भाँति मेरे अपार पराक्रमको देखेंगे'॥ ७॥

ऐसा कहकर उदारचेता इन्द्रशत्रु इन्द्रजित्‌ने राजा रावणसे आज्ञा ली और अच्छे गदहोंसे जुते हुए, युद्धसामग्रीसे सम्पन्न एवं वायुके समान वेगशाली रथपर वह सवार हुआ॥ ८॥

उसका रथ इन्द्रके रथके समान जान पड़ता था। उसपर आरूढ़ हो शत्रुओंका दमन करनेवाला वह महातेजस्वी निशाचर सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ युद्ध हो रहा था॥ ९॥

उस महामनस्वी वीरको प्रस्थान करते देख बहुत-से महाबली राक्षस हाथोंमें श्रेष्ठ धनुष लिये हर्ष और उत्साहके साथ उसके पीछे-पीछे चले॥ १०॥

कोई हाथीपर बैठकर चले तो कोई उत्तम घोड़ोंपर। इनके सिवा बाघ, बिच्छू, बिलाव, गदहे, ऊँट, सर्प, सूअर, अन्य हिंसक जन्तु, सिंह, पर्वताकार गीदड़, कौआ, हंस और मोर आदिकी सवारियोंपर चढ़े हुए भयानक पराक्रमी राक्षस वहाँ युद्धके लिये आये॥

उन सबने प्रास, पट्टिश, खड्ग, फरसे, गदा, भुशुण्डि, मुद्गर, डंडे, शतघ्नी और परिघ आदि आयुध धारण कर रखे थे॥ १३॥

शङ्खोंकी ध्वनिके साथ मिली हुई भेरियोंकी भयानक आवाज सब ओर गूँज उठी। उस तुमुलनादके साथ इन्द्रद्रोही पराक्रमी इन्द्रजित्‌ने बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर प्रस्थान किया॥ १४॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमासे उपलक्षित आकाशकी शोभा होती है, उसी प्रकार ऊपर तने हुए शङ्ख और शशिके समान वर्णवाले श्वेत छत्रसे वह शत्रुसूदन इन्द्रजित् सुशोभित हो रहा था॥ १५॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित और समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ उस वीर निशाचरको दोनों ओरसे सुवर्णनिर्मित उत्तम एवं मनोहर चँवर डुलाये जा रहे थे॥ १६॥

विशाल सेनासे घिरे हुए अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को प्रस्थान करते देख राक्षसोंके राजा श्रीमान् रावणने उससे कहा—॥ १७॥

'बेटा! कोई भी ऐसा प्रतिद्वन्द्वी रथी नहीं है, जो तुम्हारा सामना कर सके। तुमने देवराज इन्द्रको भी पराजित किया है। फिर आसानीसे जीत लेने योग्य एक मनुष्यको परास्त करना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है? तुम अवश्य ही रघुवंशी रामका वध करोगे'॥ १८॥

राक्षसराजके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्‌ने उसके उस महान् आशीर्वादको सिर झुकाकर ग्रहण किया। फिर तो जैसे अनुपम तेजस्वी सूर्यसे आकाशकी शोभा होती है, उसी प्रकार अप्रतिम शक्तिशाली और सूर्यतुल्य तेजस्वी इन्द्रजित्‌से लङ्कापुरी सुशोभित होने लगी॥ १९½॥

महातेजस्वी शत्रुदमन इन्द्रजित्‌ने रणभूमिमें पहुँचकर अपने रथके चारों ओर राक्षसोंको खड़ा कर दिया॥ २०½॥

फिर बीचमें रथसे उतरकर पृथ्वीपर अग्निकी स्थापना करके अग्नितुल्य तेजस्वी उस राक्षसशिरोमणि वीरने चन्दन, फूल तथा लावा आदिके द्वारा अग्निदेवका

पूजन किया। उसके बाद उस प्रतापी राक्षसराजने विधिपूर्वक श्रेष्ठ मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उस अग्निमें हविष्यकी आहुति दी॥ २१-२२$\frac{1}{2}$ ॥

उस समय शस्त्र ही अग्निवेदीके चारों ओर बिछानेके लिये कुश या कासके पत्ते थे। बहेड़ेकी लकड़ीसे ही समिधाका काम लिया गया था। लाल रंगके वस्त्र उपयोगमें लाये गये और उस आभिचारिक यज्ञमें जो स्रुवा था, वह लोहेका बना हुआ था॥ २३$\frac{1}{2}$ ॥

उसने वहाँ तोमरसहित शस्त्ररूपी कासके पत्तोंको अग्निके चारों ओर फैलाकर होमके लिये काले रंगके जीवित बकरेका गला पकड़ा॥ २४$\frac{1}{2}$ ॥

एक ही बार दी हुई उस आहुतिसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसमें धूम नहीं दिखायी देता था और आगकी बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। उस समय उस अग्निसे वे सभी चिह्न प्रकट हुए, जो पूर्वकालमें उसे अपनी विजय दिखा चुके थे—युद्धस्थलमें उसको विजयकी प्राप्ति करा चुके थे॥ २५$\frac{1}{2}$ ॥

अग्निदेवकी शिखा दक्षिणावर्त दिखायी देने लगी। उनका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर था। इस रूपमें वे स्वयं प्रकट होकर उसके दिये हुए हविष्यको ग्रहण कर रहे थे॥ २६$\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर अस्त्रविद्याविशारद इन्द्रजित्ने ब्रह्मास्त्रका आवाहन किया और अपने धनुष तथा रथ आदि सब वस्तुओंको वहाँ सिद्ध ब्रह्मास्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित किया॥ २७$\frac{1}{2}$ ॥

जब अग्निमें आहुति देकर उसने ब्रह्मास्त्रका आवाहन किया, तब सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह तथा नक्षत्रोंके साथ अन्तरिक्षलोकके सभी प्राणी भयभीत हो गये॥

जिसका तेज अग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था तथा जो देवराज इन्द्रके समान अनुपम प्रभावसे युक्त था; उस अचिन्त्य पराक्रमी इन्द्रजित्ने अग्निमें आहुति देनेके पश्चात् धनुष, बाण, रथ, खड्ग, घोड़े और सारथिसहित अपने-आपको आकाशमें अदृश्य कर लिया॥ २९ ॥

इसके बाद वह घोड़े और रथोंसे व्याप्त तथा ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित राक्षससेनामें गया, जो युद्धकी इच्छासे गर्जना कर रही थी॥ ३० ॥

वे राक्षस दुःसह वेगवाले, सुवर्णभूषित, विचित्र एवं बहुसंख्यक बाणों, तोमरों और अंकुशोंद्वारा रणभूमिमें वानरोंपर प्रहार कर रहे थे॥ ३१ ॥

रावणपुत्र इन्द्रजित् शत्रुओंके प्रति अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ था। उसने निशाचरोंकी ओर देखकर कहा—'तुमलोग वानरोंको मार डालनेकी इच्छासे हर्ष और उत्साहपूर्वक युद्ध करो'॥ ३२ ॥

उसके इस प्रकार प्रेरणा देनेपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वे समस्त राक्षस जोर-जोरसे गर्जना करते हुए वहाँ वानरोंपर बाणोंकी भयंकर वर्षा करने लगे॥ ३३ ॥

उस युद्धस्थलमें राक्षसोंसे घिरे रहकर इन्द्रजित्ने भी नालीक, नाराच, गदा और मुसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वानरोंका संहार आरम्भ किया॥ ३४ ॥

समराङ्गणमें उसके अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल होनेवाले वानर भी जो वृक्षोंसे ही हथियारका काम लेते थे, सहसा रावणकुमारपर शैल-शिखरों और वृक्षोंकी वर्षा करने लगे॥

उस समय कुपित हुए महातेजस्वी महाबली रावणपुत्र इन्द्रजित्ने वानरोंके शरीरोंको छिन्न-भिन्न कर डाला॥ ३६ ॥

रणभूमिमें राक्षसोंका हर्ष बढ़ाता हुआ इन्द्रजित् रोषसे भरकर एक-एक बाणसे पाँच-पाँच, सात-सात तथा नौ-नौ वानरोंको विदीर्ण कर डालता था॥ ३७ ॥

उस अत्यन्त दुर्जय वीरने सुवर्णभूषित सूर्यतुल्य तेजस्वी सायकोंद्वारा समरभूमिमें वानरोंको मथ डाला॥

रणक्षेत्रमें देवताओंद्वारा पीड़ित हुए बड़े-बड़े असुरोंकी भाँति इन्द्रजित्के बाणोंसे व्यथित हुए वानरोंके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। उनकी विजयकी आशापर तुषारपात हो गया और वे अचेत-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३९ ॥

उस समय युद्धस्थलमें बाणरूपी भयंकर किरणोंद्वारा सूर्यके समान तपते हुए इन्द्रजित्पर प्रधान-प्रधान वानरोंने बड़े रोषके साथ धावा किया॥ ४० ॥

परंतु उसके बाणोंसे शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेसे वे सब वानर अचेत-से हो गये और खूनसे लथपथ हो व्यथित होकर इधर-उधर भागने लगे॥ ४१ ॥

वानरोंने भगवान् श्रीरामके लिये अपने जीवनका मोह छोड़ दिया था। वे पराक्रमपूर्वक गर्जना करते हुए हाथमें शिलाएँ लिये समरभूमिमें डटे रहे—युद्धभूमिसे पीछे न हटे॥ ४२ ॥

समराङ्गणमें खड़े हुए वे वानर रावणकुमारपर वृक्षों, पर्वतशिखरों और शिलाओंकी वर्षा करने लगे॥

वृक्षों और शिलाओंकी वह भारी वृष्टि राक्षसोंके प्राण हर लेनेवाली थी; परंतु समरविजयी महातेजस्वी रावणपुत्रने अपने बाणोंद्वारा उसे दूर हटा दिया॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् विषधर सर्पोंके समान भयंकर और अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा उस शक्तिशाली वीरने समराङ्गणमें वानर-सैनिकोंको विदीर्ण करना आरम्भ किया॥

उसने अठारह तीखे बाणोंसे गन्धमादनको घायल करके दूर खड़े हुए नलपर भी नौ बाणोंका प्रहार किया॥

इसके बाद महापराक्रमी इन्द्रजित्‌ने सात मर्मभेदी सायकोंद्वारा मैन्दको और पाँच बाणोंसे गजको भी युद्धस्थलमें बींध डाला॥ ४७॥

फिर दस बाणोंसे जाम्बवान्‌को और तीस सायकोंसे नीलको घायल कर दिया। तदनन्तर वरदानमें प्राप्त हुए बहुसंख्यक तीखे और भयानक सायकोंका प्रहार करके उस समय उसने सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद और द्विविदको भी निष्प्राण-सा कर दिया॥ ४८ $\frac{1}{2}$ ॥

सब ओर फैली हुई प्रलयाग्निके समान अत्यन्त रोषसे भरे हुए इन्द्रजित्‌ने दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वानरोंको भी बहुसंख्यक बाणोंकी मारसे व्यथित कर दिया॥ ४९ $\frac{1}{2}$ ॥

उस महासमरमें रावणकुमारने अच्छी तरह छोड़े हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी शीघ्रगामी सायकोंद्वारा वानरोंकी सेनाओंको मथ डाला॥ ५० $\frac{1}{2}$ ॥

उसके बाणजालसे पीड़ित हो वानरी-सेना व्याकुल हो उठी और रक्तसे नहा गयी। उसने बड़े हर्ष और प्रसन्नताके साथ शत्रुसेनाकी इस दुरवस्थाको देखा॥

वह राक्षसराजकुमार इन्द्रजित् बड़ा तेजस्वी, प्रभावशाली एवं बलवान् था। उसने सब ओरसे बाणों तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा करके पुनः वानर-सेनाको रौंद डाला॥ ५२-५३॥

तत्पश्चात् वह अपनी सेनाके ऊपरी भागको छोड़कर उस महासमरमें तुरंत वानर-सेनाके ऊपर जा पहुँचा और स्वयं आकाशमें अदृश्य रहकर भयानक बाणसमूहकी उसी तरह वर्षा करने लगा, जैसे काला मेघ जलकी वृष्टि करता है॥ ५४॥

जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो बड़े-बड़े पर्वत धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वे पर्वताकार वानर रणभूमिमें इन्द्रजित्‌के बाणोंद्वारा छलसे मारे जाकर शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेसे विकृत स्वरमें चीखते-चिल्लाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५५॥

रणभूमिमें वानर-सेनाओंपर जो पैनी धारवाले बाण गिर रहे थे, केवल उन्हींको वे वानर देख रहे थे। मायासे छिपे हुए उस इन्द्रद्रोही राक्षसको कहीं नहीं देख पाते थे॥ ५६॥

उस समय उस महाकाय राक्षसराजने तीखी धारवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी बाण-समूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको ढक दिया और वानर-सेनापतियोंको घायल कर दिया॥ ५७॥

वह वानरराजकी सेनामें बढ़े हुए प्रज्वलित पावकके समान दीप्तिमान् तथा चिनगारियोंसहित उज्ज्वल आग प्रकट करनेवाले शूल, खड्ग और फरसोंकी दुःसह वृष्टि करने लगा॥ ५८॥

इन्द्रजित्‌के चलाये हुए अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंसे घायल हो रक्तसे नहाकर सारे वानर-यूथपति खिले हुए पलाश वृक्षके समान जान पड़ते थे॥ ५९॥

राक्षसराज इन्द्रजित्‌के बाणोंसे विदीर्ण हो वे श्रेष्ठ वानर एक-दूसरेके सामने जाकर विकृत स्वरमें चीत्कार करते हुए धराशायी हो जाते थे॥ ६०॥

कितने ही वानर आकाशकी ओर देख रहे थे। उसी समय उनके नेत्रोंमें बाणोंकी चोट लगी, अतः वे एक-दूसरेके शरीरसे सट गये और पृथ्वीपर गिर पड़े॥

राक्षसप्रवर इन्द्रजित्‌ने दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित प्रासों, शूलों और पैने बाणोंद्वारा हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरी, हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट्र, सूर्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद आदि सभी श्रेष्ठ वानरोंको घायल कर दिया॥

गदाओं और सुवर्णके समान कान्तिमान् बाणोंद्वारा वानर-यूथपतियोंको क्षत-विक्षत करके वह लक्ष्मणसहित श्रीरामपर सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा॥ ६६॥

उस बाणवर्षाके लक्ष्य बने हुए परम अद्भुत शोभासे सम्पन्न श्रीराम पानीकी धाराके समान गिरनेवाले उन बाणोंकी कोई परवा न करके लक्ष्मणकी ओर देखते हुए बोले—॥ ६७॥

'लक्ष्मण! वह इन्द्रद्रोही राक्षसराज इन्द्रजित् प्राप्त हुए ब्रह्मास्त्रका सहारा लेकर वानर-सेनाको धराशायी करनेके पश्चात् अब तीखे बाणोंद्वारा हम दोनोंको भी पीड़ित कर रहा है॥ ६८॥

'ब्रह्माजीसे वरदान पाकर सदा सावधान रहनेवाले इस महामनस्वी वीरने अपने भीषण शरीरको अदृश्य कर लिया है। युद्धमें इस इन्द्रजित्‌का शरीर तो दिखायी ही नहीं देता, पर यह अस्त्रोंका प्रयोग करता जा रहा है। ऐसी दशामें इसे हमलोग किस तरह मार सकते हैं?॥

'स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माका स्वरूप अचिन्त्य है। वे ही इस जगत्के आदि कारण हैं। मैं समझता हूँ, उन्हींका यह अस्त्र है, अतः बुद्धिमान् सुमित्राकुमार! तुम मनमें किसी प्रकारकी घबराहट न लाकर मेरे साथ यहाँ चुपचाप खड़े हो इन बाणोंकी मार सहो॥ ७०॥

'यह राक्षसराज इन्द्रजित् इस समय बाण-समूहोंकी वर्षा करके सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित किये देता है। वानरराज सुग्रीवकी यह सारी सेना, जिसके प्रधान-प्रधान शूरवीर धराशायी हो गये हैं, अब शोभा नहीं पा रही है॥ ७१॥

'जब हम दोनों हर्ष एवं रोषसे रहित तथा युद्धसे निवृत्त हो अचेत-से होकर गिर जायँगे, तब हमें उस अवस्थामें देख युद्धके मुहानेपर विजय-लक्ष्मीको पाकर अवश्य ही यह राक्षसपुरी लङ्कामें लौट जायगा'॥ ७२॥

तदनन्तर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ इन्द्रजित्के बाण-समूहोंसे बहुत घायल हो गये। उस समय उन दोनोंको युद्धमें पीड़ित करके उस राक्षसराजने बड़े हर्षके साथ गर्जना की॥ ७३॥

इस प्रकार संग्राममें वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामको मूर्च्छित करके इन्द्रजित् सहसा दशमुख रावणकी भुजाओंद्वारा पालित लङ्कापुरीमें चला गया। उस समय समस्त निशाचर उसकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ जाकर उसने पितासे प्रसन्नतापूर्वक अपनी विजयका सारा समाचार बताया॥ ७४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

जाम्बवान्के आदेशसे हनुमान्जीका हिमालयसे दिव्य ओषधियोंके पर्वतको लाना और उन ओषधियोंकी गन्धसे श्रीराम, लक्ष्मण एवं समस्त वानरोंका पुनः स्वस्थ होना

युद्धके मुहानेपर जब वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण निश्चेष्ट होकर पड़ गये, तब वानर-सेनापतियोंकी वह सेना किंकर्तव्यविमूढ हो गयी। सुग्रीव, नील, अङ्गद और जाम्बवान्को भी उस समय कुछ नहीं सूझता था॥

उस समय सबको विषादमें डूबा हुआ देख बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने वानरराजके उन वीर सैनिकोंको आश्वासन देते हुए अनुपम वाणीमें कहा—॥ २॥

'वानर वीरो! आपलोग भयभीत न हों। यहाँ विषादका अवसर नहीं है; क्योंकि इन दोनों आर्यपुत्रोंने ब्रह्माजीके वचनोंका आदर एवं पालन करते हुए स्वयं ही हथियार नहीं उठाये थे; इसीलिये इन्द्रजित्ने इन दोनोंको अपने अस्त्र-समूहोंसे आच्छादित कर दिया था। अतएव ये दोनों भाई केवल विषादग्रस्त (मूर्च्छित) हो गये हैं (इनके प्राणोंपर संकट नहीं आया है)॥ ३॥

'स्वयम्भू ब्रह्माजीने यह उत्तम अस्त्र इन्द्रजित्को दिया था। ब्रह्मास्त्रके नामसे इसकी प्रसिद्धि है और इसका बल अमोघ है। संग्राममें उसका समादर—उसकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए ही ये दोनों राजकुमार धराशायी हुए हैं; अतः इसमें खेदकी कौन-सी बात है?'॥ ४॥

विभीषणकी बात सुनकर बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्ने ब्रह्मास्त्रका सम्मान करते हुए उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

'राक्षसराज! इस अस्त्रसे घायल हुए वेगशाली वानर-सैनिकोंमें जो-जो प्राण धारण करते हों, उन-उनको हमें चलकर आश्वासन देना चाहिये'॥ ६॥

उस समय रात हो गयी थी, इसलिये हनुमान् और राक्षसप्रवर विभीषण दोनों वीर अपने-अपने हाथमें मसाल लिये एक ही साथ रणभूमिमें विचरने लगे॥ ७॥

जिनकी पूँछ, हाथ, पैर, जाँघ, अंगुलि और ग्रीवा आदि अङ्ग कट गये थे, अतएव जो अपने शरीरोंसे रक्त बहा रहे थे, ऐसे पर्वताकार वानरोंके गिरनेसे वहाँकी सारी भूमि सब ओरसे पट गयी थी तथा वहाँ गिरे हुए चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे भी आच्छादित हो गयी थी। हनुमान् और विभीषणने इस अवस्थामें उस युद्धभूमिका निरीक्षण किया॥ ८-९॥

सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद—इन सभी वानरोंको हनुमान् और विभीषणने युद्धमें घायल होकर पड़ा देखा॥ १०-११॥

ब्रह्माजीके प्रिय अस्त्र—ब्रह्मास्त्रने दिनके चार भाग व्यतीत होते-होते सरसठ करोड़ वानरोंको हताहत कर

दिया था। जब केवल पाँचवाँ भाग—सायाह्नकाल शेष रह गया, तब ब्रह्मास्त्रका प्रयोग बंद हुआ था॥ १२॥

समुद्रके समान विशाल एवं भयंकर वानर-सेनाको बाणोंसे पीड़ित देख विभीषणसहित हनुमान्‌जी जाम्बवान्‌को ढूँढ़ने लगे॥ १३॥

ब्रह्माजीके पुत्र वीर जाम्बवान् एक तो स्वाभाविक वृद्धावस्थासे युक्त थे, दूसरे उनके शरीरमें सैकड़ों बाण धँसे हुए थे; अतः वे बुझती हुई आगके समान निस्तेज दिखायी देते थे। उन्हें देखकर विभीषण तुरंत ही उनके पास गये और बोले—'आर्य! इन तीखे बाणोंके प्रहारसे आपके प्राण निकल तो नहीं गये?'॥ १४-१५॥

विभीषणकी बात सुनकर ऋक्षराज जाम्बवान् बड़ी कठिनाईसे वाक्यका उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—॥ १६॥

'महापराक्रमी राक्षसराज! मैं केवल स्वरसे तुम्हें पहचान रहा हूँ। मेरे सभी अङ्ग पैने बाणोंसे बिंधे हुए हैं, अतः मैं आँख खोलकर तुम्हें नहीं देख सकता॥ १७॥

'उत्तम व्रतके पालक विभीषण! यह तो बताओ, जिनको जन्म देनेसे अञ्जनादेवी उत्तम पुत्रकी जननी और वायुदेव श्रेष्ठ पुत्रके जनक माने जाते हैं, वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् कहीं जीवित हैं?'॥ १८॥

जाम्बवान्‌का यह प्रश्न सुनकर विभीषणने पूछा—'ऋक्षराज! आप दोनों महाराजकुमारोंको छोड़कर केवल पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही क्यों पूछ रहे हैं?॥ १९॥

'आर्य! आपने न तो राजा सुग्रीवपर, न अङ्गदपर और न भगवान् श्रीरामपर ही वैसा स्नेह दिखाया है, जैसा पवनपुत्र हनुमान्‌जीके प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम लक्षित हो रहा है'॥ २०॥

विभीषणकी यह बात सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—'राक्षसराज! सुनो। मैं पवनकुमार हनुमान्‌जीको क्यों पूछता हूँ—यह बता रहा हूँ॥ २१॥

'यदि वीरवर हनुमान् जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिये और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतकके ही तुल्य हैं॥ २२॥

'तात! यदि वायुके समान वेगशाली और अग्निके समान पराक्रमी पवनकुमार हनुमान् जीवित हैं तो हम सबके जीवित होनेकी आशा की जा सकती है'॥ २३॥

बूढ़े जाम्बवान्‌के इतना कहते ही पवनपुत्र हनुमान्‌जी उनके पास आ गये और दोनों पैर पकड़कर उन्होंने विनीतभावसे उन्हें प्रणाम किया॥ २४॥

हनुमान्‌जीकी बात सुनकर उस समय ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने, जिनकी सारी इन्द्रियाँ बाणोंके प्रहारसे पीड़ित थीं, अपना पुनर्जन्म हुआ-सा माना॥ २५॥

फिर उन महातेजस्वी जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीसे कहा—'वानरसिंह! आओ, सम्पूर्ण वानरोंकी रक्षा करो॥ २६॥

'तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूर्ण पराक्रमसे युक्त नहीं है। तुम्हीं इन सबके परम सहायक हो। यह समय तुम्हारे ही पराक्रमका है। मैं दूसरे किसीको इसके योग्य नहीं देखता॥ २७॥

'तुम रीछों और वानरवीरोंकी सेनाओंको हर्ष प्रदान करो और बाणोंसे पीड़ित हुए इन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरसे बाण निकालकर इन्हें स्वस्थ करो॥ २८॥

'हनूमन्! समुद्रके ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूरका रास्ता तै करके तुम्हें पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर जाना चाहिये॥

'शत्रुसूदन! वहाँ पहुँचनेपर तुम्हें बहुत ही ऊँचे सुवर्णमय उत्तम पर्वत ऋषभका तथा कैलास-शिखरका दर्शन होगा॥ ३०॥

'वीर! उन दोनों शिखरोंके बीचमें एक ओषधियोंका पर्वत दिखायी देगा, जो अत्यन्त दीप्तिमान् है। उसमें इतनी चमक है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। वह पर्वत सब प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न है॥ ३१॥

'वानरसिंह! उसके शिखरपर उत्पन्न चार ओषधियाँ तुम्हें दिखायी देंगी, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित किये रहती हैं॥ ३२॥

'उनके नाम इस प्रकार हैं—मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक महौषधि॥

'हनुमन्! पवनकुमार! तुम उन सब ओषधियोंको लेकर शीघ्र लौट आओ और वानरोंको प्राणदान देकर आश्वासन दो'॥ ३४॥

जाम्बवान्‌की यह बात सुनकर वायुनन्दन हनुमान्‌जी उसी तरह असीम बलसे भर गये, जैसे महासागर वायुके वेगसे व्याप्त हो जाता है॥ ३५॥

वीर हनुमान् एक पर्वतके शिखरपर खड़े हो गये और उस उत्तम पर्वतको पैरोंसे दबाते हुए द्वितीय पर्वतके समान दिखायी देने लगे॥ ३६॥

हनुमान्‌जीके चरणोंके भारसे पीड़ित हो वह पर्वत धरतीमें धँस गया। अधिक दबाव पड़नेके कारण वह अपने शरीरको भी धारण न कर सका॥ ३७॥

हनुमान्‌जीके भारसे पीड़ित हुए उस पर्वतके वृक्ष उन्हींके वेगसे टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही जल उठे। साथ ही उस पहाड़की चोटियाँ भी ढहने लगीं॥

हनुमान्‌जीके दबानेपर वह श्रेष्ठ पर्वत हिलने लगा। उसके वृक्ष और शिलाएँ टूट-फूटकर गिरने लगीं; अतः वानर वहाँ ठहर न सके॥ ३९॥

लङ्काका विशाल और ऊँचा द्वार भी हिल गया। मकान और दरवाजे ढह गये। समूची नगरी भयसे व्याकुल हो उस रातमें नाचती-सी जान पड़ी॥ ४०॥

पर्वताकार पवनकुमार हनुमान्‌जीने उस पर्वतको दबाकर पृथ्वी और समुद्रमें भी हलचल पैदा कर दी॥

तदनन्तर वहाँसे आगे बढ़कर वे मेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे मलयपर्वतपर चढ़ गये। वह पर्वत नाना प्रकारके झरनोंसे व्याप्त था॥ ४२॥

वहाँ भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताएँ फैली थीं। कमल और कुमुद खिले हुए थे। देवता और गन्धर्व उस पर्वतका सेवन करते थे तथा वह साठ योजन ऊँचा था॥ ४३॥

विद्याधर, ऋषि-मुनि तथा अप्सराएँ भी वहाँ निवास करती थीं। अनेक प्रकारके मृगसमूह वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा बहुत-सी कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ाती थीं॥ ४४॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी वहाँ रहनेवाले यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आदि सबको व्याकुल करते हुए मेघके समान बढ़ने लगे॥ ४५॥

वे दोनों पैरोंसे उस पर्वतको दबाकर और वडवानलके समान अपने भयङ्कर मुखको फैलाकर निशाचरोंको डराते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ४६॥

उच्च स्वरसे बारम्बार गर्जते हुए हनुमान्‌जीका वह महान् सिंहनाद सुनकर लङ्कावासी श्रेष्ठ राक्षस भयके मारे कहीं हिल-डुल भी न सके॥ ४७॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भयानक पराक्रमी पवनकुमार हनुमान्‌जीने समुद्रको नमस्कार करके श्रीरामचन्द्रजीके लिये महान् पुरुषार्थ करनेका निश्चय किया॥ ४८॥

वे अपनी सर्पाकार पूँछको ऊपर उठाकर पीठको झुकाकर दोनों कान सिकोड़कर और वडवामुख अग्निके समान अपना मुख फैलाकर प्रचण्डवेगसे आकाशमें उड़े॥

हनुमान्‌जी अपने तीव्र वेगसे कितने ही वृक्षों, पर्वत-शिखरों, शिलाओं और वहाँ रहनेवाले साधारण वानरोंको भी साथ-साथ उड़ाते गये। उनकी भुजाओं और जाँघोंके वेगसे दूर फेंक दिये जानेके कारण जब उनका वेग शान्त हो गया, तब वे वृक्ष आदि समुद्रके जलमें गिर पड़े॥ ५०॥

सर्पके शरीरकी भाँति दिखायी देनेवाली अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर गरुड़के समान पराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी सम्पूर्ण दिशाओंको खींचते हुए-से श्रेष्ठ पर्वत गिरिराज हिमालयकी ओर चले॥ ५१॥

जिसकी तरंगमालाएँ झूम रही थीं तथा जिसके जलके द्वारा समस्त जल-जन्तु इधर-उधर घुमाये जा रहे थे, उस महासागरको देखते हुए हनुमान्‌जी भगवान् विष्णुके हाथसे छूटे हुए चक्रकी भाँति सहसा आगे बढ़ गये॥ ५२॥

उनका वेग अपने पिता वायुके ही समान था। वे अनेकानेक पर्वतों, पक्षियों, सरोवरों, नदियों, तालाबों, नगरों तथा समृद्धिशाली जनपदोंको देखते हुए बड़े वेगसे आगे बढ़ने लगे॥ ५३॥

वीर हनुमान् अपने पिताके ही तुल्य पराक्रमी और तीव्रगामी थे। वे सूर्यके मार्गका आश्रय ले बिना थके-माँदे शीघ्रतापूर्वक अग्रसर हो रहे थे॥ ५४॥

वानरसिंह पवनकुमार हनुमान् महान् वेगसे युक्त थे। वे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करते हुए वायुके समान वेगसे आगे बढ़े॥ ५५॥

महाकपि हनुमान्‌जीका बल-विक्रम बड़ा भयङ्कर था। उन्होंने जाम्बवान्‌के वचनोंका स्मरण करते हुए सहसा पहुँचकर हिमालय पर्वतका दर्शन किया॥ ५६॥

वहाँ अनेक प्रकारके सोते बह रहे थे। बहुत-सी कन्दराएँ और झरने उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। श्वेत बादलोंके समूहकी भाँति मनोहर दिखायी देनेवाले शिखरों और नाना प्रकारके वृक्षोंसे उस श्रेष्ठ पर्वतकी अद्भुत शोभा हो रही थी। हनुमान्‌जी उस पर्वतपर पहुँच गये॥ ५७॥

उस महापर्वतराजका सबसे ऊँचा शिखर सुवर्णमय दिखायी देता था। वहाँ पहुँचकर हनुमान्‌जीने परम पवित्र बड़े-बड़े आश्रम देखे, जिनमें देवर्षियोंका श्रेष्ठ समुदाय निवास करता था॥ ५८॥

उस पर्वतपर जिन्हें हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माका स्थान, उन्हींके दूसरे स्वरूप रजतनाभिका स्थान, इन्द्रका भवन, जहाँ खड़े होकर रुद्रदेवने त्रिपुरासुरपर बाण छोड़ा था, वह स्थान, भगवान् हयग्रीवका वासस्थान तथा ब्रह्मास्त्र देवताका दीप्तिमान् स्थान—ये सभी दिव्य स्थान दिखायी दिये। साथ ही यमराजके सेवक भी वहाँ दृष्टिगोचर हुए॥ ५९॥

इसके सिवा अग्नि, कुबेर और द्वादश सूर्योंके समावेशका भी सूर्यतुल्य तेजस्वी स्थान उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। चतुर्मुख ब्रह्मा, शंकरजीके धनुष और वसुन्धराकी नाभिके स्थानोंका भी उन्होंने दर्शन किया॥ ६०॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ कैलासपर्वत, हिमालय-शिला, शिवजीके वाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत ऋषभको भी देखा। इसके बाद उनकी दृष्टि सम्पूर्ण ओषधियोंके उत्तम पर्वतपर पड़ी, जो सब प्रकारकी दीप्तिमती ओषधियोंसे देदीप्यमान हो रहा था॥ ६१॥

अग्निराशिके समान प्रकाशित होनेवाले उस पर्वतको देखकर पवनकुमार हनुमान्जीको बड़ा विस्मय हुआ। वे कूदकर ओषधियोंसे भरे हुए उस गिरिराजपर चढ़ गये और वहाँ पूर्वोक्त चारों ओषधियोंकी खोज करने लगे॥

महाकपि पवनपुत्र हनुमान्जी सहस्रों योजन लाँघकर वहाँ आये थे और दिव्य ओषधियोंको धारण करनेवाले उस शैल-शिखरपर विचरण कर रहे थे॥ ६३॥

उस उत्तम पर्वतपर रहनेवाले सम्पूर्ण महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेनेके लिये आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो गयीं॥ ६४॥

उन ओषधियोंको न देखकर महात्मा हनुमान्जी कुपित हो उठे और रोषके कारण जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। ओषधियोंका छिपाना उनके लिये असह्य हो गया। उनकी आँखें अग्निके समान लाल हो गयीं और वे उस पर्वतराजसे इस प्रकार बोले—॥ ६५॥

'नगेन्द्र! तुम श्रीरघुनाथजीपर भी कृपा नहीं कर सके, ऐसा निश्चय तुमने किस बलपर किया है? आज मेरे बाहुबलसे पराजित होकर तुम अपने-आपको सब ओर बिखरा हुआ देखो'॥ ६६॥

ऐसा कहकर उन्होंने वेगसे पकड़कर वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण तथा अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओंसे भरे हुए उस पर्वत-शिखरको ही सहसा उखाड़ लिया। वेगसे उखाड़े जानेके कारण उसकी बहुत-सी चोटियाँ बिखरकर गिर पड़ीं। उस पर्वतका ऊपरी भाग अपनी प्रभासे प्रज्वलित-सा हो रहा था॥ ६७॥

उसे उखाड़कर साथ ले हनुमान्जी देवेश्वरों और असुरेश्वरोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको भयभीत करते हुए गरुड़के समान भयङ्कर वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय बहुत-से आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ६८॥

सूर्यके समान चमकते हुए उस पर्वतशिखरको हाथमें लेकर हनुमान्जी सूर्यके ही पथपर जा पहुँचे थे। उस समय सूर्यदेवके समीप रहकर उन्हींके समान तेजस्वी शरीरवाले वे पवनकुमार दूसरे सूर्यकी भाँति प्रतीत होते थे॥ ६९॥

वायुदेवताके पुत्र हनुमान्जी पर्वतके समान जान पड़ते थे। उस पर्वतशिखरके साथ उनकी वैसी ही विशेष शोभा हो रही थी, जैसे सहस्रधारोंसे सुशोभित और अग्निकी ज्वालासे युक्त चक्र धारण करनेसे भगवान् विष्णु सुशोभित होते हैं॥ ७०॥

उस समय उन्हें लौटा देख सब वानर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उन्होंने भी उन सबको देखकर बड़े हर्षसे सिंहनाद किया। उन सबके उस तुमुलनादको सुनकर लङ्कावासी निशाचर और भी भयानक चीत्कार करने लगे॥ ७१॥

तदनन्तर हनुमान्जी उस उत्तम पर्वत त्रिकूटपर कूद पड़े और वानरसेनाके मध्यमें आकर सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणसे भी उन्हें गले लगाकर मिले॥

इसके बाद वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण उन महौषधियोंकी सुगन्ध लेकर स्वस्थ हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये और घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे-दूसरे प्रमुख वानर वीर वहाँ हताहत हुए थे, वे सब-के-सब उन श्रेष्ठ ओषधियोंकी सुगन्धसे रातके अन्तमें सोकर उठे हुए प्राणियोंकी भाँति क्षणभरमें नीरोग हो उठकर खड़े हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा जाती रही॥

लङ्कामें जबसे वानरों और राक्षसोंकी लड़ाई शुरू हुई, तभीसे वानरवीरोंद्वारा रणभूमिमें जो-जो राक्षस मारे जाते थे, वे सभी रावणकी आज्ञाके अनुसार प्रतिदिन मरते-मरते ही समुद्रमें फेंक दिये जाते थे। ऐसा इसलिये होता था कि वानरोंको यह मालूम न हो कि बहुत-से राक्षस मार डाले गये॥ ७५-७६॥

तत्पश्चात् प्रचण्ड वेगवाले पवनकुमार हनुमान्जीने पुनः ओषधियोंके उस पर्वतको वेगपूर्वक हिमालयपर ही पहुँचा दिया और फिर लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीसे आ मिले॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

लङ्कापुरीका दहन तथा राक्षसों और वानरोंका भयंकर युद्ध

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने हनुमान्‌जीसे आगेका कर्तव्य सूचित करनेके लिये कहा—॥ १॥

'कुम्भकर्ण मारा गया। राक्षसराजके पुत्रोंका भी संहार हो गया; अतः अब रावण लङ्कापुरीकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता॥ २॥

'इसलिये अपनी सेनामें जो-जो महाबली और शीघ्रगामी वानर हों, वे सब-के-सब मशाल ले-लेकर शीघ्र ही लङ्कापुरीपर धावा करें'॥ ३॥

सुग्रीवकी इस आज्ञाके अनुसार सूर्यास्त होनेपर भयङ्कर प्रदोषकालमें वे सभी श्रेष्ठ वानर मशाल हाथमें ले-लेकर लङ्काकी ओर चले॥ ४॥

जब उल्काधारी वानरोंने सब ओरसे आक्रमण किया, तब द्वार-रक्षाके काममें नियुक्त हुए राक्षस सहसा भाग खड़े हुए॥ ५॥

वे गोपुरों (दरवाजों), अट्टालिकाओं, सड़कों, नाना प्रकारकी गलियों और महलोंमें भी बड़े हर्षके साथ आग लगाने लगे॥ ६॥

वानरोंकी लगायी हुई वह आग उस समय सहस्रों घरोंको जलाने लगी। पर्वताकार प्रासाद धराशायी होने लगे॥ ७॥

कहीं अगुरु जल रहा था तो कहीं परम उत्तम चन्दन। मोती, स्निग्धमणि, हीरे और मूँगे भी दग्ध हो रहे थे॥ ८॥

वहाँ क्षौम (अलसी या सनके रेशोंसे बना हुआ वस्त्र) भी जलता था और सुन्दर रेशमी वस्त्र भी। भेड़के रोएँका कम्बल, नाना प्रकारका ऊनी वस्त्र, सोनेके आभूषण और अस्त्र-शस्त्र भी जल रहे थे॥ ९॥

घोड़ोंके गहने, जीन आदि उपकरण जो अनेक प्रकार और विचित्र आकारके थे, दग्ध हो रहे थे। हाथीके गलेका आभूषण, उसे कसनेके लिये रस्से तथा रथोंके उपकरण, जो सुन्दर बने हुए थे, सब-के-सब आगमें जलकर भस्म हो रहे थे॥ १०॥

योद्धाओंके कवच, हाथी और घोड़ोंके बख्तर, खड्ग, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाण, तोमर, अंकुश, शक्ति, रोमज (कम्बल आदि), वालज (चँवर आदि), आसनोपयोगी व्याघ्रचर्म, अण्डज (कस्तूरी आदि), मोती और मणियोंसे जटित विचित्र महल तथा नाना प्रकारके अस्त्रसमूह—इन सबको सब ओर फैली हुई आग जला रही थी॥

उस समय अग्निदेवने नाना प्रकारके विचित्र गृहोंको दग्ध करना आरम्भ किया। जो घरोंमें आसक्त थे, सोनेके विचित्र कवच धारण किये हुए थे तथा हार, आभूषण और वस्त्रोंसे विभूषित थे, उन सभी राक्षसोंके आवासस्थान आगकी लपटोंमें आ गये॥ १३-१४॥

मदिरापानसे जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे, जो नशेसे विह्वल हो लड़खड़ाते हुए चलते थे, जिनके वस्त्रोंको उनकी प्रेयसी स्त्रियोंने पकड़ रखा था, जो शत्रुओंपर कुपित थे, जिनके हाथोंमें गदा, खड्ग और शूल शोभा पा रहे थे, जो खाने-पीनेमें लगे थे, जो बहुमूल्य शय्याओंपर अपनी प्राणवल्लभाओंके संग शयन कर रहे थे तथा जो आगसे भयभीत हो अपने पुत्रोंको गोदमें लेकर सब ओर तीव्रगतिसे भाग रहे थे, ऐसे लाखों लङ्कानिवासियोंको उस समय अग्निने जलाकर भस्म कर दिया। वह आग वहाँ रह-रहकर पुनः प्रज्वलित हो उठती थी॥ १५—१७½ ॥

जो बहुत मजबूत और बहुमूल्य बने हुए थे, गाम्भीर्य गुणोंसे युक्त थे—अनेकानेक ड्योढ़ियों, परकोटों, आन्तरिक गृहों, द्वारों और उपद्वारोंके कारण दुर्गम प्रतीत होते थे, जो सुवर्णनिर्मित अर्धचन्द्र अथवा पूर्णचन्द्रके आकारमें बने हुए थे, अट्टालिकाओंके कारण बहुत ऊँचे दिखायी देते थे, विचित्र झरोखे जिनकी शोभा बढ़ाते थे, जिनमें सब ओर सोने-बैठनेके लिये शय्या-आसन आदि सुसज्जित थे, मणियों और मूँगोंसे जटित होनेके कारण जिनकी विचित्र शोभा हो रही थी, जो अपनी ऊँचाईसे सूर्यदेवका स्पर्श-सा कर रहे थे, जिनमें क्रौञ्च और मोरोंके कलरव, वीणाकी मधुर-ध्वनि तथा भूषणोंकी झनकारें गूँज रही थीं और जो पर्वताकार दिखायी देते थे, उन सभी गृहोंको प्रज्वलित आगने जला दिया॥

आगसे घिरे हुए लङ्काके बाहरी दरवाजे ग्रीष्म-ऋतुमें विद्युन्मालामण्डित मेघसमूहोंके समान प्रकाशित होते थे॥ २१½ ॥

अग्निकी लपटोंमें लिपटे हुए लङ्कापुरीके मकान दावाग्निसे दग्ध होते हुए बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखरोंके समान जान पड़ते थे॥ २२½ ॥

सतमहले भवनोंमें सोयी हुई सुन्दरियाँ जब आगसे

दग्ध होने लगीं, उस समय सारे आभूषणोंको फेंककर हाय-हाय करती हुई उच्च स्वरसे चीत्कार करने लगीं॥

वहाँ आगकी लपेटमें आये हुए कितने ही भवन इन्द्रके वज्रके मारे हुए महान् पर्वतोंके शिखरोंके समान धराशायी हो रहे थे॥ २४ $\frac{1}{2}$ ॥

वे जलते हुए गगनचुम्बी भवन दूरसे ऐसे जान पड़ते थे, मानो हिमालयके शिखर सब ओरसे दग्ध हो रहे हों॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

अट्टालिकाओंके जलते हुए शिखर उठती हुई ज्वालाओंसे आवेष्टित हो रहे थे। रात्रिमें उनसे उपलक्षित हुई लङ्कापुरी खिले हुए पलाश-पुष्पोंसे युक्त-सी दिखायी देती थी॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

हाथियोंके अध्यक्षोंने हाथियोंको और अश्वाध्यक्षोंने अश्वोंको भी खोल दिया था। वे वहाँ इधर-उधर भाग रहे थे, इससे लङ्कापुरी प्रलयकालमें भ्रान्त होकर घूमते हुए ग्राहोंसे युक्त महासागरके समान प्रतीत होती थी॥

कहीं खुले हुए घोड़ेको देखकर हाथी भयभीत होकर भागता था और कहीं डरे हुए हाथीको देखकर भी घोड़ा भागने लगता था॥ २८॥

लङ्कापुरीके जलते समय समुद्रमें आगकी ज्वालाका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, जिससे वह महासागर लाल पानीसे युक्त लालसागरके समान शोभा पाता था॥ २९॥

वानरोंद्वारा जिसमें आग लगायी गयी थी, वह लङ्कापुरी दो ही घड़ीमें संसारके घोर संहारके समय दग्ध हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होने लगी॥ ३०॥

धूएँसे आच्छादित और आगसे संतप्त होकर उच्च स्वरसे आर्तनाद करती हुई लङ्काकी नारियोंका करुण क्रन्दन सौ योजन दूरतक सुनायी देता था॥ ३१॥

जिनके शरीर जल गये थे, ऐसे जो-जो राक्षस नगरसे बाहर निकलते, उनके ऊपर युद्धकी इच्छावाले वानर सहसा टूट पड़ते थे॥ ३२॥

वानरोंकी गर्जना और राक्षसोंके आर्तनादसे दसों दिशाएँ, समुद्र और पृथ्वी गूँज उठीं॥ ३३॥

इधर बाण निकल जानेसे स्वस्थ हुए दोनों भाई महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके अपने श्रेष्ठ धनुष उठाये॥ ३४॥

उस समय श्रीरामने अपने उत्तम धनुषको खींचा, उससे भयंकर टंकार प्रकट हुई, जो राक्षसोंको भयभीत कर देनेवाली थी॥ ३५॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने विशाल धनुषको खींचते हुए उसी तरह शोभा पा रहे थे, जैसे त्रिपुरासुरपर कुपित हो भगवान् शंकर अपने वेदमय धनुषकी टंकार करते हुए सुशोभित हुए थे॥ ३६॥

वानरोंकी गर्जना तथा राक्षसोंके कोलाहल—इन दोनों प्रकारके शब्दोंसे भी ऊपर उठकर श्रीरामके धनुषकी टंकार सुनायी पड़ती थी॥ ३७॥

वानरोंकी गर्जना, राक्षसोंका कोलाहल और श्रीरामके धनुषकी टंकार—ये तीनों प्रकारके शब्द दसों दिशाओंमें व्याप्त हो रहे थे॥ ३८॥

भगवान् श्रीरामके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा लङ्कापुरीका वह नगरद्वार, जो कैलास-शिखरके समान ऊँचा था, टूट-फूटकर भूतलपर बिखर गया॥ ३९॥

सतमहले मकानों तथा अन्य गृहोंपर गिरते हुए श्रीरामके बाणोंको देखकर राक्षसपतियोंने युद्धके लिये बड़ी भयंकर तैयारी की॥ ४०॥

कमर कसकर और कवच आदि बाँधकर युद्धके लिये तैयार होते तथा सिंहनाद करते हुए उन राक्षसपतियोंके लिये वह रात कालरात्रिके समान प्राप्त हुई थी॥ ४१॥

उस समय महात्मा सुग्रीवने प्रधान-प्रधान वानरोंको यह आज्ञा दी—'वानरवीरो! तुम सब लोग अपने-अपने निकटवर्ती द्वारपर जाकर युद्ध करो॥ ४२॥

'तुमलोगोंमेंसे जो वहाँ-वहाँ युद्धभूमिमें उपस्थित होकर भी मेरे आदेशका पालन न करे—युद्धसे मुँह मोड़कर भाग जाय, उसे तुम सब लोग पकड़कर मार डालना; क्योंकि वह राजाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला होगा'॥ ४३॥

सुग्रीवकी इस आज्ञाके अनुसार जब मुख्य-मुख्य वानर जलते मशाल हाथमें लिये नगरद्वारपर जाकर डट गये, तब रावणको बड़ा क्रोध हुआ॥ ४४॥

उसने अँगड़ाई लेकर जो अङ्गोंका संचालन किया, उससे दसों दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। वह कालरुद्रके अङ्गोंमें प्रकट हुए मूर्तिमान् क्रोधकी भाँति दिखायी देने लगा॥ ४५॥

क्रोधसे भरे हुए रावणने कुम्भकर्णके दो पुत्र कुम्भ और निकुम्भको बहुत-से राक्षसोंके साथ भेजा॥

रावणकी आज्ञासे यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन भी कुम्भकर्णके दोनों पुत्रोंके साथ-साथ युद्धके लिये निकले॥ ४७॥

उस समय सिंहके समान दहाड़ते हुए रावणने उन समस्त महाबली राक्षसोंको आदेश दिया—'वीर निशाचरो!

इसी रातमें तुमलोग युद्धके लिये जाओ'॥ ४८॥

राक्षसराजकी आज्ञा पाकर वे वीर राक्षस हाथोंमें चमकीले अस्त्र-शस्त्र लिये बार-बार गर्जना करते हुए लङ्कापुरीसे बाहर निकले॥ ४९॥

राक्षसोंने अपने आभूषणोंकी तथा अपनी प्रभासे और वानरोंने मशालकी आगसे वहाँके आकाशको प्रकाशसे परिपूर्ण कर दिया था॥ ५०॥

चन्द्रमाकी, नक्षत्रोंकी और उन दोनों सेनाओंके आभूषणोंकी प्रज्वलित प्रभाने आकाशको प्रकाशित कर दिया था॥ ५१॥

चन्द्रमाकी चाँदनी, आभूषणोंकी प्रभा तथा प्रकाशमान ग्रहोंकी दीप्तिने सब ओरसे राक्षसों और वानरोंकी सेनाओंको उद्भासित कर रखा था॥ ५२॥

लङ्काके अधजल गृहोंकी प्रभाका जलमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे चञ्चल लहरोंवाला समुद्र अधिक शोभा पा रहा था॥ ५३॥

राक्षसोंकी वह भयंकर सेना ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थी। सैनिकोंके हाथोंमें उत्तम खड्ग और फरसे चमक रहे थे। भयानक घोड़े, रथ और हाथियोंसे एवं नाना प्रकारके पैदल सैनिकोंसे वह लैस थी। चमकते हुए शूल, गदा, तलवार, भाले, तोमर और धनुष आदिसे युक्त हुई वह सेना भयानक विक्रम एवं पुरुषार्थ प्रकट करनेवाली थी॥ ५४-५५॥

उस सेनामें भाले चमक रहे थे। सैकड़ों घुँघुरुओंका झंकार सुनायी पड़ता था। सैनिकोंकी भुजाओंमें सोनेके आभूषण बँधे हुए थे। उनके द्वारा फरसे चलाये जा रहे थे, बड़े-बड़े शस्त्र घुमाये जाते थे। धनुषपर बाणोंका संधान किया जाता था। चन्दन, पुष्पमाला और मधुकी अधिकतासे वहाँके महान् वातावरणमें अनुपम गन्ध छा रही थी। वह सेना शूरवीरोंसे व्याप्त तथा महान् मेघोंकी गर्जनाके समान सिंहनादसे निनादित होनेके कारण भयंकर दिखायी देती थी॥ ५६-५७½॥

राक्षसोंकी उस दुर्जय सेनाको आती देख वानर-सेना आगे बढ़ी और उच्च स्वरसे गर्जना करने लगी॥

राक्षसोंकी विशाल सेना भी बड़े वेगसे उछलकर शत्रुसेनाकी ओर उसी तरह अग्रसर हुई, जैसे पतङ्ग आगपर टूट पड़ते हैं॥ ५९½॥

सैनिकोंकी भुजाओंके व्यापारसे जहाँ परिघ और अशनि झूम रहे थे, राक्षसोंकी वह उत्तम सेना बड़ी शोभा पा रही थी॥ ६०½॥

वहाँ युद्धकी इच्छावाले वानर उन्मत्त-से होकर वृक्षों, पत्थरों और मुक्कोंसे निशाचरोंको मारते हुए उनपर टूट पड़े॥ ६१½॥

इसी प्रकार भयानक पराक्रमी निशाचर भी अपने तीखे बाणोंसे सामने आये हुए वानरोंके मस्तक सहसा काट-काटकर गिराने लगे॥ ६२½॥

वानरोंने भी दाँतोंसे निशाचरोंके कान काट लिये, मुक्कोंसे मार-मारकर उनके मस्तक विदीर्ण कर दिये और शिलाओंके प्रहारसे उनके अङ्ग-भङ्ग कर दिये। इस अवस्थामें वे राक्षस वहाँ विचर रहे थे॥ ६३॥

इसी प्रकार घोर रूपधारी निशाचरोंने भी मुख्य-मुख्य वानरोंको अपनी तीखी तलवारोंसे सर्वथा घायल कर दिया था॥ ६४॥

एक वीर जब दूसरे विपक्षी योद्धाको मारने लगता था, तब दूसरा आकर उसे मारने लगता था। इसी प्रकार एकको गिराते हुए योद्धाको दूसरा आकर धराशायी कर देता था। एककी निन्दा करनेवालेकी दूसरा निन्दा करता और एकको दाँतसे काटनेवालेको दूसरा आकर काट लेता था॥ ६५॥

एक आकर कहता कि 'मुझे युद्ध प्रदान करो' तो दूसरा उसे युद्धका अवसर देता था; फिर तीसरा कहता था कि 'तुम क्यों क्लेश उठाते हो? मैं इसके साथ युद्ध करता हूँ।' इस तरह वे एक-दूसरेसे बातें करते थे॥

उस समय वानरों और राक्षसोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। हथियार गिर जाते, कवच और अस्त्र-शस्त्र छूट जाते, बड़े-बड़े भाले ऊँचे उठे दिखायी देते तथा मुक्कों, शूलों, तलवारों और भालोंकी मार होती थी। उस युद्धस्थलमें राक्षस दस-दस या सात-सात वानरोंको एक साथ मार गिराते थे और वानर भी दस-दस या सात-सात राक्षसोंको एक साथ धराशायी कर देते थे॥ ६७-६८½॥

राक्षसोंके वस्त्र खुल गये, कवच और ध्वज टूट गये तथा उस राक्षसी सेनाको रोककर वानरोंने सब ओरसे घेर लिया॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

अङ्गदके द्वारा कम्पन और प्रजङ्घका, द्विविदके द्वारा शोणिताक्षका, मैन्दके द्वारा यूपाक्षका और सुग्रीवके द्वारा कुम्भका वध

जब वीरजनोंका विनाश करनेवाला वह घोर घमासान युद्ध चल रहा था, उस समय अङ्गद संग्रामके लिये उत्सुक होकर वीर कम्पनका सामना करनेके लिये आये॥ १॥

कम्पनने अङ्गदको क्रोधपूर्वक ललकारकर बड़े वेगसे उनके ऊपर पहले गदाका प्रहार किया। इससे उनको बड़ी चोट पहुँची और वे काँपकर बेहोश हो गये॥

फिर चेत होनेपर तेजस्वी वीर अङ्गदने एक पर्वतका शिखर उठाकर उस राक्षसपर दे मारा। उस प्रहारसे पीड़ित हो कम्पन पृथ्वीपर गिर पड़ा—उसके प्राण-पखेरू उड़ गये॥ ३॥

कम्पनको युद्धमें मारा गया देख शोणिताक्षने रथपर बैठकर तुरंत ही निर्भय हो अङ्गदपर धावा किया॥

उसने शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ और कालाग्निके समान आकारवाले तीखे तथा पैने बाणोंद्वारा बड़े वेगसे उस समय अङ्गदको चोट पहुँचायी॥ ५॥

उसके चलाये हुए क्षुर[1], क्षुरप्र[2], नाराच[3], वत्सदन्त[4], शिलीमुख[5], कर्णी[6], शल्य[7] और विपाठ[8] नामक बहुसंख्यक तीखे बाणोंसे जब प्रतापी वालिपुत्र अङ्गदके सारे अङ्ग बिंध गये, तब उन बलवान् वीरने बड़े वेगसे उस राक्षसके भयंकर धनुष, रथ और बाणोंको कुचल डाला॥ ६-७॥

तदनन्तर वेगवान् निशाचर शोणिताक्षने कुपित हो तत्काल ही ढाल और तलवार हाथमें ले ली तथा वह बिना सोचे-विचारे रथसे कूद पड़ा॥ ८॥

इतनेहीमें बलवान् अङ्गदने शीघ्रतापूर्वक उछलकर उसे पकड़ लिया और अपने हाथसे उसकी उस तलवारको छीनकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ९॥

फिर कपिकुञ्जर अङ्गदने उसके कंधेपर तलवारका वार किया और उसके शरीरको इस तरह चीर दिया मानो उसने यज्ञोपवीत पहन रखा हो॥ १०॥

इसके बाद वालिपुत्रने उस विशाल खड्गको लेकर बारम्बार गर्जना करते हुए युद्धके मुहानेपर दूसरे शत्रुओंपर धावा किया॥ ११॥

इतनेहीमें प्रजङ्घको साथ लिये बलवान् वीर यूपाक्षने कुपित हो रथके द्वारा महाबली वालिपुत्रपर आक्रमण किया॥ १२॥

इसी बीचमें सोनेके बाजूबंद पहने वीर शोणिताक्षने अपनेको सँभालकर लोहेकी गदा उठायी और अङ्गदका ही पीछा किया॥ १३॥

फिर यूपाक्षसहित बलवान् महावीर प्रजङ्घ कुपित हो महाबली वालिपुत्रपर गदा लेकर चढ़ आया॥ १४॥

शोणिताक्ष और प्रजङ्घ दोनों राक्षसोंके बीचमें कपिश्रेष्ठ अङ्गद वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे दोनों विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं॥

उस समय मैन्द और द्विविद अङ्गदकी रक्षा करनेके लिये उनके निकट आकर खड़े हो गये। वे दोनों अपने-अपने योग्य विपक्षी योद्धाकी तलाश भी कर रहे थे॥ १६॥

इतनेहीमें तलवार, बाण और गदा धारण किये बहुत-से महाबली विशालकाय राक्षस रोषपूर्वक वानरोंपर टूट पड़े॥ १७॥

ये तीन वानर-सेनापति उन तीन प्रमुख राक्षसोंके साथ उलझे हुए थे। उस समय उनमें रोंगटे खड़े कर देनेवाला महान् युद्ध छिड़ गया॥ १८॥

उन तीनों वानरोंने रणभूमिमें वृक्ष ले-लेकर युद्धमें निशाचरोंपर चलाये, परंतु महाबली प्रजङ्घने अपनी तलवारसे उन सब वृक्षोंको काट गिराया॥ १९॥

तत्पश्चात् उन्होंने रणभूमिमें उन राक्षसोंके रथों और घोड़ोंपर वृक्ष तथा पर्वतशिखर चलाये; परंतु

---

१. जिसका अग्रभाग नाईके छुरेके समान हो, उसे 'क्षुर' कहते हैं। २. अर्द्धचन्द्राकार बाण। ३. पूर्णतः लोहेके बने हुए बाणका नाम 'नाराच' है। उसमें नीचेसे ऊपरतक सब-का-सब लोहा ही होता है। ४. बछड़ेके दाँतके समान जिसका अग्रभाग हो, उसे 'वत्सदन्त' कहा गया है। ५. जिसका मुखभाग कङ्क (वकविशेष)-की पाँखोंके समान हो, उस बाणको 'शिलीमुख' कहते हैं। ६. जिस बाणके दोनों पार्श्वभागोंमें कानका-सा आकार बना हो, वह 'कर्णी' कहलाता है। ७. जिसका फाल या अग्रभाग बड़ा हो, वह 'शल्य' है। किसी-किसीके मतमें आधे नाराचको 'शल्य' कहते हैं। ८. कनेरके पत्तेके अग्रभागके समान आकारवाले बाणका नाम 'विपाठ' है। (रामायणतिलकसे)

महाबली यूपाक्षने अपने बाणसमूहोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ २०॥

मैन्द और द्विविदने जिन-जिन वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर उन राक्षसोंपर चलाया था, उन सबको बल-विक्रमशाली और प्रतापी शोणिताक्षने गदा मारकर बीचमें ही तोड़ डाला॥ २१॥

तत्पश्चात् प्रजङ्घने शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाली एक बहुत बड़ी तलवार उठाकर वालिपुत्र अङ्गदपर वेगपूर्वक आक्रमण किया॥ २२॥

उसे निकट आया देख अतिशय शक्तिशाली महाबली वानरराज अङ्गदने अश्वकर्ण नामक वृक्षसे मारा। साथ ही उसकी बाँहपर, जिसमें तलवार थी, उन्होंने एक घूसा मारा। वालिपुत्रके उस आघातसे वह तलवार छूटकर पृथ्वीपर जा गिरी॥ २३-२४॥

मूसल-जैसी उस तलवारको पृथ्वीपर पड़ी देख महाबली प्रजङ्घने अपना वज्रके समान भयंकर मुक्का घुमाना आरम्भ किया॥ २५॥

उस महातेजस्वी निशाचरने महापराक्रमी वानरशिरोमणि अङ्गदके ललाटमें बड़े जोरसे मुक्का मारा, जिससे अङ्गदको दो घड़ीतक चक्कर आता रहा॥ २६॥

इसके बाद होशमें आनेपर तेजस्वी और प्रतापी वालिकुमारने प्रजङ्घको ऐसा घूसा मारा कि उसका सिर धड़से अलग हो गया॥ २७॥

रणभूमिमें अपने चाचा प्रजङ्घके मारे जानेपर यूपाक्षकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसके बाण नष्ट हो चुके थे। इसलिये तुरंत ही रथसे उतरकर उसने तलवार हाथमें ले ली॥ २८॥

यूपाक्षको आक्रमण करते देख बलवान् वीर द्विविदने कुपित हो बड़ी फुर्तीके साथ उसकी छातीमें चोट की और उसे बलपूर्वक पकड़ लिया॥ २९॥

भाईको पकड़ा गया देख महातेजस्वी एवं महाबली शोणिताक्षने द्विविदकी छातीमें गदा मारी॥ ३०॥

शोणिताक्षकी मार खाकर महाबली द्विविद विचलित हो उठे। तत्पश्चात् जब उसने पुनः गदा उठायी, तब द्विविदने झपटकर उसे छीन लिया॥ ३१॥

इसी बीचमें पराक्रमी मैन्द भी द्विविदके पास आ गये और उन्होंने यूपाक्षकी छातीमें एक थप्पड़ मारा॥ ३२॥

वे दोनों वेगशाली वीर शोणिताक्ष और यूपाक्ष उन दोनों वानर मैन्द और द्विविदके साथ समराङ्गणमें बड़ी तेजीसे छीना-झपटी और पटका-पटकी करने लगे॥ ३३॥

पराक्रमी द्विविदने अपने नखोंसे शोणिताक्षका मुँह नोच लिया और उसे बलपूर्वक पृथ्वीपर पटककर पीस डाला॥ ३४॥

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए वानरपुङ्गव मैन्दने यूपाक्षको अपनी दोनों बाँहोंसे इस तरह दबाया कि वह निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३५॥

इन प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर राक्षसराजकी सेना व्यथित हो उठी और भागकर उस ओर चली गयी, जहाँ कुम्भकर्णका पुत्र युद्ध कर रहा था॥ ३६॥

वेगसे भागकर आती हुई उस सेनाको कुम्भने सान्त्वना दी। दूसरी ओर महापराक्रमी वानर युद्धमें सफल होनेके कारण जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ३७॥

राक्षससेनाके बड़े-बड़े वीरोंको मारा गया देख तेजस्वी कुम्भने रणभूमिमें अत्यन्त दुष्कर कर्म करना आरम्भ किया॥ ३८॥

वह धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ था और युद्धमें चित्तको अत्यन्त एकाग्र रखता था। उसने धनुष उठाया और शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ एवं सर्पके समान विषैले बाणोंको बरसाना आरम्भ किया॥ ३९॥

उसका वह बाणसहित उत्तम धनुष विद्युत् और ऐरावतकी प्रभासे युक्त द्वितीय इन्द्रधनुषके समान अधिक शोभा पा रहा था॥ ४०॥

उसने सोनेके पङ्ख लगे हुए पत्रयुक्त बाणद्वारा, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़ा गया था, द्विविदको घायल कर दिया॥ ४१॥

उसके बाणसे सहसा आहत होकर त्रिकूट पर्वतके समान विशालकाय वानरश्रेष्ठ द्विविद व्याकुल हो गये और छटपटाते हुए पाँव फैलाकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४२॥

उस महासमरमें अपने भाईको घायल होकर गिरा देख मैन्द बहुत बड़ी शिला उठाकर वेगपूर्वक दौड़े॥ ४३॥

उन महाबली वीरने वह शिला उस राक्षसपर चला दी; परंतु कुम्भने पाँच चमकीले बाणोंद्वारा उस शिलाको टूक-टूक कर दिया॥ ४४॥

फिर विषधर सर्पके समान भयंकर और सुन्दर अग्रभागवाला दूसरा बाण धनुषपर रखा और उसके द्वारा उस महातेजस्वी वीरने द्विविदके बड़े भाईकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ ४५॥

उसके उस प्रहारसे वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें भारी आघात पहुँचा और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४६॥

मैन्द और द्विविद अङ्गदके मामा थे। उन दोनों महाबली वीरोंको घायल हुआ देख अङ्गद धनुष लेकर खड़े हुए कुम्भके ऊपर बड़े वेगसे टूटे॥ ४७॥

उन्हें आते देख कुम्भने लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। फिर तीन तीखे बाण और मारे। जैसे महावत अंकुशसे मतवाले हाथीको मारता है, उसी प्रकार पराक्रमी कुम्भने बहुत-से बाणोंद्वारा अङ्गदको बींध डाला॥ ४८॥

जिनकी धारें कुण्ठित नहीं हुई थीं तथा जो सुवर्णसे विभूषित थे, ऐसे तेज और तीखे बाणोंसे वालिपुत्र अङ्गदका सारा शरीर छिद गया था तो भी वे कम्पित नहीं हुए॥ ४९॥

उन्होंने उस राक्षसके मस्तकपर शिलाओं और वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ कर दी; किंतु कुम्भकर्णकुमार श्रीमान् कुम्भने वालिपुत्रके चलाये हुए उन समस्त वृक्षोंको काट दिया और शिलाओंको भी तोड़-फोड़ डाला॥ ५०½ ॥

तत्पश्चात् वानरयूथपति अङ्गदको अपनी ओर आते देख कुम्भने दो बाणोंसे उनकी भौंहोंमें प्रहार किया, मानो दो उल्काओंद्वारा किसी हाथीको मारा गया हो॥ ५१½ ॥

अङ्गदकी भौंहोंसे रक्त बहने लगा और उनकी आँखें बंद हो गयीं। तब उन्होंने एक हाथसे खूनसे भीगी हुई अपनी दोनों आँखोंको ढक लिया और दूसरे हाथसे पास ही खड़े हुए एक सालके वृक्षको पकड़ा। फिर छातीसे दबाकर तनेसहित उस वृक्षको कुछ झुका दिया और उस महासमरमें एक ही हाथसे उसे उखाड़ लिया॥

वह वृक्ष इन्द्रध्वज तथा मन्दराचलके समान ऊँचा था। उसे अङ्गदने सब राक्षसोंके देखते-देखते बड़े वेगसे कुम्भपर दे मारा॥ ५५॥

किंतु शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले सात तीखे बाण मारकर कुम्भने उस सालवृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, इससे अङ्गदको बड़ी व्यथा हुई। वे घायल तो थे ही, गिरे और मूर्च्छित हो गये॥ ५६॥

दुर्जय वीर अङ्गदको समुद्रमें डूबते हुए-के समान पृथ्वीपर पड़ा देख श्रेष्ठ वानरोंने श्रीरघुनाथजीको इसकी सूचना दी॥ ५७॥

श्रीरामने जब सुना कि वालिपुत्र अङ्गद महासमरमें मूर्च्छित होकर गिरे हैं, तब उन्होंने जाम्बवान् आदि प्रमुख वानरवीरोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी॥ ५८॥

श्रीरामचन्द्रजीका आदेश सुनकर श्रेष्ठ वानर वीर अत्यन्त कुपित हो धनुष उठाये खड़े हुए कुम्भपर सब ओरसे टूट पड़े॥ ५९॥

वे सभी प्रमुख वानर अङ्गदकी रक्षा करना चाहते थे; अतः क्रोधसे लाल आँखें किये हाथोंमें वृक्ष और शिलाएँ लेकर उस राक्षसकी ओर दौड़े॥ ६०॥

जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शीने कुपित हो वीर कुम्भकर्णकुमारपर धावा किया॥ ६१॥

उन महाबली वानर-यूथपतियोंको आक्रमण करते देख कुम्भने अपने बाणसमूहोंद्वारा उन सबको उसी तरह रोक दिया, जैसे आगे बढ़ते हुए जल-प्रवाहको मार्गमें खड़ा हुआ पर्वत रोक देता है॥ ६२॥

उसके बाणोंके मार्गमें आनेपर वे महामनस्वी वानर-यूथपति आगे बढ़ना तो दूर रहा उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं पाते थे। ठीक उसी तरह, जैसे महासागर अपनी तटभूमिको लाँघकर आगे नहीं जा सकता था॥ ६३॥

उन सब वानरसमूहोंको कुम्भकी बाणवर्षासे पीड़ित देख वानरराज सुग्रीवने अपने भतीजे अङ्गदको पीछे करके स्वयं ही रणभूमिमें कुम्भकर्णकुमारपर उसी तरह धावा किया, जैसे पर्वतके शिखरपर विचरनेवाले हाथीके ऊपर वेगवान् सिंह आक्रमण करता है॥ ६४-६५॥

महाकपि सुग्रीव अश्वकर्ण आदि बड़े-बड़े वृक्ष तथा दूसरे भी नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसपर फेंकने लगे॥ ६६॥

वृक्षोंकी वह वर्षा आकाशको आच्छादित किये देती थी। उसे टालना अत्यन्त कठिन हो रहा था; किंतु श्रीमान् कुम्भकर्णने अपने तीखे बाणोंसे उन सब वृक्षोंको काट डाला॥ ६७॥

लक्ष्य बेधनेमें सफल, तीव्र वेगशाली कुम्भके पैने बाणोंसे व्याप्त हुए वे वृक्ष भयानक शतघ्नियोंके समान सुशोभित होते थे। उस वृक्ष-वृष्टिको कुम्भके द्वारा खण्डित हुई देख महान् शक्तिशाली पराक्रमी वानरराज सुग्रीव व्यथित नहीं हुए॥ ६८½ ॥

वे उसके बाणोंकी चोट खाते और सहते हुए सहसा उछलकर उसके रथपर चढ़ गये और कुम्भके इन्द्र-धनुषके समान तेजस्वी धनुषको छीनकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही वहाँसे नीचे कूद पड़े। यह दुष्कर कर्म करनेके पश्चात् उन्होंने टूटे दाँतवाले हाथीके समान कुम्भसे कुपित

होकर कहा— ॥ ६९-७० १/२ ॥

'निकुम्भके बड़े भाई कुम्भ! तुम्हारा पराक्रम और तुम्हारे बाणोंका वेग अद्भुत है। राक्षसोंके प्रति विनय अथवा प्रवणता तथा प्रभाव या तो तुममें है या रावणमें। तुम प्रह्लाद, बलि, इन्द्र, कुबेर और वरुणके समान हो॥

'केवल तुमने ही अपने अत्यन्त बलशाली पिताका अनुसरण किया है। जैसे जितेन्द्रिय पुरुषको मानसिक व्यथाएँ अभिभूत नहीं करती हैं, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले एकमात्र शूलधारी तुझ महाबाहु वीरको ही देवतालोग युद्धमें परास्त नहीं कर पाते हैं। महामते! पराक्रम प्रकट करो और अब मेरे बलको भी देखो॥ ७३-७४॥

'तुम्हारा पितृव्य रावण केवल वरदानके प्रभावसे देवताओं और दानवोंका वेग सहन करता है। तुम्हारा पिता कुम्भकर्ण अपने बल-पराक्रमसे देवताओं और असुरोंका सामना करता था (परंतु तुम वरदान और पराक्रम दोनोंसे सम्पन्न हो)॥ ७५॥

'तुम धनुर्विद्यामें इन्द्रजित्‌के समान और प्रतापमें रावणके तुल्य हो। राक्षसोंके संसारमें अब बल और पराक्रमकी दृष्टिसे केवल तुम्हीं श्रेष्ठ हो॥ ७६॥

'आज सब प्राणी रणभूमिमें इन्द्र और शम्बरासुरकी भाँति मेरे साथ तुम्हारे अद्भुत महायुद्धको देखें॥ ७७॥

'तुमने वह पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। तुमने अपना अस्त्र-कौशल दिखा दिया। तुम्हारे साथ युद्ध करके ये भयंकर पराक्रमी वानर वीर धराशायी हो गये॥ ७८॥

'वीर! अबतक जो मैंने तुम्हारा वध नहीं किया है, उसमें कारण है लोगोंके उपालम्भका भय—लोग यह कहकर मेरी निन्दा करते कि कुम्भ बहुत-से वीरोंके साथ युद्ध करके थक गया था, उस दशामें सुग्रीवने उसे मारा है; अतः अब तुम कुछ विश्राम कर लो, फिर मेरा बल देखो'॥ ७९॥

सुग्रीवके इस अपमानयुक्त वचनद्वारा सम्मानित हो घीकी आहुति पाये हुए अग्निदेवके समान कुम्भका तेज बढ़ गया॥ ८०॥

फिर तो कुम्भने सुग्रीवको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया। तत्पश्चात् वे दोनों वीर मदमत्त गजराजोंकी भाँति बारंबार लंबी साँस खींचते हुए एक-दूसरेसे गुँथ गये। दोनों दोनोंको रगड़ने लगे और दोनों ही अपने मुखसे परिश्रमके कारण धूमयुक्त आगकी ज्वाला-सी उगलने लगे॥ ८१-८२॥

उन दोनोंके पैरोंके आघातसे धरती नीचेको धँसने लगी। झूमती हुई तरङ्गोंसे युक्त वरुणालय समुद्रमें ज्वार-सा आ गया॥ ८३॥

इतनेहीमें सुग्रीवने कुम्भको उठाकर बड़े वेगसे समुद्रके जलमें फेंक दिया। उसमें गिरते ही कुम्भको समुद्रका निचला तल देखना पड़ा॥ ८४॥

कुम्भके गिरनेसे बड़ी भारी जलराशि ऊपरको उठी, जो विन्ध्य और मन्दराचलके समान जान पड़ी और सब ओर फैल गयी॥ ८५॥

इसके बाद कुम्भ पुनः उछलकर बाहर आया और क्रोधपूर्वक सुग्रीवको पटककर उनकी छातीपर उसने वज्रके समान मुक्केसे प्रहार किया॥ ८६॥

इससे वानरराजका कवच टूट गया और छातीसे खून बहने लगा। उसका महान् वेगशाली मुक्का सुग्रीवकी हड्डियोंपर बड़े वेगसे लगा था॥ ८७॥

उसके वेगसे वहाँ बड़ी भारी ज्वाला जल उठी थी, मानो मेरु पर्वतके शिखरपर वज्रके आघातसे आग प्रकट हो गयी हो॥ ८८॥

कुम्भके द्वारा इस प्रकार आहत होनेपर वानरराज महाबली परम पराक्रमी सुग्रीवने भी अपना वज्रतुल्य मुक्का सँभाला और कुम्भकी छातीमें बलपूर्वक आघात किया। उस मुक्केका तेज सहस्रों किरणोंसे प्रकाशित सूर्यमण्डलके समान उद्दीप्त हो रहा था॥ ८९-९०॥

उस प्रहारसे कुम्भको बड़ी पीड़ा हुई। वह व्याकुल हो बुझी हुई आगकी तरह गिर पड़ा॥ ९१॥

सुग्रीवके मुक्केकी चोट खाकर वह राक्षस आकाशसे अकस्मात् गिरनेवाले मंगलकी भाँति तत्काल धराशायी हो गया॥ ९२॥

मुक्केकी मारसे जिसका वक्षःस्थल चूर-चूर हो गया था, वह कुम्भ जब नीचे गिरने लगा, तब उसका रूप रुद्रदेवसे अभिभूत हुए सूर्यदेवके समान जान पड़ा॥ ९३॥

भयंकर पराक्रमी वानरराज सुग्रीवके द्वारा युद्धमें उस निशाचरके मारे जानेपर पर्वत और वनोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी और राक्षसोंके हृदयमें अत्यन्त भय समा गया॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

हनुमान्‌के द्वारा निकुम्भका वध

सुग्रीवके द्वारा अपने भाई कुम्भको मारा गया देख निकुम्भने वानरराजकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें अपने क्रोधसे दग्ध कर देगा॥ १॥

उस धीर-वीरने महेन्द्र पर्वतके शिखर-जैसा एक सुन्दर एवं विशाल परिघ हाथमें लिया, जो फूलोंकी लड़ियोंसे अलंकृत था और जिसमें पाँच-पाँच अंगुलके चौड़े लोहेके पत्र जड़े गये थे॥ २॥

उस परिघमें सोनेके पत्र भी जड़े थे और उसे हीरे तथा मूँगोंसे भी विभूषित किया गया था। वह परिघ यमदण्डके समान भयंकर तथा राक्षसोंके भयका नाश करनेवाला था॥ ३॥

उस इन्द्रध्वजके समान तेजस्वी परिघको घुमाता हुआ वह महातेजस्वी भयानक पराक्रमी राक्षस निकुम्भ मुँह फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ४॥

उसके वक्षःस्थलमें सोनेका पदक था। भुजाओंमें बाजूबंद शोभा देते थे। कानोंमें विचित्र कुण्डल झलमला रहे थे और गलेमें विचित्र माला जगमगा रही थी। इन सब आभूषणोंसे और उस परिघसे भी निकुम्भकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे विद्युत् और गर्जनासे युक्त मेघ इन्द्र-धनुषसे सुशोभित होता है॥ ५-६॥

उस महाकाय राक्षसके परिघके अग्रभागसे टकराकर प्रवह-आवह आदि सात महावायुओंकी संधि टूट-फूट गयी तथा वह भारी गड़गड़ाहटके साथ धूमरहित अग्निकी भाँति प्रज्वलित हो उठा॥ ७॥

निकुम्भके परिघ घुमानेसे विटपावती नगरी (अलकापुरी), गन्धर्वोंके उत्तम भवन, तारे, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े ग्रहोंके साथ समस्त आकाशमण्डल घूमता-सा प्रतीत होता था॥ ८॥

परिघ और आभूषण ही जिसकी प्रभा थे, क्रोध ही जिसके लिये ईंधनका काम कर रहा था, वह निकुम्भ नामक अग्नि प्रलयकालकी आगके समान उठी और अत्यन्त दुर्जय हो गयी॥ ९॥

उस समय राक्षस और वानर भयके मारे हिल-डुल भी न सके। केवल महाबली हनुमान् अपनी छाती खोलकर उस राक्षसके सामने खड़े हो गये॥ १०॥

निकुम्भकी भुजाएँ परिघके समान थीं। उस महाबली राक्षसने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी परिघको बलवान् वीर हनुमान्‌जीकी छातीपर दे मारा॥ ११॥

हनुमान्‌जीकी छाती बड़ी सुदृढ़ और विशाल थी। उससे टकराते ही उस परिघके सहसा सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर गये, मानो आकाशमें सौ-सौ उल्काएँ एक साथ गिरी हों॥ १२॥

महाकपि हनुमान्‌जी परिघसे आहत होनेपर भी उस प्रहारसे विचलित नहीं हुए, जैसे भूकम्प होनेपर भी पर्वत नहीं गिरता है॥ १३॥

अत्यन्त महान् बलशाली वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने इस प्रकार परिघकी मार खाकर बलपूर्वक अपनी मुट्ठी बाँधी॥ १४॥

वे महान् तेजस्वी, पराक्रमी, वेगवान् और वायुके समान बल-विक्रमसे सम्पन्न थे। उन्होंने मुक्का तानकर बड़े वेगसे निकुम्भकी छातीपर मारा॥ १५॥

उस मुक्केकी चोटसे वहाँ उसका कवच फट गया और छातीसे रक्त बहने लगा; मानो मेघमें बिजली चमक उठी हो॥ १६॥

उस प्रहारसे निकुम्भ विचलित हो उठा; फिर थोड़ी ही देरमें सँभलकर उसने महाबली हनुमान्‌जीको पकड़ लिया॥ १७॥

उस समय युद्धस्थलमें निकुम्भके द्वारा महाबली हनुमान्‌जीका अपहरण होता देख लङ्कानिवासी राक्षस भयानक स्वरमें विजयसूचक गर्जना करने लगे॥ १८॥

उस राक्षसके द्वारा इस प्रकार अपहृत होनेपर भी पवनपुत्र हनुमान्‌जीने अपने वज्रतुल्य मुक्केसे उसपर प्रहार किया॥ १९॥

फिर वे अपनेको उसके चंगुलसे छुड़ाकर पृथ्वीपर खड़े हो गये। तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्‌ने तत्काल ही निकुम्भको पृथ्वीपर दे मारा॥ २०॥

इसके बाद उन वेगशाली वीरने बड़े प्रयाससे निकुम्भको पृथ्वीपर गिराया और खूब रगड़ा। फिर वेगसे उछलकर वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे और दोनों हाथोंसे गला मरोड़कर उन्होंने उसके मस्तकको उखाड़ लिया। गला मरोड़ते समय वह राक्षस भयंकर आर्तनाद कर रहा था॥ २१-२२॥

रणभूमिमें वायुपुत्र हनुमान्‌जीके द्वारा गर्जना करनेवाले निकुम्भके मारे जानेपर एक-दूसरेपर अत्यन्त कुपित हुए श्रीराम और मकराक्षमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ॥ २३॥

निकुम्भके प्राणत्याग करनेपर सभी वानर बड़े

हर्षके साथ गर्जने लगे। सम्पूर्ण दिशाएँ कोलाहलसे भर गयीं। पृथ्वी चलती-सी जान पड़ी, आकाश मानो फट पड़ा हो, ऐसा प्रतीत होने लगा तथा राक्षसोंकी सेनामें भय समा गया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रस्थान

निकुम्भ और कुम्भको मारा गया सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह आगके समान जल उठा॥ १॥

रावणने क्रोध और शोक दोनोंसे व्याकुल हो विशाल नेत्रोंवाले खरपुत्र मकराक्षसे कहा—॥ २॥

'बेटा! मेरी आज्ञासे विशाल सेनाके साथ जाओ और बंदरोंसहित उन दोनों भाई राम तथा लक्ष्मणको मार डालो'॥ ३॥

रावणकी यह बात सुनकर अपनेको शूरवीर माननेवाले खरपुत्र मकराक्षने हर्षपूर्वक कहा—'बहुत अच्छा'। फिर उस बली वीरने निशाचरराज रावणको प्रणाम करके उसकी परिक्रमा की और उसकी आज्ञा लेकर वह उज्ज्वल राजभवनसे बाहर निकला॥ ४-५॥

पास ही सेनाध्यक्ष खड़ा था। खरके पुत्रने उससे कहा—'सेनापते! शीघ्र रथ ले आओ और तुरंत ही सेनाको भी बुलवाओ'॥ ६॥

मकराक्षकी यह बात सुनकर निशाचर सेनापतिने रथ और सेना उसके पास लाकर खड़ी कर दी॥ ७॥

तब मकराक्षने रथकी प्रदक्षिणा की और उसपर आरूढ़ होकर सारथिको आदेश दिया—'रथको शीघ्रता-पूर्वक ले चलो'॥ ८॥

इसके बाद मकराक्षने समस्त राक्षसोंसे कहा—'निशाचरो! तुमलोग मेरे आगे रहकर युद्ध करो॥ ९॥

'मुझे महामना राक्षसराज रावणने समरभूमिमें राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको मारनेकी आज्ञा दी है॥

'राक्षसो! आज मैं राम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव तथा दूसरे-दूसरे वानरोंका अपने उत्तम बाणोंद्वारा वध करूँगा॥ ११॥

'जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार आज मैं शूलोंकी मारसे सामने आयी हुई वानरोंकी विशाल वाहिनीको दग्ध कर डालूँगा'॥ १२॥

मकराक्षका यह वचन सुनकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न वे समस्त बलवान् निशाचर युद्धके लिये सावधान हो गये॥ १३॥

वे सब-के-सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और क्रूर स्वभावके थे। उनकी दाढ़ें बड़ी-बड़ी और आँखें भूरी थीं। उनके केश सब ओर बिखरे हुए थे; इसलिये वे बड़े भयानक जान पड़ते थे। हाथीके समान चिग्घाड़ते हुए वे विशालकाय निशाचर खरके पुत्र महाकाय मकराक्षको चारों ओरसे घेरकर पृथ्वीको कँपाते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धभूमिकी ओर चले॥ १४-१५॥

उस समय चारों ओर सहस्रों शङ्खोंकी ध्वनि हो रही थी। हजारों डंके पीटे जाते थे। योद्धाओंके गर्जने और ताल ठोंकनेकी आवाज भी उनके साथ मिली हुई थी। इस प्रकार वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया था॥

उस समय मकराक्षके सारथिके हाथसे चाबुक छूटकर नीचे गिर पड़ा और दैववश उस राक्षसका ध्वज भी सहसा धराशायी हो गया॥ १७॥

उसके रथमें जुते हुए घोड़े विक्रमरहित हो गये—वे अपनी नाना प्रकारकी विचित्र चालें भूल गये। पहले तो कुछ दूरतक आकुल—लड़खड़ाते हुए पैरोंसे गये; फिर ठीकसे चलने लगे। परंतु भीतरसे वे बहुत दुःखी थे। उनके मुखपर आँसूकी धारा बह रही थी॥ १८॥

दुष्ट बुद्धिवाले उस भयंकर राक्षस मकराक्षकी यात्राके समय धूलसे भरी हुई दारुण एवं प्रचण्ड वायु चलने लगी थी॥ १९॥

उन सब अपशकुनोंको देखकर भी वे महाबलशाली राक्षस उनकी कोई परवा न करके सब-के-सब उस स्थानपर गये, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे॥

उन राक्षसोंकी अङ्गकान्ति मेघ, हाथी और भैंसोंके समान काली थी। वे युद्धके मुहानेपर अनेक बार गदाओं और तलवारोंकी चोटसे घायल हो चुके थे। उनमें युद्धविषयक कौशल विद्यमान था। वे निशाचर 'पहले मैं युद्ध करूँगा, पहले मैं युद्ध करूँगा' ऐसा बारंबार कहते हुए वहाँ सब ओर चक्कर लगाने लगे।॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७८॥

उन्नासीवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मकराक्षका वध

प्रधान-प्रधान वानरोंने जब देखा कि मकराक्ष नगरसे निकला आ रहा है, तब वे सब-के-सब सहसा उछलकर युद्धके लिये खड़े हो गये॥ १॥

फिर तो वानरोंका निशाचरोंके साथ बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया, जो देव-दानव-संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ २॥

वानर और निशाचर वृक्ष, शूल, गदा और परिघोंकी मारसे उस समय एक-दूसरेको कुचलने लगे॥ ३॥

निशाचरगण शक्ति, खड्‌ग, गदा, भाला, तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, बाणप्रहार, पाश, मुद्गर, दण्ड तथा अन्य प्रकारके शस्त्रोंके आघातसे सब ओर वानरवीरोंका संहार करने लगे॥ ४-५॥

खरपुत्र मकराक्षने अपने बाणसमूहोंसे वानरोंको अत्यन्त घायल कर दिया। उनके मनमें बड़ी घबराहट हुई और वे सब-के-सब भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे॥ ६॥

उन सब वानरोंको भागते देख विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वे समस्त राक्षस दर्पसे भरकर सिंहके समान गर्जना करने लगे॥ ७॥

वे वानर जब सब ओर भागने-पराने लगे, तब श्रीरामचन्द्रजीने बाणोंकी वर्षा करके राक्षसोंको आगे बढ़नेसे रोका॥ ८॥

राक्षसोंको रोका गया देख निशाचर मकराक्ष क्रोधकी आगसे जल उठा और इस प्रकार बोला—॥ ९॥

'राम! ठहरो, मेरे साथ तुम्हारा द्वन्द्वयुद्ध होगा। आज अपने धनुषसे छूटे हुए पैने बाणोंद्वारा तुम्हारे प्राण हर लूँगा॥ १०॥

'उन दिनों दण्डकारण्यके भीतर जो तुमने मेरे पिताका वध किया था, तभीसे लेकर अबतक तुम राक्षस-वधके ही कर्ममें लगे हुए थे। इस रूपमें तुम्हारा स्मरण करके मेरा रोष बढ़ता जा रहा है॥ ११॥

'दुरात्मा राघव! उस समय विशाल दण्डकारण्यमें जो तुम मुझे दिखायी नहीं दिये, इससे मेरे अङ्ग अत्यन्त रोषसे जलते रहते थे॥ १२॥

'किंतु राम! सौभाग्यकी बात है, जो तुम आज यहाँ मेरी आँखोंके सामने पड़ गये। जैसे भूखसे पीड़ित हुए सिंहको दूसरे वन-जन्तुओंकी अभिलाषा होती है, उसी तरह मैं भी तुम्हें पानेकी इच्छा करता था॥ १३॥

'आज मेरे बाणोंके वेगसे यमराजके राज्यमें पहुँचकर तुम्हें उन्हीं वीर निशाचरोंके साथ निवास करना पड़ेगा, जो तुम्हारे हाथसे मारे गये हैं॥ १४॥

'राम! यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ? मेरी बात सुनो। सब लोग इस समराङ्गणमें खड़े होकर केवल तुमको और मुझको देखें—तुम्हारे और मेरे युद्धका अवलोकन करें॥ १५॥

'राम! तुम्हें रणभूमिमें अस्त्रोंसे, गदासे अथवा दोनों भुजाओंसे—जिससे भी अभ्यास हो, उसीके द्वारा आज तुम्हारे साथ मेरा युद्ध हो'॥ १६॥

मकराक्षकी यह बात सुनकर दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम जोर-जोरसे हँसने लगे और उत्तरोत्तर बातें बनानेवाले उस राक्षससे बोले—॥ १७॥

'निशाचर! क्यों व्यर्थ डींग हाँकता है। तेरे मुँहसे बहुत-सी ऐसी बातें निकल रही हैं, जो वीर पुरुषोंके योग्य नहीं हैं। संग्राममें युद्ध किये बिना कोरी बकवासके बलसे विजय नहीं प्राप्त हो सकती॥ १८॥

'पापी राक्षस! यह ठीक है कि दण्डकारण्यमें चौदह हजार राक्षसोंके साथ तेरे पिता खरका, त्रिशिराका और दूषणका भी मैंने वध किया था। उस समय तीखी चोंच और अंकुशके समान पंजेवाले बहुत-से गीधों, गीदड़ों तथा कौओंको भी उनके मांससे अच्छी तरह तृप्त किया था और अब आज वे तेरे मांससे भरपेट भोजन पायेंगे'॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर महाबली मकराक्षने रणभूमिमें उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २१॥

परंतु श्रीरामने स्वयं भी बाणोंकी बौछार करके उस राक्षसके बाण टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वे कटे हुए सुनहरी पाँखवाले सहस्रों बाण पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २२॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम और राक्षस खरके पुत्र मकराक्ष—इन दोनोंमें एक-दूसरेके निकट आकर बलपूर्वक युद्ध होने लगा॥ २३॥

उन दोनोंकी प्रत्यञ्चा और हथेलीकी रगड़से धनुषके द्वारा जो टंकार-शब्द प्रकट होता था, वह उस समराङ्गणमें परस्पर मिलकर उसी तरह सुनायी देता था, जैसे आकाशमें दो मेघोंके गर्जनेकी आवाज हो रही हो॥

देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े नाग—ये सब-के-सब उस अद्भुत युद्धको देखनेके लिये अन्तरिक्षमें आकर खड़े हो गये॥ २५॥

दोनोंके शरीर बाणोंसे बिंध गये थे; फिर भी उनका बल दुगुना बढ़ता जाता था। वे दोनों संग्रामभूमिमें एक-दूसरेके अस्त्रोंको काटते हुए लड़ रहे थे॥ २६॥

श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए बाण-समूहोंको वह राक्षस रणभूमिमें काट डालता था और राक्षसके चलाये हुए सायकोंको श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंद्वारा टूक-टूक कर डालते थे॥ २७॥

सम्पूर्ण दिशा और विदिशाएँ बाण-समूहोंसे आच्छादित हो गयी थीं तथा सारी पृथ्वी ढक गयी थी। चारों ओर कुछ भी दिखायी नहीं देता था॥ २८॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर उस राक्षसके धनुषको युद्धभूमिमें काट दिया और आठ नाराचोंद्वारा उसके सारथिको भी पीट दिया॥ २९॥

फिर अनेक बाणोंसे रथको छिन्न-भिन्न करके श्रीरामने घोड़ोंको भी मार गिराया। रथहीन हो जानेपर निशाचर मकराक्ष भूमिपर खड़ा हो गया॥ ३०॥

पृथ्वीपर खड़े हुए उस राक्षसने शूल हाथमें लिया, जो प्रलयकालकी अग्निके समान दीप्तिमान् तथा समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था॥ ३१॥

वह परम दुर्लभ और महान् शूल भगवान् शंकरका दिया हुआ था, जो बहुत ही भयंकर था। वह दूसरे संहारास्त्रकी भाँति आकाशमें प्रज्वलित हो उठा॥ उसे देखकर सम्पूर्ण देवता भयसे पीड़ित हो सब दिशाओंमें भाग गये। उस निशाचरने प्रज्वलित होते हुए उस महान् शूलको घुमाकर महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऊपर क्रोधपूर्वक चलाया॥ ३३$\frac{1}{2}$॥

खरपुत्र मकराक्षके हाथसे छूटे हुए उस प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देख श्रीरामचन्द्रजीने चार बाण मारकर आकाशमें ही उसको काट डाला॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

दिव्य सुवर्णसे विभूषित वह शूल श्रीरामके बाणोंसे खण्डित हो अनेक टुकड़ोंमें बँट गया और बड़ी भारी उल्काके समान भूतलपर बिखर गया॥ ३५॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा उस शूलको खण्डित हुआ देख आकाशमें स्थित हुए सभी प्राणी उन्हें साधुवाद देने लगे॥ ३६॥

उस शूलके टुकड़े-टुकड़े हुए देख निशाचर मकराक्षने घूसा तानकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ ३७॥

उसे आक्रमण करते देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर अपने धनुषपर आग्नेयास्त्रका संधान किया॥ ३८॥

और उस अस्त्रके द्वारा उन्होंने रणभूमिमें तत्काल उस राक्षसपर प्रहार किया। बाणके आघातसे राक्षसका हृदय विदीर्ण हो गया; अतः वह गिरा और मर गया॥ ३९॥

मकराक्षका धराशायी होना देख वे सब राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके भयसे व्याकुल हो लङ्कामें ही भाग गये॥ ४०॥

देवताओंने देखा, जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत बिखर जाता है, उसी प्रकार खरका पुत्र निशाचर मकराक्ष दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके वेगसे मार डाला गया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उन्नासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ सर्ग

रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्‌का घोर युद्ध तथा उसके वधके विषयमें श्रीराम और लक्ष्मणकी बातचीत

मकराक्षको मारा गया सुनकर समरविजयी रावण महान् रोषसे भरकर दाँत पीसने लगा॥ १॥

कुपित हुआ वह निशाचर उस समय वहाँ इस चिन्तामें पड़ गया कि अब क्या करना चाहिये। उसने अत्यन्त क्रोधसे भरकर अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी॥ २॥

वह बोला—'वीर! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको छिपकर या प्रत्यक्षरूपसे मार डालो; क्योंकि तुम बलमें सर्वथा बढ़े-चढ़े हो॥ ३॥

'जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, उस इन्द्रको भी तुम युद्धमें परास्त कर देते हो; फिर उन दो मनुष्योंको रणभूमिमें अपने सामने पाकर क्यों नहीं मार सकोगे?'॥ ४॥

राक्षसराज रावणके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्‌ने पिताकी

आज्ञा शिरोधार्य की और यज्ञभूमिमें जाकर अग्निकी स्थापना करके उसमें विधिपूर्वक हवन किया॥ ५॥

उसके अग्निमें हवन करते समय लाल वस्त्र धारण किये बहुत-सी स्त्रियाँ घबरायी हुई उस स्थानपर आयीं, जहाँ वह रावणपुत्र हवन कर रहा था॥ ६॥

उसके तलवार आदि शस्त्र ही सरपत—कुशास्तरणका काम दे रहे थे, बहेड़ेकी लकड़ी समिधा थी, लाल वस्त्र और लोहेका स्रुवा—ये सब वस्तुएँ उपयोगमें लायी गयी थीं॥ ७॥

उसने तोमरसहित शस्त्ररूपी सरपत अग्निके चारों ओर बिछा दिये। उसके बाद काले रंगके जीवित बकरेका गला पकड़कर उसे अग्निमें होम दिया॥ ८॥

एक ही बार किये गये उस होमसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी, उसमें धुआँ नहीं था और बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। उस अग्निमें वे सभी चिह्न प्रकट हुए, जो विजयकी सूचना देते थे॥ ९॥

उस समय तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया। उनकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकल रही थी॥ १०॥

अग्निमें आहुति दे आभिचारिक यज्ञ-सम्बन्धी देवता, दानव तथा राक्षसोंको तृप्त करनेके पश्चात् इन्द्रजित् अन्तर्धान होनेकी शक्तिसे सम्पन्न सुन्दर रथपर आरूढ़ हुआ॥ ११॥

चार घोड़ों, पैने बाणों तथा अपने भीतर रखे हुए विशाल धनुषसे युक्त वह उत्तम रथ बड़ी शोभा पा रहा था॥ १२॥

उसके सब सामान सोनेके बने हुए थे, अत: वह रथ अपने स्वरूपसे प्रज्वलित-सा जान पड़ता था। उसमें मृग, अर्धचन्द्र और पूर्णचन्द्र अङ्कित किये गये थे, जिनसे उसकी सजावट आकर्षक दिखायी देती थी॥ १३॥

इन्द्रजित्का ध्वज प्रज्वलित अग्निके समान दीप्तिमान् था। उसमें सोनेके बड़े-बड़े कड़े पहनाये गये थे और उसे नीलमसे अलंकृत किया गया था॥ १४॥

उस सूर्यतुल्य तेजस्वी रथ और ब्रह्मास्त्रसे सुरक्षित हुआ वह महाबली रावणकुमार इन्द्रजित् दूसरोंके लिये दुर्जय हो गया था॥ १५॥

समरविजयी इन्द्रजित् नगरसे निकलकर निर्ऋति-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे अन्तर्धानकी शक्तिसे सम्पन्न हो इस प्रकार बोला—॥ १६॥

'जो व्यर्थ ही वनमें आये हैं (अथवा झूठे ही तपस्वीका बाना धारण किये हुए हैं), उन दोनों भाई राम और लक्ष्मणको आज रणभूमिमें मारकर मैं अपने पिता रावणको उत्कृष्ट जय प्रदान करूँगा॥ १७॥

'आज राम और लक्ष्मणको मारकर पृथ्वीको वानरोंसे सूनी करके मैं पिताको परम संतोष दूँगा।' ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गया॥ १८॥

तत्पश्चात् दशमुख रावणसे प्रेरित हो इन्द्रशत्रु इन्द्रजित् कुपित होकर रणभूमिमें आया। उसके हाथमें धनुष और तीखे नाराच थे॥ १९॥

युद्धस्थलमें आकर उस निशाचरने वानरोंके बीचमें खड़े हो बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए महापराक्रमी वीर श्रीराम और लक्ष्मणको वहाँ (ऊँचे और मोटे कंधोंसे युक्त होनेके कारण) तीन सिरवाले नागोंके समान देखा॥

'ये ही वे दोनों हैं' ऐसा सोचकर इन्द्रजित्ने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और जलकी वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति अपनी बाण-धाराओंसे सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया॥ २१॥

उसका रथ आकाशमें खड़ा था और श्रीराम तथा लक्ष्मण युद्धभूमिमें विराजमान थे। उन दोनोंकी दृष्टिसे ओझल होकर वह राक्षस उन्हें पैने बाणोंसे बींधने लगा॥ २२॥

उसके बाणोंके वेगसे व्याप्त हुए श्रीराम और लक्ष्मणने भी अपने-अपने धनुषपर बाणोंका संधान करके दिव्य अस्त्र प्रकट किये॥ २३॥

उन महाबली बन्धुओंने सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणसमूहोंसे आकाशको आच्छादित करके भी इन्द्रजित्का अपने बाणोंसे स्पर्श नहीं किया॥ २४॥

उस तेजस्वी राक्षसने मायासे धूमजनित अन्धकारकी सृष्टि की और आकाशको ढक दिया। साथ ही कुहरेका अन्धकार फैलाकर दिशाओंको भी ढक दिया॥ २५॥

उसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार नहीं सुनायी देती थी। पहियोंकी घर्घराहट तथा घोड़ोंकी टापकी आवाज भी कानोंमें नहीं पड़ती थी और सब ओर विचरते हुए उस राक्षसका रूप भी दृष्टिगोचर नहीं होता था॥ २६॥

महाबाहु इन्द्रजित् उस घने अन्धकारमें जहाँ दृष्टि काम नहीं करती थी, पत्थरोंकी अद्भुत वृष्टिके समान नाराच नामक बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २७॥

समराङ्गणमें कुपित हुए उस रावणकुमारने वरदानमें प्राप्त हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें घाव कर दिया॥ २८॥

जैसे दो पर्वतोंपर जलकी धाराएँ बरस रही हों, उसी प्रकार उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंपर नाराचोंकी मार पड़ने लगी। उसी अवस्थामें वे दोनों वीर भी सोनेके पंखोंसे सुशोभित तीखे बाण छोड़ने लगे॥ २९॥

वे कङ्कपत्रयुक्त बाण आकाशमें पहुँचकर रावणकुमार इन्द्रजित्‌को क्षत-विक्षत करके रक्तमें डूबे हुए पृथ्वीपर गिर पड़ते थे॥ ३०॥

बाणसमूहोंसे अत्यन्त देदीप्यमान वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर अपने ऊपर गिरते हुए सायकोंको अनेक भल्ल मारकर काट गिराते थे॥ ३१॥

जिस ओरसे तीखे बाण आते दिखायी देते, उसी ओर वे दोनों भाई दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण अपने उत्तम अस्त्रोंको चलाया करते थे॥ ३२॥

अतिरथी वीर रावणपुत्र इन्द्रजित् अपने रथके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ लगाता और बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाता था। उसने अपने पैने बाणोंद्वारा उन दोनों दशरथकुमारोंको घायल कर दिया॥ ३३॥

उसके सोनेके पंखवाले सुदृढ़ सायकोंद्वारा अत्यन्त घायल हुए वे दोनों वीर दशरथकुमार रक्तरञ्जित हो खिले हुए पलाशवृक्षोंके समान प्रतीत होते थे॥ ३४॥

इन्द्रजित्‌की वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणोंको कोई देख नहीं पाता था। मेघोंकी घटामें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी कोई भी बात किसीको ज्ञात नहीं हो पाती थी॥ ३५॥

उसके द्वारा घायल और आहत होकर कितने ही वानर अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे तथा सैकड़ों योद्धा मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३६॥

तब लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने भाईसे कहा—'आर्य! अब मैं समस्त राक्षसोंके संहारके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करूँगा'॥ ३७॥

उनकी यह बात सुनकर श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे कहा—'भाई! एकके कारण भूमण्डलके समस्त राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है॥ ३८॥

'महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये। अब मैं उस इन्द्रजित्‌के ही वधका प्रयत्न करता हूँ। आओ, हमलोग विषैले सर्पोंकी भाँति भयंकर तथा अत्यन्त वेगशाली अस्त्रोंका प्रयोग करें॥ ३९-४०॥

'यह मायावी राक्षस बड़ा नीच है। इसने अन्तर्धान-शक्तिसे अपने रथको छिपा लिया है। यदि यह दीख जाय तो वानरयूथपति इस राक्षसको अवश्य मार डालेंगे॥

'यदि यह पृथ्वीमें समा जाय, स्वर्गको चला जाय, रसातलमें प्रवेश करे अथवा आकाशमें ही स्थित रहे तथापि इस तरह छिपे होनेपर भी मेरे अस्त्रोंसे दग्ध होकर प्राणशून्य हो भूतलपर अवश्य गिरेगा'॥ ४२॥

इस प्रकार महान् अभिप्रायसे युक्त वचन कहकर वानर शिरोमणियोंसे घिरे हुए रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी उस क्रूरकर्मा भयानक राक्षसका वध करनेके लिये तत्काल ही इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित्‌के द्वारा मायामयी सीताका वध

महात्मा रघुनाथजीके मनोभावको समझकर इन्द्रजित् युद्धसे निवृत्त हो लङ्कापुरीमें चला गया॥ १॥

वहाँ जानेपर बलवान् राक्षसोंके वधका स्मरण हो आनेसे शूरवीर रावणकुमारकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वह पुनः युद्धके लिये निकला॥ २॥

पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न महापराक्रमी इन्द्रजित् देवताओंके लिये कण्टकरूप था। वह राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर नगरके पश्चिम द्वारसे पुनः बाहर आया॥ ३॥

दोनों भाई वीर श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धके लिये उद्यत देख इन्द्रजित्‌ने उस समय माया प्रकट की॥ ४॥

उसने मायामयी सीताका निर्माण करके उसे अपने रथपर बिठा लिया और विशाल सेनाके घेरेमें रखकर उसका वध करनेका विचार किया॥ ५॥

उसकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी। उसने सबको मोहमें डालनेका विचार करके मायासे बनी हुई सीताको मारनेका निश्चय किया। इसी अभिप्रायसे वह वानरोंके सामने गया॥

उसे युद्धके लिये निकलते देख सभी वानर क्रोधसे भर गये और हाथमें शिला उठाये युद्धकी इच्छासे उसके ऊपर टूट पड़े॥ ७॥

कपिकुञ्जर हनुमान्‌जी उन सबके आगे-आगे चले। उन्होंने पर्वतका एक बहुत बड़ा शिखर ले रखा था, जिसे उठाना दूसरेके लिये नितान्त कठिन था॥ ८॥

उन्होंने इन्द्रजित्‌के रथपर सीताको देखा। उनकी खुशी मारी गयी थी। वे एक वेणी धारण किये बहुत दुःखी दिखायी देती थीं और उपवास करनेके कारण उनका मुख दुबला-पतला हो गया था॥ ९॥

उनके शरीरपर एक ही मलिन वस्त्र था। श्रीरघुनाथजीकी प्रिया सीताके अङ्गोंमें उबटन आदि नहीं लगे थे। उनके सारे शरीरमें धूल और मैल भरी थी तो भी वे श्रेष्ठ और सुन्दर दिखायी देती थीं॥ १०॥

हनुमान्‌जी कुछ देरतक उनकी ओर देखते रहे। अन्तमें यह निश्चय किया कि ये मिथिलेशकुमारी ही हैं। उन्होंने जनककिशोरीको थोड़े ही दिन पहले देखा था, इसलिये वे शीघ्र ही उन्हें पहचान सके थे॥ ११॥

राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्‌के पास रथपर बैठी हुई तपस्विनी सीता शोकसे पीड़ित, दीन एवं आनन्दशून्य हो रही थीं॥ १२॥

सीताको वहाँ देखकर महाकपि हनुमान्‌जी यह सोचने लगे कि आखिर इस राक्षसका अभिप्राय क्या है? फिर वे मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर रावणपुत्रकी ओर दौड़े॥ १३॥

वानरोंकी उस सेनाको अपनी ओर आती देख रावणकुमारके क्रोधकी सीमा न रही। उसने तलवारको म्यानसे बाहर निकाला और सीताके सिरके केश पकड़कर उन्हें घसीटा॥ १४॥

मायाद्वारा रथपर बैठायी हुई वह स्त्री 'हा राम, हा राम' कहकर चिल्ला रही थी और वह राक्षस उन सबके देखते-देखते उस स्त्रीको पीट रहा था॥ १५॥

सीताका केश पकड़ा गया देख हनुमान्‌जीको बड़ा दुःख हुआ। वे पवनकुमार हनुमान् अपने नेत्रोंसे दुःखजनित आँसू बहाने लगे॥ १६॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सर्वाङ्गसुन्दरी प्यारी पटरानी सीताको उस अवस्थामें देख हनुमान्‌जी कुपित हो उठे और उस राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्‌से कठोर वाणीमें बोले— ॥ १७॥

'दुरात्मन्! तू अपने विनाशके लिये ही तुला हुआ है, तभी सीताके केशोंका स्पर्श कर रहा है। तेरा जन्म ब्रह्मर्षियोंके कुलमें हुआ है तथापि तूने राक्षस-जातिके स्वभावका ही आश्रय लिया है॥ १८॥

'अरे! तेरी बुद्धि ऐसी बिगड़ी हुई है? धिक्कार है तुझ-जैसे पापाचारीको! नृशंस! अनार्य! दुराचारी तथा पापपूर्ण पराक्रम करनेवाले नीच! तेरी यह करतूत नीच पुरुषोंके ही योग्य है। निर्दयी! तेरे हृदयमें तनिक भी दया नहीं है॥ १९॥

'बेचारी मिथिलेशकुमारी घरसे, राज्यसे और श्रीरामचन्द्रजीके करकमलोंके आश्रयसे भी बिछुड़ गयी हैं। निष्ठुर! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो तू इन्हें इतनी निर्दयतासे मार रहा है?॥ २०॥

'सीताको मारकर तू अधिक कालतक किसी तरह जीवित नहीं रह सकेगा। वधके योग्य नीच! तू अपने पापकर्मके कारण मेरे हाथमें पड़ गया है (अब तेरा जीना कठिन है)॥ २१॥

'लोकमें अपने पापके कारण वधके योग्य माने गये जो चोर आदि हैं, वे भी जिन लोकोंकी निन्दा करते हैं तथा जो स्त्री-हत्यारोंको ही मिलते हैं, तू यहाँ अपने प्राणोंका परित्याग करके उन्हीं नरक-लोकोंमें जायगा'॥ २२॥

ऐसी बातें कहते हुए हनुमान्‌जी अत्यन्त कुपित हो शिला आदि आयुध धारण करनेवाले वानरवीरोंके साथ राक्षसराजकुमारपर टूट पड़े॥ २३॥

वानरोंके उस महापराक्रमी सैन्य-समुदायको आक्रमण करते देख इन्द्रजित्‌ने भयानक क्रोधवाले राक्षसोंकी सेनाके द्वारा उसे आगे बढ़नेसे रोका॥ २४॥

फिर सहस्रों बाणोंद्वारा उस वानरवाहिनीमें हलचल मचाकर इन्द्रजित्‌ने कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ २५॥

'वानर! सुग्रीव, राम और तुम सब लोग जिसके लिये यहाँतक आये हो, उस विदेहकुमारी सीताको मैं अभी तुम्हारे देखते-देखते मार डालूँगा। इसे मारकर मैं क्रमशः राम-लक्ष्मणका, तुम्हारा, सुग्रीवका तथा उस अनार्य विभीषणका भी वध कर डालूँगा॥ २६-२७॥

'बंदर! तुम जो यह कह रहे थे कि स्त्रियोंको मारना नहीं चाहिये, उसके उत्तरमें मुझे यह कहना है कि जिस कार्यके करनेसे शत्रुओंको अधिक कष्ट पहुँचे, वह कर्तव्य ही माना गया है॥ २८॥

हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर इन्द्रजित्‌ने स्वयं ही तेज धारवाली तलवारसे उस रोती हुई मायामयी सीतापर घातक प्रहार किया॥ २९॥

शरीरमें यज्ञोपवीत धारण करनेका जो स्थान है, उसी जगहसे उस मायामयी सीताके दो टुकड़े हो गये और वह स्थूल कटिप्रदेशवाली प्रियदर्शना तपस्विनी

पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ३०॥

उस स्त्रीका वध करके इन्द्रजित्‌ने हनुमान्‌से कहा—'देख लो, मैंने रामकी इस प्यारी पत्नीको तलवारसे काट डाला। यह रही कटी हुई विदेह-राजकुमारी सीता। अब तुमलोगोंका युद्धके लिये परिश्रम व्यर्थ है'॥ ३१॥

इस प्रकार स्वयं इन्द्रजित् विशाल खड्गसे उस मायामयी स्त्रीका वध करके रथपर बैठा-बैठा बड़े हर्षके साथ जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा॥ ३२॥

पास ही खड़े हुए वानरोंने उसकी उस गर्जनाको सुना। वह उस दुर्गम रथपर बैठकर मुँह बाये विकट सिंहनाद करता था॥ ३३॥

रावणके उस पुत्रकी बुद्धि बड़ी खोटी थी। उसने इस प्रकार मायामयी सीताका वध करके अपने मनमें बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। उसे हर्षसे उत्फुल्ल देख वानर विषादग्रस्त हो भाग खड़े हुए॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीके नेतृत्वमें वानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्‌जीका श्रीरामके पास लौटना और इन्द्रजित्‌का निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करना

इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान उस भयंकर सिंहनादको सुनकर वानर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए जोर-जोरसे भागने लगे॥ १॥

उन सबको विषादग्रस्त, दीन एवं भयभीत होकर भागते देख पवनकुमार हनुमान्‌जीने कहा—॥ २॥

'वानरो! तुम क्यों मुखपर विषाद लिये युद्ध-विषयक उत्साह छोड़कर भागे जा रहे हो? तुम्हारा वह शौर्य कहाँ चला गया?॥ ३॥

'मैं युद्धमें आगे-आगे चलता हूँ। तुम सब लोग मेरे पीछे आ जाओ। उत्तम कुलमें उत्पन्न शूरवीरोंके लिये युद्धमें पीठ दिखाना सर्वथा अनुचित है'॥ ४॥

बुद्धिमान् वायुपुत्रके ऐसा कहनेपर वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और राक्षसोंके प्रति अत्यन्त कुपित हो उन्होंने हाथोंमें पर्वतशिखर और वृक्ष उठा लिये॥ ५॥

वे श्रेष्ठ वानरवीर उस महासमरमें हनुमान्‌जीको चारों ओरसे घेरकर उनके पीछे-पीछे चले और जोर-जोरसे गर्जना करते हुए वहाँ राक्षसोंपर टूट पड़े॥ ६॥

उन श्रेष्ठ वानरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए हनुमान्‌जी ज्वालामालाओंसे युक्त प्रज्वलित अग्निकी भाँति शत्रु-सेनाको दग्ध करने लगे॥ ७॥

वानर-सैनिकोंसे घिरे हुए उन महाकपि हनुमान्‌जीने प्रलयकालके संहारकारी यमराजके समान राक्षसोंका संहार आरम्भ किया॥ ८॥

सीताके वधसे उनके मनमें बड़ा शोक हो रहा था और इन्द्रजित्‌का अत्याचार देखकर उनका क्रोध भी बहुत बढ़ गया था; इसलिये हनुमान्‌जीने रावणकुमारके रथपर एक बहुत बड़ी शिला फेंकी॥ ९॥

उसे अपने ऊपर आती देख सारथिने तत्काल ही अपने अधीन रहनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए उस रथको बहुत दूर हटा दिया॥ १०॥

अतः सारथिसहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजित्‌के पासतक न पहुँचकर वह शिला धरती फोड़कर उसके भीतर समा गयी। उसके चलानेका सारा उद्योग व्यर्थ हो गया॥ ११॥

उस शिलाके गिरनेपर उस राक्षस-सेनाको बड़ी पीड़ा हुई। गिरती हुई उस शिलाने बहुतेरे राक्षसोंको कुचल डाला॥ १२॥

तत्पश्चात् सैकड़ों विशालकाय वानर हाथोंमें वृक्ष एवं पर्वत-शिखर उठाये गर्जना करते हुए इन्द्रजित्‌की ओर दौड़े॥ १३॥

वे भयानक पराक्रमी वानरवीर युद्धस्थलमें इन्द्रजित्‌पर उन वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको फेंकने लगे। वृक्षों और शैलशिखरोंकी बड़ी भारी वृष्टि करते हुए वे वानर शत्रुओंका संहार करने और भाँति-भाँतिकी आवाजमें गर्जने लगे॥ १४½॥

उन महाभयंकर वानरोंने वृक्षोंद्वारा घोररूपधारी निशाचरोंको बलपूर्वक मार गिराया। वे रणभूमिमें गिरकर छटपटाने लगे॥ १५½॥

अपनी सेनाको वानरोंद्वारा पीड़ित हुई देख इन्द्रजित् क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र लिये शत्रुओंके सामने गया॥ १६½॥

अपनी सेनासे घिरे हुए उस सुदृढ़ पराक्रमी वीर निशाचरने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए शूल, वज्र, तलवार, पट्टिश तथा मुद्गरोंकी मारसे बहुत-से वानरवीरोंको हताहत कर दिया॥ १७-१८॥

वानरोंने भी युद्धस्थलमें इन्द्रजित्के अनुचरोंको मारा। महाबली हनुमान्‌जी सुन्दर शाखाओं और डालियोंवाले सालवृक्षों तथा शिलाओंद्वारा भीमकर्मा राक्षसोंका संहार करने लगे॥ १९½ ॥

इस तरह शत्रुसेनाका वेग रोककर हनुमान्‌जीने वानरोंसे कहा—'बन्धुओ! अब लौट चलो, अब हमें इस सेनाके संहार करनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है॥ २०½ ॥

'हमलोग जिनके लिये श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छा रखकर प्राणोंका मोह छोड़ पूरी चेष्टाके साथ युद्ध करते थे, वे जनककिशोरी सीता मारी गयीं॥

'अब इस बातकी सूचना भगवान् श्रीराम और सुग्रीवको दे देनी चाहिये। फिर वे दोनों इसके लिये जैसा प्रतीकार सोचेंगे, वैसा ही हम भी करेंगे'॥ २२½ ॥

ऐसा कहकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने सब वानरोंको युद्धसे मना कर दिया और धीरे-धीरे सारी सेनाके साथ निर्भय होकर लौट आये॥ २३½ ॥

हनुमान्‌जीको श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते देख दुरात्मा इन्द्रजित् होम करनेकी इच्छासे निकुम्भिलादेवीके मन्दिरमें गया॥ २४½ ॥

निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर उस निशाचर इन्द्रजित्ने अग्निमें आहुति दी। तदनन्तर यज्ञभूमिमें भी जाकर उस राक्षसने अग्निदेवको होमके द्वारा तृप्त किया। वे होमशोणितभोजी आभिचारिक अग्निदेवता आहुति पाते ही होम और शोणितसे तृप्त हो प्रज्वलित हो उठे और ज्वालाओंसे आवृत दिखायी देने लगे। वे तीव्र तेजवाले अग्निदेवता संध्याकालके सूर्यकी भाँति प्रकट हुए थे॥

इन्द्रजित् यज्ञके विधानका ज्ञाता था। उसने समस्त राक्षसोंके अभ्युदयके लिये विधिपूर्वक हवन करना आरम्भ किया। उस होमको देखकर महायुद्धके अवसरोंपर नीति-अनीति—कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञाता राक्षस खड़े हो गये॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ सर्ग

सीताके मारे जानेकी बात सुनकर श्रीरामका शोकसे मूर्च्छित होना और लक्ष्मणका उन्हें समझाते हुए पुरुषार्थके लिये उद्यत होना

भगवान् श्रीरामने भी राक्षसों और वानरोंके उस महान् युद्धघोषको सुनकर जाम्बवान्‌से कहा—॥ १॥

'सौम्य! निश्चय ही हनुमान्‌जीने अत्यन्त दुष्कर कर्म आरम्भ किया है; क्योंकि उनके आयुधोंका यह महाभयंकर शब्द स्पष्ट सुनायी पड़ता है॥ २॥

'अत: ऋक्षराज! तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र जाओ और जूझते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌की सहायता करो'॥ ३॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर अपनी सेनासे घिरे हुए ऋक्षराज जाम्बवान् लङ्काके पश्चिम द्वारपर, जहाँ वानरवीर हनुमान्‌जी विराजमान थे, आये॥ ४॥

वहाँ ऋक्षराजने युद्ध करके लौटे और लम्बी साँस खींचते हुए वानरोंके साथ हनुमान्‌जीको आते देखा॥ ५॥

हनुमान्‌जीने भी मार्गमें नील मेघके समान भयंकर ऋक्षसेनाको युद्धके लिये उद्यत देख उसे रोका और सबके साथ ही वे लौट आये॥ ६॥

महायशस्वी हनुमान्‌जी उस सेनाके साथ शीघ्र भगवान् श्रीरामके निकट आये और दु:खी होकर बोले—॥ ७॥

'प्रभो! हमलोग युद्ध करनेमें लगे थे, उसी समय समरभूमिमें रावणपुत्र इन्द्रजित्ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीताको मार डाला है॥ ८॥

'शत्रुदमन! उन्हें उस अवस्थामें देख मेरा चित्त उद्भ्रान्त हो उठा है। मैं विषादमें डूब गया हूँ। इसलिये मैं आपको यह समाचार बतानेके लिये आया हूँ'॥ ९॥

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर श्रीरामजी उस समय शोकसे मूर्च्छित हो जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १०॥

देवतुल्य तेजस्वी श्रीरघुनाथजीको भूमिपर पड़ा देख समस्त श्रेष्ठ वानर सब ओरसे उछलकर वहाँ आ पहुँचे॥

वे कमल और उत्पलकी सुगन्धसे युक्त जल ले आकर उनके ऊपर छिड़कने लगे। उस समय वे सहसा

प्रज्वलित होकर दहन-कर्म करनेवाली और बुझायी न जा सकनेवाली अग्निके समान दिखायी देते थे॥ १२॥

भाईकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मणको बड़ा दु:ख हुआ। वे उन्हें दोनों भुजाओंमें भरकर बैठ गये और अस्वस्थ हुए श्रीरामसे यह युक्तियुक्त एवं प्रयोजनभरी बात बोले—॥ १३॥

'आर्य! आप सदा शुभ मार्गपर स्थिर रहनेवाले और जितेन्द्रिय हैं, तथापि धर्म आपको अनर्थोंसे बचा नहीं पाता है। इसलिये वह निरर्थक ही जान पड़ता है॥ १४॥

'स्थावरों तथा पशु आदि जङ्गम प्राणियोंको भी सुखका प्रत्यक्ष अनुभव होता है; किंतु उनके सुखमें धर्म कारण नहीं है (क्योंकि न तो उनमें धर्माचरणकी शक्ति है और न धर्ममें उनका अधिकार ही है)। अत: धर्म सुखका साधन नहीं है; ऐसा मेरा विचार है॥ १५॥

'जैसे स्थावर भूत धर्माधिकारी न होनेपर भी सुखी देखा जाता है, उसी प्रकार जङ्गम प्राणी (पशु आदि) भी सुखी है, यह बात स्पष्ट ही समझमें आती है। यदि कहें, जहाँ धर्म है, वहाँ सुख अवश्य है तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस दशामें आप-जैसे धर्मात्मा पुरुषको विपत्तिमें नहीं पड़ना चाहिये॥ १६॥

'यदि अधर्मकी भी सत्ता होती अर्थात् अधर्म अवश्य ही दु:खका साधन होता तो रावणको नरकमें पड़े रहना चाहिये था और आप-जैसे धर्मात्मा पुरुषपर संकट नहीं आना चाहिये था॥ १७॥

'रावणपर तो कोई संकट नहीं है और आप संकटमें पड़ गये हैं; अत: धर्म और अधर्म दोनों परस्परविरोधी हो गये हैं—धर्मात्माको दु:ख और पापात्माको सुख मिलने लगा है॥ १८॥

'यदि धर्मसे धर्मका फल (सुख) और अधर्मसे अधर्मका फल (दु:ख) ही मिलनेका नियम होता तो जिन रावण आदिमें अधर्म ही प्रतिष्ठित है, वे अधर्मके फलभूत दु:खसे ही युक्त होते और जो लोग अधर्ममें रुचि नहीं रखते हैं, वे धर्मसे—धर्मके फलभूत सुखसे कभी वञ्चित न होते। धर्ममार्गसे चलनेवाले इन धर्मात्मा पुरुषोंको केवल धर्मका फल—सुख ही प्राप्त होता॥ १९-२०॥

'किंतु जिनमें अधर्म प्रतिष्ठित है, उनके तो धन बढ़ रहे हैं और जो स्वभावसे ही धर्माचरण करनेवाले हैं, वे क्लेशमें पड़े हुए हैं। इसलिये ये धर्म और अधर्म—दोनों निरर्थक हैं॥ २१॥

'रघुनन्दन! यदि पापाचारी पुरुष धर्म या अधर्मसे मारे जाते हैं तो धर्म या अधर्म क्रियारूप होनेके कारण (आदि, मध्य और अन्त) तीन ही क्षणोंतक रह सकता है। चतुर्थ क्षणमें तो वह स्वयं ही नष्ट हो जायगा; फिर नष्ट हुआ वह धर्म या अधर्म किसका वध करेगा?॥ २२॥

'अथवा यह जीव यदि विधिपूर्वक किये गये कर्मविशेष (श्येनयाग आदि)-के द्वारा मारा जाता है या स्वयं वैसा कर्म करके दूसरेको मारता है तो विधि (विहित कर्मजनित अदृष्ट)-को ही हत्याके दोषसे लिप्त होना चाहिये, कर्मका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषका उस पापकर्मसे सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। (क्योंकि पुत्रके किये हुए अपराधका दण्ड पिताको नहीं मिलता है)॥

'शत्रुसूदन! जो चेतन न होनेके कारण प्रतीकार-ज्ञानसे शून्य है, अव्यक्त है और असत्के समान विद्यमान है, उस धर्मके द्वारा दूसरे (पापात्मा)-को वध्यरूपसे प्राप्त करना कैसे सम्भव है?॥ २४॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ रघुवीर! यदि सत्कर्मजनित अदृष्ट सत् या शुभ ही होता तो आपको कुछ भी अशुभ या दु:ख नहीं प्राप्त होता। यदि आपको ऐसा दु:ख प्राप्त हुआ है तो सत्कर्म-जनित अदृष्ट सत् ही है, इस कथनकी संगति नहीं बैठती*॥ २५॥

'यदि दुर्बल और कातर (स्वत: कार्य-साधनमें असमर्थ) होनेके कारण धर्म पुरुषार्थका अनुसरण करता है, तब तो दुर्बल और फलदानकी मर्यादासे रहित धर्मका सेवन ही नहीं करना चाहिये—यह मेरी स्पष्ट राय है॥ २६॥

* इस अध्यायके १४ वेंसे २५ वें श्लोकतक लक्ष्मणजीने जो धर्म और अधर्मकी सत्ताका खण्डन किया है, वह श्रीरामको दु:खी देखकर स्वयं उनसे भी अधिक दु:खी होकर ही किया है। जिस प्रकार परात्पर श्रीरामके लिये अपनी प्रियाकी माया-मूर्तिके वधको देखकर शोकसे अभिभूत हो जाना प्रेमकी लीलामात्र है, उसी प्रकार प्रियतम प्रभुके दु:खको देखकर दु:खावेशकी लीलासे इस प्रकारकी असंगत-सी लगनेवाली बातें कहना भी प्रेमजनित कातरताका ही परिचायक है। आगे चलकर दु:खका आवेश कुछ कम हो जानेपर तो स्वयं लक्ष्मणजीने ही ४४ वें श्लोकमें स्पष्ट कहा है कि श्रीरामका शोकापनोदन करके उन्हें युद्धमें प्रवृत्त करनेके लिये ही उन्होंने ये सब बातें कही थीं।

—सम्पादक

'यदि धर्म बल अथवा पुरुषार्थका अङ्ग या उपकरणमात्र है तो धर्मको छोड़कर पराक्रमपूर्ण बर्ताव कीजिये। जैसे आप धर्मको प्रधान मानकर धर्ममें लगे हैं, उसी प्रकार बलको प्रधान मानकर बल या पुरुषार्थमें ही प्रवृत्त होइये॥ २७॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! यदि आप सत्यभाषणरूप धर्मका पालन करते हैं अर्थात् पिताकी आज्ञाको स्वीकार करके उनके सत्यकी रक्षारूप धर्मका अनुष्ठान करते हैं तो आप ज्येष्ठ पुत्रके प्रति युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी जो बात पिताने कही थी, उस सत्यका पालन न करनेपर पिताको जो असत्यरूप अधर्म प्राप्त हुआ, उसीके कारण वे आपसे वियुक्त होकर मर गये। ऐसी दशामें क्या आप राजाके पहले कहे हुए अभिषेक-सम्बन्धी सत्य वचनसे नहीं बँधे हुए थे? उस सत्यका पालन करनेके लिये बाध्य नहीं थे (यदि आपने पिताके पहले कहे हुए वचनका ही पालन करके युवराजपदपर अपना अभिषेक करा लिया होता तो न पिताकी मृत्यु हुई होती और न सीता-हरण आदि अनर्थ ही संघटित हुए होते)॥ २८॥

'शत्रुदमन महाराज! यदि केवल धर्म अथवा अधर्म ही प्रधानरूपसे अनुष्ठानके योग्य होता तो वज्रधारी इन्द्र पौरुषद्वारा विश्वरूप मुनिकी हत्या (अधर्म) करके फिर यज्ञ (धर्म)-का अनुष्ठान नहीं करते॥ २९॥

'रघुनन्दन! धर्मसे भिन्न जो पुरुषार्थ है, उससे मिला हुआ धर्म ही शत्रुओंका नाश करता है। अतः काकुत्स्थ! प्रत्येक मनुष्य आवश्यकता एवं रुचिके अनुसार इन सबका (धर्म एवं पुरुषार्थका) अनुष्ठान करता है॥ ३०॥

'तात राघव! इस प्रकार समयानुसार धर्म एवं पुरुषार्थमेंसे किसी एकका आश्रय लेना धर्म ही है; ऐसा मेरा मत है। आपने उस दिन राज्यका त्याग करके धर्मके मूलभूत अर्थका उच्छेद कर डाला॥ ३१॥

'जैसे पर्वतोंसे नदियाँ निकलती हैं, उसी तरह जहाँ-तहाँसे संग्रह करके लाये और बढ़े हुए अर्थसे सारी क्रियाएँ (चाहे वे योगप्रधान हों या भोगप्रधान) सम्पन्न होती हैं (निष्काम भाव होनेपर सभी क्रियाएँ योगप्रधान हो जाती हैं और सकाम भाव होनेपर भोगप्रधान)॥ ३२॥

'जो मन्दबुद्धि मानव अर्थसे वञ्चित है, उसकी सारी क्रियाएँ उसी तरह छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती हैं॥ ३३॥

'जो पुरुष सुखमें पला हुआ है, वह यदि प्राप्त हुए अर्थको त्यागकर सुख चाहता है तो उस अभीष्ट सुखके लिये अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जन करनेमें प्रवृत्त होता है; इसलिये उसे ताड़न, बन्धन आदि दोष प्राप्त होते हैं॥ ३४॥

'जिसके पास धन है, उसीके अधिक मित्र होते हैं। जिसके पास धनका संग्रह है, उसीके सब लोग भाई-बन्धु बनते हैं। जिसके यहाँ पर्याप्त धन है, वही संसारमें श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है और जिसके पास धन है, वही विद्वान् समझा जाता है॥ ३५॥

'जिसके यहाँ धनराशि एकत्र है, वह पराक्रमी कहा जाता है। जिसके पास धनकी अधिकता है, वह बुद्धिमान् माना जाता है। जिसके यहाँ अर्थसंग्रह है, वह महान् भाग्यशाली कहलाता है तथा जिसके यहाँ धन-सम्पत्ति है, वह गुणोंमें भी बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है॥ ३६॥

'अर्थका त्याग करनेसे जो मित्रका अभाव आदि दोष प्राप्त होते हैं, उनका मैंने स्पष्टरूपसे वर्णन किया है। आपने राज्य छोड़ते समय क्या लाभ सोचकर अपनी बुद्धिमें अर्थ-त्यागकी भावनाको स्थान दिया, यह मैं नहीं जानता॥ ३७॥

'जिसके पास धन है, उसके धर्म और कामरूप सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं। उसके लिये सब कुछ अनुकूल बन जाता है। जो निर्धन है, वह अर्थकी इच्छा रखकर उसका अनुसंधान करनेपर भी पुरुषार्थके बिना उसे नहीं पा सकता॥ ३८॥

'नरेश्वर! हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम और दम—ये सब धन होनेसे ही सफल होते हैं॥ ३९॥

'जो धर्मका आचरण करनेवाले और तपस्यामें लगे हुए हैं, उन पुरुषोंका यह लोक (ऐहिक पुरुषार्थ) अर्थाभावके कारण ही नष्ट हो जाता है; यह स्पष्ट देखा जाता है। वही अर्थ इस दुर्दिनमें आपके पास उसी तरह नहीं दिखायी देता है, जैसे आकाशमें बादल घिर आनेपर ग्रहोंके दर्शन नहीं होते हैं॥ ४०॥

'वीर! आप पूज्य पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये राज्य छोड़कर वनमें चले आये और सत्यके पालनपर ही डटे रहे; परंतु राक्षसने आपकी पत्नीको, जो आपको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी, हर लिया॥ ४१॥

'वीर रघुनन्दन! आज इन्द्रजित्ने हमलोगोंको जो महान् दुःख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रमसे दूर करूँगा; अतः चिन्ता छोड़कर उठिये॥ ४२॥

'नरश्रेष्ठ! उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाबाहो! उठिये। आप परम बुद्धिमान् और परमात्मा हैं, इस रूपमें अपने-आपको क्यों नहीं समझ रहे हैं?॥ ४३॥

'निष्पाप रघुवीर! यह मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह सब आपका प्रिय करनेके लिये—आपका ध्यान शोककी ओरसे हटाकर पुरुषार्थकी ओर आकृष्ट करनेके लिये कहा है। अब जनकनन्दिनीकी मृत्युका वृत्तान्त जानकर मेरा रोष बढ़ गया है, अतः आज अपने बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े, रथ और राक्षसराज रावणसहित सारी लङ्काको धूलमें मिला दूँगा'॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ सर्ग

विभीषणका श्रीरामको इन्द्रजित्‌की मायाका रहस्य बताकर सीताके जीवित होनेका विश्वास दिलाना और लक्ष्मणको सेनासहित निकुम्भिला-मन्दिरमें भेजनेके लिये अनुरोध करना

भ्रातृभक्त लक्ष्मण जब श्रीरामको इस प्रकार आश्वासन दे रहे थे, उसी समय विभीषण वानरसैनिकोंको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करके वहाँ आये॥ १॥

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये चार निशाचर वीर, जो काली कज्जल-राशिके समान काले शरीरवाले यूथपति गजराजोंके समान जान पड़ते थे, चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे॥ २॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा महात्मा लक्ष्मण शोकमें मग्न हैं तथा वानरोंके नेत्रोंमें भी आँसू भरे हुए हैं॥ ३॥

साथ ही इक्ष्वाकुकुलनन्दन महात्मा श्रीरघुनाथजीपर भी उनकी दृष्टि पड़ी, जो मूर्च्छित हो लक्ष्मणकी गोदमें लेटे हुए थे॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीको लज्जित तथा शोकसे संतप्त देख विभीषणका हृदय आन्तरिक दुःखसे दीन हो गया। उन्होंने पूछा—'यह क्या बात है ?'॥ ५॥

तब लक्ष्मणने विभीषणके मुँहकी ओर देखकर तथा सुग्रीव और दूसरे-दूसरे वानरोंपर दृष्टिपात करके आँसू बहाते हुए मन्दस्वरमें कहा—॥ ६॥

'सौम्य! हनुमान्‌जीके मुँहसे यह सुनकर कि 'इन्द्रजित्‌ने सीताजीको मार डाला' श्रीरघुनाथजी तत्काल मूर्च्छित हो गये हैं'॥ ७॥

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको विभीषणने रोका और अचेत पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे यह निश्चित बात कही—॥ ८॥

'महाराज! हनुमान्‌जीने दुःखी होकर जो आपको समाचार सुनाया है, उसे मैं समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव मानता हूँ॥ ९॥

'महाबाहो! दुरात्मा रावणका सीताके प्रति क्या भाव है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह उनका वध कदापि नहीं करने देगा॥ १०॥

'मैंने उसका हित करनेकी इच्छासे अनेक बार यह अनुरोध किया कि विदेहकुमारीको छोड़ दो; किंतु उसने मेरी बात नहीं मानी॥ ११॥

'सीताको दूसरा कोई पुरुष साम, दाम और भेदनीतिके द्वारा भी नहीं देख सकता; फिर युद्धके द्वारा कैसे देख सकता है?॥ १२॥

'महाबाहो! राक्षस इन्द्रजित् वानरोंको मोहमें डालकर चला गया है। जिसका उसने वध किया था, वह मायामयी जानकी थीं, ऐसा निश्चित समझिये॥ १३॥

'वह इस समय निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करेगा और जब होम करके लौटेगा, उस समय उस रावणकुमारको संग्राममें परास्त करना इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी कठिन होगा॥ १४½॥

'निश्चय ही उसने हमलोगोंको मोहमें डालनेके लिये ही यह मायाका प्रयोग किया है। उसने सोचा होगा—यदि वानरोंका पराक्रम चलता रहा तो मेरे इस कार्यमें विघ्न पड़ेगा (इसीलिये उसने ऐसा किया है)॥ १५½॥

'जबतक उसका होमकर्म समाप्त नहीं होता, उसके पहले ही हमलोग सेनासहित निकुम्भिला-मन्दिरमें चले चलें। नरश्रेष्ठ! झूठे ही प्राप्त हुए इस संतापको त्याग दीजिये॥ १६½॥

'प्रभो! आपको शोकसे संतप्त होते देख सारी सेना दुःखमें पड़ी हुई है। आप तो धैर्यमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं; अतः स्वस्थचित्त होकर यहीं रहिये और सेनाको लेकर जाते हुए हमलोगोंके साथ लक्ष्मणजीको भेज दीजिये।

'ये नरश्रेष्ठ लक्ष्मण अपने पैने बाणोंसे मारकर

रावणकुमारको वह होमकर्म त्याग देनेके लिये विवश कर देंगे। इससे वह मारा जा सकेगा॥ १९॥

'लक्ष्मणके ये पैने बाण जो पक्षियोंके अङ्गभूत परोंसे युक्त होनेके कारण बड़े वेगशाली हैं, कंक आदि क्रूर पक्षियोंके समान इन्द्रजित्‌के रक्तका पान करेंगे॥ २०॥

'अतः महाबाहो! जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंके वधके लिये वज्रका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार आप उस राक्षसके विनाशके लिये शुभलक्षण-सम्पन्न लक्ष्मणको जानेकी आज्ञा दीजिये॥ २१॥

'नरेश्वर! शत्रुका विनाश करनेमें अब यह कालक्षेप करना उचित नहीं है। इसलिये आप शत्रुवधके लिये उसी तरह लक्ष्मणको भेजिये, जैसे देवद्रोही दैत्योंके विनाशके लिये देवराज इन्द्र वज्रका प्रयोग करते हैं॥

'वह राक्षसशिरोमणि इन्द्रजित् जब अपना अनुष्ठान पूरा कर लेगा, तब समराङ्गणमें देवता और असुर भी उसे देख नहीं सकेंगे। अपना कर्म पूरा करके जब वह युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें खड़ा होगा, उस समय देवताओंको भी अपने जीवनकी रक्षाके विषयमें महान् संदेह होने लगेगा'॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८४॥

पचासीवाँ सर्ग

विभीषणके अनुरोधसे श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजित्‌के वधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला-मन्दिरके पास पहुँचना

भगवान् श्रीराम शोकसे पीड़ित थे, अतः राक्षस विभीषणने जो कुछ कहा, उनकी उस बातको सुनकर भी वे उसे स्पष्टरूपसे समझ न सके—उसपर पूरा ध्यान न दे सके॥ १॥

तदनन्तर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीराम धैर्य धारण करके हनुमान्‌जीके समीप बैठे हुए विभीषणसे बोले—॥ २॥

'राक्षसराज विभीषण! तुमने अभी-अभी जो बात कही है, उसे मैं फिर सुनना चाहता हूँ। बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो?'॥ ३॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर बातचीतमें कुशल विभीषणने, वह जो बात कही थी, उसे पुनः दुहराते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४॥

'महाबाहो! आपने जो सेनाओंको यथास्थान स्थापित करनेकी आज्ञा दी थी, वीर! वह काम तो मैंने आपकी आज्ञा होते ही पूरा कर दिया॥ ५॥

'उन सब सेनाओंको विभक्त करके सब ओरके दरवाजोंपर स्थापित किया और यथोचित रीतिसे वहाँ अलग-अलग यूथपतियोंको भी नियुक्त कर दिया है॥

'महाराज! अब पुनः मुझे जो बात आपकी सेवामें निवेदन करनी है, उसे भी सुन लीजिये। बिना किसी कारणके आपके संतप्त होनेसे हमलोगोंके हृदयमें भी बड़ा संताप हो रहा है॥ ७॥

'राजन्! मिथ्या प्राप्त हुए इस शोक और संतापको त्याग दीजिये; साथ ही इस चिन्ताको भी अपने मनसे निकाल दीजिये; क्योंकि यह शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली है॥ ८॥

'वीर! यदि आप सीताको पाना और निशाचरोंका वध करना चाहते हैं तो उद्योग कीजिये; हर्ष और उत्साहका सहारा लीजिये॥ ९॥

'रघुनन्दन! मैं एक आवश्यक बात बताता हूँ, मेरी इस हितकर बातको सुनिये। रावणकुमार इन्द्रजित् निकुम्भिला-मन्दिरकी ओर गया है, अतः ये सुमित्राकुमार लक्ष्मण विशाल सेना साथ लेकर अभी उसपर आक्रमण करें—युद्धमें उस रावणपुत्रका वध करनेके लिये उसपर चढ़ाई कर दें—यही अच्छा होगा॥ १०½॥

'युद्धविजयी महाधनुर्धर लक्ष्मण अपने मण्डलाकार धनुषद्वारा छोड़े गये विषधर सर्पोंके तुल्य भयानक बाणोंसे रावणपुत्रका वध करनेमें समर्थ हैं॥ ११½॥

'उस वीरने तपस्या करके ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और मनचाही गतिसे चलनेवाले घोड़े प्राप्त किये हैं॥ १२॥

'निश्चय ही इस समय सेनाके साथ वह निकुम्भिलामें गया है। वहाँसे अपना हवन-कर्म समाप्त करके यदि वह उठेगा तो हम सब लोगोंको उसके हाथसे मरा ही समझिये॥ १३॥

'महाबाहो! सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने उसे वरदान देते हुए कहा था—'इन्द्रशत्रो! निकुम्भिला नामक वटवृक्षके पास पहुँचने तथा हवन-सम्बन्धी कार्य पूर्ण करनेके पहले ही जो शत्रु तुझ आततायी (शस्त्रधारी)-को मारनेके लिये आक्रमण करेगा, उसीके हाथसे तुम्हारा वध होगा।' राजन्! इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रजित्की मृत्युका विधान किया गया है॥ १४-१५॥

'इसलिये श्रीराम! आप इन्द्रजित्का वध करनेके लिये महाबली लक्ष्मणको आज्ञा दीजिये। उसके मारे जानेपर रावणको अपने सुहृदोंसहित मरा ही समझिये'॥

विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शोकका परित्याग करके बोले—'सत्यपराक्रमी विभीषण! उस भयंकर राक्षसकी मायाको मैं जानता हूँ॥ १७॥

'वह ब्रह्मास्त्रका ज्ञाता, बुद्धिमान्, बहुत बड़ा मायावी और महान् बलवान् है। वरुणसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी वह युद्धमें अचेत कर सकता है॥ १८॥

'महायशस्वी वीर! जब इन्द्रजित् रथसहित आकाशमें विचरने लगता है, उस समय बादलोंमें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी गतिका कुछ पता ही नहीं चलता।' विभीषणसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामने अपने शत्रु दुरात्मा इन्द्रजित्की मायाशक्तिको जानकर यशस्वी वीर लक्ष्मणसे यह बात कही—॥ १९-२०॥

'लक्ष्मण! वानरराज सुग्रीवकी जो भी सेना है, वह सब साथ ले हनुमान् आदि यूथपतियों, ऋक्षराज जाम्बवान् तथा अन्य सैनिकोंसे घिरे रहकर तुम मायाबलसे सम्पन्न राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्का वध करो॥ २१-२२॥

'ये महामना राक्षसराज विभीषण उसकी मायाओंसे अच्छी तरह परिचित हैं, अत: अपने मन्त्रियोंके साथ ये भी तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे'॥ २३॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर विभीषण-सहित भयानक पराक्रमी लक्ष्मणने अपना श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया॥ २४॥

वे युद्धकी सब सामग्री लेकर तैयार हो गये। उन्होंने कवच धारण किया, तलवार बाँध ली और उत्तम बाण तथा बायें हाथमें धनुष ले लिये। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके चरण छूकर हर्षसे भरे हुए सुमित्राकुमारने कहा—॥ २५॥

'आर्य! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावणकुमारको विदीर्ण करके उसी तरह लङ्कामें गिरेंगे, जैसे हंस कमलोंसे भरे हुए सरोवरमें उतरते हैं॥ २६॥

'इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस भयंकर राक्षसके शरीरको विदीर्ण करके उसे कालके गालमें डाल देंगे'॥ २७॥

इन्द्रजित्के वधकी अभिलाषा रखनेवाले तेजस्वी लक्ष्मण अपने भाईके सामने ऐसी बात कहकर तुरंत वहाँसे चल दिये॥ २८॥

पहले उन्होंने अपने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया, फिर उनकी परिक्रमा करके रावणकुमारद्वारा पालित निकुम्भिला-मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया॥ २९॥

भाई श्रीरामद्वारा स्वस्तिवाचन किये जानेके पश्चात् विभीषणसहित प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण बड़ी उतावलीके साथ चले॥ ३०॥

कई हजार वानरवीरोंके साथ हनुमान् और मन्त्रियोंसहित विभीषण भी लक्ष्मणके पीछे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए॥ ३१॥

विशाल वानर-सेनासहित घिरे हुए लक्ष्मणने वेगपूर्वक आगे बढ़कर मार्गमें खड़ी हुई ऋक्षराज जाम्बवान्की सेनाको देखा॥ ३२॥

दूरतकका रास्ता तै कर लेनेपर मित्रोंको आनन्दित करनेवाले सुमित्राकुमारने कुछ दूरसे ही देखा, राक्षसराज रावणकी सेना मोर्चा बाँधे खड़ी है॥ ३३॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलनन्दन लक्ष्मण हाथमें धनुष ले ब्रह्माजीके निश्चित किये हुए विधानके अनुसार उस मायावी राक्षसको जीतनेके लिये निकुम्भिला नामक स्थानमें पहुँचकर एक जगह खड़े हो गये॥ ३४॥

उस समय प्रतापी राजकुमार लक्ष्मणके साथ विभीषण, वीर अङ्गद तथा पवनकुमार हनुमान् भी थे॥

चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे जो प्रकाशित हो रही थी, ध्वजों और महारथियोंके कारण गहन दिखायी देती थी, जिसके वेगका कोई माप नहीं था तथा जो अनेक प्रकारकी वेश-भूषामें दृष्टिगोचर होती थी, अन्धकारके समान काली उस शत्रुसेनामें विभीषण आदिके साथ लक्ष्मणने प्रवेश किया॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ सर्ग

वानरों और राक्षसोंका युद्ध, हनुमान्‌जीके द्वारा राक्षससेनाका संहार और उनका इन्द्रजित्‌को द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारना तथा लक्ष्मणका उसे देखना

उस अवस्थामें रावणके छोटे भाई विभीषणने लक्ष्मणसे ऐसी बात कही, जो उनके अभीष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाली तथा शत्रुओंके लिये अहितकर थी॥ १॥

वे बोले—'लक्ष्मण! यह सामने जो मेघोंकी काली घटाके समान राक्षसोंकी सेना दिखायी देती है, उसके साथ शिलारूपी आयुध धारण करनेवाले वानरवीर शीघ्र ही युद्ध छेड़ दें और आप भी इस विशाल वाहिनीके व्यूहका भेदन करनेका प्रयत्न करें। इसका मोर्चा टूटनेपर राक्षसराजका पुत्र इन्द्रजित् भी हमें यहीं दिखायी देगा॥ २-३॥

'अतः आप इस हवन-कर्मकी समाप्तिके पहले ही वज्रतुल्य बाणोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर शीघ्र धावा कीजिये॥ ४॥

'वीर! वह दुरात्मा रावणकुमार बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूर कर्म करनेवाला और सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयंकर है; अतः इसका वध कीजिये'॥ ५॥

विभीषणकी यह बात सुनकर शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणने राक्षसराजके पुत्रको लक्ष्य करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ६॥

साथ ही बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्ध करनेवाले वानर और भालू भी वहाँ खड़ी हुई राक्षस-सेनापर एक साथ ही टूट पड़े॥ ७॥

उधरसे राक्षस भी वानरसेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें तीखे बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंका प्रहार करते हुए उनका सामना करने लगे॥ ८॥

इस प्रकार वानरों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध होने लगा। उसके महान् कोलाहलसे समूची लङ्कापुरी सब ओरसे गूँज उठी॥ ९॥

नाना प्रकारके शस्त्रों, पैने बाणों, उठे हुए वृक्षों और भयानक पर्वत-शिखरोंसे वहाँका आकाश आच्छादित हो गया॥ १०॥

विकट मुँह और बाँहोंवाले राक्षसोंने वानर-यूथपतियोंपर (नाना प्रकारके) शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उनके लिये महान् भय उपस्थित कर दिया॥ ११॥

उसी प्रकार वानर भी समराङ्गणमें सम्पूर्ण वृक्षों और पर्वतशिखरोंद्वारा समस्त राक्षसोंको मारने एवं हताहत करने लगे॥ १२॥

मुख्य-मुख्य महाकाय महाबली रीछों और वानरोंसे जूझते हुए राक्षसोंको महान् भय लगने लगा॥ १३॥

रावणकुमार इन्द्रजित् बड़ा दुर्धर्ष वीर था। उसने जब सुना कि मेरी सेना शत्रुओंद्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें पड़ गयी है, तब अनुष्ठान समाप्त होनेके पहले ही वह युद्धके लिये उठ खड़ा हुआ॥ १४॥

उस समय उसके मनमें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ था। वह वृक्षोंके अन्धकारसे निकलकर एक सुसज्जित रथपर आरूढ़ हुआ, जो पहलेसे ही जोतकर तैयार रखा गया था। वह रथ बहुत ही सुदृढ़ था॥ १५॥

इन्द्रजित्‌के हाथमें भयंकर धनुष और बाण थे। वह काले कोयलेके ढेर-सा जान पड़ता था। उसके मुँह और नेत्र लाल थे। वह भयंकर राक्षस विनाशकारी मृत्युके समान प्रतीत होता था॥ १६॥

इन्द्रजित् रथपर बैठ गया, यह देखते ही लक्ष्मणके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले भयंकर वेगशाली राक्षसोंकी वह सेना उसके आसपास सब ओर खड़ी हो गयी॥ १७॥

उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्‌जीने एक बहुत बड़े वृक्षको, जिसे तोड़ना या उखाड़ना कठिन था, उखाड़ लिया॥ १८॥

फिर तो वे वानरवीर प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठे और युद्धस्थलमें राक्षसोंकी उस सेनाको दग्ध करते हुए बहुसंख्यक वृक्षोंकी मारसे अचेत करने लगे॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी बड़े वेगसे राक्षस-सेनाका विध्वंस कर रहे हैं, यह देखते ही सहस्रों राक्षस उनपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे॥ २०॥

चमकीले शूल धारण करनेवाले राक्षस शूलोंसे, जिनके हाथोंमें तलवारें थीं वे तलवारोंसे, शक्तिधारी शक्तियोंसे और पट्टिशधारी राक्षस पट्टिशोंसे उनपर प्रहार करने लगे॥ २१॥

बहुत-से परिघों, गदाओं, सुन्दर भालों, सैकड़ों शतघ्नियों, लोहेके बने हुए मुद्गरों, भयानक फरसों, भिन्दिपालों, वज्रके समान मुक्कों और अशनितुल्य थप्पड़ोंसे वे समस्त राक्षस पास आकर सब ओरसे पर्वताकार हनुमान्‌जीपर प्रहार करने लगे। हनुमान्‌जीने कुपित

होकर उनका भी महान् संहार किया॥ २२—२४॥

इन्द्रजित्ने देखा, कपिवर पवनकुमार हनुमान् पर्वतके समान अचल हो नि:शङ्कभावसे अपने शत्रुओंका संहार कर रहे हैं॥ २५॥

यह देखकर उसने अपने सारथिसे कहा—'जहाँ यह वानर युद्ध करता है, वहीं चलो। यदि उसकी उपेक्षा की गयी तो यह हम सब राक्षसोंका विनाश ही कर डालेगा'॥ २६॥

उसके ऐसा कहनेपर सारथि रथपर बैठे हुए अत्यन्त दुर्जय वीर इन्द्रजित्को ढोता हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ पवनपुत्र हनुमान्जी विराजमान थे॥ २७॥

वहाँ पहुँचकर उस दुर्जय राक्षसने हनुमान्जीके मस्तकपर बाणों, तलवारों, पट्टिशों और फरसोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २८॥

उन भयानक शस्त्रोंको अपने शरीरपर झेलकर पवनपुत्र हनुमान्जी महान् रोषसे भर गये और इस प्रकार बोले—॥ २९॥

'दुर्बुद्धि रावणकुमार! यदि बड़े शूरवीर हो तो आओ, मेरे साथ मल्लयुद्ध करो। इस वायुपुत्रसे भिड़कर जीवित नहीं लौट सकोगे॥ ३०॥

'दुर्मते! अपनी भुजाओंद्वारा मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करो। इस बाहुयुद्धमें यदि मेरा वेग सह लो तो तुम राक्षसोंमें श्रेष्ठ वीर समझे जाओगे'॥ ३१॥

रावणकुमार इन्द्रजित् धनुष उठाकर हनुमान्जीका वध करना चाहता था। इसी अवस्थामें विभीषणने लक्ष्मणको उसका परिचय दिया—॥ ३२॥

'सुमित्रानन्दन! रावणका जो पुत्र इन्द्रको भी जीत चुका है, वही यह रथपर बैठकर हनुमान्जीका वध करना चाहता है। अत: आप शत्रुओंका विदारण करनेवाले, अनुपम आकार-प्रकारसे युक्त एवं प्राणान्तकारी भयंकर बाणोंद्वारा उस रावणकुमारको मार डालिये'॥ ३३-३४॥

शत्रुओंको भयभीत करनेवाले विभीषणके ऐसा कहनेपर उस समय महात्मा लक्ष्मणने रथपर बैठे हुए उस भयंकर बलशाली पर्वताकार दुर्जय राक्षसको देखा॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और विभीषणकी रोषपूर्ण बातचीत

पूर्वोक्त बात कहकर हर्षसे भरे हुए विभीषण धनुर्धर सुमित्राकुमारको साथ लेकर बड़े वेगसे आगे बढ़े॥ १॥

थोड़ी ही दूर जानेपर विभीषणने एक महान् वनमें प्रवेश करके लक्ष्मणको इन्द्रजित्के कर्मानुष्ठानका स्थान दिखाया॥ २॥

वहाँ एक बरगदका वृक्ष था, जो श्याममेघके समान सघन और देखनेमें भयंकर था। रावणके तेजस्वी भ्राता विभीषणने लक्ष्मणको वहाँकी सब वस्तुएँ दिखाकर कहा—॥ ३॥

'सुमित्रानन्दन! यह बलवान् रावणकुमार प्रतिदिन यहीं आकर पहले भूतोंको बलि देता, उसके बाद युद्धमें प्रवृत्त होता है॥ ४॥

'इसीसे संग्रामभूमिमें यह राक्षस सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य हो जाता है और उत्तम बाणोंसे शत्रुओंको मारता तथा बाँध लेता है॥ ५॥

'अत: जबतक यह इस बरगदके नीचे आये, उसके पहले ही आप अपने तेजस्वी बाणोंद्वारा इस बलवान् रावण-कुमारको रथ, घोड़े और सारथिसहित नष्ट कर दीजिये'॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी सुमित्राकुमार अपने विचित्र धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ खड़े हो गये॥ ७॥

इतनेमें ही बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित् अग्निके समान तेजस्वी रथपर बैठा हुआ कवच, खड्ग और ध्वजाके साथ दिखायी पड़ा॥ ८॥

तब महातेजस्वी लक्ष्मणने पराजित न होनेवाले पुलस्त्यकुलनन्दन इन्द्रजित्से कहा—'राक्षसकुमार! मैं तुम्हें युद्धके लिये ललकारता हूँ। तुम अच्छी तरह सँभलकर मेरे साथ युद्ध करो'॥ ९॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी और मनस्वी रावणकुमारने वहाँ विभीषणको उपस्थित देख कठोर शब्दोंमें कहा—॥ १०॥

'राक्षस! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ और यहीं बढ़कर तुम इतने बड़े हुए। तुम मेरे पिताके सगे भाई और मेरे चाचा हो। फिर तुम अपने पुत्रसे—मुझसे क्यों द्रोह करते हो?॥ ११॥

'दुर्मते! तुममें न तो कुटुम्बीजनोंके प्रति अपनापनका

भाव है, न आत्मीयजनोंके प्रति स्नेह है और न अपनी जातिका अभिमान ही है। तुममें कर्तव्य-अकर्तव्यकी मर्यादा, भ्रातृप्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है। तुम राक्षस-धर्मको कलंकित करनेवाले हो॥ १२॥

'दुर्बुद्धे! तुमने स्वजनोंका परित्याग करके दूसरोंकी गुलामी स्वीकार की है। अतः तुम सत्पुरुषोंद्वारा निन्दनीय और शोकके योग्य हो॥ १३॥

'नीच निशाचर! तुम अपनी शिथिल बुद्धिके द्वारा इस महान् अन्तरको नहीं समझ पा रहे हो कि कहाँ तो स्वजनोंके साथ रहकर स्वच्छन्दताका आनन्द लेना और कहाँ दूसरोंकी गुलामी करके जीना है॥ १४॥

'दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों और स्वजन गुणहीन ही क्यों न हो? वह गुणहीन स्वजन भी दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ ही है; क्योंकि दूसरा दूसरा ही होता है (वह कभी अपना नहीं हो सकता)॥ १५॥

'जो अपने पक्षको छोड़कर दूसरे पक्षके लोगोंका सेवन करता है, वह अपने पक्षके नष्ट हो जानेपर फिर उन्हींके द्वारा मार डाला जाता है॥ १६॥

'रावणके छोटे भाई निशाचर! तुमने लक्ष्मणको इस स्थानतक ले आकर मेरा वध करानेके लिये प्रयत्न करके यह जैसी निर्दयता दिखायी है, ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे-जैसा स्वजन ही कर सकता है—तुम्हारे सिवा दूसरे किसी स्वजनके लिये ऐसा करना सम्भव नहीं है'॥ १७॥

अपने भतीजेके ऐसा कहनेपर विभीषणने उत्तर दिया—'राक्षस! तू आज ऐसी शेखी क्यों बघारता है? जान पड़ता है तुझे मेरे स्वभावका पता ही नहीं है॥ १८॥

'अधम! राक्षसराजकुमार! बड़ोंके बड़प्पनका खयाल करके तू इस कठोरताका परित्याग कर दे। यद्यपि मेरा जन्म क्रूरकर्मा राक्षसोंके कुलमें ही हुआ है, तथापि मेरा शील-स्वभाव राक्षसोंका-सा नहीं है। सत्पुरुषोंका जो प्रधान गुण सत्त्व है, मैंने उसीका आश्रय ले रखा है॥

'क्रूरतापूर्ण कर्ममें मेरा मन नहीं लगता। अधर्ममें मेरी रुचि नहीं होती। यदि अपने भाईका शील-स्वभाव अपनेसे न मिलता हो तो भी बड़ा भाई छोटे भाईको कैसे घरसे निकाल सकता है? (परंतु मुझे घरसे निकाल दिया गया, फिर मैं दूसरे सत्पुरुषका आश्रय क्यों न लूँ?)॥ २०॥

'जिसका शील-स्वभाव धर्मसे भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया हो, ऐसे पुरुषका त्याग करके प्रत्येक प्राणी उसी प्रकार सुखी होता है, जैसे हाथपर बैठे हुए जहरीले सर्पको त्याग देनेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है॥ २१॥

'जो दूसरोंका धन लूटता हो और परायी स्त्रीपर हाथ लगाता हो, उस दुरात्माको जलते हुए घरकी भाँति त्याग देने योग्य बताया गया है॥ २२॥

'पराये धनका अपहरण, परस्त्रीके साथ संसर्ग और अपने हितैषी सुहृदोंपर अधिक शङ्का—अविश्वास—ये तीन दोष विनाशकारी बताये गये हैं॥ २३॥

'महर्षियोंका भयंकर वध, सम्पूर्ण देवताओंके साथ विरोध, अभिमान, रोष, वैर और धर्मके प्रतिकूल चलना—ये दोष मेरे भाईमें मौजूद हैं, जो उसके प्राण और ऐश्वर्य दोनोंका नाश करनेवाले हैं। जैसे बादल पर्वतोंको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार इन दोषोंने मेरे भाईके सारे गुणोंको ढक दिया है॥ २४-२५॥

'इन्हीं दोषोंके कारण मैंने अपने भाई एवं तेरे पिताका त्याग किया है। अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे पिता ही रह जायँगे॥ २६॥

'राक्षस! तू अत्यन्त अभिमानी, उद्दण्ड और बालक (मूर्ख) है, कालके पाशमें बँधा हुआ है; इसलिये तेरी जो-जो इच्छा हो, मुझे कह ले॥ २७॥

'नीच राक्षस! तूने मुझसे जो कठोर बात कही है, उसीका यह फल है कि आज तुझपर यहाँ घोर संकट आया है। अब तू बरगदके नीचेतक नहीं जा सकता॥

'ककुत्स्थकुलभूषण लक्ष्मणका तिरस्कार करके तू जीवित नहीं रह सकता; अतः इन नरदेव लक्ष्मणके साथ रणभूमिमें युद्ध कर। यहाँ मारा जाकर तू यमलोकमें पहुँचेगा और देवताओंका कार्य करेगा (उन्हें संतुष्ट करेगा)॥

'अब तू अपना बढ़ा हुआ सारा बल दिखा' समस्त आयुधों और सायकोंका व्यय कर ले; परंतु लक्ष्मणके बाणोंका निशाना बनकर आज तू सेनासहित जीवित नहीं लौट सकेगा'॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८७॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

लक्ष्मण और इन्द्रजित्‌की परस्पर रोषभरी बातचीत और घोर युद्ध

विभीषणकी यह बात सुनकर रावणकुमार इन्द्रजित् क्रोधसे मूर्च्छित-सा हो उठा। वह रोषपूर्वक कठोर बातें कहने लगा और उछलकर सामने आ गया॥ १॥

उसने खड्ग तथा दूसरे आयुध भी उठा रखे थे। काले घोड़ोंसे युक्त, सजे-सजाये विशाल रथपर बैठा हुआ इन्द्रजित् विनाशकारी कालके समान जान पड़ता था॥ २॥

वह भयंकर बलशाली निशाचर बहुत बड़े आकारवाले, लंबे, मजबूत, वेगशाली और भयानक धनुषको तथा शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ बाणोंको भी लेकर युद्धके लिये उद्यत था॥ ३॥

वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर रथपर बैठे हुए उस महाधनुर्धर, शत्रुनाशक बलवान् रावणकुमारने देखा, लक्ष्मण अपने तेजसे ही विभूषित हो हनुमान्‌जीकी पीठपर आरूढ़ होकर उदयाचलपर विराजमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे हैं॥ ४$\frac{1}{2}$॥

देखते ही वह अत्यन्त रोषसे भर गया और विभीषणसहित सुमित्राकुमार तथा अन्य वानरसिंहोंसे कहा—'शत्रुओ! आज मेरा पराक्रम देखना। तुम सब लोग युद्धस्थलमें मेरे धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी दुःसह वर्षाको अपने अङ्गोंपर उसी तरह धारण करोगे, जैसे आकाशमें होनेवाली उन्मुक्त वर्षाको भूतलके प्राणी अपने ऊपर धारण करते हैं॥ ५-६$\frac{1}{2}$॥

'जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज तुम्हारे शरीरोंकी धज्जियाँ उड़ा देंगे॥ ७॥

'आज अपने शूल, शक्ति, ऋष्टि और तोमरोंद्वारा तथा तीखे सायकोंसे छिन्न-भिन्न करके तुम सब लोगोंको यमलोक पहुँचा दूँगा॥ ८॥

'युद्धस्थलमें हाथोंको बड़ी फुर्तीसे चलाकर जब मैं मेघके समान गर्जता हुआ बाणोंकी वर्षा आरम्भ करूँगा, उस समय कौन मेरे सामने ठहर सकेगा?॥ ९॥

'लक्ष्मण! उस दिन रात्रियुद्धमें मैंने वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा जो पहले तुम दोनों भाइयोंको रणभूमिमें सुला दिया था और तुमलोग अपने अग्रगामी सैनिकोंसहित मूर्च्छित होकर पड़े थे, मैं समझता हूँ, उसका इस समय तुम्हें स्मरण नहीं हो रहा है। विषधर सर्पके समान रोषसे भरे हुए मुझ इन्द्रजित्‌के साथ जो तुम युद्ध करनेके लिये उपस्थित हो गये, उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि यमलोकमें जानेके लिये उद्यत हो'॥ १०-११॥

राक्षसराजके बेटेकी वह गर्जना सुनकर रघुकुलनन्दन लक्ष्मण कुपित हो उठे। उनके मुखपर भयका कोई चिह्न नहीं था। वे उस रावणकुमारसे बोले—॥ १२॥

'निशाचर! तुमने केवल वाणीद्वारा अपने शत्रुवध आदि कार्योंकी पूर्तिके लिये घोषणा कर दी; परंतु उन कार्योंको पूरा करना तुम्हारे लिये बहुत ही कठिन है। जो क्रियाद्वारा कर्तव्यकर्मोंके पार पहुँचता है अर्थात् जो कहता नहीं, काम पूरा करके दिखा देता है, वही पुरुष बुद्धिमान् है॥ १३॥

'दुर्मते! तुम अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेमें असमर्थ हो। जो कार्य किसीके द्वारा भी सिद्ध होना कठिन है, उसे केवल वाणीके द्वारा कहकर तुम अपनेको कृतार्थ मान रहे हो!॥ १४॥

'उस दिन संग्राममें अपनेको छिपाकर तुमने जिसका आश्रय लिया था, वह चोरोंका मार्ग है। वीर पुरुष उसका सेवन नहीं करते॥ १५॥

'राक्षस! इस समय मैं तुम्हारे बाणोंके मार्गमें आकर खड़ा हूँ। आज तुम अपना वह तेज दिखाओ। केवल बढ़-बढ़कर बातें क्यों बना रहे हो?'॥ १६॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर संग्रामविजयी महाबली इन्द्रजित्‌ने अपने भयंकर धनुषको दृढ़तापूर्वक पकड़कर पैने बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी॥ १७॥

उसके छोड़े हुए महान् वेगशाली बाण साँपके विषकी तरह जहरीले थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान लक्ष्मणके शरीरपर पड़ने लगे॥ १८॥

वेगवान् रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने उन अत्यन्त वेगशाली बाणोंद्वारा युद्धमें शुभलक्षण लक्ष्मणको घायल कर दिया॥ १९॥

बाणोंसे उनका शरीर अत्यन्त क्षत-विक्षत हो गया। वे रक्तसे नहा उठे। उस अवस्थामें श्रीमान् लक्ष्मण धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे॥

इन्द्रजित् अपना यह पराक्रम देख लक्ष्मणके पास जा बड़े जोरसे गर्जना करके यों बोला—॥ २१॥

'सुमित्राकुमार! मेरे धनुषसे छूटे हुए तेज धारवाले

पंखधारी बाण शत्रुके जीवनका अन्त कर देनेवाले हैं। ये आज तुम्हारे प्राण लेकर ही रहेंगे॥ २२॥

'लक्ष्मण! आज मेरे द्वारा मारे जाकर जब तुम्हारे प्राण निकल जायँगे, तब तुम्हारी लाशपर झुंड-के-झुंड गीदड़, बाज और गीध टूट पड़ेंगे॥ २३॥

'परम दुर्बुद्धि राम तुम-जैसे अनार्य, क्षत्रियाधम एवं अपने भक्त भाईको आज ही मेरे द्वारा मारा गया देखेंगे॥

'सुमित्राकुमार! तुम्हारा कवच खिसककर पृथ्वीपर गिर जायगा, धनुष भी दूर जा पड़ेगा और तुम्हारा मस्तक भी धड़से अलग कर दिया जायगा। इस अवस्थामें राम आज मेरे हाथसे मारे गये तुमको देखेंगे'॥ २५॥

इस तरह कठोर बातें कहते हुए रावणकुमार इन्द्रजित्‌से अपने प्रयोजनको जाननेवाले लक्ष्मणने कुपित होकर यह युक्तियुक्त उत्तर दिया—॥ २६॥

'क्रूरकर्म करनेवाले दुर्बुद्धि राक्षस! बकवासका बल छोड़ दे। तू ये सब बातें कहता क्यों है? करके दिखा॥

'निशाचर! जो काम अभी किया नहीं, उसके लिये यहाँ व्यर्थ डींग क्यों हाँकता है ? तू जिसे कहता है, उस कार्यको पूरा कर, जिससे मुझे तेरी इस बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बातपर विश्वास हो॥ २८॥

'नरभक्षी राक्षस! तू देख लेना, मैं कोई कठोर बात न कहकर तेरे ऊपर किसी तरहका आक्षेप न करके आत्मप्रशंसा किये बिना ही तेरा वध करूँगा'॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणने उस राक्षसकी छातीमें बड़े वेगसे पाँच नाराच मारे, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये थे॥ ३०॥

सुन्दर पंखोंके कारण अत्यन्त वेगसे जानेवाले और प्रज्वलित सर्पके समान दिखायी देनेवाले वे बाण उस राक्षसकी छातीपर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ३१॥

लक्ष्मणके बाणोंसे आहत होकर रावणकुमार रोषसे आगबबूला हो उठा। उसने अच्छी तरह चलाये हुए तीन बाणोंसे लक्ष्मणको भी घायल करके बदला चुकाया॥ ३२॥

एक ओर पुरुषसिंह लक्ष्मण थे तो दूसरी ओर राक्षससिंह इन्द्रजित्। दोनों युद्धस्थलमें एक-दूसरेपर विजय पाना चाहते थे। उन दोनोंका वह तुमुल संग्राम महाभयंकर था॥ ३३॥

वे दोनों वीर पराक्रमी, बलसम्पन्न, विक्रमशाली, परम दुर्जय तथा अनुपम बल और तेजसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दुर्जय थे॥ ३४॥

जैसे आकाशमें दो ग्रह टकरा गये हों, उसी तरह वे दोनों वीर परस्पर जूझ रहे थे। उस युद्धस्थलमें वे इन्द्र और वृत्रासुरके समान दुर्धर्ष जान पड़ते थे॥ ३५॥

वे महामनस्वी नरश्रेष्ठ तथा राक्षसप्रवर वीर जैसे दो सिंह आपसमें लड़ रहे हों उसी प्रकार युद्ध करते थे और बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धभूमिमें डटे हुए थे। दोनों ही बड़े हर्ष और उत्साहके साथ एक-दूसरेका सामना करते थे॥ ३६॥

तदनन्तर दशरथनन्दन शत्रुसूदन लक्ष्मणने कुपित हुए सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचते हुए अपने धनुषपर अनेक बाण रखे और उन सबको राक्षसराज इन्द्रजित्‌पर चलाया॥ ३७॥

उनके धनुषकी डोरीसे प्रकट होनेवाली टंकार-ध्वनि सुनकर राक्षसराज इन्द्रजित्‌का मुँह उदास हो गया और वह चुपचाप लक्ष्मणकी ओर देखने लगा॥ ३८॥

रावणकुमार इन्द्रजित्‌का मुँह उदास देखकर विभीषणने युद्धमें लगे हुए सुमित्राकुमारसे कहा—॥ ३९॥

'महाबाहो! इस समय रावणपुत्र इन्द्रजित्‌में मुझे जो लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि निःसंदेह इसका उत्साह भंग हो गया है; अतः आप इसके वधके लिये शीघ्रता करें'॥ ४०॥

तब सुमित्राकुमारने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंको धनुषपर चढ़ाया और उन्हें इन्द्रजित्‌को लक्ष्य करके चला दिया। वे बाण क्या थे महाविषैले सर्प थे॥

उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति दुःसह था। लक्ष्मणके चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर इन्द्रजित् दो घड़ीके लिये मूर्च्छित हो गया। उसकी सारी इन्द्रियाँ विक्षुब्ध हो उठीं॥ ४२॥

थोड़ी देरमें जब होश हुआ और इन्द्रियाँ सुस्थिर हुईं, तब उसने रणभूमिमें दशरथकुमार वीर लक्ष्मणको खड़ा देखा। देखते ही उसके नेत्र रोषसे लाल हो गये और वह सुमित्राकुमारके सामने गया॥ ४३॥

वहाँ पहुँचकर वह उनसे कठोर वाणीमें बोला—'सुमित्राकुमार! पहले युद्धमें मैंने जो पराक्रम दिखाया था, उसे क्या तुम भूल गये? उस दिन तुमको और तुम्हारे भाईको भी मैंने बाँध लिया था। उस समय तुम युद्धभूमिमें पड़े-पड़े छटपटा रहे थे॥ ४४॥

'उस महायुद्धमें वज्र एवं अशनिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा मैंने तुम दोनों भाइयोंको पहले धरतीपर सुला दिया था। तुम दोनों अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ

मूर्च्छित होकर पड़े थे॥ ४५॥

'अथवा मालूम होता है कि तुम्हें उन सब बातोंकी याद नहीं आ रही है। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम यमलोकमें जाना चाहते हो। इसीलिये तुम मुझे पराजित करनेकी इच्छा रखते हो॥ ४६॥

'यदि पहले युद्धमें तुमने मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो आज तुम्हें दिखा दूँगा। इस समय सुस्थिरभावसे खड़े रहो'॥ ४७॥

ऐसा कहकर तीखी धारवाले सात बाणोंसे उसने लक्ष्मणको घायल कर दिया और दस उत्तम सायकोंद्वारा हनुमान्‌जीपर प्रहार किया॥ ४८॥

तत्पश्चात् दूने रोषसे भरे हुए उस पराक्रमी निशाचरने अच्छी तरहसे छोड़े गये सौ बाणोंद्वारा विभीषणको क्रोधपूर्वक क्षत-विक्षत कर दिया॥ ४९॥

इन्द्रजित्‌द्वारा किये गये इस पराक्रमको देखकर श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मणने उसकी कोई परवा नहीं की और हँसते-हँसते कहा—'यह तो कुछ नहीं है'॥ ५०॥

साथ ही उन नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने मुखपर भयकी छायातक नहीं आने दी। उन्होंने युद्धस्थलमें कुपित हो भयंकर बाण हाथमें लिये और उन्हें रावणकुमारको लक्ष्य करके चला दिया॥ ५१॥

फिर वे बोले—'निशाचर! रणभूमिमें आये हुए शूरवीर इस तरह प्रहार नहीं करते। तुम्हारे ये बाण बहुत हल्के और कमजोर हैं। इनसे कष्ट नहीं होता—सुख ही मिलता है॥ ५२॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर समराङ्गणमें इस तरह युद्ध नहीं करते हैं।' ऐसा कहते हुए धनुर्धर वीर लक्ष्मणने उस राक्षसपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥

लक्ष्मणके बाणोंसे इन्द्रजित्‌का महान् कवच, जो सोनेका बना हुआ था, टूटकर रथकी बैठकमें बिखर गया, मानो आकाशसे ताराओंका समूह टूटकर गिर पड़ा हो॥ ५४॥

कवच कट जानेपर नाराचोंके प्रहारसे वीर इन्द्रजित्‌के सारे अङ्गोंमें घाव हो गये। वह समराङ्गणमें रक्तसे रञ्जित हो प्रात:कालके सूर्यकी भाँति दिखायी देने लगा॥ ५५॥

तब भयानक पराक्रमी वीर रावणकुमारने अत्यन्त कुपित हो समरभूमिमें लक्ष्मणको सहस्रों बाणोंसे घायल कर दिया॥ ५६॥

इससे लक्ष्मणका भी दिव्य एवं विशाल कवच छिन्न-भिन्न हो गया। वे दोनों शत्रुदमन वीर एक-दूसरेके प्रहारका जवाब देने लगे॥ ५७॥

वे बारंबार हाँफते हुए भयानक युद्ध करने लगे। युद्धस्थलमें बाणोंके आघातसे दोनोंके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे। अत: वे दोनों सब ओरसे लहूलुहान हो गये॥ ५८॥

दोनों वीर दीर्घकालतक एक-दूसरेपर पैने बाणोंका प्रहार करते रहे। दोनों ही महामनस्वी तथा युद्धकी कलामें निपुण थे। दोनों भयंकर पराक्रम प्रकट करते थे और अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे॥ ५९॥

दोनोंके शरीर बाण-समूहोंसे व्याप्त थे। दोनोंके ही कवच और ध्वज कट गये थे। जैसे दो झरने जल बहा रहे हों, उसी तरह वे दोनों अपने शरीरसे गरम-गरम रक्त बहा रहे थे॥ ६०॥

दोनों ही भयंकर गर्जनाके साथ बाणोंकी घोर वर्षा कर रहे थे, मानो प्रलयकालके दो नील मेघ आकाशमें जलकी धारा बरसा रहे हों॥ ६१॥

वहाँ जूझते हुए उन दोनों वीरोंका बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया; परंतु वे दोनों न तो युद्धसे विमुख हुए और न उन्हें थकावट ही हुई॥ ६२॥

दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे और बारंबार अपने अस्त्रोंका प्रदर्शन करते थे। उन्होंने आकाशमें छोटे-बड़े बाणोंका जाल-सा बाँध दिया॥ ६३॥

वे मनुष्य और राक्षस—दोनों वीर बड़ी फुर्तीके साथ अद्भुत और सुन्दर ढंगसे बाणोंका प्रहार करते थे। उनके बाण चलानेकी कलामें कोई दोष नहीं दिखायी देता था। वे दोनों घोर घमासान युद्ध कर रहे थे॥ ६४॥

बाण चलाते समय उन दोनोंकी हथेली और प्रत्यञ्चाका भयंकर एवं तुमुल नाद पृथक्-पृथक् सुनायी देता था, जो भयंकर वज्रपातकी आवाजके समान श्रोताओंके हृदयमें कम्प उत्पन्न कर देता था॥ ६५॥

उन दोनों रणोन्मत्त वीरोंका वह शब्द आकाशमें परस्पर टकराते हुए दो महाभयंकर मेघोंकी गड़गड़ाहटके समान सुशोभित होता था॥ ६६॥

वे दोनों बलवान् योद्धा सोनेके पंखवाले नाराचोंसे घायल हो शरीरसे खून बहा रहे थे। दोनों ही यशस्वी थे और अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्न कर रहे थे॥ ६७॥

युद्धमें उन दोनोंके चलाये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाण एक-दूसरेके शरीरपर पड़ते, रक्तसे भीगकर निकलते और धरतीमें समा जाते थे॥ ६८॥

उनके हजारों बाण आकाशमें तीखे शस्त्रोंसे टकराते और उन्हें तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे॥ ६९॥

वह बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा था। उसमें उन दोनोंके बाणोंका समूह यज्ञमें गार्हपत्य और आहवनीय नामक दो प्रज्वलित अग्नियोंके साथ बिछे हुए कुशोंके ढेरकी भाँति जान पड़ता था॥ ७०॥

उन दोनों महामनस्वी वीरोंके क्षत-विक्षत शरीर वनमें पत्रहीन एवं लाल पुष्पोंसे भरे हुए पलाश और सेमलके वृक्षोंके समान सुशोभित होते थे॥ ७१॥

एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले इन्द्रजित् और लक्ष्मण रह-रहकर बारंबार भयंकर मार-काट मचाते थे॥ ७२॥

लक्ष्मण रणभूमिमें रावणकुमारपर चोट करते थे और रावणकुमार लक्ष्मणपर। इस तरह एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए वे वीर थकते नहीं थे॥ ७३॥

उन दोनों वेगशाली वीरोंके शरीरमें बाणोंके समूह धँस गये थे, इसलिये वे दोनों महापराक्रमी योद्धा जिनपर बहुत-से वृक्ष उग आये हों, उन दो पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥ ७४॥

बाणोंसे ढके और खूनसे भीगे हुए उन दोनोंके सारे अङ्ग जलती हुई आगके समान उद्दीप्त हो रहे थे॥ ७५॥

इस तरह युद्ध करते-करते उन दोनोंका बहुत समय व्यतीत हो गया; परंतु वे दोनों न तो युद्धसे विमुख हुए और न उन्हें थकावट ही हुई॥ ७६॥

युद्धके मुहानेपर पराजित न होनेवाले लक्ष्मणके युद्धजनित श्रमका निवारण तथा उनके प्रिय एवं हितका सम्पादन करनेके लिये महात्मा विभीषण युद्धभूमिमें आकर खड़े हो गये॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ सर्ग

विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानर-यूथपतियोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्‌के सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका वध

लक्ष्मण और इन्द्रजित्‌को दो मदमत्त हाथियोंकी भाँति परस्पर विजय पानेकी इच्छासे युद्धासक्त होकर जूझते देख उन दोनोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे रावणके बलवान् भाई शूरवीर विभीषण सुन्दर धनुष धारण किये उस युद्धके मुहानेपर आकर खड़े हो गये॥ १-२॥

वहाँ खड़े होकर उन्होंने अपने विशाल धनुषको खींचा और राक्षसोंपर तेज धारवाले बड़े-बड़े बाणोंको बरसाना आरम्भ किया॥ ३॥

जैसे वज्र नामक अस्त्र बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार विभीषणके चलाये हुए वे बाण, जिनका स्पर्श आगके समान जलानेवाला था, राक्षसोंपर गिरकर उनके अङ्गोंको चीरने लगे॥ ४॥

विभीषणके अनुचर भी राक्षसोंमें श्रेष्ठ वीर थे; अतः वे भी समराङ्गणमें शूल, खड्ग और पट्टिशोंद्वारा वीर राक्षसोंका संहार करने लगे॥ ५॥

उन चारों राक्षसोंसे घिरे हुए विभीषण धृष्ट गजशावकोंके बीचमें खड़े हुए गजराजकी भाँति शोभा पाते थे॥ ६॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ विभीषण समयोचित कर्तव्यको जानते थे, इसलिये उन्होंने वानरोंको, जिन्हें राक्षसोंका वध करना प्रिय था, युद्धके लिये प्रेरित करते हुए यह समयके अनुरूप बात कही—॥ ७॥

'वानरेश्वरो! अब खड़े-खड़े क्या देखते हो? राक्षसराज रावणका यह एकमात्र सहारा है, जो तुम्हारे सामने खड़ा है। रावणकी सेनाका इतना ही भाग अब शेष रह गया है॥ ८॥

'इस युद्धके मुहानेपर इस पापी राक्षस इन्द्रजित्‌के मारे जानेपर रावणको छोड़कर उसकी सारी सेनाको मरी हुई ही समझो॥ ९॥

'वीर प्रहस्त मारा गया, महाबली निकुम्भ, कुम्भकर्ण, कुम्भ तथा निशाचर धूम्राक्ष भी कालके गालमें चले गये॥

'जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, राक्षस वज्रदंष्ट्र, संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, प्रजङ्घ, जङ्घ, दुर्जय अग्निकेतु, पराक्रमी रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, राक्षस सूर्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, निशाचर चक्रमाली, कम्पन तथा वे दोनों शक्तिशाली वीर देवान्तक और नरान्तक—ये सभी मारे जा चुके हैं॥ ११—१४॥

'इन अत्यन्त बलशाली बहुसंख्यक राक्षस-शिरोमणियोंका वध करके तुमलोगोंने हाथोंसे तैरकर

समुद्र पार कर लिया है। अब गायकी खुरीके बराबर यह छोटा-सा राक्षस बचा हुआ है। अतः इसे भी शीघ्र ही लाँघ जाओ॥ १५॥

'वानरो! इतनी ही राक्षससेना और शेष रह गयी है, जिसे तुम्हें जीतना है। अपने बलपर घमंड करनेवाले प्रायः सभी राक्षस तुमसे भिड़कर मारे जा चुके हैं॥ १६॥

'मैं इसके बापका भाई हूँ। इस नाते यह मेरा पुत्र है। अतः मेरे लिये इसका वध करना अनुचित है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीके लिये दयाको तिलाञ्जलि दे मैं अपने इस भतीजेको मारनेके लिये उद्यत हूँ॥ १७॥

'जब मैं स्वयं मारनेके लिये इसपर हथियार चलाना चाहता हूँ, उस समय आँसू मेरी दृष्टि बंद कर देते हैं; अतः ये महाबाहु लक्ष्मण ही इसका विनाश करेंगे॥ १८॥

'वानरो! तुमलोग झुंड बनाकर इसके समीपवर्ती सेवकोंपर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो।' इस प्रकार अत्यन्त यशस्वी राक्षस विभीषणके प्रेरित करनेपर वानरयूथपति हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा अपनी पूँछ पटकने लगे॥ १९½॥

फिर वे सिंहके समान पराक्रमी वानर बारंबार गर्जते हुए उसी तरह नाना प्रकारके शब्द करने लगे, जैसे बादलोंको देखकर मोर अपनी बोली बोलने लगते हैं॥ २०॥

अपने यूथवाले समस्त भालुओंसे घिरे हुए जाम्बवान् तथा वे वानर पत्थरों, नखों और दाँतोंसे वहाँ राक्षसोंको पीटने लगे॥ २१॥

अपने ऊपर प्रहार करते हुए ऋक्षराज जाम्बवान्को उन महाबली राक्षसोंने भय छोड़कर चारों ओरसे घेर लिया। उनके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे॥

वे राक्षस सेनाका संहार करनेवाले जाम्बवान्पर युद्धस्थलमें बाणों, तीखे फरसों, पट्टिशों, डंडों और तोमरोंद्वारा प्रहार करने लगे॥ २३॥

वानरों और राक्षसोंका वह महायुद्ध क्रोधसे भरे हुए देवताओं और असुरोंके संग्रामकी भाँति बड़ा भयंकर हो चला। उसमें बड़े जोर-जोरसे भयानक कोलाहल होने लगा॥ २४॥

उस समय महामनस्वी हनुमान्जीने लक्ष्मणको अपनी पीठसे उतार दिया और स्वयं भी अत्यन्त कुपित हो पर्वत-शिखरसे एक सालवृक्ष उखाड़कर सहस्रों राक्षसोंका संहार करने लगे। शत्रुओंके लिये उन्हें परास्त करना बहुत ही कठिन था॥ २५½॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले बलवान् इन्द्रजित्ने अपने चाचाको भी घोर युद्धका अवसर देकर पुनः लक्ष्मणपर धावा किया॥ २६½॥

लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों वीर उस समय रणभूमिमें बड़े वेगसे जूझने लगे। वे दोनों बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए एक-दूसरेको चोट पहुँचाने लगे॥ २७½॥

वे महाबली वीर बाणोंका जाल-सा बिछाकर बारंबार एक-दूसरेको ढक देते थे। ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाकालमें वेगशाली चन्द्रमा और सूर्य बादलोंसे आच्छादित हो जाया करते हैं॥ २८½॥

युद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंके हाथोंमें इतनी फुर्ती थी कि तरकससे बाणोंका निकालना, उनको धनुषपर रखना, धनुषको इस हाथसे उस हाथमें लेना, उसे मुट्ठीमें दृढ़तापूर्वक पकड़ना, कानतक खींचना, बाणोंका विभाग करना, उन्हें छोड़ना और लक्ष्य वेधना आदि कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था॥ २९-३०½॥

धनुषके वेगसे छोड़े गये बाणसमूहोंद्वारा आकाश सब ओरसे ढक गया। अतः उसमें साकार वस्तुओंका दीखना बंद हो गया॥ ३१½॥

लक्ष्मण रावणकुमारके पास पहुँचकर और रावणकुमार लक्ष्मणके निकट जाकर दोनों परस्पर जूझने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए जब वे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगते, तब भयंकर अव्यवस्था पैदा हो जाती थी। क्षण-क्षणमें यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि अमुककी विजय या पराजय होगी॥ ३२½॥

उन दोनोंके द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये तीखे बाणोंसे आकाश ठसाठस भर गया और वहाँ अँधेरा छा गया॥

वहाँ गिरते हुए बहुसंख्यक अस्त्रों और सैकड़ों तीखे सायकोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ और विदिशाएँ भी व्याप्त हो गयीं॥ ३४½॥

अतः सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न हो गया और बड़ा भयानक दृश्य दिखायी देने लगा। सूर्य अस्त हो गये, सब ओर अँधेरा फैल गया और रक्तके प्रवाहसे पूर्ण सहस्रों बड़ी-बड़ी नदियाँ बह चलीं॥ ३५-३६॥

मांसभक्षी भयंकर जन्तु अपनी वाणीद्वारा भयानक शब्द प्रकट करने लगे। उस समय न तो वायु चलती थी और न आग ही प्रज्वलित होती थी॥ ३७॥

महर्षिगण बोल उठे—'संसारका कल्याण हो।' उस समय गन्धर्वोंको बड़ा संताप हुआ। वे चारणोंके साथ वहाँसे भाग चले॥ ३८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने चार बाण मारकर उस राक्षससिंहके सोनेके आभूषणोंसे सजे हुए काले रंगके चारों घोड़ोंको बींध दिया॥ ३९॥

तत्पश्चात् रघुकुलनन्दन श्रीमान् लक्ष्मणने दूसरे तीखे, पानीदार सुन्दर पंखवाले और चमकीले भल्लसे जो इन्द्रके वज्रकी समानता करता था तथा जिसे कानतक खींचकर छोड़ा गया था, रणभूमिमें विचरते हुए इन्द्रजित्के सारथिका मस्तक शीघ्रतापूर्वक धड़से अलग कर दिया। वह वज्रोपम बाण छूटनेके साथ ही हथेलीके शब्दसे अनुनादित हो सनसनाता हुआ आगे बढ़ा था॥

सारथिके मारे जानेपर महातेजस्वी मन्दोदरीकुमार इन्द्रजित् स्वयं ही सारथिका भी काम सँभालता—घोड़ोंको भी काबूमें रखता और फिर धनुषको भी चलाता था। युद्धस्थलमें उसके द्वारा वहाँ सारथिके कार्यका भी सम्पादन होना दर्शकोंकी दृष्टिमें बड़ी अद्भुत बात थी॥

इन्द्रजित् जब घोड़ोंको रोकनेके लिये हाथ बढ़ाता, तब लक्ष्मण उसे तीखे बाणोंसे बेधने लगते और जब वह युद्धके लिये धनुष उठाता, तब उसके घोड़ोंपर बाणोंका प्रहार करते थे॥ ४४॥

उन छिद्रों (बाण-प्रहारके अवसरों)-में शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणने समराङ्गणमें निर्भयसे विचरते हुए इन्द्रजित्को अपने बाण-समूहोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित कर दिया॥ ४५॥

समरभूमिमें सारथिको मारा गया देख रावणकुमारने युद्धविषयक उत्साह त्याग दिया। वह विषादमें डूब गया॥

उस राक्षसके मुखपर विषाद छाया हुआ देख वे वानर-यूथपति बड़े प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ४७॥

तत्पश्चात् प्रमाथी, रभस, शरभ और गन्धमादन—इन चार वानरेश्वरोंने अमर्षसे भरकर अपना महान् वेग प्रकट किया॥ ४८॥

वे चारों वानर महान् बलशाली और भयंकर पराक्रमी थे। वे सहसा उछलकर इन्द्रजित्के चारों घोड़ोंपर कूद पड़े॥ ४९॥

उन पर्वताकार वानरोंके भारसे दब जानेके कारण उन घोड़ोंके मुखोंसे खून निकलने लगा॥ ५०॥

उनसे रौंदे जानेके कारण घोड़ोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये और वे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार घोड़ोंकी जान ले इन्द्रजित्के विशाल रथको भी तोड़-फोड़कर वे चारों वानर पुनः वेगसे उछले और लक्ष्मणके पास आकर खड़े हो गये॥ ५१॥

सारथि तो पहले ही मारा गया था। जब घोड़े भी मार डाले गये, तब रावणकुमार रथसे कूद पड़ा और बाणोंकी वर्षा करता हुआ सुमित्राकुमारकी ओर बढ़ा॥

उस समय इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने श्रेष्ठ घोड़ोंके मारे जानेसे पैदल चलकर युद्धमें तीखे उत्तम बाणोंकी वर्षा करते हुए इन्द्रजित्को अपने बाणसमूहोंकी मारसे अत्यन्त घायल कर दिया॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का वध

घोड़ोंके मारे जानेपर पृथ्वीपर खड़े हुए महातेजस्वी निशाचर इन्द्रजित्का क्रोध बहुत बढ़ गया। वह तेजसे प्रज्वलित-सा हो उठा॥ १॥

इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनोंके हाथमें धनुष थे। दोनों ही अपनी-अपनी विजयके लिये एक-दूसरेके सम्मुख युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। वे अपने बाणोंद्वारा परस्पर वधकी इच्छा रखकर वनमें लड़नेके लिये निकले हुए दो गजराजोंके समान एक-दूसरेपर गहरी चोट करने लगे॥

वानर और राक्षस भी परस्पर संहार करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहे; परंतु अपने-अपने स्वामीका साथ न छोड़ सके॥ ३॥

तदनन्तर रावणकुमारने प्रसन्न हो प्रशंसा करके राक्षसोंका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥ ४॥

'श्रेष्ठ निशाचरो! चारों दिशाओंमें अन्धकार छा रहा है, अतः यहाँ अपने या परायेकी पहचान नहीं हो रही है॥ ५॥

'इसलिये मैं जाता हूँ। दूसरे रथपर बैठकर शीघ्र ही युद्धके लिये आऊँगा। तबतक तुमलोग वानरोंको मोहमें डालनेके लिये निर्भय होकर ऐसा युद्ध करो, जिससे ये महामनस्वी वानर नगरमें प्रवेश करते समय मेरा सामना करनेके लिये न आवें'॥ ६-७॥

ऐसा कहकर शत्रुहन्ता रावणकुमार वानरोंको

चकमा दे रथके लिये लङ्कापुरीमें चला गया॥ ८॥

उसने एक सुवर्णभूषित सुन्दर रथको सजाकर उसके ऊपर प्रास, खड्ग तथा बाण आदि आवश्यक सामग्री रखी, फिर उसमें उत्तम घोड़े जुतवाये और अश्व हाँकनेकी विद्याके जानकार तथा हितकर उपदेश देनेवाले सारथिको उसपर बिठाकर वह महातेजस्वी समरविजयी रावणकुमार स्वयं भी उस रथपर आरूढ़ हुआ॥ ९-१०॥

फिर प्रमुख राक्षसोंको साथ ले वीर मन्दोदरीकुमार कालशक्तिसे प्रेरित हो नगरसे बाहर निकला॥ ११॥

नगरसे निकलकर इन्द्रजित्‌ने अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा विभीषणसहित लक्ष्मणपर बलपूर्वक धावा किया॥ १२॥

रावणकुमारको रथपर बैठा देख सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, महापराक्रमी वानरगण तथा राक्षसराज विभीषण—सबको बड़ा विस्मय हुआ। सभी उस बुद्धिमान् निशाचरकी फुर्ती देखकर दंग रह गये॥ १३½॥

तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए रावणपुत्रने अपने बाण-समूहोंद्वारा रणभूमिमें सैकड़ों और हजारों वानर-यूथपतियोंको गिराना आरम्भ किया॥ १४½॥

युद्धविजयी रावणकुमारने अपने धनुषको इतना खींचा कि वह मण्डलाकार बन गया। उसने कुपित हो बड़ी शीघ्रताके साथ वानरोंका संहार आरम्भ किया॥ १५½॥

उसके नाराचोंकी मार खाते हुए भयानक पराक्रमी वानर सुमित्राकुमार लक्ष्मणकी शरणमें गये, मानो प्रजाने प्रजापतिकी शरण ली हो॥ १६½॥

तब शत्रुके युद्धसे रघुकुलनन्दन लक्ष्मणका क्रोध भड़क उठा। वे रोषसे जल उठे और उन्होंने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उस राक्षसके धनुषको काट दिया॥

यह देख उस निशाचरने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परंतु लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसके उस धनुषको भी काट दिया॥ १८॥

धनुष कट जानेपर विषधर सर्पके समान पाँच भयंकर बाणोंद्वारा सुमित्राकुमारने रावणपुत्रकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ १९॥

उनके विशाल धनुषसे छूटे हुए वे बाण इन्द्रजित्‌का शरीर छेदकर लाल रंगके बड़े-बड़े सर्पोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २०॥

धनुष कट जानेपर उन बाणोंकी चोट खाकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए रावणपुत्रने पुनः एक मजबूत धनुष हाथमें लिया। उसकी प्रत्यञ्चा भी बहुत ही दृढ़ थी॥

फिर तो उसने लक्ष्मणको लक्ष्य करके बड़ी फुर्तीके साथ बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो देवराज इन्द्र जल बरसा रहे हों॥ २२॥

यद्यपि इन्द्रजित्‌द्वारा की गयी उस बाणवर्षाको रोकना बहुत ही कठिन था तो भी शत्रुदमन लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके उसको रोक दिया॥ २३॥

रघुकुलनन्दन महातेजस्वी लक्ष्मणके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं थी। उन्होंने उस रावणकुमारको जो अपना पौरुष दिखाया, वह अद्भुत-सा ही था॥ २४॥

उन्होंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीघ्र अस्त्र-संचालनकी कलाका प्रदर्शन करते हुए उन समस्त राक्षसोंको प्रत्येकके शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया तथा राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्‌को भी अपने बाण-समूहोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ २५॥

शत्रुहन्ता प्रबल शत्रुके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर इन्द्रजित्‌ने लक्ष्मणपर लगातार बहुत बाण बरसाये॥ २६॥

परंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणने अपने पासतक पहुँचनेसे पहले ही उन बाणोंको अपने तीखे सायकोंद्वारा काट डाला और रणभूमिमें रथी इन्द्रजित्‌के सारथिका मस्तक भी झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे उड़ा दिया॥ २७½॥

सारथिके न रहनेपर भी वहाँ उसके घोड़े व्याकुल नहीं हुए। पूर्ववत् शान्तभावसे रथको ढोते रहे और विभिन्न प्रकारके पैंतरे बदलते हुए मण्डलाकार गतिसे दौड़ लगाते रहे। वह एक अद्भुत-सी बात थी॥ २८½॥

सुदृढ़ पराक्रमी सुमित्राकुमार लक्ष्मण अमर्षके वशीभूत हो रणक्षेत्रमें उसके घोड़ोंको भयभीत करनेके लिये उन्हें बाणोंसे बेधने लगे॥ २९½॥

रावणकुमार इन्द्रजित् युद्धस्थलमें लक्ष्मणके इस पराक्रमको नहीं सह सका। उसने उन अमर्षशील सुमित्राकुमारको दस बाण मारे॥ ३०½॥

उसके वे वज्रतुल्य बाण सर्पके विषकी भाँति प्राणघाती थे, तथापि लक्ष्मणके सुनहरी कान्तिवाले कवचसे टकराकर वहीं नष्ट हो गये॥ ३१॥

लक्ष्मणका कवच* अभेद्य है, ऐसा जानकर

* पहले लक्ष्मणके कवचके टूटनेका वर्णन आ चुका है। उसके बाद लक्ष्मणने फिर अभेद्य कवच धारण किया था। यह इस प्रसंगसे जाना जाता है।

रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने उनके ललाटमें सुन्दर पंखवाले तीन बाण मारे। उसने अपनी अस्त्र चलानेकी फुर्ती दिखाते हुए अत्यन्त क्रोधपूर्वक उन्हें घायल कर दिया। ललाटमें धँसे हुए उन बाणोंसे युद्धकी श्लाघा रखनेवाले रघुकुलनन्दन लक्ष्मण संग्रामके मुहानेपर तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान शोभा पा रहे थे॥ ३२-३३ $\frac{1}{2}$ ॥

उस राक्षसके द्वारा युद्धमें बाणोंसे इस प्रकार पीड़ित किये जानेपर भी लक्ष्मणने उस समय तुरंत पाँच बाणोंका संधान किया और धनुषको खींचकर चलाये हुए उन बाणोंके द्वारा सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित इन्द्रजित्‌के मुखमण्डलको क्षत-विक्षत कर दिया॥ ३४-३५ ॥

लक्ष्मण तथा इन्द्रजित् दोनों वीर महाबलवान् थे। उनके धनुष भी बहुत बड़े थे। भयंकर पराक्रम करनेवाले वे दोनों योद्धा एक-दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे॥ ३६ ॥

इससे लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंके शरीर लहूलुहान हो गये। रणभूमिमें वे दोनों वीर फूले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पा रहे थे॥ ३७ ॥

उन दोनों धनुर्धर वीरोंके मनमें विजय पानेके लिये दृढ़ संकल्प था, अत: वे आपसमें भिड़कर एक-दूसरेके सभी अङ्गोंको भयंकर बाणोंका निशाना बनाने लगे॥ ३८ ॥

इसी बीचमें समरोचित क्रोधसे युक्त हुए रावणकुमारने विभीषणके सुन्दर मुखपर तीन बाणोंका प्रहार किया॥ ३९ ॥

जिनके अग्रभागमें लोहेके फल लगे हुए थे, ऐसे तीन बाणोंसे राक्षसराज विभीषणको घायल करके इन्द्रजित्‌ने उन सभी वानर-यूथपतियोंपर एक-एक बाणका प्रहार किया॥ ४० ॥

इससे महातेजस्वी विभीषणको उसपर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपनी गदासे उस दुरात्मा रावणकुमारके चारों घोड़ोंको मार डाला॥ ४१ ॥

जिसका सारथि पहले ही मारा जा चुका था और अब घोड़े भी मार डाले गये, उस रथसे नीचे कूदकर महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने अपने चाचापर शक्तिका प्रहार किया॥ ४२ ॥

उस शक्तिको आती देख सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मणने तीखे बाणोंसे काट डाला और दस टुकड़े करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले विभीषणने जिसके घोड़े मारे गये थे, उस इन्द्रजित्‌पर कुपित हो उसकी छातीमें पाँच बाण मारे, जिनका स्पर्श वज्रके समान दु:सह था॥ ४४ ॥

सुनहरे पङ्खोंसे सुशोभित और लक्ष्यतक पहुँचनेवाले वे बाण इन्द्रजित्‌के शरीरको विदीर्ण करके उसके रक्तमें सन गये और लाल रंगके बड़े-बड़े सर्पोंके समान दिखायी देने लगे॥ ४५ ॥

तब महाबली इन्द्रजित्‌के मनमें अपने चाचाके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उसने राक्षसोंके बीचमें यमराजका दिया हुआ उत्तम बाण हाथमें लिया॥ ४६ ॥

उस महान् बाणको इन्द्रजित्‌के द्वारा धनुषपर रखा गया देख भयानक पराक्रम करनेवाले महातेजस्वी लक्ष्मणने भी दूसरा बाण उठाया॥ ४७ ॥

उस बाणकी शिक्षा महात्मा कुबेरने स्वप्नमें प्रकट होकर स्वयं उन्हें दी थी। वह बाण इन्द्र आदि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी असह्य एवं दुर्जय था॥ ४८ ॥

उन दोनोंकी परिघके समान मोटी और बलिष्ठ भुजाओंद्वारा जोर-जोरसे खींचे जाते हुए उन दोनोंके श्रेष्ठ धनुष दो क्रौञ्च पक्षियोंके समान शब्द करने लगे॥ ४९ ॥

उन वीरोंने अपने-अपने श्रेष्ठ धनुषपर जो उत्तम सायक रखे थे, वे खींचे जाते ही अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित हो उठे॥ ५० ॥

दोनोंके बाण एक साथ ही धनुषसे छूटे और अपनी प्रभासे आकाशको प्रकाशित करने लगे। दोनोंके मुखभाग बड़े वेगसे आपसमें टकरा गये॥ ५१ ॥

उन दोनों भयानक बाणोंकी ज्यों ही टक्कर हुई, उससे दारुण अग्नि प्रकट हो गयी; जिससे धूआँ उठने लगा और चिनगारियाँ दिखायी दीं॥ ५२ ॥

वे दोनों बाण दो महान् ग्रहोंकी भाँति आपसमें टकराकर सैकड़ों टुकड़े हो संग्रामभूमिमें गिर पड़े॥ ५३ ॥

युद्धके मुहानेपर उन दोनों बाणोंको आपसके आघात-प्रतिघातसे व्यर्थ हुआ देख लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंको ही उस समय लज्जा हुई। फिर दोनों एक-दूसरेके प्रति अत्यन्त रोषसे भर गये॥ ५४ ॥

सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने कुपित होकर वारुणास्त्र उठाया। साथ ही उस रणभूमिमें खड़े हुए इन्द्रजित्‌ने रौद्रास्त्र उठाया और उसे वारुणास्त्रके प्रतीकारके लिये छोड़ दिया॥ ५५ ॥

उस रौद्रास्त्रसे आहत होकर लक्ष्मणका अत्यन्त अद्भुत वारुणास्त्र शान्त हो गया। तदनन्तर समरविजयी महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने कुपित होकर दीप्तिमान् आग्नेयास्त्रका

संधान किया, मानो वह उसके द्वारा समस्त लोकोंका प्रलय कर देना चाहता हो॥ ५६॥

परंतु वीर लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके प्रयोगसे उसे शान्त कर दिया। अपने अस्त्रको प्रतिहत हुआ देख रावणकुमार इन्द्रजित् अचेत-सा हो गया॥ ५७॥

उसने आसुर नामक शत्रुनाशक तीखे बाणका प्रयोग किया, फिर तो उसके उस धनुषसे चमकते हुए कूट, मुद्गर, शूल, भुशुण्डि, गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे॥

रणभूमिमें उस भयंकर आसुरास्त्रको प्रकट हुआ देख तेजस्वी लक्ष्मणने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण करनेवाले माहेश्वरास्त्रका प्रयोग किया, जिसका समस्त प्राणी मिलकर भी निवारण नहीं कर सकते थे। उस माहेश्वरास्त्रके द्वारा उन्होंने उस आसुरास्त्रको नष्ट कर दिया॥ ५९-६०॥

इस प्रकार उन दोनोंमें अत्यन्त अद्‌भुत और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। आकाशमें रहनेवाले प्राणी लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये॥ ६१॥

भैरव-गर्जनासे गूँजते हुए वानरों और राक्षसोंके उस भयानक युद्धके छिड़ जानेपर आश्चर्यचकित हुए बहुसंख्यक प्राणी आकाशमें आकर खड़े हो गये। उनसे घिरे हुए उस आकाशकी अद्‌भुत शोभा हो रही थी॥

ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़ और नाग भी इन्द्रको आगे करके रणभूमिमें सुमित्राकुमारकी रक्षा करने लगे॥ ६३॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणने दूसरा उत्तम बाण अपने धनुषपर रखा, जिसका स्पर्श आगके समान जलानेवाला था। उसमें रावणकुमारको विदीर्ण कर देनेकी शक्ति थी॥ ६४॥

उसमें सुन्दर पर लगे थे। उस बाणका सारा अङ्ग सुडौल एवं गोल था। उसकी गाँठ भी सुन्दर थी। वह बहुत ही मजबूत और सुवर्णसे भूषित था। उसमें शरीरको चीर डालनेकी क्षमता थी। उसे रोकना अत्यन्त कठिन था। उसके आघातको सह लेना भी बहुत मुश्किल था। वह राक्षसोंको भयभीत करनेवाला तथा विषधर सर्पके विषकी भाँति शत्रुके प्राण लेनेवाला था। देवताओंद्वारा उस बाणकी सदा ही पूजा की गयी थी। पूर्वकालके देवासुर संग्राममें हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त रथवाले, पराक्रमी, शक्तिमान् एवं महातेजस्वी इन्द्रने उसी बाणसे दानवोंपर विजय पायी थी। उसका नाम था ऐन्द्रास्त्र। वह युद्धके अवसरोंपर कभी पराजित या असफल नहीं हुआ था। शोभासम्पन्न वीर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने अपने उत्तम धनुषपर उस श्रेष्ठ बाणको रखकर उसे खींचते हुए अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली यह बात कही—'यदि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थमें उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई वीर नहीं है तो हे अस्त्र! तुम इस रावणपुत्रका वध कर डालो'॥ ६५—६९॥

समराङ्गणमें ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वीर लक्ष्मणने सीधे जानेवाले उस बाणको कानतक खींचकर ऐन्द्रास्त्रसे संयुक्त करके इन्द्रजित्‌की ओर छोड़ दिया॥ ७०॥

धनुषसे छूटते ही ऐन्द्रास्त्रने जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त इन्द्रजित्‌के शिरस्त्राणसहित दीप्तिमान् मस्तकको धड़से काटकर धरतीपर गिरा दिया॥ ७१॥

राक्षसपुत्र इन्द्रजित्‌का कंधेपरसे कटा हुआ वह विशाल सिर, जो खूनसे लथपथ हो रहा था, भूमिपर सुवर्णके समान दिखायी देने लगा॥ ७२॥

इस प्रकार मारा जाकर कवच, सिर और शिरस्त्राणसहित रावणकुमार धराशायी हो गया। उसका धनुष दूर जा गिरा॥ ७३॥

जैसे वृत्रासुरका वध होनेपर देवता प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार इन्द्रजित्‌के मारे जानेपर विभीषणसहित समस्त वानर हर्षसे भर गये और जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥

आकाशमें देवताओं, महात्मा ऋषियों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका भी विजयजनित हर्षनाद गूँज उठा॥ ७५॥

इन्द्रजित्‌को धराशायी हुआ जान राक्षसोंकी वह विशाल सेना विजयसे उल्लसित हुए वानरोंकी मार खाकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगी॥ ७६॥

वानरोंद्वारा मारे जाते हुए राक्षस अपनी सुध-बुध खो बैठे और अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़कर तेजीसे भागते हुए लङ्काकी ओर चले गये॥ ७७॥

राक्षस बहुत डर गये थे; इसलिये वे सब-के-सब पट्टिश, खड्ग और फरसे आदि शस्त्रोंको त्यागकर सैकड़ोंकी संख्यामें एक साथ ही सब दिशाओंमें भागने लगे॥ ७८॥

वानरोंसे पीड़ित होकर कोई डरके मारे लङ्कामें घुस गये, कोई समुद्रमें कूद पड़े और कोई-कोई पर्वतकी चोटीपर चढ़ गये॥ ७९॥

इन्द्रजित् मारा गया और रणभूमिमें सो रहा है, यह देख हजारों राक्षसोंमेंसे एक भी वहाँ खड़ा नहीं दिखायी दिया॥ ८०॥

जैसे सूर्यके अस्त हो जानेपर उसकी किरणें यहाँ

नहीं ठहरती हैं, उसी प्रकार इन्द्रजित्के धराशायी होनेपर वे राक्षस वहाँ रुक न सके, सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये॥ ८१ ॥

महाबाहु इन्द्रजित् निष्प्राण हो जानेपर शान्त किरणोंवाले सूर्य अथवा बुझी हुई आगके समान निस्तेज हो गया॥ ८२ ॥

उस समय राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्के समरभूमिमें गिर जानेपर सारे संसारकी अधिकांश पीड़ा नष्ट हो गयी। सबका शत्रु मारा गया और सभी हर्षसे भर गये॥

उस पापकर्मा राक्षसके मारे जानेपर सम्पूर्ण महर्षियोंके साथ भगवान् इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई॥

आकाशमें नाचती हुई अप्सराओं और गाते हुए महामना गन्धर्वोंके नृत्य और गानकी ध्वनिके साथ देवताओंकी दुन्दुभिका शब्द भी सुनायी देने लगा॥ ८५ ॥

देवता आदि वहाँ फूलोंकी वर्षा करने लगे। वह दृश्य अद्भुत-सा प्रतीत हुआ। उस क्रूरकर्मा राक्षसके मारे जानेपर वहाँकी उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी॥ ८६ ॥

सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले इन्द्रजित्के धराशायी होनेपर जल स्वच्छ हो गया, आकाश भी निर्मल दिखायी देने लगा और देवता तथा दानव हर्षसे खिल उठे। देवता, गन्धर्व और दानव वहाँ आये और सब एक साथ संतुष्ट होकर बोले—अब ब्राह्मणलोग निश्चिन्त एवं क्लेशशून्य होकर सर्वत्र विचरें॥ ८७-८८ ॥

समराङ्गणमें अप्रतिम बलशाली निशाचरशिरोमणि इन्द्रजित्को मारा गया देख हर्षसे भरे हुए वानर-यूथपति लक्ष्मणका अभिनन्दन करने लगे॥ ८९ ॥

विभीषण, हनुमान् और रीछ-यूथपति जाम्बवान्—ये इस विजयके लिये लक्ष्मणजीका अभिनन्दन करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ९० ॥

हर्ष एवं रक्षाका अवसर पाकर वानर किलकिलाते, कूदते और गर्जते हुए वहाँ रघुकुलनन्दन लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये॥ ९१ ॥

उस समय अपनी पूँछोंको हिलाते और फटकारते हुए वानर वीर 'लक्ष्मणकी जय हो' यह नारा लगाने लगे॥ ९२ ॥

वानरोंका चित्त हर्षसे भरा हुआ था। वे विविध गुणोंवाले वानर एक-दूसरेको हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे॥ ९३ ॥

युद्धस्थलमें लक्ष्मणके प्रिय सुहृद् वानर उनका वह दुष्कर एवं महान् पराक्रम देख बड़े प्रसन्न हुए। देवता भी उस इन्द्रद्रोही राक्षसका वध हुआ देख मनमें बड़े भारी हर्षका अनुभव करने लगे॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ सर्ग

लक्ष्मण और विभीषण आदिका श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनाना, प्रसन्न हुए श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा तथा सुषेणद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिकित्सा

संग्रामभूमिमें शत्रुविजयी इन्द्रजित्का वध करके रक्तसे भीगे हुए शरीरवाले शुभलक्षण लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए॥ १ ॥

बल-विक्रमसे सम्पन्न वे महातेजस्वी सुमित्राकुमार जाम्बवान् और हनुमान्जीसे दौड़कर मिले और उन समस्त वानरोंको साथ ले शीघ्रतापूर्वक उस स्थानपर आये, जहाँ वानरराज सुग्रीव और भगवान् श्रीराम विद्यमान थे। उस समय लक्ष्मण विभीषण और हनुमान्जीका सहारा लेकर चल रहे थे॥ २-३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सामने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके सुमित्राकुमार अपने उन ज्येष्ठ भ्राताके पास उसी तरह खड़े हो गये, जैसे इन्द्रके पास उपेन्द्र (वामनरूपधारी श्रीहरि) खड़े होते हैं॥ ४ ॥

उस समय वीर विभीषण प्रसन्नतापूर्वक लौटनेके द्वारा ही शत्रुके मारे जानेकी बात सूचित-सी करते हुए आये और महात्मा श्रीरघुनाथजीसे बोले—'प्रभो! इन्द्रजित्के वधका भयंकर कार्य सम्पन्न हो गया'॥ ५ ॥

विभीषणने बड़े हर्षके साथ श्रीरामसे यह निवेदन किया कि महात्मा लक्ष्मणने ही रावणकुमार इन्द्रजित्का मस्तक काटा है॥ ६ ॥

'लक्ष्मणके द्वारा इन्द्रजित्का वध हुआ है' यह समाचार सुनते ही महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीको अनुपम

हर्ष प्राप्त हुआ और वे इस प्रकार बोले—॥ ७॥

'शाबाश! लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुमने बड़ा दुष्कर पराक्रम किया। रावणपुत्र इन्द्रजित्के मारे जानेसे तुम यह निश्चित समझ लो कि अब हमलोग युद्धमें जीत गये'॥ ८॥

यशकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मण (उस समय अपनी प्रशंसा सुनकर) लजा रहे थे; किंतु पराक्रमी श्रीरामने उन्हें बलपूर्वक खींचकर गोदमें ले लिया और बड़े स्नेहसे उनका मस्तक सूँघा। शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हुए स्नेही बन्धु लक्ष्मणको गोदमें बिठाकर और हृदयसे लगाकर वे बड़े प्यारसे उनकी ओर बारम्बार देखने लगे॥ ९-१०॥

लक्ष्मण अपने शरीरमें धँसे हुए बाणोंके द्वारा अत्यन्त पीड़ित थे। उनके अङ्गोंमें जगह-जगह घाव हो गया था। वे बारम्बार लम्बी साँस खींचते थे, आघातजनित क्लेशसे संतप्त हो रहे थे तथा उन्हें साँस लेनेमें भी पीड़ा होती थी। उस अवस्थामें पुरुषोत्तम श्रीरामने स्नेहसे उनका मस्तक सूँघकर पीड़ा दूर करनेके लिये पुनः जल्दी-जल्दी उनके शरीरपर हाथ फेरा और आश्वासन देकर लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—॥ ११-१२॥

'वीर! तुमने अपने दुष्कर पराक्रमसे परम कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया है। आज बेटेके मारे जानेपर युद्धस्थलमें रावणको भी मैं मारा गया ही मानता हूँ। उस दुरात्मा शत्रुका वध हो जानेसे आज मैं वास्तवमें विजयी हो गया। सौभाग्यकी बात है कि तुमने रणभूमिमें इन्द्रजित्का वध करके निर्दयी निशाचर रावणकी दाहिनी बाँह ही काट डाली; क्योंकि वही उसका सबसे बड़ा सहारा था॥ १३-१४½॥

'विभीषण और हनुमान्ने भी समरभूमिमें महान् पराक्रम कर दिखाया है। तुम सब लोगोंने मिलकर तीन दिन और तीन रातमें किसी तरह उस वीर राक्षसको मार गिराया तथा मुझे शत्रुहीन बना दिया। अब रावण ही युद्धके लिये निकलेगा॥ १५-१६॥

'महान् सैन्य-समुदायसहित पुत्रको मारा गया सुनकर रावण विशाल सेना साथ लेकर युद्धके लिये आयेगा॥

'पुत्रके वधसे संतप्त होकर निकले हुए उस दुर्जय राक्षसराज रावणको मैं अपनी बड़ी भारी सेनाके द्वारा घेरकर मार डालूँगा॥ १८॥

'लक्ष्मण! इन्द्रजित् इन्द्रको भी जीत चुका था। जब उसे भी तुमने युद्धभूमिमें मार गिराया; तब तुम-जैसे रक्षक और सहायकके होते हुए मुझे सीता और भूमण्डलके राज्यको प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी'॥ १९॥

इस प्रकार भाईको आश्वासन देकर रघुकुलनन्दन श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रसन्नतापूर्वक सुषेणको बुलाकर कहा—॥ २०॥

'परम बुद्धिमान् सुषेण! तुम शीघ्र ही ऐसा उपचार करो जिससे ये मित्रवत्सल सुमित्राकुमार पूर्णतः स्वस्थ हो जायँ और इनके शरीरसे बाण निकलकर घाव भरनेके साथ ही सारी पीड़ा दूर हो जाय॥ २१॥

'सुमित्राकुमार लक्ष्मण और विभीषण दोनोंके शरीरसे तुम शीघ्र ही बाण निकाल दो और घाव अच्छा कर दो। वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले जो शूरवीर रीछ तथा वानर सैनिक हैं, उनमें भी जो दूसरे-दूसरे लोग बाणोंसे बिंधे हुए और घायल होकर युद्ध कर रहे हैं, उन सभीको तुम प्रयत्न करके सुखी एवं स्वस्थ कर दो'॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वानर-यूथपति सुषेणने लक्ष्मणकी नाकमें एक बहुत ही उत्तम ओषधि लगा दी॥ २४॥

उसकी गन्ध सूँघते ही लक्ष्मणके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनके शरीरमें जितने भी घाव थे, सब भर गये॥ २५॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे सुषेणने विभीषण आदि सुहृदों तथा समस्त वानरशिरोमणियोंकी तत्काल चिकित्सा की॥ २६॥

फिर तो क्षणभरमें बाण निकल जाने और पीड़ा दूर हो जानेसे सुमित्राकुमार स्वस्थ एवं नीरोग हो हर्षका अनुभव करने लगे॥ २७॥

उस समय भगवान् श्रीराम, वानरराज सुग्रीव, विभीषण तथा पराक्रमी ऋक्षराज जाम्बवान् लक्ष्मणको नीरोग होकर खड़ा हुआ देख सेनासहित बड़े प्रसन्न हुए॥ २८॥

दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामने लक्ष्मणके उस अत्यन्त दुष्कर पराक्रमकी पुनः भूरि-भूरि प्रशंसा की। इन्द्रजित् युद्धमें मार गिराया गया, यह सुनकर वानरराज सुग्रीवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ सर्ग

रावणका शोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना

रावणके मन्त्रियोंने जब इन्द्रजित्‌के वधका समाचार सुना, तब उन्होंने स्वयं भी प्रत्यक्ष देखकर इसका निश्चय कर लेनेके बाद तुरंत जाकर दशमुख रावणसे सारा हाल कह सुनाया॥ १॥

वे बोले—'महाराज! युद्धमें विभीषणकी सहायता पाकर लक्ष्मणने आपके महातेजस्वी पुत्रको हमारे सैनिकोंके देखते-देखते मार डाला॥ २॥

'जिसने देवताओंके राजा इन्द्रको भी परास्त किया था और पहलेके युद्धोंमें जिसकी कभी पराजय नहीं हुई थी, वही आपका शूरवीर पुत्र इन्द्रजित् शौर्यसम्पन्न लक्ष्मणके साथ भिड़कर उनके द्वारा मारा गया। वह अपने बाणोंद्वारा लक्ष्मणको पूर्णतः तृप्त करके उत्तम लोकोंमें गया'॥ ३½॥

युद्धमें अपने पुत्र इन्द्रजित्‌के भयानक वधका घोर एवं दारुण समाचार सुननेपर रावणको बड़ी भारी मूर्च्छाने धर दबाया॥ ४½॥

फिर दीर्घकालके बाद होशमें आकर राक्षसप्रवर राजा रावण पुत्रशोकसे व्याकुल हो गया। उसकी सारी इन्द्रियाँ अकुला उठीं और वह दीनतापूर्वक विलाप करने लगा—॥ ५½॥

'हा पुत्र! हा राक्षस-सेनाके महाबली कर्णधार! तुम तो पहले इन्द्रपर भी विजय पा चुके थे; फिर आज लक्ष्मणके वशमें कैसे पड़ गये?॥ ६½॥

'बेटा! तुम तो कुपित होनेपर अपने बाणोंसे काल और अन्तकको भी विदीर्ण कर सकते थे, मन्दराचलके शिखरोंको भी तोड़-फोड़ सकते थे; फिर युद्धमें लक्ष्मणको मार गिराना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात थी?॥ ७½॥

'महाबाहो! आज सूर्यके पुत्र प्रेतराज यमका महत्त्व मुझे अधिक जान पड़ने लगा है, जिन्होंने तुम्हें भी कालधर्मसे संयुक्त कर दिया॥ ८½॥

'समस्त देवताओंमें भी अच्छे योद्धाओंका यही मार्ग है। जो अपने स्वामीके लिये युद्धमें मारा जाता है, वह पुरुष स्वर्गलोकमें जाता है॥ ९॥

'आज समस्त देवता, लोकपाल तथा महर्षि इन्द्रजित्‌का मारा जाना सुनकर निडर हो सुखकी नींद सो सकेंगे॥ १०॥

'आज तीनों लोक और काननोंसहित यह सारी पृथ्वी भी अकेले इन्द्रजित्‌के न होनेसे मुझे सूनी-सी दिखायी देती है॥ ११॥

'जैसे गजराजके मारे जानेपर पर्वतकी कन्दरामें हथिनियोंका आर्तनाद सुनायी पड़ता है, उसी प्रकार आज अन्तःपुरमें मुझे राक्षस-कन्याओंका करुण-क्रन्दन सुनना पड़ेगा॥ १२॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले पुत्र! आज अपने युवराजपदको, लङ्कापुरीको, समस्त राक्षसोंको, अपनी माँको, मुझको और अपनी पत्नियोंको—हम सब लोगोंको छोड़कर तुम कहाँ चले गये?॥ १३॥

'वीर! होना तो यह चाहिये था कि मैं पहले यमलोकमें जाता और तुम यहाँ रहकर मेरे प्रेतकार्य करते; परंतु तुम विपरीत अवस्थामें स्थित हो गये (तुम परलोकवासी हुए और मुझे तुम्हारा प्रेतकार्य करना पड़ेगा)॥ १४॥

'हाय! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव अभी जीवित हैं; ऐसी अवस्थामें मेरे हृदयका काँटा निकाले बिना ही तुम हमें छोड़कर कहाँ चले गये?'॥ १५॥

इस प्रकार आर्तभावसे विलाप करते हुए राक्षसराज रावणके हृदयमें अपने पुत्रके वधका स्मरण करके महान् क्रोधका आवेश हुआ॥ १६॥

एक तो वह स्वभावसे ही क्रोधी था। दूसरे पुत्रकी चिन्ताओंने उसे उत्तेजित कर दिया—जलते हुएको और भी जला दिया। जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म ऋतुमें उसे अधिक प्रचण्ड बना देती हैं॥ १७॥

ललाटमें टेढ़ी भौंहोंके कारण वह उसी तरह शोभा पाता था, जैसे प्रलयकालमें मगरों और बड़ी-बड़ी लहरोंसे महासागर सुशोभित होता है॥ १८॥

जैसे वृत्रासुरके मुखसे धूमसहित अग्नि प्रकट हुई थी, उसी तरह रोषसे जँभाई लेते हुए रावणके मुखसे प्रकटरूपमें धूमयुक्त प्रज्वलित अग्नि निकलने लगी॥ १९॥

अपने पुत्रके वधसे संतप्त हुआ शूरवीर रावण सहसा क्रोधके वशीभूत हो गया। उसने बुद्धिसे सोच-विचारकर विदेहकुमारी सीताको मार डालना ही अच्छा समझा॥ २०॥

रावणकी आँखें एक तो स्वभावसे ही लाल थीं। दूसरे क्रोधाग्निने उन्हें और भी रक्तवर्णकी बना दिया था।

अत: उसके वे दीप्तिमान् नेत्र महान् घोर प्रतीत होते थे॥ २१॥

रावणका रूप स्वभावसे ही भयंकर था। उसपर क्रोधाग्निका प्रभाव पड़नेसे वह और भी भयानक हो चला और कुपित हुए रुद्रके समान दुर्जय प्रतीत होने लगा॥ २२॥

क्रोधसे भरे हुए उस निशाचरके नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरने लगीं, मानो जलते हुए दीपकोंसे लौके साथ ही तेलके बिंदु झड़ रहे हों॥ २३॥

वह दाँत पीसने लगा। उस समय उसके दाँतोंके कटकटानेका जो शब्द सुनायी देता था, वह समुद्र-मन्थनके समय दानवोंद्वारा खींचे जाते हुए मन्थन-यन्त्रस्वरूप मन्दराचलकी ध्वनिके समान जान पड़ता था॥

कालाग्निके समान अत्यन्त कुपित हो वह जिस-जिस दिशाकी ओर दृष्टि डालता था, उस-उस दिशामें खड़े हुए राक्षस भयभीत हो खम्भे आदिकी ओटमें छिप जाते थे॥ २५॥

चराचर प्राणियोंको ग्रस लेनेकी इच्छावाले कुपित कालके समान सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए रावणके पास राक्षस नहीं जाते थे—उसके निकट जानेका साहस नहीं करते थे॥ २६॥

तब अत्यन्त कुपित हुआ राक्षसराज रावण युद्धमें राक्षसोंको स्थापित करनेकी इच्छासे उनके बीचमें खड़ा होकर बोला—॥ २७॥

'निशाचरो! मैंने सहस्रों वर्षोंतक कठोर तपस्या करके विभिन्न तपस्याओंकी समाप्तिपर स्वयम्भू ब्रह्माजीको संतुष्ट किया है॥ २८॥

'उसी तपस्याके फलसे और ब्रह्माजीकी कृपासे मुझे देवताओं और असुरोंकी ओरसे कभी भय नहीं है॥

'मेरे पास ब्रह्माजीका दिया हुआ कवच है, जो सूर्यके समान दमकता रहता है। देवताओं और असुरोंके साथ घटित हुए मेरे संग्रामके अवसरोंपर वह वज्रके प्रहारसे भी टूट नहीं सका है॥ ३०॥

'इसलिये यदि आज मैं युद्धके लिये तैयार हो रथपर बैठकर रणभूमिमें खड़ा होऊँ तो कौन मेरा सामना कर सकता है ? साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, वह भी मुझसे युद्ध करनेका साहस नहीं कर सकता॥ ३१॥

'उन दिनों देवासुर-संग्राममें प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने मुझे जो बाणसहित विशाल धनुष प्रदान किया था, आज मेरे उसी भयानक धनुषको सैकड़ों मङ्गल-वाद्योंकी ध्वनिके साथ महासमरमें राम और लक्ष्मणका वध करनेके लिये ही उठाया जाय॥ ३२-३३॥

पुत्रके वधसे संतप्त हो क्रोधके वशीभूत हुए क्रूर रावणने अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर सीताको मार डालनेका ही निश्चय किया॥ ३४॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और आकृति अत्यन्त भयानक दिखायी देने लगी। वह सब ओर दृष्टि डालकर पुत्रके लिये दु:खी हो दीनतापूर्ण स्वरवाले सम्पूर्ण निशाचरोंसे बोला—॥ ३५॥

'मेरे बेटेने मायासे केवल वानरोंको चकमा देनेके लिये एक आकृतिको 'यह सीता है' ऐसा कहकर दिखाया और झूठे ही उसका वध किया था॥ ३६॥

'सो आज उस झूठको मैं सत्य ही कर दिखाऊँगा और ऐसा करके अपना प्रिय करूँगा। उस क्षत्रियाधम राममें अनुराग रखनेवाली सीताका नाश कर डालूँगा'॥

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर उसने शीघ्र ही तलवार हाथमें ले ली, जो खड्गोचित गुणोंसे युक्त और आकाशके समान निर्मल कान्तिवाली थी। उसे म्यानसे निकालकर पत्नी और मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण बड़े वेगसे आगे बढ़ा। पुत्रके शोकसे उसकी चेतना अत्यन्त आकुल हो रही थी॥ ३८-३९॥

वह अत्यन्त कुपित हो तलवार लेकर सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता मौजूद थीं। उधर जाते हुए उस राक्षसको देखकर उसके मन्त्री सिंहनाद करने लगे॥ ४०॥

वे रावणको रोषसे भरा देख एक-दूसरेका आलिङ्गन करके बोले—'आज इसे देखकर वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण व्यथित हो उठेंगे॥ ४१॥

'क्योंकि कुपित होनेपर इस राक्षसराजने इन्द्र आदि चारों लोकपालोंको जीत लिया और दूसरे बहुत-से शत्रुओंको भी युद्धमें मार गिराया था॥ ४२॥

'तीनों लोकोंमें जो रत्नभूत पदार्थ हैं, उन सबको लाकर रावण भोग रहा है। भूमण्डलमें इसके समान पराक्रमी और बलवान् दूसरा कोई नहीं है'॥ ४३॥

वे इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि क्रोधसे अचेत-सा हुआ रावण अशोक-वाटिकामें बैठी हुई विदेहकुमारी सीताका वध करनेके लिये दौड़ा॥ ४४॥

उसके हितका विचार करनेवाले सुहृद् उस रोषभरे रावणको रोकनेकी चेष्टा कर रहे थे; तो भी वह अत्यन्त कुपित हो जैसे आकाशमें कोई क्रूर ग्रह रोहिणी नामक नक्षत्रपर आक्रमण करता हो, उसी प्रकार

सीताकी ओर दौड़ा॥ ४५॥

उस समय सतीसाध्वी सीता राक्षसियोंके संरक्षणमें थीं। उन्होंने देखा, क्रोधसे भरा हुआ राक्षस एक बहुत बड़ी तलवार लिये मुझे मारनेके लिये आ रहा है। यद्यपि उसके सुहृद् उसे बारम्बार रोक रहे हैं तो भी वह लौट नहीं रहा है। इस तरह तलवार ले रावणको आते देख जनकनन्दिनीके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ ४६-४७॥

सीता दुःखमें डूब गयीं और विलाप करती हुई इस प्रकार बोलीं—'यह दुर्बुद्धि राक्षस जिस तरह कुपित हो स्वयं मेरी ओर दौड़ा आ रहा है, इससे जान पड़ता है, यह सनाथा होनेपर भी मुझे अनाथाकी भाँति मार डालेगा॥ ४८½ ॥

'मैं अपने पतिमें अनुराग रखती हूँ तो भी इसने अनेक बार प्रेरित किया कि 'तुम मेरी भार्या बन जाओ।' उस समय निश्चय ही मैंने इसे ठुकरा दिया था॥

'मेरे इस तरह ठुकरानेपर निश्चय ही यह निराश हो क्रोध और मोहके वशीभूत हो गया है और अवश्य ही मुझे मार डालनेके लिये उद्यत है॥ ५०½ ॥

'अथवा इस नीचने आज समराङ्गणमें मेरे ही कारण दोनों भाई पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणको मार गिराया है॥ ५१½ ॥

'क्योंकि इस समय मैंने राक्षसोंका बड़ा भयंकर सिंहनाद सुना है। हर्षसे भरे हुए बहुत-से निशाचर अपने प्रियजनोंको पुकार रहे थे॥ ५२½ ॥

'अहो! यदि मेरे कारण उन राजकुमारोंका विनाश हुआ तो मेरे जीवनको धिक्कार है अथवा यह भी सम्भव है कि पापपूर्ण विचार रखनेवाला यह भयंकर राक्षस पुत्रशोकसे संतप्त हो श्रीराम और लक्ष्मणको न मार सकनेके कारण मेरा ही वध कर डाले॥ ५३-५४॥

'मुझ क्षुद्र (मूर्ख) नारीने हनुमान्‌की कही हुई वह बात नहीं मानी। यदि श्रीरामद्वारा जीती न जानेपर भी उस समय हनुमान्‌की पीठपर बैठकर चली गयी होती तो पतिके अङ्कमें स्थान पाकर आज इस तरह बारम्बार शोक नहीं करती॥ ५५½ ॥

'मेरी सास कौसल्या एक ही बेटेकी माँ हैं। यदि वे युद्धमें अपने पुत्रके विनाशका समाचार सुनेंगी तो मैं समझती हूँ कि उनका हृदय अवश्य फट जायगा॥ ५६½ ॥

'वे रोती हुई अपने महात्मा पुत्रके जन्म, बाल्यावस्था, युवावस्था, धर्म-कर्म तथा रूपका स्मरण करेंगी॥ ५७½ ॥

'अपने पुत्रके मारे जानेपर पुत्र-दर्शनसे निराश एवं अचेत-सी हो वे उनका श्राद्ध करके निश्चय ही जलती आगमें समा जायँगी अथवा सरयूकी जलधारामें आत्मविसर्जन कर देंगी॥ ५८½ ॥

'पापपूर्ण विचारवाली उस दुष्टा कुबड़ी मन्थराको धिक्कार है, जिसके कारण मेरी सास कौसल्याको यह पुत्रका शोक देखना पड़ेगा'॥ ५९½ ॥

चन्द्रमासे बिछुड़कर किसी क्रूर ग्रहके वशमें पड़ी हुई रोहिणीकी भाँति तपस्विनी सीताको इस प्रकार विलाप करती देख रावणके सुशील एवं शुद्ध आचार-विचारवाले सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् मन्त्रीने दूसरे सचिवोंके मना करनेपर भी उस समय राक्षसराज रावणसे यह बात कही—॥ ६०—६२॥

'महाराज दशग्रीव! तुम तो साक्षात् कुबेरके भाई हो; फिर क्रोधके कारण धर्मको तिलाञ्जलि दे विदेहकुमारीके वधकी इच्छा कैसे कर रहे हो?॥ ६३॥

'वीर राक्षसराज! तुम विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वेदविद्याका अध्ययन पूरा करके गुरुकुलसे स्नातक होकर निकले थे और तबसे सदा अपने कर्तव्यके पालनमें लगे रहे तो भी आज अपने हाथसे एक स्त्रीका वध करना तुम कैसे ठीक समझते हो?॥ ६४॥

'पृथ्वीनाथ! इस मिथिलेशकुमारीके दिव्य रूपकी ओर देखो (देखकर इसके ऊपर दया करो) और युद्धमें हमलोगोंके साथ चलकर रामपर ही अपना क्रोध उतारो॥

'आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है। अतः आज ही युद्धकी तैयारी करके कल अमावास्याके दिन सेनाके साथ विजयके लिये प्रस्थान करो॥ ६६॥

'तुम शूरवीर, बुद्धिमान् और रथी वीर हो। एक श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो खड्ग हाथमें लेकर युद्ध करो। दशरथनन्दन रामका वध करके तुम मिथिलेशकुमारी सीताको प्राप्त कर लोगे'॥ ६७॥

मित्रके कहे हुए उस उत्तम धर्मानुकूल वचनको स्वीकार करके बलवान् दुरात्मा रावण महलमें लौट गया और वहाँसे फिर अपने सुहृदोंके साथ उसने राजसभामें प्रवेश किया॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ सर्ग

श्रीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार

सभामें पहुँचकर राक्षसराज रावण अत्यन्त दुःखी एवं दीन हो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठा और कुपित सिंहकी भाँति लम्बी साँस लेने लगा॥ १॥

वह महाबली रावण पुत्रशोकसे पीड़ित हो रहा था; अतः अपनी सेनाके प्रधान-प्रधान योद्धाओंसे हाथ जोड़कर बोला—॥ २॥

'वीरो! तुम सब लोग समस्त हाथी, घोड़े, रथसमुदाय तथा पैदल सैनिकोंसे घिरकर उन सबसे सुशोभित होते हुए नगरसे बाहर निकलो और समरभूमिमें एकमात्र रामको चारों ओरसे घेरकर मार डालो। जैसे वर्षाकालमें बादल जलकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार तुमलोग भी बाणोंकी वृष्टि करते हुए रामको मार डालनेका प्रयत्न करो॥ ३-४॥

'अथवा मैं ही कल महासमरमें तुम्हारे साथ रहकर अपने तीखे बाणोंसे रामके शरीरको छिन्न-भिन्न करके सब लोगोंके देखते-देखते उन्हें मार डालूँगा'॥ ५॥

राक्षसराजकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके वे निशाचर शीघ्रगामी रथों तथा नाना प्रकारकी सेनाओंसे युक्त हो लङ्कासे निकले॥ ६॥

वे सब राक्षस वानरोंपर परिघ, पट्टिश, बाण, तलवार तथा फरसे आदि शरीरनाशक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे। इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंपर वृक्षों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगे॥ ७$\frac{1}{2}$॥

सूर्योदयके समय राक्षसों और वानरोंके उस तुमुल युद्धने महाभयंकर रूप धारण किया॥ ८$\frac{1}{2}$॥

वानर और राक्षस उस युद्धभूमिमें विचित्र गदाओं, भालों, तलवारों और फरसोंसे एक-दूसरेको मारने लगे॥

इस प्रकार युद्ध छिड़ जानेपर जो बहुत बड़ी धूलराशि उड़ रही थी, वह राक्षसों और वानरोंके रक्तका प्रवाह जारी होनेसे शान्त हो गयी। यह एक अद्भुत बात थी॥ १०$\frac{1}{2}$॥

रणभूमिमें खूनकी कितनी ही नदियाँ बह चलीं, जो काष्ठसमूहकी भाँति शरीरसमुदायको ही बहाये लिये जाती थीं। गिरे हुए हाथी और रथ उन नदियोंके किनारे जान पड़ते थे। बाण मत्स्यके समान प्रतीत होते थे और ऊँचे-ऊँचे ध्वज ही उनके तटवर्ती वृक्ष थे॥ ११$\frac{1}{2}$॥

समस्त वानर खूनसे लथपथ हो रहे थे। वे कूद-कूदकर समराङ्गणमें राक्षसोंके ध्वज, कवच, रथ, घोड़े और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका विनाश करने लगे॥

वानर अपने तीखे दाँतों और नखोंसे निशाचरोंके केश, कान, ललाट और नाक कुतर डालते थे॥ १४॥

जैसे फलवाले वृक्षकी ओर सैकड़ों पक्षी दौड़े जाते हैं, उसी प्रकार एक-एक राक्षसपर सौ-सौ वानर टूट पड़े॥ १५॥

उस समय पर्वताकार राक्षस भी भारी गदाओं, भालों, तलवारों और फरसोंसे भयंकर वानरोंको मारने लगे॥ १६॥

राक्षसोंद्वारा मारी जाती हुई वानरोंकी वह विशाल सेना शरणागतवत्सल दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामकी शरणमें गयी॥ १७॥

तब बल-विक्रमशाली महातेजस्वी श्रीरामने धनुष ले राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ १८॥

जैसे आकाशमें बादल तपते हुए सूर्यपर आक्रमण नहीं कर सकते, उसी प्रकार सेनामें प्रवेश करके अपने बाणरूपी अग्निसे राक्षससेनाको दग्ध करते हुए श्रीरामपर वे महाक्रूर निशाचर धावा न कर सके॥ १९॥

निशाचर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा किये गये अत्यन्त घोर एवं दुष्कर कर्मोंको ही देख पाते थे, उनके स्वरूपको नहीं॥ २०॥

जैसे वनमें चलती हुई हवा बड़े-बड़े वृक्षोंको हिलाती और तोड़ डालती है तो भी वह देखनेमें नहीं आती, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम निशाचरोंकी विशाल सेनाको विचलित करते और कितने ही महारथियोंकी धज्जियाँ उड़ा देते थे तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं पाते थे॥

वे अपनी सेनाको श्रीरामके द्वारा बाणोंसे छिन्न-भिन्न, दग्ध, भग्न और पीड़ित होती हुई देखते थे; किंतु शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले श्रीराम उनकी दृष्टिमें नहीं आते थे॥ २२॥

अपने शरीरोंपर प्रहार करते हुए श्रीरघुनाथजीको वे उसी तरह नहीं देख पाते थे, जैसे शब्दादि विषयोंके भोक्तारूपमें स्थित जीवात्माको प्रजाएँ नहीं देख पाती हैं॥

'ये राम हैं, जो हाथियोंकी सेनाको मार रहे हैं, ये रहे राम, जो बड़े-बड़े रथियोंका संहार कर रहे हैं, नहीं-नहीं ये हैं राम, जो अपने पैने बाणोंसे घोड़ोंसहित पैदल

सैनिकोंका वध कर रहे हैं' इस प्रकार वे सब राक्षस श्रीरघुनाथजीकी किंचित् समानताके कारण सभीको राम समझ लेते और रामके ही भ्रमसे क्रोधमें भरकर आपसमें एक-दूसरेको मारने लगते थे॥ २४-२५॥

श्रीरामचन्द्रजी राक्षससेनाको दग्ध कर रहे थे तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं सके। महात्मा श्रीरामने राक्षसोंको गान्धर्व नामक दिव्य अस्त्रसे मोहित कर दिया था॥ २६॥

अत: वे राक्षस रणभूमिमें कभी तो हजारों राम देखते थे और कभी उन्हें उस महासमरमें एक ही रामका दर्शन होता था॥ २७॥

वे महात्मा श्रीरामके धनुषकी सुनहरी कोटि (नोक या कोणभाग)-को अलातचक्रकी भाँति घूमती देखते थे; किंतु साक्षात् श्रीरघुनाथजीको नहीं देख पाते थे॥ २८॥

युद्धस्थलमें राक्षसोंका संहार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् चक्रके समान जान पड़ते थे। शरीरका मध्यभाग अर्थात् नाभि ही उस चक्रकी नाभि थी, बल ही उससे प्रकट होनेवाली ज्वाला था, बाण ही उसके अरे थे, धनुष ही नेमिका स्थान ग्रहण किये हुए था, धनुषकी टंकार और तलध्वनि—ये ही दोनों उस चक्रकी घर्घराहट थीं, तेज-बुद्धि और कान्ति आदि गुण ही उस चक्रकी प्रभा थे तथा दिव्यास्त्रोंके गुणप्रभाव ही उसके प्रान्तभाग अर्थात् धार थे। जैसे प्रजा प्रलयकालमें कालचक्रका दर्शन करती है, उसी प्रकार राक्षस उस समय श्रीरामरूपी चक्रको देख रहे थे॥ २९-३०॥

श्रीरामने अकेले दिनके आठवें भाग (डेढ़ घंटे)-में ही आगकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंके वायुके समान वेगशाली दस हजार रथोंकी, अठारह हजार वेगवान् हाथियोंकी, चौदह हजार सवारोंसहित घोड़ोंकी तथा पूरे दो लाख पैदल निशाचरोंकी सेनाका संहार कर डाला॥ ३१—३३॥

जब घोड़े और रथ नष्ट हो गये तथा ध्वज तोड़-फोड़ डाले गये, तब मरनेसे बचे हुए निशाचर शान्त हो लङ्कापुरीमें भाग गये॥ ३४॥

मारे गये हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंकी लाशोंसे भरी हुई वह रणभूमि कुपित हुए महात्मा रुद्रदेवकी क्रीडाभूमि-सी प्रतीत होती थी॥ ३५॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने साधुवाद देकर भगवान् श्रीरामके इस कार्यकी प्रशंसा की॥ ३६॥

उस समय धर्मात्मा श्रीरामने अपने पास खड़े हुए सुग्रीव, विभीषण, कपिवर हनुमान्, जाम्बवान्, कपिश्रेष्ठ मैन्द तथा द्विविदसे कहा—'यह दिव्य अस्त्र-बल मुझमें है या भगवान् शंकरमें'॥ ३७-३८॥

उस अवसरपर इन्द्रतुल्य तेजस्वी महात्मा श्रीराम जो अस्त्र-शस्त्रोंका संचालन करते समय कभी थकते नहीं थे, उस राक्षसराजकी सेनाका संहार करके हर्षभरे देवताओंके समुदायद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होने लगे॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ सर्ग

राक्षसियोंका विलाप

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले भगवान् श्रीरामके द्वारा उनके तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित चमकीले बाणोंसे रावणके भेजे हुए हजारों हाथी, सवारोंसहित सहस्रों घोड़े, अग्निके समान देदीप्यमान एवं ध्वजोंसे सुशोभित सहस्रों रथ तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, सुवर्णमय ध्वजसे विचित्र शोभा पानेवाले और गदा-परिघोंसे युद्ध करनेवाले हजारों शूरवीर राक्षस मारे गये—यह देख-सुनकर मरनेसे बचे हुए निशाचर घबरा उठे और लङ्कामें जा राक्षसियोंसे मिलकर बहुत ही दु:खी एवं चिन्तामग्न हो गये॥ १—४॥

जिनके पति, पुत्र और भाई-बन्धु मारे गये थे, वे अनाथ राक्षसियाँ झुंड-की-झुंड एकत्र होकर दु:खसे पीड़ित हो विलाप करने लगीं—॥ ५॥

'हाय! जिसका पेट धँसा हुआ और आकार विकराल है, वह बुढ़िया शूर्पणखा वनमें कामदेवके समान रूपवाले श्रीरामके पास कामभाव लेकर कैसे गयी—किस तरह जानेका साहस कर सकी?॥ ६॥

'जो भगवान् राम सुकुमार और महान् बलशाली हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं, उन्हें देखकर वह कुरूपा राक्षसी उनके प्रति कामभावसे युक्त हो गयी—यह कैसा दु:साहस है? यह दुष्टा तो सबके द्वारा मार डालनेके योग्य है॥ ७॥

'कहाँ सर्वगुणसम्पन्न, महान् बलशाली तथा सुन्दर मुखवाले श्रीराम और कहाँ वह सभी गुणोंसे हीन,

दुर्मुखी राक्षसी! उसने कैसे उनकी कामना की?॥ ८॥

'जिसके सारे अङ्गोंमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं तथा जो किसी भी दृष्टिसे श्रीरामके योग्य नहीं है, उस दुष्टाने हम लङ्कावासियोंके दुर्भाग्यसे ही खर, दूषण तथा अन्य राक्षसोंके विनाशके लिये श्रीरामका धर्षण (उन्हें अपने स्पर्शसे दूषित करनेका प्रयास) किया था॥ ९-१०॥

'उसके कारण ही दशमुख राक्षस रावणने यह महान् वैर बाँध लिया और अपने तथा राक्षसकुलके वधके लिये वह सीताजीको हर लाया॥ ११॥

'दशमुख रावण जनकनन्दिनी सीताको कभी नहीं पा सकेगा; परंतु उसने बलवान् रघुनाथजीसे अमिट वैर बाँध लिया है॥ १२॥

'राक्षस विराध विदेहकुमारी सीताको प्राप्त करना चाहता है, यह देख श्रीरामने एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर दिया। वह एक ही दृष्टान्त उनकी अजेय शक्तिको समझनेके लिये काफी था॥ १३॥

'जनस्थानमें भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको श्रीरामने अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा कालके गालमें डाल दिया था और सूर्यके सदृश प्रकाशमान सायकोंसे समराङ्गणमें खर, दूषण तथा त्रिशिराका भी संहार कर डाला था; यह उनकी अजेयताको समझ लेनेके लिये पर्याप्त दृष्टान्त था॥ १४-१५॥

'रक्तभोजी राक्षस कबन्धकी बाँहें एक-एक योजन लम्बी थीं और वह क्रोधवश बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करता था तो भी वह श्रीरामके हाथसे मारा गया। वह दृष्टान्त ही श्रीरामचन्द्रजीके दुर्जय पराक्रमका ज्ञान करानेके लिये पर्याप्त था॥ १६॥

'मेरुपर्वतके समान महाकाय बलवान् इन्द्रकुमार वालीको श्रीरामचन्द्रजीने एक ही बाणसे मार गिराया। उनकी शक्तिका अनुमान लगानेके लिये वह एक ही उदाहरण काफी है॥ १७॥

'सुग्रीव बहुत ही दुःखी और निराश होकर ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करते थे; परंतु श्रीरामने उन्हें किष्किन्धाके राजसिंहासनपर बिठा दिया। उनके प्रभावको समझनेके लिये वह एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है॥ १८॥

'विभीषणने जो धर्म और अर्थसे युक्त बात कही थी, वह सभी राक्षसोंके लिये हितकर तथा युक्तियुक्त थी; परंतु मोहवश रावणको वह अच्छी न लगी। यदि कुबेरका छोटा भाई रावण विभीषणकी बात मान लेता तो यह लङ्कापुरी इस तरह दुःखसे पीड़ित हो श्मशानभूमि नहीं बन जाती॥ १९-२०॥

'महाबली कुम्भकर्ण श्रीरामके हाथसे मारा गया। दुःसह वीर अतिकायको लक्ष्मणने मार गिराया तथा रावणका प्यारा पुत्र इन्द्रजित् भी उन्हींके हाथसे मारा गया तथापि रावण भगवान् श्रीरामके प्रभावको नहीं समझ रहा है॥ २१॥

'हाय, मेरा बेटा मारा गया!' 'मेरे भाईको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा।' 'रणभूमिमें मेरे पतिदेव मार डाले गये।' लङ्काके घर-घरमें राक्षसियोंके ये शब्द सुनायी देते हैं॥ २२॥

'समराङ्गणमें शूरवीर श्रीरामने जहाँ-तहाँ सहस्रों रथों, घोड़ों और हाथियोंका संहार कर डाला है। पैदल सैनिकोंको भी मौतके घाट उतार दिया है॥ २३॥

'जान पड़ता है, श्रीरामका रूप धारण करके हमें साक्षात् भगवान् रुद्रदेव, भगवान् विष्णु, शतक्रतु इन्द्र अथवा स्वयं यमराज ही मार रहे हैं॥ २४॥

'हमारे प्रमुख वीर श्रीरामके हाथसे मारे गये। अब हमलोग अपने जीवनसे निराश हो चली हैं। हमें इस भयका अन्त नहीं दिखायी देता, अतएव हम अनाथकी भाँति विलाप कर रही हैं॥ २५॥

'दशमुख रावण शूरवीर है। इसे ब्रह्माजीने महान् वर दिया है। इसी घमंडके कारण यह श्रीरामके हाथसे प्राप्त हुए इस महाघोर भयको नहीं समझ पाता है॥ २६॥

'युद्धस्थलमें श्रीराम जिसे मारनेको तुल जायँ, उसे न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही बचा सकते हैं॥ २७॥

'रावणके प्रत्येक युद्धमें जो उत्पात दिखायी देते हैं, वे रामके द्वारा रावणके विनाशकी ही सूचना देते हैं॥ २८॥

'ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणको देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंकी ओरसे अभयदान दे दिया था। मनुष्योंकी ओरसे अभय प्राप्त होनेके लिये इसने याचना ही नहीं की थी॥ २९॥

'अतः मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यह निःसन्देह मनुष्योंकी ओरसे ही घोर भय प्राप्त हुआ है, जो राक्षसों तथा रावणके जीवनका अन्त कर देनेवाला है॥ ३०॥

'बलवान् राक्षस रावणने अपनी उद्दीप्त तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे जब देवताओंको पीड़ा दी, तब उन्होंने पितामह ब्रह्माजीकी आराधना की॥ ३१॥

'इससे महात्मा ब्रह्माजी संतुष्ट हुए और उन्होंने देवताओंके हितके लिये उन सबसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही॥ ३२॥

'आजसे समस्त दानव तथा राक्षस भयसे युक्त होकर ही नित्य-निरन्तर तीनों लोकोंमें विचरण करेंगे'॥ ३३॥

'तत्पश्चात् इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर त्रिपुरनाशक वृषभध्वज महादेवजीको संतुष्ट किया॥ ३४॥

'संतुष्ट होनेपर महादेवजीने देवताओंसे कहा—'तुम लोगोंके हितके लिये एक दिव्य नारीका आविर्भाव होगा, जो समस्त राक्षसोंके विनाशमें कारण होगी॥ ३५॥

'जैसे पूर्वकल्पमें देवताओंद्वारा प्रयुक्त हुई क्षुधाने दानवोंका भक्षण किया था, उसी प्रकार यह निशाचरनाशिनी सीता रावणसहित हम सब लोगोंको खा जायगी॥ ३६॥

'उद्दण्ड और दुर्बुद्धि रावणके अन्यायसे यह शोकसंयुक्त घोर विनाश हम सबको प्राप्त हुआ है॥ ३७॥

'जगत्में हम किसी ऐसे पुरुषको नहीं देखती हैं, जो महाप्रलयके समय कालकी भाँति इस समय श्रीरघुनाथजीसे संकटमें पड़ी हुई हम राक्षसियोंको शरण दे सके॥ ३८॥

'हम बड़े भारी भयकी अवस्थामें स्थित हैं। जैसे वनमें दावानलसे घिरी हुई हथिनियोंको कहीं प्राण बचानेके लिये जगह नहीं मिलती, उसी तरह हमारे लिये भी कोई शरण नहीं है॥ ३९॥

'महात्मा पुलस्त्यनन्दन विभीषणने समयोचित कार्य किया है। उन्हें जिनसे भय दिखायी दिया, उन्हींकी शरणमें वे चले गये'॥ ४०॥

इस प्रकार निशाचरोंकी सारी स्त्रियाँ एक-दूसरीको भुजाओंमें भरकर आर्तभाव एवं विषादग्रस्त हो गयीं और अत्यन्त भयसे पीड़ित हो अति भयंकर क्रन्दन करने लगीं॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९४॥

पञ्चानबेवाँ सर्ग

रावणका अपने मन्त्रियोंको बुलाकर शत्रुवधविषयक अपना उत्साह प्रकट करना और सबके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना

रावणने लङ्काके घर-घरमें शोकमग्न राक्षसियोंका करुणाजनक विलाप सुना॥ १॥

वह लम्बी साँस खींचकर दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो कुछ सोचता रहा; तत्पश्चात् रावण अत्यन्त कुपित हो बड़ा भयानक दिखायी देने लगा॥ २॥

उसने दाँतोंसे ओठ दबा लिया। उसकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। वह मूर्तिमान् प्रलयाग्निके समान दिखायी देने लगा। राक्षसोंके लिये भी उसकी ओर देखना कठिन हो गया॥ ३॥

उस राक्षसराजने अपने पास खड़े हुए राक्षसोंसे अस्पष्ट शब्दोंमें वार्तालाप आरम्भ किया। उस समय वहाँ वह इस तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रोंसे दग्ध कर डालेगा॥ ४॥

उसने कहा—'निशाचरो! महोदर, महापार्श्व तथा राक्षस विरूपाक्षसे शीघ्र जाकर कहो—'तुमलोग मेरी आज्ञासे शीघ्र ही सेनाओंको कूच करनेका आदेश दो'॥ ५॥

रावणकी यह बात सुनकर भयसे पीड़ित हुए उन राक्षसोंने राजाकी आज्ञाके अनुसार उन निर्भीक निशाचरोंको पूर्वोक्त कार्य करनेके लिये प्रेरित किया॥ ६॥

तब 'तथास्तु' कहकर भयानक दीखनेवाले उन सभी राक्षसोंने अपने लिये स्वस्तिवाचन करवाया और युद्धके लिये प्रस्थान किया॥ ७॥

स्वामीकी विजय चाहनेवाले वे सभी महारथी वीर यथोचित रीतिसे रावणका आदर-सम्मान करके उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये॥ ८॥

तत्पश्चात् रावण क्रोधसे मूर्च्छित-सा होकर बड़े जोरसे हँस पड़ा और महोदर, महापार्श्व तथा राक्षस विरूपाक्षसे कहा—॥ ९॥

'आज अपने धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा, जो प्रलयकालके सूर्य-सदृश तेजस्वी हैं, मैं राम और लक्ष्मणको भी यमलोक पहुँचा दूँगा॥ १०॥

'आज शत्रुका वध करके खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा इन्द्रजित्के मारे जानेका भरपूर बदला चुकाऊँगा॥

'मेरे बाण मेघोंकी घटाके समान सब ओर छा जायँगे; अतः अन्तरिक्ष, दिशाएँ, आकाश तथा समुद्र—कुछ भी दिखायी न देगा॥ १२॥

'आज अपने धनुषसे पङ्खवाले बाणोंका जाल-सा बिछा दूँगा और वानरोंके मुख्य-मुख्य यूथोंका

पृथक्-पृथक् वध करूँगा॥ १३॥

'आज वायुके समान वेगशाली रथपर आरूढ़ हो मैं अपने धनुषरूपी समुद्रसे उठी हुई बाणमयी तरङ्गोंसे वानर-सेनाओंको मथ डालूँगा॥ १४॥

'कमल-केसरकी-सी कान्तिवाले वानरोंके यूथ सरोवरोंके समान हैं। उनके मुख ही उन सरोवरोंके भीतर प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित होते हैं। आज मैं हाथीके समान उनमें प्रवेश करके उन वानर-यूथरूपी सरोवरोंको मथ डालूँगा॥ १५॥

'आज युद्धस्थलमें गिरे हुए वानर-यूथपति अपने बाणविद्ध मुखोंद्वारा नालयुक्त कमलोंका भ्रम उत्पन्न करते हुए रणभूमिकी शोभा बढ़ायेंगे॥ १६॥

'आज युद्धभूमिमें धनुषसे छूटे हुए एक-एक बाणसे मैं वृक्ष लेकर जूझनेवाले सौ-सौ प्रचण्ड वानरोंको विदीर्ण करूँगा॥ १७॥

'आज शत्रुका वध करके मैं उन सब निशाचरोंके आँसू पोछूँगा, जिनके भाई और पुत्र इस युद्धमें मारे गये हैं॥ १८॥

आज युद्धमें मेरे बाणोंसे विदीर्ण तथा निर्जीव हुए वानर इस तरह बिछ जायँगे कि वहाँकी भूमि बड़े यत्नसे दीख सकेगी॥ १९॥

'आज अपने बाणोंद्वारा मारे गये शत्रुओंके मांसोंसे मैं कौओं, गीधों तथा जो दूसरे मांसभक्षी जन्तु हैं, उन सबको भी तृप्त करूँगा॥ २०॥

'जल्दी मेरा रथ तैयार किया जाय, शीघ्र धनुष लाया जाय तथा मरनेसे बचे हुए निशाचर युद्धमें मेरे पीछे-पीछे चलें'॥ २१॥

रावणका वह वचन सुनकर महापार्श्वने वहाँ खड़े हुए सेनापतियोंसे कहा—'सेनाको शीघ्र ही कूच करनेकी आज्ञा दो'॥ २२॥

यह आज्ञा पाकर वे शीघ्रपराक्रमी सेनाध्यक्ष घर-घर जाकर उन राक्षसोंको तैयार होनेका आदेश देते हुए सारी लङ्कामें घूमते फिरे॥ २३॥

थोड़ी ही देरमें भयंकर मुख एवं आकारवाले राक्षस गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे॥ २४॥

तलवार, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल, हल, तीखी धारवाली शक्ति, बड़े-बड़े कूटमुद्गर, डंडे, भाँति-भाँतिके चक्र, तीखे फरसे, भिन्दिपाल, शतघ्नी तथा अन्य प्रकारके उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रोंसे वे सम्पन्न थे॥

रावणकी आज्ञासे चार सेनापति एक लाखसे कुछ अधिक रथ, तीन लाख हाथी, साठ करोड़ घोड़े, उतने ही गदहे तथा ऊँट और असंख्य पैदल योद्धा लेकर आ पहुँचे। वे सब सैनिक राजाके आदेशसे वहाँ गये॥ २७-२८॥

इस प्रकार विशाल सेना लाकर सेनाध्यक्षोंने राक्षसराज रावणके सामने खड़ी कर दी। इसी बीचमें सारथिने एक रथ लाकर उपस्थित कर दिया॥ २९॥

उसमें उत्तम दिव्यास्त्र रखे थे, अनेक प्रकारके अलंकारोंसे उस रथको सजाया गया था। उसमें भाँति-भाँतिके हथियार थे और वह रथ घुँघुरूदार झालरोंसे सुशोभित था॥ ३०॥

उसमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए थे। रत्नमय खम्भे उसकी शोभा बढ़ाते थे और सोनेके बने हुए सहस्रों कलशोंसे वह अलंकृत था॥ ३१॥

उस रथको देखकर सब राक्षस अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठे। उसपर दृष्टि पड़ते ही राक्षसराज रावण सहसा उठकर खड़ा हो गया। वह रथ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी तथा प्रज्वलित अग्निके सदृश दीप्तिमान् था। उसमें आठ घोड़े जुते हुए थे। उसपर सारथि बैठा था। वह रथ अपने तेजसे प्रकाशित होता था। रावण तुरंत उस भयंकर रथपर आरूढ़ हो गया॥ ३२-३३॥

तदनन्तर बहुत-से राक्षसोंसे घिरा हुआ रावण सहसा युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। वह अपने बलकी अधिकतासे पृथ्वीको विदीर्ण-सा करता हुआ जा रहा था॥ ३४॥

फिर तो जहाँ-तहाँ सब ओर वाद्योंका महानाद गूँज उठा। मृदङ्ग, पटह, शङ्ख तथा राक्षसोंके कलहकी ध्वनि भी उसमें मिली हुई थी॥ ३५॥

'सीताको चुरानेवाला, दुराचारी, ब्रह्महत्यारा तथा देवताओंके लिये कण्टकरूप राक्षसराज रावण छत्र एवं चँवर लगाये श्रीरघुनाथजीके साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है; इस प्रकारकी कलह-ध्वनि कानोंमें पड़ रही थी॥

उस महानादसे पृथ्वी काँप उठी। उस भयानक शब्दको सुनकर सब वानर सहसा भयसे भाग चले॥ ३७॥

मन्त्रियोंसे घिरा हुआ महातेजस्वी महाबाहु रावण युद्धमें विजयकी प्राप्तिका उद्देश्य लेकर वहाँ आया॥ ३८॥

रावणकी आज्ञा पाकर उस समय महापार्श्व, महोदर तथा दुर्जय वीर विरूपाक्ष—तीनों ही रथोंपर आरूढ़ हुए॥ ३९॥

वे हर्षपूर्वक जोर-जोरसे इस तरह दहाड़ रहे थे,

मानो पृथिवीको विदीर्ण कर डालेंगे। वे विजयकी इच्छा मनमें लिये घोर सिंहनाद करते हुए पुरीसे बाहर निकले॥

तदनन्तर काल, मृत्यु और यमराजके समान भयंकर तेजस्वी रावण धनुष हाथमें ले राक्षसोंकी सेनासे घिरकर युद्धके लिये आगे बढ़ा॥ ४१॥

उसके रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे। उसके द्वारा वह महारथी वीर लङ्काके उसी द्वारसे बाहर निकला, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण मौजूद थे॥ ४२॥

उस समय सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी। समस्त दिशाओंमें अन्धकार छा गया, भयंकर पक्षी अशुभ बोली बोलने लगे और धरती डोलने लगी॥ ४३॥

बादल रक्तकी वर्षा करने लगे। घोड़े लड़खड़ाकर गिर पड़े। ध्वजके अग्रभागपर गीध आकर बैठ गया और गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं॥ ४४॥

बाँयी आँख फड़कने लगी। बाँयीं भुजा सहसा काँप उठी। उसके चेहरेका रंग फीका पड़ गया और आवाज कुछ बदल गयी॥ ४५॥

राक्षस दशग्रीव ज्यों ही युद्धके लिये निकला, त्यों ही रणभूमिमें उसकी मृत्युके सूचक लक्षण प्रकट होने लगे॥ ४६॥

आकाशसे उल्कापात हुआ। उससे वज्रपातके समान गड़गड़ाहट पैदा हुई। अमङ्गलसूचक पक्षी गीध कौओंसे मिलकर अशुभ बोली बोलने लगे॥ ४७॥

इन भयंकर उत्पातोंको सामने उपस्थित देखकर भी रावणने उनकी कोई परवा नहीं की। वह कालसे प्रेरित हो मोहवश अपने ही वधके लिये निकल पड़ा॥

उन महाकाय राक्षसोंके रथका गम्भीर घोष सुनकर वानरोंकी सेना भी युद्धके लिये ही उनके सामने आकर डट गयी॥ ४९॥

फिर तो अपनी-अपनी जीत चाहते हुए रोषपूर्वक एक-दूसरेको ललकारनेवाले वानरों और राक्षसोंमें तुमुल युद्ध छिड़ गया॥ ५०॥

उस समय दशमुख रावण अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा वानरोंकी सेनाओंमें रोषपूर्वक बड़ी भारी मार-काट मचाने लगा॥ ५१॥

रावणने कितने ही वानरोंके सिर काट लिये, कितनोंकी छाती छेद डाली और बहुतोंके कान उड़ा दिये॥

कितनोंने घायल होकर प्राण त्याग दिये। रावणने कितने ही वानरोंकी पसलियाँ फाड़ डालीं, कितनोंके मस्तक कुचल डाले और कितनोंकी आँखें चौपट कर दीं॥ ५३॥

दशमुख रावणके नेत्र क्रोधसे घूम रहे थे। वह अपने रथके द्वारा युद्धस्थलमें जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वे वानरयूथपति उसके बाणोंका वेग न सह सके॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पञ्चानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९५॥

छानबेवाँ सर्ग

सुग्रीवद्वारा राक्षससेनाका संहार और विरूपाक्षका वध

इस प्रकार जब रावणने अपने बाणोंसे वानरोंके अङ्ग-भङ्ग कर डाले, तब वहाँ धराशायी हुए वानरोंसे वह सारी रणभूमि पट गयी॥ १॥

रावणके उस असह्य बाणप्रहारको वे वानर एक क्षण भी नहीं सह सके; ठीक वैसे ही, जैसे पतंग जलती आगका स्पर्श क्षणभर भी नहीं सह सकते हैं॥ २॥

राक्षसराजके तीखे बाणोंकी मारसे पीड़ित हो वे वानर उसी तरह चीखते-चिल्लाते हुए भागे, जैसे दावानलकी ज्वालाओंसे घिरकर जलते हुए हाथी चीत्कार करते हुए भागते हैं॥ ३॥

जैसे हवा बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार रावण अपने बाणोंसे वानरसेनाओंका संहार करता हुआ समराङ्गणमें विचरने लगा॥ ४॥

बड़े वेगसे वानरोंका संहार करके वह राक्षसराज समराङ्गणमें जूझनेके लिये तुरंत ही श्रीरामचन्द्रजीके पास जा पहुँचा॥ ५॥

उधर सुग्रीवने देखा, वानरसैनिक रावणसे खदेड़े जाकर समरभूमिसे भाग रहे हैं, तब उन्होंने सेनाको स्थिर रखनेका भार सुषेणको सौंपकर स्वयं शीघ्र ही युद्ध करनेका विचार किया॥ ६॥

सुषेणको अपने ही समान पराक्रमी वीर समझकर उन्होंने सेनाकी रक्षाका कार्य सौंपा और स्वयं वृक्ष लेकर शत्रुके सामने प्रस्थान किया॥ ७॥

उनके अगल-बगलमें और पीछे समस्त वानरयूथपति बड़े-बड़े पत्थर और नाना प्रकारके वृक्ष लेकर चले॥ ८॥

उस समय सुग्रीवने युद्धमें उच्चस्वरसे गर्जना की

और प्रलयकालमें बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेवाले वायुदेवकी भाँति उन विशालकाय वानरराजने विभिन्न प्रकारकी आकृतिवाले बड़े-बड़े राक्षसोंको गिरा-गिराकर मथ एवं कुचल डाला॥ ९-१०॥

जैसे बादल वनमें पक्षियोंके समुदायपर ओले बरसाता है, उसी प्रकार सुग्रीव राक्षसोंकी सेनाओंपर बड़े-बड़े पत्थरोंकी वर्षा करने लगे॥ ११॥

वानरराजके चलाये हुए शैलखण्डोंकी वर्षासे राक्षसोंके मस्तक कुचल जाते और वे ढहे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो जाते थे॥ १२॥

इस प्रकार सुग्रीवकी मारसे जब सब ओर राक्षसोंका विनाश होने लगा तथा वे भागने और आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे, तब विरूपाक्ष नामक दुर्जय राक्षस हाथमें धनुष ले अपना नाम घोषित करता हुआ रथसे कूद पड़ा और हाथीकी पीठपर जा चढ़ा॥ १३-१४॥

उस हाथीपर चढ़कर महाबली विरूपाक्षने बड़ी भयानक आवाजमें गर्जना की और वानरोंपर वेगपूर्वक धावा किया॥१५॥

उसने सेनाके मुहानेपर सुग्रीवको लक्ष्य करके बड़े भयंकर बाण छोड़े और डटे हुए राक्षसोंका हर्ष बढ़ाकर उन्हें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया॥ १६॥

उस राक्षसके पैने बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए वानरराज सुग्रीवने महान् क्रोधसे भरकर भीषण गर्जना की और विरूपाक्षको मार डालनेका विचार किया॥ १७॥

शूरवीर तो वे थे ही, सुन्दर ढंगसे युद्ध करना भी जानते थे; अतः एक वृक्ष उखाड़कर आगे बढ़े और अपने सामने खड़े हुए उसके विशाल हाथीपर उन्होंने उस वृक्षको दे मारा॥ १८॥

सुग्रीवके प्रहारसे घायल हो वह महान् गजराज एक धनुष पीछे हटकर बैठ गया और पीड़ासे आर्तनाद करने लगा॥ १९॥

पराक्रमी राक्षस विरूपाक्ष उस घायल हाथीकी पीठसे तुरंत कूद पड़ा और ढाल-तलवार ले शीघ्रतापूर्वक अपने शत्रु सुग्रीवकी ओर बढ़ा। सुग्रीव एक स्थानपर स्थिरतापूर्वक खड़े थे। वह उन्हें फटकारता हुआ-सा उनके पास जा पहुँचा॥ २०-२१॥

यह देख सुग्रीवने एक बहुत बड़ी शिला हाथमें ली, जो मेघके समान काली थी। उसे उन्होंने विरूपाक्षके शरीरपर क्रोधपूर्वक दे मारा॥ २२॥

उस शिलाको अपने ऊपर आती देख उस परम पराक्रमी राक्षसशिरोमणि विरूपाक्षने पीछे हटकर आत्मरक्षा की और सुग्रीवपर तलवार चलायी॥ २३॥

उस बलवान् निशाचरकी तलवारसे घायल होकर वानरराज सुग्रीव मूर्च्छित होकर थोड़ी देर धरतीपर पड़े रहे॥ २४॥

फिर सहसा उछलकर उन्होंने उस महासमरमें मुट्ठी बाँधकर विरूपाक्षकी छातीपर वेगपूर्वक एक मुक्का मारा॥ २५॥

उनके मुक्केकी चोट खाकर निशाचर विरूपाक्षका क्रोध और बढ़ गया और उसने सेनाके मुहानेपर उसी तलवारसे सुग्रीवके कवचको काट गिराया; साथ ही उसके पैरोंका आघात पाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २६½॥

गिरे हुए सुग्रीव पुनः उठकर खड़े हो गये और उन्होंने उस राक्षसको वज्रके समान भीषण शब्द करनेवाले थप्पड़से मारा॥ २७½॥

सुग्रीवके चलाये हुए उस थप्पड़का वार वह राक्षस अपने युद्धकौशलसे बचा गया और उसने सुग्रीवकी छातीपर एक घूसा मारा॥ २८½॥

अब तो वानरराज सुग्रीवके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने देखा कि राक्षसने मेरे प्रहारको व्यर्थ कर दिया और अपने ऊपर उसका स्पर्श नहीं होने दिया। तब वे विरूपाक्षपर प्रहार करनेका अवसर देखने लगे॥ २९-३०॥

तदनन्तर सुग्रीवने विरूपाक्षके ललाटपर क्रोधपूर्वक दूसरा महान् थप्पड़ मारा, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान दुःसह था। उससे आहत होकर विरूपाक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसका सारा शरीर खूनसे भीग गया और वह समस्त इन्द्रिय-गोलकोंसे उसी प्रकार रक्त वमन करने लगा, जैसे झरनेसे जल गिर रहा हो॥

उस राक्षसकी आँखें क्रोधसे घूम रही थीं। वह फेनयुक्त रुधिरमें डूबा हुआ था। वानरोंने देखा, विरूपाक्ष अत्यन्त विरूपाक्ष (कुरूप नेत्रवाला और भयंकर) हो गया है। खूनसे लथपथ हो छटपटाता करवटें बदलता तथा करुणाजनक आर्तनाद करता है॥ ३३-३४॥

इस प्रकार वे दोनों वेगशाली वानरों और राक्षसोंके सैन्य-समुद्र मर्यादा तोड़कर बहनेवाले दो भयानक महासागरोंके समान परस्पर संयुक्त हो युद्धभूमिमें महान् कोलाहल करने लगे॥ ३५॥

वानरराज सुग्रीवके द्वारा महाबली विरूपाक्षका

वध हुआ देख वानरों और राक्षसोंकी सेनाएँ एकत्र हो बढ़ी हुई गङ्गाके समान उद्वेलित हो गयीं (एक ओर आनन्दजनित कोलाहल था तो दूसरी ओर शोकके कारण आर्तनाद हो रहा था)॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ सर्ग

सुग्रीवके साथ महोदरका घोर युद्ध तथा वध

उस महासमरमें वे दोनों ओरकी सेनाएँ परस्परकी मारकाटसे प्रचण्ड ग्रीष्मऋतुमें सूखते हुए दो तालाबोंकी तरह शीघ्र ही क्षीण हो चलीं॥ १॥

अपनी सेनाके विनाश और विरूपाक्षके वधसे राक्षसराज रावणका क्रोध दूना बढ़ गया॥ २॥

वानरोंकी मारसे अपनी सेनाको क्षीण हुई देख दैवके उलट-फेरपर दृष्टिपात करके युद्धस्थलमें उसे बड़ी व्यथा हुई॥ ३॥

उसने पास ही खड़े हुए महोदरसे कहा— 'महाबाहो! इस समय मेरी विजयकी आशा तुम्हारे ऊपर ही अवलम्बित है॥ ४॥

'वीर! आज अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रुसेनाका वध करो। यही स्वामीके अन्नका बदला चुकानेका समय है। अतः अच्छी तरह युद्ध करो'॥ ५॥

रावणके ऐसा कहनेपर राक्षसराज महोदरने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी आज्ञा शिरोधार्य की और जैसे पतङ्ग आगमें कूदता है, उसी प्रकार उसने शत्रुसेनामें प्रवेश किया॥ ६॥

सेनामें प्रवेश करके तेजस्वी और महाबली महोदरने स्वामीकी आज्ञासे प्रेरित हो अपने पराक्रमद्वारा वानरोंका संहार आरम्भ किया॥ ७॥

वानर भी बड़े शक्तिशाली थे। वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ लेकर शत्रुकी भयंकर सेनामें घुस गये और समस्त राक्षसोंका संहार करने लगे॥ ८॥

महोदरने अत्यन्त कुपित होकर अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उस महायुद्धमें वानरोंके हाथ-पैर और जाँघें काट डालीं॥ ९॥

राक्षसोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए वे सब वानर दसों दिशाओंमें भागने लगे। कितने ही सुग्रीवकी शरणमें गये॥ १०॥

वानरोंकी विशाल सेनाको समरभूमिसे भागती देख सुग्रीवने पास ही खड़े हुए महोदरपर आक्रमण किया॥ ११॥

वानरराज बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने पर्वतके समान विशाल एवं भयंकर शिला उठाकर महोदरके वधके लिये उसपर चलायी॥ १२॥

उस दुर्जय शिलाको सहसा अपने ऊपर आती देखकर भी महोदरके मनमें घबराहट नहीं हुई। उसने बाणोंद्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १३॥

उस राक्षसके बाणसमूहोंसे कटकर सहस्रों टुकड़ोंमें विभक्त हुई वह शिला उस समय आकुल हुए गृध्रसमुदायकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ १४॥

उस शिलाको विदीर्ण हुई देख सुग्रीवका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने एक शालका वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसके ऊपर फेंका, किंतु राक्षसने उसके भी कई टुकड़े कर डाले॥ १५॥

साथ ही शत्रुसेनाका दमन करनेवाले उस शूरवीरने इन्हें अपने बाणोंसे घायल कर दिया। इसी समय क्रोधसे भरे हुए सुग्रीवको वहाँ पृथ्वीपर पड़ा हुआ एक परिघ दिखायी दिया॥ १६॥

उस तेजस्वी परिघको घुमाकर सुग्रीवने महोदरको अपनी फुर्ती दिखाते हुए उस भयानक वेगशाली परिघके द्वारा उस राक्षसके उत्तम घोड़ोंको मार डाला॥ १७॥

घोड़ोंके मारे जानेपर वीर राक्षस महोदर अपने विशाल रथसे कूद पड़ा और अत्यन्त रोषसे भरकर उसने गदा उठा ली॥ १८॥

एकके हाथमें गदा थी और दूसरेके हाथमें परिघ। वे दोनों वीर युद्धस्थलमें दो साँड़ों और बिजलीसहित दो मेघोंके समान गर्जना करते हुए एक-दूसरेसे भिड़ गये॥

तदनन्तर कुपित हुए राक्षस महोदरने सुग्रीवपर सूर्यतुल्य तेजसे दमकती हुई एक गदा चलायी॥ २०॥

उस महाभयंकर गदाको अपनी ओर आती देख महासमरमें महाबली वानरराज सुग्रीवके नेत्र रोषसे लाल हो गये और उन्होंने परिघ उठाकर उसके द्वारा राक्षसकी गदापर आघात किया। वह गदा गिर पड़ी; किंतु उसके वेगसे टकराकर सुग्रीवका परिघ भी टूटकर

पृथ्वीपर जा गिरा॥ २१-२२॥

तब तेजस्वी सुग्रीवने भूमिपरसे एक लोहेका भयंकर मूसल उठाया; जिसमें सब ओरसे सोना जड़ा हुआ था॥ २३॥

उसे उठाकर उन्होंने राक्षसपर दे मारा। साथ ही उस राक्षसने भी इनके ऊपर गदा फेंकी। गदा और मूसल दोनों आपसमें टकराकर टूट गये और जमीनपर जा गिरे॥ २४॥

वे दोनों वीर तेज और बलसे सम्पन्न थे और जलती हुई अग्नियोंके समान उद्दीप्त हो रहे थे। अपने-अपने आयुधोंके टूट जानेपर वे घूसोंसे एक-दूसरेको मारने लगे॥ २५॥

उस समय बारम्बार गर्जते हुए वे दोनों योद्धा परस्पर मुक्कोंसे प्रहार करने लगे। फिर थप्पड़ोंसे एक-दूसरेको मारकर दोनों ही पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २६॥

फिर तत्काल ही दोनों उछले और शीघ्र ही एक-दूसरेपर चोट करने लगे। वे दोनों वीर हार नहीं मानते थे। दोनों ही दोनोंपर भुजाओंद्वारा प्रहार करते रहे॥ २७॥

शत्रुओंको तपानेवाले वे दोनों वीर बाहुयुद्ध करते-करते थक गये। तब महान् वेगशाली राक्षस महोदरने थोड़ी ही दूरपर पड़ी हुई ढालसहित तलवार उठा ली। उसी तरह अत्यन्त वेगशाली कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने भी वहाँ गिरे हुए विशाल खड्गको ढालसहित उठा लिया॥ २८॥

महोदर और सुग्रीव दोनों युद्धके मैदानमें शस्त्र चलानेकी कलामें चतुर थे तथा दोनोंके शरीर रोषसे प्रभावित थे; अतः रणभूमिमें हर्ष और उत्साहसे युक्त हो वे तलवार उठाये गर्जते हुए एक-दूसरेपर टूट पड़े॥

वे दोनों बड़ी तेजीसे दायें-बायें पैंतरे बदल रहे थे, दोनोंका दोनोंपर क्रोध बढ़ा हुआ था तथा दोनों ही अपनी-अपनी विजयकी आशा लगाये हुए थे॥ ३१॥

अपने बलपर घमंड करनेवाले महान् वेगशाली तथा शौर्य-सम्पन्न दुर्बुद्धि महोदरने अपनी वह तलवार सुग्रीवके विशाल कवचपर दे मारी॥ ३२॥

सुग्रीवके कवचमें लगी हुई तलवारको जब वह राक्षस खींचने लगा, उसी समय कपिकुञ्जर सुग्रीवने महोदरके शिरस्त्राणसहित कुण्डलमण्डित मस्तकको अपने खड्गसे काट लिया॥ ३३॥

मस्तक कट जानेपर राक्षसराज महोदर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर उसकी सेना फिर वहाँ नहीं दिखायी दी॥ ३४॥

महोदरको मारकर प्रसन्न हुए वानरराज सुग्रीव अन्य वानरोंके साथ गर्जना करने लगे। उस समय दशमुख रावणको बड़ा क्रोध हुआ और श्रीरघुनाथजी हर्षसे खिल उठे॥ ३५॥

उस समय समस्त राक्षसोंका मन दुःखी हो गया। उन सबके मुखपर विषाद छा गया और वे सभी भयभीतचित्त होकर वहाँसे भाग चले॥ ३६॥

महोदरका शरीर किसी महान् पर्वतके एक टूटे हुए शिखर-सा जान पड़ता था। उसे पृथ्वीपर गिराकर सूर्यपुत्र सुग्रीव वहाँ विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे, मानो प्रचण्ड सूर्यदेव अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हों॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव युद्धके मुहानेपर विजय पाकर बड़ी शोभा पाने लगे। उस समय देवता, सिद्ध और यक्षोंके समुदाय तथा भूतलनिवासी प्राणियोंके समूह भी बड़े हर्षसे उनकी ओर देखने लगे॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९७॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

अंगदके द्वारा महापार्श्वका वध

सुग्रीवके द्वारा महोदरके मारे जानेपर उनकी ओर देखकर महाबली महापार्श्वके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये॥

उसने अपने बाणोंद्वारा अंगदकी भयंकर सेनामें हलचल मचा दी। वह राक्षस मुख्य-मुख्य वानरोंके मस्तक धड़से काट-काटकर गिराने लगा, मानो वायु वृन्त या डंठलसे फल गिरा रही हो॥ २$\frac{1}{2}$॥

क्रोधसे भरे हुए महापार्श्वने अपने बाणोंसे कितनोंकी बाँहें काट दीं और कितने ही वानरोंकी पसलियाँ उड़ा दीं॥ ३$\frac{1}{2}$॥

महापार्श्वकी बाणवर्षासे पीड़ित हो बहुत-से वानर युद्धसे विमुख हो गये। सबकी चेतना जाती रही॥ ४$\frac{1}{2}$॥

उस राक्षससे पीड़ित वानर-सेनाको उद्विग्न हुई देख महान् वेगशाली अङ्गदने पूर्णिमाके दिन समुद्रकी भाँति अपना भारी वेग प्रकट किया॥ ५$\frac{1}{2}$॥

उन वानरशिरोमणिने सूर्यकी किरणोंके समान दमकनेवाला एक लोहेका परिघ उठाकर महापार्श्वपर दे मारा॥ ६ १/२ ॥

उस प्रहारसे महापार्श्वकी सुध-बुध जाती रही और वह मूर्च्छित हो सारथिसहित रथसे नीचे जा पड़ा॥

इसी समय काले कोयलेके ढेरके समान कृष्ण वर्णवाले, महान् पराक्रमी और तेजस्वी ऋक्षराज जाम्बवान्ने मेघोंकी घटाके सदृश अपने यूथसे बाहर निकलकर कुपित हो एक पर्वत-शिखरके समान विशाल शिला हाथमें ले ली और उसके द्वारा उस राक्षसके घोड़ोंको मार डाला तथा उसके रथको भी चूर्ण कर दिया॥

दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर महाबली महापार्श्वने बहुत-से बाणोंद्वारा पुनः अङ्गदको घायल कर दिया और जाम्बवान्की छातीमें भी तीन बाण मारे॥ १०-११ ॥

इतना ही नहीं, उसने रीछोंके राजा गवाक्षको भी बहुत-से बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया। गवाक्ष और जाम्बवान्को बाणोंसे पीड़ित देख अङ्गदके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने भयंकर परिघ हाथमें ले लिया॥ १२ १/२ ॥

उनका वह परिघ सूर्यकी किरणोंके समान अपनी प्रभा बिखेर रहा था। वालिपुत्र अङ्गदके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे थे। उन्होंने उस लोहमय परिघको दोनों हाथोंसे पकड़कर घुमाया और दूर खड़े हुए महापार्श्वके वधके लिये वेगपूर्वक चला दिया॥ १३-१४ १/२ ॥

बलवान् वीर अङ्गदके चलाये हुए उस परिघने राक्षस महापार्श्वके हाथसे बाणसहित धनुष और मस्तकसे टोप गिरा दिये॥ १५ १/२ ॥

फिर प्रतापी वालिपुत्र अङ्गद बड़े वेगसे उसके पास जा पहुँचे और कुपित होकर उन्होंने उसके कुण्डलयुक्त कानके पास गालपर एक थप्पड़ मारा॥ १६ १/२ ॥

तब महान् वेगशाली महातेजस्वी महापार्श्वने कुपित होकर एक हाथमें बहुत बड़ा फरसा ले लिया॥ १७ १/२ ॥

उस फरसेको तेलमें डुबोकर साफ किया गया था और वह अच्छे लोहेका बना हुआ एवं सुदृढ़ था। राक्षस महापार्श्वने अत्यन्त कुपित हो वह फरसा वालिपुत्र अङ्गदपर दे मारा॥ १८ १/२ ॥

उसने अङ्गदके बायें कंधेपर बड़े वेगसे उस फरसेका प्रहार किया था, परंतु रोषसे भरे हुए अङ्गदने कतराकर अपनेको बचा लिया और उस फरसेको व्यर्थ कर दिया॥ १९ १/२ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए वीर अङ्गदने, जो अपने पिताके समान ही पराक्रमी थे, वज्रके समान मुट्ठी बाँधी॥ २० १/२ ॥

वे हृदयके मर्मस्थानसे परिचित थे; अतः उन्होंने उस राक्षसके स्तनोंके निकट छातीमें बड़े वेगसे मुक्का मारा, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान असह्य था॥

उनका वह घूसा लगते ही उस महासमरमें राक्षस महापार्श्वका हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २२ १/२ ॥

उसके मरकर पृथ्वीपर गिर जानेके पश्चात् उसकी सेना विक्षुब्ध हो उठी तथा समरभूमिमें रावणको भी महान् क्रोध हुआ॥ २३ १/२ ॥

उस समय हर्षसे भरे हुए वानरोंका महान् सिंहनाद होने लगा। वह अट्टालिकाओं तथा गोपुरोंसहित लङ्कापुरीको फोड़ता हुआ-सा प्रतीत हुआ। अङ्गदसहित वानरोंका वह महानाद इन्द्रसहित देवताओंके गम्भीर घोष-सा जान पड़ता था॥ २४-२५ ॥

युद्धस्थलमें देवताओं और वानरोंकी वह बड़ी भारी गर्जना सुनकर इन्द्रद्रोही राक्षसराज रावण पुनः रोषपूर्वक युद्धके लिये उत्सुक हो वहाँ खड़ा हो गया॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

श्रीराम और रावणका युद्ध

महाबली वीर विरूपाक्ष तो मारा ही गया था; महोदर और महापार्श्व भी कालके गालमें डाल दिये गये—यह देख उस महासमरके भीतर रावणके हृदयमें महान् क्रोधका आवेश हुआ। उसने सारथिको रथ आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी और इस प्रकार कहा—॥ १-२ ॥

'सूत! मेरे मन्त्री मारे गये और लङ्कापुरीपर चारों ओरसे घेरा डाला गया। इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है। आज राम और लक्ष्मणका वध करके ही मैं अपने इस दुःखको दूर करूँगा॥ ३ ॥

'रणभूमिमें उस रामरूपी वृक्षको उखाड़ फेंकूँगा,

जो सीतारूपी फूलके द्वारा फल देनेवाला है तथा सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान् और सुषेण आदि समस्त वानर-यूथपति जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं'॥ ४-५॥

ऐसा कहकर महान् अतिरथी वीर रावण अपने रथकी घर्घराहटसे दसों दिशाओंको गुँजाता हुआ बड़ी तेजीके साथ श्रीरघुनाथजीकी ओर बढ़ा॥ ६॥

रथकी आवाजसे नदी, पर्वत और जंगलोंसहित वहाँकी सारी भूमि गूँज उठी, धरती डोलने लगी और वहाँके सारे पशु-पक्षी भयसे थर्रा उठे॥ ७॥

उस समय रावणने तामस* नामवाले अत्यन्त भयंकर महाघोर अस्त्रको प्रकट करके समस्त वानरोंको भस्म करना आरम्भ किया। सब ओर उनकी लाशें गिरने लगीं॥ ८॥

उनके पाँव उखड़ गये और वे इधर-उधर भागने लगे, इससे रणभूमिमें बहुत धूल उड़ने लगी। वह तामस-अस्त्र साक्षात् ब्रह्माजीका बनाया हुआ था, इसलिये वानर-योद्धा उसके वेगको सह न सके॥ ९॥

रावणके उत्तम बाणोंसे आहत हो वानरोंकी सैकड़ों सेनाएँ तितर-बितर हो गयी हैं—यह देख भगवान् श्रीराम युद्धके लिये उद्यत हो सुस्थिरभावसे खड़े हो गये॥ १०॥

उधर वानर-सेनाको खदेड़कर राक्षससिंह रावणने देखा कि किसीसे पराजित न होनेवाले श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ उसी तरह खड़े हैं, जैसे इन्द्र अपने छोटे भाई भगवान् विष्णु (उपेन्द्र)-के साथ खड़े होते हैं॥ ११½॥

वे अपने विशाल धनुषको उठाकर आकाशमें रेखा खींचते-से प्रतीत होते थे। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल थे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और वे शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतः समर्थ थे॥ १२½॥

तदनन्तर लक्ष्मणसहित खड़े हुए महातेजस्वी महाबली श्रीरामने रणभूमिमें वानरोंको भागते और रावणको आते देख मनमें बड़े हर्षका अनुभव किया और धनुषके मध्यभागको दृढ़ताके साथ पकड़ा॥ १३-१४॥

उन्होंने अपने महान् वेगशाली और महानाद प्रकट करनेवाले उत्तम धनुषको इस तरह खींचना और उसकी टङ्कार करना आरम्भ किया, मानो वे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे॥ १५॥

रावणके बाण-समूहोंसे तथा श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी टङ्कारसे जो भयंकर शब्द प्रकट हुआ, उससे आतङ्कित होकर सैकड़ों राक्षस तत्काल धराशायी हो गये॥ १६॥

उन दोनों राजकुमारोंके बाणोंके मार्गमें आकर रावण चन्द्रमा और सूर्यके समीप स्थित हुए राहुकी भाँति शोभा पाने लगा॥ १७॥

लक्ष्मण अपने पैने बाणोंके द्वारा रावणके साथ पहले स्वयं ही युद्ध करना चाहते थे; इसलिये धनुष तानकर वे अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाण छोड़ने लगे॥ १८॥

धनुर्धर लक्ष्मणके धनुषसे छूटते ही उन बाणोंको महातेजस्वी रावणने अपने सायकोंद्वारा आकाशमें ही काट गिराया॥ १९॥

वह अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाता हुआ लक्ष्मणके एक बाणको एक बाणसे, तीन बाणोंको तीन बाणसे और दस बाणोंको उतने ही बाणोंसे काट देता था॥

समरविजयी रावण सुमित्राकुमारको लाँघकर रणभूमिमें दूसरे पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े हुए श्रीरामके पास जा पहुँचा॥ २१॥

श्रीरघुनाथजीके निकट जाकर क्रोधसे लाल आँखें किये राक्षसराज रावण उनके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा॥ २२॥

रावणके धनुषसे गिरती हुई उन बाण-धाराओंपर दृष्टिपात करके श्रीरामने बड़ी उतावलीके साथ शीघ्र ही कई भल्ल हाथमें लिये॥ २३॥

रघुकुलभूषण श्रीरामने रावणके विषधर सर्पोंके समान महाभयंकर एवं दीप्तिमान् बाणसमूहोंको उन तीखे भल्लोंसे काट डाला॥ २४॥

फिर श्रीरामने रावणको और रावणने श्रीरामको अपना लक्ष्य बनाया और दोनों ही शीघ्रतापूर्वक एक-दूसरेपर भाँति-भाँतिके पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ २५॥

वे दोनों चिरकालतक वहाँ विचित्र दायें-बायें पैंतरेसे विचरते रहे। बाणके वेगसे एक-दूसरेको घायल करते हुए वे दोनों वीर पराजित नहीं होते थे॥ २६॥

एक साथ जूझते और सायकोंकी वर्षा करते हुए श्रीराम और रावण यमराज और अन्तकके समान भयंकर जान पड़ते थे। उनके युद्धसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे॥ २७॥

जैसे वर्षा-ऋतुमें विद्युत्-समूहोंसे व्याप्त मेघोंकी घटासे आकाश आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार उस समय नाना प्रकारके बाणोंसे वह ढक गया था॥ २८॥

* इस अस्त्रका देवता तमोग्रह राहु है, इसलिये इसको 'तामस' कहते हैं।

गीधकी पाँखके सुन्दर परोंसे सुशोभित और तेज धारवाले महान् वेगशाली बाणोंकी अनवरत वर्षासे आकाश ऐसा जान पड़ता था, मानो उसमें बहुत-से झरोखे लग गये हों॥ २९॥

दो बड़े-बड़े मेघोंकी भाँति उठे हुए श्रीराम और रावणने सूर्यके अस्त और उदित होनेपर भी बाणोंके गहन अन्धकारसे आकाशको ढक रखा था॥ ३०॥

दोनों एक-दूसरेका वध करना चाहते थे; अतः वृत्रासुर और इन्द्रकी भाँति उन दोनोंमें ऐसा महान् युद्ध होने लगा, जो दुर्लभ तथा अचिन्त्य है॥ ३१॥

दोनों ही महान् धनुर्धर और दोनों ही युद्धकी कलामें निपुण थे। दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे; अतः दोनों बड़े ही उत्साहसे रणभूमिमें विचरने लगे॥ ३२॥

वे जिस-जिस मार्गसे जाते, उसी-उसीसे बाणोंकी लहर-सी उठने लगती थी। ठीक उसी तरह, जैसे वायुके थपेड़े खाकर दो समुद्रोंके जलमें उत्ताल तरङ्गें उठ रही हों॥ ३३॥

तदनन्तर जिसके हाथ बाण छोड़नेमें ही लगे हुए थे, समस्त लोकोंको रुलानेवाले उस रावणने श्रीरामचन्द्रजीके ललाटमें नाराचोंकी माला-सी पहना दी॥ ३४॥

भयंकर धनुषसे छूटी और नील कमलदलके समान श्याम कान्तिसे प्रकाशित होती हुई उस नाराच-मालाको श्रीरामचन्द्रजीने अपने सिरपर धारण किया; किंतु वे व्यथित नहीं हुए॥ ३५॥

तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए श्रीरामने पुनः बहुत-से बाण लेकर मन्त्रजपपूर्वक रौद्रास्त्रका प्रयोग किया॥ ३६॥

फिर उन महातेजस्वी, महापराक्रमी और अविच्छिन्न-रूपसे बाणवर्षा करनेवाले श्रीरघुवीरने धनुषको कानतक खींचकर वे सभी बाण राक्षसराज रावणपर छोड़ दिये॥ ३७॥

वे बाण राक्षसराज रावणके महामेघके समान काले रंगके अभेद्य कवचपर गिरे थे; इसलिये उस समय उसे व्यथित न कर सके॥ ३८॥

सम्पूर्ण अस्त्रोंके संचालनमें कुशल भगवान् श्रीरामने पुनः रथपर बैठे हुए राक्षसराज रावणके ललाटमें उत्तम अस्त्रोंका प्रहार करके उसे घायल कर दिया॥ ३९॥

श्रीरामके वे उत्तम बाण रावणको घायल करके उसके निवारण करनेपर फुफकारते हुए पाँच सिरवाले सर्पोंके समान धरतीमें समा गये॥ ४०॥

श्रीरघुनाथजीके अस्त्रका निवारण करके क्रोधसे मूर्च्छित हुए रावणने आसुर नामक दूसरा महाभयंकर अस्त्र प्रकट किया॥ ४१॥

उससे सिंह, बाघ, कङ्क, चक्रवाक, गीध, बाज, सियार, भेड़िये, गदहे, सूअर, कुत्ते, मुर्गे, मगर और जहरीले साँपोंके समान मुखवाले बाणोंकी वृष्टि होने लगी। वे बाण मुँह फैलाये, जबड़े चाटते हुए पाँच मुखवाले भयंकर सर्पोंके समान जान पड़ते थे। फुफकारते हुए सर्पकी भाँति कुपित हुए महातेजस्वी रावणने इनका तथा अन्य प्रकारके तीखे बाणोंका भी श्रीरामके ऊपर प्रयोग किया॥ ४२—४५॥

उस आसुरास्त्रसे आवृत हुए अग्नितुल्य तेजस्वी महान् उत्साही रघुकुलतिलक श्रीरामने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया॥ ४६॥

उसके द्वारा उन्होंने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अर्धचन्द्र, धूमकेतु, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा बिजलीकी प्रभाके समान प्रज्वलित मुखवाले नाना प्रकारके बाण प्रकट किये॥ ४७ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीरघुनाथजीके आग्नेयास्त्रसे आहत हो रावणके वे भयंकर बाण आकाशमें ही विलीन हो गये, तथापि उनके द्वारा सहस्रों वानर मारे गये थे॥ ४८ $\frac{1}{2}$ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने उस आसुरास्त्रको नष्ट कर दिया, यह देख इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि सभी वीर वानर श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर हर्षनाद करने लगे॥ ४९-५०॥

दशरथनन्दन महात्मा श्रीराम रावणके हाथोंसे छूटे हुए उस आसुरास्त्रका बलपूर्वक विनाश करके बड़े प्रसन्न हुए और वानर-यूथपति आनन्दमग्न हो उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९९॥

सौवाँ सर्ग

राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणका मूर्च्छित होना तथा रावणका युद्धसे भागना

अपने उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने दूना क्रोध प्रकट किया। उसने क्रोधवश श्रीरामके ऊपर एक दूसरे भयंकर अस्त्रको छोड़नेका आयोजन किया, जिसे मयासुरने बनाया था॥ १-२॥

उस समय रावणके धनुषसे वज्रके समान दृढ़ और दमकते हुए शूल, गदा, मूसल, मुद्गर, कूटपाश तथा चमचमाती अशनि आदि भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र छूटने लगे, मानो प्रलयकालमें वायुके विविध रूप प्रकट हो रहे हों॥ ३-४॥

तब उत्तम अस्त्रके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीमान् रघुनाथजीने गान्धर्व नामक श्रेष्ठ अस्त्रके द्वारा रावणके उस अस्त्रको शान्त कर दिया॥ ५॥

महात्मा रघुनाथजीके द्वारा उस अस्त्रके प्रतिहत हो जानेपर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उसने सूर्यास्त्रका प्रयोग किया॥ ६॥

फिर तो भयानक वेगशाली बुद्धिमान् राक्षस दशग्रीवके धनुषसे बड़े-बड़े तेजस्वी चक्र प्रकट होने लगे॥ ७॥

चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंके समान आकारवाले वे दीप्तिमान् अस्त्र-शस्त्र सब ओर प्रकट होते और गिरते थे। उनसे आकाशमें प्रकाश छा गया और सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित हो उठीं॥ ८॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणसमूहोंद्वारा सेनाके मुहानेपर रावणके उन चक्रों और विचित्र आयुधोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ९॥

उस अस्त्रको नष्ट हुआ देख राक्षसराज रावणने दस बाणोंद्वारा श्रीरामके सारे मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी॥ १०॥

रावणके विशाल धनुषसे छूटे हुए उन दस बाणोंसे घायल होनेपर भी महातेजस्वी श्रीरघुनाथजी विचलित नहीं हुए॥ ११॥

तत्पश्चात् समरविजयी श्रीरघुवीरने अत्यन्त कुपित हो बहुत-से बाण मारकर रावणके सारे अङ्गोंमें घाव कर दिया॥ १२॥

इसी बीचमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली रामानुज लक्ष्मणने कुपित हो सात सायक हाथमें लिये॥

उन महान् वेगशाली सायकोंद्वारा उन महातेजस्वी सुमित्राकुमारने रावणकी ध्वजाके, जिसमें मनुष्यकी खोपड़ीका चिह्न था, कई टुकड़े कर डाले॥ १४॥

इसके बाद महाबली श्रीमान् लक्ष्मणने एक बाणसे उस राक्षसके सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंसे मण्डित मस्तक भी काट लिया॥ १५॥

इतना ही नहीं, लक्ष्मणने पाँच पैने बाण मारकर उस राक्षसराजके हाथीकी सूँड़के समान मोटे धनुषको भी काट डाला॥ १६॥

तदनन्तर विभीषणने उछलकर अपनी गदासे रावणके नील मेघके समान कान्तिवाले सुन्दर पर्वताकार घोड़ोंको भी मार गिराया॥ १७॥

घोड़ोंके मारे जानेपर रावण अपने विशाल रथसे वेगपूर्वक कूद पड़ा और अपने भाईपर उसे बड़ा क्रोध आया॥ १८॥

तब उस महान् शक्तिशाली प्रतापी राक्षसराजने विभीषणको मारनेके लिये एक वज्रके समान प्रज्वलित शक्ति चलायी॥ १९॥

वह शक्ति अभी विभीषणतक पहुँचने भी नहीं पायी थी कि लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही काट दिया। यह देख उस महासमरमें वानरोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा॥ २०॥

सोनेकी मालासे अलंकृत वह शक्ति तीन भागोंमें विभक्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी, मानो आकाशसे चिनगारियोंसहित बड़ी भारी उल्का टूटकर गिरी हो॥

तदनन्तर रावणने विभीषणको मारनेके लिये एक ऐसी विशाल शक्ति हाथमें ली, जो अपनी अमोघताके लिये विशेष विख्यात थी। काल भी उसके वेगको नहीं सह सकता था। वह शक्ति अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी॥

दुरात्मा बलवान् रावणके द्वारा हाथमें ली हुई वह वेगशालिनी, महातेजस्विनी और वज्रके समान दीप्तिमती शक्ति अपने दिव्य तेजसे प्रज्वलित हो उठी॥ २३॥

इसी बीचमें विभीषणको प्राण-संशयकी अवस्थामें पड़ा देख वीर लक्ष्मणने तुरंत उनकी रक्षा की। उन्हें पीछे करके वे स्वयं शक्तिके सामने खड़े हो गये॥ २४॥

विभीषणको बचानेके लिये वीर लक्ष्मण अपने

धनुषको खींचकर हाथमें शक्ति लिये खड़े हुए रावणपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ २५॥

महात्मा लक्ष्मणके छोड़े हुए बाण-समूहोंका निशाना बनकर रावण अपने भाईको मारनेके पराक्रमसे विमुख हो गया। अब उसके मनमें प्रहार करनेकी इच्छा नहीं रह गयी॥ २६॥

लक्ष्मणने मेरे भाईको बचा लिया, यह देख रावण उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो गया और इस प्रकार बोला—॥ २७॥

'अपने बलपर घमंड रखनेवाले लक्ष्मण! तुमने ऐसा प्रयास करके विभीषणको बचा लिया है, इसलिये अब उस राक्षसको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर ही इस शक्तिका प्रहार करता हूँ॥ २८॥

'यह शक्ति स्वभावसे ही शत्रुओंके खूनसे नहानेवाली है, यह मेरे हाथसे छूटते ही तुम्हारे हृदयको विदीर्ण करके प्राणोंको अपने साथ ले जायगी'॥ २९॥

ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित हुए रावणने मयासुरकी मायासे निर्मित, आठ घण्टोंसे विभूषित तथा महाभयंकर शब्द करनेवाली, उस अमोघ एवं शत्रुघातिनी शक्तिको, जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो रही थी, लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया और बड़े जोरसे गर्जना की॥ ३०-३१॥

वज्र और अशनिके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाली वह शक्ति युद्धके मुहानेपर भयानक वेगसे चलायी गयी और लक्ष्मणको वेगपूर्वक लगी॥ ३२॥

लक्ष्मणकी ओर आती हुई उस शक्तिको लक्ष्य करके भगवान् श्रीरामने कहा—'लक्ष्मणका कल्याण हो, तेरा प्राणनाशविषयक उद्योग नष्ट हो; अतएव तू व्यर्थ हो जा'॥ ३३॥

वह शक्ति विषधर सर्पके समान भयंकर थी। रणभूमिमें कुपित हुए रावणने जब उसे छोड़ा, तब वह तुरंत ही निर्भय वीर लक्ष्मणकी छातीमें डूब गयी॥ ३४॥

नागराज वासुकिकी जिह्वाके समान देदीप्यमान वह महातेजस्विनी और महावेगवती शक्ति जब लक्ष्मणके विशाल वक्ष:स्थलपर गिरी, तब रावणके वेगसे बहुत गहराईतक धँस गयी। उस शक्तिसे हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३५-३६॥

महातेजस्वी रघुनाथजी पास ही खड़े थे। वे लक्ष्मणको इस अवस्थामें देखकर भ्रातृस्नेहके कारण मन-ही-मन विषादमें डूब गये॥ ३७॥

वे दो घड़ीतक चिन्तामें डूबे रहे। फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर प्रलयकालमें प्रज्वलित हुई अग्निके समान अत्यन्त रोषसे उद्दीप्त हो उठे॥ ३८॥

'यह विषादका समय नहीं है' ऐसा सोचकर श्रीरघुनाथजी रावणके वधका निश्चय करके महान् प्रयत्नके द्वारा सारी शक्ति लगाकर और लक्ष्मणकी ओर देखकर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे॥ ३९॥

तत्पश्चात् श्रीरामने उस महासमरमें शक्तिसे विदीर्ण हुए लक्ष्मणकी ओर देखा। वे खूनसे लथपथ होकर पड़े थे और सर्पयुक्त पर्वतके समान जान पड़ते थे॥ ४०॥

अत्यन्त बलवान् रावणकी चलायी हुई उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीसे निकालनेके लिये बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे श्रेष्ठ वानरगण सफल न हो सके॥ ४१॥

क्योंकि वे वानर भी राक्षसशिरोमणि रावणके बाण-समूहोंसे बहुत पीड़ित थे। वह शक्ति सुमित्राकुमारके शरीरको विदीर्ण करके धरतीतक पहुँच गयी थी॥ ४२॥

तब महाबली रघुनाथजीने उस भयंकर शक्तिको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर लक्ष्मणके शरीरसे निकाला और समराङ्गणमें कुपित हो उसे तोड़ डाला॥ ४३॥

श्रीरामचन्द्रजी जब लक्ष्मणके शरीरसे शक्ति निकाल रहे थे, उस समय महाबली रावण उनके सम्पूर्ण अङ्गोंपर मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा करता रहा॥ ४४॥

परंतु उन बाणोंकी परवा न करके लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर भगवान् श्रीराम हनुमान् और महाकपि सुग्रीवसे बोले—॥ ४५॥

'कपिवरो! तुमलोग लक्ष्मणको इसी तरह सब ओरसे घेरकर खड़े रहो। अब मेरे लिये उस पराक्रमका अवसर आया है, जो मुझे चिरकालसे अभीष्ट था॥ ४६॥

'इस पापात्मा एवं पापपूर्ण विचार रखनेवाले दशमुख रावणको अब मार डाला जाय, यही उचित है। जैसे पपीहेको ग्रीष्म-ऋतुके अन्तमें मेघके दर्शनकी इच्छा रहती है, उसी प्रकार मैं भी इसका वध करनेके लिये चिरकालसे इसे देखना चाहता हूँ॥ ४७॥

'वानरो! मैं इस मुहूर्तमें तुम्हारे सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि कुछ ही देरमें यह संसार रावणसे रहित दिखायी देगा या रामसे॥ ४८॥

'मेरे राज्यका नाश, वनका निवास, दण्डकारण्यकी दौड़-धूप, विदेहकुमारी सीताका राक्षसद्वारा अपहरण तथा राक्षसोंके साथ संग्राम—इन सबके कारण मुझे महाघोर दु:ख सहना पड़ा है और नरकके समान कष्ट

उठाना पड़ा है; किंतु रणभूमिमें रावणका वध करके आज मैं सारे दु:खोंसे छुटकारा पा जाऊँगा॥ ४९-५०॥

'जिसके लिये मैं वानरोंकी यह विशाल सेना साथ लाया हूँ, जिसके कारण मैंने युद्धमें वालीका वध करके सुग्रीवको राज्यपर बिठाया है तथा जिसके उद्देश्यसे समुद्रपर पुल बाँधा और उसे पार किया, वह पापी रावण आज युद्धमें मेरी आँखोंके सामने उपस्थित है। मेरे दृष्टिपथमें आकर अब यह जीवित रहने योग्य नहीं है॥ ५१-५२॥

'दृष्टिमात्रसे संहारकारी विषका प्रसार करनेवाले सर्पकी आँखोंके सामने आकर जैसे कोई मनुष्य जीवित नहीं बच सकता अथवा जैसे विनतानन्दन गरुड़की दृष्टिमें पड़कर कोई महान् सर्प जीवित नहीं बच सकता, उसी प्रकार आज रावण मेरे सामने आकर जीवित या सकुशल नहीं लौट सकता॥ ५३॥

'दुर्धर्ष वानरशिरोमणियो! अब तुमलोग पर्वतके शिखरोंपर बैठकर मेरे और रावणके इस युद्धको सुखपूर्वक देखो॥ ५४॥

'आज संग्राममें देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और चारणोंसहित तीनों लोकोंके प्राणी रामका रामत्व देखें॥

'आज मैं वह पराक्रम प्रकट करूँगा, जिसकी जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक चराचर जगत्के जीव और देवता भी सदा लोकमें एकत्र होकर चर्चा करेंगे और जिस प्रकार युद्ध हुआ है, उसे एक-दूसरेसे कहेंगे'॥ ५६॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम सावधान हो अपने सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे रणभूमिमें दशानन रावणको घायल करने लगे॥ ५७॥

इसी प्रकार जैसे मेघ जलकी धारा गिराता है, उसी तरह रावण भी श्रीरामपर चमकीले नाराचों और मूसलोंकी वर्षा करने लगा॥ ५८॥

एक-दूसरेपर चोट करते हुए राम और रावणके छोड़े हुए श्रेष्ठ बाणोंके परस्पर टकरानेसे बड़ा भयंकर शब्द प्रकट होता था॥ ५९॥

श्रीराम और रावणके बाण परस्पर छिन्न-भिन्न होकर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे। उस समय उनके अग्रभाग बड़े उद्दीप्त दिखायी देते थे॥ ६०॥

राम और रावणके धनुषकी प्रत्यञ्चासे प्रकट हुई महान् टंकारध्वनि समस्त प्राणियोंके मनमें त्रास उत्पन्न कर देती थी और बड़ी अद्भुत प्रतीत होती थी॥ ६१॥

जैसे वायुके थपेड़े खाकर मेघ छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार दीप्तिमान् धनुष धारण करनेवाले महात्मा श्रीरामके बाण-समूहोंकी वर्षासे आहत एवं पीड़ित हुआ रावण भयके मारे वहाँसे भाग गया॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सौवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १००॥

एक सौ एकवाँ सर्ग

श्रीरामका विलाप तथा हनुमान्‌जीकी लायी हुई ओषधिके सुषेणद्वारा किये गये प्रयोगसे लक्ष्मणका सचेत हो उठना

महाबली रावणने शूरवीर लक्ष्मणको अपनी शक्तिसे युद्धमें धराशायी कर दिया था। वे रक्तके प्रवाहसे नहा उठे थे। यह देख भगवान् श्रीरामने दुरात्मा रावणके साथ घोर युद्ध करके बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए ही सुषेणसे इस प्रकार कहा—॥ १-२॥

'ये वीर लक्ष्मण रावणके पराक्रमसे घायल होकर पृथ्वीपर पड़े हैं और चोट खाये हुए सर्पकी भाँति छटपटा रहे हैं। इस अवस्थामें इन्हें देखकर मेरा शोक बढ़ता जा रहा है॥ ३॥

'ये वीर सुमित्राकुमार मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं, इन्हें लहूलुहान देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है, ऐसी दशामें मुझमें युद्ध करनेकी शक्ति क्या होगी?॥

'ये मेरे शुभलक्षण भाई, जो सदा युद्धका हौसला रखते थे, यदि मर गये तो मुझे इन प्राणोंके रखने और सुख भोगनेसे क्या प्रयोजन है?॥ ५॥

'इस समय मेरा पराक्रम लज्जित-सा हो रहा है, हाथसे धनुष खिसकता-सा जा रहा है, मेरे सायक शिथिल हो रहे हैं और नेत्रोंमें आँसू भर आये हैं॥ ६॥

'जैसे स्वप्नमें मनुष्योंके शरीर शिथिल हो जाते हैं, वही दशा मेरे इन अङ्गोंकी है। मेरी तीव्र चिन्ता बढ़ती जा रही है और दुरात्मा रावणके द्वारा घायल होकर मार्मिक आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं दु:खातुर हुए भाई लक्ष्मणको कराहते देख मुझे मर जानेकी इच्छा हो रही है'॥ ७-८॥

श्रीरघुनाथजी बाहर विचरनेवाले प्राणोंके समान प्रिय भाई लक्ष्मणको इस अवस्थामें देख महान् दुःखसे व्याकुल हो गये, चिन्ता और शोकमें डूब गये॥ ९॥

उनके मनमें बड़ा विषाद हुआ। इन्द्रियोंमें व्याकुलता छा गयी और वे रणभूमिकी धूलमें घायल होकर पड़े हुए भाई लक्ष्मणकी ओर देखकर विलाप करने लगे—॥ १०॥

'शूरवीर! अब संग्राममें विजय भी मिल जाय तो मुझे प्रसन्नता नहीं होगी। अन्धेके सामने चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेर दें तो भी वे उसके मनमें कौन-सा आह्लाद पैदा कर सकेंगे?॥ ११॥

'अब इस युद्धसे अथवा प्राणोंकी रक्षासे मुझे क्या प्रयोजन है? अब लड़ने-भिड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब संग्रामके मुहानेपर मारे जाकर लक्ष्मण ही सदाके लिये सो गये, तब युद्ध जीतनेसे क्या लाभ है?॥

'वनमें आते समय जैसे महातेजस्वी लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी तरह यमलोकमें जाते समय मैं भी इनके पीछे-पीछे जाऊँगा॥ १३॥

'हाय! जो सदा मुझमें अनुराग रखनेवाले मेरे प्रिय बन्धुजन थे, छलसे युद्ध करनेवाले निशाचरोंने आज उनकी यह दशा कर दी॥ १४॥

'प्रत्येक देशमें स्त्रियाँ मिल सकती हैं, देश-देशमें जाति-भाई उपलब्ध हो सकते हैं; परंतु ऐसा कोई देश मुझे नहीं दिखायी देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सके॥

'दुर्धर्ष वीर लक्ष्मणके बिना मैं राज्य लेकर क्या करूँगा? पुत्रवत्सला माता सुमित्रासे किस तरह बात कर सकूँगा?॥ १६॥

'माता सुमित्राके दिये हुए उलाहनेको कैसे सह सकूँगा? माता कौसल्या और कैकेयीको क्या जवाब दूँगा?॥

'भरत और महाबली शत्रुघ्न जब पूछेंगे कि आप लक्ष्मणके साथ वनमें गये थे, फिर उनके बिना ही कैसे लौट आये तो उन्हें मैं क्या उत्तर दूँगा?॥ १८॥

'अत: मेरे लिये यहीं मर जाना अच्छा है। भाई-बन्धुओंमें जाकर उनकी कही हुई खोटी-खरी बातें सुनना अच्छा नहीं। मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण मेरे सामने खड़ा हुआ मेरा धर्मात्मा भाई मारा गया॥ १९½॥

'हा भाई नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! हा प्रभावशाली शूरप्रवर! तुम मुझे छोड़कर अकेले क्यों परलोकमें जा रहे हो?॥ २०½॥

'भैया! मैं तुम्हारे बिना रो रहा हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं हो? प्रिय बन्धु! उठो। आँख खोलकर देखो। क्यों सो रहे हो? मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझपर दृष्टिपात करो॥ २१½॥

'महाबाहो! पर्वतों और वनोंमें जब मैं शोकसे पीड़ित हो प्रमत्त एवं विषादग्रस्त हो जाता था, तब तुम्हीं मुझे धैर्य बँधाते थे (फिर इस समय मुझे क्यों नहीं सान्त्वना देते हो?)'॥ २२½॥

इस तरह विलाप करते हुए भगवान् श्रीरामकी सारी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठी थीं। उस समय सुषेणने उन्हें आश्वासन देते हुए यह उत्तम बात कही—॥

'पुरुषसिंह! व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली इस चिन्तायुक्त बुद्धिका परित्याग कीजिये; क्योंकि युद्धके मुहानेपर की हुई चिन्ता बाणोंके समान होती है और केवल शोकको जन्म देती है॥ २४½॥

'आपके भाई शोभावर्द्धक लक्ष्मण मरे नहीं हैं। देखिये, इनके मुखकी आकृति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके चेहरेपर कालापन ही आया है। इनका मुख प्रसन्न एवं कान्तिमान् दिखायी दे रहा है॥ २५-२६॥

'इनके हाथोंकी हथेलियाँ कमल-जैसी कोमल हैं, आँखें भी बहुत साफ हैं। प्रजानाथ! मरे हुए प्राणियोंका ऐसा रूप नहीं देखा जाता है॥ २७॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! आप विषाद न करें। इनके शरीरमें प्राण हैं। वीर! ये सो गये हैं। इनका शरीर शिथिल होकर भूतलपर पड़ा है। साँस चल रही है और हृदय बारम्बार कम्पित हो रहा है—उसकी गति बंद नहीं हुई है। यह लक्षण इनके जीवित होनेकी सूचना दे रहा है'॥ २८½॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् सुषेणने पास ही खड़े हुए महाकपि हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २९½॥

'सौम्य! तुम शीघ्र ही यहाँसे महोदय पर्वतपर, जिसका पता जाम्बवान् तुम्हें पहले बता चुके हैं, जाओ और उसके दक्षिण शिखरपर उगी हुई विशल्यकरणी[1], सावर्ण्यकरणी[2], संजीवकरणी[3] तथा संधानी[4] नामसे प्रसिद्ध महौषधियोंको यहाँ ले आओ। वीर! उन्हींसे

१. शरीरमें धँसे हुए बाण आदिको निकालकर घाव भरने और पीड़ा दूर करनेवाली। २. शरीरमें पहलेकी-सी रंगत लानेवाली। ३. मूर्च्छा दूर कर चेतना प्रदान करनेवाली। ४. टूटी हुई हड्डियोंको जोड़नेवाली।

वीरवर लक्ष्मणके जीवनकी रक्षा होगी'॥ ३०—३२½ ॥

उनके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जी ओषधिपर्वत (महोदयगिरि)-पर गये; परंतु उन महौषधियोंको न पहचाननेके कारण वे चिन्तामें पड़ गये॥ ३३॥

इसी समय अमित तेजस्वी हनुमान्‌जीके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं पर्वतके इस शिखरको ही ले चलूँ'॥ ३४॥

'इसी शिखरपर वह सुखदायिनी ओषधि उत्पन्न होती होगी, ऐसा मुझे अनुमानतः ज्ञात होता है; क्योंकि सुषेणने ऐसा ही कहा था॥ ३५॥

'यदि विशल्यकरणीको लिये बिना ही लौट जाऊँ तो अधिक समय बीतनेसे दोषकी सम्भावना है और उससे बड़ी भारी घबराहट हो सकती है'॥ ३६॥

ऐसा सोचकर महाबली हनुमान् तुरंत उस श्रेष्ठ पर्वतके पास जा पहुँचे और उसके शिखरको तीन बार हिलाकर उसे उखाड़ लिया। उसके ऊपर नाना प्रकारके वृक्ष खिले हुए थे। वानरश्रेष्ठ महाबली हनुमान्‌ने उसे दोनों हाथोंपर उठाकर तौला॥ ३७-३८॥

जलसे भरे हुए नीले मेघके समान उस पर्वत-शिखरको लेकर हनुमान्‌जी ऊपरको उछले॥ ३९॥

उनका वेग महान् था। उस शिखरको सुषेणके पास पहुँचाकर उन्होंने पृथ्वीपर रख दिया और थोड़ी देर विश्राम करके हनुमान्‌जीने सुषेणसे इस प्रकार कहा—॥

'कपिश्रेष्ठ! मैं उन ओषधियोंको पहचानता नहीं हूँ। इसलिये उस पर्वतका सारा शिखर ही लेता आया हूँ'॥ ४१॥

ऐसा कहते हुए हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ सुषेणने उन ओषधियोंको उखाड़ लिया॥ ४२॥

हनुमान्‌जीका वह कर्म देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर था। उसे देखकर समस्त वानर-यूथपति बड़े विस्मित हुए॥ ४३॥

महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ सुषेणने उस ओषधिको कूट-पीसकर लक्ष्मणजीकी नाकमें दे दिया॥ ४४॥

शत्रुका संहार करनेवाले लक्ष्मणके सारे शरीरमें बाण धँसे हुए थे। उस अवस्थामें उस ओषधिको सूँघते ही उनके शरीरसे बाण निकल गये और वे नीरोग हो शीघ्र ही भूतलसे उठकर खड़े हो गये॥ ४५॥

लक्ष्मणको भूतलसे उठकर खड़ा हुआ देख वे वानर अत्यन्त प्रसन्न हो 'साधु-साधु' कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ४६॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'आओ-आओ' ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें दोनों भुजाओंमें भर लिया और गाढ़ आलिङ्गन करके हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे॥ ४७॥

सुमित्राकुमारको हृदयसे लगाकर श्रीरघुनाथजीने कहा— 'वीर! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम्हें मृत्युके मुखसे पुनः लौटा हुआ देखता हूँ॥ ४८॥

'तुम्हारे बिना मुझे जीवनकी रक्षासे, सीतासे अथवा विजयसे भी कोई मतलब नहीं है। जब तुम्हीं नहीं रहोगे, तब मैं इस जीवनको रखकर क्या करूँगा?'॥ ४९॥

महात्मा रघुनाथजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण खिन्न हो शिथिल वाणीमें धीरे-धीरे बोले—॥ ५०॥

'आर्य! आप सत्यपराक्रमी हैं। आपने पहले रावणका वध करके विभीषणको लङ्काका राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी। वैसी प्रतिज्ञा करके अब किसी ओछे और निर्बल मनुष्यकी भाँति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ५१॥

'सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते हैं। प्रतिज्ञाका पालन ही बड़प्पनका लक्षण है। निष्पाप रघुवीर! मेरे लिये आपको इतना निराश नहीं होना चाहिये। आज रावणका वध करके आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये॥

'आपके बाणोंका लक्ष्य बनकर शत्रु जीवित नहीं लौट सकता। ठीक उसी तरह, जैसे गरजते हुए तीखी दाढ़वाले सिंहके सामने आकर महान् गजराज जीवित नहीं रह सकता॥ ५४॥

'ये सूर्यदेव अपने दिनभरका भ्रमणकार्य पूरा करके अस्ताचलको नहीं चले जाते, तबतक ही जितना शीघ्र सम्भव हो सके, मैं उस दुरात्मा रावणका वध देखना चाहता हूँ॥ ५५॥

'आर्य! वीरवर! यदि आप युद्धमें रावणका वध करना चाहते हैं, यदि आपके मनमें अपनी प्रतिज्ञाके पूरी करनेकी इच्छा है तथा आप राजकुमारी सीताको पानेकी अभिलाषा रखते हैं तो आज शीघ्र ही रावणको मारकर मेरी प्रार्थना सफल करें'॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०१॥

एक सौ दोवाँ सर्ग

इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणके साथ युद्ध करना

लक्ष्मणकी कही हुई उस बातको सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पराक्रमी श्रीरामने धनुष लेकर उसपर बाणोंका संधान किया॥ १॥

उन्होंने सेनाके मुहानेपर रावणको लक्ष्य करके उन भयंकर बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया। इतनेमें राक्षसराज रावण भी दूसरे रथपर सवार हो श्रीरामपर उसी तरह चढ़ आया, जैसे राहु सूर्यपर आक्रमण करता है॥ २½॥

दशमुख रावण रथपर बैठा हुआ था। वह अपने वज्रोपम बाणोंद्वारा श्रीरामको उसी तरह बींधने लगा, जैसे मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी धारावाहिक वृष्टि करता है॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजी भी एकाग्रचित्त हो रणभूमिमें दशमुख रावणपर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ४॥

'श्रीरघुनाथजी भूमिपर खड़े हैं और वह राक्षस रथपर बैठा हुआ है, ऐसी दशामें इन दोनोंका युद्ध बराबर नहीं है' वहाँ आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और किन्नर इस तरहकी बातें करने लगे॥ ५॥

उनकी ये अमृतके समान मधुर बातें सुनकर तेजस्वी देवराज इन्द्रने मातलिको बुलाकर कहा—॥ ६॥

'सारथे! रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी भूमिपर खड़े हैं। मेरा रथ लेकर तुम शीघ्र उनके पास जाओ। भूतलपर पहुँचकर श्रीरामको पुकारकर कहो—'यह रथ देवराजने आपकी सेवामें भेजा है।' इस तरह उन्हें रथपर बिठाकर तुम देवताओंके महान् हितका कार्य सिद्ध करो'॥

देवराजके इस प्रकार कहनेपर देव-सारथि मातलिने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और यह बात कही—

'देवेन्द्र! मैं शीघ्र ही आपके उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोतकर उसे साथ लिये जाऊँगा और श्रीरघुनाथजीके सारथिका कार्य भी करूँगा'॥ ९॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रका जो शोभाशाली श्रेष्ठ रथ है, जिसके सभी अवयव सुवर्णमय होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करते हैं, जिसे सैकड़ों घुँघुरुओंसे विभूषित किया गया है, जिसकी कान्ति प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण है, जिसके कूबरमें वैदूर्यमणि (नीलम) जड़ी गयी है, जिसमें सूर्यतुल्य तेजस्वी, हरे रंगवाले, सुवर्णजालसे विभूषित तथा सोनेके साज-बाजसे सजे हुए अच्छे घोड़े जुते हैं और उन घोड़ोंको श्वेत चँवर आदिसे अलंकृत किया गया है तथा जिसके ध्वजका दण्ड सोनेका बना हुआ है, उस रथपर आरूढ़ हो मातलि देवराजका संदेश ले स्वर्गसे भूतलपर उतरकर श्रीरामचन्द्रजीके सामने खड़ा हुआ॥ १०—१२॥

सहस्रलोचन इन्द्रका सारथि मातलि चाबुक लिये रथपर बैठा हुआ हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला—

'महाबली शत्रुसूदन श्रीमान् रघुवीर! सहस्र नेत्रधारी देवराज इन्द्रने विजयके लिये आपको यह रथ समर्पित किया है॥ १४॥

'यह इन्द्रका विशाल धनुष है। यह अग्निके समान तेजस्वी कवच है। ये सूर्यसदृश प्रकाशमान बाण हैं तथा यह कल्याणमयी निर्मल शक्ति है॥ १५॥

'वीरवर महाराज! आप इस रथपर आरूढ़ हो मुझ सारथिकी सहायतासे राक्षसराज रावणका उसी तरह वध कीजिये, जैसे महेन्द्र दानवोंका संहार करते हैं'॥ १६॥

मातलिके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा की और उसे प्रणाम करके वे उसपर सवार हुए। उस समय अपनी शोभासे वे समस्त लोकोंको प्रकाशित करने लगे॥ १७॥

तत्पश्चात् महाबाहु श्रीराम और राक्षस रावणमें द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो बड़ा ही अद्भुत और रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ १८॥

श्रीरामचन्द्रजी उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने राक्षसराजके चलाये हुए गान्धर्व-अस्त्रको गान्धर्व-अस्त्रसे और दैव-अस्त्रको दैव-अस्त्रसे नष्ट कर दिया॥

तब राक्षसोंके राजा निशाचर रावणने अत्यन्त कुपित हो पुन: परम भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया॥ २०॥

फिर तो रावणके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण महाविषैले सर्प हो-होकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचने लगे॥ २१॥

उन सर्पोंके मुख आगके समान प्रज्वलित होते थे। वे अपने मुखोंसे जलती आग उगल रहे थे और मुँह फैलाये होनेके कारण बड़े भयंकर दिखायी देते थे। वे सब-के-सब श्रीरामके ही सामने आने लगे॥ २२॥

उनका स्पर्श वासुकि नागके समान असह्य था। उनके फन प्रज्वलित हो रहे थे और वे महान् विषसे

भरे थे। उन सर्पाकार बाणोंसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण दिशाएँ और विदिशाएँ आच्छादित हो गयीं॥ २३॥

युद्धस्थलमें उन सर्पोंको आते देख भगवान् श्रीरामने अत्यन्त भयंकर गारुडास्त्रको प्रकट किया॥ २४॥

फिर तो श्रीरघुनाथजीके धनुषसे छूटे हुए सुनहरे पंखवाले अग्नितुल्य तेजस्वी बाण सर्पोंके शत्रुभूत सुवर्णमय गरुड़ बनकर सब ओर विचरने लगे॥ २५॥

श्रीरामके इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन गरुड़ाकार बाणोंने रावणके महान् वेगशाली उन समस्त सर्पाकार सायकोंका संहार कर डाला॥ २६॥

इस प्रकार अपने अस्त्रके प्रतिहत हो जानेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे जल उठा और उस समय श्रीरघुनाथजीपर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २७॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामको सहस्रों बाणोंसे पीड़ित करके उसने मातलिको भी अपने बाण-समूहोंसे घायल कर दिया॥ २८॥

तत्पश्चात् रावणने इन्द्रके रथकी ध्वजाको लक्ष्य करके एक बाण मारा और उससे उस ध्वजको काट डाला। उस कटे हुए सुवर्णमय ध्वजको रथके ऊपरसे उसके निचले भागमें गिराकर रावणने अपने बाणोंके जालसे इन्द्रके घोड़ोंको भी क्षत-विक्षत कर दिया॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

यह देख देवता, गन्धर्व, चारण तथा दानव विषादमें डूब गये। श्रीरामको पीड़ित देख सिद्धों और महर्षियोंके मनमें भी बड़ी व्यथा हुई। विभीषणसहित सारे वानर-यूथपति भी बहुत दु:खी हो गये॥ ३०-३१॥

श्रीरामरूपी चन्द्रमाको रावणरूपी राहुसे ग्रस्त हुआ देख बुध नामक ग्रह जिसके देवता प्रजापति हैं, उस चन्द्रप्रिया रोहिणी नामक नक्षत्रपर आक्रमण करके प्रजावर्गके लिये अहितकारक हो गया॥ ३२ $\frac{1}{2}$ ॥

समुद्र प्रज्वलित-सा होने लगा। उसकी लहरोंसे धूआँ-सा उठने लगा और वह कुपित-सा होकर ऊपरकी ओर इस प्रकार बढ़ने लगा, मानो सूर्यदेवको छू लेना चाहता है॥ ३३ $\frac{1}{2}$ ॥

सूर्यकी किरणें मन्द हो गयीं। उसकी कान्ति तलवारकी भाँति काली पड़ गयी। वह अत्यन्त प्रखर कबन्धके चिह्नसे युक्त और धूमकेतु नामक उत्पात ग्रहसे संसक्त दिखायी देने लगा॥ ३४ $\frac{1}{2}$ ॥

आकाशमें इक्ष्वाकुवंशियोंके नक्षत्र विशाखापर, जिसके देवता इन्द्र और अग्नि हैं, आक्रमण करके मंगल जा बैठा॥ ३५ $\frac{1}{2}$ ॥

उस समय दस मस्तक और बीस भुजाओंसे युक्त दशग्रीव रावण हाथोंमें धनुष लिये मैनाक पर्वतके समान दिखायी देता था॥ ३६ $\frac{1}{2}$ ॥

राक्षस रावणके बाणोंसे बारम्बार निरस्त (आहत) होनेके कारण भगवान् श्रीराम युद्धके मुहानेपर अपने सायकोंका संधान नहीं कर पाते थे॥ ३७ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने क्रोधका भाव प्रकट किया। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, नेत्र कुछ-कुछ लाल हो गये और उन्हें ऐसा महान् क्रोध हुआ, जिससे जान पड़ता था कि वे समस्त राक्षसोंको भस्म कर डालेंगे॥ ३८ $\frac{1}{2}$ ॥

उस समय कुपित हुए बुद्धिमान् श्रीरामके मुखकी ओर देखकर समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे और पृथ्वी काँपने लगी॥ ३९॥

सिंहों और व्याघ्रोंसे भरा हुआ पर्वत हिल गया। उसके ऊपरके वृक्ष झूमने लगे और सरिताओंके स्वामी समुद्रमें ज्वार आ गया॥ ४०॥

आकाशमें सब ओर उत्पातसूचक गर्दभाकार प्रचण्ड गर्जना करनेवाले रूखे बादल गर्जते हुए चक्कर लगाने लगे॥

श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त कुपित और दारुण उत्पातोंका प्राकट्य देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये तथा रावणके भीतर भी भय समा गया॥ ४२॥

उस समय विमानपर बैठे हुए देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, दानव, दैत्य तथा गरुड़—ये सब आकाशमें स्थित होकर युद्धपरायण शूरवीर श्रीराम और रावणके समस्त लोकोंके प्रलयकी भाँति उपस्थित हुए नाना प्रकारके भयानक प्रहारोंसे युक्त उस युद्धका दृश्य देखने लगे॥ ४३-४४॥

उस अवसरपर युद्ध देखनेके लिये आये हुए समस्त देवता और असुर उस महासमरको देखकर भक्तिभावसे हर्षपूर्वक बातें करने लगे॥ ४५॥

वहाँ खड़े हुए असुर दशग्रीवको सम्बोधित करते हुए बोले—'रावण! तुम्हारी जय हो।' उधर देवता श्रीरामको पुकारकर बारम्बार कहने लगे—'रघुनन्दन! आपकी जय हो, जय हो'॥ ४६॥

इसी समय दुष्टात्मा रावणने क्रोधमें आकर श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करनेकी इच्छासे एक बहुत बड़ा हथियार उठाया॥ ४७॥

वह वज्रके समान शक्तिशाली, महान् शब्द करनेवाला तथा सम्पूर्ण शत्रुओंका संहारक था। उसकी शिखाएँ शैल-शिखरोंके समान थीं। वह मन और नेत्रोंको भी

भयभीत करनेवाला था। उसके अग्रभाग बहुत तीखे थे। वह प्रलयकालकी धूमयुक्त अग्निराशिके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसे पाना या नष्ट करना कालके लिये भी कठिन एवं असम्भव था॥ ४८-४९॥

उसका नाम था शूल। वह समस्त भूतोंको छिन्न-भिन्न करके उन्हें भयभीत करनेवाला था। रोषसे उद्दीप्त हुए रावणने उस शूलको हाथमें ले लिया॥ ५०॥

समरभूमिमें अनेक सेनाओंमें विभक्त शूरवीर राक्षसोंसे घिरे हुए उस पराक्रमी निशाचरने बड़े क्रोधके साथ उस शूलको ग्रहण किया था॥ ५१॥

उसे ऊपर उठाकर उस विशालकाय राक्षसने युद्धस्थलमें बड़ी भयानक गर्जना की। उस समय उसके नेत्र रोषसे लाल हो रहे थे और वह अपनी सेनाका हर्ष बढ़ा रहा था॥ ५२॥

राक्षसराज रावणके उस भयंकर सिंहनादने उस समय पृथ्वी, आकाश, दिशाओं और विदिशाओंको भी कम्पित कर दिया॥ ५३॥

उस महाकाय दुरात्मा निशाचरके भैरवनादसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और सागर भी विक्षुब्ध हो उठा॥ ५४॥

उस विशाल शूलको हाथमें लेकर महापराक्रमी रावणने बड़े जोरसे गर्जना करके श्रीरामसे कठोर वाणीमें कहा— ॥ ५५॥

'राम! यह शूल वज्रके समान शक्तिशाली है। इसे मैंने रोषपूर्वक अपने हाथमें लिया है। यह भाईसहित तुम्हारे प्राणोंको तत्काल हर लेगा॥ ५६॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले राघव! आज तुम्हारा वध करके सेनाके मुहानेपर जो शूरवीर राक्षस मारे गये हैं, उन्हींके समान अवस्थामें तुम्हें भी पहुँचा दूँगा॥ ५७॥

'रघुकुलके राजकुमार! ठहरो, अभी इस शूलके द्वारा तुम्हें मौतके घाट उतारता हूँ।' ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने श्रीरघुनाथजीके ऊपर उस शूलको चला दिया॥

रावणके हाथसे छूटते ही वह शूल आकाशमें आकर चमक उठा। वह विद्युन्मालाओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था। आठ घंटोंसे युक्त होनेके कारण उससे गम्भीर घोष प्रकट हो रहा था॥ ५९॥

परम पराक्रमी रघुकुलनन्दन श्रीरामने उस भयंकर एवं प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देख धनुष तानकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ६०॥

श्रीरघुनाथजीने बाणसमूहोंद्वारा अपनी ओर आते हुए शूलको उसी तरह रोकनेका प्रयास किया, जैसे देवराज इन्द्र ऊपरकी ओर उठती हुई प्रलयाग्निको संवर्तक मेघोंके बरसाये हुए जलप्रवाहके द्वारा शान्त करनेकी चेष्टा करते हैं॥ ६१॥

परंतु जैसे आग पतंगोंको जला देती है, उसी तरह रावणके उस महान् शूलने श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए समस्त बाणोंको जलाकर भस्म कर दिया॥ ६२॥

श्रीरघुनाथजीने जब देखा मेरे सायक अन्तरिक्षमें उस शूलका स्पर्श होते ही चूर-चूर हो राखके ढेर बन गये हैं, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ॥ ६३॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए रघुकुलनन्दन रघुवीरने मातलिकी लायी हुई देवेन्द्रद्वारा सम्मानित शक्तिको हाथमें ले लिया॥ ६४॥

बलवान् श्रीरामके द्वारा उठायी हुई वह शक्ति प्रलयकालमें प्रज्वलित होनेवाली उल्काके समान प्रकाशमान थी। उसने समस्त आकाशको अपनी प्रभासे उद्भासित कर दिया तथा उससे घंटानाद प्रकट होने लगा॥ ६५॥

श्रीरामने जब उसे चलाया, तब वह शक्ति राक्षसराजके उस शूलपर ही पड़ी। उसके प्रहारसे टूक-टूक और निस्तेज हो वह महान् शूल पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६६॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीधे जानेवाले महावेगवान् वज्रतुल्य पैने बाणोंके द्वारा रावणके अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंको घायल कर दिया॥ ६७॥

फिर अत्यन्त सावधान होकर उन्होंने तीन तीखे तीरोंसे रावणकी छाती छेद डाली और तीन पंखदार बाणोंसे उसके ललाटमें भी चोट पहुँचायी॥ ६८॥

उन बाणोंकी मारसे रावणके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। उसके सारे शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। उस समय अपने सैन्यसमूहमें खड़ा हुआ राक्षसराज रावण फूलोंसे भरे हुए अशोकवृक्षके समान शोभा पाने लगा॥ ६९॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे जब सारा शरीर अत्यन्त घायल हो लहूलुहान हो गया, तब निशाचरराज रावणको उस रणभूमिमें बड़ा खेद हुआ। साथ ही उस समय उसने बड़ा भारी क्रोध प्रकट किया॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीरामका रावणको फटकारना और उनके द्वारा घायल किये गये रावणको सारथिका रणभूमिसे बाहर ले जाना

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा क्रोधपूर्वक अत्यन्त पीड़ित किये जानेपर युद्धकी इच्छा रखनेवाले रावणको महान् क्रोध हुआ॥ १॥

उसके नेत्र अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। उस पराक्रमी वीरने अमर्षपूर्वक धनुष उठाया और अत्यन्त कुपित हो उस महासमरमें श्रीरघुनाथजीको पीड़ित करना आरम्भ किया॥ २॥

जैसे बादल आकाशसे जलकी धारा बरसाकर तालाबको भर देता है, उसी प्रकार रावणने सहस्रों बाणधाराओंकी वृष्टि करके श्रीरामचन्द्रजीको आच्छादित कर दिया॥ ३॥

युद्धस्थलमें रावणके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंसे व्याप्त हो जानेपर भी श्रीरघुनाथजी विचलित नहीं हुए; क्योंकि वे महान् पर्वतकी भाँति अचल थे॥ ४॥

वे समराङ्गणमें अपने बाणोंसे रावणके बाणोंका निवारण करते हुए स्थिरभावसे खड़े रहे। उन पराक्रमी रघुवीरने सूर्यके किरणोंकी भाँति शत्रुके बाणोंको ग्रहण किया॥ ५॥

तदनन्तर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले निशाचर रावणने कुपित हो महामना राघवेन्द्रकी छातीमें सहस्रों बाण मारे॥ ६॥

समरभूमिमें उन बाणोंसे घायल हुए लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीराम रक्तसे नहा उठे और जंगलमें खिले हुए पलाशके महान् वृक्षकी भाँति दिखायी देने लगे॥ ७॥

उन बाणोंके आघातसे कुपित हो महातेजस्वी श्रीरामने प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी सायकोंको हाथमें लिया॥ ८॥

फिर तो वे दोनों परस्पर रोषावेशसे युक्त हो बाण चलाने लगे। समराङ्गणमें बाणोंसे अन्धकार-सा छा गया। उस समय श्रीराम और रावण दोनों एक-दूसरेको देख नहीं पाते थे॥ ९॥

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वीर दशरथकुमार श्रीरामने रावणसे हँसते हुए कठोर वाणीमें कहा—॥ १०॥

'नीच राक्षस! तू मेरे अनजानमें जनस्थानसे मेरी असहाय स्त्रीको हर लाया है, इसलिये तू बलवान् या पराक्रमी तो कदापि नहीं है॥ ११॥

'विशाल वनमें मुझसे विलग हुई दीन अवस्थामें विद्यमान विदेहराजकुमारीका बलपूर्वक अपहरण करके तू अपनेको शूरवीर समझता है?॥ १२॥

'असहाय अबलाओंपर वीरता दिखानेवाले निशाचर! परस्त्रीके अपहरण-जैसे कापुरुषोचित कर्म करके तू अपनेको शूरवीर मानता है?॥ १३॥

'धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले पापी, निर्लज्ज और सदाचारशून्य निशाचर! तूने बलके घमंडसे वैदेहीके रूपमें अपनी मौत बुलायी है। क्या अब भी तू अपनेको शूरवीर समझता है?॥ १४॥

'तू बड़ा शूरवीर, बलसम्पन्न और साक्षात् कुबेरका भाई जो है! इसीलिये तूने यह परम प्रशंसनीय और महान् यशोवर्धक कर्म किया है॥ १५॥

'अभिमानपूर्वक किये गये उन निन्दित और अहितकर पाप-कर्मका जो महान् फल है, उसे तू आज अभी प्राप्त कर ले॥ १६॥

'खोटी बुद्धिवाले निशाचर! तू अपनेको शूरतासे सम्पन्न समझता है; किंतु सीताको चोरकी तरह चुराते समय तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आयी?॥ १७॥

'यदि मेरे समीप तू सीताका बलपूर्वक अपहरण करता तो अबतक मेरे सायकोंसे मारा जाकर अपने भाई खरका दर्शन करता होता॥ १८॥

'मन्दबुद्धे! सौभाग्यकी बात है कि आज तू मेरी आँखोंके सामने आ गया है। मैं अभी तुझे अपने तीखे बाणोंसे यमलोक पहुँचाता हूँ॥ १९॥

'आज मेरे बाणोंसे कटकर रणभूमिकी धूलमें पड़े हुए जगमगाते कुण्डलोंसे युक्त तेरे मस्तकको मांसभक्षी जीव-जन्तु घसीटें॥ २०॥

'रावण! तेरी लाश पृथ्वीपर फेंकी पड़ी हो, उसकी छातीपर बहुत-से गृध्र टूट पड़ें और बाणोंकी नोकसे किये गये छेदके द्वारा प्रवाहित होनेवाले तेरे खूनको बड़ी प्यासके साथ पियें॥ २१॥

'आज मेरे बाणोंसे विदीर्ण और प्राणशून्य होकर पड़े हुए तेरे शरीरकी आँतोंको पक्षी उसी तरह खींचें, जैसे गरुड़ सर्पोंको खींचते हैं'॥ २२॥

ऐसा कहते हुए शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर श्रीरामने पास ही खड़े हुए राक्षसराज रावणपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २३॥

उस समय युद्धस्थलमें शत्रुवधकी इच्छा रखनेवाले श्रीरामका बल, पराक्रम, उत्साह और अस्त्र-बल बढ़कर दूना हो गया॥ २४॥

आत्मज्ञानी रघुनाथजीके सामने सभी अस्त्र अपने-आप प्रकट होने लगे। हर्ष और उत्साहके कारण महातेजस्वी भगवान् श्रीरामका हाथ बड़ी तेजीसे चलने लगा॥ २५॥

अपनेमें ये शुभ लक्षण प्रकट हुए जान राक्षसोंका अन्त करनेवाले भगवान् श्रीराम पुनः रावणको पीड़ित करने लगे॥ २६॥

वानरोंके चलाये हुए प्रस्तरसमूहों और श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए बाणोंकी वर्षासे आहत होकर रावणका हृदय व्याकुल एवं विभ्रान्त हो उठा॥ २७॥

जब हृदयकी व्याकुलताके कारण उसमें शस्त्र उठाने, धनुषको खींचने और श्रीरामके पराक्रमका सामना करनेकी क्षमता नहीं रह गयी तथा जब श्रीरामके शीघ्रतापूर्वक चलाये हुए बाण एवं भाँति-भाँतिके शस्त्र उसकी मृत्युके साधक बनने लगे और उसका मृत्युकाल समीप आ पहुँचा, तब उसकी ऐसी अवस्था देख उसका रथचालक सारथि बिना किसी घबराहटके उसके रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥ २८—३०॥

अपने राजाको शक्तिहीन होकर रथपर पड़ा देख रावणका सारथि मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले उसके भयानक रथको लौटाकर उसके साथ ही भयके मारे समरभूमिसे बाहर निकल गया॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०३॥

एक सौ चारवाँ सर्ग

रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका अपने उत्तरसे रावणको संतुष्ट करके उसके रथको रणभूमिमें पहुँचाना

रावण कालकी शक्तिसे प्रेरित हो रहा था, अतः मोहवश अत्यन्त कुपित हो क्रोधसे लाल आँखें करके अपने सारथिसे बोला—॥ १॥

'दुर्बुद्धे! क्या तूने मुझे पराक्रमशून्य, असमर्थ, पुरुषार्थशून्य, डरपोक, ओछा, धैर्यहीन, निस्तेज, मायारहित और अस्त्रोंके ज्ञानसे वञ्चित समझ रखा है, जो मेरी अवहेलना करके तू अपनी बुद्धिसे मनमाना काम कर रहा है (तूने मुझसे पूछा क्यों नहीं?)॥ २-३॥

'मेरा अभिप्राय क्या है, यह जाने बिना ही मेरी अवहेलना करके तू किसलिये शत्रुके सामनेसे मेरा यह रथ हटा लाया?॥ ४॥

'अनार्य! आज तूने मेरे चिरकालसे उपार्जित यश, पराक्रम, तेज और विश्वासपर पानी फेर दिया॥ ५॥

'मेरे शत्रुका बल-पराक्रम विख्यात है। उसे अपने बल-विक्रमद्वारा संतुष्ट करना मेरे लिये उचित है और मैं युद्धका लोभी हूँ, तो भी तूने रथ हटाकर शत्रुकी दृष्टिमें मुझे कायर सिद्ध कर दिया॥ ६॥

'दुर्मते! यदि तू इस रथको मोहवश किसी तरह भी शत्रुके सामने नहीं ले जाता है तो मेरा यह अनुमान सत्य है कि शत्रुने तुझे घूस देकर फोड़ लिया है॥ ७॥

'हित चाहनेवाले मित्रका यह काम नहीं है। तूने जो कार्य किया है, वह शत्रुओंके करने योग्य है॥ ८॥

'यदि तू मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहा है और यदि मेरे गुणोंका तुझे स्मरण है तो मेरे इस रथको शीघ्र लौटा ले चल। कहीं ऐसा न हो कि मेरा शत्रु भाग जाय'॥ ९॥

यद्यपि सारथिकी बुद्धिमें रावणके लिये हितकी ही भावना थी तथापि उस मूर्खने जब उससे ऐसी कठोर बात कही, तब सारथिने बड़ी विनयके साथ यह हितकर वचन कहा—॥ १०॥

'महाराज! मैं डरा नहीं हूँ। मेरा विवेक भी नष्ट नहीं हुआ है और न मुझे शत्रुओंने ही बहकाया है। मैं असावधान भी नहीं हूँ। आपके प्रति मेरा स्नेह भी कम नहीं हुआ है तथा आपने जो मेरा सत्कार किया है, उसे भी मैं नहीं भूला हूँ॥ ११॥

'मैं सदा आपका हित चाहता हूँ और आपके यशकी रक्षाके लिये ही यत्नशील रहता हूँ। मेरा हृदय आपके प्रति स्नेहसे आर्द्र है। इस कार्यसे आपका हित होगा—यह सोचकर ही मैंने इसे किया है। भले ही यह आपको अप्रिय लगा हो॥ १२॥

'महाराज! मैं आपके प्रिय और हितमें तत्पर रहनेवाला हूँ; अतः इस कार्यके लिये आप किसी ओछे और अनार्य पुरुषकी भाँति मुझपर दोषारोपण न करें॥

'जैसे चन्द्रोदयके कारण बढ़ा हुआ समुद्रका जल नदीके वेगको पीछे लौटा देता है, उसी प्रकार मैंने

जिस कारणसे आपके रथको युद्धभूमिसे पीछे हटाया है, उसे बता रहा हूँ, सुनिये॥ १४॥

'उस समय मैंने यह समझा था कि आप महान् युद्धके कारण थक गये हैं। शत्रुकी अपेक्षा मैंने आपकी प्रबलता नहीं देखी, आपमें अधिक पराक्रम नहीं पाया॥ १५॥

'मेरे घोड़े भी रथको खींचते-खींचते थक गये थे। इनके पाँव लड़खड़ा रहे थे। ये धूपसे पीड़ित हो वर्षाकी मारी हुई गौओंके समान दु:खी हो गये थे॥ १६॥

'साथ ही इस समय मेरे सामने जो-जो लक्षण प्रकट हो रहे हैं, यदि वे सफल हुए तो हमें उसमें अपना अमङ्गल ही दिखायी देता है॥ १७॥

'सारथिको देश-कालका, शुभाशुभ लक्षणोंका, रथीकी चेष्टाओंका, उत्साह, अनुत्साह और खेदका तथा बलाबलका भी ज्ञान रखना चाहिये॥ १८॥

'धरतीके जो ऊँचे-नीचे, सम-विषम स्थान हों, उनकी भी जानकारी रखनी चाहिये। युद्धका उपयुक्त अवसर कब होगा, इसे जानना और शत्रुकी दुर्बलतापर भी दृष्टि रखनी चाहिये॥ १९॥

'शत्रुके पास जाने, दूर हटने, युद्धमें स्थिर रहने तथा युद्धभूमिसे अलग हो जानेका उपयुक्त अवसर कब आता है' इन सब बातोंको समझना रथपर बैठे हुए सारथिका कर्तव्य है॥ २०॥

'आपको तथा इन रथके घोड़ोंको थोड़ी देरतक विश्राम देने और खेद दूर करनेके लिये मैंने जो यह कार्य किया है, सर्वथा उचित है॥ २१॥

'वीर! प्रभो! मैंने मनमानी करनेके लिये नहीं, स्वामीके स्नेहवश उनकी रक्षाके लिये इस रथको दूर हटाया है॥ २२॥

'शत्रुसूदन वीर! अब आज्ञा दीजिये। आप ठीक समझकर जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं मनमें आपके ऋणसे उऋण होनेकी भावना रखकर करूँगा'॥ २३॥

सारथिके इस कथनसे रावण बहुत संतुष्ट हुआ और नाना प्रकारसे उसकी सराहना करके युद्धके लिये लोलुप होकर बोला—॥ २४॥

'सूत! अब तुम इस रथको शीघ्र रामके सामने ले चलो। रावण समरमें अपने शत्रुओंको मारे बिना घर नहीं लौटेगा'॥ २५॥

ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने सारथिको पुरस्कारके रूपमें अपने हाथका एक सुन्दर आभूषण उतारकर दे दिया। रावणका आदेश सुनकर सारथिने पुन: रथको लौटाया॥ २६॥

रावणकी आज्ञासे प्रेरित हो सारथिने तुरंत ही अपने घोड़े हाँके। फिर तो राक्षसराजका वह विशाल रथ क्षणभरमें युद्धके मुहानेपर श्रीरामचन्द्रजीके समीप जा पहुँचा॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ सर्ग

अगस्त्य मुनिका श्रीरामको विजयके लिये 'आदित्यहृदय'* के पाठकी सम्मति देना

उधर श्रीरामचन्द्रजी युद्धसे थककर चिन्ता करते हुए रणभूमिमें खड़े थे। इतनेमें रावण भी युद्धके लिये उनके सामने उपस्थित हो गया। यह देख भगवान् अगस्त्य मुनि, जो देवताओंके साथ युद्ध देखनेके लिये आये थे, श्रीरामके पास जाकर बोले—॥ १-२॥

'सबके हृदयमें रमण करनेवाले महाबाहो राम!

---

* इस 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्रका विनियोग एवं न्यासविधि इस प्रकार है—

विनियोग

ॐ अस्य आदित्यहृदयस्तोत्रस्यागस्त्यऋषिरनुष्टुप्छन्द:, आदित्यहृदयभूतो भगवान् ब्रह्मा देवता निरस्ताशेषविघ्नतया ब्रह्मविद्यासिद्धौ सर्वत्र जयसिद्धौ च विनियोग:।

ऋष्यादिन्यास

ॐ अगस्त्यऋषये नम:, शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नम:, मुखे। आदित्यहृदयभूतब्रह्मदेवतायै नम:, हृदि। ॐ बीजाय नम:, गुह्ये। रश्मिमते शक्तये नम:, पादयो:। ॐ तत्सवितुरित्यादिगायत्रीकीलकाय नम:, नाभौ।

करन्यास

इस स्तोत्रके अङ्गन्यास और करन्यास तीन प्रकारसे किये जाते हैं। केवल प्रणवसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा 'रश्मिमते नम:' इत्यादि छ: नाम-मन्त्रोंसे। यहाँ नाम-मन्त्रोंसे किये जानेवाले न्यासका प्रकार बताया जाता है—

यह सनातन गोपनीय स्तोत्र सुनो। वत्स! इसके जपसे तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा जाओगे॥

'इस गोपनीय स्तोत्रका नाम है 'आदित्यहृदय'। यह परम पवित्र और सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करनेवाला है। इसके जपसे सदा विजयकी प्राप्ति होती है। यह नित्य अक्षय और परम कल्याणमय स्तोत्र है। सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह चिन्ता और शोकको मिटाने तथा आयुको बढ़ानेवाला उत्तम साधन है॥ ४-५॥

'भगवान् सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सुशोभित (रश्मिमान्) हैं। ये नित्य उदय होनेवाले (समुद्यन्), देवता और असुरोंसे नमस्कृत, विवस्वान् नामसे प्रसिद्ध, प्रभाका विस्तार करनेवाले (भास्कर) और संसारके स्वामी (भुवनेश्वर) हैं। तुम इनका [**रश्मिमते नमः, समुद्यते नमः, देवासुरनमस्कृताय नमः, विवस्वते नमः, भास्कराय नमः, भुवनेश्वराय नमः**—इन नाम-मन्त्रोंके द्वारा] पूजन करो॥ ६॥

'सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तेजकी राशि तथा अपनी किरणोंसे जगत्को सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करनेवाले हैं। ये ही अपनी रश्मियोंका प्रसार करके देवता और असुरोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं॥ ७॥

'ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रजा, प्राण, ऋतुओंको प्रकट करनेवाले तथा प्रभाके पुञ्ज हैं॥

'इन्हींके नाम—आदित्य (अदितिपुत्र), सविता (जगत्को उत्पन्न करनेवाले), सूर्य (सर्वव्यापक), खग (आकाशमें विचरनेवाले), पूषा (पोषण करनेवाले), गभस्तिमान् (प्रकाशमान), सुवर्णसदृश, भानु (प्रकाशक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके बीज), दिवाकर (रात्रिका अन्धकार दूर करके दिनका प्रकाश फैलानेवाले), हरिदश्व (दिशाओंमें व्यापक अथवा हरे रंगके घोड़ेवाले), सहस्रार्चि (हजारों किरणोंसे सुशोभित), सप्तसप्ति (सात घोड़ोंवाले), मरीचिमान् (किरणोंसे सुशोभित), तिमिरोन्मथन (अन्धकारका नाश करनेवाले), शम्भु (कल्याणके उद्गमस्थान), त्वष्टा (भक्तोंका दुःख दूर करने अथवा जगत्का संहार करनेवाले), मार्तण्डक (ब्रह्माण्डको जीवन प्रदान करनेवाले), अंशुमान् (किरण धारण करनेवाले), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शिशिर (स्वभावसे ही सुख देनेवाले), तपन (गर्मी पैदा करनेवाले), अहस्कर (दिनकर), रवि (सबकी स्तुतिके पात्र), अग्निगर्भ (अग्निको गर्भमें धारण करनेवाले), अदितिपुत्र, शङ्ख (आनन्दस्वरूप एवं व्यापक), शिशिरनाशन (शीतका नाश करनेवाले), व्योमनाथ (आकाशके स्वामी), तमोभेदी (अन्धकारको नष्ट करनेवाले), ऋग्, यजुः और सामवेदके पारगामी, घनवृष्टि (घनी वृष्टिके कारण), अपां मित्र (जलको उत्पन्न करनेवाले), विन्ध्यवीथीप्लवङ्गम (आकाशमें तीव्रवेगसे चलनेवाले), आतपी (घाम उत्पन्न करनेवाले), मण्डली (किरणसमूहको धारण करनेवाले), मृत्यु (मौतके कारण), पिङ्गल (भूरे रंगवाले), सर्वतापन (सबको ताप देनेवाले), कवि (त्रिकालदर्शी), विश्व (सर्वस्वरूप), महातेजस्वी, रक्त (लाल रंगवाले), सर्वभवोद्भव (सबकी उत्पत्तिके कारण), नक्षत्र, ग्रह और तारोंके स्वामी, विश्वभावन (जगत्की रक्षा करनेवाले), तेजस्वियोंमें भी अति तेजस्वी तथा द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंमें अभिव्यक्त) हैं। [इन सभी नामोंसे प्रसिद्ध सूर्यदेव!] आपको नमस्कार है॥ १०—१५॥

'पूर्वगिरि—उदयाचल तथा पश्चिमगिरि—अस्ताचलके रूपमें आपको नमस्कार है। ज्योतिर्गणों (ग्रहों और तारों) के स्वामी तथा दिनके अधिपति आपको प्रणाम है॥

'आप जयस्वरूप तथा विजय और कल्याणके दाता हैं। आपके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते रहते हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। सहस्रों किरणोंसे सुशोभित

ॐ रश्मिमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ समुद्यते तर्जनीभ्यां नमः। ॐ देवासुरनमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ विवस्वते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भास्कराय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ भुवनेश्वराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि अङ्गन्यास

ॐ रश्मिमते हृदयाय नमः। ॐ समुद्यते शिरसे स्वाहा। ॐ देवासुरनमस्कृताय शिखायै वषट्। ॐ विवस्वते कवचाय हुम्। ॐ भास्कराय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भुवनेश्वराय अस्त्राय फट्। इस प्रकार न्यास करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे भगवान् सूर्यका ध्यान एवं नमस्कार करना चाहिये—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

तत्पश्चात् 'आदित्यहृदय' स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

भगवान् सूर्य! आपको बारम्बार प्रणाम है। आप अदितिके पुत्र होनेके कारण आदित्यनामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है॥ १७॥

'उग्र (अभक्तोंके लिये भयंकर), वीर (शक्ति-सम्पन्न) और सारंग (शीघ्रगामी) सूर्यदेवको नमस्कार है। कमलोंको विकसित करनेवाले प्रचण्ड तेजधारी मार्तण्डको प्रणाम है॥ १८॥

'(परात्पर-रूपमें) आप ब्रह्मा, शिव और विष्णुके भी स्वामी हैं। सूर आपकी संज्ञा है, यह सूर्यमण्डल आपका ही तेज है, आप प्रकाशसे परिपूर्ण हैं, सबको स्वाहा कर देनेवाला अग्नि आपका ही स्वरूप है, आप रौद्ररूप धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है॥ १९॥

'आप अज्ञान और अन्धकारके नाशक, जडता एवं शीतके निवारक तथा शत्रुका नाश करनेवाले हैं, आपका स्वरूप अप्रमेय है। आप कृतघ्नोंका नाश करनेवाले, सम्पूर्ण ज्योतियोंके स्वामी और देवस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है॥ २०॥

'आपकी प्रभा तपाये हुए सुवर्णके समान है, आप हरि (अज्ञानका हरण करनेवाले) और विश्वकर्मा (संसारकी सृष्टि करनेवाले) हैं; तमके नाशक, प्रकाशस्वरूप और जगत्के साक्षी हैं; आपको नमस्कार है॥ २१॥

'रघुनन्दन! ये भगवान् सूर्य ही सम्पूर्ण भूतोंका संहार, सृष्टि और पालन करते हैं। ये ही अपनी किरणोंसे गर्मी पहुँचाते और वर्षा करते हैं॥ २२॥

'ये सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर उनके सो जानेपर भी जागते रहते हैं। ये ही अग्निहोत्र तथा अग्निहोत्री पुरुषोंको मिलनेवाले फल हैं॥ २३॥

'(यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले) देवता, यज्ञ और यज्ञोंके फल भी ये ही हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सबका फल देनेमें ये ही पूर्ण समर्थ हैं॥

'राघव! विपत्तिमें, कष्टमें, दुर्गम मार्गमें तथा और किसी भयके अवसरपर जो कोई पुरुष इन सूर्यदेवका कीर्तन करता है, उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता॥ २५॥

'इसलिये तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वरकी पूजा करो। इस आदित्यहृदयका तीन बार जप करनेसे तुम युद्धमें विजय पाओगे॥ २६॥

महाबाहो! 'तुम इसी क्षण रावणका वध कर सकोगे।' यह कहकर अगस्त्यजी जैसे आये थे, उसी प्रकार चले गये॥ २७॥

उनका उपदेश सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीका शोक दूर हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्धचित्तसे आदित्यहृदयको धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान् सूर्यकी ओर देखते हुए इसका तीन बार जप किया। इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। फिर परम पराक्रमी रघुनाथजीने धनुष उठाकर रावणकी ओर देखा और उत्साहपूर्वक विजय पानेके लिये वे आगे बढ़े। उन्होंने पूरा प्रयत्न करके रावणके वधका निश्चय किया॥ २८—३०॥

उस समय देवताओंके मध्यमें खड़े हुए भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा और निशाचरराज रावणके विनाशका समय निकट जानकर हर्षपूर्वक कहा—'रघुनन्दन! अब जल्दी करो'॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०५॥

एक सौ छठाँ सर्ग

रावणके रथको देख श्रीरामका मातलिको सावधान करना, रावणकी पराजयके सूचक उत्पातों तथा रामकी विजय सूचित करनेवाले शुभ शकुनोंका वर्णन

रावणके सारथिने हर्ष और उत्साहसे युक्त होकर उसके रथको शीघ्रतापूर्वक हाँका। वह रथ शत्रुसेनाको कुचल डालनेवाला था और गन्धर्वनगरके समान आश्चर्यजनक दिखायी देता था। उसपर बहुत ऊँची पताका फहरा रही थी। उस रथमें उत्तम गुणोंसे सम्पन्न और सोनेके हारोंसे अलंकृत घोड़े जुते हुए थे। रथके भीतर युद्धकी आवश्यक सामग्री भरी पड़ी थी। उस रथने ध्वजा-पताकाओंकी तो माला-सी पहन रखी थी। वह आकाशको अपना ग्रास बनाता हुआ-सा जान पड़ता था। वसुन्धराको अपनी घर्घर-ध्वनिसे निनादित कर रहा था। वह शत्रुकी सेनाओंका नाशक और अपनी सेनाके योद्धाओंका हर्ष बढ़ानेवाला था॥ १—३$\frac{१}{२}$॥

नरराज श्रीरामचन्द्रजीने सहसा वहाँ आते हुए, विशाल ध्वजसे अलंकृत और घोर घर्घर-ध्वनिसे युक्त राक्षसराज रावणके उस रथको देखा॥ ४$\frac{१}{२}$॥

उसमें काले रंगके घोड़े जुते हुए थे। उसकी कान्ति बड़ी भयंकर थी। वह आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानके समान दृष्टिगोचर होता था॥

उसपर फहराती हुई पताकाएँ विद्युत्‌के समान जान पड़ती थीं। वहाँ जो रावणका धनुष था, उसके द्वारा वह रथ इन्द्रधनुषकी छटा छिटकाता था और बाणोंकी धारावाहिक वृष्टि करता था। इससे वह जलधारावर्षी मेघके समान प्रतीत होता था॥ ६½ ॥

उसकी आवाज ऐसी मालूम होती थी, मानो वज्रके आघातसे किसी पर्वतके फटनेका शब्द हो रहा हो। मेघके समान प्रतीत होनेवाले शत्रुके उस रथको आता देख श्रीरामचन्द्रजीने बड़े वेगसे अपने धनुषपर टंकार दी। उस समय उनका वह धनुष द्वितीयाके चन्द्रमा-जैसा दिखायी देता था। श्रीरामने इन्द्रसारथि मातलिसे कहा— ॥ ७-८½ ॥

'मातले! देखो, मेरे शत्रु रावणका रथ बड़े वेगसे आ रहा है। रावण जिस प्रकार प्रदक्षिणभावसे महान् वेगके साथ पुनः आ रहा है, उससे जान पड़ता है, इसने समरभूमिमें अपने वधका निश्चय कर लिया है॥ ९-१० ॥

'अतः अब तुम सावधान हो जाओ और शत्रुके रथकी ओर आगे बढ़ो। जैसे हवा उमड़े हुए बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालती है, उसी प्रकार आज मैं शत्रुके रथका विध्वंस करना चाहता हूँ॥ ११ ॥

'भय तथा घबराहट छोड़कर मन और नेत्रोंको स्थिर रखते हुए घोड़ोंकी बागडोर काबूमें रखो और रथको तेज चलाओ॥ १२ ॥

'तुम्हें देवराज इन्द्रका रथ हाँकनेका अभ्यास है; अतः तुमको कुछ सिखानेकी आवश्यकता नहीं है। मैं एकाग्रचित्त होकर युद्ध करना चाहता हूँ। इसलिये तुम्हारे कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रहा हूँ। तुम्हें शिक्षा नहीं देता हूँ'॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस वचनसे देवताओंके श्रेष्ठ सारथि मातलिको बड़ा संतोष हुआ और उन्होंने रावणके विशाल रथको दाहिने रखते हुए अपने रथको आगे बढ़ाया। उसके पहियेसे इतनी धूल उड़ी कि रावण उसे देखकर काँप उठा॥ १४-१५ ॥

इससे दशमुख रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर देखता हुआ रथके सामने हुए श्रीरामपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा॥ १६ ॥

उसके इस आक्रमणसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध हुआ। फिर रोषके साथ ही धैर्य धारण करके युद्धस्थलमें उन्होंने इन्द्रका धनुष हाथमें लिया, जो बड़ा ही वेगशाली था॥ १७ ॥

साथ ही सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले महान् वेगशाली बाण भी ग्रहण किये। तत्पश्चात् एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखकर श्रीराम और रावण दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों दर्पसे भरे हुए दो सिंहोंके समान आमने-सामने डटे हुए थे॥ १८ ॥

उस समय रावणके विनाशकी इच्छा रखनेवाले देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि उन दोनोंके द्वैरथ युद्धको देखनेके लिये वहाँ एकत्र हो गये॥ १९ ॥

उस युद्धके समय ऐसे भयंकर उत्पात होने लगे, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे। उनसे रावणके विनाश और श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयकी सूचना मिलती थी॥

मेघ रावणके रथपर रक्तकी वर्षा करने लगे। बड़े वेगसे उठे हुए बवंडर उसकी वामावर्त परिक्रमा करने लगे॥ २१ ॥

जिस-जिस मार्गसे रावणका रथ जाता था, उसी-उसी ओर आकाशमें मँडराता हुआ गीधोंका महान् समुदाय दौड़ा जाता था॥ २२ ॥

असमयमें ही जपा (अड़हुल)-के फूलकी-सी लाल रंगवाली संध्यासे आवृत हुई लङ्कापुरीकी भूमि दिनमें भी जलती हुई-सी दिखायी देती थी॥ २३ ॥

रावणके सामने वज्रपातकी-सी गड़गड़ाहट और बड़ी भारी आवाजके साथ बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं, जो उसके अहितकी सूचना दे रही थीं। उन उत्पातोंने राक्षसोंको विषादमें डाल दिया॥ २४ ॥

रावण जहाँ-जहाँ जाता, वहाँ-वहाँकी भूमि डोलने लगती थी। प्रहार करते हुए राक्षसोंकी भुजाएँ ऐसी निकम्मी हो गयी थीं, मानो उन्हें किन्हींने पकड़ लिया हो॥ २५ ॥

रावणके आगे पड़ी हुई सूर्यदेवकी किरणें पर्वतीय धातुओंके समान लाल, पीले, सफेद और काले रंगकी दिखायी देती थीं॥ २६ ॥

रावणके रोषावेशसे पूर्ण मुखकी ओर देखती और अपने-अपने मुखोंसे आग उगलती हुई गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलती थीं और उनके पीछे झुंड-के-झुंड गीध मड़राते चलते थे॥ २७ ॥

रणभूमिमें धूल उड़ाती वायु राक्षसराज रावणकी आँखें बंद करती हुई प्रतिकूल दिशाकी ओर बह रही थी॥ २८ ॥

उसकी सेनापर सब ओरसे बिना बादलके ही दुःसह एवं कठोर आवाजके साथ भयानक बिजलियाँ गिरीं॥ २९ ॥

समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो गयीं। धूलकी बड़ी भारी वर्षाके कारण आकाशका

दिखायी देना कठिन हो गया॥ ३०॥

भयानक आवाज करनेवाली सैकड़ों दारुण सारिकाएँ आपसमें घोर कलह करती हुई रावणके रथपर गिर पड़ती थीं॥ ३१॥

उसके घोड़े अपने जघनस्थलसे आगकी चिनगारियाँ और नेत्रोंसे आँसू बरसा रहे थे। इस प्रकार वे एक ही साथ आग और पानी दोनों प्रकट करते थे॥ ३२॥

इस तरह बहुत-से दारुण एवं भयंकर उत्पात प्रकट हुए, जो रावणके विनाशकी सूचना दे रहे थे॥ ३३॥

श्रीरामके सामने भी अनेक शकुन प्रकट हुए, जो सब प्रकारसे शुभ, मङ्गलमय तथा विजयके सूचक थे॥

श्रीरघुनाथजी अपनी विजयकी सूचना देनेवाले इन शुभ शकुनोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने रावणको मरा हुआ ही समझा॥ ३५॥

शकुनोंके ज्ञाता भगवान् श्रीराम रणभूमिमें अपनेको प्राप्त होनेवाले शुभ शकुनोंका अवलोकन करके बड़े हर्ष और परम संतोषका अनुभव करने लगे तथा उन्होंने युद्धमें अधिक पराक्रम प्रकट किया॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ छठाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ सर्ग

श्रीराम और रावणका घोर युद्ध

तदनन्तर श्रीराम और रावणमें अत्यन्त क्रूरतापूर्वक महान् द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ, जो समस्त लोकोंके लिये भयंकर था॥ १॥

उस समय राक्षसों और वानरोंकी विशाल सेनाएँ हाथमें हथियार लिये रहनेपर भी निश्चेष्ट खड़ी रहीं—कोई किसीपर प्रहार नहीं करता था॥ २॥

मनुष्य और निशाचर दोनों वीरोंको बलपूर्वक युद्ध करते देख सबके हृदय उन्हींकी ओर खिंच गये; अत: सभी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ३॥

दोनों ओरके सैनिकोंके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे और उनके हाथ युद्धके लिये व्यग्र थे, तथापि उस अद्भुत संग्रामको देखकर उनकी बुद्धि आश्चर्यचकित हो उठी थी; इसलिये वे चुपचाप खड़े थे। एक-दूसरेपर प्रहार नहीं करते थे॥ ४॥

राक्षस रावणकी ओर देख रहे थे और वानर श्रीरघुनाथजीकी ओर। उन सबके नेत्र विस्मित थे; अत: निस्तब्ध खड़ी रहनेके कारण उभय पक्षकी सेनाएँ चित्रलिखित-सी जान पड़ती थीं॥ ५॥

श्रीराम और रावण दोनोंने वहाँ प्रकट होनेवाले निमित्तोंको देखकर उनके भावी फलका विचार करके युद्धविषयक विचारको स्थिर कर लिया था। उन दोनोंमेंसे एक-दूसरेके प्रति अमर्षका भाव दृढ़ हो गया था; इसलिये वे निर्भय-से होकर युद्ध करने लगे॥ ६॥

श्रीरामचन्द्रजीको यह विश्वास था कि मेरी ही जीत होगी और रावणको भी यह निश्चय हो गया था कि मुझे अवश्य ही मरना होगा; अत: वे दोनों युद्धमें अपना सारा पराक्रम प्रकट करके दिखाने लगे॥ ७॥

उस समय पराक्रमी दशाननने क्रोधपूर्वक बाणोंका संधान करके श्रीरघुनाथजीके रथपर फहराती हुई ध्वजाको निशाना बनाया और उन बाणोंको छोड़ दिया॥ ८॥

परंतु उसके चलाये हुए वे बाण इन्द्रके रथकी ध्वजातक न पहुँच सके, केवल रथशक्तिको* छूते हुए धरतीपर गिर पड़े॥ ९॥

तब महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी कुपित होकर अपने धनुषको खींचा और मन-ही-मन रावणके कृत्यका बदला चुकाने—उसके ध्वजको काट गिरानेका विचार किया॥ १०॥

रावणके ध्वजको लक्ष्य करके उन्होंने विशाल सर्पके समान असह्य और अपने तेजसे प्रज्वलित तीखा बाण छोड़ दिया॥ ११॥

तेजस्वी श्रीरामने उस ध्वजकी ओर निशाना साधकर अपना सायक चलाया और वह दशाननके उस ध्वजको काटकर पृथ्वीमें समा गया॥ १२॥

रावणके रथका वह ध्वज कटकर धरतीपर गिर पड़ा। अपने ध्वजका विध्वंस हुआ देख महाबली रावण क्रोधसे जल उठा और अमर्षके कारण विपक्षीको

* रथकी कलशीपरका वह बाँस जिसमें लड़ाईके रथोंकी ध्वजाएँ लगायी जाती थीं। कुछ विद्वानोंने रथशक्तिका अर्थ—रथकी अद्भुत सामर्थ्य किया है। वैसा अर्थ माननेपर यह भाव निकलता है कि रथके अद्भुत प्रभावका अनुभव करके वे बाण ध्वजतक न पहुँचकर पृथ्वीपर ही गिर पड़े।

जलाता हुआ-सा जान पड़ा। वह रोषके वशीभूत होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १३-१४॥

रावणने अपने तेजस्वी बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको घायल करना आरम्भ किया; परंतु वे घोड़े दिव्य थे, इसलिये न तो लड़खड़ाये और न अपने स्थानसे विचलित ही हुए। वे पूर्ववत् स्वस्थचित्त बने रहे, मानो उनपर कमलकी नालोंसे प्रहार किया गया हो॥ १५½ ॥

उन घोड़ोंका घबराहटमें न पड़ना देख रावणका क्रोध और भी बढ़ गया। वह पुनः बाणोंकी वर्षा करने लगा। गदा, चक्र, परिघ, मूसल, पर्वत-शिखर, वृक्ष, शूल, फरसे तथा मायानिर्मित अन्यान्य शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगा। उसने हृदयमें थकावटका अनुभव न करके सहस्त्रों बाण छोड़े॥ १६—१८॥

युद्धस्थलमें अनेक शस्त्रोंकी वह विशाल वर्षा बड़ी भयानक, तुमुल, त्रासजनक और भयंकर कोलाहलसे पूर्ण थी॥ १९॥

वह शस्त्रवर्षा श्रीरामचन्द्रजीके रथको छोड़कर सब ओरसे वानर-सेनाके ऊपर पड़ने लगी। दशमुख रावणने प्राणोंका मोह छोड़कर बाणोंका प्रयोग किया और अपने सायकोंसे वहाँके आकाशको ठसाठस भर दिया॥ २०½ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें रावणको बाण चलानेमें अधिक परिश्रम करते देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हुए-से तीखे बाणोंका संधान किया और उन्हें सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें छोड़ा॥ २१-२२॥

उन बाणोंको देखकर रावणने पुनः अपने बाण बरसाये और आकाशको इतना भर दिया कि उसमें तिल रखनेकी भी जगह नहीं रह गयी। उन दोनोंके द्वारा की गयी चमकीले बाणोंकी वर्षासे वहाँका प्रकाशमान आकाश बाणोंसे बद्ध होकर किसी और ही आकाश-सा प्रतीत होता था॥ २३½ ॥

उनका चलाया हुआ कोई भी बाण लक्ष्यतक पहुँचे बिना नहीं रहता था, लक्ष्यको बेधे या विदीर्ण किये बिना नहीं रुकता था तथा निष्फल भी नहीं होता था। इस तरह युद्धमें शस्त्रवर्षा करते हुए श्रीराम और रावणके बाण जब आपसमें टकराते थे, तब नष्ट होकर पृथ्वीपर गिर जाते थे॥ २४-२५॥

वे दोनों योद्धा दायें-बायें प्रहार करते हुए निरन्तर युद्धमें लगे रहे। उन्होंने अपने भयंकर बाणोंसे आकाशको इस तरह भर दिया कि मानो उसमें साँस लेनेकी भी जगह नहीं रह गयी॥ २६॥

श्रीरामने रावणके घोड़ोंको और रावणने श्रीरामके घोड़ोंको घायल कर दिया। वे दोनों एक-दूसरेके प्रहारका बदला चुकाते हुए परस्पर आघात करते रहे॥ २७॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए उत्तम रीतिसे युद्ध करने लगे। दो घड़ीतक तो उन दोनोंमें ऐसा भयंकर संग्राम हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ २८॥

इस प्रकार युद्धमें लगे हुए श्रीराम तथा रावणको सम्पूर्ण प्राणी चकितचित्तसे निहारने लगे॥ २९॥

उन दोनोंके वे श्रेष्ठ रथ (तथा उसमें बैठे हुए रथी) समरभूमिमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक एक-दूसरेको पीड़ा देने और परस्पर धावा करने लगे॥ ३०॥

एक-दूसरेके वधके प्रयत्नमें लगे हुए वे दोनों वीर बड़े भयानक जान पड़ते थे। उन दोनोंके सारथि कभी रथको चक्कर काटते हुए ले जाते, कभी सीधे मार्गसे दौड़ाते और कभी आगेकी ओर बढ़ाकर पीछेकी ओर लौटाते थे। इस तरह वे दोनों अपने रथको हाँकनेमें विविध प्रकारके ज्ञानका परिचय देने लगे॥ ३१½ ॥

श्रीराम रावणको पीड़ित करने लगे और रावण श्रीरामको पीड़ा देने लगा। इस प्रकार युद्धविषयक प्रवृत्ति और निवृत्तिमें वे दोनों तदनुरूप गतिवेगका आश्रय लेते थे॥ ३२½ ॥

बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए उन दोनों वीरोंके वे श्रेष्ठ रथ जलकी धारा गिराते हुए दो जलधरोंके समान युद्धभूमिमें विचर रहे थे॥ ३३½ ॥

वे दोनों रथ युद्धस्थलमें भाँति-भाँतिकी गतिका प्रदर्शन करनेके बाद फिर आमने-सामने आकर खड़े हो गये॥ ३४½ ॥

उस समय वहाँ खड़े हुए उन दोनों रथोंके युगन्धर (हरसोंकी संधि) युगन्धरसे, घोड़ोंके मुख विपक्षी घोड़ोंके मुखसे तथा पताकाएँ पताकाओंसे मिल गयीं॥

तत्पश्चात् श्रीरामने अपने धनुषसे छूटे हुए चार पैने बाणोंद्वारा रावणके चारों तेजस्वी घोड़ोंको पीछे हटनेके लिये विवश कर दिया॥ ३६½ ॥

घोड़ोंके पीछे हटनेपर दशमुख रावण क्रोधके वशीभूत हो गया और श्रीरामपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ३७½ ॥

बलवान् दशाननके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर भी श्रीरघुनाथजीके चेहरेपर शिकनतक न आयी और न उनके मनमें व्यथा ही हुई॥ ३८½ ॥

तत्पश्चात् रावणने इन्द्रके सारथि मातलिको लक्ष्य

करके वज्रके समान शब्द करनेवाले बाण छोड़े॥ ३९ १/२ ॥

वे महान् वेगशाली बाण युद्धस्थलमें मातलिके शरीरपर पड़कर उन्हें थोड़ा-सा भी मोह या व्यथा न दे सके॥ ४० १/२ ॥

रावणद्वारा मातलिके प्रति आक्रमणसे श्रीरामचन्द्रजीको जैसा क्रोध हुआ, वैसा अपनेपर किये गये आक्रमणसे नहीं हुआ था। अतः उन्होंने बाणोंका जाल-सा बिछाकर अपने शत्रुको युद्धसे विमुख कर दिया॥ ४१ १/२ ॥

वीर रघुनाथजीने शत्रुके रथपर बीस, तीस, साठ, सौ और हजार-हजार बाणोंकी वृष्टि की॥ ४२ १/२ ॥

तब रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावण भी कुपित हो उठा और गदा तथा मूसलोंकी वर्षासे रणभूमिमें श्रीरामको पीड़ा देने लगा॥ ४३ १/२ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें पुनः बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। गदाओं, मूसलों और परिघोंकी आवाजसे तथा बाणोंके पंखोंकी सनसनाती हुई हवासे सातों समुद्र विक्षुब्ध हो उठे॥ ४४-४५ ॥

उन विक्षुब्ध समुद्रोंके पातालतलमें निवास करनेवाले समस्त दानव और सहस्रों नाग व्यथित हो गये॥ ४६ ॥

पर्वतों, वनों और काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी, सूर्यकी प्रभा लुप्त हो गयी और वायुकी गति भी रुक गयी॥ ४७ ॥

देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, किन्नर और बड़े-बड़े नाग सभी चिन्तामें पड़ गये॥ ४८ ॥

सबके मुँहसे यही बात निकलने लगी—'गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो, प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले इन लोकोंकी रक्षा हो और श्रीरघुनाथजी युद्धमें राक्षसराज रावणपर विजय पावें,॥ ४९ ॥

इस प्रकार कहते हुए ऋषियोंसहित वे देवगण श्रीराम और रावणके अत्यन्त भयंकर तथा रोमाञ्चकारी युद्धको देखने लगे॥ ५० ॥

गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय उस अनुपम युद्धको देखकर कहने लगे—'आकाश आकाशके ही तुल्य है, समुद्र समुद्रके ही समान है तथा राम और रावणका युद्ध राम और रावणके युद्धके ही सदृश है'* ऐसा कहते हुए वे सब लोग राम-रावणका युद्ध देखने लगे॥

तदनन्तर रघुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर अपने धनुषपर एक विषधर सर्पके समान बाणका संधान किया और उसके द्वारा जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त रावणका एक सुन्दर मस्तक काट डाला। उसका वह कटा हुआ सिर उस समय पृथ्वीपर गिर पड़ा, जिसे तीनों लोकोंके प्राणियोंने देखा॥

उसकी जगह रावणके वैसा ही दूसरा नया सिर उत्पन्न हो गया। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले शीघ्रकारी श्रीरामने युद्धस्थलमें अपने सायकोंद्वारा रावणका वह दूसरा सिर भी शीघ्र ही काट डाला॥ ५५ १/२ ॥

उसके कटते ही पुनः नया सिर उत्पन्न दिखायी देने लगा, किंतु उसे भी श्रीरामके वज्रतुल्य सायकोंने काट डाला॥ ५६ १/२ ॥

इस प्रकार एक-से तेजवाले उसके सौ सिर काट डाले गये, तथापि उसके जीवनका नाश होनेके लिये उसके मस्तकोंका अन्त होता नहीं दिखायी देता था॥

तदनन्तर कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता वीर श्रीरामचन्द्रजी अनेक प्रकारके बाणोंसे युक्त होनेपर भी इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥

'अहो! मैंने जिन बाणोंसे मारीच, खर और दूषणको मारा, क्रौञ्चवनके गड्ढेमें विराधका वध किया, दण्डकारण्यमें कबन्धको मौतके घाट उतारा, सालवृक्ष और पर्वतोंको विदीर्ण किया, वालीके प्राण लिये और समुद्रको भी क्षुब्ध कर दिया, अनेक बारके संग्राममें परीक्षा करके जिनकी अमोघताका विश्वास कर लिया गया है, वे ही ये मेरे सब सायक आज रावणके ऊपर निस्तेज—कुण्ठित हो गये हैं; इसका क्या कारण हो सकता है?'॥

इस तरह चिन्तामें पड़े होनेपर भी श्रीरघुनाथजी युद्धस्थलमें सतत सावधान रहे। उन्होंने रावणकी छातीपर बाणोंकी झड़ी लगा दी॥ ६२ ॥

तब रथपर बैठे हुए राक्षसराज रावणने भी कुपित होकर रणभूमिमें श्रीरामको गदा और मूसलोंकी वर्षासे पीड़ित करना आरम्भ किया॥ ६३ ॥

उस महायुद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह युद्ध कभी आकाशमें, कभी भूतलपर और कभी-कभी पर्वतके शिखरपर होता था॥ ६४ ॥

देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षसोंके देखते-देखते वह महान् संग्राम सारी रात चलता रहा॥

श्रीराम और रावणका वह युद्ध न रातमें बंद होता था और न दिनमें। दो घड़ी अथवा एक क्षणके लिये भी उसका विराम नहीं हुआ॥ ६६ ॥

* 'गगनं गगनाकारं'से 'रामरावणयोरिव' तकके श्लोकमें अनन्वयालङ्कार है। जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेयरूपसे कही जाय, दूसरी कोई उपमा न मिल सके, वहाँ अनन्वयालङ्कार होता है।

एक ओर दशरथकुमार श्रीराम थे और दूसरी ओर राक्षसराज रावण। उन दोनोंमेंसे श्रीरघुनाथजीकी युद्धमें विजय होती न देख देवराजके सारथि महात्मा मातलिने युद्धपरायण श्रीरामसे शीघ्रतापूर्वक कहा—॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा रावणका वध

मातलिने श्रीरघुनाथजीको कुछ याद दिलाते हुए कहा—'वीरवर! आप अनजानकी तरह क्यों इस राक्षसका अनुसरण कर रहे हैं? (यह जो अस्त्र चलाता है, उसके निवारण करनेवाले अस्त्रका प्रयोगमात्र करके रह जाते हैं)॥ १॥

'प्रभो! आप इसके वधके लिये ब्रह्माजीके अस्त्रका प्रयोग कीजिये। देवताओंने इसके विनाशका जो समय बताया है, वह अब आ पहुँचा है'॥ २॥

मातलिके इस वाक्यसे श्रीरामचन्द्रजीको उस अस्त्रका स्मरण हो आया। फिर तो उन्होंने फुफकारते हुए सर्पके समान एक तेजस्वी बाण हाथमें लिया॥ ३॥

यह वही बाण था, जिसे पहले शक्तिशाली भगवान् अगस्त्य ऋषिने रघुनाथजीको दिया था। वह विशाल बाण ब्रह्माजीका दिया हुआ था और युद्धमें अमोघ था॥

अमित तेजस्वी ब्रह्माजीने पहले इन्द्रके लिये उस बाणका निर्माण किया था और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले देवेन्द्रको ही पूर्वकालमें अर्पित किया था॥ ५॥

उस बाणके वेगमें वायुकी, धारमें अग्नि और सूर्यकी, शरीरमें आकाशकी तथा भारीपनमें मेरु और मन्दराचलकी प्रतिष्ठा की गयी थी॥ ६॥

वह सम्पूर्ण भूतोंके तेजसे बनाया गया था। उससे सूर्यके समान ज्योति निकलती रहती थी। वह सुवर्णसे भूषित, सुन्दर पंखसे युक्त, स्वरूपसे जाज्वल्यमान, प्रलयकालकी धूमयुक्त अग्निके समान भयंकर, दीप्तिमान्, विषधर सर्पके समान विषैला, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको विदीर्ण कर डालनेवाला तथा शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यका भेदन करनेवाला था॥ ७-८॥

बड़े-बड़े दरवाजों, परिघों तथा पर्वतोंको भी तोड़-फोड़ देनेकी उसमें शक्ति थी। उसका सारा शरीर नाना प्रकारके रक्तमें नहाया और चर्बीसे परिपुष्ट हुआ था। देखनेमें भी वह बड़ा भयंकर था। वज्रके समान कठोर, महान् शब्दसे युक्त, अनेकानेक युद्धोंमें शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाला, सबको त्रास देनेवाला तथा फुफकारते हुए सर्पके समान भयंकर था। युद्धमें वह यमराजका भयावह रूप धारण कर लेता था। समरभूमिमें कौए, गीध, बगुले, गीदड़ तथा पिशाचोंको वह सदा भक्ष्य प्रदान करता था॥ ९—११॥

वह सायक वानर-यूथपतियोंको आनन्द देनेवाला तथा राक्षसोंको दु:खमें डालनेवाला था। गरुड़के सुन्दर विचित्र और नाना प्रकारके पंख लगाकर वह पंखयुक्त बना हुआ था॥ १२॥

वह उत्तम बाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकुवंशियोंके भयका नाशक था, शत्रुओंकी कीर्तिका अपहरण तथा अपने हर्षकी वृद्धि करनेवाला था। उस महान् सायकको वेदोक्त विधिसे अभिमन्त्रित करके महाबली श्रीरामने अपने धनुषपर रखा॥ १३-१४॥

श्रीरघुनाथजी जब उस उत्तम बाणका संधान करने लगे, तब सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और धरती डोलने लगी॥ १५॥

श्रीरामने अत्यन्त कुपित हो बड़े यत्नके साथ धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर उस मर्मभेदी बाणको रावणपर चला दिया॥ १६॥

वज्रधारी इन्द्रके हाथोंसे छूटे हुए वज्रके समान दुर्धर्ष और कालके समान अनिवार्य वह बाण रावणकी छातीपर जा लगा॥ १७॥

शरीरका अन्त कर देनेवाले उस महान् वेगशाली श्रेष्ठ बाणने छूटते ही दुरात्मा रावणके हृदयको विदीर्ण कर डाला॥ १८॥

शरीरका अन्त करके रावणके प्राण हर लेनेवाला वह बाण उसके खूनसे रँगकर वेगपूर्वक धरतीमें समा गया॥

इस प्रकार रावणका वध करके खूनसे रँगा हुआ वह शोभाशाली बाण अपना काम पूरा करनेके पश्चात् पुन: विनीत सेवककी भाँति श्रीरामचन्द्रजीके तरकसमें लौट आया॥ २०॥

श्रीरामके बाणोंकी चोट खाकर रावण जीवनसे हाथ धो बैठा। उसके प्राण निकलनेके साथ ही हाथसे सायकसहित धनुष भी छूटकर गिर पड़ा॥ २१॥

वह भयानक वेगशाली महातेजस्वी राक्षसराज प्राणहीन हो वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २२॥

रावणको पृथ्वीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए सम्पूर्ण निशाचर स्वामीके मारे जानेसे भयभीत हो सब ओर भाग गये॥ २३॥

दशमुख रावणका वध हुआ देख विजयसे सुशोभित होनेवाले वानर, जो वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले थे, गर्जना करते हुए उन राक्षसोंपर टूट पड़े॥ २४॥

उन हर्षोल्लासित वानरोंद्वारा पीड़ित किये जानेपर वे राक्षस भयके मारे लङ्कापुरीकी ओर भाग गये; क्योंकि उनका आश्रय नष्ट हो गया था। उनके मुखपर करुणायुक्त आँसुओंकी धारा बह रही थी॥ २५॥

उस समय वानर विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित हो अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा श्रीरघुनाथजीकी विजय और रावणके वधकी घोषणा करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ २६॥

इसी समय आकाशमें मधुर स्वरसे देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। वायु दिव्य सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी॥ २७॥

अन्तरिक्षसे भूतलपर श्रीरघुनाथजीके रथके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, जो दुर्लभ तथा मनोहर थी॥

आकाशमें महामना देवताओंके मुखसे निकली हुई श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिसे युक्त साधुवादकी श्रेष्ठ वाणी सुनायी देने लगी॥ २९॥

सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले रौद्र राक्षस रावणके मारे जानेपर देवताओं और चारणोंको महान् हर्ष हुआ॥ ३०॥

श्रीरघुनाथजीने राक्षसराजको मारकर सुग्रीव, अङ्गद तथा विभीषणको सफलमनोरथ किया और स्वयं भी उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३१॥

तत्पश्चात् देवताओंको बड़ी शान्ति मिली, सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं—उनमें प्रकाश छा गया, आकाश निर्मल हो गया, पृथ्वीका काँपना बंद हुआ, हवा स्वाभाविक गतिसे चलने लगी तथा सूर्यकी प्रभा भी स्थिर हो गयी॥ ३२॥

सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा लक्ष्मण अपने सुहृदोंके साथ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीकी विजयसे बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद उन सबने मिलकर नयनाभिराम श्रीरामकी विधिवत् पूजा की॥ ३३॥

शत्रुको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके पश्चात् स्वजनोंसहित सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी रघुकुलराजकुमार श्रीराम रणभूमिमें देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पाने लगे॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०८॥

एक सौ नवाँ सर्ग

विभीषणका विलाप और श्रीरामका उन्हें समझाकर रावणके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये आदेश देना

पराजित हुए भाईको मरकर रणभूमिमें पड़ा देख विभीषणका हृदय शोकके वेगसे व्याकुल हो गया और वे विलाप करने लगे—॥ १॥

'हा विख्यात पराक्रमी वीर भाई दशानन! हा कार्यकुशल नीतिज्ञ! तुम तो सदा बहुमूल्य बिछौनोंपर सोया करते थे, आज इस तरह मारे जाकर भूमिपर क्यों पड़े हो?॥

'हे वीर! तुम्हारी ये बाजूबंदसे विभूषित दोनों विशाल भुजाएँ निश्चेष्ट हो गयी हैं। तुम इन्हें फैलाकर क्यों पड़े हुए हो? तुम्हारे माथेका मुकुट जो सूर्यके समान तेजस्वी है, यहाँ फेंका पड़ा है॥ ३॥

'वीरवर! आज तुम्हारे ऊपर वही संकट आकर पड़ा है, जिसके लिये मैंने तुम्हें पहलेसे ही आगाह कर दिया था; किंतु उस समय काम और मोहके वशीभूत होनेके कारण तुम्हें मेरी बातें नहीं रुची थीं॥ ४॥

'अहङ्कारके कारण न तो प्रहस्तने, न इन्द्रजित्ने, न दूसरे लोगोंने, न अतिरथी कुम्भकर्णने, न अतिकायने, न नरान्तकने और न स्वयं तुमने ही मेरी बातोंको अधिक महत्त्व दिया था, उसीका फल यह सामने आया है॥

'आज शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इस वीर रावणके धराशायी होनेसे सुन्दर नीतिपर चलनेवाले लोगोंकी मर्यादा टूट गयी' धर्मका मूर्तिमान् विग्रह चला गया, सत्त्व (बल)-के संग्रहका स्थान नष्ट हो गया, सुन्दर हाथ चलानेवाले वीरोंका सहारा चला गया, सूर्य पृथ्वीपर गिर पड़ा, चन्द्रमा अँधेरेमें डूब गया, प्रज्वलित आग बुझ गयी और सारा उत्साह निरर्थक हो गया॥ ६-७॥

'रणभूमिकी धूलमें राक्षसशिरोमणि रावणके सो

जानेसे इस लोकका आधार और बल समाप्त हो गया। अब यहाँ क्या शेष रह गया?॥ ८॥

'हाय! धैर्य ही जिसके पत्ते थे, हठ ही सुन्दर फूल था, तपस्या ही बल और शौर्य ही मूल था, उस राक्षसराज रावणरूपी महान् वृक्षको आज रणभूमिमें श्रीराघवेन्द्ररूपी प्रचण्ड वायुने रौंद डाला!॥ ९॥

'तेज ही जिसके दाँत थे, वंशपरम्परा ही पृष्ठभाग थी, क्रोध ही नीचेके (पैर आदि) अङ्ग थे और प्रसाद ही शुण्ड-दण्ड था, वह रावणरूपी गन्धहस्ती आज इक्ष्वाकुवंशी श्रीरामरूपी सिंहके द्वारा शरीरके विदीर्ण कर दिये जानेसे सदाके लिये पृथ्वीपर सो गया है!॥

'पराक्रम और उत्साह जिसकी बढ़ती हुई ज्वालाओंके समान थे, निःश्वास ही धूम था और अपना बल ही प्रताप था, उस राक्षस रावणरूपी प्रतापी अग्निको इस समय युद्धस्थलमें श्रीरामरूपी मेघने बुझा दिया!॥ ११॥

'राक्षस सैनिक जिसकी पूँछ, ककुद् और सींग थे, जो शत्रुओंपर विजय पानेवाला था तथा पराक्रम और उत्साह आदि प्रकट करनेमें जो वायुके समान था, चपलतारूपी आँख तथा कानसे युक्त वह राक्षसराज रावणरूपी साँड़ महाराज श्रीरामरूपी व्याघ्रद्वारा मारा जाकर नष्ट हो गया!'॥ १२॥

जिससे अर्थनिश्चय प्रकट हो रहा था, ऐसी युक्तिसंगत बात कहते हुए शोकमग्न विभीषणसे उस समय भगवान् श्रीरामने कहा—॥ १३॥

'विभीषण! यह रावण समराङ्गणमें असमर्थ होकर नहीं मारा गया है। इसने प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया है, इसका उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था। इसे मृत्युसे कोई भय नहीं था। यह दैवात् रणभूमिमें धराशायी हुआ है॥ १४॥

'जो लोग अपने अभ्युदयकी इच्छासे क्षत्रियधर्ममें स्थित हो समराङ्गणमें मारे जाते हैं, इस तरह नष्ट होनेवाले लोगोंके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये॥

'जिस बुद्धिमान् वीरने इन्द्रसहित तीनों लोकोंको युद्धमें भयभीत कर रखा था, वही यदि इस समय कालके अधीन हो गया तो उसके लिये शोक करनेका अवसर नहीं है॥ १६॥

'युद्धमें किसीको सदा विजय-ही-विजय मिले, ऐसा पहले भी कभी नहीं हुआ है। वीर पुरुष संग्राममें या तो शत्रुओंद्वारा मारा जाता है या स्वयं ही शत्रुओंको मार गिराता है॥ १७॥

'आज रावणको जो गति प्राप्त हुई है, यह पूर्वकालके महापुरुषोंद्वारा बतायी गयी उत्तम गति है। क्षात्र-वृत्तिका आश्रय लेनेवाले वीरोंके लिये तो यह बड़े आदरकी वस्तु है। क्षत्रिय-वृत्तिसे रहनेवाला वीर पुरुष यदि युद्धमें मारा गया हो तो वह शोकके योग्य नहीं है; यही शास्त्रका सिद्धान्त है॥ १८॥

'शास्त्रके इस निश्चयपर विचार करके सात्त्विक बुद्धिका आश्रय ले तुम निश्चिन्त हो जाओ और अब आगे जो कुछ (प्रेत-संस्कार आदि) कार्य करना हो, उसके सम्बन्धमें विचार करो'॥ १९॥

परम पराक्रमी राजकुमार श्रीरामके ऐसा कहनेपर शोकसंतप्त हुए विभीषणने उनसे अपने भाईके लिये हितकर बात कही—॥ २०॥

'भगवन्! पूर्वकालमें युद्धके अवसरोंपर समस्त देवताओं तथा इन्द्रने भी जिसे कभी पीछे नहीं हटाया था, वही रावण आज रणभूमिमें आपसे टक्कर लेकर उसी तरह शान्त हो गया, जैसे समुद्र अपनी तट-भूमितक जाकर शान्त हो जाता है॥ २१॥

'इसने याचकोंको दान दिये, भोग भोगे और भृत्योंका भरण-पोषण किया है। मित्रोंको धन अर्पित किये और शत्रुओंसे वैरका बदला लिया॥ २२॥

'यह रावण अग्निहोत्री, महातपस्वी, वेदान्तवेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मोंमें श्रेष्ठ शूर—परम कर्मठ रहा है। अब यह प्रेतभावको प्राप्त हुआ है, अतः अब मैं ही आपकी कृपासे इसका प्रेत-कृत्य करना चाहता हूँ'॥

विभीषणके करुणाजनक वचनोंद्वारा अच्छी तरह समझाये जानेपर उदारचेता राजकुमार महात्मा श्रीरामने उन्हें रावणके लिये स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति करानेवाला अन्त्येष्टि-कर्म करनेकी आज्ञा दी॥ २४॥

वे बोले—'विभीषण! वैर जीवन-कालतक ही रहता है। मरनेके बाद उस वैरका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, अतः अब तुम इसका संस्कार करो। इस समय यह जैसे तुम्हारे स्नेहका पात्र है, उसी तरह मेरा भी स्नेहभाजन है'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०९॥

एक सौ दसवाँ सर्ग

रावणकी स्त्रियोंका विलाप

महात्मा श्रीरघुनाथजीके द्वारा रावणके मारे जानेका समाचार सुनकर शोकसे व्याकुल हुई राक्षसियाँ अन्त:पुरसे निकल पड़ीं॥ १॥

लोगोंके बारम्बार मना करनेपर भी वे धरतीकी धूलमें लोटने लगती थीं। उनके केश खुले हुए थे और जिनके बछड़े मर गये हों, उन गौओंके समान वे शोकसे आतुर हो रही थीं॥ २॥

राक्षसोंके साथ लङ्काके उत्तर दरवाजेसे निकलकर भयंकर युद्धभूमिमें प्रवेश करके वे अपने मरे हुए पतिको खोजने लगीं॥ ३॥

'हा आर्यपुत्र! हा नाथ!' की पुकार मचाती हुई वे सब-की-सब उस रणभूमिमें जहाँ बिना मस्तकके लाशें बिछी हुई थीं तथा रक्तकी कीच जम गयी थी, सब ओर गिरती-पड़ती भटकने लगीं॥ ४॥

उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे पतिके शोकसे बेसुध हो यूथपतिके मारे जानेपर हथिनियोंकी तरह करुण-क्रन्दन कर रही थीं॥ ५॥

उन्होंने महाकाय, महापराक्रमी और महातेजस्वी रावणको देखा, जो काले कोयलेके ढेर-सा पृथ्वीपर मरा पड़ा था॥ ६॥

रणभूमिकी धूलमें पड़े हुए अपने मृतक पतिपर सहसा दृष्टि पड़ते ही वे कटी हुई वनकी लताओंके समान उसके अङ्गोंपर गिर पड़ीं॥ ७॥

उनमेंसे कोई तो बड़े आदरके साथ उसका आलिङ्गन करके, कोई पैर पकड़कर और कोई गलेसे लगकर रोने लगीं॥ ८॥

कोई स्त्री अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठा पछाड़ खाकर गिरी और धरतीपर लोटने लगी तथा कोई मरे हुए स्वामीका मुख देखकर मूर्च्छित हो गयी॥ ९॥

कोई पतिका मस्तक गोदमें लेकर उसका मुँह निहारती और ओसकणोंसे कमलकी भाँति अश्रु-बिन्दुओंसे पतिके मुखारविन्दको नहलाती हुई रोदन करने लगी॥ १०॥

इस प्रकार अपने पतिदेवता रावणको धरतीपर मरकर गिरा देख वे सब-की-सब आर्तभावसे उसे पुकारने लगीं और शोकके कारण नाना प्रकारसे विलाप करने लगीं॥ ११॥

वे बोलीं—'हाय! जिन्होंने यमराज और इन्द्रको भी भयभीत कर रखा था, राजाधिराज कुबेरका पुष्पक विमान छीन लिया था तथा गन्धर्वों, ऋषियों और महामनस्वी देवताओंको भी रणभूमिमें भय प्रदान किया था, वे ही हमारे प्राणनाथ आज इस समराङ्गणमें मारे जाकर सदाके लिये सो गये हैं॥ १२-१३॥

'हाय! जो असुरों, देवताओं तथा नागोंसे भी भयभीत होना नहीं जानते थे, उन्हींको आज मनुष्यसे यह भय प्राप्त हो गया॥ १४॥

'जिन्हें देवता, दानव और राक्षस भी नहीं मार सकते थे, वे ही आज एक पैदल मनुष्यके हाथसे मारे जाकर रणभूमिमें सो रहे हैं॥ १५॥

'जो देवताओं, असुरों तथा यक्षोंके लिये भी अवध्य थे, वे ही किसी निर्बल प्राणीके समान एक मनुष्यके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुए'॥ १६॥

इस तरहकी बातें कहती हुई रावणकी वे दु:खिनी स्त्रियाँ वहाँ फूट-फूटकर रोने लगीं तथा दु:खसे आतुर होकर पुन: बारम्बार विलाप करने लगीं॥ १७॥

वे बोलीं—'प्राणनाथ! आपने सदा हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंकी बातें अनसुनी कर दीं और अपनी मृत्युके लिये सीताका अपहरण किया। इसका फल यह हुआ कि ये राक्षस मार गिराये गये तथा आपने इस समय अपनेको रणभूमिमें और हमलोगोंको महान् दु:खके समुद्रमें गिरा दिया॥ १८॥

'आपके प्रिय भाई विभीषण आपको हितकी बात बता रहे थे तो भी आपने अपने वधके लिये उन्हें मोहवश कटु वचन सुनाये। उसीका यह फल प्रत्यक्ष दिखायी दिया है॥ १९॥

'यदि आपने मिथिलेशकुमारी सीताको श्रीरामके पास लौटा दिया होता तो जड़-मूलसहित हमारा विनाश करनेवाला यह महाघोर संकट हमपर न आता॥ २०॥

'सीताको लौटा देनेपर आपके भाई विभीषणका भी मनोरथ सफल हो जाता, श्रीराम हमारे मित्र-पक्षमें आ जाते, हम सबको विधवा नहीं होना पड़ता और हमारे शत्रुओंकी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं॥ २१॥

'परंतु आप ऐसे निष्ठुर निकले कि सीताको बलपूर्वक कैद कर लिया तथा राक्षसोंको, हम स्त्रियोंको और अपने-आपको—तीनोंको भी एक साथ नीचे गिरा दिया—विपत्तिमें डाल दिया॥ २२॥

'राक्षसशिरोमणे! आपका स्वेच्छाचार ही हमारे विनाशमें कारण हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। दैव ही सब कुछ कराता है। दैवका मारा हुआ ही मारा जाता या मरता है॥ २३॥

'महाबाहो! इस युद्धमें वानरोंका, राक्षसोंका और आपका भी विनाश दैवयोगसे ही हुआ है॥ २४॥

'संसारमें फल देनेके लिये उन्मुख हुए दैवके विधानको कोई धनसे, कामनासे, पराक्रमसे, आज्ञासे अथवा शक्तिसे भी नहीं पलट सकता'॥ २५॥

इस प्रकार राक्षसराजकी सभी स्त्रियाँ दु:खसे पीड़ित हो आँखोंमें आँसू भरकर दीनभावसे कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके शवका दाहसंस्कार

उस समय विलाप करती हुई उन राक्षसियोंमें जो रावणकी ज्येष्ठ एवं प्यारी पत्नी मन्दोदरी थी, उसने अचिन्त्यकर्मा भगवान् श्रीरामके द्वारा मारे गये अपने पति दशमुख रावणको देखा। पतिको उस अवस्थामें देखकर वह वहाँ अत्यन्त दीन एवं दु:खी हो गयी और इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १-२॥

'महाराज कुबेरके छोटे भाई! महाबाहु राक्षसराज! जब आप क्रोध करते थे, उस समय इन्द्र भी आपके सामने खड़े होनेमें भय खाते थे॥ ३॥

'बड़े-बड़े ऋषि, यशस्वी गन्धर्व और चारण भी आपके डरसे चारों दिशाओंमें भाग गये थे॥ ४॥

'वही आप आज युद्धमें एक मानवमात्र रामसे परास्त हो गये। राजन्! क्या आपको इससे लज्जा नहीं आती है? राक्षसेश्वर! बोलिये तो सही, यह क्या बात है?॥

'आपने तीनों लोकोंको जीतकर अपनेको सम्पत्तिशाली और पराक्रमी बनाया था। आपके वेगको सह लेना किसीके लिये सम्भव नहीं था; फिर आप-जैसे वीरको एक वनवासी मनुष्यने कैसे मार डाला?॥ ६॥

'आप ऐसे देशमें विचरते थे, जहाँ मनुष्योंकी पहुँच नहीं हो सकती थी। आप इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ थे तो भी युद्धमें रामके हाथसे आपका विनाश हुआ; यह सम्भव अथवा विश्वासके योग्य नहीं जान पड़ता॥

'युद्धके मुहानेपर सब ओरसे विजय पानेवाले आपकी श्रीरामके द्वारा जो पराजय हुई, यह श्रीरामका काम है—ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता (जब कि आप उन्हें निरा मनुष्य समझते रहे)॥ ८॥

'अथवा साक्षात् काल ही अतर्कित माया रचकर आपके विनाशके लिये श्रीरामके रूपमें यहाँ आ पहुँचा था॥ ९॥

'महाबली वीर! अथवा यह भी सम्भव है कि साक्षात् इन्द्रने आपपर आक्रमण किया हो; परंतु इन्द्रकी क्या शक्ति है जो युद्धमें वे आपकी ओर आँख उठाकर देख भी सकें; क्योंकि आप महाबली, महापराक्रमी और महातेजस्वी देवशत्रु थे॥ १०½॥

'निश्चय ही ये श्रीरामचन्द्रजी महान् योगी एवं सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। ये महान्‌से भी महान्, अज्ञानान्धकारसे परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं, जो अपने हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं, जिनके वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है, भगवती लक्ष्मी जिनका कभी साथ नहीं छोड़तीं, जिन्हें परास्त करना सर्वथा असम्भव है तथा जो नित्य स्थिर एवं सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर हैं, उन सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने ही समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे मनुष्यका रूप धारण करके वानररूपमें प्रकट हुए सम्पूर्ण देवताओंके साथ आकर राक्षसोंसहित आपका वध किया है; क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और समस्त संसारके लिये भयंकर थे॥ ११—१४½॥

'नाथ! पहले आपने अपनी इन्द्रियोंको जीतकर ही तीनों लोकोंपर विजय पायी थी, उस वैरको याद रखती हुई-सी इन्द्रियोंने ही अब आपको परास्त किया है॥

'जब मैंने सुना कि जनस्थानमें बहुतेरे राक्षसोंसे घिरे होनेपर भी आपके भाई खरको श्रीरामने मार डाला है, तभी मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामचन्द्रजी कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं॥ १६½॥

'जिस लङ्का नगरीमें देवताओंका भी प्रवेश होना कठिन था, वहीं जब हनुमान्‌जी बलपूर्वक घुस आये, उसी समय हमलोग भावी अनिष्टकी आशङ्कासे व्यथित हो उठी थीं॥ १७½॥

'मैंने बारम्बार कहा—प्राणनाथ! आप रघुनाथजीसे

वैर-विरोध न कीजिये; परंतु आपने मेरी बात नहीं मानी। उसीका आज यह फल मिला है॥ १८½ ॥

'राक्षसराज! आपने अपने ऐश्वर्यका, शरीरका तथा स्वजनोंका विनाश करनेके लिये ही अकस्मात् सीताकी कामना की थी॥ १९½ ॥

'दुर्मते! भगवती सीता अरुन्धती और रोहिणीसे भी बढ़कर पतिव्रता हैं। वे वसुधाकी भी वसुधा और श्रीकी भी श्री हैं। अपने स्वामीके प्रति अनन्य अनुराग रखनेवाली और सबकी पूजनीया उन सीतादेवीका तिरस्कार करके आपने बड़ा अनुचित कार्य किया था॥

'मेरे प्राणनाथ! सर्वाङ्गसुन्दरी शुभलक्षणा सीता निर्जन वनमें निवास करती थीं। आप छलसे उन्हें दुःखमें डालकर यहाँ हर लाये। यह आपके लिये बड़े कलङ्ककी बात हुई। मिथिलेशकुमारीके साथ समागमके लिये जो आपके मनमें कामना थी, उसे तो आप पा नहीं सके, उलटे उन पतिव्रता देवीकी तपस्यासे जलकर भस्म हो गये। अवश्य ऐसी ही बात हुई है॥ २२-२३ ॥

'तन्वङ्गी सीताका अपहरण करते समय ही आप जलकर राख नहीं हो गये—यही आश्चर्यकी बात है। आपकी जिस महिमासे इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता आपसे डरते थे, उसीने उस समय आपको दग्ध नहीं होने दिया॥ २४॥

'प्राणवल्लभ! इसमें कोई संदेह नहीं कि समय आनेपर कर्ताको उसके पाप-कर्मका फल अवश्य मिलता है॥ २५ ॥

'शुभकर्म करनेवालेको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और पापीको पापका फल—दुःख भोगना पड़ता है। विभीषणको अपने शुभ कर्मोंके कारण ही सुख प्राप्त हुआ है और आपको ऐसा दुःख भोगना पड़ा है॥ २६ ॥

'आपके घरमें सीतादेवीसे भी अधिक सुन्दर रूपवाली दूसरी युवतियाँ मौजूद हैं; परंतु आप कामके वशीभूत हो मोहवश इस बातको समझ नहीं पाते थे॥

'मिथिलेशकुमारी सीता न तो कुलमें, न रूपमें और न दाक्षिण्य आदि गुणोंमें ही मुझसे बढ़कर हैं। वे मेरे बराबर भी नहीं हैं; परंतु आप मोहवश इस बातकी ओर नहीं ध्यान देते थे॥ २८॥

'संसारमें कभी किसी भी प्राणीकी मृत्यु अकारण नहीं होती है। इस नियमके अनुसार मिथिलेशकुमारी सीता आपकी मृत्युका कारण बन गयीं॥ २९॥

'आपने सीताके कारण होनेवाली मृत्युको स्वयं ही दूरसे बुला लिया। मिथिलेशनन्दिनी सीता अब शोकरहित हो श्रीरामके साथ विहार करेंगी; परंतु मेरा पुण्य बहुत थोड़ा था, इसलिये वह जल्दी समाप्त हो गया और मैं शोकके घोर समुद्रमें गिर पड़ी॥ ३०½ ॥

'वीर! जो मैं विचित्र वस्त्राभूषण धारण करके अनुपम शोभासे सम्पन्न हो मनके अनुरूप विमानद्वारा आपके साथ कैलास, मन्दराचल, मेरुपर्वत, चैत्ररथवन तथा सम्पूर्ण देवोद्यानोंमें विहार करती हुई नाना प्रकारके देशोंको देखती फिरती थी, वही मैं आज आपका वध हो जानेसे समस्त कामभोगोंसे वञ्चित हो गयी॥ ३१—३३ ॥

'मैं वही रानी मन्दोदरी हूँ, किंतु आज दूसरी स्त्रीके समान हो गयी हूँ। राजाओंकी चञ्चल राजलक्ष्मीको धिक्कार है! हा राजन्! आपका जो सुकुमार मुखमण्डल सुन्दर भौंहों, मनोहर त्वचा और ऊँची नासिकासे युक्त था, कान्ति, शोभा और तेजके द्वारा जो क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य और कमलको लज्जित करता था, किरीटोंके समूह जिसे जगमग बनाये रहते थे, जिसके अधर ताँबेके समान लाल थे, जिसमें दीप्तिमान् कुण्डल दमकते रहते थे, पान-भूमिमें जिसके नेत्र नशेसे व्याकुल और चञ्चल देखे जाते थे, जो नाना प्रकारके गजरे धारण करता था, मनोहर और सुन्दर था तथा मुसकराकर मीठी-मीठी बातें किया करता था, वही आपका मुखारविन्द आज शोभा नहीं पा रहा है। प्रभो! वह श्रीरामके सायकोंसे विदीर्ण हो खूनकी धारासे रँग गया है। इसका मेदा और मस्तिष्क छिन्न-भिन्न हो गया है तथा रथकी धूलोंसे इसमें रूक्षता आ गयी है॥ ३४—३७½ ॥

'हाय! मुझ मन्दभागिनीने कभी जिसके विषयमें सोचातक नहीं था, वही मुझे वैधव्यका दुःख प्रदान करनेवाली अन्तिम अवस्था (मृत्यु) आपको प्राप्त हो गयी॥ ३८½ ॥

'दानवराज मय मेरे पिता, राक्षसराज रावण मेरे पति और इन्द्रपर भी विजय प्राप्त करनेवाला इन्द्रजित् मेरा पुत्र है—यह सोचकर मैं अत्यन्त गर्वसे भरी रहती थी॥

'मेरी यह दृढ़ धारणा बनी हुई थी कि मेरे रक्षक ऐसे लोग हैं जो दर्पसे भरे हुए शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ, क्रूर, विख्यात बल और पौरुषसे सम्पन्न तथा किसीसे भी भयभीत नहीं होनेवाले हैं॥ ४०½ ॥

'राक्षसशिरोमणियो! ऐसे प्रभावशाली तुमलोगोंको यह मनुष्यसे अज्ञात भय किस प्रकार प्राप्त हुआ?॥

'जो चिकने इन्द्रनील-मणिके समान श्याम, ऊँचे शैल-शिखरके समान विशाल तथा केयूर, अङ्गद, नीलम

और मोतियोंके हार एवं फूलोंकी मालाओंसे सुसज्जित होनेके कारण अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था, विहार-स्थलोंमें अधिक कान्तिमान् तथा संग्राम-भूमियोंमें अतिशय दीप्तिमान् प्रतीत होता था और आभूषणोंकी प्रभासे जिसकी विद्युन्मालामण्डित मेघकी-सी शोभा होती थी, वही आपका शरीर आज अनेक तीखे बाणोंसे भरा हुआ है; अतः यद्यपि आजसे फिर इसका स्पर्श मेरे लिये दुर्लभ हो जायगा, तथापि इन बाणोंके कारण मैं इसका आलिङ्गन नहीं कर पाती हूँ॥ ४२—४४½ ॥

'राजन्! जैसे साहीकी देह काँटोंसे भरी होती है, उसी प्रकार आपके शरीरमें इतने बाण लगे हैं कि कहीं एक अंगुल भी जगह नहीं रह गयी है। वे सभी बाण मर्म-स्थानोंमें धँस गये हैं और उनसे शरीरका स्नायु-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया है। इस अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा हुआ आपका यह श्याम शरीर, जिसपर रक्तकी अरुण छटा छा रही है, वज्रकी मारसे चूर-चूर होकर बिखरे हुए पर्वतके समान जान पड़ता है॥

'नाथ! यह स्वप्न है या सत्य। हाय! आप श्रीरामके हाथसे कैसे मारे गये? आप तो मृत्युकी भी मृत्यु थे; फिर स्वयं ही मृत्युके अधीन कैसे हो गये?॥

'आपने तीनों लोकोंकी सम्पत्तिका उपभोग किया और त्रिलोकीके प्राणियोंको महान् उद्वेगमें डाल दिया था। आप लोकपालोंपर भी विजय पा चुके थे। आपने कैलास-पर्वतके साथ ही भगवान् शङ्करको भी उठा लिया था तथा बड़े-बड़े अभिमानी वीरोंको युद्धमें बंदी बनाकर अपने पराक्रमको प्रकट किया था॥ ४८-४९ ॥

'आपने समस्त संसारको क्षोभमें डाला, साधु पुरुषोंकी हिंसा की और शत्रुओंके समीप बलपूर्वक अहंकारपूर्ण बातें कहीं॥ ५० ॥

'भयानक पराक्रम करनेवाले विपक्षियोंको मारकर अपने पक्षके लोगों और सेवकोंकी रक्षा की। दानवोंके सरदारों और हजारों यक्षोंको भी मौतके घाट उतारा॥ ५१ ॥

'आपने समराङ्गणमें निवातकवच नामक दानवोंका भी दमन किया, बहुत-से यज्ञ नष्ट कर डाले तथा आत्मीय जनोंकी सदा ही रक्षा की॥ ५२ ॥

'आप धर्मकी व्यवस्थाको तोड़नेवाले तथा संग्राममें मायाकी सृष्टि करनेवाले थे। देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी कन्याओंको इधर-उधरसे हर लाते थे॥ ५३ ॥

'आप शत्रुकी स्त्रियोंको शोक प्रदान करनेवाले, स्वजनोंके नेता, लङ्कापुरीके रक्षक, भयानक कर्म करनेवाले तथा हम सब लोगोंको कामोपभोगका सुख देनेवाले थे। ऐसे प्रभावशाली तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अपने प्रियतम पतिको श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा धराशायी किया गया देखकर भी जो मैं अबतक इस शरीरको धारण कर रही हूँ, प्रियतमके मारे जानेपर भी जी रही हूँ—यह मेरी पाषाणहृदयताका परिचायक है॥ ५४-५५½ ॥

'राक्षसराज! आप तो बहुमूल्य पलंगोंपर शयन करते थे, फिर यहाँ धरतीपर धूलिमें लिपटे हुए क्यों सो रहे हैं?॥ ५६½ ॥

'जब लक्ष्मणने युद्धमें मेरे बेटे इन्द्रजित्‌को मारा था, उस समय मुझे गहरा आघात पहुँचा था और आज आपका वध होनेसे तो मैं मार ही डाली गयी॥ ५७½ ॥

'अब मैं बन्धुजनोंसे हीन, आप-जैसे स्वामीसे रहित तथा कामभोगोंसे वञ्चित होकर अनन्त वर्षोंतक शोकमें ही डूबी रहूँगी॥ ५८½ ॥

'राजन्! आज आप जिस अत्यन्त दुर्गम एवं विशाल मार्गपर गये हैं, वहीं मुझ दुखियाको भी ले चलिये। मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी॥

'हाय! मुझ असहायाको यहीं छोड़कर आप क्यों अन्यत्र चले जाना चाहते हैं? मैं दीन अभागिनी होकर आपके लिये रो रही हूँ। आप मुझसे बोलते क्यों नहीं?॥ ६०½ ॥

'प्रभो! आज मेरे मुँहपर घूँघट नहीं है। मैं नगर-द्वारसे पैदल ही चलकर यहाँ आयी हूँ। इस दशामें मुझे देखकर आप क्रोध क्यों नहीं करते हैं?॥ ६१½ ॥

'आप अपनी स्त्रियोंसे बड़ा प्रेम करते थे। आज आपकी सभी स्त्रियाँ लाज छोड़कर, परदा हटाकर बाहर निकल आयी हैं। इन्हें देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं होता?॥ ६२½ ॥

'नाथ! आपकी क्रीडासहचरी यह मन्दोदरी आज अनाथ होकर विलाप कर रही है। आप इसे आश्वासन क्यों नहीं देते अथवा अधिक आदर क्यों नहीं करते?॥

'राजन्! आपने बहुत-सी कुलललनाओंको, जो गुरुजनोंकी सेवामें लगी रहनेवाली, धर्मपरायणा तथा पतिव्रता थीं, विधवा बनाया और उनका अपमान किया था; अतः उस समय उन्होंने शोकसे संतप्त होकर आपको शाप दे दिया था, उसीका यह फल है कि आपको शत्रु एवं मृत्युके अधीन होना पड़ा है॥ ६४-६५½ ॥

'महाराज! पतिव्रताओंके आँसू इस पृथ्वीपर व्यर्थ नहीं गिरते, यह कहावत आपके ऊपर प्रायः ठीक-ठीक घटी है॥ ६६½ ॥

'राजन्! आप तो अपने तेजसे तीनों लोकोंको आक्रान्त करके अपनेको बड़ा शूरवीर मानते थे; फिर

भी परायी स्त्रीको चुरानेका यह नीच काम आपने कैसे किया?॥ ६७½ ॥

'मायामय मृगके बहाने श्रीरामको आश्रमसे दूर हटाया और लक्ष्मणको भी अलग किया। उसके बाद आप श्रीरामपत्नी सीताको चुराकर यहाँ ले आये; यह कितनी बड़ी कायरता है॥ ६८½ ॥

'युद्धमें कभी आपने कायरता दिखायी हो, यह मुझे याद नहीं पड़ता; परंतु भाग्यके फेरसे उस दिन सीताका हरण करते समय निश्चय ही आपमें कायरता आ गयी थी, जो आपके निकट विनाशकी सूचना दे रही थी॥ ६९½ ॥

'महाबाहो! मेरे देवर विभीषण सत्यवादी, भूत और भविष्यके ज्ञाता तथा वर्तमानको भी समझनेमें कुशल हैं। उन्होंने हरकर लायी हुई मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर मन-ही-मन कुछ विचार किया और अन्तमें लम्बी साँस छोड़कर कहा—अब प्रधान-प्रधान राक्षसोंके विनाशका समय उपस्थित हो गया है। उनकी यह बात ठीक निकली॥ ७०-७१½ ॥

'काम और क्रोधसे उत्पन्न आपके आसक्तिविषयक दोषके कारण यह सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया और जड़मूलका नाश करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ। आज आपने समस्त राक्षसकुलको अनाथ कर दिया॥

'आप अपने बल और पुरुषार्थके लिये विख्यात थे, अतः आपके लिये शोक करना मेरे लिये उचित नहीं है, तथापि स्त्रीस्वभावके कारण मेरे हृदयमें दीनता आ गयी है॥ ७४॥

'आप अपना पुण्य और पाप साथ लेकर अपनी वीरोचित गतिको प्राप्त हुए हैं। आपके विनाशसे मैं महान् दु:खमें पड़ गयी हूँ; इसलिये बारम्बार अपने ही लिये शोक करती हूँ॥ ७५॥

'महाराज दशानन! हित चाहनेवाले सुहृदों तथा बन्धुओंने जो आपसे सम्पूर्णतः हितकी बातें कही थीं, उन्हें आपने अनसुनी कर दिया॥ ७६॥

'विभीषणका कथन भी युक्ति और प्रयोजनसे पूर्ण था। विधिपूर्वक आपके सामने प्रस्तुत किया गया था। वह कल्याणकारी तो था ही, बहुत ही सौम्य भाषामें कहा गया था; किंतु उस युक्तियुक्त बातको भी आपने नहीं माना॥ ७७॥

'आप अपने बलके घमंडमें मतवाले हो रहे थे; अतः मारीच, कुम्भकर्ण तथा मेरे पिताकी कही हुई बात भी आपने नहीं मानी। उसीका यह ऐसा फल आपको प्राप्त हुआ है॥ ७८॥

'प्राणनाथ! आपका नील मेघके समान श्याम वर्ण है। आप शरीरपर पीत वस्त्र और बाँहोंमें सुन्दर बाजूबंद धारण करनेवाले हैं। आज खूनसे लथपथ हो अपने शरीरको सब ओर छितराकर यहाँ क्यों सो रहे हैं?॥

'मैं शोकसे पीड़ित हो रही हूँ और आप गहरी नींदमें सोये हुए पुरुषकी भाँति मेरी बातका जवाब नहीं दे रहे हैं। नाथ! ऐसा क्यों हो रहा है?॥ ७९½ ॥

'मैं महान् पराक्रमी, युद्धकुशल और समरभूमिसे पीछे न हटनेवाले सुमाली नामक राक्षसकी दौहित्री (नतिनी) हूँ। आप मुझसे बोलते क्यों नहीं हैं॥ ८०½ ॥

'राक्षसराज! उठिये, उठिये। श्रीरामके द्वारा आपका नूतन पराभव किया गया है तो भी आप सो कैसे रहे हैं? आज ही ये सूर्यकी किरणें लङ्कामें निर्भय होकर प्रविष्ट हुई हैं॥ ८१½ ॥

'वीरवर! आप समरभूमिमें जिस सूर्यतुल्य तेजस्वी परिघके द्वारा शत्रुओंका संहार किया करते थे, वज्रधारी इन्द्रके वज्रकी भाँति जो सदा आपके द्वारा पूजित हुआ था, रणभूमिमें बहुसंख्यक शत्रुओंके प्राण लेनेवाला था और जिसे सोनेकी जालीसे विभूषित किया गया था, आपका वह परिघ श्रीरामके बाणोंसे सहस्रों टुकड़ोंमें विभक्त होकर इधर-उधर बिखरा पड़ा है॥ ८२-८३½ ॥

'प्राणनाथ! आप अपनी प्यारी पत्नीकी भाँति रणभूमिका आलिङ्गन करके क्यों सो रहे हैं और किस कारणसे मुझे अप्रिय-सी मानकर मुझसे बोलनातक नहीं चाहते हैं?॥ ८४½ ॥

'आपकी मृत्यु हो जानेपर भी मेरे शोकपीड़ित हृदयके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते; अतः मुझ पाषाणहृदया नारीको धिक्कार है'॥ ८५½ ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई मन्दोदरीके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। उसका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो रहा था। वह रोती-रोती सहसा मूर्च्छित हो गयी और उसी अवस्थामें रावणकी छातीपर गिर पड़ी। रावणके वक्षःस्थलपर मन्दोदरीकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे संध्याकी लालीसे रँगे हुए बादलमें दीप्तिमती विद्युत् चमक रही हो॥ ८६-८७½ ॥

उसकी सौतें भी शोकसे अत्यन्त आतुर हो रही थीं, उन्होंने उसे उस अवस्थामें देखकर उठाया और स्वयं भी रोते-रोते जोर-जोरसे विलाप करती हुई मन्दोदरीको धीरज बँधाया॥ ८८½ ॥

वे बोलीं—'महारानी! क्या आप नहीं जानतीं कि

संसारका स्वरूप अस्थिर है। दशा बदल जानेपर राजाओंकी लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती'॥ ८९½ ॥

उनके ऐसा कहनेपर मन्दोदरी फूट-फूटकर रोने लगी। उस समय उसके दोनों स्तन और उज्ज्वल मुख आँसुओंसे नहा उठे थे॥ ९०½ ॥

इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा—'इन स्त्रियोंको धैर्य बँधाओ और अपने भाईका दाहसंस्कार करो'॥ ९१½ ॥

यह सुनकर बुद्धिमान् विभीषणने (श्रीरामका अभिप्राय जाननेके उद्देश्यसे) बुद्धिसे सोच-विचारकर उनसे यह धर्म और अर्थसे युक्त विनयपूर्ण तथा हितकर बात कही—॥ ९२½ ॥

'भगवन्! जिसने धर्म और सदाचारका त्याग कर दिया था, जो क्रूर, निर्दयी, असत्यवादी तथा परायी स्त्रीका स्पर्श करनेवाला था, उसका दाहसंस्कार करना मैं उचित नहीं समझता हूँ॥ ९३½ ॥

'सबके अहितमें संलग्न रहनेवाला यह रावण भाईके रूपमें मेरा शत्रु था। यद्यपि ज्येष्ठ होनेसे गुरुजनोचित गौरवके कारण वह मेरा पूज्य था, तथापि वह मुझसे सत्कार पानेयोग्य नहीं है॥ ९४½ ॥

'श्रीराम! मेरी यह बात सुनकर संसारके मनुष्य मुझे क्रूर अवश्य कहेंगे; परंतु जब रावणके दुर्गुणोंको भी सुनेंगे, तब सब लोग मेरे इस विचारको उचित ही बतायेंगे'॥ ९५½ ॥

यह सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। वे बातचीत करनेमें बड़े प्रवीण थे; अतः बातोंका अभिप्राय समझनेवाले विभीषणसे इस प्रकार बोले—॥ ९६½ ॥

'राक्षसराज! मुझे तुम्हारा भी प्रिय करना है, क्योंकि तुम्हारे ही प्रभावसे मेरी जीत हुई है। अवश्य ही मुझे तुमसे उचित बात कहनी चाहिये; अतः सुनो॥

'यह निशाचर भले ही अधर्मी और असत्यवादी रहा हो; परंतु संग्राममें सदा ही तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है॥ ९८½ ॥

'सुना जाता है—इन्द्र आदि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। समस्त लोकोंको रुलानेवाला रावण बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा महामनस्वी था॥ ९९½ ॥

'वैर मरनेतक ही रहता है। मरनेके बाद उसका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है, अतः इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है; इसलिये इसका दाहसंस्कार करो॥ १००½ ॥

'महाबाहो! धर्मके अनुसार रावण तुम्हारी ओरसे शीघ्र ही विधिपूर्वक दाहसंस्कार प्राप्त करनेके योग्य है। ऐसा करनेसे तुम यशके भागी होओगे'॥ १०१½ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस वचनको सुनकर विभीषण युद्धमें मारे गये अपने भाई रावणके दाहसंस्कारकी शीघ्रतापूर्वक तैयारी करने लगे॥ १०२½ ॥

राक्षसराज विभीषणने लङ्कापुरीमें प्रवेश करके रावणके अग्निहोत्रको शीघ्र ही विधिपूर्वक समाप्त किया॥

इसके बाद शकट, लकड़ी, अग्निहोत्रकी अग्नियाँ, यज्ञ करानेवाले पुरोहित, चन्दनकाष्ठ, अन्य विविध प्रकारकी लकड़ियाँ, सुगन्धित अगर, अन्यान्य सुन्दर गन्धयुक्त पदार्थ, मणि, मोती और मूँगा—इन सब वस्तुओंको उन्होंने एकत्र किया॥ १०४-१०५½ ॥

फिर दो ही घड़ीमें राक्षसोंसे घिरे हुए वे शीघ्र वहाँसे चले आये। तदनन्तर माल्यवान्‌के साथ मिलकर उन्होंने दाहसंस्कारकी तैयारीका सारा कार्य पूर्ण किया॥

भाँति-भाँतिके वाद्यघोषोंद्वारा स्तुति करनेवाले मागधोंने जिसका अभिनन्दन किया था, राक्षसराज रावणके उस शवको रेशमी वस्त्रसे ढककर उसे सोनेके दिव्य विमानमें रखनेके पश्चात् राक्षसजातीय ब्राह्मण वहाँ नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए खड़े हो गये॥ १०७-१०८॥

उस शिबिकाको विचित्र पताकाओं तथा फूलोंसे सजाया गया था। जिससे वह विचित्र शोभा धारण करती थी। विभीषण आदि राक्षस उसे कंधेपर उठाकर तथा अन्य सब लोग हाथमें सूखे काठ लिये दक्षिण दिशामें श्मशानभूमिकी ओर चले॥ १०९½ ॥

यजुर्वेदीय याजकोंद्वारा ढोयी जाती हुई त्रिविध अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठीं। वे सब कुण्डमें रखी हुई थीं और पुरोहितगण उन्हें लेकर शवके आगे-आगे चल रहे थे॥

अन्तःपुरकी सारी स्त्रियाँ रोती हुई तुरंत ही शवके पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे सब ओर लड़खड़ाती चलती थीं॥ १११½ ॥

आगे जाकर रावणके विमानको एक पवित्र स्थानमें रखकर अत्यन्त दुःखी हुए विभीषण आदि राक्षसोंने मलय-चन्दनकाष्ठ, पद्मक, उशीर (खस) तथा अन्य प्रकारके चन्दनोंद्वारा वेदोक्त विधिसे चिता बनायी और उसके ऊपर रंकु नामक मृगका चर्म बिछाया॥

उसके ऊपर राक्षसराजके शवको सुलाकर उन्होंने उत्तम विधिसे उसका पितृमेध (दाहसंस्कार) किया। उन्होंने चिताके दक्षिण-पूर्वमें वेदी बनाकर उसपर यथास्थान अग्निको स्थापित किया था। फिर दधिमिश्रित घीसे भरी

हुई स्रुवा रावणके कंधेपर रखी। इसके बाद पैरोंपर शकट और जाँघोंपर उलूखल रखा॥ ११४-११५॥

तथा काष्ठके सभी पात्र, अरणि, उत्तरारणि और मूसल आदिको भी यथास्थान रख दिया॥ ११६॥

वेदोक्त विधि और महर्षियोंद्वारा रचित कल्पसूत्रोंमें बतायी गयी प्रणालीसे वहाँ सारा कार्य हुआ। राक्षसोंने (राक्षसोंकी रीतिके अनुसार) मेध्य पशुका हनन करके राजा रावणकी चितापर फैलाये हुए मृगचर्मको घीसे तर कर दिया, फिर रावणके शवको चन्दन और फूलोंसे अलंकृत करके वे राक्षस मन-ही-मन दु:खका अनुभव करने लगे॥ ११७-११८॥

फिर विभीषणके साथ अन्यान्य राक्षसोंने भी चितापर नाना प्रकारके वस्त्र और लावा बिखेरे। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली॥ ११९॥

तदनन्तर विभीषणने चितामें विधिके अनुसार आग लगायी। उसके बाद स्नान करके भीगे वस्त्र पहने हुए ही उन्होंने तिल, कुश और जलके द्वारा विधिवत् रावणको जलाञ्जलि दी। तत्पश्चात् रावणकी स्त्रियोंको बारम्बार सान्त्वना देकर उनसे घर चलनेके लिये अनुनय-विनय की॥ १२०-१२१॥

'महलमें चलो' यह विभीषणका आदेश सुनकर वे सारी स्त्रियाँ नगरमें चली गयीं। स्त्रियोंके पुरीमें प्रवेश कर जानेपर राक्षसराज विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर विनीतभावसे खड़े हो गये॥ १२२॥

श्रीराम भी लक्ष्मण, सुग्रीव तथा समस्त सेनाके साथ शत्रुका वध करके बहुत प्रसन्न थे। ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वृत्रासुरको मारकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे थे॥ १२३॥

तदनन्तर इन्द्रके दिये हुए धनुष, बाण और विशाल कवचको त्यागकर तथा शत्रुका दमन कर देनेके कारण रोषको भी छोड़कर शत्रुसूदन श्रीरामने शान्तभाव धारण कर लिया॥ १२४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १११॥

एक सौ बारहवाँ सर्ग

विभीषणका राज्याभिषेक और श्रीरघुनाथजीका हनुमान्‌जीके द्वारा सीताके पास संदेश भेजना

देवता, गन्धर्व और दानवगण रावण-वधका दृश्य देखकर उसीकी शुभ चर्चा करते हुए अपने-अपने विमानसे यथास्थान लौट गये॥ १॥

रावणके भयंकर वध, श्रीरघुनाथजीके पराक्रम, वानरोंके उत्तम युद्ध, सुग्रीवकी मन्त्रणा, लक्ष्मण और हनुमान्‌जीकी श्रीरामके प्रति भक्ति, उन दोनोंके पराक्रम, सीताके पातिव्रत्य तथा हनुमान्‌जीके पुरुषार्थकी बातें कहते हुए वे महाभाग देवता आदि जैसे आये थे, उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक चले गये॥ २-३ १/२॥

इसके बाद महाबाहु भगवान् श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए दिव्य रथको, जो अग्निके समान देदीप्यमान था, ले जानेकी आज्ञा देकर मातलिका बड़ा सम्मान किया॥ ४ १/२॥

तब इन्द्रसारथि मातलि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उस दिव्य रथपर बैठकर पुन: दिव्य लोकको ही चले गये॥ ५ १/२॥

मातलिके रथसहित देवलोकको चले जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया॥ ६ १/२॥

सुग्रीवका आलिङ्गन करनेके पश्चात् जब उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली, तब लक्ष्मणने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वानरसैनिकोंसे सम्मानित हो वे सेनाकी छावनीपर लौट आये॥ ७ १/२॥

वहाँ आकर रघुनाथजीने अपने समीप खड़े हुए बल एवं उद्दीप्त तेजसे सम्पन्न सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे कहा—'सौम्य! अब तुम लङ्कामें जाकर इन विभीषणका राज्याभिषेक करो; क्योंकि ये मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करनेवाले हैं॥ ८-९ १/२॥

'सौम्य! यह मेरी बड़ी इच्छा है कि रावणके छोटे भाई इन विभीषणको मैं लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देखूँ'॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर सोनेका घड़ा हाथमें लिया और उसे वानर-यूथपतियोंके हाथमें देकर उन महान् शक्तिशाली तथा मनके समान वेगवाले वानरोंको समुद्रका जल ले आनेकी आज्ञा दी॥ ११-१२ १/२॥

वे मनके समान वेगशाली श्रेष्ठ वानर तुरंत ही गये और समुद्रसे जल लेकर लौट आये॥ १३ १/२॥

तदनन्तर लक्ष्मणने एक घट जल लेकर उसे उत्तम आसनपर स्थापित कर दिया और उस घटके जलसे

विभीषणका वेदोक्त विधिके अनुसार लङ्काके राजपदपर अभिषेक किया। यह अभिषेक श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे हुआ था। उस समय राक्षसोंके बीचमें सुहृदोंसे घिरे हुए विभीषण राजसिंहासनपर विराजमान थे। लक्ष्मणके बाद सभी राक्षसों और वानरोंने भी उनका अभिषेक किया॥

वे अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीरामकी ही स्तुति करने लगे। राक्षसराज विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देख उनके मन्त्री और प्रेमी राक्षस बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १७-१८॥

श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए उस विशाल राज्यको पाकर विभीषण अपनी प्रजाको सान्त्वना दे श्रीरामचन्द्रजीके पास आये॥ १९॥

उस समय हर्षसे भरे हुए नगरनिवासी निशाचर विभीषणको अर्पित करनेके लिये दही, अक्षत, मिठाई, लावा और फूल लाये॥ २०॥

दुर्धर्ष पराक्रमी विभीषणने वे सब मङ्गलजनक माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर श्रीराम और लक्ष्मणको भेंट की॥ २१॥

श्रीरघुनाथजीने विभीषणको कृतकार्य एवं सफलमनोरथ देख उनकी प्रसन्नताके लिये ही उन सब माङ्गलिक वस्तुओंको ले लिया॥ २२॥

तत्पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हुए पर्वताकार वीर वानर हनुमान्जीसे कहा—॥ २३॥

'सौम्य! तुम इन महाराज विभीषणकी आज्ञा ले लङ्कानगरीमें प्रवेश करके मिथिलेशकुमारी सीतासे उनका कुशल-समाचार पूछो॥ २४॥

'साथ ही उन विदेहराजकुमारीसे सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरा कुशल-समाचार निवेदन करो। वक्ताओंमें श्रेष्ठ हरीश्वर! तुम वैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दो कि रावण युद्धमें मारा गया। तत्पश्चात् उनका संदेश लेकर लौट आओ'॥ २५-२६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११२॥

एक सौ तेरहवाँ सर्ग

हनुमान्जीका सीताजीसे बातचीत करके लौटना और उनका संदेश श्रीरामको सुनाना

भगवान् श्रीरामका यह आदेश पाकर पवनपुत्र हनुमान्जीने निशाचरोंसे सम्मानित होते हुए लङ्कापुरीमें प्रवेश किया॥ १॥

पुरीमें प्रवेश करके उन्होंने विभीषणसे आज्ञा माँगी। उनकी आज्ञा मिल जानेपर हनुमान्जी अशोकवाटिकामें गये॥ २॥

अशोकवाटिकामें प्रवेश करके न्यायानुसार उन्होंने सीताजीको अपने आगमनकी सूचना दी। तत्पश्चात् निकट जाकर उनका दर्शन किया। वे स्नान आदिसे हीन होनेके कारण कुछ मलिन दिखायी देती थीं और सशङ्क हुई रोहिणीके समान जान पड़ती थीं॥ ३॥

सीताजी आनन्दशून्य हो वृक्षके नीचे राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं। हनुमान्जीने शान्त और विनीतभावसे सामने जाकर उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम करके वे चुपचाप खड़े हो गये॥ ४॥

महाबली हनुमान्को आया देख देवी सीता उन्हें पहचानकर मन-ही-मन प्रसन्न हुईं; किंतु कुछ बोल न सकीं। चुपचाप बैठी रहीं॥ ५॥

सीताके मुखपर सौम्यभाव लक्षित हो रहा था। उसे देखकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सब बातोंको उनसे कहना आरम्भ किया—॥ ६॥

'विदेहनन्दिनि! श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ सकुशल हैं। अपने शत्रुका वध करके सफलमनोरथ हुए उन शत्रुविजयी श्रीरामने आपकी कुशल पूछी है॥

'देवि! विभीषणकी सहायता पाकर वानरों और लक्ष्मणसहित श्रीरामने बल-विक्रमसम्पन्न रावणको युद्धमें मार डाला है॥ ८॥

'धर्मको जाननेवाली देवि सीते! मैं आपको यह प्रिय संवाद सुनाता हूँ और अधिक-से-अधिक प्रसन्न देखना चाहता हूँ। आपके पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे ही युद्धमें श्रीरामने यह महान् विजय प्राप्त की है। अब आप चिन्ता छोड़कर स्वस्थ हो जायँ। हमलोगोंका शत्रु रावण मारा गया और लङ्का भगवान् श्रीरामके अधीन हो गयी॥ ९-१०॥

'श्रीरामने आपको यह संदेश दिया है—'देवि! मैंने तुम्हारे उद्धारके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसके लिये निद्रा त्यागकर अथक प्रयत्न किया और समुद्रमें पुल बाँधकर रावणवधके द्वारा उस प्रतिज्ञाको पूर्ण किया॥ ११॥

'अब तुम अपनेको रावणके घरमें वर्तमान समझकर भयभीत न होना; क्योंकि लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणके

अधीन कर दिया गया है। अब तुम अपने ही घरमें हो। ऐसा जानकर निश्चिन्त होकर धैर्य धारण करो। देवि! ये विभीषण भी हर्षसे भरकर आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो अभी यहाँ आ रहे हैं'॥ १२-१३॥

हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर चन्द्रमुखी सीतादेवीको बड़ा हर्ष हुआ। हर्षसे उनका गला भर आया और वे कुछ बोल न सकीं॥ १४॥

सीताजीको मौन देख कपिवर हनुमान्‌जी बोले—'देवि! आप क्या सोच रही हैं? मुझसे बोलती क्यों नहीं'॥ १५॥

हनुमान्‌जीके इस प्रकार पूछनेपर धर्मपरायणा सीतादेवी अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्दके आँसू बहाती हुई गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ १६॥

'अपने स्वामीकी विजयसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रिय संवाद सुनकर मैं आनन्दविभोर हो गयी थी; इसलिये कुछ देरतक मेरे मुँहसे बात नहीं निकल सकी है॥ १७॥

'वानरवीर! ऐसा प्रिय समाचार सुनानेके कारण मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ; किंतु बहुत सोचनेपर भी मुझे इसके योग्य कोई वस्तु दिखायी नहीं देती॥ १८॥

'सौम्य वानरवीर! इस भूमण्डलमें मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखती, जो इस प्रिय संवादके अनुरूप हो और जिसे तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ॥ १९॥

'सोना, चाँदी, नाना प्रकारके रत्न अथवा तीनों लोकोंका राज्य भी इस प्रिय समाचारकी बराबरी नहीं कर सकता'॥ २०॥

विदेहनन्दिनीके ऐसा कहनेपर वानरवीर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सीताजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—॥ २१॥

'पतिकी विजय चाहनेवाली और पतिके ही प्रिय एवं हितमें सदा संलग्न रहनेवाली सती-साध्वी देवि! आपके ही मुँहसे ऐसा स्नेहपूर्ण वचन निकल सकता है (आपके इस वचनसे मैं सब कुछ पा गया)॥ २२॥

'सौम्ये! आपका यह वचन सारगर्भित और स्नेहयुक्त है, अतः भाँति-भाँतिकी रत्नराशि और देवताओंके राज्यसे भी बढ़कर है॥ २३॥

'मैं जब यह देखता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी अपने शत्रुका वध करके विजयी हो गये और स्वयं सकुशल हैं, तब मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे सारे प्रयोजन सिद्ध हो गये—देवताओंके राज्य आदि सभी उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थ मुझे मिल गये'॥ २४॥

उनकी बात सुनकर मिथिलेशकुमारी जानकीने उन पवनकुमारसे यह परम सुन्दर वचन कहा—॥ २५॥

'वीरवर! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ* अङ्गों (गुणों)-से अलंकृत है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो॥ २६॥

'तुम वायुदेवताके प्रशंसनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुत-से सुन्दर गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है'॥ २७-२८॥

तदनन्तर सीताके सामने बिना किसी घबराहटके हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हुए हनुमान्‌जी पुनः हर्षपूर्वक उनसे बोले—॥ २९॥

'देवि! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन समस्त राक्षसियोंको, जो पहले आपको बहुत डराती-धमकाती रही हैं, मार डालना चाहता हूँ॥ ३०॥

'आप-जैसी पतिव्रता देवी अशोकवाटिकामें बैठकर क्लेश भोग रही थीं और ये भयंकर रूप एवं आचारसे युक्त अत्यन्त क्रूर दृष्टिवाली विकरालमुखी क्रूर राक्षसियाँ आपको बारम्बार कठोर वचनोंद्वारा डाँटती-फटकारती रहती थीं। रावणकी आज्ञासे ये जैसी-जैसी बातें आपको सुनाती थीं, उन सबको मैंने यहाँ रहकर सुना है॥ ३१-३२॥

'ये सब-की-सब विकराल, विकट आकारवाली, क्रूर और अत्यन्त दारुण हैं। इनके नेत्रों और केशोंसे भी क्रूरता टपकती है। मैं तरह-तरहके आघातोंद्वारा इन सबका वध कर डालना चाहता हूँ॥ ३३॥

'मेरी इच्छा है कि मुक्कों, लातों, विशाल भुजाओं—थप्पड़ों, पिण्डलियों और घुटनोंकी मारसे इन्हें घायल करके इनके दाँत तोड़ दूँ, इनकी नाक और कान काट लूँ तथा इनके सिरके बाल नोचूँ। यशस्विनि! इस तरह बहुत-से प्रहारोंद्वारा इन सबको पीटकर क्रूरतापूर्ण बातें करनेवाली इन अप्रियकारिणी राक्षसियोंको पटक-पटककर मार डालूँ। जिन-जिन भयानक रूपवाली राक्षसियोंने पहले आपको डाँट बतायी है, उन सबको

* **शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥**

सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण रखना, ऊहा (तर्क-वितर्क), अपोह (सिद्धान्तका निश्चय), अर्थका ज्ञान होना तथा तत्त्वको समझना—ये आठ बुद्धिके गुण हैं।

मैं अभी मौतके घाट उतार दूँगा। इसके लिये आप मुझे केवल वर (आज्ञा) दे दें'॥ ३४—३६ $\frac{१}{२}$ ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर करुणामय स्वभाववाली दीनवत्सला सीताने मन-ही-मन बहुत कुछ सोच-विचार करके उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३७ $\frac{१}{२}$ ॥

'कपिश्रेष्ठ! ये बेचारी राजाके आश्रयमें रहनेके कारण पराधीन थीं। दूसरोंकी आज्ञासे ही सब कुछ करती थीं, अतः स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाली इन दासियोंपर कौन क्रोध करेगा? मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं था तथा मेरे पूर्वजन्मके दुष्कर्म अपना फल देने लगे थे, इसीसे मुझे यह सब कष्ट प्राप्त हुआ है; क्योंकि सभी प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका ही फल भोगते हैं, अतः महाबाहो! तुम इन्हें मारनेकी बात न कहो। मेरे लिये दैवका ही ऐसा विधान था॥ ३८—४०॥

'मुझे अपने पूर्वकर्मजनित दशाके योगसे यह सारा दुःख निश्चितरूपसे भोगना ही था; इसलिये रावणकी दासियोंका यदि कुछ अपराध हो भी तो उसे मैं क्षमा करती हूँ; क्योंकि इनके प्रति दयाके उद्रेकसे मैं दुर्बल हो रही हूँ॥ ४१॥

'पवनकुमार! उस राक्षसकी आज्ञासे ही ये मुझे धमकाया करती थीं। जबसे वह मारा गया है, तबसे ये बेचारी मुझे कुछ नहीं कहती हैं। इन्होंने डराना-धमकाना छोड़ दिया है॥ ४२॥

'वानरवीर! इस विषयमें एक पुराना धर्मसम्मत श्लोक है, जिसे किसी व्याघ्रके निकट एक रीछने कहा था*। वह श्लोक मैं बता रही हूँ' सुनो॥ ४३॥

'श्रेष्ठ पुरुष दूसरेकी बुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते हैं—बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते हैं, अतः अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी रक्षा ही करनी चाहिये; क्योंकि साधुपुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही विभूषित होते हैं। सदाचार ही उनका आभूषण है'॥ ४४॥

'श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हों या पुण्यात्मा अथवा वे वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबपर दया करें; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही न हो॥ ४५॥

'जो लोगोंकी हिंसामें ही रमते और सदा पापका ही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी अमङ्गल नहीं करना चाहिये'॥ ४६॥

सीताजीके ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल हनुमान्‌जीने उन सती-साध्वी श्रीरामपत्नीको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ४७॥

'देवि! आप श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं; अतः आपका ऐसे सद्‌गुणोंसे सम्पन्न होना उचित ही है। अब आप अपनी ओरसे मुझे कोई संदेश दें। मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाऊँगा'॥ ४८॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर विदेहनन्दिनी जनकराजकिशोरी बोलीं—'मैं अपने भक्तवत्सल स्वामीका दर्शन करना चाहती हूँ'॥ ४९॥

सीताजीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्‌जी उन मिथिलेशकुमारीका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार बोले—॥ ५०॥

'देवि! जैसे शची देवराज इन्द्रका दर्शन करती हैं, उसी प्रकार आप पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उन श्रीराम और लक्ष्मणको आज देखेंगी, जिनके मित्र विद्यमान हैं और शत्रु मारे जा चुके हैं'॥ ५१॥

साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होनेवाली सीतादेवीसे ऐसा कहकर महातेजस्वी हनुमान्‌जी उस स्थानपर लौट आये, जहाँ श्रीरघुनाथजी विराजमान थे॥ ५२॥

वहाँसे लौटते ही कपिवर हनुमान्‌जीने देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी श्रीरघुनाथजीसे जनकराजकिशोरी सीताजीका दिया हुआ उत्तर क्रमशः कह सुनाया॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११३॥

---

*पहलेकी बात है—एक बाघने किसी व्याधका पीछा किया। व्याध भागकर एक वृक्षपर चढ़ गया। उस वृक्षपर पहलेसे ही कोई रीछ बैठा हुआ था। बाघ वृक्षकी जड़के पास पहुँचकर पेड़पर बैठे हुए रीछसे बोला—'हम और तुम दोनों ही वनके जीव हैं। यह व्याध हम दोनोंका ही शत्रु है; अतः तुम इसे वृक्षसे नीचे गिरा दो।' रीछने उत्तर दिया—'यह व्याध मेरे निवासस्थानपर आकर एक प्रकारसे मेरी शरण ले चुका है, इसलिये मैं इसे नीचे नहीं गिराऊँगा। यदि गिरा दूँ तो धर्मकी हानि होगी।' ऐसा कहकर रीछ सो गया। तब बाघने व्याधसे कहा—'देखो, इस सोये हुए रीछको नीचे गिरा दो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' उसके ऐसा कहनेपर व्याधने उस रीछको धक्का दे दिया; परंतु रीछ अभ्यासवश दूसरी डाल पकड़कर गिरनेसे बच गया। तब बाघने रीछसे कहा—'यह व्याध तुमको गिराना चाहता था; अतः अपराधी है। इसलिये अब इसको नीचे ढकेल दो।' बाघके इस प्रकार बारम्बार उकसानेपर भी रीछने उस व्याधको नहीं गिराया और '**न परः पापमादत्ते**' इस श्लोकका गान करके उसे मुँहतोड़ उत्तर दे दिया। यह प्राचीन कथा है। (रामायणभूषण-टीकासे)

एक सौ चौदहवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणका सीताको उनके समीप लाना और सीताका प्रियतमके मुखचन्द्रका दर्शन करना

तदनन्तर परम बुद्धिमान् वानरवीर हनुमान्‌जीने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कमलनयन श्रीरामको प्रणाम करके कहा—॥ १॥

'भगवन्! जिनके लिये इन युद्ध आदि कर्मोंका सारा उद्योग आरम्भ किया गया था, उन शोकसंतप्त मिथिलेशकुमारी सीतादेवीको आप दर्शन दें॥ २॥

'वे शोकमें डूबी रहती हैं। उनके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए हैं। आपकी विजयका समाचार सुनकर वे मिथिलेशकुमारी आपका दर्शन करना चाहती हैं॥ ३॥

'पहली बार जो मैं आपका संदेश लेकर आया था, तभीसे उनका मेरे ऊपर विश्वास हो गया है कि यह मेरे स्वामीका आत्मीय जन है। उसी विश्वाससे युक्त हो उन्होंने नेत्रोंमें आँसू भरकर मुझसे कहा है कि मैं प्राणनाथका दर्शन करना चाहती हूँ'॥ ४॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सहसा ध्यानस्थ हो गये। उनकी आँखें डबडबा आयीं और वे लम्बी साँस खींचकर भूमिकी ओर देखते हुए पास ही खड़े मेघके समान श्याम कान्तिवाले विभीषणसे बोले—॥ ५-६॥

'तुम विदेहनन्दिनी सीताको मस्तकपरसे स्नान कराकर दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य आभूषणोंसे विभूषित करके शीघ्र मेरे पास ले आओ'॥ ७॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषण बड़ी उतावलीके साथ अन्तःपुरमें गये और पहले अपनी स्त्रियोंको भेजकर उन्होंने सीताको अपने आनेकी खबर दी॥ ८॥

इसके बाद श्रीमान् राक्षसराज विभीषणने स्वयं ही जाकर महाभाग सीताका दर्शन किया और मस्तकपर अञ्जलि बाँध विनीतभावसे कहा—॥ ९॥

'विदेहराजकुमारी! आप स्नान करके दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर सवारीपर बैठिये। आपका कल्याण हो। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं'॥ १०॥

उनके ऐसा कहनेपर वैदेहीने विभीषणको उत्तर दिया—'राक्षसराज! मैं बिना स्नान किये ही अभी पतिदेवका दर्शन करना चाहती हूँ'॥ ११॥

सीताकी यह बात सुनकर विभीषण बोले—'देवि! आपके पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीने जैसी आज्ञा दी है, आपको वैसा ही करना चाहिये'॥ १२॥

उनका यह वचन सुनकर पतिभक्तिसे सुरक्षित तथा पतिको ही देवता माननेवाली सती-साध्वी मिथिलेशकुमारी सीताने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली॥ १३॥

तत्पश्चात् विदेहकुमारीने सिरसे स्नान करके सुन्दर शृङ्गार किया तथा बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनकर वे चलनेको तैयार हो गयीं॥ १४॥

तब विभीषण बहुमूल्य वस्त्रोंसे आवृत दीप्तिमती सीतादेवीको शिबिकामें बिठाकर भगवान् श्रीरामके पास ले आये। उस समय बहुत-से निशाचर चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे॥ १५॥

भगवान् श्रीराम ध्यानस्थ हैं, यह जानकर भी विभीषण उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोले—'प्रभो! सीतादेवी आ गयी हैं'॥ १६॥

राक्षसके घरमें बहुत दिनोंतक निवास करनेके बाद आज सीताजी आयी हैं, यह सोच उनके आगमनका समाचार सुनकर शत्रुसूदन श्रीरघुनाथजीको एक ही समय रोष, हर्ष और दुःख प्राप्त हुआ॥ १७॥

तदनन्तर 'सीता सवारीपर आयी हैं' इस बातपर तर्क-वितर्कपूर्ण विचार करके श्रीरघुनाथजीको प्रसन्नता नहीं हुई। वे विभीषणसे इस प्रकार बोले—॥ १८॥

'सदा मेरी विजयके लिये तत्पर रहनेवाले सौम्य राक्षसराज! तुम विदेहकुमारीसे कहो, वे शीघ्र मेरे पास आयें'॥ १९॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ विभीषणने तुरंत वहाँसे दूसरे लोगोंको हटाना प्रारम्भ किया॥ २०॥

पगड़ी बाँधे और अङ्गा पहिने हुए बहुत-से सिपाही हाथोंमें झाँझकी तरह बजती हुई छड़ी लिये उन वानरयोद्धाओंको हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे॥ २१॥

उनके द्वारा हटाये जाते हुए रीछों, वानरों और राक्षसोंके समुदाय अन्ततोगत्वा दूर जाकर खड़े हो गये॥ २२॥

जैसे वायुके थपेड़े खाकर उद्वेलित हुए समुद्रकी गर्जना बढ़ जाती है, उसी प्रकार वहाँसे हटाये जाते हुए उन वानर आदिके हटनेसे वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया॥ २३॥

जिन्हें हटाया जाता था, उनके मनमें बड़ा उद्वेग होता था, सब ओर यह उद्वेग देखकर श्रीरघुनाथजीने अपनी सहज उदारताके कारण उन हटानेवालोंको

रोषपूर्वक रोका— ॥ २४ ॥

उस समय श्रीराम हटानेवाले सिपाहियोंकी ओर इस तरह रोषपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर डालेंगे। उन्होंने परम बुद्धिमान् विभीषणको उलाहना देते हुए क्रोधपूर्वक कहा— ॥ २५ ॥

'तुम किसलिये मेरा अनादर करके इन सब लोगोंको कष्ट दे रहे हो। रोक दो इस उद्वेगजनक कार्यको। यहाँ जितने लोग हैं यह सब मेरे आत्मीय जन हैं॥ २६ ॥

'घर, वस्त्र (कनात आदि) और चहारदीवारी आदि वस्तुएँ स्त्रीके लिये परदा नहीं हुआ करती हैं। इस तरह लोगोंको दूर हटानेके जो निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार हैं, ये भी स्त्रीके लिये आवरण या पर्देका काम नहीं देते हैं। पतिसे प्राप्त होनेवाले सत्कार तथा नारीके अपने सदाचार—ये ही उसके लिये आवरण हैं॥ २७ ॥

'विपत्तिकालमें, शारीरिक या मानसिक पीड़ाके अवसरोंपर, युद्धमें, स्वयंवरमें, यज्ञमें अथवा विवाहमें स्त्रीका दीखना (या दूसरोंकी दृष्टिमें आना) दोषकी बात नहीं है॥ २८ ॥

'यह सीता इस समय विपत्तिमें है। मानसिक कष्टसे भी युक्त है और विशेषत: मेरे पास है; इसलिये इसका परदेके बिना सबके सामने आना दोषकी बात नहीं है॥ २९ ॥

'अत: जानकी शिबिका (पालकी) छोड़कर पैदल ही मेरे पास आयें और ये सभी वानर उनका दर्शन करें'॥ ३० ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषण बड़े विचारमें पड़ गये और विनीतभावसे सीताको उनके समीप ले आये॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीका पूर्वोक्त वचन सुनकर लक्ष्मण, सुग्रीव तथा कपिवर हनुमान् तीनों ही अत्यन्त व्यथित हो उठे॥ ३२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी भयंकर चेष्टाएँ यह सूचित कर रही थीं कि वे पत्नीकी ओरसे निरपेक्ष हो गये हैं। इसीलिये उन तीनोंने यह अनुमान किया कि श्रीरघुनाथजी सीतापर अप्रसन्न-से जान पड़ते हैं॥ ३३ ॥

आगे-आगे सीता थीं और पीछे विभीषण। वे लज्जासे अपने अङ्गोंमें ही सिकुड़ी जा रही थीं। इस तरह वे अपने पतिदेवके सामने उपस्थित हुईं॥ ३४ ॥

सीताजीका मुख अत्यन्त सौम्यभावसे युक्त था। वे पतिको ही देवता माननेवाली थीं। उन्होंने बड़े विस्मय, हर्ष और स्नेहके साथ अपने स्वामीके सौम्य (मनोहर) मुखका दर्शन किया॥ ३५ ॥

उदयकालीन पूर्ण चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाले प्रियतमके सुन्दर मुखको, जिसके दर्शनसे वे बहुत दिनोंसे वञ्चित थीं, सीताने जी भरकर निहारा और अपने मनकी पीड़ा दूर की। उस समय उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और निर्मल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगा॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११४॥

एक सौ पंद्रहवाँ सर्ग

सीताके चरित्रपर संदेह करके श्रीरामका उन्हें ग्रहण करनेसे इनकार करना और अन्यत्र जानेके लिये कहना

मिथिलेशकुमारी सीताको विनयपूर्वक अपने समीप खड़ी देख श्रीरामचन्द्रजीने अपना हार्दिक अभिप्राय बताना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

'भद्रे! समराङ्गणमें शत्रुको पराजित करके मैंने तुम्हें उसके चंगुलसे छुड़ा लिया। पुरुषार्थके द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब मैंने किया॥ २ ॥

'अब मेरे अमर्षका अन्त हो गया। मुझपर जो कलङ्क लगा था, उसका मैंने मार्जन कर दिया। शत्रुजनित अपमान और शत्रु दोनोंको एक साथ ही नष्ट कर डाला॥

'आज सबने मेरा पराक्रम देख लिया। अब मेरा परिश्रम सफल हो गया और इस समय प्रतिज्ञा पूर्ण करके मैं उसके भारसे मुक्त एवं स्वतन्त्र हो गया॥ ४ ॥

'जब तुम आश्रममें अकेली थी, उस समय वह चञ्चल चित्तवाला राक्षस तुम्हें हर ले गया। यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने मानवसाध्य पुरुषार्थके द्वारा मार्जन कर दिया॥ ५ ॥

'जो पुरुष प्राप्त हुए अपमानका अपने तेज या बलसे मार्जन नहीं कर देता है, उस मन्दबुद्धि मानवके महान् पुरुषार्थसे भी क्या लाभ हुआ?॥ ६ ॥

'हनुमान्‌ने जो समुद्रको लाँघा और लङ्काका विध्वंस किया, उनका वह प्रशंसनीय कर्म आज सफल हो गया॥

'सेनासहित सुग्रीवने युद्धमें पराक्रम दिखाया तथा समय-समयपर ये मुझे हितकर सलाह देते रहे हैं, इनका परिश्रम भी अब सार्थक हो गया॥ ८ ॥

'ये विभीषण दुर्गुणोंसे भरे हुए अपने भाईका परित्याग करके स्वयं ही मेरे पास उपस्थित हुए थे। अबतकका किया हुआ इनका परिश्रम भी निष्फल नहीं हुआ'॥ ९॥

इस तरह कहते हुए श्रीरामजीकी बातें सुनकर मृगीके समान विकसित नेत्रोंवाली सीताकी आँखोंमें आँसू भर आया॥ १०॥

वे अपने स्वामीकी हृदयवल्लभा थीं। उनके प्राणवल्लभ उन्हें अपने समीप देख रहे थे; परंतु लोकापवादके भयसे राजा श्रीरामका हृदय उस समय विदीर्ण हो रहा था॥ ११॥

वे काले-काले घुँघराले बालोंवाली कमललोचना सुन्दरी सीतासे वानर और राक्षसोंकी भरी सभामें पुन: इस प्रकार कहने लगे—॥ १२॥

'अपने तिरस्कारका बदला चुकानेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मानरक्षाकी अभिलाषासे रावणका वध करके पूर्ण किया॥ १३॥

'जैसे तपस्यासे भावित अन्त:करणवाले अथवा तपस्यापूर्वक परमात्मस्वरूपका चिन्तन करनेवाले महर्षि अगस्त्यने वातापि और इल्वलके भयसे जीवजगत्के लिये दुर्गम हुई दक्षिण दिशाको जीता था, उसी प्रकार मैंने रावणके वशमें पड़ी हुई तुमको जीता है॥ १४॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैंने जो यह युद्धका परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रोंके पराक्रमसे जो इसमें विजय पायी है, यह सब तुम्हें पानेके लिये नहीं किया गया है॥ १५॥

'सदाचारकी रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवादका निवारण तथा अपने सुविख्यात वंशपर लगे हुए कलङ्कका परिमार्जन करनेके लिये ही यह सब मैंने किया है॥

'तुम्हारे चरित्रमें संदेहका अवसर उपस्थित है; फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आँखके रोगीको दीपककी ज्योति नहीं सुहाती, उसी प्रकार आज तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय जान पड़ती हो॥ १७॥

'अत: जनककुमारी! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ। भद्रे! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिये खुली हैं। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है॥ १८॥

'कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको, केवल इस लोभसे कि यह मेरे साथ बहुत दिनोंतक रहकर सौहार्द स्थापित कर चुकी है, मनसे भी ग्रहण कर सकेगा॥ १९॥

'रावण तुम्हें अपनी गोदमें उठाकर ले गया और तुमपर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है, ऐसी दशामें अपने कुलको महान् बताता हुआ मैं फिर तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ॥ २०॥

'अत: जिस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया—मेरे कुलके कलङ्कका मार्जन हो गया। अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है; अत: तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो॥ २१॥

'भद्रे! मेरा यह निश्चित विचार है। इसके अनुसार ही आज मैंने तुम्हारे सामने ये बातें कही हैं। तुम चाहो तो भरत या लक्ष्मणके संरक्षणमें सुखपूर्वक रहनेका विचार कर सकती हो॥ २२॥

'सीते! तुम्हारी इच्छा हो तो तुम शत्रुघ्न, वानरराज सुग्रीव अथवा राक्षसराज विभीषणके पास भी रह सकती हो। जहाँ तुम्हें सुख मिले, वहीं अपना मन लगाओ॥ २३॥

'सीते! तुम-जैसी दिव्यरूप-सौन्दर्यसे सुशोभित मनोरम नारीको अपने घरमें स्थित देखकर रावण चिरकालतक तुमसे दूर रहनेका कष्ट नहीं सह सका होगा'॥ २४॥

जो सदा प्रिय वचन सुननेके ही योग्य थीं, वे मानिनी सीता चिरकालके बाद मिले हुए प्रियतमके मुखसे ऐसी अप्रिय बात सुनकर उस समय हाथीकी सूँड़से आहत हुई लताके समान आँसू बहाने और रोने लगीं॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ सर्ग

सीताका श्रीरामको उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर अपने सतीत्वकी परीक्षा देनेके लिये अग्निमें प्रवेश करना

श्रीरघुनाथजीने रोषपूर्वक जब इस तरह रोंगटे खड़े कर देनेवाली कठोर बात कही, तब उसे सुनकर विदेहराजकुमारी सीताके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ १॥

इतने बड़े जनसमुदायमें अपने स्वामीके मुँहसे ऐसी भयंकर बात, जो पहले कभी कानोंमें नहीं पड़ी थी, सुनकर मिथिलेशकुमारी लाजसे गड़ गयीं॥ २॥

उन वाग्बाणोंसे पीड़ित होकर वे जनककिशोरी अपने ही अङ्गोंमें विलीन-सी होने लगीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंका अविरल प्रवाह जारी हो गया॥ ३॥

नेत्रोंके जलसे भीगे हुए अपने मुखको अंचलसे पोंछती हुई वे धीरे-धीरे गद्‍गद वाणीमें पतिदेवसे इस प्रकार बोलीं—॥ ४॥

'वीर! आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हैं। जैसे कोई निम्न श्रेणीका पुरुष निम्नकोटिकी ही स्त्रीसे न कहने योग्य बातें भी कह डालता है, उसी तरह आप भी मुझसे कह रहे हैं॥

'महाबाहो! आप मुझे अब जैसी समझते हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। मुझपर विश्वास कीजिये। मैं अपने सदाचारकी ही शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं संदेहके योग्य नहीं हूँ॥ ६॥

'नीच श्रेणीकी स्त्रियोंका आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री-जातिपर ही संदेह करते हैं तो यह उचित नहीं है। यदि आपने मुझे अच्छी तरह परख लिया हो तो अपने इस संदेहको मनसे निकाल दीजिये॥ ७॥

'प्रभो! रावणके शरीरसे जो मेरे इस शरीरका स्पर्श हो गया है, उसमें मेरी विवशता ही कारण है। मैंने स्वेच्छासे ऐसा नहीं किया था। इसमें मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है॥ ८॥

'जो मेरे अधीन है, वह मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है (उसपर दूसरा कोई अधिकार नहीं कर सकता); परंतु मेरे अङ्ग तो पराधीन थे। उनका यदि दूसरेसे स्पर्श हो गया तो मैं विवश अबला क्या कर सकती थी॥ ९॥

'दूसरोंको मान देनेवाले प्राणनाथ! हम दोनोंका परस्पर अनुराग सदा साथ-साथ बढ़ा है। हम सदा एक साथ रहते आये हैं। इतनेपर भी यदि आपने मुझे अच्छी तरह नहीं समझा तो मैं सदाके लिये मारी गयी॥ १०॥

'महाराज! लङ्कामें मुझे देखनेके लिये जब आपने महावीर हनुमान्‌को भेजा था, उसी समय मुझे क्यों नहीं त्याग दिया?॥ ११॥

'उस समय वानरवीर हनुमान्‌के मुखसे आपके द्वारा अपने त्यागकी बात सुनकर तत्काल इनके सामने ही मैंने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया होता॥ १२॥

'फिर इस प्रकार अपने जीवनको संकटमें डालकर आपको यह युद्ध आदिका व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता तथा आपके ये मित्रलोग भी अकारण कष्ट नहीं उठाते॥ १३॥

'नृपश्रेष्ठ! आपने ओछे मनुष्यकी भाँति केवल रोषका ही अनुसरण करके मेरे शील-स्वभावका विचार छोड़कर केवल निम्नकोटिकी स्त्रियोंके स्वभावको ही अपने सामने रखा है॥ १४॥

'सदाचारके मर्मको जाननेवाले देवता! राजा जनककी यज्ञभूमिसे आविर्भूत होनेके कारण ही मुझे जानकी कहकर पुकारा जाता है। वास्तवमें मेरी उत्पत्ति जनकसे नहीं हुई है। मैं भूतलसे प्रकट हुई हूँ। (साधारण मानव-जातिसे विलक्षण हूँ—दिव्य हूँ। उसी तरह मेरा आचार-विचार भी अलौकिक एवं दिव्य है; मुझमें चारित्रिक बल विद्यमान है, परंतु) आपने मेरी इन विशेषताओंको अधिक महत्त्व नहीं दिया—इन सबको अपने सामने नहीं रखा॥ १५॥

'बाल्यावस्थामें आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, इसकी ओर भी ध्यान नहीं दिया। आपके प्रति मेरे हृदयमें जो भक्ति है और मुझमें जो शील है, वह सब आपने पीछे ढकेल दिया—एक साथ ही भुला दिया'॥ १६॥

इतना कहते-कहते सीताका गला भर आया। वे रोती और आँसू बहाती हुई दुःखी एवं चिन्तामग्न होकर बैठे हुए लक्ष्मणसे गद्‍गद वाणीमें बोलीं—॥ १७॥

'सुमित्रानन्दन! मेरे लिये चिता तैयार कर दो। मेरे इस दुःखकी यही दवा है। मिथ्या कलङ्कसे कलङ्कित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती॥ १८॥

'मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे प्रसन्न नहीं हैं। इन्होंने भरी सभामें मेरा परित्याग कर दिया है। ऐसी दशामें मेरे लिये जो उचित मार्ग है, उसपर जानेके लिये मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी'॥ १९॥

विदेहनन्दिनीके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अमर्षके वशीभूत होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा (उनसे सीताजीका वह अपमान सहा नहीं जाता था)॥ २०॥

परंतु श्रीरामके इशारेसे सूचित होनेवाले उनके हार्दिक अभिप्रायको जानकर पराक्रमी लक्ष्मणने उनकी सम्मतिसे ही चिता तैयार की॥ २१॥

उस समय श्रीरघुनाथजी प्रलयकालीन संहारकारी यमराजके समान लोगोंके मनमें भय उत्पन्न कर रहे थे। उनका कोई भी मित्र उन्हें समझाने, उनसे कुछ कहने अथवा उनकी ओर देखनेका साहस न कर सका॥ २२॥

भगवान् श्रीराम सिर झुकाये खड़े थे। उसी अवस्थामें सीताजीने उनकी परिक्रमा की। इसके बाद वे प्रज्वलित अग्निके पास गयीं॥ २३॥

वहाँ देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके मिथिलेशकुमारीने दोनों हाथ जोड़कर अग्निदेवके समीप इस प्रकार कहा—॥ २४॥

'यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी श्रीरघुनाथजीसे दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें॥ २५॥

'मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी श्रीरघुनाथजी मुझे दूषित समझ रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलङ्क होऊँ तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें॥ २६॥

'यदि मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजीका अतिक्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें'॥ २७॥

'यदि भगवान् सूर्य, वायु, दिशाएँ, चन्द्रमा, दिन, रात, दोनों संध्याएँ, पृथ्वी देवी तथा अन्य देवता भी मुझे शुद्ध चरित्रसे युक्त जानते हों तो अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें'॥ २८॥

ऐसा कहकर विदेहराजकुमारीने अग्निदेवकी परिक्रमा की और निःशङ्क चित्तसे वे उस प्रज्वलित अग्निमें समा गयीं॥ २९॥

बालकों और वृद्धोंसे भरे हुए वहाँके महान् जनसमुदायने उन दीप्तिमती मिथिलेशकुमारीको जलती आगमें प्रवेश करते देखा॥ ३०॥

तपाये हुए नूतन सुवर्णकी-सी कान्तिवाली सीता आगमें तपाकर शुद्ध किये गये सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित थीं। वे सब लोगोंके निकट उनके देखते-देखते उस जलती आगमें कूद पड़ीं॥ ३१॥

सोनेकी बनी हुई वेदीके समान कान्तिमती विशाल-लोचना सीतादेवीको उस समय सम्पूर्ण भूतोंने आगमें गिरते देखा॥ ३२॥

ऋषियों, देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जैसे यज्ञमें पूर्णाहुतिका होम होता है, उसी प्रकार महाभागा सीता जलती आगमें प्रवेश कर रही हैं॥ ३३॥

जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा संस्कार की हुई वसुधाराकी* आहुति दी जाती है, उसी प्रकार दिव्य आभूषणोंसे विभूषित सीताको आगमें गिरते देख वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियाँ चीख उठीं॥ ३४॥

तीनों लोकोंके दिव्य प्राणी, ऋषि, देवता, गन्धर्व तथा दानवोंने भी भगवती सीताको आगमें गिरते देखा, मानो स्वर्गसे कोई देवी शापग्रस्त होकर नरकमें गिरी हो॥ ३५॥

उनके अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षस और वानर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह अद्भुत आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११६॥

एक सौ सत्रहवाँ सर्ग

भगवान् श्रीरामके पास देवताओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका प्रतिपादन एवं स्तवन

तदनन्तर धर्मात्मा श्रीराम हाहाकार करनेवाले वानर और राक्षसोंकी बातें सुनकर मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए और आँखोंमें आँसू भरकर दो घड़ीतक कुछ सोचते रहे॥ १॥

इसी समय विश्रवाके पुत्र यक्षराज कुबेर, पितरोंसहित यमराज, देवताओंके स्वामी सहस्र नेत्रधारी इन्द्र, जलके अधिपति वरुण, त्रिनेत्रधारी श्रीमान् वृषभध्वज महादेव तथा सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी—ये सब देवता सूर्यतुल्य विमानोंद्वारा लङ्कापुरीमें आकर श्रीरघुनाथजीके पास गये॥ २—४॥

भगवान् श्रीराम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे श्रेष्ठ देवता आभूषणोंसे अलंकृत अपनी विशाल भुजाओंको उठाकर उनसे बोले—॥ ५॥

'श्रीराम! आप सम्पूर्ण विश्वके उत्पादक, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं। फिर इस समय आगमें गिरी हुई सीताकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु ही हैं। इस बातको कैसे नहीं समझ रहे हैं॥ ६॥

'पूर्वकालमें वसुओंके प्रजापति जो ऋतधामा नामक वसु थे, वे आप ही हैं। आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं॥ ७॥

'रुद्रोंमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य भी

* घीकी अनवच्छिन्न धारा।

आप ही हैं। दो अश्विनीकुमार आपके कान हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं॥ ८॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले देव! सृष्टिके आदि, अन्त और मध्यमें भी आप ही दिखायी देते हैं। फिर एक साधारण मनुष्यकी भाँति आप सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?'॥ ९॥

उन लोकपालोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ लोकनाथ रघुनाथ श्रीरामने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा—॥ १०॥

'देवगण! मैं तो अपनेको मनुष्य दशरथपुत्र राम ही समझता हूँ। भगवन्! मैं जो हूँ और जहाँसे आया हूँ, वह सब आप ही मुझे बताइये'॥ ११॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनसे इस प्रकार कहा—'सत्यपराक्रमी श्रीरघुवीर! आप मेरी सच्ची बात सुनिये॥ १२॥

'आप चक्र धारण करनेवाले सर्वसमर्थ श्रीमान् भगवान् नारायण देव हैं, एक दाढ़वाले पृथ्वीधारी वराह हैं तथा देवताओंके भूत एवं भावी शत्रुओंको जीतनेवाले हैं॥ १३॥

'रघुनन्दन! आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके परम धर्म हैं। आप ही विष्वक्सेन तथा चार भुजाधारी श्रीहरि हैं॥ १४॥

'आप ही शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसीसे पराजित नहीं होते। आप नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं॥ १५॥

'आप ही देवसेनापति तथा गाँवोंके मुखिया अथवा नेता हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलयके कारण हैं। आप ही उपेन्द्र (वामन) और मधुसूदन हैं॥ १६॥

'इन्द्रको भी उत्पन्न करनेवाले महेन्द्र और युद्धका अन्त करनेवाले शान्तस्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागतवत्सल बताते हैं॥ १७॥

'आप ही सहस्रों शाखारूप सींग तथा सैकड़ों विधिवाक्यरूप मस्तकोंसे युक्त वेदरूप महावृषभ हैं। आप ही तीनों लोकोंके आदिकर्ता और स्वयंप्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं॥ १८॥

'आप सिद्ध और साध्योंके आश्रय तथा पूर्वज हैं। यज्ञ, वषट्कार और ओंकार भी आप ही हैं। आप श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं॥ १९॥

'आपके आविर्भाव और तिरोभावको कोई नहीं जानता। आप कौन हैं—इसका भी किसीको पता नहीं है। समस्त प्राणियोंमें, गौओंमें तथा ब्राह्मणोंमें भी आप ही दिखायी देते हैं॥ २०॥

'समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और नदियोंमें भी आपकी ही सत्ता है। आपके सहस्रों चरण, सैकड़ों मस्तक और सहस्रों नेत्र हैं॥ २१॥

'आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंको, पृथ्वीको और समस्त पर्वतोंको धारण करते हैं। पृथ्वीका अन्त हो जानेपर आप ही जलके ऊपर महान् सर्प—शेषनागके रूपमें दिखायी देते हैं॥ २२॥

'श्रीराम! आप ही तीनों लोकोंको तथा देवता, गन्धर्व और दानवोंको धारण करनेवाले विराट् पुरुष नारायण हैं। सबके हृदयमें रमण करनेवाले परमात्मन्! मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं॥ २३॥

'प्रभो! मुझ ब्रह्माने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता आपके विराट् शरीरमें रोम हैं। आपके नेत्रोंका बन्द होना रात्रि और खुलना ही दिन है॥ २४॥

'वेद आपके संस्कार हैं। आपके बिना इस जगत्का अस्तित्व नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है। पृथ्वी आपकी स्थिरता है॥ २५॥

'अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है, वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले भगवान् विष्णु आप ही हैं। पूर्वकालमें (वामनावतारके समय) आपने ही अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे॥ २६॥

'आपने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलिको बाँधकर इन्द्रको तीनों लोकोंका राजा बनाया था। सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप भगवान् विष्णु हैं। आप ही सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं प्रजापति हैं॥ २७॥

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रघुवीर! आपने रावणका वध करनेके लिये ही इस लोकमें मनुष्यके शरीरमें प्रवेश किया था। हमलोगोंका कार्य आपने सम्पन्न कर दिया॥ २८॥

'श्रीराम! आपके द्वारा रावण मारा गया। अब आप प्रसन्नतापूर्वक अपने दिव्य धाममें पधारिये। देव! आपका बल अमोघ है। आपके पराक्रम भी व्यर्थ होनेवाले नहीं हैं॥ २९॥

'श्रीराम! आपका दर्शन अमोघ है। आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इस भूमण्डलमें अमोघ ही होंगे॥ ३०॥

'आप पुराणपुरुषोत्तम हैं। दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं। जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे'॥ ३१॥

यह परम ऋषि ब्रह्माका कहा हुआ दिव्य स्तोत्र तथा पुरातन इतिहास है। जो लोग इसका कीर्तन करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११७॥

एक सौ अठारहवाँ सर्ग

मूर्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर चितासे प्रकट होना और श्रीरामको समर्पित करके उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा श्रीरामका सीताको सहर्ष स्वीकार करना

ब्रह्माजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर मूर्तिमान् अग्निदेव विदेहनन्दिनी सीताको (पिताकी भाँति) गोदमें लिये चितासे ऊपरको उठे॥ १॥

उस चिताको हिलाकर इधर-उधर बिखराते हुए दिव्य रूपधारी हव्यवाहन अग्निदेव वैदेही सीताको साथ लिये तुरंत ही उठकर खड़े हो गये॥ २॥

सीताजी प्रात:कालके सूर्यकी भाँति अरुण-पीत कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं। तपाये हुए सोनेके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके श्रीअङ्गोंपर लाल रंगकी रेशमी साड़ी लहरा रही थी। सिरपर काले-काले घुँघराले केश सुशोभित होते थे। उनकी अवस्था नयी थी और उनके द्वारा धारण किये गये फूलोंके हार कुम्हलायेतक नहीं थे। अनिन्द्य सुन्दरी सती-साध्वी सीताका अग्निमें प्रवेश करते समय जैसा रूप और वेष था, वैसे ही रूप-सौन्दर्यसे प्रकाशित होती हुई उन वैदेहीको गोदमें लेकर अग्निदेवने श्रीरामको समर्पित कर दिया॥ ३-४॥

उस समय लोकसाक्षी अग्निने श्रीरामसे कहा— 'श्रीराम! यह आपकी धर्मपत्नी विदेहराजकुमारी सीता है। इसमें कोई पाप या दोष नहीं है॥ ५॥

'उत्तम आचारवाली इस शुभलक्षणा सतीने मन, वाणी, बुद्धि अथवा नेत्रोंद्वारा भी आपके सिवा किसी दूसरे पुरुषका आश्रय नहीं लिया। इसने सदा सदाचारपरायण आपका ही आराधन किया है॥ ६॥

'अपने बल-पराक्रमका घमंड रखनेवाले राक्षस रावणने जब इसका अपहरण किया था, उस समय यह बेचारी सती सूने आश्रममें अकेली थी—आप इसके पास नहीं थे; अत: यह विवश थी (इसका कोई वश नहीं चला)॥ ७॥

'रावणने इसे लाकर अन्त:पुरमें कैद कर लिया। इसपर पहरा बिठा दिया। भयानक विचारोंवाली भीषण राक्षसियाँ इसकी रखवाली करने लगीं। तब भी इसका चित्त आपमें ही लगा रहा। यह आपहीको अपना परम आश्रय मानती रही॥ ८॥

'तत्पश्चात् तरह-तरहके लोभ दिये गये। इस मिथिलेशकुमारीपर डाँट-फटकार भी पड़ी; परंतु इसकी अन्तरात्मा निरन्तर आपके ही चिन्तनमें लगी रही। इसने उस राक्षसके विषयमें कभी एक बार भी नहीं सोचा॥ ९॥

'अत: इसका भाव सर्वथा शुद्ध है। यह मिथिलेशनन्दिनी सर्वथा निष्पाप है। आप इसे सादर स्वीकार करें। मैं आपको आज्ञा देता हूँ, आप इससे कभी कोई कठोर बात न कहें'॥ १०॥

अग्निदेवकी यह बात सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीरामका मन प्रसन्न हो गया। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। वे थोड़ी देरतक विचारमें डूबे रहे॥ ११॥

तदनन्तर महातेजस्वी, धैर्यवान्, महान् पराक्रमी तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने देवशिरोमणि अग्निदेवसे उनकी पूर्वोक्त बातके उत्तरमें कहा—॥ १२॥

'भगवन्! लोगोंमें सीताजीकी पवित्रताका विश्वास दिलानेके लिये इनकी यह शुद्धिविषयक परीक्षा आवश्यक थी; क्योंकि शुभलक्षणा सीताको विवश होकर दीर्घकालतक रावणके अन्त:पुरमें रहना पड़ा है॥ १३॥

'यदि मैं जनकनन्दिनीकी शुद्धिके विषयमें परीक्षा न करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है॥ १४॥

'यह बात मैं भी जानता हूँ कि मिथिलेशनन्दिनी जनककुमारी सीताका हृदय सदा मुझमें ही लगा रहता है। मुझसे कभी अलग नहीं होता। ये सदा मेरा ही मन रखतीं—मेरी इच्छाके अनुसार चलती हैं॥ १५॥

'मुझे यह भी विश्वास है कि जैसे महासागर अपनी तटभूमिको नहीं लाँघ सकता, उसी प्रकार रावण अपने ही तेजसे सुरक्षित इन विशाललोचना सीतापर अत्याचार नहीं कर सकता था॥ १६॥

'तथापि तीनों लोकोंके प्राणियोंके मनमें विश्वास दिलानेके लिये एकमात्र सत्यका सहारा लेकर मैंने अग्निमें प्रवेश करती हुई विदेहकुमारी सीताको रोकनेकी चेष्टा नहीं की॥ १७॥

'मिथिलेशकुमारी सीता प्रज्वलित अग्निशिखाके समान दुर्धर्ष तथा दूसरेके लिये अलभ्य है। दुष्टात्मा रावण मनके द्वारा भी इनपर अत्याचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था॥ १८॥

'ये सती-साध्वी देवी रावणके अन्त:पुरमें रहकर भी व्याकुलता या घबराहटमें नहीं पड़ सकती थीं; क्योंकि ये मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे सूर्यदेवसे उनकी प्रभा॥ १९॥

'मिथिलेशकुमारी जानकी तीनों लोकोंमें परम पवित्र हैं। जैसे मनस्वी पुरुष कीर्तिका त्याग नहीं कर सकता, उसी तरह मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता॥ २०॥

'आप सभी लोकपाल मेरे हितकी ही बात कह रहे हैं और आपलोगोंका मुझपर बड़ा स्नेह है; अत: आप सभी देवताओंके हितकर वचनका मुझे अवश्य पालन करना चाहिये'॥ २१॥

ऐसा कहकर अपने किये हुए पराक्रमसे प्रशंसित होनेवाले महाबली, महायशस्वी, विजयी वीर रघुकुलनन्दन श्रीराम अपनी प्रिया सीतासे मिले और मिलकर बड़े सुखका अनुभव करने लगे; क्योंकि वे सुख भोगनेके ही योग्य हैं॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग

महादेवजीकी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणका विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको प्रणाम करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा सीताको आवश्यक संदेश दे इन्द्रलोकको जाना

श्रीरघुनाथजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर श्रीमहादेवजी और भी शुभतर वचन बोले—॥ १॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले, विशाल वक्ष:स्थलसे सुशोभित, महाबाहु कमलनयन! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। आपने रावण-वधरूप कार्य सम्पन्न कर दिया—यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥ २॥

'श्रीराम! रावणजनित भय और दु:ख सारे लोकोंके लिये बढ़े हुए घोर अन्धकारके समान था, जिसे आपने युद्धमें मिटा दिया॥ ३॥

'महाबली वीर! अब दु:खी भरतको धीरज बँधाकर, यशस्विनी कौसल्या, कैकेयी तथा लक्ष्मणजननी सुमित्रासे मिलकर, अयोध्याका राज्य पाकर, सुहृदोंको आनन्द देकर, इक्ष्वाकुकुलमें अपना वंश स्थापित करके, अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर, सर्वोत्तम यशका उपार्जन करके तथा ब्राह्मणोंको धन देकर आपको अपने परम धाममें जाना चाहिये॥ ४—६॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! देखिये, ये आपके पिता राजा दशरथ विमानपर बैठे हुए हैं। मनुष्यलोकमें ये ही आपके महायशस्वी गुरु थे॥ ७॥

'ये श्रीमान् नरेश इन्द्रलोकको प्राप्त हुए हैं। आप-जैसे सुपुत्रने इन्हें तार दिया। आप भाई लक्ष्मणके साथ इन्हें नमस्कार करें'॥ ८॥

महादेवजीकी यह बात सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीने विमानमें उच्च स्थानपर बैठे हुए अपने पिताजीको प्रणाम किया॥ ९॥

भाई लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामने पिताको अच्छी तरह देखा। वे निर्मल वस्त्र धारण करके अपनी दिव्य शोभासे देदीप्यमान थे॥ १०॥

विमानपर बैठे हुए महाराज दशरथ अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्र श्रीरामको देखकर बहुत प्रसन्न हुए॥ ११॥

श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए उन महाबाहु नरेशने उन्हें गोदमें बिठाकर दोनों बाँहोंमें भर लिया और इस प्रकार कहा—॥ १२॥

'राम! मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुमसे विलग होकर मुझे स्वर्गका सुख तथा देवताओंद्वारा प्राप्त हुआ सम्मान भी अच्छा नहीं लगता॥ १३॥

'आज तुम शत्रुओंका वध करके पूर्णमनोरथ हो गये और तुमने वनवासकी अवधि भी पूरी कर ली, यह सब देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ १४॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! तुम्हें वनमें भेजनेके लिये कैकेयीने जो-जो बातें कही थीं, वे सब आज भी मेरे हृदयमें बैठी हुई हैं॥ १५॥

'आज लक्ष्मणसहित तुमको सकुशल देखकर और हृदयसे लगाकर मैं समस्त दु:खोंसे छुटकारा पा

गया हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे चन्द्रमा कुहरेसे निकल आये हों॥ १६॥

'बेटा! जैसे अष्टावक्रने अपने धर्मात्मा पिता कहोल नामक ब्राह्मणको तार दिया था, वैसे ही तुम-जैसे महात्मा पुत्रने मेरा उद्धार कर दिया॥ १७॥

'सौम्य! आज इन देवताओंके द्वारा मुझे मालूम हुआ कि रावणका वध करनेके लिये स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही तुम्हारे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ १८॥

'श्रीराम! कौसल्याका जीवन सार्थक है, जो वनसे लौटनेपर तुम-जैसे शत्रुसूदन वीर पुत्रको अपने घरमें हर्ष और उल्लासके साथ देखेंगी॥ १९॥

'रघुनन्दन! वे प्रजाजन भी कृतार्थ हैं, जो अयोध्या पहुँचनेपर तुम्हें राज्यसिंहासनपर भूमिपालके रूपमें अभिषिक्त होते देखेंगे॥ २०॥

'भरत बड़ा ही धर्मात्मा, पवित्र और बलवान् है। वह तुममें सच्चा अनुराग रखता है। मैं उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही मिलन देखना चाहता हूँ॥ २१॥

'सौम्य! तुमने मेरी प्रसन्नताके लिये लक्ष्मण और सीताके साथ रहते हुए वनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये॥ २२॥

'अब तुम्हारे वनवासकी अवधि पूरी हो गयी। मेरी प्रतिज्ञा भी तुमने पूर्ण कर दी तथा संग्राममें रावणको मारकर देवताओंको भी संतुष्ट कर दिया॥ २३॥

'शत्रुसूदन! ये सभी काम तुम कर चुके। इससे तुम्हें स्पृहणीय यश प्राप्त हुआ है। अब तुम भाइयोंके साथ राज्यपर प्रतिष्ठित हो दीर्घ आयु प्राप्त करो'॥ २४॥

जब राजा इस प्रकार कह चुके, तब श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर उनसे बोले—'धर्मज्ञ महाराज! आप कैकेयी और भरतपर प्रसन्न हों—उन दोनोंपर कृपा करें॥ २५॥

'प्रभो! आपने जो कैकेयीसे कहा था कि मैं पुत्रसहित तेरा त्याग करता हूँ, आपका वह घोर शाप पुत्रसहित कैकेयीका स्पर्श न करे'॥ २६॥

तब श्रीरामसे 'बहुत अच्छा' कहकर महाराज दशरथने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हाथ जोड़े खड़े हुए लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर फिर यह बात कही—॥

'वत्स! तुमने विदेहनन्दिनी सीताके साथ श्रीरामकी भक्तिपूर्वक सेवा करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है। तुम्हें धर्मका फल प्राप्त हुआ है॥ २८॥

'धर्मज्ञ! भविष्यमें भी तुम्हें धर्मका फल प्राप्त होगा और भूमण्डलमें महान् यशकी उपलब्धि होगी। श्रीरामकी प्रसन्नतासे तुम्हें उत्तम स्वर्ग और महत्त्व प्राप्त होगा॥ २९॥

'सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम श्रीरामकी निरन्तर सेवा करते रहो। ये श्रीराम सदा सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहते हैं॥ ३०॥

'देखो, इन्द्रसहित ये तीनों लोक, सिद्ध और महर्षि भी परमात्मस्वरूप पुरुषोत्तम रामको प्रणाम करके इनका पूजन कर रहे हैं॥ ३१॥

'सौम्य! शत्रुओंको संताप देनेवाले ये श्रीराम देवताओंके हृदय और परम गुह्य तत्त्व हैं। ये ही वेदोंद्वारा प्रतिपादित अव्यक्त एवं अविनाशी ब्रह्म हैं॥ ३२॥

'विदेहनन्दिनी सीताके साथ शान्तभावसे इनकी सेवा करते हुए तुमने सम्पूर्ण धर्माचरणका फल और महान् यश प्राप्त किया है'॥ ३३॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर राजा दशरथने हाथ जोड़कर खड़ी हुई पुत्रवधू सीताको 'बेटी' कहकर पुकारा और धीरे-धीरे मधुर वाणीमें कहा—॥ ३४॥

'विदेहनन्दिनि! तुम्हें इस त्यागको लेकर श्रीरामपर कुपित नहीं होना चाहिये; क्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और संसारमें तुम्हारी पवित्रता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा व्यवहार किया है॥ ३५॥

'बेटी! तुमने अपने विशुद्ध चरित्रको परिलक्षित करानेके लिये जो अग्निप्रवेशरूप कार्य किया है, यह दूसरी स्त्रियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारा यह कर्म अन्य नारियोंके यशको ढक लेगा॥ ३६॥

'पति-सेवाके सम्बन्धमें भले ही तुम्हें कोई उपदेश देनेकी आवश्यकता न हो; किंतु इतना तो मुझे अवश्य बता देना चाहिये कि ये श्रीराम ही तुम्हारे सबसे बड़े देवता हैं'॥ ३७॥

इस प्रकार दोनों पुत्रों और सीताको आदेश एवं उपदेश देकर रघुवंशी राजा दशरथ विमानके द्वारा इन्द्रलोकको चले गये॥ ३८॥

नृपश्रेष्ठ महानुभाव दशरथ अद्भुत शोभासे सम्पन्न थे। उनका शरीर हर्षसे पुलकित हो रहा था। वे विमानपर बैठकर सीतासहित दोनों पुत्रोंसे विदा ले देवराज इन्द्रके लोकमें चले गये॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११९॥

एक सौ बीसवाँ सर्ग

श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना, देवताओंका प्रस्थान और वानरसेनाका विश्राम

महाराज दशरथके लौट जानेपर पाकशासन इन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़े खड़े हुए श्रीरघुनाथजीसे कहा— ॥ १ ॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम! तुम्हें जो हमारा दर्शन हुआ, वह व्यर्थ नहीं जाना चाहिये और हम तुमपर बहुत प्रसन्न हैं। इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह मुझसे कहो'॥

महात्मा इन्द्रने जब प्रसन्न होकर ऐसी बात कही, तब श्रीरघुनाथजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने हर्षसे भरकर कहा— ॥ ३ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा। आप मेरी उस प्रार्थनाको सफल करें॥ ४ ॥

'मेरे लिये युद्धमें पराक्रम करके जो यमलोकको चले गये हैं, वे सब वानर नया जीवन पाकर उठ खड़े हों॥ ५ ॥

'मानद! जो वानर मेरे लिये अपने स्त्री-पुत्रोंसे बिछुड़ गये हैं, उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ॥ ६ ॥

'पुरंदर! वे पराक्रमी और शूरवीर थे तथा मृत्युको कुछ भी नहीं गिनते थे। उन्होंने मेरे लिये बड़ा प्रयत्न किया है और अन्तमें कालके गालमें चले गये हैं। आप उन सबको जीवित कर दें॥ ७ ॥

'जो वानर सदा मेरा प्रिय करनेमें लगे रहते थे और मौतको कुछ नहीं समझते थे, वे सब आपकी कृपासे फिर मुझसे मिलें—यह वर मैं चाहता हूँ॥ ८ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले देवराज! मैं उन वानर, लंगूर और भालुओंको नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुषसे सम्पन्न देखना चाहता हूँ॥ ९ ॥

'ये वानर जिस स्थानपर रहें, वहाँ असमयमें भी फल-मूल और पुष्पोंकी भरमार रहे तथा निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें'॥ १० ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर महेन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक यों उत्तर दिया— ॥ ११ ॥

'तात! रघुवंशविभूषण! आपने जो वर माँगा है, यह बहुत बड़ा है, तथापि मैंने कभी दो तरहकी बात नहीं की है; इसलिये यह वर अवश्य सफल होगा॥ १२ ॥

'जो युद्धमें मारे गये हैं और राक्षसोंने जिनके मस्तक तथा भुजाएँ काट डाली हैं, वे सब वानर, भालू और लंगूर जी उठें॥ १३ ॥

'नींद टूटनेपर सोकर उठे हुए मनुष्योंकी भाँति वे सभी वानर नीरोग, व्रणहीन तथा बल-पौरुषसे सम्पन्न होकर उठ बैठेंगे॥ १४ ॥

'सभी परमानन्दसे युक्त हो अपने सुहृदों, बान्धवों, जाति-भाइयों तथा स्वजनोंसे मिलेंगे॥ १५ ॥

'महाधनुर्धर वीर! ये वानर जहाँ रहेंगे, वहाँ असमयमें भी वृक्ष फल-फूलोंसे लद जायँगे और नदियाँ जलसे भरी रहेंगी'॥ १६ ॥

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर वे सब श्रेष्ठ वानर जिनके सब अङ्ग पहले घावोंसे भरे थे, उस समय घावरहित हो गये और सभी सोकर जगे हुएकी भाँति सहसा उठकर खड़े हो गये॥ १७ ॥

उन्हें इस प्रकार जीवित होते देख सब वानर आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि यह क्या बात हो गयी? श्रीरामचन्द्रजीको सफलमनोरथ हुआ देख समस्त श्रेष्ठ देवता अत्यन्त प्रसन्न हो लक्ष्मणसहित श्रीरामकी स्तुति करके बोले—'राजन्! अब आप यहाँसे अयोध्याको पधारें और समस्त वानरोंको बिदा कर दें॥ १८-१९ ॥

'ये मिथिलेशकुमारी यशस्विनी सीता सदा आपमें अनुराग रखती हैं। इन्हें सान्त्वना दीजिये और भाई भरत आपके शोकसे पीड़ित हो व्रत कर रहे हैं, अतः उनसे जाकर मिलिये॥ २० ॥

'परंतप! आप महात्मा शत्रुघ्नसे और समस्त माताओंसे भी जाकर मिलें, अपना अभिषेक करावें और पुरवासियोंको हर्ष प्रदान करें'॥ २१ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर देवराज इन्द्र सब देवताओंके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानोंद्वारा बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने लोकको चले गये॥ २२ ॥

उन समस्त श्रेष्ठ देवताओंको नमस्कार करके भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामने सबको विश्राम करनेकी आज्ञा दी॥ २३ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा सुरक्षित तथा हृष्ट-पुष्ट सैनिकोंसे भरी हुई वह यशस्विनी विशाल सेना चन्द्रमाकी चाँदनीसे प्रकाशित होनेवाली रात्रिके समान अद्भुत शोभासे उद्भासित होती हुई विराज रही थी॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२० ॥

एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना और उनकी आज्ञासे विभीषणका पुष्पकविमानको मँगाना

उस रात्रिको विश्राम करके जब शत्रुसूदन श्रीराम दूसरे दिन प्रात:काल सुखपूर्वक उठे, तब कुशल-प्रश्नके पश्चात् विभीषणने हाथ जोड़कर कहा— ॥ १ ॥

'रघुनन्दन! स्नानके लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, चन्दन और भाँति-भाँतिकी दिव्य मालाएँ आपकी सेवामें उपस्थित हैं॥ २ ॥

'रघुवीर! शृङ्गारकलाको जाननेवाली ये कमलनयनी नारियाँ भी सेवाके लिये प्रस्तुत हैं, जो आपको विधिपूर्वक स्नान करायेंगी'॥ ३ ॥

विभीषणके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'मित्र! तुम सुग्रीव आदि वानरवीरोंसे स्नानके लिये अनुरोध करो॥ ४ ॥

'मेरे लिये तो इस समय सत्यका आश्रय लेनेवाले धर्मात्मा महाबाहु भरत बहुत कष्ट सह रहे हैं। वे सुकुमार हैं और सुख पानेके योग्य हैं॥ ५ ॥

'उन धर्मपरायण कैकेयीकुमार भरतसे मिले बिना न तो मुझे स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्र और आभूषणोंको धारण करना ही॥ ६ ॥

'अब तो तुम इस बातकी ओर ध्यान दो कि हम किस तरह जल्दी-से-जल्दी अयोध्यापुरीको लौट सकेंगे; क्योंकि वहाँतक पैदल यात्रा करनेवालेके लिये यह मार्ग बहुत ही दुर्गम है'॥ ७ ॥

उनके ऐसा कहनेपर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीको इस प्रकार उत्तर दिया—'राजकुमार! आप इसके लिये चिन्तित न हों। मैं एक ही दिनमें आपको उस पुरीमें पहुँचा दूँगा॥ ८ ॥

'आपका कल्याण हो। मेरे यहाँ मेरे बड़े भाई कुबेरका सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पकविमान मौजूद है, जिसे महाबली रावणने संग्राममें कुबेरको हराकर छीन लिया था। अतुल पराक्रमी श्रीराम! वह इच्छानुसार चलनेवाला, दिव्य एवं उत्तम विमान मैंने यहाँ आपहीके लिये रख छोड़ा है॥ ९-१० ॥

'मेघ-जैसा दिखायी देनेवाला वह दिव्य विमान यहाँ विद्यमान है, जिसके द्वारा निश्चिन्त होकर आप अयोध्यापुरीको जा सकेंगे॥ ११ ॥

'श्रीराम! यदि मुझे आप अपना कृपापात्र समझते हैं, मुझमें कुछ गुण देखते या मानते हैं और मेरे प्रति आपका सौहार्द है तो अभी भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीताजीके साथ कुछ दिन यहीं विराजिये। मैं सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंद्वारा आपका सत्कार करूँगा। मेरे उस सत्कारको ग्रहण कर लेनेके पश्चात् अयोध्याको पधारियेगा॥ १२-१३ ॥

'रघुनन्दन! मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका सत्कार करना चाहता हूँ। मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये उस सत्कारको आप सुहृदों तथा सेनाओंके साथ ग्रहण करें॥ १४ ॥

'रघुवीर! मैं केवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दके कारण ही आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ। आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। इसलिये आपसे विनय करता हूँ, आपको आज्ञा नहीं देता हूँ'॥ १५ ॥

जब विभीषणने ऐसी बात कही, तब श्रीराम समस्त राक्षसों और वानरोंके सुनते हुए ही उनसे बोले— ॥ १६ ॥

'वीर! मेरे परम सुहृद् और उत्तम सचिव बनकर तुमने सब प्रकारकी चेष्टाओंद्वारा मेरा सम्मान और पूजन किया है॥ १७ ॥

'राक्षसेश्वर! तुम्हारी इस बातको मैं निश्चय ही अस्वीकार नहीं कर सकता हूँ; परंतु इस समय मेरा मन अपने उन भाई भरतको देखनेके लिये उतावला हो उठा है, जो मुझे लौटा ले जानेके लिये चित्रकूटतक आये थे और मेरे चरणोंमें सिर झुकाकर याचना करनेपर भी जिनकी बात मैंने नहीं मानी थी॥ १८-१९ ॥

'उनके सिवा माता कौसल्या, सुमित्रा, यशस्विनी कैकेयी, मित्रवर गुह और नगर एवं जनपदके लोगोंको देखनेके लिये भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥ २० ॥

'सौम्य विभीषण! अब तो तुम मुझे जानेकी ही अनुमति दो। मैं तुम्हारे द्वारा बहुत सम्मानित हो चुका हूँ। सखे! मेरे इस हठके कारण मुझपर क्रोध न करना। इसके लिये मैं तुमसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ॥ २१ ॥

'राक्षसराज! अब शीघ्र मेरे लिये पुष्पकविमानको यहाँ मँगाओ। जब मेरा यहाँ कार्य समाप्त हो गया, तब यहाँ ठहरना मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है?'॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर राक्षसराज विभीषणने बड़ी उतावलीके साथ उस सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानका आवाहन किया॥ २३ ॥

उस विमानका एक-एक अङ्ग सोनेसे जड़ा हुआ

था, जिससे उसकी विचित्र शोभा होती थी। उसके भीतर वैदूर्य मणि (नीलम)-की वेदियाँ थीं, जहाँ-तहाँ गुप्त गृह बने हुए थे और वह सब ओर चाँदीके समान चमकीला था॥ २४॥

वह श्वेत-पीत वर्णवाली पताकाओं तथा ध्वजोंसे अलंकृत था। उसमें सोनेके कमलोंसे सुसज्जित स्वर्णमयी अट्टालिकाएँ थीं, जो उस विमानकी शोभा बढ़ाती थीं॥

सारा विमान छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरोंसे व्याप्त था। उसमें मोती और मणियोंकी खिड़कियाँ लगी थीं। सब ओर घंटे बँधे थे, जिससे मधुर ध्वनि होती रहती थी॥ २६॥

वह विश्वकर्माका बनाया हुआ विमान सुमेरु-शिखरके समान ऊँचा तथा मोती और चाँदीसे सुसज्जित बड़े-बड़े कमरोंसे विभूषित था॥ २७॥

उसकी फर्श विचित्र स्फटिकमणिसे जड़ी हुई थी। उसमें नीलमके बहुमूल्य सिंहासन थे, जिनपर महामूल्यवान् बिस्तर बिछे हुए थे॥ २८॥

उसका मनके समान वेग था और उसकी गति कहीं रुकती नहीं थी। वह विमान सेवामें उपस्थित हुआ। विभीषण श्रीरामको उसके आनेकी सूचना देकर वहाँ खड़े हो गये॥ २९॥

पर्वतके समान ऊँचे और इच्छानुसार चलनेवाले उस पुष्पकविमानको तत्काल उपस्थित देख लक्ष्मणसहित उदारचेता भगवान् श्रीरामको बड़ा विस्मय हुआ॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२१॥

एक सौ बाईसवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा वानरोंका विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषणसहित वानरोंको साथ लेकर श्रीरामका पुष्पकविमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना

फूलोंसे सजे हुए पुष्पकविमानको वहाँ उपस्थित करके पास ही खड़े हुए विभीषणने श्रीरामसे कुछ कहनेका विचार किया॥ १॥

राक्षसराज विभीषणने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनय और उतावलीके साथ श्रीरघुनाथजीसे पूछा—'प्रभो! अब मैं क्या सेवा करूँ?'॥ २॥

तब महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने कुछ सोचकर लक्ष्मणके सुनते हुए यह स्नेहयुक्त वचन कहा—॥ ३॥

'विभीषण! इन सारे वानरोंने युद्धमें बड़ा यत्न एवं परिश्रम किया है; अतः तुम नाना प्रकारके रत्न और धन आदिके द्वारा इन सबका सत्कार करो॥ ४॥

'राक्षसेश्वर! ये वीर वानर संग्रामसे कभी पीछे नहीं हटते हैं और सदा हर्ष एवं उत्साहसे भरे रहते हैं। प्राणोंका भय छोड़कर लड़नेवाले इन वानरोंके सहयोगसे तुमने लङ्कापर विजय पायी है॥ ५॥

'ये सभी वानर इस समय अपना काम पूरा कर चुके हैं, अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर तुम इनके इस कर्मको सफल करो॥ ६॥

'तुम कृतज्ञ होकर जब इनका इस प्रकार सम्मान और अभिनन्दन करोगे, तब ये वानरयूथपति बहुत संतुष्ट होंगे॥ ७॥

'ऐसा करनेसे सब लोग यह जानेंगे कि विभीषण उचित अवसरपर धनका त्याग एवं दान करते हैं, यथासमय न्यायोचित रीतिसे धन और रत्न आदिका संग्रह करते रहते हैं, दयालु हैं और जितेन्द्रिय हैं; इसलिये तुम्हें ऐसा करनेके लिये समझा रहा हूँ॥ ८॥

'नरेश्वर! जो राजा सेवकोंमें प्रेम उत्पन्न करनेवाले दान-मान आदि सब गुणोंसे रहित होता है, उसे युद्धके अवसरपर उद्विग्न हुई सेना छोड़कर चल देती है, वह समझती है कि यह व्यर्थ ही हमारा वध करा रहा है—हमारे भरण-पोषणका या योग-क्षेमकी चिन्ता इसे बिलकुल नहीं है'॥ ९॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषणने उन सब वानरोंको रत्न और धन देकर सभीका पूजन (सत्कार) किया॥ १०॥

उन वानरयूथपतियोंको रत्न और धनसे पूजित हुआ देख उस समय भगवान् श्रीराम लजाती हुई मनस्विनी विदेहकुमारीको अङ्कमें लेकर पराक्रमी धनुर्धर बन्धु लक्ष्मणके साथ उस उत्तम विमानपर आरूढ़ हुए॥

विमानपर बैठकर समस्त वानरोंका समादर करते हुए उन ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने विभीषणसहित महापराक्रमी सुग्रीवसे कहा—॥ १३॥

'वानरश्रेष्ठ वीरो! आपलोगोंने अपने इस मित्रका कार्य मित्रोचित रीतिसे ही भलीभाँति सम्पन्न किया। अब आप सब अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले जायँ॥

'सखे सुग्रीव! एक हितैषी एवं प्रेमी मित्रको जो

काम करना चाहिये, वह सब तुमने पूरा-पूरा कर दिखाया; क्योंकि तुम अधर्मसे डरनेवाले हो॥ १५॥

'वानरराज! अब तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र ही किष्किन्धापुरीको चले जाओ। विभीषण! तुम भी लङ्कामें मेरे दिये हुए अपने राज्यपर स्थिर रहो; अब इन्द्र आदि देवता भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं॥ १६॥

'अब इस समय मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्याको जाऊँगा। इसके लिये आप सब लोगोंसे पूछता हूँ और सबकी अनुमति चाहता हूँ'॥ १७॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सभी वानर-सेनापति तथा राक्षसराज विभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे—॥

'भगवन्! हम भी अयोध्यापुरीको चलना चाहते हैं, आप हमें भी अपने साथ ले चलिये। वहाँ हम प्रसन्नतापूर्वक वनों और उपवनोंमें विचरेंगे॥ १९॥

'नृपश्रेष्ठ! राज्याभिषेकके समय मन्त्रपूत जलसे भीगे हुए आपके श्रीविग्रहकी झाँकी करके माता कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हम शीघ्र अपने घर लौट आयेंगे'॥ २०॥

विभीषणसहित वानरोंके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामने सुग्रीव तथा विभीषणसहित उन वानरोंसे कहा—॥ २१॥

'मित्रो! यह तो मेरे लिये प्रियसे भी प्रिय बात होगी—परम प्रिय वस्तुका लाभ होगा, यदि मैं आप सभी सुहृदोंके साथ अयोध्यापुरीको चल सकूँ। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी॥ २२॥

'सुग्रीव! तुम सब वानरोंके साथ शीघ्र ही इस विमानपर चढ़ जाओ। राक्षसराज विभीषण! तुम भी मन्त्रियोंके साथ विमानपर आरूढ़ हो जाओ'॥ २३॥

तब वानरोंसहित सुग्रीव और मन्त्रियोंसहित विभीषण बड़ी प्रसन्नताके साथ उस दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़ गये॥ २४॥

उन सबके चढ़ जानेपर कुबेरका वह उत्तम आसन पुष्पकविमान श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर आकाशको उड़ चला॥ २५॥

आकाशमें पहुँचे हुए उस हंसयुक्त तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए पुलकित एवं प्रसन्नचित्त श्रीराम साक्षात् कुबेरके समान शोभा पा रहे थे॥ २६॥

वे सब वानर, भालू और महाबली राक्षस उस दिव्य विमानमें बड़े सुखसे फैलकर बैठे हुए थे। किसीको किसीसे धक्का नहीं खाना पड़ता था॥ २७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२२॥

एक सौ तेईसवाँ सर्ग

अयोध्याकी यात्रा करते समय श्रीरामका सीताजीको मार्गके स्थान दिखाना

श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह हंसयुक्त उत्तम विमान महान् शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ने लगा॥ १॥

उस समय रघुकुलनन्दन श्रीरामने सब ओर दृष्टि डालकर चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली मिथिलेश-कुमारी सीतासे कहा—॥ २॥

'विदेहराजनन्दिनि! कैलास-शिखरके समान सुन्दर त्रिकूट पर्वतके विशाल शृङ्गपर बसी हुई विश्वकर्माकी बनायी लङ्कापुरीको देखो, कैसी सुन्दर दिखायी देती है!॥

'इधर इस युद्धभूमिको देखो। यहाँ रक्त और मांसकी कीच जमी हुई है। सीते! इस युद्धक्षेत्रमें वानरों और राक्षसोंका महान् संहार हुआ है॥ ४॥

'विशाललोचने! यह राक्षसराज रावण राखका ढेर बनकर सो रहा है। यह बड़ा भारी हिंसक था और इसे ब्रह्माजीने वरदान दे रखा था; किंतु तुम्हारे लिये मैंने इसका वध कर डाला है॥ ५॥

'यहींपर मैंने कुम्भकर्णको मारा था, यहीं निशाचर प्रहस्त मारा गया है और इसी समराङ्गणमें वानरवीर हनुमान्ने धूम्राक्षका वध किया है॥ ६॥

'यहीं महामना सुषेणने विद्युन्मालीको मारा था और इसी रणभूमिमें लक्ष्मणने रावणपुत्र इन्द्रजित्का संहार किया था॥ ७॥

'यहीं अङ्गदने विकट नामक राक्षसका वध किया था। जिसकी ओर देखना भी कठिन था, वह विरूपाक्ष तथा महापार्श्व और महोदर भी यहीं मारे गये हैं॥ ८॥

'अकम्पन तथा दूसरे बलवान् राक्षस यहीं मौतके घाट उतारे गये थे। त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक भी यहीं मार डाले गये थे॥ ९॥

'युद्धोन्मत्त और मत्त—ये दोनों श्रेष्ठ राक्षस तथा बलवान् कुम्भ और निकुम्भ—ये कुम्भकर्णके दोनों पुत्र भी यहीं मृत्युको प्राप्त हुए॥ १०॥

'वज्रदंष्ट्र और दंष्ट्र आदि बहुत-से राक्षस यहीं कालके ग्रास बन गये। दुर्धर्ष वीर मकराक्षको इसी

युद्धस्थलमें मैंने मार गिराया था॥ ११॥

'अकम्पन और पराक्रमी शोणिताक्षका भी यहीं काम तमाम हुआ था। यूपाक्ष और प्रजङ्घ भी इसी महासमरमें मारे गये थे॥ १२॥

'जिसकी ओर देखनेसे भी भय होता था, वह राक्षस विद्युज्जिह्व यहीं मौतका ग्रास बन गया। यज्ञशत्रु और महाबली सुप्तघ्नको भी यहीं मारा गया था॥ १३॥

'सूर्यशत्रु और ब्रह्मशत्रु नामक निशाचरोंका भी यहीं वध किया गया था। यहीं रावणकी भार्या मन्दोदरीने उसके लिये विलाप किया था। उस समय वह अपनी हजारोंसे भी अधिक सौतोंसे घिरी हुई थी॥ १४½॥

'सुमुखि! यह समुद्रका तीर्थ दिखायी देता है, जहाँ समुद्रको पार करके हमलोगोंने वह रात बितायी थी॥ १५½॥

'विशाललोचने! खारे पानीके समुद्रमें यह मेरा बँधवाया हुआ पुल है, जो नलसेतुके नामसे विख्यात है। देवि! तुम्हारे लिये ही यह अत्यन्त दुष्कर सेतु बाँधा गया था॥ १६½॥

'विदेहनन्दिनि! इस अक्षोभ्य वरुणालय समुद्रको तो देखो, जो अपार-सा दिखायी देता है। शङ्ख और सीपियोंसे भरा हुआ यह सागर कैसी गर्जना कर रहा है॥ १७½॥

'मिथिलेशकुमारी! इस सुवर्णमय पर्वतराज हिरण्यनाभको तो देखो, जो हनुमान्‌जीको विश्राम देनेके लिये समुद्रकी जलराशिको चीरकर ऊपरको उठ गया था॥ १८½॥

'यह समुद्रके उदरमें ही विशाल टापू है, जहाँ मैंने सेनाका पड़ाव डाला था। यहीं पूर्वकालमें भगवान् महादेवने मुझपर कृपा की थी—सेतु बाँधनेसे पहले मेरे द्वारा स्थापित होकर वे यहाँ विराजमान हुए थे॥ १९½॥

'इस पुण्यस्थलमें विशालकाय समुद्रका तीर्थ दिखायी देता है, जो सेतुनिर्माणका मूलप्रदेश होनेके कारण सेतुबन्ध नामसे विख्यात तथा तीनों लोकोंद्वारा पूजित होगा॥ २०½॥

'यह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकोंका नाश करनेवाला होगा। यहीं ये राक्षसराज विभीषण आकर मुझसे मिले थे॥ २१½॥

'सीते! यह विचित्र वनप्रान्तसे सुशोभित किष्किन्धा दिखायी देती है, जो वानरराज सुग्रीवकी सुरम्य नगरी है। यहीं मैंने वालीका वध किया था'॥ २२½॥

तदनन्तर वालिपालित किष्किन्धापुरीका दर्शन करके सीताने प्रेमसे विह्वल हो श्रीरामसे विनयपूर्वक कहा—॥ २३½॥

'महाराज! मैं सुग्रीवकी तारा आदि प्रिय भार्याओं तथा अन्य वानरेश्वरोंकी स्त्रियोंको साथ लेकर आपके साथ अपनी राजधानी अयोध्यामें चलना चाहती हूँ'*॥

विदेहनन्दिनी सीताके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'ऐसा ही हो।' फिर किष्किन्धामें पहुँचनेपर उन्होंने विमान ठहराया और सुग्रीवकी ओर देखकर कहा—॥ २६½॥

'वानरश्रेष्ठ! तुम समस्त वानरयूथपतियोंसे कहो कि वे सब लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर सीताके साथ अयोध्या चलें तथा महाबली वानरराज सुग्रीव! तुम भी अपनी सब स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो, जिससे हम सब लोग जल्दी वहाँ पहुँचें'॥ २७-२८½॥

अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर उन सब वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही अन्त:पुरमें प्रवेश करके तारासे भेंट की और इस प्रकार कहा—॥ २९-३०॥

'प्रिये! तुम मिथिलेशकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार सभी प्रधान-प्रधान महात्मा वानरोंकी स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो। हमलोग इन वानर-पत्नियोंको साथ लेकर चलेंगे और उन्हें अयोध्यापुरी तथा महाराज दशरथकी सब रानियोंका दर्शन करायेंगे'॥ ३१-३२॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी ताराने समस्त वानर-पत्नियोंको बुलाकर कहा—॥ ३३॥

'सखियो! सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार तुम सब लोग अपने पतियों—समस्त वानरोंके साथ अयोध्या चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ। अयोध्याका दर्शन करके तुमलोग मेरा भी प्रिय कार्य करोगी। वहाँ पुरवासियों तथा जनपदके लोगोंके साथ श्रीरामका जो अपने नगरमें प्रवेश होगा, वह उत्सव हमें देखनेको मिलेगा। हम वहाँ महाराज दशरथकी समस्त रानियोंके वैभवका भी दर्शन करेंगी'॥ ३४-३५॥

---

* सीताजीने जो यहाँ वानरोंकी स्त्रियोंको साथ ले चलनेकी इच्छा प्रकट की है, इसके लिये किष्किन्धामें विमानको रोककर सबको एक दिन रुकना पड़ा। ऐसा रामायण-तिलककारका मत है। उनके कथनानुसार आश्विन शुक्ला चतुर्थीको किष्किन्धामें रहकर पञ्चमीको वहाँसे प्रस्थान किया गया था। भगवान् रामने वहाँ रुककर उसी दिन अङ्गदका किष्किन्धाके युवराजपदपर अभिषेक करवाया था, जैसा कि महाभारत, वनपर्व अध्याय २९१ श्लोक ५८-५९ से सूचित होता है।

ताराकी यह आज्ञा पाकर सारी वानर-पत्नियोंने शृङ्गार करके उस विमानकी परिक्रमा की और सीताजीके दर्शनकी इच्छासे वे उसपर चढ़ गयीं॥ ३६½ ॥

उन सबके साथ विमानको शीघ्र ही ऊपर उठा देख श्रीरघुनाथजीने ऋष्यमूकके निकट आनेपर पुनः विदेहनन्दिनीसे कहा—॥ ३७½ ॥

'सीते! वह जो बिजलीसहित मेघके समान सुवर्णमय धातुओंसे युक्त श्रेष्ठ एवं महान् पर्वत दिखायी देता है, उसका नाम ऋष्यमूक है॥ ३८½ ॥

'सीते! यहीं मैं वानरराज सुग्रीवसे मिला था और मित्रता करनेके पश्चात् वालीका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी॥ ३९½ ॥

'यही वह पम्पा नामक पुष्करिणी है, जो तटवर्ती विचित्र काननोंसे सुशोभित हो रही है। यहाँ तुम्हारे वियोगसे अत्यन्त दुःखी होकर मैंने विलाप किया था॥

'इसी पम्पाके तटपर मुझे धर्मपरायणा शबरीका दर्शन हुआ था। इधर वह स्थान है, जहाँ एक योजन लम्बी भुजावाले कबन्ध नामक असुरका मैंने वध किया था॥

'विलासशालिनी सीते! जनस्थानमें वह शोभाशाली विशाल वृक्ष दिखायी दे रहा है, जहाँ बलवान् एवं महातेजस्वी पक्षिप्रवर जटायु तुम्हारी रक्षा करनेके कारण रावणके हाथसे मारे गये थे॥ ४२-४३ ॥

'यह वह स्थान है, जहाँ मेरे सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा खर मारा गया, दूषण धराशायी किया गया और महापराक्रमी त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया गया॥ ४४ ॥

'वरवर्णिनि! शुभदर्शने! यह हमलोगोंका आश्रम है तथा वह विचित्र पर्णशाला दिखायी देती है, जहाँ आकर राक्षसराज रावणने बलपूर्वक तुम्हारा अपहरण किया था॥

'यह स्वच्छ जलराशिसे सुशोभित मङ्गलमयी रमणीय गोदावरी नदी है तथा वह केलेके कुञ्जोंसे घिरा हुआ महर्षि अगस्त्यका आश्रम दिखायी देता है॥ ४६½ ॥

'यह महात्मा सुतीक्ष्णका दीप्तिमान् आश्रम है और विदेहनन्दिनि! वह शरभङ्ग मुनिका महान् आश्रम दिखायी देता है, जहाँ सहस्रनेत्रधारी पुरंदर इन्द्र पधारे थे॥

'यह वह स्थान है, जहाँ मैंने विशालकाय विराधका वध किया था। देवि! तनुमध्यमे! ये वे तापस दिखायी देते हैं, जिनका दर्शन हमलोगोंने पहले किया था॥ ४९ ॥

'सीते! इस तापसाश्रमपर ही सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी कुलपति अत्रि मुनि निवास करते हैं। यहीं तुमने धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूयादेवीका दर्शन किया था॥

'सुतनु! वह गिरिराज चित्रकूट प्रकाशित हो रहा है। वहीं कैकेयीकुमार भरत मुझे प्रसन्न करके लौटा लेनेके लिये आये थे॥ ५१ ॥

'मिथिलेशकुमारी! यह विचित्र काननोंसे सुशोभित रमणीय यमुना नदी दिखायी देती है और यह शोभाशाली भरद्वाजाश्रम दृष्टिगोचर हो रहा है॥ ५२ ॥

'ये पुण्यसलिला त्रिपथगा गङ्गा नदी दीख रही हैं, जिनके तटपर नाना प्रकारके पक्षी कलरव करते हैं और द्विजवृन्द पुण्यकर्मोंमें रत हैं। इनके तटवर्ती वनके वृक्ष सुन्दर फूलोंसे भरे हुए हैं॥ ५३ ॥

'यह शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है। सीते! यह यूपमालाओंसे अलंकृत सरयू दिखायी देती है, जिसके तटपर मेरे पिताजीकी राजधानी है। विदेहनन्दिनि! तुम वनवासके बाद फिर लौटकर अयोध्याको आयी हो। इसलिये इस पुरीको प्रणाम करो'॥ ५४-५५ ॥

तब विभीषणसहित वे सब राक्षस और वानर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उछल-उछलकर उस पुरीका दर्शन करने लगे॥ ५६ ॥

तत्पश्चात् वे वानर और राक्षस श्वेत अट्टालिकाओंसे अलंकृत और विशाल भवनोंसे विभूषित अयोध्यापुरीको, जो हाथी-घोड़ोंसे भरी थी और देवराज इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान शोभित होती थी, देखने लगे॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२३ ॥

एक सौ चौबीसवाँ सर्ग

श्रीरामका भरद्वाज-आश्रमपर उतरकर महर्षिसे मिलना और उनसे वर पाना

श्रीरामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर पञ्चमी तिथिको भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मनको वशमें रखते हुए मुनिको प्रणाम किया॥ १ ॥

तपस्याके धनी भरद्वाज मुनिको प्रणाम करके श्रीरामने उनसे पूछा—'भगवन्! आपने अयोध्यापुरीके विषयमें भी कुछ सुना है? वहाँ सुकाल और कुशल-मङ्गल तो है न? भरत प्रजापालनमें तत्पर रहते हैं न? मेरी माताएँ जीवित हैं न?'॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि भरद्वाजने मुस्कराकर उन रघुश्रेष्ठ श्रीरामसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ३ ॥

'रघुनन्दन! भरत आपकी आज्ञाके अधीन हैं। वे

जटा बढ़ाये आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं। आपकी चरणपादुकाओंको सामने रखकर सारा कार्य करते हैं। आपके घरपर और नगरमें भी सब कुशल हैं॥ ४॥

'पहले जब आप महान् वनकी यात्रा कर रहे थे, उस समय आपने चीरवस्त्र धारण कर रखा था और आप दोनों भाइयोंके साथ तीसरी केवल आपकी स्त्री थी। आप राज्यसे वञ्चित किये गये थे और केवल धर्मपालनकी इच्छा मनमें ले सर्वस्व त्यागकर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये पैदल ही जा रहे थे। सारे भोगोंसे दूर हो स्वर्गसे भूतलपर गिरे हुए देवताके समान जान पड़ते थे। शत्रुविजयी वीर! आप कैकेयीके आदेशके पालनमें तत्पर हो जंगली फल-मूलका आहार करते थे, उस समय आपको देखकर मेरे मनमें बड़ी करुणा हुई थी॥ ५—७॥

'परंतु इस समय तो सारी स्थिति ही बदल गयी है। आप शत्रुपर विजय पाकर सफलमनोरथ हो मित्रों तथा बान्धवोंके साथ लौट रहे हैं। इस रूपमें आपको देखकर मुझे बड़ा सुख मिला—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई॥

'रघुवीर! आपने जनस्थानमें रहकर जो विपुल सुख-दु:ख उठाये हैं, वे सब मुझे मालूम हैं॥ ९॥

'वहाँ रहकर आप ब्राह्मणोंके कार्यमें संलग्न हो समस्त तपस्वी मुनियोंकी रक्षा करते थे। उस समय रावण आपकी इन सती-साध्वी भार्याको हर ले गया॥

'धर्मवत्सल! मारीचका कपटमृगके रूपमें दिखायी देना, सीताका बलपूर्वक अपहरण होना, इनकी खोज करते समय आपके मार्गमें कबन्धका मिलना, आपका पम्पासरोवरके तटपर जाना, सुग्रीवके साथ आपकी मैत्रीका होना, आपके हाथसे वालीका मारा जाना, सीताकी खोज, पवनपुत्र हनुमान्‌का अद्भुत कर्म, सीताका पता लग जानेपर नलके द्वारा समुद्रपर सेतुका निर्माण, हर्ष और उत्साहसे भरे हुए वानर-यूथपतियोंद्वारा लङ्कापुरीका दहन, पुत्र, बन्धु, मन्त्री, सेना और सवारियोंसहित बलाभिमानी रावणका आपके द्वारा युद्धमें वध होना, उस देवकण्टक रावणके मारे जानेपर देवताओंके साथ आपका समागम होना तथा उनका आपको वर देना—ये सारी बातें मुझे तपके प्रभावसे ज्ञात हैं॥ ११—१५½॥

'मेरे प्रवृत्ति नामक शिष्य यहाँसे अयोध्यापुरीको जाते रहते हैं (अत: मुझे वहाँका वृत्तान्त मालूम होता रहता है), शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! यहाँ मैं भी आपको एक वर देता हूँ (आपकी जो इच्छा हो, उसे माँग लें)। आज मेरा अर्घ्य और आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करें। कल सबेरे अयोध्याको जाइयेगा'॥ १६-१७॥

मुनिके उस वचनको शिरोधार्य करके हर्षसे भरे हुए श्रीमान् राजकुमार श्रीरामने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर उन्होंने उनसे यह वर माँगा—॥ १८॥

'भगवन्! यहाँसे अयोध्या जाते समय मार्गके सब वृक्षोंमें समय न होनेपर भी फल उत्पन्न हो जायँ और वे सब-के-सब मधुकी धारा टपकानेवाले हों। उनमें नाना प्रकारके बहुत-से अमृतोपम सुगन्धित फल लग जायँ'॥ १९½॥

भरद्वाजजीने कहा—'ऐसा ही होगा'। उनके इस प्रकार प्रतिज्ञा करते ही—उनकी उस वाणीके निकलते ही तत्काल वहाँके सारे वृक्ष स्वर्गीय वृक्षोंके समान हो गये॥ २०½॥

जिनमें फल नहीं थे, उनमें फल आ गये। जिनमें फूल नहीं थे, वे फूलोंसे सुशोभित होने लगे। सूखे हुए वृक्षोंमें भी हरे-हरे पत्ते निकल आये और सभी वृक्ष मधुकी धारा बहाने लगे। अयोध्या जानेका जो मार्ग था, उसके आस-पास तीन योजनतकके वृक्ष ऐसे ही हो गये॥ २१-२२॥

फिर तो वे सहस्रों श्रेष्ठ वानर हर्षसे भरकर स्वर्गवासी देवताओंके समान अपनी रुचिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उन बहुसंख्यक दिव्य फलोंका आस्वादन करने लगे॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२४॥

एक सौ पचीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका निषादराज गुह तथा भरतजीको श्रीरामके आगमनकी सूचना देना और प्रसन्न हुए भरतका उन्हें उपहार देनेकी घोषणा करना

(भरद्वाज-आश्रमपर उतरनेसे पहले) विमानसे ही अयोध्यापुरीका दर्शन करके अयोध्यावासियों तथा सुग्रीव आदिका प्रिय करनेकी इच्छावाले शीघ्रपराक्रमी रघुकुलनन्दन श्रीरामने यह विचार किया कि कैसे इन सबका प्रिय हो?॥ १॥

विचार करके तेजस्वी एवं बुद्धिमान् श्रीरामने वानरोंपर

दृष्टि डाली और वानर-वीर हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ २ ॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम शीघ्र ही अयोध्यामें जाकर पता लो कि राजभवनमें सब लोग सकुशल तो हैं न?॥ ३ ॥

'शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर वनवासी निषादराज गुहसे भी मिलना और मेरी ओरसे कुशल कहना॥ ४॥

'मुझे सकुशल, नीरोग और चिन्तारहित सुनकर निषादराज गुहको बड़ी प्रसन्नता होगी; क्योंकि वह मेरा मित्र है। मेरे लिये आत्माके समान है॥ ५॥

'निषादराज गुह प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्याका मार्ग और भरतका समाचार बतायेगा॥ ६॥

'भरतके पास जाकर तुम मेरी ओरसे उनका कुशल पूछना और उन्हें सीता एवं लक्ष्मणसहित मेरे सफलमनोरथ होकर लौटनेका समाचार बताना॥ ७॥

'बलवान् रावणके द्वारा सीताजीके हरे जानेका, सुग्रीवसे बातचीत होनेका, रणभूमिमें वालीके वधका, सीताजीकी खोजका, तुमने जो महान् जलराशिसे भरे हुए अपार महासागरको लाँघकर जिस तरह सीताका पता लगाया था उसका, फिर समुद्रतटपर मेरे जानेका, सागरके दर्शन देनेका, उसपर पुल बनानेका, रावणके वधका, इन्द्र, ब्रह्मा और वरुणसे मिलने एवं वरदान पानेका और महादेवजीके प्रसादसे पिताजीके दर्शन होनेका वृत्तान्त उन्हें सुनाना॥ ८—११ ॥

'सौम्य! फिर भरतसे यह भी निवेदन करना कि श्रीराम शत्रुओंको जीतकर, परम उत्तम यश पाकर, सफलमनोरथ हो राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव तथा अपने अन्य महाबली मित्रोंके साथ आ रहे हैं और प्रयागतक आ पहुँचे हैं॥ १२-१३ ॥

'यह बात सुनकर भरतकी जैसी मुख-मुद्रा हो, उसपर ध्यान रखना और समझना तथा भरतका मेरे प्रति जो कर्तव्य या बर्ताव हो, उसको भी जाननेका प्रयत्न करना॥ १४॥

'वहाँके सारे वृत्तान्त तथा भरतकी चेष्टाएँ तुम्हें यथार्थरूपसे जाननी चाहिये। मुखकी कान्ति, दृष्टि और बातचीतसे उनके मनोभावको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये॥ १५॥

'समस्त मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे भरपूर बाप-दादोंका राज्य सुलभ हो तो वह किसके मनको नहीं पलट देता?॥ १६॥

'यदि कैकेयीकी संगति अथवा चिरकालतक राज्यवैभवका संसर्ग होनेसे श्रीमान् भरत स्वयं ही राज्य पानेकी इच्छा रखते हों तो वे रघुकुलनन्दन भरत बेखटके समस्त भूमण्डलका राज्य करें (मुझे उस राज्यको नहीं लेना है। उस दशामें हम कहीं अन्यत्र रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करेंगे)॥ १७॥

'वानरवीर! तुम भरतके विचार और निश्चयको जानकर जबतक हमलोग इस आश्रमसे दूर न चले जायँ तभीतक शीघ्र लौट आओ'॥ १८॥

श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार आदेश देनेपर पवनपुत्र हनुमान्‌जी मनुष्यका रूप धारण करके तीव्रगतिसे अयोध्याकी ओर चल दिये॥ १९॥

जैसे गरुड़ किसी श्रेष्ठ सर्पको पकड़नेके लिये बड़े वेगसे झपट्टा मारते हैं, उसी तरह पवनपुत्र हनुमान् तीव्र वेगसे उड़ चले॥ २०॥

अपने पिता वायुके मार्ग—अन्तरिक्षको, जो पक्षिराज गरुड़का सुन्दर गृह है, लाँघकर गङ्गा और यमुनाके वेगशाली संगमको पार करके शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर पराक्रमी हनुमान्‌जी निषादराज गुहसे मिले और बड़े हर्षके साथ सुन्दर वाणीमें बोले— ॥ २१-२२ ॥

'तुम्हारे मित्र ककुत्स्थकुलभूषण सत्यपराक्रमी श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आ रहे हैं और उन्होंने तुम्हें अपना कुशल-समाचार कहलाया है। वे प्रयागमें हैं और भरद्वाजमुनिके कहनेसे उन्हींके आश्रममें आज पञ्चमीकी रात बिताकर कल उनकी आज्ञा ले वहाँसे चलेंगे। तुम्हें यहीं श्रीरघुनाथजीका दर्शन होगा'॥ २३-२४॥

गुहसे यों कहकर महातेजस्वी और वेगशाली हनुमान्‌जी बिना कोई सोच-विचार किये बड़े वेगसे आगेको उड़ चले। उस समय उनके सारे अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया था॥ २५॥

मार्गमें उन्हें परशुराम-तीर्थ, वालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक सालवनके दर्शन हुए॥ २६॥

कई सहस्र प्रजाओं तथा समृद्धिशाली जनपदोंको देखते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी तीव्रगतिसे दूरतकका रास्ता लाँघ गये और नन्दिग्रामके समीपवर्ती खिले हुए वृक्षोंके पास जा पहुँचे। वे वृक्ष देवराज इन्द्रके नन्दनवन और कुबेरके चैत्ररथ-वनके वृक्षोंके समान सुशोभित होते थे॥ २७-२८॥

उनके आस-पास बहुत-सी स्त्रियाँ अपने उन पुत्रों और पौत्रोंके साथ, जो वस्त्राभूषणोंसे भलीभाँति अलंकृत थे, विचरती और उनके पुष्पोंका चयन करती थीं। अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर उन्होंने आश्रमवासी भरतको देखा, जो चीर-वस्त्र और काला मृगचर्म धारण किये दु:खी एवं दुर्बल दिखायी देते थे। उनके सिरपर

जटा बढ़ी हुई थी, शरीरपर मैल जम गयी थी, भाईके वनवासके दु:खने उन्हें बहुत ही कृश कर दिया था, फल-मूल ही उनका भोजन था, वे इन्द्रियोंका दमन करके तपस्यामें लगे हुए थे और धर्मका आचरण करते थे। सिरपर जटाका भार बहुत ही ऊँचा दिखायी देता था, वल्कल और मृगचर्मसे उनका शरीर ढका था। वे बड़े नियमसे रहते थे। उनका अन्त:करण शुद्ध था और वे ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। रघुनाथजीकी दोनों चरणपादुकाओंको आगे रखकर वे पृथ्वीका शासन करते थे॥ २९—३२॥

भरतजी चारों वर्णोंकी प्रजाओंको सब प्रकारके भयसे सुरक्षित रखते थे। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त होकर रहते और गेरुए वस्त्र पहनते थे॥ ३३½ ॥

अयोध्याके वे धर्मानुरागी पुरवासी भी उन चीर और काला मृगचर्म धारण करनेवाले राजकुमार भरतको उस दशामें छोड़कर स्वयं भोग भोगनेकी इच्छा नहीं करते थे॥ ३४½ ॥

मनुष्यदेह धारण करके आये हुए दूसरे धर्मकी भाँति उन धर्मज्ञ भरतके पास पहुँचकर पवनकुमार हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—॥ ३५½ ॥

'देव! आप दण्डकारण्यमें चीरवस्त्र और जटा धारण करके रहनेवाले जिन श्रीरघुनाथजीके लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं, उन्होंने आपको अपना कुशल-समाचार कहलाया है और आपका भी पूछा है। अब आप इस अत्यन्त दारुण शोकको त्याग दीजिये। मैं आपको बड़ा प्रिय समाचार सुना रहा हूँ। आप शीघ्र ही अपने भाई श्रीरामसे मिलेंगे॥ ३६-३७½ ॥

'भगवान् श्रीराम रावणको मारकर मिथिलेशकुमारीको वापस ले सफलमनोरथ हो अपने महाबली मित्रोंके साथ आ रहे हैं। उनके साथ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी विदेहराजकुमारी सीता भी हैं। जैसे देवराज इन्द्रके साथ शची शोभा पाती हैं, उसी प्रकार श्रीरामके साथ पूर्णकामा सीताजी सुशोभित हो रही हैं'॥ ३८-३९॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहते ही कैकेयी-कुमार भरत सहसा आनन्दविभोर हो पृथ्वीपर गिर पड़े और हर्षसे मूर्च्छित हो गये॥ ४०॥

तत्पश्चात् दो घड़ीके बाद उन्हें होश हुआ और वे उठकर खड़े हो गये। उस समय रघुकुलभूषण श्रीमान् भरतने प्रियवादी हनुमान्‌जीको बड़े वेगसे पकड़कर दोनों भुजाओंमें भर लिया और शोक-संसर्गसे शून्य परमानन्दजनित विपुल अश्रुबिन्दुओंसे वे उन्हें नहलाने लगे। फिर इस प्रकार बोले—॥ ४१-४२॥

'भैया! तुम कोई देवता हो या मनुष्य, जो मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हो ? सौम्य! तुमने जो यह प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदले मैं तुम्हें कौन-सी प्रिय वस्तु प्रदान करूँ ? (मुझे तो कोई ऐसा बहुमूल्य उपहार नहीं दिखायी देता, जो इस प्रिय संवादके तुल्य हो)॥

'(तथापि) मैं तुम्हें इसके लिये एक लाख गौएँ, सौ उत्तम गाँव तथा उत्तम आचार-विचारवाली सोलह कुमारी कन्याएँ पत्नीरूपमें समर्पित करता हूँ। उन कन्याओंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल जगमगाते होंगे। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान होगी। उनकी नासिका सुघड़, ऊरु मनोहर और मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर होंगे। वे कुलीन होनेके साथ ही सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होंगी'॥ ४४-४५॥

उन प्रमुख वानर-वीर हनुमान्‌जीके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका अद्भुत समाचार सुनकर राजकुमार भरतको श्रीरामके दर्शनकी इच्छासे अत्यन्त हर्ष हुआ और उस हर्षातिरेकसे ही वे फिर इस प्रकार बोले—

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका भरतको श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके वनवाससम्बन्धी सारे वृत्तान्तोंको सुनाना

'मेरे स्वामी श्रीरामको विशाल वनमें गये बहुत वर्ष बीत गये। इतने वर्षोंके बाद आज मुझे उनकी आनन्ददायिनी चर्चा सुननेको मिली है॥ १॥

'आज यह कल्याणमयी लौकिक गाथा मुझे यथार्थ जान पड़ती है—मनुष्य यदि जीता रहे तो उसे कभी-न-कभी हर्ष और आनन्दकी प्राप्ति होती ही है, भले ही वह सौ वर्षों बाद हो॥ २॥

'सौम्य! श्रीरघुनाथजीका और वानरोंका यह मेल-जोल कैसे हुआ? किस देशमें और किस कारणको लेकर हुआ? यह मैं जानना चाहता हूँ। मुझे ठीक-ठीक बताओ'॥

राजकुमार भरतके इस प्रकार पूछनेपर कुशासनपर बैठाये हुए हनुमान्‌जीने श्रीरामका वनवासविषयक सारा

चरित्र उनसे कह सुनाया—॥ ४ ॥

'प्रभो! महाबाहो! जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वनवास दिया गया, जिस तरह आपकी माताको दो वर प्रदान किये गये, जैसे पुत्रशोकसे राजा दशरथकी मृत्यु हुई, जिस प्रकार आप राजगृहसे दूतोंद्वारा शीघ्र ही बुलाये गये, जिस तरह अयोध्यामें प्रवेश करके आपने राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की और सत्पुरुषोंके धर्मका आचरण करते हुए चित्रकूट-पर्वतपर जाकर अपने शत्रुसूदन भाईको आपने राज्य लेनेके लिये निमन्त्रित किया, फिर उन्होंने जिस प्रकार राजा दशरथके वचनका पालन करनेमें दृढ़तापूर्वक स्थित होकर राज्यको त्याग दिया तथा जिस प्रकार अपने बड़े भाईकी चरणपादुकाएँ लेकर आप फिर लौट आये—ये सब बातें तो आपको यथावत् रूपसे विदित ही हैं। आपके लौट आनेके बाद जो वृत्तान्त घटित हुआ, वह बता रहा हूँ, मुझसे सुनिये—॥ ५—९ ॥

'आपके लौट आनेपर वह वन सब ओरसे अत्यन्त क्षीण-सा हो चला। वहाँके पशु-पक्षी भयसे घबरा उठे थे, तब उस वनको छोड़कर श्रीरामने विशाल दण्डकारण्यमें प्रवेश किया, जो निर्जन था। उस घोर वनको हाथियोंने रौंद डाला था। उसमें सिंह, व्याघ्र और मृग भरे हुए थे॥ १०-११ ॥

'उस गहन वनमें जाते हुए इन तीनोंके आगे महान् गर्जना करता हुआ बलवान् राक्षस विराध दिखायी दिया॥ १२ ॥

'ऊपर बाँह और नीचे मुँह किये चिग्घाड़ते हुए हाथीके समान जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले उस राक्षसको उन तीनोंने मारकर गड्ढेमें फेंक दिया॥ १३ ॥

'वह दुष्कर कर्म करके दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण सायंकालमें शरभङ्ग मुनिके रमणीय आश्रमपर जा पहुँचे॥ १४ ॥

'शरभंग मुनि श्रीरामके समक्ष स्वर्गलोकको चले गये। तब सत्यपराक्रमी श्रीराम सब मुनियोंको प्रणाम करके जनस्थानमें आये॥ १५ ॥

'जनस्थानमें आनेके बाद शूर्पणखा नामवाली एक राक्षसी (मनमें कामभाव लेकर) श्रीरामचन्द्रजीके पास आयी। तब श्रीरामने लक्ष्मणको उसे दण्ड देनेका आदेश दिया। महाबली लक्ष्मणने सहसा उठकर तलवार उठायी और उस राक्षसीके नाक-कान काट लिये॥ १६½ ॥

'वहाँ रहते हुए महात्मा श्रीरघुनाथजीने अकेले ही शूर्पणखाकी प्रेरणासे आये हुए भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंका वध किया॥ १७½ ॥

'युद्धके मुहानेपर एकमात्र श्रीरामके साथ भिड़कर वे समस्त राक्षस पहरभरमें ही समाप्त हो गये॥ १८½ ॥

'तपस्यामें विघ्न डालनेवाले उन दण्डकारण्यनिवासी महाबली और महापराक्रमी राक्षसोंको श्रीरघुनाथजीने युद्धमें मार डाला॥ १९½ ॥

'उस रणभूमिमें वे चौदह हजार राक्षस पीस डाले गये, खर मारा गया, फिर दूषणका काम तमाम हुआ। तदनन्तर त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया गया॥

'इस घटनासे पीड़ित होकर वह मूर्ख राक्षसी लङ्कामें रावणके पास गयी। रावणके कहनेसे उसके अनुचर मारीच नामक भयंकर राक्षसने रत्नमय मृगका रूप धारण करके विदेहराजकुमारी सीताको लुभाया॥

'उस मृगको देखकर सीताने श्रीरामसे कहा—'आर्यपुत्र! इस मृगको पकड़ लीजिये। इसके रहनेसे मेरा यह आश्रम कान्तिमान् एवं मनोहर हो जायगा'॥ २३ ॥

'तब श्रीरामने हाथमें धनुष लेकर उस मृगका पीछा किया और झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उस भागते हुए मृगको मार डाला॥ २४ ॥

'सौम्य! जब श्रीरघुनाथजी मृगके पीछे जा रहे थे और लक्ष्मण भी उन्हींका समाचार लेनेके लिये पर्णशालासे बाहर निकल गये, तब रावणने उस आश्रममें प्रवेश किया॥ २५ ॥

'उसने बलपूर्वक सीताको पकड़ लिया, मानो आकाशमें मंगलने रोहिणीपर आक्रमण किया हो। उस समय उनकी रक्षाके लिये आये हुए गृध्रराज जटायुको युद्धमें मारकर वह राक्षस सहसा सीताको साथ ले वहाँसे जल्दी ही चम्पत हो गया॥ २६½ ॥

'तदनन्तर एक पर्वत-शिखरपर रहनेवाले पर्वतोंके समान ही अद्भुत एवं विशाल शरीरवाले वानरोंने आश्चर्यचकित हो सीताको लेकर जाते हुए राक्षसराज रावणको देखा॥ २७-२८ ॥

'वह महाबली राक्षसराज रावण बड़ी शीघ्रताके साथ मनके समान वेगशाली पुष्पकविमानके पास जा पहुँचा और सीताके साथ उसपर आरूढ़ हो उसने लङ्कामें प्रवेश किया॥ २९½ ॥

'वहाँ सुवर्णभूषित विशाल भवनमें मिथिलेश-कुमारीको ठहराकर रावण चिकनी-चुपड़ी बातोंसे उन्हें सान्त्वना देने लगा॥ ३०½ ॥

'अशोकवाटिकामें रहती हुई विदेहनन्दिनीने रावणकी बातोंको तथा स्वयं उस राक्षसराजको भी तिनकेके समान मानकर ठुकरा दिया और कभी उसका

चिन्तन नहीं किया॥ ३१ १/२ ॥

'उधर वनमें श्रीरामचन्द्रजी मृगको मारकर लौटे। लौटते समय जब उन्होंने पितासे भी अधिक प्रिय गृध्रराजको मारा गया देखा, तब उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ ३२-३३॥

'लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजी विदेहराजकुमारी सीताकी खोज करते हुए गोदावरीतटके पुष्पित वनप्रान्तमें विचरने लगे॥ ३४॥

'खोजते-खोजते वे दोनों भाई उस विशाल वनमें कबन्ध नामक राक्षसके पास जा पहुँचे। तदनन्तर सत्यपराक्रमी रामने कबन्धका उद्धार किया और उसीके कहनेसे वे ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मिले॥

'उन दोनोंमें एक-दूसरेके साक्षात्कारसे पहले ही हार्दिक मित्रता हो गयी थी। पूर्वकालमें क्रुद्ध हुए बड़े भाई वालीने सुग्रीवको घरसे निकाल दिया था। श्रीराम और सुग्रीवमें जब परस्पर बातें हुईं, तब उनमें और भी प्रगाढ़ प्रेम हो गया॥ ३६-३७॥

'श्रीरामने अपने बाहुबलसे समराङ्गणमें महाकाय, महाबली वालीका वध करके सुग्रीवको उनका राज्य दिला दिया॥ ३८॥

'श्रीरामने समस्त वानरोंसहित सुग्रीवको अपने राज्यपर स्थापित कर दिया और सुग्रीवने श्रीरामके समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं राजकुमारी सीताकी खोज करूँगा॥ ३९॥

'तदनुसार महात्मा वानरराज सुग्रीवने दस करोड़ वानरोंको सीताका पता लगानेकी आज्ञा देकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भेजा॥ ४०॥

'उन्हीं वानरोंमें हमलोग भी थे। गिरिराज विन्ध्यकी गुफामें प्रवेश कर जानेके कारण हमारे लौटनेका नियत समय बीत गया। हमने बहुत विलम्ब कर दिया। हमारे अत्यन्त शोकमें पड़े-पड़े दीर्घकाल व्यतीत हो गया॥

'तदनन्तर गृध्रराज जटायुके एक पराक्रमी भाई मिल गये, जिनका नाम था सम्पाति। उन्होंने हमें बताया कि सीता लङ्कामें रावणके भवनमें निवास करती हैं॥

'तब दुःखमें डूबे हुए अपने भाई-बन्धुओंके कष्टका निवारण करनेके लिये मैं अपने बल-पराक्रमका सहारा ले सौ योजन समुद्रको लाँघ गया और लङ्कामें अशोकवाटिकाके भीतर अकेली बैठी हुई सीतासे मिला॥

'वे एक रेशमी साड़ी पहने हुए थीं। शरीरसे मलिन और आनन्दशून्य जान पड़ती थीं तथा पातिव्रत्यके पालनमें दृढ़तापूर्वक लगी थीं। उनसे मिलकर मैंने उन सती-साध्वी देवीसे विधिपूर्वक सारा समाचार पूछा और पहचानके लिये श्रीरामनामसे अङ्कित अँगूठी उन्हें दे दी। साथ ही उनकी ओरसे पहचानके तौरपर चूड़ामणि लेकर मैं कृतकृत्य होकर लौट आया॥ ४४-४५॥

'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके पास पुनः लौटकर मैंने वह तेजस्वी महामणि पहचानके रूपमें उन्हें दे दी॥ ४६॥

'जैसे मृत्युके निकट पहुँचा हुआ रोगी अमृत पीकर पुनः जी उठता है, उसी प्रकार सीताके वियोगमें मरणासन्न हुए श्रीरामने उनका शुभ समाचार पाकर जीवित रहनेकी आशा की॥ ४७॥

'फिर जैसे प्रलयकालमें संवर्तक नामक अग्निदेव सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत हो जाते हैं, उसी प्रकार सेनाको प्रोत्साहन देते हुए श्रीरामने लङ्कापुरीको नष्ट कर डालनेका विचार किया॥ ४८॥

'इसके बाद समुद्रतटपर आकर श्रीरामने नल नामक वानरसे समुद्रपर पुल बँधवाया और उस पुलसे वानरवीरोंकी सारी सेना सागरके पार जा पहुँची॥ ४९॥

'वहाँ युद्धमें नीलने प्रहस्तको, लक्ष्मणने रावणपुत्र इन्द्रजित्‌को तथा साक्षात् रघुकुलनन्दन श्रीरामने कुम्भकर्ण एवं रावणको मार डाला॥ ५०॥

'तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण, महादेवजी, ब्रह्माजी तथा महाराज दशरथसे मिले॥ ५१॥

'वहाँ पधारे हुए ऋषियों तथा देवर्षियोंने शत्रुसंतापी श्रीमान् रघुवीरको वरदान दिया। उनसे श्रीरामने वर प्राप्त किया॥ ५२॥

'वर पाकर प्रसन्नतासे भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ पुष्पकविमानद्वारा किष्किन्धा आये॥ ५३॥

'वहाँसे फिर गङ्गातटपर आकर प्रयागमें भरद्वाजमुनिके समीप वे ठहरे हुए हैं। कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप बिना किसी विघ्न-बाधाके श्रीरामका दर्शन करेंगे'॥ ५४॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीके मधुर वाक्योंद्वारा सारी बातें सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर मनको हर्ष प्रदान करनेवाली वाणीमें बोले—'आज चिरकालके बाद मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ'॥ ५५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२६॥

एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग

अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका श्रीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, श्रीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पकविमानको कुबेरके पास भेजना

यह परमानन्दमय समाचार सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सत्यपराक्रमी भरतने शत्रुघ्नको हर्षपूर्वक आज्ञा दी— ॥ १ ॥

'शुद्धाचारी पुरुष कुलदेवताओंका तथा नगरके सभी देवस्थानोंका गाजे-बाजेके साथ सुगन्धित पुष्पोंद्वारा पूजन करें ॥ २ ॥

'स्तुति और पुराणोंके जानकार सूत, समस्त वैतालिक (भाँट), बाजे बजानेमें कुशल सब लोग, सभी गणिकाएँ, राजरानियाँ, मन्त्रीगण, सेनाएँ, सैनिकोंकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा व्यवसायी संघके मुखियालोग श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिये नगरसे बाहर चलें' ॥ ३-४ $\frac{1}{2}$ ॥

भरतजीकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले शत्रुघ्नने कई हजार मजदूरोंकी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर उन्हें आज्ञा दी—'तुमलोग ऊँची-नीची भूमियोंको समतल बना दो ॥ ५-६ ॥

'अयोध्यासे नन्दिग्रामतकका मार्ग साफ कर दो, आसपासकी सारी भूमिपर बर्फकी तरह ठंडे जलका छिड़काव कर दो ॥ ७ ॥

'तत्पश्चात् दूसरे लोग रास्तेमें सब ओर लावा और फूल बिखेर दें। इस श्रेष्ठ नगरकी सड़कोंके अगल-बगलमें ऊँची पताकाएँ फहरा दी जायँ ॥ ८ ॥

'कल सूर्योदयतक लोग नगरके सब मकानोंको सुनहरी पुष्पमालाओं, घनीभूत फूलोंके मोटे गजरों, सूतके बन्धनसे रहित कमल आदिके पुष्पों तथा पञ्चरंगे अलङ्कारोंसे सजा दें ॥ ९ ॥

'राजमार्गपर अधिक भीड़ न हो, इसकी व्यवस्थाके लिये सैकड़ों मनुष्य सब ओर लग जायँ।' शत्रुघ्नका वह आदेश सुनकर सब लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उसके पालनमें लग गये ॥ १० ॥

धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र—ये आठों मन्त्री ध्वजा और आभूषणोंसे विभूषित मतवाले हाथियोंपर चढ़कर चले ॥ ११ $\frac{1}{2}$ ॥

दूसरे बहुत-से महारथी वीर सुनहरे रस्सोंसे कसी हुई हथिनियों, हाथियों, घोड़ों और रथोंपर सवार होकर निकले ॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

ध्वजा-पताकाओंसे विभूषित हजारों अच्छे-अच्छे घोड़ों और घुड़सवारों तथा हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और पाश धारण करनेवाले सहस्रों पैदल योद्धाओंसे घिरे हुए वीर पुरुष श्रीरामकी अगवानीके लिये गये ॥ १३-१४ ॥

तदनन्तर राजा दशरथकी सभी रानियाँ सवारियोंपर चढ़कर कौसल्या और सुमित्राको आगे करके निकलीं तथा कैकेयीसहित सब-की-सब नन्दिग्राममें आ पहुँचीं ॥ १५-१६ ॥

धर्मात्मा एवं धर्मज्ञ भरत मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों, व्यवसायी वर्गके प्रधानों, वैश्यों तथा हाथोंमें माला और मिठाई लिये मन्त्रियोंसे घिरकर अपने बड़े भाईकी चरणपादुकाओंको सिरपर धारण किये शङ्खों और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ चले। उस समय बन्दीजन उनका अभिनन्दन कर रहे थे ॥ १७-१८ ॥

श्वेत मालाओंसे सुशोभित सफेद रंगका छत्र तथा राजाओंके योग्य सोनेसे मढ़े हुए दो श्वेत चँवर भी उन्होंने अपने साथ ले रखे थे ॥ १९ ॥

भरतजी उपवासके कारण दीन और दुर्बल हो रहे थे। वे चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्म धारण किये थे। भाईका आगमन सुनकर पहले-पहल उन्हें महान् हर्ष हुआ था ॥ २० ॥

महात्मा भरत उस समय श्रीरामकी अगवानीके लिये आगे बढ़े। घोड़ोंकी टापों, रथके पहियोंकी नेमियों और शङ्खों एवं दुन्दुभियोंके गम्भीर नादोंसे सारी पृथ्वी हिलती-सी जान पड़ती थी। शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनियोंसे मिले हुए हाथियोंके गर्जन-शब्द भी भूतलको कम्पित-सा किये देते थे ॥ २१-२२ ॥

भरतजीने जब देखा कि अयोध्यापुरीके सभी नागरिक नन्दिग्राममें आ गये हैं, तब उन्होंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ २३ ॥

'वानर-वीर! वानरोंका चित्त स्वभावतः चञ्चल होता है। कहीं आपने भी उसी गुणका सेवन तो नहीं किया है—श्रीरामके आनेकी झूठी ही खबर तो नहीं उड़ा दी है; क्योंकि मुझे अभीतक शत्रुओंको संताप देनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण आर्य श्रीरामके दर्शन नहीं

हो रहे हैं तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं ?'॥ २४½ ॥

भरतजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने सार्थक एवं सत्य बात बतानेके लिये उन सत्यपराक्रमी भरतजीसे कहा—॥ २५½ ॥

'मुनिवर भरद्वाजजीकी कृपासे रास्तेके सभी वृक्ष सदा फूलने-फलनेवाले हो गये हैं और उनसे मधुकी धाराएँ गिरती हैं। उन वृक्षोंपर मतवाले भ्रमर निरन्तर गूँजते रहते हैं। उन्हें पाकर वानरलोग अपनी भूख-प्यास मिटाने लगे हैं॥ २६½ ॥

'परंतप! देवराज इन्द्रने भी श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा ही वरदान दिया था। अतएव भरद्वाजजीने सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका सर्वगुणसम्पन्न—साङ्गोपाङ्ग आतिथ्य-सत्कार किया है॥ २७½ ॥

'किंतु देखिये, अब हर्षसे भरे हुए वानरोंका भयंकर कोलाहल सुनायी देता है। मालूम होता है इस समय वानरसेना गोमतीको पार कर रही है॥ २८½ ॥

'उधर सालवनकी ओर देखिये, कैसी धूलकी वर्षा हो रही है? मैं समझता हूँ वानरलोग रमणीय सालवनको आन्दोलित कर रहे हैं॥ २९½ ॥

'लीजिये, यह रहा पुष्पकविमान, जो दूरसे चन्द्रमाके समान दिखायी देता है। इस दिव्य पुष्पकविमानको विश्वकर्माने अपने मनके संकल्पसे ही रचा था। महात्मा श्रीरामने रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर इसे प्राप्त किया है॥ ३०-३१ ॥

'श्रीरामका वाहन बना हुआ यह विमान प्रात:कालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है। इसका वेग मनके समान है। यह दिव्य विमान ब्रह्माजीकी कृपासे कुबेरको प्राप्त हुआ था॥ ३२ ॥

'इसीमें विदेहराजकुमारी सीताके साथ वे दोनों रघुवंशी वीर बन्धु बैठे हैं और इसीमें महातेजस्वी सुग्रीव तथा राक्षस विभीषण भी विराजमान हैं'॥ ३३ ॥

हनुमान्‌जीके इतना कहते ही स्त्रियों, बालकों, नौजवानों और बूढ़ों—सभी पुरवासियोंके मुखसे यह वाणी फूट पड़ी—'अहो! ये श्रीरामचन्द्रजी आ रहे हैं।' उन नागरिकोंका वह हर्षनाद स्वर्गलोकतक गूँज उठा॥ ३४ ॥

सब लोग हाथी, घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े तथा पृथ्वीपर खड़े हो विमानपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजीका उसी तरह दर्शन करने लगे, जैसे लोग आकाशमें प्रकाशित होनेवाले चन्द्रदेवका दर्शन करते हैं॥ ३५ ॥

भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका शरीर हर्षसे पुलकित था। उन्होंने दूरसे ही अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा श्रीरामका विधिवत् पूजन किया॥ ३६ ॥

विश्वकर्माद्वारा मनसे रचे गये उस विमानपर बैठे हुए विशाल नेत्रोंवाले भगवान् श्रीराम वज्रधारी देवराज इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे॥ ३७ ॥

विमानके ऊपरी भागमें बैठे हुए भाई श्रीरामपर दृष्टि पड़ते ही भरतने विनीतभावसे उन्हें उसी तरह प्रणाम किया, जैसे मेरुके शिखरपर उदित सूर्यदेवको द्विजलोग नमस्कार करते हैं॥ ३८ ॥

इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वह महान् वेगशाली हंसयुक्त उत्तम विमान पृथ्वीपर उतर आया॥

भगवान् श्रीरामने सत्यपराक्रमी भरतजीको विमानपर चढ़ा लिया और उन्होंने श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचकर आनन्दविभोर हो पुन: उनके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ ४० ॥

दीर्घकालके पश्चात् दृष्टिपथमें आये हुए भरतको उठाकर श्रीरघुनाथजीने अपनी गोदमें बिठा लिया और बड़े हर्षके साथ उन्हें हृदयसे लगाया॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतने लक्ष्मणसे मिलकर—उनका प्रणाम ग्रहण करके विदेहराजकुमारी सीताको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया और अपना नाम भी बताया॥ ४२ ॥

इसके बाद कैकेयीकुमार भरतने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसका पूर्णरूपसे आलिङ्गन किया॥ ४३-४४ ॥

वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर मानवरूप धारण करके भरतजीसे मिले और उन सबने महान् हर्षसे उल्लसित होकर उस समय भरतजीका कुशल-समाचार पूछा॥ ४५ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी राजकुमार भरतने वानरराज सुग्रीवको हृदयसे लगाकर उनसे कहा—॥

'सुग्रीव! तुम हम चारोंके पाँचवें भाई हो; क्योंकि स्नेहपूर्वक उपकार करनेसे ही कोई भी मित्र होता है (और मित्र अपना भाई ही होता है)। अपकार करना ही शत्रुका लक्षण है'॥ ४७ ॥

इसके बाद भरतने विभीषणको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—'राक्षसराज! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी सहायता पाकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा किया है'॥ ४८ ॥

इसी समय वीर शत्रुघ्नने भी श्रीराम और लक्ष्मणको प्रणाम करके सीताजीके चरणोंमें विनय-पूर्वक मस्तक झुकाया॥ ४९ ॥

माता कौसल्या शोकके कारण अत्यन्त दुर्बल और कान्तिहीन हो गयी थीं। उनके पास पहुँचकर श्रीरामने प्रणत हो उनके दोनों पैर पकड़ लिये और माताके मनको अत्यन्त हर्ष प्रदान किया॥ ५० ॥

फिर सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीको प्रणाम करके उन्होंने सम्पूर्ण माताओंका अभिवादन किया, इसके बाद वे राजपुरोहित वसिष्ठजीके पास आये॥ ५१ ॥

उस समय अयोध्याके समस्त नागरिक हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे एक साथ बोल उठे—'माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीराम! आपका स्वागत है, स्वागत है'॥ ५२ ॥

भरतके बड़े भाई श्रीरामने देखा, खिले हुए कमलोंके समान नागरिकोंकी सहस्त्रों अञ्जलियाँ उनकी ओर उठी हुई हैं॥ ५३ ॥

तदनन्तर धर्मज्ञ भरतने स्वयं ही श्रीरामकी वे चरणपादुकाएँ लेकर उन महाराजके चरणोंमें पहना दीं और हाथ जोड़कर उस समय उनसे कहा—॥ ५४½ ॥

'प्रभो! मेरे पास धरोहरके रूपमें रखा हुआ आपका यह सारा राज्य आज मैंने आपके श्रीचरणोंमें लौटा दिया। आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो अयोध्यानरेश आप श्रीरामको पुनः अयोध्यामें लौटा हुआ देख रहा हूँ॥ ५५-५६ ॥

'आप राज्यका खजाना, कोठार, घर और सेना सब देख लें। आपके प्रतापसे ये सारी वस्तुएँ पहलेसे दसगुनी हो गयी हैं'॥ ५७ ॥

भ्रातृवत्सल भरतको इस प्रकार कहते देख समस्त वानर तथा राक्षसराज विभीषण नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ ५८ ॥

इसके पश्चात् श्रीरघुनाथजी भरतको बड़े हर्ष और स्नेहके साथ गोदमें बैठाकर विमानके द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रमपर गये॥ ५९ ॥

भरतके आश्रममें पहुँचकर सेनासहित श्रीरघुनाथजी विमानसे उतरकर भूतलपर खड़े हो गये॥ ६० ॥

उस समय श्रीरामने उस उत्तम विमानसे कहा—'विमानराज! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, अब तुम यहाँसे देवप्रवर कुबेरके ही पास चले जाओ और उन्हींकी सवारीमें रहो'॥ ६१ ॥

श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह परम उत्तम विमान उत्तर दिशाको लक्ष्य करके कुबेरके स्थानपर चला गया॥ ६२ ॥

राक्षस रावणने जिस दिव्य पुष्पकविमानपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था, वही अब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे प्रेरित हो वेगपूर्वक कुबेरकी सेवामें चला गया॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी श्रीरघुनाथजीने अपने सखा पुरोहित वसिष्ठपुत्र सुयज्ञके (अथवा अपने परम सहायक पुरोहित वसिष्ठजीके) उसी प्रकार चरण छुए, जैसे देवराज इन्द्र बृहस्पतिजीके चरणोंका स्पर्श करते हैं। फिर उन्हें एक सुन्दर पृथक् आसनपर विराजमान करके उनके साथ ही दूसरे आसनपर वे स्वयं भी बैठे॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२७॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग

भरतका श्रीरामको राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगरयात्रा, राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई तथा ग्रन्थका माहात्म्य

तत्पश्चात् कैकेयीनन्दन भरतने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा—॥ १ ॥

'आपने मेरी माताका सम्मान किया और यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया, उसी तरह मैं अब फिर आपको वापस दे रहा हूँ॥ २ ॥

'अत्यन्त बलवान् बैल जिस बोझेको अकेला उठाता है, उसे बछड़ा नहीं उठा सकता; उसी तरह मैं भी इस भारी भारको उठानेमें असमर्थ हूँ॥ ३ ॥

'जैसे जलके महान् वेगसे टूटे या फटे हुए बाँधको, जब कि उससे जलका प्रखर प्रवाह बह रहा हो, बाँधना अत्यन्त कठिन होता है, उसी प्रकार राज्यके खुले हुए छिद्रको ढक पाना मैं अपने लिये असम्भव मानता हूँ॥

'शत्रुदमन वीर! जैसे गदहा घोड़ेकी और कौवा हंसकी गतिका अनुसरण नहीं कर सकता, उसी तरह

मैं आपके मार्गका—रक्षणीय-रक्षणरूपी कौशलका अनुकरण नहीं कर सकता॥ ५॥

'महाबाहो! नरेन्द्र! जैसे घरके भीतरके बगीचेमें एक वृक्ष लगाया गया। वह जमा और जमकर बहुत बड़ा हो गया। इतना बड़ा कि उसपर चढ़ना कठिन हो रहा था। उसका तना बहुत बड़ा और मोटा था तथा उसमें बहुत-सी शाखाएँ थीं। उस वृक्षमें फूल लगे; किंतु वह अपने फल नहीं दिखा सका था। इसी दशामें टूटकर धराशायी हो गया। लगानेवालोंने जिन फलोंके उद्देश्यसे उस वृक्षको लगाया था, उनका अनुभव वे नहीं कर सके। यही उपमा उस राजाके लिये भी हो सकती है, जिसे प्रजाने अपनी रक्षाके लिये पाल-पोसकर बड़ा किया और बड़े होनेपर वह उनकी रक्षासे मुँह मोड़ने लगे। इस कथनके तात्पर्यको आप समझें। यदि भर्त्ता होकर भी आप हम भृत्योंका भरण-पोषण नहीं करेंगे तो आप भी उस निष्फल वृक्षके समान ही समझे जायँगे॥

'रघुनन्दन! अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत्के सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें। मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति आपका तेज और प्रताप बढ़ता रहे॥ ९॥

'आप विविध वाद्योंकी मधुर ध्वनि, काञ्ची तथा नूपुरोंकी झनकार और गीतके मनोहर शब्द सुनकर सोयें और जागें॥ १०॥

'जबतक नक्षत्रमण्डल घूमता है और जबतक यह पृथ्वी स्थित है तबतक आप इस संसारके स्वामी बने रहें'॥ ११॥

भरतकी यह बात सुनकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले भगवान् श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उसे मान लिया और वे एक सुन्दर आसनपर विराजमान हुए॥ १२॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे निपुण नाई बुलाये गये, जिनके हाथ हलके और तेज चलनेवाले थे। उन सबने श्रीरघुनाथजीको घेर लिया॥ १३॥

पहले भरतने स्नान किया फिर महाबली लक्ष्मणने। तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणने भी स्नान किया। तदनन्तर जटाका शोधन करके श्रीरामने स्नान किया, फिर विचित्र पुष्पमाला, सुन्दर अनुलेपन और बहुमूल्य पीताम्बर धारण करके आभूषणोंकी शोभासे प्रकाशित होते हुए वे सिंहासनपर विराजमान हुए॥ १४-१५॥

इक्ष्वाकुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले शोभाशाली, पराक्रमी वीर शत्रुघ्नने श्रीराम और लक्ष्मणको शृङ्गार धारण कराया॥ १६॥

उस समय राजा दशरथकी सभी मनस्विनी रानियोंने स्वयं अपने हाथोंसे सीताजीका मनोहर शृङ्गार किया॥ १७॥

पुत्रवत्सला कौसल्याने अत्यन्त हर्ष और उत्साहके साथ बड़े यत्नसे समस्त वानरपत्नियोंका सुन्दर शृङ्गार किया॥ १८॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे सारथि सुमन्त्रजी एक सर्वाङ्गसुन्दर रथ जोतकर ले आये॥ १९॥

अग्नि और सूर्यके समान देदीप्यमान उस दिव्य रथको खड़ा देख शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाबाहु श्रीराम उसपर आरूढ़ हुए॥ २०॥

सुग्रीव और हनुमान्जी दोनों देवराज इन्द्रके समान कान्तिमान् थे। दोनोंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे। वे दोनों ही स्नान करके दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित हो नगरकी ओर चले॥ २१॥

सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी समस्त आभूषणोंसे विभूषित और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत हो नगर देखनेकी उत्सुकता मनमें लिये सवारियोंपर चलीं॥ २२॥

अयोध्यामें राजा दशरथके मन्त्री पुरोहित वसिष्ठजीको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषयमें आवश्यक विचार करने लगे॥ २३॥

अशोक, विजय और सिद्धार्थ—ये तीनों मन्त्री एकाग्रचित्त हो श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदय तथा नगरकी समृद्धिके लिये परस्पर मन्त्रणा करने लगे॥ २४॥

उन्होंने सेवकोंसे कहा—'विजयके योग्य जो महात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं, उनके अभिषेकके लिये जो-जो आवश्यक कार्य करना है, वह सब मङ्गलपूर्वक तुम सब लोग करो'॥ २५॥

इस प्रकार आदेश देकर वे मन्त्री और पुरोहितजी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये तत्काल नगरसे बाहर निकले॥ २६॥

जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हरे रंगके घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार निष्पाप श्रीराम एक श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो अपने उत्तम नगरकी ओर चले॥ २७॥

उस समय भरतने सारथि बनकर घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले रखी थी। शत्रुघ्नने छत्र लगा रखा था और लक्ष्मण उस समय श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकपर चँवर डुला रहे थे॥ २८॥

एक ओर लक्ष्मण थे और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण खड़े थे। उन्होंने चन्द्रमाके समान कान्तिमान् दूसरा श्वेत चँवर हाथमें ले रखा था॥ २९॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए ऋषियों तथा

मरुद्गणोंसहित देवताओंके समुदाय श्रीरामचन्द्रजीके स्तवनकी मधुर ध्वनि सुन रहे थे॥ ३०॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव शत्रुञ्जय नामक पर्वताकार गजराजपर आरूढ़ हुए॥ ३१॥

वानरलोग नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर यात्रा कर रहे थे। वे उस समय मानवरूप धारण किये हुए थे और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे॥ ३२॥

पुरुषसिंह श्रीराम शङ्खध्वनि तथा दुन्दुभियोंके गम्भीर नादके साथ प्रासादमालाओंसे अलंकृत अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए॥ ३३॥

अयोध्यावासियोंने अतिरथी श्रीरघुनाथजीको रथपर बैठकर आते देखा। उनका श्रीविग्रह दिव्यकान्तिसे प्रकाशित हो रहा था और उनके आगे-आगे अग्रगामी सैनिकोंका जत्था चल रहा था॥ ३४॥

उन सबने आगे बढ़कर श्रीरघुनाथजीको बधाई दी और श्रीरामने भी बदलेमें उनका अभिनन्दन किया। फिर वे सब पुरवासी भाइयोंसे घिरे हुए महात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे चलने लगे॥ ३५॥

जैसे नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाजनोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी दिव्यकान्तिसे उद्भासित हो रहे थे॥

सबसे आगे बाजेवाले थे। वे आनन्दमग्न हो तुरही, करताल और स्वस्तिक बजाते तथा माङ्गलिक गीत गाते थे। उन सबके साथ श्रीरामचन्द्रजी नगरकी ओर बढ़ने लगे॥ ३७॥

श्रीरामचन्द्रजीके आगे अक्षत और सुवर्णसे युक्त पात्र, गौ, ब्राह्मण, कन्याएँ तथा हाथमें मिठाई लिये अनेकानेक मनुष्य चल रहे थे॥ ३८॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने मन्त्रियोंसे सुग्रीवकी मित्रता, हनुमान्‌जीके प्रभाव तथा अन्य वानरोंके अद्भुत पराक्रमकी चर्चा करते जा रहे थे॥ ३९॥

वानरोंके पुरुषार्थ और राक्षसोंके बलकी बातें सुनकर अयोध्यावासियोंको बड़ा विस्मय हुआ। श्रीरामने विभीषणके मिलनका प्रसंग भी अपने मन्त्रियोंको बताया॥ ४०॥

यह सब बताकर वानरोंसहित तेजस्वी श्रीरामने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया॥

उस समय पुरवासियोंने अपने-अपने घरपर लगी हुई पताकाएँ ऊँची कर दीं। फिर श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके उपयोगमें आये हुए पिताके रमणीय भवनमें गये॥ ४२॥

उस समय रघुकुलनन्दन राजकुमार श्रीरामने महात्मा पिताजीके भवनमें प्रवेश करके माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतसे अर्थयुक्त मधुर वाणीमें कहा— ॥ ४३-४४॥

'भरत! मेरा जो अशोकवाटिकासे घिरा हुआ मुक्ता एवं वैदूर्य मणियोंसे जटित विशाल भवन है, वह सुग्रीवको दे दो'॥ ४५॥

उनकी आज्ञा सुनकर सत्यपराक्रमी भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़कर उस भवनमें प्रवेश किया॥ ४६॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे अनेकानेक सेवक उसमें तिलके तेलसे जलनेवाले बहुत-से दीपक, पलंग और बिछौने लेकर शीघ्र ही गये॥ ४७॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी भरतने सुग्रीवसे कहा— 'प्रभो! भगवान् श्रीरामके अभिषेकके निमित्त जल लानेके लिये आप अपने दूतोंको आज्ञा दीजिये'॥ ४८॥

तब सुग्रीवने उसी समय चार श्रेष्ठ वानरोंको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित चार सोनेके घड़े देकर कहा—

'वानरो! तुमलोग कल प्रातःकाल ही चारों समुद्रोंके जलसे भरे हुए घड़ोंके साथ उपस्थित रहकर आवश्यक आदेशकी प्रतीक्षा करो'॥ ५०॥

सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर हाथीके समान विशालकाय महामनस्वी वानर, जो गरुड़के समान शीघ्रगामी थे, तत्काल आकाशमें उड़ चले॥ ५१॥

जाम्बवान्, हनुमान्, वेगदर्शी (गवय) और ऋषभ— ये सभी वानर चारों समुद्रोंसे और पाँच सौ नदियोंसे भी सोनेके बहुत-से कलश भर लाये॥ ५२½॥

जिनके पास रीछोंकी बहुत-सी सुन्दर सेना है वे शक्तिशाली जाम्बवान् सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमय कलश लेकर गये और उसमें पूर्वसमुद्रका जल भरकर ले आये॥ ५३½॥

ऋषभ दक्षिण समुद्रसे शीघ्र ही एक सोनेका घड़ा भर लाये। वह लाल चन्दन और कपूरसे ढका हुआ था॥ ५४½॥

वायुके समान वेगशाली गवय एक रत्ननिर्मित विशाल कलशके द्वारा पश्चिम दिशाके महासागरसे शीतल जल भर लाये॥ ५५½॥

गरुड़ तथा वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले, धर्मात्मा सर्वगुणसम्पन्न पवनपुत्र हनुमान्‌जी भी उत्तरवर्ती महासागरसे शीघ्र जल ले आये॥ ५६½॥

उन श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर मन्त्रियोंसहित शत्रुघ्नने वह सारा जल श्रीरामजीके

अभिषेकके लिये पुरोहित वसिष्ठजी तथा अन्य सुहृदोंको समर्पित कर दिया॥ ५७-५८॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंसहित शुद्धचेता वृद्ध वसिष्ठजीने सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नमयी चौकीपर बैठाया॥ ५९॥

तत्पश्चात् जैसे आठ वसुओंने देवराज इन्द्रका अभिषेक कराया था, उसी प्रकार वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियोंने स्वच्छ एवं सुगन्धित जलके द्वारा सीतासहित पुरुषप्रवर श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया॥ ६०-६१॥

(किनके द्वारा कराया? यह बताते हैं—) सबसे पहले उन्होंने सम्पूर्ण ओषधियोंके रसों तथा पूर्वोक्त जलसे ऋत्विज् ब्राह्मणोंद्वारा, फिर सोलह कन्याओंद्वारा तत्पश्चात् मन्त्रियोंद्वारा अभिषेक करवाया। इसके बाद अन्यान्य योद्धाओं और हर्षसे भरे हुए श्रेष्ठ व्यवसायियोंको भी अभिषेकका अवसर दिया। उस समय आकाशमें खड़े हुए समस्त देवताओं और एकत्र हुए चारों लोकपालोंने भी भगवान् श्रीरामका अभिषेक किया॥ ६२-६३॥

तदनन्तर ब्रह्माजीका बनाया हुआ रत्नशोभित एवं दिव्य तेजसे देदीप्यमान किरीट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजीका और फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओंका अभिषेक हुआ था, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे चित्रित, सुवर्णनिर्मित एवं महान् वैभवसे शोभायमान सभाभवनमें अनेक रत्नोंसे बनी हुई चौकीपर विधिपूर्वक रखा गया। फिर महात्मा वसिष्ठजीने अन्य ऋत्विज् ब्राह्मणोंके साथ उस किरीटसे और अन्यान्य आभूषणोंसे भी श्रीरघुनाथजीको विभूषित किया॥ ६४—६७॥

उस समय शत्रुघ्नजीने उनपर सुन्दर श्वेत रंगका छत्र लगाया। एक ओर वानरराज सुग्रीवने श्वेत चँवर हाथमें लिया तो दूसरी ओर राक्षसराज विभीषणने चन्द्रमाके समान चमकीला चँवर लेकर डुलाना आरम्भ किया॥

उस अवसरपर देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेवने सौ सुवर्णमय कमलोंसे बनी हुई एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामचन्द्रजीको भेंट किया॥ ६९-७०½॥

बुद्धिमान् श्रीरामके अभिषेककालमें देवगन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। भगवान् श्रीराम इस सम्मानके सर्वथा योग्य थे॥ ७१½॥

श्रीरघुनाथजीके राज्याभिषेकोत्सवके समय पृथ्वी खेतीसे हरी-भरी हो गयी, वृक्षोंमें फल आ गये और फूलोंमें सुगन्ध छा गयी॥ ७२½॥

महाराज श्रीरामने उस समय पहले ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े, उतनी ही दूध देनेवाली गौएँ तथा सौ साँड़ दान किये। यही नहीं, श्रीरघुनाथजीने तीस करोड़ अशर्फियाँ तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र भी ब्राह्मणोंको बाँटे॥ ७३-७४½॥

तत्पश्चात् राजा श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवको सोनेकी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी। उसमें बहुत-सी मणियोंका संयोग था॥ ७५½॥

इसके बाद धैर्यशाली श्रीरघुवीरने प्रसन्न हो वालिपुत्र अङ्गदको दो अङ्गद (बाजूबन्द) भेंट किये, जो नीलमसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। वे चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित-से जान पड़ते थे॥ ७६½॥

उत्तम मणियोंसे युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहारको (जिसे वायुदेवताने भेंट किया था तथा) जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित होता था श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके गलेमें डाल दिया। साथ ही उन्हें कभी मैले न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र तथा और भी बहुत-से सुन्दर आभूषण अर्पित किये॥ ७७-७८॥

विदेहनन्दिनी सीताने पतिकी ओर देखकर वायुपुत्र हनुमान्‌को कुछ भेंट देनेका विचार किया। वे जनकनन्दिनी अपने गलेसे उस मुक्ताहारको निकालकर बारम्बार समस्त वानरों तथा पतिकी ओर देखने लगीं॥ ७९½॥

उनकी उस चेष्टाको समझकर श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीकी ओर देखकर कहा—'सौभाग्यशालिनि! भामिनि! तुम जिसपर संतुष्ट हो, उसे यह हार दे दो'॥

तब कजरारे नेत्रोंवाली माता सीताने वायुपुत्र हनुमान्‌को, जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते हैं, वह हार दे दिया॥ ८१-८२॥

उस हारसे कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसी तरह शोभा पाने लगे, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश श्वेत बादलोंकी मालासे कोई पर्वत सुशोभित हो रहा हो॥ ८३॥

इसी प्रकार जो प्रधान-प्रधान एवं श्रेष्ठ वानर थे, उन सबका वस्त्रों और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया गया॥ ८४॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी श्रेष्ठ वानरवीरोंका मनोवाञ्छित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया। वे सब-के-सब प्रसन्नचित्त होकर जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ८५-८६॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा

श्रीरघुनाथजीने द्विविद, मैन्द और नीलकी ओर देखकर उन सबको मनोवाञ्छापूरक गुणोंसे युक्त सब प्रकारके उत्तम रत्न आदि भेंट किये॥ ८७॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक देखकर सभी महामनस्वी श्रेष्ठ वानर महाराज श्रीरामसे विदा ले किष्किन्धाको चले गये॥ ८८॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने भी श्रीरामके राज्याभिषेकका उत्सव देखकर उनसे पूजित हो किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया॥ ८९॥

महायशस्वी धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलका वैभव—अपना राज्य पाकर अपने साथी श्रेष्ठ निशाचरोंके साथ लङ्कापुरीको चले गये॥ ९०॥

अपने शत्रुओंका वध करके परम उदार महायशस्वी श्रीरघुनाथजी बड़े आनन्दसे समस्त राज्यका शासन करने लगे। उन धर्मवत्सल श्रीरामने धर्मज्ञ लक्ष्मणसे कहा—॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण! पूर्ववर्ती राजाओंने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ जिसका पालन किया था, उसी इस भूमण्डलके राज्यपर तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ। अपने पिता, पितामह और प्रपितामहोंने जिस राज्यभारको पहले धारण किया था, उसीको मेरे ही समान तुम भी युवराज-पदपर स्थित होकर धारण करो'॥ ९२॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीके सब तरहसे समझाने और नियुक्त किये जानेपर भी जब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस पदको नहीं स्वीकार किया, तब महात्मा श्रीरामने भरतको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया॥ ९३॥

राजकुमार महाराज श्रीरामने अनेक बार पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया॥ ९४॥

श्रीरघुनाथजीने राज्य पाकर ग्यारह* सहस्र वर्षोंतक उसका पालन और सौ अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उन यज्ञोंमें उत्तम अश्व छोड़े गये थे तथा ऋत्विजोंको बहुत अधिक दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं॥

उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं। उनका वक्ष:स्थल विशाल एवं विस्तृत था। वे बड़े प्रतापी नरेश थे। लक्ष्मणको साथ लेकर श्रीरामने इस पृथ्वीका शासन किया॥ ९६॥

अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर धर्मात्मा श्रीरामने सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भाई-बन्धुओंके साथ अनेक प्रकारके यज्ञ किये॥ ९७॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका विलाप नहीं सुनायी पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं था और रोगोंकी भी आशङ्का नहीं थी॥ ९८॥

सम्पूर्ण जगत्में कहीं चोरों या लुटेरोंका नाम भी नहीं सुना जाता था। कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्योंमें हाथ नहीं डालता था और बूढ़ोंको बालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे॥ ९९॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीरामपर ही बारंबार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे॥ १००॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय लोग सहस्रों वर्षोंतक जीवित रहते थे, सहस्रों पुत्रोंके जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था॥ १०१॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल राम, राम, रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था॥ १०२॥

श्रीरामके राज्यमें वृक्षोंकी जड़ें सदा मजबूत रहती थीं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मेघ प्रजाकी इच्छा और आवश्यकताके अनुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्द गतिसे चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था॥ १०३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके लोग लोभरहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मोंसे संतोष था और सभी उन्हींके पालनमें लगे रहते थे॥ १०४॥

श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती थी। झूठ नहीं बोलती थी। सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे और सबने धर्मका आश्रय ले रखा था॥ १०५॥

भाइयोंसहित श्रीमान् रामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था॥ १०६॥

यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिसे पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने बनाया था। यह धर्म, यश तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला एवं राजाओंको विजय देनेवाला है॥ १०७॥

संसारमें जो मानव सदा इसका श्रवण करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। श्रीरामके राज्याभिषेकके प्रसंगको सुनकर मनुष्य इस जगत्में यदि पुत्रका इच्छुक हो तो पुत्र और धनका अभिलाषी हो तो धन पाता है। राजा इस काव्यका श्रवण करनेसे पृथ्वीपर विजय पाता और शत्रुओंको

* अन्यत्र '**दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च**' कहा गया है, उनसे एक वाक्यताके लिये यहाँ दसको ग्यारहका बोधक समझना चाहिये।

अपने अधीन कर लेता है॥ १०८-१०९॥

जैसे माता कौसल्या श्रीरामको, सुमित्रा लक्ष्मणको और कैकेयी भरतको पाकर जीवित पुत्रोंकी माता कहलायीं, उसी प्रकार संसारकी दूसरी स्त्रियाँ भी इस आदिकाव्यके पाठ और श्रवणसे जीवित पुत्रोंकी जननी, सदा आनन्दमग्न तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न होंगी॥ ११०½॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामकी विजय-कथारूप इस सम्पूर्ण रामायण-काव्यको सुनकर मनुष्य दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली आयु पाता है॥ १११½॥

पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने जिसकी रचना की थी, वही यह आदिकाव्य है। जो क्रोधको जीतकर श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाता है॥ ११२½॥

जो लोग पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस काव्यको सुनते हैं, वे परदेशसे लौटकर अपने भाई-बन्धुओंके साथ मिलते और आनन्दका अनुभव करते हैं। वे इस जगत्में श्रीरघुनाथजीसे समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर लेते हैं॥ ११३-११४॥

इसके श्रवणसे समस्त देवता श्रोताओंपर प्रसन्न होते हैं तथा जिसके घरमें विघ्नकारी ग्रह होते हैं, उसके वे सारे ग्रह शान्त हो जाते हैं॥ ११५॥

राजा इसके श्रवणसे भूमण्डलपर विजय पाता है। परदेशमें निवास करनेवाला पुरुष सकुशल रहता और रजस्वला स्त्रियाँ (स्नानके अनन्तर सोलह दिनोंके भीतर) इसे सुनकर श्रेष्ठ पुत्रोंको जन्म देती हैं॥ ११६॥

जो इस प्राचीन इतिहासका पूजन और पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और बड़ी आयु पाता है॥

क्षत्रियोंको चाहिये कि वे प्रतिदिन मस्तक झुकाकर प्रणाम करके ब्राह्मणके मुखसे इस ग्रन्थका श्रवण करें। इससे उन्हें ऐश्वर्य और पुत्रकी प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं है॥ ११८॥

जो नित्य इस सम्पूर्ण रामायणका श्रवण एवं पाठ करता है, उसपर सनातन विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं॥ ११९॥

साक्षात् आदिदेव महाबाहु पापहारी प्रभु नारायण ही रघुकुलतिलक श्रीराम हैं तथा भगवान् शेष ही लक्ष्मण कहलाते हैं॥ १२०॥

(लवकुश कहते हैं—) श्रोताओ! आपलोगोंका कल्याण हो। यह पूर्वघटित आख्यान ही इस प्रकार रामायणकाव्यके रूपमें वर्णित हुआ है। आपलोग पूर्ण विश्वासके साथ इसका पाठ करें। इससे आपके वैष्णवबलकी वृद्धि होगी॥ १२१॥

रामायणको हृदयमें धारण करने और सुननेसे सब देवता संतुष्ट होते हैं। इसके श्रवणसे पितरोंको भी सदा तृप्ति मिलती है॥ १२२॥

जो लोग श्रीरामचन्द्रजीमें भक्तिभाव रखकर महर्षि वाल्मीकिनिर्मित इस रामायण-संहिताको लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है॥ १२३॥

इस शुभ और गम्भीर अर्थसे युक्त काव्यको सुनकर मनुष्यके कुटुम्ब और धन-धान्यकी वृद्धि होती है। उसे श्रेष्ठ गुणवाली सुन्दरी स्त्रियाँ सुलभ होती हैं तथा इस भूतलपर वह अपने सारे मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ १२४॥

यह काव्य आयु, आरोग्य, यश तथा भ्रातृप्रेमको बढ़ानेवाला है। यह उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाला और मङ्गलकारी है; अतः समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको इस उत्साहवर्द्धक इतिहासका नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिये॥ १२५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२८॥

॥ युद्धकाण्ड समाप्त ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

उत्तरकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा श्रीरामके प्रश्न

राक्षसोंका संहार करनेके अनन्तर जब भगवान् श्रीरामने अपना राज्य प्राप्त कर लिया, तब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि श्रीरघुनाथजीका अभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये॥ १ ॥

जो मुख्यतः पूर्व दिशामें निवास करते हैं, वे कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व वहाँ पधारे॥ २ ॥

स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुख—ये दक्षिण दिशामें रहनेवाले महर्षि अगस्त्यजीके साथ वहाँ आये॥ ३½ ॥

जो प्रायः पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, वे नृषङ्गु, कवष, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये॥ ४½ ॥

इसी तरह उत्तर दिशाके नित्य-निवासी वसिष्ठ,* कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि जो सप्तर्षि कहलाते हैं, अयोध्यापुरीमें पधारे॥

ये सभी अग्निके समान तेजस्वी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करनेमें प्रवीण थे। वे महात्मा मुनि श्रीरघुनाथजीके राजभवनके पास पहुँचकर अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये ड्योढ़ीपर खड़े हो गये॥ ७½ ॥

उस समय धर्मपरायण मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने द्वारपालसे कहा—'तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामको जाकर सूचना दो कि हम अनेक ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं'॥ ८½ ॥

महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल तुरंत महात्मा श्रीरघुनाथजीके समीप गया। वह नीतिज्ञ, इशारेसे बातको समझनेवाला, सदाचारी, चतुर और धैर्यवान् था॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्रीरामका दर्शन करके उसने सहसा बताया—'प्रभो! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य अनेक ऋषियोंके साथ पधारे हुए हैं'॥ ११ ॥

प्रातःकालके सूर्यकी भाँति दिव्य तेजसे प्रकाशित होनेवाले उन मुनीश्वरोंके पदार्पणका समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—'तुम जाकर उन सब लोगोंको यहाँ सुखपूर्वक ले आओ'॥ १२ ॥

(आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबको साथ ले आया।) उन मुनीश्वरोंको उपस्थित देख श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा उनका आदरपूर्वक पूजन किया। पूजनसे पहले उन सबके लिये एक-एक गाय भेंट की॥ १३ ॥

श्रीरामने शुद्धभावसे उन सबको प्रणाम करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिये। वे आसन सोनेके बने हुए और विचित्र आकार-प्रकारवाले थे। सुन्दर होनेके साथ ही वे विशाल और विस्तृत भी थे। उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगचर्म बिछाये गये थे। उन आसनोंपर वे श्रेष्ठ मुनि यथायोग्य बैठ गये॥ १४-१५ ॥

तब श्रीरामने शिष्यों और गुरुजनोंसहित उन सबका कुशल-समाचार पूछा। उनके पूछनेपर वे वेदवेत्ता महर्षि इस प्रकार बोले—॥ १५½ ॥

'महाबाहु रघुनन्दन! हमारे लिये तो सर्वत्र कुशल-ही-कुशल है। सौभाग्यकी बात है कि हम आपको सकुशल देख रहे हैं और आपके सारे शत्रु मारे जा चुके हैं। राजन्! आपने सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया, यह सबके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है॥ १६-१७ ॥

'श्रीराम! पुत्र-पौत्रोंसहित रावण आपके लिये कोई भार नहीं था। आप धनुष लेकर खड़े हो जायँ तो तीनों लोकोंपर विजय पा सकते हैं; इसमें संशय नहीं है॥

'रघुनन्दन राम! आपने राक्षसराज रावणका वध कर दिया और सीताके साथ आप विजयी वीरोंको आज हम सकुशल देख रहे हैं, यह कितने आनन्दकी बात है॥ १९ ॥

* वसिष्ठमुनि एक शरीरसे अयोध्यामें रहते हुए भी दूसरे शरीरसे सप्तर्षिमण्डलमें रहते थे। उसी दूसरे शरीरसे उनके आनेकी बात यहाँ कही गयी है—ऐसा समझना चाहिये।

'धर्मात्मा नरेश! आपके भाई लक्ष्मण सदा आपके हितमें लगे रहनेवाले हैं। आप इनके, भरत-शत्रुघ्नके तथा माताओंके साथ अब यहाँ सानन्द विराज रहे हैं और इस रूपमें हमें आपका दर्शन हो रहा है, यह हमारा अहोभाग्य है॥ २०॥

'प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर तथा दुर्धर्ष अकम्पन-जैसे निशाचर आपलोगोंके हाथसे मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है॥ २१॥

'श्रीराम! शरीरकी ऊँचाई और स्थूलतामें जिससे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उस कुम्भकर्णको भी आपने समराङ्गणमें मार गिराया, यह हमारे लिये परम सौभाग्यकी बात है॥ २२॥

'श्रीराम! त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—ये महापराक्रमी निशाचर भी हमारे सौभाग्यसे ही आपके हाथों मारे गये॥ २३॥

'रघुवीर! जो देखनेमें भी बड़े भयंकर थे, वे कुम्भकर्णके दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ नामक राक्षस भी भाग्यवश युद्धमें मारे गये॥ २४॥

'प्रलयकालके संहारकारी यमराजकी भाँति भयानक युद्धोन्मत्त और मत्त भी कालके गालमें चले गये। बलवान् यज्ञकोप और धूम्राक्ष नामक राक्षस भी यमलोकके अतिथि हो गये॥ २५॥

'ये समस्त निशाचर अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् थे। इन्होंने जगत्‌में भयंकर संहार मचा रखा था; परंतु आपने अन्तकतुल्य बाणोंद्वारा इन सबको मौतके घाट उतार दिया; यह कितने हर्षकी बात है॥ २६॥

'राक्षसराज रावण देवताओंके लिये भी अवध्य था, उसके साथ आप द्वन्द्वयुद्धमें उतर आये और विजय भी आपको ही मिली; यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥

'युद्धमें आपके द्वारा जो रावणका पराभव (संहार) हुआ, वह कोई बड़ी बात नहीं है; परंतु द्वन्द्वयुद्धमें लक्ष्मणके द्वारा जो रावणपुत्र इन्द्रजित्‌का वध हुआ है, वही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है॥ २८॥

'महाबाहु वीर! कालके समान आक्रमण करनेवाले उस देवद्रोही राक्षसके नागपाशसे मुक्त होकर आपने विजय प्राप्त की, यह महान् सौभाग्यकी बात है॥ २९॥

'इन्द्रजित्‌के वधका समाचार सुनकर हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं और इसके लिये आपका अभिनन्दन करते हैं। वह महामायावी राक्षस युद्धमें सभी प्राणियोंके लिये अवध्य था। वह इन्द्रजित् भी मारा गया, यह सुनकर हमें अधिक आश्चर्य हुआ है॥ ३० $\frac{1}{2}$ ॥

'रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीराम! ये तथा और भी बहुत-से इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके द्वारा मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है॥ ३१ $\frac{1}{2}$ ॥

'वीर! ककुत्स्थकुलभूषण! शत्रुसूदन श्रीराम! आप संसारको यह परम पुण्यमय सौम्य अभयदान देकर अपनी विजयके कारण वधाईके पात्र हो गये हैं—निरन्तर बढ़ रहे हैं, यह कितने हर्षकी बात है!'॥ ३२ $\frac{1}{2}$ ॥

उन पवित्रात्मा मुनियोंकी वह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हाथ जोड़कर पूछने लगे—॥ ३३ $\frac{1}{2}$ ॥

'पूज्यपाद महर्षियो! निशाचर रावण तथा कुम्भकर्ण दोनों ही महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उन दोनोंको लाँघकर आप रावणपुत्र इन्द्रजित्‌की ही प्रशंसा क्यों करते हैं?॥ ३४ $\frac{1}{2}$ ॥

'महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त तथा दुर्धर्ष वीर देवान्तक और नरान्तक—इन महान् वीरोंका उल्लङ्घन करके आपलोग रावणकुमार इन्द्रजित्‌की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?॥ ३५-३६॥

'अतिकाय, त्रिशिरा तथा निशाचर धूम्राक्ष—इन महापराक्रमी वीरोंका अतिक्रमण करके आप रावणपुत्र इन्द्रजित्‌की ही प्रशंसा क्यों करते हैं?॥ ३७॥

'उसका प्रभाव कैसा था? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था? अथवा किस कारणसे यह रावणसे भी बढ़कर सिद्ध होता है॥ ३८॥

'यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, गोपनीय न हो तो मैं इसे सुनना चाहता हूँ। आपलोग बतानेकी कृपा करें। यह मेरा विनम्र अनुरोध है। मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ॥ ३९॥

'उस रावणपुत्रने इन्द्रको भी किस तरह जीत लिया? कैसे वरदान प्राप्त किया? पुत्र किस प्रकार महाबलवान् हो गया और उसका पिता रावण क्यों वैसा बलवान् नहीं हुआ?॥ ४०॥

'मुनीश्वर! वह राक्षस इन्द्रजित् महासमरमें किस तरह पितासे भी अधिक शक्तिशाली एवं इन्द्रपर भी विजय पानेवाला हो गया? तथा किस तरह उसने बहुत-से वर प्राप्त कर लिये? इन सब बातोंको मैं जानना चाहता हूँ; इसलिये बारम्बार पूछता हूँ। आज आप ये सारी बातें मुझे बताइये'॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा सर्ग

महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपस्याका वर्णन तथा उनसे विश्रवा मुनिकी उत्पत्तिका कथन

महात्मा रघुनाथजीका वह प्रश्न सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्यने उनसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'श्रीराम! इन्द्रजित्‌के महान् बल और तेजके उद्देश्यसे जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे बताता हूँ, सुनो। जिस बलके कारण वह तो शत्रुओंको मार गिराता था, परंतु स्वयं किसी शत्रुके हाथसे मारा नहीं जाता था; उसका परिचय दे रहा हूँ॥ २॥

'रघुनन्दन! इस प्रस्तुत विषयका वर्णन करनेके लिये मैं पहले आपको रावणके कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति आदिका प्रसङ्ग सुनाता हूँ॥ ३॥

'श्रीराम! प्राचीनकाल—सत्ययुगकी बात है, प्रजापति ब्रह्माजीके एक प्रभावशाली पुत्र हुए, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजीके समान ही तेजस्वी हैं॥ ४॥

'उनके गुण, धर्म और शीलका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका इतना ही परिचय देना पर्याप्त होगा कि वे प्रजापतिके पुत्र हैं॥ ५॥

'प्रजापति ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण ही देवतालोग उनसे बहुत प्रेम करते हैं। वे बड़े बुद्धिमान् हैं और अपने उज्ज्वल गुणोंके कारण ही सब लोगोंके प्रिय हैं॥ ६॥

'एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्माचरणके प्रसङ्गसे महागिरि मेरुके निकटवर्ती राजर्षि तृणबिन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे॥ ७॥

'उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था। वे इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करते और तपस्यामें लगे रहते थे। परंतु कुछ कन्याएँ उनके आश्रममें जाकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालने लगीं। ऋषियों, नागों तथा राजर्षियोंकी कन्याएँ और जो अप्सराएँ हैं, वे भी प्राय: क्रीडा करती हुई उनके आश्रमकी ओर आ जाती थीं॥ ८-९॥

'वहाँका वन सभी ऋतुओंमें उपभोगमें लानेके योग्य और रमणीय था, इसलिये वे कन्याएँ प्रतिदिन उस प्रदेशमें जाकर भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करती थीं॥ १०॥

'जहाँ ब्रह्मर्षि पुलस्त्य रहते थे, वह स्थान तो और भी रमणीय था; इसलिये वे सती-साध्वी कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं। इस प्रकार उन तपस्वी मुनिके तपमें विघ्न डाला करती थीं॥ ११½॥

'इससे वे महातेजस्वी महामुनि पुलस्त्य कुछ रुष्ट हो गये और बोले—'कलसे जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टिपथमें आयेगी, वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी'॥ १२½॥

'उन महात्माकी यह बात सुनकर वे सब कन्याएँ ब्रह्मशापके भयसे डर गयीं और उन्होंने उस स्थानपर आना छोड़ दिया॥ १३½॥

'परंतु राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने इस शापको नहीं सुना था; इसलिये वह दूसरे दिन भी बेखटके आकर उस आश्रममें विचरने लगी॥ १४½॥

'वहाँ उसने अपनी किसी सखीको आयी हुई नहीं देखा। उस समय प्रजापतिके पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य अपनी तपस्यासे प्रकाशित हो वहाँ वेदोंका स्वाध्याय कर रहे थे॥ १५-१६॥

'उस वेदध्वनिको सुनकर वह कन्या उसी ओर गयी और उसने तपोनिधि पुलस्त्यजीका दर्शन किया। महर्षिकी दृष्टि पड़ते ही उसके शरीरपर पीलापन छा गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये॥ १७॥

'अपने शरीरमें यह दोष देखकर वह घबरा उठी और 'मुझे यह क्या हो गया?' इस प्रकार चिन्ता करती हुई पिताके आश्रमपर जाकर खड़ी हुई॥ १८॥

'अपनी कन्याको उस अवस्थामें देखकर तृणबिन्दुने पूछा—'तुम्हारे शरीरकी ऐसी अवस्था कैसे हुई? तुम अपने शरीरको जिस रूपमें धारण कर रही हो, यह तुम्हारे लिये सर्वथा अयोग्य एवं अनुचित है'॥ १९॥

वह बेचारी कन्या हाथ जोड़कर उन तपोधन मुनिसे बोली—'पिताजी! मैं उस कारणको नहीं समझ पाती, जिससे मेरा रूप ऐसा हो गया है॥ २०॥

'अभी थोड़ी देर पहले मैं पवित्र अन्त:करणवाले महर्षि पुलस्त्यके दिव्य आश्रमपर अपनी सखियोंको खोजनेके लिये अकेली गयी थी॥ २१॥

'वहाँ देखती हूँ तो कोई भी सखी उपस्थित नहीं है। साथ ही मेरा रूप पहलेसे विपरीत अवस्थामें पहुँच गया है; यह सब देखकर मैं भयभीत हो यहाँ आ गयी हूँ'॥ २२॥

'राजर्षि तृणबिन्दु अपनी तपस्यासे प्रकाशमान थे। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्यके ही करनेसे हुआ है॥ २३॥

'उन पवित्रात्मा महर्षिके उस शापको जानकर वे अपनी पुत्रीको साथ लिये पुलस्त्यजीके पास गये और इस प्रकार बोले—॥ २४ ॥

'भगवन्! मेरी यह कन्या अपने गुणोंसे ही विभूषित है। महर्षे! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षाके रूपमें ग्रहण कर लें॥ २५ ॥

'आप तपस्यामें लगे रहनेके कारण थक जाते होंगे; अतः यह सदा साथ रहकर आपकी सेवा-शुश्रूषा किया करेगी, इसमें संशय नहीं है'॥ २६ ॥

ऐसी बात कहते हुए उन धर्मात्मा राजर्षिको देखकर उनकी कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन ब्रह्मर्षिने कहा—'बहुत अच्छा'॥ २७ ॥

'तब उन महर्षिको अपनी कन्या देकर राजर्षि तृणबिन्दु अपने आश्रमपर लौट आये और वह कन्या अपने गुणोंसे पतिको संतुष्ट करती हुई वहीं रहने लगी॥ २८ ॥

'उसके शील और सदाचारसे वे महातेजस्वी मुनिवर पुलस्त्य बहुत संतुष्ट हुए और प्रसन्नतापूर्वक यों बोले—॥ २९ ॥

'सुन्दरि! मैं तुम्हारे गुणोंके वैभवसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। देवि! इसीलिये आज मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूँ, जो माता और पिता दोनोंके कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगा और पौलस्त्य नामसे विख्यात होगा॥ ३०½ ॥

'देवि! मैं यहाँ वेदका स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर उसका विशेषरूपसे श्रवण किया, इसलिये तुम्हारा वह पुत्र विश्रवा या विश्रवण कहलायेगा; इसमें संशय नहीं है'॥ ३१½ ॥

'पतिके प्रसन्नचित्त होकर ऐसी बात कहनेपर उस देवीने बड़े हर्षके साथ थोड़े ही समयमें विश्रवा नामक पुत्रको जन्म दिया, जो यश और धर्मसे सम्पन्न होकर तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ॥ ३२-३३ ॥

'विश्रवा मुनि वेदके विद्वान्, समदर्शी, व्रत और आचारका पालन करनेवाले तथा पिताके समान ही तपस्वी हुए'॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

विश्रवासे वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें निवास

पुलस्त्यके पुत्र मुनिवर विश्रवा थोड़े ही समयमें पिताकी भाँति तपस्यामें संलग्न हो गये॥ १ ॥

वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण, बाहर-भीतरसे पवित्र, सम्पूर्ण भोगोंमें अनासक्त तथा सदा ही धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे॥ २ ॥

विश्रवाके इस उत्तम आचरणको जानकर महामुनि भरद्वाजने अपनी कन्याका, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी, उनके साथ विवाह कर दिया॥ ३ ॥

धर्मके ज्ञाता मुनिवर विश्रवाने बड़ी प्रसन्नताके साथ धर्मानुसार भरद्वाजकी कन्याका पाणिग्रहण किया और प्रजाका हित-चिन्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा लोककल्याणका विचार करते हुए उन्होंने उसके गर्भसे एक अद्भुत और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। उसमें सभी ब्राह्मणोचित गुण विद्यमान थे। उसके जन्मसे पितामह पुलस्त्य मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४—६ ॥

उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखा—'इस बालकमें संसारका कल्याण करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा' तब उन्होंने बड़े हर्षसे भरकर देवर्षियोंके साथ उसका नामकरण-संस्कार किया॥ ७ ॥

वे बोले—'विश्रवाका यह पुत्र विश्रवाके ही समान उत्पन्न हुआ है; इसलिये यह वैश्रवण नामसे विख्यात होगा'॥ ८ ॥

कुमार वैश्रवण वहाँ तपोवनमें रहकर उस समय आहुति डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे और महान् तेजसे सम्पन्न हो गये॥ ९ ॥

आश्रममें रहनेके कारण उन महात्मा वैश्रवणके मनमें भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उत्तम धर्मका आचरण करूँ; क्योंकि धर्म ही परमगति है॥ १० ॥

यह सोचकर उन्होंने तपस्याका निश्चय करनेके पश्चात् महान् वनके भीतर सहस्रों वर्षोंतक कठोर नियमोंसे बँधकर बड़ी भारी तपस्या की॥ ११ ॥

वे एक-एक सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर तपस्याकी नयी-नयी विधि ग्रहण करते थे। पहले तो उन्होंने केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे हवा पीकर रहने लगे; फिर आगे चलकर उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार रहने लगे। इस तरह उन्होंने कई सहस्र वर्षोंको एक वर्षके समान बिता दिया॥ १२½ ॥

तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महातेजस्वी

ब्रह्माजी इन्द्र आदि देवताओंके साथ उनके आश्रमपर पधारे और इस प्रकार बोले—॥ १३½ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुम्हारे इस कर्मसे—तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। महामते! तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो; क्योंकि वर पानेके योग्य हो'॥ १४½ ॥

यह सुनकर वैश्रवणने अपने निकट खड़े हुए पितामहसे कहा—'भगवन्! मेरा विचार लोककी रक्षा करनेका है, अतः मैं लोकपाल होना चाहता हूँ'॥ १५½ ॥

वैश्रवणकी इस बातसे ब्रह्माजीके चित्तको और भी संतोष हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा'॥ १६½ ॥

इसके बाद वे फिर बोले—'बेटा! मैं चौथे लोकपालकी सृष्टि करनेके लिये उद्यत था। यम, इन्द्र और वरुणको जो पद प्राप्त है, वैसा ही लोकपाल-पद तुम्हें भी प्राप्त होगा, जो तुमको अभीष्ट है॥ १७½ ॥

'धर्मज्ञ! तुम प्रसन्नतापूर्वक उस पदको ग्रहण करो और अक्षय निधियोंके स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यमके साथ तुम चौथे लोकपाल कहलाओगे॥ १८½ ॥

'यह सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पकविमान है। इसे अपनी सवारीके लिये ग्रहण करो और देवताओंके समान हो जाओ॥ १९½ ॥

'तात! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम सब लोग जैसे आये हैं, वैसे लौट जायँगे। तुम्हें ये दो वर देकर हम अपनेको कृतकृत्य समझते हैं'॥ २०½ ॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ अपने स्थानको चले गये। ब्रह्मा आदि देवताओंके आकाशमें चले जानेपर अपने मनको संयममें रखनेवाले धनाध्यक्षने पितासे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने पितामह ब्रह्माजीसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है॥ २१-२२½ ॥

'परंतु उन प्रजापतिदेवने मेरे लिये कोई निवास-स्थान नहीं बताया। अतः भगवन्! अब आप ही मेरे रहनेके योग्य किसी ऐसे स्थानकी खोज कीजिये, जो सभी दृष्टियोंसे अच्छा हो। प्रभो! वह स्थान ऐसा होना चाहिये, जहाँ रहनेसे किसी भी प्राणीको कष्ट न हो'॥ २३-२४॥

अपने पुत्रके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्रवा बोले—'धर्मज्ञ! साधुशिरोमणे! सुनो—दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके शिखरपर एक विशाल पुरी है, जो देवराज इन्द्रकी अमरावती पुरीके समान शोभा पाती है॥ २५-२६ ॥

'उसका नाम लङ्का है। इन्द्रकी अमरावतीके समान उस रमणीय पुरीका निर्माण विश्वकर्माने राक्षसोंके रहनेके लिये किया है॥ २७॥

'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम निःसंदेह उस लङ्कापुरीमें ही जाकर रहो। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी हुई है। उसके चारों ओर चौड़ी खाइयाँ खुदी हुई हैं और वह अनेकानेक यन्त्रों तथा शस्त्रोंसे सुरक्षित है॥

'वह पुरी बड़ी ही रमणीय है। उसके फाटक सोने और नीलमके बने हुए हैं। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित हुए राक्षसोंने उस पुरीको त्याग दिया था॥ २९ ॥

'वे समस्त राक्षस रसातलको चले गये थे, इसलिये लङ्कापुरी सूनी हो गयी। इस समय भी लङ्कापुरी सूनी ही है, उसका कोई स्वामी नहीं है॥ ३० ॥

'अतः बेटा! तुम वहाँ निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ। वहाँ रहनेमें किसी प्रकारका दोष या खटका नहीं है। वहाँ किसीकी ओरसे कोई विघ्न-बाधा नहीं आ सकती'॥ ३१ ॥

अपने पिताके इस धर्मयुक्त वचनको सुनकर धर्मात्मा वैश्रवणने त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बनी हुई लङ्कापुरीमें निवास किया॥ ३२ ॥

उनके निवास करनेपर थोड़े ही दिनोंमें वह पुरी सहस्रों हृष्टपुष्ट राक्षसोंसे भर गयी। उनकी आज्ञासे वे राक्षस वहाँ आकर आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ३३ ॥

समुद्र जिसके लिये खाईका काम देता था, उस लङ्कानगरीमें विश्रवाके धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण राक्षसोंके राजा हो बड़ी प्रसन्नताके साथ निवास करने लगे॥ ३४॥

धर्मात्मा धनेश्वर समय-समयपर पुष्पकविमानके द्वारा आकर अपने माता-पितासे मिल जाया करते थे। उनका हृदय बड़ा ही विनीत था॥ ३५॥

देवता और गन्धर्व उनकी स्तुति करते थे। उनका भव्य भवन अप्सराओंके नृत्यसे सुशोभित होता था। वे धनपति कुबेर अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यकी भाँति सब ओर प्रकाश बिखेरते हुए अपने पिताके समीप गये॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

राक्षसवंशका वर्णन—हेति, विद्युत्केश और सुकेशकी उत्पत्ति

अगस्त्यजीकी कही हुई इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, राक्षसकुलकी उत्पत्ति तो मुनिवर विश्रवासे ही मानी जाती है। यदि उनसे भी पहले लङ्कापुरीमें राक्षस रहते थे तो उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी॥

इस प्रकार आश्चर्य होनेके अनन्तर सिर हिलाकर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी शरीरवाले अगस्त्यजीकी ओर बारम्बार देखा और मुस्कराकर पूछा—॥ २ ॥

'भगवन्! कुबेर और रावणसे पहले भी यह लङ्कापुरी मांसभक्षी राक्षसोंके अधिकारमें थी, यह आपके मुँहसे सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ है॥ ३ ॥

'हमने तो यही सुन रखा है कि राक्षसोंकी उत्पत्ति पुलस्त्यजीके कुलसे हुई है; किंतु इस समय आपने किसी दूसरेके कुलसे भी राक्षसोंके प्रादुर्भावकी बात कही है॥ ४॥

'क्या वे पहलेके राक्षस रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट तथा रावणपुत्रोंसे भी बढ़कर बलवान् थे?॥ ५ ॥

'ब्रह्मन्! उनका पूर्वज कौन था और उस उत्कट बलशाली पुरुषका नाम क्या था? भगवान् विष्णुने उन राक्षसोंका कौन-सा अपराध पाकर किस तरह उन्हें लङ्कासे मार भगाया?॥ ६ ॥

'निष्पाप महर्षे! ये सब बातें आप मुझे विस्तारसे बताइये। इनके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है। जैसे सूर्यदेव अन्धकारको दूर करते हैं, उसी तरह आप मेरे इस कौतूहलका निवारण कीजिये'॥ ७ ॥

श्रीरघुनाथजीकी वह सुन्दर वाणी पदसंस्कार, वाक्यसंस्कार और अर्थसंस्कारसे अलंकृत थी। उसे सुनकर अगस्त्यजीको यह सोचकर विस्मय हुआ कि ये सर्वज्ञ होकर भी मुझसे अनजानकी भाँति पूछ रहे हैं। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामसे कहा—॥ ८ ॥

'रघुनन्दन! जलसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न प्रजापति ब्रह्माजीने पूर्वकालमें समुद्रगत जलकी सृष्टि करके उसकी रक्षाके लिये अनेक प्रकारके जल-जन्तुओंको उत्पन्न किया॥ ९ ॥

'वे जन्तु भूख-प्यासके भयसे पीड़ित हो 'अब हम क्या करें', ऐसी बातें करते हुए अपने जन्मदाता ब्रह्माजीके पास विनीतभावसे गये॥ १० ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले रघुवीर! उन सबको आया देख प्रजापतिने उन्हें वाणीद्वारा सम्बोधित करके हँसते हुए-से कहा—'जल-जन्तुओ! तुम यत्नपूर्वक इस जलकी रक्षा करो'॥ ११ ॥

'वे सब जन्तु भूखे-प्यासे थे। उनमेंसे कुछने कहा—'हम इस जलकी रक्षा करेंगे' और दूसरेने कहा—'हम इसका यक्षण (पूजन) करेंगे', तब उन भूतोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापतिने उनसे कहा—॥ १२ ॥

'तुममेंसे जिन लोगोंने रक्षा करनेकी बात कही है, वे राक्षस नामसे प्रसिद्ध हों और जिन्होंने यक्षण (पूजन) करना स्वीकार किया है, वे लोग यक्ष नामसे ही विख्यात हों' (इस प्रकार वे जीव राक्षस और यक्ष—इन दो जातियोंमें विभक्त हो गये)॥ १३ ॥

'उन राक्षसोंमें हेति और प्रहेति नामवाले दो भाई थे, जो समस्त राक्षसोंके अधिपति थे। शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ वे दोनों वीर मधु और कैटभके समान शक्तिशाली थे॥ १४ ॥

'उनमें प्रहेति धर्मात्मा था; अतः वह तत्काल तपोवनमें जाकर तपस्या करने लगा। परंतु हेतिने विवाहके लिये बड़ा प्रयत्न किया॥ १५ ॥

'वह अमेय आत्मबलसे सम्पन्न और बड़ा बुद्धिमान् था। उसने स्वयं ही याचना करके कालकी कुमारी भगिनी भयाके साथ विवाह किया। भया बड़ी भयानक थी॥ १६ ॥

'राक्षसराज हेतिने भयाके गर्भसे एक पुत्रको उत्पन्न किया, जो विद्युत्केशके नामसे प्रसिद्ध था। उसे जन्म देकर हेति पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ समझा जाने लगा॥

'हेतिपुत्र विद्युत्केश दीप्तिमान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था। वह महातेजस्वी बालक जलमें कमलकी भाँति दिनोदिन बढ़ने लगा॥ १८ ॥

'निशाचर विद्युत्केश जब बढ़कर उत्तम युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसके पिता राक्षसराज हेतिने अपने पुत्रका ब्याह कर देनेका निश्चय किया॥ १९ ॥

'राक्षसराजशिरोमणि हेतिने अपने पुत्रको ब्याहनेके लिये संध्याकी पुत्रीका, जो प्रभावमें अपनी माता संध्याके ही समान थी, वरण किया॥ २० ॥

'रघुनन्दन! संध्याने सोचा—'कन्याका किसी दूसरेके साथ ब्याह तो अवश्य ही करना पड़ेगा, अतः इसीके

साथ क्यों न कर दूँ?' यह विचारकर उसने अपनी पुत्री विद्युत्केशको ब्याह दी॥ २१॥

'संध्याकी उस पुत्रीको पाकर निशाचर विद्युत्केश उसके साथ उसी तरह रमण करने लगा, जैसे देवराज इन्द्र पुलोमपुत्री शचीके साथ विहार करते हैं॥ २२॥

'श्रीराम! संध्याकी उस पुत्रीका नाम सालकटङ्कटा था। कुछ कालके पश्चात् उसने विद्युत्केशसे उसी तरह गर्भ धारण किया, जैसे मेघोंकी पंक्ति समुद्रसे जल ग्रहण करती है॥ २३॥

तदनन्तर उस राक्षसीने मन्दराचलपर जाकर विद्युत्के समान कान्तिमान् बालकको जन्म दिया, मानो गङ्गाने अग्निके छोड़े हुए भगवान् शिवके तेजःस्वरूप गर्भ (कुमार कार्तिकेय)-को उत्पन्न किया हो। उस नवजात शिशुको वहीं छोड़कर वह विद्युत्केशके साथ रति-क्रीडाके लिये चली गयी॥ २४॥

'अपने बेटेको भुलाकर सालकटङ्कटा पतिके साथ रमण करने लगी। उधर उसका छोड़ा हुआ वह नवजात शिशु मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द करने लगा॥ उसके शरीरकी कान्ति शरत्कालके सूर्यकी भाँति उद्भासित होती थी। माताका छोड़ा हुआ वह शिशु स्वयं ही अपनी मुट्ठी मुँहमें डालकर धीरे-धीरे रोने लगा॥ २६॥

'उस समय भगवान् शंकर पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़कर वायुमार्ग (आकाश)-से जा रहे थे। उन्होंने उस बालकके रोनेकी आवाज सुनी॥ २७॥

'सुनकर पार्वतीसहित शिवने उस रोते हुए राक्षसकुमारकी ओर देखा। उसकी दयनीय अवस्थापर दृष्टिपात करके माता पार्वतीके हृदयमें करुणाका स्रोत उमड़ उठा और उनकी प्रेरणासे त्रिपुरसूदन भगवान् शिवने उस राक्षस-बालकको उसकी माताकी अवस्थाके समान ही नौजवान बना दिया॥ २८ $\frac{1}{2}$॥

'इतना ही नहीं, पार्वतीजीका प्रिय करनेकी इच्छासे अविनाशी एवं निर्विकार भगवान् महादेवने उस बालकको अमर बनाकर उसके रहनेके लिये एक आकाशचारी नगराकार विमान दे दिया॥ २९ $\frac{1}{2}$॥

'राजकुमार! तत्पश्चात् पार्वतीजीने भी यह वरदान दिया कि आजसे राक्षसियाँ जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी; फिर शीघ्र ही उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल बढ़कर माताके ही समान अवस्थाका हो जायगा॥ ३०-३१॥

'विद्युत्केशका वह पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह बड़ा बुद्धिमान् था। भगवान् शंकरका वरदान पानेसे उसे बड़ा गर्व हुआ और वह उन परमेश्वरके पाससे अद्भुत सम्पत्ति एवं आकाशचारी विमान पाकर देवराज इन्द्रकी भाँति सर्वत्र अबाध-गतिसे विचरने लगा॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

सुकेशके पुत्र माल्यवान्, सुमाली और मालीकी संतानोंका वर्णन

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर एक दिन विश्वावसुके समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्वने राक्षस सुकेशको धर्मात्मा तथा वरप्राप्त वैभवसे सम्पन्न देख अपनी देववती नामक कन्याका उसके साथ ब्याह कर दिया। वह कन्या दूसरी लक्ष्मीके समान दिव्य रूप और यौवनसे सुशोभित एवं तीनों लोकोंमें विख्यात थी। धर्मात्मा ग्रामणीने राक्षसोंकी मूर्तिमती राजलक्ष्मीके समान देववतीका हाथ सुकेशके हाथमें दे दिया॥ १-२ $\frac{1}{2}$॥

वरदानमें मिले हुए ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रियतम पतिको पाकर देववती बहुत संतुष्ट हुई, मानो किसी निर्धनको धनकी राशि मिल गयी हो॥ ३ $\frac{1}{2}$॥

जैसे अञ्जन नामक दिग्गजसे उत्पन्न कोई महान् गज किसी हथिनीके साथ शोभा पा रहा हो, उसी तरह वह राक्षस गन्धर्व-कन्या देववतीके साथ रहकर अधिक शोभा पाने लगा॥ ४ $\frac{1}{2}$॥

रघुनन्दन! तदनन्तर समय आनेपर सुकेशने देववतीके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो तीन[1] अग्नियोंके समान तेजस्वी थे॥ ५ $\frac{1}{2}$॥

उनके नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और माली। माली बलवानोंमें श्रेष्ठ था। वे तीनों त्रिनेत्रधारी महादेवजीके समान शक्तिशाली थे। उन तीनों राक्षसपुत्रोंको देखकर राक्षसराज सुकेश बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ६ $\frac{1}{2}$॥

वे तीनों लोकोंके समान सुस्थिर, तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी, तीन मन्त्रों (शक्तियों[2] अथवा वेदों[3])-के समान उग्र तथा तीन रोगों[4] के समान अत्यन्त भयंकर थे॥ ७ $\frac{1}{2}$॥

सुकेशके वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी थे। वे वहाँ उसी तरह बढ़ने लगे, जैसे

उपेक्षावश दवा न करनेसे रोग बढ़ते हैं॥ ८ १/२ ॥

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि हमारे पिताको तपोबलके द्वारा वरदान एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है, तब वे तीनों भाई तपस्या करनेका निश्चय करके मेरुपर्वतपर चले गये॥ ९ १/२ ॥

नृपश्रेष्ठ! वे राक्षस वहाँ भयंकर नियमोंको ग्रहण करके घोर तपस्या करने लगे। उनकी वह तपस्या समस्त प्राणियोंको भय देनेवाली थी॥ १० १/२ ॥

सत्य, सरलता एवं शम-दम आदिसे युक्त तपके द्वारा, जो भूतलपर दुर्लभ है, वे देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको संतप्त करने लगे॥ ११ १/२ ॥

तब चार मुखवाले भगवान् ब्रह्मा एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वहाँ गये और सुकेशके पुत्रोंको सम्बोधित करके बोले—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ'॥ १२ १/२ ॥

इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए वरदायक ब्रह्माजीको आया जान वे सब-के-सब वृक्षोंके समान काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—॥ १३ १/२ ॥

'देव! यदि आप हमारी तपस्यासे आराधित एवं संतुष्ट होकर हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके। हम शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ, चिरजीवी तथा प्रभावशाली हों। साथ ही हमलोगोंमें परस्पर प्रेम बना रहे'॥ १४-१५ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम ऐसे ही होओगे'। सुकेशके पुत्रोंसे ऐसा कहकर ब्राह्मणवत्सल ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये॥ १६ ॥

श्रीराम! वर पाकर वे सब निशाचर उस वरदानसे अत्यन्त निर्भय हो देवताओं तथा असुरोंको भी बहुत कष्ट देने लगे॥ १७ ॥

उनके द्वारा सताये जाते हुए देवता, ऋषि-समुदाय और चारण नरकमें पड़े हुए मनुष्योंके समान किसीको अपना रक्षक या सहायक नहीं पाते थे॥ १८ ॥

'रघुवंशशिरोमणे! एक दिन शिल्प-कर्मके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ अविनाशी विश्वकर्माके पास जाकर वे राक्षस हर्ष और उत्साहसे भरकर बोले—॥ १९ ॥

'महामते! जो ओज, बल और तेजसे सम्पन्न होनेके कारण महान् हैं, उन देवताओंके लिये आप ही अपनी शक्तिसे मनोवाञ्छित भवनका निर्माण करते हैं, अत: हमारे लिये भी आप हिमालय, मेरु अथवा मन्दराचलपर चलकर भगवान् शंकरके दिव्य भवनकी भाँति एक विशाल निवासस्थानका निर्माण कीजिये'॥ २०-२१ १/२ ॥

यह सुनकर महाबाहु विश्वकर्माने उन राक्षसोंको एक ऐसे निवासस्थानका पता बताया, जो इन्द्रकी अमरावतीको भी लज्जित करनेवाला था॥ २२ १/२ ॥

(वे बोले—) 'राक्षसपतियो! दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है और दूसरा सुवेल नामसे विख्यात शैल है॥ २३ १/२ ॥

'उस त्रिकूटपर्वतके मझले शिखरपर जो हरा-भरा होनेके कारण मेघके समान नीला दिखायी देता है तथा जिसके चारों ओरके आश्रय टाँकीसे काट दिये गये हैं, अतएव जहाँ पक्षियोंके लिये भी पहुँचना कठिन है, मैंने इन्द्रकी आज्ञासे लङ्का नामक नगरीका निर्माण किया है। वह तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी है। उसके चारों ओर सोनेकी चहारदीवारी है और उसमें सोनेके ही फाटक लगे हैं॥ २४—२६ ॥

'दुर्धर्ष राक्षसशिरोमणियो! जैसे इन्द्र आदि देवता अमरावतीपुरीका आश्रय लेकर रहते हैं, उसी प्रकार तुम लोग भी उस लङ्कापुरीमें जाकर निवास करो॥ २७ ॥

'शत्रुसूदन वीरो! लङ्काके दुर्गका आश्रय लेकर बहुत-से राक्षसोंके साथ जब तुम निवास करोगे, उस समय शत्रुओंके लिये तुमपर विजय पाना अत्यन्त कठिन होगा'॥ २८ ॥

विश्वकर्माकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ राक्षस सहस्रों अनुचरोंके साथ उस पुरीमें जाकर बस गये॥ २९ ॥

उसकी खाई और चहारदीवारी बड़ी मजबूत बनी थी। सोनेके सैकड़ों महल उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस लङ्कापुरीमें पहुँचकर वे निशाचर बड़े हर्षके साथ वहाँ रहने लगे॥ ३० ॥

रघुकुलनन्दन श्रीराम! इन्हीं दिनों नर्मदा नामकी एक गन्धर्वी थी। उसके तीन कन्याएँ हुईं, जो ह्री, श्री, और कीर्ति[५]-के समान शोभासम्पन्न थीं। इनकी माता यद्यपि राक्षसी नहीं थी तो भी उसने अपनी रुचिके

१. गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि।

२. प्रभु-शक्ति, उत्साह-शक्ति तथा मन्त्र-शक्ति—ये तीन शक्तियाँ हैं।

३. ऋग्, यजु और साम—ये तीन वेद हैं।

४. वात, पित्त और कफ—इनके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारके रोग हैं।

५. ये तीन देवियाँ हैं, जो क्रमश: लज्जा, शोभा-सम्पत्ति और कीर्तिकी अधिष्ठात्री मानी गयी हैं।

अनुसार सुकेशके उन तीनों राक्षसजातीय पुत्रोंके साथ अपनी कन्याओंका ज्येष्ठ आदि अवस्थाके अनुसार विवाह कर दिया। वे कन्याएँ बहुत प्रसन्न थीं। उनके मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर थे॥ ३१-३२½ ॥

माता नर्मदाने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उन तीनों महाभाग्यवती गन्धर्व-कन्याओंको उन तीनों राक्षसराजोंके हाथमें दे दिया॥ ३३½ ॥

श्रीराम! जैसे देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार सुकेशके पुत्र विवाहके पश्चात् अपनी उन पत्नियोंके साथ रहकर लौकिक सुखका उपभोग करने लगे॥ ३४½ ॥

उनमें माल्यवान्‌की स्त्रीका नाम सुन्दरी था। वह अपने नामके अनुरूप ही परम सुन्दरी थी। माल्यवान्‌ने उसके गर्भसे जिन संतानोंको जन्म दिया, उन्हें बता रहा हूँ, सुनिये॥ ३५½ ॥

वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, राक्षस दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात पुत्र थे। श्रीराम! इनके अतिरिक्त सुन्दरीके गर्भसे अनला नामवाली एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी॥ ३६-३७॥

सुमालीकी पत्नी भी बड़ी सुन्दरी थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर और नाम केतुमती था। सुमालीको वह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी॥ ३८॥

महाराज! निशाचर सुमालीने केतुमतीके गर्भसे जो संतानें उत्पन्न की थीं, उनका भी क्रमशः परिचय दिया जा रहा है, सुनिये॥ ३९॥

प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस तथा राक्षस भासकर्ण—ये सुमालीके पुत्र थे और राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी—ये चार पवित्र मुस्कानवाली उसकी कन्याएँ थीं। ये सब सुमालीकी संतानें बतायी गयी हैं॥ ४०—४२॥

मालीकी पत्नी गन्धर्वकन्या वसुदा थी, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित होती थी। उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल एवं सुन्दर थे। वह श्रेष्ठ यक्ष-पत्नियोंके समान सुन्दरी थी॥ ४३॥

प्रभो! रघुनन्दन! सुमालीके छोटे भाई मालीने वसुदाके गर्भसे जो संतति उत्पन्न की थी, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये॥ ४४॥

अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चार निशाचर मालीके ही पुत्र थे, जो इस समय विभीषणके मन्त्री हैं॥ ४५॥

माल्यवान् आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रों तथा अन्यान्य निशाचरोंके साथ रहकर अपने बाहुबलके अभिमानसे युक्त हो इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षोंको पीड़ा देने लगे॥ ४६॥

वे वायुकी भाँति सारे संसारमें विचरनेवाले थे। युद्धमें उन्हें जीतना बहुत ही कठिन था। वे मृत्युके तुल्य तेजस्वी थे। वरदान मिल जानेसे भी उनका घमंड बहुत बढ़ गया था; अतः वे यज्ञादि क्रियाओंका सदा अत्यन्त विनाश किया करते थे॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५॥

छठाँ सर्ग

देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे आश्वासन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये आना

(महर्षि अगस्त्य कहते हैं—रघुनन्दन!) इन राक्षसोंसे पीड़ित होते हुए देवता तथा तपोधन ऋषि भयसे व्याकुल हो देवाधिदेव महादेवजीकी शरणमें गये॥ १॥

जो जगत्‌की सृष्टि और संहार करनेवाले, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, सम्पूर्ण जगत्‌के आधार, आराध्य देव और परम गुरु हैं, उन कामनाशक, त्रिपुरविनाशक, त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवके पास जाकर वे सब देवता हाथ जोड़ भयसे गद्गदवाणीमें बोले—॥ २-३॥

'भगवन्! प्रजानाथ! ब्रह्माजीके वरदानसे उन्मत्त हुए सुकेशके पुत्र शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले साधनोंद्वारा सम्पूर्ण प्रजाको बड़ा कष्ट पहुँचा रहे हैं॥ ४॥

'सबको शरण देने योग्य जो हमारे आश्रम थे, उन्हें उन राक्षसोंने निवासके योग्य नहीं रहने दिया है—उजाड़ डाला है। देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाये बैठे हैं और देवताओंकी भाँति स्वर्गमें विहार करते हैं॥ ५॥

'माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं—'मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र, यमराज, वरुण, चन्द्रमा और सूर्य हूँ' इस प्रकार अहंकार प्रकट करते हुए वे रणदुर्जय निशाचर तथा उनके अग्रगामी सैनिक हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं॥ ६-७॥

'देव! उनके भयसे हम बहुत घबराये हुए हैं, इसलिये आप हमें अभयदान दीजिये तथा रौद्र रूप धारण करके देवताओंके लिये कण्टक बने हुए उन राक्षसोंका संहार कीजिये'॥ ८॥

समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर नील एवं लोहित वर्णवाले जटाजूटधारी भगवान् शंकर सुकेशके प्रति घनिष्ठता रखनेके कारण उनसे इस प्रकार बोले—॥ ९॥

'देवगण! मैंने सुकेशके जीवनकी रक्षा की है। वे असुर सुकेशके ही पुत्र हैं; इसलिये मेरे द्वारा मारे जानेयोग्य नहीं हैं। अतः मैं तो उनका वध नहीं करूँगा; परंतु तुम्हें एक ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन निशाचरोंका वध करेंगे॥ १०॥

'देवताओ और महर्षियो! तुम इसी उद्योगको सामने रखकर तत्काल भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वे प्रभु अवश्य उनका नाश करेंगे'॥ ११॥

यह सुनकर सब देवता जय-जयकारके द्वारा महेश्वरका अभिनन्दन करके उन निशाचरोंके भयसे पीड़ित हो भगवान् विष्णुके समीप आये॥ १२॥

शङ्ख, चक्र धारण करनेवाले उन नारायणदेवको नमस्कार करके देवताओंने उनके प्रति बहुत अधिक सम्मानका भाव प्रकट किया और सुकेशके पुत्रोंके विषयमें बड़ी घबराहटके साथ इस प्रकार कहा—॥ १३॥

'देव! सुकेशके तीन पुत्र त्रिविध अग्नियोंके तुल्य तेजस्वी हैं। उन्होंने वरदानके बलसे आक्रमण करके हमारे स्थान छीन लिये हैं॥ १४॥

त्रिकूटपर्वतके शिखरपर जो लङ्का नामवाली दुर्गम नगरी है, वहीं रहकर वे निशाचर हम सभी देवताओंको क्लेश पहुँचाते रहते हैं॥ १५॥

'मधुसूदन! आप हमारा हित करनेके लिये उन असुरोंका वध करें। देवेश्वर! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारे आश्रयदाता हों॥ १६॥

'अपने चक्रसे उनका कमलोपम मस्तक काटकर आप यमराजको भेंट कर दीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इस भयके अवसरपर हमें अभय दान दे सके॥ १७॥

'देव! वे राक्षस मदसे मतवाले हो रहे हैं। हमें कष्ट देकर हर्षसे फूले नहीं समाते हैं; अतः आप समराङ्गणमें सगे-सम्बन्धियोंसहित उनका वध करके हमारे भयको उसी तरह दूर कर दीजिये, जैसे सूर्यदेव कुहरेको नष्ट कर देते हैं'॥ १८॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर शत्रुओंको भय देनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उन्हें अभय दान देकर बोले—॥ १९॥

'देवताओ! मैं सुकेश नामक राक्षसको जानता हूँ। वह भगवान् शंकरका वर पाकर अभिमानसे उन्मत्त हो उठा है। इसके उन पुत्रोंको भी जानता हूँ, जिनमें माल्यवान् सबसे बड़ा है। वे नीच राक्षस धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, अतः मैं क्रोधपूर्वक उनका विनाश करूँगा। तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ'॥ २०-२१॥

सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इस प्रकार आश्वासन देनेपर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। वे उन जनार्दनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २२॥

देवताओंके इस उद्योगका समाचार सुनकर निशाचर माल्यवान्ने अपने दोनों वीर भाइयोंसे इस प्रकार कहा—॥ २३॥

'सुननेमें आया है कि देवता और ऋषि मिलकर हमलोगोंका वध करना चाहते हैं। इसके लिये उन्होंने भगवान् शंकरके पास जाकर यह बात कही॥ २४॥

'देव! सुकेशके पुत्र आपके वरदानके बलसे उद्दण्ड और अभिमानसे उन्मत्त हो उठे हैं। वे भयंकर राक्षस पग-पगपर हमलोगोंको सता रहे हैं॥ २५॥

'प्रजानाथ! राक्षसोंसे पराजित होकर हम उन दुष्टोंके भयसे अपने घरोंमें नहीं रहने पाते हैं॥ २६॥

'त्रिलोचन! आप हमारे हितके लिये उन असुरोंका वध कीजिये। दाहकोंमें श्रेष्ठ रुद्रदेव! आप अपने हुंकारसे ही राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दीजिये'॥ २७॥

'देवताओंके ऐसा कहनेपर अन्धकशत्रु भगवान् शिवने अस्वीकृति सूचित करनेके लिये अपने सिर और हाथको हिलाते हुए इस प्रकार कहा—॥ २८॥

'देवताओ! सुकेशके पुत्र रणभूमिमें मेरे हाथसे मारे जानेयोग्य नहीं हैं, परंतु मैं तुम्हें ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन सबका वध कर डालेंगे॥

'जिनके हाथमें चक्र और गदा सुशोभित हैं, जो पीताम्बर धारण करते हैं, जिन्हें जनार्दन और हरि कहते हैं तथा जो श्रीमान् नारायणके नामसे विख्यात हैं, उन्हीं

भगवान्‌की शरणमें तुम सब लोग जाओ'॥ ३०॥

भगवान् शङ्करसे यह सलाह पाकर उन कामदाहक महादेवजीको प्रणाम करके देवता नारायणके धाममें जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उनसे सब बातें बतायीं॥ ३१॥

तब उन नारायणदेवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'देवगण! मैं उन देवद्रोहियोंका नाश कर डालूँगा, अतः तुमलोग निर्भय हो जाओ'॥ ३२॥

'राक्षसशिरोमणियो! इस प्रकार भयभीत देवताओंके समक्ष श्रीहरिने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा की है; अतः अब इस विषयमें हमलोगोंके लिये जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करना चाहिये॥ ३३॥

'हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्योंकी मृत्यु इन्हीं विष्णुके हाथसे हुई है। नमुचि, कालनेमि, वीरशिरोमणि संह्राद, नाना प्रकारकी माया जाननेवाला राधेय, धर्मनिष्ठ लोकपाल, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ आदि महाबली शक्तिशाली समस्त असुर और दानव समरभूमिमें भगवान् विष्णुका सामना करके पराजित न हुए हों, ऐसा नहीं सुना जाता॥ ३४—३६॥

'उन सभी असुरोंने सैकड़ों यज्ञ किये थे। वे सब-के-सब माया जानते थे। सभी सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल तथा शत्रुओंके लिये भयंकर थे॥ ३७॥

'ऐसे सैकड़ों और हजारों असुरोंको नारायणदेवने मौतके घाट उतार दिया है। इस बातको जानकर हम सबके लिये जो उचित कर्तव्य हो, वही करना चाहिये। जो नारायणदेव हमारा वध करना चाहते हैं, उन्हें जीतना अत्यन्त दुष्कर कार्य है'॥ ३८॥

माल्यवान्‌की यह बात सुनकर सुमाली और माली अपने उस बड़े भाईसे उसी प्रकार बोले, जैसे दोनों अश्विनीकुमार देवराज इन्द्रसे वार्तालाप कर रहे हों॥

वे बोले—राक्षसराज! हमलोगोंने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्यकी रक्षा तथा उसका उपभोग भी किया है। हमें रोग-व्याधिसे रहित आयु प्राप्त हुई है और हमने कर्तव्य-मार्गमें उत्तम धर्मकी स्थापना की है॥

'यही नहीं, हमने अपने शस्त्रोंके बलसे देवसेनारूपी अगाध समुद्रमें प्रवेश करके ऐसे-ऐसे शत्रुओंपर विजय पायी है, जो वीरतामें अपना सानी नहीं रखते थे; अतः हमें मृत्युसे कोई भय नहीं है॥ ४१॥

'नारायण, रुद्र, इन्द्र तथा यमराज ही क्यों न हों, सभी सदा हमारे सामने खड़े होनेमें डरते हैं॥ ४२॥

'राक्षसेश्वर! विष्णुके मनमें भी हमारे प्रति द्वेषका कोई कारण तो नहीं है। (क्योंकि हमने उनका कोई अपराध नहीं किया है) केवल देवताओंके चुगली खानेसे उनका मन हमारी ओरसे फिर गया है॥ ४३॥

'इसलिये हम सब लोग एकत्र हो एक-दूसरेकी रक्षा करते हुए साथ-साथ चलें और आज ही देवताओंका वध कर डालनेकी चेष्टा करें, जिनके कारण यह उपद्रव खड़ा हुआ है'॥ ४४॥

ऐसा निश्चय करके उन सभी महाबली राक्षसपतियोंने युद्धके लिये अपने उद्योगकी घोषणा कर दी और समूची सेना साथ ले जम्भ एवं वृत्र आदिकी भाँति कुपित हो वे युद्धके लिये निकले॥ ४५½॥

श्रीराम! पूर्वोक्त मन्त्रणा करके उन सभी महाबली विशालकाय राक्षसोंने पूरी तैयारी की और युद्धके लिये कूच कर दिया॥ ४६½॥

अपने बलका घमण्ड रखनेवाले वे समस्त देवद्रोही राक्षस रथ, हाथी, हाथी-जैसे घोड़े, गदहे, बैल, ऊँट, शिशुमार, सर्प, मगर, कछुआ, मत्स्य, गरुड़-तुल्य पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर, मृग और नीलगाय आदि वाहनोंपर सवार हो लङ्का छोड़कर युद्धके लिये देवलोककी ओर चल दिये॥ ४७—४९½॥

लङ्कामें रहनेवाले जो प्राणी अथवा ग्रामदेवता आदि थे, वे सब अपशकुन आदिके द्वारा लङ्काके भावी विध्वंसको देखकर भयका अनुभव करते हुए मन-ही-मन खिन्न हो उठे॥ ५०½॥

उत्तम रथोंपर बैठे हुए सैकड़ों और हजारों राक्षस तुरंत ही प्रयत्नपूर्वक देवलोककी ओर बढ़ने लगे। उस नगरके देवता राक्षसोंके मार्गसे ही पुरी छोड़कर निकल गये॥ ५१-५२॥

उस समय कालकी प्रेरणासे पृथ्वी और आकाशमें अनेक भयंकर उत्पात प्रकट होने लगे, जो राक्षसोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे॥ ५३॥

बादल गरम-गरम रक्त और हड्डियोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र अपनी सीमाका उल्लङ्घन करके आगे बढ़ गये और पर्वत हिलने लगे॥ ५४॥

मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले प्राणी विकट अट्टहास करने लगे और भयंकर दिखायी देनेवाली गीदड़ियाँ कठोर आवाजमें चीत्कार करने लगीं॥ ५५॥

पृथ्वी आदि भूत क्रमशः गिरते—विलीन होते-से दिखायी देने लगे, गीधोंका विशाल समूह मुखसे आगकी ज्वाला उगलता हुआ राक्षसोंके ऊपर कालके समान मँड़राने लगा॥ ५६½॥

कबूतर, तोता और मैना लङ्का छोड़कर भाग चले।

कौए वहीं काँव-काँव करने लगे। बिल्लियाँ भी वहीं गुर्राने लगीं तथा हाथी आदि पशु आर्तनाद करने लगे॥ ५७½ ॥

राक्षस बलके घमण्डमें मतवाले हो रहे थे। वे कालके पाशमें बँध चुके थे। इसलिये उन उत्पातोंकी अवहेलना करके युद्धके लिये चलते ही गये, लौटे नहीं॥

माल्यवान्, सुमाली और महाबली माली—ये तीनों प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीरसे समस्त राक्षसोंके आगे-आगे चल रहे थे॥ ५९½ ॥

जैसे देवता ब्रह्माजीका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार उन सब निशाचरोंने माल्यवान् पर्वतके समान अविचल माल्यवान्‌का ही आश्रय ले रखा था॥ ६०½ ॥

राक्षसोंकी वह सेना महान् मेघोंकी गर्जनाके समान कोलाहल करती हुई विजय पानेकी इच्छासे देवलोककी ओर बढ़ती जा रही थी। उस समय वह सेनापति मालीके नियन्त्रणमें थी॥ ६१½ ॥

देवताओंके दूतसे राक्षसोंके उस युद्धविषयक उद्योगकी बात सुनकर भगवान् नारायणने भी युद्ध करनेका विचार किया॥ ६२½ ॥

वे सहस्रों सूर्योंके समान दीप्तिमान् दिव्य कवच धारण करके बाणोंसे भरा तरकस लिये गरुड़पर सवार हुए॥

इसके अतिरिक्त भी उन्होंने सायकोंसे पूर्ण दो चमचमाते हुए तूणीर बाँध रखे थे। उन कमलनयन श्रीहरिने अपनी कमरमें पट्टी बाँधकर उसमें चमकती हुई तलवार भी लटका ली थी॥ ६४½ ॥

इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और खड्ग आदि उत्तम आयुधोंको धारण किये सुन्दर पंखवाले पर्वताकार गरुड़पर आरूढ़ हो वे प्रभु उन राक्षसोंका संहार करनेके लिये तुरंत चल दिये॥ ६५-६६ ॥

गरुड़की पीठपर बैठे हुए वे पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि सुवर्णमय मेरुपर्वतके शिखरपर स्थित हुए विद्युत्सहित मेघके समान शोभा पा रहे थे॥ ६७॥

उस समय सिद्ध, देवर्षि, बड़े-बड़े नाग, गन्धर्व और यक्ष उनके गुण गा रहे थे। असुरोंकी सेनाके शत्रु वे श्रीहरि हाथोंमें शङ्ख, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष लिये सहसा वहाँ आ पहुँचे॥ ६८ ॥

गरुड़के पंखोंकी तीव्र वायुके झोंके खाकर वह सेना क्षुब्ध हो उठी। सैनिकोंके रथोंकी पताकाएँ चक्कर खाने लगीं और सबके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर गये। इस प्रकार राक्षसराज माल्यवान्‌की समूची सेना काँपने लगी। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतका नील शिखर अपनी शिलाओंको बिखेरता हुआ हिल रहा हो॥ ६९ ॥

राक्षसोंके उत्तम अस्त्र-शस्त्र तीखे, रक्त और मांसमें सने हुए तथा प्रलयकालीन अग्निके समान दीप्तिमान् थे। उनके द्वारा वे सहस्रों निशाचर भगवान् लक्ष्मीपतिको चारों ओरसे घेरकर उनपर चोट करने लगे॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छठाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६ ॥

सातवाँ सर्ग

भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और पलायन

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) जैसे बादल जलकी वर्षासे किसी पर्वतको आप्लावित करते हैं, उसी प्रकार गर्जना करते हुए वे राक्षसरूपी मेघ अस्त्ररूपी जलकी वर्षासे नारायणरूपी पर्वतको पीड़ित करने लगे॥ १ ॥

भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह उज्ज्वल श्यामवर्णसे सुशोभित था और अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए वे श्रेष्ठ निशाचर नीले रंगके दिखायी देते थे; इसलिये ऐसा जान पड़ता था, मानो अञ्जनगिरिको चारों ओरसे घेरकर मेघ उसपर जलकी धारा बरसा रहे हों॥ २ ॥

जैसे टिड्डीदल धान आदिके खेतोंमें, पतिंगे आगमें, डंक मारनेवाली मक्खियाँ मधुसे भरे हुए घड़ेमें और मगर समुद्रमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके धनुषसे छूटे हुए वज्र, वायु तथा मनके समान वेगवाले बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रवेश करके इस प्रकार लीन हो जाते थे, जैसे प्रलयकालमें समस्त लोक उन्हींमें प्रवेश कर जाते हैं॥ ३-४ ॥

रथपर बैठे हुए योद्धा रथोंसहित, हाथीसवार हाथियोंके साथ, घुड़सवार घोड़ोंसहित तथा पैदल पाँव-पयादे ही आकाशमें खड़े थे॥ ५ ॥

उन राक्षसराजोंके शरीर पर्वतके समान विशाल थे। उन्होंने सब ओरसे शक्ति, ऋष्टि, तोमर और बाणोंकी वर्षा करके भगवान् विष्णुका साँस लेना बंद कर दिया। ठीक उसी तरह, जैसे प्राणायाम द्विजके श्वासको रोक देते हैं॥ ६ ॥

जैसे मछली महासागरपर प्रहार करे, उसी तरह

वे निशाचर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा श्रीहरिपर चोट करते थे। उस समय दुर्जय देवता भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग-धनुषको खींचकर राक्षसोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया॥ ७॥

वे बाण धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये थे; अतः वज्रके समान असह्य और मनके समान वेगवान् थे। उन पैने बाणोंद्वारा भगवान् विष्णुने सैकड़ों और हजारों निशाचरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ८॥

जैसे हवा उमड़ी हुई बदली एवं वर्षाको उड़ा देती है, उसी प्रकार अपनी बाणवर्षासे राक्षसोंको भगाकर पुरुषोत्तम श्रीहरिने अपने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्खको बजाया॥ ९॥

सम्पूर्ण प्राणशक्तिसे श्रीहरिके द्वारा बजाया गया वह जल-जनित शङ्खराज भयंकर आवाजसे तीनों लोकोंको व्यथित करता हुआ-सा गूँजने लगा॥ १०॥

जैसे वनमें दहाड़ता हुआ सिंह मतवाले हाथियोंको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार उस शङ्खराजकी ध्वनिने समस्त राक्षसोंको भय और घबराहटमें डाल दिया॥ ११॥

वह शङ्खध्वनि सुनकर शक्ति और साहससे हीन हुए घोड़े युद्धभूमिमें खड़े न रह सके, हाथियोंके मद उतर गये और वीर सैनिक रथोंसे नीचे गिर पड़े॥ १२॥

सुन्दर पंखवाले उन बाणोंके मुखभाग वज्रके समान कठोर थे। वे शार्ङ्गधनुषसे छूटकर राक्षसोंको विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें घुस जाते थे॥ १३॥

संग्रामभूमिमें भगवान् विष्णुके हाथसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न हुए निशाचर वज्रके मारे हुए पर्वतोंकी भाँति धराशायी होने लगे॥ १४॥

श्रीहरिके चक्रके आघातसे शत्रुओंके शरीरोंमें जो घाव हो गये थे, उनसे उसी तरह रक्तकी धारा बह रही थी, मानो पर्वतोंसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो॥ १५॥

शङ्खराजकी ध्वनि, शार्ङ्गधनुषकी टंकार तथा भगवान् विष्णुकी गर्जना—इन सबके तुमुल नादने राक्षसोंके कोलाहलको दबा दिया॥ १६॥

भगवान्ने राक्षसोंके काँपते हुए मस्तकों, बाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं और तरकसोंको अपने बाणोंसे काट डाला॥ १७॥

जैसे सूर्यसे भयंकर किरणें, समुद्रसे जलके प्रवाह, पर्वतसे बड़े-बड़े सर्प और मेघसे जलकी धाराएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् नारायणके चलाये और शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए सैकड़ों और हजारों बाण तत्काल इधर-उधर दौड़ने लगे॥ १८-१९॥

जैसे शरभसे सिंह, सिंहसे हाथी, हाथीसे बाघ, बाघसे चीते, चीतेसे कुत्ते, कुत्तेसे बिलाव, बिलावसे साँप और साँपसे चूहे डरकर भागते हैं, उसी प्रकार वे सब राक्षस प्रभावशाली भगवान् विष्णुकी मार खाकर भागने लगे। उनके भगाये हुए बहुत-से राक्षस धराशायी हो गये॥ २०—२२॥

सहस्रों राक्षसोंका वध करके भगवान् मधुसूदनने अपने शङ्ख पाञ्चजन्यको उसी तरह गम्भीर ध्वनिसे पूर्ण किया, जैसे देवराज इन्द्र मेघको जलसे भर देते हैं॥

भगवान् नारायणके बाणोंसे भयभीत और शङ्खनादसे व्याकुल हुई राक्षस-सेना लङ्काकी ओर भाग चली॥ २४॥

नारायणके सायकोंसे आहत हुई राक्षससेना जब भागने लगी, तब सुमालीने रणभूमिमें बाणोंकी वर्षा करके उन श्रीहरिको आगे बढ़नेसे रोका॥ २५॥

जैसे कुहरा सूर्यदेवको ढक लेता है, उसी तरह सुमालीने बाणोंसे भगवान् विष्णुको आच्छादित कर दिया। यह देख शक्तिशाली राक्षसोंने पुनः धैर्य धारण किया॥ २६॥

उस बलाभिमानी निशाचरने बड़े जोरसे गर्जना करके राक्षसोंमें नूतन जीवनका संचार करते हुए-से रोषपूर्वक आक्रमण किया॥ २७॥

जैसे हाथी सूँड़को उठाकर हिलाता हो, उसी तरह लटकते हुए आभूषणसे युक्त हाथको ऊपर उठाकर हिलाता हुआ वह राक्षस विद्युत्सहित सजल जलधरके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा॥ २८॥

तब भगवान्ने अपने बाणोंद्वारा गर्जते हुए सुमालीके सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंसे मण्डित मस्तक काट डाला। इससे उस राक्षसके घोड़े बेलगाम होकर चारों ओर चक्कर काटने लगे॥ २९॥

उन घोड़ोंके चक्कर काटनेसे उनके साथ ही राक्षसराज सुमाली भी चक्कर काटने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे अजितेन्द्रिय मनुष्य विषयोंमें भटकनेवाली इन्द्रियोंके साथ-साथ स्वयं भी भटकता फिरता है॥ ३०॥

जब घोड़े रणभूमिमें सुमालीके रथको इधर-उधर लेकर भागने लगे, तब माली नामक राक्षसने युद्धके लिये उद्यत हो धनुष लेकर गरुड़की ओर धावा किया। राक्षसोंपर टूटते हुए महाबाहु विष्णुपर आक्रमण किया॥ ३१ $\frac{1}{2}$ ॥

मालीके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें उसी तरह घुसने लगे, जैसे पक्षी क्रौञ्चपर्वतके छिद्रमें प्रवेश करते हैं॥ ३२ $\frac{1}{2}$ ॥

जैसे जितेन्द्रिय पुरुष मानसिक व्यथाओंसे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार रणभूमिमें भगवान् विष्णु मालीके

छोड़े हुए सहस्रों बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी क्षुब्ध नहीं हुए॥ ३३ १/२ ॥

तदनन्तर खड्ग और गदा धारण करनेवाले भूतभावन भगवान् विष्णुने अपने धनुषकी टङ्कार करके मालीके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ३४ १/२ ॥

वज्र और बिजलीके समान प्रकाशित होनेवाले वे बाण मालीके शरीरमें घुसकर उसका रक्त पीने लगे, मानो सर्प अमृतरसका पान कर रहे हों॥ ३५ १/२ ॥

अन्तमें मालीको पीठ दिखानेके लिये विवश करके शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उस राक्षसके मुकुट, ध्वज और धनुषको काटकर घोड़ोंको भी मार गिराया॥ ३६ १/२ ॥

रथहीन हो जानेपर राक्षसप्रवर माली गदा हाथमें लेकर कूद पड़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरसे छलाँग मारकर नीचे आ गया हो॥ ३७ १/२ ॥

जैसे यमराजने भगवान् शिवपर गदाका और इन्द्रने पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो, उसी तरह मालीने पक्षिराज गरुड़के ललाटमें अपनी गदाद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥

मालीकी गदासे अत्यन्त आहत हुए गरुड़ वेदनासे व्याकुल हो उठे। उन्होंने स्वयं युद्धसे विमुख होकर भगवान् विष्णुको भी विमुख-सा कर दिया॥ ३९ १/२ ॥

मालीने गरुड़के साथ ही जब भगवान् विष्णुको भी युद्धसे विमुख-सा कर दिया, तब वहाँ जोर-जोरसे गर्जते हुए राक्षसोंका महान् शब्द गूँज उठा॥ ४० १/२ ॥

गर्जते हुए राक्षसोंका वह सिंहनाद सुनकर इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो पक्षिराजकी पीठपर तिरछे होकर बैठ गये। (इससे वह राक्षस उन्हें दीखने लगा) उस समय पराङ्मुख होनेपर भी श्रीहरिने मालीके वधकी इच्छासे पीछेकी ओर मुड़कर अपना सुदर्शनचक्र चलाया॥ ४१-४२ ॥

सूर्यमण्डलके समान उद्दीप्त होनेवाले कालचक्र-सदृश उस चक्रने अपनी प्रभासे आकाशको उद्भासित करते हुए वहाँ मालीके मस्तकको काट गिराया॥ ४३ ॥

चक्रसे कटा हुआ राक्षसराज मालीका वह भयंकर मस्तक पूर्वकालमें कटे हुए राहुके सिरकी भाँति रक्तकी धारा बहाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४४ ॥

इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे 'साधु भगवन्! साधु!' ऐसा कहते हुए सारी शक्ति लगाकर जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ ४५ ॥

मालीको मारा गया देख सुमाली और माल्यवान् दोनों राक्षस शोकसे व्याकुल हो सेनासहित लङ्काकी ओर ही भागे॥ ४६ ॥

इतनेहीमें गरुड़की पीड़ा कम हो गयी, वे पुनः सँभलकर लौटे और कुपित हो पूर्ववत् अपने पंखोंकी हवासे राक्षसोंको खदेड़ने लगे॥ ४७ ॥

कितने ही राक्षसोंके मुखकमल चक्रके प्रहारसे कट गये। गदाओंके आघातसे बहुतोंके वक्षःस्थल चूर-चूर हो गये। हलके फालसे कितनोंके गर्दनें उतर गयीं। मूसलोंकी मारसे बहुतोंके मस्तकोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं॥

तलवारका हाथ पड़नेसे कितने ही राक्षस टुकड़े-टुकड़े हो गये। बहुतेरे बाणोंसे पीड़ित हो तुरंत ही आकाशसे समुद्रके जलमें गिर पड़े॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णु भी अपने धनुषसे छूटे हुए श्रेष्ठ बाणों और अशनियोंद्वारा राक्षसोंको विदीर्ण करने लगे। उस समय उन निशाचरोंके खुले हुए केश हवासे उड़ रहे थे और पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि विद्युन्माला-मण्डित महान् मेघके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ५० ॥

राक्षसोंकी वह सारी सेना अत्यन्त उन्मत्त-सी प्रतीत होती थी। बाणोंसे उसके छत्र कट गये थे, अस्त्र-शस्त्र गिर गये थे, सौम्य वेष दूर हो गया था, आँतें बाहर निकल आयी थीं और सबके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे॥ ५१ ॥

जैसे सिंहोंद्वारा पीड़ित हुए हाथियोंके चीत्कार और वेग एक साथ ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार उन पुराणप्रसिद्ध नृसिंहरूपधारी श्रीहरिके द्वारा रौंदे गये उन निशाचररूपी गजराजोंके हाहाकार और वेग साथ-साथ प्रकट हो रहे थे॥ ५२ ॥

भगवान् विष्णुके बाणसमूहोंसे आवृत हो अपने सायकोंका परित्याग करके वे निशाचररूपी काले मेघ उसी प्रकार भागे जा रहे थे, जैसे हवाके उड़ाये हुए वर्षाकालीन मेघ आकाशमें भागते देखे जाते हैं॥ ५३ ॥

चक्रके प्रहारोंसे राक्षसोंके मस्तक कट गये थे, गदाओंकी मारसे उनके शरीर चूर-चूर हो रहे थे तथा तलवारोंके आघातसे उनके दो-दो टुकड़े हो गये थे। इस तरह वे राक्षसराज पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे॥ ५४ ॥

लटकते हुए मणिमय हारों और कुण्डलोंके साथ गिराये जाते हुए नील मेघ-सदृश उन निशाचरोंकी लाशोंसे वह रणभूमि पट गयी थी। वहाँ धराशायी हुए वे राक्षस नीलपर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँका भूभाग इस तरह आच्छादित हो गया था कि कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं दिखायी देती थी॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ सर्ग

माल्यवान्‌का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) पद्मनाभ भगवान् विष्णुने जब भागती हुई राक्षसोंकी सेनाको पीछेकी ओरसे मारना आरम्भ किया, तब माल्यवान् लौट पड़ा, मानो महासागर अपनी तटभूमितक जाकर निवृत्त हो गया हो॥

उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे और मुकुट हिल रहा था। उस निशाचरने पुरुषोत्तम भगवान् पद्मनाभसे इस प्रकार कहा—॥ २॥

'नारायणदेव! जान पड़ता है पुरातन क्षात्रधर्मको बिलकुल नहीं जानते हो, तभी तो साधारण मनुष्यकी भाँति तुम जिनका मन युद्धसे विरत हो गया है तथा जो डरकर भागे जा रहे हैं, ऐसे हम राक्षसोंको भी मार रहे हो॥ ३॥

'सुरेश्वर! जो युद्धसे विमुख हुए सैनिकोंके वधका पाप करता है, वह घातक इस शरीरका त्याग करके परलोकमें जानेपर पुण्यकर्मा पुरुषोंको मिलनेवाले स्वर्गको नहीं पाता है॥ ४॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवता! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धका हौसला है तो मैं खड़ा हूँ। देखता हूँ, तुममें कितना बल है? दिखाओ अपना पराक्रम'॥ ५॥

माल्यवान् पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े हुए राक्षसराज माल्यवान्‌को देखकर देवराज इन्द्रके छोटे भाई महाबली भगवान् विष्णुने उससे कहा—॥ ६॥

'देवताओंको तुमलोगोंसे बड़ा भय उपस्थित हुआ है, मैंने राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा करके उन्हें अभय दान दिया है; अतः इस रूपमें मेरे द्वारा उस प्रतिज्ञाका ही पालन किया जा रहा है॥ ७॥

'मुझे अपने प्राण देकर भी सदा ही देवताओंका प्रिय कार्य करना है; इसलिये तुमलोग भागकर रसातलमें चले जाओ तो भी मैं तुम्हारा वध किये बिना नहीं रहूँगा'॥ ८॥

लाल कमलके समान नेत्रवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अत्यन्त कुपित हुए राक्षसराज माल्यवान्‌ने अपनी शक्तिके द्वारा प्रहार करके भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया॥ ९॥

माल्यवान्‌के हाथसे छूटकर घंटानाद करती हुई वह शक्ति श्रीहरिकी छातीसे जा लगी और मेघके अङ्कमें प्रकाशित होनेवाली बिजलीके समान शोभा पाने लगी॥ १०॥

शक्तिधारी कार्तिकेय जिन्हें प्रिय हैं अथवा जो शक्तिधर स्कन्दके प्रियतम हैं, उन भगवान् कमलनयन विष्णुने उसी शक्तिको अपनी छातीसे खींचकर माल्यवान्‌पर दे मारा॥ ११॥

स्कन्दकी छोड़ी हुई शक्तिके समान गोविन्दके हाथसे निकली हुई वह शक्ति उस राक्षसको लक्ष्य करके चली, मानो अञ्जनगिरिपर कोई बड़ी भारी उल्का गिर रही हो॥ १२॥

हारोंके समूहसे प्रकाशित होनेवाले उस राक्षसराजके विशाल वक्षःस्थलपर वह शक्ति गिरी, मानो किसी पर्वतके शिखरपर वज्रपात हुआ हो॥ १३॥

उससे माल्यवान्‌का कवच कट गया तथा वह गहरी मूर्च्छामें डूब गया; किंतु थोड़ी ही देरमें पुनः सँभलकर माल्यवान् पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़ा हो गया॥

तत्पश्चात् उसने काले लोहेके बने हुए और बहुसंख्यक काँटोंसे जड़े हुए शूलको हाथमें लेकर भगवान्‌की छातीमें गहरा आघात किया॥ १५॥

इसी प्रकार वह युद्धप्रेमी राक्षस भगवान् विष्णुको मुक्केसे मारकर एक धनुष पीछे हट गया॥ १६॥

उस समय आकाशमें राक्षसोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा—वे एक साथ बोल उठे—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'। भगवान् विष्णुको घूँसा मारकर उस राक्षसने गरुड़पर भी प्रहार किया॥ १७॥

यह देख विनतानन्दन गरुड़ कुपित हो उठे और उन्होंने अपने पंखोंकी हवासे उस राक्षसको उसी तरह उड़ा दिया, जैसे प्रबल आँधी सूखे पत्तोंके ढेरको उड़ा देती है॥ १८॥

अपने बड़े भाईको पक्षिराजके पंखोंकी हवासे उड़ा हुआ देख सुमाली अपने सैनिकोंके साथ लङ्काकी ओर चल दिया॥ १९॥

गरुड़के पंखोंकी हवाके बलसे उड़ा हुआ राक्षस माल्यवान् भी लज्जित होकर अपनी सेनासे जा मिला और लङ्काकी ओर चला गया॥ २०॥

कमलनयन श्रीराम! इस प्रकार उन राक्षसोंका भगवान् विष्णुके साथ अनेक बार युद्ध हुआ और प्रत्येक संग्राममें प्रधान-प्रधान नायकोंके मारे जानेपर

उन सबको भागना पड़ा॥ २१॥

वे किसी प्रकार भगवान् विष्णुका सामना नहीं कर सके। सदा ही उनके बलसे पीड़ित होते रहे। अतः समस्त निशाचर लङ्का छोड़कर अपनी स्त्रियोंके साथ पातालमें रहनेके लिये चले गये॥ २२॥

रघुश्रेष्ठ! वे विख्यात पराक्रमी निशाचर सालकटङ्कट-वंशमें विद्यमान राक्षस सुमालीका आश्रय लेकर रहने लगे॥

श्रीराम! आपने पुलस्त्यवंशके जिन-जिन राक्षसोंका विनाश किया है, उनकी अपेक्षा प्राचीन राक्षसोंका पराक्रम अधिक था। सुमाली, माल्यवान् और माली तथा उनके आगे चलनेवाले योद्धा—ये सभी महाभाग निशाचर रावणसे बढ़कर बलवान् थे॥ २४॥

देवताओंके लिये कण्टकरूप उन देवद्रोही राक्षसोंका वध शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् नारायणदेवके सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता॥ २५॥

आप चार भुजाधारी सनातन देव भगवान् नारायण ही हैं। आपको कोई परास्त नहीं कर सकता। आप अविनाशी प्रभु हैं और राक्षसोंका वध करनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २६॥

आप ही इन प्रजाओंके स्रष्टा हैं और शरणागतोंपर दया रखते हैं। जब-जब धर्मकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाले दस्यु पैदा हो जाते हैं, तब-तब उन दस्युओंका वध करनेके लिये आप समय-समयपर अवतार लेते रहते हैं॥ २७॥

नरेश्वर! इस प्रकार मैंने आपको राक्षसोंकी उत्पत्तिका यह पूरा प्रसंग ठीक-ठीक सुना दिया। रघुवंशशिरोमणे! अब आप रावण तथा उसके पुत्रोंके जन्म और अनुपम प्रभावका सारा वर्णन सुनिये॥ २८॥

भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस सुमाली सुदीर्घ कालतक अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ रसातलमें विचरता रहा। इसी बीचमें धनाध्यक्ष कुबेरने लङ्काको अपना निवास-स्थान बनाया॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ सर्ग

रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये गोकर्ण-आश्रममें जाना

कुछ कालके पश्चात् नीले मेघके समान श्याम वर्णवाला राक्षस सुमाली तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे अलंकृत हो अपनी सुन्दरी कन्याको, जो बिना कमलकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, साथ ले रसातलसे निकला और सारे मर्त्यलोकमें विचरने लगा॥ १-२॥

उस समय भूतलपर विचरते हुए उस राक्षसराजने अग्निके समान तेजस्वी तथा देवतुल्य शोभा धारण करनेवाले धनेश्वर कुबेरको देखा, जो पुष्पकविमानद्वारा अपने पिता पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका दर्शन करनेके लिये जा रहे थे। उन्हें देखकर वह अत्यन्त विस्मित हो मर्त्यलोकसे रसातलमें प्रविष्ट हुआ॥ ३-४½॥

सुमाली बड़ा बुद्धिमान् था। वह सोचने लगा, क्या करनेसे हम राक्षसोंका भला होगा? कैसे हमलोग उन्नति कर सकेंगे?॥ ५½॥

ऐसा विचार करके उस राक्षसने अपनी पुत्रीसे, जिसका नाम कैकसी था, कहा—'बेटी! अब तुम्हारे विवाहके योग्य समय आ गया है; क्योंकि इस समय तुम्हारी युवावस्था बीत रही है। तुम कहीं इनकार न कर दो, इसी भयसे श्रेष्ठ वर तुम्हारा वरण नहीं कर रहे हैं॥

'पुत्री! तुम्हें विशिष्ट वरकी प्राप्ति हो, इसके लिये हमलोगोंने बहुत प्रयास किया है; क्योंकि कन्यादानके विषयमें हम धर्मबुद्धि रखनेवाले हैं। तुम तो साक्षात् लक्ष्मीके समान सर्वगुणसम्पन्न हो (अतः तुम्हारा वर भी सर्वथा तुम्हारे योग्य ही होना चाहिये)॥ ८॥

'बेटी! सम्मानकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना दुःखका ही कारण होता है; क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्याका वरण करेगा?॥ ९॥

'माताके, पिताके और जहाँ कन्या दी जाती है, उस पतिके कुलको भी कन्या सदा संशयमें डाले रहती है॥

'अतः बेटी! तुम प्रजापतिके कुलमें उत्पन्न, श्रेष्ठ गुणसम्पन्न, पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवाका स्वयं चलकर पतिके रूपमें वरण करो और उनकी सेवामें रहो॥ ११॥

'पुत्री! ऐसा करनेसे निःसंदेह तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसे ये धनेश्वर कुबेर हैं। तुमने तो देखा ही था; वे कैसे अपने तेजसे सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहे थे?'॥ १२॥

पिताकी यह बात सुनकर उनके गौरवका खयाल करके कैकसी उस स्थानपर गयी, जहाँ मुनिवर विश्रवा तप करते थे। वहाँ जाकर वह एक जगह खड़ी हो गयी॥ १३॥

श्रीराम! इसी बीचमें पुलस्त्यनन्दन ब्राह्मण विश्रवा सायंकालका अग्निहोत्र करने लगे। वे तेजस्वी मुनि उस समय तीन अग्नियोंके साथ स्वयं भी चतुर्थ अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे॥ १४॥

पिताके प्रति गौरवबुद्धि होनेके कारण कैकसीने उस भयंकर वेलाका विचार नहीं किया और निकट जा उनके चरणोंपर दृष्टि लगाये नीचा मुँह किये वह सामने खड़ी हो गयी॥ १५॥

वह भामिनी अपने पैरके अँगूठेसे बारम्बार धरतीपर रेखा खींचने लगी। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली उस सुन्दरीको जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूछा—॥ १६$\frac{1}{2}$॥

'भद्रे! तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो, मुझसे तुम्हारा क्या काम है अथवा किस उद्देश्यसे यहाँ तुम्हारा आना हुआ है? शोभने! ये सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताओ'॥ १७-१८॥

विश्रवाके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! आप अपने ही प्रभावसे मेरे मनोभावको समझ सकते हैं; किंतु ब्रह्मर्षे! मेरे मुखसे इतना अवश्य जान लें कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपकी सेवामें आयी हूँ और मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब बातें आपको स्वतः जान लेनी चाहिये (मुझसे न कहलावें)'॥ १९-२०॥

यह सुनकर मुनिने थोड़ी देरतक ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—'भद्रे! तुम्हारे मनका भाव मालूम हुआ। मतवाले गजराजकी भाँति मन्दगतिसे चलनेवाली सुन्दरी! तुम मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो; परंतु इस दारुण वेलामें मेरे पास आयी हो, इसलिये यह भी सुन लो कि तुम कैसे पुत्रोंको जन्म दोगी। सुश्रोणि! तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाववाले और शरीरसे भी भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ ही प्रेम होगा। तुम क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले राक्षसोंको ही पैदा करोगी'॥ २१—२३$\frac{1}{2}$॥

मुनिका यह वचन सुनकर कैकसी उनके चरणोंपर गिर पड़ी और इस प्रकार बोली—'भगवन्! आप ब्रह्मवादी महात्मा हैं। मैं आपसे ऐसे दुराचारी पुत्रोंको पानेकी अभिलाषा नहीं रखती; अतः आप मुझपर कृपा कीजिये'॥ २४-२५॥

उस राक्षसकन्याके इस प्रकार कहनेपर पूर्णचन्द्रमाके समान मुनिवर विश्रवा रोहिणी-जैसे सुन्दरी कैकसीसे फिर बोले—॥ २६॥

'शुभानने! तुम्हारा जो सबसे छोटा एवं अन्तिम पुत्र होगा, वह मेरे वंशके अनुरूप धर्मात्मा होगा; इसमें संशय नहीं है'॥ २७॥

श्रीराम! मुनिके ऐसा कहनेपर कैकसीने कुछ कालके अनन्तर अत्यन्त भयानक और क्रूर स्वभाववाले एक राक्षसको जन्म दिया, जिसके दस मस्तक, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, ताँबे-जैसे ओठ, बीस भुजाएँ, विशाल मुख और चमकीले केश थे। उसके शरीरका रंग कोयलेके पहाड़-जैसा काला था॥ २८-२९॥

उसके पैदा होते ही मुँहमें अङ्गारोंके कौर लिये गीदड़ियाँ और मांसभक्षी गृध्र आदि पक्षी दायीं ओर मण्डलाकार घूमने लगे॥ ३०॥

इन्द्रदेव रुधिरकी वर्षा करने लगे, मेघ भयंकर स्वरमें गर्जने लगे, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी, पृथ्वीपर उल्कापात होने लगा, धरती काँप उठी, भयानक आँधी चलने लगी तथा जो किसीके द्वारा क्षुब्ध नहीं किया जा सकता, वह सरिताओंका स्वामी समुद्र विक्षुब्ध हो उठा॥ ३१-३२॥

उस समय ब्रह्माजीके समान तेजस्वी पिता विश्रवा मुनिने पुत्रका नामकरण किया—'यह दस ग्रीवाएँ लेकर उत्पन्न हुआ है, इसलिये 'दशग्रीव' नामसे प्रसिद्ध होगा'॥

उसके बाद महाबली कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसके शरीरसे बड़ा शरीर इस जगत्‌में दूसरे किसीका नहीं है॥ ३४॥

इसके बाद विकराल मुखवाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। तदनन्तर धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ, जो कैकसीके अन्तिम पुत्र थे॥ ३५॥

उस महान् सत्त्वशाली पुत्रका जन्म होनेपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और आकाशमें देवोंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस समय अन्तरिक्षमें 'साधु-साधु' की ध्वनि सुनायी देने लगी॥ ३६॥

कुम्भकर्ण और दशग्रीव वे दोनों महाबली राक्षस लोकमें उद्वेग पैदा करनेवाले थे। वे दोनों ही उस विशाल वनमें पालित होने और बढ़ने लगे॥ ३७॥

कुम्भकर्ण बड़ा ही उन्मत्त निकला। वह भोजनसे कभी तृप्त ही नहीं होता था; अतः तीनों लोकोंमें घूम-घूमकर धर्मात्मा महर्षियोंको खाता फिरता था॥ ३८॥

विभीषण बचपनसे ही धर्मात्मा थे। वे सदा धर्ममें स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखते थे॥ ३९॥

कुछ काल बीतनेपर धनके स्वामी वैश्रवण

पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये॥ ४०॥

वे अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवके पास आयी और इस प्रकार बोली—॥ ४१॥

'बेटा! अपने भाई वैश्रवणकी ओर तो देखो। वे कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं? भाई होनेके नाते तुम भी इन्हींके समान हो। परंतु अपनी अवस्था देखो, कैसी है?॥ ४२॥

'अमित पराक्रमी दशग्रीव! मेरे बेटे! तुम भी ऐसा कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवणकी ही भाँति तेज और वैभवसे सम्पन्न हो जाओ'॥ ४३॥

माताकी यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको अनुपम अमर्ष हुआ। उसने तत्काल प्रतिज्ञा की—॥ ४४॥

'माँ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो। मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि अपने पराक्रमसे भाई वैश्रवणके समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा'॥ ४५॥

तदनन्तर उसी क्रोधके आवेशमें भाइयोंसहित दशग्रीवने दुष्कर कर्मकी इच्छा मनमें लेकर सोचा—'मैं तपस्यासे ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा, ऐसा विचारकर उसने मनमें तपस्याका ही निश्चय किया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये वह गोकर्णके पवित्र आश्रमपर गया॥ ४६-४७॥

भाइयोंसहित उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने अनुपम तपस्या आरम्भ की। उस तपस्याद्वारा उसने भगवान् ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय दिलानेवाले वरदान दिये॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ सर्ग

रावण आदिकी तपस्या और वर-प्राप्ति

इतनी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा—'ब्रह्मन्! उन तीनों महाबली भाइयोंने वनमें किस प्रकार और कैसी तपस्या की?'॥ १॥

तब अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! उन तीनों भाइयोंने वहाँ पृथक्-पृथक् धर्मविधियोंका अनुष्ठान किया॥ २॥

'कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्रतिदिन धर्मके मार्गमें स्थित हो गर्मीके दिनोंमें अपने चारों ओर आग जला धूपमें बैठकर पञ्चाग्निका सेवन करने लगा॥ ३॥

'फिर वर्षा-ऋतुमें खुले मैदानमें वीरासनसे बैठकर मेघोंके बरसाये हुए जलसे भीगता रहा और जाड़ेके दिनोंमें प्रतिदिन जलके भीतर रहने लगा॥ ४॥

'इस प्रकार सन्मार्गमें स्थित हो धर्मके लिये प्रयत्नशील हुए उस कुम्भकर्णके दस हजार वर्ष बीत गये॥ ५॥

'विभीषण तो सदासे ही धर्मात्मा थे। वे नित्यधर्म-परायण रहकर शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हुए पाँच हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे॥ ६॥

'उनका नियम समाप्त होनेपर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। उनके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओंने उनकी स्तुति की॥ ७॥

'तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों बाँहें और मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्यायपरायण हो पाँच हजार वर्षोंतक सूर्यदेवकी आराधना की॥ ८॥

'इस प्रकार मनको वशमें रखनेवाले विभीषणके भी दस हजार वर्ष बड़े सुखसे बीते, मानो वे स्वर्गके नन्दनवनमें निवास करते हों॥ ९॥

'दशमुख रावणने दस हजार वर्षोंतक लगातार उपवास किया। प्रत्येक सहस्र वर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक मस्तक काटकर आगमें होम देता था॥ १०॥

'इस तरह एक-एक करके उसके नौ हजार वर्ष बीत गये और नौ मस्तक भी अग्निदेवको भेंट हो गये॥

'जब दसवाँ सहस्र पूरा हुआ और दशग्रीव अपना दसवाँ मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, इसी समय पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे॥ १२॥

'पितामह ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंके साथ वहाँ पहुँचे थे। उन्होंने आते ही कहा—दशग्रीव! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ॥ १३॥

'धर्मज्ञ! तुम्हारे मनमें जिस वरको पानेकी इच्छा हो, उसे शीघ्र माँगो। बोलो, आज मैं तुम्हारी किस अभिलाषाको पूर्ण करूँ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होना चाहिये'॥ १४॥

यह सुनकर दशग्रीवकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गयी। उसने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रणाम किया और हर्ष-गद्गदवाणीमें कहा—॥ १५॥

'भगवन्! प्राणियोंके लिये मृत्युके सिवा और किसीका सदा भय नहीं रहता है; अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ; क्योंकि मृत्युके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है'॥

'उसके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने दशग्रीवसे कहा—'तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता; इसलिये दूसरा कोई वर माँगो'॥ १७॥

'श्रीराम! लोकस्त्रष्टा ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उनके सामने हाथ जोड़कर कहा—॥ १८॥

'सनातन प्रजापते! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंके लिये अवध्य हो जाऊँ॥ १९॥

'देववन्द्य पितामह! अन्य प्राणियोंसे मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। मनुष्य आदि अन्य जीवोंको तो मैं तिनकेके समान समझता हूँ'॥ २०॥

राक्षस दशग्रीवके ऐसा कहनेपर देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माजीने कहा—॥ २१॥

राक्षसप्रवर! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा।' श्रीराम! दशग्रीवसे ऐसा कहकर पितामह फिर बोले—॥ २२॥

'निष्पाप राक्षस! सुनो—मैं प्रसन्न होकर पुनः तुम्हें यह शुभ वर प्रदान करता हूँ—तुमने पहले अग्निमें अपने जिन-जिन मस्तकोंका हवन किया है, वे सब तुम्हारे लिये फिर पूर्ववत् प्रकट हो जायँगे। सौम्य! इसके सिवा एक और भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें यहाँ दे रहा हूँ—तुम अपने मनसे जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जायगा'॥ २३-२४½॥

'पितामह ब्रह्माके इतना कहते ही राक्षस दशग्रीवके वे मस्तक, जो पहले आगमें होम दिये गये थे, फिर नये रूपमें प्रकट हो गये॥ २५½॥

'श्रीराम! दशग्रीवसे पूर्वोक्त बात कहकर लोक-पितामह ब्रह्माजी विभीषणसे बोले—॥ २६½॥

'बेटा विभीषण! तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहनेवाली है, अतः मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मन्! तुम भी अपनी रुचिके अनुसार कोई वर माँगो'॥ २७½॥

'तब किरणमालामण्डित चन्द्रमाकी भाँति सदा समस्त गुणोंसे सम्पन्न धर्मात्मा विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! यदि साक्षात् लोकगुरु आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं कृतार्थ हूँ। मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं रहा। उत्तम व्रतको धारण करनेवाले पितामह! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना ही चाहते हैं तो सुनिये॥

'भगवन्! बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्ममें ही लगी रहे—उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्रका ज्ञान हो जाय॥

'जिस-जिस आश्रमके विषयमें मेरा जो-जो विचार हो, वह धर्मके अनुकूल ही हो और उस-उस धर्मका मैं पालन करूँ; यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है॥ ३१-३२॥

'क्योंकि जो धर्ममें अनुरक्त हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है' यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा पुनः प्रसन्न हो विभीषणसे बोले—॥ ३३॥

'वत्स! तुम धर्ममें स्थित रहनेवाले हो; अतः जो कुछ चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा। शत्रुनाशन! राक्षसयोनिमें उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें नहीं लगती है; इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ॥ ३४½॥

'विभीषणसे ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब सब देवता उनसे हाथ जोड़कर बोले—॥ ३५½॥

'प्रभो! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिये; क्योंकि आप जानते हैं कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस तरह समस्त लोकोंको त्रास देता है॥ ३६½॥

'ब्रह्मन्! इसने नन्दनवनकी सात अप्सराओं, देवराज इन्द्रके दस अनुचरों तथा बहुत-से ऋषियों और मनुष्योंको भी खा लिया है॥ ३७½॥

'पहले वर न पानेपर भी इस राक्षसने जब इस प्रकार प्राणियोंके भक्षणका क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, तब यदि इसे वर प्राप्त हो जाय, उस दशामें तो यह तीनों लोकोंको खा जायगा॥ ३८½॥

'अमिततेजस्वी देव! आप वरके बहाने इसको मोह प्रदान कीजिये। इससे समस्त लोकोंका कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जायगा'॥ ३९½॥

'देवताओंके ऐसा कहनेपर कमलयोनि ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके चिन्तन करते ही देवी सरस्वती पास आ गयीं॥ ४०½॥

उनके पार्श्वभागमें खड़ी हो सरस्वतीने हाथ जोड़कर कहा—'देव! यह मैं आ गयी। मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं कौन-सा कार्य करूँ?'॥ ४१½॥

'तब प्रजापतिने वहाँ आयी हुई सरस्वतीदेवीसे कहा—'वाणि! तुम राक्षसराज कुम्भकर्णकी जिह्वापर विराजमान हो देवताओंके अनुकूल वाणीके रूपमें प्रकट होओ'॥ ४२½॥

'तब 'बहुत अच्छा' कहकर सरस्वती कुम्भकर्णके

मुखमें समा गयीं। इसके बाद प्रजापतिने उस राक्षससे कहा—'महाबाहु कुम्भकर्ण! तुम भी अपने मनके अनुकूल कोई वर माँगो'॥ ४३ $\frac{१}{२}$ ॥

'उनकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बोला—'देवदेव! मैं अनेकानेक वर्षोंतक सोता रहूँ। यही मेरी इच्छा है।' तब 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ चले गये॥ ४४-४५ ॥

'फिर सरस्वतीदेवीने भी उस राक्षसको छोड़ दिया। ब्रह्माजीके साथ देवताओंके आकाशमें चले जानेपर जब सरस्वतीजी उसके ऊपरसे उतर गयीं, तब दुष्टात्मा कुम्भकर्णको चेत हुआ और वह दु:खी होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा॥ ४६-४७ ॥

'अहो! आज मेरे मुँहसे ऐसी बात क्यों निकल गयी। मैं समझता हूँ, ब्रह्माजीके साथ आये हुए देवताओंने ही उस समय मुझे मोहमें डाल दिया था'॥ ४८ ॥

'इस प्रकार वे तीनों तेजस्वी भ्राता वर पाकर श्लेष्मातकवन (लसोड़ेके जंगल)-में गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास

रावण आदि निशाचरोंको वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातलसे निकला॥ १ ॥

साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर—ये उस राक्षसके चार मन्त्री भी रसातलसे ऊपरको उठे। वे सब-के-सब रोषावेषसे भरे हुए थे॥ २ ॥

श्रेष्ठ राक्षसोंसे घिरा हुआ सुमाली अपने सचिवोंके साथ दशग्रीवके पास गया और उसे छातीसे लगाकर इस प्रकार बोला— ॥ ३ ॥

'वत्स! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त किया, जिससे तुम्हें यह चिरकालसे चिन्तित मनोरथ उपलब्ध हो गया॥

'महाबाहो! जिसके कारण हम सब राक्षस लङ्का छोड़कर रसातलमें चले गये थे, भगवान् विष्णुसे प्राप्त होनेवाला हमारा यह महान् भय दूर हो गया॥ ५ ॥

'हम सब लोग बारम्बार भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होनेके कारण अपना घर छोड़ भाग निकले और सब-के-सब एक साथ ही रसातलमें प्रविष्ट हो गये॥

'यह लङ्कानगरी जिसमें तुम्हारे बुद्धिमान् भाई धनाध्यक्ष कुबेर निवास करते हैं, हमलोगोंकी है। पहले इसमें राक्षस ही रहा करते थे॥ ७ ॥

'निष्पाप महाबाहो! यदि साम, दान अथवा बलप्रयोगके द्वारा भी पुन: लङ्काको वापस लिया जा सके तो हमलोगोंका काम बन जाय॥ ८ ॥

'तात! तुम्हीं लङ्काके स्वामी होओगे, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तुमने इस राक्षसवंशका जो रसातलमें डूब गया था, उद्धार किया है॥ ९ ॥

'महाबली वीर! तुम्हीं हम सबके राजा होओगे।' यह सुनकर दशग्रीवने पास खड़े हुए अपने मातामहसे कहा—'नानाजी! धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अत: उनके सम्बन्धमें आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये'॥ १० $\frac{१}{२}$ ॥

उस श्रेष्ठ राक्षसराजके द्वारा शान्तभावसे ही ऐसा कोरा उत्तर पाकर सुमाली समझ गया कि रावण क्या करना चाहता है, इसलिये वह राक्षस चुप हो गया। फिर कुछ कहनेका साहस न कर सका॥ ११ $\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर अपने स्थानपर निवास करते हुए दशग्रीव रावणसे जो सुमालीको पहले पूर्वोक्त उत्तर दे चुका था, निशाचर प्रहस्तने विनयपूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही— ॥ १२-१३ ॥

'महाबाहु दशग्रीव! आपने अपने नानासे जो कुछ कहा है, वैसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि वीरोंमें इस तरह भ्रातृभावका निर्वाह होता नहीं देखा जाता। आप मेरी यह बात सुनिये॥ १४ ॥

'अदिति और दिति दोनों सगी बहनें हैं। वे दोनों ही प्रजापति कश्यपकी परम सुन्दरी पत्नियाँ हैं॥ १५ ॥

'अदितिने देवताओंको जन्म दिया है, जो इस समय त्रिभुवनके स्वामी हैं और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया है। देवता और दैत्य दोनों ही महर्षि कश्यपके औरस पुत्र हैं॥ १६ ॥

'धर्मज्ञ वीर! पहले पर्वत, वन और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी दैत्योंके ही अधिकारमें थी; क्योंकि वे

बड़े प्रभावशाली थे॥ १७॥

'किंतु सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर त्रिलोकीका यह अक्षय राज्य देवताओंके अधिकारमें दे दिया॥ १८॥

'इस तरहका विपरीत आचरण केवल आप ही नहीं करेंगे। देवताओं और असुरोंने भी पहले इस नीतिसे काम लिया है; अतः आप मेरी बात मान लें'॥ १९॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने दो घड़ीतक सोच-विचारकर कहा—'बहुत अच्छा (तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूँगा)'॥ २०॥

तदनन्तर उसी दिन उसी हर्षके साथ पराक्रमी दशग्रीव उन निशाचरोंको साथ ले लङ्काके निकटवर्ती वनमें गया॥ २१॥

उस समय त्रिकूटपर्वतपर जाकर निशाचर दशग्रीव ठहर गया और बातचीत करनेमें कुशल प्रहस्तको उसने दूत बनाकर भेजा॥ २२॥

वह बोला—'प्रहस्त! तुम शीघ्र जाओ और मेरे कथनानुसार धनके स्वामी राक्षसराज कुबेरसे शान्तिपूर्वक यह बात कहो॥ २३॥

'राजन्! यह लङ्कापुरी महामना राक्षसोंकी है, जिसमें आप निवास कर रहे हैं। सौम्य! निष्पाप यक्षराज! यह आपके लिये उचित नहीं है॥ २४॥

'अतुल पराक्रमी धनेश्वर! यदि आप हमें यह लङ्कापुरी लौटा दें तो इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होगी और आपके द्वारा धर्मका पालन हुआ समझा जायगा'॥

तब प्रहस्त कुबेरके द्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीमें गया और उन वित्तपालसे बड़ी उदारतापूर्ण वाणीमें बोला—

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, महाबाहु, महाप्राज्ञ धनेश्वर! आपके भाई दशग्रीवने मुझे आपके पास भेजा है। दशमुख रावण आपसे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह बता रहा हूँ। आप मेरी बात सुनिये॥ २७-२८॥

'विशाललोचन वैश्रवण! यह रमणीय लङ्कापुरी पहले भयानक पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसोंके अधिकारमें रही है। उन्होंने बहुत समयतक इसका उपभोग किया है। अतः वे दशग्रीव इस समय यह सूचित कर रहे हैं कि 'यह लङ्का जिनकी वस्तु है, उन्हें लौटा दी जाय।' तात! शान्तिपूर्वक याचना करनेवाले दशग्रीवको आप यह पुरी लौटा दें'॥ २९-३०॥

प्रहस्तके मुखसे यह बात सुनकर वाणीका मर्म समझनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् वैश्रवणने प्रहस्तको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१॥

'राक्षस! यह लङ्का पहले निशाचरोंसे सूनी थी। उस समय पिताजीने मुझे इसमें रहनेकी आज्ञा दी और मैंने इसमें दान, मान आदि गुणोंद्वारा प्रजाजनोंको बसाया॥

'दूत! तुम जाकर दशग्रीवसे कहो—महाबाहो! यह पुरी तथा यह निष्कण्टक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो॥ ३३॥

'मेरा राज्य तथा सारा धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है' ऐसा कहकर धनाध्यक्ष कुबेर अपने पिता विश्रवा मुनिके पास चले गये॥ ३४॥

वहाँ पिताको प्रणाम करके उन्होंने रावणकी जो इच्छा थी, उसे इस प्रकार बताया—'तात! आज दशग्रीवने मेरे पास दूत भेजा और कहलाया है कि इस लङ्का नगरीमें पहले राक्षस रहा करते थे, अतः इसे राक्षसोंको लौटा दीजिये। सुव्रत! अब मुझे इस विषयमें क्या करना चाहिये, बतानेकी कृपा करें'॥ ३५-३६॥

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्मर्षि मुनिवर विश्रवा हाथ जोड़कर खड़े हुए धनद कुबेरसे बोले—'बेटा! मेरी बात सुनो॥ ३७॥

महाबाहु दशग्रीवने मेरे निकट भी यह बात कही थी। इसके लिये मैंने उस दुर्बुद्धिको बहुत फटकारा, डाँट बतायी और बारम्बार क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! ऐसा करनेसे तेरा पतन हो जायगा' किंतु इसका कुछ फल नहीं हुआ॥ ३८½॥

'बेटा! अब तुम्हीं मेरे धर्मानुकूल एवं कल्याणकारी वचनको ध्यान देकर सुनो। रावणकी बुद्धि बहुत ही खोटी है। वह वर पाकर मदमत्त हो उठा है—विवेक खो बैठा है। मेरे शापके कारण भी उसकी प्रकृति क्रूर हो गयी है॥ ३९-४०॥

'इसलिये महाबाहो! अब तुम अनुचरोंसहित लङ्का छोड़कर कैलास पर्वतपर चले जाओ और अपने रहनेके लिये वहीं दूसरा नगर बसाओ॥ ४१॥

'वहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ रमणीय मन्दाकिनी नदी बहती है, जिसका जल सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्णमय कमलों, कुमुदों, उत्पलों और दूसरे-दूसरे सुगन्धित कुसुमोंसे आच्छादित है॥ ४२½॥

'उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग और किन्नर आदि दिव्य प्राणी, जिन्हें स्वभावसे ही घूमना-फिरना अधिक प्रिय है, सदा रहते हुए निरन्तर आनन्दका अनुभव करते हैं। धनद! इस राक्षसके

साथ तुम्हारा वैर करना उचित नहीं है। तुम तो जानते ही हो कि इसने ब्रह्माजीसे कैसा उत्कृष्ट वर प्राप्त किया है'॥ ४३—४५॥

मुनिके ऐसा कहनेपर कुबेरने पिताका मान रखते हुए उनकी बात मान ली और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, वाहन तथा धन साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासको चले गये॥

तदनन्तर प्रहस्त प्रसन्न होकर मन्त्री और भाइयोंके साथ बैठे हुए महामना दशग्रीवके पास जाकर बोला—॥

'लङ्का नगरी खाली हो गयी। कुबेर उसे छोड़कर चले गये। अब आप हमलोगोंके साथ उसमें प्रवेश करके अपने धर्मका पालन कीजिये'॥ ४८॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर महाबली दशग्रीवने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयोंसहित कुबेरद्वारा त्यागी हुई लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। उस नगरीमें सुन्दर विभागपूर्वक बड़ी-बड़ी सड़कें बनी थीं। जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गके सिंहासनपर आरूढ़ हुए थे, उसी प्रकार देवद्रोही रावणने लङ्कामें पदार्पण किया॥ ४९-५०॥

उस समय निशाचरोंने दशमुख रावणका राज्याभिषेक किया। फिर रावणने उस पुरीको बसाया। देखते-देखते समूची लङ्कापुरी नील मेघके समान वर्णवाले राक्षसोंसे पूर्णतः भर गयी॥ ५१॥

धनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर देकर चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिवाले कैलास पर्वतपर शोभाशाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूषित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे ही जैसे देवराज इन्द्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ सर्ग

शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म

(अगस्त्यजी कहते हैं—श्रीराम!) अपना अभिषेक हो जानेपर जब राक्षसराज रावण भाइयोंसहित लङ्कापुरीमें रहने लगा, तब उसे अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखाके ब्याहकी चिन्ता हुई॥ १॥

उस राक्षसने दानवराज विद्युज्जिह्वको, जो कालकाका पुत्र था, अपनी बहिन शूर्पणखा ब्याह दी॥ २॥

श्रीराम! बहिनका ब्याह करके राक्षस रावण एक दिन स्वयं शिकार खेलनेके लिये वनमें घूम रहा था। वहाँ उसने दितिके पुत्र मयको देखा। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। उसे देखकर निशाचर दशग्रीवने पूछा—'आप कौन हैं, जो मनुष्यों और पशुओंसे रहित इस सूने वनमें अकेले घूम रहे हैं? इस मृगनयनी कन्याके साथ आप यहाँ किस उद्देश्यसे निवास करते हैं?'॥ ३-४½॥

श्रीराम! इस प्रकार पूछनेवाले उस निशाचरसे मय बोला—'सुनो, मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हें यथार्थरूपसे बता रहा हूँ॥ ५½॥

'तात! तुमने पहले कभी सुना होगा, स्वर्गमें हेमा नामसे प्रसिद्ध एक अप्सरा रहती है। उसे देवताओंने उसी प्रकार मुझे अर्पित कर दिया था, जैसे पुलोम दानवकी कन्या शची देवराज इन्द्रको दी गयी थीं। मैं उसीमें आसक्त होकर एक सहस्र वर्षोंतक उसके साथ रहा हूँ। एक दिन वह देवताओंके कार्यसे स्वर्गलोकको चली गयी, तबसे चौदह वर्ष बीत गये। मैंने उस हेमाके लिये मायासे एक नगरका निर्माण किया था, जो सम्पूर्णतः सोनेका बना है। हीरे और नीलमके संयोगसे वह विचित्र शोभा धारण करता है। उसीमें मैं अबतक उसके वियोगसे अत्यन्त दुःखी एवं दीन होकर रहता था॥ ६—९॥

'उसी नगरसे इस कन्याको साथ लेकर मैं वनमें आया हूँ। राजन्! यह मेरी पुत्री है, जो हेमाके गर्भमें ही पली है और उससे उत्पन्न होकर मेरे द्वारा पालित हो बड़ी हुई है॥ १०॥

'इसके साथ मैं इसके योग्य पतिकी खोज करनेके लिये आया हूँ। मानकी अभिलाषा रखनेवाले प्रायः सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना कष्टकारक होता है। (क्योंकि इसके लिये कन्याके पिताको दूसरोंके सामने झुकना पड़ता है।) कन्या सदा दो कुलोंको संशयमें डाले रहती है॥ ११½॥

'तात! मेरी इस भार्या हेमाके गर्भसे दो पुत्र भी हुए हैं, जिनमें प्रथम पुत्रका नाम मायावी और दूसरेका दुन्दुभि है॥ १२½॥

तात! तुमने पूछा था, इसलिये मैंने इस तरह अपनी सारी बातें तुम्हें यथार्थरूपसे बता दीं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो? यह मुझे किस तरह ज्ञात हो सकेगा?'॥ १३½॥

मयासुरके इस प्रकार कहनेपर राक्षस रावण विनीतभावसे यों बोला—'मैं पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाका बेटा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। मैं जिन विश्रवा मुनिसे उत्पन्न हुआ हूँ, वे ब्रह्माजीसे तीसरी पीढ़ीमें पैदा हुए हैं'॥ १४-१५॥

श्रीराम! राक्षसराजके ऐसा कहनेपर दानव मय महर्षि विश्रवाके उस पुत्रका परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके साथ वहाँ उसने अपनी पुत्रीका विवाह कर देनेकी इच्छा की॥ १६½॥

इसके बाद दैत्यराज मय अपनी बेटीका हाथ रावणके हाथमें देकर हँसता हुआ उस राक्षसराजसे इस प्रकार बोला—॥ १७½॥

'राजन्! यह मेरी बेटी है, जिसे हेमा अप्सराने अपने गर्भमें धारण किया था। इसका नाम मन्दोदरी है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करो'॥ १८½॥

श्रीराम! तब दशग्रीवने 'बहुत अच्छा' कहकर मयासुरकी बात मान ली। फिर वहाँ उसने अग्निको प्रज्वलित करके मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया॥ १९½॥

रघुनन्दन! यद्यपि तपोधन विश्रवासे रावणको जो क्रूर-प्रकृति होनेका शाप मिला था, उसे मयासुर जानता था; तथापि रावणको ब्रह्माजीके कुलका बालक समझकर उसने उसको अपनी कन्या दे दी॥ २०½॥

साथ ही उत्कृष्ट तपस्यासे प्राप्त हुई एक परम अद्भुत अमोघ शक्ति भी प्रदान की, जिसके द्वारा रावणने लक्ष्मणको घायल किया था॥ २१½॥

इस प्रकार दारपरिग्रह (विवाह) करके प्रभावशाली लङ्केश्वर रावण लङ्कापुरीमें गया और अपने दोनों भाइयोंके लिये भी दो भार्याएँ उनका विवाह कराकर ले आया॥ २२½॥

विरोचनकुमार बलिकी दौहित्रीको, जिसका नाम वज्रज्वाला था, रावणने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया॥ २३½॥

गन्धर्वराज महात्मा शैलूषकी कन्या सरमाको, जो धर्मके तत्त्वको जाननेवाली थी, विभीषणने अपनी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया॥ २४½॥

वह मानसरोवरके तटपर उत्पन्न हुई थी। जब उसका जन्म हुआ, उस समय वर्षा-ऋतुका आगमन होनेसे मान-सरोवर बढ़ने लगा। तब उस कन्याकी माताने पुत्रीके स्नेहसे करुणक्रन्दन करते हुए उस सरोवरसे कहा—'**सरो मा वर्धयस्व**' (हे सरोवर! तुम अपने जलको बढ़ने न दो)। उसने घबराहटमें '**सरः मा**' ऐसा कहा था; इसलिये उस कन्याका नाम सरमा हो गया॥ २५-२६½॥

इस प्रकार वे तीनों राक्षस विवाहित होकर अपनी-अपनी स्त्रीको साथ ले नन्दनवनमें विहार करनेवाले गन्धर्वोंके समान लङ्कामें सुखपूर्वक रमण करने लगे॥

तदनन्तर कुछ कालके बाद मन्दोदरीने अपने पुत्र मेघनादको जन्म दिया, जिसे आपलोग इन्द्रजित्के नामसे पुकारते थे॥ २८½॥

पूर्वकालमें उस रावणपुत्रने पैदा होते ही रोते-रोते मेघके समान गम्भीर नाद किया था॥ २९½॥

रघुनन्दन! उस मेघतुल्य नादसे सारी लङ्का जडवत् स्तब्ध रह गयी थी; इसलिये पिता रावणने स्वयं ही उसका नाम मेघनाद रखा॥ ३०½॥

श्रीराम! उस समय वह रावणकुमार रावणके सुन्दर अन्तःपुरमें माता-पिताको महान् हर्ष प्रदान करता हुआ श्रेष्ठ नारियोंसे सुरक्षित हो काष्ठसे आच्छादित हुई अग्निके समान बढ़ने लगा॥ ३१-३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

रावणद्वारा बनवाये गये शयनागारमें कुम्भकर्णका सोना, रावणका अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतको मार डालना

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर लोकेश्वर ब्रह्माजीकी भेजी हुई निद्रा जँभाई आदिके रूपमें मूर्तिमती हो कुम्भकर्णके भीतर तीव्र वेगसे प्रकट हुई॥ १॥

तब कुम्भकर्णने पास ही बैठे हुए अपने भाई रावणसे कहा—'राजन्! मुझे नींद सता रही है; अतः मेरे लिये शयन करनेके योग्य घर बनवा दें'॥ २॥

यह सुनकर राक्षसराजने विश्वकर्माके समान सुयोग्य शिल्पियोंको घर बनानेके लिये आज्ञा दे दी। उन शिल्पियोंने दो योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा चिकना घर बनाया, जो देखने ही योग्य था। उसमें किसी प्रकारकी बाधाका अनुभव नहीं होता था। उसमें सर्वत्र स्फटिकमणि एवं सुवर्णके बने हुए खम्भे लगे थे, जो उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ३-४॥

उसमें नीलमकी सीढ़ियाँ बनी थीं। सब ओर घुँघुरूदार झालरें लगायी गयी थीं। उसका सदर फाटक हाथी-दाँतका बना हुआ था और हीरे तथा स्फटिक-मणिकी वेदी एवं चबूतरे शोभा दे रहे थे॥ ५॥

वह भवन सब प्रकारसे सुखद एवं मनोहर था। मेरुकी पुण्यमयी गुफाके समान सदा सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला था। राक्षसराज रावणने कुम्भकर्णके लिये ऐसा सुन्दर एवं सुविधाजनक शयनागार बनवाया॥ ६॥

महाबली कुम्भकर्ण उस घरमें जाकर निद्राके वशीभूत हो कई हजार वर्षोंतक सोता रहा। जाग नहीं पाता था॥ ७॥

जब कुम्भकर्ण निद्रासे अभिभूत होकर सो गया, तब दशमुख रावण उच्छृङ्खल हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वोंके समूहोंको मारने तथा पीड़ा देने लगा॥ ८॥

देवताओंके नन्दनवन आदि जो विचित्र उद्यान थे, उनमें जाकर दशानन अत्यन्त कुपित हो उन सबको उजाड़ देता था॥ ९॥

वह राक्षस नदीमें हाथीकी भाँति क्रीडा करता हुआ उसकी धाराओंको छिन्न-भिन्न कर देता था। वृक्षोंको वायुकी भाँति झकझोरता हुआ उखाड़ फेंकता था और पर्वतोंको इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रकी भाँति तोड़-फोड़ डालता था॥ १०॥

दशग्रीवके इस निरंकुश बर्तावका समाचार पाकर धनके स्वामी धर्मज्ञ कुबेरने अपने कुलके अनुरूप आचार-व्यवहारका विचार करके उत्तम भ्रातृप्रेमका परिचय देनेके लिये लङ्कामें एक दूत भेजा। उनका उद्देश्य यह था कि मैं रावणको उसके हितकी बात बताकर राहपर लाऊँ॥ ११-१२॥

वह दूत लङ्कापुरीमें जाकर पहले विभीषणसे मिला। विभीषणने धर्मके अनुसार उसका सत्कार किया और लङ्कामें आनेका कारण पूछा॥ १३॥

फिर बन्धु-बान्धवोंका कुशल-समाचार पूछकर विभीषणने उस दूतको ले जाकर राजसभामें बैठे हुए रावणसे मिलाया॥ १४॥

राजा रावण सभामें अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था, उसे देखकर दूतने 'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर वाणीद्वारा उसका सत्कार किया और फिर वह कुछ देरतक चुपचाप खड़ा रहा॥ १५॥

तत्पश्चात् उत्तम बिछौनेसे सुशोभित एक श्रेष्ठ पलङ्गपर बैठे हुए दशग्रीवसे उस दूतने इस प्रकार कहा—॥ १६॥

'वीर महाराज! आपके भाई धनाध्यक्ष कुबेरने आपके पास जो संदेश भेजा है, वह माता-पिता दोनोंके कुल तथा सदाचारके अनुरूप है, मैं उसे पूर्णरूपसे आपको बता रहा हूँ; सुनिये—॥ १७॥

'दशग्रीव! तुमने अबतक जो कुछ कुकृत्य किया है, इतना ही बहुत है। अब तो तुम्हें भलीभाँति सदाचारका संग्रह करना चाहिये। यदि हो सके तो धर्मके मार्गपर स्थित रहो; यही तुम्हारे लिये अच्छा होगा॥ १८॥

'तुमने नन्दनवनको उजाड़ दिया—यह मैंने अपनी आँखों देखा है। तुम्हारे द्वारा बहुत-से ऋषियोंका वध हुआ है, यह भी मेरे सुननेमें आया है। राजन्! (इससे तंग आकर देवता तुमसे बदला लेना चाहते हैं) मैंने सुना है कि तुम्हारे विरुद्ध देवताओंका उद्योग आरम्भ हो गया है॥ १९॥

'राक्षसराज! तुमने कई बार मेरा भी तिरस्कार किया है; तथापि यदि बालक अपराध कर दे तो भी अपने बन्धु-बान्धवोंको तो उसकी रक्षा ही करनी चाहिये (इसीलिये तुम्हें हितकारक सलाह दे रहा हूँ)॥ २०॥

'मैं शौच-संतोषादि नियमोंके पालन और इन्द्रिय-संयमपूर्वक 'रौद्र-व्रत'का आश्रय ले धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये हिमालयके एक शिखरपर गया था॥ २१॥

'वहाँ मुझे उमासहित भगवान् महादेवजीका दर्शन हुआ। महाराज! उस समय मैंने केवल यह जाननेके लिये कि देखूँ ये कौन हैं? दैववश देवी पार्वतीपर अपनी बायीं दृष्टि डाली थी। निश्चय ही मैंने दूसरे किसी हेतुसे (विकारयुक्त भावनासे) उनकी ओर नहीं देखा था। उस वेलामें देवी रुद्राणी अनुपम रूप धारण करके वहाँ खड़ी थीं॥ २२-२३॥

'देवीके दिव्य प्रभावसे उस समय मेरी बायीं आँख जल गयी और दूसरी (दायीं आँख) भी धूलसे भरी हुई-सी पिङ्गल वर्णकी हो गयी॥ २४॥

'तदनन्तर मैंने पर्वतके दूसरे विस्तृत तटपर जाकर आठ सौ वर्षोंतक मौनभावसे उस महान् व्रतको धारण किया॥ २५॥

'उस नियमके समाप्त होनेपर भगवान् महेश्वरदेवने मुझे दर्शन दिया और प्रसन्न मनसे कहा—॥ २६॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मज्ञ धनेश्वर! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। एक तो मैंने इस व्रतका आचरण किया है और दूसरे तुमने॥ २७॥

'तीसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो ऐसे कठोर व्रतका पालन कर सके। इस अत्यन्त दुष्कर व्रतको

पूर्वकालमें मैंने ही प्रकट किया था॥ २८॥

"अतः सौम्य धनेश्वर! अब तुम मेरे साथ मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करो, यह सम्बन्ध तुम्हें पसंद आना चाहिये। अनघ! तुमने अपने तपसे मुझे जीत लिया है; अतः मेरा मित्र बनकर रहो॥ २९॥

'देवी पार्वतीके रूपपर दृष्टिपात करनेसे देवीके प्रभावसे जो तुम्हारा बायाँ नेत्र जल गया और दूसरा नेत्र भी पिङ्गलवर्णका हो गया, इससे सदा स्थिर रहनेवाला तुम्हारा 'एकाक्षपिङ्गली' यह नाम चिरस्थायी होगा।' इस प्रकार भगवान् शङ्करके साथ मैत्री स्थापित करके उनकी आज्ञा लेकर जब मैं घर लौटा हूँ, तब मैंने तुम्हारे पापपूर्ण निश्चयकी बात सुनी है॥ ३०-३१½ ॥

'अतः अब तुम अपने कुलमें कलंक लगानेवाले पापकर्मके संसर्गसे दूर हट जाओ; क्योंकि ऋषि-समुदायसहित देवता तुम्हारे वधका उपाय सोच रहे हैं'॥

दूतके मुँहसे ऐसी बात सुनकर दशग्रीव रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वह हाथ मलता हुआ दाँत पीसकर बोला— ॥ ३३½ ॥

'दूत! तू जो कुछ कह रहा है, उसका अभिप्राय मैंने समझ लिया। अब तो न तू जीवित रह सकता है और न वह भाई ही, जिसने तुझे यहाँ भेजा है॥ ३४½ ॥

'धनरक्षक कुबेरने जो संदेश दिया है, वह मेरे लिये हितकर नहीं है। वह मूढ़ मुझे (डरानेके लिये) महादेवजीके साथ अपनी मित्रताकी कथा सुना रहा है?॥ ३५½ ॥

'दूत! तूने जो बात यहाँ कही है, यह मेरे लिये सहन करनेयोग्य नहीं है। कुबेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका वध करना उचित नहीं है—ऐसा समझकर ही मैंने आजतक उन्हें क्षमा किया है॥ ३६-३७॥

'किंतु इस समय उनकी बात सुनकर मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके तीनों लोकोंको जीतूँगा॥ ३८॥

'इसी मुहूर्तमें मैं एकके ही अपराधसे उन चारों लोकपालोंको यमलोक पहुँचाऊँगा'॥ ३९॥

ऐसा कहकर लङ्केश रावणने तलवारसे उस दूतके दो टुकड़े कर डाले और उसकी लाश उसने दुरात्मा राक्षसोंको खानेके लिये दे दी॥ ४०॥

तत्पश्चात् रावण स्वस्तिवाचन करके रथपर चढ़ा और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छासे उस स्थानपर गया, जहाँ धनपति कुबेर रहते थे॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

मन्त्रियोंसहित रावणका यक्षोंपर आक्रमण और उनकी पराजय

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर बलके अभिमानसे सदा उन्मत्त रहनेवाला रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण तथा सदा ही युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर धूम्राक्ष—इन छः मन्त्रियोंके साथ लङ्कासे प्रस्थित हुआ। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो अपने क्रोधसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालेगा॥

बहुत-से नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनोंको लाँघकर वह दो ही घड़ीमें कैलास पर्वतपर जा पहुँचा॥

यक्षोंने जब सुना कि दुरात्मा राक्षसराज रावणने युद्धके लिये उत्साहित होकर अपने मन्त्रियोंके साथ कैलास पर्वतपर डेरा डाला है, तब वे उस राक्षसके सामने खड़े न हो सके। यह राजाका भाई है, ऐसा जानकर यक्षलोग उस स्थानपर गये, जहाँ धनके स्वामी कुबेर विद्यमान थे॥

वहाँ जाकर उन्होंने उनके भाईका सारा अभिप्राय कह सुनाया। तब कुबेरने युद्धके लिये यक्षोंको आज्ञा दे दी; फिर तो यक्ष बड़े हर्षसे भरकर चल दिये॥ ६॥

उस समय यक्षराजकी सेनाएँ समुद्रके समान क्षुब्ध हो उठीं। उनके वेगसे वह पर्वत हिलता-सा जान पड़ा॥

तदनन्तर यक्षों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। वहाँ रावणके वे सचिव व्यथित हो उठे॥ ८॥

अपनी सेनाकी वैसी दुर्दशा देख निशाचर दशग्रीव बार-बार हर्षवर्धक सिंहनाद करके रोषपूर्वक यक्षोंकी ओर दौड़ा॥ ९॥

राक्षसराजके जो सचिव थे, वे बड़े भयंकर पराक्रमी थे। उनमेंसे एक-एक सचिव हजार-हजार यक्षोंसे युद्ध करने लगा॥ १०॥

उस समय यक्ष जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान गदाओं, मूसलों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंकी वर्षा करने लगे। उनकी चोट सहता हुआ दशग्रीव शत्रुसेनामें घुसा। वहाँ उसपर इतनी मार पड़ने लगी कि उसे दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिली। यक्षोंने उसका वेग रोक दिया॥ ११-१२॥

यक्षोंके शस्त्रोंसे आहत होनेपर भी उसने अपने मनमें दुःख नहीं माना; ठीक उसी तरह, जैसे मेघोंद्वारा बरसायी हुई सैकड़ों जलधाराओंसे अभिषिक्त होनेपर भी पर्वत विचलित नहीं होता है॥ १३॥

उस महाकाय निशाचरने कालदण्डके समान भयंकर गदा उठाकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश किया और उन्हें यमलोक पहुँचाना आरम्भ कर दिया॥ १४॥

वायुसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान रावणने तिनकोंके समान फैली और सूखे ईंधनकी भाँति आकुल हुई यक्षोंकी सेनाको जलाना आरम्भ किया॥ १५॥

जैसे हवा बादलोंको उड़ा देती है, उसी तरह उन महोदर और शुक आदि महामन्त्रियोंने वहाँ यक्षोंका संहार कर डाला। अब वे थोड़ी ही संख्यामें बच रहे॥

कितने ही यक्ष शस्त्रोंके आघातसे अङ्ग-भङ्ग हो जानेके कारण समराङ्गणमें धराशायी हो गये। कितने ही रणभूमिमें कुपित हो अपने तीखे दाँतोंसे ओठ दबाये हुए थे॥ १७॥

कोई थककर एक-दूसरेसे लिपट गये। उनके अस्त्र-शस्त्र गिर गये और वे समराङ्गणमें उसी तरह शिथिल होकर गिरे जैसे जलके वेगसे नदीके किनारे टूट पड़ते हैं॥ १८॥

मर-मरकर स्वर्गमें जाते, जूझते और दौड़ते हुए यक्षोंकी तथा आकाशमें खड़े होकर युद्ध देखनेवाले ऋषिसमूहोंकी संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि आकाशमें उन सबके लिये जगह नहीं अँटती थी॥ १९॥

महाबाहु धनाध्यक्षने उन यक्षोंको भागते देख दूसरे महाबली यक्षराजोंको युद्धके लिये भेजा॥ २०॥

श्रीराम! इसी बीचमें कुबेरका भेजा हुआ संयोधकण्टक नामक यक्ष वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ बहुत-सी सेना और सवारियाँ थीं॥ २१॥

उसने आते ही भगवान् विष्णुकी भाँति चक्रसे रणभूमिमें मारीचपर प्रहार किया। उससे घायल होकर वह राक्षस कैलाससे नीचे पृथ्वीपर उसी तरह गिर पड़ा, जैसे पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गवासी ग्रह वहाँसे भूतलपर गिर पड़ा हो॥ २२॥

दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर निशाचर मारीच विश्राम करके लौटा और उस यक्षके साथ युद्ध करने लगा। तब वह यक्ष भाग खड़ा हुआ॥ २३॥

तदनन्तर रावणने कुबेरपुरीके फाटकमें, जिसके प्रत्येक अङ्गमें सुवर्ण जड़ा हुआ था तथा जो नीलम और चाँदीसे भी विभूषित था, प्रवेश किया। वहाँ द्वारपालोंका पहरा लगता था। वह फाटक ही सीमा थी। उससे आगे दूसरे लोग नहीं जा सकते थे॥ २४॥

महाराज श्रीराम! जब निशाचर दशग्रीव फाटकके भीतर प्रवेश करने लगा, तब सूर्यभानु नामक द्वारपालने उसे रोका॥ २५॥

जब यक्षके रोकनेपर भी वह निशाचर न रुका और भीतर प्रविष्ट हो गया, तब द्वारपालने फाटकमें लगे हुए एक खंभेको उखाड़कर उसे दशग्रीवके ऊपर दे मारा। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी, मानो किसी पर्वतसे गेरूमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो॥ २६-२७॥

पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस खंभेकी चोट खाकर भी वीर दशग्रीवकी कोई क्षति नहीं हुई। वह ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे उस यक्षके द्वारा मारा न जा सका॥ २८॥

तब उसने भी वही खंभ उठाकर उसके द्वारा यक्षपर प्रहार किया, इससे यक्षका शरीर चूर-चूर हो गया। फिर उसकी शकल नहीं दिखायी दी॥ २९॥

उस राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये। कोई नदियोंमें कूद पड़े और कोई भयसे पीड़ित हो गुफाओंमें घुस गये। सबने अपने हथियार त्याग दिये थे। सभी थक गये थे और सबके मुखोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ सर्ग

माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पकविमानका अपहरण

'(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) धनाध्यक्षोंने देखा, हजारों यक्षप्रवर भयभीत होकर भाग रहे हैं; तब उन्होंने माणिभद्र नामक एक महायक्षसे कहा—॥ १॥

'यक्षप्रवर! रावण पापात्मा एवं दुराचारी है, तुम उसे मार डालो और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर यक्षोंको शरण दो—उनकी रक्षा करो'॥ २॥

महाबाहु माणिभद्र अत्यन्त दुर्जय वीर थे। कुबेरकी उक्त आज्ञा पाकर वे चार हजार यक्षोंकी सेना साथ ले

फाटकपर गये और राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ३॥

उस समय यक्षयोद्धा गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुद्गरोंका प्रहार करते हुए राक्षसोंपर टूट पड़े॥ ४॥

वे घोर युद्ध करते हुए बाज पक्षीकी तरह तीव्र गतिसे सब ओर विचरने लगे। कोई कहता 'मुझे युद्धका अवसर दो।' दूसरा बोलता—'मैं यहाँसे पीछे हटना नहीं चाहता।' फिर तीसरा बोल उठता—'मुझे अपना हथियार दो'॥ ५॥

उस तुमुल युद्धको देखकर देवता, गन्धर्व तथा ब्रह्मवादी ऋषि भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये थे॥ ६॥

उस रणभूमिमें प्रहस्तने एक हजार यक्षोंका संहार कर डाला। फिर महोदरने दूसरे एक सहस्र प्रशंसनीय यक्षोंका विनाश किया॥ ७॥

राजन्! उस समय कुपित हुए रणोत्सुक मारीचने पलक मारते-मारते शेष दो हजार यक्षोंको धराशायी कर दिया॥ ८॥

पुरुषसिंह! कहाँ यक्षोंका सरलतापूर्वक युद्ध? और कहाँ राक्षसोंका मायामय संग्राम? वे अपने मायाबलके भरोसे ही यक्षोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए॥ ९॥

उस महासमरमें धूम्राक्षने आकर क्रोधपूर्वक माणिभद्रकी छातीमें मूसलका प्रहार किया; किंतु इससे वे विचलित नहीं हुए॥ १०॥

फिर माणिभद्रने भी गदा घुमाकर उसे राक्षस धूम्राक्षके मस्तकपर दे मारा। उसकी चोटसे व्याकुल हो धूम्राक्ष धरतीपर गिर पड़ा॥ ११॥

धूम्राक्षको गदाकी चोटसे घायल एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख दशमुख रावणने रणभूमिमें माणिभद्रपर धावा किया॥ १२॥

'दशाननको क्रोधमें भरकर धावा करते देख यक्षप्रवर माणिभद्रने उसके ऊपर तीन शक्तियोंद्वारा प्रहार किया॥ १३॥

चोट खाकर रावणने रणभूमिमें माणिभद्रके मुकुटपर वार किया। उसके उस प्रहारसे उनका मुकुट खिसककर बगलमें आ गया॥ १४॥

तबसे माणिभद्र यक्ष पार्श्वमौलिके नामसे प्रसिद्ध हुए। महामना माणिभद्र यक्ष युद्धसे भाग चले। राजन्! उनके युद्धसे विमुख होते ही उस पर्वतपर राक्षसोंका महान् सिंहनाद सब ओर फैल गया॥ १५॥

इसी समय धनके स्वामी गदाधारी कुबेर दूरसे आते दिखायी दिये। उनके साथ शुक्र और प्रौष्ठपद नामक मन्त्री तथा शङ्ख और पद्म नामक धनके अधिष्ठाता देवता भी थे॥ १६॥

विश्रवा मुनिके शापसे क्रूर प्रकृति हो जानेके कारण जो गुरुजनोंके प्रति प्रणाम आदि व्यवहार भी नहीं कर पाता था—गुरुजनोचित शिष्टाचारसे भी वञ्चित था, उस अपने भाई रावणको युद्धमें उपस्थित देख बुद्धिमान् कुबेरने ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषके योग्य बात कही—॥ १७॥

'दुर्बुद्धि दशग्रीव! मेरे मना करनेपर भी इस समय तुम समझ नहीं रहे हो, किंतु आगे चलकर जब इस कुकर्मका फल पाओगे और नरकमें पड़ोगे, उस समय मेरी बात तुम्हारी समझमें आयेगी॥ १८॥

'जो खोटी बुद्धिवाला पुरुष मोहवश विषको पीकर भी उसे विष नहीं समझता है, उसे उसका परिणाम प्राप्त हो जानेपर अपने किये हुए उस कर्मके फलका ज्ञान होता है॥ १९॥

'तुम्हारे किसी व्यापारसे, वह तुम्हारी मान्यताके अनुसार धर्मयुक्त ही क्यों न हो, देवता प्रसन्न नहीं होते हैं; इसीलिये तुम ऐसे क्रूरभावको प्राप्त हो गये हो, परंतु यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आती है॥ २०॥

'जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है, वह यमराजके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है॥ २१॥

'यह शरीर क्षणभङ्गुर है। इसे पाकर जो तपका उपार्जन नहीं करता, वह मूर्ख मरनेके बाद जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है, पश्चात्ताप करता है॥

'धर्मसे राज, धन और सुखकी प्राप्ति होती है। अधर्मसे केवल दुःख ही भोगना पड़ता है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे, पापको सर्वथा त्याग दे॥

'पापका फल केवल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भोगना पड़ता है; इसलिये जो मूढ़ पाप करेगा, वह मानो स्वयं ही अपना वध कर लेगा॥ २४॥

'किसी भी दुर्बुद्धि पुरुषको (शुभकर्मका अनुष्ठान और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना) स्वेच्छामात्रसे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। वह जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है॥ २५॥

'संसारके पुरुषोंको समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभव, वीरता तथा पुत्र आदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे ही होती है॥ २६॥

'इसी प्रकार अपने दुष्कर्मोंके कारण तुम्हें भी नरकमें जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ऐसी पापासक्त हो रही है। दुराचारियोंसे बात नहीं करना

चाहिये, यही शास्त्रोंका निर्णय है; अत: मैं भी अब तुमसे कोई बात नहीं करूँगा'॥ २७॥

इसी तरहकी बात उन्होंने रावणके मन्त्रियोंसे भी कही। फिर उनपर शस्त्रोंद्वारा प्रहार किया। इससे आहत होकर वे मारीच आदि सब राक्षस युद्धसे मुँह मोड़कर भाग गये॥ २८॥

तदनन्तर महामना यक्षराज कुबेरने अपनी गदासे रावणके मस्तकपर प्रहार किया। उससे आहत होकर भी वह अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ॥ २९॥

श्रीराम! तत्पश्चात् वे दोनों यक्ष और राक्षस—कुबेर तथा रावण दोनों उस महासमरमें एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे; परंतु दोनोंमेंसे कोई भी न तो घबराता था, न थकता ही था॥ ३०॥

उस समय कुबेरने रावणपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, परंतु राक्षसराज रावणने वारुणास्त्रके द्वारा उनके उस अस्त्रको शान्त कर दिया॥ ३१॥

तत्पश्चात् उस राक्षसराजने राक्षसी मायाका आश्रय लिया और कुबेरका विनाश करनेके लिये लाखों रूप धारण कर लिया॥ ३२॥

उस समय दशमुख रावण बाघ, सूअर, मेघ, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, यक्ष और दैत्य सभी रूपोंमें दिखायी देने लगा॥ ३३॥

इस प्रकार वह बहुत-से रूप प्रकट करता था। वे रूप ही दिखायी देते थे, वह स्वयं दृष्टिगोचर नहीं होता था। श्रीराम! तदनन्तर दशमुखने एक बहुत बड़ी गदा हाथमें ली और उसे घुमाकर कुबेरके मस्तकपर दे मारा॥ ३४½॥

इस प्रकार रावणद्वारा आहत हो धनके स्वामी कुबेर रक्तसे नहा उठे और व्याकुल हो जड़से कटे हुए अशोककी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३५½॥

तत्पश्चात् पद्म आदि निधियोंके अधिष्ठाता देवताओंने उन्हें घेरकर उठा लिया और नन्दनवनमें ले जाकर चेत कराया॥ ३६½॥

इस तरह कुबेरको जीतकर राक्षसराज रावण अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी विजयके चिह्नके रूपमें उसने उनका पुष्पकविमान अपने अधिकारमें कर लिया॥ ३७½॥

उस विमानमें सोनेके खम्भे और वैदूर्यमणिके फाटक लगे थे। वह सब ओरसे मोतियोंकी जालीसे ढका हुआ था। उसके भीतर ऐसे-ऐसे वृक्ष लगे थे, जो सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले थे॥ ३८½॥

उसका वेग मनके समान तीव्र था। वह अपने ऊपर बैठे हुए लोगोंकी इच्छाके अनुसार सब जगह जा सकता था तथा चालक जैसा चाहे, वैसा छोटा या बड़ा रूप धारण कर लेता था। उस आकाशचारी विमानमें मणि और सुवर्णकी सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनी थीं॥ ३९½॥

वह देवताओंका ही वाहन था और टूटने-फूटनेवाला नहीं था। सदा देखनेमें सुन्दर और चित्तको प्रसन्न करनेवाला था। उसके भीतर अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक चित्र थे। उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे, जिनसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। ब्रह्मा (विश्वकर्मा) ने उसका निर्माण किया था॥ ४०½॥

वह सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न, मनोहर और परम उत्तम था। न अधिक ठंडा था और न अधिक गरम। सभी ऋतुओंमें आराम पहुँचानेवाला तथा मङ्गलकारी था। अपने पराक्रमसे जीते हुए उस इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राजा रावण अहंकारकी अधिकतासे ऐसा मानने लगा कि मैंने तीनों लोकोंको जीत लिया। इस प्रकार वैश्रवणदेवको पराजित करके वह कैलाससे नीचे उतरा॥ ४१—४३॥

निर्मल किरीट और हारसे विभूषित वह प्रतापी निशाचर अपने तेजसे उस महान् विजयको पाकर उस उत्तम विमानपर आरूढ़ हो यज्ञमण्डपमें प्रज्वलित होनेवाले अग्निदेवकी भाँति शोभा पाने लगा॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

नन्दीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मान-भङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास नामक खड्गकी प्राप्ति

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रघुकुलनन्दन राम! अपने भाई कुबेरको जीतकर राक्षसराज दशग्रीव 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध सरकंडोंके विशाल वनमें गया, जहाँ महासेन कार्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई थी॥ १॥

वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने सुवर्णमयी कान्तिसे युक्त उस विशाल शरवण (सरकंडोंके जंगल)-को देखा, जो

किरण-समूहोंसे व्याप्त होनेके कारण दूसरे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहा था॥ २॥

उसके पास ही कोई पर्वत था, जहाँकी वनस्थली बड़ी रमणीय थी। श्रीराम! जब वह उसपर चढ़ने लगा, तब देखता है कि पुष्पकविमानकी गति रुक गयी॥ ३॥

तब वह राक्षसराज अपने उन मन्त्रियोंके साथ मिलकर विचार करने लगा—'क्या कारण है कि यह पुष्पकविमान रुक गया? यह तो स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला बनाया गया है। फिर आगे क्यों नहीं बढ़ता? कौन-सा ऐसा कारण बन गया, जिससे यह पुष्पकविमान मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चल रहा है? सम्भव है, इस पर्वतके ऊपर कोई रहता हो, उसीका यह कर्म हो सकता है?'॥ ४-५॥

श्रीराम! तब बुद्धिकुशल मारीचने कहा—'राजन्! यह पुष्पकविमान जो आगे नहीं बढ़ रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ कारण अवश्य है। अकारण ही ऐसी घटना घटित हो गयी हो, यह बात नहीं है॥ ६॥

'अथवा यह पुष्पकविमान कुबेरके सिवा दूसरेका वाहन नहीं हो सकता, इसीलिये उनके बिना यह निश्चेष्ट हो गया है'॥ ७॥

उसकी इस बातके बीचमें ही भगवान् शङ्करके पार्षद नन्दीश्वर रावणके पास आ पहुँचे, जो देखनेमें बड़े विकराल थे। उनकी अङ्गकान्ति काले एवं पिङ्गल वर्णकी थी। वे नाटे कदके विकट रूपवाले थे। उनका मस्तक मुण्डित और भुजाएँ छोटी-छोटी थीं। वे बड़े बलवान् थे। नन्दीने निःशङ्क होकर राक्षसराज दशग्रीवसे इस प्रकार कहा—॥ ८-९॥

'दशग्रीव! लौट जाओ। इस पर्वतपर भगवान् शङ्कर क्रीडा करते हैं। यहाँ सुपर्ण, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस सभी प्राणियोंका आना-जाना बंद कर दिया गया है'॥ १०$\frac{१}{२}$॥

नन्दीकी यह बात सुनकर दशग्रीव कुपित हो उठा। उसके कानोंके कुण्डल हिलने लगे। आँखें रोषसे लाल हो गयीं और वह पुष्पकसे उतरकर बोला—'कौन है यह शङ्कर?' ऐसा कहकर वह पर्वतके मूलभागमें आ गया॥ ११-१२॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, भगवान् शङ्करसे थोड़ी ही दूरपर चमचमाता हुआ शूल हाथमें लिये नन्दी दूसरे शिवकी भाँति खड़े हैं॥ १३॥

उनका मुँह वानरके समान था। उन्हें देखकर वह निशाचर उनका तिरस्कार करता हुआ सजल जलधरके समान गम्भीर स्वरमें ठहाका मारकर हँसने लगा॥ १४॥

यह देख शिवके दूसरे स्वरूप भगवान् नन्दी कुपित हो वहाँ पास ही खड़े हुए निशाचर दशमुखसे इस प्रकार बोले—॥ १५॥

'दशानन! तुमने वानररूपमें मुझे देखकर मेरी अवहेलना की है और वज्रपातके समान भयानक अट्टहास किया है; अतः तुम्हारे कुलका विनाश करनेके लिये मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे॥ १६-१७॥

'क्रूर निशाचर! नख और दाँत ही उन वानरोंके अस्त्र होंगे तथा मनके समान उनका तीव्र वेग होगा। वे युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले और अतिशय बलशाली होंगे तथा चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ेंगे॥ १८॥

'वे एकत्र होकर मन्त्री और पुत्रोंसहित तुम्हारे प्रबल अभिमानको और विशालकाय होनेके गर्वको चूर-चूर कर देंगे॥ १९॥

'ओ निशाचर! मैं तुम्हें अभी मार डालनेकी शक्ति रखता हूँ, तथापि तुम्हें मारना नहीं है; क्योंकि अपने कुत्सित कर्मोंद्वारा तुम पहलेसे ही मारे जा चुके हो (अतः मरे हुएको मारनेसे क्या लाभ?)'॥ २०॥

महामना भगवान् नन्दीके इतना कहते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ २१॥

परंतु महाबली दशाननने उस समय नन्दीके उन वचनोंकी कोई परवा नहीं की और उस पर्वतके निकट जाकर कहा—॥ २२॥

'पशुपते! जिसके कारण यात्रा करते समय मेरे पुष्पक-विमानकी गति रुक गयी, तुम्हारे उस पर्वतको, जो यह मेरे सामने खड़ा है, मैं जड़से उखाड़ फेंकता हूँ॥

'किस प्रभावसे शङ्कर प्रतिदिन यहाँ राजाकी भाँति क्रीडा करते हैं? इन्हें इस जाननेयोग्य बातका भी पता नहीं है कि इनके समक्ष भयका स्थान उपस्थित है'॥

श्रीराम! ऐसा कहकर दशग्रीवने पर्वतके निचले भागमें अपनी भुजाएँ लगायीं और उसे शीघ्र उठा लेनेका प्रयत्न किया। वह पर्वत हिलने लगा॥ २५॥

पर्वतके हिलनेसे भगवान् शङ्करके सारे गण काँप उठे। पार्वती देवी भी विचलित हो उठीं और भगवान् शङ्करसे लिपट गयीं॥ २६॥

श्रीराम! तब देवताओंमें श्रेष्ठ पापहारी महादेवने उस पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे खिलवाड़में ही दबा दिया॥ २७॥

फिर तो दशग्रीवकी वे भुजाएँ, जो पर्वतके खंभोंके समान जान पड़ती थीं, उस पहाड़के नीचे दब गयीं। यह देख वहाँ खड़े हुए उस राक्षसके मन्त्री बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ २८॥

उस राक्षसने रोष तथा अपनी बाँहोंकी पीड़ाके कारण सहसा बड़े जोरसे विराव—रोदन अथवा आर्तनाद किया, जिससे तीनों लोकोंके प्राणी काँप उठे॥ २९॥

उसके मन्त्रियोंने समझा, अब प्रलयकाल आ गया और विनाशकारी वज्रपात होने लगा है। उस समय इन्द्र आदि देवता मार्गमें विचलित हो उठे॥ ३०॥

समुद्रोंमें ज्वार आ गया। पर्वत हिलने लगे और यक्ष, विद्याधर तथा सिद्ध एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या हो गया?'॥ ३१॥

तदनन्तर दशग्रीवके मन्त्रियोंने उससे कहा—'महाराज दशानन! अब आप नीलकण्ठ उमावल्लभ महादेवजीको संतुष्ट कीजिये। उनके सिवा दूसरे किसीको हम ऐसा नहीं देखते, जो यहाँ आपको शरण दे सके॥ ३२॥

'आप स्तुतियोंद्वारा उन्हें प्रणाम करके उन्हींकी शरणमें जाइये। भगवान् शङ्कर बड़े दयालु हैं। वे संतुष्ट होकर आपपर कृपा करेंगे'॥ ३३॥

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर दशमुख रावणने भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रों तथा सामवेदोक्त मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन किया। इस प्रकार हाथोंकी पीड़ासे रोते और स्तुति करते हुए उस राक्षसके एक हजार वर्ष बीत गये॥ ३४॥

श्रीराम! तत्पश्चात् उस पर्वतके शिखरपर स्थित हुए भगवान् महादेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने दशग्रीवकी भुजाओंको उस संकटसे मुक्त करके उससे कहा—॥

'दशानन! तुम वीर हो। तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ। तुमने पर्वतसे दब जानेके कारण जो अत्यन्त भयानक राव (आर्तनाद) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों लोकोंके प्राणी रो उठे थे, इसलिये राक्षसराज! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध होओगे॥ ३६-३७॥

'देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकोंको रुलानेवाले तुझ दशग्रीवको रावण कहेंगे॥ ३८॥

'पुलस्त्यनन्दन! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, बेखटके जा सकते हो। राक्षसपते! मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ'॥ ३९॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर लङ्केश्वर बोला—'महादेव! यदि आप प्रसन्न हैं तो वर दीजिये। मैं आपसे वरकी याचना करता हूँ॥ ४०॥

'मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियोंसे अवध्य होनेका वर प्राप्त किया है॥ ४१॥

'देव! मनुष्योंको तो मैं कुछ गिनता ही नहीं। मेरी मान्यताके अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है। त्रिपुरान्तक! मुझे ब्रह्माजीके द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है। ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका जितना अंश बच गया है, वह भी पूरा-का-पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें किसी कारणसे कमी न हो)। ऐसी मेरी इच्छा है। इसे आप पूर्ण कीजिये। साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिये'॥ ४२½॥

रावणके ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने उसे एक अत्यन्त दीप्तिमान् चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो अंश बीत गया था, उसको भी पूर्ण कर दिया॥ ४३-४४॥

उस खड्गको देकर भगवान् शिवने कहा—'तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आयेगा; इसमें संशय नहीं है'॥ ४५॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे नूतन नाम पाकर रावणने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह पुष्पकविमानपर आरूढ़ हुआ॥ ४६॥

श्रीराम! इसके बाद रावण समूची पृथ्वीपर दिग्विजयके लिये भ्रमण करने लगा। उसने इधर-उधर जाकर बहुत-से महापराक्रमी क्षत्रियोंको पीड़ा पहुँचायी॥

कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय जो बड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेके कारण सेना और परिवारसहित नष्ट हो गये॥ ४८॥

दूसरे क्षत्रियोंने, जो बुद्धिमान् माने जाते थे और उस राक्षसको अजेय समझते थे, उस बलाभिमानी निशाचरके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ सर्ग

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूसरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

(अगस्त्यजी कहते हैं—) राजन्! तत्पश्चात् महाबाहु रावण भूतलपर विचरता हुआ हिमालयके वनमें आकर वहाँ सब ओर चक्कर लगाने लगा॥ १॥

वहाँ उसने एक तपस्विनी कन्याको देखा, जो अपने अङ्गोंमें काले रंगका मृगचर्म तथा सिरपर जटा धारण किये हुए थी। वह ऋषिप्रोक्त विधिसे तपस्यामें संलग्न हो देवाङ्गनाके समान उद्दीप्त हो रही थी॥ २॥

उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित उस कन्याको देखकर रावणका चित्त कामजनित मोहके वशीभूत हो गया। उसने अट्टहास करते हुए-से पूछा—॥ ३॥

'भद्रे! तुम अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा बर्ताव कर रही हो? तुम्हारे इस दिव्य रूपके लिये ऐसा आचरण कदापि उचित नहीं है॥ ४॥

'भीरु! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है। यह पुरुषोंके हृदयमें कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है। अतः तुम्हारा तपमें संलग्न होना उचित नहीं है। तुम्हारे लिये हमारे हृदयसे यही निर्णय प्रकट हुआ है॥ ५॥

'भद्रे! तुम किसकी पुत्री हो? यह कौन-सा व्रत कर रही हो? सुमुखि! तुम्हारा पति कौन है? भीरु! जिसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध है, वह मनुष्य इस भूलोकमें महान् पुण्यात्मा है। मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब मुझे बताओ। किस फलके लिये यह परिश्रम किया जा रहा है?'॥ ६½॥

रावणके इस प्रकार पूछनेपर वह यशस्विनी तपोधना कन्या उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार करके बोली—॥ ७½॥

'अमिततेजस्वी ब्रह्मर्षि श्रीमान् कुशध्वज मेरे पिता थे, जो बृहस्पतिके पुत्र थे और बुद्धिमें भी उन्हींके समान माने जाते थे॥ ८½॥

'प्रतिदिन वेदाभ्यास करनेवाले उन महात्मा पितासे वाङ्मयी कन्याके रूपमें मेरा प्रादुर्भाव हुआ था। मेरा नाम वेदवती है॥ ९½॥

'जब मैं बड़ी हुई, तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग भी पिताजीके पास जा-जाकर उनसे मुझे माँगने लगे॥ १०½॥

'महाबाहु राक्षसेश्वर! पिताजीने उनके हाथमें मुझे नहीं सौंपा। इसका क्या कारण था, मैं बता रही हूँ, सुनिये॥ ११½॥

'पिताजीकी इच्छा थी कि तीनों लोकोंके स्वामी देवेश्वर भगवान् विष्णु मेरे दामाद हों। इसीलिये वे दूसरे किसीके हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे। उनके इस अभिप्रायको सुनकर बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा और उस पापीने रातमें सोते समय मेरे पिताजीकी हत्या कर डाली॥ १२—१४॥

'इससे मेरी महाभागा माताको बड़ा दुःख हुआ और वे पिताजीके शवको हृदयसे लगाकर चिताकी आगमें प्रविष्ट हो गयीं॥ १५॥

'तबसे मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि भगवान् नारायणके प्रति पिताजीका जो मनोरथ था, उसे मैं सफल करूँगी। इसलिये मैं उन्हींको अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ॥ १६॥

'यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ। राक्षसराज! आपके प्रश्नके अनुसार यह सब बात मैंने आपको बता दी॥ १७॥

'नारायण ही मेरे पति हैं। उन पुरुषोत्तमके सिवा दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता। उन नारायणदेवको प्राप्त करनेके लिये ही मैंने इस कठोर व्रतका आश्रय लिया है॥ १८॥

'राजन्! पौलस्त्यनन्दन! मैंने आपको पहचान लिया है। आप जाइये। त्रिलोकीमें जो कोई भी वस्तु विद्यमान है, वह सब मैं तपस्याद्वारा जानती हूँ'॥ १९॥

यह सुनकर रावण कामबाणसे पीड़ित हो विमानसे उतर गया और उस उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली कन्यासे फिर बोला—॥ २०॥

'सुश्रोणि! तुम गर्वीली जान पड़ती हो, तभी तो तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गयी है। मृगशावकलोचने! इस तरह पुण्यका संग्रह बूढ़ी स्त्रियोंको ही शोभा देता है, तुम-जैसे युवतीको नहीं॥ २१॥

'तुम तो सर्वगुणसम्पन्न एवं त्रिलोकीकी अद्वितीय सुन्दरी हो। तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। भीरु! तुम्हारी जवानी बीती जा रही है॥ २२॥

'भद्रे! मैं लङ्काका राजा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। तुम मेरी भार्या हो जाओ और सुखपूर्वक उत्तम भोग भोगो॥ २३॥

'पहले यह तो बताओ, तुम जिसे विष्णु कहती है, वह कौन है? अङ्गने! भद्रे! तुम जिसे चाहती हो, वह बल, पराक्रम, तप और भोग-वैभवके द्वारा मेरी समानता नहीं कर सकता'॥ २४ १/२ ॥

उसके ऐसा कहनेपर कुमारी वेदवती उस निशाचरसे बोली—'नहीं, नहीं, ऐसा न कहो॥ २५ १/२ ॥

'राक्षसराज! भगवान् विष्णु तीनों लोकोंके अधिपति हैं। सारा संसार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन पुरुष है, जो बुद्धिमान् होकर भी उनकी अवहेलना करेगा'॥ २६ १/२ ॥

वेदवतीके ऐसा कहनेपर उस राक्षसने अपने हाथसे उस कन्याके केश पकड़ लिये॥ २७ १/२ ॥

इससे वेदवतीको बड़ा क्रोध हुआ। उसने अपने हाथसे उन केशोंको काट दिया। उसके हाथने तलवार बनकर तत्काल उसके केशोंको मस्तकसे अलग कर दिया॥ २८ १/२ ॥

वेदवती रोषसे प्रज्वलित-सी हो उठी। वह जल मरनेके लिये उतावली हो अग्निकी स्थापना करके उस निशाचरको दग्ध करती हुई-सी बोली—॥ २९ १/२ ॥

'नीच राक्षस! तूने मेरा तिरस्कार किया है; अतः अब इस जीवनको सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है। इसलिये तेरे देखते-देखते मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी॥ ३० १/२ ॥

'तुझ पापात्माने इस वनमें मेरा अपमान किया है। इसलिये मैं तेरे वधके लिये फिर उत्पन्न होऊँगी॥ ३१ १/२ ॥

'स्त्री अपनी शारीरिक शक्तिसे किसी पापाचारी पुरुषका वध नहीं कर सकती। यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण हो जायगी॥ ३२ १/२ ॥

'यदि मैंने कुछ भी सत्कर्म, दान और होम किये हों तो अगले जन्ममें मैं सती-साध्वी अयोनिजा कन्याके रूपमें प्रकट होऊँ तथा किसी धर्मात्मा पिताकी पुत्री बनूँ'॥

ऐसा कहकर वह प्रज्वलित अग्निमें समा गयी। उस समय उसके चारों ओर आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ ३४ १/२ ॥

तदनन्तर दूसरे जन्ममें वह कन्या पुनः एक कमलसे प्रकट हुई। उस समय उसकी कान्ति कमलके समान ही सुन्दर थी। उस राक्षसने पहलेकी ही भाँति फिर वहाँसे भी उस कन्याको प्राप्त कर लिया॥ ३५ १/२ ॥

कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर कान्तिवाली उस कन्याको लेकर रावण अपने घर गया। वहाँ उसने मन्त्रीको वह कन्या दिखायी॥ ३६ १/२ ॥

मन्त्री बालक-बालिकाओंके लक्षणोंको जाननेवाला था। उसने उसे अच्छी तरह देखकर रावणसे कहा—'राजन्! यह सुन्दरी कन्या यदि घरमें रही तो आपके वधका ही कारण होगी, ऐसा लक्षण देखा जाता है'॥ ३७ १/२ ॥

श्रीराम! यह सुनकर रावणने उसे समुद्रमें फेंक दिया। तत्पश्चात् वह भूमिको प्राप्त होकर राजा जनकके यज्ञमण्डपके मध्यवर्ती भूभागमें जा पहुँची। वहाँ राजाके हलके मुखभागसे उस भूभागके जोते जानेपर वह सती साध्वी कन्या फिर प्रकट हो गयी॥ ३८-३९॥

प्रभो! वही यह वेदवती महाराज जनककी पुत्रीके रूपमें प्रादुर्भूत हो आपकी पत्नी हुई है। महाबाहो! आप ही सनातन विष्णु हैं॥ ४०॥

उस वेदवतीने पहले ही अपने रोषजनित शापके द्वारा आपके उस पर्वताकार शत्रुको मार डाला था, जिसे अब आपने आक्रमण करके मौतके घाट उतारा है। प्रभो! आपका पराक्रम अलौकिक है॥ ४१॥

इस प्रकार यह महाभागा देवी विभिन्न कल्पोंमें पुनः रावणवधके उद्देश्यसे मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होती रहेगी। यज्ञवेदीपर अग्निशिखाके समान हलसे जोते गये क्षेत्रमें इसका आविर्भाव हुआ है॥ ४२॥

यह वेदवती पहले सत्ययुगमें प्रकट हुई थी। फिर त्रेतायुग आनेपर उस राक्षस रावणके वधके लिये मिथिलावर्ती राजा जनकके कुलमें सीतारूपसे अवतीर्ण हुई। सीता (हल जोतनेसे भूमिपर बनी हुई रेखा)-से उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य इस देवीको सीता कहते हैं॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

रावणद्वारा मरुत्तकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पक्षियोंको वरदान देना

अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन! वेदवतीके अग्निमें प्रवेश कर जानेपर रावण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो पृथ्वीपर सब ओर भ्रमण करने लगा॥ १॥

उसी यात्रामें उशीरबीज नामक देशमें पहुँचकर रावणने देखा, राजा मरुत्त देवताओंके साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं॥ २॥

उस समय साक्षात् बृहस्पतिके भाई तथा धर्मके मर्मको जाननेवाले ब्रह्मर्षि संवर्त सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे रहकर वह यज्ञ करा रहे थे॥ ३॥

ब्रह्माजीके वरदानसे जिसको जीतना कठिन हो गया था, उस राक्षस रावणको वहाँ देखकर उसके आक्रमणसे भयभीत हो देवतालोग तिर्यग्-योनिमें प्रवेश कर गये॥ ४॥

इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये॥ ५॥

शत्रुसूदन श्रीराम! इसी तरह दूसरे-दूसरे देवता भी जब विभिन्न रूपोंमें स्थित हो गये, तब रावणने उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, मानो कोई अपवित्र कुत्ता वहाँ आ गया हो॥ ६॥

राजा मरुत्तके पास पहुँचकर राक्षसराज रावणने कहा—'मुझसे युद्ध करो या अपने मुँहसे यह कह दो कि मैं पराजित हो गया'॥ ७॥

तब राजा मरुत्तने पूछा—'आप कौन हैं?' उनका प्रश्न सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला—॥ ८॥

'भूपाल! मैं कुबेरका छोटा भाई रावण हूँ। फिर भी तुम मुझे नहीं जानते और मुझे देखकर भी तुम्हारे मनमें न तो कौतूहल हुआ, न भय ही; इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ॥ ९॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा होगा, जो मेरे बलको न जानता हो। मैं वह रावण हूँ, जिसने अपने भाई कुबेरको जीतकर यह विमान छीन लिया है'॥ १०॥

तब राजा मरुत्तने रावणसे कहा—'तुम धन्य हो, जिसने अपने बड़े भाईको रणभूमिमें पराजित कर दिया॥ ११॥

'तुम्हारे-जैसा स्पृहणीय पुरुष तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। तुमने पूर्वकालमें किस शुद्ध धर्मका आचरण करके वर प्राप्त किया है॥ १२॥

'तुम स्वयं जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी है। दुर्बुद्धे! इस समय खड़े तो रहो। मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे। आज अपने पैने बाणोंसे मारकर तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ'॥ १३ $\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर राजा मरुत्त धनुष-बाण लेकर बड़े रोषके साथ युद्धके लिये निकले, परंतु महर्षि संवर्तने उनका रास्ता रोक लिया॥ १४ $\frac{१}{२}$ ॥

उन महर्षिने महाराज मरुत्तसे स्नेहपूर्वक कहा—'राजन्! यदि मेरी बात सुनना और उसपर ध्यान देना उचित समझो तो सुनो। तुम्हारे लिये युद्ध करना उचित नहीं है॥ १५ $\frac{१}{२}$ ॥

'यह माहेश्वर यज्ञ आरम्भ किया गया है। यदि पूरा न हुआ तो तुम्हारे समस्त कुलको दग्ध कर डालेगा। जो यज्ञकी दीक्षा ले चुका है, उसके लिये युद्धका अवसर ही कहाँ है? यज्ञदीक्षित पुरुषमें क्रोधके लिये स्थान ही कहाँ है?॥ १६ $\frac{१}{२}$ ॥

'युद्धमें किसकी विजय होगी, इस प्रश्नको लेकर सदा संशय ही बना रहता है। उधर वह राक्षस अत्यन्त दुर्जय है।' अपने आचार्यके इस कथनसे पृथ्वीपति मरुत्त युद्धसे निवृत्त हो गये। उन्होंने धनुष-बाण त्याग दिया और स्वस्थभावसे वे यज्ञके लिये उन्मुख हो गये॥ १७-१८॥

तब उन्हें पराजित हुआ मानकर शुकने यह घोषणा कर दी कि महाराज रावणकी विजय हुई और वह बड़े हर्षके साथ उच्चस्वरसे सिंहनाद करने लगा॥ १९॥

उस यज्ञमें आकर बैठे हुए महर्षियोंको खाकर उनके रक्तसे पूर्णतः तृप्त हो रावण फिर पृथ्वीपर विचरने लगा॥ २०॥

रावणके चले जानेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता पुनः अपने स्वरूपमें प्रकट हो उन-उन प्राणियोंको (जिनके रूपमें वे स्वयं प्रकट हुए थे) वरदान देते हुए बोले॥ २१॥

सबसे पहले इन्द्रने हर्षपूर्वक नीले पंखवाले मोरसे कहा—'धर्मज्ञ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें सर्पसे भय नहीं होगा॥ २२॥

'मेरे जो ये सहस्र नेत्र हैं, इनके समान चिह्न तुम्हारी पाँखमें प्रकट होंगे। जब मैं मेघरूप होकर

वर्षा करूँगा, उस समय तुम्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी। वह प्रसन्नता मेरी प्राप्तिको लक्षित करानेवाली होगी।' इस प्रकार देवराज इन्द्रने मोरको वरदान दिया॥ २३-२४॥

नरेश्वर श्रीराम! इस वरदानके पहले मोरोंके पंख केवल नीले रंगके ही होते थे। देवराजसे उक्त वर पाकर सब मयूर वहाँसे चले गये॥ २५॥

श्रीराम! तदनन्तर धर्मराजने प्राग्वंशकी* छतपर बैठे हुए कौएसे कहा—'पक्षी! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। प्रसन्न होकर जो कुछ कहता हूँ, मेरे इस वचनको सुनो॥ २६॥

'जैसे दूसरे प्राणियोंको मैं नाना प्रकारके रोगोंद्वारा पीड़ित करता हूँ, वे रोग मेरी प्रसन्नताके कारण तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे; इसमें संशय नहीं है॥ २७॥

'विहङ्गम! मेरे वरदानसे तुम्हें मृत्युका भय नहीं होगा। जबतक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तबतक तुम जीवित रहोगे॥ २८॥

'मेरे राज्य—यमलोकमें स्थित रहकर जो मानव भूखसे पीड़ित हैं, उनके पुत्र आदि इस भूतलपर जब तुम्हें भोजन करावेंगे, तब वे बन्धु-बान्धवोंसहित परम तृप्त होंगे'॥ २९॥

तत्पश्चात् वरुणने गङ्गाजीके जलमें विचरनेवाले हंसको सम्बोधित करके कहा—'पक्षिराज! मेरा प्रेमपूर्ण वचन सुनो— ॥ ३०॥

'तुम्हारे शरीरका रंग चन्द्रमण्डल तथा शुद्ध फेनके समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा॥ ३१॥

'मेरे अङ्गभूत जलका आश्रय लेकर तुम सदा कान्तिमान् बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी। यही मेरे प्रेमका परिचायक चिह्न होगा'॥ ३२॥

श्रीराम! पूर्वकालमें हंसोंका रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था। उनकी पाँखोंका अग्रभाग नीला और दोनों भुजाओंके बीचका भाग नूतन दूर्वादलके अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम वर्णसे युक्त होता था॥ ३३॥

तदनन्तर विश्रवाके पुत्र कुबेरने पर्वतशिखरपर बैठे हुए कृकलास (गिरगिट)-से कहा—'मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्णके समान सुन्दर रंग प्रदान करता हूँ॥ ३४॥

'तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्णके समान रंगका एवं अक्षय होगा। मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा यह (काला) रंग सुनहरे रंगमें परिवर्तित हो जायगा'॥ ३५॥

इस प्रकार उन्हें उत्तम वर देकर वे सब देवता वह यज्ञोत्सव समाप्त होनेपर राजा मरुत्तके साथ पुनः अपने भवन—स्वर्गलोकको चले गये॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

रावणके द्वारा अनरण्यका वध तथा उनके द्वारा उसे शापकी प्राप्ति

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) पूर्वोक्त रूपसे राजा मरुत्तको जीतनेके पश्चात् राक्षसराज दशग्रीव क्रमशः अन्य नरेशोंके नगरोंमें भी युद्धकी इच्छासे गया॥ १॥

महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी उन महाराजोंके पास जाकर वह राक्षसराज उनसे कहता—'राजाओ! तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा यह कह दो कि 'हम हार गये।' यही मेरा अच्छी तरह किया हुआ निश्चय है। इसके विपरीत करनेसे तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा'॥ २-३॥

तब निर्भय, बुद्धिमान् तथा धर्मपूर्ण विचार रखनेवाले बहुत-से महाबली राजा परस्पर सलाह करके शत्रुकी प्रबलताको समझकर बोले—'राक्षसराज! हम तुमसे हार मान लेते हैं'॥ ४½॥

दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, राजा पुरूरवा—इन सभी भूपालोंने अपने-अपने राजत्वकालमें रावणके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली॥ ५½॥

इसके बाद राक्षसोंका राजा रावण इन्द्रद्वारा सुरक्षित अमरावतीकी भाँति महाराज अनरण्यद्वारा पालित अयोध्यापुरीमें आया। वहाँ पुरन्दर (इन्द्र)-के समान पराक्रमी पुरुषसिंह राजा अनरण्यसे मिलकर बोला—'राजन्! तुम मुझसे युद्ध करनेका वचन दो अथवा कह दो कि 'मैं हार गया।' यही मेरा आदेश है'॥ ६—८॥

उस पापात्माकी वह बात सुनकर अयोध्यानरेश अनरण्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे उस राक्षसराजसे बोले— ॥ ९॥

* यज्ञशालाके पूर्वभागमें यजमान और उसकी पत्नी आदिके ठहरनेके लिये बने हुए गृहको प्राग्वंश कहते हैं। यह घर हविर्गृहके पूर्व ओर होता है।

'निशाचरपते! मैं तुम्हें द्वन्द्वयुद्धका अवसर देता हूँ। ठहरो, शीघ्र युद्धके लिये तैयार हो जाओ। मैं भी तैयार हो रहा हूँ'॥ १०॥

राजाने रावणकी दिग्विजयकी बात पहलेसे ही सुन रखी थी, इसलिये उन्होंने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी। नरेशकी वह सारी सेना उस समय राक्षसके वधके लिये उत्साहित हो नगरसे बाहर निकली॥ ११॥

नरश्रेष्ठ श्रीराम! दस हजार हाथीसवार, एक लाख घुड़सवार, कई हजार रथी और पैदल सैनिक पृथ्वीको आच्छादित करके युद्धके लिये आगे बढ़े। रथों और पैदलोंसहित सारी सेना रणक्षेत्रमें जा पहुँची॥ १२½॥

युद्धविशारद रघुवीर! फिर तो राजा अनरण्य और निशाचर रावणमें बड़ा अद्भुत संग्राम होने लगा॥ १३½॥

उस समय राजाकी सारी सेना रावणकी सेनाके साथ टक्कर लेकर उसी तरह नष्ट होने लगी, जैसे अग्निमें दी हुई आहुति पूर्णतः भस्म हो जाती है॥ १४½॥

उस सेनाने बहुत देरतक युद्ध किया, बड़ा पराक्रम दिखाया; परंतु तेजस्वी रावणका सामना करके वह बहुत थोड़ी संख्यामें शेष रह गयी और अन्ततोगत्वा जैसे पतिङ्गे आगमें जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार कालके गालमें चली गयी॥ १५-१६॥

राजाने देखा, मेरी विशाल सेना उसी प्रकार नष्ट होती चली जा रही है, जैसे जलसे भरी हुई सैकड़ों नदियाँ महासागरके पास पहुँचकर उसीमें विलीन हो जाती हैं॥ १७॥

तब महाराज अनरण्य क्रोधसे मूर्छित हो अपने इन्द्रधनुषके समान महान् शरासनको टंकारते हुए रावणका सामना करनेके लिये आये॥ १८॥

फिर तो जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार मारीच, शुक, सारण तथा प्रहस्त—ये चारों राक्षस मन्त्री राजा अनरण्यसे परास्त होकर भाग खड़े हुए॥

तत्पश्चात् इक्ष्वाकुवंशको आनन्दित करनेवाले राजा अनरण्यने राक्षसराज रावणके मस्तकपर आठ सौ बाण मारे॥ २०॥

परंतु जैसे बादलोंसे पर्वतशिखरपर गिरती हुई जलधाराएँ उसे क्षति नहीं पहुँचातीं, उसी प्रकार वे बरसते हुए बाण उस निशाचरके शरीरपर कहीं घाव न कर सके॥ २१॥

इसके बाद राक्षसराजने कुपित होकर राजाके मस्तकपर एक तमाचा मारा। इससे आहत होकर राजा रथसे नीचे गिर पड़े॥ २२॥

जैसे वनमें वज्रपातसे दग्ध हुआ साखूका वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार राजा अनरण्य व्याकुल हो भूमिपर गिरे और थर-थर काँपने लगे॥ २३॥

यह देख रावण जोर-जोरसे हँस पड़ा और उन इक्ष्वाकुवंशी नरेशसे बोला—'इस समय मेरे साथ युद्ध करके तुमने क्या फल प्राप्त किया है?॥ २४॥

'नरेश्वर! तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो मुझे द्वन्द्वयुद्ध दे सके। जान पड़ता है तुमने भोगोंमें अधिक आसक्त रहनेके कारण मेरे बल-पराक्रमको नहीं सुना था'॥ २५॥

राजाकी प्राणशक्ति क्षीण हो रही थी। उन्होंने इस प्रकार बातें करनेवाले रावणका वचन सुनकर कहा—'राक्षसराज! अब यहाँ क्या किया जा सकता है? क्योंकि कालका उल्लङ्घन करना अत्यन्त दुष्कर है॥ २६॥

'राक्षस! तू अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा कर रहा है; किंतु तूने जो आज मुझे पराजित किया है, इसमें काल ही कारण है। वास्तवमें कालने ही मुझे मारा है। तू तो मेरी मृत्युमें निमित्तमात्र बन गया है॥ २७॥

'मेरे प्राण जा रहे हैं, अतः इस समय मैं क्या कर सकता हूँ? निशाचर! मुझे संतोष है कि मैंने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ा। युद्ध करता हुआ ही मैं तेरे हाथसे मारा गया हूँ॥ २८॥

'परंतु राक्षस! तूने अपने व्यङ्ग्यपूर्ण वचनसे इक्ष्वाकुकुलका अपमान किया है, इसलिये मैं तुझे शाप दूँगा—तेरे लिये अमङ्गलजनक बात कहूँगा। यदि मैंने दान, पुण्य, होम और तप किये हों, यदि मेरे द्वारा धर्मके अनुसार प्रजाजनोंका ठीक-ठीक पालन हुआ हो तो मेरी बात सत्य होकर रहे॥ २९॥

'महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंके इस वंशमें ही दशरथनन्दन श्रीराम प्रकट होंगे, जो तेरे प्राणोंका अपहरण करेंगे'॥ ३०॥

राजाके इस प्रकार शाप देते ही मेघके समान गम्भीर स्वरमें देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ३१॥

राजाधिराज श्रीराम! तदनन्तर राजा अनरण्य स्वर्गलोकको सिधारे। उनके स्वर्गगामी हो जानेपर राक्षस रावण वहाँसे अन्यत्र चला गया॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ सर्ग

नारदजीका रावणको समझाना, उनके कहनेसे रावणका युद्धके लिये यमलोकको जाना तथा नारदजीका इस युद्धके विषयमें विचार करना

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) इसके बाद राक्षसराज रावण मनुष्योंको भयभीत करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा। एक दिन पुष्पकविमानसे यात्रा करते समय उसे बादलोंके बीचमें मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी मिले॥ १॥

निशाचर दशग्रीवने उनका अभिवादन करके कुशल-समाचारकी जिज्ञासा की और उनके आगमनका कारण पूछा—॥ २॥

तब बादलोंकी पीठपर खड़े हुए अमित कान्तिमान् महातेजस्वी देवर्षि नारदने पुष्पकविमानपर बैठे हुए रावणसे कहा—॥ ६॥

'उत्तम कुलमें उत्पन्न विश्रवणकुमार राक्षसराज रावण! सौम्य! ठहरो, मैं तुम्हारे बढ़े हुए बल-विक्रमसे बहुत प्रसन्न हूँ॥ ४॥

'दैत्योंका विनाश करनेवाले अनेक संग्राम करके भगवान् विष्णुने तथा गन्धर्वों और नागोंको पददलित करनेवाले युद्धोंद्वारा तुमने मुझे समानरूपसे संतुष्ट किया है॥ ५॥

'इस समय यदि तुम सुनोगे तो मैं तुमसे कुछ सुननेयोग्य बात कहूँगा। तात! मेरे मुँहसे निकली हुई उस बातको सुननेके लिये तुम अपने चित्तको एकाग्र करो॥ ६॥

'तात! तुम देवताओंके लिये भी अवध्य होकर इस भूलोकके निवासियोंका वध क्यों कर रहे हो? यहाँके प्राणी तो मृत्युके अधीन होनेके कारण स्वयं ही मरे हुए हैं; फिर तुम भी इन मरे हुओंको क्यों मार रहे हो?॥ ७॥

'देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी जिसे नहीं मार सकते, ऐसे विख्यात वीर होकर भी तुम इस मनुष्यलोकको क्लेश पहुँचाओ, यह कदापि तुम्हारे योग्य नहीं है॥ ८॥

'जो सदा अपने कल्याण-साधनमें मूढ़ हैं, बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे घिरे हुए हैं और बुढ़ापा तथा सैकड़ों रोगोंसे युक्त हैं, ऐसे लोगोंको कोई भी वीर पुरुष कैसे मार सकता है?॥ ९॥

'जो नाना प्रकारके अनिष्टोंकी प्राप्तिसे जहाँ कहीं भी पीड़ित है, उस मनुष्यलोकमें आकर कौन बुद्धिमान् वीर पुरुष युद्धके द्वारा मनुष्योंके वधमें अनुरक्त होगा?॥

'यह लोक तो यों ही भूख, प्यास और जरा आदिसे क्षीण हो रहा है तथा विषाद और शोकमें डूबकर अपनी विवेक-शक्ति खो बैठा है। दैवके मारे हुए इस मर्त्यलोकका तुम विनाश न करो॥ ११॥

'महाबाहु राक्षसराज! देखो तो सही, यह मनुष्यलोक ज्ञानशून्य होनेके कारण मूढ़ होनेपर भी किस तरह नाना प्रकारके क्षुद्र पुरुषार्थोंमें आसक्त है? इसे इस बातका भी पता नहीं है कि कब दुःख और सुख आदि भोगनेका अवसर आयेगा?॥ १२॥

'यहाँ कहीं कुछ मनुष्य तो आनन्दमग्न होकर गाजे-बाजे और नाच आदिका सेवन करते हैं—उनके द्वारा मन बहलाते हैं तथा कहीं कितने ही लोग दुःखसे पीड़ित हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए रोते रहते हैं॥ १३॥

'माता, पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा भाईके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनसूबे बाँधनेके कारण यह मनुष्यलोक मोहग्रस्त हो परमार्थसे भ्रष्ट हो रहा है। इसे अपने बन्धनजनित क्लेशका अनुभव ही नहीं होता है॥ १४॥

'इस प्रकार जो मोह (अज्ञान)-के कारण परम पुरुषार्थसे वञ्चित हो गया है, ऐसे मनुष्य-लोकको क्लेश पहुँचाकर तुम्हें क्या मिलेगा? सौम्य! तुमने मनुष्य-लोकको तो जीत ही लिया है, इसमें कोई भी संशय नहीं है॥ १५॥

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले पुलस्त्यनन्दन! इन सब मनुष्योंको यमलोकमें अवश्य जाना पड़ता है। अतः यदि शक्ति हो तो तुम यमराजको अपने काबूमें करो। उन्हें जीत लेनेपर तुम सबको जीत सकते हो; इसमें संशय नहीं है'॥ १६½॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर लङ्कापति रावण अपने तेजसे उद्दीप्त होनेवाले उन देवर्षिको प्रणाम करके हँसता हुआ बोला—॥ १७½॥

'महर्षे! आप देवताओं और गन्धर्वोंके लोकमें विहार करनेवाले हैं। युद्धके दृश्य देखना आपको बहुत ही प्रिय है। मैं इस समय दिग्विजयके लिये रसातलमें जानेको उद्यत हूँ॥ १८½॥

'फिर तीनों लोकोंको जीतकर नागों और देवताओंको अपने वशमें करके अमृतकी प्राप्तिके लिये रसनिधि

समुद्रका मन्थन करूँगा'॥ १९½ ॥

यह सुनकर देवर्षि भगवान् नारदने कहा—'शत्रुसूदन! यदि तुम रसातलको जाना चाहते हो तो इस समय उसका मार्ग छोड़कर दूसरे रास्तेसे कहाँ जा रहे हो? दुर्धर्ष वीर! रसातलका यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है और यमराजकी पुरीसे होकर ही जाता है'॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर दशमुख रावण शरद्-ऋतुके बादलकी भाँति अपना उज्ज्वल हास बिखेरता हुआ बोला—'देवर्षे! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली।' इसके बाद उसने यों कहा—॥ २२½ ॥

'ब्रह्मन्! अब यमराजका वध करनेके लिये उद्यत होकर मैं उस दक्षिण दिशाको जाता हूँ, जहाँ सूर्यपुत्र राजा यम निवास करते हैं॥ २३½ ॥

'प्रभो! भगवन्! मैंने युद्धकी इच्छासे क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालोंको परास्त करूँगा॥

'अतः मैं यहाँसे यमपुरीको प्रस्थान कर रहा हूँ। संसारके प्राणियोंको मौतका कष्ट देनेवाले सूर्यपुत्र यमको स्वयं ही मृत्युसे संयुक्त कर दूँगा'॥ २५½ ॥

ऐसा कहकर दशग्रीवने मुनिको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया॥

उसके चले जानेपर धूमरहित अग्निके समान महातेजस्वी विप्रवर नारदजी दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो इस प्रकार विचार करने लगे—॥ २७½ ॥

'आयु क्षीण होनेपर जिनके द्वारा धर्मपूर्वक इन्द्रसहित तीनों लोकोंके चराचर प्राणी क्लेशमें डाले जाते—दण्डित होते हैं, वे कालस्वरूप यमराज इस रावणके द्वारा कैसे जीते जायँगे?॥ २८½ ॥

'जो जीवोंके दान और कर्मके साक्षी हैं, जिनका तेज द्वितीय अग्निके समान है, जिन महात्मासे चेतना पाकर सम्पूर्ण जीव नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं, जिनके भयसे पीड़ित हो तीनों लोकोंके प्राणी उनसे दूर भागते हैं, उन्हींके पास यह राक्षसराज स्वयं ही कैसे जायगा?॥ २९-३०½ ॥

'जो त्रिलोकीको धारण-पोषण करनेवाले तथा पुण्य और पापके फल देनेवाले हैं और जिन्होंने तीनों लोकोंपर विजय पायी है, उन्हीं कालदेवको यह राक्षस कैसे जीतेगा? काल ही सबका साधन है। यह राक्षस कालके अतिरिक्त दूसरे किस साधनका सम्पादन करके उस कालपर विजय प्राप्त करेगा?॥ ३१-३२॥

'अब तो मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया है, अतः इन यमराज और राक्षसराजका युद्ध देखनेके लिये मैं स्वयं भी यमलोकको जाऊँगा'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

रावणका यमलोकपर आक्रमण और उसके द्वारा यमराजके सैनिकोंका संहार

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) ऐसा विचारकर शीघ्र चलनेवाले विप्रवर नारदजी रावणके आक्रमणका समाचार बतानेके लिये यमलोकमें गये॥ १॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, यमदेवता अग्निको साक्षीके रूपमें सामने रखकर बैठे हैं और जिस प्राणीका जैसा कर्म है, उसीके अनुसार फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं॥ २॥

महर्षि नारदको वहाँ आया देख यमराजने आतिथ्य-धर्मके अनुसार उनके लिये अर्घ्य आदि निवेदन करके कहा—॥ ३॥

'देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित देवर्षे! कुशल तो है न ? धर्मका नाश तो नहीं हो रहा है? आज यहाँ आपके शुभागमनका क्या उद्देश्य है?'॥ ४॥

तब भगवान् नारद मुनि बोले—'पितृराज! सुनिये—मैं एक आवश्यक बात बता रहा हूँ, आप सुनकर उसके प्रतीकारका भी कोई उपाय कर लें। यद्यपि आपको जीतना अत्यन्त कठिन है, तथापि यह दशग्रीव नामक निशाचर अपने पराक्रमोंद्वारा आपको वशमें करनेके लिये यहाँ आ रहा है॥ ५-६॥

'प्रभो! इसी कारणसे मैं तुरंत यहाँ आया हूँ कि आपको इस सङ्कटकी सूचना दे दूँ, परंतु आप तो कालदण्डरूपी आयुधको धारण करनेवाले हैं, आपकी उस राक्षसके आक्रमणसे क्या हानि होगी?'॥ ७॥

इस प्रकारकी बातें हो ही रही थीं कि उस राक्षसका उदित हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमान दूरसे आता दिखायी दिया॥ ८॥

महाबली रावण पुष्पककी प्रभासे उस समस्त प्रदेशको अन्धकारशून्य करके अत्यन्त निकट आ गया॥

महाबाहु दशग्रीवने यमलोकमें आकर देखा कि यहाँ बहुत-से प्राणी अपने-अपने पुण्य तथा पापका

फल भोग रहे हैं॥ १०॥

उसने यमराजके सेवकोंके साथ उनके सैनिकोंको भी देखा। उसकी दृष्टिमें यमयातनाका दृश्य भी आया। घोर रूपधारी उग्र प्रकृतिवाले भयानक यमदूत कितने ही प्राणियोंको मारते और क्लेश पहुँचाते थे, जिससे वे बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे॥ ११-१२॥

किन्हींको कीड़े खा रहे थे और कितनोंको भयङ्कर कुत्ते नोच रहे थे। वे सब-के-सब दुःखी हो-होकर कानोंको पीड़ा देनेवाला भयानक चीत्कार करते थे॥ १३॥

किन्हींको बारम्बार रक्तसे भरी हुई वैतरणी नदी पार करनेके लिये विवश किया जाता था और कितनोंको तपायी हुई बालुकाओंपर बार-बार चलाकर संतप्त किया जाता था॥ १४॥

कुछ पापी असिपत्र-वनमें, जिसके पत्ते तलवारकी धारके समान तीखे थे, विदीर्ण किये जा रहे थे। किन्हींको रौरव नरकमें डाला जाता था। कितनोंको खारे जलसे भरी हुई नदियोंमें डुबाया जाता था और बहुतोंको छुरोंकी धारोंपर दौड़ाया जाता था। कई प्राणी भूख और प्याससे तड़प रहे थे और थोड़े-से जलकी याचना कर रहे थे। कोई शवके समान कङ्काल, दीन, दुर्बल, उदास और खुले बालोंसे युक्त दिखायी देते थे। कितने ही प्राणी अपने अङ्गोंमें मैल और कीचड़ लगाये दयनीय तथा रूखे शरीरसे चारों ओर भाग रहे थे। इस तरहके सैकड़ों और हजारों जीवोंको रावणने मार्गमें यातना भोगते देखा॥ १५—१७॥

दूसरी ओर रावणने देखा कुछ पुण्यात्मा जीव अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे अच्छे-अच्छे घरोंमें रहकर संगीत और वाद्योंकी मनोहर ध्वनिसे आनन्दित हो रहे हैं॥ १८॥

गोदान करनेवाले गोरसको, अन्न देनेवाले अन्नको और गृह प्रदान करनेवाले लोग गृहको पाकर अपने सत्कर्मोंका फल भोग रहे हैं॥ १९॥

दूसरे धर्मात्मा पुरुष वहाँ सुवर्ण, मणि और मुक्ताओंसे अलंकृत हो यौवनके मदसे मत्त रहनेवाली सुन्दरी स्त्रियोंके साथ अपनी अङ्गकान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं॥ २०॥

महाबाहु राक्षसराज रावणने इन सबको देखा। देखकर बलवान् राक्षस दशग्रीवने अपने पाप-कर्मोंके कारण यातना भोगनेवाले प्राणियोंको पराक्रमद्वारा बलपूर्वक मुक्त कर दिया॥ २१-२२॥

इससे थोड़ी देरतक उन पापियोंको बड़ा सुख मिला, उसके मिलनेकी न तो उन्हें सम्भावना थी और न उसके विषयमें वे कुछ सोच ही सके थे। उस महान् राक्षसके द्वारा जब सभी प्रेत यातनासे मुक्त कर दिये गये, तब उन प्रेतोंकी रक्षा करनेवाले यमदूत अत्यन्त कुपित हो राक्षसराजपर टूट पड़े॥ २३$\frac{१}{२}$॥

फिर तो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे धावा करनेवाले धर्मराजके शूरवीर योद्धाओंका महान् कोलाहल प्रकट हुआ॥ २४$\frac{१}{२}$॥

जैसे फूलपर झुंड-के-झुंड भौंरे जुट जाते हैं, उसी प्रकार पुष्पकविमानपर सैकड़ों-हजारों शूरवीर यमदूत चढ़ आये और प्रासों, परिघों, शूलों, मूसलों, शक्तियों तथा तोमरोंद्वारा उसे तहस-नहस करने लगे। उन्होंने पुष्पकविमानके आसन, प्रासाद, वेदी और फाटक शीघ्र ही तोड़ डाले॥ २५-२६$\frac{१}{२}$॥

देवताओंका अधिष्ठानभूत वह पुष्पकविमान उस युद्धमें तोड़ा जानेपर भी ब्रह्माजीके प्रभावसे ज्यों-का-त्यों हो जाता था; क्योंकि वह नष्ट होनेवाला नहीं था॥ २७$\frac{१}{२}$॥

महामना यमकी विशाल सेना असंख्य थी। उसमें सैकड़ों-हजारों शूरवीर आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले थे॥

यमदूतोंके आक्रमण करनेपर रावणके वे महावीर मन्त्री तथा स्वयं राजा दशग्रीव भी वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा यमलोकके सैकड़ों प्रासादोंको उखाड़कर उनके द्वारा पूरी शक्ति लगाकर इच्छानुसार युद्ध करने लगे॥

राक्षसराजके मन्त्रियोंके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे। सम्पूर्ण शस्त्रोंके आघातसे वे घायल हो चुके थे। फिर भी उन्होंने बड़ा भारी युद्ध किया॥ ३१॥

महाबाहु श्रीराम! यमराज तथा रावणके वे महाभाग मन्त्री एक-दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा बड़े जोरसे आघात-प्रत्याघात करने लगे॥ ३२॥

तत्पश्चात् यमराजके महाबली योद्धाओंने रावणके मन्त्रियोंको छोड़कर उस दशग्रीवके ही ऊपर शूलोंकी वर्षा करते हुए धावा किया॥ ३३॥

रावणका सारा शरीर शस्त्रोंकी मारसे जर्जर हो गया। वह खूनसे लथपथ हो गया और पुष्पक-विमानके ऊपर फूले हुए अशोक वृक्षके समान प्रतीत होने लगा॥ ३४॥

तब बलवान् रावणने अपने अस्त्र-बलसे यमराजके सैनिकोंपर शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, पत्थर और वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की॥ ३५॥

वृक्षों, शिलाखण्डों और शस्त्रोंकी वह अत्यन्त भयंकर वृष्टि भूतलपर खड़े हुए यमराजके सैनिकोंपर पड़ने लगी॥ ३६॥

वे सैनिक भी सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो उसके सारे आयुधोंको छिन्न-भिन्न करके उसके द्वारा छोड़े हुए दिव्यास्त्रका भी निवारण कर एकमात्र उस भयंकर राक्षसको ही मारने लगे॥ ३७॥

जैसे बादलोंके समूह पर्वतपर सब ओरसे जलकी धाराएँ गिराते हैं, उसी प्रकार यमराजके समस्त सैनिकोंने रावणको चारों ओरसे घेरकर उसे भिन्दिपालों और शूलोंसे छेदना आरम्भ कर दिया। उसको दम लेनेकी भी फुरसत नहीं दी॥ ३८॥

रावणका कवच कटकर गिर पड़ा। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी। वह उस रक्तसे नहा उठा और कुपित हो पुष्पकविमान छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ ३९॥

वहाँ दो घड़ीके बाद उसने अपने-आपको सँभाला। फिर तो वह धनुष और बाण हाथमें ले बढ़े हुए उत्साहसे सम्पन्न हो समराङ्गणमें कुपित हुए यमराजके समान खड़ा हुआ॥ ४०॥

उसने अपने धनुषपर पाशुपत नामक दिव्य अस्त्रका संधान किया और उन सैनिकोंसे 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए उस धनुषको खींचा॥ ४१॥

जैसे भगवान् शङ्करने त्रिपुरासुरपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया था, उसी प्रकार उस इन्द्रद्रोही रावणने अपने धनुषको कानतक खींचकर वह बाण छोड़ दिया॥

उस समय उसके बाणका रूप धूम और ज्वालाओंके मण्डलसे युक्त हो ग्रीष्म-ऋतुमें जंगलको जलानेके लिये चारों ओर फैलते हुए दावानलके समान प्रतीत होने लगा॥ ४३॥

रणभूमिमें ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ वह बाण धनुषसे छूटते ही वृक्षों और झाड़ियोंको जलाता हुआ तीव्र गतिसे आगे बढ़ा और उसके पीछे-पीछे मांसाहारी जीव-जन्तु चलने लगे॥ ४४॥

उस युद्धस्थलमें यमराजके वे सारे सैनिक पाशुपतास्त्रके तेजसे दग्ध हो इन्द्रध्वजके समान नीचे गिर पड़े॥ ४५॥

तदनन्तर अपने मन्त्रियोंके साथ वह भयानक पराक्रमी राक्षस पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-सा बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ सर्ग

यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके वधके लिये उठाये हुए कालदण्डको ब्रह्माजीके कहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोकसे प्रस्थान

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) रावणके उस महानादको सुनकर सूर्यपुत्र भगवान् यमने यह समझ लिया कि 'शत्रु विजयी हुआ और मेरी सेना मारी गयी'॥ १॥

'मेरे योद्धा मारे गये'—यह जानकर यमराजके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे उतावले होकर सारथिसे बोले—'मेरा रथ ले आओ'॥ २॥

तब उनके सारथिने तत्काल एक दिव्य एवं विशाल रथ वहाँ उपस्थित कर दिया और वह सामने विनीतभावसे खड़ा हो गया। फिर वे महातेजस्वी यम देवता उस रथपर आरूढ़ हुए॥ ३॥

उनके आगे प्रास और मुद्गर हाथमें लिये साक्षात् मृत्यु-देवता खड़े थे, जो प्रवाहरूपसे सदा बने रहनेवाले इस समस्त त्रिभुवनका संहार करते हैं॥ ४॥

उनके पार्श्वभागमें कालदण्ड मूर्तिमान् होकर खड़ा हुआ, जो उनका मुख्य एवं दिव्य आयुध है। वह अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था॥ ५॥

उनके दोनों बगलमें छिद्ररहित कालपाश खड़े थे और जिसका स्पर्श अग्निके समान दुःसह है, वह मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर उपस्थित था॥ ६॥

समस्त लोकोंको भय देनेवाले साक्षात् कालको कुपित हुआ देख तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी। समस्त देवता काँप उठे॥ ७॥

तदनन्तर सारथिने सुन्दर कान्तिवाले घोड़ोंको हाँका और वह रथ भयानक आवाज करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ राक्षसराज रावण खड़ा था॥ ८॥

इन्द्रके घोड़ोंके समान तेजस्वी और मनके समान शीघ्रगामी उन घोड़ोंने यमराजको क्षणभरमें उस स्थानपर पहुँचा दिया, जहाँ वह युद्ध चल रहा था॥ ९॥

मृत्युदेवताके साथ उस विकराल रथको आया देख राक्षसराजके सचिव सहसा वहाँसे भाग खड़े हुए॥ १०॥

उनकी शक्ति थोड़ी थी। इसलिये वे भयसे

पीड़ित हो अपना होश-हवाश खो बैठे और 'हम यहाँ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं' ऐसा कहकर विभिन्न दिशाओंमें भाग गये॥ ११॥

परंतु समस्त संसारको भयभीत करनेवाले वैसे विकराल रथको देखकर भी दशग्रीवके मनमें न तो क्षोभ हुआ और न भय ही॥ १२॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए यमराजने रावणके पास पहुँचकर शक्ति और तोमरोंका प्रहार किया तथा रावणके मर्मस्थानोंको छेद डाला॥ १३॥

तब रावणने भी सँभलकर यमराजके रथपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, मानो मेघ जलकी वर्षा कर रहा हो॥ १४॥

तदनन्तर उसकी विशाल छातीपर सैकड़ों महाशक्तियोंकी मार पड़ने लगी। वह राक्षस शल्योंके प्रहारसे इतना पीड़ित हो चुका था कि यमराजसे बदला लेनेमें समर्थ न हो सका॥ १५॥

इस प्रकार शत्रुसूदन यमने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए रणभूमिमें लगातार सात रातोंतक युद्ध किया। इससे उनका शत्रु रावण अपनी सुध-बुध खोकर युद्धसे विमुख हो गया॥ १६॥

वीर रघुनन्दन! वे दोनों योद्धा समरभूमिसे पीछे हटनेवाले नहीं थे और दोनों ही अपनी विजय चाहते थे; इसलिये उन यमराज और राक्षस दोनोंमें उस समय घोर युद्ध होने लगा॥ १७॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण प्रजापतिको आगे करके उस समराङ्गणमें एकत्र हुए॥ १८॥

उस समय राक्षसोंके राजा रावण तथा प्रेतराज यमके युद्धपरायण होनेपर समस्त लोकोंके प्रलयका समय उपस्थित हुआ-सा जान पड़ता था॥ १९॥

राक्षसराज रावण भी इन्द्रकी अशनिके सदृश अपने धनुषको खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा, इससे आकाश ठसाठस भर गया—उसमें तिलभर भी खाली जगह नहीं रह गयी॥ २०॥

उसने चार बाण मारकर मृत्युको और सात बाणोंसे यमके सारथिको भी पीड़ित कर दिया। फिर जल्दी-जल्दी लाख बाण मारकर यमराजके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी॥ २१॥

तब यमराजके क्रोधकी सीमा न रही। उनके मुखसे वह रोष अग्नि बनकर प्रकट हुआ। वह आग ज्वालामालाओंसे मण्डित, श्वासवायुसे संयुक्त तथा धूमसे आच्छन्न दिखायी देती थी॥ २२॥

देवताओं तथा दानवोंके समीप यह आश्चर्यजनक घटना देखकर रोषावेशसे भरे हुए मृत्यु एवं कालको बड़ा हर्ष हुआ॥ २३॥

तत्पश्चात् मृत्युदेवने अत्यन्त कुपित होकर वैवस्वत यमसे कहा—'आप मुझे छोड़िये—आज्ञा दीजिये, मैं समराङ्गणमें इस पापी राक्षसको अभी मारे डालता हूँ॥

'महाराज! यह मेरी स्वभावसिद्ध मर्यादा है कि मुझसे भिड़कर यह राक्षस जीवित नहीं रह सकता। श्रीमान् हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसन्दि, धूमकेतु, विरोचनकुमार बलि, शम्भु नामक दैत्य, महाराज वृत्र तथा बाणासुर, कितने ही शास्त्रवेत्ता राजर्षि, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, सर्प, दैत्य, यक्ष, अप्सराओंके समुदाय, युगान्तकालमें समुद्रों, पर्वतों, सरिताओं और वृक्षोंसहित पृथ्वी—ये सब मेरे द्वारा क्षयको प्राप्त हुए हैं। ये तथा दूसरे बहुतेरे बलवान् एवं दुर्जय वीर भी मेरे द्वारा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं, फिर यह निशाचर किस गिनतीमें है?॥ २५—२९॥

'धर्मज्ञ! आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं इसे अवश्य मार डालूँगा। जिसे मैं देख लूँ, वह कोई बलवान् होनेपर भी जीवित नहीं रह सकता॥ ३०॥

'काल! मेरी दृष्टि पड़नेपर वह रावण दो घड़ी भी जीवन धारण नहीं कर सकेगा। मेरे इस कथनका तात्पर्य केवल अपने बलको प्रकाशित करना मात्र नहीं है; अपितु यह स्वभावसिद्ध मर्यादा है'॥ ३१॥

'मृत्युकी यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उससे कहा—'तुम ठहरो, मैं ही इसे मारे डालता हूँ'॥ ३२॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें करके सामर्थ्यशाली वैवस्वत यमने अपने अमोघ कालदण्डको हाथसे उठाया॥

उस कालदण्डके पार्श्वभागोंमें कालपाश प्रतिष्ठित थे और वज्र एवं अग्नितुल्य तेजस्वी मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर स्थित था॥ ३४॥

वह कालदण्ड दृष्टिमें आनेमात्रसे प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण कर लेता था। फिर जिससे उसका स्पर्श हो जाय अथवा जिसके ऊपर उसकी मार पड़े, उस पुरुषके प्राणोंका संहार करना उसके लिये कौन बड़ी बात है?॥ ३५॥

ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह कालदण्ड उस राक्षसको दग्ध-सा कर देनेके लिये उद्यत था। बलवान् यमराजके हाथमें लिया हुआ वह महान् आयुध अपने तेजसे प्रकाशित हो उठा॥ ३६॥

उसके उठते ही समराङ्गणमें खड़े हुए समस्त सैनिक

भयभीत होकर भाग चले। कालदण्ड उठाये यमराजको देखकर समस्त देवता भी क्षुब्ध हो उठे॥ ३७॥

यमराज उस दण्डसे रावणपर प्रहार करना ही चाहते थे कि साक्षात् पितामह ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दर्शन देकर इस प्रकार कहा—॥ ३८॥

'अमित पराक्रमी महाबाहु वैवस्वत! तुम इस कालदण्डके द्वारा निशाचर रावणका वध न करो॥ ३९॥

'देवप्रवर! मैंने इसे देवताओंद्वारा न मारे जा सकनेका वर दिया है। मेरे मुँहसे जो बात निकल चुकी है, उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

'जो देवता अथवा मनुष्य मुझे असत्यवादी बना देगा, उसे समस्त त्रिलोकीको मिथ्याभाषी बनानेका दोष लगेगा, इसमें संशय नहीं है॥ ४१॥

'यह कालदण्ड तीनों लोकोंके लिये भयंकर तथा रौद्र है। तुम्हारे द्वारा क्रोधपूर्वक छोड़ा जानेपर यह प्रिय और अप्रिय जनोंमें भेदभाव न रखता हुआ सामने पड़ी हुई समस्त प्रजाका संहार कर डालेगा॥ ४२॥

'इस अमित तेजस्वी कालदण्डको भी पूर्वकालमें मैंने ही बनाया था। यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता है। इसके प्रहारसे सबकी मृत्यु हो जाती है॥ ४३॥

'अतः सौम्य! तुम इसे रावणके मस्तकपर न गिराओ। इसकी मार पड़नेपर कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता॥ ४४॥

'कालदण्ड पड़नेपर यदि यह राक्षस रावण न मरा तो अथवा मर गया तो—दोनों ही दशाओंमें मेरी बात असत्य होगी॥ ४५॥

'इसलिये हाथमें उठाये हुए इस कालदण्डको तुम लङ्कापति रावणकी ओरसे हटा लो। यदि समस्त लोकोंपर तुम्हारी दृष्टि है तो आज रावणकी रक्षा करके मुझे सत्यवादी बनाओ'॥ ४६॥

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा यमराजने उत्तर दिया—'यदि ऐसी बात है तो लीजिये मैंने इस दण्डको हटा लिया। आप हम सब लोगोंके प्रभु हैं (अतः आपकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है)॥ ४७॥

'परंतु वरदानसे युक्त होनेके कारण यदि मेरे द्वारा इस निशाचरका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध करके ही मैं क्या करूँगा?॥ ४८॥

'इसलिये अब मैं इसकी दृष्टिसे ओझल होता हूँ, यों कहकर यमराज रथ और घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ४९॥

इस प्रकार यमराजको जीतकर अपने नामकी घोषणा करके दशग्रीव रावण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो यमलोकसे चला गया॥ ५०॥

तदनन्तर सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदजी ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें गये॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ सर्ग

रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) देवेश्वर यमको पराजित करके युद्धका हौसला रखनेवाला दशग्रीव रावण अपने सहायकोंसे मिला॥ १॥

उसके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे और प्रहारोंसे जर्जर हो गये थे। इस अवस्थामें रावणको देखकर उन राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ २॥

'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर रावणकी अभ्युदयकामना करके वे मारीच आदि सब राक्षस पुष्पकविमानपर बैठे। उस समय रावणने उन सबको सान्त्वना दी॥ ३॥

तदनन्तर वह राक्षस रसातलमें जानेकी इच्छासे दैत्यों और नागोंसे सेवित तथा वरुणके द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्रमें प्रविष्ट हुआ॥ ४॥

नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवती पुरीमें प्रवेश करके उसने नागोंको अपने वशमें कर लिया और वहाँसे हर्षपूर्वक मणिमयीपुरीको प्रस्थान किया॥ ५॥

उस पुरीमें निवातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त थे। उस राक्षसने वहाँ जाकर उन सबको युद्धके लिये ललकारा॥ ६॥

वे सब दैत्य बड़े पराक्रमी और बलशाली थे। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा युद्धके लिये सदा उत्साहित एवं उन्मत्त रहते थे॥ ७॥

उनका राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ हो गया। वे राक्षस और दानव कुपित हो एक-दूसरेको शूल, त्रिशूल, वज्र, पट्टिश, खड्ग और फरसोंसे घायल करने लगे॥ ८॥

उनके युद्ध करते हुए एक वर्षसे अधिक समय

व्यतीत हो गया; किंतु उनमेंसे किसी भी पक्षकी विजय या पराजय नहीं हुई॥ ९॥

तब त्रिभुवनके आश्रयभूत अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्मा एक उत्तम विमानपर बैठकर वहाँ शीघ्र आये॥ १०॥

बूढ़े पितामहने निवातकवचोंके उस युद्ध-कर्मको रोक दिया और उनसे स्पष्ट शब्दोंमें यह बात कही—॥

'दानवो! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें इस रावणको परास्त नहीं कर सकते। इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगोंका संहार नहीं कर सकते॥ १२॥

'(तुम दोनोंमें वरदानजनित शक्ति एक-सी है) इसलिये मुझे तो यह अच्छा लगता है कि तुमलोगोंके साथ इस राक्षसकी मैत्री हो जाय; क्योंकि सुहृदोंके सभी अर्थ (भोग्य-पदार्थ) एक-दूसरेके लिये समान होते हैं—पृथक्-पृथक् बँटे नहीं रहते हैं। नि:संदेह ऐसी ही बात है'॥ १३॥

तब वहाँ रावणने अग्निको साक्षी बनाकर निवातकवचोंके साथ मित्रता कर ली। इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १४॥

फिर निवातकवचोंसे उचित आदर पाकर वह एक वर्षतक वहीं टिका रहा। उस स्थानपर दशाननको अपने नगरके समान ही प्रिय भोग प्राप्त हुए॥ १५॥

उसने निवातकवचोंसे सौ प्रकारकी मायाओंका ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद वह वरुणके नगरका पता लगाता हुआ रसातलमें सब ओर घूमने लगा॥ १६॥

घूमते-घूमते वह अश्म नामक नगरमें जा पहुँचा, जहाँ कालकेय नामक दानव निवास करते थे। कालकेय बड़े बलवान् थे। रावणने वहाँ उन सबका संहार करके शूर्पणखाके पति उत्कट बलशाली अपने बहनोई महाबली विद्युज्जिह्वको, जो उस राक्षसको समराङ्गणमें चाट जाना चाहता था, तलवारसे काट डाला॥ १७-१८½॥

उसे परास्त करके रावणने दो ही घड़ीमें चार सौ दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया। तत्पश्चात् उस राक्षसराजने वरुणका दिव्य भवन देखा, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल और कैलास पर्वतके समान प्रकाशमान था॥ १९-२०॥

वहीं सुरभि नामकी गौ भी खड़ी थी, जिसके थनोंसे दूध झर रहा था। कहते हैं, सुरभिके ही दूधकी धारासे क्षीरसागर भरा हुआ है॥ २१॥

रावणने महादेवजीके वाहनभूत महावृषभकी जननी सुरभिदेवीका दर्शन किया, जिससे शीतल किरणोंवाले निशाकर चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ है (सुरभिसे क्षीरसमुद्र और क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है)॥ २२॥

उन्हीं चन्द्रदेवके उत्पत्तिस्थान क्षीरसमुद्रका आश्रय लेकर फेन पीनेवाले महर्षि जीवन धारण करते हैं। उस क्षीरसागरसे ही सुधा तथा स्वधाभोजी पितरोंकी स्वधा प्रकट हुई है॥ २३॥

लोकमें जिनको सुरभि नामसे पुकारा जाता है, उन परम अद्भुत गोमाताकी परिक्रमा करके रावणने नाना प्रकारकी सेनाओंसे सुरक्षित महाभयंकर वरुणालयमें प्रवेश किया॥ २४॥

वहाँ प्रवेश करके उसने वरुणके उत्तम भवनको देखा, जो सदा ही आनन्दमय उत्सवसे परिपूर्ण, अनेक जलधाराओं (फौवारों)-से व्याप्त तथा शरत्कालके बादलोंके समान उज्ज्वल था॥ २५॥

तदनन्तर वरुणके सेनापतियोंने समरभूमिमें रावणपर प्रहार किया। फिर रावणने भी उन सबको घायल करके वहाँके योद्धाओंसे कहा—'तुमलोग राजा वरुणसे शीघ्र जाकर मेरी यह बात कहो—॥ २६॥

'राजन्! राक्षसराज रावण युद्धके लिये आया है, आप चलकर उससे युद्ध कीजिये अथवा हाथ जोड़कर अपनी पराजय स्वीकार कीजिये। फिर आपको कोई भय नहीं रहेगा'॥ २७॥

इसी बीचमें सूचना पाकर महात्मा वरुणके पुत्र और पौत्र क्रोधसे भरे हुए निकले। उनके साथ 'गौ' और 'पुष्कर' नामक सेनाध्यक्ष भी थे॥ २८॥

वे सब-के-सब सर्वगुणसम्पन्न तथा उगते हुए सूर्यके तुल्य तेजस्वी थे। इच्छानुसार चलनेवाले रथोंपर आरूढ़ हो अपनी सेनाओंसे घिरकर वे वहाँ युद्धस्थलमें आये॥ २९॥

फिर तो वरुणके पुत्रों और बुद्धिमान् रावणमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥

राक्षस दशग्रीवके महापराक्रमी मन्त्रियोंने एक ही क्षणमें वरुणकी सारी सेनाको मार गिराया॥ ३१॥

युद्धमें अपनी सेनाकी यह अवस्था देख वरुणके पुत्र उस समय बाण-समूहोंसे पीड़ित होनेके कारण कुछ देरके लिये युद्ध-कर्मसे हट गये॥ ३२॥

भूतलपर स्थित होकर उन्होंने जब रावणको पुष्पक-विमानपर बैठा देखा, तब वे भी शीघ्रगामी

रथोंद्वारा तुरंत ही आकाशमें जा पहुँचे॥ ३३॥

अब बराबरका स्थान मिल जानेसे रावणके साथ उनका भारी युद्ध छिड़ गया। उनका वह आकाश-युद्ध देव-दानव-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था॥ ३४॥

उन वरुण-पुत्रोंने अपने अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें रावणको विमुख करके बड़े हर्षके साथ नाना प्रकारके स्वरोंमें महान् सिंहनाद किया॥ ३५॥

राजा रावणको तिरस्कृत हुआ देख महोदरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने मृत्युका भय छोड़कर युद्धकी इच्छासे वरुण-पुत्रोंकी ओर देखा॥ ३६॥

वरुणके घोड़े युद्धमें हवासे बातें करनेवाले थे और स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलते थे। महोदरने उनपर गदासे आघात किया। गदाकी चोट खाकर वे घोड़े धराशायी हो गये॥ ३७॥

वरुण-पुत्रोंके योद्धाओं और घोड़ोंको मारकर उन्हें रथहीन हुआ देख महोदर तुरंत ही जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ३८॥

महोदरकी गदाके आघातसे वरुण-पुत्रोंके वे रथ घोड़ों और श्रेष्ठ सारथियोंसहित चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३९॥

महात्मा वरुणके वे शूरवीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर अपने ही प्रभावसे आकाशमें खड़े हो गये। उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई॥ ४०॥

उन्होंने धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और महोदरको क्षत-विक्षत करके एक साथ कुपित हो रावणको घेर लिया॥ ४१॥

फिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान धनुषसे छूटे हुए वज्र-तुल्य भयंकर सायकोंद्वारा रावणको विदीर्ण करने लगे॥ ४२॥

यह देख दशग्रीव प्रलयकालकी अग्निके समान रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उन वरुण-पुत्रोंके मर्मस्थानोंपर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४३॥

पुष्पकविमानपर बैठे हुए उस दुर्धर्ष वीरने उन सबके ऊपर विचित्र मूसलों, सैकड़ों भल्लों, पट्टिशों, शक्तियों और बड़ी-बड़ी शतघ्नियोंका प्रहार किया॥ ४४ $\frac{1}{2}$ ॥

उन अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल हो वे पैदल वीर पुनः युद्धके लिये आगे बढ़े; परंतु पैदल होनेके कारण रावणकी उस अस्त्र-वर्षासे ही सहसा संकटमें पड़कर बड़ी भारी कीचड़में फँसे हुए साठ वर्षके हाथीके समान कष्ट पाने लगे॥ ४५-४६॥

वरुणके पुत्रोंको दुःखी एवं व्याकुल देख महाबली रावण महान् मेघके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा॥ ४७॥

जोर-जोरसे सिंहनाद करके वह निशाचर पुनः नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वरुण-पुत्रोंको मारने लगा, मानो बादल अपनी धारावाहिक वृष्टिसे वृक्षोंको पीड़ित कर रहा हो॥ ४८॥

फिर तो वे सभी वरुण-पुत्र युद्धसे विमुख हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तत्पश्चात् उनके सेवकोंने उन्हें रणभूमिसे हटाकर शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया॥ ४९॥

तदनन्तर उस राक्षसने वरुणके सेवकोंसे कहा—'अब वरुणसे जाकर कहो कि वे स्वयं युद्धके लिये आवें'। तब वरुणके मन्त्री प्रभासने रावणसे कहा— ॥ ५०॥

'राक्षसराज! जिन्हें तुम युद्धके लिये बुला रहे हो, वे जलके स्वामी महाराज वरुण संगीत सुननेके लिये ब्रह्मलोकमें गये हुए हैं॥ ५१॥

'वीर! राजा वरुणके चले जानेपर यहाँ युद्धके लिये व्यर्थ परिश्रम करनेसे तुम्हें क्या लाभ? उनके जो वीर पुत्र यहाँ मौजूद थे, वे तो तुमसे परास्त हो ही गये'॥

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण वहाँ अपने नामकी घोषणा करके बड़े हर्षसे सिंहनाद करता हुआ वरुणालयसे बाहर निकल गया॥ ५३॥

वह जिस मार्गसे आया था, उसीसे लौटकर आकाशमार्गसे लङ्काकी ओर चल दिया॥ ५४॥*

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

* कुछ प्रतियोंमें तेईसवें सर्गके बाद पाँच प्रक्षिप्त सर्ग उपलब्ध होते हैं, जिनमें रावणकी दिग्विजय-यात्राका विस्तारपूर्वक वर्णन है। अनावश्यक विस्तारके भयसे यहाँ उनको नहीं लिया गया है।

चौबीसवाँ सर्ग

रावणद्वारा अपहृत हुई देवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका विलाप एवं शाप, रावणका रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना

लौटते समय दुरात्मा रावण बड़े हर्षमें भरा था। उसने मार्गमें अनेकानेक नरेशों, ऋषियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याओंका अपहरण किया॥ १॥

वह राक्षस जिस कन्या अथवा स्त्रीको दर्शनीय रूप-सौन्दर्यसे युक्त देखता, उसके रक्षक बन्धुजनोंका वध करके उसे विमानपर बिठाकर रोक लेता था॥ २॥

इस प्रकार उसने नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, यक्षों और दानवोंकी भी बहुत-सी कन्याओंको हरकर विमानपर चढ़ा लिया॥ ३॥

उन सबने एक साथ ही दुःखके कारण नेत्रोंसे आँसू बहाना आरम्भ किया। शोकाग्नि और भयसे प्रकट होनेवाले उनके आँसुओंकी एक-एक बूँद वहाँ आगकी चिनगारी-सी जान पड़ती थी॥ ४॥

जैसे नदियाँ सागरको भरती हैं, उसी प्रकार उन समस्त सुन्दरियोंने भय और शोकसे उत्पन्न हुए अमङ्गलजनक अश्रुओंसे उस विमानको भर दिया॥ ५॥

नागों, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवोंकी सैकड़ों कन्याएँ उस विमानपर रो रही थीं॥ ६॥

उनके केश बड़े-बड़े थे। सभी अङ्ग सुन्दर एवं मनोहर थे। उनके मुखकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी छबिको लज्जित करती थी। उरोजोंके तटप्रान्त उभरे हुए थे। शरीरका मध्यभाग हीरेके चबूतरेके समान प्रकाशित होता था। नितम्ब-देश रथके कूबर-जैसे जान पड़ते थे और उनके कारण उनकी मनोहरता बढ़ रही थी। वे सभी स्त्रियाँ देवाङ्गनाओंके समान कान्तिमती और तपाये हुए सुवर्णके समान सुनहरी आभासे उद्भासित होती थीं॥ ७-८॥

सुन्दर मध्यभागवाली वे सभी सुन्दरियाँ शोक, दुःख और भयसे त्रस्त एवं विह्वल थीं। उनकी गरम-गरम निःश्वासवायुसे वह पुष्पकविमान सब ओरसे प्रज्वलित-सा हो रहा था और जिसके भीतर अग्निकी स्थापना की गयी हो, उस अग्निहोत्रगृहके समान जान पड़ता था॥ ९½॥

दशग्रीवके वशमें पड़ी हुई वे शोकाकुल अबलाएँ सिंहके पंजेमें पड़ी हुई हरिणियोंके समान दुःखी हो रही थीं। उनके मुख और नेत्रोंमें दीनता छा रही थी और उन सबकी अवस्था सोलह वर्षके लगभग थी॥ १०½॥

कोई सोचती थी, क्या यह राक्षस मुझे खा जायगा? कोई अत्यन्त दुःखसे आर्त हो इस चिन्तामें पड़ी थी कि क्या यह निशाचर मुझे मार डालेगा?॥ ११½॥

वे स्त्रियाँ माता, पिता, भाई तथा पतिकी याद करके दुःखशोकमें डूब जातीं और एक साथ करुणाजनक विलाप करने लगती थीं॥ १२½॥

'हाय! मेरे बिना मेरा नन्हा-सा बेटा कैसे रहेगा। मेरी माँकी क्या दशा होगी और मेरे भाई कितने चिन्तित होंगे' ऐसा कहकर वे शोकके सागरमें डूब जाती थीं॥

'हाय! अपने उन पतिदेवसे बिछुड़कर मैं क्या करूँगी? (कैसे रहूँगी)। हे मृत्युदेव! मेरी प्रार्थना है कि तुम प्रसन्न हो जाओ और मुझ दुखियाको इस लोकसे उठा ले चलो। हाय! पूर्व-जन्ममें दूसरे शरीरद्वारा हमने कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे हम सब-की-सब दुःखसे पीड़ित हो शोकके समुद्रमें गिर पड़ी हैं। निश्चय ही इस समय हमें अपने इस दुःखका अन्त होता नहीं दिखायी देता॥ १४—१६॥

'अहो! इस मनुष्यलोकको धिक्कार है! इससे बढ़कर अधम दूसरा कोई लोक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ इस बलवान् रावणने हमारे दुर्बल पतियोंको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव उदय लेनेके साथ ही नक्षत्रोंको अदृश्य कर देते हैं॥ १७½॥

'अहो! यह अत्यन्त बलवान् राक्षस वधके उपायोंमें ही आसक्त रहता है। अहो! यह पापी दुराचारके पथपर चलकर भी अपने-आपको धिक्कारता नहीं है॥ १८½॥

'इस दुरात्माका पराक्रम इसकी तपस्याके सर्वथा अनुरूप है, परंतु यह परायी स्त्रियोंके साथ जो बलात्कार कर रहा है, यह दुष्कर्म इसके योग्य कदापि नहीं है॥

'यह नीच निशाचर परायी स्त्रियोंके साथ रमण करता है, इसलिये स्त्रीके कारण ही इस दुर्बुद्धि राक्षसका वध होगा'॥ २०½॥

उन श्रेष्ठ सती-साध्वी नारियोंने जब ऐसी बातें कह दीं, उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ २१½॥

पतिव्रता साध्वी स्त्रियोंके इस तरह शाप देनेपर रावणकी शक्ति घट गयी, वह निस्तेज-सा हो गया और उसके मनमें उद्वेग-सा होने लगा॥ २२½॥

इस प्रकार उनका विलाप सुनते हुए राक्षसराज रावणने निशाचरोंद्वारा सत्कृत हो लङ्कापुरीमें प्रवेश किया॥ २३½ ॥

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी शूर्पणखा, जो रावणकी बहिन थी, सहसा सामने आकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २४½ ॥

रावणने अपनी उस बहिनको उठाकर सान्त्वना दी और पूछा—'भद्रे! तुम अभी मुझसे शीघ्रतापूर्वक कौन-सी बात कहना चाहती थी?'॥ २५½ ॥

शूर्पणखाके नेत्रोंमें आँसू भरे थे, उसकी आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं। वह बोली—'राजन्! तुम बलवान् हो, इसीलिये न तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है?॥ २६½ ॥

'राक्षसराज! तुमने रणभूमिमें अपने बल-पराक्रमसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध कर दिया है॥ २७½ ॥

'तात! उन्हींमें मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर आदरणीय मेरे महाबली पति भी थे। तुमने उन्हें भी मार डाला। तुम नाममात्रके भाई हो। वास्तवमें मेरे शत्रु निकले!॥ २८½ ॥

'राजन्! सगे भाई होकर भी तुमने स्वयं ही अपने हाथों मेरा (मेरे पतिदेवका) वध कर डाला। अब तुम्हारे कारण मैं 'वैधव्य' शब्दका उपभोग करूँगी—विधवा कहलाऊँगी॥ २९½ ॥

'भैया! तुम मेरे पिताके तुल्य हो। मेरे पति तुम्हारे दामाद थे, क्या तुम्हें युद्धमें अपने दामाद या बहनोईकी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये थी? तुमने स्वयं ही युद्धमें अपने दामादका वध किया है; क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती?'॥ ३०½ ॥

रोती और कोसती हुई बहिनके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उसे सान्त्वना देकर समझाते हुए मधुर वाणीमें कहा— ॥ ३१½ ॥

'बेटी! अब रोना व्यर्थ है, तुम्हें किसी तरह भयभीत नहीं होना चाहिये। मैं दान, मान और अनुग्रहद्वारा यत्नपूर्वक तुम्हें संतुष्ट करूँगा॥ ३२½ ॥

'मैं युद्धमें उन्मत्त हो गया था, मेरा चित्त ठिकाने नहीं था, मुझे केवल विजय पानेकी धुन थी, इसलिये लगातार बाण चलाता रहा। समराङ्गणमें जूझते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रह जाता था। मैं रणोन्मत्त होकर प्रहार कर रहा था, इसलिये 'दामाद' को पहचान न सका॥ ३३-३४॥

'बहिन! यही कारण है जिससे युद्धमें तुम्हारे पति मेरे हाथसे मारे गये। अब इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसके अनुसार मैं सदा तुम्हारे हितका ही साधन करूँगा॥ ३५ ॥

'तुम ऐश्वर्यशाली भाई खरके पास चलकर रहो। तुम्हारा भाई महाबली खर चौदह हजार राक्षसोंका अधिपति होगा। वह उन सबको जहाँ चाहेगा भेजेगा और उन सबको अन्न, पान एवं वस्त्र देनेमें समर्थ होगा॥ ३६½ ॥

'यह तुम्हारा मौसेरा भाई निशाचर खर सब कुछ करनेमें समर्थ है और आदेशका सदा पालन करता रहेगा॥ ३७½ ॥

'यह वीर (मेरी आज्ञासे) शीघ्र ही दण्डकारण्यकी रक्षामें जानेवाला है; महाबली दूषण इसका सेनापति होगा॥ ३८½ ॥

'वहाँ शूरवीर खर सदा तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंका स्वामी होगा'॥ ३९½ ॥

ऐसा कहकर दशग्रीवने चौदह हजार पराक्रमशाली राक्षसोंकी सेनाको खरके साथ जानेकी आज्ञा दी। उन भयङ्कर राक्षसोंसे घिरा हुआ खर शीघ्र ही दण्डकारण्यमें आया और निर्भय होकर वहाँका अकण्टक राज्य भोगने लगा। उसके साथ शूर्पणखा भी वहाँ दण्डकवनमें रहने लगी॥ ४०—४२

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ सर्ग

यज्ञोंद्वारा मेघनादकी सफलता, विभीषणका रावणको पर-स्त्री-हरणके दोष बताना, कुम्भीनसीको आश्वासन दे मधुको साथ ले रावणका देवलोकपर आक्रमण करना

खरको राक्षसोंकी भयङ्कर सेना देकर और बहिनको धीरज बँधाकर रावण बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थचित्त हो गया॥ १ ॥

तदनन्तर बलवान् राक्षसराज रावण लङ्काके निकुम्भिला नामक उत्तम उपवनमें गया। उसके साथ बहुत-से सेवक भी थे॥ २ ॥

रावण अपनी शोभा एवं तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसने निकुम्भिलामें पहुँचकर देखा, एक यज्ञ हो रहा है, जो सैकड़ों यूपोंसे व्याप्त और सुन्दर देवालयोंसे सुशोभित है॥ ३॥

फिर वहाँ उसने अपने पुत्र मेघनादको देखा, जो काला मृगचर्म पहने हुए तथा कमण्डलु, शिखा और ध्वज धारण किये बड़ा भयङ्कर जान पड़ता था॥ ४॥

उसके पास पहुँचकर लङ्केश्वरने अपनी भुजाओंद्वारा उसका आलिङ्गन किया और पूछा—'बेटा! यह क्या कर रहे हो? ठीक-ठीक बताओ'॥ ५॥

(मेघनाद यज्ञके नियमानुसार मौन रहा) उस समय पुरोहित महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने, जो यज्ञ-सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये वहाँ आये थे, राक्षसशिरोमणि रावणसे कहा—॥ ६॥

'राजन्! मैं सब बातें बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—आपके पुत्रने बड़े विस्तारके साथ सात यज्ञोंका अनुष्ठान किया है॥ ७॥

'अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव—ये छः यज्ञ पूर्ण करके जब इसने सातवाँ माहेश्वर यज्ञ, जिसका अनुष्ठान दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आरम्भ किया, तब आपके इस पुत्रको साक्षात् भगवान् पशुपतिसे बहुत-से वर प्राप्त हुए॥ ८-९॥

'साथ ही इच्छानुसार चलनेवाला एक दिव्य आकाशचारी रथ भी प्राप्त हुआ है, इसके सिवा तामसी नामकी माया उत्पन्न हुई है, जिससे अन्धकार उत्पन्न किया जाता है॥ १०॥

'राक्षसेश्वर! संग्राममें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी प्रयोग करनेवाले पुरुषकी गतिविधिका पता नहीं लग सकता॥ ११॥

'राजन्! बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तरकस, अटूट धनुष तथा रणभूमिमें शत्रुका विध्वंस करनेवाला प्रबल अस्त्र—इन सबकी प्राप्ति हुई है॥ १२॥

'दशानन! तुम्हारा यह पुत्र इन सभी मनोवाञ्छित वरोंको पाकर आज यज्ञकी समाप्तिके दिन तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ खड़ा है'॥ १३॥

यह सुनकर दशग्रीवने कहा—'बेटा! तुमने यह अच्छा नहीं किया है; क्योंकि इस यज्ञसम्बन्धी द्रव्योंद्वारा मेरे शत्रुभूत इन्द्र आदि देवताओंका पूजन हुआ है॥ १४॥

'अस्तु, जो कर दिया, सो अच्छा ही किया; इसमें संशय नहीं है। सौम्य! अब आओ, चलो। हमलोग अपने घरको चलें'॥ १५॥

तदनन्तर दशग्रीवने अपने पुत्र और विभीषणके साथ जाकर पुष्पकविमानसे उन सब स्त्रियोंको उतारा, जिन्हें हरकर ले आया था। वे अब भी आँसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे विलाप कर रही थीं॥ १६॥

वे उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित होती थीं और देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंके घरकी रत्न थीं। उनमें रावणकी आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने कहा—॥ १७॥

'राजन्! ये आचरण यश, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं। इनके द्वारा जो प्राणियोंको पीड़ा दी जाती है, उससे बड़ा पाप होता है। इस बातको जानते हुए भी आप सदाचारका उल्लङ्घन करके स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो रहे हैं॥ १८॥

'महाराज! इन बेचारी अबलाओंके बन्धु-बान्धवोंको मारकर आप इन्हें हर लाये हैं और इधर आपका उल्लङ्घन करके—आपके सिरपर लात रखकर मधुने मौसेरी बहिन कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया'॥ १९॥

रावण बोला—'मैं नहीं समझता कि तुम क्या कह रहे हो। जिसका नाम तुमने मधु बताया है, वह कौन है?'॥

तब विभीषणने अत्यन्त कुपित होकर भाई रावणसे कहा—'सुनिये, आपके इस पापकर्मका फल हमें बहिनके अपहरणके रूपमें प्राप्त हुआ है॥ २१॥

'हमारे नाना सुमालीके जो बड़े भाई माल्यवान् नामसे विख्यात, बुद्धिमान् और बड़े-बूढ़े निशाचर हैं, वे हमारी माता कैकसीके ताऊ हैं। इसी नाते वे हमलोगोंके भी बड़े नाना हैं। उनकी पुत्री अनला हमारी मौसी हैं। उन्हींकी पुत्री कुम्भीनसी है। हमारी मौसी अनलाकी बेटी होनेसे ही यह कुम्भीनसी हम सब भाइयोंकी धर्मतः बहिन होती है॥ २२—२४॥

'राजन्! आपका पुत्र मेघनाद जब यज्ञमें तत्पर हो गया, मैं तपस्याके लिये पानीके भीतर रहने लगा और महाराज! भैया कुम्भकर्ण भी जब नींदका आनन्द लेने लगे, उस समय महाबली राक्षस मधुने यहाँ आकर हमारे आदरणीय मन्त्रियोंको, जो राक्षसोंमें श्रेष्ठ थे, मार डाला और कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया॥ २५-२६॥

'महाराज! यद्यपि कुम्भीनसी अन्तःपुरमें भलीभाँति सुरक्षित थी तो भी उसने आक्रमण करके बलपूर्वक उसका अपहरण किया। पीछे इस घटनाको सुनकर भी हमलोगोंने क्षमा ही की। मधुका वध नहीं किया; क्योंकि जब कन्या विवाहके योग्य हो जाय तो उसे किसी योग्य पतिके हाथमें सौंप देना ही उचित है। हम भाइयोंको अवश्य यह कार्य पहले कर देना चाहिये था॥ २७½॥

'हमारे यहाँसे जो बलपूर्वक कन्याका अपहरण हुआ है, यह आपकी इस दूषित बुद्धि एवं पापकर्मका फल है, जो आपको इसी लोकमें प्राप्त हो गया। यह बात आपको भलीभाँति विदित हो जानी चाहिये'॥ २८½ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण अपनी की हुई दुष्टतासे पीड़ित हो तपे हुए जलवाले समुद्रके समान संतप्त हो उठा। वह रोषसे जलने लगा और उसके नेत्र लाल हो गये। वह बोला— ॥ २९-३० ॥

'मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर आवश्यक सामग्रीसे सुसज्जित कर दिया जाय। मेरे शूरवीर सैनिक रणयात्राके लिये तैयार हो जायँ। भाई कुम्भकर्ण तथा अन्य मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सवारियोंपर बैठें। आज रावणका भय न माननेवाले मधुका समराङ्गणमें वध करके मित्रोंको साथ लिये युद्धकी इच्छासे देवलोककी यात्रा करूँगा'॥ ३१-३२½ ॥

रावणकी आज्ञासे युद्धमें उत्साह रखनेवाले श्रेष्ठ राक्षसोंकी चार हजार अक्षौहिणी सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये शीघ्र लङ्कासे बाहर निकली॥ ३३½ ॥

मेघनाद समस्त सैनिकोंको साथ लेकर सेनाके आगे-आगे चला। रावण बीचमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पीछे चलने लगा॥ ३४½ ॥

विभीषण धर्मात्मा थे। इसलिये वे लङ्कामें ही रहकर धर्मका आचरण करने लगे। शेष सभी महाभाग निशाचर मधुपुरकी ओर चल दिये॥ ३५½ ॥

गदहे, ऊँट, घोड़े, शिशुमार (सूँस) और बड़े-बड़े नाग आदि दीप्तिमान् वाहनोंपर आरूढ़ हो सब राक्षस आकाशको अवकाशरहित करते हुए चले॥ ३६½ ॥

रावणको देवलोकपर आक्रमण करते देख सैकड़ों दैत्य भी उसके पीछे-पीछे चले, जिनका देवताओंके साथ वैर बँध गया था॥ ३७½ ॥

मधुपुरमें पहुँचकर दशमुख रावणने वहाँ कुम्भीनसीको तो देखा, किंतु मधुका दर्शन उसे नहीं हुआ॥ ३८½ ॥

उस समय कुम्भीनसीने भयभीत हो हाथ जोड़कर राक्षसराजके चरणोंपर मस्तक रख दिया॥ ३९½ ॥

तब राक्षसप्रवर रावणने कहा—'डरो मत'; फिर उसने कुम्भीनसीको उठाया और कहा—'मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'॥ ४०½ ॥

वह बोली—'दूसरोंको मान देनेवाले राक्षसराज! महाबाहो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आज यहाँ मेरे पतिका वध न कीजिये; क्योंकि कुलवधुओंके लिये वैधव्यके समान दूसरा कोई भय नहीं बताया जाता है। वैधव्य ही नारीके लिये सबसे बड़ा भय और सबसे महान् संकट है॥ ४१-४२½ ॥

'राजेन्द्र! आप सत्यवादी हों—अपनी बात सच्ची करें। मैं आपसे पतिके जीवनकी भीख माँगती हूँ, आप मुझ दु:खिया बहिनकी ओर देखिये, मुझपर कृपा कीजिये। महाराज! आपने स्वयं भी मुझे आश्वासन देते हुए कहा था कि 'डरो मत।' अत: अपनी उसी बातकी लाज रखिये'॥ ४३½ ॥

यह सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। वह वहाँ खड़ी हुई अपनी बहिनसे बोला—'तुम्हारे पति कहाँ हैं? उन्हें शीघ्र मुझे सौंप दो। मैं उन्हें साथ लेकर देवलोकपर विजयके लिये जाऊँगा'॥ ४४-४५ ॥

'तुम्हारे प्रति करुणा और सौहार्दके कारण मैंने मधुके वधका विचार छोड़ दिया है।' रावणके ऐसा कहनेपर राक्षसकन्या कुम्भीनसी अत्यन्त प्रसन्न-सी होकर अपने सोये हुए पतिके पास गयी और उस निशाचरको उठाकर बोली— ॥ ४६½ ॥

'राक्षसप्रवर! ये मेरे भाई महाबली दशग्रीव पधारे हैं और देवलोकपर विजय पानेकी इच्छा लेकर वहाँ जा रहे हैं। इस कार्यके लिये ये आपको भी सहायक बनाना चाहते हैं; अत: आप अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ इनकी सहायताके लिये जाइये॥ ४७-४८ ॥

'मेरे नाते आपपर इनका स्नेह है, आपको जामाता मानकर ये आपके प्रति अनुराग रखते हैं; अत: आपको इनके कार्यकी सिद्धिके लिये अवश्य सहायता करनी चाहिये।' पत्नीकी यह बात सुनकर मधुने 'तथास्तु' कहकर सहायता देना स्वीकार कर लिया॥ ४९ ॥

फिर वह न्यायोचित रीतिसे निकट जाकर निशाचरशिरोमणि राक्षसराज रावणसे मिला। मिलकर उसने धर्मके अनुसार उसका स्वागत-सत्कार किया॥

मधुके भवनमें यथोचित आदर-सत्कार पाकर पराक्रमी दशग्रीव वहाँ एक रात रहा, फिर सबेरे उठकर वहाँसे जानेको उद्यत हुआ॥ ५१ ॥

मधुपुरसे यात्रा करके महेन्द्रके तुल्य पराक्रमी राक्षसराज रावण सायंकालतक कुबेरके निवास-स्थान कैलास पर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपनी सेनाका पड़ाव डालनेका विचार किया॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलकूबरका रावणको भयंकर शाप देना

जब सूर्य अस्ताचलको चले गये, तब पराक्रमी दशग्रीवने अपनी सेनाके साथ कैलासपर ही रातमें ठहर जाना ठीक समझा॥ १॥

(उसने वहीं छावनी डाल दी) फिर, कैलासके ही समान श्वेत कान्तिवाले निर्मल चन्द्रदेवका उदय हुआ और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित निशाचरोंकी वह विशाल सेना गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी॥ २॥

परंतु महापराक्रमी रावण उस पर्वतके शिखरपर चुपचाप बैठकर चन्द्रमाकी चाँदनीसे सुशोभित होनेवाले उस पर्वतके विभिन्न स्थानोंकी (जो सम्पूर्ण कामभोगके उपयुक्त थे) नैसर्गिक छटा निहारने लगा॥ ३॥

कहीं कनेरके दीप्तिमान् कानन शोभा पाते थे, कहीं कदम्ब और बकुल (मौलसिरी) वृक्षोंके समूह अपनी रमणीयता बिखेर रहे थे, कहीं मन्दाकिनीके जलसे भरी हुई और प्रफुल्ल कमलोंसे अलंकृत पुष्करिणियाँ शोभा दे रही थीं, कहीं चम्पा, अशोक, पुंनाग (नागकेसर), मन्दार, आम, पाड़र, लोध, प्रियङ्गु, अर्जुन, केतक, तगर, नारिकेल, प्रियाल और पनस आदि वृक्ष अपने पुष्प आदिकी शोभासे उस पर्वत-शिखरके वन्यप्रान्तको उद्भासित कर रहे थे॥ ४—६॥

मधुर कण्ठवाले कामार्त किन्नर अपनी कामिनियोंके साथ वहाँ रागयुक्त गीत गा रहे थे, जो कानोंमें पड़कर मनका आनन्द-वर्धन करते थे॥ ७॥

जिनके नेत्र-प्रान्त मदसे कुछ लाल हो गये थे, वे मदमत्त विद्याधर युवतियोंके साथ क्रीडा करते और हर्षमग्न होते थे॥ ८॥

वहाँसे कुबेरके भवनमें गाती हुई अप्सराओंके गीतकी मधुर ध्वनि घण्टानादके समान सुनायी पड़ती थी॥ ९॥

वसन्त-ऋतुके सभी पुष्पोंकी गन्धसे युक्त वृक्ष हवाके थपेड़े खाकर फूलोंकी वर्षा करते हुए उस समूचे पर्वतको सुवासित-सा कर रहे थे॥ १०॥

विविध कुसुमोंके मधुर मकरन्द तथा परागसे मिश्रित प्रचुर सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द बहती हुई सुखद वायु रावणकी काम-वासनाको बढ़ा रही थी॥ ११॥

सङ्गीतकी मीठी तान, भाँति-भाँतिके पुष्पोंकी समृद्धि, शीतल वायुका स्पर्श, पर्वतके (रमणीयता आदि) आकर्षक गुण, रजनीकी मधुवेला और चन्द्रमाका उदय—उद्दीपनके इन सभी उपकरणोंके कारण वह महापराक्रमी रावण कामके अधीन हो गया और बारम्बार लंबी साँस खींचकर चन्द्रमाकी ओर देखने लगा॥ १२-१३॥

इसी बीचमें समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ सुन्दरी, पूर्ण-चन्द्रमुखी रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो उस मार्गसे आ निकली॥ १४॥

उसके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था और केशपाशमें पारिजातके पुष्प गुँथे हुए थे। दिव्य पुष्पोंसे अपना शृङ्गार करके वह प्रिय-समागमरूप दिव्य उत्सवके लिये जा रही थी॥ १५॥

मनोहर नेत्र तथा काञ्चीकी लड़ियोंसे विभूषित पीन जघन-स्थलको वह रतिके उत्तम उपहारके रूपमें धारण किये हुए थी॥ १६॥

उसके कपोल आदिपर हरिचन्दनसे चित्र-रचना की गयी थी। वह छहों ऋतुओंमें होनेवाले नूतन पुष्पोंके आर्द्र हारोंसे विभूषित थी और अपनी अलौकिक कान्ति, शोभा, द्युति एवं कीर्तिसे युक्त हो उस समय दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी॥ १७॥

उसका मुख चन्द्रमाके समान मनोहर था और दोनों सुन्दर भौंहें कमान-सी दिखायी देती थीं। वह सजल जलधरके समान नील रंगकी साड़ीसे अपने अङ्गोंको ढके हुए थी॥ १८॥

उसकी जाँघोंका चढ़ाव-उतार हाथीकी सूँडके समान था। दोनों हाथ ऐसे कोमल थे, मानो (देहरूपी रसालकी डालके) नये-नये पल्लव हों। वह सेनाके बीचसे होकर जा रही थी, अतः रावणने उसे देख लिया॥ १९॥

देखते ही वह कामदेवके बाणोंका शिकार हो गया और खड़ा होकर उसने अन्यत्र जाती हुई रम्भाका हाथ पकड़ लिया। बेचारी अबला लाजसे गड़ गयी; परंतु वह निशाचर मुसकराता हुआ उससे बोला—॥ २०॥

'वरारोहे! कहाँ जा रही हो? किसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये स्वयं चल पड़ी हो? किसके भाग्योदयका समय आया है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा?॥ २१॥

'कमल और उत्पलकी सुगन्ध धारण करनेवाले तुम्हारे इस मनोहर मुखारविन्दका रस अमृतका भी अमृत है। आज इस अमृत-रसका आस्वादन करके कौन तृप्त होगा?॥ २२॥

'भीरु! परस्पर सटे हुए तुम्हारे ये सुवर्णमय

कलशोंके सदृश सुन्दर पीन उरोज किसके वक्ष:स्थलोंको अपना स्पर्श प्रदान करेंगे?॥ २३॥

'सोनेकी लड़ियोंसे विभूषित तथा सुवर्णमय चक्रके समान विपुल विस्तारसे युक्त तुम्हारे पीन जघनस्थलपर जो मूर्तिमान् स्वर्ग-सा जान पड़ता है, आज कौन आरोहण करेगा?॥ २४॥

'इन्द्र, उपेन्द्र अथवा अश्विनीकुमार ही क्यों न हों, इस समय कौन पुरुष मुझसे बढ़कर है? भीरु! तुम मुझे छोड़कर अन्यत्र जा रही हो, यह अच्छा नहीं है॥ २५॥

'स्थूल नितम्बवाली सुन्दरी! यह सुन्दर शिला है, इसपर बैठकर विश्राम करो। इस त्रिभुवनका जो स्वामी है, वह मुझसे भिन्न नहीं है—मैं ही सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हूँ॥ २६॥

'तीनों लोकोंके स्वामीका भी स्वामी तथा विधाता यह दशमुख रावण आज इस प्रकार विनीतभावसे हाथ जोड़कर तुमसे याचना करता है। सुन्दरी! मुझे स्वीकार करो'॥ २७॥

रावणके ऐसा कहनेपर रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़कर बोली—'प्रभो! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा कीजिये। आपको ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये; क्योंकि आप मेरे गुरुजन हैं—पिताके तुल्य हैं॥ २८॥

'यदि दूसरे कोई पुरुष मेरा तिरस्कार करनेपर उतारू हों तो उनसे भी आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मत: आपकी पुत्रवधू हूँ—यह आपसे सच्ची बात बता रही हूँ'॥ २९॥

रम्भा अपने चरणोंकी ओर देखती हुई नीचे मुँह किये खड़ी थी। रावणकी दृष्टि पड़नेमात्रसे भयके कारण उसके रोंगटे खड़े हो गये थे। उस समय उससे रावणने कहा—॥ ३०॥

'रम्भे! यदि यह सिद्ध हो जाय कि तुम मेरे बेटेकी बहू हो, तभी मेरी पुत्रवधू हो सकती हो, अन्यथा नहीं।' तब रम्भाने 'बहुत अच्छा' कहकर रावणको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१॥

'राक्षसशिरोमणे! धर्मके अनुसार मैं आपके पुत्रकी ही भार्या हूँ। आपके बड़े भाई कुबेरके पुत्र मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं॥ ३२॥

'वे तीनों लोकोंमें 'नलकूबर' नामसे विख्यात हैं तथा धर्मानुष्ठानकी दृष्टिसे ब्राह्मण और पराक्रमकी दृष्टिसे क्षत्रिय हैं॥ ३३॥

'वे क्रोधमें अग्नि और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं। उन्हीं लोकपालकुमार प्रियतम नलकूबरको आज मैंने मिलनेके लिये संकेत दिया है॥ ३४॥

'यह सारा शृङ्गार मैंने उन्हींके लिये धारण किया है; जैसे उनका मेरे प्रति अनुराग है, उसी प्रकार मेरा भी उन्हींके प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, दूसरे किसीके प्रति नहीं॥ ३५॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज! इस सत्यको दृष्टिमें रखकर आप इस समय मुझे छोड़ दीजिये; वे मेरे धर्मात्मा प्रियतम उत्सुक होकर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे॥ ३६॥

'उनकी सेवाके इस कार्यमें आपको यहाँ विघ्न नहीं डालना चाहिये। मुझे छोड़ दीजिये। राक्षसराज! आप सत्पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मके मार्गपर चलिये॥ ३७॥

'आप मेरे माननीय गुरुजन हैं, अत: आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये।' यह सुनकर दशग्रीवने उसे नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—॥ ३८॥

'रम्भे! तुम अपनेको जो मेरी पुत्रवधू बता रही हो, वह ठीक नहीं जान पड़ता। यह नाता-रिश्ता उन स्त्रियोंके लिये लागू होता है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हों। तुम्हारे देवलोककी तो स्थिति ही दूसरी है। वहाँ सदासे यही नियम चला आ रहा है कि अप्सराओंका कोई पति नहीं होता। वहाँ कोई एक स्त्रीके साथ विवाह करके नहीं रहता है'॥ ३९ $\frac{1}{2}$ ॥

ऐसा कहकर उस राक्षसने रम्भाको बलपूर्वक शिलापर बैठा लिया और कामभोगमें आसक्त हो उसके साथ समागम किया॥ ४० $\frac{1}{2}$ ॥

उसके पुष्पहार टूटकर गिर गये, सारे आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। उपभोगके बाद रावणने रम्भाको छोड़ दिया। उसकी दशा उस नदीके समान हो गयी जिसे किसी गजराजने क्रीडा करके मथ डाला हो; वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी॥ ४१ $\frac{1}{2}$ ॥

वेणी-बन्ध टूट जानेसे उसके खुले हुए केश हवामें उड़ने लगे—उसका शृङ्गार बिगड़ गया। कर-पल्लव काँपने लगे। वह ऐसी लगती थी—मानो फूलोंसे सुशोभित होनेवाली किसी लताको हवाने झकझोर दिया हो॥ ४२ $\frac{1}{2}$ ॥

लज्जा और भयसे काँपती हुई वह नलकूबरके पास गयी और हाथ जोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ी॥ ४३ $\frac{1}{2}$ ॥

रम्भाको इस अवस्थामें देखकर महामना नलकूबरने पूछा—'भद्रे! क्या बात है? तुम इस तरह मेरे पैरोंपर क्यों पड़ गयीं?'॥ ४४ $\frac{1}{2}$ ॥

वह थर-थर काँप रही थी। उसने लंबी साँस खींचकर हाथ जोड़ लिये और जो कुछ हुआ था, वह सब ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया—॥ ४५½ ॥

'देव! यह दशमुख रावण स्वर्गलोकपर आक्रमण करनेके लिये आया है। इसके साथ बहुत बड़ी सेना है। उसने आजकी रातमें यहीं डेरा डाला है॥ ४६½ ॥

'शत्रुदमन वीर! मैं आपके पास आ रही थी, किंतु उस राक्षसने मुझे देख लिया और मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर पूछा—'तुम किसकी स्त्री हो?'॥ ४७½ ॥

'मैंने उसे सब कुछ सच-सच बता दिया, किंतु उसका हृदय कामजनित मोहसे आक्रान्त था, इसलिये मेरी वह बात नहीं सुनी॥ ४८½ ॥

'देव! मैं बारम्बार प्रार्थना करती ही रह गयी कि प्रभो! मैं आपकी पुत्रवधू हूँ, मुझे छोड़ दीजिये; किंतु उसने मेरी सारी बातें अनसुनी कर दीं और बलपूर्वक मेरे साथ अत्याचार किया॥ ४९½ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले प्रियतम! इस बेबसीकी दशामें मुझसे जो अपराध बन गया है, उसे आप क्षमा करें। सौम्य! नारी अबला होती है, उसमें पुरुषके बराबर शारीरिक बल नहीं होता है (इसीलिये उस दुष्टसे अपनी रक्षा मैं नहीं कर सकी)'॥ ५०½ ॥

यह सुनकर वैश्रवणकुमार नलकूबरको बड़ा क्रोध हुआ। रम्भापर किये गये उस महान् अत्याचारको सुनकर उन्होंने ध्यान लगाया॥ ५१½ ॥

उस समय दो ही घड़ीमें रावणकी उस करतूतको जानकर वैश्रवणपुत्र नलकूबरके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने अपने हाथमें जल लिया॥ ५२½ ॥

जल लेकर पहले विधिपूर्वक आचमन करके नेत्र आदि सारी इन्द्रियोंका स्पर्श करनेके अनन्तर उन्होंने राक्षसराजको बड़ा भयंकर शाप दिया॥ ५३½ ॥

वे बोले—'भद्रे! तुम्हारी इच्छा न रहनेपर भी रावणने तुमपर बलपूर्वक अत्याचार किया है। अतः वह आजसे दूसरी किसी ऐसी युवतीसे समागम नहीं कर सकेगा जो उसे चाहती न हो॥ ५४½ ॥

'यदि वह कामपीड़ित होकर उसे न चाहनेवाली युवतीपर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जायँगे'॥ ५५½ ॥

नलकूबरके मुखसे प्रज्वलित अग्निके समान दग्ध कर देनेवाले इस शापके निकलते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ५६½ ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। रावणके द्वारा की गयी लोककी सारी दुर्दशाको और उस राक्षसकी मृत्युको भी जानकर ऋषियों तथा पितरोंको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ ५७-५८॥

उस रोमाञ्चकारी शापको सुनकर दशग्रीवने अपनेको न चाहनेवाली स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छोड़ दिया॥ ५९ ॥

वह जिन-जिन पतिव्रता स्त्रियोंको हरकर ले गया था, उन सबके मनको नलकूबरका दिया वह शाप बड़ा प्रिय लगा। उसे सुनकर वे सब-की-सब बहुत प्रसन्न हुईं॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना, भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा वसुके द्वारा सुमालीका वध

कैलास-पर्वतको पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण सेना और सवारियोंके साथ इन्द्रलोकमें जा पहुँचा॥

सब ओरसे आती हुई राक्षस-सेनाका कोलाहल देवलोकमें ऐसा जान पड़ता था, मानो महासागरके मथे जानेका शब्द प्रकट हो रहा हो॥ २॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसनसे उठ गये और अपने पास आये हुए समस्त देवताओंसे बोले—॥ ३॥

उन्होंने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों तथा मरुद्गणोंसे भी कहा—'तुम सब लोग दुरात्मा रावणके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ'॥ ४॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धमें उन्हींके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली देवता कवच आदि धारण करके युद्धके लिये उत्सुक हो गये॥ ५॥

देवराज इन्द्रको रावणसे भय हो गया था। अतः वे दुःखी हो भगवान् विष्णुके पास आये और इस

प्रकार बोले— ॥ ६ ॥

'विष्णुदेव! मैं राक्षस रावणके लिये क्या करूँ? अहो! वह अत्यन्त बलशाली निशाचर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है॥ ७॥

'वह केवल ब्रह्माजीके वरदानके कारण प्रबल हो गया है; दूसरे किसी हेतुसे नहीं। कमलयोनि ब्रह्माजीने जो वर दे दिया है, उसे सत्य करना हम सब लोगोंका काम है॥ ८॥

'अत: जैसे पहले आपके बलका आश्रय लेकर मैंने नमुचि, वृत्रासुर, बलि, नरक और शम्बर आदि असुरोंको दग्ध कर डाला है, उसी प्रकार इस समय भी इस असुरका अन्त हो जाय, ऐसा कोई उपाय आप ही कीजिये॥ ९ ॥

'मधुसूदन! आप देवताओंके भी देवता एवं ईश्वर हैं। इस चराचर त्रिभुवनमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो हम देवताओंको सहारा दे सके। आप ही हमारे परम आश्रय हैं॥ १० ॥

'आप पद्मनाभ हैं—आपहीके नाभिकमलसे जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप ही सनातनदेव श्रीमान् नारायण हैं। आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया है और आपने ही मुझे देवराज इन्द्र बनाया है॥ ११ ॥

'भगवन्! आपने ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसहित इस समस्त त्रिलोकीकी सृष्टि की है और प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत आपमें ही प्रवेश करते हैं॥ १२ ॥

'इसलिये देवदेव! आप ही मुझे कोई ऐसा अमोघ उपाय बताइये, जिससे मेरी विजय हो। क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर रावणसे युद्ध करेंगे?'॥ १३ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायणदेव बोले—'देवराज! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मेरी बात सुनो— ॥ १४॥

'पहली बात तो यह है इस दुष्टात्मा रावणको सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न परास्त ही कर सकते हैं; क्योंकि वरदान पानेके कारण यह इस समय दुर्जय हो गया है॥ १५ ॥

'अपने पुत्रके साथ आया हुआ यह उत्कट बलशाली राक्षस सब प्रकारसे महान् पराक्रम प्रकट करेगा। यह बात मुझे अपनी स्वाभाविक ज्ञानदृष्टिसे दिखायी दे रही है॥ १६ ॥

'सुरेश्वर! दूसरी बात जो मुझे कहनी है, इस प्रकार है—तुम जो मुझसे कह रहे थे कि 'आप ही उसके साथ युद्ध कीजिये' उसके उत्तरमें निवेदन है कि मैं इस समय युद्धस्थलमें राक्षस रावणका सामना करनेके लिये नहीं जाऊँगा॥ १७ ॥

'मुझ विष्णुका यह स्वभाव है कि मैं संग्राममें शत्रुका वध किये बिना पीछे नहीं लौटता; परंतु इस समय रावण वरदानसे सुरक्षित है, इसलिये उसकी ओरसे मेरी इस विजय-सम्बन्धिनी इच्छाकी पूर्ति होनी कठिन है॥ १८ ॥

'परंतु देवेन्द्र! शतक्रतो! मैं तुम्हारे समीप इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राक्षसकी मृत्युका कारण बनूँगा॥ १९ ॥

'मैं ही रावणको उसके अग्रगामी सैनिकोंसहित मारूँगा और देवताओंको आनन्दित करूँगा; परंतु यह तभी होगा जब मैं जान लूँगा कि इसकी मृत्युका समय आ पहुँचा है॥ २० ॥

'देवराज! ये सब बातें मैंने तुम्हें ठीक-ठीक बता दीं। महाबलशाली शचीवल्लभ! इस समय तो तुम्हीं देवताओंसहित जाकर उस राक्षसके साथ निर्भय हो युद्ध करो'॥ २१ ॥

तदनन्तर रुद्र, आदित्य, वसु, मरुद्गण और अश्विनीकुमार आदि देवता युद्धके लिये तैयार होकर तुरंत अमरावतीपुरीसे बाहर निकले और राक्षसोंका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥ २२ ॥

इसी बीचमें रात बीतते-बीतते सब ओरसे युद्धके लिये उद्यत हुई रावणकी सेनाका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा॥ २३ ॥

वे महापराक्रमी राक्षससैनिक सबेरे जागनेपर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके लिये ही आगे बढ़ने लगे॥ २४॥

तदनन्तर युद्धके मुहानेपर राक्षसोंकी उस अनन्त एवं विशाल सेनाको देखकर देवताओंकी सेनामें बड़ा क्षोभ हुआ॥ २५ ॥

फिर तो देवताओंका दानवों और राक्षसोंके साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया। भयंकर कोलाहल होने लगा और दोनों ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार आरम्भ हो गयी॥ २६ ॥

इसी समय रावणके मन्त्री शूरवीर राक्षस, जो बड़े भयंकर दिखायी देते थे, युद्धके लिये आगे बढ़ आये॥

मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, शारण, संह्राद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर,

जम्बुमाली, महाह्लाद, विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंसे घिरे हुए महाबली सुमालीने, जो रावणका नाना था, देवताओंकी सेनामें प्रवेश किया॥ २८—३१ १/२ ॥

उसने कुपित हो नाना प्रकारके पैने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवताओंको उसी तरह मार भगाया, जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है॥ ३२ १/२ ॥

श्रीराम! निशाचरोंकी मार खाकर देवताओंकी वह सेना सिंहद्वारा खदेड़े गये मृगोंकी भाँति सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चली॥ ३३ १/२ ॥

इसी समय वसुओंमेंसे आठवें वसुने, जिनका नाम सावित्र है, समराङ्गणमें प्रवेश किया॥ ३४ १/२ ॥

वे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं उत्साहित सैनिकोंसे घिरे हुए थे। उन्होंने शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए रणभूमिमें पदार्पण किया॥ ३५ १/२ ॥

इनके सिवा अदितिके दो महापराक्रमी पुत्र त्वष्टा और पूषाने अपनी सेनाके साथ एक ही समय युद्धस्थलमें प्रवेश किया, वे दोनों वीर निर्भय थे॥ ३६ १/२ ॥

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। युद्धसे पीछे न हटनेवाले राक्षसोंकी बढ़ती हुई कीर्ति देख-सुनकर देवता उनके प्रति बहुत कुपित थे॥

तत्पश्चात् समस्त राक्षस समरभूमिमें खड़े हुए लाखों देवताओंको नाना प्रकारके घोर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मारने लगे॥ ३८ १/२ ॥

इसी तरह देवता भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न घोर राक्षसोंको समराङ्गणमें चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे मार-मारकर यमलोक भेजने लगे॥ ३९ १/२ ॥

श्रीराम! इसी बीचमें सुमाली नामक राक्षसने कुपित होकर नाना प्रकारके आयुधोंद्वारा देवसेनापर आक्रमण किया। उसने अत्यन्त क्रोधसे भरकर बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाली वायुके समान अपने भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवसेनाको तितर-बितर कर दिया॥ ४०-४१ १/२ ॥

उसके महान् बाणों और भयङ्कर शूलों एवं प्रासोंकी वर्षासे मारे जाते हुए सभी देवता युद्धक्षेत्रमें संगठित होकर खड़े न रह सके॥ ४२ १/२ ॥

सुमालीद्वारा देवताओंके भगाये जानेपर आठवें वसु सावित्रको बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी रथसेनाओंके साथ आकर उस प्रहार करनेवाले निशाचरके सामने खड़े हो गये॥ ४३-४४॥

महातेजस्वी सावित्रने युद्धस्थलमें अपने पराक्रमद्वारा सुमालीको आगे बढ़नेसे रोक दिया। सुमाली और वसु दोनोंमेंसे कोई भी युद्धसे पीछे हटनेवाला नहीं था; अतः उन दोनोंमें महान् एवं रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया॥ ४५ १/२ ॥

तदनन्तर महात्मा वसुने अपने विशाल बाणोंद्वारा सुमालीके सर्प जुते हुए रथको क्षणभरमें तोड़-फोड़कर गिरा दिया॥ ४६ १/२ ॥

युद्धस्थलमें सैकड़ों बाणोंसे छिदे हुए सुमालीके रथको नष्ट करके वसुने उस निशाचरके वधके लिये कालदण्डके समान एक भयङ्कर गदा हाथमें ली, जिसका अग्रभाग अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसे लेकर सावित्रने सुमालीके मस्तकपर दे मारा॥ ४७-४८ १/२ ॥

उसके ऊपर गिरती हुई वह गदा उल्काके समान चमक उठी, मानो इन्द्रके द्वारा छोड़ी गयी विशाल अशनि भारी गड़गड़ाहटके साथ किसी पर्वतके शिखरपर गिर रही हो॥ ४९ १/२ ॥

उसकी चोट लगते ही समराङ्गणमें सुमालीका काम तमाम हो गया। न उसकी हड्डीका पता लगा, न मस्तकका और न कहीं उसका मांस ही दिखायी दिया। वह सब कुछ उस गदाकी आगसे भस्म हो गया॥ ५० १/२ ॥

युद्धमें सुमालीको मारा गया देख वे सब राक्षस एक-दूसरेको पुकारते हुए एक साथ चारों ओर भाग खड़े हुए। वसुके द्वारा खदेड़े जानेवाले वे राक्षस समरभूमिमें खड़े न रह सके॥ ५१-५२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

मेघनाद और जयन्तका युद्ध, पुलोमाका जयन्तको अन्यत्र ले जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें पदार्पण, रुद्रों तथा मरुद्गणोंद्वारा राक्षससेनाका संहार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध

सुमाली मारा गया, वसुने उसके शरीरको भस्म कर दिया और देवताओंसे पीड़ित होकर मेरी सेना भागी जा रही है, यह देख रावणका बलवान् पुत्र मेघनाद कुपित हो समस्त राक्षसोंको लौटाकर देवताओंसे लोहा लेनेके लिये स्वयं खड़ा हुआ॥ १-२॥

वह महारथी वीर इच्छानुसार चलनेवाले अग्नितुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वनमें फैलानेवाले प्रज्वलित दावानलके समान उस देवसेनाकी ओर दौड़ा॥ ३॥

नाना प्रकारके आयुध धारण करके अपनी सेनामें प्रवेश करनेवाले उस मेघनादको देखते ही सब देवता सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले॥ ४॥

उस समय युद्धकी इच्छावाले मेघनादके सामने कोई भी खड़ा न हो सका। तब भयभीत हुए उन समस्त देवताओंको फटकारकर इन्द्रने उनसे कहा—॥ ५॥

'देवताओ! भय न करो, युद्ध छोड़कर न जाओ और रणक्षेत्रमें लौट आओ। यह मेरा पुत्र जयन्त, जो कभी किसीसे परास्त नहीं हुआ है, युद्धके लिये जा रहा है'॥ ६॥

तदनन्तर इन्द्रपुत्र जयन्तदेव अद्भुत सजावटसे युक्त रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये आया॥ ७॥

फिर तो सब देवता शचीपुत्र जयन्तको चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें आये और रावणके पुत्रपर प्रहार करने लगे॥ ८॥

उस समय देवताओंका राक्षसोंके साथ और महेन्द्रकुमारका रावणपुत्रके साथ उनके बल-पराक्रमके अनुरूप युद्ध होने लगा॥ ९॥

रावणकुमार मेघनाद जयन्तके सारथि मातलिपुत्र गोमुखपर सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १०॥

शचीपुत्र जयन्तने भी मेघनादके सारथिको घायल कर दिया। तब कुपित हुए मेघनादने जयन्तको भी सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया॥ ११॥

उस समय क्रोधसे भरा हुआ बलवान् मेघनाद इन्द्रपुत्र जयन्तको आँखें फाड़-फाड़कर देखने और बाणोंकी वर्षासे पीड़ित करने लगा॥ १२॥

अत्यन्त कुपित हुए रावणकुमारने देवताओंकी सेनापर भी तीखी धारवाले नाना प्रकारके सहस्रों अस्त्र-शस्त्र बरसाये॥ १३॥

उसने शतघ्नी, मूसल, प्रास, गदा, खड्ग और फरसे गिराये तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर भी चलाये॥ १४॥

शत्रुसेनाओंके संहारमें लगे हुए रावणकुमारकी मायासे उस समय चारों ओर अन्धकार छा गया; अतः समस्त लोक व्यथित हो उठे॥ १५॥

तब शचीकुमारके चारों ओर खड़ी हुई देवताओंकी वह सेना बाणोंद्वारा पीड़ित हो अनेक प्रकारसे अस्वस्थ हो गयी॥ १६॥

राक्षस और देवता आपसमें किसीको पहचान न सके। वे जहाँ-तहाँ बिखरे हुए चारों ओर चक्कर काटने लगे॥ १७॥

अन्धकारसे आच्छादित होकर वे विवेकशक्ति खो बैठे थे। अतः देवता देवताओंको और राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगे तथा बहुतेरे योद्धा युद्धसे भाग खड़े हुए॥ १८॥

इसी बीचमें पराक्रमी वीर दैत्यराज पुलोमा युद्धमें आया और शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर वहाँसे दूर हटा ले गया॥ १९॥

वह शचीका पिता और जयन्तका नाना था, अतः अपने दौहित्रको लेकर समुद्रमें घुस गया॥ २०॥

देवताओंको जब जयन्तके गायब होनेकी बात मालूम हुई, तब उनकी सारी खुशी छिन गयी और वे दुःखी होकर चारों ओर भागने लगे॥ २१॥

उधर अपनी सेनाओंसे घिरे हुए रावणकुमार मेघनादने अत्यन्त कुपित हो देवताओंपर धावा किया और बड़े जोरसे गर्जना की॥ २२॥

पुत्र लापता हो गया और देवताओंकी सेनामें भगदड़ मच गयी है—यह देखकर देवराज इन्द्रने मातलिसे कहा—'मेरा रथ ले आओ'॥ २३॥

मातलिने एक सजा-सजाया महाभयङ्कर, दिव्य एवं विशाल रथ लाकर उपस्थित कर दिया। उसके द्वारा हाँका जानेवाला वह रथ बड़ा ही वेगशाली था॥ २४॥

तदनन्तर उस रथपर बिजलीसे युक्त महाबली मेघ उसके अग्र-भागमें वायुसे चञ्चल हो बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ २५॥

देवेश्वर इन्द्रके निकलते ही नाना प्रकारके बाजे बज उठे, गन्धर्व एकाग्र हो गये और अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे॥ २६॥

तत्पश्चात् रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, अश्विनीकुमारों और मरुद्गणोंसे घिरे हुए देवराज इन्द्र नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लिये पुरीसे बाहर निकले॥ २७॥

इन्द्रके निकलते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी। सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और आकाशसे बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं॥ २८॥

इसी बीचमें प्रतापी वीर दशग्रीव भी विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य रथपर सवार हुआ॥ २९॥

उस रथमें रोंगटे खड़े कर देनेवाले विशालकाय सर्प लिपटे हुए थे। उनकी निःश्वास-वायुसे वह रथ उस युद्धस्थलमें ज्वलित-सा जान पड़ता था॥ ३०॥

दैत्यों और निशाचरोंने उस रथको सब ओरसे घेर रखा था। समराङ्गणकी ओर बढ़ता हुआ रावणका वह दिव्य रथ महेन्द्रके सामने जा पहुँचा॥ ३१॥

रावण अपने पुत्रको रोककर स्वयं ही युद्धके लिये खड़ा हुआ। तब रावणपुत्र मेघनाद युद्धस्थलसे निकलकर चुपचाप अपने रथपर जा बैठा॥ ३२॥

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। जलकी वर्षा करनेवाले मेघोंके समान देवता युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे॥ ३३॥

राजन्! दुष्टात्मा कुम्भकर्ण नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये किसके साथ युद्ध करता था, इसका पता नहीं लगता था (अर्थात् मतवाला होनेके कारण अपने और पराये सभी सैनिकोंके साथ जूझने लगता था)॥ ३४॥

वह अत्यन्त कुपित हो दाँत, लात, भुजा, हाथ, शक्ति, तोमर और मुद्गर आदि जो ही पाता उसीसे देवताओंको पीटता था॥ ३५॥

वह निशाचर महाभयङ्कर रुद्रोंके साथ भिड़कर घोर युद्ध करने लगा। संग्राममें रुद्रोंने अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उसे ऐसा क्षत-विक्षत कर दिया था कि उसके शरीरमें थोड़ी-सी भी जगह बिना घावके नहीं रह गयी थी॥ ३६॥

कुम्भकर्णका शरीर शस्त्रोंसे व्याप्त हो खूनकी धारा बहा रहा था। उस समय वह बिजली तथा गर्जनासे युक्त जलकी धारा गिरानेवाले मेघके समान जान पड़ता था॥

तदनन्तर घोर युद्धमें लगी हुई उस सारी राक्षससेनाको रणभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले रुद्रों और मरुद्गणोंने मार भगाया॥ ३८॥

कितने ही निशाचर मारे गये। कितने ही कटकर धरतीपर लोटने और छटपटाने लगे और बहुत-से राक्षस प्राणहीन हो जानेपर भी उस रणभूमिमें अपने वाहनोंपर ही चिपटे रहे॥ ३९॥

कुछ राक्षस रथों, हाथियों, गदहों, ऊँटों, सर्पों, घोड़ों, शिशुमारों, वराहों तथा पिशाचमुख वाहनोंको दोनों भुजाओंसे पकड़कर उनसे लिपटे हुए निश्चेष्ट हो गये थे। कितने ही जो पहलेसे मूर्छित होकर पड़े थे, मूर्च्छा दूर होनेपर उठे, किंतु देवताओंके शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो मौतके मुखमें चले गये॥ ४०-४१॥

प्राणोंसे हाथ धोकर धरतीपर पड़े हुए उन समस्त राक्षसोंका इस तरह युद्धमें मारा जाना जादू-सा आश्चर्यजनक जान पड़ता था॥ ४२॥

युद्धके मुहानेपर खूनकी नदी बह चली, जिसके भीतर अनेक प्रकारके शस्त्र ग्राहोंका भ्रम उत्पन्न करते थे। उस नदीके तटपर चारों ओर गीध और कौए छा गये थे॥ ४३॥

इसी बीचमें प्रतापी दशग्रीवने जब देखा कि देवताओंने हमारे समस्त सैनिकोंको मार गिराया है, तब उसके क्रोधकी सीमा न रही॥ ४४॥

वह समुद्रके समान दूरतक फैली हुई देवसेनामें घुस गया और समराङ्गणमें देवताओंको मारता एवं धराशायी करता हुआ तुरंत ही इन्द्रके सामने जा पहुँचा॥ ४५॥

तब इन्द्रने जोर-जोरसे टङ्कार करनेवाले अपने विशाल धनुषको खींचा। उसकी टङ्कार-ध्वनिसे दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं॥ ४६॥

उस विशाल धनुषको खींचकर इन्द्रने रावणके मस्तकपर अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाण मारे॥ ४७॥

इसी प्रकार महाबाहु निशाचर दशग्रीवने भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी वर्षासे इन्द्रको ढक दिया॥ ४८॥

वे दोनों घोर युद्धमें तत्पर हो जब बाणोंकी वृष्टि करने लगे, उस समय सब ओर सब कुछ अन्धकारसे आच्छादित हो गया। किसीको किसी भी वस्तुकी पहचान नहीं हो पाती थी॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ सर्ग

रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनादका मायाद्वारा इन्द्रको बन्दी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना

जब सब ओर अन्धकार छा गया, तब बलसे उन्मत्त हुए वे समस्त देवता और राक्षस एक-दूसरेको मारते हुए परस्पर युद्ध करने लगे॥ १॥

उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विशाल सैन्य-समूहका केवल दसवाँ हिस्सा युद्धभूमिमें खड़ा रहने दिया। शेष सब राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया॥

उस तामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर जूझते हुए एक-दूसरेको पहचान नहीं पाते थे॥

इन्द्र, रावण और रावणपुत्र महाबली मेघनाद—ये तीन ही उस अन्धकाराच्छन्न समराङ्गणमें मोहित नहीं हुए थे॥ ४॥

रावणने देखा, मेरी सारी सेना क्षणभरमें मारी गयी, तब उसके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने बड़ी भारी गर्जना की॥ ५॥

उस दुर्जय निशाचरने रथपर बैठे हुए अपने सारथिसे क्रोधपूर्वक कहा—'सूत! शत्रुओंकी इस सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक तुम इस सेनाके मध्यभागसे होकर मुझे ले चलो॥ ६॥

'आज मैं स्वयं अपने पराक्रमद्वारा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी मूसलाधार वृष्टि करके इन सब देवताओंको यमलोक पहुँचा दूँगा॥ ७॥

'मैं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमका भी वध करूँगा। सब देवताओंका शीघ्र ही संहार करके स्वयं सबके ऊपर स्थित होऊँगा॥ ८॥

'तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये। शीघ्र मेरे रथको ले चलो। मैं तुमसे दो बार कहता हूँ, देवताओंकी सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक मुझे अभी ले चलो॥ ९॥

'यह नन्दनवनका प्रदेश है, जहाँ इस समय हम दोनों मौजूद हैं। यहींसे देवताओंकी सेनाका आरम्भ होता है। अब तुम मुझे उस स्थानतक ले चलो, जहाँ उदयाचल है (नन्दनवनसे उदयाचलतक देवताओंकी सेना फैली हुई है)'॥ १०॥

रावणकी यह बात सुनकर सारथिने मनके समान वेगशाली घोड़ोंको शत्रुसेनाके बीचसे हाँक दिया॥ ११॥

रावणके इस निश्चयको जानकर समरभूमिमें रथपर बैठे हुए देवराज इन्द्रने उन देवताओंसे कहा—॥ १२॥

'देवगण! मेरी बात सुनो। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इस निशाचर दशग्रीवको जीवित अवस्थामें ही भलीभाँति कैद कर लिया जाय॥ १३॥

'यह अत्यन्त बलशाली राक्षस वायुके समान वेगशाली रथके द्वारा इस सेनाके बीचमें होकर उसी तरह तीव्रगतिसे आगे बढ़ेगा, जैसे पूर्णिमाके दिन उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त समुद्र बढ़ता है॥ १४॥

'यह आज मारा नहीं जा सकता; क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे पूर्णतः निर्भय हो चुका है। इसलिये हमलोग इस राक्षसको पकड़कर कैद कर लेंगे। तुमलोग युद्धमें इस बातके लिये पूरा प्रयत्न करो॥ १५॥

'जैसे राजा बलिके बाँध लिये जानेपर ही मैं तीनों लोकोंके राज्यका उपभोग कर रहा हूँ, उसी प्रकार इस पापी निशाचरको बंदी बना लिया जाय, यही मुझे अच्छा लगता है'॥ १६॥

महाराज श्रीराम! ऐसा कहकर इन्द्रने रावणके साथ युद्ध करना छोड़ दिया और दूसरी ओर जाकर समराङ्गणमें राक्षसोंको भयभीत करते हुए वे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ १७॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले रावणने उत्तरकी ओरसे देवसेनामें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे राक्षससेनामें॥ १८॥

देवताओंकी सेना चार सौ कोसतक फैली हुई थी। राक्षसराज रावणने उसके भीतर घुसकर समूची देवसेनाको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया॥ १९॥

अपनी विशाल सेनाको नष्ट होती देख इन्द्रने बिना किसी घबराहटके दशमुख रावणका सामना किया और उसे चारों ओरसे घेरकर युद्धसे विमुख कर दिया॥ २०॥

इसी समय रावणको इन्द्रके चंगुलमें फँसा हुआ देख दानवों तथा राक्षसोंने 'हाय! हम मारे गये' ऐसा कहकर बड़े जोरसे आर्तनाद किया॥ २१॥

तब रावणका पुत्र मेघनाद क्रोधसे अचेत-सा हो गया और रथपर बैठकर अत्यन्त कुपित हो उसने शत्रुकी भयंकर सेनामें प्रवेश किया॥ २२॥

पूर्वकालमें पशुपति महादेवजीसे उसको जो तमोमयी

महामाया प्राप्त हुई थी, उसमें प्रवेश करके उसने अपनेको छिपा लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक शत्रुसेनामें घुसकर उसे खदेड़ना आरम्भ किया॥ २३॥

वह सब देवताओंको छोड़कर इन्द्रपर ही टूट पड़ा, परंतु महातेजस्वी इन्द्र अपने शत्रुके उस पुत्रको देख न सके॥ २४॥

महापराक्रमी देवताओंकी मार खानेसे यद्यपि वहाँ रावणकुमारका कवच नष्ट हो गया था, तथापि उसने अपने मनमें तनिक भी भय नहीं किया॥ २५॥

उसने अपने सामने आते हुए मातलिको उत्तम बाणोंसे घायल करके सायकोंकी झड़ी लगाकर पुनः देवराज इन्द्रको भी ढक दिया॥ २६॥

तब इन्द्रने रथको छोड़कर सारथिको विदा कर दिया और ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो वे रावणकुमारकी खोज करने लगे॥ २७॥

मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रबल हो रहा था। वह अदृश्य होकर आकाशमें विचरने लगा और इन्द्रको मायासे व्याकुल करके बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया॥ २८॥

रावणकुमारको जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि इन्द्र बहुत थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर अपनी सेनामें ले आया॥ २९॥

महेन्द्रको उस महासमरसे मेघनादद्वारा बलपूर्वक ले जाये जाते देख सब देवता यह सोचने लगे कि अब क्या होगा?॥ ३०॥

'यह युद्धविजयी मायावी राक्षस स्वयं तो दिखायी देता नहीं, इसीलिये इन्द्रपर विजय पानेमें सफल हुआ है। यद्यपि देवराज इन्द्र राक्षसी मायाका संहार करनेकी विद्या जानते हैं, तथापि इस राक्षसने मायाद्वारा बलपूर्वक इनका अपहरण किया है'॥ ३१॥

ऐसा सोचते हुए वे सब देवता उस समय रोषसे भर गये और रावणको युद्धसे विमुख करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे॥ ३२॥

रावण आदित्यों और वसुओंका सामना पड़ जानेपर युद्धमें उनके सम्मुख ठहर न सका; क्योंकि शत्रुओंने उसे बहुत पीड़ित कर दिया था॥ ३३॥

मेघनादने देखा पिताका शरीर बाणोंके प्रहारसे जर्जर हो गया है और वे युद्धमें उदास दिखायी देते हैं। तब वह अदृश्य रहकर ही रावणसे इस प्रकार बोला—॥

'पिताजी! चले आइये। अब हमलोग घर चलें। युद्ध बंद कर दिया जाय। हमारी जीत हो गयी; अतः आप स्वस्थ, निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो जाइये॥ ३५॥

'ये जो देवताओंकी सेना तथा तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्र हैं, इन्हें मैं देवसेनाके बीचसे कैद कर लाया हूँ। ऐसा करके मैंने देवताओंका घमंड चूर कर दिया है॥ ३६॥

'आप अपने शत्रुको बलपूर्वक कैद करके इच्छानुसार तीनों लोकोंका राज्य भोगिये। यहाँ व्यर्थ श्रम करनेसे आपको क्या लाभ है? अब युद्धसे कोई प्रयोजन नहीं है'॥ ३७॥

मेघनादकी यह बात सुनकर सब देवता युद्धसे निवृत्त हो गये और इन्द्रको साथ लिये बिना ही लौट गये॥ ३८॥

अपने पुत्रके उस प्रिय वचनको आदरपूर्वक सुनकर महान् बलशाली देवद्रोही तथा सुविख्यात राक्षसराज रावण युद्धसे निवृत्त हो गया और अपने बेटेसे बोला—॥ ३९॥

'सामर्थ्यशाली पुत्र! अपने अत्यन्त बलके अनुरूप पराक्रम प्रकट करके आज तुमने जो इन अनुपम बलशाली देवराज इन्द्रको जीता और देवताओंको भी परास्त किया है, इससे यह निश्चय हो गया कि तुम मेरे कुल और वंशके यश और सम्मानकी वृद्धि करनेवाले हो॥ ४०॥

'बेटा! इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाके साथ यहाँसे लङ्कापुरीको चलो! मैं भी अपने मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ'॥ ४१॥

पिताकी यह आज्ञा पाकर पराक्रमी रावणकुमार मेघनाद देवराजको साथ ले सेना और सवारियोंसहित अपने निवासस्थानको लौटा। वहाँ पहुँचकर उसने युद्धमें भाग लेनेवाले निशाचरोंको विदा कर दिया॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजीका इन्द्रजित्‌को वरदान देकर इन्द्रको उसकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत पापकर्मको याद दिलाकर उनसे वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये कहना, उस यज्ञको पूर्ण करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना

रावणपुत्र मेघनाद जब अत्यन्त बलशाली इन्द्रको जीतकर अपने नगरमें ले गया, तब सम्पूर्ण देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके लङ्कामें पहुँचे॥ १॥

ब्रह्माजी आकाशमें खड़े-खड़े ही पुत्रों और भाइयोंके साथ बैठे हुए रावणके निकट जा उसे कोमल वाणीमें समझाते हुए बोले—॥ २॥

'वत्स रावण! युद्धमें तुम्हारे पुत्रकी वीरता देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ। अहो! इसका उदार पराक्रम तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर है॥ ३॥

'तुमने अपने तेजसे समस्त त्रिलोकीपर विजय पायी है और अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली है। इसलिये पुत्रसहित तुमपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ॥ ४॥

'रावण! तुम्हारा यह पुत्र अतिशय बलशाली और पराक्रमी है। आजसे यह संसारमें इन्द्रजित्‌के नामसे विख्यात होगा॥ ५॥

'राजन्! यह राक्षस बड़ा बलवान् और दुर्जय होगा, जिसका आश्रय लेकर तुमने समस्त देवताओंको अपने अधीन कर लिया॥ ६॥

'महाबाहो! अब तुम पाकशासन इन्द्रको छोड़ दो और बताओ इन्हें छोड़नेके बदलेमें देवता तुम्हें क्या दें'॥ ७॥

तब युद्धविजयी महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने स्वयं ही कहा—'देव! यदि इन्द्रको छोड़ना है तो मैं इसके बदलेमें अमरत्व लेना चाहता हूँ'॥ ८॥

यह सुनकर महातेजस्वी प्रजापति ब्रह्माजीने मेघनादसे कहा—'बेटा! इस भूतलपर पक्षियों, चौपायों तथा महातेजस्वी मनुष्य आदि प्राणियोंमेंसे कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता'॥ ९$\frac{1}{2}$॥

भगवान् ब्रह्माजीकी कही हुई यह बात सुनकर इन्द्रविजयी महाबली मेघनादने वहाँ खड़े हुए अविनाशी ब्रह्माजीसे कहा—॥ १०$\frac{1}{2}$॥

'भगवन्! (यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है) तब इन्द्रको छोड़नेके सम्बन्धमें जो मेरी दूसरी शर्त है—जो दूसरी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे सुनिये। मेरे विषयमें यह सदाके लिये नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पानेकी इच्छासे संग्राममें उतरना चाहूँ और मन्त्रयुक्त हव्यकी आहुतिसे अग्निदेवकी पूजा करूँ, उस समय अग्निसे मेरे लिये एक ऐसा रथ प्रकट हो जाया करे, जो घोड़ोंसे जुता-जुताया तैयार हो और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ, तबतक मुझे कोई भी मार न सके, यही मेरा निश्चित वर है॥ ११—१३॥

'यदि युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं समराङ्गणमें युद्ध करने लगूँ, तभी मेरा विनाश हो॥ १४॥

'देव! सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं; परंतु मैंने पराक्रमद्वारा इस अमरत्वका वरण किया है'॥ १५॥

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कहा—'एवमस्तु (ऐसा ही हो)'। इसके बाद इन्द्रजित्‌ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और सब देवता उन्हें साथ लेकर स्वर्गलोकको चले गये॥ १६॥

श्रीराम! उस समय इन्द्रका देवोचित तेज नष्ट हो गया था। वे दुःखी हो चिन्तामें डूबकर अपनी पराजयका कारण सोचने लगे॥ १७॥

भगवान् ब्रह्माजीने उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया और कहा—'शतक्रतो! यदि आज तुम्हें इस अपमानसे शोक और दुःख हो रहा है तो बताओ पूर्वकालमें तुमने बड़ा भारी दुष्कर्म क्यों किया था?॥ १८॥

'प्रभो! देवराज! पहले मैंने अपनी बुद्धिसे जिन प्रजाओंको उत्पन्न किया था, उन सबकी अङ्गकान्ति, भाषा, रूप और अवस्था सभी बातें एक-जैसी थीं॥ १९॥

'उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी। तब मैं एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विशेषता लानेके लिये कुछ विचार करने लगा॥ २०॥

'विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रजाको प्रस्तुत करनेके लिये मैंने एक नारीकी सृष्टि की। प्रजाओंके प्रत्येक अङ्गमें जो-जो अद्भुत विशिष्टता—सारभूत सौन्दर्य था, उसे मैंने उसके अङ्गोंमें प्रकट किया॥ २१॥

'उन अद्भुत रूप-गुणोंसे उपलक्षित जिस नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहल्या।

इस जगत्‌में हल कहते हैं कुरूपताको, उससे जो निन्दनीयता प्रकट होती है उसका नाम हल्य है। जिस नारीमें हल्य (निन्दनीय रूप) न हो, वह अहल्या कहलाती है; इसीलिये वह नवनिर्मित नारी अहल्या नामसे विख्यात हुई। मैंने ही उसका नाम अहल्या रख दिया था॥ २२-२३॥

'देवेन्द्र! सुरश्रेष्ठ! जब उस नारीका निर्माण हो गया, तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि यह किसकी पत्नी होगी?॥ २४॥

'प्रभो! पुरंदर! देवेन्द्र! उन दिनों तुम अपने स्थान और पदकी श्रेष्ठताके कारण मेरी अनुमतिके बिना ही मन-ही-मन यह समझने लगे थे कि यह मेरी ही पत्नी होगी॥ २५॥

'मैंने धरोहरके रूपमें महर्षि गौतमके हाथमें उस कन्याको सौंप दिया। वह बहुत वर्षोंतक उनके यहाँ रही। फिर गौतमने उसे मुझे लौटा दिया॥ २६॥

'महामुनि गौतमके उस महान् स्थैर्य (इन्द्रिय-संयम) तथा तपस्याविषयक सिद्धिको जानकर मैंने वह कन्या पुनः उन्हींको पत्नीरूपमें दे दी॥ २७॥

'धर्मात्मा महामुनि गौतम उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। जब अहल्या गौतमको दे दी गयी, तब देवता निराश हो गये॥ २८॥

'तुम्हारे तो क्रोधकी सीमा न रही। तुम्हारा मन कामके अधीन हो चुका था; इसलिये तुमने मुनिके आश्रमपर जाकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित होनेवाली उस दिव्य सुन्दरीको देखा॥ २९॥

'इन्द्र! तुमने कुपित और कामसे पीड़ित होकर उसके साथ बलात्कार किया। उस समय उन महर्षिने अपने आश्रममें तुम्हें देख लिया॥ ३०॥

'देवेन्द्र! इससे उन परम तेजस्वी महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया। उसी शापके कारण तुमको इस विपरीत दशामें आना पड़ा है—शत्रुका बंदी बनना पड़ा है॥ ३१॥

'उन्होंने शाप देते हुए कहा—'वासव! शक्र! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ बलात्कार किया है; इसलिये तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे॥ ३२॥

'दुर्बुद्धे! तुम-जैसे राजाके दोषसे मनुष्यलोकमें भी यह जारभाव प्रचलित हो जायगा, जिसका तुमने स्वयं यहाँ सूत्रपात किया है; इसमें संशय नहीं है॥ ३३॥

'जो जारभावसे पापाचार करेगा, उस पुरुषपर उस पापका आधा भाग पड़ेगा और आधा तुमपर पड़ेगा; क्योंकि इसके प्रवर्तक तुम्हीं हो। निःसंदेह तुम्हारा यह स्थान स्थिर नहीं होगा॥ ३४॥

'जो कोई भी देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होगा, वह वहाँ स्थिर नहीं रहेगा। यह शाप मैंने इन्द्रमात्रके लिये दे दिया है।' यह बात मुनिने तुमसे कही थी॥ ३५॥

'फिर उन महातपस्वी मुनिने अपनी उस पत्नीको भी भलीभाँति डाँट-फटकारकर कहा—'दुष्टे! तू मेरे आश्रमके पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूप-सौन्दर्यसे भ्रष्ट हो जा। रूप और यौवनसे सम्पन्न होकर मर्यादामें स्थित नहीं रह सकी है, इसलिये अब लोकमें तू अकेली ही रूपवती नहीं रहेगी (बहुत-सी रूपवती स्त्रियाँ उत्पन्न हो जायँगी)॥ ३६-३७॥

'जिस एक रूप-सौन्दर्यको लेकर इन्द्रके मनमें यह काम-विकार उत्पन्न हुआ था, तेरे उस रूप-सौन्दर्यको समस्त प्रजाएँ प्राप्त कर लेंगी; इसमें संशय नहीं है'॥

'तभीसे अधिकांश प्रजा रूपवती होने लगी। अहल्याने उस समय विनीत-वचनोंद्वारा महर्षि गौतमको प्रसन्न किया और कहा—'विप्रवर! ब्रह्मर्षे! देवराजने आपका ही रूप धारण करके मुझे कलङ्कित किया है। मैं उसे पहचान न सकी थी। अतः अनजानमें मुझसे यह अपराध हुआ है, स्वेच्छाचारवश नहीं। इसलिये आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये'॥ ३९-४०॥

'अहल्याके ऐसा कहनेपर गौतमने उत्तर दिया—'भद्रे! इक्ष्वाकुवंशमें एक महातेजस्वी महारथी वीरका अवतार होगा, जो संसारमें श्रीरामके नामसे विख्यात होंगे। महाबाहु श्रीरामके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही मनुष्य-शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे ब्राह्मण (विश्वामित्र आदि)-के कार्यसे तपोवनमें पधारेंगे। जब तुम उनका दर्शन करोगी, तब पवित्र हो जाओगी। तुमने जो पाप किया है, उससे तुम्हें वे ही पवित्र कर सकते हैं॥ ४१—४३॥

'वरवर्णिनि! उनका आतिथ्य-सत्कार करके तुम मेरे पास आ जाओगी और फिर मेरे ही साथ रहने लगोगी'॥

'ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रमके भीतर आ गये और उन ब्रह्मवादी मुनिकी पत्नी वह अहल्या बड़ी भारी तपस्या करने लगी॥ ४५॥

'महाबाहो! उन ब्रह्मर्षि गौतमके शाप देनेसे ही तुमपर यह सारा संकट उपस्थित हुआ है। अतः तुमने जो पाप किया था, उसको याद करो॥ ४६॥

'वासव! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं। अतः अब

एकाग्रचित्त हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो॥ ४७॥

'देवेन्द्र! उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे। तुम्हारा पुत्र जयन्त उस महासमरमें मारा नहीं गया है। उसका नाना पुलोमा उसे महासागरमें ले गया है। इस समय वह उसीके पास है'॥

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णवयज्ञका अनुष्ठान किया। वह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें गये और वहाँ देवराज्यका शासन करने लगे॥ ४९ १/२ ॥

रघुनन्दन! यह है इन्द्रविजयी मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है। उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; फिर दूसरे प्राणियोंकी तो बिसात ही क्या थी॥ ५० १/२ ॥

अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण तत्काल बोल उठे—'आश्चर्य है।' साथ ही वानरों और राक्षसोंको भी इस बातसे बड़ा विस्मय हुआ॥ ५१ १/२ ॥

उस समय श्रीरामके बगलमें बैठे हुए विभीषणने कहा—'मैंने पूर्वकालमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं, उनका आज महर्षिने स्मरण दिला दिया है'॥ ५२ १/२ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यजीसे कहा—'आपकी बात सत्य है। मैंने भी विभीषणके मुखसे यह बात सुनी थी।' फिर अगस्त्यजी बोले—'श्रीराम! इस प्रकार पुत्रसहित रावण सम्पूर्ण जगत्‌के लिये कण्टकरूप था, जिसने देवराज इन्द्रको भी संग्राममें जीत लिया था'॥ ५३-५४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करके पुनः विस्मयपूर्वक पूछा—॥ १॥

'भगवन्! द्विजश्रेष्ठ! जब क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता घूम रहा था, उस समय क्या यहाँके सभी लोग शौर्यसम्बन्धी गुणोंसे शून्य ही थे?॥

'क्या उन दिनों यहाँ कोई भी क्षत्रिय-नरेश अथवा क्षत्रियेतर राजा अधिक बलवान् नहीं था, जिससे इस भूतलपर पहुँचकर राक्षसराज रावणको पराजित या अपमानित होना नहीं पड़ा॥ ३॥

'अथवा उस समयके सभी राजा पराक्रमशून्य तथा शस्त्रज्ञानसे हीन थे, जिसके कारण उन बहुसंख्यक श्रेष्ठ नरपालोंको रावणसे परास्त होना पड़ा'॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर भगवान् अगस्त्य-मुनि ठठाकर हँस पड़े और जैसे ब्रह्माजी महादेवजीसे कोई बात कहते हों, इसी तरह वे श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥

'पृथ्वीनाथ! भूपालशिरोमणे! श्रीराम! इसी प्रकार सब राजाओंको सताता और पराजित करता हुआ रावण इस पृथ्वीपर विचरने लगा॥ ६॥

'घूमते-घूमते वह स्वर्गपुरी अमरावतीके समान सुशोभित होनेवाली माहिष्मती नामक नगरीमें जा पहुँचा, जहाँ अग्निदेव सदा विद्यमान रहते थे॥ ७॥

'उन अग्निदेवके प्रभावसे वहाँ अग्निके ही समान तेजस्वी अर्जुन नामक राजा राज्य करता था, जिसके राज्यकालमें कुशास्तरणसे युक्त अग्निकुण्डमें सदा अग्निदेवता निवास करते थे॥ ८॥

'जिस दिन रावण वहाँ पहुँचा, उसी दिन बलवान् हैहयराज राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-क्रीड़ा करनेके लिये चला गया था॥ ९॥

'उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया। वहाँ आकर राक्षसराज रावणने राजाके मन्त्रियोंसे पूछा—॥ १०॥

'मन्त्रियो! जल्दी और ठीक-ठीक बताओ, राजा अर्जुन कहाँ हैं? मैं रावण हूँ और तुम्हारे महाराजसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ॥ ११॥

'तुमलोग पहले ही जाकर उन्हें मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' रावणके ऐसा कहनेपर राजाके विद्वान् मन्त्रियोंने राक्षसराजको बताया कि हमारे महाराज इस समय राजधानीमें नहीं हैं॥ १२ १/२ ॥

'पुरवासियोंके मुखसे राजा अर्जुनके बाहर जानेकी बात सुनकर विश्रवाका पुत्र रावण वहाँसे हटकर हिमालयके समान विशाल विन्ध्यगिरिपर आया॥ १३ १/२ ॥

'वह इतना ऊँचा था कि उसका शिखर बादलोंमें समाया हुआ-सा जान पड़ता था तथा वह पर्वत पृथ्वी फोड़कर ऊपरको उठा हुआ-सा प्रतीत होता था। विन्ध्यके गगनचुम्बी शिखर आकाशमें रेखा खींचते-से जान पड़ते थे। रावणने उस महान् शैलको देखा। वह

अपने सहस्रों शृङ्गोंसे सुशोभित हो रहा था और उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते थे॥ १४-१५॥

'उसके सर्वोच्च शिखरके तटसे जो शीतल जलकी धाराएँ गिर रही थीं, उनके द्वारा वह पर्वत अट्टहास करता-सा प्रतीत होता था। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियों और अप्सराओंके साथ वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे। वह अत्यन्त ऊँचा पर्वत अपनी सुरम्य सुषमासे स्वर्गके समान सुशोभित हो रहा था॥ १६½॥

'स्फटिकके समान निर्मल जलका स्रोत बहानेवाली नदियोंके कारण वह विन्ध्यगिरि चञ्चल जिह्वावाले फनोंसे उपलक्षित शेषनागके समान स्थित था। अधिक ऊँचाईके कारण वह ऊर्ध्वलोकको जाता-सा जान पड़ता था। हिमालयके समान विशाल एवं विस्तृत विन्ध्यगिरि बहुत-सी गुफाओंसे युक्त दिखायी देता था॥ १७-१८॥

'विन्ध्याचलकी शोभाको देखता हुआ रावण पुण्यसलिला नर्मदा नदीके तटपर गया, जिसमें शिलाखण्डोंसे युक्त चञ्चल जल प्रवाहित हो रहा था। वह नदी पश्चिम समुद्रकी ओर चली जा रही थी। धूपसे तपे हुए प्यासे भैंसे, हिरन, सिंह, व्याघ्र, रीछ और गजराज उसके जलाशयको विक्षुब्ध कर रहे थे॥ १९-२०॥

'सदा मतवाले होकर कलरव करनेवाले चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जलकुक्कुट और सारस आदि जलपक्षी नर्मदाकी जल राशिपर छा रहे थे॥ २१॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा परम सुन्दरी प्रियतमा नारीके समान प्रतीत होती थी। खिले हुए तटवर्ती वृक्ष मानो उसके आभूषण थे। चक्रवाकके जोड़े उसके दोनों स्तनोंका स्थान ले रहे थे। ऊँचे और विस्तृत पुलिन नितम्बके समान जान पड़ते थे। हंसोंकी पंक्ति मोतियोंकी बनी हुई मेखला (करधनी)-के समान शोभा दे रही थी। पुष्पोंके पराग ही अङ्गराग बनकर उसके अङ्ग-अङ्गमें अनुलिप्त हो रहे थे। जलका उज्ज्वल फेन ही उसकी स्वच्छ, श्वेत साड़ीका काम दे रहा था। जलमें गोता लगाना ही उसका सुखद संस्पर्श था और खिले हुए कमल ही उसके सुन्दर नेत्र जान पड़ते थे। राक्षसशिरोमणि दशमुख रावणने शीघ्र ही पुष्पकविमानसे उतरकर नर्मदाके जलमें डुबकी लगायी और बाहर निकलकर वह नाना मुनियोंसे सेवित उसके रमणीय तटपर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठा॥ २२—२५॥

'ये साक्षात् गङ्गा हैं' ऐसा कहकर दशानन रावणने नर्मदाकी प्रशंसा की और उसके दर्शनसे हर्षका अनुभव किया॥ २६॥

'फिर वहाँ उसने शुक, सारण तथा अन्य मन्त्रियोंसे लीलापूर्वक कहा—'ये सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को मानो काञ्चनमय बनाकर प्रचण्ड ताप देते हुए इस समय आकाशके मध्यभागमें विराज रहे हैं॥

'किंतु मुझे यहाँ बैठा जानकर ही चन्द्रमाके समान शीतल हो गये हैं। मेरे ही भयसे वायु भी नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानीके साथ मन्दगतिसे बह रही है॥ २८-२९॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ यह नर्मदा भी क्रीड़ारस एवं प्रीतिको बढ़ा रही है। इसकी लहरोंमें मगर, मत्स्य और जलपक्षी खेल रहे हैं और यह भयभीत नारीके समान स्थित है॥ ३०॥

'तुमलोग युद्धस्थलमें इन्द्रतुल्य पराक्रमी नरेशोंद्वारा अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कर दिये गये हो और रक्तसे इस प्रकार नहा उठे हो कि तुम्हारे अङ्गोंमें लालचन्दन रसका लेप-सा लगा हुआ जान पड़ता है॥ ३१॥

'अतः तुम सब-के-सब सुख देनेवाली इस मङ्गलकारिणी नर्मदा नदीमें स्नान करो। ठीक उसी तरह, जैसे सार्वभौम आदि महान् दिग्गज मतवाले होकर गङ्गामें अवगाहन करते हैं॥ ३२॥

'इस महानदीमें स्नान करके तुम पाप-तापसे मुक्त हो जाओगे। मैं भी आज शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल नर्मदा-तटपर धीरे-धीरे जटाजूटधारी महादेवजीको फूलोंका उपहार समर्पित करूँगा'॥ ३३½॥

'रावणके ऐसा कहनेपर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्षने नर्मदामें स्नान किया॥ ३४½॥

'राक्षसराजकी सेनाके हाथियोंने नर्मदा नदीमें उतरकर उसके जलको मथ डाला, मानो वामन, अञ्जन, पद्म आदि बड़े-बड़े दिग्गजोंने गङ्गाजीके जलको विक्षुब्ध कर डाला हो॥ ३५½॥

'तदनन्तर वे महाबली राक्षस गङ्गामें स्नान करके बाहर आये और रावणके शिवपूजनके लिये फूल जुटाने लगे॥ ३६½॥

'श्वेत बादलोंके समान शुभ्र एवं मनोरम नर्मदा-पुलिनपर उन राक्षसोंने दो ही घड़ीमें फूलोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया॥ ३७½॥

'इस प्रकार पुष्पोंका संचय हो जानेपर राक्षसराज रावण स्वयं स्नान करनेके लिये नर्मदा नदीमें उतरा, मानो कोई महान् गजराज गङ्गामें अवगाहन करनेके लिये घुसा हो॥ ३८½॥

'वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके रावणने परम उत्तम

जपनीय मन्त्रका जप किया। इसके बाद वह नर्मदाके जलसे बाहर निकला॥ ३९ १/२ ॥

'फिर भीगे कपड़ेको उतारकर उसने श्वेत वस्त्र धारण किया। इसके बाद वह हाथ जोड़े महादेवजीकी पूजाके लिये चला। उस समय और सब राक्षस भी उसके पीछे हो लिये, मानो मूर्तिमान् पर्वत उसकी गतिके अधीन हो खिंचे चले जा रहे हों॥ ४०-४१ ॥

'राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग अपने साथ लिये जाता था॥ ४२ ॥

'रावणने बालूकी वेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृतके समान सुगन्धवाले पुष्पोंसे उसका पूजन किया॥ ४३ ॥

'जो अपने ललाटमें चन्द्रकिरणोंको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, सत्पुरुषोंकी पीड़ा हर लेते हैं तथा भक्तोंको मनोवाञ्छित वर प्रदान करते हैं, उन श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट देवता भगवान् शङ्करका भलीभाँति पूजन करके वह निशाचर उनके सामने गाने और हाथ फैलाकर नाचने लगा॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ सर्ग

अर्जुनकी भुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरुद्ध होना, रावणके पुष्पोपहारका बह जाना, फिर रावण आदि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें ले जाना

'नर्मदाजीके तटपर जहाँ क्रूर राक्षसराज रावण महादेवजीको फूलोंका उपहार अर्पित कर रहा था, उस स्थानसे थोड़ी दूरपर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ माहिष्मतीपुरीका शक्तिशाली राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदाके जलमें उतरकर क्रीडा कर रहा था॥ १-२ ॥

'उन सुन्दरियोंके बीचमें विराजमान राजा अर्जुन सहस्त्रों हथिनियोंके मध्यभागमें स्थित हुए गजराजके समान शोभा पाता था॥ ३ ॥

'अर्जुनके हजार भुजाएँ थीं। उनके उत्तम बलको जाँचनेके लिये उसने उन बहुसंख्यक भुजाओंद्वारा नर्मदाके वेगको रोक दिया॥ ४ ॥

'कृतवीर्य-पुत्र अर्जुनकी भुजाओंद्वारा रोका हुआ नर्मदाका वह निर्मल जल तटपर पूजा करते हुए रावणके पासतक पहुँच गया और उसी ओर उलटी गतिसे बहने लगा॥ ५ ॥

'नर्मदाके जलका वह वेग मत्स्य, नक्र, मगर, फूल और कुशास्तरणके साथ बढ़ने लगा। उसमें वर्षाकालके समान बाढ़ आ गयी॥ ६ ॥

'जलका वह वेग, जिसे मानो कार्तवीर्य अर्जुनने ही भेजा हो, रावणके समस्त पुष्पोपहारको बहा ले गया॥ ७ ॥

'रावणका वह पूजन-सम्बन्धी नियम अभी आधा ही समाप्त हुआ था, उसी दशामें उसे छोड़कर वह प्रतिकूल हुई कमनीय कान्तिवाली प्रेयसीकी भाँति नर्मदाकी ओर देखने लगा॥ ८ ॥

'पश्चिमसे आते और पूर्व दिशामें प्रवेश करके बढ़ते हुए जलके उस वेगको उसने देखा। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो समुद्रमें ज्वार आ गया हो॥ ९ ॥

'उसके तटवर्ती वृक्षोंपर रहनेवाले पक्षियोंमें कोई घबराहट नहीं थी। वह नदी अपनी परम उत्तम स्वाभाविक स्थितिमें स्थित थी—उसका जल पहले ही जैसा स्वच्छ एवं निर्मल दिखायी देता था। उसमें वर्षाकालिक बाढ़के समय जो मलिनता आदि विकार होते थे, उनका उस समय सर्वथा अभाव था। रावणने उस नदीको विकारशून्य हृदयवाली नारीके समान देखा॥

'उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। उसने मौनव्रतकी रक्षाके लिये बिना बोले ही दाहिने हाथकी अङ्गुलीसे संकेतमात्र करके बाढ़के कारणका पता लगानेके निमित्त शुक और सारणको आदेश दिया॥ ११ ॥

'रावणका आदेश पाकर दोनों वीर भ्राता शुक और सारण आकाशमार्गसे पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ १२ ॥

'केवल आधा योजन जानेपर ही उन दोनों निशाचरोंने एक पुरुषको स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीडा करते देखा॥ १३ ॥

'उसका शरीर विशाल सालवृक्षके समान ऊँचा था। उसके केश जलसे ओतप्रोत हो रहे थे। नेत्रप्रान्तमें मदकी लाली दिखायी दे रही थी और चित्त भी मदसे व्याकुल जान पड़ता था॥ १४ ॥

'वह शत्रुमर्दन वीर अपनी सहस्र भुजाओंसे नदीके वेगको रोककर सहस्रों चरणोंसे पृथ्वीको थामे रखनेवाले पर्वतके समान शोभा पाता था॥ १५॥

'नयी अवस्थाकी सहस्रों सुन्दरियाँ उसे घेरे हुए ऐसी जान पड़ती थीं, मानो सहस्रों मदमत्त हथिनियोंने किसी गजराजको घेर रखा हो॥ १६॥

'उस परम अद्भुत दृश्यको देखकर राक्षस शुक और सारण लौट आये और रावणके पास जाकर बोले— ॥ १७॥

'राक्षसराज! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर कोई सालवृक्षके समान विशालकाय पुरुष है, जो बाँधकी तरह नर्मदाके जलको रोककर स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा है॥ १८॥

'उसकी सहस्र भुजाओंसे नदीका जल रुक गया है। इसीलिये यह बारम्बार समुद्रके ज्वारकी भाँति जलके उद्गारकी सृष्टि कर रही है'॥ १९॥

'इस प्रकार कहते हुए शुक और सारणकी बातें सुनकर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है' ऐसा कहकर वह युद्धकी लालसासे उसी ओर चल दिया॥ २०॥

'राक्षसराज रावण जब अर्जुनकी ओर चला, तब धूल और भारी कोलाहलके साथ वायु प्रचण्ड वेगसे चलने लगी॥ २१॥

'बादलोंने रक्तबिन्दुओंकी वर्षा करके एक बार ही बड़े जोरसे गर्जना की। इधर राक्षसराज रावण महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारणको साथ ले उस स्थानकी ओर चला, जहाँ अर्जुन क्रीडा कर रहा था॥ २२½॥

'काजल या कोयलेके समान काला वह बलवान् राक्षस थोड़ी ही देरमें नर्मदाके उस भयंकर जलाशयके पास जा पहुँचा॥ २३½॥

'वहाँ पहुँचकर राक्षसोंके राजा रावणने मैथुनकी इच्छावाली हथिनियोंसे घिरे हुए गजराजके समान सुन्दरी स्त्रियोंसे परिवेष्टित महाराज अर्जुनको देखा॥ २४½॥

'उसे देखते ही रावणके नेत्र रोषसे लाल हो गये। अपने बलके घमंडसे उद्दण्ड हुए राक्षसराजने अर्जुनके मन्त्रियोंसे गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा— ॥ २५½॥

'मन्त्रियो! तुम हैहयराजसे जल्दी जाकर कहो कि रावण तुमसे युद्ध करनेके लिये आया है'॥ २६½॥

'रावणकी बात सुनकर अर्जुनके वे मन्त्री हथियार लेकर खड़े हो गये और रावणसे इस प्रकार बोले—

'वाह रे रावण! वाह! तुम्हें युद्धके अवसरका अच्छा ज्ञान है। हमारे महाराज जब मदमत्त होकर स्त्रियोंके बीचमें क्रीडा कर रहे हैं, ऐसे समयमें तुम उनके साथ युद्ध करनेके लिये उत्साहित हो रहे हो॥ २८½॥

'जैसे कोई व्याघ्र कामवासनासे वासित हथिनियोंके बीचमें खड़े हुए गजराजसे जूझना चाहता हो, उसी प्रकार तुम स्त्रियोंके समक्ष क्रीडा-विलासमें तत्पर हुए राजा अर्जुनके साथ युद्ध करनेका हौसला दिखा रहे हो॥ २९½॥

'तात! दशग्रीव! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धके लिये उत्साह है, तो रातभर क्षमा करो और आजकी रातमें यहीं ठहरो। फिर कल सबेरे तुम राजा अर्जुनको समराङ्गणमें उपस्थित देखोगे॥ ३०॥

'युद्धकी तृष्णासे घिरे हुए राक्षसराज! यदि तुम्हें जूझनेके लिये बड़ी जल्दी लगी हो तो पहले रणभूमिमें हम सबको मार गिराओ। उसके बाद महाराज अर्जुनके साथ युद्ध करने पाओगे'॥ ३१॥

'यह सुनकर रावणके भूखे मन्त्री युद्धस्थलमें अर्जुनके अमात्योंको मार-मारकर खाने लगे॥ ३२॥

'इससे अर्जुनके अनुयायियों तथा रावणके मन्त्रियोंका नर्मदाके तटपर बड़ा कोलाहल होने लगा॥ ३३॥

'अर्जुनके योद्धा बाणों, तोमरों, भालों, त्रिशूलों और वज्रकर्षण नामक शस्त्रोंद्वारा चारों ओरसे धावा करके रावणसहित समस्त राक्षसोंको घायल करने लगे॥ ३४॥

'हैहयराजके योद्धाओंका वेग नाकों, मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रकी भीषण गर्जनाके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था॥ ३५॥

'रावणके वे मन्त्री प्रहस्त, शुक और सारण आदि कुपित हो अपने बल-पराक्रमसे कार्तवीर्य अर्जुनकी सेनाका संहार करने लगे॥ ३६॥

'तब अर्जुनके सेवकोंने भयसे विह्वल होकर क्रीडामें लगे हुए अर्जुनसे मन्त्रीसहित रावणके उस क्रूर कर्मका समाचार सुनाया॥ ३७॥

'सुनकर अर्जुनने अपनी स्त्रियोंसे कहा—'तुम सब लोग डरना मत।' फिर उन सबके साथ वह नर्मदाके जलसे उसी तरह बाहर निकला, जैसे कोई दिग्गज (हथिनियोंके साथ) गङ्गाजीके जलसे बाहर निकला हो॥ ३८॥

'उसके नेत्र रोषसे रक्तवर्णके हो गये। वह अर्जुनरूपी अनल प्रलयकालके महाभयंकर पावकको भाँति प्रज्वलित हो उठा॥ ३९॥

'सुन्दर सोनेका बाजूबंद धारण करनेवाले वीर अर्जुनने तुरंत ही गदा उठा ली और उन राक्षसोंपर आक्रमण किया, मानो सूर्यदेव अन्धकार-समूहपर टूट पड़े हों॥ ४०॥

'जो भुजाओंद्वारा घुमायी जाती थी उस विशाल गदाको ऊपर उठाकर गरुड़के समान तीव्र वेगका आश्रय ले राजा अर्जुन तत्काल ही उन निशाचरोंपर टूट पड़ा॥ ४१॥

'उस समय मूसलधारी प्रहस्त, जो विन्ध्यगिरिके समान अविचल था, उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें विन्ध्याचलने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया था॥ ४२॥

'मदसे उद्दण्ड हुए प्रहस्तने कुपित हो अर्जुनपर लोहेसे मढ़ा हुआ एक भयंकर मूसल चलाया और कालके समान भीषण गर्जना की॥ ४३॥

'प्रहस्तके हाथसे छूटे हुए उस मूसलके अग्रभागमें अशोक-पुष्पके समान लाल रंगकी आग प्रकट हो गयी, जो जलाती हुई-सी जान पड़ती थी॥ ४४॥

'किंतु कार्तवीर्य अर्जुनको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अपनी ओर वेगपूर्वक आते हुए उस मूसलको गदा मारकर पूर्णतः विफल कर दिया॥ ४५॥

'तत्पश्चात् गदाधारी हैहयराज, जिसे पाँच सौ भुजाओंसे उठाकर चलाया जाता था, उस भारी गदाको घुमाता हुआ प्रहस्तकी ओर दौड़ा॥ ४६॥

'उस गदासे अत्यन्त वेगपूर्वक आहत होकर प्रहस्त तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो कोई पर्वत वज्रधारी इन्द्रके वज्रका आघात पाकर ढह गया हो॥

'प्रहस्तको धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष समराङ्गणसे भाग खड़े हुए॥

'प्रहस्तके गिरने और अमात्योंके भाग जानेपर रावणने नृपश्रेष्ठ अर्जुनपर तत्काल धावा किया॥ ४९॥

'फिर तो हजार भुजाओंवाले नरनाथ और बीस भुजाओंवाले निशाचरनाथमें वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ ५०॥

'विक्षुब्ध हुए दो समुद्रों, जिनकी जड़ हिल रही हों ऐसे दो पर्वतों, दो तेजस्वी आदित्यों, दो दाहक अग्नियों, बलसे उन्मत्त हुए दो गजराजों, कामवासनावाली गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ों, जोर-जोरसे गर्जनेवाले दो मेघों, उत्कट बलशाली दो सिंहों तथा क्रोधसे भरे हुए रुद्र और कालदेवके समान वे रावण और अर्जुन गदा लेकर एक-दूसरेपर गहरी चोटें करने लगे॥ ५१—५३॥

'जैसे पूर्वकालमें पर्वतोंने वज्रके भयंकर आघात सहे थे, उसी प्रकार वे अर्जुन और रावण वहाँ गदाओंके प्रहार सहन करते थे॥ ५४॥

'जैसे बिजलीकी कड़कसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठती हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी गदाओंके आघातोंसे सभी दिशाएँ गूँजने लगीं॥ ५५॥

'जैसे बिजली चमककर आकाशको सुनहरे रंगसे युक्त कर देती है, उसी प्रकार रावणकी छातीपर गिरायी जाती हुई अर्जुनकी गदा उसके वक्षःस्थलको सुवर्णकी-सी प्रभासे पूर्ण कर देती थी॥ ५६॥

'उसी प्रकार रावणके द्वारा भी अर्जुनकी छातीपर बारम्बार गिरायी जाती हुई गदा किसी महान् पर्वतपर गिरनेवाली उल्काके समान प्रकाशित हो उठती थी॥ ५७॥

'उस समय न तो अर्जुन थकता था और न राक्षसगणोंका राजा रावण ही। पूर्वकालमें परस्पर जूझनेवाले इन्द्र और बलिकी भाँति उन दोनोंका युद्ध एक समान जान पड़ता था॥ ५८॥

'जैसे साँड़ अपने सींगोंसे और हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे नरेश और निशाचरराज एक-दूसरेपर गदाओंसे चोट करते थे॥ ५९॥

'इसी बीचमें अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल वक्षःस्थलपर दोनों स्तनोंके बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदाका प्रहार किया॥ ६०॥

'परंतु रावण तो वरके प्रभावसे सुरक्षित था, अतः रावणकी छातीपर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी दुर्बल गदाकी भाँति उसके वक्षकी टक्करसे दो टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ६१॥

'तथापि अर्जुनकी चलायी हुई गदाके आघातसे पीड़ित हो रावण एक धनुष पीछे हट गया और आर्तनाद करता हुआ बैठ गया॥ ६२॥

'दशग्रीवको व्याकुल देख अर्जुनने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया, मानो गरुड़ने झपट्टा मारकर किसी सर्पको धर दबाया हो॥ ६३॥

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् नारायणने बलिको बाँधा था, उसी तरह बलवान् राजा अर्जुनने दशाननको बलपूर्वक पकड़कर अपने हजार हाथोंके द्वारा उसे मजबूत रस्सोंसे बाँध दिया॥ ६४॥

'दशग्रीवके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण और देवता 'शाबाश! शाबाश!' कहते हुए अर्जुनके सिरपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ६५॥

'जैसे व्याघ्र किसी हिरणको दबोच लेता है अथवा सिंह हाथीको धर दबाता है, उसी प्रकार रावणको अपने वशमें करके हैहयराज अर्जुन हर्षातिरेकसे मेघके समान बारम्बार गर्जना करने लगा॥ ६६॥

'इसके बाद प्रहस्तने होश सँभाला। दशमुख रावणको बँधा हुआ देख वह राक्षस सहसा कुपित हो हैहयराजकी ओर दौड़ा॥ ६७॥

'जैसे वर्षाकाल आनेपर समुद्रमें बादलोंका वेग बढ़ जाता है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करते हुए उन निशाचरोंका वेग बढ़ा हुआ प्रतीत होता था॥ ६८॥

'छोड़ो, छोड़ो, ठहरो, ठहरो' ऐसा बारम्बार कहते हुए राक्षस अर्जुनकी ओर दौड़े। उस समय प्रहस्तने रणभूमिमें अर्जुनपर मूसल और शूलके प्रहार किये॥ ६९॥

'परंतु अर्जुनको उस समय घबराहट नहीं हुई। उस शत्रुसूदन वीरने प्रहस्त आदि देवद्रोही निशाचरोंके छोड़े हुए उन अस्त्रोंको अपने शरीरतक आनेसे पहले ही पकड़ लिया॥ ७०॥

'फिर उन्हीं दुर्धर एवं श्रेष्ठ आयुधोंसे उन सब राक्षसोंको घायल करके उसी तरह भगा दिया, जैसे हवा बादलोंको छिन्न-भिन्न करके उड़ा ले जाती है॥ ७१॥

'उस समय कार्तवीर्य अर्जुनने समस्त राक्षसोंको भयभीत कर दिया और रावणको लेकर वह अपने सुहृदोंके साथ नगरमें आया॥ ७२॥

'नगरके निकट आनेपर ब्राह्मणों और पुरवासियोंने अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी नरेशपर फूलों और अक्षतोंकी वर्षा की और सहस्र नेत्रधारी इन्द्र जैसे बलिको बंदी बनाकर ले गये थे, उसी प्रकार उस राजा अर्जुनने बँधे हुए रावणको साथ लेकर अपनी पुरीमें प्रवेश किया'॥ ७३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

पुलस्त्यजीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेके समान था। धीरे-धीरे यह बात स्वर्गमें देवताओंके मुखसे पुलस्त्यजीने सुनी॥ १॥

यद्यपि वे महर्षि महान् धैर्यशाली थे तो भी संतानके प्रति होनेवाले स्नेहके कारण कृपापरवश हो गये और माहिष्मती नरेशसे मिलनेके लिये भूतलपर चले आये॥ २॥

उनका वेग वायुके समान था और गति मनके समान, वे ब्रह्मर्षि वायुपथका आश्रय ले माहिष्मतीपुरीमें आ पहुँचे॥ ३॥

जैसे ब्रह्माजी इन्द्रकी अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पुलस्त्यजीने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई और अमरावतीके समान शोभासे सम्पन्न माहिष्मती नगरीमें प्रवेश किया॥ ४॥

आकाशसे उतरते समय वे पैरोंसे चलकर आते हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। अत्यन्त तेजके कारण उनकी ओर देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था। अर्जुनके सेवकोंने उन्हें पहचानकर राजा अर्जुनको उनके शुभागमनकी सूचना दी॥ ५॥

सेवकोंके कहनेसे जब हैहयराजको यह पता चला कि पुलस्त्यजी पधारे हैं, तब वे सिरपर अञ्जलि बाँधे उन तपस्वी मुनिकी अगवानीके लिये आगे बढ़ आये॥ ६॥

राजा अर्जुनके पुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क आदि लेकर उनके आगे-आगे चले, मानो इन्द्रके आगे बृहस्पति चल रहे हों॥ ७॥

वहाँ आते हुए वे महर्षि उदित होते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। उन्हें देखकर राजा अर्जुन चकित रह गया। उसने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंमें उसी तरह आदरपूर्वक प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजीके आगे मस्तक झुकाते हैं॥ ८॥

ब्रह्मर्षिको पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ समर्पित करके राजाधिराज अर्जुनने हर्षगद्गद वाणीमें पुलस्त्यजीसे कहा—॥ ९॥

'द्विजेन्द्र! आपका दर्शन परम दुर्लभ है, तथापि आज मैं आपके दर्शनका सुख उठा रहा हूँ। इस प्रकार यहाँ पधारकर आपने इस माहिष्मतीपुरीको अमरावतीपुरीके समान गौरवशालिनी बना दिया॥ १०॥

'देव! आज मैं आपके देववन्द्य चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ; अतः आज ही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ। आज मेरा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो गया। आज ही मेरा जन्म सफल हुआ और तपस्या भी सार्थक हो गयी। ब्रह्मन्! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आप आज्ञा दीजिये। हम आपकी क्या सेवा करें?'॥ ११-१२॥

तब पुलस्त्यजी हैहयराज अर्जुनके धर्म, अग्नि और पुत्रोंका कुशल-समाचार पूछकर उससे इस प्रकार बोले—॥ १३॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले कमलनयन नरेश! तुम्हारे बलकी कहीं तुलना नहीं है; क्योंकि तुमने

दशग्रीवको जीत लिया॥ १४॥

'जिसके भयसे समुद्र और वायु भी चञ्चलता छोड़कर सेवामें उपस्थित होते हैं, उस मेरे रणदुर्जय पौत्रको तुमने संग्राममें बाँध लिया॥ १५॥

'ऐसा करके तुम मेरे इस बच्चेका यश पी गये और सर्वत्र अपने नामका ढिंढोरा पीट दिया। वत्स! अब मेरे कहनेसे तुम दशाननको छोड़ दो। यह तुमसे मेरी याचना है'॥ १६॥

पुलस्त्यजीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके अर्जुनने इसके विपरीत कोई बात नहीं कही। उस राजाधिराजने बड़ी प्रसन्नताके साथ राक्षसराज रावणको बन्धनसे मुक्त कर दिया॥ १७॥

उस देवद्रोही राक्षसको बन्धनमुक्त करके अर्जुनने दिव्य आभूषण, माला और वस्त्रोंसे उसका पूजन किया और अग्निको साक्षी बनाकर उसके साथ ऐसी मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया, जिसके द्वारा किसीकी हिंसा न हो (अर्थात् उन दोनोंने यह प्रतिज्ञा की कि हमलोग अपनी मैत्रीका उपयोग दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें नहीं करेंगे)। इसके बाद ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजीको प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने घरको लौट गया॥ १८॥

इस प्रकार अर्जुनद्वारा आतिथ्य-सत्कार करके छोड़े गये प्रतापी राक्षसराज रावणको पुलस्त्यजीने हृदयसे लगा लिया, परंतु वह पराजयके कारण लज्जित ही रहा॥ १९॥

दशग्रीवको छुड़ाकर ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्यजी पुनः ब्रह्मलोकको चले गये॥ २०॥

इस प्रकार रावणको कार्तवीर्य अर्जुनके हाथसे पराजित होना पड़ा था और फिर पुलस्त्यजीके कहनेसे उस महाबली राक्षसको छुटकारा मिला था॥ २१॥

रघुकुलनन्दन! इस प्रकार संसारमें बलवान्-से-बलवान् वीर पड़े हुए हैं; अतः जो अपना कल्याण चाहे उसे दूसरेकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये॥ २२॥

सहस्रबाहुकी मैत्री पाकर राक्षसोंका राजा रावण पुनः घमंडसे भरकर सारी पृथ्वीपर विचरने और नरेशोंका संहार करने लगा॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

वालीके द्वारा रावणका पराभव तथा रावणका उन्हें अपना मित्र बनाना

अर्जुनसे छुटकारा पाकर राक्षसराज रावण निर्वेदरहित हो पुनः सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगा॥ १॥

राक्षस हो या मनुष्य, जिसको भी वह बलमें बढ़ा-चढ़ा सुनता था, उसीके पास पहुँचकर अभिमानी रावण उसे युद्धके लिये ललकारता था॥ २॥

तदनन्तर एक दिन वह वालीद्वारा पालित किष्किन्धापुरीमें जाकर सुवर्णमालाधारी वालीको युद्धके लिये ललकारने लगा॥ ३॥

उस समय युद्धकी इच्छासे आये हुए रावणसे वालीके मन्त्री तार, ताराके पिता सुषेण तथा युवराज अङ्गद एवं सुग्रीवने कहा—॥ ४॥

'राक्षसराज! इस समय वाली तो बाहर गये हुए हैं। वे ही आपकी जोड़के हो सकते हैं। दूसरा कौन वानर आपके सामने ठहर सकता है॥ ५॥

'रावण! चारों समुद्रोंसे सन्ध्योपासन करके वाली अब आते ही होंगे। आप दो घड़ी ठहर जाइये॥ ६॥

'राजन्! देखिये, ये जो शङ्खके समान उज्ज्वल हड्डियोंके ढेर लग रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये हुए आप-जैसे वीरोंके ही हैं। वानरराज वालीके तेजसे ही इन सबका अन्त हुआ है॥ ७॥

'राक्षस रावण! यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे टक्कर लेंगे, तब वही आपके जीवनका अन्तिम क्षण होगा॥ ८॥

'विश्रवाकुमार! वाली सम्पूर्ण आश्चर्यके भण्डार हैं। आप इस समय इनका दर्शन करेंगे। केवल इसी मुहूर्ततक उनकी प्रतीक्षाके लिये ठहरिये; फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा॥ ९॥

'अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चले जाइये। वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित हुए अग्निदेवके समान वालीका दर्शन होगा'॥ १०॥

तब लोकोंको रुलानेवाले रावणने तारको भला-बुरा कहकर पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया॥ ११॥

वहाँ रावणने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको संध्योपासन करते हुए देखा। उनका मुख प्रभातकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा था॥ १२॥

उन्हें देखकर काजलके समान काला रावण

पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये जल्दी-जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा। उस समय वह अपने पैरोंकी आहट नहीं होने देता था॥ १३॥

दैवयोगसे वालीने भी रावणको देख लिया; किंतु वे उसके पापपूर्ण अभिप्रायको जानकर भी घबराये नहीं॥ १४॥

जैसे सिंह खरगोशको और गरुड़ सर्पको देखकर भी उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की॥ १५॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा रावण मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे काँखमें दबाकर लटका लूँगा और इसे लिये-दिये शेष तीन महासागरोंपर भी हो आऊँगा॥ १६॥

इसकी जाँघ, हाथ-पैर और वस्त्र खिसकते होंगे। यह मेरी काँखमें दबा होगा और उस दशामें लोग मेरे शत्रुको गरुड़के पंजेमें दबे हुए सर्पके समान लटकते देखेंगे॥ १७॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन ही रहे और वैदिक मन्त्रोंका जप करते हुए गिरिराज सुमेरुकी भाँति खड़े रहे॥ १८॥

इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानरराज और राक्षसराज दोनों एक-दूसरेको पकड़ना चाहते थे। दोनों ही इसके लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बनानेकी घातमें लगे थे॥ १९॥

रावणके पैरोंकी हलकी-सी आहटसे वाली यह समझ गये कि अब रावण हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ना चाहता है। फिर तो दूसरी ओर मुँह किये होनेपर भी वालीने उसे उसी तरह सहसा पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है॥ २०॥

पकड़नेकी इच्छावाले उस राक्षसराजको वालीने स्वयं ही पकड़कर अपनी काँखमें लटका लिया और बड़े वेगसे वे आकाशमें उछले॥ २१॥

रावण अपने नखोंसे बारम्बार वालीको बकोटता और पीड़ा देता रहा, तो भी जैसे वायु बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार वाली रावणको बगलमें दबाये लिये फिरते थे॥ २२॥

इस प्रकार रावणके हर लिये जानेपर उसके मन्त्री उसे वालीसे छुड़ानेके लिये कोलाहल करते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ते रहे॥ २३॥

पीछे-पीछे राक्षस चलते थे और आगे-आगे वाली। इस अवस्थामें वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघसमूहोंसे अनुगत हुए आकाशवर्ती अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पाते थे॥ २४॥

वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी वालीके पासतक न पहुँच सके। उनकी भुजाओं और जाँघोंके वेगसे उत्पन्न हुई वायुके थपेड़ोंसे थककर वे खड़े हो गये॥ २५॥

वालीके मार्गसे उड़ते हुए बड़े-बड़े पर्वत भी हट जाते थे; फिर रक्त-मांसमय शरीर धारण करनेवाला और जीवनकी रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनके मार्गसे हट जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ २६॥

जितनी देरमें वाली समुद्रोंतक पहुँचते थे, उतनी देरमें तीव्रगामी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे। उन महावेगशाली वानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर संध्या-वन्दन किया॥ २७॥

समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ वालीकी सभी खेचर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे। वे रावणको बगलमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये॥ २८॥

वहाँ स्नान, संध्योपासन और जप करके वे वानरवीर दशाननको लिये-दिये उत्तर समुद्रके तटपर जा पहुँचे॥ २९॥

वायु और मनके समान वेगवाले वे महावानर वाली कई सहस्र योजनतक रावणको ढोते रहे। फिर अपने उस शत्रुके साथ ही वे उत्तर समुद्रके किनारे गये॥

उत्तरसागरके तटपर संध्योपासना करके दशाननका भार वहन करते हुए वाली पूर्व दिशावर्ती महासागरके किनारे गये॥ ३१॥

वहाँ भी संध्योपासना सम्पन्न करके वे इन्द्रपुत्र वानरराज वाली दशमुख रावणको बगलमें दबाये फिर किष्किन्धापुरीके निकट आये॥ ३२॥

इस तरह चारों समुद्रोंमें संध्योपासनाका कार्य पूरा करके रावणको ढोनेके कारण थके हुए वानरराज वाली किष्किन्धाके उपवनमें आ पहुँचे॥ ३३॥

वहाँ आकर उन कपिश्रेष्ठने रावणको अपनी काँखसे छोड़ दिया और बारम्बार हँसते हुए पूछा—'कहो जी, तुम कहाँसे आये हो'॥ ३४॥

रावणकी आँखें श्रमके कारण चञ्चल हो रही थीं। वालीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजसे इस प्रकार कहा—॥ ३५॥

'महेन्द्रके समान पराक्रमी वानरेन्द्र! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था, सो वह युद्ध तो आपसे मिल ही गया॥ ३६॥

'अहो! आपमें अद्भुत बल है, अद्भुत पराक्रम है और आश्चर्यजनक गम्भीरता है। आपने मुझे पशुकी तरह पकड़कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है॥ ३७॥

'वानरवीर! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा शूरवीर होगा, जो मुझे इस प्रकार बिना थके-माँदे शीघ्रतापूर्वक ढो सके॥ ३८॥

'वानरराज! ऐसी गति तो मन, वायु और गरुड़—इन तीन भूतोंकी ही सुनी गयी है। निःसंदेह इस जगत्‌में चौथे आप भी ऐसे तीव्र वेगवाले हैं॥ ३९॥

'कपिश्रेष्ठ! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्निको साक्षी बनाकर आपके साथ सदाके लिये स्नेहपूर्ण मित्रता कर लेना चाहता हूँ॥ ४०॥

'वानरराज! स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—इन सभी वस्तुओंपर हम दोनोंका साझेका अधिकार होगा'॥ ४१॥

तब वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित करके एक-दूसरेको हृदयसे लगाकर आपसमें भाईचारेका सम्बन्ध जोड़ा॥ ४२॥

फिर वे दोनों वानर और राक्षस एक-दूसरेका हाथ पकड़े बड़ी प्रसन्नताके साथ किष्किन्धापुरीके भीतर गये, मानो दो सिंह किसी गुफामें प्रवेश कर रहे हों॥ ४३॥

रावण वहाँ सुग्रीवकी तरह सम्मानित हो महीनेभर रहा। फिर तीनों लोकोंको उखाड़ फेंकनेकी इच्छा रखनेवाले उसके मन्त्री आकर उसे लिवा ले गये॥ ४४॥

प्रभो! इस प्रकार यह घटना पहले घटित हो चुकी है। वालीने रावणको हराया और फिर अग्निके समीप उसे अपना भाई बना लिया॥ ४५॥

श्रीराम! वालीमें बहुत अधिक और अनुपम बल था, परंतु आपने उसको भी अपनी बाणाग्निसे उसी तरह दग्ध कर डाला, जैसे आग पतिंगेको जला देती है॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीकी उत्पत्ति, शैशवावस्थामें इनका सूर्य, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे इनकी मूर्च्छा, वायुके कोपसे संसारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये देवताओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना

तब भगवान् श्रीरामने हाथ जोड़कर दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले अगस्त्य मुनिसे विनयपूर्वक यह अर्थयुक्त बात कही—॥ १॥

'महर्षे! इसमें संदेह नहीं कि वाली और रावणके इस बलकी कहीं तुलना नहीं थी; परंतु मेरा ऐसा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमान्‌जीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता था॥ २॥

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्‌गुणोंने हनुमान्‌जीके भीतर घर कर रखा है॥ ३॥

'समुद्रको देखते ही वानर-सेना घबरा उठी है—यह देख ये महाबाहु वीर उसे धैर्य बँधाकर एक ही छलाँगमें सौ योजन समुद्रको लाँघ गये॥ ४॥

'फिर लङ्कापुरीके आधिदैविक रूपको परास्त कर रावणके अन्तःपुरमें गये, सीताजीसे मिले, उनसे बातचीत की और उन्हें धैर्य बँधाया॥ ५॥

'वहाँ अशोकवनमें इन्होंने अकेले ही रावणके सेनापतियों, मन्त्रिकुमारों, किंकरों तथा रावणपुत्र अक्षको मार गिराया॥ ६॥

'फिर ये मेघनादके नागपाशसे बँधे और स्वयं ही मुक्त हो गये। तत्पश्चात् इन्होंने रावणसे वार्तालाप किया। जैसे प्रलयकालकी आगने यह सारी पृथ्वी जलायी थी, उसी प्रकार लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया॥ ७॥

'युद्धमें हनुमान्‌जीके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके और न वरुणके ही सुने जाते हैं॥ ८॥

'मुनीश्वर! मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे विभीषणके लिये लङ्का, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको प्राप्त किया है॥

'यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके सखा हनुमान् न मिलते तो जानकीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था?॥ १०॥

'जिस समय वाली और सुग्रीवमें विरोध हुआ, उस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने जैसे

दावानल वृक्षको जला देता है, उसी प्रकार वालीको क्यों नहीं भस्म कर डाला? यह समझमें नहीं आता॥ ११॥

'मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उस समय हनुमान्‌जीको अपने बलका पता ही नहीं था। इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखते रहे॥ १२॥

'देववन्द्य महामुने! भगवन्! आप हनुमान्‌जीके विषयमें ये सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बताइये'॥

श्रीरामचन्द्रजीके ये युक्तियुक्त वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यजी हनुमान्‌जीके सामने ही उनसे इस प्रकार बोले— ॥ १४॥

'रघुकुलतिलक श्रीराम! हनुमान्‌जीके विषयमें आप जो कुछ कहते हैं, यह सब सत्य ही है। बल, बुद्धि और गतिमें इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है॥ १५॥

'शत्रुसूदन रघुनन्दन! जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसे मुनियोंने पूर्वकालमें इन्हें यह शाप दे दिया था कि बल रहनेपर भी इनको अपने पूरे बलका पता नहीं रहेगा॥ १६॥

'महाबली श्रीराम! इन्होंने बचपनमें भी जो महान् कर्म किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन दिनों वे बालभावसे—अनजानकी तरह रहते थे॥ १७॥

'रघुनन्दन! यदि हनुमान्‌जीका चरित्र सुननेके लिये आपकी हार्दिक इच्छा हो तो चित्तको एकाग्र करके सुनिये। मैं सारी बातें बता रहा हूँ॥ १८॥

'भगवान् सूर्यके वरदानसे जिसका स्वरूप सुवर्णमय हो गया है, ऐसा एक सुमेरु नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जहाँ हनुमान्‌जीके पिता केसरी राज्य करते हैं॥ १९॥

'उनकी अञ्जना नामसे विख्यात प्रियतमा पत्नी थीं। उनके गर्भसे वायुदेवने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया॥

'अञ्जनाने जब इनको जन्म दिया, उस समय इनकी अङ्गकान्ति जाड़ेमें पैदा होनेवाले धानके अग्रभागकी भाँति पिंगल वर्णकी थी। एक दिन माता अञ्जना फल लानेके लिये आश्रमसे निकलीं और गहन वनमें चली गयीं॥ २१॥

'उस समय मातासे बिछुड़ जाने और भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण शिशु हनुमान् उसी तरह जोर-जोरसे रोने लगे, जैसे पूर्वकालमें सरकंडोंके वनके भीतर कुमार कार्तिकेय रोये थे॥ २२॥

'इतनेहीमें इन्हें जपाकुसुमके समान लाल रंगवाले सूर्यदेव उदित होते दिखायी दिये। हनुमान्‌जीने उन्हें कोई फल समझा और ये उस फलके लोभसे सूर्यकी ओर उछले॥ २३॥

'बालसूर्यकी ओर मुँह किये मूर्तिमान् बालसूर्यके समान बालक हनुमान् बालसूर्यको पकड़नेकी इच्छासे आकाशमें उड़ते चले जा रहे थे॥ २४॥

'शैशवावस्थामें हनुमान्‌जी जब इस तरह उड़ रहे थे, उस समय उन्हें देखकर देवताओं, दानवों तथा यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ २५॥

'वे सोचने लगे—'यह वायुका पुत्र जिस प्रकार ऊँचे आकाशमें वेगपूर्वक उड़ रहा है, ऐसा वेग न तो वायुमें है, न गरुड़में है और न मनमें ही है॥ २६॥

'यदि बाल्यावस्थामें ही इस शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनका बल पाकर इसका वेग कैसा होगा'॥ २७॥

'अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे दाहके भयसे बचानेके लिये उस समय वायुदेव भी बर्फके ढेरकी भाँति शीतल होकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे॥

'इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और पिताके बलसे कई सहस्र योजन आकाशको लाँघते चले गये और सूर्यदेवके समीप पहुँच गये॥ २९॥

'सूर्यदेवने यह सोचकर कि अभी यह बालक है, इसे गुण-दोषका ज्ञान नहीं है और इसके अधीन देवताओंका भी बहुत-सा भावी कार्य है—इन्हें जलाया नहीं॥ ३०॥

'जिस दिन हनुमान्‌जी सूर्यदेवको पकड़नेके लिये उछले थे, उसी दिन राहु सूर्यदेवपर ग्रहण लगाना चाहता था॥ ३१॥

'हनुमान्‌जीने सूर्यके रथके ऊपरी भागमें जब राहुका स्पर्श किया, तब चन्द्रमा और सूर्यका मर्दन करनेवाला राहु भयभीत हो वहाँसे भाग खड़ा हुआ॥ ३२॥

'सिंहिकाका वह पुत्र रोषसे भरकर इन्द्रके भवनमें गया और देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके सामने भौंहें टेढ़ी करके बोला— ॥ ३३॥

'बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले वासव! आपने चन्द्रमा और सूर्यको मुझे अपनी भूख दूर करनेके साधनके रूपमें दिया था; किंतु अब आपने उन्हें दूसरेके हवाले कर दिया है। ऐसा क्यों हुआ?॥ ३४॥

'आज पर्व (अमावास्या)-के समय मैं सूर्यदेवको ग्रस्त करनेकी इच्छासे गया था। इतनेहीमें दूसरे राहुने आकर सहसा सूर्यको पकड़ लिया'॥ ३५॥

'राहुकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और सोनेकी माला पहने अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए॥ ३६॥

'फिर कैलास-शिखरके समान उज्ज्वल, चार

दाँतोंसे विभूषित, मदकी धारा बहानेवाले, भाँति-भाँतिके शृङ्गारसे युक्त, बहुत ही ऊँचे और सुवर्णमयी घण्टाके नादरूप अट्टहास करनेवाले गजराज ऐरावतपर आरूढ़ हो देवराज इन्द्र राहुको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ हनुमान्‌जीके साथ सूर्यदेव विराजमान थे॥ ३७-३८॥

'इधर राहु इन्द्रको छोड़कर बड़े वेगसे आगे बढ़ गया। इसी समय पर्वत-शिखरके समान आकारवाले दौड़ते हुए राहुको हनुमान्‌जीने देखा॥ ३९॥

'तब राहुको ही फलके रूपमें देखकर बालक हनुमान् सूर्यदेवको छोड़ उस सिंहिकापुत्रको ही पकड़नेके लिये पुनः आकाशमें उछले॥ ४०॥

'श्रीराम! सूर्यको छोड़कर अपनी ओर धावा करनेवाले इन वानर हनुमान्‌को देखते ही राहु जिसका मुखमात्र ही शेष था, पीछेकी ओर मुड़कर भागा॥ ४१॥

'उस समय सिंहिकापुत्र राहु अपने रक्षक इन्द्रसे ही अपनी रक्षाके लिये कहता हुआ भयके मारे बारम्बार 'इन्द्र! इन्द्र!' की पुकार मचाने लगा॥ ४२॥

'चीखते हुए राहुके स्वरको जो पहलेका पहचाना हुआ था, सुनकर इन्द्र बोले—'डरो मत। मैं इस आक्रमणकारीको मार डालूँगा'॥ ४३॥

'तत्पश्चात् ऐरावतको देखकर इन्होंने उसे भी एक विशाल फल समझा और उस गजराजको पकड़नेके लिये ये उसकी ओर दौड़े॥ ४४॥

'ऐरावतको पकड़नेकी इच्छासे दौड़ते हुए हनुमान्‌जीका रूप दो घड़ीके लिये इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशमान एवं भयंकर हो गया॥ ४५॥

'बालक हनुमान्‌को देखकर शचीपति इन्द्रको अधिक क्रोध नहीं हुआ। फिर भी इस प्रकार धावा करते हुए इन्द्र बालक वानरपर उन्होंने अपने हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा प्रहार किया॥ ४६॥

'इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर ये एक पहाड़पर गिरे। वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी॥ ४७॥

'वज्रके आघातसे व्याकुल होकर इनके गिरते ही वायुदेव इन्द्रपर कुपित हो उठे। उनका यह क्रोध प्रजाजनोंके लिये अहितकारक हुआ॥ ४८॥

'सामर्थ्यशाली मारुतने समस्त प्रजाके भीतर रहकर भी वहाँ अपनी गति समेट ली—श्वास आदिके रूपमें संचार रोक दिया और अपने शिशुपुत्र हनुमान्‌को लेकर वे पर्वतकी गुफामें घुस गये॥ ४९॥

'जैसे इन्द्र वर्षा रोक देते हैं, उसी प्रकार वे वायुदेव प्रजाजनोंके मलाशय और मूत्राशयको रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा देने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण भूतोंके प्राण-संचारका अवरोध कर दिया॥ ५०॥

'वायुके प्रकोपसे समस्त प्राणियोंकी साँस बंद होने लगी। उनके सभी अङ्गोंके जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब काठके समान चेष्टाशून्य हो गये॥ ५१॥

'तीनों लोकोंमें न कहीं वेदोंका स्वाध्याय होता था और न यज्ञ। सारे धर्म-कर्म बन्द हो गये। त्रिभुवनके प्राणी ऐसे कष्ट पाने लगे, मानो नरकमें गिर गये हों॥ ५२॥

'तब गन्धर्व, देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी प्रजा व्यथित हो सुख पानेकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माजीके पास दौड़ी गयी॥ ५३॥

'उस समय देवताओंके पेट इस तरह फूल गये थे, मानो उन्हें महोदरका रोग हो गया हो। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! स्वामिन्! आपने चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि की है। आपने हम सबको हमारी आयुके अधिपतिके रूपमें वायुदेवको अर्पित किया है। साधुशिरोमणे! ये पवनदेव हमारे प्राणोंके ईश्वर हैं तो भी क्या कारण है कि आज इन्होंने अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी भाँति हमारे शरीरके भीतर अपने संचारको रोक दिया है और इस प्रकार ये हमारे लिये दुःखजनक हो गये हैं॥ ५४-५५ $\frac{1}{2}$ ॥

'वायुसे पीड़ित होकर आज हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दुःखहारी प्रजापते! आप हमारे इस वायुरोधजनित दुःखको दूर कीजिये'॥ ५६ $\frac{1}{2}$ ॥

'प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर उनके पालक और रक्षक ब्रह्माजीने कहा—'इसमें कुछ कारण है' ऐसा कहकर वे प्रजाजनोंसे फिर बोले—॥ ५७ $\frac{1}{2}$ ॥

'प्रजाओ! जिस कारणको लेकर वायुदेवताने क्रोध और अपनी गतिका अवरोध किया है, उसे बताता हूँ, सुनो। वह कारण तुम्हारे सुनने योग्य और उचित है॥

'आज देवराज इन्द्रने राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको मार गिराया है, इसीलिये वे कुपित हो उठे हैं॥

'वायुदेव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरोंमें उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं। वायुके बिना यह शरीर सूखे काठके समान हो जाता है॥ ६० $\frac{1}{2}$ ॥

'वायु ही सबका प्राण है। वायु ही सुख है और वायु ही यह सम्पूर्ण जगत् है। वायुसे परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख नहीं पा सकता॥ ६१ $\frac{1}{2}$ ॥

'वायु ही जगत्‌की आयु है। इस समय वायुने संसारके प्राणियोंको त्याग दिया है, इसलिये वे सब-के-सब निष्प्राण होकर काठ और दीवारके समान हो गये हैं॥ ६२ $\frac{1}{2}$ ॥

'अदिति-पुत्रो! अतः अब हमें उस स्थानपर चलना चाहिये, जहाँ हम सबको पीड़ा देनेवाले वायुदेव छिपे बैठे हैं। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रसन्न किये बिना हम सबका विनाश हो जाय'॥ ६३॥

'तदनन्तर देवता, गन्धर्व, नाग और गुह्यक आदि प्रजाओंको साथ ले प्रजापति ब्रह्माजी उस स्थानपर गये, जहाँ वायुदेव इन्द्रद्वारा मारे गये अपने पुत्रको लेकर बैठे हुए थे॥ ६४॥

'तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माजीने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों तथा यक्षोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी गोदमें सोये हुए उनके पुत्रको देखा, जिसकी अङ्गकान्ति सूर्य, अग्नि और सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी। उसकी वैसी दशा देखकर ब्रह्माजीको उसपर बड़ी दया आयी'॥ ६५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

ब्रह्मा आदि देवताओंका हनुमान्‌जीको जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें लेकर अञ्जनाके घर जाना, ऋषियोंके शापसे हनुमान्‌जीको अपने बलकी विस्मृति, श्रीरामका अगस्त्य आदि ऋषियोंसे अपने यज्ञमें पधारनेके लिये प्रस्ताव करके उन्हें विदा देना

'पुत्रके मारे जानेसे वायुदेवता बहुत दुःखी थे। ब्रह्माजीको देखकर वे उस शिशुको लिये हुए ही उनके आगे खड़े हो गये॥ १॥

'उनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे थे, माथेपर मुकुट और कण्ठमें हार शोभा दे रहे थे और वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे। वायुदेवता तीन बार उपस्थान करके ब्रह्माजीके चरणोंमें गिर पड़े॥ २॥

'वेदवेत्ता ब्रह्माजीने अपने लम्बे, फैले हुए और आभरणभूषित हाथसे वायुदेवताको उठाकर खड़ा किया तथा उनके उस शिशुपर भी हाथ फेरा॥ ३॥

'जैसे पानीसे सींच देनेपर सूखती हुई खेती हरी हो जाती है, उसी प्रकार कमलयोनि ब्रह्माजीके हाथका लीलापूर्वक स्पर्श पाते ही शिशु हनुमान् पुनः जीवित हो गये॥ ४॥

'हनुमान्‌को जीवित हुआ देख जगत्‌के प्राण-स्वरूप गन्धवाहन वायुदेव समस्त प्राणियोंके भीतर अवरुद्ध हुए प्राण आदिका पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक संचार करने लगे॥ ५॥

वायुके अवरोधसे छूटकर सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। ठीक उसी तरह, जैसे हिमयुक्त वायुके आघातसे मुक्त होकर खिले हुए कमलोंसे युक्त पुष्करिणियाँ सुशोभित होने लगती हैं॥ ६॥

तदनन्तर तीन युग्मोंसे[1] सम्पन्न, प्रधानतः तीन मूर्ति[2] धारण करनेवाले, त्रिलोकरूपी गृहमें रहनेवाले तथा तीन दशाओंसे[3] युक्त देवताओंद्वारा पूजित ब्रह्माजी वायुदेवताका प्रिय करनेकी इच्छासे देवगणोंसे बोले—॥ ७॥

'इन्द्र, अग्नि, वरुण, महादेव और कुबेर आदि देवताओ! यद्यपि आप सब लोग जानते हैं तथापि मैं आपलोगोंके हितकी सारी बातें बताऊँगा, सुनिये॥ ८॥

'इस बालकके द्वारा भविष्यमें आपलोगोंके बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अतः वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये आप सब लोग इसे वर दें'॥ ९॥

तब सुन्दर मुखवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्रने शिशु हनुमान्‌के गलेमें बड़ी प्रसन्नताके साथ कमलोंकी माला पहना दी और यह बात कही—॥ १०॥

'मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी; इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान्' होगा॥ ११॥

'इसके सिवा मैं इसे दूसरा अद्भुत वर यह देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रके द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा'॥ १२॥

इसके बाद वहाँ अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यने कहा—'मैं इसे अपने तेजका सौवाँ भाग देता हूँ॥ १३॥

१. तीन युग्मोंका तात्पर्य यहाँ छः प्रकारके ऐश्वर्यसे है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये ही छः प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

२. ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये ही तीन मूर्तियाँ हैं।

३. बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर—ये ही देवताओंकी तीन अवस्थाएँ हैं।

'इसके सिवा जब इसमें शास्त्राध्ययन करनेकी शक्ति आ जायगी, तब मैं ही इसे शास्त्रोंका ज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी समानता करनेवाला न होगा'॥ १४॥

तत्पश्चात् वरुणने वर देते हुए कहा—'दस लाख वर्षोंकी आयु हो जानेपर भी मेरे पाश और जलसे इस बालककी मृत्यु नहीं होगी'॥ १५॥

फिर यमने वर दिया—'यह मेरे दण्डसे अवध्य और नीरोग होगा।' तदनन्तर पिंगलवर्णकी एक आँखवाले कुबेरने कहा—'मैं संतुष्ट होकर यह वर देता हूँ कि युद्धमें कभी इसे विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राममें इसका वध न कर सकेगी'॥ १६-१७॥

इसके बाद भगवान् शङ्करने यह उत्तम वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा'॥

शिल्पियोंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले उस शिशुको देखकर उसे इस प्रकार वर दिया—॥ १९॥

'मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य होकर यह बालक चिरञ्जीवी होगा'॥ २०॥

अन्तमें ब्रह्माजीने उस बालकको लक्ष्य करके कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा'॥ २१॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जीको इस प्रकार देवताओंके वरोंसे अलंकृत देख चार मुखोंवाले जगद्‌गुरु ब्रह्माजीका मन प्रसन्न हो गया और वे वायुदेवसे बोले—॥ २२॥

'मारुत! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभयदाता होगा। युद्धमें कोई भी इसे जीत न सकेगा॥ २३॥

'यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा जा सकेगा। इसकी गति इसकी इच्छाके अनुसार तीव्र या मन्द होगी तथा वह कहीं भी रुक नहीं सकेगी। यह कपिश्रेष्ठ बड़ा यशस्वी होगा॥ २४॥

'यह युद्धस्थलमें रावणका संहार और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका सम्पादन करनेवाले अनेक अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कर्म करेगा'॥ २५॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीको वर देकर वायुदेवताकी अनुमति ले ब्रह्मा आदि सब देवता जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २६॥

गन्धवाहन वायु भी पुत्रको लेकर अञ्जनाके घर आये और उसे देवताओंके दिये हुए वरदानकी बात बताकर चले गये॥ २७॥

श्रीराम! इस प्रकार ये हनुमान्‌जी बहुत-से वर पाकर वरदानजनित शक्तिसे सम्पन्न हो गये और अपने भीतर विद्यमान अनुपम वेगसे पूर्ण हो भरे हुए महासागरके समान शोभा पाने लगे॥ २८॥

उन दिनों वेगसे भरे हुए ये वानरशिरोमणि हनुमान् निर्भय हो महर्षियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उपद्रव किया करते थे॥ २९॥

ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्रके साधनभूत स्रुक्, स्रुवा आदिको तोड़ डालते और ढेर-के-ढेर रखे गये वल्कलोंको चीर-फाड़ देते थे॥ ३०॥

'महाबली पवनकुमार इस तरहके उपद्रवपूर्ण कार्य करने लगे। कल्याणकारी भगवान् ब्रह्माने इन्हें सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य कर दिया है—यह बात सभी ऋषि जानते थे; अतः इनकी शक्तिसे विवश हो वे इनके सारे अपराध चुपचाप सह लेते थे॥ ३१½॥

यद्यपि केसरी तथा वायुदेवताने भी इन अञ्जनी-कुमारको बारम्बार मना किया तो भी ये वानरवीर मर्यादाका उल्लङ्घन कर ही देते थे॥ ३२½॥

इससे भृगु और अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न हुए महर्षि कुपित हो उठे। रघुश्रेष्ठ! उन्होंने अपने हृदयमें अधिक खेद पा दुःखको स्थान न देकर इन्हें शाप देते हुए कहा—॥ ३३½॥

'वानरवीर! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शापसे मोहित होकर तुम दीर्घकालतक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही नहीं चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा'॥ ३४-३५॥

इस प्रकार महर्षियोंके इस वचनके प्रभावसे इनका तेज और ओज घट गया। फिर ये उन्हीं आश्रमोंमें मृदुल प्रकृतिके होकर विचरने लगे॥ ३६॥

वाली और सुग्रीवके पिताका नाम ऋक्षरजा था। वे सूर्यके समान तेजस्वी तथा समस्त वानरोंके राजा थे॥ ३७॥

वे वानरराज ऋक्षरजा चिरकालतक वानरोंके राज्यका शासन करके अन्तमें कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुए॥ ३८॥

उनका देहावसान हो जानेपर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर वालीको राजा और वालीके स्थानपर सुग्रीवको युवराज बनाया॥ ३९॥

जैसे अग्निके साथ वायुकी स्वाभाविक मित्रता है,

उसी प्रकार सुग्रीवके साथ वालीका बचपनसे ही सख्यभाव था। उन दोनोंमें परस्पर किसी प्रकारका भेदभाव नहीं था। उनमें अटूट प्रेम था॥ ४०॥

श्रीराम! फिर जब वाली और सुग्रीवमें वैर उठ खड़ा हुआ, उस समय ये हनुमान्‌जी शापवश ही अपने बलको न जान सके। देव! वालीके भयसे भटकते रहनेपर भी न तो इन सुग्रीवको इनके बलका स्मरण हुआ और न स्वयं ये पवनकुमार ही अपने बलका पता पा सके॥ ४१-४२॥

सुग्रीवके ऊपर जब वह विपत्ति आयी थी, उन दिनों ऋषियोंके शापके कारण इनको अपने बलका ज्ञान भूल गया था, इसीलिये जैसे कोई सिंह हाथीके द्वारा अवरुद्ध होकर चुपचाप खड़ा रहे, उसी प्रकार ये वाली और सुग्रीवके युद्धमें चुपचाप खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे, कुछ कर न सके॥ ४३॥

संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो॥ ४४॥

ये असीम शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरणका अध्ययन करनेके लिये शङ्काएँ पूछनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुँह रखकर महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचलतक जाते थे॥ ४५॥

इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह— इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्द:शास्त्रके अध्ययनमें भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है॥ ४६॥

सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। नव व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमान्‌जी आपकी कृपासे साक्षात् ब्रह्माके समान आदरणीय होंगे॥ ४७॥

प्रलयकालमें भूतलको आप्लावित करनेके लिये भूमिके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागर, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नि तथा लोकसंहारके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमान्‌जीके सामने कौन ठहर सकेगा॥ ४८॥

श्रीराम! वास्तवमें ये तथा इन्हींके समान दूसरे-दूसरे जो सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय (अङ्गद), नल तथा रम्भ आदि महाकपीश्वर हैं; इन सबकी सृष्टि देवताओंने आपकी सहायताके लिये ही की है॥ ४९॥

श्रीराम! गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, प्रभ, ज्योतिमुख और नल—इन सब वानरेश्वरों तथा रीछोंकी सृष्टि देवताओंने आपके सहयोगके लिये ही की है॥ ५०॥

रघुनन्दन! आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। हनुमान्‌जीकी बाल्यावस्थाके इस चरित्रका भी वर्णन कर दिया॥ ५१॥

अगस्त्यजीका यह कथन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए। वानरों और राक्षसोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ५२॥

तत्पश्चात् अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— 'योगियोंके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीराम! आप यह सारा प्रसङ्ग सुन चुके। हमलोगोंने आपका दर्शन और आपके साथ वार्तालाप कर लिया। इसलिये अब हम जा रहे हैं'॥ ५३॥

उग्र तेजस्वी अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उन महर्षिसे इस प्रकार कहा— ॥ ५४॥

'मुनीश्वर! आज मुझपर देवता, पितर और पितामह आदि विशेषरूपसे संतुष्ट हैं। बन्धु-बान्धवोंसहित हमलोगोंको तो आप-जैसे महात्माओंके दर्शनसे ही सदा संतोष है॥ ५५॥

'मेरे मनमें एक इच्छाका उदय हुआ है, अत: मैं यह सूचित करनेयोग्य बात आपकी सेवामें निवेदन कर रहा हूँ। मुझपर अनुग्रह करके आपलोगोंको मेरे उस अभीष्ट कार्यको पूरा करना होगा॥ ५६॥

'मेरी इच्छा है कि पुरवासी और देशवासियोंको अपने-अपने कार्योंमें लगाकर मैं आप सत्पुरुषोंके प्रभावसे यज्ञोंका अनुष्ठान करूँ॥ ५७॥

'मेरे उन यज्ञोंमें आप महान् शक्तिशाली महात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये नित्य सदस्य बने रहें॥ ५८॥

'आप तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं। मैं आपलोगोंका आश्रय लेकर सदा संतुष्ट एवं पितरोंसे अनुगृहीत होऊँगा॥ ५९॥

'यज्ञ-आरम्भके समय सब लोग एकत्र होकर निरन्तर यहाँ आते रहें।' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले अगस्त्य आदि महर्षि उनसे 'एवमस्तु (ऐसा ही होगा)' कहकर वहाँसे जानेको उद्यत हुए॥ ६०$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार बातचीत करके सब ऋषि जैसे आये

थे, वैसे चले गये। इधर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं बातोंपर विचार करते रहे॥ ६१½ ॥

तदनन्तर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और वानरोंको विदा करके नरेशोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक संध्योपासना की और रात होनेपर वे अन्तःपुरमें पधारे॥ ६२-६३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

श्रीरामका सभासदोंके साथ राजसभामें बैठना

ककुत्स्थकुलभूषण आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीका धर्मपूर्वक राज्याभिषेक हो जानेपर पुरवासियोंका हर्ष बढ़ानेवाली उनकी पहली रात्रि व्यतीत हुई॥ १ ॥

वह रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब प्रातःकाल महाराज श्रीरामको जगानेवाले सौम्य वन्दीजन राजमहलमें उपस्थित हुए॥ २ ॥

उनके कण्ठ बड़े मधुर थे। वे संगीतकी कलामें किन्नरोंके समान सुशिक्षित थे। उन्होंने बड़े हर्षमें भरकर यथावत्-रूपसे वीर नरेश श्रीरघुनाथजीका स्तवन आरम्भ किया॥ ३ ॥

'श्रीकौसल्याजीका आनन्द बढ़ानेवाले सौम्य-स्वरूप वीर श्रीरघुवीर! आप जागिये। महाराज! आपके सोये रहनेपर तो सारा जगत् ही सोया रहेगा (ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्मानुष्ठानमें नहीं लग सकेगा)॥ ४ ॥

'आपका पराक्रम भगवान् विष्णुके समान तथा रूप अश्विनीकुमारोंके समान है। बुद्धिमें आप बृहस्पतिके तुल्य हैं और प्रजापालनमें साक्षात् प्रजापतिके सदृश हैं॥

'आपकी क्षमा पृथ्वीके समान और तेज भगवान् भास्करके समान है। वेग वायुके तुल्य और गम्भीरता समुद्रके सदृश है॥ ६ ॥

'नरेश्वर! आप भगवान् शङ्करके समान युद्धमें अविचल हैं। आपकी-सी सौम्यता चन्द्रमामें ही पायी जाती है। आपके समान राजा न पहले थे और न भविष्यमें होंगे॥ ७ ॥

'पुरुषोत्तम! आपको परास्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है। आप सदा धर्ममें संलग्न रहते हुए प्रजाके हित-साधनमें तत्पर रहते हैं, अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी नहीं छोड़ती हैं॥ ८ ॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! ऐश्वर्य और धर्म आपमें नित्य प्रतिष्ठित हैं।' वन्दीजनोंने ये तथा और भी बहुत-सी सुमधुर स्तुतियाँ सुनायीं॥ ९ ॥

सूत भी दिव्य स्तुतियोंद्वारा श्रीरघुनाथजीको जगाते रहे। इस प्रकार सुनायी जाती हुई स्तुतियोंके द्वारा भगवान् श्रीराम जागे॥ १० ॥

जैसे पापहारी भगवान् नारायण सर्पशय्यासे उठते हैं, उसी प्रकार वे भी श्वेत बिछौनोंसे ढकी हुई शय्याको छोड़कर उठ बैठे॥ ११ ॥

महाराजके शय्यासे उठते ही सहस्रों सेवक विनयपूर्वक हाथ जोड़ उज्ज्वल पात्रोंमें जल लिये उनकी सेवामें उपस्थित हुए॥ १२ ॥

स्नान आदि करके शुद्ध हो उन्होंने समयपर अग्निमें आहुति दी और शीघ्र ही इक्ष्वाकुवंशियोंद्वारा सेवित पवित्र देवमन्दिरमें वे पधारे॥ १३ ॥

वहाँ देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन करके वे अनेक कर्मचारियोंके साथ बाहरकी ड्योढ़ीमें आये॥ १४ ॥

इसी समय प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वसिष्ठ आदि सभी महात्मा मन्त्री और पुरोहित वहाँ उपस्थित हुए॥ १५ ॥

तत्पश्चात् अनेकानेक जनपदोंके स्वामी महामनस्वी क्षत्रिय श्रीरामचन्द्रजीके पास उसी तरह आकर बैठे, जैसे इन्द्रके समीप देवतालोग आकर बैठा करते हैं॥ १६ ॥

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—ये तीनों भाई बड़े हर्षके साथ उसी तरह भगवान् श्रीरामकी सेवामें उपस्थित रहते थे, जैसे तीनों वेद यज्ञकी॥ १७ ॥

इसी समय मुदित नामसे प्रसिद्ध बहुत-से सेवक भी, जिनके मुखपर प्रसन्नता खेलती रहती थी, हाथ जोड़े सभाभवनमें आये और श्रीरघुनाथजीके पास बैठ गये॥ १८ ॥

फिर महापराक्रमी महातेजस्वी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि बीस* वानर भगवान् श्रीरामके समीप आकर बैठे॥ १९ ॥

* सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, सुषेण, तार, नील, नल, मैन्द, द्विविद, कुमुद, शरभ, शतबलि, गन्धमादन, गज, गवाक्ष, गवय, धूम्र, रम्भ तथा ज्योतिमुख—ये प्रधान-प्रधान वानर-वीर बीसकी संख्यामें उपस्थित थे।

अपने चार राक्षस मन्त्रियोंसे घिरे हुए विभीषण भी उसी प्रकार महात्मा श्रीरामकी सेवामें उपस्थित हुए, जैसे गुह्यकगण धनपति कुबेरकी सेवामें उपस्थित होते हैं॥ २०॥

जो लोग शास्त्रज्ञानमें बढ़े-चढ़े और कुलीन थे, वे चतुर मनुष्य भी महाराजको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके वहाँ बैठ गये॥ २१॥

इस प्रकार बहुत-से श्रेष्ठ एवं तेजस्वी महर्षि, महापराक्रमी राजा, वानर और राक्षसोंसे घिरे राजसभामें बैठे हुए श्रीरघुनाथजी बड़ी शोभा पा रहे थे॥ २२॥

जैसे देवराज इन्द्र सदा ऋषियोंसे सेवित होते हैं, उसी तरह महर्षि-मण्डलीसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी उस समय सहस्रलोचन इन्द्रसे भी अधिक शोभा पा रहे थे॥ २३॥

जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब पुराणवेत्ता महात्मा लोग भिन्न-भिन्न धर्म-कथाएँ कहने लगे*॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य नरेशोंकी विदाई

महाबाहु श्रीरघुनाथजी इसी प्रकार प्रतिदिन राजसभामें बैठकर पुरवासियों और जनपदवासियोंके सारे कार्योंकी देखभाल करते हुए शासनका कार्य चलाते थे॥ १॥

तदनन्तर कुछ दिन बीतनेपर श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलानरेश विदेहराज जनकजीसे हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ २॥

'महाराज! आप ही हमारे सुस्थिर आश्रय हैं। आपने सदा हमलोगोंका लालन-पालन किया है। आपके ही बढ़े हुए तेजसे मैंने रावणका वध किया है॥ ३॥

'राजन्! समस्त इक्ष्वाकुवंशी और मैथिल नरेशोंमें आपसके सम्बन्धके कारण सब प्रकारसे जो प्रेम बढ़ा है, उसकी कहीं तुलना नहीं है॥ ४॥

'पृथ्वीनाथ! अब आप हमारे द्वारा भेंट किये गये ये रत्न लेकर अपनी राजधानीको पधारें। भरत (तथा उनके साथ-साथ शत्रुघ्न भी) आपकी सहायताके लिये आपके पीछे-पीछे जायँगे'॥ ५॥

तब जनकजी 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'राजन्! मैं आपके दर्शन तथा न्यायानुसार व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ॥ ६॥

'आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्र किये हैं, वह सब मैं अपनी सीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ'॥ ७॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर श्रीमान् राजा जनक प्रसन्न-चित्त हो श्रीरामकी अनुमति ले मिथिलापुरीको चल दिये॥ ८॥

जनकजीके चले जानेके पश्चात् श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर अपने मामा केकय-नरेश युधाजित्से, जो बड़े सामर्थ्यशाली थे, विनयपूर्वक कहा—॥ ९॥

'राजन्! पुरुषप्रवर! यह राज्य, मैं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—सब आपके अधीन हैं। आप ही हमारे आश्रय हैं॥ १०॥

'महाराज केकयराज वृद्ध हैं। वे आपके लिये बहुत चिन्तित होंगे। इसलिये पृथ्वीनाथ! आपका आज ही जाना मुझे अच्छा जान पड़ता है॥ ११॥

'आप बहुत-सा धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर पधारें। मार्गमें सहायताके लिये लक्ष्मण आपके साथ जायँगे'॥ १२॥

तब युधाजित्ने 'तथास्तु' कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान ली और कहा—'रघुनन्दन! ये रत्न और धन सब तुम्हारे ही पास अक्षयरूपसे रहें'॥ १३॥

फिर पहले श्रीरघुनाथजीने प्रणामपूर्वक अपने मामाकी परिक्रमा की, इसके बाद केकयकुलकी वृद्धि करनेवाले राजकुमार युधाजित्ने भी राजा श्रीरामकी प्रदक्षिणा की॥ १४॥

इसके बाद केकयराजने लक्ष्मणजीके साथ उसी तरह अपने देशको प्रस्थान किया, जैसे वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रने भगवान् विष्णुके साथ अमरावतीकी यात्रा की थी॥ १५॥

मामाको विदा करके रघुनाथजीने किसीसे भी

* इस सर्गके बाद कुछ प्रतियोंमें प्रक्षिप्त रूपसे पाँच सर्ग और उपलब्ध होते हैं, जिनमें वाली और सुग्रीवकी उत्पत्तिका तथा रावणके श्वेतद्वीपमें गमनका इतिहास वर्णित है। इस इतिहासके वक्ता भी अगस्त्यजी ही हैं। परंतु इसके पहले सर्गमें ही अगस्त्यजीके विदा होनेका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इन सर्गोंका उल्लेख असङ्गत प्रतीत होता है। इसीलिये ये सर्ग यहाँ नहीं लिये गये हैं।

भय न माननेवाले अपने मित्र काशिराज प्रतर्दनको हृदयसे लगाकर कहा— ॥ १६ ॥

'राजन्! आपने राज्याभिषेकके कार्यमें भरतके साथ पूरा उद्योग किया है और ऐसा करके अपने महान् प्रेम तथा परम सौहार्दका परिचय दिया है॥ १७॥

'काशिराज! अब आप सुन्दर परकोटों तथा मनोहर फाटकोंसे सुशोभित और अपने ही द्वारा सुरक्षित रमणीय पुरी वाराणसीको पधारिये'॥ १८॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामने पुनः अपने उत्तम आसनसे उठकर प्रतर्दनको छातीसे लगा उनका गाढ़ आलिङ्गन किया॥ १९॥

इस प्रकार कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामने उस समय काशिराजको विदा किया। श्रीरघुनाथजीकी अनुमति पाकर उनसे विदा ले निर्भय काशिराज तत्काल वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये॥ २० $\frac{1}{2}$ ॥

काशिराजको विदा करके श्रीरघुनाथजी हँसते हुए अन्य तीन सौ भूपालोंसे मधुर वाणीमें बोले— ॥ २१ $\frac{1}{2}$ ॥

'मेरे ऊपर आपलोगोंका अविचल प्रेम है, जिसकी रक्षा आपने अपने ही तेजसे की है। आपलोगोंमें सत्य और धर्म नियतरूपसे नित्य-निरन्तर निवास करते हैं॥ २२ $\frac{1}{2}$ ॥

'आप महापुरुषोंके प्रभाव और तेजसे ही मेरे द्वारा दुर्बुद्धि दुरात्मा राक्षसाधम रावण मारा गया है॥ २३ $\frac{1}{2}$ ॥

'मैं तो उसके वधमें निमित्तमात्र बना हूँ। वास्तवमें तो आपलोगोंके तेजसे ही पुत्र, मन्त्री, बन्धु-बान्धव तथा सेवकगणोंके सहित रावण युद्धमें मारा गया है॥ २४ $\frac{1}{2}$ ॥

'वनसे जनकराजनन्दिनी सीताके अपहरणका समाचार सुनकर महात्मा भरतने आपलोगोंको यहाँ बुलाया था॥ २५ $\frac{1}{2}$ ॥

'आप सभी महामना भूपाल राक्षसोंपर आक्रमण करनेके लिये उद्योगशील थे। तबसे आजतक यहाँ आपलोगोंका बहुत समय व्यतीत हो गया है। अतः अब मुझे आपलोगोंका अपने नगरको लौट जाना ही उचित जान पड़ता है'॥ २६ $\frac{1}{2}$ ॥

इसपर राजाओंने अत्यन्त हर्षसे भरकर कहा— 'श्रीराम! आप विजयी हुए और अपने राज्यपर भी प्रतिष्ठित हो गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥ २७ $\frac{1}{2}$ ॥

'हमारे सौभाग्यसे ही आप सीताको लौटा लाये और उस प्रबल शत्रुको परास्त कर दिया। श्रीराम! यही हमारा सबसे बड़ा मनोरथ है और यही हमारे लिये सबसे बढ़कर प्रसन्नताकी बात है कि आज हमलोग आपको विजयी देख रहे हैं तथा आपकी शत्रु-मण्डली मारी जा चुकी है॥ २८-२९॥

'प्रशंसनीय श्रीराम! आप जो हमलोगोंकी प्रशंसा कर रहे हैं, यह आपहीके योग्य है। हम ऐसी प्रशंसा करनेकी कला नहीं जानते हैं॥ ३०॥

'अब हम आज्ञा चाहते हैं। अपनी पुरीको जायँगे। जिस प्रकार आप सदा हमारे हृदयमें विराजमान रहते हैं, उसी प्रकार हे महाबाहो! जिसमें हमलोग आपके प्रति प्रेमसे युक्त रहकर आपके हृदयमें बसे रहें, ऐसी प्रीति आपकी हमपर सदा बनी रहनी चाहिये।' तब श्रीरघुनाथजीने हर्षसे भरे हुए उन राजाओंसे कहा—'अवश्य ऐसा ही होगा'॥ ३१-३२॥

तत्पश्चात् जानेके लिये उत्सुक हो सबने हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजीसे कहा—'भगवन्! अब हम जा रहे हैं।' इस तरह श्रीरामसे सम्मानित हो वे सब राजा अपने-अपने देशको चले गये॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ सर्ग

राजाओंका श्रीरामके लिये भेंट देना और श्रीरामका वह सब लेकर अपने मित्रों, वानरों, रीछों और राक्षसोंको बाँट देना तथा वानर आदिका वहाँ सुखपूर्वक रहना

अयोध्यासे प्रस्थित हो वे महामना भूपाल सहस्रों हाथी, घोड़े तथा पैदल-समूहोंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से हर्षपूर्वक आगे बढ़ने लगे॥ १॥

भरतकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये वहाँ कई अक्षौहिणी सेनाएँ युद्धके लिये उद्यत होकर आयी थीं। उन सबके सैनिक और वाहन हर्ष एवं उत्साहसे भरे हुए थे॥ २॥

वे सभी भूपाल बलके घमंडमें भरकर आपसमें इस तरहकी बातें करने लगे—'हमलोगोंने युद्धमें श्रीराम और रावणको आमने-सामने खड़ा नहीं देखा॥ ३॥

'भरतने (पहले तो सूचना नहीं दी) पीछे युद्ध समाप्त हो जानेपर हमें व्यर्थ ही बुला लिया। यदि सब

राजा गये होते तो उनके द्वारा समस्त राक्षसोंका संहार बहुत जल्दी हो गया होता, इसमें संशय नहीं है॥ ४॥

'श्रीराम और लक्ष्मणके बाहुबलसे सुरक्षित एवं निश्चिन्त हो हमलोग समुद्रके उस पार सुखपूर्वक युद्ध कर सकते थे'॥ ५॥

ये तथा और भी बहुत-सी बातें कहते हुए वे सहस्रों नरेश बड़े हर्षके साथ अपने-अपने राज्यको गये॥

उनके अपने-अपने प्रसिद्ध राज्य समृद्धिशाली, सुख और आनन्दसे परिपूर्ण, धन-धान्यसे सम्पन्न तथा रत्न आदिसे भरे-पूरे थे। उन राज्यों तथा नगरोंमें जाकर उन नरेशोंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके रत्न और उपहार भेजे। घोड़े, सवारियाँ, रत्न, मतवाले हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मोती, मूँगे, रूपवती दासियाँ, नाना प्रकारकी बकरियाँ और भेड़ें तथा तरह-तरहके बहुत-से रथ भेंट किये॥ ७—१०॥

महाबली भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उन रत्नोंको लेकर पुनः अपनी पुरीमें लौट आये। रमणीय पुरी अयोध्यामें आकर उन तीनों पुरुषप्रवर बन्धुओंने ये विचित्र रत्न श्रीरामको समर्पित कर दिये॥ ११-१२॥

उन सबको ग्रहण करके महात्मा श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उपकारी वानरराज सुग्रीव और विभीषणको तथा अन्य राक्षसों और वानरोंको भी बाँट दिया; क्योंकि उन्हींसे घिरे रहकर भगवान् श्रीरामने युद्धमें विजय प्राप्त की थी॥ १३-१४॥

उन सभी महाबली वानरों और राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए वे रत्न अपने मस्तक और भुजाओंमें धारण कर लिये॥ १५॥

तत्पश्चात् इक्ष्वाकुनरेश महापराक्रमी महारथी कमलनयन श्रीरामने महाबाहु हनुमान् और अङ्गदको गोदमें बैठाकर सुग्रीवसे इस प्रकार कहा—'सुग्रीव! अङ्गद तुम्हारे सुपुत्र हैं और पवनकुमार हनुमान् मन्त्री। वानरराज! ये दोनों मेरे लिये मन्त्रीका भी काम देते थे और सदा मेरे हित-साधनमें लगे रहते थे। इसलिये और विशेषतः तुम्हारे नाते ये मेरी ओरसे विविध आदर-सत्कार एवं भेंट पानेके योग्य हैं'॥ १६—१८॥

ऐसा कहकर महायशस्वी श्रीरामने अपने शरीरसे बहुमूल्य आभूषण उतारकर उन्हें अङ्गद तथा हनुमान्के अङ्गोंमें बाँध दिया॥ १९॥

इसके बाद श्रीरघुनाथजीने महापराक्रमी वानर-यूथपतियों—नील, नल, केसरी, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, वीर मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, गवाक्ष, विनत, धूम्र, बलीमुख, प्रजङ्घ, महाबली संनाद, दरीमुख, दधिमुख और यूथप इन्द्रजानुको बुलाकर उनकी ओर दोनों नेत्रोंसे इस प्रकार देखा, मानो वे उन्हें नेत्रपुटोंद्वारा पी रहे हों। उन्होंने स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें उनसे कहा—'वानरवीरो! आपलोग मेरे सुहृद्, शरीर और भाई हैं। आपने ही मुझे संकटसे उबारा है। आप-जैसे श्रेष्ठ सुहृदोंको पाकर राजा सुग्रीव धन्य हैं'॥ २०—२४॥

ऐसा कहकर नरश्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीने उन्हें यथायोग्य आभूषण और बहुमूल्य हीरे दिये तथा उनका आलिङ्गन किया॥ २५॥

मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वे वानर वहाँ सुगन्धित मधु पीते, राजभोग वस्तुओंका उपभोग करते और स्वादिष्ट फल-मूल खाते थे॥ २६॥

इस प्रकार निवास करते हुए उन वानरोंका वहाँ एक महीनेसे अधिक समय बीत गया; परंतु श्रीरघुनाथजीके प्रति भक्तिके कारण उन्हें वह समय एक मुहूर्तके समान ही जान पड़ा॥ २७॥

श्रीराम भी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन वानरों, महापराक्रमी राक्षसों तथा महाबली रीछोंके साथ बड़े आनन्दसे समय बिताते थे॥ २८॥

इस तरह उनका शिशिर-ऋतुका दूसरा महीना भी सुखपूर्वक बीत गया। इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंकी उस सुरम्य राजधानीमें वे वानर और राक्षस बड़े हर्ष और प्रेमसे रहते थे। श्रीरामके प्रेमपूर्वक सत्कारसे उनका वह समय सुखपूर्वक बीत रहा था॥ २९-३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

वानरों, रीछों और राक्षसोंकी बिदाई

इस तरह वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हुए रीछो, वानरों और राक्षसोंमेंसे सुग्रीवको सम्बोधित करके महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने इस प्रकार कहा—॥ १॥

'सौम्य! अब तुम देवताओं तथा असुरोंके लिये भी दुर्जय किष्किन्धापुरीको जाओ और वहाँ मन्त्रियोंके साथ रहकर अपने निष्कण्टक राज्यका पालन करो॥ २॥

'महाबाहो! अङ्गद और हनुमान्‌को भी तुम अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखना। महाबली नल, अपने श्वशुर वीर सुषेण, बलवानोंमें श्रेष्ठ तार, दुर्धर्ष वीर कुमुद, महाबली नील, वीर शतबलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, महाबली शरभ, महान् बल-पराक्रमसे युक्त दुर्जय वीर ऋक्षराज जाम्बवान् तथा गन्धमादनपर भी तुम प्रेमपूर्ण दृष्टि रखना॥ ३—६॥

'परम पराक्रमी ऋषभ, वानर, सुपाटल, केसरी, शरभ, शुम्भ तथा महाबली शङ्खचूडको भी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखना॥ ७॥

'इनके सिवा जिन-जिन महामनस्वी वानरोंने मेरे लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी, उन सबपर तुम प्रेमदृष्टि रखना। कभी उनका अप्रिय न करना'॥ ८॥

ऐसा कहकर श्रीरामने सुग्रीवको बारम्बार हृदयसे लगाया और फिर मधुर वाणीमें विभीषणसे कहा—

'राक्षसराज! तुम धर्मपूर्वक लङ्काका शासन करो। मैं तुम्हें धर्मज्ञ मानता हूँ। तुम्हारे नगरके लोग, सब राक्षस तथा तुम्हारे भाई कुबेर भी तुम्हें धर्मज्ञ ही समझते हैं॥ १०॥

'राजन्! तुम किसी तरह भी अधर्ममें मन न लगाना। जिनकी बुद्धि ठीक है, वे राजा निश्चय ही दीर्घकालतक पृथ्वीका राज्य भोगते हैं॥ ११॥

'राजन्! तुम सुग्रीवसहित मुझे सदा याद रखना। अब निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक यहाँसे जाओ'॥ १२॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर रीछों, वानरों और राक्षसोंने 'धन्य-धन्य' कहकर उनकी बारम्बार प्रशंसा की॥ १३॥

वे बोले—'महाबाहु श्रीराम! स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान आपके स्वभावमें सदा परम मधुरता रहती है। आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्भुत हैं'॥ १४॥

वानर और राक्षस जब ऐसा कह रहे थे, उसी समय हनुमान्‌जी विनम्र होकर श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥

'महाराज! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे। वीर! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो॥ १६॥

'वीर श्रीराम! इस पृथ्वीपर जबतक रामकथा प्रचलित रहे, तबतक निःसंदेह मेरे प्राण इस शरीरमें ही बसे रहें॥ १७॥

'रघुकुलनन्दन नरश्रेष्ठ श्रीराम! आपका जो यह दिव्य चरित्र और कथा है, इसे अप्सराएँ मुझे गाकर सुनाया करें॥ १८॥

'वीर प्रभो! आपके उस चरितामृतको सुनकर मैं अपनी उत्कण्ठाको उसी तरह दूर करता रहूँगा, जैसे वायु बादलोंकी पंक्तिको उड़ाकर दूर ले जाती है'॥ १९॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने श्रेष्ठ सिंहासनसे उठकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और स्नेहपूर्वक इस प्रकार कहा—॥ २०॥

'कपिश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। संसारमें मेरी कथा जबतक प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक बने रहेंगे, तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी॥ २१-२२॥

'कपे! तुमने जो उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एकके लिये मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा॥ २३॥

'कपिश्रेष्ठ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायँ। उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर न मिले; क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है (मैं नहीं चाहता कि तुम भी संकटमें पड़ो और मैं तुम्हारे उपकारका बदला चुकाऊँ)'॥ २४॥

इतना कहकर श्रीरघुनाथजीने अपने कण्ठसे एक चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार निकाला, जिसके मध्यभागमें वैदूर्यमणि थी। उसे उन्होंने हनुमान्‌जीके गलेमें बाँध दिया॥ २५॥

वक्षःस्थलसे सटे हुए उस विशाल हारसे हनुमान्‌जी उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे सुवर्णमय गिरिराज सुमेरुके शिखरपर चन्द्रमाका उदय हुआ हो॥ २६॥

श्रीरघुनाथजीके ये विदाईके शब्द सुनकर वे महाबली वानर एक-एक करके उठे और उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करके वहाँसे चल दिये॥ २७॥

सुग्रीव और धर्मात्मा विभीषण श्रीरामके हृदयसे लग गये और उनका गाढ़ आलिंगन करके विदा हुए। उस समय वे सब-के-सब नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए श्रीरामके भावी विरहसे व्यथित हो उठे थे॥ २८॥

श्रीरामको छोड़कर जाते समय वे सभी दुःखसे किंकर्तव्यविमूढ़ तथा अचेत-से हो रहे थे। किसीके गलेसे आवाज नहीं निकलती थी और सभीके नेत्रोंसे

अश्रु झर रहे थे॥ २९॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार कृपा एवं प्रसन्नतापूर्वक विदा देनेपर वे सब वानर विवश हो उसी प्रकार अपने-अपने घरको गये, जैसे जीवात्मा विवशतापूर्वक शरीर छोड़कर परलोकको जाता है॥ ३०॥

वे राक्षस, रीछ और वानर रघुवंशवर्धन श्रीरामको प्रणाम करके नेत्रोंमें वियोगके आँसू लिये अपने-अपने निवासस्थानको लौट गये॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

कुबेरके भेजे हुए पुष्पकविमानका आना और श्रीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर अदृश्य हो जाना, भरतके द्वारा श्रीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन

रीछों, वानरों और राक्षसोंको विदा करके भाइयोंसहित सुख-स्वरूप महाबाहु श्रीराम सुख और आनन्दपूर्वक वहाँ रहने लगे॥ १॥

एक दिन अपराह्णकालमें (दोपहरके बाद) अपने भाइयोंके साथ बैठे हुए महाप्रभु श्रीरघुनाथजीने आकाशसे यह मधुर वाणी सुनी—॥ २॥

'सौम्य श्रीराम! आप मेरी ओर प्रसन्नतापूर्ण मुखसे दृष्टिपात करनेकी कृपा करें। प्रभो! आपको विदित होना चाहिये कि मैं कुबेरके भवनसे लौटा हुआ पुष्पकविमान हूँ॥ ३॥

'नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा मानकर मैं कुबेरकी सेवाके लिये उनके भवनमें गया था; परंतु उन्होंने मुझसे कहा—॥ ४॥

'विमान! महात्मा महाराज श्रीरामने युद्धमें दुर्धर्ष राक्षसराज रावणको मारकर तुम्हें जीता है॥ ५॥

'पुत्रों, बन्धु-बान्धवों तथा सेवकगणोंसहित उस दुरात्मा रावणके मारे जानेसे मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ ६॥

'सौम्य! इस तरह परमात्मा श्रीरामने लङ्कामें रावणके साथ-साथ तुमको भी जीत लिया है; अतः मैं आज्ञा देता हूँ, तुम उन्हींकी सवारीमें रहो॥ ७॥

'रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं। तुम उनकी सवारीके काम आओ—यह मेरी सबसे बड़ी कामना है। इसलिये तुम निश्चिन्त होकर जाओ'॥ ८॥

'इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरकी आज्ञा पाकर ही आपके पास आया हूँ, अतः आप मुझे निःशङ्क होकर ग्रहण करें॥ ९॥

'मैं सभी प्राणियोंके लिये अजेय हूँ और कुबेरकी आज्ञाके अनुसार मैं आपके आदेशका पालन करता हुआ अपने प्रभावसे समस्त लोकोंमें विचरण करूँगा'॥ १०॥

पुष्पकके ऐसा कहनेपर महाबली श्रीरामने उस विमानको पुनः आया देख उससे कहा—॥ ११॥

'विमानराज पुष्पक! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। कुबेरकी अनुकूलता होनेसे हमें मर्यादाभङ्गका दोष नहीं लगेगा'॥ १२॥

ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामने लावा, फूल, धूप और चन्दन आदिके द्वारा पुष्पकका पूजन किया॥ १३॥

और कहा—'अब तुम जाओ। जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना। आकाशमें रहना और अपनेको मेरे वियोगसे दुःखी न होने देना (मैं यथासमय तुम्हारा उपयोग करता रहूँगा)। स्वेच्छासे सम्पूर्ण दिशाओंमें जाते समय तुम्हारी किसीसे टक्कर न हो अथवा तुम्हारी गति कहीं प्रतिहत न हो'॥ १४$\frac{1}{2}$॥

पुष्पकने 'एवमस्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। इस प्रकार श्रीरामने उसका पूजन करके जब उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह पुष्पक वहाँसे अपनी अभीष्ट दिशाको चला गया॥ १५$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार पुण्यमय पुष्पकविमानके अदृश्य हो जानेपर भरतजीने हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥

'वीरवर! आप देवस्वरूप हैं। इसीलिये आपके शासनकालमें मनुष्येतर प्राणी भी बारम्बार मनुष्योंके समान सम्भाषण करते देखे जाते हैं॥ १७$\frac{1}{2}$॥

'राघव! आपके राज्यपर अभिषिक्त हुए एक माससे अधिक हो गया, तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्ट सहे प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं॥ १८-१९॥

'राजन्! पुरवासियोंमें बड़ा हर्ष छा रहा है। मेघ अमृतके समान जल गिराते हुए समयपर वर्षा करते हैं॥

'हवा ऐसी चलती है कि इसका स्पर्श शीतल एवं सुखद जान पड़ता है। राजन्! नगर और जनपदके लोग

इस पुरीमें कहते हैं कि हमारे लिये चिरकालतक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें'॥ २१½ ॥

भरतकी कही हुई ये सुमधुर बातें सुनकर नृपश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

अशोकवनिकामें श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपोवन देखनेकी इच्छा प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्वीकृति देना

सुवर्णभूषित पुष्पक विमानको विदा करके महाबाहु श्रीरामने अशोकवनिका (अन्तःपुरके विहार योग्य उपवन) में प्रवेश किया॥ १॥

चन्दन, अगुरु, आम, तुङ्ग (नारियल), कालेयक (रक्तचन्दन) तथा देवदारु-वन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ २॥

चम्पा, अशोक, पुंनाग, महुआ, कटहल, असन तथा धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले पारिजातसे वह वाटिका सुशोभित थी॥ ३॥

लोध, कदम्ब, अर्जुन, नागकेसर, छितवन, अतिमुक्तक, मन्दार, कदली तथा गुल्मों और लताओंके समूह उसमें सब ओर व्याप्त थे॥ ४॥

प्रियङ्गु, धूलिकदम्ब, बकुल, जामुन, अनार और कोविदार आदि वृक्ष उस उपवनको सुशोभित करते थे॥ ५॥

सदा फूल और फल देनेवाले रमणीय, मनोरम, दिव्य रस और गन्धसे युक्त तथा नूतन अङ्कुर-पल्लवोंसे अलंकृत वृक्ष भी उस अशोकवनिकाकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ६॥

वृक्ष लगानेकी कलामें कुशल मालियोंद्वारा तैयार किये गये दिव्य वृक्ष, जिनमें मनोहर पल्लव तथा पुष्प शोभा पाते थे और जिनके ऊपर मतवाले भ्रमर छा रहे थे, उस उपवनकी श्री-वृद्धि कर रहे थे॥ ७॥

कोकिल, भृङ्गराज आदि रंग-बिरंगे सैकड़ों पक्षी उस वाटिकाकी शोभा थे, जो आम्रकी डालियोंके अग्रभागपर बैठकर वहाँ विचित्र सुषुमाकी सृष्टि कर रहे थे॥ ८॥

कोई वृक्ष सुवर्णके समान पीले, कोई अग्निशिखाके समान उज्ज्वल और कोई नीले अञ्जनके समान श्याम थे, जो स्वयं सुशोभित होकर उस उपवनकी शोभा बढ़ाते थे॥ ९॥

वहाँ अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प और गुच्छ दृष्टिगोचर होते थे। उत्तम जलसे भरी हुई भाँति-भाँतिकी बावड़ियाँ देखी जाती थीं॥ १०॥

जिनमें माणिक्यकी सीढ़ियाँ बनी थीं। सीढ़ियोंके बाद कुछ दूरतक जलके भीतरकी भूमि स्फटिक मणिसे बँधी हुई थी। उन बावड़ियोंके भीतर खिले हुए कमल और कुमुदोंके समूह शोभा पाते थे, चक्रवाक भी उनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ११॥

पपीहे और तोते वहाँ मीठी बोली बोल रहे थे। हंसों और सारसोंके कलरव गूँज रहे थे। फूलोंसे चितकबरे दिखायी देनेवाले तटवर्ती वृक्ष उन्हें शोभासम्पन्न बना रहे थे॥ १२॥

वे भाँति-भाँतिके परकोटों और शिलाओंसे भी सुशोभित थीं। वहीं वनप्रान्तमें नीलमके समान रंगवाली हरी-हरी घासें उस वाटिकाका शृङ्गार कर रही थीं। वहाँके वृक्षोंका समुदाय फूलोंके भारसे लदा हुआ था॥ १३½ ॥

वहाँ मानो परस्पर होड़ लगाकर खिले हुए पुष्पशाली वृक्षोंके झड़े हुए फूलोंसे काले-काले प्रस्तर उसी तरह चितकबरे दिखायी देते थे, जैसे तारोंके समुदायसे अलंकृत आकाश॥ १४½ ॥

जैसे इन्द्रका नन्दन और ब्रह्माजीका बनाया हुआ कुबेरका चैत्ररथ वन सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुन्दर भवनोंसे विभूषित श्रीरामका वह क्रीडा-कानन शोभा पा रहा था॥ १५½ ॥

वहाँ अनेक ऐसे भवन बने थे, जिनके भीतर बैठनेके लिये बहुत-से आसन सजाये गये थे। वह वाटिका अनेक लतामण्डपोंसे सम्पन्न दिखायी देती थी। उस समृद्धिशालिनी अशोकवनिकामें प्रवेश करके रघुकुलनन्दन श्रीराम पुष्पराशिसे विभूषित एक सुन्दर आसनपर बैठे, जिसपर कालीन बिछा था॥ १६-१७½ ॥

जैसे देवराज इन्द्र शचीको सुधापान कराते हैं, उसी प्रकार ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने अपने हाथसे पवित्र पेय मधु लेकर सीताजीको पिलाया॥ १८½ ॥

सेवकगण श्रीरामके भोजनके लिये वहाँ तुरंत ही राजोचित भोग्य पदार्थ (भाँति-भाँतिकी रसोई) तथा नाना प्रकारके फल ले आये॥ १९½ ॥

उस समय राजा रामके समीप नृत्य और गीतकी कलामें निपुण अप्सराएँ और नाग-कन्याएँ किन्नरियोंके साथ मिलकर नृत्य करने लगीं॥ २०½ ॥

नाचने-गानेमें कुशल और चतुर बहुत-सी रूपवती स्त्रियाँ मधुपानजनित मदके वशीभूत हो श्रीरामचन्द्रजीके निकट अपनी नृत्य-कलाका प्रदर्शन करने लगीं॥ २१½ ॥

दूसरोंके मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीराम सदा उत्तम वस्त्राभूषणोंसे भूषित हुई उन मनोऽभिराम रमणियोंको उपहार आदि देकर संतुष्ट रखते थे॥ २२½ ॥

उस समय भगवान् श्रीराम सीतादेवीके साथ सिंहासनपर विराजमान हो अपने तेजसे अरुन्धतीके साथ बैठे हुए वसिष्ठजीके समान शोभा पाते थे॥ २३½ ॥

यों श्रीराम प्रतिदिन देवताके समान आनन्दित रहकर देवकन्याके समान सुन्दरी विदेहनन्दिनी सीताके साथ रमण करते थे॥ २४½ ॥

इस प्रकार सीता और रघुनाथजी चिरकालतक विहार करते रहे। इतनेहीमें सदा भोग प्रदान करनेवाला शिशिरऋतुका सुन्दर समय व्यतीत हो गया। भाँति-भाँतिके भोगोंका उपभोग करते हुए उन राजदम्पतिका वह शिशिरकाल बीत गया॥ २५-२६ ॥

धर्मज्ञ श्रीराम दिनके पूर्वभागमें धर्मके अनुसार धार्मिक कृत्य करते थे और शेष आधे दिन अन्तःपुरमें रहते थे॥ २७ ॥

सीताजी भी पूर्वाह्णकालमें देवपूजन आदि करके सब सासुओंकी समानरूपसे सेवा-पूजा करती थीं॥ २८ ॥

तत्पश्चात् विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास चली जाती थीं। ठीक उसी तरह, जैसे स्वर्गमें शची सहस्राक्ष इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती हैं॥ २९ ॥

इन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पत्नीको गर्भके मङ्गलमय चिह्नसे युक्त देखकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और कहा—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'॥ ३० ॥

फिर वे देवकन्याके समान सुन्दरी सीतासे बोले—'विदेहनन्दिनि! तुम्हारे गर्भसे पुत्र प्राप्त होनेका यह समय उपस्थित है। वरारोहे! बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ?'॥ ३१½ ॥

इसपर सीताजीने मुसकराकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोवनोंको देखनेकी हो रही है। देव! गङ्गातटपर रहकर फल-मूल खानेवाले जो उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, उनके समीप (कुछ दिन) रहना चाहती हूँ। काकुत्स्थ! फल-मूलका आहार करनेवाले महात्माओंके तपोवनमें एक रात निवास करूँ, यही मेरी इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा है'॥ ३२—३४½ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने सीताकी इस इच्छाको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की और कहा—'विदेहनन्दिनि! निश्चिन्त रहो। कल ही वहाँ जाओगी, इसमें संशय नहीं है'॥ ३५ ॥

मिथिलेशकुमारी जानकीसे ऐसा कहकर ककुत्स्थकुलनन्दन श्रीराम अपने मित्रोंके साथ बीचके खण्डमें चले गये॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

भद्रका पुरवासियोंके मुखसे सीताके विषयमें सुनी हुई अशुभ चर्चासे श्रीरामको अवगत कराना

वहाँ बैठे हुए महाराज श्रीरामके पास अनेक प्रकारकी कथाएँ कहनेमें कुशल हास्यविनोद करनेवाले सखा सब ओरसे आकर बैठते थे॥ १ ॥

उन सखाओंके नाम इस प्रकार हैं—विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध॥ २ ॥

ये सब लोग बड़े हर्षसे भरकर महात्मा श्रीरघुनाथजीके सामने अनेक प्रकारकी हास्य-विनोदपूर्ण कथाएँ कहा करते थे॥ ३ ॥

इसी समय किसी कथाके प्रसङ्गमें श्रीरघुनाथजीने पूछा—'भद्र! आजकल नगर और राज्यमें किस बातकी चर्चा विशेषरूपसे होती है?॥ ४ ॥

'नगर और जनपदके लोग मेरे, सीताके, भरतके, लक्ष्मणके तथा शत्रुघ्न और माता कैकेयीके विषयमें क्या-क्या बातें करते हैं? क्योंकि राजा यदि आचार-विचारसे हीन हों तो वे अपने राज्यमें तथा वनमें (ऋषि-मुनियोंके आश्रममें) भी निन्दाके विषय बन जाते हैं—सर्वत्र उन्हींकी बुराइयोंकी चर्चा होती है'॥ ५-६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भद्र हाथ जोड़कर बोला—'महाराज! आजकल पुरवासियोंमें आपको लेकर सदा अच्छी ही चर्चाएँ चलती हैं'॥ ७॥

'सौम्य! पुरुषोत्तम! दशग्रीव-वधसम्बन्धी जो आपकी विजय है, उसको लेकर नगरमें सब लोग अधिक बातें किया करते हैं'॥ ८॥

भद्रके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'पुरवासी मेरे विषयमें कौन-कौन-सी शुभ या अशुभ बातें कहते हैं, उन सबको यथार्थरूपसे पूर्णतः बताओ। इस समय उनकी शुभ बातें सुनकर जिन्हें वे शुभ मानते हैं उनका मैं आचरण करूँगा और अशुभ बातें सुनकर जिन्हें वे अशुभ समझते हैं, उन कृत्योंको त्याग दूँगा॥ ९-१०॥

'तुम विश्वस्त और निश्चिन्त होकर बेखटके कहो। पुरवासी और जनपदके लोग मेरे विषयमें किस प्रकार अशुभ चर्चाएँ करते हैं'॥ ११॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भद्रने हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त हो उन महाबाहु श्रीरामसे यह परम सुन्दर बात कही—॥ १२॥

'राजन्! सुनिये, पुरवासी मनुष्य चौराहोंपर, बाजारमें, सड़कोंपर तथा वन और उपवनमें भी आपके विषयमें किस प्रकार शुभ और अशुभ बातें कहते हैं? यह बता रहा हूँ॥ १३॥

'वे कहते हैं 'श्रीरामने समुद्रपर पुल बाँधकर दुष्कर कर्म किया है। ऐसा कर्म तो पहलेके किन्हीं देवताओं और दानवोंने भी नहीं सुना होगा॥ १४॥

'श्रीरामद्वारा दुर्धर्ष रावण सेना और सवारियोंसहित मारा गया तथा राक्षसोंसहित रीछ और वानर भी वशमें कर लिये गये॥ १५॥

'परंतु एक बात खटकती है, युद्धमें रावणको मारकर श्रीरघुनाथजी सीताको अपने घर ले आये। उनके मनमें सीताके चरित्रको लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ॥ १६॥

'उनके हृदयमें सीता-सम्भोगजनित सुख कैसा लगता होगा? पहले रावणने बलपूर्वक सीताको गोदमें उठाकर उनका अपहरण किया था, फिर वह उन्हें लङ्कामें भी ले गया और वहाँ उसने अन्तःपुरके क्रीडा-कानन अशोकवनिकामें रखा। इस प्रकार राक्षसोंके वशमें होकर वे बहुत दिनोंतक रहीं तो भी श्रीराम उनसे घृणा क्यों नहीं करते हैं। अब हमलोगोंको भी स्त्रियोंकी ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी; क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसीका अनुकरण करने लगती है'॥ १७—१९॥

'राजन्! इस प्रकार सारे नगर और जनपदमें पुरवासी मनुष्य बहुत-सी बातें कहते हैं'॥ २०॥

भद्रकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त पीड़ित होकर समस्त सुहृदोंसे पूछा—'आपलोग भी मुझे बतावें, यह कहाँतक ठीक है'॥ २१॥

तब सबने धरतीपर मस्तक टेककर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके दीनतापूर्ण वाणीमें कहा—'प्रभो! भद्रका यह कथन ठीक है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है'॥

सबके मुखसे यह बात सुनकर शत्रुसूदन श्रीरामने तत्काल उन सब सुहृदोंको विदा कर दिया॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीरामके बुलानेसे सब भाइयोंका उनके पास आना

मित्रमण्डलीको विदा करके श्रीरघुनाथजीने बुद्धिसे विचारकर अपना कर्तव्य निश्चित किया और निकटवर्ती द्वारपालसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'तुम जाकर शीघ्र ही महाभाग भरत, सुमित्राकुमार शुभलक्षण लक्ष्मण तथा अपराजित वीर शत्रुघ्नको भी यहाँ बुला लाओ'॥ २॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह आदेश सुनकर द्वारपालने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और लक्ष्मणके घर जाकर बेरोक-टोक उसके भीतर प्रवेश किया॥ ३॥

वहाँ हाथ जोड़ जय-जयकार करते हुए उसने महात्मा लक्ष्मणसे कहा—'कुमार! महाराज आपसे मिलना चाहते हैं। अतः शीघ्र चलिये, विलम्ब न कीजिये'॥ ४॥

तब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशको शिरोधार्य किया और तत्काल रथपर बैठकर वे श्रीरघुनाथजीके महलकी ओर तीव्रगतिसे चले॥ ५॥

लक्ष्मणको जाते देख द्वारपाल भरतके पास गया और उन्हें हाथ जोड़ वहाँ जय-जयकार करके विनीतभावसे बोला—'प्रभो! महाराज आपसे मिलना चाहते हैं'॥ ६ १/२॥

श्रीरामके भेजे हुए द्वारपालके मुखसे यह बात सुनकर महाबली भरत तुरंत अपने आसनसे उठ खड़े हुए और पैदल ही चल दिये॥ ७½ ॥

भरतको जाते देख द्वारपाल बड़ी उतावलीके साथ शत्रुघ्नके भवनमें गया और हाथ जोड़कर बोला—॥ ८½ ॥

'रघुश्रेष्ठ! आइये, चलिये, राजा श्रीराम आपको देखना चाहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी और महायशस्वी भरतजी पहले ही जा चुके हैं'॥ ९½ ॥

द्वारपालकी बात सुनकर शत्रुघ्न अपने उत्तम आसनसे उठे और धरतीपर माथा टेककर मन-ही-मन श्रीरामकी वन्दना करके तुरंत उनके निवासस्थानकी ओर चल दिये॥ १०½ ॥

द्वारपालने आकर श्रीरामसे हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'प्रभो! आपके सभी भाई द्वारपर उपस्थित हैं'॥ ११½ ॥

कुमारोंका आगमन सुनकर चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियवाले श्रीरामने नीचे मुख किये दुःखी मनसे द्वारपालको आदेश दिया—'तुम तीनों राजकुमारोंको जल्दी मेरे पास ले आओ। मेरा जीवन इन्हींपर अवलम्बित है। ये मेरे प्यारे प्राणस्वरूप हैं'॥ १२-१३½ ॥

महाराजकी आज्ञा पाकर वे श्वेत वस्त्रधारी कुमार सिर झुकाये हाथ जोड़े एकाग्रचित्त हो भवनके भीतर गये॥ १४½ ॥

उन्होंने श्रीरामका मुख इस तरह उदास देखा, मानो चन्द्रमापर ग्रह लग गया हो। वह संध्याकालके सूर्यकी भाँति प्रभाशून्य हो रहा था॥ १५½ ॥

उन्होंने बारम्बार देखा बुद्धिमान् श्रीरामके दोनों नेत्रोंमें आँसू भर आये थे और उनके मुखारविन्दकी शोभा छिन गयी थी॥ १६ ॥

तदनन्तर उन तीनों भाइयोंने तुरंत श्रीरामके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वे सब-के-सब प्रेममें समाधिस्थ-से होकर पड़ गये। उस समय श्रीराम आँसू बहा रहे थे॥ १७ ॥

महाबली रघुनाथजीने दोनों भुजाओंसे उठाकर उन सबका आलिङ्गन किया और कहा—'इन आसनोंपर बैठो।' जब वे बैठ गये, तब उन्होंने फिर कहा—॥ १८ ॥

'राजकुमारो! तुमलोग मेरे सर्वस्व हो। तुम्हीं मेरे जीवन हो और तुम्हारे द्वारा सम्पादित इस राज्यका मैं पालन करता हूँ॥ १९ ॥

'नरेश्वरो! तुम सभी शास्त्रोंके ज्ञाता और उनमें बताये कर्तव्यका पालन करनेवाले हो। तुम्हारी बुद्धि भी परिपक्व है। इस समय मैं जो कार्य तुम्हारे सामने उपस्थित करनेवाला हूँ, उसका तुम सबको मिलकर सम्पादन करना चाहिये'॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सभी भाई चौकन्ने हो गये। सबका चित्त उद्विग्न हो गया और सभी सोचने लगे—'न जाने महाराज हमसे क्या कहेंगे?'॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

श्रीरामका भाइयोंके समक्ष सर्वत्र फैले हुए लोकापवादकी चर्चा करके सीताको वनमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना

इस प्रकार सब भाई दुःखी मनसे वहाँ बैठे हुए थे। उस समय श्रीरामने सूखे मुखसे उनके सामने यह बात कही—॥ १ ॥

'बन्धुओ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सब लोग मेरी बात सुनो। मनको इधर-उधर न ले जाओ। पुरवासियोंके यहाँ मेरे और सीताके विषयमें जैसी चर्चा चल रही है, उसीको बता रहा हूँ॥ २ ॥

'इस समय पुरवासियों और जनपदके लोगोंमें सीताके सम्बन्धमें महान् अपवाद फैला हुआ है। मेरे प्रति भी उनका बड़ा घृणापूर्ण भाव है। उन सबकी वह घृणा मेरे मर्मस्थलको विदीर्ण किये देती है॥ ३ ॥

'मैं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। सीताने भी महात्मा जनकोंके उत्तम कुलमें जन्म लिया है॥ ४ ॥

'सौम्य लक्ष्मण! तुम तो यह जानते ही हो कि किस प्रकार रावण निर्जन दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर ले गया था और मैंने उसका विध्वंस भी कर डाला॥ ५

'उसके बाद लङ्कामें ही जानकीके विषयमें मेरे अन्तःकरणमें यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इनके इतने दिनोंतक यहाँ रह लेनेपर भी मैं इन्हें राजधानीमें कैसे ले जा सकूँगा॥ ६ ॥

'सुमित्राकुमार! उस समय अपनी पवित्रताका

विश्वास दिलानेके लिये सीताने तुम्हारे सामने ही अग्निमें प्रवेश किया था और देवताओंके समक्ष स्वयं अग्निदेवने उन्हें निर्दोष बताया था। आकाशचारी वायु, चन्द्रमा और सूर्यने भी पहले देवताओं तथा समस्त ऋषियोंके समीप जनकनन्दिनीको निष्पाप घोषित किया था॥ ७-८½ ॥

'इस प्रकार विशुद्ध आचारवाली सीताको देवताओं और गन्धर्वोंके समीप साक्षात् देवराज इन्द्रने लङ्काद्वीपके अंदर मेरे हाथमें सौंपा था॥ ९½ ॥

'मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीताको शुद्ध समझती है। इसीलिये मैं इन विदेहनन्दिनीको साथ लेकर अयोध्या आया था॥ १०½ ॥

'परंतु अब यह महान् अपवाद फैलने लगा है। पुरवासियों और जनपदके लोगोंमें मेरी बड़ी निन्दा हो रही है। इसके लिये मेरे हृदयमें बड़ा शोक है॥ ११½ ॥

'जिस किसी भी प्राणीकी अपकीर्ति लोकमें सबकी चर्चाका विषय बन जाती है, वह अधम लोकों (नरकों)-में गिर जाता है और जबतक उस अपयशकी चर्चा होती है तबतक वहीं पड़ा रहता है॥ १२½ ॥

'देवगण लोकोंमें अपकीर्तिकी निन्दा और कीर्तिकी प्रशंसा करते हैं। समस्त श्रेष्ठ महात्माओंका सारा शुभ आयोजन उत्तम कीर्तिकी स्थापनाके लिये ही होता है॥ १३½ ॥

'नरश्रेष्ठ बन्धुओ! मैं लोकनिन्दाके भयसे अपने प्राणोंको और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ। फिर सीताको त्यागना कौन बड़ी बात है?॥ १४½ ॥

'अतः तुमलोग मेरी ओर देखो। मैं शोकके समुद्रमें गिर गया हूँ। इससे बढ़कर कभी कोई दुःख मुझे उठाना पड़ा हो, इसकी मुझे याद नहीं है॥ १५½ ॥

'अतः सुमित्राकुमार! कल सबेरे तुम सारथि सुमन्त्रके द्वारा संचालित रथपर आरूढ़ हो सीताको भी उसीपर चढ़ाकर इस राज्यकी सीमाके बाहर छोड़ दो॥ १६½ ॥

'गङ्गाके उस पार तमसाके तटपर महात्मा वाल्मीकिमुनिका दिव्य आश्रम है॥ १७½ ॥

'रघुनन्दन! उस आश्रमके निकट निर्जन वनमें तुम सीताको छोड़कर शीघ्र लौट आओ। सुमित्रानन्दन! मेरी इस आज्ञाका पालन करो। सीताके विषयमें मुझसे किसी तरह कोई दूसरी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये॥ १८-१९ ॥

'इसलिये लक्ष्मण! अब तुम जाओ। इस विषयमें कोई सोच-विचार न करो। यदि मेरे इस निश्चयमें तुमने किसी प्रकारकी अड़चन डाली तो मुझे महान् कष्ट होगा॥ २० ॥

'मैं तुम्हें अपने चरणों और जीवनकी शपथ दिलाता हूँ, मेरे निर्णयके विरुद्ध कुछ न कहो। जो मेरे इस कथनके बीचमें कूदकर किसी प्रकार मुझसे अनुनय-विनय करनेके लिये कुछ कहेंगे, वे मेरे अभीष्ट कार्यमें बाधा डालनेके कारण सदाके लिये मेरे शत्रु होंगे॥ २१½ ॥

'यदि तुमलोग मेरा सम्मान करते हो और मेरी आज्ञामें रहना चाहते हो तो अब सीताको यहाँसे वनमें ले जाओ। मेरी इस आज्ञाका पालन करो॥ २२½ ॥

'सीताने पहले मुझसे कहा था कि मैं गङ्गातटपर ऋषियोंके आश्रम देखना चाहती हूँ; अतः उनकी यह इच्छा भी पूर्ण की जाय'॥ २३½ ॥

इस प्रकार कहते-कहते श्रीरघुनाथजीके दोनों नेत्र आँसुओंसे भर गये। फिर वे धर्मात्मा श्रीराम अपने भाइयोंके साथ महलमें चले गये। उस समय उनका हृदय शोकसे व्याकुल था और वे हाथीके समान लम्बी साँस खींच रहे थे॥ २४-२५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका सीताको रथपर बिठाकर उन्हें वनमें छोड़नेके लिये ले जाना और गङ्गाजीके तटपर पहुँचना

तदनन्तर जब रात बीती और सबेरा हुआ, तब लक्ष्मणने मन-ही-मन दुःखी हो सूखे मुखसे सुमन्त्रसे कहा— ॥ १ ॥

'सारथे! एक उत्तम रथमें शीघ्रगामी घोड़ोंको जोतो और उस रथमें सीताजीके लिये सुन्दर आसन बिछा दो। मैं महाराजकी आज्ञासे सीतादेवीको पुण्यकर्मा महर्षियोंके आश्रमपर पहुँचा दूँगा। तुम शीघ्र रथ ले आओ'॥ २-३ ॥

तब सुमन्त्र 'बहुत अच्छा' कहकर तुरंत ही उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ एक सुन्दर रथ ले आये, जिसपर

सुखद शय्यासे युक्त सुन्दर बिछावन बिछा हुआ था॥ ४॥

उसे लाकर वे मित्रोंका मान बढ़ानेवाले सुमित्रा-कुमारसे बोले—'प्रभो! यह रथ आ गया। अब जो कुछ करना हो कीजिये'॥ ५॥

सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर नरश्रेष्ठ लक्ष्मण राजमहलमें गये और सीताजीके पास जाकर बोले—॥ ६॥

'देवि! आपने महाराजसे मुनियोंके आश्रमोंपर जानेके लिये वर माँगा था और महाराजने आपको आश्रमपर पहुँचानेके लिये प्रतिज्ञा की थी॥ ७॥

'देवि! विदेहनन्दिनि! उस बातचीतके अनुसार मैं राजाकी आज्ञासे शीघ्र ही गङ्गातटपर ऋषियोंके सुन्दर आश्रमोंतक चलूँगा और आपको मुनिजनसेवित वनमें पहुँचाऊँगा'॥ ८½॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर विदेहनन्दिनी सीताको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। वे चलनेको तैयार हो गयीं॥ ९½॥

बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न लेकर वैदेही सीता वनकी यात्राके लिये उद्यत हो गयीं और लक्ष्मणसे बोलीं—'ये सब बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और नाना प्रकारके रत्न-धन मैं मुनि-पत्नियोंको दूँगी'॥ १०-११½॥

लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर मिथिलेशकुमारी सीताको रथपर चढ़ाया और श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाको ध्यानमें रखते हुए उस तेज घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर वे वनकी ओर चल दिये॥ १२½॥

उस समय सीताने लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मणसे कहा 'रघुनन्दन! मुझे बहुत-से अपशकुन दिखायी देते हैं। आज मेरी दायीं आँख फड़कती है और मेरे शरीरमें कम्प हो रहा है॥ १३-१४॥

'सुमित्राकुमार! मैं अपने हृदयको अस्वस्थ-सा देख रही हूँ। मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है और मेरी अधीरता पराकाष्ठाको पहुँची हुई है॥ १५॥

'विशाललोचन लक्ष्मण! मुझे पृथ्वी सूनी-सी ही दिखायी देती है। भ्रातृवत्सल! तुम्हारे भाई कुशलसे रहें॥ १६॥

'वीर! मेरी सब सासुएँ समान रूपसे सानन्द रहें। नगर और जनपदमें भी समस्त प्राणी सकुशल रहें'॥ १७॥

ऐसा कहती हुई सीताने हाथ जोड़कर देवताओंसे प्रार्थना की। सीताकी बात सुनकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और ऊपरसे प्रसन्न हो मुर्झाये हुए हृदयसे कहा—'सबका कल्याण हो'॥ १८½॥

तदनन्तर गोमतीके तटपर पहुँचकर एक आश्रममें उन सबने रात बितायी। फिर प्रात:काल उठकर सुमित्राकुमारने सारथिसे कहा—॥ १९½॥

'सारथे! जल्दी रथ जोतो। आज मैं भागीरथीके जलको उसी प्रकार सिरपर धारण करूँगा; जैसे भगवान् शङ्करने अपने तेजसे उसे मस्तकपर धारण किया था'॥ २०½॥

सारथिने मनके समान वेगशाली चारों घोड़ोंको टहलाकर रथमें जोता और विदेहनन्दिनी सीतासे हाथ जोड़कर कहा—'देवि! रथपर आरूढ़ होइये'॥ २१½॥

सूतके कहनेसे देवी सीता उस उत्तम रथपर सवार हुईं। इस प्रकार सुमित्राकुमार लक्ष्मण और बुद्धिमान् सुमन्त्रके साथ विशाललोचना सीतादेवी पापनाशिनी गङ्गाके तटपर जा पहुँचीं॥ २२-२३॥

दोपहरके समय भागीरथीकी जलधारातक पहुँचकर लक्ष्मण उसकी ओर देखते हुए दु:खी हो उच्च स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे॥ २४॥

लक्ष्मणको शोकसे आतुर देख धर्मज्ञा सीता अत्यन्त चिन्तित हो उनसे बोलीं—'लक्ष्मण! यह क्या? तुम रोते क्यों हो! गङ्गाके तटपर आकर तो मेरी चिरकालकी अभिलाषा पूर्ण हुई है। इस हर्षके समय तुम रोकर मुझे दु:खी क्यों करते हो?॥ २५-२६॥

'पुरुषप्रवर! श्रीरामके पास तो तुम सदा ही रहते हो। क्या दो दिनतक उनसे बिछुड़ जानेके कारण तुम इतने शोकाकुल हो गये हो?॥ २७॥

'लक्ष्मण! श्रीराम तो मुझे भी अपने प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हैं; परंतु मैं तो इस प्रकार शोक नहीं कर रही हूँ। तुम ऐसे नादान न बनो॥ २८॥

'मुझे गङ्गाके उस पार ले चलो और तपस्वी मुनियोंके दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी॥ २९॥

'तत्पश्चात् उन महर्षियोंका यथायोग्य अभिवादन करके वहाँ एक रात ठहरकर हम पुन: अयोध्यापुरीको लौट चलेंगे॥ ३०॥

'मेरा मन भी सिंहके समान वक्ष:स्थल, कृश उदर और कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामको, जो मनको रमानेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, देखनेके लिये उतावला हो रहा है'॥ ३१॥

सीताजीका यह वचन सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अपनी दोनों सुन्दर आँखें पोंछ लीं और नाविकोंको बुलाया। उन मल्लाहोंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! यह नाव तैयार है'॥ ३२॥

लक्ष्मण गङ्गाजीको पार करनेके लिये सीताजीके साथ उस सुन्दर नौकापर बैठे और बड़ी सावधानीके साथ उन्होंने सीताको गङ्गाजीके उस पार पहुँचाया॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका सीताजीको नावसे गङ्गाजीके उस पार पहुँचाकर बड़े दुःखसे उन्हें उनके त्यागे जानेकी बात बताना

मल्लाहोंकी वह नाव विस्तृत और सुसज्जित थी। लक्ष्मणने उसपर पहले सीताजीको चढ़ाया, फिर स्वयं चढ़े॥ १॥

उन्होंने रथसहित सुमन्त्रको वहीं ठहरनेके लिये कह दिया और शोकसे संतप्त होकर नाविकसे कहा—'चलो'॥ २॥

तदनन्तर भागीरथीके उस तटपर पहुँचकर लक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीतासे हाथ जोड़कर कहा—॥ ३॥

'विदेहनन्दिनि! मेरे हृदयमें सबसे बड़ा काँटा यही खटक रहा है कि आज रघुनाथजीने बुद्धिमान् होकर भी मुझे वह काम सौंपा है, जिसके कारण लोकमें मेरी बड़ी निन्दा होगी॥ ४॥

'इस दशामें यदि मुझे मृत्युके समान यन्त्रणा प्राप्त होती अथवा मेरी साक्षात् मृत्यु ही हो जाती तो वह मेरे लिये परम कल्याणकारक होती। परंतु इस लोकनिन्दित कार्यमें मुझे लगाना उचित नहीं था॥ ५॥

'शोभने! आप प्रसन्न हों। मुझे कोई दोष न दें' ऐसा कहकर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ६॥

लक्ष्मण हाथ जोड़कर रो रहे हैं और अपनी मृत्यु चाह रहे हैं, यह देखकर मिथिलेशकुमारी सीता अत्यन्त उद्विग्न हो उठीं और लक्ष्मणसे बोलीं—॥ ७॥

'लक्ष्मण! यह क्या बात है? मैं कुछ समझ नहीं पाती हूँ। ठीक-ठीक बताओ। महाराज कुशलसे तो हैं न। मैं देखती हूँ तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है॥ ८॥

'मैं महाराजकी शपथ दिलाकर पूछती हूँ, जिस बातसे तुम्हें इतना संताप हो रहा है, वह मेरे निकट सच-सच बताओ। मैं इसके लिये तुम्हें आज्ञा देती हूँ'॥ ९॥

विदेहनन्दिनीके इस प्रकार प्रेरित करनेपर लक्ष्मण दुःखी मनसे नीचे मुँह किये अश्रुगद्गद कण्ठद्वारा इस प्रकार बोले—॥ १०॥

'जनकनन्दिनि! नगर और जनपदमें आपके विषयमें जो अत्यन्त भयंकर अपवाद फैला हुआ है, उसे राजसभामें सुनकर श्रीरघुनाथजीका हृदय संतप्त हो उठा और वे मुझसे सब बातें बताकर महलमें चले गये॥ ११½॥

'देवि! राजा श्रीरामने जिन अपवादवचनोंको दुःख न सह सकनेके कारण अपने हृदयमें रख लिया है, उन्हें मैं आपके सामने बता नहीं सकता। इसीलिये मैंने उनकी चर्चा छोड़ दी है॥ १२½॥

'आप मेरे सामने निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं तो भी महाराजने लोकापवादसे डरकर आपको त्याग दिया है। देवि! आप कोई और बात न समझें। अब महाराजकी आज्ञा मानकर तथा आपकी भी ऐसी ही इच्छा समझकर मैं आश्रमोंके पास ले जाकर आपको वहीं छोड़ दूँगा॥ १३-१४½॥

'शुभे! यह रहा गङ्गाजीके तटपर ब्रह्मर्षियोंका पवित्र एवं रमणीय तपोवन। आप विषाद न करें॥ १५½॥

'यहाँ मेरे पिता राजा दशरथके घनिष्ठ मित्र महायशस्वी ब्रह्मर्षि मुनिवर वाल्मीकि रहते हैं, आप उन्हीं महात्माके चरणोंकी छायाका आश्रय ले यहाँ सुखपूर्वक रहें। जनकात्मजे! आप यहाँ उपवासपरायण और एकाग्र हो निवास करें॥ १६-१७॥

'देवि! आप सदा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रखकर पातिव्रत्यका अवलम्बन करें। ऐसा करनेसे आपका परम कल्याण होगा'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीताका दु:खपूर्ण वचन, श्रीरामके लिये उनका संदेश, लक्ष्मणका जाना और सीताका रोना

लक्ष्मणजीका यह कठोर वचन सुनकर जनक-किशोरी सीताको बड़ा दु:ख हुआ। वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ १॥

दो घड़ीतक उन्हें होश नहीं हुआ। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहती रही। फिर होशमें आनेपर जनककिशोरी दीन वाणीमें लक्ष्मणसे बोलीं—॥ २॥

'लक्ष्मण! निश्चय ही विधाताने मेरे शरीरको केवल दु:ख भोगनेके लिये ही रचा है। इसीलिये आज सारे दु:खोंका समूह मूर्तिमान् होकर मुझे दर्शन दे रहा है॥ ३॥

'मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पाप किया था अथवा किसका स्त्रीसे विछोह कराया था, जो शुद्ध आचरणवाली होनेपर भी महाराजने मुझे त्याग दिया है॥ ४॥

'सुमित्रानन्दन! पहले मैंने वनवासके दु:खमें पड़कर भी उसे सहकर श्रीरामके चरणोंका अनुसरण करते हुए आश्रममें रहना पसंद किया था॥ ५॥

'किंतु सौम्य! अब मैं अकेली प्रियजनोंसे रहित हो किस तरह आश्रममें निवास करूँगी? और दु:खमें पड़नेपर किससे अपना दु:ख कहूँगी॥ ६॥

'प्रभो! यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि महात्मा श्रीरघुनाथजीने किस अपराधपर तुम्हें त्याग दिया है तो मैं उन्हें अपना कौन-सा अपराध बताऊँगी॥ ७॥

'सुमित्राकुमार! मैं अपने जीवनको अभी गङ्गाजीके जलमें विसर्जन कर देती; किंतु इस समय ऐसा अभी नहीं कर सकूँगी; क्योंकि ऐसा करनेसे मेरे पतिदेवका राजवंश नष्ट हो जायगा॥ ८॥

'किंतु सुमित्रानन्दन! तुम तो वही करो, जैसी महाराजने तुम्हें आज्ञा दी है। तुम मुझ दुखियाको यहाँ छोड़कर महाराजकी आज्ञाके पालनमें ही स्थिर रहो और मेरी यह बात सुनो—॥ ९॥

'मेरी सब सासुओंको समानरूपसे हाथ जोड़कर मेरी ओरसे उनके चरणोंमें प्रणाम करना। साथ ही महाराजके भी चरणोंमें मस्तक नवाकर मेरी ओरसे उनकी कुशल पूछना॥ १०॥

'लक्ष्मण! तुम अन्त:पुरकी सभी वन्दनीया स्त्रियोंको मेरी ओरसे प्रणाम करके मेरा समाचार उन्हें सुना देना तथा जो सदा धर्म-पालनके लिये सावधान रहते हैं, उन महाराजको भी मेरा यह संदेश सुना देना॥ ११॥

'रघुनन्दन। वास्तवमें तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्धचरित्रा है। सर्वदा ही आपके हितमें तत्पर रहती है और आपके प्रति परम प्रेमभक्ति रखनेवाली है॥ १२॥

'वीर! आपने अपयशसे डरकर ही मुझे त्यागा है; अत: लोगोंमें आपकी जो निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है; क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं॥ १३½॥

'लक्ष्मण! तुम महाराजसे कहना कि आप धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीसे रहकर पुरवासियोंके साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा अपने भाइयोंके साथ करते हैं। यही आपका परम धर्म है और इसीसे आपको परम उत्तम यशकी प्राप्ति हो सकती है॥ १४-१५॥

'राजन्! पुरवासियोंके प्रति धर्मानुकूल आचरण करनेसे जो पुण्य प्राप्त होगा, वही आपके लिये उत्तम धर्म और कीर्ति है। पुरुषोत्तम! मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं है॥ १६॥

'रघुनन्दन! जिस तरह पुरवासियोंके अपवादसे बचकर रहा जा सके, उसी तरह आप रहें। स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गुरु है। इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये॥ १७½॥

'मेरी ओरसे सारी बातें तुम श्रीरघुनाथजीसे कहना और आज तुम भी मुझे देख जाओ। मैं इस समय ऋतुकालका उल्लङ्घन करके गर्भवती हो चुकी हूँ'॥ १८½॥

सीताके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणका मन बहुत दु:खी हो गया। उन्होंने धरतीपर माथा टेककर प्रणाम किया। उस समय उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी॥ १९½॥

उन्होंने जोर-जोरसे रोते हुए ही सीता माताकी परिक्रमा की और दो घड़ीतक सोच-विचारकर उनसे कहा—'शोभने! आप यह मुझसे क्या कह रही हैं?॥

'निष्पाप पतिव्रते! मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा है। केवल आपके चरणोंके ही दर्शन किये हैं। फिर आज यहाँ वनके भीतर श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ'॥ २१½॥

यह कहकर उन्होंने सीताजीको पुन: प्रणाम किया और फिर वे नावपर चढ़ गये। नावपर चढ़कर उन्होंने

मल्लाहको उसे चलानेकी आज्ञा दी॥ २२$\frac{1}{2}$ ॥

शोकके भारसे दबे हुए लक्ष्मण गङ्गाजीके उत्तरी तटपर पहुँचकर दुःखके कारण अचेत-से हो गये और उसी अवस्थामें जल्दीसे रथपर चढ़ गये॥ २३$\frac{1}{2}$ ॥

सीता गङ्गाजीके दूसरे तटपर अनाथकी तरह रोती हुई धरतीपर लोट रही थीं। लक्ष्मण बार-बार मुँह घुमाकर उनकी ओर देखते हुए चल दिये॥ २४$\frac{1}{2}$ ॥

रथ और लक्ष्मण क्रमशः दूर होते गये। सीता उनकी ओर बारम्बार देखकर उद्विग्न हो उठीं। उनके अदृश्य होते ही उनपर गहरा शोक छा गया॥ २५॥

अब उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी दिया। अतः यशको धारण करनेवाली वे यशस्विनी सती सीता दुःखके भारी भारसे दबकर चिन्तामग्न हो मयूरोंके कलनादसे गूँजते हुए उस वनमें जोर-जोरसे रोने लगीं॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वाल्मीकिका सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिवा ले जाना

जहाँ सीता रो रही थीं, वहाँसे थोड़ी ही दूरपर ऋषियोंके कुछ बालक थे। वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े, जहाँ उग्र तपस्यामें मन लगानेवाले भगवान् वाल्मीकि मुनि विराजमान थे॥ १॥

उन सब मुनिकुमारोंने महर्षिके चरणोंमें अभिवादन करके उनसे सीताजीके रोनेका समाचार सुनाया॥ २॥

वे बोले—'भगवन्! गङ्गातटपर किन्हीं महात्मा नरेशकी पत्नी हैं, जो साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती हैं। इन्हें हमलोगोंने पहले कभी नहीं देखा था। वे मोहके कारण विकृतमुख होकर रो रही हैं॥ ३॥

'भगवन्! आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख लें। वे आकाशसे उतरी हुई किसी देवी-सी दिखायी देती हैं। प्रभो! गङ्गाजीके तटपर जो वे कोई श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्री बैठी हैं, बहुत दुःखी हैं॥ ४॥

'हमने अपनी आँखों देखा है, वे बड़े जोर-जोरसे रोती हैं और गहरे शोकमें डूबी हुई हैं। वे दुःख और शोक भोगनेके योग्य नहीं हैं। अकेली हैं, दीन हैं और अनाथकी तरह बिलख रही हैं॥ ५॥

'हमारी समझमें ये मानवी स्त्री नहीं हैं। आपको इनका सत्कार करना चाहिये। इस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर होनेके कारण ये वास्तवमें आपकी शरणमें आयी हैं॥ ६॥

'भगवन्! ये साध्वी देवी अपने लिये कोई रक्षक ढूँढ़ रही हैं। अतः आप इनकी रक्षा करें।' उन मुनिकुमारोंकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ महर्षिने बुद्धिसे निश्चित करके असली बातको जान लिया; क्योंकि उन्हें तपस्याद्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। जानकर वे उस स्थानपर दौड़े हुए आये, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता विराजमान थीं॥ ७$\frac{1}{2}$ ॥

उन परम बुद्धिमान् महर्षिको जाते देख उनके शिष्य भी उनके साथ हो लिये। कुछ पैदल चलकर वे महामति महर्षि सुन्दर अर्घ्य लिये गङ्गातटवर्ती उस स्थानपर आये। वहाँ आकर उन्होंने श्रीरघुनाथजीकी प्रिय पत्नी सीताको अनाथकी-सी दशामें देखा॥ ८-९॥

शोकके भारसे पीड़ित हुई सीताको अपने तेजसे आह्लादित-सी करते हुए मुनिवर वाल्मीकि मधुर वाणीमें बोले—॥ १०॥

'पतिव्रते! तुम राजा दशरथकी पुत्रवधू, महाराज श्रीरामकी प्यारी पटरानी और मिथिलाके राजा जनककी पुत्री हो। तुम्हारा स्वागत है॥ ११॥

'जब तुम यहाँ आ रही थी, तभी अपनी धर्मसमाधिके द्वारा मुझे इसका पता लग गया था। तुम्हारे परित्यागका जो सारा कारण है, उसे मैंने अपने मनसे ही जान लिया है॥ १२॥

'महाभागे! तुम्हारा सारा वृत्तान्त मैंने ठीक-ठीक जान लिया है। त्रिलोकीमें जो कुछ हो रहा है, वह सब मुझे विदित है॥ १३॥

'सीते! मैं तपस्याद्वारा प्राप्त हुई दिव्य-दृष्टिसे जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। अतः विदेहनन्दिनि! अब निश्चिन्त हो जाओ। इस समय तुम मेरे पास हो॥ १४॥

'बेटी! मेरे आश्रमके पास ही कुछ तापसी स्त्रियाँ रहती हैं, जो तपस्यामें संलग्न हैं। वे अपनी बच्चीके समान सदा तुम्हारा पालन करेंगी॥ १५॥

'यह मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो और

निश्चिन्त एवं निर्भय हो जाओ। अपने ही घरमें आ गयी हो, ऐसा समझकर विषाद न करो'॥ १६॥

महर्षिका यह अत्यन्त अद्भुत भाषण सुनकर सीताने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'जो आज्ञा'॥ १७॥

तब मुनि आगे-आगे चले और सीता हाथ जोड़े उनके पीछे हो लीं। विदेहनन्दिनीके साथ महर्षिको आते देख मुनिपत्नियाँ उनके पास आयीं और बड़ी प्रसन्नताके साथ इस प्रकार बोलीं—॥ १८॥

'मुनिश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। बहुत दिनोंके बाद यहाँ आपका शुभागमन हुआ है। हम सभी आपको अभिवादन करती हैं। बताइये, हम आपकी क्या सेवा करें'॥ १९॥

उनका यह वचन सुनकर वाल्मीकिजी बोले—'ये परम बुद्धिमान् राजा श्रीरामकी धर्मपत्नी सीता यहाँ आयी हैं॥ २०॥

'सती सीता राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी पुत्री हैं। निष्पाप होनेपर भी पतिने इनका परित्याग कर दिया है। अतः मुझे ही इनका सदा लालन-पालन करना है॥

'अतः आप सब लोग इनपर अत्यन्त स्नेह-दृष्टि रखें। मेरे कहनेसे तथा अपने ही गौरवसे भी ये आपकी विशेष आदरणीया हैं'॥ २२॥

इस प्रकार बारम्बार सीताजीको मुनिपत्नियोंके हाथमें सौंपकर महायशस्वी एवं महातपस्वी वाल्मीकिजी शिष्योंके साथ फिर अपने आश्रमपर लौट आये॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ सर्ग

लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत

मिथिलेशकुमारी सीताका मुनिके आश्रममें प्रवेश हो गया, यह देखकर लक्ष्मण मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए। उन्हें घोर संताप हुआ॥ १॥

उस समय महातेजस्वी लक्ष्मण मन्त्रणामें सहायता देनेवाले सारथि सुमन्त्रसे बोले—'सूत! देखो तो सही, श्रीरामको अभीसे सीताजीके विरहजनित संतापका कष्ट भोगना पड़ रहा है॥ २॥

'भला, श्रीरघुनाथजीको इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि उन्हें अपनी पवित्र आचरणवाली धर्मपत्नी जनककिशोरी सीताका परित्याग करना पड़ा॥ ३॥

'सारथे! रघुनाथजीको सीताका जो यह नित्य वियोग प्राप्त हुआ है, इसमें मैं दैवको ही कारण मानता हूँ; क्योंकि दैवका विधान दुर्लङ्घ्य होता है॥ ४॥

'जो श्रीरघुनाथजी कुपित होनेपर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंसहित असुरोंका भी संहार कर सकते हैं, वे ही दैवकी उपासना कर रहे हैं (उसका निवारण नहीं कर पा रहे हैं)॥ ५॥

'पहले श्रीरामचन्द्रजीको पिताके कहनेसे चौदह वर्षोंतक विशाल एवं निर्जन दण्डकवनमें रहना पड़ा है॥

'अब उससे भी बढ़कर दुःखकी बात यह हुई कि उन्हें सीताजीको निर्वासित करना पड़ा। परंतु पुरवासियोंकी बात सुनकर ऐसा कर बैठना मुझे अत्यन्त निर्दयतापूर्ण कर्म जान पड़ता है॥ ७॥

'सूत! सीताजीके विषयमें अन्यायपूर्ण बात कहनेवाले इन पुरवासियोंके कारण ऐसे कीर्तिनाशक कर्ममें प्रवृत्त होकर श्रीरामचन्द्रजीने किस धर्मराशिका उपार्जन कर लिया है?'॥ ८॥

लक्ष्मणकी कही हुई इन अनेक प्रकारकी बातोंको सुनकर बुद्धिमान् सुमन्त्रने श्रद्धापूर्वक ये वचन कहे—॥

'सुमित्रानन्दन! मिथिलेशकुमारी सीताके विषयमें आपको संतप्त नहीं होना चाहिये। लक्ष्मण! यह बात ब्राह्मणोंने आपके पिताजीके सामने ही जान ली थी॥ १०॥

'उन दिनों दुर्वासाजीने कहा था कि 'श्रीराम निश्चय ही अधिक दुःख उठायेंगे। प्रायः उनका सौख्य छिन जायगा। महाबाहु श्रीरामको शीघ्र ही अपने प्रियजनोंसे वियोग प्राप्त होगा॥ ११॥

'सुमित्राकुमार! धर्मात्मा महापुरुष श्रीराम दीर्घकाल बीतते-बीतते तुमको, मिथिलेशकुमारीको तथा भरत और शत्रुघ्नको भी त्याग देंगे॥ १२॥

'दुर्वासाने जो बात कही थी, उसे महाराज दशरथने तुमसे, शत्रुघ्नसे और भरतसे भी कहनेकी मनाही कर दी थी॥ १३॥

'नरश्रेष्ठ! दुर्वासा मुनिने बहुत बड़े जनसमुदायके समीप मेरे समक्ष तथा महर्षि वसिष्ठके निकट वह बात कही थी॥ १४॥

'दुर्वासा मुनिकी वह बात सुनकर पुरुषप्रवर दशरथने मुझसे कहा था कि 'सूत! तुम्हें दूसरे लोगोंके सामने इस तरहकी बात नहीं कहनी चाहिये'॥ १५॥

'सौम्य! उन लोकपालक दशरथके उस वाक्यको मैं झूठा न करूँ' यह मेरा संकल्प है। इसके लिये मैं सदा सावधान रहता हूँ॥ १६॥

'सौम्य रघुनन्दन! यद्यपि यह बात मुझे आपके सामने सर्वथा ही नहीं कहनी चाहिये, तथापि यदि आपके मनमें यह सुननेके लिये श्रद्धा (उत्सुकता) हो तो सुनिये॥ १७॥

'यद्यपि पूर्वकालमें महाराजने इस रहस्यको दूसरोंपर प्रकट न करनेके लिये आदेश दिया था, तथापि आज मैं वह बात कहूँगा। दैवके विधानको लाँघना बहुत कठिन है; जिससे यह दुःख और शोक प्राप्त हुआ है। भैया! तुम्हें भी भरत और शत्रुघ्नके सामने यह बात नहीं कहनी चाहिये'॥ १८-१९॥

सुमन्त्रका यह गम्भीर भाषण सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने कहा—'सुमन्त्रजी! जो सच्ची बात हो, उसे आप अवश्य कहिये'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ सर्ग

मार्गमें सुमन्त्रका दुर्वासाके मुखसे सुनी हुई भृगुऋषिके शापकी कथा कहकर तथा भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुःखी लक्ष्मणको शान्त करना

तब महात्मा लक्ष्मणकी प्रेरणासे सुमन्त्रजी दुर्वासाजीकी कही हुई बात उन्हें सुनाने लगे—॥ १॥

'लक्ष्मण! पहलेकी बात है, अत्रिके पुत्र महामुनि दुर्वासा वसिष्ठजीके पवित्र आश्रमपर रहकर वर्षाके चार महीने बिता रहे थे॥ २॥

'एक दिन आपके महातेजस्वी और महान् यशस्वी पिता उस आश्रमपर अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठजीका दर्शन करनेके लिये स्वयं ही गये॥ ३॥

'वहाँ उन्होंने वसिष्ठजीके वामभागमें बैठे हुए एक महामुनिको देखा, जो अपने तेजसे मानो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे॥ ४॥

'तब राजाने उन दोनों तापसशिरोमणि महर्षियोंका विनयपूर्वक अभिवादन किया। उन दोनोंने भी स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य एवं फल-मूल समर्पित करके राजाका सत्कार किया। फिर वे वहाँ मुनियोंके साथ बैठे॥ ५½॥

'वहाँ बैठे हुए महर्षियोंकी दोपहरके समय तरह-तरहकी अत्यन्त मधुर कथाएँ हुईं॥ ६½॥

'तदनन्तर किसी कथाके प्रसङ्गमें महाराजने हाथ जोड़कर अत्रिके तपोधन पुत्र महात्मा दुर्वासाजीसे विनयपूर्वक पूछा—॥ ७½॥

'भगवन्! मेरा वंश कितने समयतक चलेगा? मेरे रामकी कितनी आयु होगी तथा अन्य सब पुत्रोंकी भी आयु कितनी होगी?॥ ८½॥

'श्रीरामके जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी? भगवन्! आप इच्छानुसार मेरे वंशकी स्थिति बताइये'॥

'राजा दशरथका यह वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासा मुनि कहने लगे—॥ १०½॥

'राजन्! सुनिये, प्राचीन कालकी बात है, एक बार देवासुर-संग्राममें देवताओंसे पीड़ित हुए दैत्योंने महर्षि भृगुकी पत्नीकी शरण ली। भृगुपत्नीने उस समय दैत्योंको अभय दिया और वे उनके आश्रमपर निर्भय होकर रहने लगे॥ ११-१२॥

'भृगुपत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है, यह देखकर कुपित हुए देवेश्वर भगवान् विष्णुने तीखी धारवाले चक्रसे उनका सिर काट लिया॥ १३॥

'अपनी पत्नीका वध हुआ देख भार्गववंशके प्रवर्तक भृगुजीने सहसा कुपित हो शत्रुकुलनाशन भगवान् विष्णुको शाप दिया॥ १४॥

'जनार्दन! मेरी पत्नी वधके योग्य नहीं थी। परंतु आपने क्रोधसे मूर्च्छित होकर उसका वध किया है, इसलिये आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आपको पत्नी-वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा'॥ १५½॥

'परंतु इस प्रकार शाप देकर उनके चित्तमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उनकी अन्तरात्माने भगवान्से उस शापको स्वीकार करानेके लिये उन्हींकी आराधना करनेको प्रेरित किया। इस तरह शापकी विफलताके भयसे पीड़ित हुए भृगुने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की॥ १६½॥

'तपस्याद्वारा उनके आराधना करनेपर भक्तवत्सल भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर कहा—'महर्षे! सम्पूर्ण जगत्का प्रिय करनेके लिये मैं उस शापको ग्रहण कर लूँगा'॥

'इस तरह पूर्वजन्ममें (विष्णु-नामधारी वामन अवतारके समय) महातेजस्वी भगवान् विष्णुको भृगु

ऋषिका शाप प्राप्त हुआ था। दूसरोंको मान देनेवाले नृपश्रेष्ठ! वे ही इस भूतलपर आकर तीनों लोकोंमें राम-नामसे विख्यात आपके पुत्र हुए हैं॥ १८-१९॥

'भृगुके शापसे होनेवाला पत्नी-वियोगरूप जो महान् फल है, वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगा। श्रीराम दीर्घकालतक अयोध्याके राजा होकर रहेंगे॥ २०॥

'उनके अनुयायी भी बहुत सुखी और धन-धान्यसे सम्पन्न होंगे। श्रीराम ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें ब्रह्मलोक (वैकुण्ठ या साकेतधाम)-को पधारेंगे॥ २१ १/२॥

'परम दुर्जय वीर श्रीराम समृद्धिशाली अश्वमेध-यज्ञोंका बारम्बार अनुष्ठान करके बहुत-से राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। श्रीरघुनाथजीको सीताके गर्भसे दो पुत्र प्राप्त होंगे'॥ २२-२३॥

'ये सब बातें कहकर उन महातेजस्वी महामुनिने राजवंशके विषयमें भूत और भविष्यकी सारी बातें बतायीं। इसके बाद वे चुप हो गये॥ २४॥

'उन दुर्वासा मुनिके चुप हो जानेपर महाराज दशरथ भी दोनों महात्माओंको प्रणाम करके फिर अपने उत्तम नगरमें लौट आये॥ २५॥

'इस प्रकार पूर्वकालसे दुर्वासा मुनिकी कही हुई ये सब बातें मैंने वहाँ सुनीं और अपने हृदयमें धारण कर लीं (उन्हें किसीपर प्रकट नहीं किया)। वे बातें असत्य नहीं होंगी॥ २६॥

'जैसा दुर्वासा मुनिका वचन है, उसके अनुसार श्रीरघुनाथजी सीताके दोनों पुत्रोंका अयोध्यासे बाहर अभिषेक करेंगे, अयोध्यामें नहीं॥ २७॥

'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! विधाताका ऐसा ही विधान होनेके कारण आपको सीता तथा रघुनाथजीके लिये संताप नहीं करना चाहिये। आप धैर्य धारण करें'॥ २८॥

सूत सुमन्त्रके मुखसे यह अत्यन्त अद्भुत बात सुनकर लक्ष्मणको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। वे बोले—'बहुत ठीक, बहुत ठीक'॥ २९॥

मार्गमें सुमन्त्र और लक्ष्मण इस प्रकारकी बातें कर ही रहे थे कि सूर्य अस्ताचलको चले गये। तब उन दोनोंने केशिनी नदीके तटपर रात बितायी॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

अयोध्याके राजभवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुःखी श्रीरामसे मिलना और उन्हें सान्त्वना देना

केशिनीके तटपर वह रात बिताकर रघुनन्दन लक्ष्मण प्रातःकाल उठे और फिर वहाँसे आगे बढ़े॥ १॥

दोपहर होते-होते उनके उस विशाल रथने रत्न-धनसे सम्पन्न तथा हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया॥ २॥

वहाँ पहुँचकर परम बुद्धिमान् सुमित्राकुमारको बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे—'मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके समीप जाकर क्या कहूँगा?'॥ ३॥

वे इस प्रकार सोच-विचार कर ही रहे थे कि चन्द्रमाके समान उज्ज्वल श्रीरामका विशाल राजभवन सामने दिखायी दिया॥ ४॥

राजमहलके द्वारपर रथसे उतरकर वे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण नीचे मुख किये दुःखी मनसे बेरोक-टोक भीतर चले गये॥ ५॥

उन्होंने देखा श्रीरघुनाथजी दुःखी होकर एक सिंहासनपर बैठे हैं और उनके दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे हैं। इस अवस्थामें बड़े भाईको सामने देख दुःखी मनसे लक्ष्मणने उनके दोनों पैर पकड़ लिये और हाथ जोड़ चित्तको एकाग्र करके वे दीन वाणीमें बोले—॥ ६-७॥

'वीर महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं उन शुभ आचारवाली, यशस्विनी जनककिशोरी सीताको गङ्गातटपर वाल्मीकिके शुभ आश्रमके समीप निर्दिष्ट स्थानमें छोड़कर पुनः आपके श्रीचरणोंकी सेवाके लिये यहाँ लौट आया हूँ॥ ८-९॥

'पुरुषसिंह! आप शोक न करें। कालकी ऐसी ही गति है। आप-जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं करते हैं॥ १०॥

'संसारमें जितने संचय हैं, उन सबका अन्त विनाश है, उत्थानका अन्त पतन है, संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है॥ ११॥

'अतः स्त्री, पुत्र, मित्र और धनमें विशेष आसक्ति नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उनसे वियोग होना निश्चित है॥ १२॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! आप आत्मासे आत्माको, मनसे मनको तथा सम्पूर्ण लोकोंको भी संयत रखनेमें समर्थ हैं; फिर अपने शोकको काबूमें रखना आपके

लिये कौन बड़ी बात है?॥ १३॥

'आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरहके प्रसङ्ग आनेपर मोहित नहीं होते। रघुनन्दन! यदि आप दु:खी रहेंगे तो वह अपवाद आपके ऊपर फिर आ जायगा॥ १४॥

'नरेश्वर! जिस अपवादके भयसे आपने मिथिलेशकुमारीका त्याग किया है, नि:संदेह वह अपवाद इस नगरमें फिर होने लगेगा (लोग कहेंगे कि दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीका त्याग करके ये रात-दिन उसीकी चिन्तासे दु:खी रहते हैं)॥ १५॥

'अत: पुरुषसिंह! आप धैर्यसे चित्तको एकाग्र करके इस दुर्बल शोक-बुद्धिका त्याग करें—संतप्त न हों'॥ १६॥

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर मित्रवत्सल श्रीरघुनाथजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सुमित्राकुमारसे कहा—॥ १७॥

'नरश्रेष्ठ वीर लक्ष्मण! तुम जैसा कहते हो, ठीक ऐसी ही बात है। तुमने मेरे आदेशका पालन किया, इससे मुझे बड़ा संतोष है॥ १८॥

'सौम्य लक्ष्मण! अब मैं दु:खसे निवृत्त हो गया। संतापको मैंने हृदयसे निकाल दिया और तुम्हारे सुन्दर वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

श्रीरामका कार्यार्थी पुरुषोंकी उपेक्षासे राजा नृगको मिलनेवाली शापकी कथा सुनाकर लक्ष्मणको देखभालके लिये आदेश देना

लक्ष्मणके उस अत्यन्त अद्भुत वचनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—॥

'सौम्य! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। जैसे तुम मेरे मनका अनुसरण करनेवाले हो, ऐसा भाई विशेषत: इस समय मिलना कठिन है॥ २॥

'शुभलक्षण लक्ष्मण! अब मेरे मनमें जो बात है, उसे सुनो और सुनकर वैसा ही करो॥ ३॥

'सौम्य! सुमित्राकुमार! मुझे पुरवासियोंका काम किये बिना चार दिन बीत चुके हैं, यह बात मेरे मर्मस्थलको विदीर्ण कर रही है॥ ४॥

'पुरुषप्रवर! तुम प्रजा, पुरोहित और मन्त्रियोंको बुलाओ। जिन पुरुषों अथवा स्त्रियोंको कोई काम हो, उनको उपस्थित करो॥ ५॥

'जो राजा प्रतिदिन पुरवासियोंके कार्य नहीं करता, वह निस्संदेह सब ओरसे निश्छिद्र अतएव वायुसंचारसे रहित घोर नरकमें पड़ता है॥ ६॥

'सुना जाता है पहले इस पृथ्वीपर नृगनामसे प्रसिद्ध एक महायशस्वी राजा राज्य करते थे। वे भूपाल बड़े ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी तथा आचार-विचारसे पवित्र थे॥

'उन नरदेवने किसी समय पुष्करतीर्थमें जाकर ब्राह्मणोंको सुवर्णसे भूषित तथा बछड़ोंसे युक्त एक करोड़ गौएँ दान कीं॥ ८॥

'निष्पाप लक्ष्मण! उस समय दूसरी गौओंके साथ-साथ एक दरिद्र, उञ्छवृत्तिसे जीवन निर्वाह करनेवाले एवं अग्निहोत्री ब्राह्मणकी बछड़ेसहित गाय वहाँ चली गयी और राजाने संकल्प करके उसे किसी ब्राह्मणको दे दिया॥ ९॥

'वह बेचारा ब्राह्मण भूखसे पीड़ित हो उस खोयी हुई गायको बहुत वर्षोंतक सारे राज्योंमें जहाँ-तहाँ ढूँढ़ता फिरा; परंतु वह उसे नहीं दिखायी दी॥ १०॥

'अन्तमें एक दिन कनखल पहुँचकर उसने अपनी गाय एक ब्राह्मणके घरमें देखी। वह नीरोग और हृष्ट-पुष्ट थी, किंतु उसका बछड़ा बहुत बड़ा हो गया था॥ ११॥

'ब्राह्मणने अपने रखे हुए 'शबला' नामसे उसको पुकारा—'शबले! आओ! आओ।' गौने उस स्वरको सुना॥ १२॥

'भूखसे पीड़ित हुए उस ब्राह्मणके उस परिचित स्वरको पहचानकर वह गौ आगे-आगे जाते हुए उस अग्नितुल्य तेजस्वी ब्राह्मणके पीछे हो ली॥ १३॥

'जो ब्राह्मण उन दिनों उसका पालन करता था, वह भी तुरंत उस गायका पीछा करता हुआ गया और जाकर उन ब्रह्मर्षिसे बोला—'ब्रह्मन्! यह गौ मेरी है। मुझे राजाओंमें श्रेष्ठ नृगने इसे दानमें दिया है'॥ १४$\frac{1}{2}$॥

'फिर तो उन दोनों विद्वान् ब्राह्मणोंमें उस गौको लेकर महान् विवाद खड़ा हो गया। वे दोनों परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए उन दानी नरेश नृगके पास गये॥ १५$\frac{1}{2}$॥

'वहाँ राजभवनके दरवाजेपर जाकर वे कई दिनोंतक टिके रहे, परंतु उन्हें राजाका न्याय नहीं प्राप्त हुआ (वे उनसे मिले ही नहीं)। इससे उन दोनोंको बड़ा क्रोध हुआ॥ १६$\frac{1}{2}$॥

'वे दोनों श्रेष्ठ महात्मा ब्राह्मण अत्यन्त संतप्त और कुपित हो राजाको शाप देते हुए यह घोर वाक्य बोले— ॥

'राजन्! अपने विवादका निर्णय करानेकी इच्छासे आये हुए प्रार्थी पुरुषोंके कार्यकी सिद्धिके लिये तुम उन्हें दर्शन नहीं देते हो; इसलिये तुम सब प्राणियोंसे छिपकर रहनेवाले गिरगिट हो जाओगे और सहस्रों वर्षोंके दीर्घकालतक गड्ढेमें गिरगिट होकर ही पड़े रहोगे॥ १८-१९½ ॥

'जब यदुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वासुदेवनामसे विख्यात भगवान् विष्णु पुरुषरूपसे इस जगत्में अवतार लेंगे, उस समय वे ही तुम्हें इस शापसे छुड़ायेंगे, इसलिये इस समय तो तुम गिरगिट हो ही जाओगे, फिर श्रीकृष्णावतारके समयमें ही तुम्हारा उद्धार होगा। कलियुग उपस्थित होनेसे कुछ ही पहले महापराक्रमी नर और नारायण दोनों इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण होंगे'॥ २०—२२½ ॥

'इस प्रकार शाप देकर वे दोनों ब्राह्मण शान्त हो गये। उन्होंने वह बूढ़ी और दुबली गाय किसी ब्राह्मणको दे दी॥ २३½ ॥

'इस प्रकार राजा नृग उस अत्यन्त दारुण शापका उपभोग कर रहे हैं। अतः कार्यार्थी पुरुषोंका विवाद यदि निर्णीत न हो तो वह राजाओंके लिये महान् दोषकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ २४½ ॥

'अतः कार्यार्थी मनुष्य शीघ्र मेरे सामने उपस्थित हों। प्रजापालनरूप पुण्यकर्मका फल क्या राजाको नहीं मिलता है? अवश्य प्राप्त होता है। अतः सुमित्रानन्दन! तुम जाओ, राजद्वारपर प्रतीक्षा करो कि कौन कार्यार्थी पुरुष आ रहा है'॥ २५-२६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ सर्ग

राजा नृगका एक सुन्दर गड्ढा बनवाकर अपने पुत्रको राज्य दे स्वयं उसमें प्रवेश करके शाप भोगना

श्रीरामका यह भाषण सुनकर परमार्थवेत्ता लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर उद्दीप्त तेजवाले श्रीरघुनाथजीसे बोले— ॥ १ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! उन दोनों ब्राह्मणोंने थोड़े-से ही अपराधपर राजर्षि नृगको द्वितीय यमदण्डके समान ऐसा महान् शाप दे दिया॥ २ ॥

'पुरुषप्रवर! अपनेको शापरूपी पापसे संयुक्त हुआ सुनकर राजा नृगने उन क्रोधी ब्राह्मणोंसे क्या कहा?'॥ ३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरघुनाथजी फिर बोले—'सौम्य! पूर्वकालमें शापग्रस्त होकर राजा नृगने जो कुछ कहा, उसे बताता हूँ, सुनो॥ ४ ॥

'जब राजा नृगको यह पता लगा कि वे दोनों ब्राह्मण चले गये और कहीं रास्तेमें होंगे, तब उन्होंने मन्त्रियोंको, समस्त पुरवासियोंको, पुरोहितोंको तथा समस्त प्रकृतियोंको भी बुलाकर दुःखसे पीड़ित होकर कहा—'आपलोग सावधान होकर मेरी बात सुनें— ॥ ५-६ ॥

'नारद और पर्वत—ये दोनों कल्याणकारी और अनिन्द्य देवर्षि मेरे पास आये थे। वे दोनों ब्राह्मणोंके दिये हुए शापकी बात बताकर मुझे महान् भय दे वायुके समान तीव्र गतिसे ब्रह्मलोकको चले गये॥ ७ ॥

'ये जो वसु नामक राजकुमार हैं, इन्हें इस राज्यपर अभिषिक्त कर दिया जाय और कारीगर मेरे लिये एक ऐसा गड्ढा तैयार करें, जिसका स्पर्श सुखद हो॥ ८ ॥

'ब्राह्मणके मुखसे निकले हुए उस शापको वहीं रहकर मैं बिताऊँगा। एक गड्ढा ऐसा होना चाहिये, जो वर्षाके कष्टका निवारण करनेवाला हो। दूसरा सर्दीसे बचानेवाला हो और शिल्पीलोग तीसरा एक ऐसा गड्ढा तैयार करें जो गर्मीका निवारण करे और जिसका स्पर्श सुखदायक हो॥ ९½ ॥

'जो फल देनेवाले वृक्ष हैं और फूल देनेवाली लताएँ हैं, उन्हें उन गड्ढोंमें लगाया जाय। घनी छायावाले अनेक प्रकारके वृक्षोंका वहाँ आरोपण किया जाय। उन गड्ढोंके चारों ओर डेढ़-डेढ़ योजन (छः-छः कोस)-की भूमि घेरकर खूब रमणीय बना दी जाय। जबतक शापका समय बीतेगा, तबतक मैं वहीं सुखपूर्वक रहूँगा। उन गड्ढोंमें प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प संचित किये जायँ'॥ १०—१२½ ॥

'ऐसी व्यवस्था करके राजकुमार वसुको राजसिंहासनपर बिठाकर राजाने उस समय उनसे कहा—'बेटा! तुम प्रतिदिन धर्मपरायण रहकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करो॥ १३½ ॥

'दोनों ब्राह्मणोंने मुझपर जिस प्रकार शापद्वारा प्रहार किया है, वह तुम्हारी आँखोंके सामने है। नरश्रेष्ठ! वैसे थोड़े-से अपराधपर भी रुष्ट होकर उन्होंने मुझे शाप दे दिया है॥ १४½ ॥

'पुरुषप्रवर! तुम मेरे लिये संताप न करो। बेटा! जिसने मुझे व्यसनी बनाया—संकटमें डाला है, अपना किया हुआ वह प्राचीन कर्म ही अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेमें समर्थ होता है॥ १५½ ॥

'वत्स! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके अनुसार मनुष्य उन्हीं वस्तुओंको पाता है, जिन्हें पानेका वह अधिकारी है। उन्हीं स्थानोंपर जाता है, जहाँ जाना उसके लिये अनिवार्य है तथा उन्हीं दुःखों और सुखोंको उपलब्ध करता है, जो उसके लिये नियत हैं; अतः तुम विषाद न करो'॥ १६-१७॥

'नरश्रेष्ठ! अपने पुत्रसे ऐसा कहकर महायशस्वी नरपाल राजा नृगने अपने रहनेके लिये सुन्दर ढंगसे तैयार किये गये गड्ढेमें प्रवेश किया॥ १८॥

'इस तरह उस रत्नविभूषित महान् गर्तमें प्रवेश करके उस समय महात्मा राजा नृगने ब्राह्मणोंद्वारा रोषपूर्वक दिये गये उस शापको भोगना आरम्भ किया'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ सर्ग

राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेके शापसे देहत्याग

(श्रीरामने कहा—) 'लक्ष्मण! इस तरह मैंने तुम्हें राजा नृगके शापका प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक बताया है। यदि सुननेकी इच्छा हो तो दूसरी कथा भी सुनो'॥ १॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार फिर बोले— 'नरेश्वर! इन आश्चर्यजनक कथाओंके सुननेसे मुझे कभी तृप्ति नहीं होती है'॥ २॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीरामने पुनः उत्तम धर्मसे युक्त कथा कहनी आरम्भ की—॥ ३॥

'सुमित्रानन्दन! महात्मा इक्ष्वाकु-पुत्रोंमें निमि नामक एक राजा हो गये हैं, जो इक्ष्वाकुके बारहवें* पुत्र थे। वे पराक्रम और धर्ममें पूर्णतः स्थिर रहनेवाले थे॥ ४॥

'उन पराक्रमसम्पन्न नरेशने उन दिनों गौतम-आश्रमके निकट देवपुरीके समान एक नगर बसाया॥ ५॥

'महायशस्वी राजर्षि निमिने जिस नगरमें अपना निवासस्थान बनाया, उसका सुन्दर नाम रखा गया वैजयन्त। इसी नामसे उस नगरकी प्रसिद्धि हुई (देवराज इन्द्रके प्रासादका नाम वैजयन्त है, उसीकी समतासे निमिके नगरका भी यही नाम रखा गया था)॥ ६॥

'उस महान् नगरको बसाकर राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं पिताके हृदयको आह्लाद प्रदान करनेके लिये एक ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करूँ, जो दीर्घकालतक चालू रहनेवाला हो॥ ७॥

'तदनन्तर इक्ष्वाकुनन्दन राजर्षि निमिने अपने पिता मनुपुत्र इक्ष्वाकुसे पूछकर अपना यज्ञ करानेके लिये सबसे पहले ब्रह्मर्षिशिरोमणि वसिष्ठजीका वरण किया। उसके बाद अत्रि, अङ्गिरा तथा तपोनिधि भृगुको भी आमन्त्रित किया॥ ८-९॥

'उस समय ब्रह्मर्षि वसिष्ठने राजर्षियोंमें श्रेष्ठ निमिसे कहा—'देवराज इन्द्रने एक यज्ञके लिये पहलेसे ही मेरा वरण कर लिया है; अतः वह यज्ञ जबतक समाप्त न हो जाय तबतक तुम मेरे आगमनकी प्रतीक्षा करो'॥ १०॥

'वसिष्ठजीके चले जानेके बाद महान् ब्राह्मण महर्षि गौतमने आकर उनके कामको पूरा कर दिया। उधर महातेजस्वी वसिष्ठ भी इन्द्रका यज्ञ पूरा कराने लगे॥ ११॥

'नरेश्वर राजा निमिने उन ब्राह्मणोंको बुलाकर हिमालयके पास अपने नगरके निकट ही यज्ञ आरम्भ कर दिया, राजा निमिने पाँच हजार वर्षोंतकके लिये यज्ञकी दीक्षा ली॥ १२॥

उधर इन्द्र-यज्ञकी समाप्ति होनेपर अनिन्द्य भगवान् वसिष्ठ ऋषि राजा निमिके पास होतृकर्म करनेके लिये आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि जो समय प्रतीक्षाके लिये दिया था, उसे गौतमने आकर पूरा कर दिया॥ १३½ ॥

'यह देख ब्रह्मकुमार वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और राजासे मिलनेके लिये दो घड़ी वहाँ बैठे रहे।

* श्रीमद्भागवत (नवम स्कन्ध ६। ४)-में, विष्णुपुराण (४। २। ११)-में तथा महाभारत (अनुशासनपर्व २। ५)-में इक्ष्वाकुके सौ पुत्र बताये गये हैं। इनमें प्रधान थे—विकुक्षि, निमि और दण्ड। इस दृष्टिसे निमि द्वितीय पुत्र सिद्ध होते हैं; परंतु यहाँ मूलमें इनको बारहवाँ बताया गया है। सम्भव है गुण-विशेषके कारण ये तीन प्रधान कहे गये हों और अवस्था-क्रमसे बारहवें ही हों।

परंतु उस दिन राजर्षि निमि अत्यन्त निद्राके वशीभूत हो सो गये थे॥ १४-१५॥

'राजा मिले नहीं, इस कारण महात्मा वसिष्ठ मुनिको बड़ा क्रोध हुआ। वे राजर्षिको लक्ष्य करके बोलने लगे—

'भूपाल निमे! तुमने मेरी अवहेलना करके दूसरे पुरोहितका वरण कर लिया है, इसलिये तुम्हारा यह शरीर अचेतन होकर गिर जायगा'॥ १७॥

'तदनन्तर राजाकी नींद खुली। वे उनके दिये हुए शापकी बात सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और ब्रह्मयोनि वसिष्ठसे बोले—॥ १८॥

'मुझे आपके आगमनकी बात मालूम नहीं थी, इसलिये सो रहा था। परंतु आपने क्रोधसे कलुषित होकर मेरे ऊपर दूसरे यमदण्डकी भाँति शापाग्निका प्रहार किया है॥ १९॥

'अतः ब्रह्मर्षे! चिरन्तन शोभासे युक्त जो आपका शरीर है, वह भी अचेतन होकर गिर जायगा—इसमें संशय नहीं है'॥ २०॥

'इस प्रकार उस समय रोषके वशीभूत हुए वे दोनों नृपेन्द्र और द्विजेन्द्र परस्पर शाप दे सहसा विदेह हो गये। उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माजीके समान थे'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

ब्रह्माजीके कहनेसे वसिष्ठका वरुणके वीर्यमें आवेश, वरुणका उर्वशीके समीप एक कुम्भमें अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका भूतलमें राजा पुरूरवाके पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना

श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे कही गयी यह कथा सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मण उद्दीप्त तेजवाले श्रीरघुनाथजीसे हाथ जोड़कर बोले—॥ १॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! वे ब्रह्मर्षि और वे भूपाल दोनों देवताओंके भी सम्मानपात्र थे। उन्होंने अपने शरीरोंका त्याग करके फिर नूतन शरीर कैसे ग्रहण किया?'॥ २॥

लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर इक्ष्वाकुकुलनन्दन महातेजस्वी पुरुषप्रवर श्रीरामने उनसे इस प्रकार कहा—॥

'सुमित्रानन्दन! एक-दूसरेके शापसे देह त्याग करके तपस्याके धनी वे धर्मात्मा राजर्षि और ब्रह्मर्षि वायुरूप हो गये॥ ४॥

'महातेजस्वी महामुनि वसिष्ठ शरीररहित हो जानेपर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये॥ ५॥

'धर्मके ज्ञाता वायुरूप वसिष्ठजीने देवाधिदेव ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम करके उन पितामहसे इस प्रकार कहा—॥

'ब्रह्माण्डकटाहसे प्रकट हुए देवाधिदेव महादेव! भगवन्! मैं राजा निमिके शापसे देहहीन हो गया हूँ; अतः वायुरूपमें रह रहा हूँ॥ ७॥

'प्रभो! समस्त देहहीनोंको महान् दुःख होता है और होता रहेगा; क्योंकि देहहीन प्राणीके सभी कार्य लुप्त हो जाते हैं। अतः दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये आप मुझपर कृपा करें'॥ ८½॥

तब अमित तेजस्वी स्वयम्भू ब्रह्माने उनसे कहा—'महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ! तुम मित्र और वरुणके छोड़े हुए तेज (वीर्य)-में प्रविष्ट हो जाओ। वहाँ जानेपर भी तुम अयोनिज रूपसे ही उत्पन्न होओगे और महान् धर्मसे युक्त हो पुत्ररूपसे मेरे वशमें आ जाओगे (मेरे पुत्र होनेके कारण तुम्हें पूर्ववत् प्रजापतिका पद प्राप्त होगा।)'॥

'ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उनके चरणोंमें प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा करके वायुरूप वसिष्ठजी वरुणलोकको चले गये॥ ११॥

'उन्हीं दिनों मित्रदेवता भी वरुणके अधिकारका पालन कर रहे थे। वे वरुणके साथ रहकर समस्त देवेश्वरोंद्वारा पूजित होते थे॥ १२॥

'इसी समय अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशी सखियोंसे घिरी हुई अकस्मात् उस स्थानपर आ गयी॥ १३॥

'उस परम सुन्दरी अप्सराको क्षीरसागरमें नहाती और जलक्रीडा करती देख वरुणके मनमें उर्वशीके लिये अत्यन्त उल्लास प्रकट हुआ॥ १४॥

'उन्होंने प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली उस सुन्दरी अप्सराको समागमके लिये आमन्त्रित किया॥ १५॥

'तब उर्वशीने हाथ जोड़कर वरुणसे कहा—'सुरेश्वर! साक्षात् मित्रदेवताने पहलेसे ही मेरा वरण कर लिया है'॥ १६॥

यह सुनकर वरुणने कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर कहा—'सुन्दर रूप-रंगवाली सुश्रोणि! यदि तुम

मुझसे समागम करना नहीं चाहती तो मैं तुम्हारे समीप इस देवनिर्मित कुम्भमें अपना यह वीर्य छोड़ दूँगा और इस प्रकार छोड़कर ही सफलमनोरथ हो जाऊँगा'॥

लोकनाथ वरुणका यह मनोहर वचन सुनकर उर्वशीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह बोली—॥ १९॥

'प्रभो! आपकी इच्छाके अनुसार ऐसा ही हो। मेरा हृदय विशेषत: आपमें अनुरक्त है और आपका अनुराग भी मुझमें अधिक है; इसलिये आप मेरे उद्देश्यसे उस कुम्भमें वीर्याधान कीजिये। इस शरीरपर तो इस समय मित्रका अधिकार हो चुका है'॥ २०॥

'उर्वशीके ऐसा कहनेपर वरुणने प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशमान अपने अत्यन्त अद्भुत तेज (वीर्य)-को उस कुम्भमें डाल दिया॥ २१॥

'तदनन्तर उर्वशी उस स्थानपर गयी, जहाँ मित्रदेवता विराजमान थे। उस समय मित्र अत्यन्त कुपित हो उस उर्वशीसे इस प्रकार बोले—॥ २२॥

'दुराचारिणि! पहले मैंने तुझे समागमके लिये आमन्त्रित किया था; फिर किसलिये तूने मेरा त्याग किया और क्यों दूसरे पतिका वरण कर लिया?॥ २३॥

'अपने इस पापके कारण मेरे क्रोधसे कलुषित हो तू कुछ कालतक मनुष्यलोकमें जाकर निवास करेगी॥ २४॥

'दुर्बुद्धे! बुधके पुत्र राजर्षि पुरूरवा, जो काशिदेशके राजा हैं, उनके पास चली जा, वे ही तेरे पति होंगे'॥

'तब वह शाप-दोषसे दूषित हो प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग-झूसी)-में बुधके औरस पुत्र पुरूरवाके पास गयी॥ २६॥

'पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे श्रीमान् आयु नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके पुत्र इन्द्रतुल्य तेजस्वी महाराज नहुष थे॥ २७॥

'वृत्रासुरपर वज्रका प्रहार करके जब देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके भयसे दु:खी हो छिप गये थे, तब नहुषने ही एक लाख वर्षोंतक 'इन्द्र' पदपर प्रतिष्ठित हो त्रिलोकीके राज्यका शासन किया था॥ २८॥

'मनोहर दाँत और सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी मित्रके दिये हुए उस शापसे भूतलपर चली गयी। वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्षोंतक रही। फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसभामें चली गयी'॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

वसिष्ठका नूतन शरीर-धारण और निमिका प्राणियोंके नयनोंमें निवास

उस दिव्य एवं अद्भुत कथाको सुनकर लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ १॥

'काकुत्स्थ! वे ब्रह्मर्षि वसिष्ठ तथा राजर्षि निमि जो देवताओंद्वारा भी सम्मानित थे, अपने-अपने शरीरको छोड़कर फिर नूतन शरीरसे किस प्रकार संयुक्त हुए?'॥ २॥

उनका यह प्रश्न सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने महात्मा वसिष्ठके शरीर-ग्रहणसे सम्बन्ध रखनेवाली उस कथाको पुन: कहना आरम्भ किया—॥ ३॥

'रघुश्रेष्ठ! महामना मित्र और वरुणदेवताके तेज (वीर्य) से युक्त जो वह प्रसिद्ध कुम्भ था, उससे दो तेजस्वी ब्राह्मण प्रकट हुए। वे दोनों ही ऋषियोंमें श्रेष्ठ थे॥ ४॥

'पहले उस घटसे महर्षि भगवान् अगस्त्य उत्पन्न हुए और मित्रसे यह कहकर कि 'मैं आपका पुत्र नहीं हूँ' वहाँसे अन्यत्र चले गये॥ ५॥

'वह मित्रका तेज था, जो उर्वशीके निमित्तसे पहले ही उस कुम्भमें स्थापित किया गया था। तत्पश्चात् उस कुम्भमें वरुणदेवताका तेज भी सम्मिलित हो गया था॥ ६॥

'तत्पश्चात् कुछ कालके बाद मित्रावरुणके उस वीर्यसे तेजस्वी वसिष्ठ मुनिका प्रादुर्भाव हुआ। जो इक्ष्वाकुकुलके देवता (गुरु या पुरोहित) हुए॥ ७॥

'सौम्य लक्ष्मण! महातेजस्वी राजा इक्ष्वाकुने उनके वहाँ जन्म ग्रहण करते ही उन अनिन्द्य मुनि वसिष्ठका हमारे इस कुलके हितके लिये पुरोहितके पदपर वरण कर लिया॥ ८॥

सौम्य! इस प्रकार नूतन शरीरसे युक्त वसिष्ठ मुनिकी उत्पत्तिका प्रकार बताया गया। अब निमिका जैसा वृत्तान्त है, वह सुनो॥ ९॥

'राजा निमिको देहसे पृथक् हुआ देख उन सभी मनीषी ऋषियोंने स्वयं ही यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करके उस यज्ञको पूरा किया॥ १०॥

'उन श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियोंने पुरवासियों और सेवकोंके साथ रहकर गन्ध, पुष्प और वस्त्रोंसहित राजा निमिके उस शरीरको तेलके कड़ाह आदिमें सुरक्षित रखा॥ ११॥

'तदनन्तर जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब वहाँ भृगुने कहा—'राजन्! (राजाके शरीरके अभिमानी जीवात्मन्!) मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ, अत: यदि तुम चाहो तो तुम्हारे जीव-चैतन्यको मैं पुन: इस शरीरमें ला दूँगा'॥ १२॥

भृगुके साथ ही अन्य सब देवताओंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर निमिके जीवात्मासे कहा—'राजर्षे! वर माँगो। तुम्हारे जीव-चैतन्यको कहाँ स्थापित किया जाय'॥

'समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर निमिके जीवात्माने उस समय उनसे कहा—'सुरश्रेष्ठ! मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें निवास करना चाहता हूँ'॥ १४॥

तब देवताओंने निमिके जीवात्मासे कहा—'बहुत अच्छा, तुम वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरते रहोगे॥ १५॥

'पृथ्वीनाथ! वायुरूपसे विचरते हुए आपके सम्बन्धसे जो थकावट होगी, उसका निवारण करके विश्राम पानेके लिये प्राणियोंके नेत्र बारंबार बंद हो जाया करेंगे'॥ १६॥

'ऐसा कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये; फिर महात्मा ऋषियोंने निमिके शरीरको पकड़ा और उसपर अरणि रखकर उसे बलपूर्वक मथना आरम्भ किया॥ १७½॥

'पूर्ववत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम करते हुए उन महात्माओंने जब निमिके पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अरणि-मन्थन आरम्भ किया, तब उस मन्थनसे महातपस्वी मिथि उत्पन्न हुए। इस अद्भुत जन्मका हेतु होनेके कारण वे जनक कहलाये तथा विदेह (जीव रहित शरीर)-से प्रकट होनेके कारण उन्हें वैदेह भी कहा गया। इस प्रकार पहले विदेहराज जनकका नाम महातेजस्वी मिथि हुआ, जिससे यह जनकवंश मैथिल कहलाया॥ १८—२०॥

'सौम्य लक्ष्मण! राजाओंमें श्रेष्ठ निमिके शापसे ब्राह्मण वसिष्ठका और ब्राह्मण वसिष्ठके शापसे राजा निमिका जो अद्भुत जन्म घटित हुआ, उसका सारा कारण मैंने तुम्हें कह सुनाया'॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

ययातिको शुक्राचार्यका शाप

श्रीरामके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने तेजसे प्रज्वलित होते हुए-से महात्मा श्रीरामको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—॥ १॥

'नृपश्रेष्ठ! राजा विदेह (निमि) तथा वसिष्ठ मुनिका पुरातन वृत्तान्त अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्य-जनक है॥ २॥

'परंतु राजा निमि क्षत्रिय, शूरवीर और विशेषत: यज्ञकी दीक्षा लिये हुए थे; अत: उन्होंने महात्मा वसिष्ठके प्रति उचित बर्ताव नहीं किया'॥ ३॥

लक्ष्मणके इस तरह कहनेपर दूसरोंके मनको रमाने (प्रसन्न रखने)-वालोंमें श्रेष्ठ क्षत्रियशिरोमणि श्रीरामने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता और उद्दीप्त तेजस्वी भ्राता लक्ष्मणसे कहा—॥ ४½॥

'वीर सुमित्राकुमार! सभी पुरुषोंमें वैसी क्षमा नहीं दिखायी देती, जैसी राजा ययातिमें थी। राजा ययातिने सत्त्वगुणके अनुकूल मार्गका आश्रय ले दु:सह रोषको क्षमा कर लिया था। वह प्रसंग बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ५-६॥

'सौम्य! नहुषके पुत्र राजा ययाति पुरवासियों, प्रजाजनोंकी वृद्धि करनेवाले थे। उनके दो पत्नियाँ थीं, जिनके रूपकी इस भूतलपर कहीं तुलना नहीं थी॥ ७॥

'नहुषनन्दन राजर्षि ययातिकी एक पत्नीका नाम शर्मिष्ठा था, जो राजाके द्वारा बहुत ही सम्मानित थी। शर्मिष्ठा दैत्यकुलकी कन्या और वृषपर्वाकी पुत्री थी॥

'पुरुषप्रवर! उनकी दूसरी पत्नी शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी थी। देवयानी सुन्दरी होनेपर भी राजाको अधिक प्रिय नहीं थी। उन दोनोंके ही पुत्र बड़े रूपवान् हुए। शर्मिष्ठाने पूरुको जन्म दिया और देवयानीने यदुको। वे दोनों बालक अपने चित्तको एकाग्र रखनेवाले थे॥ ९-१०॥

'अपनी माताके प्रेमयुक्त व्यवहारसे और अपने गुणोंसे पूरु राजाको अधिक प्रिय था। इससे यदुके मनमें बड़ा दु:ख हुआ। वे मातासे बोले—॥ ११॥

'मा! तुम अनायास ही महान् कर्म करनेवाले देवस्वरूप शुक्राचार्यके कुलमें उत्पन्न हुई हो तो भी यहाँ हार्दिक दु:ख और दु:सह अपमान सहती हो॥ १२॥

'अत: देवि! हम दोनों एक साथ ही अग्निमें प्रवेश कर जायँ। राजा दैत्यपुत्री शर्मिष्ठाके साथ अनन्त

रात्रियोंतक रमते रहें॥ १३॥

'यदि तुम्हें यह सब कुछ सहन करना है तो मुझे ही प्राणत्यागकी आज्ञा दे दो। तुम्हीं सहो। मैं नहीं सहूँगा। मैं निःसंदेह मर जाऊँगा'॥ १४॥

'अत्यन्त आर्त होकर रोते हुए अपने पुत्र यदुकी यह बात सुनकर देवयानीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तत्काल अपने पिता शुक्राचार्यजीका स्मरण किया॥

'शुक्राचार्य अपनी पुत्रीकी उस चेष्टाको जानकर तत्काल उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ देवयानी विद्यमान थी॥ १६॥

'बेटीको अस्वस्थ, अप्रसन्न और अचेत-सी देखकर पिताने पूछा—'वत्से! यह क्या बात है?'॥ १७॥

'उद्दीप्त तेजवाले पिता भृगुनन्दन शुक्राचार्य जब बारंबार इस प्रकार पूछने लगे, तब देवयानीने अत्यन्त कुपित होकर उनसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रज्वलित अग्नि या अगाध जलमें प्रवेश कर जाऊँगी अथवा विष खा लूँगी; किंतु इस प्रकार अपमानित होकर जीवित नहीं रह सकूँगी॥ १८-१९॥

'आपको पता नहीं है कि मैं यहाँ कितनी दुःखी और अपमानित हूँ। ब्रह्मन्! वृक्षके प्रति अवहेलना होनेसे उसके आश्रित फूलों और पत्तोंको ही तोड़ा और नष्ट किया जाता है (इसी तरह आपके प्रति राजाके द्वारा अवहेलना होनेसे ही मेरा यहाँ अपमान हो रहा है)॥ २०॥

'भृगुनन्दन! राजर्षि ययाति आपके अनादरका भाव रखनेके कारण मेरी भी अवहेलना करते हैं और मुझे अधिक आदर नहीं देते हैं'॥ २१॥

'देवयानीकी यह बात सुनकर भृगुनन्दन शुक्राचार्यको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने नहुषपुत्र ययातिको लक्ष्य करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २२॥

'नहुषकुमार! तुम दुरात्मा होनेके कारण मेरी अवहेलना करते हो, इसलिये तुम्हारी अवस्था जरा-जीर्ण वृद्धके समान हो जायगी—तुम सर्वथा शिथिल हो जाओगे'॥ २३॥

'राजासे ऐसा कहकर पुत्रीको आश्वासन दे महायशस्वी ब्रह्मर्षि शुक्राचार्य पुनः अपने घरको चले गये॥ २४॥

'सूर्यके समान तेजस्वी तथा ब्राह्मणशिरोमणियोंमें अग्रगण्य शुक्राचार्य देवयानीको आश्वासन दे नहुषपुत्र ययातिको ऐसा कहकर उन्हें पूर्वोक्त शाप दे फिर चले गये'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

ययातिका अपने पुत्र पूरुको अपना बुढ़ापा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगोंसे तृप्त होकर पुनः दीर्घकालके बाद उसे उसका यौवन लौटा देना, पूरुका अपने पिताकी गद्दीपर अभिषेक तथा यदुको शाप

शुक्राचार्यके कुपित होनेका समाचार सुनकर नहुषकुमार ययातिको बड़ा दुःख हुआ। उन्हें ऐसी वृद्धावस्था प्राप्त हुई, जो दूसरेकी जवानीसे बदली जा सकती थी। उस विलक्षण जरावस्थाको पाकर राजाने यदुसे कहा—॥ १॥

'यदो! तुम धर्मके ज्ञाता हो। मेरे महायशस्वी पुत्र! तुम मेरे लिये दूसरेके शरीरमें संचारित करनेके योग्य इस जरावस्थाको ले लो। मैं भोगोंद्वारा रमण करूँगा—अपनी भोगविषयक इच्छाको पूर्ण करूँगा॥ २॥

'नरश्रेष्ठ! अभीतक मैं विषयभोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। इच्छानुसार विषयसुखका अनुभव करके फिर अपनी वृद्धावस्था मैं तुमसे ले लूँगा'॥ ३॥

उनकी यह बात सुनकर यदुने नरश्रेष्ठ ययातिको उत्तर दिया—'आपके लाड़ले बेटे पूरु ही इस वृद्धावस्थाको ग्रहण करें॥ ४॥

'पृथ्वीनाथ! मुझे तो आपने धनसे तथा पास रहकर लाड़-प्यार पानेके अधिकारसे भी वञ्चित कर दिया है; अतः जिनके साथ बैठकर आप भोजन करते हैं, उन्हीं लोगोंसे युवावस्था ग्रहण कीजिये'॥ ५॥

यदुकी यह बात सुनकर राजाने पूरुसे कहा—'महाबाहो! मेरी सुख-सुविधाके लिये तुम इस वृद्धावस्थाको ग्रहण कर लो'॥ ६॥

नहुष-पुत्र ययातिके ऐसा कहनेपर पूरु हाथ जोड़कर बोले—'पिताजी! आपकी सेवाका अवसर पाकर मैं धन्य हो गया। यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह है। आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं हर तरहसे तैयार हूँ'॥ ७॥

पूरुका यह स्वीकारसूचक वचन सुनकर

नहुषकुमार ययातिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी वृद्धावस्था पूरुके शरीरमें संचारित कर दी॥ ८॥

तदनन्तर तरुण हुए राजा ययातिने सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए कई हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया॥ ९॥

इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होनेपर राजाने पूरुसे कहा—'बेटा! तुम्हारे पास धरोहरके रूपमें रखी हुई मेरी वृद्धावस्थाको मुझे लौटा दो॥ १०॥

'पुत्र! मैंने वृद्धावस्थाको धरोहरके रूपमें ही तुम्हारे शरीरमें संचारित किया था; इसलिये उसे वापस ले लूँगा। तुम अपने मनमें दुःख न मानना॥ ११॥

'महाबाहो! तुमने मेरी आज्ञा मान ली, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं बड़े प्रेमसे राजाके पदपर तुम्हारा अभिषेक करूँगा'॥ १२॥

अपने पुत्र पूरुसे ऐसा कहकर नहुषकुमार राजा ययाति देवयानीके बेटेसे कुपित होकर बोले—॥ १३॥

'यदो! मैंने दुर्जय क्षत्रियके रूपमें तुम-जैसे राक्षसको जन्म दिया। तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, अतः तुम अपनी संतानोंको राज्याधिकारी बनानेके विषयमें विफल-मनोरथ हो जाओ॥ १४॥

'मैं पिता हूँ, गुरु हूँ; फिर भी तुम मेरा अपमान करते हो, इसलिये भयंकर राक्षसों और यातुधानोंको तुम जन्म दोगे॥ १५॥

'तुम्हारी बुद्धि बहुत खोटी है। अतः तुम्हारी संतान सोमकुलमें उत्पन्न वंशपरम्परामें राजाके रूपसे प्रतिष्ठित नहीं होगी। तुम्हारी संतति भी तुम्हारे ही समान उद्दण्ड होगी'॥ १६॥

यदुसे ऐसा कहकर राजर्षि ययातिने राज्यकी वृद्धि करनेवाले पूरुको अभिषेकके द्वारा सम्मानित करके वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश किया॥ १७॥

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् प्रारब्ध-भोगका क्षय होनेपर नहुषपुत्र राजा ययातिने शरीरको त्याग दिया और स्वर्गलोकको प्रस्थान किया॥ १८॥

उसके बाद महायशस्वी पूरुने महान् धर्मसे संयुक्त हो काशिराजकी श्रेष्ठ राजधानी प्रतिष्ठानपुरमें रहकर उस राज्यका पालन किया॥ १९॥

राजकुलसे बहिष्कृत यदुने नगरमें तथा दुर्गम क्रौञ्चवनमें सहस्रों यातुधानोंको जन्म दिया॥ २०॥

शुक्राचार्यके दिये हुए इस शापको राजा ययातिने क्षत्रियधर्मके अनुसार धारण कर लिया। परंतु राजा निमिने वसिष्ठजीके शापको नहीं सहन किया॥ २१॥

सौम्य! यह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया। समस्त कृत्योंका पालन करनेवाले सत्पुरुषोंकी दृष्टि (विचार)-का ही हम अनुसरण करते हैं, जिससे राजा नृगकी भाँति हमें भी दोष न प्राप्त हो॥ २२॥

चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले श्रीराम जब इस प्रकार कथा कह रहे थे, उस समय आकाशमें दो-ही-एक तारे रह गये। पूर्व दिशा अरुण किरणोंसे रञ्जित हो लाल दिखायी देने लगी, मानो कुसुम-रंगमें रँगे हुए अरुण वस्त्रसे उसने अपने अङ्गोंको ढक लिया हो॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५९॥

प्रक्षिप्त सर्ग १*

श्रीरामके द्वारपर कार्यार्थी कुत्तेका आगमन और श्रीरामका उसे दरबारमें लानेका आदेश

तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें पूर्वाह्णकालोचित संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके कमलनयन राजा श्रीराम राजधर्मोंका पालन (प्रजाजनोंके विवादका निपटारा) करनेके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणों, पुरोहित वसिष्ठ तथा कश्यप मुनिके साथ राजसभामें उपस्थित हो धर्म (न्याय)-के आसनपर विराजमान हुए॥ १-२॥

वह सभा व्यवहारका ज्ञान रखनेवाले मन्त्रियों, धर्मशास्त्रोंका पाठ करनेवाले विद्वानों, नीतिज्ञों, राजाओं तथा अन्य सभासदोंसे भरी हुई थी॥ ३॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले राजसिंह श्रीरामकी वह सभा इन्द्र, यम और वरुणकी सभाके समान शोभा पाती थी॥ ४॥

वहाँ बैठे हुए भगवान् श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे कहा—'माता सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु वीर! तुम बाहर निकलो और देखो कि कौन-कौन-से कार्यार्थी उपस्थित हैं। सुमित्राकुमार! तुम उन

* कुछ प्रतियोंमें यहाँ तीन सर्ग और मिलते हैं, जिनपर संस्कृत-टीकाकारोंकी व्याख्या न मिलनेसे इन्हें प्रक्षिप्त बताया गया है। इनमेंसे दो सर्ग उपयोगी होनेके कारण यहाँ अनुवादसहित दिये जा रहे हैं।

कार्यार्थियोंको बारी-बारीसे बुलाना आरम्भ करो'॥ ५$\frac{१}{२}$ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह आदेश सुनकर शुभलक्षण लक्ष्मणने द्वारदेशपर आकर स्वयं ही कार्यार्थियोंको पुकारा, परंतु कोई भी वहाँ यह न कह सका कि मुझे यहाँ कोई कार्य है॥ ६-७॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय न तो कहीं किसीको शारीरिक रोग होते थे और न मानसिक चिन्ताएँ ही सताती थीं। पृथ्वीपर सब प्रकारकी ओषधियाँ (अन्न-फल आदि) उत्पन्न होती थीं और पकी हुई खेती शोभा पाती थी॥ ८॥

श्रीरामके राज्यमें न तो बालककी मृत्यु होती थी न युवककी और न मध्यम अवस्थाके पुरुषकी ही। सबका धर्मपूर्वक शासन होता था। किसीके सामने कभी कोई बाधा नहीं आती थी॥ ९॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी कोई कार्यार्थी (अभियोग लेकर आनेवाला पुरुष) दिखायी नहीं देता था। लक्ष्मणने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको राज्यकी ऐसी स्थिति बतायी॥ १०॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए श्रीरामने सुमित्राकुमारसे पुनः इस प्रकार कहा—'लक्ष्मण! तुम फिर जाओ और कार्यार्थी पुरुषोंका पता लगाओ॥ ११॥

'भलीभाँति उत्तम नीतिका प्रयोग करनेसे राज्यमें कहीं अधर्म नहीं रह जाता है। अतः सभी लोग राजाके भयसे यहाँ एक-दूसरेकी रक्षा करते हैं॥ १२॥

'यद्यपि राजकर्मचारी मेरे छोड़े हुए बाणोंके समान यहाँ प्रजाकी रक्षा करते हैं, तथापि महाबाहो! तुम स्वयं भी तत्पर रहकर प्रजाका पालन किया करो'॥ १३॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मण राजभवनसे बाहर निकले। बाहर आकर उन्होंने देखा, द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, जो उन्हींकी ओर देखता हुआ बारंबार भूँक रहा है। उसे इस प्रकार देखकर पराक्रमी लक्ष्मणने उससे पूछा—॥ १४-१५॥

'महाभाग! तुम निर्भय होकर बताओ, तुम्हारा क्या काम है?' लक्ष्मणका यह वचन सुनकर कुत्तेने कहा—॥ १६॥

'जो समस्त भूतोंको शरण देनेवाले और क्लेशरहित कर्म करनेवाले हैं, जो भयके अवसरोंपर भी अभय देते हैं, उन भगवान् श्रीरामके समक्ष ही मैं अपना काम बता सकता हूँ'॥ १७॥

कुत्तेका यह कथन सुनकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीको इसकी सूचना देनेके लिये सुन्दर राजभवनमें प्रवेश किया॥

श्रीरामको उसकी बात बताकर लक्ष्मण पुनः राजभवनसे बाहर निकल आये और उससे बोले—'यदि तुम्हें कुछ कहना है तो चलकर राजासे ही कहो'॥ १९॥

लक्ष्मणकी वह बात सुनकर कुत्ता बोला—'सुमित्रानन्दन! देवालयमें, राजभवनमें तथा ब्राह्मणके घरोंमें अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वायुदेवता सदा स्थित रहते हैं; अतः हम अधमयोनिके जीव स्वेच्छासे वहाँ जानेके योग्य नहीं हैं॥ २०-२१॥

'मैं इस राजभवनमें प्रवेश नहीं कर सकूँगा; क्योंकि राजा श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। वे सत्यवादी, संग्रामकुशल और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं॥ २२॥

'वे संधि-विग्रह आदि छहों गुणोंके प्रयोगके अवसरोंको जानते हैं। श्रीरघुनाथजी न्याय करनेवाले हैं। वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। श्रीराम दूसरोंके मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं॥ २३॥

'वे ही चन्द्रमा हैं, वे ही मृत्यु हैं, वे ही यम, कुबेर, अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वरुण हैं॥ २४॥

'सुमित्रानन्दन! श्रीरघुनाथजी प्रजापालक हैं। आप उनसे कहिये। मैं उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना इस भवनमें प्रवेश करना नहीं चाहता'॥ २५॥

यह सुनकर महातेजस्वी महाभाग लक्ष्मणने दयावश राजभवनमें प्रवेश करके कहा—॥ २६॥

'कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीरघुनाथजी! मेरा यह निवेदन सुनिये। आपने जो आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने बाहर जाकर कार्यार्थीको पुकारा॥ २७॥

'इस समय आपके द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, जो कार्यार्थी होकर आया है।' लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीरामने कहा—'यहाँ जो भी कार्यार्थी होकर खड़ा है, उसे शीघ्र इस सभाके भीतर ले आओ'॥ २८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें प्रक्षिप्त सर्ग पूरा हुआ॥ १॥

प्रक्षिप्त सर्ग २

कुत्तेके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तेका मठाधीश होनेका दोष बताना

श्रीरामका यह वचन सुनकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने तत्काल उस कुत्तेको बुलाया और श्रीरामको उसके आनेकी सूचना दी॥ १॥

वहाँ आये हुए कुत्तेकी ओर देखकर श्रीरामने कहा—'सारमेय! तुम्हें जो कुछ कहना है, उसे मेरे सामने कहो। यहाँ तुम्हें कोई भय नहीं है'॥ २॥

कुत्तेका मस्तक फट गया था। उसने राजसभामें बैठे हुए महाराज श्रीरामकी ओर देखा और देखकर इस प्रकार कहा—॥ ३॥

'राजा ही समस्त प्राणियोंका उत्पादक और नायक है। राजा सबके सोते रहनेपर भी जागता है और प्रजाओंका पालन करता है॥ ४॥

'राजा सबका रक्षक है। वह उत्तम नीतिका प्रयोग करके सबकी रक्षा करता है। यदि राजा पालन न करे तो समस्त प्रजाएँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं॥ ५॥

'राजा कर्ता, राजा रक्षक और राजा सम्पूर्ण जगत्का पिता है। राजा काल और युग है तथा राजा यह सम्पूर्ण जगत् है॥ ६॥

'धर्म सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है, इसीलिये उसका नाम धर्म है। धर्मने ही समस्त प्रजाको धारण कर रखा है; क्योंकि वही चराचर प्राणियोंसहित सारी त्रिलोकीका आधार है॥ ७॥

'राजा अपने द्रोहियोंको भी धारण करता है (अथवा वह दुष्टोंको भी मर्यादामें स्थापित करता है) तथा वह धर्मके द्वारा प्रजाको प्रसन्न रखता है; इसलिये उसके शासनरूप कर्मको धारण कहा गया है और धारण ही धर्म है, यह शास्त्रका सिद्धान्त है॥ ८॥

'रघुनन्दन! यह प्रजापालनरूप परम धर्म राजाको परलोकमें उत्तम फल देनेवाला होता है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि धर्मसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ९॥

'श्रीराम! दान, दया, सत्पुरुषोंका सम्मान और व्यवहारमें सरलता यह परम धर्म है। प्रजाजनोंकी रक्षासे होनेवाला उत्कृष्ट धर्म इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाला होता है॥ १०॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रघुनन्दन! आप समस्त प्रमाणोंके भी प्रमाण हैं। सत्पुरुषोंने जिस धर्मका आचरण किया है, वह आपको भलीभाँति विदित ही है॥ ११॥

'राजन्! आप धर्मोंके परम धाम और गुणोंके सागर हैं। नृपश्रेष्ठ! मैंने अज्ञानवश ही आपके सामने धर्मकी व्याख्या की है॥ १२॥

'इसके लिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर क्षमा चाहता और आपके प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। आप यहाँ मुझपर कुपित न हों।' कुत्तेकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले—॥ १३॥

'तुम निर्भय होकर बताओ। आज मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। अपना काम बतानेमें विलम्ब न करो।' श्रीरामकी यह बात सुनकर कुत्ता बोला—॥ १४॥

'रघुनन्दन! राजा धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही निरन्तर उसका पालन करे। धर्मसे ही राजा सबको शरण देनेवाला और सबका भय दूर करनेवाला होता है। ऐसा जानकर आप मेरा जो कार्य है, उसे सुनिये॥ १५½॥

'प्रभो! सर्वार्थसिद्ध नामसे प्रसिद्ध एक भिक्षु है, जो ब्राह्मणोंके घरमें रहा करता है। उसने आज अकारण मुझपर प्रहार किया है। मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया था'॥ १६½॥

कुत्तेकी यह बात सुनकर श्रीरामने तत्काल एक द्वारपाल भेजा और उस सर्वार्थसिद्ध नामक विद्वान् भिक्षु ब्राह्मणको बुलवाया॥ १७½॥

श्रीरामको देखकर उस महातेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मणने पूछा—'निष्पाप रघुनन्दन! मुझसे आपको क्या काम है?'॥ १८½॥

ब्राह्मणके इस प्रकार पूछनेपर श्रीराम बोले—'ब्रह्मन्! आपने इस कुत्तेके सिरपर जो यह प्रहार किया है, उसका क्या कारण है? विप्रवर! इसने आपका क्या अपराध किया था, जिसके कारण आपने इसे डंडा मारा है?॥ १९-२०॥

'क्रोध प्राणहारी शत्रु है। क्रोधको मित्रमुख* शत्रु बताया गया है। क्रोध अत्यन्त तीखी तलवार है तथा

* जो ऊपरसे मित्र जान पड़े किंतु परिणाममें शत्रु सिद्ध हो, वह 'मित्रमुख' शत्रु है। क्रोध अपने प्रतिद्वन्द्वीको सतानेमें सहायक-सा बनकर आता है, इसीलिये इसे मित्रमुख कहा गया है।

क्रोध सारे सद्‌गुणोंको खींच लेता है॥ २१॥

'मनुष्य जो तप करता, यज्ञ करता और दान देता है, उन सबके पुण्यको वह क्रोधके द्वारा नष्ट कर देता है। इसलिये क्रोधको त्याग देना चाहिये॥ २२॥

'दुष्ट घोड़ोंकी तरह विषयोंकी ओर दौड़नेवाली इन्द्रियोंको उन विषयोंकी ओरसे हटाकर धैर्यपूर्वक उन्हें नियन्त्रणमें रखे॥ २३॥

'मनुष्यको चाहिये कि वह अपने पास विचरनेवाले लोगोंकी मन, वाणी, क्रिया और दृष्टिद्वारा भलाई ही करे। किसीसे द्वेष न रखे। ऐसा करनेसे वह पापसे लिप्त नहीं होता॥ २४॥

'अपना दुष्ट मन जो अनिष्ट या अनर्थ कर सकता है, वैसा तीखी तलवार, पैरोंतले कुचला हुआ सर्प अथवा सदा क्रोधसे भरा रहनेवाला शत्रु भी नहीं कर सकता॥ २५॥

'जिसे विनयकी शिक्षा मिली हो, उसकी भी प्रकृति नयी नहीं बनती है। कोई अपनी दुष्ट प्रकृतिको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके कार्यमें उसकी दुष्टता निश्चय ही प्रकट हो जाती है'॥ २६॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामके ऐसा कहनेपर सर्वार्थसिद्ध नामक ब्राह्मणने उनके निकट इस प्रकार कहा—॥ २७॥

'प्रभो! मेरा मन क्रोधसे भर गया था, इसलिये मैंने इसे डंडेसे मारा है। भिक्षाका समय बीत चुका था, तथापि भूखे रहनेके कारण भिक्षा माँगनेके लिये मैं द्वार-द्वार घूम रहा था। यह कुत्ता बीच रास्तेमें खड़ा था। मैंने बार-बार कहा—'तुम रास्तेसे हट जाओ, हट जाओ' फिर यह अपनी मौजसे चला और सड़कके बीचमें बेढंगे खड़ा हो गया॥ २८-२९॥

'मैं भूखा तो था ही, क्रोध चढ़ आया। राजाधिराज रघुनन्दन! उस क्रोधसे ही प्रेरित होकर मैंने इसके सिरपर डंडा मार दिया। मैं अपराधी हूँ। आप मुझे दण्ड दीजिये। राजेन्द्र! आपसे दण्ड मिल जानेपर मुझे नरकमें पड़नेका डर नहीं रहेगा'॥ ३०$\frac{1}{2}$॥

तब श्रीरामने सभी सभासदोंसे पूछा—'आपलोग बतावें, इसके लिये क्या करना चाहिये? इसे कौन-सा दण्ड दिया जाय! क्योंकि भलीभाँति दण्डका प्रयोग होनेपर प्रजा सुरक्षित रहती है'॥ ३१-३२॥

उस सभामें भृगु, आङ्गिरस, कुत्स, वसिष्ठ और काश्यप आदि मुनि थे। धर्मशास्त्रोंका पाठ करनेवाले मुख्य-मुख्य विद्वान् उपस्थित थे। मन्त्री और महाजन मौजूद थे—ये तथा और बहुत-से पण्डित वहाँ एकत्र हुए थे। राजधर्मोंके ज्ञानमें परिनिष्ठित वे सभी विद्वान् श्रीरघुनाथजीसे बोले—'भगवन्! ब्राह्मण दण्डद्वारा अवध्य है, उसे शारीरिक दण्ड नहीं मिलना चाहिये, यही समस्त शास्त्रज्ञोंका मत है'॥ ३३-३४$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर वे सब मुनि उस समय श्रीरामसे ही बोले—'रघुनन्दन! राजा सबका शासक होता है। विशेषत: आप तो तीनों लोकोंपर शासन करनेवाले साक्षात् सनातन देवता भगवान् विष्णु हैं'॥ ३५-३६॥

उन सबके ऐसा कहनेपर कुत्ता बोला—'श्रीराम! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं, यदि आपको मुझे इच्छानुसार वर देना है, तो मेरी बात सुनिये॥ ३७॥

'वीर नरेश्वर! आपने प्रतिज्ञापूर्वक पूछा है कि मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। इस प्रकार आप मेरी इच्छा पूर्ण करनेको प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं। अत: मैं कहता हूँ कि इस ब्राह्मणको कुलपति (महन्त) बना दीजिये। महाराज! इसे कालञ्जरमें एक मठका आधिपत्य (वहाँकी महन्थी) प्रदान कर दीजिये'॥ ३८$\frac{1}{2}$॥

यह सुनकर श्रीरामने उसका कुलपतिके पदपर अभिषेक कर दिया। इस प्रकार पूजित हुआ वह ब्राह्मण हाथीकी पीठपर बैठकर बड़े हर्षके साथ वहाँसे चला गया॥ ३९$\frac{1}{2}$॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके मन्त्री मुसकराते हुए बोले—'महातेजस्वी महाराज! यह तो इसे वर दिया गया है, शाप या दण्ड नहीं'॥ ४०$\frac{1}{2}$॥

'मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर श्रीरामने कहा—'किस कर्मका क्या परिणाम होता है अथवा उससे जीवकी कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुमलोग नहीं जानते। ब्राह्मणको मठाधीशका पद क्यों दिया गया? इसका कारण यह कुत्ता जानता है'॥ ४१$\frac{1}{2}$॥

तत्पश्चात् श्रीरामके पूछनेपर कुत्तेने इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! मैं पहले जन्ममें कालञ्जरके मठमें कुलपति (मठाधीश) था। वहाँ यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करता, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर रहता, दास-दासियोंको उनका न्यायोचित भाग बाँट देता, शुभ कर्मोंमें अनुरक्त रहता, देवसम्पत्तिकी रक्षा करता तथा विनय और शीलसे सम्पन्न होकर समस्त प्राणियोंके हित-साधनमें संलग्न रहता था॥ ४२—४४॥

'तो भी मुझे यह घोर अवस्था एवं अधम गति प्राप्त हुई। फिर जो ऐसा क्रोधी है, धर्मको छोड़ चुका है, दूसरोंके अहितमें लगा हुआ है तथा क्रोध करनेवाला,

क्रूर, कठोर, मूर्ख और अधर्मी है, वह ब्राह्मण तो मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचेकी सात-सात पीढ़ियोंको भी नरकमें गिराकर ही रहेगा॥ ४५-४६॥

'इसलिये किसी भी दशामें मठाधीशका पद नहीं ग्रहण करना चाहिये। जिसे पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धवोंसहित नरकमें गिरा देनेकी इच्छा हो, उसे देवताओं, गौओं और ब्राह्मणोंका अधिष्ठाता बना दे॥

'जो ब्राह्मणका, देवताका, स्त्रियोंका और बालकोंका धन हर लेता है तथा जो अपनी दान की हुई सम्पत्तिको फिर वापस ले लेता है, वह इष्टजनोंसहित नष्ट हो जाता है॥ ४८½॥

'रघुनन्दन! जो ब्राह्मणों और देवताओंका द्रव्य हड़प लेता है, वह शीघ्र ही अवीचि नामक घोर नरकमें गिर जाता है॥ ४९½॥

'जो देवता और ब्राह्मणकी सम्पत्तिको हर लेनेका विचार भी मनमें लाता है, वह नराधम निश्चय ही एक नरकसे दूसरे नरकमें गिरता रहता है'॥ ५०½॥

कुत्तेका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वह महातेजस्वी कुत्ता भी जिधरसे आया था, उधर ही चला गया॥ ५१½॥

वह पूर्वजन्ममें बड़ा मनस्वी था, परंतु इस जन्ममें वह कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होनेके कारण दूषित हो गया था। उस महाभाग कुत्तेने काशीमें जाकर प्रायोपवेशन कर लिया (अन्न-जल छोड़कर अपने प्राण त्याग दिये)॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें प्रक्षिप्त सर्ग पूरा हुआ॥ २॥

साठवाँ सर्ग

श्रीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनका सत्कार करके उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रशंसा

श्रीराम और लक्ष्मण परस्पर इस प्रकार कथा-वार्ता करते हुए प्रतिदिन प्रजापालनके कार्यमें लगे रहते थे। एक समय वसन्त-ऋतुकी रात आयी, जो न अधिक सर्दी लानेवाली थी और न गर्मी॥ १॥

वह रात बीतनेपर जब निर्मल प्रभातकाल आया, तब पुरवासियोंके कार्योंको जाननेवाले श्रीरघुनाथजी पूर्वाह्णकालके नित्यकर्म—संध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त हो बाहर निकलकर प्रजाजनोंके दृष्टिपथमें आये॥ २॥

उसी समय सुमन्त्रने आकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'राजन्! ये तपस्वी महर्षि भृगुपुत्र च्यवन मुनिको आगे करके द्वारपर खड़े हैं। द्वारपालोंने इनका भीतर आना रोक दिया है। महाराज! इन्हें आपके दर्शनकी जल्दी लगी हुई है और ये अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये हमें बारंबार प्रेरित करते हैं॥ ३-४॥

'पुरुषसिंह! ये सब महर्षि यमुनातटपर निवास करते हैं और आपसे विशेष प्रेम रखते हैं।' सुमन्त्रकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ श्रीरामने कहा—'सूत! भार्गव, च्यवन आदि सभी महाभाग ब्रह्मर्षियोंको भीतर बुलाया जाय'॥ ५½॥

राजाकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके द्वारपालने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ लिये और उन अत्यन्त दुर्जय तेजस्वी तापसोंको वह राजभवनके भीतर ले आया॥ ६½॥

उन तपस्वी महात्माओंकी संख्या सौसे अधिक थी। वे सब-के-सब अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन सबने राजभवनमें प्रवेश किया और समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए घड़ोंके साथ बहुत-से फल-मूल लेकर श्रीरामचन्द्रजीको भेंट किये॥ ७-८½॥

महाबाहु श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सारा उपहार—वे सारे तीर्थजल और नाना प्रकारके फल लेकर उन सभी महामुनियोंसे कहा—॥ ९-१०॥

'महात्माओ! ये उत्तमोत्तम आसन प्रस्तुत हैं। आपलोग यथायोग्य इन आसनोंपर बैठ जायँ।' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर वे सभी महर्षि रुचिर शोभासे सम्पन्न उन सुवर्णमय आसनोंपर बैठे॥ ११½॥

उन महर्षियोंको वहाँ आसनोंपर विराजमान देख शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ संयतभावसे कहा—॥ १२॥

'महर्षियो! किस कामसे यहाँ आपलोगोंका शुभागमन हुआ है! मैं एकाग्रचित्त होकर आपकी क्या सेवा करूँ? यह सेवक आपकी आज्ञा पानेके योग्य है। आदेश मिलनेपर मैं बड़े सुखसे आपकी सभी इच्छाओंको पूर्ण कर सकता हूँ॥ १३॥

'यह सारा राज्य, इस हृदयकमलमें विराजमान यह जीवात्मा तथा यह मेरा सारा वैभव ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये ही है, मैं आपके समक्ष यह सच्ची बात कहता हूँ'॥ १४॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर उन यमुनातीर-निवासी उग्र तपस्वी महर्षियोंने उच्च स्वरसे उन्हें साधुवाद दिया॥ १५॥

फिर वे महात्मा बड़े हर्षके साथ बोले—'नरश्रेष्ठ! इस भूमण्डलमें ऐसी बातें आपके ही योग्य हैं। दूसरे किसीके मुखसे इस तरहकी बात नहीं निकलती॥ १६॥

'राजन्! हम बहुत-से महाबली राजाओंके पास गये; परंतु उन्होंने कार्यके गौरवको समझकर उसे सुननेके बाद भी 'करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी रुचि नहीं दिखायी॥ १७॥

'परंतु आपने हमारे आनेका कारण जाने बिना ही केवल ब्राह्मणोंके प्रति आदरका भाव होनेसे हमारा काम करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली है; इसलिये आप अवश्य यह काम कर सकेंगे, इसमें संशय नहीं है। आप ही महान् भयसे ऋषियोंको बचा सकेंगे'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ सर्ग

ऋषियोंका मधुको प्राप्त हुए वर तथा लवणासुरके बल और अत्याचारका वर्णन करके उससे प्राप्त होनेवाले भयको दूर करनेके लिये श्रीरघुनाथजीसे प्रार्थना करना

इस प्रकार कहते हुए ऋषियोंसे प्रेरित हो श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महर्षियो! बताइये, आपका कौन-सा कार्य मुझे सिद्ध करना है! आपलोगोंका भय तो अभी दूर हो जाना चाहिये'॥ १॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भृगुपुत्र च्यवन बोले—'नरेश्वर! समूचे देशपर और हमलोगोंपर जो भय प्राप्त हुआ है, उसका मूल कारण क्या है, सुनिये॥ २॥

'राजन्! पहले सत्ययुगमें एक बड़ा बुद्धिमान् दैत्य था। वह लोलाका ज्येष्ठ पुत्र था। उस महान् असुरका नाम था मधु॥ ३॥

'वह बड़ा ही ब्राह्मण-भक्त और शरणागतवत्सल था। उसकी बुद्धि सुस्थिर थी। अत्यन्त उदार स्वभाववाले देवताओंके साथ भी उसकी ऐसी गहरी मित्रता थी, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी॥ ४॥

'मधु बल-विक्रमसे सम्पन्न था और एकाग्रचित्त होकर धर्मके अनुष्ठानमें लगा रहता था। उसने भगवान् शिवकी बड़ी आराधना की थी, जिससे उन्होंने उसे अद्भुत वर प्रदान किया था॥ ५॥

'महामना भगवान् शिवने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने शूलसे एक चमचमाता हुआ परम शक्तिशाली शूल प्रकट करके उसे मधुको दिया और यह बात कही—॥ ६॥

''तुमने मुझे प्रसन्न करनेवाला यह बड़ा अनुपम धर्म किया है; अतः मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें यह उत्तम आयुध प्रदान करता हूँ॥ ७॥

''महान् असुर! जबतक तुम ब्राह्मणों और देवताओंसे विरोध नहीं करोगे, तभीतक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा, अन्यथा अदृश्य हो जायगा॥ ८॥

''जो पुरुष निःशङ्क होकर तुम्हारे सामने युद्धके लिये आयेगा, उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथमें लौट आयेगा'॥ ९॥

''भगवान् रुद्रसे ऐसा वर पाकर वह महान् असुर महादेवजीको प्रणाम करके फिर इस प्रकार बोला—॥ १०॥

''भगवन्! देवाधिदेव! आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं; अतः आपसे प्रार्थना है कि परम उत्तम शूल मेरे वंशजोंके पास भी सदा रहे'॥ ११॥

'ऐसी बात कहनेवाले उस मधुसे समस्त प्राणियोंके अधिपति महान् देवता भगवान् शिवने इस प्रकार कहा—'ऐसा तो नहीं हो सकता॥ १२॥

''परंतु मुझे प्रसन्न जानकर तुम्हारे मुखसे जो शुभ वाणी निकली है, वह भी निष्फल न हो; इसलिये मैं वर देता हूँ कि तुम्हारे एक पुत्रके पास यह शूल रहेगा॥ १३॥

''यह शूल जबतक तुम्हारे पुत्रके हाथमें मौजूद रहेगा, तबतक वह समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य बना रहेगा'॥ १४॥

'महादेवजीसे इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत वर पाकर असुरश्रेष्ठ मधुने एक सुन्दर भवन तैयार कराया, जो अत्यन्त दीप्तिमान् था॥ १५॥

'उसकी प्रिय पत्नी महाभागा कुम्भीनसी थी, जो विश्वावसुकी संतान थी। उसका जन्म अनलाके गर्भसे हुआ था। कुम्भीनसी बड़ी कान्तिमती थी॥ १६॥

'उसका पुत्र महापराक्रमी लवण है, जिसका स्वभाव बड़ा भयंकर है। वह दुष्टात्मा बचपनसे ही

केवल पापाचारमें प्रवृत्त रहा है॥ १७॥

'अपने पुत्रको उद्दण्ड हुआ देख मधु क्रोधसे जलता रहता था। उसे बेटेकी दुष्टता देखकर बड़ा शोक हुआ, तथापि वह इससे कुछ नहीं बोला॥ १८॥

'अन्तमें वह इस देशको छोड़कर समुद्रमें रहनेके लिये चला गया। चलते समय उसने वह शूल लवणको दे दिया और उसे वरदानकी बात भी बता दी॥ १९॥

'अब वह दुष्ट उस शूलके प्रभावसे तथा अपनी दुष्टताके कारण तीनों लोकोंको विशेषतः तपस्वी मुनियोंको बड़ा संताप दे रहा है॥ २०॥

'उस लवणासुरका ऐसा प्रभाव है और उसके पास वैसा शक्तिशाली शूल भी है। रघुनन्दन! यह सब सुनकर यथोचित कार्य करनेमें आप ही प्रमाण हैं और आप ही हमारी परम गति हैं॥ २१॥

'श्रीराम! आजसे पहले भयसे पीड़ित हुए ऋषि अनेक राजाओंके पास जा-जाकर अभयकी भिक्षा माँग चुके हैं; परंतु वीर रघुवीर! अबतक हमें कोई रक्षक नहीं मिला॥ २२॥

'तात! हमने सुना है कि आपने सेना और सवारियोंसहित रावणका संहार कर डाला है; इसलिये हम आपहीको अपनी रक्षा करनेमें समर्थ समझते हैं, भूतलपर दूसरे किसी राजाको नहीं। अतः हमारी इच्छा है कि आप भयसे पीड़ित हुए महर्षियोंकी लवणासुरसे रक्षा करें॥ २३॥

'बल-विक्रमसे सम्पन्न श्रीराम! इस प्रकार हमारे सामने जो भयका कारण उपस्थित हो गया है, वह हमने आपके आगे निवेदन कर दिया। आप इसे दूर करनेमें समर्थ हैं, अतः हमारी यह अभिलाषा पूर्ण करें'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

श्रीरामका ऋषियोंसे लवणासुरके आहार-विहारके विषयमें पूछना और शत्रुघ्नकी रुचि जानकर उन्हें लवण-वधके कार्यमें नियुक्त करना

ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे हाथ जोड़कर पूछा—'लवणासुर क्या खाता है? उसका आचार-व्यवहार कैसा है—रहने-सहनेका ढंग क्या है? और वह कहाँ रहता है?'॥ १॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर उन सभी ऋषियोंने जिस तरहके आहार-व्यवहारसे लवणासुर पला था, वह सब कह सुनाया॥ २॥

वे बोले—'प्रभो! उसका आहार तो सभी प्राणी हैं; परंतु विशेषतः वह तपस्वी मुनियोंको खाता है। उसके आचार-व्यवहारमें बड़ी क्रूरता और भयानकता है और वह सदा मधुवनमें निवास करता है॥ ३॥

'वह प्रतिदिन कई सहस्र सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर खा जाता है॥ ४॥

'संहारकाल आनेपर मुँह बाकर खड़े हुए यमराजके समान वह महाबली असुर दूसरे-दूसरे जीवोंको भी खाता रहता है'॥ ५॥

उनका यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीने उन महामुनियोंसे कहा—'महर्षियो! मैं उस राक्षसको मरवा डालूँगा। आपलोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये'॥ ६॥

इस प्रकार उन उग्र तेजस्वी मुनियोंके समक्ष प्रतिज्ञा करके रघुकुलनन्दन श्रीरामने वहाँ एकत्र हुए अपने सब भाइयोंसे पूछा—॥ ७॥

'बन्धुओ! लवणको कौन वीर मारेगा? उसे किसके हिस्सेमें रखा जाय—महाबाहु भरतके या बुद्धिमान् शत्रुघ्नके'॥

रघुनाथजीके इस प्रकार पूछनेपर भरतजी बोले—'भैया! मैं इस लवणका वध करूँगा। इसे मेरे हिस्सेमें रखा जाय'॥ ९॥

भरतजीके ये धीरता और वीरतापूर्ण शब्द सुनकर शत्रुघ्नजी सोनेका सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये और महाराज श्रीरामको प्रणाम करके बोले—'रघुनन्दन! महाबाहु मझले भैया तो बहुत-से कार्य कर चुके हैं॥

'पहले जब अयोध्यापुरी आपसे सूनी हो गयी थी, उस समय आपके आगमन-कालतक हृदयमें अत्यन्त संताप लिये इन्होंने अयोध्यापुरीका पालन किया था॥ १२॥

'पृथ्वीनाथ! महायशस्वी भरतने नन्दिग्राममें दुःखद शय्यापर सोते हुए पहले बहुत-से दुःख भोगे हैं। ये फल-मूल खाकर रहते थे और सिरपर जटा बढ़ाये चीर वस्त्र धारण करते थे॥ १३½॥

'महाराज! ऐसे-ऐसे दुःख भोगकर ये रघुकुलनन्दन भरत मुझ सेवकके रहते हुए अब फिर अधिक क्लेश न उठावें'॥ १४½॥

शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी फिर बोले—

'काकुत्स्थ! तुम जैसा कहते हो, वैसा ही हो। तुम्हीं मेरे इस आदेशका पालन करो। मैं तुम्हें मधुके सुन्दर नगरमें राजाके पदपर अभिषिक्त करूँगा॥ १५-१६॥

'महाबाहो! यदि तुम भरतको क्लेश देना ठीक नहीं समझते तो इनको यहीं रहने दो। तुम शूरवीर हो, अस्त्र-विद्याके ज्ञाता हो तथा तुममें नूतन नगर निर्माण करनेकी शक्ति है॥ १७॥

'तुम यमुनाजीके तटपर सुन्दर नगर बसा सकते हो और उत्तमोत्तम जनपदोंकी स्थापना कर सकते हो। जो किसी राजाके वंशका उच्छेद करके उसकी राजधानीमें दूसरे राजाको स्थापित नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है॥

'अतः तुम मधुके पुत्र पापात्मा लवणासुरको मारकर धर्मपूर्वक वहाँके राज्यका शासन करो। शूरवीर! यदि तुम मेरी बात मानने योग्य समझो तो मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे चुपचाप स्वीकार करो। बीचमें बात काटकर कोई उत्तर तुम्हें नहीं देना चाहिये। बालकको अवश्य ही अपने बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। शत्रुघ्न! वसिष्ठ आदि मुख्य-मुख्य ब्राह्मण विधि और मन्त्रोच्चारणके साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे। मेरी आज्ञासे प्राप्त हुए इस अभिषेकको तुम स्वीकार करो'॥ १९—२१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

श्रीरामद्वारा शत्रुघ्नका राज्याभिषेक तथा उन्हें लवणासुरके शूलसे बचनेके उपायका प्रतिपादन

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बल-विक्रमसे सम्पन्न शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए और धीरे-धीरे बोले—॥ १॥

'ककुत्स्थकुलभूषण नरेश्वर! इस अभिषेकको स्वीकार करनेमें तो मुझे अधर्म जान पड़ता है। भला, बड़े भाइयोंके रहते हुए छोटेका अभिषेक कैसे किया जा सकता है?॥ २॥

'तथापि पुरुषप्रवर! महाभाग! आपकी आज्ञाका पालन तो मुझे अवश्य करना ही चाहिये। आपका शासन किसीके लिये भी दुर्लङ्घ्य है॥ ३॥

'वीर! मैंने आपसे तथा वेदवाक्योंसे भी यह बात सुनी है। वास्तवमें मझले भैयाके प्रतिज्ञा कर लेनेपर मुझे कुछ नहीं बोलना चाहिये था॥ ४॥

'मेरे मुँहसे ये बड़े ही अनुचित शब्द निकल गये कि मैं लवणको मारूँगा। पुरुषोत्तम! उस अनुचित कथनका ही परिणाम है कि मेरी इस प्रकार दुर्गति हो रही है (मुझे बड़ोंके होते हुए अभिषिक्त होना पड़ता है)॥ ५॥

'बड़े भाईके बोलनेपर मुझे फिर कुछ उत्तर नहीं देना चाहिये था; (अर्थात् भैया भरतने जब लवणको मारनेका निर्णय कर लिया, तब मुझे उसमें दखल नहीं देना चाहिये था) परंतु मैंने इस नियमका उल्लङ्घन किया, इसीलिये आपने ऐसा (राज्याभिषेकविषयक) आदेश दे दिया। जो स्वीकार कर लेनेपर मेरे लिये अधर्मयुक्त होनेके कारण परलोकके लाभसे भी वञ्चित करनेवाला है। तथापि आपकी आज्ञा मेरे लिये दुर्लङ्घ्य है; अतः मुझे इसको स्वीकार करना ही पड़ेगा॥ ६॥

'काकुत्स्थ! अब आपकी जो आज्ञा हो चुकी, उसके विरुद्ध मैं दूसरा कोई उत्तर नहीं दूँगा। मानद! कहीं ऐसा न हो कि दूसरा कोई उत्तर देनेपर मुझे इससे भी कठोर दण्ड भोगना पड़े॥ ७॥

'राजन्! पुरुषप्रवर रघुनन्दन! मैं आपकी इच्छाके अनुसार ही कार्य करूँगा। किंतु इसमें मेरे लिये जो अधर्म प्राप्त होता हो, उसका नाश आप करें'॥ ८॥

शूरवीर महात्मा शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और भरत तथा लक्ष्मण आदिसे बोले—॥ ९॥

'तुम सब लोग बड़ी सावधानीके साथ राज्याभिषेककी सामग्री जुटाकर ले आओ। मैं अभी रघुकुलनन्दन पुरुषसिंह शत्रुघ्नका अभिषेक करूँगा॥ १०॥

'काकुत्स्थ! मेरी आज्ञासे पुरोहित, वैदिक विद्वानों, ऋत्विजों तथा समस्त मन्त्रियोंको बुला लाओ'॥ ११॥

महाराजकी आज्ञा पाकर महारथी भरत और लक्ष्मण आदिने वैसा ही किया। वे पुरोहितजीको आगे करके अभिषेककी सामग्री साथ लिये राजभवनमें आये। उनके साथ ही बहुत-से राजा और ब्राह्मण भी वहाँ आ पहुँचे॥ १२ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर महात्मा शत्रुघ्नका वैभवशाली अभिषेक आरम्भ हुआ, जो श्रीरघुनाथजी तथा समस्त पुरवासियोंके हर्षको बढ़ानेवाला था॥ १३ $\frac{1}{2}$ ॥

जैसे पूर्वकालमें इन्द्र आदि देवताओंने स्कन्दका देवसेनापतिके पदपर अभिषेक किया था, उसी तरह श्रीराम आदिने वहाँ शत्रुघ्नका राजाके पदपर अभिषेक किया। इस प्रकार अभिषिक्त होकर शत्रुघ्नजी सूर्यके

समान सुशोभित हुए॥ १४ $\frac{१}{२}$ ॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा जब शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हुआ, तब उस नगरके निवासियों और बहुश्रुत ब्राह्मणोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १५ $\frac{१}{२}$ ॥

इस समय कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा राज्यभवनकी अन्य राजमहिलाओंने मिलकर मङ्गलकार्य सम्पन्न किया॥ १६ $\frac{१}{२}$ ॥

शत्रुघ्नजीका राज्याभिषेक होनेसे यमुनातीरनिवासी महात्मा ऋषियोंको यह निश्चय हो गया कि अब लवणासुर मारा गया॥ १७ $\frac{१}{२}$ ॥

अभिषेकके पश्चात् शत्रुघ्नको गोदमें बिठाकर श्रीरघुनाथजीने उनका तेज बढ़ाते हुए मधुर वाणीमें कहा— ॥ १८ ॥

'रघुनन्दन! सौम्य शत्रुघ्न! मैं तुम्हें यह दिव्य अमोघ बाण दे रहा हूँ। तुम इसके द्वारा लवणासुरको अवश्य मार डालोगे॥ १९ ॥

'काकुत्स्थ! पिछले प्रलयकालमें जब किसीसे भी पराजित न होनेवाले अजन्मा एवं दिव्य रूपधारी भगवान् विष्णु महान् एकार्णवके जलमें शयन करते थे, उस समय उन्हें देवता और असुर कोई नहीं देख पाते थे। वे सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य थे। वीर! उसी समय उन भगवान् नारायणने ही कुपित हो दुरात्मा मधु और कैटभके विनाश तथा समस्त राक्षसोंके संहारके लिये इस दिव्य, उत्तम एवं अमोघ बाणकी सृष्टि की थी। उस समय वे तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे और मधु, कैटभ तथा अन्य सब राक्षस उसमें विघ्न उपस्थित कर रहे थे। अतः भगवान्ने इसी बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको युद्धमें मारा था। इस मुख्य बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको मारकर भगवान्ने जीवोंके कर्मफलभोगकी सिद्धिके लिये विभिन्न लोकोंकी रचना की॥ २०—२३ ॥

'शत्रुघ्न! पहले मैंने रावणका वध करनेके लिये भी इस बाणका प्रयोग नहीं किया था; क्योंकि इसके द्वारा बहुत-से प्राणियोंके नष्ट हो जानेकी आशङ्का थी॥ २४ ॥

'लवणके पास जो महात्मा महादेवजीका शत्रुविनाशके लिये दिया हुआ मधुका दिव्य, उत्तम एवं महान् शूल है, उसका वह प्रतिदिन बारंबार पूजन करता है और उसे महलमें ही गुप्तरूपसे रखकर समस्त दिशाओंमें जा-जाकर अपने लिये उत्तम आहारका संग्रह करता है॥ २५-२६ ॥

'जब कोई युद्धकी इच्छा रखकर उसे ललकारता है, तब वह राक्षस उस शूलको लेकर अपने विपक्षीको भस्म कर देता है॥ २७ ॥

'पुरुषसिंह! जिस समय वह शूल उसके पास न हो और वह नगरमें भी न पहुँच सका हो, उसी समय पहलेसे ही नगरके द्वारपर जाकर अस्त्र-शस्त्र धारण किये उसकी प्रतीक्षामें डटे रहो॥ २८ ॥

'महाबाहु पुरुषोत्तम! यदि उस राक्षसको महलमें घुसनेसे पहले ही तुम युद्धके लिये ललकारोगे, तब अवश्य उसका वध कर सकोगे॥ २९ ॥

'ऐसा न करनेपर वह अवध्य हो जायगा। वीर! यदि तुमने ऐसा किया तो उस राक्षसका विनाश होकर ही रहेगा॥ ३० ॥

'इस प्रकार मैंने तुम्हें उस शूलसे बचनेका उपाय तथा अन्य सब आवश्यक बातें बता दीं; क्योंकि श्रीमान् भगवान् नीलकण्ठके विधानको पलटना बड़ा कठिन काम है'॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार शत्रुघ्नका सेनाको आगे भेजकर एक मासके पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना

शत्रुघ्नजीको इस प्रकार समझाकर और उनकी बारंबार प्रशंसा करके रघुकुलनन्दन श्रीरामने पुनः यह बात कही— ॥ १ ॥

'पुरुषप्रवर! ये चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, सौ हाथी और रास्तेमें तरह-तरहके सामानकी दूकानें लगानेवाले बनिये लोग विक्रयकी आवश्यक वस्तुओंके साथ तुम्हारे साथ जायँगे। साथ ही मनोरञ्जनके लिये नट और नर्तक भी रहेंगे॥ २-३ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्न! तुम दस लाख स्वर्णमुद्रा लेकर जाओ। इस तरह पर्याप्त धन और सवारियाँ अपने साथ रखो॥ ४ ॥

'इस सेनाका भलीभाँति भरण-पोषण किया गया है। यह हर्ष तथा उत्साहसे पूर्ण, संतुष्ट और उद्दण्डतासे रहित होकर आज्ञाके अधीन रहनेवाली है। नरश्रेष्ठ! इसे

मधुर भाषणसे और धन देकर प्रसन्न रखना॥ ५॥

'रघुनन्दन! अत्यन्त प्रसन्न रखे गये सेवक-समूह (सैनिक) जहाँ (जिस संकटकालमें) खड़े होते या साथ देते हैं, वहाँ न तो धन टिक पाता है, न स्त्री ठहर सकती है और न भाई-बन्धु ही खड़े हो सकते हैं (अत: उन सबको सदा संतुष्ट रखना चाहिये)॥ ६॥

'इसलिये हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई इस विशाल सेनाको आगे भेजकर तुम पीछेसे अकेले ही केवल धनुष हाथमें लेकर मधुवनको जाना और इस तरह यात्रा करना, जिससे मधुपुत्र लवणको यह संदेह न हो कि तुम युद्धकी इच्छासे वहाँ जा रहे हो। तुम्हारी गतिविधिका उसे पता नहीं चलना चाहिये॥ ७-८॥

'पुरुषोत्तम! मैंने जो बताया है, उसके सिवा उसकी मृत्युका दूसरा कोई उपाय नहीं है; क्योंकि जो भी शूलसहित लवणासुरके दृष्टिपथमें आ जाता है, वह अवश्य उसके द्वारा मारा जाता है॥ ९॥

'सौम्य! जब ग्रीष्म-ऋतु निकल जाय और वर्षाकाल आ जाय, उस समय तुम लवणासुरका वध करना; क्योंकि उस दुर्बुद्धि राक्षसके नाशका वही समय है॥ १०॥

'तुम्हारे सैनिक महर्षियोंको आगे करके यहाँसे यात्रा करें, जिससे ग्रीष्म-ऋतु बीतते-बीतते वे गङ्गाजीको पार कर जायँ॥ ११॥

'शीघ्रपराक्रमी वीर! फिर सारी सेनाको वहीं गङ्गाजीके तटपर ठहराकर तुम धनुषमात्र लेकर पूरी सावधानीके साथ अकेले ही आगे जाना'॥ १२॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नजीने अपने प्रधान सेनापतियोंको बुलाया और इस प्रकार कहा—॥ १३॥

'देखो, मार्गमें जहाँ-जहाँ डेरा डालना है, उन पड़ावोंका निश्चय कर लिया गया है। तुम्हें वहीं निवास करना होगा। जहाँ भी ठहरो, विरोधभावको मनसे निकाल दो, जिससे किसीको कष्ट न पहुँचे'॥ १४॥

इस प्रकार उन सेनापतियोंको आज्ञा दे अपनी विशाल सेनाको आगे भेजकर शत्रुघ्नने कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकेयीको प्रणाम किया॥ १५॥

तत्पश्चात् श्रीरामकी परिक्रमा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर हाथ जोड़कर भरत और लक्ष्मणकी भी वन्दना की॥ १६॥

तदनन्तर मनको संयममें रखकर शत्रुघ्नने पुरोहित वसिष्ठको नमस्कार किया। फिर श्रीरामकी आज्ञा ले उनकी परिक्रमा करके शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली शत्रुघ्न अयोध्यासे निकले॥ १७॥

गजराजों और श्रेष्ठ अश्वोंके समुदायसे भरी हुई विशाल सेनाको आगे भेजकर रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले शत्रुघ्न एक मासतक महाराज श्रीरामके पास ही रहे। उसके बाद उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

महर्षि वाल्मीकिका शत्रुघ्नको सुदासपुत्र कल्माषपादकी कथा सुनाना

अपनी सेनाको आगे भेजकर अयोध्यामें एक माह रहनेके पश्चात् शत्रुघ्न अकेले ही वहाँसे मधुवनके मार्गपर प्रस्थित हुए। वे बड़ी तेजीके साथ आगे बढ़ने लगे॥ १॥

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले शूरवीर शत्रुघ्न रास्तेमें दो रात बिताकर तीसरे दिन महर्षि वाल्मीकिके पवित्र आश्रमपर जा पहुँचे। वह सबसे उत्तम वासस्थान था॥ २॥

वहाँ उन्होंने हाथ जोड़ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वाल्मीकिको प्रणाम करके यह बात कही—॥ ३॥

'भगवन्! मैं अपने बड़े भाई श्रीरघुनाथजीके कार्यसे इधर आया हूँ। आज रातको यहाँ ठहरना चाहता हूँ और कल सबेरे वरुणदेवद्वारा पालित पश्चिम दिशाको चला जाऊँगा'॥ ४॥

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर मुनिवर वाल्मीकिने उन महात्माको हँसते हुए उत्तर दिया—'महायशस्वी वीर! तुम्हारा स्वागत है॥ ५॥

'सौम्य! यह आश्रम रघुवंशियोंके लिये अपना ही घर है। तुम नि:शङ्क होकर मेरी ओरसे आसन, पाद्य और अर्घ्य स्वीकार करो'॥ ६॥

तब वह सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नने फल-मूलका भोजन किया। इससे उन्हें बड़ी तृप्ति हुई॥ ७॥

फल-मूल खाकर वे महर्षिसे बोले—'मुने! इस आश्रमके निकट जो यह प्राचीनकालका यज्ञ-वैभव (यूप आदि उपकरण) दिखायी देता है, किसका है—किस यजमान नरेशने यहाँ यज्ञ किया था?'॥ ८॥

उनका यह प्रश्न सुनकर वाल्मीकिजीने कहा—'शत्रुघ्न! पूर्वकालमें जिस यजमान नरेशका यह यज्ञमण्डप रहा है, उसे बताता हूँ, सुनो॥ ९॥

'तुम्हारे पूर्वज राजा सुदास इस भूमण्डलके स्वामी हो गये हैं। उन भूपालके वीरसह (मित्रसह) नामक एक पुत्र हुआ, जो बड़ा पराक्रमी और अत्यन्त धर्मात्मा था॥ १०॥

'सुदासका वह शूरवीर पुत्र बाल्यावस्थामें ही एक दिन शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ उसने दो राक्षस देखे, जो सब ओर बारंबार विचर रहे थे॥ ११॥

'वे दोनों घोर राक्षस बाघका रूप धारण करके कई हजार मृगोंको मारकर खा गये। फिर भी संतुष्ट नहीं हुए। उनके पेट नहीं भरे॥ १२॥

'सौदासने उन दोनों राक्षसोंको देखा। साथ ही उनके द्वारा मृगशून्य किये गये उस वनकी अवस्थापर दृष्टिपात किया। इससे वे महान् क्रोधसे भर गये और उनमेंसे एकको विशाल बाणसे मार डाला॥ १३॥

'एकको धराशायी करके वे पुरुषप्रवर सौदास निश्चिन्त हो गये। उनका अमर्ष जाता रहा और वे उस मरे हुए राक्षसको देखने लगे॥ १४॥

'उस राक्षसके मरे हुए साथीको जब सौदास देख रहे थे, उस समय उनकी ओर दृष्टिपात करके उस दूसरे राक्षसने मन-ही-मन घोर संताप किया और सौदाससे इस प्रकार कहा—॥ १५॥

''महापापी नरेश! तूने मेरे निरपराध साथीको मार डाला है, इसलिये मैं तुझसे भी इसका बदला लूँगा'॥ १६॥

'ऐसा कहकर वह राक्षस वहीं अन्तर्धान हो गया और दीर्घकालके पश्चात् सुदासकुमार मित्रसह अयोध्याके राजा हो गये॥ १७॥

'उन्हीं राजा मित्रसहने इस आश्रमके समीप अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया। महर्षि वसिष्ठ अपने तपोबलसे उस यज्ञकी रक्षा करते थे॥ १८॥

'उनका वह महान् यज्ञ बहुत वर्षोंतक यहाँ चलता रहा। वह भारी धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न यज्ञ देवताओंके यज्ञकी समानता करता था॥ १९॥

'उस यज्ञकी समाप्ति होनेपर पहलेके वैरका स्मरण करनेवाला वह राक्षस वसिष्ठजीका रूप धारण करके राजाके पास आया और इस प्रकार बोला—॥ २०॥

''राजन्! आज यज्ञकी समाप्तिका दिन है, अतः आज मुझे तुम शीघ्र ही मांसयुक्त भोजन दो। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये'॥ २१॥

'ब्राह्मणरूपधारी राक्षसकी कही हुई बात सुनकर राजाने रसोई बनानेमें कुशल रसोइयोंसे कहा—॥ २२॥

''तुमलोग आज शीघ्र ही मांसयुक्त हविष्य तैयार करो और उसे ऐसा बनाओ, जिससे स्वादिष्ट भोजन हो सके तथा मेरे गुरुदेव उससे संतुष्ट हो सकें'॥ २३॥

'महाराजकी इस आज्ञाको सुनते ही रसोइयेके मनमें बड़ी घबराहट पैदा हो गयी (वह सोचने लगा, आज गुरुजी अभक्ष्य-भक्षणमें कैसे प्रवृत्त होंगे)। यह देख फिर उस राक्षसने ही रसोइयेका वेष बना लिया॥ २४॥

'उसने मनुष्यका मांस लाकर राजाको दे दिया और कहा—'यह मांसयुक्त अन्न एवं हविष्य लाया हूँ। यह बड़ा ही स्वादिष्ट है'॥ २५॥

'नरश्रेष्ठ! अपनी पत्नी रानी मदयन्तीके साथ राजा मित्रसहने राक्षसके लाये हुए उस मांसयुक्त भोजनको वसिष्ठजीके सामने रखा॥ २६॥

'थालीमें मानव-मांस परोसा गया है, यह जानकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और इस प्रकार बोले—॥ २७॥

''राजन्! तुम मुझे ऐसा भोजन देना चाहते हो, इसलिये यही तुम्हारा भोजन होगा; इसमें संशय नहीं है (अर्थात् तुम मनुष्यभक्षी राक्षस हो जाओगे)'॥ २८॥

'यह सुनकर सौदासने भी कुपित हो हाथमें जल ले लिया और वसिष्ठ मुनिको शाप देना आरम्भ किया। तबतक उनकी पत्नीने उन्हें रोक दिया॥ २९॥

'वे बोलीं—'राजन्! भगवान् वसिष्ठ मुनि हम सबके स्वामी हैं; अतः आप अपने देवतुल्य पुरोहितको बदलेमें शाप नहीं दे सकते'॥ ३०॥

'तब धर्मात्मा राजाने तेज और बलसे सम्पन्न उस क्रोधमय जलको नीचे डाल दिया। उससे अपने दोनों पैरोंको ही सींच लिया॥ ३१॥

ऐसा करनेसे राजाके दोनों पैर तत्काल चितकबरे हो गये। तभीसे महायशस्वी राजा सौदास कल्माषपाद (चितकबरे पैरवाले) हो गये और उसी नामसे उनकी ख्याति हुई॥ ३२ $\frac{१}{२}$॥

'तदनन्तर पत्नीसहित राजाने बारंबार प्रणाम करके फिर वसिष्ठसे कहा—'ब्रह्मर्षे! आपहीका रूप धारण करके किसीने मुझे ऐसा भोजन देनेके लिये प्रेरित किया था'॥ ३३॥

'राजाधिराज मित्रसहकी वह बात सुनकर और उसे राक्षसकी करतूत जानकर वसिष्ठने पुनः उस नरश्रेष्ठ नरेशसे कहा—॥ ३४॥

''राजन्! मैंने रोषसे भरकर जो बात कह दी है,

इसे व्यर्थ नहीं किया जा सकता; परंतु इससे छूटनेके लिये मैं तुम्हें एक वर दूँगा॥ ३५॥

''राजेन्द्र! वह वर इस प्रकार है—यह शाप बारह वर्षोंतक रहेगा। उसके बाद इसका अन्त हो जायगा। मेरी कृपासे तुम्हें बीती हुई बातका स्मरण नहीं रहेगा'॥

'इस प्रकार उस शत्रुसूदन राजाने बारह वर्षोंतक उस शापको भोगकर पुनः अपना राज्य पाया और प्रजाजनोंका निरन्तर पालन किया॥ ३७॥

'रघुनन्दन! उन्हीं राजा कल्माषपादके यज्ञका यह सुन्दर स्थान मेरे इस आश्रमके समीप दिखायी देता है, जिसके विषयमें तुम पूछ रहे थे'॥ ३८॥

महाराज मित्रसहकी उस अत्यन्त दारुण कथाको सुनकर शत्रुघ्नने महर्षिको प्रणाम करके पर्णशालामें प्रवेश किया॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

सीताके दो पुत्रोंका जन्म, वाल्मीकिद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस समाचारसे प्रसन्न हुए शत्रुघ्नका वहाँसे प्रस्थान करके यमुनातटपर पहुँचना

जिस रातको शत्रुघ्नने पर्णशालामें प्रवेश किया था, उसी रातमें सीताजीने दो पुत्रोंको जन्म दिया॥ १॥

तदनन्तर आधी रातके समय कुछ मुनिकुमारोंने वाल्मीकिजीके पास आकर उन्हें सीताजीके प्रसव होनेका शुभ एवं प्रिय समाचार सुनाया— ॥ २॥

'भगवन्! श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीने दो पुत्रोंको जन्म दिया है; अतः महातेजस्वी महर्षे! आप उनकी बालग्रहजनित बाधा निवृत्त करनेवाली रक्षा करें'॥ ३॥

उन कुमारोंकी वह बात सुनकर महर्षि उस स्थानपर गये। सीताके वे दोनों पुत्र बालचन्द्रमाके समान सुन्दर तथा देवकुमारोंके समान महातेजस्वी थे॥ ४॥

वाल्मीकिजीने प्रसन्नचित्त होकर सूतिकागारमें प्रवेश किया और उन दोनों कुमारोंको देखा तथा उनके लिये भूतों और राक्षसोंका विनाश करनेवाली रक्षाकी व्यवस्था की॥ ५॥

ब्रह्मर्षि वाल्मीकिने एक कुशाओंका मुट्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा दोनों बालकोंकी भूत-बाधाका निवारण करनेके लिये रक्षा-विधिका उपदेश दिया— ॥ ६॥

'वृद्धा स्त्रियोंको चाहिये कि इन दोनों बालकोंमें जो पहले उत्पन्न हुआ है, उसका मन्त्रोंद्वारा संस्कार किये हुए इन कुशोंसे मार्जन करें। ऐसा करनेपर उस बालकका नाम 'कुश' होगा और उनमें जो छोटा है, उसका लवसे मार्जन करें। इससे उसका नाम 'लव' होगा॥ ७-८॥

'इस प्रकार जुड़वे उत्पन्न हुए ये दोनों बालक क्रमशः कुश और लव नाम धारण करेंगे और मेरे द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामोंसे भूमण्डलमें विख्यात होंगे'॥ ९॥

यह सुनकर निष्पाप वृद्धा स्त्रियोंने एकाग्रचित्त हो मुनिके हाथके रक्षाके साधनभूत उन कुशोंको ले लिया और उनके द्वारा उन दोनों बालकोंका मार्जन एवं संरक्षण किया॥ १०॥

जब वृद्धा स्त्रियाँ इस प्रकार रक्षा करने लगीं, उस समय आधी रातको श्रीराम और सीताके नाम, गोत्रके उच्चारणकी ध्वनि शत्रुघ्नजीके कानोंमें पड़ी। साथ ही उन्हें सीताके दो सुन्दर पुत्र होनेका संवाद प्राप्त हुआ। तब वे सीताजीकी पर्णशालामें गये और बोले—'माताजी! यह बड़े सौभाग्यकी बात है'॥ ११-१२॥

महात्मा शत्रुघ्न उस समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी वह वर्षाकालिक सावनकी रात बात-की-बातमें बीत गयी॥ १३॥

सबेरा होनेपर पूर्वाह्णकालका कार्य संध्या-वन्दन आदि करके महापराक्रमी शत्रुघ्न हाथ जोड़ मुनिसे विदा ले पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये॥ १४॥

मार्गमें सात रात बिताकर वे यमुना-तटपर जा पहुँचे और वहाँ पुण्यकीर्ति महर्षियोंके आश्रममें रहने लगे॥ १५॥

महायशस्वी राजा शत्रुघ्नने वहाँ च्यवन आदि मुनियोंके साथ सुन्दर कथा-वार्ताद्वारा कालक्षेप करते हुए निवास किया॥ १६॥

इस प्रकार रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा राजकुमार शत्रुघ्न वहाँ एकत्र हुए च्यवन आदि मुनियोंके साथ नाना प्रकारकी कथाएँ सुनते हुए उन दिनों यमुनातटपर रात बिताने लगे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६६॥

सरसठवाँ सर्ग

च्यवन मुनिका शत्रुघ्नको लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय देते हुए राजा मान्धाताके वधका प्रसंग सुनाना

एक दिन रातके समय शत्रुघ्नने भृगुनन्दन ब्रह्मर्षि च्यवनसे पूछा—'ब्रह्मन्! लवणासुरमें कितना बल है? उसके शूलमें कितनी शक्ति है? उस उत्तम शूलके द्वारा उसने द्वन्द्व-युद्धमें आये हुए किन-किन योद्धाओंका वध किया है?'॥ १-२॥

महात्मा शत्रुघ्नजीका यह वचन सुनकर महातेजस्वी च्यवनने उन रघुकुलनन्दन राजकुमारसे कहा—॥ ३॥

'रघुनन्दन! इस लवणासुरके कर्म असंख्य हैं। उनमेंसे एक ऐसे कर्मका वर्णन किया जाता है, जो इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाताके ऊपर घटित हुआ था। तुम उसे मेरे मुँहसे सुनो॥ ४॥

'पूर्वकालकी बात है अयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता राज्य करते थे। वे बड़े बलवान्, पराक्रमी तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे॥ ५॥

'उन पृथिवीपति नरेशने सारी पृथ्वीको अपने अधिकारमें करके यहाँसे देवलोकपर विजय पानेका उद्योग आरम्भ किया॥ ६॥

'राजा मान्धाताने जब देवलोकपर विजय पानेकी इच्छासे उद्योग आरम्भ किया, तब इन्द्र तथा महामनस्वी देवताओंको बड़ा भय हुआ॥ ७॥

''मैं इन्द्रका आधा सिंहासन और उनका आधा राज्य लेकर भूमण्डलका राजा हो देवताओंसे वन्दित होकर रहूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके वे स्वर्गलोकपर जा चढ़े॥ ८॥

'उनके खोटे अभिप्रायको जानकर पाकशासन इन्द्र उन युवनाश्व पुत्र मान्धाताके पास गये और उन्हें शान्तिपूर्वक समझाते हुए इस प्रकार बोले—॥ ९॥

''पुरुषप्रवर! अभी तुम सारे मर्त्यलोकके भी राजा नहीं हो। समूची पृथ्वीको वशमें किये बिना ही देवताओंका राज्य कैसे लेना चाहते हो॥ १०॥

''वीर! यदि सारी पृथ्वी तुम्हारे वशमें हो जाय तो तुम सेवकों, सेनाओं और सवारियोंसहित यहाँ देवलोकका राज्य करना'॥ ११॥

'ऐसी बातें कहते हुए इन्द्रसे मान्धाताने पूछा—'देवराज! बताइये तो सही, इस पृथ्वीपर कहाँ मेरे आदेशकी अवहेलना होती है'॥ १२॥

'तब इन्द्रने कहा—'निष्पाप नरेश! मधुवनमें मधुका पुत्र लवणासुर रहता है। वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता'॥

'इन्द्रकी कही हुई यह घोर अप्रिय बात सुनकर राजा मान्धाताका मुख लज्जासे झुक गया। वे कुछ बोल न सके॥ १४॥

'वे नरेश इन्द्रसे विदा ले मुँह लटकाये वहाँसे चल दिये और पुनः इस मर्त्यलोकमें ही आ पहुँचे॥ १५॥

'उन्होंने अपने हृदयमें अमर्ष भर लिया। फिर वे शत्रुदमन मान्धाता मधुके पुत्रको वशमें करनेके लिये सेवक, सेना और सवारियोंसहित उसकी राजधानीके समीप आये॥ १६॥

'उन पुरुषप्रवर नरेशने युद्धकी इच्छासे लवणके पास अपना दूत भेजा॥ १७॥

'दूतने वहाँ जाकर मधुके पुत्रको बहुत-से कटुवचन सुनाये। इस तरह कठोर बातें कहते हुए उस दूतको वह राक्षस तुरंत खा गया॥ १८॥

'जब दूतके लौटनेमें विलम्ब हुआ, तब राजा बड़े क्रुद्ध हुए और बाणोंकी वर्षा करके उस राक्षसको सब ओरसे पीड़ित करने लगे॥ १९॥

'तब लवणासुरने हँसकर हाथसे वह शूल उठाया और सेवकोंसहित राजा मान्धाताका वध करनेके लिये उस उत्तम अस्त्रको उनके ऊपर छोड़ दिया॥ २०॥

'वह चमचमाता हुआ शूल सेवक, सेना और सवारियोंसहित राजा मान्धाताको भस्म करके फिर लवणासुरके हाथमें आ गया॥ २१॥

'इस प्रकार सारी सेना और सवारियोंके साथ महाराज मान्धाता मारे गये। सौम्य! उस शूलकी शक्ति असीम और सबसे बढ़ी-चढ़ी है॥ २२॥

'राजन्! कल सबेरे जबतक वह राक्षस उस अस्त्रको न ले, तबतक ही शीघ्रता करनेपर तुम निःसंदेह उसका वध कर सकोगे और इस प्रकार निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी॥ २३॥

'तुम्हारे द्वारा यह कार्य सम्पन्न होनेपर समस्त लोकोंका कल्याण होगा। नरश्रेष्ठ! इस तरह मैंने तुम्हें दुरात्मा लवणका सारा बल बता दिया और उसके शूलकी भी घोर एवं असीम शक्तिका परिचय दे दिया। पृथ्वीनाथ! इन्द्रके प्रयत्नसे उसी शूलके द्वारा राजा मान्धाताका विनाश हुआ था॥ २४-२५॥

'महात्मन्! कल सबेरे जब वह शूल लिये बिना ही मांसका संग्रह करनेके लिये निकलेगा, तभी तुम उसका वध कर डालोगे, इसमें संशय नहीं है। नरेन्द्र! अवश्य तुम्हारी विजय होगी'॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

लवणासुरका आहारके लिये निकलना, शत्रुघ्नका मधुपुरीके द्वारपर डट जाना और लौटे हुए लवणासुरके साथ उनकी रोषभरी बातचीत

इस प्रकार कथा कहते और शुभ विजयकी आकांक्षा रखते हुए उन मुनियोंकी बातें सुनते-सुनते महात्मा शत्रुघ्नकी वह रात बात-की-बातमें बीत गयी॥ १॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होनेपर भक्ष्य पदार्थ एवं भोजनके संग्रहकी इच्छासे प्रेरित हो वह वीर राक्षस अपने नगरसे बाहर निकला॥ २॥

इसी बीचमें वीर शत्रुघ्न यमुना नदीको पार करके हाथमें धनुष लिये मधुपुरीके द्वारपर खड़े हो गये॥ ३॥

तत्पश्चात् मध्याह्न होनेपर वह क्रूरकर्मा राक्षस हजारों प्राणियोंका बोझा लिये वहाँ आया॥ ४॥

उस समय उसने शत्रुघ्नको अस्त्र-शस्त्र लिये द्वारपर खड़ा देखा। देखकर वह राक्षस उनसे बोला—'नराधम! इस हथियारसे तू मेरा क्या कर लेगा। तेरे-जैसे हजारों अस्त्र-शस्त्रधारी मनुष्योंको मैं रोषपूर्वक खा चुका हूँ। जान पड़ता है काल तेरे सिरपर नाच रहा है॥ ५-६॥

'पुरुषाधम! आजका यह मेरा आहार भी पूरा नहीं है। दुर्मते! तू स्वयं ही मेरे मुँहमें कैसे आ पड़ा?'॥ ७॥

वह राक्षस इस प्रकारकी बातें कहता हुआ बारंबार हँस रहा था। यह देख पराक्रमी शत्रुघ्नके नेत्रोंसे रोषके कारण अश्रुपात होने लगा॥ ८॥

रोषके वशीभूत हुए महामनस्वी शत्रुघ्नके सभी अङ्गोंसे तेजोमयी किरणें छिटकने लगीं॥ ९॥

उस समय अत्यन्त कुपित हुए शत्रुघ्न उस निशाचरसे बोले—'दुर्बुद्धे! मैं तेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता हूँ॥ १०॥

'मैं महाराज दशरथका पुत्र और परम बुद्धिमान् राजा श्रीरामका भाई हूँ। मेरा नाम शत्रुघ्न है और मैं कामसे भी शत्रुघ्न (शत्रुओंका संहार करनेवाला) ही हूँ। इस समय तेरा वध करनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ ११॥

'मैं युद्ध करना चाहता हूँ। इसलिये तू मुझे द्वन्द्वयुद्धका अवसर दे। तू सम्पूर्ण प्राणियोंका शत्रु है; इसलिये अब मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकेगा'॥ १२॥

उनके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उन नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नसे हँसता हुआ-सा बोला—'दुर्मते! सौभाग्यकी बात है कि आज तू स्वयं ही मुझे मिल गया॥ १३॥

'खोटी बुद्धिवाले नराधम! रावण नामक राक्षस मेरी मौसी शूर्पणखाका भाई था, जिसे तेरे भाई रामने एक स्त्रीके लिये मार डाला॥ १४॥

'इतना ही नहीं, उन्होंने रावणके कुलका संहार कर दिया, तथापि मैंने वह सब कुछ सह लिया। तुमलोगोंके द्वारा की गयी अवहेलनाको सामने रखकर—प्रत्यक्ष देखकर भी तुम सबके प्रति मैंने विशेषरूपसे क्षमाभावका परिचय दिया॥ १५॥

'जो नराधम भूतकालमें मेरा सामना करनेके लिये आये थे, उन सबको मैंने तिनकोंके समान तुच्छ समझकर तिरस्कृत किया और मार डाला। जो भविष्यमें आयेंगे, उनकी भी यही दशा होगी और वर्तमानकालमें आनेवाले तुझ-जैसे नराधम भी मेरे हाथसे मरे हुए ही हैं॥ १६॥

'दुर्मते! तुझे युद्धकी इच्छा है न? मैं अभी तुझे युद्धका अवसर दूँगा। तू दो घड़ी ठहर जा। तबतक मैं भी अपना अस्त्र ले आता हूँ॥ १७॥

'तेरे वधके लिये जैसे अस्त्रका होना मुझे अभीष्ट है, वैसे अस्त्रको पहले सुसज्जित कर लूँ; फिर युद्धका अवसर दूँगा।' यह सुनकर शत्रुघ्न तुरंत बोल उठे—'अब तू मेरे हाथसे जीवित बचकर कहाँ जायगा?॥ १८॥

'किसी भी बुद्धिमान् पुरुषको अपने सामने आये हुए शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये। जो अपनी घबरायी हुई बुद्धिके कारण शत्रुको निकल जानेका अवसर दे देता है, वह मन्दबुद्धि पुरुष कायरके समान मारा जाता है॥ १९॥

'अतः राक्षस! अब तू इस जीव-जगत्‌को अच्छी तरह देख ले। मैं नाना प्रकारके तीखे बाणोंद्वारा तुझ पापीको अभी यमराजके घरकी ओर भेजता हूँ; क्योंकि तू तीनों लोकोंका तथा श्रीरघुनाथजीका भी शत्रु है'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न और लवणासुरका युद्ध तथा लवणका वध

महामना शत्रुघ्नका वह भाषण सुनकर लवणासुरको बड़ा क्रोध हुआ और बोला—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ १॥

वह हाथ-पर-हाथ रगड़ता और दाँत कटकटाता हुआ रघुकुलके सिंह शत्रुघ्नको बारंबार ललकारने लगा॥ २॥

भयंकर दिखायी देनेवाले लवणको इस प्रकार बोलते देख देवशत्रुओंका नाश करनेवाले शत्रुघ्नने यह बात कही—॥ ३॥

'राक्षस! जब तूने दूसरे वीरोंको पराजित किया था, उस समय शत्रुघ्नका जन्म नहीं हुआ था। अतः आज मेरे इन बाणोंकी चोट खाकर तू सीधे यमलोककी राह ले॥ ४॥

'पापात्मन्! जैसे देवताओंने रावणको धराशायी हुआ देखा था, उसी तरह विद्वान् ब्राह्मण और ऋषि आज रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे गये तुझ दुराचारी राक्षसको भी देखें॥ ५॥

'निशाचर! आज मेरे बाणोंसे दग्ध होकर जब तू धरतीपर गिर जायगा, उस समय इस नगर और जनपदमें भी सबका कल्याण ही होगा॥ ६॥

'आज मेरी भुजाओंसे छूटा हुआ वज्रके समान मुखवाला बाण उसी तरह तेरी छातीमें धँस जायगा, जैसे सूर्यकी किरण कमलकोशमें प्रविष्ट हो जाती है'॥ ७॥

शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर लवण क्रोधसे मूर्च्छित-सा हो गया और एक महान् वृक्ष लेकर उसने शत्रुघ्नकी छातीपर दे मारा; परंतु शत्रुघ्नने उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये॥ ८॥

वह वार खाली गया देख उस बलवान् राक्षसने पुनः बहुत-से वृक्ष ले-लेकर शत्रुघ्नपर चलाये॥ ९॥

परंतु शत्रुघ्न भी बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने अपने ऊपर आते हुए उन बहुसंख्यक वृक्षोंमेंसे प्रत्येकको झुकी हुई गाँठवाले तीन-तीन या चार-चार बाण मारकर काट डाला॥ १०॥

फिर पराक्रमी शत्रुघ्नने उस राक्षसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, किंतु वह निशाचर इससे व्यथित या विचलित नहीं हुआ॥ ११॥

तब बल-विक्रमशाली लवणने हँसकर एक वृक्ष उठाया और उसे शूरवीर शत्रुघ्नके सिरपर दे मारा। उसकी चोट खाकर शत्रुघ्नके सारे अङ्ग शिथिल हो गये और उन्हें मूर्च्छा आ गयी॥ १२॥

वीर शत्रुघ्नके गिरते ही ऋषियों, देवसमूहों, गन्धर्वों और अप्सराओंमें महान् हाहाकार मच गया॥ १३॥

शत्रुघ्नजीको भूमिपर गिरा देख लवणने समझा ये मर गये, इसलिये अवसर मिलनेपर भी वह राक्षस अपने घरमें नहीं गया और न शूल ही ले आया। उन्हें धराशायी हुआ देख सर्वथा मरा हुआ समझकर ही वह अपनी उस भोजनसामग्रीको एकत्र करने लगा॥ १४-१५॥

दो ही घड़ीमें शत्रुघ्नको होश आ गया। वे अस्त्र-शस्त्र लेकर उठे और फिर नगरद्वारपर खड़े हो गये। उस समय ऋषियोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १६॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने उस दिव्य, अमोघ और उत्तम बाणको हाथमें लिया, जो अपने घोर तेजसे प्रज्वलित हो दसों दिशाओंमें व्याप्त-सा हो रहा था॥ १७॥

उसका मुख और वेग वज्रके समान था। वह मेरु और मन्दराचलके समान भारी था। उसकी गाँठें झुकी हुई थीं तथा वह किसी भी युद्धमें पराजित होनेवाला नहीं था॥ १८॥

उसका सारा अङ्ग रक्तरूपी चन्दनसे चर्चित था। पंख बड़े सुन्दर थे। वह बाण दानवराजरूपी पर्वतराजों एवं असुरोंके लिये बड़ा भयंकर था॥ १९॥

वह प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रज्वलित हुई कालाग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था। उसे देखकर समस्त प्राणी त्रस्त हो गये॥ २०॥

देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि और अप्सराओंके साथ सारा जगत् अस्वस्थ हो ब्रह्माजीके पास पहुँचा॥ २१॥

जगत्‌के उन सभी प्राणियोंने वर देनेवाले देवदेवेश्वर प्रपितामह ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! समस्त लोकोंके संहारकी सम्भावनासे देवताओंपर भी भय

और मोह छा गया है॥ २२॥

'देव! कहीं लोकोंका संहार तो नहीं होगा अथवा प्रलयकाल तो नहीं आ पहुँचा है? प्रपितामह! संसारकी ऐसी अवस्था न तो पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही आयी थी'॥ २३॥

उनकी यह बात सुनकर देवताओंका भय दूर करनेवाले लोकपितामह ब्रह्माने प्रस्तुत भयका कारण बताते हुए कहा॥ २४॥

वे मधुर वाणीमें बोले—'सम्पूर्ण देवताओ! मेरी बात सुनो। आज शत्रुघ्नने युद्धस्थलमें लवणासुरका वध करनेके लिये जो बाण हाथमें लिया है, उसीके तेजसे हम सब लोग मोहित हो रहे हैं। ये श्रेष्ठ देवता भी उसीसे घबराये हुए हैं॥ २५½॥

'पुत्रो! यह तेजोमय सनातन बाण आदिपुरुष लोककर्ता भगवान् विष्णुका है। जिससे तुम्हें भय प्राप्त हुआ है॥ २६½॥

'परमात्मा श्रीहरिने मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंका वध करनेके लिये इस महान् बाणकी सृष्टि की थी॥ २७½॥

'एकमात्र भगवान् विष्णु ही इस तेजोमय बाणको जानते हैं; क्योंकि यह बाण साक्षात् परमात्मा विष्णुकी ही प्राचीन मूर्ति है॥ २८½॥

'अब तुमलोग यहाँसे जाओ और श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई महामनस्वी वीर शत्रुघ्नके हाथसे राक्षसप्रवर लवणासुरका वध होता देखो'॥ २९½॥

देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर देवतालोग उस स्थानपर आये, जहाँ शत्रुघ्नजी और लवणासुर दोनोंका युद्ध हो रहा था॥ ३०½॥

शत्रुघ्नजीके द्वारा हाथमें लिये गये उस दिव्य बाणको सभी प्राणियोंने देखा। वह प्रलयकालके अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था॥ ३१½॥

आकाशको देवताओंसे भरा हुआ देख रघुकुलनन्दन शत्रुघ्नने बड़े जोरसे सिंहनाद करके लवणासुरकी ओर देखा॥ ३२½॥

महात्मा शत्रुघ्नके पुनः ललकारनेपर लवणासुर क्रोधसे भर गया और फिर युद्धके लिये उनके सामने आया॥ ३३½॥

तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नजीने अपने धनुषको कानतक खींचकर उस महाबाणको लवणासुरके विशाल वक्षःस्थलपर चलाया॥ ३४½॥

वह देवपूजित दिव्य बाण तुरंत ही उस राक्षसके हृदयको विदीर्ण करके रसातलमें घुस गया तथा रसातलमें जाकर वह फिर तत्काल ही इक्ष्वाकुकुलनन्दन शत्रुघ्नजीके पास आ गया॥ ३५-३६॥

शत्रुघ्नजीके बाणसे विदीर्ण होकर निशाचर लवण वज्रके मारे हुए पर्वतके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३७॥

लवणासुरके मारे जाते ही वह दिव्य एवं महान् शूल सब देवताओंके देखते-देखते भगवान् रुद्रके पास आ गया॥ ३८॥

इस प्रकार उत्तम धनुष-बाण धारण करनेवाले रघुकुलके प्रमुख वीर शत्रुघ्न एक ही बाणके प्रहारसे तीनों लोकोंके भयको नष्ट करके उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे त्रिभुवनका अन्धकार दूर करके सहस्र किरणधारी सूर्यदेव प्रकाशित हो उठते हैं॥ ३९॥

'सौभाग्यकी बात है कि दशरथनन्दन शत्रुघ्नने भय छोड़कर विजय प्राप्त की और सर्पके समान लवणासुर मर गया' ऐसा कहकर देवता, ऋषि, नाग और समस्त अप्सराएँ उस समय शत्रुघ्नजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

देवताओंसे वरदान पा शत्रुघ्नका मधुरापुरीको बसाकर बारहवें वर्षमें वहाँसे श्रीरामके पास जानेका विचार करना

लवणासुरके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता आकर शत्रुओंको संताप देनेवाले शत्रुघ्नसे अत्यन्त मधुर वाणीमें बोले—॥ १॥

'वत्स! सौभाग्यकी बात है कि तुम्हें विजय प्राप्त हुई और लवणासुर मारा गया। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुषसिंह! तुम वर माँगो॥ २॥

'महाबाहो! हम सब लोग तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। हम तुम्हारी विजय चाहते थे। हमारा दर्शन अमोघ है (अतएव तुम कोई वर माँगो)'॥ ३॥

देवताओंका यह वचन सुनकर मनको वशमें

रखनेवाले शूरवीर महाबाहु शत्रुघ्न मस्तकपर अञ्जलि बाँध इस प्रकार बोले—॥ ४॥

'देवताओ! यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही मनोहर राजधानीके रूपमें बस जाय। यही मेरे लिये श्रेष्ठ वर है'॥ ५॥

तब देवताओंने उन रघुकुलनन्दन शत्रुघ्नसे प्रसन्न होकर कहा—'बहुत अच्छा ऐसा ही हो। यह रमणीय पुरी नि:संदेह शूर-वीरोंकी सेनासे सम्पन्न हो जायगी'॥ ६॥

ऐसा कहकर महामनस्वी देवता उस समय स्वर्गको चले गये। महातेजस्वी शत्रुघ्नने भी गङ्गातटसे अपनी उस सेनाको बुलवाया॥ ७॥

शत्रुघ्नजीका आदेश पाकर वह सेना शीघ्र चली आयी। शत्रुघ्नने श्रावणमाससे उस पुरीको बसाना आरम्भ किया॥ ८॥

तबसे बारहवें वर्षतक वह पुरी तथा वह शूरसेन जनपद पूर्णरूपसे बस गया। वहाँ कहीं किसीसे भय नहीं था। वह देश दिव्य सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न था॥ ९॥

वहाँके खेत खेतीसे हरे-भरे हो गये। इन्द्र वहाँ समयपर वर्षा करने लगे। शत्रुघ्नजीके बाहुबलसे सुरक्षित मधुपुरी नीरोग तथा वीर पुरुषोंसे भरी थी॥ १०॥

वह पुरी यमुनाके तटपर अर्धचन्द्राकार बसी थी और अनेकानेक सुन्दर गृहों, चौराहों, बाजारों तथा गलियोंसे सुशोभित होती थी। उसमें चारों वर्णोंके लोग निवास करते थे तथा नाना प्रकारके वाणिज्य-व्यवसाय उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ११॥

पूर्वकालमें लवणासुरने जिन विशाल गृहोंका निर्माण कराया था, उनमें सफेदी कराकर उन्हें नाना प्रकारके चित्रोंसे सुसज्जित करके शत्रुघ्नजी उनकी शोभा बढ़ाने लगे॥ १२॥

अनेकानेक उद्यान और विहारस्थल सब ओरसे उस पुरीको सुशोभित करते थे। देवताओं और मनुष्योंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य शोभनीय पदार्थ भी उस नगरीकी शोभावृद्धि करते थे॥ १३॥

नाना प्रकारकी क्रय-विक्रय-योग्य वस्तुओंसे सुशोभित वह दिव्य पुरी अनेकानेक देशोंसे आये हुए वणिग्जनोंसे शोभा पा रही थी॥ १४॥

उसे पूर्णत: समृद्धिशालिनी देख सफलमनोरथ हुए भरतानुज शत्रुघ्न अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े हर्षका अनुभव करने लगे॥ १५॥

मधुरापुरीको बसाकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अयोध्यासे आये बारहवाँ वर्ष हो गया, अब मुझे वहाँ चलकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहिये॥ १६॥

इस प्रकार नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई उस देवपुरीके समान मनोहर मधुरापुरीको बसाकर रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले राजा शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शनका विचार किया॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्नका थोड़े-से सैनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें रामचरितका गान सुनकर उन सबका आश्चर्यचकित होना

तदनन्तर बारहवें वर्षमें थोड़े-से सेवकों और सैनिकोंको साथ ले शत्रुघ्नने श्रीरामपालित अयोध्याको जानेका विचार किया॥ १॥

अत: अपने मुख्य-मुख्य मन्त्रियों तथा सेनापतियोंको लौटाकर—पुरीकी रक्षाके लिये वहीं छोड़कर वे अच्छे-अच्छे घोड़ेवाले सौ रथ साथ ले अयोध्याकी ओर चल पड़े॥ २॥

महायशस्वी रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न यात्रा करनेके पश्चात् मार्गमें सात-आठ परिगणित स्थानोंपर पड़ाव डालते हुए वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे और रातमें वहीं ठहरे॥ ३॥

उन पुरुषप्रवर रघुवीरने वाल्मीकिजीके चरणोंमें प्रणाम करके उनके हाथसे पाद्य और अर्घ्य आदि आतिथ्य-सत्कारकी सामग्री ग्रहण की॥ ४॥

वहाँ महर्षि वाल्मीकिने महात्मा शत्रुघ्नको सुनानेके लिये भाँति-भाँतिकी सहस्रों सुमधुर कथाएँ कहीं॥ ५॥

फिर वे लवणवधके विषयमें बोले—'लवणासुरको मारकर तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म किया है॥ ६॥

'सौम्य! महाबाहो! लवणासुरके साथ युद्ध करके बहुत-से महाबली भूपाल सेना और सवारियोंसहित मारे गये हैं॥ ७॥

'पुरुषश्रेष्ठ! वही पापी लवणासुर तुम्हारे द्वारा अनायास ही मार डाला गया। उसके कारण जगत्‌में जो भय छा गया था, वह तुम्हारे तेजसे शान्त हो गया॥ ८॥

'रावणका घोर वध महान् प्रयत्नसे किया गया था; परंतु यह महान् कर्म तुमने बिना यत्नके ही सिद्ध कर दिया॥ ९॥

'लवणासुरके मारे जानेसे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुमने समस्त प्राणियों और सारे जगत्‌का प्रिय कार्य किया है॥ १०॥

'नरश्रेष्ठ! मैं इन्द्रकी सभामें बैठा था। जब वह विमानाकार सभा युद्ध देखनेके लिये आयी, तब वहीं बैठे-बैठे मैंने भी तुम्हारे और लवणके युद्धको भलीभाँति देखा था॥ ११॥

'शत्रुघ्न! मेरे हृदयमें भी तुम्हारे लिये बड़ा प्रेम है। अतः मैं तुम्हारा मस्तक सूँघूँगा। यही स्नेहकी पराकाष्ठा है'॥ १२॥

ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् वाल्मीकिने शत्रुघ्नका मस्तक सूँघा और उनका तथा उनके साथियोंका आतिथ्य सत्कार किया॥ १३॥

नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नने भोजन किया और उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका क्रमशः वर्णन सुना, जो गीतकी मधुरताके कारण बड़ा ही प्रिय एवं उत्तम जान पड़ता था॥ १४॥

उस वेलामें उन्हें जो रामचरित सुननेको मिला, वह पहले ही काव्यबद्ध कर लिया गया था। वह काव्यगान वीणाकी लयके साथ हो रहा था। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंमें मन्द्र, मध्यम और तार स्वरके भेदसे उच्चारित हो रहा था। संस्कृत भाषामें निर्मित होकर व्याकरण, छन्द, काव्य और संगीत-शास्त्रके लक्षणोंसे सम्पन्न था और गानोचित तालके साथ गाया गया था॥ १५½॥

उस काव्यके सभी अक्षर एवं वाक्य सच्ची घटनाका प्रतिपादन करते थे और पहले जो वृत्तान्त घटित हो चुके थे, उनका यथार्थ परिचय दे रहे थे। वह अद्भुत काव्यगान सुनकर पुरुषसिंह शत्रुघ्न मूर्च्छित-से हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी॥ १६½॥

वे दो घड़ीतक अचेत-से होकर बारम्बार लम्बी साँस खींचते रहे। उस गानमें उन्होंने बीती हुई बातोंको वर्तमानकी भाँति सुना॥ १७½॥

राजा शत्रुघ्नके जो साथी थे, वे भी उस गीत-सम्पत्तिको सुनकर दीन और नतमस्तक हो बोले—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है'॥ १८½॥

शत्रुघ्नके जो सैनिक वहाँ मौजूद थे, वे परस्पर कहने लगे—'यह क्या बात है? हमलोग कहाँ हैं? यह कोई स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। जिन बातोंको हम पहले देख चुके हैं, उन्हींको इस आश्रमपर ज्यों-की-त्यों सुन रहे हैं॥ १९-२०॥

'क्या इस उत्तम गीतबन्धको हमलोग स्वप्नमें सुन रहे हैं?' फिर अत्यन्त विस्मयमें पड़कर वे शत्रुघ्नसे बोले—॥ २१॥

'नरश्रेष्ठ! आप इस विषयमें मुनिवर वाल्मीकिजीसे भलीभाँति पूछें।' शत्रुघ्नने कौतूहलमें भरे हुए उन सब सैनिकोंसे कहा—'मुनिके इस आश्रममें ऐसी अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ होती रहती हैं। उनके विषयमें उनसे कुछ पूछताछ करना हमारे लिये उचित नहीं है॥ २२-२३॥

'कौतूहलवश महामुनि वाल्मीकिसे इन बातोंके विषयमें जानना या पूछना उचित न होगा।' अपने सैनिकोंसे ऐसा कहकर रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न महर्षिको प्रणाम करके अपने खेमेमें चले गये॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

वाल्मीकिजीसे विदा ले शत्रुघ्नजीका अयोध्यामें जाकर श्रीराम आदिसे मिलना और सात दिनोंतक वहाँ रहकर पुनः मधुपुरीको प्रस्थान करना

सोते समय पुरुषसिंह शत्रुघ्न उस उत्तम श्रीरामचरित्रसम्बन्धी गानके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचते रहे। इसलिये रातमें उन्हें बहुत देरतक नींद नहीं आयी॥ १॥

वीणाके लयके साथ उस रामचरित-गानका सुमधुर शब्द सुनकर महात्मा शत्रुघ्नकी शेष रात बहुत जल्दी बीत गयी॥ २॥

जब वह रात बीती और प्रातःकाल आया, तब पूर्वाह्णकालोचित नित्यकर्म करके शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर मुनिवर वाल्मीकिसे कहा—॥ ३॥

'भगवन्! अब मैं रघुकुलनन्दन श्रीरघुनाथजीका दर्शन करना चाहता हूँ। अत: यदि आपकी आज्ञा हो तो कठोर व्रतका पालन करनेवाले इन साथियोंके साथ मेरी अयोध्या जानेकी इच्छा है'॥ ४॥

इस तरहकी बात कहते हुए रघुकुलभूषण शत्रुसूदन शत्रुघ्नको वाल्मीकिजीने हृदयसे लगा लिया और जानेकी आज्ञा दे दी॥ ५॥

शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, इसलिये मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिको प्रणाम करके वे एक सुन्दर दीप्तिमान् रथपर आरूढ़ हो तुरंत अयोध्याकी ओर चल दिये॥ ६॥

इक्ष्वाकुकुलको आनन्दित करनेवाले महाबाहु श्रीमान् शत्रुघ्न रमणीय अयोध्यापुरीमें प्रवेश करके सीधे उस राजमहलमें गये, जहाँ महातेजस्वी श्रीराम विराजमान थे॥ ७॥

जैसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्र देवताओंके बीचमें बैठते हैं, उसी प्रकार पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले भगवान् श्रीराम मन्त्रियोंके मध्यभागमें विराजमान थे। शत्रुघ्नने अपने तेजसे प्रज्वलित होनेवाले सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीरामको देखा, प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ ८-९॥

'महाराज! आपने मुझे जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह सब मैं कर आया हूँ। पापी लवण मारा गया और उसकी पुरी भी बस गयी॥ १०॥

'रघुनन्दन! आपका दर्शन किये बिना ये बारह वर्ष तो किसी प्रकार बीत गये; किंतु नरेश्वर! अब और अधिक कालतक आपसे दूर रहनेका मुझमें साहस नहीं है॥ ११॥

'अमित पराक्रमी काकुत्स्थ! जैसे छोटा बच्चा अपनी माँसे अलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं चिरकालतक आपसे दूर नहीं रह सकूँगा। इसलिये आप मुझपर कृपा करें'॥ १२॥

ऐसी बातें कहते हुए शत्रुघ्नको हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'शूरवीर! विषाद न करो। इस तरह कातर होना क्षत्रियोचित चेष्टा नहीं है॥ १३॥

'रघुकुलभूषण! राजालोग परदेशमें रहनेपर भी दु:खी नहीं होते हैं। रघुवीर! राजाको क्षत्रिय-धर्मके अनुसार प्रजाका भलीभाँति पालन करना चाहिये॥ १४॥

'नरश्रेष्ठ वीर! समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये अयोध्या आया करो और फिर अपनी पुरीको लौट जाया करो॥ १५॥

'नि:संदेह तुम मुझे भी प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हो। परंतु राज्यका पालन करना भी तो आवश्यक कर्तव्य है॥ १६॥

'अत: काकुत्स्थ! अभी सात दिन तो तुम मेरे साथ रहो। उसके बाद सेवक, सेना और सवारियोंके साथ मधुरापुरीको चले जाना'॥ १७॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात धर्मयुक्त होनेके साथ ही मनके अनुकूल थी। इसे सुनकर शत्रुघ्नने श्रीरामवियोगके भयसे दीन वाणीद्वारा कहा—'जैसी प्रभुकी आज्ञा'॥ १८॥

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे सात दिन अयोध्यामें ठहरकर महाधनुर्धर ककुत्स्थकुलभूषण शत्रुघ्न वहाँसे जानेको तैयार हो गये॥ १९॥

सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीराम, भरत और लक्ष्मणसे विदा ले शत्रुघ्न एक विशाल रथपर आरूढ़ हुए॥ २०॥

महात्मा लक्ष्मण और भरत पैदल ही उन्हें पहुँचानेके लिये बहुत दूरतक पीछे-पीछे गये। तत्पश्चात् शत्रुघ्न रथके द्वारा शीघ्र ही अपनी राजधानीकी ओर चल दिये॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बालकको राजद्वारपर लाना तथा राजाको ही दोषी बताकर विलाप करना

शत्रुघ्नको मथुरा भेजकर भगवान् श्रीराम भरत और लक्ष्मण दोनों भाइयोंके साथ धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते हुए बड़े सुख और आनन्दसे रहने लगे॥ १॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद उस जनपदके भीतर रहनेवाला एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए बालकका शव लेकर राजद्वारपर आया॥ २॥

वह स्नेह और दु:खसे आकुल हो नाना प्रकारकी बातें कहता हुआ रो रहा था और बार-बार 'बेटा! बेटा!' की पुकार मचाता हुआ इस प्रकार विलाप करता था—॥

'हाय! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके कारण आज इन आँखोंसे मैं अपने इकलौते बेटेकी मृत्यु देख रहा हूँ॥ ४॥

'बेटा! अभी तो तू बालक था। जवान भी नहीं होने पाया था। केवल पाँच हजार दिन* (तेरह वर्ष दस महीने बीस दिन)-की तेरी अवस्था थी। तो भी तू मुझे दुःख देनेके लिये असमयमें ही कालके गालमें चला गया॥ ५॥

'वत्स! तेरे शोकसे मैं और तेरी माता—दोनों थोड़े ही दिनोंमें मर जायेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

'मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मैंने झूठ बात मुँहसे निकाली हो। किसीकी हिंसा की हो अथवा समस्त प्राणियोंमेंसे किसीको भी कभी कष्ट पहुँचाया हो॥ ७॥

'फिर आज किस पापसे मेरा यह बेटा पितृकर्म किये बिना इस बाल्यावस्थामें ही यमराजके घर चला गया॥ ८॥

'श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें तो अकाल-मृत्युकी ऐसी भयंकर घटना न पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही आयी थी॥ ९॥

'निस्संदेह श्रीरामका ही कोई महान् दुष्कर्म है, जिससे इनके राज्यमें रहनेवाले बालकोंकी मृत्यु होने लगी॥ १०॥

'दूसरे राज्यमें रहनेवाले बालकोंको मृत्युसे भय नहीं है; अतः राजन्! मृत्युके वशमें पड़े हुए इस बालकको जीवित कर दो, नहीं तो मैं अपनी स्त्रीके साथ इस राजद्वारपर अनाथकी भाँति प्राण दे दूँगा। श्रीराम! फिर ब्रह्महत्याका पाप लेकर तुम सुखी होना॥ ११-१२॥

'महाबली नरेश! हम तुम्हारे राज्यमें बड़े सुखसे रहे हैं, इसलिये तुम अपने भाइयोंके साथ दीर्घजीवी होओगे॥ १३॥

'श्रीराम! तुम्हारे अधीन रहनेवाले हमलोगोंपर यह बालक-मरणरूपी दुःख सहसा आ पड़ा है, जिससे हम स्वयं भी कालके अधीन हो गये हैं; अतः तुम्हारे इस राज्यमें हमें थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिला॥ १४॥

'महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंका यह राज्य अब अनाथ हो गया है। श्रीरामको स्वामीके रूपमें पाकर यहाँ बालकोंकी मृत्यु अटल है॥ १५॥

'राजाके दोषसे जब प्रजाका विधिवत् पालन नहीं होता, तभी प्रजावर्गको ऐसी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। राजाके दुराचारी होनेपर ही प्रजाकी अकाल-मृत्यु होती है॥ १६॥

'अथवा नगरों तथा जनपदोंमें रहनेवाले लोग जब अनुचित कर्म—पापाचार करते हैं और वहाँ रक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं होती, उन्हें अनुचित कर्मसे रोकनेके लिये कोई उपाय नहीं किया जाता, तभी देशकी प्रजामें अकाल-मृत्युका भय प्राप्त होता है॥ १७॥

'अतः यह स्पष्ट है कि नगर या राज्यमें कहीं राजासे ही कोई अपराध हुआ होगा; तभी इस तरह बालककी मृत्यु हुई है, इसमें कोई संशय नहीं है'॥

इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे उसने बारम्बार राजाके सामने अपना दुःख निवेदन किया और बारम्बार शोकसे संतप्त होकर वह अपने मरे हुए पुत्रको उठा-उठाकर हृदयसे लगाता रहा॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

नारदजीका श्रीरामसे एक तपस्वी शूद्रके अधर्माचरणको ब्राह्मण-बालककी मृत्युमें कारण बताना

महाराज श्रीरामने उस ब्राह्मणका इस तरह दुःख और शोकसे भरा हुआ वह सारा करुण-क्रन्दन सुना॥ १॥

इससे वे दुःखसे संतप्त हो उठे। उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाया तथा वसिष्ठ और वामदेवको एवं महाजनोंसहित अपने भाइयोंको भी आमन्त्रित किया॥ २॥

तदनन्तर वसिष्ठजीके साथ आठ ब्राह्मणोंने राजसभामें प्रवेश किया और उन देवतुल्य नरेशसे कहा—'महाराज! आपकी जय हो'॥ ३॥

उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं—मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद॥ ४॥

इन सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उत्तम आसनोंपर बैठाया गया। वहाँ पधारे हुए उन महर्षियोंको श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और वे स्वयं

* मूलमें जो '**पञ्चवर्षसहस्रकम्**' पद आया है, इसमें वर्ष शब्दका अर्थ दिन समझना चाहिये। जैसे '**सहस्रसंवत्सरं सत्रमुपासीत्**' इत्यादि विधि-वाक्योंमें 'संवत्सर' शब्द दिवसका वाचक माना गया है।

भी अपने स्थानपर बैठ गये॥ ५॥

फिर मन्त्री और महाजनोंके साथ यथायोग्य शिष्टाचारका उन्होंने निर्वाह किया। उद्दीप्त तेजवाले वे सब लोग जब यथास्थान बैठ गये, तब श्रीरघुनाथजीने उनसे सब बातें बतायीं और कहा—'यह ब्राह्मण राजद्वारपर धरना दिये पड़ा है'॥ ६½ ॥

ब्राह्मणके दुःखसे दुःखी हुए उन महाराजका यह वचन सुनकर अन्य सब ऋषियोंके समीप स्वयं नारदजीने यह शुभ बात कही— ॥ ७½ ॥

'राजन्! जिस कारणसे इस बालककी अकाल-मृत्यु हुई है, वह बताता हूँ, सुनिये। रघुकुलनन्दन नरेश! मेरी बात सुनकर जो उचित कर्तव्य हो उसका पालन कीजिये॥ ८½ ॥

'राजन्! पहले सत्ययुगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ करते थे। महाराज! उस समय ब्राह्मणेतर मनुष्य किसी तरह तपस्यामें प्रवृत्त नहीं होता था॥ ९½ ॥

'वह युग तपस्याके तेजसे प्रकाशित होता था। उसमें ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी। उस समय अज्ञानका वातावरण नहीं था। इसलिये उस युगके सभी मनुष्य अकाल-मृत्युसे रहित तथा त्रिकालदर्शी होते थे॥ १०½ ॥

'सत्ययुगके बाद त्रेतायुग आया। इसमें सुदृढ़ शरीरवाले क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई और वे क्षत्रिय भी उसी प्रकारकी तपस्या करने लगे॥ ११½ ॥

'परंतु त्रेतायुगमें जो महात्मा पुरुष हैं, उनकी अपेक्षा सत्ययुगके लोग तप और पराक्रमकी दृष्टिसे बढ़े-चढ़े थे॥ १२½ ॥

'इस प्रकार दोनों युगोंमेंसे पूर्व युगमें जहाँ ब्राह्मण उत्कृष्ट और क्षत्रिय अपकृष्ट थे, वहाँ त्रेतायुगमें वे समानशक्तिशाली हो गये॥ १३½ ॥

'तब मनु आदि सभी धर्मप्रवर्तकोंने ब्राह्मण और क्षत्रियमें एकको अपेक्षा दूसरेमें कोई विशेषता या न्यूनाधिकता न देखकर सर्वलोकसम्मत चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाकी स्थापना की॥ १४½ ॥

'त्रेतायुग वर्णाश्रम-धर्म-प्रधान है। वह धर्मके प्रकाशसे प्रकाशित होता है। वह धर्ममें बाधा डालनेवाले पापसे रहित है। इस युगमें अधर्मने भूतलपर अपना एक पैर रखा है। अधर्मसे युक्त होनेके कारण यहाँ लोगोंका तेज धीरे-धीरे घटता जायगा॥ १५-१६ ॥

'सत्ययुगमें जीविकाका साधनभूत कृषि आदि रजोगुणमूलक कर्म 'अनृत' कहलाता था और मलके समान अत्यन्त त्याज्य था। वह अनृत ही अधर्मका एक पाद होकर त्रेतामें इस भूतलपर स्थित हुआ॥ १७॥

'इस प्रकार अनृत (असत्य) रूपी एक पैरको भूतलपर रखकर अधर्मने त्रेतामें सत्ययुगकी अपेक्षा आयुको सीमित कर दिया॥ १८॥

'अतः पृथ्वीपर अधर्मके इस अनृतरूपी चरणके पड़नेपर सत्यधर्मपरायण पुरुष उस अनृतके कुपरिणामसे बचनेके लिये शुभकर्मोंका ही आचरण करते हैं॥ १९॥

'तथापि त्रेतायुगमें जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, वे ही सब तपस्या करते हैं। अन्य वर्णके लोग सेवा-कार्य किया करते हैं॥ २०॥

'उन चारों वर्णोंमेंसे वैश्य और शूद्रको सेवारूपी उत्कृष्ट धर्म स्वधर्मके रूपमें प्राप्त हुआ (वैश्य कृषि आदिके द्वारा ब्राह्मण आदिकी सेवा करने लगे और) शूद्र सब वर्णोंकी (तीनों वर्णोंके लोगोंकी) विशेषरूपसे पूजा—आदर-सत्कार करने लगे॥ २१॥

'नृपश्रेष्ठ! इसी बीचमें जब त्रेतायुगका अवसान होता है और वैश्यों तथा शूद्रोंको अधर्मके एक-पादरूप अनृतकी प्राप्ति होने लगती है, तब पूर्व वर्णवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय फिर ह्रासको प्राप्त होने लगते हैं (क्योंकि उन दोनोंको अन्तिम दो वर्णोंका संसर्गजनित दोष प्राप्त हो जाता है)॥ २२॥

'तदनन्तर अधर्म अपने दूसरे चरणको पृथ्वीपर उतारता है। द्वितीय पैर उतारनेके कारण ही उस युगकी 'द्वापर' संज्ञा हो गयी है॥ २३॥

'पुरुषोत्तम! उस द्वापर नामक युगमें जो अधर्मके दो चरणोंका आश्रय है—अधर्म और अनृत दोनोंकी वृद्धि होने लगती है॥ २४॥

'इस द्वापरयुगमें तपस्यारूप कर्म वैश्योंको भी प्राप्त होता है। इस तरह तीन युगोंमें क्रमशः तीन वर्णोंको तपस्याका अधिकार प्राप्त होता है॥ २५॥

'तीन युगोंमें तीन वर्णोंका ही आश्रय लेकर तपस्यारूपी धर्म प्रतिष्ठित होता है; किंतु नरश्रेष्ठ! शूद्रको इन तीनों ही युगोंसे तपरूपी धर्मका अधिकार नहीं प्राप्त होता है॥ २६॥

'नृपशिरोमणे! एक समय ऐसा आयगा, जब हीन वर्णका मनुष्य भी बड़ी भारी तपस्या करेगा। कलियुग आनेपर भविष्यमें होनेवाली शूद्रयोनिमें उत्पन्न मनुष्योंके समुदायमें तपश्चर्याकी प्रवृत्ति होगी॥ २७॥

'राजन्! द्वापरमें भी शूद्रका तपमें प्रवृत्त होना महान् अधर्म माना गया है। (फिर त्रेताके लिये तो कहना ही क्या है?) महाराज! निश्चय ही आपके

राज्यकी किसी सीमापर कोई खोटी बुद्धिवाला शूद्र महान् तपका आश्रय ले तपस्या कर रहा है, उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई है॥ २८ $\frac{1}{2}$ ॥

'जो कोई भी दुर्बुद्धि मानव जिस किसी भी राजाके राज्य अथवा नगरमें अधर्म या न करने योग्य काम करता है, उसका वह कार्य उस राज्यके अनैश्वर्य (दरिद्रता)-का कारण बन जाता है और वह राजा शीघ्र ही नरकमें पड़ता है, इसमें संशय नहीं॥ २९-३०॥

'इसी प्रकार जो राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है, वह प्रजाके वेदाध्ययन, तप और शुभ कर्मोंके पुण्यका छठा भाग प्राप्त कर लेता है॥ ३१॥

'पुरुषसिंह! जो प्रजाके शुभ कर्मोंके छठे भागका उपभोक्ता है, वह प्रजाकी रक्षा कैसे नहीं करेगा? अतः आप अपने राज्यमें खोज कीजिये और जहाँ कोई दुष्कर्म दिखायी दे, वहाँ उसके रोकनेका प्रयत्न कीजिये॥ ३२ $\frac{1}{2}$ ॥

'नरश्रेष्ठ! ऐसा करनेसे धर्मकी वृद्धि होगी और मनुष्योंकी आयु बढ़ेगी। साथ ही इस बालकको भी नया जीवन प्राप्त होगा'॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

श्रीरामका पुष्पकविमानद्वारा अपने राज्यकी सभी दिशाओंमें घूमकर दुष्कर्मका पता लगाना, किंतु सर्वत्र सत्कर्म ही देखकर दक्षिण दिशामें एक शूद्र तपस्वीके पास पहुँचना

नारदजीके ये अमृतमय वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अपार आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

'सौम्य! जाओ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले इन द्विजश्रेष्ठको सान्त्वना दो और इनके बालकका शरीर उत्तम गन्ध एवं सुगन्धसे युक्त तेलसे भरे हुए काठके कठौते या डोंगीमें डुबाकर रखवा दो और ऐसी व्यवस्था कर दो जिससे बालकका शरीर विकृत या नष्ट न होने पाये॥ २-३॥

'शुभ कर्म करनेवाले इस बालकका शरीर जिस प्रकार सुरक्षित रहे, नष्ट या खण्डित न हो, वैसा प्रबन्ध करो'॥ ४॥

शुभलक्षण लक्ष्मणको ऐसा संदेश दे महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने मन-ही-मन पुष्पकका चिन्तन किया और कहा—'आ जाओ'॥ ५॥

श्रीरामचन्द्रजीका अभिप्राय समझकर सुवर्णभूषित पुष्पक-विमान एक ही मुहूर्तमें उनके पास आ गया॥ ६॥

आकर नतमस्तक हो वह बोला—'नरेश्वर! यह रहा मैं। महाबाहो! मैं सदा आपके अधीन रहनेवाला किङ्कर हूँ और सेवाके लिये उपस्थित हुआ हूँ'॥ ७॥

पुष्पकविमानका यह मनोहर वचन सुनकर वे महाराज श्रीराम महर्षियोंको प्रणाम करके उस विमानपर आरूढ़ हुए॥

उन्होंने धनुष, बाणोंसे भरे हुए दो तरकस और एक चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली और लक्ष्मण तथा भरत—इन दोनों भाइयोंको नगरकी रक्षामें नियुक्त करके वहाँसे प्रस्थान किया॥ ९॥

श्रीमान् राम पहले तो इधर-उधर खोजते हुए पश्चिम दिशाकी ओर गये। फिर हिमालयसे घिरी हुई उत्तर दिशामें जा पहुँचे॥ १०॥

जब उन दोनों दिशाओंमें कहीं थोड़ा-सा भी दुष्कर्म नहीं दिखायी दिया, तब नरेश्वर श्रीरामने समूची पूर्व दिशाका भी निरीक्षण किया॥ ११॥

पुष्पकपर बैठे हुए महाबाहु राजा श्रीरामने वहाँ भी शुद्ध सदाचारका पालन होता देखा। वह दिशा भी दर्पणके समान निर्मल दिखायी दी॥ १२॥

तब राजर्षिनन्दन रघुनाथजी दक्षिण दिशाकी ओर गये। वहाँ शैवल पर्वतके उत्तर भागमें उन्हें एक महान् सरोवर दिखायी दिया॥ १३॥

उस सरोवरके तटपर एक तपस्वी बड़ी भारी तपस्या कर रहा था। वह नीचेको मुख किये लटका हुआ था। रघुकुलनन्दन श्रीरामने उसे देखा॥ १४॥

देखकर राजा श्रीरघुनाथजी उग्र तपस्या करते हुए उस तपस्वीके पास आये और बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तापस! तुम धन्य हो। तपस्यामें बढ़े-चढ़े सुदृढ़ पराक्रमी पुरुष! तुम किस जातिमें उत्पन्न हुए हो? मैं दशरथकुमार राम तुम्हारा परिचय जाननेके कौतूहलसे ये बातें पूछ रहा हूँ॥ १५-१६॥

'तुम्हें किस वस्तुको पानेकी इच्छा है? तपस्याद्वारा संतुष्ट हुए इष्टदेवतासे वरके रूपमें तुम क्या पाना चाहते हो—स्वर्ग या दूसरी कोई वस्तु! कौन-सा ऐसा पदार्थ है, जिसके लिये तुम ऐसी कठोर तपस्या करते हो, जो दूसरोंके लिये दुष्कर है?॥ १७॥

'तापस! जिस वस्तुके लिये तुम तपस्यामें लगे

हुए हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा यह भी बताओ कि तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय? तीसरे वर्णके वैश्य हो अथवा शूद्र! तुम्हारा भला हो। ठीक-ठीक बताना'॥ १८॥

महाराज श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर नीचे सिर किये लटके हुए उस तपस्वीने उन नृपश्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीरामको अपनी जातिका परिचय दिया और जिस उद्देश्यसे उसने तपस्याके लिये प्रयास किया था, वह भी बताया॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याश्रमपर महर्षि अगस्त्यके द्वारा उनका सत्कार और उनके लिये आभूषण-दान

क्लेशरहित कर्म करनेवाले भगवान् रामका यह वचन सुनकर नीचे मस्तक किये लटका हुआ वह तथाकथित तपस्वी इस प्रकार बोला—॥ १॥

'महायशस्वी श्रीराम! मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और सदेह स्वर्गलोकमें जाकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ। इसीलिये ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ॥ २॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! मैं झूठ नहीं बोलता। देवलोकपर विजय पानेकी इच्छासे ही तपस्यामें लगा हूँ। आप मुझे शूद्र समझिये। मेरा नाम शम्बूक है'॥ ३॥

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीरामचन्द्रजीने म्यानसे चमचमाती हुई तलवार खींच ली और उसीसे उसका सिर काट लिया॥ ४॥

उस शूद्रका वध होते ही इन्द्र और अग्निसहित सम्पूर्ण देवता 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर भगवान् श्रीरामकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे॥ ५॥

उस समय उनके ऊपर सब ओरसे वायुदेवताद्वारा बिखेरे गये दिव्य एवं परम सुगन्धित पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी॥ ६॥

वे सब देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर सत्यपराक्रमी श्रीरामसे बोले—'देव! महामते! आपने यह देवताओंका ही कार्य सम्पन्न किया है॥ ७॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलनन्दन सौम्य श्रीराम! आपके इस सत्कर्मसे ही यह शूद्र सशरीर स्वर्गलोकमें नहीं जा सका है। अत: आप जो वर चाहें माँग लें'॥ ८॥

देवताओंका यह वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने दोनों हाथ जोड़ सहस्रनेत्रधारी देवराज इन्द्रसे कहा—॥

'यदि देवता मुझपर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मणपुत्र जीवित हो जाय। यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वर है। देवतालोग मुझे यही वर दें॥ १०॥

'मेरे ही किसी अपराधसे ब्राह्मणका वह इकलौता बालक असमयमें ही कालके गालमें चला गया है॥

'मैंने ब्राह्मणके सामने यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं आपके पुत्रको जीवित कर दूँगा।' अत: आपलोगोंका कल्याण हो। आप उस ब्राह्मण-बालकको जीवित कर दें। मेरी बातको झूठी न करें'॥ १२॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर वे विबुधशिरोमणि देवता उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥ १३॥

'ककुत्स्थकुलभूषण! आप संतुष्ट हों। वह बालक आज फिर जीवित हो गया और अपने भाई-बन्धुओंसे जा मिला॥ १४॥

'काकुत्स्थ! आपने जिस मुहूर्तमें इस शूद्रको धराशायी किया है, उसी मुहूर्तमें वह बालक जी उठा है॥ १५॥

'नरश्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। भला हो। अब हम अगस्त्याश्रमको जा रहे हैं। रघुनन्दन! हम महर्षि अगस्त्यका दर्शन करना चाहते हैं। उन्हें जलशय्या लिये पूरे बारह वर्ष बीत चुके हैं। अब उन महातेजस्वी ब्रह्मर्षिकी वह जलशयन-सम्बन्धी व्रतकी दीक्षा समाप्त हुई है॥ १६-१७॥

'रघुनन्दन! इसीलिये हमलोग उन महर्षिका अभिनन्दन करनेके लिये जायँगे। आपका कल्याण हो। आप भी उन मुनिश्रेष्ठका दर्शन करनेके लिये चलिये'॥ १८॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर रघुकुलनन्दन श्रीराम देवताओंके सामने वहाँ जानेकी प्रतिज्ञा करके उस सुवर्णभूषित पुष्पकविमानपर चढ़े॥ १९॥

तत्पश्चात् देवता बहुसंख्यक विमानोंपर आरूढ़ हो वहाँसे प्रस्थित हुए। फिर श्रीराम भी उन्हींके साथ शीघ्रतापूर्वक कुम्भज ऋषिके तपोवनको चल दिये॥ २०॥

देवताओंको आया देख तपस्याकी निधि धर्मात्मा अगस्त्यने उन सबकी समानरूपसे पूजा की॥ २१॥

उनकी पूजा ग्रहण करके उन महामुनिका अभिनन्दन

कर वे सब देवता अनुचरोंसहित बड़े हर्षके साथ स्वर्गको चले गये॥ २२॥

उनके चले जानेपर श्रीरघुनाथजीने पुष्पकविमानसे उतरकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम किया॥ २३॥

अपने तेजसे प्रज्वलित-से होनेवाले महात्मा अगस्त्यका अभिवादन करके उनसे उत्तम आतिथ्य पाकर नरेश्वर श्रीराम आसनपर बैठे॥ २४॥

उस समय महातेजस्वी महातपस्वी कुम्भज मुनिने कहा—'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! आपका स्वागत है। आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है॥ २५॥

'महाराज श्रीराम! बहुत-से उत्तम गुणोंके कारण आपके लिये मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान है। आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सदा मेरे मनमें बसे रहते हैं॥ २६॥

'देवतालोग कहते थे कि 'आप अधर्मपरायण शूद्रका वध करके आ रहे हैं तथा धर्मके बलसे आपने ब्राह्मणके उस मरे हुए पुत्रको जीवित कर दिया है'॥ २७॥

'रघुनन्दन! आज रातको आप मेरे ही पास इस आश्रममें निवास कीजिये। कल सबेरे पुष्पकविमानद्वारा अपने नगरको जाइयेगा। आप साक्षात् श्रीमान् नारायण हैं। सारा जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है और आप ही समस्त देवताओंके स्वामी तथा सनातन पुरुष हैं॥ २८-२९॥

'सौम्य! यह विश्वकर्माका बनाया हुआ दिव्य आभूषण है, जो अपने दिव्य रूप और तेजसे प्रकाशित हो रहा है॥ ३०॥

'ककुत्स्थकुलभूषण रघुनन्दन! आप इसे लीजिये और मेरा प्रिय कीजिये; क्योंकि किसीकी दी हुई वस्तुका पुनः दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी जाती है॥ ३१॥

'इस आभूषणको धारण करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं तथा बड़े-से-बड़े फलोंकी प्राप्ति करानेकी शक्ति भी आपमें ही है। आप इन्द्र आदि देवताओंको भी तारनेमें समर्थ हैं, इसलिये नरेश्वर! यह भूषण भी मैं आपको ही दूँगा। आप इसे विधिपूर्वक ग्रहण करें'॥ ३२½॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और इक्ष्वाकुकुलके महारथी वीर श्रीरामने क्षत्रियधर्मका विचार करते हुए वहाँ महात्मा अगस्त्यजीसे कहा—'भगवन्! दान लेनेका काम तो केवल ब्राह्मणके लिये ही निन्दित नहीं है॥ ३३-३४॥

'विप्रवर! क्षत्रियोंके लिये तो प्रतिग्रह स्वीकार करना अत्यन्त निन्दित बताया गया है। फिर क्षत्रिय प्रतिग्रह—विशेषतः ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है? यह बतानेकी कृपा करें'॥ ३५½॥

श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर महर्षि अगस्त्यने उत्तर दिया—'रघुनन्दन! पहले ब्रह्मस्वरूप सत्ययुगमें सारी प्रजा बिना राजाके ही थी, आगे चलकर इन्द्र देवताओंके राजा बनाये गये॥ ३६-३७॥

'तब सारी प्रजाएँ देवदेवेश्वर ब्रह्माजीके पास राजाके लिये गयीं और बोलीं—'देव! आपने इन्द्रको देवताओंके राजाके पदपर स्थापित किया है। इसी तरह हमारे लिये भी किसी श्रेष्ठ पुरुषको राजा बना दीजिये, जिसकी पूजा करके हम पापरहित हो इस भूतलपर विचरें॥ ३८-३९॥

'हम बिना राजाके नहीं रहेंगी। यह हमारा उत्तम निश्चय है।' तब सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने इन्द्रसहित समस्त लोकपालोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग अपने तेजका एक-एक भाग दो।' तब समस्त लोकपालोंने अपने-अपने तेजका भाग अर्पित किया॥ ४०-४१॥

'उसी समय ब्रह्माजीको छींक आयी, जिससे क्षुप नामक राजा उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजीने उस राजाको लोकपालोंके दिये हुए तेजके उन सभी भागोंसे संयुक्त कर दिया॥ ४२॥

'तत्पश्चात् उन्होंने क्षुपको ही उन प्रजाजनोंके लिये उनके शासक नरेशके रूपमें समर्पित किया। क्षुपने वहाँ राजा होकर इन्द्रके दिये हुए तेजोभागसे पृथ्वीका शासन किया॥ ४३॥

'वरुणके तेजोभागसे वे भूपाल प्रजाके शरीरका पोषण करने लगे। कुबेरके तेजोभागसे उन्होंने उन्हें धनपतिकी आभा प्रदान की तथा उनमें जो यमराजका तेजोभाग था, उससे वे प्रजाजनोंको अपराध करनेपर दण्ड देते थे॥ ४४½॥

'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! आप भी राजा होनेके कारण सभी लोकपालोंके तेजसे सम्पन्न हैं। अतः प्रभो! इन्द्र-सम्बन्धी तेजोभागके द्वारा आप मेरे उद्धारके लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये। आपका भला हो'॥ ४५½॥

तब भगवान् श्रीराम उन महात्मा मुनिके दिये हुए उस सूर्यके समान दीप्तिमान्, दिव्य, विचित्र एवं उत्तम आभूषणको ग्रहण करके उसकी उपलब्धिके विषयमें पूछने लगे—॥ ४६-४७½॥

'महायशस्वी मुने! यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य आकारसे युक्त आभूषण आपको कैसे प्राप्त हुआ, अथवा

इसे कौन कहाँसे ले आया? ब्रह्मन्! मैं कौतूहलवश ये बातें आपसे पूछ रहा हूँ; क्योंकि आप बहुत-से आश्चर्योंकी उत्तम निधि हैं'॥ ४८-४९½ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर मुनिवर अगस्त्यने कहा—'श्रीराम! पूर्व चतुर्युगीके त्रेतायुगमें जैसा वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे बताता हूँ सुनिये'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

महर्षि अगस्त्यका एक स्वर्गीय पुरुषके शवभक्षणका प्रसंग सुनाना

(अगस्त्यजी कहते हैं—) श्रीराम! प्राचीनकालके त्रेतायुगकी बात है, एक बहुत ही विस्तृत वन था, जो चारों ओर सौ योजनतक फैला हुआ था; परंतु उस वनमें न तो कोई पशु था और न पक्षी ही॥ १॥

सौम्य! उस निर्जन वनमें उत्तम तपस्या करनेके लिये घूम-घूमकर उपयुक्त स्थानका पता लगानेके निमित्त मैं वहाँ गया॥ २॥

उस वनका स्वरूप कितना सुखदायी था, यह बतानेमें मैं असमर्थ हूँ। सुखद स्वादिष्ट फल-मूल तथा अनेक रूप-रंगके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ३॥

उस वनके मध्यभागमें एक सरोवर था, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजनकी थी। उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी फैले हुए थे और चक्रवाकोंके जोड़े उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ४॥

उसमें कमल और उत्पल छा रहे थे। सेवारका कहीं नाम भी नहीं था। वह परम उत्तम सरोवर अत्यन्त आश्चर्यमय-सा जान पड़ता था। उसका जल पीनेमें अत्यन्त सुखद एवं स्वादिष्ट था॥ ५॥

उसमें कीचड़ नहीं था, वह सर्वथा निर्मल था। उसे कोई पार नहीं कर सकता था। उसके भीतर सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे थे। उस सरोवरके पास ही एक विशाल, अद्भुत एवं अत्यन्त पवित्र पुराना आश्रम था; जिसमें एक भी तपस्वी नहीं था॥ ६½ ॥

पुरुषप्रवर! जेठकी रातमें मैं उस आश्रमके भीतर एक रात रहा और प्रातःकाल सबेरे उठकर स्नान आदिके लिये उस सरोवरके तटपर जाने लगा॥ ७½ ॥

उसी समय मुझे वहाँ एक शव दिखायी दिया जो हृष्ट-पुष्ट होनेके साथ ही अत्यन्त निर्मल था। उसमें कहीं कोई मलिनता नहीं थी। नरेश्वर! वह शव उस जलाशयके तटपर बड़ी शोभासे सम्पन्न होकर पड़ा था॥ ८½ ॥

प्रभो! रघुनन्दन! मैं उस शवके विषयमें यह सोचता हुआ कि 'यह क्या है?' वहाँ दो घड़ीतक उस तालाबके किनारे बैठा रहा॥ ९½ ॥

दो घड़ी बीतते ही मैंने वहाँ एक दिव्य, अद्भुत, अत्यन्त उत्तम, हंसयुक्त और मनके समान वेगशाली विमान उतरता देखा। रघुनन्दन! उस विमानपर एक स्वर्गवासी देवता बैठे थे, जो अत्यन्त रूपवान् थे। वीर! वहाँ उनकी सेवामें सहस्रों अप्सराएँ बैठी थीं, जो दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं॥ १०-११½ ॥

उनमेंसे कुछ मनोहर गीत गा रही थीं, दूसरी मृदङ्ग, वीणा और पणव आदि बाजे बजा रही थीं। अन्य बहुत-सी अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा प्रफुल्ल कमल-जैसे नेत्रोंवाली अन्य कितनी ही अप्सराएँ सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एवं चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल बहुमूल्य चवँर लेकर उन स्वर्गवासी देवताके मुखपर हवा कर रही थीं॥ १२-१३½ ॥

रघुकुलनन्दन श्रीराम! तदनन्तर जैसे अंशुमाली सूर्य मेरुपर्वतके शिखरको छोड़कर नीचे उतरते हैं, उसी प्रकार उन स्वर्गवासी पुरुषने विमानसे उतरकर मेरे देखते-देखते उस शवका भक्षण किया॥ १४-१५॥

इच्छानुसार उस सुपुष्ट एवं प्रचुर मांसको खाकर वे स्वर्गीय देवता सरोवरमें उतरे और हाथ-मुँह धोने लगे॥ १६॥

रघुनन्दन! यथोचित रीतिसे कुल्ला-आचमन करके वे स्वर्गवासी पुरुष उस उत्तम एवं श्रेष्ठ विमानपर चढ़नेको उद्यत हुए॥ १७॥

पुरुषोत्तम! उन देवतुल्य पुरुषको विमानपर चढ़ते देख मैंने उनसे यह बात पूछी—॥ १८॥

'सौम्य! देवोपम पुरुष! आप कौन हैं और किसलिये ऐसा घृणित आहार ग्रहण करते हैं? यह बतानेका कष्ट करें॥ १९॥

'देवतुल्य तेजस्वी पुरुष! ऐसा दिव्य स्वरूप और ऐसा घृणित आहार किसका हो सकता है? सौम्य! आपमें ये दोनों आश्चर्यजनक बातें हैं, अतः मैं इसका यथार्थ रहस्य सुनना चाहता हूँ; क्योंकि मैं इस शवको

आपके योग्य आहार नहीं मानता हूँ'॥ २०॥

नरेश्वर! जब कौतूहलवश मैंने मधुर वाणीमें उन स्वर्गीय पुरुषसे इस प्रकार पूछा, तब मेरी बातें सुनकर उन्होंने यह सब कुछ मेरे सामने बताया॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

राजा श्वेतका अगस्त्यजीको अपने लिये घृणित आहारकी प्राप्तिका कारण बताते हुए ब्रह्माजीके साथ हुए अपनी वार्ताको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका दान दे भूख-प्यासके कष्टसे मुक्त होना

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रघुकुलनन्दन राम! मेरी कही हुई शुभ अक्षरोंसे युक्त बात सुनकर उन स्वर्गीय पुरुषने हाथ जोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

'ब्रह्मन्! आप जो कुछ पूछ रहे हैं, वह मेरे सुख-दुःखका अलङ्घनीय कारण, जो पूर्वकालमें घटित हो चुका है, यहाँ बताया जाता है, सुनिये॥ २॥

'पूर्वकालमें मेरे महायशस्वी पिता विदर्भ देशके राजा थे। उनका नाम सुदेव था। वे तीनों लोकोंमें विख्यात पराक्रमी थे॥ ३॥

'ब्रह्मन्! उनके दो पत्नियाँ थीं, जिनके गर्भसे उन्हें दो पुत्र प्राप्त हुए। उनमें ज्येष्ठ मैं था। मेरी श्वेतके नामसे प्रसिद्धि हुई और मेरे छोटे भाईका नाम सुरथ था॥ ४॥

'पिताके स्वर्गलोकमें चले जानेपर पुरवासियोंने राजाके पदपर मेरा अभिषेक कर दिया। वहाँ परम सावधान रहकर मैंने धर्मके अनुकूल राज्यका पालन किया॥ ५॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मर्षे! इस तरह धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा तथा राज्यका शासन करते हुए मेरे एक सहस्र वर्ष बीत गये॥ ६॥

'द्विजश्रेष्ठ! एक समय मुझे किसी निमित्तसे अपनी आयुका पता लग गया और मैंने मृत्यु-तिथिको हृदयमें रखकर वहाँसे वनको प्रस्थान किया॥ ७॥

'उस समय मैं इसी दुर्गम वनमें आया, जिसमें न पशु हैं न पक्षी। वनमें प्रवेश करके मैं इसी सरोवरके सुन्दर तटके निकट तपस्या करनेके लिये बैठा॥ ८॥

'राज्यपर अपने भाई राजा सुरथका अभिषेक करके इस सरोवरके समीप आकर मैंने दीर्घकालतक तपस्या की॥ ९॥

'इस विशाल वनमें तीन हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके मैं परम उत्तम ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ॥ १०॥

'द्विजश्रेष्ठ! परम उदार महर्षे! ब्रह्मलोकमें पहुँच जानेपर भी मुझे भूख और प्यास बड़ा कष्ट देते हैं। उससे मेरी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठती हैं॥ ११॥

'एक दिन मैंने त्रिलोकीके श्रेष्ठ देवता भगवान् ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! यह ब्रह्मलोक तो भूख-प्यासके कष्टसे रहित है, किंतु यहाँ भी क्षुधा-पिपासाका क्लेश मेरा पीछा नहीं छोड़ता है। यह मेरे किस कर्मका परिणाम है? देव! पितामह! मेरा आहार क्या है? यह मुझे बताइये'॥ १२-१३॥

यह सुनकर ब्रह्माजी मुझसे बोले—'सुदेवनन्दन! तुम मर्त्यलोकमें स्थित अपने ही शरीरका सुस्वादु मांस प्रतिदिन खाया करो; यही तुम्हारा आहार है॥ १४॥

'श्वेत! तुमने उत्तम तप करते हुए केवल अपने शरीरका ही पोषण किया है। महामते! दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ भी नहीं जमता—कोई भी भोज्य-पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है॥ १५॥

'तुमने देवताओं, पितरों एवं अतिथियोंके लिये कभी कुछ थोड़ा-सा भी दान किया हो, ऐसा नहीं दिखायी देता। तुम केवल तपस्या करते थे। वत्स! इसीलिये ब्रह्मलोकमें आकर भी भूख-प्याससे पीड़ित हो रहे हो॥

'नाना प्रकारके आहारोंसे भलीभाँति पोषित हुआ तुम्हारा परम उत्तम शरीर अमृतरससे युक्त होगा और उसीका भक्षण करनेसे तुम्हारी क्षुधा-पिपासाका निवारण हो जायगा॥ १७॥

'श्वेत! जब उस वनमें दुर्धर्ष महर्षि अगस्त्य पधारेंगे, तब तुम इस कष्टसे छुटकारा पा जाओगे॥ १८॥

'सौम्य! महाबाहो! वे देवताओंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर भूख-प्यासके वशमें पड़े हुए तुम-जैसे पुरुषको संकटसे छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है?'॥ १९॥

'द्विजश्रेष्ठ! देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माका यह निश्चय सुनकर मैं अपने शरीरका ही घृणित आहार ग्रहण करने लगा॥ २०॥

'ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षे! बहुत वर्षोंसे मेरे द्वारा उपभोगमें

लाये जानेपर भी यह शरीर नष्ट नहीं होता है और मुझे पूर्णतः तृप्ति प्राप्त होती है॥ २१॥

'मुने! इस प्रकार मैं संकटमें पड़ा हूँ। आप मेरे दृष्टिपथमें आ गये हैं, इसलिये इस कष्टसे मेरा उद्धार कीजिये। आप ब्रह्मर्षि कुम्भजके सिवा दूसरोंकी इस निर्जन वनमें पहुँच नहीं हो सकती (इसलिये आप अवश्य कुम्भयोनि अगस्त्य ही हैं)॥ २२॥

'सौम्य! विप्रवर! आपका कल्याण हो। आप मेरा उद्धार करनेके लिये मेरे इस आभूषणका दान ग्रहण करें और आपका कृपाप्रसाद मुझे प्राप्त हो॥ २३॥

'ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षे! यह दिव्य आभूषण सुवर्ण, धन, वस्त्र, भक्ष्य, भोज्य तथा अन्य नाना प्रकारके आभरण भी देता है॥ २४॥

'मुनिश्रेष्ठ! इस आभूषणके द्वारा मैं समस्त कामनाओं (मनोवाञ्छित पदार्थों) और भोगोंको भी दे रहा हूँ। भगवन्! आप मेरे उद्धारके लिये मुझपर कृपा करें'॥ २५॥

स्वर्गीय राजा श्वेतकी यह दुःखभरी बात सुनकर मैंने उनका उद्धार करनेके लिये वह उत्तम आभूषण ले लिया॥ २६॥

ज्यों ही मैंने उस शुभ आभूषणका दान ग्रहण किया, त्यों ही राजर्षि श्वेतका वह पूर्व-शरीर (शव) अदृश्य हो गया॥ २७॥

उस शरीरके अदृश्य हो जानेपर राजर्षि श्वेत परमानन्दसे तृप्त हो प्रसन्नतापूर्वक सुखमय ब्रह्मलोकको चले गये॥ २८॥

काकुत्स्थ! उन इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा श्वेतने उस भूख-प्यासके निवारणरूप पूर्वोक्त निमित्तसे यह अद्भुत दिखायी देनेवाला दिव्य आभूषण मुझे दिया था॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७८॥

उनासीवाँ सर्ग

इक्ष्वाकुपुत्र राजा दण्डका राज्य

अगस्त्यजीका यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीके मनमें उनके प्रति विशेष गौरवका उदय हुआ और उन्होंने विस्मित होकर पुनः उनसे पूछना आरम्भ किया—॥ १॥

'भगवन्! वह भयंकर वन, जिसमें विदर्भदेशके राजा श्वेत घोर तपस्या करते थे, पशु-पक्षियोंसे रहित क्यों हो गया था?॥ २॥

'वे विदर्भराज उस सूने निर्जन वनमें तपस्या करनेके लिये क्यों गये? यह मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ'॥ ३॥

श्रीरामका कौतूहलयुक्त वचन सुनकर वे परम तेजस्वी महर्षि पुनः इस प्रकार कहने लगे—॥ ४॥

'श्रीराम! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, दण्डधारी राजा मनु इस भूतलपर शासन करते थे। उनके एक श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसका नाम इक्ष्वाकु था। राजकुमार इक्ष्वाकु अपने कुलको आनन्दित करनेवाले थे॥ ५॥

'अपने उन ज्येष्ठ एवं दुर्जय पुत्रको भूमण्डलके राज्यपर स्थापित करके मनुने उनसे कहा—'बेटा! तुम भूतलपर राजवंशोंकी सृष्टि करो'॥ ६॥

'रघुनन्दन! पुत्र इक्ष्वाकुने पिताके सामने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की। इससे मनु बहुत संतुष्ट हुए और अपने पुत्रसे बोले—॥ ७॥

''परम उदार पुत्र! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम राजवंशकी सृष्टि करोगे, इसमें संशय नहीं है। तुम दण्डके द्वारा दुष्टोंका दमन करते हुए प्रजाकी रक्षा करो, परंतु बिना अपराधके ही किसीको दण्ड न देना॥ ८॥

''अपराधी मनुष्योंपर जो दण्डका प्रयोग किया जाता है, वह विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजाको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है॥ ९॥

''इसलिये महाबाहु पुत्र! तुम दण्डका समुचित प्रयोग करनेके लिये प्रयत्नशील रहना। ऐसा करनेसे तुम्हें संसारमें परम धर्मकी प्राप्ति होगी''॥ १०॥

इस प्रकार पुत्रको बहुत-सा संदेश दे मनु समाधि लगाकर बड़े हर्षके साथ स्वर्गको—सनातन ब्रह्मलोकको चले गये॥ ११॥

'उनके ब्रह्मलोकनिवासी हो जानेपर अमित तेजस्वी राजा इक्ष्वाकु इस चिन्तामें पड़े कि मैं किस प्रकार पुत्रोंको उत्पन्न करूँ?॥ १२॥

'तब यज्ञ, दान और तपस्यारूप विविध कर्मोंद्वारा धर्मात्मा मनुपुत्रने सौ पुत्र उत्पन्न किये, जो देवकुमारोंके समान तेजस्वी थे॥ १३॥

'तात रघुनन्दन! उनमें जो सबसे छोटा पुत्र था, वह मूढ़ और विद्याविहीन था, इसलिये अपने बड़े भाइयोंकी सेवा नहीं करता था॥ १४॥

'इसके शरीरपर अवश्य दण्डपात होगा, ऐसा सोचकर पिताने उस मन्दबुद्धि पुत्रका नाम दण्ड रख दिया॥ १५॥

'श्रीराम! शत्रुदमन नरेश! उस पुत्रके योग्य दूसरा कोई भयंकर देश न देखकर राजाने उसे विन्ध्य और शैवल पर्वतके बीचका राज्य दे दिया॥ १६॥

'श्रीराम! पर्वतके उस रमणीय तटप्रान्तमें दण्ड राजा हुआ। उसने अपने रहनेके लिये एक बहुत ही अनुपम और उत्तम नगर बसाया॥ १७॥

'प्रभो! उसने उस नगरका नाम रखा मधुमन्त और उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया॥ १८॥

'इस प्रकार स्वर्गमें देवराजकी भाँति भूतलपर राजा दण्डने पुरोहितके साथ रहकर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए उस राज्यका पालन आरम्भ किया॥ १९॥

'उस समय वह महामनस्वी महाराजकुमार तथा महान् राजा दण्ड शुक्राचार्यके साथ रहकर अपने राज्यका उसी तरह पालन करने लगा जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके साथ रहकर अपने राज्यका पालन करते हैं'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ सर्ग

राजा दण्डका भार्गव-कन्याके साथ बलात्कार

महर्षि कुम्भज श्रीरामसे इतनी कथा कहकर फिर इसीका अवशिष्ट अंश इस तरह कहने लगे—॥ १॥

'काकुत्स्थ! तदनन्तर राजा दण्डने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर बहुत वर्षोंतक वहाँ अकण्टक राज्य किया॥ २॥

'तत्पश्चात् किसी समय राजा मनोरम चैत्रमासमें शुक्राचार्यके रमणीय आश्रमपर आया॥ ३॥

'वहाँ शुक्राचार्यकी सर्वोत्तम सुन्दरी कन्या, जिसके रूपकी इस भूतलपर कहीं तुलना नहीं थी, वनप्रान्तमें विचर रही थी। दण्डने उसे देखा॥ ४॥

'उसे देखते ही वह अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राजा कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो पास जाकर उस डरी हुई कन्यासे बोला—॥ ५॥

''सुश्रोणि! तुम कहाँसे आयी हो अथवा शुभे! तुम किसकी पुत्री हो? शुभानने! मैं कामदेवसे पीड़ित हूँ; इसलिये तुम्हारा परिचय पूछता हूँ''॥ ६॥

'मोहसे उन्मत्त होकर वह कामी राजा जब इस प्रकार पूछने लगा, तब भृगुकन्याने विनयपूर्वक उसे इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ७॥

''राजेन्द्र! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि मैं पुण्यकर्मा शुक्रदेवताकी ज्येष्ठ पुत्री हूँ। मेरा नाम अरजा है। मैं इसी आश्रममें निवास करती हूँ॥ ८॥

''राजन्! बलपूर्वक मेरा स्पर्श न करो। मैं पिताके अधीन रहनेवाली कुमारी कन्या हूँ। राजेन्द्र! मेरे पिता तुम्हारे गुरु हैं और तुम उन महात्माके शिष्य हो॥ ९॥

''नरश्रेष्ठ! वे महातपस्वी हैं। यदि कुपित हो जायँ तो तुम्हें बड़ी भारी विपत्तिमें डाल सकते हैं। यदि मुझसे तुम्हें दूसरा ही काम लेना हो (अर्थात् यदि तुम मुझे अपनी भार्या बनाना चाहते हो) तो धर्मशास्त्रोक्त सन्मार्गसे चलकर मेरे महातेजस्वी पितासे मुझको माँग लो। अन्यथा तुम्हें अपने स्वेच्छाचारका बड़ा भयानक फल भोगना पड़ेगा॥ १०-११॥

''मेरे पिता अपनी क्रोधाग्निसे सारी त्रिलोकीको भी दग्ध कर सकते हैं; अतः सुन्दर अङ्गोंवाले नरेश! तुम बलात्कार न करो। तुम्हारे याचना करनेपर पिताजी मुझे अवश्य तुम्हारे हाथमें सौंप देंगे''॥ १२॥

'जब अरजा ऐसी बातें कह रही थीं, उस समय कामके अधीन हुए दण्डने मदोन्मत्त होकर दोनों हाथ सिरपर जोड़ लिये और इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १३॥

''सुन्दरी! कृपा करो। समय न बिताओ। वरानने! तुम्हारे लिये मेरे प्राण निकले जा रहे हैं॥ १४॥

''तुम्हें प्राप्त कर लेनेपर मेरा वध हो जाय अथवा मुझे अत्यन्त दारुण दुःख प्राप्त हो तो भी कोई चिन्ता नहीं है। भीरु! मैं तुम्हारा भक्त हूँ। अत्यन्त व्याकुल हुए मुझ अपने सेवकको स्वीकार करो''॥ १५॥

'ऐसा कहकर उस बलवान् नरेशने उस भार्गव-कन्याको बलपूर्वक दोनों भुजाओंमें भर लिया। वह उसकी पकड़से छूटनेके लिये छटपटाने लगी तो भी उसने अपनी इच्छाके अनुसार उसके साथ समागम किया॥ १६॥

'वह अत्यन्त दारुण एवं महाभयंकर अनर्थ करके

दण्ड तुरंत ही अपने उत्तम नगर मधुमन्तको चला गया॥ १७॥

'अरजा भी भयभीत हो रोती हुई आश्रमके पास ही अपने देवतुल्य पिताके आनेकी राह देखने लगी'॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ सर्ग

शुक्रके शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश

दो घड़ी बाद किसी शिष्यके मुँहसे अरजाके ऊपर किये गये बलात्कारकी बात सुनकर अमित तेजस्वी महर्षि शुक्र भूखसे पीड़ित हो शिष्योंसे घिरे हुए अपने आश्रमको लौट आये॥ १॥

उन्होंने देखा, अरजा दु:खी होकर रो रही है। उसके शरीरमें धूल लिपटी हुई है तथा वह प्रात:काल-राहुग्रस्त चन्द्रमाकी शोभाहीन चाँदनीके समान सुशोभित नहीं हो रही है॥ २॥

यह देख विशेषत: भूखसे पीड़ित होनेके कारण देवर्षि शुक्रका रोष बढ़ गया और वे तीनों लोकोंको दग्ध-से करते हुए अपने शिष्योंसे इस प्रकार बोले—॥

'देखो, शास्त्रविपरीत आचरण करनेवाले अज्ञानी राजा दण्डको कुपित हुए मेरी ओरसे अग्नि-शिखाके समान कैसे घोर विपत्ति प्राप्त होती है॥ ४॥

'सेवकोंसहित इस दुर्बुद्धि एवं दुरात्मा राजाके विनाशका समय आ गया है, जो प्रज्वलित आगकी दहकती हुई ज्वालाको गले लगाना चाहता है॥ ५॥

'उस दुर्बुद्धिने जब ऐसा घोर पाप किया है, तब इसे उस पापकर्मका फल अवश्य प्राप्त होगा॥ ६॥

'पापकर्मका आचरण करनेवाला वह दुर्बुद्धि नरेश सात रातके भीतर ही पुत्र, सेना और सवारियोंसहित नष्ट हो जायगा॥ ७॥

'खोटे विचारवाले इस राजाके राज्यको जो सब ओरसे सौ योजन लम्बा-चौड़ा है, देवराज इन्द्र, भारी धूलकी वर्षा करके नष्ट कर देंगे॥ ८॥

'यहाँ जो सब प्रकारके स्थावर-जङ्गम जीव निवास करते हैं, इस धूलकी भारी वर्षासे सब ओर विलीन हो जायँगे॥ ९॥

'जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके समस्त चराचर प्राणी सात राततक केवल धूलिकी वर्षा पाकर अदृश्य हो जायँगे'॥ १०॥

ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये शुक्रने उस आश्रममें निवास करनेवाले लोगोंसे कहा—'दण्डके राज्यकी सीमाके अन्तमें जो देश हैं, उनमें जाकर निवास करो'॥ ११॥

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर आश्रमवासी मनुष्य उस राज्यसे निकल गये और सीमासे बाहर जाकर निवास करने लगे॥ १२॥

आश्रमवासी मुनियोंसे ऐसी बात कहकर शुक्रने अरजासे कहा—'खोटी बुद्धिवाली लड़की! तू यहीं इस आश्रममें मनको परमात्माके ध्यानमें एकाग्र करके रह॥ १३॥

'अरजे! यह जो एक योजन फैला हुआ सुन्दर तालाब है, इसका तू निश्चिन्त होकर उपभोग कर और अपने अपराधकी निवृत्तिके लिये यहाँ समयकी प्रतीक्षा करती रह॥ १४॥

'जो जीव उन रात्रियोंमें तुम्हारे समीप रहेंगे, वे कभी भी धूलकी वर्षासे मारे नहीं जायँगे—सदा बने रहेंगे'॥

ब्रह्मर्षिका यह आदेश सुनकर वह भृगुकन्या अरजा अत्यन्त दु:खित होनेपर भी अपने पिता भार्गवसे बोली—'बहुत अच्छा'॥ १६॥

ऐसा कहकर शुक्रने दूसरे राज्यमें जाकर निवास किया तथा उन ब्रह्मवादीके कथनानुसार राजा दण्डका वह राज्य सेवक, सेना और सवारियोंसहित सात दिनमें भस्म हो गया॥ १७$\frac{१}{२}$॥

नरेश्वर! विन्ध्य और शैवलगिरिके मध्यभागमें दण्डका राज्य था। काकुत्स्थ! धर्मयुग कृतयुगमें धर्मविरुद्ध आचरण करनेपर उन ब्रह्मर्षिने राजा और उनके देशको शाप दे दिया। तभीसे वह भूभाग दण्डकारण्य कहलाता है॥ १८-१९॥

इस स्थानपर तपस्वीलोग आकर बस गये; इसलिये इसका नाम जनस्थान हो गया। रघुनन्दन! आपने जिसके विषयमें मुझसे पूछा था, यह सब मैंने कह सुनाया॥ २०॥

वीर! अब संध्योपासनाका समय बीता जा रहा है। पुरुषसिंह! सब ओरसे ये सब महर्षि स्नान कर चुकनेके बाद भरे हुए घड़े लेकर सूर्यदेवकी उपासना कर रहे हैं॥ २१$\frac{१}{२}$॥

श्रीराम! वे सूर्य वहाँ एकत्र हुए उन उत्तम ब्रह्मवेत्ताओंद्वारा पढ़े गये ब्राह्मणमन्त्रोंको सुनकर और उसी रूपमें पूजा पाकर अस्ताचलको चले गये। अब आप भी जायँ और आचमन एवं स्नान आदि करें॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ सर्ग

श्रीरामका अगस्त्य-आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना

ऋषिका यह आदेश पाकर श्रीरामचन्द्रजी संध्योपासना करनेके लिये अप्सराओंसे सेवित उस पवित्र सरोवरके तटपर गये॥ १॥

वहाँ आचमन और सायंकालकी संध्योपासना करके श्रीरामने पुनः महात्मा कुम्भजके आश्रममें प्रवेश किया॥ २॥

अगस्त्यजीने उनके भोजनके लिये अनेक गुणोंसे युक्त कन्द, मूल, जरावस्थाको निवारण करनेवाली दिव्य ओषधि, पवित्र भात आदि वस्तुएँ अर्पित कीं॥ ३॥

नरश्रेष्ठ श्रीराम वह अमृततुल्य स्वादिष्ट भोजन करके परम तृप्त और प्रसन्न हुए तथा वह रात्रि उन्होंने बड़े संतोषसे बितायी॥ ४॥

सबेरे उठकर शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलभूषण श्रीराम नित्यकर्म करके वहाँसे जानेकी इच्छासे महर्षिके पास गये॥ ५॥

वहाँ महर्षि कुम्भजको प्रणाम करके श्रीरामने कहा— 'महर्षे! अब मैं अपनी पुरीको जानेके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ। कृपया मुझे आज्ञा प्रदान करें॥ ६॥

'आप महात्माके दर्शनसे मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ। अब अपने-आपको पवित्र करनेके लिये फिर कभी आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आऊँगा'॥ ७॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार अद्भुत वचन कहनेपर धर्मचक्षु तपोधन अगस्त्यजी बड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले— ॥ ८॥

'श्रीराम! आपके ये सुन्दर वचन बड़े अद्भुत हैं। रघुनन्दन! समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाले तो आप ही हैं॥ ९॥

'श्रीराम! जो कोई एक मुहूर्तके लिये भी आपका दर्शन पा जाते हैं, वे पवित्र, स्वर्गके अधिकारी तथा देवताओंके लिये भी पूजनीय हो जाते हैं॥ १०॥

'इस भूतलपर जो प्राणी आपको क्रूर दृष्टिसे देखते हैं, वे यमराजके दण्डसे पीटे जाकर तत्काल नरकमें गिरते हैं॥ ११॥

'रघुश्रेष्ठ! ऐसे माहात्म्यशाली आप समस्त देहधारियोंको पवित्र करनेवाले हैं। रघुनन्दन! पृथ्वीपर जो लोग आपकी कथाएँ कहते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं॥ १२॥

'आप निश्चिन्त होकर कुशलपूर्वक पधारिये। आपके मार्गमें कहींसे कोई भय न रहे। आप धर्मपूर्वक राज्यका शासन करें; क्योंकि आप ही संसारके परम आश्रय हैं'॥ १३॥

मुनिके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् राजा श्रीरामने भुजाएँ ऊपर उठा हाथ जोड़कर उन सत्यशील महर्षिको प्रणाम किया॥ १४॥

इस प्रकार मुनिवर अगस्त्य तथा अन्य सब तपोधन ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन कर वे बिना किसी व्यग्रताके उस सुवर्णभूषित पुष्पकविमानपर चढ़ गये॥ १५॥

जैसे देवता सहस्रनेत्रधारी इन्द्रकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार जाते समय उन महेन्द्रतुल्य तेजस्वी श्रीरामको ऋषि-समूहोंने सब ओरसे आशीर्वाद दिया॥ १६॥

उस सुवर्णभूषित पुष्पकविमानपर आकाशमें स्थित हुए श्रीराम वर्षाकालमें मेघोंके समीपवर्ती चन्द्रमाके समान दिखायी देते थे॥ १७॥

तदनन्तर जगह-जगह सम्मान पाते हुए वे श्रीरघुनाथजी मध्याह्नके समय अयोध्यामें पहुँचकर मध्यम कक्षा (बीचकी ड्योढ़ी)-में उतरे॥ १८॥

तत्पश्चात् इच्छानुसार चलनेवाले उस सुन्दर पुष्पकविमानको वहीं छोड़कर भगवान्‌ने उससे कहा— 'अब तुम जाओ। तुम्हारा कल्याण हो'॥ १९॥

फिर श्रीरामने ड्योढ़ीके भीतर खड़े हुए द्वारपालसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'तुम अभी जाकर शीघ्रपराक्रमी भरत और लक्ष्मणको मेरे आनेकी सूचना दो और उन्हें जल्दी बुला लाओ'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ सर्ग

भरतके कहनेसे श्रीरामका राजसूय-यज्ञ करनेके विचारसे निवृत्त होना

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामका यह कथन सुनकर द्वारपालने कुमार भरत और लक्ष्मणको बुलाकर श्रीरघुनाथजीकी सेवामें उपस्थित कर दिया॥ १॥

भरत और लक्ष्मणको आया देख रघुकुलतिलक श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और यह बात कही—॥

'रघुवंशी राजकुमारो! मैंने ब्राह्मणका वह परम उत्तम कार्य यथावत्‌रूपसे सिद्ध कर दिया। अब मैं पुनः राजधर्मकी चरम सीमारूप राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहता हूँ॥ ३॥

'मेरी रायमें धर्मसेतु (राजसूय) अक्षय एवं अविनाशी फल देनेवाला है तथा वह धर्मका पोषक एवं समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ ४॥

'तुम दोनों मेरे आत्मा ही हो, अतः मेरी इच्छा तुम्हारे साथ इस उत्तम राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करनेकी है; क्योंकि उसमें राजाका शाश्वत धर्म प्रतिष्ठित है॥

'शत्रुओंका संहार करनेवाले मित्रदेवताने उत्तम आहुतिसे युक्त राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञद्वारा परमात्माका यजन करके वरुणका पद प्राप्त किया था॥ ६॥

'धर्मज्ञ सोम देवताने धर्मपूर्वक राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करके सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त कर लिया॥ ७॥

'इसलिये आजके दिन मेरे साथ बैठकर तुमलोग यह विचार करो कि हमारे लिये कौन-सा कर्म लोक और परलोकमें कल्याणकारी होगा तथा संयतचित्त होकर तुम दोनों इस विषयमें मुझे सलाह दो'॥ ८॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर वाक्यविशारद भरतजीने हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ९॥

'साधो! अमित पराक्रमी महाबाहो! आपमें उत्तम धर्म प्रतिष्ठित है। यह सारी पृथ्वी भी आपपर ही आधारित है तथा आपमें ही यशकी प्रतिष्ठा है॥ १०॥

'देवतालोग जैसे प्रजापति ब्रह्माको ही महात्मा एवं लोकनाथ समझते हैं, उसी प्रकार हमलोग और समस्त भूपाल आपको ही महापुरुष तथा समस्त लोकोंका स्वामी मानते हैं—उसी दृष्टिसे आपको देखते हैं॥ ११॥

'राजन्! महाबली रघुनन्दन! पुत्र जैसे पिताको देखते हैं, उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओंका भाव है। आप ही समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंके भी आश्रय हैं॥

'नरेश्वर! फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें भूमण्डलके समस्त राजवंशोंका विनाश दिखायी देता है॥ १३॥

'राजन्! पृथ्वीपर जो पुरुषार्थी पुरुष हैं, उन सबका सभीके कोपसे उस यज्ञमें संहार हो जायगा॥ १४॥

'पुरुषसिंह! अतुल पराक्रमी वीर! आपके सद्‌गुणोंके कारण सारा जगत् आपके वशमें है। आपके लिये इस भूतलके निवासियोंका विनाश करना उचित न होगा'॥ १५॥

भरतका यह अमृतमय वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ॥ १६॥

उन्होंने कैकेयीनन्दन भरतसे यह शुभ बात कही—'निष्पाप भरत! आज तुम्हारी बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न एवं संतुष्ट हुआ हूँ॥ १७॥

'पुरुषसिंह! तुम्हारे मुखसे निकला हुआ यह उदार एवं धर्मसंगत वचन सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है॥

'धर्मज्ञ! मेरे हृदयमें राजसूय-यज्ञका संकल्प उठ रहा था; किंतु आज तुम्हारे इस सुन्दर भाषणको सुनकर मैं उस उत्तम यज्ञकी ओरसे अपने मनको हटाये लेता हूँ॥ १९॥

'लक्ष्मणके बड़े भाई! बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये जो सम्पूर्ण जगत्‌को पीड़ा देनेवाला हो। बालकोंकी कही हुई बात भी यदि अच्छी हो तो उसे ग्रहण करना ही उचित है; अतः महाबली वीर! मैंने तुम्हारे उत्तम एवं युक्तिसंगत बातको बड़े ध्यानसे सुना है'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ सर्ग

लक्ष्मणका अश्वमेध-यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वृत्रासुरकी कथा सुनाना, वृत्रासुरकी तपस्या और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके वधके लिये अनुरोध

श्रीराम और महात्मा भरतके इस प्रकार बातचीत करनेपर लक्ष्मणने रघुकुलनन्दन श्रीरामसे यह शुभ बात कही—॥ १ ॥

'रघुनन्दन! अश्वमेध नामक महान् यज्ञ समस्त पापोंको दूर करनेवाला, परमपावन और दुष्कर है। अतः इसका अनुष्ठान आप पसंद करें॥ २ ॥

'महात्मा इन्द्रके विषयमें यह प्राचीन वृत्तान्त सुननेमें आता है कि इन्द्रको जब ब्रह्महत्या लगी थी, तब वे अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करके ही पवित्र हुए थे॥ ३ ॥

'महाबाहो! पहलेकी बात है, जब देवता और असुर परस्पर मिलकर रहते थे, उन दिनों वृत्रनामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा असुर रहता था। लोकमें उसका बड़ा आदर था॥ ४ ॥

'वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन ऊँचा था। वह तीनों लोकोंको आत्मीय समझकर प्यार करता था और सबको स्नेहभरी दृष्टिसे देखता था॥ ५ ॥

'उसे धर्मका यथार्थ ज्ञान था। वह कृतज्ञ और स्थिरप्रज्ञ था तथा पूर्णतः सावधान रहकर धन-धान्यसे भरी-पूरी पृथ्वीका धर्मपूर्वक शासन करता था॥ ६ ॥

'उसके शासनकालमें पृथ्वी सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली थी। यहाँ फल, फूल और मूल सभी सरस होते थे॥ ७ ॥

'महात्मा वृत्रासुरके राज्यमें यह भूमि बिना जोते-बोये ही अन्न उत्पन्न करती तथा धन-धान्यसे भलीभाँति सम्पन्न रहती थी। इस प्रकार वह असुर समृद्धिशाली एवं अद्भुत राज्यका उपभोग करता था॥ ८ ॥

'एक समय वृत्रासुरके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परम उत्तम तप करूँ; क्योंकि तप ही परम कल्याणका साधन है। दूसरा सारा सुख तो मोहमात्र ही है॥ ९ ॥

'उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मधुरेश्वरको* राजा बना पुरवासियोंको सौंप दिया और सम्पूर्ण देवताओंको ताप देता हुआ वह कठोर तपस्या करने लगा॥ १० ॥

'वृत्रासुरके तपस्यामें लग जानेपर इन्द्र बड़े दुःखी-से होकर भगवान् विष्णुके पास गये और इस प्रकार बोले—॥ ११ ॥

''महाबाहो! तपस्या करते हुए वृत्रासुरने समस्त लोक जीत लिये। वह धर्मात्मा असुर बलवान् हो गया है; अतः अब उसपर मैं शासन नहीं कर सकता॥ १२ ॥

''सुरेश्वर! यदि वह फिर इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो जबतक ये तीनों लोक रहेंगे, तबतक हम सब देवताओंको उसके अधीन रहना पड़ेगा॥ १३ ॥

महाबली देवेश्वर! उस परम उदार असुरकी आप उपेक्षा कर रहे हैं (इसीलिये वह शक्तिशाली होता जा रहा है)। यदि आप कुपित हो जायँ तो वह क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता॥ १४ ॥

''विष्णो! जबसे आपके साथ उसका प्रेम हो गया है, तभीसे उसने सम्पूर्ण लोकोंका आधिपत्य प्राप्त कर लिया है॥ १५ ॥

''अतः आप अच्छी तरह ध्यान देकर सम्पूर्ण लोकोंपर कृपा कीजिये। आपके रक्षा करनेसे ही सारा जगत् शान्त एवं नीरोग हो सकता है॥ १६ ॥

''विष्णो! ये सब देवता आपकी ओर देख रहे हैं। वृत्रासुरका वध एक महान् कार्य है। उसे करके आप उन देवताओंका उपकार कीजिये॥ १७ ॥

''प्रभो! आपने सदा ही इन महात्मा देवताओंकी सहायता की है। यह असुर दूसरोंके लिये अजेय है; अतः आप हम निराश्रित देवताओंके आश्रयदाता हों'॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८४॥

---

* मधुरेश्वरका अर्थ तिलककारने मधुर नामक राजा किया है। रामायणशिरोमणिकारने मधुर वक्ताओंका ईश्वर किया है तथा रामायणभूषणकारने मधुर—सौम्य स्वभावका राजा अथवा मधुरा नगरीका स्वामी किया है।

पचासीवाँ सर्ग

भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रके वज्रसे वृत्रासुरका वध तथा ब्रह्महत्याग्रस्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदेशमें जाना

लक्ष्मणका यह कथन सुनकर शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सुमित्राकुमार! वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा कह सुनाओ'॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर उत्तम व्रतके पालक सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने पुनः उस दिव्य कथाको सुनाना आरम्भ किया—॥ २॥

''प्रभो! सहस्रनेत्रधारी इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंकी वह प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने इन्द्र आदि सब देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ ३॥

''देवताओ! तुम्हारी इस प्रार्थनाके पहलेसे ही मैं महामना वृत्रासुरके स्नेह-बन्धनमें बँधा हुआ हूँ। इसलिये तुम्हारा प्रिय करनेके उद्देश्यसे मैं उस महान् असुरका वध नहीं करूँगा॥ ४॥

''परंतु तुम सबके उत्तम सुखकी व्यवस्था करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है; इसलिये मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे देवराज इन्द्र उसका वध कर सकेंगे॥ ५॥

''सुरश्रेष्ठगण! मैं अपने स्वरूपभूत तेजको तीन भागोंमें विभक्त करूँगा, जिससे इन्द्र निस्संदेह वृत्रासुरका वध कर डालेंगे॥ ६॥

''मेरे तेजका एक अंश इन्द्रमें प्रवेश करे, दूसरा वज्रमें व्याप्त हो जाय और तीसरा भूतलको चला जाय'* तब इन्द्र वृत्रासुरका वध कर सकेंगे'॥ ७॥

'देवेश्वर भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवता बोले—'दैत्यविनाशन! आप जो कहते हैं, ठीक ऐसी ही बात है, इसमें संदेह नहीं। आपका कल्याण हो। हमलोग वृत्रासुरके वधकी इच्छा मनमें लिये यहाँसे लौट जायँगे। परम उदार प्रभो! आप अपने तेजके द्वारा देवराज इन्द्रको अनुगृहीत करें'॥ ८-९॥

'तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी महामनस्वी देवता उस वनमें गये, जहाँ महान् असुर वृत्र तपस्या करता था॥

'उन्होंने देखा, असुरश्रेष्ठ वृत्रासुर अपने तेजसे सब ओर व्याप्त हो रहा है और ऐसी तपस्या कर रहा है, मानो उसके द्वारा तीनों लोकोंको पी जायगा और आकाशको भी दग्ध कर डालेगा॥ ११॥

'उस असुरश्रेष्ठ वृत्रको देखते ही देवतालोग घबरा गये और सोचने लगे—'हम कैसे इसका वध करेंगे? और किस उपायसे हमारी पराजय नहीं होने पायेगी?'॥

'वे लोग वहाँ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सहस्रनेत्रधारी इन्द्रने दोनों हाथोंसे वज्र उठाकर उसे वृत्रासुरके मस्तकपर दे मारा॥ १३॥

'इन्द्रका वह वज्र प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर और दीप्तिमान् था। उससे बड़ी भारी लपटें उठ रही थीं। उसकी चोटसे कटकर जब वृत्रासुरका मस्तक गिरा, तब सारा संसार भयभीत हो उठा॥ १४॥

'निरपराध वृत्रासुरका वध करना उचित नहीं था, अतः उसके कारण महायशस्वी देवराज इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और तुरंत ही सब लोकोंके अन्तमें लोकालोक पर्वतसे परवर्ती अन्धकारमय प्रदेशमें चले गये॥ १५॥

'जानेके समय ब्रह्महत्या तत्काल उनके पीछे लग गयी और उनके अङ्गोंपर टूट पड़ी। इससे इन्द्रके मनमें बड़ा दुःख हुआ॥ १६॥

'देवताओंका शत्रु मारा गया। इसलिये अग्नि आदि सब देवता त्रिभुवनके स्वामी भगवान् विष्णुकी बार-बार स्तुति-पूजा करने लगे। परंतु उनके इन्द्र अदृश्य हो गये थे (इसके कारण उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था)॥ १७॥

(देवता बोले—) 'परमेश्वर! आप ही जगत्के आश्रय और आदि पिता हैं। आपने सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षाके लिये विष्णुरूप धारण किया है॥ १८॥

'आपने ही इस वृत्रासुरका वध किया है। परंतु ब्रह्महत्या इन्द्रको कष्ट दे रही है; अतः सुरश्रेष्ठ! आप उनके उद्धारका कोई उपाय बताइये'॥ १९॥

'देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—'इन्द्र मेरा ही यजन करें। मैं उन वज्रधारी देवराज इन्द्रको पवित्र कर दूँगा॥ २०॥

''पवित्र अश्वमेध-यज्ञके द्वारा मुझ यज्ञ-पुरुषकी आराधना करके पाकशासन इन्द्र पुनः देवेन्द्रपदको प्राप्त

* वृत्र-वधके पश्चात् इन्द्रको लगी हुई ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके समयतक इस भूतलकी रक्षा करनेके लिये तथा वृत्रके धराशायी होनेपर उसके भारी शरीरको धारण करनेकी शक्ति देनेके लिये भगवान्के तेजके तीसरे अंशका भूतलपर आना आवश्यक था; इसलिये ऐसा हुआ।

कर लेंगे और फिर उन्हें किसीसे भय नहीं रहेगा'॥ २१॥

'देवताओंके समक्ष अमृतमयी वाणीद्वारा उक्त संदेश देकर देवेश्वर भगवान् विष्णु अपनी स्तुति सुनते हुए परम धामको चले गये॥ २२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ सर्ग

इन्द्रके बिना जगत्में अशान्ति तथा अश्वमेधके अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना

उस समय वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा सुनाकर नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने शेष कथाको इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ १॥

'देवताओंको भय देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर ब्रह्महत्यासे घिरे हुए वृत्रनाशक इन्द्रको बहुत देरतक होश नहीं हुआ॥ २॥

'लोकोंकी अन्तिम सीमाका आश्रय ले वे सर्पके समान लोटते हुए कुछ कालतक वहाँ अचेत और संज्ञाशून्य होकर पड़े रहे॥ ३॥

'इन्द्रके अदृश्य हो जानेसे सारा संसार व्याकुल हो उठा। धरती उजाड़-सी हो गयी। इसकी आर्द्रता नष्ट हो गयी और वन सूख गये। समस्त सरों और सरिताओंमें जलस्रोतका अभाव हो गया और वर्षा न होनेसे सब जीवोंमें बड़ी घबराहट फैल गयी॥ ४-५॥

'समस्त लोक क्षीण होने लगे। इससे देवताओंके हृदयमें व्याकुलता छा गयी और उन्होंने उसी यज्ञका स्मरण किया, जिसे पहले भगवान् विष्णुने बताया था॥

'तदनन्तर बृहस्पतिजीको साथ ले ऋषियोंसहित सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र भयसे मोहित होकर छिपे हुए थे॥ ७॥

'वे इन्द्रको ब्रह्महत्यासे आवेष्टित देख उन्हीं देवेश्वरको आगे करके अश्वमेध-यज्ञ करने लगे॥ ८॥

'नरेश्वर! फिर तो महामनस्वी महेन्द्रका वह महान् अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ हो गया। उसका उद्देश्य था ब्रह्महत्याकी निवृत्ति करके इन्द्रको पवित्र बनाना॥ ९॥

'तत्पश्चात् जब वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्महत्याने महामनस्वी देवताओंके निकट आकर पूछा—'मेरे लिये कहाँ स्थान बनाओगे'॥ १०॥

'यह सुनकर संतुष्ट एवं प्रसन्न हुए देवताओंने उससे कहा—'दुर्जय शक्तिवाली ब्रह्महत्ये! तू अपने-आपको स्वयं ही चार भागोंमें विभक्त कर दे'॥ ११॥

'महामनस्वी देवताओंका यह कथन सुनकर महेन्द्रके शरीरमें दु:खपूर्वक निवास करनेवाली ब्रह्महत्याने अपना चार भाग कर दिया और इन्द्रके शरीरसे अन्यत्र रहनेके लिये स्थान माँगा॥ १२॥

(वह बोली—) 'मैं अपने एक अंशसे वर्षाके चार महीनोंतक जलसे भरी हुई नदियोंमें निवास करूँगी। उस समय मैं इच्छानुसार विचरनेवाली और दूसरोंके दर्पका दलन करनेवाली होऊँगी॥ १३॥

''दूसरे भागसे मैं सदा सब समय भूमिपर निवास करूँगी, इसमें संदेह नहीं है, यह मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कहती हूँ॥ १४॥

''और मेरा जो यह तीसरा अंश है, इसके साथ मैं युवावस्थासे सुशोभित होनेवाली गर्वीली स्त्रियोंमें प्रतिमास तीन राततक निवास करूँगी और उनके दर्पको नष्ट करती रहूँगी॥ १५॥

''सुरश्रेष्ठगण! जो झूठ बोलकर किसीको कलंकित नहीं करते, ऐसे ब्राह्मणोंका जो लोग वध करते हैं, उनपर मैं अपने चौथे भागसे आक्रमण करूँगी'॥ १६॥

'तब देवताओंने उससे कहा—'दुर्वसे! तू जैसा कहती है, वह सब वैसा ही हो। जाओ अपना अभीष्ट साधन करो'॥ १७॥

'तब देवताओंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सहस्रलोचन इन्द्रकी वन्दना की। इन्द्र निश्चिन्त, निष्पाप एवं विशुद्ध हो गये॥ १८॥

'इन्द्रके अपने पदपर प्रतिष्ठित होते ही सम्पूर्ण जगत्में शान्ति छा गयी। उस समय इन्द्रने उस अद्भुत शक्तिशाली यज्ञकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १९॥

'रघुनन्दन! अश्वमेध-यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है। अत: महाभाग! पृथ्वीनाथ! आप अश्वमेध-यज्ञके द्वारा यजन कीजिये'॥ २०॥

लक्ष्मणके उस उत्तम और अत्यन्त मनोहर वचनको सुनकर महात्मा राजा श्रीरामचन्द्रजी, जो इन्द्रके समान पराक्रमी और बलशाली थे, मन-ही-मन बड़े प्रसन्न एवं संतुष्ट हुए॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणको राजा इलकी कथा सुनाना—इलको एक-एक मासतक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति

लक्ष्मणकी कही हुई यह बात सुनकर बातचीतकी कलामें निपुण महातेजस्वी श्रीरघुनाथजी हँसते हुए बोले— ॥ १ ॥

'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! वृत्रासुरका सारा प्रसंग और अश्वमेध-यज्ञका जो फल तुमने जैसा बताया है, वह सब उसी रूपमें ठीक है॥ २॥

'सौम्य! सुना जाता है कि पूर्वकालमें प्रजापति कर्दमके पुत्र श्रीमान् इल बाह्लिक देशके राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा नरेश थे॥ ३॥

'पुरुषसिंह! वे महायशस्वी भूपाल सारी पृथ्वीको वशमें करके अपने राज्यकी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे॥ ४॥

'सौम्य! रघुनन्दन! परम उदार देवता, महाधनी दैत्य तथा नाग, राक्षस, गन्धर्व और महामनस्वी यक्ष— ये सब भयभीत होकर सदा राजा इलकी स्तुति-पूजा करते थे तथा उन महामना नरेशके रुष्ट हो जानेपर तीनों लोकोंके प्राणी भयसे थर्रा उठते थे॥ ५-६॥

'ऐसे प्रभावशाली होनेपर भी बाह्लीकदेशके स्वामी महायशस्वी परम उदार राजा इल धर्म और पराक्रममें दृढ़तापूर्वक स्थित रहते थे और उनकी बुद्धि भी स्थिर थी॥ ७॥

'एक समयकी बात है सेवक, सेना और सवारियोंसहित उन महाबाहु नरेशने मनोरम चैत्रमासमें एक सुन्दर वनके भीतर शिकार खेलना आरम्भ किया॥ ८॥

'राजाने उस वनमें सैकड़ों-हजारों हिंसक जन्तुओंका वध किया, किंतु इतने ही जन्तुओंका वध करके उन महामनस्वी नरेशको तृप्ति नहीं हुई॥ ९॥

'फिर उन महामना इलके हाथसे नाना प्रकारके दस हजार हिंसक पशु मारे गये। तत्पश्चात् वे उस प्रदेशमें गये, जहाँ महासेन (स्वामी कार्तिकेय)-का जन्म हुआ था॥ १०॥

'उस स्थानमें देवताओंके स्वामी दुर्जय देवता भगवान् शिव अपने समस्त सेवकोंके साथ रहकर गिरिराजकुमारी उमाका मनोरञ्जन करते थे॥ ११॥

'जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न सुशोभित होता है, वे भगवान् उमावल्लभ अपने-आपको भी स्त्रीरूपमें प्रकट करके देवी पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे वहाँके पर्वतीय झरनेके पास उनके साथ विहार करते थे॥ १२॥

'उस वनके विभिन्न भागोंमें जहाँ-जहाँ पुँल्लिङ्ग नामधारी जन्तु अथवा वृक्ष थे, वे सब-के-सब स्त्रीलिङ्गमें परिणत हो गये थे॥ १३॥

'वहाँ जो कुछ भी चराचर प्राणियोंका समूह था, वह सब स्त्रीनामधारी हो गया था। इसी समय कर्दमके पुत्र राजा इल सहस्रों हिंसक पशुओंका वध करते हुए उस देशमें आ गये॥ १४½॥

'वहाँ आकर उन्होंने देखा, सर्प, पशु और पक्षियोंसहित उस वनका सारा प्राणिसमुदाय स्त्रीरूप हो गया है। रघुनन्दन! सेवकोंसहित अपने-आपको भी उन्होंने स्त्रीरूपमें परिणत हुआ देखा॥ १५½॥

'अपनेको उस अवस्थामें देखकर राजाको बड़ा दुःख हुआ। यह सारा कार्य उमावल्लभ महादेवजीकी इच्छासे हुआ है, ऐसा जानकर वे भयभीत हो उठे॥ १६½॥

'तदनन्तर सेवक, सेना और सवारियोंसहित राजा इल जटाजूटधारी महात्मा भगवान् नीलकण्ठकी शरणमें गये'॥ १७½॥

तब पार्वतीदेवीके साथ विराजमान वरदायक देवता महेश्वर हँसकर प्रजापतिपुत्र इलसे स्वयं बोले—॥ १८½॥

'कर्दमकुमार महाबली राजर्षे! उठो-उठो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सौम्य नरेश! पुरुषत्व छोड़कर जो चाहो, वह वर माँग लो'॥ १९½॥

महात्मा भगवान् शङ्करके इस प्रकार पुरुषत्व देनेसे इनकार कर देनेपर स्त्रीरूप हुए राजा इल शोकसे व्याकुल हो गये। उन्होंने उन सुरश्रेष्ठ महादेवजीसे दूसरा कोई वर नहीं ग्रहण किया॥ २०½॥

तदनन्तर महान् शोकसे पीड़ित हो राजाने गिरिराजकुमारी उमादेवीके चरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे प्रणाम करके यह प्रार्थना की—'सम्पूर्ण वरोंकी अधीश्वरी देवि! आप मानिनी हैं। समस्त लोकोंको वर देनेवाली हैं। देवि! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः आप अपनी सौम्य दृष्टिसे मुझपर अनुग्रह कीजिये'॥

'राजर्षि इलके हार्दिक अभिप्रायको जानकर रुद्रप्रिया देवी पार्वतीने महादेवजीके समीप यह शुभ बात कही— ॥ २३½॥

'राजन्! तुम पुरुषत्व-प्राप्तिरूप जो वर चाहते हो,

उसके आधे भागके दाता तो महादेवजी हैं और आधा वर तुम्हें मैं दे सकती हूँ (अर्थात् तुम्हें सम्पूर्ण जीवनके लिये जो स्त्रीत्व मिल गया है, उसे मैं आधे जीवनके लिये पुरुषत्वमें परिवर्तित कर सकती हूँ)। इसलिये तुम मेरा दिया हुआ आधा वर स्वीकार करो। तुम जितने-जितने कालतक स्त्री और पुरुष रहना चाहो, उसे मेरे सामने कहो'॥ २४½ ॥

देवी पार्वतीका वह परम उत्तम और अत्यन्त अद्भुत वर सुनकर राजाके मनमें बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले—'देवि! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं एक मासतक भूतलपर अनुपम रूपवती स्त्रीके रूपमें रहकर फिर एक मासतक पुरुष होकर रहूँ'॥ २५-२६½ ॥

राजाके मनोभावको जानकर सुन्दर मुखवाली पार्वतीदेवीने यह शुभ वचन कहा—'ऐसा ही होगा। राजन्! जब तुम पुरुषरूपमें रहोगे, उस समय तुम्हें अपने स्त्रीजीवनकी याद नहीं रहेगी और जब तुम स्त्रीरूपमें रहोगे, उस समय तुम्हें एक मासतक अपने पुरुषभावका स्मरण नहीं होगा'॥ २७-२८½ ॥

'इस प्रकार कर्दमकुमार राजा इल एक मासतक पुरुष रहकर फिर एक मास त्रिलोकसुन्दरी नारी इलाके रूपमें रहने लगे'॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८७॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

इला और बुधका एक-दूसरेको देखना तथा बुधका उन सब स्त्रियोंको किंपुरुषी नाम देकर पर्वतपर रहनेके लिये आदेश देना

श्रीरामकी कही हुई इलके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली उस कथाको सुनकर लक्ष्मण और भरत दोनों ही बड़े विस्मित हुए॥ १॥

उन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर श्रीरामसे महामना राजा इलके स्त्री-पुरुषभावके विस्तृत वृत्तान्तके विषयमें पुनः पूछा—॥ २॥

'प्रभो! राजा इल स्त्री होकर तो बड़ी दुर्गतिमें पड़ गये होंगे। उन्होंने वह समय कैसे बिताया? और जब वे पुरुषरूपमें रहते थे, तब किस वृत्तिका आश्रय लेते थे?'॥ ३॥

लक्ष्मण और भरतका वह कौतूहलपूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने राजा इलके वृत्तान्तको, जैसा वह उपलब्ध था, उसी रूपमें पुनः सुनाना आरम्भ किया—॥ ४॥

'तदनन्तर उस प्रथम मासमें ही इला त्रिभुवनसुन्दरी नारी होकर वनमें विचरने लगी। जो पहले उसके चरणसेवक थे, वे भी स्त्रीरूपमें परिणत हो गये थे; उन्हीं स्त्रियोंसे घिरी हुई लोकसुन्दरी कमललोचना इला वृक्षों, झाड़ियों और लताओंसे भरे हुए एक वनमें शीघ्र प्रवेश करके पैदल ही सब ओर घूमने लगी॥ ५-६॥

'उस समय सारे वाहनोंको सब ओर छोड़कर इला विस्तृत पर्वतमालाओंके मध्यभागमें भ्रमण करने लगी॥ ७॥

'उस वनप्रान्तमें पर्वतके पास ही एक सुन्दर सरोवर था, जिसमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे॥ ८॥

'उस सरोवरमें सोमपुत्र बुध तपस्या करते थे, जो अपने तेजस्वी शरीरसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे। इलाने उन्हें देखा*॥ ९॥

'वे जलके भीतर तीव्र तपस्यामें संलग्न थे। उन्हें पराभूत करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था। वे यशस्वी, पूर्णकाम और तरुण-अवस्थामें स्थित थे॥ १०॥

'रघुनन्दन! उन्हें देखकर इला चकित हो उठी और जो पहले पुरुष थीं, उन स्त्रियोंके साथ जलमें उतरकर उसने सारे जलाशयको क्षुब्ध कर दिया॥ ११॥

'इलापर दृष्टि पड़ते ही बुध कामदेवके बाणोंका निशाना बन गये। उन्हें अपने तन-मनकी सुध न रही और वे उस समय जलमें विचलित हो उठे॥ १२॥

'इला त्रिलोकीमें सबसे अधिक सुन्दरी थी। उसे देखते हुए बुधका मन उसीमें आसक्त हो गया और वे सोचने लगे, 'यह कौन-सी स्त्री है, जो देवाङ्गनाओंसे

* यह सरोवर उस सीमासे बाहर था, जहाँतकके प्राणी भगवान् शिवके आदेशसे स्त्रीरूप हो गये थे। इसीलिये बुधको स्त्रीत्वकी प्राप्ति नहीं हुई थी।

भी बढ़कर रूपवती है॥ १३॥

''न देववनिताओंमें, न नागवधुओंमें, न असुरोंकी स्त्रियोंमें और न अप्सराओंमें ही मैंने पहले कभी कोई ऐसे मनोहर रूपसे सुशोभित होनेवाली स्त्री देखी है॥

''यदि यह दूसरेको ब्याही न गयी हो तो सर्वथा मेरी पत्नी बननेयोग्य है।' ऐसा विचार वे जलसे निकलकर किनारे आये॥ १५॥

'फिर आश्रममें पहुँचकर उन धर्मात्माने पूर्वोक्त सभी सुन्दरियोंको आवाज देकर बुलाया और उन सबने आकर उन्हें प्रणाम किया॥ १६॥

'तब धर्मात्मा बुधने उन सब स्त्रियोंसे पूछा— 'यह लोकसुन्दरी नारी किसकी पत्नी है और किसलिये यहाँ आयी है? ये सब बातें तुम शीघ्र मुझे बताओ'॥ १७॥

'बुधके मुखसे निकला हुआ वह शुभवचन मधुर पदावलीसे युक्त तथा मीठा था। उसे सुनकर उन सब स्त्रियोंने मधुर वाणीमें कहा—॥ १८॥

''ब्रह्मन्! यह सुन्दरी हमारी सदाकी स्वामिनी है। इसका कोई पति नहीं है। यह हमलोगोंके साथ अपनी इच्छाके अनुसार वनप्रान्तमें विचरती रहती है'॥ १९॥

'उन स्त्रियोंका वचन सब प्रकारसे सुस्पष्ट था। उसे सुनकर ब्राह्मण बुधने पुण्यमयी आवर्तनी विद्याका आवर्तन (स्मरण) किया॥ २०॥

'उस राजाके विषयकी सारी बातें यथार्थरूपसे जानकर मुनिवर बुधने उन सभी स्त्रियोंसे कहा—॥

''तुम सब लोग किंपुरुषी (किन्नरी) होकर पर्वतके किनारे रहोगी। इस पर्वतपर शीघ्र ही अपने लिये निवासस्थान बना लो॥ २२॥

''पत्र और फल-मूलसे ही तुम सबको सदा जीवन-निर्वाह करना होगा। आगे चलकर तुम सभी स्त्रियाँ किंपुरुष नामक पतियोंको प्राप्त कर लोगी'॥ २३॥

'किंपुरुषी नामसे प्रसिद्ध हुई वे स्त्रियाँ सोमपुत्र बुधकी उपर्युक्त बात सुनकर उस पर्वतपर रहने लगीं। उन स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक थी॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ सर्ग

बुध और इलाका समागम तथा पुरूरवाकी उत्पत्ति

किंपुरुषजातिकी उत्पत्तिका यह प्रसंग सुनकर लक्ष्मण और भरत दोनोंने महाराज श्रीरामसे कहा—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है'॥ १॥

तदनन्तर महायशस्वी धर्मात्मा श्रीरामने प्रजापति कर्दमके पुत्र इलकी इस कथाको फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २॥

'वे सब किन्नरियाँ पर्वतके किनारे चली गयीं। यह देख मुनिश्रेष्ठ बुधने उस रूपवती स्त्रीसे हँसते हुए-से कहा—॥ ३॥

''सुमुखि! मैं सोमदेवताका परम प्रिय पुत्र हूँ। वरारोहे! मुझे अनुराग और स्नेहभरी दृष्टिसे देखकर अपनाओ'॥ ४॥

'स्वजनोंसे रहित उस सूने स्थानमें बुधकी यह बात सुनकर इला उन परम सुन्दर महातेजस्वी बुधसे इस प्रकार बोली—॥ ५॥

''सौम्य सोमकुमार! मैं अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाली (स्वतन्त्र) हूँ, किंतु इस समय आपकी आज्ञाके अधीन हो रही हूँ; अत: मुझे उचित सेवाके लिये आदेश दीजिये और जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये'॥ ६॥

'इलाका यह अद्भुत वचन सुनकर कामासक्त सोमपुत्रको बड़ा हर्ष हुआ। वे उसके साथ रमण करने लगे॥ ७॥

'मनोहर मुखवाली इलाके साथ अतिशय रमण करनेवाले कामासक्त बुधका वैशाख मास एक क्षणके समान बीत गया॥ ८॥

'एक मास पूर्ण होनेपर पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले प्रजापति-पुत्र श्रीमान् इल अपनी शय्यापर जाग उठे॥ ९॥

'उन्होंने देखा, सोमपुत्र बुध वहाँ जलाशयमें तप कर रहे हैं। उनकी भुजाएँ ऊपरको उठी हुई हैं और वे निराधार खड़े हैं। उस समय राजाने बुधसे पूछा—॥ १०॥

''भगवन्! मैं अपने सेवकोंके साथ दुर्गम पर्वतपर आ गया था, परंतु यहाँ मुझे अपनी वह सेना नहीं दिखायी देती है। पता नहीं, वे मेरे सैनिक कहाँ चले गये?'॥ ११॥

'राजर्षि इलकी स्त्रीत्व-प्राप्तिविषयक स्मृति नष्ट हो गयी थी। उनकी बात सुनकर बुध उत्तम वाणीद्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए यह शुभ वचन बोले—॥ १२॥

"राजन्! आपके सारे सेवक ओलोंकी भारी वर्षासे मारे गये। आप भी आँधी-पानीके भयसे पीड़ित हो इस आश्रममें आकर सो गये थे॥ १३॥

"वीर! अब आप धैर्य धारण करें। आपका कल्याण हो। आप निर्भय और निश्चिन्त होकर फल-मूलका आहार करते हुए यहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिये'॥ १४॥

'बुधके इस वचनसे परम बुद्धिमान् राजा इलको बड़ा आश्वासन मिला, परंतु अपने सेवकोंके नष्ट होनेसे वे बहुत दुःखी थे; इसलिये उनसे इस प्रकार बोले—॥ १५॥

"ब्रह्मन्! मैं सेवकोंसे रहित हो जानेपर भी राज्यका परित्याग नहीं करूँगा। अब क्षणभर भी मुझसे यहाँ नहीं रहा जायगा; अतः मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये॥ १६॥

"ब्रह्मन्! मेरे धर्मपरायण ज्येष्ठ पुत्र बड़े यशस्वी हैं। उनका नाम शशबिन्दु है। जब मैं वहाँ जाकर उनका अभिषेक करूँगा, तभी वे मेरा राज्य ग्रहण करेंगे॥ १७॥

"महातेजस्वी मुने! देशमें जो मेरे सेवक और स्त्री, पुत्र आदि परिवारके लोग सुखसे रह रहे हैं, उन सबको छोड़कर मैं यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। अतः मुझसे ऐसी कोई अशुभ बात आप न कहें, जिससे स्वजनोंसे बिछुड़कर मुझे यहाँ दुःखपूर्वक रहनेके लिये विवश होना पड़े'॥ १८॥

'राजेन्द्र इलके ऐसा कहनेपर बुधने उन्हें सान्त्वना देते हुए अत्यन्त अद्भुत बात कही—'राजन्! तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहना स्वीकार करो। कर्दमके महाबली पुत्र! तुम्हें संताप नहीं करना चाहिये। जब तुम एक वर्षतक यहाँ निवास कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा'॥ १९-२०॥

'पुण्यकर्मा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी महात्माके कथनानुसार राजाने वहाँ रहनेका निश्चय किया॥ २१॥

'वे एक मासतक स्त्री होकर निरन्तर बुधके साथ रमण करते और फिर एक मासतक पुरुष होकर धर्मानुष्ठानमें मन लगाते थे॥ २२॥

'तदनन्तर नवें मासमें सुन्दरी इलाने सोमपुत्र बुधसे एक पुत्रको जन्म दिया, जो बड़ा ही तेजस्वी और बलवान् था। उसका नाम था पुरूरवा॥ २३॥

'उसके उस महाबली पुत्रकी अङ्गकान्ति बुधके ही समान थी। वह जन्म लेते ही उपनयनके योग्य अवस्थाका बालक हो गया, इसलिये सुन्दरी इलाने उसे पिताके हाथमें सौंप दिया॥ २४॥

'वर्ष पूरा होनेमें जितने मास शेष थे, उतने समयतक जब-जब राजा पुरुष होते थे, तब-तब मनको वशमें रखनेवाले बुध धर्मयुक्त कथाओंद्वारा उनका मनोरञ्जन करते थे'॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ सर्ग

अश्वमेधके अनुष्ठानसे इलाको पुरुषत्वकी प्राप्ति

श्रीरामचन्द्रजी जब पुरूरवाके जन्मकी अद्भुत कथा कह गये, तब लक्ष्मण तथा महायशस्वी भरतने पुनः पूछा—॥ १॥

'नरश्रेष्ठ! सोमपुत्र बुधके यहाँ एक वर्षतक निवास करनेके पश्चात् इलाने क्या किया, यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें'॥ २॥

प्रश्न करते समय उन दोनों भाइयोंकी वाणीमें बड़ा माधुर्य था। उसे सुनकर श्रीरामने प्रजापतिपुत्र इलके विषयमें फिर इस प्रकार कथा आरम्भ की—॥ ३॥

'शूरवीर! इल जब एक मासके लिये पुरुषभावको प्राप्त हुए, तब परम बुद्धिमान् महायशस्वी बुधने परम उदार महात्मा संवर्तको बुलाया॥ ४॥

'भृगुपुत्र च्यवन मुनि, अरिष्टनेमि, प्रमोदन, मोदकर और दुर्वासा मुनिको भी आमन्त्रित किया॥ ५॥

'इन सबको बुलाकर बातचीतकी कला जाननेवाले तत्त्वदर्शी बुधने धैर्यसे एकाग्रचित्त रहनेवाले इन सभी सुहृदोंसे कहा—॥ ६॥

"ये महाबाहु राजा इल प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। इनकी जैसी स्थिति है, इसे आप सब लोग जानते हैं। अतः इस विषयमें ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे इनका कल्याण हो'॥ ७॥

'वे सब इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि महात्मा द्विजोंके साथ महातेजस्वी प्रजापति कर्दम भी उस आश्रमपर आ पहुँचे॥ ८॥

'साथ ही पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार तथा महातेजस्वी ओंकार भी उस आश्रमपर पधारे॥ ९॥

'परस्पर मिलनेपर वे सभी महर्षि प्रसन्नचित्त हो बाह्लिकदेशके स्वामी राजा इलका हित चाहते हुए भिन्न-

भिन्न प्रकारकी राय देने लगे॥ १०॥

'तब कर्दमने पुत्रके लिये अत्यन्त हितकर बात कही—'ब्राह्मणो! आपलोग मेरी बात सुनें, जो इस राजाके लिये कल्याणकारिणी होगी॥ ११॥

''मैं भगवान् शङ्करके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो इस रोगकी दवा कर सके तथा अश्वमेध-यज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा यज्ञ नहीं है, जो महात्मा महादेवजीको प्रिय हो॥ १२॥

''अत: हम सब लोग राजा इलके हितके लिये उस दुष्कर यज्ञका अनुष्ठान करें।' कर्दमके ऐसा कहनेपर उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने भगवान् रुद्रकी आराधनाके लिये उस यज्ञका अनुष्ठान ही अच्छा समझा॥ १३½॥

'संवर्तके शिष्य तथा शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले सुप्रसिद्ध राजर्षि मरुत्तने उस यज्ञका आयोजन किया॥

'फिर तो बुधके आश्रमके निकट वह महान् यज्ञ सम्पन्न हुआ तथा उससे महायशस्वी रुद्रदेवको बड़ा संतोष प्राप्त हुआ॥ १५½॥

'यज्ञ समाप्त होनेपर परमानन्दसे परिपूर्णचित्त हुए भगवान् उमापतिने इलके पास ही उन सब ब्राह्मणोंसे कहा—॥ १६½॥

''द्विजश्रेष्ठगण! मैं तुम्हारी भक्ति तथा इस अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानसे बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ, मैं बाह्लिकनरेश इलका कौन-सा शुभ एवं प्रिय कार्य करूँ?'॥ १७½॥

'देवेश्वर शिवके ऐसा कहनेपर वे सब ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो उन देवाधिदेवको इस तरह प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे, जिससे नारी इला सदाके लिये पुरुष इल हो जाय॥ १८½॥

'तब प्रसन्न हुए महातेजस्वी महादेवजीने इलाको सदाके लिये पुरुषत्व प्रदान कर दिया और ऐसा करके वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १९½॥

'अश्वमेध-यज्ञ समाप्त होनेपर जब महादेवजी दर्शन देकर अदृश्य हो गये, तब वे सब दीर्घदर्शी ब्राह्मण जैसे आये थे, वैसे लौट गये॥ २०½॥

'राजा इलने बाह्लिकदेशको छोड़कर मध्य-देशमें (गङ्गा-यमुनाके संगमके निकट) एक परम उत्तम एवं यशस्वी नगर बसाया, जिसका नाम था प्रतिष्ठानपुर*॥ २१½॥

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले राजर्षि शशबिन्दुने बाह्लिकदेशका राज्य ग्रहण किया और प्रजापति कर्दमके पुत्र बलवान् राजा इल प्रतिष्ठानपुरके शासक हुए॥

'समय आनेपर राजा इल शरीर छोड़कर परम उत्तम ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए और इलाके पुत्र राजा पुरूरवाने प्रतिष्ठानपुरका राज्य प्राप्त किया॥ २३½॥

'पुरुषश्रेष्ठ भरत और लक्ष्मण! अश्वमेध-यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है। जो स्त्रीरूप हो गये थे, उन राजा इलने इस यज्ञके प्रभावसे पुरुषत्व प्राप्त कर लिया तथा और भी दुर्लभ वस्तुएँ हस्तगत कर लीं'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९०॥

इक्यानबेवाँ सर्ग

श्रीरामके आदेशसे अश्वमेध-यज्ञकी तैयारी

अपने दोनों भाइयोंको यह कथा सुनाकर अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे पुन: यह धर्मयुक्त बात कही—॥ १॥

'लक्ष्मण! मैं अश्वमेध-यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य एवं सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि सभी द्विजोंको बुलाकर और उनसे सलाह लेकर पूरी सावधानीके साथ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़ा छोड़ूँगा'॥ २-३॥

रघुनाथजीके कहे हुए इस वचनको सुनकर शीघ्रगामी लक्ष्मणने समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीसे मिलाया॥ ४॥

उन ब्राह्मणोंने देखा, देवतुल्य तेजस्वी और अत्यन्त दुर्जय श्रीराघवेन्द्र हमारे चरणोंमें प्रणाम करके खड़े हैं, तब उन्होंने शुभ-आशीर्वादोंद्वारा उनका सत्कार किया॥ ५॥

उस समय रघुकुलभूषण श्रीराम हाथ जोड़कर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे अश्वमेध-यज्ञके विषयमें धर्मयुक्त श्रेष्ठ वचन बोले—॥ ६॥

वे सब ब्राह्मण भी श्रीरामकी वह बात सुनकर भगवान् शंकरको प्रणाम करके सब प्रकारसे अश्वमेध-यज्ञकी सराहना करने लगे॥ ७॥

अश्वमेध-यज्ञके विषयमें उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका

* प्रयागसे पूर्व गङ्गाके तटपर बसा हुआ वर्तमान झूँसी नामक स्थान ही प्राचीनकालका प्रतिष्ठानपुर है।

अद्भुत ज्ञानसे युक्त वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ८॥

उस कर्मके लिये उन ब्राह्मणोंकी स्वीकृति जानकर श्रीराम लक्ष्मणसे बोले—'महाबाहो! तुम महात्मा वानरराज सुग्रीवके पास यह संदेश भेजो कि 'कपिश्रेष्ठ! तुम बहुत-से विशालकाय वनवासी वानरोंके साथ यहाँ यज्ञ-महोत्सवका आनन्द लेनेके लिये आओ। तुम्हारा कल्याण हो'॥ ९-१०॥

'साथ ही अतुल पराक्रमी विभीषणको भी यह सूचना दो कि 'वे इच्छानुसार चलनेवाले बहुत-से राक्षसोंके साथ हमारे महान् अश्वमेध-यज्ञमें पधारें'॥ ११॥

'इनके सिवा मेरा प्रिय करनेकी इच्छावाले जो महाभाग राजा हैं, वे भी यज्ञ-भूमि देखनेके लिये सेवकोंसहित शीघ्र यहाँ आवें॥ १२॥

'लक्ष्मण! जो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण कार्यवश दूसरे-दूसरे देशोंमें चले गये हैं, उन सबको अपने अश्वमेध-यज्ञके लिये आमन्त्रित करो॥ १३॥

'महाबाहो! तपोधन ऋषियोंको तथा अन्य राज्यमें रहनेवाले स्त्रियोंसहित समस्त ब्रह्मर्षियोंको भी बुला लो॥

'महाबाहो! ताल लेकर रंगभूमिमें संचरण करनेवाले सूत्रधार तथा नट और नर्तक भी बुला लिये जायँ। नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर विशाल यज्ञमण्डप बनानेकी आज्ञा दो; क्योंकि वह वन बहुत ही उत्तम और पवित्र स्थान है॥ १५ $\frac{१}{२}$ ॥

'महाबाहु रघुनन्दन! वहाँ यज्ञकी निर्विघ्न-समाप्तिके लिये सर्वत्र शान्ति-विधान प्रारम्भ करा दो। नैमिषारण्यमें सैकड़ों धर्मज्ञ पुरुष उस परम उत्तम और श्रेष्ठ महायज्ञको देखकर कृतार्थ हों॥ १६-१७॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण! शीघ्र लोगोंको आमन्त्रित करो और जो लोग आवें, वे सब विधिपूर्वक तुष्ट, पुष्ट एवं सम्मानित होकर लौटें॥ १८॥

'महाबली सुमित्राकुमार! लाखों बोझ ढोनेवाले पशु खड़े दानेवाले चावल लेकर और दस हजार पशु तिल, मूँग, चना, कुल्थी, उड़द और नमकके बोझ लेकर आगे चलें॥ १९ $\frac{१}{२}$ ॥

'इसीके अनुरूप घी, तेल, दूध, दही तथा बिना घिसे हुए चन्दन और बिना पिसे हुए सुगन्धित पदार्थ भी भेजे जाने चाहिये। भरत सौ करोड़से भी अधिक सोने-चाँदीके सिक्के साथ लेकर पहले ही जायँ और बड़ी सावधानीके साथ यात्रा करें॥ २०-२१॥

'मार्गमें आवश्यक वस्तुओंके क्रय-विक्रयके लिये जगह-जगह बाजारें भी लगनी चाहिये; अतः इसके प्रवर्तक वणिक् एवं व्यवसायीलोग भी यात्रा करें। समस्त नट और नर्तक भी जायँ। बहुत-से रसोइये तथा सदा युवावस्थासे सुशोभित होनेवाली स्त्रियाँ भी यात्रा करें॥ २२॥

'भरतके साथ आगे-आगे सेनाएँ भी जायँ। महायशस्वी भरत शास्त्रवेत्ता विद्वानों, बालकों, वृद्धों, एकाग्र चित्तवाले ब्राह्मणों, काम करनेवाले नौकरों, बढ़इयों, कोषाध्यक्षों, वैदिकों, मेरी सब माताओं, कुमारोंके अन्तःपुरों (भरत आदिकी स्त्रियों), मेरी पत्नीकी सुवर्णमयी प्रतिमा तथा यज्ञकर्मकी दीक्षाके जानकार ब्राह्मणोंको आगे करके पहले ही यात्रा करें'॥ २३—२५॥

तत्पश्चात् महाबली नरश्रेष्ठ श्रीरामने सेवकोंसहित महातेजस्वी नरेशोंके ठहरनेके लिये बहुमूल्य वासस्थान बनाने (खेमे आदि लगाने)-के लिये आदेश दिया तथा सेवकोंसहित उन महात्मा नरेशोंके लिये अन्न-पान एवं वस्त्र आदिकी भी व्यवस्था करायी॥ २६ $\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर शत्रुघ्नसहित भरतने नैमिषारण्यको प्रस्थान किया। उस समय वहाँ सुग्रीवसहित महात्मा वानर जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ उपस्थित थे, उन सबको रसोई परोसनेका काम करते थे॥ २७-२८॥

स्त्रियों तथा बहुत-से राक्षसोंके साथ विभीषण उग्र तपस्वी महात्मा मुनियोंके स्वागत-सत्कारका काम सँभालते थे॥ २९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ सर्ग

श्रीरामके अश्वमेध-यज्ञमें दान-मानकी विशेषता

इस प्रकार सब सामग्री पूर्णरूपसे भेजकर भरतके बड़े भाई श्रीरामने उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न तथा कृष्णसार मृगके समान काले रंगवाले एक घोड़ेको छोड़ा॥ १॥

ऋत्विजोंसहित लक्ष्मणको उस अश्वकी रक्षाके लिये नियुक्त करके श्रीरघुनाथजी सेनाके साथ नैमिषारण्यको गये॥ २॥

वहाँ बने हुए अत्यन्त अद्भुत यज्ञ-मण्डपको देखकर महाबाहु श्रीरामको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई

और वे बोले—'बहुत सुन्दर है'॥ ३॥

नैमिषारण्यमें निवास करते समय श्रीरामचन्द्रजीके पास भूमण्डलके सभी नरेश भाँति-भाँतिके उपहार ले आये और श्रीरामचन्द्रजीने उन सबका स्वागत-सत्कार किया॥

उन्हें अन्न, पान, वस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक सामान दिये गये। शत्रुघ्नसहित भरत उन राजाओंके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त किये गये थे॥ ५॥

सुग्रीवसहित महामनस्वी वानर परम पवित्र एवं संयतचित्त हो उस समय वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन परोसते थे॥ ६॥

बहुतेरे राक्षसोंसे घिरे हुए विभीषण अत्यन्त सावधान रहकर उग्र तपस्वी ऋषियोंके सेवाकार्यमें संलग्न थे॥ ७॥

महाबली नरश्रेष्ठ श्रीरामने सेवकोंसहित महामनस्वी भूपालोंको ठहरनेके लिये बहुमूल्य वासस्थान (खेमे) दिये॥ ८॥

इस प्रकार सुन्दर ढंगसे अश्वमेध-यज्ञका कार्य प्रारम्भ हुआ और लक्ष्मणके संरक्षणमें रहकर घोड़ेके भूमण्डलमें भ्रमणका कार्य भी भलीभाँति सम्पन्न हो गया॥ ९॥

राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी महात्मा श्रीरघुनाथजीका वह श्रेष्ठ यज्ञ इस प्रकार उत्तम विधिसे होने लगा। उस अश्वमेध-यज्ञमें केवल एक ही बात सब ओर सुनायी पड़ती थी—जबतक याचक संतुष्ट न हों, तबतक उनकी इच्छाके अनुसार सब वस्तुएँ दिये जाओ, इसके सिवा दूसरी बात नहीं सुनायी देती थी। इस प्रकार महात्मा श्रीरामके श्रेष्ठ यज्ञमें नाना प्रकारके गुड़के बने हुए खाद्य पदार्थ और खाण्डव आदि तबतक निरन्तर दिये जाते थे जबतक कि पानेवाले पूर्णतः संतुष्ट होकर बस न कर दें॥ १०-११½॥

जबतक याचकोंके मनकी बात ओठसे बाहर नहीं निकलने पाती थी, तबतक ही राक्षस और वानर उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दे देते थे। यह बात सबने देखी॥ १२½॥

राजा श्रीरामके उस श्रेष्ठ यज्ञमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भरे हुए थे, वहाँ कोई भी मलिन, दीन अथवा दुर्बल नहीं दिखायी देता था॥ १३½॥

उस यज्ञमें जो चिरजीवी महात्मा मुनि पधारे थे, उन्हें ऐसे किसी भी यज्ञका स्मरण नहीं था, जिसमें दानकी ऐसी धूम रही हो। वह यज्ञ दानराशिसे पूर्णतः अलंकृत दिखायी देता था॥ १४½॥

जिसे सुवर्णकी आवश्यकता थी, वह सुवर्ण पाता था, धन चाहनेवालेको धन मिलता था और रत्नकी इच्छावालेको रत्न॥ १५½॥

वहाँ निरन्तर दिये जानेवाले चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रोंके ढेर लगे दिखायी देते थे॥ १६½॥

वहाँ आये हुए तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके यहाँ भी नहीं देखा गया॥ १७½॥

वानर और राक्षस सर्वत्र हाथोंमें देनेकी सामग्री लिये खड़े रहते थे और वस्त्र, धन तथा अन्नकी इच्छा रखनेवाले याचकोंको अधिक-से-अधिक देते थे॥ १८½॥

राजसिंह भगवान् श्रीरामका ऐसा सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ एक वर्षसे भी अधिक कालतक चलता रहा। उसमें कभी किसी बातकी कमी नहीं हुई॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ सर्ग

श्रीरामके यज्ञमें महर्षि वाल्मीकिका आगमन और उनका रामायणगानके लिये कुश और लवको आदेश

इस प्रकार वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ जब चालू हुआ, उस समय भगवान् वाल्मीकि मुनि अपने शिष्योंके साथ उसमें शीघ्रतापूर्वक पधारे॥ १॥

उन्होंने उस दिव्य एवं अद्भुत यज्ञका दर्शन किया और ऋषियोंके लिये जो बाड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने लिये भी सुन्दर पर्णशालाएँ बनवायीं॥ २॥

वाल्मीकिजीके सुन्दर बाड़ेके समीप अन्न आदिसे भरे-पूरे बहुत-से छकड़े खड़े कर दिये गये थे। साथ ही अच्छे-अच्छे फल और मूल भी रख दिये गये थे॥ ३॥

राजा श्रीराम तथा बहुसंख्यक महात्मा मुनियोंद्वारा भलीभाँति पूजित एवं सम्मानित हो महातेजस्वी आत्मज्ञानी वाल्मीकि मुनिने बड़े सुखसे वहाँ निवास किया॥ ४॥

उन्होंने अपने हृष्ट-पुष्ट दो शिष्योंसे कहा—'तुम दोनों भाई एकाग्रचित्त हो सब ओर घूम-फिरकर बड़े आनन्दके साथ सम्पूर्ण रामायण-काव्यका गान करो॥ ५॥

'ऋषियों और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, गलियोंमें, राजमार्गोंपर तथा राजाओंके वासस्थानोंमें भी इस काव्यका गान करना॥ ६॥

'श्रीरामचन्द्रजीका जो गृह बना है, उसके दरवाजेपर, जहाँ ब्राह्मणलोग यज्ञकार्य कर रहे हैं, वहाँ तथा ऋत्विजोंके आगे भी इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिये॥ ७॥

'यहाँ पर्वतके शिखरोंपर नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं मीठे फल लगे हैं, (भूख लगनेपर) उनका स्वाद ले-लेकर इस काव्यका गान करते रहना॥ ८॥

'बच्चो! यहाँके सुमधुर फल-मूलोंका भक्षण करनेसे न तो तुम्हें कभी थकावट होगी और न तुम्हारे गलेकी मधुरता ही नष्ट होने पायेगी॥ ९॥

'यदि महाराज श्रीराम तुम दोनोंको गान सुननेके लिये बुलावें तो तुम उनसे तथा वहाँ बैठे हुए ऋषि-मुनियोंसे यथायोग्य विनयपूर्ण बर्ताव करना॥ १०॥

'मैंने पहले भिन्न-भिन्न संख्यावाले श्लोकोंसे युक्त रामायण काव्यके सर्गोंका जिस तरह तुम्हें उपदेश दिया है, उसीके अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस सर्गोंका मधुर स्वरसे गान करना॥ ११॥

'धनकी इच्छासे थोड़ा-सा भी लोभ न करना, आश्रममें रहकर फल-मूल भोजन करनेवाले वनवासियोंको धनसे क्या काम?॥ १२॥

'यदि श्रीरघुनाथजी पूछें—'बच्चो! तुम दोनों किसके पुत्र हो?' तो तुम दोनों महाराजसे इतना ही कह देना कि हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके शिष्य हैं॥ १३॥

'ये वीणाके सात तार हैं। इनसे बड़ी मधुर आवाज निकलती है। इसमें अपूर्व स्वरोंका प्रदर्शन करनेवाले ये स्थान बने हैं। इनके स्वरोंको झंकृत करके—मिलाकर सुमधुर स्वरमें तुम दोनों भाई काव्यका गान करो और सर्वथा निश्चिन्त रहो॥ १४॥

'आरम्भसे ही इस काव्यका गान करना चाहिये। तुमलोग ऐसा कोई बर्ताव न करना, जिससे राजाका अपमान हो; क्योंकि राजा धर्मकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका पिता होता है॥ १५॥

'अतएव तुम दोनों भाई प्रसन्न और एकाग्रचित्त होकर कल सबेरेसे ही वीणाके लयपर मधुर स्वरसे रामायण-गान आरम्भ कर दो'॥ १६॥

इस तरह बहुत कुछ आदेश देकर वरुणके पुत्र परम उदार महामुनि वाल्मीकि चुप हो गये॥ १७॥

मुनिके इस प्रकार आदेश देनेपर मिथिलेशकुमारी सीताके वे दोनों शत्रुदमन पुत्र 'बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे' यह कहकर वहाँसे चल दिये॥ १८॥

शुक्राचार्यकी बनायी हुई नीतिसंहिताको धारण करनेवाले अश्विनीकुमारोंकी भाँति ऋषिकी कही हुई उस अद्भुत वाणीको हृदयमें धारण करके वे दोनों कुमार मन-ही-मन उत्कण्ठित हो वहाँ रातभर सुखसे रहे॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ सर्ग

लव-कुशद्वारा रामायण-काव्यका गान तथा श्रीरामका उसे भरी सभामें सुनना

रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब स्नान-संध्याके पश्चात् समिधा-होमका कार्य पूरा करके वे दोनों भाई ऋषिके बताये अनुसार वहाँ सम्पूर्ण रामायणका गान करने लगे॥ १॥

श्रीरघुनाथजीने भी वह गान सुना, जो पूर्ववर्ती आचार्योंके बताये हुए नियमोंके अनुकूल था। संगीतकी विशेषताओंसे युक्त स्वरोंके अलापनेकी अपूर्व शैली थी॥ २॥

बहुसंख्यक प्रमाणों—ध्वनिपरिच्छेदके साधनभूत द्रुत, मध्य और विलम्बित—इन तीनोंकी आवृत्तियों अथवा सप्तविध स्वरोंके भेदकी सिद्धिके लिये बने हुए स्थानोंसे बँधा और वीणाकी लयसे मिलता हुआ उन दोनों बालकोंका वह मधुर गान सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा कौतूहल हुआ॥ ३॥

तदनन्तर पुरुषसिंह राजा श्रीरामने कर्मानुष्ठानसे अवकाश मिलनेपर बड़े-बड़े मुनियों, राजाओं, वेदवेत्ता पण्डितों, पौराणिकों, वैयाकरणों, बड़े-बूढ़े ब्राह्मणों, स्वरों और लक्षणोंके ज्ञाताओं, गीत सुननेके लिये उत्सुक द्विजों, सामुद्रिक लक्षणों तथा संगीत-विद्याके जानकारों, विशेषत: निगमागमके विद्वानों अथवा पुरवासियों, भिन्न-भिन्न छन्दोंके चरणों, उनके गुरु-लघु अक्षरों तथा उनके सम्बन्धोंका ज्ञान रखनेवाले पण्डितों, वैदिक छन्दोंके परिनिष्ठित विद्वानों, स्वरोंकी ह्रस्व, दीर्घ आदि मात्राओंके विशेषज्ञों, ज्योतिष विद्याके पारंगत पण्डितों, कर्मकाण्डियों, कार्यकुशल पुरुषों, विभिन्न भाषाओं

और चेष्टा तथा संकेतोंको समझनेवाले पुरुषों एवं सारे महाजनोंको बुलवाया॥ ४—७½ ॥

इतना ही नहीं, तर्कके प्रयोगमें निपुण नैयायिकों, युक्तिवादी एवं बहुज्ञ विद्वानों, छन्दों, पुराणों और वेदोंके ज्ञाता द्विजवरों, चित्रकलाके जानकारों, धर्मशास्त्रके अनुकूल सदाचारके ज्ञाताओं, दर्शन एवं कल्पसूत्रके विद्वानों, नृत्य और गीतमें प्रवीण पुरुषों, विभिन्न शास्त्रोंके ज्ञाताओं, नीति-निपुण पुरुषों तथा वेदान्तके अर्थको प्रकाशित करनेवाले ब्रह्मवेत्ताओंको भी वहाँ बुलवाया। इन सबको एकत्र करके भगवान् श्रीरामने रामायण-गान करनेवाले उन दोनों बालकोंको सभामें बुलाकर बिठाया॥ ८—१० ॥

सभासदोंमें श्रोताओंका हर्ष बढ़ानेवाली बातें होने लगीं। उसी समय दोनों मुनिकुमारोंने गाना आरम्भ किया॥ ११ ॥

फिर तो मधुर संगीतका तार बँध गया। बड़ा अलौकिक गान था। गेय वस्तुकी विशेषताओंके कारण सभी श्रोता मुग्ध होकर सुनने लगे। किसीको तृप्ति नहीं होती थी॥ १२ ॥

मुनियोंके समुदाय और महापराक्रमी भूपाल सभी आनन्दमग्न होकर उन दोनोंकी ओर बारम्बार इस तरह देख रहे थे, मानो उनकी रूपमाधुरीको नेत्रोंसे पी रहे हैं॥ १३ ॥

वे सब एकाग्रचित्त हो परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'इन दोनों कुमारोंकी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बिलकुल मिलती-जुलती है। ये बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्बके समान जान पड़ते हैं॥ १४ ॥

'यदि इनके सिरपर जटा न होती और ये वल्कल न पहने होते तो हमें श्रीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता'॥ १५ ॥

नगर और जनपदमें निवास करनेवाले मनुष्य जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय नारदजीके द्वारा प्रदर्शित प्रथम सर्ग—मूल-रामायणका आरम्भसे ही गान प्रारम्भ हुआ॥ १६ ॥

वहाँसे लेकर बीस सर्गोंतकका उन्होंने गान किया। तत्पश्चात् अपराह्णका समय हो गया। उतनी देरमें बीस सर्गोंका गान सुनकर भ्रातृवत्सल श्रीरघुनाथजीने भाई भरतसे कहा—'काकुत्स्थ! तुम इन दोनों महात्मा बालकोंको अठारह हजार स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कारके रूपमें शीघ्र प्रदान करो। इसके सिवा यदि और किसी वस्तुके लिये इनकी इच्छा हो तो उसे भी शीघ्र ही दे दो'॥ १७-१८½ ॥

आज्ञा पाकर भरत शीघ्र ही उन दोनों बालकोंको अलग-अलग स्वर्ण-मुद्राएँ देने लगे; किंतु उस दिये जाते हुए सुवर्णको कुश और लवने नहीं ग्रहण किया॥ १९½ ॥

वे दोनों महामनस्वी बन्धु विस्मित होकर बोले—'इस धनकी क्या आवश्यकता है। हम वनवासी हैं। जंगली फल-मूलसे जीवन-निर्वाह करते हैं। सोना-चाँदी वनमें ले जाकर क्या करेंगे?'॥ २०-२१ ॥

उनके ऐसा कहनेपर सब श्रोताओंके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। श्रोता और श्रीराम सभी आश्चर्यचकित हो गये॥ २२ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी यह सुननेके लिये उत्सुक हुए कि इस काव्यकी उपलब्धि कहाँसे हुई है। फिर उन महातेजस्वी रघुनाथजीने दोनों मुनिकुमारोंसे पूछा—॥

'इस महाकाव्यकी श्लोक-संख्या कितनी है? इसके रचयिता महात्मा कविका आवासस्थान कौन-सा है? इस महान् काव्यके कर्ता कौन मुनीश्वर हैं और वे कहाँ हैं?'॥ २४ ॥

इस प्रकार पूछते हुए श्रीरघुनाथजीसे वे दोनों मुनिकुमार बोले—'महाराज! जिस काव्यके द्वारा आपके इस सम्पूर्ण चरित्रका प्रदर्शन कराया गया है, उसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं और वे इस यज्ञस्थलमें पधारे हुए हैं॥ २५ ॥

'उन तपस्वी कविके बनाये हुए इस महाकाव्यमें चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं॥ २६ ॥

'राजन्! उन महात्माने आदिसे लेकर अन्ततक पाँच सौ सर्ग तथा छः काण्डोंका निर्माण किया है। इनके सिवा उन्होंने उत्तरकाण्डकी भी रचना की है॥ २७ ॥

'हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकिने ही उन सबका निर्माण किया है। उन्हींने आपके चरित्रको महाकाव्यका रूप दिया है। इसमें आपके जीवनतककी सारी बातें आ गयी हैं॥ २८ ॥

'महारथी नरेश! यदि आपने इसे सुननेका विचार किया हो तो यज्ञ-कर्मसे अवकाश मिलनेपर इसके लिये निश्चित समय निकालिये और अपने भाइयोंके साथ बैठकर इसे नियमितरूपसे सुनिये'॥ २९ ॥

'तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'बहुत अच्छा। हम इस काव्यको सुनेंगे।' तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा ले दोनों भाई कुश और लव प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकिजी ठहरे हुए थे॥ ३० ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी महात्मा मुनियों और राजाओंके साथ उस मधुर संगीतको सुनकर कर्मशाला (यज्ञमण्डप) में चले गये॥ ३१ ॥

इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय सर्गोंसे युक्त सुन्दर स्वर एवं मधुर शब्दोंसे पूर्ण, ताल और लयसे सम्पन्न तथा वीणाके लयकी व्यञ्जनासे युक्त वह काव्यगान, जिसे कुश और लवने गाया था, श्रीरामने सुना॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९४॥

पञ्चानबेवाँ सर्ग

श्रीरामका सीतासे उनकी शुद्धता प्रमाणित करनेके लिये शपथ करानेका विचार

इस प्रकार श्रीरघुनाथजी ऋषियों, राजाओं और वानरोंके साथ कई दिनोंतक वह उत्तम रामायण-गान सुनते रहे॥ १॥

उस कथासे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि 'कुश और लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं।' यह जानकर सभाके बीचमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीने शुद्ध आचार-विचारवाले दूतोंको बुलाया और अपनी बुद्धिसे विचारकर कहा—'तुमलोग यहाँसे भगवान् वाल्मीकि मुनिके पास जाओ और उनसे मेरा यह संदेश कहो॥ २-३॥

'यदि सीताका चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरहका पाप नहीं है तो वे आप महामुनिकी अनुमति ले यहाँ आकर जनसमुदायमें अपनी शुद्धता प्रमाणित करें'॥ ४॥

'तुम इस विषयमें महर्षि वाल्मीकि तथा सीताके भी हार्दिक अभिप्रायको जानकर शीघ्र मुझे सूचित करो कि क्या वे यहाँ आकर अपनी शुद्धिका विश्वास दिलाना चाहती हैं॥ ५॥

'कल सबेरे मिथिलेशकुमारी जानकी भरी सभामें आवें और मेरा कलंक दूर करनेके लिये शपथ करें'॥

श्रीरघुनाथजीका यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर दूत उस बाड़ेमें गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकि विराजमान थे॥ ७॥

महात्मा वाल्मीकि अमित तेजस्वी थे और अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे। उन दूतोंने उन्हें प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीके वचन मधुर एवं कोमल शब्दोंमें कह सुनाये॥ ८॥

उन दूतोंकी वह बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको समझकर वे महातेजस्वी मुनि इस प्रकार बोले—॥ ९॥

'ऐसा ही होगा, तुमलोगोंका भला हो। श्रीरघुनाथजी जो आज्ञा देते हैं, सीता वही करेगी; क्योंकि पति स्त्रीके लिये देवता है'॥ १०॥

मुनिके ऐसा कहनेपर वे सब राजदूत महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीके पास लौट आये। उन्होंने मुनिकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं॥ ११॥

महात्मा वाल्मीकिकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वहाँ आये हुए ऋषियों तथा राजाओंसे कहा—॥ १२॥

'आप सब पूज्यपाद मुनि शिष्योंसहित सभामें पधारें। सेवकोंसहित राजालोग भी उपस्थित हों तथा दूसरा भी जो कोई सीताकी शपथ सुनना चाहता हो, वह आ जाय। इस प्रकार सब लोग एकत्र होकर सीताका शपथ-ग्रहण देखें'॥ १३॥

महात्मा राघवेन्द्रका यह वचन सुनकर समस्त महर्षियोंके मुखसे महान् साधुवादकी ध्वनि गूँज उठी॥ १४॥

राजालोग भी महात्मा रघुनाथजीकी प्रशंसा करते हुए बोले—'नरश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर सभी उत्तम बातें केवल आपमें ही सम्भव हैं, दूसरे किसीमें नहीं'॥ १५॥

इस प्रकार दूसरे दिन सीतासे शपथ लेनेका निश्चय करके शत्रुसूदन श्रीरामने उस समय सबको बिदा कर दिया॥ १६॥

इस प्रकार दूसरे दिन सबेरे सीतासे शपथ लेनेका निश्चय करके महानुभाव महात्मा राजसिंह श्रीरामने उन सब मुनियों और नरेशोंको अपने-अपने स्थानपर जानेकी अनुमति दे दी॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पञ्चानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९५॥

छानबेवाँ सर्ग

महर्षि वाल्मीकिद्वारा सीताकी शुद्धताका समर्थन

रात बीती, सबेरा हुआ और महातेजस्वी राजा श्रीरामचन्द्रजी यज्ञशालामें पधारे। उस समय उन्होंने समस्त ऋषियोंको बुलवाया॥ १॥

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र,

दीर्घतमा, महातपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घजीवी मार्कण्डेय, महायशस्वी मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, धर्मज्ञ शतानन्द, तेजस्वी भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम, कात्यायन, सुयज्ञ और तपोनिधि अगस्त्य—ये तथा दूसरे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी बहुसंख्यक महर्षि कौतूहलवश वहाँ एकत्र हुए॥ २—६ ॥

महापराक्रमी राक्षस और महाबली वानर—ये सभी महामना कौतूहलवश वहाँ आये॥ ७॥

नाना देशोंसे पधारे हुए तीक्ष्ण व्रतधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ उपस्थित हुए॥ ८॥

सीताजीका शपथ-ग्रहण देखनेके लिये ज्ञाननिष्ठ, कर्मनिष्ठ और योगनिष्ठ सभी तरहके लोग पधारे थे॥

राजसभामें एकत्र हुए सब लोग पत्थरकी भाँति निश्चल होकर बैठे हैं—यह सुनकर मुनिवर वाल्मीकि सीताजीको साथ लेकर तुरंत वहाँ आये॥ १०॥

महर्षिके पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। वे अपने हृदयमन्दिरमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं॥ ११॥

वाल्मीकिके पीछे-पीछे आती हुई सीता ब्रह्माजीका अनुसरण करनेवाली श्रुतिके समान जान पड़ती थीं। उन्हें देखकर वहाँ धन्य-धन्यकी भारी आवाज गूँज उठी॥ १२॥

उस समय समस्त दर्शकोंका हृदय दुःख देनेवाले महान् शोकसे व्याकुल था। उन सबका कोलाहल सब ओर व्याप्त हो गया॥ १३॥

कोई कहते थे—'श्रीराम! तुम धन्य हो।' दूसरे कहते थे—'देवि सीते! तुम धन्य हो' तथा वहाँ कुछ अन्य दर्शक भी ऐसे थे, जो सीता और राम दोनोंको उच्च स्वरसे साधुवाद दे रहे थे॥ १४॥

तब उस जनसमुदायके बीचमें सीतासहित प्रवेश करके मुनिवर वाल्मीकि श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—॥ १५॥

'दशरथनन्दन! यह सीता उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और धर्मपरायणा है। आपने लोकापवादसे डरकर इसे मेरे आश्रमके समीप त्याग दिया था॥ १६॥

'महान् व्रतधारी श्रीराम! लोकापवादसे डरे हुए आपको सीता अपनी शुद्धताका विश्वास दिलायेगी। इसके लिये आप इसे आज्ञा दें॥ १७॥

'ये दोनों कुमार कुश और लव जानकीके गर्भसे जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ॥ १८॥

'रघुकुलनन्दन! मैं प्रचेता (वरुण) का दसवाँ पुत्र हूँ। मेरे मुँहसे कभी झूठ बात निकली हो, इसकी याद मुझे नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ ये दोनों आपके ही पुत्र हैं॥ १९॥

'मैंने कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले॥ २०॥

'मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि मिथिलेशकुमारी सीता निष्पाप हों, तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्यकर्मका फल प्राप्त हो॥ २१॥

'रघुनन्दन! मैंने अपनी पाँचों इन्द्रियों और मन-बुद्धिके द्वारा सीताकी शुद्धताका भलीभाँति निश्चय करके ही इसे अपने संरक्षणमें लिया था। यह मुझे जंगलमें एक झरनेके पास मिली थी॥ २२॥

'इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू भी नहीं सका है तथा यह पतिको ही देवता मानती है। अतः लोकापवादसे डरे हुए आपको अपनी शुद्धताका विश्वास दिलायेगी॥ २३॥

'राजकुमार! मैंने दिव्य दृष्टिसे यह जान लिया था कि सीताका भाव और विचार परम पवित्र है; इसलिये यह मेरे आश्रममें प्रवेश पा सकी है। आपको भी यह प्राणोंसे अधिक प्यारी है और आप यह भी जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है तथापि लोकापवादसे कलुषितचित्त होकर आपने इसका त्याग किया है'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ सर्ग

सीताका शपथ-ग्रहण और रसातलमें प्रवेश

महर्षि वाल्मीकिके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी सुन्दरी सीतादेवीकी ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जनसमुदायके बीच हाथ जोड़कर बोले—॥ १॥

'महाभाग! आप धर्मके ज्ञाता हैं। सीताके सम्बन्धमें

आप जैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक है। ब्रह्मन्! आपके इन निर्दोष वचनोंसे मुझे जनकनन्दिनीकी शुद्धतापर पूरा विश्वास हो गया है॥ २॥

'एक बार पहले भी देवताओंके समीप विदेह-कुमारीकी शुद्धताका विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है। उस समय सीताने अपनी शुद्धिके लिये शपथ की थी, जिसके कारण मैंने इन्हें अपने भवनमें स्थान दिया॥ ३॥

'किंतु आगे चलकर फिर बड़े जोरका लोकापवाद उठा, जिससे विवश होकर मुझे मिथिलेशकुमारीका त्याग करना पड़ा। ब्रह्मन्! यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप हैं, मैंने केवल समाजके भयसे इन्हें छोड़ दिया था; अत: आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें॥ ४॥

'मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वे उत्पन्न हुए कुमार कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं, तथापि जनसमुदायमें शुद्ध प्रमाणित होनेपर ही मिथिलेशकुमारीमें मेरा प्रेम हो सकता है'॥ ५॥

श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानकर सीताके शपथके समय महेन्द्र आदि सभी मुख्य-मुख्य महा-तेजस्वी देवता पितामह ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ आ गये॥ ६ $\frac{1}{2}$ ॥

आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, समस्त साध्यदेव, सभी महर्षि, नाग, गरुड़ और सम्पूर्ण सिद्धगण प्रसन्नचित्त हो सीताजीके शपथ-ग्रहणको देखनेके लिये घबराये हुए-से वहाँ आ पहुँचे॥ ७-८ $\frac{1}{2}$ ॥

देवताओं तथा ऋषियोंको उपस्थित देख श्रीरघुनाथजी फिर बोले—'सुरश्रेष्ठगण! यद्यपि मुझे महर्षि वाल्मीकिके निर्दोष वचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तथापि जन-समाजके बीच विदेहकुमारीकी विशुद्धता प्रमाणित हो जानेपर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी'॥ ९-१०॥

तदनन्तर दिव्य सुगन्धसे परिपूर्ण, मनको आनन्द देनेवाले परम पवित्र एवं शुभकारक सुरश्रेष्ठ वायुदेव मन्दगतिसे प्रवाहित हो सब ओरसे वहाँके जनसमुदायको आह्लाद प्रदान करने लगे॥ ११॥

समस्त राष्ट्रोंसे आये हुए मनुष्योंने एकाग्रचित्त हो प्राचीन कालके सत्ययुगकी भाँति यह अद्भुत और अचिन्त्य-सी घटना अपनी आँखों देखी॥ १२॥

उस समय सीताजी तपस्विनियोंके अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थीं। सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुखको नीचे किये बोलीं—॥ १३॥

'मैं श्रीरघुनाथजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका (स्पर्श तो दूर रहा) मनसे चिन्तन भी नहीं करती; यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें॥ १४॥

'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा केवल श्रीरामकी ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें॥ १५॥

'भगवान् श्रीरामको छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुषको नहीं जानती, मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें'॥ १६॥

विदेहकुमारी सीताके इस प्रकार शपथ करते ही भूतलसे एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ, जो बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था॥ १७॥

दिव्य रत्नोंसे विभूषित महापराक्रमी नागोंने दिव्य रूप धारण करके उस दिव्य सिंहासनको अपने सिरपर धारण कर रखा था॥ १८॥

सिंहासनके साथ ही पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें उस सिंहासनपर बिठा दिया॥

सिंहासनपर बैठकर जब सीतादेवी रसातलमें प्रवेश करने लगीं, उस समय देवताओंने उनकी ओर देखा। फिर तो आकाशसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी लगातार वर्षा होने लगी॥ २०॥

देवताओंके मुँहसे सहसा 'धन्य-धन्य' का महान् शब्द प्रकट हुआ। वे कहने लगे—'सीते! तुम धन्य हो, धन्य हो। तुम्हारा शील-स्वभाव इतना सुन्दर और ऐसा पवित्र है'॥ २१॥

सीताका रसातलमें प्रवेश देखकर आकाशमें खड़े हुए देवता प्रसन्नचित्त हो इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगे॥ २२॥

यज्ञमण्डपमें पधारे हुए सभी मुनि और नरश्रेष्ठ नरेश भी आश्चर्यसे भर गये॥ २३॥

अन्तरिक्षमें और भूतलपर सभी चराचर प्राणी तथा पातालमें विशालकाय दानव और नागराज भी आश्चर्यचकित हो उठे॥ २४॥

कोई हर्षनाद करने लगे, कोई ध्यानमग्न हो गये, कोई श्रीरामकी ओर देखने लगे और कोई हक्के-बक्के-से होकर सीताजीकी ओर निहारने लगे॥ २५॥

सीताका भूतलमें प्रवेश देखकर वहाँ आये हुए सब लोग हर्ष, शोक आदिमें डूब गये। दो घड़ीतक वहाँका सारा जनसमुदाय अत्यन्त मोहाच्छन्न-सा हो गया॥ २६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९७॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

सीताके लिये श्रीरामका खेद, ब्रह्माजीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका शेष अंश सुननेके लिये प्रेरित करना

विदेहकुमारी सीताके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर श्रीरामके समीप बैठे हुए सम्पूर्ण वानर तथा ऋषि-मुनि कहने लगे—'साध्वी सीते! तुम धन्य हो'॥ १॥

किंतु स्वयं भगवान् श्रीराम बहुत दुःखी हुए। उनका मन उदास हो गया और वे गूलरके दण्डेका सहारा लिये खड़े हो सिर झुकाये नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ २॥

बहुत देरतक रोकर बारम्बार आँसू बहाते हुए क्रोध और शोकसे युक्त हो श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार बोले—॥ ३॥

'आज मेरा मन अभूतपूर्व शोकमें डूबना चाहता है; क्योंकि इस समय मेरी आँखोंके सामनेसे मूर्तिमती लक्ष्मीके समान सीता अदृश्य हो गयीं॥ ४॥

'पहली बार सीता समुद्रके उस पार लङ्कामें जाकर मेरी आँखोंसे ओझल हुई थीं। किंतु जब मैं वहाँसे भी उन्हें लौटा लाया, तब पृथ्वीके भीतरसे ले आना कौन बड़ी बात है?'॥ ५॥

(यों कहकर वे पृथ्वीसे बोले—) 'पूजनीये भगवति वसुन्धरे! मुझे सीताको लौटा दो; अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा। मेरा प्रभाव कैसा है? यह तुम जानती हो॥ ६॥

'देवि! वास्तवमें तुम्हीं मेरी सास हो। राजा जनक हाथमें फाल लिये तुम्हींको जोत रहे थे, जिससे तुम्हारे भीतरसे सीताका प्रादुर्भाव हुआ॥ ७॥

'अतः या तो तुम सीताको लौटा दो अथवा मेरे लिये भी अपनी गोदमें जगह दो; क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग, मैं सीताके साथ ही रहूँगा॥ ८॥

'तुम मेरी सीताको लाओ! मैं मिथिलेशकुमारीके लिये मतवाला (बेसुध) हो गया हूँ। यदि इस पृथ्वीपर तुम उसी रूपमें सीताको मुझे लौटा नहीं दोगी तो मैं पर्वत और वनसहित तुम्हारी स्थितिको नष्ट कर दूँगा। सारी भूमिका विनाश कर डालूँगा। फिर भले ही सब कुछ जलमय ही हो जाय'॥ ९-१०॥

श्रीरघुनाथजी जब क्रोध और शोकसे युक्त हो इस प्रकारकी बातें कहने लगे, तब देवताओंसहित ब्रह्माजीने उन रघुकुलनन्दन श्रीरामसे कहा—॥ ११॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! आप मनमें संताप न करें। शत्रुसूदन! अपने पूर्व स्वरूपका स्मरण करें॥ १२॥

'महाबाहो! मैं आपको आपके परम उत्तम स्वरूपका स्मरण नहीं दिला रहा हूँ। दुर्धर्ष वीर! केवल यह अनुरोध कर रहा हूँ कि इस समय आप ध्यानके द्वारा अपने वैष्णव स्वरूपका स्मरण करें॥ १३॥

'साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं। वे पहलेसे ही आपके ही परायण रहती हैं। आपका आश्रय लेना ही उनका तपोबल है। उसके द्वारा वे सुखपूर्वक नागलोकके बहाने आपके परमधाममें चली गयी हैं॥ १४॥

'अब पुनः साकेतधाममें आपकी उनसे भेंट होगी; इसमें संशय नहीं है। अब इस सभामें मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दीजिये॥ १५॥

'आपके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाला यह काव्य, जिसे आपने सुना है, सब काव्योंमें उत्तम है। श्रीराम! यह आपके सारे जीवन-वृत्तका विस्तारसे ज्ञान करायेगा, इसमें संदेह नहीं है॥ १६॥

'वीर! आविर्भावकालसे ही जो आपके द्वारा सुख-दुःखोंका (स्वेच्छासे) सेवन हुआ है, उसका तथा सीताके अन्तर्धान होनेके बाद जो भविष्यमें होनेवाली बातें हैं, उनका भी महर्षि वाल्मीकिने इसमें पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया है॥ १७॥

'श्रीराम! यह आदिकाव्य है। इस सम्पूर्ण काव्यकी आधारशिला आप ही हैं—आपके ही जीवनवृत्तान्तको लेकर इस काव्यकी रचना हुई है। रघुकुलकी शोभा बढ़ानेवाले आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा यशस्वी पुरुष नहीं है, जो काव्योंका नायक होनेका अधिकारी हो॥

'देवताओंके साथ मैंने पहले आपसे सम्बन्धित इस सम्पूर्ण काव्यका श्रवण किया है। यह दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है। इसमें कही गयी सारी बातें सत्य हैं॥ १९॥

'पुरुषसिंह रघुनन्दन! आप धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त हो भविष्यकी घटनाओंसे युक्त शेष रामायण काव्यको भी सुन लीजिये॥ २०॥

'महायशस्वी एवं महातेजस्वी श्रीराम! इस काव्यके अन्तिम भागका नाम उत्तरकाण्ड है। उस उत्तम भागको आप ऋषियोंके साथ सुनिये॥ २१॥

'काकुत्स्थवीर रघुनन्दन! आप सर्वोत्कृष्ट राजर्षि

हैं। अतः पहले आपको ही यह उत्तम काव्य सुनना चाहिये, दूसरेको नहीं'॥ २२॥

इतना कहकर तीनों लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओं एवं उनके बन्धु-बान्धवोंके साथ अपने लोकको चले गये॥ २३॥

वहाँ जो ब्रह्मलोकमें रहनेवाले महातेजस्वी महात्मा ऋषि विद्यमान थे, वे ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर भावी वृत्तान्तोंसे युक्त उत्तरकाण्डको सुननेकी इच्छासे लौट आये (उनके साथ ब्रह्मलोकमें नहीं गये)॥ २४ $\frac{१}{२}$ ॥

तत्पश्चात् देवाधिदेव ब्रह्माजीकी कही हुई उस शुभ वाणीको याद करके परम तेजस्वी श्रीरामजीने महर्षि वाल्मीकिसे इस प्रकार कहा—॥ २५ $\frac{१}{२}$ ॥

'भगवन्! ये ब्रह्मलोकके निवासी महर्षि मेरे भावी चरित्रोंसे युक्त उत्तरकाण्डका शेष अंश सुनना चाहते हैं। अतः कल सबेरेसे ही उसका गान आरम्भ हो जाना चाहिये'॥ २६॥

ऐसा निश्चय करके श्रीरघुनाथजीने जनसमुदायको बिदा कर दिया और कुश तथा लवको साथ लेकर वे अपनी पर्णशालामें आये। वहाँ सीताका ही चिन्तन करते-करते उन्होंने रात व्यतीत की॥ २७-२८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

सीताके रसातल-प्रवेशके पश्चात् श्रीरामकी जीवनचर्या, रामराज्यकी स्थिति तथा माताओंके परलोक-गमन आदिका वर्णन

रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा—'अब तुम निःशङ्क होकर शेष रामायणका गान आरम्भ करो'॥ १॥

महात्मा महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर कुश और लवने भगवान्‌के भविष्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तरकाण्डका, जो उस महाकाव्यका एक अंश था, गान आरम्भ किया॥ २॥

इधर अपनी सत्यरूप सम्पत्तिके बलसे सीताजीके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर उस यज्ञके अन्तमें भगवान् श्रीरामका मन बहुत दुःखी हुआ॥ ३॥

विदेहकुमारीको न देखनेसे उन्हें यह सारा संसार सूना जान पड़ने लगा। शोकसे व्यथित होनेके कारण उनके मनको शान्ति नहीं मिली॥ ४॥

तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने सब राजाओंको, रीछों, वानरों और राक्षसोंको, जनसमुदायको तथा मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको भी धन देकर बिदा किया। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञको समाप्त करके कमलनयन श्रीरामने सबको बिदा करनेके पश्चात् उस समय सीताका मन-ही-मन स्मरण करते हुए अयोध्यामें प्रवेश किया॥ ५-६ $\frac{१}{२}$ ॥

यज्ञ पूरा करके रघुकुलनन्दन राजा श्रीराम अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगे। उन्होंने सीताके सिवा दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह नहीं किया। प्रत्येक यज्ञमें जब-जब धर्मपत्नीकी आवश्यकता होती, श्रीरघुनाथजी सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे॥ ७-८॥

उन्होंने दस हजार वर्षोंतक यज्ञ किये। कितने ही अश्वमेध यज्ञों और उनसे दसगुने वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिसमें असंख्य स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणाएँ दी गयी थीं॥ ९॥

श्रीमान् रामने पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव तथा अन्य बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिनमें अपार धनराशि खर्च की गयी॥ १०॥

इस प्रकार राज्य करते हुए महात्मा भगवान् श्रीरघुनाथजीका बहुत बड़ा समय धर्मपालनके प्रयत्नमें ही बीता॥ ११॥

रीछ, वानर और राक्षस भी श्रीरामकी आज्ञाके अधीन रहते थे। भूमण्डलके सभी राजा प्रतिदिन श्रीरघुनाथजीको प्रसन्न रखते थे॥ १२॥

श्रीरामके राज्यमें मेघ समयपर वर्षा करते थे। सदा सुकाल ही रहता था—कभी अकाल नहीं पड़ता था। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न दिखायी देती थीं तथा नगर और जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे रहते थे॥ १३॥

श्रीरामके राज्यशासन करते समय किसीकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। प्राणियोंको कोई रोग नहीं सताता था और संसारमें कोई उपद्रव खड़ा नहीं होता था॥ १४॥

इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होनेपर पुत्र-पौत्रोंसे घिरी हुई परम यशस्विनी श्रीराममाता कौसल्या कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुईं॥ १५॥

सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीने भी उन्हींके पथका अनुसरण किया। ये सभी रानियाँ जीवनकालमें

नाना प्रकारके धर्मका अनुष्ठान करके अन्तमें साकेतधामको प्राप्त हुईं और बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ राजा दशरथसे मिलीं। उन महाभागा रानियोंको सब धर्मोंका पूरा-पूरा फल प्राप्त हुआ॥ १६-१७॥

श्रीरघुनाथजी समय-समयपर अपनी सभी माताओंके निमित्त बिना किसी भेदभावके तपस्वी ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिया करते थे॥ १८॥

धर्मात्मा श्रीराम श्राद्धमें उपयोगी उत्तमोत्तम वस्तुएँ ब्राह्मणोंको देते तथा पितरों और देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये बड़े-बड़े दुस्तर यज्ञों (पिण्डात्मक पितृयज्ञों) का अनुष्ठान करते थे॥ १९॥

इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा सर्वदा विविध धर्मोंका पालन करते हुए श्रीरघुनाथजीके कई हजार वर्ष सुख-पूर्वक बीत गये॥ २०॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९९॥

सौवाँ सर्ग

केकयदेशसे ब्रह्मर्षि गार्ग्यका भेंट लेकर आना और उनके संदेशके अनुसार श्रीरामकी आज्ञासे कुमारोंसहित भरतका गन्धर्वदेशपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान

कुछ कालके पश्चात् केकयदेशके राजा युधाजित्ने अपने पुरोहित अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि गार्ग्यको, जो अङ्गिराके पुत्र थे, महात्मा श्रीरघुनाथजीके पास भेजा॥

उनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको परम उत्तम प्रेमोपहारके रूपमें अर्पण करनेके लिये उन्होंने दस हजार घोड़े, बहुत-से कम्बल (कालीन और शाल आदि), नाना प्रकारके रत्न, विचित्र-विचित्र सुन्दर वस्त्र तथा मनोहर आभूषण भी दिये थे॥ २-३॥

परम बुद्धिमान् श्रीमान् राघवेन्द्रने जब सुना कि मामा अश्वपति-पुत्र युधाजित्के भेजे हुए महर्षि गार्ग्य बहुमूल्य भेंट-सामग्री लिये अयोध्यामें पधार रहे हैं, तब उन्होंने भाइयोंके साथ एक कोस आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और जैसे इन्द्र बृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार महर्षि गार्ग्यका पूजन (स्वागत-सत्कार) किया॥ ४-५॥

इस प्रकार महर्षिका आदर-सत्कार करके उस धनको ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने उनका तथा मामाके घरका सारा कुशल-समाचार पूछा। फिर जब वे महाभाग ब्रह्मर्षि सुन्दर आसनपर विराजमान हो गये, तब श्रीरामने उनसे इस प्रकार पूछना आरम्भ किया—॥ ६½॥

'ब्रह्मर्षे! मेरे मामाने क्या संदेश दिया है, जिसके लिये साक्षात् बृहस्पतिके समान वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आप पूज्यपाद महर्षिने यहाँ पधारनेका कष्ट किया है'॥

श्रीरामका यह प्रश्न सुनकर महर्षिने उनसे अद्भुत कार्य-विस्तारका वर्णन आरम्भ किया—॥ ८½॥

'महाबाहो! आपके मामा नरश्रेष्ठ युधाजित्ने जो प्रेमपूर्वक संदेश दिया है, उसे यदि रुचिकर जान पड़े तो सुनिये॥ ९½॥

'उन्होंने कहा है कि यह जो फल-मूलोंसे सुशोभित गन्धर्वदेश सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर बसा हुआ है, बड़ा सुन्दर प्रदेश है॥ १०½॥

'वीर रघुनन्दन! गन्धर्वराज शैलूषकी संतानें तीन करोड़ महाबली गन्धर्व, जो युद्धकी कलामें कुशल और अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हैं, उस देशकी रक्षा करते हैं॥

'काकुत्स्थ! महाबाहो! आप उन गन्धर्वोंको जीतकर वहाँ सुन्दर गन्धर्वनगर बसाइये। अपने लिये उत्तम साधनोंसे सम्पन्न दो नगरोंका निर्माण कीजिये। वह देश बहुत सुन्दर है। वहाँ दूसरे किसीकी गति नहीं है। आप उसे अपने अधिकारमें लेना स्वीकार करें। मैं आपको ऐसी सलाह नहीं देता, जो अहितकारक हो'॥ १२-१३॥

महर्षि और मामाका वह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर भरतकी ओर देखा॥ १४॥

तदनन्तर श्रीराघवेन्द्रने उन ब्रह्मर्षिसे प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मर्षे! ये दोनों कुमार तक्ष और पुष्कल, जो भरतके वीर पुत्र हैं, उस देशमें विचरेंगे और मामासे सुरक्षित रहकर धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त हो उस देशका शासन करेंगे॥ १५-१६॥

'ये दोनों कुमार भरतको आगे करके सेना और सेवकोंके साथ वहाँ जायँगे तथा उन गन्धर्वपुत्रोंका संहार करके अलग-अलग दो नगर बसायेंगे॥ १७॥

'उन दोनों श्रेष्ठ नगरोंको बसाकर उनमें अपने दोनों पुत्रोंको स्थापित करके अत्यन्त धर्मात्मा भरत फिर मेरे पास लौट आयेंगे'॥ १८॥

ब्रह्मर्षिसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको वहाँ सेनाके साथ जानेकी आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका

पहले ही राज्याभिषेक कर दिया॥ १९॥

तत्पश्चात् सौम्य नक्षत्र (मृगशिरा) में अङ्गिराके पुत्र महर्षि गार्ग्यको आगे करके सेना और कुमारोंके साथ भरतने यात्रा की॥ २०॥

इन्द्रद्वारा प्रेरित हुई देवसेनाके समान वह सेना नगरसे बाहर निकली। भगवान् श्रीराम भी दूरतक उसके साथ-साथ गये। वह देवताओंके लिये भी दुर्जय थी॥

मांसाहारी जन्तु और बड़े-बड़े राक्षस युद्धमें रक्तपानकी इच्छासे भरतके पीछे-पीछे गये॥ २२॥

अत्यन्त भयंकर कई हजार मांसभक्षी भूतसमूह गन्धर्व-पुत्रोंका मांस खानेके लिये उस सेनाके साथ-साथ गये॥ २३॥

सिंह, बाघ, सूअर और आकाशचारी पक्षी कई हजारकी संख्यामें सेनाके आगे-आगे चले॥ २४॥

मार्गमें डेढ़ महीने बिताकर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई वह सेना कुशलपूर्वक केकयदेशमें जा पहुँची॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सौवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १००॥

एक सौ एकवाँ सर्ग

भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनका संहार करके वहाँ दो सुन्दर नगर बसाकर अपने दोनों पुत्रोंको सौंपना और फिर अयोध्याको लौट आना

केकयराज युधाजित्ने जब सुना कि महर्षि गार्ग्यके साथ स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १॥

वे केकयनरेश भारी जनसमुदायके साथ निकले और भरतसे मिलकर बड़ी उतावलीके साथ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले गन्धर्वोंके देशकी ओर चले॥ २॥

भरत और युधाजित् दोनोंने मिलकर बड़ी तीव्रगतिसे सेना और सवारियोंके साथ गन्धर्वोंकी राजधानीपर धावा किया॥ ३॥

भरतका आगमन सुनकर वे महापराक्रमी गन्धर्व युद्धकी इच्छासे एकत्र हो सब ओर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ४॥

फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंमें बड़ा भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाला युद्ध छिड़ गया। वह महाभयंकर संग्राम लगातार सात राततक चलता रहा, परंतु दोनोंमेंसे किसी भी एक पक्षकी विजय नहीं हुई॥ ५॥

चारों ओर खूनकी नदियाँ बह चलीं। तलवार, शक्ति और धनुष उस नदीमें विचरनेवाले ग्राहोंके समान जान पड़ते थे, उनकी धारामें मनुष्योंकी लाशें बह जाती थीं॥ ६॥

तब रामानुज भरतने कुपित होकर गन्धर्वोंपर कालदेवताके अत्यन्त भयंकर अस्त्रका, जो संवर्त नामसे प्रसिद्ध है, प्रयोग किया॥ ७॥

इस प्रकार महात्मा भरतने क्षणभरमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका संहार कर डाला। वे गन्धर्व कालपाशसे बद्ध हो संवर्तास्त्रसे विदीर्ण कर डाले गये॥ ८॥

ऐसा भयंकर युद्ध देवताओंने भी कभी देखा हो, यह उन्हें याद नहीं आता था। पलक मारते-मारते वैसे पराक्रमी महामनस्वी समस्त गन्धर्वोंका संहार हो जानेपर कैकेयीकुमार भरतने उस समय वहाँ दो समृद्धिशाली सुन्दर नगर बसाये॥ ९-१०॥

मनोहर गन्धर्वदेशमें तक्षशिला नामकी नगरी बसाकर उसमें उन्होंने तक्षको राजा बनाया और गान्धारदेशमें पुष्कलावत नगर बसाकर उसका राज्य पुष्कलको सौंप दिया॥ ११॥

वे दोनों नगर धन-धान्य एवं रत्नसमूहोंसे भरे थे। अनेकानेक कानन उनकी शोभा बढ़ाते थे। गुणविस्तारकी दृष्टिसे वे मानो परस्पर होड़ लगाकर संघर्षपूर्वक आगे बढ़ रहे थे॥ १२॥

दोनों नगरोंकी शोभा परम मनोहर थी। दोनों स्थानोंका व्यवहार (व्यापार) निष्कपट, शुद्ध एवं सरल था। दोनों ही नगर उद्यानों (बाग-बगीचों) तथा नाना प्रकारकी सवारियोंसे भरे-पूरे थे। उनके भीतर अलग-अलग कई बाजार थे॥ १३॥

दोनों श्रेष्ठ पुरोंकी रमणीयता देखते ही बनती थी। अनेक ऐसे विस्तृत पदार्थ उनकी शोभा बढ़ाते थे, जिनका नाम अभीतक नहीं लिया गया है। सुन्दर श्रेष्ठ गृह तथा बहुत-से सतमहले मकान वहाँकी श्रीवृद्धि कर रहे थे॥ १४॥

अनेकानेक शोभासम्पन्न देवमन्दिरों तथा ताल, तमाल, तिलक और मौलसिरी आदिके वृक्षोंसे भी उन दोनों नगरोंकी शोभा एवं रमणीयता बढ़ गयी थी॥ १५॥

पाँच वर्षोंमें उन राजधानियोंको अच्छी तरह आबाद करके श्रीरामके छोटे भाई कैकेयीकुमार महाबाहु

भरत फिर अयोध्यामें लौट आये॥ १६॥

वहाँ पहुँचकर श्रीमान् भरतने द्वितीय धर्मराजके समान महात्मा श्रीरघुनाथजीको उसी तरह प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजीको प्रणाम करते हैं॥ १७॥

तत्पश्चात् उन्होंने गन्धर्वोंके वध और उस देशको अच्छी तरह आबाद करनेका यथावत् समाचार कह सुनाया। सुनकर श्रीरघुनाथजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०१॥

एक सौ दोवाँ सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतुकी कारुपथ देशके विभिन्न राज्योंपर नियुक्ति

भरतके मुँहसे गन्धर्वदेशका समाचार सुनकर भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् श्रीराघवेन्द्र अपने भाइयोंसे यह अद्भुत वचन बोले— ॥ १॥

'सुमित्रानन्दन! तुम्हारे ये दोनों कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतु धर्मके ज्ञाता हैं। इनमें राज्यकी रक्षाके लिये उपयुक्त दृढ़ता और पराक्रम है॥ २॥

'अत: मैं इनका भी राज्याभिषेक करूँगा। तुम इनके लिये किसी अच्छे देशका चुनाव करो, जो रमणीय होनेके साथ ही विघ्न-बाधाओंसे रहित हो और जहाँ ये दोनों धनुर्धर वीर आनन्दपूर्वक रह सकें॥ ३॥

'सौम्य! ऐसा देश देखो, जहाँ निवास करनेसे दूसरे राजाओंको पीड़ा या उद्वेग न हो, आश्रमोंका भी नाश न करना पड़े और हमलोगोंको किसीकी दृष्टिमें अपराधी भी न बनना पड़े'॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया— 'आर्य! यह कारुपथ नामक देश बड़ा सुन्दर है। वहाँ किसी प्रकारकी रोग-व्याधिका भय नहीं है॥ ५॥

'वहाँ महात्मा अङ्गदके लिये नयी राजधानी बसायी जाय तथा चन्द्रकेतु (या चन्द्रकान्त) के रहनेके लिये 'चन्द्रकान्त' नामक नगरका निर्माण कराया जाय, जो सुन्दर और आरोग्यवर्धक हो'॥ ६॥

भरतकी कही हुई इस बातको श्रीरघुनाथजीने स्वीकार किया और कारुपथ देशको अपने अधिकारमें करके अङ्गदको वहाँका राजा बना दिया॥ ७॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामने अङ्गदके लिये 'अङ्गदीया' नामक रमणीय पुरी बसायी, जो परम सुन्दर होनेके साथ ही सब ओरसे सुरक्षित भी थी॥ ८॥

चन्द्रकेतु अपने शरीरसे मल्लके समान हृष्ट-पुष्ट थे; उनके लिये मल्ल देशमें 'चन्द्रकान्ता' नामसे विख्यात दिव्य पुरी बसायी गयी, जो स्वर्गकी अमरावती नगरीके समान सुन्दर थी॥ ९॥

इससे श्रीराम, लक्ष्मण और भरत तीनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सभी रणदुर्जय वीरोंने स्वयं उन कुमारोंका अभिषेक किया॥ १०॥

एकाग्रचित्त तथा सावधान रहनेवाले उन दोनों कुमारोंका अभिषेक करके अङ्गदको पश्चिम तथा चन्द्रकेतुको उत्तर दिशामें भेजा गया॥ ११॥

अङ्गदके साथ तो स्वयं सुमित्राकुमार लक्ष्मण गये और चन्द्रकेतुके सहायक या पार्श्वक भरतजी हुए॥

लक्ष्मण अङ्गदीया पुरीमें एक वर्षतक रहे और उनका दुर्धर्ष पुत्र अङ्गद जब दृढ़तापूर्वक राज्य सँभालने लगा, तब वे पुन: अयोध्याको लौट आये॥ १३॥

इसी प्रकार भरत भी चन्द्रकान्ता नगरीमें एक वर्षसे कुछ अधिक कालतक ठहरे रहे और चन्द्रकेतुका राज्य जब दृढ़ हो गया, तब वे पुन: अयोध्यामें आकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करने लगे॥ १४॥

लक्ष्मण और भरत दोनोंका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनन्य अनुराग था। दोनों ही अत्यन्त धर्मात्मा थे। श्रीरामकी सेवामें रहते उन्हें बहुत समय बीत गया, परंतु स्नेहाधिक्यके कारण उनको कुछ भी ज्ञात न हुआ॥ १५॥

वे तीनों भाई पुरवासियोंके कार्यमें सदा संलग्न रहते और धर्मपालनके लिये प्रयत्नशील रहा करते थे। इस प्रकार उनके दस हजार वर्ष बीत गये॥ १६॥

धर्म साधनके स्थानभूत अयोध्यापुरीमें वैभवसम्पन्न होकर रहते हुए वे तीनों भाई यथासमय घूम-फिरकर प्रजाकी देखभाल करते थे। उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे तथा वे महायज्ञमें आहुति पाकर प्रज्वलित हुए दीप्त तेजस्वी गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक त्रिविध अग्नियोंके समान प्रकाशित होते थे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीरामके यहाँ कालका आगमन और एक कठोर शर्तके साथ उनका वार्ताके लिये उद्यत होना

तदनन्तर कुछ समय और बीत जानेपर जब कि भगवान् श्रीराम धर्मपूर्वक अयोध्याके राज्यका पालन कर रहे थे, साक्षात् काल तपस्वीके रूपमें राजभवनके द्वारपर आया॥ १॥

उसने द्वारपर खड़े हुए धैर्यवान् एवं यशस्वी लक्ष्मणसे कहा—'मैं एक भारी कार्यसे आया हूँ। तुम श्रीरामचन्द्रजीसे मेरे आगमनकी सूचना दे दो॥ २॥

'महाबली लक्ष्मण! मैं अमित तेजस्वी महर्षि अतिबलका दूत हूँ और एक आवश्यक कार्यवश श्रीरामचन्द्रजीसे मिलने आया हूँ'॥ ३॥

उसकी वह बात सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने बड़ी उतावलीके साथ भीतर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे उस तापसके आगमनकी सूचना दी—॥ ४॥

'महातेजस्वी महाराज! आप अपने राजधर्मके प्रभावसे इहलोक और परलोकपर भी विजयी हों। एक महर्षि दूतके रूपमें आपसे मिलने आये हैं। वे तपस्याजनित तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हैं'॥ ५॥

लक्ष्मणकी कही हुई वह बात सुनकर श्रीरामने कहा—'तात! उन महातेजस्वी मुनिको भीतर ले आओ, जो कि अपने स्वामीके संदेश लेकर आये हैं'॥ ६॥

तब 'जो आज्ञा' कहकर सुमित्राकुमार उन मुनिको भीतर ले आये। वे तेजसे प्रज्वलित होते और अपनी प्रखर किरणोंसे दग्ध करते हुए-से जान पड़ते थे॥ ७॥

अपने तेजसे दीप्तिमान् रघुकुलतिलक श्रीरामके पास पहुँचकर ऋषिने उनसे मधुर वाणीमें कहा—'रघुनन्दन! आपका अभ्युदय हो'॥ ८॥

महातेजस्वी श्रीरामने उन्हें पाद्य-अर्घ्य आदि पूजनोपचार समर्पित किया और शान्तभावसे उनका कुशल-समाचार पूछना आरम्भ किया॥ ९॥

श्रीरामके पूछनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी मुनि कुशल-समाचार बताकर दिव्य सुवर्णमय आसनपर विराजमान हुए॥ १०॥

तदनन्तर श्रीरामने उनसे कहा—'महामते! आपका स्वागत है। आप जिनके दूत होकर यहाँ पधारे हैं, उनका संदेश सुनाइये'॥ ११॥

राजसिंह श्रीरामके द्वारा इस प्रकार प्रेरित होनेपर मुनि बोले—'यदि आप हमारे हितपर दृष्टि रखें तो जहाँ हम और आप दो ही आदमी रहें, वहीं इस बातको कहना उचित है॥ १२॥

'यदि आप मुनिश्रेष्ठ अतिबलके वचनपर ध्यान दें तो आपको यह भी घोषित करना होगा कि जो कोई मनुष्य हम दोनोंकी बातचीत सुन ले अथवा हमें वार्तालाप करते देख ले, वह आप (श्रीराम) का वध्य होगा'॥ १३॥

श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर इस बातके लिये प्रतिज्ञा की और लक्ष्मणसे कहा—'महाबाहो! द्वारपालको बिदा कर दो और स्वयं ड्योढ़ीपर खड़े होकर पहरा दो॥

'सुमित्रानन्दन! जो ऋषि और मेरी—दोनोंकी कही हुई बात सुन लेगा या बात करते हमें देख लेगा, वह मेरे द्वारा मारा जायगा'॥ १५॥

इस प्रकार अपनी बात ग्रहण करनेवाले लक्ष्मणको दरवाजेपर तैनात करके श्रीरघुनाथजीने समागत महर्षिसे कहा—'मुने! अब आप निःशङ्क होकर वह बात कहिये, जिसे कहना आपको अभीष्ट है अथवा जिसे कहनेके लिये ही आप यहाँ भेजे गये हैं। मेरे हृदयमें भी उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा है'॥ १६-१७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०३॥

एक सौ चारवाँ सर्ग

कालका श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्माजीका संदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना

महाबली महान् सत्त्वशाली महाराज! पितामह भगवान् ब्रह्माने जिस उद्देश्यसे मुझे यहाँ भेजा है और जिसके लिये मैं यहाँ आया हूँ; वह सब बताता हूँ; सुनिये॥ १॥

शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले वीर! पूर्वावस्थामें अर्थात् हिरण्यगर्भकी उत्पत्तिके समय मैं मायाद्वारा आपसे उत्पन्न हुआ था, इसलिये आपका पुत्र हूँ। मुझे सर्वसंहारकारी काल कहते हैं॥ २॥

लोकनाथ प्रभु भगवान् पितामहने कहा है कि 'सौम्य! आपने लोकोंकी रक्षाके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो गयी॥ ३॥

'पूर्वकालमें समस्त लोकोंको मायाके द्वारा स्वयं ही अपनेमें लीन करके आपने महासमुद्रके जलमें शयन किया था। फिर इस सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया ॥ ४॥

'इसके बाद विशाल फण और शरीरसे युक्त एवं जलमें शयन करनेवाले 'अनन्त' संज्ञक नागको मायाद्वारा प्रकट करके आपने दो महाबली जीवोंको जन्म दिया, जिनका नाम था मधु और कैटभ; इन्हींके अस्थि-समूहोंसे भरी हुई यह पर्वतोंसहित पृथिवी तत्काल प्रकट हुई, जो 'मेदिनी' कहलायी॥ ५-६॥

'आपकी नाभिसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसमें आपने मुझको भी उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टि रचनेका सारा कार्यभार मुझपर ही रख दिया॥ ७॥

'जब मुझपर यह भार रख दिया गया, तब मैंने आप जगदीश्वरकी उपासना करके प्रार्थना की—'प्रभो! आप सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप ही मुझे तेज (ज्ञान और क्रिया-शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं'॥ ८॥

'तब आप मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाके लिये अपरिमेय सनातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके रूपमें प्रकट हुए॥ ९॥

'फिर आपने ही अदितिके गर्भसे परम पराक्रमी वामनरूपमें अवतार लिया। तबसे आप अपने भाई इन्द्रादि देवताओंकी शक्ति बढ़ाते और आवश्यकता पड़नेपर उनकी रक्षाके लिये उद्यत रहते हैं॥ १०॥

'जगदीश्वर! जब रावणके द्वारा प्रजाका विनाश होने लगा, उस समय आपने उस निशाचरका वध करनेकी इच्छासे मनुष्य-शरीरमें अवतार लेनेका निश्चय किया॥ ११॥

'और स्वयं ही ग्यारह हजार वर्षोंतक मर्त्यलोकमें निवास करनेकी अवधि निश्चित की थी॥ १२॥

'नरश्रेष्ठ! आप मनुष्य-लोकमें अपने संकल्पसे ही किसीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं। इस अवतारमें आपने अपनी जितने समयतककी आयु निश्चित की थी, वह पूरी हो गयी; अतः अब आपके लिये यह हमलोगोंके समीप आनेका समय है॥ १३॥

'वीर महाराज! यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर प्रजाजनोंका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप रह सकते हैं। आपका कल्याण हो। रघुनन्दन! अथवा यदि परमधाममें पधारनेका विचार हो तो अवश्य आवें। आप विष्णुदेवके स्वधाममें प्रतिष्ठित होनेपर सम्पूर्ण देवता सनाथ एवं निश्चिन्त हो जायँ—ऐसा पितामहने कहा है'॥ १४-१५॥

कालके मुखसे कहे गये पितामह ब्रह्माके संदेशको सुनकर श्रीरघुनाथजी हँसते हुए उस सर्वसंहारी कालसे बोले—॥ १६॥

'काल! देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह परम अद्भुत वचन सुननेको मिला; इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ १७॥

'तीनों लोकोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ था, वह उद्देश्य अब पूरा हो गया; इसलिये तुम्हारा कल्याण हो; अब मैं जहाँसे आया था वहीं चलूँगा॥ १८॥

'काल! मैंने मनसे तुम्हारा चिन्तन किया था। उसीके अनुसार तुम यहाँ आये हो; अतः इस विषयको लेकर मेरे मनमें कोई विचार नहीं है। सर्वसंहारकारी काल! मुझे सभी कार्योंमें सदा देवताओंका वशवर्ती होकर ही रहना चाहिये, जैसा कि पितामहका कथन है'॥ १९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ सर्ग

दुर्वासाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि दुर्वासा राजद्वारपर आ पहुँचे। वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना चाहते थे॥ १॥

उन मुनिश्रेष्ठने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास जाकर कहा—'तुम शीघ्र ही मुझे श्रीरामचन्द्रजीसे मिला दो। उनसे मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है'॥ २॥

मुनिकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने उन महात्माको प्रणाम करके यह बात कही—॥ ३॥

'भगवन्! बताइये, आपका कौन-सा काम है?

क्या प्रयोजन है? और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? ब्रह्मन्! इस समय श्रीरघुनाथजी दूसरे कार्यमें संलग्न हैं; अत: दो घड़ीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये'॥ ४॥

यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा रोषसे तमतमा उठे और लक्ष्मणकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो अपनी नेत्राग्निसे उन्हें भस्म कर डालेंगे। साथ ही उनसे इस प्रकार बोले—॥ ५॥

'सुमित्राकुमार! इसी क्षण श्रीरामको मेरे आगमनकी सूचना दो। यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका समाचार नहीं निवेदन करोगे तो मैं इस राज्यको, नगरको, तुमको, श्रीरामको, भरतको और तुमलोगोंकी जो संतति है, उसको भी शाप दे दूँगा। मैं पुन: इस क्रोधको अपने हृदयमें धारण नहीं कर सकूँगा'॥ ६-७॥

उन महात्माका यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनकी वाणीसे जो निश्चय प्रकट हो रहा था, उसपर मन-ही-मन विचार किया॥ ८॥

'अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है; किंतु सबका विनाश नहीं होना चाहिये' अपनी बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय करके लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार निवेदन किया॥ ९॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा श्रीराम कालको बिदा करके तुरंत ही निकले और अत्रिपुत्र दुर्वासासे मिले॥ १०॥

अपने तेजसे प्रज्वलित-से होते हुए महात्मा दुर्वासाको प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर पूछा—'महर्षे! मेरे लिये क्या आज्ञा है?'॥ ११॥

श्रीरघुनाथजीकी कही हुई उस बातको सुनकर प्रभावशाली मुनिवर दुर्वासा उनसे बोले—'धर्मवत्सल! सुनिये॥ १२॥

'निष्पाप रघुनन्दन! मैंने एक हजार वर्षोंतक उपवास किया। आज मेरे उस व्रतकी समाप्तिका दिन है, इसलिये इस समय आपके यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उसे मैं ग्रहण करना चाहता हूँ'॥ १३॥

यह सुनकर राजा श्रीरघुनाथजी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उन मुनिश्रेष्ठको तैयार भोजन परोसा॥ १४॥

वह अमृतके समान अन्न ग्रहण करके दुर्वासा मुनि तृप्त हुए और श्रीरघुनाथजीको साधुवाद दे अपने आश्रमपर चले आये॥ १५॥

मुनिवर दुर्वासाके अपने आश्रमको चले जानेपर लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीराम कालके वचनोंका स्मरण करके दु:खी हो गये॥ १६॥

भयंकर भावी भ्रातृवियोगके दृश्यको दृष्टिपथमें लानेवाले कालके उस वचनपर विचार करके श्रीरामके मनमें बड़ा दु:ख हुआ। उनका मुँह नीचेको झुक गया और वे कुछ बोल न सके॥ १७॥

तत्पश्चात् कालके वचनोंपर बुद्धिपूर्वक सोच-विचार करके महायशस्वी श्रीरघुनाथजी इस निर्णयपर पहुँचे कि 'अब यह सब कुछ भी न रहेगा।' ऐसा सोचकर वे चुप हो रहे॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०५॥

एक सौ छठाँ सर्ग

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्गगमन

श्रीरामचन्द्रजी राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान दीन हो गये थे, उन्हें सिर झुकाये खेद करते देख लक्ष्मणने बड़े हर्षके साथ मधुर वाणीमें कहा—॥ १॥

'महाबाहो! आपको मेरे लिये संताप नहीं करना चाहिये; क्योंकि पूर्वजन्मके कर्मोंसे बँधी हुई कालकी गति ऐसी ही है॥ २॥

'सौम्य! आप निश्चिन्त होकर मेरा वध कर डालें और ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें। काकुत्स्थ! प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले मनुष्य नरकमें पड़ते हैं॥ ३॥

'महाराज! यदि आपका मुझपर प्रेम है और यदि आप मुझे कृपापात्र समझते हैं तो नि:शङ्क होकर मुझे प्राणदण्ड दें। रघुनन्दन! आप अपने धर्मकी वृद्धि करें'॥ ४॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठीं—वे धैर्यसे विचलित-से हो गये और मन्त्रियों तथा पुरोहितजीको बुलाकर उन सबके बीचमें वह सारा वृत्तान्त बताने लगे। श्रीरघुनाथजीने दुर्वासाके आगमन और तापसरूपधारी कालके समक्ष की हुई प्रतिज्ञाकी बात भी बतायी॥ ५-६॥

यह सुनकर सब मन्त्री और उपाध्याय चुपचाप बैठे रह गये (कोई कुछ बोल न सका)। तब महातेजस्वी वसिष्ठजीने यह बात कही—॥ ७॥

'महाबाहो! महायशस्वी श्रीराम! इस समय जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला विकट विनाश आनेवाला है (तुम्हारे साथ ही बहुत-से प्राणियोंका जो साकेत-गमन होनेवाला है) और लक्ष्मणके साथ जो वियोग हो रहा है, यह सब मैंने तपोबलद्वारा पहलेसे ही देख लिया है॥ ८॥

'काल बड़ा प्रबल है। तुम लक्ष्मणका परित्याग कर दो। प्रतिज्ञा झूठी न करो; क्योंकि प्रतिज्ञाके नष्ट होनेपर धर्मका लोप हो जायगा॥ ९॥

'धर्मका लोप होनेपर चराचर प्राणियों, देवताओं तथा ऋषियोंसहित सारी त्रिलोकी नष्ट हो जायगी। इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

'अतः पुरुषसिंह! तुम त्रिभुवनकी रक्षापर दृष्टि रखते हुए लक्ष्मणको त्याग दो और उनके बिना अब धर्मपूर्वक स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत्को स्वस्थ एवं सुखी बनाओ'॥ ११॥

वहाँ एकत्र हुए मन्त्री, पुरोहित आदि सब सभासदोंकी उस सभाके बीच वसिष्ठ मुनिकी कही हुई वह बात सुनकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ १२॥

'सुमित्रानन्दन! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ, जिससे धर्मका लोप न हो। साधु पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा वध—दोनों समान ही हैं'॥ १३॥

श्रीरामके इतना कहते ही लक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे तुरंत वहाँसे चल दिये। अपने घरतक नहीं गये॥

सरयूके किनारे जाकर उन्होंने आचमन किया और हाथ जोड़ सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके प्राणवायुको रोक लिया॥ १५॥

लक्ष्मणने योगयुक्त होकर श्वास लेना बंद कर दिया है—यह देख इन्द्र आदि सब देवता, ऋषि और अप्सराएँ उस समय उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं॥

महाबली लक्ष्मण अपने शरीरके साथ ही सब मनुष्योंकी दृष्टिसे ओझल हो गये। उस समय देवराज इन्द्र उन्हें साथ लेकर स्वर्गमें चले गये॥ १७॥

भगवान् विष्णुके चतुर्थ अंश लक्ष्मणको आया देख सभी देवता हर्षसे भर गये और उन सबने प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणकी पूजा की॥ १८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ छठाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ सर्ग

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार तथा कुश और लवका राज्याभिषेक करना

लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख-शोकमें मग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

'आज मैं अयोध्याके राज्यपर धर्मवत्सल वीर भाई भरतका राजाके पदपर अभिषेक करूँगा। उसके बाद वनको चला जाऊँगा॥ २॥

'शीघ्र ही सब सामग्री जुटाकर ले आओ। अब अधिक समय नहीं बीतना चाहिये। मैं आज ही लक्ष्मणके पथका अनुसरण करूँगा'॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर प्रजावर्गके सभी लोग धरतीपर माथा टेककर पड़ गये और प्राणहीन-से हो गये॥ ४॥

श्रीरघुनाथजीकी वह बात सुनकर भरतका तो होश ही उड़ गया। वे राज्यकी निन्दा करने लगे और इस प्रकार बोले—॥ ५॥

'राजन्! रघुनन्दन! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके बिना मुझे राज्य नहीं चाहिये, स्वर्गका भोग भी नहीं चाहिये॥ ६॥

'राजन्! नरेश्वर! आप इन कुश और लवका राज्याभिषेक कीजिये। दक्षिण कोशलमें कुशको और उत्तर कोशलमें लवको राजा बनाइये॥ ७॥

'तेज चलनेवाले दूत शीघ्र ही शत्रुघ्नके पास भी जायँ और उन्हें हमलोगोंकी इस महायात्राका वृत्तान्त सुनायें। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये'॥ ८॥

भरतकी बात सुनकर तथा पुरवासियोंको नीचे मुख किये दुःखसे संतप्त होते देख महर्षि वसिष्ठने कहा—॥

'वत्स श्रीराम! पृथ्वीपर पड़े हुए इन प्रजाजनोंकी ओर देखो। इनका अभिप्राय जानकर इसीके अनुसार कार्य करो। इनकी इच्छाके विपरीत करके इन बेचारोंका दिल न दुखाओ'॥ १०॥

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरघुनाथजीने प्रजाजनोंको उठाया और सबसे पूछा—'मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?'॥ ११॥

तब प्रजावर्गके सभी लोग श्रीरामसे बोले—

'रघुनन्दन! आप जहाँ भी जायेंगे, आपके पीछे-पीछे हम भी वहीं चलेंगे॥ १२॥

'काकुत्स्थ! यदि पुरवासियोंपर आपका प्रेम है, यदि हमपर आपका परम उत्तम स्नेह है तो हमें साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये। हम अपने स्त्री-पुत्रोंसहित आपके साथ ही सन्मार्गपर चलनेको उद्यत हैं॥ १३॥

'स्वामिन्! आप तपोवनमें या किसी दुर्गम स्थानमें अथवा नदी या समुद्रमें—जहाँ कहीं भी जायँ, हम सबको साथ ले चलें। यदि आप हमें त्याग देने योग्य नहीं मानते हैं तो ऐसा ही करें॥ १४॥

'यही हमारे ऊपर आपकी सबसे बड़ी कृपा होगी और यही हमारे लिये आपका परम उत्तम वर होगा। आपके पीछे चलनेमें ही हमें सदा हार्दिक प्रसन्नता होगी'॥ १५॥

पुरवासियोंकी दृढ़ भक्ति देख श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनकी इच्छाका अनुमोदन किया और अपने कर्तव्यका निश्चय करके श्रीरघुनाथजीने उसी दिन दक्षिण कोशलके राज्यपर वीर कुशको और उत्तर कोशलके राजसिंहासनपर लवको अभिषिक्त कर दिया। अभिषिक्त हुए अपने उन दोनों महामनस्वी पुत्र कुश और लवको गोदमें बिठाकर उनका गाढ़ आलिङ्गन करके महाबाहु श्रीरामने बारम्बार उन दोनोंके मस्तक सूँघे; फिर उन्हें अपनी-अपनी राजधानीमें भेज दिया॥ १६—१८॥

उन्होंने अपने एक-एक पुत्रको कई हजार रथ, दस हजार हाथी और एक लाख घोड़े दिये॥ १९॥

दोनों भाई कुश और लव प्रचुर रत्न और धनसे सम्पन्न हो गये। वे हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे घिरे रहने लगे। उन दोनोंको श्रीरामने उनकी राजधानियोंमें भेज दिया॥

इस प्रकार उन दोनों वीरोंको अभिषिक्त करके अपने-अपने नगरमें भेजकर श्रीरघुनाथजीने महात्मा शत्रुघ्नके पास दूत भेजे॥ २१॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों तथा रीछोंके साथ परमधाम जानेका निश्चय और विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द एवं द्विविदको इस भूतलपर ही रहनेका आदेश देना

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर शीघ्रगामी दूत शीघ्र ही मधुरापुरीको चल दिये। उन्होंने मार्गमें कहीं भी पड़ाव नहीं डाला॥ १॥

लगातार तीन दिन और तीन रात चलकर वे मधुरा पहुँचे और अयोध्याकी सारी बातें उन्होंने शत्रुघ्नसे यथार्थत: कह सुनायीं॥ २॥

श्रीरामकी प्रतिज्ञा, लक्ष्मणका परित्याग, श्रीरामके दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक और पुरवासियोंका श्रीरामके साथ जानेका निश्चय आदि सब बातें बताकर दूतोंने यह भी कहा कि 'परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने कुशके लिये विन्ध्यपर्वतके किनारे कुशावती नामक रमणीय नगरीका निर्माण कराया है॥ ३-४॥

'इसी तरह लवके लिये श्रावस्ती नामसे प्रसिद्ध सुन्दरपुरी बसायी है। श्रीरघुनाथजी और भरतजी दोनों महारथी वीर अयोध्याको सूनी करके साकेतधामको जानेके लिये उद्योग कर रहे हैं।' इस प्रकार महात्मा शत्रुघ्नको शीघ्रतापूर्वक सब बातें बताकर दूतोंने कहा—'राजन्! शीघ्रता कीजिये' इतना कहकर वे चुप हो गये॥ ५-६ $\frac{1}{2}$॥

अपने कुलका भयंकर संहार उपस्थित हुआ सुनकर रघुनन्दन शत्रुघ्नने समस्त प्रजा तथा काञ्चन नामक पुरोहितको बुलाया और उनसे सब बातें यथावत् कह सुनायीं॥ ७-८॥

उन्होंने यह भी बताया कि भाइयोंके साथ मेरे शरीरका भी वियोग होनेवाला है। इसके बाद वीर राजा शत्रुघ्नने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक किया॥ ९॥

सुबाहुने मधुराका राज्य पाया और शत्रुघातीने विदिशाका। मधुराकी सेनाके दो भाग करके राजा शत्रुघ्नने दोनों पुत्रोंको बाँट दिये तथा बाँटनेके योग्य धनका भी विभाजन करके उन दोनोंको दे दिया और उन्हें अपनी-अपनी राजधानीमें स्थापित कर दिया॥ १०॥

इस प्रकार सुबाहुको मधुरामें तथा शत्रुघातीको विदिशामें स्थापित करके रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न एकमात्र रथके द्वारा अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए॥ ११॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा महात्मा श्रीराम अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे हैं। उनके शरीरपर महीन रेशमी वस्त्र शोभा पा रहा है तथा वे अविनाशी महर्षियोंके साथ विराजमान हैं॥ १२॥

निकट जा हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया और धर्मका चिन्तन करते हुए इन्द्रियोंको काबूमें करके वे धर्मके ज्ञाता श्रीरामसे बोले—॥ १३॥

'रघुकुलनन्दन! मैं अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक करके आया हूँ। राजन्! आप मुझे भी अपने साथ चलनेके दृढ़ निश्चयसे युक्त समझें॥ १४॥

'वीर! आज इसके विपरीत आप मुझसे और कुछ न कहियेगा; क्योंकि उससे बढ़कर मेरे लिये दूसरा कोई दण्ड न होगा। मैं नहीं चाहता कि किसीके विशेषत: मुझ-जैसे सेवकके द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो'॥

शत्रुघ्नका यह दृढ़ विचार जानकर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा—'बहुत अच्छा'॥ १६॥

उनकी यह बात समाप्त होते ही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, रीछ और राक्षसोंके समुदाय बहुत बड़ी संख्यामें वहाँ आ पहुँचे॥ १७॥

साकेत-धामको जानेके लिये उद्यत हुए श्रीरामके दर्शनकी इच्छा मनमें लिये वे सभी वानर सुग्रीवको आगे करके वहाँ पधारे थे॥ १८॥

उनमेंसे कितने ही देवताओंके पुत्र थे, कितने ही ऋषियोंके बालक थे और कितने ही गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुए थे। श्रीरघुनाथजीके लीलासंवरणका समय जानकर वे सब-के-सब वहाँ आये थे। उक्त सभी वानर और राक्षस श्रीरामको प्रणाम करके बोले—॥ १९ $\frac{१}{२}$ ॥

'राजन्! हम भी आपके साथ चलनेका निश्चय लेकर यहाँ आये हैं। पुरुषोत्तम श्रीराम! यदि आप हमें साथ लिये बिना ही चले जायँगे तो हम यह समझेंगे कि आपने यमदण्ड उठाकर हमें मार गिराया है'॥ २०-२१॥

इसी बीचमें महाबली सुग्रीव भी वीर श्रीरामको विधिपूर्वक प्रणाम करके अपना अभिप्राय निवेदन करनेके लिये उद्यत हो बोले—॥ २२॥

'नरेश्वर! मैं वीर अङ्गदका राज्याभिषेक करके आया हूँ। आप समझ लें कि मेरा भी आपके साथ चलनेका दृढ़ निश्चय है'॥ २३॥

उनकी यह बात सुनकर मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने वानरराज सुग्रीवकी मित्रताका विचार करके उनसे कहा—॥ २४॥

'सखे सुग्रीव! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे बिना देवलोकमें और महान् परमपद या परमधाममें भी नहीं जा सकता'॥ २५॥

पूर्वोक्त वानरों और राक्षसोंकी भी बात सुनकर महायशस्वी श्रीरघुनाथजी 'बहुत अच्छा' कहकर मुसकराये और राक्षसराज विभीषणसे बोले—॥ २६॥

'महापराक्रमी राक्षसराज विभीषण! जबतक संसारकी प्रजा जीवन धारण करेगी, तबतक तुम भी लङ्कामें रहकर अपने शरीरको धारण करोगे॥ २७॥

'जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे, जबतक पृथ्वी रहेगी और जबतक संसारमें मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तबतक इस भूतलपर तुम्हारा राज्य बना रहेगा'॥ २८॥

'मैंने मित्रभावसे ये बातें तुमसे कही हैं। तुम्हें मेरी आज्ञाका पालन करना चाहिये। तुम धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो। इस समय मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हें उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहिये॥ २९॥

'महाबली राक्षसराज! इसके सिवा मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ। हमारे इक्ष्वाकुकुलके देवता हैं भगवान् जगन्नाथ (श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु)। इन्द्र आदि देवता भी उनकी निरन्तर आराधना करते रहते हैं। तुम भी सदा उनकी पूजा करते रहना'॥ ३० $\frac{१}{२}$ ॥

राक्षसराज विभीषणने श्रीरघुनाथजीकी इस आज्ञाको अपने हृदयमें धारण किया और 'बहुत अच्छा' कहकर उसका पालन स्वीकार किया॥ ३१ $\frac{१}{२}$ ॥

विभीषणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसे बोले—'तुमने दीर्घकालतक जीवित रहनेका निश्चय किया है। अपनी इस प्रतिज्ञाको व्यर्थ न करो॥ ३२ $\frac{१}{२}$ ॥

'हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो'॥ ३३ $\frac{१}{२}$ ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले—॥ ३४ $\frac{१}{२}$ ॥

'भगवन्! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा'॥ ३५ $\frac{१}{२}$ ॥

इसके बाद भगवान्‌ने ब्रह्माजीके पुत्र बूढ़े जाम्बवान् तथा मैन्द और द्विविदसे भी कहा—'जाम्बवान्‌सहित तुम पाँचों व्यक्ति (जाम्बवान्, विभीषण, हनुमान्, मैन्द और द्विविद) तबतक जीवित रहो, जबतक कि प्रलय एवं कलियुग न आ जाय' (इनमेंसे हनुमान् और विभीषण तो प्रलयकालतक रहनेवाले हैं और शेष तीन व्यक्ति कलि और द्वापरकी संधिमें श्रीकृष्णावतारके समय मारे गये या मर गये)॥ ३६-३७॥

उन सबसे ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने शेष सभी रीछों और वानरोंसे कहा—'बहुत अच्छा' तुमलोगोंकी बातें मुझे स्वीकार हैं। तुम सब अपने कथनानुसार मेरे साथ चलो'॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०८॥

एक सौ नवाँ सर्ग

परमधाम जानेके लिये निकले हुए श्रीरामके साथ समस्त अयोध्यावासियोंका प्रस्थान

तदनन्तर रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब विशाल वक्षःस्थलवाले महायशस्वी कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी पुरोहितसे बोले—॥ १ ॥

'मेरे अग्निहोत्रकी प्रज्वलित आग ब्राह्मणोंके साथ आगे-आगे चले। महाप्रयाणके पथपर इस यात्राके समय मेरे वाजपेय-यज्ञका सुन्दर छत्र भी चलना चाहिये'॥ २ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर तेजस्वी वसिष्ठ मुनिने महाप्रस्थानकालके लिये उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका विधिपूर्वक पूर्णतः अनुष्ठान किया॥ ३ ॥

फिर भगवान् श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण किये दोनों हाथोंमें कुश लेकर परब्रह्मके प्रतिपादक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सरयूनदीके तटपर चले॥ ४ ॥

उस समय वे वेदपाठके सिवा कहीं किसीसे और कोई बात नहीं करते थे। चलनेके अतिरिक्त उनमें कोई दूसरी चेष्टा नहीं दिखायी देती थी तथा वे लौकिक सुखका परित्याग करके देदीप्यमान सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हुए घरसे निकले थे और गन्तव्य पथपर बढ़ रहे थे॥ ५ ॥

भगवान् श्रीरामके दाहिने पार्श्वमें कमल हाथमें लिये श्रीदेवी उपस्थित थीं। वामभागमें भूदेवी विराजमान थीं तथा आगे-आगे उनकी व्यवसाय (संहार)-शक्ति चल रही थी॥ ६ ॥

नाना प्रकारके बाण, विशाल एवं उत्तम धनुष तथा दूसरे-दूसरे अस्त्र-शस्त्र—सभी पुरुष-शरीर धारण करके भगवान्‌के साथ चले॥ ७ ॥

चारों वेद ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे। सबकी रक्षा करनेवाली गायत्री देवी, ओंकार और वषट्कार सभी भक्तिभावसे श्रीरामका अनुसरण करते थे॥

महात्मा ऋषि तथा समस्त ब्राह्मण भी ब्रह्मलोकके खुले हुए द्वारस्वरूप परमात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे गये॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी बालकों, वृद्धों, दासियों, खोजों और सेवकोंके साथ निकलकर सरयूतटकी ओर जाते हुए श्रीरामके पीछे-पीछे जा रही थीं॥ १० ॥

भरत और शत्रुघ्न अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ अपने आश्रयस्वरूप भगवान् श्रीरामके, जो अग्निहोत्रके साथ जा रहे थे, पीछे-पीछे गये॥ ११ ॥

वे सब महामनस्वी श्रेष्ठ पुरुष एवं ब्राह्मण अग्निहोत्रकी अग्नि तथा स्त्री-पुत्रोंके साथ इस महायात्रामें सम्मिलित हो परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीका अनुगमन कर रहे थे॥ १२ ॥

समस्त मन्त्री और भृत्यवर्ग भी अपने पुत्रों, पशुओं, बन्धुओं तथा अनुचरोंसहित हर्षपूर्वक श्रीरामके पीछे-पीछे जा रहे थे॥ १३ ॥

हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए समस्त प्रजाजन श्रीरघुनाथजीके गुणोंपर मुग्ध थे; इसलिये वे स्त्री, पुरुष, पशु-पक्षी तथा बन्धु-बान्धवोंसहित उस महायात्रामें श्रीरामके अनुगामी हुए। उन सबके हृदयमें प्रसन्नता थी और वे सभी पापसे रहित थे॥ १४-१५ ॥

सम्पूर्ण हृष्ट-पुष्ट वानरगण भी स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकारियाँ मारते हुए भगवान् श्रीरामके साथ जा रहे थे, वह सारा समुदाय ही श्रीरामका भक्त था॥ १६ ॥

उनमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो दीन-दुःखी अथवा लज्जित हो। वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंके हृदयमें महान् हर्ष छा रहा था और इस प्रकार वह जनसमुदाय अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ता था॥ १७ ॥

जनपदके लोगोंमेंसे जो श्रीरामकी यात्रा देखनेके लिये आये थे, वे भी यह सब समारोह देखते ही भगवान्‌के साथ परमधाम जानेको तैयार हो गये॥ १८ ॥

रीछ, वानर, राक्षस और पुरवासी मनुष्य बड़ी भक्तिके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे एकाग्रचित्त होकर चले आ रहे थे॥ १९ ॥

अयोध्यानगरमें जो अदृश्य प्राणी रहते थे, वे भी साकेतधाम जानेके लिये उद्यत हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे चल दिये॥ २० ॥

चराचर प्राणियोंमेंसे जो-जो श्रीरघुनाथजीको जाते देखते थे, वे सभी उस यात्रामें उनके पीछे-पीछे चल देते थे॥

उस समय उस अयोध्यामें साँस लेनेवाला कोई छोटे-से-छोटा प्राणी भी रह गया हो, ऐसा नहीं देखा जाता था। तिर्यग्योनिके समस्त जीव भी श्रीराममें भक्तिभाव रखकर उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०९ ॥

एक सौ दसवाँ सर्ग

भाइयोंसहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए सब लोगोंको संतानक-लोककी प्राप्ति

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर जाकर रघुकुलनन्दन भगवान् श्रीरामने पश्चिमाभिमुख हो निकट प्राप्त हुई पुण्यसलिला सरयूका दर्शन किया॥ १॥

सरयूनदीमें सब ओर भँवरे उठ रही थीं। वहाँ सब ओर घूम-फिरकर रघुनन्दन राजा श्रीराम प्रजाजनोंके साथ एक उत्तम स्थानपर आये॥ २॥

उसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं तथा महात्मा ऋषि-मुनियोंसे घिरे हुए उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ श्रीरघुनाथजी परमधाम पधारनेके लिये उपस्थित थे। उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान शोभा पा रहे थे॥ ३-४॥

सारा आकाशमण्डल दिव्य तेजसे व्याप्त हो अत्यन्त उत्तम ज्योतिर्मय हो रहा था। पुण्यकर्म करनेवाले स्वर्गवासी स्वयं प्रकाशित होनेवाले अपने तेजसे उस स्थानको उद्भासित कर रहे थे॥ ५॥

परम पवित्र, सुगन्धित एवं सुखदायिनी हवा चलने लगी। देवताओंद्वारा गिराये गये राशि-राशि दिव्य पुष्पोंकी भारी वर्षा होने लगी॥ ६॥

उस समय सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे और गन्धर्वों तथा अप्सराओंसे वहाँका स्थान भर गया। इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजी सरयूके जलमें प्रवेश करनेके लिये दोनों पैरोंसे आगे बढ़ने लगे॥ ७॥

तब ब्रह्माजी आकाशसे ही बोले—'श्रीविष्णु-स्वरूप रघुनन्दन! आइये, आपका कल्याण हो। हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आप अपने परमधामको पधार रहे हैं॥ ८॥

'महाबाहो! आप देवतुल्य तेजस्वी भाइयोंके साथ अपने स्वरूपभूत लोकमें प्रवेश करें। आप जिस स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें॥

'महातेजस्वी परमेश्वर! आपकी इच्छा हो तो चतुर्भुज विष्णुरूपमें ही प्रवेश करें अथवा अपने सनातन आकाशमय अव्यक्त ब्रह्मरूपमें ही विराजमान हों। देव! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं। आपकी पुरातन पत्नी योगमाया (ह्लादिनी शक्ति)-स्वरूपा जो विशाललोचना सीतादेवी हैं, उनको छोड़कर दूसरे कोई आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते हैं; क्योंकि आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा जरा आदि अवस्थाओंसे रहित परब्रह्म हैं, अतः महातेजस्वी राघवेन्द्र! आप जिसमें चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें (प्रतिष्ठित हों)'॥ १०-११॥

पितामह ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने कुछ निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने वैष्णव तेजमें प्रवेश किया॥

फिर तो इन्द्र और अग्नि आदि सब देवता, साध्य तथा मरुद्गण भी विष्णुस्वरूपमें स्थित हुए भगवान् श्रीरामकी पूजा (स्तुति-प्रशंसा) करने लगे॥ १३॥

तदनन्तर जो दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव और राक्षस थे, वे भी भगवान्का गुणगान करने लगे॥ १४॥

(वे बोले—) 'प्रभो! यहाँ आपके पदार्पण करनेसे देवलोकवासियोंका यह सारा समुदाय सफलमनोरथ होनेके कारण हृष्ट-पुष्ट एवं आनन्दमग्न हो गया है। सबके पाप-ताप नष्ट हो गये हैं। प्रभो! आपको हमारा शतशः साधुवाद है।' ऐसा उन देवताओंने कहा॥ १५॥

तत्पश्चात् विष्णुरूपमें विराजमान महातेजस्वी श्रीराम ब्रह्माजीसे बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पितामह! इस सम्पूर्ण जनसमुदायको भी आप उत्तम लोक प्रदान करें॥ १६॥

'ये सब लोग स्नेहवश मेरे पीछे आये हैं। ये सब-के-सब यशस्वी और मेरे भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिये अपने लौकिक सुखोंका परित्याग कर दिया है, अतः ये सर्वथा मेरे अनुग्रहके पात्र हैं'॥ १७॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजी बोले—'भगवन्! यहाँ आये हुए ये सब लोग 'संतानक' नामक लोकोंमें जायँगे॥ १८॥

'पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जीवोंमेंसे भी जो कोई आपका ही भक्तिभावसे चिन्तन करता हुआ प्राणोंका परित्याग करेगा, वह भी संतानक-लोकोंमें ही निवास करेगा। यह संतानकलोक ब्रह्मलोकके ही निकट है (साकेत-धामका ही अङ्ग है)। वह ब्रह्माके सत्य-संकल्पत्व आदि सभी उत्तम गुणोंसे युक्त है। उसीमें ये आपके भक्तजन निवास करेंगे'॥ १९½॥

जिन वानरों और रीछोंकी देवताओंसे उत्पत्ति हुई थी, वे अपनी-अपनी योनिमें ही मिल गये—जिन-जिन देवताओंसे प्रकट हुए थे, उन्हींमें प्रविष्ट हो गये।

सुग्रीवने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया। इसी प्रकार अन्य वानर भी सब देवताओंके देखते-देखते अपने-अपने पिताके स्वरूपको प्राप्त हो गये॥ २०-२१½ ॥

देवेश्वर ब्रह्माजीने जब संतानक-लोकोंकी प्राप्तिकी घोषणा की, तब सरयूके गोप्रतारघाटपर आये हुए उन सब लोगोंने आनन्दके आँसू बहाते हुए सरयूके जलमें डुबकी लगायी॥ २२½ ॥

जिसने-जिसने जलमें गोता लगाया, वही-वही बड़े हर्षके साथ प्राणों और मनुष्य-शरीरको त्यागकर विमानपर जा बैठा॥ २३½ ॥

पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए सैकड़ों प्राणी सरयूके जलमें गोता लगाकर तेजस्वी शरीर धारण करके दिव्यलोकमें जा पहुँचे। वे दिव्य शरीर धारण करके दिव्य अवस्थामें स्थित हो देवताओंके समान दीप्तिमान् हो गये॥ २४-२५ ॥

स्थावर और जङ्गम सभी तरहके प्राणी सरयूके जलमें प्रवेश करके उस जलसे अपने शरीरको भिगोकर दिव्य लोकमें जा पहुँचे॥ २६ ॥

उस समय जो कोई भी रीछ, वानर या राक्षस वहाँ आ गये, वे सभी अपने शरीरको सरयूके जलमें डालकर भगवान्के परमधाममें जा पहुँचे॥ २७ ॥

इस प्रकार वहाँ आये हुए सब प्राणियोंको संतानक-लोकोंमें स्थान देकर लोकगुरु ब्रह्माजी हर्ष और आनन्दसे भरे हुए देवताओंके साथ अपने महान् धाममें चले गये॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११० ॥

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

रामायण-काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा

(कुश और लव कहते हैं—) महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित यह रामायण नामक श्रेष्ठ आख्यान उत्तरकाण्डसहित इतना ही है। ब्रह्माजीने भी इसका आदर किया है॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीराम पहलेकी ही भाँति अपने विष्णुस्वरूपसे परमधाममें प्रतिष्ठित हुए। उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित यह समस्त त्रिलोकी व्याप्त है॥ २ ॥

उन भगवान्के पावन चरित्रसे युक्त होनेके कारण देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि सदा प्रसन्नतापूर्वक देवलोकमें इस रामायणकाव्यका श्रवण करते हैं॥ ३ ॥

यह प्रबन्धकाव्य आयु तथा सौभाग्यको बढ़ाता और पापोंका नाश करता है। रामायण वेदके समान है। विद्वान् पुरुषको श्राद्धोंमें इसे पढ़कर सुनाना चाहिये॥ ४ ॥

इसके पाठसे पुत्रहीनको पुत्र और धनहीनको धन मिलता है। जो प्रतिदिन इसके श्लोकके एक चरणका भी पाठ करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ५ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन पाप करता है, वह भी यदि इसके एक श्लोकका भी नित्य पाठ करे तो वह सारी पापराशिसे मुक्त हो जाता है॥ ६ ॥

इसकी कथा सुनानेवाले वाचकको वस्त्र, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये। वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं॥ ७ ॥

यह रामायण नामक प्रबन्धकाव्य आयुकी वृद्धि करनेवाला है। जो मनुष्य प्रतिदिन इसका पाठ करता है, उसे इस लोकमें पुत्र-पौत्रकी प्राप्ति होती है और मृत्युके पश्चात् परलोकमें भी उसका बड़ा सम्मान होता है॥ ८ ॥

जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्ण अथवा सायंकालमें रामायणका पाठ करता है, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता है॥ ९ ॥

(श्रीरघुनाथजीके परमधाम पधारनेके पश्चात्) रमणीय अयोध्यापुरी भी बहुत वर्षोंतक सूनी पड़ी रहेगी। फिर राजा ऋषभके समय यह आबाद होगी॥ १० ॥

प्रचेताके पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीने अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिके बादकी कथा एवं उत्तरकाण्डसहित रामायण नामक इस ऐतिहासिक काव्यका निर्माण किया है। ब्रह्माजीने भी इसका अनुमोदन किया था॥ ११ ॥

इस काव्यके एक सर्गका श्रवण करनेमात्रसे ही मनुष्य एक हजार अश्वमेध और दस हजार वाजपेय यज्ञोंका फल पा लेता है॥ १२ ॥

जिसने इस लोकमें रामायणकी कथा सुन ली, उसने मानो प्रयाग आदि तीर्थों, गङ्गा आदि पवित्र नदियों, नैमिषारण्य आदि वनों और कुरुक्षेत्र आदि पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा पूरी कर ली॥ १३½ ॥

जो सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें एक भार सुवर्णका दान करता है और जो लोकमें प्रतिदिन रामायण सुनता है, वे दोनों समान पुण्यके भागी होते हैं॥ १४½ ॥

जो उत्तम श्रद्धासे सम्पन्न हो श्रीरघुनाथजीकी कथा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और विष्णुलोकमें जाता है॥ १५½ ॥

जो पूर्वकालमें वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस आर्षरामायण आदिकाव्यका सदा भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ १६½ ॥

इसके श्रवणसे स्त्री-पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धन और संतति बढ़ती है। इसे पूर्णतः सत्य समझकर मनको वशमें रखते हुए इसका श्रवण करना चाहिये। यह परम उत्तम रामायणकाव्य गायत्रीका स्वरूप है॥ १७-१८॥

जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीरघुनाथजीके इस चरित्रको सुनता या पढ़ता है, वह निष्पाप होकर दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है॥ १९॥

जो कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा रखता है, उसे नित्य-निरन्तर श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको प्रतिदिन यह प्रबन्धकाव्य सुनाना चाहिये॥ २०॥

जो इस श्रीरघुनाथ-चरित्रका पाठ पूर्ण कर लेता है, वह प्राणान्त होनेपर भगवान् विष्णुके ही धाममें जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २१॥

इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह तथा उनके भी पिता भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

श्रीराघवेन्द्रका यह चरित्र सदा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। इसलिये प्रतिदिन यत्नपूर्वक निरन्तर इस उत्तम काव्यका श्रवण करना चाहिये॥ २३॥

जो रामायणकाव्यके श्लोकके एक चरण या एक पदका भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह ब्रह्माजीके धाममें जाता है और सदा उनके द्वारा पूजित होता है॥ २४॥

इस प्रकार इस पुरातन आख्यानका आपलोग विश्वासपूर्वक पाठ करें। आपका कल्याण हो और भगवान् विष्णुके बलकी जय हो॥ २५॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १११॥

॥ उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण समाप्त